श्रीः।

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा।

लाला शालिग्रामकृत

॥ श्रीः ॥

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत-भाषा

(बारहों स्कन्ध)

कविचूड़ामणि गोलोकवासी लाला शालिग्रामजी अनुवादित

***

जिसमें

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका नवनित्य लीलावतार चरित्र, शंका, समाधान, दृष्टान्त, माहात्म्य सहित और विष्णु-सहस्रनाम विस्तारपूर्वक वर्णित है

*

मुद्रक व प्रकाशक

खेमराज श्रीकृष्णदास

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" प्रेस, बम्बई-४

संस्करण : फरवरी २०२०, संवत् २०७६

अधिकतम सूची मूल्य १५०० रुपये मात्र।



धन्यवादाः ! श्रीयुत–कविवर लाला शालिग्रामजी धन्यवादाः ! !

संतु भूयांसो महियसे विश्वश्रवसे महापुरुषाय सकलजगदचरपदार्थसार्थसृष्टिस्थितिप्रलयमहाकारणाय करुणावरुणालयाय लीलायोपात्तदिव्यविग्रहाय विरचितदुरितनिग्रहाय भगवते नारायणाय धन्यवादाः । येन परमकारुणिकेन भगवतेदं समस्तं जगदुत्पाद्य तत्क्षेमसंपादनाय विहितविविधावतारैर्विचित्राणि पवित्राणि चरित्राणि विरचय्य चतुर्विधपुरुषार्थसौधमारोढुं निश्रेणिरेव केवलं कीर्तिर्निर्मितास्ति । यस्य चानन्तान्गुणाननेके महानुभावा महर्षयो यत्र तत्र सज्जनसंवादगोष्ठीषु मीमांसंतेऽनुवदन्ति च । अवर्णनीयः खलु स्वल्पमतीनां महीयसां मनोवाचामगोचरो महिमेति किमिति वर्णयामोऽस्य महिमानमनयैकयाननविवरविहारिण्याऽन्नरसज्ञया रसज्ञयाऽकृतपुण्यपुंजया । अस्तु ।

तथैव च श्रीमते व्यासमुनये सन्तु सहस्रान्ता धन्यवादाः । येन चेतरदुर्विगाह्यस्थानाविसिद्धस्य वेदस्य विभागं कृत्वा तदुबृहणायाष्टादशपुराणानि महाभारतेतिहासश्च निरमीयन्त । तन्मध्ये सकलजनदुस्तरतरतमोऽपहरणाय भवजलधिसमुत्तरणाय श्रीमद्भगवदेकप्रधानगुणानुवर्णनैकप्रचुरसारस भारसंभूतं श्रीमद्भागवतं नाम महापुराणं निर्मायात्मनो मनसः संतोषपोषपुरस्सरं वहुधन्यताममन्यत । कः पामरो नरोऽमरवरादिस्तुतिपात्रस्यानवरतकृष्णमित्रस्य नरवरस्य श्रीव्यासमुनेः पदवीमनुगन्तुं शक्नुयान्नाम वरीवृतीति सर्वोपरि श्रीव्यासमुनिरित्येव मन्यामहे । नैतादृशोऽद्यावधिग्रन्थरचनाचतुरो नरवरः कश्चनाभूद्भावी वर्तमानो वा दृश्यते श्रूयतेऽपि । अतस्तदीयं सर्वमपि धन्यमित्येवोक्त्वा तिष्ठामः ।

संतु च शतशो धन्यवादाः श्रीमद्वैश्यवंशावतंसाय श्रीमाथुरकुलकुमुदचन्द्रमसे गोविप्रप्रतिपालनैकबद्धादराय भगवद्भक्तिनिष्ठागरिष्ठाय रसालंकारपरिष्कृत–काव्यनिर्माणविचक्षणाय विलक्षणप्रतिभाभासुराय भगवद्गुणगणसद्रत्नमालालंकृतकंठनालायानेकविधचातुरीपारीणाय श्रीमते श्रीरामगंगातटस्थमुरादावादनगर–निवासिने श्रीबुधवर "श्रीलालाशालिग्राम" सुगृहीतनामधेयाय येन चाद्यावधि वहवो रसपूर्णाः काव्यग्रन्था भगवत्प्रसादलब्धयाऽतिविशदया बुद्धया निर्मिताः, येषां तत्कृतानां ग्रन्थानां माधुर्यमास्वादयन्ति रसिका भूरिभागधेयाः सज्जनाः । अहो किं वर्णनीयं भूतलभागधेयस्यास्य भूरिभागधेयम् । यदनेन श्रीमद्व्यासमुनिप्रणीतेऽस्मिञ्छ्रीमद्भागवताभिधेये महापुराणे परिपूर्णमभ्यासं कृत्वा सकलप्राकृतजनानुजिघृक्षया सरलया सुबोधया विशदया रसालंकारादिपरि–पूर्णदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकाद्युपकरणोपबृंहितया शङ्कासमाधानादिभिर्निःसंदिग्धार्थावबोधिन्या भाषाटीकया व्याख्यातम् । अहो भाग्यं वाचकानां भागवतरसलोलुपानां भव्यजनानाम्, यदेतद्बुधवरप्रणीतभाषाभागवतापरपर्याय "श्रीशुकसागर" ग्रन्थेन श्रीमद्भागवतस्य यथार्थमर्थं बद्ध्वा सर्वेऽपि श्रद्धालवः साधुजनाः सद्गृहस्थास्तद्विमर्शं कुर्वन्त आत्मनो जन्मनः साफल्यमासादयिष्यन्तीति बाढं निधिनुमः, अयमस्य बुधवरस्य भूयानुपकार एव जागर्ति भूतले । विशेषतश्चैनं प्रशंसामो वयम्, यतोऽनेन विदुषा भाषाभागवतापरपर्यायः "श्रीशुकसागरः" स्वयं निर्माय केवलं परोपकाराय भूतले ग्रन्थप्रसारो भूयादिति बुद्धयाऽस्माकं समीपे संप्रेषितः । स चायं ग्रन्थोऽस्माभिः पूर्वं स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" नाम्नि मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा सकलजनानां तल्लाभाय प्रसिद्धिं नीतः । स एवाधुना पूर्वावृत्त्यपेक्षया विशेषतः संशोध्य न्यूनविषयपरिपूरणेन परिष्कृत्य च संमुद्र्य प्रकाशमानीयत स एष हि प्रोक्तविदुषः सम्प्रति सर्वोपरि भूयानेव निरुपाधिकोऽपि कारुण्यैकप्रदर्शकोऽनुग्रहः । अतो यावंतोऽस्मै धन्यवादा देयास्तावन्तोऽपि ते न्यूना एवेति मन्यामहे । ततश्च वयं भगवन्तमेवाभ्यर्थयामहे, यदेतं 'श्रीमच्छालिग्राम' नामधेयं बुधवरं श्रीवैकुण्ठनिलयाधिवासिनं स्वप्रीतिपात्रं नितांतं कुर्विति शम ।

क्षेमराज श्रीकृष्णदासः, "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्षः मुम्बईस्थः ।

॥ श्रीमद्वेंकटेशो विजयतेतराम् ॥

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी वैश्य द्वारा-अनुवादित

मुद्रक और प्रकाशक

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

भूमिका

यह श्रीमद्भागवत सब पुराणोंमें श्रेष्ठ, सब पुराणोंमें गोप्य, सब पुराणोंमें मोक्षदायक और परम पवित्र ग्रन्थ है। भगवान् वेदव्यासजीने संसारका कल्याण करनेके लिये भगवल्लीलामय सर्व शांतिनिकेतन, सर्वपुरुषार्थसाधन, सर्ववेदतुल्य, सर्वमंगलमय, सर्वश्रेष्ठ यह श्रीमद्भागवत पुराण निर्माण किया है। जब महर्षि कृष्ण द्वैपायन दूसरे पुराण और महाभारतादि इतिहास निर्माण करके किसी प्रकार अपने चित्तमें शांतिका सञ्चार न कर सके, तब उन्होंने महर्षि नारद मुनिके उपदेशानुसार भगवद्गुणगणप्रधान इस महापुराणका प्रणयन (निर्माण) करके अपने हृदयको सन्तुष्ट किया। इस प्रकार इस श्रीमद्भागवतमें और अन्यान्य धर्मग्रन्थोंमें इस महापुराण का माहात्म्य अनेक प्रकारसे वर्णित है, इस संक्षिप्त भूमिकामें उस माहात्म्यका वर्णन करना अथवा इस महापुराणका विशेष परिचय देना किसी प्रकार सम्भव नहीं है और इसकी यहां कुछ आवश्यकता भी नहीं ज्ञात होती, क्योंकि हमारे देशके आबालवृद्ध और वनिता आदि सभी परम आदर, परम श्रद्धा और परम भक्तिके साथ श्रीमद्भागवतमें अपना तन, मन, धन लगाते हैं, इसलिये इस ग्रन्थके परिचय देनेमें अधिक वाक्य व्यय न करके केवल नारदपुराणोक्त श्रीमद्भागवतकी अनुक्रमणिका यहां अविकल उद्धृत कर देते हैं। इस अनुक्रमणिकामें श्रीमद्भागवतके स्थूल-स्थूल विषय अति संक्षेप और अति विशदरूपसे वर्णन किये हैं, अनुक्रमणिका यथा—

पञ्चमं श्रीमद्भागवतपुराणम्

ब्रह्मोवाच

श्लोक—मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम्।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः॥

ब्रह्माजी बोले कि, हे वत्स मरीचि ! वेदव्यासजीका निर्माण किया हुआ वेदके समान श्रीमद्भागवत नामक पुराणका विवरण कहता हूँ, वह सुनो—यह पापनाशकारी श्रीमद्भागवत अठारह सहस्र श्लोकात्मक और बारह स्कन्धयुक्त कल्पवृक्षरूप है, इसका फल अत्यन्त अद्भुत और रसीला है, इस रसके पान करनेसे चार प्रकारका स्वाद प्राप्त होता है। प्रथम यह फल वैकुण्ठलोकमें था, जब मैंने अधिक तप किया तब विष्णुभगवान्ने प्रसन्न होकर वह फल

मुझको दिया, मैंने नारदमुनिको दिया, नारदजीने वह फल व्यासदेवको दिया और व्यासजीने वह फल अपने पुत्र शुकदेवजीको दिया; तब वह फल पृथ्वीपर आया। हे रसके जाननेवालो रसिको! तुम्हारे धन्य भाग्य हैं जो तुम लोगोंके पान करनेके लिये ऐसा अमृतरूप फल पृथ्वीपर प्राप्त हुआ। यही नहीं कि इस फलका रस इसी अवस्थामें फलदायक है, किन्तु यह रस जीवन्मुक्ति अवस्थामें भी पान करने योग्य है, त्यागने योग्य नहीं, क्योंकि इस रसके पान करनेसे जीवनमरणका संशय नहीं रहता। ऐसे अनुपम रसके पान करने की किसको अभिलाषा न होगी? ऐसा फल इसी देशमें है, और देशांतरोंमें ऐसे फलका मिलना महादुर्लभ है,इस फल-के रस पान करनेकी आशा विदेशी जन भी करते हैं,फिर भला भारतवासी इस सुखरासी फलकी सन्निकटतासे कैसे त्याग सकते हैं? इस बातपर एक दृष्टान्त है–एक समय इस देशका एक साधु किसी द्वीपान्तरमें गया था, वहांके देशाधिकारीने पूछा कि, भगवन्! कोई ऐसा भी उपाय है कि जिसके द्वारा यह प्राणी अमर हो जाय और जीवन-मरणसे छूट जाय? तब उस महात्माने कहा कि भारतवर्षमें एक वृक्ष ऐसा है कि उसके फलका रस पीनेसे प्राणी अमर हो जाता है। यह वचन सुनकर देशाधिपतिने अपने मन्त्रीको भारतवर्षमें इस अमृत–फलकी खोज करनेके लिये भेजा। वह सम्पूर्ण स्थानोंमें भ्रमण करता फिरा और उसको कहीं ऐसा फल न मिला जैसा उस साधुने बतलाया था, तब वह निराश और श्रांत होकर एक स्थानपर बैठ गया और अत्यन्त पश्चात्ताप कर कहने लगा कि मेरा सम्पूर्ण परिश्रम वृथा हुआ और उस साधुने भी असत्य कहा और साधुकी निन्दा करने लगा; तब विष्णु भगवान्ने समझा कि मेरे भक्तकी निन्दा होती है। उसी समय एक संन्यासीका रूप धारण कर उस मन्त्रीके समीप आकर प्रगट हुए और कहा कि तुम क्या कह रहे हो, साधु भी कहीं असत्यवादी होते हैं? कदापि नहीं। तब उस मन्त्रीने अपना सब वृत्तांत सुनाया और अपने आनेका कारण कहा। तब उस संन्यासीने कहा कि, तुम वृथा इतने दिनतक नदी, वन, देश-देशांतरोंमें और अचर सृष्टिमें इस फलकी खोज करते फिरे, यह फल चर सृष्टिमें महात्मा पुरुषोंके पास विद्यमान है। यह वेदरूप कल्पवृक्षसे उत्पन्न होकर शुकरूपी शुकदेवके मुखस्पर्शसे अधिक ही सुधारस पूर्ण हो गया है। इस फलका नाम श्रीमद्भागवत है, इसका रस पान करनेसे प्राणोंको फिर मृत्युका भय नहीं रहता। यह कह उस संन्यासीने अनेक भक्ति-ज्ञानके मार्गोंसे उसको उपदेश कर भगवत्का तत्त्व प्रदान किया, कि जिससे वह अपने आपको कृतकृत्य मान निवृत्त हो अपने अधिकारीके पास लौटकर गया और उसको वह तत्त्व सुनाया कि जिससे उसके जन्म-मरणकी निवृत्ति हुई, इत्यादि। और भी शतशः इस प्रकारके दृष्टान्त हैं; जिससे इस श्रीमद्भागवतके प्रतापसे सहस्रों अमर हो गये, जिनका वर्णन किया जाय तो एक बड़ा भारी ग्रन्थ हो सकता है। इस ग्रन्थकी महिमाको और कोई दूसरा ग्रंथ नहीं पा सकता। हे विप्रो! यह साक्षात् विश्वरूप भगवान्का अंग है।

प्रथमस्कन्ध

श्लोक-तत्र तु प्रथमस्कन्धे सूतर्षीणां समागमः ।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥
परीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥

प्रथम स्कन्धमें सूतजीके साथ शौनकादिऋषियोंका समागम, भगवान् व्यासदेवजीका, पवित्र चरित्र, पाण्डवोंका परम पावन आख्यान, परीक्षित्का वृत्तान्त, यह कई विषय वर्णन किये गये हैं ।

द्वितीयस्कन्ध

श्लोक-परीक्षिच्छुकसंवादे श्रुतिद्वयनिरूपणम् ।
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम् ॥
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः ।
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता ॥

राजा परीक्षित् और श्रीशुकदेवजीका संवाद (योग), ब्रह्मा और नारदमुनिका संवाद, अवतारोंकी पृथक्-पृथक् लीला और चरितामृत कथा, पुराणोंके लक्षण, सृष्टिके समस्त कारणोंका सम्भव होना, बुद्धिमान् भगवान् व्यासदेवजीने यह सम्पूर्ण बातें द्वितीयस्कन्धमें वर्णन की हैं ।

तृतीयस्कन्ध

श्लोक-चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः ।
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः ॥

प्रथम विदुरचरित्र, विदुरजीके साथ मैत्रेयजीका मिलना, उसके पीछे परमात्मा ब्रह्माकी सृष्टिका प्रकरण, कपिलदेवका बनाया हुआ सांख्य-योगशास्त्र, यह सब कथा तीसरे स्कन्धमें वर्णन की गयी हैं ।

चतुर्थस्कन्ध

श्लोक-सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः ॥
इत्येष तुर्य्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः ॥

प्रथम सतीका उपाख्यान, फिर ध्रुवचरित्र, राजा पृथुका पवित्र इतिहास, इसके उपरांत प्राचीन बर्हिकी कथा, विसर्ग सम्बन्धमें चतुर्थ स्कंधके मध्य यह विषय वर्णन किये गये हैं।

पञ्चमस्कन्ध

श्लोक-प्रियव्रत चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम्।
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पंचमो मतः ॥

प्रियव्रत राजाका चरित्र, प्रियव्रतके पुण्यकी और वंशकी कथा, ब्रह्माण्डान्तर्गत समस्त लोकोंका वर्णन, नरकवर्णन, संस्थान सम्बन्धमें पञ्चमस्कंधके मध्य यह सब कथा वर्णन की है।

षष्ठस्कन्ध

श्लोक-अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् ॥
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परितोषणे ॥

प्रथम अजामिलका उपाख्यान, दक्ष प्रजापतिकी सृष्टिका निरूपण, इसके उपरांत वृत्रासुरका चरित्र, उञ्चास (४९) मरुत्‌के जन्मका वृत्तान्त, छठे स्कंधके विषय परिपोषणसम्बन्धमें वेदव्यासजीने यह कथायें वर्णन की हैं।

सप्तमस्कन्ध

श्लोक-प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम्।
सप्तमो गदितो वत्स वासना कर्म कीर्तने ॥

भगवद्भक्त प्रह्लादका पवित्र चरित्र, वर्णाश्रमका निरूपण सप्तम स्कन्धमें यह सकाम कर्म विषय व्यासजी महाराजने वर्णन किये हैं।

अष्टमस्कन्ध

श्लोक-गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम् ॥
समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबन्धनम् ॥
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः ॥

गजराज और ग्राहका युद्ध, मन्वन्तरोंका निरूपण, समुद्रका मथना,-राजा बलिका वैभव और बन्धन, मत्स्य अवतारका चरित्र, इस अष्टम स्कन्धमें वर्णन किया है।

नवमस्कन्ध

श्लोक—सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ।
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते ॥

सूर्यवंशके राजाओंकी कीर्ति, चन्द्रवंशके राजाओंका सुयश, इस प्रकार वंशावलीके ही कीर्तनसे यह नवमस्कन्ध समाप्त हो गया।

दशमस्कन्ध

श्लोक—कृष्णस्य बालचरितं कौमारञ्च व्रजस्थितिः ।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः ॥
भूभार-हरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ॥

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका बालचरित्र, कौमार अवस्थाकी लीला, ब्रज-विहार, कैशोर-दशाके चरित्र, मथुरावास, गोचरावन लीला, द्वारिकापुरीका बसाना और दुष्टोंका मारना पृथ्वीका भार उतारना, दशमस्कन्धके निरोध विषयमें यह कथा वेदव्यासजीने कही है।

एकादशस्कन्ध

श्लोक—नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः ।
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः ।

नारदजीके साथ वासुदेवजीका संवाद, दत्तात्रेयके साथ यदुकी वार्ता, श्रीकृष्ण-उद्धवका संवाद, यादव लोगोंका परस्पर संग्राम और उसीमें सबका संहार और अपनी मायाके प्रभावसे पृथ्वीको त्यागकर वैकुण्ठबिहारीका वैकुण्ठको जाना, यह मुक्तिविषय एकादश-स्कन्धमें वर्णन किये हैं।

द्वादशस्कन्ध

श्लोक—भविष्य-कलिर्निर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम् ॥
सौरीविभूतिसहिता सात्वती च ततः परम् ॥
पुराणसंख्या कथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् ।
इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ॥

प्रथम कलियुगका भविष्य वृत्तान्त, परीक्षित्का मुक्तिपदको प्राप्त होना, वेदकी शाखा-ओंका प्रणयन, मार्कण्डेयजीका अद्भुत आख्यान, सूर्यकी विभूतिका वर्णन, तत्पश्चात् भग-

---

१ 'वंशानुचरिते इति' क्वाचित्कः पाठः ।

वान्‌की विभूति, पुराणोंके श्लोकोंकी संख्या, द्वादशस्कन्धमें इन कथाओंका वर्णन किया है। हे वत्स ! यह तुमसे श्रीमद्भागवतका वृत्तांत संक्षिप्तमात्र वर्णन किया, अब इसके श्रवण करनेका फल वर्णन करते हैं:-

श्लोक-वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनुमोदितुरेव च ।
साहाय्यकर्तुर्गदितं भक्तिमुक्तिविमुक्तिदम् ॥
प्रौष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहासनोचितम् ।
देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम् ॥
संपूज्य वसुहेमाद्यैर्भगवद्भक्तिमिच्छता ।
योऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा ॥
स पुराणश्रवणजं प्राप्नोति फलमुत्तमम् ।

यह श्रीमद्भागवत-वक्ता, श्रोता, उपदेष्टा, अनुमोदिता और सहायकर्त्ता सबको ही भक्ति, मुक्ति और विमुक्तिकी देनेवाली है, जो भक्तजन भगवद्भक्तिकी इच्छा करे वह भाद्रपदमासकी पूर्णमासीको विष्णुभक्त ब्राह्मणादिकी वस्त्र और सुवर्णादिसे पूजा करके प्रीतिपूर्वक श्रीमद्भागवत पुस्तक सुर्वणके सिंहासनपर धरकर दान करे । जो पुरुष इस अनुक्रमणिकाको सुनता है, वा सुनाता है, वह आद्योपांत पुराणश्रवण करनेके फलको प्राप्त होता हैः-

और मत्स्यपुराणमें भी लिखा हैः-

श्लोक-यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ॥
लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहासनान्वितम् ।
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ॥
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

जिस पुराणमें गायत्रीका आशय, धर्मका विस्तार वर्णन हो और वृत्रासुरके वधकी कथा हो वह श्रीमद्भागवत है; उस पुस्तकको महादिव्य अक्षरोंमें लिखवाकर सुवर्ण के सिंहासनपर स्थापित कर भादों सुदी पूर्णमासीके दिन वैष्णव ब्राह्मणको प्रदान करे तो वह प्राणी परम पदको प्राप्त होता है, इस महापुराणमें अठारह सहस्र श्लोक कहे हैं ॥

एवं स्कन्धपुराणमें भी लिखा हैः-

श्लोक-ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ॥
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।
गायत्र्या च समारंभस्तद्वै भागवतं विदुः ॥

स्कन्धपुराणमें लिखा है, कि अठारह सहस्र श्लोक, बारहस्कन्ध, नारायण कवचरूप ब्रह्मविद्या, वृत्रासुरके वधकी कथा और प्रारम्भमें गायत्री है, उसका नाम श्रीमद्भागवत है।

पद्मपुराणमें लिखा है किः–

श्लोक–अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥

गौतमजी बोले–हे अम्बरीष ! जो तुम इस संसारसागरके पार होना चाहो तो यह महापुराण श्रीमद्भागवत सुनो, जो कि व्यासदेवके पुत्र श्रीशुकदेवजीने राजर्षि परीक्षित्‌को सुनाया है, उसको सुनकर अपने मुखसे भी पाठ करो।

सब पुराणोंमें श्रीमद्भागवतका प्रमाण है, इसलिये इस अनुपम ग्रंथका नाम महापुराण है। ऐसे महाप्रभावशाली अद्भुत अलौकिक ग्रंथका स्वाद ग्रहण करनेके लिये किस सहृदयका मन न ललचायेगा ? परंतु संस्कृतमें महापुराणके होनेसे संस्कृतानभिज्ञ पुरुष इसका सार ग्रहण नहीं कर सकते थे और मन मार जीमें हार मान चुपचाप होकर बैठे रहते थे और जो कहीं भागवतकी कथा होती तो छः महीनेमें समाप्त होनेका ढङ्ग लगता, वहां नित्यका जाना कठिन, क्योंकि गृहस्थीमें सैकड़ों विपत्तियाँ लगी रहती हैं, कभी आप रोगग्रस्त, कभी बाल-बच्चोंको ज्वर, खांसी कभी देश-परदेशका आना जाना, कभी लड़केका विवाह, लड़कीका द्विरागमन, इत्यादि-इत्यादि अनेक कार्य बने रहते हैं, कहांतक गिनाये जायँ। भला जब कथाके इतने वैरी शिरपर गाजते रहते हैं तो फिर पूरी कथा सुननेमें क्योंकर आये ? और जो इन सब कामोंको त्यागकर श्रीमद्भागवतको सुन भी लेते तो एक बड़ी कठिनता थी कि किसी स्थलकी कथा स्मरण रहती, किसीकी भूल जाती तो चित्तमें अनेक प्रकारके भ्रम उत्पन्न होते, उन प्रेमियोंके हृदयकी प्रीति देखकर किसी-किसी महात्माने इस श्रीमद्भागवतका अनुवाद भी किया परंतु जो मनमें आया वह गाया, श्लोकोंके मिलानका कोसोंतक पता नहीं, और किसी-किसीने मूलानुसार श्लोकांक भी लगाये, परंतु उन्होंने भी मत मतांतरका झगड़ा डाल दिया, किसीने ब्रजभाषामें उलथा किया उसको और देशवालोंने पसन्द नहीं किया। जब मैंने लोगोंको महा भ्रमजालमें पड़ा देखा तो अपनी जिह्वा पवित्र करनेके लिये महात्मा-ओंके प्रसादसे जो सर्व साधारणकी समझमें आये, इस उत्तम रीतिसे सरल हिन्दी भाषामें श्रीमद्भागवतका अनुवाद किया और अध्याय-अध्यायमें श्लोकांक भी इसीलिये लगा दिये गये हैं कि पाठकगणोंको जहां कहीं संस्कृतका आशय मिलाना हो बराबर मिला लें, और नाम इस ग्रन्थका "शुकसागर" रखा, क्योंकि यह पुराण श्रीशुकदेवजी महाराजका प्रकाशित किया हुआ है, इससे "शुकसागर" ही नाम रखना उचित समझा। और केवल पूज्यपाद श्रीधरस्वामीजीके तिलकानुसार अर्थ किया, और जहां-तहां शंका समाधान भी लगा दिये कि जिससे पाठकोंको कहीं उलझना न पड़े और उचित-उचित स्थलोंपर भजन, कवित्त,

दोहे, चौपाई, सोरठे, छन्द भी लगा दिये हैं, जिससे अनुरागियोंके चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो और जहां कहीं वृद्धि की है अर्थात् ग्रंथांतरोंकी कथा लिखी है, वहां श्लोकांक नहीं हैं, इससे पाठकोंको सरलतासे प्रतीत हो जायगा कि यह वार्ता श्रीमद्भागवतकी नहीं है और और ग्रन्थोंकी है। अधिक क्या कहें? ग्रन्थके सर्वश्रेष्ठ, सर्वांग सुंदर, और सर्व प्रकारसे शुद्ध होनेके यत्न परिश्रम करनेमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं की है, अब इस ग्रन्थके अनुवादका अच्छा वा बुरा होना विद्वान् लोग स्वयं ही विचार लेंगे, जैसे–

"हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा"

सुवर्णके खरे खोटेकी परीक्षा अग्निमें धरनेसे ज्ञात होती है। अब सब विज्ञ पुरुषोंसे मेरी यह प्रार्थना है, आप मेरे इस अनुवादका अवलोकन करके मेरे परिश्रमको सफल करें, और जो भ्रांतिसे इसमें कहीं भूल-चूक रह गयी हो तो मेरे अपराधको क्षमा करके उन अशुद्धियोंको सुधार लें। यह ग्रंथ सर्वसाधारणके उपकारार्थ निर्मित करके श्रीयुत वैश्यवंशावतंस, सकल गुणग्राहक, गोब्राह्मणहितकारी, परमोदार सर्वविद्याविभूषित, श्रीमद्रत्नाकरसन्निकट बम्बईपत्तननिवासी श्रीमान् सेठ–**खेमराज श्रीकृष्णदास** जी को समर्पित किया, उनको कोटिशः धन्यवाद है कि जिन्होंने अपना धन व्यय करके इस भाषानुवाद शुकसागरको अपने जगद्विख्यात "**श्रीवेंकटेश्वर**" यन्त्रालयमें मुद्रित करके मुझको कृतार्थ किया।

सज्जनोंका प्रेमाभिलाषीः–

शालग्राम,

मुरादाबाद.

❋

श्रीवैकुण्ठविहारिणे नमः

अथ शुकसागर अर्थात् श्रीमद्भागवतभाषाकी

विषयानुक्रमणिका

अथ चतुर्थस्कंध

अथ पञ्चमस्कंध

अथ षष्ठस्कंध

अथ सप्तमस्कंध

अथ अष्टमस्कंध

अथ नवमस्कंध

अथ दशमस्कंध पूर्वार्द्ध

दशमस्कंध उत्तरार्द्ध

अथ एकादशस्कंध

अथ द्वादशस्कंध

इति श्रीभाषाभागवत–शुकसागरकी विषयानुक्रमणिका समाप्त

★ श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण ★



वरियानेष ते प्रश्नः कृतो लोक हितं नृप । आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

अष्टम स्कन्ध ८.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥



श्रीमद्भागवतग्रन्थ निगमकल्पतरु, कथाकहनेवाले गोकर्ण और प्रेतरूप धुन्धुकारी ।

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत-माहात्म्यभाषा

*

दोहा–हे नँदनन्दन जगतपति, आनँदकन्दमुकुन्द ।
तव पदवन्दन करत ही, मिटत सकल छल छन्द ॥ १ ॥
तेरी कृपा कटाक्षकी, मुझको पूरण आश ।
कह माहात्म्य सुभागवत, भक्तन बुद्धि प्रकाश ॥ २ ॥
व्यासनन्दशुक वन्दि पद, कृष्णचन्द्र उर धार ।
कहों भागवत सकल फल, कलिमल काटन हार ॥ ३ ॥

कवित्त–श्रीमद्भागवतकी महिमा कौन वर्ण सकै, खोई खोई फिरै बुद्धि वाणी औ गणेशकी । एक बार सुनै वह चतुर्भुजी रूपधार, विना श्रम बैठ बैठ पीठ पै खगेशकी ॥ विष्णुपुरी जाय-जाय मोक्ष पद पावत है, शंका नाहिं मानै मन नेकहू यमेशकी । ताहीको माहात्म्य कुछ वर्णों चहै शालिग्राम, भक्ति मुक्ति ज्ञान देन हारी देश देशकी ॥ १ ॥ महाकठिन भागवत है अर्थ नाहिं जानपरै, विन अर्थ जाने किमि प्रेम जगै तनमें । विना प्रेम प्रीति कहाँ प्रीति विन रीति नीति, कैसे हो पूरण रति वेद शास्त्रनमें ॥ विना वेद भेद कैसे ज्ञान औ वैराग्य होय, विना ज्ञानध्यान कैसे भक्ति होय मनमें । भगवत्की भक्ति विन भागवत न आवत है, भागवत विन मुक्ति नाहिं चौदहू भुवनमें ॥ २ ॥

दोहा–पहले श्रीमद्भागवत, कहत सकल सुर सिद्ध ।
अबशुकसागर नाम धर, जगमें कियो प्रसिद्ध ॥ १ ॥
बार बार मुहि दीजिये, नाथ यही वरदान ।
मेरो श्रीभागवतमें, लगो रहै नित ध्यान ॥ २ ॥
वृन्दावन व्याकुल पड़े, भक्ति ज्ञान वैराग्य ।
उसी समय आये तहाँ, नारदमुनि बड़भाग्य ॥ ३ ॥

जिस समस्त संसारके माया मोहको त्याग करके चलते हुएके पीछे श्रीव्यासदेवजी महाराज पुत्रके विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो, हे पुत्र ! इस प्रकार वारंवार पुकारते चले जाते

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥



श्रीमद्भागवतग्रन्थ निगमकल्पतरु, कथाकहनेवाले गोकर्ण और प्रेतरूप धुन्धुकारी ।

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत-माहात्म्यभाषा

★

दोहा—हे नँदनन्दन जगतपति, आनँदकन्दमुकुन्द ।
तव पदवन्दन करत ही, मिटत सकल छल छन्द ॥ १ ॥
तेरी कृपा कटाक्षकी, मुझको पूरण आश ।
कह माहात्म्य सुभागवत, भक्तन बुद्धि प्रकाश ॥ २ ॥
व्यासनन्दशुक वन्दि पद, कृष्णचन्द्र उर धार ।
कहों भागवत सकल फल, कलिमल काटन हार ॥ ३ ॥

कवित्त—श्रीमद्भागवतकी महिमा कौन वर्ण सकै, खोई खोई फिरै बुद्धि वाणी औ गणेशकी । एक वार सुनै वह चतुर्भुजी रूपधार, विना श्रम बैठ बैठ पीठ पै खगेशकी ॥ विष्णुपुरी जाय-जाय मोक्ष पद पावत है, शंका नाहिं मानै मन नेकहू यमेशकी । ताहीको माहात्म्य कुछ वर्णों चहै शालिग्राम, भक्ति मुक्ति ज्ञान देन हारी देश देशकी ॥ १ ॥ महाकठिन भागवत है अर्थ नाहिं जानपरै, विन अर्थ जाने किमि प्रेम जगै तनमें । विना प्रेम प्रीति कहाँ प्रीति विन रीति नीति, कैसे हो पूरण रति वेद शास्तरनमें ॥ विना वेद भेद कैसे ज्ञान औ वैराग्य होय, विना ज्ञानध्यान कैसे भक्ति होय मनमें । भगवत्की भक्ति विन भागवत न आवत है, भागवत विन मुक्ति नाहिं चौदहू भुवनमें ॥ २ ॥

दोहा—पहले श्रीमद्भागवत, कहत सकल सुर सिद्ध ।
अबशुकसागर नाम धर, जगमें कियो प्रसिद्ध ॥ १ ॥
बार बार मुहि दीजिये, नाथ यही वरदान ।
मेरो श्रीभागवतमें, लगो रहै नित ध्यान ॥ २ ॥
वृन्दावन व्याकुल पड़े, भक्ति ज्ञान वैराग्य ।
उसी समय आये तहाँ, नारदमुनि बड़भाग्य ॥ ३ ॥

जिस समस्त संसारके माया मोहको त्याग करके चलते हुएके पीछे श्रीव्यासदेवजी महाराज पुत्रके विरहसे अत्यन्त व्याकुल हो, हे पुत्र ! इस प्रकार वारंवार पुकारते चले जाते

थे, जिसको तन्मय होकर वृक्ष भी कहते हुये उन सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित मुनिवरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ किसी समय नैमिषारण्यक्षेत्रमें भागवत कथारूपी अमृत स्वादके रसिक शौनकादिक अट्ठासी सहस्र ऋषियोंने महाबुद्धिमान् सूतजीको प्रणाम कर पूछा ॥२॥ शौनकजी बोले कि सर्व अज्ञान–अन्धकार–नाशक, कोटिसूर्यसम प्रकाशक, हे सूत ! हमारे श्रवणोंके आनन्ददायक रसायनरूप कथाओंका सार (हमारे ऊपर अनुग्रह करके) आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ किस रीतिसे भक्ति ज्ञान वैराग्यकी प्राप्ति होती है ? ज्ञान किस प्रकारसे अधिक होता है ? और वैष्णव (महात्मापुरुष) किस भांतिसे माया मोहका परित्याग करते हैं ? ॥४॥ इस महाघोर कलिकालके आनेसे संसारी जीवोंका चित्त असुरभावको प्राप्त हो गया है, उस क्लेशसे ग्रसित जीवोंका उद्धार करनेके लिये क्या कर्म करना चाहिए ? ॥५॥ जो कुशलोंका कुशल, पावनोंका पावन और सब प्रकार भगवत्की भक्तिका उत्पन्न करनेवाला साधन हो उसे आप हमसे वर्णन कीजिये ॥६॥ चिन्तामणि (प्रसन्न होकर) संसारके सुखको देता है, सुरेन्द्र स्वर्ग पर्यन्तकी पदवी देता है, (परंतु गुरुकी समता किसी प्रकार इनसे नहीं हो सकती क्योंकि) गुरु प्रसन्न होकर योगियोंको भी (भक्ति) परमदुर्लभ वैकुण्ठगतिको देता है ॥७॥ सूतजी बोले कि, शौनकमुनि ! (हे ब्राह्मणो !) तुम लोगोंके मनमें अधिक स्नेह है इस लिये मैं पूर्ण विचार करके सर्व सिद्धांतोंका सिद्धांत संसारका भयनाशक, (आनन्दका प्रकाशक) ॥ ८ ॥ भक्तिकी वृद्धि करनेवाला, कृष्णचन्द्र आनंदकन्दके संन्तोषका कारण तुम्हारे सम्मुख वर्णन करता हूँ, (आप लोग सावधान होकर सुनिये) ॥ ९ ॥ जो लोग काल–रूपी सर्पके मुखके ग्रास होनेके त्रासका नाशकर्त्ता खोजते हैं उनके लिये यह श्रीमद्भागवतपुराण श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षितसे कहा था ॥१०॥ इससे अधिक मनका शुद्ध करने वाला और आनंददायक कोई दूसरा उपाय नहीं है। अनेक जन्मके पुण्यका फल इकट्ठा होनेसे (भागवतोंको श्रीमद्भागवतकी कथा प्राप्त होती है)॥११॥ जिस समय राजा परीक्षित्से (शृंगीऋषिके शाप देनेके पश्चात् बड़े-बड़े ऋषि मुनियोंकी सभामें)श्रीशुकदेवजी व्यासनन्दनगंगातीरपर आकर श्रीमद्भागवतकी कथा कहना प्रारम्भ किया चाहते थे,उसी समय सब देवताओंने अमृतका कलश वहां लाकर रक्खा ॥ १२ ॥ और श्रीशुकदेवजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम करके अपने कार्यमें निपुण सब देवता बोले–कि हे महाराज ! कथारूप अमृत हमको दीजिये और इसके बदलेमें यह अमृतका घट लीजिये (देवता तो अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमें प्रसिद्ध ही हैं) ॥१३॥ महाराज ! राजा परीक्षित्को तो आप अमृत पिलाइये और हम देवता-लोगोंका यह मनोरथ है कि उसके बदलेमें हम श्रीमद्भागवत रूपी सुधाका पान करें ॥१४॥ कहां तो तुच्छ अमृत और कहां संसारतारक सकल कलिमलविदारक श्रीमद्भागवतकी कथा, कहां नीच कांच और कहां अमूल्य चिन्तामणि, (कहां सेमल और कहां पारिजात) यह बात देवताओंके मुखसे सुन शुकदेवजी अपने मनमें बहुत हँसे (और कहा धन्य है आपकी चतुराईको) ॥१५॥ उनको अभक्त जानकर संकटमें सहायक भक्ति–दायक देवताओंको भी दुर्लभ श्रीमद्भागवतका कथारूपी अमृत नहीं दिया ॥१६॥ पहले इस प्रकार राजाकी मुक्तिदेखकर ब्रह्मा अपने मनमें अत्यन्त विस्मित हुए, फिर सत्य लोकमें तुलाको बांध और सब साधनोंके संग इसको तोला॥१७॥जब श्रीमद्भागवतके गौरवके आगे सब साधन हलके दीख पड़े,तब तो सब ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने मनमें बड़े चकित हुए॥१८॥और भूमण्डलमें श्रीमद्भागवतको भग-

वत्का स्वरूप समझकर कहा कि यह मोक्षदायक शास्त्र पढ़ने सुननेसे तत्काल सुरपुरका वास देता है ॥१९॥ यह महापुराण सप्ताह (सात दिन) में श्रवण करनेवालेको सर्वथा मोक्षदायक है, यह सनकादिकोंने कृपा करके नारदजीसे प्रथम ही कहा है॥२०॥ यद्यपि यह कथा देवर्षिने ब्रह्माजीसे सुनी थी, परन्तु सप्ताह पारायण सुननेका विधान सनत्कुमारने उनसे वर्णन किया ॥२१॥ यह बात सुनकर शौनकजी बोले कि लोकमें विग्रह करानेवाले नारद दो घड़ीसे अधिक एक स्थानमें कभी नहीं रह सकते थे, फिर किस प्रकार स्थिर होकर प्रीतिपूर्वक सप्ताह पारायणकी विधि सुनी और सनत्कुमारका और इनका समागम कहां हुआ ? ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि तुम सवाधान होकर सुनो, यह भक्तियुक्त मुक्तिदायक कथा मैं आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ, जो कुछ मुझसे श्रीशुकदेवजी महाराजने अपना अन्तरंग शिष्य समझकर कहा है ॥ २३ ॥ एक समय बदरिकाश्रममें सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके लिये आये; वहां उन्होंने नारदजीको देखा ॥ २४ ॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारदमुनि ! तुम (तन छीन, मन मलिन) दीन कैसे हो रहे हो, ऐसी कौनसी चिन्ता है ? [जिससे कि चित्त असावधान है और शीघ्रतासे किस बातका चिन्तन कर रहे हो ?] और कहांसे आये थे ? और कहां इतनी शीघ्रतासे जा रहे हो ? ॥ २५ ॥ इस समय तुम ऐसे शून्यचित्त जान पड़ते हो जैसे किसीका धन हर गया हो (अथवा कोई अद्भुत चरित्र देखा हो) मुक्तसंग आपको यह बात अनुचित है, इसलिये इस शोकका कारण वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारदजी ने चारों भाइयोंसे (नमस्कार करके) कहा-हे महाभाग्य ! मैं सब लोकोंमें उत्तम भूलोकको जानकर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, गयाको गया ॥२७॥ और हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें घूमता फिरा ॥ २८ ॥ परन्तु कहीं मनको सन्तोष करनेवाली कोई कल्याणदायक बात देखनेमें न आयी, अधर्मके मित्र कलियुगने सब संसारमें ऐसा भ्रष्टाचार फैला रक्खा है ॥ २९ ॥ कि सत्य, तप, शौच, दयाका कहीं नाम नहीं रहा, केवल झूठ बोलने और उदर पोषण करनेवाले रह गये हैं, (इस कारण चित्तमें अत्यन्त चिन्ता है) ॥३०॥ तथा उपद्रवी, आलसी, कुबुद्धि, मन्दभागी हैं। सज्जन पाखण्डी हैं, विरक्त परिग्रहसहित हैं (स्त्रियां पतियोंकी आज्ञा नहीं मानतीं, उनसे अलग हो अपना व्यवहार करती हैं।) ॥ ३१ ॥ सर्वत्र गृहमें स्त्रियोंकी ही प्रभुता है, साले सन्मतिदाता हैं, धनके लोभसे कन्याको (नीचकुलमें) बेंच देते हैं, स्त्री पुरुषोंमें दिन-रात क्लेश रहता है ॥३२॥ आश्रम अर्थात् मठ, मंदिर, ठाकुरद्वारे, तीर्थ और नदियोंमें यवन लोगोंका अधिकार हो रहा है, देवताओंके बहुतसे देवस्थान दुष्टोंने नष्ट कर डाले हैं ॥३३॥ योगी, सिद्ध, ज्ञानी, कोई सत्क्रियावाला पुरुष नहीं रहा, कलिरूपी घोर दावाग्निमें सब साधन जलकर भस्म हो गये ॥३४॥ अन्नके बेचनेवाले तो जनपदके मनुष्य, वेद बेचनेवाले ब्राह्मण, व्यभिचार रत कुटला स्त्रियाँ कलियुगमें अनेक होंगी। इस प्रकार कलियुगके अनेक दोष दुःख देखता पृथ्वीमें घूमता हुआ वृन्दावनमें यमुनाके निकट गया, जहां श्रीवृन्दावनबिहारी कृष्णमुरारीने अनेक-अनेक प्रकारकी अद्भुत लीलायें की थीं ॥३५॥३६॥ हे मुनियो ! वहां एक (अलौकिक) आश्चर्य देखनेमें आया, वह मैं आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ, वहां एक युवती स्त्री अत्यंत दुःखी,मन मारे बैठी शोच कर रही थी॥३७॥और उसके समीप दो वृद्ध मनुष्य अचेत पड़े लम्बे-लम्बे श्वास ले रहे थे, वह स्त्री उनकी शुश्रूषा करती थी और वारंवार समझाती थी और उसके

आगे रो रोकर कहती थी ॥३८॥ और अपने देहकी सहायता करनेवालेको दशों दिशामें आखें पसार-पसार देखती थी और सहस्रों स्त्री उसको पंखेसे हवा करती थीं और वारंवार धैर्य दे देकर समझा रही थीं॥३९॥ उसकी दशा देखते ही आश्चर्यसे मैं उस शोकाकुल बालाके निकट गया, वह मुझको देखते ही अचानक उठ बैठी और व्याकुल होकर बोली ॥ ४० ॥ हे कृपा-सिन्धु ! कुछ काल मेरे समीप ठहरकर मेरा कष्ट निवारण कीजिये, आपका दर्शन संसारके जीवोंका निस्सन्देह सब पाप दूर करनेवाला है ॥ ४१ ॥ प्रायः आपके अमृतरूपी वाक्योंसे मेरे दुःखकी शांति हो जायगी, क्योंकि जब कोई पूर्वजन्मका पूर्ण पुण्य उदय होता है, तब आपसे साधुओंका दर्शन होता है ॥४२॥ उसके मधुर वचन सुन मैंने उस स्त्रीसे पूछा कि हे देवि ! तू कौन है ? ये दोनों कौन हैं ? तथा ये कमलमुखी स्त्रियां तुम्हारी कौन हैं । (और तू इतनी दुःखी क्यों है ?) अपने दुःका विस्तारसहित वर्णन कर ॥ ४३ ॥ बाला बोली कि, हे वत्सल ! मैं भक्ति हूँ, और मेरा नाम सब संसारमें विख्यात है और यह दोनों ज्ञान और वैराग्य नामके मेरे पुत्र हैं, कुसमयके प्रभावसे ये दोनों वृद्ध हो गये हैं, (अब कोई इनका आदर-सत्कार करनेवाला नहीं रहा) ॥ ४४ ॥ और ये जो स्त्रियां मेरे निकट बैठकर मेरा धैर्य बँधाती हैं, ये गंगा यमुना, सरस्वती आदिक नदी हैं, स्त्रियोंका रूप धारण कर मेरी सेवा करनेको आ गयी हैं, परन्तु देवताओंकी सेवा करनेसे भी मेरा कल्याण नहीं होता है ॥ ४५ ॥ हे तपोधन ! इस समय मेरी दीनताकी ओर ध्यान करके एक बात सुनो, मेरी कथा बहुत बड़ी है, उसको सुनकर आपको परमानन्द प्राप्त होगा ॥ ४६ ॥ प्रथम द्रविड़ देशमें मेरा जन्म हुआ था और कर्णाटक देशमें युवा अवस्था हुई, कुछ काल पर्यन्त दक्षिणमें रहकर, गुजरात और महाराष्ट्र देशमें पहुँची और उसी देशमें वृद्ध हो गयी ॥ ४७ ॥ और महाघोर कलियुगी लोगोंके पाखण्डोंसे मेरा और मेरे पुत्रोंका शरीर महादुर्बल हो गया ॥४८॥ फिरते-फिरते अब इस समय फिर वृन्दावनमें आनेसे मैं उसी भांति तरुण और सुन्दर रूपवती हो गयी हूँ ॥ ४९ ॥ परन्तु ये मेरे दोनों पुत्र परिश्रमके मारे दुःखित (और अचेत पड़े) हैं, (इनको बात करने तकका भी सामर्थ्य नहीं है) इस स्थानको छोड़ मैं देशान्तरमें जाती हूँ ॥ ५० ॥ अब ये दोनों वृद्ध हो गये, इस महादुःखसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ, क्योंकि मैं तरुण और मेरे पुत्र कैसे वृद्ध हो गये (इस बातकी मुझे बड़ी लज्जा है) ॥५१॥ हम तीनों सदा एक सङ्ग रहते हैं, यह विपरीतता कैसे हुई ? माता वृद्धा पुत्र तरुण यह बात तो योग्य है, यह महाविपरीत है कि माता तरुण और पुत्र वृद्ध, ऐसा कहीं नहीं होता देखा ॥ ५२ ॥ इस कारण बड़े आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माको शोचती हूँ, अतः हे योगी महात्मन् ! आप कहिये इसमें क्या कारण है ? ॥५३॥ नारदजी बोले—हे निष्पापे ! मैं अपने योगबलसे तेरे सब वृत्तान्तका विचार करता हूँ, तू अपने मनमें दुःख मत मान, परमेश्वर तेरा कल्याण करेंगे ॥५४॥ सूतजी बोले कि, क्षणमात्रमें सब विचार कर नारद मुनि कहने लगे कि हे देवि ! सावधान होकर सुन इस समय महाघोर कलियुग वर्तमान है ॥५५॥ इस लिये सदाचार; योगमार्ग, सत्य, तप लुप्त हो गया है और मनुष्योंका पाप करनेसे असुरोंकासा स्वभाव हो गया है, (केवल ठगविद्याको ही उत्तम विद्या समझते हैं) ॥५६॥ इस कलिकालमें सज्जन अत्यन्त दुःख पा रहे हैं, कपटी कुचाली प्रसन्न रहते हैं जो ज्ञानी पुरुष धैर्य धारण करते हैं वे ही धीर और पंडित हैं ॥ ५७ ॥ यह शेषजीको भार

करनेवाली पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य हो गयी है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसी ही होती जाती है, अब कहीं शुभकर्म देखनेमें नहीं आता ॥ ५८ ॥ अब तुझको भी इस समय पुत्रसहित कोई नहीं देख सकता। पुत्र, दारा, धनादिकके अनुरागमें लोग अन्धे हो रहे हैं, इस लिये तेरा आदर-सम्मान कोई नहीं करता और इसी कारण तेरा शरीर दुर्बल हो गया है ॥५९॥ वृन्दावनमें आनेसे अब फिर तू नवीन तरुणी हो गयी है, इससे यह वृन्दावन धन्य है! जहाँ (मुक्तिदायक) भक्ति विराजमान् है ॥६०॥ वृन्दावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहकोंके न होनेसे अपनी वृद्ध अवस्थाको नहीं छोड़ेंगे। सम्प्रति किंचित् सुखपूर्वक ये दोनों सो रहे हैं। (इस स्थानमें ज्ञान-वैराग्यकी और तेरी भी काम क्रोधादि दुःख भावसे सुखपूर्वक ये दोनों स्थित होगी, क्योंकि और स्थानोंसे यह वृन्दावन परमोत्तम माना जाता है)

कबित्त—वामनबन विष्णुने पृथ्वी सब नापडारी, मनमानी शुद्ध कोउ मिली नाहिं ठाम है ॥ देवतोंसे कही कहीं तुम्हीं ढूँढो शुद्धभूमि देवतोंने कहा शुद्ध आप ही को नाम है ॥ हारकर हरिने त्रिलोकीको मथमथकै, मथुरा निकारी तीन लोकसे ललाम है ॥ मथुराको तत्त्व सब खैंचखाँच शालिग्राम-भक्तनके हेतु रच्यो वृन्दावन धाम है ॥ १ ॥ ६१ ॥

(नारदजीकी मनोहर वाणी सुन) भक्ति बोली कि, हे आनँदरूप ! जब कलियुग ऐसा महापापी और दुष्टात्मा है तो राजा परीक्षित्ने उसको क्यों स्थापित किया इसके प्रवृत्त होते ही सबका सार बल कहाँ चला गया ! ॥ ६२ ॥ और दयासिंधु भगवान् विष्णु इस पापको कैसे देख सकते हैं, कृपा करके यह सन्देह मेरा निवारण करो, तुम्हारी मनोहर वाणीसे मेरा मन अत्यंत प्रसन्न है ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि, हे बाले! जो तूने पूछा है तो सावधान होकर सुन, मैं तेरे सम्मुख समस्त कथा वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे तेरा सब दुख दूर हो जायगा ॥६४॥ जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र (आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी) पृथ्वीको छोड़कर अपने परमधामको गये उसी दिनसे सब साधनोंके बाधक कलियुगने आकर संसारमें प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ दिग्विजय करते कलियुगको राजा परीक्षित्ने देखा, उसी समय उसके मारनेको उपस्थित हुए, तब यह दीन बन राजाकी शरणमें गया, तब राजाने अपने मनमें विचारा कि यह मेरी शरण आया है, इस कारण सारभोजी भ्रमरके नाई इसका मारना उचित नहीं है ॥६६॥ (दूसरा इसमें एक गुण और उत्तम देखा इसलिये इसको नहीं मारा) और युगोंमें जो फल तपस्या, योग, समाधि, यज्ञ, और दान करनेसे भी नहीं होता वह फल कलियुगमें केवल (भली प्रकार चित्त शान्त कर) नारायणका नाम लेनेसे मिलता है ॥ ६७ ॥ जिसमें केवल एक ही सार (भक्ति ही साधक) है, (और ज्ञान वैराग्य जिसमें निरस हैं) ऐसे कलियुगको देख कलियुगवासी मनुष्यके सुखके लिये (भक्ति करनेसेही तर जायँगे, ऐसा शुभ-गुण विचार) राजाने उसका स्थापन किया ॥ ६८ ॥ परंतु कलियुगवासियोंसे साधारण काम भी नहीं हो सकता, इसलिये कलियुग सबका धर्म-कर्म भ्रष्ट कर दिया, कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश निगल गया है और बीजहीन तुषकी नाईं पृथ्वीमें सब पदार्थ निःसार हो गये हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोड़े धनके लोभसे भगवत्-सम्बन्धी कथा घर-घरमें जैसे-तैसे मनुष्योंके सम्मुख कहनी आरंभ कर दी इसलिये कथाका फल जाता रहा ॥ ७० ॥

बड़े-बड़े भयंकर अत्याचारी, कुकर्मी, पापी, पाखण्डी मनुष्य कपट वेष धारण कर तीर्थोंमें वास करने लगे, इसलिये तीर्थोंका सार जाता रहा ॥ ७१ ॥ जिनके चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोहसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, वे लोग झूठा तप करने लगे, इसलिये तपस्याका सार जाता रहा ॥ ७२ ॥ मनको नहीं जीतनेसे, लोभ, दम्भ, पाखण्डका आश्रय करनेसे और शास्त्र-पुराणोंके अनभ्याससे ध्यान-योगका फल जाता रहा ॥ ७३ ॥ पंडित महिषकी नाईं स्त्रियोंके सँग रमण कर पुत्र उत्पन्न करनेमें तो चतुर (और विलक्षण) हैं, परंतु मुक्ति साधनेमें मूर्ख हैं ॥ ७४ ॥ सम्प्रदायशुद्ध वैष्णव कहीं नहीं हैं, (बात-बातमें ठगविद्या है) इसलिये स्थान-स्थानमें सब पदार्थोंका तत्त्व जाता रहा ॥ ७५ ॥ फिर यह तो कलियुगका धर्म ही ठहरा, इसमें किसीका क्या दोष है, इस कारण पुण्डरीकाक्ष निकट स्थिर हुए भी सहन करते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकऋषि ! इस प्रकार नारदजीके वचन सुन अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो ॥ ७७ ॥ भक्ति फिर बोली—हे देवर्षि ! तुम धन्य हो ! मेरे भाग्यसे ही इस स्थान पर आ गये हो, साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ७८ ॥ जगत्में केवल तुम्हारी अनुपम वचन रचनाको सुन लोकमें कयाधूके पुत्र प्रह्लादने मायाका त्याग किया और जिसकी कृपासे ध्रुवने अचल पदवी पायी, सब क्षेमोंके पात्र ब्रह्माजीके पुत्र ऐसे नारदजीको मैं वारंवार नमस्कार करती हूँ ॥ ७९ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां शालिग्रामवैश्यकृतायां भक्ति–नारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—नारद सनत्कुमारको, भयो सुभग संवाद ।
सो द्वितीय अध्यायमें, वरणों सह आह्लाद ॥ २ ॥

नारद बोले कि हे देवि ! तू किसलिये वृथा खेद करती है ? और क्यों इस प्रकार शोकाकुल हो रही है ? श्रीमन्नारायण (जगत्‌हितकारी वृन्दावनविहारी) के चरणारविंदका स्मरण कर, जिससे तेरा संकट कट जाय ॥ १ ॥ जिन श्रीकृष्ण द्वारकाधीशने (कौरवोंके) महा संकटमें द्रौपदीकी सहायता की (और उसकी लज्जा रक्खी), गोपकुमारोंको (शंख चूड़ आदिकसे) बचाया (और गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया) वह वृन्दावनविहारी वृंदावनसे कहीं चले नहीं गये हैं ॥ २ ॥ और तू तो उनको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है, क्योंकि सब संसारी उनको भक्तहितकारी कहकर पुकारते हैं तेरे बुलाये भगवान् तो नीचोंके घरोंमें भी आते हैं ॥

कवित्त—तेरोही प्रतापसे ये हरिने त्रिलोकी रची, तेरो ही प्रताप सन्ताप तापहारी है। तेरे ही प्रतापसे ये विष्णु शेषशायी भये, तेरे ही प्रताप शेष शीश धरा धारी है ॥ तेरो ही प्रताप कौन वर्ण सके शालिग्राम, तेरी तो महिमा सब दुनियांसे न्यारी है। तू तो सदा प्राणनते प्यारी ब्रजबिहारीजूकी, कौन काज आज तुझे कृष्णने बिसारी है ॥ ३ ॥

सत्ययुग, द्वापर, त्रेतामें ज्ञान वैराग्य मुक्तिके साधन थे (और इन्हींके द्वारा महात्मा पुरुषोंका उद्धार होता था,) कलियुगमें केवल भक्ति ही प्रधान है, वही ब्रह्मसायुज्यको देनेवाली है (और ज्ञान वैराग्यका कोई पूछनेवाला नहीं रहा) इसी बातका निश्चय कर ॥ ४ ॥ उस परमात्मा पूर्णब्रह्म चिद्‌घनानन्द जनार्दनने सुन्दरी कृष्णवल्लभा अपना निज स्वरूप तुझको उत्पन्न

किया है ॥५॥ जब तूने भगवान् वासुदेवके सम्मुख हाथ जोड़कर विनय की कि, हे वैकुण्ठनाथ ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ? तब कृष्णचन्द्रवनवारी (भक्तहितकारी) ने कहा–तू मेरे (भोले-भाले) भक्तोंको पुष्ट कर ॥६॥ जब तूने उनका वचन अंगीकार किया, तब भगवान् वासुदेव अत्यंत प्रसन्न हुये और तेरी सेवा करनेके लिए मुक्तिनाम दासी और ज्ञान, वैराग्य नाम दो दास तुझको दिये ॥ ७ ॥ अपने निजरूपसे तो तू वैकुण्ठधाममें भक्तोंका पालन-पोषण करती है और पृथ्वीपर भक्तोंके विशेष आनंदके लिये तूने छायारूप धारण कर रखा है ॥ ८ ॥ फिर मुक्ति और ज्ञान, वैराग्यको अपने साथ लेकर तू मृत्युलोकमें आयी और सत्ययुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक ऋषीश्वर-मुनीश्वर तेरा बड़ा आदर-सत्कार करते रहे और बहुत आनंदसे भूमण्डलमें तू रही ॥ ९ ॥ अब कलियुगमें पाखंडियोंके पाखण्ड फैलानेसे अत्यन्त पीड़ित हो मुक्ति क्षीण हो गयी, फिर तेरी आज्ञा शिरपर धारणकर शीघ्र ही वैकुंठ लोकको चली गई ॥१०॥ और फिर तेरे स्मरण मात्रसे ही इस स्थानमें आकर उपस्थित हो जाती तथा चली जाती है, (और यह मुक्ति क्षणमात्रको भी तेरे वचनोंका उलंघन नहीं करती।) और तूने ज्ञान-वैराग्यको अपना पुत्र समझकर अपने निकट ही रखा है ॥११॥ और कलियुगमें (दुराचारियोंके) त्याग करनेसे यह तेरे दोनों पुत्र अत्यंत वृद्ध हो गये हैं, परन्तु तो भी तू कुछ चिन्ता और शोच मत कर, इनके लिए मैं कुछ उत्तम उपाय सोचता हूँ ॥ १२ ॥ हे भक्ति ! कलियुगके समान कोई उत्तम युग नहीं है, उसमें तुझे मैं घर-घर हर मनुष्यके हृदयमें स्थापित करूँगा ॥ १३ ॥ और सब धर्मोंका निरादर कर और महोत्सवोंको आगे धर जो मैं संसारमें तेरा प्रचार न करूँ तो परमेश्वरका दास मुझको मत कहना ॥१४॥ और जो कलिकालमें तेरे प्रेमी जीव होंगे, यदि वे पापी दुराचारी भी होंगे, तो भी निर्भयतासे देवमंदिर, ठाकुरद्वारमें (नित्यप्रति) जाया करेंगे ॥१५॥ और जिनके हृदयमें तेरा वास होगा, वे शुद्ध देहधारी स्वप्नमें भी यमराजका दर्शन नहीं करेंगे (तेरी कृपासे वैकुण्ठ लोकका ही वास उनको मिलेगा) ॥१६॥और तेरे माननेवाले महात्मा पुरुषोंका भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर, कोई भी हाथ नहीं पकड़ सकता ॥१७॥ जप, तप, व्रत, नियम, दान, पुण्य, वेद, ज्ञान, कोई परमेश्वरको ऐसा वशमें नहीं कर सकता; जैसा कि त्रिलोकीनाथको तू (भक्ति) वशमें कर सकती है, इसमें गोपियों (द्विजपत्नियों) का प्रमाण है–(भक्ति करनेसे सहजमें ही मुक्त हो गयी) ॥ १८ ॥ और युगोंमें सहस्रों जन्मके अनुष्ठान करनेसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति उत्पन्न होती है, कलियुगमें केवल भक्तिसे ही भगवान् भक्तवत्सलका दर्शन होता है ॥१९॥ जो भक्तिका अथवा भक्तजनोंका द्रोह करते हैं, वे लोग त्रिलोकीमें सदा दुःखी रहते हैं, जैसे भक्तकी निंदा करनेसे दुर्वासा ऋषि बड़े दुःखी हुए थे ॥२०॥ तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, जप, तप, ज्ञान, वैराग्य, कथा-लापसे क्या है ? एक भक्ति ही मुक्ति देनेको बहुत बहुत है ॥२१॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार नारदजीके मुखसेअपनी प्रशंसा और माहात्म्यको सुनकर भक्ति सर्वाङ्गपुष्ट सन्तुष्ट हो नारदजीके सम्मुख खड़ी होकर ॥२२॥ बोली कि हे देवर्षि ! तुम धन्य हो ! तुम्हारी सदा मेरेमें दृढ़ प्रीति है, उसे मैं कभी त्याग न करूँगी, तुम्हारे चित्तमें सदा रहूँगी ॥ २३ ॥ हे महात्मन् ! आपने मुझपर कृपा करके मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर कर दी (और मुझको धैर्य बँधाया) परन्तु अभी मेरे पुत्रोंको चैतन्यता नहीं प्राप्त हुई; अबतक अचेत पड़े हैं, कृपा करके अब इनको भी जगाओ (जो मेरा हृदय ठण्ढा हो) ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि

हे ऋषियो ! दयालु नारदजी भक्तिके मधुर वचन सुनकर सहज-सहजमें हाथसे सहराकर ज्ञान और वैराग्यको जगाने लगे ॥२५॥ जब सहरानेसे ज्ञान-वैराग्य न जागे तब कानके समीप मुख करके नारदजीने उच्चस्वरसे पुकारा, अरे ज्ञान ! शीघ्र जाग, अरे वैराग्य ! शीघ्र उठ, जब जगानेसे उन दोनोंने अपने नेत्र खोले तब नारदजीने ॥२६॥ वेद–वेदांतके शब्द और बारम्बार भगवद्गीताके पाठ उनको सुनाये, तब वे बलपूर्वक बड़ी कठिनाईसे उठे ॥ २७ ॥ आंखें मीचे ही मीचे बड़े आलस्यसे जँभाई लेने लगे, उनके बगलेके समान श्वेत बाल हो रहे थे तथा सूखे काष्ठके सदृश शरीर सूख गया था ॥२८॥ भूखसे क्षीण होनेके कारण वे फिर सो गये, जब उनकी यह दशा देखी तब नारदजी बहुत चिंता करने लगे, अब मैं कौनसा उपाय करूँ ? ॥२९॥ ये दोनों क्यों नहीं उठते ? उनकी यह घोर निद्रा किस प्रकार जायगी ? इसी भांति विचार करते-करते नारदजी श्रीगोविंद भगवान्‌के चरणारविंदका ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे तपोधन ! खेद मत करो, तुम्हारा उद्यम सफल होगा, इसमें कुछ संशय नहीं ॥३१॥ हे देवर्षि ! इनके लिए सत्कर्मका आरम्भ करो और सन्तोंके भूषण महात्मापुरुष सत्कर्म आपसे कहेंगे, (विना सत्कर्म ये नहीं जागेंगे) ॥ ३२ ॥ सत्कर्मके करने मात्रसे ही दोनोंकी निद्रा और वृद्धता जाती रहेगी और सब संसारमें भक्ति फैल जायगी ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबने सुनी, नारदजीने कहा, यह क्या बात है, मैं अबतक नहीं समझा, मुझको बड़ा आश्चर्य है ? ॥ ३४ ॥ फिर नारदजी बोले कि, इस प्रकार आकाशवाणीका प्रयोजन मैंने नहीं जाना, इसने भी गुप्तरूपसे ही कहा। वह कौनसा साधन है, जिससे इन दोनोंका कार्य सिद्ध हो ? ॥३५॥ वे संत लोग कहां होंगे और साधन किस प्रकार होगा, जो आकाशवाणीने कहा है, उसको मैं किस प्रकार करूँ ? ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि नारदजीने इसी शोच-विचारमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको उसी स्थानपर छोड़कर आप वहांसे साधुओंकी खोजमें प्रत्येक तीर्थमें जा जाकर ऋषि मुनियोंसे पूछा ॥३७॥ सबने उनका वृत्तांत सुना, परंतु किसीने निश्चय करके उत्तर नहीं दिया, कोई बोला असाध्य है, किसीने कहा तुम्हारा प्रश्न हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३८ ॥ कोई सुनकर चुप हो रहा, और कोई सुनते ही चल दिया, इस प्रकार त्रिलोकीमें महाविस्मयदायक बड़ा हाहाकार मचा, (परंतु किसीने कोई यत्न नहीं बताया) ॥३९॥ वेद-वेदांत और बारंबार गीताके पाठ सुननेसे भी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य ये तीनों न जागे ॥ ४० ॥ इससे अधिक और कौनसा उपाय है ? यह बात हर एक मनुष्यके कानोंमें कहने लगे और जहां जाओ, वहां यही चर्चा थी। कोई कहता था कि, हे भाई ! नारदसे योगिराजकी बुद्धिमें भी तो यह बात नहीं आयी ॥ ४१ ॥ तो और इतर मनुष्य इस बातको किस प्रकार कह सकता है, यह दुर्गम बात ऋषियोंने निश्चय करके नारदजीसे कही ॥४२॥ तब नारद मुनि चिंतातुर होकर बदरिकाश्रममें आये और यह अपने मनमें निश्चय किया कि यहां तप करूँगा ॥४३॥ उसी समय सनकादिक मुनि कहींसे घूमते हुए नारदजीके सम्मुख आ गये, जिनकी कोटि सूर्यके समान कांति थी, उन्हें देखकर मुनिश्रेष्ठ महाभाग्य भक्तभूषण ॥४४॥ नारदजी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! इस समय बड़े भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है, हे कुमारो ! मेरे ऊपर कृपा करके तुम शीघ्र कहो॥४५॥ क्योंकि तुम सब बुद्धिमान्, शास्त्रवेत्ता, योगिराज हो, सदा पांच वर्षके बने रहते हो और सबसे पहले आप उत्पन्न हुये हो ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठमें रहकर भगवान् वासुदेवके गुणानुवाद गाते

हो और भगवत्‌लीलारूपी अमृतरससे मत्त केवल एक कथामात्रसे ही जीते हो ॥४७॥ "हरिः शरणम्" अर्थात् भगवान् ही रक्षक है (परमात्माकी शरण हूँ यही वचन आपके मुखसे सदा निकलता है, इस कारण वृद्धपन आपको बाधा नहीं करता ॥ ४८ ॥ पहले नारायणके जय-विजय नामक दो द्वारपाल आपके भ्रूभङ्गमात्रसे ही पृथ्वीपर गिरे और फिर आपकी कृपासे शीघ्र ही वैकुण्ठको गये ॥ ४९ ॥ कोई मेरे बड़े भाग्यका उदय है जो आपका दर्शन हुआ, आपसे दयालुओंको मुझ दीनपर दया करनी चाहिये ॥ ५० ॥ और जो कुछ आकाशवाणीने कहा है, वह क्या साधन है, उसे आप कृपा करके मुझको बताओ और कैसे उसका अनुष्ठान करना चाहिये, उसे भी आप विस्तार पूर्वक मुझसे कहो ॥ ५१ ॥ और भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको, किस प्रकारसे सुख प्राप्त होगा और सब वर्णोंमें किस प्रकारसे प्रेमपूर्वक उनका प्रचार और स्थापन होगा ? ॥ ५२ ॥ सनत्कुमार बोले कि, हे देवर्षि ! तुम इस शोक-सतापको छोड़ो, कुछ चिन्ता मत करो, प्रसन्न हो, इसका उपाय सुखसाध्य पहलेसे ही है ॥ ५३ ॥ हे नारद ! तुम धन्य हो, विरक्तोंके शिरोमणि हो, श्रीवृंदावन-विहारीके दासोंमें तुम अग्रणी, भक्तोंके भूषण हो, योगके मार्तण्ड हो ॥ ५४ ॥ भक्तिके लिये परिश्रम करना यह आपके लिये कुछ विचित्र बात नहीं है, श्रीकृष्णके दासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी उचित ही है ॥५५॥ पूर्वकालमें ऋषीश्वरों-मुनीश्वरोंने संसारमें (धर्म-कर्मके) अनेक मार्ग प्रकट किये है, परन्तु वह सब श्रमसाध्य हैं और स्वर्ग का फल देनेवाले हैं॥५६॥ और जो वैकुण्ठसाधक पन्थ है, वह अत्यन्त गुप्त है, उसके उपदेशक और मार्ग बतानेवाले गुरु भाग्यसे ही मिलते हैं ॥५७॥ और जो पहले आकाशवाणीने तुझको सत्कर्मका उपदेश किया है उसे स्थिरचित्त करके सुनो, हम आपके सम्मुख कहते हैं ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय (वेदका पढ़ना)-ज्ञानयज्ञ ये सब कर्मफलसे स्वर्गादिक देनेवाले हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु पंडितोंने सत्कर्मके बतानेवाला ज्ञानयज्ञ कहा है, वह ज्ञानयज्ञ श्रीमद्भागवत है; जिसे श्रीशुकदेवादिक महात्माओंने गाया है ॥ ६० ॥ उसके सुननेसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका बल बढ़ेगा और दोनोंका कष्ट क्षणमात्रमें दूर हो जायगा और भक्तिको भी अधिक सुख मिलेगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतके उच्चारणमात्रसे कलिकालके सब दोष इस प्रकार नाश हो जायँगे, जैसे सिंहके शब्दसे भेड़िये, शृगाल वन छोड़कर भाग जाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान, वैराग्यकी हितकारिणी प्रेमरस वर्षानेवाली, भक्ति घर-घर मनुष्योंके हृदयमें क्रीड़ा करेगी ॥६३ ॥ नारदजी बोले–जब कि वेद वेदान्तके शब्दसे और भगवद्गीताके पाठसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक नहीं जागा ॥६४॥ तब श्रीमद्भागवतके अलापसे कैसे चैतन्यताको प्राप्त होंगे ? उस कथामें भी तो श्लोक-श्लोकमें पद-पदमें वेदार्थ ही है ॥ ६५ ॥ हे अमोघदर्शन ! आप लोग यह मेरा संदेह दूर कीजिये, हे शरणागतवत्सल ! इसमें बिलम्ब मत करो ॥ ६६ ॥ सनत्कुमार बोले कि वेदोपनिषदके सारसे श्रीमद्भागवतकी कथा हुई है, इसलिये पृथग्भूत हुई और उत्तम-उत्तम फलोंकी बढ़ानेवाली है ॥ ६७ ॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभाग तक रस वाली वस्तुमें यह रस उतना स्वादिष्ट नहीं होता जितना कि वही रस पृथक् फलमें होकर विश्वमनोहर रूप हो जाता है ॥६८॥ जैसे दूधमें स्थित घृत ऐसा स्वादिष्ट नहीं होता जैसा कि पृथक् होकर वह स्वादिष्ट और देवताओंका रसवर्द्धक होता है ॥ ६९ ॥ जैसे खांड गन्नेमें सर्वत्र व्याप्त रहती है, परन्तु उसका पृथक् होकर और ही स्वाद हो जाता है और अधिक

मीठी लगती है इसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी कथा है ॥ ७० ॥ यह सर्व वेदसम्मत श्रीमद्भागवतपुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेके लिये ही संसारमें प्रकाशित किया गया है ॥७१॥ वेद वेदान्तके पारगामी, भगवद्गीताके कर्त्ता श्रीव्यासजी महाराज अज्ञानसागरमें मोहित हो दुःखको प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ तब व्यासजीको (धैर्य दिया और जो चतुःश्लोकी भागवत जिसे श्रीनारायणने ब्रह्माको उपदेश किया और ब्रह्माजीने तुमको पढ़ाया, वही) चतुःश्लोकी भागवत आपने (व्यासजीको) सुनायी, जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजीका दुःख दूर हो गया ॥७३॥ फिर तुमको इसमें क्या सन्देह है और क्यों यह संशय तुमको प्राप्त हुआ, जो वारंवार प्रश्न करते हो ? उसी भागवतके चार श्लोकोंको व्यासजीने विस्तारपूर्वक रचकर अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया, अब उसी (संकटहारी आनन्दकारी शोकनाशक सुखप्रकाशक) श्रीमद्भागवतका पाठ साधनसहित ज्ञान वैराग्यको सुनाओ ॥७४॥ नारदजी बोले कि, जिसका दर्शन अशुभ कर्मोंको दूर करनेवाला और संसारके दुःखियोंके दुःख दूर करनेवाला (कल्याणकारी और संतापहारी है) सम्पूर्ण शेषजीके मुखोंसे गायी हुई कथाके रसिक जनोंके प्रेमसे प्रकाश करनेके लिये भगवान्‌की मैं शरण हूँ ॥७५॥ जब बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्योंको महात्माओंके सत्संगकी प्राप्ति होती है तब अज्ञानकृत मोहित मदके अन्धकारका नाश होकर ज्ञान-वैराग्यका उदय होता है ॥ ७६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां शालग्रामवैश्यकृते सनत्कुमारनारदमुनिसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—इस तृतीय अध्यायमें, सप्ताह कथा सुनाय ।
भक्ति ज्ञान वैराग्यको, सब दुख दियो मिटाय ॥ ३ ॥

नारदजी बोले कि, हे दयासागर ! अब मैं यत्नपूर्वक भक्ति वैराग्यके स्थापनके लिये शुकशास्त्रकी कथाका उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा ॥ १ ॥ जहां यह महायज्ञ किया जाय, आप उस उत्तम स्थानको बताओ, आपलोग वेदके जाननेवाले हैं, शुकशास्त्रकी महिमा अवश्य बतायें ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंतक सुननी चाहिये उसमें क्या-क्या विधान है ? वह मुझसे आप कृपा करके कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमार बोले कि हे नारदजी ! सावधान होकर सुनो, नम्रीभूत और ज्ञानवाले आपसे हम कहते हैं, गंगाद्वारके निकट ही आनन्द नाम तट है ॥४॥ अनेक ऋषिगणोंसे युक्त,देवता सिद्धोंसे सेवित,अनेक वृक्ष लताओंसे संघटित, नवीन कोमल बालुकासे शोभित ॥५॥ बड़ा मनोहर रमणीक एकान्त स्थान सुवर्णके (आकारवाले) कमलोंकी सुगन्धसे परिपूर्ण है, जिसके समीप रहने के कारण जीवोंके मनमें वैर नहीं होता ॥६॥ उस स्थलमें तुमको अप्रयत्न होकर अनायास ही ज्ञानयज्ञ करना चाहिये और उसी स्थानपर अपूर्व रसयुक्त कथा होनी योग्य है ॥ ७ ॥ और पुरो--वर्तमान, निर्बल, जरासे जर्जरित देहवाले ज्ञान वैराग्य सहित भक्ति (और हम भी) वहां पर आयेंगे ॥ ८ ॥ जहां श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहां भक्ति आदिक सब जाते हैं और कथा शब्द श्रवणसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका त्रिक करुणायुक्त होता है ॥९॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बातचीत करके, चारों कुमार नारदजीके साथ ही कथामृत पान करनेको उसी समय गंगाके तीरको चल दिये ॥ १० ॥ जब गंगाजीके निकट वे पहुँचे तब यह कबित्त पढ़ा-

कवित्त–कीरति कहैं हैं सबदेव करजोर तेरी, बनिता अन्हान दौरैं पाँयन सुरेशकी। गावैं गुण केते हम देखे जग तेते पर, पावत न पार वाणी पावन गणेशकी। कौनविधि उपमा कहैं यों शेष शोचैं मन तेरी ही तरंगैं त्रास मिटत यमेशकी॥ जपमाला योगिन गुमान माला ज्ञानिनकी ध्याननाला ध्रूकी मौलिमाला है महेशकी॥ १॥

उनके तट जानेके समय बड़ा कोलाहल हुआ। भूलोकमें, देवलोकमें और इस प्रकार ब्रह्मलोक तक कोलाहल मच गया॥ ११॥ और श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको जो वैष्णव लोग थे वे चारों ओरसे दौड़े॥ १२॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय, अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय, पिप्पलाद॥ १३॥ योगेश्वर, याज्ञवल्क्य, जैगीषव्य, व्यास, पराशर, छायाशुक, जाजलि, जह्नु ये मुख्य-मुख्य ऋषिगण अपने-अपने पुत्र, पौत्र, शिष्य तथा स्त्रियों समेत प्रणयपूर्वक वहां आये॥ १४॥ और वेद, वेदान्त, वेदमंत्र, तंत्र भी अपनी-अपनी मूर्ति धारण कर-कर चले आते थे। इसी प्रकार सत्रह पुराण और छः शास्त्र भी आये॥ १५॥ फिर गंगा, यमुना, सरस्वती आदिक नदियां पुष्करादि, सरोवर और सब क्षेत्र, दिशा, दण्डकादि वन॥१६॥ पर्वतादिक सब आये और गन्धर्व, देवता, दानव, किन्नर, यक्ष, नाग शरीरके गौरवसे नहीं आये; इनको आदर-समान सहित ब्रह्माजीके पुत्र भृगुजी बुला लाये॥ १७॥ (और आसन दे-देकर सबको बैठाया) तब नारदजीसे दीक्षित हो उस दिये हुए उत्तम आसनपर कृष्ण कथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो सनत्कुमार आदि महर्षि बैठे॥ १८॥ वैष्णव, विरक्त, संन्यासी, ब्रह्मचारी ये मुख्य भागमें स्थित हुए और सबके आगे नारदजी बैठे॥ १९॥ एक भागमें ऋषिगण, एक भागमें देवता और एक स्थानमें वेद, उपनिषद्; एक स्थानमें तीर्थादिक और एक स्थानमें स्त्रियाँ बैठीं॥२०॥ तब चारों ओरसे जय जय शब्द, नमः शब्द और शङ्खध्वनि होने लगी, गुलालका चूर्ण, खीलें और पुष्पोंकी वर्षा हुई॥ २१॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें बैठे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे (और सब अपने-अपने मनोंमें यह विचार कर रहे थे कि देखिये सनत्कुमारजी कब कथा का आरंभ करें)॥२२॥ सूतजी बोले, कि इस प्रकार सबके एकचित्त होकर बैठनेपर नारदजीसे सनत्कुमारने भागवतमाहात्म्य कहना प्रारम्भ किया॥ २३॥ सनत्कुमार बोले कि, हे नारद! हम तुमको वह कथा सुनाते हैं जो व्यासनन्दन शुकदेवजीसे उत्पन्न हुई (श्रीमद्भागवत) है, जिसके श्रवणमात्रसे मुक्ति मुट्ठीमें आ जाती है॥२४॥ (वह मुक्तिदायक) श्रीमद्भागवतकी कथा (महात्माओंको) सदा श्रवण करनी चाहिये, जिसके सुननेसे सदा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चित्तमें प्राप्त होते हैं॥ २५॥ इस ग्रंथमें अठारह सहस्र श्लोक और बारह स्कन्ध हैं और यह वह भागवत है जो श्रीशुकदेवजी महाराजने राजापरीक्षित्से कहा था, वह श्रीमद्भागवत हम आप लोगोंको सुनाते हैं, आप सावधान होकर सुनिये॥ २६॥ पुरुष अज्ञानसे तबतक इस संसार चक्रमें फिरा करता है जब तक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्र भी कर्णगोचर नहीं होती॥२७॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रम पैदा करनेवाले पुराणोंके सुननेसे क्या प्रयोजन है? एक श्रीमद्भागवत ही मुक्तिदान करनेमें बहुत है॥ २८॥ जिसके घरमें नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा होती है वह घर तीर्थरूप है, वहाँ रहने वालोंके सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं॥ २९॥ सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ शुकसागरकी कथाकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं है॥ ३०॥ हे महात्मा पुरुषो!

तबतक ही इस शरीरमें पाप निवास करता है जबतक मनुष्य मन लगाकर भागवतकी कथा नहीं सुनते ॥ ३१ ॥ शुकसागरके फलकी समता गंगा, गया, काशी, प्रयाग, पुष्कर भी नहीं कर सकते ॥ ३२ ॥ जो जन मुक्तिकी इच्छा रखते हों वे नित्य ही अपने मुखसे एक आधा चौथाई श्लोक श्रीभागवतका उच्चारण किया करें ॥ ३३ ॥ वेदादि (ओंकार) वेदमाता (गायत्री) पुरुषसूक्त, ऋक्, यजु, साम, तीनों वेद, भागवत पुराण "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षर मन्त्र ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा सूर्य, प्रयाग, संवत्सरात्मक काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, कामधेनु, द्वादशी ॥३५॥ तुलसी, वसन्त ऋतु, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनका बुद्धिमान् तत्त्वसे पृथक् भाव नहीं देखते हैं ॥३६॥ जो पुरुष भागवत पुराणको अर्थ सहित पढ़ते हैं उनके कोटि जन्मके पाप क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं ॥३७॥ जो कोई श्रीमद्भागवतका आधा, चौथाई श्लोक प्रीतिसहित प्रतिदिन पढ़ते हैं, उनको राजसूय, अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्यप्रति भागवतका कथन, नारायणका कीर्त्तन, तुलसीका पोषण, गौओंका सेवन समान फलदायक है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकसागरकी कथा श्रवण की है उसको श्रीवैकुण्ठनाथ प्रसन्न होकर वैकुण्ठका वास देते हैं ॥ ४० ॥ जो जन श्रीमद्भागवतकी पुस्तक, सुवर्णके सिंहासन पर धरकर, वैष्णवोंको प्रदान करते हैं, वे पुरुष निःसन्देह श्रीनारायणकी सायुज्य पदवीको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ जिस मूर्खने जन्मसे अन्तकालतक मन लगाकर सुधारूपी शुकसागरकी कथाका पान नहीं किया उसने चाण्डाल और खरकी नाईं अपना जन्म वृथा खोया और उसने उत्पन्न होकर अपनी माताको वृथा कष्ट दिया ॥ ४२ ॥ जिसने कभी शुकसागरकी कथाका कोई वचन नहीं सुना वह पापकर्मा जीता ही मृतक समान है, उस पशुवत्व पृथ्वीपर भाररूप मनुष्यको धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिक देवता कहते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें मनुष्योंको महादुर्लभ है कोटि जन्मके प्राप्त हुए पुण्योंसे यह भगवद् रूपी कथा प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे योग निधान बुद्धिमान महात्माजनो ! यह कथा यत्नपूर्वक सुननी चाहिये, इसमें किसी दिनका नियम नहीं है, सदा सुने ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्यसहित यह कथा नित्यप्रति सुने, अशक्य होनेसे कलियुगमें शुक आज्ञासे विशेषता कही है ॥४६॥ मनोवृत्तियोंका जीतना, नियमाचरण करना, दीक्षा करनेमें अशक्य हो तो भी सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है ॥४७॥ नित्य श्रद्धापूर्वक माघ मासमें कथा सुननेसे जितना फल होता है, वही फल सप्ताह पारायणके सुननेमें होता है ॥ ४८ ॥ मनका अजय होनेसे, रोग होनेसे, आयुका क्षय होनेसे और कलियुगके अनेक दोष होनेसे सप्ताहका सुनना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जो फल, तप, योग, समाधिसे नहीं होता है, वह फल अनायास सप्ताहके सुननेसे होता है ॥५०॥ यज्ञसे, व्रतसे, दानसे, पुण्यसे, नियमसे, तपसे, तीर्थोंसे सप्ताहयज्ञ नित्य बलवान् है ॥ ५१ ॥ योगसे, समाधिसे, ज्ञानसे, ध्यानसे सप्ताह बलवान् है, उसकी बलवत्ताको हम क्या कहें ? यह सबके ऊपर (अररर) करके गर्जता है, (जबतक भागवत नहीं सुनी तबही तक व्रतादिक हैं, इसके सुननेके उपरांत और कुछ नहीं, क्योंकि इसीके अन्तरमें सब आ जाते हैं) ॥ ५२ ॥ शौनकजी बोले, कि हे महाभाग ! यह बड़े आश्चर्यका कथानक सुनाया कि ज्ञानधर्मादिकोंको तिरस्कार करके अब परब्रह्मका सूचक श्रीभागवतपुराण मोक्ष देनेवाला है, उसे अवश्य सुनाओ ॥५३॥ सूतजी बोले, कि जब श्रीकृष्णचन्द्र (आनन्दकन्द) पृथ्वीको त्याकर अपने धामको

जाने लगे उस समय एकादशस्कन्धके कहे हुए ज्ञानको सुनकर ॥५४॥ उद्धवजी बोले, कि हे भगवन् ! आप तो भक्तोंका कार्य करके वैकुण्ठलोकको जाते हो, मेरे मनमें बड़ी चिन्ता है उसको सुनकर, मुझे समझाकर सुखी करो ॥५५॥ यह महाघोर कलियुग आया है, इसमें बड़े-बड़े दुष्ट और दुराचारी उत्पन्न होंगे, उनके संगसे साधु-सन्त भी जब उग्रताको प्राप्त होंगे॥५६॥ तब यह गोरूप भूमि भाराक्रान्त होकर किसका आश्रय करेगी, हे दीनानाथ ! तुम्हारे विना इसका कोई रक्षक नहीं है ॥५७॥ इसलिये हे भक्तवत्सल ! (हे अन्तर्यामी!हे पुरुषोत्तम !) सत्पुषोंके ऊपर दया करके मत जाओ, हे आदिपुरुष अविनाशी आप निराकार चिन्मय हो तथापि अपने भक्तोंके कारण सगुणरूप धारण किये हैं ॥ ५८ ॥ (हे आनन्दवल्लभ !) तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त संसारमें कैसे रहेंगे (और दैत्य दानवोंसे इनकी रक्षा कौन करेगा-)

कबित्त-कलियुगके आते ही धर्मकी मर्यादा मिटै, दुष्ट जन गायें और विप्रोंको सतावैंगे। जीतोंका श्राद्ध करो पितरोंको मानो मत, शालिग्राम पत्थर नदी गंग को बतावैंगे ॥ शास्त्र औ पुराणोंको झूठा कहैं बार बार अद्भुत पाखण्ड खण्ड खण्डमें फैलावैंगे ॥ ऐसे ऐसे अत्याचार होंगे जब पृथ्वीपर, उस दिन कह कृष्ण कृष्ण किसे हम बुलावैंगे ॥

हे नाथ ! उस समय निर्गुण उपासनामें बड़ा कष्ट होगा, क्योंकि सगुण उपासनावालों से निर्गुण उपासना नहीं होती, इसलिये कुछ उपाय विचारिये (और हम लोगोंकी ओर कृपा-दृष्टिसे देखिये) ॥५९॥ ऐसे अपने मित्र उद्धवके दीन वचन सुनकर भगवान् (भक्तहितकारी श्रीवैकुण्ठविहारी) प्रभास क्षेत्रमें विचार करने लगे कि भक्तोंके अवलम्बनके लिये मुझे क्या करना चाहिये ॥६०॥ यह शोच-समझ उद्धवसे कहा (हे प्राणप्यारे ! जो कुछ) मुझमें तेज था, वह अपना तेज तो मैंने श्रीमद्भागवतमें रख दिया है,उसीको मेरा शरीर समझकर पूजना, इतना कह अन्तर्द्धान हो गये (श्रीमद्भागवतरूपी शुकसागरमें प्रवेश कर गये) ॥६१॥ इसलिये यह श्रीकृष्णकी वाणीरूप प्रत्यक्ष मूर्ति है, सेवन, श्रवण, पाठ, दर्शन करनेसे सब पाप दूर करती है ॥ ६२ ॥ इसलिये सबसे अधिक फल सप्ताह सुनने का कहा है और सब साधनोंका तिरस्कार करके कलियुगमें यह उत्तम धर्म कहा है ॥६३॥ दुःख, दरिद्र, दुर्भाव और पापके धोनेके लिये, काम, क्रोधको जीतनेके लिये कलियुगमें यही धर्म परमोत्तम है ॥६४॥ अथवा जो वैष्णवी माया देवताओंको भी दुस्तर है, उसे मनुष्य कैसे त्याग कर सकते हैं। इस लिये सप्ताह विधि कही है ॥६५॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब ऋषियोंने सप्ताह सुननेसे विधिरूप धर्मका प्रकाश किया, उसी समय एक बड़ा आश्चर्य हुआ, हे शौनकजी ! आप उसे सुनो ॥६६॥ जब सभामें लाखों ऋषीश्वर, मुनीश्वर आ-आकर बैठे उस समय भक्ति भी अपने दोनों तरुण हुए, ज्ञान वैराग्य पुत्रोंको संग लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रकट हुई 'श्रीगोविंद हरे मुरारे' यह नाम वारंवार उच्चारण करती थी ॥ ६७ ॥ उस भागवतार्थभूषण, सुन्दर वेष किये, सभामें आयी हुईको सदस्यगण देखने लगे, और सब यह कहने लगे कि यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमेंसे आयी, (इस प्रकार सब परस्पर चर्चा करने लगे) ॥६८॥ तब सनत्कुमार बोले कि, यह इस समय कथा ही सुननेके लिये आयी है इस प्रकार वह भक्ति ज्ञान, वैराग्य सहित सनत्कुमारके वचन सुनकर बड़ी नम्रतासे ॥ ६९ ॥

(भक्ति) बोली, कि कलियुगमें प्रनष्ट हुई मुझको कथारस सुनाकर आपने पुष्ट किया, अब मैं कहां रहूं वह बताओ ? तब ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार उससे इस प्रकार बोले ॥७०॥ हे भक्तोंके विषे भगवत्स्वरूप धारण करनेवाली, प्रेम उत्पन्न करनेवाली, जन्ममरणरूप रोगके नाश करनेवाली और भगवान्के प्रसन्न होनेवाले धर्मोंके आश्रय करनेवाली ! तू वैष्णव (विष्णुभक्तों) के चित्तमें निरंतर निवासकर ॥७१॥ इससे इस कलियुगके दोष तुम्हें देखनेको समर्थ नहीं हैं, इस प्रकार सनत्कुमारकी आज्ञा मान जो-जो नारायणके भक्त वहां बैठे थे, उनके हृदयमें प्रवेश कर गयी ॥७२॥ इस संसारमें वे निर्धन भी धन्य हैं, जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है, क्योंकि भक्तिसूत्रके वशीभूत हो, भगवान् अपने लोकको छोड़कर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥७३॥ इस ब्रह्मरूप श्रीमद्भागवतका पृथ्वीपर हम क्या माहात्म्य कहें जिसके कहने-सुननेसे श्रोता, वक्ता, कृष्णके समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ।

कबित्त–भागवत शास्त्र सदा भक्त सुख देन–हारो, भागवत शास्त्र सब सिद्धों का सदन है । भागवत शास्त्र सब सिधि नव निधि देत, भागवत शास्त्र भक्ति मुक्तिको भवन है । भागवत सुने भागवंत्त होत नर नारि, भागवत पढ़े दुख दारिद दवन है । भागवत महिमा कौन वर्ण सके शालिग्राम, भागवत शास्त्र साक्षात वृन्दावन है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां शालग्रामवैश्यकृतायां भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–दुष्ट धुन्धुकारी भयो, जैसे द्विजकै गेह ।
सो चौथे अध्यायमें, मेटो सब सन्देह ॥ ४ ॥

सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि, ! वैष्णव लोगोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥१॥ वनमाली, घनश्याम, श्रीवृन्दावनबिहारी, पीतवस्त्रवाले, मनोहर वेष धारण किये, चन्दन केशरका तिलक दिये, मुरलीधर, मोरकुट धरे, त्रिभङ्गी छबि करे ॥२॥ मकराकृति कुण्डल पहिरे, सुंदर कौस्तुभमणि हृदयमें विराजमान, कोटिकामदेवके समान शोभायमान, कटि किंकिणी पहने हुए ॥ ३ ॥ परमानंद चिन्मूर्ति मधुर मुरली कर लिये भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेश किया ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठ धामके रहनेवाले थे जो वैष्णव उद्धवादिक थे, वे सब गूढ़ रूपसे कथा सुननेको स्थित हुए ॥ उस समय चारों ओर जय-जय शब्द रस रूप श्रीमद्भागवतकी पुष्टि चूर्ण पुष्पोंकी वृष्टि, धूमधामसे होने लगी और वारंवार शङ्खध्वनि महात्मा लोग करने लगे ॥ ६ ॥ उस सभामें जो-जो ऋषीश्वर, मुनीश्वर, माहात्मा पुरुष उपस्थित थे उनको अपने देह-गेह और आत्माकी कुछ सुधि-बुधि न रही, सबकी तन्मय अवस्था देख देखकर नारदजी मधुरवाणीसे कहने लगे ॥ ७ ॥ हे मुनीश्वरो । आज इस जनसमुदायमें मैंने सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी कि जिसको सुनकर मूढ़, शठ, पशु, पक्षी, तक सब निष्पाप हो गये (फिर और महात्मा पुरुषोंकी क्या गणना है) ॥८॥ इसलिये इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेको और पापके समूह हरनेको इसके समान पृथ्वीमें और कोई दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ परंतु आप मुझसे कहिये कि कथामय

सप्ताहयज्ञसे कौन-कौन विशुद्ध होते हैं, महात्माओंने लोकका हित विचार कर क्या कोई नवीन मार्ग स्थापित किया है ? ॥१०॥ सनत्कुमार बोले कि जो मनुष्य पापात्मा, सदा दुराचारी, कुत्सित मार्गी, अपनी क्रोधाग्निसे आप जलनेवाले, कुटिलकामी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ ११ ॥ सत्य हीन, माता पिताके दोषी, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम धर्मसे वर्जित, जो पाखण्डी, घमंडी, हिंसक हैं, वे भी सप्ताह यज्ञसे कलियुगमें पवित्र हो जायँगे ॥ १२ ॥ पांच बड़े उग्र पापको करनेवाले, छल, छद्मकारी, जो क्रूर पिशाचोंकी नाईं निर्दयी हैं, जो ब्राह्मणोंका धन चुरा-चुराकर पुष्ट होते हैं और व्यभिचारी हैं, वे भी मलिन मन दुष्टात्मा कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥ १३ ॥ और जो शठ हठपूर्वक मन-वचन-कर्मसे नित्य नये पाप करते हैं, पराया द्रव्य लेकर अपनी आत्माका पोषण करते हैं, वे अत्याचारी कलियुगमें सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जायँगे ॥१४॥ यहां हम तुमसे एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं; जिसके सुननेसे पापोंका नाश हो जाता है ॥१५॥ तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक सर्वोत्तम नगर था, जिसमें चारों वर्ण अपने-अपने धर्मोंके सत्कर्मोंमें तत्पर थे ॥१६॥ उसी नगरमें चार वेद, षट् दर्शन, अठारह पुराणोंका जाननेवाला आत्मदेवनामक एक ब्राह्मण श्रौतस्मार्त्त कर्मोंमें पारंगत दूसरे सूर्यके समान निवास करता था ॥ १७ ॥ वह भिक्षावृत्ति करनेवाला होकर भी धनवान् था और उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली महासुन्दरी, सत्कुलोत्पन्न, सदा अपने वचनकी टेक रखनेवाली थी ॥१८॥ लोककी बातोंमें प्रीति करनेवाली, क्रूरा, बहुत बोलनेवाली, बलवती; घरके कार्योंमें कृपण, क्लेशकारिणी थी ॥ १९ ॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक उन दोनोंको रहते आहार-विहार करते बहुत दिन व्यतीत हो गये, परंतु अर्थ काम होते हुए भी गृह वगैरह उनको सुखकारी न हुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंने सन्तान उत्पन्न होनेके लिए अनेक-अनेक उपाय किये, दोनोंने गौ, ब्राह्मणोंको भूमि और स्वर्ण दे-देकर धर्म करना प्रारंभ किया ॥ २१ ॥ जब कि उन दोनों स्त्री-पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगा दिया और इतने पर भी कोई बेटी-बेटा न हुआ तब ब्राह्मणको अत्यन्त चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ तब ब्राह्मण घरसे निकल वन को चल दिया, जब दुपहर हुई तो प्यासके कारण व्याकुल हो एक सरोवरके निकट पहुँचा ॥ २३ ॥ और जल पीकर संतानके दुःखसे दुःखी हो वह वहीं बैठ गया और अपने मनमें अनेक प्रकारका विचार करने लगा, दो घड़ी उपरांत एक संन्यासी वहां आ निकला ॥ २४ ॥ जब वह महापुरुष जल पी चुका तब उस ब्राह्मणने उसके समीप जा दंडवत कर उसके चरणारविंदकी वंदना की और लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा ॥२५॥ यति बोले कि, हे ब्राह्मण देवता ! तू क्यों रोता है ? और तेरे मनमें कौनसी चिंता है ? और किस लिये वनमें अकेला विचरताफिरता है ? तू शीघ्र अपने दुःखका कारण कह ॥२६॥ तब ब्राह्मण बोला कि (हे दीनदयालु ! हे कृपासागर !) अपने पूर्व पापोंसे संचित दुःखको आपसे क्या कहूँ ? मेरे पूर्व पितर मेरे दिये हुये जलको गर्म गर्म श्वास भरकर पीते हैं, कि आगेको कोई संतान इसके न होनेसे हमको जल नहीं मिलेगा ॥२७॥ मेरे दिये हुये दानको प्रीति और सम्मानसे देवता और ब्राह्मण भी ग्रहण नहीं करते, मैं संतानके दुःखसे जड़ताको प्राप्त हो प्राण त्याग करनेके लिए यहां आया हूँ ॥२८॥ सन्तानके विना संसारमें जीनेवालेको धिक्कार है, विना सन्तानके घरको धिक्कार है, पुत्रहीन धनको धिक्कार है, अपुत्रके कुलको धिक्कार है ॥२९॥ और मैं ऐसा भाग्यहीन

हूँ, कि जो मैं गाय भी पालता हूँ तो वह भी वन्ध्या हो जाती है और मैं वृक्ष लगाता हूँ तो वह भी नहीं फलता ॥३०॥ जो कोई फल कहींसे मेरे घर आता है वह भी (मेरे भाग्यसे) सूख जाता है, तो मुझ मन्दभागी पुत्रहीनका जीना जगत्में निरर्थक ही है ॥३१॥ ऐसे शोक-सन्तापके भरे वचन कह कर वह ब्राह्मण उस संन्यासीके सपीप बैठ कर उच्चस्वरसे बड़ा विलाप करके रोने लगा; तब उस महात्मा साधुके मनमें बड़ी दया आयी ॥ ३२ ॥ वह संन्यासी उस ब्राह्मणके मस्तककी रेखा देख अनेक प्रकारसे विचार करके बोला ॥ ३३ ॥ यती बोला कि, हे ब्राह्मण ! संतानरूपी अज्ञानका त्याग कर, तेरे प्रारब्धमें संतान नहीं लिखी, कर्मकी गति बड़ी बलवान् है, कोई जान नहीं सकता, अब तू ज्ञानके आश्रित हो संसारकी वासनाका परित्याग कर ॥३४॥ क्योंकि इस समय मैंने तेरे भाग्यको सब प्रकारसे विचार कर देखा, परन्तु सात जन्म तक तेरे पुत्र होनेकी आशा नहीं ॥ ३५ ॥ देखो सन्तानके होनेसे,(सगर और अङ्ग) राजाने कैसे कैसे दुःख पाये (क्या इसका इतिहास तूने नहीं सुना ? अरे मूर्ख ! पुत्र पौत्रमें क्या रखा है, यह सब संसार स्वप्नकीसी माया है, न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है, सब अपने-अपने प्रयोजनके हैं, अन्त समय विना परमेश्वरके भजन और कुछ काम नहीं आता और पुत्रादिकमें मन लगनेसे नारायणका भजन नहीं बनता और उनकी ममतामें फँसकर नरक भोगना पड़ता है, इसलिए) हे ब्राह्मण ! तू पुत्रादिकोंकी आशा भी छोड़कर संन्यास धारण कर जिससे सर्वथा सुख मिले ॥३६॥ ब्राह्मण बोला कि, हे कृपासिंधु ! मुझे ज्ञान ध्यानसे कुछ प्रयोजन नहीं, जैसे हो वैसे एक पुत्र मुझको दीजिये, नहीं तो मैं तुम्हारे आगे ही अपने प्राणोंका घात करके मर जाऊँगा ॥ ३७ ॥ पुत्रादिकके सुख विना यह संसार भी वृथा है, गृहस्थ जो पुत्र पौत्र संयुक्त हैं वे ही लोकमें श्रेष्ठ हैं ॥३८॥ ब्राह्मणकी यह दशा देख तपस्वी फिर उसको समझाने लगा; कि हे ब्राह्मण ! विधिके अङ्क मिटनेसे चित्रकेतुकी कैसी दुर्दशा हुई थी; इसलिए प्रारब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥३९॥ जैसे दैवहत होनेसे उद्यम वृथा होता है, इसी प्रकार पुत्रसे तुझे कुछ सुख प्राप्त नहीं होगा; इस कारण तुझ हठीले अपस्वार्थीसे मैं क्या कहूँ ! ॥४०॥ (ब्राह्मण बोला कि आप जितनी बातें ज्ञान ध्यानकी कहते हैं वे मेरे हृदयमें बाणके समान लगती हैं और यह योगकी कथा मेरे मनको नहीं भाती । अब आप कृपा करके कोई ऐसा उत्तम उपाय बताइये जिससे मेरे सन्तान हो) उस ब्राह्मणका अत्यन्त आग्रह देखकर तपस्वीने उस ब्राह्मणको एक फल दिया और यह कहा कि तू यह फल अपनी स्त्रीको खिला देना परमेश्वर चाहेगा तो तेरे एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ सत्य, शौच, दया, दानपूर्वक रहना चाहिये, दुपहरके उपरांत एक अतिथिको भोजन कराके पीछे आप भोजन किया करें। इस प्रकार एक वर्षतक वह स्त्री अपने धर्मकर्मसे शुद्ध और चैतन्य रहेगी तो एक श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह वचन कह वे महात्माजी कहीं चले गये और वह ब्राह्मण देवता अपने घर आया और वह फल अपनी भार्याको देकर उसका विधान बताया और कहा इसके खानेसे तेरे एक महातेजस्वी स्वरूपवान् पुत्र होगा, यह कह वह ब्राह्मण तो अपने किसी कामको चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल तो थी ही, उसके निकट उस समय एक सखी कहींसे आ गयी, तब वह ब्राह्मणी अपनी सहेलीके सम्मुख रुदन करने लगी और कहने लगी कि हे प्यारी ! आज मुझे बड़ी चिंता है, क्योंकि आज मेरे स्वामीने मुझको पुत्र

होनेके लिये यह फल दिया है, इस फलको मैं कभी नहीं खाऊँगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा फिर पेट बढ़ेगा, थोड़ा भोजन करनेसे शरीर निर्बल हो जायगा तो घरके काम काजमें बाधा होगी ॥ ४५ ॥ कहीं भाग्यसे गाँवमें आग लग जाय तो गर्भिणीका भागना महाकठिन है तोतेकी नाईं रहते हुए गर्भका कोखसे कैसे त्याग करूँगी ! ॥४६॥ और जो कहीं दैव इच्छासे गर्भ टेढ़ा पड़ गया तो वृथा प्राण जायँगे, मैंने सुना है कि बालक होनेके समय बड़ा कष्ट होता है, मैं सुकुमारी स्त्री नहीं सह सकती ॥ ४७ ॥ जो इस दुःखसे मुझ मन्द-भागिनी का मरण हो गया तो मेरे सर्वस्व धनको ननद हरण कर लेगी और फिर सत्य शौचादि नियमसे मुझे यह दुःखसाध्य ही दीखता है ॥४८॥ फिर बालकके लालन-पालनमें बड़ा दुःख होता, (शरीर का सब सुख जाता रहता है, गीलेमें आप सोना पड़ता है सूखेमें बालकको सुलाना पड़ता है, जाड़े-पालेमें ठण्डा पानी छूना पड़ता है, प्रसूतादि रोगका चित्तमें नित्य खटका लगा रहता है) इन बाधाओंसे तो वन्ध्या और विधवा नारी अच्छी हैं जो यह दुःख कभी देखनेमें ही न पावें ॥ ४९ ॥ ऐसी-ऐसी अनेक प्रकारकी कुतर्कना करके उस ब्राह्मणीने वह फल नहीं खाया, जब उसके पतिने पूछा कि (हे चन्द्रानने !) वह फल तूने खा लिया या नहीं, तो वह बोली कि (हे स्वामिन् ! अबतक क्या था !) मैंने उसी समय वह फल खा लिया ॥५०॥ एक समय उस ब्राह्मणीकी भगिनी निज इच्छासे उसके घर आयी अपनी बहिनको कृश और उदास देखकर पूछा कि हे भगिनी ! तुझको क्या कष्ट है ? जो तेरा शरीर अत्यन्त दुर्वल हो रहा है, यह बात सुन उस ब्राह्मणीने अपनी बहिनको अपना सब वृत्तान्त सुनाया; कि यह मुझको बड़ी भारी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ इसी दुःखकी मारी मैं निर्बल हो रही हूँ, हे भगिनी ! बता तो अब मैं क्या उपाय करूँ ? (तब उसकी बहिन बोली कि हे सहोदरा ! तू धैर्य धर और कुछ संदेह मत कर; मैं तेरे संशयको सब प्रकार शमन कर सकती हूँ और यह उपाय तो तेरा मैं अभी किये देती हूँ, क्योंकि) मुझको एक मासका गर्भ है, जब मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तब बालकको मैं तुझे ही दे दूँगी, तेरे ही घर भेजकर तेरा ही नाम प्रसिद्ध करूँगी, कि मेरी बड़ी बहिनके लड़का हुआ है और यह बात तेरे स्वामीको किसी भांति प्रकट न होगी ॥ ५२ ॥ अब तू गर्भवतीसी होकर घरमें सुखी रह और मेरे पतिको कुछ धन देकर प्रसन्न कर लेना । वह उस बालकको प्रसन्नतापूर्वक तुझको दे देगा और यह बात तूने ही जानी और मैंने; दूसरे को विदित न होगी ॥ ५३ ॥ और मैं सबमें यह बात प्रकट कर दूँगी, कि मेरे बालक छः महीने का होकर मर गया और प्रतिदिन तेरे बालकको अपना दूध पिला जाया करूँगी ॥५४॥ और जो फल तेरा पति कहींसे लाया है वह फल परीक्षाके लिये अपनी गायको खिला दे, यह बात सुनकर उस ब्राह्मणीने स्त्री स्वभावसे प्रसन्न होकर (उसका कहना स्वीकार किया और) वह (योगेश्वरका दिया हुआ) फल गायको दे दिया ॥५५॥ कुछ समय उपरांत उस ब्राह्मणीकी बहिनके बालक उत्पन्न हुआ, तब उसकी बहिनके पतिने एकान्तमें (छिपाकर) वह बालक लाकर धुन्धुलीको दे दिया (और यह भेद किसीने नहीं जाना)॥५६॥ तब धुंधुलीने अपने पतिको कहला भेजा कि, महाराज ! आज आपके इस समय सुखपूर्वक पुत्र उत्पन्न हुआ, (यह साधुसम वचन सुनकर आत्मदेवको अत्यन्त हर्ष हुआ) उस ब्राह्मणके पुत्र होनेसे बहुत लोगोंको आनन्द हुआ ॥ ५७ ॥ तब उस ब्राह्मणने ब्राह्मणोंको बुलाकर जातकर्म किया और अपने वित्त समान दान दिया,

गीत बाजोंके शब्द और सब प्रकारके मङ्गलाचार उसके द्वारपर होने लगे ॥ ५८ ॥ धुंधुली अपने पतिसे बोली कि, हे प्राणनाथ ! मेरे कुचोंमें दूध नहीं उतरा, सो मैं निर्दुग्धा दूसरी गायके दूध विना इस (फूलसे) बालकको कैसे पालूँगी ! ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनका थोड़े ही दिनका हुआ बालक मर गया है, (आपकी आज्ञा हो तो मैं उसको अपने घर बुला लूँ, वह सब घर का कामकाज भी कर लेगी और) बालकको वह (अपने बालकके समान) पाल लेगी ॥ ६० ॥ ब्राह्मणने भी पुत्रकी रक्षाके लिए सब बातें अङ्गीकार कर लीं और अपने पुत्रका नाम धुन्धुकारी रखा ॥६१॥ तीन महीनेके उपरान्त उस गायके भी एक बालक उत्पन्न हुआ, मनुष्यकासा स्वरूप, सर्वाङ्गसुन्दर, उज्ज्वल दिव्य सुवर्णके सदृश शरीर ॥६२॥ ब्राह्मण उसको देख बहुत प्रसन्न हुआ, और स्वयं उसका संस्कार किया और इस अद्भुत आश्चर्यको बहुत लोग देखनेको आये, देखो ! आत्मदेवका भाग्य कैसा उदय हुआ, जो गौके भी देवरूपी बालक परमेश्वरने उत्पन्न किया है, बड़े आश्चर्य की बात है ! ॥६३॥ किसीने भी इस अद्भुत भेदको नहीं जाना, सब शरीर तो मनुष्यकासा था, परन्तु केवल दो कान ही गौकेसे थे, इस कारण उसके पिताने उसका नाम गोकर्ण रखा और दोनों बालकोंको अपना समान पुत्र समझकर आनन्दपूर्वक उनका पालन-पोषण किया ॥ ६४ ॥ जब कुछ कालोपरान्त वे दोनों बालक तरुण हुए तब गोकर्ण थोड़ी अवस्थामें लिखपढ़-कर बड़ा (ध्वजाधारी) पंडित और बुद्धिमान् हुआ, जिसके समान ज्ञानवान् और गुण-निधान दूसरा नहीं था, सदा धर्ममें निष्ठा, पुण्यमें मन, आठ पहर भगवान्के ध्यानमें मत-वाला रहे और धुन्धुकारी महाजुआरी और दुष्टाचारी हुआ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ स्नान, शौच, क्रियाहीन, कुत्सित कर्म करनेवाला, क्रोधी, कुकर्मी, दुष्परिग्रहकर्त्ता, चाण्डालोंके और चोरोंके हाथका भोजन करे ॥६७॥ चोरीमें चित्त, सबसे शत्रुता, पराये घरोंमें आग लगा दे, छोटे-छोटे बालकोंको खिलानेके बहानेसे लाकर कुएँमें डाल दे ॥ ६८ ॥ वह हत्यारा शस्त्र धारे, दीन और अन्धोंको दुःख दे, चाण्डालोंसे प्रीति रखे, पक्षियोंके फँसानेको जाल लिये फिरे ॥६९॥ वेश्याओंकी संगतिमें उसने अपने पिताका सब धन नष्ट कर दिया, एक दिन अपने माता-पिताको मार पीटकर घरके वर्तन भांडे उठा ले गया, (और बेंच खोचकर सब वेश्याओंको खिला दिया) ॥ ७० ॥ जब वह ब्राह्मण अत्यन्त कृपण और धनहीन हो गया, तब उच्चस्वरसे रो-रोकर कहने लगा कि, हे विधाता ! ऐसे कुकर्मी पुत्र होनेसे तो मैं अपुत्र ही अच्छा था, क्योंकि कुपुत्र सदा दुःखदायक है ॥ ७१ ॥ अब मैं क्या करूँ ? कहां जाऊँ ? इस समय कौन मेरे दुःखको दूर करनेवाला है, यह महाकष्ट मुझसे नहीं सहा जाता, अब मैं इस दुःखसे अपना प्राण त्याग दूँगा, हा दैव ! बड़ा कष्ट है, हे विधाता ! क्या इस कठिन दुःखके सहनेको संसारमें मैं ही एक रह गया था ? फिर शोच-समझकर बोला, कि हे विधाता ! तेरा कुछ दोष नहीं, यह सब मेरे ही कर्मोंका फल है, क्योंकि संन्यासीने मुझको बहुतेरा समझाया था, परन्तु मैंने उनका कहना एक न माना, उसीका यह फल भोगना पड़ा, ऐसे-ऐसे पश्चाताप और विलाप कर करके वह ब्राह्मण फिर रोने लगा ॥७२॥ उसी समय वह ज्ञानी गोकर्ण आकर पिताको ज्ञान वैराग्य दिखाकर समझाने लगा ॥७३॥ हे पिता ! यह संसार असार है, दुःखरूप है, मोहका बढ़ानेवाला है, किसका सुत ? किसका धन ? यह सब मिथ्या है, प्रेम करनेवाला रात-दिन दुःखी रहता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रको भी कुछ

सुख नहीं, न चक्रवर्तीको कुछ सुख है (संसारमें जिसने जन्म लिया उसको एक न एक दुःख लगा ही रहता है) परन्तु एकांत सेवी, परमेश्वर के भजन करनेवाले विरक्त ऋषि मुनियों-को ही आनन्द प्राप्त होता है ॥७५॥ इस संतानरूपी अज्ञानको छोड़ो, मोहसे नरक होता है, यह देह एक न एक दिन गिर जायगा (इसका कुछ भरोसा नहीं, इसलिये) सब (मोह ममताको) तज वनमें जाओ, नारायणका भजन करो ॥ ७६ ॥ आत्मदेवने पुत्रके मनोहर वचन सुन, वनके जानेकी इच्छा कर, अपने पुत्र गोकर्णसे कहा-हे पुत्र ! वनमें जाकर क्या-क्या करना उचित है, वह विस्तारसहित कहो ? ॥ ७७ ॥ स्नेहके पाशमें बँधा हुआ मैं लँगड़ा, लूला, मूर्ख हो रहा हूँ, कर्मोसे इस संसाररूपी कूपमें पड़ा हूँ । हे दयालु पुत्र, तू मुझे इस जगत्‌के जंगलसे निकाल ॥ ७८ ॥ गोकर्ण बोला-हे पिता ! इस अस्थि, मांस रुधिरसे बने हुए देहका अभिमान मत करो, स्त्री, पुत्रोंसे स्नेह ममता त्याग करो, इस संसारको (प्रतिदिन) क्षणभंगुर जानो, भक्तिमें प्रीति करके वैराग्यका अनुभव करो ॥७९॥ नित्य (भागवत) धर्मोंका सेवन करो, काम्य कर्मोंका त्याग करो, काम और तृष्णाको छोड़ साधुसन्तोंकी सेवा करो, औरोंके दोष-गुणोंका चिन्तन छोड़ भगवत्‌की सेवा करो, सुधारूपी कथाको सदा पियो ॥ ८० ॥ यह पुत्रका उपदेश सुन प्रसन्न हो, स्त्री, पुत्र, गृहका महामोह त्यागकर साठ वर्षकी अवस्थामें स्थिर चित्त करके वनको चला गया और नित्य-प्रति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्दके चरणारविन्दकी वन्दना और दशमस्कन्धका पाठ करनेसे श्रीकृष्णको प्राप्त हो गया ॥ ८१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शालग्रामवैश्यकृतायां भाषायां आत्मदेव-इतिहासवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा–इस पञ्चम अध्यायमें, कुछ गोकर्णवृतान्त ।
वर्णत हूँ मैं प्रेमसों, सुनहु चित्त करि शान्त ॥

सूतजी बोले कि पिताके मर जानेसे धुन्धुकारी माताको मारने लगा और कहा बता, धन कहाँ रखा है ? जो नहीं बतायेगी तो मैं तुझे मार डालूंगा ॥१॥ इस प्रकार धुंधुली उसके वच-नोंसे भयभीत और दुःखी हो रातको कुएंमें जा पड़ी और मर गयी ॥ २ ॥ जब गोकर्णने माताकी यह दशा देखी तो इसके निकट अपना रहना अच्छा न समझ, योगमें स्थित हो तीर्थ यात्राको चल दिया, वह गोकर्ण ऐसा सुबोध और ज्ञानी था, कि दुःख, सुख, शत्रु मित्रको समान समझता था ॥ ३ ॥ धुन्धुकारी उस घरमें पांच वेश्याओंके साथ रहने लगा, बड़ा कुत्सितकर्मी, उन वेश्याओंका पालन-पोषण मूर्खतासे (ठगाईसे) करने लगा ॥ ४ ॥ एक समय उन वारांगनाओंको गहनेकी इच्छा हुई तो वह धुन्धुकारी कामान्ध मृत्युका भय तजकर घरसे कहीं को चल दिया॥५॥ और इधर-उधरसे बहुतसा धन संग्रह करके फिर घरको आया और उनको अनेक प्रकार के भूषण-वसन दिये ॥६॥ बहुत धन देखकर वे वेश्यायें रात्रिमें विचार करने लगीं, कि यह दुष्ट प्रतिदिन चोरी करके द्रव्य हमारे लिये लाता है, कदाचित् राजाने इसको पकड़ लिया तो हम लोगोंको भी अवश्य दण्ड होगा ॥७॥ और यह सब धन लेकर इसको भी मार डालेगा, इसलिये धनकी रक्षाके निमित्त गुप्त रीतिसे हमही इसको मार डालें तो अच्छा है ॥ ८ ॥ क्योंकि इसको मारकर यह सब धनले अपनी इच्छापूर्वक जहां जी

चाहेगा वहां जायँगी, यह बात निश्चय करके उन्होंने सोते हुएको रस्सियोंसे बाँधा ॥ ९ ॥ और उसके गलेमें फांसी डालकर लटका दिया, जब वह पापात्मा फाँसी देनेसे नहीं मरा, तो चिन्ता करने लगी ॥ १० ॥ फिर बहुतसे अङ्गारोंसे उसका मुख जलाया, तब अग्निके लगनेसे वह अकुलाकर मर गया ॥ ११ ॥

दोहा–जो गणिकाके सँग रमैं, उनकी यह गति होय।
तासे कबहुँ न भूलकर, इनसे रमियो कोय॥

कवित्त–कायासे काम जात गांठहूसे दाम जात, सुयशका नाम जात रूप जात अंगसे। उत्तम सब कर्म जात कुलके सब धर्म जात, गुरुजनकी शर्म जात अपने चितभंगसे॥ राग रंग रीति जात ईश्वरसों प्रीति जात, जगसे प्रतीत जात कामकी उमंगसे। सुरपुरका वास जात भक्तिका निवास जात, पुण्यका प्रकाश जात वेश्याके प्रसंगसे॥ ११॥

उन साहसी गणिकाओंने एक गहरा गड़हा खोदकर उसको गड़हेमें गाड़ दिया, यह भेद किसीने नहीं जाना ॥ १२ ॥ जब उन वारांगनाओंके निकटवर्तियोंने पूछा कि धुन्धुकारी तुम्हारा मित्र कहाँ गया, तब उन वेश्याओंने कहा हमारा प्यारा द्रव्य उपार्जनके लिये परदेशको गया है, इस वर्षके अन्तमें आयेगा ॥ १३ ॥ पण्डितोंको योग्य है कि दुष्टोंका और वेश्याओंका विश्वास कदापि न करें, जो इनका विश्वास करता है, वह अनेक दुःख भोगता है, (ये दुष्टायें पहिले धन हरकर अन्तको प्राणोंकी ग्राहक हो जाती हैं) ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियोंके रस बढ़ानेवाले अमृतके समान हैं, हृदय इनके खाड़ेकी धारके सदृश तीव्र हैं, यह किसीकी मित्र नहीं ॥ १५ ॥ वे कुलटायें बहुत पति करनेवाली उसका सब धन हर कर और कहीं चली गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्मसे बड़ा भारी प्रेत हुआ ॥१६॥ वायुरूप धारण किये हुए नित्य दशों दिशाओंमें फिरते शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूखा प्यासा ॥ १७ ॥ कहीं शान्तिको प्राप्त न हुआ, हा दैव ! ऐसा वारंवार कहने लगा, कुछ कालोपरान्त गोकर्णने लोगोंसे सुना कि धुन्धुकारी मर गया ॥ १८ ॥ उसको अनाथ जानकर गयाजीमें श्राद्ध किया और जिस-जिस तीर्थमें जाय उसका वहां-वहां श्राद्ध करता था ॥ १९ ॥ इस प्रकार भ्रमण करता हुआ अपने नगरमें प्राप्त हुआ, रात्रिके समय घरके आंगनमें सोनेको आया, इसको किसीने न पहचाना ॥ २० ॥ वह धुन्धुकारी अपने भाई गोकर्णको सोता जान भयानक रूप दिखाने लगा ॥ २१ ॥ कभी मेढ़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा हो जाय, कभी इन्द्र, कभी अग्नि हो जाय, फिर पुरुष हो जाय ॥२२॥ इस विपरीतताको देखकर धैर्य धारण कर गोकर्णने जाना, कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ है, ऐसा निश्चय करके ॥ २३ ॥ गोकर्ण बोला-हे भाई ! तू कौन है जो रातमें यहां आया है, और क्यों तू इस दुर्दशाको पहुँचा, क्या तू भूत-प्रेत, पिशाच या राक्षस है, अपना वृन्तात हमसे कह ? ॥ २४ ॥ सूतजी बोले, कि, हे शौनकादि ऋषियो ! जब इस प्रकारसे गोकर्णने पूछा तो वह उच्चस्वरसे रोने लगा, परन्तु बोलनेका सामर्थ्य नहीं था, केवल संकेतसे ही कहा ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अञ्जलीमें जल लेकर मंत्र पढ़कर उसके ऊपर छींटा मारा, उस जलके छिड़कनेसे वह प्रेत पापरहित हो कहने लगा ॥ २६ ॥ हे गोकर्ण ! मैं धुन्धुकारी

तेरा भाई हूँ, अपने ही दोषसे मैंने अपने ब्राह्मणत्वका नाश कर दिया ॥ २७ ॥ मैंने अपने अज्ञानपनसे कुकर्म किये हैं, उन कुकर्मों की संख्या नहीं है, मैं लोगोंका मारनेवाला था, मुझे वेश्याओंने फाँसी देकर महादुःखसे मार डाला ॥ २८ ॥ इस कारण मैं प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ, अपनी दुर्दशा भी कहता हूँ–दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण करके जीता हूँ ॥ २९ ॥ हे कृपासिन्धु बन्धु ! मुझे इस महासंकटसे शीघ्र छुड़ाओ, जो मेरा उद्धार हो, धुन्धुकारीकी यह बात सुनकर ॥ ३० ॥ गोकर्ण बोला–हे भाई ! मैंने तेरे उद्धारके लिये गयाजीमें पिण्ड दिये और फल्गूपर श्राद्ध किया था तो भी तेरी मुक्ति नहीं हुई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! ॥ ३१ ॥ जो गयामें पिण्ड देनेसे मुक्ति नहीं हुई तो फिर और कुछ उपाय नहीं है, हे बन्धु ! अब मैं क्या करूं वह तू विस्तारसहित कह ? ॥ ३२ ॥ प्रेत बोला, कि हे भ्राता ! एक गयाको कौन कहे सौ गया श्राद्धसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि मैंने महापाप किया है, अब और कोई उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ, कि जो सौ श्राद्धसे भी मुक्ति न होगी तो तेरी मुक्ति असाध्य है ॥ ३४ ॥ परन्तु अब तू अपने मनमें धैर्य धर और निर्भय अपने स्थानमें बैठ रह, अब तेरी मुक्तिका साधन मैं विचार कर करूंगा ॥ ३५ ॥ गोकर्णकी यह बात सुनकर धुन्धुकारी अपने स्थानको चला गया और गोकर्ण रातभर विचार करता रहा, परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥ जब प्रातःकाल हुआ तो गोकर्णका आना सुन सब नगर निवासी उसके देखनेको आये, तब गोकर्णने उन सब लोगोंको (यथायोग्य आदर-सत्कार कर कुशल-क्षेम पूछ, अपने निकट बैठाय) रातका वृत्तान्त कहा ॥ ३७ ॥ यह बात सुनकर पण्डित, विद्वान्, योगी, ब्रह्मचारी पुरुष बहुत शास्त्र देखने लगे, परंतु कोई उत्तम उपाय उसकी मुक्तिका सिद्ध नहीं हुआ ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि तुम सूर्यभगवान्से इसका उपाय पूछो, जो वे कहें वह करना, तब गोकर्णने (सावधान हो) सूर्यभगवान् का ध्यान कर (मन्त्र पढ़ा और उनके वेगको रोककर) विनती करने लगा ॥ ३९ ॥ हे जगत्पते ! हे जगत्के साक्षी ! तुमको वारंवार नमस्कार है, हे तमोनाशक ! इस मेरे भ्राता धुंधुकारीकी मुक्तिका कोई उपाय बताओ, जिससे इसका उद्धार हो ॥ ४० ॥ गोकर्णके दीन वचन सुन भगवान् भास्कर दूरसे स्पष्ट बोले, कि हे गोकर्ण ! श्रीमद्भागवतका सप्ताह यज्ञ कर, इस प्रेत की मुक्ति सुनते ही हो जायगी ॥ ४१ ॥ धर्मरूप श्रीभगवान् सूर्यनारायणका यह वचन सबने सुना, (और अत्यन्त प्रसन्न होकर) सब नगरनिवासी कहने लगे, अवश्य यह शुभकर्म करना चाहिये ॥ ४२ ॥ गोकर्ण भी मनमें निश्चय कर श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी कथा बाँचनेमें प्रवृत्त हुए, उस सप्ताह पारायणके सुननेको देश-देश और ग्राम-ग्रामके मनुष्य दूर दूरसे आये ॥ ४३ ॥ अनेक लँगड़े, लूले, अन्धे, वृद्ध, मन्दभागी भी पाप दूर करनेको आये, देवताओंको यह सभा विस्मदायक हुई ॥ ४४ ॥ जब आसनपर बैठकर गोकर्ण कथा कहने लगे, तब धुन्धुकारी भी वहां आया और इधर-उधर देखने लगा ॥ ४५ ॥ वहां एक सात गांठोंका बाँस रखा था उसकी मूलमें छिद्रके मार्गप्रवेश कर सुनने बैठ गया ॥ ४६ ॥ वह पवन रूपी था, इसलिये स्थित न रह सका, तब बांसमें प्रवेश किया, गोकर्णने मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना करके ॥ ४७ ॥ श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कन्धकी कथा प्रेमपूर्वक गोकर्णने सबको सुनायी, जब सन्ध्यासमय कथा विसर्जित हुई तब एक बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥

जिस बाँसमें धुंधुकारी घुसा बैठा था उस बाँसकी एक गांठ टूट गयी, और बड़ा घोर शब्द हुआ, उसे सुनकर सब लोग विस्मित हो गये, कि यह क्या कारण है, उसी प्रकार दूसरे दिन कथा होनेसे फिर सन्ध्या समय दूसरी गांठ टूट गयी ॥ ४९ ॥ तीसरे दिन फिर कथा आरम्भ हुई और सन्ध्या समय तीसरी गांठ टूट गयी, इसी प्रकार सात दिनमें सातों गाठें फट गयीं ॥ ५० ॥ द्वादश स्कन्ध सुननेसे धुन्धुकारीने प्रेतयोनिको त्याग दिव्य रूप धारण किया, तुलसीमाला उसके कण्ठमें विराजती थी ॥ ५१ ॥ पीत वस्त्र पहने, घनश्यामवर्ण, मुकुटधारण किये, मकराकृति कुण्डल पहने, अपने भाई गोकर्णके निकट जाकर नमस्कार करके बोला ॥ ५२ ॥ भाई ! तुमने बड़ी कृपा करके प्रेत–योनिसे मुझको छुड़ाया, यह भागवतकी कथा धन्य है, प्रेतबाधाकी विनाश करनेवाली है ॥ ५३ ॥ यह सप्ताह धन्य है, जो कृष्ण लोकका फल देनेवाला है, सप्ताह सुननेको बैठते ही मनुष्यके पाप कांपने लगते हैं ॥५४॥ हम प्रेतोंकी तो यह भागवत प्रलय कर देगी, गीला, सूखा, लघु, स्थूल वाणीसे, मनसे, कर्मसे, किये हुए ॥५५॥ पापोंको सप्ताह यज्ञ नाश कर देता है, जैसे अग्नि समिधाको। भारत वर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने कहा है ॥ ५६ ॥ कि विना कथासुनने वालोंका जन्म निष्फल है, मोहसे रक्षा करके पुष्ट बलवान् देहसे क्या फल है ? ॥ ५७ ॥ जिस शरीरने शुकसागर नहीं सुना, वह अस्थियोंका स्तम्भ नसोंसे बँधा मांस रुधिरसे लेपित ॥५८॥ चर्मसे आच्छादित, दुर्गन्धयुक्त मूत्र और पुरीषका पात्र है, बुढ़ापा शोकके फल समेत रोगका भवन दुखरूप ॥५९॥ कभी भरता नहीं, दुर्धर खोटा दोष सहित क्षणभंगुर है, कीड़े विष्ठा और भस्मका कारण यह शरीर कहा है ॥ ६० ॥ इस अस्थिदेहसे सदैव रहनेवाला कर्म क्यों न साधन किया जाय ? जो प्रातःकाल खाया हुआ अन्न सायंकालको नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥ वह अन्नादिकके रसोंसे पुष्ट इस कायाकी क्या नित्यता है ? क्षणभंगुर है, सप्ताह सुननेसे लोकमें भगवान् वासुदेवके निकट ही प्राप्त होता है ॥६२॥ इन दोषोंकी निवृत्तिके लिये एक सप्ताहका ही साधन बहुत है, जैसे जलमें बुदबुदे जन्तुओंमें मच्छर, डांसादिक, ऐसे ही कथाके न सुननेवाले मनुष्य संसारमें वृथा ही उत्पन्न होते हैं ॥६३॥ जहाँ जड़ और सूखे बाँसकी गांठ टूट गयी तो फिर चैतन्य चित्तकी ग्रन्थि टूट जाय तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ६४ ॥ उनके हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सब सन्देह शमन हो जाते हैं, कर्मोंका क्षय हो जाता है, जो सप्ताह प्रेमपूर्वक सुनते हैं ॥६५॥ संसाररूपी कीचड़में सने-हुओंको धोनेके लिये इस शुकसागरकी कथा परमोत्तम है, जिसका मन कथारूपी तीर्थमें है, उसकी पण्डित लोगोंने मुक्ति कही है ॥ ६६ ॥ यह वचन उसके कहते ही विमान वैकुण्ठसे आया, जिसके चारों ओर प्रभाकरकी-सी प्रभा फैली हुई थी वैकुण्ठवासियोंके संग ॥६७॥ सबके देखते हुए धुंधुकारी उस विमानमें बैठा और उस विमानमें और वैष्णवोंको बैठा देखकर ॥६८॥ गोकर्णने पूछा कि यहाँ बहुतसे सुननेवाले उज्ज्वल चित्तके हैं, उनके लिये विमान क्यों नहीं आये ? ॥६९॥ जब कि सबका सुनना समान होता है तो फलमें भेद क्यों हुआ ? हे हरिके प्यारे भगवज्जन ! इसका कारण कहो ? ॥ ७० ॥ हरिदास बोले, कि सुननेके भेदसे फलका भी भेद होता है, सबने सुना परन्तु उस प्रकार मनन किसीने नहीं किया ॥७१॥ इसलिये भज-नेसे भी फलमें भेद हुआ, सात रात तक जागरण कर एकाग्रचित्त हो प्रेतने सप्ताह श्रवण किया ॥७२॥ और उसने स्थिर चित्त होकर मननादि भी किया, जिसको दृढ़ नहीं होता, उसका ज्ञान

हत हो जाता है और जो प्रमादसे कथा सुनता है उसका ज्ञान हत हो जाता है ॥७३॥ संदिग्धका मंत्र हत हो जाता है,व्यग्रचित्तका जप निरर्थक है, वैष्णव रहित देश हत है, अपात्र सद्गुण रहितका श्राद्धमें देना भी वृथा है ॥७४॥ वेदको न जाननेवाले विद्याहीनको दान देना वृथा है, सदाचाररहित कुल हत है, गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपने आपमें दीनताकी भावना करनी योग्य है ॥७५॥ मनके दोषोंको जीतना, कथामें निश्चल बुद्धि रखनी, जब इस प्रकारसे विश्वस्त शुद्धचित्त हो, तब कथाके सुननेका फल होता है ॥ ७६ ॥ फिर कथान्तरमें सबका वैकुण्ठ लोकमें वास होता है, हे गोकर्ण ! तुझे श्रीगोविंद वासुदेव भगवान् स्वयं गोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकार सब वृत्तांत कहकर वे भगवान्के पार्षद सब वैकुण्ठको चले गये, फिर श्रावणके महीनेमें गोकर्णने कथाको आरंभ किया ॥ ७८ ॥ फिर सात रात्रिवाली सप्ताहकी कथाको बहुत मन लगाकर सुना, हे नारद ! जब सप्ताह कथा समाप्त हुई तब देवता ॥ ७९ ॥ विमानों और भक्तों समेत श्रीनारायण वासुदेव आकर प्रकट हुए, उस समय चारों ओरसे जय-जय ध्वनि और नमः शब्द होने लगा ॥८०॥ उस समय भगवान द्वारकानाथने अत्यन्त प्रसन्न होकर वहां पाञ्चजन्य शंखध्वनि कर गोकर्णको अपने हृदयसे लगा लिया और अपने रूपके समान बना लिया ॥ ८१ ॥ और जितने श्रोता थे, उनको क्षणमात्रमें श्रीवैकुण्ठनाथने घनश्याम पीताम्बरयुक्त किरीट कुंडलधारी कर दिया ॥ ८२ ॥ और जो उस ग्राममें श्वानसे लेकर चाण्डालादि जातिके थे, वे भी गोकर्णकी कृपासे विमानमें स्थित हुए ॥ ८३ ॥ उनको भगवान्‌ने उस स्थानमें भेज दिया जहां योगीजन गमन करते हैं और गोपाल श्रीकृष्णचन्द्र गोकर्णसहित गोकुलको चले गये ॥ ८४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे भक्तवत्सल भगवान् ऐसे प्रसन्न हो गये, जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्र अयोध्यावासियोंको स्वर्गलोकको ले गये थे ॥८५॥ उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी योगियोंको जो गोलोक दुर्लभ है, उस गोलोकको उन्हें अपने साथ ले गये, जहां सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकीभी गति नहीं होती ॥८६॥ जो सप्ताहयज्ञमें इस कथाके सुननेसे फल प्राप्त होता है, हे महात्माओ ! हम उस माहात्म्यका कहां तक वर्णन करें जिन्होंने गोकर्णकी कथाके अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं, वे फिर गर्भमें नहीं आयेंगे ॥८७॥ जिस गतिको सप्ताह सुननेसे प्राप्त होते हैं उस गतिको पवन, जल, पत्र भक्षणकर तपस्यासे देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्रतपके संचय करनेवाले तथा योगी भी नहीं पहुँचते ॥८८॥ इस पवित्र इतिहासको शांडिल्य ऋषीश्वर चित्रकूटमें ब्रह्मानंदसे व्याप्त हुए पाठ करते हैं ॥८९॥ यह पवित्र आख्यान है, जो इसका एक वार भी पाठ कर लेता है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं, जो श्राद्धमें पढ़ते हैं उनके पितरोंकी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये शालग्रामवैश्यकृत-
भाषायां गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-कहौं छठे अध्यायमें, सप्ताह यज्ञ विधान ।
प्रेम सहित जे सुनत हैं, उपजत उर गुरु ज्ञान ॥

सनत्कुमार बोले, कि अब हम तुम्हें सप्ताह श्रवणकी विधि सुनाते हैं, जो विधि सहायक व धनसे साध्य है ॥१॥ प्रथम तो ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त्त पूछे फिर जैसी विवाहादिकमें

मंडपरचना होती है, उसी प्रकार रचना करे ॥ २ ॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़, श्रावण ये छः महीने कथा सुननेवालोंको मोक्षसूचक हैं ॥ ३ ॥ जो महीनोंको विग्रह है अर्थात् भद्र, दग्ध, व्यतीपात, वैधृति, गंडांत, रक्ष, मृत्यु, उत्पातादि निन्दित दिनोंको त्याग दे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि है सो सर्वथा करणीय है ॥ ४ ॥ सब नगरमें यत्नपूर्वक अपने इष्टमित्रको यह बात प्रकट कर देनी चाहिये, कि हमारे यहां अमुकवारका सप्ताह यज्ञका प्रारंभ होगा, सब कुटुम्बसहित तुम लोगोंको आना उचित है ॥५॥ कोई हरिकथासे दूर है, कोई अच्युतके गुण कीर्त्तनसे दूर है; स्त्रीशूद्रादिकोंको जिस प्रकारसे बोध हो वही काम करना ॥६॥ देश देशमें जो विरक्त वैष्णव लोग कथाके प्रेमी और हरिगुणके कीर्त्तन करनेवाले हैं उनके पास पत्र भेजने और यह लिखना ॥७॥ महादुर्लभ सात दिन तक सत्पुषोंकी सभा होगी और अपूर्व रसरूपी भगवान्की कथा होगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतपानमें रसलंपट आप प्रेमीजन शीघ्र आइये ॥९॥ यदि आप लोगोंको अवकाश न हो तो एक दिनको तो अवश्य ही आइये, क्योंकि इस सभाका सत्संग क्षणमात्रका भी दुर्लभ है॥१०॥ इस प्रकारसे उनको पत्र भेजकर बुलावे और आये हुओंके लिये उत्तम-स्थान नियत करे ॥११॥ चाहे तीर्थमें, चाहे उपवनमें, चाहे वाटिकामें, चाहे घरमें कथा सुने, परंतु वह कथाका स्थान कहीं बड़ी लम्बी चौड़ी पृथ्वीमें कल्पना करे, जहां बहुतसे भवन अतिथि परदेशी लोगोंके ठहरनेका हो ॥ १२ ॥ जलादिकोंसे मार्जन कर बुहारीसे बुहार गोबरसे लीप दे, फिर गेरू आदिक रंगोंसे चित्रित कर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगा दे ॥ १३ ॥ पांच दिन पहले आसन संग्रह कर रक्खे, केलेके वृक्षोंसे मंडित मंडप ऊँचा बनाये ॥ १४ ॥ फल-पुष्प पत्रादि चारों ओर बंदनवार बांधे और ध्वजा गाड़े, अर्थात् चांदनी ताने ॥१५॥ वेदिकाके ऊपर भागसे सात लोक अर्थात् सात स्थान बनाये, उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बैठाये ॥ १६ ॥ प्रथम उनको यथायोग्य आसन दे, फिर वक्ताको भी एक परमदिव्य सुन्दर ऊँचा आसन दे, जिसपर बैठकर कथा कहे ॥१७॥ वक्ता उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे, सुननेवाला पूर्वकी ओर मुख करके बैठे, अथवा वक्ता पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे तो श्रोता उत्तरकी ओरको अथवा पूजा करनेवाले और पूज्यके मध्यसे पूर्वदिशामें सब सुननेवाले बैठें॥१८॥१९॥ जो अपने धर्ममें विरक्त वैष्णव, ब्राह्मण, वेदशास्त्रानुसार शुद्ध, अथवा वेदशास्त्र जाननेवाला, दृष्टांत देनेमें कुशल, धीर, निर्लोभ, ऐसा वक्ता होना चाहिए ॥२०॥ जो अनेक धर्मोंमें घूमते हैं अर्थात् जहां जैसा देखा, वहां धनके लिए वैसा ही मत स्वीकार कर लिया, स्त्रीलम्पट, पाखंडवादी, पराई स्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले; पंडित भी हों तो भी इस श्रेष्ठ महापुराणकी कथा उनसे न कहलाये, क्योंकि नीच अपने नीचपनको कभी नहीं छोड़ता ॥ २१ ॥

कवित्त–दान हठ ठाने दोष औरके बखानै रीति प्रीति नाहिं जानै हेतु मानै खांडपूरीसे। विद्याको न लेश और बेषरूप रेख कछु, हुज्जत हमेश बाज आवै नाहिं कूरीसे ॥ हठ अपनी ही राखै जोइ चाहै सोइ भाखै, और टेढ़ी कर आँखैं चीर डारै पेट छूरीसे। कलियुगके काजनको साजैं तज लाजनको, ऐसे द्विजराजनको नमस्कार दूरीसे ॥

कथा कहनेवालेके समीप एक और भी पंडित स्थापन करना उचित है, जो सन्देहोंके

निवारण करनेमें समर्थ हो और लोगोंको इच्छापूर्वक समझा सके ॥२२॥ फिर वक्ताको एक दिन पहिले व्रतके लिये क्षौर करना चाहिए और अरुणोदय होते ही शौचादिकर्मसे निवृत्त हो स्नान करे ॥२३॥ प्रथम तो नित्य सन्ध्या संक्षेपसे कर कथाके विघ्ननाशके लिये गणेशजीका पूजन करे ॥ २४ ॥ फिर पितरों का तर्पण करके शुद्धिके अर्थ प्रायश्चित करे और एक मण्डल बनाकर श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करे ॥ २५ ॥ फिर 'नमः कृष्णाय' इस मन्त्रसे आरम्भ कर पूजा सम्पूर्ण करे और प्रदक्षिणा नमस्कारादि करके पूजाके अन्तमें स्तुति करे ॥२६॥ हे करुणासागर ! संसारसागरमें मग्न हुए मुझ दीन का जो कि मैं कर्म–मोहसे ग्रसित हो रहा हूँ, आप इस संसार-सागरसे उद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ फिर श्रीमद्भागवतकी भी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिए, प्रीतिसे धूप, दीप, नैवेद्य अर्पण करे ॥२८॥ फिर श्रीफल चढ़ाकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्त हो स्तुति करे ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण रूप ही है, हे नाथ ! मैंने भवसागरसे मुक्त होनेके लिये स्वीकार किया है ॥३०॥ यह मेरा मनोरथ तुम्हींसे सफल होगा, हे महाराज ! मैं आपका दास हूँ ऐसी कृपा करो, कि यह सप्ताहयज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो जाय ॥ ३१ ॥ ऐसे नम्र वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे, वस्त्राभूषणसे भूषित कर फिर पूजा करके स्तुति करे ॥ ३२ ॥ हे कृपासिन्धु ! आप शुकदेवरूप ज्ञानदायक सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो, इस भास्कररूपी कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञानतिमिर नाश करो ॥ ३३ ॥ फिर वक्ताके आगे कल्याणके निमित्त नियम करे, प्रसन्न होकर यथाशक्ति सात रात्रि तक वही नियम धारण करे ॥ ३४ ॥ कथामें विघ्नकी निवृतिके लिये पांच ब्राह्मणों का वरण करे, वे (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते रहें ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणको तथा हरिचरित्र कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार कर विनयपूर्वक उनसे आज्ञा ले आप आसनपर बैठे ॥ ३६ ॥ लोक, धन, स्थान, पुत्रादि सबकी चिन्ता त्याग करके कथामें शुद्धबुद्धिसे मन लगाये, उसको उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहर तक कथा बांचनी योग्य है और शीघ्रता न करे, धीरे कण्ठसे समझाकर कहे ॥ ३८ ॥ दुपहरको दो घड़ीके लिये कथा का विराम करे। कथाके अन्तमें वैष्णवलोग भगवान्का कीर्तन करें ॥ ३९ ॥ मल-मूत्रकी बाधा-शांतिके लिये लघु भोजन करना चाहिये। उन कथा सुननेवालोंको चावल दुग्धादिकका भोजन एक बार करना चाहिये ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रितक व्रत करके कथा सुने अथवा घृतपान, दुग्धपान करके सुने ॥ ४१ ॥ वा फलाहार करके सुने, एक ही बार सूक्ष्म भोजन करे, अथवा जिस प्रकारसे कथा सुननेमें आलस्य न आये सुख प्राप्त हो वह काम करे ॥४२॥ कथा सुननेके समय आलस्य न आये इतना थोड़ा भोजन करना चाहिये, यदि उपवास करनेसे कथा सुननेमें विघ्न पड़े तो वह भी अच्छा नहीं ॥ ४३ ॥ हे नारदजी ! सप्ताहव्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनोः-विष्णुदीक्षाविहीन अर्थात् गायत्रीका वा भगवान्के मन्त्रका उपदेश जिन्होंने गुरुसे नहीं लिया है, उनको कथा सुननेका अधिकार नहीं है ॥४४॥ ब्रह्मचर्यसे रहना, पृथ्वीपर शयन करना, पत्तलमें भोजन करना, कथा समाप्तिके समय नित्यप्रति भोजन पाये ॥४५॥ कथा सुननेवाले व्रती रहें, द्विदल अन्न (उसको कहते हैं जिनमें दो दल हों) मधु, तैल, गरिष्ठ अन्न, मनसा दूषित अन्न और बासी अन्न का सदा त्याग करे ॥ ४६ ॥ बैंगन, कलंज, दग्ध अन्न मसूर, निष्पावादि तथा मांस कथा सुननेवाले त्याग दें ॥४७॥ कथाका

व्रती पलाण्डु (प्याज), लहसुन, हिंगु, मूलक (मूली), गृञ्जन (गाजर) नालिका, मूल, कूष्मांड (कोहड़ा) को न खाय ॥ ४८ ॥ दो दफे पकाया हुआ तथा सूतकान्न, भूमिसे उत्पन्न नमक, मछली, मांस, बकरीका दूध, छोटी तलैयाका जल, इसे भी न खाय ॥४९॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, मान, मत्सर, दम्भ, मोह, द्वेषको भी छोड़ दे ॥५०॥ वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गौ, गुरु, व्रती, राजा तथा महान् पुरुषोंकी निन्दा भी न करे ॥ ५१ ॥ रजस्वला, नीच, पतित, म्लेच्छ, चाण्डाल, द्वेषी ब्राह्मण और जो वेदबाह्य हैं, उन लोगोंसे व्रती बात न करे ॥ ५२ ॥ सत्यव्रत, दया, मौन, नम्रता, विनय, उदारता, यह व्रतीको करना उचित है ॥ ५३ ॥ दरिद्र, क्षयरोगी, निर्भाग्य, पापकर्मा जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला, इस कथाको सदा सुने ॥ ५४ ॥ जिस स्त्रीको रजोधर्म न होता हो, काकवन्ध्या अर्थात् एक बार जिसके बालक हुआ हो अथवा जिसके बालक मर जाते हों, जिसका गर्भ गिरने लगे, वह स्त्री भी इस कथाको प्रयत्नसे सुने ॥ ५५ ॥ इन सात दिनतक जो विधिपूर्वक सुने तो अक्षय फल होता है, यह दिव्यकथा अत्युत्तम है, जो सुनेगा उसको यह यज्ञका फल देनेवाली है ॥५६॥ इस प्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करे, फलकी इच्छा करनेवालेको जन्माष्टमीके व्रतकी नाईं यह व्रत करना चाहिए ॥५७॥ और दरिद्र(निष्काम) भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है, वह (निष्काम) वैष्णव श्रवणमात्रसे ही कृतार्थ हो जाते हैं ॥५८॥ इस सप्ताह यज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥५९॥ प्रसाद, नैवेद्य, तुलसी, पुष्पमाला, सुननेवालोंको देनी चाहिये, फिर मृदंग, ताल आदि बाजोंसे परमेश्वरका कीर्तन करना योग्य है ॥६०॥ फिर जय-जय शब्द नमस्कार शंखध्वनि करे, ब्राह्मणोंको और याचकोंको धन और अन्न दे ॥६१॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हो तो दूसरे दिन गीताका पाठ करे और जो गृहस्थ हो तो शांतिके निमित्त हवन करे ॥६२॥ सविधि दशम स्कन्धके प्रत्येक श्लोकोंसे पायस (दूधपाक) मधु, घी, तिल, अन्नादिक हवन करना चाहिये ॥ ६३ ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करे, क्योंकि यह महापुराण तत्त्वसे गायत्रीमय ही है ॥६४॥ जो होम करनेमें असमर्थ हो तो बुद्धिमान् उसके फलकी सिद्धिके लिये होम करने योग्य वस्तु दे दें, अनेक प्रकारकी छिद्रशांतिके अर्थ और न्यूनता, अधिकता ॥६५॥ दोषोंके शान्त करनेको विष्णुसंहस्रनामका पाठ करे; इससे सब फल पूर्ण हो जाता है, क्योंकि इससे परे और कुछ नहीं ॥ ६६ ॥ फिर बारह ब्राह्मणोंको बूरामिश्रित खीरसे भोजन कराये और व्रतपूर्तिके निमित्त सुवर्णकी गाय देनी योग्य है ॥६७॥ और समर्थ हो तो तीन पल सोनेका सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पुस्तक स्थापना करे ॥ ६८ ॥ फिर पूजन कर आवाहनादिक उपचार, दक्षिणा सहित वस्त्रालंकार, गन्धादिसे पूजित, जितेन्द्रिय ॥६९॥ आचार्यके लिये बुद्धिमान् पुरुष पुस्तक प्रदान करे तो भवबन्धनोंसे मुक्त हो जाय, इस प्रकारके सब पाप हरनेवाले विधानके करनेसे ॥७०॥ यह श्रीमद्भागवतपुराण फलदायक होता है, यह धर्मार्थ काम मोक्षका साधन है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ सनत्कुमार बोले कि, हे नारद ! यह तो सब कुछ तुमको सुनाया, अब क्या सुननेकी इच्छा है, श्रीमद्भागवतके श्रवण करनेसे भुक्ति-मुक्ति हाथों हाथ होती है ॥ ७२ ॥ सूतजी बोले, कि ऐसे कहकर महात्मा लोग फिर कथा कहने लगे, जो कथा सब पापोंको हरनेवाली पुण्य भुक्ति-मुक्तिकी दाता है ॥७३॥ इस सप्ताह यज्ञको

सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियोंने यथाविधि श्रवण करनेसे पुरुषोत्तम भगवान्‌को प्रसन्न किया ॥ ७४ ॥ उसके अन्तमें ज्ञान-वैराग्य और भक्तिकी बड़ी पुष्टि हुई, सबप्राणियोंके मन हरनेवाले ज्ञान-वैराग्य तत्काल तरुण हो गये ॥ ७५ ॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेसे कृतार्थ हो गये, शरीर पुलकित हो गया, सर्वांगमें आनन्द भर गया ॥७६॥ इस प्रकार भगवान्‌के प्यारे नारदजी कथा सुनके प्रेमसे गद्गदवाणी हो, हाथ जोड़ सनकादिकोंसे बोले, ॥७७॥ नारदजी बोले, कि मैं धन्य हूँ, हे करुणासागर ! आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपाकी । आज मुझे सब पाप हरनेवाले हरि भगवान् मिल गये ॥ ७८ ॥ हे तपोधन ! हे कथा सुन-नेवाले महात्माओ ! सब धर्मोंसे श्रवण धर्म अधिक है, क्योंकि इस श्रवणसे वैण्कुठमें स्थिति और श्रीकृष्णचन्द्र प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ सूतजी बोले कि, हे वैष्णवोत्तम ! नारदजी जिस समय यह कह रहे थे, उसी समय घूमते हुए योगीश्वर शुकदेवजी आ गये ॥ ८० ॥ षोडशवर्षकी अवस्थामें वे व्यासजी महाराजके पुत्र, महाज्ञानसागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक, कथावसानमें अपने ही लाभसे परिपूर्ण प्रेम पूर्वक शनैः-शनैः श्रीम-द्भागवतका पाठ कर रहे थे और परमात्माके ध्यानमें मग्न थे ॥ ८१ ॥ बड़े-बड़े उग्र तेजस्वी महात्मा इनके देखते ही सब सभासद उठ खड़े हुए और महादिव्य आसन दिया और नार-दजीने उनका प्रीतिपूर्वक पूजन किया, तब सुखसे स्थित हो श्रीशुकदेवजी बोले ॥ ८२ ॥ वेद कल्पवृक्ष है, उसका यह भागवत फल है, वह मुझ शुकदेवके मुखसे पृथ्वीपर गिरा है; अमृत रूपी रससे संयुक्त है, "जिस फलमें तोतेकी चोंच लग जाती है, वह अधिक मीठा हो जाता है, यहां शुकरूपी शुकदेवजी ने इसका स्वाद लिया है इस कारण यह अधिक मीठा हो गया है,यह भाव है" यह भक्ति रूप रससे परिपूर्ण है, हे रसिको ! हे भगवच्चरितामृत पान करनेवाले महात्माओ ? (इससे मोक्ष भी न्यून है, इस कारण) इसे बारंबार पान करो ॥ ८३ ॥ जिस श्रीमद्भागवतमेंसे (फलाकांक्षारूप) कपटधर्म सम्यक त्याग दिया है, केवल ईश्वरसेवारूप धर्म निरूपण किया है; मत्सरतारहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकार है, महामुनि श्री श्रीनारा-यण रूप वेदव्यासके बनाये हुए इस श्रीमद्भागवतमें वास्तविक परमार्थरूप एक परमेश्वर ही जानने योग्य है, जो कल्याण दायक तीनों तापोंका नाश करनेवाले हैं, निश्चय श्रीमद्भागवतके सुननेवाले महात्माओंके हृदयमें शीघ्र ईश्वर प्राप्त हो जाते हैं, क्या और शास्त्रोंसे भी पर-मेश्वर इतने शीघ्र हृदयमें प्राप्त हो जाते हैं ? अर्थात् कभी नहीं होते ॥८४॥ यह श्रीमद्भाग-वत पुराणोंमें श्रेष्ठ, वैष्णवोंका परमधन है, जिसमें भक्तोंके परमप्रिय ज्ञान, परब्रह्म हृदयमें ही गाये जाते हैं, जिस श्रीमद्भागवतमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित निष्कर्मतारूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं। इसके श्रवण करनेसे, पाठ करनेसे, विचार करनेसे, भक्ति करनेसे,मुक्त हो जाता है ॥८५॥ स्वर्गमें, सत्यलोकमें, कैलासमें, वैकुण्ठमें यह रस नहीं है, इसलिये हे सद्भाग्य-वाले महात्मा पुरुषो ! इस आनन्दरूपी रसको पिओ, कभी त्याग मत करो, (यह रस बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है) ॥ ८६ ॥ सूतजी बोले कि, जिस समय श्रीशुकदेवजी मधुरवाणीसे प्रेम पूर्वक ये मनोहर वचन कहे, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्र (आनन्दकन्द भक्तहितकारी वृन्दा-वनविहारी पीताम्बर पहने, मुकुट शिर धरे, त्रिभंगी छबि करे, चन्दन केशरका तिलक दिये वनमाल हिये मुरली कर धारण किये) ध्रुव, प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुनादिक भक्तोंको संग लिये उसी सभाके मध्यमें प्रकट हो गये (इस अद्भुत आश्चर्यको देखकर सबको परमानन्द

प्राप्त हुआ और सबने खड़े होकर बड़े आदर-सम्मानसे) उन्हें ऊंचे आसनोंपर बैठाया और नारदजीने (प्रेमसहित प्रथम) श्रीवैकुण्ठनाथ वासुदेवका पूजन किया (फिर उद्धवादिकका पूजन किया) ॥ ८७ ॥ फिर आसनोंपर बैठे हुए भगवान्‌के सम्मुख सब महात्मापुरुष कीर्त्तन करने लगे, तब पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्त्तन-दर्शन करनेके लिये वहां आये ॥८८॥ (और सब खड़े हो गये) प्रह्लादने कड़तालें धारण कीं, तरलगतिसे उद्धवने झांझ हाथमें लिये, नारदजीने वीणा बजायी, स्वरभेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना आरम्भ किया; इन्द्रने मृदंग लिया, सनत्कुमारादि जय-जय अथवा धन्य-धन्य कहने लगे और सबके आगे रसकी विचित्रताके भाव बतानेवाले श्रीशुकदेवजी हुए ॥ ८९ ॥ उस स्थानमें भक्ति ज्ञान वैराग्यका तिगड्डा नाचने लगा,नटोंकी नाईं यह अलौकिक नाटक और कीर्त्तन देखकर श्रीवैकुण्ठविहारी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले ॥ ९० ॥ हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्त्तनसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, जो इच्छा हो वह वर मांगो, श्रीभगवान्‌के ये वचन सुनकर सब हरिभक्त प्रेममें मग्न हो गद्गदकंठसे बोले ॥ ९१ ॥ हे महाराज ! सप्ताहकी कथाओंमें आपको इसी प्रकार प्रकट होना चाहिये, अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होना उचित है, यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो। बहुत अच्छा, ऐसा कहकर श्रीनारायण अन्तर्धान हो गये ॥९२॥ इसके उपरान्त नारदजीने सनकादिकके चरणोंमें नमस्कार करते हुए शुकदेवजी तथा अन्य तपस्वियोंको भी नमस्कार किया, वे सब मोहरहित प्रसन्न हो कथामृत पान करके अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥९३॥ और भक्ति, ज्ञान,वैराग्य इन तीनोंको शुकदेवजीने इस श्रीमद्भागवतमें स्थापित किया है, इसलिये श्रीमद्भागवतके सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें नित्य प्राप्त होते हैं ॥९४॥ दरिद्र, दुःख, ज्वरसे दुःखित, माया पिसाचिनीसे मर्दित, संसारसागरमें गिरे हुओंके कल्याणके लिये यह श्रीमद्भागवतकी कथा बलवती है ॥ ९५ ॥ शौनकजी बोले कि, हे आनंददायक ! श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितको यह कथा कब सुनायी ? और महात्मा गोकर्णने कब सुनायी ? और सनत्कुमारने नारदजीको कब सुनायी ? यह हमारा संशय आप कृपा करके दूर कीजिये ॥९६॥ सूतजी बोले-श्रीकृष्णचन्द्र (त्रिलोकी नाथ) के परलोक जानेके उपरान्त तीस वर्षसे अधिक कलिके बीतने पर भादोंके शुक्लपक्षकी नवमीको शुकदेवजीने यह कथा राजा परीक्षितको सुनायी ॥९७॥ राजा परीक्षितके कथा सुननेके दो सौ वर्ष पीछे आषाढ़के शुक्लपक्षमें गोकर्णने कथाका आरम्भ किया था ॥९८॥ उसके पश्चात् फिर कलियुगके तीस वर्ष व्यतीत होनेसे कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें सनकादिकोंने नारदजीको कथा सुनायी ॥९९॥ हे पापरहित ! जो कुछ तुमने पूछा, वह मैंने तुमको सुनाया,कलियुगमें यह श्रीमद्भागवतकी कथा संसारके रोगोंका नाश करनेवाली है ॥१००॥ कृष्णकी प्यारी सब पापोंका शमन करने वाली, मुक्तिका कारण भक्तिकी लीला करने वाली यह कथा है, जो-जो महात्मा प्रेम प्रीतिसे इस कथाका पान करते हैं, उनको और तीर्थोंके सेवन करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥१०१॥ यमराजने पाश हाथमें लिया, तब अपने दूतोंसे कानमें कहा, कि जो पुरुष भगवत्कथामें रत हैं, उनके निकट कभी मत जाना मैं औरोंका निग्रह करता हूँ, परन्तु वैष्णवोंका दास हूँ, क्योंकि वे प्रतिदिन भागवत्की सेवा करते रहते हैं ॥ १०२ ॥ इस असार संसारमें विषयरूपी विषके संसर्गसे व्याकुल बुद्धि वालोंको उचित है, कि आधे क्षणको तो अतुल अमृतरूपी श्रीशुकदेवजी महाराजकी गाथाको कल्याणके निमित्त पान करें, अरे ! कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो, इस कथाके

श्रवण करनेसे निश्चय मुक्ति होती है, इस बातमें महाराज परीक्षित् साक्षी हैं ॥ १०३ ॥ रस-प्रवाहसे युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है, जो कोई कंठमें धारण करता है, वह बैकुंठका प्रभु होता है ॥१०४॥ हे शौनक ! इस प्रकारसे यह परमगुह्य, सब सिद्धांतोंका सिद्धांत, अनेक शास्त्रोंकी आलोचना कर मैंने कहा; इस जगत्में शुककथासे निर्मल और कुछ नहीं है, परमसुखके कारण द्वादशस्कन्धात्मक श्रीमद्भागवतरसका पान करो ॥१०५॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण करते हैं और भक्ति प्रीतिसे शुद्ध वैष्णवोंके आगे सुनाते हैं, वे वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं, सत्यसे अधिक संसारमें कोई वस्तु भी नहीं है ॥ १०६ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये भाषायां मुरादाबादनिवासि-शालग्रामवैश्यकृतयां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्भागवतमाहात्यभाषा समाप्त

❋

इति

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य भाषानुवाद

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

प्रथम स्कन्ध १.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

परीक्षित और शमीकऋषि



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

पहला स्कन्ध

सोरठा

ऋद्धिसिद्धिदातार, सिद्धिसदन वारणवदन । सुमरौं वारंवार, मदनकदनके लालको ॥१॥
गणपति कृपानिधान, ज्ञानखानि आनँदभवन । देहु मोहिं वरदान, वरणौं भाषा भागवत ॥२॥
जय शिव आनँदकन्द,भूतनाथ भवभयहरण । भक्ति विषयनिर्द्वन्द्व गौरवरण मंगलकरण॥३॥
हे ब्रजचन्द्र मुकुन्द, ब्रजभूषण दूषणहरण । काटहु भवभयफंद,चरणशरण ली आनकर॥४॥
जय जय जय जगदीश,सेवत शेष महेश अज । महिमा अमित अभेव, वेद भेद जानत नहीं ॥५॥
देहु मोहिं वरदान, राधावर यह वर सदा । प्रेम भरी मुसकान, नित चितमें खटकत रहै॥६॥
मुहिं चहिये कछु नाहिं, और वस्तु प्रभु जक्तकी । बसी रहै मन माहिं, यह बाँकी झाँकी सदा॥७॥
लिए लकुटिया हाथ, गायनके पीछे फिरत । ग्वालबाल लिए साथ, मोरमुकुट शिरपर धरे॥८॥
कर मुरली उरमाल,शीशमुकुट कटिपीतपट।याछबिसों नँदलाल,बसहु हृदय मम निशिदिवस९॥
गुरुपदरज धर शीश, कहूँ भागवतकी कथा । जो शुकदेव मुनीश, कही परीक्षितनृपतिसों॥१०॥

श्री भगवत्कलावतार श्रीवेदव्यासजी, एक समय अनेक पुराण, और अनेक शास्त्र तथा महाभारतादिक प्रबन्ध रच चुकने पर जब उनके चित्तको शांति न हुई और उन-उन शास्त्रोंके कहे हुए सिद्धान्तोंसे पूर्णतया सन्तुष्ट न हुये, तब भगवत्के अवतार श्रीनारदमुनिके उपदेशसे उन्होंने श्रीमद्भागवत शास्त्र रचा, जिसमें श्रीभगवत्के गुण वर्णन किये । उसके प्रारम्भमें विघ्नकी निवृत्ति और आनन्दकी सिद्धिके लिए श्रीभागवतके इष्टदेवका स्मरण रूप मंगलाचरण करते हैं ॥

---

१. प्रश्न–कवियोंने छोटे-छोटे ग्रंथ बनाये और बड़े ग्रंथ भी बनाये परन्तु मंगलाचरणके दश-दश, पांच-पांच श्लोक सबने कहे और व्यासजीने भी छोटे-छोटे ग्रंथोंमें मंगलाचरणके श्लोक बनाये और बड़े ग्रंथोंमें तो देवी-देवता सब ही मनाये, परन्तु श्रीमद्भागवत पुराणके आदिमें गणेशकी वा गुरुकी बंदनामें एक श्लोक भी नहीं लिखा । केवल, विना प्रीति ब्रह्माका ध्यान व्यासने दो श्लोकोंमें किया जो ब्रह्माका ध्यान भी दश–बीश श्लोकमें प्रीतिसहित करते तो हमारे मनमें ऐसी शंका नहीं होती । अब इस हमारी भारी शंकाको निवारण करो कि मंगलाचरण न होनेका कारण क्या है ?

उत्तर–जब बड़े बुद्धिमान् व्यासजीने अठारह पुराण, अनेक शास्त्र और इतिहास बनाये, परन्तु उनके मनको सन्तोष न हुआ । तब भगवानके चरित्र गानेके लिये नारद मुनिने व्यासजीको उपदेश किया । उस समय हर्षरूप समुद्रमें व्यासजी मग्न हो गये । जैसे कामी पुरुष सुन्दर स्त्रीको पाकर सुखी होता है वैसे ही नारदमुनिकी आज्ञा पाकर व्यासजी सुखी हुए और श्रीमद्भागवतके बनानेकी इतनी शीघ्रता की कि, मङ्गलाचरणका बनाना ही भूल गये । आतुरतामें केवल एक श्लोक ब्रह्माके ध्यानमें लिख दिया ॥

श्रीभगवान् व्यासजी ग्रंथके मंगलाचरणमें परमेश्वरका स्वरूप लक्षणा और तटस्थ लक्षणासे वर्णन करते हैं। प्रथम स्वरूप लक्षणाको कहते हैं—जो परमेश्वर त्रिलोकीमें एकरस सत्य-स्वरूप हैं, जिनमें मायाके सत, रज, तम तीन गुण अपने (पञ्चभूत इंद्रिय देवता रूप प्रपञ्च) कार्य सहित सर्वत्र मिथ्या भासते हैं, जिस अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे असत्य प्रपञ्च सत्यके समान दृष्टि आता है, इस कारण वह सब सत्य है। जैसे किसीको रात्रिके समय ऊसर भूमिमें जलका भ्रम होता है, और दिनमें मरु मरीचिकामें जल दृष्टि आता है, जैसे कांचमें जलका भ्रम होता है, ये सब भ्रम अधिष्ठानकी सत्यतासे दिखलाई देते हैं। ऐसे ही अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्यतासे मिथ्या भी प्रपञ्च सत्यसम दीखता है अथवा ब्रह्मकी ही पारमार्थिकी सत्यता कथन करके हेतु प्रपञ्चको मिथ्याभाव वर्णन किया है "जिस ब्रह्ममें यह प्रपञ्च सर्वकालमें असत्य है कभी सत् नहीं है" इसके कहनेसे ब्रह्ममें प्रपञ्च रूपी उपाधिका सम्बन्ध कहा है, उसकी निवृत्ति करते हैं, जिसने अपने तेजसे सर्व कालमें मायाके लक्षण कपट दूर किये हैं। अन्धकारमें जो रस्सी पड़ी हो और उसमें किसीको सर्प प्रतीत हुआ पर वास्तवमें उस सर्प और रस्सीका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसे ही अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञान अवस्थामें जो प्रपञ्च प्रतीत होता है उसका ज्ञान-अवस्थामें कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उस परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं।

अब तटस्थ लक्षणासे कहते हैं—जो इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन प्रलय करता है, जो घट पटादिक पदार्थोंसे सत्यरूपमें व्यापक और अकार्य अथवा प्रपञ्चका सत्तारूप कारण है, जैसे घटका कारण मृत्तिका और कुण्डलादिक आभूषणका कारण सुवर्ण है, अथवा ब्रह्मका विश्व, मृत्तिकाका घट, सुवर्णका कुण्डल कार्य है, जो जिसका कार्य है वह उससे भिन्न नहीं। श्रुतिमें, लिखा है—"यतो वेति" जिससे सम्पूर्ण जीव उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न हुए हैं, जिलाये जाते हैं और प्रलयकालमें जिसमें समाते हैं और मुक्तिकालमें जिसमें प्रविष्ट होते हैं और स्मृतिमें भी लिखा है—"यतः सर्वाणीति" युगके आदिमें जिस ब्रह्मसे सब जीव उत्पन्न होते हैं और युगके अन्तमें सब उसीमें लय हो जाते हैं, इत्यादि। यदि कोई कहे कि जगत्का कारण तो जड़ माया है उसका ध्यान करते हो, तो कहते हैं, हम सर्वज्ञ स्वतःसिद्ध ज्ञानवान्, जिसने सबसे पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न किया, उनके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया जो सत्यरूप है, जिसकी सत्यतासे असत्य प्रपञ्च सत्य-सा दीखता है। जो मायारूपी कपटजालसे दूर है उस परमेश्वरका ध्यान करते हैं॥१॥ इस श्रीमद्भागवतमें ईश्वराराधनका वह धर्म वर्णन करते हैं, जिसमें मोक्षपर्यन्त फल चाहनारूप कपटका लेश नहीं, इस कारण यह कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड विषयक शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है, अब अधिकारियोंकी श्रेष्ठता कहते हैं, जो मत्सररहित कृपालु सन्त हैं। यहां कर्मकाण्डकी श्रेष्ठता कही, उनको परमार्थरूप वस्तु (यहां द्रव्य गुणादिक; वास्तव परमार्थ वस्तु नहीं कही है) जानने योग्य है अथवा वस्तु जो ब्रह्म उसका अंश जीव है और वस्तुकी शक्ति माया है, ये तीनों ब्रह्मरूप हैं, भिन्न नहीं हैं। ये विना यत्न ही जाननेके योग्य हैं, क्योंकि परम सुखदायक और अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों तापोंको जड़से उखाड़नेवाला है ज्ञानकाण्डकी श्रेष्ठता दिखाकर अब कर्त्ताकी श्रेष्ठता दिखाते हैं। महामुनि नारायणने यह प्रथम संक्षेपसे रची है (देवता काण्डसे श्रेष्ठता दिखाते हैं) और शास्त्रोंके साधनसे ईश्वरकी स्थिति शीघ्र हृदयमें नहीं होती और इसके श्रवणमात्रसे ही ईश्वरकी स्थिति हृदयमें होती है। इसलिये

परमादर करके सेवनीय है ॥२॥ जब परमादर सत्कारसे सेवन योग्य है तो यह कहते हैं कि "निगमेति" अखिलकामनादायक वेदरूपी कल्पवृक्षका फल श्रीभागवत है (जो मुझे स्वर्गसे नारदजीके द्वारा प्राप्त हुआ) मैंने अपने पुत्र शुकदेवजीके मुखमें धरा, शुकदेवजीके मुखसे निर्गत होनेसे अमृतके समान मीठे रससे युक्त होगया। "लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि जिस फलमें तोतेकी चोंच लगती है वह फल मीठा होता है" यहाँ शुकरूप श्रीव्यासनन्दन शुकदेवकी चोंच लगनेसे उनके शिष्यरूप पत्तोंपर लुढ़कता हुआ धीरे-धीरे पृथ्वीमें प्राप्त हुआ। आशय यह है, कि इतने ऊंचेसे गिरा और फूटा नहीं। रस वही है कि जिस रसके प्राप्त होनेसे जीवको परमानन्द प्राप्त हो। हे रसिकजनो! (रसजाननेवाले!) तुम लोगोंका धन्य भाग्य है! जो ऐसा अमृतरूपी फल पृथ्वीपर प्राप्त हुआ। यह अलभ्य लाभकी उक्ति है, इस कारण इस भागवत फलको वारंवार पियो, यह फल रसरूपी है,इसमें छिलका और गुठली किंचिन्मात्र भी नहीं है, केवल रस ही रस भरा है इसलिये पीनेको कहा इस कारण श्रीमद्भागवत अमृतरूपी रसका पान जीवन्मुक्त अवस्थामें भी करना उचित है। स्वर्गादिक सुखके समान त्यागना नहीं है सेवन करनेही योग्य है ॥३॥ इन तीन श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतकी उत्तमता, श्रेष्ठता और गौरव दिखाकर अब सब शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतके इष्टदेवका स्मरण कर इस ग्रन्थको प्रारंभ करता हूँ। ब्रह्माजीका मनोरथ चक्र कुंठित धार होकर गिरा,उसी तीर्थका नाम नैमिष है,यह कथा वायुपुराणमें है–"एक समय बहुतसे ऋषि लोग ब्रह्माजीके पास गये और कहा कि, हे ब्रह्मन्! हमको तपके योग्य कोई उत्तम तीर्थ बताओ, कौनसा तीर्थ अत्यन्त पावन और पवित्र है? ऋषिलोगोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, हे ऋषिगण! मैं मनोमय चक्र बनाकर छोड़ता हूँ तुम सब इसके पीछे-पीछे चले जाओ, जिस स्थानपर इस चक्रकी धार कुंठित होकर गिर पड़े, वह भूमि तपके योग्य जान लेना। यह कहकर ब्रह्माजीने मनोमय चक्र छोड़ा, उसका प्रकाश मार्तण्डके सदृश सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें फैल गया। वह चक्र जिस स्थान पर गिरा, उस स्थानका नाम उस दिनसे नैमिषारण्य विख्यात हुआ"। वाराहपुराणमें ऐसा लिखा है कि– "किसी समय गौरवमुख ऋषिसे भगवानने कहा था कि हे गौरवमुख! इस वनमें मैंने निमिषमात्र कालमें अनेक दानवोंकी सेनाका संहार किया है, इसलिये इस वनका नाम नैमिषारण्य हुआ।" ब्राह्मणोंको तपस्याके लिये यह भूमि परमोत्तम है। एक समय शौनकादि ८८००० अट्ठासी सहस्र ऋषियोंने स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु नैमिषारण्य क्षेत्रमें १०००० दशसहस्र वर्षतक यज्ञ करनेका संकल्प किया ॥४॥ एक दिन मुनि प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया कर जब नैमित्तिक अग्निहोत्र कर चुके,उसी समय व्यासजीके परम कृपापात्र सूतजी आ पहुँचे। तब ऋषियोंने सूतजीको देख ब्रह्मासन बिछा दिया। सूतजी सब ऋषिगणको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे और परस्पर कुशल-क्षेम बूझ चुके तब ऋषिलोग सूतजीसे बोले ॥५॥ कि हे सूतजी! हे निष्पाप! सर्व शास्त्र, पुराण, इतिहास तुमने व्यासजी महाराजसे पढ़े हैं और देखे हैं ॥६॥ और ज्ञानियोंमें जो शिरोमणि श्रीव्यासजी महाराज जिन-जिन शास्त्रोंको जानते हैं और सगुण-निर्गुण ब्रह्मके उपासक और भी जिन-जिन शास्त्रोंको जानते हैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य! हे सूतजी! उन सब शास्त्रोंको गुरुकी कृपासे तुम यथार्थ जानते हो। क्योंकि निष्कपट प्रेमी शिष्यसे गुरु गुप्त पदार्थको भी प्रकट कर देते हैं ॥ ८ ॥ हे आयुष्मन्! उन सब शास्त्रोंके सिद्धांतको निश्चय कर सरल रीतिसे हमको उपदेश करो, जिस सिद्धांतको जानकर मुमुक्षु जीव सुगम-

तासे साधन कर मोक्षके भागी हों ॥९॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयु ही अल्प है, दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, पांचवें रोगग्रस्त हैं ॥१०॥ हे सूतजी! बहुतसे शास्त्रोंके सुननेसेही फलकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि विभागपूर्वक सुननेके योग्य सैकड़ों शास्त्र हैं; इस कारण हे साधो ! सब साधनोंमें सारभूत जो सिद्धांत हो उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करके हम लोगोंको उपदेश करो। जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत हो (यह शौनकका प्रश्न हुआ) ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम जानते हो कि भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किस कार्यको करनेके लिये हुये थे ?॥१२॥ हे सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होता है, उनके चरित्र वर्णन कीजिये ? ॥ १३ ॥ पराधीन जीव भी जिनके नाम स्मरण करके संसारके बंधन से छूट कर तुरंत मुक्ति पाते हैं और जिनसे भय भी भयभीत है ॥१४॥ उन भगवानके चरणारविंदोंके आश्रयी शांतमार्गमें निपुण मुनि संगतमात्रसे ही जीवको पवित्र कर देते हैं और गंगाजीका जल तो बहुत दिनों सेवा करो तब पवित्र करता है ॥१५॥ साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहलाये। उन भगवानके कलिमलनाशक यशको अन्तःकरणकी शुद्धि चाहने वाला कौन नहीं सुनेगा ?(यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ)॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवानके उदार कर्म गाये, उन गुणोंको सुननेकी श्रद्धा हम रखते हैं, कृपा करके हमें सुनाओ; जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्ति धारण करते हैं? (यह तीसरा प्रश्न समाप्त हुआ)॥१७॥ हे बुद्धिमन् ! जो परमेश्वर अपनी माया द्वारा यथेष्ट लीला-अवतारोंको धारण करते हैं, उनकी मनोहर कथा कृपा करके हमें सुनाओ ॥ १८ ॥ हे सूतजी ! उन परमेश्वरकी महिमा और उनके पराक्रमोंको सुनते-सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवानका यश पद-पद पर स्वादसे अधिक स्वादिष्ट लगता है, भगवत्-यश अनेक प्रकारके स्वादसे पूरित है (यह चौथा प्रश्न हुआ) ॥१९॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनने गोवर्धनोद्धारणादिक जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्यरूपमें किये वह कहो॥२०॥ महाघोर कलियुगको आता जानकर उसके डरसे बैकुण्ठके जानेकी इच्छा करके हम इस नैमिषारण्य वैष्णव क्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्प कर श्रीभगवानके गुणानुवाद सुननेको बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपका दर्शन भगवतकी कृपासे ही हमको हुआ है, क्योंकि अति धैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोड़नेवाले महाकराल-कलिकालरूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई, उसी समय आपका दर्शन हुआ। जैसे समुद्र पार करनेको जहाजसहित मल्लाह आजाय (यह पांचवां प्रश्न समाप्त हुआ) ॥ २२ ॥ धर्मके कवचवत् रक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने-निज परमधामको सिधारे तब धर्म किसकी शरणमें रहा? (यह छठा प्रश्न समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे मुरादाबादनिवासिशालग्रामवैश्यकृते-प्रथमस्कन्धे नैमिषारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-इस द्वितीय अध्यायमें, शुक वन कीन्ह प्रवेश। जैसे आये निज भवन, नारदके उपदेश॥

श्रीवेदव्यासजी बोले कि, शौनकादिक ऋषियोंके प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा

१. शंका-प्रथमस्कन्धके पहले अध्यायके आरम्भमें 'व्यास उवाच' क्यों नहीं लिखा, और दूसरे अध्यायके प्रारंभमें 'व्यास उवाच' क्यों लिखा ? उत्तर-व्यासजीने बड़े हर्षसे श्रीमद्भागवतके बनानेका प्रारंभ किया, परन्तु शीघ्रतामें अपने नामके लिखनेका ध्यान नहीं रहा, पीछे जब व्यासको ध्यान आया तो दूसरे अध्यायके आदिमें अपना नाम 'व्यास उवाच' लिखा।

उसके वचनकी प्रसंशा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि जो जन्म लेते ही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुल हो पुत्र ! पुत्र ! पुकारते उनके पीछे हुए, तब पिताका मोह दूर करनेको वृक्षरूप बनकर उत्तर दिया और उनका स्नेह दूर किया। अतः जो सब जीवोंके हृदयमें योगबलसे प्रवेश किये हैं, ऐसे शुकदेवजीको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्म विद्याका साक्षात् दीपक ऐसा गोप्य पुराण संसारको तरनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंपर कृपा करके जिन शुकदेवजीने कहा है, उन व्यासपुत्रकी हम शरण हैं ॥ ३ ॥ नारायण, नरोत्तम, नर, देवी, सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करके जयरूप ग्रन्थका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ हे मुनियो ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, सब लोकका मंगलदायक श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजनायकका जो वृत्तान्त पूछा, यह सब शास्त्रोंका सार है और इस असार संसारसे उद्धार करनेवाला है और आत्माको प्रसन्न करता है ॥५॥ धर्म दो प्रकारका है, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग। स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्म है, प्रवृत्तिमार्ग है और श्रवण, आदर आदिक जो लक्षणा भक्ति है, वह निवृत्तिमार्ग है, वह मुक्तिदायक है, वही पुरुषोंका परमधर्म है जिससे नारायणमें फल-रहित, विघ्नरहित भक्ति हो, उससे जीवात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥ वासुदेव भगवानमें भक्तियोग करे तो शीघ्र उपनिषदका ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ अच्छे अनुष्ठानपूर्वक किया हुआ धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवानकी कथा में जो प्रीति न कराये तो वह केवल श्रम ही है॥८॥ मोक्ष पर्यन्त धर्मका फल प्राप्त होनेसे प्रयोजन नहीं है और धर्मके योग्य धन व्यय करना उसका फल काम लाभके लिये नहीं है, धन धर्मका फल मोक्ष है ॥ ९ ॥ कामका विषय भोगकर इंद्रियोंको प्रीति लाभ नहीं होता; इससे जब तक जीवित रहे, तबतक इस तत्त्वके जाननेकी इच्छा करता रहे; कर्मका फल स्वर्गादि नहीं है; मोक्षप्राप्ति फल है ॥१०॥ तत्त्ववेत्ता जिसे अद्वितीय ज्ञान कहते हैं; उसीको उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, परमात्मा कहते हैं, भगवान् कहते हैं ॥ ११ ॥ मुनिजन उस ब्रह्ममें ज्ञान-वैराग्य युक्त भक्ति, श्रद्धासे वेदान्त सुनकर आत्मामें आत्माका दर्शन करते हैं ॥१२॥ हे ऋषियो ! इस वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धि है कि परमेश्वरको प्रसन्न करना यही मनुष्योंके योग्य है ॥१३॥ इस कारण एकाग्र मनसे भगवान सात्वतपतिका श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन करना योग्य है ॥१४॥ जिस भगवानका ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान पंडित खण्डन करते हैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करेगा ? ॥१५॥ हे द्विजो ! वासुदेव भगवानकी कथामें सुननेवाले श्रद्धालुकी रुचि, महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थकी सेवासे होती है ॥१६॥ सत्य पुरुषोंके मित्र, पुण्यरूप, श्रवण, कीर्तन करने योग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वासकर सब अमंगल नाश करते हैं ॥१७॥ जब प्रतिदिन भगवानकी सेवा करनेसे अमंगल नष्ट हो गये; तब भगवान वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्काम भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ तब रज-तम-भाव, कामादि; लोभादिकसे जिनका मन बिंधा नहीं; उनका मन सत्त्वगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होता है ॥ १९ ॥ भगवानके भक्तियोगसे जिसका मन प्रसन्न है उसको भगवानके तत्त्वका ज्ञान मुक्तसग होनेसे होता है ॥ २० ॥ जीव जब अपने ही रूपमें पर-

तासे साधन कर मोक्षके भागी हों ॥९॥ इस कलियुगमें प्रथम तो जीवोंकी आयु ही अल्प है, दूसरे आलसी, तीसरे मन्दबुद्धि और मन्दभागी, चौथे विघ्नोंसे व्याकुल, ,पांचवें रोगग्रस्त हैं ॥१०॥ हे सूतजी! बहुतसे शास्त्रोंके सुननेसेही फलकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि विभागपूर्वक सुननेके योग्य सैकड़ों शास्त्र हैं; इस कारण हे साधो ! सब साधनोंमें सारभूत जो सिद्धांत हो उसे अपनी बुद्धिसे निश्चय करके हम लोगोंको उपदेश करो । जिससे हम श्रद्धालुओंकी बुद्धि शांत हो (यह शौनकका प्रश्न हुआ) ॥ ११ ॥ हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो, यह तुम जानते हो कि भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकीके पुत्र किस कार्यको करनेके लिये हुये थे ?॥१२॥ हे सूतजी ! जिनका साधारण अवतार प्राणियोंके कल्याण और समृद्धिके हेतु होता है, उनके चरित्र वर्णन कीजिये ? ॥ १३ ॥ पराधीन जीव भी जिनके नाम स्मरण करके संसारके बंधन से छूट कर तुरंत मुक्ति पाते हैं और जिनसे भय भी भयभीत है ॥१४॥ उन भगवानके चरणारविंदोंके आश्रयी शांतमार्गमें निपुण मुनि संगतमात्रसे ही जीवको पवित्र कर देते हैं और गंगाजीका जल तो बहुत दिनों सेवा करो तब पवित्र करता है ॥१५॥ साधारण भी जिनके कर्मोंको गाकर पुण्यश्लोक कहलाये। उन भगवानके कलिमलनाशक यशको अन्तःकरणकी शुद्धि चाहने वाला कौन नहीं सुनेगा ?(यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ)॥ १६ ॥ नारदादि मुनियोंने जो भगवानके उदार कर्म गाये, उन गुणोंको सुननेकी श्रद्धा हम रखते हैं, कृपा करके हमें सुनाओ; जो लीलासे ब्रह्मा रुद्रादिक मूर्ति धारण करते हैं? (यह तीसरा प्रश्न समाप्त हुआ)॥१७॥ हे बुद्धिमन् ! जो परमेश्वर अपनी माया द्वारा यथेष्ट लीला-अवतारोंको धारण करते हैं, उनकी मनोहर कथा कृपा करके हमें सुनाओ ॥ १८ ॥ हे सूतजी ! उन परमेश्वरकी महिमा और उनके पराक्रमोंको सुनते-सुनते हमारी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि रसिकोंको भगवानका यश पद-पद पर स्वादसे अधिक स्वादिष्ट लगता है, भगवत्-यश अनेक प्रकारके स्वादसे पूरित है (यह चौथा प्रश्न हुआ) ॥१९॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनने गोवर्धनोद्धारणादिक जो मनुष्योंसे दुःसाध्य कर्म कपटसे मनुष्यरूपमें किये वह कहो॥२०॥ महाघोर कलियुगको आता जानकर उसके डरसे बैकुण्ठके जानेकी इच्छा करके हम इस नैमिषारण्य वैष्णव क्षेत्रमें एक सहस्र वर्षका संकल्प कर श्रीभगवानके गुणानुवाद सुननेको बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! इस समय आपका दर्शन भगवत्‌की कृपासे ही हमको हुआ है, क्योंकि अति धैर्यवानोंके धैर्यरूपी सेतुके तोड़नेवाले महाकराल-कलिकालरूप समुद्रके तरनेकी इच्छा जैसे हमको हुई, उसी समय आपका दर्शन हुआ । जैसे समुद्र पार करनेको जहाजसहित मल्लाह आजाय (यह पांचवां प्रश्न समाप्त हुआ) ॥ २२ ॥ धर्मके कवचवत् रक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने-निज परमधामको सिधारे तब धर्म किसकी शरणमें रहा? (यह छठा प्रश्न समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे मुरादाबादनिवासिशालग्रामवैश्यकृते-प्रथमस्कन्धे नैमिषारण्योपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-इस द्वितीय अध्यायमें, शुक वन कीन्ह प्रवेश । जैसे आये निज भवन, नारदके उपदेश॥

श्रीवेदव्यासजी बोले कि, शौनकादिक ऋषियोंके प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा

१. शंका-प्रथमस्कन्धके पहले अध्यायके आरम्भमें 'व्यास उवाच' क्यों नहीं लिखा, और दूसरे अध्यायके प्रारंभमें 'व्यास उवाच' क्यों लिखा ? उत्तर-व्यासजीने बड़े हर्षसे श्रीमद्भागवतके बनानेका प्रारंभ किया, परन्तु शीघ्रतामें अपने नामके लिखनेका ध्यान नहीं रहा, पीछे जब व्यासको ध्यान आया तो दूसरे अध्यायके आदिमें अपना नाम 'व्यास उवाच' लिखा ।

उसके वचनकी प्रसंशा करके उत्तर देनेको प्रस्तुत हुए ॥ १ ॥ सूतजी बोले, कि जो जन्म लेते ही कर्ममार्गको त्याग संन्यास लेकर वनको चले और व्यासजी उन शुकदेवके विरहमें व्याकुल हो पुत्र ! पुत्र ! पुकारते उनके पीछे हुए, तब पिताका मोह दूर करनेको वृक्षरूप बनकर उत्तर दिया और उनका स्नेह दूर किया। अतः जो सब जीवोंके हृदयमें योगबलसे प्रवेश किये हैं, ऐसे शुकदेवजीको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ जिसमें अपना प्रभाव और सब श्रुतियोंका सार, एक अध्यात्म विद्याका साक्षात् दीपक ऐसा गोप्य पुराण संसारको तरनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंपर कृपा करके जिन शुकदेवजीने कहा है, उन व्यासपुत्रकी हम शरण हैं ॥ ३ ॥ नारायण, नरोत्तम, नर, देवी, सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करके जयरूप ग्रन्थका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ हे मुनियो ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, सब लोकका मंगलदायक श्रीकृष्णचन्द्र व्रजनायकका जो वृत्तान्त पूछा, यह सब शास्त्रोंका सार है और इस असार संसारसे उद्धार करनेवाला है और आत्माको प्रसन्न करता है ॥५॥ धर्म दो प्रकारका है, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग। स्वर्गादिकके लिये जो किया जाय वह धर्म है, प्रवृत्तिमार्ग है और श्रवण, आदर आदिक जो लक्षणा भक्ति है, वह निवृत्तिमार्ग है, वह मुक्तिदायक है, वही पुरुषोंका परमधर्म है जिससे नारायणमें फल-रहित, विघ्नरहित भक्ति हो, उससे जीवात्मा अत्यन्त प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥ वासुदेव भगवानमें भक्तियोग करे तो शीघ्र उपनिषदका ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ अच्छे अनुष्ठानपूर्वक किया हुआ धर्म मनुष्योंको विष्वक्सेन भगवानकी कथा में जो प्रीति न कराये तो वह केवल श्रम ही है ॥८॥ मोक्ष पर्यन्त धर्मका फल प्राप्त होनेसे प्रयोजन नहीं है और धर्मके योग्य धन व्यय करना उसका फल काम लाभके लिये नहीं है, धन धर्मका फल मोक्ष है ॥ ९ ॥ कामका विषय भोगकर इंद्रियोंको प्रीति लाभ नहीं होता; इससे जब तक जीवित रहे, तबतक इस तत्त्वके जाननेकी इच्छा करता रहे; कर्मका फल स्वर्गादि नहीं है; मोक्षप्राप्ति फल है ॥१०॥ तत्त्ववेत्ता जिसे अद्वितीय ज्ञान कहते हैं; उसीको उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, परमात्मा कहते हैं, भगवान् कहते हैं ॥ ११ ॥ मुनिजन उस ब्रह्ममें ज्ञान–वैराग्य युक्त भक्ति, श्रद्धासे वेदान्त सुनकर आत्मामें आत्माका दर्शन करते हैं ॥१२॥ हे ऋषियो ! इस वर्णाश्रमके विभागसे सुन्दर अनुष्ठित धर्मकी यही सिद्धि है कि परमेश्वरको प्रसन्न करना यही मनुष्योंके योग्य है ॥१३॥ इस कारण एकाग्र मनसे भगवान सात्वतपतिका श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन करना योग्य है ॥१४॥ जिस भगवानका ध्यानरूप खड्ग लेकर कर्मरूप ग्रन्थिके बन्धनका विद्वान पंडित खण्डन करते हैं, उनकी कथामें कौन प्रीति नहीं करेगा ? ॥१५॥ हे द्विजो ! वासुदेव भगवानकी कथामें सुननेवाले श्रद्धालुकी रुचि, महात्मा लोगोंकी सेवा करनेसे और पुण्यतीर्थकी सेवासे होती है ॥१६॥ सत्य पुरुषोंके मित्र, पुण्यरूप, श्रवण, कीर्तन करने योग्य श्रीकृष्ण अपनी कथा सुननेवाले सज्जनोंके हृदयमें वासकर सब अमंगल नाश करते हैं ॥१७॥ जब प्रतिदिन भगवानकी सेवा करनेसे अमंगल नष्ट हो गये; तब भगवान वासुदेवमें फलानुसन्धान रहित निष्काम भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ तब रज-तम-भाव, कामादि; लोभादिकसे जिनका मन बिंधा नहीं; उनका मन सत्त्वगुणमें स्थित होकर प्रसन्न होता है ॥ १९ ॥ भगवानके भक्तियोगसे जिसका मन प्रसन्न है उसको भगवानके तत्त्वका ज्ञान मुक्तसग होनेसे होता है ॥ २० ॥ जीव जब अपने ही रूपमें पर-

मात्माका दर्शन करता है तब उसके हृदयकी ग्रन्थि खुल जाती है और सब संशय मिट जाते हैं, सब कर्मोंका क्षय हो जाता है ॥ २१ ॥ इस कारण सज्जन पुरुष मनको शुद्ध करनेवाली भक्ति, नित्य वासुदेव भगवानमें करते हैं ॥ २२ ॥ सत्त्व, रज, तम, ये तीनों मायाके गुण हैं; इन तीनों गुणोंसे मिला हुआ परमपुरुष इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, नाशके लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यह संज्ञा धारण करता है; परन्तु इन तीनोंमें कल्याणके और शुभफलके दाता वासुदेव ही हैं ॥ २३ ॥ पृथ्वीके विकारसे काठमें धुआं होता है; जिसमे वेदत्रयी प्रतिपाद्यकर्म साधक अग्नि होता है; इसी प्रकार तमसे रज, रजसे सत्त्वगुण बढ़कर ब्रह्मका दर्शन होता है ॥ २४ ॥ इस कारण पहले विशुद्धसत्त्वमूर्ति इन्द्रियोंसे परे भगवानको कल्याणके हेतु मुनीश्वर लोग भजते थे, अब भी जो उनको इस प्रकार भजते हैं, वे जीव इस संसारमें परमानन्दको पाते हैं ॥२५॥ इस कारण मुक्तिके चाहनेवाले घोररूप भूतपतियोंको त्याग कर, निन्दाको छोड़ शांतरूप नारायणकी कलाको भजते हैं ॥ २६ ॥ राजसी, तामसी स्वभाववाले, और सामान्य शीलवाले पितर, भूत, प्रेत, प्रजाके अधीश्वरोंको लक्ष्मी, ऐश्वर्य, पुत्रके लिए पूजते हैं ॥ २७ ॥ सब शास्त्रोंका सार यही है कि मोक्षके लिये मोक्षदाता वासुदेवका भजन करो। वेद भी वासुदेवका ही वर्णन करते हैं और यज्ञ भी वासुदेवको कहते हैं, योग भी वासुदेवको कहते हैं, सब क्रियायें वासुदेवका प्रतिपादन करती हैं ॥२८॥ ज्ञान भी वासुदेवको कहते हैं, तप भी वासुदेवको कहते हैं, सब धर्म वासुदेवका ही वर्णन करते हैं, गति सब वासुदेवको ही कहते हैं ॥ २९ ॥ उस भगवानने अपनी मायासे पहले इस विश्वको रचा, सत्-असत् रूप गुणमयी मायासे आप समर्थ हैं ॥३०॥ उस मायाके गुणोंमें गुणवानकी भाँति विज्ञानसे अधिक बढ़कर भीतर प्रवेश कर प्रकाश करते हैं ॥३१॥ जैसे अपनी उत्पत्ति स्थान काष्ठमें अग्निदेव अनेक भाँतिसे प्रकाश करते हैं, ऐसे ही विश्वात्मा पुरुष सब भूतोंमें नाना रूपसे प्रकाश करता है ॥ ३२ ॥ वह परमेश्वर गुणमय भूत सूक्ष्म इन्द्रिय आत्माके भावसे अपने रचे हुए पंच भूतोंमें उन गुणोंको भोगते हैं ॥ ३३ ॥ वह वासुदेव भगवान जगत्कर्ता और संसारका सत्त्वगुणसे पालन करते हैं। देव, पक्षी, मनुष्य आदिमें लीला अवतार धारण करते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कंधे भगवद्गुणानुवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—परब्रह्म अवतार जो, धरे चार अरु बीस।
सो बरणों अब चरित सब, सुनिये कथा ऋषीश ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनकऋषि ! इस अध्यायमें चौबीस अवतारोंकी कथा है। प्रथम पुरुष अवतार हुआ, भगवानने महत्तत्त्व आदि पुरुषरूप धारण किया। संसार रचनेकी

शंका—सनकादिकोंने सूतजीसे श्रीकृष्णके अवतारकी कथा पूछी थी। सूतजीने श्रीकृष्णके अवतारकी कथाको छोड़कर आदिसे भगवान्के सब अवतारोंकी कथा क्यों वर्णन की ? बड़े संदेह की बात है ?

उत्तर—श्रीकृष्णके चरित्र दो प्रकारके संसारमे दीख पड़ता है। सत्संग करनेवाले मनुष्य तो श्रीकृष्णके चरित्रको मोक्षरूप मानेंगे और मूर्ख लोग श्रीकृष्णके चरित्रको विषयका समुद्र रूप मानेंगे और युग-युगमे श्रीकृष्णका चरित्र बहुत विस्तारसे लिखा है। यह विचार किया कि सनकादिक तो परमहंस है श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनके मोक्ष रूप मानेंगे, परंतु पहले श्रीकृष्ण चरित्रको मूर्खलोग सुनेंगे तो वे मूर्ख लोग उनको मोक्षरूप नहीं समझेंगे, उसको जार सुख मानकर श्रीकृष्ण की नाई पर स्त्रियोंसे क्रीडा करेंगे और रौरवनरकमे पड़ेंगे, पहले श्रीकृष्णका अमृतरूप चरित्र जो वर्णन करेंगे, तो मूर्खलोग कृष्णके चरित्ररूप अमृतको—

इच्छा कर सोलह कलाके रूपसे अवतार लिया ॥ १ ॥ जब जलशायी नारायणने योगनिद्रा विस्तारी, उस समय श्रीनारायणकी नाभिरूप सरोवरके कमलमेंसे विश्व रचनेवालोंके पति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ जिनके अंगसे जगत्का विस्तार हुआ है, वह भगवानका विशुद्ध तत्त्व महाबलिष्ठरूप है ॥ ३ ॥ जिनके असंख्य चरण, जंघा, भुजा, मुख अद्भुत हैं। और जिसमें असंख्य मस्तक,श्रवण,नेत्र, नासिका हैं;असंख्य शिर,भूषण,वस्त्र, कुण्डल विराज रहे हैं, ऐसे स्वरूपका ज्ञाननेत्रोंसे योगीजन दर्शन करते हैं ॥ ४ ॥ यह आदिनारायण सब अवतारोंका बीज अव्यय है। सब कार्य अन्त समय इसीमें प्रवेश करते हैं, जिसके अंश ब्रह्माजी हैं, जिसके अंशसे मरीचि आदिक देव,पशु, पक्षी, मनुष्यादि रचे जाते हैं ॥५॥ प्रथम सनत्कुमार अवतार श्रीनारायणने लिया, उनका चरित्र वर्णन करते हैं,वे प्रथम देव कुमार हुए। ब्राह्मण होकर भी अति अखण्ड कठिन तप कर ब्रह्मचर्य व्रत करते रहे॥६॥दूसरी बार वाराह अवतार धारण कर रसातल गयी हुई पृथ्वी को उठा लाये,इस विश्वकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेशवाराह जी हुए॥७॥तीसरी बार भगवान् नारदजी हुए, ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मोंके बन्धनसे छूट गये, जिन्होंने वैष्णवोंके लिये पंचरात्र तंत्र कहा॥८॥ चौथी बार धर्मकी कलानाम स्त्रीके उदरसे नरनारायण नामसे विख्यात ऋषि हुये और संसारके जीवोंको दिखानेके लिए बदरीके-दारमें जाकर तप किया ॥९॥ पांचवीं बार कपिलदेव अवतार धारण कर सिद्धेश कपिल नाम होकर बहुत दिनोंसे जो तत्त्वसमूहोंका ज्ञान नष्ट हो गया था, उसके निश्चय करनेको सांख्य शास्त्र बनाकर आसुरि ब्राह्मणको उपदेश किया और अपनी माता को ज्ञान दिया॥१०॥छठा, दत्तात्रेय अवतार अत्रिमुनिके पुत्र हुये और अनसूयाको प्रसन्न किया और राजा अलर्क और प्रहलाद भक्तको आत्मविद्या पढ़ाई॥११॥सातवां,यज्ञ अवतार हुआ, रुचि प्रजापतिकी आकूति नामक स्त्रीके उदरसे यज्ञ भगवानने जन्म लिया,यामानाम देवगणसमेत स्वयंभुवमन्वन्तरकी रक्षा की॥१२॥आठवीं बार,ऋषभदेवजीका अवतार हुआ। नाभि नामराजाकी मरुदेवी नाम इन्द्रकी कन्यासे प्रकट हुए। सब आश्रम जिसको नमस्कार करते थे,उन्होंने धीर पुरुषोंको वह परमहंस आश्रम दिखाया ॥१३॥नववां, पृथु अवतार राजा वेनकेशरीर मथनेसे हुआ। ऋषियोंकी चाह-नासे पृथु अवतार धारण करके सब औषधी जिसने छिपा लीं, उस गौरूपी पृथिवीको दुहकर सब वस्तुका सारांश निकाला। यह अवतार अत्यन्त श्रेष्ठ हुआ ॥१४॥ दशवीं बार मत्स्या-वतार लेकर चाक्षुष मन्वन्तरमें सब समुद्र एक हुए। पृथ्वीकी मयनामकदैत्यसे वैवस्वत मन्वन्तरमें रक्षा की और सत्यव्रतको सप्तऋषियों समेत नौकापर बैठाकर ज्ञान उपदेश किया और उसको अपनी मायाका कौतुक दिखाया ॥१५॥ ग्यारहवीं बार कच्छप रूप धरा। जब सुर-असुरोंने समुद्रको मथा,उस समय कच्छप औतार धारण कर मंदराचल पर्वतको भगवानने पीठपर धरा ॥१६॥ बारहवीं बार धन्वन्तरि अवतार धारण कर एक अमृतका कलश हाथमें लिये समुद्रसे उत्पन्न हुये। तेरहवीं बार मोहनी अवतार धारण कर दैत्योंको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाकर मोहित किया और अमृतका कलश उनसे ले लिया और देवताओंको पिलाकर उनकी रक्षाकी ॥१७॥ चौदहवीं बार नृसिंहरूप धर,हिरण्यकशिपु दैत्यका नखोंसे उदर बिदीर्ण कर अपने प्यारे

–अमृत नहीं जानेंगे विषयरूपी समुद्र समझकर उसमें डूब मरेंगे। और जो पहले और अवतारोंके चरित्र वर्णन करेंगे तो उन चरित्रोंको धीरे-धीरे सुनकर मूर्ख भी ज्ञानी हो जायेंगे और पीछेसे श्रीकृष्णके चरित्रोंको सुनेंगे तो भ्रम नहीं करेंगे, मोक्षरूप मानेंगे, इसलिए प्रथम श्रीकृष्णका चरित्र सूतजीने वर्णन नहीं किया।

भक्त प्रहलादकी रक्षाकी॥१८॥पन्द्रहवीं बार वामनतनु धारण कर राजा बलिके यज्ञमें गये और तीन पग पृथ्वी माँगकर इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया और बलिको पाताल का राजा किया "परन्तु मांगना अत्यन्त बुरा काम है, मांगनेवालेको सब ठौर छोटा बनना पड़ता है, इसी कारण नारायणने छोटा रूप धारण किया" ॥१९॥ सोलहवां परशुराम अवतार में क्षत्रियोंका क्षय किया और उनसे इक्कीस बार पृथ्वीको जीत ब्राह्मणों को दान कर दी ॥२०॥ सत्रहवीं बार परासरजीकी पत्नी सत्यवतीके उदरसे व्यासजी अवतारले पुरुषोंको निर्बुद्धि और अज्ञानी जानकर, वेदका विभाग और वेदकी शाखाओंका विस्तार और अठारह पुराण महाभारतादिक ग्रन्थ रचकर संसारका उद्धार किया॥२१॥अठारहवीं बार श्रीरामचन्द्र अवतार धारण कर भक्तोंके कार्य करनेके लिये समुद्रमें पुल बांधकर रावण, मेघनाथ, कुम्भकर्णादि राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतारा और अनेक आश्चर्ययुक्त कर्म करके देवताओंकी रक्षाकी ॥२२॥ उन्नीसवीं और बीसवीं बार वृष्णिकुलमें बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार धारणकर कालयवन; जरासन्ध कंसादिक दुष्ट राक्षसोंको मार, पृथ्वीका भार उतार, भक्तोंको संसारसे उद्धार करनेके लिये अद्भुत-अद्भुत चरित्र दिखाये॥२३॥इक्कीसवीं बार कलियुगकी प्रवृत्ति देख जिन सुत बुद्धने गयाके समीप कीकटदेशमें अवतार लिया। "जब कलियुग आया तब देवताओं ने यज्ञ कर-करके दैत्योंका बल नहीं चलने दिया,तो दैत्योंने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे पूछा कि, हे भगवन् ! देवता लोग सर्वथा इन्द्रपुरीका राज्य करना चाहते हैं,कोई ऐसा उत्तम उपाय बताओ जिससे दैत्यकुलका राज्य बना रहे ?शुक्राचार्यने कहा—हे दैत्यो ! देवताओंका राज्य यज्ञादिक कर्म करनेसे निष्कण्टक बना रहा,तुमभी यज्ञ करो। शुक्राचार्यका उपदेश मानकर दैत्योंने भी यज्ञ करना आरम्भ कर दिया,तब तो सब देवता भयभीत होकर विष्णुके पास गये और बहुत स्तुति कर हाथ जोड़कर बोले—हेवैकुण्ठनाथ! अब दैत्य लोग भी यज्ञ करनेको उपस्थित हैं, जो उनका यज्ञ पूर्ण हो गया तो वे लोग हमसे बलवान् हो जायँगे, और हमारा बल उनके सम्मुख कुछ न चलेगा और फिर हम उनको कभी नहीं जीत सकेंगे। अब हमको कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे हमारा कल्याण हो। देवताओंका यह वचन सुनकर श्रीनारायणजीने उसी समय बौद्ध अवतार धारण किया सेवड़ेका रूप धारणकर मैले-कुचैले वस्त्र पहन चौरी हाँथमें लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ दैत्यलोग यज्ञ कर रहे थे। दैत्योंने उनका तेजस्वी स्वरूप देख और ज्ञानवान्‌जान बड़ा आदर-सम्मान किया और उनसे पूछा, कि हे कृपानाथ !आपके हाथमें यह क्या वस्तु है। बौद्धजीने कहा यह चौरी है। दैत्य बोले कि,नाथ! इसके हाथमें रखनेसे क्या लाभ है? बौद्धजीने उत्तर दिया;कि जिस स्थान पर मनुष्य बैठता है,उसके नीचे छोटे-छोटे जीव जो पृथ्वीपर रहते हैं वे दबकर मर जाते हैं, अतः इस चौरीसे भूमिको झाड़कर बैठना चाहिये, जिससे जीवोंकी रक्षा हो। फिर दैत्योंने पूछा कि हे स्वामी ! आपके वस्त्र मैले-कुचैले किस कारण हैं ? बौद्धजीने कहा—कपड़े धोनेसे भी जीव हिंसा होती है, क्योंकि वस्त्रोंमें भी अनेक जीव रहते हैं। दैत्योंने जब इस प्रकारके वचन सुने। तबतो दैत्योंके मनमें दया उपजी और यज्ञ करनेसे उनका चित्त हट गया और परस्पर विचार करने लगे, कि यज्ञ करने में तो अनेक जीवोंकी हिंसा होगी तो हमारा सब यज्ञ करना निष्फल है, वरन् और दूना पापका भागी होना पड़ेगा। ऐसे मन ही मनमें शोच-समझ कर दैत्योंने यज्ञ करना बन्द कर दिया। तब उनका सब पुरुषार्थ ढीला हो गया और सब धर्म-कर्म नष्ट हो गया और देवताओंका बल बढ़

गया॥२४॥बाईसवीं बार युगकी सन्धिमें जब राजा भी चोर हो जायँगे, तब शम्भलग्राममें विष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहां जगत्पति–कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥ २५ ॥ उस सत्त्वगुणी परब्रह्म परमेश्वरके अनंत अवतार हैं, जैसे कभी जिस सरोवरसे जल नहीं घटता, उस सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवाली अनेक नदियाँ बहती हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मुनि, देवता, मनुसुत महाबली, प्रजापति, ये सब परब्रह्म परमेश्वरकी कला हैं ॥२७॥ उस अविनाशी पुरुषके यह सब अंश और कला हैं। श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं भगवान हैं। शत्रुओंसे जब जगत् व्याकुल हो जाता है तब युग-युगमें अवतार लेकर सबको सुखी करते हैं ॥२८॥ उस अविनाशी अव्यय पुरुषके छिपे हुए जन्मोंकी कथा जो नर पवित्र होकर संध्या समय और प्रातःकाल पढ़ते और सुनते हैं वे लोग अनेक-अनेक कष्टोंके समूह से छूट जाते हैं ॥२९॥ जिसका रूप नहीं और चित्, एकरस, व्यापक ऐसा उसका वह रूप है, यह तत्त्वादि मायाके गुणोंसे जीवात्मा अन्तर्यामीमें प्रकट होते हैं ॥३०॥ जैसे पवनके आश्रयसे मेघ आकाशमें रहते हैं, यह अज्ञानियोंने मान रखा है। जैसे पृथ्वीके रेणुको धुन्धकारादिक पवनमें अज्ञानी समझते हैं, वैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्वादि शरीरधर्म अज्ञानियोंने माना है ॥३१॥ इस कारण परमेश्वर अति सूक्ष्म है, अनंत, आकार विशेषरहित है, अदृष्ट, अश्रुत वस्तु है; इसलिये जीवांतर्यामी है, बारंबार अपना ज्ञान होनेके हेतु जीवरूपसे होता है ॥३२॥ जिसमें अपने ज्ञानसे यह सत् असत्रूप अविद्यासे जीवात्माके अन्तर्यामीमें विचारे तो ब्रह्मका दर्शन होता है ॥३३॥ जो यह क्रीड़ा करनेवाली परमेश्वरकी माया दूर हो जाय तो श्रेष्ठ मतवाले ब्रह्मरूपमें लय होते हैं और अपनी महिमामें आप ही पूजित होते हैं ॥३४॥ ऐसे अकर्ताके कर्म और अजन्माके जन्म वेदमें छिपे हुए हैं। ये सब लक्षण अन्तर्यामीके हैं ऐसे कवीश्वर लोग वर्णन करते हैं ॥३५॥ अमोघ लीलाधारी ईश्वर इस विश्वको रचते हैं, पालन करते हैं, प्रलय करते हैं, परन्तु इसमें आसक्त नहीं होते। सब जीवोंमें अन्तर्निहित हैं, स्वतंत्र हैं, छःगुणोंके ईश्वर हैं, परन्तु छहों इन्द्रियोंके विषय दूसरे ग्रहण करते हैं, छहों इन्द्रियोंके स्वामी हैं ॥ ३६ ॥ मन वचनसे नाम रूपका विस्तार करते हैं, ऐसे ईश्वरकी लीलाको कोई मनुष्य सम्पूर्णतासे नहीं जान सकता। जैसे नटकी लीलाको मूर्ख लोग नहीं जानते ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य कुटिल भाव त्याग कर सदा अनुकूलतासे परमेश्वरके चरणारविन्दोंको मुग्ध होकर भजते हैं, वे मनुष्य चक्रधारी महाप्रतापी, दीर्घपराक्रमी, धाता, परमेश्वरकी पदवीको जानते हैं ॥ ३८ ॥ इससे तुम लोग सब धन्य हो ! जो सब लोकके नाथ परमेश्वरमें सर्वात्मासे आत्मभावना करते हो, अब तुम्हारा जन्म-मरण संसारमें नहीं होगा ॥३९॥ सब वेदोंके समान भगवानके चरित्रोंसे परिपूर्ण, ऐसा उत्तम यह श्रीमद्भागवत महापुराण व्यासजीने बनाया है ॥४०॥ संसारके सुखके लिये धनदायक, मंगलदायक, महान् ज्ञानवान्, आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजीको सब वेदों और इतिहासोंका सार निकालकर पढ़ाया ॥४१॥ वही श्रीमद्भागवत समस्त वेद इतिहासोंका तत्त्व निकालकर शुकदेवजीने राजा परीक्षितको सुनाया ॥४२॥ परम ऋषि समेत राजा परीक्षित् गंगाके किनारे अन्त समयतक बैठे रहे। धर्म ज्ञानादि सहित जब श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द द्वारकासे परमधामको गये ॥४३॥ तब कलियुगका समय जान लोगोंकी बुद्धि भ्रष्ट देखकर श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवत महापुराण धर्मरूपी सूर्यका प्रकाश

किया। हे ऋषियो ! श्रीशुकदेवजी तेजस्वीने राजा परीक्षितसे यह बात कही ॥ ४४ ॥ वहां भी उनकी कथा संक्षेपसे हमने सुनी, वह कथा जैसी हमने सुनी है और गुरुसे पढ़ी है; अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंको विस्तारसहित सुनायेंगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे चतुर्विंशत्यवतार–कथावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–सुनत प्रश्न सब ऋषिनके, हर्षि सूत मुसकाय ।
जेहि विधि बने पुराण सब, कहों कथा समुझाय ॥

श्रीव्यासजी बोले, कि पूर्ण यज्ञकर्ता मुनिमण्डलीके मध्य सूतजी जो विराजमान थे, उनसे वृद्ध, कुलभूषण, ऋग्वेद पारगामी शौनक मुनि बोले ॥ १ ॥ कि हे सूत ! हे महाभाग ! ! हे सत्यवक्ता ! ! ! श्रीमद्भागवतकी पुण्यदायक कथा हमको सुनाओ; जो भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कही थी॥२॥कौनसे युगमें, किस स्थानमें और किस कारणसे भागवतकी कथा प्रवृत्त हुई ? व्यासजीके चित्तमें किसने प्रेरणा की ? जो मुनिवरने यह अमृतरूपी संहिता रची ॥ ३ ॥ उनके पुत्र महायोगी, दिगम्बर वेषधारी, समदर्शी, भेदभाव रहित, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, भगवद्भजनमें लवलीन ऐसे शुकदेवजीने ॥४॥ " जिस समय जन्म लिया उसी समय संन्यास ले, संसारकी माया तज, निर्विकार वनमें चल दिये और मनमें यह विचार किया कि यहां रहनेसे सैकड़ों आपत्तियां हैं। इसलिये अभी वनमें जाकर परमेश्वरका भजन करना चाहिये। पुत्रकी यह दशा देखकर व्यासजी मनमें अत्यन्त सोच संकोच कर मोहवश पुत्रके विरहमें व्याकुल हो, पुत्र-पुत्र पुकारते पुत्रके पीछे दौड़े। हे पुत्र ! हमको कहां छोड़ जाते हो ! ठहरो, ठहरो ! किंचिन्मात्र खड़े होकर हमारी एक बात तो सुनते जाओ। परंतु शुकदेवजीने खड़ा होना उचित न समझा, क्योंकि यह तो संसारसे पहले ही विरक्त होकर परमेश्वरके चरणारविंदोंमें अपने मनको लवलीन कर चुके थे। शुकदेवजीने अपने मनमें कहा, देखो हमारे पिताको इस अवस्थामें भी कुछ ज्ञान नहीं, संसारकी मायामें लिप्त हो रहे हैं। उनको धैर्य देनेके लिये वनके वृक्षोंमें प्रवेश कर कहा, हे व्यासजी ! तुम किस मायामें भूल रहे हो 'न कोई किसीका पुत्र है, न कोई किसीका पिता है, यह सब स्वप्नकासा व्यवहार है। संसारकी गति सदासे इसी भांति चली आती है और यह जीव वारंवार संसारमें जन्म लेता है और मरता है। यह संसार आवागमनकी जड़ है, यह बात सुनकर व्यासजीको धैर्य हुआ' यह कहकर शुकदेवजी आगे चले तो मार्गमें एक सरोवर दृष्टि आया। उसमें देवस्त्री नंगी स्नान कर रहीं थीं। उन्होंने शुकदेवजीको देख कुछ लज्जा नहीं की, उसी भांति नंगी खड़ी रहीं–पीछे व्यासजी वृद्ध बाबा भी वहां पहुँचे, तब तो सब देवांगनायें लज्जित होकर अपना अङ्ग वस्त्रोंसे ढकने लगीं, यह विचित्र भाव देख व्यासजी अपने मनमें विचार करने लगे, कि शुकदेव हमारे पुत्रको देख इन्होंने लज्जा नहीं की और मुझ वृद्ध मनुष्यको देख वस्त्र पहन लिये इसका क्या कारण है, उन देवांगनाओंने देवदृष्टिसे व्यासजीके मनका भ्रम जान कहा–हे व्यासजी ! आप स्त्री और पुरुषके भेदभावको भली भांति जानते हो इसलिये आपसे लज्जा की और शुकदेवजीकी परमहंसगति है, वह स्त्री और पुरुषमें कुछ भेद नहीं समझते, वे समदर्शी हैं, इसलिये हमने उनसे कुछ लज्जा नहीं की। यह बात सुनकर व्यासजीके मनका

सब सन्देह जाता रहा ॥ ५ ॥ कुरु जांगल देशमें गये तो कैसे विदित हुआ कि यह शुकदेवजी हैं ? उन्मत्त गूंगे जड़की नाईं हस्तिनापुरमें फिरते थे ॥ ६ ॥ परम भागवत शुकाचार्यसे राजऋषि परीक्षितका संवाद कैसे हुआ ? ॥७॥ हे सूतजी ! इस बातका हमको बड़ा सन्देह है, जो महाभाग शुकाचार्य गोदोहनमात्रसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकते थे, ऐसे विरक्त होकर सात दिन राजा परीक्षितके निकट कैसे ठहरकर कथा सुनाते रहे और उनके आश्रमको पवित्र कियां ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, उनका जन्म कर्म महाआश्चर्यका है वह कहो ॥ ९ ॥ हे सूत ! पाण्डुकुलभूषण चक्रवर्ती महाराज परीक्षित राज्यलक्ष्मीका अनादर कर किस हेतुसे गंगाके किनारे अन्न जल त्याग कर अन्त समयतक बैठे सो कहो ॥ १० ॥ हे मित्र सूत ! शत्रुलोग धन लाकर जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं अपने देहकी रक्षाके लिये, ऐसी लक्ष्मीको वीर तरुण राजा परीक्षितने प्राणसहित त्यागनेकी इच्छा की ॥११॥ संसारके कल्याणके लिये सब जीवोंके ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी श्रीनारायणके परायण जन जीते हैं, कुछ अपनी देह आत्माके कारण नहीं। जब ऐसा है तो अनेक जीवोंको जीवदान देनेवाली देहको वैराग्य लेकर कैसे त्याग किया ॥१२॥ हे कृपासिन्धु! जो कुछ मैंने पूछा और जो कुछ मेरे पूछनेसे रह गया हो, वह सब कृपा करके हमसे कहो, क्योंकि वेद विषय छोड़कर वाणीसे जानने योग्य अर्थमें तुम चतुर और पारगामी हो ॥ १३ ॥ सूतजी बोले की, हे शौनकमुनि ! बहत्तर चतुर्युगियोंमें जब तीसरी बार द्वापरयुग आया, तब पराशर मुनिसे उपरिचर वसुके वीर्यसे उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर श्री व्यासजी महाराजने विष्णुकी कलासे अवतार लिया ॥ १४ ॥ वही व्यासजी एक समय सरस्वतीमें स्नान कर पवित्र हो सूर्योदयके समय एकान्त स्थान बदरिकाश्रममें बैठे थे ॥१५॥ भूत-भविष्यके ज्ञाता श्रीव्यासदेव कलियुगके कारणसे युग-युगमें पृथ्वीपर सब वर्णाश्रम धर्म उलटे हुए जानकर ॥ १६ ॥ शरीरधारियोंको शक्तिहीन, श्रद्धाहीन, सत्त्वगुणहीन, बुद्धिहीन, आयुहीन ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवोंको देख श्रीमुनिराज दिव्य ज्ञानचक्षुसे सब वर्णोंका और सब आश्रमोंका हित विचार कर ॥१८॥ ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र, इन चारोंसे अनुष्ठेय प्रजाओंके शुद्धिकारक वैदिककर्मको जानकर यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदके चार भाग किये ॥ १९ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये चार अलग-अलग किये । इतिहास पुराणोंको पंचमवेद कहा है ॥ २० ॥ पैलमुनिने ऋग्वेद पढ़ा, जैमिनि पंडितने सामवेद सीखा, वैशम्पायनजी यजुर्वेदके पारंगत हुए ॥ २१ ॥ अंगिरा गोत्री सुमन्तमुनि अथर्ववेदके ज्ञाता हुए, उस वेदके मारण, उच्चाटनादिकर्म करनेसे उनका नाम दारुक हुआ और

---

१. शंका–श्रीशुकदेवजी जिसके ऊपर अत्यंत कृपा करते थे, उसके स्थानपर इतनी देर ठहरते थे कि जितनी देर गायके दुहनेमें लगती है । तो शुकदेवजी गंगाके किनारेपर सात दिन क्यों ठहरे और राजा परीक्षितको श्रीमद्भागवत क्यों सुनायी ?

उत्तर–एक दिन अपनी इच्छासे श्रीशुकदेवजी गोलोकको गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने विधिपूर्वक शुकदेवजीका पूजन किया । पूजन ग्रहण करके जब शुकदेवजी चलने लगे तब राजा परीक्षितका मोक्ष होनेके लिये श्रीकृष्णने शुकदेवसे प्रार्थना की, कि हे मुने पांडव मेरे बड़े मित्र हैं । अर्जुनका यह परीक्षित पोता है शृंगीऋषिके शापसे तक्षक सांपने उसको काटा है और सर्पका काटा निःसंदेह नरकमें जाता है, जब वह परीक्षित नरकमें गया तो त्रिलोकीमें मेरी बड़ी दुर्नामता होगी और लोग हँसी करेंगे कि कृष्ण के मित्रका पोता नरकमें जाता हैं । देखो भाई ! अब जैसी आपकी इच्छा हो उसी प्रकारसे परीक्षितका नरकसे उद्धार करो और उसको मेरे लोकको भेजो । इस प्रकार श्रीकृष्ण जगदाधारकी प्रार्थनासे गङ्गाके निकट राजा परीक्षितके पास सात दिन रहकर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी, जिसके सुननेसे महादुस्तर संसारसे निस्तार हो जाता है । क्योंकि चार वेद छः शास्त्र अठारह पुराण भारतादि इतिहासों का सार निकालकर मुक्ति दायक वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतको ही हित चित्तसे रचा है।

इतिहास पुराणोंके पारगामी हमारे पिता रोमहर्षजी हुए ॥ २२ ॥ वे सब ऋषि अपने-अपने वेदका अनेक प्रकारसे विभाग करने लगे। उनके शिष्य और उनके चेलोंसे वेदोंकी शाखा हुई ॥ २३ ॥ पहले बड़े-बड़े चतुर और अतिविशाल बुद्धिवाले वेदका अर्थ जानते थे। जब उन्हीं वेदोंको मूर्ख निर्बुद्धि लोग पढ़कर उनके उलटे-पुलटे अर्थ करने लगे तब व्यासजी महाराजने ऐसे बनाया ॥२४॥ स्त्री, शूद्र और मूर्ख इन तीनोंको वेदत्रयी पढ़नेका अधिकार नहीं है। उनके कल्याणके लिये क्या उपाय करना चाहिये ॥ २५ ॥ यह विचार व्यासजी महाराजने उनकी मुक्तिके लिये कृपापूर्वक महाभारत बनाया और उसमें सब वेदका सार लेकर भरा ॥२६॥ हे शौनकादिक मुनियो ! सब जीवोंके हितके लिये अधिक परिश्रम करके महाभारतादिक ग्रन्थ रचे, परन्तु मन तो भी प्रसन्न नहीं हुआ और वारंवार यही विचार करते थे कि, अब हम कौनसा ग्रन्थ रचें; जिससे हमारे मनको धैर्य हो ॥ २७ ॥ इसी चिन्तामें परम पवित्र सरस्वतीके किनारे एकान्तमें बैठे अनेक-अनेक तर्क-वितर्क करते-करते उदासीन चित्त होकर धर्मात्मा व्यासजी कहने लगे ॥ २८ ॥ मैंने व्रत करके, अनेक शुद्ध कर्म करके गुरु अग्नि सबको निष्कपट भावसे माना और उनकी आज्ञाको अपने शिर धारण किया ॥ २९ ॥ भारतके बहानेसे सब वेदका अर्थ कहा, जिस भारतमें स्त्री शूद्रादिकको भी धर्म, अर्थ, काम, जान पड़े ॥ ३० ॥ मैं ब्रह्मतेजवालोंमें श्रेष्ठ भी हूँ परंतु बड़े खेदकी बात है कि मेरा जीव समर्थ मनसे प्रसन्न नहीं ॥ ३१ ॥ अथवा वे भागवत धर्म विस्तारपूर्वक मैंने अनेक प्रकारसे नहीं कहे हैं, जो भगवतको प्यारे हैं, परमहंसोंको प्यारे हैं ॥ ३२ ॥ अपने आपको छोटा समझ कर खिन्न मन इसी सोचमें व्यासजी सरस्वतीके निकट बैठे विचार कर रहे थे कि उसी अवसर पर श्री नारदजी उस आश्रमपर आये ॥३३॥ उनको देख व्यासजी अत्यंत प्रफुल्लित हो शीघ्रतासे उठे और विधिवत् पूजन कर बड़े आदर-सत्कारसे आसनपर बैठाया ॥३४॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे नारदव्यास संगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—इस पंचम अध्यायमें, नारदव्यास मिलाप।
कही कथा सब देवऋषि, जैसे मुनि भये आप ॥

इतनी कथा कह सूतजी बोले कि, सुखपूर्वक बैठे हुए व्यासजीसे सर्व विद्या-सागर जगत् उजागर, वीणा हाथमें लिये देव ऋषि नारदजी मुंसकाकर बोले॥ १॥ हे पराशरपुत्र! हे महाभाग!

---

१. शंका—त्रिलोकीमें किसी जीवको नारदजी दुखी देखकर अत्यन्त दुःखी होते थे और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे और विह्वल हो जाते थे। भगवानके भक्त नारदजी उस जीवके दुःख दूर करनेके लिये अनेक उपाय करते थे कि कोई प्राणी दुःखी न हो, यह विचार, सदा सबका उपकार करते हैं; फिर ऐसे दयावान भगवानके प्यारे वेदव्यासजीको दुःखी देखकर नारदमुनि क्यों हँसे और यह अयोग्य काम क्यों किया ? यह बड़ा भारी संदेह है कि अपना स्वभाव क्यों छोड़ा ?

उत्तर—नारदमुनिने बड़े स्नेह और बड़े आदरसे व्यासजीको निवारण किया, कि हे व्यास ! आप ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ, जिनसे ज्ञानियोंको भ्रम हो। ऐसे ग्रन्थ मत बनाओ कि जिनमें मोक्षदायक यदुनायकका नाम न हो। सुखके समुद्र भगवानके अनेक प्रकारके जिसमें चरित्र हों कोई ऐसा मोक्षदायक ग्रन्थ वर्णन करो। इस प्रकारकी शिक्षा वारंवार नारदमुनिने व्यासजीको दी। व्यासजीको अपनी कविताका बड़ा भारी अभिमान था, उन्होंने नारदकी कही हुई एक बात भी नहीं मानी और अनेक प्रकारके ग्रन्थ बनाये परंतु उन ग्रन्थोंके बनानेसे व्यासजीको किंचित्-मात्र भी सुख नहीं हुआ। ग्रन्थ बनानेके पीछे व्यासजीको और अधिक दुःख हुआ। जब व्यासजी को नारदजीने दुःखी देखा तब उनके ऊपर कृपाकरके और व्यासको त्रास देनेके लिये नारदमुनि हँसे थे। कुछ अभिमानसे निर्दयी होकर नहीं हँसे थे। व्यासजीको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उनके मनका सब संशय हर लिया।

आपके शरीरसे शरीका अभिमानी प्रसन्न है और मनका अभिमानी मनसे प्रसन्न है कि नहीं ! ॥२॥ जो जानने योग्य था वह भी आपने जाना । अद्भुत सब अर्थोंकी खानि महाभारत भी आपने रचा ॥३॥ जो सनातन नित्य परब्रह्मको विचारसे आपने प्राप्त किया, एक वेदके चार भाग किये और उनका सार निकाल और बहुत से ग्रन्थ, पुराण रचे तो भी आप ऐसे शोच वश हो रहे हो, जैसे किसीने अनेक यत्न कर अपना कार्य सिद्ध किया हो और उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ हो, हे प्रभो ! तुम सर्वज्ञ होकर ऐसे शोचवश किस कारण हो रहे हो ! ॥४॥ व्यासजी बोले-जो तुमने कहा वह सब सत्य है, परन्तु तो भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है, इसका कारण मैं नहीं जानता, इसलिये आपको ब्रह्माजीका पुत्र ब्रह्मज्ञानी जान आपसे पूछता हूँ ॥५॥ जो सबसे गुप्त बात है वह आप भली भाँति जानते हो क्योंकि जो पुराण-पुरुष है उसकी तुमने उपासना की है,जो गुणरहित;कार्य-कारणका नियंता,अपने मनसे ही सब विश्वकी रचना, पालन, संहार करता है ॥६॥ सूर्यकी भांति त्रिलोकीमें तुम विचरते हो, पवनके समान सबके अन्तःकरणकी जानते हो, बुद्धिकी वृत्तिको भलीभांति जानते हो, परन्तु मैं भी परब्रह्म और वेदमें धर्मसे और व्रतसे परायण हूँ, तो भी मेरे मनकी न्यूनता नहीं गयी, आपको भली भाँति प्रकट है ॥७॥ श्रीनारदजी बोले–हे व्यासमुनि ! आपने भगवानका निर्मल यश वर्णन नहीं किया, इस लिए आपका मन प्रसन्न नहीं है यही न्यूनता समझो ॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रधानतासे आपने धर्म, अर्थादिक कहे हैं उस प्रधानतासे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दकी महिमाका वर्णन नहीं किया॥९॥जिसमें जगतके पवित्र करने वाले परमात्माका यश नहीं कहा, चाहे उसमें कैसेही चित्र-विचित्र पद हों और वह काकतुल्य कामियोंको अच्छी लगे परन्तु ऐसी कविताको सत्त्वगुण प्रधान परब्रह्ममें निवास करनेवाले मनस्वी सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहते हैं और कभी उस कविताको नहीं पढ़ते । जैसे प्रसिद्ध है कि मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरमें ही विचरते हैं, कमलवनको त्याग जहां जूठन डाली जाती और काक कांव–कांव करते हैं, वहां हंस कभी नहीं जाते । इसी भांति भगवद्भक्त भगवान्के चरित्रोंके ग्रन्थ पढ़ते हैं, रसिक ग्रन्थोंमें ध्यान नहीं लगाते ॥ १० ॥ एक-एक श्लोक चाहे जिस ग्रन्थका अशुद्ध हो परन्तु परमेश्वरका विषय हो, जो संसारके जीवोंका पापनाश करता है और सुयशका प्रकाश है, ऐसी कविता और कथाको साधु ब्राह्मण गाते हैं, सुनते हैं और सुनाते हैं ॥११॥ और जिसने ब्रह्मार्पण कर्म किया और भगवानकी भक्तिसे रहित है, वह उपाधिरहित अत्यन्त ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होता, फिर फलके समय भी दुःख होता है, जिसने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण नहीं किये उसकी ऐसी ही गति होती है ॥१२॥ इस कारण हे महाभाग ! आप यथार्थ द्रष्टा हो, शुद्ध, यशस्वी, तेजस्वी, सत्यवादी; सब व्रत करनेवाले हो । अब आप चित्तको सावधान करके परमेश्वरकी लीला वर्णन करो । जिसको पढ़कर संसारके बन्धनसे लोग छूट जायँ, क्योंकि ॥१३॥ भगवानके यश विना जो कुछ पृथक् दृष्टिसे वर्णन किया है, उसे नाम रूपमें पढ़कर बुद्धि चञ्चल हो जाती है, जैसे वायुसे कंपित नौका जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥१४॥ धर्मके लिये शिक्षा करने वाले तुम्हारी नैष्कर्म्यकी आज्ञाको

१. कवित्त–कहा भयो जो न काव्य भेद भाव द्वन्द विना, हरियश जामें सोई कह न सुहाई है । सन्त जन गाव सुन कहें जापै ताहि कोरी, कविता बनाई [illegible] गिरा पछिताई है ॥ रामरस बिना जैसे फीको लगै स्वाद तिमि रामरस स्वाद, गन्धहू न आई है । भक्त मन भाई सुखदाई है सुहाई जामें, कृष्णकथा गाई सोई सांची कविताई है ॥ १ ॥

देखकर दुष्टजन महा अन्याय करेंगे और तुम्हारे वाक्योंसे संसारके तुच्छ जीव यही मानेंगे कि यह भी एक प्रकारका धर्म है। यह नहीं जानेंगे कि इसका व्यासजीने निवारण किया है ॥ १५ ॥ जो अतिनिपुण हैं, वे स्वभावसे अनन्त अपार परमेश्वरके स्वरूपको जानते हैं। गुणोंसे प्रवर्तमान जीवों से भिन्न समर्थ ईश्वरकी लीला तुम वर्णन करो ॥ १६ ॥ अपने धर्मको त्याग वासुदेवके चरणारविन्दका भजन करते-करते जो बीचमें ही मर जाय तो उसको अपने धर्मके त्यागनेका दोष होता है, परन्तु स्वधर्मसे भजनेवाले इस जीवका जहां कहीं कुयोनिमें भी जन्म हो तो भी भक्त ही होता है। भक्ति सदा कल्याणकी दाता है, भक्ति सब कार्यको सिद्ध करती है ॥ १७ ॥ विवेकी उस सुखके लिये यत्न करे, जो सुख ब्रह्मलोकतक हो जाय और नीचे स्थावरतक हो जाय,परन्तु वह सुख नहीं मिलता। विषय-सुख प्राचीनकर्मसे सब ठौर नरकादिकमें भी विना यत्न किये दुःख किसी भांति प्राप्त होता है, ऐसे ही सुख भी प्राचीन कर्मसे गम्भीर वेगवाले कालसे विना ही चाहे आकर प्रकट हो जाता है ॥ १८ ॥ हे मित्र ! मुकुन्दसेवी जन केवल कर्मनिष्ठावालोंकी भांति कभी भी संसार में नहीं आता है, क्योंकि भगवच्चरणारविन्दके स्पर्शका फिर स्मरण करता है और त्यागनेकी इच्छा नहीं करता। वह उसको रस मानकर ग्रहण करता है ॥१९॥ यह विश्व ईश्वररूप ही है और ईश्वर नहीं है कि, जिससे जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है, वह तुम सब भली-भांति जानते हो तो भी आपको एक आदेशमात्र दिखाया है ॥२०॥ हे अमोघदृष्टिवाले ! परमपुरुष परमात्माकी तुम साक्षात् कला हो, मनसे परमात्माको जानो, जिसे अजन्मा कहते हैं, उसी परमात्माने जगत्के कल्याणके लिये जन्म लिया, ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥ २१ ॥ पुरुषके तप, श्रवण, दान, पुण्य करने और सुन्दर कूप; बावड़ी बनाने श्रेष्ठ युक्तिका, बुद्धिका यही प्रयोजन कवियों ने कहा है कि परमात्माका गुण गाना ॥२२॥ हे व्यासदेव ! मैं पहले जन्ममें एक वेदवादी ब्राह्मणकी दासीसे उत्पन्न हुआ था; मुझसे बाल अवस्थामें ही वर्षाकालमें ठहरे हुए साधुओंकी सेवा करनेको कह दिया गया था। मैं ब्राह्मण, साधु-सन्तोंकी सेवामें लवलीन था। वर्षाके दिनोंमें उस ब्राह्मणके स्थानपर साधु संत आकर विश्राम किया करते थे और उस ब्राह्मणने साधु लोगोंके चौका बर्तनकी टहलके लिये मेरी माताको नियुक्त कर दिया था। मैं भी अपनी माताके संग उन साधुओंके निकट रहकर आठों पहर उनका दर्शन करता रहता था,जिस समय साधुलोग परस्पर बैठकर श्रीनारायणकी कथा वार्ता कहते थे। उस समय मैं भी उनके समीप बैठा सुनता रहता और उनकी सेवा करता रहता था और वे ऋषि भी मेरे ऊपर दया करते थे ॥ २३ ॥ मेरे चित्तकी सब चंचलता दूर हो गयी। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता, थोड़ा बोलता और वे समदर्शी साधु भी मुझपर अनुग्रह करते थे ॥ २४ ॥ उन ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उन साधुओंके पात्रोंमें उच्छिष्ट जो शेष रह जाता था, मैं नित्यप्रति वही भोजन करता था। इससे मेरे सब पाप दूर हो गये। जब मैं ऐसे विशुद्ध चित्तसे रहने लगा तब तो उस धर्ममें मेरी अधिक रुचि हो गई ॥ २५ ॥ हे मित्र ! दिन-रात कृष्ण कथा उनके मुखसे सुननेसे प्रिय यशवाले भगवान् वासुदेवमें मेरी रुचि दिन-दिन अधिक होती गयी ॥ २६ ॥ हे व्यास ! श्रीनारायणके चरणारविन्दोंमें जब मेरी अधिक रुचि बढ़ी तो मेरी अखण्डित बुद्धि होगयी। यह सब मुझको दीखने लगा। सत्-असत् अपनी मायासे ब्रह्ममें कल्पित मानने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार शरद

और वर्षाऋतुमें दिन-रात परमेश्वरका निर्मल यश सुनता रहूँ, जो मुनियोंने गाया। उससे आत्माके रज, तम नाश करनेवाली प्रवृत्ति हो गयी ॥२८॥ वह अनुरागी, नम्र, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, मुझ सेवक बालकपर अत्यन्त कृपा करने लगे ॥२९॥ वह दीनवत्सल साधु चलते समय मुझे साक्षात् श्रीभगवानके मुखसे निर्गत गुह्यतम ज्ञानका उपदेश कर गये ॥३०॥ उस ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान वासुदेवकी मायाका प्रभाव जाना, जिससे उस परम पदवीको सब पाते हैं ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! अध्यात्मादि तापत्रयीकी यह औषधि है, बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट, चैतन्य, पूर्णरूप, भगवान, ब्रह्म ईश्वरमें सब कर्म समर्पण करना ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत! जो रोग जिस वस्तुसे जीवोंको हो वह रोग उस वस्तुसे उसका नहीं जाता चाहे कैसीही चिकित्सा करो ॥३३॥ ऐसे मनुष्योंके सब कर्मकाण्ड अपने निमित्तसे करे तो सदा संसारमें जन्मता-मरता रहता है और अपना विनाश होता है वही सब परमेश्वरमें समर्पण करे तो अपना मोक्ष होता है। प्रथम तो महात्मा पुरुषोंकी सेवा, उससे उनकी कृपा हो उस कृपासे उस धर्ममें श्रद्धा हो, तब भगवत्कथा सुननेसे ईश्वरमें प्रीति हो, उस प्रीतिसे दोनों देहका विवेक हो ऐसा आत्मज्ञान होता है तब दृढ़-भक्ति होती है, उस भक्तिसे भगवानका तत्त्वज्ञान, उस तत्त्वज्ञानसे सर्वज्ञत्व, सर्वात्मत्व, अपहतपाप्मत्व इत्यादि भगवतगुण प्रगट होनेका यह क्रम है ॥ ३४ ॥ जिस कर्ममें भगवतकी प्रसन्नता है, यह जानकर जो कर्म करता है, उस कर्मके अधीन भक्तिसमेत ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ भगवानकी आज्ञा है कि सब शुभ कर्म करो। यह जान, जो कर्म करते हैं उनको मोक्ष होता है। जो मनुष्य श्रीकृष्णके गुण अपने मुखसे उच्चारण करते हैं वे निःसन्देह मोक्षके भागी हैं ॥ ३६ ॥ भगवानको नमस्कार और वासुदेवका ध्यान करे। प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धको नमस्कार करे ॥३७॥ इन मूर्तियोंके नामसे मन्त्रोक्त मूर्ति बनवाये, वह मूर्तियोंके नामसे है और बाह्यकी यह मूर्ति नहीं ऐसा जानकर जो पूजन करे तो वह पुरुष सुन्दर दर्शनके योग्य हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन्! यह अपना ज्ञान जो मैंने अनुष्ठान किया इससे परमात्माने मुझको ज्ञान ऐश्वर्य दिया ॥ ३९ ॥ हे बहुश्रुत! विभुकी लीला तुम भी कहो; जिससे ज्ञानियोंके सब जाननेकी इच्छा पूरी हो जाय और दुःखसे पीड़ित जीवोंका सब क्लेश जिससे शान्त होगा और प्रकारसे नहीं ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे
श्रीव्यासनारद-संवादे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा—मिले छठे अध्यायमें, ज्यों नारदको सिद्ध।
जगतमाहिं जाते भये, नारद परम प्रसिद्ध ॥

इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि! सत्यवतीसुत व्यासजी! देवऋषि नारदके जन्म-कर्मकी कथा सुनाकर फिर नारदजीसे पूछने लगे ॥ १ ॥ कि, हे कृपासिन्धु! वह ज्ञानदाता भिक्षु जब सब चले गये, तो आपने प्रथम अवस्थामें क्या किया? ॥ २ ॥ हे स्वायंभुव! आपने पिछली अवस्था कैसे व्यतीत की, जब काल आया तो वह शरीर कैसे त्याग किया? ॥ ३ ॥ हे सुरसत्तम! प्रथम कल्पका स्मरण तुमको कैसे बना रहा? सबको परलोकदाता ग्रहकाल खंडित न हुआ, तुम्हारी स्मृति भी खंडित नहीं हुई, वह कहो ॥ ४ ॥

श्रीनारदजी बोले कि ज्ञानदाता भिक्षु जब चले गये, तब आयुकी आदिमें यह किया ॥५॥ मेरी माता स्त्रीस्वभाव मूढ दासी कोई बाततक करनी जिसे न आये, एक मैं था उसके अकेला बेटा, मुझसे अधिक स्नेह रक्खे ॥ ६ ॥ और मेरे निर्वाहकी चिन्ता रात-दिन करती रहे, परन्तु मनमें वह भी पराधीन और असमर्थ थी, जैसे काठकी पुतली नटुवेके वशमें रहती है ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे मैं उस ब्राह्मणके पास रहता रहा, परन्तु मनमें दिन-रात यह विचार करता रहूँ, कि इस मोहकी फांसीसे किस दिन छूटूंगा। साधु लोगोंकी कृपासे मैं अपने आपको पांच वर्षका नहीं समझता था ॥ ८ ॥ एक दिन मेरी माता उस ब्राह्मणके लिए दूध दुहानेको जाती थी,सो मार्गमें उस विचारीको काले सर्पने डस लिया॥९॥तब मैंने अत्यन्त आनंदित हो उस समय यही विचार किया,कि ईश्वर भक्तोंका सदा कल्याण करते हैं और मुझे अपना दास जानकर मुझपरभी अनुग्रह किया।यह बात निश्चित समझमैं उसी समय उत्तर दिशाकी ओर चल दिया ॥१०॥ समृद्ध देश,राजधानी, ग्राम, ब्रज रत्नादि उत्पत्ति स्थान,किसानोंके गांव,सुपारी, पुष्पोंकी वाटिका, स्वतः सिद्ध वृक्ष समूहोंसे वन, और वृक्षसमूहोंके सुन्दर-सुन्दर उपवन देखे॥११॥ चित्र धातु,विचित्र पर्वत,हाथी,वृक्षोंकी शाखा तोड़ रहे,निर्मल जलभरे ताल लहरा रहे, मार्गमें जहां-तहां मनोहर कूप-बावड़ी, ताल, नदी, वन दृष्टि आते थे ॥ १२ ॥ सुन्दर-सुन्दर भ्रमर जहां-तहां गुंजार रहे, पक्षी चित्र-विचित्र अपनी-अपनी बोली बोल रहे थे। नर्सल बांस, वीरणमूलके समूह, कुश, बांसोंमें आपसे आप छिद्र हो रहे हैं, उनमें पवन भरकर बांसुरीके समान स्वरीले शब्द निकाल रहे हैं, वे कीचक कहलाते हैं। इनसेही महागंभीर शब्द होरहा है ॥ १३ ॥ मैं अकेला ऐसे महाघोर भयंकर वनमें सर्प, बिच्छू, श्रृगाल जहां भयानक बोली बोल रहे थे, उनको देखता चला जाता था ॥ १४ ॥ चलते-चलते सब शरीर शिथिल हो गया तो एक सुन्दर सरोवर मुझको दृष्टि आया। तब मैं भूखा-प्यासा उस तालके जलमें स्नान करके जल पिया तो मेरे शरीरका सब श्रम दूर हुआ ॥ १५ ॥ उस महागंभीर सरोवरके किनारे एक पीपलका वृक्ष था। मैं उस पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर परमेश्वरके स्वरूपका हृदयमें ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भावसे मन जीतकर परमात्माके चरणकमल अमलका ध्यान करने लगा। प्रीतिवश हो, नेत्रोंसे आंसू बहने लगे, तब धीरे-धीरे हृदयमें भगवान वासुदेवका दिव्यरूप ऐसा दिखाई दिया, कि एक पुरुष सुन्दर स्वरूप जिसके मुखारविन्दका प्रकाश कोटिभास्करसे भी अधिक, चतुर्भुजी मूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म चारों हाथोंमें लिये, पीताम्बर पहने, वैजयन्ती माला कण्ठमें धारण किये,किरीट मुकुटशिर पर धरे,

शंका—नारदकीकी माताके ऊपर मुनि लोगोंकी बड़ी कृपा थी, क्योंकि जो कृपा नहीं करते तो मुनियोंके सहवास से नारदका जन्म उस दासीमें क्यों होता ? ऐसी मुनियोंकी कृपासे नारदजीकी माता सर्पके काटनेसे क्यों मर गयी, ऐसी खोटी मृत्यु नारदजीकी माताकी सुनकर हमको बड़ी शंका होती है।

उत्तर—नारदकी माता मुनियोंको तीर्थयात्रा करनेके लिये जाते देखकर, अपने पुत्र नारदको ज्ञानमें रमण करता जानकर और इंद्रियोंको बलवान् समझकर भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगीं और अपने मनमें यह विचार करने लगीं कि मुनिलोग तो मुझको छोड़कर अपने-अपने आश्रमोंको चल दिये और पुत्र मेरा ज्ञानमें मतवाला है अब मेरा प्रतिपालन कौन करेगा। क्योंकि इंद्रियां तो अपनी-अपनी ओरको मेरे प्राण खींच-खींच मुझको कठिन-कठिन दुःख देंगी, नारदकी माताने विचार किया, कि शूद्रकुलमें मेरा जन्म हुआ।~शूद्रोंकी मंने संगति की। किसी शुभकर्मके प्रभावसे मुझको मुनियोंकी संगति प्राप्त हुई है और ज्ञान-ध्यानसे हीन हूँ, मेरे हृदयमें कुछ भी ज्ञान नहीं, अब मैं निराधार हूँ। मेरा मरण शीघ्र होना चाहिये। इस प्रकार भगवानसे विनय करने लगीं। तब भगवानने उसकी विनय स्वीकार करके शीघ्र मृत्यु होनेके लिये सांपसे कटवाया। जब वह मर गयीं तो उसको सुरपुरका वास दिया और सर्पबाधासे नारदजीकी माताका मरण हुआ। इसलिये उसको अपने सन्मुख रखा कि जिस प्राणीको सॉंप डस लेता है उसकी दुर्गति होती है, इसकी कुगति न हो। नारदकी माताको मुनियोंकी कृपासे भगवानने अपने सम्मुख वास स्थान दिया।

त्रिभंगी छबि करे, मकराकृति कुण्डल कानोंमें पहने, श्यामस्वरूप, कमलनयन, लम्बी भुजा, तापहारिणी चितवन, मन्द-मन्द मुसकाते, बांकी-झांकी दिखलाते मेरे सम्मुख आये। उस मनमोहन स्वरूपको देखते ही मैंने परमानन्दितहोकर चाहा कि इसी सुन्दर स्वरूपको निहारता रहूँ ॥१७॥ प्रेम प्रीतिके भावसे हृदय पुलकायमान हो गया। मन महासुखी हो आनन्दके महा प्रवाहमें लीन हो गया। देहकी सब सुध बिसर गयी। परमात्माकी भी सुध नहीं रही ॥१८॥ मनका सुखदायक शोकनाशक जो भगवानका रूप है वह एक सङ्ग हृदयमें दीखा और मैं आनंदसे देखता रहा। विवशतासे मेरा मन कुछ खेदित हुआ, जब वह स्वरूप मेरे ध्यानसे अंतर्धान हुआ ॥ १९ ॥ उस रूपको देखनेके लिये फिर हृदयमें मन लगाया। प्रथम जो रूप देखा था, वह रूप फिर दिखायी नहीं दिया ॥ २० ॥ उस एकान्त वनमें परमेश्वरने गम्भीर आकाश वाणीसे मुझ यत्नशीलके मनका सब शोक दूर कर दिया ॥ २१ ॥ बड़े खेदकी बात है कि इस जन्ममें तू मेरा दर्शन करनेके योग्य नहीं था, क्योंकि जिनके हृदय और मनके काम-मल दग्ध नहीं हुए हैं, उन कुयोगियोंको मेरा दर्शन नहीं होता ॥२२॥ हे पापरहित! एक बार मैंने अपना स्वरूप तुझको इसलिये दिखाया है, कि तेरे मनमें अनुराग बढ़े और जो मेरे चाहनेवाले साधक लोग हैं वे सब कामादिक विषयका त्याग कर देते हैं ॥ २३ ॥ और थोड़ीसी ही सज्जनोंकी सेवासे तेरी मति मुझमें अत्यन्त दृढ़ हो गयी। अब इस निंदित देहको त्यागकर तू मेरा पार्षद होगा ॥ २४ ॥ और मुझसे तेरी प्रीति सृष्टिके आदि अन्तमें कभी नहीं छूटेगी और मेरी कृपासे तुझे इस जन्मका सब वृत्तान्त स्मरण रहेगा ॥२५॥ इस श्लोकमें विलक्षण बात है, कि जिसकी देह नहीं, सबसे बड़ी जिसकी श्वास, आकाशके भीतर जिसकी मूर्ति, ऐसे ईश्वर परमात्मा मुझसे कहकर चुप हो गये। मैंने भी सब बड़ोंकी कृपासे उस परब्रह्म परमेश्वरको बारंबार प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और सब लज्जा त्यागकर भगवत्का भजन करने लगा। मांगलिक छिपे हुए जो परमेश्वरके चरित्र थे उनका स्मरण करने लगा और सब पृथ्वीपर फिरूं, और अपने मनको प्रसन्न रक्खूं किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता। मद, मत्सर, ईर्षा सब त्याग दी, कालकी बाट दिन-रात्रि देखता रहता ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्! जैसे अकस्मात् सुदामा पर्वतसे बिजली निकले और उसीमें समा जाय, उसके समान कृष्णमें मेरी मति हुई और किसीमें आसक्त नहीं। आत्मा मेरी निर्मल हो गयी, जब मृत्युका समय आया तो मृत्यु हो ॥२८॥ प्रारब्धकर्म समाप्त हुए तब पंचभूतका यह शरीर गिर पड़ा। शुद्ध भगवत्-पार्षदका देह जो शुद्ध सत्त्वमय है, वह परमात्माने मुझको दिया ॥ २९ ॥ कल्पके अंतमें इस त्रिलोकीका संहार कर श्रीनारायणने क्षीरसमुद्रमें सोनेकी इच्छा की, और वह शेषशय्या पर सोये तब उनके श्वासके संगमें प्रविष्ट हो गया ॥ ३० ॥ जब सहस्रयुग सोते-सोते हो गये, तब उठे। ब्रह्म अन्तर्यामी ईश्वरने इसके रचनेकी इच्छा की तब मरीच्यादिऋषि हुए और प्राणसे हम हुए ॥ ३१ ॥ सब ठौरमें मेरे जानेकी गति हो गयी, बाहर-भीतर त्रिलोकीमें कहीं चला जाऊं, अखण्डित ब्रह्मचर्य लेकर महा-विष्णुकी अनुग्रहसे सब संसारमें पर्यटन करता हूँ ॥ ३२ ॥ श्रीईश्वरके जो दिये–सा, रे, ग, म, प, ध, नी, यह सात स्वर हैं, ब्रह्म रूप इनके ग्राम, इस वीणामें बजाता, परमेश्वरके गुण गाता, सब संसारमें घूमता-फिरता हूँ ॥ ३३ ॥ और भगवान्के चरित जब मैं गाता हूँ तो ऐसा मग्न हो जाता हूँ, मानो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द शीघ्र चित्तमें आकर दर्शन देते हैं।

और मुझको बुलाते हैं ॥ ३४ ॥ आतुर चित्तवालोंको विषय स्पर्शकी इच्छासे वारंवार संसार समुद्रके तरनेकी नाव हरिके चरित्रोंका वर्णन करना है ॥ ३५ ॥ काम, लोभ, और मोहसे ग्रसित जीवका मन योगके मार्गमें यम, नियमादिसे शान्त नहीं होता, जैसे मुकुन्दकी सेवा-मात्रसे शान्त होता है ॥ ३६ ॥ हे पापरहित व्यासजी ! जो तुमने पूछा, वह हमने सब जन्म-कर्मका रहस्य आपसे कहा और आपका मन प्रसन्न किया ॥३७॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुनि ! सत्यवतीके पुत्र श्रीव्यासजीसे भगवान नारदमुनि इस प्रकार कहकर उनसे आज्ञा ले बीणा बजाते, हरिगुण गाते, स्व प्रयोजन संकल्पशून्य होकर चले गये ॥३८॥ देवर्षि धन्य हैं, जो भगवानकी कीर्ति गाते हैं, आनन्दित होते हैं और नित्य प्रति बीणा बजाकर सब आतुर संसारका उद्धार करते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे व्यासं प्रति नारदपूर्वजन्मकथावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, रची भागवत व्यास ।
पुनि पढ़ाय निज पुत्रको, पूरी मनकी आस ॥

शौनकमुनि बोले कि हे सूतजी ! जब नारदमुनि चले गये, तब उनका सब अभिप्राय सुनकर सर्व-समर्थ विभु व्यासजीने क्या किया ? ॥ १ ॥ सरस्वती नदीके किनारे ऋषियोंका यज्ञ बढ़ानेवाला पश्चिमकी ओर शम्याप्रास नामक एक आश्रम था ॥ २ ॥ उस आश्रमके चारों ओर बेरके वृक्ष शोभा दे रहे थे। उनकी शीतल छायामें व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे परमेश्वरका ध्यान करने लगे ॥ ३ ॥ भक्तियोगसे अपने निर्मल मनको निश्चल किया तो पूर्ण पुरुषका दर्शन हुआ और उनके अधीन जो माया है उसको भी देखा ॥ ४ ॥ जिस मायासे मोहित होनेसे जीव त्रिगुणसे परे भी आत्माको देह रूप मानता है और उस देहमें जो सुख-दुःख होते हैं आत्मामें मानता है ॥५॥ अनर्थनाशक साक्षात् भक्तियोग भगवान्‌में जब लोग न करने लगे, तो श्रीव्यासजीने श्रीमद्भागवत संहिता बनायी ॥ ६ ॥ जिस श्रीमद्भागवत संहिताके हितचित्तसे सुननेसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परमपुरुषके चरणार-विन्दोंमें मोह, शोक, जरा—नाशक, सुखप्रकाशक भक्ति पुरुषको उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥ व्यासदेव श्रीभागवत संहिता रचकर और शोधकर अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाने लगे शुकदेवजी सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहते थे ॥ ८ ॥ शौनकऋषि बोले कि हे सूतजी ! जो सदा निवृत्तिमार्गमें लगे रहें; सब संसारसे जिनका त्याग; आत्मामें रमण करते रहें, ऐसे शुकदेवजीने किस कारण ऐसी भारी संहिताके पढ़ानेका अभ्यास किया ? ॥९॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! आत्मा राम क्रोध, अहंकाररूपी गांठें जिनकी दूर हो गयी,

---

१. शंका :—सूतजीने ऐसे वचन क्यों कहे ? कि भागवत सुनने से तो श्रीकृष्णमें भक्ति होगी । इस बातसे तो यह विदित होता है,
कि भागवतके सुननेसे केवल अकेले कृष्णजीकी भक्ति होती है और जो भगवानके अनन्त अवतार हैं उनमें भक्ति नहीं होगी। यह बड़े सन्देह-
की बात है?

उत्तर—मुनिलोग आदर-सत्कार करके व्यासजीको भी कृष्ण कहते हैं, क्योंकि भगवानके अनन्त नाम हैं। कृष्ण, विष्णु, जगन्नाथ, जगदीश
आदि अनेक नाम हैं। तो भी व्यासजी सूतजीके गुरु हैं, कृष्ण नाम सूतजीके हृदयमें सदा प्यारा है, इस लिये सूतजीने कहा, कि भागवतके
सुननेसे कृष्ण जो व्यास हैं उनमें भक्ति होगी कुछ विरुद्ध नहीं कहा, क्योंकि संसार कृष्ण भगवानका रूप है। भगवानके एक रूपमें भक्ति हुई
तो अनंत रूपमें होगी। ईश्वरके रूपमें कुछ भी भेद नहीं है।

ऐसे मुनि लोग फलकी इच्छा नहीं करते। विना ही फल परमेश्वरकी भक्ति करते हैं, हरिके गुण ऐसे ही हैं॥१०॥ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंमें जिनकी परम प्रीति ऐसे भगवान शुकाचार्यने यह महा-व्याख्यान पढ़ा, उन शुकदेवजीको विष्णुके भक्त बड़े प्यारे हैं॥११॥ अब हम तुमको परीक्षित राजऋषिके जन्म, कर्म, मुक्ति, मृत्युकी और पाण्डुपुत्रोंके स्वर्ग जाने और श्रीकृष्णचन्द्रकी कथाओंकी उत्पत्ति सुनाते हैं॥ १२ ॥ जब परीक्षित गर्भमें थे, तब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रने जैसे रक्षा की, उस कथाको प्रारम्भ करते हैं। जिस समय युद्धमें कौरव, पांडव, धृष्टद्युम्न प्रभृतियों समेत् जब वीर गतिको प्राप्त हो गये। भीमसेनकी फेंकी गदाके लगनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी जंघा टूटी॥१३॥ उस समय अश्वत्थामा दुर्योधनका प्रिय मित्र, उसकी जङ्घा टूटी देखकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंका शिर काट लाया, यह बहुत बुरी बात है, इस निंदित कर्मकी शास्त्रमें बड़ी निन्दा लिखी है॥१४॥द्रौपदी पुत्रोंका मरना सुनकर महादुःखी हो रोती-पीटती आंखोंमें आंसू बहाती अर्जुनके पास आयी,अर्जुनने उसको रोनेसे बंद किया और कहा– ॥१५॥ हे भद्रे ! आगका लगानेवाला, विषका देनेवाला, शस्त्रका बांधनेवाला, धनका चुरानेवाला, परायी भूमिका हरनेवाला, स्त्री और बालकोंका मारनेवाला, ये छः आततायी कहलाते हैं। ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाका शिर गाण्डीव धनुषके निकले बाणोंसे काटकर तेरे सम्मुख लाऊँ, उसके ऊपर खड़ी होकर तुम स्नान करोगी तो तुम्हारा पुत्रोंके मरनेका शोक दूर होगा॥१६॥ ऐसे द्रौपदीका मन मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण जिसके मित्र और सारथी, कवच पहने, गाण्डीव धनुष हाथमें लिये, कपिध्वज अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे रथपर चढ़कर दौड़ा॥१७॥ बालघाती, कंपित-हृदय, प्राणोंका भय किये, अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने पीछे आता देख रथपर बैठ-कर जहांतक भागा गया वहांतक भागा। जैसे शिवके भयसे सूर्य भागे थे। वामन पुराणमें इस प्रकार लिखा है "विद्युन्माली नाम एक शिव भक्त राक्षस था, उसको शिवजीने सोनेका विमान दिया, वह राक्षस उस विमान पर चढ़कर सूर्यके पीछे-पीछे फिरा करे। विमानके प्रका-शसे रात होनी दूर हो गयी, तब सूर्यने देखा कि मेरा तेज तो नष्ट हो गया। यह जानकर उसका विमान पृथ्वीपर गिरा दिया। यह सुन महादेवजी कोप करके सूर्यको मारने दौड़े। तब तो सूर्य घबड़ाकर भागे और रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जलकर काशीमें गिरे जो आजतक काशीमें लोलार्क नामक तीर्थ विख्यात है"॥१८॥जब अश्वत्थामाके रथके घोड़े थक गये और अपने शरीरका कोई रक्षक नहीं दिखायी दिया, तब विप्रपुत्रने अपनी रक्षाके लिये ब्रह्मास्त्र चलानेकी चेष्टा की॥१९॥तब आचमनकर प्राण बचानेके लिये ब्रह्मास्त्र चलाया; परन्तु ब्रह्मास्त्रका फेरना वह नहीं जानता था॥२०॥ सब ओरसे प्रचण्ड तेज जब ब्रह्मास्त्रका प्रकट हुआ और प्राणोंपर आपत्ति आयी जान अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले॥२१॥हे कृष्ण हे कृष्ण महाभाग ! तुम भक्तोंके अभयकारक और संसारके जीव-जन्तुओंके सुखदायक हो॥२२॥तुम आदिपुरुष साक्षात् केवल मायासे परे हो, अपनी चिच्छक्तिसे मायाका तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थित हो ॥२३॥मायामोहित चित्त,ऐसे जीवलोकका अपने प्रभावसे धर्मादिक लक्षण कल्याणसे तुम हीं विधान करते हो॥२४॥यह आपका अवतार भूमिका भार उतारनेकी इच्छासे है और अपने जातिके और एकान्तभक्तोंके ध्यानके लिये है॥२५॥हे देव, देव ! यह क्या है? कहांसे आया है? सब ओरसे परमदारुण तेज आता है, हम नहीं जानते॥२६॥श्रीभगवान् बोले कि हे पार्थ !

प्राणोंपर आपत्ति आती देखकर द्रोणाचार्यके पुत्रने ब्रह्मास्त्र चलाया है। यह चलाना तो जानता है परन्तु अपने पास बुलाना नहीं जानता ॥२७॥ इस अस्त्रको दूर करनेवाला और कोई उपाय नहीं है, तुम भी अपना ब्रह्मास्त्र चलाकर अपने तेजसे इसका नाश करो, क्योंकि तुम दोनों बातें जानते हो॥२८॥सूतजी बोले कि, हे ऋषियो! शत्रुनाशी अर्जुनने भगवान्की बात सुनकर, जलसे आचमन कर श्रीकृष्ण महाराजकी परिक्रमा करके, उस ब्राह्मण पर ब्रह्मास्त्र चलाया ॥२९॥ तब दोनों ब्रह्मास्त्र परस्पर लड़ने लगे, उनका तेज महाप्रचण्ड पृथ्वी आकाशको ढककर महाप्रलय जैसा समय कर दिया, जैसे महाप्रलयमें संकर्षणके मुखकी अग्नि ऊपरसे सूर्यका तेज ये दोनों मिलकर बढ़ते हैं, उसी भांति दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज बढ़ा ॥३०॥उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंका तेज महाघोर त्रिलोकीको फूँके डालता था और जली हुई प्रजा कहती थी कि आज महाप्रलयका समय आ गया॥३१॥प्रजा और लोकका नाश होता देख, वासुदेवका मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शान्त कर अपने पास बुला लिया ॥३२॥ बड़े वेगसे उनको पकड़ कर गौतम वंशकी गौतमी कृपीसे कठोर पुत्र अश्वत्थामाको,क्रोधसे लाल-लाल तांबेके रङ्गसे नेत्र किये यज्ञके पशुकी भांति बांध लिया ॥३३॥ शोक रोष युक्त धनंजयकी कर्मनिष्ठा देख, श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थानमें ले जाकर बलपूर्वक रस्सीसे वैरीको बांधकर क्रोधित हो अर्जुनसे बोले ॥३४॥ हे पार्थ! यह अधम ब्राह्मण रक्षा करने योग्य नहीं, इसको अभी मार डालो, इस पापीने सोते निरपराधी बालकोंको मारा है ॥ ३५ ॥ धर्मशास्त्रमें ऐसे लिखा है, कि जो कोई मद्यादिकसे मत्त हो, या और किसी प्रकारसे प्रमत्त हो, ग्रहवातादिसे उन्मत्त हो, सोता हुआ जीव, बालक, स्त्री, जो कोई उद्यम नहीं जानता, जो कोई अपनी शरण आया हो, इन आठों जीवोंकी धर्मवेत्ताओंको सदैव रक्षा करनी चाहिये। अपने शत्रु भी हों तो भी इनका मारना योग्य नहीं ॥ ३६ ॥ पराये प्राण लेकर जो निर्दयी दुष्ट अपना प्राण पुष्ट करता है, उसका मारना ही श्रेष्ठ है, उस दुष्टके मारनेसे पुरुष नरकमें नहीं जाते ॥३७॥मेरे सम्मुख आपने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी, कि रे प्राणप्रिये! जो तेरे पुत्रोंका मारनेवाला है, उसका शिर काटकर तेरे आगे लाऊँगा ॥३८॥ अतः तुम अपने पुत्रके वध करनेवाले आततायीको अवश्य मारो। हे वीर! दुर्योधन भी इन बालकोंको देख दुःखी हुआ; यह अपने कुलमें धूलिके समान है॥३९॥ऐसा श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अर्जुनको समझाने लगे और अर्जुन यह जानता था कि यही मेरे पुत्रोंका मारनेवाला है, तो भी गुरुपुत्र समझकर मारनेकी इच्छा नहीं की॥४०॥ऐसे धर्मध्वजा-धारी अर्जुन, जिनके श्रीकृष्ण सरीखे मित्र और सारथी, जो अश्वत्थामाको पकड़कर अपने दलमें लाया, जहां द्रौपदी बैठी अपने मरे पुत्रोंका शोक कर रही थी, कहा—हे द्रुपदनंदिनी! तुम्हारे पुत्रोंको मारनेवाला यह उपस्थित है ॥४१॥ पशुके समान गलेमें फांसी पड़ी, निंदित कर्मसे नीचेको शिर किये, अपराधी गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देख, कृपा करके शीलस्वभाववाली द्रौपदीने नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ और अपने पति अर्जुनसे कहा, हे स्वामी! उसका बांधना मुझको सहन नहीं हो सकता, छोड़ दो, छोड़ दो, यह ब्राह्मण हमारा परम पूज्य है, इसके मारनेसे हमारे पुत्र जी नहीं सकते, यह हत्यारा अपने कर्मोका फल आप भोगेगा, जिस भांति मैं अपने मरे हुए पुत्रोंका शोक करती हूँ, इसी प्रकार इसकी कृपी माता भी पुत्रके मरनेका दुःख देखेगी ॥ ४३ ॥ और आपको इसके पिताने गोप्य मन्त्र सहित धनुर्वेद और ब्रह्मास्त्र चलाना और

बुलाना दोनों बातें सिखायीं और इसको इसके पिताने ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाया परन्तु बुलाना नहीं सिखाया, इस लिये जिस द्रोणाचार्यकी कृपासे सब अस्त्र, शस्त्र, यंत्र, मंत्र, तन्त्र तुम सीखे हो, उस गुरुपुत्र को छोड़ दो ॥ ४४ ॥ क्योंकि उन भगवान् द्रोणाचार्यने तुमको पुत्र तुल्य समझा, और उन द्रोणाचार्यकी अर्द्धांगिनी कृपी इस पुत्रके रहनेसे सती नहीं हुई, इस इकलौते अपने पुत्रका मुख देख-देख कर जीती है, हाय ! जैसे मैं अपने मरे हुए पुत्रोंका शोक करती हूँ ऐसे ही वह भी सोच करेगी ॥ ४५ ॥ इस लिये हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! आप कुरुकुलको कष्ट न दीजिये। वारंवार पूजन और वन्दन करने योग्य ब्राह्मण है ॥ ४६ ॥ पतिव्रता गौतमी इसकी माताको सोच न हो, क्योंकि जैसे मेरे मुखपर आंसू बारंबार सलिल धारासे चले जाते हैं और मैं शिर पटक-पटक रो रही हूँ, ऐसे कहीं वह पुत्रके शोकमें न रोवे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणकुल जिस पर कोप करे, चाहे वह कैसा ही राजा हो उसका वंश और परिवार क्षणमात्रमें ब्रह्मतेजसे भस्म हो जाता है ॥४८॥ सूतजी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! निष्कपट धर्मशीला शान्तस्वभाववाली द्रौपदीके वचन सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बड़ी प्रसंशा की ॥ ४९ ॥ नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, देवकीनन्दन भगवान् और जो स्त्रियाँ वहाँ प्रस्तुत थीं, द्रौपदीकी बात सुनकर सबका मन प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥ उस समय भीमसेन द्रौपदीकी बातें सुन कर बड़े क्रोधसे बोले, कि ऐसे दुष्टका मारना ही अच्छा है, क्योंकि अपने मित्र दुर्योधनका और अपना दोनोंका कुछ प्रयोजन सोते हुए बालकोंके मारनेसे नहीं निकला "तुमने अश्वत्थामाके शिर काटनेकी प्रतिज्ञा की थी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये" और तुम कहते हो कि हमको ब्रह्महत्याका कलंक लगेगा सो इसमें ब्रह्म अंश और ब्राह्मणका एक कर्म भी नहीं रहा। राजाओंका धर्म है कि ऐसे मनुष्योंको अवश्य मारना चाहिये ॥५१॥ भीमसेनकी यह बात सुन द्रौपदी और अर्जुनकी ओर देखकर श्रीकृष्ण भगवानने चतुर्भुज रूप धारण किया और मुसकाकर बोले ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् वासुदेव बोले, कि आततायी वधके योग्य है और ब्राह्मण हो तो मारना नहीं चाहिये, दोनों बातें हमने कही हैं। परन्तु ब्राह्मणके लिये देहदण्ड देना उचित नहीं। हमारी आज्ञा है कि सदा ब्राह्मणोंकी रक्षा करो, उनको धन दो, पूजा करो, ब्राह्मण कैसा ही अपराध करे, परन्तु वह वधके योग्य नहीं ॥५३॥ दौपदीके सन्मुख जो आपने प्रतिज्ञा की है उसका प्रतिपालन करो और भीमसेनकी बात मानना भी अवश्य चाहिये और राजा युधिष्ठिरका वचन भी स्वीकार करना चाहिये और मेरी भी प्रसन्नता करो और द्रौपदीकी भी प्रसन्नता करो ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि हरिके हृदयकी बात जानकर अर्जुनने अश्वत्थामाके मस्तककी मणि अपनी तलवारकी नोकसे चीर कर निकाल ली और मूँड़ उसका मुँड़वा दिया ॥५५॥ रस्सीसे जो उसके हाथ-पांव बाँधे थे और गलेमें फाँसी पड़ी थी वह खोल दी। बालोंके मुंडनसे उसकी कांतिमलिन हो गयी और तेजहीन दृष्टि आने लगा और मणि छीन अपने दलसे बाहर निकाल दिया। मुंडन करना, धन हरना और देशसे निकाल देना, यही ब्राह्मणका मारना है और देहदंड तो हत्या है ॥५६॥ सब पाण्डव शोकसे व्याकुल हो द्रौपदीको आगेकर मरे हुए पुत्रोंकी दाहक्रिया करने लगे ॥५७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे सुप्तबालघातिद्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा—अब अष्टम अध्यायकी, कथा सुनो दे कान।
नृप दुर्योधनकी क्रिया, कीन्ही वेद विधान ॥

इतनी कथा कह, सूतजी बोले कि हे ऋषीश्वरो ! अश्वत्थामाके छोड़नेके उपरान्त राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाकर, दुर्योधन आदिक वीरोंकी लोथें जो रणस्थलमें पड़ी थीं उनके पुत्र-पौत्र बन्धु उठा ले गये और विधिपूर्वक उनकी दाह क्रिया की और पुत्रोंको तिलांजलि देनेके लिये द्रौपदीको साथ ले और स्त्रियोंको आगे कर गंगा किनारे गये ॥ १ ॥ उन सबोंने जल देकर बारंबार विलाप कर श्रीगंगामहारानीके अमृत रूपी जलमें स्नान किया॥२॥ वहां श्रीकृष्णने युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, भीमादि सहित पुत्रशोकातुर कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी आदिको ॥ ३ ॥ जिनके पुत्र, बन्धु मर गये थे उन शोकाकुलोंको शान्त किया और जिसका कोई कुछ न कर सके ऐसे बलशाली कठिन कराल कालकी चाल सब जीवोंमें दिखाने लगे ॥४॥ कपटी दुर्योधनादिकोंसे छीना हुआ राज्य युधिष्ठिरको दिलवा दिया और द्रौपदीकी चोटी पकड़नेसे जिनकी अवस्था नष्ट हो गयी ऐसे खोटे राजाओंको मरवाकर ॥५॥ और उत्तम-उत्तम यज्ञकी सामग्री मँगाकर, तीन अश्वमेध यज्ञ करवाकर उनका पवित्र यश इन्द्रकी भांति दशों दिशाओंमें विस्तार ॥ ६ ॥ पाण्डु पुत्रोंसे आज्ञा लेकर सात्यकि और उद्धव सहित महापूजनीय द्वैपायन आदि विप्रोंने उनकी पूजा की ॥ ७ ॥ हे ऋषियो ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनंद कन्दकी द्वारका जानेकी इच्छा हुई और रथमें बैठ सबसे बिदा मांगी, उस समय अश्वत्थामाने अपना अपमान समझ फिर ब्रह्मास्त्र चलाया, तब वह पांच मुख बनाकर पांचों भाई पाण्डवोंकी ओरको आया और एक छोटीसी चिनगारी उसमेंसे निकली, उसमेंसे उत्तराके उदरमें अचानक आगसी भड़क उठी और हृदय जलने लगा, तब वह उस कृशानुके जलनेसे अत्यन्त व्याकुल और भयभीत हो रोती-डकारती श्रीकृष्णके पास दौड़ी ॥८॥ आकर प्रार्थना की, हे महायोगिन् ! हे दीनवत्सल! हे जगत्पते। मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। इस अग्निकी मृत्युसे इस विश्वमें आपके अतिरिक्त अभयदाता मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥ ९ ॥ हे ईश ! तप्तलोहके समान बाण सामनेसे चला आता है, हे समर्थ ! हे दीनदयालु ! चाहे मेरा दाह हो जाय परन्तु मेरा गर्भ स्थित रहे ॥१०॥ सूतजी बोले, कि भक्तवत्सल भगवान् उत्तराके दीन वचन सुन, कहने लगे कि हे उत्तरे ! अश्वत्थामाने यह समझकर ब्रह्मास्त्र चलाया है कि पांडवोंके वंशमें कोई न रहे ॥ ११ ॥ देखा तो पांच बाण पांचों पाण्डवोंके भस्म करनेके लिये सामनेसे अग्निसम प्रकाश करते चले आ रहे हैं। यह देखकर पाण्डव अपने अस्त्र ग्रहण करने लगे ॥ १२ ॥ पाण्डवोंको अपना हितकारी जान श्रीबांकेविहारी भक्तभयहारी, मुनिमनोरंजन

१. शङ्का—ब्रह्मास्त्रका ऐसा प्रताप शास्त्रमें लिखा है कि जिस समय योद्धा लोग ब्रह्मास्त्रको धनुषपर रखकर छोड़ते हैं, तो तीन लोकके भस्म करनेको छोड़ते हैं। वह धनुषसे छूटते ही त्रिलोकीको भस्म कर डालता है। परंतु उत्तराकी देहमें ब्रह्मास्त्र लगकर उसने उसी समय उत्तराको भस्म क्यों नहीं किया?

उत्तर—पतिहीन उत्तरा रात-दिन अत्यन्त भक्तिसे श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंका स्मरण करती थी, नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बही चली जाती और इस मंत्रको निरन्तर बैठी जपती रहती थी, मन्त्र—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृपालो भक्तरक्षक जप। नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्य नमो नमः ॥१॥" अर्थ—हे हरि, हे कृष्ण! हे हरि, हे कृष्ण! कृपालो! आपको नमस्कार है, आप कृपालु हैं और भक्तों के रक्षा करने वाले हैं। उसी समय अश्वत्थामाका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र उत्तराकी देहमें लगकर श्रीकृष्णके स्मरणके प्रभावसे ठण्ढा हो गया तो भी उत्तरा व्याकुल होकर कृष्ण-कृष्ण पुकारने लगी, जो ईश्वरका भजन उत्तरा न करती तो उसी समय ब्रह्मास्त्र उसको भस्म कर देता, परन्तु भजनके प्रभावसे उसका शरीर नहीं जला।

कोटि कष्टभञ्जन, देवकीनंदनने पांडवोंकी रक्षाकेलिये चक्र सुदर्शन सँभाला॥१३॥ सब जीवमात्रके अन्तर्यामी व्यापक सकल दुःखहर्ता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अपनी मायासे कौरवोंकी संतानकी वृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराका दुःख देखकर चक्र सुदर्शनको आज्ञा दी, कि तुम उत्तराके उदरमें जाकर ब्रह्मास्त्रकी गर्मीको शान्त करो और पीछेसे आपभी श्रीकृष्ण मुकुन्द मधुसूदन भक्तहितकारी अंगुष्ठमात्र तनु धारण कर उत्तराके उदरमें घुस गये और ऐसी शीतलाई फैलाई कि उसके हृदयका सब कष्ट शमन हो गया। उस समय परीक्षितने मधुसूदनकी मधुर मूर्तिको अपने हृदयमें धारण कर लिया और कहा, हे वैकुण्ठनाथ! इस दास पर आपने बड़ा अनुग्रह किया जो गर्भमें ही मुझे दर्शन दिया। धन्य है मेरा भाग्य, आपकी कृपाका कहांतक उपकार वर्णन करूं ॥१४॥ हे शौनक ऋषि ! जो कभी निष्फल नहीं होता, जिसका संसारमें कोई सामना न कर सके और जिसकी प्रबल प्रचण्ड ज्वालासे त्रिलोकीमें कोई जीवमात्र न बच सके, वह ब्रह्मास्त्र भी विष्णुके चक्र सुदर्शनके सम्मुख क्षणमात्रमें शांत हो गया ॥१५॥ सबको आश्चर्य दिखानेवाली भगवानकी लीलामें कुछ आश्चर्य मत मानो। वह अपनी प्रकाशिनी मायासे इस विश्वको रचते हैं, रक्षा करते हैं, संहार करते हैं और आप अजन्मा हैं ॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्रसे छुटे पुत्रोंको देख कुन्ती, द्रौपती समेत श्रीकृष्णचंद्रके द्वारका जानेका समाचार सुन हरिके समीप आकर ॥१७॥ कुन्ती बोली, कि हे आदिपुरुष अविनाशी ! प्रकृतिसे परे जो किसीके देखनेमें न आये, सब जीवोंके बाहर-भीतरकी जाननेवाले! तुम संसारमें व्यापक हो, तुमको बारंबार नमस्कार करती हूँ ॥१८॥ जो माया रूपी जवनिकासे दृष्ट और अदृष्ट हैं, जो इंद्रियोंसे उत्पन्न हुये ज्ञानसे नहीं जाने जाते, ऐसे अविनाशी आपको मैं मूढ़ अज्ञानिनी स्त्री क्या जानूं। मूढ़दृष्टियुक्त पुरुष तुमको नहीं देख सकते, जैसे नटकी मायाको नाटकी विद्याविहीन पुरुष नहीं जान सकते, वैसेही आप हो ॥१९॥ जीवात्माके द्वारा जो परमात्माको देखनेवाले परमहंस, मनन करनेवाले मुनि, राग द्वेष शून्य निर्मल अन्तःकरणयुक्त महात्माओंके भी जाननेमें नहीं आते, भक्तियोग विधानके निमित्त आपने अवतार धारण किया है, मैं स्त्री आपकी महिमा को कैसे जानूं ? ॥ २० ॥ वासुदेव देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार, गोविन्द, श्रीकृष्णचन्द्र, आनन्दकन्दको बारंबार नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ऐसे कमलमालाधारी कमलदललोचन, कमलसमान कोमल अमलवाले चरणको बारंबार नमस्कार है ॥२२॥ हे हृषीकेश! दुष्ट कंसके भयसे देवकी बहुत दिनतक घरमें बन्द रही, तब अकेली देवकीकी आपने रक्षाकी और मेरी भी आप समर्थने पुत्रोंसहित विपत्तिसे बारंबार रक्षाकी और अपनी माताके समान आप सदा मुझपर दया करते रहे ॥२३॥ और जिन-जिन विपत्तियोंसे रक्षाकी वह विपत्ति यह थी—भीमसेनको विषके लड्डुओंसे, लाक्षा मंदिरमें अग्निसे, पुरुष खानेवाले हिडंबादिकके दीखनेसे, खोटी सभासे, वनवासके कष्टसे, संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रसे, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे और सब ओर भी विपत्तियोंसे अनेक बार रक्षाकी ॥२४॥ हे जगद्गुरो ! जहां-तहां हमपर विपत्तियां रहे, क्योंकि उन विपत्तियोंमें मोक्षदाता तुम्हारा दर्शन होता है फिर संसारमें जन्म नहीं होता ॥ २५ ॥ सत्कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मी इनके होनेसे पुरुषको अभिमान हो जाता है। भक्त जन आठ पहर जिनके नामको भजें, उन श्रीकृष्ण, गोविन्द, नारायण, वासुदेव, का वे उच्चारण करनेके योग्य नहीं होते ॥ २६ ॥ जिनको किसी वस्तुकी कांक्षा नहीं जो ऐसे भक्त हैं,

जिनके मनसे धन गुणोंकी वृत्ति दूर हो गयी उन आत्माराम शांत मोक्षदाता को नमस्कार है ॥ २७ ॥ काल ईश्वर जिसका आदि अन्त नहीं, ऐसे प्रभु समदर्शी सबको एक भाव वर्तें, सब जीवोंमें किसी निमित्तसे परस्पर क्लेश होता है ऐसे तुमको मानती हूँ ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! मनुष्योंको एक लीलामात्र चेष्टा करो, ऐसी तुम्हारी करनेकी इच्छा है वह कोई भी नहीं जानता। जिसका कोई शत्रु मित्र नहीं, उस ईश्वरमें मनुष्योंको विषममति होती है, कि इसपर कृपा करते हैं, उसपर कृपा नहीं करते ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! सबमें तुम व्याप्त हो, ऐसे तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म आश्चर्यमय हैं, कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप धारण करते हो, यह सब कहने मात्रके हैं ॥३०॥ जिस समय यशोदाने तुम्हारे अपराध को देखकर बांधनेके लिये रस्सी ली, तब तुम आंसुओंसे आंखोंका अञ्जन बहाकर व्याकुल हो, नीचेको मुखकर भयके भावसे अलग जा बैठे और जिस समय दधिके भाजन फोड़ डाले उस समयकी जो आपकी दशा है, मुझको मोह कराती है, क्योंकि जो भय आपके सम्मुख थर-थर कांपता है, वह तुम यशोदासे आप डरो, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! ॥३१॥ पुण्यश्लोकोंके कीर्तनके लिये प्रिय यदुके वंशमें आपने अजन्मा होकर भी जन्म लिया, जैसे मलयागिरिपर चन्दन उपजता है, उसी प्रकार अजन्माने जन्म लिया, कोई-कोई ऐसा कहते हैं ॥३२॥ कोई मुनीश्वर ऐसा कहते हैं, कि वसुदेव देवकीकी चाहनासे अवतार लिया। आप जन्म कभी नहीं लेते, तो भी इस विश्वके कल्याणके लिये और देवद्रोहियोंके वधके कारण अवतार धारण करते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई ऐसे कहते हैं, कि समुद्रमें जैसे नाव डूबती हो उसकी रक्षा करे इस प्रकार महासागरसे व्याकुल पृथ्वीको निहार भूभार हरनेको ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतार लेते हैं ॥ ३४ ॥ कोई आचार्य ऐसे कहते हैं, अविद्या, काम, कर्मसे दुःखी होकर विश्वके जीव पुनः श्रवण, स्मरण करते हैं, इस कारण अवतार धारण करते हैं ॥३५॥ जो मनुष्य तुम्हारी लीलाको देखते हैं और चरित्रोंको सुनते हैं, सुनाते हैं, बारंबार स्मरण करते हैं, और यश गाते हैं और मन ही मनमें मग्न होते हैं, वे मनुष्य थोड़े ही दिनोंमें संसारके प्रवाह नाशक तुम्हारे चरणारविंदका दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भक्तअभीष्टदायक ! हे प्रभो ! निश्चय है, कि आपके दर्शनसे ही जीते हैं, आपके सुहृद हैं उनको आप अब त्यागते हो, हम तो आपकी ही कृपासे शत्रुओंके दुःखदायक हैं; हमको आपके चरणकमलके अतिरिक्त कोई वस्तु सुखदायक नहीं है ॥ ३७ ॥ यादवों सहित हमारा विना आपके दर्शनके नामरूपसे क्या है ? जैसे विना जीवके इंद्रियोंके नाम रूपसे कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे गदाधर ! जैसी अब पृथ्वी शोभायमान है, फिर ऐसी शोभा नहीं देगी, क्योंकि अब तो आपके वज्र, यव, अंकुश आदि चिन्हयुक्त चरणोंसे शोभित है, फिर इन चरणोंका अभाव हो जायगा ॥ ३९ ॥ आपके होनेसे यह देश, सुन्दर समृद्धिमान् है, सुन्दर-सुन्दर रूपकी औषधी, लतायें जहां-तहां उपस्थित हैं, वन, पर्वत, नदी ये सब आपके देखनेसे वृद्धिको प्राप्त हैं ॥ ४० ॥ इसलिये हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्ते ! अपने जनोंमें, पाण्डवोंमें, यादवोंमें यह स्नेहकी जो फांसी है इसको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुम्हारे चरणोंमें मेरी यह बुद्धि सदा लगी रहे और कहीं नहीं लगे, जैसे गंगाका प्रवाह निरन्तर समुद्रमें मिला रहता है ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसखे ! हे यादवकुलभूषण ! हे पृथ्वीद्रोहीक्षत्रियवंशनाशक ! हे अक्षीणप्रभाव !

हे गोविन्द ! हे गरुड़ध्वज ! हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! आपको बारंबार नमस्कार है ॥४३॥ सूतजी बोले; कि हे ऋषिगण ! सब महिमा जिसमें उदित है; ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनकी मधुर-मधुर पदोंसे जब कुन्तीने स्तुति की, तब भगवान परमानन्द मन्द-मन्द मुसकाये। मानो मायासे मोहका जाल डाल रहे हैं; हरिकी हँसी सब जनोंको उन्माद करती है॥४४॥ हे कुन्ती ! जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मांगो, मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करूँगा, ऐसा कह हस्तिनापुर आकर सुभद्रादि स्त्रियोंसे बूझकर अपने नगरको चलनेके लिए उपस्थित हुये। उस समय युधिष्ठिरने बहुत कहा कि, आपको यहांसे हमें छोड़कर जाना नहीं चाहिये।तुम्हारे जानेसे हम लोगोंको बड़ा दुःख होगा। तुम्हारे विना हमारी सहायता कौन करेगा। जो सुख हमको तुम्हारे चरणकमल कोमल अमलके देखनेसे मिलता था,वह सुख हमको इस राज्यके पानेसे नहीं मिलेगा।तुम्हारे चरणारविंदोंके विना देखे हमको धैर्य किस भांति होगा ? और शत्रुओंके हाथसे कौन बचायेगा ? हे नाथ ! अब हमको शत्रुओंसे जीतनेका उपाय कौन बतायेगा ? अब हम क्या करें ? ॥४५॥ ईश्वरकी चेष्टा करने वाले व्यासादिकोंने और अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजी ने अनेक इतिहासोंसे ज्ञान भी दिया तो भी शोकके कारण युधिष्ठिरका मन शान्त न हुआ ॥ ४६ ॥ उस समय राजा युधिष्ठिर अपने मरे सुहृद-बांधवोंका चिंतन कर बोले कि, हे ब्राह्मणो ! मैं उस समय अज्ञान और मोहवश हो गया था, हाय ! मुझ दुरात्माके हृदयमें ऐसा अज्ञानसमूह हो गया, कि जिस देहको श्वान-शृगाल भी नहीं खाते, मैंने उसी देहके पोषणके लिये कई अक्षौहिणी सेना मारी। अक्षौहिणीकी संख्या इस प्रकार है-(२१८७० जिसमें हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े, १०९३५० पैदल) इसको अक्षौहिणी कहते हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृद, मित्र, पिता, भ्राता, गुरु इनका मैं द्रोही हूँ, मेरा नरकसे करोड़ों वर्षतक भी उद्धार न होगा ॥ ४९ ॥ आप जो कहते हैं कि, धर्मयुद्धमें द्वेषियों के वध करनेसे प्रजापालक राजाओंको पाप नहीं होता, इस शिक्षाके वचन मेरे मनको बोध नहीं करते ॥ ५० ॥ मेरे हाथसे भ्रातृगण मारे गये हैं, उनकी स्त्रियोंके मनमें उठा हुआ तीव्र द्रोह दूर करनेको मैं कितने ही गृहस्थाश्रमके कर्म करूँ तो भी मेरा उस पापसे उद्धार नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥ जैसे कीचका सना कीचसे नहीं धोया जाता, मदिरासे मदिराका पात्र नहीं शुद्ध होता; वैसे ही हठसे एक जीवकी भी हिंसा यज्ञोंके करनेसे नहीं छूटती ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–कहौं नवम अध्यायमें, भीष्म कृष्ण संवाद ।
राज्य युधिष्ठिरको दियो, मेटो सकल विषाद ॥

सूतजी बोले, कि हे ऋषिराज ! युधिष्ठिर प्रजाके द्रोहसे भयभीत हो, सब धर्मके जानने की इच्छा करके जहां भीष्मपितामह कुरुक्षेत्रमें बाणोंकी शय्यापर पड़े थे; उनके पास आये ॥ १ ॥ और सब भाई सुवर्णभूषणभूषित घोड़ोंके रथोंपर आरूढ़ हो भीष्मपितामहके निकट पहुँचे और उसी समय व्यास, धौम्य, कृपाचार्यादिक भी वहां आ गये ॥ २ ॥

हे शौनक ! अर्जुन और द्रौपदीको अपने साथ लिये रथपर बैठे भगवान् इस प्रकार शोभित हुए जैसे यक्षों सहित कुबेर शोभा पावें ॥ ३ ॥ स्वर्गसे मानो कोई देवता गिर पड़ा है इस प्रकार पृथ्वीपर पड़े भीष्मपितामहको सब सभृत्य पाण्डव और श्रीकृष्णचन्द्रने प्रणाम किया ॥ ४ ॥ वहां हे सत्तम ! देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि भीष्मपितामहके देखनेको आये ॥५॥ पर्वत-मुनि, नारद मुनि, धौम्य, भगवान् बादरायणजी, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यसहित परशुराम, ॥ ६ ॥ वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, असित, त्रित, गृत्समद, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, सुदर्शन ॥ ७ ॥ और निर्मल शुकाचार्यादिक मुनि, शिष्योंको सङ्ग लेकर, कश्यप, अङ्गिरा आदि अनेक ऋषि, मुनि आये॥८॥सूतजी बोले—हे ब्रह्मन् ! उस समय धर्मज्ञ पितामह उन सब महात्मा पुरुषोंको देख,देशकाल विभाग जाननेवाले भीष्मपितामहने मानसिक पूजन किया ॥९॥ जगदीश्वर, हृदयनिवासी,अपनी मायासे जिन्होंने विग्रह धारण किया, सिंहासन-पर विराजमान श्रीकृष्णका भगवतके प्रभाव जाननेवाले भीष्मपितामहने पूजन किया ॥१०॥ विनय स्नेहसे मग्न समीप बैठे नेत्रोंमें जल भरकर पाण्डुपुत्रोंसे प्रीतिसनी वाणीसे भीष्मपिता-मह बोले ॥११॥ महाकष्ट है, बड़ा अन्याय है, हे धर्मपुत्रों ! ब्राह्मणधर्म भगवानके आश्रित होकर भी क्लेशसे जीते हो ॥ १२ ॥ महारथी राजापांडुके मरे पीछे बालक जिनकी सन्तान ऐसे, वधू कुन्तीने तुम्हारे लिये बड़ा क्लेश भोगा ॥१३॥ जो आपको अप्रिय है वह सब यह समयकी की हुई बात है, काल वह है कि जिसके वशमें सब लोग हैं, जैसे मेघपंक्ति पवनके वशमें रहती है ॥१४॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन गदाधारी, जहां अर्जुनसे गाण्डीव धनुष-धारी, श्रीकृष्णसे मित्र, महाशीला द्रौपदीसी पतिव्रता स्त्री वहां भी विपत्ति पड़ी ? ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर ! मुझको पूर्ण विश्वास है, कि विना परमात्माकी इच्छाके कोई कार्य नहीं होता, उसकी अपार महिमा कोई नहीं जान सकता, जिनके जाननेकी इच्छा करके बड़े-बड़े कवि लोग भी मोहको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ हे युधिष्ठिर ! यह संसारके दुःख-सुख दैवाधीन हैं, हे नाथ ! हे प्रभो ! उनके अनुवर्ती जो आप हो, तो इस अनाथ प्रजाका तुम पालन करो ॥ १७ ॥ यह साक्षात् भगवान् आद्य नारायण पुरुष हैं, मायासे लोकको मोहित कर वृष्णियोंमें छिप कर विचरते हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव जो छिपा हुआ है उसको महादेवजी जानते हैं, वा देवऋषि नारदजी और साक्षात् कपिलदेवजी जानते हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानसे जिनको तुम मामाका पुत्र, परम मित्र, सुहृदुत्तम मानते हो, जिन्होंने तुम्हारा मंत्रीपना किया, दूत बने, तुम्हारे प्यारे हितकारी बने, सारथी बने ॥२०॥ सर्वात्मा, समदृष्टिवाला, जिनके समान कोई नहीं, जिनको अहंकार नहीं, रागादिका जिनमें लेश नहीं ऐसे ईश्वरको नीच उच्च कर्म करना यह हमारे योग्य है? यह बात हमारे योग्य नहीं है, यह बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहीं है॥२१॥ हे राजा युधिष्ठिर ! यद्यपि परमेश्वरमें यह बात है, तो भी जो उनके एकान्तमें ध्यान करनेवाले भक्त हैं, उनपर दया ही करते हैं "उनकी बड़ाई और अपने भाग्यकी बड़ाई कहांतक कहूँ" देखो! जो मेरे प्राण त्यागनेके समय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर दर्शन दिया ॥ २२ ॥ भक्तिसे जिनमें मन लगाकर वाणीसे जिनका नाम आठ प्रहर कीर्तन करे और इसी ध्यानमें देह त्याग करे तो वह

१. शङ्का—भीष्मजीको ज्ञानियोंकी सभामें मुनि लोग महात्मा कहा करते थे, वह भीष्मजी मूर्खोंके समान खोटे वचन पांडवों को क्यों कहते थे ?
उत्तर—भीष्मजीने पांडवोंको बड़ा उन्मत्त, बड़ा अभिमानी जानकर उनके ऊपर कृपा करके उनका अभिमान दूर करनेके लिये ऐसे क्रूर वाक्य कहे थे।

पुरुष काम कर्मसे छूट जाता है ॥२३॥ जब तक मैं देहत्याग न करूं, तबतक प्रसन्नवदन, कमलनयन रुचिर मुखकमल, चतुर्भुज, देव देव तुम्हारा मार्ग ध्यान योग्य है, मेरे सन्मुख दर्शन देते रहो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि बाणोंकी शय्यापर पड़े भीष्मजीकी यह वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषियोंके मध्यमें अनेक धर्म बूझने लगे ॥२५॥ जो धर्म पुरुषके स्वभावके योग्य हैं। वर्णोंके धर्म, आश्रमोंके धर्म, वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग ॥२६॥ दानधर्म राजधर्म, मोक्ष धर्म, स्त्रियोंके धर्म, भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसे अलग-अलग कहे ॥२७॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके उपाय, हे मुने ! अनेक-अनेक प्रकारके इतिहास कथाके तत्ववेत्ता भीष्मजीने वर्णन किये। उस समय द्रौपदी भी वहाँ भीष्मपितामहके निकट बैठी थी । जब भीष्मपितामहने कहा, कि जो कोई धर्मात्मा इस धर्मका जाननेवाला मनुष्य बैठा हो और उस सभामें कोई अधर्मी अधर्म करना चाहे, तो धर्मात्मा पुरुषोंको उचित है कि, उस पापीको पापकर्मसे बर्जे, कदाचित् वह वर्जित करनेके योग्य न हो और सामर्थ्य भी न रखता हो, तो उस सभासे उठकर चला जाय । भीष्मपितामहका यह वचन सुनकर द्रौपदी राजा युधिष्ठिर और अर्जुन की ओर देखकर हँसी और फिर अत्यन्त लज्जित होकर कहा, देखो ! राजा दुर्योधनकी सभामें भीष्मपितामहके सम्मुख अधर्मसे मेरी दुर्दशा हुई और दुःशासनने मुझको नग्न करनेके लिये मेरा वस्त्र खींचा, राजा दुर्योधनने मुझे अपनी जंघापर बैठानेका उद्योग किया और सब सभा मेरा उपहास करनेके लिये उस समय उपस्थित थी । उस समय मेरी महादुर्दशा होनेपर मुझ पापिनीके पापी प्राण न निकले और मैं इतनेपर भी अपना मुख तुम लोगोंको दिखाती हूँ, ऐसे जीवनसे मरना ही भला तो था। परन्तु क्या करें, परमेश्वरकी इच्छासे किसी का वश नहीं चलता । मेरे भाग्यमें ऐसा ही लिखा था, यदि उस विपत्तिमें द्वारकापति मेरी पत न रखते तो सब धर्म डूब जाते । तब भीष्मपितामहने द्रौपदीको उदास और मनमलिन देखते ही उनके अन्तःकरणकी बात अपने ज्ञानसे जानकर कहा, हे पुत्री ! तुम अपने मनमें कुछ शोच-संकोच मत करो; यह धिक्कार मेरे ऊपर है, क्योंकि जिस समय यह महा अन्याय तेरे ऊपर हुआ था, उस समय मैं वहां था, परन्तु मेरे मनमें तब यह ज्ञान नहीं था । इस कारण, हे बेटी ! मेरा अपराध क्षमा कर । परमात्माकी इच्छा इसी भांति थी, जो परमेश्वरको करना होता है, उसका उसी प्रकार बानक बन जाता है, किसीकी चतुराई नहीं चलती, इसका एक कारण और है; वह मैं तुझसे कहता हूँ । कोई मनुष्य कैसा ही चतुर और ज्ञानी हो, परंतु अधर्मीकी संगतसे उसका धर्म-कर्म-ज्ञान-ध्यान सब नष्ट हो जाता है और समयपर काम नहीं आता । जो कोई अधर्मीका अन्न भोजन करता है उसकी बुद्धि उसीके समान हो जाती है । मैंने उन दिनों दुर्योधन अधर्मीका अन्न भोजन किया था, इस कारण मुझको उस समय धर्म-अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा और मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। अब मुझको एक महीना छब्बीस दिन अन्न जल छोड़े और बाणोंकी शय्यापर पड़े हो गया, इसलिये अब मेरे शरीरसे दुर्योधन दुराचारीके अन्नका विकार और उसके संगका प्रभाव निवृत्त हो गया, तो अब मुझे इस बातका विचार हुआ, कि मैंने भी अत्याचारियोंके संग रहकर अत्याचार किया । हे पुत्री! इस बातपर मुझको एक दृष्टांत महाभारतका स्मरण हुआ, सुनो–त्रेतायुगमें राजा शिबिके राज्यमें एक बड़े महात्मा परमहंस पुरुष रहते थे, वे बड़े धर्मात्मा और ज्ञानवान् थे । राजा उनकी सेवा तन मनसे करता था। उस राजाके नगरमें एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका आभूषण किसी सुनारको बनानेके लिये

दिया। उस सुनारने सुवर्ण तो बदल लिया और पीतलका गहना बनाकर ऊपरसे सोना चढ़ाकर ब्राह्मण को दे दिया। उस ब्राह्मणने विना दिखाये-भलाये वह गहना अपनी पुत्रीको पहना दिया। वह लड़की उस आभूषणको पहनकर अपनी ससुरालको चली गयी। उसका पति चतुर था, पीतलका गहना देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उस लड़कीको पिताके घर पहुँचा दिया। तब वह ब्राह्मण बहुत दुःख मानकर राजा शिबिके समीप गया और निवेदन-पत्र दे अपना सब वृत्तांत कहा। तब राजा शिबिने उस ब्राह्मणकी बात सुनकर सुनारको पकड़ मँगाया और उसको अपराधी समझकर सब उसका अन्न-धन लुटवा कर भंडारमें मँगा लिया और उसको कारागारमें भिजवा दिया। उसी अन्नका भोजन परमहंसने भी किया। उस सुनारका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और रानीका रत्न जड़ित हार चुरा लिया और अलग किसी गुप्त स्थानमें जा छिपे। अन्न-जल भी तीन दिनतक उनको नहीं प्राप्त हुआ तब तो उपवास करनेसे सुनारके अन्नका विकार उनके उदरसे जाता रहा। फिर ज्ञान हुआ तो समझा, कि मैंने बड़ा अन्याय किया। जो रानीका हार चुरा लिया, यह समझ कर राजाके सम्मुख जाकर कहा, मैंने बड़ा पाप किया। इस पापके बदले मुझको नरक भोगना पड़ेगा, इस लिये अपने कर्मका दण्ड इसी देहसे भोग लेना उचित है, जिससे परलोककी चिंता न रहे। इस कारण हे पृथ्वीनाथ ! इस पापके बदलेमें मेरे दोनों हाथ कटवा दीजिये। मैं अपने अधर्मका दण्ड इसी जन्ममें भोग लूं। न जाने परलोकमें क्या दशा होगी। यह बात सुनते ही राजाने उदास होकर पण्डित और ज्ञानियोंको बुलाकर पूछा, कि क्या कारण है ? जो परमहंसका चित्त उस दिन ऐसा बदल गया; कि इन्होंने हार चुराया और अब आप ही उस हारको लेकर मेरे पास आये और कहते हैं कि मेरे हाथ कटवा दो। ब्राह्मणोंने अपनी विद्याके विचारसे कहा, कि हे भूपालमणि ! जिस दिन परमहंसने चोरी की थी उस दिन किसी पापीका अन्न खानेसे परमहंसकी यह गति हो गयी। राजाने पूछा तो विदित हुआ कि उसी सुनार अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसकी बुद्धि बदल गयी थी। सुनारको बुलाकर पूछा कि, तूने पीतलपर सोना कैसे चढ़ाया ? उसने कहा कि एक घातकने किसीके बालकको मारकर उसका गहना मेरे हाथ बेचा, उस धान्यके खानेसे मैं मतिहीन हो गया ! हे द्रौपदी ! एक दिन अधर्मीका अन्न खानेसे परमहंसका ज्ञान नष्ट हो गया; जो उसने चोरी की और मैं तो राजा दुर्योधन अधर्मीका सदा अन्न भोजन करता था और उसके संग रहता था। मुझे उस समय इतना ज्ञान नहीं हुआ, जो दुर्योधनको तेरे ऊपर अन्याय करनेसे उसे वर्जित करता और वह न मानता; यह सब मेरा ही अपराध है, क्षमा कर यह कहकर भगवान् वासुदेवकी मनोहर मूर्तिको हृदयमें धारण कर नेत्र बंद कर लिये ॥२८॥ उसी समय काल आकर प्राप्त हुआ, जिसको अपनी इच्छासे मोक्ष पाना हो उसके लिये यह उत्तरायण काल है ॥२९॥ युद्धमें सदा सबके समीप रहनेवाले, सहस्रों मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले भीष्मपितामह सहस्र अर्थ कहनेवाली वाणीसे आदि पुरुष भगवान पीताम्बरधारी चतुर्भुजके सन्मुख स्थित हो कृष्ण-जीमें सब संग छोड़ मन लगाया ॥ ३० ॥ बुद्धि शुद्ध और मन स्थिर करनेसे उनके पाप नष्ट हो गये और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आयुधोंके लगनेकी व्यथा दूर हो गयी और सब इंद्रियोंकी वृत्तियोंका भ्रम भी उनका दूर हो गया। भीष्मजी देह त्यागनेके समय जनार्दन भगवानकी स्तुति करके बोले ॥३१॥ हे यादवकुलश्रेष्ठ। महामहिमायुक्तस्वरूपभूत परमानन्दको प्राप्त किसी

समय विहार करनेके निमित्त योगमायाके आश्रित हो देहधारण करते हो, जिससे संसार कृतार्थ हो ऐसे भगवान् षड्गुण ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें मैंने निष्काम बुद्धि समर्पण की॥३२॥ त्रिलोकीमें सुन्दर, तमालवत् नीलवर्ण, सूर्यकी किरणसम प्रकाशमान तनुपर उज्ज्वल वस्त्र धारण किये, मुखारविन्द सघन समूहवत् अलकें चारों ओरको छिटक रहीं; ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र यदुनायकमें निष्काम मेरी प्रीति हो ॥३३॥ युद्धमें घोड़ोंके खुरोंकी धूलसे भरी हुई, इधर-उधरको बिखरी हुई अलकें और श्रमसे जिस मुखपर पसीना ऐसे आ रहा था जैसे श्याम कमलके फूलपर ओसके कण चमकते हैं। अपने महाकठिन पैने बाणोंसे जिनकी देह मैंने भेदन कर डाली। ऐसे शोभायमान कवचधारी श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी बुद्धि लगे ॥३४॥ अर्जुनका वचन सुन शीघ्र अपने रथको कौरवोंकी सेनामें खड़ा करके शत्रुओंके सेनापतियोंकी आयु छीनकर यह भीष्म, यह द्रोण, यह कर्ण, ऐसे उँगली दिखानेके बहानेसे सबकी आयु खींचकर अर्जुनकी जय करायी। ऐसे पार्थसखा श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी प्रीति हो ॥३५॥ दूर खड़ी सेनाका मुख देख, मोहित खिन्न अर्जुनकी कुमतिको अध्यात्मविद्या (गीताशास्त्र) के उपदेशसे दूर किया, ऐसे श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसी रहे ॥३६॥ हे नाथ! आप अपने भक्तोंका ऐसा वचन प्रतिपालन करते हैं, कि जब महाभारत भी नहीं हुआ था तो आपने प्रतिज्ञा की थी, कि हम विना शस्त्र धारण किये केवल पांडवोंकी सहायता करेंगे और इधर मैंने भी प्रण किया था कि जो मैं भीष्मपितामह हूँ तो आपको संग्राममें व्याकुल करके तुम्हारी प्रतिज्ञा छुड़ाकर एक वार आपको शस्त्र ग्रहण करा दूँगा। आपने भक्तभावकी रीतिसे सोचा कि मेरी प्रतिज्ञा छूट जाय तो छूट जाय परन्तु मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा नहीं छूटे, क्योंकि जब भक्तकी प्रतिज्ञा छूट गयी तो फिर कोई भक्त पूर्ण प्रतिज्ञा नहीं करेगा और भक्ति संसारसे उठ जायगी। यह समझकर अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी और मैंने अपना प्रण पूरा करनेके लिये अर्जुनके रथका चक्र तोड़कर घोड़ोंका घात किया और उसके रथकी ध्वजा तोड़ धनुषको काटकर गिरा दिया। तब आप अत्यन्त क्रोधित होकर उसी रथका चक्र उठाकर मेरे मारनेके लिये मेरे पीछे दौड़े। उस समय दुपट्टेसे कैसे शोभायमान दिखाई देते थे जैसे श्यामघटामें चपला चमक जाती है। जब आप दौड़ते दौड़ते व्याकुल हो गये उस समय आपका पीताम्बर पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसके गिरनेका यह अभिप्राय था,कि जब आपने अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर शस्त्र धारण किया,तब पृथ्वीका हृदय कांपने लगा, कि श्रीकृष्ण भगवान्ने तो भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें अवतार लिया है, कहीं वे भी अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ दें। मेदिनीके मनका भाव जानकर उसका संशय मिटानेके लिये अपना उपर्णा धरणीपर गिरा दिया और यह कहा कि,हे वसुधे!धैर्य धारण कर, धैर्य धारण कर, शोकाकुल मत हो। मैंने अपने भक्तकी प्रतिज्ञा करनेके लिये अपना प्रण छोड़ा परन्तु तेरा भार अवश्य उतारूँगा। तू किसी प्रकारका संदेह मत कर। हे वसुमती!जब तेरे मनमें विस्मय हुआ तब मैंने उसी समय तुझको धैर्य देनेके लिये अपना पीताम्बर तुझको सौंपा, कि जबतक तेरा भार न उतारूँ तबतक मेरा उपर्णा अपने पास रखा रहने दे। ऐसे पृथ्वीको धैर्य देनेवाले मदन मोहनमें मेरी रुचि हो॥३७॥मुझ आततायीके तीक्ष्ण बाणोंसे आपका कवच भग्न हो शरीरसे रुधिर निकलने लगा, उस समय हठपूर्वक मेरे सम्मुख मुझे मारनेको आये "और मैं चाहता था कि पाण्डवोंकी सब सेनाको मारकर भगा दूँ, तब तुम मेरे रथके चारों ओर आकर

अनेक-अनेक प्रकारके रूप आपने मुझको दिखाये थे, जिन रूपोंको देख-देख कर मेरे मनमें भ्रांति होती थी। इनमें कौनसा रूप सत्य है, कौनसा मायाका है ? तुम बाणोंकी चोट सहकर मेरी सराहना करते थे, जब मैं उन बातोंको स्मरण करता हूँ तो आपके सम्मुख मेरा मुख नहीं होता। आपने मेरे अपराधपर कुछ ध्यान नहीं किया और मरते समय मुझको आकर दर्शन दिया" हे घनश्याम ! यही श्यामस्वरूप मेरे नेत्रोंमें बसा रहे ॥३८॥ अर्जुनके रथरूप कुटुम्बमें कोड़ा लिये, घोड़ोंकी पचरंगी बागडोर पकड़े सारथीपनकी शोभा धारण किये, दर्शनीय भगवानमें मुझ मरणशीलकी प्रीति हो, जो आपके दर्शन करते-करते युद्धमें मरे, वे आपके स्वरूपको प्राप्त हुए ॥३९॥ ललित मतिविलास, मनोहर हास्ययुक्त नम्र विलोकन, श्रीकृष्णके चरित्रोंका अनुष्ठान करनेवाली मदमत्त गोपवधू भी जिनके स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ४० ॥ राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनिगण नृपतिसमूहके समक्ष, जिनकी सबसे पहले पूजा हुई आज मेरा धन्य भाग्य है, कि वे दर्शनयोग्य श्रीकृष्णचन्द्र मेरी दृष्टिके सन्मुख आकर प्रकट हुए ॥४१॥ अपने रचे हुए शरीरधारियोंके हृदयमें विराजमान, जन्मरहित, मोहरहितकी मैं शरणागत हूँ। जैसे सब प्राणियोंकी दृष्टियोंमें एक सूर्य अनेक घटोंमें दिखाई देता है, ऐसे एक ईश्वर जीवोंके शरीरके भेदसे अनेक दृष्टि आते हैं ॥४२॥ सूतजी बोले, कि हे ऋषिगण ! भगवान् कृष्णमें मन-वाणी-दृष्टिकी वृत्तियोंसहित जीवात्माको लगाकर भीष्मजी अंतःश्वासी उपरामको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ भीष्मजीको उपाधि रहित ब्रह्ममें लीन जानकर, जैसे सन्ध्या समय सब पक्षी चुप हो जाते हैं, ऐसे सब चुप हो गये ॥४४॥ देवता मनुष्योंके बजाये हुए बाजे बजे, राजाओंमें साधु प्रशंसा करने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥४५॥ हे शौनकमुनि ! भीष्मजीकी दाह क्रिया कर युधिष्ठिर एक घड़ी शोकसे अपने मनमें बहुत दुःखी हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पाण्डवोंको बहुत समझाया, कि जैसी मृत्यु संसारमें भीष्मजीकी हुई है, ऐसी मृत्यु दूसरेकी होनी बहुत दुर्लभ है, संसारमें जिसने शरीर धारण किया वह अवश्य एक दिन कालकवल होगा। इसलिये इनके मरनेका सोच करना व्यर्थ है, जो कोई संसारमें नरतनु पाकर माया मोहमें लिप्त रहे और परमात्मासे विमुख रहकर कलह क्लेशमें अपने दिन व्यतीत करे और अपना तनु त्याग करे उसके लिये शोक करना अवश्य चाहिये क्योंकि वह नरकमें वास कर कष्ट भोगेगा और भीष्मपितामहने तो संसारमें भक्तिपूर्वक धर्मसंयुक्त रहकर तनुत्याग किया। इस लिये इनके मरनेका क्या शोकसंताप है ? आप तो चतुर और ज्ञानी हैं, अधिक समझाना तो मूर्खोंको चाहिये यह बात सुनकर युधिष्ठिरने अपने मनको धैर्य दिया" ॥ ४६ ॥ उस समय सब मुनियोंने प्रसन्न होकर गुप्त नामोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति की और श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्ति हृदयमें धारण कर सब अपने-अपने आश्रमोंको गये ॥ ४७ ॥ तब श्रीयदुनाथसमेत युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र सहित तपस्विनी गान्धारीको शान्त किया ॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्र और वासुदेवने राजा युधिष्ठिरकी सराहना की और समर्थ राजा युधिष्ठिर प्रसन्न होकर धर्म कर्मसे अपने परदादाकी राजगद्दीपर बैठकर धर्मराज्य करने लगे ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे भीष्मस्तुति-युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा—कियो दशम अध्यायमें, धर्मराजसुत राज।
गमन द्वारकाको कियो, कृष्णचन्द्र महराज॥

इतनी कथा सुनकर शौनक मुनि बोले कि, हे सूतजी महाराज! जो अपनेसे अधिक राज्यकी इच्छा करते थे, उन अन्यायी दुराचारियोंको मारकर, धर्म-धारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयों समेत वैरागी होकर कैसे अपना समय व्यतीत किया, उसे वर्णन कीजिये ॥१॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकमुनि! कुरुवंशरूप दावानलसे जले वंशको श्रीकृष्णचन्द्रने फिर अपनी कृपादृष्टिसे उत्पन्न कर हस्तिनापुरके राज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ और राजा युधिष्ठिर, भीष्मपितामह और श्रीयदुनाथ भगवानका परमज्ञान सुनकर, सब भ्रम और भटकना छोड़ श्रीकृष्णाश्रयसे सब भाइयों समेत समुद्रपर्यन्त पृथ्वी और प्रजाका इन्द्रके समान पालन करने लगे ॥३॥ जब इच्छा होती थी तब मेघ बरसता था सब पृथ्वी कामधेनु हो रही थी, गौओंसे ब्रज पूरित हो रहा था ॥ ४ ॥ नदी, समुद्र, पर्वत, वन, वनस्पति, लता समेत सब औषधियाँ सब ऋतुमें इच्छापूर्वक फूलती-फलती थीं ॥ ५ ॥ और राजा युधिष्ठिरके राज्यमें किसी जीवको किसी समय मानसी व्यथा, रोग, शीत, उष्णादिक, अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत दुःख नहीं होते थे ॥ ६ ॥ श्रीद्वारकानाथ देवकीनन्दन अपने मित्र पाण्डवोंका दुःख दूर करनेके लिये और भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ दिनों तक हस्तिनापुरमें वास करके पश्चात् युधिष्ठिरसे सम्मति कर और आज्ञा ले भेंट प्रणाम कर, वहांके पुरुषोंसे यथायोग्य मिल प्रणामको प्राप्त हो श्री भगवान वासुदेव रथपर बैठे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु (जो धृतराष्ट्रके वीर्यसे वेश्यासे जन्मा था) कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, ॥ ९ ॥ भीम, धौम्यऋषि और मत्स्यसुता—उत्तरा आदि मोहके वश हो, मदनमोहन ब्रजनाथ, बाँकेबिहारीके वियोग को न सह सके। मत्स्यसुता सत्यवतीका भी नाम है ॥ १० ॥ महात्मा पुरुषोंके मुखसे किसी बुद्धिमानने एक बार भी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशको सुना, उसने उसी समय सब लोभ, मोह, स्त्री, पुत्रादिकोंकी प्रीति तजी, परन्तु उस कृष्णगुण गानेवालेके सत्संगको नहीं त्याग सकता, तो साक्षात् परमेश्वर परस्पर दर्शन, स्पर्शन, संभाषण और स्थानमें सोना बैठना भोजन नित्यकर्म करनेवाले युधिष्ठिरादिक उस बिरहको कैसे सह सकें ? ॥ ११ ॥ जिन युधिष्ठिरादिकोंकी श्रीकृष्णमें अलौकिक प्रीति, नित्यप्रति आना-जाना, हँसना, बोलना, देखनाभालना, चलना, फिरना, शयन, आसन रहता था, उनसे उनका विरह किस प्रकार सहा जाय ? ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णभगवानमें जिनके मन लग रहे हैं और नेत्रोंके पलक पलभरको नहीं गिरते, इकटक दर्शन करते ही रहते थे, वे सब अतिस्नेहके कारण प्रेमके जालमें बँधे हुये श्रीकृष्णकी पूजा करनेके लिये सामग्री लेनेको जहां तहां चले ॥१३॥ देवकीसुतकी यात्रामें किसी प्रकारका अमंगल न हो, इसलिये बांधवोंकी स्त्रियाँ उत्कण्ठा वश आँखोंके आँसू आँखोंमें ही रोके ॥ १४ ॥ और जहाँ-तहाँ मृदंग, शंख, वीणा, भेरी, गोमुख, धुंधरी, घण्टा, दुन्दुभी, बाजे बड़े गम्भीर शब्दोंसे बज रहे थे॥१५॥और कौरवोंकी स्त्रियाँ छज्जोंपर बैठी हुई श्रीमदनमोहन बाँकेबिहारीकी प्रीतिकेजालमें फँसी, लज्जाकी मारी मनही मन मुसकायीं, तिरछी चितवनसे देखती थीं और जय

१. शंका—जो कुरुवंशियोंकी विधवा स्त्रियां थीं, उन्होंने प्रेम और लज्जासे मुसकाकर श्रीकृष्णको क्यों देखा ? पतिव्रता स्त्री अपने पतिको प्रीतिसे, लज्जासे अथवा मुसकानसे देखती हैं और जारिणी स्त्री व्यभिचारी पुरुषको विषयवासनासे देखती हैं। कौरवोंकी स्त्रियां सब बड़े-बड़े-

जय शब्द कर श्रीकृष्णपर सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा करती थीं ॥१६॥ महाहर्षसे श्रीकृष्णजीके ऊपर श्वेतछत्र अर्जुन लगाये खड़े थे, जिसमें सुन्दर रत्नोंकी डंडी और मोतियोंके गुच्छे लटक रहे थे ॥१७॥ परम अद्भुत पंखा उद्धव और सात्यकी हाथमें लिये पवन कर रहे थे और पुरुषोत्तम पर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होती चली जाती थी । उस समयकी शोभाका कौन वर्णन कर सके ? ॥ १८ ॥ निर्गुण-सगुण परमेश्वरके जो अनेक-अनेक रूपके योग्य सत्य आशीर्वाद जहां-तहां ब्राह्मणोंके मुखसे सुनाई पड़ते थे ॥ १९ ॥ मन लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रियोंके परस्पर कहे मनोहर वचन मनको मोह लेते थे ॥२०॥ उत्तम आत्मामें निश्चय करके पुरातन एक पुरुष ये हुये, समस्त जगत् जिसकी देहमें, गुणोंमें आगे जिनका जन्म, निशामें जो शक्ति उस समय आँखे न मीचें वही ये पूर्ण परमात्मा हैं ॥२१॥ अपने वीर्यसे प्रेरित सबकी जिलाने रचनेवाली प्रकृतिको नामरूप जिस आत्मा व्यापकमें नहीं हो सके उसमें रूप, नाम विधान करनेको, सब शिक्षाशास्त्र करनेवाले ही फिर मायामें स्थिर हुये ॥ २२ ॥ निश्चय ये परमेश्वर हैं, जिनके पदको बड़े-बड़े जितेन्द्रिय विवेकी देखते हैं, वही ये श्रीव्रजानन्द सब जीवात्माओंके शुद्ध करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ ये ईश्वर वे हैं, कि जिनकी सत्कथा सखाओंने और वेदमें गुह्य नामोंसे इनकी एकान्तकी बातें जाननेवालोंने कही गायी हैं, कि ये एक परमात्मा अपनी लीलासे संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते हैं, परन्तु इस विश्वमें आसक्त नहीं होते ॥२४॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा पृथ्वीपर अधर्मसे राज्य करते हैं, तब परब्रह्म परमात्मा सात्त्विकरूप धरकर निःसन्देह संसारस्थितिके लिये युग-युगमें अपना रूप धारणकर ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ वार्ता, भक्तोंपर कृपा आदि अद्भुत कर्म करते हैं ॥२५॥ यह यादवकुल अत्यन्त श्लाघा करने योग्य है, यह मधुवन अत्यन्त पुनीत स्थान है, जिसमें सब जगत्के स्वामी श्रीपतिने जन्म ले और चल फिरकर पूजनके योग्य किया ॥ २६ ॥ यह द्वारिकापुरी पुण्य यशकर्त्री और स्वर्गके यशका तिरस्कार करनेवाली है, जिसमें नित्य अनु-

---

–कुलकी, बड़ी पतिव्रता और शुद्ध धर्म कर्म करनेवाली, ये किसीपूर्व जन्मके पापसे विधवा होगयीं तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु श्रीकृष्ण परपुरुष हैं उनको प्रेमसे, लज्जासे, मृदु मुसकानसे क्यों देखा ? जो कभी कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको भगवान जानकर प्रेमसे, लज्जासे, मृदु मुसकानसे देखा तो भी अयोग्य है। भगवान ही जान लिया था कृष्णको तो भी हाथ जोड़कर नमस्कार करना चाहिये था। अपनी दीनता दिखाकर कृष्णके सम्मुख खड़ी हो नेत्रोंसे उनके चरणकमलको धोकर उनका चरणामृत लेतीं। इस प्रकारसे नमस्कार करना योग्य था, फिर यह क्यों नहीं किया ?

उत्तर––कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने अपने-अपने मनमें विचार किया, कि हमारे सबके पतियोंको पांडवोंने युद्धमें मारा है अब हम सब अनाथ हो रही हैं, इस लिये हमारी रक्षा करनेवाले एक भगवान् हैं, इसलिये कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने प्रेमसे श्रीकृष्णको देखा और कौरव पांडवोंका युद्ध जब नहीं हुआ था तब श्रीकृष्ण अनेक बार हस्तिनापुरको आयें और हस्तिनापुरमें जो-जो कौरवोंकी सभायें थीं, उनमें बैठे और कौरवोंने बारम्बार श्रीकृष्णका अनादर किया। इस बातको कौरवोंकी स्त्रियां भली भाँति जानती थीं कि हमारे पतियोंने श्रीकृष्णका निरादर किया है ऐसा स्त्रियोंने जान भी लिया तो भी कामदेवसे उन्मत्त हो रही थीं। स्त्रियां भगवानका आदर-सम्मान कभी न करतीं परन्तु विषय सुखके अभिमानसे मतवाली हो रही थीं। उन भगवानके अनादरको कुरुवंशियोंकी स्त्रियोंने स्मरण करके श्रीकृष्णके संग पहले तो उन्मत होकर बुराई कीं, फिर उसी कर्मको करके बहुत लज्जाको प्राप्त होकर मुख नीचे करके अत्यन्त लज्जासे देखा। क्षत्रियोंके कुलमें जो स्त्रियाँ तथा पुरुष उत्पन्न होते हैं उनका स्वभाव महाकठिन होता है; सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी अपने शत्रुको नहीं भूलते, जिसने आपको दुःख दिया है उससे बदला लेनेके लिये, मरते समय अपनी संतानसे कह जाते हैं कि, शत्रुसे बदला अवश्य लेना। तब अपने प्राण छोड़ते हैं। कौरवोंकी स्त्रियां अपने-अपने स्वभावमें चतुर थीं, इस कठिन स्वभावसे कौरवोंकी स्त्रियोंने श्रीकृष्णको मुसकाकर देखा। कौरवोंकी स्त्रियोंने विचार किया कि जिस प्रकारसे हम सबको इन कृष्णने पतिहीन करके हमपर विपत्ति डाली है ऐसे ही इनकी भी सब स्त्रियां थोड़े ही दिनों में इनसे हीन हो जायेंगी, इस लिये कौरवोंकी स्त्रियोंनें मन्दहास्यसे कृष्णको देखा था॥

गृहीत दृष्टि और मधुर मुसकानयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रजीको उनकी प्रजा देखती है ॥ २७ ॥ हे सखी ! जिन स्त्रियोंका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, निश्चय उन स्त्रियोंने जन्मान्तरमें व्रत, स्नान, हवनसे ईश्वरका पूजन किया है और जिनके अधरामृतमें अपने अंतःकरण लगाकर ब्रज बाला बारंबार मोहित होती थीं ॥ २८ ॥ शिशुपाल बड़े-बड़े नामी राजाओंको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयंवरसे सुन्दरियोंको हर लाये और प्रद्युम्न, साम्ब अनिरुद्धादि पुत्र जिनसे उत्पन्न हुए और भौमासुरको मारकर जो कई सहस्र स्त्री लाये, उन सबके धन्य भाग्य हैं ! ॥ २९ ॥ यह परम स्त्रीभावको ही प्राप्त थीं, क्योंकि जिनमें चतुराई नहीं, शोक संताप नहीं परन्तु देवी शोभित हुई यह सब व्रत पूजनका प्रभाव है, जिन्होंने हृदयग्राहिणी मधुर वाणियोंसे ब्रजराजको मोहित कर लिया। कभी उनके घरसे बाहर नहीं निकलते थे ॥ ३० ॥ वे पुरकी स्त्रियाँ इस प्रकारसे बात करती थीं और ब्रजचंद उनकी ओर देख-देख आनन्दित होकर मुसकाते चले जाते थे ॥३१॥ राजा युधिष्ठिरने भगवानको अकेला जान शत्रुओंकी शंकासे अपने स्नेहसे रक्षाके लिये थोड़ीसी सेना उनके साथ भेज दी, जिसमें हाथी, घोड़, रथ, पालकी, पैदल थे ॥ ३२ ॥ और आप चारों भाई बहुतसे कुरुवंशियों समेत पहुँचानेको संग चले जब प्रीतिकी बातें करते-करते बहुत दूर निकल गये तब विरहातुर कौरवोंको श्रीकृष्णजीने हस्तिनापुरको लौटा दिया और आप द्वारकाजीको चल दिये ॥३३॥ कुरु, जांगल, पांचाल शूरसेन, यमुना किनारेके देश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, सरस्वतीतीरके देश ॥ ३४ ॥ मारवाड़से बड़े सौवीर, आभीर देश और अन्य देशोंमें होते हुए आनर्त देशमेंजो द्वारकाके समीप है पहुँचे और घोड़ थक जानेके कारण वहीं विश्राम किया ॥ ३५ ॥ जहां-जहां सूर्यास्त होनेपर श्रीकृष्णजीने विश्राम किया वहां-वहांके बासी श्रीकृष्णजीके निकट आ आकर भेंट देकर पूजन करते थे और परस्पर कहते थे कि, यही आदि पुरुष अविनाशी भूमिका भार उतारनेके लिये संसारमें जन्म ले अपने भक्तोंको सुख देते हैं, जिनका दर्शन शिव, विरंचि नारदादि देवताओंके ध्यानमें नहीं आता, उनका दर्शन हम लोगोंको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ। धन्य भाग्य उन वृन्दावनके ग्वाल ग्वालिनियोंके हैं, जिन्होंने ब्रजमें रहकर दिन-रात इनके साथ आहार, व्यवहार, रास-विलास किया और इन्होंने ही कौरवपांडवोंमें महाभारत कराकर कुरुवंश विध्वंस करा दिया। कोई यह कहते थे कि यदुवंशियोंने पूर्वजन्ममें बड़ा उग्र तप किया होगा, जिसके प्रतापसे इनका अपना हित और सम्बन्धी समझ दिन-रात संग रहकर आनन्द भोगा और उनको नाना प्रकारका सुख दिया और उन नगर निवासियोंकी नारी बांकेविहारीकी बाँकी-झांकी पर मतवाली हो परस्पर कहती थीं, आली ! इस सांवली सूरत मोहिनी मूरतने तो हमारे ऊपर ऐसी मोहिनी डाली कि न खानेकी, न पीनेकी, न सोनेकी, न जागनेकी, क्या करें, क्या न करें किसी प्रकार मनको धैर्य नहीं होता। दूसरी सखी बोली अरी! तेरी तो एकही दिनमें यह गति हो गयी, वे ब्रजनारियां विचारी कैसे जीती होंगी, जिन्होंने जन्मभर इनके ही संग रास-विलास किया और सारी अवस्था इन्हींके नेग लगा दी उनकी क्या गति होगी?हम तो इनकी तिरछी चितवन देख तिरछी हो गयीं। एक सखी बोली आली!जो ये वनमाली सदा यहां रहें तो हमारा मनोरथ पूर्ण हो। एक बोली, अरी ! हमारे ऐसे भाग्य कहां हैं ? एक बोली, प्यारी ! अभीसे तो हारी-हारी बातें मत कर, अभी तो कुंजबिहारी तुम्हारी आँखोंके आगे ही फिर रहे हैं। एक बोली-अरी ! कहीं इनके फंदेमें अपना मन मत फँसा देना,

ये बड़े कपटी हैं, जो अपनी प्यारी राधा ही को वनमें अकेली छोड़कर चले गये तो और किसीके होंगे। सखी ! तू नहीं जानती, ये सच्ची प्रीतिके प्रेमी हैं द्रौपदीकी कैसी लाज रखी, गजको ग्राहसे कैसे बचाया, रुक्मिणीके बुलानेसे कैसे पहुँचे, प्रह्लादके हेतु खंभ फाड़कर कैसे प्रकटे, भारतमें भारतीके अण्डे कैसे बचाये इस प्रकार सब स्त्री-पुरुष हरिके गुण गा-गाकर आनन्दित होते थे। हे शौनकऋषि ! ऐसे ही चलते-चलते श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त देशमें पहुँचे जो द्वारकाके समीप ही है। वहां घोड़े थक गये और उसी स्थानपर द्वारकाधीशने वास किया ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणेउपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे श्रीकृष्णस्यानर्तदेशागमनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–एकादश अध्यायमें, कृष्ण द्वारकाचन्द ।
जाय द्वारकापुरीमें, दियो सबहि आनन्द ॥

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने समृद्ध आनर्त देशसे चल द्वारकाके निकट जाकर यदुवंशियोंका विषाद शान्त करनेको पांचजन्य शंख बजाया ॥१॥ जिसका श्वेत उदर श्रीभगवानके अधरकी ललायीसे लाल हो गया। कमल सदृश हस्त सम्पुटमें धरा हुआ ऐसा शोभायमान दिखायी देता था, जैसे लाल कमलके समूहमें राजहंस शोभित होता है ॥ २ ॥ जगत्के भय नाश करनेवाले शंखकी ध्वनि सुन, कृष्णदर्शनाभिलाषी प्रजा कृष्णचन्द्रका आगमन जान सम्मुख चली ॥ ३ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रको बड़े आदर-सत्कारसे भेंट दी। जैसे कोई सूर्यनारायणको दीपदान देता है, भगवान् तो आप आत्माराम पूर्णकाम हैं, निजलाभसे नित्य प्रसन्न हैं ॥४॥ प्रसन्न वदनसे अत्यन्त हर्षित हो गद्गदकण्ठसे मधुर वचन बोले जैसे सुहृद रक्षक पितासे बालक मीठे बोल बोलते हैं ॥५॥ हे नाथ ! ब्रह्मा, शिव, सनकादिक देवता इन्द्रसे नमस्कृत कुशलकी इच्छावालोंको परम आश्रयदायक, जहां कालका सामर्थ्य नहीं, ऐसे आपके चरणकमलको सदा नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ हे विश्वभावन ! हम सबकी उत्पत्ति आपसे ही है, तुम ही माता हो, भ्राता हो, तुम ही पति हो, तुम ही पिता हो, तुम ही सद्गुरु हो, तुम ही

---

१. शंका—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका गुरु एकही होता है, चाहे दुष्ट हो, चाहे महात्मा हो। गुरु नारायणके समान है। तीन लोकमें ब्रह्माकी बनाई हुई सब वस्तु अनेक प्रकारकी दीख पड़ती हैं, परन्तु गुरुका बहुत होना कभी भी कोई प्राणी नहीं देखता। जो कोई सज्जन ऐसा कहे कि दत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये तो यह बात सत्य है परन्तु दत्तात्रेयने चौबीस का लक्षण ग्रहण किया। २४ जनोंने दत्तात्रेयको मन्त्र उपदेश नहीं किया। उपदेश देनेवालेको शास्त्रमें गुरु कहते हैं। उपदेश देनेवाला दत्तात्रेयका एक गुरु दत्तात्रेयका मन था। ऋषियोंने भी कहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको एक ही गुरु करना चाहिये। लोक शास्त्र तो गुरु एक ही होना कहता है तो फिर द्वारकावासी प्रजाने श्रीकृष्णको क्यों कहा कि आप हमारे सबके सद्गुरु हैं। इस बातसे ऐसा भी जाना जाता है कि असत् गुरु भी होते होंगे जैसे पाप, पुण्य, जन्म, मरण, हानि, लाभ, यश, अपयश, झूठ, सत्य, रात, दिन आदिकी जोड़ी है, उसी प्रकार सत्-असत्की जोड़ी है?

उत्तर—त्रिलोकीके चर-अचरके लिये कृष्णभगवान्ने अवतार नहीं लिया था। जब देवताओंको राक्षसोंने बहुत ही दुःख दिया तब विष्णुभगवान्ने कुछ दिनोपरान्त श्रीकृष्णअवतार धारणकर चर-अचरकी रक्षाकी और यदुवंशियोंकी रक्षा तो सब प्रकारसे निशि-दिन करते ही रहे और द्वारकावासी मनुष्योंको गर्गमुनि सदा यही शिक्षा करते रहे कि तुम सब श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म जानो। इनसे अधिक और कोई दूसरा देवता त्रिलोकीमें नहीं है। इस प्रकार गर्गमुनिके कहे हुए वाक्योंको सब प्रजाने अपने-अपने हृदयमें बसा लिया और त्रिलोकीके सब पदार्थोंको हृदयसे त्याग दिया और वेदशास्त्रके अनुसार चलने लगे। यह कर्म करना योग्य है यह करना अयोग्य है ऐसा विचार शुद्धचित हो सब प्रजागण अपने मनमें यह जानने लगे कि जो-जो वस्तु संसारमें ब्रह्माने रची है सब श्रीकृष्णमय है। उन सबको कृष्णरूप जानते थे। त्रिलोकीके चर-अचरको कृष्णरूप जानकर आप हम सबके सद्गुरु हो, ऐसे वाक्य द्वारकावासी प्रजागण कहते थे ॥

हमारे परमदेवता हो, जो हम सब तुम्हारी सेवा करके कृतार्थ होते हैं ॥ ७ ॥ स्वर्गवासी देवताओंका तो दूरसे ही दर्शन होता है और जिसमें सब प्रकारकी सुन्दरता और प्रेमभरी मुसकान, मनोहर वचन, बांकी चितवन सहित आपके मुखको सदा देखते हैं, इस कारण हम ऐश्वर्यवान् हैं ॥ ८ ॥ हे अम्बुजाक्ष ! हे अच्युत ! जब आप हस्तिनापुरको अथवा मथुराको अपने इष्ट मित्रोंको देखनेको पधारते हो वह समय करोड़ वर्षके समान हमको व्यतीत होता है, जैसे सूर्यके विना नेत्रोंसे कुछ नहीं दीखता, ऐसे हमारी गति हो जाती है ॥९॥ प्रजाकी मधुर-मधुर वाणी सुनकर श्रीकृष्ण भक्तवत्सलने आनन्दसहित सबको अनुग्रहकी दृष्टिसे देख-देख कुशल-क्षेम बूझते-बूझते द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ अपने समान जिनमें बल ऐसे मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह,कुकुर, अन्धक, वृष्णिवंशोत्पन्न यादव जैसे भोगवतीकी नाग रक्षा करते हैं, उसी भांति वे द्वारकापुरीकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ११ ॥ जिस द्वारकापुरीमें सब दिन वसंत ही ऋतु बनी रहती है,सब प्रकारके जिसमें वन, उपवन, आराम शोभित हैं,जिसमें सब ऋतुओंके पुष्प खिले पुण्यदायक वृक्ष लता मंडप शोभित हैं। फल प्रधान हो वह उद्यान कहलाता है और पुष्पप्रधान हो वह उपवन कहलाता है। खेलनेके अर्थ जो बन हैं उनको आराम कहते हैं; ये जहां शोभित हैं,और तालोंमें कमलोंकी शोभा न्यारी ही हो रही थी॥१२॥ गोपुर द्वार मार्गोंमें उत्सव हो रहा है, तारण बन्दनवार बँधे हैं, चित्र-विचित्र गरुड़चिह्नसे अंकित ध्वजा लग रही है, जयदायक यन्त्र जिसमें कढे ऐसे बड़े-बड़े झण्डे जहां-तहां फहरा रहे हैं जिनकी ओटसे धूप समीपमें नहीं आती ॥ १३ ॥ महामार्ग, छोटे मार्ग, दूकानदारोंके मार्ग, चौराहे सब झाड़-बुहारे स्वच्छ हैं, उनपर सुगन्धियोंका जल छिड़का हुआ है, फल, पुष्प, अक्षत, दूर्वा, अंकुर,जहां-तहां बिखर रहे हैं॥१४॥मंदिरोंके द्वार-द्वारपर दधि,अक्षत, चन्दन, पान, सुपारी, फल, फूल कञ्चनके कलश, बलिदान, धूप, दीप शोभा दे रहे हैं। ऐसी द्वारकाकी शोभा हो रही है ॥ १५ ॥ उस समय देवकीनन्दनका आना सुनकर महा-बुद्धिमान वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन अद्भुत पराक्रमी बलराम ये सब आये ॥१६॥ प्रद्युम्न, चारु-देष्ण जाम्बवतीसुत साम्ब,अत्यन्त हर्षके कारण शयन,आसन,भोजन त्याग चल दिये ॥१७॥ एक गजेन्द्र आगे कर ब्राह्मण मंगल गाते शंख बजाते हैं, ब्राह्मणोंके वेद-पाठका गम्भीर शब्द हो रहा है ॥१८॥ रथपर बैठे श्रीकृष्णको देख नमस्कार दण्डवत कर स्तुति करने लगे। जो बड़े-बड़े यादव थे वे श्रीकृष्णसे भेंट कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ सहस्रों वेश्यायें श्रीकृष्णके दर्शनके लिये रथों पर बैठ-बैठ कर आयीं, जिनके सुन्दर-सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल अद्भुत शोभा दे रहे हैं ॥२०॥ नवरस जाननेवाले नट तालके संग नाचे वह नर्तक, गानेवाले गन्धर्व, पुराणवक्ता सूत वंशोंके जाननेवाले मागध, जैसा देखें वैसा कहें, वे बन्दीजन यह सब यदुनाथके अद्भुत चरित्र गाते हैं ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णजीने गुणियों और पुरवासियोंको आता देख यथाविधि आदर-सम्मान किया ॥ २२ ॥ कोई शिरसे नवें, कोई वाणीसे नवें, कोई मिलें, कोई हाथसे हाथ मिलायें, किसीको मुसकाकर देखा, चाण्डालतकका हृदय शान्त कर सबको यथायोग्य वर दिया ॥२३॥ सूतजी बोले,कि हे ऋषिराज ! जब श्रीकृष्णजी राजमार्गमें आये तब द्वारकाकी सब स्त्रियाँ उनका महाउत्सव देखनेको कोठोंपर जा बैठीं ॥ २४ ॥ श्रीजीका धाम जिनका अंग ऐसे अच्युतको नित्य देखनेवाले द्वारकावासियोंकी दृष्टि तृप्त नहीं हुई ॥२५॥ लक्ष्मी जिनके हृदयमें वास करें, जिनका मुख सब प्राणियोंकी

दृष्टियोंकी सौन्दर्यामृतपानार्थ पात्र है; जिनके बाहु लोकपालोंका निवास स्थान है ॥ २६ ॥ शुक्ल छत्र चमरकी शोभा निराले ही ढंगकी है। मार्गमें पुष्पोंकी वृष्टि और रंग दिखा रही है। श्याम अंगपर पीताम्बर वनमालाकी छवि और ही प्रकारकी थी, यह सब छवि मिलकर कैसी ज्ञात होती थी मानो, सूर्य, तारागण, इन्द्रधनुष बिजली ये एक संग विराजमान हैं। शुक्लछत्रसे सूर्यकी उपमा दी, पुष्पवृष्टिसे नक्षत्रोंकी, चन्द्रमा सम भ्रम मण्डलाकार चमरकी, धनुषसे वनमालाकी, बिजलीसे पीताम्बरकी, इसको अद्भुतोपमा कहते हैं ॥२७॥ राजभवनमें आकर अपनी मातासे मिले, फिर पिताके मंदिरमें जाकर पिताको दण्डवत् कर शिरसे सातों देवकी आदि माताओंकी आनन्दित होकर वन्दना की ॥ २८ ॥ उन्होंने पुत्रको गोदीमें बैठाया, स्नेहसे स्तनोंसे दूध टपकने लगा, हर्षसे विह्वल होकर दाहिने नेत्रोंके जलसे सींचा "पीछे हस्तिनापुरका कुशल, महाभारतका वृत्तान्त और पाण्डवोंका विजय सब ब्योरेवार सुनाया। पाण्डवोंकी विजय सुनकर वसुदेव-देवकी प्रसन्न हुए, परन्तु गान्धारीके पुत्रोंका और महारथियोंका मरण सुननेसे शोक हुआ" ॥ २९ ॥ सब कामसे निश्चित हो रनवासमें प्रवेश किया,जहां सोलह सहस्र एकसौ आठ रानी छज्जोंपर बैठी देख रही थीं ॥३०॥ श्रीकृष्ण चन्द्रका दर्शन कर बहुत आनन्दित हो जैसे नियमसे व्रती बैठी थीं वैसे ही बांके बिहारीकी बाँकी छबि देखकर लज्जित नेत्र किये सोलहों शृंगार कर उठ धायीं। "याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है; क्रीड़ा करना, मलकर शिर धोना, समाजमें जाना, उत्सव देखना, हँसी करनी, पराये घर जाना, जिसका पति परदेशमें हो उस स्त्रीको ये छः काम नहीं करना चाहिये" ॥ ३१ ॥ सूतजी बोले—हे शौनकमुनि ! जिनका श्रीकृष्णमें अत्यन्त प्रेम है वे पुत्रोंसे, दृष्टिसे, अन्तःकरणसे, अपने पतिसे मिलीं, प्रेमकी विह्वलतासे लज्जित नेत्रोंका जल न रुक सका, आंसू बह निकले ॥३२॥ यद्यपि श्रीकृष्ण उनके पास हैं,एकान्तमें रहते हैं तो भी उनके दोनों चरणोंका नवीन-नवीन संगम क्षणभरमें कौन भूलेगा, जिनके समीपसे चञ्चल लक्ष्मी भी नहीं जाती ॥ ३३ ॥ पृथ्वीपर भाररूप जिन राजाओंके जन्म उनकी अक्षौहिणी सेनाका चारों ओर तेज फैल रहा था, ऐसे राजाओंका परस्पर वैर कराकर वध करा दिया और आप उपरामको प्राप्त हुए। जैसे बाँसके वनमें आपसमें बाँससे बाँस घिसनेसे अग्नि उत्पन्न हो वनको जलाकर आप ही शांत हो जाती है ॥ ३४ ॥ यह अपनी मायासे मनुष्यलीला करनेको अवतार धारण करते हैं। स्त्री रत्नसमूहमें स्थित भगवान् प्राकृत संसारी जीवोंकी नाईं रमण करने लगे ॥ ३५ ॥ जिन स्त्रियोंके गम्भीर अभिप्राय, मनोहर वचन, सुन्दर लाज सहित हास्यसे ताड़ित महादेवजीने मोहित होकर अपना पिनाक धनुष त्याग किया, ऐसी वे स्त्रियां श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इंद्रियोंको वश करनेको कपट भावसे समर्थ न हुईं ॥ ३६ ॥ उन श्रीकृष्णजीको ये प्राकृत लोग अपने सदृश अपना साथी, अपना मित्र, मनुष्य ही मानते हैं। वे आदि पुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र किसीका संग नहीं करते हैं और जो उनको अज्ञानी व्यापारी विषयी मानते हैं, वे मूर्ख हैं ॥ ३७ ॥ ईश्वरकी यही ईश्वरता है कि मायामें स्थित होकर असत् सुख-दुःखादिक मायाके गुणोंसे लिप्त न होना जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त नहीं होती है ॥ ३८ ॥ वे मूर्ख स्त्रियां श्रीकृष्णके प्रभावको न

जानकर स्त्रियोंके प्रेमी एकान्तविहार शील अपने पतिको मानती थीं, जैसे अहंकारवृत्तियुक्त बुद्धि ईश्वरको स्वाधीन मानती है ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे श्रीद्वारकानाथ द्वारका प्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-इस द्वादश अध्यायमें, प्रकटे कुरुकुलचन्द ॥
धर्मध्वज कलिमलदलन, पूरण आनँद कन्द ॥

इतनी कथा सुन, शौनक मुनि बोले-हे सूतजी महाराज ! अश्वत्थामा द्वारा छोड़े ब्रह्मास्त्रसे जो उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था उसे फिर ईश्वरने बचा दिया॥१॥उसका आश्चर्ययुक्त जन्म-कर्म, राज्यस्थिति और किस प्रकार शरीर त्याग किया वह कहो ? ॥ २ ॥ आप इसके कहने योग्य हैं, आपसे सुननेकी इच्छा करनेवाले हम श्रद्धालुओंको सुनाओ । जो कुछ शुकदेवजीने वर्णन किया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनकादिमुनि ! राजा युधिष्ठिर पिताके समान प्रजाको सुख देते और राज्यका पालन करते थे; सब कामकी चाहना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करते थे ॥ ४ ॥ संपत्ति, यज्ञ, लोक, स्त्री, भाई, पृथ्वी, जम्बूद्वीपका राज्य, यश स्वर्गतक पहुँचा ॥ ५ ॥ हे शौनक मुनि ! जिनका मन परमेश्वरमें लग रहा है, उन्हें देवताओंके प्रिय कामादिक भी आनन्द नहीं देते, जैसे भूखोंको पुष्पमाला, चन्दन इत्यादि सुख नहीं देते, ऐसे ही राजा युधिष्ठिरको जानो॥६॥ हे भृगुनन्दन ! जब माताके गर्भमें अस्त्रके तेजसे तप्त हुए वीर परीक्षितको एक पुरुष दृष्टि आया ॥ ७ ॥ अंगुष्ठमात्र, निर्मल कांति, सुवर्ण समान मस्तक, अति सुन्दर, श्यामवर्ण बिजली सदृश पीतांबर पहने अच्युत भगवानको देखा ॥८॥ शोभायमान लंबी-लंबी चार भुजा, मकराकृति कुण्डल, लाल-लाल नेत्र, गदा हाथमें लिये चारों ओर घूमते-फिरते हैं ॥ ९ ॥ एक ओर उल्कासी घूमती अत्यंत श्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामें परायण, ऐसी कौमोदकी गदाको बारंबार घुमा रहे हैं ॥ १० ॥ अपनी गदासे ब्रह्मास्त्रके तेजका नाश कर दिया । जैसे सूर्यके तेजको कुहर नाश करता है । चारों ओर नेत्र खोलकर देखा कि यह मेरे निकट कौन फिर रहा है ॥ ११ ॥ धर्मरक्षक देह विभु भगवान् उस ब्रह्मास्त्रके तेजको दूर कर, दशमासके बालकके देखते-देखते वहां अन्तर्धान हो गये ॥१२॥ तब सर्वगुण सम्पन्न अनकूलग्रहोंके उदयके समय, वंशधारी पाण्डुके वंशमें राजा परीक्षितने जन्म लिया । मानो फिर पाण्डु राजा संसारमें जन्मे ॥ १३ ॥ प्रसन्नमन राजा युधिष्ठिरने धौम्य, कृपादिक ब्राह्मणोंको बुलाकर बालकके जन्म समयके सर्व कर्मस्वस्ति-वाचन, मंगलाचरण आदि कराये ॥१४॥ जबतक नालछेदन नहीं होता, सूतक नहीं लगता, नाल कटनेके पीछे सूतक लगता है, सुवर्ण, गौ, धरती, ग्राम, हाथी, घोड़े श्रेष्ठ समय जान-कर याचकोंको देने लगे । सुन्दर-सुन्दर भोजन ब्राह्मणोंको जिमाये, पुत्रके उत्पन्न होनेके समय तीर्थमें दान करनेके समान दान किया ॥ १५ ॥ उस समय प्रसन्न ब्राह्मण नम्रीभूत राजा युधिष्ठिरसे बोले-हे गुरुकुलके मुकुटमणि ! यह पुत्र भी प्रजापालनमें आपके समान होगा ॥ १६ ॥ कोई राजा इसके सम्मुख स्थित न होगा, यह बालक ऐसे समयमें और शुद्ध दिनमें उत्पन्न हुआ है । तुम्हारे सबके ऊपर अनुग्रहके लिये सर्वव्यापक, सबके उत्पत्ति-कर्ता प्रभु विष्णुभगवानने इसकी रक्षा की है ॥ १७ ॥ इसलिये इसका नाम लोकमें विष्णुरात

होगा, बड़ा यशस्वी और महाभागवत होगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले, कि हे सत्तमो ! पुण्यश्लोक महात्मा राजर्षियोंके वंशके अनुसार साधुवादसे उनका अनुवर्ती होगा कि नहीं होगा वह कहो ? ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले, कि हे पार्थ ! यह पुरुष प्रजारक्षक साक्षात् इक्ष्वाकुके सदृश ब्रह्मण्य, सत्यवादी, दाशरथि श्रीरामचन्द्रजीके समान होगा ॥ २० ॥ यह बड़ा दानी, शरणागतका प्रतिपालक, राजा शिबि, उशीनर–देशवासी की नाईं होगा । उशीनर–देशवासी शिबिने अपना मांस बाजको देकर शरणागत कपोतकी रक्षा की । तथैव अपना यश संसारमें विस्तार करेगा । भरत समान याज्ञिकोंमें यशविस्तारी होगा ॥ २१ ॥ धनुषधारियोंमें अग्रणी सहस्रार्जुन अर्जुनकी नाईं, अग्निके समान दुर्द्धर्ष, सागरके समान गम्भीर होगा ॥ २२ ॥ सिंहके समान विकराल, धैर्यमें हिमाचलके सदृश, वसुधाकी नाईं सहनशील और माता-पिताकी नाईं सहनेवाला होगा ॥ २३ ॥ साम्यभावमें ब्रह्माके समान होगा, शीघ्र प्रसन्न होनेमें महादेवके सदृश और समस्त जीवोंके आश्रय भगवानकी नाईं रहेगा ॥ २४ ॥ सब सद्गुणका माहात्म्य यह कृष्णभक्त होगा । उदारतामें रंतिदेव और धर्मात्माओंमें ययातिके समान होगा ॥ २५ ॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णचन्द्रके समान, प्रह्लादके समान सब सत्यपदार्थग्राही और अश्वमेध करके वृद्ध-जनोंकी उपासना करेगा ॥ २६ ॥ बुद्धिमें बृहस्पति और शूरतामें परशुरामके समान होगा । सुखविलासियोंमें इन्द्रके समान और सत्य बोलनेमें आपके सदृश होगा । राजर्षियोंका उत्पन्न कर्ता, पाखण्डियोंका शिक्षक, भूमिके व धर्मके कारणसे यह कलियुगको पकड़ेगा॥२७॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षक सर्पके काटनेसे मृत्यु होगी । सबका संग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन श्रीवैकुण्ठनाथके वैकुण्ठको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥ आत्माकी यथार्थता जानकर व्यासपुत्र शुकदेवसे ज्ञान सुन श्रीगङ्गाजीमें देह त्याग अभयपदवीको प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ ज्योतिषी, ब्राह्मण, पण्डित लोग यह वचन राजासे कहकर पूजा दक्षिणा लेकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३० ॥ और संसारमें इनका नाम परीक्षित विख्यात हुआ क्योंकि गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया और उनके ही ध्यानमें रहकर सब जनोंकी परीक्षा करते थे ॥ ३१ ॥ राजकुमार दिन-दिन ऐसे बढ़ने लगे जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसीके समान पूर्ण हुए ॥ ३२ ॥ सजातियोंके द्रोह त्यागनेकी इच्छासे अश्वमेध यज्ञ करनेके लिये राजा युधिष्ठिर कर दण्डके विना धन प्राप्त होता न देख विचार करने लगे ॥ ३३ ॥ यह

१. शंका—परीक्षितका जन्म हुआ, तब परीक्षित के भविष्य कालकी बात युधिष्ठिरने ज्योतिषी ब्राह्मणोंसे पूछी । ज्योतिषी बोले कि हे राजा युधिष्ठिर! यह बालक बड़ा बुद्धिमान् होगा और सब संसारको ब्रह्माके समान एक दृष्टिसे देखेगा, दान देनेमें महादेवके समान उदार-चित्त होगा, रमापति विष्णु भगवानके समान सब प्राणियोंका स्वामी होगा। संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले जो तीन देवता हैं, उनकी समताकी उपमा कभी भी किसीने नहीं दी थी, ब्राह्मणोंने तीनों देवताओंकी उपमा परीक्षितसे दी। परन्तु ऐसी उपमा संसारमें आजतक किसीको भी नहीं दी गयी और ऐसी उपमा हमने कभी सुनीं भी नहीं, फिर ऐसी उपमा क्यों दी ?

उत्तर—"पितामहसमस्साम्ये" इस श्लोकमें ब्राह्मणोंने ब्रह्माको पितामह नहीं कहा था, शिवाजीको गिरीश नहीं कहा था, विष्णुको रमाश्रय नहीं कहा था । पाँचों पांडव-धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव इनका बालक जो परीक्षित अपने दादाके समान संसारको एकदृष्टिसे देखेगा ऐसा मुनियोंने कहा है। ब्रह्माके समान नहीं कहा है; जैसा भूमिमें सुंदर कर्म करने वाला गिरीश है, हिमवान् पर्वतकी नाईं चलायमान नहीं होता, जैसे दूसरेको वर देनेमें बड़ा उदार वैसे परीक्षित को भी गिरीश कहा। हिमवानके समान दान देनेमें उदार होगा । रमानाम प्रकाशका है, उस प्रकाशका स्वामी सूर्य है इसलिये सब प्राणियों का स्वामी सूर्य है, सूर्य बिना प्राणीका निर्वाह नहीं होता। मुनियोंने कहाकि, जैसे सूर्य उदय होकर संसारको आनंद देता है वैसे ही परीक्षित भी राजा होकर अपनी प्रजाको आनंद देगा, ऐसा मुनियोंने कहा, कुछ ईश्वरके तुल्य परीक्षितको नहीं कहा ॥

प्रयोजन जानकर भगवानके भेजे सब भाई उत्तरकी दिशासे प्रहीण अर्थात् मरुतका त्यागा हुआ सुवर्णपात्रादि बहुत धन लाये ॥ ३४ ॥ उस धनसे सब सामग्री उपस्थित कर धर्मनंदन राजा युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध यज्ञ किये । जातिके द्रोहसे डरकर यज्ञोंसे भगवान् वसुदेवका पूजन किया ॥३५॥ राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रको बुला कर ब्राह्मणोंसे यज्ञ कराया । अपने सुहृद जनोंकी प्रसन्नताकी इच्छासे कुछ मास वहाँ निवास किया ॥३६॥ इतनी कथा सुनकर सूतजी बोले, कि हे ब्रह्मन् ! कुछ दिन पीछे राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा ले द्रौपदीसे पूछ, भाई, बंधु, मित्रोंसे विदा हो, नौकर-चाकर यादवों समेत श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द द्वारकापुरीको चले गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथम-स्कन्धे परीक्षिज्जन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—त्रयोदश अध्यायमें, विदुर कथा उपरान्त ।
धृतराष्ट्रकी मोक्षको, वरणौं सकल वृतान्त ॥

सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! विदुरजी तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णचन्द्रकी गति सुनकर हस्तिनापुरमें आये और जिस बातके जाननेकी इच्छा थी वह सब पूरी हुई ॥ १ ॥ और विदुरजीने मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न किये उनमें तीन-चार प्रश्नसे ही विदुरजीकी श्रीगोविन्दमें पूर्ण भक्ति हुई । उन प्रश्नोंसे उपराम हुआ ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भाई विदुर-जीको आता देख सब भाइयों समेत धर्मपुत्र धृतराष्ट्र, युयुत्सु,संजय,कृपाचार्य,कुन्ती, ॥३॥ गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी द्रोणाचार्यकी स्त्री, जातिकी स्त्रियाँ पुत्र सहित और स्त्रियाँ ॥४॥ अत्यन्त हर्षसे जैसे देहमें प्राण आये ऐसे आये और सब बड़े आदर-सत्कारसे मिले ॥ ५ ॥ विरहकी उत्कण्ठासे प्रेमके विवश होकर नेत्रोंसे जलधारा प्रवाहित होने लगी । युधिष्ठिरने हाथ जोड़ पूजन कर आसनपर बैठाया ॥ ६ ॥ जब भोजनसे निश्चिंत हो आसन-पर विश्राम किया, उस समय नम्रतासे प्रणाम कर उनके चरण दाबने लगे और बोले कि-आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया जो इस समय आकर दर्शन दिया ॥ ७ ॥ हम पाँचों भाई आपकी छत्र छायामें बढ़े । आप हमको कभी स्मरण करते थे या नहीं ? जैसे पक्षी अपने पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायामें बढ़ाता है, उसी रीतिसे आपने हमको बढ़ाया और मातासहित हमें सब विपत्तियोंसे बचाया । विषसे,अग्निसे और अनेक ठौर विघ्नोंसे रक्षा की । "जिस समय दुर्योधनादिक कौरवोंने हमको लोहेके कोटमें बन्द करके यह विचार किया कि इनको भस्म कर डालें, उस समय आपने कृपा करके पहले ही सुरंग खुदवाकर हमको बचाया । हम कहांतक आपकी बड़ाई करें, आपतो सदा हमारी सहायता करते रहे" ॥८॥ इस क्षितिमण्डलमें आपने कौन वृत्तिसे शरीरका निर्वाह किया ? इस भारतवर्षमें पृथ्वीपर जितने मुख्य तीर्थक्षेत्र हैं, वह सब आपने किये ॥ ९ ॥ आप सरीखे महात्माओंकी तीर्थयात्रा तीर्थोंपर कृपा करनेके लिये है, कुछ अपने अर्थ नहीं । आप सरीखे भागवत तो आप ही तीर्थ-रूप हैं । आपके दर्शनसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं । अपने अन्तःकरणके निवासी गदाधारी भगवान्से मलिन जनोंके कुसंगसे तीर्थ भी मलिन हो जाते हैं ! उनको फिर सत्कर्मअनुष्ठानी, वेदांती, ज्ञानी भगवद्भक्त, पवित्र, सत्त्वादि गुणयुक्त ब्राह्मण पवित्र करते हैं । भगवद्भक्तोंके

सत्संगसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं ॥ १० ॥ हे पिता ! आपने बहुत तीर्थ किये, परन्तु द्वारकापुरीमें भी गये थे या नहीं ? क्योंकि हमारे सुहृद-बान्धव श्रीकृष्णादिक यादवोंको आप भलीभांति जानते हैं। हमको जबसे राज्य देकर गये हैं तबसे उनका कुछ समाचार नहीं मिला, न जानें, वे अपनी पुरीमें कैसे हैं, कैसे नहीं, वह कृपा करके कहो ? ॥ ११ ॥ धर्मराजने जब यह पूछा, तब विदुरजीने सब तीर्थोंका वृत्तान्त कहा,जैसा कुछ देखा था वैसा । परंतु यदु-कुलके क्षय होनेका वर्णन नहीं किया ॥१२॥ यह भलीभांति निश्चित है कि जो बात अप्रिय है, सहने योग्य नहीं है वह मनुष्योंको आपही प्रकट हो जाती है । दयालु विदुरजीने अपने सामने उनको दुःखी देखना उचित न जानकर नहीं कहा ॥ १३ ॥ "जब रनवासमें स्त्रियोंने विदुरजीके आनेका वृत्तान्त सुना, तब द्रौपदी आदिने अपने पास बुलाया और परमेश्वरका परम भक्त जान विदुरजीको दण्डवत की और उनके आनेसे बहुत प्रसन्न हुई । फिर विदुरजीने धृतराष्ट्रके भवनमें जाकर उन्हें और गांधारीको दण्डवत की । तब धृतराष्ट्र ने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया,नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे भ्रातः ! तुम्हारे जानेके पीछे मेरे ऊपर बड़ा कष्ट पड़ा और हमारे सब पुत्र मारे गये, राज्य नष्ट हो गया, यह बात सुनकर विदुरजीने कहा—हे भ्रातः ! हरिइच्छा बलवती है, उसकी गतिसे किसीकी पार नहीं बसाती । परमेश्वरकी इच्छा इसी प्रकार थी, उन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए संसारमें अवतार लिया था । दैवगति किसीसे जानी नहीं जाती, अब धैर्य धारण करनेका समय है ? यह तो कहोकि राजा युधि-ष्ठिर तुम्हारा आदर-सत्कार किस प्रकार करते हैं ? धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया, कि युधिष्ठिर तो हमसे बड़ा स्नेह रखता है, मुझको अपने पिता और गांधारीको माताके समान मानता है और सब भाई भी हमसे अधिक रीति-प्रीति रखते हैं। परन्तु भीमसेन,युधिष्ठिरके पीछे हमको दुर्वाक्य कहता है, यह दुःख नहीं देखा जाता" धृतराष्ट्रकी बातें सुन कुछ काल विदुरजीने वहां वास किया और देवताओंके समान सुखी हो बड़े भ्राताके कल्याणके लिए सबसे रीति-प्रीति करते रहे ॥१४॥ यमराज मांडव्यके शापसे शूद्रयोनिमें विदुर हुये थे तबतक यम-राजके स्थानमें अर्यमा काम करते रहे । इसकी कथा इस प्रकार है कि "किसी देशमें चोर किसीका धन चुराकर भागे और राजाके दूत उसके पीछे दौड़े । वे चोर भागते-भागते वहां पहुँचे जहाँ मांडव्य ऋषि तप कर रहे थे । उनके निकटही चोर जाकर छिप रहे । राजाके दूत उनके समीप आकर ऋषि समेत चोरोंको पकड़ कर राजाके पास ले गये।राजाने आज्ञा दी कि सबको शूली दे दो। राजाकी आज्ञासे चोरोंको शूलीपर चढ़ाना आरंभ किया । मांडव्य ऋषिकी ओर जो देखा तो उनको ऋषि जान शूलीसे उतार लिया और दण्डवत् प्रणाम कर अपना अपराध क्षमा करा उनको प्रसन्न किया । पीछे मांडव्य ऋषि धर्मराजके निकट जाकर बड़े क्रोधसे बोले, कि अरे यम ! तूने मुझे किस अपराधसे शूली पर चढ़ाया ? तब यमराज बोले, कि महाराज ! आप बालकपनमें टाड़ीका कुशके अग्रभागसे छेदकर खेले थे, उसके बदलेमें शूलीपर आप चढ़ाये गये। यमराजका वचन सुनकर मांडव्य ऋषिने यम-राजको शाप दिया, कि मैंने बालअवस्थामें अज्ञातसे यह काम किया, उसका तूने मुझे ऐसा भारी दण्ड दिया । अब तू शूद्र हो जा" यह वही विदुरजी हैं ॥१५॥ राजा युधिष्ठिर राज्य पाकर पोतेको कुलोद्धारक देख लोकपाल समान भ्राताओं सहित लक्ष्मीसे परम आनंदित हुए ॥१६॥ गृहके व्यापारमें ऐसे आसक्त हो गये कि उन्हें विदित न हुआ कि परम दुस्तर कालका

समय आ पहुँचा ॥ १७ ॥ यह अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले–हे राजन् ! शीघ्र निकलो, भयंकर भय आता है, वह देखो ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! जिस कालके लौटाने का कोई उपाय नहीं है, जो कहींसे कभी भी नहीं जा सकता है, यह भगवान् काल हम सबको ऐसे ही आता है ॥ १९ ॥ जिस कालसे ग्रसा हुआ जीव अधिक प्रियप्राणोंसे तत्काल वियोग पाता है और धन पुत्रादिककी तो बात ही क्या है ? ॥ २० ॥ जब पिता, भ्राता, सुहृद, पुत्र ही सब तुम्हारे मारे गये। सब आयु तुम्हारी हो चुकी, देहको बुढ़ापेने घेर लिया तो भी पराये घरमें रहते हो ॥ २१ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि, इस जीवको जीवन की बड़ी आशा लग रही है वह तुमको भी है, भीमसेनके दिये हुए टुकड़े श्वानकी नाईं तुम खाते हो ॥२२॥ तुमने भी तो अपनी चलतीमें उनके साथ कुछ कसर नहीं की। लोहेके कोटमें बंद करके आग लगाई, लड्डुओंमें विष दिया, उनकी स्त्री द्रौपदीकी सभामें अवज्ञा की, पृथ्वी उनकी छीन ली, धन–धाम उनका लिया अब उनका दिया अन्न खाकर शरीर पुष्ट करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलेगा ॥ २३ ॥ कृपणपनसे जीनेकी इच्छा अच्छी नहीं और जो इच्छा भी है तो यह तुम्हारा जराजीर्ण शरीर सब प्रकार क्षीण होगया है, जैसे पुराने वस्त्र त्यागने योग्य होते हैं ऐसी तुम्हारी देहकी गति है, अब धैर्य धरो ॥ २४ ॥ जो पुरुष विरक्त बन सब बन्धनोंसे मुक्त हो इस देहको त्यागे वह अविज्ञातगति स्वार्थरहित धीर कहलाता है ॥ २५ ॥ जो कोई अपने आप अथवा पराये उपदेशसे आत्माको पहिचान कर हृदयमें परमेश्वरके चरणारविंदोंको धारण कर घर त्याग संन्यास धारण करते हैं वे ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २६ ॥ अपने सम्बन्धियोंसे छिपकर तुम उत्तर खण्डको चलो, इसके पीछे पुरुषोंका गुणनाशक बहुत बुरा समय आयेगा ॥ २७ ॥ अजमीढ़वंशी जन्मान्धको इस भांति छोटे भाई विदुरजीने जब समझाया, तब धृतराष्ट्र अपना चित्त दृढ़कर कुटुम्बके लोगोंसे स्नेह त्याग विदुरजीने जो मुक्ति मार्ग बताया उस पर आरूढ़ होकर कहा– "भाई ! तुमने सत्य कहा, हमारे मनमें भी यही इच्छा है, परन्तु हम दोनों स्त्री-पुरुष नेत्र हीन हैं, किस प्रकार उत्तरखण्डको जायँ ? धृतराष्ट्रकी अधीनताके वचन सुन विदुरजी बोले कि, इस बातका आप कुछ सन्देह मत करें मैं दोनोंको अपने साथ हाथ पकड़ कर ले चलूँगा। तुम हमारे बड़े भ्राता हो, इस कारण पूजनीय हो, जबतक आप जीवित रहेंगे, तब-तक सब प्रकार दिन- रात हम आपकी सेवा करेंगे" ॥ २८ ॥ पतिके जानेका समाचार सुन

---

१. शंका–धृतराष्ट्र और पांडुका छोटा भाई विदुर कैसे था ? सब शास्त्रोंमें और भारत इत्यादि इतिहासमें ऐसा लिखा है, कि अपने जन्म होनेके पीछे अपनी माताके उदरसे जो बालक उत्पन्न होता है, उसको शास्त्रमें और लोकमें छोटा भाई कहते हैं, दूसरी मातासे उत्पन्न बालक लोकमें और शास्त्रमें छोटा भाई नहीं कहलाता। धृतराष्ट्र और पांडु क्षत्राणीके पुत्र और विदुर शूद्राका पुत्र, फिर धृतराष्ट्रका छोटा भाई विदुर कैसे हुआ ?

उत्तर–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके विवाह होनेकी विधि शास्त्रमें अथवा लोकमें जो कही है वही विधि श्रेष्ठ है, और प्रथम है। शास्त्रसे और लोकसे जो विवाह की विधि है उसको अनु कहते हैं, शास्त्रमें उस अनुकी विधि माने और न्यायसे जो जन्म ले उसको मुनीश्वरलोग अनुज कहते हैं। इसीलिये विदुरका नाम अनुज है। विदुर वर्णसंकरको भी कहते हैं, अथवा अपने जन्मके पीछे अपनी मातामें जो जन्म लेता है उसको भी शास्त्रमें और लोकमें अनुज कहते हैं। शब्दके अर्थ अनेक प्रकारके हैं, परन्तु जो अर्थ जिस स्थानमें जैसा घट जाय अथवा योग्य जान पड़े वही अर्थ उस पदका लगाना चाहिये। जैसे पय पानीको कहते हैं और पय दूधको भी कहते हैं। गो धेनुका भी नाम है, गो पृथ्वीका भी नाम है, गो जलका भी नाम है, गो इंद्रियोंका भी नाम है, गो वाक्स्थानका भी नाम है। देखिये, गो शब्दके कितने अर्थ हुये, इसलिये "विदुरेणानुजेन" ऐसा वचन व्यासजीने कहा, धृतराष्ट्रका छोटा भाई नहीं कहा।

सुबलदुहिता, पतिव्रता साध्वी गान्धारी भी उनके संग चलनेको उपस्थित हुई। संन्यस्त दण्डवालोंको अतिहर्ष देनेवाले हिमालयको गये, मनस्वी शूरोंको जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्यारे लगते हैं वैसे जानो ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर सन्ध्यावन्दनसे निश्चित हो, अग्निहोत्र कर, तिल, गौ, भूमि, सुवर्णदान दे ब्राह्मणोंको नमस्कार कर मातापिताकी वंदना करने के लिये उनके मन्दिरमें गये। वहां विदुर, धृतराष्ट्र गांधारीको न देखा ॥ ३० ॥ उद्विग्नमनसे वहां बैठ गये और संजयसे पूछा, कि हे संजय ! हमारे चाचा वृद्ध नेत्र हीन कहां चले गये ! ॥ ३१ ॥ पुत्रोंके शोकसे महा व्याकुल हमारी चाची भी नहीं दिखाई देती, यदि आपको विदित हो तो कहो, क्योंकि व्यासजी महाराजकी कृपासे तुम सब जानते हो ॥ ॥ ३२ ॥ मुझ बुद्धिहीनमें अपराध विचार बन्धुओंके मारनेसे दुःखी होकर स्त्री सहित गंगामें तो नहीं डूब मरे ? ॥ ३३ ॥ जब हमारे पिता परमधामको चले तो हम सबको बालक जानकर अनेक कष्टोंसे हमारी रक्षाकी और पाला, वह हमारी चाची और चाचा यहांसे कहां चले गये ? ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले, कि हे शौनक मुनि ! संजय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको महा दुःखी देख कर अति पीड़ित हुए और मुखसे कुछ नहीं कह सके॥३५॥ दोनों हाथोंसे आंसू पोंछ बुद्धिको सावधान कर मनको धैर्य दे प्रभुके चरणोंका स्मरण करते अजातशत्रु युधिष्ठिरजीसे बोले ॥ ३६ ॥ संजय बोले, कि हे कुरुनन्दन ? तुम्हारे पिताके समाचार मैं कुछ नहीं जानता और गांधारी तुम्हारी चाचीके जानेकी भी मुझको कुछ सुधि नहीं। इन महात्माओंसे वंचित हुआ हूँ ॥ ३७ ॥ उसी समय कहींसे घूमते-घामते नारदजी भी तुम्बुरु गंधर्वको संग लिये आये। उनको देख भाइयों समेत उठ पूजा-सत्कार प्रणाम कर बोले ॥ ३८॥ कि हे भगवन् ! हमारे चाचा–चाची न जाने कहाँ चले गये। पुत्रोंके निधन होनेसे महा दुःखी हो तपस्विनी गांधारी कहां गयी ? ॥३९॥ अपार शोक सागरमें डूबे हुएको धैर्य रूपी केवट बनकर नारदजी आप आ पहुँचे। हे अज्ञाननाशक ! महाबुद्धिमान्, सर्वज्ञानी, विघ्नहर्ता, सबकी विपत्तिमें आकर सहायक होते हो, जो उनको कहीं सिंह-व्याघ्रने खा लिया अथवा कहीं कुएँमें डूबकर मर गये तो मेरी बड़ी दुर्नामता होगी।किसीके सम्मुख मुख दिखानेका भी न रहूँगा। आप दिव्यदृष्टि हैं,दया करके बता दीजिये, हम उनकी विनती कर उनको यहां लौटा लायेंगे। क्योंकि भोजन-छाजनमें अत्यन्त दुःखी होंगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके वचन सुनकर मुनिसत्तम भगवान नारदजी बोले, कि हे राजन् ! शोक-संताप मत करो। यह सब संसार ईश्वरके वशमें है ॥ ४१ ॥ जो सबका ईश्वर है, उसको अपने पालक सहित सब लोग भेंट देते हैं, वही परमात्मा सब जीवोंका संयोग-वियोग करता है ॥४२॥ जैसे बलवान् बैल नाथके वशमें होकर अपने स्वामीका सब कार्य कर बलि देता है, ऐसे यह करना यह न करना ऐसी वेदकी वाणी रूप डोरमें वर्णाश्रमधर्मरूप नाथसे बँधे सब जीव परमेश्वरको बलि देते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे खेलनेवालेकी इच्छासे खेलकी सब सामग्रियोंका संयोग-वियोग हो जाता है उसी प्रकार ईश्वरकी इच्छासे सब जीवोंका संयोग समझना चाहिये ॥४४॥ लोकको ध्रुव मानो, अथवा अध्रुव मानो, वा दोनों मत मानो, मोहसे, स्नेहसे, सब प्रकारसे शोक करना नहीं चाहिये ॥ ४५ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह जो अज्ञानपनकी तुम्हारी व्याकुलता है इसको त्यागो! क्योंकि तुम कहते हो कि अज्ञान, अनाथ, कृपण, अन्धे मुझ विना वनमें कैसे रहेंगे और उनके खानेकी सुध कौन लेगा ? यह सोच करना तुम्हारा सब वृथा है॥४६॥ काल, कर्म, गुण, इनके अधीन यह

पञ्चतत्त्वका बना हुआ देह है, यह किसकी रक्षा कर सकता है। जैसे अजगरसर्पग्रस्त जीव और को कैसे बचा सकेगा? ॥४७॥ चार पगवाले पशु आदि तृणादिकको खाते हैं, हाथ जिनके हैं वे जीव और भी सूक्ष्म वस्तुका भक्षण करते हैं, ऐसे ही सब जीवमात्र जीवोंका जीव बचाते हैं परन्तु सब कालग्रस्त हैं ॥४८॥ हे राजन्! सर्वद्रष्टा एक है, सब आत्मायें एक हैं। भीतर-बारह जिसमें नहीं, भोक्ता और भोग्य रूप होकर मायासे बहुत दीखते हैं इसलिये सजातीय, विजातीय स्वगत–भेदशून्य यह भगवान् प्रकाश करता है॥ ४९ ॥ हे महाराज! वह भगवान भूतभावन कालरूपने सुरद्रोहियोंके मारनेके लिए पृथ्वी पर मनुज अवतार धारण किया है॥ ५० ॥ देवताओंका तो सब कार्य कर चुके हैं केवल यदुकुलकी ओर बाट देख रहे हैं, तबतक तुम भी यहां रहो, जबतक ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यहां रहें, पीछे तुम भी चले जाना ॥५१॥ हे राजन्! धृतराष्ट्र सहित गांधारीको विदुर लिये दक्षिणहिमाचलकी ओर ऋषियोंके आश्रममें गये हैं ॥५२॥ जहां गंगाजी सब ओर बहकर आप सात रूप हुई हैं, सातों ऋषियोंकी प्रीतिके अर्थ सप्तस्रोत विख्यात हैं॥ ५३ ॥ वहां सदा स्नान कर, यथाविधि अग्निहोत्र कर, वायु भक्षणके आश्रय रहकर, अतिशान्त मनसे परमात्माके चरणोंमें चित्त लगा सब कुटुम्बसे स्नेह तज वहां वास करेंगे ॥ ५४ ॥ आसन जीत, श्वास जीत, इंद्रियोंका प्रत्याहार करके, हरिभावनासे दग्ध होकर, राजस, तामस, सात्त्विक सब मल जिनके भस्म हो गये ॥ ५५ ॥ विशेष ज्ञानमय व्यापक जिनकी देह, जीवान्तर्यामी, सर्वाधार बृहत्त्वादि गुण विशिष्ट, चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माका संयोग कर, तद्रूप होकर परमात्मामें लीन होंगे। जैसे घट फूटनेसे घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है ॥ ५६ ॥ मायागुणोंकी वासना जिनसे सर्वत्र दूर हो गयी, इंद्रियाँ अन्तःकरण जिनका शुद्ध हो गया, सब प्रकारके और जिन्होंने त्याग किये, खम्भके सदृश अचल हो गये॥ ५७ ॥ सब कर्मसे संन्यस्त हैं, उसमें कोई विघ्न मत करना, हे राजन्! वे आजसे पांच दिन उपरान्त ॥ ५८ ॥ अपना शरीर त्याग करेंगे और देह आप ही भस्म हो जायगी विदुरजीके ज्ञानसे धृतराष्ट्रको मोक्ष प्राप्त होगा ॥ ५९ ॥ पर्णशालामें अग्निसे जब देह भस्म हो जायगी, तो गांधारी उनकी स्त्री भी उसी अग्निमें प्रवेश करके सती हो जायगी॥६०॥ हे कुरुनन्दन! विदुरजी यह आश्चर्य देखकर अतिहर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चले जायेंगे॥६१॥ ऐसे कह तुम्बुरु गन्धर्व सहित नारदजी स्वर्ग लोकको चले गये और युधिष्ठिर उनका वचन मान हृदयसे सब शोक-संताप त्यागकर वासुदेव भगवानके ध्यानमें लवलीन हुए॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे
विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–पार्थ द्वारकाकी कथा, जैसे वरणी जाय।
भयो दुखी सुन धर्मसुत, कहौं सकल समुझाय ॥

जब द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द देवकीनन्दनका समाचार बहुत दिनोंसे न मिला तो युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, कि भाई! तुम द्वारकाको जाओ और द्वारकानाथकी सुधि लाओ। धर्मराजकी यह बात सुनकर, बंधुके देखनेकी इच्छासे पार्थने पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधिके लिये द्वारकाको गमन किया ॥ १ ॥ हे शौनकमुनि! जब कई मास व्यतीत हो गये और अर्जुन द्वारकासे न लौटे, उस समय युधिष्ठिर घोर उत्पात देखने लगे॥ २ ॥ कालकी घोर गति, धर्मका उलटापन दिखायी देने लगा, मनुष्योंके मनमें क्रोध, लोभ, मोह,

मिथ्यावाद बस गया, सब जीवोंकी पापयुक्त बातें दीखने लगीं ॥ ३ ॥ सब लोग व्यवहारमें कपट करने लगे, सुहृदतामें ठगपना, पिता, पुत्र, स्त्री, पुरुष, भाई-बंधुओंमें क्लेश होने लगा ॥४॥ अत्यंत अरिष्टकारी शकुन होने लगे। ऐसा समय आ गया कि लोभ आदि से लेकर अधर्मकी प्रवृत्ति देखकर युधिष्ठिर शोकवश हो भीमसेनसे बोले ॥५॥ हे भ्रातः ! अर्जुनको श्रीकृष्णजीकी सुधि लेनेको द्वारको भेजा है। न जाने पुण्य यशवाले श्रीयदुनाथकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥ ६ ॥ हे भइया भीम ! सात महीने अर्जुनको गये बीते अबतक आये नहीं, न जाने क्या कारण है ? यह भेद हम कुछ नहीं जान सकते ॥ ७ ॥ ऐसा निश्चय होता है कि नारदजी जो कह गये थे वह समय आ गया, क्योंकि जिस समय सब क्रीड़ाके साधन श्री भगवान् शरीरको त्यागेंगे उस समय सब अमांगलिक कार्य होगा॥८॥जिन श्रीकृष्णकी कृपासे हमारी सब सम्पदा, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, प्रजा, वैरियोंसे विजय, सब लोकका धन हुआ ॥९॥ हे नरव्याघ्र ! "दोहा—जानै हरिइच्छा कहा, कछु नहि जानी जात ॥ हे भइया मोहिं होत हैं, नये नये उत्पात ॥ १ ॥" बुद्धिको मोह करानेवाले स्वर्गके, भूमिके, शरीरके दारुण भयानक उत्पातको देखो॥१०॥छातीका वामभाग,वाम नेत्र,वाम भुजा बारंबार फड़कती हैं और हृदय बारंबार कांपता है।इन लक्षणोंसे यह विदित होता है,कि शीघ्र कुछ अप्रिय बात सुनायी देगी ॥११॥ सूर्यके सम्मुख खड़ी होकर शृगालिनी रोती है और मुखसे आग उगलती है। हे भइया भीम ! मेरे सम्मुख निःशंक खड़े होकर श्वान रोते हैं॥१२॥ अच्छे पशु,गौ आदिक तो मेरे बांयीं ओर होकर निकलते हैंऔर गर्दभ आदि दुष्ट पशु दाहिनी ओरसे मेरी परिक्रमा करते हैं। हे पुरुषसिंह भीम!मेरे रथके घोड़े जब सवार होता हूँ तब रोतेसे दीखते हैं॥१३॥ मृत्युके दूत यह कपोत, काक,उलूक, श्वान रातको बोलते हैं।इनका बोलना विश्वको शून्य करना चाहता है। ऐसे कुलक्षणोंको देख-देख मेरा हृदय कांपता है ॥ १४ ॥ सब दिशाओंमें धुन्ध छा रहा है (सूर्य चन्द्रमाके मण्डल बँधे हैं), पर्वतों सहित भूचाल हो रहा है, विना बादल आकाशसे गर्जनेका शब्द सुनायी पड़ता है॥१५॥ पवन धूलि लेकर आकाशको चढ़ता है,सारे नभमण्डलमें रेतसे अन्धकार छा रहा है,सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर बरसाते हैं॥१६॥स्वर्गमें सब ग्रह परस्पर लड़ते हैं, सूर्य कांतिहीन दृष्टि आता है, यह देखो भूतगणोंसे व्याकुल होकर सब पृथ्वी मानो अग्निसम उत्तप्त हो रही है॥ १७ ॥ नदी और नद, ताल और सरोवर,क्षोभको प्राप्त हैं अग्नि घृत डालनेसे प्रज्वलित नहीं होती न जाने यह कुसमय क्या करेगा ? ॥ १८॥ बछड़े गायोंका दूध प्रसन्न होकर नहीं पीते।माता स्तनोंसे दूध नहीं छोड़ती। धेनु सूर्य नारायणके सम्मुख खड़ी होकर नेत्रोंसे जलधारा बहाती हैं। खरकोंमें वृषभ प्रसन्न चित्तसे शब्द नहीं करते ॥१९॥ मंदिरोंमें देवताओंकी प्रतिमा रुदन कर रही हैं। पसीना आता है, कम्पायमान हो रही हैं। देश, ग्राम,पुर, नगर, कूप,वाटिका,आश्रम, इन सबकी शोभा मलिन हो गयी,आनन्दका नाम नहीं, न जाने यह हमको क्या दुःख देंगे? ॥२०॥ निश्चय है कि इन उत्पातोंसे अनन्य पुरुष श्रीकृष्णकी शोभासे और भगवत्के चरणारविंदसे जिसका सौभाग्य हीन हो गया। इसलिये भूमिकी शोभा नष्ट हो गयी ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! जिस समय राजा युधिष्ठिर बैठे यह विचार कर रहे थे कि ये अरिष्ट क्या करेंगे, उसी समय राजा युधिष्ठिरके समीप यदुपुरीसे अर्जुन आये ॥ २२ ॥ आते ही नीचेको मुख कर धर्मराजके चरणोंमें गिर पड़े, अत्यंत व्याकुल, आंसुओंसे पूर्णनेत्र ॥२३॥ कान्तिहीन, सुहृद अर्जुनके सम्मुख नारदजीके वचन स्मरण कर

कंपितहृदय हो राजा युधिष्ठिर पूछने लगे ॥ २४ ॥ हे भ्रातः ! मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सारस्वत, अन्धक, वृष्णि ये सब राजा आनन्दसे हैं ? ॥२५॥ मान्यवर शूर नाना वसुदेव तो प्रसन्न हैं, भाई सहित मामा कुशल हैं ? ॥२६॥ सातों बहिनें, उनकी स्त्रियाँ, हमारी मामी पुत्रवधू सहित देवकी आदिका क्षेम है ? ॥२७॥ राजा आहुक, देवक, भाई सहित जिसका पुत्र महाखोटा है वे जीते हैं ? हृदीक पुत्र सहित अक्रूर, जयन्त, गद, सारण ॥२८॥ शत्रुजित आदिक कुशल हैं ? भगवान् सात्वतोंके प्रभु बलदेवजी अच्छे हैं ? ॥२९॥ सब वृष्णियोंमें महारथी प्रद्युम्न तो सुखी हैं । भगवान्के समान महागंभीर वेगवाले अनिरुद्धजी कुछ बड़े हुए हैं कि अभी छोटे हैं ॥३०॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती पुत्र साम्ब और सब श्रीकृष्णसुत पुत्रसहित ऋषभादिक ॥३१॥ श्रीकृष्णजीके अनुचर जो श्रुतदेव, उद्धवादिक, सुनन्दनन्द यादवोंमें मुख्य श्रेष्ठ हैं ॥३२॥ रामकृष्णजीकी भुजासे पालित वे सब प्रसन्न हैं, जिन्होंने हमसे सौहृद किया है, वे सब कुशल हैं ? ॥३३॥ ब्राह्मणोंके पालनेवाले भक्तवत्सल, गोरक्षक भगवान् भाई-बन्धु समेत द्वारकामें सुधर्मा सभामें सुखी हैं ? ॥ ३४ ॥ सब लोगोंके मंगलके लिये सबकी कुशलके अर्थ सबकी बुद्धिके कारण शेषजीके सखा आदिपुरुष श्रीकृष्ण यदुकुलमें प्रसन्न हैं ? ॥३५॥ जिनकी भुजा रूपी दण्डसे रहित द्वारकामें पूजित होकर यादव परमानन्दसे वैकुण्ठनाथके पार्षदकी नाईं क्रीड़ा करते हैं ॥३६॥ जिनके चरणारविंदकी सेवा रूप मुख्य कर्मसे सत्यभामादिक सोलह सहस्र स्त्रियाँ संग्राममें जीत कर उनके निमित्त देवताओंके भोग्य कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर द्वारकामें रखा ॥ ३७ ॥ यादवलोग जिनकी भुजाओंके प्रतापसे निर्भय उत्साहित सुरसत्तम योग्य सुधर्मा सभा अपने बलसे लाये और बारंबार उसमें चरण धरते हैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! हे भैया ! तुम तो प्रसन्न हो, मुझको ऐसा विदित होता है, तुम्हारा तेज नष्ट हो गया, अथवा बहुत दिनोंके रहनेसे भाइयोंने तुम्हारा आदर-सत्कार नहीं किया, क्या तुम्हारी अवज्ञाकी, किसीने अमंगल शब्द प्रेमरहित वाणीसे तो तुमको नहीं पुकारा ? पहले किसीको आशाका भरोसा दे पीछे क्या वस्तु उसे नहीं दी, ऐसा तो नहीं हुआ ? ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ कोई भयभीत, ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री तुम्हारी शरण आये हों उनको तो तुमने कहीं नहीं त्याग दिया ? ॥ ४१ ॥ अगम्य स्त्रीसे तुमने रमण तो नहीं किया अथवा विना शृंगारवाली नीच स्त्रीसे तो तुम नहीं बोले; अथवा उत्तम वा सामान्य पुरुषने मार्गमें तुमको पराजित तो नहीं किया ॥ ४२ ॥ अथवा भोजनके समय किसी ब्राह्मण वा वृद्ध अथवा बालक और किसी पुरुषको त्यागकर पहले तुमने तो भोजन नहीं किया अथवा कोई असह्य महानिषिद्ध कर्म तो तुमने नहीं किया ॥ ४३ ॥ या हमारे प्यारे नेत्रोंके तारे हृदय रूप बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सर्व सुख देनेवाले तो कहीं परमधामको नहीं सिधारे; जिनके मारे तुम अत्यन्त व्याकुल रहे हो ? और कोई रोग तो मुझे विदित नहीं

१. शंका—सात द्वीप पृथ्वीके राजा युधिष्ठिर थे, उनकी चिट्ठीसे अथवा दूतसे यह बात क्यों नहीं जान पड़ी कि सब यदुवंशी परस्पर लड़कर मर गये, यह बड़े आश्चर्यकी बात है और बड़ी शंका होती है। कोई छोटा राजा भी होता है तो वह भी अपने राज्यका सब समाचार पाता रहता है। धर्मराज सात द्वीपके राजा थे तो भी उनको यह समाचार नहीं मिला कि यदुवंशका विध्वंस हो गया । यदुवंशी भी कुछ ऐसे-वैसे नहीं थे बड़े नामी और पुरुषार्थी पुरुष थे, फिर क्या कारण जो उनके मरनेका समाचार नहीं मिला ?

उत्तर—जिस दिन द्वारकासे अर्जुन युधिष्ठिरके पास आये, उसके दश दिन पहले दूतोंसे धर्मराजने सुना था कि सर्व यदुवंशी कुशल क्षेमसे हैं। कालकी गति महाकठिन है, ब्राह्मणके शापसे एक क्षणमात्रमें सब यदुवंशका नाश हो गया, तब सबका मृतक कार्य करके सातवें दिन अर्जुन राजा युधिष्ठिरके पास आये, बीचमें भाइयोंका चित्त दुःखी न हो इसलिये समाचार किसी दूतके द्वारा नहीं भेजा ॥

होता यह कारण क्या है, वर्णन तो करो, क्यों ऐसे तनुछीन, मनमलिन और कांतिहीन हो रहे हो। जो बात हो सत्य-सत्य कहो, जिससे मेरे मनको धैर्य हो ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम—शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथम-स्कन्धे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—पंचदशम अध्यायमें, सुन यदुवंश विनाश ॥
धर्मराज सब राज तजि, कियो हिमालयवास ॥

सूतजी बोले, कि हे शौनक ऋषि ! श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने अनेक-अनेक प्रकारसे पूछा परंतु यदुनाथके वियोगमें ऐसे क्लेशित हो गये ॥१॥ कि उत्तर न दिया गया, शोकके कारण मुख कमल सूख गया, शरीरकी कांति जाती रही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थका ध्यान करने लगे, परंतु मुखसे बोलनेका सामर्थ्य नहीं रहा ॥ २ ॥ बड़े कष्टसे शोकको रोक नेत्रोंके आंसू पोंछ श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेके कारण प्रेमवश व्याकुल हो ॥३॥ उनका सारथीपनका समय, सखाभाव, मित्रता-सुहृदताको स्मरण कर, भाई युधिष्ठिर के आगे शोकको रोक गद्गद कण्ठसे बोले ॥ ४ ॥ हे महाराज ! बन्धुरूप श्रीहरिने मुझको ठग लिया, देवताओंको विस्मयदायक मेरा तेज भी जाता रहा "मैं क्या कहूं और क्या आप बारंबार मुझसे पूछते हो, हमारे प्राणप्यारे द्वारकानाथ हमारी पीठपर हाथ धरनेवाले हमको धोखा देकर परमधामको चले गये और हम अपने मूर्खपनसे उनको अपना मामेरा भाई ही समझते रहे। उनको आदि पुरुष अविनाशी नहीं जाना, जो परमात्मा समझकर हम उनके चरणारविंदों की सेवा करते तो भवसागर से पार उतरकर मोक्षको प्राप्त करते। उनकी माया ऐसी प्रबल है कि उसके फंदेमें फँसकर हमने जगदीश्वरको नहीं पहचाना। जैसे एक समय चन्द्रमा दक्ष प्रजापतिके शापसे बहुत कालतक क्षीरसमुद्रमें रहे, यह बात सबको विदित है कि चन्द्रमामें अमृत रहता है और कच्छ-मच्छ आदिक अनेक जलचर उसमें रहते थे, और उसी समुद्रमें चन्द्रमा बसते थे और संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जो अमर होना न चाहे। सब यही इच्छा रखते हैं कि अमृत मिले तो हम पीकर अमर हों, संसारमें रहकर आनन्द भोगें, परन्तु मच्छ-कच्छ सहस्रों वर्षतक चन्द्रमाके संग रहे और अमृतका कुछ ध्यान नहीं किया। जिस प्रकार उन समुद्री जीवोंने चन्द्रमाका भेद नहीं जाना और उनको भी समुद्रका एक जीव माना, उसी प्रकार हम लोगोंने भी परब्रह्म परमात्माको नहीं पहचाना। यदुवंशी ही जाना, अब वह बात समझकर हमको बड़ा पश्चाताप आता है कि हाय! हम भाईके ही धोखेमें रहे, और परमेश्वर हमारे हाथसे निकल गये। हाय हमने आदि पुरुष अविनाशीको अपना सारथी समझा। हे भ्रातः ! जो समस्त भूमंडल मेरे तेजके सम्मुख थर-थर कांपता था, आज वह मेरा सब तेज नष्ट हो गया ॥ ५ ॥ जिस प्राणके क्षणमात्रके वियोग होनेसे ये लोग नहीं रहते अर्थात् मृतक कहलाते हैं उस प्राणरूप श्रीभगवान्‌के अन्तर्धान होनेसे हमभी मृतके समान हो गये ॥६॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके आश्रयसे द्रुपदके यहां आये, कामके उन्मत्त राजाओंका तेज स्वयंवरमें मैंने हरा, धनुष सीधा कर मत्स्य वेधन किया और द्रौपदीको हम ले आये ॥ ७ ॥ जिन श्रीविपिनविहारीके समीप रहकर खाण्डववन अग्नि को भोजन करनेके लिये दिया और देवगण सहित सुरेशको जीतकर मयनाम दैत्यकी बनायी हुई अद्भुत सभा

(जिसमें अनेक-अनेक प्रकारकी शिल्पकारी विद्याकी कारीगरी थी वह सभा) हमको मिली और आपके यज्ञमें सब देशोंके राजाओंने आकर भेंट दी, यह सब उन्हीं यदुनन्दनकी दया थी ॥८॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजाओंके शिरपर चरण धरनेवाला जरासन्ध, जिसमें दशसहस्र हाथीका बल था; ऐसे बड़े भारी बलवानको भीमसेनने यज्ञके लिये मारा और भैरवजीके यज्ञके कारण उसने जिन राजाओंको रोक रखा था उनको छुड़ाया। वे सब नरेश आपके यज्ञमें भेंट लाये ॥ ९ ॥ आंखोंसे आंसू बहाती श्रीकृष्णजीके चरणोंमें पड़ी, तुम्हारी द्रौपदीका राजसूययज्ञके महाभिषेकमें सुरचित जूड़ा जिन कपटी दुर्योधनादिकोंने सभामें छूकर बिखेरा यह देख भीमसेनने प्रतिज्ञा की। उस जूड़ेके खोलनेवालोंको मारकर उनकी स्त्रियोंका जूड़ा खुलवाया, क्योंकि वैधव्य कालमें माथेका जूड़ा खोला जाता है फिर नहीं बँधता है, इसी प्रकार भगवानने विचारा कि मेरे भक्तोंकी स्त्रियोंका जूड़ा तो थोड़े ही दिनों खुला रहेगा। परन्तु तुम्हारी विधवाओंका जूड़ा जबतक जियेंगी तबतक खुला रहेगा। यह सब उन्हीं पूर्ण प्रतापीका प्रताप था ॥ १० ॥ हे नरेन्द्र ! जिन श्रीकृष्णजीने वनमें आये दशसहस्र शिष्योंको सङ्ग लिये दुर्योधनके भेजे अत्यन्त दुरन्त कष्टसे दुर्वासा ऋषिसे हमारी रक्षा की और शाकपत्रको पाय त्रिलोकीकी तृप्ति की, जिससे जलमें स्नान करते हुये सब चेले भाग गये। "भारतमें यह इतिहास इस भांति लिखा है। किसी समय दुर्योधनने दुर्वासा मुनिको भोजन करवाया था। दुर्योधनसे प्रसन्न हो दुर्वासामुनि बोले-कि, कुछ मांगो ? तब दुर्योधनने मनमें विचार किया कि दुर्वासाके शापसे पाण्डवकुल नष्ट हो जाय तो अच्छा है। तब दुर्योधनने कहा-कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्य हैं; जब द्रौपदी प्रसाद पा ले उस समय तुम दश सहस्र शिष्योंको साथ ले उनके घरमें भोजनको जाना। यह सुन कर दुर्वासाने वैसा ही किया। युधिष्ठिरने दुर्वासाको देख अत्यन्त आदर-सम्मानसे मध्याह्न कृत्य कर दण्डवत् प्रणाम किया। दुर्वासा बोले-मुनिसमूह पाप-नाशके अर्थ जलमें स्नान करने गये हैं, वे भोजन करेंगे। युधिष्ठिरने कहा-बहुत अच्छा, यह बात सुन द्रौपदीने चिन्तासे आतुर होकर श्रीकृष्ण विश्वंभरका स्मरण किया, कि हे दीना-नाथ ! आज धर्मराजकी और मेरी लाज आपके हाथ है। हे यदुपति ! जो मेरी अपत हुई तो आपकी ही अपत है। श्रीकृष्णचन्द्र बनवारी भक्तहितकारी तत्क्षण आकर उपस्थित हुए और द्रौपदीसे बूझा क्यों ? द्रौपदी बोली कि, हे दीनबन्धु ! हे भक्तवत्सल ! हे भगवन् ? आज दुर्वासाऋषि शिष्यों सहित हमारे घर आये हैं और यहां भोजनकी कुछ सामग्री उपस्थित नहीं, क्या किया जाय ? इस कारण आपको स्मरण किया। यह बात सुन श्रीविश्वनाथ बोले, कि हम भी भूखे हैं, पहले हमको भोजन करा दो, पीछे दुर्वासाको देखा जायगा। तब द्रौपदी अत्यन्त लज्जित हुई और हाथ जोड़कर बोली कि, हे स्वामी ! मेरे भोजन पर्यन्त अक्षय अन्न बटलोई से निकलता है, जब मैं इसमेंका भोजन कर लेती हूँ तब इसमें भोजन नहीं रहता, अतः हे नाथ ! अब मैं भोजन कर चुकी, इसमें अब कुछ भोजन नहीं रहा, फिर भगवान् बोले कि उस बटलोई को यहां तो लाओ। यह सुन वह बटलोई लायी। उसके किनारेमें कोई शाकान्न लगा रह गया था उसे पाकर भगवान बोले कि, इस शाकान्नसे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हों, यह कह युधिष्ठरसे कहा कि, अब मुनिसमूहको भोजनके लिये बुलाओ। वे स्नान करके सब भाग गये, क्योंकि भगवानने तो उनके पेट पहले ही भर दिये थे। दुर्वासा ऋषिने कहा कि हमने वृथा पाक बन-

वाया। यह भय मान सब चेलोंसमेत दुर्वासा ऋषि वहांसे भाग गये और यह वरदान दिया कि वासुदेव भगवान् सदा तुम्हारी जय करें" ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजने पार्वती सहित महादेव शूलपाणिको भुला दिया, उन्होंने मुझको अपना पाशुपत अस्त्र दिया। फिर औरोंने भी अनेक अस्त्र दिये। इसी शरीरसे इंद्रलोकमें आधा आसन इंद्रका हमको मिला ॥ ॥ १२ ॥ वहाँ स्वर्गमें हम विहार करते थे तब इंद्रसहित देवताओंने निवात कवच वैरियोंके मारनेके लिये मेरे गाण्डीव धनुष और मेरे भुजदण्डका आश्रय किया था, हे युधिष्ठिर ! जिन्होंने ऐसा प्रभाव बढ़ाया ऐसे श्रीद्वारकानाथने अपनी माया दिखाकर मुझको ठग लिया ॥ १३ ॥ जिन श्रीकृष्णरूप बन्धुके आश्रित हो अपार भीष्मादि महारथी रूप ग्रहोंसे दुस्तर कुरुसेनारूप सागरको अकेला रथ ले पार हो गया और मोहास्त्रसे मोहित कर, उत्तर गोगृहमें शत्रुओंके शिरोंसे तेजवन्त मणिमय मुकुट-कुण्डल पाग बहुत धन लाया। हाय ! वे श्रीकृष्ण हमारे प्यारे अन्तर्धान हो गये ॥१४॥ हे युधिष्ठिर ! बड़े राजेन्द्रोंके रथोंसे शोभित भीष्म-पितामह, गुरु, कर्ण, शल्य, इनकी सेनामें सारथी होकर मेरे आगे चले और उन रथी यूथ-पालोंकी आयु, मन, बल व सब शस्त्रादि कुशल दृष्टिसे क्षीण करते चले जाते थे ॥ १५ ॥ उन्होंने मुझे अपनी भुजाओंमें रख लिया। फिर गुरु, भीष्म, कर्ण, द्रोण, त्रिगर्त, शल्य, सैन्धव, बाहूलीक, इनके अमोघ महिमावाले तीव्र अस्त्र मेरे शरीरको स्पर्श न कर सके, जैसे भगवतके दासको नीच लोग नहीं छू सकते ॥ १६ ॥ जिनके चरणकमलका श्रेष्ठ जन मोक्षके लिये दिनरात भजन करते हैं, जब घोड़ों के थक जानेसे मैं रथसे नीचे उतर कर खड़ा हो गया तब मुझको श्रीकृष्णके प्रभावसे परास्त रथी वैरी न मार सके, ऐसे त्रिलोकीके नाथको मैंने अपना सारथी बनाया, हाय ! मुझसे बड़ी भारी भूल हुई ॥ १७ ॥ हे नरदेव ! श्रीकृष्ण जब उदार-रुचिर शोभित मधुर मुसकान युक्त मृदुल मनमोहनी वाणीसे हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे धनञ्जय ! हे सखे ! कुरुनन्दन ! कहते थे, वे बातें जब मुझको स्मरण होती हैं, तो हृदयमें शूलसा खटक जाता है ॥१८॥ शय्या, आसन, अटनमें, भोजन इत्यादिमें चाहे जैसे मैं बोलता, हे बन्धो ! हे सखे ! सत्य है, जो तुम कहते हो सब सत्य है। ऐसे बोलते जैसे सखाका अपराध सखा सहे, पिता पुत्रके अवगुण सहे, श्रीकृष्णजी अपने बड़प्प-नसे मेरे कुमतिके अपराध सहते थे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अंग, सखा, प्रीतम, हृदयवल्लभ, पुरुषोत्तमके विना मैं ऐसा शून्य हो गया हूँ कि, श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा करते हुए मुझे मार्गमें भीलोंने लूट लिया ॥ २० ॥ देखो भाई ! जो पृथ्वीके राजा मेरे नामसे थर-थर कांपते थे मैं वही धनञ्जय हूँ और वही रथ है; वे ही घोड़े हैं, वही धनुष है, वे ही बाण हैं, वे ही मेरी भुजायें हैं, जिन भुजाओंके बलसे मैंने महेश, सुरेश, गन्धर्व, और मयनाम राक्षसको परास्त कर दिया। और भीष्मपितामह, कर्ण, जयद्रथ, आदि बड़े-बड़े बलशाली योद्धाओंका विध्वंस किया और यज्ञके घोड़ेके संग गया और बड़े-बड़े नामी नरेशोंका मानभङ्ग करके उनको

१. शंका—कुरुक्षेत्रमें जो क्षत्रिय आये थे वे सब मर गये। कौरवोंमें तीन बचे और पाण्डवोंमें सात बचे, फिर अर्जुनने युधिष्ठिरसे क्यों कहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मारकर मैं अकेला पार गया।

उत्तर—युधिष्ठिरसे अर्जुनने निस्सन्देह यह कहा कि जिन भगवान्‌की कृपासे कौरवोंकी समुद्ररूप सेनाको मार कर पार हो गया परंतु यह बात कुरुक्षेत्रकी नहीं है; जब कौरवोंने विराटकी गायोंको हरना चाहा, यह वहांकी बात है। भीष्मकी आज्ञा पाकर जब कौरवोंने विराटकी गायोंको बलात्कार लेनेकी इच्छा की तब अर्जुन सब कौरवोंको मूर्छित करके और जो सेनाके बड़े-बड़े नामी योद्धा और बलवान् थे उनके मुकुट उतार-उतार कर बहुत शीघ्रताके साथ विराट नगरको चला गया और सभामें जाकर उन मुकुटोंको राजा विराटकी भेंटमें रख दिया, उस समयकी बात राजा युधिष्ठिरसे अर्जुनने कही थी।

अपने संग लिया और सब पृथ्वीपर यज्ञके घोड़ेको फिराकर हस्तिनापुरमें लाया। अश्वत्थामाका मस्तक चीरकर मणि निकाली। परंतु बिना द्वारकानाथके ये सब निष्फल हो गये। जैसे भस्ममें किया हुआ हवन, कपटीसे मिला हुआ धन, ऊपरमें बोया हुआ अन्न निष्फल होता है ॥ २१ ॥ हे नरेन्द्र ! सुहृदपुरके सुहृद जो आपने बूझे वे सब दुर्वासा ऋषिके शापसे परस्पर कट-कट कर मर गये ॥ २२ ॥ "आदिपुरुष अविनाशी त्रिलोकीनाथने चित्तमें विचारा कि यह यदुवंशी हमारे वंशमें बड़े नामी और बलवान् हैं। न जाने मेरे पीछे संसारमें क्या-क्या उपद्रव मचायेंगे और लोगोंको कैसे-कैसे दुःख दें। इसलिये अपने आगे ही इन लोगोंका कुछ उपाय करना चाहिये। परंतु अपने हाथसे उनका मारना भी उचित नहीं समझा। इसलिये दुर्वासा ऋषिसे उनको शाप दिलवा दिया" तब वे वारुणी (मदिरा) पी पीकर ऐसे उन्मत्त हुए कि तन-मनकी सुधि-बुधि कुछ न रही। अजानकी भांति सब परस्पर कट मरे। चार-पांच शेष रह गये हैं। ॥ २३ ॥ हे भ्रातः ! प्रायः यह ईश्वरकी चेष्टा है, कभी परस्पर विध्वस कराते हैं, कभी पालन करते हैं, जैसे समुद्रके वासी बड़े जीव छोटे जीवोंको खा जाते हैं ऐसे बली राजा निर्बलको परस्पर जीत लेते हैं ॥ २४ ॥ ऐसे बली महान् यादवोंसे छोटे-छोटे यादवोंका विध्वंस करवाकर भूमिका भार उतारा ॥ २५ ॥ देश, काल, योग्य, अर्थ, हृदयतापके नाशक श्रीकृष्णके वचन जब मैं स्मरण करता हूँ तो मेरा चित व्याकुल हो जाता है। उसी समय मेरे प्राण देहसे निकल जाते, परंतु इस कारण ये पापी प्राण देहमें पाप भोगनेको रह गये। जब यदुनाथ परमधामको सिधारे थे, तो दारुक सारथीसे मुझे यह बात कहला भेजी थी, कि स्त्री और बालकोंको द्वारकासे हस्तिनापुरको अपने साथ ले जाना और मेरे वियोगका कुछ शोक मत करना। जो ज्ञान हमने गीतामें तुमसे कहा है, उसीके अनुसार इस शरीरको झूठा समझना और चैतन्य आत्माको सत्य जानकर अपने मनको धैर्य देना। हे भ्रातः ! वही ज्ञान समझ कर मैंने संतोष किया है, ऐसे सोचते-सोचते अर्जुनने श्री कृष्णके चरण-कमलको हृदयमें धारण कर अपने चित्तको धैर्य दिया ॥ २६ ॥ और भगवान् वासुदेवके चरणोंमें प्रीति बढ़ायी। जिस भक्तिके प्रभावसे सब कामादिक मल नष्ट हो गये ॥ २७ ॥ गीताका ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवान्ने मुझको सुनाया था, वह ज्ञान काल-कर्म अन्धकारसे मैं भूल गया था। अब फिर श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुआ ॥२८॥ ब्रह्मज्ञानसे जब अविद्या लीन हो गयी तो फिर निर्गुण हो, स्थूल शरीरहीन सुन्दर भोग योग्य होकर द्वैत भ्रम सब नष्ट हो गया, तब विशोक होता है ॥२९॥ भगवन्मार्गकी बात तथा यदुकुलका विध्वंस सुनकर युधिष्ठिरने निश्चल चित्त करके स्वर्गके जानेका विचार किया "भीमसेन, सहदेवादिक अपने भाइयोंसे कहा–अब हम जीकर क्या करेंगे और यह राज्य हमारे किस कामका है, जब हमारी बातका बूझनेवाला और पतका रखनेवाला न रहा। जब-जब हमपर भीड़ पड़ती थी उसी समय आकर सहायता किया करते थे। हाय ! अब कौन हमारी रक्षा करेगा ?" ॥३०॥ अर्जुनके मुखसे द्वारकानाथके परमधामके जानेका समाचार सुनकर कुन्ती एकान्तभक्ति कर, भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर हाय करके अपना शरीर त्यागकर मुक्त हुई "और द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा आदिने रो-रो कर इतना विलाप किया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता" ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिर बोले–क्यों वृथा विलाप करती हो" जन्मरहित भगवान्ने जिस शरीरसे भूमिका भार दूर किया उस शरीरको भी

त्याग दिया, जैसे कांटेको काँटेसे निकालते हैं ऐसे ही समझो। क्योंकि परमेश्वरको तो दोनों शरीर समान हैं ॥ ३२ ॥ जैसे मत्स्यादिक रूपको अजन्मा ईश्वर धारण करता है, त्याग करता है, जैसे नट अनेक रूप धरता हैं, फिर त्याग करता है ऐसे ही जिस देहसे जैसे भू भारका नाश किया, वह तनु भी त्याग दिया ॥ ३३ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र इस संसारको त्यागकर परमधामको गये, उसी दिनसे अज्ञानियोंके चित्तमें अधर्मका हेतु कलियुग आकर वर्तने लगा ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने घर, राज्य, नगरमें कलियुगका आगमन जान लोभ, झूठ, कपट, हिंसा, अधर्मका चक्र आता देख वन-गमनकी इच्छाकी ॥ ३५ ॥ राजा युधिष्ठिरने अपने पोतेको गुणमें अपने समान विनयी, गुणग्राही जान समुद्रपर्यन्तकी भूमि का राजतिलक हस्तिनापुरमें कर दिया ॥ ३६ ॥ और शूरसेन देशके पति वज्रनाभको मथुराका राज्याभिषेक कर प्रजापतिपनेकी अग्निको परमेश्वरने पी लिया ॥ ३७ ॥ वहां सब वस्त्र कंकण आदिकोंको त्याग ममता छोड़ अहंकार तज सब उपाधिको अलग किया ॥ ३८ ॥ वाणीको मनमें लगा, मनको प्राणमें लीनकर, प्राणको अपानमें और अपानको मृत्युमें लीन कर उत्सर्ग वायु सहित मृत्युको पंचत्वमें होम दिया ॥ ३९ ॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें, त्रिगुणको अविद्यामें, अविद्याको जीवमें, जीवको अव्यय ब्रह्ममें लीन कर दिया ॥ ४० ॥ चीर वस्त्र पहन, भोजन त्याग,मौनी बन, शिरके बाल खोल अपना रूप पांचों भाइयोंने जड़ उन्मत्त पिशाचके सदृश बना लिया ॥ ४१ ॥ सबकी ओरसे दृष्टि फेर ली, कान बन्द कर लिये, बहिरे बनकर उत्तर दिशाको चल दिये। उस दिशाको बड़े-बड़े महात्मा पुरुष पहले भी गये हैं ॥ ४२ ॥ हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करते हैं जहां गये फिर नहीं आते हैं ॥ ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्म ही होता है, पीछे ब्रह्मके लोकको जाता है ॥ ४३ ॥ सब भैया निश्चय कर युधिष्ठिर के पीछे चल दिये। अधर्मके मित्र कलियुगने सब प्रजाभूमिमें स्पर्श कर लिया, यह देखा ॥ ४४ ॥ सब कृत्योंको साधकर, आत्माको अत्यन्त क्षेम जान वैकुण्ठनाथ भगवान्के चरणारविंदोंका मनसे ध्यान करने लगे ॥ ४५ ॥ उनके ध्यान और बढ़ी हुई भक्तिसे सब इन्द्रियाँ विशुद्ध कर परात्पर नारायणमें एकांत मतिकर परमगतिको प्राप्त हुए। विषयी असत् पुरुषोंको वह नहीं प्राप्त होती, सब कल्मष धोकर निर्मल शरीर हो वैकुण्ठ स्थानको गये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ आत्मज्ञानी विदुरजी भी प्रभास क्षेत्रमें देहत्याग कर, श्रीकृष्णमें चित्त लगा युधिष्ठिरादि सहित अपने अधिकार स्थानको गये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अपनी ओर न देखें, ऐसे पतियोंको जान द्रौपदी भगवान् वासुदेवमें एकांत मन लगाकर परमपदको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवत्के प्यारे पाण्डुके पुत्रोंका यह स्वर्गारोहण श्रद्धासे जो सुनते हैं वे पवित्र होते हैं, सदा मङ्गल पाते हैं, श्रीनारायणमें भक्ति करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे पाण्डव स्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा—पाय परीक्षित राज जिमि, देखे सब निजदेश।
सो सब वरणौं हितसहित, जो कुछ लखेउ नरेश ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि ! महाभागवत परीक्षित जब ब्राह्मणोंकी शिक्षासे पृथ्वीकी रक्षा करने लगे, जन्मके समय सब विद्वान् आकर जैसे-जैसे गुण कह गये थे, वैसे ही सब

महागुण उनमें सम्पन्न थे ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने राजा उत्तरकी पुत्री इरावतीके साथ विवाह किया, उससे जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥२॥ ब्राह्मणोंको अनेक-अनेक प्रकारकी दान-दक्षिणा देकर तीन अश्वमेध यज्ञ किये ! गंगातीर पर कृपाचार्यको गुरु कर जिस यज्ञमें देवता सम्मुख आ-आकर अपना-अपना भाग ले गये ॥३॥ किसी समय राजाओंका-सा वेष धारण किये शूद्र गौको और बैलको पाँवसे मारता कलियुगको दिग्विजयमें अपने पराक्रमसे राजाने पकड़ा ॥४॥ शौनक ऋषि बोले, कि राजा परीक्षित ने दिग्विजयमें किस लिये कलियुगको पकड़ा ? राजाओंके चिह्न धारनेवाला वह शूद्र कौन था जो पाँवसे गौको मारता था ? ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! जो कृष्णकथा–आधीन बात हो वह अथवा श्रीकृष्णके पदकमलके मकरन्दके स्वाद लेनेवाले सन्तोंकी कथा हो वह कहो ॥६॥ खोटी कथाओंसे क्या प्रयोजन है ? जो वृथा आयुको क्षय करे । जो लोग वृथा अपनी आयुको खोते हैं, वे ही नरकमें वास करते हैं ॥ ७ ॥ हे मुने ! थोड़ी आयु मरणवाले मोक्षकी इच्छावाले मनुष्योंकी मृत्यु है, उस मृत्युको शामित्रकर्म (पशुवध) के लिये इस यज्ञमें बुलाया ॥८॥ जब तक यह मृत्यु यहां रहेगी, तब तक कोई नहीं मरेगा, इसलिये भगवान् मृत्युको परम ऋषियोंने बुलाया और कहा-तुम भी यहां बैठकर कथा सुना करो ॥९॥ अहो मनुष्यो ! नरलोकमैं हरिलीला कथा अमृत पियो, कलियुगमें हरिचरित्र श्रवण करनेसे वैकुण्ठवास मिलता है ॥ १० ॥ मंद बुद्धिवाले, थोड़ी आयुवाले जीव रात तो सोनेमें गवाँते हैं और दिन व्यर्थ कर्मोंमें खोते हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले, कि जब परीक्षित कुरु जांगल देशमें बसते थे, तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुग आता जानकर बहुत अमांगलिक बातें सुन परीक्षितने धनुष बाण हाथमें लिया॥१२॥ सेनापतिको बुलाकर कहा–शीघ्र सेना सजाओ, सुन्दर शृंगार किये श्यामकर्ण घोड़े जिसमें जुते हुए सिंहध्वज रथमें बैठ रथ, घोड़े, हाथी और सिपाहियोंकी चतुरंगिणी सेना संग लिये दिग्विजयको निकले ॥ १३ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष, उत्तरतक, किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यक, हिरण्यमय, इत्यादि खंडोंको जीतकर बलि लिया ॥ १४ ॥ और उन खण्डोंमें अपने पूर्वके महात्मा पुरुषोंका और कृष्णका माहात्म्य जतानेवाला गया हुआ यश सुना ॥ १५ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अपनी रक्षा, यादवोंका और पांडवोंका स्नेह तथा उनकी केशवमें भक्ति सुनी ॥ १६ ॥ उनपर अति सन्तुष्ट हो, प्रीतिसे प्रफुल्लित नयन कर महामना परीक्षितने महाधन वस्त्र हार दिये ॥ १७ ॥ अपने प्यारे पाण्डवोंका सारथीपन, पार्षद बनाना, सेवा करनी, सेव्यभाव, दूत बनना, वीरासन बैठकर रक्षा करनी, उनके पीछे चलना, प्रणाम करना विष्णुकी जगत् कर्तृता सुन राजा परीक्षितने विष्णुके चरणारविन्दोंमें मन लगा लिया ॥ १८ ॥ ऐसे राजा थे और दिन-रात उनकी ऐसी वृत्ति थी । पूर्व पुरुषोंकी भांति राज्य करते थे । थोड़ी देर पीछे एक ऐसा आश्चर्य हुआ वह सुनो ॥ १९ ॥ वृषरूपधारी धर्म एक

१. शंका––जब राजा परीक्षित दिग्विजयको गये तव पाण्डवोंका यश सब देशान्तरोंमें सुना । पाण्डवोंका यश और बड़ाई करनेवाले लोग कौन थे ? क्योंकि जिनको पाण्डवोंने दण्ड दिया उन्होंने पाण्डवोंका यश क्यों गाया ?

उत्तर––जुआरी, चोर, व्यभिचारी, ठग, वटमार, लम्पट और लवार आदि जो अनेक दुष्ट हैं, जिनसे भयभीत और डरे हुए जो मुनिजन थे, वे सब बारम्बार अनेक प्रकारसे पाण्डवोंका यश गान कर करके राजा परीक्षितको सुनाते थे कि, हे राजन् । तुम्हारे दादा परदादा ऐसे धर्मात्मा और बलवान थे, कि, जिनके राज्यमें हम सब आनन्दसे तप करते थे और अब तुम्हारे राज्यमें दुष्ट और अत्याचारी हमारी तपस्याको भङ्ग करते हैं और दुःख देते हैं । ऐसे दुःख भरे मुनियोंके वचन सुनकर राजा परीक्षितने उसी समय दुष्टोंको मारकर मुनियों को निर्भय रूप धन प्रदान किया ।

पदसे चलता है और उसके तीन पद टूट गये हैं, आंखोंसे आंसू बह रहे हैं, कान्तिहीन बछड़े जिसके नष्ट हो गये, सबकी माता पृथ्वी गोरूप धारण किये उसके समीप खड़ी है और दोनों परस्पर कुछ वार्तालाप कर रहे हैं। धर्मने पूछा॥२०॥हे भद्रे, हे अम्बे ! तुम अच्छी तो हो? मुख मलिन-सा हो रहा है, तनु छीन दिखायी देता है,आपके हृदयमें कुछ पीड़ा तो नहीं है? अथवा तुम्हारे बन्धु कहीं दूर तो नहीं चले गये, जिस कारण तुम्हारी यह दशा है ? ॥२१॥ क्या तुमको मेरे पैर टूटे देखकर सोच हो गया जो तुम रोती हो? कदाचित् तुमको मेरे तीन पांव टूट जानेका दुःख है? वा तुमपर शूद्र राज्य करते हैं ? यह कष्ट है? अथवा यज्ञमें जिनको भाग नहीं मिलता उन देवताओंका शोक है? वा प्रजाका दुःख है, क्या मेघ जो नहीं बरसता यह संशय है ॥२२॥ हे पृथ्वी ! पुत्र माता-पिताकी रक्षा नहीं करते, क्या यह संताप है? वा तुम्हें पुरुष खाने वाले राक्षस निर्दयी सबको महा क्लेशित करते हैं यह विषाद है? क्या कुकर्मियोंमें सरस्वतीजी बसीं अथवा जो ब्राह्मणोंको न मानें उनके घर लक्ष्मी देवी गयी अथवा राजा लोग ब्राह्मणोंका अपमान करने लगे। कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करने लगे क्या यह सन्देह है ? ॥ २३ ॥ अथवा कलियुगग्रस्त क्षत्रिय हो गये, उनके राज्य सब कलियुगी हो गये सब जीव इधर-उधर भोजनके लिये जल पीनेके अर्थ, स्नानके कारण, मैथुन करनेको ऊपरको मुख उठाये फिरते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्ब ! हे धरणि ! तुम्हारे ऊपर बड़ा भारी भार है। इसके उतारनेवाले ईश्वर अवतारधारी अन्तर्धान हो गये यह शोक तो नहीं है ? वा मोक्षदायक उनके किये हुए कर्मोंको स्मरण करती हो ? ॥ २५॥ हे वसुन्धरे! जिसलिये तुम अति कृशित हो, उस अपने दुःखका कारण कहो ! अथवा बलियोंके बली काल सहित देवताओंका पूजनीय सौभाग्य अब हरा गया है क्या यह अप्रसन्नता है ? ॥२६॥ पृथ्वी बोली—हे धर्म ! आप तो सब जानते हो तो भी तुम मुझसे पूछते हो, अच्छा मैं ही कहती हूँ—लोकके सुखदाता चार पदसे आप रहते हैं ॥२७॥ यथार्थ बोलना १, शुद्ध रहना २, पराया दुःख सहना ३, क्रोध आनेपर मनको रोकना ४, धन मांगनेपर उनको सदा धन देना ५, प्रसन्न रहना ६, किसीसे टेढ़ा न होना ७, मनको निश्चल रखना ८, बाह्य इंद्रियोंको निश्चल करना ९, अपने धर्मका त्याग न करना १०, शत्रु-मित्रका दुर्भाव न रखना ११,और के अपराध सहना १२,लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहना १३, सत्शास्त्रका विचार करते रहना १४ ॥ २८ ॥ परमेश्वर है यह ज्ञान मानना १५, तृष्णाका त्याग करना १६,हमारा नियन्ता है यह मानना १७,संग्राममें उत्साह करना १८,प्रभाव रखना १९,चतुराई रखना २०, जो काम करना हो उसको स्मरण रखना २१, पराधीन न रहना २२, सत्र क्रिया कर्ममें निपुण रहना २३, सदा शोभायमान रहना २४, कभी व्याकुल न होना २५, कठोर चित्त न रहना २६ ॥२९॥ बुद्धिको प्रकाशित रखना २७, विजयी रहना २८, सरल स्वभाव रहना २९, सहन शक्ति रखना ३०, पराक्रम रखना ३१, देहमें बल रखना ३२, सब भोग भोगना ३३,गम्भीर चित्त रहना ३४,चञ्चल न रहना ३५,सबमें श्रद्धा रखना ३६, जिसमें यश हो वही काम करना ३७, जिसमें प्रतिष्ठा हो वह कर्म करना ३८,अभिमान न करना ३९, ॥३०॥ हे भगवन् ! यह उन्तालीस गुण भगवानमें हैं और भी महागुण हैं, महत्त्वकी इच्छावालोंको यह करना योग्य है; हरिमेंसे यह गुण कभी भी नहीं जाते ॥३१॥ सब गुण पात्र श्रीनिवास सदा हितकारी अब इस पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये शोच करती हूँ,कि पापी कलियुगने सब लोगोंको ग्रस्त कर लिया है यही सोच है ॥३२॥ मेरे तो वत्स न रहे, केवल आप एक पदसे

रहे हैं, देव श्रेष्ठको, देवताओंको, पितरोंको, ऋषियोंको,साधुओंको, सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको, सब आश्रमोंको मैं सोचती हूँ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीका कटाक्ष हमपर हो यह कामना कर बहुत दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिकोंने तप किया, वह लक्ष्मी अपने वासस्थान कमलको त्यागकर जिनके चरणारविन्दकी सुन्दरताको अपने हृदयमें ध्यान करती है ॥ ३४ ॥ भगवान्के कमल, वज्र, अंकुश, ध्वजा इत्यादि चिह्न अंकित श्रीमच्चरणकमलमें अलंकृत थी और भगवत् विभूतिको प्राप्त होकर त्रिलोकीमें शोभायमान हुई। यह गर्व जब मुझको हुआ तो सब लोक समेत मुझे त्याग दिया, यह सोच है ॥ ३५ ॥ मेरे ऊपर अतिभारकारी असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणी आपने अपने अधीन होकर मार डालीं। स्थित होनेमें असमर्थ आपने धर्मको अपने पुरुषार्थसे स्थापन कर यादवोंमें शरीर धारण कर कार्य किया ॥ ३६ ॥ प्रेमका अवलोकन, मनोहर मुसकान, कोमल वचनोंसे सत्यभामादिकका मान-धीरताका मथन करते हुए, उनके शोभायमान चरणस्पर्शसे मुझे रोमांच हो आता था ! ऐसे मनमोहनका विरह कौन सहन कर सकता है ॥ ३७ ॥ धरणी और धर्ममें परस्पर यह वार्ता हो रही थी, उसी समय पूर्ववाहिनी सरस्वती युक्त कुरुक्षेत्रमें परीक्षित नामक राजऋषि पहुँचे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
प्रथमस्कन्धे धरणी-धर्मसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-सप्तदश अध्यायमें, धर्म नृपति संवाद।
जेहि प्रकार मेटी सकल, धरणी धर्म विषाद ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनकऋषि ! वहाँ राजा परीक्षितने देखा कि दण्ड हाथमें लिये शूद्र राजाओंकासा वेष किये एक पुरुष गाय और बैलको मार रहा है ॥ १ ॥ कमलनालके समान श्वेतवर्ण भयभीत होकर पेशाब करता हुआ और एक पदसे स्थित चलनेमें असमर्थ होनेके कारण-कम्पायमान दुःखित शूद्रसे ताड़ित बैलको देखा ॥२॥ हविकी पूर्ति करनेवाली, दीन शूद्रके चरण प्रहारसे तिरस्कृत, वत्सहीन, तृषित, भोजनमें इच्छाहीन, नेत्रोंसे आंसू बहाती, गो-रूपधारिणी पृथ्वी देखी ॥ ३ ॥ राजा परीक्षित सुवर्णखचित रथमें बैठे, धनुष बाण चढ़ाये, मेघसमान गम्भीर वाणीसे पूछने लगे ॥ ४ ॥ अरे नीच ! तू कौन है ? सब पृथ्वीका राजा तो मैं हूँ और मेरे सम्मुख अपने बलसे निर्बलोंको मारता है। साक्षात् तूने राजा का वेष धारण कर रखा है, परंतु नटकी नांई है, तेरा कर्म शूद्रोंके समान है ॥ ५ ॥ तू कौन है ? क्या गांडीव धनुषधारी अर्जुनको तूने दूर गया जाना है और श्रीकृष्णचन्द्र महाराज त्रिलोकीनाथको तू भूल गया ? और उनको वैकुण्ठ गया समझा, क्या तूने पृथ्वीको अभीसे वीर विहीन समझ लिया, जो गायको और बैलको एकान्तमें सताता है ? इस कारण तू महा अपराधी है और वध करने योग्य है ॥ ६ ॥ तब राजाने बैलसे पूछा, हे कमलनालसदृश-धवलकाय ! तुम कौन हो ! और तीन पांव रहित हो, एक चरणसे चलना चाहते हो। बैलरूप धारण किये कोई देवता तो तुम नहीं हो, जो मुझे भ्रममें डालते हो ॥ ७ ॥ कौरवोंके भुजदण्डोंसे रक्षित पृथ्वीपर तुम्हारे विना किसी प्राणीमात्रके दुःखसे आंसू नहीं निकलते हैं ॥ ८ ॥ हे सुरभिनंदन ! इस शूद्रसे अब तुमको कुछ भय नहीं होगा, हे गोमाता ! तुम्हारा भी कल्याण होगा, मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ ॥ ९ ॥ जिस राजाके देशमें साधु, प्रजा दुष्टोंसे दुःखित होती है, उस मदान्ध राजाके चार गुण-कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

राजाओंका यही परम धर्म है, कि आर्तोंकी पीड़ा दूर करें, इसलिये मैं इस दुष्टको जीता नहीं छोड़ूंगा ॥ ११ ॥ हे सुरभिनन्दन ! तुम्हारे तीन चरणोंको किसने तोड़ा ? तुम तो चार चरणवाले हो "तुम शीघ्र बताओ; मैं अभी उसके हाथ काटूंगा। मैं श्रीकृष्णचन्द्रके सेवक अर्जुनका पोता हूँ, जो तुम्हारा दुःख दूर नहीं करूंगा तो पाण्डवोंके कुलको दोष लगेगा। मनुष्यका तो क्या सामर्थ्य है, यदि देवता भी मेरे राज्यमें आ किसी दीनको सतायेगा, निःसन्देह मैं उसी समय उसका शिर काट डालूँगा" श्रीकृष्णके सेवक राजाओंके राज्यमें तुम सरीखा कोई न हो ॥ १२ ॥ हे वृष ! तुम्हारा कल्याण हो, निरपराधी साधु-सन्तोंको विरूप करना यह राजाओंकी कीर्तिको दूषण लगानेवाला है ॥ १३ ॥ निरपराधी पुरुषको अपराध लगानेवालेको सब ओरसे मेरा भय रहता है ! ब्राह्मण, बालक, गौ, इनको जो दोष निरंकुश होकर लगाये वह देवता भी हो तो उसकी बाजू (बाहुभूषण) समेत भुजा काट डालूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ परम धर्म राजाओंका यही है कि, स्वधर्ममें जो स्थित हो उसका पालन करना और विना विपत्तिके समय पाखण्डियोंको शास्त्रके अनुसार शिक्षा देना ॥ १६ ॥ धर्म बोला– पाण्डुवंशियोंको यही अभयदान वचन कहना युक्त है, जिनके गुणोंसे वशीभूत भगवानने दूतादिक कर्म स्वीकार किये थे ॥१७॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! जहां क्लेशका बीज होता है, वह मैं नहीं जानता जिनके वचनोंके मदसे जीव विमोहित होता है ॥ १८ ॥ कोई विकल्पवादी आत्मामें आत्माको मानते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं, कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानते हैं ॥ १९ ॥ किसीने तर्क अनिर्देश निश्चय किया है, जिस परमेश्वरकी इच्छासे सब जीव उत्पन्न होते हैं, वही परमात्मा है, इसमें जो आपको जान पड़े वह अपनी बुद्धिसे विचार लो "मैं किसीका नाम नहीं बता सकता कि, किसने मुझे सताया" ॥२०॥ हे द्विजसत्तम ! धर्मने जब ऐसे वचन कहे, तब तो राजा परीक्षित चित्त सावधान करके बड़ा दुःखी हुआ और मनमें विचारा कि यह "वृषरूप धारण किये धर्म है और गोरूपी धरणी है और यह शूद्ररूपधारी कलियुग है। इसी दुष्टने धर्मके पांव तोड़कर धरणीको दुःख दिया है और इस वसुन्धराके स्वामी परमेश्वर परमधामको चले गये इसीलिये यह आंखोंमें आंसू भरे चिन्ता कर रही है। धर्मात्माका नाम लेनेसे धर्म और पापीका नाम लेनेसे पाप होता है, इसी कारण वृषरूपी धर्मने कलियुगको पापी जानकर उसका नाम नहीं लिया" यह विचार परीक्षित बोला ॥ २१ ॥ हे धर्मज्ञ ! क्या तुम धर्म हो ! वृषरूप धारण किये बोलते हो, जो कोई अधर्मकी बात करता है और जो उसकी सूचना करता है, उन दोनोंको समान पाप होता है ॥ २२ ॥ अथवा देवताओंकी मायाको कोई नहीं जान सकता, मन वचनसे जो जीवोंको निश्चय हो वही श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ धर्मके चार चरण–तप, सत्य, शौच, दया है और अधर्मके अंशसे विस्मय, परस्त्रीप्रसंग, मद,

१. शंका—बैल रूप धर्मसे राजा परीक्षितने पूछा कि, हे धर्म-रूप वृष ! तुमको कौनसा दुष्ट प्राणी दुःख देता है उसको मुझे बताओ, मैं अभी तुम्हारे दुःख देनेवाले दुष्टको मार डालूंगा। तब धर्मने अपने दुःख देनेवाले शत्रुको नहीं बताया कि कलियुग मुझको बड़ा दुःख देता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, क्यों नहीं बताया और क्यों झूठ बोला कि मैं अपने दुःख देनेवालोंको नहीं जानता। झूठ बोलना धर्मका काम नहीं।

उत्तर—धर्मने ऐसा विचार कर राजा परीक्षितके सम्मुख अपने बैरीको नहीं बताया, कि यह राजा परीक्षित पाण्डवोंका पोता है और बड़ा बुद्धिमान् है, अपने मनसे ही सब संसारके चरित्रोंको जान लेगा और ऐसा भी लिखा है कि, अपना प्राण नष्ट होता हो और दूसरेका प्राण अपने झूठ बोलनेसे बच जाय तो वह झूठ बोलना भी सत्यके समान है। धर्मने अपने मनमें विचारा, कि जो मैं अपने शत्रुको बताऊंगा तो उसी समय राजा उसको मार डालेगा, मुझको पाप होगा। अपने मनसे मेरे शत्रुको जैसा चाहेगा, वैसा करेगा इसलिये धर्मने झूठ बोला ॥

यह तीन है। इनके प्रवृत्त होनेसे तीन चरण टूटकर एक चरण शेष रह गया है ॥ २४ ॥ अब हे धर्म ! दान एक चरण तुम्हारा रह गया है, उसको भी यह कलियुग तोड़ना चाहता है, क्योंकि झूठ बोलनेसे यह कलियुग बढ़ता है ॥२५ ॥ भगवानने सब भार जिसका दूर किया ऐसी सती वसुन्धरा श्रीमान्‌के पदोंके स्पर्शसे सब ओरसे मंगलरूप हो रही थी ॥२६ ॥ आज कृष्ण महाराजके विरहसे व्याकुल हो आंखोंसे आंसू बहा रही है, साध्वी जैसे दुर्भागिनी हो शोक करती है, ब्राह्मणनिन्दक राजारूपधारी शूद्र मेरे ऊपर राज्य करे, यह कठिन दुःख है ॥२७ ॥ महारथी राजाने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको शान्त कर तीक्ष्ण खड्ग अधर्मी कलियुगके वधके निमित्त उठाया ॥ २८ ॥ जब कलियुगने देखा कि यह बलवान् राजा इस समय क्रोधमें भर रहा है। और मुझको मारनेके लिये उपस्थित है। मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं जो इससे युद्ध करूँ, यह विचार कर नृपके सब चिह्न त्याग भयभीत हो राजाके चरणोंमें गिर पड़ा और अपने प्राण बचानेके लिये राजाकी विनती करने लगा ॥ २९ ॥ राजा उस शूद्रको अपने पैरोंमें पड़ा देख दीनवत्सल कृपालु हँसकर बोले, कि शरणागतको नामी नरेश नहीं मारते ॥ ३० ॥ राजा बोले कि, अर्जुन सरीखे यशस्वियोंके हाथ जोड़, जो शरण आया है उसको किसी प्रकारका भय नहीं है, परन्तु तू अधर्मका रूप है जहांतक हमारा राज्य है तुझे रहना उचित नहीं, शीघ्र यहांसे चला जा ॥३१ ॥ नरदेह धारण कर जो तू रहेगा तो अधर्मका समूह बढ़ेगा। लोभ, अनृत, चौर्य,मूर्खता, अहंकार, पाप, माया, क्लेश, दम्भ यह अधिक बढ़ेंगे ॥ ३२ ॥ हे अधर्मके मित्र ! तू यहां मत रह और जो सत्य, धर्म, व्रत करे तो रह। यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग इस ब्रह्मावर्त (बिठूर) में यज्ञेश्वरका यज्ञसे यजन करते हैं ॥ ३३ ॥ इस यज्ञमें भगवान वासुदेवका पूजन होता है, यज्ञमूर्ति ईश्वर यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं, अमोघ सब कामना पूर्ण होती है, जैसे स्थावर जङ्गमोंके बाहर भीतर वायु रहता है वैसे ईश्वर रहता है ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! जब राजा परीक्षितने यह वचन कहे, तब तो कलियुग थरथर कांपने लगा। खड्ग हाथमें लिये यमराजकी नाईं राजा परीक्षितको देखकर बोला ॥३५ ॥ हे महाराज ! तुम्हारी आज्ञासे जहां कहीं रहूँगा वहां भी आप धनुष-बाण लिये मेरे पीछे फिरोगे, इस कारण मैं यहां नहीं रहूँगा ॥ ३६ ॥ हे धर्मध्वज ! ब्रह्माने चार युग रचे-सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, उनकी अवस्थाका प्रमाण इस प्रकार किया है कि सतयुग १७२८००० सत्तरह लाख अट्ठाईस सहस्र वर्ष राज्य भोगकर चल दिया, फिर त्रेता आया, उसने भी १२९६००० बारह लाख; छियानबे सहस्र वर्ष राज्य किया। फिर द्वापरका प्रवेश हुआ, उसने भी आनन्द सहित ८६४००० आठ लक्ष चौंसठ सहस्र वर्ष राज्य कर लिया। अब सब अपना-अपना राज्य भोग चुके, अब मेरे राज्य करनेका समय आया और ४३२००० चार लाख बत्तीस सहस्र वर्षकी मेरी अवस्था है, मुझको भोगनी पड़ेगी और मुझे आप आज्ञा देते हैं कि तू हमारे राज्यसे निकल जा। सातद्वीप नौखण्डमें तो आपका राज्य है फिर मैं कहां जाकर बसूँ और जो विधाताका लेख है, वह किसी प्रकार मिट नहीं सकता। फिर मैं क्या करूँ, कहां जाऊँ, हे दीनदयालु ! आप मेरे अवगुणोंका विचार तो करते हैं परन्तु मेरे गुणोंकी ओर ध्यान नहीं करते, मुझमें एक गुण अत्यंत उत्तम है, वह आपसे निवेदन करता हूँ, सतयुगमें राजाके राज्यमें एक मनुष्य अपराध करता था तो

समस्त राज्यभरके मनुष्य दण्ड पाते थे। त्रेतामें एक मनुष्यके पाप करनेसे सब ग्रामका ग्राम दण्डका भागी होता था और द्वापरमें जो कोई कुकर्म करता था उसके सब कुटुम्बको शासना दी जाती थी और कलियुगमें जो पुरुष अन्याय करता है वही अपने शरीरसे भोगता है दूसरेसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, और युगमें मनुष्योंको मनका भी पाप लगता था और उसका दण्ड भोगना पड़ता था, सो मेरे राज्यमें मनका पाप नहीं लगता, बरन मानसिक पुण्यका फल मिलता है, जब इस बातपर राजा परीक्षित सन्तुष्ट न हुए और उनके मनमें दया नहीं आयी तो फिर कलियुगने कहा—हे दीनानाथ ! मुझमें एक गुण और बड़ा लाभदायक है, सतयुगमें जो कोई वैकुण्ठके जानेके लिये दशसहस्र वर्ष जप, तप, संयम करता था तब उसकी मनःकामना सफल होती थी। त्रेतामें जब मनुष्य बहुतसा धन लगाकर सहस्र वर्षतक अश्वमेध यज्ञ करते थे, तब उनका मनोरथ सिद्ध होता था। द्वारपरमें सौ वर्षतक दान, व्रत, पूजा, ध्यान, भगवान् वासुदेवका करनेसे इच्छा पूर्ण होती थी और मेरे राज्यमें जो मनुष्य पलमात्रको भी एकाग्र चित्त करके सच्चे मनसे परमेश्वरका भजन करे वा सच्चे मनसे हृदयमें ध्यान करे और उनकी कथा वार्ता सुने, वह अपने सर्व कार्यको साध अनेक जन्मके पापोंसे छूट मोक्षका भागी होता है। जब कलियुगमें यह पूरा गुण सुना, तब तो राजा परीक्षित कलियुगपर बहुत प्रसन्न हुए। कलियुग हाथ जोड़कर बोला, कि हे पृथ्वीनाथ ! हे दयानिधि ! हे दीनदयालु ! जो आप मुझपर प्रसन्न हों तो कृपा करके मुझको प्राणदान दीजिये और जिस स्थानपर आपकी आज्ञा मेरे रहनेकी हो मैं वहां निश्चिंत होकर रहूं और सदा आपका आज्ञाकारी रहूँगा ॥ ३७ ॥ जब इस प्रकार कलियुगने प्रार्थना की तब राजा कलियुगके लिये स्थान बताने लगे-जहां जुआ होता हो, वहां मदिरा बिकती हो, जहां वेश्या रहती हों और जहां जीवहिंसा हो, ये चार स्थान तुमको दिये। तुम इन चारों स्थानोंमें वास करो ॥ ३८ ॥ फिर विनती करके कलियुग बोला कृपासिन्धु ! मेरा कुटुम्ब बहुत है, इन स्थानोंमें कैसे समायेगा, तब राजाने कहा-सोनेमें भी तुम रहो, इसी प्रकार, झूठ, मद, काम, रजोगुण, वैर यह पांच स्थान तुमको और दिये ॥३९॥ राजा परीक्षितके दिये हुए उन्हीं पांच स्थानोंपर अधर्मी कलिने अपना वास किया ॥४०॥ जो पुरुष संसारमें अपनी वृद्धि चाहे, तो इन पांच बातोंके निकट न जाय। धर्मात्मा राजा, लोकपति, गुरु, विशेष करके इनका सेवक नहीं करे ॥ ४१ ॥ धर्मरूपी वृषके तीन पद-तप, शौच, दया यह नष्ट हो गये थे, इनको अपने धर्मसे अच्छा किया और पृथ्वीको भी धैर्य देकर शान्त किया ॥ ४२ ॥ यह राजा परीक्षित राजाओंके योग्य आसनपर बैठे, जो राजसिंहासन राजा युधिष्ठिर और अर्जुन वनको जाते समय इनको दे गये थे ॥ ४३ ॥ अब वह राजऋषि कौरवोंकी शोभा बढ़ानेवाले, महाभागवत, चक्रवर्ती, महायशस्वी हस्तिनापुरमें हैं ॥ ४४ ॥ राजा अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षितका ऐसा प्रताप है कि, वह समस्त पृथ्वीका पालन करते हैं, तब ही तुम यज्ञ करते हो ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथम-
स्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अष्टादश अध्यायमें, कियो नृपति अतिपाप ।
ताके बदलेमें दियो, शृङ्गी ऋषिने शाप ॥

जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर माताके पेटमें नहीं मरे, यह अद्भुत कर्मवाले श्रीकृष्णजीकी ही कृपा थी ॥१॥ ब्राह्मणने क्रोध करके यह शाप दिया कि तुमको तक्षक सांप काटेगा तो भी इस प्राणनाशक महाभयसे मोहित न हुए और भगवान् वासुदेव के चरणोंमें ही लवलीन रहे ॥ २ ॥ सबका संग त्याग, वैराग्य ले, भगवत् तत्त्व जानकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेव मुनिके समीप श्रीगंगाजीके तटपर तनु त्याग किया ॥३॥ ऐसे श्रीमद्भागवतकी वार्त्ता सेवन करनेवालेको उनकी कथा-अमृत पान करनेवालोंको, श्रीकृष्ण चन्द्रके चरणकमल स्मरण करनेवालोंको अन्तकालमें भी संभ्रम नहीं होता है ॥ ४ ॥ कलियुग प्रविष्ट तो हुआ परंतु सब स्थानोंमें अभीतक प्रवेश नहीं किया, जब तक पृथ्वीमें नरेश परीक्षित राज्य करते रहे ॥ ५ ॥ जिस दिन जिस समयसे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदने पृथ्वीको त्यागा, उसी दिनसे यहां अधर्मवर्द्धक कलियुगने सब पृथ्वीपर प्रवेश किया ॥ ६ ॥ राजा परीक्षितने कलियुगसे शत्रुता नहीं की, किंतु भ्रमरवत् सारग्राही हुए, क्योंकि जिस कलियुगमें मानसी पुण्य तो संकल्पमात्र करनेसे सिद्ध होता है और संकल्प करनेसे पाप नहीं होता । यदि कदाचित् करो भी तो उसका फल तत्काल नहीं होता ॥ ७ ॥ जो प्राणी धैर्यसे कार्य करनेवाले हैं, उनका अधर्मी कलियुग क्या कर सकता है, मदान्ध मनुष्योंमें कलियुग शीघ्र प्रवेश करता है, जैसे बालकोंमें भेड़िया आता है और शूरमाओंके निकट नहीं आता ॥ ८ ॥ पुण्यरूप परीक्षित का आख्यान आपके सामने वर्णन किया । भगवान् वासुदेवकी कथा-वार्ता जिसमें हो ऐसा कोई आख्यान और पूछो ॥ ९ ॥ कहने योग्य श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म हैं, उन भगवान् वासुदेवकी जो-जो कथा गुण-कर्म आश्रय हैं वह मनुष्य संसारमें सुखकी इच्छा करनेवालोंको सदा सेवन योग्य हैं ॥१०॥ सब ऋषि बोले कि, हे सूत ! हे सौम्य ! सहस्र वर्षकी तुम्हारी आयु हो, बहुत दिनों तक तुम्हारा यश रहे, जो तुम श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र मनुष्योंको अमृतके समान पान कराते हो ॥ ११ ॥ अविश्वासवाले इस कर्मरूपी धुयेंसे धुंधरी आत्मा हमारी हो गयी । आप मनुष्योंको अमृतरूपी श्रीकृष्णके चरणारविंदोंको मधुपान कराओ ॥१२॥ भगवत्-भक्तोंके सङ्ग करनेवालोंको एक लवमात्रके सत्संगकी समता स्वर्ग नहीं कर सकता, न मुक्तिका आशीर्वाद उन्हें दे सकते हैं फिर मनुष्योंका तुच्छ मनोरथ जो राज्यादिक हैं, उनकी तो गणना ही क्या है ? ॥ १३ ॥ महात्माओंके एकान्त ध्यान और उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त हो सकता है । कोई नहीं । निर्गुणी ईश्वरके गुणोंका अन्त योगेश्वर शिव ब्रह्मादिक नहीं जान सकते, फिर ऐसा कौन पुरुष है, जो उस कथाके रसको पहिचान कर तृप्त हो ? ॥१४॥ हे विद्वज्जन ! हरिके उदार विशुद्ध चरित्र सुननेवाले लोगोंसे भगवत्प्रधान आप विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १५ ॥ महाभागवत, मोक्षके जाननेमें चतुर बुद्धिमान राजा परीक्षित, व्यासपुत्र शुकाचार्यके कहे हुए ज्ञानसे गरुड़ध्वज श्रीहरिके चरणोंकी समीपताको प्राप्त हुए ॥१६॥ अति श्रेष्ठ पुण्यदायक जिसमें सुगम अर्थ अति अद्भुत, योगागम्य अनन्त चरित्र युक्त, परीक्षितका जिसमें कथानक, भागवतोंका आनंददायक, बहुत बड़ा आख्यान हमसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले, हे ऋषियो ! बड़े

आनंदकी बात है, कि विलोममें हमारा जन्म है तो भी वृद्धोंकी सेवासे हमारा जन्म सफल हुआ और महात्माओंका सत्संग कुलके जन्मकी जो मानसी पीड़ा है उसको शीघ्र नाश करता है ॥ १८ ॥ महात्माओंका स्वर्गमें चिंतन योग्य, श्री नारायणका नाम लेना सब पापोंसे छुड़ाता है। अनंतशक्ति भगवान् अनंत महागुणवान् होनेसे अनंत कहलाते हैं ॥१९॥ बस इतना कहना ही पूर्ण है कि गुणोंमें जिनके समान कोई नहीं; लक्ष्मीकी जिनको इच्छा नहीं, ऐसे परमात्माके चरणोंकी रेणुओंका लक्ष्मी दिन-रात सेवन करती है और ब्रह्मादिककी प्रार्थनाको भी त्याग देती है ॥२०॥ जिनके चरणनखका प्रक्षालन गंगाजी, ब्रह्माजीसे धोया हुआ जल सबको पवित्र करता है ऐसे सर्व सामर्थ्यवान् भगवान् वासुदेवसे अधिक और भगवत् पदार्थ लोकमें कौन है अर्थात् कोई नहीं ॥ २१ ॥ जहां अनुरागी धीर देहादिकोंमें सबका संग त्यागकर परमहंसोंका आश्रम जो सबके पीछेका है उसको जाते हैं, जिसमें कोई हिंसा नहीं है, उपशांति आदि अपना धर्म उसमें है ॥ २२ ॥ हे सूर्यसमान, हे त्रयीमूर्ति ! आपने जो हमसे पूछा है वह जितना मुझको ज्ञान है उतना हम आपसे कहेंगे। जैसे पक्षी लोग अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, उसी भांति विष्णुनारायणकी लीलाको अपनी बुद्धिके अनुसार विद्वान लोग कहते हैं॥२३॥एक दिन राजा परीक्षित धनुष बाण लेकर वनमें आखेट खेलनेको गये।मृगोंके पीछे दौड़नेसे भूख-प्यासके कारण अत्यन्त व्याकुल हो ॥ २४ ॥ जलाशय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक आश्रममें प्रवेश किया वहां एक ऋषीश्वर शान्तस्वरूप नेत्र मूँदे बैठे देखा ॥ २५ ॥ प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सब जीते सबसे उपराम हुए तीनों अवस्थासे भिन्न तुरीया अवस्थाको प्राप्त हुए, क्रिया रहित ब्रह्मभूत ब्रह्मरूप हो रहे थे ॥२६॥ जटा सब शरीरपर बिखर रही हैं,रुरु नामक मृगके चर्मके ऊपर बैठे,जिनको देहका कुछ अनुसंधान नहीं, उन शमीक मुनिसे भूख-प्यासका मारा शुष्क कण्ठ राजा बोला॥२७॥ "मैं प्यासा हूँ" जब ऋषिने तृण, भूमि, अर्घ्य, मीठे वचनोंसे राजा का सत्कार नहीं किया, तब राजाने अपने मनमें समझा कि इसको अपने तपका घमण्ड है,इसलिये इसने मेरी अवज्ञा की, यह समझ राजाके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसा कभी नहीं हुआ जो राजाने भूख-प्याससे व्याकुल हो ब्राह्मणोंपर क्रोध और मत्सरता की हो। यह सब कलियुगका कौतुक है, क्योंकि राजाने कलियुगसे प्रतिज्ञा करली थी, कि हिंसामें तेरा वास होगा,उस समय कलियुगने अहेरमें जीवहिंसा करनेसे राजाके चित्तमें अपना वास करके क्रोध उत्पन्न किया, तब राजाके मनमें अनीतिका अंकुर जमा; तो उसने यह विचारा कि देखो हम सात द्वीप, नव खण्डके राजा होकर इस ऋषीश्वरके द्वार पर जल मांगने आये, तो इस ब्राह्मणने हमको देखकर आंखे बंद कर लीं। पानीके लिए तो कौन कहे ? इसने हमारी ओरको देखा तक भी नहीं। अब इसे अवश्य कुछ दण्ड देना चाहिये, जिससे आगे फिर यह ऐसा काम न करे। फिर बुद्धिको सावधान कर समझा कि कुरुवंशी होकर कैसे ऋषिको दण्ड दूँ फिर कलियुगने राजाको भुलाया तो राजाकी मति फिर वैसी ही हो गयी और झट घोड़ेसे उतरा तो उसने एक सर्प मरा हुआ पड़ा देखा और मनमें विचारा कि सर्प इसके कण्ठमें डाल दूँ, तो सांपके भयसे यह ब्राह्मण अपनी आँखें खोल देगा॥२९॥ यह विचार कर राजा परीक्षितने उस ब्रह्मऋषिके कण्ठमें मरा हुआ सर्प क्रोध करके धनुषके अग्रभागसे डाल दिया और

अपने नगरको चला आया। और मार्गमें मन ही मन यह कहता जाता था ॥३०॥ सब इंद्रियोंको रोके नेत्र मूंदे झूठी समाधि लगाये इसने अपने मनमें यह समझा होगा कि क्षत्रिय लोग हमारा क्या करेंगे? ॥३१॥ उनका अतितेजस्वी बालक पुत्र बालकोंके सङ्ग खेलता था, वहां किसी लड़केने आकर कहा-हे बंधो!आज तुम्हारे पिताके गलेमें राजा परीक्षित मरा हुआ साँप डाल गये हैं, यह बात सुन शृंगीऋषि कहने लगा ॥३२॥ बड़ा अधर्म है कि पालक, दास, द्वारपालक तथा राजाओंको अपने स्वामीमें अपराध करना नहीं चाहिये, जैसे काक, श्वान करते हैं ॥ ३३ ॥ क्षत्रियों को ब्राह्मणोंने द्वारपालक किया है। द्वारवासी घरमें जाकर उसी पात्रमें कैसे भोजन करने योग्य है? ॥३४॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीसे चले गये। मैं धर्मके सेतु तोड़नेवालोंको आज भली भाँति शिक्षा करता हूँ, तुम सब मेरा पुरुषार्थ देखो ॥३५॥ यह कह शृङ्गीऋषि क्रोधसे लाल नेत्र कर, अपने समान बालकोंके सम्मुख कौशिकी नदीका जल हाथमें लेकर राजाके ऊपर वाग्वज्र छोड़ा ॥ ३६ ॥ आजसे सातवें दिन मर्यादानाशक कुलमें अङ्गाररूप मेरा भेजा हुआ तक्षकसर्प मेरे द्रोहीको काटे॥३७॥ पीछे आश्रम पर आकर अपने पिताके गलेमें सर्प पड़ा देख बहुत दुःखी हुआ और धाड़ें मार-मार कर रोने लगा ॥३८॥ हे ब्रह्मन्! वह अंगिरागोत्री शमीक ऋषि, पुत्रका विलाप सुन साधारणसे नेत्र खोलकर अपने कण्ठमें मरा सांप देखा ॥३९॥ उसको निकाल पुत्रसे बोले-हे पुत्र!क्यों रोता है, किसने तेरा अनादर किया? यह बात पिताके मुखसे सुन उसने सब वृत्तांत कह सुनाया ॥४०॥यह बात सुन शमीक ऋषि घबड़ाकर बोले-"अरे बेटा! तूने यह क्या किया? जो राजा परीक्षित शापके योग्य नहीं थे उनको तूने विना समझे शाप दिया; अरे पुत्र! यह अच्छा नहीं हुआ। बड़े खेदकी बात है कि, थोड़े अपराध करने पर द्रोहसे ऐसा कठिन दण्ड दिया ॥४१॥ हे मूर्ख! राजा परीक्षित मनुष्योंके समान नहीं है; उनका पराजय करना योग्य नहीं है, जिसके महातेजसे प्रजा रक्षित हो भयरहित सदा सुख भोगती है ॥ ४२ ॥ श्रीभगवान्का स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करे तो मेंढ़ोंके समूहकी भांति यह लोक चोरोंके बढ़नेसे नष्ट हो जाय ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट हो जायगा तो उसका धन भी लुट जायगा, इस पापसे हमारा सब वंश पाप भोगेगा, परस्पर मरेंगे, मारेंगे, शाप देंगे बहुत चोर लुटेरे बढ़कर पशु, स्त्री इत्यादि अनेक पदार्थ हरेंगे ॥ ४४ ॥ तब मनुष्योंके सदाचारधर्म, वेदोक्त वर्णाश्रम आचार सब लीन हो जायँगे। अर्थ कामकी अभिलाषा करनेवाले, वानर, श्वान पशुओंकी नाईं सब वर्णसंकर हो जायँगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! धर्मकी रक्षा करनेवाला नरपति साक्षात् महायशस्वी, राजर्षि, अश्वमेधकारी राजा परीक्षित है ॥ ४६ ॥ क्षुधा, तृषा, परिश्रमसहित

---

१. शंका--राजा परीक्षित तो बड़ा बुद्धिमान् था फिर उसकी बुद्धि भ्रष्ट क्यों हो गयी? जो नीचपनसे राजा परीक्षितने मरा हुआ साँप उठाकर मुनिके गलेमें डाल दिया। यह क्या कौतुक! ऐसा काम तो कोई उन्मत्त भी नहीं करता, जो कदापि ऐसा मान लिया जाय कि परीक्षितकी बुद्धि कलियुगने भ्रष्ट करदी तो भी शोभा नहीं होती, क्योंकि कलियुगको राजा परीक्षितने रहनेके लिये स्थान दे दिया था तब कलियुगसे राजा परीक्षितने कहा कि हमारे राज्यमे तू अपना पराक्रम मत करना। इस प्रकार राजाका और कलियुगका वचन हुआ था, तो कलियुगने तुरन्त ही अपने वचन क्यों छोड़ दिये?

उत्तर--राजा परीक्षित सात वर्षका बालक था, तब बालकोंका खेल खेलते पांडवोंकी सभामें गया। वहाँ पावक मुनि बैठे थे उनको सूतके सर्पसे डरा दिया। तब पावक मुनि जो सभामें विराजमान थे उन्होंने परीक्षितको शाप दे दिया और कहा कि, हे दुष्ट बालक। पाण्डवोंके देखते-देखते हमको सर्पसे डराता है, इस लिये तेरी मृत्यु भी सर्पसे होगी, उस मुनिके शापसे राजाकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। इसलिए ऐसा पाप राजा परीक्षितने किया ॥

अपने स्थानपर आया और हमारे यहां आकर उलटा शापित हुआ" क्या वह शापके योग्य था ? यह बात शमीक ऋषिने पुत्र शृङ्गीऋषिसे कही ॥ ४७ ॥ फिर परमात्माका ध्यान करके यह प्रार्थना की कि, हे नाथ ! मेरे पापरहित अज्ञानी बालक सेवकसे बड़ा अपराध हुआ, इस अज्ञानी बालकका दोष क्षमा करो ॥४८॥ तिरस्कृत, वंचित, शापित, अपमानित, ताड़ित भगवान्के भक्त अपने अपराध करनेवालेको शाप नहीं देते ॥४९॥ पुत्रके अपराधसे महामुनि अत्यंत दुःखी हुए परन्तु राजाने जो अपराध किया उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ५० ॥ प्रायः परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापता, न उनको कोई व्यथा हो, न वे अप्रसन्न हों, क्योंकि वे अपने गुणोंसे सर्वव्यापक ईश्वरके समान आप हो जाते हैं "फिर शमीकऋषिने सोचा कि जो कुछ होना था वह हुआ, परन्तु राजाको यह वृत्तांत अवश्य कहला भेजना चाहिये जिससे वे अपने मोक्षका उपाय कर लें । यह बात सुनकर जगत्के लोग तो शृङ्गीऋषिको दूषण देंगे ही, परन्तु ऐसे धर्मात्मा राजाको यह बात अवश्य जता देनी चाहिये । यह विचार शमीकमुनिने एक अपने शिष्यसे कहा-तू राजा परीक्षितके पास जाकर हमारी ओरसे आशीर्वाद देकर यह कहना कि शृंगीने तुमको शाप दिया है, कि सांपके काटनेसे तुम्हारी अकालमृत्यु होगी, अतः तुम सावधान होकर अपने मोक्षका यत्न करो " इतनी कथा कह सूतजी बोले-हे ब्रह्मन् ! देखो जो राजा परीक्षित अश्वत्थामाके अस्त्रसे बचा, जिसने धर्मकी और धरणीकी रक्षा कर कलिकालको अपने वशमें किया, वही राजा परीक्षित एक ब्राह्मणके बालकके शापसे सर्पके मुखमें गया और किसीसे उसकी रक्षा न हुई, ऐसा महाघोर तेज क्रुद्ध ब्राह्मणोंका है ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कन्धे विप्रशापवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—बरणौं कथाविशेष सब, यथाशाप इतिहास ।
राजकाज तजि नृपति ज्यों, कीन्ह गङ्गतटवास ॥

सूतजी बोले कि हे शौनकमुनि! राजा परीक्षितने अपने आप जो निंदित कर्म किया उसका चिन्तन कर अपने मनमें बहुत दुःखी होकर कहने लगे, कि मैंने विना अपराध ब्राह्मणको सताया जिनका तेज छिपा हुआ था उन निरपराधी ब्राह्मणपर महानीच कर्म अपनी मूर्खता से मैंने किया ॥१॥ निश्चय है कि, मैंने ईश्वरके भक्त महात्माकी अवज्ञा की है, इसलिये थोड़े दिनोंमें अत्यंत दुःख शीघ्र इस पापके प्रायश्चित्तके लिये मुझको हो, मेरी यह इच्छा है, क्योंकि अपने आप फिर ऐसा पाप मैं न करूँ ॥२॥ राज्य, सेना, ऋद्धि, कोष, अत्यंत कुपित ब्राह्मणके कुलसे उठी आग क्षणमात्रमें सबको भस्म कर दे । जो मुझ अमांगलिककी ऐसी पापी बुद्धि ब्राह्मण, गौ, देवतामें फिर कभी न हो ॥३॥ ऐसे चिंतन कर ही रहे थे कि उसी समय शमीक मुनिके भेजे हुए एक शिष्यने आकर कहा कि, हे राजन् ! शमीकमुनिके पुत्र शृंगीऋषिने आपको यह शाप दिया है कि आजसे सातवें दिंन तक्षक सांप राजाको डसेगा, जिससे मृत्यु हो जायगी।

१. कवित्त—सर्व अंग भंग होत गुरुको जो निन्दा करे, नरकमाहिं वास होत नारीके चुरायेसे । अन्धे और लूले होत जीवनके हिंसक जे, ज्ञान बुद्धि नष्ट होत नीच धान्य खायेसे ॥ कुष्ठी और मूक होत मुनिनको सतावें जो, नरकमाहिं वास होत परनिंदा गायेसे । विप्रनके पूजनसे यश होत शालग्राम, वंशको विनाश होत विप्रके सतायेसे ॥ १ ॥

यह सुन राजाने तक्षकाग्निको बहुत उत्तम माना, क्योंकि विषयासक्तोंको यह विरक्तताका कारण है ॥४॥ राज्य और देह दोनों पहले ही त्यागनेके योग्य हैं और यह अधिकता है कि श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंकी सेवा करूंगा, यह विचार श्रीगङ्गाके तट जानेकी इच्छा की ॥ ५ ॥ तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णचरणोंकी रेणुसे अत्यन्त शोभित अधिक पवित्र, निर्मल जल बहानेवाली गंगाजी दोनों लोकोंको ईशसहित सबको पवित्र करती हैं, ऐसी गंगाका, जिसकी मृत्यु निकट आयी हो अवश्य सेवन करे। "राजाके मनमें इस बातका बड़ा खेद था कि इस अन्यायके बदले ऋषिने मुझको तुरन्त दण्ड नहीं दिया, जो तुरन्त प्राण छूट जाते तो सात दिनतक इस पापी शरीरके रखनेका क्या अभिप्राय था। अब मुझको उचित है कि सात दिन जो मेरे मरनेके हैं इस अन्यायी शरीरको यही दण्ड है कि अन्न पानी न दूं क्योंकि जिस देहसे परमेश्वरका भजन और भक्ति न हो वह देह किसी कामका नहीं, अब सब माया, मोह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम, त्याग परमात्माके ध्यानमें लीन होना चाहिये। इतनी अवस्था हमारी संसारके माया मोहमें वृथा नष्ट हुई और तो भी यह पापी मन विरक्त न हुआ और जब मैं सातवें दिन मर जाऊंगा तब यह राज्य और धन धरा ही रहेगा, इसलिये मुझको उचित है कि मैं पहले ही इन सबका माया मोह त्याग दूं और श्रीगंगाजी के निकट जाऊं जो तीनों लोकोंका निस्तार करती हैं। सात दिन वहीं बैठकर वैकुण्ठनाथका भजन करूं तो मोक्ष हो। क्योंकि संसारमें जो जन्म लेगा वह अवश्य मरेगा। ब्रह्मादिक देवता भी अमर नहीं रहते, इस संसारमें जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है और चौरासी लक्ष योनिमें भ्रमसे फिरता है, अतः इस सात दिनमें अब कोई ऐसा उपाय करूं जिसमें आवागमनके फन्देसे मुक्ति पाऊँ। यह बात विचार सर्व नगरनिवासियोंको बुलाकर जन्मेजय अपने बड़े पुत्रको जिसकी चौदह वर्षकी अवस्था थी राज्यसिंहासनका अधिकारी किया और सब राज-काजका भार मंत्री और प्रधानोंको सौंपकर जन्मेजयसे कहा–हे पुत्र ! गौ, ब्राह्मण, साधु, सन्तकी रक्षा करना और प्रजाको पुत्रके समान पालना, किसीपर अन्याय न करना, यह कह राजाने अपना मन विरक्त कर भूषण वस्त्र शरीरसे उतार रानियोंको समझाया, कि स्त्रियोंका धर्म यही है कि, जिस बातमें उसके पतिकी मर्यादा रहे वही काम करना चाहिये। पतिके धर्ममें विघ्न नहीं डाले, परमेश्वर जन्मेजयादि पुत्रोंको जीवित रक्खे, तुमको सर्व प्रकारका सुख है, इस भांति सबको धैर्य दिया।" हे शौनकमुनि ! सो पाण्डुनन्दन यह निश्चय कर अनशन व्रत ले गङ्गातीर जाय सब भाव हरिमें कर मौनव्रत धर सब संग त्याग भगवानके चरणोंका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ सर्वत्र भुवनके पवित्रकर्ता महाअनुभवी ज्ञानी शिष्यों-सहित बहुतसे तीर्थयात्राके मिषसे आप सर्व तीर्थोंको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण मनन-शील मुनि आने लगे ॥ ८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मबाहु ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, द्वैपायन, भगवत अवतार श्रीनारद ॥ १० ॥ और देवर्षि ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ राजर्षिवर्य आरुणादिक नाना ऋषिवर्य आये ॥ ११ ॥ जब आनन्दपूर्वक सब बैठ गये तब राजाने सबको प्रणाम किया, एकान्त चित्त कुशासनपर बैठे हाथ जोड़कर जो अपने करनेकी इच्छा थी वह कही ॥ १२ ॥ फिर बोले, कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि शीलवान महात्माओंने मेरे ऊपर बड़ा

अनुग्रह किया, इस कारण मैं राजाओंमें धन्य हूँ, क्योंकि ब्राह्मणोंके चरणामृतने राजाओंको कुछ दूरसे त्यागा है और एक मुझसे यह निंदित कर्म हो गया॥ १३ ॥ घरमें बारंबार आसक्त-चित्त मुझ पापीको ज्ञानदायक पर अवरोंमें ईश्वर ही ब्राह्मण शाप रूप हो गये जिससे मुझे शीघ्र भय होता है ॥ १४ ॥ हे मुनीश्वरो ! मैं आपके शरणागत हूं, यह जानो कि परमेश्वरको और गंगाजीको चित्तमें धारण कर लिया। विप्रके शापसे कपटी तक्षकके काटनेका मुझे कुछ भय नहीं, आप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी कथा कहिये ॥१५॥ जिससे अनन्त भगवानमें मेरी प्रीति अधिक हो और उनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंमें मेरी मैत्री हो और जहां-जहां मेरा जन्म हो वहां-वहां सबको नमस्कार हो और ब्राह्मणोंकी शरणमें रहूं ॥ १६ ॥ राजा परीक्षित ऐसे निश्चय कर पूर्वका मूल कुशाके आसनपर महाधीर उत्तरकी ओर मुख कर समुद्रकी स्त्री गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठे और जन्मेजयको सब राज्यका भार पहले ही सौंप गये थे ॥ १७ ॥ जब वह नरदेव अन्न जल त्याग एकाग्रचित्त बैठे, तब देवताओंके समूहके समूह स्वर्गमें प्रशंसा कर कर दुंदुभी बजा-बजा कर बारंबार भूमिमें पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥१८॥ जो महाऋषि आये थे वे सब प्रशंसा और बड़ाई करने लगे, जिनका प्रजाके अनुग्रहके अर्थ शील सार है, वह मुनि उत्तमश्लोकके सुन्दर गुणवर्णन करने लगे ॥१९॥ हे राजर्षिवर्य ! श्रीकृष्णके अनुवर्ती आपमें यह कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि भगवतके समीपकी चाहनावाले राजाने किरीटोंसे सेवित राज्य त्याग दिया ॥ २० ॥ जबतक ये शरीरको नहीं त्यागेंगे, तब तक हम इन्हींके निकट बैठे रहेंगे, क्योंकि ये भागवतोंमें प्रधान पवित्र विशोक वैकुण्ठको जायँगे ॥ २१ ॥ सब ऋषिगणोंका पक्षपात शून्य अमृतरूपी गम्भीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित सुनकर विष्णुके चरित्र सुननेकी इच्छासे सब ऋषीश्वरोंको प्रणाम करके यह बोले ॥ २२ ॥ त्रिलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जैसे वेदमूर्ति रखकर बैठे हैं,ऐसे ही सब आकर मेरे निकट विराजमान हुए हो। पराये अनुग्रहके लिये परिश्रम करनेका आपका स्वभाव है, इस लोकमें जो कर्तव्य हो अथवा परलोकके लिये जो कुछ हो वह सब कृपा करके वर्णन कीजिये ॥ २३ ॥ हे मुनिगणो ! आप पर विश्वास कर जो कुछ पूछने योग्य है, वह पूछता हूं, कि इस समय क्या करना चाहिये ? सब प्रकारसे जिसकी मृत्यु आयी हो उसको शुद्ध होनेके लिये कृपा पूर्वक संमति कर कोई उपाय बताइये॥२४॥यह सुन कोई बोले-कि, यज्ञ करो। किसीने कहा-योग करो। कोई बोले-तप करो। किसीने कहा-दान करो। यह विवाद हो रहा था,उसी समय व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजी अपनी इच्छासे विचरते-विचरते इच्छारहित, आश्रम चिह्नरहित, यथालाभ संतुष्ट स्त्रीवालक पीछे कौतूहलसे लगे अवधूत वेप किये शुकदेवजी आये ॥ २५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्था, चरण, हाथ, हृदय, बाहु, कन्धा, कपोल, शरीर सुन्दर, विशालनेत्र, उठे हुए दोनों तुल्य कर्ण, सुन्दर भौं; मुख, शङ्ख समान कण्ठ, शोभायमान ॥२६॥ मांससे छिपी हुई कण्ठसे नीचेकी दोनों हड्डी; चौड़ा, ऊँचा; वक्षस्थल, कुण्डके समान गोल गम्भीर नाभिस्थल, तिरछी झुकी हुई रेखाओंसे मनोहर उदर, दिगम्बर अर्थात् नग्न फैले हुए केश, लम्बे भुजदण्ड यह शोभा सुरोत्तम भगवानकी-सी हो रही ॥ २७ ॥ सुन्दर श्याम शरीर, श्रीयुक्त अंग, मनोहर मुसकान, गुप्ततेज, ऐसे लक्षणोंसे पहिचान कर मुनि आसनोंसे उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥ राजा परीक्षितने अतिथि शुकदेवजीको देख दण्डवत् प्रमाण कर पूजन किया, अज्ञानी स्त्री बालक सब चले गये, यह पूजित हो महासिंहासनपर बैठे ॥ २९ ॥ वहां महापूज्योंमें ब्रह्मर्षि, राजर्षि,

देवर्षियोंके समूहमें भगवान शुकदेवजी अत्यन्त शोभित हुए, जैसे ग्रह नक्षत्र तारागणोंके समूहमें चन्द्रमा शोभा देता है ॥ ३० ॥ सब अर्थमें जिनकी बुद्धि अति शान्त बैठे ऐसे शुकदेव मुनिको भागवत राजा प्राप्त करके मस्तकसे प्रणाम कर सावधानीसे हाथ जोड़ नमस्कार कर कोमल वाणीसे पूछने लगे ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करके क्षत्रिय लोग सफलजन्म हुए, अतिथिरूप आपने कृपा करके मुझे दर्शन दिया॥३२॥ जिन ब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषोंके गृहादिक शीघ्र शुद्ध हो जाते हैं, और दर्शन-स्पर्शन पाद धोनेसे मिष्टान्न भोजन करानेसे तो अत्यन्त ही शुद्ध और पवित्र होते हैं, सब पाप–ताप कांप जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे महायोगिन् ! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट हो जाते हैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे गयादिक असुर नष्ट हो गये ॥३४॥ यद्यपि ऐसे हैं तथापि श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र पर प्रसन्न हुए जो आप रूप धारण कर फूफीके कुलवालोंकी प्रीतिके लिए उस गोत्रके कारण भाई-बन्धु होकर रहे ॥३५॥ अत्यन्त मृतक संसिद्ध याचक, मनुष्योंको अप्रकटगतिवालोंका दर्शन होना कठिन है ॥ ३६ ॥ इससे योगियोंके परम गुरु आपसे सिद्धिका उपाय पूछता हूँ, इस संसारमें मरणधर्मी पुरुषको सर्वथा जो कर्तव्य हो वह कहो ? ॥३७॥ हे प्रभो ! मनुष्यसे जो श्रवण, जप, स्मरण, भजनके योग्य हो अथवा कुछ और प्रकारसे जो हो, वह कहो ? ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थोंके घरमें आपका गोदोहन कालसे अधिक स्थित रहना बहुत कठिन है ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुनि ! राजाने कोमल वाक्योंसे जब यह पूछा तो धर्मज्ञ शुकाचार्य कहने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे–शुकसागरे मुरादाबादनिवासि-शालग्रामवैश्यकृते प्रथमस्कंधे पारमहंस्यसंहितायां शुकागमनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

१. शंका––मुनिने राजा परीक्षितको शाप दिया कि आजके सातवें दिन सर्पके काटनेसे राजाकी मृत्यु होगी तब सात दिनमें राजापरीक्षितने सबकाम कार्यका प्रबन्ध कैसे किया ? मुनिका शाप सुनकर पुत्रको राज्यतिलक दे गंगाके तटपर गया, फिर सात दिनमें मुनियोंका आना और बड़े-बड़े मुक्तिमार्गके जाननेवाले महात्मा पुरुषोंको बुलाना, और श्रीशुकदेव मुनिका कथा प्रसंग सुनाना और अनेक प्रकारके काम जैसे गंगाके किनारे आये जो देव, मुनि राजर्षि और भी बहुतसे साधु-संत उनका पूजन करना, आदर-सत्कार सहित सबको आसन देकर बैठाना और बारंबार कथामें प्रश्न करना, यह सब काम सात दिनमें कैसे किये ?

उत्तर––शृंगीऋषिके मुखसे अपने शापको मुनिसे सुनकर व्याकुल हो, फिर धैर्य धारणकर हितचित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करने लगे और आँखोंसे आँसू बहने लगे, कि अब क्या किया जाय। जिस दिन मुनिने मुझको शाप दिया, वह दिन आज है, क्योंकि कल मैंने मुनिका अपराध किया था, आज मुझको शाप दिया । आजके सातवें दिन मेरी मृत्यु होगी और अभी काम मुझको बहुत करने हे ऐसा विचार फिर व्रजचन्द्रके चरणारविन्दका ध्यान करने लगा। उसी समय वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी कृष्ण भगवान्‌ने सात दिन सात युगके समान कर दिये जिससे राजा परीक्षितके सात दिनमें सब काम बन गये ॥

इति प्रथम स्कन्ध समाप्त

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा प्रथमस्कन्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

द्वितीय स्कन्ध २.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

शुकदेव और परीक्षित



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

द्वितीय स्कन्ध

सोरठा—जय वृन्दावनचन्द, श्रीमुकुन्द गोविंद हरि।
नँदनंदन सुखकन्द, कृपा करहु जन जान निज ॥ १ ॥
अति सुन्दर कमनीय, जो छबि श्यामा श्यामकी।
बसहि सदा मम हीय, यह वर देहु गणेश मोहिं ॥ २ ॥
गुरु पद रज धरि शीश, कहौं द्वितीयस्कन्ध अब।
सब मिलि देहु अशीश, शीघ्र भागवत पूर्ण हो ॥ ३ ॥

दोहा—कहत प्रथम अध्यायमें, नृपसों श्रीशुकदेव।
आदि विराट स्वरूपको, वर्णत हैं सब भेव ॥

श्रीवासुदेवाय नमः॥"जैसे द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवत्के विराट् स्वरूपका वर्णन किया है, वह सब कथा वर्णन करेंगे" श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! जगत् हितकारी, भक्तजनोंका सम्मत, श्रवण योग्य, अत्यन्त श्रेष्ठ और अच्छा प्रश्न किया ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! जो आत्मतत्त्वको नहीं विचारते हैं और घरमें जहां पांच हत्या * नित्य होती हैं, ऐसे मनुष्योंकी श्रवण योग्य बातें सहस्रों हैं। हे राजन् ! रात्रिमें निद्रा और मैथुनमें आयुको नष्ट करते हैं, दिनमें धनके प्राप्त करने व कुटुम्बके पालन-पोषणकी चिंतामें सब अवस्थाको क्षय करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ अपनी आत्माकी अत्यन्त खोटी सेना, देह, पुत्र, स्त्री इनके मोहमें आसक्त होकर इनका नाश देखते हैं, तथापि परमात्माकी ओर नहीं देखते ॥४॥ हे भारत ! इसलिये सबके अन्त-

---

* पांच हत्या ये हैं—१ ऊखल, २ चक्की, ३ चूल्हा, ४ पलहंडी ५ और बुहारी, इन स्थानों में सदा जीव मरते हैं।

१. शंका—शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि श्रीमद्भागवत जो यह महापुराण है, ब्रह्मके गुणसे भरा हुआ है, परन्तु भागवतमें ब्रह्मके लक्षणका वर्णन कहीं भी नहीं दीख पड़ता ॥

उत्तर—व्यासदेवजीने पहले श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रकारके इतिहास तथा राजाओंके चरित्र वर्णन किये हैं। ब्रह्मज्ञानी मनुष्य सब भले-बुरे जो संसारी जीवोंको ब्रह्मरूप जानते हैं तथा जो पुरुष ब्रह्मज्ञानसे हीन हैं वे लोग अभिमानयुक्त नेत्रोंसे बहुत प्रकार से संसारको देखते हैं, भलेको भला, बुरेको बुरा। और श्रीशुकदेवजी महाराज ब्रह्मज्ञानी थे, चर-अचर सबको ब्रह्मरूप जानते थे इतिहास, पुराण राजाओंके चरित्रोंको भी ब्रह्मरूप जानकर श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसम्मत कहते हैं।

र्यामी सुन्दर भगवान्, वासुदेव, कष्टहर्ता ईश्वरकी कथा श्रवण करने, कीर्तन करने योग्य है मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको उन्हींका नाम स्मरण करना चाहिये॥५॥तत्त्वोंका विचार, सांख्य, अष्टांगयोग, स्वधर्ममें अत्यन्त निष्ठा करनी, यही संसारमें जन्म लेनेका परम लाभ है, कि अन्त समयमें नारायणमें स्मृति हो ॥ ६ ॥ प्रायः विधि निषेध रहित मुनि लोग श्रीकृष्णके गुणकथनमें निर्गुण बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करते हैं ॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त यह भागवत नामक पुराण, वेदके समान ब्रह्मका सुन्दर ज्ञान करानेवाला है। इसे द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढ़ा था ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! उत्तम यशस्वीकी लीलासे निर्गुणमें हमारी अत्यन्त निष्ठा थी, श्रीकृष्णके चरित्रोंने मन ग्रहण कर लिया, इस कारण यह आख्यान पढ़ा ॥ ९ ॥ महापुरुष श्रीकृष्णके गुण ग्राहक आप हो, हम आपसे कहेंगे, इसमें श्रद्धा करनेवालेको मुक्तिदायक माधव मुकुन्दमें प्रीतियुक्त मति होती है ॥ १० ॥ हे नृप ! अत्यन्त वैराग्यवान् मुमुक्षुजनोंको और योगियोंको निर्भय श्रीकृष्णका नाम सदा कीर्तन करना, सबने यही निर्णय किया है॥११॥जो मदान्ध हैं उनको कुछ नहीं दीख पड़ता और बरसोंमें भी उनसे कुछ नहीं होता और शुभ कार्यमें यत्न करे, उसको वह दो घड़ी भी श्रेष्ठ हैं ॥१२॥ खट्वाङ्ग नाम राजर्षि दो घड़ी अपनी आयु जान एक मुहूर्तमें उसको त्यागकर अभयदायक परमेश्वरको प्राप्त हुए। जब राजाने इन्द्रकी सहायता कर दैत्योंको जीता तब देवता प्रसन्न हो बोले—वर मांगो ! यह सुन राजा कहा कि, प्रथम मेरी अवस्थाका वृत्तांत कहिये कि मैं कितने दिन और जीऊंगा ? तब देवताओंने कहा तुम दो घड़ी और जिओगे; यह सुन राजा खट्वाङ्ग शीघ्र विमानपर बैठ भूमिमें आ श्रीकृष्णकी शरणागति कर मुक्त हो गया॥१३॥अतः हे राजन् ! तुम तो सात दिन जिओगे, जो परलोक साधनकी क्रिया है उनको सावधानीसे करो ॥१४॥ जब अन्तमें कालका समय आये तब यह पुरुष मृत्युके भयसे रहित होकर असंग रूप शस्त्रसे इस देह और इसके पीछे जो पुत्र कलत्रादिकसे सुखकी इच्छा है उसको काटे ॥ १५ ॥ घरसे निकलकर धीर पुरुष पुण्यतीर्थोंके जलमें तो स्नान करे और एकान्तमें विधिवत् पवित्र आसन पर बैठे ॥ १६ ॥ शुद्ध अ, उ, म्; यह तीन अक्षर युक्त पर ब्रह्म स्वरूप ओंकारका मनमें अभ्यास करे; मनको व श्वासको जीते; ब्रह्मका बीज मन्त्र (प्रणव) उसको कभी भूले नहीं ॥१७॥ बुद्धि सारथीसे मन इंद्रियोंको विषयोंसे जीते, अनेक कर्मोंसे मनको खैंचकर भगवत्के रूपमें बुद्धिसे धारण करे ॥१८॥ और एक मुहूर्तको भी परमात्माके चरणकमलोंका ध्यान न भूले, सब रूपका ऐसे चित्तमें ध्यान करे, मनको सब विषयोंसे हटाकर परमानन्दके साक्षात्कार विना कुछ भी स्मरण न करे ॥ १९ ॥ वही विष्णुका परमपद है, जिससे मन प्रसन्न हो, जो मानसी पूजामें लवलीन है, उसको वैकुण्ठवास मिलता है ॥२०॥ अपना मन रजोगुणसे प्रेरित हुआ तमोगुणसे विमूढ़ धारण करके रज तमके किये हुए मलका नाश करे ॥२१॥ जिसके धारण करते-करते अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको देखते हुए प्राणीको उसी कल्याणसे भगवत्के रूपमें भक्ति रूप योग प्रीति शीघ्र होती है ॥२२॥राजा परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जैसी सम्मत धारणा सुन्दर होती है जिस धारणासे शीघ्र पुरुषका मन निर्मल हो वह कहो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले अति स्थूल विराट्रूप हम कहते हैं वह तुम चित्त सावधान करके सुनो-आसन और श्वासको जीतो, संग सुसंग करो, सब इन्द्रियोंको जीतो, स्थूल भगवत्के रूपमें मनको और बुद्धिको लगाओ ॥ २४ ॥

जितने रूप हैं उनके मध्यमें विराट् देह यह है, कि जहां भूत, भविष्यत्, वर्तमान, सत् विश्व ईश्वरमें ही दीखता है ॥२५॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व यह सप्त आवरण सहित इस ब्रह्मांड, अथवा शरीरमें जो विराट् पुरुष है वह भगवान् इस धारणाके आश्रय है ॥२६॥ अब विराट्रूपका वर्णन करते हैं:-सर्वव्यापक ईश्वरके पादमूलमें पाताल है; एड़ीमें रसातल है; विश्व रचनेवालेकी एड़ीके ऊपरकी गाँठोंके भागमें महातल है और तलातल विराट् पुरुषकी जंघाओंमें है ॥ २७ ॥ विश्वमूर्तिके दोनों जानुओंमें सुतल लोक है; दोनों उरुमें वितल अतल लोक हैं, महीतल जंघाओंमें है, नभ नाभिमें है ॥२८॥ ज्योतियोंका समूह जहां सूर्य चन्द्रमा रहते हैं, वह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है। ग्रीवामें महर्लोक; वदनमें जनलोक और आदिपुरुषके ललाटमें तपलोक हैं। और सहस्र शिरधारीके शिरमें सत्यलोग है ॥२९॥ तेजोमय इन्द्रादिक बाहुमें, सब दिशा कर्णोंमें, शब्द श्रोत्रमें, अश्विनी-कुमार नासिकामें, गन्ध घ्राण-इन्द्रियमें, देदीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥ ३० ॥ अन्तरिक्ष नेत्रगोलक हैं; चक्षु इन्द्रिय सूर्य हैं, विष्णुके दोनों पलक दिन-रात हैं; भ्रुकुटियोंका चलना ब्रह्मपद है; जल इनका तालु है, रस इनकी जीभ है ॥ ३१ ॥ अनंतके वेद शिर हैं; यमराज डाढ़, स्नेह दांत सब, जनोंको उन्माद करानेवाली हँसी, अपार विस्तार स्वर्ग अर्थात् विश्वरचना उनका कटाक्ष है ॥ ३२ ॥ लज्जा ऊपरका होठ, लोभ नीचेका होठ, धर्म उनके स्तन, अधर्मका मार्ग पीठ है, प्रजापति शिश्न इन्द्रिय है मित्रावरुण अंडकोश हैं; कोखमें सातों समुद्र हैं और सब पहाड़ उनके हाड़ हैं ॥ ३३ ॥ सब नदी उनकी नाड़ी, सब वृक्ष शरीरके रोम हैं। हे नृपेंद्र! श्रीभगवान् विश्वरूप हैं; अनंतवीर्य हरिका श्वास पवन है; गति अवस्था है, गुणप्रवाह संसार भगवान्का कर्म है ॥ ३४ ॥ मेघघटा उनके शिरके बाल हैं, हे कुरुनन्दन! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या हैं प्रभात छाती है, सब विकारोंका कोष चन्द्रमा भगवान्का मन है ॥ ३५ ॥ विज्ञान शक्ति महत्तत्त्व है, सर्व आत्मा श्रीहरिके अंतःकरण शिवजी हैं, हाथी, घोड़े, ऊंट और खच्चर परमेश्वरके नख हैं, सब मृग पशु नितम्ब हैं ॥ ३६ ॥ भगवान्के विचित्र व्याकरण शब्द शास्त्र सब पक्षी हैं, सब मनुष्योंके निवास मनु भगवान्की बुद्धि है, गंधर्व, विद्याधर, चरणादिक यह षड्ज ऋषभादि सात स्वर हैं। उर्वश्यादि अप्सरा भगवान्की स्मृति हैं और असुरोंकी सब सेना उनका पराक्रम है ॥३७॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य उरु और चरणके आश्रित श्याम-वर्ण शूद्र उनके पद हैं। नाना प्रकारके जिनके नाम, सब प्रकारसे पूजनीय, देवगण सहित, जिसमें अनेकद्रव्योंसे प्रयोग विस्तार यज्ञ जो होता है, वह यज्ञ भगवान्का वीर्य है ॥ ३८ ॥ ईश्वरके विग्रहकी यह अवयवोंकी स्थिति है, वह मैंने तुमसे कही, इस स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे मुमुक्षु जनोंसे भले प्रकार धारण किया जाता है। इससे परे और कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसे अनुभव करके स्वप्नके समय एक आत्माको ही जो मन सब ओरसे देखते हैं और मन लगाकर सत्यस्वरूप आनंदसागर ईश्वरको और वस्तुओंमें आसक्त रहित होकर भजन करे, क्योंकि आसक्त होनेसे संसारबन्धनमें स्थिति होती है, ईश्वर विद्या-शक्तिके आश्रय है, इस कारण बन्धनमें नहीं आता। और जीव अविद्या शक्तिके आश्रय है, इस कारण संसारके बन्धनसे मुक्त नहीं होता ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीय-स्कन्धे विराट्रूपवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—कहूँ द्वितिय अध्यायमें, हरिको सूक्षम रूप।
पुनि कछु वरणों पुरुषकी, आकृति परम अनूप॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, ऐसे पहले प्रलयके समयमें इस धारणासे ईश्वर प्रसन्न हुए। ब्रह्माजीने उनसे सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयसे पहले जैसा यह विश्व था उसी प्रकारका फिर रचा। उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि थी। इस धारणासे विश्व रचनेका सामर्थ्य होता है॥ १॥ उपासना फलसे विरक्तको शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार है, इसलिये वैराग्यके लिए सब कर्म फलकी निन्दा करते हैं। शब्द ब्रह्म वेदका मार्ग है, जिसमें कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे स्वर्गादिक नामसे साधककी बुद्धि ध्यान करती है। वह उन-उन लोकोंमें घूमता भी है, परन्तु अपने अभिप्रायको नहीं पहुँचता, क्योंकि मायामय वासनामें यह सो रहा है। इस कारण अखण्डित सुख इसको नहीं मिलता॥ २॥ इसलिये पण्डित लोग नाममात्र भोगके योग्य पदार्थोंमें, जितनेमें देहका निर्वाह हो; उतनेहीमें आसक्त होकर यह निश्चय करने वाली बुद्धि करे। विना परिश्रम जब प्रयोजन सिद्ध हो जाय तो उनमें परिश्रम समझकर यत्न न करे॥ ३॥ विना परिश्रम यह पदार्थ है, फिर इनके लिये ज्ञानी पुरुष परिश्रम नहीं करे। शयनके लिये जब पृथ्वी है तो शय्याके कारण परिश्रम करना वृथा है। स्वतःसिद्ध तकियेके लिये भुजा हैं, फिर तकिया बनानेकी क्या आवश्यकता है, जल पीनेको अंजली और भोजनको अन्न बहुत है फिर पात्रका रखना वृथा है। दिगंबर रहे, वल्कल पहिने, वस्त्रसे कुछ प्रयोजन न रखे॥ ४॥ मार्गमें से चीर लाकर उनका कंथा बनाये, वृक्षोंसे फलादिक भिक्षा मांग पेट भरे, सबकी भरण-पोषण करनेवाली नदियोंसे जल पिये, कभी वे शुष्क नहीं होतीं। पर्वतकी कन्दराओंमें वास करे, उन्हींमें शरणागतोंकी रक्षा परमेश्वर करता है। फिर क्यों विद्वान् होकर महात्मा, धनमें अंधे हुए अज्ञानियोंका सेवन करते हैं॥ ५॥ ऐसे अपना चित्त जब अपने आप ही सिद्ध हो जाय, तब ईश्वरको प्रिय जान, भवनाथ अनंतके महाआनंदसे निश्चय स्वरूपको भजे, तब संसारके हेतुओंका नाश होता है॥ ६॥ ऐसा कौन है जो परमेश्वरके ध्यानकी चिन्ताको त्याग विषयोंका ध्यान करे। पशुबुद्धिवाले तो विषयका ही सेवन करते हैं, अपने किये हुए कर्मोंके क्लेशोंको सहन करनेवाले जीव वैतरणी नदीमें पड़ते हैं, यह देख सदा परमात्माका स्मरण करे। उसे एक पलको न भूले॥ ७॥ अब मानसी पूजाका वर्णन करते हैं—कोई अपने देहके भीतर हृदयके भीतर अवकाशमें जो आदेशमात्र शरीर धारण किये पुरुष स्थित है, उस चार भुजा, कमल, चक्र, शंख, गदा, धारे प्रसन्न मुख ईश्वरको धारण करके स्मरण करते हैं॥ ८॥ प्रसन्न मुख, पद्मदलवत् लोचन, कदंब प्रसूनके समान पीतांबर

---

१. शंका—व्यास देवजीने यह शंका उत्पन्न करनेवाला वचन क्यों वर्णन किया? दूसरे अध्यायके आदिमें पहले तो ब्रह्मका वर्णन किया है फिर पीछे भगवान् की भक्तिका वर्णन किया है, उसके पीछे भगवान्की कथाकी प्रीति वर्णन की है। इसमें शंका यह है कि पहले कथाकी प्रीति, फिर भक्ति और तब ब्रह्मका चिन्तन होना चाहिये॥

उत्तर—कथाके सुननेसे भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न होती है। भक्तिसे ज्ञान उत्पन्न होता है; ज्ञानसे ब्रह्मका चिन्तन होता है, इस लिये ज्ञानमें जो चतुर व्यासदेवजी हैं उन्होंने मुक्त होनेके लिये तीन धर्म वर्णन किये तथा ब्रह्मके ध्यानमें जो मतवाले योगी हैं उनको ऐसा विचार नहीं रहता कि यह बात पहिले वर्णन करनी चाहिये, यह बात पीछे वर्णन करनी चाहिये। वे सबको समान समझते हैं, इसलिये उन महात्मा पुरुषोंके कुछ आगेका विचार नहीं रहता॥

धारण किये, सुवर्णके भुज बन्धनोंमें शोभायमान महारत्न दमक रहे हैं और महामणियोंके जड़े हुए क्रीट कुण्डल धारण किये हैं ॥ ९ ॥ प्रसन्न हृदयकमलके पात्ररूप स्थानपर जिनके चरणकमल योगीश्वरोंसे स्थापन किये जाते हैं। महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दिखायी पड़ती हैं, कौस्तुभ रत्न कंठमें धारण किये हैं, जिसकी कांति कभी मलिन नहीं होती, ऐसी प्रसूनमाला ग्रीवामें शोभायमान है ॥ १० ॥ क्रौंधनी अंगूठियें, कड़े कङ्कण, नूपुर इत्यादिकोंसे भूषित हैं। चिकनी, निर्मल, घूंघरवाली श्याम अलकोंसे शोभित मनहरण मुसकान युक्त ॥ ११ ॥ उदार लीलासे हास्ययुक्त नेत्रोंपर अत्यन्त शोभित भ्रुकुटीका चलना उससे बड़ा अनुग्रह सूचित होता है, चिंतन करके प्रगट होता है उनका दर्शन करे, जब तक मन धारणा करके उनमें स्थित रहे ॥ १२ ॥ गदाधरके चरणोंसे लेकर हाँसी पर्यन्त एक-एक अङ्गको बुद्धिसे अनुभव करे, जो-जो स्थान विना यत्न प्रगट हो जाय, उसको त्यागकर और जङ्घा आदिका ध्यान करे; वैसे ही बुद्धि शुद्धि होती जायगी ॥ १३ ॥ पर-अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्ति योग जब तक न हो तब तक स्थूल विराट् पुरुषका रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरांत नियमोंमें तत्पर हो स्मरण करे। यह तो समीप मृत्युवालेका कर्तव्य है ॥१४॥ और अपने आप देह त्यागे उसका कर्तव्य है। हे नरनाथ ! जो इस लोकको त्यागनेकी इच्छा करे वह स्थिर सुखद एक आसनसे बैठे। शुभकालमें पुण्य देशमें मनको आसक्त न करे; प्राणको जीते, मनसे योगाभ्यास ही योगीको मोक्षदायक है ॥१५॥ अपनी निर्मल बुद्धिसे बुद्ध्यादिकोंका द्रष्टा जीवमें मन लगाये। जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करके आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसे विराम करे। इससे परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं ॥१६॥ जिस आत्मास्वरूपमें देवोंका परम प्रभु, काल भी समर्थ नहीं हो सकता है; वहां जगत्के ईश्वर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है ? वहां न सत्त्वगुणकी चले, न तमोगुणकी, न रजोगुणकी, न अहंकारकी, न महत्तत्त्वकी, न मायाकी, इन सबकी कुछ सामर्थ्य नहीं, फिर जगत्की तो क्या सामर्थ्य है ! ॥१७॥ यह भी "नहीं-नहीं" कहनेवाले उसको विष्णुका परमपद कहते हैं, आत्माको त्यागकर औरमें मित्रता नहीं करते; पूजनीय ईश्वरको क्षण-क्षणमें हृदयसे मिलाते हैं॥१८॥ईश्वरका चिंतन करके इस प्रकार मुनि स्थित होकर सबसे उपराम प्राप्त करे; ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके बलसे विषयवासना त्यागकर अपनी एड़ीसे गुदाको बंद कर, सब परिश्रम जीत, नाभि आदि छः स्थानोंमें पवनको प्राप्त करे ॥ १९ ॥ वह पवन जो नाभिके मणिपूरक चक्रमें स्थित है उसको हृदयमें अनाहत चक्रमें रोककर उदानगतिसे कंठके विशुद्ध चक्रमें उस पवनको प्राप्त करे वह मुनि है। पीछे बुद्धिसे अनुसंधानकर चित्तको जीतनेवाला अपने तालुके मूलमें धीरेसे उस वायुको प्राप्त करे ॥२०॥ दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नाक, एक मुख इन सातोंको रोककर किसी वस्तुकी चाहना न करे और वहांसे उस भ्रुकुटीके भीतर आज्ञाचक्र है, उसमें प्राप्त करे। एक घड़ी स्थित होकर, शुद्ध दृष्टि कर, परब्रह्मको प्राप्त हो। ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इंद्रियाँ सबका त्याग करे ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रम मुक्ति कहते हैं—हे नृपेन्द्र ! जो ब्रह्मके स्थानमें होकर जाता है जहां गगनचारी सिद्धोंका विहार स्थान है और अणिमादिक अष्ट सिद्धि मिलती हैं। उस ब्रह्माण्डमें मन इन्द्रियोंके साथ ही चला जाता है; क्योंकि मृत्युके समय जो वासना प्राणीके हृदयमें रहती है कि,सब लोकोंके भोग भोगता हुआ जाऊँ तो मन इन्द्रिय सहित जीव जाता है ॥ २२ ॥ पवनरूप जिनकी देह उपासना, भगवद्धर्म, अष्टा-

गयोगसमाधि, इनके करनेवाले योगीश्वरोंको त्रिलोकीके बाहर-भीतर सब स्थानोंमें जानेकी गति होती है; ऐसा कहते हैं कि वे उस गतिको कर्मोंसे नहीं प्राप्त होते हैं ॥२३॥ हे भूपाल ! आकाशमें होकर ब्रह्मलोकके मार्गमें ज्योतिर्मय सुषुम्नानाडीसे अग्नि अभिमानी देवताको प्राप्त होता है, पीछे सब मलरहित हो ऊपर वर्तमान हरिसंबन्धी तारारूप शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है। शिशुमार चक्रका वर्णन पंचमस्कंधमें करेंगे ॥ २४ ॥ श्रीविष्णुभगवान् और सूर्यादिकोंका आश्रयभूत विश्वकी नाभि रूप चक्रका उल्लंघन करते हैं। क्योंकि उसके परे फिर स्वर्गियोंकी गति नहीं है; इस कारण एकही निर्मल लिंग शरीर अणुरूप होकर औरोंसे नमस्कृत, ब्रह्मवेत्ताओंके स्थान महर्लोकको प्राप्त होता है। महाकल्पकी आयुवाले पंडित भृगु आदिक जहां रमण करते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरांत कल्पान्तमें श्रीशेषजीके मुखकी अग्निसे संसारको भस्म देखकर, सिद्धेश्वरोंसे सेवित स्थान जो द्विपरार्द्धमें स्थित रहता है, उस ब्रह्मलोकको जाते हैं ॥ २६ ॥ उस ब्रह्मलोकमें शोक, वृद्धपन, मृत्यु, दुःख, भय कहींसे कभी नहीं होता है, जो भगवत्के ध्यानको नहीं जानते हैं, उनको भगवत्की कृपा विना दुःखकारी, चित्तको व्यथा उपजानेवाला जन्म-मरण होता रहता है, परन्तु वहां शोकादिक कभी नहीं होते हैं ॥२७॥ जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं उनकी, गति तीन प्रकारकी है, जो बहुत पुण्य, बहुत दानकर गये हैं, वे कल्पान्तरमें पुण्यकी न्यूनाधिकतासे अधिकारी होते हैं, जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलसे गये हैं, वे ब्रह्माके संग मुक्ति पायेंगे, जो भगवत्के उपासक हैं वे अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुण्ठमें वैष्णवपदको पाते हैं ॥ २८ ॥ पीछे लिंगदेहसे पृथ्वीरूपको प्राप्त होकर, भय त्याग पृथ्वीरूप हो जलको प्राप्त हो, शीघ्रता न करके ज्योतिर्मय हो, वायुको प्राप्त हो, पवन रूप होकर, बड़े भारी ब्रह्मके स्वरूप आकाशको प्राप्त होते हैं, भगवद्भक्तको ब्रह्माण्ड भेदने का जो प्रकार है वह कहते हैं। ईश्वर रचित प्रकृतिके किसी अंशसे महत्तत्त्व होता है, उसके अंशसे अहंकार और उसके अंशसे शब्द बनता है। उसकी मात्राके द्वारा आकाश,आकाशके अंशसे स्पर्श,उसकी मात्राके द्वारा वायु,वायुके अंशसे रूप तन्मात्रके द्वारा तेज, तेजके अंशसे रस उसकी मात्रासे जल, जलसे गंध और जलकी मात्रासे पृथ्वी होती है। यह सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराट् शरीर ब्रह्माण्ड होता है। उस ब्रह्माण्डका पंचशतकोटि योजन विस्तार है। पृथ्वीशब्दवाच्य विशेष अंडकटाह शतकोटि योजन विस्तार वाला है। कोई-कोई पंचशत कोटि योजन कहते हैं। फिर वायु आदिकोंके अनगिनत अंश हैं वे उत्तरोत्तर दश गुणे अधिक हैं। आठ पृथ्वीके आवरण व्यापक हैं। घ्राणसे गंध, रसनासे रस, दृष्टिसे रूप, त्वचासे श्वास, श्रोत्रसे आकाशके गुणको प्राप्त होकर योगी प्राणसे उन-उन क्रियाओंको प्राप्त होते हैं ॥२९॥ अहंकार तीन प्रकारका है—तामस, राजस,सात्त्विक। तामससे जड़भूत सूक्ष्म उत्पन्न होते हैं, राजससे बहिर्मुख दश इन्द्रियाँ और सात्त्विकसे मन इंद्रिय देवता, उनका लय उस अहंकारसे नष्ट होता है। वह योगी भूत, सूक्ष्म इंद्रियों का लय मनोमय देवमय अहंकारकी गतिसे प्राप्त होकर,गुणोंका जिसमें लय ऐसे महत्तत्त्वको प्राप्त होता है॥३०॥ हे नरेश ! आनंदमय जीव उपाधियोंके अन्तमें प्रधानरूपसे उस आत्माको प्राप्त होता है, भगवतकी गतिको जो गया है वह फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥३१॥ हे राजेन्द्र ! यह दोनों मार्ग वेदने गाये हैं ? सनातन मार्ग आपने जाना है। पहले भगवानकी ब्रह्माने आराधना की थी, तब भगवान् वासुदेवने यह गति ब्रह्माजीसे कही थी ॥ ३२ ॥ जो जीव

संसारमें फँस रहे हैं उनको इससे अधिक और कल्याणदायक मार्ग नहीं है, जिससे कि भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग हो ॥ ३३ ॥ भगवान् चतुरानन निर्विकारी एकाग्र चित्त करके वेदको तीन बार बुद्धिसे विचार कर जिससे आत्मामें प्रीति हो वही निश्चय करते हुए ॥ ३४ ॥ सब जीवोंमें अपने आत्मा द्वारा श्रीहरि भगवान् दीखते हैं, बुद्धि आदि जो ईश्वरके देखनेके उपाय हैं और अनुमान करनेके जो लक्षण हैं उनसे दीखते हैं ॥ ३५ ॥ हे नृपेन्द्र ! इस कारण सर्वात्मा हरि सर्वत्र सब कालमें श्रवण करनेके योग्य हैं। और वे ही मधुसूदन सब जीवोंके स्मरण करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥ जो कोई भगवान् सर्व व्यापककी अथवा ब्राह्मणोंकी अमृत कथाको श्रवणोंसे भली प्रकार भर-भरकर पीते हैं, वे विषयोंसे अति दूषित अंतःकरणको पवित्र कर श्रीहरिके चरणकमलोंके समीप जाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–कहौं तृतीय अध्यायमें, देवार्चनको हेत ।
जौन जौनसे देवता, जेहि जेहि फलको देत ॥

जो बात आपने हमसे पूछी वह हमने कही, आसन्नमृत्यु बुद्धिमान् मनुष्योंको यह श्रीहरिकी कथा, श्रवणादिक ही श्रेष्ठ है ॥१॥ परन्तु अनेक कामोंकी फल प्राप्तिके लिये अन्य देवताओंका भी भंजन करना योग्य है, ब्रह्मतेज बढ़ानेकी इच्छावाले वेदपति ब्रह्माका पूजन करें, इन्द्रियोंकी पुष्टता चाहनेवाले इन्द्रकी पूजा करें, सन्तान–वृद्धि चाहनेवाला दक्षप्रजापतिकी पूजा करे ॥२॥ लक्ष्मीकी इच्छावाला दुर्गा देवीकी पूजा करे, तेजकी अभिलाषावाला अग्निकी पूजा करे, धनकी कामनावाला श्रेष्ठ वसुका पूजन करे। जो वीर्यवान् होना चाहे वह धनदाता महादेवका पूजन करे ॥ ३ ॥ अन्नादिक भोगकी इच्छावाला अदितिकी सेवामें अनुरक्त हो, स्वर्गकी कामनावाला द्वादश आदित्योंकी पूजा करे, राज्यकी कामनावाला विश्वदेवोंका भजन करे, जो देश देशान्तरकी प्रजाको अपने अधीन करना चाहे वह साध्य नामक देवताका पूजन करे ॥ ४ ॥ आयुका प्रार्थी अश्विनीकुमारका और पुष्टिकी कामनावाला पृथ्वीको स्वच्छ कर पूजन करे। जिसको अपनी प्रतिष्ठा की वाञ्छा हो वह लोक प्राप्त द्यावापृथ्वीकी पूजा करे ॥ ५ ॥ रूपका चाहनेवाला गन्धर्वोंका, सुन्दर स्त्री चाहनेवाला उर्वशी अप्सराका और सब देशके राज्यकी कामनावाला परमेष्ठी नामक ईश्वरका पूजन करे ॥ ६ ॥ यशकी इच्छावाला यज्ञपुरुषकी और कोषकी इच्छावाला प्रचेता (वरुण) की, विद्या चाहनेवाला महादेवजीकी, दंपतिमें प्रीत्यर्थ पार्वतीजी की ॥७॥

---

१. शंका—शुकदेवजीसे राजा परीक्षितने पूछा कि, हे मुनिराज! मरनेवाले मनुष्यको क्या काम करना चाहिये? शुकदेवजीने इसका उत्तर तो पीछे दिया और जो राजाने सब देवताओंका पूजन नहीं पूछा था वह शुकदेवजीने देवताओंका पूजन क्यों वर्णन किया?

उत्तर—शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि, सब कामना सिद्धि होनेके लिये पृथक्-पृथक् देवताओंके पूजनकी विधि हम वर्णन करेंगे तो सब जीवोंको सुख उत्पन्न होगा ऐसा विचारकर राजाने नहीं भी पूछा था तो भी सब कामोंको प्राप्ति होनेके लिये सब देवताओंका पृथक्-पृथक् पूजन वर्णन किया। शुकदेवजीने विचार किया कि सब मनुष्य अपने-अपने हृदयमें अपने-अपने कामोंको देखकर हमारी कही हुई विधिसे देवताओंका पूजन करके सुखको प्राप्त होंगे।

धर्मका चाहनेवाला विष्णुकी, सन्तानकी वृद्धि चाहनेवाला अर्यमादि पितरोंकी; जो सदा बाधा विपत्तिसे अपनी रक्षा चाहे वह यक्षोंकी और बलकी कामनावाला मरुद्गणोंकी ॥ ८ ॥ जिसको राजगद्दीकी इच्छा हो वह मनु महाराजकी, और शत्रुका नाश चाहनेवाला निर्ऋति मृत्युकी, भोगकी इच्छा हो तो चंद्रमाकी, किसी कामकी इच्छा न हो केवल वैराग्यकी चाहना हो तो परम पुरुष भगवान्की ॥ ९ ॥ जिसको किसी वस्तुकी चाहना न हो, अथवा सब वस्तुकी इच्छाके संग मोक्षकी भी कामना हो वह उदार भक्ति और तीव्र बुद्धिसे परम पुरुष विष्णु भगवान्की पूजा करे ॥ १० ॥ ईश्वरमें अचल भाव हो, ब्राह्मण भगवद्भक्तोंकी संगति करना, यही सब कर्म करनेवालेको परम पुरुषार्थका लाभ है ॥ ११ ॥ सब ओरसे रागादिकका समूह जिससे दूर हो जाये, ऐसा ज्ञान जिस कथामें होता है तब आत्मा, मन प्रसन्न होता है। जब सब विषयोंसे मन हटता है तब कैवल्यसम्मत मार्गमें भक्तियोग उत्पन्न होता है; उस समय सब सुख होते हैं तब वे अनेक प्रकारसे हरिकथामें प्रीति करते हैं ॥ १२ ॥ शौनकजी बोले कि भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षितने यह कथा सुनकर, फिर व्यासपुत्र शब्दब्रह्मके ज्ञाता, परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे क्या पूछा ? ॥ १३ ॥ हे विद्वज्जन ! सुननेकी इच्छावाले मुझसे आप कहनेके योग्य हो। संतोंकी सभामें श्रीभगवान्की कथा ही फल है, वह निश्चय करनेसे होती है ॥ १४ ॥ वह भागवत पाण्डुनन्दन महारथी परीक्षित बालक्रीडामें खेलनेके समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी क्रीडा किया करते थे॥१५॥ और व्यासपुत्र भगवान् वासुदेवमें परायण, कथन योग्य श्रीवृन्दावनविहारीके उदार चरित्र संतोंकी सभामें सदा कहा करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्य नारायण उदय-अस्त होकर नित्य पुरुषकी आयु हरण करते हैं। उत्तम यशस्वी परमेश्वरकी चिंतनाके विना जो क्षण व्यतीत होते हैं, वह आयु वृथा जाती है ॥ १७ ॥ वृक्ष क्या नहीं जीते हैं ? धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती है ? और ग्रामके पशु क्या नहीं खाते या विष्ठादिक नहीं करते हैं ? इनकी आयु व्यर्थ ही है ॥ १८ ॥ विष्ठा खानेवाला, श्वान, ऊँट, गधा ये जिसकी स्तुति करें वह व्यक्ति भी पशु है। जिसके श्रवणमें कभी भगवत् चरित्र नहीं सुनाया गया है वह पुरुष पशुतुल्य है ॥ १९ ॥ परमेश्वरके चरित्र जो मनुष्य कानसे न सुने, वह कान सांपके बिल समान है। और हे सूत ! जिनकी जीभसे परमात्माका नाम नहीं निकलता और भगवत् कथा नहीं कहती वह खोटी जीभ मेंढककी जिह्वाके तुल्य है और वृथा बकवाद करती है ॥२०॥ रेशमी वस्त्र वेष्टित, शोभायमान किरीटयुक्त शिर जो भक्तवत्सल भगवान्को प्रणाम नहीं करता, वह मस्तक केवल शरीर पर भार है। यदि हाथोंमें सुन्दर-सुन्दर कंकणादि शोभित हों, वह भुजा हरिकी सेवा नहीं करे, तो वह भी काष्ठकी करछीके तुल्य है ॥ २१ ॥ जिन नेत्रोंने बांके विहारीकी मनोहर झांकी न निहारी और महात्मा पुरुषोंका दर्शन न किया, वे आंखे मोरपंखके सदृश है और जिन पैरोंसे मधुसूदनके क्षेत्रोंमें न फिरा और तीर्थ यात्रा न की वे पद वृक्षोंके समान हैं ॥ २२ ॥ जिसके शरीरमें ब्राह्मणों और नारायणके चरणकी रज न स्पर्श हुई, वह प्राणी जीता हुआ मृतक तुल्य है। जिसने विष्णुभगवान् और शालग्रामके ऊपर चढ़ी हुई तुलसीपत्रकी सुगन्ध न ली, वह श्वास लेता हुआ मृतक है ॥ २३ ॥ बड़े खेदका विषय है कि ग्रहण करने योग्य जो भगवत्के नाम हृदयसे नहीं लेते उनका हृदय पत्थरके समान है। जिन्हें हरियश श्रवण करनेसे हृदयमें विकार न हो और आंखोंमें जल न

आये; शरीरके रोम खड़े न हों वह हृदय पाषाणनिर्मित समझो ॥ २४ ॥ हे अंग ! हमारे मनके अनुकूल तुम कहो ? भक्तोंमें प्रधान व्यासनन्दन आत्मविद्याके ज्ञातासे जो राजाने पूछा और उन्होंने कहा, वही आप भी कहिये ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मादिदेवपूजनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा—अब कछु वर्णन सृष्टिको, वर्णत मति अनुसार ।
रचना-पालन-लय करन, भगवत कौन प्रकार ॥

सूतजी बोले कि, शुकाचार्यके आत्माके तत्त्व निश्चय करनेवाले वचन सुनकर भली-भांति राजेन्द्र परीक्षितने कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना मन लगाया ॥ १ ॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, भ्राता, बन्धु, राज्य, पशु, और धन इन सबकी संपूर्ण ममता त्याग दी ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठजनो ! जो तुमने मुझसे पूछा, उसीको श्रीकृष्णके अनुभव सुननेमें श्रद्धावाले पुरुष पूछते हैं ॥ ३ ॥ अपनी मृत्यु निकट जान धर्म, अर्थ, काम इनको सम्यक् प्रकार ईश्वरमें समर्पण कर पतित-पावन गोवर्द्धनधारी नारायणमें अपनी आत्माको लगाया ॥ ४ ॥ परीक्षित बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हे पापरहित ! श्रीवासुदेव भगवानकी कथा कहनेवाले वचन बहुत सुन्दर हैं, जिनसे मेरा सब अंधकार दूर हो गया ॥ ५ ॥ जिसकी चिन्ता ब्रह्मादिक करते हैं ऐसे विश्वको भवनाथ अपनी मायासे जिस प्रकार आप रचना करते हैं, वह मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ जैसे इस विश्वको रचकर पालन व फिर संहार करते हैं जिस शक्तिका आश्रय लेकर पर पुरुष बहुत शक्ति धारण करते हैं वह कहो ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्म करने-वाले लोकनाथ हरिकी चेष्टा यथार्थ बड़े-बड़े कवियोंसे भी निश्चय नहीं की गयी है, ऐसा विदित होता है ॥ ८ ॥ जन्म धारणकर कर्मकर्ता एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रम-क्रमसे प्रकृतिके गुणोंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥ यह श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है, वह आप कृपा कर कहिये ? क्योंकि आप परमेश्वर, शब्दब्रह्म, और परब्रह्म के भली प्रकार पारंगत हैं ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि, श्रीहरिके गुणानुवाद कहनेको नरनाथ परीक्षितने ऐसी प्रार्थना की, तब व्यासनंदन शुकदेवजीने श्रीवृन्दावनचन्द्रका स्मरण कर श्रीमद्भागवतको कहनेका प्रारम्भ किया ॥११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हरिकी महिमाका प्रमाण नहीं, इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार, इन चरित्रोंसे ब्रह्मादिक तीन शक्ति धारण करनेवाले घट-घटवासी, किसीको जिसका मार्ग नहीं दीखे ऐसे परम पुरुष ईश्वको मेरा नमस्कार है ॥ १२ ॥ धर्मवर्ती संतोंके कष्टनाशक धर्मी असन्तोंके विनाशक; सब जीवमात्रमें जिसकी मूर्ति परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको बार-बार ढूँढ़नेकी योग्यता देनेवाले परमेश्वरको फिर नमस्कार है ॥१३॥ भक्तपालक कुत्सित योगियोंसे दूर, अपने समान वा अधिकतासे रहित, ऐश्वर्यसे अपने स्वरूपमें रमण

१. शंका—द्वितीय स्कन्धके आदिमें शुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि हे राजन्! यह तुम्हारा प्रश्न बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु भगवान्को नमस्कार क्यों नहीं किया। भगवान्को नमस्कार करना अवश्य चाहिये था। तीन अध्याय बिताकर तथा तीनों अध्यायोंमें अनेक प्रकारकी कथा कहकर पीछे बहुत श्लोकोंसे चौथे अध्यायमें भगवान्को नमस्कार शुकदेवजीने क्यों किया?

उत्तर—शुकदेवजीने राजाकी नवीनसंगति देखकर प्रशंसा भाव किया कि राजा तुम्हारा प्रश्न बहुत अच्छा है, नयी रीति-प्रीतम तुरन्त प्रसन्न नहीं होती। पीछे भगवान् वासुदेवमें परीक्षितकी प्रीति देखकर शुकदेवजी बहुत आनन्दित हुए; शापका भय नाश करनेको ब्रह्माका लेख उलट देनेमें, परीक्षितको बैकुंठकी प्राप्ति करनेमें शुकदेवजी समर्थ हैं इसलिये बहुत श्लोकोंसे भगवान् के चरणोंको नमस्कार किया ॥

करने वाले परब्रह्मको बारंबार नमस्कार है ॥१४॥ जिसका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, कथा श्रवण, पूजन सब लोकोंका पाप शीघ्र नाश करता है, ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वी परमात्माको नमस्कार है। सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कारमात्र ही श्रेष्ठ है ॥१५॥ विवेकी लोग जिनके चरणकी सेवासे आत्माका दोनों ओरसे संग त्याग परिश्रम रहित परब्रह्मकी गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसे मंगलरूप यशस्वीके अर्थ नमस्कार है ॥१६॥ तपस्वी महादानी, यशस्वी, मनस्वी, मन्त्रवेत्ता मंगलकारी अपने-अपने किये हुए जिन कर्मोंको परमेश्वरमें समर्पण किये विना क्षेमको प्राप्त नहीं होते हैं, ऐसे सुन्दर मंगलरूप यशस्वीको नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आंध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खशादिक और पापी भी जिनके आश्रयसे शुद्ध हो जाते हैं, उस सर्वव्यापक शीलयुक्त ईश्वरको नमस्कार है ॥१८॥ आत्मज्ञानियोंका आत्मा, सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, निष्कपटी, ब्रह्मा, शंकर आदिकोंसे अति आश्चर्य्य द्वारा जिनकी मूर्ति देखने योग्य, वे भगवान मुझपर प्रसन्न हों ॥ १९ ॥ श्रीभूलीलानायक, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, लोकपति धरापति, अन्धक, वृष्णि, सात्वतोंके पति, गति, सन्तोंके पति मुझपर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ जिनके दोनों चरणोंके निरन्तर ध्यानरूप समाधिसे धुली हुई बुद्धिसे सगुण निर्गुणकी उपासना करके ईश्वरके तत्त्वका दर्शन करते और पंडित लोग अपने बुद्धिके अनुसार इस तत्त्वका वर्णन करते हैं वे मुकुन्द भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ कल्पके आदिमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिके रचनेवाली स्मृति विस्तार करनेवालेसे प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रकट हुई। असाधारण लक्षण ऋषियोंके भी बड़े श्रेष्ठ ईश्वर मुझपर प्रसन्न हों ॥ २२ ॥ जो ईश्वर पंच भूतोंसे इन सबको निर्माण कर इनके भीतर बसते हैं, षोडश कलाधारी, समर्थ सोलह गुणोंके भोक्ता भगवान् मेरे वचनोंको अलंकृत करें ॥ २३ ॥ ब्रह्माके अन्तर्यामी भक्तजन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीते हैं, उन ब्रह्माके अन्तर्यामी भगवान् वासुदेवके लिए नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे नृपाल। वेदगर्भ साक्षात् हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा, ब्रह्माने नारदजीसे कहा, वह यही बात है, जो तुमने प्रश्न किया ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीय-
स्कन्धे सृष्ट्यादिश्रीहरिचेष्टावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—इस पंचम अध्यायमें, विराटलीलारूप।
सब विराटकी सृष्टिको, बरणौं परम अनूप ॥

श्रीनारदजी बोले कि, हे देवाधिदेव ! हे सर्वजीववत्सल ! हे पूर्वज ! आपके लिए नमस्कार है, आत्माके तत्त्वका निरन्तर दर्शन देनेवाला ज्ञान आप कहिये ? ॥१॥ हे प्रभो ! जो रूप है, जिसके आश्रय यह सब है और जिससे यह सब रचा गया है, जिसमें लीन और जिसके आधीन है, जो कुछ है वह तत्त्व सिद्धान्तसे आप कहो ॥ २ ॥ हे प्रभो ! तुम भूत, भविष्यत, वर्तमान यह सब जानते हो। हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूंद अथवा आमला हो ऐसे अत्यन्त ज्ञानसे निश्चित इस विश्वको तुम जानते हो ॥ ३ ॥ जो विशेष ज्ञान है, जो आधार है, जिसके तुम परायण हो, जो स्वरूप हो, अपनी मायासे सब जीवोंको एक तुम रचते हो,

मुझको तो तुम ही ईश्वर[1] जान पड़ते हो ॥४॥ उन सबका आप ही पालन करते हो, तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं कर सकता, जैसे श्रमरहित मकरी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर घर रचती है उसी तरह तुम हो ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस विश्वमें उत्तम, अधम, समान मनुष्यादि नाम, रूप द्विपदत्वादि गुण, शुक्लत्वादिसे साध्य सूक्ष्म, स्थूल और तुमसे परे कोई नहीं है, यह सब तुमहींसे होता है ॥ ६ ॥ अच्छे प्रकार सावधान होकर आप भी घोर तप करते हो, इस लिये हमको बड़ी चिन्ता व खेद उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! मैं जो जिज्ञासा करता हूं वह आपसे शिक्षित जैसे मैं जान सकूं वैसे विशेष कर मुझसे तुम कहो ? ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले, कि हे पुत्र ! दयावंत तुम्हारा सन्देह ठीक है । हे सौम्य ! भगवतके वीर्यके प्रकाशमें जो तुमने मुझसे प्रेरणा की ॥ ९ ॥ हे नारद ! जैसे आप मुझसे कहते हैं यह ऐसे ही है, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है । मुझसे परे और कौन है, यह ऐसे ही है ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशित प्रकाशसे विश्वको मैं प्रकाश करता हूं, जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे यह ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करते हैं, श्रुतिः—"तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निस्तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि ईश्वरके प्रकाशसे प्रकाशित हैं उनके तेजसे यह सब प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥ ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है । उन वासुदेवका ध्यान करते हैं, जिनकी दुर्जय मायासे मुझको सब जगद्‌गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ उस ईश्वरके सम्मुख खड़े होनेसे जिसको लाज आये,ऐसी मायासे मोहित दुर्बुद्धिवाले हम सरीखे ब्रह्मादिक 'यह मेरा है' यह हम हैं, ऐसी श्लाघा करते हैं ॥ १३ ॥ सबका उत्तर ब्रह्मदेव कहते हैं-कि द्रव्य, कर्म, काल स्वभाव, जीव यह सिद्धान्तसे विचारते हैं तो हे ब्रह्मन् ! वासुदेवसे परे नहीं हैं । व्याकरणसे, वासुदेव शब्दकी व्युत्पत्ति है कि "वसन्ति भूतान्यस्मिन्निति वासुः, दीव्यतीति देवः, वासुश्चासौ देवः वासुदेव इति" ॥ १४ ॥ वेद नारायणको कहते हैं; सब देवता नारायणके अंशसे जन्मे हैं । श्रुति है कि "स आत्मा अङ्गान्यन्या देवतेति" सब लोग नारायणका वर्णन करते हैं, सब यज्ञ नारायणका वर्णन करते हैं ॥१५॥ योगशास्त्र नारायणका वर्णन करते हैं; तप नारायणको कहता है, ज्ञान नारायणको कहता है, सबकी गति नारायण ही हैं ॥१६॥ जीवके द्रष्टा ईश्वर; सर्वान्तर्यामी; सर्वव्यापी; उनके रचे हुए पदार्थ, मैं रचता हूँ, उन्होंने मुझको रचा है, उनके कटाक्षसे मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ आपके निर्गुण ईश्वरमें सत्त्व; रज; तम, ये तीन गुण उत्पत्ति; पालन, संहारमें मायासे ग्रहण करते हैं ॥१८॥ कारण कर्ता अपनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुषको बाधित होते हैं ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! ये भगवान् तीन गुणोंसे सबके और मेरे ईश्वर हैं, उनके ब्राह्मणोंको ही उनकी गति देखनेमें आती है ॥२०॥ काल,कर्म, स्वभाव अपनी मायासे मायाके स्वामी आत्मामें अपनी इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होनेकी इच्छासे ग्रहण करते हैं ॥२१॥ कालसे गुणोंका उलट-पलट होता है, स्वभावसे औरका और रूप हो जाता

---

१. शंका—नारदमुनि भगवान्‌के बड़े भक्त अथवा वैष्णवोंमें शिरोमणि थे, फिर भगवान्‌को भूलकर ब्रह्माको ईश्वर क्यों माना ?

उत्तर—जिस किसी स्थानपर मुनियोंको भगवान्‌की मायासे मोहित हुए देखकर अथवा, मायासे दुखको प्राप्त जो मुनिजन होते थे, उन सबसे नारदजी अत्यन्त अभिमानसे कहते थे कि जिस मायाने तुम सबको मोह लिया है वह माया कैसी है । ऐसा अभिमान करते नारदजीको बहुत दिन हो गये, तब भगवानने जाना कि नारदजीको अपने तपका बड़ा अभिमान है । तब भगवानने मायाको आज्ञा देकर उसी मायासे उन्हीं अभिमानी नारदको मोहित कराया । जब मायामें नारदजी फँस गये तब तो बेसुध होकर ब्रह्माको ईश्वर मान लिया ।

है, पुरुष जिनसे स्वामी ऐसे कर्मसे महत्तत्त्व होता है ॥२२॥ रज, सत्त्वसे बढ़े हुए महत्तत्त्वसे द्रव्य-ज्ञानक्रियात्मक तम प्रधान होता है ॥ २३ ॥ उसीको अहंकार कहते हैं, उसमें तीन प्रकारके विकार होते हैं-वैकारिक, तैजस, तामस, यह तीन भेद होते हैं। हे प्रभो ! द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति हुई॥२४॥ सब भूतोंका आदि तामस जब विकारको प्राप्त हुआ तब आकाश हुआ ॥२५॥ उसकी मात्रा शब्द गुण है। जो द्रष्टा और दृश्य उनका जतानेवाला है। जब आकाश विकारको प्राप्त हुआ तब स्पर्श गुणवाला पवन हुआ॥२६॥ परमें वसनेवाला शब्दवान्, ओज, सह; बल, प्राण यही होते हैं। काल कर्मके स्वभावसे जब विकार वायु हुआ॥२७॥ तब रूपके सदृश स्पर्श शब्दके सदृश तेज उत्पन्न हुआ तेज जब विकारी हुआ, तब रस-आत्मा जल हुआ॥२८॥ रूपके सदृश, स्पर्शके सदृश, जल शब्दवत् हुआ, जल जब विकारको प्राप्त हुआ तब जलमे पृथ्वी हुई ॥२९॥ सबमें व्याप्त रस स्पर्श रूप गुण हुए, विकारी आत्मासे विकारी दश देव हुए ॥ ३० ॥ दिशा, पवन, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार,अग्नि, इंद्र, उपेन्द्र, मित्र,ब्रह्मा ये दश हुए। तैजस-अहंकार जब विकारी हुआ तब दश इन्द्रियां हुईं ॥३१॥ ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बुद्धि, प्राण, तैजस अहंकारसे हुए। कान, त्वचा, नाक, नेत्र, जीभ, वार्णी, भुजा, लिंग, चरण ये हुए दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, कान, नेत्र, नाक, इनके स्वामी हैं। और अग्नि, इंद्र, मित्र, उपेन्द्र, ब्रह्मा यह वाणी, पद, लिंग, गुदा इनके देवता हैं ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मवित्तम ! जब ये भूत इन्द्रिय, भुजा, मन गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न हुए ॥३३॥ तब भगवत्‌की शक्तिसे प्रेरित सब परस्पर मिलकर सत्-असत्‌को ले समष्टि सब ब्रह्माण्ड व्यष्टि एक-एक शरीर युक्त विश्व रचा ॥३४॥ जब असंख्य वर्ष हो गये तब यह अंड जलमें पड़ा रहा, फिर काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर "जीवयतीति जीवः" सदा जीनेवाले परमात्मा अचेतनको जिलाते हुए ॥३५॥ यह पुरुष सहस्र ऊरू, चरण, भुजा, नेत्र और सहस्र शिरवाले हुए॥३६॥ जिसकी लेशमात्र चेष्टासे बुद्धिमान् लोगोंकी कल्पना करते हैं। कमरसे नीचे सात लोक हैं और सात ऊपर हैं ॥३७॥ जंघादिक, परब्रह्म पुरुषका मुख ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा, ऊरु वैश्य और पांवसे शूद्र उत्पन्न हुये हैं ॥३८॥ भूलोक पगमें, भुवर्लोक नाभिमें, स्वर्गलोक हृदयमें और उरमें महर्लोक है ॥ ३९॥ ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपलोक, मस्तकमें सत्यलोक है। ब्रह्मलोक वैकुण्ठ सनातन है, इस ब्रह्माण्डमें नहीं है ॥४०॥ उनकी कमरमें अतल लोक, विभुके ऊरुमें वितललोक; जानुमें शुद्ध सुतल लोक, जंघामें तलातल लोक है॥४१॥ गुल्फोंमें महातल लोक, एड़ियोंमें रसातल और पादके तले पाताल लोक है। ऐसे लोकमय पुरुष ईश्वर हैं ॥ ४२ ॥ पांवमें भूर्लोक, नाभिमें भुवर्लोक और स्वर्गलोक मस्तकमें है। ऐसे भी लोकोंकी कल्पना है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे श्रीविराटसृष्टिहरिलीलाविराट्‌रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा—इसी षष्ठ अध्यायमें, कहौं विराट विभूति।
नरसूक्तार्थ बखानिहौं, सकल विश्व करतूति ॥

ब्रह्माजी बोले, कि अब विराट् पुरुषकी विभूति वर्णन करते हैं। अस्मदादिकोंकी वाणीके स्वामी वह्नि उन ईश्वरका मुख उत्पत्ति स्थान है। इनमें चार बातें हैं। वाणी तो इन्द्रिय है, वरुण देवता, मुख उत्पत्तिस्थान है, इसका स्वाद लेना यह उसका विषय है। यह है बात सब

स्थानोंमें जान लेना। ग्रन्थ विस्तारके कारण अधिक नहीं लिखा है गायत्री आदि सात छन्द जो हैं, अपने लोगोंकी सप्त त्वचा हैं। "देवानामन्नं हव्यं" जो देवताओंके निमित्त दिया जाय वह हव्य है। "पितॄणामन्नं कव्यम्" जो पितरोंके लिये दिया जाय वह अन्न कव्य है। अन्नकी सब रस और अमृतकी जिह्वा कारण है ॥१॥ हमारे सबके प्राण वायु उत्तम क्षेत्र उनकी नाक है, जिसमें मोद-प्रमोद जाननेवाली घ्राणेन्द्रिय है। अश्विनी कुमार देवता हैं सब ओषधी विषय हैं ॥२॥ रूप और रूपप्रकाशक तेज इन परमेश्वरके चक्षु इन्द्रिय स्थान हैं। स्वर्ग और सूर्य इनका स्थान परमेश्वरके नेत्र गोलक हैं। दिशा और तीर्थ इनका स्थान परमात्माको कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठान हैं। आकाश और उसका सूक्ष्मरूप शब्द इन दोनोंका स्थान ईश्वरका श्रोत्र इन्द्रिय। वस्तुके सारांश स्थान, ईश्वरका स्पर्श गुणवाला वायु ईश्वरकी त्वचा है। सब यज्ञ सर्व वृक्षोंसे होते हैं, केश मूँछ नख हैं शिला-लोह मेघ विजली हैं ॥३॥४॥५॥ प्रायः करके क्षेमकारी लोकपाल हरिकी बाहु है। क्षेमी ईश्वरका पाद रखना भूर्भुवः स्वर्गलोक है ॥६॥ सबका मन हरिके चरण स्थानमें है, ब्रह्मा जिसका देवता ऐसे विश्वके मेघ शुक्र हैं ॥७॥ ईश्वरका शिश्न उपस्थ वह है, जो संतानार्थ भोग करते हैं, जिससे आनंदसुख और नहीं है ॥८॥ हे नारद! मल त्यागकी पायु इन्द्रिय गुदा है। तिरस्कार, अधर्म, अज्ञान यह भगवानकी पीठ है, उसका यम देवता है ॥९॥ सरोवर व नदी ईश्वरकी नाड़ियाँ हैं, समस्त पर्वत ईश्वरके हाथ हैं, प्रधान रस समुद्र है, जिसमें जीवोंका नाश है ॥१०॥ वह उस महापुरुषका पेट है, हृदय मनका स्थान है, धर्मका हमारे तुम्हारे सनकादिकका, महादेवजीका ॥ ११ ॥ शेष ज्ञानका और सत्त्वगुणका जो परमेश्वरका चित्त है, वह स्थान है। हम, तुम, शिव और सब मुनि लोग जो तुमसे पहले जन्मे हैं ॥१२॥ देवता, असुर, नर, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग ॥ १३ ॥ पशु, पितर, सिद्ध,, विद्याधर, चारण, वृक्ष और अनेक प्रकारके जितने जीव हैं जल, थल और आकाशके ॥१४॥ नवग्रह, अश्विन्यादि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूछल तारे होते हैं, वह और बिजली, गर्जन शब्द, भूत, भविष्य, वर्तमान और जो कुछ है, वह सब पुरुष परमेश्वरस्वरूप ही है। "पूर्षु शेते इति पुरुषः" जो सब जीवमात्रके शरीर रूप पुरियोंमें बसे वह पुरुष ईश्वर है। "पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमिति" ॥१५॥ उन ईश्वरसे व्याप्य यह विश्व है कि वितस्तिभरमें विराजते हैं, हृदयके मंगलको प्रकाश करते हैं, यह प्राण और बाहिरी प्रकाशसे सूर्यके तुल्य तपता है "असौ प्राण आदित्य असावादित्यः प्राणः" इति श्रुतेः ॥१६॥ ऐसे इस विराद् रूपमें बाहर-भीतर पुरुष तपते हैं "उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति", भयरहित मोक्षके ईश्वरने मरणधर्मी अन्नकर्म फलको प्रकट किया ॥१७॥ "एतावानस्य महिमातोज्यायांश्च पूरुषः" हे ब्रह्मन्! ईश्वर पुरुषकी महिमा बड़ी कठिन है "पादोस्य विश्वभूतानि" ईश्वर पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है ऐसा जानो ॥ १८ ॥ "त्रिपादस्यामृतं दिवि" क्षेमदायक, अभयदायक, अमृत त्रिलोकीके शिरपर रक्खा अथवा क्षेमी, अभयी, मरण जहां नहीं ऐसी त्रिपाद विभूति त्रिलोकी शिरपर रक्खी त्रिपाद-विभूति बाहर है, जो नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके स्थान हैं, आश्रम हैं ॥१९॥ इस त्रिलोकीके भीतर गृहस्थी ब्रह्मचर्य नहीं करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके घरमें ही सदा मोक्ष होता है ॥२०॥ "ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि" "विविधं सुष्ठु अञ्चतीति विष्वक्" अनेक प्रकारसे सब ओरसे जिनकी पूजा हो वह ईश्वर, शिक्षाशास्त्र और एक विना शिक्षाका शास्त्र जिसने दो

मार्ग प्रकट किये, विद्या-अविद्या रची। परन्तु दोनों ईश्वरके आश्रित हैं; अविद्या बन्धनको करनेवाली है और विद्या मुक्तिकी दाता है ॥ २१ ॥ "ततो विराडजायत" भूत इंद्रियसे गुणात्मक विराट ब्रह्माण्ड हुआ, जिससे अनेक द्रव्य हुए। इस विश्वको सूर्यकी तरह ईश्वरने तपाया ॥ २२ ॥ "यत्पुरुषेण हविषा"। "नाभौ भवं नाभ्यम्" जिस समय व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे मैं उत्पन्न हुआ तब पुरुषके अवयवके विना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखी ॥२३॥ उनके यज्ञके पशु, वनस्पति कुशा और देवताओंके यजन योग्य स्थान रचे और जिसमें बहुत गुण ऐसा समय रचा ॥२४॥ सब पात्रादि रचे, ओषधी, घृतादिक, मधुरादिक, सुवर्णादिक धातु, मृत्तिका, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद चार ब्राह्मण और जिसमें हवन करें, वह कर्म रचा। हे सत्तम ! ॥२५॥ ज्योतिष्टोमादिनाम, "मन्तारमनुसंधातारं त्रायन्ते इति स्वाहाकारादिकमन्त्राः"। सुवर्णादि दक्षिणा,एकादश्यादि सब व्रत देवताओंके नाम,सबके निमित्त बौधायनादि कर्म पद्धति संकल्प अनुष्ठानकी क्रिया तन्त्र ॥२६॥ विष्णुक्रमादि गति, देवताओंका ध्यानादि मति, प्रायश्चित्त जो करना उनको भगवान्‌में समर्पण करना पुरुषके अवयवोंसे मैंने सब सामग्री रची ॥२७॥ "यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः" पुरुषके अवयवोंकी ऐसे सब सामग्रीसे पूजनीय परमात्माने पुरुषका यज्ञ किया ॥२८॥ उनके पीछे प्रजापति नौ, यह तुम्हारे भ्राता सावधान होकर इन्द्रादि रूपसे अपने आप ही व्यक्त और स्व स्वरूपसे अव्यक्त पुरुषका पूजन करने लगे॥२९॥उसके पीछे अपने समयमें सब मनुष्य, सब ऋषि और सब पितर विबुध, दैत्य, मनुष्य, यज्ञोंसे समर्थ जनार्दनका यज्ञ किया ॥३०॥ यह सब विश्व भगवान् नारायणमें स्थित है। इस सृष्टिके रचनेके आदिमें बहुत मायाके गुण ग्रहण किये। आप सब गुणोंसे पृथक् रहे ॥ ३१ ॥ उसी परमात्माकी आज्ञासे मैं संसार रचता हूँ, ईश्वरके वश होकर शिव संहार करते हैं।और पुरुष विष्णुरूप होकर विश्वकी रक्षा करते हैं"त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति त्रिशक्तिधृक्" तीन शक्तिधारी मायाधारी ईश्वर है॥३२॥ हे नारद! जैसे हमसे तुमने पूछा उसी प्रकार मैंने कहा, भगवान्‌के विना सत्, असत् आत्मक इस विश्वमें कुछ नहीं है ॥३३॥ हे अंग ! हे नारद! मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती और मनकी गति कभी मिथ्या नहीं होती। मेरी इंद्रियाँ कभी खोटे मार्गमें नहीं जाती, क्योंकि निश्चय करके अत्यन्त भक्तिसे हृदयमें हरिको धारण किया है ॥३४॥ वह हम वेदमय, तपोमय, प्रजापतियोंके पति, सबसे वन्दित,सुन्दर योगमें स्थित होकर तप करते हैं, परन्तु मैं अपनी उत्पत्ति करनेवालेको अबतक नहीं जानता ॥ ३५ ॥ शरणागतके रक्षक, संसारके नाशक, स्वस्तिदाता, मंङ्गल दायक नारायणके चरणके हम आश्रित हैं। जो भगवान् अपनी मायाका विस्तार आप भी नहीं जानते, जिस प्रकार आकाशका अन्त आकाश नहीं जान सकता, इसी प्रकार औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है ? जैसे आकाशके पुष्पको न देखना कुछ सर्वज्ञताका नाश नहीं करता। श्रुतिश्च "यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अंग वेद यदि वा न वेद" इति ॥३६॥ जिसकी गतिको न हम न तुम सब, न शिव जाने फिर देवताओंकी क्या सामर्थ्य है ? उनकी मायासे मोहित बुद्धिवाले सब इस मायाके रचे हुए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन करते हैं ॥३७॥ जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम सब गाते हैं, परन्तु सिद्धान्तसे उनको नहीं जानते, उन त्रिलोकीनाथके अर्थ बारंबार नमस्कार है ॥ ३८ ॥ वह अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथम है। वही कल्प-कल्पमें विश्वरचयिता, कर्ता, अधिकरण, साधन, कर्म सब रूप आप ही है। वही संसार

करता है, वही रक्षा करता है ॥ ३९ ॥ "विशुद्धं" विषय आकार रहित है, "केवलं" एक है, "ज्ञानं" ज्ञानस्वरूप है, "प्रत्यक्" सबका अन्तर्यामी है, "सम्यक्" संदेहादिरहित है, "अवस्थितं" स्थिर है, "सत्यं" सत्यरूप है, "पूर्णं" सबमें पूर्ण है, "अनाद्यं" आदि (अंत) रहित है, "निर्गुणं" मायाकृत गुण जिसमें नहीं हैं, "नित्यम्" सदा रहते हैं, "अव्ययम्" ईश्वरके विना और कोई नहीं है ॥४०॥ आत्मा, मन, इन्द्रियाँ अंतःकरण प्रसन्न होते हैं। तब मुनिगण ईश्वरको जानते हैं। हे नारद ! जब खोटे लोग खोटे तर्क करते हैं तब ईश्वरका सब ज्ञान नष्ट होकर आदिपुरुष अन्तर्धान होजाते हैं ॥ ४१ ॥ परब्रह्मका प्रथम अवतार पुरुष है। काल, स्वभाव, सत्, असत, मन, महाभूत, अहंकार, मन आदि इन्द्रियाँ, विराट् स्वरूप, स्थावर; जंगम यह सब परमेश्वरके अवतार हैं ॥ ४२ ॥ हम, महादेव, यज्ञ, प्रजेश्वर दक्षादिक, तुम सब स्वर्लोकपालक, खगलोकपालक, मनुष्यलोकपालक, तललोकपालक सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४३ ॥ गन्धर्व, विद्याधर, चारण, ईश, यक्ष, राक्षस, उरग, सर्पोंके स्वामी, जो ऋषियोंसे बड़े हैं पित्रीश्वर, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवेंन्द्र ॥ ४४ ॥ और प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग, पक्षियोंके ईश, इस ब्रह्माण्ड कटाहमें जो कुछ है वह स्वरूप सब परमेश्वरका है ॥ ४५ ॥ जो कुछ इस लोकमें है वह भगवान्‌के महापराक्रम बलकी तरह है। क्षमा, श्री, लज्जा और संपदा ईश्वरके समान हैं, जो रूपवान है जो विना रूपवान है, यह सब परमतत्त्व है ॥४६॥ प्रधानतासे जिन्हें ऋषिलोग नमस्कार करते हैं, वह लीलावतार पुरुष ब्रह्मके हैं, वह कानोंका मल दूर करने वाले हैं। वह परम सुन्दर कथा चौबीसों अवतारोंकी अब हम तुमसे कहेंगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-इस सप्तम अध्यायमें, जो हरि किये विहार।
भिन्न भिन्न वर्णन करौं, चौबीसों अवतार ॥

ब्रह्माजी बोले कि, अब वाराह अवतार कहते हैं। पृथ्वीतल उद्धारके कारण श्रीवाराहजी अनंत भगवान्‌ने वाराहरूप धारण किया। जब हिरण्याक्ष दैत्य महासमुद्रमें आया, तब उसको मार धरतीको डाढ़पर रख लाये, जिस प्रकार इन्द्रने पर्वतोंको विदीर्ण कर डाला था, उसी रीतिसे भगवान् वाराहजीने हिरण्याक्षका उदर दांतोंसे फाड़ डाला ॥ १ ॥ अब यज्ञावतार कहते हैं। रुचि प्रजापतिकी आकूतिनाम स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका सुयज्ञ नाम प्रसिद्ध हुआ। वह सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणा नाम स्त्रीसे सुयम नामक देवताओंको उत्पन्न किया। उसीने इन्द्र होकर तीनों लोककी महापीड़ाका नाश किया, उसका पहले सुयज्ञनाम था; परन्तु मातामहने हरि नाम रखा। देवोंकी उत्पत्ति, लोकत्रयकी पीड़ा हरना उनका काम है। यह सब अवतारमें और अवतारका कर्म सब स्थानोंमें जान लेना ॥ २ ॥ अब कपिल अवतार कहते हैं। हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतीसे नौ भगिनी सहित कपिलदेवजीने अवतार लिया और अपनी माताको सांख्यशास्त्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जिस ब्रह्मविद्यासे जीवकी मलिन करनेवाली संसारकीचको इसी जन्ममें धोकर महात्मा कपिलदेवजी गतिको प्राप्त हुए ॥३॥ अब दत्तात्रेय-अवतारका वर्णन करते हैं। जब अत्रि ऋषिने

पुत्रकी चाहना की, तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर कहा "मैं स्वयं ही तुम्हारे घर जन्म लूंगा" इस कारण दत्तात्रेय नामसे हृषीकेशने अवतार लिया; जिनके चरणपंकजकी रजसे निर्मल आत्मा यदु, हैहयादिक ऐहिक, आमुष्मिक भक्ति मुक्तिरूपा योगसिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ अब सनकादिक अवतारका वर्णन करते हैं। पहले अनेक लोक रचनेकी इच्छासे बहुत तप किया, तपके प्रभावसे परमेश्वरने सनकादिकका अवतार लिया। पहले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वका सुन्दरतासे वर्णन किया। जिनके कहनेमात्रसे मुनिलोगोंने अपने आपमें साक्षात् परमात्माको देखा ॥ ५ ॥ अब नर-नारायण अवतारकी कथा कहते हैं। धर्मकी स्त्री दक्षसुता मूर्तिनामसे प्रसिद्ध थी। उसमें अपने तपके प्रभावसे नर-नारायण हुए। उनका तप भङ्ग करने के लिए कामसेना नामक अप्सरा उनके पास गयी। परन्तु नर-नारायणके निकट अपने समान उर्वशी आदि स्त्रियोंको देख अपने रूपका अभिमान भूल गयीं और ईश्वर नर-नारायणका व्रतभङ्ग न कर सकी ॥ ६ ॥ महाशुभकर्मकारी त्रिपुरारिने क्रोधदृष्टिसे कामदेवको भस्म किया, परन्तु देहके जलानेवाले क्रोधको भस्म न कर सके थे। यह रोष नर-नारायणके हृदयमें प्रवेश करनेसे बहुत डरा, फिर कुसुमायुध उनके हृदयमें कैसे प्रवेश कर सके ?॥ ७ ॥ अब ध्रुव अवतार कहते हैं। उत्तानपाद नरनाथके गृहमें ध्रुवजीने जन्म लिया, एक समय ध्रुवने पिताके अङ्कमें बैठनेका विचार किया, तब निकट बैठी हुई सुरुचि विमाताके कहे कटु वाक्य–बाणोंसे विद्ध होकर बालक ध्रुवजी तपके अर्थ काननमें चले गये और स्तुति करनेसे प्रसन्न हो हरिने ध्रुवको ध्रुवपद दिया "दिवि भवा दिव्याः" स्वर्गवासी उत्तानपाद राजर्षिके समीप भृगु आदिक ऊपरसे और नीचेसे सप्तर्षि जिनकी स्तुति करते हैं ॥८॥ अब पृथु अवतार कहते हैं। एक समय राजा वेनके पाखण्ड–अवलम्बनसे धर्म नष्ट हो गया। तब ब्राह्मणके वाक्यरूप वज्रसे उसका पुरुषार्थ और सब ऐश्वर्य नष्ट हो गया और नरकमें गिरा; तब मुनियोंकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने पृथु होकर रक्षा की, जगत्‌में पुत्र नाम विख्यात किया, पुत्र शब्दकी व्युत्पत्ति यह है "पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्तत्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥" महात्मा पृथुने पृथ्वीको दुहा और सब वस्तु निकालीं ॥ ९ ॥ अब ऋषभ अवतारका वृत्तान्त सुनो; यह परमेश्वर आग्नीध्रपुत्र नाभिकी स्त्री सुदेवीसे ऋषभदेवजी हुए। समानद्रष्टा जड़की नांई बन योगाभ्यास किया, जिनके परमहंस पदको ऋषियोंने नमस्कार किया। स्वस्थ इन्द्रियाँ जिनकी, शांत, सबका सङ्ग त्याग ऐसे ऋषभदेवजी हुए (जिनसे जैनमत प्रकट हुआ) ॥१०॥ अब हयग्रीव अवतारका वर्णन सुनो। मेरे यज्ञमें हयग्रीव अवतार भगवान् हुए। साक्षात् यज्ञपुरुष सुवर्णसदृश वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सर्व देवतामय, वेदरूप सुन्दरवाणीसे अर्थात् वेदरूप नामके श्वाससे हुए "लेत जासु नासाके श्वासा। चार वेद वर भये प्रकाशा ॥ धर्म धरन जीवन आधारा। ऐसे श्रीवसुदेवकुमारा" ॥ ११ ॥ अब मत्स्यावतार कहते हैं; प्रलयकालके समयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सब जीवोंको आश्रयरूप मत्स्य भगवानको देखा। महाभयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेदमार्गोंको लाकर हर्षसे प्रलयके जलमें विहार किया ॥१२॥ अब कच्छप अवतार कहते हैं; सत्ययुगमें अमृतके लिये देवता और दानवयूथ मथन करने लगे। तब आदिदेव भगवानने कच्छपरूप धारण कर मन्दराचल पर्वतको पीठपर रखकर ज्यो-ज्यों घुमाते थे त्यों-त्यों कूर्म महाराजकी खुजाहट जाती थी और सुख प्राप्त होता था। निद्राके

वश हो बहुतसे श्वास छोड़े। उस दिनसे आजतक समुद्रमें विलास करते हैं ॥ १३ ॥ अब नृसिंह अवतारका वर्णन सुनो। सुरगणोंको महाभयभीत देख "धर नरसिंह रूप अति घोरा। कुपित दृष्टि देखेउ चहुँ ओरा।" महाभयंकर रूप टेढ़ी-टेढ़ी भ्रुकुटी, महाकालके समान भयानक डाढ़ें, नेत्र लाल-लाल अग्निवत् प्रदीप्यमान, शीघ्र गदा लेकर निकट आये। हिरण्यकशिपुके हृदयको महाकराल नखोंसे फाड़ डाला ॥१४॥ अब हरि अवतारका वर्णन करते हैं; त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें महाबलवान् ग्राहने गजेन्द्रका पांव पकड़ कर जलमें खींचा, तब यूथपति गजनाथ व्याकुल हो कमलफूल शुण्डमें ले यह कहने लगा-हे आदिपुरुष ! हे दीनबन्धु ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे पुण्ययशश्रवण ! हे मङ्गलनामधेय ! रक्षा करो ॥ १५ ॥ श्रीहरि शरणागतवत्सल गजेन्द्रकी पुकार सुनकर महाबली चक्रायुध लिये, गरुड़पर बैठे तत्काल आकर चक्रसे मगरका मुख काट, शुण्ड पकड़, कृपा करके गजका उद्धार किया ॥ १६ ॥ आपसे अब वामन अवतार कहते हैं। गुणोंमें सबसे बड़े अदितिके द्वादश पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे वामनजी हुए, जिन्होंने तीनों लोकोंको दोनों पगसे नाप लिया। यज्ञ भगवानने वामनरूप धारण कर बलिसे तीन पदके मिषसे पृथ्वी ले ली, क्योंकि धर्ममार्गमें वर्तमान बलिको ईश्वर मांगनेकी वृत्तिको छोड़ (अन्योपायसे) चलायमान न कर सके ॥ १७ ॥ हे नारदजी ! श्रीभगवान्के चरणोंका धोवन गंगाजल बलिने शिरपर धारण किया। राज्यप्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि राजा बलिने जो प्रतिज्ञा की थी उससे अधिक वह इच्छा नहीं रखता था। तीसरे चरणकी पूर्तिके लिये उसने शिरसे अपना सम्पूर्ण शरीर देना स्वीकार कर लिया ॥१८॥ अब हंस अवतार कहते हैं। हे नारद ! हंस भगवान्ने अत्यन्त भक्तिभावसे प्रसन्न हो ज्ञानयोग भागवत आत्मज्ञानका प्रकाशक तुमसे कहा जिसको वासुदेवके शरणागत भक्त विना परिश्रम प्राप्त होते हैं ॥१९॥ अब मन्वन्तर अवतार कहते हैं। दशों दिशाओंमें जिसकी अप्रतिबन्ध आज्ञा बर्ते ऐसे मन्वन्तरोंमें मनुवंशधारी भगवानने सुदर्शनचक्र धारण किया और दुष्ट राजाओंको दंड दिया और त्रिलोकीमें अपने चरित्रोंको प्रकट कर अपनी सुन्दर कीर्तिका विस्तार किया ॥ २० ॥ अब धन्वन्तरिका वर्णन सुनो–धन्वन्तरि भगवानने अपनी कीर्तिसे अपने नामसे महारोगियोंका रोग दूर किया और यज्ञमें अमृत असुरोंसे लाये। लोकमें वैद्यकशास्त्र आयुर्वेदका अवतार लेकर विस्तार सहित मनुष्योंको सिखाया ॥ २१ ॥ अब परशुराम अवतार कहते हैं; दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही, वेदमार्गत्यागी, नरकभागी धरतीपर कंटक क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ उग्रवीर्य धारण कर।

दोहा–क्षितिक्षयकारक निरखिकर, लेकर कठिन कुठार।
क्षत्रिरहित कीन्ही क्षमा, अतिबल इक्किसवार ॥

तीक्ष्ण धारके फर्शेसे इक्कीस बार क्षत्रियोंको मार-मार कर पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी ॥२२॥ अब श्रीरामचन्द्र अवतार वर्णन करते हैं; हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्न हो पन्द्रह कलाका अवतार धारण कर कलाके ईश्वर इक्ष्वाकुराजाके श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हो, राजा दशरथकी आज्ञा मान, सीता, लक्ष्मण सहित वनको गमन किया। जिनसे विरोध कर लंकानाथ रावण विनाशको प्राप्त हुआ॥ २३॥ सीताके विरहमें क्रोधसे लाल-लाल नेत्र देख करके समुद्र

तीक्ष्ण तेजके ताप और भयके कारण थर-थर कांपने लगा ॥२४॥ युद्धमें रावणके वक्षस्थलके स्पर्शसे इन्द्रका ऐरावत हाथी घबड़ा गया और उसके दांतोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। इसी गर्वसे राक्षसाधिपति दशशीश दशों दिशाओंमें निर्भय विचरता फिरता था। उस सीताहारी राक्षसेन्द्रके वर्द्धित महागर्वको शीघ्र प्राणसहित मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने नाश किया ॥२५॥ अब श्रीकृष्ण अवतारका वर्णन करते हैं, असुरोंके अंशी राजाओंके समूहसे दुःखित, भूमिका क्लेश नाश कर, बलदाऊ सहित श्वेत कृष्ण जिनके केश, किसी मनुष्यसे जिनका मार्ग नहीं जाना जाय, वह परब्रह्म श्रीकृष्ण अवतार धारण कर अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले कर्म करेंगे। कोई यह तर्क न करे कि केशमात्र अवतार हैं क्योंकि भारका उतारना क्या बड़ा कार्य्य है। हमारे केश हैं। यह प्रकट करनेके लिये और राम कृष्ण वर्ण सूचनाके लिये ऐसा लिखा है "स चापि केशौ हरिरुज्जहे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्। तौ चापि केशाववविशेतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च॥ १ ॥ तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्वेत स्तस्य देवस्य केशः। कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः॥ २ ॥" महाभारतमें लिखा है कि ईश्वरने दो बाल काले सफेद उखाड़े, वे दोनों बाल यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश कर गये। जो उन देवका श्वेत केश था उससे संकर्षण उत्पन्न हुए, दूसरे श्यामवर्णसे केशीवधकारी, भक्तभयहारी, वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र हुए ॥२६॥ जिन्होंने बालकपनमें पूतनाको मारा और जब तीन मासके हुए तब शकटासुर, कागासुरका संहार किया, जब घुटनोंके सहारे चलने लगे, तब अति उन्नत यमलार्जुन वृक्षोंको मूलसे उखाड़ा। भला यह कार्य विना ईश्वरके कौन सम्पन्न कर सकता है ? ॥ २७ ॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दने व्रजमें, व्रजके गाय वत्स जब कालीदहका जल पीकर अचेत हो गये थे, उनपर अनुग्रह कर अमृतदृष्टिकी वृष्टि कर उनको जिलाया और यमुनाकी शुद्धिके लिये उसमें विहार कर और अति चञ्चल जिह्वावाले कालीनागको नाथ उसे जलसे निकाल लाये ॥ २८ ॥ ये उन भक्तवत्सल यशोदानन्दनके अलौकिक कर्म हैं। क्योंकि जब दावाग्निसे पवित्र वन जला, तो आप उसमें सोते थे। उस भीषणाग्निसे निश्चय सबका काल आया था यह जान भक्तवत्सलने सबसे कहा कि, नेत्र बंद करो, नेत्रोंके बन्द करते ही व्रजको उबारा और अग्निको पान कर गये ॥ २९ ॥ जब यशोदा मैया श्रीकृष्णके बांधनेको रस्सी लायी और वह रस्सी पूरी न हुई, तब वह दूसरी और लायी, जब वह भी छोटी हुई, तब और लायी, इस भांति सब घरभरकी रस्सियां जोड़ीं, परंतु पूरी न हुई। जब श्रीकृष्णने कहा कि मैया "मैंने माटी नहीं खायी, मेरा मुख देख ले" श्रीकृष्णने यशोदाको मुख दिखलाया तो उसमें सब विश्व दृष्टि आया। यशोदा विश्वको देख शंकित हुई। परंतु

शंका—किसी शास्त्र-पुराणमें यह नहीं सुना कि त्रिपुरासुरके पुरको जलानेकी इच्छा शिवजीने की तब शिवको पुरके सम्मुख जानेके लिये समुद्रने मार्ग दिया, इसी प्रकार नारदसे ब्रह्माने कहा कि, रामचन्द्रको लंकामें जानेके लिये सागरने मार्ग दिया जो तीनों पुरके जलानेकी इच्छा की और महादेवको समुद्रने मार्ग दिया यह बड़ी भारी शंका है॥

उत्तर—शंकरके चरणोंमें शंकरके भक्तोंका अधिक जो प्रेम है वही समुद्र है। उसी प्रेमसमुद्रमें शिव सर्वदा मतवाले रहते हैं। जब कभी भक्तोंके ऊपर शिवजी क्रोध करते हैं तब प्रेमरूपी समुद्र शिवके भक्तोंके पास जानेके लिये क्रोधको पथ नहीं देता। जब तीन पुर जलानेके लिये विष्णुआदि सब देवताओंने शिवजीकी प्रार्थना की तब भोलानाथ अपने हृदयमें त्रिपुरको थोड़ा भक्त समझ उसके ऊपर क्रुद्ध होनेके कारण प्रेमके समुद्रने मार्ग दिया। मार्ग देना यह है कि त्रिपुरको जलानेके लिये शिवजीने सम्पूर्ण निश्चय कर लिया इसीलिये ब्रह्माने कहा॥

पश्चात् ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ वरुणकी फाँसीसे भयभीत नन्दको बचायेंगे । व्योमासुरके पर्वतकी गुफामें गायोंको बंद करने पर उन्हें छुड़ायेंगे । और दिनमें तो सब काम करके रात्रिको अति श्रमसे सोये हुए सब गोकुलवासियोंको वैकुण्ठ दिखलायेंगे ॥ ३१ ॥ हे नारद ! जब गोपोंने इन्द्रयज्ञ न किया तब व्रजका नाश करनेको—

चौपाई

इन्द्रकोप सब मेघ हँकारी । कीन्ही वारिवृष्टि व्रज भारी ॥
तब सब गोप ग्वाल अकुलाये । रोवत श्रीकृष्णहिं ढिग आये ॥
आय गया अब काल हमारा । वेग बचावहु नन्दकुमारा ॥
सात वर्षको नन्ददुलारो । छत्रक सम गिरिवर कर धारो ॥
सप्त दिवस लों इसी प्रकारा । बरसो पानी मूशल धारा ॥

हे नारद ! इसी प्रकार सात दिन तक गिरि गोवर्द्धनको बायें हाथकी कन उँगलीपर धारण करेंगे ॥ ३२ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्त श्वेत रजनीमें रसकी इच्छा करके क्रीड़ा कर मधुर पदसे मूर्च्छना ले नाच-नाच राग गाकर व्रजयुवतियोंका कामदेव जगा कर गोपस्त्रियोंके हरनेवाले कुबेरके सेवक शंखचूड़के शिरके रत्न हरेंगे ॥ ३३ ॥ और प्रलंबासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, मल्ल, कुवलयापीड, कंस, कालयवन, नरकासुर, पौंड्रकादिक, शाल्व, द्विविद, बन्दर, वल्कल, दन्तवक्त्र, सप्तवृषभ, शंबर, विदूरथ, रुक्मी आदिक और संग्राममें श्लाघनीय धनुषधारी, कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, संजय आदिक इन सबको बलदेव, भीमसेन, अर्जुन, इनके मिषसे दुर्लभदर्शन श्रीहरि ऐसे-ऐसे दुष्टोंको वैकुण्ठ धाम पहुँचायेंगे ॥३४ ॥३५॥ अब व्यास अवतार कहते हैं; काल करके मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित हुई, मनुष्योंकी आयु थोड़ी होने लगी और वे वेदको भूलने लगे । तब युग-युग में सत्यवतीसे श्री व्यासजी प्रकट हो वेदरूप वृक्षकी शाखा भेद करके उनका विस्तार करेंगे ॥ ३६॥ अब बौद्ध अवतार कहते हैं; देवताओंके द्रोही वेदमें निष्ठा करनेवालोंको मय दैत्यकी रची हुई पुरियोंसे अदृश्य लोकोंको त्रासकारक बुद्धिमें मोह करनेवाले, लोभ बढ़ानेवाले, पाखण्ड धर्मको बुद्धजी कहेंगे ॥३७॥ अब कल्कि अवतारका वर्णन करते हैं । जिस समय कहीं हरिकी कथा न होगी, ब्राह्मण पाखण्डी हो जायँगे, शूद्र राजा बन राज्य करेंगे । स्वाहा, स्वधा, बषट् यह वेद वाणी जब न होगी, मनुष्य पशुके समान हो जायँगे, उस समय कलियुगके अंतमें भगवान् कल्की अवतार धारण कर शिक्षा करेंगे ॥ ३८ ॥ मायागुणावतार भगवान्‌की विभूति हैं, वह इस संसारके रचनेमें तप, हम सप्त ऋषि; नौ प्रजाके ईश, स्थान, धर्म, यज्ञ, मनु, देवता, राजा लोग अन्तमें अधर्म करनेवाले क्रोधी असुर आदिक बहुत शक्तिधारी ईश्वरका मायाकी ये सब विभूतियाँ हैं ॥ ३९ ॥ यह अवतारोंकी कथा मैंने संक्षेपमें कही है विस्तार से कहनेकी किसकी सामर्थ्य है । विष्णुका चरित्र कोई नहीं कह सकता है । पृथ्वीके रजके कण गिन ले (वेदका मन्त्र है) "विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि" जो ईश्वर अत्यन्त वेगसे त्रिलोकीको धारण किया, परन्तु त्रिलोकीके समान स्थान से भी अधिक कंपायमान करनेवाला जिनका वेग है ॥ ४० ॥ मायासे बलवान् पुरुष ईश्वरका प्रपंच हम नहीं जान सकते । हे मुनि ! यह तुम्हारे भाइयोंमेंसे भी कोई नहीं जान

सकता। सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजी भी सदा ईश्वरके गुण गाते हैं, परन्तु अबतक पार नहीं पाया और न पायेंगे। फिर औरोंकी तो क्या गिनती? ॥ ४१ ॥ कोई यह शंका करे कि कोई हरिके गुणोंको न कह सकता हो तो मोक्ष कैसे होता है? उत्तर-मोक्ष हरिकी कृपासे होता है और किसीसे नहीं हो सकता। वह भी जब अनंत भगवान् कृपा करें और सब प्रकारसे निष्कपट होकर उनके चरणारविंदोंका आश्रय लेकर अतिदुस्तर देवताओंकी मायासे तर जाते हैं और श्वान श्रृगालोंके भोज्य देहमें आसक्त पुरुष नहीं तर सकेंगे ॥४२॥ हे नारद! उन्हींकी कृपासे परमात्माकी योगमायाको जानते हैं। हम सब जानते हैं। तुम, शिव भगवान्, प्रह्लाद, मनुकी स्त्री शतरूपा, स्यंभूमनु, उनके पुत्र प्राचीनबर्हि, ऋभु, ध्रुवजी ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, नृपति ऐल, मुचुकुन्द, जनक, गाधि,नृपेन्द्र रघु, अम्बरीष, सागर, नहुषादिक, मान्धाता, अलर्क, शतधनु, रंतिदेव, भीष्मपितामह, बलि, अमूर्तरय, दिलीप ॥४४॥ सौभरि, उतंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पाराशर, भूरिषेण, विभीषण, हनुमान्, उपेंद्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव ॥ ४५ ॥ ये सब जानते हैं, इससे तर गये। ईश्वरकी मायाको स्त्री, शूद्र, हूण, यवन, शबर और पापी जीव, जो जो अद्भुत चरित्रकारी, ईश्वर परायण, जिन्होंने भली भांति शिक्षा ली है वह और जिन्होंने ईश्वर धारणा की है वे यह सब जानते हैं और पशु-पक्षियोंकी तो क्या चर्चा है? यह सब तर गये॥४६॥ अब भगवत्का स्वरूप वर्णन करते हैं। सदा प्रशांतमन, भयरहित, ज्ञानघनशुद्ध, समान, कार्य कारणसे परे, आत्माका तत्त्व है, जहां बहुत कारकवान्, क्रियाकारक शब्द नहीं कह सकते हैं। जिनके सम्मुख माया लज्जाके कारण मुख नहीं करती दूरसे दूर ही भागती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सोई परम पुरुष ईश्वर वह स्थान है, जिसको ब्रह्म निरत यतिलोग मनको जीत परमात्माके स्वरूपमें प्राप्त होकर अकर्तापन और साधनोंको त्याग देते हैं। जैसे कुयें खोदनेपर फावड़े आदिको छोड़ देते हैं या जैसे इन्द्र स्वयं बादलरूप होनेसे स्वनित्रादि वस्तुको नहीं ग्रहण करते ॥ ४९ ॥ वह भगवान् सर्व कल्याणकारी कर्मके फलदायक हैं। इसलिये इस विश्वका भाव स्वभावविहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है। जैसे सब धातुओंके वियोगसे देह नष्ट होता है, परन्तु देहके संग आकाशका नाश नहीं होता, ऐसे ही अजन्मा पुरुष देहके साथ जन्म लेते हैं, परन्तु सबके फलदाता आप हैं ॥५०॥ हे नारद! वह भगवान् सब विश्वमें जिनकी भावना है, उन राधारमणके चरित्र मैंने संक्षेपसे कहे हैं। इन ईश्वरसे पृथक् सत्-असत् कुछ नहीं है ॥ ५१ ॥ जो मुझसे भगवान्ने कहा है, वह यह भागवतपुराण महाआनंददायक है। हरिकी विभूतियोंका संग्रह है, अब इसे तुम विख्यात करो ॥ ५२ ॥ जिस रीतिसे वृन्दावनविहारीमें मनुष्योंकी भक्ति हो। सबके आधार ईश्वरका चिन्तन करके तुम वर्णन करो ॥ ५३ ॥ जो परमेश्वरकी मायाका वर्णन करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं और जो श्रद्धासे नित्य परमात्माके चरित्र सुनते हैं, वे माया द्वारा कभी मोहको प्राप्त नहीं होते ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
द्वितीयस्कन्धे चतुर्विंशावतारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा—ब्रह्मा नारदको सुनत, अति अनुपम संवाद।
देवराज शुकदेवसों, पूछो अति आह्लाद॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्रह्माजीसे प्रेरित हो देवदर्शक नारदजीने निर्गुण ईश्वरके गुण जिन-जिन के अर्थ कहे वह आप वर्णन कीजिये॥१॥ हे विदांवर! मुझे उनके सुननेकी अभिलाषा है, अद्भुत पराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुन्दर मंगल करनेवाली है॥२॥ हे महाभाग! वह कथा वर्णन करो। सबसे मन हटाकर वैराग्य ले सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजीमें मन लगाऊं और इस दुःख-दायी देहका त्याग करूं, वह कहो॥३॥ श्रद्धायुक्त हो हरिके गुण नित्य श्रवण करनेसे, श्रीकृष्णलीलाओंको मुखसे कहनेसे थोड़े ही दिनोंमें भगवान् हृदयमें प्रवेश करते हैं॥४॥ कानके छिद्रमें हो सदा मधुसूदन अपने जनोंके हृदयका जो कमल है और उसमें जो मल है, उसका नाश कर देते हैं, जैसे जलका मल शरदृऋतुके आनेसे दूर हो जाता है॥५॥ जो पवित्र आत्मा पुरुष श्रीवासुदेवके चरणमूलका त्याग नहीं करते, वे सब क्लेशसे छूट जाते हैं। जैसे मार्ग चलनेवाले अपने घर आकर सब दुःखसे छूट जाते हैं॥६॥ हे ब्रह्मन्! त्वचा, रुधिर, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा, हाड़, इन सात धातुओंसे रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वरका पंचभूत देह धरना निज इच्छासे है? या किसी कारणसे शरीर धारण करते हैं? यदि आप यथार्थ जानते हो तो कहिये॥७॥ सब लोककी रचनारूप कमल जिनकी नाभिमें उत्पन्न हुआ, वे जैसे अवयवोंसे अलग-अलग हैं और इतने हैं, यह सब कहो॥८॥ इतने ही ईश्वर हैं, संस्था अवयवके समान हैं? हे शुकाचार्य! जिसको हम न जानते हों वह सब आप कहें॥९॥ अजन्मा ईश्वरकी कृपासे सब जीवोंको ब्रह्मा रचते हैं, नाभिकमलसे जन्मे ब्रह्माजीने उनका रूप देखा॥१०॥ वह ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार करता है। मायाके ईश, अपनी मायाको त्याग सबके अन्तर्यामी भी कहाँ सोते रहते हैं॥११॥ पुरुषके अवय-वोंसे पूर्व कल्पित लोकपालसहित लोकपालक इनके अवयवोंसे रचे गये यह सब श्रवण कराइये॥१२॥ जैसा कल्प है, जैसा विकल्प है, जैसा कालका अनुमान किया जाता है। भूत, भविष्यत, वर्तमान आयुका जो-जो प्रमाण है, वह कहो॥१३॥ कालकी गति जो छोटी-मोटी है, जितनी कर्मकी गतियाँ हैं और जैसी गति होती हैं वह हे द्विजसत्तम! शुकाचार्य! आप कहिये॥१४॥ सत्त्वादि गुणोंका देवादिरूप परिणामकी इच्छा करनेवाले जीवोंके मध्यमें जिस परिणाममें पुण्य-पापके कर्मोंका स्वरूपसमूह किस कर्मके समुदायसे कैसे करनेसे कौन अधिकारी देव आदि भावको प्राप्त होता है वह कहो॥१५॥ भूमि, पाताल, सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इनकी उत्पत्ति और जो इनके वासी हैं, कहो॥१६॥ इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, बाहर-भीतरका भेद, महात्माओंका चरित्र, वर्णाश्रमका निर्णय, जिन-जिन स्वभावोंसे सब वर्ण आश्रमका निर्द्धार हो, वह कहो॥१७॥ अत्यन्त आश्चर्यदायक श्रीहरि अवतारोंके चरित्र और युगों-युगोंके प्रमाण और युग-युगमें जो धर्म हों, कहो॥१८॥ मनुष्योंके जो साधारण धर्म हों वह कहो और जो-जो व्यवहारियोंके धर्म हों, कहो, और प्रजापालोंके अधिकारी राजर्षियोंके धर्म कहो, सब जीवमात्रका आपद्धर्म कहिये॥१९॥ तत्त्वोंकी संख्या और उनके लक्षण, अथवा किसी हेतुसे उनके लक्षण जैसे हों कहो परमेश्वरके पूजनकी विधि, अष्टाङ्गयोगकी विधि, ब्रह्मविद्या, यह सब कहो॥२०॥ योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिरादि मार्गके योगि-

योंके लिंग देहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादि, धर्मशास्त्रोंकी गति, इतिहास पुराणोंका सार यह सब कहो ॥ २१ ॥ सब जीवोंका प्रलय, स्थिति, महाप्रलय, वैदिक कर्म, पूर्तकर्म यह हैं कि "वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते" ॥ ईश्वरके निमित्त बावड़ी, कुआँ, तलाब आदि देवमंदिर बनाना, सदा अन्नदान करना, बाग लगाना,इनको पूर्त कहते हैं। कामना करके कर्म करना,अर्थ,धर्म, कामकी विधि यह सब कहिये ॥ २२ ॥ उपाधिरहित जीवोंके धर्म, उनकी रचना, पाखंडकी उत्पत्ति, जीवोंकी बंध मोक्षस्वरूपमें स्थिति यह कहो ! ॥ २३ ॥ जैसे स्वाधीन भगवान् अपनी मायासे क्रीड़ा करते हैं, कभी मायाको त्याग साक्षी समान विभु विराजते हैं वह कहो ॥ २४ ॥ इन प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे अपने सिद्धान्तसे आप कहने योग्य हो, हे महामुनि ! मैं तुम्हारे आश्रित हूं ॥२५॥ इसमें स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रमाण हैं, पहलेसे पहले हुए वह और सब इसी मार्गमें स्थित रहेंगे ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे प्राण भूख-प्याससे नहीं निकलेंगे, भागवत कथामृत पान करनेवाले मुझको कुपित द्विजके सर्पका भय किंचित् भी नहीं है ॥ २७ ॥ सूतजी बोले—संतोंके पति हरिकी कथामें इस प्रकार राजाने प्रार्थना की; तब सभामें राजा परीक्षितसे शुकदेवजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥वेदके समान भागवत नामक पुराण ब्रह्मकल्पमें ब्रह्मासे भगवानने कहा था ॥ २९ ॥ पांडवोंमें श्रेष्ठ परीक्षितने जो-जो पूछा वह सब संक्षेपसे और विस्तारसे व्याख्या करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे राजकृतप्रश्नविधिर्नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—कथा नवम अध्यायकी, नाशक सब संदेह ।
चतुश्लोकी भागवत, बरणों सहित सनेह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! अनुभवरूप परमेश्वरको देहका संबन्ध अपनी मायाके विना नहीं होता, जैसे अनायास ही स्वप्नके द्रष्टाको स्वप्नके समयका देहसंबंध नहीं होता है ॥ १ ॥ अनेक रूपवाली मायासे बाल, युवादि रूप देव नरादि रूपकी नाईं प्रकाश करते हैं। इस मायाके गुणमें रमण करके "मेरा है" "हम हैं" ऐसे आप माने हैं ॥२॥ जिस समय अपनी महिमामें उस काल मायासे परे ईश्वरमें सब मोह त्याग रमण करता है, तब अहंकार ममकार दोनोंको त्याग साक्षीके सदृश रहता है ॥ ३ ॥ जीवके तत्त्वशुद्धिका कारण जो भगवान्ने सत्य कहा है, वह निष्कपट तपके विना नहीं होता। ब्रह्माको अपना रूप दिखाया है ॥ ४ ॥

दोहा—नारायणकी नाभिसे, प्रकट भयो अरविन्द ।
ताते चतुरानन भये, जो गुरु सुर मुनि वृन्द ॥

आदिदेव ब्रह्माजी जगत्के परमगुरु अपने कमलमें बैठकर जगत्के रचनेका विचार करने लगे, इस संसारके रचनेके योग्य दृष्टिको नहीं पहुँचे, जिससे यह विश्व रचनेकी विधि ठीक हो ॥ ५ ॥ एक समय ब्रह्माजी यही चिंतन कर रहे थे, तब उस जलमेंसे दो बार यह शब्द सुनायी दिया, कि तप करो तप करो, (क) से लेकर (म) पर्यंत २५ पच्चीस अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है। इनमें १६ सोलहवाँ अक्षर (त) है और इक्कीसवाँ (प) है। दोनों मिल-

कर (तप) हुआ, हे राजेन्द्र ! जिनको किसी वस्तुकी चाहना नहीं, ऐसे मुनियोंका वह धन है । तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं ॥ ६ ॥ तप करो, यह सुन ब्रह्माजीने सब ओर देखा और वक्ताके देखनेकी इच्छा की, तब कमलपर बैठ अपना हित विचार तप करनेकी मनमें धारणा की ॥७॥ सफल दर्शन, पवन, मन, जीत, कर्म इन्द्रियाँ और ज्ञान इन्द्रियाँ जीत तप करने वालोंमें अति तपस्वी ब्रह्माजीने सब लोकको प्रकाश करनेवाला दिव्य तप सहस्र वर्षतक किया ॥ ८ ॥ जिससे श्रेष्ठ और कोई नहीं, क्लेश, मोह, संभ्रम जहां नहीं । सत्पुरुषवान् आत्मवेत्ता अपने दर्शन करनेवालोंसे श्रीवैकुण्ठ लोकको प्रसन्न हो भगवान्‌ने ब्रह्माके लिये दिखाया ॥ ९ ॥ जिस वैकुण्ठमें राजस, तामस नहीं, शुद्ध सत्त्व जहां रहता है, रज-तम मिला तत्त्व गुण जहां नहीं, जहां कालका पराक्रम नहीं चलता, मायाका नाम नहीं, वहां रागादिककी क्या सामर्थ्य है ? देव-असुर जिनका दोनों भजन करते हैं; ऐसे भगवत्‌के पार्षद जहां हैं ॥ १० ॥ पार्षदोंका वर्णन करते हैं—श्यामसुन्दर, उज्ज्वल स्वरूप, कमलनयन, पीताम्बर पहिने, परम मनोहर, अतिसुकुमार, उत्तम-उत्तम रत्नमणि जटित सब आभूषण धारण किये, अति तेजस्वी सब पार्षद हैं ॥ ११ ॥

दोहा—कोउ प्रवालद्युति सोहहीं, कोउ वैदूर्य्य मृडाल ।
भ्राजमान माथे महा, मुकुट मणिनकी माल ॥

सामवेदको गाकर सर्वेश्वरको चारों ओरसे नमस्कार कर रहे हैं । कहीं स्मरण, कहीं प्रशंसा और कहीं भगवान्‌के चरित्रोंकी व्याख्या कर रहे हैं, ऐसे भगवान्‌के पार्षद हैं॥१२॥महात्माओंके प्रकाशमान शोभित विमानोंकी पंक्तियोंसे श्रीवैकुण्ठलोक सब ओरसे विशेष करके प्रकाशमान हो रहा है । उत्तम स्त्रियोंकी कांतिसे ऐसा प्रकाशित हो रहा है, जैसे बिजुली सहित मेघमालासे आकाश शोभित होता है । दामिनी सदृश तो स्त्रियाँ हैं, मेघपंक्तिके समान विमान हैं, आकाशके तुल्य वैकुण्ठलोक है ॥१३॥ वहाँ वैकुण्ठमें रूपवती महालक्ष्मीजी श्रीनारायणके चरणोंमें अनेक विभूतियोंसे मान करती हैं और हिंडोलेमें झूलती हैं । वसन्तके अनुचर भ्रमर अनेक-अनेक प्रकारसे गुँजार करते हैं । अपने प्यारे प्रीतमके चरित्रोंको गाती जाती हैं और आनंदसे झूलती हैं ॥१४॥ उस वैकुण्ठमें सब भक्तोंके पति श्रीभूलीलानायक यज्ञपति, जगत्पालक, सुनंद, नंद, प्रबल, अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षद सब ओरसे जिनकी सेवा करें, उन समर्थ त्रिलोकीनाथका ब्रह्माजीने दर्शन किया ॥ १५ ॥ भृत्यजनोंके प्रसादमें जिनका मुख दर्शन करनेवालोंको हर्षदायक प्रसन्न नयन जिनकी मुसकानसे नेत्र मुख लाल हो रहें, शीशपर मुकुट, कानोंमें कनककुण्डल, चारभुज, पीतांबर धारण किये, हृदयमें श्रीजी विराजमान हो रही हैं ॥१६॥ अत्यन्त पूजन योग्य, सिंहासन पर विराजमान, परब्रह्म प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व अहंकार चार तो यह, और ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, सोलह । पांच उनकी मात्रा; इन शक्तियों और अपने सब स्वाभाविक जो ऐश्वर्य उनसे युक्त योगियोंके ध्रुव आगामि ऐश्वर्य समेत अपने मंदिरमें सदा रमण करते हैं ॥ १७ ॥ जिनके दर्शनके आनंदसे अन्तःकरण प्रसन्न

१. शंका—भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्रह्मा कमलके फूलपर बैठकर तपस्या करने लगे, परंतु उस तपका क्या नाम है ? तप तो अनन्त हैं ब्रह्माने कौनसा तप किया ?

उत्तर—ब्रह्मा नारायणकी आज्ञा पाकर अपने मनको हृदयमें स्थिर करके बड़े प्रेमसे नारायणके नामका जप करने लगे, यही परम तप है ।

तम, रोमाञ्चित देह प्रेमके भावसे नेत्रोंमें आंसू भर आनंदमें मग्न हो ब्रह्माने श्रीवासुदेवके चरण-सरोरुहको नमस्कार किया, जिनका दर्शन परमहंसोंको ज्ञानमार्गसे होता है, उनका दर्शन ब्रह्माजीने किया ॥१८॥ संसारके रचनेमें जो हरिकी आज्ञा उसकी सुन्दरतामें स्थित चित्त उन ब्रह्माजीसे मन्द-मुसकानकी वाणीसे चितानंद घनश्याम; आप ब्रह्माका हाथसे हाथ पकड़ कर ॥१९॥ बोले कि, हे वेदगर्भ ! विश्वके रचनेकी इच्छासे तुमने हमें बहुत प्रसन्न किया और सहस्र वर्षतक अत्यन्त तप किया। जो मूर्ख योगीजन हैं, उनसे मैं बहुत प्रसन्न नहीं होता हूँ॥२०॥ हे ब्रह्मा! आपका कल्याण हो, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वह वर मांगो। कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको जब तक श्रम है, तबतक मेरा दर्शन नहीं होता? अब तुम्हें मेरा दर्शन हो गया अब तुमको कोई परिश्रम न होगा। जो इच्छा हो, मांगो ॥२१॥ मेरे मनकी इच्छाका यह प्रभाव है कि मेरे लोकका तुमको दर्शन हुआ, यह मनमें मत विचार करना, कि मैंने तपके बलसे यह किया है। स्वतंत्र कभी न होना। मेरी ही कृपासे तुमको यह दर्शन हुआ, जो श्रवण करके एकान्तमें सहस्र वर्ष तप किया ॥२२॥ जब कर्मसे तुम विशेष मोहित हुए, तब मैंने तुमसे कहा, हे पापरहित ! तप कर, तप मेरा हृदय है, तप साक्षात् मेरा देह है तप मेरी भीतरकी शक्ति है "यस्य ज्ञानमयं तपः इति श्रुतेः" ॥२३॥ तपसे ही इस विश्वको रचता हूँ और फिर तपसे ही संसारका पालन व संहार करता हूँ। यह तपरूप बड़ा पराक्रम है, बड़ा दुस्तर है। तपका बड़ा प्रभाव है, तप करना बड़ा कठिन है ॥२४॥ ब्रह्माजी बोले, कि हे लोकेश ! सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो, दृढ़ ज्ञानमें जो करनेकी इच्छा है उसको तुम जानते ही हो ॥२५॥ यद्यपि आप ऐसे हैं, तो भी, हे नाथ ! आपसे जो मांगें ऐसे मनुष्यको जो याचित पदार्थ है वह तुम दो। तुम्हारे सूक्ष्म, स्थूल और निर्गुणको जैसे जानूं वह कहो ॥ २६ ॥ जैसे मायाके संयोगसे अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे-

दोहा—सिरजत पालत हरत हो, आपहि यह संसार।
सत्संकल्प करहु सदा, मकरीसरिस विहार ॥

वर्द्धित विश्वका संहार, रचना, पालन आप ही चतुराननरूप धाणरकर किया करते हो ॥ २७ ॥ हे अमोघ संकल्प ! जैसे मकरी अपने तन्तुओंके जालसे आप फँस जाती है, ऐसे ही आप क्रीड़ा करते हैं। हे माधव ! अब आप दया करके सृष्टिके रचनेकी बुद्धि मेरे हृदयमें धारण करो ॥ २८ ॥ आपसे शिक्षित होकर मैं निरालस्य हो तुम्हारे अनुग्रहसे प्रजाके उत्पन्न करनेकी चेष्टा करूँगा, परन्तु अहंकारका बंधन न हो ॥२९॥ हे ईश ! तुमने लौकिक सखाके समान जान स्वर्गादिकमें मेरा सम्मान किया। वह प्रजाके रचनेके कर्ममें अव्याकुल होकर उत्तम मध्यमादिक भेदसे जीवका विभाग करूँ तब "अजमानी" मुझको यह महामद न हो वह कीजिये ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच

श्लोक—ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥ १ ॥

दोहा—परम गुप्त है ज्ञान मम, अङ्गसहित विज्ञान।
भक्ति सहित मैं देता हूँ, लीजै विधि मतिमान॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌जी बोले कि, मेरा शास्त्रोक्तज्ञान अत्यन्त छिपा हुआ है, वह अनुभव, भक्ति, सब साधन सहित कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ ३१ ॥

श्लोक-यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥
दोहा-जो मोमें जस भाव मम, जस गुण कर्महु रूप ।
होय तत्त्वविज्ञान तस, लहि मम कृपा अनूप ॥ २ ॥

स्वरूपसे जैसे हम हैं और जैसे सत्तावान् हैं, जो रूप; कर्म, गुण हमारे हैं, इसी प्रकार तत्त्वोंका ज्ञान विशेष करके मेरी कृपासे तुमको हो ॥ २ ॥ ३२ ॥

श्लोक-अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं पदे तच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३ ॥
दोहा-सृष्टि पूर्व सत असत वपु, रहे हमहिं नहिं आन ॥
मध्यहु हम अरु अन्तमें, बचो सो हमहिं सुजान ॥ ३ ॥

इस सृष्टिसे पहले मैं ही था, मेरे अतिरिक्त और दूसरा नहीं था और स्थूल-सूक्ष्म इनका परम कारण कुछ भी नहीं था । पीछे सृष्टिका कारण मैं ही हूँ, पीछे सृष्टिके उपरांत भी मैं ही हूँ, जो यह विश्व है वह भी मैं हूँ, जो कुछ शेष रहेगा वह भी मैं हूँ । जो कुछ सब सृष्टिका मूल है, वह भी मैं ही हूँ । जिस प्रकार सुवर्णके अलंकार नाक, कान, हाथ, पाँवके भिन्न होते हैं । जैसे कङ्कण, कुण्डल, कर्णफूल, मालादिक पृथक्-पृथक् होते हैं, जब सबको गला दिया तो फिर केवल कञ्चनका कञ्चन, इसी भांति मुझको समझना कि अनादि अनन्त अद्वितीय परिपूर्ण मैं ही हूँ ॥ ३ ॥ ३३ ॥

श्लोक-ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥ ४ ॥
दोहा-चेतनमें जानो परे, है नहिं चेतन वास ।
सो मम माया जानिये, जस तम तस आभास ॥ ४ ॥

अर्थके बीच जो प्रतीत है और आत्मामें प्रतीति नहीं होता है, उसीको मेरी माया जानो । जैसे दो चन्द्रमा प्रतीत होते हैं, जैसे राहु ग्रहमण्डलमें स्थित है, परन्तु दीखता नहीं । ग्रहणके द्वारा दीखता है। इसी प्रकार यह माया कार्योंके द्वारा दीखती है। साक्षात् प्रकट नहीं होती॥४॥३४॥

श्लोक-यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ५ ॥
दोहा-महाभूत जिमि भूतमें, अहै न है करतार ।
तैसे लघु बड़ जातमें, जानहु वास हमार ॥ ५ ॥

जैसे पञ्च महाभूतसे संसारके छोटे-बड़े जीवमात्रमें प्रविष्ट, अप्रविष्टके समान विदित होते हैं, इसी प्रकार मैं उनमें ज्ञात नहीं होता हूँ ॥ ५ ॥ ३५ ॥

श्लोक-एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ६ ॥
दोहा-मोर तत्त्व जानो चहै, आत्मतत्त्वको जान ।
और तत्त्व जाने नहीं, दोऊ ते विभु ज्ञान ॥ ६ ॥

आत्मतत्त्वके जाननेवालेको इतना ही जानना योग्य है । अन्वय, व्यतिरेकसे जो सब ठौर सदा ही ईश्वर है । "कार्येषु कारणत्वेनानुवृत्तिरन्वयः" अर्थ--कार्योंमें कारण भावसे

जो सदा रहे उसका नाम अन्वय है, "कारणावस्थायां च तेभ्यो व्यतिरेकः" अर्थ-कारण अवस्थामें उनसे अलग रहे उसका नाम व्यतिरेक है ॥ ६ ॥ ३६ ॥

श्लोक-एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भगवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ७ ॥

दोहा-ह्वै एकाग्र ग्रह मोर मत, धारहु विधिकर छोह ।
कल्प विकल्पहुमें कबहुँ, तुम्हैं न ह्वैहै मोह ॥ ७ ॥

हे ब्रह्मा ! एकाग्रचित्त द्वारा परम समाधिसे तुम इस मतमें स्थिर रहोगे तो तुम कल्पों-विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है उसका तुमको कभी यह अभिमान न होगा कि इस संसारका कर्त्ता मैं हूँ ॥ ७ ॥ ३७ ॥

इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले, कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्माजी हैं उनसे अजन्मा ईश्वर यह कहकर अन्तर्धान हो गये ॥३८॥ आदिरूप अविनाशी जगदीश्वरके अन्तर्धान होनेके उपरान्त सब जीवमय ब्रह्माजी श्रीविश्वनाथको हाथजोड़ कर विश्वको पहलेकी रीतिसे रचने लगे ॥३९॥ प्रजापति धर्मपति एक समय यम-नियमको प्रजाके कल्याणके लिये और अपने स्वार्थकी कामनाके लिये रचा और यम-नियमादिकमें आप स्थित हुए ॥ ४० ॥ अति प्रिय भाग लेनेवालोंमें पुत्रोंमें पिता ब्रह्मामें अनुरक्त शील नम्रतादि शुश्रूषा करनेवाले नारदजी ब्रह्माजीकी सेवा करने लगे ॥ ४१ ॥ हे राजन् मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी मायाको जाननेकी इच्छा कर महामुनि महाभागवत नारदजीने पिताको प्रसन्न किया ॥४२॥ "वेवेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापे उसका नाम विष्णु है, व्याकरणमें "विष्लृ व्याप्तौ" धातु है, उससे विष्णु शब्द व्युत्पादित होता है ॥४३॥ सब लोकके पितामह ब्रह्माको प्रसन्न जानकर नारदने पूछा था, जो आप हमसे पूछते हैं। दश लक्षण युक्त, अत्यन्त शोभायमान श्रीभागवत पुराण जो भगवानने ब्रह्माजीसे कहा और उन्होंने अपने प्रिय पुत्र नारदसे कहा ॥ ४४ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! सरस्वतीके तटपर नारदजीने परब्रह्मके ध्यानी, परमज्ञानी, महातेजस्वी व्यास मुनिको सुनाया ॥ ४५ ॥ जो तुमने हमसे जिज्ञासा की, कि विराट् पुरुषसे यह विश्व कैसे होता है वह और तुम्हारे कहे हुए सब प्रश्न और अन्य बातें भी जैसी हैं वैसे ही कहेंगे ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे चतुःश्लोकीभागवतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-तहँ शुकदेव प्रमोदभर, लक्षण दशहु पुरान ।
भूप परीक्षितसे कहत, संयुत अर्थ महान ॥

शुकदेवजी बोले, कि अब सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वतन्र, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, आश्रय॥१॥दशवें आश्रय लक्षणकी विशेष शुद्धिके लिये नौ लक्षण महात्मा लोगोंसे सुने, अर्थ करके अनायाससे वर्णन करते हैं अथवा श्रुतियोंसे कहते हैं ॥ २ ॥ अब दशों लक्षणोंका वर्णन करते हैं। नभ, मही, जल, तेज, वायु, गन्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस । पायु, उपस्थ, पद, कर, वाक्, ये पांचों कर्मेंद्रिय हैं नाक, कान, रसना, त्वचा, नेत्र, ये पांचों ज्ञानेंद्रिय हैं । अहंकार, मन, बुद्धि, अन्तःकरण, इन पञ्चभूतमात्र इंद्रियोंकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं । ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट पुरुषसे जो उत्पन्न हुआ उसका नाम

विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुंठका विजय यह है कि, परमात्माकी रची हुई मर्य्यादाओंका पालन करना, इसका नाम स्थान है। अपने भक्तोंपर कृपा करना,इसका नाम पोषण है। मन्वन्तरोंके अधिपतियोंका जो धर्म वा सद्धर्म इसका नाम मन्वन्तर है। कर्मकी वासनाका नाम ऊति है ॥४॥ श्रीआदिपुरुष नारायणके अवतारोंका चरित्र और इनके पीछे जो महात्मा पुरुषोंके नाना प्रकारके आख्यानोंकी अधिक वार्ताका नाम ईश कथा है ॥५॥ इस ईश्वरकी योगनिद्राके पश्चात् शक्ति और उपाधियों सहित लय हो जानेका नाम निरोध। रूपको त्याग करके अपने स्वरूपमें स्थित होनेका नाम मुक्ति है ॥६॥ जो सृष्टिको उत्पन्न, पालन और लय करता है; जिसको परब्रह्म कहते हैं उसीका नाम आश्रय है ॥७॥ जो यह आध्यात्मिक पुरुष है, वही यह आधिदैविक है; जो इसमें विभक्त है, वही आधिभौतिक है ॥ ८ ॥ एकको एकके अभावमें जब नहीं प्राप्त होता है, उसमें जो दृक् रूप सूर्य वपु, इस त्रितापको जो जानता है, वही आत्मा अपने आश्रय है; उसको भी आश्रय कहते हैं ॥९॥ जब विराट पुरुष अंडको भेदकर बाहर निकले, तब अपने रहनेके लिये स्थानकी इच्छा की, आप ईश्वर पवित्र हैं, इस कारण पवित्र जलकी रचना की ॥ १० ॥ अपने रचे हुए जलमें सहस्र वर्षतक वास किया, तदनन्तर परब्रह्म सच्चिदानन्दने नर रूप धारण किया, इस कारण नारायण नाम हुआ। "आपो नारा इति प्रोक्ताः, नारा अयनं यस्य स नारायणः" नार नाम जलका है, उसमें जिसका स्थान हो वह नारायण हुआ। "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः अयनं तस्य ताः प्रोक्तं तेन नारायणः स्मृतः" ॥ ११ ॥ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव; जिनकी कृपासे होता है और जिनकी इच्छा नहीं हो तो नहीं होता ॥ १२ ॥ एक परमात्माने जब नाना प्रकार होनेकी इच्छा की तब योगशय्यासे उठ सुवर्णमय अपने वीर्यके तीन भाग किये ॥ १३ ॥ अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत; इनको ईश्वरने रचा। एक पुरुषका वीर्य तीन प्रकारके भेदोंको प्राप्त हुआ वह तुम ध्यान से सुनो ॥ १४ ॥ जब विशेष चेष्टा की, तब पुरुषोंमेंसे इन्द्रियशक्ति, मनःशक्ति, देहशक्ति यह हुई और सबमें मुख्य प्राण हुए ॥ १५ ॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करता है, तब सब इंद्रियां चेष्टा करती हैं जो चेष्टाका त्याग करता है तो प्राण भी चेष्टा त्याग करते हैं। जैसे राजाके पीछे राजाका भृत्य, राजा चले तो भृत्य भी चले, राजा खड़ा हो जाय तो भृत्य भी खड़े हो जाते हैं ॥ १६ ॥ एक देह जो परमात्माने रची, तब उसमें प्राणने प्रेरणा की, तब भूँख प्यास हुई, तब जल पीने और भोजन करनेको प्रथम मुख निकला यहां यह बात जाननी उचित है, कि तालु अधिष्ठान है, जिह्वा इन्द्रिय है, नाना प्रकारके रस विषय हैं, बरुण देवता हैं, यह सर्वत्र जान लेना ॥ १७ ॥ मुखसे तालु हुआ, वहां जिह्वा हुई, जीभसे अनेक प्रकारके स्वादोंका ज्ञान हुआ ॥१८॥ फिर कुछ बोलनेकी इच्छा हुई, उस समर्थ जीवकी अग्नि देवता वाणी इन्द्रियसे सुन्दर शब्द निकला, परंतु जलमें वचनकी रुकावट होती है। नासिकाकी पवन जब अत्यन्त चलायमान हुई; तब नासिका हुई वायु जिसका देवता है, वह सुगन्धदाता घ्राण इंद्रिय सूंघनेको हुई ॥ १९ ॥ २० ॥ जब देखनेकी इच्छा हुई कुछ न देखा तब देवतात्मकरूप गुण करनेवाली चक्षु इंद्रिय हुई ॥ २१ ॥ जब देववचन सुननेकी इच्छा हुई, तब दिशा देवता, वारि देवता, श्रोत्र श्रवण इंद्रिय, गुणके ग्रहण करनेवाले कान निकले ॥ २२ ॥ वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, लघु, गुरु, उष्ण, शीतके ज्ञानकी इच्छा हुई तब केश रोम

जिसमें वृक्ष समान ऐसी त्वचा उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥ बाहर भीतर पवनमें प्रवेश गुण वारि त्वचासे स्पर्शका ज्ञान हुआ । उसमें सर्व लोकोंके पालन करनेवाले पवन देवने प्रवेश किया ॥ २४ ॥ जब अनेक प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई, तब बल इंद्रिय इन्द्र देवतात्मक सब पदार्थोंके धरने-उठानेके कर्म योग्य दो हाथ बने ॥ २५ ॥ जब इसकी इच्छा हुई कि जहां मेरा मन हो वहां जाऊं तब विष्णु भगवान् जिनके देवता, यज्ञादिकके समिधादिक लाना और अनेक कर्म करने तथा तीर्थ गमन योग्य चरण प्रकट हुए ॥ २६ ॥ जब यह इच्छा हुई कि पुत्र हों; विषय आनंद अमृत सुख हो तब शिश्न इंद्रिय, प्रजापति जिसके देवता; काम प्रिय लिंग बनाया जो दोनों कार्य करे ॥ २७ ॥ भोजन करनेके उपरांत जब उसके मल त्यागनेकी इच्छा हुई, तब पायु इंद्रिय मल त्याग कर्म युक्त मित्र देवतात्मक उभयकार्य साधक गुदा हुई ॥ २८ ॥ जब इस देहरूप पुरीसे देहरूप पुरोंमें जानेकी अभिलाषा हुई तब नाभिद्वारकी अपान वायुसे अपान द्वार मृत्यु होना, पृथक् होना दोनों कार्यसाधक नाभि उत्पन्न हुई ॥२९॥ जब अन्न पानी ग्रहण करनेवाली इच्छा हुई तब कोष, कुक्षि, आँतें, नाडियाँ हुईं। नदियाँ समुद्र-कोष पानीके देवता हुए। तुष्टि-पुष्टि उनके आश्रयरूप हुई ॥ ३० ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यन्त चिन्तनकी इच्छा हुई तब हृदय हुआ। उस हृदयमें मन चन्द्रमा देवतासमेत संकल्प काम इत्यादिक हुए ॥३१॥ त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, हाड़; यह सप्तधातु हुईं, सप्त प्राण और यह सप्त धातुयें, भूमि, जल, तेज, वायु, आकाशसे होते हैं ॥३२॥ सब इंद्रियाँ गुणोंसे होती हैं और गुण अहंकारसे होते हैं; मन सब विकासका स्वरूप है, बुद्धि विशेष ज्ञानरूपिणी है ॥ ३३ ॥ यह नारायणका स्थूलरूप मैंने तुमसे कहा, जो पृथ्वी आदि से आठ आवरणसे बाहर व्यापते हैं॥३४॥ मायासे सूक्ष्मतम अव्यक्त, विशेषण रहित अनादि मध्य अनंत सदा एकरूप वाणी मनसे परे वह परमात्मा है ॥ ३५ ॥ ये दोष गुण निर्गुणरूप आदि-पुरुष नारायणके मैंने तुमसे वर्णन किये, परंतु इस मायाके रचे विद्वान् लोग दोनोंको ग्रहण नहीं करते ॥ ३६ ॥ भक्तवत्सल ब्रह्मरूपधारी कुछ कर्म नहीं करते, वे परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसे नाम धारण करते और वाच्यरूपसे रूप क्रिया धारण करते हैं ॥ ३७ ॥ जो-जो रूप यशोदानंदन जगत्कार्यके अर्थ धरते हैं, वह हम आपसे कहते हैं, कि प्रजापति मनुदेवता ऋषि, पित्रोंके गण, पृथक्-पृथक् सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥३८॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, वानर, उरग, सप्तमातृका, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत, विनायक ॥३९॥ कूष्माण्ड, उन्मादकारी ग्रह, वैताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, रेंगनेवाले जीव, सरीसृप ॥ ४० ॥ स्थावर, जंगम रूप दो प्रकारके जीव और जल, स्थल, आकाश-वासी जीव, उत्तम, नीच, कुछ-कुछ दोनों मिले हुए, ये कर्मकी गतियां हैं । ये सब रूप भगवान्ने धारण किये ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! सत्त्व, रज, तम इन तीनोंसे देवता मनुष्य नारकी जीव होते हैं ! उनमें भी एक-एक गति तीन-तीन प्रकारसे भेदको प्राप्त होती है ॥४२॥ जब एक ओर गुणसे और प्रकारका हो जाता है, तब स्वभाव नष्ट होता है । जिसका जैसा

१. शंका—शुकदेवजीने कहा, कि ज्ञानी पुरुष माया से रची हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करते। हे ब्रह्मन् ! ये दो वस्तु क्या हैं, आप कृपा करके हमसे कहो ?

उत्तर—भगवान् अंशजीव रूप होकर चर-अचर संसारमें व्याप्त हो रहा है; एक तो जीवको ज्ञानी लोग नहीं मानते, कि भगवान् भंगी चाण्डालादि खोटी देहोंमें क्यों बसेगा तथा दूसरी वस्तु गुणसहित विष्णु ब्रह्मा, शिव, इनको भी नहीं मानते। कहते हैं कि ये भी दुःखी होते हैं तथा जन्मते-मरते हैं। इन दो वस्तुओंको ज्ञानी पुरुष ग्रहण नहीं करते ॥

स्वभाव होता है, उसकी गति भी उसी प्रकार हो जाती है ॥४३॥ वही भगवान् वासुदेव धर्मरूपधारी जगत्के धारण करनेवाले इस विश्वमें तिर्यक् पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर इसको स्थापन कर पुष्ट करते हैं ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त काल अग्निरूप, रुद्रान्तर्यामी ईश्वर जिसमें यह सब रचा हुआ है। इस संसारका कालसे संहार किया करते हैं। जैसे मेघके समूहको पवन उड़ा देता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे भगवान् भक्त-वश्यका वर्णन किया, इस भावके विना और प्रकारसे बड़े-बड़े विवेकी लोग भी उन्हें नहीं देख सकते ॥ ४६ ॥ इन परमेश्वरको जन्मादिके और कर्मकर्तापनके भाव मायासे होते हैं ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्माका कल्प-विकल्पसहित कहा। जहां साधारण विधि है, जिसमें प्राकृत वैकृत सर्ग होते हैं॥४८॥परिमाण कल्प, लक्षण, विग्रह, स्थूल, सूक्ष्म कालको तृतीयस्कन्धमें कहेंगे। अब पाद्मकल्प सम्पूर्णतासे कहते हैं, वह सुनो ॥ ४९ ॥ शौनकजी बोले कि, हे सूतजी ! जो तुमने कहा कि हमने भागवतोत्तम विदुरजीको समझा है जो त्यागने अयोग्य बाँधवोंको त्यागकर पृथ्वीके सब तीर्थोंमें विचरते फिरे॥५०॥मैत्रेय और विदुरजीका कहा संवाद जिसमें ब्रह्म विद्याका वर्णन था, अथवा मैत्रेयजीने उनसे पूछा तो विदुरजीने उनसे क्या तत्त्वज्ञान कहा ? ॥५१॥ हे सौम्य ! उन विदुरजीकी कथाका वर्णन करो; बाँधवोंके त्यागनेका कारण और फिर किस प्रकार लौटना हुआ, वह विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥५२॥ सूतजी बोले, कि जो राजा परीक्षितने व्यासनन्दन शुकदेवजीसे पूछा था और भूपालसे जो कुछ भगवान् महामुनि शुकदेवजीने कहा, वह राजाके ही प्रश्नानुसार हम तुमसे कहते हैं, ध्यान लगाकर सुनो ॥ ५३ ॥ जिस ईश्वरने श्रीमद्भागवत ब्रह्माजीसे स्वयं कही और ब्रह्माजीने नारदसे कही, उस परमात्मा गुरुको वारम्वार नमस्कार है, वह सच्चिदानन्द निर्विकार वेदान्तरूप कैसे गुरु हैं:--

कवित्त-गुरुके प्रसाद सब विद्या और बोध होत,
गुरुके प्रसादको प्रकाश उर छायो है।
गुरुके प्रसाद शुद्ध आनंदरूप होत,
गुरुके प्रसाद शिव कालकूट खायो है॥
गुरुके प्रसाद वाल्मीकि व्यास सिद्ध भये,
गुरुके प्रसाद ही ते रामगुण गायो है।
गुरुहीकी कृपासे आनंद होत शालग्राम,
गुरुपदकी कृपासे पूर्ण पद पायो है ॥१॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धेऽष्टादशसाहस्त्र्यां पारमहंस्यां संहितायां पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति द्वितीयस्कन्ध समाप्त ।

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा द्वितीयस्कन्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

तृतीय स्कन्ध ३.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

वराह और हिरण्याक्ष



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

तृतीय स्कन्ध

सोरठा—जय गजवदन गणेश, विघ्नकदनप्रद सुख सदन।
एकरदन सम वेश, मदनकदनके वर नँदन ॥ १ ॥
जय श्रीनन्दकुमार, व्रजभूषण दूषण हरण।
अपनो दास निहार, दयासिंधु कीजै दया ॥ २ ॥
दोहा—कह द्वितीय स्कन्ध शुक, पुनि प्रभुपद धर ध्यान।
कथा तृतीय स्कन्धकी, लागे करन बखान ॥ ३ ॥
इस तृतीय स्कन्धके, तैंतीसों अध्याय।
कहे परीक्षित नृपतिसों, शुकाचार्य समझाय ॥ ४ ॥

तीसरे स्कन्धमें तैंतीस अध्याय हैं, जिनमें सर्गका वर्णन है, ईश्वरकी इच्छासे गुणोंके चलायमान होनेसे ब्रह्माण्डका होना इसका नाम सर्ग है। प्रथम अध्यायमें क्षीण आयु बान्धवोंको त्याग विदुरजी जैसे घरसे चले गये उनका संवाद आदिसे वर्णन करते हैं। पहले भगवान्‌का और ब्रह्माका संवाद संक्षेपमें कहा है; अब फिर शेषजीकी कही भागवत सुन्दर विस्तारसे कहते हैं। दो प्रकारसे श्रीमद्भागवतके सम्प्रदायकी प्रवृत्ति है, एक संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा और विस्तारसे शेषजी, सनत्कुमार; सांख्यायनादि द्वारा हुई। वहां द्वितीय स्कन्धमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादमें संक्षेपसे "अहमेवासमेवाग्रे" इत्यादि करके चतुः श्लोकी भागवत कही, वही ब्रह्मा नारदके संवादसे दशलक्षणसे कुछ विस्तार सहित कही, वही शेषजीकी कही हुईको अब अतिविस्तारसे करनेके कारण तृतीयस्कन्धका प्रारम्भ है। पहले चार अध्यायोंमें विदुर-मैत्रेयका सङ्गम, फिर आठ अध्यायोंमें विसर्गसहित सब प्रपञ्च कहा, विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायोंमें वाराह अवतारका वर्णन किया है। एक अध्यायमें विसर्गकी सम्पूर्णता कही है; फिर चार अध्यायोंमें कपिलदेवजीके अवतारकी कथा कही है; इसके पीछे नव अध्यायोंमें कपिलदेवजीका आख्यान किया। इस प्रकार तृतीय स्कन्धकी तैंतीस अध्यायमें प्रवृत्ति है ॥

इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! सर्व सम्पदासे पूर्ण गृहको त्याग, वनमें जा विदुरजीने निश्चय कर, भगवान् मैत्रेयजीसे पहले यह चरित्र इस प्रकार पूँछा ॥१॥ सर्वके ईश्वर षड्गुणऐश्वर्यवान् यह जगन्नाथ श्रीकृष्ण तुम्हारे पांडवोंके मन्त्री हुए और

दुर्योधनके गृहको त्याग विदुरको अपना जान उनके घरपर गये ॥२॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने कहा, कि हे समर्थ शुकाचार्य ! भगवान् मैत्रेय और विदुरजीका सत्सङ्ग कहां हुआ ? और किस समय हुआ ? यह विस्तारसे कहिये ॥३॥ हे मुने ! उन शुद्धात्मा विदुरजीका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कुछ थोड़े प्रयोजनका देनेवाला तो न हुआ होगा; वरन् अधिक ही प्रयोजनका साधक होगा; क्योंकि जिसके प्रश्नकी प्रशंसा महात्मा पुरुष करते हैं ॥४॥ सूतजी बोले कि, राजा परीक्षितका अत्युत्तम प्रश्न सुनकर आत्मज्ञानी प्रसन्न मन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरपाल ! सुनो, जिस समय दुष्ट राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंको पुष्ट किया था; इसलिये अधर्मसे विनष्ट दृष्टि हुई, वह छोटे भाई पांडुके अनाथ पुत्रोंको लाक्षाभवनमें प्रवेश करवाकर उनको जलानेकी इच्छाकी ॥ ५ ॥ ६ ॥ जिस समय सभामें अपनी पुत्रवधू राजा युधिष्ठिरकी पत्नी द्रौपदी अपने अश्रुजलसे पयोधरोंके कुंकुमको धो रही थी,उसके केशोंको पकड़कर दुःशासन खैंच रहा था। यह पुत्रका कुकर्म देखकर भी धृतराष्ट्रने उसको निवारण नहीं किया ॥७॥ अधर्मसे जुएमें हारे हुए, सीधे, सत्यवादी पाण्डव बारह वर्ष वनमें बस जब घर आये तब पुरोहितको भेजा और अपना राज्य मांगा और महाप्रतापी राजा युधिष्ठिर, जिनका कोई शत्रु नहीं उनको अधर्मी दुर्योधनसेवी धृतराष्ट्रने भाग देना नहीं स्वीकार किया ॥८॥ जिस समय युधिष्ठिरके भेजे हुए जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब पुरुषोंको अमृत तुल्य वचन सभामें सुनाये तब नष्ट पुण्य धृतराष्ट्रने उन वचनोंका कुछ मान न किया ॥ ९ ॥ दुर्योधनने द्वारकानाथको सिंहासन पर बैठाकर बड़ा आदर-सम्मान किया और कुशल-क्षेम पूछ कर कहा, आपने बड़ी कृपाकी जो मुझे दर्शन दिया, परन्तु यह तो कहिये कि यहां कैसे आना हुआ ? तब नन्दनन्दन बोले, कि हे कुरुपति ! मैं इस कारण तुम्हारे पास आया हूँ कि, पाण्डवोंका भाग बांट दो, क्योंकि ऐसा करनेसे आपका लोक और परलोक दोनोंमें यश होगा और जो उनका भाग न दोगे तो बहुत बुराई निकलेगी ॥

दोहा-आपसमें बढ़ि है कलह, हुइ है कुलसंहार ।
तातै कुरुपति मानिये, इतनी कही हमार ॥

चौपाई-सुन यदुनन्दनकी मृदुबानी । बोला वचन महा अभिमानी ॥
कहा सन्देशा लेकर आये । भाग भाग्यवानोंने पाये ॥
दाय भाग तो बहुत कहावै । इसमेंसे कोऊ तनक न पावै ॥
सूची अग्रभाग महि जेती । बिन रण देहौं तिनहि न तेती ॥

ऐसे कह, झर्राता-बर्राता वहांसे उठकर चल दिया और श्रीकृष्णजीकी बात पर कुछ ध्यान नहीं किया। जब मनुष्यके बुरे दिन आते हैं, तो उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। यदुनाथ फिर विराट पुरको लौट आये और राजा युधिष्ठिरको सब वृत्तान्त सुनाकर बोले "मैं जानता हूं कि दुर्योधन और धृतराष्ट्रका पुण्य अस्त हो गया, जो उन्होंने मेरे वचनको न माना" अब जिस प्रकार विदुरजीकी अवज्ञा हुई वह कहते हैं। जिस समय मदान्ध धृतराष्ट्रने अपने गृहमें विदुरजीको परामर्श करनेके लिये बुलाया, उस समय बड़े ध्वजाधारी पुरुषोंमें जो सम्मति विदुरजीने प्रकाश की, उन विदुरजीके वाक्योंको आज तक नीतिवेत्ता लोग "विदुर नीति" कहते हैं॥१०॥परीक्षित बोले कि हे कृपासिंधु ! क्या विदुरजी नीति विद्यामें ऐसे निपुण थे ? जो नीतिज्ञ लोग उनकी प्रशंसा करते हैं ? शुकदेवजी बोले, क्या तुमने उनकी विद्या और गुणका

वृत्तान्त नहीं सुना ? वह परमेश्वरके परमभक्त, चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराणोंके जानने-वाले प्रत्येक विद्यामें चतुर जिनका रचा हुआ "विदुरनीति" नामक ग्रन्थ ऐसा अद्भुत है कि उसके सदृश आजतक दूसरा ग्रन्थ नीतिशास्त्रका नहीं है। अबतक संसारमें सूर्यके समान प्रकाशवान् और प्रसिद्ध है। राजा परीक्षित बोले-कि ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है तो पहले उसीको सुनाइये। श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! एक समय राजा धृतराष्ट्रके निकट संजय आया और कौरवोंकी निन्दा करके बोला, कि कल मैं राजसभामें जाऊँगा और जहां, भीष्म, कर्ण, द्रोणादिक बैठे होंगे वहां सबके सम्मुख पाण्डवोंका एक संदेशा सुनाऊँगा, फिर जो कुछ होना होगा, देखा जायगा। यह बात कहकर संजय तो अपने स्थानको चला गया और राजा धृतराष्ट्रने चित्तमें चिन्ता करके आत्मज्ञानी, अत्यन्त बुद्धिमान्, निस्पृही, सब सन्देहोंके समाधान करनेवाले विदुरजीको बुलाकर कहा कि, हे विदुरजी ! कल संजय हमारे निकट आकर हमारा तिरस्कार कर गया है और युधिष्ठिरने जो कुछ सन्देशा उससे कहा है, वह प्रातःकाल ही संजय सभामें आकर युधिष्ठिरके कहे हुए वाक्योंको कहेगा, न जाने युधिष्ठिरने क्या कहा है ? और न जाने उसके कहनेसे क्या उपद्रव हो ? उस कुरुवीर युधिष्ठिरके वचनोंका अभिप्राय अभीतक मैंने नहीं जाना है, जबसे वह कह गया है, कि मैं सभामें कहूँगा, तबसे मैं अपार शोकसागरमें निमग्न पड़ा हूँ, चित्त व्याकुल हो रहा है, निद्रा नेत्रोंके निकट नहीं आती, जागृत रहकर केवल चिन्तानलसे मेरा हृदय जल रहा है। हे तात ! जिस बातमें मेरा कल्याण हो और यह सन्ताप दूर हो, वह उपाय करो। क्योंकि एक तुम ही हमारे कुलमें ज्ञानी और धर्मार्थमें कुशल हो ॥ १ ॥ जबसे संजय पाण्डवोंके समीपसे आया है, तबसे मेरे चित्तमें किसी प्रकारकी शांति यथावत् नहीं है। सब इन्द्रियोंने अपनी-अपनी प्रकृतिको छोड़ दिया और चिन्तासे मेरे हृदयमें दाह लग रही है, यह दाह मेरे सब अंगोंको भस्म किये डालती है, मुझको बड़ी भारी चिन्ता यही है, कि न जाने संजय क्या कहेगा ? ॥ २ ॥ विदुरजी बोले, कि संजय तो परमधार्मिक, विवेकी और महात्मा पुरुष है, इसलिये वह कभी अनुचित बात नहीं कहेगा, परन्तु तुमसे तो कुछ अपराध नहीं हुआ है ? निद्रा चार जनोंको नहीं आती है, जिसको किसीका बल और सहायता न हो और बलवान्से वैर करे १, जिसका सब सर्वस्व हरण हो गया हो २, कामी को ३ और चोरको ४, इन्हींकी निद्रा जाती रहती है। अतः हे राजन् ! इन चारों कर्मोंसे तुमसे तो कोई ऐसा कुकर्म नहीं हुआ ? परन्तु मुझको यह जान पड़ता है कि तुम दूसरेके धनका लोभ न करते तो यह महाक्लेश कभी नहीं पाते ॥ ३ ॥ ४ ॥ धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर ! तुम्हारे धर्मानुगत, सर्वमङ्गलदायक, परमानन्दकारी, मनोहर वचनोंको सुनना चाहता हूँ, वह वर्णन करो। क्योंकि इस राज्यवंशमें केवल एक तुम ही प्राज्ञ सम्मत हो ॥ ५ ॥ विदुरजी बोले कि-जो सर्वसुलक्षण सम्पन्न राजा युधिष्ठिर त्रिलोकीके अधिपति हो सकते हैं उन युधिष्ठिरको आपने वनको भेजकर वनवासी बनाया ॥ ६ ॥ तुम धर्मात्मा और धार्मिकोंमें चतुर होकर नयनहीनतासे विपरीत अर्थात् राज्यलक्षणसे हीन हो और राज्य प्राप्तके योग्य नहीं हो ॥ ७ ॥ पाण्डवलोग क्रूरताके अभाव दया, धर्म, सत्य, पराक्रम, नाम अपने गुणोंसे तुमको गुरु समान जान ज्ञान करके अशेष क्लेशको सहते हैं ॥ ८ ॥ और आप इन दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनको ऐश्वर्य भार समर्पण करके किस प्रकारसे विभूतिकी इच्छा

करते हो ? ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आत्मज्ञान, कर्मारम्भ, क्षमा और धर्मसे स्थिति, यह सब गुण जिस पुरुषको अर्थसे विचलित नहीं कर सकें वे ही पण्डित हैं ॥ १० ॥ जो पुरुष श्रेष्ठ कर्मोंका सेवन करता है, निन्दित कर्मोंका परित्याग करता है, जो आस्तिक और श्रद्धावान् होकर प्रशस्त कार्यानुष्ठान करता है वही पण्डित है ॥ ११ ॥ जो पुरुष क्रोध, हर्ष, दर्प, लज्जा, अमानता और आत्माभिमान, परतन्त्र होकर अर्थात् पृथक् नहीं हो वही पण्डित है ॥ १२ ॥ जिसके कार्य और मन्त्रणाका जबतक फल न हो जाय तबतक शत्रुगण नहीं जान सके, वही पण्डित है ॥१३॥ और शीत, ग्रीष्म, भय, प्रीति, समृद्धि असमृद्धिसे जिसके कार्यमें विघ्न नहीं होता है, वही पंडित है ॥ १४ ॥ और जिसकी स्वाभाविकी बुद्धि धर्मार्थकी अनुगामिनी है और जो दोनों लोकके सुखकी कामना करते हैं,वही पंडित हैं ॥१५॥ जो अपनी शक्तिके अनुसार कार्य साधनकी इच्छा करते हैं और किसी विषयमें अवज्ञा प्रदर्शन नहीं करते हैं, वही पंडित हैं ॥१६॥ जो पुरुष प्रत्येक कार्यको शीघ्र ही जान जाते हैं और अधिक कालतक शास्त्रोंको ज्ञानके दृढ़तार्थ सुनते हैं, अर्थको विशेष जानकर सेवन करते हैं, कामवश हो अर्थ-साधनमें प्रवृत्त नहीं होते हैं और दूसरेके प्रयोजनमें भाषण नहीं करते, वही पंडित हैं ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य अप्राप्य वस्तुके लाभके निमित्त अभिलाषी नहीं होते हैं और विनष्टवस्तुके लिये शोक-सन्ताप नहीं करते हैं और आपत्कालमें मोहित नहीं होते हैं, वही जन पंडित हैं॥१८॥ और जो जन पहले निश्चय करके पीछे उस कार्यके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं और उस कार्यके किये विना चित्तमें शांत नहीं होते और एक मुहूर्त्तमात्रको वृथा नहीं व्यतीत करते हैं, वही पंडित हैं ॥१९॥ और जो श्रेष्ठ कर्मोंमें प्रीति करते हैं, ऐश्वर्य देनेवाले कर्मोंको हितकारी समझते हैं, अपने हित, सुहृद् जनोंकी निन्दा नहीं करते, हे भरतवर्ष ! वही चतुर पंडित हैं ॥ २० ॥ जो जन अपने सम्मानसे हर्षित नहीं होते और अपमानका दुःख नहीं मानते, सदा गंगाके ह्रदके समान अविचलित और क्षोभहीन रहते हैं; वही जन श्रेष्ठ पंडित हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष सर्वभूतके तत्त्वज्ञ, सर्व कर्मोंके योगज्ञ और सर्व प्राणियोंके उपायज्ञ हैं, वही पंडित हैं ॥ २२ ॥ और जो अकुण्ठित चित्तसे वाक्य प्रयोग करते हैं, लोकवार्तासे परिज्ञात रहते हैं, तर्कमें विशेष प्रतिभा प्राप्त करते हैं और शीघ्र ग्रन्थोंके अर्थकी व्याख्या कर सकते हैं, वही पंडित हैं ॥२३॥ जिसका शास्त्र बुद्धिका अनुगामी है और बुद्धि शास्त्रानुसारिणी है और बुद्धिके अनुसार श्रेष्ठ जनोंकी मर्यादा रखनेवाले हैं, वही चतुर पंडित हैं ॥ २४ ॥ अब मूर्खोंके लक्षण कहते हैं—जो पुरुष विना शास्त्रके अध्ययन पंडितोंके समान अभिमान करते हैं, दरिद्र होकर धनिकोंके सदृश धनका गर्व करते हैं और कुकर्मसे धनके उपार्जनकी इच्छा करते हैं, वही जन मूर्ख हैं ॥ ॥ २५ ॥ और जो जन अपने प्रयोजनको त्यागकर दूसरेके कार्यमें बाधा डालते हैं और इष्टमित्रोंके कार्यसाधनमें मिथ्याचरण करते हैं, वही मूर्ख हैं ॥२६॥ और जो भक्तिहीन पुरुषोंमें स्नेह करते हैं, महात्मा और भक्तजनोंका परित्याग करते हैं, बलवान् पुरुषोंसे विद्रोह रखते हैं, वही मूर्ख हैं ॥२७॥ और जो मनुष्य शत्रुजनोंको मित्र समझते हैं, मित्रोंसे द्वेष रखते हैं, कुत्सित कर्माचार (हिंसा, द्यूत, चोरी) में प्रवृत्त रहते हैं, वही मूर्ख हैं॥२८॥और जो पुरुष सांसारिक कर्मको और अपने करनेयोग्य कर्मोंको भृत्य जनोंसे कराते हैं और पीछे उनकी परीक्षा करते हैं, शीघ्र करने योग्य कर्ममें विलम्ब करते हैं, हे भरतर्षभ ! वही मूर्ख हैं ॥ २९ ॥ जो जन पितरोंका श्राद्ध, तर्पण, देवपूजादिक नहीं करते, सुहृद मित्रोंसे नहीं मिलते

और रीति-प्रीति नहीं रखते, वे ही मूर्ख हैं ॥३०॥ जो विना बुलाये किसीके घर जाते हैं और विना समझे बात कहते हैं, अविश्वस्त पुरुषका विश्वास करते हैं, वे नर मूर्ख हैं ॥३१॥ जो मनुष्य आप दोषी होकर दूसरेको दोष लगाकर निरादर करते हैं और निर्बल होकर सदा बलवानोंपर क्रोध करते हैं, वे ही मूर्ख हैं ॥ ३२ ॥ अपने बलको आप समझे नहीं; धर्म, अर्थको जाने नहीं, जो वस्तु मिलनेके योग्य नहीं हो उसकी विना ही उद्योग किये इच्छा करते हैं, जहां लाभ होनेकी किंचिन्मात्र भी आशा नहीं वहांसे लाभकी आशा करते हैं, कृपणका आश्रय करते हैं, वे ही मनुष्य मूर्ख कहलाते हैं ॥ ३३ ॥ जो पुरुष अशिष्यको उपदेश करते हैं, शून्य राज्यद्वारादिकका सेवन करते हैं, लोभीसे लाभकी इच्छा रखते हैं, वे मूढ़चित्त कहलाते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अधिक धन, विद्या वा ऐश्वर्यको पाकर अभिमान रहित विचार करते हैं, वे ही पंडित हैं ॥ ३५ ॥ हे महाराज ! जो जन अपने भृत्यगणोंको यथोचित भाग प्रदान न करके उस सम्पदा, वस्त्र, आभूषणोंको आप ही अकेले भोगते हैं, अपने आश्रयवालोंके विषयमें बहुत कृपणता करते हैं और अनर्थ करके धन सञ्चय करते हैं, और आप उस धनका भोग नहीं भोगते तो उसे और ही दूसरे भोगते हैं, केवल वे पापोंके ही भागी होते हैं, यह सब मूर्खोंके लक्षण हैं ॥३६॥ अकेला पापोंसे द्रव्य संग्रह करके कुटुम्बका पालन-पोषण करता है और सब घर भर उस फलको भोगता है, परन्तु सब भोक्ता मुक्त होते हैं, एक केवल कर्ता दोषमें लिप्त ही रहता है ॥३७॥ देखिये धनुषके छोड़े हुए बाणसे एक बार ही प्राण नाश होना कठिन है, मारे वा न मारे, परन्तु बुद्धिमानके बुद्धि प्रभावसे राजा और राज्य एकबार ही विनष्ट हो सकता है ॥३८॥ हे महाराज ! आप इस समय बुद्धिपूर्वक कार्य्याकार्य्य निर्धारण करके साम, दाम, दण्ड, भेद, उपाय चतुष्टयसे मित्र, उदासीन और शत्रुगणको वशीभूत, इंद्रिय पराजय संधि विग्रहादिक ज्ञानलाभ और स्त्री, अक्ष, मृगया, पान, वाक्पारुष्य, दंडपारुष्य और अर्थपारुष्य परित्याग करके सुख-स्वच्छन्दसे समय व्यतीत कीजिये॥३९॥ देखिये, विष वा शस्त्र, एक ही प्राणीका विनाश कर सकता है; परंतु मन्त्रीका बिगाड़ होनेसे राजा, राज्य, प्रजा, एकबार ही विनष्ट हो सकता है, इसलिये राज्यकी गुप्त बात प्रकट करनी नहीं चाहिये ॥४०॥ अकेले छिप-छिप कर स्वादिष्ट भोजन नहीं खाना चाहिये अकेला ही सर्व द्रव्य लेनेकी इच्छा न करे, अकेला मनुष्य मार्गमें न चले, जहां बहुतसे मनुष्य सोते हों वहां अकेले मनुष्यको जागना नहीं चाहिये ॥४१॥ हे महारज ! वह एक ही है, दूसरा अपनी समताका नहीं रखता, उसकी महिमा परम अगाध है, जो स्वर्गके मार्गकी सीढ़ी और संसारसागरके तरनेके लिये नौका, ऐसा जो सब धर्मोंमें श्रेष्ठ "सत्य" है उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये ॥४२॥ क्षमावान् पुरुषोंके चित्तमें दया बहुत होती है, इसलिये वे किसी पर उपद्रव नहीं करते, इसीसे लोग उन क्षमायुक्त पुरुषोंको निर्बल और असमर्थ कहते हैं, परंतु उन पुरुषोंमें से यह दोष निकलना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षमाके समान बल दूसरा नहीं है ॥ ४३ ॥ इस बातका दोष नहीं समझना चाहिये, क्योंकि समर्थोंका क्षमा ही महाबल है, क्षमा ही परम गुण है, क्षमा ही भूषण है ॥ ४४ ॥ संसारमें क्षमा ही वशीकरण है, क्षमासे किस वस्तुका साधन नहीं हो सकता, जिसके हाथमें क्षमारूप खड्ग है फिर कौन शत्रु उसका क्या कर सकता है ॥ ४५ ॥ जैसे तृणरहित स्थानमें अग्नि आप ही शान्त हो जाती है, वैसे क्षमाहीन पुरुष क्षमावाले पुरुषका कुछ कर नहीं सकता, परंतु क्षमाहीन पुरुष आपही अपराधी होता है ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! केवल

अकेला धर्म ही सर्व मंगलदायक है, अकेली क्षमा ही सर्व शांति करनेवाली है, अकेली विद्या ही सर्व तृप्तियोंकी करनेवाली है, अकेली अहिंसा ही अनेक सुखोंकी मूल है ॥ ४७ ॥ युद्ध न करनेवाले राजाको और विदेशहीन ब्राह्मणको भूमि निगल जाती है, जैसे सर्प बिलके रहनेवाले जीवोंको निगल जाता है ॥ ४८ ॥ मनुष्यको इस लोकमें कठोर वाक्यका प्रयोग और नीच लोगोंके पूजनका परित्याग करनेसे अत्यन्त यश और लाभ प्राप्त होता है ॥४९॥ हे पुरुषोत्तम ! ये दोनों प्राणी दूसरेका विश्वास करनेवाले हैं, एक स्त्री जो-जो वस्तु संग्रह करती है, उसको देखकर दूसरी भी इच्छा करती है और जो पुरुष एक-एकका पूजन करता है, उसको देखकर दूसरा पुरुष भी उसीका पूजन करता है ॥ ५० ॥ ये दोनों तीक्ष्ण कण्टक अपने ही शरीरको सोखते हैं, निर्धनकी अभिलाषा और अनीश्वरका क्रोध ॥ ५१ ॥ ये दोनों अपने विपरीत कर्मसे यश नहीं पाते, जो गृहस्थ होकर संसारके कर्मोंको त्याग दे और संन्यासी होकर संसारके कर्म करे ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! ये दोनों पुरुष स्वर्गवासी होते हैं; दरिद्री होकर दाता, और राजा होकर कृपालु ॥ ५३ ॥ न्यायसे जो धन प्राप्त हो, तो उसकी दो प्रकारकी मर्यादा बांधनी चाहिये, कुपात्रको न देना और सुपात्रको देना ॥५४॥ जो पुरुष अपरिमित धन सम्पन्न होकर भी अदाता हो और दरिद्री होकर भी तपपरायण न हो, इन दोनोंके गलेमें दृढ़ शिला बांधकर महागम्भीर जलमें डुबाना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे पुरुषोत्तम ! ये दोनों सिंहपुरुष सूर्यमण्डलको भेदकर परमधामको जानेवाले हैं, योगसे युक्त संन्यासी और रणस्थलमें शत्रुके सम्मुख मरनेवाला वीर ॥ ५६ ॥ हे भरतर्षभ ! मनुष्योंके तीन उपाय हैं, अधम (युद्ध करना) १, मध्यम (भेदसे दान करना) २, उत्तम (साम सात्त्विकतासे कर्म करना) ३ । अथवा अधम कामके अर्थ युद्ध करना, मध्यम ऐहिक लोभसे दान देना, उत्तम सात्त्विक वृत्तिसे योग करना । इस प्रकार वेदवेत्ता लोग कहते हैं ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! पुरुष तीन प्रकारके होते हैं,—उत्तम, मध्यम, और अधम । उनको तीन ही प्रकारके कर्ममें यथाक्रम नियत करना चाहिये ॥ ५८ ॥ हे महाराज ! स्त्री, दास, पुत्र, ये तीनों निर्धन हैं, क्योंकि ये जिसके होते हैं, वही इनके उपार्जन किये हुए द्रव्यका स्वामी होता है ॥ ५९ ॥ इसलिये परद्रव्यापहरण, परदाराभिमर्शन और सुहृद्बन्धु परित्याग, ये तीनों दोष महाभयानक कष्टके देनेवाले हैं ॥ ६० ॥ काम, क्रोध और लोभ, ये तीनों महाघोर नरकमें डालनेवाले हैं और आत्मविनाशके हेतु हैं, इसलिये इन तीनों शत्रुओंका परित्याग करना चाहिये ॥ ६१ ॥ यदि पुरुष भक्त, हरिउपासक और शरणागत होकर अपना आश्रय ग्रहण करे तो तीनोंको महासङ्कटमें भी परित्याग करना योग्य नहीं है ॥ ६२ ॥ हे महाराज ! देवतासे वरदानका मिलना लाभ है १, राज्य प्राप्त होनेका लाभ है २, पुत्र जन्म होनेका लाभ है ३, परंतु शत्रुको सङ्कटसे छुड़ाना परम लाभ है ॥ ६३ ॥ महाबली राजाको चार बात नहीं करनी चाहिये, पंडित लोग उनको जानते हैं; अल्पबुद्धि १, दीर्घसूत्री २, अविवेकी ३ और चारण ४ इन पुरुषोंके साथ सम्मति करनी अनुचित है ॥६४॥ हे तात ! जिस पुरुषको परमेश्वर लक्ष्मीवान् करे, अथवा गृहस्थधर्मका पालन करना चाहे, तो इन चार पुरुषोंका सङ्ग न छोड़े । अपनी जातिका अतिवृद्ध जो कि कुलधर्मका उपदेश करने वाला हो १, कुलीन-जो बालकोंको आचार-विचार सिखानेवाला हो २, दरिद्री मित्र—जो बालकपनसे साथ रहा हो ३, सन्तानहीन भगिनी, कि जिसके कुलमें कोई पालन—पोषण

करनेवाला न हो ४, अपने घरमें रखना चाहिये ॥ ६५ ॥ सुरगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रसे चार बातें कही थीं कि, चारों बातें तत्काल फल देनेवाली हैं वह मैं आपसे कहता हूं ॥ ६६ ॥ देवताओंका संकल्प १, बुद्धिमानोंका महानुभाव २, विद्यावानोंकी नम्रता ३, पाप करनेवालोंका विनाश ४ ॥ ६७ ॥ हे भरतर्षभ ! चार कर्म सदा अभयदायक हैं और विपरीत करनेसे भयके देनेवाले हैं, अहंकारसे अग्निहोत्र कर्म करना १; अहंकारसे मौनधारण करना २, अहंकारसे पण्डित बन जाना ३ और अहंकारसे यज्ञ करना ४ ॥ ६८ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! मनुष्यको बड़े यत्न द्वारा पांच अग्नि सेवन करने योग्य हैं-पिता, माता, अग्नि, आत्मा, गुरु ॥६९॥ जो मनुष्य जगत्में अपनी कीर्ति चाहे तो देवता १, पितृ २, मनुष्य ३, भिक्षुक ४, अतिथि ५, इन पांचोंका पूजन यथायोग्य करे ॥ ७० ॥ हे महाराज ! राजा लोग जहां-जहां जाते हैं, वहां-वहां यह पांचों उनके साथ रहते हैं,-मित्र १, शत्रु २, मध्यस्थ ३, गुरु ४, और आश्रित ५ ॥७१॥ श्रोत्र १, त्वचा २, चक्षु ३, जिह्वा ४, घ्राण ५, इन पांचों इन्द्रियोंमेंसे एक वा दो भी भ्रष्ट हो जाती हैं, तो पीछे बुद्धिका धीरे-धीरे पूर्ण नाश हो जाता है, जैसे जलसे पूर्ण चर्ममयपात्रके किसी स्थानमें किञ्चित् छिद्र होनेसे समस्त जल जाता है। इसीलिये इन्द्रियोंका रोकना आवश्यक है॥७२॥ऐश्वर्य अभिलाषी पुरुषको, निद्रा, १, तन्द्रा २, भय ३, क्रोध, ४, आलस्य ५, दीर्घसूत्रता ६, ये छः दोष अवश्य परित्याग करने चाहिये ॥७३॥ सत्य १, दान २, अनालस्य ३, अनसूया ४, क्षमा ५ और धैर्य ६, ये छः बातें प्राणीको कभी भी परित्याग नहीं करनी चाहिये ॥ ७४ ॥ जैसे टूटी नौकाको चतुर नर समुद्रमें छोड़ देते है, इसी प्रकार पुरुष इन छः जनोंका परित्याग कर दे-धर्म उपदेश न करने वाला पुरोहित १, वेद न जाननेवाला ऋत्विज २ ॥ ७५ ॥ रक्षाहीन नरेश ३, अप्रियवादिनी भार्या ४, ग्रामवासी ग्वालियाँ और वनमें रहनेवाला नाई ६ ॥ ७६ ॥ छः बातें मुहूर्तके न विचारनेसे नष्ट हो जाती हैं गोधन १, सेवा २, खेती ३, स्त्री ४, विद्या ५, और शूद्रकी संगति ६ ॥ ७७ ॥ ये छः अपना कार्य हो जाने पर उपकार करनेवालोंकी अवज्ञा करते हैं, शिक्षित शिष्य आचार्यका १, विगतकाम पुरुष नारीका २, सिद्धार्थ पुरुष प्रयोजनका ३, नदीके पार उतरनेके पीछे नाववालेका ४, रोगी अच्छा होनेके पीछे वैद्यका ५, विवाह होनेके पीछे पुत्र माताका ६ ॥ ७८ ॥७९॥ शरीरका आरोग्य होना १, किसीका ऋणी न होना २, सत्पुरुषोंकी संगति ३, अपने वंशकी आजीविका होना ४, निर्भय स्थानका वास ५, परदेशमें न रहना ६, ये ही संसारमें रहनेके छः सुख हैं ॥८०॥ ईर्षा करनेवाला १, दयाहीन २, असंतोषी ३, क्रोधी ४, नित्यशंकित, ५, परभाग्योपजीवी ६, ये छः मनुष्य सदा दुःखके भागी हैं॥८१॥ नित्य धनका आगम १, आरोग्यता २, हितकारी मित्र ३, प्रियवादिनी स्त्री ४, आज्ञाकारी पुत्र ५, धनदायक विद्या ६, हे राजन् ! ये ही छः सुखके भूषण हैं ॥ ८२ ॥ काम १, क्रोध २, लोभ ३, मोह ४, मद ५, मत्सर ६, ये छः सदा मनुष्यके मनमें अवस्थान करते हैं, परन्तु जो इनको पराजय करता है वही पुरुष संसारमें धन्य है ॥ ८३ ॥ ये छः प्राणी सदा दूसरेके आश्रयसे जीते हैं, चोर अवधानोंसे १, वैद्य रोगियोंसे २ ॥ ८४ ॥ विषयी व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे ३, याजक यजमानोंसे ४, पण्डित मूर्खोंसे ५, और राजा विवादियोंसे ६ ॥८५॥ जो कि यह सात दोष व्यसन उदय करनेवाले हैं राजाको चाहिये कि इनका परित्याग कर दे, बहुधा इन दोषोंसे दृढ़मूल राजा भी विनाशको पाते हैं ॥ ८६ ॥ पाशेका खेल १, जुवा

२, मृगया ३, मद्यपान ४, कठोर वचन ५, थोड़े अन्यायपर अधिक दण्ड ६, अन्यायसे लिया हुआ धन ७ ॥ ८७ ॥ मनुष्यके नष्ट होनेके ये आठ लक्षण-ब्राह्मणोंसे द्वेष करना १, उनसे विरोध रखना २, ॥८८॥ उनका धन हर लेना ३, उनको मारना ४, उनकी निन्दा और हास्य करना ५, उनकी कीर्ति नहीं चाहना ६ ॥ ८९ ॥ यज्ञादिक कर्मोंमें उनको स्मरण न करना ७, याचनाके समय निन्दा करना ८, ज्ञानी पुरुषोंको उचित है कि इन दोषोंको त्याग दे ॥ ९० ॥ हे भरतवंशी ! हर्षके कारण केवल आठ दिखायी पड़ते हैं वह भी अत्यन्त दुःखरूप हैं ॥ ९१ ॥ बन्धुवर्गसे समागम १, अधिक धनकी प्रप्ति २, पुत्रका आलिङ्गन ३॥९२॥ स्त्री संसर्ग ४, उपयुक्त समयमें प्रियालाप ५, स्वपक्षकी उन्नति ६, अपने समूहमें बड़ाई ७, अभिलषित वस्तुका लाभ और सभामें सम्मान पूजा प्राप्ति ८ ॥९३॥ आठ गुण पुरुषको प्रकाशित करते हैं-सुबुद्धि १, उत्तमकुलमें जन्म २, चित्तस्वाधीन३, शास्त्राध्ययन४, पुरुषार्थ५, सत्य भाषण ६, यथाशक्ति दान ७ और दूसरेका किया हुआ उपकार स्मरण रखना ८ ॥ ९४ ॥ हे महाराज ! इस देहरूप गृहमें नव द्वार हैं (नेत्रोंके छिद्र २, नाकके छिद्र २, श्रवणोंके छिद्र २, मुखका छिद्र १, मल और मूत्रके छिद्र २,) तीन खम्भे हैं-(सत्त्वगुण १, रजोगुण२, तमोगुण ३,) पञ्च साक्षी हैं-(पृथ्वी १, जल २, पवन ३, तेज ४, आकाश ५) इस घरमें वास करनेवाला जीवात्मा है वही परमपुरुष है, जो महात्मा जन उनको पहचानते हैं, वे ही पूर्ण पण्डित हैं ॥ ९५ ॥ हे कुरुकुलमुकुटमणि ! दश मनुष्य धर्मको नहीं जानते । हे धृतराष्ट्र ! आपके सम्मुख वर्णन करता हूँ, मत्त १ (मद्य पीनेवाला) ,प्रमत्त २ (विषयासक्त), ३ उन्मत्त (रोगादिकसे), श्रान्त ४ (थका हुआ), क्रुद्ध ५ (क्रोधसे भरा हुआ), बुभुक्षित ६ (भूखा), ॥९६॥ त्वरमाण ७ (उतावला), लुब्ध ८ (लोभी), भीत ९ (डरनेवाला), कामी १० (कामातुर) इन दशपुरुषोंको अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता ॥ ९७ ॥ इस स्थलपर एक प्राचीन इतिहास कहते हैं कि जिसको असुरेन्द्रधन्वाने अपने पुत्रसे कहा ॥ ९८ ॥ जो राजा काम क्रोधका परित्याग और सत्पात्रको धन दान करते हैं, सब लोग विशेष ज्ञानी शास्त्रज्ञ और शीघ्र कर्म करनेवाले उन्हींके मतानुसार कर्म करते हैं ॥९९॥ जो पुरुष मनुष्यको विश्वास उत्पन्न करा सकते हैं, जिनका अपराध जानते हैं उनको दण्ड देते हैं और उनके दोषके न्यूनाधिक्यकी विवेचना कर सकते हैं और विशेष मनुष्यपर क्षमा प्रदर्शन करते हैं वही राजा समस्त लक्ष्मीके आधार हैं ॥१००॥ जो पुरुष अतीव दुर्बल जिनका कभी अपमान नहीं करते हैं और शत्रुका छिद्रान्वेषण करनेको बुद्धिपूर्वक उसकी शुश्रूषा करते हैं। बलवानोंके साथ विरोध करना नहीं चाहते, और जो उचित समयपर बलका प्रकाश करते हैं, वे ही यथार्थ पण्डित हैं॥१०१॥ जो महात्मा पुरुष आपत्कालमें दुःखित न होकर सावधान चित्तसे उद्योग करते हैं और समयपर दुःखको भी सहन कर लेते हैं,वे ही धुरन्धर शत्रुगणको पराजित कर सकते हैं ॥१०२॥ जो मनुष्य विना प्रयोजन घर छोड़कर विदेश वास १, पापी जनोंसे मिलाप २, पर स्त्री से स्पर्श ३, दंम्भ४, चोरी५, चुगुली ६, और मद्यपानका सेवन नहीं करते हैं वे ही सदैव सुखी रहते हैं ॥१०३॥ जो पुरुष क्रोधको त्यागकर अर्थ, धर्म, कामका प्रारम्भ, करता है, सदा श्रेष्ठ सिद्धान्तको कहता है, मित्रसे विवाद नहीं करता है,वह ज्ञानी अपूजित भी कोप नहीं करता ॥१०४॥ जो नर दूसरेमें दोषारोपण नहीं करते, सदा दया ही करते हैं, निर्बल होनेपर भी विरोध नहीं करते, मर्यादाके विपरीत कोई बात नहीं कहते, अत्यन्त विवादमें प्रवृत्त नहीं होते हैं और

विवादको सहन करते हैं वे ही पुरुष प्रशंसा पाने योग्य हैं ॥१०५॥ जो जन कभी उद्धत वेषको धारण नहीं करते, अपने पुरुषार्थके प्रकाशके सम्मुख दूसरेकी निंदा नहीं करते और गर्वित होकर किसीपर कटु वाक्य प्रयोग नहीं करते, उनका सब कोई सम्मान करते हैं ॥ १०६ ॥ जो शान्त वैरको उद्दीपित नहीं करते, गर्वमें आरूढ़ नहीं होते, 'हम इस समय कष्टावस्थामें हैं' ऐसा मानकर अयोग्य कार्य नहीं करते, ऐसे आर्य पुरुषोंमें उस आर्यशीलको श्रेष्ठ कहते हैं ॥ १०७ ॥ जो जन अपने सुखमें परदुःखसे दुःखी नहीं होते और दान करके फिर पश्चात्ताप नहीं करते, वे ही सत्पुरुष आर्यशील कहलाते हैं ॥ १०८॥ जो पुरुष देशाचार, भाषाभेद, और जाति धर्मोंके ऐश्वर्यकी प्राप्ति नहीं चाहता और उत्तम-अधमका विवेक रखनेवाला है, वह नर जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं महापुरुषोंके स्वामित्वको करता है ॥१०९॥ जो बुद्धिमान् पुरुष १ दम्भ (परवञ्चनार्थ धर्मानुष्ठान), मोह २ (आत्मामें अनात्मा बुद्धि), द्वेष ३ (मारणादिक पापकर्म), राजद्वेष ४, खलता ५ (चुगुली), बहुत जनोंसे शत्रुता ६ और मत्त-उन्मत्त, दुर्जनोंसे वाद-विवाद नहीं करते हैं, वे ही पंडित प्रधान पदवीके योग्य हैं ॥११०॥ जो मनुष्य, दान, होम, दैवत, मङ्गल, अनेक प्रकार लोकापवाद शून्य कर्म और प्रायश्चित्त इत्यादि नित्य करते हैं उनका देवता भी आराधन करते हैं ॥१११॥ जो बुद्धिमान समान पुरुषोंके साथ विवाह और प्रीति करते हैं, नीचोंके साथ नहीं करते वे ही श्रेष्ठ नीतिज्ञ और गुणियोंमें प्रधान हैं ॥ ११२ ॥ जो जन आश्रित लोगोंको यथा योग्य भाग देकर तब आप परिमित भोजन करते हैं, अमित कर्म करके यथार्थ सोते हैं, और याचना करनेसे शत्रुको भी द्रव्य दान देते हैं, ऐसे महात्माजनोंको कभी अनर्थ प्राप्त नहीं होता ॥ ११३ ॥ जिनके मनका अच्छा बुरा कर्म दूसरा पुरुष नहीं जान सकता और गुप्त भावसे मन्त्रणा करके कार्यका अनुष्ठान करते हैं, उनका अणुमात्र भी अर्थ नष्ट नहीं हो सकता ॥ ११४ ॥ जो मनुष्य सब प्राणियोंके कल्याण करनेका उद्योग करता है, सत्य और मृदु भाषणसे दूसरेका सम्मान करता है और शुद्ध चित्त है वह अपनी जातिमें अत्यन्त शोभा पाता है, जैसे उत्तम खानेमें निर्मल मणि ॥११५॥ जो मनुष्य अपना दोष आप ही जानकर लज्जित होता है, वह सब लोकका गुरु और सूर्यके समान देदीप्यमान होता है ॥ ११६ ॥ हे महाराज ! शापदग्ध राजा पाण्डुके पांच पुत्र इन्द्रके सदृश पराक्रमी, वनमें जन्म लेकर आपहीके अनुग्रहसे पालन और शिक्षित किये गये, आपही की आज्ञा प्रतिपालन करते हैं ॥ ११७ ॥ हे तात ! नरेंद्र ! आप उनको समुचित भाग देकर पुत्रगणके सहित सुखसे समय व्यतीत कीजिये, तब आपको कुछ भी शङ्का नहीं रहेगी ॥ ११८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते विदुरधृतराष्ट्र-
संवादे विदुरनीतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! जो जन जागृत होकर दुःखकी अग्निसे जलते हैं, उनको क्या करना चाहिये ? हे तात ! धर्मार्थमें तुम कुशल हो ॥१॥ हे विदुर ! प्रज्ञापूर्वक शास्त्रानुसार मुझे ठीक-ठीक उपदेश दीजिये, जिसमें युधिष्ठिरका हितसाधन और कौरवगणका कल्याणकारी जो कर्म मानते हो, वह कहो ? ॥२॥ पापकी शंका रखनेवाला अपने पूर्व अपराधको देखकर मेरा आत्मा व्याकुल होता है; उसे इसलिये मैं तुमसे पूछता हूँ, कि, हे सर्वज्ञ ! उस वृत्तान्तको ठीक-ठीक मुझसे कहो ? जो कुछ युधिष्ठिरका मनोरथ है ॥३॥ विदुर बोले कि, हे राजन् ! जो सब

कर्म असत्य दोषसे दूषित है और कार्य साधनमें असदुपाय है और अवलम्बन करना पड़े, उसका स्मरण करना भी उचित नहीं है ॥ ४ ॥ विना प्रयोजनके कोई कर्म न करना, पहले निश्चय करले पीछे उस कामका अनुष्ठान करना चाहिये, अधीरतासे कोई कर्म न करना ॥५॥ हे भरतवंशी ! मिथ्या कपट दूसरे और नीच उपायोंसे युक्त दुःख रूपवाले कर्म सिद्ध हों; उनमें मनको लगाना नहीं चाहिये ॥ ६ ॥ जो योगसे स्थापित, उपाय करनेसे कर्म सिद्ध न हो उनमें बुद्धिमान् अपने मनमें दुःख न माने कि, यह कर्म मुझसे न हुआ ॥ ७ ॥ जिस कामको जो सहायता चाहिये उसका पहलेसे प्रबन्ध बांधे, शीघ्रतासे हाथ नहीं डालना चाहिये ॥ ८ ॥ कर्मका परिणाम और प्रयोजन, अपने कामका उद्योग और उनकी सामग्री पहले देख लेना, आरम्भ किया हुआ काम इस वस्तुसे सम्पूर्ण होगा, या नहीं ये सब बातें विचार कर करना ॥९॥ जो नरेश अपने दुर्गका प्रबंध, सेनाका बल, स्थान, वृद्धि, क्षय, कोष और दण्डका प्रमाण नहीं जानता, वह राजा किसी प्रकारका लाभ नहीं उठा सकता ॥१०॥ जो राजा इन कहे हुए प्रमाणोंको देखता है या करता है और अर्थ, धर्मके ज्ञानसे युक्त है वह राजा राज्यको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ राज्याधिकार पाकर जो राजा अनम्रता रखता हैं उस राजाकी लक्ष्मी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, अविनय सदा लक्ष्मीका नाश करता है, जिस प्रकारसे वृद्धावस्था रमणियोंके रूपको विनष्ट करती है ॥१२॥ जैसे मत्स्य आगे गलको लगा हुआ मांस देख भक्षण करनेको दौड़ती है, परंतु वह यह नहीं जानती कि इस भक्ष्यमें लोहेका कांटा है और अपने ही कण्ठको छेदकर प्राणोंका कलेवा हो जायगा ॥ १३ ॥ जो-जो पदार्थ भक्षण करनेके योग्य हैं और जिसको भक्षण करके पचाने की शक्ति है, जीर्ण होकर वही हितकारी है और वही बलको और पुरुषार्थको बढ़ाता है ॥ १४ ॥ जो वृक्षके कच्चे फलोंको तोड़कर खाता है, वह उन फलोंके रसको नहीं पाता और उसका बीज भी आगेको नष्ट हो जाता है ॥१५॥ और जो समय पर भूखे हुए पक्के फलको खाता है वह उसके रसको पाता है और उसके बीजसे भी पुनर्वार फलको प्राप्त करता हैं ॥१६॥ हे महाराज ! जैसे भ्रमर पुष्पकी रक्षा करके उस रसको ग्रहण करता है, उसी प्रकार विना हिंसा किये मनुष्य, मनुष्यगणसे अर्थग्रहण करे ॥१७॥ जैसे माली पुष्पवाटिकामें वृक्षसे फूल-फल लेता हैं और मूलको स्थिर रखता है; जैसे भ्रमर पुष्पकी सुगंधमात्र लेकर पुष्पको यथावत् रखता है ॥ १८ ॥ इस कामको करनेसे क्या शुभ-अशुभ होगा और इसको न करनेसे क्या होगा ऐसा विचार कर मनुष्यको कार्यका आरम्भ करना चाहिये, विना विचारे नहीं करे॥१९॥ बलवानोंके साथमें वैर करना योग्य नहीं है, क्योंकि उनके साथ बल दिखाना निरर्थक है ॥२०॥ जिसकी प्रसन्नता भी निष्फल है और क्रोध भी निष्फल है। उस स्वामीको नहीं चाहते, जैसे स्त्रियां नपुंसक पुरुषको नहीं चाहतीं ॥२१॥ ज्ञानी पुरुष उन कर्मोंको करते हैं, कि जिनका उपाय छोटा और फल बड़ा है, शीघ्र आरंभ करते हैं ऐसे कार्योंमें विघ्न नहीं करते ॥२२॥ जो जन सरल स्वभाव होकर प्रीति भरे नेत्रोंसे सबको देखते हैं, वे मौनभाव अवलम्बन कर लें तो भी प्रजागण उनपर प्रीति रखते हैं॥२३॥ जैसे सुपुष्पित हुआ भी कोई वृक्ष फलता नहीं वैसे ही कोई जन देखने बोलनेमें रुचिर होकर भी फल नहीं देता है। और कोई भी वृक्ष जैसे फलता है, पर उसके ऊपर चढ़ना मुश्किल होता है, ऐसे ही कोई जन सेवाका फल देता हैं पर उसके पास जाना मुश्किल है और कोई वृक्ष जैसे पक्व फलवाला नहीं होता हुआ भी पके फलवाला सा

प्रतीत होता है, वैसे ही कोई जन पूर्णतया फल नहीं देता हुआ भी फल देनेवाला सा दीखता ही है, किन्तु कभी फलास्वाद नहीं कराता है ॥२४॥ जो राजा नेत्र, मन, वचन, दान, इन चार प्रकारसे भृत्य वर्गको प्रसन्न करते हैं, वे उसपर प्रसन्न होते हैं ॥२५॥ जिस राजासे प्राणी ऐसे डरते हैं, जैसे अहेरियेसे मृग, वह सागरान्त पृथ्वीको पाकर भी त्रास पाता है॥२६॥ जिसने अपने कर्मसे पूर्वजोंके राज्यको पाया वह अनीतिमें स्थित होनेवाला राजा उसको भ्रंशित करता है, जैसे पवन बादलको तितर-बितर कर देता है ॥२७॥ आदिसे सत्पुरुषोंके आचरित धर्मको करनेवाले राजाकी पृथ्वी धनसे पूर्ण और ऐश्वर्य बढ़ाने वाली वृद्धि पाती है ॥२८॥ धर्मके त्यागनेवाले और धर्मके अनुष्ठान न करनेवाले राजाकी पृथ्वी संकोचको पाती है, जैसे अग्निमें पड़कर चमड़ा सूखकर संकोचको प्राप्त होता है॥२९॥जो प्रयत्न शत्रुके राज्य को लेनेका किया जाता है, वही उपाय अपने राज्य और प्रजा पालनेमें करना चाहिये॥३०॥ धर्मसे जिस राजाको राज्य प्राप्त होता है और धर्मसे ही पालन करता है तो उसको धर्मकी मूल लक्ष्मी प्राप्त होती हैं, वह लक्ष्मी उसको कभी नहीं छोड़ती, वरन् धीरे-धीरे बढ़ती है ॥३१॥ कोई उन्मत्त बकवाद कर रहा हो, या जो ग्रहवातादिसे अचेत प्रलाप करनेवाला बालक अथवा बहुभाषी हों, उसमें से सारांशको ले लेना चाहिये, जैसे पत्थरमेंसे सुवर्णको ले लेते हैं ॥ ३२॥ माता, पिता, गुरु, पण्डित, इत्यादिके भाषणमेंसे चतुरोंको उचित है, कि उसमेंसे उत्तम-उत्तम बातोंको छांट-छांट सञ्चय कर लें; जैसे रत्नपारखी अच्छे-अच्छे रत्नोंका संग्रह करता है ॥३३॥ पशु सूंघनेसे जान सकता है, ब्राह्मणको वेदोंसे दीखता है, राजाको सेवकोंके नेत्रोंसे दीखता है और प्रजागणको अपने-अपने नेत्रोंसे दीखता है ॥ ३४ ॥ हे राजन्! जो गौ सुखसे दूध नहीं देती वह बहुत क्लेश पाती है और जिसके दुहनेमें कुछ उपाय करना नहीं पड़ता वह किसी प्रकारका कष्ट नहीं पाती ॥ ३५ ॥ जो वस्तु विना ही तपाये चाहे जैसी झुका लो, तो फिर उस काष्ठको कोई अग्निमें डालकर नहीं तपाता वह आप ही झुक जाता है, इस प्रकार जो मनुष्य विना ही दण्ड दिये कार्य पूरा कर दे उसको दण्ड देनेकी क्या आवश्यकता है? इसलिये आपको पाण्डवोंसे झुकना चाहिये, क्योंकि वे महाबलवान् हैं ॥ ३६ ॥ पण्डित लोग इसी उपमासे बलवान्के समीप नम्र होते हैं जो बलवान्से नम्र हैं, वे बलाधिष्ठाता इन्द्रको प्रणाम करते हैं ॥३७॥ पशुओंको मेदका बल, राजाको मन्त्रीका बल, ब्राह्मणको वेदका बल और स्त्रीको पतिका बल है ॥ ३८ ॥ सत्यसे धर्म रहता है, अभ्याससे विद्या रहती है, उबटन करनेसे रूप रहता है और धर्मकी रक्षा करनेसे कुलका आचरण रहता है ॥ ३९ ॥ धान्यका तोलनेसे रक्षण होता है, घोड़का फिरानेसे रक्षण होता है, गायोंका निरन्तर देखनेसे रक्षण होता है और स्त्रीका रक्षण गाढे वस्त्र पहननेसे होता है ॥ ४० ॥ जिस मनुष्यका बड़े कुलमें जन्म है परन्तु आचरणहीन है, तो उसको बड़ा नहीं समझना चाहिये ॥४१॥ जो पुरुष दूसरेके धन, रूप, पुरुषार्थ, कुल, सुख, सम्पत्ति और सत्कारको देखकर ईर्ष्या करते हैं उनको अनन्तबाधा लगी रहती है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य विना काम करनेके कामसे भी डरता है, करनेका काम करनेसे भी डरता है और पहले लोगोंकी सम्मतिके समाचार सुनकर भी डरता है, ऐसे पुरुषोंको जो काम करना हो तो सावधानीसे करना चाहिये ॥ ४३ ॥ अयोग्य कर्मका अनुष्ठान, योग्य कर्मका त्याग, मन्त्रमें भेद इन तीनोंसे इष्टसिद्धिके पूर्व भययुक्त हो और जिस लोभादिसे उन्मत्त हो उसको पान नहीं करे ॥ ४४ ॥ विद्यामद, धनमद, तीसरा कुलके

सहायका मद, ये तीनों मद मूर्खोंको बहुत चढ़ते हैं, इनका त्याग करना ही सत्पुरुषोंका बाह्येन्द्रिय दम है, परन्तु यही सज्जन पुरुषोंको मिले तो उनमें और नम्रतापन आ जाता है ॥ ४५ ॥ किसी मनुष्यने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये दुर्जनका बहुत सम्मान किया, तो वह इतनी बातमें अपने आपको सज्जन समझने लगा, कि हम सज्जन हैं, परन्तु दूसरे लोग उसको दुर्जन ही समझते हैं, यह बात उनके ध्यानमें नहीं आती ॥४६॥ आत्मज्ञानीकी साधु पुरुष विना गति नहीं होती और साधुकी भी साधु विना गति नहीं होती, असाधुको भी साधु ही गति देते हैं, परन्तु साधुको असाधुकी आवश्यकता नहीं होती ॥४७॥ अच्छे वस्त्र शरीरमें पहनने वालेने सभा जीती; जिसके घर गायका दूध और मीठे भोजन हैं, उसने स्वादिष्ट भोज्यकी आशा जीती, वाहनपर बैठकर चलनेवालेने मार्ग जीता और जिसका स्वभाव अच्छा है उसने सर्वस्वको जीता; इसलिये पुरुषोंको अपना स्वभाव अच्छा रखना चाहिये ॥ ४८ ॥ पुरुषमें केवल एक शील ही प्रधान है, इस लोकमें जिसका शील नष्ट हो गया उसका प्रयोजन, धन, बन्धु और जीवन सब ही नष्ट हुआ समझो ॥ ४९ ॥ हे भरतर्षभ ! धनवालोंका श्रेष्ठ भोजन मांस है और मध्यम भोजन गोरस है, और दरिद्रियोंके भोजनमें तेल प्रधान है ॥ ५० ॥ और दरिद्री सदा मीठा अन्न भोजन करते हैं, क्योंकि क्षुधा अनेक प्रकारके स्वाद उत्पन्न करती है, वह धनवानोंको अति दुर्लभ है ॥ ५१ ॥ हे भूपाल ! इस संसारमें बहुधा धनवानोंकी भोजनशक्ति विद्यमान नहीं है दरिद्री लोग लक्कड़ भी खा जायँ तो पचा सकते हैं ॥ ५२ ॥ अधम पुरुषोंको जीविकाका भय है, मध्यमजनोंको मृत्युका भय है और उत्तम मनुष्योंको अपमानका अत्यन्त भय है ॥५३॥ ऐश्वर्यका मद मदपानसे भी अधिक निन्दनीय है, क्योंकि विना पतन हुए यह मद दूर नहीं हो सकता ॥५४॥ यह लोक उन विषयोंमें वर्तमान वशमें न होनेवाली इन्द्रियोंसे तपाया जाता है, ऐसे सूर्यादिक ग्रहोंसे आक्रान्त होकर नक्षत्र तपाया जाता है ॥५५॥ जिस मनुष्यके शरीरसे उत्पन्न हुए पांच विषय हैं, शब्द विषय--(मधुरवचन बोलनेसे मनको हरता है वह वस्तु १), स्पर्श(अङ्गस्पर्श होनेसे आनन्द देता है, वह वस्तु २), रूप (सुन्दर शोभा देखकर भूल जाता है वह वस्तु ३), रस(जिह्वाको स्वादिष्ट लगे, वह वस्तु ४), गन्ध(सुगन्ध देकर चित्तको प्रसन्न करे, वह वस्तु ५) यह पांच विषय हैं, जो इनके वशीभूत हो गया उसकी आपत्तियां दिन-दिन बढ़ती जाती हैं, जैसे शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला ॥ ५६ ॥ जो पुरुष मनको तो न जीते, और इन्द्रियोंके जीतनेका मनोरथ करता है, उसको इन्द्रियां ही काम, क्रोध, शत्रुओंके वशमें डाल देती हैं ॥ ५७ ॥ इसलिए मनुष्यको उचित है कि प्रथम मनको ही शत्रु समझकर जीते तदनन्तर मन्त्री और शत्रुको जीते तब उस प्राणीके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ जो पुरुष इन्द्रियोंको मन समेत वशमें करनेवाला है, अपराधियोंको दण्ड देनेवाला है और विचार-विचार कर सब कर्म करता है, उस धीर पुरुषको लक्ष्मी आप ही आकर सेवन करती है ॥ ५९ ॥ हे महाराज ! पुरुषका शरीर रथ है, इसका सारथी मन है, इन्द्रियगण घोड़े हैं, वह सावधान और चतुर पुरुष इन अश्वरूप इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह अपनी इच्छानुसार ठिकानेपर पहुँचता है, जैसे कोई प्रत्यक्ष रथ पर बैठकर आनन्द भोगता है, ऐसे ही इसकी आत्मा भी आनन्द भोगती है ॥ ६० ॥ यह निग्रहरहित इन्द्रियाँ गिरानेको भी समर्थ हैं, जैसे अशिक्षित और बेवश घोड़े कुमार्गमें सारथीको खैंच ले जाते हैं और उंचे-नीचे स्थानमें रथ उलट जाता है ॥६१॥ जो पुरुष अजितेन्द्रियोंके द्वारा अर्थके हेतु अनर्थको देखते हैं और अन्या-

यसे अर्थको देखते हैं बड़े भारी दुःखको सुख मानते हैं और सुखको दुःख जानते हैं, यह अज्ञानियोंकी रीति है ॥ ६२ ॥ जो जन धर्मार्थको छोड़कर इंद्रियोंके वशमें रहकर उनका अनुगामी हो रहता है, वह शीघ्र वैभव, प्राण, धन स्त्रीसे रहित होता है ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य अर्थोंका स्वामी बने और इंद्रियोंका स्वामी न बने, वह इंद्रियोंके अस्वामीपनसे ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है । वशीभूत मन, बुद्धि, इंद्रियोंके शुद्ध बुद्धिसे साक्षात् चैतन्य रूप जिस आत्माको चाहे, क्योंकि आत्माका मित्र आत्मा ही है और आत्माका शत्रुभी आत्मा है॥६४॥ आत्माके द्वारा आत्मा (बुद्धि) को जीत लिया, उस जीवात्माका मित्र जीवात्मा (बुद्धि) है, क्योंकि निश्चय वही मित्र और वही शत्रु है ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! जैसे सूक्ष्म छिद्रवाले जालके द्वारा अबद्धोरु मछलियां नहीं पकड़ी जातीं, इसी प्रकार वह काम, क्रोध, ज्ञानको नष्ट करते हैं ॥ ६६ ॥ और जो मनुष्य इस संसारमें धर्मार्थको विचार कर जब साधनोंको करता है, वही साधन निरंतर सुख भोगता है ॥ ६७ ॥ और जो मनुष्य पांच अन्तर शत्रुओंको, जो कि मनरूप है, उनको विना जीते, बाहरके शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करता है; शत्रु लोग उसका तिरस्कार करते हैं और उसको काम, क्रोधादिक शत्रु भ्रष्ट कर देते हैं ॥ ६८ ॥ महात्मा राजाओंके (रावणादि) इंद्रियोंके अनीशत्वसे और ऐश्वर्य विलासोंके कारण निजकर्म (सीताहरणादि) से ऐश्वर्यसहित प्राण गँवाया ॥ ६९ ॥ पापियोंका त्याग न करनेसे और उनके साथ मित्रता करनेसे, पुण्यवान् पुरुषोंको भी पापियोंकी संगतिसे उनका आधा पाप लगता है, जैसे सूखा काष्ठ गीलेसे मिलकर उसको भी जला देता है । इसलिये पापी पुरुषोंकी संगति कभी भी न करे ॥ ७० ॥ जो मनुष्य पांच-पांच प्रयोजन रखनेवाली कुमार्गगामी, पञ्चशत्रु (इंद्रियों) को वशमें नहीं करता है, उसको आपत्ति ग्रस लेती है ॥ ७१ ॥ दुष्ट पुरुषके समीप यह आठ गुण नहीं रहते—दूसरेको सुखी देखकर सन्तोष करना १, सरलपन २, शौच ३, सन्तोष ४, प्रिय वचन कहना ५, इंद्रियोंका दमन ६, सत्यभाषण ७, शांति ८ ॥ ७२ ॥ हे भरतवंशी ! ब्रह्मज्ञान १, शांति २, द्वंद्वसहन ३, शीलता ४, नित्यधर्मता ५, असम्बन्ध ६, प्रलापसे रक्षितवाणी ७ और दान ८ । ये आठ गुण नीचोंमें नहीं होते ॥ ७३ ॥ जो दुष्ट मनुष्य हैं वे कटु वाक्य और निन्दा करके महात्मा पुरुषोंको पीड़ा देते हैं, वे ही आपको ग्रहण करते हैं और क्षमावान् पापसे छूटते हैं ॥७४॥ हिंसा असाधुओंका बल है, दण्ड-विधान राजाओंका बल है, शुश्रूषा स्त्रियोंका बल है, क्षमा और धर्म गुणवानोंका बल है ॥ ७५ ॥ हे राजन् ! वाक्संयम (वचन न कहना) अत्यन्त कठिन है जो कि, अर्थसे युक्त और विचित्र हो ऐसे वचन बहुत कम कहे जाते हैं, कि वाक्य सारांश बहुत बोलना सबके ही लिये अच्छा नहीं होता ॥ ७६ ॥ बोलनेमें अच्छे शब्द आनेसे अत्यन्त हितकारी होते हैं और वही दुष्ट वचन अनर्थोंको करते हैं ॥ ७७ ॥ बाणोंसे छेदन किया हुआ शरीर और कुल्हाड़ेसे काटा हुआ वन दोबारा उत्पन्न हो जाता है, परन्तु दुर्वाक्य—रूप सायकका जो घाव लगता है, वह किसी प्रकारसे नहीं भर सकता ॥७८॥ बाणादिक शस्त्र शरीरसे बाहर निकल सकता है, परन्तु वचनरूप भाला हृदयमेंसे किसी प्रकार निकल नहीं सकता ॥ ७९ ॥ वाक्यरूप वाण हृदयमें लगनेसे मनुष्यको रातदिन चैन नहीं पड़ता, इस लिये जो सज्जन पुरुष हैं, वे वचनरूप वाणसे किसीका मर्मस्थल छेदन नहीं करते ॥ ८० ॥ देवता लोग जिस पुरुषका पराभव करते हैं, उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है, वह

नीच कर्मोंको देखता है ॥ ८१ ॥ और वह पुरुष दुष्कर्मंहीका अनुसरण करता है, मृत्यु निकट और बुद्धि कलुषित होनेसे दुर्नीति भी नीतिवत् प्रतीत होती है ॥८२॥ हे महाराज ! पाण्डव गणसे विरोध करके आपके पुत्रोंकी कैसी कलुषित बुद्धि हो गयी है और ऐसी अनीति चित्तमें बसी है कि, वह किसी प्रकार हृदयसे अलग ही नहीं होती ॥८३॥ हे धृतराष्ट्र ! आप अपने पुत्रोंके समान युधिष्ठिरको समझो, क्योंकि जो अपने लक्षणोंसे युक्त, त्रिलोकीका राजा होकर वह युधिष्ठिर आपका शिष्य बनता है ॥ ८४ ॥ वह सर्वधर्मार्थ तत्त्वका जाननेवाला पराक्रम और बुद्धिसे युक्त, तुम्हारे सब पुत्रोंको उल्लंघन कर राज्यांश पाने योग्य है ॥८५॥ हे महाराज! जो यह युधिष्ठिर श्रेष्ठ धर्मध्वजाधारी है, वह दयालुता, अक्रूरता और आपकेसे अत्यन्त क्लेशोंको सहता है ॥ ८६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते तृतीयस्कन्धे शालग्रामवैश्यकृते विदुरनीतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! तुमने जो कहा वह सब आश्चर्यमय बोध होता है, अतः और भी धर्मार्थयुक्त वचन कहो । तुम्हारे विचित्र वचनोंके सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्राणियोंमें सरलरीतिसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार, यह दोनों तुल्य हों अथवा सरलता विशेष हो; प्रत्येक प्राणीमात्रसे प्रीति रखनी तीर्थ स्नानसे भी अधिक पुण्य है ॥ २ ॥ हे प्रभो ! आप पांडव गणसे सरल व्यवहार करके इस लोकमें सरलकीर्तिको पाकर परलोकमें परमानन्द पाओगे ॥ ३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! पृथ्वीपर जब तक मनुष्यकी कीर्तिपताका फहराती रहती है, तबतक वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ४ ॥ अब हम एक पुरातन इतिहास कहते हैं, जिसमें केशिनी नामक कन्या और विरोचनका संवाद सुधन्वाके साथ है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अतीवोत्तम रूप पाकर केशिनी कन्या श्रेष्ठपतिकी कामनाके लिये स्वयंवरमें उपस्थित हुई ॥ ६॥ तब विरोचन दैत्य आया और स्त्रीकी इच्छा करनेवाले दैत्येन्द्रको देखकर केशिनीने कहा ॥ ७ ॥ केशिनी बोली कि, हे विरोचन ! प्ह्लादके पुत्र ! मैं तुमसे यह पूछती हूँ कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं वा दैत्य ? फिर किस लिये सुधन्वा पर्यङ्कारोहण नहीं कर सकता ? इसका क्या कारण है ? जो तुम मान्यवर बनकर राज्यासनपर बैठते हो, ब्राह्मण क्यों नहीं बैठते ? और जो दैत्य ही बड़े हैं तो सब संसार ब्राह्मणोंकी पूजा क्यों करता है ? ॥ ८ ॥ विरोचन बोला कि, हे चन्द्रानने ! हम प्रजापतिके पुत्र हैं और सब सृष्टिमें श्रेष्ठ और बड़े साधु हैं । निश्चय कर लो कि, यह लोक सब तुम्हारे हैं, हमारे सम्मुख देव और ब्राह्मण क्या वस्तु हैं ? ॥ ९ ॥ केशिनी बोली कि, हे विरोचन ! तुम दोनों इस स्थानपर इस समय उपस्थित हो, मैं यहां ही तुम्हारी परीक्षा करती हूं । सुधन्वा प्रातःकाल यहां आयेगा, उस समय तुम भी यहां आना, इकट्ठे तुम दोनोंको यहां देखूँ ॥ १० ॥ विरोचनने कहा कि, हे कल्याणी ! ऐसा ही होगा जैसे तुम कहती हो, परन्तु प्रातःकाल सुधन्वाको यहां पाऊँ ॥ ११ ॥ विदुरजी बोले कि, जैसे-तैसे रात्रि व्यतीत कर सूर्यनारायणके उदय होने पर सुधन्वा ब्राह्मण अंगिराका पुत्र और विरोचन केशिनीके सम्मुख आकर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! केशिनी उस सावधान ब्राह्मणको देखकर उठी और उसे आसन, पाद्यार्घ दिया और यथाशक्ति पूजन किया और सुधन्वाको सुवर्णमय आसनपर न बैठाया । उस अवसरपर विरोचनको अपनी श्रेष्ठता प्रसिद्ध करनी थी,

इसलिये सुधन्वासे बोला, कि ब्राह्मण ! यह दर्भका आसन छोड़कर मेरे सुवर्णमय आसनपर बैठ ॥१३॥ यह सुन उसका अभिप्राय समझकर सुधन्वा बोला कि, हे प्रह्लादके पुत्र विरोचन ! जो मैं तेरे सुनहरी श्रेष्ठ आसनको स्पर्श करूं तो तेरे सङ्ग एकता पानेवाला मैं चला जाऊँ, परंतु तेरे संग एक आसनपर नहीं बैठूँगा ॥१४॥ यह सुन विरोचन क्रोधातुर होकर बोला कि, अरे सुधन्वा ! तू सत्य कहता है, तेरी हमारी समता नहीं तू काष्ठपीठ कूर्च वा कुशासनके योग्य है; तू मेरे संग एक आसन पर बैठने योग्य नहीं है ॥१५॥ सुधन्वा बोला कि, पिता पुत्र दोनों साथ बैठो, दो क्षत्रिय और दो ब्राह्मण भी साथ बैठो, दो वृद्ध वा दो वैश्य, अथवा दो शूद्र एक आसनपर बैठो, परंतु विपरीत वर्णके दो मनुष्य एक आसनपर नहीं बैठ सकते ॥१६॥ तेरा पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर मुझको सुवर्णके आसन पर बिठाकर मेरे सम्मुख खड़ा होकर मेरी पूजा करता है, यह तू देखता है या नहीं ? ॥ १७ ॥ विरोचन बोला कि, हे सुधन्वा ! असुरोंके पास जो सुवर्ण, गौ, घोड़े हैं, वह सब धन हमारा है, मैं प्रण करके कहता हूँ, परंतु प्रश्न उससे पूछे जो जानता हो ॥ १८ ॥ सुधन्वा बोला कि, हे विरोचन ! सुवर्ण और घोड़ा, गाय, तेरा धन हो परन्तु हम प्राणोंका प्रण करके उनसे बूझे जो इस बातको जानता हो ॥ १९ ॥ विरोचन बोला कि, हम तुम दोनों प्राणोंका प्रण करके और किसको ढूँढें और किसके पास चलें, परन्तु मैं किसी समय भी देवता और मनुष्योंकी उपासना नहीं करूंगा ॥ २० ॥ सुधन्वा बोला कि, प्राणोंका प्रण करके हम और किसको ढूँढ़ते फिरें, तेरे पिताके ही पास चलते हैं, क्योंकि वे सत्यशील हैं, तेरे लिये कभी झूंठ नहीं बोलेंगे ॥ २१ ॥ विदुरजी बोले कि, इस प्रकार प्राणोंका प्रण करके क्रोधसहित दोनों जन प्रह्लादजीके पास गये ॥ २२ ॥ प्रह्लाद बोले कि यह दोनों वह दीखते हैं, जिन्होंने वैरभावसे सदाचरण नहीं किया और सर्पके सदृश क्रोधमें भरे एक मार्गसे यहां आये ॥२३॥ इस प्रकार क्यों दोनों साथ-साथ फिरते हो ? पहले साथ-साथ नहीं चलते थे। हे विरोचन ! मैं यह बात पूछता हूँ, क्या सुधन्वाके साथ तेरी मित्रता है ? ॥ २४ ॥ विरोचन बोला कि, हे पिता ! सुधन्वाके साथ मेरी मित्रता नहीं है, हम दोनों प्राणोंका प्रण करके यह सिद्धान्त आपसे पूछनेके लिये आये हैं, तुम सत्यवादी और न्यायकर्त्ता हो, इसमें किसीका पक्षपात न करना, सत्य-सत्य जो हो वही कह देना। प्रश्नका झूंठा उत्तर मत देना, यह कह उसने सब वृत्तान्त आद्योपान्त सुना दिया ॥ २५ ॥ प्रह्लाद बोले कि, हे विरोचन ! सुधन्वाके लिये जल, मधुपर्क, पुष्टा और श्वेतवर्णवाली गौ को भी लाओ; हे ब्राह्मण ! तुम पूजने योग्य हो ॥२६॥ सुधन्वा बोला कि, हे, प्रह्लादजी ! जल और मधुपर्क मेरे प्रश्नके निर्णयमें वर्जित हैं, तुम मेरे प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर कहो ॥ २७ ॥ ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, या दैत्य श्रेष्ठ हैं, आप इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर दीजिये ? ॥ २८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! हमारे एक ही पुत्र है और तुम यहां साक्षात् स्थित हो; हम किस प्रकारसे इस विवादका सिद्धान्त कर सकते हैं ? सुधन्वा बोला कि, तुम गौको अथवा और जो दूसरा प्रिय धन हो उसको सुपुत्रके लिये दे दो परंतु हे बुद्धिमान् ! तुमको दोनों विवादियोंका प्रश्नोत्तर निरपेक्ष होकर सत्य-सत्य कह देना चाहिये ॥२९॥ प्रह्लाद बोले कि, हे सुधन्वा ! मैं यह पूछता हूँ कि, जो सत्य और असत्यको जान ले और फिर उस सत्यको वा झूठको ठीक न कहे अथवा प्रश्नोंका विपरीत निर्णय करे; वह प्राणी किस-किस कष्टको भोगता है ? ॥ ३० ॥ सुधन्वा बोला कि, सौत रखनेवाली स्त्रीको

जो दुःख होता है, व झूंठी साक्षी भरता है, अथवा जुआ खेलनेमें जो हारता है, उसको जो दुःख होता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य नगरमें घिर जाता है, क्षुधातुर होता है और शत्रुओंको अस्त्र लिये देखता है, उस समय जो दुःख उसको होता है ॥३२॥ जो पुरुष छोटे पशुके लिये झूंठी साक्षी भरता है, वह पांच पूर्वजोंको स्वर्गसे गिराता है। और जो गौके लिये झूठी शपथ खाता है, वह दश अपने पित्रोंको स्वर्गसे गिराता है। जो घोड़ेके लिये झूठी साक्षी भरता है वह सौ पूर्वजोंको और जो मनुष्योंके लिये झूठ बोलता है वह सहस्र पूर्वजोंको नरकमें डालता है ॥ ३३ ॥ और सुवर्णके लिये जो मनुष्य झूठ बोलता है वह पिछले-अगले सब पुरुषोंको नरकमें ले जाता है और पृथ्वीके लिये असत्य बोलनेसे कुल समेत सर्वस्वका नाश कराता है, इसलिये भूमि (भूमिरूपी केशिनी) के लिये असत्य बोलनेके समान जगत्में दूसरा पाप नहीं ॥ ३४ ॥ प्रह्लादजी बोले कि, हे विरोचन! निश्चय अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं और सुधन्वा तुझसे उत्तम है, इसकी माता तेरी मातासे पवित्र है, इसलिये उसने तुझको जीता ॥ ३५ ॥ हे विरोचन! यह सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी है। हे सुधन्वा ! मैं फिर तुझको दिये हुए पुत्र विरोचनको तुमसे ही मांगता हूँ ॥ ३६ ॥ सुधन्वा बोला कि, हे प्रह्लादजी ! जिस कारण तुमने धर्मको अङ्गीकार किया और अपनी इच्छासे झूठ नहीं बोला, इसलिये तुम्हारे दुर्लभ पुत्रको मैं तुमको देता हूं ॥ ३७ ॥ मेरा दिया हुआ तुम्हारा यह पुत्र विरोचन सदा सुखी रहे और केशिनी सुमुखी इसकी स्त्री हो, परन्तु मेरे सम्मुख यह उस मनोरमाके चरण धोवे ॥ ३८ ॥ विदुरजी बोले कि, हे राजेन्द्र ! उनके समान भूमिके लिये झूठ कहने योग्य तुम नहीं हो, इसलिये वसुधाके निमित्त असत्य बोलकर पुत्र प्रधान सहित विनाश मत करो ॥ ३९ ॥ दैव हाथमें दण्ड लेकर पशुपाल बन मनुष्योंकी रक्षा नहीं करता परन्तु दैव जिसकी रक्षा करना चाहता है, उसको अपनी बुद्धिसे विभाग देता है, वही दैवकी कृपा जाननी चाहिये ॥ ४० ॥ पुरुष जिस प्रकारसे कल्याणमें मन लगाता है, उस प्रकारसे इसकी सब मनःकामना सिद्ध होती हैं, इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं ॥ ४१ ॥ छलसे वर्तमान मायावीको वेद पापसे नहीं तारते, जिसका ब्राह्मण कुलमें जन्म और जिसके मुखमें सर्वकाल वेद हो, पर यदि अन्तःकरणमें कपट हो तो ऐसे पुरुषकी रक्षा दैव भी नहीं करता, जैसे जातपक्ष पक्षी अण्डको त्याग देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्त समयपर ऐसे प्राणीका त्याग कर देते हैं, फिर उस पुरुषकी रक्षा दैव भी नहीं करता ॥ ४२ ॥ मदिरा पीनेवालेका साथ १, विनाकारण क्रोध २, बहुत जनोंसे वैर ३, स्त्रीपुरुषका वियोग ४, जातिमें भेद डालना ५, राजासे द्वेष ६, स्त्री पुरुषमें वैर ७, खोटे मार्गमें चलना ८, ये त्यागने योग्य हैं ॥ ४३ ॥ हस्तरेखाका परीक्षक (सामुद्रिक शास्त्रको जाननेवाला, पंडित) १, तोलमें कम तोलनेवाला वा झूठ बोलनेवाला व्यापारी २, जुआरी अथवा पाशा डालनेवाला, शकुनादिक कहकर दूसरेको ठगनेवाला ३, धूर्त वैद्य ४, इन चार जनोंको केवल धनका ही लोभ होता है, इसलिये ये साक्षीके योग्य नहीं हैं। ऐसे ही पांचवें शत्रुकी, छठे मित्रकी साक्षी नहीं लेना, क्योंकि शत्रु और मित्रका विश्वास नहीं ५, मित्रका इसलिये निषेध किया है कि वह जो सत्य भी कहे, तो लोग उसे झूंठ समझेंगे ६, कुत्सित शीलवान् न जानिये कि मुखसे क्या निकाल बैठे ७, इन सातोंको साक्षीके लिये कभी न लेना ॥ ४४ ॥ जगत्में अपनी उत्कृष्टताके लिये अग्निहोत्र १, मौन-साधन २, विद्याध्ययन ३, यज्ञ ४, ये चार सत्कर्म

सुख देनेवाले हैं, परन्तु वे अविधिसे किये तो महाभयकारी हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ आगका लगानेवाला १, विषका देनेवाला २, अपनी स्त्रीके जारकर्मसे उपार्जन किये हुए धनसे उदर पूर्ति करनेवाला ३, सोमका बेचनेवाला ४, बाणादिक शस्त्रोंका बनानेवाला ५, निन्दा करनेवाला ६, मित्रद्रोही ७, परस्त्रीगामी ८, ॥ ४६ ॥ गर्भनाशक ९, गुरुपत्नीसे प्रसङ्ग करनेवाला १०, मद्य पीनेवाला ब्राह्मण ११, विश्वासघाती १२, दुखीको दुःख देनेवाला १३, परलोकको झूठा बतानेवाला १४, वेदकी निन्दा करनेवाला १५, ॥ ४७ ॥ राज्यसत्ताके बलसे लोहेकी सलाका मारकर थैलेमें से अन्न निकालनेवाला १६, नियत समयपर यज्ञोपवीत न लेनेवाला १७, निर्बल जीवोंका हिंसक, शरणागतको मारनेवाला १८, ये अठारह प्राणी ब्रह्महत्या करनेवालेके समान हैं ॥ ४८ ॥ तृणकी आगसे सुवर्ण, सच्चरित्रसे भद्र, आचरणसे साधु, भय उपस्थित होनेपर शूरजन, अर्थसंकट (दुर्भिक्षकालादिकमें) धीर और आपत्कालमें शत्रु और मित्र देखा जाता है ॥ ४९ ॥ जरा सौंदर्यका, बलवती आशा धैर्यका, मृत्यु प्राणीका, क्रोध सम्पत्तिका, द्वेष धर्मचर्याका, नीचसेवा लक्ष्मीका, काम लज्जाका और अभिमान, ज्ञान और ध्यानादिक सभीका नाश करता है ॥ ५० ॥ मांगलिक, कर्माचरणोंसे लक्ष्मी उत्पन्न होती है और बुद्धिकी तीक्ष्णतासे बढ़ती है और चतुरतासे दृढ़मूल होती है और इन्द्रियोंके संयमसे स्थिर होती है ॥ ५१ ॥ आठ गुण पुरुषको सदा प्रकाशमान करते हैं- बुद्धिमानी १, कुलीनता २, इन्द्रियोंका जीतना ३, शास्त्रका अभ्यास ४, पराक्रम ५, यथार्थ परिमित भाषण ६, यथाशक्तिदान ७ और परोपकार करना ८ ॥ ५२ ॥ हे तात ! एक गुण हठ करके इन महानुभावगुणोंका आश्रय करता है, अर्थात् जिस पुरुषका राजाने सत्कार किया उसमें बलात्कारसे ये सब गुण प्रकाश करने लगते हैं, (इससे हे राजन् ! ये गुण कर्णादिकमें दृष्टचर हैं, किंतु स्वाभाविक नहीं हैं) ॥ ५३ ॥ हे महाराज ! नरलोकमें ये आठ गुण स्वर्गमें ले जानेवाले हैं, यज्ञ १, दान, २, अध्ययन ३, तप४, ये चार सत्पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं ॥५४॥ और इंद्रिय दमन ५, सत्य ६, शम ७, और दया ८, ये चार सत्पुरुषोंसे सेवनीय हैं ॥५५॥ यह धर्मका मार्ग आठ प्रकारका कहा है–यज्ञ १, दान २, वेदपाठ ३, तप ४, क्षमा ५, सत्य ६, दया ७ और निर्लोभ ८ ॥५६॥ इनमें चार पहले धर्मोंका पाखण्डार्थ भी सेवन करते हैं और पिछले चार धर्म नीचोंमें नहीं होते ॥ ५७ ॥ जिस सभामें वृद्धका समागम नहीं, वह सभा ही नहीं है, जो वृद्ध धर्मका उपदेश न करे वह वृद्ध ही नहीं है, जिस धर्ममें सत्य नहीं वह धर्म ही नहीं है, जिस सत्यमें कपट है वह सत्य ही नहीं है ॥ ५८ ॥ सत्यरूप १, नम्रता २, शास्त्रविद्या ३, इष्टदेवोपासना ४, कुलीनता ५, शील स्वभाव ६, बल ७, धन ८, शूरता ९, विचित्रभाषण १०, ये दश गुण स्वर्गवासके देनेवाले हैं ॥५९॥ पाप करनेवाला दुष्कीर्तिका भागी होकर दुःख ही भोगता है, पुण्य करनेवाला पुण्यकीर्तिसे अनन्त सुखको ही भोगता है ॥ ६० ॥ इसलिये प्रशंसनीय व्रत धारण करनेवाला पाप न करे, क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ नष्टबुद्धि पुरुष सदैव पापाचरण करता है और अनुष्ठित किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढ़ाता है ॥ ६२ ॥ बुद्धिके बढ़नेसे पुरुष सदा पुण्याचरण करता है और पुण्यके संयोगसे पुण्यकीर्ति होकर पवित्र स्थानको पाता है, इसलिये निश्चय बुद्धिसे पुण्य ही करता रहे ॥ ६३ ॥ दूसरेके दोषोंको देखना, मर्मको भेदना, निष्ठुर बोलना, वृथा वैर करना और कपट इन

दोषवाले पुरुषोंको अन्तमें नरकवास होता है ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य निर्दोषदृष्टि (दूसरेके अवगुणोंकी ओर निगाह नहीं देनेवाले) ज्ञानी और सदा उत्तम कर्म करनेवाले हैं, वे इस दुःखको नहीं पाते, सर्वत्र सुख ही पाते हैं ॥६५॥ ज्ञानी पुरुषोंकी सङ्गतिमें जो अपना ज्ञान बढ़ाते हैं वे उचित कर्मोंसे अपनी सुख सम्पत्तिको बढ़ाते हैं ॥ ६६ ॥ दिनके समय ऐसा कर्म करना चाहिये जिससे रात्रि सुखसे कटे और महीनोंमें वह कर्म करे जिससे वर्ष-ऋतु आनन्दसे व्यतीत हो ॥ ६७ ॥ तरुण अवस्थामें वह कर्म करे, जिससे वृद्धावस्था सानन्द भोगी जाय और यावज्जीवन वह कर्म करे जिसके द्वारा परलोकमें निर्द्वन्द्वताके साथ वासुदेवके चरणारविन्दोंका दर्शन करता रहे ॥ ६८ ॥ पण्डितगण, जीर्णअन्न, गतयौवना भार्या, समरविजयी वीर और पारदर्शी तपस्वीकी विशेष प्रशंसा करते हैं ॥ ६९ ॥ अधर्मसे उपार्जित धनद्वारा मनुष्य अपने पाप ढँकनेकी इच्छा करता है, परन्तु वह पाप अधिकतया प्रकट होता है, ढँका नहीं रहता ॥ ७० ॥ शुद्ध अंतःकरणवाले मनुष्यको गुरु शिक्षा देता है, दुरात्माओंको राजा दण्ड देता है और गुप्त पापियोंका शासन सूर्यनारायणका पुत्र यमराज करता है ॥७१॥ ऋषि, नदी, महात्मापुरुषोंके कुलोंका माहात्म्य और स्त्रियोंके दुराचरणकी थाह कोई भी नहीं पा सकता ॥ ७२ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मणोंका पूजन करनेवाला, ज्ञानियोंसे समता रखनेवाला और दानी क्षत्रिय दीर्घकालतक पृथ्वीका पालन करता है ॥ ७३ ॥ तीन पुरुष सुवर्णमय पृथ्वीके शोभायमान पुष्पोंका सञ्चय कर सकते हैं–शूर १, विद्यावान् २ और जो सेवा करके स्वामीको प्रसन्न करना जानता है ३ ॥७४॥ हे भरतवंशी ! जो कार्य विचार कर किया जाय वही श्रेष्ठ है, भुजाओंके बलसे किया हुआ काम मध्यम है, कपटसे किया हुआ नीच है और जो सब कर्मोंका भार अपने ही माथेपर रखता है, वह महान् अधम है ॥ ७५ ॥ हे महाराज ! आप दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्णको सब ऐश्वर्य समर्पित करके कुशलकी अभिलाषा क्यों रखते हो ? ॥ ७६ ॥ हे भरतकुलभूषण ! वे सर्व गुणोंसे सम्पन्न पाण्डव पितृतुल्य तुमको मानते हैं, उनपर तुम पुत्रवत् कृपादृष्टि रखो ॥ ७७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वितीयस्कन्धे विदुरनीतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! इस समय मैं एक वह पुरातन रमणीय इतिहास आपसे कहता हूँ, जो कि महर्षि आत्रेयजीने साधुगणसे कहा था ॥ १ ॥ एक समय आत्रेयऋषिसे साध्यदेवने हंसरूपसे विचरते हुए तीक्ष्ण व्रत, परमज्ञानी महर्षिसे पूछा ॥२॥ साध्य बोले कि, महर्षि ! हम साध्यदेव हैं, आपको देखकर भी आपका स्वरूप नहीं पहचान सके, हमने आपको शास्त्रमें तत्त्वज्ञानी और बुद्धिमान् मान रक्खा है, अतः आप कृपा करके हमसे ज्ञानी पुरुषोंके लक्षण कहो ? जिसमें हम अपना हित समझकर सुख पायें ॥ ३ ॥ हंस बोले कि हे देवो। मैंने गुरुसे यह सुना है कि धैर्य, इंद्रियदमन, सत्यधर्मानुष्ठान द्वारा हृदयकी सब ग्रंथि छेदन करके जो सुख-दुःखको समान जानता है उसको ज्ञानी समझना ॥ ४ ॥ यदि कोई पुरुष आपको शाप प्रदान करे तो उसके प्रति शाप मत दो, क्योंकि क्षमा करनेवालेका क्रोध ही उस शाप देनेवालेको जलाता है और क्षमावान् उसके पुण्यको पाता है ॥ ५ ॥ और दूसरेका अपमान, मित्रद्रोह नहीं करता और नीच जनकी सेवा, अभिमान,

दुष्ट स्वभाव और क्रोध युक्त वचनोंको त्याग करना चाहिये ॥ ६ ॥ अतिकठोर वाक्य पुरुषके कर्म अस्थि, हृदय और प्राणोंको दग्ध करता है; इस लिये धार्मिक पुरुष कर्कश और मर्मभेदी वाक्य किसीको नहीं कहते हैं ॥ ७ ॥ और मनुष्य पुरुषकार करके ऐश्वर्यशाली हो सकते हैं; परन्तु महत्कुलसम्भूत पुरुषका चरित्र और कीर्ति लाभ करना अत्यन्त कठिन है ॥ ८ ॥ जो दूसरा मनुष्य इसको अतितीक्ष्णाग्नि सूर्यके समान दीप्त वाक्यरूप बाणोंसे घायल करे, वह पंडित अपने आपको घायल और अति दग्ध भी जाने तो भी यह कहे कि, यह मेरे पुण्यको बढ़ाता है, ऐसे पुरुषोंको ज्ञानका सार समझनेवाला समझो ॥९॥ जैसा सङ्ग होता है, वैसा ही गुण उत्पन्न होता है, साधुके सङ्गसे साधु, मूर्खके सङ्गसे मूर्ख और चोरके संगसे चोर और ऐसे जो जिसका संग करता है, वह उसीके समान हो जाता है, जैसे वस्त्र रंगके वशमें है अर्थात् श्वेत वस्त्रको जैसे रंगमें डालोगे उसी प्रकारका रंग उसपर चढ़ेगा ॥ १० ॥ जो मनुष्य निंदाके वचन, न तो किसीको कहते हैं और न किसीसे कहलाते हैं, आप क्लेश सहते हैं, परन्तु दूसरेको क्लेश नहीं देते और पापी अपनेको मारना चाहता है, पर जो उसको नहीं मारते, ऐसे महात्माओंको भी चाहते हैं ॥११॥ बोलनेसे मौन रखना, बोलनेपर भी सत्य बोलना, सत्य बोलनेपर भी प्रिय बोलना, प्रिय बोलनेपर भी धर्मयुक्त बोलना, एककी अपेक्षा दूसरा श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जैसे मनुष्योंके पास बैठता है, जैसे पुरुषोंका सेवन करता है, वैसा ही वह पुरुष भी हो जाता है, इसलिये जो पुरुष जैसा होना चाहता है, वह वैसे ही पुरुषका संग करे ॥१३॥ जो मनुष्य जिन-जिन दुःख दायक बातोंको छुड़ानेकी इच्छा करता है वह वैसे ही पुरुषोंका सङ्ग करे जिससे उनको उन दुःखदायक बातोंसे मुक्ति मिले और जो इस दुःखमय संसारसे मुक्ति चाहता है, वह सत्पुरुषोंके सिवा किसीका भी संग न करे, इससे उसके जब सब प्रपंच छूट जाते हैं, तब उसको किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं होता ॥१४॥ जो पुरुष किसीके भी जीतनेमें नहीं आता और जो अनीति करके किसीको जीतना नहीं चाहता और किसीसे शत्रुता भी नहीं करता, निंदा स्तुतिको समान जानता है, हर्ष-शोकसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता ॥ १५ ॥ जिसने सब इंद्रियोंको जीत लिया है, जो सबका मंगल चाहता है, किसीके अमंगलमें मन नहीं लगाता, सत्य भाषण करता है, कोमल स्वभाव है, ऐसे ही महात्मा पुरुषोंको उत्तम पुरुष कहते हैं ॥१६॥ जो जन मिथ्या संकल्प नहीं करते, जो प्रतिज्ञा अपने मुखसे करते हैं, उसको पूरी करते हैं, परन्तु जो दूसरेके छिद्रको भी देखते रहते हैं, वे मध्यम पुरुष हैं ॥ १७ ॥ दुःखशासन, कृतघ्न, जिनकी किसीसे रीति-प्रीति नहीं, मित्रतामें शत्रुता करे अच्छी बातको बुरी समझे मित्रोंको दिन-रात ठगते रहे, ऐसे दुराचारियोंको अधम पुरुष कहते हैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य गुरुओंके द्वारा कल्याणमें श्रद्धा नहीं करता, मनमें शंकित रहता है, मित्रोंका निरादर करता है लोगोंको ठग विद्यासे ठग-ठगकर धनसंग्रह करता है, अपने आपको अत्यन्त चतुर और पराक्रमी समझता है, उसीको नीच पुरुष कहते हैं ॥१९॥ जो अपने ऐश्वर्यको चाहे और श्रेष्ठ पुरुषोंका सेवन करे, समयपर मध्यम पुरुषोंकी संगति करे, परन्तु नीचोंका सेवन कभी न करे ॥ २० ॥ जो पुरुष सदा नीचोंके बलसे, अपने उद्यमसे और बुद्धिके पराक्रमसे धन संग्रह करता है उसकी प्रशंसा नहीं होती और यद्यपि वह बड़े कुलका है, परन्तु बड़े कुलकी योग्यताको नहीं पाता ॥२१॥ धृतराष्ट्र बोले कि, तपी कुलीनोंकी इन्द्रादिक भी इच्छा करते हैं, फिर दूसरा करे तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि

उनके कुलवाले सदा धर्मार्थमें स्थित और महाज्ञानी होते हैं; हे विदुर ! मैं तुमसे कुल-प्रश्न बूझता हूँ, वह कृपा करके बड़े कुलोंका लक्षण कहो ? ॥२२॥ विदुरजी बोले कि, तप (कृच्छ्र चान्द्रायणादि) १, इन्द्रियोंका जय २, वेदाध्ययन ३, यज्ञानुष्ठान ४, धन ५, पुण्य विवाह ६, और सर्वदा अन्नदान ७, ये सात गुण जिन पुरुषोंमें वास करते हैं, वे उत्तम वृत्तवाले महाकुलीन हैं ॥ २३ ॥ पित्रादिक जिनका चरित्र देखकर आनन्दित होते हैं, सत्यवादी धार्मिक अपने वंशमें कीर्ति स्थापन करनेकी अभिलाषा करते हैं, ऐसे कुलमें धन अल्प भी हो तो वही महाकुल है और यह सब गुण जिसमें विपरीत हों वही दुष्कुल है ॥२४॥ यज्ञके न करनेसे, निंदित विवाहसे, वेदके न पढ़नेसे और ब्राह्मणोंके अतिक्रमसे कुल अकुलताको प्राप्त होता है ॥२५॥ हे भरतवंशी ! ब्राह्मणोंके ताड़न, निंदा और न्यासहरणसे वे कुल अकुल हो जाते हैं ॥२६॥ गौ, मनुष्य और धनसे पूर्ण भी वे कुल शोभा नहीं पाते, जो कि वृत्त (गुरुदेवपूजनादि) हीन हैं॥२७॥ जो सूक्ष्म धनवाले भी हों, पर वृत्त संयुक्त हों वे ही कुल हैं, कुलीन और कुलमें संख्या पाते हैं और बड़े यशस्वी कहलाते हैं ॥२८॥ वृत्तकी रक्षा यत्नसे करना चाहिये जिससे कुल महाकुल कहलाता है और धनकी क्या है यह तो कभी आता है, कभी जाता है, जो पुरुष धनसे हीन है उसको हीन नहीं समझना, परन्तु जो आचरणसे हीन है वह हीन है ॥ २९ ॥ सदाचार हीन जो कुल विद्यावान् भी है, वह गौ, पशु, अश्वादि, कृषि, समृद्धि होनेसे कभी वृत्ति नहीं पा सकता ॥ ३० ॥ हमारे कुलमें कोई राजा अमात्य वैर करनेवाला कोई नहीं हो, हमारे कुलमें राजा अथवा मन्त्री वा कोई दूसरी सत्तावाला किसीका धन हरनेवाला नहीं हो, निर्दयी, मित्र-द्वेष करनेवाला असत्य भाषी, कपटी, झूठा, देव, पितर, अतिथि इनको भोजन करानेसें पहले भोजन करनेवाला नहीं हो, क्योंकि ये सब कुलघातकी कहलाते हैं ॥ ३१ ॥ जो पुरुष ब्राह्मणोंका घात करनेवाला, ब्रह्मकुलद्रोही, वृद्धजनोंका पालन न करे, वे हमारे कुलमें उत्पन्न न हों ॥ ३२ ॥ जो कुलीन पुरुष हैं, उनके घर अतिथि और सम्बंधियोंको आसन १, विश्रामके लिये भूमि २, जलकी शुश्रूषा ३ और मधुर वचन बोलना ४, यह चार पदार्थ सत्पुरुषोंके घरसे कभी नष्ट नहीं होते ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! यह सब पदार्थ बड़ी श्रद्धासे, पुण्यकर्मसे धर्मात्माओंके सत्कारसे प्राप्त और प्रवृत्त होते हैं ॥३४॥ हे राजन् ! छोटा रथ भी भारी भारको सहन कर सकता है, इतना भार दूसरा वाहन नहीं सम्भाल सकता, इस प्रकार उत्तम कुलोंके जो सत्पुरुष हैं, वे सब संसारके लोगोंका भार आप सहन करते हैं, क्योंकि संसारके लोगोंका दुःख सब अपने शिरपर धरकर उनको सुखी करते हैं, ऐसे शुभ कर्म और मनुष्योंसे नहीं हो सकते ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस बातसे डरता है कि मित्रोंको क्रोध आयेगा, अथवा मित्रके सम्मुख बोलनेसे भय मानता है, परन्तु जहां मित्रता है, वहां ऐसा समझना नहीं चाहिये क्योंकि मित्रके साथ पिताके समान विश्वास करे उसीका नाम मित्र है और दूसरा तो केवल सम्बंध है ॥ ३६ ॥ जो कोई सम्बंधी भी मित्र भावसे वर्तता है, वही बन्धु, मित्र, गति और शरण स्थान है, पराया तो पराया, मित्रता करके यह कभी न समझना चाहिये, क्योंकि,–

चौ०–जे न मित्र दुःख होत दुखारी * तिनहिं बिलोकत पातक भारी ॥
मित्र विपतिमें होत सहायक * मित्र सदा उर आनँददायक ॥
मित्र समान और को दूजा * ताते करहि मित्रकी पूजा ॥ ३७ ॥

जो चञ्चलात्मा मनुष्य हैं, वे अपने वृद्धजनोंका आदर-सत्कार नहीं करते, उनके साथ प्रेम-प्रीति अधिक दिन निर्वाह नहीं होती। जो चित्तका चञ्चल, मनका कपटी, इन्द्रियोंके आधीन, ऐसे मनुष्यको दैवयोगसे नित्य नये मित्र मिलते रहते हैं ॥३८॥ चञ्चलचित्त स्थूल-बुद्धि वृद्धोपदेश-पराङ्मुख पुरुषसे मित्र भाव कभी पूरा नहीं हो सकता, जैसे हंसमण्डली सूखे सरोवपर कभी नहीं वास कर सकती, ऐसे ही सब अर्थ अव्यवस्थित चित्त, इन्द्रियबश-वर्ती पुरुषको त्याग करता है ॥ ३९ ॥ अकस्मात् प्रसन्न हो जाना, विना ही कारण कुपित हो जाना, यह नीच मनुष्योंका स्वभाव है, जैसे चञ्चल बादल कभी उठ जाता है और कभी हट जाता है ॥ ४० ॥ जो मनुष्य मित्रद्वारा सत्कृत और कृतकार्य होकर भी उनका उपकार नहीं करते हैं, वे ही कृतघ्न कहलाते हैं, उन कृतघ्नोंके मरनेपर शरीरका मांस श्वान और काक आदिक पक्षी भी नहीं खाते, धनी हों वा निर्धन हों, परन्तु मित्रका अर्चन करना चाहिये और मित्रसे किसी बातकी याचना करनी नहीं चाहिये क्योंकि मित्रता ही संसारमें अद्भुत पदार्थ है, मित्रोंके सारासारको कोई नहीं जानता ॥४१॥४२॥ सन्ताप (प्रियमित्रके वियोगका कष्ट) से रूप, बल और ज्ञान नष्ट होकर व्याधि उत्पन्न होती है ॥ ४३ ॥ शोक करनेसे अभिलषित वस्तु नहीं मिलती है, वरन् और शरीर सन्तप्त होता है और शत्रुगण अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं इस लिये सन्ताप कभी नहीं करना ॥ ४४ ॥ मनुष्य बारबार उत्पन्न होता है, मरता है, छोटा होता है, बड़ा होता है, मांगता है, मँगवाता है, शोक करता है, कराता है ॥४५॥ सुख, दुख, जन्म, मरण, हानि, लाभ ये सब पदार्थ क्रमसे भोगने पड़ते हैं, इसलिये धीर पुरुष हर्ष और शोकके वशीभूत नहीं होते ॥४६॥ चक्षुरादि छः इन्द्रियगण अत्यन्त चञ्चल हैं उनमें जो-जो जहाँ-जहाँ जिस-जिस विषयमें वृद्धि पाती हैं, बुद्धि उसी विषयमें भ्रष्ट होजाती है, जैसे छिद्रवाले पात्रसे जल सदा निकलता है ॥ ४७ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! व्रत उपवासधारी कृशतनु हुआ है, तो भी उस तेजस्वी, पुण्यात्मा, महाबलशाली युधिष्ठिर को मैंने अनेक प्रकारके कपटव्यवहारसे छला है, इसलिये वह मेरे मन्दमति पुत्रगणको रणस्थ-लमें संहार करेगा, इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ हे महामते विदुर ! यह सब विषय ही उद्वेगका कारण है, एकदम उद्वेगका पाया हुआ चित्त शान्त नहीं हो सकता, अतःअब जिस प्रकार शान्ति हो वैसा उपदेश करो ॥ ४९ ॥ विदुर बोले कि, हे निष्पाप ! विद्या, तपस्या, इन्द्रियसंयम और लोभ परित्याग किये विना आपको शान्ति लाभ होना महाकठिन है ॥ ५० ॥ आत्मज्ञानसे संसारभयनिर्वाण, तपस्यासे ब्रह्मज्ञान, गुरुकी सेवासे ज्ञान, वैराग्य और योगसे शान्ति पाता है ॥ ५१ ॥ इस जगत्में दान और वेदपाठके पुण्यकी इच्छाका परित्याग करनेवाले, लौकिक पदार्थोंपर प्रीति और अप्रीति दोनों नहीं रखते और जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक बारंबार संसारमें ही जन्म लेकर विचरते फिरते हैं ॥ ५२ ॥ उस अच्छे वेदपाठ, धर्मयुद्ध, सुकृत कर्म और किये हुए उत्तम तपके प्रभावसे अन्तसमय मोक्ष पाता है ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! भेददृष्टिवाले अथवा जातिजनसे द्वेष रखनेवाले मनुष्य, सुन्दर कोमल शय्याओंपर शयन करके भी कभी निद्राको नहीं पाते और न स्त्रियोंमें रतिको पाते हैं और मागध और सूतोंसे कभी स्तुतिके योग्य नहीं होते ॥ ५४ ॥ भेदबुद्धि और ज्ञाति विरोधी कभी धर्म नहीं करते और इस लोकमें कभी गौरवको नहीं पाते, क्योंकि भेदबुद्धि

पुरुष अन्धा हो जाता है, उसको कुछ आगा-पीछा नहीं सूझता ॥ ५५ ॥ पथ्य वचन उनके मनको नहीं भासता है, अप्राप्तका लाभ और लब्धकी रक्षा उसको प्राप्त नहीं होती, हे नरेन्द्र ! भिन्नपुरुषोंका परायण विनाशके व्यतिरिक्त दूसरा कोई विद्यमान नहीं जान पड़ता ॥ ५६ ॥ धेनुसे दूध उत्पन्न होता है, ब्राह्मणोंसे तपोऽनुष्ठान, स्त्रियोंसे चपलता और ज्ञानियोंसे भय उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥ आपने बाल्यावस्थासे पाण्डवगणका लालन-पालन किया है, अब वे लोग ब्राह्मणोंकी नाईं वनमें रहें और सन्तानके लिये बहुतसे क्लेशोंको सहते हैं, यह सत्पुरुषोंकी उपमा है ॥ ५८ ॥ हे भरतर्षभवंशी–धृतराष्ट्र ! जलती हुई लकड़ियोंको पृथक्-पृथक् करनेसे उनमें धुवां निकलने लगता है, नेत्रोंको कष्ट देता है और एकत्र मेल करनेसे प्रज्वलित होती हैं और फिर अपने तेजके प्रभावसे किसीको निकट नहीं आने देतीं, देखो ! सिंह अत्यन्त महाबली है, परन्तु उस जली हुई अग्निको देख वह भयभीत हो पलायन करता है, इसी प्रकार ज्ञातिजन उल्मुक समान हैं, इसलिये आपको उचित है कि पाण्डवोंसे मेल करो ॥५९॥ हे धृतराष्ट्र ! जो पुरुष ब्राह्मण १, स्त्री २, ज्ञातिजन ३, और गो ४ इनके ऊपर पराक्रम करता है, वह पके हुए फलके समान वृक्षपरसे जैसे फल गिरता है, वैसे ही प्राणी भी पापके भरनेसे पतित हो जाता है ॥ ६० ॥ जिस तरुवरकी जड़ पृथ्वीमें दृढ़ है और प्रतिष्ठित शाखावाला है, परन्तु तो भी अकेलेको पवन क्षणमात्रमें गिरा देती है॥६१॥ और जो वृक्ष वृक्षके समूहोंमें एकके आश्रयसे एक है, तो वह पवनका भी उपद्रव सहन कर सकता है ॥ ६२ ॥ इस प्रकार अकेले गुणवान् पुरुषको भी शत्रुगण पराजय योग्य समझते हैं, जैसे पवन अकेला तरुवरको कुछ नहीं समझता ॥ ६३ ॥ देखो ! ज्ञानीजन एकका एक आश्रय लेनेसे और परस्पर वश्य होनेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे सरोवरमें कमलके फूल ॥६४॥ ब्राह्मण, गौ, ज्ञातिजन, बालक, स्त्री, शरणागत और जिसका अन्न भोजन किया हो, ये सब मारने योग्य नहीं हैं ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! आपका कल्याण हो, पुरुषमें धनवत्ता और आरोग्यताके अतिरिक्त कोई दूसरा शुभ गुण नहीं है ॥ ६६ ॥ हे महाराज ! आरोग्यतासे उत्पन्न अरोचक शिररोग, पापयुक्त, रूखे, छेदक, दुःसह स्पर्श, सत्पुरुषोंके पान योग्य, दैन्यकी जिसको असन्त लोग पान नहीं करते, उसको तुम पान करो और शान्तिको पाओ ॥ ६७ ॥ रोगसे पीडित मनुष्य फलोंका आदर नहीं करते, विषयोंसे तत्त्वोंको नहीं पाते, रोगी सदा दुःखी रहते हैं, क्या वे धन योग्य और सुखको नहीं जानते हैं ? ॥६८॥ हे राजन् ! तुमने पूर्वकालमें द्यूतसे जीती हुई द्रौपदीको जो देखकर मेरे कहे हुए उस मङ्गलदायक वचनको नहीं माना कि, इस अक्षवती सभामें दुर्योधनको समझाया, पण्डित द्यूतप्रियत्वका निषेध करते हैं ॥ ६९ ॥ वह सेना श्रेष्ठ नहीं है, जो क्षमावानके साथ विद्रोह करती है, सूक्ष्म धर्म योग सेवन योग्य है, क्रूरके पास लक्ष्मी नाशकारक है और क्षमावानके पास वृद्धि पानेवाली है, पुत्र पौत्रको प्राप्त होती है ॥ ७० ॥ हे धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे, अच्छा कहता हूँ कि, आप पाण्डवोंकी रक्षा करें और पाण्डवगण आपकी रक्षा करें। जो आपके शत्रु मित्र हैं वे उनके और जो उनके शत्रु, मित्र हैं, वे आपके और जो उनका कार्य है वह आपका और जो आपका कार्य है, वह

१. कवित्त––भेदबुद्धि जाके सो न गहत है धर्म ग्रन्य, भेदबुद्धि जाके सो न पावै सुख नेक है। भेदबुद्धि जाके सो न गौरव लहत नेक योग क्षेम कुशल न ताके भाग एक है। भेदबुद्धि जाके सो सिखावन न मानत है, भेदबुद्धि जाके सो न माने निजटेक है॥ भेदबुद्धि जाके सो लहत खेद अन्त सहै, दुःख हू अनेक नेक रहै ना विवेक है॥

उनका यह उत्तम भाव मनमें रखना चाहिये। इस प्रकार सुखसे अपना जीवन व्यतीत करो ॥ ७१ ॥ हे अजमीढवंशी ! अब तुम कौरवोंके शिक्षक हो और कुरुकुल आपके अधीन है, इसलिये आप वनवाससे दुःखी पाण्डवगणकी रक्षा करके अपने यशकी वृद्धि कीजिये ॥ ७२ ॥ हे नरदेव ! अब तुम पाण्डवगणके साथ संधि कर लो और दुर्योधनको भी युद्धसे निवृत्त करो और जो शत्रुगण तुम्हारे मनमें भेद डालनेवाले हैं, फिर वे सब भी शान्त हो जायँगे, सत्य तो यह है कि पाण्डवगण अब तक अपने धर्म पर स्थित हैं, वे अवश्य जय पायेंगे ! इसलिये आप मेरी बातको निश्चय मानकर दुर्योधनको युद्धसे निवृत्त करो, इसीमें तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ७३ ॥

इति श्रीविदुरनीतिभाषानुवादे शालग्रामवैश्यकृते विदुरधृतराष्ट्रसंवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः

विदुरजी बोले कि, हे धृतराष्ट्र ! स्वायंभुवमनुने सत्रह प्रकारके मूर्ख कहे हैं, वे इस प्रकार हैं कि, आकाशको घूँसा मारकर तोड़ना चाहते हैं ॥ १ ॥ इन्द्रके धनुषको ताननेकी इच्छा करते हैं, सूर्य चन्द्रमाकी किरणोंको मुट्ठीमें बन्द करनेकी अभिलाषा रखते हैं ॥ २ ॥ कुशिष्योंको शिक्षा करके गुरु बना देना १, थोड़े लाभसे सन्तुष्ट न होना २, शत्रुकी सेवा करके कल्याणकी इच्छा करे ३, कुभार्याकी रक्षा करके कुशल चाहे ४, अयाच्यसे याचना करे ५, ॥ ३ ॥ अपने मुखसे अपनी श्लाघा करे ६, अनुचित कर्म करके कुलीनता चाहे ७, निर्बल होकर बलवानसे वैर करे, अविश्वासीका विश्वास करे ९, अकाम्य वस्तुकी कामना करे १०, ॥४॥ पुत्रवधूसे परिहास करे ११, ससुरालमें रहकर सम्मानकी अभिलाषा करे १२, पराये क्षेत्रमें बीजको बोवे १३, स्त्रियोंसे विवाद करे १४, ॥५॥ किसीका धन लेकर भूल जाना १५, तीर्थमें दान करके उधार रखना और फिर न देना और अपने दानीपनकी प्रशंसा करना १६, दुष्ट और झूठेको साधु समझनेवाले १७, इन सबके गलेमे फाँसी डालकर नरकमें ले जाते हैं ॥६॥ जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे, उससे वैसाही व्यवहार वर्तना चाहिये, कपटीसे कपट-व्यवहार करना और साधुसे साधु व्यवहार करना चाहिये ॥७॥ जरा रूपको, आशा धैर्यको, मृत्यु प्राणोंको, दूसरेमें दोषारोपण धर्मचर्याको, काम लज्जाको, नीचसेवा वृत्तको, क्रोध लक्ष्मी और मानको दूर करता है॥८॥धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुरजी ! जब वेदशास्त्रोंमें मनुष्यकी सौ १०० वर्षकी आयु कही है, तो अब १०० वर्षकी आयु भोगे विना प्राणी बीचमें क्यों मर जाता है ? पूर्णायु क्यों नहीं होती ? ॥९॥ विदुरजी बोले कि वृद्ध पुरुषोंको तुच्छ समझना १, सबसे अधिक अपनी बड़ाई करना २,देने योग्य वस्तुको न देना ३,अकारण क्रोध करना४,अपने ही शरीरका पालन करना ५,मित्रके साथ द्रोह करना ६, ये छः अवगुण हैं॥१०॥ ये महातीक्ष्ण खड्गके समान हैं और प्राणियोंकी आयुके छेदन करनेवाले हैं, परमेश्वर आपका कल्याण करे ॥११॥जो विश्वस्तकी स्त्रीसे रमण करता है १,जो गुरुपत्नीके साथ रमण करता है२,जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रकी स्त्रीसे रमण करता है ३, मद्य पीता है ४ ॥१२॥ जो ब्राह्मण ब्राह्मणपर आज्ञा करता है ५,जो ब्राह्मणोंकी आजीविका नष्ट करता ६, जो ब्राह्मणोंसे सेवा कराता है ७ और जो शरणागतको मारनेवाला है ८,ये आठों ब्रह्मघातीके समान हैं। इनसे मिलकर प्रायश्चित करना चाहिये ॥ १३ ॥ विद्यावान्. नीतिज्ञ, दानी, देवब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे

भोजन करनेवाला अहिंसक, अनर्थ न करनेवाला, उपकारका प्रत्युपकार करनेवाला, सत्य और मीठे वचन बोलनेवाला, ऐसे विद्वान् लोगोंको स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१४॥ हे राजन्! प्रिय बोलनेवाले मनुष्य बहुत मिलेंगे, परन्तु अप्रिय वचनोंसे हित करनेवाले श्रोता-वक्ता बहुत दुर्लभ हैं ॥ १५ ॥ राजाको कड़वा जान पड़े या मीठा, परन्तु धर्मका वचन कहना उचित है जिसने धर्मका आश्रय लेकर स्वामीके प्रिय-अप्रिय छोड़कर अप्रिय हित वचनोंको कहा, उसीको अपना सहायक समझना चाहिये ॥ १६ ॥ कुलमें एक पुरुष अनीतिकारी हो और उसके त्यागनेसे कुलकी रक्षा होती हो तो निःसन्देह उसको त्याग दे और कुलके त्यागनेसे ग्रामकी रक्षा होती हो तो उस कुलको त्याग दे और जो ग्रामको त्यागनेसे देशकी रक्षा होती हो तो उस ग्रामको त्याग दे और देशके त्यागनेसे अपने शरीरकी रक्षा हो तो सब भूमिको त्याग देना उचित है ॥१७॥ आपत्कालके लिये धनकी रक्षा करना और धनसे स्त्रीकी रक्षा करना, धन और स्त्रीसे आत्माकी रक्षा करना, क्योंकि शरीर है, तो सब सुख रहेंगे, श्लोक- "पुनर्दाराः पुनर्वित्तं न शरीरं पुनः पुनः" ॥ १८ ॥ पूर्वकल्पमें आपने देखा है कि, इसी द्यूत-क्रीड़ासे परस्पर वैरभाव उत्पन्न हुआ, इसीलिये बुद्धिमान् मनुष्य आमोदके निमित्त भी द्यूत-क्रीड़ा नहीं करते हैं ॥१९॥ हे राजन्! आपने जुआ खेलनेका आरम्भ ही किया था उस समय भी मैंने आपसे कहा था कि द्यूतकर्म आपके योग्य नहीं है; परन्तु आपने उसको अग्राह्य किया था, सत्य है कि जब रोगीकी मृत्यु निकट आती है तो गुणदायक औषधि जो उसके पथ्यके योग्य है वह उसको कभी नहीं रुचती और वैद्य शत्रु दिखाई देता है ॥२०॥ काकरूप दुर्योधनकी सहायताके लिये चित्रपक्ष मयूररूप पाण्डवगणका पराजय करना दोनों ही समान हैं ? क्या कहें ? आप सिंहका परित्याग करके शृगालका पालन करते हैं,परन्तु समयपर आपको अवश्य ही शोक-सन्ताप करना पड़ेगा ॥ २१ ॥ हे तात ! जो मनुष्य भक्त और हितार्थीपर कभी क्रुद्ध नहीं होता है, तो भृत्य उसी भर्ताका विश्वास करता है और आपत्कालमें भी उसका साथ नहीं छोड़ता ॥२२॥ भृत्यगणकी आजीविका रोकनेसे बाह्य धनको जो आप लेना नहीं चाहे, क्योंकि ऐसे स्वामीको वंचित भोगहीन विरुद्ध प्रीतिमान मन्त्री भी परित्याग करता है ॥ २३ ॥ प्रथम सब कार्योंको साध्य-असाध्य भली प्रकार विचार कर, लाभ-व्यय अनुसार आजीविका नियत करके अपने समान सहायकोंको प्राप्त करे, निश्चय दुष्कर कार्य सहाय-साध्य हैं ॥ २४ ॥ जो निरालस्य अधिकारी स्वामीके अभिप्रायको जानकर सब कार्योंको करता है, हितकारी वचन कहनेवाला, प्रीतिमान्, श्रेष्ठ और अपनी सामर्थ्यको जानता है,ऐसे सेवकको प्राण समान रखना चाहिये ॥२५॥ जो पुरुष आज्ञा किये हुए वचनोंका आदर नहीं करता है और जिस नियुक्तने उत्तर भी दिया और अपने आपको बुद्धिमान् जानकर अभिमान करे और प्रतिकूल भावी हो, ऐसे भृत्यको शीघ्र त्यागना उचित है ॥२६॥ गर्वहीन १, सामर्थ्यशाली २, शीघ्रकारी ३, दयावान् ४,मधुरभाषी ५, अपने स्वामीके अतिरिक्त दूसरेके वशीभूत न होनेवाला ६, जिह्वा स्वाधीन ७ और किसी रोगकी पीडा न हो ८, जिनमें ये आठ गुण हों उसीको उत्तम सेवक समझना चाहिये ॥ २७ ॥ जिसको अपना विश्वास नहीं, सायंकालके समय उसके घरमें गमन न करे, रातके समय चौराहेमें वास करे, तो छिपकर न ठहरे, जिस स्त्रीसे राजा स्नेह करता हो उससे कभी स्नेह न करे ॥ २८ ॥ जिस कुसङ्ग कार्यके भी मन्त्री बहुत हैं, उस कार्यको दोष न लगाये और यह भी न कहे कि, यह बात मेरे

मनको नहीं भाती और मुझको तुम्हारा विश्वास नहीं, वरन् यह बात उनको प्रकट नहीं हो और किसी निमित्तसे वहांसे उठकर चला आये ॥ २९ ॥ लज्जाशील राजा १, व्यभिचारिणी स्त्री २, राजभृत्य ३, पुत्र या बंधु ४, विधवा ५, सेनाजीवी ६, अधिकारसे अलग किया हुआ ७, इन सात पुरुषोंसे द्रव्यका व्यवहार न करना ॥ ३० ॥ मनुष्यको आठ गुण सदा प्रकाशमान् करते हैं; बुद्धि १, कुलीनता २, शास्त्रावलोकन ३, बाह्येन्द्रियोंको जीतना ४, पराक्रम ५, मित भाषण ६, यथाशक्ति दान ७, कृतज्ञता ८ ॥ ३१ ॥ हे तात ! इन महानुभाववाले गुणोंको एक गुण हठसे आश्रय करता है, अर्थात् जब राजा पुरुषका सत्कार करता है, तब ये गुण सब गुणोंको धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ ये दश गुण प्रातःकाल स्नान करनेवालेके समीप सदा रहते हैं, बल १, रूप २, स्वरशुद्धि ३, स्पष्टवर्णोच्चारण ४, मृदुता ५, सुगन्ध ६, विशुद्धता ७, श्री ८, सुकुमारता ९, जिसमें ये नव गुण हैं, उसको अत्यन्त सुन्दर मनकी हरनेवाली दशवीं स्त्री प्राप्त होती है १० ॥३३॥ ये छः गुण भूख लगनेपर भोजन करनेवालेके निकट रहते हैं और इन्हीं पुरुषोंको मितभोजी कहते हैं, अपनी भूखके चार भाग करे, उसमें दो भाग अन्नके, एक भाग जलका, चौथा भाग पवनके संचार होनेके लिये रखना, इसीका नाम मित भोजन है; इससे आरोग्य १, आयु २, बल ३, सुख ४, उत्तम डकार ५, और निर्मल सन्तान उत्पन्न होती है ६ ॥ ३४ ॥ अकर्मण्य १, बहुभोजी २, लोकविद्विष्ट ३, कपटी ४, नृशंस ५ देशकालका न जाननेवाला ६, अप्रियवेषधारी ७ इतने मनुष्योंको घरमें न बसाये ॥ ३५ ॥ इन नव पुरुषोंके पास महाक्लेशके समय भी मांगना नहीं चाहिये—अदाता १, दुर्वाक्य कहनेवाला २, मूर्ख ३, वनवासी ४, कपटी ५, धूर्त ६, अभिमानी ७, निर्दय ८, और कृतघ्नी ९ ॥ ३६ ॥ ये छःप्रकारके आततायी हैं, इनसे कभी रीति-प्रीति न करना। क्रूरकर्मी १, मिथ्यावादी २, भक्तिशून्य ३, स्नेहशून्य ४, चञ्चलवृत्ती ५ और निपुणस्मय ६ ॥ ३७ ॥ अर्थ सहायकोंके वशमें है और सहायक अर्थोंके वशमें हैं ये दोनों ऐसे हैं कि, एकके वशमें एक है, इसलिये एकके विना दूसरेका कार्य सिद्ध नहीं हो सकता ॥३८॥ कुलीन स्त्री से पुत्र उत्पादन करना, उसको धर्मशास्त्रकी विद्याका अभ्यास कराना और ऋणशून्य करके कुछ आजीविका उसके लिये नियत कर देना, और कन्या हो तो उसको अच्छे कुलमें सत्पात्र वरके साथ विवाह देना, पीछे मुनिवृत्ति धारणकर वनको गमन करना और एकान्त स्थानमें समाधि लगाकर निरन्तर वासुदेव भगवान्के ध्यानमें मनको लगाना ॥३९॥ जो कर्म सब प्राणियोंका हितकारक और अपना सुखदायक हो वही कर्म करना और परमेश्वरके निकट वही कर्म सर्वार्थ सिद्धिदायक है ॥ ४० ॥ बुद्धि, प्रभाव, तेज, बल, उद्योग, निश्चय, जिसको यह छः प्राप्त हों उसको आजीविकाकी कुछ चिन्ता नहीं ॥४१॥ विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! आप पाण्डवोंके साथ वैर करनेके दोषोंका विचार कर देखो ! कि, उनसे युद्धघटना होनेसे महाअनिष्ट होगा, वे बड़े बलशाली और समरविजयी हैं, कि इंद्र भी जिनसे युद्ध करने में व्यथित होता है, वे दोष यह हैं—पुत्रोंसे वैर, दूसरे सदा उद्विग्न, तीसरे संसारमें अपयश, चौथे शत्रुगणका हर्षोत्पादन ॥ ४२ ॥ हे राजा धृतराष्ट्र ! जैसे धूम्रकेतु आकाशसे पतित हो तो सब लोक विनाश हों, उसी प्रकारसे भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, आपका क्रोध होने से सब लोकका विध्वंस हो जायगा ॥ ४३ ॥ इसलिये आपके सौ पुत्र, कर्ण और पांचों पाण्डव एकत्र होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करें ॥४४॥ हे राजन् आपके पुत्र वन हैं, जिसमें पाण्ड-

वगण सिंह हैं, इसलिये तुम सिंहोंसहित वनको मत काटो, सिंह वनके होनेसे नाशको नहीं पाते ॥ ४५ ॥ क्योंकि विना सिंहोंके वन नहीं होता और विना वनके सिंह नहीं होते, जिस वनमें सिंहोंका वास है, उसीका नाम वन है, सिंहोंसे ही वनकी रक्षा है और वन सिंहोंकी रक्षा करता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! दुष्टचित्तवाला मनुष्य दूसरेके सद्गुण जाननेकी इच्छा नहीं करता, केवल दोषमात्रका शोधन रखता है और उत्तम गुणोंपर जान-बूझकर दोष लगाता है ॥४७॥ उत्कृष्ट पुरुष अर्थकी निन्दा करनेवाले, प्रथम अपने धर्मका आचरण करते हैं, और अपने धर्मका परित्याग करनेसे किञ्चिन्मात्र भी अर्थकी प्राप्ति नहीं होती, जैसे स्वर्ग लोकके परित्याग करनेसे अमृत नहीं प्राप्त होता ॥ ४८ ॥ जिसका चित्त पापोंसे रहित होकर परमात्माके चरणारविन्दोंमें लगता है, वह सब कुछ जानता है, कोई बात उससे गुप्त नहीं और जो तीन गुण रखनेवाले माया महत्तत्त्वादिक हैं, उनको भी जान जाता है ॥४९॥ जो पुरुष समयानुसार धर्मार्थ, कामका सेवन करता है वह दोनों लोकमें धर्मार्थ कामके संयोगको पाता है॥५०॥ हे राजन् ! जो पुरुष हर्ष और क्रोधके उठे हुए वेगको रोकता है और मायाकी आपत्तियोंमें मोहित नहीं होता, कालसे भय नहीं मानता, वह पुरुष लक्ष्मीका कृपापात्र है ॥ ५१ ॥ मनुष्योंका बल पांच प्रकारका होता है, बाहुबल नाम कनिष्ठ बल है १, ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! आपका मंगल हो, मन्त्री बल दूसरा कहा जाता है २, और बुद्धिमानोंने तीसरे बलको धनलाभ बल कहा है ३ ॥५३॥ हे राजन् ! पिता परपितासे सम्बन्ध रखनेवाला सहज बल है, वह अभिजात बल है, उसको चौथा बल कहा जाता है ॥ ५४ ॥ हे भरतकुलभूषण ! जिस बलसे ये सब इन्द्रियाँवशमें हैं और जो बल सबमें उत्तम है वह बुद्धिबल कहा जाता है, इसके द्वारा सब संग्रह हो सकता है ५॥५५॥ जो जन बड़े पुरुषके अपकारार्थ उपाय करता है, वह उसके साथ शत्रुता करके विश्वास न करे कि मैं उससे दूर हूं ॥५६॥ कौन ज्ञानी अग्रोक्त प्राणियों पर विश्वास करनेके योग्य है ? स्त्री, राजा, सर्प, स्वाध्ययन, प्रभु, शत्रु, विषयभोग और आयुका विश्वास करता है ॥५७॥ बुद्धिरूप बाणसे जिनका जीव घायल हुआ है, उसकी परीक्षा करनेके लिये वैद्य तो है, परन्तु ओषधि नहीं है, न मंत्र है, न मङ्गल है, न अर्थ मन्त्र है और सिद्धसे भी नहीं है ॥५८॥ हे भरतवंशी ! सर्प, अग्नि, सिंह, कुलपुत्र, इनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये बड़े तेजस्वी होते हैं ॥५९॥ इस लोकमें अग्नि काष्ठके भीतर गुप्त रहता है, जबतक कोई नहीं जानता और उस काष्ठका भोग भी नहीं करता तबतक कोई उसका उद्दीपन नहीं करता ॥६०॥ जब वह काष्ठसे मथकर उद्दीपन होता है, फिर जिस काष्ठमें रहता है उस काष्ठसहित सब वनको भस्म कर डालता है ॥६१॥ इसी प्रकार आपके वंशमें पाण्डव अग्निसमान तेजस्वी हैं, अनादर किये हुए क्षमावन्त ऐसे गुप्त वास करते हैं और पुरुषार्थ नहीं दिखाते, जैसे आग काष्ठमें वास करती है ॥६२॥ आप और आपके पुत्रगण लतारूप हैं और पाण्डवगण शालवृक्ष स्वरूप हैं, सो बड़े वृक्षका आश्रय लिये विना लता बढ़ती नहीं ॥६३॥ हे राजन् ! आप और आपके पुत्र दुर्योधनादिक वनस्वरूप हैं और पाण्डवगण सिंहस्वरूप हैं, सिंहके न रहनेसे वन विनष्ट हो जाता है और वन भी सिंह विना विनाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ६४ ॥

इति श्रीशालग्रामवैश्यकृते विदुरधृतराष्ट्रसंवादे विदुरनीतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! साधुजन अभ्यागत जानकर पुरुषका सत्कार करते हैं, और जो कोई दूषित जन भी अतिथिरूपसे अपने घर आये तो उसका भी अर्चन करना उचित है ॥१॥ पंडितलोग साधु अभ्यागतके लिये बैठनेको आसन दे और जल लाकर उसके दोनों पांव धोये, फिर कुशल-क्षेम पूछकर अपनी व्यवस्था कह कर तदनन्तर भोजनका प्रबन्ध करे ॥२॥ मन्त्रज्ञ ब्राह्मण जिसके घरमें जल,मधुपर्क और गौको नहीं लेता और लोभसे अथवा कृपणतासे उसका आदर-सत्कार नहीं होता, श्रेष्ठ पुरुषोंने उसका जीवन निष्फल कहा है ॥३॥ वैद्य,माला बनानेवाला, ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट, चोर, दयाहीन,मद्यपीनेवाला,गर्भ गिरानेवाला, सेनाजीवी, वेद बेचनेवाला, इस प्रकारका परमप्रिय अतिथि भी हो तो भी जल देनेके योग्य नहीं है ॥४॥ लवण, पक्वान्न, दूध, मधु, तैल, घृत, तिल, मांस, फल, फूल; शाक, रक्तवस्त्र, गन्धद्रव्य और गुड़ यह वस्तु बेचने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥ जो पुरुष रोषहीन लोष्ठ, पत्थर और स्वर्णको समान माननेवाला,द्रव्यको पास न रखनेवाला, संधिविग्रहके अतिरिक्त निंदाप्रशंसासे उपरामी है, वह उदासीनके समान प्रियाप्रियका त्यागकर्ता संन्यासी है ॥६॥ तृण, धान्य, मूल, इंगुद (हिंगोट), शाकाजीवी, वशचित्त, अग्निकार्योंमें सावधान वनमें वास करनेवाला, अतिथियोंमें अप्रमत्त, धर्मरूपी धुरीका धारण करनेवाला और दान पुण्यका करनेवाला तपस्वी कहलाता है ॥७॥ बुद्धिमान्‌का अपमान करके फिर विश्वास न करे और यह न जाने कि मैं दूरस्थित हूँ; बुद्धिमान्‌की दीर्घभुजा होती है, जिनका मारा हुआ तुरंत मर जाता है ॥ ८ ॥ अविश्वासका विश्वास कभी भी न करे और विश्वासीका भी अत्यन्त विश्वास न करे,क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय मूलको भी काटता है॥९॥ जो स्त्रियां महाभाग्यवती परम पवित्र, अद्भुत चरित्रवाली और निज कृत्यों द्वारा घरमें प्रकाश करती हैं, वे लक्ष्मी कहलाती हैं, इसलिये वे अधिक रक्षा करनेके योग्य हैं ॥ १० ॥ उनसे इर्षा न करे, उनपर क्षमा रखनी चाहिये, उनकी सदा रक्षा करता रहे, देवादिकोंके पूजनेमें उनको अग्रणी करे, अन्न वस्त्रादिक उनको यथायोग्य दे और सदा उनसे सरल और मधुर वचन बोले, परन्तु इनके वशमें होना नहीं चाहिये ॥११॥ पिताको अन्तःपुरका अधिकार दे, माताको पाकशाला अथवा घरकी प्रबंधकर्त्री बनाये, गौओंको आत्मतुल्य वस्तु दे और उनके लिये आप ही खेती करे ॥ १२ ॥ भृत्यजनोंसे व्यवहार करना, पुत्रोंसे ब्राह्मणोंका सेवन कराना, जलसे अग्निकी पूजा करनी, ब्रह्मकुलसे क्षत्रियकुलकी रक्षा करानी और पत्थरोंसे लोहा निकालना ॥ १३ ॥ ऐसे पुरुषोंका तेज जो सर्वत्र स्थानोंमें व्याप्त हो रहा है; वह अपनी योनियोंमें शान्त होता है; कुलमें जो सन्त उत्पन्न होता है, वह सदा अग्निके सदृश तेजस्वी है ॥१४॥ अपमान किये हुए क्षमावान पुरुष इस प्रकार वास करते हैं, जैसे अग्नि काष्ठमें वास करती है, बाहर भीतरके मनुष्य जिसके मन्त्रको नहीं जानते हैं ॥१५॥ सब ओर दृष्टि रखनेवाला राजा दीर्घकालतक ऐश्वर्य भोगता है। भूपतिको चाहिये कि, कार्य करनेके समय कुछ न कहे, सिद्ध होनेपर कार्योंको दिखाये ॥१६॥ जो कि धर्मार्थकामके कार्य हों, ऐसा कहनेसे मन्त्र भेद नहीं होता है, क्योंकि इसका गुप्त रखना ही उचित है, और इन बातोंकी सम्मति करे तो कहां करे ? सुनो–पर्वतकी चोटीपर या बड़े स्थानपर चढ़कर या एकांतमें जाकर ॥१७॥ अथवा तृणरहित वनमें बैठकर, अर्थात् जहां कोई न सुन सके और कोई न जा सके, ऐसे स्थान पर बैठकर मन्त्र किया जाता है, हे भरतवंशी! जो सुहृद नहीं वह मन्त्रके जाननेके योग्य नहीं क्योंकि श्रेष्ठ मन्त्र मित्रोंके ही जानने योग्य है ॥ १८ ॥

और जो मित्र हैं, परन्तु ज्ञानी नहीं, अथवा ज्ञानी भी हैं परंतु जिह्वावशमें नहीं और जो जिह्वा भी वशमें हो, परन्तु चपलहो, तो ऐसे मित्रसे गुप्त बात कहनी उचित नहीं। राजाको चाहिये कि, विना परीक्षा किये अपना मंत्री न बनावे ॥१९॥ क्योंकि मन्त्रीसे अर्थलिप्सा और मन्त्ररक्षण होता है, जो मंत्री सम्पादन करना चाहता है, वह सब कार्योंको सिद्ध कर सकता है, और जो गुह्य (गुप्त) बातोंको मनमें रखना जानता है; वही मन्त्रीपदके योग्य है ॥ २० ॥ और वही धर्मार्थ कार्योंका करनेवाला राजा राजाओंमें श्रेष्ठ है; कि जिसके गुप्त मन्त्रको सभाके सभासद भी नहीं जानते ॥ २१ ॥ जो पुरुष मोहके वशीभूत हो निंदित कार्योंका अनुष्ठान करता है; वह सिद्धिको नहीं पाता, वरन् किसी समयमें जीवितत्त्वसे भी भ्रष्ट हो जाता है, ॥ २२ ॥ उत्तम कर्मका अनुष्ठान परम सुखदायक है, उसका अनुष्ठान न करना अत्यन्त पश्चात्तापको उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥ जैसे ब्राह्मण वेदोंको न पढ़कर श्रद्धा करनेके योग्य नहीं होता, इसी प्रकार सन्ध्यादिक और शत्रुके साथ वर्ताव करनेके लिये छः गुण जिसमें नहीं हों, वह पुरुष परामर्शके योग्य नहीं है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! प्रथम गुण मैत्री १, हानि २, चढ़जाना ३, ठहरजाना ४, फूटकरना ५, सन्धि करना ६ अर्थात् अपनी पहलेसी स्थिति है वा वृद्धि है, अथवा क्षय है, इत्यादि ६ गुण जो राजा भली प्रकार जानता है और जगत् प्रसिद्ध शीलवान है, सब पृथ्वी उसके आधीन रहती है ॥ २५ ॥ जिसके क्रोधसे लोग डरते हैं और हर्षसे लाभ पाते हैं, अपने कार्योंको आप अपने नेत्रोंसे देखता है और अपने भण्डारकी बारंबार रक्षा करता है वही राजा सर्वत्र पृथ्वीका राज्य करता है ॥ २६ ॥ राजाको उचित है कि, नाममात्रसे तृप्त हो और जो क्षेत्र अपने लिये प्राप्त है उसीमें सन्तुष्ट रहे, सम्पत्तिको सेवकों सहित भोगे, परंतु उसको अपनी न समझे, अतः अकेला ही सबके भोगनेकी इच्छा न करे ॥२७॥ ब्राह्मणके स्वरूपको ब्राह्मण जानता है, राजाओंके स्वरूपको राजा जानता है, स्त्रीके स्वरूपको भर्ता जानता है और मन्त्रीके स्वरूपको राजा जानता है ॥ २८ ॥ वध करने योग्य अपराधी अपने हाथ आजाय उस शत्रुको जहांतक अपना वश चले कभी न छोड़े, निःसन्देह मार डाले और शत्रु नीच बनकर अपनी सेवा करनी भी स्वीकार करे तो भी उसको छोड़ना उचित नहीं, क्योंकि छोड़नेसे शीघ्र ही अपकार करता है । दण्ड देनेवालेको शत्रुसे कभी अचेत नहीं रहना चाहिये ॥२९॥ देवता १, ब्राह्मण २, राजा ३, वृद्ध ४, बालक ५, रोगी ६ इनपर क्रोध आवे तो उसको शांत करना चाहिये ॥ ३० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य अज्ञानीकी सेवाको और क्लेशको सदा परित्याग करते हैं इसीसे वे लोग इस लोकमें कीर्तिको पाते हैं, और अनर्थ उनको बाधा नहीं कर सकता ॥३१॥ जिसका प्रसाद निष्फल है, उसका क्रोध भी व्यर्थ है, ऐसे स्वामीको लोग नहीं चाहते; जैसे नपुंसक पुरुषको स्त्री नहीं चाहती ॥ ३२ ॥ धन लाभके लिये नहीं, अज्ञानता दरिद्रके लिये नहीं, जगत्के सनातन वृत्तान्तको ज्ञानी लोग भली प्रकार जानते हैं दूसरा नहीं जानता ॥ ३३ ॥ हे भरतवंशी ! जो पुरुष विद्या शील, स्वभाव, अवस्था, बुद्धि, द्रव्य, और उत्तम कुलमें बड़े हैं उनकी अज्ञानी सदा निंदा करते हैं ॥ ३४ ॥ नीचकर्मी, मूर्ख, दोषदृष्टि, अधर्मी, दुर्वाक्य बोलनेवाले और क्रोधी इन पुरुषोंको शीघ्र ही अनर्थ प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ किसीके साथ छल न करना, दानमर्यादाका अनतिक्रम, यथोचित भाषण, यह गुण जिस प्राणीमें हो उसको शत्रुओंका

वश करना कुछ कठिन नहीं है ॥ ३६ ॥ छलहीन, चतुर, उपकारी, बुद्धिमान्, सरलस्वभाव, ऐसा पुरुष जो निर्धन भी होगा, तो भी इष्ट मित्र तथा सेवक उसकी शुश्रूषा करते हैं ॥३७॥ धैर्यवान्, क्रोधजित, इंद्रियदमन, निर्मल, करुणाकर, मधुर बोलनेवाला, मित्रोंसे द्रोह न रखनेवाला, ये सात गुण सब जगत्में कीर्तिके प्रसिद्ध करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष कुटुम्बादिकको विभाग नहीं देनेवाला, दुष्टचित, अकृतज्ञ और निर्लज्ज है, वह नीच संसारमें त्याग करने योग्य है ॥३९॥ और वह मनुष्य रात्रिमें नहीं सोता, जैसे सर्पवाले घरमें रहनेसे प्राणीको निद्रा नहीं आती ॥ ४० ॥ हे भरतवंशी ! जिन लोगोंमें द्रव्यके आगम और रक्षाका सामर्थ्य हो, उनकी प्रसन्नता देवता लोगोंके समान है ॥४१॥ जो धन स्त्रियोंके हाथमें गया उसको गया ही जानो और जो उन्मत्तोंके हाथ, वा मूर्खोंके हाथ अथवा नीच और अनार्यके हाथमें गया, उसे भी ऐसा ही जानना ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! जहाँ स्त्री या द्यूतकारक सा छलीका अधिकार है और जहां बालक बुद्धिका नरेश आज्ञाकारी है, वहां जो लोग रहते हैं वे ऐसे डूबते हैं, जैसे पाषाणकी नावमें बैठनेवाले नदीमें डूबते हैं ॥ ४३ ॥ जिसके हाथमें अपना कार्य हो, वह चतुर हो वा मूर्ख हो, परन्तु उसके गुण दोषोंपर ध्यान नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे ध्यान देनेसे कार्य भंग हो जाता है ॥ ४४ ॥ द्यूतकारक जिसकी श्लाघा करते हैं, चारणादिक जिसको अच्छा कहते हैं, व्यभिचारिणी स्त्री जिसकी प्रशंसा करती है, वह पुरुष बहुत दिन नहीं जीता ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी ! तुमने उन महाधनुषधारी, महातेजस्वी पाण्डवोंको त्यागकर दुर्योधनके ऊपर ऐश्वर्यका भार रक्खा है ॥ ४६ ॥ इससे थोड़े कालमें उसको भ्रष्ट देखोगे, जैसे ऐश्वर्यमदसे अचेत राजा बलिको तीनों लोकसे भ्रष्ट देखा ॥४७॥

इति श्रीभाषाभागवते उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते विदुरधृतराष्ट्रसंवादे विदुरनीतिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! यह मनुष्य ऐश्वर्य और अनैश्वर्यमें असमर्थ है, ईश्वरसत्ताके अधीन है, जैसे काठकी कठपुतली सूत्रडोरी संचालनवालेके स्वाधीन होती है, यह पुरुष ईश्वरसे प्रारब्धवश किया गया, इस लिये तुम मेरे कानमें कहो, मैं धैर्यवान् हूं ॥ १ ॥ विदुर बोले कि, हे महाराज ! बृहस्पतिजी भी असमयपर वचन कहनेसे निरादर और तिरस्कारको पाते हैं और मेरी तो क्या सामर्थ्य है ? आपकी आज्ञानुसार मैं कहता हूँ, आप सुनिये ॥२॥ जिससे धन प्राप्त होता है, वह प्रिय लगता है और मधुर वचन बोलनेवाला भी प्रिय लगता है अथवा बुद्धि देनेवाला भी प्रिय लगता, है और आश्रय देनेवाला भी प्रिय लगता है, वही इन गुणोंके न होनेसे अप्रिय लगता है, इसलिये इनको प्रिय कहना चाहिये, कारण प्रिय है वह तो प्रिय ही है और मन्त्रमूलबलसे जो प्रिय है वही प्रिय है ॥३॥ द्वेषकर्ता न तो साधु होता है, न मेधावी और न पंडित, प्रियमें शुभ है; द्वेषमें पाप है, जो वस्तु अपने मनको नहीं रुचती उसमें सद्गुण भी हो तो भी दुर्गुण विदित होते हैं और जिस वस्तुमें अपना स्नेह होता है, उसके दुर्गुण भी अपने आपको सद्गुण दिखाई देते हैं ॥४॥ हे राजन् ! दुर्योधनके जन्म लेते ही मैंने आपसे कहा कि आप इस अकेले पुत्रका परित्याग करो, इसके परित्याग करनेसे सौ पुत्रोंका कल्याण होगा और नहीं तो तुम्हारे समस्त पुत्रोंका विनाश होगा ॥५॥ हे राजन् ! उस वृद्धिको अधिक न मानना चाहिये, कि जिसके उत्तरकालमें क्षयकी सम्भावना हो; उस क्षयको भी बहुत मानना चाहिये

कि जो वृद्धिको प्राप्त करे ॥६॥ हे महाराज ! वह क्षय नहीं है, जो वृद्धिको प्राप्त करे । यहाँ वह क्षय है कि, जिसको पाकर सर्वनाश हो और जो क्षयसे पहले वृद्धिलाभ हो उस क्षयको भी प्राप्त करे, यहां वह क्षय है । कोई पुरुष धनसे, कोई गुणसे समृद्ध होते हैं, हमारी समझसे धनाढ्य और गुणहीन, दोनों जनोंका परित्याग करना ही उचित है ॥७।८॥ धृतराष्ट्र बोले कि, हे विदुर ! तुमने जो वचन कहे, वह सब ही मेरे परम हितकारी हैं, परन्तु मैं पुत्रको किसी प्रकार परित्याग नहीं कर सकता, देखो जहां धर्म है, वहां जय होती है ॥९॥ विदुरजी बोले कि, हे राजन् ! जो सर्वगुणसंपन्न हैं, वह कभी विनयके योग्य नहीं है, वह प्राणियोंके किंचित नाश की भी उपेक्षा करते हैं ॥१०॥ जो पुरुष परायी निन्दासे स्नेह मानकर निरन्तर उठकर मनुष्य पर दुःखके उदय और परस्पर विरोधमें यत्नवान् हैं ॥११॥ जिन लोगोंका दर्शन करनेसे अत्यंत दोष है और उनके सहवाससे भी बड़ा ही भय है और उनका धन लेनेमें महादोष है और देनेमें अतिभय है॥१२॥जो भेदनशील, सकाम निर्लज्ज और जड़ हैं, वे पापी कहलाते हैं और सहवासमें भी निंदित हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य दूसरे महादोषों में युक्त हैं, उनका त्याग करना ही उचित है, क्योंकि सौहार्दके निवृत्त होनेपर नीचकी प्रीति विनाशको उत्पन्न करती है ॥१४॥ मित्रभावमें जो फलसिद्धि और सुख है, वह भी नष्ट हो जाता है, अतः वे पुरुष अपने नाश वा निन्दार्थ यथासाध्य प्रयत्नारम्भ करते हैं ॥ १५॥ अज्ञानवश उन लोगोंका अणुमात्र अपकार करनेसे भी वे लोग शांतिपथका अवलम्बन नहीं करते हैं ॥१६॥ बुद्धिमान् जन दूरसे ही ऐसे लोगोंका परित्याग कर देते हैं, हे राजन् ! जो जन दीन, दरिद्री, रोगी और ज्ञातिगणके ऊपर अनुग्रह करते हैं ॥१७॥ उनकी ही बुद्धि होती है, इसलिये आप सत्कर्मका अनुष्ठान कीजिये, ज्ञातिगण गुणहीन हों तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! शुभ कर्म करो और कुलकी वृद्धि भी करनी चाहिये; जो ज्ञातिकी सत्क्रिया करता है, उसका सदा कल्याण होता है ॥ १९ ॥ हे नरेन्द्र । विगुण ज्ञातिजन भी भले प्रकार रक्षा करनेके योग्य हैं; फिर वह गुणवान् और आपकी प्रसन्नता चाहनेवाले जो पाण्डवगण हैं, फिर उनकी रक्षा क्यों नहीं होती ? ॥२०॥ हे विशांपते ! अशेष गुणालंकृत पाण्डवगण बड़े शूरवीर हैं, उनपर आपको अत्यन्त प्रसन्न होना अवश्य चाहिये ॥ २१ ॥ हे नराधिप ? आप अनुग्रह करके पाण्डवोंको आजीविकाके लिये एक ग्राममात्र प्रदान कीजिये, उससे आपका यश संसारमें विख्यात होगा ॥ २२ ॥ हे तात ! आप वृद्ध हैं, आपको पुत्रगणका शासन करना योग्य है, हम सदा आपको हितोपदेश प्रदान करते हैं ॥२३॥ हमको भी आप अपना हितैषी जानो; इसलिए हम आपसे कहते हैं कि, हे तात ! शुभार्थीको ज्ञातिजनोंके साथ भोजन, भाषण और परस्पर प्रीति करनी उचित है, कभी विद्रोह करना नहीं चाहिये ॥

सोरठा—नष्ट होत ऐश्वर्य, शत्रु हँसत सब जगतमें ।
बढ़ो कौन नृपवर्य्य, प्रबल बन्धुसों वैर कर ॥ २४ ॥

इस लोकमें ज्ञातिजन ही तारते हैं और ज्ञातिजन ही विग्रह करके डुबाते हैं । यहां श्रेष्ठ वृत्तधारी और उपकारी पुरुष तारते हैं और दुर्वृत्तधारी और अत्याचारी डुबाते हैं ॥ २५ ॥ हे मानदाता नरेन्द्र ! पाण्डवगणके साथ सुवृत्त होकर जो तुम उनका पालन करोगे तो शत्रुगणको जीतकर अजित होगे ॥ २६ ॥ जो ज्ञातिजन श्रीमान् पुरुषोंको पाकर उसके पास आता है और उसका दुःख दूर नहीं होता तो उसको महापातक लगता है, जैसे मृग विषके

बुझे हुए बाणवाले धनुषको पाकर उस मनुष्यसे उन दीन मृगोंकी रक्षा नहीं होती है तो जैसे वह पापका भागी होता है, ऐसे ही ज्ञातिगणके त्याग करनेवालेको महापाप होता है ॥२७॥ हे नरोत्तम ! थोड़े ही कालके पश्चात् पाण्डवगणका अथवा अपने पुत्रगणका मरण सुनकर तुमको अत्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा ॥ २८ ॥ जिस कर्मके करनेसे खट्वारूढ़ पुरुष दुःखित हो, उचित है कि उस कर्मको-जीवितके अनित्य होनेपर प्रथम ही उस कर्मको न करे ॥ २९ ॥ हे महाराज ! नीतिशास्त्रके कर्ता, भार्गवमुनि, शुक्राचार्यके अतिरिक्त क्या कोई मनुष्य संसारमें अनीति कर्म नहीं करता ! यह बात नहीं, अर्थात् सब लोग नीति विपरीत कर्म करते हैं, इस लिये शेष कालका विचार ही बुद्धि मनोमय स्थित होता है और बुद्धिमान् पुरुष मोहवश अनुष्ठित अनीतिका शीघ्र ही प्रतिविधान कर लेते हैं ॥ ३० ॥ पूर्वकालमें दुर्योधनने पाण्डवोंपर जो पापाचरण किया है, हे नरेश्वर ! आप कुलवृद्ध हैं, इस समय आपको उसका प्रतिविधान करना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे नरोत्तम ! आप पाण्डवगणको राज्यपद प्रदान करके जगत्में यश लाभ लीजिये और निर्दोष बुद्धिमानोंके पूजनीय हो जाइये ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य महात्माजनोंका हितवाक्य विशेष चिन्ता करके कार्य करते हैं, उनका यश दीर्घकालतक प्रकाशित रहता है ॥ ३३ ॥ और कुपात्रोंको उपदेश करना निष्फल होता है, क्योंकि ऐसे मनुष्य उपदेश नहीं समझ सकते हैं और कदाचित् समझ भी गये, तो उनसे वैसा आचरण नहीं हो सकता ॥३४॥ जो विद्वान् उपदेशकी हुई बातोंका ध्यान अपने चित्तमें रखता है, पापफलवाले कर्मोंको आरम्भ नहीं करता और यह समझता है, कि इस कर्मके करनेसे क्या पाप होगा, वह वृद्धि पाता है, और जो पूर्व किये हुए कर्मोंको नहीं विचारता है और फिर भी उसमें प्रवृत्त होता है ॥३५॥ वह दुष्टबुद्धि महाघोर नरकमें डाला जाता है और ज्ञानी पुरुष मन्त्रभेदके इन छः द्वारोंको देखते रहते हैं ॥३६॥ और वृद्धि चाहनेवाला सदा इन छः बातोंको चित्तमें धारण करे,क्योंकि गुप्त बात इन्हीं छः स्थानोंसे फूटकर निकलती हैं—मद्यपान १,निद्रा २,अविज्ञान अर्थात् इधर-उधरकी विना देखे गुप्त बात कह देना ३, नेत्र, मुख आदिका विचार, जो कि आत्म शरीरोत्पन्न है ४ ॥३७॥ दुष्टमंत्रियोंपर विश्वास ५, अकुशल सेवकोंपर विश्वास ६ । हे नराधीश ! जो पुरुष सदा इन छः द्वारोंको जानकर बन्द करता है ॥ ३८ ॥ वह बृहस्पतिजीके सदृश जन भी हो, परन्तु शास्त्राध्ययन और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा विना किये कभी धर्मार्थके तत्त्वको नहीं जान सकता है ॥ ३९ ॥ समुद्रमें गिरा वह गया १, जो अपनी बात किसीसे नहीं कहता उसके कानमें गया वह गया २ ॥४०॥ अज्ञानीको शास्त्र सुनाया वह गया ३, अग्निहोत्र विना होम किया वह गया ४, मेधावी पुरुष बारंबार युक्ति विचारसे इतनी परीक्षा पहले करले, कि कुल कैसा है ? शील कैसा है ? अपने अनुभवमें कैसा आता है ? लोग उसको क्या कहते हैं ? उसकी आकृति प्रत्यक्ष देखना, उसका चातुर्य देखना, पीछे उसके साथ मित्रता करना ॥४१॥ विनय अकीर्तिका नाश करता है और पराक्रम अनर्थका नाश करता है, क्षमा सदा क्रोधको मारती है और आचार अलक्षणका नाश करता है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! सामग्री, जन्मभूमि, स्थान, आचरण, भोजन, वस्त्रके द्वारा कुलकी परीक्षा करे, सिद्धार्थ पुरुषका विपरीत वचन विद्यमान नहीं है ॥ ४३ ॥ बन्धनसे मुक्तशरीर मनुष्योंको भी प्राप्त हुए अभीष्टपदार्थका त्याग नहीं है, फिर कामातुरक्तको क्या कहना है ? ॥४४॥ पहले राजाके पास वास करनेवाले विद्वान, धार्मिक, प्रियदर्शन, मित्रवान्,

सुवाक्य हृदयका सब प्रकार पालन करे ॥४५॥ परन्तु मर्यादाका उल्लंघन न करनेवाला जो पुरुष है वह चाहे उत्तम कुलका हो चाहे नीचकुलका हो, ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी हो ॥४६॥ धर्मका चाहनेवाला हो, चाहे नम्र और लज्जावान् हो, वह पुरुष शतकुलीनसे भी श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ और जो दोनोंका आचरण समान है, प्रकृति समान है, ज्ञान समान है तो दोनोंकी मित्रता अचल होती है कभी जीर्ण नहीं होती ॥ ४८ ॥ और दुर्बुद्धि, अज्ञानी, तृणाच्छन्न कूपके सदृश मनुष्यका ज्ञानी त्याग करे, क्योंकि उससे मित्रता नष्ट होती है; पंडित लोग उन लोगोंके साथ मित्रता नहीं करते जो कि गर्वसे अविवेकी (मूर्ख), क्रोधी, साहसी ॥४९॥ और धर्मसे रहित हैं, उनसे कभी मित्रता न करें । कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवृद्ध, दृढ़भक्तिवाला ब्रह्मज्ञानी, वेदवेत्ता ॥ ५० ॥ जितेन्द्रिय, मर्यादस्थ ऐसे मित्रको वह चाहता है, जो ऐश्वर्यका त्यागी नहीं है । इंद्रियोंके विषयोंका अलग करना मृत्युसे भी कठिन है ॥५१॥ क्योंकि फिर विषयोंमें अत्यन्त प्रवृत्ति देवताओंको भी पीड़ित करती है । सब प्राणियोंसे नम्रता रक्खे १, दूसरेकी निन्दा न करना २, क्षमा ३, धैर्य ४ ॥५२॥ पितरोंका अपमान न करना ५, ज्ञानियोंने ये पांचों गुण ज्ञानकी और आयुकी वृद्धि करनेवाले कहे हैं । जो नीतिमान् पुरुष अपने नष्ट हुए धनके लेनेकी पुनः इच्छा करता है और नीतिपूर्वक प्राप्त करता है, वह सत्पुरुष कहलाता है । और भविष्यकालमें दुःखप्रतीकार जाननेवाला, वर्तमान कालमें दृढ़निश्चयवाला ॥५३॥५४॥ भूतकालमें शेष कार्य जाननेवाला मनुष्य अर्थहीन नहीं होता अर्थात् उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं, मनसा-वाचा-कर्मणासे जिसे निरन्तर सेवन करता है ॥५५॥ वही इस पुरुषको अपनी तरफ हरण कर लेता है, इसलिये पुण्य कर्म करनेकी भावना कर मङ्गलादि (दधि, दुर्वा, रोली, अक्षत, चन्दन) का स्पर्श करना १, सहायकोंकी अनुकूलता २, शास्त्रका ज्ञान ३, उद्योग ४, सरलता ५, ॥५६॥ और सत्पुरुषोंका निरन्तर दर्शन ६, ये छः पदार्थ सब ऐश्वर्यको देते हैं, निरन्तर उपायमें तत्पर होनेवालेको लक्ष्मीका लाभ और सदा मंगल होता है ॥ ५७ ॥ दुःखहीन पुरुष बड़ा होता है और वह अनन्त सुख पाता है, इससे अधिक और दूसरा कोई बड़ा सुख नहीं माना ॥ ५८ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! ऐश्वर्य चाहनेवाले की क्षमा सदा सर्वत्र है, असमर्थ सबको क्षमा करे और सामर्थ्यवान् धर्मके कारण क्षमा करें ॥ ५९ ॥ जिस मनुष्यके अर्थ-अनर्थ दोनों समान हैं, उसकी क्षमा सदा स्थिर है ॥ ६० ॥ जो सुख सेवन करनेवाला भी धर्मार्थसे रहित नहीं है; वह इच्छापूर्वक सेवन करे, परन्तु मूढ़ व्रत (आहारादिकमें हठ) न करे ॥ ६१ ॥ लक्ष्मी उन पुरुषोंके समीप नहीं वसती जो कि,दुःखसे पीड़ित, प्रमत्त, नास्तिक,आलसी,अजितेन्द्रिय और उत्साहहीन हैं॥६२॥ आर्जवयुक्त,आर्जवसे लज्जित मनुष्यको असमर्थ माननेवाले दुर्बुद्धि अनादर करते हैं ॥६३॥ अतिश्रेष्ठ, अत्यन्त गुणवान्, महाशूर, अतिव्रतशील, अतिप्रामाणिक, अत्यन्त दाता,प्रज्ञाभिमानी पुरुषके निकट लक्ष्मी भयसे विश्राम नहीं करती ॥६४॥ यह लक्ष्मी बड़े पुण्यवानोंके पास नहीं रहती और अत्यन्त निर्गुणोंके पास भी नहीं ठहरती, यह दोनोंका ही परित्याग करती है । यह गुणोंको नहीं चाहती और निर्गुणोंसे भी अनुरंजन नहीं करती ॥६५॥ उन्मत्त लोगोंके सदृश यह लक्ष्मी अन्धी है, कहीं ठहरती है, कहीं नहीं ठहरती, इसका कुछ नियम नहीं । हे महाराज ! वेदका फल अग्निहोत्र,अध्ययनका फल सत्स्वभाव और सदाचरण॥६६॥ नारीका फल रति और पुत्र, धनका फल दान और भोग है । जो पुरुष अधर्मोपार्जित अर्थद्वारा परलोक

हितकारी कार्य करते हैं ॥ ६७ ॥ उस दुष्टागमधनसे उनको कुछ भी फललाभ नहीं होता जैसे विकटमार्गमें वृक्षयुक्त वनमें पर्वतमें विपत्तिकारक स्थानमें और उद्यतशस्त्रोंमें सत्य शीलवाले पुरुषको भय उत्पन्न नहीं होता। उपाय, इन्द्रियदमन, संयम, सेनासंचय, चातुर्य, निरालस्य, धैर्य, स्मृति ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ यह बात विचार कर भली प्रकार कर्मारंभ करना चाहिये और इनको ऐश्वर्यका मूल समझना चाहिये तपस्वियोंका बल तप समझो और ब्राह्मणोंका बल वेदविद्या ॥ ७० ॥ नीचोंका बल हिंसा और गुणवानोंका बल क्षमा है। इन आठोंके सेवन करनेसे व्रत भङ्ग नहीं होता, जैसे उदक १, मूल २, फल ३, दुग्ध४, ॥७१॥ होमद्रव्य५, ब्राह्मणेच्छा ६, गुरुवचन, ७ और ओषधी ८। परन्तु इन सबका अन्यद्वारा सेवन न करे जो कर्म अपने प्रतिकूल हो उसके करनेके लिये दूसरोंको भी सलाह न दे॥७२॥क्रोध धन बढ़नेसे होता है, परन्तु शांतिसे क्रोधको जीते और असाधुको साधुकर्मसे जीते दानसे कृपणको जीते सत्यसे असत्यको जीते। ॥७३॥ इन नव पुरुषोंका विश्वास कभी भी न करे, जैसे-स्त्री १, व्यभिचारी २, आलसी ३, भीरु ४, अत्यन्त क्रोधी ५, अभिमानी ६, ॥७४॥ चोर ७, कृतघ्न ८, और नास्तिक ९। सर्वदा नम्र और वृद्धोंके सेवन करनेवाले पुरुषोंके चार गुण अधिक होते हैं ॥ ७५ ॥ कीर्ति १, आयु २, यश ३ और बल ४, ये चार सदा बढ़ते हैं ॥७६॥ अत्यन्त क्लेशसे अथवा अधर्मसे द्रव्यका मिलना, वा शत्रुके प्रणाम करनेसे धनका मिलना सिद्धदायक न होगा, ऐसे द्रव्यकी ओर पण्डित लोग कभी दृष्टि नहीं करते। निरक्षर मनुष्य सोच करनेके योग्य है १, सन्तान उत्पत्ति हीन मैथुन सोच करनेके योग्य है २ ॥ ७७ ॥ निराहार प्रजा सोच करनेके योग्य है ३ और नरेश हीन देश सोच करने योग्य है ४, ये चारों बातें सदा सोचदायक हैं। नित्य मार्ग चलनेसे प्राणियोंका हृदय टूटता है। पानीके झरनेसे पर्वत टूटता है ॥ ७८ ॥ पुरुषोंके वियोगसे स्त्रीका मन टूट जाता है और दुर्वाक्यसे हृदय टूटता है। वेदोंका मल अमर्याद, ब्राह्मणका मल अव्रत ॥७९॥ पृथ्वीका मल वाल्हीक अर्थात् दीमक, मनुष्यका मल अनृत है पतिव्रता स्त्रीका मल कौतूहल है, परदेशमें रहना स्त्री का मल है ॥८०॥ सोनेका मल चांदी है, और चांदीका मल रांग है, रांगका मल शीशा है और शीशेका मल मिट्टी है ॥ ८१ ॥ स्वप्नसे निद्राको न जीते, कामसे स्त्रीको न जीते, ईंधनसे अग्निको न जीते और पानसे मद्यको न जीते ॥ ८२ ॥ क्योंकि इनको ज्यों-ज्यों बढ़ाते हैं, त्यों २ अधिक बढ़ते जाते हैं; अतः इनको बढ़ाना अच्छा नहीं, जिसने लेने-देनेसे मित्रता को जीता, जिसने युद्धसे शत्रुको जीता, अशन-बसनसे स्त्रीको जीता ऐसे पुरुषका जीवन सफल है ॥ ८३ ॥ हे धृतराष्ट्र! दरिद्री और धनी दोनों ही अपनी आजीविकाका निर्वाह करते हैं, इस पृथ्वीपर ऐसा कोई नहीं है जो अपनी आजीविकाका निर्वाह नहीं कर सकता, इसलिये आप अपनी दुराशाका परित्याग कीजिये और जो कुछ परमेश्वरने दिया है उसीमें मनको सन्तुष्ट कीजिये ॥८४॥ यदि एक ही पुरुषको इस पृथ्वीका समस्त धन, पशु, स्त्री आदि प्राप्त हों तो उसको भी तृप्तिलाभ न होगा, साधुगण यही विवेचना करके मोह रूप कूपमें निपतित नहीं होते हैं ॥८५॥ हे राजन्! फिर भी मैं आपसे बारंबार कहता हूं कि, आप अपने पुत्रोंको और पांडवोंको समान समझकर दोनोंपर व्यवहार कीजिये, क्योंकि वह तुम्हारे ही सहारेसे हैं और तुमको अपना जानते हैं ॥

सोरठा-शिशुपनते पितुहीन, पालो तिन्हको पुत्र सम।
सुन क्षितिपाल प्रवीन, अब न तिनहिं त्यागे बने ॥

सब विधि कहत बुझाय, जहँलों पार बसाय है।
नातरु नीति सुभाय, होउँ अदोषी जगत्में ॥

इति श्रीभाषाभागवते उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते विदुरधृत-
राष्ट्रसंवादे विदुरनीतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

विदुरजी बोले कि, हे महाराज ! जो जन सज्जनोंसे पूजित होकर गर्वपरित्याग-पूर्वक अर्थोपार्जन करते हैं, वे अतिशीघ्र ही यशस्वी होते हैं, प्रसन्न समस्तजन सुखके योग्य हैं ॥१॥ दूसरेसे धर्महानिको न पानेवाला जो मनुष्य अधर्मयुक्त महा अनर्थको भी परित्याग करता है, वह सब क्लेशोंसे निवृत्त होकर सुखसे सोता है जैसे सर्प जीर्ण कांचलीको त्यागकर सुख पाता है॥२॥ झूंठ बोलकर जय पाना, राजाके समीप पैशुन करके उपद्रव करना, गुरु तथा वृद्ध तथा जनों के साथ कपट करना ये सब ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ३ ॥ क्योंकि परगुणमें दोष लगाना पूर्ण मृत्यु है, अति विवादसे लक्ष्मीका विनाश होता है। विद्याके तीन शत्रु हैं जैसे गुरुकी सेवा न करना, पढ़नेमें शीघ्रता करना, अपने मुखसे अपनी श्लाघा करना ॥ ४ ॥ और आलस्य, मद, मोह, चपलता, गोष्ठी, ढिठाई, अभिमान, लोभ ये भी विद्याओंके महादोष हैं ॥५॥ सुखार्थियोंको विद्याका लाभ नहीं होता और विद्यार्थियोंको सुख सम्भव नहीं होता इसलिये सुखार्थी विद्याका और विद्यार्थी सुखका परित्याग करें ॥ ६ ॥ अग्नि काष्ठसे तृप्त नहीं होती और महासमुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता, सर्व प्राणीमात्रसे मृत्यु तृप्त नहीं होती और पुरुषोंसे व्यभिचारिणी स्त्री तृप्त नहीं होती ॥७॥ आशा धैर्य्यका नाश करती है, काल पदार्थका नाश करता है, क्रोध लक्ष्मीका नाश करता है, कृपणता कीर्तिका नाश करता है, अपालन पशुओंका नाश करता है और अकेले ब्राह्मणका क्रोध सब देशका नाश करता है ॥८॥ बकरी, घोड़ा, कांसीका पात्र, चांदी, सोना, मद्य, विषयोंकी प्राप्ति, पक्षी, वेदपाठी, वृद्धज्ञाति, पीड़ित ये सब सदा आपके यहां हैं ॥ ९ ॥ हे महाराज ! बकरी, वृष, चन्दन, वीणा, आदर्श, दर्पण, मधु, घृत, जल, ताम्रपात्र, शंख, शालग्राम, चन्दनादिक गन्ध ॥ १० ॥ ये सब धनदायक वस्तु घरमें रखने योग्य हैं ! देवता ब्राह्मण और अतिथिगण पूजाके साधनार्थ हैं, यह मनुजीने कहा है ॥ ११ ॥ हे तात ! सब पुण्य कर्मोंसे श्रेष्ठ, पवित्र और उत्सवतुल्य पदको मैं आपसे कहता हूं—कामके लिये वा लोभके लिये अथवा जीवके लिये धर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि प्राणरक्षाके लिये भी धर्मका त्याग न करना, धर्म ही जगत्में सबका जयदाता है, अधर्मसे कभी जय नहीं होती ॥१२॥ धर्म नित्य पदार्थ है और सुख-दुःख अनित्य हैं। जीवात्मा नित्य है, परन्तु इस जीवका कारण अविद्या अनित्य है, इसलिये अनित्यको छोड़कर नित्य अविद्याहीन आत्मामें स्थित हो, जिसका कभी नाश नहीं होता, ऐसा जो नित्य पदार्थ परमेश्वर है, उसमें निष्ठा रखकर सन्तुष्ट रहे, जिसमें श्रेष्ठ सन्तोष है, वही परम लाभवान् है ॥१३॥ देखिये ! बड़े-बड़े बलवान् और महापराक्रमी राजागण विपुल धनधान्यपरिपूर्ण पृथ्वीपर आज्ञा कर राज्य और बड़े-बड़े भोगोंको छोड़कर कालव्यालके वशीभूत हुए ॥ १४ ॥ हे राजन् ! महाकठिन दुःखसे पाले हुए पुत्र मरने के उपरान्त अपने घरसे उठाकर उसको दूर ले जाते हैं और मुक्तकेश स्त्रियां करुणा कर-कर रुदन करती हैं; और चिताग्निमें उसको काष्ठवत् डाल देते हैं ॥ १५ ॥ प्रेतधनको अन्यजन सम्भोग करते हैं और उसका शरीरगत धातु सब अग्निमें दग्ध

होता है,अथवा पक्षी और जलके जीव उसका भक्षण करते हैं,वह केवल पुण्य और पापसे परिवृत होकर परलोक गमन करता है ॥१६॥ हे पिता ! जैसे फलपुष्पहीन वृक्षको पक्षीगण परित्याग करते हैं, वैसे ज्ञाति, सुहृद और पुत्रगण मृतकको छोड़कर सब लौट आते हैं ॥१७॥ केवल किया हुआ स्वकर्म ही उस अग्निहुत प्राणीका साथी होता है और कोई संग नहीं जाता, इसलिये पुरुषको चाहिये कि, यत्नपूर्वक धीरे-धीरे धर्मका ही सञ्चय करके गठरी बांधे ॥ १८ ॥ इस मृत्युलोकके ऊपर जैसे स्वर्गलोक है, ऐसे ही नीचे पाताल लोकमें बड़ा तमोगुण रूप अन्धकार (अन्धतामिस्र नरक) स्थित है, निश्चय वह इंद्रियोंका महामोह है, इसलिये हे महाराज ! आप सावधान हो कि जिससे महामोहदायक नरक कहीं आपको स्पर्श करना न पड़े ॥१९॥ यदि आप मेरे इस उपदेशको सुनकर हृदयमें धारण करेंगे तो इस लोकमें यशस्वी होंगे और परलोकमें निर्भय स्वर्गभोग करोगे ॥ २० ॥ हे भरतवंशी ! यह जीव एक परम पवित्र है और आत्मा नदीरूप है, पुण्य उसका तीर्थ, सत्य उसका जल, धैर्यरूप उसका तट और दयारूप उसकी तरंगें हैं, लोभहीन, पुण्यात्मा पुरुष इस नदीमें स्नान करके पवित्र होते हैं ॥२१॥ कामक्रोधरूप ग्राह; पञ्चेंद्रियरूप जल रखनेवाला यह संसाररूप सरोवर है, उसमें धैर्यरूप नौका बनाकर जन्मरूप दुःखसे पार हो ॥२२॥ जो पुरुष बुद्धिमें, धर्ममें, विद्यामें और अवस्थामें अपने बड़े भाई बन्धुओंको पूजन कर संतुष्ट रखते हैं और जो कुछ कार्याकार्य करते हैं, उसमें परस्पर बैठकर सम्मति कर लेते हैं, वे कभी मोहित नहीं होते ॥ २३ ॥ धैर्यसे लिंग और उदरकी रक्षा करे, नेत्रोंसे हाथ-पांवकी रक्षा करे, मनसे नेत्र-कानोंकी रक्षा करे और कर्मोंसे मन और वाणीकी रक्षा करे ॥ २४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य स्नानाचमनसम्पादन, नित्य यज्ञोपवीत-धारण, नित्य वेदाध्ययन, पतितान्नपरित्याग, सत्य वाक्य प्रयोग और गुरुके कार्य साधन करता है, उसको ब्रह्मलोकसे च्युत नहीं होना पड़ता ॥२५॥ वेदपाठक, अग्निहोत्री, समरमें तनु त्यागनेवाला, यज्ञकर्ता,प्रजापालक और गौ-ब्राह्मण के लिये तनुपर्यन्त त्यागनेवाला क्षत्रिय स्वर्गवासी होता है ॥ २६ ॥ जो वैश्य वेद पढ़कर समयपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और आश्रित गणको धन विभाग कर, नेत्राग्निसे पवित्र धूमको सूंघते हैं, वे सपवित्र तनु त्यागकर सुरपुरको गमन करते हैं ॥ २७ ॥ जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी यथायोग्य न्यायसे सेवा करके अपने पापको दग्ध कर सकता है,वही अंतःसमय स्वर्ग-लोकमें सुख भोगता है ॥२८॥ हे महाराज ! हमने चारों वर्णोंका यह परमधर्म इसलिये आपसे कहा कि, युधिष्ठिर प्रजापालन करके क्षात्रधर्मसे परिच्युत होते हैं, अब आपको उचित है कि, उनको राजधर्म (पृथ्वीपालन रूप) में युक्त करो ॥२९॥ धृतराष्ट्र बोले–कि धीरे-धीरे यह भी हो जायगा, परन्तु अब कोई ऐसा उपाय बताओ कि, जिससे यह विद्रोह दूर हो जाय; विदुरजी बोले कि हे नरेन्द्र ! जिस बात पर विग्रह है, उसीको आप कहते हो कि, धीरे-धीरे हो जायगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सत्य है, दैवकी गति किसीसे जानी नहीं जाती, सत्य पूछो तो युधिष्ठिरके समान शीलवान् और साधु होना कठिन है, क्योंकि आजतक उसने आपके सम्मुख आँख उठाकर नहीं देखा और आपको पिताके समान मानता रहा, जो ऐसे ही साधु आपके पुत्र होते तो कभी विरोध न होता। यह सब दुर्योधन, कर्ण, दुःशासनादिककी अनीति है–

चौ०–पाण्डु सुतनकी कछु न अनीती ❋ उन अपने बल जो महि जीती ॥
सोऊ देत न पुत्र तुम्हारे ❋ फिरहिं बिचारे वन वन मारे ॥

थोरो बहुत देहु धन उनको * करहु प्रसन्न भीम अर्जुनको ॥
तजहु अनीति नीति उर धारो * आपहि अपनो न्याय विचारो ॥
सब कुटुम्ब इक ठौर समेटो * दायभाग दे विग्रह मेटो ॥

हे तात ! आप भली-भांति विचारकर देख लीजिये, यह सब आपकी ही लाज है, नहीं तो भीम और अर्जुनने अब तक तुम्हारे सब पुत्रोंको मारकर छारमें मिला दिया होता और आप उनका किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं करते और इतना भी नहीं समझते कि, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनचन्द्र यदुनायकसे उनके सहायक, भला फिर उनको क्या भय है ? वे तो कालसे भी लड़नेको उपस्थित हैं, परन्तु अर्जुन जब ही धनुष बाण उठाता है और भीम अपनी गदा हाथमें लेता है, युधिष्ठिर उसी समय रोक देता है कि, अभी धैर्य धारण करो। हमारे पिता बैठे हैं, जिन्होंने हमको बालकपनसे पाला है, वे हमारा भली प्रकार न्याय करेंगे, किसी प्रकारका सन्देह मत करो। अब हे नाथ ! आपको उचित है कि दुर्योधनको समझाओ और इस वंशकी आगको बुझाओ और इनको कुछ दे दिलाकर यह झगड़ा मिटाओ। यह बात आपसे हितू समझकर कहता हूं, जिससे वंशका विध्वंस न हो और रीति-प्रीति बनी रहे, परन्तु इतना हम कह देते हैं कि, जब तक भीम अर्जुनको युधिष्ठिर आज्ञा नहीं देते तबहीतक भलाई है। अन्तमें बड़ा उपद्रव मचेगा, क्योंकि पाण्डुसुत बड़े क्रूरकर्मी, समरविजयी, कुटिलस्वभाव, महासाहसी, परम जुझार संसारमें प्रसिद्ध हैं। उनको तुम भली-भांति जानते हो कि वे कालसे भी नहीं डरते, यक्षराजको अर्जुनने जीता वह आपको भली भांति विदित होगा; लंकापुरीसे सहदेवने दंड लिया वह आपने देखा ही होगा। सम्पूर्ण पश्चिमदेशके यवनोंको नकुलने पराजित किया वह आपने सुना ही होगा। महादेवको धनञ्जयने परास्त किया वह भी सारे संसारमें प्रकट ही है, ऐसे बलसाली महाबलवान् पाण्डुपुत्रोंसे वैर करके क्या फल पाओगे ? हे नरेन्द्र ! क्या आपने रावण और बिभीषणका इतिहास नहीं सुना ? कि जिसके भयके मारे देवता घरोंको छोड़-छोड़ कर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जा छिपे थे, जिसने अपनी भगनी शूर्पणखाके नाक-कान काटनेका रामचन्द्रसे बदला लिया था अर्थात् आदि शक्ति जानकीजीका हरण किया और अपने मनमें कुछ शङ्का नहीं मानी। दशों दिक्पाल जिसका नाम सुनकर थर-थर कांपते थे, ऐसे तेजपुञ्ज समरविजयी महाबलवान् रावणका भी घरके विद्रोहसे पुत्र-पौत्र सहित विनाश हो गया, एक क्या ? ऐसे ऐसे सहस्रों वंश घरकी फूटसे विध्वंस हो गये, कहां तक गिनाऊँ, आप क्या नहीं जानते ? होनी बलवान् है, उससे किसीकी नहीं बसाती ॥ ३२ ॥

इति श्रीशालग्रामवैश्यकृते–विदुरनीतिभाषानुवादे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इति विदुरनीति समाप्त ॥

१. कवित्त–भीम और अर्जुनसे योधा कहूं सुने नाहि, बड़े-बड़े बलियोंके दलके दल मारे हैं। ऐसो नाहि वीर कोउ धीरको धरैया आज, इनके जो सम्मुख हो रणमें ललकारे हैं॥ द्यूतक्रीड़ामें ही कालक्रीडासे दिखायी देते, मुश्किलसे युधिष्ठिरने क्रोधसे निवारे हैं। ब्रह्माकी न माने जब मनमें अतिक्रोध बढ़ा तुम्हारे सौवों पुत्रोंके प्राण लेनवारे हैं॥ अहो धृतराष्ट्र ! आज कहत हौं समाजमाहि तेरे हित चितकी सुखदानी वानी है। मेरो कह्यो नेक नीके सुन लीजे कान देके पाण्डवनको भाग देना नीतिकी निशानी है॥ ना तौ सब क्षत्रिनकी क्षय ह्वै है, होनहार होनी सो तो प्रकटही जानी है। एक घर होनी दूजी धनहूकी हानी होत, तीजे प्राणहानी एक हानीको न हानी है॥

जो जो विपत्ति युधिष्ठिरके सहने योग्य न थी, वह-वह भी उसने सही, उस असह्य अपराधके सहनेवाले युधिष्ठिरका अंश तुम दे दो। सब भ्राताओं सहित सर्परूपी भीमसेन क्रोधसे श्वास ले रहा है, जिससे तुम सदा भयभीत रहते हो ॥ ११ ॥ विदुरजी फिर कहने लगे, हे धृतराष्ट्र ! तुम भीमसेन और अर्जुनके समान बलवान् नहीं हो और अपने मनमें यह अभिमान मत करो कि मेरे बहुतसे पुत्र हैं; क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि पाडण्वोंके पृष्ठरक्षामें श्रीयदुनायकका हाथ अग्रसर है और उनको श्रीमुकुन्दने निजभावसे ग्रहण किया है और वह मुकुन्द स्वयं भगवान् हैं, जिनके साथ सब देवता और मुनीश्वर हैं, अपनी द्वारिकापुरीमें विद्यमान हैं, कहीं चले नहीं गये हैं, फिर वे द्वारकानाथ यदुवंशीय राजाओंके पूज्य हैं और उनके सङ्ग यदुवंशी भी बलवान् और एक-एकसे गुणनिधान हैं और जिन वसुदेवकुमार वासुदेव भगवान्ने बड़े-बड़े राजाओंको जीतकर स्वाधीन किया, इसलिये सब राजा लोग भी उनके पक्षमें सहायक हैं, इससे केवल अपने पुत्रोंकी धीरता और वीरताका जो अभिमान है, उसको छोड़कर पाण्डवोंको उनका भाग दे दो ॥ १२ ॥

चौ०–भीषम द्रोण कर्ण कृप चोखे ❋ रहहु न नृप तुम इनके धोखे ॥
जहाँ कृष्ण तहँ रामहुँ हैहैं ❋ यदुवंशी तव ओर न जैहैं ॥
जहाँ धर्म तहँ रहत मुरारी ❋ जहँ केशव तहँ विजय विचारी ॥

दोहा–नर देवासुर दैत्यके, जीतनहार मुरारि ।
वैर करत तिनसों वृथा, देखहु सोच विचारि ॥

इसलिये बारम्बार मैं तुमको समझाता हूँ कि तुम बड़े हो और वे तुम्हारे पुत्र हैं उनको अपना बेटा समझकर थोड़ा बहुत कुछ दे दो, जिससे उनके आंसू बन्द हो जायँ ॥१३॥ सो यह श्रीकृष्णसे विमुख दुर्योधन विनष्टश्री होकर दोषरूपधारी तुम्हारे घरमें घुसा है, जिसको तुम पुत्रबुद्धिसे पुष्ट करते हो, कृष्णविमुख श्रीनष्ट एक दुर्योधनको कुलकी कुशलताके अर्थ शीघ्र त्याग करो, जिससे कुलका विनाश न हो वही अपत्य है ॥१४॥ अत्यन्त शीलवान् विदुरजी उस सभामें ऐसा कह रहे थे कि, इसको सुन दुर्योधनको अत्यन्त कोप बढ़ा, होठ फड़कने लगे और वह लाल-लाल नेत्र कर बोला–इस दुष्टको यहांसे निकालो इसी प्रकार कर्ण, दुःशासन, शकुनिने भी उनका तिरस्कार किया। उन्होंने कहा था–इस कपटीको यहां किसने बुलाया है; यह दासीपुत्र हमारा पाला हुआ हमारे ही प्रतिकूल शत्रुओंकी कुशल चाहता है, इसलिये इस जीते हुए अमंगलीकको शीघ्र नगरसे निकालो–

चौपाई–खाय हमारी जूठ जुठाई ❋ अब हमहींसों करत खुटाई ॥

॥ १५ ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सम्मुख दुर्योधनके वचनबाणसे विद्ध हो कहा कि ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसा ही है, ऐसे मनमें विचार विदुरजी अपने धनुषको द्वारपर रखकर तीर्थयात्राको चल दिये ॥१६॥ कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुरसे निकल अपने चरणोंसे हरिके क्षेत्रोंको पवित्र करने चले गये, पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ ब्रह्म, रुद्र आदि अनेक रूप हो आप निवास करते हैं, वहाँ-वहाँ सब क्षेत्रोंमें गये ॥ १७ ॥ पुरोंमें पुण्यदाता जो

१. शंका–यमराजके हृदयमें सदा अपने राज्यकी प्रीति और अनरीति बनी रहती है, वही यमराज विदुरजी हुए तो विदुरजीने यमराज बनकर तीर्थसेवन आदि उत्तम क्रिया क्यों की ? यमराजका वश चले तो दूसरा जीवभी उत्तम कर्म नहीं करने पाये, फिर विदुरने यमराज बनकर यह शुभकर्म क्यों किया ? और मनुष्य जिस योनिमें जन्म लेता है उस योनिकी प्रकृति महाकठिनतासे छूटती है, फिर विदुरजीसे यमकी प्रकृति क्यों छूट गयी ? जो तीर्थयात्रा करने लगे ॥

उपवन उनमें, पर्वतोंमें, कुंजोंमें, सरोवरोंमें, अपङ्क नदियोंमें, ईश्वरके चिह्नोंसे सुन्दर अलंकृत जो-जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्र हैं, उन सबमें अकेले विदुरजी विचरते फिरे ॥ १८ ॥ एकांत वृत्ति, शान्तस्वभाव, पवित्र आत्मा, सदा सब तीर्थोंमें स्नान करते हैं, पृथ्वी पर शयन करते हैं, शरीरके संस्कार नहीं करते, अवधूत वेषसे रहते हैं, वल्कल वसन पहिन, रूपको छिपाकर, अवधूत वेष बनाकर व्रत करने लगे, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो ॥ १९ ॥ इस भांति भारतवर्षमें विचरते-विचरते बहुत दिन हो गये। उस समय राजा युधिष्ठिर श्रीपुण्डरीकाक्ष कृष्णचन्द्रकी सहायतासे पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करते थे ॥ २० ॥ जैसे बांसोंके बनमें बांसोंके रगड़नेसे अग्नि निकल बांसोंको जलाकर निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रभास क्षेत्रमें अपने सुहृद कौरव पाण्डवोंका विनाश सुना कि, परस्पर ईर्षा करके भस्म हो गये; उनका अत्यन्त शोक किया, फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वतीके निकट गये ॥ २१ ॥ उस सरस्वतीके निकट एकादश तीर्थ हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिवतीर्थ १, शुक्राचार्यका मन्दिर २, मनुका स्थान ३, पृथुका भवन ४, अग्निकुण्ड ५, शनिश्चरका चित्र ६, वायुका वासस्थान ७, सुदासराजाकी प्रतिमा ८, गोशाला ९, स्वामिकार्तिकका मंदिर १०, श्राद्धदेवमनुकी सभा है ११, इन सबका विदुरजीने सेवन किया ॥ २२ ॥ और भी ऋषियोंके, देवताओंके बनाये हुए, विष्णुके स्थान वहां पर हैं, जिनमें विष्णुके संपूर्ण अंगकी शोभा करनेवाले आयुधोंमें मुख्य जो सुदर्शनायुधसे चिह्नित शोभायमान अनेकानेक प्रकारके मंदिर हैं, उनके दर्शनसे श्रीकृष्णका स्मरण होता था, वहाँ-वहाँ मज्जन करते फिरते थे ॥ २३ ॥ सुराष्ट्र, ऋद्ध, सौवीर, मत्स्य, कुरु, जांगल इन सब देशोंको यथाक्रम उल्लंघन करके यमुना पुलिनपर आये, वहाँ परम भागवत उद्धवको देखा ॥ २४ ॥ श्रीकुंजविहारीके अनुचर प्रशांत बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहले विख्यात शिष्य उद्धवको हृदयसे लगा विदुरजी मिले और भगवत्‌की प्रजा और अपने इष्ट-मित्रोंके कुशलकी विदुरजीने जिज्ञासा की ॥ २५ ॥ और फिर पूछा कि रामकृष्ण कुशल हैं, जिस पुराणपुरुषने अपनी नाभिमेंसे पैदा हुए ब्रह्माजीकी सेवासे प्रसन्न हो यहां अवतार लिया और पृथ्वीका कुशल विधानकर अब इस समय अवकाशसे शूरसेनके गृहमें विराजते हैं ॥ २६ ॥ कुरुके परम सुहृद हमारे भगिनीपति परमपूज्य वसुदेवजी कुशल हैं ? जो अति उदार वसुदेवजी अपने जामात्रोंको बहुत धन दे तृप्त कर शूरसेनके समान सदा धन-दान देते रहे हैं ॥२७॥ सब सेनाके सेनापति, यादवाधीश, महावीर प्रद्युम्न कुशल हैं ! जिन मदनके अवतारको रुक्मिणीने पूर्वजन्ममें अनेक प्रकार आराधना कर पाया है ॥

दोहा—जेहि सम्मुख सुर असुर नृप, महारथी बरजोर ।
बाण धार धावत धुवें, धधक चरैं चहुँ ओर ॥ २८ ॥

सात्यकी, वृष्णि, भोज, दास, अर्हक, इनके स्वामी उग्रसेन महाराज सुखी हैं ? नृपासन आशात्यागी उग्रसेनका कमलनयन भगवानने स्वयं नृपासन त्याग अभिषेक किया ॥

उत्तर—यह तुम्हारा वचन बहुत सत्य है कि, सब प्राणियोंकी प्रकृति महाकठिनतासे छूटती है, परंतु उसी महादुःखसे छूटनेवाली प्रकृतिको महात्मापुरुषोंकी संगति नीच प्रकृतिको भी उच्च प्रकृति कर देती है। दुष्ट जीवोंको त्रास देनेवाले यमराज हैं, महात्मा पुरुषोंसे वह भी डरते हैं और विदुरजीने तो व्यासजीके अंशसे जन्म लिया था इसलिये यमराज विदुर रूप होकर कर्मोंको त्याग उत्तम क्रिया करने लगे और व्यासजी महाराजकी ही कृपासे विदुरजी भगवानके भक्त हुए।

॥ २९ ॥ हे सौम्य ! उद्धव, महारथियोंमें अग्रगण्य बृन्दावनविहारीके समान् शीलवान् जैसे पूर्वजन्ममें शैलसुता भवानीने स्वामिकार्तिकको उत्पन्न किया, उसी प्रकार व्रत करके जाम्बवतीने जिन्हें उत्पन्न किया, वे श्रीकृष्णतनय साम्ब अच्छे हैं ॥ ३० ॥ जो गति यतियोंको महादुर्लभ है वह श्रीयदुनायककी सेवासे सहजमें प्राप्त हुई ॥

दोहा-धनुर्विद्या जेहि पार्थ सों, पढ़ी महारणधीर ।
बड़ो मित्र श्रीकृष्ण को, दायक अरि उर पीर ॥

वह शान्त रूप सात्यकी सुखी है ? ॥३१॥ अत्यन्त बुद्धिमान् निष्पाप भगवतके शरणगत आठों याम श्रीकृष्णके प्रेमरसमें जो मग्न, सब लज्जाको तज व्रजकी रजमें लोटनेवाले श्वफल्कसुत अक्रूर तो आनंदसे हैं ? ॥ ३२ ॥ देवकनाम भोजकी कन्या, अदितिके समान, सब जगत्के स्वामी आदि ब्रह्म अविनाशी त्रिलोकीनाथ जिनके पुत्र, श्रीकृष्णचन्द्र आन्दकन्दको जिन्होंने गर्भमें इस प्रकार धारण किया जैसे वेदत्रयी यज्ञके विस्तृतको धारण करती है, वह देवकी प्रसन्न हैं ? ॥ ३३ ॥ आपके भगवान् उपासकोंकी कामनाके दाता अनिरुद्धजी तो कुशल हैं? जिनको शब्द शास्त्रके कारण मनोमय अन्तःकरणके चतुर्थतत्त्ववेद मानते हैं॥३४॥ हे विद्वज्जन ! अपने आत्मदेव अनन्य वृत्तिसे जो और भगवत्परायण हैं, वे सुखी हैं ? हृदिकादिक सत्यभामाके पुत्र और-

दोहा-चारुदेष्ण गद आदिकी, उद्धव कहिये क्षेम ।
जिनपै निज सुतते अधिक, कुन्तीको दृढ़ प्रेम ॥ ३५ ॥

अनुज श्रीकृष्ण अपनी भुजाओंसे धर्मावतार युधिष्ठिर धर्मके सेतुकी रक्षा करते हैं,जिनकी सभामें विशेष जयकी अनुवृत्ति और सम्राट्पनकी लक्ष्मीसे दुर्योधन तपता हुआ ॥ ३६ ॥ अपराधकारी कुरुओंमें क्रोधी भीमसेन सर्पके सदृश महाघोर श्वास लेनेवाला गदा ग्रहण कर विचित्र मार्गोंमें विचरे-जिस भीमसेनके चरणकी धमक धरती नहीं सहन कर सकती, वह पवनपुत्र भीमसेन प्रसन्न हैं ? ॥ ३७ ॥ महारथी यूथपोंमें यशस्वी शत्रुनाशक अलक्षित जिनके बाणोंसे मायासे ठगे हुए भीलरूप धारण किये हुए भूतनाथ प्रसन्न हुये वह गांडीवधनुषधारी इन्द्रसुत अर्जुन अच्छी तरह हैं ? ॥३८॥ और माद्रीके पुत्रोंको भी तुमने देखा, जिनको कुंती पुत्रसमान पालन करती है और जिस प्रकार पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार रक्षा की, शत्रु इन्द्रके मुखसे जैसे गरुड़ अमृत लाये उनके सदृश युद्ध करके जो बरजोरी अपना भाग लेकर विहार करते हैं, वे प्रसन्न हैं ? ॥३९॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि पाण्डुराजर्षिके विना केवल पुत्रोंकी रक्षाके अर्थ कुन्ती जीवन धारण करती है । एक ही वीर जिन पाण्डुने एक धनुष लेकर अकेले चारों दिशाओंको जीतकर शत्रुओंका विनाश किया ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव ! हमारा ज्येष्ठ बन्धु जो अभिमानके मदमें अन्धा हो रहा था, और अपने नगरसे मुझको निकाल दिया-

दोहा-पाण्डु सुतन सों द्रोह कर, निज पापिन सुतनेह ।
अवशि नरकमें सो गिरत, यह मोहि अति सन्देह ॥

परन्तु यह तो कहिये वह आनन्दसे है ? ॥ ४१ ॥ मनुष्योंमें अवतार धर नरलीला कर, मनुष्योंके बुद्धिके चलायमान कर्ता, सब संसारके धारक श्रीवृन्दावन-विहारीके प्रसादसे मैं परमपदवीको प्राप्त कर, विषाद-रहित हो सब पृथ्वीपर विचरता फिरा और अपने

रूपको ऐसा छिपाया कि किसीने मुझको नहीं पहचाना ॥ ४२ ॥ "विद्यामदो धनमद-स्तथैवाभिजनो मदः ॥ एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः ॥" "अर्थ-विद्या, धन, जाति, ये तीन मद हैं; जो मदांध होते हैं उनको यह तीनों मद चढ़ते हैं। परन्तु सन्तोंके ये ही दम हैं, इन तीनों मदोंसे युक्त होकर जो सेनासे सब धरतीको चलायमान करते हैं, उनको वध करनेवाले शरणागतोंके कष्ट हरनेवाले देवकीनन्दनने कौरवोंका अपराध क्षमा किया" ॥ ४३ ॥ राजा परीक्षितने कहा-"हे कृपासिंधु ! वह कौनसा अपराध था जो त्रिलोकीनाथने क्षमा किया था ?" श्रीशुकदेवजी बोले-हे नृपाल ! जब श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकासे हस्तिनापुरमें आये थे और दुर्योधन व धृतराष्ट्रको समझाकर द्वारका जानेकी इच्छा की, तब कर्ण शकुनि, दुःशासन, दुर्योधनसे परामर्श करने लगे कि, भाई ! कृष्ण हमारी भलाईमें नहीं है, हमारे कुलका नाश चाहता है और पांडवोंका सहायक है, अर्जुन भीम भी इनके बलसे बलवान् हो रहे हैं और वे इन्हींके भरोसेपर हमसे भाग मांगते हैं, जो अब दैवयोगसे कृष्ण यहां आजायँ तो जाने न पायें, उन्हें पकड़कर कारागारमें बन्द कर दो; फिर जो कुछ सन्देह है, सब मिट जायगा। तब पाण्डवोंका परास्त करना कुछ बड़ी बात नहीं, कृष्णको यहां आने तो दो, इधर इस वृत्तांतसे सात्यकी अवगत हुए और श्रीकृष्णचन्द्रके समीप जाकर कहने लगे कि-प्रभो ! कौरवोंने यह परामर्श किया कि यदि श्रीकृष्णचन्द्र यहां आयें तो उनको पकड़कर बन्दीगृहमें बन्द कर दो, इस कारण यदि आप वहां चलें तो कुछ सेना संग ले लीजिये, यह सुनकर करुणानिधान बहुत हँसे और रथपर चढ़ कौरवोंकी सभामें चले; जब द्वारपर पहुँचे तो द्वारपालोंने कहा कि-"महाराजकी यह आज्ञा है कि श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई दूसरा सभामें न आये,आज एकान्तमें ही परामर्श है" श्रीकृष्णजी बोले "हम अकेले ही जायँगे" जब श्रीभगवान् चले तो उनके पीछे सात्यकी और कृतवर्मा चलने लगे, उनको द्वारपालोंने निवारण किया, परन्तु वे लोग कब मानते थे, झट पहरियोंको ढकेल ढकाल भीतर चले गये, तब द्वारकानाथ सात्यकीका हस्त धारण कर कौरवेशकी सभामें पहुँचे जहां कर्ण, दुःशासन, शकुनि,दुर्योधन बैठे थे। इनको देख सब उठ खड़े हुए और आदर-सत्कार से इन्हें आसन दिया और सात्यकीको भी ऊँचे आसन पर बैठाया। तब सात्यकीने सभामें पुकारकर कहा-"वह कौन बलवान् है जो कहता था कि हम कृष्णभगवान्को पकड़ कर कारागारमें बन्दी करेंगे; वह हमारे सम्मुख आये। अब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द सभामें उपस्थित हैं, वह अपनी मनःकामना पूर्ण करले" सात्यकीका यह वचन सुन-

दो०-तब गोविंद कह्यो मुसुकाई ❀ यह डर मोको नेक न भाई ॥
हैं कौरव समर्थ अस नाहीं ❀ मोहिं पकरि राखें गृहमाहीं ॥
फिर यदुपति बोले कुरुपतिसों ❀ कहहु मन्त्र निज निज मति सों ॥
होय विचार सो सब कर लीजे ❀ अब बिलम्ब केहि कारण कीजे ॥

हे दुर्योधन ! तुम वृथा बखेड़ा मत करो, पांडवोंका भाग पांडवोंको दे दो। वृथा रार करनेसे कुलका नाश होगा, हम यह चाहते हैं कि कुरुवंश बना रहे, परन्तु जिसके शिरपर काल गर्ज रहा है, वह अच्छी बातको कब मानता है, परन्तु मैं फिर तुमको समझाता हूँ-

सोरठा–फूटे उनके भाग, फूट परै जिनके भवन।
प्यारे जाओ जाग, अबलौं कछु बिगरो नहीं॥
कृष्ण वचन सुनि कान, कोप कौरवनको बढ़्यो।
हमरे घरपर आन, पक्ष पाण्डवनको करत॥

दुर्योधनने कहा–देखो इस कृष्णकी ढिठाई, जो हमारे सम्मुख ही हमारी बुराई करता है, इसके हाथ-पांव बांध कारागारमें भेज दो। हाथ-पांवके बांधनेका नाम सुन त्रिलोकीनाथ हँस-कर बोले,–"हाथ पांव यशोदाके जो हमारी माता है उसके अतिरिक्त और किसकी सामर्थ्य है जो बांधे?" यह कह जनार्दनने अपना विराटरूप प्रकट किया॥

चौपाई–तब दुर्योधन रूप लखाय ❋ कर्ण और लख हँसो ठठाय॥
इसकी माया लखी न जाय ❋ इन्द्रजाल बैठो फैलाय॥

कहो भ्राता! अब क्या उपाय करना चाहिये? उस विकट रूपको देख सब योद्धा सभाको त्याग भागने लगे, परन्तु मदनमोहनने उनकी दुष्टताका कुछ ध्यान नहीं किया और सात्यकी-सहित विराटपुरको चले गये॥ ४४॥ अजन्मा ईश्वरका जन्म पाखण्डी और दुष्टोंके नाश करने और उन अकर्ता भगवान्के कर्म पुरुषोंके ग्रहण करनेके अर्थ हैं, नहीं तो गुणोंसे परे जो ईश्वर हैं, उनके विना कर्मके वश होना और देहके योग नहीं है॥ ४५॥ हे सखे! शरणागत सब लोकपालोंके और अपनी आज्ञामें जो स्थित हैं उनके कारण यादवोंमें जन्म लिया, ऐसे तीर्थरूप वसुदेवकुमार बाँकेविहारी कृष्ण मुरारीकी मनोहर कथा सुनाओ–

दोहा–कोटिन तीरथके सरिस, जाकी कीरति गाय।
पामर पावन होत हैं, सब अघ ओघ बहाय॥

इति श्रीभाषाभागवते उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दोहा–कहौं द्वितीयाध्यायमें, उद्धव-विरह-विलाप।
जैसे वर्णों विदुरसे, सकल शोक सन्ताप॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णका स्मरण करानेवाली बातें भागवत विदुरजीने उद्धवसे पूछीं? तब श्रीवृन्दावनविहारीके विरहमें उद्धव सब सुधि-बुधि बिसराकर खड़े हो गये और मुखसे कुछ न कह संके॥ १॥ जिस समय उद्धव पांच वर्षके थे तब बाललीलामें भी श्रीगोविंदके चरणारविंदकी पूजा करते रहते थे और जब प्रातःकाल मैया भोजनको बुलाती तब भी न जाते थे॥२॥ उद्धवजी उनकी सेवा करते-करते अब वृद्ध हो गये थे; श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलका स्मरण कर जो कुछ जिज्ञासा किया, उसे वर्णन करने लगे॥ ३॥ श्रीकृष्णके चरणामृत

---

१. शंका–सब विष्णुके भक्तोंमें तथा सब ज्ञानियों तथा सब शास्त्रोंमें उद्धवजी बड़े भक्त, कृपा सागर श्रीकृष्णने जिनको अपना परम प्रियतम जानकर ज्ञान दिया, सो ऐसे बड़े ज्ञानी होकर उद्धवजीके मुखसे श्रीकृष्णबलराम आदिक सब यदुवंशियों के कुशल समाचार पूछनेपर मूर्खोंके समान शोक क्यों करने लगे?

उत्तर–उद्धवजीने विचार किया कि, जो मैं श्रीकृष्णजीके विरहको सुनकर शोक संताप न करूंगा तो मेरा चरित्र सुनकर कलियुगमें सब प्राणी भगवानका विरह सुनकर कोई भी शोक न करेगा तो सब प्राणियोंको कलियुगमें श्री वैकुण्ठनाथका वैकुण्ठधाम नहीं मिलेगा, इसलिये उद्धवजी परमज्ञानी भी थे और विष्णु भक्त भी थे तो भी भक्तजनोंकी प्रीति बढ़ानेके लिये शोक किया कि, कलिकालके लोगोंको प्रेमसे ही परमधाम प्राप्त होगा॥

और पूर्ण भक्तिमें अत्यन्त मग्न हो अति सुख पाकर मुहूर्तमात्रको मौन हो गये ॥ ४ ॥ और पुलकायमान हो नेत्र मूंद, शोक तज, प्रेमप्रवाहमें निमग्न सब अर्थ परिपूर्णसी दशा हो गयी ॥५॥ धीरे-धीरे भगवान्के ध्यानसे फिर सन्देहानुसन्धानमें आकर अश्रु निवारण कर उद्धवजी फिर विदुरजीसे बोले ॥६॥ हे विदुरजी ! हमारे नेत्रोंके तारे श्रीकृष्णरूप सूर्य अस्त हो गये और कालरूप अजगरने सब शोभित गृहोंको डस लिया। अब मैं किसकी कुशल और प्रसन्नता कहूं ॥ ७ ॥ यह सब लोक भाग्यहीन हैं और यादव तो सब महाअभागे हैं, प्रारब्धके मन्द हैं, जो आदि पुरुष अविनाशीके निकट वास करते रहे तो भी लोकनाथ विश्वात्माको नहीं पहिचाना,जैसे एक समय सुधाकर किसी शापसे जलनिधिमें मीन होकर रहा, परन्तु किसी जलचरने नहीं जाना कि यह अमृतकी खानि है अथवा जैसे मीन अवतारको जलचरोंने संसार तारक नहीं समझा और कहीं ऐसा भी लिखा है कि, समुद्रमथनसे पहले चन्द्ररूप हरिको संसारतापहारक नहीं माना, इसी प्रकार हमारी गति जानो ॥ ८ ॥ भगवत्-चित्तके ज्ञाता, अति निपुण, एक स्थानमें सदा रहनेवाले यादवोंने यदुनाथ यादवश्रेष्ठ जगन्निवास ईश्वरको अपना मित्र करके माना ॥ ९ ॥ असत्पदार्थके अधीन असुरादिक ईश्वर की मायामें फँसे हुए थे। उनके वाक्योंसे आत्मस्वरूप हरिमें जिनका चित्त लग गया, ऐसे हमारे सदृश भक्तोंकी बुद्धि नहीं भ्रमती ॥ १० ॥ तप नहीं किया, अतएव दृष्टि तृप्त नहीं हुई जिसकी ऐसे मनुष्योंको संसारके नेत्र स्वरूप कृष्णचन्द्र अपने मनमोहनरूपका दर्शन दिखाकर आप अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥ जिन्होंने नरलीलाके योग्य अपनी योगमायाका बल दिखानेको शरीर ग्रहण किया,सो अपनेको विस्मय करनेवाले, अत्यन्त सौभाग्य, ऋद्धिके भण्डार, भूषणके भूषण श्रीभगवान् वासुदेव हैं ॥ १२ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें दृष्टिके आनन्ददायक मदनमोहनकी मनोहर छबि देख तीनों लोकोंने यह माना कि ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णचन्द्रजीके श्रीअंगमें सब चतुराई बिसर गयी, क्योंकि सब अवतारोंके अंग चतुराननके रचे हुए नहीं हैं, आप स्वयंभू हैं ॥ १३ ॥ जिनकी परमसुखदायक प्रेमयुक्त अनुराग रसभरी मुसकान, तिरछी चितवन देख, सुधासम मधुर वाणी सुन, सुन्दर रासविलास देख, दृष्टिसे व बुद्धिसे न जानें जाँय; अपूर्णमनोरथ, श्रीमानवती, ब्रजबाला ऐसी हो गयीं कि, ब्रजविहारीको जाता देख उनके संग अपने नेत्रोंको भी भेज दिया, कि हमारे प्यारे अकेले जाते हैं और आप अपनी सुधि-बुधि विसार ठगीसी रह गयीं ॥ १४ ॥ भगवान् अपने शान्त-अशान्त रूपोंको मध्य जो अशान्त रूप (दैत्य) हैं उनसे दुखारी दासोंपर दयालु हो देह धार, परअवरके ईश महाअंशसे युक्त अजन्मा ईश्वरने जन्म लिया, जैसे महाभूतरूपमें नित्य वसनेवाली अग्नि काष्ठमेंसे प्रकट होती है, इसी प्रकार अवतार धर सब दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारा ॥ १५ ॥ उद्धवजी बोले–अतर्क्य अगम्यके यह चरित्र समझकर मुझको भी खेद होता है, अजन्मा भी वसुदेवजीके घरमें जन्म ले और ब्रजमें सब घर-घर घूमें, शत्रुओंके भयसे भयभीत रहें, जिन्होंने अनन्त बलधारी होकर भी जरासन्धके भयसे द्वारका बसायी और मथुरा तजकर वहां रहे ॥ १६ ॥ हे विदुर ! इन बातोंको स्मरणकर करके मेरे चित्तमें व्यथा और हँसी दोनों आती हैं, क्योंकि जब माता-पिताके चरणारविन्दकी वन्दना कर यह बोले कि, हे तात ! हे जननी ! मेरा अपराध क्षमा करो, मुझपर प्रसन्न हो, कंसकी शंकासे आपकी सेवा मुझसे कुछ बन नहीं पड़ी ॥ १७ ॥

जिन्होंने; चलायमान भ्रूविकटरूप यम-धर्मराजसे पृथ्वीका भार उतारा। उनकी चरणारविंदकी रजको कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल सकता है ? ॥ १८ ॥ धर्मराजके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णकी निंदा कर शिशुपालको जो सिद्धि प्राप्त हुई वह आपने देखी। जिस सिद्धिके सुन्दर योगसे योगीजन मोक्षको प्राप्त होते हैं, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदका वियोग कौन सह सकता है ? ॥ १९ ॥ इसी प्रकार भारतके युद्धमें वीर मनुष्य नेत्रोंके आनंददायक श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस नेत्रोंसे पान करने लगे; अर्जुनके अस्त्रसे पवित्र होकर भीष्मादिक वीरलोग बेखटके वैकुण्ठको चले गये।

चौ०-मृषा भये हम हरि अनुरागी * हरि बिछुरत तनु दिये न त्यागी ॥२०॥

आज श्रीकृष्णके समान कोई बलवान् और उनसे अधिक नहीं है, अपनी राजलक्ष्मीसे सब भोग जिनको प्राप्त हैं और लोकपाल, ब्रह्मादिक, शक्रादिक बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविंदकी चौकीको अपने किरीटके अग्रभागसे स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥ वह प्रभु सुधर्मासभामें राज्यसिंहासनपर बैठे और उग्रसेनसे कहते रहते थे; "हे देव! आप हमको निरन्तर धारण करो" उनकी यह बात सुनकर हम दासोंको बड़ा विस्मय होता है ॥ २२ ॥ आश्चर्यकी बात है कि महादुष्ट पूतना राक्षसीने स्तनोंमें कालकूट लगा, मारनेकी इच्छा कर दूध पिलानेके बहाने यशोदानंदनको गोदमें लिया और उसको यशोदा माताके समान मान परम गति दी, ऐसे दीन दयालु परमकृपालु श्रीकृष्ण प्यारेके विना किसकी शरण जायँ ॥ २३ ॥ देखो महाक्रोधसे असुरोंने श्रीकृष्णमें मन लगाया हम उनको परमभागवत मानते हैं, जो संग्राममें गरुड़जीके ऊपर चढ़ अपने सम्मुख आये हुए श्रीकृष्णके दर्शन कर वैकुण्ठको गये ॥२४॥ कंसके बंधनमें वसुदेव देवकीके घर पृथ्वीका भार उतारनेको ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर अवतार धारण किया ॥ २५ ॥ दुष्ट कंसके भयसे वसुदेवजीने नंदके घर व्रजमें पहुँचाया, वहां एकादश वर्ष अपने तेजको गुप्त करके व्रजमें वास किया और अनेक प्रकारके चरित्र दिखलाये॥२६॥ ग्वालबालसमेत गोपाललालने गाय वत्स चराते हुए कालिंदीके कूलपर, कुंजोंमें, वृक्षोंमें, जहां कोकिलादिक पक्षियोंके समूह मनोहर शब्द करते और नवललितलतिका लहलहा रही थीं उन उपवनोंमें नित्यप्रति विहार करते थे ॥ २७ ॥ जिन्होंने देखने योग्य बालअवस्थाके सुख व्रजवासियोंको दिखाये।

चौपाई-कबहुँ रूस रोवत जननीसों * कबहुँ हँसहिं सुन्दर सजनीसों ॥
कबहूँ मुरि २ देखत इत उत * बालसिंहसम नाथ नंदसुत ॥
प्रेमफांस फाँसी व्रजनारी * धन धन धन श्रीकुंजविहारी ॥

जब बांकेविहारी अधिक बड़े हो गये, तब लक्ष्मीका स्थान गोवर्धनके निकट गौ बैलोंको चराते हुए बांसुरी बजा-बजाकर ग्वालबालोंके संग अनेक-अनेक ढंगके रास-रंग इत्यादिक खेल किया करते थे॥२८॥उस समय महाबली कंसके भेजे बड़े-बड़े बलशाली दैत्य नानाप्रकारके रूप धरकर व्रजमें आये, उनको भक्तहितकारी बांकेबिहारीने बाल्यक्रीडासे विध्वंस कर वैकुण्ठको भेज दिया, जिस प्रकार बालक घरूआ बनाकर बिगाड़ देते हैं। फिर भगवानने विष जलपान करनेसे मरे हुए गोप और गायोंको जिलाके, कालीदहमें कुद, कालीय नागको नाथ कर, अपना चरणचिह्न उसके मस्तकपर लगाकर रमणीद्वीपको पहुंचाया और कालिन्दीका

जल निर्मल करके वही जल गोप तथा गायोंको पान कराया ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवानने नन्दजीसे गौओंकी पूजाके अर्थ यज्ञ कराया ॥ ३२ ॥ अपनी प्रतिष्ठाका भंग समझकर इन्द्रने क्रोधयुक्त हो व्रजपर मूसलधार जल बरसाया, तब गोप, ग्वाल, बछड़ोंको दुःखी देख मंगलकी इच्छा कर श्रीव्रजनाथने कंदुकके समान गोवर्धनको उठाकर बायें हाथकी कनिष्ठ अंगुलीपर धारण कर व्रजमण्डलकी रक्षा की ॥ ३३ ॥ शरद शशिकी विमल किरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखको देख मनमोहनने मनमोहिनी मुरलीमें मनोहर गीत गाकर व्रजबालाओंको बुलाकर उनके साथ विहार किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे तृतीयस्कन्धे शालग्रामवैश्यकृते विदुर-श्रीकृष्णचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–कहौं तृतीय अध्यायमें, व्रजको सकल वृत्तान्त ।
फेर द्वारकाके चरित, वर्णौं आद्योपान्त ॥

उद्धवजी बोले कि, फिर श्रीकृष्णचन्द्र सुखधाम बलराम समेत अक्रूरके संग मधुपुरीमें आये और अपने पिताके कल्याणकी इच्छा कर संकर्षणरहित रंगभूमिमें जाकर ऊँचे मंचपरसे असुरनाथ कंसके केश पकड़ पृथ्वीपर धर पटका और प्राण निकलनेके उपरान्त उसके शवको घसीटते फिरे ॥१॥ फिर सांदीपन गुरुके घर जाकर उनके मुखसे कहे हुए चारों वेद एकबारमें विस्तार सहित पढ़ चौंसठ कला स्मरण की, फिर गुरुके मरे हुए पुत्रोंको पंचजनके उदरसे लाकर गुरुदक्षिणामें गुरुजीको दे दिये ॥ २ ॥ फिर श्रीमहालक्ष्मीजीके सदृश रूपवती रुक्मिणीजीके विवाहकी इच्छा कर अनेक भूपालोंको साथ ले राजा शिशुपाल ब्याहने आया, उसको भगवान् वासुदेव सबके देखते बड़े-बड़े नरेशोंके मध्यसे उन लोगोंके शिरपर पग धरकर रुक्मिणीको इस प्रकार हर लाये, जिस प्रकार पक्षिराजने अमृत हरण किया था ॥३॥ फिर यदुवीर अवधनगरमें जो सात बैल थे बैलोंको नाथकर स्वयंवरमें सत्या, नग्नजितकी पुत्रीके संग विवाह किया और बैलोंने जिनका मान भंग किया उन अत्याचारी नाग्नजितीके अभिलाषी अज्ञानी, शस्त्रधारी दुष्टोंका आपने शस्त्रसे विध्वंस किया ॥ ४ ॥ जिस सत्यभामा प्रियाके प्रेमनिमित्त संसारी मनुष्योंके सदृश पारिजात समूल उखाड़ लाये और जब सब दलसमेत क्रोधसे अन्धा स्त्रियोंके मध्यमें मर्कट विषयी इन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रसे लड़नेको आया तो क्षणमात्रमें गर्वप्रहारी बांकेबिहारीने उसका गर्व दूर किया ॥५॥ फिर श्रीवैकुण्ठनाथने संग्राममें बड़े लम्बे भौमासुरका चक्रसे वध किया । उसे गिरा देख उसकी माता पृथ्वीने अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभुसे प्रार्थना की, भूमिकी विनय सुन उसके पौत्र भगदत्तको राजतिलक दे उसके भवनमें गये ॥६॥ वहां भौमासुर द्वारा हरी हुई सोलह हजार भूपालोंकी कन्या श्रीवृन्दावन विहारीकी बांकी छबिधारी शीघ्र उठ अतिहर्षित हो लाज-अनुरागकी चितवनसे मनही-

---

१. शंका–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि, सांदीपन नाम गुरुके पास रहकर श्रीकृष्णजीने मोक्षप्राप्ति होनेकी विद्या सीखी । मोक्ष विद्या प्राप्त होनेपर फिर राग-द्वेष जीवोंसे क्यों किया ?

उत्तर–सांदीपन गुरुसे श्रीकृष्णजीने चौंसठ कलाओंको प्राप्त किया परंतु तीन लोक, चौदह भुवन ब्रह्मके अंशसे प्रकाशमान हो रहे हैं और चौंसठ कला भी उनके अंशसे प्रकाशित हो रही हैं, ऐसी कोई वस्तु संसारमें नहीं है जो कि ब्रह्मके अंशसे शून्य हो ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान चौंसठ कलाके मिषसे श्रीकृष्णजीने सीखा, तब जिस जीवको जैसी अभिलाषा रही उसके सङ्ग वैसी ही लीला की । फिर राग-द्वेष कहां रहा, इसलिये उद्धवजीने ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेको कहा था ॥

मन विवाहकी अभिलाषा की ॥ ७ ॥ और उन स्त्रियोंके मन्दिरोंमें एक मुहूर्तमात्रमें अपनी मायासे उनके चित्तानुसार हो विवाहयोग्य विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ फिर उन सोलह हजार युवतियोंको द्वारकामें ले जाकर षोडशसहस्र स्थानोंमें एक सङ्ग बसे, तब उन सब रानियोंके गुणोंमें अपने समान दश-दश पुत्रोंको एक-एक स्त्रियोंमें मायाको अनेक प्रकार करनेकी इच्छासे उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ फिर कालयवन, जरासन्ध, शाल्वादिकोंकी सेनाने जब द्वारकाको भेजा तब उनका विध्वंस किया और अपने पूर्वजोंके दिव्य तेजको जागरित किया ॥ १० ॥ फिर शंबरासुर, द्विविदवानर, बाणासुर, मुर, निकुम्भ, बल्वल और दंतवक्रादिक जो बड़े-बड़े बलवान् असुर थे, उनमेंसे किसीको आपने मारा, और किसीको औरोंके हाथोंसे कालकवलित कराया ॥ ११ ॥ इनके पीछे तुम्हारे भ्राताके पुत्रोंकी ओर जो नरेश थे, उनकी सेना आनेसे कुरुक्षेत्रकी भूमि कंपित हुई थी ।

दोहा-तिन सबहिनको नाश किय, प्रगट प्रभाव अपार ।
पारथके रथवान ह्वै, हरो भूमिको भार ॥

कर्ण, दुःशासन, शकुनिके कुत्सित परामर्शसे जिनकी राज्यलक्ष्मी आयु नष्ट हुई । पवनकुमार भीमसेनने घोर युद्ध करके जिसकी जङ्घा तोड़ी, उसको पृथ्वीपर अचेत पड़ा देख श्रीकृष्ण कुछ प्रसन्न नहीं हुए ॥ १२ ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, अर्जुन, भीमसेन जिसमें मूल थे, उन अठारह अक्षौहिणीके न होनेसे क्या लाभ हुआ ? मेरे अंश प्रद्युम्न आदि असह्य यादव रूप अभी हैं; भूमिपर बड़ा भारी भार तो इन्हींका है ॥ १४ ॥ जब मीठी वारुणीके मदमें मतवाले हो, यादवलोग परस्पर विवाद करें, यही इनके संहार करनेका सहज उपाय है और इनके मरनेका दूसरा उपाय नहीं, क्योंकि-

चौ०-और न कोउ इन जीतन लायक । जहँ प्रद्युम्नआदि भटनायक ॥

और जब हम इस काम को प्रारम्भ करेंगे तो आप ही नष्ट हो सब अन्तर्धान हो जायेंगे ॥ १५ ॥ ऐसे विचार कर भगवान्ने अपने राज्यको स्थापित कर; श्रेष्ठरीति दरशाकर सुहृदों सहित आनंदित हुए ॥ १६ ॥ साधु अभिमन्युने विराटपुत्री उत्तरामें गर्भधारण किया, उसको द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करना चाहा था, उस गर्भस्थित बालककी प्रणतपाल दीनदयाल त्रिलोकनाथने रक्षा की, फिर सामर्थ्यवान् जगत्पतिने तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करवाये और महाराज युधिष्ठिर श्रीवासुदेवकी कृपासे भ्राताओं समेत पृथ्वीपर विहार करते रहे ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान् विश्वात्माने लोक और वेदके मार्गानुसार द्वारावतीमें वासकर शांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब प्रजाकी शिक्षाके कारण धर्म कर्म किये ॥ १९ ॥ मनोहर मुस्कानकी दृष्टिसे और सुधाको भी निन्दित करनेवाली मधुरवाणीसे लक्ष्मीनिवास शरीरसे सबको आनन्द देते रहे ॥ २० ॥ इस लोक और उस लोकमें निरंतर यादवोंको रमण कराया और सोलह हजार रमणियोंसे आप रमण करते रहे ॥ २१ ॥ बहुत वर्षतक रमण करते-करते श्रीकृष्णको गृहस्थ आश्रममें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥ जो हरि किसीके आधीन नहीं, अपने कार्योंमें स्वतंत्र परमात्माको वैराग्य हुआ, तो जिनके काम पराये अधीन हैं और आप भी जो पराधीन है, उनमें कौन ऐसा योगेश्वर है जो भगवत्का भजन करता हुआ दैवाधीन कार्योंमें प्रीति करेगा ? ॥ २३ ॥ एक समय द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके बालकोंद्वारा खेलमें मुनिकी हँसी करायी, तब भगवदि-

च्छाके अनुकूल मुनिने उनको महाघोर शाप दिया ॥ २४ ॥ फिर कुछ मास पश्चात् वृष्णि, भोज, अन्धक आदिक प्रसन्न हो रथपर बैठ दैवसे विमोहित हो प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ वहां स्नान कर उसी जलसे पितृ, देव ऋषियोंका तर्पण कर अलंकारयुक्त बहुत दूधवाली गायें ब्राह्मणोंको दीं ॥ २६ ॥ सुवर्ण, चांदी और अनेक प्रकारके रत्न आभूषण, शय्या, वस्त्र, दुशाले, पीताम्बर, मृगचर्म, सवारी, रथ, घोड़े, कन्या और पृथ्वी, जिससे सब वृत्ति चले ऐसा दान विप्रोंको दिया ॥ २७ ॥ फिर जिसमें अनेक रसपूर्ण ऐसा अन्न महिसुरोंको दे भगवत्को समर्पण किया, फिर उन गोब्राह्मण–हितकारी यादवोंने श्रीकृष्णजीके प्रसन्नतार्थ भूमिमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे प्रभासक्षेत्रागमवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–इस चतुर्थ अध्यायमें, बन्धुनिधन सुन कान।
उद्धव शिक्षासे विदुर, गये मित्रसुत जान ॥

उद्धवजी बोले, कि ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले भोजन किये, फिर वारुणीपान करनेसे सब यादव वीर ज्ञानशून्य हो गये और परस्पर बुरी-बुरी बातें कर, मर्मस्थानमें वचनबाण एक दूसरेके मारने लगे ॥ १ ॥ उस मदके दोषसे उनके चित्त विषम हो गये, सूर्य अस्त होनेके समय जिस प्रकार बांस घिसकर अग्निके उत्पन्न होनेसे नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही परस्पर वे लड़कर शापाग्निसे नष्ट हो गये ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाके इस प्रभावको देख सरस्वती नदीमें आचमन कर एक वृक्षकी जड़में बैठ गये ॥ ३ ॥ उस समय शरणागतकी पीड़ाके नाशक, अपने वंशके विध्वंस करनेवाले भगवान्ने मुझसे कहा कि तुम बदरिकाश्रमको जाओ ॥४॥ यद्यपि उनके अभिप्रायोंको मैं भली प्रकार जानता था, तो भी मैं शत्रुविनाशकारी दैत्यारी श्रीवासुदेवजीके पीछे-पीछे गया, क्योंकि श्रीयदुनाथके कोमलचरणोंका वियोग मैं सहन नहीं कर सका ॥ ५ ॥ तब मैं वृन्दावनविहारीके चरणचिह्न खोजता हुआ सरस्वतीके तटपर पहुँचा, देखा तो राधाचितचोर श्रीनिवास स्वतन्त्र अकेले वहां बैठे हैं ॥६॥ श्यामसुन्दर शुद्ध सत्त्वमय चारभुजाधारी आनन्दस्वरूप–

चौ०–पीताम्बर पहिरे तनु श्यामा। शान्त अरुण लोचन सुखधामा ॥ ७ ॥

दाहिना चरण बायें चरणपर स्थापित किये पीपल पेड़के निकट बैठे, पुष्ट शरीर जिन्होंने सम्पूर्ण विषयोंका त्याग कर दिया ॥ ८ ॥ वहां दैव इच्छासे महाभागवत व्यासजीके सुहृद सखा मैत्रेयजी भी विचरण करते हुए आ निकले ॥ ९ ॥ तब भक्त अनुरागी आनन्द भावसे नीची ग्रीवा किये मेरे सम्मुख प्रेम हास्यकी दृष्टिसे विश्राम दे आनंदित होकर मुनीश्वरसे श्रीव्रजनाथजी बोले–हे वसुरूप उद्धव ! तुम्हारे मनकी जो गति है, वह मैं भली प्रकार जानता हूँ और तुम्हारी अभिलषित वस्तु तुमको दूंगा, जो औरोंको प्राप्त नहीं होती, प्रथम विश्वके रचयिता वसुओंके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनासे तुमने मेरा यजन किया था ॥ १० ॥ ११ ॥ हे तात ! मेरी कृपासे यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, इसी जन्ममें तुम मेरे अनुग्रहका फल भोग लो। अब मैं मृत्युलोक त्याग वैकुण्ठको जाता हूँ, इस समय मेरा एकांतमें एकांत भक्तिसे दर्शन करो यही परमानन्द है ॥ १२ ॥ पहले पाद्मकल्पकी आदि

सृष्टिमें कमलासन ब्रह्माजीसे मैंने अपनी लीलाका प्रकाशक परम श्रेष्ठ ज्ञान कहा था, जिसको महाज्ञानी परम चतुर विद्वानलोग "भागवत" कहते हैं; वही ज्ञान प्रथम मैंने तुमको दिया, अब तुम उस विमल ज्ञानको धारण कर सांसारिक मायामोहसे निर्मुक्त हो मेरा भजन करो ॥१३॥ ऐसे आदरसे जब कृपानिधानने मुझे समझाया, तब मैं आपके अनुग्रहका प्रतिक्षणके लिये पात्र हो गया। ऐसे उसने प्रेमसे रोमाञ्चित; गद्गदवाणी शोकाश्रुओंको बहाते हुए, हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि ॥ १४ ॥ हे ईश ! हे प्रभु ! यद्यपि इस संसारमें तुम्हारे पदपंकजोंका सेवन करनेवालोंको चारों पदार्थोंमें सब पदार्थ प्राप्त होते हैं तथापि मैं भी आपके चरणकमलका सेवक हूँ, परन्तु मुझको उन पदार्थोंमें किसीकी भी इच्छा नहीं ॥१५॥ जो अघटमान हैं वह कहते हैं कि जो चेष्टा न करे अकर्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, शत्रुओंके भयसे भागना, कालकी आत्मा, असंख्यात रमणियोंसे बिहार करना, अपनी आत्मामें सदा रमण करना, ऐसे तुम्हारे अद्भुत चरित्र देखकर इस संसारमें सब विद्वानोंकी बुद्धि खेदको प्राप्त होती है॥१६॥हे देव ! हे प्रभो ! सब कालमें अखंड,अंतर्यामी,जगतके कारण अजानकी नाई मुझे निकट बुलाकर मंत्र पूछते थे और मुझको बड़ाई देते थे, इस कारण मेरा मन आपके चरणकमलोंको नहीं छोड़ना चाहता ॥ १७ ॥ अपने आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला संपूर्ण ज्ञान ब्रह्मासे तुमने कहा, हे स्वामिन् ! जो मेरे जानने योग्य हो वह कहो, जिससे अनायास संसारके दुःखसे हम सब तरें ॥१८॥ ऐसे मेरे हृदयकी प्रीति जान श्रीवासुदेव भगवान् कमलनयनने आत्म परम स्थितिका ज्ञान कहा ॥ १९ ॥ तब मैंने उसी प्रकार भगवान् वासुदेवका आराधन किया, उनके चरणामृतके प्रतापसे अपने आप तत्त्व आत्माके ज्ञानका मार्ग मुझको प्राप्त हो गया, तब मैं उनके चरणोंको प्रणाम कर परिक्रमा दे विरहमें आतुर हो यहां आया हूँ ॥ २० ॥ उनके दर्शन प्राप्तिके हर्ष और वियोगकी पीड़ासे खेदित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मंडलको जाऊँगा ॥ २१ ॥ जहाँ नारायणदेव और नर ऋषि सब उपद्रवरहित दुश्वर रूपकलपपर्यन्त सब लोकके अनुग्रहके कार्य करते थे ॥२२॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि उद्धवजीके मुखसे अपने सुहृद्-बांधवोंका वध सुन बुद्धिमान विदुरजीको शोक-संताप हुआ, पर ज्ञानके प्रकाशसे तुरन्त मिट गया ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णके परिवार यदुवंशका विध्वंस सुन, उद्धव महाभागवतसे भगवान्‌के गमनके वृत्तान्तको सुन विश्वासकर विदुरजीने यह कहा कि, हे उद्धव ! आत्माका एकान्तमें प्रकाश करनेवाला परम ज्ञान जो योगेश्वर श्रीकृष्णजीने आपसे कहा, वह ज्ञान आप हमसे कहिये ? क्योंकि श्रीकृष्णके उपासक ब्राह्मण लोग अपने दासोंके प्रयोजन साधनेको विचरते हैं, जो कृतार्थ हैं उनको और कुछ सत्य करनेको नहीं है ॥ २४ ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि हे विदुरजी !

चौपाई–मोहिं न क्षण भरको अवकाश ❋ बिन ब्रजवल्लभ रमानिवास ॥
को अब सुनहि सुनावहि ज्ञान ❋ मोहिं शरीर कर भार महान ॥

---

१. शंका–उद्धवजीने विदुरजीसे कहा कि हे विदुर ! भगवान् मुझको बड़ी सुन्दर अपनी स्थिति बतलाते थे वह भगवान्‌की बड़ी सुन्दर स्थितिका ठिकाना कहां है ?

उत्तर–भगवान्‌की बड़ी सुन्दर स्थिति भक्तिमें है वा भक्तजनोंके हृदयमें है, वहीं सदा भगवान् वास करते हैं। भगवान्‌की बड़ी स्थिति इन्हीं दो स्थानोंमें है उन्हीं स्थानोंको भगवान्‌ने उद्धवसे कहा था ॥

जब मोहिं हरिने ज्ञान सुनाये * मित्रासुत हरिके ढिग आये ॥
परमज्ञान जो करम बखानो *सो सब भली भांति तिन जानो ॥

निश्चय तत्त्वोंकी सुन्दर सिद्धिके ज्ञाता मैत्रेयजी आपको ज्ञान सुनायेंगे, जो मनुष्यलोकके त्याग करनेवाले भगवान्‌ने कहा है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, इस प्रकार विदुरजीके साथ मोहनमूर्तिके गुणोंकी कथारूप अमृतसे सब जिनका ताप नष्ट हो गया, तब उद्धवजीने कालिन्दीके पुलिनमें एक रात्रि वास किया, वह रात्रि एक पलके समान व्यतीत हुई ॥ २७ ॥ इतनी कथा सुन राजा परीक्षित बोले कि, कृपासिन्धु ! वृष्णि, भोज, महारथी यूथपालोंमें मुख्य-मुख्य जब नष्ट हो गये और ब्राह्मणके शापसे त्रिगुणोंके स्वामी कृष्णपर्यंतने जब मनुष्यके आकारको त्याग दिया, फिर उद्धवजी कैसे बचे रहे, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, शापकी तो कुछ सामर्थ्य नहीं थी, ब्राह्मणके शापका तो एक मिष था, कालानुसार अमोघ वाञ्छावाले श्रीकृष्णजी अपने कुलका संहार कर शरीर त्याग उस समय चित्तमें यह विचारने लगे ॥२९॥ जो मैं इस लोकसे चला जाऊं तो मेरा यह परम ज्ञान आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवके अतिरिक्त और कोई समझने योग्य नहीं ॥३०॥ उद्धव ज्ञानमें अणुमात्र भी मुझसे न्यून नहीं हैं;सब भांति मेरे ही समान है;क्योंकि इसने गुणोंसे विषयवासनाओंमें फँसकर कभी भी परमेश्वरके अनुरागको नहीं छोड़ा, इससे यह मेरे ज्ञानका लोगोंमें प्रचार करता हुआ यहां ही रहे॥३१॥ऐसे त्रिलोकीनाथ शब्दब्रह्म (वेदों) के कारण श्रीपतिने जब आज्ञा दी तब उद्धवजी बदरिकाश्रममें जाकर चित्तको समाहित कर भगवत्-भजन करने लगे ॥ ३२ ॥ जिन्होंने लीलाके लिये मनुष्य शरीर धारण कर श्लाघनीय कर्म किये, उन श्रीकृष्णपरमात्माके गुणोंका उद्धवजीके मुखसे विदुरजीने श्रवण किया ॥३३॥ और वैकुण्ठनाथके अनन्तधामको जाना, धैर्यवालोंको धैर्य देता हुआ और अधीर पुरुषोंको अतिदुष्कर जान पड़ा ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करते हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी चले गये; तब विरहवश हो विदुरजी क्रंदन करने लगे ॥ ३५ ॥

दोहा–पुनि कछु दिन बस मधुपुरी, कालिन्दीके तीर ।
बहुरि गये जहँ बसत है, मित्रासुत मतिधीर ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे बदरिकागमनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा–विदुर पंचमाध्यायमें, बूझो जगविस्तार ।
मयतत्त्व सब सृष्टिको, वरणो मित्रकुमार ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, हे अभिमन्युनन्दन ! कुरुवंशभूषण, अच्युतके भावसे शुद्ध गुण, दया, शीतलतासे तृप्त विदुरजी गंभीरज्ञानी हरिद्वारमें मैत्रेयजीके निकट पहुँचे ॥१॥ उनको दंडवत् प्रणाम कर विदुरजी बोले कि, कर्म सब सुखके अर्थ करते हैं, परन्तु न सुख मिला न दुःखका विनाश हुआ, सब जन्म दुःखहीमें व्यतीत हुआ, इसीलिये जो करने योग्य उपाय हो वह बताओ ? क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥ श्रीनारायणसे विमुख प्राचीन कर्मसे अधर्ममें रुचि, अत्यन्त दुःखी जीवोंके ऊपर दया करनेको इस संसारमें परमात्माके भक्त मंगलकारी, परोपकारमें निरत ब्राह्मण विचरते हैं ॥३॥ इस कारण हे साधुवर्य ! सुखका मार्ग कहो,

जिससे पुरुषोंके हृदयमें भगवान् वासुदेव स्थित हों और भगवद्भक्तिसे पवित्र हृदयमें अनादि वेद प्रणाम सिद्ध तत्त्वज्ञान दें ॥ ४ ॥ त्रिगुणी मायाके नियन्ता स्वतन्त्र भगवान् अवतार धारण कर जिन कर्मोंको करते हैं,निष्क्रिय होकर जिस प्रकारसे प्रथम इस संसारको रचा, पीछे स्थिरतासे जगत्की वृत्तिका विधान किया ॥५॥ जैसे फिर अपने हृदय आकाशमें इसको स्थिर करके सब वृत्तियोंसे निवृत्त होकर अन्तःकरणमें सोते हैं, जब फिर सर्जनकाल आता है तब योगीश्वरोंके ईश्वर एक होकर भी बहुतसे कैसे होते हैं ? ॥ ६ ॥ ब्राह्मण गो देवताओंकी क्षेमके लिये कल्प-कल्पमें अवतार भेदसे विहारकारी कर्म करते हैं ? सुन्दर यशस्वियोंमें मुकुटमणि श्रीनारायणके चरित्र अमृतके पान करनेसे हमारा चित्त तृप्त नहीं होता ॥७॥ सब लोकोंके नाथोंके अधिपतिने जिन तत्त्वोंके भेदसे लोक और आलोक पर्वतसे बाहर सब लोकपालसहित कल्पना की, जहां सब जीवोंके समूहोंके भेद अधिकारीसे प्रगट करते हैं ॥८॥ हे विप्रवर ! जिस प्रकारसे प्रजाके आत्मा कर्मरूप नाम भेद विश्व रचनेवाले स्वतःसिद्ध नारायणने प्रकट किये, वह आप वर्णन कीजिये ? ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! श्रीकृष्णजीकी कथामृतपानके समूह, जिनके विना मुखमलीन हो रहे हैं, उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रोंके धर्म व्यासजीके मुखसे वारंवार हमने सुने हैं, परन्तु उनके श्रवण करनेसे हमारी तृप्ति नहीं हुई ॥१०॥ आपके यज्ञमें नारदादिकोंने श्रीभगवान्के जो यश गाये हैं ऐसे भगवत् नामसे तृप्ति नहीं हो सकती, जो नाम पुरुषोंकी कानकी नाड़ीमें प्राप्त होकर संसारकी देनेवाली घरमें जो प्रीति है, उनको खण्डन कर पतित और पामरोंको पावन करने वाली है ॥ ११ ॥ श्रीव्यास मुनिकी मोक्ष धर्मके अन्तमें नारायणीय उपाख्यानमें भगवत्के गुणोंके कहनेकी इच्छा हुई तब आपके सुहृदसखा व्यासजीने महाभारत कहा, जिस भारतमें संसार सुखके बहानेसे हरिकी कथामें भक्ति लगाई, वह सब बात इतिहास समुच्चममें भी कही हैः—

श्लोक—"कामिनो वर्णयन्कामं लोभं लुब्धस्य वर्णयन् ।
नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन् ॥ १ ॥
लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वाऽत्र तेन तौ ।
इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निंदितौ ॥ २ ॥
अन्यथा घोरसंसारबन्धहेतू जनस्य तौ ।
वर्णयेत्स कथं विद्वान् महाकारुणिको मुनिः" ॥ ३ ॥

"भावार्थ—कामीसे कहा काम कर, लोभीसे कहा लोभ कर, इस बातसे मनुष्योंको क्या फल प्राप्त हुआ ? जैसे अन्धेको कूपमें ढकेल देना॥१॥ व्यासजीने लोगोंका चित्तरंजन करनेको काम लोभका वर्णन किया,परंतु उसी स्थलपर पवित्र इतिहास सुनाकर उसकी निंदा भी की है ॥२॥ केवल दूसरोंके चित्तके अनुरञ्जन रूपप्रयोजनके विना विद्वान् महादयालु मुनिजन प्राणियोंके घोर नरकमें गिरानेवाले काम और लोभ किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं॥३॥इति"॥१२॥ श्रद्धालु लोग नारायणके चरणारविंदोंमें अपना मन लगानेसे आनंदित होते हैं,ऐसे पुरुषोंको बढ़ी हुई भक्ति संसारके सुखोंमें विराग करती है और सब दुःखोंका नाश करती है ॥ १३ ॥ मैं शोच्य नरोंको और शोच्योंके भी शोच्योंको सोचता हूँ, शोच्य उसको जानना चाहिये कि जो राजा लोगोंकी संग्रामादिक मनोरम विषय रस भरी कथा केवल मनमें स्थिर होनेके अर्थ है, और किसी प्रयोजनके अर्थ नहीं ऐसे भारतके तात्पर्यको नहीं जानते, वे शोच्य हैं और जो

जानबूझकर भी श्रीभगवान् वासुदेवकी कथासे विमुख हैं, वे शोच्योंके भी शोच्य हैं (क्योंकि काल भगवान्) (वाद जो वाणीका व्यापार, गमन जो देहका व्यापार, स्मरण जो मनका व्यापार, ये तीनों व्यापार जिनके वृथा हैं, अर्थात् वाणी आदिसे पुरुष श्रीनारायणका नाम नहीं लिया,देहसे चलकर प्रधान-प्रधान ईश्वरके धामोंको पांव नहीं दिया और मनसे श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द, वृन्दावनबिहारी, मोरमुकुटधारीका ध्यान नहीं किया) उनकी आयुको क्षीण करता है ॥ १४ ॥ हे मैत्रेयजी ! इसलिये संसारके सुखदायक श्रीव्रजनायककी कथामें सार पवित्रात्मा दीनबन्धु, भक्तवत्सल श्रीनारायणकी कथा कहो ? जैसे पुष्पोंसे निकाल २ मधुको मक्खियाँ लाती हैं, इसी भांति सब वेद शास्त्र पुराणोंका रस निचोड़ कर आप मुझको पान कराओ, जिससे मेरे मनकी तृप्ति हो ॥१५॥ आदिपुरुष अविनाशीने जगत्की उत्पत्ति, पाल, नाशके लिये शक्तिसे अवतार लेकर जो चरित्र मनुष्योंसे न हो सकें वह किये, उन चरित्रोंको विस्तार सहित कृपा कर मुझसे कहो ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार मैत्रेयमुनिसे विदुरजीने पूछा, तब मित्रासुत पुरुषोंको मोक्षके लिये उनका अत्यन्त आदर सत्कार कर॥१७॥ बोले कि हे साधो ! सब संसारके जीवोंपर अनुग्रह कर ईश्वरमें मन लगाने-वाली और लोकोंमें कीर्ति बढ़ानेवाली तुमने अति सुन्दर विषयकी जिज्ञासा की ॥ १८ ॥ हे विदुर ! व्यासजीसे उत्पन्न होनेके कारण आपमें यह बात विचित्र नहीं है, तुमने सब प्रकार भक्तिसे ईश्वरका आश्रय किया है ॥१९॥ मांडव्यऋषिके शापसे सब प्रजाके दंडदाता यम-राजहीने विचित्रवीर्य भ्राताके क्षेत्र भुजिष्या दासीमें व्यासजीके वीर्यसे तुम जन्म ले प्रकट हुए हो ॥ २० ॥ भागवत और भगवान्को सदा तुम प्यारे हो, जो कि तुमको ज्ञान उपदेश कर-नेके लिये परम धामको चलते समयमें भी भगवान्ने मुझे आज्ञा दी ॥२१॥ अब हम तुमसे उत्पत्ति संहार पालनकर्त्ता भगवान्की लीला विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, जो योगमायासे बढ़ी हुई लीला है ॥ २२ ॥ और व्यापक सब जीवोंके स्वामी समर्थ अपनी इच्छानुसार आप अनेक मतिसे सबको समीप देखनेवाले एक आदिपुरुष अविनाशी सर्वशक्तिमान् भगवान् सबसे पहले थे ॥२३॥ उस समयमें यह ईश्वर सर्वद्रष्टा एक सर्वशक्ति जिनकी जागती रहती है, परंतु इस वैभवको कोई देखनेवाला नहीं था, सब शक्तियां अपने आपमें लीन थीं; उस समय सर्वद्रष्टा एकमात्र जिनकी शक्ति जागती है, इस प्रकार ये ईश्वर रहते हैं, उस समय कामना हुई कि हम बहुतरूप होकर अपनेको देखें ॥ २४ ॥ हे महाभाग !

दोहा–सर्व शक्ति धारण करन, जेहि संकुचित न ज्ञान ॥
निज माया विरची हरी, जेहिते जग निर्मान ॥

तब सर्वद्रष्टा परमात्माकी कार्यकारणरूपिणी माया महाशक्ति अनुसंधानरूपा हुई, उससे सर्वसमर्थ ईश्वरने सब संसारको रचा ॥ २५ ॥ गुणमयी कालकी शक्तिसे मायामें पुरुषरूप

---

१. शंका–मैत्रेयजीने विदुरसे कहा हे विदुर ! व्यासके भ्राताका क्षेत्र जो दासी उसमें तुम जन्मे हो, तब व्यासका भ्राता जो शान्तनुराजा तथा सत्यवतीका पुत्र उसका क्षेत्र दासी कैसे हुई ? क्योंकि हम सब शास्त्रोंमें और लोकोंमें कहीं नहीं सुना कि कोई भी क्षत्रिय होकर शूद्रीके साथ अपना पितुःक्षेत्र कहे, इस श्लोकमें प्रथम जो क्षेत्र शब्द है उसका अर्थ वह नहीं किया जायगा, इस श्लोकमें क्षेत्र कहिये धर्मकी रक्षा करनेके लिये दासीके गर्भमें बड़े ज्ञानी जन्म लिये । क्या धर्म नष्ट हुआ जाता था जिसकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया ।

उत्तर–व्यासके छोटे भाई जो चित्रांगद थे उनका वंश नष्ट हुआ जाता था, उनकी रक्षा करनेके लिये विदुरजीने जन्म लिया । रक्षा करना यह है कि धृत-राष्ट्र अथवा पाण्डुको ज्ञान सिखाना यही रक्षा है ॥

धरके परमेश्वरने वीर्यवान् रूपको धारण कियाँ ॥ २६ ॥ कालप्रेरित अव्यय मायासे महत्तत्त्व प्रकट हुआ; तमोगुणनाशक विज्ञान आत्मा जीवके देहमें स्थित होकर विश्वका प्रकाश किया ॥२७॥ वह जीव, अंश, गुण, काल, आत्मा भगवान्की दृष्टिके सम्मुख इस जगत्को रचनेके कारण जीवात्माने अपनी आत्माको रूपान्तर किया ॥२८॥ जब महत्तत्त्व विकारको प्राप्त हुआ; तब अहंकार उत्पन्न हुआ; जो कार्य, कारण, कर्ता जीव पंचभूत इंद्रिय, मनोमय होता हुआ ॥ २९ ॥ वह अहंकारवैकारिक, तैजस, तामस भेदसे तीन प्रकारका हुआ। अहंकार विकारको प्राप्त हुआ, तब विकारी अहंकारसे मन हुआ ॥ ३० ॥ वैकारिक देवता हुए, उनसे शब्दादि गुण प्रकाशमान हुआ जिससे रज सत्त्वमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं ॥ ३१ ॥ तैजस अहंकारसे ज्ञान कर्ममय इंद्रियाँ हुईं और तामस अहंकारसे पञ्चभूत सूक्ष्म आदिका आकाश व्यापकका चिह्न हुआ, "आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ ३२ ॥ कालमायाके अंशयोगसे भगवत्से देखा हुआ आकाशके पीछे स्पर्श हुआ, स्पर्शके विकारसे पवन प्रकट हुआ॥३३॥ आकाशके अत्यन्त बलसे जब वायु विकारको प्राप्त हुई, तब उसकी मात्रा सहित सब लोकका लोचन प्रकट हुआ ॥ ३४ ॥ ईश्वरके देखनेसे पवनसहित ज्योति जब विकारको प्राप्त हुई, तब कालमायाके अंशोंके योगसे रसमय जल उत्पन्न हुआ ॥३५॥ ब्रह्मकी इच्छासे ज्योति करके जलसहित कालमायाके अंशोंके योगसे गन्धगुणवाली पृथ्वी हुई॥३६॥हे विदुर! आकाशादिक पञ्चभूतोंको जो पर अवर हैं, उनके परमसङ्गसे यथाक्रम गुणोंको जानो, आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, तेजका गुण रूप, जलका गुण रस है, परन्तु पृथ्वीसे सब गुण होते हैं ॥३७॥ कालमाया अंशरूपी विष्णुकी यह सब देवता कला हैं, भांति-भांतिके रूप होनेसे ब्रह्मांडकी रचना करनेमें समर्थ न हुई, तब हाथ जोड़कर सबने परमात्माकी स्तुति की ॥ ३८ ॥ सब सुर बोले–हे नाथ! हे शरणागततापनाशक! छत्र रूप आपके चरणारविन्दको हम बारंबार नमस्कार करते हैं, आपके चरणकमलके आश्रित हो यतिलोग संसारसमुद्रसे पार हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ हे धातः! हे आत्मन्! हे ईश! हे भगवन्! तीन पापोंसे दुःखी जीव इस संसारमें सुखको नहीं प्राप्त होते हैं, इस कारण विद्यासहित तुम्हारे चरणोंकी छायाका आश्रय लेते हैं ॥४०॥ जिन चरणोंसे भगवती भागीरथी प्रकट हुई जिनका जल पापतापनाशक है, जो नदियोंमें श्रेष्ठ हैं उन श्रीगंगाजीके स्थानरूप आपके चरणकमलकी शरणागत हो ऋषिलोग एकान्तमें बैठकर तुम्हारे चरणकमलके मुखमें वसते हैं और वेद पक्षी होकर तुम्हारे मार्गको खोजते हैं, जैसे अपने घोंसलेसे निकल फिर पक्षी अपने घोंसले में आ जाते हैं, उसी प्रकार वेद आपसे उत्पन्न होकर सब स्थानोंमें विचर फिर आपहीमें प्रवेश करते हैं ॥ ४१ ॥ जिन पदपंकजके श्रद्धाभक्तिसे शुद्ध हृदयमें धारण कर ज्ञानसे, वैराग्यके बलसे धीर पुरुष आपके चरणकमलकी पीठके निकट प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे विश्वनाथ! विश्वके उत्पत्ति, पालन, संहारके लिये आप अवतार धारण करते हो, तुम्हारे पादा-

१. शंका– मैत्रेयजीने विदुरसे ऐसे वाक्य कहे, कि अपनी मायामें भगवान् वीर्यकी स्थापना करते हुए, तब अपने हृदयमें सब वस्तुओंको स्थापित कर रहे हैं वह भगवान् कभी अपने हृदयसे कभी किसी वस्तुको बाहर नहीं जाने देते तो मायामें कैसे वीर्यको धारण किया?

उत्तर–त्रिलोकीमें निराधार कोई वस्तु नहीं है, इसलिये भगवान्ने जगत्के आधारका पात्र मायाको बनाकर सृष्टिकी रचना करनेकी भगवान्की इच्छा हुई, तब वही इच्छारूप वीर्य मायामें भगवान्ने धारण किया, ऐसे वीर्यका ग्रहण मत करना जैसा कि जीवोंका वीर्य होता है, उस वीर्यकी शंका करनी योग्य नहीं।

रविन्दकी हम सब शरण हैं, आप अपने दासोंको, जो स्मरण करने योग्य हैं, अभयदान दीजिये ॥ ४३ ॥ हे भगवन् !

दोहा-असतदेह अरु गेहमें, जिनकी मति लवलीन ।
कुटिलकुमतिते रहत हैं, तव पद भक्तिविहीन ॥

ऐसे दुराग्रहसे देवपुरीमें वास करते हैं, ऐसे पुरुषोंको तुम दुष्प्राप्य हो, उन तुम्हारे चरण-कमलको हम भजते हैं ॥४४॥ हे उरुगाय ! क्रूर, कुमति, कपटी, खोटे मार्गमें जानेवाली इंद्रियोंसे जिनके मन लवलीन हैं, वे मनुष्य आपके चरणारविंद सेवनके विलासकी शोभाको नहीं देखते ॥४५॥ हे देव ! आपके कथामृतका पान करनेसे और आपके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम करनेसे विशाल अन्तःकरणवाले वैराग्यके सार, विज्ञानको प्राप्त होकर, विना ही प्रयास संसारको तज, श्रीवैकुण्ठधामको चले जाते हैं ॥४६॥ इसी प्रकार और भी आत्मयोग बलसे बली प्रकृतिको जीतकर धीर पुरुष तुममें प्रवेश करते हैं और जो लोग आपके चरणोंकी सेवा नहीं करते उनको परिश्रम होता है ॥४७॥ हे आद्यपुरुष ! आपने लोकके रचनेकी इच्छा कर तीन गुणोंसे रचे सो हम सब विरुद्ध स्वभावसे पृथक् हैं, सो आपके विहारसे इस ब्रह्माण्डको आपको समर्पण करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥४८॥ हे अज ! जबतक हम आपको उस समयमें भेंट दें, जहां हम सब अन्नको जिस प्रकारसे भक्षण करें, जैसे आपको हमको ये सब लोग निःसन्देह होकर बलि दें, अन्नको पायें, वह कीजिये; यही हमारी प्रार्थना है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! तुम हमारे और देवताओंके सब वंशोंके आद्यपुरुष पुराण अविक्रिय अजन्मा हो, सत्त्वादिगुणकर्मकी कारणरूप शक्ति (माया) में कवि (महत्तत्त्व) रूप वीर्यको स्थापित किया है ॥ ५० ॥ हे आत्मन् ! हे देव ! उस सत्प्रमुख हम सब महदादि जो अर्थ हुए हैं, हम आपका क्या काम करें ? हे नाथ ! आपके अनुग्रहके पात्र जो हम सब लोग हैं हमको सब संसारके रचनेकी सामर्थ्य, अपनी शक्ति, अपना ज्ञान सब ओरसे कृपा करके दीजिये ।

दोहा-रचनहेतु ब्रह्माण्डके, हमको उत्पन्न कीन्ह ।
ज्ञानशक्ति अब देहु प्रभु, हम तुम्हरे आधीन ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-प्रभू षष्ठ अध्यायमें, विराट तनुको धार ।
अधिदैवादिक भेद सब, वर्णों सहित विचार ॥

मैत्रेयजी बोले, इस प्रकारसे अत्यन्त विस्तृत लोकरचनावाली उन अपनी विभिन्न स्थित शक्तियोंकी गतिको जान ईश्वरने प्रवेश किया ॥१॥ उस समय काल संज्ञा शक्तिको ईश्वरने धारण कर उस तेईस (२३) तत्त्वोंके गणमें एकसंग प्रवेश किया ॥ २ ॥ भगवान् चेष्टारूपसे उस तत्त्वात्मक गणमें प्रवेश कर फिर सुप्तकर्मको बोधन करते अलग-अलग जो सब गण थे उनको एकत्र कर दिया ॥३॥ ईश्वरकी प्रेरणासे जागकर तेईस तत्त्वोंके गणने अपने अंशोंसे विराट् देहको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ जिसमें ईश्वरने अपने अंशोंसे प्रवेश किया, जिसमें चराचर लोक हैं, ऐसा वह विश्व रचनेवालोंका समूह परस्पर इकट्ठा हो अपनेमें ही चलायमान हुआ ॥ ५ ॥ सुवर्णमय (प्रकाशरूप) वह पुरुष सहस्रवर्षपर्यन्त सब अनुयायी सत्त्वों (जीवों)

के साथ ब्रह्माण्डरूप कोषके भीतर निवास करने लगा ॥ ६ ॥ देव, कर्म, आत्मा इन तीन शक्तिवाले उस पुरुषने उन विश्व रचनेवालोंका गर्भ अपनी आत्मासे एक-ग्यारह और तीन विभक्तरूपसे किया। देवशक्ति अर्थात् ज्ञानशक्तिसे एक हृदयमें चैतन्यरूपसे विराजमान हैं और कर्मशक्ति जो क्रियाशक्ति, उससे प्राणरूप करके दशरूप होते हैं, आत्मशक्ति अर्थात् भोक्तृशक्तिसे तीन प्रकार होते हैं ! इसी प्रकार जान लेना ॥ ७ ॥ परमात्माकी आत्माका अंश सब जीवमात्रके अन्तर्यामी यह हैं, यह प्रथम अवतार है, जिससे सब जीवमात्रका जन्म होता है ॥ ८ ॥

दोहा–आधिभूत अध्यात्म अरु, आधिदेव विधि तीन।
जीव एकधा प्राण दश, अस विभाग तेहि कीन ॥

अधिभूत, अध्यात्म, अधिदैव, ये तीन प्रकार हैं। विराट्प्राण दश प्रकारका है, एकरूपसे हृदयमें है ॥ ९ ॥ इस प्रकारका स्मरणसे विराट्के विनती करनेपर विश्व रचनेवालोंके ईश्वरने अपने तेजसे इन महदादिकोंकी वृद्धिके लिये तप किया ॥ १० ॥ अब उस विराट्के मुख-आदिसे जितने स्थान देवताओंके निकले मैं उनका वर्णन करता हूं, तुम ध्यान लगाकर सुनो ॥ ११ ॥ प्रथम विराट्का मुख प्रकट हुआ, उनमें लोकपालक अग्निने प्रवेश किया, जिस अपनी वाणीके अंशसे यह विराट्देह जो कुछ कहनेके योग्य है उसको प्राप्त हुआ। मुख अधिष्ठान है १, वाणी इन्द्रिय है २, अग्नि देवता है ३, वचन विषय है ४ ॥ १२ ॥ हरिरूप विराट्के तालुसे प्रकट हुआ उसमें लोकपाल वरुणने प्रवेश किया, जिस रसनाके अंशसे इस विराट् देहने रसास्वाद लिया ॥ १३ ॥ उस व्यापकविष्णु विराट्की जो नासिका निकली उसमें अश्विनी कुमारने प्रवेश किया, घ्राणके अंशसे सुगंधिकी सिद्धि हुई ॥ १४ ॥ विभुके विराट्देहमें दो नेत्र उत्पन्न हुए, तब उसमें लोकपालक सूर्यने प्रवेश किया, तो चक्षुके अंशसे रूपकी सिद्धि हुई ॥ १५ ॥ उस परमात्मा विराट्के देहमें चर्म प्रकट हुआ, उसमें लोकपाल पवनने प्रवेश किया, तब प्राणके अंशसे इसका स्पर्श होने लगा ॥ १६ ॥ फिर विराट्के देहसे कान निकले, तो दिशाओंने अपना स्थान जान उसमें प्रवेश किया, तो श्रोत्रके अंशसे शब्दकी सिद्धि इसको हुई ॥ १७ ॥ फिर हरि विराट्के देहसे त्वचा उत्पन्न हुई, तब उसमें सब औषधियोंने प्रवेश किया, जिनके अंशसे रुवोंसे खुजाहट हुई ॥ १८ ॥ फिर उस भगवान् विराट्के देहसे लिंग उत्पन्न हुआ, उसमें ब्रह्माने वास किया, तब वीर्यके अंशसे आनंद हुआ ॥ १९ ॥ जब उस आदिपुरुष विराट्के देहसे गुदा उत्पन्न हुई, तब उसमें लोकेश मित्रने प्रवेश किया, जिस वायुके अंशसे मलका त्याग होता है ॥ २० ॥ फिर इनके हाथ निकले, तब उनके (हस्तोंके) स्वामी इन्द्रने उनमें प्रवेश किया, वार्ताके अंश करके निज भुजाओंसे सब वृत्ति यह विराट् देह करने लगा ॥ २१ ॥ फिर चरण पैदा हुए, उनमें सर्व लोकोंके ईश्वर विष्णुने प्रवेश किया, चलने-फिरनेके अंशसे जो प्राप्ति योग्य हो, उसको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ फिर बुद्धि हुई, इसमें वीणापाणि सरस्वतीने प्रवेश किया, तब ज्ञानके अंशसे संकल्प-विकल्प आदि क्रियाओंको प्राप्त हुआ ॥२३॥ जब इस विराट्के देहसे हृदय हुआ, उसके अधीश निशानाथ चन्द्रमा देवता हुए, उनके अंशसे यह देह संकल्परूप विकारको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ फिर इसको अहंकार प्राप्त हुआ, उसके पति शिवने हृदयमें प्रवेश किया, जिस कर्मके अंशसे सब कार्य करने योग्यकी योग्यताको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ फिर इसके पीछे सत्त्व हुआ तो

ब्रह्माजीने उसमें प्रवेश किया; जिस चित्तके अंशसे यह विराट् ज्ञानको प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसका शिर और नाभि आकाशमें, पांव पृथ्वीमें, जिसमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं ॥२७॥ अत्यन्त सत्त्वगुण अधिक होनेसे देवताओंने स्वर्गमें वास किया, जो रजोगुणके स्वभासे यज्ञादिक व्यवहार करने लगे, वे मनुष्य और गौ आदिक पृथ्वीपर प्राप्त हुए ॥२८॥ तीसरे तमोगुणसे भगवान्‌की नाभिके आश्रयवाले, दोनोंके मध्यमें आकाश हुआ, जहां रुद्रके पार्षदभूत प्रेतगण वसे ॥२९॥ हे राजन् ! उस महापुरुषका मुख ब्रह्म (वेद) हुआ, वेदके मुखके कहनेसे सब वर्णोंमें मुख्य ब्राह्मण गुरु हुए ॥३०॥ भुजाओंसे पालनरूप कर्म हुआ उससे क्षत्रिय हुए, उन्होंने चोरादिकोंके उपद्रवसे रक्षा की, इससे ईश्वरांश हुए जिसने जन्मसे वर्णोंकी रक्षा की ॥ ३१ ॥ उनके ऊरुसे कृष्यादिक व्यवहार हुए, उनके लिये संसारके सब व्यवहार करनेवाले वैश्य हुए, जिनसे मनुष्योंकी सब व्यवहार वार्ता हुई ॥ ३२ ॥ शुश्रूषाकी सिद्धिके अर्थ विष्णुके चरणोंसे सेवकवृत्तिवाले शूद्र हुए, जिनकी जीविकासे परमेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए—

दोहा—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी, सेवा करत जु शुद्र ।
तापर होत प्रसन्न हरि, गनहिं नहीं तेहि छुद्र ॥ ३३ ॥

इन चारों वर्णोंने धर्मसे अपने गुरु हरिका पूजन किया, श्रद्धासे आत्माकी विशुद्धिके लिये सब वृत्ति समेत सब वर्ण हुए ॥ ३४ ॥ हे क्षत्तः ! दैव कर्म आत्मा रूपी भगवान्‌की योगमायाका बल कौन वर्णन कर सकता है ? ॥ ३५ ॥ हे विदुर ! जैसी मेरी बुद्धि है अथवा जैसा मैंने सुना है, वैसा अपनी वाणीको शुद्ध करनेके अर्थ हरिका चरित्र वर्णन करता हूं, क्योंकि यह खोटी वाणी और और वर्णनसे अशुद्ध हो गयी है॥३६॥पुरुषोंके वचनको एकांतमें लाभदायक जिन्हें श्रुतियोंसे विद्वानोंने संग्रह किया है, कथामृतमें जिनका वर्णन है, उन सुन्दर यशस्वियोंके शिरोमणि श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनविहारीके गुणानुवाद कहते हैं ॥ ३७ ॥ हे विदुरजी ! श्रीनारायणकी महिमाको ब्रह्मादिक योगाभ्याससे निश्चलबुद्धि करके भी सहस्रवर्षके अन्ततक नहीं जान सकते ॥ ३८ ॥ इस कारण भगवान्‌की माया मायावियोंको भी मोह करनेवाली है, क्योंकि जब सर्व व्यापक श्रीविश्वनाथ आप अपनी मायाकी गतिको नहीं जान सकते, फिर और दूसरोंकी क्या सामर्थ्य है ? ॥ ३९ ॥

दोहा—शेष सहसमुखसे रटत, शंभु पांच विधि चार ।
जपत रहत निशिदिन सदा, तौहु न पावत पार ॥

जिस ज्ञानके लिये मनसमेत वाणी वर्णन करते-करते अन्त न पाकर उलटी लौट आती है, हम व सब देवता भी जिसको नहीं जान सकते, उस षड्गुणैश्वर्यसम्पत्तिमान् श्रीभगवान्‌को वारंवार नमस्कार है ॥ ४० ॥

इति भाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे
विराट्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, सुनि मुनि वचन विवेक ।
बहुरि प्रशंसा कर विदुर, कीन्हे प्रश्न अनेक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए मैत्रेयजीको परमबुद्धिमान् विदुरजी वाणीसे प्रसन्न करके बोले ॥१॥ विदुरजी बोले हे ब्रह्मन् ! स्वरूप, अविकारी, निर्गुण भगवान्‌की क्रिया

और गुण लीलासे भी कैसे होते हैं, उसे कहिये ? ॥२॥ बालकका क्रीडामें उद्यम करना यह काम है और खेल करनेकी इच्छा करनी योग्य है, परन्तु अपने आप तृप्त सदा औरसे निवृत्त ईश्वरको काम और इच्छा कैसे होती है, उसे कहिये?॥३॥गुणमयी अपनी मायासे इस संसारको रचते हैं, फिर पालन करते हैं, तदुपरान्त संहार करते हैं ॥४॥ देश, काल, अवस्था द्वारा अपनी ओरसे जिसका ज्ञान नष्ट नहीं होता, ऐसे ईश्वर मायासे किस प्रकार संयुक्त होते हैं, वह कहिये? ॥५॥ भगवान् एक है, सब क्षेत्रमें व्यापक है और जीव भी ब्रह्मरूप ही है तो इस जीवका दुर्भागीपन क्लेश यह कर्मोंसे क्यों होता है, उसे कहिये ? ॥ ६ ॥ हे विद्वन् ! हे विभो ! इस अज्ञान सङ्कटमें मेरा मन अत्यन्त खेदको प्राप्त हो रहा है, अतः कृपादृष्टि करके मेरे मनका यह महासंकट तुम दूर करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि तत्त्व जाननेके अभिलाषी विदुरजीने यह वार्ता मैत्रेयजीसे पूछी, तब भगवद्भक्त मैत्रेयजी यह प्रश्न सुनकर मुसकाये ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि यही भगवान्‌की माया है, जो तर्कसे प्रवृत्त होती है, विमुक्त ईश्वरका कृपण होना, बन्धनमें पड़ना यह तर्कसे होते हैं ॥ ९ ॥ जो कोई पुरुष स्वप्नमें देखे कि मेरा शिर कट गया, शिर छेदनके विना स्वप्नमें साक्षी पुरुषको यह आत्मा उलटापुलटा होना प्रतीत होता है ॥ १० ॥ जैसे जलमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलकी उपाधिसे कम्पायमान दृष्टि आता है, कुछ आकाशमें जो चन्द्रमा स्थित है उसमें कम्पादिक दोष नहीं, इसी प्रकार आत्माका देहादि धर्म सत नहीं है, परन्तु तदभिमानी द्रष्टा तदंतर्यामी ईश्वरको दीखे हैं, यह केवल मिथ्या है ॥ ११ ॥ देहके गुणोंका आत्मामें अज्ञानकृत आभास निश्चय करके निवृत्तमार्गमें धर्मसे भगवान् वासुदेवकी कृपासे भगवत्‌की भक्तियोगसे धीरे-धीरे अर्थात् साधनके अनुसार सब नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसा साधन करेगा उतने ही कालमें अज्ञान नष्ट होगा। उत्तम साधनसे शीघ्र और निकृष्ट साधनसे विलम्ब ॥ १२ ॥ जब सब इंद्रियें शांत हो जाती हैं तब द्रष्टा आत्मामें सब क्लेश विशेष करके लीन हो जाते हैं, जैसे सोते हुएका सब क्लेश नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार जान लीजिये ॥ १३ ॥

दोहा–श्रवण करत ही हरिकथा, सब अघ होत निपात।
जब यदुपतिपदपद्मरति, का कहिबेकी बात ॥

जब श्रीमुरारी भक्तहितकारीके गुणानुवाद सम्पूर्ण कष्टको नष्ट करनेवाले हैं, तो उनके चरणारविन्दके परागति प्रीति आत्माके लिये लाभकारी हो तो क्या आश्चर्य है ? अर्थात् अवश्य सुखदाता होगी ॥१४॥ विदुरजी बोले हे विभो ! आपके खड्गरूपी वचनोंसे मेरे सब संशय कट गये परन्तु हे भगवन् ! यह जीव परतन्त्र है और परमात्मा स्वतन्त्र है, इन दोनों बातोंमें मेरा मन फिर दौड़ता है सो कहो ? ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बहुत बात कही कि श्रीनारायण अपनी मायामें निवास करते हैं, परन्तु यह कुछ सिद्धान्त नहीं है, निर्मूल है; परन्तु बाहरसे विश्वकी यही माया कारण है ॥ १६ ॥ लोकमें जो अत्यन्त मूर्ख हैं, वे सदा

शंका–भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके प्राप्त होनेपर उपाय त्यागकर जिस प्रकारसे ब्रह्माने संसारको रचा उसका विस्तार मैत्रेयजीसे विदुरने पूछा, उससे विदुरजीको क्या फल प्राप्त हुआ ?

उत्तर–योगीजन नित्य भगवान्‌का ध्यान अपने हृदयमें करते हैं, उस समय भगवान्‌के स्वरूपमें सब चर अचर संसार को देखते हैं, संसारकी रचना विना सुने अपने हृदयमें कैसे ईश्वरको रूपसहित देखेंगे, इसलिये योगीजन संसारकी रचना को बहुत आनंदसे पूछते हैं ॥

सुखी रहते हैं और जो अत्यन्त बुद्धिमान् हैं, वे भी सदा आनंदित रहते हैं, परन्तु जो न मूर्ख हैं न बुद्धिमान् हैं, वे अधबीचके जीव हैं, अतः वे सदा क्लेश सहते रहते हैं, इस बातपर एक दोहा हैः–

दोहा–कुछ सेवा कुछ दुष्टता, कुछ संशय कुछ ज्ञान।
घरका रहै न घाटका, ज्यों धोबीका श्वान॥ १७॥

सबमें दिखायी दे, ऐसे संसारमें अर्थके भावको निश्चय कर, तुम्हारे चरणकमलकी सेवासे उस मायाका त्याग करते हैं॥१८॥ जिनकी सेवासे सर्वान्तर्यामी मधुद्वेषी भगवान्‌के चरणोंमें सब कष्टकी विनाश करनेवाली तीव्र प्रीति होती है॥ १९॥ थोड़े तप करनेवालोंकी सेवा श्रीहरिके मार्गमें नहीं पहुँचती, क्योंकि देवोंके देव वासुदेवका यश जिसमें नित्य गाया जाय, वह सेवा महादुर्लभ है॥ २०॥ क्रमसे विकारसहित महदादिकको रचकर उनसे विराट्देह उत्पन्न कर विभुने उसमें प्रवेश किया॥ २१॥ इंद्रिय इंद्रियोंके अर्थसहित तीन वृत्तिवाले सब दशविध प्राण जिसमें हुए, तुमसे प्रेरित जिसमें सब वर्ण होते हैं, उनकी विभूति हमको सुनाओ॥ २२॥ जिस संसारमें पुत्र, पौत्र, नाती, गोत्रसमेत अनेक-अनेक प्रकारकी आकृतिकी प्रजा होकर जिससे यह विश्वमें विस्तार हुआ वह कहो॥ २३॥ प्रजापतियोंके मध्यमें किस-किसको प्रजापति किया, सर्ग, अनुसर्ग, मनु, मन्वन्तरोंके स्वामी कौन हुए? वह कहो॥२४॥ हे मैत्रेयजी! इनके वंशोंके वंशोंमें जो हुए उनके चरित्र और भूमिके ऊपर-नीचेके जो लोग हैं, उसे हमसे कहो॥२५॥ उनकी स्थिति, उनके प्रमाण और भूलोकका वर्णन करो। सुर, नर, मुनि, देवता, पशु, पक्षी, सर्पादिक इन सबका वर्णन करो॥२६॥ सब सम्प्रदाय कहो और कलियुगके धर्म कहो, श्रीवैष्णवमत और सर्गोंका विभाग, गर्भसे जो प्रकट हुए हैं, स्वेदसे जो उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीसे जिनकी उत्पत्ति है, वह सब कहिये॥ २७॥ गुण, अवतार, संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार श्रीनिवासने जो-जो रचे हैं, उनके उदार चरित्र कहिये॥२८॥ वर्णाश्रमके विभाग, रूप, शील, स्वभाव, ऋषीश्वरोंके जन्म कर्म आदि वेदके विभाग॥२९॥ हे प्रभो! यज्ञोंका विस्तार, योगका मार्ग, फलकी चाहना त्यागकर कर्म करना और जो सांख्य भागवत नारदपञ्चरात्रतन्त्र है वह कहो॥ ३०॥ पाखण्डका मार्ग, उनका उलटा होना, वर्णसङ्कर हो जाना, गुणकर्मसे जीवकी जो जो गति होती हैं, उसे कहिये॥ ३१॥ जिसमें किसी प्रकारका विरोध न पड़े ऐसा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कहो। दंडनीतिके श्रवण करनेकी वार्ता पृथक्-पृथक् शास्त्रकी विधि कहो॥३२॥ हे ब्रह्मन्! श्राद्धकी विधि, पितरोंकी सृष्टि, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, कालके अवयवोंकी स्थिति कहो॥३३॥ दान, तप, इष्टापूर्तिका फल, परदेशका धर्म जो पुरुष आपत्तिमें धर्म करे, वह कहो॥ ३४॥ हे पापरहित! धर्मके कारण भगवान् जिससे प्रसन्न होकर कृपा करें वह धर्म कहिये, जिनके ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हों वह भी कहिये॥ ३५॥ हे विद्योत्तम! अनुरागी शिष्योंको और अपने पुत्रोंको दीनवत्सल, दीनानाथ गुरुजन विना जिज्ञासा की हुई बातको भी कह देते हैं। हे स्वामिन्! गुरु किसको कहते हैं? "गुकारस्त्वन्धकारः स्याद्रुकारस्तन्निरोधकः। अन्धकारविनाशित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते"॥ १॥ "गु" अन्धकारको कहते हैं, और "रु" उसको कहते हैं, जो अन्धकारका विनाश करे, उसका नाम गुरु है।

दोहा–अन्धकारको कहत "गु" "रु" विनाशका नाम।
अन्धकारको जो हरै, सोई गुरु सुखधाम॥ ३६॥

हे भगवन् ! तत्त्वोंकी संख्या कहो, प्रलयमें कौन-कौन उनकी उपासना करता है और कौन उनके पीछे सोता रहता है, वह कहिये ? ॥ ३७ ॥ पुरुषकी स्थिति परमेश्वरका स्वरूप, निगमका ज्ञान, गुरुशिष्यका प्रयोजन कहिये ? ॥ ३८ ॥ हे कृपासिन्धो ! जो महात्माओंने कहे हैं, उनको निमित्त पुरुषोंको अपने आप ज्ञान, भक्ति, वैराग्य कैसे होता है, वह कहिये ॥ ३९॥ परमात्माके जाननेकी इच्छासे जो मैंने यह प्रश्न किया है, आप कृपा करके वर्णन कीजिये ? आप मेरे मित्र हैं और मायाके प्रभावसे मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है ॥४०॥ हे पाप-रहित ! जीवके अभयदान करनेको सब वेद, यज्ञ, तप, दान एक कलासे भी समर्थ नहीं हैं ॥४१॥ श्रीशुकदेवजी बोले—कौरवोंमें श्रेष्ठ विदुरजीने मुनि प्रधान, पुराणोंमें जिनका विस्तार-सहित वर्णन है वह सब मैत्रेयजीसे पूछा, भगवत्की कथामें जिनका अधिक प्रेम, ऐसे विदुर-जीको प्रेरणा कर बोले ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामसुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीय-स्कन्धे विदुरोक्तब्रह्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, वरणों कथा अनूप ।
मैत्रेय जिमि विदुरसों, वरणों हरिको रूप ॥

मैत्रेयजी बोले—

दोहा-अहै प्रशंसा योग्य यह, कुरुभूपतिका वंश ।
विदुरभागवत जहँ गये, संतनकुल अवतंस ॥

मैत्रेयजी बोले, कि हमें बहुत आनंद है कि यह पुरु वंश सन्तोंकी सेवा करने योग्य है, जो भगवान्के मंत्री यम तुम धर्मराज हुए, श्रीनारायणकी कीर्तिरूप मालाको क्षण-क्षणमें नवीनसी कर रहे हो ॥ १ ॥ तुच्छ सुखके लिये जो मनुष्य महा दुःखको प्राप्त होते हैं, उनका वह दुःख दूर करनेके अर्थ श्रीमद्भागवतपुराणका प्रवर्तन करता हूँ, जो साक्षात् श्रीभगवान्ने ऋषि-योंके सम्मुख वर्णन किया है॥२॥ आदि संकर्षण भगवान् जो पातालमें विराजमान हैं, जिनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता,उन शेषजीसे भगवान् वासुदेवके तत्त्वके जाननेकी इच्छासे सनत्कुमार आदि मुख्य मुनियोंसे पूछा ॥३॥ अपने हृदयमें विराजमान उन वासुदेव भगवान्को सर्वोत्क-र्षसे पूछनेवाले सनत्कुमार आदिकोंके कृपाके लिये नीचेको शिर किये हुए नयनकमलको किञ्चित खोलकर देखा ॥४॥ श्रीमद्भागवत सुननेसे सत्यलोकसे पाताललोकमें गंगाद्वारा होकर सनत्कुमारादिक गये । गंगाजलसे उनके केश भीग गये थे, उन अपनी भीजी जटा समूहोंसे श्रीशेषजीके चरणकमलमें सनकादिकने अपना शिरधरकर नमस्कार किया । जिन चरणा-रविंदोंको नागराजकन्या अत्यन्त प्रेमसे अनेक-अनेक प्रकारकी भेंटें धर-धर पतिकी चाह-नाके लिये आनन्दित होकर पूजन करती हैं ॥ ५ ॥ भगवान् शेषजीके चरित्रोंके माहा-त्म्यको जो जाननेवाले हैं, वे अनुराग सहित गद्गद वचनोंसे वारंवार उनकी स्तुति करते हैं जिनके सहस्रों किरीटोंके मणि रत्नोंसे अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं । निवृत्तिमार्गके धर्म संयुक्त सनत्कुमारके लिये निश्चय कर भगवान् शेषजीने कहा, हे राजन्! वही धर्म सर्वव्रतधारी सांख्यायनजीने सनत्कुमारसे पूछा, तब सनत्कुमारने उनसे कहा ॥ ६ ॥ ७ ॥ परमहंसोंमें सांख्यायनजीको भागवत्की विभूति कहनेकी इच्छा हुई, तब उनके समीप पराशर और

बृहस्पतिजी आये जो हमारे गुरु हैं, उनकी प्रीति जानकर श्री भागवतपुराण सांख्यायनने उनको कह सुनाया ॥ ८ ॥ पुलस्त्यमुनिने पराशरको यह वर दिया कि, तुम पुराणके वक्ता हो, उसे उन्हीं पराशरमुनिने दयालुभावसे आद्यपुराण भागवत पुराण मुझको सुनाया। हे वत्स!

दोहा-वर्णन करिहौं सकल विधि, श्रद्धा जानि तुम्हारि।
सावधान हो सुनहु अब, हरिकीरति मन धारि॥

हे विदुरजी! हम श्रद्धालु नित्य सेवा करनेवाले आपसे कहते हैं, इस प्रसङ्गमें इस प्रकारकी कथा है कि पिताको राक्षससे खाया हुआ सुन पराशरजी राक्षसोंके विनाशार्थ यज्ञमें प्रवृत्त हुए, अब वसिष्ठजीके कहनेसे निवृत्त हुए, तब पुलस्त्यमुनिने अपनी सन्तानकी रक्षा समझकर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि, तुम सब पुराणोंके वक्ता होगे ॥ ९ ॥ जब महाप्रलयमें विश्व नष्ट हो गया, उस समय चिच्छक्तिको त्याग, नेत्र मूंद, शेषशय्यापर शयन कर, केवल एक श्रीविश्वनाथ सावकाश प्राप्त कर अपनी आत्माकी रतिमें चेष्टा रहित होते हुए ॥ १० ॥ शरीरके भीतर भूत सूक्ष्म उनके अर्पित कालात्मिक अपनी शक्तिको प्रेरणा करके आप अपने जलस्थानमें वास करने लगे। जैसे काष्ठमें अग्नि अपने पराक्रमको रोक कर निवास करती है और रगड़नेसे उसी काष्ठसे फिर वही अग्नि प्रकट हो जाती है, इसी प्रकार जान लीजिये ॥ ११ ॥ चारों युगोंके सहस्रों वर्षतक उस जलमें सोते रह गये और अपनी प्रेरित काल रूपी शक्तिसे सब कर्म जिनको प्राप्त होते रहे; वे त्रिलोकीनाथ सब लोकोंको अपनेमें लीन देखने लगे ॥ १२ ॥ सूक्ष्म अर्थमें सब ओरसे जिनकी प्रविष्ट दृष्टि उन ईश्वरके अन्तरका जो कारण था, वह रजोगुणसे सूक्ष्म होकर कालके अनुसार गुणसे चलायमान सूखा, तब नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ कर्मका प्रतिबोधक समय पाकर एक सङ्ग वह सबका कोष एक कमल निकला और आप अत्यन्त अनुपम अपनी कांतिसे विशाल, उस जलके प्रकाशक, तमनाशक, मार्तण्डके समान समस्त ब्रह्माण्डके कारण सूक्ष्मरूप हुए ॥ १४ ॥

दोहा-प्रभुप्रतापते कमलमें, प्रकट भयो करतार।
जाहि स्वयंभू कहत हैं, सिरजन सब संसार ॥ १५ ॥

उस कमलके दलोंपर बैठे-बैठे इधर-उधरको देखा तो लोक दृष्टि न आये, तब आकाशकी ओर नेत्र घुमाये, तब चारों दिशा देखनेको चार मुख प्रकट हुए ॥ १६ ॥ प्रलयकी वायुसे जल कांप रहा था, गंभीर लहरोंसे भँवर पड़ रहे थे। उस जलमें सब लोकका तत्त्व; कमलमें विराजमान आदिदेव ब्रह्माने सक्षात् अपने आपको और कमलको कुछ नहीं जाना ॥ १७ ॥ जो मैं कमलकी पीठके ऊपर बैठा हूं, मैं कौन हूं? और यह कमल जलमें कहांसे प्रकट हो गया। नीचे तक है कि यहींसे उत्पन्न हुआ है? जो यहां स्थित है तो इसका उत्पन्न करनेवाला भी कोई होगा? जिससे यह भावना निश्चय होती है कि नीचे इसकी जड़का आधार कहीं न कहीं अवश्य होगा, क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो विना आधार स्थित रह सके ॥ १८ ॥ इसी शोचसागरमें पड़े-पड़े अनेक प्रकारके विचार किये परन्तु कुछ निश्चय न हुआ निदान कमलकी नाल पकड़कर ब्रह्माजी जलके भीतर चले गये, वह कमलकी नाल विष्णुभगवान्की नाभिसे निकली थी कि ब्रह्माजी उसको खोजते ही खोजते जलमें नीचेको चले गये, परन्तु कमलके मूलका ठिकाना नहीं लगा ॥ १९ ॥ हे विदुरजी! उस निबिड अन्धकारमें अपने रचनेवालेको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते जब ब्रह्माको बहुत दिन हो गये, तो अजन्मा ईश्वरके कालने देहधारियोंको भय

दिया, श्रीविष्णुके सुदर्शनचक्र कालरूपने सबकी आयु क्षीण की। इसका अभिप्राय यह कि सौ वर्ष ब्रह्माको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते हो गये तो भी भेद न मिला कि कमलनाल कहां है ? ॥२०॥ जब मनकामना पूरी न हुई तो फिर ब्रह्मदेव लौटकर अपने कमलपर आकर बैठे; धीरेसे श्वास जीत सब ओरसे चित्त निवृत्त कर योग साध समाधि लगाकर बैठे ॥२१॥ सौ वर्षके उपरान्त उस योगसाधनसे ब्रह्माको ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो आप अपने हृदयमें प्रकाशित,जो कभी नहीं देखा था, उनका दर्शन हुआ ॥२२॥ कमलनालवत् गौर विस्तृत शेषजीके फणरूप शय्यापर एक पुरुष अत्यन्त प्रकाशवान् सो रहे हैं दश हजार फणोंके छत्ररूप मस्तकोंके रत्नोंकी कांतिसे महाप्रलयके अन्धकारको दूर कर रहे हैं ॥२३॥ संध्याकालके मेघवत् पीताम्बर पहिने अनेक सुवर्ण शिखर जिसमें किरीट समान रत्नजलधारा, पुष्पोंकी वनमाना, बाँस भुजाके तुल्य, वृक्ष चरणवत् जिसमें मरकत शिलामय पर्वतकी शोभाको अपनी सुन्दरतासे तिरस्कार करते हैं, उस पर्वतमें स्थित रत्नादिक होते हैं, बांस भुजातुल्य हैं, वृक्ष पदसमान हैं ॥ २४ ॥ अतिदीर्घ विस्तृत अपना मान करनेवाला, लोकत्रयके संग्रह देहसे विचित्र दिव्य आभरण वस्त्रोंकी शोभा देहका वेष अलंकार किया है ॥ २५ ॥ अपनी-अपनी कामनासे वेदगीतमार्गोंसे पूजते हुए मनुष्योंको नखरूप चन्द्रमाकी किरणोंसे सुन्दर अलग-अलग अंगुलीरूप जिसमें पत्र उन संपूर्ण मनोरथोंके पूर्ण करनेवाले अत्यन्त कोमल कमलसे चरणोंको कुछ ऊपरको उठाकर दिखा रहे थे, ऐसे नारायणको देखा ॥२६॥ लोककी क्लेशनाशक मधुर मुसकान चारों ओरसे झमकनेवाले कुण्डल कानोंमें झलक रहे हैं, लाल-लाल बिम्बाफलसमान होठोंकी कांति, शुक तुंडसी सुन्दर नाक, भ्रूमुखसे, अपने पूजन करनेवाले पुरुषोंका सम्मान करते हैं ॥ २७ ॥ कदंबके केशरवत् पीले पीताम्बरसे, क्षुद्रघंटिकासे कटिका पश्चाद्भाग सुन्दर अलंकृत है। हे वत्स ! कौस्तुभमणि और भगवान् वासुदेवको अमूल्य हारोंसे श्रीजीका चिह्न भृगुलता वक्षस्थलमें शोभित है ॥२८॥ अमूल्य भुजबन्दोंकी उत्तम-उत्तम मणियोंसे भुजदण्ड सहस्रशाखासम व्याप्त हो रहे हैं,जैसे चन्दनके वृक्ष केयूरादिक तुल्य फलपुष्पादिसे व्याप्त होते हैं इसी प्रकार जानो। अप्रकट जिसकी मूल है, सकलभुवनात्मक वृक्षराज, शेषजीके फणोंसे स्कंधादिक शाखा ईश्वर हैं,जैसे चंदन सर्पोंसे वेष्टित होता है,ऐसे महाशेषजीसे परमेश्वर वेष्टित हैं॥२९॥जिसमें चर-अचरका भवन और भगवान् ही जिसमें पर्वत, शेषजीके बन्धु जिसमें जल, सहस्र किरीट सुवर्ण शृंग समान हैं, कौस्तुभरत्न गर्भमें जिनके ऐसे ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ वेदरूप भ्रमरोंसे शोभावाली अपनी कीर्तिरूप वनमाला कण्ठमें पहने;सूर्य,चन्द्रमा, वायु,अग्नि ये जिसको न जान सकें, त्रिलोकीमें संग्राम करनेको फिरनेवाले, भगवत् प्रधानोंका भी असह श्रीहरि हैं ॥३१॥ जिस

१. शंका—मैत्रेयजीने मनुजके समान भगवान्का शृंगार वर्णन किया, यह महा अन्याय है क्योंकि त्रिलोकीनाथको मणि, मोती हीरा आदिका आभूषण हुआ तो क्या आश्चर्य है ? जैसे राजाको कोई कहे कि राजा आज अनेक प्रकारका सुन्दर भोजन कर रहे हैं यह बात कहनी बड़ी अयोग्य है, जिनके करोड़ों रुपये घरमें पड़े हैं और ऋद्धि-सिद्धिसे भंडार भर रहे हैं उनको सुन्दर भोजन करना क्या आश्चर्य है ! ऐसे ही त्रिलोकीनाथके आभूषणोंका वर्णन करना इसमें बड़ी शंका है।

उत्तर—ज्ञानी पुरुष तो भगवान्को त्रिलोकी नाथ जानते हैं परंतु अज्ञानी लोग भगवान्को कुछ नहीं जानते सुन्दर पदार्थोंको—भगवान् करके मानते हैं परंतु अज्ञानियोंको लोभ करनेके लिये मनुष्योंके समान भगवानका शृंगार वर्णन किया है, जिन भगवान्के शृंगार सुनकर अज्ञानी जन भी मोहको प्राप्त होंगे और जानेंगे कि ऐसे बड़े लक्ष्मीवान् हैं ऐसा जानकर अज्ञानी भी भगवान्की भक्ति करेंगे, धनवान् होनेके लिये फिर धीरे धीरे ज्ञानी हो जायंगे इसलिये मुनीश्वरलोगोंने मनुष्यके आभूषणोंके समान भगवानका शृंगार वर्णन किया।

समय भगवान्‌को देखा उसी समय नाभिसरोवरमें कमल, अपना देह, प्रलयका जल, पवन, आकाश जगत्‌के विधान करनेवाले ब्रह्माजीने देखा, कि इससे परे लोकके विशेष करके रचनेकी दृष्टि न देखी ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा सब कर्मोंका बीज, रजोगुणसे युक्त प्रजाके रचनेकी इच्छाकी, दृष्टिसे विसर्गमें चित्त किये श्रीभगवान्‌के गुप्तमार्गमें निवेशितचित्त ब्रह्माजी स्तुतियोग्य भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे ब्राह्मणसर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–इस नवमें अध्यायमें, अज तप कियो अपार ।
देख दुखी वनको भयो, रचे लोक दश चार ॥

ब्रह्माजी बोले–हे नाथ ! अब मुझको आपके स्वरूपका ज्ञान हो जानेसे मैं अपनी कृतार्थताको प्राप्त हुआ और बहुत काल तप करके अब मैंने आपको जाना, देहधारियोंसे आपकी महिमा नहीं जानी जाती,यही दोष है कि वे आपके चरणकमलमें मन नहीं लगाते । हे भगवन् ! तुमसे परे और कोई शुद्ध नहीं क्योंकि चलायमान होनेसे तुम अनेकरूप प्रकाश करते हो, आप किसीसे भिन्न नहीं, आप सब चराचरभूतोंके स्वामी और अन्तर्यामी हो, ॥ १ ॥ विष्णु भगवान् बोले–हे ब्रह्मन् ! तुम भी भलीभांति मेरे स्वरूपको नहीं जानते हो, क्योंकि यह रूप जो तुमने देखा है,यह भी गुणात्मक है और सत्य तो निर्गुण ब्रह्म ही है; इस शंकाको उठाकर अब समाधान करते हैं, जैसे-ज्ञानरस सूर्यके उदय होनेसे सदा अन्धकार दूर हो जाता है, इसी प्रकार तुम उपासकोंके अनुग्रहके अर्थ शत अवतारोंका एक बीज यह रूप आदिमें आप ग्रहण करते हो उसी रूपके नाभिकमलसे मैं उत्पन्न हुआ ॥२॥ हे पुरुषोत्तम ! हे आत्मन् ! आनन्दमात्रमें कोई संकल्प-विकल्प न करे,सदा तेजोमय विश्व रचकर एक विश्वसे और दिव्यपञ्चभूत इंद्रियात्मक आपका यह आनंदरूप है, इससे परे और कुछ नहीं यह मैं देखता हूँ इस कारण आपके चरणकमलकी शरण हूँ ॥३॥ हे भुवनमंगल ! आपने ध्यानमें मुझ सरीखे उपासकोंको चौदह भुवनोंका मंगलदायक चित्तानंदस्वरूपका दर्शन कराया, उन भगवान् दयानिधानको मेरा वार वार नमस्कार है, जो नरकके भागी,खोटे प्रसङ्गके करनेवाले हैं और सगुणरूपका तिरस्कार करते हैं, उनको स्वप्नमें भी इस स्वरूपका दर्शन नहीं होता ॥४॥ वेदसे प्राप्त जो तुम्हारे चरणारविन्दकी सुगन्धिको सूंघते हैं और अत्यन्त भक्तिसे चरण ग्रहण करते हैं, हे नाथ ! आप ऐसे पुरुषोंके हृदयकमलसे निकलकर कभी नहीं जाते हो, अर्थात् निरन्तर वास करते हो ॥५॥ जब तक यह लोक, आपके अभयदायक चरणकमलका आश्रय नहीं लेते, तब तक ही धन, स्त्री पुत्रमें भय होता है, सुहृदोंके निमित्त शोक मोह लोभ अत्यन्त अनादर होता है, खोटा आग्रह सदा दुःखदायक है ॥६॥ जिन भाग्यहीनोंकी बुद्धि नष्ट हो गयी और आपकी कथा सब अशुभनाशक यश प्रकाशसे जिनकी इन्द्रियां लोभमें लवलीन ऐसे मनुष्य लेशमात्र कामसुखके लिये उचित-अनुचित कुछ नहीं समझते और जिसमें अपनी कुशल न हो ऐसे कर्म करते हैं ॥७॥ हे उरुक्रम ! क्षुधा, तृषा, वात, पित्त, कफसे वारंवार दुःखित, शीत, उष्ण, पवन, वर्षासे पीड़ित, कामाग्नि और आपके अत्यन्तकोपसे प्रजाको दुःखी देखकर मेरा मन कम्पायमान होता है ॥ ८ ॥ हे ईश ! जबतक शरीरकी इन्द्रियां अर्थ, माया, बल मैं हूँ, इस प्रकार ईश्वरसे अलग समझते हैं तबतक यह जीव संसारसे मुक्ति नहीं पावेगा और अनेक दुःखदायी व्यर्थ कर्म्म करता रहेगा ॥ ९ ॥

दोहा–दिनभर कर व्यापार बहु, श्रमित करहि निशि सैन।
विवश विषयसुख उझकि झुकि, लहत न कबहूँ चैन ॥

मनमें अनेक प्रकारके मनोरथ करते हैं, परन्तु सिद्ध एक भी नहीं होता, सब नष्ट हो जाते हैं, हे देव! तुम्हारे प्रसंगसे विमुख जो ऋषिलोग हैं, वे इस संसारमें बारंबार जन्मते मरते हैं ॥१०॥ हे उरगाय! हे नाथ! जिसके भावयोगशोधित हृदयकमलमें तुम वास करते हो, तुम्हारी कथा सुनकर तुम्हारा दर्शन करते हैं, उन पुरुषोंके हृदयमें तुम रहते हो, तो भी जो-जो बुद्धि करके अपनी इच्छासे तुम्हारे भक्त तुम्हारा रूप जैसा-जैसा देखना चाहते हैं, उसी प्रकारका स्वरूप आप अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके धारण करते हो ॥११॥ जिनके मनमें अनेक-अनेक प्रकारकी कामनाएँ लग रही हैं, उन देवगणोंके रचे उपचार आराधनासे ऐसे प्रसन्न नहीं होते हो, जितना कि जो सब जीवमात्रपर दया करते हैं उनपर प्रसन्न होते हो, यह असन्तोंको प्राप्त नहीं होता, इसलिये तुम जीवोंके हृदयमें वास करो, सुहृद व्यापक तुम प्रसन्न होओ ॥ १२ ॥ इसलिये पुरुषोंके अनेक कर्म यज्ञादिकसे तप, दान, संयम, नियम, उग्रव्रतसे आपकी आराधना रूप सत्क्रिया, अर्थदायक धर्म जिसने तुमको समर्पण किया, वह कभी नष्ट नहीं होता है ॥ १३ ॥ सत्स्वरूपके तेजसे भेदमोहका नाश करे ज्ञानबुद्धि जिसमें परेसे परे जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहारके निमित्त, नित्य, अद्भुत-अद्भुत लीला करनेवाले ईश्वरको बारम्बार नमस्कार है ॥ १४ ॥ जिनके अवतारोंका कथन देवकी-नन्दनादि गुणकथन, सर्वज्ञभक्तवत्सलादि गुणकर्मकथन, गोवर्द्धनका उद्धरण, कंसाराति-इत्यादिक गुणकथन प्राणान्तके समय विवश होकर जो पुरुष इनका नाम लेते हैं, अनेक जन्मके पाप नाश कर तत्काल सत्यस्वरूप ईश्वरको प्राप्त होते हैं, मैं ऐसे ईश्वरके शरणागत हूं ॥ १५ ॥ मैं, शिव, विष्णु (आप) उत्पत्ति, पालन, नाशके हेतु हैं, आप जिसके मूल, ब्रह्मादिक बड़े-बड़े जिसके कन्धे, मरीचिमन्वादिरूप जिसकी अनेक शाखा ऐसा एक वृक्ष-रूप होकर जो बढ़े, उस भवनद्रुम श्रीभगवान्को नमस्कार है ॥ १६ ॥ जो लोकविरुद्ध कर्ममें सदा लगे रहते हैं और सुखदायक आपका पूजनरूप कर्म करनेकी आपने आज्ञा दी है, उन कर्मोंमें मन नहीं लगाते हैं। आपने कहा है–"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥" जब तक जिस जनके जीवनकी आशा नष्ट करते हो ऐसे कालरूप आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे प्रभो! मैं भी आपसे डरता हूं, महाप्रलयके स्थानमें सब लोक स्थित हो जिसको नमस्कार करते हैं, ऐसा बहुत वर्ष तक तप किया। वह सब यज्ञके अधिष्ठाता आप हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १८ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, देवतादिक योनियोंमें अपनी इच्छासे अपने किये हुए धर्मसेतुओंके पालनकी इच्छासे जो रमण करते हुए विषयसुख नहीं माना, अपने वीर्यको जिसने रोक रक्खा ऐसे परमपुरुष आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १९ ॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंधतामिस्र यह पांच प्रकारकी अविद्यारचित सब लोक जिनके उदरमें वास करें वह ईश्वर भयंकर लहरोंकी मालावाले जलमें शेषशय्यापर शयन करनेसे अनुकूल निद्राको प्राप्त हुए, मानों संसारके जनोंको निद्राका सुख सिखाया ॥ २० ॥ हे स्तुति योग्य! त्रिलोकीके रचनेका पात्र आपने अपनी कृपासे अपनी नाभिकमलसे मुझको उत्पन्न किया, आपके उदरमें विश्व योगनिद्राके अन्तमें प्रफुल्लित कमलके समान जो आपके नेत्र हैं, ऐसे

आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे समस्तसंसारके सुहृद ! एक आत्मातत्त्व ऐश्वर्यके द्वारा सब संसारको सुख देते हो, वही दिव्यदृष्टि मुझको मिले, जिससे पूर्वके समान इस विश्वको रचूँ, आप अपने दासोंके प्यारे ईश्वर हैं ॥ २२ ॥ शरणागतके वरदायक, हे विश्वनायक ! अपनी शक्ति श्रीलक्ष्मीसे सगुण अवतार धारणकर अनेक-अनेक प्रकारकी लीला और विहार संसारके सुखदेनेको करते हो, हे नाथ ! मुझको इस विश्वके रचनेमें प्रवृत्त करो, मैं अज्ञानफन्दमें न फसूँ और अपने किए हुए पापोंका मैं त्याग करूँ ऐसी कृपा मेरे ऊपर करो ॥ २३ ॥ अनन्तशक्तिवाले महापुरुषकी नाभिसरोवरसे जलमें विज्ञान शक्तिरूप मैं प्रकट हुआ इस विश्वका विचित्र विस्तारक और मेरी वेदकी अवयवरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न हो जाय ॥ २४ ॥ हे महादयालो ! भगवन् ! अत्यन्त अधिक प्रेमकी मधुर मुसकानसे कमलनयनका प्रकाश कर शीघ्र विश्व विजयके निमित्त मेरे ताप और क्लेशको मनोहरवाणीसे दूर करो; क्योंकि दासोंपर दया करनेकी सदा तुम्हारी वाणी है ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि इस विधिसे जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द मोहनमुकुन्दसे अपना जन्म सुन, तप विद्या समाधिसे जहांतक मन वचन पहुंचा, वहां तक स्तुति करके थक गये ॥२६॥ तो उस कल्पके उलटे करनेवाले जलसे खेदित ब्रह्माका अभिप्राय भगवान् जानकर ॥ २७ ॥ लोकको स्थितिके विज्ञानमें ब्रह्माका मोह दूर कर गंभीरवाणीसे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे वेदगर्भ ब्रह्मन् ! आलस्य मत करो, सृष्टि रचनेमें उद्यम करो, जिस कारण तुमने मेरी प्रार्थना की है, वह शक्ति मैं प्रथम ही तुमको दे चुका हूँ ॥ २९ ॥ हे चतुरानन ! फिर तुम तप करो, तो मेरी विद्यासे विस्तृत सब लोकोंको अपने हृदयमें देखोगे ॥३०॥ हे कमलासन ! फिर पीछे आत्मामें, लोकोंमें भक्तिसहित सावधानतासे मुझको व्याप्त देखोगे और लोकको मुझमें देखोगे, जीवोंको देखोगे ॥ ३१ ॥ जैसे काठमें आग स्थित रहती है, इसी भांति जब सब जीवोंमें तुम मुझको देखोगे तो सब पातक और मल तुम्हारे उसी समय जलकर भस्म हो जायँगे ॥३२॥ भूत, इन्द्रियां, अन्तःकरण गुणसे रहित आत्माको मेरे स्वरूपसे जब युक्त देखोगे तब अपने राज्यको प्राप्त होगे ॥३३॥ अनेक-अनेक कर्मोंको विस्तार कर बहुत प्रजा रचनेवाली तुम्हारी आत्मा नहीं फँसेगी, यह मेरी ही कृपा है जिससे तुम अत्यन्त वृद्ध हो गये हो ॥३४॥ हे आद्यऋषे ! तुमको यह पापी रजोगुण नहीं व्यापेगा, क्योंकि प्रजा रचनेके समय तुमने अपना मन मुझमें लगाया है ॥ ३५ ॥ देहधारियोंको मेरा जानना बहुत दुर्लभ है, नहीं जाना जाता; तुमने मुझको जान लिया । अब भूत, इन्द्रिय, गुण, आत्मासे जो तुमने मुझको माना वह ठीक है ॥ ३६ ॥ कमलकी नालके द्वारा जलमें कमलकी जड़ ढूँढ़ने और मेरे जाननेकी अभिलाषा की, तब मैंने अपना रूप तुम्हारे हृदयमें प्रकट किया ॥ ३७ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरी कथाको उदय करनेवाली जो तुमने मेरी स्तुति की और जो तपमें तुम्हारी निष्ठा है, यह सब मेरी

१. शंका—ईश्वरने ब्रह्माके सम्मुख खड़े होकर अपना रूप ब्रह्माको दिखाकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मन् ! संसारके रचनेके लिये तुम उपाय करो, तब ईश्वरने अपने स्वरूपसे तथा अपने दर्शनसे उद्यमको बड़ा क्यों माना ? जिस उद्यमको करनेके लिये ब्रह्माको आज्ञा दी, क्या ईश्वरका दर्शन ब्रह्माने किया और दूसरे ईश्वरका वचन क्या इन दोनोंसे विना उद्यम ब्रह्मा संसारको नहीं बना सका यह बड़े आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर—इस संसाररूप समुद्रमें विना उद्यम कोई भी कार्य नहीं बन सकता, क्योंकि यह उद्यम जो है सो नारायणका शरीर है, नारायणके दर्शनसे अथवा वचनसे बड़ा नहीं है, परंतु संसारमें उद्यम ही सुखकी खानि है, इसलिये ब्रह्मासे नारायणने उद्यमकी बड़ाई करके उद्यम करनेके लिये ब्रह्मासे कहा ॥

ही कृपा है ॥३८॥ हे अज ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूं, तुम्हारा कल्याण हो, लोकोंकी विजयके मनोरथसे गुणमय मेरी प्रार्थना की और मुझे निर्गुण वर्णन किया ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार स्तुति कर स्तोत्रोंसे मेरा भजन करते हैं, उनसे मैं सब प्रकार प्रसन्न हो कामवर देता हूँ ॥४०॥ कुआँ, बावड़ी, बनानेसे, जप, तप, दान, धर्म, कर्म करनेसे, योग, यज्ञ समाधिके लगानेसे मनुष्योंका यह सिद्धांत है कि परमात्मामें भी हमारी प्रीति हो यह तत्त्ववेता-ओंका मत है॥४१॥ मैं सबकी आत्मा सब आत्माओंका पोषण करनेवाला प्यारोंका प्यारा हूँ, इसलिये मुझे प्रीति करे, क्योंकि मुझसे प्रीति करनेसे वह देह आदि सब प्रिय होते हैं ॥४२॥ सब वेदमय मेरी आत्मा तुम हो मैं ही तुम्हारा आदिकारण हूं, जो प्रथम मुझमें लीन हैं, जैसा जगत् प्रथम था वैसा ही अब रचना चाहिये ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि प्रधान पुरुष ईश्वर जगत्के रचयिता ब्रह्मा को इस भांति अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हो गये ॥

दोहा–चतुरानन प्रति भाष अस, परम पुरुष भगवान।
विधिके देखत ताहि थल, ह्वै गये अन्तर्धान ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे भगवदन्तर्धानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–प्रश्न दशम अध्यायमें, कीन्हे विदुर अनेक।
प्रकट किये दश सर्ग अज, सो वरणौं इक एक ॥
विधि अस्तुति सुनि विदुर तब, अति आनँद उर आनि।
पुनि बोले मैत्रेय सों, जोरि सरोरुहपानि ॥

विदुरजी बोले–हे मैत्रेय ! जब भगवान् वासुदेव अंतर्धान हो गये, तब लोकपितामह ब्रह्माजीने दैहिकी और मानसी कितनी प्रजा रची ? ॥ १ ॥ हे बहुवित्तम ! भगवन् ! जो-जो बातें मैंने आपसे पूछीं उनको प्रथमसे लेकर अबतक वर्णन करें जिससे हमारे सब संशय मिट जायँ ॥ २ ॥ सूतजी बोले–हे शौनक ! विदुरजीने मैत्रेयजीसे यह प्रश्न किये तब अतिप्रसन्न हो जो हृदयमें स्थित प्रश्न थे उनके प्रकाश करनेकी इच्छा की ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्माजीने परमेश्वरमें मन लगाकर दिव्य सौ वर्षतक तप किया, जो भगवान् अजन्माने आज्ञा दी थी उसके अनुसार कार्यमें प्रवृत्त हुए ॥४॥ प्रलय कालके पराक्रमी पवनसे जलकमलको कांपता हुआ ब्रह्माजीने कमलपर बैठे देखा ॥ ५ ॥ उस सयम बढ़े हुए तप आत्मविद्यासे जलसे अत्यन्त जिनका विज्ञानबल था, वह पवनके संग सबको पी गये ॥ ६ ॥ जब आकाश तक कमलको स्थित देखा तब विचार किया कि इस कमलसे पहले मैं तीन लोक रचूँगा ॥ ७ ॥ भगवत्की इच्छासे अपने कर्ममें प्रेरित उस कमलपर बैठ कर, एक विश्वको त्रिलोकीरूप कर चतुर्दश भुवनरूप बहुत प्रकारसे भावनाके योग्य विभाग किये ॥ ८ ॥ जीवलोककी

---

१. शंका–विदुरजीने मैत्रेयजीसे फिर सृष्टिकी रचना क्यों पूछी ? यह शंका बड़ी भारी है, कि मुझको उद्धार करनेवाला बुद्धिमान् संसारमें कोई नहीं है ?

उत्तर–जैसे मणिको नष्ट देखकर सर्प दुखी होता है तथा वनको नष्ट देखकर मनुष्य क्लेश मानता है, पुत्रको नष्ट देखकर सब जीव दुःखी होते हैं ऐसे ही विदुरजी भी उद्धवके मुखसे श्रीकृष्णका, यदुवंशियोंका, कौरवपांडवोंका और सब राजाओंका विनाश सुनकर श्रीकृष्णके विरहसे बहुत दुःखी हो गये, विह्वल होनेपर किसी वस्तुकी सुध नहीं रहती इसीसे विदुरको कुछ सुध न रही कि यह प्रश्न पहले हमने किया था, अतः विह्वल होकर सृष्टिकी रचना फिर पूछने लगे ॥

रचनाका इतना विशेष है, निष्कामधर्मका फल श्रीब्रह्माजीका अवतार है ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! अनेक रूपधारी अद्भुतकर्मकारी परमात्माको जैसे तुम कहते हो और उनके कालका लक्षण जैसा है, वैसा हमसे कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, सामान्यसे कालका स्वरूप पहले कहते हैं, अगले अध्यायमें विशेष करके कहेंगे, गुणोंका और से और आकार करना जिसका कोई विशेषण नहीं, एक स्थान पर रहे नहीं सबका उपादानकारण आप ईश्वरका आत्मा है ऐसे कालको श्रीनारायणने अपनी लीलासे रचा ॥ ११ ॥ निश्चय है कि विश्व ब्रह्मस्वरूप ही है, विष्णुकी मायासे स्थित और गुप्तमूर्ति कालरूप परमात्मासे अलग प्रकाशित है ॥१२॥ जैसा यह विश्व अब है ऐसा ही आगे था और ऐसा ही पीछे रहेगा;परन्तु संसारके रचनेकी विधि नौ प्रकारकी है, वह एक प्रकृतिसे होती है और एक विकारसे होती है यह दशवाँ सर्ग है ॥ १३ ॥ केवल कालसे सदा प्रलय होता है और संकर्षणकी अग्निरूप द्रव्यसे नैमित्तिक प्रलय होता है ॥ १४ ॥ अपने-अपने कार्योंके ग्रसनेवाले गुणोंसे प्राकृतिक प्रलय होती है यह तीन प्रकारका प्रलय होता है। प्रथम प्रलय यह है कि महत्तत्त्वका सर्ग गुणोंकी विषमतासे सर्व व्यापक ईश्वरसे होता है ॥ १५ ॥ द्रव्य ज्ञान क्रियाका उदय दूसरा अहंकार है, उनकी मात्रा द्रव्य शक्तिमान् तीसरा भूसर्ग है ॥ १६ ॥ ज्ञान और क्रियाकी आत्मा चौथा इंद्रियोंका सर्ग है, विकारी देवताओंका पांचवां सर्ग मन है ॥ १७ ॥ हे प्रभो हे ! छठा अज्ञानियोंका किया तामस सर्ग है; यह छः प्रकृतियोंके सर्ग हैं ॥ १८ ॥ अब जो विकारीके सर्ग हैं, उसे सुनो—राजससे भी भगवान् हरि पूजनीयकी यह लीला है, मुख्य सर्ग सात हैं, और छः प्रकारकी स्थावरोंकी रचना है ॥ १९ ॥ वे छः प्रकारके सर्ग ये हैं, उनका वर्णन करते हैं—जो विना फूलके फलते हैं वह वनस्पति हैं; जिनका फल अंतमें पकता है वह ओषधी है; सहारेसे बढ़े वह वेल है, आश्रयसे बढ़े वह सही; पहले फूल आकर पीछे फल लगें वे द्रुम हैं, जिनका आहार संचार ऊपरसे हो वे तामसी हैं, चैतन्य गुप्त हैं, भीतरसे घटने-बढ़नेको जानते हैं इनके घटने बढ़नेका प्रमाण नहीं है अनेक भेद होते हैं ॥२०॥ पशुओंका आठवां सर्ग अट्ठाइस प्रकारका है, कलको क्या होगा ये ज्ञान रहित हैं, आहारादिकका ज्ञानमात्र जानते हैं, नासिकाके स्वरसे जो कुछ अपना इष्ट अर्थ है वह जान लेते हैं, दीर्घज्ञानशून्य हैं ॥ २१ ॥ उनके अट्ठाइस भेद कहते हैंः—गौ आदिसे लेकर ऊंटतक द्विशफ (दोखुरवाले) के नौ हैं-गौ १, बकरा २, भैंसा ३, कृष्णसारमृग ४, लीलगाय ५, शूकर ६, रुरुमृग ७, भेड़ ८ और ऊंट ९। हे सत्तम ! इन पशुओंके खुर नीचेसे दो चिरे हुए होते हैं ॥ २२ ॥ हे विदुरजी ! खर, अश्व, खच्चर, गौर मृग और चमरगाय, इनके खुर चिरे हुए नहीं होते ॥ २३ ॥ अब पंचनखके पशु सुनो—कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, बघेरा, बिलाव, ससा, सेही, सिंह; बंदर, हाथी, कछुआ, गोह, मगरादिक इन तेरहके पांच नख हैं ॥ २४ ॥ अब पक्षियोंके नाम कहते हैं-कौआ गीध, बक, शिकरा, अरुणशिखा, मोर, हंस, सारस, चक्रवाक, श्वेतकाक और उलूक ये विहंग जातिके हैं ॥ २५ ॥ हे विदुर ! नीचेसे खांय, यह नवम सर्ग मनुष्योंका है; राजस अधिक है, कर्मपरायण हैं, दुःखमें सुख मानते हैं ॥ २६ ॥ हे सत्तम ! देवताओंका सर्ग तीन प्रकारका है, वैकारिक जो कहा है, वह कौमार सर्ग दो भांतिका है ॥ २७॥ देवसर्ग आठ प्रकारका—है विबुध, पितर, असुर, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण ॥ २८ ॥ भूत,

प्रेत, पिशाच और विद्याधर, किन्नरादिक हैं। हे विदुर! विश्वके रचयिता ब्रह्माने दश सर्ग-भेद किये हैं॥ २९॥ इसके पीछे अब वंशमन्वन्तर कहते हैं, अमोघसंकल्प रजोगुणवाले ब्रह्माने अपने आत्मासे (अनेक) आत्माकी रचना की॥ ३०॥ पूर्णसंकल्प आपहीको आप रचते हैं और सदा शुद्धचैतन्यस्वरूपी नारायण ही सब आप हो जाते हैं॥ ३१॥ गुणोंके उलटे होनेसे सर्गमें मायावेत्ता ईश्वरकी पूर्वापर जानी नहीं जाती, जिस प्रकार नदीमें घूमती हुई नावमें घुमेर आती है, इसी भांति जान लेना॥३२॥ हे विदुर! इस कल्पमें देव असुरादिक जो हमने कहे हैं वे ही मन्वन्तरमें नामरूपसे प्रगट हुए॥ ३३॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीय स्कन्धे दशविधिसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

दोहा–कहौं काल परमाणुके, चिह्न इकादश–माहिं।
युग मन्वन्तर कल्प सब, गुप्त रहैं कछु नाहिं॥

मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी! कालके विशेष लक्षण कहते हैं, वह सुनो–सच्चे विशेषणोंका जो अंत जिसका विभाग न हो सके, किसीमें मिले नहीं, सदा रहै जिससे और कोई वस्तु सूक्ष्म न हो, उसे परमाणु जानो, जिन परमाणुओंसे मनुष्यको ऐसा भ्रम होता है कि एक है॥ १॥ सत्य है जो पदार्थ अपने स्वरूपमें स्थित है वह केवल अत्यन्त महाबड़ा है, जिसका कोई विशेषण नहीं निरंतर है॥ २॥ हे सत्तम! सूक्ष्म स्थूलरूपसे ऐसे कालका अनुमान किया है, सुन्दर स्थितिकी व्याप्तिसे विभु भगवान् अव्यक्त हैं, वह मायासे भोगते हैं॥ ३॥ सो कालपरमाणु है, जो परमाणुभावको भोगता है उसको भी अधिक भोगे वह काल अत्यन्त बड़ा है, इनका यह अर्थ है कि ग्रह, नक्षत्र, ताराचक्र इत्यादिसे सूर्यका पर्यटन कहते हैं, यहां सूर्य जितने कालमें परमाणुके देशको उल्लंघन करते हैं उस कालका नाम परमाणु है, जितने कालमें द्वादशराशियोंपर विचरते हैं, वह परममहान् संवत्सर कहलाता है। इस क्रमसे युग मन्वन्तर आदि क्रमसे द्विपरार्द्धांत काल होता है, सब कालका विभाग हम पांचवें स्कन्धमें कहेंगे॥ ४॥ दो अणुसे परमाणु होता है और तीन परमाणुका एक त्रसरेणु होता है, वह त्रसरेणु झरोखोंमें सूर्यकी किरणोंसे दिखायी देता है, जो अतिसूक्ष्म है, पृथ्वीमें नहीं आता है, आकाशको उड़ता दीखता है॥ ५॥ तीन त्रसरेणुकी एक त्रुटि। त्रुटि उसे कहते हैं, जितने कालमें चुटकी बजावे, सौ बेर चुटकी बजानेसे जो काल व्यतीत हो उसे वेध कहते हैं तीन वेधका एक लव होता है॥ ६॥ तीन लवका एक निमेष होता है और तीन निमेषका एक क्षण कहलाता है, पांच क्षणकी एक काष्ठा बनती है, पंद्रह काष्ठासे एक लघु होता है॥ ७॥ पंद्रह लघुकी एक नाड़ी होती है, (इसे दंड भी कहते हैं) और दो नाड़ियोंका नाम मुहूर्त्त है, छः दंड अथवा सात दंडका एक प्रहर वा याम होता है, वह याम दिनका चौथा भाग है और रात्रिका भी चौथा भाग होता है, दिन-रातके घटने-बढ़नेका यह नियम है कि घटनेमें छः घड़ीका और बढ़नेमें पांच घड़ीका अंतर समझना चाहिये, क्योंकि नित्य-नित्य दिन और रात्रिके घटने बढ़नेके गिननेमें बहुत परिश्रम है, इसलिये छः और सात घड़ीका मोटा प्रमाण समझ लिया॥ ८॥ एक घड़ीका अनुमान कहते हैं–छः पलभर तांबेका पात्र हो सो इस प्रकार पलका प्रमाण भास्कराचार्यने सिद्धान्त शिरोमणिमें लिखा है कि "दशार्द्ध-

गुञ्जं प्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम् । कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः–इति" (अर्थ)-पांच गुञ्जाका एक माष होता है और गुंजा नाम चिरमिटीका है और भास्कराचार्यने दो जवभरका एक गुञ्जा लिखा है "तुल्या यवाभ्यां कथिताऽत्र गुञ्जा" और सोलह मासेका एक कर्ष होता है और चार कर्षका एक पल होता है, इस रीतिसे ३२० गुञ्जाका एक पल हुआ, ऐसे छः पलभर तांबेका पात्र बनाना और उस पात्रमें चार मासे सोनेकी शलाका बनाकर उस शलाकासे उस पात्रमें छिद्र करना । उस छिद्रसे जितने समयमें प्रस्थभर जलके प्रवेश होनेसे वह पात्र जलमें डूब जाये उतने समयको घड़ी कहते हैं । सिद्धान्तशिरोमणिके अनुसार ही प्रस्थका प्रमाण कहते हैं–हाथभर ऊंचा, हाथभर चौड़ा, हाथभर लम्बा, चौकोण पात्रको खारी कहते हैं और इसका सोलहवां भाग द्रोण कहलाता है और द्रोणके चतुर्थ भागको आढ़क कहते हैं और आढ़कके चतुर्थ भागका नाम प्रस्थ है । प्रस्थजल उसको जानना चाहिये कि जो खारीभर जलके सोलहवें भागके चौथे भागका चौथा भाग है ॥ ९ ॥ चार-चार प्रहरके मनुष्योंके दिनरात होते हैं, हे मानद ! पंद्रह दिनका शुक्लपक्ष और पंद्रह दिनका कृष्णपक्ष होता है ॥ १० ॥ दोनों इकट्ठे होनेसे एक मास होता है, वह पितरोंका एक अहोरात्र होता है ॥ ११ ॥ दो मासकी एक ऋतु और छः मासका एक अयन अर्थात् एक दक्षिणायन, एक उत्तरायण होता है यही दोनों अपने क्रमसे देवताओंके दिन और रात्रि होते हैं, और बारह मासका संवत्सर होता है, उसको वर्ष भी कहते हैं । मनुष्यकी परमायु सौ वर्षकी होती है, इस क्रमसे यह सूर्य उदय-अस्त होकर जगत्की आयु क्षीण करता है ॥ १२ ॥ और यह कहते हैं कि ग्रह जो चंद्र आदि नक्षत्र अश्विनी आदि जो और नक्षत्र उनसे उपलक्षित अर्थात् जिनसे जो कालचक्र जाना जाता है, उसमें स्थित काल आत्मा व्यापक समर्थ सूर्यनारायण हैं और संसार जो बारह राशिप्रमाण भुवनकोश हैं, उसका पर्यटन करते हैं ॥१३॥ हे विदुरजी ! संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर यह वर्षोंकी संख्या वर्णन की है, संवत्सरादिका भेद, सौर, बार्हस्पत्य, सावन, चान्द्र, नक्षत्रमासके भेदसे जान लेना । जब शुक्लपक्षकी संक्रांति पड़वाको होती है तब सौरचांद्रमाससे एकसंग वर्ष हो जाता है और सौर-नक्षत्रसे वर्षमें छः दिन बढ़ते हैं और चान्द्रमाससे वर्षमें छः दिन घट जाते हैं, इस प्रकार बारह दिनके घटने बढ़नेसे दोनोंका आगा-पीछा हो जाता है, ऐसे विचारसे पांच वर्ष होते हैं, उनके मध्यमें दो मलमास होते हैं फिर छठा संवत्सर होता है ॥१४॥ ऐसे कालात्मा सूर्यनारायणका अप्रमत्त होकर नित्य पूजन करे, इस बातको कहते हैं, "यः सृज्य–" इत्यादि श्लोक अंकुर आदि कार्य जिसका विषय है ऐही बीज आदिकोंकी शक्तिको, कालस्वरूप अपनी शक्तिसे बहुत प्रकार कार्यके सम्मुख करता हुआ अन्तरिक्षमें धाता है, वह कौन है ? जो कि महाभूतविशेष तेजोमण्डलरूपी सूर्य है वह किस प्रयोजनसे दौड़ता है, कि पुरुषके मोहको दूर करनेके अर्थ, अर्थात् दिनरातके प्रमाणसे आयु आदिके क्षीण होनेसे विषयोंमें लगी हुई प्रीतको छुड़वाता है और सकाम पुरुषोंको तो गुणमय स्वर्गादि फलका यज्ञोंसे विस्तार करवाता है, उस संवत्सरपञ्चकप्रवर्त्तककी पूजा करो॥१५॥विदुरजी बोले–पितर, देव मनुष्योंकी आयु आपने कही; अब जो इस कल्पसे बाहर ज्ञानी पुरुष हैं उनकी गति कहो ? ॥१६॥ निश्चय है कि कालरूप ईश्वरकी गति आप जानते हो, जो धीर पुरुष हैं वे अपने योगाभ्यासकी सिद्धिसे नेत्रोंसे विश्वकी सब गति जानते हैं ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले–"हे विदुरजी ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर

कलियुग, यह चार युग संध्या और संध्यांशके समेत दिव्य द्वादशवर्षोंसे निरूपणकिया ॥१८॥ फिर बारह सहस्र दिव्यवर्षोंकी यह अवस्था है, कि सत्ययुगका प्रमाण तो चारसहस्र ४००० दिव्यवर्ष और इनकी सन्ध्या संध्यांशका प्रमाण आठसौ ८०० दिव्यवर्ष त्रेतायुगका प्रमाण तीन सहस्र ३००० दिव्यवर्ष और इनकी संध्यांशका प्रमाण छः सौ ६०० दिव्यवर्ष और द्वापरयुगका प्रमाण दो सहस्र २००० दिव्यवर्ष और इसकी संध्या संध्यांशका प्रमाण चारसौ दिव्यवर्ष और कलियुगका प्रमाण एक सहस्र दिव्यवर्ष और इसकी संध्या संध्यांशका प्रमाण दोसौ २०० दिव्यवर्ष होते हैं। इन सबका जोड़ लगानेसे संध्या और अंश समेत चारों युगोंका प्रमाण बारह सहस्र १२००० दिव्यवर्ष होते हैं, मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिन-रात्रि होता है, दक्षिणायनका दिन, उत्तरायणकी रात। इस प्रकार मनुष्योंके तीनसौ साठ ३६० वत्सरका देवताओंका एक वर्ष होता है, इस स्थूलगतिके मानसे १४४०००० चौदह लाख चालीस सहस्र मनुष्योंके वर्षोंसे सत्ययुगका प्रमाण होता है, इसके संध्यांशका प्रमाण दो लाख अट्ठाइस हजार २२८००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगका प्रमाण दस लाख पचास सहस्र १०५०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगके संध्यांशका प्रमाण दो लाख सोलह सहस्र २१६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापरयुग प्रमाण सात लाख बीस सहस्र ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापरयुगके संध्यांशका प्रमाण एक लाख चौवालिस सहस्र १४४००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगका प्रमाण तीन लाख साठ सहस्र ३६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगके संध्यांशका प्रमाण बहत्तर सहस्र ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं इस प्रकार संध्या और अंशोंसमेत चारों युगका प्रमाण ४३२०००० तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष मनुष्योंके वर्ष होते हैं॥१९॥ दिव्य वर्षोंके सैकड़ोंसे जिनका प्रमाण कहा, वे संध्या और अंश हैं उनके बीचमें जो काल है, उसकी युगसंज्ञा है, कि जिसमें गवालम्भ यज्ञ आदिक विशेष धर्मका विधान है, और साधारण धर्म तो संध्या और अंशमें भी होता है, युगके आदिमें संध्या और अन्तमें अंश होते हैं ॥ २० ॥

दोहा–धर्म चार पद सतयुगे, त्रेतामें पद तीन।
द्वापरमें द्वै पद रहें, कलिमें एक प्रवीन ॥

सत्ययुगमें चारों पद समेत धर्म मनुष्योंका सेवन करता है, वही धर्म त्रेतादिक युगोंमें एक-एक चरणसे रहित होता है, जिस-जिस प्रकारसे एक-एक पांवसे अधर्म बढ़ता है, उसी भांति कलिकालमें तीन चरणोंसे धर्मरहित हो जाता है, यह कथन केवल वैराग्यके लिये है। कुछ धर्मके त्यागनेको नहीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ त्रिलोकीसे बाहर जो महर्लोक आदिसे लेकर ब्रह्मलोक तक हैं, उनमें सहस्र १००० चतुर्युगीका एक दिन होता है, हे तात! उन लोकोंमें रात भी सहस्र १००० चौयुगीकी होती है कि जिस रात्रिमें जगत्का रचनेवाला ब्रह्मा शयन करता है, रात्रिके अन्तमें लोकोंकी रचना आरंभ होती है, ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं ॥२३॥ इकहत्तर ७१ चौकड़ी तक एक-एक मनु अपना-अपना समय भोगता है, उन मनुओंके वंशमें देवता ऋषि होते हैं ॥ २४ ॥ सप्तऋषि गंधर्व ये सब क्रमसे होते हैं, और इन्द्रादिक जो उनके पीछेके हैं वे एक संग होते हैं ॥ २५ ॥ त्रिलोकीके प्रवर्त्तक चतुराननके

१. शंका–मैत्रेयजीने विदुरजीसे कहा कि सब प्राणियोंकी उत्पत्ति अपने अपने कर्मसे हुई है, परंतु जब प्रलयकालमें सब चर अचर [redacted] हो गये तब केवल एक नारायणही रह गये, कुछ कालोपरान्त नारायणकी नाभिसे एक कमलका फूल [redacted] हुआ उस फूलसे ब्रह्माजी उत्पन्न होकर सृष्टिकी रचना करने लगे, तब सृष्टिके पहले कर्म कहां रहा, कर्म तो जब प्राणी जन्म लेंगे तब करेंगे तो कर्म होंगे यह बड़ी शंका है ?

दिनकी यह रचना है, पशु, मनुष्य, पितर, देवताओंका जन्म कर्मसे होता है ॥२६॥ मन्वन्तरोंमें आदि पुरुष नारायण अपनी मूर्तियोंसे सत्यको धारण करते हैं और अपने पुरुषार्थको उदयकर मन्वादिकोंकी सृष्टिकी रचना करते हैं ॥२७॥ तामस अंशका ग्रहण कर अपने विक्रमसे रोकते हैं और समय पाकर सब अपनेमें लीन देख सायंकालके समय मौन साध लेते हैं ॥२८॥ भुव आदि लोक उनमें लीन हो जाते हैं, जैसे जब निशा प्रवृत्त होती है तब चन्द्रमा सूर्य शुद्ध होते हैं ॥२९॥ शेषजीके मुखसे जब अग्निकी लपटें निकलती हैं, तब त्रिलोकी भस्म होने लगती है तब अग्निकी दाहसे पीड़ित हो भृगुआदि ऋषीश्वर महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं ॥३०॥ कल्पान्तमें समुद्रका जल बढ़कर शीघ्र त्रिलोकीको उत्कट क्षोभित चण्ड-प्रचण्ड पवनोंकी चलायमान लहरोंसे सबको डुबा देता है और जल ही जल दृष्टि आता है ॥ ३१ ॥ शेषजीकी शय्यापर श्रीपति नारायण जलमें योगनिद्रासे नेत्र मूद स्थित होते हैं और जनलोक निवासी वारंवार स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार कालगतिसे दिन-रात इस प्राणीकी आयु क्षीण होती है, परमायु सौ वर्षकी है ॥३३॥ आधी आयुको परार्द्ध कहते हैं, पूर्वार्द्ध, परार्द्ध दोनों हो चुके अब अपरार्द्ध प्रवृत्त हुआ है ॥३४॥ पूर्वपरके आदिमें ब्रह्मा नामक कल्प हुआ, उसका नाम ब्रह्ममतिधाम है, जहां ब्रह्माजी नाम शब्द ब्रह्म है ॥ ३५ ॥ उसके अन्तमें जो कल्प हुआ उसका नाम पद्म है, जो श्रीनारायणके नाभि सरोवरसे सर्वलोक उत्पन्न कर्ता कमल हुआ ॥३६॥ हे भारत ! यह कल्प तो हुआ। अब दूसरा वाराह कल्प हुआ, जहां आदि पुरुष अविनाशी भगवानने वाराह अवतार धारण किया ॥ ३७ ॥ जिसकी अचिन्त्य शक्ति कार्योंकी उपाधि रहित अनन्त आदि जगत्की आत्मा ईश्वरकी द्विपरार्द्ध निमेष काल कहा जाता है, इस क्रमसे आयुकी गणना गिननी नहीं चाहिये ॥३८॥ परमाणु आदि द्विपरार्द्ध पर्यन्तका यह कालरूप ईश्वर जो अभिमानी तेजस्वियोंको वश करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३९ ॥ जो मैंने इस ब्रह्माण्डका वर्णन किया; वह सब विकारोंसे भरा हुआ, विशेषादिसे वेष्टित, बाहरसे यह अण्डकोश पचासकोटि योजनका विस्तार है ॥ ४० ॥ इस ब्रह्माण्डमें परमाणुकी नाईं दश गुण अधिक कोटानकोट ब्रह्माण्डोंके समूह इसमें औरोंसे लक्षित होते हैं ॥ ४१ ॥

चौपाई—सोई सब कारणको कारण ❋ अक्षर ब्रह्म सकल जगतारण ॥

वह सर्व व्यापक महात्मा पुरुष विष्णुका परमधाम वैकुण्ठ है, जहां श्रीनिवास सदा वास करते हैं ॥

दोहा—एक पादमें सकल जग, जानहु विदुर सुजान।
तीन पाद वैकुण्ठ है, जहाँ वसत भगवान ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते तृतीयस्कन्धे परमाण्वादिद्विपरार्द्धपर्यन्तकालस्वरूपेश्वरवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

उत्तर—ज्ञानवान् जो मुनि हैं वे कर्मको प्रारब्ध नहीं कहते सब योनियोंके उपायको कर्म कहते हैं, जिस योनिका जैसा उपाय ब्रह्माजी देखते हैं उस योनिका इसी प्रकार रूप शब्द, चलना, खाना, पीना आदि सब कारणसे पृथक्-पृथक् सब योनियोंका बनाया है ॥

दोहा-द्वादशमें सब सृष्टिको, कियो विचार कुमार ।
तनुके किये विभाग दो, मनु शतरूपा नार ॥

इतनी कथा कह श्रीमैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी ! कालरूप भगवान् वासुदेवकी यह अद्भुत महिमा आपके सम्मुख वर्णन की; अब यह सुनिये कि जैसे ब्रह्माजीने सृष्टि रची ॥१॥ प्रथम अंधतामिस्र, तामिस्र, महामोह, मोह, तप्त, ये ब्रह्माने रचे, यह सब अज्ञानकी प्रवृत्तियाँ हैं ॥ २ ॥ अपनी सृष्टिको पापी देख ब्रह्माने अपने मनमें आनन्द नहीं माना और फिर भगवान्का ध्यान कर अपने मनको पवित्र कर दूसरी सृष्टिके रचनेका विचार किया ॥३॥ तब मनसे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार यह चार ब्रह्माजीने उत्पन्न किये, इन्होंने क्रिया छोड़ वीर्य ऊपरको चढ़ा लिया, अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए ॥ ४ ॥ तब ब्रह्माजीने कहा--हे पुत्रो ! जगत् रचो, तब चारोंने सृष्टिके रचनेकी इच्छा नहीं की, किन्तु मोक्ष धर्ममें परायण श्रीनारायणके ध्यानमें सदा लवलीन रहने लगे ।

दोहा-जान विघ्न हरिभजनमें, सृष्टि रचनको धर्म ।
माने नहिं विधिके वचन, भावत भगवद्धर्म ॥ ५ ॥

मेरी आज्ञा पुत्रोंने न मानी यह विचार ब्रह्माजीको रोष उत्पन्न हुआ, फिर पुत्र जानकर क्रोध शान्त किया ॥ ६ ॥ बुद्धिसे क्रोध रोका तो भी ब्रह्माकी भ्रुकुटीमेंसे उसी समय वह क्रोध नीलवर्ण बालकरूप बन उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ वह देवताओंसे प्रथम प्रादुर्भूत, रुदन करता हुआ ब्रह्मासे बोला-हे पिता ! हे जगद्गुरो ! मेरा नामकरण करो और मेरे रहनेका स्थान बताओ ॥ ८ ॥ बालकका यह वचन सुन ब्रह्मा पालन करते हुए सुन्दरवाणीसे बोले-मत रोओ। जो तुम कहोगे वही करेंगे ॥ ९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! उद्वेगसे बालक सदृश तुम रोये, इस कारण सब प्रजा तुम्हें, रुद्र नामसे पुकारेगी ॥ १० ॥ हृदय, प्राण, इंद्रियां, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, तप यह स्थान पहलेसे ही हमने तुम्हारे वास करनेके लिये रचे हैं, इनमें तुम वास करो और सब संसार ग्यारह नामोंसे तुम्हारा पूजन करेगा-मनु १, महिनस २, अहिमन्यु ३, शिव ४, कृतध्वज ५, भव ६, काल७, ईशान ८, उग्ररेता ९, धृतव्रत १०, वामदेव ११, और एकादश शक्ति तुम्हारी होगी, उसके नाम इस प्रकार हैं-धी १, धृति २, उशना ३, उगा ४, नियुत्सु ५, सर्पिला ६, अंबिका ७, इरावती ८, सुधा ९, दीक्षा १०, उत्तर रुद्राणी ११, यह नाम और स्थान और नारी तुम ग्रहण करो, अपनी स्त्रियोंसमेत तुम प्रजा रचो, जिससे तुम प्रजापति कहाओ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ जब ब्रह्माने यह आज्ञा दी, तब नीलकण्ठ शिवजीने अपनी आकृति स्वभावसे अपने समान भयंकर प्रजा रची ॥ १४ ॥

दोहा-भूत प्रेत वेतालगण, और पिशाच कराल ।
डाकिनि शाकिनि योगिनी, सिरजी शिव तेहि काल ॥

रुद्रके रचे हुए भूत-प्रेत सब जगत्को सब ओरसे खाने लगे, तब यह चरित्र देख प्रजापतिको अतिशंका हुई ॥ १५ ॥ हे सुरोत्तम ! ऐसी प्रजाके रचनेसे मैं भर पाया ! बस करो ! तीव्र नेत्रोंसे मुझसमेत यह प्रजा खानेको उपस्थित है ॥ १६ ॥ तुम्हारा कल्याण हो ! तप करो तो सब जीवोंकी सुखदायक जैसी प्रजा प्रथम थी तपसे वैसे ही प्रजा रचोगे ॥ १७ ॥ परमज्योतिस्वरूप भगवान् अधोक्षज, जो सब जीवोंके हृदयमें वास करते हैं उन ईश्वरको

तप करके अनायास प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले–ब्रह्माजीकी आज्ञा मान परिक्रमा दे बहुत अच्छा कहकर तप करनेको वनमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥ कुछ समय उपरान्त फिर जगत्के रचनेकी इच्छा हुई; तब भगवत्की शक्तियुक्त लोककी सन्तानके हेतु दश पुत्र उत्पन्न किये ॥ २० ॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरा ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, क्रतु ६, भृगु ७, वसिष्ठ ८, दक्षप्रजापति ९, और दशवें नारद हुए ॥ २१ ॥ विरंचिके अङ्गसे नारदजी हुए स्वयम्भूके अंगुष्ठसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ, त्वचासे भृगु हुए ॥ २२ ॥ नाभिसे पुलह, श्रवणसे पुलस्त्य, आननसे अंगिरा, नेत्रोंसे अत्रि, मनसे मरीचि हुए ॥ २३ ॥ दक्षिणस्तनसे धर्म हुआ, श्रीनारायण जिस धर्ममें विराजमान हैं। पीठसे अधर्म प्रकट हुआ, जिससे सब संसारकी भयानक मृत्यु हुई ॥ २४ ॥ हृदयसे काम, भ्रुकुटीसे क्रोध, नीचेके ओष्ठसे लोभ, मुखसे वाणी, लिंगसे समुद्र, गुदासे मृत्यु हुई, जो पापके आश्रित है ॥२५॥ छायासे कर्दमऋषि हुए, जो देवहूतीके प्राणनाथ थे–

चौपाई–इहि विधि बहुविधि विधितनमनसे❋प्रकट भयो जग विनहि यतनसे॥२६॥

मुखसे वीणापाणि सरस्वती उत्पन्न हुई, यद्यपि यह सुन्दरी अकामा थी, परन्तु हमने ऐसा सुना है, कि ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर हो गंये ॥ २७ ॥ पिताकी बुद्धि अधर्ममें देख ब्रह्माके पुत्र मरीचि मुख्यमुनिने अपने ज्ञानसे उपदेश किया ॥ २८ ॥ हे पिता ! आजतक ऐसा अनुचित कर्म किसीने नहीं किया, न आगे कोई करेगा, तुम जो सरस्वतीमें गमन करते हो, कामको जीतो क्योंकि तुम समर्थ हो ॥ २९ ॥ हे जगद्गुरो ! तेजस्वियोंके योग्य यह कार्य नहीं है, जिनके कर्मानुसार कर्म करनेसे सब संसारको सुख मिलता है ॥ ३० ॥

---

१. शंका–ब्रह्माने अपनी देहसे पृथक्-पृथक् अंगोंसे दश पुत्र क्यों उत्पन्न किये ? देहके एक अङ्गसे क्यों नहीं उत्पन्न किये ? दश पुत्रोंको पृथक्-पृथक् उत्पन्न करनेका प्रयोजन क्या था ?

उत्तर–नारदादि दश पुत्रोंको ब्रह्माने ध्यानसे जान लिया कि ये दशों पुत्र हमारी मोक्ष विद्याको नहीं जानेंगे, संसारके कर्ममें बड़े चतुर होंगे, इसलिये देहके पृथक्-पृथक् अङ्गसे उत्पन्न किया। ब्रह्माने जान लिया कि निश्चय करके हमारे देहके दश पुत्र कभी मोहको, कभी क्रोधको, कभी कामको, इत्यादिक अनेक प्रकारके संसारके कर्म हैं उनमें चतुर होंगे, इसलिये जिस अङ्गको जैसा स्वभाव चाहिये उस अङ्गसे वैसे ही पुत्र ब्रह्माने उत्पन्न किये ॥

२. शंका–नारदसे ब्रह्माने कहा कि हमारी इंद्रिय खोटे मार्गकी ओर कभी नहीं जाती, उसी समय ब्रह्माने अपनी कन्या सरस्वतीको देखकर उसके सङ्ग, भोगकी इच्छा क्यों की यह तो महानीच कर्म है ?

उत्तर–तारकासुरका किया हुआ दुःखका समुद्र उसमें डूबे हुए ब्रह्मा विष्णु एक दिन देवता और मुनियोंको सङ्गले कैलासको गये, तारकनामदैत्यके मारनेका उपाय पूछनेके लिये शिवजीके सम्मुख जाकर ब्रह्मा विष्णु देवमुनिसहित खड़े होकर वारंवार नमस्कार किया, हे गिरिजापते ! हे त्रिपुरारे ! तारकासुर हमको अत्यन्त दुःख दे रहा है, उसके मारनेका कोई उपाय बताइये, उसी समय बड़े जितेंद्रिय जो गरुडजी थे, वे एक हंसिनीको देख कामवश हो मोहित हो गये। ब्रह्मा उनको देखकर शिवजीकी सभामें मुसकाये, ब्रह्माका अभिमान जानकर गरुड़जीने ब्रह्माको शाप दिया, अरे अभिमानी ! हमने तो अपनी जातिके सङ्ग क्रीडाकरनेकी इच्छा की थी, पक्षीको पक्षीके संग रमण करना यह अन्याय कर्म नहीं है तो भी तुमने हमारी हँसी की, परंतु तुमने हमारी हँसी क्या की ? हमारे शापसे तुम्हारी भी हँसी सब संसारमें होगी, तुम अपनी पुत्रीको देखकर मोहित होगे और उसके सङ्ग संभोग करनेका मनोरथ करोगे और सब जगत्में तुम्हारी दुर्नामता होगी और कोई तुम्हारा पूजन न करेगा उसी शोकमें तुम्हारा देहपात होगा, इस शापवश होकर ब्रह्माने अपनी दुहिताके साथ कुकर्म करनेकी कामना की, कुछ अपनी इच्छासे ब्रह्माने यह निंदित कर्म नहीं किया, अतः इसमें संदेह करना वृथा है ॥ उदाहरण जैसे —

देखो शापके प्रतापसे जय-विजय भगवान्के पार्षद राक्षस हो गये, शापसे नारदमुनिका मुख बंदरके सदृश हो गया, दुर्वासा ऋषिके शापसे राजा नहुष अजगर सर्प हो गया ब्राह्मणोंके शापसे राजा नृग गिरगिट होकर कुएमें पड़ा रहा, वशिष्ठजीके पुत्रोंके शापसे राजा त्रिशंकु चाण्डाल हो गया और श्रवणके पिताके शापसे दशरथको प्राण त्यागने पड़े।

दोहा–तेजवंत जेहि मग चलत, तेहि मग सब संसार।
अनुचित उचित न गनत कछु, मानत मोद अपार॥

उस परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है, जिसने इस सृष्टिको अपने तेजसे आत्मामें स्थित किया है, वह परमेश्वर धर्मकी रक्षा करने योग्य है॥३१॥प्रजापति इस भाँति अपने पुत्रोंकी विनय सुन अत्यन्त ग्लानि मान मनमें अति लज्जित हुए और उसी समय अपना शरीर त्याग दिया॥३२॥ उस धीरवान् शरीरको दिशाओंने ग्रहण किया, जो तम नीहारनामसे प्रसिद्ध हुआ, जो अब भी संसारमें दृष्टि आता है, जिसको आजकल 'कुहर' कहते हैं ॥३३॥ फिर ब्रह्माने द्वितीय शरीर धारण कर विचार किया, कि जैसे पूर्वकालमें सब संसार रचित था अब वैसा किस प्रकार रचा जायगा यह विचार कर ही रहे थे कि, उसी समय चार मुखसे चार वेद हुए ॥३४॥ जिसको चार ब्राह्मण मिलकर करे वह यज्ञ, यज्ञोंका विस्तार, उपवेद और न्याय ये धर्मके चार चरण हैं, इसी प्रकार चार आश्रमोंकी चार वृत्तियाँ ब्रह्माजीने रचीं ॥ ३५ ॥ विदुरजी बोले कि हे तपोधन ! संसारके रचयिता विधाताने वेदादिकोंको मुखसे किस प्रकार रचा ?·और जो-जो जिसने रचा हो वह कृपा कर मुझसे सब कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि हे विदुरजी ! ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नामक पहले चारों वेदोंको पूर्वादि चारों मुखसे रचा, क्रमपूर्वक जो गानेमें न आये उन मन्त्रोंका स्तोत्र यज्ञका कर्म स्तुतियोंका समूह, प्रायश्चित्त, यह भी सब क्रमसे रचे ॥ ३७ ॥ फिर अपने पूर्वादि मुखसे आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेद अर्थात् धनुषविद्याका शास्त्र, गान्धर्ववेद (गानविद्याका शास्त्र, सरगम इत्यादि) (स्थापत्य) मन्दिर बनानेका शास्त्र, जिसको देवशिल्पी विश्वकर्मा भली भांति जानता है, यह चारों उपवेद भी उसी क्रमसे रचे ॥ ३८ ॥ सबसे दर्शनीय चतुराननने इतिहास पुराण पञ्चम वेद सब मुखोंसे रचा ॥३९॥ षोडशी (मृतककर्म) यह पूर्वकी ओरके मुखसे रचा, अग्नि लाना, अग्निष्टोम यज्ञ यह दक्षिणमुखसे रचे, उचित वक्ताओंके शास्त्र, रात्रिके अनुष्ठान पश्चिममुखसे रचे, वाजपेय यज्ञ, गोमेध यज्ञ, उत्तर मुखसे रचे ॥ ४० ॥ विद्याके द्वारा शौच करना, दया, तप, सत्य, दान, ये धर्मके चार चरण हैं और सब वृत्तियोंसे यथाविधि आश्रम रचे ॥ ४१ ॥ गायत्रीके उपासकोंको सावित्र कहते हैं, एक वर्ष तक व्रत करे उनको प्राजापत्य कहते हैं, वेदपाठ करना यह ब्राह्मणका धर्म है, नैष्ठिकब्रह्मचर्यको बृहद्व्रत कहते हैं, जिसका कोई निषेध न करे उसको वार्तावृत्ति कहते हैं, खेती करनी, यज्ञ करानेको यज्ञ करनेको संचयवृत्ति कहते हैं, विना मांगे जीविका करनेको शालीनवृत्ति कहते हैं ॥ ४२ ॥ गिरा हुआ अन्न बीनकर निर्वाह करनेको शिलोंछवृत्ति कहते हैं, घरमें रहकर उदर पूर्ण करनेको गृहवृत्ति कहते हैं, इस प्रकार वृत्तियाँ रचीं ॥ ४३ ॥ जो सांवेके चावलोंका भोजन करके तप करते हैं, वे वैखानस कहलाते हैं, जो नया अन्न मिलने पर पहला अन्न परित्याग करते हैं, वे वालखिल्य कहलाते हैं, जो प्रातःकाल उठकर जिस दिशाको जायँ और उधर जो फल प्रथम मिले उसको भक्षण कर जो अपनी आत्माको सन्तुष्ट करते हैं वे औदुम्बर कहलाते हैं और जो फल आपसे आप पककर पृथ्वीपर गिरे उसे खाकर जो आत्माका पोषण करते हैं वे फेनप कहलाते हैं, ये चार प्रकारके बनवासी ब्राह्मण हैं। अपने आश्रमके कर्ममें प्रधान रहें, वे कुटीचक कहलाते हैं, जो कुछ काम करके जीविकाका निर्वाह करते हैं और ज्ञान सीखते हैं वे बह्वोद हैं और जो ज्ञानका अभ्यास करते हैं, वे हंस हैं, तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करनेवाले निष्क्रिय हैं, इनमें

उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ वेदविद्या, वेदत्रयीकी वार्ता, दण्डविद्या, नीतिकी वार्ता, भूरादिक यह व्याहृति प्रणवब्रह्माके हृदयसे होती हुई ब्रह्माजीके बालोंसे उष्णिक छन्द प्रकट हुआ, त्वचासे गायत्रीछन्द हुआ, मांससे त्रिष्टुप्छन्द हुआ, हाड़ोंसे जगतीछन्द हुआ, स्नायुसे अनुष्टुप्छन्द हुआ ॥ ४५ ॥ मज्जासे पंक्तिच्छन्द हुआ और प्राणसे बृहतीच्छन्द हुआ; जीवसे स्पर्श हुआ और देहसे स्वर हुए ॥ ४६ ॥ 'श' 'ष' 'स' 'ह' यह ऊष्म ब्रह्माकी इन्द्रियोंसे हुए, 'य' 'र' 'ल' 'व' यह अंतस्थ ब्रह्माके बलसे हुए, षड्जादिक सप्त स्वर श्रीब्रह्माजीके विहारसे हुए । इसी प्रकार सब जानो ॥ ४७ ॥ प्रकट अव्यक्त जिसकी आत्मा, उस शब्दब्रह्मसे परे ब्रह्म विस्तृत अनेक शक्तियोंसे प्रकाश करते हैं ॥ ४८ ॥ इसके पीछे अपरविद्याका आश्रय लेकर फिर सृष्टि रचनेकी इच्छा की, बड़े वीर्यवान् ऋषियोंके महाविस्तृत सर्ग वर्णन किये, परन्तु बढ़े नहीं ।

दोहा—प्रजा बढ़नके हेत विधि, बहुविधि कीन्ह उपाय ।
सो न बढ़त यह होत कह, घातक देव जनाय ॥४९॥

हे राजन् ! अनेक-अनेक प्रकारके विचार कर ब्रह्मा हृदयमें चिन्ता करने लगे कि यह बड़ा आश्चर्य है, कि मैं नित्य ऐसे-ऐसे प्रचार करता हूँ परन्तु संसार बढ़ता नहीं ॥ ५० ॥ मुझको निश्चय होता है कि दैव इस सृष्टिको बढ़ने नहीं देता, इस कारण प्रजाकी वृद्धि नहीं होती । इस प्रकार जब ब्रह्माने दैवको दोष दिया ॥ ५१ ॥ तब ब्रह्माके तनमेंसे दो रूप प्रकट हुए, जिसको काम कहते हैं, तब उन दोनों स्वरूपोंसे मिथुन अर्थात् जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥५२॥ उनमेंसे जो पुरुष था उसका नाम स्वायंभुव मनु हुआ और जो स्त्री थी उसका नाम शतरूपा हुआ, वह मनु महात्माकी रानी हुई ॥ ५३ ॥ उन दोनोंने मैथुन धर्म प्रकट किया, मैथुन कर्म करनेसे प्रजा बढ़ी, मनुने शतरूपाके गर्भसे पांच पुत्र-पुत्री उत्पन्न किये ॥ ५४ ॥ हे सत्तम ! प्रियव्रत उत्तानपाद, ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति, प्रसूति ये तीन कन्या, ये पांच सन्तान हुईं ॥ ५५ ॥ आकूति रुचिप्रजापतिको व्याही गयी, देवहूति कर्दमजीको, प्रसूति दक्षको तब इनसे सब जगत् भर गया ॥ ५६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
तृतीयस्कन्धे मनुवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—इस त्रयोदश अध्यायमें, वराहप्रादुर्भाव ।
कथा परम आनन्दकी, वरणों सहज स्वभाव ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजा परीक्षित ! श्रीशुकाचार्यकी अत्यन्त मनोहर वाणी सुनकर भगवान् वासुदेवकी कथामें आदर कर कुरुनन्दन फिर पूछने लगे ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे महामुने ! ब्रह्माजीके प्यारे पुत्र स्वायंभुवमनु राजेश्वरने प्रियपत्नीको पाकर क्या किया ? ॥२॥ हे सत्तम ! उस आदिराजाका चरित्र मुझसे कहो ? जो मुझको श्रद्धा है वह श्रीवृन्दावनविहारीके आश्रित हो ॥ ३ ॥ बहुत प्राचीन राजाओंकी कथा श्रवण करनेका यही फल है और यही महात्माओंने कहा है, कि श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द जिनके हृदयमें वास करते हैं उनके गुणानुवादका श्रवण करना शुभफलका देनेवाला है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि विनीत सहस्र शिरवाले भगवान्के चरणारविन्दमें जिनके शिर—वे मैत्रेयजी

भगवत्‌की कथामें अत्यन्त प्रसन्न रोमाञ्चित हो विदुरजीके सम्मुख बोले ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि जब अपनी प्रियपत्नीसमेत स्वायम्भुवमनु हुए, तब हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे बोले ॥ ६ ॥ तुम सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले, वृत्तिदायक पितामह हो, हे नाथ ! कौनसे कर्मद्वारा यह प्रजा आपकी सेवा करे ? ॥ ७ ॥ हे स्तुतियोग्य ! आप बताइये कि आपको किस प्रकार नमस्कार हो, और अपनी सामर्थ्यानुसार जो कर्म कर सके, जिसके करनेसे लोक-परलोक दोनोंमें सुयश हो और सब प्रकारसे उत्तम गति प्राप्त हो ॥ ८ ॥ स्वायम्भुवमनुकी विनय सुन मैत्रेयजी बोले कि, हे पुत्र ! हे पृथ्वीश्वर । मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, संसारमें तुम्हारा यश बढ़े, मङ्गलकी वृद्धि हो; निष्कपट हृदयसे जो मैंने कहा वह तुमने किया और सब प्रकार मेरी आज्ञा मानी–

दोहा–यही धर्म है सुतनको, यही सत्य पितु सेव ।
सदा भक्ति भर शीशपर, पितुशासन धर लेव ॥ ९ ॥

हे वीर । ईर्षा त्याग अपनी शक्त्यनुसार पिताकी आज्ञा उल्लंघन न करे, पिताको महा-आदरसे इतनी ही पूजा करनी बहुत है ॥ १० ॥ हे आत्मज ! तुम्हारे समान जिसमें गुण और पुरुषार्थ हो, ऐसी सन्तान इस शतरूपा स्त्रीमें उत्पन्न कर धर्मसे पृथ्वीकी शिक्षा करो, और परमेश्वरमें मन लगाओ ॥११॥ हे नृप ! प्रजाकी रक्षा मन लगाकर करो, यह मेरी परम शुश्रूषा है, भगवान् और इससे सब प्रजाके भर्ता हृषीकेश प्रसन्न होंगे ॥१२॥ यज्ञरूप जनार्दन भगवान् जिनपर संतुष्ट नहीं होते उनका यह मनुष्य देहधारण करना केवल श्रममात्र हुआ है । आप धन्य हैं ! जो नारायणका आदर किया ॥ १३ ॥ मनुजी बोले कि हे पाप नाशक ! हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञा अवश्य करूँगा, परन्तु मेरा वासस्थान और प्रजाके रहनेको जगह बताइये ॥ १४ ॥ हे देव ! सब जीव मात्रका जिस पृथ्वीपर वास करनेका स्थान है वह पृथ्वी महाप्रलयके जलमें निमग्न हो रही है, इस भूदेवीके उद्धारका कोई यत्न करो, जिसपर यह प्रजागण वास करें ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, चतुरानन जलमें धरणीको डूबी देख मनमें बहुत काल तक चिंतन करते रहे, किस प्रकारसे इसका उद्धार किया जायेगा, जो प्रजागण इसपर वास करें ॥ १६ ॥ विश्व रचनेके ही समय मेरे सम्मुख जलमें डूबकर पृथ्वी रसातलको चली गयी अब हम सब इस वसुधाके निकालनेका क्या उपाय करें ? ॥ १७ ॥ जिसके हृदय-कमलसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ, वह भगवान्, वासुदेव, करुणासिंधु, भक्तवत्सल, दीनबन्धु, तीर्थरूप जिनकी कीर्ति, वे नारायण मेरा मनोरथ पूरा करेंगे ॥१८॥ हे अनघ ! ब्रह्माजी यही विचार कर रहे थे, कि उसी समय पितामहकी नासिकाके छिद्रसे अकस्मात् अंगुष्ठमात्र वराहका

---

१. शंका–भागवतके तृतीयस्कन्धमें वीस अध्यायके तेरहवें श्लोकके अर्थसे विदित होता है कि हिरण्यकशिपु आदि राक्षसोंके मरनेके पीछे सृष्टिकी रचना ब्रह्माने की है, तब सृष्टिके पहले हिरण्यकशिपु आदि राक्षस कैसे उत्पन्न हुए ? जिन राक्षसोंके भारसे पृथ्वी रसातलको चली गयी ? अच्छा, जब पृथ्वी रसातल को गयी तो ब्रह्माको क्यों नहीं जान पड़ा, जब मनुराजाने पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहा तो ब्रह्माको ज्ञात हुआ कि पृथ्वी रसातलको चली गयी, यह बड़ी भारी शंका होती है ?

उत्तर–जिस दिन स्वायंभुवमनुने ब्रह्मासे कहा, कि पृथ्वीको तो हिरण्याक्ष हर ले गया उस दिन मरीचिके कुलमें राक्षस बहुत जन्मे थे तथा उसी दिन आधी सृष्टि हिरण्याक्ष तपस्याके प्रभावसे पृथ्वीको हर ले गया, उस दिन शीघ्रताके कारण नीचेके सात लोकोंको ब्रह्माने नहीं रचा था केवल नीचेके सात लोकोंकी ठौरपर जल भर रहा था । पृथ्वीका हरण हुए पीछे दो एक घड़ी व्यतीत हुई थी, देवता पृथ्वीका वृत्तान्त ब्रह्मासे कहनेके लिये जाते ही थे कि तबतक स्वायंभुवमनुने शीघ्र जाकर पृथ्वीके हरनेका वृत्तान्त ब्रह्मासे कह दिया, तब ब्रह्माने सुनकर अपने चित्तमें बड़ा खेद माना, तब उसी समय विष्णुभगवान्‌ने प्रकट होकर सब कार्य सिद्ध किया, इस प्रकारसे सृष्टिके पूर्वकालमें राक्षसोंने जन्म लिया ।

एक बच्चा निकला ॥ १९ ॥ हे नरनाथ सबके देखते-देखते वह एक क्षणमें आकाश तक पहुँचा, गजके समान बढ़कर महाअद्भुतरूप दृष्टि आने लगा ॥ २० ॥ मरीचि आदि ब्राह्मण सनत्कुमारादि मनु सहित ब्रह्माजी शूकरको निहार अनेक-अनेक प्रकारके विचार करने लगे ॥ २१ ॥ यह वाराहरूप धारण कर कोई स्वर्गवासी तो नहीं चला आया है, बड़े आश्चर्यकी बात है कि मेरी नासिकामेंसे यह शूकर रूप धारण कर कौन निकला ? ॥ २२ ॥ पहले तो अंगुष्ठ समान था, एक क्षणमें गजसम दृष्टि आने लगा, अब बड़े पर्वत समान स्थूल दृष्टि आने लगा, कहीं यज्ञ भगवान् मेरे मनको खेद तो नहीं करते हैं ॥२३॥ पुत्रोंसमेत ब्रह्माजी यह विचार कर रहे थे, कि उसी समय अंतरिक्षसे बादलके समान, गर्जन-सा शब्द हुआ; ब्रह्माके सम्मुख यज्ञ पुरुष भगवान् बादलके समान गर्जने लगे ॥ २४ ॥ उन उत्तम ब्राह्मणोंको और ब्रह्माको श्रीवाराहजीने महामोहित किया और सामर्थ्यवान् श्रीवाराहजीके गर्जनसे सब दिशायें गर्जन कर उठीं ॥ २५ ॥ उस समय मायामय वाराहजीका घुर्घुर शब्द क्लेशनाशक सुनकर जनलोक-तपलोक-निवासी मुनिगण परमपवित्र वेदत्रयीमंत्र पढ़-पढ़कर मधुरवाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥ उन सज्जनोंको वेद विस्तारक ब्रह्म अपने गुणानुवादोंको सुनकर श्रीवाराहजीने फिर गर्जकर देवताओंके उदयके अर्थ गजेन्द्र समान लीलाकर जलमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥ जिनकी पुच्छ ऊपरको उठ रही है, आकाशमें विचरते हैं और जिनके कठोर कन्धे धूसररंगके बाल फड़क रहे हैं, तीक्ष्ण रोम हैं ।

दोहा-खने जात जाके खुरन, नभ जलचर चहुँओर ।
महाकराल विशाल अति, सोहत दन्त कठोर ॥

चौपाई-ध्रुव धरणी उद्धारन हेत ❋ देवनहित मंगल श्रुतिसेत ॥

भयानक दृष्टि पृथ्वीके उद्धारक श्रीवाराहजीने प्रकाश किया ॥२८॥ नासिकासे पृथ्वीको सूंघते हैं, जिस कारण श्रीवाराहरूप धारण किया । यज्ञ तो आपके अंग हैं कठोर डाढ़ कोमल दृष्टिसे स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंकी ओर देखकर जलमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ हीरापर्वतके समान अङ्ग, जलमें कूदनेके वेगसे कोखें फटीं, इस प्रकार समुद्रका जल इधर उधर फैल गया, दीर्घ तरंगमाला भुजायें सी दृष्टिसे आती हैं, दुःखी जन कहते थे कि हे यज्ञेश्वर ! हमारी रक्षा करो ॥ ३० ॥ यज्ञमूर्ति वाराहजी महाराज अथाहजलकी थाह लेनेके लिये जलको कुदालकी नाईं तीव्र खुरोंसे चीरते फाड़ते जाकर पृथ्वीको देखा; जिससे सब जीवोंको धरनेवाली धरणीको प्रलयके समय आप श्रीजलनाथने उदरमें धारण किया था ॥ ३१ ॥ जो धरणी जलमें डूब गयी थी उस पृथ्वीको अपनी डाढ़से उठा कर रसातलसे ऊपरको लाये; तब अत्यन्त शोभा हुई, चक्रसे सहस्रगुण तीव्र तेज जिनमें ऐसे वाराहजीने हिरण्याक्ष दानवको गदा हाथमें लिये आता हुआ देखा ॥ ३२ ॥ वाराहजीके सम्मुख आ मार्ग रोककर खड़ा हुआ और घूमकर भूमिके छीननेका उद्योग करने लगा, तब वाराहजीका क्रोध अत्यन्त बढ़ा और सिंहसमान गर्जकर दोनों दांतोंसे हिरण्याक्षका सब शरीर चीर डाला और उसके रुधिरकी कीचमें लिपटी हुई अपनी तुण्डसे लीला करने लगे ॥ ३३ ॥ हे भूपाल ! तमालसमान नीलश्वेत दांतोंके अग्रभागोंसे गजलीलाकी भांति पृथ्वीको उछालते हुए सर्व ऋषि, मुनि, ब्रह्मादिक, देवताओंने वाराहजीको देख हाथ जोड़ वेदके मंत्रोंसे ब्रह्मादिक देवता

स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे अजित ! हे यज्ञभावन ! आपने सबको जीता है; वेदत्रयीमय रूप धरकर शरीरको कँपाया, आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे देव ! निश्चय है कि दुष्ट कर्म करनेवालोंके इस आपके यज्ञस्वरूपका दर्शन होना कठिन है, सब छन्द आपकी त्वचामें हैं, यज्ञ रोममें हैं, सुन्दर आज्य दृष्टिमें है, चातुर्होत्र यज्ञ चरणोंमें है ॥३६॥ हे ईश ! जुहु नामक स्रुवा आपकी तुण्ड है, द्वितीय स्रुवा आपकी नासिका है, भक्षणका पात्र चमस कर्णका छिद्र है, ब्रह्म भाग पात्र मखका छिद्र है, चर्वण अग्निहोत्र है ॥ ३७ ॥ दीक्षा आपका जन्म, तीन दृष्टि, शिर, होष्ठ, ग्रीवा है, दीक्षाके पीछेकी इष्टि और समाप्तकी इष्टि आपकी डाढ़ है, जो प्रथम महावीर किया जाय वह रसना है, यज्ञ तुम्हारा शीश है; उपासनाकी अग्नि सभासद हैं, इष्टका चयन तुम्हारे पंचप्राण हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! चन्द्रमा आपका वीर्य है, सब यज्ञ अवस्थिति है, संस्थाभेद तुम्हारी सप्त धातु हैं, वह संस्थाविभेद ये हैं, अग्निष्टोम १, अत्यग्नि २, उक्थ्या ३, षोडशी ४, वाजपेय ५, अतिरात्र ६, आप्तोर्याम ७। आप ही सब यज्ञ शरीर की संधि हैं, आप ही सर्व यज्ञ इष्टबंधन हो ॥ ३९ ॥ सब मन्त्र-देवता द्रव्यरूप, सर्व क्रियारूप, यज्ञरूपके अर्थ नमस्कार है, आत्मीयवैराग्य, भक्तिसे अनुभव किये ज्ञानरूप, विद्यागुरुके निमित्त प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! भूधर ! डाढ़के अग्रभागपर पर्वतसहित धरणी तुमने धारण की है, वह अत्यन्त प्रकाशमान हो रही है, जैसे जलमेंसे निकले गजेन्द्रके दांतोंपर धरी हुई कमलिनी शोभा देती है, इसी प्रकार आपके दशनोंपर पृथ्वी शोभायमान हो रही है ॥ ४१ ॥ वेदत्रयीमें यह वाराहरूप है, भूमण्डल आपने दांतोंपर धारण किया, डाढ़ारूढ शृंगपर मेघवत् विदित होता है। बड़े भारी कुलाचलपर्वतका जिस प्रकार विलास शोभित होता है इसी प्रकार आपकी शोभा है ॥ ४२ ॥

॥ छंद मदनहरा ॥

जय सब सुररूपा त्रिभुवनभूपा रूपअनूपा यज्ञमये प्रभु प्रकट भये।
जय ज्ञानविरागा भक्तिविभागाप्रद बड़भागा क्षमाक्षये सुखदासदये ॥
जय वपुषवराहा खलनरनाहा दायकदाहा कृष्ण हरे अतिभासभरे।
जय धरणिउधारन ज्यौं वरवारन पदमिनिधारण दन्तकरे जलते निकरे ॥
दवदाढकराला परयहकाला धरणिविशाला बिलसि रही कबिसुछबि कही।
जिमि मेघनमाला मधिउडुमाला तापरकाला राहु सही तेहिग्रसत नही ॥
जय वसुधाधारी जलधिविहारी सुछबि तुम्हारी निरखि परे मनमोद भरे।
मनशैलश्रृंगपर द्वैजचन्द्रवर जलधरतापर प्रभा भरै कवि यूं उचरै ॥
जय दीनदयाला रूप विशाला हरणउताला शोक सबै हम लखै अबै।
जय विधिविधुमाला देवनमाला त्रिभुवनपाला चरणनवै कृतमहारवै ॥
जननिवसनहेतू हे खगकेतू मोद निकेतू धरणि धरो द्विजकाज करो।
हे तुमहि प्रणामा महि तुव वासा हे श्रीधामा तेज भरो निज थानअरो ॥
हे कृष्ण मुरारी जनहितकारी संकटहारी महिधरता तेहिं उद्धरता।
कछु अचरज नाहीं स्वच्छ सदा ही यहि जगका ही सुखकर्ता लक्ष्मीभरता ॥

तवकेशनकारे पारावारे विन्दुअपारे छूट गये सुरलोक गये।
विधिलोकनिवासी दरशनआसी हमशुचिरासी होत भये तव दर्श लये॥
जो चहत महाना तव गुणनाना को अवसाना मुदसोई नहिं सकत जोई।
तुम्हरी यह माया जगतनिकाया मोहहिछाया नहिं गोई तेहिसम नकोई॥
जगमंगल कीजे भक्ति न छीजे यह यश लीजे जगदीशा धृतिक्षितिशीशा।
हे करुणासागर गुणगणनागर जगतउजागर मोहिदीशा प्रभुविधिईशा॥
कोटिनयुग पापा औरहु शापा दुसहसतापा करनसकै नियरा तजकै।
जै अतिमनलाई कथा सुहाई धरणि बचाई रदधरकै रिपुसे लड़कै॥
कोउ तुम समनाहीं त्रिभुवनमाहीं जेहिढिगपाहीं हमजाहीं स्वारथपाहीं।
दृग नहिं दरशाहीं तेहि भुजछाहीं हमसुखपाहीं दुखदाहीं अतिविलसाहीं॥
हे श्रीगोविंदा यदुकुलचन्दा आनँदकन्दा नँदनन्दा हरभवफन्दा।
तुव पदअरविंदा निकटवसिंदा हममतिमन्दा स्वच्छन्दा तजजगनिंदा॥
शूकरतनु धारे नाथ हमारे मोद अपारे विस्तारे दुख निरवारे।
मधिपारावारे करहु विहारे सदासुखारे बहुवारे कारज सारे॥
धरणी उद्धारे दानव मारे सुयश पसारे बलवारे तनमनवारे।
युगचरण तुम्हारे सदा हमारे रक्षनहारे सुखसारे यह संसारे॥

दोहा–इहि विधि जब अस्तुति करि, मुनिन सहित करतार।
तब धरणीमें धरत भये, अपनो तेज अपार॥

हे नाथ! उसको स्थित करो, यह स्थावर जंगमकी माता है, लोकके अर्थ तुम्हारी माया है, तुम हमारे पिता हो; हम तुम समेत अचलादेवीको नमस्कार करते हैं, जिस पृथ्वीपर अपना तेज अग्निको काष्ठमें तुम धारण करते हो ॥४३॥ हे प्रभो! रसातल गयी मेदिनीका लाना आपके विना कौन कर सकता है? विस्मय करनेवालोंको आपके कर्तव्यमें कुछ विस्मय नहीं है जो अपनी मायासे इस विश्वकारी विश्वको रचा ॥ ४४ ॥ हे ईश! वेदमय निज शरीरको कँपानेसे जो आपके बाल उठे उस समय सुन्दर जलके विंदुओंसे स्नान किये, तप, जन, सत्य लोकवासी हम सब पवित्र हो गये॥४५॥हे कर्मरहित! जो तुम्हारे कर्मोंका पार मानते हैं, वे निश्चय मतिहीन हैं। हे भगवन्! योग मायाके गुणोंसे मोहित तुम सब विश्वके मंगलकर्ता हो ॥ ४६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, ब्रह्मादिक देवताओंने जब इस भांति स्तुति की तब वाराहजीने अपनी धारणा शक्तिद्वारा पृथ्वीको अपने खुरोंसे मथित जलपर अचल किया ॥ ४७ ॥ वाराह भगवान् विष्वक्सेन प्रजापति हरि रसातलसे लीला करके पृथ्वीको ला, जल पर स्थापित कर वैकुण्ठको चले गये ॥ ४८ ॥ जो श्रोता इस मायावी, पवित्र श्रीवाराहजीकी महासुन्दर, आनन्दकारी, विघ्नहारी कथाको भक्तिसे प्रीति लगाकर सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, उनके हृदयमें जनार्दन भगवान् अपना वासस्थल बनाते हैं ॥ ४९ ॥ जब सब आशीर्वादोंके स्वामी भगवान् प्रसन्न हो गये तो फिर जीवोंको कोई बात दुर्लभ नहीं है, अर्थात् सब कुछ प्राप्त होता है, अनन्यदृष्टिसे भजनेवालोंके अन्तःकरणवासी परमात्मा

अपनी परम गतिको आप ही देते हैं ॥ ५० ॥ इस लोकमें पुरुषार्थ सारवेत्ता पुरातनकथामें भगवत्कथामृतको कर्ण अंजलीसे जिसने पान किया है, यह कथा उसके सब संसारी पापोंका नाश करनेवाली है, एक पशु ही तो नहीं और सबको ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

कबित्त–कौन अभागी काके कुमति प्रजागी काके, लागी कुल आगीकौन कागी जौन पावैगो । कौन विषयपान कीन्हों स्वारथ न चीन्हों कछु, कौन धर्मसेतू नाँघि नरक सिधावैगो ॥ पुच्छशृंगहीन कौन पशु पातकी न होत, कहत रघुराज काज काहूके न आवैगो । रसिक कहाय कौन मन्दमति ह्वैहै जौन, नाहिं आनन्दसो गोविन्दगुण गावैगो ॥

दोहा–जो जन सेवत प्रीति सों, केशव पद अरविन्द ।
पकर हाथ भवसिन्धुते, तेहि तारत गोविन्द ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे श्रीवाराहावतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–इस चौदह अध्यायमें हिरण्याक्ष वधमूल ।
सांझ समयके गर्भकी, कहौं कथा प्रतिकूल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, हे कुरुनन्दन ! जगत् कारण, वाराहतनधारी, श्रीवैकुण्ठनाथकी कथा मैत्रेयजीसे सुन हाथ जोड़कर विदुरजीने पूंछा ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! यज्ञमूर्ति श्रीवाराहजीने आदिदैत्य हिरण्याक्षका जिस प्रकार वध किया वह मैंने सुना ॥२॥ परन्तु हे ब्रह्मन् ! त्रिलोकीनाथने डाढ़के अग्रभागपर धराको धरकर लीलापूर्वक जब लाये, उस समय श्रीवाराहजी और हिरण्याक्षसे किस प्रकार संग्राम हुआ वह कृपापूर्वक कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे कुरुकुलमणे ! तुमने यह मनोहर भगवान् जगदाधारकी कथा मनुष्योंके कालकर्म छुड़ानेवाली बहुत अच्छी पूछी ॥ ४ ॥ श्रीनारदमुनिकी कही यह कृष्ण-कथा सुनकर राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव पांच वर्षका बालक भक्तिके प्रभावसे–

दोहा–दै डंका यमलोकमें, सुरनशीश धर पाय ।
देह सहित सुर पुर गयो, रही कीर्ति जग छाय ॥ ५ ॥

यह इतिहास मैंने सुना है; यह प्रथम देवताओंके पूछनेपर लोककर्ता चतुराननजीने देवताओंके सम्मुख वर्णन किया था ॥६॥ अब हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपकी उत्पत्ति कहते हैं; एक समय संध्याकालमें दक्षपुत्री दिति पुत्रार्थ कामशरसे पीड़ित हो मरीचिसुवन कश्यप अपने स्वामीके पास जाकर उनसे विषयकी इच्छाकी ॥७॥ और वे अग्निजिह्वा यजुर्वेदके प्रति विष्णु भगवान्का दूधसे यजन करके सूर्य अस्तके समय यज्ञशालामें सावधानतासे बैठे थे ॥ ८ ॥

१. शंका–विष्णुभगवान्ने पृथ्वीको हिरण्याक्षसे छुटानेके लिये अनेक प्रकारके श्रेष्ठ-श्रेष्ठ शरीरोंको छोड़कर जैसे कोई जीव बुरा कर्म कर और उस जीवको निंदित कर्म करनेसे खोटी योनि धारण करनी पड़ती है । इसलिये अत्यन्त निंदित शूकरकी योनि विष्णु–भगवान्ने क्यों धारण की ? शूकरकी योनि तो अत्यन्त दुष्ट है ।

उत्तर–विष्णुभगवान्ने जान लिया कि यह हिरण्याक्ष ब्रह्माके वरदानसे [illegible] प्रमादसे उन्मत्त हो रहा है, संसारमे जितने चराचर जीव ब्रह्माके बनाये हुए हैं उसमेंसे केवल एक वाराहके अतिरिक्त यह और किसीसे नहीं मरेगा, वाराहहीसे मरेगा यह विचार श्रीलक्ष्मीके नाथ नारायणने शूकरका शरीर धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला और जलमें डूबी हुई पृथ्वीको जलसे निकालकर पृथ्वीके स्थान पर पृथ्वीको रख दिया ।

दिति बोली कि हे स्वामी ! पंचशर घोर धनुषबाण लेकर मुझे तुम्हारे कारण दुःख देता है, और मुझ अबलापर बल प्रकट करता है जिस प्रकार मतवाला हाथी | केलेके वृक्षपर बल प्रकाश कर उसको व्यथा देता है, इसी भांति यह मनसिज मेरे तनुरूपी वनको भस्म किये डालता ॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतनकी बढ़ती मुझसे नहीं देखी जाती, अब आप मुझपर कृपा करके सर्वगुणखान महाबलवान् एक पुत्र मुझे दीजिये ॥ १० ॥ भर्तासे बहुत सम्मानित स्त्रियोंका यश सब संसारमें फैल जाता है, आप सरीखे मेरे पति हो और फिर भी मेरे पुत्र न हो यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ११ ॥ हे नाथ ! पुत्रियोंके परम हितकारी हमारे पिता पुत्रियोंसे अत्यन्त स्नेह करते थे, एक दिन पिता हम सबसे हँसकर बोले कि हे पुत्रियो ! तुम किसके सङ्ग अपना विवाह करोगी ? इस भांति प्रत्येकसे पृथक्-पृथक् पूछने लगे ॥१२॥ उस समय हम तेरह बहनोंने आपमें ही मन लगाया, तब हम सब पुत्रियोंको संतान होनेका भाव जान तेरह बेटियोंको पिताजीने तुम्हें दिया और हम सब तुम्हारे शील स्वभावके अनुसार चलीं ॥ १३ ॥ हे कल्याणकर्ता ! हे कमलनयन ! हे प्राणनाथ ! हमारी इच्छा पूर्ण करो। हे भूमन् ! आपसरीखे महात्माओंके निकट आर्तोंका आना व्यर्थ नहीं होता ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इस प्रकार महाकृपण दितिके मनोहर वचन सुन उसकी अत्यन्त प्रशंसा कर मदनका बल वर्द्धित देख कश्यपजी मधुरवाणीसे बोले ॥ १५ ॥ हे भीरु ! जो तेरा मनोरथ है यह प्रियविधान मैं सब तेरा पूर्ण करूँगा, जिस स्त्रीसे धर्म, अर्थ, काम पदार्थ प्राप्त हो उसका काम कौन नहीं कर सकता ? स्त्रीके विना चारों वर्णोंका तिरस्कार है इसलिए गृहस्थ होना मुख्य धर्म है ॥ १६ ॥ सब आश्रमोंको ग्रहण कर जो अपने गृहस्थाश्रममें रहते हैं वे सब व्यसनोंके समुद्रको तर जाते हैं; जिस प्रकार जहाजमें बैठ समुद्र पार हो जाते हैं, ऐसे ही संसारमें गृहस्थलोक भवसागर पार हो जाते हैं ॥ १७ ॥ हे भामिनि ! श्रेयःकामके लिये अपनी अर्द्धांगिनी जिसको कहते हैं जिसमें अपना सब भार धर पुरुष विगतज्वर होकर विचरते हैं ॥ १८ ॥ और आश्रयोंके जीतनेके अयोग्य उन दुर्जय इंद्रियरूप शत्रुओंको जिस स्त्रीके आश्रयसे लीला करके हम पराजित करते हैं, जिसे दुर्गेश दुर्गमें अवस्थान कर चारोंका पराभव करता है ॥ १९ ॥ हे गृहेश्वरि ! तुम्हारे किये उपकार का प्रत्युपकार करनेको संपूर्ण आयुसे तुम्हारे समान होनेका सामर्थ्य नहीं है और जो प्रिय गुण तुममें हैं उनके वर्णन करनेकी भी सामर्थ्य मुझमें नहीं है ॥ २० ॥ तो भी पुत्रकी उत्पत्तिके लिए तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा; परन्तु एक मुहूर्त्त धैर्य धारण करो जिससे संसारी मनुष्य निंदा न करें ॥ २१ ॥ इस समय महाघोर तम है वरन् घोरोंको भी घोरतम दिखानेवाले भूतनाथके गण इस समय जहां-तहां विचरते हैं ॥

दोहा—सन्ध्यासमय भयावनो, घूमे भूत पिशाच।
डाकिनि शाकिनि योगिनी, जहां तहां रहिं नाच ॥ २२ ॥

हे शुभानने ! इस सायंकालमें भगवान् भूतभावन, त्रिपुरारी, भूतनाथ, भूत पार्षदोंके गणसहित श्रीमहादेवजी वृषारूढ हो संसारमें पर्य्यटन करते हैं ॥ २३ ॥ स्मशानस्थ पवन मंडलीका अंधकार धूम्रसमान बिखरे हुए प्रकाशित जटासमूह, रजतसमान शोभायमान, तनपर चिताभस्म लगाये, महाभयंकर काले नाग लिपटाये, तुम्हारे देवर शिवशंकर चन्द्र, सूर्य, अग्नि इन तीनों नेत्रोंसे आठों प्रहर देखते रहते हैं, वे अवश्य हमारे तुम्हारे विहारको

देखेंगे ॥ २४ ॥ और महादेव ऐसे बेलाग हैं कि संसारमें न कोई उनका मित्र है, न शत्रु है, न अति आदरणीय, न निन्दायोग्य है, जिनके चरणोंसे त्यक्त भोगोंके निमित्त व्रतों से उनकी आराधना कर, उनके विभूतिरूप महाप्रसादकी हम सब आशा करते हैं ॥ २५ ॥ जिन भूतभावन भोलानाथका विषयशक्तिशून्य, अनिंद्यचरित्र, अविद्यानाशक, विलक्षण बुद्धिमान, महात्मा लोग वर्णन करते हैं, उनके समान उनसे बड़ा ज्ञानवान् जगत्में और कोई नहीं, सज्जनोंको गति देनेवाले आप सदाशिव पिशाचवत् लीला करते हैं ॥ २६ ॥ सदा अपनी आत्मामें रमण करें, सर्वज्ञ, त्रिकालके ज्ञाता, जिन महादेवके चरित्रोंको देख-देखकर दुर्भागी लोग हँसते हैं, परन्तु भुजगभूषणके आचरणोंका आशय नहीं जानते, वे अभागे अनेक-अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषण पहने, चन्दन सुगन्ध लगाये, जिस शरीरको श्वान, काक खायें उस देहको अत्यन्त नित्य मानते हैं और यह जानते हैं कि यह देह आत्मा है, यह समझ उनका अत्यन्त लालन-पालन करते हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मादिक देवता दिक्पाल जिनकी स्थापित मर्यादाको पालते हैं, इस जगत्के जो कारण हैं उनकी आज्ञाकारिणी माया है, वह भी पिशाचनियोंकी भांति रहती है, यह परमेश्वरके चरित्र तर्कमें नहीं आते; उनकी अपार महिमाका पार कौन पा सकता है ?

कवित्त–नन्दीकी सवारी नागश्रृङ्गीकरधारी सदा, सन्तसुखकारी नीलकंठ त्रिपुरारी हैं। मुण्डमालकारी शिरगंगाजटाधारी बाम, अंगमें बिहारी गिरिराजसुता थारी हैं ॥ दानरेख भारी शेष शारद पुकारी काशी,–पति मदनारी करशूलचक्रधारी हैं। कला उजियारी हे नाथ है तुम्हारी यश गावें वेदचारी शिवपूर्ण ब्रह्मचारी हैं। ततक्षण धरत तनक अरचत जन, गनगन सघन कनकदरशत दर। तरलनयनधन धरत अधरतन करतलकरलस सरलगरल धर ॥ अटतअजरयश रटत गहनघन, सघन रजतरज रजत अचल धर। दहत सकलअघ दरसत दरसत, दरद न रहत कहत नर हर हर ॥

मैत्रेयजी बोले-कि कश्यपजीने दितिको बहुत समझाया; परन्तु दितिके ध्यानमें एक न आया, क्योंकि वह तो मदनके मदसे अचेत थी ॥

दोहा–काम विवश कश्यप प्रिया, छांड़ि सकल तन लाज।
पतिको पट पकरो तुरत, गणिका सम रतिकाज ॥ २८ ॥ २९ ॥

निषिद्ध कर्ममें अपनी पत्नीकी हठ जान भाग्यरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार कर उस हठीली भार्यासे विहार करने लगे ॥ ३० ॥ भोग-विलाससे निश्चिन्त हो स्नान कर; मौन बन प्राणायाम किया, रजोगुणरहित सनातन ब्रह्म ज्योतिस्वरूपके ध्यानमें मग्न हो ध्यान करने लगे ॥३१॥ हे परीक्षित ! उस निन्दित कर्मसे दिति लज्जित हो,अछताय-पछताय, नीचे शिर झुकाय अपने पतिके निकट आकर बोली ॥३२॥ हे ब्रह्मन् ! सर्व जीवमात्रके ईश्वर मेरे इस गर्भका विध्वंस न करे क्योंकि सब भूतोंके स्वामी रुद्र हैं, उनकी मैंने लज्जा नहीं की, यह मुझसे शिवका बड़ा भारी अपराध हुआ है ॥ ३३ ॥ दुःखके दूरकर्ता, भयहर्ता, रुद्रदेव, उग्रतपधारी, सबके फलदायक, मंगलरूप दयासिंधु, दुष्टोंके संहारार्थ प्रचण्ड क्रोध

करनेवाले श्रीमहादेवजीको मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥ वह हमारे भगिनी-भर्ता अत्यन्त अनुग्रहकारी, सदाशिव त्रिपुरारी, कृपासागर, स्त्रियोंके देव, सतीपति, निर्दयीपर भी दया करनेवाले भूतनाथ मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी बोले, अपनी सन्तानका शुभ आशीर्वाद दोनों लोकोंके योग्य चाहनेवाली, शरीर जिसका थर-थर कांप रहा है उस अपनी प्यारी पत्नीसे सन्ध्यावन्दनके नियमसे निवृत्त होकर ॥३६॥ कश्यपजी बोले; कि हे प्रिया ! तुम्हारे चित्तके अशुद्ध होनेसे, सायंकालके दोषसे, मेरी आज्ञा भङ्ग करनेसे देवताओंका अनादर करनेसे ॥ ३७ ॥ हे चण्डी ! हे मङ्गलरूपिणी ! महा अमंगलरूप, अत्यन्त अधम, अति भयानक दो पुत्र तेरे होंगे, जो लोकपाल सहित त्रिलोकीको जीतेंगे और संसारके प्राणियोंको दुःख देंगे ॥ ३८ ॥ परायी स्त्रियोंको पकड़-पकड़ कर ले जायँगे, दीन निरपराधी जीवोंको मारेंगे, जब सन्तों और महात्माओंको सतायेंगे तब महात्मा लोग कोप करेंगे॥३९॥ उस समय देवताओंकी पुकार सुन आदि पुरुष अविनाशी सच्चिदानन्द विश्वेश्वर भगवान् त्रिलोकपावन क्रोधकर वाराह अवतार धारण कर जैसे इन्द्रने पर्वतोंको मारा इस प्रकार मारेंगे ॥ ४० ॥ दिति यह बात अपने पतिके मुखसे सुन अत्यन्त दुःखी होकर बोली, हे स्वामी ! मेरा मनोरथ यह नहीं था कि मेरे पुत्र देवताओंको जीतकर सुरपुरका राज्य पाकर आनन्द भोगें और देवता,साधु,सन्त,गौ, ब्राह्मण आदिकोंको सतावे,ऐसी पापी संतान होनेसे तो मैं असंतान ही भली थी, परन्तु एक बातको श्रवण कर मेरे मनमें आनंद भी होता है कि मेरे पुत्र ऐसे बलवान् होंगे कि जिनको चक्रायुधधारी उदारबाहु साक्षात् अचिन्त्यरूप भगवान् बध करेंगे, इससे अधिक और क्या ? परन्तु मेरे दोनों पुत्रोंको कोई क्रोधी ब्राह्मण न मारे ॥४१॥ क्योंकि ब्राह्मणोंके दण्डसे दग्ध,सब जीवोंके भयदातापर नरकवासी भी दया नहीं करते, वे जिस योनिमें जाते हैं वहां निरादर ही पाते हैं,प्रियाके ऐसे असमंजसयुक्त वचन सुनकर॥४२॥ कश्यपजी बोले कि अपने किये हुए अपराधके शीघ्र विचारनेसे यह कर्म योग्य है, यह आयोग्य है यह विचारनेसे, भगवान्‌में बहुत मान करनेसे श्रीमहादेवजीमें तथा मुझमें बहुत आदर करनेसे ॥ ४३ ॥ तेरे बड़े पुत्र हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके मध्यमें एक परम ज्ञानी, भक्तजन संतहितकारी, महातपधारी उत्पन्न होगा, जिसका यश परमेश्वरके यशके सङ्ग भक्तजन गायेंगे और सब हरिभक्तोंमें उसकी परम पदवी होगी, भागवतोंमें महाप्रतापी, शीलसिन्धु, गुणग्राहक, जगत् उजागर, जिसका देवता, दैत्य गुण गायेंगे और प्रह्लाद उसका नाम होगा, जिसका शुद्ध यश भगवत्‌के समान पौराणिक वर्णन करेंगे ॥ ४४ ॥ जैसे दुर्वर्ण कञ्चन तपानेसे सुवर्ण हो जाता है उसी भांति निर्वैरादिक करके उसके आत्मावत् बननेको अपने शरीरको साधुजन भावना करेंगे ॥ ४५ ॥ जिनकी कृपासे जिनका स्वरूपभूत यह विश्व प्रसन्न होता है, ऐसे सर्वांतर्यामी भगवान् अनन्यदृष्टिसे सन्तुष्ट होंगे महाभागवत महात्मापुरुष महाप्रभाववाले महज्जनोंमें अत्यन्त महान अत्यन्त अधिकभक्तिसे अनुभव किये हुए अंतःकरणमें श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्‌को प्रवेशकर इस शरीरको त्याग करेंगे ॥४६॥४७॥ सबसे विरक्त, शीलधारी, सकलगुणभूषण, परायी सम्पदासे आप प्रसन्न, पराये दुःखसे आप दुःखी । संसारमें जिसका कोई शत्रु न होगा, सबका दुःखहर्ता इस प्रकार होगा, जैसे कि तपनको सुधांशु दूर करता है ॥ ४८ ॥ भीतर-बाहर निर्मल कमलनयन अपने भक्तोंकी रक्षासे जो अवतार धारण करते हैं और कुण्डलोंसे मंडित मुखारविन्द कमलापति कमल-

नयन लक्ष्मीजी दिन-रात निहार निहारकर जिनके चरणकमल पलोटती हैं, ऐसे परमात्माका दर्शन तुम्हारा पोता करेगा ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि नातीका भागवत होना सुनकर दिति प्रसन्न हुई और दोनों पुत्रोंकी मृत्यु विष्णुके हाथसे श्रवण कर मनको सन्तोष देने लगी ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–पन्द्रहवें अध्यायमें, गये अजढिग सब देव ।
अजने सब वर्णन कियो, सनकादिकको भेव ॥

मैत्रेय बोले कि, देवताओंकी पीड़ाकी शंकासे शत्रुओंके तेजका नाशक कश्यपका वीर्य दितिने अति आनन्दपूर्वक सौ वर्षतक धारण किया ॥१॥ उस गर्भके तेजसे त्रिलोकीको विह्वल और दशों दिशाओंमें अन्धकार देख; सब लोकपाल व देवतागण अत्यन्त दुःखी हो ब्रह्माजीके निकट गये॥२॥और हाथ जोड़ विनती कर बोले, हे समर्थ ! इस अन्धकारको आप जानते हैं,जिससे हम सब डरे हुए हैं,दुर्भेद्य भगवान्‌को काल द्वारा हम नहीं जान सकते ॥३॥ हे देव देव ! हे जगत्पितः ! हे लोकेश ! शिखामणे ! आप पर अपर लोकस्थ जीवोंके भाववेत्ता हो ॥ ४ ॥ विज्ञानवीर्य, मायासे यह देहधारी आपने सब गुण ग्रहण किये, तुम्हारा आदिकरण प्रकट नहीं होता, आप सब जगत्‌के ईश्वर और अन्तर्यामी हैं,आपको वारंवार नमस्कार है ॥५॥ आत्माके भावन आत्मासे मिले हुए, सब भुवन और सत असतसे परे जो आप हैं, हम आपको अन्यभावसे भजते हैं ॥ ६ ॥ उन सुन्दर परिपक्व योगसाधनोंका श्वास, इंद्रिय आत्मा जीतनेवाले तुम्हारे प्रसादसे जिनको प्राप्त हुआ, उनका कहीं भी तिरस्कार नहीं होता ॥७॥ जैसे रस्सीके वश बैल होता है, उसी प्रकार आपकी वाणीरूप रस्सीमें सब संसार बँध कर आपके आधीन हो बलि देते हैं, हे सब देवताओंमें मुख्य ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे भूमन् ! तुम हमारा कल्याण करो और इस अंधकारसे जो सब संसारके कर्म लुप्त हो रहे हैं और हमपर महा आपत्ति है, आप देवताओंमें मुख्य ईश्वर,हमारे सब कष्ट निवारण करनेवाले, अत्यन्त दयाकी दृष्टिसे देखनेवाले हो ॥ ९ ॥ हे जगत्पते ! हे नाथ ! यह दितिका गर्भ है, इसमें कश्यपमुनिका पराक्रम झलक रहा है, इसने दशों दिशाओंमें अंधकार कर दिया, जिस प्रकार ईंधनमें क्षण-क्षण अग्नि अधिक होती जाती है, इसी भांति दितिका गर्भ बढ़ता चला जाता है, इसको निहार-निहार नये-नये भय उत्पन्न होते हैं, दिनरात कुछ नहीं जाना जाता, इससे चित्तको और भी अत्यन्त खेद होता है॥१०॥मैत्रेयजी बोले–हे महाबाहो ! विदुरजी ! करतार शब्दके जाननेवाले चतुरानन हँसकर मधुर वाणीसे देवताओंको प्रसन्न करते हुए ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे देवगण ! तुमसे भी प्रथम मेरे मनसे चार कुमार उत्पन्न हुए–सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये परमेश्वरके पूर्ण भक्त हैं, आकाशमार्ग होकर त्रिलोकीमें सदा निष्प्रयोजन घूमते रहते हैं ॥ १२ ॥ एक समय सनकादिक पवित्र आत्मा श्रीस्वर्गनाथके साक्षात् करनेको वैकुण्ठ जाते हुए, जिस वैकुण्ठको सब नमस्कार करते हैं ॥१३॥ जिस वैकुण्ठके सब पुरुष श्रीविष्णुभगवान्‌के समान चतुर्भुजी हैं, जिससे कोई प्रयोजन नहीं उसके निमित्तके धर्मसे श्रीमन्नारायणका पूजन

करते हैं ॥ १४ ॥ जिस वैकुण्ठलोकमें आदिपुरुष शब्दमात्रके वक्ता श्रीविष्णु नारायण विराजते हैं, शुद्ध सत्त्वमयस्वरूप धारण किये बिरजा नदीके तीर अपने पार्षदोंको सदा सुख देते हैं ॥ १५ ॥ जहां निरन्तर सुखदायक नामक वन है, जिसमें सब कामना पूर्ण करनेवाले फल फूलोंसे शोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्ष लगे हुए हैं, यह बाग षड्ऋतुकी शोभासे आठों याम प्रकाशित रहता है; मानो कैवल्य मूर्तिमान् हो विराजमान है ॥ १६ ॥ जिस वैकुण्ठमें श्रीमन्नारायणके पापनाशक चरित्र, स्त्रियों समेत भगवत्पार्षद विमानोंपर बैठ-बैठ मधुर-मधुर स्वरोंसे गान करते हैं, जहां की नदीके जलमें प्रफुल्लित मधु मालती लताओंकी सुगन्धसे जिनकी बुद्धियें तृप्त हो रहीं हैं, उस पवनको तिरस्कारित करते हैं ॥ १७ ॥ कीर, कपोत, कोकिला, सारस, हंस, चकवा, चातक, तीतर, मयूर, बक, चकोरोंका कलरव जब विरामको प्राप्त हुआ तो भृंगराज जो श्रीकृष्णचन्द्र महाराजका यश गा रहे हैं वे सब दिव्यरूप हैं; सबके शुद्ध सत्त्वमय प्राकृतदेह हैं ॥ १८ ॥ कल्पवृक्ष, कुन्द, तिलकवृक्ष रात्रिमें प्रकाश करनेवाले कमल, चंपक, जिनको भवनमें रखनेसे मनुष्य ऋणी नहीं होते, जिसकी छाया पुरुषोंको हस्तीके समान बलदायक है वह पुन्नाग, नागकेशर बकुल और दिनमें प्रकाश करनेवाले कमल, पारिजातवृक्षोंके पुष्पोंकी सुगंध बहुत उड़ती है, तो भी तुलसीके आभरणोंकी सुगंधसे उस काननमें उनका सब फल बहुमान करते हैं, सब वैकुण्ठ पारिजातादि कल्पवृक्षोंसे शोभित है ॥१९॥ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथके चरणारविन्दोंको नमस्कार करते दीखे हैं, नितम्बिनी, वैदूर्य्य, मरकत, सुवर्णमय विमानोंसे वैकुण्ठ सघन हो रहा है, बृहत् मुसकानसे शोभित मुखारविन्द श्रीकृष्णमें मन लगानेके कारण उनको परिहासादिकसे रजोगुण उत्पन्न नहीं होता ॥२०॥ श्रीलक्ष्मीजी चरणारविन्दमें नूपुरकी ध्वनि करती लीलाके लिये नीलकमल हाथमें धारण किये चञ्चलताके सब दोष जिससे दूर हों, जिसके लिये ब्रह्मादिक कोटि यत्न करें वह स्फटिकके आलयमें सुवर्णसे जड़ित श्रीवैकुण्ठमें संमार्जन करती हुई लक्षित होती हैं ॥ २१ ॥ सुन्दर-सुन्दर वापी, तड़ाग, जिनकी विद्रुमकी सीढ़ी निर्मल जल भरी बावड़ी पर अपने निज वनमें तुलसीसे दासियों समेत ईश्वरकी आराधना करती हुई सुन्दर अलकें, सुन्दरनासिकावाले मुखको देख भगवत्के भोग्ययोग्य श्रीजी मानती हुई, हे विदुर ! उन लक्ष्मीका कैसा सुन्दर प्रताप है ॥

कबित्त—जिनको कभी स्वप्नमाहिं मुख नाहिं देखो हम, उनहींकी सेवामें आठों याम रहनो परो । जिनको हम अपराधी व्याधी सम जान रहे, उनहींको कोपनैन नीचे कर सहनो परो ॥ दूर दूर करत जिन्हें धोरे नाहिं बैठन दियो, उनहींके पाँयको रातदिन गहनो परो । धन्य लक्ष्मीजी तुम्हें धन्य आपको प्रताप, मूर्खोंको महाराज महाराज कहनो परो ॥

उस वैकुण्ठमें वे लोग नहीं जाते जो पापहारी श्रीवृन्दावनविहारीके चरित्रोंको त्यागकर विषयकी बढ़ानेवाली बुद्धिकी विनाश करनेवाली कहानी सुनते हैं, बड़े खेदकी बात है, कि भाग्यहीन पुरुषोंने जो कुत्सित कथा सुनी उनके सब मनोरथ नाश होते हैं, कोई उनकी रक्षा नहीं करता और वे नरकमें डाले जाते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ जिस मनुष्यदेहको ब्रह्मादिक चाहें उस मनुष्यगतिको पाकर ज्ञानतत्त्वका विषय धर्म सहित जिस देहसे प्राप्त कर जो

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका आराधन नहीं करते, वे अज्ञानी मूर्ख इनकी मायासे अत्यन्त मोहित हैं, यह महाखेदकी बात है ॥ २४ ॥ जो देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमन्नारायण वैकुण्ठनाथकी सेवा कर हमसे ऊपर रहते हैं और करुणामय शीलस्नेहसे परस्पर सुन्दर-सुन्दर भगवत्के पवित्र चरित्र चित्तसे वर्णन कर अनुरागवश हो नेत्रोंसे अश्रु बहाते हैं और क्षण-क्षणमें शरीर पुलकायमान होता है ॥

दोहा-वे ही हम सब सुरनके, अहैं शिरोमणि सांच।
कबहुँ न तिनके तनु लगत, नरक अनलकी आंच ॥

ऐसे ही ज्ञानी ध्यानी महात्मापुरुषोंको वैकुण्ठधामका वास मिलता है और देवता लोग उनको प्रणाम करते हैं और सदा भगवान् वासुदेव नारायणकी लीलाको देख-देख मग्न होते हैं और वारम्वार अपने भाग्यकी बड़ाई करते हैं ॥२५॥ जहां समस्त विश्वके गुरु विराजमान चौदह भुवनोंमें एक वन्दन करने योग्य, दिव्य विचित्र देवेंद्रोंके विमानोंकी अत्यन्त कांति उस वैकुण्ठधाममें योगमायाके बलसे सनकादिक मुनियोंने जो कभी प्रथम नहीं देखा था, वहां पहुँचकर परमानन्दको प्राप्त हुए ॥२६॥ वहांकी शोभा देख सनक, सनन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए, जब छः द्वारको लांघ सातवें द्वारपर पहुँचे तो वहां गदा हाथमें लिये, अमूल्य रत्नजटित कुण्डल कानोंमें पहिने, शीशपर किरीट धरे, सुन्दर वेषधारी, श्यामतन, एकसा स्वरूप,समान वयस द्वारसे दोनों ओर दोनों पार्षद जय,विजय नामक खड़े देखे ॥२७॥ कंठमें सुन्दर वनमाला पहिने, जिनपर मतवाले भौंरोंके झुंडके झुण्ड गुञ्जारकर रहे, सुन्दर विशाल भुजाओंके मध्य वह वनमाला शोभित है और कुटिल भृकुटी, अभी कुछ मुखसे जैसे बोलना चाहती हैं,लाल-लाल नेत्रोंसे कुछ थोड़ासा क्रोध किये हुए मुनियोंके मुखकी ओर देखने लगे॥२८॥ कंचनमें जटित हीरोंके कपाटकी अनुपम शोभा ऐसे पहले छः द्वारोंको जैसे लांघते आये, उसी भांति इनको देखते इस द्वारमें भी वह मुनि घुसने लगे, क्योंकि सर्वत्र वे अविषम दृष्टि हैं अतएव कोई नहीं रोक सकता;जिसको कुछ भी भय नहीं अर्थात् निःशंक चले गये। हरिके द्वारपालोंसे कुछ नहीं पूछा,जैसे सरलतासे और लोकोंमें विचरते थे,उसी भांति वैकुण्ठलोकको समझा॥२९॥ वह पवन आधारी चारों कुमार बुद्धिमान् दीखते हैं, पांच वर्षकी अवस्था, आत्मतत्त्वके ज्ञाता, रोकने योग्य नहीं, उन सनकादिकोंको भगवत्के प्रतिकूल शीलवान् दोनों पार्षद वेतसे भगवत्के तेजको हँसकर रोकने लगे ॥ ३० ॥ देवताओंमें सुन्दर पूज्यतम श्रीवैकुण्ठनाथके द्वारपालोंने उनको वैकुण्ठ जानेसे निषेध किया, तब अत्यन्त प्यारे श्रीमन्नारायणके दर्शनकी इच्छा भङ्ग होनेसे मनमें दुःख मानकर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र कर ॥ ३१ ॥ सनकादिक मुनि बोले कि तुम दोनों कौन हो ? जो बड़ी भारी भगवान्की परिचर्या कर इस वैकुंठमें पुरुष आता है, जो पूर्ण भगवत् भक्त हैं, यहां सब वैकुण्ठवासी शीलके सागर और सुखकी राशि हैं, किसीके मनमें अहंकार विकार नहीं है, सब वस्तुको इकसार समझते हैं, तुम वैकुण्ठके मध्य ऐसे विषम स्वभाव होकर कैसे वसते हो ? इस वैकुण्ठमें प्रशान्त पुरुष श्रीभगवान् वासुदेवके विग्रह दर्शन करनेको भगवद्भक्त विना और कौन आ सकता है, जैसे तुम आप कपटी हो ऐसे और को भी कपटी समझते हो ?

दोहा-कपटी कुमती कल्मषी, कुटिल कठोर स्वभाव।
तुम पाखंडी क्रूर हो, कहां रहे यहँ आव ॥ ३२ ॥

इस दिव्य त्रिपाद विभूतिमें सब विश्व जिसकी कोखमें, सब आत्माओंकी आत्मामें धीरपुरुष किंचित् भेद नहीं रखते, जैसे आकाशमें आकाशका भेद नहीं होता, इसलिये तुम हरिकेसे वेषधारियोंमें यह भेद कैसे उत्पन्न हुआ ? हमने जाना कि तुम परमेश्वरके दास नहीं हो, केवल पेट भरनेवाले हो, जैसे पेट भरनेवाला दूसरे उदर पोषकको देख भय मानता है, ऐसे ही तुम हो[1] ॥३३॥ इस कारण श्रीवैकुण्ठनाथ परम श्रेष्ठ ईश्वरके पार्षद तुम सरीखे मन्दभागियोंका जिसमें कल्याण हो वह हमने करनेका विचार किया है, इस वैकुण्ठसे तुम लोग उन लोकोंको जावो जहां भेद भाव दृष्टिसे काम, क्रोध, लोभ ये पापी रहते हैं, यही तीनों इस प्राणीके शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ अतिघोर ब्रह्म शाप जो अस्त्रोंके समूहोंसे निवारण न हो सके ऐसा महाघोर शाप मुनियोंके मुखसे श्रवण कर दोनों पार्षद कांपने लगे और अति कातर होकर उन मुनियोंके चरणोंमें गिड़-गिड़ाकर गिर पड़े और बोले ॥ ३५ ॥ हे नाथ ! जो दंड आपने हमे दिया वह पापयोनि हमें अंगीकार है, परन्तु वासुदेवकी अवज्ञारूप हमारा अपराध दूर हो जाय चाहे हम नीचसे नीच योनिमें जांय तो भी हमें आनन्द है, परन्तु आपकी कृपासे भगवत्‌की स्मृतिका नाशक मोह हमको न हो, हमने अज्ञानतासे आपको रोका उसका फल तत्काल नेत्रोंसे देख लिया, अब हमारा अपराध क्षमा कीजिये और कृपापूर्वक यह वर दीजियेः—

सवैया

आप तो पातकिपावन हो अब कीजै क्षमा अपराध हमारो ।
भूलके चूक भई हमसे प्रभु जानो नहीं कछु भेद तुम्हारो ॥
शाप नहीं वरदान है यह अभिमान गुमान मिटावन हारो ।
यह वर और दया कर दो हरि ध्यान कभी बिसरै न बिसारो ॥

इस प्रकार उसी समय बड़ोंके मन मोहनेवाले कमलनाभ भगवान् अपने पार्षदोंसे अपने प्यारे भक्तोंका अपराध हुआ जान, परमहंस महामुनि जिन चरणोंको खोजें उन चरणोंसे श्रीमहालक्ष्मीजी समेत वहां आकर आप उपस्थित हुए ॥३६॥३७॥ भगवत्पार्षद श्रीनारायणके उपयोगी छत्र-चामर लिये भगवान्‌के संग आ रहे हैं, नेत्रोंके सम्मुख हुए अपनी समाधिरूप भाग्यसे हंसतुल्य दो पंखोंके समान सुखदायक पवनसे चलायमान शुक्लचन्द्रवत्

---

१. शंका—प्राणियोंकी बुद्धिका नाश करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक शत्रु वैकुण्ठमें नहीं है, ऐसा हमने सब शास्त्रों और पुराणोंमें सुना है फिर जय विजय की बुद्धिमें भेद क्यों हुआ कि यह ब्राह्मण सनक सनन्दनादि वैकुण्ठनाथ भगवान्‌के पास जाकर कुछ उत्पात करेंगे तथा दूसरे फिर सनकादिक मुनियोंने लाल मुख हो क्रोध क्यों किया ? और वैकुण्ठलोक काम, क्रोध, भेद, आदिका समुद्र क्यों हो गया ?

उत्तर—भगवान्‌ने भृगुजीकी स्त्रीको जब मार डाला तब भगवान्‌के नेत्र क्रोधमें लाल हो गये, तब ऐसे ईश्वरके रूपको देखकर सनकादिक भगवान्‌से पूछने लगे, कि हे वैकुण्ठनाथ ! आप तो बड़े दयालु हो, आपमें कामदेवका छोटा भाई जो क्रोध है वह क्यों है ? श्रीभगवान् सनकादिकसे बोले कि, हे ब्राह्मणो ! सब प्राणियोंकी इंद्रियाँ महाप्रबल हैं योगियोंके चित्तको खैंचकर खोटे मार्गमें डाल देती हैं तो मैं दीन किस गणनामें हूँ ? प्रबल इंद्रियोंके वशीभूत होकर मेरे मनमें भी क्रोध आगया भगवान्‌के ऐसे सुन्दर अमृत वचनोंको सुनकर सनकादिकने नहीं माना और बड़े अभिमानसे सनकादिकने कहा कि क्या इंद्रियाँ ऐसी प्रबल हैं ! इंद्रियाँ कुछ भी नहीं कर सकतीं, भगवान्‌ने सनकादिकके अभिमानको जानकर कुछ कालोपरांत अपने पार्षद जय विजयको मायाके वश करके सनकादिकको रुकवा दिये और सनकादिकोंके हृदयमें क्रोधकी अग्नि भड़काकर जय विजयको सनकादिकोंसे शाप दिलवा दिया । भगवान्‌ने यह भी समझा कि जय विजयको दुःख होगा परंतु सनकादिकका मान अवश्य दूर होना चाहिये क्योंकि भक्तके हृदयमें अभिमानका अंकुर उत्पन्न होना अत्यन्त दुःखदायी है ॥

छत्रके मोतियोंकी झालरोंसे जलकण झरते हैं, ऐसे श्रीवैकुण्ठनाथका सबने दर्शन किया ॥३८॥ सबपर प्रसन्न होनेमें सुमुख, चाहने योग्य सुन्दर तेज प्रेमयुक्त कटाक्षसे हृदयको स्पर्श करे, श्याम विशाल वक्षस्थल श्रीजीसे शोभित, स्वर्गका शिरमुकुट अपने वैकुण्ठको शोभित करते हैं ॥३९॥ कटिपश्चाद्भागपर पीताम्बर धारण किये, दमकती हुई क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित जिसपर भ्रमर गुंजार रहे हैं, ऐसी मनोहर वनमाला धारण किये, चारभुजाधारी जिनमें भुजबंद कड़े विराजें, एक हाथ गरुड़पर धरे दूसरे हाथमें कमलको घुमाते ॥४०॥ विद्युच्छटाकी द्युति दूर करनेवाले मकराकृति कुण्डलोंसे सुशोभित कपोल, ऊंची नाक, मनोहर सुन्दर मुख, मणिमय किरीट धारण किये, भुजदंडके समूहोंके मध्य कंठमें अमूल्य हार, कंधेमें कौस्तुभमणि धारे शोभित हैं॥४१॥श्रीमहालक्ष्मीजीकी सब सुन्दरता भगवत्‌के आगे अस्त श्रीदृष्टि आती है; अपने भक्तोंकी बुद्धिसे विशेषकरके रचे हुए आभूषण बहुत सुन्दर उनको धारे हैं। भक्त चाहे जैसी सुन्दरता धारण करते हैं, मेरे अर्थ महादेवके लिये और जो कोई भजन करे, उसीके निमित्त शरीरधारी हो, ऐसे श्रीभूलीलानायक श्रीमन्नारायणको देख दर्शन करते-करते दृष्टिसे अतृप्त हो सनकादिकोंने आनन्दसे भगवान्‌के चरणारविंदोंमें अपने-अपने शिर झुकाकर नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ कमलनयनके पदारविन्दकी केशरमिश्रित तुलसीके सुगन्धकी वायु ब्रह्मानन्दका सेवन करने वालोंके भी नासिकाके छिद्रमें प्रवेश कर उनके चित्तमें अत्यन्त हर्ष और शरीरमें रोमाञ्चरूप क्षोभको करती हुई ॥ ४३ ॥ श्रीवैकुण्ठपतिके बहुत सुन्दर अधरोंकी ललाई, कुन्दकलीके समान जिसमें हास्य, ऐसे मनोहर मुखारविन्दको निहार सब आशीर्वादोंको प्राप्त होकर, उनके दोनों चरणोंमें मणिसमान लाल-लाल नखका आश्रय देख, निरन्तर हृदयमें सनकादिक ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ इस संसारमें योगमार्गसे पुरुषोंकी गतियोंको ढूँढ़े, उनके ध्यान-योग्य बहुत सम्मानित, नयनानंददाता, पुरुषदेहसे दर्शन दे अनन्यसिद्ध औत्पत्तिक अणिमाद्यष्टसिद्धिसहित श्रीमन्नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ सनकादिक बोले कि, हे अनंत ! जो आप हृदयमें प्राप्त हो तो भी दुरात्माओंको दर्शन नहीं देते हो, आप हमारे नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हुए, हमने जब आपसे उत्पन्न हुए अपने पिता ब्रह्माजीके द्वारा वर्णित आपका रहस्यमय चरित्र कर्णच्छिद्रोंसे सुना, उसी समय आप अंतःकरणमें आकर प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! परेसे परे आत्मतत्त्वको हम जानते हैं, वर्तमानसे इन भक्तोंकी क्षण-क्षणमें प्रीतिको रचते हैं, आपकी कृपासे जानना योग्य है, दृढ भक्तियोगसे विगत मुनीश्वर आपको जानते हैं ॥ ४७ ॥ और आपके अत्यन्त प्रसादकी इच्छा रखते हैं और आपकी भ्रुकुटीसे भय माननेवाले इन्द्रकी पदवीका भी आदर नहीं करते हैं। हे भगवन् ! आपकी कथा, कीर्तन, तीर्थ, यश हो ऐसे कर्ममें कुशल, रसज्ञ, तुम्हारे चरणोंकी शरण होते हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! आपके भक्तोंको शाप दिया उससे हमें भले ही नरकोंमें वास मिले, परन्तु चित्त भ्रमरसमान सदा तुम्हारे पादपद्मोंमें रमा रहे। तुलसी सदृश आपसे सम्बन्ध रखनेवाली तुम्हारे चरणकी शोभा वाणी कहे और कर्णके छिद्र आपके गुणोंसे पूरित रहें ॥४९॥ हे विपुलकीर्ते ! जो यह रूप आपने प्रकट किया इससे हमारी दृष्टिको अत्यन्त आनंद हुआ, इस कारण आपको वारंवार नमस्कार है, अजितेन्द्रियोंको अप्रकट हो तो भी आप हमारे सम्मुख हो ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीय-स्कन्धे श्रीवैकुंठमहिमाविप्रशापवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–सोलहमें हरिसान्त्व सुनि, मुनि मन मानी हार।
दैत्यदेहपर भी मुनिन्ह, कीन्ही कृपा अपार॥

ब्रह्माजी बोले–इस प्रकार जब मुनीश्वरोंने जगदीश्वरकी स्तुति की, तब योगाभ्यासी मुनियोंकी अत्यन्त सराहना कर श्रीवैकुण्ठवासी वासुदेव ॥ १ ॥ भगवान् बोले–इन दोनों मेरे पार्षदोंने आपका अपराध किया और मेरे धर्मपर कुछ ध्यान नहीं दिया, इस कारण ये मेरे भी अपराधी हैं ॥२॥ मेरे अनुवर्ती जो आप हैं और आपने इनको दंड दिया, यह बहुत अच्छा किया, मेरी भी यह सम्मति है, क्योंकि जो लोग विप्रोंका अनादर करते हैं, वे मुझको भी प्रिय नहीं लगते ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परमदेवता हैं और सदा मेरा चित्त ब्राह्मणोंके चरणोंमें रहता है, मेरे इष्टदेव ब्राह्मण हैं इसलिये आपको मैं प्रसन्न करूंगा, क्योंकि हमारे पार्षदोंने जो आपका अपराध किया है वह मैंने ही किया है; इस कारण मैं अपने शिर धरता हूं ॥ ४ ॥ कि जिसके अनुचर अपराध करते हैं, तो लोक उसके स्वामीको ही दोष देते हैं उनका नाम कोई नहीं लेता॥

दोहा–जैसे इन्द्रिय करत हैं, विषय विवश अपराध।
पै ताके संबन्धसों, होत जीवको व्याध॥

असाधुवाद सब कीर्तिका नाश करता है, जैसे श्वेतकुष्ठका रोग सब शरीरको बिगाड़ देता है ॥ ५ ॥ जो मुझ श्रीमन्नारायणका सुधासागर समान निर्मल यश श्रवणसे पान करना जगत्के श्वपचपर्यन्तको क्षणमात्रमें पावन पवित्र करता है। यह सब ब्राह्मणोंकी ही सेवाका प्रताप है और यह कीर्ति और वैकुण्ठकी पदवी आप ही लोगोंके प्रसादसे प्राप्त हुई;इस कारण जो तुम्हारी वृत्तिके विपरीत जो हमारी भुजातुल्य इन्द्रादि हों तो भी उस समय मार डालो कुछ विचार मत करो ॥६॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करके मेरे चरणकी पवित्र रजसे शीघ्र सब पाप नष्ट होते हैं ब्राह्मणोंकी ही सेवा करके यह शील और बड़ाई विरक्तता मुझको प्राप्त हुई है और इसी कारण लक्ष्मी मेरा त्याग नहीं करती जिस लक्ष्मीके लवमात्र अनुग्रहसे ब्रह्मादिक नित नये नियमोंको करते हैं ॥ ७ ॥ यज्ञमें यजमानकी चरु पुरोडाशादि हवि अग्नि मुखसे भोजन करती है ऐसे मैं भोजन नहीं करता हूँ। जैसा घृत टपके ऐसा मोहन भोगादिक ग्रास-ग्रासमें रसका स्वादपूर्वक भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके मुखसे हम पाते हैं और उनके कर्म फलोंसे मैं उनपर प्रसन्न होता हूं ॥ ८ ॥ जिन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दके निर्मल रज अखण्ड अकुण्ठित योग मायाका वैभव मैं किरीटोंपर धारण करता हूं उन ब्राह्मणोंका अपमान कौन कर सकता है ? मेरे चरणोंका धोवन गंगाजी शिवसहित सबको पवित्र करती हैं ॥ ९ ॥ मेरे शरीरके सब काम पूरक मेरे ब्राह्मण जिनका मेरे विना कोई रक्षक नहीं, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जो भेद बुद्धिसे देखते हैं उनकी दृष्टि पापसे नष्ट है, ऐसे ब्राह्मणद्रोहियोंको मेरे दंडदाता यमके सर्पवत् क्रोधी गीध रोषपूर्वक चोचोंसे छेदन करते हैं ॥ १० ॥ और जो कठोरभाषी ब्राह्मणोंको ईश्वरके समान पूजते हैं और हृदय जिनके तुष्ट स्मितसुधासिक्त पंकजसे मुखवाले प्रेमशोभित वाणीसे स्तुति करते हैं मानो वे मुझको संबोधन करते हैं, उन्हीं महात्मा पुरुषोंने मुझको वशमें कर रक्खा है; जैसे भृगुजीने मेरे हृदयमें लात मारी तब मैंने कुछ नहीं कहा, उसी भृगुलताके चिह्नसे ऋषिमुनियोंमें मेरी प्रतिष्ठा हुई ॥ ११ ॥ "विप्रोंकी ही सेवासे मेरा नाम त्रिलोकीनाथ हुआ और उन्हींके प्रतापसे आज तक रणमें हार नहीं मानी और इन्हींके

प्रतापसे बड़े-बड़े अभिमानी दैत्य और राक्षसोंका संहार किया। अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं, विप्रोंके भोजन करनेसे और अनलमें हवन करनेसे मेरी तृप्ति होती है। ब्राह्मणोंकी कृपासे मेरा चरणोदक ब्रह्माने कमण्डलुमें लिया वह शिवने शीशपर धारण किया और उसीका नाम त्रिलोकपावनकारिणी, अधमोद्धारिणी श्रीगंगा महारानी जगत्सुखदायिनी हुआ, वह गङ्गा कैसी सुखदायिनी हैं–

कवित्त–विघ्न विनाशै भवपाश होत नाशै, भासै नासै पुण्यपुञ्जकी प्रकाशै रंगरंगाके ॥ सुखकी समाजै उपराजै साज छाजै क्षिति, घनसे गराजै राजै शीश ईश नङ्गाके ॥ कहै पदमाकर सुजानै करज्ञानै जानै, तानै मतमानै भोग आनै देव अङ्गाके ॥ सुन्दरसुभङ्गा नित अमित अभंगा आछे, अघ–ओघभंगा हैं तरंगा देवगंगाके ॥

ऐसी परम मनोहर गङ्गाको सदा अपने शिरपर धारण करता हूँ, क्योंकि इनके ही प्रसादसे सब ऐश्वर्य मुझको प्राप्त हुए, इसी रजके प्रभावसे विश्वको रचा, इसी रजके प्रभावसे विष्णु हो सृष्टिकी रक्षा की, इसी रजके प्रभावसे शिव हो संसारका संहार किया–

दोहा–विप्रनकी सेवा किये, भये अनन्त मम नाम।
कमलासी वामा मिली, अरु सुरपुरसों धाम ॥
जिस चंचलाकटाक्ष हित, विधि शिव बहु तप कीन।
सोइ रमा द्विजकृपासे, निशिदिन मम आधीन ॥

ब्राह्मण मेरा शरीर है, जो धीर पुरुष हैं, वे इसमें अन्तर नहीं समझते और जो लोग ब्राह्मणोंमें और मुझमें भेद समझते हैं, वे अभागे यमपुरके भागी होते हैं और जन्मानुजन्म नरकमें वास करते हैं, वह इन पार्षदोंने मेरे अभिप्राय और मेरे प्रभावको नहीं जाना, ये दोनों पार्षद तुम्हारे अपराधकी उचित गतिको शीघ्र प्राप्त होकर मेरे निकट आयेंगे, यह मेरी कृपा है कि, मेरे भृत्योंको थोड़े ही काल वनवास रहे, "चौपाई–मोर विरह सहि सकिहैं नाहीं। जेते दिन रहिहैं जगमाहीं" ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुकी मनोहर वाणी सुनकर, उन सनत्कुमार महात्माओंकी आत्मा आनन्दमें मग्न हो गई ॥ १३ ॥ उस सुन्दर, श्रेष्ठ, थोड़े अक्षर अधिक गंभीर अत्यन्त अर्थ-गौरववाली भगवान्‌की वाणी सुननेसे यद्यपि उन महात्माओंकी आत्मा तृप्त हो गयी थी, पर उस वाणीके सुननेपर भी भगवान्‌के उस कथनका क्या भाव है, यह निश्चितरूपसे नहीं समझ सके। इससे वे शोचने लगे कि श्रीवैकुण्ठनाथकी इच्छा क्या है, हमारी बड़ाई करते हैं या बुराई; अथवा हमारे शापको छुड़ाना चाहते हैं, वा अधिक किया चाहते हैं ॥ १४ ॥ योगमायासे प्राप्त महा उदयवाले देवदेवसे हाथ जोड़ प्रसन्नवदन रोमांचित ॥ १५ ॥ सनकादिक ऋषि बोले कि, हे भगवन्! हे देव! हे आनन्दमूर्ते! तुम्हारे करनेकी इच्छाको हम नहीं जानते, आपने हमपर बड़ा अनुग्रह किया, जो हमें दर्शन दिया, और हमसे बोले ॥१६॥ हे नाथ! आप ब्राह्मण हो, आपके परमदेवता ब्राह्मण हैं, आप देवताओंके देव आत्मदेव हैं ॥ १७ ॥ सनातन धर्म आपहीसे है, आप ही अवतार लेकर संसारकी रक्षा करते हैं और परमगुप्त धर्मके निर्विकाररूप आप ही हैं ॥ १८ ॥ निवृत्तिमार्गमें लगे हुए योगीजन जिनके अनुग्रहसे अनायास तर जाते हैं, वह आप परेसे परे

जो हैं, वह भी अनुग्रह करते हैं ॥ १९ ॥ जो लक्ष्मी क्षण-क्षण आपके चरणोंकी सेवा करती हैं और धनार्थी सब उन पदोंकी रजको शीशपर धारण करते हैं और धनियोंसे अर्पित तुम्हारे चरणारविन्दमें तुलसीकी नवीन मालाके धाम भ्रमर पंक्तिकी भांति वैकुण्ठकी इच्छा श्रीजी सदा करती हैं ॥ २० ॥ एकान्तचरित्रवालोंसे अनुवर्तमान श्रीजीको आप अत्यन्त आदर नहीं करते हो, परन्तु परमभागवतोंमें तुम्हारा प्रसङ्ग ब्राह्मणोंके मार्गकी पुण्यरजसे पुनीत हो, श्रीवत्सचिह्न भृगुलताका चिह्न धारणकर तुम सब ऐश्वर्यके पात्र हुए ॥ २१ ॥ आप अपने धर्मके तीनों युगोंमें तप, शौच, दया, तीनों चरणोंसे चराचर इस विश्वको ब्राह्मण देवताओंके लिये निश्चय धारण करते हो और उनके घातक रज, तमको सब वरदायक आप हमारे तनुसे दूर करते हो ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! आप अपने रक्षायोग्य उत्तम ब्राह्मणोंके कुलोंकी जो पूजन कर रक्षा न करते और मर्यादा न बांधते तो कल्याण-रूप धर्म्मंमर्य्यादा आपकी बांधी हुई नष्ट हो जाती। श्रेष्ठ पुरुष जो कार्य करते हैं उनका प्रमाण सब लोग मानते हैं, गीतामें लिखा है कि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" ॥ २३ ॥ अत्यन्त शुद्ध, सत्वमय, क्षेम विधान कर-नेको जीवोंके लिये अपनी शक्तियोंसे जिन्होंने धर्मपतिपक्षी दूर किये हैं, आपको ब्राह्मणोंका पूजन करना योग्य ही है, त्रिगुणमायाके स्वामी विश्वभर्ताका तेज कुछ ऐसी बातोंसे नष्ट नहीं होता। आपको नमस्कारादि करना भी एक आनन्द है ॥ २४ ॥ हे अधीश ! इन दोनोंको और दण्डविधान करो अथवा कोई कपटरूप वृत्ति इनसे करानी चाहिये और जो हमारे योग्य उचित दण्ड हो वह हमें दीजिये, जो निरपराधी पार्षदोंको हमने शाप दिया ॥ २५ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि, हे ब्राह्मणो ! ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होकर फिर शीघ्रही मेरे समीप आयेंगे; क्रोधावेश समाधिबन्धनके योग्यका यही फल है, इनको आपने कुछ अनुचित शाप नहीं दिया, वरन् मैंने ही आपके द्वारा इनको यह शाप दिलवाया है, हे ब्राह्मणो ! आप तो सब जानते हो ॥२६॥ ब्रह्माजी बोले कि, सनकादिक सब मुनिजन नेत्रानन्दपात्र श्रीवैकुण्ठनाथ और वैकुण्ठलोक स्वयंप्रकाश स्थान देखकर ॥२७॥ श्रीभगवा-न्‌की प्रदक्षिणा दे प्रणाम कर आज्ञा ले वैष्णवी श्रीशोभाकी प्रशंसा कर परमानन्दित होकर चले गये ॥ २८ ॥ तब उन दोनों पार्षदोंसे श्रीलक्ष्मीनाथजी बोले कि तुम कुछ भय मत करो, तुम्हारा सब प्रकार आनन्द होगा, तुम्हारा सन्ताप देख यद्यपि मैं ब्रह्मतेजको दूर कर सकता हूँ, परन्तु यह मुझको उचित नहीं और कुछ मेरे मनमें भी लीला करनेकी है, तुम मृत्युलो-कमें जाकर राक्षसतनु से देवताओंको अद्भुत बलसे दुखित करो, जब ब्रह्मा, शिव, इंद्रा-दिक देवता मेरे निकट आकर पुकार करेंगे तब मैं अवतार धारणकर तुम्हारा संहार करूँगा, तब फिर तुम वैकुण्ठलोकमें आकर निवास करोगे और तुम्हारा सब शोक समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार दोनों द्वारपालोंको समझा-बुझाकर श्रीरमारमण रमासहित अपने मन्दिरमें चले गये। [और कहीं ऐसी भी कथा है, किसी समय लक्ष्मीजी अपने प्राणनाथके चरण दाबते-दाबते कोमल भुजाओंको निहार मनमें यह विचार करने लगीं कि देखनेमें तो ये भुजा अत्यन्त कोमल दृष्टिगत होती हैं, पर इन भुजाओंसे ही महाघोर रूप राक्षस किस प्रकार मारे जाते होंगे, वा उनका मारनेवाला कोई और है ? इन भुजाओंमें तो मुझे कुछ ऐसा पुरु-षार्थ नहीं जान पड़ता। श्रीलक्ष्मीवल्लभ अन्तर्यामी कमलाके मनका सन्देह जान, अपना पुरु-

षार्थ लक्ष्मीजीको दिखानेके लिये यह विचार किया कि मेरे बलका सँभालनेवाला जय-विजयके अतिरिक्त और कोई नहीं है; दूसरेकी क्या सामर्थ्य है, जो मेरे बलको सह सके और मुझसे युद्ध करे; इस कारण इन दोनोंका दैत्यकुलमें जन्म होना चाहिये जो हमारे परम-शत्रु हैं, उनसे संग्राम कर अपनी भुजाओंका पुरुषार्थ लक्ष्मीजीको दिखाऊँ; यह सोच-समझ जय विजयका ज्ञान हर लिया और सनकादिक मुनियोंके हृदयमें क्रोधकी प्रेरणा कर शाप दिलवाया, इसी कारण जय विजयने दैत्यकुलमें तीनवार जन्म लिया। दूसरा सिद्धान्त यह भी है, कि यद्यपि सनकादिकोंको क्रोध कभी नहीं होता था, न विष्णुके पार्षदोंको ब्राह्मणोंसे प्रति लोभता थी, न कभी भगद्भक्तोंका अनादर किया, न वैकुण्ठवासियोंका पुनर्जन्म होता है। ये सब परमेश्वरके कर्तव्य हैं, जिस समय जैसी इच्छा होती है, वैसा ही बानक बन जाता है। जिस समय भगवान्‌को युद्ध करनेकी इच्छा हुई तो अपने समान कोई बली न जान पड़ा, तब अपने पार्षदोंको अपने तुल्य बली जान यह विचार किया कि, ये दोनों हमारे प्रतिपक्षी हों तो पूर्ण युद्धका समागम बने। यह विचार कर दोनोंकी बुद्धि विपरीत कर दी और सनकादिकके हृदयमें क्रोध उत्पन्न कर, जय विजयको शाप दिलवा, दैत्यरूप बना, अपना कार्य सिद्ध कर लिया! यहां लिखनेका तो बहुत कुछ विचार था, परन्तु ग्रंथके अधिक विस्तार होनेके कारण सिद्धान्तमात्र लिखा है। वह परमात्मा सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द, अचिन्त्यरूप, अव्यक्त, अविनाशी, ईश्वर है ॥२९॥ जब हम उपरामको प्राप्त हुए तब आनन्दसे क्रोधित होकर श्रीलक्ष्मीजीने प्रथम ही कहा था, कि सनत्कुमारादिक मुनि द्वारपर आयेंगे और उनको जय विजय पार्षद रोकेंगे ॥ ३० ॥ हे पार्षदो ! अपने क्रोधके योगसे ब्राह्मणोंके शापसे मोक्ष पाकर थोड़े, कालमें मेरे समीप आओगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दोनों द्वारपालोंको समझा-बुझाकर विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित सबसे सुन्दर श्रीलक्ष्मीजी समेत श्रीवैकुण्ठनाथने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वे दोनों पार्षद पवित्रात्मा महादुस्तर हरिलोकसे विप्रोंके शापसे महाविस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥ हे पुत्रो ! जिस समय वे वैकुण्ठसे गिरे तो विमानोंके आगे महा हाहाकार हुआ ॥ ३४ ॥ वे दोनों विष्णुके पार्षद दितिके उदरमें कश्यपजीके महा-तेजरूपसे प्रविष्ट हैं ॥ ३५ ॥ उन दोनों असुरोंके तेजके आगे तुम लोगोंके तेजका तिरस्कार हो गया, इसी कारण संसारमें तुम्हें अन्धकार दिखाई देता है; अब तुम उन्हीं वैकुण्ठनाथका भजन करो, वे श्रीनाथ, भक्तहितकारी, दीनवत्सल, दीनानाथ तेजरूप तुम्हारे तेजको बढ़ा-येंगे ॥३६॥ विश्वकी उत्पत्ति स्थितिका हेतु उस मायाका योग आद्य योगीश्वरोंसे न जाना जाय वे ही आदि पुरुष अविनाशी सर्व शक्तिमान् भगवान् वासुदेव तुम्हारा क्षेम करेंगे; हमारे विचारसे क्या होगा ? वे त्रिगुणोंके स्वामी हैं—

दोहा—जाहु गवनकर धीर धर, वसहु आपने धाम।
देखहु श्रीपतिको चरित, सिद्ध होहिं सब काम॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे वैकुण्ठनाथकर्तृकं वैकुंठब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा—इस सत्रह अध्यायमें, सुमर रमापतिकांत।
हिरनकशिपुहिरण्याक्षको, वरणौं जन्मवृतांत॥

मैत्रेयजी बोले–

दोहा–सुन चतुराननके वचन, सकल देव तजि शंक।
गये भवन यह कहत सब, को मेटहि विधि अंक ॥

दितिके गर्भका सब वृत्तांत और ईश्वरके अवतारकी कथा सुन सब देवता अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ १ ॥ दितिने सौ १०० वर्षतक गर्भ धारण किया; परन्तु पतिके वचनोंसे पुत्रोंकी ओरसे शंकित रहती थी; जब शत वर्ष पूरे हुए तब सती साध्वी दितिने दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ उनके जन्म लेते ही धरती व आकाशमें अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे ॥३॥ पर्वतों सहित भूचाल होने लगा, दशों दिशाओंमें अग्निप्रज्वलित हो गयीं, उल्कासहित जहां-तहां वज्रपात होने लगे; आर्तके हेतु केतुका उदय हुआ ॥ ४ ॥ बारम्वार सर्पवत् फुंकार करती हुई चारों ओरसे महाभयंकर पवन चलने लगी, उस महाप्रचण्ड समीरके वेगसे वृक्ष जड़ सहित उखड़ कर पक्षियोंके तुल्य उड़ने लगे ॥५॥ मूसलधार जलसे और प्रचण्ड विद्युद्गणकी द्युतिसे सूर्यकी सम्पूर्ण प्रभा नष्ट हो गयी, आकाशमें ऐसा अँधियारा छा गया कि, कोई स्थान दृष्टि नहीं आता था ॥ ६ ॥ समुद्रके जलमें महाघोर जलाघातके शब्द उठने लगे, लहरें अत्यन्त वेगसे उठने लगीं जिससे मकरादिकका चित्त चलायमान हो गया। वापी, कूप, तड़ाग, जिनमें पंकज खिल रहे और गंभीर नीर झकोर रहे थे वे सब सूख गये। अथाह नदियाँ चलायमान हो गई, सूर्य और चन्द्रमामें मण्डल दिखाई देने लगे ॥ ॥ ७ ॥ वारंवार विना बादल गर्जन शब्द सुनाई आने लगा। राहु, केतु, सूर्य, चन्द्रमाको विना ही योग हुए ग्रसने लगे, पहाड़ोंमें रथकासा शब्द होने लगा ॥ ८ ॥ शृगाल, उलूक दिनमें ही महाभयंकर शब्द करने लगे, और गीदड़ी ग्रामोंके भीतर आ आकर मुखसे भयंकर अग्नि उगलने लगीं और अति डरावनी बोली बोलने लगीं, अग्निका तेज मन्द पड़ गया ॥ ९ ॥ सारंगीकासा शब्द ऊपरको मुख उठा उठाकर और नेत्र बंदकर अनेक-अनेक प्रकारकी वाणी श्वान बोलने लगे ॥ १० ॥ हे विदुर–

दोहा–खरखुरते खोदत मही, करत भयंकर शोर।
यूथ बांधिके धरणिमें, धावत हैं चहुँ ओर ॥

उनके चिल्लानेका शब्द सुन-सुनकर हृदय विदीर्ण होता था ॥ ११ ॥ गधोंके रेंकनेके भयानक कोलाहलसे पक्षी भयभीत हो नीड़ोंसे गिर-गिर कर और पशु घरोंमें वनमें विष्ठा मूत्र बारम्बार करने लगे ॥ १२ ॥ त्रासके कारण गायोंके थनोंसे रुधिर बहने लगा; बादलसे पीब और राधकी वर्षा होने लगी, देवताओंकी प्रतिमाएँ मन्दिरोंमें रुदन करने लगीं, विना पवन वृक्ष उखड़ने लगे ॥ १३ ॥ पुण्यतम नक्षत्रगण, गुरु बुध आदि ग्रहोंकी दीप्ति और क्रूरमङ्गलादिक वक्र गतिसे विपरीत चाल द्वारा परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ उस तत्त्वके न जाननेवाली प्रजा अनेक-अनेक उत्पात देखकर डाहके कारण प्रलयकाल समझ अत्यन्त शोक करने लगी; परंतु ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कुछ भय नहीं माना ॥ १५ ॥ वे दैत्य बलपूर्वक अपने पुरुषार्थको प्रकट कर पाषाणसम शरीरसे पर्वतकी भांति बढ़ने लगे ॥ १६ ॥

नाराच छन्द।

विशालभालअतिकराल लाल बाल सोहते। खण्डबोझ दौरदंड ब्रह्म अंड पोहते।
अमन्दरत्न वृन्दयुक्त अंगदो विराजते। विलोकि श्याममेघसो शरीर देव भाजते ॥

प्रतप्तहेमरत्नको जड़ो महा विकाश है। किरीटकोटनौकको त्रिलोकलों प्रकाश है॥
गिरींद्र कंद रै समान कान अतिमहान हैं।महाप्रकाश नयन जौं प्रलय समान भानहैं
चलैं स्वभावते पदैं धरैं धरा धरक्क है। फणीश शीश बारबार भारसों फरक्क है॥
भुजानके प्रमान वे महान हैं दिशान लों। दुहूनको शरीर भासमान आसमान लों॥
अनेक गर्भ गाजकै गराजकै पराजते। समाजते समेत मेघराज भूरि लाजते॥
दलैसमेत देखके डरात देवराज है। लवा लुकात ज्यौं विलोकके बलिन्द्र बाज है॥
मनो अनंतविश्वको तुरंतही ग्रसंत हैं। मनोसमुद्र सातहून पानके करन्त हैं॥
मनो महानमंदरै प्रवेगसो उखार हीं। मनो कृशानु कोपते त्रिलोक वोक जारहीं॥
करालकाल मीचहू नगीच नाहिं जात है। अशेष जीव देखके विशेषकरडरात है
पसारि पाणि पौन ओनचास हू न रोकहीं। अपारतार तोरके मनोपताल झोकहीं
विलोकि दोउ दितिकुमार देवता कहैं मने। भये न होंयगे न हैं इन्हें समान जीवने
कृशानु भानु शीतभानुदेख भानु भूलिगे। दिशानके गजानसों सभूरि भार तूलिगे॥
विशालवक्ष वज्रसे लसंत वज्रमाल है। सुवज्रपाणि वज्रकी न त्रास सर्वकाल है॥
पतालसा महान जासु आननै भयावने। विलोकिकै तिन्हैं परे त्रिलोकमें परावने॥

जिसके सुवर्णके किरीटका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता था, इससे सब दिशाओंको अवरोध किये दमकते बजुल्ले भुजाओंमें पहिने,चरणोंसे पृथ्वी कँपाते, सुन्दर तागड़ी शोभित कमरसे सूर्यको उल्लङ्घन कर स्थित हुए (अर्थात् कोंधनीकी चमक सूर्यप्रभासे अधिक थी) ॥ १७ ॥ प्रजापति कश्यपजीने उन दोनोंका नामकरण किया, जो कि पहले कश्यपसे ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजागणने हिरण्यकशिपु कहकर पुकारा और जो दितिसे पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष कहने लगे। भाव यह कि, "जिस समय वीर्य योनिके पुष्पमें प्रवेश करता है तो वीर्य दो भागसे होकर पहले पीछे होकर प्रवेश करता है तब ये (दो गर्भ) होते हैं फिर वे दोनों गर्भ माताके पेटसे दूसरे क्रमसे निकलते हैं, अर्थात् जो बिन्दु गर्भाधानके समय प्रथम योनिके पुष्पमें पड़ता है, उस बिन्दुका गर्भ माताके गर्भाशयसे पीछे निकलता है और जो बिन्दु योनिपुष्पमें पीछे गिरता है, उसका गर्भ पहले निकलता है" सोई पिण्डसिद्धिमें कहा-"यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्। द्वौ तदा भावतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्य्ययात्" ॥१॥ अर्थ-जिस समय गिरता हुआ वीर्य दो भागसे होकर पुष्पमें प्रवेश करता है तो दो गर्भ होते हैं और जन्म दूसरे क्रमसे होता है ॥ १८ ॥ हिरण्यकशिपुने अपनी भुजाओंके बलसे और ब्रह्माके वरदानसे लोकपालोंको अपने वशमें कर लिया, वे बड़े भारी बलवान् सबसे अवध्य योधा हुए ॥ १९ ॥ हिरण्याक्ष उसका प्यारा भाई दिन-रात उससे प्रीति रखता था, वह गदा हाथमें लेकर स्वर्गमें गया और युद्धकी इच्छासे किसी रणधीरको खोजने लगा ॥ २० ॥ वह असह्यवेगी शब्दायमान सुवर्णके नूपुर वैजयन्ती माला पहने और कन्धेपर महाभयानक गदा धरे ॥ २१ ॥ शूरता और बलसे बढ़ा हुआ अभिमान, जिसपर कोई अंकुश नहीं कि, जो किसीका भय न माने, उनके भयसे देवतालोग कंदराओंमें जा छिपे, जैसे गरुड़के भयसे उरग बिलोंमें घुस

जाते हैं ॥ २२ ॥ दोनों भ्राताओंने अपने तेजसे देवताओंको भागा जान फिर दैत्यराज इन्द्रसमेत देवगणोंको देखकर अत्यन्त गम्भीरनाद किया ॥ २३ ॥ वहांसे लौट क्रीड़ाकी इच्छा कर गम्भीर शब्द करके महाबली प्रमत्त हाथीके सदृश समुद्रमें घुसकर स्नान करने लगे ॥२४॥ इनके जलमें घुसते ही वरुणके सेनापति जलके गण अधीरबुद्धिवाले श्रमसहित उनके तेजसे ताड़ित हो घबड़ाये हुए बहुत दूरको भाग गये ॥२५॥ हे तात ! वे दोनों महाबली अनेक वर्षों तक पवनप्रेरित सागरकी लहरोंको वारंवार लोहेकी गदासे मारते थे और जल उछल-उछल कर आकाशको जाता था, उसके वेगसे नभपर अधीर हो होकर नीरमें पतित होते थे और जलमें गदा लगनेसे जलचर व्याकुल हो-होकर अपने प्राण छोड़ते थे। इस प्रकार जलविहार कर प्रचेताकी विभावरीनाम्नी पुरको गये ॥२६॥ वहां जाकर असुरलोकपालक जलके गणोंके ऋषभ प्रचेताको प्रणाम कर मुसकाकर हँसे और नीचोंके समान बोले-हे अधिराज ! हमसे युद्ध करो ॥२७॥ हे प्रभो तुम सब लोकपालोंके स्वामी महायशस्वी दुर्मदवीरमानियोंके पराक्रमनाशक हो, आपने प्रथम सब दैत्यदानवोंको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था ॥२८॥ सो इस प्रकार अत्यन्त मदसे वैरसे भगवान् जलके पति हँसाये गये तब वरुण अत्यन्त उठे हुए क्रोधको अपनी बुद्धिसे शांत कर बोले कि दैत्येन्द्र ! अब तुम तो आये हो, पर मैं युद्धादिककी सब कुलशता छोड़कर भगवत्के भजनमें सदा लवलीन रहता हूँ, मैं तुम्हारे समान योद्धा नही हूँ ॥

दोहा—युद्ध करन जानूं कहां, मैं तो हूं जलनाथ।
प्रथम सुनत तव आगमन, भज्यौ इन्द्रके साथ ॥ २९ ॥

हे असुराधिप ! पुरातन पुरुषसे अधिक रणविद्यामें चतुर और दूसरा कोई मुझको दृष्टि नहीं आता, वे संग्राम करनेमें बड़े विचक्षण हैं, वे ही आपका मन सन्तुष्ट करेंगे, आप उनके पास जाइये आप सरीखे मनस्वी सदा उनकी स्तुति करते हैं ॥ ३० ॥ उन महावीरके समीप जा गर्व नष्ट कर रणभूमिमें शृगाल-कुत्तोंके मध्यमें तुम सोवोगे, जो परमात्मा तुम सरीखे असन्तोंके नाशार्थ सज्जनोंके ऊपर कृपा करके—

दोहा—तुमसे ही बलवानको, खण्डन हेत खरारि।
तन अनेक धारण करत, धराधर्म—धुरधारि ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—अष्टादश अध्यायमें, दैत्यराज ह्वै क्रुद्ध।
जाय रसातलमें कियो, श्रीवराहसों युद्ध ॥

मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! वरुणके दीन वचन सुन महामनस्वी अभिमानी वरुणको कुछ वस्तु न मानकर नारदजीसे पूछा कि वाराहजी कहां रहते हैं ? नारदजी बोले कि, श्रीवाराहभगवान् रसातलमें वास करते हैं, नारदजीके वचनका विश्वास मान हिरण्याक्षने अतिद्रुतगतिसे पातालमें प्रवेश किया ॥१॥ वहां सब ओरसे जीतनेवाले धराधारी डाढ़के अग्रभागपर पृथ्वीको धर ऊपरको उठाये लाते थे और अपने नेत्रोंकी लाल-लाल शोभासे दैत्योंके तेजको दूरसे नाश करनेवाले श्रीवाराह भगवान्को देख हिरण्याक्ष हँसकर बोला, कि वनवासी शूकर तुम ही हो। दूसरा अर्थ-इस स्तुतिमें सरस्वती कहती है, वनगोचर, मृगजलशायी; जिन्हें योगिजन खोजते हैं ॥ २ ॥ फिर हिरण्याक्ष बोला कि ब्रह्माने यह पृथ्वी हमको समर्पण कर दी है

उसे छोड़ दो, तुम अज्ञानी हो। दूसरा अर्थ यह है, हे सर्वज्ञ ! हे सुरधाम ! हे सुरोत्तम ! हे शूकराकृते ! मेरे सम्मुख इस पृथ्वीसमेत तुम मंगलको प्राप्त न हो सकोगे ॥३॥ हे परीक्षित् ! तुम हमारे सपत्नोंके नाशार्थ उत्पन्न हुए हो, तुम मायासे असुरोंका संहार करते हो, हे चतुर ! तुम्हारा बल योगमाया ही है, वह भी थोड़ा है, अब मैं तुमको मारकर अपने सुहृदोंका शोक दूर करूँगा॥४॥तुम्हारे शिरको तोड़नेवाली मेरी भुजा जब गदासे तुम्हारा मस्तक चूर्ण करेगी; फिर जो तुम्हें भेंट देनेवाले ऋषि व देवता हैं वे स्वयं ही निर्बल हो जायँगे॥५॥ शत्रुके दुष्ट वचन रूप शस्त्रोंसे व्यथित शरीर डाढ़के अग्रभागसे पृथ्वीको भीत देख उसके बुरे वचनोंको मृषा मान जलसे बाहर निकले। जिस प्रकार ग्राहोंसे मार खाकर हस्तिनीसहित गज निकलता है॥६॥ सुवर्णके रंगसमान बाल, महाकराल डाढ़, वज्रके समान शब्दयुक्त विकट रूप वाराहजीको जलसे निकलते देख हिरण्याक्ष उनके पीछे धावमान हुआ, जैसे गजराजके पीछे मगर दौड़ता है। और बोला कि अरे निर्लज्ज ! दुष्टोंके कौन कर्म निंदित हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा जिनकी स्तुति कर रहे थे और देवता जिनपर फूल बरसा रहे थे, ऐसे वाराहजीने जलपर पृथ्वीको धरकर उसको अपनी आधाररूप शक्तिसे स्थित किया ॥८॥ वाराहजीके पीछे गदा हाथमें लिये सुवर्णके आभूषण पहने, सोनेका ही कवच धारण किये और खोटे वचनोंसे वारंवार हृदयमें पीड़ा देता हुआ चला आता था, उस हिरण्याक्षसे प्रचण्ड क्रोधवाले वाराहजी हँसकर बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान्जी बोले—हिरण्याक्ष ! तू सत्य कहता है, हम वनवासी शूकर हैं, परन्तु तुम सरीखे श्वानोंको खोजते फिरते हैं, रे अभद्र ! जो मृत्युरूप पाशसे बँधे हुए हैं उनके कुवचनोंको कभी धीर लोग ग्रहण नहीं करते॥ १० ॥ यह तूने सत्य कहा कि यह धरती मेरी है, रसातलवालोंकी धरोहरको हजम करनेवाले हम ही हैं, जब देखा कि भागनेसे निस्तार नहीं, तब तुम्हारे सम्मुख समुद्रके तट पर अब संग्राममें स्थित हो गये हैं, क्योंकि तुझसरीखे वीरोंके वैर विसारके भागकर हम कहां जायँगे॥ ११ ॥ तुम पदाति रथियोंके स्वामी हो, यूथपोंके स्वामी हो, अवितर्क और विवादको तज हमारे मारनेका कोई उपाय शीघ्र कीजिये; जो अपने बंधुगणोंसे अनृण हो उनके आंसू पोंछो। जो वीर अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करते, वे सभामें बैठनेके योग्य नहीं होते॥ १२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान्ने जब ऐसे आक्षेप कर क्रोधसे अत्यन्त उपहास किया, उस समय दानवेन्द्र महाक्रोधमें भर गया, जैसे काला भुजङ्ग क्रीड़ा करनेको क्रोध करे॥ १३ ॥ क्रोधसे इन्द्रियाँ चलायमान हो गयीं, गम्भीर श्वास भर-भर घोर गदा ले वह वाराहभगवान्की ओर धाया और महा डरावना नाद करके बड़े वेगसे वाराहजीके वक्षःस्थलमें गदा प्रहार किया॥ १४ ॥ वैरीकी चलायी हुई छातीपर आती हुई गदाको बचाकर, तिरछे उछलकर ऐसे निकल गये, जैसे योगीजन कालसे बच जाते हैं॥ १५ ॥ वह असुर फिर दूसरी गदाको वारंवार घुमाने लगा, उसे आता देख श्रीपति दांतोंसे अधरोंको पीसते हुए क्रोधसहित दौड़े॥ १६ ॥ फिर भगवान्ने शत्रुकी दाहिनी भ्रुकुटीके बीचमें गदाका प्रहार किया। हे विदुर ! उस कुशल राक्षसने वही गदा फिर भगवान्के ऊपर फेंककर मारी ॥१७॥ इस प्रकार भारी-भारी गदाओंसे हिरण्याक्ष और वाराह भगवान् परस्पर जीतनेकी इच्छा करके घोर युद्ध करने लगे। वह इनको मारता और ये उसको मारते, इस प्रकार दोनों युद्ध करते थे॥ १८ ॥ दोनों वीर

महारणधीर युद्धमें जिनके मन, तेज गदाप्रहारोंसे जिनके शरीर घायल, घावोंसे रुधिरकी धारा निकलते देख क्रोध क्षण-क्षणमें अधिक होता था।

छन्द

दोउ वीर धीर अतिबलनिधान। दोउ गदायुद्धमें अतिसयान॥
दोउ चहत आपनी विजय भूर। दोउ किये चित्तसे शंक दूर॥
दोउ करहिं युद्धमें सिंहनाद। दोउ करहिं परस्पर वीरवाद॥
दोउ जात कबहुं उड़के आकाश। दोउ गिरत करन चाहत विनाश॥
दोउ लगत गदा अंगन प्रहार। दोउ देहनते बहै रुधिरधार॥
दोउ ओर शोर ह्वै रह्यो घोर। भर रह्यो भुवनमें चहूँ ओर॥
जब हिरण्याक्ष ह्वै जात वाम। तब रहैं नाथ दाहिनी ठाम॥
जब हिरण्याक्ष दक्षिणहिं जात। तब वाम दिशा श्रीपति लखात॥
जिमि लरहिं वृषभ द्वै सुरभिहेत। तिमि धरणि हेत दोउ बलनिकेत॥१९॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! जिस दैत्यके मारनेको यज्ञ अवतार श्रीपति परमात्माने वाराहतनु ग्रहण किया है, द्रेषियोंके मायावी युद्ध देखनेको ऋषियोंसहित ब्रह्माजी आये॥२०॥ चतुरता जिसको प्राप्त, मोहसे दूर, अनेक प्रतीकारकारी; जिसके पराक्रमको कोई रोक न सके, ऐसे दैत्यको बलवान् जान सहस्र ऋषियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजी आदिवाराहरूपधारी श्रीमन्नारायणके निकट जाकर॥२१॥ बोले, कि हे देव! हे भक्तवत्सल! आपके चरणारविन्दके समीप प्राप्त होनेवाले देवता, गौ, ब्राह्मण इन निरपराधी जीवोंको॥ २२ ॥ वृथा ही यह महाभयकारी, दुष्टाचारी हम लोगोंको सदा क्लेश देता है, हमसे ही वर पाकर हमारे ही मारनेको उपस्थित है, महाकण्टक देवताओंको सब लोकोंमें खोजता फिरता है॥ २३ ॥ एक समय देवता सभा कर दल जोड़ ऐरावतपर आरूढ हो सबने हिरण्याक्षके ऊपर अपने-अपने वज्रायुध चलाये, परंतु उस अत्याचारीके शरीरपर किसीने कुछ प्रभाव न किया और सबके अस्त्र-शस्त्र टूट-टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गये। तब इन्द्र देवताओंको लेकर भाग गया, उस दिनसे कोई देवता उससे नहीं लड़ता, वरन् नाम लेनेसे कोसों भागते हैं। हे सुरोत्तम! इस मायावी महाअभिमानीको मत रक्खो, इसको अपने बलका बड़ा घमण्ड है, हे नाथ! बालकके समान सर्पकी पूँछ पकड़-पकड़ मत खिलाओ, सांपका खिलाना अच्छा नहीं होता॥ २४ ॥ हे कृपासिन्धो! यह दारुण असुर जबतक सन्ध्या समय अपने अधिकारको न पाये, पहले ही इसका विध्वंस हो जाय तो अच्छा है, इसलिये अपनी योगमायामें स्थित होकर इस दुष्टको तुम शीघ्र मारो॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन्! यह सन्ध्या समय डरावना दैत्योंको हुलास और लोकको विनाश करनेवाला है। हे प्रभो! इस समय देवताओंकी जय करो॥ २६ ॥ इस समय इसके मारनेका मुहूर्त और अभिजित योग भी आ गया है, हम सुहृदोंके कल्याणार्थ शीघ्र इस कष्टसे हमारी रक्षा करो॥ २७ ॥ हे संसारके मंगलकर्त्ता! भयभीतोंके भयहर्ता जिसके मारनेको आपने यह वाराहतनु धारण किया वह पापी स्वयं ही आपके सम्मुख आ गया, अब इस पराक्रमीको संग्राममें मार देवताओंकी रक्षा करो, जैसे इनकी रक्षा की थी।

कवित्त–नन्दके दुलारे हम दास हैं तुम्हारे सदा, भक्तनके काज आप कोटिरूप धारेजू । गिरिवर करधारे प्रह्लादजन उबारे, और हिरण्याक्ष मारे और धुरूभक्त धारेजू ॥ इन्द्रमान मारे और दुष्ट सब दलि डारे, काटे गजफंद कष्ट देवीके निवारेजू । द्रौपदीकी लाज जैसे राखी कुरु सभामांहि, ऐसे ही हमारी लाज राखो कृष्ण प्यारेजू ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे श्रीवाराहहिरण्याक्षयुद्धवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, अज विनती सुनकान ।
कियो प्रशंसा योग्य वध, हिरण्याक्ष बलवान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, निष्कपट सुधासम ब्रह्माके वचन सुनकर मुसकाय प्रेमके कटाक्षसे ग्रहण किये ॥ १ ॥ जब अपने सम्मुख उस शत्रुको विचरता और चारों ओरसे भयरहित देखा तब उसके निकट शीघ्र कूदकर वाराहजीने उसकी ठोड़ीमें एक गदा मारी ॥ २ ॥ वह सुवर्णसे बनी फेंकी हुई गदा भगवान्‌के करसे छूट घूमकर गिरी तो अद्भुत ही कार्य हुआ ॥३॥ तब भगवान्‌को निरायुध देख संग्रामका धर्म मान शस्त्र न चलाया, किंतु वाराहजीको भी कोप बढ़वाया ॥४॥ इस आश्चर्य्यको देख देवता मनमें शंका मान हाहाकार करने लगे; संग्रामके धर्मको मान विभु वाराहजीने चक्रका स्मरण किया ॥ ५ ॥ वह अधम दितिसुत भगवान्‌को चक्र धरे देख महा क्रोधित हो घोर शब्द कर गदा ग्रहण कर दौड़ा, हिरण्याक्षको आता निहार सब देवता हाहाकार कर बोले–हे नाथ ! अब शीघ्र इस हिरण्याक्ष दुष्टको मार हमारा शोक दूर करो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ६ ॥ श्रीवाराहजी कमलनयनको सुदर्शनचक्र लिये खड़ा देख क्रोधमें भर गंभीर श्वास ले दांत चाबने लगा ॥ ७ ॥ विकराल कालसमान नेत्रोंमें ऐसी प्रचण्ड ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी मानो अभी भस्म करेगा, ऐसे हरिकी ओर देख गदा फेंककर मारी और पुकारकर बोला कि, अब मेरे हाथसे बचना बहुत कठिन है ॥ ८ ॥ सूतजी बोले कि साधो ! भगवान् यज्ञवाराह लीला कर शत्रुके देखते-देखते वायुवेग समान गदाको बांयें चरणसे फेंककर बोले ॥ ९ ॥ आयुध लो, चेष्टा करो, यदि तुमको जीवनकी अभिलाषा है तो । जब भगवान्‌ने यह कहा तब फिर वह दैत्य शस्त्र प्रहारकर अत्यन्त दहाड़ने लगा ॥ १० ॥ उस गदाको आता देख गदाधरने इस प्रकार रोका जैसे सर्पिणीको गरुड़ पकड़े, ऐसे ही लीला पूर्वक गदाको पकड़ लिया ॥११॥ असुरका पुरुषार्थ जब नष्ट हो गया तब वह घबड़ाकर गिर पड़ा और उसने कमलाक्ष भगवान्‌की गदाको लज्जित हो ग्रहण नहीं किया और भगवान्‌ने उसकी सब कांति नष्ट कर दी ॥ १२ ॥ जलती हुई प्रलयकी अग्निके समान तीन शिखायुक्त त्रिशूलको लेकर फिर वाराह भगवान्‌पर चलाया, जैसे कोई ब्राह्मणके ऊपर मारण प्रयोग करता है ॥१३॥ उस समय पराक्रमसे महाबलवान् दैत्यका फेंका हुआ तीव्र कांतिवाला त्रिशूल आकाशतक प्रकाश करने लगा । श्रीवाराहजीने त्रिशूलको आता देख सुदर्शन चक्रसे उसके खंड-खंड कर दिये, जैसे गरुड़जीके गिरे हुए पंखोंको इन्द्र अपने वज्रसे काटता है ॥ १४ ॥ श्रीहरिके चक्रसे अपना त्रिशूल बहुत वार कटा जान, अपने आपको निरायुध समझ, विशालवक्षस्थल श्रीमान् भगवान्‌के सम्मुख

आकर अत्यन्त क्रोधकर वह दुष्ट मुष्टिप्रहार पूर्वक अन्तर्धान हो गया॥१५॥ हे विदुर ! भगवान् आदिवाराह हृदयमें मुष्टि लगनेपर भी हटे नहीं, जैसे फूलके मारनेसे हाथी नहीं हटता, इसी भांति भगवान् किञ्चिन्मात्र भी न कांपे ॥ १६ ॥ जो योगमायाके ईश्वर हैं उन भगवान्के संग वह अज्ञानी माया रचने लगा, उसको देख प्रजा और देवता भीत हो विश्वका नाश मानने लगे ॥ १७ ॥ धूल और अंधकारको फैलाती हुई प्रचण्ड पवन चारों ओर चलने लगी, सब दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, जैसे कोई फेंक-फेंक कर मारता है ॥ १८ ॥ आकाशसे नक्षत्रसमूह नष्ट हो गये, कभी चपलाका प्रकाश, कभी गर्जनका शब्द सुनायी पड़ता था, कभी काली-काली घटा छा जाती थी, कभी पृथ्वी और आकाशमें धुंधकार ही धुन्धकार दृष्टि आता था, कभी रुधिरकी, कभी केशोंकी, कभी पीबकी, कभी विष्ठाकी, कभी मूत्रकी, कभी हाड़ोंकी, कभी पद, कन्ध, कर्ण, मास, मज्जा तथा मेदकी वर्षा होती थी ॥ १९ ॥ कभी अनेक-अनेक प्रकारके आयुध दिखायी देते थे, कभी चारों ओर ऊंचे पहाड़ दिखायी देते थे; कभी पिशाचिनी भूतनी नग्न होकर हाथोंमें शूल लिये शिरके केश खोले पृथ्वीपर घूमती-फिरती हुई दिखलायी देती थीं ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, सिपाही, घोड़े, रथ और हाथी व आततायी लोग हँसते और कुत्सितवाणी बोलते थे ॥ २१ ॥ जब हिरण्याक्षने नाना प्रकारकी माया प्रकट की तब समरमें वाराह भगवान्ने त्रिपदी सुदर्शनास्त्रका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब दितिका हृदय काँपने लगा, स्तनोंसे रुधिरकी धारा छूटी, और उसको अपने पतिके वचनोंका ध्यान आया कि आज हरिके हाथसे हिरण्याक्षका वध होगा ॥ २३ ॥ जब उस दुष्टकी सब माया नष्ट हो गयी तब फिर वाराहजीके सम्मुख क्रोध करके धाया और बाहर हरिको स्थित देखा ॥ २४ ॥ उसने उस वैकुण्ठनाथके हृदयमें वज्र समान घूँसे मारे, तब हिरण्याक्षकी कनपटीपर वाराहजीने एक थप्पड मारा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके मारा था ॥२५॥ विश्वके जीतनेवाले श्रीमुकुन्दने जब उसकी अवज्ञा कर उसको मारा तब उसका शरीर घूमने लगा,वह वमन करने लगा दोनों, नेत्र निकलकर बाहर आ पड़े तथा हांथ, पांव, कंधा और शिर उसका टूट गया,जैसे पवनके झोकेसे वृक्ष उखड़कर गिर पड़ता है। इस प्रकार भगवान्का थप्पड़ लगते ही हिरण्याक्ष पृथ्वीपर गिर गया ॥ २६ ॥ दांतोंसे अधरोंको दबाये हुए कराल तेज पृथ्वीपर सोता, देवताओंने देखा और वाराहजी बोले कि इसके समान मृत्यु किसको मिलेगी ? ॥ २७ ॥ असत् शरीरसे मोक्षकी इच्छा कर योगसमाधिसे एकान्तवनमें योगी जिसका ध्यान करते हैं, वह अधम दैत्य उस भगवत्के हाथसे मारा जाय और मुख देखते-देखते तनु त्याग करे ॥ २८ ॥ कोई कहता था ये दोनों असुर नहीं हैं; नारायणके पार्षद हैं; ब्राह्मणके शापसे राक्षस हो गये थे, तीन जन्म असुरतनु भोगकर फिर वैकुण्ठमें जायँगे ॥ २९ ॥ देवता कहते थे कि सब यज्ञोंके विस्तारके कारण स्थितिके लिये निर्मल सत्यमूर्ति ग्रहण करनेवाले तुम्हारे अर्थ वारम्वार नमस्कार है, आपने यह बहुत अच्छा किया जो सब जगत्के दुःख देनेवालेको मारा, हे ईश ! तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्तिसे हम अत्यन्त पवित्र हुए हैं ॥ ३० ॥

कवित्त–जै जै यज्ञरूप जै जै नाशी भवकूप, जै जै जै जै सुरभूप जै हो सदा कष्टहारीकी । जै जै हिरण्याक्षहंत जै जै प्रभुरमाकंत, जै जै श्रीअनन्त जै हो

अधमउधारीकी ॥ जै हो श्रीवराहजीकी, जै हो सुरनाहजीकी, जै जै हो मुरारी जै हो भक्तहितकारीकी ॥ जै हो गिरधारी श्रीपति असुरारीजीकी, जै हो प्रभो दुष्टदमन द्वारकाविहारीकी ॥

मैत्रेयजी बोले कि महापराक्रमी हिरण्याक्षको श्रीआदिवाराहजी मार ब्रह्मादिक देवताओंकी स्तुति सुन श्रीवैकुण्ठलोकको चले गये ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र ! मैंने तुमसे ऐसे अवतारधारी हरिकी चेष्टा वर्णन की; जैसा उदारपराक्रमी हिरण्याक्षको महासंग्राममें खेलकी नाईं तिरस्कार किया ॥ ३२ ॥ सूतजी बोले कि यह मैत्रेयजीकी कही हुई वाराह भगवान्‌की कथा सुन विदुरजी महाभागवतोत्तम परमानन्दको प्राप्त हुए ॥३३॥ जबकि पवित्रात्मा विख्यात यशस्वी ब्राह्मणोंकी कथा सुननेसे आनन्द हो जाता है, तब श्रीरुक्मिणीकान्तकी कथा सुन पवित्र हो तो इसमें आश्चर्य क्या है ? ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविन्दका ध्यान करते ही मकर ग्रस्त गजेन्द्रको हथिनियोंके पुकारनेसे क्षणमात्रमें कष्टसे छुड़ाया ॥

कवित्त–सुन गजेन्द्रकी गुहार धरी गिरिधारी कान, लगी नाहिं बार शीघ्र चक्र ले सिधारो है ॥ पक्षिराज पादुका लैं धायो पै न पायो पाय, खसत महीमा पीतपट न सँभारो है ॥ रघुराज मेरे नाथ सो कृपालु कौन, सरके समीप शुद्ध सिन्धुर निहारो है ॥ जौलों ग्राहग्रीवापै गुविन्दजू चलावैं चक्र, तौलौं ग्राह ग्रीवाको अगाउ काट डारो है ॥ ३५ ॥

अनन्यशरण सरल स्वभाव मनुष्योंके सुखाराध्य हरिको कृतज्ञ कौन न सेवन करेगा, जो भगवान् दुष्टोंसे सदा दुराराध्य हैं ॥ ३६ ॥ जो महात्माजन महाद्भुत हिरण्याक्षका वध व वाराहजीकी लीलाको मन लगाकर सुनते और प्रीतिपूर्वक गाते हैं व अनुमोदन करते हैं, हे ब्राह्मणो ! वे पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह महापुण्य अत्यन्त पवित्र यश ऐश्वर्यदायक, वैकुण्ठवास देनेवाला, आयुआशीर्वाददाता, प्राणइंद्रियोंकी संग्राममें शूरता बढ़ानेवाला और अन्तसमयमें श्रीनारायणके निकट पहुँचानेवाला है ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा–कहौं बीस अध्यायमें, वराहका अवतार ।
इस कारण मनुवंशको, वरणौं अबकी बार ॥

शौनक मुनि बोले कि, हे सूतपुत्र ! जब पृथ्वी स्थित हुई उसके पीछे स्वायंभुवमनुने जन्म लेनेवालोंके मार्गके अर्थ कौन-कौन उपाय किये, वह कहो ॥ १ ॥ महाभागवत विदुरजी श्रीव्रजरत्नजीके परम मित्रने श्रीकृष्णजीके साथ पुत्रोंसहित शत्रुता करते ही धृतराष्ट्रको त्याग दिया ॥ २ ॥ ये व्यासजीसे महिमामें न्यून नहीं थे, क्योंकि उनके ही शरीरसे इनका शरीर उत्पन्न हुआ है, सब प्रकारसे श्रीकृष्णजीमें आसक्त हैं, श्रीकृष्णके प्यारे हैं, अनुवृत्तिसे तत्पर हैं ॥ ३ ॥ तीर्थोंके सेवन करनेसे रजोगुण जिनका नष्ट हो गया ऐसे विदुरजीने हरिद्वारमें आकर तत्त्वदर्शी मैत्रेयजीसे क्या-क्या पूछा ? ॥ ४ ॥ हे सूत ! उनके संवादसे निर्मल कथा

प्रकट हुई; जैसे हरिके चरणारविन्दाश्रयसे गंगाजल सब पापोंका नाशक है, इसी प्रकार भगवत्कथा सब पापनाशिनी और आनंद प्रकाशिनी है ॥ ५ ॥ वह कथा मुझसे कहो। तुम्हारा मङ्गल हो, कहने योग्य उदारकर्मवाले जनार्दनकी लीलाका अमृत पीते-पीते कौन रसज्ञ तृप्त हो सकता है ? ॥ ६ ॥ नैमिषारण्यनिवासी ऋषिगणोंने उग्रश्रवासे पूछा; तब परमात्माके परमभक्त उग्रश्रवा उन कथाओंको मुदित हो वर्णन करने लगे, उसे सुनिये ॥७॥ सूतजी बोले कि, श्रीवाराहरूपधारी हरिने अपनी मायाके द्वारा रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया और हिरण्याक्षको अवज्ञासे मारकर लीला की ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माने प्रजा रचनेके लिये प्रजापतियोंको उत्पन्न करके किस कर्मको आरंभ किया ? हे भगवन् ! भगवत् मार्गके जाननेवाले आप अनुग्रह करके इस वृत्तान्तको कहिये ॥ ९ ॥ जो मरीचि आदि ऋषि हैं ? और जो स्वायंभुवमनु हैं, इन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर कैसे इस विश्वको उत्पन्न किया ॥१०॥ अपनी स्त्रियोंसमेत अथवा अकेले मरीचिआदि ऋषियोंने स्वतंत्र होकर इस संसारको रचा, अथवा सबने इकट्ठे होकर इस संसारका विस्तार किया। हे मुनिवर ! कृपा करके उसे वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले-ब्रह्माने किस कर्मको आरंभ किया ? इस प्रश्नका उत्तर, यक्ष आदिकोंको रचा। इसके उत्तरको कहनेके लिये प्रथम कही हुई सृष्टिका स्मरण कराया और मनुष्यादिकोंके प्रश्नका उत्तर अगले अध्यायमें कहेंगे। किसीके समझमें न आने योग्य जीवोंका भाग्य और प्रकृतिका अधिष्ठाता अर्थात् महापुरुष और काल इन हेतुओंसे निर्विकार भगवतसे क्षोभको प्राप्त जो-जो रज, सत्त्व, तम, इन तीनों गुणोंसे महतत्त्व उत्पन्न हुए॥१२॥ रजोगुणप्रधान देवप्रेरित महत्तत्त्वसे सब भूतोंका आदि त्रिगुण अहंकार हुआ, अहंकारसे पांच भूतमात्रा और पांच महाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिय और पांच-पांच उन इंद्रियोंके देवता उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ वे सबके सब तत्त्व एक-एक पृथक्-पृथक् होकर जब रचनेके योग्य न हुए तब दैवयोगसे सबने मिलकर सुवर्णमय अण्ड रचा ॥ १४ ॥ आत्मासे रहित अंडकोश समुद्रके जलमें हजार वर्षतक पड़ा रहा, जब उसमें परमात्माने प्रवेश किया, तब वह चैतन्य हो गया ॥ १५ ॥ उसकी नाभिसे सब जीवोंके समूहको धार सहस्र भानुके समान कांतियुक्त एक कमल उत्पन्न हुआ, उसमें जगत्कर्त्ता स्वयंभू (ब्रह्माजी) उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ जो जलरूप हृदयमें सोते रहे उन नारायणके आश्रयसे सब लोककी रचना की जैसी कि पूर्वकालमें थी, उसी प्रकार नाम रूपके विभागसे निर्माण की ॥१७॥ आगेसे पांच पर्ववाली अविद्या छायासे रची, तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महत्तम, ये पांच पर्व हैं ॥ १८ ॥ जिस तनुसे यह विश्व रचा था उस तनुको त्याग दिया, क्योंकि वह तमोमय था, इससे रात्रि उत्पन्न हुई, इसलिये वे प्रसन्न न हुए तब भूख-प्यास लगनेवाली रात्रिको यक्षराक्षसोंने ग्रहण कर लिया ॥ १९ ॥ वे ब्रह्माके बनाये यक्षराक्षस भूखसे व्याकुल हो अजके ही खानेको दौड़े, वे भूखसे अधीर हो बोले कि इसकी रक्षा मत करो, इसे खा ही जाओ ॥२०॥ ब्रह्माजी घबड़ाकर उनसे बोले कि तुम मुझे मत खाओ, मेरी रक्षा करो, हे यक्षराज ! तुम मेरी प्रजा हो ॥२१॥ अपनी प्रभासे जो-जो देवता रचे, उस प्रकाशित प्रभा तेजको देवताओंने ग्रहण किया ॥२२॥ ब्रह्माजीने जांघसे असुरोंको उत्पन्न किया, वे स्त्रीलंपट, महाकामी लज्जाको त्याग ब्रह्माजीसे मैथुन करनेको दौड़े ॥२३॥ उन निर्लज्ज असुरोंको भगवान् ब्रह्माजी पीछे आता हुआ देख अत्यंत क्रोध करने लगे, परन्तु फिर डरकर भाग गये ॥ २४ ॥ जब

कहीं बचनेका ठिकाना न लगा तब जो दीनदुःखहरण शरणागतवत्सल भक्तोंके अनुग्रहके अर्थ भक्तोंकी इच्छानुसार आप स्वरूप धारण करते हैं, ऐसे प्रभु विरद वरदायक, श्रीसुरनायककी शरण जाकर ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे परमात्मन् ! हे प्रभो ! हे अभयदायक ! मेरी रक्षा करो, आपकी आज्ञासे मैंने प्रजा रची, यह पापी प्रजा मुझसे मैथुन करनेके लिये मेरे पीछे दौड़ी आती है ॥२६॥ निश्चय है कि तुम ही एक सब लोकोंके क्लेश नाशक हो, हे नाथ ! जो तुम्हारे चरणकमलका आश्रय नहीं लेते उनको तुम ही एक क्लेश देनेवाले हो ॥

दोहा–कष्ट हरण आनँद करण, चरण शरण ली आन ।
मेटहु कठिन कलेश यह, कृपासिन्धु भगवान् ॥ २७ ॥

वह आदि पुरुष अविनाशी श्रीनारायणजी ब्रह्माका यह कृपण भाव जान एकान्तमें ब्रह्मविद्यासे जिनका दर्शन हो वे भगवान् बोले–इस शरीरको भी त्यागो, यह श्रवण करते ही विरिंचिने उस शरीरको त्याग दिया ॥ २८ ॥ चरणोंमें नूपुरोंकी झमक, मदभरे विह्वल नेत्र, कांचीकलापसे शोभित वस्त्रोंसे कटिपश्चात् भाग जिसका ढका हुआ ॥२९॥ अत्यन्त भारी-भारी दोनों कुच कंचनके कलश समान परस्पर अड़नेके कारण जिनके बीचमें कुछ बीच नहीं रहा, ऐसे मनोहर जिसके स्तन और अत्यन्त सुन्दर कीरकीसी नासिका बनी हुई,दाडिमके दानोंकीसी दातोंकी पांति और प्यारी मन मोहनेवाली जिसकी हँसी, तिरछी चितवन लाजके मारे वस्त्रोंकी जवनिकासे अपने शरीरको ढकती-दबाती; काले-काले केशोंकी सघन घटामें चंद्र-सा मुखारविन्द दीप्यमान ऐसी मृगनयनी, पिकबयनी, मनहरणी, चंपकवरणी, चंचलचटकीली, सजीली सोहनी मनमोहनी बालाको देख सब दैत्य मोहित हो गये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अहो रूप ! अहो धैर्य्य ! ! अहो इसकी किशोर अवस्था ! ! ! हे चाहनेवालो ! यह तो अनचाहीसी फिर रही है ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी आकृति उस संध्याको असुरोंने बहुत वितर्क कर विश्वाससे सत्कार, कर कुबुद्धिवालोंने पूछा ॥ ३३ ॥ हे चन्द्रानने ! तुम कौन ? किसकी कुमारिका हो ? यहां क्यों आयी हो ? तुहारा क्या प्रयोजन है ? रूपधनके व्यवहार द्वारा तुम हमसे अभागियोंको बाधा देती हो ॥ ३४ ॥ हे भामिनि ! तुम्हारा कल्याण हो, हमारे बड़े भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हमें प्राप्त हुआ, हम तो गेंद खेलनेकी इच्छासे यहां आये थे, किन्तु हम असमर्थोंके मनको तुमने मथन कर चित चुरा लिया ॥३५॥ हे वरानने ! तुम्हारे चरणकमल एक ठिकाने नहीं ठहरते,तुम वारंवार गेंदको फेंकती हो बड़े स्तनके भारसे भयभीत मध्यभाग विषाद पा रहा है, शान्तकी नाई तुम चलती हो और तुम्हारी निर्मल दृष्टि हृदयको वेध डालती है, केश तुम्हारे बहुत सुन्दर हैं ॥३६॥ इस प्रकारकी सायंतनकी संध्या स्त्रीरूपधारिणी लोभ करानेवाली स्त्री ऐसे मान, मूर्ख असुरोंने उसको पकड़ लिया ॥ ३७ ॥ गंभीरभावसे हँसकर अपने आपको अनुभव करनेवाली कांतिसे भगवान् ब्रह्माजीने फिर सृष्टि रचनेका विचार किया और गंधर्व अप्पसराओंको बनाने लगे ॥३८॥ ज्योत्स्ना कांतिमयी प्रियको भी जब त्याग दिया; तब विश्वावसु गन्धर्वने मुख्य प्रीतिसे उसको ग्रहण किया ॥३९॥ फिर ब्रह्माजीने अपने आलस्यसे भूत पिशाचोंको रचकर नंगे बालोंको खोले खड़ा देखकर नेत्र बंद कर लिये ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! अपना रचा हुआ जृंभारूप तन भी त्याग दिया, वह निद्रा इंद्रियको विवश करने वाली है जिसे सब जीवोंमें देखते हैं ॥ ४१ ॥ जिससे उच्छिष्टको घिसते हैं उसको उन्माद कहते हैं, उन्मादसे सर्व जीवोंको महाक्लेश होता है ॥ ४२ ॥ भग-

वान् प्रभुने बढ़ी हुई आत्माको मान प्रत्यक्ष करके साध्यगण पितृगण रचे, जिनको कर्मकोविद लोग श्राद्धादिकद्वारा हव्य-कव्य देते हैं, वे अपने सर्गको प्राप्त हुए ॥४३॥ ब्रह्माजीने सिद्ध विद्याधरोंको तिरोधानसे रच अंतर्धाननामक अद्भुत आत्मा उनकी दी ॥ ४४ ॥४५॥ अपने प्रतिबिम्बसे ब्रह्माजीने किन्नर किंपुरुषोंको रचा, आत्मासे आत्माको मान आत्माका प्रकाश देखा ॥४६॥ जो तनु ब्रह्माजीने त्याग दिया था वह रूप उन्होंने ग्रहण किया, उसीको एकत्र करके प्रातःकाल सब गाते हैं ॥ ४७ ॥ अत्यन्त चिन्तासे सोये भोगवान् देहसे बड़ी सृष्टिमें क्रोधसे उस वपुको रच फिर इस शरीरको भी तज दिया ॥ ४८ ॥ जो इस देहसे बोल च्युत हुए वे अहिनामक सर्प हुए, सर्प चलनेसे क्रूर नागभोग उरुकन्दर ये हुए ॥४९॥ जब ब्रह्माजीने अपने आपको कृतकृत्यकी नाईं माना तब अंतमें लोकपालक मनुओंको मनसे रचा ॥५०॥ उन आत्मवान् पुरुषोंके लिये रूप पुर रचे, वह पहले रचे हुओंको देखकर प्रजापतिकी प्रसंशा करने लगे ॥५१॥ धन्य है! जगतस्रष्टाने बड़ा सुकृत किया है, जिसमें स्थित होकर कर्म करते हुए सब अन्नका पारण करेंगे। तप विद्यासे युक्त सुन्दर योगसमाधिसे हृषीकेश ब्रह्माने अपने समान प्रजा और ऋषियोंको रचा ॥५२॥ और जो योग, विद्या, समाधि, तप, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि, विरक्ति उन सबको एक अंशविभागसहित ब्रह्माजीने दिया और ऐसा अद्भुत शरीर रचा, नहीं जाना जाता कि इसमें कौन बोलता है? और इसका नाम क्या है?—

कवित्त-केशशीशजूड़भाल भ्रूहणीपलकनैन, गोलककपोलगंडनासामुखश्रौन हैं। ठोड़ीहोठदाढदन्त रसनामसूढाताल्ह, चिबुकाकंठिकाकंठकंधकरमौन हैं॥ कांखकटि भुजानाड़ी नाभीकुचपेटपीठ, अंगुलीहथेलीनखजंघास्थल जौन हैं। आनितबपादरोम एते नाम अंगनके, तामें तू विचार नर तेरो नाम कौन हैं॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे सर्गवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा—इक्कीसवें श्रीहरि लखो, कर्दम तेज अपार।
मनुकन्या इन योग्य है, कीन्हों यही विचार ॥
सुन वर्णन अज श्रेष्ठको, विदुर परम सुख पाय।
बार बार स्तुति करत, चरणकमल शिर नाय ॥

विदुरजी बोले कि, हे भगवन्! स्वायंभुव मनुका परमश्रेष्ठ वंश कहो कि किस प्रकार मैथुन करके प्रजा बढ़ी ॥ १ ॥ स्वायंभुव मनुके दो पुत्र हुए,-प्रियव्रत और उत्तानपाद, उन्होंने धर्म और सत्यवती पृथ्वीकी रक्षा किस प्रकारसे की? उसका सविस्तार वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! हे पापरहित! स्वायंभुवमनुके एक कन्या हुई जिसका नाम देवहूति जगत्में विख्यात था, वह कर्दम मुनिको ब्याही थी, उसका वृत्तांत कहो ॥ ३ ॥ कर्दम मुनि महायोगी योगलक्षणसंपन्नने देवहूतिमें कितने पुत्र उत्पन्न किये? ॥४॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके सुत दक्ष और रुचिप्रजापति मनुने भार्याको प्राप्त हो किस प्रकार सृष्टि उत्पन्न की? ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भगवान् कर्दममुनिसे ब्रह्माजीने कहा कि तुम अपार सृष्टि रचो, तब सरस्वती नदीके किनारे दशने हजार वर्षतक तप किया ॥६॥ तब समाधियुक्त योगक्रिया और भक्तिसे प्रसन्न

(शरणागत) वरदायक भगवान् वासुदेवको प्राप्त हुए ॥७॥ हे विदुर ! तब श्रीत्रिलोकनाथ भक्तभूषण भगवान् सत्ययुगमें प्रसन्न हो, शब्दब्रह्मस्वरूप शरीर धारण कर कर्दमजीको अपना सुन्दर स्वरूप दिखाया ॥ ८ ॥ रजोगुणरहित, कोटिसूर्यसम वदनका प्रकाश, शुक्लकमलकी माला विराज रही है ॥

दोहा-नील अलक झलके झलक, छलक छलक छबि जात ।
ललक ललक जिनको अमर, ललना लखत लुभात ॥

घूंघरवाली अलकें मुखारविंदपर बिखरीं, निर्मल वस्त्र पहने ॥ ९ ॥ किरीट मुकुट शिरपर धारण किये, कानोंके कुण्डल कपोलोंपर लटक रहे; शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभा दे रहे, श्वेतकमल, घुमाते हुए मनस्पर्शी स्मितनेत्रवाले ॥१०॥ गरुड़जीके कंधेपर चरणकमल धारे, कौस्तुभमणि गलेमें पड़ी, हृदयमें श्रीजी यह, अद्भुत शोभा मनको हर लेती थी ॥११॥ दर्शनसे ही सब मनोरथ पूर्ण जान कर्दमजीने अत्यन्त हर्षसे पृथ्वीमें शिर नवाय साष्टांग प्रणाम किया, फिर प्रेमसे, प्रीतिसे, वाणीसे व मनसे स्तुति करने लगे ॥१२॥ कर्दमजी बोले कि हे भक्तवत्सल ! हे स्तुति करने योग्य ! आज मेरे नेत्र सफल हुए, आज सब सत्त्वराशि और सब सिद्धियां मुझको प्राप्त हुईं, जो आपका दर्शन हुआ; इस आपके दर्शनकी योगीजन कोटानुकोटि जन्म समाधि लगाकर बांछा करते हैं ॥१३॥ जो तुम्हारी मायाके वश मन्द बुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे संसारसमुद्रमें नौकारूप तुम्हारे चरणारविंदकी लेशमात्र कामके लिये उपासना करते हैं, उनके तुम सब मनोरथ पूर्ण करते हो, जो काममय मनोरथ नरकमें भी प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मुझको विवाहकी इच्छा है, परंतु स्त्री शीलवान्, बुद्धिनिधान, ज्ञानवान् मेरे समान हो, स्त्रीसे त्रिवर्ग सिद्धि होती है। अब मैं सब कामपूरक कल्प वृक्षरूप आपके चरणशरणमें पड़ा हूँ, हे प्रभो ! मेरा अन्तःकरण अच्छा नहीं है जो आपसे कामकी कामना चाहता हूँ ॥१५॥ हे जगदीश ! प्रजापतिरूप ! तुम्हारे वचनरूप रस्सीसे कामांध बँधा हुआ यह संसार है; हे शुक्ल ! मैं भी निश्चय करके इस संसारमें प्राप्त कालरूप तुम्हारे अर्थ बलि देता हूँ ॥ १६ ॥ जो लोक, लोकोंके अधीन पशुओंको त्याग परस्पर तुम्हारे गुणानुवादरूप मादक अमृतपानसे लोकधर्मका त्याग करते हैं, वे मनुष्य आपके चरणरूप छत्रके आश्रित होते हैं ॥१७॥ यह कालचक्र तुम्हारे भक्तोंकी आयु नहीं काट सकता और सब विश्वकी आयु काटनेको तुम्हारा कालचक्र घूमता है, ब्रह्मरूप अक्षमें तो वह घूमता है। तेरहमास चक्रके आरे हैं, तीनसौ आठ दिन उसके पर्व हैं, छः ऋतु उसकी नेमी है, पत्र उसके अनंत हैं। शीत, उष्ण, वरषा, ये तीन नाभि हैं, कठोर उसका वेग है, सात विशेषण कालचक्रके हैं ॥ १८ ॥ जब तुम अकेले होते हो तो आप जगत् रचनेकी इच्छा कर, दूसरी अपनी योगमायासे मकड़ीकी नाईं अपनी शक्तियोंसे इस संसारको रचते, पालते, नाश करते और पुनः रचते हो ॥१९॥ हे अधीश ! आप हमसे भक्तोंको अपनी माया द्वारा विषयसुख देते हो, परंतु वह आपको अच्छा नहीं लगता, तो भी अपनी कृपाके लिये वह हमको देना ही योग्य है, क्योंकि तुलसीमालासे शोभित आपके स्वरूपका दर्शन करनेसे मोक्ष होता है ॥२०॥ अनुभवजन्य ज्ञानसे क्रियाके अर्थ जिनके दूर हो गये हैं, अपनी मायासे सब लोकको रचते हो, ऐसे नमस्कार योग्य चरणकमल आपके थोड़ेसे भजन व सेवा पूजासे बहुतसे काम सिद्ध हों, ऐसे जो आप हैं, मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥२१॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार नमस्कार करनेसे निष्कपट कमलनाभ भगवान् वासुदेव अमृत-

समान वचन बोले, गरुड़के ऊपर विराजमान हैं और प्रेमके स्मितसे जिनकी भ्रुकुटि चलायमान हैं ॥२२॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ऋषे ! जिस कारण तुमने चित्त लगाकर मेरा पूजन भजन किया है, मैंने पहले ही तुम्हारे मनकी अभिलाषा जानकर सब ठीक उपाय कर रक्खा है ॥२३॥ मैं सब प्रजाका स्वामी हूँ, मेरा पूजन कभी मिथ्या नहीं होता, मुझ समान जिनकी आत्मा और आपसे महात्माओंके हृदयमें तो मैं सदा वास करता हूँ ॥२४॥ प्रजापति सुत, राजा मनु विख्यात मंगलीक हैं और शतरूपा उनकी स्त्रीका नाम है, ब्रह्मावर्त्त जो बिठूर है वहां सदा बसता है और सात द्वीप, नौखण्ड सबका पालन-पोषण करता है ॥२५॥ हे मुने! वह राजर्षि अपनी शतरूपा स्त्रीसमेत, परसोंतक आपके देखनेको यहां आयेगा। २६ ॥ हे प्रभो! सुन्दर कटाक्षवाली, शीलगुणवती, सुकुमार अवस्था, पतिके प्रेमकी अभिलाषिणी है, उसके तुम अनुरूप हो, हे जगत्पते। वह अपनी पुत्री तुमको दे जायगा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्। तुमने इतने वर्षोंसे जिस स्त्रीमें मन लगाया, वह राजकन्या तुम्हारे मनोरथको शीघ्र पूर्ण करेगी ॥ २८ ॥ जो वह तुम्हारा वीर्य नव विभागसे नव कन्या उत्पन्न करेगा और तुम्हारी कन्याओंमें ऋषिगण अनायाससे अपनी सन्तान उत्पन्न करेंगे ॥२९॥ तुम सदा मेरी आज्ञामें स्थित होकर मुझको तीर्थ समान मान सब कर्मफल मुझको ही समर्पणकर मुझको ही प्राप्त होगे ॥ ३० ॥ सब प्राणियोंपर दया कर आत्मज्ञानी हो सबको अभय दान दे, मुझमें आप सहित सब संसारको देखोगे और सब संसारमें व अपने आपमें मुझको देखोगे ॥३१॥ हे महामुने! मैं अपने अंशकलासमेत तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी देवहूतिमें कपिल मुनि अवतार धारण कर तत्त्वसंहिताका प्रकाश करूंगा ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, प्रत्यक्षभूत इंद्रियोंके सम्मुख आकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद, कर्दमऋषिसे यह बात कह सरस्वतीपरिवेष्टित बिंदुसरसे परमधामको चले गये ॥ ३३ ॥ कर्दम ऋषिके देखते-देखते वासुदेव भगवान् चले गये, जो सब सिद्धेश्वरोंका स्तुतिसिद्ध मार्ग है, गरुड़जीके पंखोंसे स्तोत्रसमुदाय सामवेद स्वरसहित उच्चारण हुआ उसे सुनने लगे ॥३४॥ भगवान् जब चले गये तब कर्दम मुनि विन्दुसरपर बैठे उस समय प्रतीक्षा कर रहे थे ॥३५॥ और यहां राजा मनु स्वर्णजड़ित रथपर बैठे अपनी पुत्रीको बैठाकर स्त्री समेत पृथ्वीपर्यटन करने चल दिये ॥ ३६ ॥ हे धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ विदुरजी ! विचरते-विचरते उस शांतव्रत मुनिके आश्रमपर आये, जहां कर्दमऋषिने विवाहके हेतु तप किया था ॥३७॥ जहां दयाके कारण भगवान्‌ने शरणागत कर्दमपर प्रसन्न होनेसे अश्रुबिन्दु गिराये हैं ॥ ३८ ॥ उसी दिनसे उस आश्रमका नाम बिन्दु सरोवर हुआ, सरस्वतीसे परिवेष्टित है, पुण्यदायक है, आरोग्य करता है, सुधासमान जल है, महर्षिगणोंसे सेवित है ॥ ३९ ॥ फलदायक वृक्षलताओंसे शोभित, मनोहर कुन्ज, खगमृगपक्षियोंसे दीप्त, सब ऋतुओंमें फलफूलोंसे पूर्ण, वनपंक्तियोंसे शोभायमान थे ॥४०॥ मतवाले पक्षीगण जहां मनभावनी सुहावनी बोली बोल रहे, मतवाले भौंरे गुञ्जार रहे, मोर नटोंके सदृश पंख पसार-पसार मधुर वाणीसे पुकार रहे, मदमाती कोयल मीठी-मीठी कूकसे कूक रहीं ॥ ४१ ॥ कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुरबक, कुंद, मन्दार, कुटज, आम इत्यादिके भांति-भांति के वृक्षोंकी शाखा फलफूलोंके भारसे नीचेको झुक रहीं हैं ॥४२॥ सुन्दर-सुन्दर तालोंमें जलकुक्कुट, जलकुक्कुटी, मेंढक, हंस, कुरर, सारस, चकई, चकवे, चकोर जलक्रीड़ा करते हुये मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥४३॥ कहीं हिरन, वराह, रोझ, श्वान, शल्लक, गवय, मतङ्गज, गोपुच्छ, वानर सिंह, नकुल, कस्तूरीमृग डरा-

वने सुहावने शब्द कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ राजा मनुने अपनी पत्नी और पुत्री समेत उस श्रेष्ठ-तीर्थमें प्रवेश किया, हवनयोग्य अग्निमें होम करते हुए कर्दम मुनिको बैठा देखा ॥ ४५ ॥

चौ०-जासु प्रकाश प्रकाशित कानन * तपके तेज तूलयुत आनन ॥
दीप्यमान तन तव व्रतधारी * रटत निरंतर कृष्ण मुरारी ॥

भगवतके मनोहर कटाक्षोंकी चितवन ॥४६॥ और उनके कहे हुए अमृतमय, चन्द्रकलाके सदृश वचनोंके श्रवणसे जो अधिक दुर्बल नहीं, अर्थात् तपस्यासे कृश होनेपर भी अकृश ॥ ४७ ॥ ऊंचे-ऊंचे कन्धे, कमलनयन विशालमूर्ति जटाधारी वल्कलवसन पहिने; मलिन जैसे कोई महारत्न संस्कार रहित इस प्रकार कर्दम मुनिको मनुजीने देखा ॥४८॥ इसके उपरान्त मनु पर्णशालाके निकट आये, कर्दमजीने राजा मनुको आता देख आगे बढ़कर उनको लिया, राजाने प्रणाम किया, राजाको यथायोग्य आशीर्वाद और बड़ाई दी और उनको पूजा ग्रहण कराया ॥ ४९ ॥ पूजन कर जब बैठ गये तब मुनि राजाको प्रसन्न कर भगवान् वासुदेवका वचन स्मरण करके कोमल वाणीसे बोले ॥ ५० ॥ हे देव ! तुम लोगोंका फिरना सज्जन महात्माओंकी रक्षाके निमित्त है और असंतोंके बधके लिये है, जो तुम भगवान्‌की अनपायिनी शक्ति हो ॥ ५१ ॥ जो राजा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म, प्रचेता इनका स्वरूप धारण कर हर स्थान में सब कार्य करते हैं, उन धर्मात्मा तुम सरीखे राजाओंको वारंवार नमस्कार है ॥ ५२ ॥ हे आदिनृपेंद्र ! यदि जयप्रद कनककलित मणिजटित रथपर बैठ, प्रचण्ड कोदण्ड ले पापी दुराचारियोंको त्रास न दो और पृथ्वीपर न घूमो तो सब धर्मका नाश हो जाय ॥ ५३ ॥ अपनी चतुरंगिणी सेनासे भूमंडलको खूंदो और सब सेनासमेत मार्तण्डके सदृश सात द्वीप नव खण्डोंमें तुम विचरते रहो ॥ ५४ ॥ जब तुम सो जाते हो लोभी, लंपट और निरंकुश जीवोंसे अधर्म और पाप बढ़ जाता है, लोग चोरोंसे ग्रस्त होकर सब विनष्ट होने लगते हैं ॥ ५५ ॥ हे वीर ! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आपका यहां आना किस कारण हुआ ? आप वर्णन कीजिये; हम निष्कपट हृदयसे आपकी आशा पूर्ण करेंगे ॥ ५६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कर्दमाश्रमे स्वायंभुवमनुसमागमनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, देवहूतिको व्याह ।
जैसे कर्दम ऋषी सों, कियो मनू नरनाह ॥

मैत्रेयजी बोले-जिनके गुणका और कर्मका प्रकाश संसारमें उदय हो रहा है, वह मनु लज्जावालोंकी नाईं लज्जा करके अत्यन्त हर्षित हुए ॥ १ ॥ मनुजी बोले कि, हे मुनिराज ! अपनी रक्षाके कारण ब्रह्माजीने अपने मुखसे अपने समान वेदविद विद्यायोग युक्त अलंपट तुम ब्राह्मणोंको प्रकट किया है ॥ २ ॥ और अनंत भगवान्‌ने अपनी अनंत भुजाओंसे ब्राह्मणोंके प्रतिपालके लिये हमको उत्पन्न किया है, उनके हृदय ब्राह्मण हैं और क्षत्रिय भुजा हैं ॥ ३ ॥ इसलिये ब्राह्मण क्षत्रियोंकी रक्षा करे और क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी रक्षा करे इस प्रकार परस्पर आदिपुरुष अविनाशी देव सत्-असत् आत्मा सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ आपके दर्शनसे मेरे सब संशय मिट गये, जो आप भगवान्‌ने स्नेह करके रक्षाकी इच्छासे धर्मका

वर्णन किया ॥५॥ धन्यभाग्य ! जो हमको आपका दर्शन हुआ, अवशेंद्रियोंको आपका दर्शन नहीं होता; धन्य है जो मुझ अमांगलिकके शिरपर मांगलिक चरणोंका रजस्पर्श हुआ ॥ ६ ॥ बड़े आनन्दकी बात है, बड़ा अनुग्रह है, जो आपने आज्ञा की, आज मेरे कर्ण-कुहर पवित्र हुए जो आपकी अमृतसम मनोहर वाणी सुनी ॥ ७ ॥ हे मुने ! मैं पुत्रीके प्रेम-विवश दीन हूँ, यह कन्या मुझको अत्यन्त प्यारी है, आप कृपा करके मेरी विनय सुनिये ॥८॥ प्रियव्रत और उत्तानपादकी यह भगिनी है और मेरी पुत्री है, शील, रूप, गुण, वयमें अपने समान पतिसे मिलनेकी यह अभिलाषा करती है ॥ ९ ॥ जबसे नारदजीके मुखसे आपके गुण रूप शील अवस्थाकी प्रशंसा सुनी है, उसी दिनसे इसने अपने मनसे निश्चय आपको अपना पति समझ लिया है ॥ १० ॥ हे द्विजाग्रगण्य ! श्रद्धासे इस कन्याको आपके चरणशरणमें लाया हूँ, आप इसको ग्रहण कीजिये, आपके गृहस्थकर्म करनेको यह सर्व प्रकार योग्य है ॥ ११ ॥ जो वस्तु आप ही घर बैठे मिल जाय उसका त्यागना उचित नहीं, जो सब संगसे निर्मुक्त है उसकी तो क्या बात है ॥१२॥ जो कोई प्राप्त होती वस्तुका निरादर करते हैं वे पीछेसे बहुत पछताया करते हैं-

दोहा-वस्तु जो अपने ते मिलै, ताहि त्याग जो कोय ।
पुनि घर घर मांगत फिरै, तासु हँसी जग होय ॥
मान बड़ाई प्रेमरस, गरुवाई अरु नेह ।
यह पांचौ तबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥

हे मुनिसत्तम ! मैंने सुना था कि, आपकी इच्छा विवाह करनेकी है इस कारण इस देवहूति कन्याको आप ग्रहण करें ॥ १३ ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि आपने बहुत अच्छा विचारा, मेरी विवाह करनेकी इच्छा है, तुम्हारी दुहिता भी अप्रदत्त अर्थात् अविवाहित है; हमारे दोनोंको अनुरूप यह आद्य विवाहकी विधि है ॥ १५ ॥ हे नारनाथ ! तुम्हारी इस कन्याका मनोरथ पूर्ण हो और हमें तुम्हें उत्साह हो यही वेदविधि है, भूषण वसनोंसे भूषित, अपनी कांतिसे श्रीकी कांतिको क्षीण करनेवाली इस तुम्हारी सुताका कौन आदर नहीं करेगा ? ॥ १६ ॥ यह तुम्हारी कन्या पिकबयनी, मृगनैनी, चम्पकबरनी मनहरनी-

दोहा-एक समय ऊंची अटा, नूपुर पगन बजाय ।
कंदुक खेलत शशिमुखी, मन्द-मन्द मुसुकाय ॥

इसकी मनोहर छबि निरख मोहसे मोहितचित्त होकर विश्वावसु गन्धर्व अपने विमानसे नीचे गिर पड़ा ॥ १७ ॥ देवललना उसकी ललितकलित छबि निहार मनमार-मारकर रह जाती थीं और रमाके चरणोंकी सेवा उनसे नहीं होती थी । सब स्त्रियोंकी मुकुटमणि वह मनुकी पुत्री उत्तानपादकी भगिनी अपने आप प्राप्त हो तो ऐसी कन्याको कौन न भजेगा ॥ १८ ॥ इस कारण ऐसे समयमें इस तुम्हारी साध्वी कन्याको हम अवश्य भजेंगे,परन्तु जबतक इसके पुत्र न होगा, तबतक इसका अंगस्पर्श करेंगे, तदनंतर हम परमहंसोंके मुख्य भगवत् प्रोक्त हिंसारहित धर्मका आश्रयण करेंगे जिन्हें हम बहुत मानते हैं ॥ १९ ॥ जो परमात्मा अनंत विश्व रचता है, पालन करता है, संहार करता है;उसी प्रजापतिओंके पति अनंत भगवान्के वचन मुझे प्रमाण हैं ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे उग्रधन्वा विदुर ! यह कह भगवान् कर्दमजा चुप हो गये, बुद्धिसे व मंदमुसकानसे देवहूतिके मनको लुभाकर ग्रहण किया॥२१॥

और रानी शतरूपाने पुत्रीकी संमति लेकर प्रसन्न हो गुणवान् कर्दमजीको अपनी बेटी समर्पण की ॥ २२ ॥ फिर शतरूपा महारानीने दहेजमें बहुत और अनेक प्रकारके वस्त्राभूषण घरकी सब सामग्री स्त्री पुरुष दिये ॥ २३ ॥ राजा सब व्यथासे दूर हो, समान वरको कन्या देकर उत्कण्ठासे विवश हो भुज भरकर देवहूतिको हृदयसे लगाया ॥२४॥ सुताका वियोग राजा रानी न सह सके, नेत्रोंसे वारंवार आंसू गिरने लगे, फिर शतरूपा अपनी पुत्रीको गोदमें बैठा, हे दुहिता ! हे बेटी ! ! कह नेत्रोंके नीरसे पुत्रीकी शिखाको सिक्त करने लगी-

चौ०-पुनि पुनि मिल कह हाय कुमारी ❋ रोदन कर कर भई दुखारी ॥
जननीजनकविरह जिय जानी ❋ देवहूति अतिशय दुख मानी ॥
तात मात कह बारहिं बारा ❋ तेहि क्षण रोदन कियो अपारा ॥
अहो तात ! हे मात ! पियारी ❋ बालकपनकी प्रीति बिसारी ॥२५॥

स्वायंभुव मनु शतरूपा कन्याको धैर्य दे मुनिवरसे बिदा मांग रथमें बैठ स्त्रीसमेत अपने नगरको चल दिये ॥ २६ ॥ ऋषि और मुनियों सहित सरस्वती तीर देख दण्डवत् कर दोनों ओरकी शान्त ऋषियोंके आश्रमोंकी सम्पदा देखते चले गये ॥२७॥ जब स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त्त देशमें आये तो प्रजागण गीत गाकर बाजे बजाकर अत्यन्त हर्षसे सब सम्मुख खड़े हो स्तुति कर ॥२८॥ सब संपत्ति सहित बर्हिष्मती नाम पुरीमें लाये, जहां यज्ञरूप श्रीवाराहजीने अपने अङ्गको झाड़ा और उनके रोम वहां गिरे थे ॥ २९ ॥ उन रोमोंके हरे रंगके कुश और काश हो गये, जिन कुशाओंसे यज्ञनाशकोंका ऋषिलोग तिरस्कार कर यज्ञ करने लगे ॥ ३० ॥ भगवान् स्वायंभुव मनु भी कुश-काशका आसन बिछाकर यज्ञ कर आनंदसहित स्थान पर आये ॥ ३१ ॥ बर्हिष्मती नामक पुरीमें प्रवेश किया जहांके मनोहर भवन त्रय तापके हरनेवाले थे ॥ ३२ ॥ वहां पत्नी पुत्रों समेत बास करने लगे-

दोहा-भोगैं भोग सुरेशसम, भूमें भूपति भूरि ।
तीनहुँ लोकनमें रही, जिनकी कीरति पूरि ॥ ३३ ॥

प्रातःकाल सन्ध्या समय अनुरागी हृदयसे श्रीनारायणकी कथा प्रतिदिन सुने, कलियुगमें केवल कथामात्रके ही सुननेसे संसारी जीव भवसागर पार हो जायँगे ॥ ३४ ॥ योगमायामें निमग्न रहते, भगवत्परायणको अनेक प्रकार भोगभ्रष्ट करनेमें समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान्की कथा सुनते-सुनते ध्यान करते-करते परमात्माका गुण गाते-गाते मन्वन्तरका काल व्यतीत कर दिया ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार इकहत्तर युग भगवान् वासुदेवकी कथासे मन्वन्तरको जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंको कृष्ण कथामें ही व्यतीत किया, कारण कि इस देहका यही फल है कि, सुकृत कर्ममें अपनी आयुको व्यतीत करे-

कवित्त-पायो है मनुज देह औसर बन्यो है आय, ऐसी देह बार बार कहो कहां पाइये । भूलत हैं बावरे तू सबसे सयानो होय, रतन अमोल यह काहेको गँवाइये ॥ समुझ विचार कर ठगनको संग त्याग, ठग जे हैं देख कहूँ मन न डुलाइये । सुन्दर कहत तू अब भी सावधान होय, हरिको भजन कर हरिमें समाइये ॥ ३७ ॥

हे व्यासनन्दन विदुर! ये शरीरी, दैविक, भौतिक, मानसिक और जो शीतोष्णादिक अनेक प्रकारके ताप हैं, वे श्री वृन्दावनविहारी भक्तहितकारीके आश्रयवालेको कभी बाधा नहीं करते ॥ ३८ ॥ वर्णाश्रमादिक अनेक प्रकारके शुभधर्म, मनुष्योंके धर्म, सब जीवोंके धर्म जो-जो मुनियोंने पूछे वह मनुने वर्णन किये ॥ ३९ ॥ आदि नृप स्वायंभुव मनुका चरित्र मैंने सब आपसे वर्णन किया, अब उनके सन्तानोंकी कथा सुनो ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे सपत्नीकस्वायंभुवमनोर्बर्हिष्मतीप्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–देवहूति कर्दम कथा, वरणौं सहित सनेह।
नव कन्या उत्पति भई, तोहू रह्यो सँदेह ॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब शतरूपा और स्वायंभुव मनु अपने नगरको चले गये तब साध्वी देवहूति अपने पतिके मनकी बात जाननेवाली प्रतिदिन प्रीतिसे पतिकी सेवा करने लगी, जिस प्रकारसे हिमाचलपुत्री महेश्वरकी सेवामें दिन-रात लगी रहती हैं। विश्वास, शौच व अपनी गुरुतासे, दम, सुहृदता व मधुर वाणीसे शुश्रूषा करे ॥१॥२॥ कपट, दंभ, द्वेष, लोभ, पाप, मद इन सबको त्यागकर महातेजस्वी मुनीश्वरको सन्तुष्ट करती रहे, इस प्रकार अपने शरीरकी सब सुध बिसार कांतकी सेवा करते-करते सब शरीर शिथिल हो गया, परन्तु पतिकी सेवा करनेसे मन न थका ॥ ३ ॥ निश्चय करके देवर्षियोंमें श्रेष्ठ कर्दम, उस मानवी सदा सेवा करनेवाली सबसे बड़े भाग्यवाली, पतिसे बड़े-बड़े आशीर्वादोंकी अभिलाषा करने वाली ॥ ४ ॥ बहुत दिन सेवा करनेसे जिनका शरीर दुर्लभ हो गया है; ऐसी देवहूतिसे प्रेमसहित गद्गद वाणीसे पीडित हो कृपा करके ॥ ५ ॥ कर्दमजी बोले, कि हे मानवि! आज मानदात्री तुम्हारी परम शुश्रूषासे और अत्यन्त भक्तिसे मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो अपना देह देहधारियोंको अत्यन्त प्यारा है, वह देह तुमने मेरी सेवाके अर्थ लगा दिया और अपना जीवन-मरण कुछ न समझा, इस कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥ ६ ॥ जो मैंने स्वधर्ममें रत होकर तप, समाधि, विद्या, आत्मयोगसे जीते भगवत्के दिव्य प्रसाद प्राप्त किये हुए मुझमें हैं, उनको मेरी सेवा करके तूने अपने वशमें कर लिये हैं। अब मैं तुझको दिव्य-दृष्टि देता हूँ, जिसके प्रतापसे अभय अशोक सविस्तार संसारको तुम देखोगी ॥ ७ ॥ भगवान्‌की भ्रुकुटि टेढ़ी होनेसे जिनकी अर्थरचनाका विनाश होता है और वैभव तो क्या वस्तु है? तू सिद्ध हो गयी है, इसलिये निज धर्मपूरक प्राप्त हुए हैं उन वैभवोंको अनुभव करो जो नृपोंकेसी क्रिया करनेवाले मनुष्योंको भी नहीं प्राप्त होता है ॥८॥ इस प्रकार पतिकी सब योगमाया और विद्या व पाण्डित्यको देखकर देवहूतिकी सब पीड़ा और चिंता नष्ट हो गयी और फिर विनय प्रेमसे विह्वल हो गद्गद वाणीसे कुछ लज्जाकी चितवनसे बिलसित हँसित मुखारविन्दवाली ॥ ९ ॥ देवहूति बोली कि, हे विप्रवर! हे प्राणनाथ!! हे स्वामिन्!!! आप अमोघ योगमायाके स्वामी हो, तुममें ये सब प्रस्तुत हैं, यह मैं भली प्रकार जानती हूँ, परन्तु तुमने जो मुझसे कहा था कि,-

दोहा–कछुक काललों आपसे, मोहित करहिं विचार।
जबलों होय न गर्भ मोहिं, यह वर देहु उदार ॥

तुमने कहा था कि ऐसा ही होगा, अपने कहे अनुसार एक बार अंगसङ्ग करना योग्य है, क्योंकि महान् तेजस्वी पतिसे जो सती स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त गुणवान् होती है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! अङ्गसङ्गम करने योग्य कामशास्त्रोंकी शिक्षा है, जिससे मेरी यह मलीन और क्षीण देह रमण करने योग्य हो । तुम्हारे किये हुए कामसे मैं धर्षित हूँ, इस कारण उसको शान्त करनेके लिये उत्तम भवन बनाना चाहिये ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुरजी ! प्रियाके प्रिय वचन सुन कर्दमजीने योगबलसे उसी समय एक ऐसा परमोत्तम विमान प्रकट किया, कि इच्छानुसार सब भूमण्डलमें घूमनेवाला ॥ १२ ॥ सब इच्छा पूर्ण करनेवाला दिव्य यान, बड़े मूल्यके रत्नोंसे जड़ा हुआ, सब वृद्धियोंके समूहोंसे संचित, मणि-माणिकोंके खम्भोंसे शोभित; ऐसा यान बनाया ॥

दोहा–ग्रीषम पावस शिशिर अरु, शरद हिमंत वसंत ।
निज प्रभाव प्रकटत निपट, षट् ऋतु सदा लसंत ॥ १३ ॥

दिव्य सामग्री समेत प्रत्येकका सुख देनेवाला, नाना प्रकारकी अद्भुत-अद्भुत ध्वजा व विचित्र पताकाओंसे विभूषित ॥ १४ ॥ विचित्र पुष्पोंकी सुन्दर माला अटक रही जिन पर भँवरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार शब्द कर रहे, रेशम वस्त्र, बढ़िया पीतांबरादिक अनेक प्रकार से लगे हुए॥१५॥चौखण्डे,पँचखण्डे रचे हुए स्थानों व मंदिरोंमें पृथक्-पृथक् शय्या, चमर, पर्यङ्क व्यजन आसन जहां-तहां विराजमान ॥१६॥ उन स्थानोंमें नाना प्रकारकी शिल्पकी कारीगरीसे चित्रसारी और तिवारी ऐसी मनोहर सवारी थी कि जिनकी मणि मरकतमय भूमिमें अद्भुत वेदी बन रही थी ॥१७॥ द्वारों पर विद्रुमकी देहलियोंका प्रकाश, हीरोंसे जड़े वज्रके किंवाड विज्जुछटासम चमक रहे, शिखरोंपर इंद्रनीलमणि लसी हुई कनकके कलस कलशियां दमक रहे ॥१८॥ भीतोंके भीतर हीरे, माणिक, पद्मराग जहां-तहां चित्र-विचित्र नेत्रोंके समान चमक रहे थे, और रंग-विरंगे अधिक मोलके शामियाने तने थे ॥ १९ ॥ मणियोंके कृत्रिम हंस व कपोतोंको देख-देख हंस कबूतरोंके झुण्डके झुण्ड उनको अपना सजातीय समझ उड़ कर उनके निकट आ-आकर बैठते थे ॥२०॥ विहार स्थान, शयन भवन, विश्राम गृह, उपभोग स्थल, आंगन, दुर्गसे बाहरके मंदिर, सविस्तार चौक उसमें ऐसे-ऐसे अद्भुत भवन यथासुख बने थे कि, जिनको देख कर्दमजीको भी विस्मय होता था ॥२१॥ ऐसे शोभायमान मंदिरोंको देख, देहकी मलीनता और सखियोंके न होनेसे देवहूति अपने मनमें अत्यानंदित न हुई, तब सब जीवमात्रके अन्तर्यामी कर्दमजी देवहूतिसे बोले[1] ॥ २२ ॥ हे सुमुखि ! इस बिन्दुसरोवरमें स्नान करके इस विमानमें बैठ । यह तीर्थ अपने नेत्रोंसे आनन्दका बिन्दु इस भूमिपर डालकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उत्पन्न किया है, यह मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला और आशीर्वादका देनेवाला है ॥ २३ ॥ वह पंकजनेत्रा देवहूति पतिका वचन मान, मलीन वस्त्र पहिने, दुर्बल शरीर, वेणीभूत केश धारण किये ॥ २४ ॥ मैली देह कीच मिट्टीमें सनी हुई, ऐसी देवहूतिने उस विस्तीर्ण सरस्वतीके शिव सरोवरमें स्नान किया॥२५॥

१. शंका–देवहूतिने अपने पति कर्दममुनिसे प्रथम तो रतिसुखके लिये सुन्दर स्थान सुन्दर मंदिर बनानेको याचना की, जब कर्दममुनिने महाअद्भुत अत्यन्त शोभायमान भवन बनाये तब मंदिरोंको देखकर उदास क्यों हो गयी ?

उत्तर–प्रथम देवहूतिने अपने पतिके प्रभावको नहीं जाना था, जब तपस्यासे कर्दम मुनिने महाअद्भुत विमान बनाया उसको देखकर अपने पतिके प्रभावको जान लिया कि यह बड़े सिद्ध हैं, मैंने ऐसा सामर्थ्यवान् पति पाकर तुच्छ स्थान मांगा, मोक्ष क्यों नहीं मांगा ? इस लिये देवहूति अपने मनमें उदास हो गयी थी ।

सरोवरके भीतरसे एक हजार कन्या सब किशोरवय, सर्वगुणसंपन्न, कमलसमान सुगंध, वाली दृष्टिगोचर हुई ॥ २६ ॥ देवहूतिको देख हाथ जोड़कर सब स्त्रियाँ बोलीं कि, हम सब आपके सब कर्मोंके करनेवाली दासियां हैं, हमको जो आपकी आज्ञा होगी वही करनेको तैयार हैं ॥२७॥ उस मनस्विनीको स्वच्छतासे स्नान कराकर अमूल्य वस्त्र दासियोंने पहिनाये ॥२८॥ फिर सर्वस्वादयुक्त अन्न जिमाय अमृतके समान मिष्ट मादक जल पिलाया और अमोलरत्नजटित वस्त्राभूषण पहिनाये ॥२९॥ फिर देवहूतिने पुष्पोंकी माला पहिने, शुक्ल-वस्त्र धार, निर्मल स्वस्त्ययन की हुई बहुत कन्या सम्मान करें, ऐसे अपने अंगको आर-सीमें देखा ॥ ३० ॥ शिरसे स्नान किये, सब आभरण शोभित गलेमें हार और हाथोंमें कंकण पहिने, सौभाग्यके सब मांगलिक पदार्थ धारण किये, पांवोंमें स्वर्णके नूपुर झनझनाती ॥ ३१ ॥ बहुरत्नकी करधनी कटिमें पहिने, हीरोंके हार कण्ठमें शोभायमान ॥ ३२ ॥ सुन्दर दांत सुन्दर भौंहें, मनोहर प्रेम–रसभरे कटाक्षवाले नेत्र, पद्मरागनिंदा करनेवाली नील मेघ-निभ अलकोंसे शोभित मुखारविंद दृष्टिगोचर किया ॥ ३३ ॥ उस मनोहर छबिको निरख अपने प्राणप्रीतम ऋषिश्रेष्ठका देवहूतिने स्मरण किया । वह वहां गयी जहां सब ऋषियोंमें अग्रगण्य कर्दमजी विराजते थे ॥ ३४ ॥ हजार सहचरियों समेत प्यारे अपने पतिकी योग-मायाको देख देवहूतिको महान् संशय हुआ, कि यह क्या आश्चर्य है ? ॥३५॥ मज्जन स्नान करनेसे अपूर्व शरीरकी कांति प्रकाशित है जैसी कि विवाहके समय थी, उस रूपको धारण किये वस्त्रसे उरोजोंको छिपाये कर्दमजीने देवहूतिको देखा ॥ ३६ ॥ सहस्र विद्याधरियोंसे सेवित; मनोहर वस्त्र पहिने, उस मनोरमाको देखकर, हे विदुरजी ! कर्दममुनिने देवहूतिका कोमल मृणालवत् कर पकड़कर प्रेम सहित उस विमानपर बिठाया ॥३७॥ महिमा जिनकी लुप्त न हुई, प्रियामें आसक्त, विद्याधरियोंसे शुश्रूषित कर्दमजी प्रफुल्लित पद्मके समान सुन्दर आकाशके तारागण सेवित चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे ॥ ३८ ॥ उस विमानमें बैठ-कर आठों लोकपालोंके विहारका कुलाचलेन्द्र सुमेरुकी कन्दराओंमें कामदेवके सखा शीतल, मन्द, सुगन्ध, बयार चल रही, गंगाके गिरनेका कल्याणदायक शब्द हो रहा ऐसे सुमेरुपर्वत पर कुबेरसम कर्दमजी ललनागणोंको साथ लिये, सिद्ध जिनकी स्तुति करें वह कर्दमजी रमण करने लगे ॥३९॥ फिर कर्दमजी प्रसन्न होकर वैश्रंभक, नन्दन, सुरसन, पुष्प, भद्रक, मानस, चैत्ररथ इन सात देवताओंकी वाटिकाओंमें अपनी रमणीके साथ रमण करने लगे ॥ ४० ॥ प्रकाशमान पुरुष जहां चाहें वहां जाँय, बड़े विमानमें बैठकर लोकोंमें जैसे पवन चले वैसे सब विमानोंको उल्लङ्घन कर कर्दमजी सबके शिरोमणि हुए ॥४१॥ उन धैर्यवानोंको कौन वस्तु दुर्लभ है, जिन्होंने कष्टहरण श्रीनारायणके कमलरूपी चरणका आश्रय लिया है, सब व्यसन उनके नाश हो जाते हैं ॥४२॥ फिर जितना भूमण्डल है वह सब अपनी भार्याको दिखाया, जिससे वह आश्चर्य्यान्वित हुई सबमें विचरकर महायोगी कर्दमजी अपने आश्रमको आये ॥४३॥ मनुकन्याके नव कन्या उत्पन्नकी तो भी मैथुनमें जिसका मन जब अपनी प्रिया देव-हूति स्त्रीसे वह सौ वर्ष एक मुहूर्तकी नाईं रमण करते कर्दमजीको बीत गये ॥ ४४ ॥ तब उस विमानपर स्थित होकर देवहूति अपने पतिके साथ ऐसी मोहित हुई कि समयकी कुछ सुधि न रही ॥४५॥ इस प्रकार योगके प्रभावसे स्त्रीपुरुषको आनंद क्रीडा करते-करते कामकी लालसामें सौ वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४६ ॥ देवहूतिको अत्यन्त स्नेहके कारण आत्म-

ज्ञानी आत्माका भाव जानकर नौ प्रकारका रूप विधानकर, विभु सब संकल्पके ज्ञाता कर्दमजीने देवहूतिमें वीर्य धारण किया, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुत्र, स्त्रीका वीर्य अधिक हो तो कन्या होती है ॥४७॥ इस कारण देवहूतिके शीघ्र ही नौ कन्या उत्पन्न हुईं। वे सब श्रेष्ठ कोमलांगी, जिनका लालकमलका-सा रंग और अंगमें सुगंधि थी ॥ ४८ ॥

चौ०–सब रविशशि मनमोहनहारीं ❀ मनहु काम निज हाथ सवारीं

फिर जिस समय कर्दमजीने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार संन्यास ले वनमें जानेकी इच्छा की उस समय पतिको देख सती देवहूति मोहसे विवशहृदय हो मुसकाई ॥ ४९ ॥ नीचेको ग्रीवा किये मणिसमान कांति चरणके अँगूठेके नखसे धरतीको खोदने लगी और धीरे-धीरे आंखोंसे आँसू पोंछ मृदुल वाणीसे ॥ ५० ॥ देवहूति बोली कि, हे नाथ! आपने सब प्रकार मेरा मनोरथ पूरा किया, तो भी मैं आपकी शरण आयी हूं, मुझको आप अभय दान दीजिये ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन्! आपको इतनी कृपा और करनी चाहिये, कि इन कन्याओंके योग्य कोई उत्तम कुलका वर ढूंढकर विवाह करते जाओ और एक मेरा शोकहर्ता पुत्र उत्पन्न कर पीछे वनको पधारें।

दोहा–मुझ दासीकी यह विनय, सुनहु कृपाकर नाथ।
दै इक सुत मोंहि जाहु वन, कहौं जोरि युग हाथ ॥ ५२ ॥

हे प्रभो! इन्द्रियोंके प्रसंगसे मैंने परमब्रह्मको त्यागकर इतना समय व्यतीत किया इसीमें मेरा मन तृप्त हो गया ॥५३॥ इंद्रियसुखमें आसक्त होकर मैंने आपसे भोग-विलास किये, आपके परम भावको मैं नहीं जानती थी, तो भी मेरे अभयके अर्थ कुछ उपाय करना चाहिये ॥५४॥ संयोग संसारके बन्धनका कारण है, सो कुबुद्धिसे असत् पदार्थोंमें संयोग किया वही संयोग महात्माओंसे किया जाय तो निश्चय मोक्षका हेतु होता है ॥५५॥ इस संसारमें आकर जिसने धर्मार्थ न तो कोई उत्तम कर्म किया एवं न वैराग्यार्थ कुछ तप और नारायणके चरणारविंदोंकी सेवा करनेको कुछ उपाय किया है, वह पुरुष जीता हुआ मृतकके समान है ॥५६॥ निश्चय है कि मैं भगवान्‌की मायासे मोहित हो गयी, जो आपसे मोक्षदायक पतिको पाकर भी इस संसारके बन्धनसे न छूटी, मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् हो, परन्तु भगवान्‌की भक्तिके विना उसके सब गुण वृथा हैं–

सवैया–बुद्धि बड़ी चतुराई बड़ी, मनमें ममता अतिनालिपटी है।
नाम बड़ो धनवान बड़ो, करतूत बड़ी जगमें प्रगटी है॥
गजवाजिय द्वार मनुष्य हजार, तो इन्द्रसमानसे कौन घटी है।
सो सब विष्णुकी भक्ति विना, मानो सुन्दर नारिकी नाक कटी है॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा–चौबिसवें अध्यायमें, कपिलदेव अवतार।
कर्दममुनि बनको गये, त्याग जगत् व्योहार॥

मैत्रेयजी बोले कि मनुतनया देवहूतिने इस प्रकार ज्ञान वैराग्यके वचन कहे, उस समय भगवान् वासुदेवके कहे वचन स्मरण करके महात्मा कर्दमजी देवहूतिकी प्रशंसा कर ॥ १ ॥

ऋषि बोले कि, हे राजपुत्रि ! खेद त्यागो, अपने आत्माकी इस प्रकार निंदा मत करो, अक्षर भगवान् थोड़े दिनोंमें तुम्हारे गर्भमें आकर प्राप्त होंगे ॥ २ ॥ तुमने अनंतव्रत धारण किये हैं, तुम्हारी कुशल होगी; दम, नियम, तप, धनदान श्रद्धासे परमात्माकी सेवा करो ॥३॥ तुम आदिपुरुष अविनाशी श्रीमन्नारायणका आराधन करोगी तो त्रिलोकीनाथ ज्ञानउपदेशक श्रीभगवान् तुम्हारे उदरसे उत्पन्न होकर मेरा यश विस्तार कर तेरे हृदयकी ग्रन्थि और मोह ममताका छेदन करेंगे ॥४॥ मैत्रेयजी बोले कि, देवहूति कर्दमप्रजापतिके वचन सुनकर उनपर पूर्ण विश्वास कर श्रद्धासहित अचिंत्यरूप कूटस्थ पुरुष जगद्गुरु ईश्वरका भजन करने लगी ॥ ५ ॥ कुछ दिनोंके उपरांत मधुसूदन भगवान् कर्दमजीके वीर्यको प्राप्त होकर, जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है वैसे देवहूतिके उदरसे उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें बड़े शब्दसे बाजे बजने लगे, गन्धर्व गाने लगे, सब अप्सरायें आनन्दसे नाचने लगीं ॥७॥ दिव्य आकाशवासियोंके छोड़े हुए पुष्प वर्षने लगे । सब दिशा जल और मन अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ सरस्वतीपरिवेष्टित उस कर्दमजीके आश्रमपर मारीचि आदि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी आये ॥९॥ हे रिपुसूदन ! विदुरजी ! भगवान् परब्रह्मने सत्त्व-अंशसे सम्यक् सांख्य शास्त्रको प्रकट करनेके लिये जन्म लिया है, यह बात स्वतः सिद्ध आत्मज्ञानवाले ब्रह्माजीको प्रकट हुई ॥१०॥ ब्रह्माजी विशुद्धचित्तसे उनके करनेकी जो इच्छा प्रकट हुई उसको अत्यन्त सत्कार कर हर्षित चित्तसे कर्दमजीसे ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! हे मान देनेवाले ! तुमने निष्कपट होकर मेरी पूजाकी जो मेरा वचन मानसे तुमने ग्रहण किया ॥ १२ ॥ पुत्रोंको पिताकी इतनी ही शूश्रूषा करनी चाहिये; "जो आज्ञा" ऐसा कहकर पितृवचन, गुरुवचन गौरवसे माने ॥ १३ ॥ हे सभ्य ! यह तुम्हारी नौ पुत्रियाँ अपने प्रभावसे अनेक प्रकारकी सृष्टिको बढ़ायेंगी ॥ १४ ॥ इसलिये इनके शील और रुचिके अनुसार मुख्य-मुख्य मरीचि आदि ऋषियोंके लिये इन कन्याओंको दो और संसारमें अपना यश विस्तार करो ॥१५॥ हे मुने ! हम इस बातको भली-भांति जानते हैं कि प्राणियोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आदिपुरुषने अपनी मायासे कपिलदेह धारण किया है ॥ १६ ॥ हे देवहूति ! जिन आदिपुरुषने तुम्हारे गर्भमें प्रवेश किया है, ज्ञान जो शास्त्रका सिद्धान्त और विज्ञान जो अपरोक्ष अर्थात् विना देखे, विना सुने, विना कहे यथार्थ वस्तुका जान लेना, ये ही दोनों एक उपाय हैं, इनसे कर्मोंके जो मूल हैं, अर्थात् वासना, उसको उखाड़ेंगे, सुवर्णकेश कमलनयन, पद्मचिह्नवाले जिनके चरणारविंद हैं, ऐसे कैटभदैत्यके मारनेवाले तुम्हारे आत्मरूपका अज्ञान और मिथ्याज्ञानीकी ग्रंथिको काटकर सब पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ और यह तुम्हारा पुत्र सब संसारमें प्रसिद्ध होगा, सिद्ध गणोंमें मुख्य सांख्यशास्त्रके आचार्योंमें सेव्यमान और लोकमें कपिलदेव नामसे विख्यात होकर तुम्हारी कीर्तिको बढ़ायेंगे ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, जगत्कर्ता चतुरानन उन दोनों स्त्री पुरुषोंको धैर्य देकर सनत्कुमार और नारदमुनिसहित हंसवाहनपर बैठकर सत्यलोकको चले गये ॥ २० ॥

---

१. शंका–कर्दम मुनिने देवहूतिसे कहा कि तुमने भलीभांति श्रीलक्ष्मीनारायणका पूजन किया है, इसलिये श्रीभगवान् तुम्हारे पुत्र होंगे परंतु यह भ्रम होता है किस जन्ममें ? यह सुन देवहूति फिर एकाग्र चित कर सावधानीसे परमेश्वरका पूजन करने लगी ।

उत्तर–इसी जन्ममें देवहूति अपने हृदयमें रात-दिन भगवान्‌को अपना पुत्र होनेके लिये मानसिक पूजन करती थी, यह देवहूतिके कर्मोंको कर्दममुनिने जान लिया ।

हे विदुरजी ! जब ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये, तब कर्दमजीने ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार अपनी नवों कन्याओंको विश्व रचनेवाले मारीचि आदि मुनीश्वरोंको दे दिया ॥ २१ ॥ कलानाम कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अंगिराको, हविर्भू पुलस्त्यको ॥२२॥ योग्यगति पुलहको, क्रियासती यज्ञको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको, शांति अथर्वको दी, जिस शांतिसे यज्ञ समृद्ध होता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ विवाह करके स्त्रियों सहित उनका अत्यन्त लालन किया ॥ २४ ॥ हे विदुर ! विवाह होनेके उपरान्त ऋषि कर्दमजीसे विदा मांग आनन्दित हो अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २५ ॥ कर्दमजी अपनी स्त्रीमें देवश्रेष्ठ विष्णु अवतार हुआ जानकर, एकांतमें आ प्रणाम कर बोले ॥ २६ ॥ हे हरे ! अपने कर्मोंसे पापी जीव नरकमें दुःख भोगते हैं, उनका बहुत काल बीतने पर देवता उनपर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ महात्मापुरुष एकान्तस्थानमें बैठकर अनेक जन्मके किये हुए सुन्दर योगसमाधिसम्बन्धी जप-तप साधन कर आपके पदपंकजके दर्शनार्थ उपाय करते हैं ॥ २८ ॥ वही त्रिभुवनपति नारायण आज हमारे अपराधोंको बिसारकर, अपने दासोंका पक्ष पुष्ट करनेवाले हमसे तुच्छ ग्रामवासियोंके घरमें आपने जन्म लिया ॥ २९ ॥ अपना प्रण पूरा करनेको और ज्ञानवैराग्यकी शिक्षा करनेको और भक्तोंका मान बढ़ानेको मेरे घर आकर आपने अवतार लिया ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! यद्यपि चतुर्भुज आदि जो अद्भुत रूप हैं वे ही आपके योग्य हैं तथा आपके सुजन भक्तोंको जिस-जिस प्रकारसे रूपकी इच्छा होती है; हे रूपरहित ! आप उसी प्रकारका रूप धारण कर उनको प्रसन्न करते हो ॥ ३१ ॥ हे भगवन् ! प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञानके मनोरथसे महात्मा पुरुष जिन आपके चरण पीठको नमस्कार करते हैं । उन ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य, श्रीसे पूर्ण जो आप हैं, उन आपकी मैं शरण हूँ, अर्थात् सर्वगुणनिधान आपकी शरण होनेसे मैं भी निष्काम हो गया ॥ ३२ ॥ परमेश्वर प्रधान पुरुष महत्तत्त्व, काल कवि अहंकार, लोक और लोकपालक अपने अनुभवसे संसारमें आनेवाले हैं, भक्तोंके आधीन जिनकी शक्ति और जिनके स्वरूपमें सब प्रपञ्च समाया रहता है, ऐसे कपिल देव भगवान्की मैं शरण हूँ ॥ ३३ ॥ हे प्रजापतियोंके पति ! मैं आपसे संन्यास धारणके कारण आदेश मांगता हूं और यह भी जानता हूं कि आपके अवतार लेनेसे मैं पितृऋणसे छूट गया और मेरी मनःकामना भी सिद्ध हुई । अब संन्यासियोंकी पदवीमें स्थित हो, आपको हृदयमें धारण कर विशोक होकर विचरण करूंगा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुने ! सत्य लौकिक सब कार्योंमें मेरा कहना सबको प्रमाण है, इस कारण जो वाक्य मैंने आपसे कहे थे वे सब सत्य करनेको तुम्हारे यहां मैंने जन्म लिया है ॥ ३५ ॥ इस लोकमें लिंग शरीरसे मुमुक्षु लोगोंको आत्माके दर्शनके लिये और जगत्की दुर्वासना मोक्षके लिये और तत्त्वोंकी संख्याके लिये संसारमें मैंने जन्म लिया है ॥ ३६ ॥ बहुत कालसे यह सूक्ष्म, अनादि ईश्वर सम्बन्धी ज्ञानमार्ग नष्ट हो गया था, उसके प्रचार करनेको यह मनुज अवतार संसारमें मैंने धारण किया है ॥३७॥ जो कुछ कर्म करो वह मेरे निमित्त समर्पण करो यही पूर्ण संन्यास है, इस बातको मनमें धारण कर जहां इच्छा हो जाओ और अत्यन्त दुर्जय इस मृत्युको जीतकर मोक्षके अर्थ मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ मैं आत्मज्योति हूं और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करता हूं, अपनी बुद्धिसे सर्वत्र परमात्माको जानकर विगतशोक हो, अभयपदको प्राप्त होओगे

॥ ३९ ॥ सब कर्मोंको नाश करनेवाली ब्रह्मविद्याका उपदेश अपनी माताके लिये विस्तार-सहित करूंगा; जिससे वह संसार बन्धनसे छूटकर तर जायँगी ॥४०॥ मैत्रेयजी बोले कि जब कपिलदेवजीने इस प्रकार कर्दमजीसे वचन कहे, तब कर्दम प्रजापति कपिलदेवजीकी प्रदक्षिणा करके वनको चले गये ॥४१॥ मुनि लोगोंका धर्म जो मौनव्रत है, उसमें स्थित होकर, आत्माके शरणागत हो, सबका सतसंग तजकर, मोहविगत हो फलाहार करने लगे, एक स्थान पर न ठहरें, सब पृथ्वीपर विचरते रहें ॥ ४२ ॥ जो कार्यकारणसे परे ब्रह्म है, उनमें मन लगा, गुणोंका जिसमें प्रकाश है ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें लवलीन हो एक भक्तिको अनुभव करते हुए ॥ ४३ ॥ अहंकार, ममता, त्याग, सुख-दुःख समान समझ, समदर्शी ज्ञानदर्शी हो, सबसे शांति बुद्धि कर जैसे समुद्रमें सब तरंगें शान्त हो जाती हैं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार महाधीर प्रजापति कर्दमऋषिने परम भक्ति भावसे अपना मन सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान् सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी में लगा आत्मज्ञानको प्राप्त कर सब बन्धनसे मुक्त हुए ॥४५॥ सब जड़, चेतनमें आत्मा भगवान् वासुदेवको स्थित देखने लगे और सब जड़ चेतनको भगवान् वासुदेव आत्मामें देखने लगे ॥ ४६ ॥ कामना द्वेषको त्याग सर्वत्र समानचित्त कर भगवान्‌की भक्तिमें लय हो भगवत्‌गतिको प्राप्त हुए, जैसे भक्तिमें वश होकर इन कहे हुओंकी रक्षा की थी उसी प्रकार कर्दमजीकी रक्षा की-

कवित्त-गिरिको उठाय व्रजगोपोंको बचाय लीन्हों, अग्निते उबारे पाण्डु बालक मँजारीको। गजकी अरज सुन ग्राहते छुटायो शीघ्र, राख्यो व्रतनेम-धर्म पाण्डवकी नारीको ॥ राख्यो गज घंटातले बालकविहंगमको, राख्यो प्रण भारतमें भीष्म ब्रह्मचारीको। त्रिविध तापहारी निज संतन सुखकारी है मोहिं तो भरोसो वाही साँवरे बिहारीको ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीय स्कन्धे कपिलदेवावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा-देवहूति पच्चीसमें, बूझत मुक्ति उपाय।
भक्तिमुक्तिकी रीति सब, कही कपिल समझाय ॥

श्रीशौनकजी बोले कि, तत्त्व सांख्यशास्त्रके कर्ता भगवान् कपिलदेवजीने मनुष्योंको आत्मतत्त्वका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे आप ही अजन्मा होनेपर जन्म लिया ॥१॥सब पुरुषोंमें शिरोमणि,योगिजनोंमें श्रेष्ठ,ऐसे वासुदेव भगवान्‌की कीर्ति और अत्यन्त परमेश्वरके चरित्र सुननेसे भी मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥ अपने प्यारे भक्तोंकी इच्छासे जो-जो स्वरूप त्रिभुवनेश्वर भगवान् धारण करते हैं और अपनी मनमोहिनी मायासे जो-जो अलौकिक लीला करते हैं और अपनी मनमोहिनी मायासे जो अलौकिक लीला की है, वह चरित्र मुझ श्रद्धालुके कीर्तन करनेके योग्य है, वह कृपाकर कीर्तन कीजिये ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि वेदव्यासजीके प्यारे सखा मैत्रेय भगवान्‌ने विदुरजीसे प्रीतिके मारे ब्रह्मविद्यामें प्रेरित इसी प्रकारके वचन कहे थे, जैसा तुमने मुझसे प्रश्न किया, वह हम तुमसे कहेंगे, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥४॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब कर्दमजी वनको चले गये, तब कपिलदेव

जी अपनी माताकी मनःकामनाको पूर्ण करनेके अर्थ उसी बिन्दु सरोवरपर वास करने लगे ॥५॥ अपने सुत अकर्मी तत्त्वमार्गके अग्र दिखानेवाले कपिलदेवजीको बैठा देखकर ब्रह्मका वचन स्मरण कर ॥ ६ ॥ देवहूति बोली, हे भूमन् ! हे प्रभो ! खोटी इंद्रियोंकी तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त हुआ, जिन विषयोंकी भावनासे अन्धतममें गिरना पड़ा ॥७॥ जो महागंभीर दुःखके समुद्रसे कठिनतापूर्वक पार जा सके, उसके अन्धकारको पार करनेवाले, अनेक जन्मोंके अंतमें आपकी कृपासे मुझको इस सुन्दर स्वरूपका दर्शन हुआ है ॥८॥ जो पुरुषोंमें आद्य पुरुष भगवान् ईश्वर हैं, वह आप हो, अँधियारेसे अन्धे हुए लोकोंको सूर्यके समान नेत्ररूप तुम उदित हो ॥९॥ इस कारण हे देव ! यह असत् आग्रह, अहं, ममता, मोह आपने ही इनसे संयोग कर रखा है, आप हमारे मोहको दूर कीजिये ॥ १० ॥ शरणागत प्रति-पालक, भक्तवत्सल अपने भक्तोंकी मृत्युके वृक्षको काटनेके लिये कुठाररूप, सद्धर्ममें श्रेष्ठ, प्रकृतिपुरुष जाननेकी इच्छा करके मैं तुम्हारी शरण आयी हूं इसलिये आपको प्रणाम करती हूँ ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार अनिंद्य चाह अपनी माताकी सुनी, जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली बुद्धिसे सराहना कर आत्मज्ञानी संतोंकी गति मंद-मंद मुसकानसे शोभायमान मुखसे अपनी मातासे कहा ॥१२॥ कि, पुरुषोंके कल्याणार्थ ब्रह्मविद्यामें आशा रखनी यही मेरा मत है जिस ब्रह्मविद्याके लाभ होनेसे सुख-दुःखका नाश हो जाता है ॥ १३ ॥ हे अनघे ! सर्व प्रकारसे बहुत निपुण योगको सुननेकी इच्छावाले योगियोंको जो योग मैंने प्रथम कहा था वही कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ १४ ॥ निश्चय करके चित्त इसके बंधनार्थ है और आत्माका चित्त मुक्तिके अर्थ भी कहा है; गुणोंमें आसक्तता होनेसे बंधन होता है और जो पुरुष ईश्वरमें लगे तो मुक्ति हो जाती है ॥ १५ ॥ जब मैं, मेरा, यह अभिमान उठा हुआ काम लोभादि मलोंसे रहित शुद्ध मन होता है, तब सब दुःखनाश होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परे निरंतर स्वयं ज्योति अणुमात्र अखं-डित परमेश्वरको ॥ १७ ॥ ज्ञान, वैराग्य, भक्तियुक्त आत्माद्वारा सबसे उदासीन प्रकृतिसे पराक्रमका नाश करनेवाला ब्रह्म जीवब्रह्मको देखता है ॥ १८ ॥ भगवान् अखिलात्मामें लगे हुएके समान योगियोंको ब्रह्म सिद्धिके लिये, इससे अधिक और मंगलदायक मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ इस जीवका जगत्में आसक्त हो जाना यह अजर-अमर फांसी है, यही आसक्ति साधुसन्तोंमें करे तो उसके लिये मोक्षका द्वार खुला हुआ है ॥ २० ॥ मुनिजनोंका कथन है कि सबकी सब बातें सहे, सब देहधारियोंपर दयालुता रक्खे, सब जीवमात्रसे सुहृद्भाव वर्ते, किसीको अपना शत्रु न समझे, शान्तगुण परकार्यसहायक साधुओंके अलंकार हैं ॥ २१ ॥ जो मुझमें अनन्यभावसे दृढ़ भक्ति करके मेरे लिये सब काम त्यागते हैं और सब स्वजन-बन्धुओंसे स्नेह छोड़ते हैं ॥ २२ ॥ जो मेरी ही मनोहर मृदुल कथाको सुनते हैं, अथवा कहते हैं और जो अपना मन मुझमें लगाते हैं, उनको किसी प्रकारका ताप नहीं व्याप सकता

१. शंका–देवहूतिने कपिलमुनिसे कहा कि, हे पुत्र ! खोटी इन्द्रियोंसे तो मैं खेदित हो छूट गयी। तो फिर कपिलमुनिसे मुक्त होनेका उपाय क्यों पूछा ? क्योंकि जो खोटी इन्द्रियोंसे छूट गया तो वह सब संसारसे छूट गया, उसको मुक्ति होनेके उपाय पूछनेसे क्या प्रयोजन है ?

उत्तर–देवहूति खोटी इंद्रियोंसे छूट गयी हैं तो भी भगवान्को अपना पुत्र देखकर मुक्ति होनेवाले कामोंका लोभ करके अथवा मुक्तिके कर्मोंको पुष्ट करनेके लिये पूछती हैं।

॥ २३ ॥ हे साध्वी ! जो साधु हैं वे सब संगसे रहित हैं और किसी तापसे तापित नहीं होते, उन महात्माओंका सत्सङ्ग करना चाहिये, इसलिये कि वे सब संगतके दोषको दूर करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ हे जननी ! सतोंके प्रसंगसे मेरे पुरुषार्थवाली हृदय और कर्णकी सुखदायक, आत्मज्ञान करानेवाली कथा होती है, उसके सुनने और प्रेम करनेसे मोक्षमार्गमें शीघ्र श्रद्धा, प्रीति, भक्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें सहज ही में उत्पन्न हो सकती है ॥ २५ ॥ मेरे चरित्रोंका चिन्तन करनेसे प्रथम मनुष्यके हृदयमें भक्ति प्रकट होती है और भक्ति करनेसे पुरुषको वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यमें मेरी अलौकिक रचनाके विचार करनेसे योगयुक्त होकर चित्तके ग्रहणार्थ कोमल योगके मार्गोंसे यत्न करे ॥ २६ ॥ प्रकृतिके गुणोंकी सेवा न करनेसे और ज्ञान-वैराग्य अधिक बढ़ानेका चिंतन करे, योगका साधन करे, सब कर्म मुझे समर्पण करे और एकाग्रचित्त हो मेरी दृढ भक्ति करनेसे प्राणी सर्वान्तर्यामी मुझको प्राप्त होता ॥ २७ ॥ देवहूति बोली कि, ऐसी कौनसी भक्ति है जिसको मैं कर सकूं ? क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मुझको किस प्रकारकी भक्ति करनी चाहिये ? जिसके प्रभावसे विना प्रयास तुम्हारा मोक्षपद प्राप्त होता है,ऐसा मैंने सुना है ॥२८॥ भगवान्‌का उपलक्ष करनेवाला योग तुमने कहा है,सो कैसा है ? और उसके कितने अंग हैं ? जिससे तत्त्वज्ञान होता है ॥२९॥

दोहा—कपिल कहो मोसों सविधि, कैसा है वह योग ।
जा करिकै योगी सकल, लहत भक्तिको भोग ॥

हे हरे ! ऐसी सुगम रीतिसे कोई शिक्षा मुझको दो कि जिसके प्रभावसे मैं मन्दमति स्त्री भी तुम्हारे अनुग्रहसे कठिन बातको सहजमें समझ लूं ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी बोले कि, कपिलदेवजीने अपनी जननीके मनोरथको जानकर अधिक स्नेह किया; जहाँ शरीरधारी होकर जन्मे उस माताको तत्त्वोंकी संख्यावाले सांख्यशास्त्रकी शिक्षा, भक्ति, विस्तृत योगकी रीतिसे कपिलदेवजी कहनेको उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, गुणोंके जिनके शरीर वेदविहित कर्म करे, ऐसी इन्द्रियों अथवा उनके अधिष्ठातृ देवताओंकी सत्त्वमूर्ति भगवान्‌में जो स्वभाविकी वृत्ति है, वही भक्ति है ॥३२॥ निष्प्रयोजन की हुई भागवती भक्ति सिद्धिसे भी बड़ी है, जैसे जठरानल भोजन किये हुए अन्नको भस्म कर देती है,वैसे ही भक्ति भी वासनाको जला देती है ॥ ३३ ॥ मेरे चरणोंकी सेवामें जिन पुरुषोंकी चेष्टा रहती है और जो केवल मेरे ही लिये सब कर्म करते हैं, वे लोग सायुज्यमोक्षकी इच्छा नहीं रखते, वे सज्जन पुरुष इकट्ठे होकर मेरे चरित्रोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे अम्ब ! वे महात्मालोग मेरे कोटिशशिसम प्रसन्नवदन, अरुण नयन, दिव्यवरप्रद रूपोंको वाणीसे कहते हैं और आनंदित होकर निहारते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शन योग्य रूप, उदार विलासहास, अवलोकन, संभाषण अत्यन्त मनोहर भक्तिसे जिनके प्राण व मन और इंद्रियोंको वशमें कर लिया है; उनको विना इच्छाके भी सूक्ष्म गति देती है ॥ ३६ ॥ मेरे भक्तोंको यद्यपि मायावी ईश्वरकी बनायी हुई सत्यलोकादिकोंकी भोग सम्पत्ति और अष्टाङ्ग योगोंकी विभूतिरूप, अणिमादि ऐश्वर्य स्वतः (अनायास) प्राप्त होते हैं, पर जिनकी अविद्या निवृत्त हो गयी ऐसे मेरे भक्त मेरी जो आनन्दमयी वैकुण्ठधाममें विभूति है उसीकी स्पृहा रखते हैं ॥ ३७ ॥ जो सत्पुरुष मुझमें परायण हैं वे शांतरूप कभी नाश नहीं होते और मेरा कालचक्र उनको नहीं मार सकता, क्योंकि जिनका मैं प्रिय आत्मा हूँ, पुत्रके तुल्य प्रतिपालक, मित्रके समान विश्वासी, गुरुके

सदृश उपदेशक, भ्राताके समान हितकारी और देवतावत् पूज्यवर हूँ ॥ ३८ ॥ इस लोक और परलोकको और दोनों लोकोंमें जानेवाले आत्माको और आत्माके पीछे जो यहां धन, पशु, गृह इत्यादिक और वस्तु हैं ॥ ३९ ॥ उन सबको त्याग कर और विश्वमुख मुझको जो अनन्यभावसे भजते हैं, उनको मैं संसार सागरसे पार उतार देता हूँ ॥ ४० ॥ भगवान् प्रधान पुरुषेश्वर और सब पदार्थोंकी आत्मा व अधिष्ठाता जो मैं हूँ, मेरी शरणागत विना आत्माको सब जीवोंका तीव्र भय कभी निवृत्त नहीं हो सकता ॥ ४१ ॥ मेरे भयसे पवन चलता है, सूर्य तपता है, इन्द्र जल वर्षाता है, अग्नि दाह करता है और मृत्यु संसारमें घूमती-फिरती है ॥ ४२ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्त भक्तियोगसे योगीजन अपनी कुशलताके लिये निर्भय हो मेरे चरणारविन्दका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ पुरुषोंके आनन्दका हेतु इस लोकमें इतना ही है कि तीव्र भक्तियोगसे स्थिर मन मुझमें अर्पित करें, जिससे सदा आनन्द हो-

सवैया—मंगल होत सबै सुख देत, सदा अणिमादिक मोद बढ़ावत।
पावन औरनहूको करे प्रिय, संतसभा धनिवादको छावत ॥
शुद्धहितै नितयुक्ति चितै कर, कर्मबिताके इतै नहिं आवत।
जो भजि हैं यदुनन्दनको, सोइ जन्मपदारथको फल पावत॥४४॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कपिलयोगोपाख्याने योगमाणिक्यमञ्जूषायां भक्तिलक्षणवर्णननाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

दोहा—छब्बिसवें अध्यायमें, पुरुष प्रकृतिको ज्ञान।
भिन्न भिन्न लक्षण सहित, कहीं पदार्थ बखान ॥

श्रीभगवान् बोले कि अब मैं तुमको तत्त्वोंके लक्षण पृथक्-पृथक् सुनाता हूँ जिनके जाननेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त होता है ॥१॥ पुरुषकी आत्माका दर्शन जो ज्ञानमोक्षके लिये है वह तुमसे वर्णन करता हूं वही ज्ञान हृदयकी ग्रंथिका भेदन करनेवाला है ॥ २ ॥ अनादि आत्मा पुरुष निर्गुण प्रकृतिसे परे पूजनीय तेजका आप ज्योतिःस्वरूप हैं, जिससे यह विश्व प्रकाशित है ॥३॥ यह प्रभु सूक्ष्म देवी गुणमयी, यदृच्छासे प्राप्त प्रकृतिकी लीला करके प्राप्त हुए। यहां यह सिद्धांत है "आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी है—आवरण शक्ति जो है वही जीवोंकी उपाधि अविद्या है और विक्षेप-शक्ति जो है, वह परमात्माकी माया है। और पुरुष भी जीव और ईश्वर दो प्रकारका है" जो प्रकृति अज्ञानसे संसारमें आता है वह तो जीव है और प्रकृतिको वशमें करके विश्वकी सृष्ट्यादि करता है वह ईश्वर है ॥४॥ ज्ञानकी ढकनेवाली मायाको, विचित्र अपने समान प्रजाको गुणोंसे रचती देख जीव ज्ञान—चेष्टासे मोहित हो अपने स्वरूपको भूल गया, अर्थात् "मैं देह हूँ" यह समझने लगा ॥५॥ इस प्रकार परमेश्वरके ध्यानसे और प्रकृतिके किये हुए गुणोंसे कर्म करनेपर भी यह जीव कहता है कि "मैं कर्म करता हूँ" कर्तृभावको आत्मामें मानता है ॥६॥ यद्यपि यह पुरुष साक्षीमात्र है, इस कारण अकर्ता है, तो भी इस अकर्ताको अपने आपमें कर्मत्व-धर्म्मको माननेसे ही कर्मोंका बन्धन होता है और जो किसीके अधीन नहीं है उसीको भोगोंमें पराधीनता होती है और जो सुखात्मक है, उसको जन्म अर्थात् मृत्यु प्रवाह होता है ॥७॥ कार्य, कारण, कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानो, सुख-दुःखके भोक्ता प्रकृतिसे परे पुरुष है ॥८॥ देवहूति बोली कि हे पुरुषोत्तम ! प्रकृति

पुरुषका लक्षण कहो और इनकी सत्-असत् आत्माका जो कारण है वह कहो ॥९॥ श्रीभगवान् बोले कि स्वतः विशेष अर्थात् भेद रहित होनेपर भी जो सर्व विशेषोंका आश्रय और प्रधानतत्त्व है उसे प्रकृति कहते हैं, क्या ब्रह्मको प्रकृति कहते हो ? नहीं, वह त्रिगुणा है और ब्रह्म गुणरहित है, तब क्या महतत्त्वादि हैं ? नहीं वे कार्य नहीं है, महत्तत्त्वादि कार्य हैं, क्या काल आदि हैं ? नहीं, वे कार्य-कारण-रूप है, वह कार्य-कारण रूप नहीं हैं तब क्या जीव प्रकृति है ? नहीं, वह नित्य है ॥१०॥ पांच-पांच, चार, और दश यह २४ तत्त्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक कहलाता है ॥११॥ पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश ये पांच महाभौतिक होते हैं, और गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, और शब्द ये पंच तन्मात्रा हैं ॥१२॥ कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जिह्वा, श्रोत्र, नासिका ये पंच ज्ञानेंद्रिय हैं, वाक, कर, चरण, शिश्न, गुदा ये पांच कर्मेंद्रिय हैं, मिल कर दश इंद्रियाँ हैं ॥१३॥ मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये आत्माके भीतर हैं, लक्षण रूप वृत्तियोंसे चार प्रकारका भेद लक्षित होता है ॥१४॥ सगुण रूपका इतना ही व्याख्यान है, यह संक्षेप मात्र मैंने तुमसे कहा, जो काल है वह भी मायाकी ही एक अवस्था पच्चीस तत्त्व होकर रहती है॥१५॥ जो पुरुष अहंकारवश हो मूढ़तासे कहते हैं कि, यह काल परमेश्वरका प्रभाव है, और देह हम हैं, इस प्रकार अज्ञानसे देहाभिमानी पुरुषको जगत्‌का भय बना रहता है ॥१६॥ हे माता ! जिसका कोई विशेष स्वरूप नहीं, तीनों गुणोंकी साम्यावस्था ही जिसका स्वरूप है, ऐसी प्रकृतिकी चेष्टारूप कालसे भगवान्‌का अनुमान होता है ॥१७॥ जो भगवान् अपनी मयासे जीव मात्रके भीतर प्राप्त हो रहे हैं, भीतर पुरुषसे और बाहर कालरूपसे रहते हैं ॥१८॥ दैवसे जिसके धर्म क्षोभको प्राप्त हुए, ऐसी अपनी योग मायामें परपुरुषने हिरण्यमय महत्तत्त्वको रचा ॥१९॥ अपने भीतर विश्वको जो धारण किया था उसको प्रकट किया और सर्वान्तः स्थिर जगत्‌का अंकुर महतत्वको अपने आप सुलानेवाले तुमको अपने तेजसे पी लिया ॥२०॥ जो सत्वगुण स्वच्छ शांत रागद्वेष रहित, भगवान्‌का उत्तम स्थान है, जिसको वासुदेव कहते हैं, महत्तत्त्वरूप चित्त है, पंडितलोग इसमें यह सिद्धांत करते हैं कि उपास्य वासुदेव हैं, क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता हैं इसी प्रकार उपास्य व अहंकारमें संकर्षण उपास्य हैं, रुद्र अधिष्ठाता है, मनमें अनिरुद्ध उपास्य हैं, चन्द्रमा अधिष्ठाता है, बुद्धिमें प्रद्युम्न उपास्य हैं ब्रह्मा अधिष्ठाता है॥२१॥ पृथ्वीका संसर्ग होनेसे प्रथम जैसे जलकी स्थिति स्वच्छ और शांत होती है, वैसे ही दूसरे विकारके प्राप्त होनेसे प्रथम स्वच्छता अर्थात् भगवान्‌के विभवका ग्रहण करना लयविक्षेप शून्य होना, शांत होना इन वृत्तियों द्वारा महतत्त्वका लक्षण कहा जाता है ॥२२॥ भगवान्‌के वीर्यसे जिनकी उत्पत्ति ऐसा महतत्त्व विकारको प्राप्त हुआ, तब क्रिया शक्ति अहंकार त्रिविध उत्पन्न हुआ ॥२३॥ वैकारिक, तैजस, तामस, जिससे हो, वह मन, इंद्रियाँ, पंचमहाभूत महत्तत्त्व इनसे प्रकट होते हैं ॥२४॥ अहंकारके उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं; जिनके सहस्र शीर्ष हैं, उनको साक्षात् अनन्त कहते हैं, वह संकीर्ण पुरुष हैं, भूत इंद्रिय मनोमय हैं॥२५॥ कर्तृत्व, करणत्व, कार्यत्व, शांतत्व, घोरत्व, विमूहतत्त्व में अहंकारका लक्षण है ॥ २६ ॥ जब सात्त्विक अहंकार विकारको प्राप्त होता है तब मनस्तत्व प्रकट होता है और संकल्प-विकल्पसे जो कामना उत्पन्न होती है वह मनका लक्षण है ॥२७॥ सब इंद्रियोंके अधीश्वर, शरत्कालके कमल समान श्याम स्वरूपका, योगियोंसे सुन्दर आराधन करनेके योग्य उनको अनिरुद्ध कहते हैं ॥२८॥ हे जननि ! तैजस अहंकार तत्त्व जब विकारको प्राप्त हुआ; तब बुद्धि तत्त्व उत्पन्न

हुआ;इसमें द्रव्यका स्फुरण ज्ञान इन्द्रियोंका अनुग्रह होता है ॥२९॥ संशय,मिथ्याज्ञान,निश्चय, स्मृति, निद्रा, ये बुद्धिके लक्षण हैं, सब वृत्तियोंसे पृथक् ॥३०॥ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय ये दश राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई कहते हैं, क्रियाशक्ति प्राणकी है और विज्ञानशक्ति बुद्धिकी है, ये दोनों राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं, इसलिये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी इसीसे उत्पन्न हुए हैं ॥३१॥ भगवान्के वीर्यसे प्रेरित तामस अहंकार जब विकारको प्राप्त हुआ, उससे शब्द मात्र प्रकट हुआ और शब्दसे नभ उत्पन्न हुआ और शब्दकी उपलब्धि करनेवाली श्रोत्र-इन्द्रिय, राजस और अहंकारसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ शब्दसे सब पदार्थोंके नाम होते हैं, जो मनुष्यकी दृष्टिमें नहीं आता तो भी वह किसी पदार्थको देखकर उसके चिह्नमात्रका ज्ञान होना, उसकी मात्रा जाननी, यह कवियोंने आकाशके लक्षण कहा है। शब्दके अर्थको अर्थात् जिससे सब पदार्थोंके नाम रक्खे जाते हैं जानना और देखनेवालेके चिह्नमात्रका ज्ञान न होना और उसकी मात्राको पहिचानना ये बुद्धिमानोंने आकाशके लक्षण कहे हैं ॥३३॥ प्राणिमात्रमें अवकाश (छिद्र) रखना, और बाहर-भीतरके व्यवहारको आश्रय देना, प्राणइंद्रिय आत्मामें स्थान रखना,अकाशकी वृत्तिका लक्षण है ॥ ३४ ॥ शब्दतन्मात्रावाला आकाश जब कालकी गतिसे क्षुब्ध हुआ, तब उससे स्पर्शतन्मात्रा प्रकट हुई, उससे वायु उत्पन्न हुई, त्वगिन्द्रियसे स्पर्शका ज्ञान होता है ॥३५॥ कोमलता, कठिनता, शीतलता और उष्णता, ये स्पर्शरूपवाले पवनकी तन्मात्रा हैं, यही स्पर्शका लक्षण है ॥३६॥ वृक्षादिकोंके पत्तोंको चलायमान करना, शब्दका ले जाना, तृणादिकोंको मिलाना,प्राप्त कराना, सब इन्द्रियोंको कर्म द्वारा बल देना, ये वायुके लक्षण कहे हैं ॥ ३७ ॥ जब स्पर्शवाली वायु दैवसे प्रेरित हुई तब उससे रूप प्रकट हुआ, उससे तेज हुआ, उससे ग्रहण करनेवाली चक्षुइन्द्रिय हुई ॥ ३८ ॥ हे माता ! रूप पदार्थोंको आकार देता है और द्रव्यमें गौणरीतिसे प्रतीत होना और पदार्थोंकी रचनाके पीछे प्रतीत होना, यह भी रूपमात्राकी वृत्ति है ॥ ३९ ॥ प्रकाश, पाचन, पान, भोजन, शीत, मर्दन, भूख, प्यास, सुखाना, ये तेजकी प्रवृत्तियाँ हैं ॥ ४० ॥ जब दैवेच्छासे रूपगुणवाला तेज विकारी हुआ, तब उससे रसतन्मात्रा हुई, उससे जल हुआ; उसको ग्रहण करनेवाली जीभ हुई ॥ ४१ ॥ यह एक रस भौतिक विकारसे कषैला, मधुर, चर्परा; कड़वा और खट्टा आदि अनेक भेदोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ गीलापन, गोला बांधना, तृप्ति करना, जीवन, प्यास मिटाना, नर्म करना, ताप दूर करना, कूपादिसे जल निकालने पर भी अधिक होना यह जलकी वृत्ति है ॥४३॥ रसगुणवाला जल, जब दैवसे प्रेरित हो विकारको प्राप्त हुआ तब उसमें गन्धतन्मात्रा हुई, उससे पृथ्वी हुई, नासिकासे गंधग्रहण होती है ॥ ४४ ॥ यह एक ही गंध संसर्गवाले पदार्थोंकी विषमतासे मिली, गंध और सुगंध,शांत व उग्र आदि अनेक भेदोंवाली होती है ॥ ४५ ॥ प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मका भाव करना, स्थान देना, धारण करना,आकाशादिकोंका मठाकाशादिरूपसे भिन्न होना और सब जीवन मात्रके गुणोंका भेद करना ये पृथ्वीकी वृत्तिके लक्षण हैं ॥ ४६ ॥ आकाशका मुख्य गुण शब्दरूपविषयवाली श्रोत्रेन्द्रिय कहलाती है और वायुके मुख्यगुणयुक्त स्पर्शगुणवाली त्वगिन्द्रिय कहलाती है ॥४७॥ तेजके मुख्यगुणरूपको विषयवाली चक्षुइन्द्रिय है और जलके मुख्यगुणरसको विषयवाली जिह्वा इंद्रिय है, पृथ्वीका मुख्यगुण गन्धको विषय करनेवाली घ्राणेन्द्रिय कहलाती है ॥ ४८ ॥ इन पूर्वके पदार्थोंका पिछले पदार्थोंमें सम्बन्ध होनेसे

अपने कारण आकाशादि पदार्थोंका धर्म शब्दादिकार्यरूप वायुआदि पदार्थोंमें अपने धर्म स्पर्शादिके संग दीखता है, इसीसे पृथ्वीमें चारों कारणोंके धर्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस और अपना धर्म गंध यह देखनेमें आते हैं ॥ ४९ ॥ जब यह महत्तत्त्वादि सातों पदार्थ परस्पर न मिले, तब इनमें और तत्त्वोंमें भी काल-कर्म गुणोंके साथ जगदादि ईश्वरने प्रवेश किया ॥ ५० ॥ फिर परमेश्वरके प्रवेश करनेसे जब यह क्षोभको प्राप्त हुए, तब अचेतन अंड प्रकट हुआ, उससे विराट् पुरुष हुआ ॥ ५१ ॥ चौदह भुवनवाला यह भगवान्‌का स्वरूप भूत पृथ्वीरूप ब्रह्माण्ड बाहरकी ओर प्रधानसे घिरे हुए; जलादि सात आवरण जो क्रमसे एक-एकसे दशगुणे बड़े हैं, उनसे घिरे हैं ॥ ५२ ॥ उदासीनताको त्याग कर भगवान् महादेवने जलमें पड़े हुए हिरण्यमय अंडकोशमें प्रवेश कर बहुत प्रकारसे छिद्र कर दिये ॥ ५३ ॥ मुख प्रथम प्रकट हुआ, उससे वाणी हुई, उसके देवता वह्नि हुए, फिर नाक उत्पन्न हुई, जो प्राणोंको चलानेवाली हुई, इससे घ्राण इन्द्रिय हुई ॥ ५४ ॥ घ्राणसे वायु उत्पन्न हुई, इन दोनोंसे चक्षु हुए, उससे सूर्य उत्पन्न हुआ, फिर कान प्रकट हुए, उसमें श्रोत्र इंद्रिय हुई, उनसे दशों दिशा प्रकट हुई ॥ ५५ ॥ फिर विराट्‌को त्वचा निकली उसमें रोम, मूछ, केश आदि हुए, उनसे सब औषधियां उत्पन्न हुई फिर शिश्नेंद्रिय हुई ॥ ५६ ॥ उसमें जलरूप वीर्य उत्पन्न हुआ, फिर गुदा उत्पन्न हुई, गुदामें अपान रहता है, अपानवायुसे लोकोंकी भय देनेवाली मृत्यु प्रकटी ॥५७॥ फिर विराट्‌के दोनों हाथ उत्पन्न हुए, उनमें बल हुआ और इन्द्रदेवता प्रकट हुए, फिर विराट्‌के पांव निकले, उनमें गति हुई और हरिदेवता प्रकट हुए ॥५८॥ फिर नाड़ियां निकलीं; उनमें रुधिर भरा और नदियां प्रकटीं, फिर उदर उत्पन्न हुआ ॥ ५९ ॥ उसमें भूख-प्यास हुई, सागर देवता हुआ, फिर विराट्‌के हृदय उत्पन्न हुआ, उसमें मन उत्पन्न हुआ ॥६०॥ मनमें चन्द्रमा प्रकट हुआ फिर सब वाणियोंके पति बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ फिर हृदयमें अहंकार उत्पन्न हुआ; उसमें क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता प्रकट हुए, फिर विराट्‌के हृदयमें चित्त इंद्रिय उत्पन्न हुआ और चित्तमें क्षेत्रज प्रकट हुआ ॥ ६१ ॥ यह सब देवता उत्पन्न होकर उस विराट्‌के देहमें घुसे, परन्तु उसको उठा न सके, फिर क्रमसे आकाशादिकोंने उठानेको उसमें प्रवेश किया ॥ ६२ ॥ वाणीके मार्गसे अग्निने मुखमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा, घ्राणइंद्रिय सहित नाकमें पवन घुसी तो भी विराट् न उठा ॥ ६३ ॥ चक्षु इंद्रिय सहित भास्करने नेत्रोंमें प्रकट किया तो भी विराट् न उठा, श्रोत्रके संग दिशाएँ कानमें घुसीं तो भी विराट् न उठा ॥ ६४ ॥ फिर रोमसहित सब ओषधियाँ त्वचामें घुसीं तो भी विराट् न उठा, वीर्यसहित जलने शिश्नमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा ॥ ६५ ॥ अपान सहित मृत्यु गुदामें आयी तो भी विराट् न उठा, इन्द्रने बल सहित हाथोंमें प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा ॥ ६६ ॥ गति सहित विष्णुने चरणोंमें प्रवेश किया तो भी विराट् सावधान न हुए; नदियाँ रुधिर-

१. शंका–हे मुनियो ! मैं ईश्वरवचन जीव जलमें जो विराट्‌रूप अंड रहा उसको उठानेके लिये सब इंद्रियाँ अपने-अपने देवताओं समेत अपना यत्न करने लगीं परंतु वहांसे नहीं उठा, वह विराट् कौन है ?

उत्तर–जिस विराट्‌रूप परमात्मासे यह तीन लोक चौदह भुवन उत्पन्न होते हैं, वह विराट् उसको नहीं जानना चाहिये, यह जो विराट् कहे चौरासी लाख योनियोंकी देहको विराट् मुनियोंने कहा है जो देह जीवसे चैतन्य हो रही है, जीवसे ही नष्ट होती हैं, सब इंद्रियाँ अथवा देहमें ही रहती हैं, परंतु जीव विना देह नष्ट होती है, ऐसी देह विराट्‌रूप विराट् जीवको पाकर चैतन्य हो गयी ।

सहित नाड़ियोंमें घुसीं तो भी विराट् न जागा ॥ ६७ ॥ क्षुधा-तृषा सहित समुद्रने उदरमें प्रवेश किया तो भी विराट् न चेता, मन सहित हृदयमें चन्द्रमाने प्रवेश किया तो भी विराट् न उठा ॥ ६८ ॥ फिर बुद्धिसहित ब्रह्माजी हृदयमें बैठे तो भी विराट् न उठा, अभिमान सहित रुद्रने हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् न उठा ॥ ६९ ॥ चित्त सहित चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वरने जब हृदयमें प्रवेश किया, उसी समय विराट् पुरुष जलसे उठ बैठा ॥ ७० ॥ जैसे सोये हुए पुरुषको प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि जिनके विना कोई अपने पराक्रमसे उठा नहीं सकता इसी प्रकार इस विराट्पुरुषको चेतन क्षेत्रज्ञके विंना कोई नहीं उठा सका ॥७१॥ सब जीवके प्रति इन ईश्वरके योगसे उत्पन्न जो बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है, उससे विरक्ति और विरक्तिसे एकान्तमें बैठकर ज्ञान उत्पन्न करे, फिर पुरुषको चाहिये कि देहमें आत्माका विचार करे, जब आत्माका विचार निश्चय हो जाय, तब नित्य उसीका ध्यान और चिन्तन किया करे और जो आत्माका चिन्तन नहीं करते उनको ऐसा समझना चाहिये ।

सवैया-गेह तज्यो अरु नेह तज्यो पुनि, खेह लगायके देह सँवारी ।
मेघ सहे शिर शीत सहे तनु, धूप सहे पंचागिनि बारीः॥
भूख सही रहि रूख तरे पर, सुन्दरदास सहे दुख भारी ।
डासन छोड़के आसन ऊपर, आसन मारो पै आशन मारी ॥७२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीय स्कन्धे चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा-सत्ताइस अध्यायमें, साधनयोग विचार ।
प्रकृतिपुरुषके ज्ञानसे, वर्णों मोक्ष प्रकार ॥

भगवान् कपिलदेवजी बोले कि यद्यपि पुरुष प्रकृतिमें स्थित है तो भी प्रकृतिके गुणोंके किये हुए दुःखसुखादि गुणोंमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि पुरुष निर्विकारी, अकर्ता और निर्गुण होनेसे जलमें सूर्यकी परछांईकी नाईं लिप्त नहीं होता ॥१॥ वही पुरुष जब गुणोंमें सब ओरसे आसक्त हो जाता है, तब कहता है कि देह मैं हूँ, इस प्रकार अहंकारसे विमूढ़ बनकर फिर कहता है कि कर्ता मैं हूँ इस प्रकार सदा अभिमानी बना रहता है ॥२॥ इसी अभिमानसे बेवश होकर और सुख न पाकर सत् असत्मिश्रित योनियोंमें प्रकृतिके सङ्गके कर्म और दोषोंसे संसारके चक्रमें घूमता रहता है, कभी जन्म कभी मरण ॥ ३ ॥ विचारकी रीतिसे देखिये तो संसार कोई वस्तु ही नहीं और विषयवासना करनेवालोंसे संसार छूटता ही नहीं । स्वप्न सब प्रकारसे झूठा है, तो भी उस स्वप्न देखनेवाले मनुष्यके वह अनर्थ उस समय नष्ट नहीं होते, अनर्थका आगम भोगना ही पड़ता है यहां एक दृष्टांत है "कि एक लकड़ी बेचनेवाला

---

१. शंका–जीव निश्चयकरके अभिमानी हो जाता है । सो भगवान्‌की इच्छासे या अपनी इच्छासे भ्रष्ट हो जाता है यह हमारे मनमें बड़ी भारी शंका है ?

उत्तर–निरंजन जीव हैं सो न तो अपनी इच्छासे अभिमानी होता है और न भगवान्‌की इच्छासे अभिमानी होता है, खोटी इंद्रियोंकी नित्य संगति करता है उसी कुसंगतिसे मूर्ख होकर अभिमानी हो जाता है, जैसे वारुणिके पात्रमें गंगाजल रक्खा जाय तो गंगाजल मदिरा नहीं होगा, जल ही रहेगा, परंतु मनुष्य मदिरा जानकर उसको छुयेंगे नहीं तथा गंगाजलके बरतनमें मदिरा रख दिया जायगा तो मदिरा गंगाजल नहीं होगा, मदिरा ही रहेगी परंतु मनुष्य यही जानेंगे कि इस पात्रमें गंगाजल है, इसी प्रकार गंगाजल है, इसी प्रकार गंगाजलके समान जीव मदिराके पात्र सरीखे खोटी इंद्रियोंकी संगतिसे अभिमानी हो जाता है ।

लकड़ियोंका बोझा शिरपर धरे कहींसे आता था। गर्मीका समय था। एक इमलीके पेड़के नीचे कुएँके समीप ठंढी छाया देखकर बैठ गया, उसी समय एक सिपाही घोड़े पर सवार, घोड़ेको कुदाता-नचाता-दौड़ाता चला आता था। सवारको देख लकड़हारा मनमें कहने लगा कि सब अवस्था लकड़ी ही बेचते बीती और खोपड़ीमें गढ़े पड़ गये, जो परमेश्वर मुझको भी घोड़ा देता तो मैं भी इसी प्रकार सवार होकर नचाता-कुदाता, इसी मनोरथमें शरीरको पवन जो लगा तो नींद आ गयी, तो स्वप्नमें क्या देखता है कि उस बोझका घोड़ा बनाकर, स्वप्नमें सवार होकर कुदानेको ज्यों झटका दिया त्यों ही झट कुएमें जा पड़ा। ज्यों-त्यों करके पथिकोंने उसको निकाला तो वह बोला कि आज मैंने अपने मनमें घोड़ेपर चढ़नेका संकल्प किया था तब यह कुदशा हुई और जो नित्य घोड़े पर चढ़ते होंगे, न जानिये उनकी क्या गति होती होगी? कदाचित् वह तो घड़ी-घड़ी नदी और कूपोंमें गिरते होंगे इसलिये मैं अपनी लकड़ी ही बेचनेमें प्रसन्न हूँ, मुझको किसी घोड़े ओड़ेसे प्रयोजन नहीं" अनर्थ आगमन होनेसे उसको उसका फल मिला, इसी प्रकार विषयोंके ध्यान करनेसे प्राणी संसारके बन्धनसे नहीं छूटता ॥ ४ ॥ इसलिये कुकर्मियोंके मार्गमें आसक्त चित्तको सहज-सहजमें तीव्र भक्तियोग विरक्तसे अपने वशमें करे ॥ ५ ॥ श्रद्धासहित योगमार्गादिकोंसे अभ्यास करता रहे और मुझसे निष्कपट प्रीति रखे, मेरी कथा सुने ॥ ६ ॥ सब जीवमात्रमें सम भाव वर्त्ते, किसीसे शत्रुता न करे, कुसङ्गका त्याग करे, ब्रह्मचर्य्य धारण करे, मौनव्रत रहे। अपना धर्म बलवान् समझ उसमें स्थिर रहे ॥ ७ ॥ जो भगवत् इच्छासे मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहे, लघु भोजन करे, मुनियोंकी वृत्ति धारण करे,एकान्तमें वास करे, शान्त वृत्तिमें सबसे मित्रता रक्खे, सबपर दयालु हो आत्मज्ञानी रहे ॥ ८ ॥ कुटुम्बसहित देहमें आसक्त न हो, ज्ञानसे तत्त्वका दर्शन करे, प्रकृतिपुरुषको देखे ॥९॥ प्रकृतिपुरुषका जब निश्चय विवेक हो जाता है तब बुद्धिकी तीनों अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्ति होती है उस समय सब अमङ्गलोंसे पृथक् रहे। बुद्धिसे परमात्माको प्राप्त हो जैसे चक्षु इन्द्रिय द्वारा सूर्यको देखे, उसी प्रकार अपने अहंकारावच्छिन्न आत्माको जानकर आत्माका दर्शन करे ॥१०॥ इस प्रकार अभ्यास करते-करते परमात्मा जो उपाधिरहित मिथ्याभूत अहंकारमें सद्रूपसे आभासमान मायाका अधिष्ठान है उस ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो सद्बन्धु, असतके चक्षु, सर्वत्र परिपूर्ण हैं, उनके अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं है॥११॥ जैसे आकाशके भास्करका जल स्थित प्रकाश स्थलवासी पुरुषको दीखे, उसी भांति अपने प्रकाशसे सूर्य जलस्थित प्रतिबिम्बसे स्वर्गस्थ सूर्य दीखता है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार तीन वृत्तिवाला अहंकार पंचभूत इंद्रियाँ मनोमय अपने प्रकाशसे इस सदा कालमें होनेवाले आभाससे सत्यदृष्टि ईश्वर लक्षित होता है ॥ १३ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें निद्राके कारण पंचमहाभूत, उनके शब्दादिक सूक्ष्मरूप मन इन्द्रियाँ बुद्ध्यादिक इस संसारमें निद्रासे असत्में लीन हो जाते हैं; उस समय आत्मा विनिद्र होकर सब अहंकारको त्याग देता है ॥ १४ ॥ तब आत्मा नष्ट तो नहीं होता है, परन्तु झूठे ही अपनेको नष्टवत् मानता है, जब सब अहंकार नष्ट हो जाता है, तब नष्टचित्तवाला जैसे आतुर होता है, वैसे ही आतुर होता है ॥ १५ ॥ यह जीव ऐसे विचारकर आत्माको प्राप्त हो जाता है, अहंकारसहित द्रव्यकी जो अवस्था है वह मेरी ही कृपा है ॥१६॥ देवहूति बोली कि, हे ब्रह्मन्! हे जनार्दन! प्रकृति कभी पुरुषको नहीं छोड़ती, क्योंकि पुरुष प्रकृतिके आश्रय

है और प्रकृति पुरुषके आश्रय है, इस कारण इनका विलग होना बन नहीं सकता ॥ १७ ॥ जैसे गन्ध कभी पृथ्वीसे पृथक् नहीं होती, गंधमें पृथ्वी, पृथ्वीमें गंध, जलमें रस, रसमें जल, इसी प्रकार परमेश्वरमें बुद्धि है, प्रकृति और पुरुषका अलग होना कठिन है ॥ १८ ॥ अकर्ता पुरुषको और जिसके आश्रयसे कर्मके बन्धनमें और प्रकृति सद्गुणोंमें यह पुरुष फँसा हुआ है, उसकी कैवल्यमोक्ष कैसे हो सकती है ? वह कहिये ॥ १९ ॥ कभी तत्त्वके विचारनेसे यह महातीव्र भय दूर हो जाता है, परन्तु उसका निमित्त नष्ट नहीं होता; वह फिर पीछे यह शङ्का खड़ी हो जाती है ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे जननि ! कोई निमित्त हो ऐसे निमित्तके धर्म करनेसे, निर्मल करनेसे, बहुत दिनके शास्त्र सुननेसे, मुझमें तीव्र दृढ़भक्ति करनेसे ॥ २१ ॥ तत्त्वदर्शन होता है; ऐसे ज्ञानसे, बलवान् वैराग्यसे, तप सहित योगाभ्यासरासे, तीव्र अपनी समाधिसे ॥ २२ ॥ इस पुरुषकी माया दिनरात जलकर शनैः शनैः छिप जाती है, जैसे अग्नि काष्ठको जलाकर उसीमें लीन हो जाती है, जैसे अग्निकी आदिकारणभूत लकड़ी अपने आपमेंसे उत्पन्न हो अग्निसे आप जलकर भस्म हो जाती है, इसी प्रकार साधनदशामें अविद्याके किये हुए देहादिक अभिमानसे, उत्पन्न ज्ञानादिसाधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥ भोग भोगकर फिर अपने हृदयमें उसका दोष विचारकर उसको त्याग दिया, वह प्रकृति अपनी महिमा स्थित पुरुष ईश्वरका कभी कुछ अशुभ नहीं कर सकती ॥ २४ ॥ जैसे सोते हुए पुरुषको स्वप्न दिखाई देता है, जबतक वह न जागे तबतक वह स्वप्न उस मनुष्यको अनेक दुःखोंका देनेवाला है और वही स्वप्न जागनेसे जब उसको ज्ञानका संस्कार हुआ तो वह स्वप्न कुछ भी कष्टकारी नहीं हो सकता ॥ २५ ॥ इसी प्रकार तत्त्वके जाननेवाले और मुझमें मन लगानेवाले आत्माको प्रकृति कभी अपने वशमें नहीं कर सकती ॥ २६ ॥ इस प्रकार अनेक जन्मके साधन करनेसे ब्रह्मलोक तक सब पदार्थोंके त्यागनेसे मेरे पूर्ण भक्त मेरी अनन्त भक्तिसे जब मेरे यथार्थ रूपका उसको ज्ञान हो जाता है, तब अध्यात्मज्ञानमें उसकी प्रीति होती है, तब आत्मज्ञानसे मुनि होता है ॥ २७ ॥ मेरा भक्त मेरी अतीव कृपासे मोक्षका भागी होता है, मोक्षदायक मेरा स्थान कैवल्य जिसका नाम मेरे आश्रय है उस वैकुण्ठको ॥ २८ ॥ इस संसारमें धीर अनायास प्राप्त होते हैं, अपनी दृष्टिसे सब संशय नष्ट हो जाता है, इस शरीरको त्यागकर वहां जाता है, जहांके गये योगीजन फिर लौटकर संसारमें नहीं आते ॥ २९ ॥ हे माता ! जब योगीजनोंका योग बढ़ता है, तब मायाकी वृद्धि होनेसे अणिमादिक सिद्धियां बढ़ती हैं उनके बढ़नेका कुछ और प्रयोजन नहीं है, केवल वे विघ्न करनेके लिये आती हैं, जो उस समय भक्तका चित्त उनमें आसक्त न हुआ तो उसको मेरी अनन्य अत्यन्त सुखदायिनी व अनपायिनी गति प्राप्त होती है जहां मृत्युका कुछ भय नहीं इस प्रकार जब माने—

कवित्त—कामी है न यती है न सूम है न सती है न, राजा है न रंक है न तन है न मन है । सोवै है न जागै है न पीछे है न आगे है न, गृही है न त्यागी है न घर है न वन है ॥ स्थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न,

बँधो है न खुलो है न स्वामी है न जन है। ऐसो जब होवै तब मेरी गति जाने सब, सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञानशुद्धघन है।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे मोक्षरीति वर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा—वर्णौं अट्ठाईसमें, योगाष्टांग विधान।
निरुपाधी वर्णन करूँ,हरिस्वरूपका ध्यान ॥

भगवान् बोले कि, हे नृपात्मजे! अब बीज सहित योगका लक्षण कहता हूं कि जिस विधिके अनुष्ठानसे प्रसन्न होकर मन सत्पथमें लगता है॥१॥अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करे, पापसे अलग रहे,जो अपने भाग्यके अनुसार प्राप्त हो उसीमें सन्तोष करे,आत्मज्ञानी पुरुषोंके चरणारविंदोंका पूजन करे ॥ २ ॥ लौकिक सम्बन्धी धर्मसे निवृत्त रहे, मोक्षधर्ममें प्रीति करे; परिमित और महाशुद्ध भोजन करे। परिमित उसको कहते हैं कि, पेटके दो भाग तो अन्नसे भरे और एकमें जल, चौथा वायुके आने जानेको खाली रखे। एकान्त स्थानमें वास करे, जहां किसी प्रकारकी बाधा न हो ॥३॥ जीव हत्या न करे, सत्य बोले,चोरी न करे, जितनेमें अपना प्रयोजन सिद्ध हो, उतना ही संचय करे, अधिक न करे, ब्रह्मचर्य धारण करे,तप करे, शौचसे रहे,वेदका पाठ करे,श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदके चरणारविंदकी वन्दना करे॥४॥ वृथा न बोले, मौन धारण करे, आसनको जीतनेका अभ्यास करे, स्थिर रहे, शनैः-शनैः प्राणको जीते मनको और इंद्रियोंको विषयसे खींचकर हृदयमें रखे ॥५॥ सब प्राणोंके स्थान जो मूलाधारादिक हैं, उनमेंसे एक देशमें मन सहित प्राणको धारण करे और त्रिलोकीनाथ भागवान्‌की लीलाका ध्यान करे और मनको आत्माकार करे ॥६॥ इनसे और इनके अधिक उपायोंसे और साधनोंसे मनको जीते और असत्मार्गोंमें जो मन लगा है उसको धीरे-धीरे बुद्धिसे जीते और प्राणको जीते, निरालस्य होकर रहे ॥ ७ ॥ पवित्रदेशमें रहे, विशेष करके प्रथम तो आसनको जीते, फिर कुशापर कृष्णचर्म,उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर मृग मांगलिक आसन मारकर बैठे, शरीरको सीधा रखकर प्राणको वश करनेका अभ्यास करे यह स्वस्तिकासन है ॥८॥ पूरक, कुम्भक, रेचकसे प्राणके मार्गको साधे और प्राणायामोंके उलटे क्रमसे चित्तका शोधन करे, जिससे यह चित्त फिर चञ्चल न हो ऐसा स्थिर करे ॥ ९ ॥ जिन्होंने श्वास जीते ऐसे योगियोंका मन थोड़े ही दिनोंमें शुद्ध हो जाता है जैसे पवन अग्निके धर्मसे तापित सुवर्ण मलको त्यागकर निर्मल हो जाता है—

दोहा—जैसे कनक तपाय कै, अमल करै मतिमान।
तिमि साधनसे होत है, मानस विमल अमान ॥ १० ॥

प्राणायामोंसे तो वात, पित्त, कफके मलको और धारणासे सब पापको दूर करे, प्रत्या-

---

शंका—कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि हे माता ! बीजसहित योगका लक्षण में तुमसे कहूंगा ऐसा बचन अपनी मातासे कहा। परंतु योगका बीजसहित लक्षण क्यों नहीं कहा ? सो योगके बीजका लक्षण क्या है ?

उत्तर—सज्जनोंकी संगतिमें प्रेम करना और दुष्ट जनोंकी संगतिमें प्रेम न करना ऐसा विचारकर नेत्रोंसे नित्य भगवान्‌में स्नेह देखना और दुष्टकर्मको बुरा देखना यही योगके बीजका लक्षण है और कपिलदेवजी पहलेसे जानते थे कि माता ज्ञानमें कच्ची है इसलिये योगके बीजका लक्षण कहनेको प्रस्तुत ये पीछे संगति कही, परंतु फिर भलीभांति जान लिया कि हमारी माता ज्ञानमें बड़ी पक्की है इसलिये योगके बीजके लक्षण कहनेको क्या आवश्यकता है ?

हारसे विषयोंको दूर करे और ध्यानसे रागादिकको दूर करे ॥११॥ जब योगके प्रभावसे मन शुद्ध हो जाय तब सावधानतासे भगवत्के स्वरूपका ध्यान करे और अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहे ॥१२॥ वारिजसमान जिनका प्रसन्न वदन, अरुणकमलवत् नेत्र, नीलकमल दल सम श्यामवर्ण, शंख, चक्र, गदा धारण कर रहे हैं, यह ध्यान करे ॥१३॥ सुन्दरसरसिजकेशरवत् पीताम्बर पहिने, श्रीवत्स वक्षस्थलमें देदीप्यमान् है, कौस्तुभमणि मुक्तामय माला कंठमें विराजमान् है ॥ १४ ॥ मत्तभ्रमरोंकी ध्वनि जिसपर हो रही ऐसी मनोमोहिनी सोहनी वनमाला धारण किये हैं और अमूल्य हार, कंकण, किरीट, भुजबंद, नूपुर, जिनके अंग और चरणारविन्दोंमें दीप्यमान है ॥ १५ ॥ क्षुद्रघंटिकाओंसे शोभित कटिपश्चात् भाग है, भक्तोंके हृदयकमलमें जिनका आसन है, दर्शन करनेयोग्योंमें दर्शन करने योग्य, शान्तचित्त, मन और नयनोंको आनन्द बढ़ानेवाला जिनका मनोहर स्वरूप है॥१६॥ अत्यन्त शोभायमान जिनका दर्शन है, सब लोकवासी जिनको नमस्कार और दंडवत् करते हैं; जिनकी किशोर अवस्था है, अपने अनुचरोंपर अनुग्रह करनेमें नित्यप्रति कुशल हैं ॥१७॥ तीर्थरूप यश जिनका कीर्तन करने योग्य है; पुण्यश्लोकोंमें यश करनेवाले भगवान्के अंगोंका ध्यान करे। अपनी नासाके अग्रभागको देखता रहे, जबतक कि मन उस बाँके-बिहारीकी मूर्तिमें लय न हो जाय॥१८॥ दर्शनके योग्य जिनकी अलौकिक लीला है, ऐसे घट-घट वासी, वृन्दावननिवासी; सुखरासी मदनमोहनकी चाहे विराजमान् मूर्तिका, चाहे चलते-फिरते स्वरूपका, चाहे शयन करती हुई श्यामसुन्दरकी मूर्तिका, चाहे खड़ी हुई प्रतिमाका शुद्ध चित्तके भावसे ध्यान करे; उनकी अद्भुत लीला देखने ही योग्य है ॥१९॥ मुनिलोग उनको चित्तमें स्थान देकर सब अवयव सुन्दरस्थित ईश्वरका दर्शन कर भगवान्के एक अंगमें अपने मनको लगायें ॥२०॥ पहले तो वज्र, अंकुश, ध्वज, पद्म इन चिह्नोंसे युक्त उठे हुए अरुणशोभित नखमंडलकी किरणोंसे ध्यान करनेवाले भगवान्के चरणकमलका ध्यान करे ॥२१॥ जिनके चरणप्रक्षालनके गंगाजलतीर्थके मस्तकपर धारण करनेसे मङ्गलमय भूतनाथ और अधिक मङ्गलरूप हो गये; इसी प्रकार अपने चरणचिह्नरूप वज्रसे ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वत चूर्ण करनेवाले भगवान्के पदाम्बुजका बहुत कालतक ध्यान करे ॥२२॥ सब जगत्का विधान करनेवाले विधाता ब्रह्माकी माता, साक्षात् लक्ष्मी, सब देवता सदा प्रेम प्रीति सहित दिनरात जिसके चरणारविन्दकी वन्दना करते हैं, कमलसे जिसके नेत्र, वह महालक्ष्मी अजन्मा विभुके अपने द्वारा लालित जानुद्वय हृदयमें करपल्लवकी कांतिसे लालित्यताके साथ सेवन करती है, उन भवभंजन निरंजन भगवान्के दोनों घुटनोंपर्यन्त युगल जंघाओंका हृदयमें ध्यान करे ॥ २३ ॥ फिर गरुड़जीकी भुजाओंमें शोभित महापराक्रमी अलसीके कुसुमसमान दोनों ऊरुवोंका चित्तमें ध्यान करे। फिर अति लम्बा पीताम्बर झमझमाता हुआ उसमें वर्तमान कांचीकलापका मिलना ऐसे भगवान्के शोभायमान नितम्बका ध्यान करे ॥ २४ ॥ फिर चतुर्दश भुवनोंके कोष जिनके हृदयमें विराजमान, जहां आत्मयोनि ब्रह्माका स्थान है, सब लोकात्मक कमल जिसमें उत्पन्न हुआ था उस नाभिसरोवरका ध्यान करें; फिर उठे हुए मरकतमणिके श्रेष्ठ विशदहारोंकी चटकीली किरणोंसे गौरवर्ण भगवान्के दोनों स्तनोंका ध्यान करे जिनकी कैसी सुन्दर शोभा है—

चौ०—छाजत छटा छहरि तहँ द्वारा। मनहु नीलगिरि सुरसरि धारा ॥२५॥

सर्वश्रेष्ठा महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीका वासस्थान, महात्माओंके मन और नेत्रोंका परम सुखदायक वक्षस्थलका मनमें ध्यान करे। सब लोक जिसको नमस्कार करते हैं, उन प्रभुके कंठमें जो कौस्तुभमणि भूषण भूषित है, उसकी शोभाका चित्तमें ध्यान करे ॥ २६ ॥ फिर जिन बाहुओंके कंगन, मंदराचलगिरिके घूमनेसे घिसकर जो उज्ज्वल हो गये हैं, जिनमें लोकपाल देवता वास करते हैं,उन भुजाओंका ध्यान करे,फिर जिसका अनंततेज सहा न जाय, ऐसे हजार धारवाले सुदर्शनका चिंतन करे,फिर जिन भगवान्‌के हस्तकमलमें राजहंसवत् शंख विराजमान है, उसका ध्यान करे ॥२७॥ फिर वासुदेव भगवान्‌की प्यारी कौमोदकी गदा जो कि शत्रुवीरोंके रक्तकी कीचमें लिपटी हुई है उसका स्मरण करे। भ्रमरोंके झुंडके झुंड जिसपर गुंजार रहे हैं उस भगवान्‌की वनमालाका ध्यान करे,जो जीवात्माकी परमतत्त्व निर्मल कौस्तुभमणि भगवान्‌के कंठमें चमक रही है,उसका ध्यान करे॥२८॥अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करके अपनी बुद्धिसे जिन्होंने मूर्तिमान अवतार धारण किये हैं,उन भगवान्‌के मुखकमलका ध्यान करे कि जिस पर दमकते हुए मकराकार कुण्डलोंके प्रकाशसे निर्मलकपोलोंकी शोभा और उन्नत जिसमें नाक है ॥२९॥ श्रीजीका जहां स्थान भ्रमरोंसे सेव्यमान अपने वैभवसे कुटिल-कुंतल समूहयुक्त हो मीनसमानका तिरस्कार करनेवाले, मनोमय निरालस भ्रू जिसमें—

दोहा—युगझक अलिअवलीसहित, पुनि इंदिरानिकेत।
अस कंजहु नहिं लहत छबि, हरिमुख सुषमासेत ॥

ऐसे श्रीभगवान्‌के नेत्रकमलका ध्यान करे ॥३०॥ फिर अपनी कृपासे महाघोर अत्यन्त भयानक तापत्रयके नाश करनेके लिये नेत्रोंसे निकल मनोहर मुसकान संयुक्त बहुत प्रसन्न होनेवाले प्रमादयुक्त अत्यन्त भावनासे हृदयमें अनंतकाल तक भगवान्‌के अवलोकनका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ सब अवनतोंके तीव्रशोकसे प्रकट अश्रुसागरके शोषण करनेवाले अतिउदार श्रीभगवान्‌के मंदहास्यका ध्यान करे; फिर भगवान्‌ने मुनिमनोंके मोहित करनेवाले मकरध्वजको मोहनेके लिये जिसे अपनी मायासे रचा है, ऐसे भूमण्डलका ध्यान करे ॥ ३२ ॥ ध्यानका स्थान प्रहसित अधिक अधर (होंठ) की कांतिसे लाल तनमें झांईके पड़नेसे कुंदकलीके दाँतोंकी पंक्ति भी कुछ-कुछ अरुणाईसी लिये ज्ञात होती है,उनका अपने हृदयाकाशमें ध्यान करे।इस प्रकार प्रेमरसीली विष्णुकी भक्तिसे उसीमें मनको लगाये,उसके अतिरिक्त और किसी वस्तुके देखनेकी चाहना न करे, चित्तको उसीमें स्थित रखे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करते-करते भावमें हरिमें लोभकर भक्तिसे द्रवीभूत हृदयमें अत्यन्त आनन्दसे प्रफुल्लित हो जाय और भगवत्‌से मिलनेकी अति उत्कण्ठासे अश्रुपात करके वारंवार पीड़ित धीरसे चित्तरूप मत्स्यवेधके काँटेके सदृश उसे शनैः-शनैः भगवत्‌के अंगसे ध्यान न्यून कर दे ॥ ३४ ॥ मुक्तोंके आश्रय जब निर्विषय विरक्तमन सहसा सूर्यके सदृश मोक्षको प्राप्त होता है, जब पुरुष आत्माको आनंदमय एकरूप देखता है, तब संसारसे निवृत हो जाता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मनकी अंतिमनिवृत्तिसे सुखदुःखसहित ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हुआ योगी सुखदुःखका भोगना, जो पहले अपने स्वरूपमें विदित होता था; उसे अविद्यासे उत्पन्न हुए अहंकारमें त्याग देता है, अर्थात् सुखदुःखका भोक्तापन असत् अहंकारमें ही है, मुझमें नहीं है, ऐसे देखता है क्योंकि उसको आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दीखता है अर्थात् हो चुका है ॥ ३६ ॥ पहले कहे हुए लक्षणसे सिद्ध हुआ योगी अपने देहको भी नहीं देखता, फिर सुखदुःखको क्योंकर

देखे; जैसे मदमत्त मनुष्योंको पहने हुए वस्त्रका ज्ञान नहीं रहता इसी प्रकार योगीको अपने शरीरका ज्ञान नहीं रहता, मत्तपुरुषका वस्त्र प्रारब्धसे जाता रहे या रह जाय उसको उसकी सुधि नहीं रहती, इसी प्रकार योगीका देह चाहे आसनपर रहे वा चला जाय उसे उसकी सुधि नहीं रहती ॥३७॥ प्रारब्धके आधीन हुआ उसका देह जबतक उसका प्रेरक हो तबतक इन्द्रियसहित जीता रहता है, परन्तु समाधि पर्य्यंत योगको प्राप्त हुआ, आत्मस्वरूपका ज्ञाता योगी स्वप्नअवस्थाकी देहके समान, मैं और मेरा करके नहीं जानता ॥ ३८ ॥ जैसे पुत्र धनसे पुरुष अपने आपको अलग मानता है, ऐसे ही आत्मभाव मानकर अभिमत देहादिकसे ईश्वरको पृथक् मानता है ॥ ३९ ॥ जैसे अज्ञानी मनुष्य ज्वलित काष्ठसे कणका धूम होता है ऐसा पृथक् मानते हैं, परन्तु वास्तवमें दाहक और प्रकाशक अग्निसे अलग है; इसी प्रकार सब ब्रह्ममय ही है ॥४०॥ जैसे पंचभूत इन्द्रियाँ, अन्तःकरण प्रधान जीवसंज्ञासे आत्मा अलग है, इसी प्रकार द्रष्टा भगवान् ब्रह्म पृथक् है ॥ ४१ ॥ जैसे सब प्राणिमात्रमें आत्मा व्याप्त है और सब जीवमात्र आत्मामें व्याप्त है, इसी प्रकार सब पदार्थोंमें मैं हूँ और मुझमें सब पदार्थ हैं, ऐसे अनन्यभाव करके सब प्राणियोंमें तदात्मतासे जो देखते हैं, वे सिद्ध हैं ॥ ४२ ॥ जैसे अपनी योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनियोंकी गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व दृष्टि आती है, इसी प्रकार आत्मा एक होने पर भी प्रत्येक देहके गुणोंकी विषमतासे दीर्घह्रस्वादि भेदके कारण अनेक प्रकारका दृष्टि आता है ॥ ४३ ॥ इसलिये यह अपनी सत्, असत् आत्मिक विचारमें आये ऐसी प्रकृतिको भगवान्‌की कृपासे जीतकर अपने स्वरूपमें स्थित होता है और कुमति, कपट, लोभ, मोहमें फसकर खोटे संगसे जीवका नाश हो जाता है। किसी कविका वचन है–

कवित्त–कुमतिसे यश जाय गर्वसे लक्षण जाय, कुनारीसे कुल जाय योग जाय संगसे। भूखसे मर्यादा जाय लड़ायेसे पुत्र जाय, सोचसे शरीर जाय शीलता कुसंगसे॥ कपटसे धर्मजाय लोभसे बड़ाई जाय, माँगनेसे मान जाय पाप जाय गंगसे। क्रोधसे तपस्या जाय अनीतिसे राज जाय, वंशकी प्रशंसा जाय वीर मुरे जंगसे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने अष्टाङ्गयोगध्यानयोगवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा–भक्तियोग उनतीसमें, कालतेज वैराग्य।
घोरदुःखजीवनमरण, कहौं जासु जस भाग्य ॥

देवहूति बोली की हे प्रभो ! महदादिकोंका लक्षण और प्रकृतिपुरुषका स्वरूप परमार्थिक जैसा हो और जिस प्रकारसे इनका ज्ञान हो, वह कहो ॥१॥ हे भगवन् ! जैसे सांख्यशास्त्रमें इनका मूल आपने कहा, परन्तु उसके कहनेका अभिप्राय भक्तियोग है, इस कारण भक्तियोगका मार्ग मुझसे विस्तार सहित आप कहिये ॥२॥ हे जगतपते ! जिससे इस पुरुषको सब ओरसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय ऐसे लोकके अनेक प्रकारके आवागमनको कहो ॥३॥ और ईश्वररूप और कालका स्वरूप कहो; जिसके भयसे लोग कुशलकर्म करते हैं ॥ ४ ॥ झूंठे, अभिमानी, शरीरादिक पदार्थोंमें अहंकार करनेवाले; अज्ञानी, कर्मासक्त, निराधार,

अहंकारमें बहुत दिनसे सोये हुए, कर्म करते-करते श्रान्त हो गये, ऐसे शठलोगोंके चैतन्य करनेके लिये और उनकी निर्मलबुद्धि करनेके अर्थ व योगशास्त्रका प्रकाश करनेको आप इस जगत्में सूर्यरूप उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे महामुने ! हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! इस प्रकार माताके बहुत मीठे वचनोंकी सराहना कर, अत्यन्त, प्रसन्न हो, प्रीतिसे भरे करुणासे पीड़ित मीठे वचन कहे ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे जननि ! भक्ति योग अनेक प्रकारका है और बहुत मार्गोंसे प्रकाशित होता है, पुरुषोंकी प्रकृति सत-रज-तमोगुणके होनेसे उनके संकल्पमें भेद पड़ जाता है ॥ ७ ॥ संकल्पसे, हिंसासे, दंभसे, मत्सरतासे, क्रोधसे जो भिन्न दृष्टिका भाव मुझमें करते हैं, वह तामसी भक्ति है ॥ ८ ॥ विषयभोगकी चाहना कर यश ऐश्वर्य्यके लिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करते हैं वह राजसी भक्ति है ॥ ९ ॥ पाप नाशनेके उद्देश्यसे अथवा सिद्ध साधनके उद्देश्यसे जो मूर्ति आदिकमें कर्म करे अथवा जो पूजन करे उसमें यह माने कि भगवत्की आज्ञा है, इस लिये पूजनेहीके योग्य है, ऐसे भावसे जो भक्ति करते हैं, वह सात्त्विकी भक्ति है—

दोहा—उत्तम मध्यम अधम यह, इकमें त्रय त्रय भेद ।
इहि विधि श्रवणादिकनमें, इक इक नव नव भेद ॥

इसका प्रयोजन यह है कि श्रवण कीर्तनादिक जो नवधा भक्ति है, वही फल देनेके लिये तीन प्रकारकी तामस, तीन प्रकारकी राजस, तीन प्रकारकी सात्त्विक भक्ति होनेसे सत्ताईस (२७) प्रकारकी हुई और सुननेसे एक-एक में नौ-नौ भेद हो जाते हैं, तब इक्यासी (८१) प्रकारकी हो जाती है, यह सगुणभक्तिके भेद हैं ॥१०॥ मेरे गुणके श्रवणमात्रसे मैं जो अन्तर्यामी हूँ, मुझमेंसे कभी न निकले, इस प्रकार मनकी गति लगाये, जैसे गङ्गाजल धाराप्रवाहसे समुद्रमें लय हो जाता है, फिर नहीं लौटता ऐसे ही ईश्वरमें लीन हो जाय भेद न रक्खे ॥ ११ ॥ निर्गुण भक्तियोगका यह लक्षण है; पुरुषोत्तमकी फलानुसन्धान भेदभावरहित भक्ति करे। श्रीपतिके अतिरिक्त दूसरेकी आशा न करे ॥ १२ ॥ मेरे साथ एकलोकमें वास, समान ऐश्वर्य, सदा निकट रहे, मेरे समान रूप होजाय, एकरूप हो जाय इन पांचों मुक्तियोंको मैं देता हूँ, परन्तु मेरे भक्त मेरी सेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं ग्रहण करते ॥ १३ ॥ यह अत्यन्त निर्गुणभक्ति योगभक्ति है, जिससे तीनों गुणोंका उल्लंघन करके मेरे भावको प्राप्त होता है, इससे अधिक और दूसरी भक्ति नहीं ॥१४॥ सुन्दर नित्य नैमित्तिक महास्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारदपंचरात्रतन्त्रोक्त पूजा करनेसे और हिंसारहित पूजा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ मेरी प्रतिमाके दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति प्रणामादिकसे सब जीवमात्रमें मेरी भावनासे धैर्य्यसे, वैराग्यसे हृदय पवित्र होता है ॥ १६ ॥ महात्मा लोगोंका आदर-सम्मान करनेसे, दीनोंपर दया करनेसे, अपने समान कक्षामें मित्रता करनेसे, यम-नियम करनेसे, शरीर शुद्ध हो जाता है ॥१७॥ ब्रह्मविद्याके सुननेसे, मेरे नामोंके उच्चारण-संकीर्तनसे, साधुसन्तोंकी संगति करनेसे, अहंकार त्यागनेसे, चित्त शुद्ध होता है ॥ १८ ॥ जो पुरुष मेरे धर्मके गुणोंका साधन करता है, उसका हृदय शुद्ध हो जाता है, केवल मेरे गुणोंके सुननेसे ही पुरुषको मेरा स्वरूप विना ही श्रम प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ "यह अग्रिम सात आठ श्लोक किसी प्रतिमानिन्दकने कुछ दिनोंसे लिख दिये हैं, इस कारण यह शुद्ध नहीं हैं, परन्तु अन्धपरम्परा चली आती है इस कारण हमें भी लिखने पड़े, यह सब

माननीय नहीं, न प्राचीन पुस्तकोंमें इनका उल्लेख है" जैसे सब स्थानोंमें पवन द्वारा गन्ध आती है, उसी प्रकार भक्तियोगमें लगा हुआ अविकार मन आत्मामें आप आ मिलता है ॥२०॥ सब जीवमात्रमें भूतात्मा मैं सदा स्थित रहता हूँ, मेरी अवज्ञा करके जो पुरुष केवल मूर्तिका पूजन करते हैं वह विडम्बनामात्र है ॥२१॥ मैं सबके शरीरमें रहने वाला हूँ मुझे छोड़-कर जो मनुष्य मूर्तिकी अर्चा करते हैं,वे अपनी मूर्खतासे राखमें हवन करते हैं॥२२॥सब प्राणि-योंकी देहमें जो मैं विराजमान हूँ जो मुझसे द्वेष रखता है, अभिमान रखता है, भेदभाव रखता है, उन प्राणियोंका मन कभी शांत नहीं होता ॥२३॥ हे मातः ! ऊँचे-नीचे द्रव्योंसे, क्रियासे अर्चासे मैं सन्तुष्ट नहीं होता हूँ और जो जीवोंका अनादर करता है उसपर मैं प्रसन्न नहीं होता ॥ २४ ॥ सब जीवमात्रमें परमात्मा मैं हूँ, जबतक मेरे अनुभवका हृदयमें प्रकाश न हो तबतक मनुष्यको मूर्ति आदिकका पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ आपमें और मुझमें जो प्राणी अंतर समझते हैं; उन भिन्न दृष्टिवालोंको मैं सदा कष्ट देता रहता हूँ ॥२६॥ इस लिये मुझको सब जीवोंमें और भूतोंमें विराजमान जानकर सब प्राणियोंका अंतरयामी मैं हूँ मुझसे दान मान मित्रता रखकर भेददृष्टिसे न देखना चाहिये ॥ २७ ॥ हे शुभे ! अचेत जीवोंमें सचेतन अर्थात् प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे प्राणवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चित्तवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे इंद्रियवृत्तिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ उनमें स्पर्शज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनमें रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं उनमें गन्धज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें शब्द ज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ उनमें रूपवेत्ता काकादिक श्रेष्ठ हैं, उनमें दोनों ओर दन्तवाले श्रेष्ठ हैं, उनमें बहुत पांववाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये श्रेष्ठ हैं, उनसे दो पैरवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ द्विपदोंमें चारों वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणोंमें वेदपाठी श्रेष्ठ हैं, वेदपाठियोंमें अर्थके जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ अर्थ जाननेवालोंमें संशयच्छेदी मीमांसा करनेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्वकर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं, उनसे मुक्तसंग श्रेष्ठ हैं, उनसे ईश्वरीय कर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं, ॥३२॥ जिस पुरुषने अपने धर्म-कर्मका फल और अपना शरीर मुझे अर्पण कर दिया है उनमें वह श्रेष्ठ है, मुझमें जिसने अपनी आत्मा समर्पी, मुझमें ही सब कर्मोंका संन्यास करता है उस समदृष्टि महात्मासे कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं ॥३३॥ ऐसे समदर्शीके समान कोई दूसरा नहीं है,समदर्शी मनुष्य वैकुण्ठको जाता है॥३४॥वह आदिपुरुष अविनाशी सबके घट-घट में विराजमान है। इस लिये सब जीवमात्रको अत्यन्त आदर-सम्मानसे मनहीमनमें दण्डवत् प्रणाम करे॥३५॥ हे मनुसुते ! भक्तियोग और योग दोनों मैंने तुमसे कहे, इन दोनोमेंसे एकका भी साधन करे तो वह पुरुष परमेश्वरके निकट पहुँच सकता है ॥ ३६ ॥ सबका स्वामी प्रकृतिपुरुष रूप और उनसे पृथक् जो परमात्मास्वरूप है, परम प्रधान पुरुष उसीको देव कहते हैं, जिसमें यह जीव अनेक-अनेक प्रकारकी योनियोंको भोगता है ॥३७॥ रूपभेदके आश्रय होनेसे दिव्य-

---

१. शंका—कपिलदेवजी अपनी मातासे बोले कि हे जननि ! सब चराचर जीवोंमें हम स्थित हैं, हमको तो कोई जानता नहीं हमारा अनादर करके प्रतिमाका पूजन करते हैं उन लोगोंको कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, जैसे राखमें हवन करनेसे कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता हे मातः ! प्रतिमा पूजन वेदके वाक्य मानकर होता है ऐसे वेदोंके वचनका छेदन मूर्ख भी नहीं करते और कपिलदेवजीने बड़े ज्ञानी होकर वेदोंके वचनका खंडन क्यों किया ? कि प्रतिमाका पूजन नहीं करना ?

उत्तर—सब देहोंमें परमात्माको मानना कि परमात्मा सब देहोंमें स्थित है, यह ज्ञानियोंका कर्म है, ऐसा मानने वाले प्राणी प्रतिमाको नहीं मानते, यह कर्म अज्ञानियोंके लिये नहीं है, अज्ञानियोंका कर्म प्रतिमाका पूजन है, कपिलदेवजीकी माता ज्ञानी हैं तथा कपिलदेवजी भी ज्ञानी हैं, इसलिये ऐसे ब्रह्मज्ञानके वाक्य कहे, अज्ञानियोंके लिये नहीं कहे ।

काल कहलाता है, जिससे भिन्नदृष्टिवालेको महदादिभूतोंका भय होता है ॥ २८ ॥ सर्वाधार और यज्ञोंके फलदायक जो ईश्वर जीवोंके भीतर प्रविष्ट होकर सब जीवोंको भक्षण करते हैं, वही विष्णु हैं, वही यज्ञ हैं, वही काल है, वशी करनेवालोंका प्रभु है ॥ २९ ॥ इस कालका न तो कोई प्यारा है, न कोई शत्रु है, न कोई बांधव है, वही अप्रमत्त होकर प्रमत्त पुरुषोंका अन्त करता है ॥ ४० ॥ जिस कालके भयसे पवन चलता रहता है, मार्तण्ड तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, तारागण प्रकाश करते हैं ॥४१॥ जिसके भयसे वनस्पति, वृक्ष, लता, औषधि सहित अपने-अपने समयपर पुष्प और फल उत्पन्न करती हैं ॥४२॥ जिसके भयसे नदियाँ दिन-रात बहती रहती हैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ सकते, अग्नि प्रज्वलित होता रहता है, पर्वतों सहित भूमि डूबती नहीं ॥ ४३ ॥ जिसकी आज्ञासे यह आकाश सब श्वास लेनेवालोंको सावकाश देता है, महत्तत्त्व सात आवरण युक्त इस लोकमें इस देहका विस्तार करता है ॥ ४४ ॥ जिसके भयसे गुणाभिमानी देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश स्वर्गादिकमें युग-युग वर्तमान रहते हैं और वारम्वार संसारकी उत्पत्ति, पालन, संहार करते रहते हैं ॥४५॥ वह अनन्त अन्त करनेवाला कालअनादि आदि करनेवाला है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है, परन्तु कालको भी मृत्युसे संहार करता है, वह परमात्मा कालरूप अपनी इच्छानुसार काम करता है—

सवैया—स्थावर जंगम रूप जिते सब नाना भाँतिन रूप धरै है।
ताहि में सच्चिदानन्द महाप्रभु आतम एक प्रकाश करै है॥
सो बिनु जानेते सिन्धुसमान औ जानेते गोपदविन्दु तरै है।
वन्दत ताहि सदा शुकदेव जो ब्रह्म चराचर रूप परै है॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा—नारीतनुके नेहमें जिनका मन दिन रात।
करौं तीस अध्यायमें, तिनको यश विख्यात॥

कपिलदेवजी बोले कि, इस काल करालके पराक्रमको यह जीव नहीं जान सकता, जैसे पवनसे चलायमान मेघमाला वायुके विक्रमको नहीं जान सकती ॥ १ ॥ अपने शरीरके सुखके लिये यह जीव अनेक दुःखसे जिस वस्तुका संग्रह करता है, उस वस्तुको कालभगवान् नष्ट कर देते हैं, जिसके लिये रात-दिन प्राणी सोचमें पड़ा रहता है ॥२॥ सोचमें क्यों पड़ा रहता ? कि जो वस्तु नाशवान् है; यह मूर्ख परिवारसहित देहको, धनको, खेतको, मोहसे इन नाशवान् वस्तुओंको अज्ञानी ध्रुवसमान स्थिर मानता ॥३॥ निश्चय करके यह जीव संसारमें जिस-जिस योनिमें जाता है उसी-उसी योनिमें आनन्दसे रहता है, परन्तु कभी वैराग्य धारण नहीं करता ॥ ४ ॥ नरकवासी जीव भी अपने शरीरके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते, नरकको ही आनंदभवन मानते हैं, देवकी माया से जीव ऐसे विमोहित हो रहे हैं ॥ ५ ॥ और शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, गज, वाजि, बन्धुजनोंमें अपना हृदय अत्यन्त फँसाये रहता है, वह अपने आपको बहुत बुद्धिमान् और सुखनिधान मानता है ॥६॥ और अपने कुटुम्बियोंके पालन-पोषणके संदेहमें सब शरीर उसका सरदी-गरमीसे जलता-गलता रहता है, तो

भी वह मूढ़ सदा बुरे हृदयसे बुरे-बुरे कर्म करता ही रहता है ॥७॥ खोटी वेश्यादिक स्त्रियोंकी एकान्तमें मैथुनादिक मायासे शरीर इन्द्रिय सब विक्षिप्त रहती हैं और तोतली रसभरी बालकोंकी मधुर वाणीके साथ झूंठी बातें कर उन्मत्त सा बना रहता है—

दोहा—पालन हित परिवारके, करत हजारन पाप ।
काहूकी मानत नहीं, सहत रहत संताप ॥
यह अचरज अतिशय जननि, बोधेहु बोध न होय ।
जो उपदेशहि ताहि शठ, शठ भाषहिं सब कोय ॥ ८ ॥

धनके लोभसे कर्म करे उसमें भी अधर्म, सदा दुःख, ऐसे घरमें आलस्य तज दुःख दूर करनेके लिये उपाय करता है और गृहस्थीको सुखके समान मानता है ॥ ९ ॥ और महाहिंसा करके इधर-उधरसे धन इकट्ठा कर परिवारका पालन-पोषण करता है और आप उनकी जूठन खा-खाकर अपनी अवस्था पूरी करता है और अंतसमय नरकमें जाता है ॥ १० ॥ जब उसकी जीविका बंद हो जाती है, तब उसके उपार्जनके लिये सहस्रों उपाय करता है, इसी प्रकार बारंबार यह महालोभी, निर्धन यत्न करता जब मनमें हार मानता है, तब पराये धनके लेनेकी इच्छा करता है ॥११॥ जब कुटुम्बके पालन-पोषणका सामर्थ्य न रहा और उद्यम निष्फल होने लगा, तब वह मंदभागी, मंदबुद्धि, कृपण अत्यन्त सोचवश होकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा, तब उस कृपणसे लक्ष्मी बोली—अरे मूर्ख ! क्यों निराश होता है जबतक मैं हूँ, तबतक खा-पीकर चैन उड़ा, तब कृपण बोला कि, लक्ष्मी—

कवित्त—दाता घर जाती तौ कदर ऐसी नाहिं पाती, मेरे घर आई तो बधाई बाँट बावरी । खाने दशखाने तहखानेमें छिपाय राखूं, होहु न उदास मेरो यही चित चावरी ॥ खाऊं न खवाऊँ मर जाऊं तौ सिखाय जाऊं नाती और पूतनको आपनो स्वभाव री । दमड़ी न देहुँ कभी स्वप्नमें भिखारिनिको कृपण कहै लक्ष्मीसे बैठी गीत गाव री ॥ १२ ॥

इस प्रकार जब वह प्राणी कुटुम्बके पालन-पोषणमें सामर्थ्य नहीं करता, तब उसके कुटुम्बी लोग पहलेकासा उसका आदर-सत्कार नहीं करते, जिस प्रकार किसान बूढे बैलका आदर नहीं करते ॥१३॥ इतनेपर भी ज्ञान और वैराग्य उस मूर्खको नहीं होता, अब वह बृद्ध मनही मन कहता है कि, हाय! जिनका पालन-पोषण मैं करता था, आज वह मेरा पालन करते हुए कड़ुए वचन कहते हैं; हा ! जराके आनेसे मेरा रूप कुरूप हो गया, मरनेके सम्मुख घरमें घुटना पड़ा॥१४॥घरके लोग जब भोजन कर चुके हैं तब अनादरसे कुछ खाने-पीनेको श्वानके समान दूरसे टुकड़ा डालते हैं, रोग सब शरीरमें प्रकट हो गये, मंदाग्निसे भोजन भी थोड़ा खाया जाता है, उठने-बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही; नेत्रोंसे दीखना बंद हो गया ॥ १५ ॥ जब मृत्युका समय आया, तब वायुसे नेत्र फटने लगे, पुतलियाँ ऊपरको चढ़ गयीं, आंसू निकलने लगे, नाड़ियाँ रुक गयीं, कासश्वासके किये हुए क्लेशोंसे कंठमें कफ घिरने लगा—

चौ०—मुखमक्खी नहिं उड़त उड़ाये । बधिर भयो नहिं सुनत सुनाये ॥
घुर घुर कंठ होन तब लागो । तऊ कुटुँबको मोह न त्यागो ॥

बाढ़ो कफ आवत बहु खाँसी । देखि कुटुम्ब करत सब हाँसी ॥
अब यह वृद्ध जियैगो नाहीं । गंगाजल डारहु मुखमाहीं ॥१६॥

उस समय शोचवश हो भाईबन्धु चारोंओरसे घेरकर बैठ जाते हैं और बहुत ही पुकार-पुकार कर बूझते हैं कि हे पिता, हे दादा ! कुछ धन धरा धराया हो तो बता दो ? अब तुम्हारा चित्त कैसे है ? वह तो कालकी फाँसीमें फँसा हुआ है, कंठ रुका हुआ है, अपना सुख-दुःख मुखसे कुछ नहीं कह सकता, तब लोग फिर उसको समझाते हैं कि आप कुछ द्रव्य बतावें तो हम गाय मँगाकर आपसे पुण्य करायें-

कवित्त-द्रव्यहीसों पितापर पुत्र कर प्रेम होत, द्रव्यहीसों पुण्य और द्रव्यहीसों नाम है । द्रव्यहीसों देवी और देवता प्रसन्न होत, द्रव्यहीसों जगमाहिं होत सारो काम है । द्रव्यहीसों धर्म अर्थ मनोरथ पूरे होत, द्रव्यहीसों, धर्म अर्थ काम पर धाम है । द्रव्यहीकी खातर चातुर होत द्रव्यहीसों, शालग्राम द्रव्यहीको महिमा सब ठाम है ॥ १७ ॥

जिसने कुटुम्बके बचाने और चारों ओरसे उनके पालन करनेमें कसर न की, अपनी इन्द्रियोंको न जीता, वह नष्टबुद्धि, वह अज्ञानी रोते हुए अपने बन्धुबान्धवोंमें मर गया ॥ १८ ॥ उस समय उसके लेनेके लिये क्रोधसे लाल नेत्र किये, महाभयानक यमराजके दो दूत आये दंडपाश उनके हाथोंमें देख त्रासके कारण वह पापी जीव विष्टा मूत्र करता रहता है ॥ १९ ॥ वह दूत उसे उसी समय परवश पकड़ गलेमें फांसी डाल उस नरदेहमेंसे उस जीवको निकाल; यातनादेह (जो यमलोकमें कष्ट भोगनेको नियत है) में रख हाथ बांधकर राजाके दूत जैसे अपराधीको वरवश पकड़ व घसीटकर ले जाते हैं उसी भांति उस जीवको बड़ी दूरके मार्गसे ले जाते हैं ॥ २० ॥ उन दूतोंके मारनेसे पीटनेसे उसका हृदय फट जाता है, देह कांपने लगती है, गिरते, पड़ते, मार्गमें कुत्ते फाड़नेको दौड़ते हैं, उस समय वह प्राणी आर्त होकर अपने किये पापोंको याद करता है ॥ २१ ॥ मार्गमें क्षुधा-तृषा सताती है, भोजन देखनेको नहीं मिलता, ऊपरसे सूर्यकी गर्मी पड़ती है, नीचे धरती जलती है, फिर तपती हुई बालूपर तपना पड़ता है, जब कहीं थककर बैठ जाता है और नहीं चलता तब यमदूत बड़े निर्दयपनसे कोड़े मारते हैं, मार्गमें न कहीं ठहरनेका ठिकाना है, न कहीं पानी पीनेको मिलता है । उस समय मुखसे हाय हाय निकलती है ॥ २२ ॥ और जहां-तहां थकित होकर गिर पड़ता व मूर्च्छित हो जाता है फिर

१. शंका–कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि यमराजके दूत यमको पाशजीवके गलेमें बाँधकर घसीटते घसीटते यमपुरीमें जीवको ले जाते हैं; यह बड़े संदेहकी बात है, कि जीवके गला नहीं है फिर बिना देहके गला कैसे हो सकता है, जिसमें पाश डालकर जीवको यमपुर ले जाते हैं ?

उत्तर–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे चौरासीलाख योनियोंकी देह बनी है, परंतु प्रत्यक्ष दीखनेमें वायुसे देह वर्द्धित होती है । पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश यह चार तो देहमें प्रत्यक्ष देखने में नहीं आते और पवन प्रत्यक्ष मुखमें नाकमें, गुह्यमें चलता हुआ दिखायी देता है, जबतक देहमें वायु चलती रही है तबतक जीवित कहलाती है और पवनके बन्द होते ही देहको मृतक कहते हैं, जीवकी वार्ताको महात्मा पुरुषोंने और कविजनोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है, परन्तु सब शास्त्रोंका भी ऐसा मत है कि इस शरीरमें पवन जो है वही जीव है, वायुके अंशसे देहके सब अंग चैतन्य रहते हैं, इसलिये यमके दूत पवनरूप जीवके गलेमें पाशसे बांधकर उसी वायुरूप जीवको यमपुरीमें ले जाते हैं ।

उठकर चलने लगता है, इसी प्रकार उस पापी जीवको महाअंधकारव्याप्त मार्गमें होकर यमदूत यमपुरीको ले जाते हैं ॥ २३ ॥ निन्यानवे हजार ९९००० योजन मार्ग चार घड़ीमें उस महापापीको ले जाते हैं, और पापीको छः घड़ीमें यमपुर ले जाते हैं, वहां अनेक-अनेक प्रकारकी यातनायें भोगनी पड़ती हैं ॥ २४ ॥ कहीं तो उस जीवकी देहको लकड़ियोंसे जलाते हैं, कहीं इसीका मांस इसको भक्षण कराते हैं, कहीं आप ही अपने मांससे अपना पेट भरता है ॥२५॥ कहीं यमलोकमें श्वान, गीध, जीतेकी आंतें निकाल-निकाल ले जाते हैं, कहीं साँप, बिच्छू डांसादिककी पीड़ासे दुःख पाकर अपने किये कर्मोंका फल भोगता है ॥ २६ ॥ कहीं उसका शरीर काट-काट खंड-खंड करते हैं, कहीं हाथी दांतोंपर धर-धरकर घुमा-घुमाकर पटक देते हैं, कहीं पांवोंसे दबा-दबा शुण्डसे उठा चीर-चीर कर बगेल देते हैं, कहीं पांवोंसे पीस-पीस कर मारते हैं, कहीं पर्वतोंके शृङ्गोंसे पटक देते हैं, कहीं पानीमें डुबो देते हैं, कहीं गढ़में बन्द कर देते हैं ॥ २७ ॥ जो तामिस्र, अंधतामिस्र और रौरवादिक नरकोंकी पीड़ा है, सो नरनारी भोगते हैं, जो पूर्व कुकर्म किये हैं उनका फल उनको भोगना पड़ता है ॥ २८ ॥ हे मातः ! यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, क्योंकि नरक और स्वर्ग दोनों यहीं दिखायी देते हैं, जो-जो कष्ट नरकमें सहने पड़ते हैं वे संसारके मध्य भी देखनेमें आते हैं ॥२९॥ जो प्राणी केवल इस प्रकार अपने परिवारका पालन-पोषण करता है वा अपना उदर भरता है उसके वे कर्म उसके साथ जाते हैं और जब मरकर यमपुरीमें जाता है, तब उसको अपने पापका फल इकले ही भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ इस अपने शरीरको छोड़कर एक ही जीव नरकको जाता है, प्राणिद्रोह ये जो पाप किये हैं, वह सब वहीं भोगने पड़ते हैं ॥ ३१ ॥ दैवके प्राप्त किये हुए कुटुम्ब पोषणके लिये किये हुए अपने पापको अकेलेमें पुरुष भोगता है और जिसका धन लुट जाता है जैसे पुरुषकी नाई वह आतुर हो जाता है ॥ ३२ ॥ केवल अधर्मसे जो परिवार पालनेमें तत्पर है, वह प्राणी अन्धतामिस्रतमका जो स्थान है, उसमें जाता है ॥ ३३ ॥ नरकलोकसे जो नीचे यातनादिक नरक हैं उन सबको क्रमसे भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब फिर शुद्ध होकर मनुष्यदेहको पाता है ॥ ३४ ॥

॥ राग बिहाग ॥

तबतें गोविंद क्यों न सँभारे ?
अपने लोभ लाभके कारण चलत न कबहूँ हारे ॥ १ ॥
अपने एक जीवके कारण जीव सहस दश मारे ॥
उन जीवनपर क्यों छूटोगे दावनगीर तुम्हारे ॥ २ ॥
भूमि परे तब शोचन लागे भये कठिन दिन भारे ॥
सूरदास कहैं कंठ पकरि तब निकसत प्राण दुखारे ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कामिनां नरकादिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा—इकतिसमें वर्णन करों, शोणितवीर्यमिलाप ।
राजसयोनी होत जब, मिलत पुण्य औ पाप ॥

श्रीभगवान् कपिलदेवजी बोले कि, दैवप्रेरित पिछले जन्मोंके कर्मोंके प्रभावसे देह प्राप्तिके लिये यह जीव पुरुषके वीर्यकणके आश्रय होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट होता है॥१॥एक रातमें शुक्रशोणित मिलता है, पांच रातमें बुद्‌बुदासा होता है, दश दिनमें बेरके समान हो जाता है, फिर मांस पिंडाकार हो जाता है॥२॥एक मासमें शिर बनता है,दो मासमें बाहु चरण आदि अंगके आकार बन जाते हैं, तीसरे मासमें नख, रोम, हाड़, चाम, सब इंद्रियोंके छिद्र बन जाते हैं॥३॥ चौथे मासमें सातों धातु प्रकट होती हैं, पांचवें मासमें भूख-प्यास उत्पन्न होती है, छठें मासमें जेरमें लिपटा हुआ माताकी दाहिनी कोखमें घूमा करता है ॥ ४ ॥ माताके भोजन किये हुए अन्नादिकसे इसकी धातु बढ़ती है और वह जीव जीवोंकी खान ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें दिन-रात पड़ा रहता है। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि "स्त्रीकी नाभिमें एक बालककी वृद्धि करनेवाली आप्यायनी नाड़ी बँधी है उसीके द्वारा स्त्रियोंके खाये पिये पदार्थका रसांश उस गर्भको पहुँचता है और वह जीव उसीको पीपीकर दिन-दिन बढ़ता है" ॥ ५ ॥ सुकुमारतासे गर्भके कीड़े जो क्षण-क्षणमें उसको काटते हैं, उस कठिन पीड़ासे वह जीव अत्यन्त व्याकुल हो मूर्छित हो जाता है, वह कृमि भूखसे व्याकुल होकर जीवको सताते हैं ॥६॥ और कीड़ोंके काटे हुए घावोंपर जो जननीके खाये, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण, रूखे, अम्लादि नाना भाँतिकी वस्तु जो खाती हैं, उनके लगनेसे उस जीवके शरीरमें अत्यन्त पीड़ा होती है ॥ ७ ॥ उदरके भीतर जरायुसे बंधा और बाहर जननीकी आंतोंसे बँधा, नीचे योनिकी ओर शिर किये धनुषकीसी टेढ़ी पीठ झुकाये मल मूत्रमें पड़ा रहता है, हाथ-पांवतक नहीं चला सकता, यह माताका उदर नहीं है बंदीगृह है ॥८॥ अपने तनुकी चेष्टा करनेका कुछ सामर्थ्य नहीं रहता; जैसे पिंजरेमें पक्षी अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता, वहाँ इस प्राणीको पिछले सौ जन्मके कर्मोंकी याद आती है, उस समय वह दीर्घ श्वास भरकर पश्चाताप करता है और सुख तो वहाँ नाम को भी नहीं मिलता ॥ ९ ॥ गर्भके समान दुःख तो न हुआ न होगा, सातवें महीनेमें इसको अधिक बाधा होती है, यह एक ठिकाने नहीं ठहर सकता, प्रसूति वातसे सदा काँपता रहता है, और विष्ठाके कीड़ोंको अपना सम्बन्धी समझता है ॥ १० ॥ उस समय दुःखी हो वह जीव वारंवार परम उदास हो गर्भवासकी त्रास देख सात धातुओंसे बँधा हुआ हाथ जोड़ व्याकुलवाणीसे उस परमात्माकी स्तुति करता है ॥११॥ कि जिसने इसको इस बंदीगृहमें डाला है, जीव कहता है—

॥ स्तुति गीतिका छन्द ॥

तेहि कृष्णके चरणारविन्दहि, मैं शरण अब होत हूँ।
जो दासहित बहु रूप धारत, मैं परो दुख सोत हूँ॥
माया विवशमें कर्मबन्धन, बँधो गर्भहिमें परो।
अविकार शुद्ध अखण्ड बोध, मुरारि मेरा दुःख हरो॥

---

१. शंका—कपिलदेवजीने अपनी मातासे कहा कि जीव यमपुरीमें कष्टभोग करके पुरुषका वीर्य होकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, ऐसा हम सब सुनते हैं, बड़े आश्चर्यकी बात है कि वायुरूप जीव शीशे और रांगकी नांई गलकर जलरूप कैसे हो गया?

उत्तर—वायुरूप जीवको नित्य सब पदार्थोंमें जाना होता है, सब वस्तुमें चर अचरमें सूक्ष्मरूप होकर प्रवेश करता है इसलिये वायुका देहरूप जीव यमपुरीमें कष्ट भोगकर स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है, क्योंकि वायु तो सबमें जब चाहे तब जैसा रूप धरके घुस जाता है।

मैं हौं असँग हिये वृथा ही, बंधो भूतहि पंचमें।
इन्द्रिय विषय आसक्त हौं, मैं बढ़ो माया मंचमें॥
दुख रूप यहि संसारमें, जेहि विवश जीव सिधावतो।
नहिं कटत जाकि कृपा बिन, तेहि नाथको गुहरावतो॥
यह ज्ञानदायक नाथ सोई, जो सकल जग व्यापत रहै।
मम मति न ज्ञान विनाशहित, अब नाथ सोई दाया गहै॥
मल मूत्र शोणित कूपमें, जननी जठर वडवानलै।
तनु दहत मानस को गनत उद्धार करिहौं कब भलै॥
दश माश बालक मोहि जो, यह ज्ञान दिय सुखगाथ है।
जो करत निरहेतुक कृपा, सो सत्य दीनानाथ है॥
प्रभुको न निरखत पशु खगादिक, निज सुखे दुख भोगते।
मैं तो लखौं तुमको सकल थल, आय ज्ञान सँयोगते॥
पै मैं न इतते कढ़न चाहत, यदपि कठिन कलेश है।
निकसे ग्रसे तुव प्रबल माया यह विशेष अशेष है॥
यह गर्भहीमें भक्ति कर, संसार सागर तरहिंगे।
तुव कृपासे वैकुण्ठवश नहिं, विश्वव्यालहि डरहिंगे॥

हे शरणागतवत्सल! विश्वके पालन करनेके लिये आप अपनी इच्छासे अनन्तरूपधारी भगवान् वासुदेवके भूमिपर पर्यटन करते हुए निर्भय चरणारविंदके मैं शरण हूं, कि जिसने मुझ पापीको यह गर्भवासकी गति दिखाई ॥१२॥ जिस ईश्वरकी मायासे इस संसारके कर्मबन्धनसे जननीके उदरमें पंचमहाभूत इन्द्रिय अन्तःकरणरूप मायाका आश्रय लेकर कर्मोसे बँधा हुआ हूं, अब उस विशुद्ध अविकार अखण्ड ज्ञानस्वरूपको इस तप्त हृदयमें वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥ जो ईश्वर पंचभूतरचित शरीरमें ढका हुआ विदित होता है, जैसा ही इन्द्रिय, गुण अर्थ चैतन्य आत्मक मैं हूं, जैसे देहरहित होनेपर भी प्रसिद्ध महिमावाले ऋषि परमेश्वर प्रकृति पुरुषसे परे जो आप हैं वह मैं आपके चरणारविंदोंकी वन्दना वारंवार करता हूं ॥ १४ ॥ जिसकी मायासे अपने निजस्वरूप और ज्ञानका विस्मरण होनेसे यह जीव बहुत गुणकर्मसे किये हुए इस जगत सम्बन्धी मार्गमें महाकष्टसे विचरण करता हुआ परमात्माकी कृपा विना और किसी युक्तिसे अपने निजस्वरूपको नहीं जान सकता, क्योंकि भगवत् कृपा विना ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान विना मोक्ष कहां ? इस लिए ईश्वरकी सेवा करनी उचित है ॥ १५ ॥ स्थावर जङ्गममें अनुवर्तें जिसका अंश ऐसे देव ईश्वरके विना जो यह कालका ज्ञान मुझको हुआ, इस ज्ञानको मेरे हृदयमें किसने प्रकाश किया वह कौन है ? इसलिये जीव कर्मपदवीमें वर्तमानके तापत्रयनाशार्थ उस परमात्माको भजता हूं ॥१६॥ माताके देहरूपी विवरमें यह तनु जठराग्निसे अति तप्त रुधिर, विष्ठा और मूत्रके कूपमें गिरा हुआ जीव यहांसे बाहर, निकलनेके लिये अपने मासोंको गिनता

है और यह कहता है कि, हे दीनबन्धो ! दीनानाथ ! इस जीवको यहांसे कब निकालोगे ? ॥१७॥ हे नाथ ! आप बड़े दयालु हैं, आपने मुझे दशमासको यह गति दी। हे दीनानाथ ! आप अपने किये उपकारसे आपही सन्तुष्ट होते हो। हाथ जोड़नेके अतिरिक्त आपका प्रत्युपकार कौन कर सकता है ॥१८॥ सात धातुका जिसका शरीर वह तो अपने देह सम्बन्धी दुःख सुखको ही देखता रहता है और मैं तो परमात्माकी कृपासे उसके दिये ज्ञानसे जो सम-दम-आदि सब साधन बन सकें ऐसी स्थितिमें हूं उस पुरुषको मैं बाहर और हृदयके भीतर चित्रकी नाईं विश्वस्त मान कर देखता हूं ॥१९॥ हे विभो ! मैं अत्यन्त दुःखवासमें बसता हूं तो भी इस अन्धकूपसे बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं, क्योंकि बाहर आते ही आपकी माया व्यापेगी और जिसके सम्बन्धसे स्त्री, पुत्रादिकके मोह ममतामें फँसना पड़ेगा ॥ २० ॥ इस कारण अब मैं यही चित्तको स्थिर करके आपके कोमल चरणकमलोंको हृदयमें धारण करूँगा और उन्हींके अनुग्रहसे अपनी सुहृद आत्मा करके आत्माका तमसे उद्धार करूँगा, फिर ऐसा अनेक रन्ध्रोंका शरीर जिसमें नाना प्रकारके व्यसन होते हैं, यह मुझको न हो और यह कठिन कष्ट मुझको भोगना न पड़े, क्योंकि अब श्रीकृष्णचन्द्र कृपानिधानका मैंने आश्रय लिया है ॥२१॥ कपिलदेवजी बोले कि इस प्रकार गर्भमें जो दशमासका जीव स्तुति कर रहा था उसको बाहर निकलनेके लिये प्रसूतिवायुने तुरन्त पृथ्वीपर फेंक दिया ॥ २२ ॥ वायुके फेंकनेसे वह जीव नीचेको मुखकिये श्वास बन्द बड़े कष्टसे बाहर निकलता है और सब ज्ञान उसी समय शमन हो जाता है ॥ २३ ॥ भूमिपर गिरकर रुधिर मूत्रमें विष्ठाके समान चेष्टा करता है और कहां कहां करके वारंवार रोता है और ज्ञानके जाते रहनेसे विपरीत गति हो जाती है ॥२४॥ रोनेके अतिरिक्त और वह कुछ भी नहीं कह सकता, अपने पराये प्रयोजनको नहीं जानता। जननी-जनक उसके पोषणके लिये भूखा समझ कभी दूध पिलाते हैं, कभी उदरकी बाधा समझ कभी घूटी देते हैं, परंतु उसकी इच्छानुसार एक भी काम नहीं होता, जब वह भूखके मारे रोता है तब माता-पिता उसकी दीठ उतारते हैं परंतु वह किसी बातको 'हां, ना' नहीं कर सकता ॥२५॥ गरमी-सरदीसे पीड़ित अपवित्र शय्यापर पड़ा रहता है, मच्छ, मक्खी, खटमल आदि उस जीवको काटते हैं, उस समय न तो वह अपने तनुको खुजा सकता है, न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न कोई उपाय ही कर सकता है, केवल अपनी व्यथाको आपही जानता है—

दोहा—मुखसे कछु नहिं कह सकत, सहत विपति दिन रैन।
खटियापर विलखत रहत, परत न छिनको चैन ॥ १ ॥
कोमल काया जानिकै, काटत कीट कुठौर।
मात भेद जानत नहीं, करत यत्न कछु और ॥ २ ॥ २६ ॥

कच्ची खालमें मच्छर, डांस, खटमल आदि अनेक जीव इस जीवको काटते हैं, इसीसे वह बालक बारबार रोता है, ज्ञान सब नष्ट हो जाता है, जैसे और कीड़े हैं, ऐसे ही इसको भी एक कीड़ा समझो॥२७॥इस भांति अनेक भांतिके कष्ट भोगकर फिर बाल अवस्थामें पठन-पाठनका दुःख सहकर अज्ञानपनसे उसको भी नहीं सीखता, खेलकूदमें ही वृथा समय खोया, जब तरुणाई आयी तब मनमानी वस्तु पाकर महाअभिमानी बन अज्ञानसे क्रोध और कष्ट उठाने लगा ॥२८॥ देहके सङ्ग बढ़े हुए काम क्रोधके घमण्डमें विषयी जनोंके सङ्ग मिलकर अपनी आत्माके नाशार्थ लड़ाई करता है ॥२९॥ पञ्चभूतके देहमें वारंवार यह अज्ञानी जीव

अपने अभिमानसे कहता है कि यह शरीर मेरा है, मैं इसका पालन करता हूँ, ऐसी असत बातें ग्रहण करने लगता है, कुमतिसे सुमतिका नाश हो जाता है ॥ ३० ॥ देहके अर्थ कर्म करता है, जिस कर्मसे बँधकर संसारको प्राप्त होता है, क्लेश देता हुआ जो यह शरीर है इसके लिये यह प्राणी दिन-रात कर्म किया करता है और सदा जीवन-मरणके चक्रमें पड़ा घूमता ही रहता है ॥ ३१ ॥ फिर शिश्न और उदरके लिये उद्यमकारी असतोंके मार्गमें स्थित होकर उसी मार्गमें चलने लगता है और फिर कुसंगतिके प्रभावसे उसी भांति नरक भोगता है ॥ ३२ ॥ और सत्य, शौच, मौन, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य्य यह सब खोटे पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस लिये अशान्त, मूढ़, अज्ञानी, खंडितमन, असाधु, सोचके योग्य; योषिताओंके क्रीड़ामृग अर्थात् नीच स्त्रियोंसे रमण करनेवाले नीच मनुष्योंकी संगति कभी नहीं करनी चाहिये ॥ ३४ ॥ और प्रसंगोंसे जैसा यह बँधा है, उससे अधिक मोह नहीं होता, जैसा कि स्त्रियोंके संगसे होता है और उनकी संगति करनेवाले पुरुषोंकी संगतिसे अत्यन्त ही मोह बढ़ता है और महा क्लेश होता है ॥३५॥ चतुरानन अपनी पुत्री सरस्वतीको देख उसके वश हो गये, जब सरस्वतीसे कुछ न बन पड़ा तो मृगीका रूप धारण कर भागी, उस समय ब्रह्माजी भी लज्जा तज मृग बन उसके पीछे भागे ॥ ३६ ॥ जब ब्रह्माजी जैसे ज्ञानीकी यह गति है तब उनके रचे हुए मरीचादि, उनके रचे हुए कश्यपादि, उनके रचे हुए देवता मनुष्यादि उनमें ऐसा अखण्डित बुद्धिवाला कौन है ? जिसका चित योषित्‌रूप मायाको देख खंडित न हो, एक श्रीनारायणको तो हम नहीं कह सकते कि जो सब संसारके प्रलय पालन करनेवाले मौन रूप धारण किये विराजमान हैं ॥३७॥ मेरी स्त्रीमयी मायाका बल देखो, जो दिशाओंके जीतनेवाले शूरवीरोंको भी केवल भृकुटी चढ़ाकर अपने पांवमें लुटा लेती है ॥३८॥ कदाचित् जो मनुष्य योगका पार पाना चाहे वह स्त्रियोंका संग न करे, मेरी सेवासे आत्मज्ञानी होता है, फिर वह योगीश्वर स्त्रियोंको नरकका द्वार समझता है । इस बात पर एक श्लोक है–

श्लोकः–आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं
स्त्रीरत्नं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥ १ ॥

भावार्थ–"संदेहकी भँवर, अविनयका स्थान, साहसोंका नगर, दोषोंका समूह, कपटमय अविश्वासोंका क्षेत्र, स्वर्गद्वारका विघ्नरूप, नरकपुरका मुख, सब मायाका डिब्बा; यह स्त्रीरत्न विष-अमृतमय है, प्राणियोंको साक्षात् मोहकी फांसी है ॥ १ ॥"

परमेश्वरकी रची हुई स्त्रीरूपी माया जो धीरे-धीरे अपने निकट आये तो उसको अपनी मृत्यु जाने, जैसे तृणोंसे छिपा हुआ कुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मुमुक्षु स्त्रीके प्रति कहते हैं, पुरुषसमान आचरण करती हुई मेरी माया उस वित्तके देनेवालेको पति माने तो उस पुरुषरूप मायाको मृत्यु समझे, जिससे पूर्वजन्ममें आप पुरुष था, फिर मरणसमय स्त्रीके ध्यानमें स्त्रीधर्मको प्राप्त हुआ, इस भांति फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा फिर स्त्रीकी इच्छासे स्त्री होगा ॥ ४१ ॥ पति, पुत्र, गृहरूप नारी अपनी मृत्यु जानो, वधिकके गाने और बीणा

बजानेसे जैसे मृगकी मृत्यु है, इसी प्रकार दैवसे प्राप्त नारीको अपनी मृत्यु जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ जीवरूप अपने शरीरसे दूसरे शरीरमें एक कर्मका भोक्ता निरन्तर पिछले कर्मको किया करता है ॥ ४३ ॥ पंचभूत इंद्रिय मनोमय देह जीव इसके संग है; जीवका रुकना इसका मरण है, आविर्भाव होना जीवका संभव है ॥ ४४ ॥ द्रव्यकी प्राप्तिके स्थान जो नेत्र-गोलकादि; उनकी जब कामलादि दोषके कारण द्रव्यके रूपादिनिरीक्षणमें द्रष्टा जीवकी अयोग्यता होती है, वही इस जीवका देहाभिमानजनित औपचारिक मरण है और अहंमान अर्थात् यह देह ही मैं हूँ इस प्रकारके देहतादात्म्याभिमानसे जो स्थूल शरीरकी उत्पत्ति वही इसकी औपचारिक उत्पत्ति है ॥ ४५ ॥ जैसे नेत्रोंको द्रव्य-अवयव-दर्शनकी अयोग्यता जब होती है तब ही चक्षुके द्रष्टाको इनके द्रष्टत्वाभावकी अयोग्यता होती है ॥ ४६ ॥ इस कारण न तो मृत्युका भय माने, न जीवकी आशा ठाने और न जीवनके प्रयत्नोंका आदर करना चाहिये । जीवगति जानकर धीर मुक्तसंग होकर इस संसारमें विचरे ॥ ४७ ॥ सुन्दर देखनेवाली, योग और वैराग्यवाली, सत्यविचार करनेवाली, बुद्धिसे मायाविरचित लोकमें शरीरासक्तिको त्यागकर आनंदसे विचरे-

कवित्त-योग करै यज्ञ करै वेद विधि त्याग करै, जप करै तप करै योंही आयु खूटि है । यम करै नेम करै तीर्थ हू व्रतादि करै, पुहुमि अटन करै वृथा श्वास टूटि है ॥ जीवको यतन करै वनमाहिं वास करै, पचि पचि योंही मरै काल शिर कूटि है । और हू अनेक विधि कोटिन उपाय करै, सुन्दर कहत बिनु ज्ञान नहिं छूटि है ॥ ४८ ॥

इति श्री भाषा भागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने पुण्यपापैरिह मनुष्ययोनिसम्प्राप्तौ जीवगतिवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३१॥

दोहा-बत्तिसमें सुरलोकको, सात्विकपनसे जाय ।
तत्त्वज्ञान बिन फिर फिरै, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥

कपिलदेवजी बोले, कि जो कोई गृहस्थ गृहस्थके धर्मोंका आचरण घरमें बैठकर करते हैं और अर्थकामरूपकी कामनाके लिये उन सब कामोंको अनुष्ठान कर फिर उन सब कामोंको पूर्ण करते हैं ॥१॥ वे मनुष्य कामनाओंमें विमूढ़ हो भगवद्धर्मसे पराङ्मुख होकर श्रद्धालु बनकर यज्ञोंसे देवता-पितरोंका यजन करते हैं ॥ २ ॥ और जिनकी बुद्धि और श्रद्धा पितृ और देवताओंमें लग रही है वे मनुष्य पितृदेवताओंका व्रतकर इन्द्रलोकमें जाते हैं और वहां अमृत पान कर फिर जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥ जब शेषशय्यापर अनंतासन नारायण शयन करतें हैं, तब गृहस्थोंके सब लोक लयको प्राप्त हो जाते हैं, इससे यह ज्ञात होता है कि सकाम कर्म करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं वे स्थिर नहीं रहते ॥ ४ ॥ जो धीर पुरुष कामअर्थके लिये स्वधर्मका द्रोह नहीं करते हैं और सब संग त्याग, सब कर्म त्याग, अत्यन्त शान्त शुद्धचित्त ॥ ५ ॥ निवृत्ति-कर्ममें प्रीति कर और ममता व अहंकारको त्यागकर अपने धर्मका सात्त्विकभावसे आचरण करके अत्यन्त शुद्ध चित्तसे सूर्यद्वारा उस विश्वमुख पुरुषको प्राप्त होते हैं जो पर अपरके स्वामी, अभिन्ननिमित्तोपादान कारण होकर इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ जो पुरुष परमेश्वरदृष्टिसे ब्रह्माका पूजन करते हैं वे ब्रह्माके सौ वर्षके प्रलय

तक ब्रह्माके लोकमें वास करते हैं ॥ ८ ॥ द्विपरार्द्धलक्षण कालका अनुभव कर पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, इंद्रिय, उनके अर्थ, पंचभूत, अहंकार इनसे युक्त संसारके संहारकी इच्छा करनेवाला गुणत्रयमय शरीरवाला ब्रह्मा अपने सौ वर्षको भोगकर परमेश्वरमें लीन हो जाता है ॥ ९ ॥ तब यहांसे दूर जाकर भगवत्के सेवक योगीजन, जिन्होंने पवनमनको जीत वैराग्य लिया है, वे अभिमान त्यागनेवाले ब्रह्माके ही साथ अमृतस्वरूप पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको प्राप्त होते हैं; परन्तु ब्रह्मासे पहले उस पदवीको नहीं पा सकते, क्योंकि ब्रह्माके समयतक उन देहाभिमानियोंका अभिमान निवृत्त नहीं हो सकता ॥ ॥ १० ॥ हे प्रकाशरूपिणी ! अब सब जीवोंके हृदयकमलमें जिनका स्थान है, उनका अनुभव तुमको सुना दिया, अब भक्ति भावसे उनकी शरण जाओ ॥ ११ ॥ स्थावर जंगमके आद्यऋषि सहित ब्रह्माजी योगीश्वर सनकादिक सिद्धयोग प्रवर्तक वह भी ॥ १२ ॥ भेददृष्टि करके अभिमानसे निष्काम कर्म करके कर्ताभाव होनेसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको ॥ १३ ॥ वह ब्रह्मा अपने पदको प्राप्त हो ईश्वररूप कालकरके संसारमें फिर जन्म लेकर जैसे पहले ब्रह्मा थे उसी पदवीको फिर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ हे सति ! परमेष्ठीके ऐश्वर्यको धर्मनिमित्त सेवा कर फिर संसारमें जन्म लेते हैं ॥१५॥ और जो लोग इस संसारमें आसक्तमन हैं, श्रद्धाकर कर्ममें लग रहे हैं, सब ओरसे जिनका कोई निषेध न करे ऐसे कर्म करते हैं ॥ १६ ॥ और रजोगुणसे जिनके मन हरे गये हैं, कामोंमें आत्मा उनकी लगी हुई है, इंद्रिय नहीं जीती है, घरमें जिनका मन सदा लगा रहता है और नित्य पितरोंका पूजन करते हैं ॥ १७ ॥ अर्थ, धर्म, काममें मनको लवलीन रखते, ईश्वरसे विमुख कथनीय यश गाने योग्य जिनके पराक्रम हैं, उन मधुद्वेषी परमपुरुषकी कथासे जो विमुख हैं ॥ १८ ॥ और जो पुरुष नारायणकी सुधारूपी कथाको त्यागकर रसिकग्रन्थोंमें मन लगाते हैं और उनहींके चरित्रोंको पढ़कर प्रसन्न होते हैं, जैसे सब उत्तमोत्तम पदार्थोंको तजकर विष्ठाभोजी विष्ठासे ही प्रसन्न होता है, ऐसे जो नीचलोगोंकी कथा कहानी सुनते रहते हैं, वे अभागी निश्चय भाग्य रहित हुए हैं, दैवने उनको भाग्यहीन बनाया है ॥ १९ ॥ जिन्होंने गर्भसे लेकर श्मशानपर्यन्त क्रिया की है, वे पुरुष सूर्यसे दक्षिणमार्ग होकर पितृलोकको जाते हैं, फिर कुछ काल व्यतीत कर अपने पुत्रादिकोंमें ही आकर जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ हे सति ! पितृलोकसे जब उसका सुकृत क्षीण होता है, तब देवतालोग उसके सब साधनोंको नष्ट कर देते हैं, उससे वह प्राणी विवश होकर फिर इसी मृत्यलोकमें आकर जन्म लेता है ॥ २१ ॥ इस लिये सब भावसे परमेश्वरके पदारविन्दका भजन करना मुख्य है, उनके गुणाश्रयीभूत भक्तिसे भजनीय चरणकमल भगवान्के हैं ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करे तो शीघ्र ही वैराग्य, ज्ञान, ब्रह्मदर्शन हो

---

१. शंका–कपिलदेवजी महाराजने अपनी मातासे कहा कि सब प्राणी संसारके कार्य सिद्ध होनेके लिये दुष्ट इंद्रियोंके वशीभूत जन नित्य परमात्माको भूलकर पितरोंका पूजन करते हैं, ऐसे भेदरूप वचन सांख्ययोगशास्त्रके जाननेवाले कपिलमुनिने क्यों कहा ? सांख्ययोगवाले तो सदा चर अचरको एकसम मानते हैं । सांख्ययोग जाननेवाले मुनियोंने कहा है कि, पितर जो हैं वह ईश्वरका रूप है तब भगवान्के रूप जो पितर उनमें भेद कहां ? क्यों पितर और हैं भगवान् और हैं, ऐसी दृष्टि कपिलदेवजीने क्यों की ?

समाधान–कपिलमुनिने ऐसे रोचक वाक्य इसीलिये कहे, कि किंचिन्मात्र भेद कियेसे भगवान्में मनुष्योंका प्रेम बढ़ेगा, तो मनुष्य सुख पावेंगे और भगवान्की भक्तिकी पुष्टता हो जायगी, जैसे ग्रामको जाना हो तो भटकना क्यों ? किसीसे सुन्दर मार्ग पूछ लेना और समझकर उस ग्रामको चले जाना, ऐसे ही वाक्य कपिलदेवजीने कहे हैं भेदरूप वचन नहीं कहे ॥

जाता है ॥ २३ ॥ जब इस भक्तका मन इंद्रियोंकी वृत्तिद्वारा समान अर्थोंमें अर्थात् प्रिय अप्रियमें विषयभावको नहीं ग्रहण करता ॥ २४ ॥ तब निःसंग, समदर्शी, त्यागने और ग्रहण करनेसे रहित हो जाता है, तब उसको आपही विदित हो जाता है कि स्वयंप्रकाश परमानंद आत्मा मैं ही हूं, ऐसा निश्चय हो जाता है ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष देखनेके योग्य पृथक्भावसे भगवान् एक प्रतीत होते हैं ॥ २६ ॥ इस विश्वमें समग्रयोगसे योगीजन अपना अभिमत अर्थ इतना ही मानते हैं कि, सब प्रकारसे सबसे संग छूट जाय ॥ २७ ॥ बहिर्मुख इंद्रियोंसे, अर्थरूपसे, भ्रांतिसे, शब्दादिधर्मसे, एक ज्ञान रूप, निर्गुण, बृहत्त्वादि गुणसे विशिष्टचैतन्य ब्रह्म प्रकाशता है ॥ २८ ॥ प्रथम एक रूप परमात्माका था, वही महत्तत्त्व, अहंकार, त्रिगुण, पंचभूत, स्वराट्, एकादशविधिका शरीर इनके रूपसे अनंत रूप प्रकट हुए। जिन महत्तत्त्वादिकोंसे इस प्राणीका देहरूप जगत् उत्पन्न हुआ ॥२९॥ जिस पुरुषका मन भक्तिसे, वैराग्य, श्रद्धासे, योगाभ्याससे एकाग्र हो गया है जिसकी आत्मा सब संग त्यागकर विरक्तिसे देखती है, वह महात्मा पुरुष इस भेदका निश्चय कर सकता है ॥ ३० ॥ हे मातः ! साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप हो जाता है और प्रकृतिपुरुषका तत्त्व दीखने लगता है, वह ज्ञान मैंने तुमको सुनाया ॥३१॥ मुझमें निष्ठा कर ज्ञान योग करना और निर्गुण भक्ति, इन दोनोंका अर्थ एक ही है, भगवत् शब्द लक्षणरूप है ॥३२॥ जिस प्रकार रूप रस-आदि, अनेक गुणयुक्त सब ही वस्तु पृथक् पृथक् मार्गवाली इंद्रियोंसे अनेक भांतिकी विदित होती है, जैसे कि हरड़ नेत्रसे हरित, जिह्वासे कसैली, त्वचासे अशीत प्रतीत होती है, इसी प्रकार एक ही भगवान् शास्त्रोंके द्वारा नानाप्रकारके ज्ञात होते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारकी शुभक्रिया करनेसे जैसे कुआँ, बावड़ी; वाटिका, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय आदिके यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ, आत्माके विचार, इंद्रियोंके जीतने, मनके दमन और कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास करनेसे ॥ ३४ ॥ अनेक अंगके योगाभ्यास, भक्तियोग, दृढ़ वैराग्य, सकाम निष्काम धर्म, प्रवृत्तिनिवृति मार्गमें निष्ठासे ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वबोध, दृढ़वैराग्य, सगुणनिर्गुण स्वदृक् भगवान्की इन सब साधनोंसे प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ मैंने भक्तियोगका स्वरूप तुमसे चार प्रकारका कहा और संसारके संहारकर्ता अप्रकट गतिवाले कालका भी स्वरूप तुमसे कहा ॥३७॥ हे मातः ! प्राणीकी अनेक योनि अविद्याकर्मसे निर्मित होती है, जिनकी गतियोंमें प्रविष्ट होनेसे अपने शुद्धस्वरूपको भूल जाता है, जैसा है, वैसा नहीं जानता और न ईश्वरकी गतिको पहिचानता है ॥ ३८ ॥ यह ज्ञान खल, अविनय, अभिमानी, दुराचारी, पाखण्डीको कभी सुनाना नहीं चाहिये ॥ ३९ ॥ लोभीको, गृहस्थको, अभक्तको और मेरे भक्तोंका द्रोह करनेवालोंको तो कभी भूलकर यह ज्ञान न सुनाये ॥ ४० ॥ इस ज्ञानके सुननेका अधिकारी वह है, जो श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीसे शत्रुता न करे, जीवमात्रसे मित्रता करनेवाला, शुश्रूषा करनेवाला, मेरी सेवामें तत्पर हो ॥ ४१ ॥ बहिर्मुख वैराग्यवाला; शान्तचित्तवाला, मत्सर रहित, पवित्र आत्मा, जो मुझको सबसे अधिक प्यारा माने, ऐसे पुरुषोंको यह ज्ञान उपदेश करना उचित है ॥ ४२ ॥ हे अम्ब ! जो पुरुष श्रद्धासे वारंवार इस कथाको सुने और कहे वह मुझमें मिलकर मेरी पदवीको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

सवैया—प्रीति प्रचण्ड लगे परब्रह्महिं और सबै कुछ लागत फीको ।
शुद्ध हृदै मन होय सो निर्मल द्वैत प्रभाव मिटे सब जीको ॥

गोष्ठऽरुज्ञान अनन्त चले जहँ सुन्दर जैसे प्रवाह नदीको ।
ताहिते जानि करो निशिवासर साधुको संग सदा अति नीको ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने सम्पूर्णवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दोहा–तेंतिसवें अध्यायमें, कपिलदेवको ज्ञान ।
सुनो देवहूती जबै, पायो पद निर्वान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार कपिलदेवजीके ज्ञानरूपी वचन सुनकर मोहपटली जिसकी दूर हो गयी, वह कर्दमजीकी प्यारी पत्नी और कपिलदेवजीकी माता देवहूति तत्त्वविषयोंसे अंकित सिद्धभूमि सांख्यशास्त्रके कर्त्ता कपिलदेवजीको प्रणाम कर स्तुति करने लगी ॥ १ ॥ देवहूति बोली कि यद्यपि आप ऐसे हैं तो भी अजन्मा, जलशायी, पञ्चमहाभूत इंद्रियार्थात्ममय यह आपका शरीर है, आप मेरे उदरसे जन्मे, सबका बीज संसार उसमें तुम्हारा मैं वारंबार ध्यान करती हूँ ॥२॥ हे नारायण! जिस समय आप जलके भीतर शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, उस स्वरूपका ब्रह्माजीने भी केवल ध्यान मात्र दर्शन किया उनको उस स्वरूपका साक्षात् दर्शन नहीं हुआ, वह चतुरानन आप ही जिनकी नाभिकमलसे प्रकट हुए हैं, वह आपकी महिमा को नहीं जान सकते, आप ही विश्वको उत्पन्न, पालन, संहार करते हो। संसारसे अनेक वीर्योंके विभाग किये कोई क्रिया नहीं करते। सत्य-संकल्प आत्माके ईश्वर तर्कमें नहीं आते, सहस्रशक्तिरूप आप हो ॥३॥ हे नाथ! जिस उदरमें प्रलयके समय यह सब विश्व था और आप अपनी विश्वमोहिनी मायासे बालक बन अपने चरणका अँगूठा चूसते हुए वटपत्रपर शयन कर रहे थे, हे प्रभो! तुमको मैंने उदरमें धारण किया ॥ ४ ॥ हे समर्थ! पापियोंके नाशके लिये और अपनी आज्ञा पालनके ऐश्वर्य प्राप्तिके कारण जैसे आपने सूकरादिक अवतार धारण किये हैं इसी प्रकार अपने आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये अवतार लिया है ॥५॥ आपके नाम श्रवण कीर्तन, प्रणाम, स्मरण करनेसे चाण्डाल भी यज्ञ करने योग्य हो जाता है, हे विभो! जिसने आपका दर्शन किया है, उसके शुद्ध होनेमें तो सन्देह ही क्या है ?॥६॥ हे नाथ! वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; जिसकी जीभसे आपका नाम निकलता है, इस लिये वह प्राणी सब प्राणियोंसे उत्तम विदित होता है कि जो पुरुष आपका यश वर्णन किया करते हैं, उन्होंने निःसंदेह पिछले जन्ममें कोई तप किया होगा, अथवा होम, तीर्थस्नान और एकाग्रचित्त हो वेदपाठ किया होगा, विना पूर्वजन्मके प्रभाव के भगवद्भजन करना बहुत कठिन है, जिसने तुम्हारा नाम लिया उसने सब कुछ किया ॥

भजन

रे मन कृष्णनाम कहि लीजै ।
गुरुके वचन अटल कर मानहु साधु समागम कीजै ॥
पढ़िये गुनिये भक्ति भागवत और कहा कथ खीजै ।
कृष्णनामरस बह्यो जात है तृषावन्त है पीजै ॥

कृष्णनामबिन जन्म बाद हैं वृथा जीवन कह जीजै।
सूरदास हरि शरण ताकिये जन्म सफल कर लीजै ॥ ७ ॥

परब्रह्म, परमपुरुष, सावधान हृदयमें ध्यान करने योग्य और तेजके प्रतापसे संसारकी मायाके नाश करनेवाले ऐसे सर्वव्यापक विष्णु वेदगर्भ आप कपिलदेवजीको मैं वारंवार प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पर पुरुष भगवान् कपिलदेवजीकी जब देवहूतिने इस प्रकार स्तुति की, तब गम्भीरवाणीसे कपिलदेवजी जननीपर दयालु हो बोले ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि, हे मातः ! सुन्दर सेवन करने योग्य मेरे कहे हुए मार्गमें स्थित होनेसे तुम थोड़े ही कालमें जीवन्मुक्तिको प्राप्त होगी ॥ १० ॥ जिस ब्रह्मविद्याका ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षियोंने सेवन किया है, इस मेरे मतपर श्रद्धास्नेहसे चल। इस भवभयसे निवृत्त हो जो मेरे समीप रहते हैं और जो ज्ञानी पुरुष मेरे इस सिद्धान्तका शान्तिचित्तसे चिन्तन करते हैं, वे अभयलोकको जाते हैं और जो इस मतसे विमुख हैं, वे सदा जन्म-मरणके चक्रमें घूमा करते हैं ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् कपिलदेवजी उस ब्रह्मवा-दिनी अपनी माता, सती देवहूतिको अपनी आत्मगति दिखाकर और समझाकर, आज्ञा ले आप तो वहांसे चले गये ॥ १२ ॥ और वह देवहूति पुत्रके कहे हुए मार्गसे योगाभ्यासमें एकाग्रचित्त हो सब आश्रमोंमें पुष्परचित मुकुटतुल्य, सरस्वती नदीके तीरपर सावधानतासे वास करने लगी-"यह स्थान गुजरातमें सीधपुरीके समीप है, वहां सरस्वतीजी बहती हैं, वहीं बिन्दुसरोवर है, वहीं कपिलदेवजीके आश्रम इत्यादि सब हैं" ॥ १३ ॥ उसी बिन्दु-सरोवरमें तीन वार स्नान कर, पीत कुटिल अलकोंको धारण किये कृशशरीरपर चीर पहने अपने आपको उग्र तपमें लगायी ॥ १४ ॥ कर्दमजी प्रजापतिने तप और योगके प्रभावसे वर्द्धित, जिसकी उपमा नहीं, देवता प्रार्थना करें ऐसे अनुपम गृहस्थाश्रमको त्याग दिया ॥ १५ ॥ दुग्धफेनके समान निर्मल और कोमल शय्या, हाथी दांतके जिसमें पाये; सुवर्णकी सामग्री; कञ्चनके आसन, सुन्दर स्पर्शयोग्य जहां बिछे थे ॥१६॥ स्वच्छ स्फटिकके आलोंमें महामरकतमणि जड़ी थीं; रत्नोंके दीपक प्रकाश करते थे और स्त्रीरत्नोंसे सब स्थान शोभायमान थे ॥ १७ ॥ भवनोंके उद्यान जिनमें अनेक-अनेक प्रकार के पुष्पोंवाले वृक्ष फूलोंसे फूले हुए, कल्पवृक्षोंसे रमणीक, पक्षियोंके जोड़ जहां कूज रहे, मतवाले भौंरे जहां गुञ्जार रहे, सरोवरोंमें सुन्दर-सुन्दर कमल खिल रहे, जिनकी रज मकरन्दको भ्रमर पान करते थे और झरझरकर जलमें गिरती थी ॥ १८ ॥ उस फुलवाड़ीमें हरिके पूजनार्थ जिस समय देवहूति जाती थी, तो उस समय देवताओंके भृत्य गंधर्व-गण समीप मधुर-मधुर स्वरोंसे गाते थे और कमलकी सुगन्धिवाली वापीके भीतर जिसको कर्दमजी रमण कराते थे ॥ १९ ॥ देवहूतिका सुखभवन ऐसा शोभायमान था कि इन्द्राणी उसके सुखकी अभिलाषा करती थी ऐसे सुखको कर्दमजीके वियोगमें त्याग दिया था, जब पुत्रका वियोग हुआ तो उसके विरहमें आतुरतासे उनका मुख कुम्हला गया ॥ २० ॥ प्रजापति कर्दमजीके स्त्री, पुत्रका मोह तज वनको चले जानेसे और जब दूसरे पुत्रका वियोग हुआ, उस समय तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी इतनी अधिक देवहूति व्याकुल हुई, जैसे बछड़ेके बिछुड़नेसे उत्तम गायकी दुर्दशा हो जाती है ॥ २१ ॥ हे विदुरजी ! वह देव-

हूति अपने पुत्र कपिलदेवजीका ध्यान करनेसे थोड़े ही कालमें वैभवयुक्त घरकी इच्छा त्याग अनन्यगतिको पहुँच गयी–

चौ०–अचलचित्त हरिचरण लगाई ❋ ब्रह्मलोकलौं विभव बिहाई।
स्वप्नसरिस सुख सकल बिसारी ❋ कर समाधि तनु सुरति निवारी॥२२॥

जो ज्ञान ध्यानगोचर भगवद्रूप भगवान् कपिलदेवजीने देवहूतिसे कहा था उसीका ध्यान करने लगी और प्रसन्नमुखवाले पुत्रकी चिन्ताका त्याग किया ॥२३॥ भक्तिके प्रवाहयोगसे बली वैराग्यसे और युक्त अनुष्ठानसे; ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ विशुद्ध जीवात्मा विश्वतो-मुख आत्माको, अपने अनुभवसे जिसके माया सम्बन्धी विशेषगुण अन्तर्हित हो गये हैं उसका ध्यान करने लगी ॥२५॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् ब्रह्ममें जिसका मन स्थिर हो गया और सब भाव दूर हो गये, सब क्लेश मिट गये और सब जीवन्मुक्तका सुख प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ नित्य समाधि लगानेसे गुणोंके सब भ्रम दूर हो गये उस समय अपने देहका अनुसंधान न रहा; जैसे स्वप्नकी वस्तुका स्मरण जागे हुए पुरुषको नहीं रहता, इसी प्रकार देवहूतिको अपने देहका स्मरण जाता रहा॥२७॥ वह देह कर्दमादिसे रक्षित अकृश मनको कुछ ग्लानि नहीं मानती थी, मलसे ढकी हुई धूमसहित अग्नि जैसे प्रकाश करती है ॥ २८ ॥ तपयोगमय, खुले केश, वस्त्र पहने, ईश्वररक्षित, वासुदेवमें जिसकी बुद्धि प्रविष्ट, ऐसी वह अपने शरीरका अनुसंधान भूल गयी ॥२९॥ इस प्रकार कपिलदेवजीके कहे हुए मार्गमें चलनेसे थोड़े ही दिनोंमें परब्रह्म आत्माके सुखरूप भगवान्को प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ हे विदुर ! जहां वह देवहूति जीवन्मुक्त हुई, पुण्यतम, परमपवित्र, त्रैलोक्यमें विदित सिद्धपदनामसे वह आश्रम विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ हे विदुर ! योगबलसे उसके शरीरका सब मल भस्म हो गया और देवहूतिकी मनुष्यदेह सरस्वतीनदी-रूप हो गया; वह नदी सब नदियोंसे श्रेष्ठ हुई, सब सिद्धोंकी सिद्धिको देनेवाली है जिसके निकट सिद्धपुरुष वास करते हैं ॥ ३२ ॥ भगवान् कपिलदेवजी महायोगी पिताके आश्रमसे मातासे आज्ञा लेकर ईशानकोणकी ओरको गये ॥ ३३ ॥ वहां सिद्ध, चारण, गंधर्व, सुर, मुनि, अप्सरागणोंने उनकी स्तुति की और समुद्रने भी उनका पूजन कर अनेक-अनेक प्रकारकी भेंट दे अपने भीतर रहनेको स्थान दिया ॥ ३४ ॥ अबतक भगवान् कपिलदेवजी महाराज त्रिलोकीकी शांतिके निमित्त सावधान हो, योग धारण कर उसी स्थानपर विराजमान हैं और सदा सांख्यशास्त्रके आचार्य उनकी सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥ हे तात ! हे पापरहित ! जो तुमने भगवान् कपिलदेवजी और सती देवहूतिका पवित्र संवाद हमसे पूछा, उसे विस्तार सहित हमने वर्णन किया ॥ ३६ ॥ यह परमगुह्य कपिलदेवजीका आत्मयोग साधनेके लिये जो महात्मापुरुष सुनेंगे और कहेंगे, उनकी बुद्धि गरुड़ध्वज भगवान्के चरणारविंदोंमें लगी रहेगी। भगवान् कैसे हैं–

शंका–त्रिलोकीके नाथ कपिलदेव भगवान्ने समुद्रकी दी हुई भूमिमें बैठकर क्यों तप किया। जो दीनसे दीन होता है वह कोई वस्तु और दूसरेसे मांगता है।

उत्तर–सांख्ययोग नष्ट हो गया था, उस सांख्ययोगको प्राप्त करके और पृथ्वीमें सांख्ययोगकी स्थिति करनेके लिये भगवान् कपिलदेवजीने अवतार धारण किया है, जैसा चराचर जीव प्रसन्न होकर शुभ कर्म करेंगे, वैसा भगवान् भी कर्म करेंगे, किसी प्राणीमात्रको दुःख नहीं देंगे, इस लिये समुद्रके दिये स्थानमें पूजन ग्रहण किया ॥

सवैया

जाकी कृपा शुकज्ञानी भये, अति दानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी।
जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी॥
जाकी कृपा भये शेष महेश, गणेश दिनेश महातपधारी।
सोई हमारे हियेमें बसो ब्रजचन्द मुकुन्द गोविन्द मुरारी॥ ३७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते तृतीयस्कन्धे कपिलान्तर्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३३॥ शुभमस्तु॥

तृतीय स्कन्ध समाप्त

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

चतुर्थ स्कन्ध ४.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



ध्रुवाख्यान

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

चतुर्थ स्कन्ध

सोरठा–जय प्रभु जगदाधार, करुणानिधि करुणायतन।
भक्त हेत तन धार, हरत भूमिको भार तुम॥
जय वृंदावन ईश, जय यदुपति जय श्यामघन।
जय जय जय जगदीश, चरण शरण मुहिं राखिये॥
हे वृन्दावनचन्द्र, श्रीगोविन्द सुखकन्द हरि।
हरहु सकल दुख द्वंद, काटे गजके फंद जिमि॥
शिव अज सनत्कुमार, नारद शारद शेष शशी।
राखो नाम तुम्हार, शरणागतवत्सल प्रभू॥
करहु कृपा तुम आज, मूषकवाहन गजवदन।
जय गणेश गणराज, कहौं चतुर्थस्कन्ध अब॥
दोहा–इसी चतुर्थ स्कंधमें, हैं इकतिस अध्याय।
तिनकी भाषा रचत हौं, सुमिरौं श्रीयदुराय॥
कहौं प्रथम अध्यायमें, मनुपुत्रिनको वंश।
यज्ञ रूप अवतार धर, करें असुर विध्वंस॥

मैत्रेयजी बोले कि, मनुजीने शतरूपानारीमें आकूति, देवहूति, प्रसूति, नाम तीन पुत्री और दो पुत्र उत्पन्न किये॥ १॥ यद्यपि रुचिप्रजापति आकूतिका भाई अर्थात् मनुका पुत्र था, परन्तु तो भी मनुने शतरूपाकी सम्मतिसे रुचिप्रजापतिके साथ पुत्रिकाधर्मका आश्रय लेकर उसका विवाह कर दिया, पुत्रिकाधर्म उसको कहते हैं कि "यह कन्या विना भाईकी अलंकृत भूषित तुमको देता हूं, इससे जो प्रथम पुत्र उत्पन्न होगा मैं लूँगा"॥२॥ ब्रह्मतेजस्वी श्री भगवान् रुचिप्रजापतिने परमसमाधिसे उसमें एक जोड़ा उत्पन्न किया॥३॥ जो उनमें पुरुष हुआ वह साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूपधारी थे और जो स्त्री वह नित्य श्रीनारायणके संग रहने वाली दक्षिणा हुई, यह लक्ष्मीजीका अंशरूप थी॥४॥ उस महाप्रकाश अपनी पुत्रीके पुत्रको

अत्यन्त प्रसन्नतासे स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और रुचिप्रजापतिने आनन्दसहित दक्षिणाको अपने पास रख लिया ॥५॥ दक्षिणा जब कामकी इच्छाके योग्य हुई, तब भगवान् यज्ञपतिने उसके साथ विवाह किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दक्षिणामें बारहपुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव, रोचन ॥ ७ ॥ यह स्वायम्भुवमन्वन्तरमें तुषित नामके देव हुए, मरीचि आदि ऋषि हुए और यज्ञ सुर गण ईश्वर इन्द्र हुए, श्रीभगवान्‌जीके छः प्रकारके अवतार ये भी हैं– "मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः । ऋषियोंऽशावतारश्च हरेः षड्विध उच्यते" यह बात आगे विस्तार सहित कहेंगे ॥८॥ राजा मनुके महाबली और अतिपराक्रमी प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए; उनके पुत्र-पौत्र नातियोंके वंशसे मन्वन्तर अत्यन्त भर गया ॥ ९ ॥ हे तात ! मनुने देवहूतिका विवाह तो कर्दमजीके साथ कर दिया, उसकी कथा तो मैं प्रथम ही आपसे कह आया हूं ॥१०॥ अब भगवान् मनुजीने ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको प्रसूति नाम कन्या विवाह दी, जिस प्रसूतिके वंशका विस्तार संसारमें ऐसा बढ़ा कि जिसका यश आजतक त्रिलोकीमें छा रहा है ॥११॥ और जो कर्दमजीकी नौ पुत्रियां थीं वे ब्रह्मर्षियोंकी पत्नियाँ हुईं ! उनमेंसे प्रसूतिके जो सन्तान हुई उनका वृत्तांत मुझसे सुनिये ॥ १२॥ मारीचिकी पत्नी कर्दमजीकी कन्या कलाने कश्यप व पूर्णिमा दो पुत्र उत्पन्न किये उन दोनोंके वंशसे यह सब संसार परिपूर्ण हो गया॥१३॥ हे शत्रुतापन ! पूर्णिमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, विरज व विश्वग । इनके अतिरिक्त देवकुल्यानामक एक पुत्री उत्पन्न हुई, जो नारायणके चरण नित्य प्रति प्रेमसे धोती थी और उन्हींके प्रतापसे जन्मान्तरमें आकाश गंगा अर्थात् सुरसरिता हुई ॥ १४॥ अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाके सुन्दर यशकर्ता तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो विष्णु शिवके अंशसे दत्तात्रेय, दुर्वासा, सोम ये तीनों महातेजस्वी हुए ॥१५॥ विदुरजी बोले कि, हे गुरो! अत्रि ऋषिके भवनमें देवताओंमें श्रेष्ठ उत्पत्ति, पालन और संहारकर्ता इन तीनोंने किस कारण आकर अवतार लिया ? कृपा कर मुझसे वर्णन कीजिये ॥१६॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि, अत्रि ऋषिको ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ समझकर ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेके लिये प्रेरणा की, उस समय अत्रिऋषि अपनी भार्याको सङ्ग ले कुलाचलपर्वतपर ऋक्षनामक तीर्थमें जाकर तप करने लगे ॥ १७ ॥ जहां पुष्पोंके गुच्छे, अशोक व पलाशके वृक्षोंमें लाल-लाल लटक रहे हैं, उसकी अद्भुत शोभा व निर्विन्ध्या नदीके चारों ओर झरनोंके जलका शब्द हो रहा है॥१८॥ उस मनोहर स्थानमें सुख-दुःखको समान समझकर प्राणायामसे चित्तको रोक सौ वर्षतक एक पांवसे खड़े हो पवनको भक्ष्य बना तप करने लगे ॥१९॥ और इस प्रकार वे वारंवार चिंतन करते थे कि जगदीश्वर, जगत्‌का जो स्वामी है मैं उसकी शरणागत हूँ, वह जैसा आप है इसी प्रकारकी सन्तान मुझको दे ॥ २० ॥ प्राणायामकी बढ़ी हुई अग्नि जो ऋषीश्वरके शीशमें प्रकट हुई उससे त्रिभुवन तपने लगा, उस समय तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥ २१ ॥ अत्रिमुनिके स्थानपर गये, जाकर देखा तो अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, नाग ये सब देवता अत्रिमुनिके यशका गान करते हैं ॥ २२ ॥ इन दोनों देवताओंके प्रकट होनेसे मुनिका मन चकित हो गया परन्तु तो भी एक पांवसे खड़े होकर मुनिने श्रेष्ठदेवोत्तमों का दर्शन किया ॥ २३ ॥ और पुष्पादिक अञ्जलिमें लेकर, प्रसन्न मनसे दण्डवत् प्रणाम कर वृष, हंस, गरुड़पर बैठे अपने-अपने त्रिशूल, कमण्डलु,चक्र इन चिह्नोंसे चिह्नित तीनों देवता-

ओंका पूजन किया ॥ २४ ॥ अनुग्रहकी दृष्टि व मुसकाते मुखसे सुशोभित कांति जानकर अपने मिचे हुए नेत्रोंको मल ॥ २५ ॥ दोनों हाथ जोड़, उनमें ही अपने मनको लगा कोमल मधुर मनोहर वाणीसे त्रिलोकीनाथोंकी स्तुति कर ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि, युगयुगमें सृष्टि, उत्पत्ति, पालन व संहार करनेके लिये विभाग किये हुए मायाके गुणोंसे जिन्होंने देह धारण किये हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो, आप तीनोंको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, उन तीनोंमेंसे आप कौन हैं ? मैंने तो एकको बुलाया था इस बातको आप मुझसे कहिये ॥ २७ ॥ मैंने यहां विविध-विधान व अनेक प्रकारके उपचार करके संतान होनेके लिये केवल एक भगवान्‌का ध्यान किया था, आप तीनों देव कृपा करके यहां कैसे आये ?

दोहा-कारण मोहिं कृपा करि, स्वामी देहु बताय।
तौ मेरे मनको सकल, विस्मय जाय नशाय ॥ २८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वे तीनों देवश्रेष्ठ इस प्रकार मुनीश्वरके वचन सुनकर हे प्रभो ! इस प्रकार कोमलवाणीसे हँसकर कहने लगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि, हे ब्रह्मन् ! जैसा संकल्प आपने किया था, उसी प्रकार हम आये, इसमें किंचिन्मात्र भी अंतर नहीं हुआ, आपने हम सबका ही ध्यान किया था ॥ ३० ॥ हे मुने ! इसलिये हम तीनोंके अंशसे जगत्-विख्यात आपके तीन पुत्र होंगे और सब संसारमें आपके यशका विस्तार करेंगे, उसीसे आपका कल्याण होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे तीनों सुरेश्वर मनोवांछित वर देकर और मुनिसे आदर पाकर उन दोनों स्त्रीपुरुषोंके सम्मुख अपने-अपने स्थानको गये ॥ ३२ ॥ कुछ कालोपरान्त ब्रह्माके अंशसे सोम सुत हुआ और विष्णुके अंशसे योगवेत्ता दत्तात्रेयजी प्रकट हुए और शिवके अंशसे महा ऋषि दुर्वासा उत्पन्न हुए। अब अंगिराऋषिके वंशका वृत्तान्त सुनो ॥३३॥ अंगिराकी श्रद्धा नाम पत्नीमें चार कन्या उत्पन्न हुईं-सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति ॥ ३४ ॥ उनके दो पुत्र और हुए, जो स्वायंभुवमन्वन्तरमें विख्यात हैं, एक तो साक्षात् भगवान् उतथ्य हुए और दूसरे ब्रह्मज्ञानी सुरगुरु बृहस्पतिजी ॥३५॥ और पुलस्त्यजीके हविर्भू नाम पत्नीमें अगस्त्यजी उत्पन्न हुए, जो दूसरे जन्ममें जठराग्निरूप हुए और उनके दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा हुआ ॥३६॥ विश्रवाके इडविडाभार्यामें यक्षपति देवता कुबेर हुआ, केशिनी नाम भार्यामें रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तीन पुत्र हुए, इस बातपर एक दृष्टांत है "एक थोड़े पढ़े-लिखे पंडित थे, परंतु बात बनानेमें पहले सिरेके चतुर थे, वे एक दिन किसी शास्त्री पंडितके स्थानपर गये। शास्त्रीजीने बड़े आदरसत्कारसे अपने निकट बैठाकर पूछा कि, आप कहांसे आये हैं ? पंडितजी बोले कि, श्रीगंगाजीके किनारे मधुसूदनजीके मंदिरमें रामायणकी कथा होती है वहाँ गया था। शास्त्रीजी बोले कि, कौनसा काण्ड

१. शंका-ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिसे कहा कि जो संकल्प आपने मनमें करके तप किया है उसी संकल्पकी सिद्धि होनेके लिये हम तीनों जन आपके सन्मुख आये हैं, अत्रिमुनिने अपने मनमें जो संकल्प करके तप किया था वह क्या संकल्प था जिसको अत्रिमुनिने भी गुप्त रक्खा और ब्रह्मा, विष्णु, महेशनेभी गुप्त रक्खा !

उत्तर-अत्रिमुनिने ॐकारअक्षरको ब्रह्मा, विष्णु, शिव समरूप समझकर और ॐकारका रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिवको अपना पुत्र होनेके लिये ॐकार-अक्षरका जप किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिवने अत्रिमुनिके हृदयका गूढार्थ विचार कर तीनों देव अत्रिमुनिके पुत्र हुए, दत्तात्रेयजी, दुर्वासा मुनि और चन्द्रमा ॥

होता है ? और आज क्या कथा हुई थी ? पंडितजी बोले कि, लंकाकाण्ड होता है और आज पंडितजीने रामराभणका युद्ध इस प्रकार वर्णन किया कि, सब श्रोता पंडितजीको वारंवार धन्यवाद देते थे। शास्त्रीजी बोले कि, पंडित होकर अशुद्ध शब्द बोलते हो (राभण) शब्द नहीं है, रावण है। पंडितजी बोले कि; कुम्भकर्ण, विभीषण, दोनोंके नाममें तो दूसरा अक्षर (भ) है, फिर रावणके नाममें भी दूसरा अक्षर (भ) अवश्य होना चाहिये क्योंकि वह तो सबसे बड़ा था, उसके नाममें दूसरा अक्षर (व) किसी प्रकार नहीं बन सकता, बरन् इसीकी साक्षीमें किसी महात्माने यह श्लोक भी कहा है–

श्लोक–भकारः कुम्भकर्णेऽस्ति भकारोऽस्ति विभीषणे।
तयोर्भ्रातरि ज्येष्ठ च भकारो न कथं भवेत् ॥ ३७ ॥

हे महामुने ! पुलहकी गति नाम सती स्त्रीमें तीन पुत्र उत्पन्न हुए। कर्मश्रेष्ठ, वरीयान्, सहिष्णु ॥ ३८ ॥ और ऋतुकी क्रियानाम भार्याने ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान साठ सहस्र वालखिल्यादि ऋषि उत्पन्न किये ॥ ३९ ॥ हे महामुने ! वसिष्ठजीकी ऊर्जा नाम स्त्रीमें चित्रकेतु आदि निर्मल ब्रह्मऋषिसे सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥४०॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, द्युमान् और दूसरी भार्यामें शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ और अथर्वणकी चित्ति नाम पत्नीमें धृतव्रत, अश्वशिरा, दध्यश्च नाम पुत्र उत्पन्न हुए। अब हमसे भृगुमुनिके वंशका वृत्तांत सुनो ॥४२॥ हे महाभाग ! ख्यातिनाम भार्यामें भृगुजीने धाता-विधाता नाम दो पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रीलक्ष्मीजीको उत्पन्न की ॥ ४३ ॥ मेरुने अपनी आयति, नियति दोनों पुत्री धाता, विधाताको विवाह दीं। धाताके आयति नाम पत्नीमें मृकण्ड, नाम सुत हुआ और विधाताके नियति नाम भार्यामें प्राण नाम पुत्र हुआ ॥४४॥ और मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राणके सुत वेदशिरा मुनि हुए और भृगुके पुत्र भगवान् उशना नामक शुक्राचार्य्य हुए ॥४५॥ हे विदुर ! मुनीश्वरोंने सृष्टि रचकर इस प्रकार लोकोंकी वृद्धि की ॥

दोहा–कर्दमकन्यावंश यह, तुमको दियो सुनाय।
श्रवण करत श्रद्धासहित, पाप पहार बिलाय ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसुति नाम कन्याके सङ्ग विवाह किया ॥४७॥ और उसमें निर्मल कांतिवाली चन्द्रवदनी सोलह पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे तेरह तो धर्मको विवाह दीं, एक अग्निको ॥४८॥ एक पितृगणोंको और एक संसारनाशक शिवजीको विवाह दी। श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति ॥ ४९ ॥ बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति ये तेरह धर्मकी दारा हुईं। श्रद्धाने शुभ नाम पुत्र उत्पन्न किया, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय॥५०॥ शांतिने सुख, तुष्टिने मुद और पुष्टिने गर्व पुत्र उत्पन्न किया, क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धिने अर्थ ॥ ५१ ॥ मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, ह्रीने प्रश्रयको उत्पन्न किया और मूर्तिके यहां सब गुणोंके उत्पादक नर-नारायण नाम दो ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके जन्मके समय यह विश्व परमानंदित हुआ ॥५२॥ और मन, दशों दिशा, वायु, सरित् और सब पर्वत अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५३॥ और स्वर्गमें दुन्दुभि आदि उत्तम-उत्तम बाजे बजने लगे; देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, ऋषीश्वर प्रसन्न हो स्तुति करने लगे, गन्धर्व, किन्नर मधुर-मधुर स्वरोंसे गाने लगे ॥५४॥ देवांगना नृत्य करने लगीं, ब्रह्मादिक देवता स्तोत्र पढ़-पढ़ स्तुति करने लगे, इस

प्रकार सब संसारमें परम मङ्गल हो गया ॥५५॥ सब देवता कहने लगे कि जो भगवान् अपनी निज मायासे आकाशरूपकी नाईं अपनी आत्माको प्रकाश करनेके लिये आज धर्मके मन्दिरमें आद्यऋषि मूर्तिरूप हो प्रगट हुए, उन आद्यपुरुष महात्माको हम नमस्कार करते हैं ॥ ५६ ॥ अपने विद्याके बलसे देवता जिनके तत्त्वका अनुमान करते हैं, वे भगवान् जगत्की उत्पत्ति, पालन, नाशके लिये तत्त्वगुणसे रचित लक्ष्मीके निवासभूत कमलकी भी तिरस्कारकर्ता अपने जनोंके सम्मुख करुणा युक्त दृष्टिसे देखो ॥५७॥ हे विदुर ! इस प्रकार जब देवताओंने प्रार्थना की, तब भगवान् नर-नारायण देवताओंकी ओर निहार अपनी पूजा अंगीकार कर गंधमादन पर्वतको चले गये ॥ ५८ ॥ ये उन्हीं दोनोंने भूमिका भार उतारनेके लिये यहां अवतार धारण किया है। इनमें नरके अंशसे तो कुरुकुलमें अर्जुन उत्पन्न हुआ और साक्षात् नारायणने यदुकुलमें श्रीकृष्णरूप धारण किया ॥५९॥ अग्निकी पत्नी स्वाहाने महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न किये पावक, पवमान, शुचि ये उनके नाम हैं ॥ ६० ॥ इन तीनोंसे पैंतालीस (४५) अग्नि उत्पन्न हुए, इस प्रकार प्रपिता, पितामह, पिता मिलकर उनचास अग्नि (४९) हुए॥६१॥वैदिक कर्मरूप यज्ञमें ब्राह्मण जिनका नाम ले लेकर अग्निदेवताको आहुति देते हैं वे सब अग्नि ये हैं ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, सौम्य और आज्यप ये पितृगण हैं, इनमें कोई साग्नि हैं और कोई अनग्नि हैं। इन सबकी पत्नी केवल एक दक्ष पुत्री स्वधा है ॥ ६३ ॥ पितरोंसे स्वधामें दो कन्या उत्पन्न हुईं —यमुना और धारिणी, ये दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान, विज्ञानमें परायण हुईं ॥ ६४ ॥ शिवजीकी पत्नी सती, शिवजीकी सेवा करने लगी, परन्तु सतीको आपके समान गुणवान्, शीलवान् पुत्र प्राप्त नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ दक्षप्रजापतिने शिवजीको सती विवाही; परन्तु अपने समान नहीं समझा और शिवजीके प्रतिकूल चला, तब सतीने रोष करके युवा अवस्था न देखी, छोटी ही अवस्थामें योगाभ्यास करके निर्मल बुद्धिसे अपनी देहका त्याग कर दिया ॥ ६६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे मनुकन्यान्वये नर-नारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—कहौं द्वितीय अध्यायमें, प्रजापतिनको यज्ञ।
किये वैर जिमि शंभुसे, दक्षप्रजापति अज्ञ ॥
सुनि मित्रासुतके वचन, विदुर परमसुख पाय।
जोरि युगल करकंज पुनि, विनय करत परि पाय ॥

विदुरजी बोले कि, शीलवानोंमें शीलसिंधु शिवसे दुहितृवत्सल दक्षप्रजापतिने किस लिये विद्वेष किया और अपनी कन्या सतीका अनादर क्यों किया ॥ १ ॥ शान्तिरूप, चराचरके स्वामी, द्वेष रहित, जगत् पूज्य, त्रिलोकीनाथ, आत्माराम, सुराधीश ऐसे भोलेभाले, शिवसे दक्षने क्यों विरोध किया ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जामाता और ससुरमें ऐसा भारी वैर कैसे पड़ गया ? जिससे सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंको भी त्याग दिया, यह सब कथा भिन्न-भिन्न कर मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले, कि विश्व रचनेवाले मरीचिके यज्ञमें वसिष्ठ नारदादि बड़े-बड़े ऋषीश्वर मुनीश्वर अपने-अपने अनुगामियोंसहित देवगण मुनि और अग्नि सब इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ उस महासभाका अधिकार अपने तेजकी कांतिसे दूर

करते हुए सूर्यके समान प्रकाशवान् दक्षको आता देखकर ॥ ५ ॥ सब सभासद अपने-अपने स्थानोंसे अग्निसमेत उठ खड़े हुए, क्योंकि उसके तेजके प्रभावसे सबके हृदयमें घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी, परन्तु ब्रह्मा और महादेवजी आसनसे न उठे ॥ ६ ॥ और सब सभासदोंने दक्षप्रजापतिका अत्यन्त आदर-सम्मान किया, तब दक्ष लोकगुरु ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे आसन पर बैठ गया ॥ ७ ॥ अपने आनेसे पहले शिवको बैठा देखा और अपने मनमें समझा कि शंकरने मेरा अनादर किया, क्योंकि मुझको देखकर न उठे, इस बातको न सह सका और कोपदृष्टिसे तिरछे नेत्र कर बोला ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मऋषियो ! हे देवताओ ! ! हे अग्निसहित सब जनो ! ! ! सुनो, महात्मापुरुषोंका जो उत्तमाचार है वह कहता हूँ, कुछ अज्ञान और ईर्ष्यासे नहीं कहता ॥ ९ ॥ शिवको कुछ लज्जा नहीं, यह लोकपालोंके यशका नाश करनेवाला है, इस अभिमानीने अपने अभिमानसे सज्जनोंके चलाये हुए मार्ग और आचरणोंको दूषित कर दिया ॥ १० ॥ यह मेरा जामाता मेरे शिष्यभावको प्राप्त है, ब्राह्मण और अग्निके सम्मुख, गायत्रीसम मेरी पुत्रीका साधुकी नाईं पाणिग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और इस मर्कट सम नेत्रवालेने मेरी मृगछौनासी नेत्रवाली भोलीभाली कन्याका पाणिग्रहण करके इसको उचित था कि औरोंके समान उठकर मुझको प्रणाम करता, परन्तु इसने वाणीसे मेरा सत्कार नहीं किया ॥ १२ ॥ इसीलिये मैं अपनी कन्याका इस क्रिया रहित, अशुचि, अनाचारी, महाअभिमानी, मर्य्यादाहीनके साथ विवाह करना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने अपनी मूर्खतासे बिना इच्छाके बेटी विवाह दी, जैसे कोई शूद्रको वेद लक्षण सुन्दरवाणी सिखलाता है ॥ १३ ॥ यह घोर मर्घटका निवासी, भूत, प्रेत, पिशाचोंके संग रहनेवाला उन्मत्तके तुल्य, नंगा, शिरके बाल खोले, कभी हँसता कभी रोता फिरता है ॥ १४ ॥ चिताके भस्मको सदा शरीरमें लगाता है, प्रेतोंके मुँडोंकी माला सदा कण्ठमें पहनता है, हड्डियोंके गहने पहने श्मशानमें विचरता है । नाम तो लोगोंने इसका शिव रख दिया है, परंतु निरा अमंगलकी खानि है और उन्मत्त लोगोंसे इसकी प्रीति है ।

चौ०—आप मत्त मतवारन प्यारो * सदा अशिव शिव नामहि धारो ।
तामसि भूत पिशाचनि नाथा * सज्जन याहि नवावहिं माथा ॥

कवित्त—वेष जगसे निराला पिये भांग भर प्याला, रहै मतवाला साथी भूतन बनाये हैं । गल सोहै मुंडमाला कर डमरू विशाला, सदा ओढ़े मृगछाला चिता भस्म तनु लाये हैं ॥ एक मत्तबैल पाला जाते होत प्रति-

१. शंका—शास्त्रोंमें लिखा है कि श्वशुरको पिताके समान मानना चाहिये, ऐसी मर्यादाके रक्षण करनेवाले महादेवजी ब्रह्माकी सभामें दक्ष जो सतीके पिता थे और शिवजीके श्वशुर थे उनको देखकर अपने आसनसे क्यों नहीं उठे ? यह बड़ी शंका है ।

उत्तर—जब बड़ा राज्य दक्ष प्रजापतिको प्राप्त हुआ तब दक्ष सब सज्जन महात्माओंकी निन्दा रात दिन करने लगा और बड़ा अभिमान हो गया, तब सब सज्जन महात्माओंने दक्षका अभिमान नाश करनेके लिये शिवजीकी प्रार्थना की। तब शिवजी दक्षका मान भंग करनेके लिये बीज उत्पत्ति करनेके वास्ते सभामें आये, उस समय दक्षको देखकर शिवजी नहीं उठे, शिवजीने विचार किया कि उसको देखकर हमको अपने आसनसे उठना चाहिये हम नहीं उठेंगे तो यह महाअभिमानी हमको क्रोधसे कटु वचन कहेगा तब उसके अभिमानका हम नाश करेंगे ॥

पाला, नाम धरो है अकाला जटा शिर बढ़ाये हैं। ऐसा हृदयका काला कहीं नहीं देखा भाला, वरै नेत्रोंमें ज्वाला व्याल तनु लिपटाये हैं॥ १५॥

त्रिपुण्ड्रधारी, त्रिशूल लिये, तीन नेत्रवाला, सर्पोंका भूषण पहने, तमोगुणी प्रथम भूतोंका पति यह है॥ १६॥ इस भूतनाथ, भ्रष्टाचरण, दुष्टहृदय, कठोरचित्त शिवको ब्रह्माके कहनेसे अपनी महासीधी-साधी सती इस अज्ञानीको विवाह दी। मुझे यह बड़ा भारी खेद है॥१७॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने अप्रतिकूल बैठे शिवकी इस प्रकार निन्दा करके वह क्रोधी दक्ष जलका आचमन कर शिवको शाप देने लगा॥ १८॥ कि यह शिव देवताओंके यज्ञमें इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु, देवताओंके संगमें भागका अधिकारी न हो, क्योंकि देवगणोंमें यह अधम है॥ १९॥ हे राजा परीक्षित्! सब सभासदोंमें जो मुखिया थे उन्होंने भी अत्यन्त निषेध किया, तो भी दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर, वहांसे उठ अपने स्थानको चला गया॥ २०॥ शिवजीके गणोंमें प्रधान नंदीश्वरने जब शिवके शाप देनेका समाचार सुना, उस समय महारोषमें भर लाल-लाल नेत्र कर महादारुण शाप दिया और जिन ब्राह्मणोंने शाप देनेके समय दक्षकी बड़ाई की थी, उनको भी शाप दिया॥२१॥ श्रीभगवान् महादेवजी समदर्शी हैं, किसीसे द्रोह नहीं रखते, ऐसे प्रभुसे द्रोह करके अज्ञानी पृथक् दृष्टिवाला तत्त्वसे विमुख हो॥२२॥ जो कपटकर्ममें परम प्रवीण गृहोंमें संसारके सुखकी इच्छासे आसक्त हैं, वेदवादियोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य धर्म मानते हैं॥ २३॥ देहको जीवको ईश्वर माननेवाली बुद्धिसे पशुवत् ईश्वरकी गति भूल स्त्रीकामी दक्षका थोड़े ही समयमें बकरेसा मुख हो जाय॥ २४॥ विद्या, बुद्धि, कर्ममयी अविद्यामें यह जड़ हो और यहां जो लोग शिवजीका अपमान करनेवाले हैं और जो उनके साथी हैं, वे सदा संसारमें जन्मते-मरते रहें॥ २५॥ जिसकी मीठी वाणी पुष्पके समान खिली हुई बहुत सुगंध देनेवाली केवल चित्तको प्रसन्न करनेवाली है ऐसी वेदवाणीके मोह करनेवाले मधुरवचनसे मूर्खोंके मन मथित हो रहे हैं, वे हरद्वेषी सदा मोहको प्राप्त हों॥२६॥ और ब्राह्मण भक्ष्याभक्ष्य विचाररहित हों, सबके घर भोजन करें; केवल उदरपोषणके ही लिये विद्या, तप, व्रत करें और धन शरीरके सुखके लिये संसारमें याचक बनें और घर-घर मांगते फिरें॥ २७॥ द्विजकुलको नंदीने जब इस प्रकार शाप दिया, यह शाप सुन भृगुजीसे न रहा गया और महाकठोर शाप दिया॥ २८॥ जो कोई शिवका व्रत धारण करेगा और उनका अनुवर्ती होकर चलेगा, वह पाखंडी हो सत्शास्त्रोंमें भ्रष्ट होगा॥ २९॥ नष्टाचरण, मूढ़मति, जटाभस्मधारी, हड्डियोंकी माला पहने, शिवकी दीक्षामें वे लोग प्रवेश करें, जिन्होंने मद्य मांस ही देवताओंके समान पूज्यवर मान रखा है॥३०॥ ब्रह्म ब्राह्मणोंकी जो तुम निंदा करते हो, यह पुरुषोंकी मर्यादा स्थापक हैं, इसलिये जो शिवके गण हैं, वे सब पाखण्डके आश्रित होंगे॥३१॥ सनातनधर्म्मका श्रेष्ठ मार्ग लोगोंका यही है, ऋषीश्वर, मुनीश्वर इसीपर आरूढ़ थे, क्योंकि वेदमार्ग सदा कल्याणदायक है, इसमें भगवान् वासुदेव प्रमाण हैं॥ ३२॥ वह ब्रह्म परमशुद्ध महात्माजनोंका सनातन मार्ग है, उनकी तुम निंदा करते हो, इसलिये पाखण्डी हो और वहाँ रहो जहाँ भूतेश्वर तुम्हारे देवता हैं॥ ३३॥ मैत्रेयजी बोले कि, जब भृगुजीके मुखसे इस प्रकारका शाप सुना, तब महादेव कुछ विमनसे होकर अपने गणोंसमेत वहांसे उठकर कैलासको चले गये॥ ३४॥ हे विदुरजी! उन प्रजा-

पति विश्व रचनेवालोंने सहस्र वर्षतक यज्ञ करके सब पूजनीय विष्णु भगवान्का पूजन किया ॥ ३५ ॥ फिर तीर्थ गंगा-यमुनाके संगममें यज्ञान्त स्नान कर, निर्मल चित्त हो अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–सती तृतीय अध्यायमें, सुनेउ पितागृह यज्ञ ।
बिन न्यौते लागी चलन, बर्जेउ शिव सर्वज्ञ ॥

मैत्रेयजी बोले कि सदा इसी प्रकार वैरभाव करते महादेवजीको और दक्षको महान् काल व्यतीत हो गया ॥ १ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने दक्षको प्रजापतियोंका अधीश बनाना नियत किया तो उसको बड़ा गर्व हुआ ॥ २ ॥ तब दक्षने वाजपेययज्ञ कर अपने अभिमानसे ब्रह्मिष्ठोंका निरादर कर सब यज्ञोंमें उत्तम बृहस्पति सव नामक यज्ञका आरंभ किया ॥ ३ ॥ उस समय यज्ञमें ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता, सब अपनी-अपनी भार्याओंको शृंगार कराकर अपने-अपने संग लाये ॥ ४ ॥ आकाशमें देवगणोंको परस्पर बातें करते जाते देख उनके मुखसे सती दाक्षायणीने अपने पिताके यज्ञका महोत्सव सुना ॥ ५ ॥ और सब दिशाओंसे देवताओंकी स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंको लिये विमानोंमें बैठी पदक कण्ठमें पहने अमूल्य वस्त्र धारण किये जा रही थीं ॥ ६ ॥ अपने आश्रमके निकट चञ्चलाक्षी उज्ज्वल रत्नजटित कुण्डलोंसे देदीप्यमान सुन्दर-सुन्दर युवतियोंको निहार उत्कंठित हो अपने पति महादेवसे कहा ॥ ७ ॥ सती बोली कि, हे नाथ ! आपके श्वशुर दक्षप्रजापतिके यहां यज्ञ महोत्सवका आरंभ है-

दोहा–भूषण वसन सँवारिके, निज निज साज विमान ।
चली जात सुरसुन्दरी, करत मनोहर गान ॥

हे वाम ! जो आपकी इच्छा हो तो मुझको लेकर आप भी वहां चलिये, अभी वहां यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुआ है, क्योंकि अभी सब देवता बराबर चले जाते हैं ॥ ८ ॥ उस यज्ञमें अपने पतियों समेत मेरी बहिनें भी निश्चय सुहृदोंके देखनेको और उनसे मिलनेको जायँगी, इससे मेरी भी अभिलाषा है कि आपके साथ चलकर मैं भी अपने मातापितासे मिलूँ और उनके दिये वस्त्र-आभूषण ले अपने मनकी आशा पूर्ण करूं ॥ ९ ॥ हे प्राणपते ! मुझको निश्चय है कि अपने भर्ताओं समेत मेरी बहिनें पिताकी बहिनें माताकी बहिनें अवश्य आयेंगी, स्नेह रखनेवाली कोमल चित्तवाली अपनी माताको देखूंगी, क्योंकि मुझको बहुत कालसे उसके देखनेकी उत्कण्ठा है और महाऋषियोंने जो उत्तम यज्ञ आरंभ किया है, उनके देखनेकी भी लालसा है ॥ १० ॥ यद्यपि यह आश्चर्यमय आपकी मायासे निर्मित, त्रिगुणात्मका आपमें जगत् प्रकाश कर रहा है इस लिये आपको तो इस बातका कुछ कौतूहल नहीं, परन्तु मैं जो दीन स्त्री जाति तुम्हारे तत्त्वको नहीं जान सकती, ऐसी मैं अबला अपनी जन्मभूमिको देखना चाहती हूं, अतः हे नाथ । आप साथ चलिये ॥ ११ ॥ हे संसारनिवर्तक ! हे शितिकण्ठ !! और भी तो स्त्रियां पतियोंके संग जा रही हैं, उनको देखो तो कैसे-कैसे मनोहर हंसवत् श्वेतविमानों पर बैठी हुई–

चौ०– भूषण वसन सजे सब अंगा ❋ चली जाँय निज निज पति संगा ॥

मेरे पिताके घरको जाती हैं, जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है ॥ १२ ॥ मरणधर्म-रहित ! पिताके घर कौतुक सुनकर बेटीका चित्त किस प्रकार चलायमान न होगा; पति, गुरु, पिता, मित्र, सुहृद, सम्बन्धी इनके घर तो विना बुलाये भी जानेमें कुछ दोष नहीं है ॥ १३ ॥ हे देव ! मेरे ऊपर आप कृपा करके यह मेरी मनोवांछा पूरी करो, आप परमज्ञानी हैं, तो भी मुझपर अनुग्रह करके मुझे दिव्यचक्षु द्वारा आपने अपने अर्द्धांगमें धारण किया है, इस लिये मैं आपसे वारंवार विनय करती हूँ, कि इस समय मुझपर अनुग्रह करना ही उचित है ॥ १४ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, जब इस प्रकार सतीने शिवजीसे विनय की, तब विश्व रचनेवालोंके सन्मुख दक्षने जो मर्मभेदी कटुवचनरूपी बाण मारे थे, उनका स्मरण कर सबके सुहृद महादेवजीने अपनी प्रिया सतीसे हँसकर कहा ॥ १५ ॥ शिवजी बोले कि हे शोभने ! यह तेरा कहना बहुत ठीक है कि विना बुलाये बन्धुओंके घर जाय, परन्तु कब ? कि जब जो अपने मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करे तो जानेमें कुछ अपराध नहीं ॥ १६ ॥ और जब विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, कुल ये छः जो सत्पुरुषोंके गुण हैं, उनके द्वारा जब असत्तम अतिधूर्तोंसे प्रेरित होते हैं तब उनकी बुद्धि विनष्ट हो जाती है और अभिमान बढ़ जाता है, उस समय मदांध हो महात्माजनोंके पराक्रमको नहीं देखते ॥ १७ ॥ जिनके चित्त ऐसे असावधान हैं, उन असज्जनोंके घरकी ओरको दृष्टि उठाकर देखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि वह कुटिलबुद्धि अपने घर आये हुओंको महाक्रोधसे भ्रुकुटि चढ़ाकर तिरछी दृष्टिसे देखा करते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे अभिमानी कुटिल कुटुम्बियोंके दुर्वाक्योंसे जैसी कठिन पीड़ा होती है, ऐसी वैरियोंके शराघातसे शरीर छिन्न-भिन्न भी हो गया तो भी नहीं होती, क्योंकि जिसके हृदयको शर फाड़कर पार भी निकल जाय उसको भी किसी समय निद्रा आ जाती है, परन्तु दुष्टसंबन्धियोंके दुर्वाक्योंसे जिसका मर्मस्थान वेधा जाता है, वह दग्धहृदय दिन-रात दहता ही रहता है ॥ १९ ॥ हे शुभानने ! यह मैं भलीभांति जानता हूँ, कि तुम दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंमें सबसे अधिक प्यारी हो, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं, तो भी उन पिता से तुमको आदर-सम्मान प्राप्त न होगा, क्योंकि मेरे नामसे दक्षके हृदयमें ताप आता है ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्ति और यश देखकर दुष्टजन उनकी श्लाघा और उच्चपदवीको पहुँच नहीं सकते, वे पापीहृदयवाले कुजन अपने मनमें जलकर उनसे द्वेष करते हैं, जैसे राक्षस हरिसे वैर करते हैं ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! जो सज्जन पुरुष आपसे बड़ेको देखकर परस्पर उठ खड़े होते हैं, प्रणाम करते हैं, दण्डवत करते हैं, वेलोग अपने अन्तःकरणसे सर्वान्तर्यामी, परमपुरुष, गुहाशय, ईश्वरका मान करते हैं, कुछ देहाभिमानियोंको नहीं करते ॥ २२ ॥ विशुद्धसत्त्व वासुदेव शब्द है, आवरणरहित पुरुष वासुदेव प्रकाशता है, इससे सब जीवमात्रमें शुद्धसत्त्व भगवान् वासुदेव विराजमान हैं, इससे ऐसे अन्तःकरणमें भगवान् वासुदेव जो कि इंद्रियोंसे अगोचर हैं, मैं उनको प्रणाम

---

१. शंका—सतीसे शिवजीने कहा कि जो प्राणी अभिमान वश अभ्यागतोंसे द्रोह करता है उसका त्याग करना ही उचित है और उससे बोलना बंद करके सब कामोंमें उस दुष्टको त्याग देना चाहिये, जिन महात्मा और अभ्यागतोंका ऐसा उत्तम माहात्म्य है, वे अभ्यागत कौनसे है ?

उत्तर—जो प्राणी कभी भी देहके सुखदुःखको नहीं जानते और भजन करने में अत्यंत चतुर हैं ऐसे पुरुषोंकी अभ्यागत संज्ञा ये ही अभ्यागत लोक त्रिभुवनको पवित्र करते हैं।

द्वारा सेवा करता हूँ ॥२३॥ हे वरारोहे ! यद्यपि दक्षप्रजापति तुम्हारा देवकर्त्ता पिता है, परंतु तो भी मेरा द्रोही है, तुमको उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिये; क्योंकि उसके अनुचर भी मुझसे वैर रखते हैं, सब देवता जानते हैं कि मेरा कुछ अपराध नहीं था, फिर भी दक्षने विश्व रचनेवाले प्रजापतियोंके यज्ञमें मुझको दुर्वचन कहकर मेरा अपमान किया ॥२४॥ अतः जो मेरे वचनका उल्लंघन कर दक्षके घर जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा; क्योंकि अतिप्रशंसितका अपने सुजनोंसे जो तिरस्कार हो तो मरणके तुल्य होता है—

दोहा—विना बुलाये जो कोउ, काहूके घर जात ।
महाकठिन दुख होत जब, मित्र न बूझत बात ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे उमाशिवसंवादो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा—हर तज चतुराध्यायमें, सती गई पितु गेह ।
शम्भु भाग देखेउ नहीं, तुरत उठी जर देह ॥

मैत्रेयजी बोले कि, शिवजी तो यह बात कहकर चुप हो गये, परन्तु मनमें कहने लगे कि सतीके तनुका दोनों ओरसे विनाश हुआ और सती पिताके देखनेकी इच्छा कर महादेवके भयसे कभी बाहर जाती थी और कभी भीतर आती थी; दुबिधामें मन था ॥ १ ॥ सुहृदोंके दर्शनकी इच्छाके नाशसे विमन हो प्रेमके वशीभूत हो रोने लगी और आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। सती क्रोधमें आकर कांपने लगी और ऐसी विह्वल हुई कि उनके समान दूसरा कोई नहीं हो; इस प्रकार भवने भवानीको देखा मानो अभी भस्म कर देगी ॥ २ ॥ फिर वहांसे कठिन श्वासा लेती घरसे निकल, शिवको न्याग शोक और क्रोधसे व्यथित हो हृदयमें दुःख मान, स्त्री स्वभावसे मूढ़मति सती कि जिनको महात्माजनोंके प्यारे श्री विश्वनाथ शिवने प्रेमसे अपना आधा अङ्ग बांट दिया ऐसे भोलेनाथका साथ छोड़ पिताके घरको चल दीं॥३॥ तब सतीको शिवके गण नंदीवृषपर चढ़ाकर, मैना, गेंद, दर्पण, कमल, श्वेतछत्र, पंखा, माला आदि लिये गाते और दुंदुभी, शंख, वीणा, बांसुरी बजाते प्रसन्न होकर चले ॥ ४ ॥ ५ ॥ चारों ओरसे ब्राह्मण वेदध्वनि करके यज्ञसम्बन्धी पशुको मार रहे हैं। ब्राह्मण पूजन कर रहे हैं, चारों ओर देवता विराजमान हैं, मृत्तिका, काष्ठ, लोहा, सुवर्ण, कुश और चर्म इनके बनाये हुए पात्र जहां यज्ञशालामें धरे थे उस यज्ञमें सती पहुँची ॥ ६ ॥ परन्तु यज्ञकर्ता दक्षके भयसे माता और भगिनीके अतिरिक्त और किसी देव, मुनि, नगरनिवासीने कुशल क्षेम न पूछा और उसकी ओर न देखा, क्योंकि उसके पिताने उसका सम्मान नहीं किया, केवल एक माता और बहिन तो स्नेहके आंसू भर गद्गद कण्ठसे प्रीतिसहित आनंदसे मिलीं॥७॥ पिताके अनादर और अवज्ञासे माता और मौसियोंके उत्तम आसनका देना और निरादरसे शुश्रूषाका करना सतीने कुछ स्वीकार न किया और बहिनोंने कुछ रीति-प्रीतिकी बातें कीं, परन्तु सतीने उनका कुछ ध्यान न किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस यज्ञमें कहीं शिवजीका भाग नहीं देखा, तो समझा कि विश्वेश्वर विभुका विना अपराध निरादर किया, ऐसे अभिमानीके यज्ञको देख भुवनेश्वरी भवानी महाक्रोधमें भर गयीं, मानो अभी त्रिलोकीको भस्मकर

देंगी, इस प्रकार यज्ञशालामें सतीने रोष किया ॥ ९ ॥ तब भूतगण दक्षके मारनेको दौड़े, उस समय अपने तेजसे शिवगणोंको रोककर शिवद्रोही कर्ममार्ग करनेसे जिसको अभिमान हुआ, उस अभिमानी और अज्ञानी दक्षको सब सभाके सम्मुख गम्भीरवाणीसे धिक्कार देकर ॥१०॥ सती बोली–सब शरीरधारियोंके प्रिय आत्मा, अचिंत्यरूप, चितानन्द ऐसे भोले-भाले शिवजी, न तो कोई इनसे बड़ा न किसीके शत्रु, सबके आत्मा, उनसे तेरे विना कौन शत्रुता करे ? ॥११॥ हे द्विज! औरोंके गुणोंमें साधु दोष ग्रहण नहीं करते हैं, तुम सरीखे निंदक खोटे मनुष्य दूसरेके गुणोंमें दोषोंको ही ग्रहण करते हैं, वे अधम हैं और महापुरुषगण परायेके थोड़े गुणोंको बहुत करते हैं और मध्यस्थ पुरुष अपने ज्ञानसे यथावस्थित गुणदोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं, वे केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, दोषोंपर ध्यान नहीं देते, वरन् थोड़ेसे गुणोंको अधिक करके मानते हैं, अरे शठ ! ऐसे सज्जन पुरुषोंका तूने अपमान किया है ॥ १२ ॥ शरीरको ही-आत्मा माननेवाले नीचलोग सदा ईर्षासे महत्पुरुषोंकी निंदा करते, यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, क्योंकि महात्माजनोंके चरणारविन्दोंकी रजसे और प्रतापसे शठ और दुष्टजनोंके लिये निंदा ही शुभ है ॥ १३ ॥ शिव यह जो दो अक्षरका नाम है, जो कोई किसी प्रकारसे एक बार भी यह नाम अपने मुखसे लेता है, उसके पापोंका तत्क्षण ही विनाश हो जाता है, ऐसे आनन्दस्वरूप जिनकी आज्ञा संसारमें कोई उल्लंघन न कर सके, तू ऐसे सर्वशक्तिमान् शिवजीका द्रोह करता है, तेरा कल्याण कभी न होगा ॥ १४ ॥ अरे ? जिन कैलासपति महादेवजीके पदपंकजकी रज ब्रह्मरजसे मिली हुई मकरंदकी इच्छावालोंके मनरूपी भ्रमरोंसे सेवित सब लोकोंके मनकी कामना पूर्ण करनेवाले विश्वबन्धुसे तूने द्वेष किया है ॥१५॥ जिन शिवको तू अशिव कहता है, क्या तेरे अतिरिक्त ब्रह्मादिक उनको नहीं जानते ! श्मशानमें जटा फैलाये, चिताभस्म शरीरमें लगाये, मनुष्योंके कपालोंकी माला धारण किये, भूतगणोंको साथ लिये, पिशाचोंमें वास करते हैं, तो भी उनके चरणकमलकी रज ब्रह्मादिक अपने मस्तकपर धरते हैं ॥ १६॥ धर्मके रक्षक ईशकी निरंकुश होकर जहां लोक निंदा करते हों और वहां अपनी कुछ पार न बसाये, तो कान बंद करके वहांसे उठ जाय और जो निंदकके मारनेका सामर्थ्य हो, तो जैसे बने वैसे उसकी जिह्वा काट-कर खण्डखण्ड कर डाले, फिर अंतको अपने प्राण त्याग कर दे यह सनातन धर्म है ॥१७॥ हे नीलकण्ठके निंदक ! तेरे शरीरसे उत्पन्न जो यह मेरा देह है, इस देहको नहीं रखूंगी, क्योंकि जो कोई भूलसे अशुद्ध अन्नका भोजन कर ले, वह वमन करनेसे ही शुद्ध होता है ॥ १८ ॥ अपने आत्मस्वरूपमें रत रहनेवाले महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें प्रीति नहीं करती, जैसे देवता और मनुष्योंकी गति अलग-अलग है, एक संग नहीं हो सकती इसलिये प्रवृत्तिमार्ग हो अथवा निवृत्ति मार्ग हो, परन्तु अपने धर्ममें स्थित होकर किसीकी निंदा करनी

१. शंका–दक्षने अपने यज्ञमें शिवकी निन्दा करनेके लिये क्या चिन्ह कर रक्खा था, जिस चिन्हको देखकर सती भस्म हो गयी ?

उत्तर–दक्षने अपनी यज्ञशालाके एक खम्भेमे अपने हाथसे ऐसा लिखकर लगा दिया था कि सबके लिये सूचना की जाती है कि इस हमारे यज्ञमें जो कोई प्राणी शिवका नाम मुखसे उच्चारण करेगा वह प्राणी उसी समय यज्ञशालासे बाहर निकाल दिया जायगा जो कदापि हमारा पिता ब्रह्मा भी इस यज्ञमें शिवका नाम लेगा तो वह भी यज्ञसे निकाल दिया जायगा और दूसरे प्राणीकी क्या सामर्थ्य है ? भावीके वशीभूत होकर सब मुनि भी दक्षके त्राससे डर गये, इसीलिये दक्षको उत्तर नहीं दिया कि यह दुष्ट क्या अन्याय करता है जो खंभेमें शंकरकी ऐसा निंदा लिखी है उसी निंदाको खंभेमें लिखी हुई देखकर सतीको क्रोध हुआ और दक्षके यज्ञकी अग्निमें जलकर भस्म हो गयी ।

उचित नहीं ॥ १९ ॥ मुनियोंने दोनों मार्ग सत्य कहे हैं, प्रवृत्ति कर्ममें अग्निहोत्रादिक करना चाहिये और निवृत्तिकर्ममें शम, दमादि, सत्य भाषण, राग और वैराग्य, इन दोनों चिह्नोंका आश्रय करना चाहिये, यह सब वेदने बहुत विचार करके कहा है और जो मनुष्य इन दोनों कर्मोंको एक ही समय करे तो यह परस्पर विरोधी हो जाते हैं और शिव तो परब्रह्म ईश्वर हैं, वे चाहे ईश्वरकी आज्ञा मानें, चाहे न मानें उसपर वेदकी आज्ञा नहीं है ॥ २० ॥ हे पितः ! जो पदवी हमको प्राप्त है, वह तुमको कभी नहीं मिल सकती, क्योंकि हमारी इच्छामात्रसे अणिमा महिमादिक सिद्धियां उत्पन्न हो सकती हैं, जिनका बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, जो अन्न खानेवाले प्राणपोषी, यज्ञशालामें हवन कर धूममार्ग करके जो सेवन करते हैं उनको प्राप्त नहीं होती, हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रकट हैं, अवधूत लोग जिनकी सेवा करते हैं ॥२१॥ अरे शिव-अपराधी ! तुमसे जो यह मेरा देह उत्पन्न हुआ है इस देहसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं । तुझ सरीखे कुमति दुर्जनके नामसे मुझे लाज आती है, उसके जन्मको धिक्कार है, जो महात्माओंका निंदक है ॥२२॥ भगवान् शिव वृषध्वज हंसीसे भी कभी पुकारेंगे, हे दक्षसुते । उस समय मुझे महाक्लेश होगा और मुसकान मान तज लज्जित होना पड़ेगा, इसलिये वह अधम शरीर जो तुझसे उत्पन्न हुआ है उसका मैं अभी त्याग करूंगी ॥२३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे शत्रुहन् ! इस प्रकारकी बातें सती दक्षसे कह मौन हो उत्तरकी ओरको मुख करके बैठ गयीं और आचमन कर, पीतवसन धार, नेत्र मूंदकर योग-मार्गका साधन करने लगीं ॥ २४ ॥ और आसनको जीत प्राण, अपान पवनको नाभिच-क्रमें समान कर वहांसे उदानवायुको उठा, बुद्धिके साथ हृदयमें स्थित कर अनिन्दित होकर कंठमार्गसे भ्रुकुटीके मध्यमें लाकर स्थापित किया ॥ २५ ॥ इस प्रकार महात्माजनोंके परमपूज्य सदाशिवने जिसको आदरसम्मानसे गोदीमें रख ऐसे अपने कोमल शरी-रको त्यागती हुई दक्षप्रजापति पर क्रोधकर मनस्विनी सतीने अपने शरीरमें पवन और अग्निकी धारणाको धारण किया ॥ २६ ॥ और जगद्गुरु शिवजी अपने पतिके चरणकमल का चिंतन करने लगी, उस निर्दोष सतीने औरको नहीं देखा और पापरहित समाधिके अनलसे अपने गात्रको भस्म कर दिया ॥ २७ ॥ उस समय देखनेवालोंका पृथ्वी और आकाशमें महाभयानक हाहाकार शब्द हुआ, कि खेद है कि शिवजीकी प्रिया सतीने दक्षके निरादरसे क्रोधित होकर अपना तनु त्याग दिया ॥२८॥ अहो प्रजाओ ! इस महादुरात्मा चराचरके प्रजापतिकी घोर दुष्टता तो देखो, जिसके अनादर करनेसे अनेक प्रकारके मान करने योग्य निष्पाप सतीने अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ २९ ॥ यह अत्यन्त क्रोधी, कठोर हृदय, शिवद्रोही, लोकमें बड़ी दुर्नामताको प्राप्त होगा, क्योंकि जिसने अपने अपराधसे मरती हुई पुत्रीको नहीं बचाया ॥ ३० ॥ इस प्रकार परस्पर लोग बातें कर रहे थे, उसी समय अद्भुत सतीका देह त्याग देखकर महादेवके पार्षद आयुध ले लेकर दक्षके मारनेको उप-स्थित हुए ॥ ३१ ॥ गणोंके आनेका वेग सुनकर भगवान् भृगुजी यज्ञके नाशकोंके नाशक यजुर्वेद मन्त्रकी आहुतिसे दक्षिण अग्निमें होम करने लगे ॥३२॥ भृगुजीके हवन करनेसे और अपने तपके बलसे अमृत पिये हुए सहस्रों ऋभु नामक देवता बड़े वेगके साथ वेदीसे उठकर निकल पड़े ॥३३॥ वे हवनकी अधजली लकड़ी हाथमें लिये सुन्दर ब्रह्मतेजसे बढ़े हुए गणोंको

मारने लगे, तो सब प्रथम गुह्यक शिवके पार्षद यक्षोंसमेत भूत प्रेत सब दिशाओंको भागने लगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे सतीदेहत्यागवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

दोहा–इस पञ्चम अध्यायमें, सतीमरण सुन ईश ।
वीरभद्र भेजो तुरत, हरो दक्षको शीश ॥

मैत्रेयजी बोले कि, दक्षप्रजापतिके निरादरसे सतीके तनुका त्याग और अपने पार्षदोंकी सेनाका ऋभु नामक देवताओंसे विद्रावण शिवजीने जो नारदके मुखसे सुना तो महादेवजी को महाक्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ और क्रोधित होकर दांतोंसे होठोंके पुट दबा धूर्जटि रुद्रने झट उठकर भयंकर रूपसे अट्टहासके साथ महाघोर नाद कर बिजलीकी अग्निके समान बालोंकी उग्रकांतिवाली जटाको उखाड़कर पृथ्वीपर दे मारी ॥ २ ॥ जटाको धरणीपर पटकते ही उसमेंसे एक वीरभद्रनामक पुरुष प्रकट हुआ । महादेहधारी, स्वर्गतक लम्बा शरीर, सहस्रभुजा, मेघवत् वर्ण तीन सूर्यके समान लाल-लाल नेत्र, महाविकराल डाढ़ें, प्रज्वलित अग्निसदृश बाल, कपालमाला धारण किये अनेक प्रकारके उठे हुए आयुध हाथोंमें लिये श्रीभूतनाथके सम्मुख हाथ जोड़कर विनती करने लगा ॥ ३ ॥ कि हे नाथ ! मैं क्या करूँ, मेरे लिये क्या आज्ञा है ? इस प्रकार वीरभद्रको हाथ जोड़े खड़ा देख भगवान् भूतेश्वर बोले, कि हे रुद्र ! हे भट ! तू मेरे सब भटोंमें अग्रणी हो, क्योंकि तू मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ है, अभी दक्षका नाश कर, तुझ विना दक्षको और कोई नहीं मार सकेगा "इतना कहकर फिर शिवजीने महागम्भीर एक लंबा श्वास भरा, उस समय रुद्रके क्रोधयुक्त श्वाससे आठ पुरुष महाभयानक रूप धारण किये अनेक-अनेक प्रकारके आयुध हाथोंमें लिये हुए उत्पन्न हुए उनके ये नाम थे–बीभत्स, त्रिशिरा, कपिलाक्ष, भस्मप्रहार, त्रिपाद, पिंगाक्ष, महोदर और ज्वलद्विग्रह उनका यह स्वरूप था–रक्तके रंगे हुए वस्त्र पहने, रुधिरकी दुर्गन्ध अंगमें आवे, मुण्डोंकी माला गलेमें पड़ी, लाल-लाल नेत्र, कृमिसे संकुल देह और दुर्गंध दिनरात जिनके शरीरमें आये, नग्न और अत्यंत बलवान्, कोपयुक्त और संसारके स्त्रीपुरुषोंका घात करनेवाला काला-काला शरीर; मदान्धोंका मद दमन करनेवाला और पूषादेवताके दांत तोड़नेवाला, इसका नाम बीभत्स था ॥१॥ दूसरा–रुद्रके महाक्रोधसे दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाला तीन शिर, तीन चरण, नौ नेत्र दीर्घांग, चलायमान जिह्वासे होठोंको चबाता हुआ, अत्यंत लंबे तालके सदृश पीड़रीवाला, महाक्रोधी था इसका नाम त्रिशिरा था ॥ २ ॥ तीसरा–शिवके क्रोधसे जो कापिलज्वर उत्पन्न हुआ वह अत्यंत ऊँची देहवाला, मुखसे अग्निके समूहोंको उगलता, मदसे चढ़े हुए ताम्रवर्ण अत्यंत चमकीले बाल मेघ समान महागम्भीर शब्दकर-नेवाला प्रसन्न चित्तवालोंकी प्रसन्नताका शमन करनेवाला, इसका नाम कपिलाक्ष ॥ ३ ॥ चौथा–श्रीमहादेवजीके कोपसे अत्यन्त भयंकर भस्मविक्षेप ज्वर उत्पन्न हुआ, वह महा-गम्भीर अट्टहासका करनेवाला, वारंवार जँभाई लेता हुआ, महाविकराल कालरूप उग्रदाढ़ों वाला तप्त तांबेके समान प्रकाशमान् लाल-लाल दाढ़ी और केशवाला, इसका नाम भस्म-विक्षेप था ॥४॥ पांचवां–जो रुद्रके कोपसे प्रकट हुआ इसके तीन चरण, लाल नेत्र, गधेके

समान खड़े कान, दीर्घ बाहु, वारंवार श्वासोंके छोड़नेवाला तथा रणमें उन्मत्त, अत्यन्त संग्राम करनेवाला अंग-अंगमें दाहको उपजानेवाला, तृषासे व्याकुल और भृगुऋषिकी दाढीका उखाड़नेवाला, इसका नाम त्रिपाद था ॥५॥ छठा-वीर जो यह उत्पन्न हुआ इसके भी अत्यन्त लाल-लाल तीन नेत्र थे और इसका मुख भी वीरभद्रसे अधिक टेढ़ा और भयानक था छोटी-छोटी पीड़री, अग्निके तेजके समान लाल नेत्र प्याससे व्याकुल, सर्पके सदृश दो जिह्वावाला सिंहके समान मानो दूसरा नृसिंह अवतार दुबारा प्रकट हुआ, उसने हिरण्यकशिपुको मारा, यह दक्षका विनाश करनेवाला होगा। चलायमान तीव्र बालोंवाला, कृश शरीर और सूखे मांस-वाला, इसका नाम पिंगाक्ष था ॥६॥ सातवां-यह महादीर्घ पेटवाला, लम्बे कान, प्रज्वलित अग्निके सदृश रूप, महाचञ्चल लाल-लाल नेत्र, तृषा, श्वास, जँभाईसहित, अङ्गोंका तोड़ने-वाला, योद्धाओंका मानभंजक, शरीरका लाल वर्ण, अत्यन्त मतवाला, इसका नाम महोदर था॥७॥आठवां-यह अग्नि समान शरीरवाला, बिखरे हुए केश, वक्र भ्रुकुटी, त्रिशूल, कृपाण, सर्प, पाश धारण किये, सब ज्वरोंका राजा, महापुरुषार्थी, कृश शरीर, शुष्कमांस, महाबलवान, अत्यन्त भयंकर भैरवसमान रूपवाला, इसका नाम ज्वलद्विग्रह था ॥ ८ ॥ ये आठों वीर ज्वररूप शिवके सम्मुख प्रार्थना करके बोले, कि हे प्रभो ! हमारे लिये क्या आज्ञा है ? शिवजी इन आठों वीरोंको महाबलवान् जान बोले, कि तुम भी वीरभद्रके साथ जाओ और दक्षके यज्ञका विध्वंस करो" ॥ ४ ॥ हे विदुर ! अत्यन्त क्रुद्ध श्रीमहादेवजीकी आज्ञा पा वीरभद्र देवोंके देव, सर्वसमर्थ शिवजीकी परिक्रमा करके उस समय अप्रतिमवेगसे वह अपने आपको महाबलियोंका बल विनाश करनेको बलवान् समझता था ॥५॥ अत्यन्त गम्भीर नाद कर-नेवाले रुद्रपार्षदोंको संग ले वीरभद्रने महाभयंकर शब्द कर, मृत्युका नाश करनेवाला, त्रिशूल हाथमें ले जिसके चरणोंके घुँघरुओंके शब्दसे दिग्गजोंको शब्दायमान करता, वीरोंका मान हरता, धरणीको धमकाता, पर्वतोंको गिराता, दक्षके देशकी ओरको धाया ॥६॥ जब दक्षका मख पांच योजन रहा तब ऋत्विज, यजमान, सभापति, ब्राह्मण, उत्तर दिशाकी ओर धूल उड़ती और महा धुंधकार देख परस्पर विचार करने लगे कि आज उत्तरकी ओर यह कैसा अंधकार है ? अरे यह धूल कहांसे आयी ? ॥ ७ ॥ ऐसी तीव्र पवन भी नहीं चलती ! चोर भी नहीं है उनका उग्र दंडदाता राजा प्राचीनबर्हि अभी जीता है और गौवोंके आनेका भी यह समय नहीं है, तो फिर यह धूल कहांसे आती है ? आज सब संसारकी प्रलय तो नहीं हो जायगी ? यह आश्चर्य देख सब चकित हो रहे थे ॥ ८ ॥ प्रसूति आदि सब स्त्रियाँ उद्विग्न मन कर बोलीं-अरी ! यह वही अपराध है, जो सब बेटियोंके देखते-देखते निरपराधिनी अपनी सुता सतीका दक्ष अन्यायीने अनादर किया ॥९॥ जो भूतेश्वर त्रिभुवननायक शिव अंतकालमें जटाजूट फैला अपने त्रिशूलके अग्रभागसे दिग्गजोंको निर्मूल करते हैं और जब अस्त्रोंको उठाकर भुजारूपी ध्वजाओंको फैलाकर और उच्चाट्टहाससे गर्जनशब्द करके दशों दिशाओंके दिग्गजोंको विदीर्ण कर नाचते हैं ॥ १० ॥ क्रोधका तेज जिनका सहा नहीं जाय उन महाक्रोधीकी क्रोधभरी भ्रुकुटीसे और कठिन कराल दाढ़ोंसे बिखेर दिया है, सर्वत्र नक्षत्र मंडल जिन्होंने और प्रलयकालकी ज्वालावत् लाल-लाल तीन विशाल नेत्र हैं, जिनके ऐसे प्रचण्ड अखण्ड तेजवान् शिव शूलपाणिके कोपसे ब्रह्मा भी सुख नहीं पा सकता ॥११॥ इस प्रकार महात्मा दक्षके यज्ञमें उद्विग्न दृष्टि कर परस्पर वार्ता कर रहे थे, इतनेमें अनेक भांतिके सहस्रों

उत्पात महाभयदायक पृथ्वी और आकाशमें होने लगे ॥ १२ ॥ हे विदुर ! इतनेमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये, काले-पीले वेष किये, मगरके समान जिनके उन्नत मुख, वामन आदि अनेक शंकरकिंकर, रुद्रगणोंने दक्षके यज्ञको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १३ ॥ किसीने यज्ञशालाके पूर्वपश्चिमस्तंभके समीप पश्चिमको जो देवशाला प्राग्वंश था उसको तोड़ा, किसी गणने यज्ञशालाके पश्चिम ओर पत्नीशाला थी उसको फोड़ा, यज्ञशालाके आगे स्थित सभा मंडप था किसीने उसको तोड़ा, सभाके आगे अग्नि धरनेकी शाला थी किसीने उसको तोड़ा, किसीने यजमानोंके घर तोड़े किसीने पाक भोजशाला तोड़ डाली ॥ १४ ॥ किसीने यज्ञके पात्र तोड़ कलश फोड़ दिये, किसीने अग्नि बुझा दी, किसीने कुंडमें मूत दिया, किसीने वेदी और मेखलाका भेदन कर दिया ॥ १५ ॥ कोई-कोई मुनियोंको मारने लगे, कोई स्त्रियोंको भयानक वेष दिखाकर डराने लगे, किसीने देवताओंको खड़ा देखकर पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमानने भृगुको बांध लिया, वीरभद्रने दक्षको घेर लिया, चण्डीशने पूषादेवको पकड़ा, नंदीश्वरने भगदेवको पकड़ा ॥ १७ ॥ शिवके गणों और पार्षदोंने उनको तक तककर ऐसे पत्थर मारे कि जिससे ऋत्विज, सभासद, सब देवता; अत्यन्त पीड़ित होकर चारों ओरको भाग गये ॥ १८ ॥ हाथमें स्रुवा लिये जो हवन कर रहे थे उन भृगुजीकी दाढ़ी मूँछे पकड़कर वीरभद्रने उखाड़ डालीं, क्योंकि शिवशापके समय भृगु मूछोंपर हाथ फेरकर हँसे थे ॥१९॥ भगवान् वीरभद्रने भगदेवताकी आंखें निकाल लीं क्योंकि शापके समय दक्षको उसने सभामें सूचना की थी ॥ २० ॥ और पूषाकी गर्दन पकड़कर उसके दांत उखाड़ डाले, जैसे बलदेवजी कलिंग देशके राजाके दांत तोड़ डाले थे, इसी प्रकार पूषाके दांत झाड़ दिये, क्योंकि यह भी शिवजीको शाप देते समय दांत दिखाकर ठट्ठे मार-मार कर हँसा था ॥ २१ ॥ दक्षकी छातीपर चढ़कर वीद्रभद्र महातीक्ष्ण शस्त्रोंसे उसका शिर काटनेको उद्यत हुए, तो भी काटनेको समर्थ न हुए ॥ २२ ॥ जब अस्त्रशस्त्रोंसे उसकी त्वचा न कट सकी तब वीरभद्रको बड़ा विस्मय हुआ और पशुपतिको मनमें धार बहुतकालतक विचार करता रहा ॥ २३ ॥ पशुओंके पति वीरभद्रने उस यज्ञमें कंठ घोटकर मारनेका उपाय देखकर यजमान, पशुरूप दक्षका शिर पराक्रम करके देहसे मरोड़कर उखाड़ लिया ॥ २४ ॥ बहुत अच्छा हुआ, यह उसके कर्मकी जहां-तहां भूत-प्रेत-पिशाचोंमें प्रशंसा हुई और दक्षके पक्षमें महाशोक-संताप हुआ ॥ २५ ॥ उस समय वीरभद्रने अत्यन्त क्रोधित होकर दक्षका शीश दक्षिणाग्निमें हवन कर दिया और यज्ञस्थानको विध्वंस कर फूंक जार कर अपनी भूतसेनाको संग ले, कैलासको चले और मार्गमें भूत खोपड़ी बजा बजा कर भजन गाते जाते थे–

पञ्चवदन सिद्धसदन शम्भु जटाधारी ॥

शीश गंग चन्द्र भाल, कंठमाहि मुंडमाल, तीन नेत्र अति विशाल अग्नि सी पजारी ॥ १ ॥ जय जय जय शिवदयाल, प्रेतनाथ प्रणतपाल, महाज्योति महाकाल दक्षमानहारी ॥ २ ॥ करमें डमरू त्रिशूल भुवनेश्वर भक्तिमूल,

---

१. शंका–दक्षके यज्ञकी ब्राह्मणोंने वेदके मंत्रोंसे रक्षा की थी और जब वीरभद्रने यज्ञका विध्वंस कर डाला तब उन वेदके मंत्रोंने देवरूप होकर यज्ञकी रक्षा क्यों नहीं की ?

उत्तर–जब यज्ञके हवन कुंडमें सती जलकर भस्म हो गई तब सतीके शरीरको देखकर भविष्यके जाननेवाले मुनियोंने जान लिया कि यज्ञ अब बहुत शीघ्र भ्रष्ट होगा देर नहीं है, ऐसा जानकर बहुत शीघ्र वेदके मंत्रोंको विसर्जन कर दिया ।

सोहत तनुचिताधूल व्याघ्रांबरधारी ॥ ३ ॥ जटा जूट लसै शीश गिरिजा-नायक गिरीश गावत गुण नित अहीश ब्रह्मा असुरारी ॥ ४ ॥ विश्वनाथ विश्वेश्वर शूलपाणि शशिशेखर, नीलकण्ड गंगाधर मृतकक्षितिविहारी ॥ ५ ॥ हरिये हरि भयनिकाय विनवत पद शीश नाय, कीजिये सहाय आय शंकर त्रिपुरारी ॥ ६ ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम पंचमोध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–इसी षष्ठ अध्यायमें, ब्रह्मादिक सब देव ।
दक्ष जिवावन हेतु सब, गये जहां महादेव ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि, जब सब देवगण शिवकी सेनासे पराजित हो त्रिशूल, पट्टिश, निस्त्रिंश, गदा, परिघ, मुद्गर इत्यादिसे मारे गये ॥ १ ॥ तब टूटे, कटे अंगभंग सब देवताओंने डरके मारे अत्यन्त व्याकुल होकर ऋत्विक् और सभापतियोंको सङ्ग ले ब्रह्माके समीप जा नमस्कार कर सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २ ॥ परंतु इस भविष्यवृत्तान्तको कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण पहलेसे ही जानते थे, इसीलिये वे दोनों दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ देवताओंकी दुहाई सुनकर ब्रह्माजी बोले कि तेजवंतोंका अपराध किया हो और दूसरा उस अपराधका बदला चाहे, तो उसका मनोरथ उसको फलदायक न होगा ॥ ४ ॥ यद्यपि उन्होंने तुम्हारे साथ ऐसा भी किया, तो भी तुम सब उनके अपराधी हो, क्योंकि सदा यज्ञमें शिवको भाग मिलता रहा और आज शिवका भाग नहीं निकला, अब तुम शीघ्र चित्त शुद्ध कर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवके चरण पकड़कर उनको प्रसन्न करो, तो वे तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे॥५॥मैं यह चाहता हूँ कि, दक्ष उठें और यज्ञ फिर हो, जिन महादेवके कोपसे लोक-पालसहित लोक नष्ट हो जाते हैं, उन सदाशिवके पास जाकर शीघ्र निवेदन करो, जो कि दुष्टदक्षके दुर्वाक्योंके बाणोंसे उनका हृदय विंध रहा है ॥ ६ ॥ और उन स्वाधीन शिवके तत्त्व और पुरुषार्थके प्रमाण और बलवीर्यको न तो मैंने जाना और न विष्णु भगवान् जान सकते हैं, न तुम लोग जान सकते हो और दूसरे पुरुषकी तो क्या सामर्थ्य है ? ॥७॥ फिर ऐसे अव-सरपर क्या उपाय बन सकता है ? ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओंको समझा-बुझाकर पितरोंको और प्रजापतियोंको संग ले अपने स्थानसे जहां त्रिपुरारी शिवजीके रहनेका परम श्रेष्ठ आश्रम जो पर्वतोत्तम कैलास है, वहां चले गये ॥८॥ जहां जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योगकी सिद्धि रहती हैं और किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा नित्य वसते हैं ॥ ९ ॥ नाना प्रकारके मणिमय शृङ्गवाले गेरूआदि धातुओंसे और चित्र-विचित्र रंगोंसे शोभा हो रही थी और भांति-भांतिके वृक्ष, लता, गुल्म, फूल, फलोंसे भरे लटक रहे थे, नानाप्रकारके मृगोंके समूह जहां-तहां दौड़ते-फिरते थे ॥ १० ॥ नानाप्रकारके निर्मल झरने झर रहे थे, अनेक प्रकारकी कंदरा और शिखर शोभा दे रहे थे, उनमें सिद्धलोगोंकी युवतियाँ अपने-अपने पतियोंके सङ्ग अत्युत्तम रीत-प्रीतसे विहार कर रही थीं, मयूर अपनी मयूरनियोंके संग उमंगमें भर मधु-रवाणीसे बोल रहे थे, कामांध भ्रमरोंकी पंक्तिकी पंक्ति गुञ्जार रही थी, रक्तनेत्रवाली कोकिला कुहू-कुहू शब्द उच्चार रही थीं और अनेक प्रकारके पक्षी अपनी-अपनी मनोहर बोलियां

बोल रहे थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ मनकी अभिलाषाके पूर्ण फलदायक वृक्षोंकी शाखा ऊंचे-ऊंचे पर्वतोंपर पवनके झकोरोंसे ऐसे झूम रही थीं, मानों हाथ उठा-उठाकर पर्वत पक्षियोंको बुला रहे हैं, मन्द-मन्द गति हाथियोंकी ऐसी दृष्टि आती थी, मानो पर्वत चल रहे हैं, झरनोंकी ध्वनि ऐसी सुनायी देती थी मानो भूधर परस्पर बातें कर रहे हैं ॥ १३ ॥ और वहां मन्दार, पारिजात, सरल, ताल, तमाल, शाल, कोविदार, असन, अर्जुन, ॥१४॥ आम, नीम, कदंब, पुन्नाग, नागकेसर, चम्पक, गुलाब, अशोक, बकुल, कुन्द, कुरबक ॥ १५ ॥ स्वर्णपर्ण, शतपत्र, अनेक प्रकारकी बांसी, कुब्जक, मल्लिका, माधवी लताकी न्यारी ही शोभा थी ॥ १६ ॥ पनस, पलाश, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, वट, हींग, भोजपत्र, ओषधी, सुपारी, मोटी सुपारी, जामन ॥ १७ ॥ राजपूग, खजूर, आम्रातक, आमले, प्रियाल, मधुक, इंगुदी, हिंगौट आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंकी शोभा हो रही थी ॥ १८ ॥ और भी अनेक जातिके वृक्ष और वेणु कीचकोंसे शोभायमान थे। कहीं तालोंमें कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतपत्र जातिकी कमलिनी खिल रही थीं, सरोवरोंमें मनोहर पक्षियोंके वृन्दोंकी कलकल ध्वनि मनको मोह लेती थी ॥ १९ ॥ मृग, शाखामृग, मर्कट, सिंह, सूकर, ऋक्ष, सेही, गवय, रोझ, कस्तूरीमृग, भेड़िये और महिषादिक पशु जहां-तहां घूम रहे थे ॥ २० ॥ कर्णोंमें आंतवाले पशु, एक पगके जीव, घुड़मुँहे पशु, वृक, कस्तूरीमृग और केलेके समूहोंसे ढकी हुई कमलनियोंकी शोभा हो रही थी ॥ २१ ॥ आगे बढ़कर देखा तो नन्दानाम गंगा चारों ओर बह रही है, तटके निकट जल चला जाता है और सतीजीके स्नानकी सुगंधिसे पुण्य रूप हो रही है और जहां-तहां पुलिन कदली बनसें घिरे हुए ॥ २२ ॥ ऐसे सुन्दर शोभायमान शिवजीके परमोत्तम कैलासपर्वतको देखकर सब देवता अत्यन्त विस्मित हुए और उसके निकट अतिरमणीक अलकानाम्नी कुबेरकी पुरीको देखा और सौगंधिक नामक कमलोंका वन दृष्टि आया ॥ २३ ॥ श्रीपति भगवान् वासुदेवके पदपंकजकी रेणुसे परम-पवित्र नन्दा और अलकनन्दा नगरसे बाहर दो सरिता बह रही हैं ॥ २४ ॥ हे विदुर ! उन सरिताओंमें नित्यप्रति देवताओंकी कुलांगना रतिकी इच्छावाली अपने-अपने विमानोंसे उतर कर विहार करती हैं और अपने भर्ताओंके अतिसूक्ष्म शरीरधारी पुरुषोंपर नीर छिड़क उनका श्रम हरती हैं ॥२५॥ देवरमणी जो उन सरिताओंमें मज्जन करती हैं और कुचोंसे कुंकुम धुलधुलकर जो जलमें बहता है उससे तो उन सरिताओंका सलिल पीतवर्ण और सुगंधित हो रहा है, उसी सुगंधके कारण विना ही प्यास उस जलको हाथी पीते हैं और अपनी हथिनियोंको पिला पिलाकर मुदित करते हैं ॥ २६ ॥ वे देवांगना चांदी-सोनेके अमूल्य रत्नोंसे जटित सैकड़ों विमानोंमें बैठे कैसी शोभा दे रही थीं, जैसे गगन-मण्डलोंके बादलोंमें बिजली चमकती है ऐसी कुबेरकी पुरीसे निकलकर सौगंधिकवनमें पहुँचे जहां परम सुखदायक चित्र विचित्र सुमन, मनोवांछित मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान सहस्रों वृक्ष शोभायमान थे ॥२७॥२८॥ लाल कण्ठवाली कोकिलाओंसे वृन्दके वृन्द मृदुलवाणीसे जहां तहां कोलाहल कर रहे थे, भ्रमरोंका मनोहर शब्द हो रहा था, कमल-युक्त जलाशय देदीप्यमान थे; कलहंसादिक जलविहंग निजपत्नियोंके सङ्ग विचर रहे थे ॥ २९ ॥ वनके बलवान् हाथियोंके गमनसे, हरिचन्दनके वृक्षोंमें रगड़से, सुगन्ध-युक्त पवनके प्रभावसे यक्षोंकी रमणियोंका मन मन्मथ वारंवार मथ रहा था ॥ ३० ॥

प्रबाल रत्नकी सोपानवाली बावड़ियाँ कमलमालासे शोभायमान दृष्टि आती थीं और किंपुरुष वहां विहार कर रहे थे। सौगंधिक वनकी ऐसी अनुपम शोभा देखते हुए आगे बढ़े, तो निकट ही एक वटवृक्ष दृष्टि आया ॥३१॥ वह वटका तरुवर चारसौ कोश ऊंचा और तीनसौ कोशमें उसका विस्तार था, उसके चारों ओर सघन छाया आठों प्रहर रहती थी और न किसी पक्षीका उसमें घोंसला था और ताप तथा धूप तो वहां देखनेको भी नहीं थी ॥ ३२ ॥ उस वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षु जनोंके रक्षक सदाशिव विराजमान थे, मानो क्रोध तजकर अंतक बैठा है, इस प्रकार देवताओंने महादेवजीको बैठा देखा ॥ ३३ ॥ शांत शरीरवाले सनन्दन आदि महासिद्ध शांतस्वरूप शिवजीकी सेवा कर रहे थे और यक्षराज राक्षसोंका अधीश और शिवजीका सखा कुबेर मस्तक नवाये चरणारविंदोंकी ओर तक ज्ञान वैराग्य और आनन्दका रस छक रहा था ॥ ३४ ॥ वे शिवजी महाराज विद्या, तप, योगमार्गमें स्थित, सबके ईश्वर, विश्वके सुहृद् और वत्सलतासे सब लोकोंके मङ्गल करनेवाले ॥ ३५ ॥ और अतीव सुहावन और मनभावन तपस्वी वेष धारण किये हैं, शीशपर जटा बढ़ाये, मृगचर्म ओढ़े, अंगमें विभूति लगाये, हाथमें दण्ड लिये, संध्याकालके मेघपंक्तिकी कांतिके समान अपने मस्तकपर चन्द्ररेखा धारण कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

दोहा–कुश आसन आसीन प्रभु, लसत भालविधु बाल ।
जेहि दरसत सब जननके, मिटत सकल जंजाल ॥

इस प्रकार आसनपर बैठे हैं और नारदजी जो कुछ उनसे पूछते हैं, उनको सब सज्जनोंके सम्मुख सनातन परब्रह्मका ज्ञान सुना रहे हैं ॥ ३७ ॥ बांये चरणको दहिने ऊरूपर धर और बांई जानुपर अपना कर धरकर दाहिनेबाहुके प्रकोष्टपर अक्षमाला सहित तर्कमुद्रा धारण किये बैठे हैं ॥३८॥ ब्रह्मसुखकी समाधिमें स्थित, सबसे विरक्त, गिरीश, योगज्ञानी, सब मनुओंके आद्यमनु महादेवजीको हाथ जोड़कर सब लोकपाल मुनि लोगोंने प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ सुर-असुर जिनके चरणकमलको नित्यप्रति दण्डवत् करते हैं, महादेव देवताओंके सहित चतुराननको आता देखकर शीघ्र उठे खड़े हुए और जैसे सर्वपूज्य विष्णु वामनजीने कश्यपजीको प्रणाम किया था, उसी प्रकार शिवजीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया ॥ ४० ॥ और जो सिद्धगण महर्षियों सहित शशिशेखर शिवजीके समीप उपस्थित थे, उन लोगोंने भी उसी भांति ब्रह्माजीको प्रणाम किया, इस प्रकार जिन ब्रह्माजीको सबने नमस्कार किया वही ब्रह्माजी चन्द्रचूड महादेवजीसे हँसकर बोले ॥४१॥ ब्रह्माजी बोले, कि हे ईश ! तुमको मैं भलीभांति जानता हूं कि तुम विश्वरूप जगत्की योनि, बीज, शक्ति, प्रकृति पुरुषके ईश, भेदरहित, निर्विकार, परब्रह्म, निरन्तर ईश, सर्वांतर्यामी ईश्वर हो ॥४२॥ हे भगवन् स्वरूपधारी, शिवशक्तिरूप, प्रकृति पुरुषमें विहार करते हुए तुम ही मकरीकी नाईं इस सृष्टिको रचते हो, पालते हो, और फिर अपने आपमें लीन कर लेते हो, तुम्हारी गतिका कोई पार नहीं पा सकता ॥४३॥ धर्म, अर्थ पूर्ण करनेको और वेदकी रक्षाके लिये निमित्तमात्र दक्षने यज्ञ किया था और सब संसारकी मर्यादा भी आपकी ही बांधी हुई है, जिन मर्यादाओंको व्रतधारी ऋषि लोग श्रद्धासहित आजतक पालन करते हैं॥४४॥हे मङ्गलरूप ! शुभ कर्म करनेवालोंको तुम स्वर्गपरलोकदायक हो और अशुभ कर्म करने वालोंको भयंकर नरक अन्धतामिस्र वासके देनेवाले हो, तो फिर किस कारण पुरुषोंको इन मर्यादाओंके प्रतिकूल फल प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ तुम्हारे पदारविंदोंमें जिनके मन आत्मा अर्पित हैं और सर्व जीवमात्रमें

आपको ही देखते हैं और सब जीवोंमें ईश्वरको देखते हैं, आत्मा सब जीवमें देखनेवाले महात्माजनोंको कभी क्रोध नहीं आ सकता और आपका तो कहना ही क्या है ? ॥४६॥ पृथक् जिनकी बुद्धि, कर्मोंपर दृष्टि, दुष्टहृदय,-

चौ०-जे जन देख पराइ विभूती * जरत रहत न चलै करतूती ।
कहहिं वचन कटु विशिखसमाना * भेदहिं मर्म देहिं दुख नाना ॥

दैवसे भ्रष्ट, अनेक कर्मोंके मारे, आपसरीखे महात्माओंका धर्म है कि उनको न मारे, क्योंकि वे तो आप ही अपने कर्मोंके मारे हैं ॥ ४७ ॥ जिस देशमें जिस समय नारायणकी दुस्तर मायासे पृथक् दृष्टिवाले अभिमानी मोहित होकर सज्जनोंसे विरोध करते हैं, परन्तु तो भी वहां साधुजन अपनी नम्रतासे, परमेश्वरकी इच्छा ऐसे ही थी, यह विचार कर उन लोगोंपर कृपा करते हैं, परंतु उनको मारते नहीं ॥ ४८ ॥ आप तो परपुरुषकी कठिन मायासे लिप्त नहीं हो, अतएव समस्त जगत्के द्रष्टा हो, हे प्रभो ! उस मायासे जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, अतः जो सदा कर्मोंके बंधनमें बँधे हैं, उनपर आप कृपा करने योग्य हो ॥ ४९ ॥ हे रुद्र ! आपके विना ही दक्षका यज्ञ समाप्त न हुआ, अब आप मरे हुए दक्षप्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो । कुत्सित होम करने वालोंने आपको भाग नहीं दिया, उसका फल तत्काल अपनी आंखोंसे देख लिया ॥ ५० ॥ अब इतना अनुग्रह कीजिये कि यह हमारा यजमान तो जी जाय और भगदेवको नेत्र दिये जायँ, भृगुकी मूछें निकल आयें और पूषाके दांत पहलेकेसे हो जायँ ॥ ५१ ॥ हे मन्यो ! देवताओंके और ऋत्विजोंके अंग जो आयुध और पाषाणोंसे टूट गये हैं, उनपर अनुग्रह करके आप सबको आरोग्य करो ॥ ५२ ॥ हे कल्याणरूप ! यज्ञविध्वंसक !! जो कुछ इस यज्ञमें शेषभाग बचा है, वह सब आपका भाग है, इस प्रकार यह सब अंगीकार करते हैं, अब आप कृपा करके यह कह दीजिये कि, यज्ञहन-रुद्रके भागसे यह तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो इस लिये हम सब देवता आपके पास यह कहने आये हैं[1]

कवित्त-अहो मुंडमाली बलशाली को तुम्है समान बार बार विनै करैं आपको मनाय कै । ज्ञान ध्यान ज्ञाता तुम संपतिके दाता तुम, छोड़ो मत नाता तुम लीजै अपनायकै ॥ ऐसे समै महिमा बखानै को न शालिग्राम आज करामात सब विश्वको दिखायकै । सांकरेमें शंकर सहाय करो शीघ्र जाय, जगमाहिं लीजै यश दक्षको जिवायकै ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः

---

१. शंका-ब्रह्माजीने शिवजीसे कहा कि हे पार्वतीनाथ ! यज्ञमें जो वस्तु सबके खाने भोगनेसे बचे वह आपका भाग है, ऐसी घृणित वस्तु शिव जगत्पति होकर क्यों ग्रहण करते हैं ?

उत्तर-व्याकरण शास्त्रके प्रमाणसे उच्छिष्टशब्दका अर्थ जूठका नहीं है, उच्छिष्टशब्दका यह अर्थ है कि तीन लोक चौदह भुवनमें जो चराचर जीव हैं सबका नाश हुए पीछे जो वस्तु शेष रहे, अपनी आत्मामें आनन्दरूप ब्रह्म जो है उसकी उच्छिष्ट संज्ञा है, उस आन्दरूप ब्रह्मको उच्छिष्ट जानो और भजन करनेमें जिसका स्वभाव है वह उसको यज्ञ कहना, यज्ञ नाम-संसारका है, उस यज्ञरूप संसारका नाश होनेके पीछे जो ब्रह्मानंद शेष रहता है वह भाग शिवका है, ब्रह्माने कहा कि हे भूतेश्वर ! आप ब्रह्मानंद हो, मूर्खों के कर्मका स्मरण करना नहीं चाहिए ।

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें प्रकट भये भगवान।
शिव ब्रह्मादिक देव सब, स्तुति करत बखान॥

मैत्रेयजी बोले कि हे महाबाहो विदुर ! जब ब्रह्माने इस प्रकार शिवजीकी स्तुति की, तब महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो हँसकर बोले कि, हे कमण्डलुपाणे ! सुनिये ॥१॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे प्रजेश ! इन अज्ञानियोंके अपराधको मैं अपने मुखसे कुछ नहीं कह सकता हूँ और न कुछ चिंतन करता हूं क्योंकि ये मूर्ख लोग दैवकी मायासे मोहित हो रहे हैं, इस लिये मैंने इनके उचित दण्ड दिया है ॥२॥ दक्ष प्रजापतिका शिर तो जला दिया, इसलिये बकरेका मुख इनके धड़पर लगा दिया जाय और भगदेव मित्रदेवताके नेत्रोंसे अपने यज्ञ सम्बन्धी भागको देखें ॥ ३ ॥ पिसा हुआ अन्न पूषा यजमानोंके दांतोंसे भक्षण किया करें और जिन देवताओंने मुझको यज्ञका उच्छिष्ट दिया है, उनके सर्वांग पूर्ण हो जायँगे ॥ ४ ॥ वे अध्वर्यु और ऋत्विज कि जिनके अंग सर्वथा नष्ट हो गये हैं, उनकी भुजाओंका काम अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे होगा और हाथोंका काम पूषाके हाथोंसे हुआ करेगा और भृगुकी दाढ़ी मूंछ बकरेकी मूंछ की होगी ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! शिवजीके स्नेहभरे वचन सुनकर भूतमात्र और देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न हो साधु-साधु कह धन्यवाद देने लगे ॥ ६ ॥ फिर सब देवता और मुनियोंने जब शिवजीकी विनय की, कि कृपा करके आप वहां चलिये और सब कार्य पूर्ण कीजिये, तब देवताओंकी आज्ञा शिरपर धर शिवजी ब्रह्मा और ऋषियोंसहित देवताओंको साथ ले उस देवयज्ञशालामें पहुँचे ॥ ७ ॥ और सम्पूर्णतासे यज्ञ कराकर जो कुछ शिवजीने कहा, उसी भांति यज्ञमें पशुका शिर काटकर दक्षके धड़पर धरकर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ शीश जोड़कर शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखा ! दृष्टिके पड़ते ही दक्षप्रजापति ऐसे उठकर बैठ गया मानो निद्रासे अभी जगा है और नेत्र खोलकर देखा तो शिवजी सम्मुख खड़े हैं ॥ ९ ॥ यद्यपि शिवजीके द्वेषसे उसका चित्त दूषित हो रहा था, परन्तु शशिशेखरका दर्शन करते ही सब वैरभाव मिट गया और शरत् कालके तड़ागके तुल्य दक्षका मन निर्मल हो गया ॥ १० ॥ और वारंवार मनमें यह विचार करता था, कि दीनदयालु भूतेश्वर महादेवजीकी स्तुति करूं, परन्तु अनुरागवश हो कुछ मनसे नहीं उच्चार सका और अपनी मरी हुई दुहिता सतीका स्मरण कर उत्कठासे आँखोंमें आंसू भर आया ॥ ११ ॥ और जैसे-तैसे बड़ी कठिनाईसे मनको रोककर प्रेमसे व्याकुल हो वह सुबुद्धि दक्ष कपटभावको हृदयसे त्यागकर शिवजीकी स्तुति करने लगा ॥ १२ ॥ दक्ष बोला कि, हे भगवन् ! मैंने तो आपका तिरस्कार किया था, तो भी उस अपमानका ध्यान त्याग करके मुझको दण्ड दिया। यह आपने मुझ दीनपर बड़ी दया की, जो अधम ब्राह्मण तिरस्कार योग्य हैं, आप और विष्णु भगवान्, जब उन्हीं ब्राह्मणोंका निरादर नहीं करते, तब तपव्रतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी अवज्ञा आपसे कब हो सकती है ॥ १३ ॥ हे प्रभो ! अपने विद्या

१. शंका—ब्रह्माने शिवजीसे कहा कि हे ब्रह्माजी ! मूर्खोंके कर्मोंका हम चिन्तन नहीं करते, उत्तम, मध्यम कर्म जो नीच हमारे लिये करते हैं उन सबको हम सह लेते हैं, फिर दक्षका नीच कर्म समझकर उसके यज्ञको विध्वंस क्यों किया।

उत्तर—शिवजीने विचार किया कि दक्ष महापापी है और बड़ा अभिमानी है, जो सब प्राणीमात्रकी रक्षा करता है वह दक्ष ऐसा दुष्ट हो रहा है जो यह दंड न पायेगा तो ब्रह्मकर्म छोड़के राक्षस हो जायगा, अतः अनुग्रह करके शिवने दक्षके यज्ञका नाश करके उसको दंड दिया, दक्षका नीचकर्म समझकर उसके यज्ञका नाश नहीं किया।

तप व्रतधारी ब्राह्मणोंको वेदमार्गकी रक्षा करनेके लिये प्रथम आपने मुखसे प्रकट किया है, इसलिये हे विभो ! आप विपत्तियोंसे ब्राह्मणकी सदा रक्षा करते हो, जैसे पशुपालक दण्ड हाथमें लेकर पशुओंकी रक्षा करता है ॥ १४ ॥ आपके तत्त्वज्ञानको मैंने न जानकर सुरसभाके मध्य दुर्वाक्यरूप शरोंसे आपको दुःखित किया था । तो भी आपने उस दोषको नहीं माना और मुझे प्रतिष्ठित जनोंकी निन्दा करनेके कारण नरकमें पड़ते हुएको क्षमादृष्टिसे बचा लिया, हे नाथ ! आपके किये हुए उपकारसे आप ही सन्तुष्ट होओ, मेरा सामर्थ्य नहीं जो इसका बदला मैं आपको दे सकूं ॥ १५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस भांति दक्षने शिवजीसे अपना अपराध क्षमा करा चतुराननकी सम्मतिसे उपाध्याय ऋत्विज अग्निसहित यज्ञ कर्म सुन्दरतासे विस्तार कराया ॥ १६ ॥ तीन कपालका पुरोडाश विष्णुके निमित्त यज्ञसम्पूर्ण करनेके हेतु प्रमथादिक वीरोंकी शुद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने होम दिया ॥ १७ ॥ हे विदुर ! अध्वर्युने जब हवि हाथमें लेकर यजमानसे विशुद्धबुद्धिसे हवन कर श्रीवासुदेव भगवान्का ध्यान किया, उसी समय श्रीभगवान् आकर प्रकट हुए ॥ १८ ॥ जिस गरुड़के पंखोंसे सामवेदके मंत्रोंकी ध्वनि निकलती है; उसपर विराजमान होकर श्रीभगवान् आये, उस समय उनके तेजके सम्मुख सबका तेज मन्द विदित होता था और दशों दिशायें उनके तेजसे प्रकाशमान हो रही थीं ॥ १९ ॥ श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, सूर्य समान किरीट शिरधारे, नील अलकें भ्रमरवत् शोभित मुखवाले, श्रवणोंमें कुण्डल लटकाये, नानाप्रकारके आभूषण पहिने भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, शर, चाप, खड्ग, ढाल धारण किये, और कनेरके पुष्पवत् श्रीभगवान्, देदीप्यमान विदित होते थे ॥ २० ॥ वक्षस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान, वनमाला पहने, उदार हँसीयुक्त अवलोकनकी कलासे विश्वको रमण कराते, पार्श्वमें घूमते हुए, व्यजन, चमर, राजहंसवत् दोनों ओर डुल रहे थे और ऊपरकी ओर पूर्ण शशिसम श्वेत छत्र अत्यन्त शोभाको बढ़ा रहा था ॥ २१ ॥ उन भगवान्को ब्रह्मा, इन्द्र, शिव और सब देवगणादिकने आता देख उठकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २२ ॥ उन श्रीवासुदेव भगवान्के तेजके प्रकाशसे सबकी कांति मलिन हो गयी । ऐसे वे पुरुष अञ्जलियोंके संपुट शिरपर करके मोहसे संभ्रम हो गद्गदवाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥ तब ब्रह्मादिक देवताओंकी मनवाणीकी सब वृत्तियां बिसर गयीं ! भगवान्की महिमाको नहीं पहुँच सकीं तो भी उन्होंने कृपा करनेके लिये निज स्वरूप धारण कर अपने निकट आये हुए भगवान्की यथामति अनुसार सबने स्तुति की ॥ २४ ॥ यज्ञाधीश, विश्वके रचनेवाले, ब्रह्मादिकोंके परमगुरु और नन्द सुनन्द आदि पार्षदों सहित भगवान्के समीप जाकर प्रजापति दक्षने पूजाकी सामग्री समर्पण की, तब श्रीनारायणने वह पूजाके द्रव्यका पात्र अपने हस्तकमलसे ग्रहण किया, तब दक्षने प्रसन्न हो, हाथ जोड़ बड़ी सावधानीसे भगवान्की स्तुति की ॥ २५ ॥ दक्ष बोला कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे रहित, अपने रूपमें स्थित पवित्र, चैतन्यस्वरूप, अद्वितीय, केवल एक आप ही हो, आप मायाका तिरस्कार कर स्वाधीन होनेपर भी फिर उसीमें स्थित होकर पुरुषरूप बन मायारूपी नाटक रचते हो, तब उस मायामें रहनेसे ऐसा, विदित होता है कि रागद्वेषादिक कर्म आपमें भी आ गये हैं, परन्तु यह मेरी दृष्टिका भेद है और आप तो निर्लेप और निर्विकार हैं ॥ २६ ॥ सब ऋत्विज बोले कि, हे निरञ्जन ! हे उपाधिरहित ! ! हे भगवन् ! ! ! हम लोग रुद्रके शापसे केवल कर्मोंमें दुराग्रह

रखने वाले हैं। परन्तु आपके तत्त्वको नहीं जान सकते, धर्मका उपलक्षण वेदत्रयीप्रतिपाद्य यह यज्ञ है, ऐसे जानकर हम यज्ञ करते हैं, जिससे अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ये तीनों अवस्था दूर होती हैं ॥ २७ ॥ सभासद् बोले कि, हे शरणागतवत्सल ! इस उत्पत्तिके कालरूपी संसारका महा कठिन पंथ है, जिसमें कोई विश्रामका स्थान दृष्टि नहीं आता, न कोई रक्षक है और हैं तो अनेक क्लेशदायक विषमस्थान हैं, मृत्युरूप उग्रसर्प फण उठाये फुङ्कार रहा है, सुखदुःखादिकरूप नानाप्रकारके अनेक गम्भीर गढ़े हैं, दुष्टपुरुष मृगरूपी घातक प्राणियोंके भयदायक हैं, मोहरूपी नदी नाले हैं और शोकरूपी दावाग्नि भड़क रही है, तृष्णा और कामनासे दुःखित हो उस मार्गमें जाता है, विषयमार्ग तृष्णावश अज्ञानको साथ लिये भ्रमके भारको शिरपर धरे शीघ्र चलता है, फिर यह कामव्याप्त जीव कब आपके चरणरूपी मंदिरको प्राप्त हो सकता है ! ॥ २८ ॥ रुद्र बोले कि, हे वरद ! सर्व विषयोंमें वैराग्यवाले सत् अर्थदायक ! असक्त मुनियोंके आदरभावसे पूजनीय ! तुम्हारे चरणकमलमें रचित बुद्धिवाला, अविद्याकामसे लोकमें विंधा हुआ, आपकी पूर्ण प्रेमभरी दयादृष्टिसे मैं अपने मनको लगा रहा हूँ, उसको मूर्ख लोग आचारभ्रष्ट करते हैं तो भी आपके अनुपम अनुग्रहसे उस बातको मैं कुछ नहीं समझता ॥ २९ ॥ भृगुजी बोले कि आपकी गम्भीरमायासे देहधारी ब्रह्मादिक देवता भी अन्धकारमें सोये हुए आत्मज्ञानको भूल रहे हैं, आत्मामें रहनेपर भी आपके तत्त्वको अबतक नहीं जानते, हे भक्तोंके आत्मबन्धो भगवन् ! मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले कि ज्ञान अर्थ गुणाश्रय पदार्थोंको पृथक्-पृथक् रीतिसे विचार करनेवाली इन्द्रियोंसे प्राणियोंकी दृष्टिमें जो कुछ आता है, वह आपका सत्यस्वरूप नहीं है, क्योंकि ज्ञानका पदार्थ और इन्द्रियोंका अधिष्ठानरूप आपका मायाके पदार्थोंसे सर्वत्र पृथक् है ॥ ३१ ॥ इन्द्र बोले कि हे अच्युत ! विश्वभावन, संसारपालक चिदानन्द, असुरवंश विध्वंश करनेवाले, यह ऊंचे उठे हुए आयुधवाला, अष्टभुजी सुन्दर स्वरूप भी आपका योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ पत्नियाँ बोलीं कि हे यज्ञरूप ! हे रमेश!! यह केवल तुम्हारी ही यजनके लिये दक्षप्रजापतिने रचा था, उस पशुपति महादेवने आज दक्षपर कोप करके विध्वस्त कर दिया सो हे कमलनयन! हे शांतबुद्धे!! हे यज्ञात्मक!!! यह यज्ञ उत्सव रहित श्मशानवत् महाअशुचि हो गया है, आप अपनी कमलवत् पावन दृष्टिसे इसको पवित्र करो ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि हे भगवन् ! आपकी माया बड़ी दुरंत है, किसीसे जानी नहीं जाती, जिस रूपसे आप विचरते हो उसमें लिप्त नहीं होते, जिस हेतुसे ऐश्वर्यके लिये ईश्वरी लक्ष्मीजीकी उपासना ब्रह्मादिक करते हैं, वह लक्ष्मी आठ पहर आपके चरणारविंदोंकी ओर ताकती रहती है, तो भी आप उसको आदर नहीं देते ॥ ३४ ॥ सिद्ध लोग बोले कि क्लेशरूपी दावाग्निसे दग्ध हुआ प्याससे पीड़ित हो, यह हमारा मातंगरूपी मन आपकी कथारूपी उज्ज्वल अमृतकी नदीमें स्नान करनेसे और शीतल जल पीनेसे फिर जगद्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता और उस नदीसे बाहर नहीं निकलना चाहता। अब हमको ऐसा विदित होता है कि परब्रह्मके संग एक रंग हो गया ॥ ३५ ॥ दक्षकी स्त्री प्रसूति बोली कि हे रमापते ! श्रीनिवास !! हे परमात्मन् !!! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, श्रीसहित हमारी रक्षा करो, हे अधीश ! तुम्हारे विना यह यज्ञ शोभा नहीं देती थी, जैसे शिरहीन कबंध शोभा नहीं देता ॥ ३६ ॥ लोकपाल बोले कि हे भूमन् ! विज्ञानरूप, ज्ञानगुण प्रकाशक; दृश्यमात्रको जाननेवाले, प्रत्यगात्मरूप, सर्वद्रष्टा आप हो, यह असत

पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इंद्रियाँ तुम्हारा स्वरूप देख नहीं सकतीं, क्योंकि इस पञ्चभूतात्मक शरीरमें जो छठे जीवरूपसे आप विदित होते हो, वही आपकी माया है॥३७॥ योगेश्वर बोले कि हे प्रभो ! हे ईश !! हे वत्सल !!! तर्क करते हैं कि आप विश्वात्मा हैं, आपसे जीव अपनी आत्माको भिन्न नहीं समझता, उससे अधिक प्यारा और आपको कोई नहीं है, यद्यपि ऐसे हैं तो भी अनन्यभक्तिसे जो आपकी उपासना करते हैं उनपर अनुग्रह करो ॥ ३८ ॥ दैवसे जगत्की उत्पत्ति और लयमें जीवके अदृष्टके कारण जिसके गुणोंका नाना-प्रकारसे भेद होता है, ऐसी आपकी अद्भुत मायाने जिनके स्वरूपमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि भिन्न भिन्न भेद रचे हैं, परंतु स्वरूपकी स्थिति देखते जिनमें भेदभाव दूर करनेसे उसका कारण कुछ भी नहीं है, ऐसे आप परब्रह्मको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥२९॥ ब्रह्माजी बोले कि सत्त्वावच्छिन्न, चैतन्य स्वरूपधारी धर्मादिकोंके उत्पन्न करनेवाले और जिनके गुण तत्त्वको न तो मैं जानता हूँ और न कोई दूसरा जानता है; ऐसे निर्गुण निर्विकारको बारम्बार नमस्कार है ॥४०॥ अग्नि बोले कि आपके तेजसे जो मुझमें प्रकाश है इसीसे उत्तम-उत्तम यज्ञोंमें टपकते हुए घृतका हव्य मैं धारण करता हूँ और सब देवताओंको पहुँचाता हूँ उन यज्ञोंके रक्षक और यज्ञरूप पांचप्रकारसे पंच यजुमंत्रसे सुन्दर यज्ञ किये जाते हैं । हे यज्ञ-मूर्त भगवन् ! हम वारंवार आपको प्रणाम करते हैं, वे पांच यज्ञ ऐतरेय उपनिषदकी श्रुतिमें हैं–"स एष यज्ञः पञ्चविधः–अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोम इति ।" तथाच श्रुतिः–आश्रावयेति चतुरक्षरम् । अस्तुश्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्व्यक्षरम् । ये यजामहे इति पंचाक्षरम् । द्व्यक्षरो वषट्कारः ॥ अर्थ–आश्रावय, अस्तु श्रौषट्, यज यजामहे, वषट् इत्यर्थः' इस प्रकार जो पूजे जाते हैं, उन वासुदेव भगवान्को वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि पहले आप महाप्रलयमें रचे हुए विश्वको अपने उदरमें धरकर आप ही आद्यपुरुष उस जलमें शेषशय्यापर सोये थे सिद्धोंने अपने हृदयमें जिनकी अध्यात्म, पदवी विचारी है, वह भगवान् आज हम लोगोंके नेत्रगोचर हुए, यह आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, आप सदा दासोंका ऐसे ही पालन किया करते हैं ॥४२॥ गंधर्व बोले कि देव ! मरीचि आदि ऋषि, ब्रह्मा, इन्द्रादिक देवगण, रुद्र जिनमें मुखिया हैं, ये सब आपके अंशके अंश भाग हैं और यह सब संसार आपके विहार करनेका खिलौना है । हे भूमन् ! हे नाथ ! ! हे दीनबन्धो ! ! ! ऐसे जो आप हैं उन आपको हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर बोले कि, ऐसा पराक्रमी और पुरुषार्थी देह पाकर जो पुरुष आपकी मायाके अधिकारमें हो, अभिमानमें आकर कोई-कोई मनुष्य कहने लगता है कि मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसे वचन कह उलटे मार्गमें चलने लगता है, अपने कुटुम्बियोंके अनादर करनेपर भी मूर्खतासे तुच्छ विषयोंमें तृष्णा रखता है, वह आत्माका भी मोह तुम्हारी कथामृतके सेवन करनेसे सब नष्ट हो जाता है ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण बोले कि यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमानकी स्त्री, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमवल्ली, लता, घृत, दुग्ध और यज्ञपशु सब आप ही हो, इसलिये आपको नम-स्कार है ॥४५॥ हे त्रयीगात्र ! आप पहले महासूकर रूप धारण कर योगीजनोंके स्तुति करनेसे महागम्भीर शब्द कर वसुधाको डाढ़पर रखकर रसातलसे ऐसे ले आये, जैसे गजेन्द्र लीलापूर्वक पद्मिनीको ले आता है । हे प्रभो ! यज्ञ और क्रतुरूप आप ही हो ॥ ४६ ॥ तुम हम

लोगोंपर प्रसन्न होओ, सत्कर्मसे परिभ्रष्ट हो जो तुम्हारे दर्शन की चाहनावाले हैं, उनपर अनुग्रह करके उनको अपना दर्शन दो, हे यज्ञेश ! जब यज्ञमें लोग आपके नामका उच्चारण करते है, उसी समय यज्ञके विघ्न क्षय हो जातें हैं। हे विघ्नविनाशन ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥४७॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे विदुर ! इस प्रकार सब देवगण ऋषिलोगोंने हृषीकेश भगवान्‌की स्तुति की तब कवि, दक्ष, रुद्र, वीरभद्रके विनाशित यज्ञको फिर प्रवृत्त किया ॥ ४८ ॥ सर्वात्मा सब भागके भोक्ता, यज्ञभावन भगवान् अपना भाग ले प्रसन्न हो दक्षप्रजापतिसे बोले ॥४९॥ श्रीभगवान् बोले—जगत्‌का परमकारण सर्वात्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश, उपाधि-रहित जो मैं हूँ, वही ब्रह्मा और शिव जगत्‌के आदिकारण हैं ॥ ५० ॥ हे द्विज मैं ही त्रिगुणात्मक अपनी गुणमयी मायाको धारण कर विश्वकी स्थिति करनेके लिये उन-उन कार्योंके योग्य पृथक्-पृथक् क्रिया, योग, संज्ञा धारण करता हूँ ॥५१॥ केवल अद्वितीय पर-मात्मा, परब्रह्म जो मैं हूँ वे अज्ञानी लोग ब्रह्म, शिव और जीवमें भेदकर समझकर भिन्न-भिन्न रीतिसे देखते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे पुरुष अपने शिर हाथ चरण आदि अपने अंगोंमेंसे किसी अंगको दूसरेका नहीं जानता, इसी प्रकार महात्मापुरुष सब प्राणियोंमें मेरा ही रूप मानते हैं ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रका आत्मा और अद्वितीय केवल मैं हूँ। जो पुरुष ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंमें एक भाव समझता है और भेदबुद्धिसे नहीं देखता वह शांतिको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार हृषीकेश भगवान्‌ने जब दक्ष प्रजापतिको उपदेश किया, तब प्रजापतियोंके पति दक्षने अपने यज्ञमें प्रथम उनका पूजन करें फिर दूसरे देवताओंका पूजन किया ॥५५॥ फिर चित्तको सावधान करके यज्ञके अवशेष भागसे संपूर्ण कर्म पूर्ण करनेवाले महादेवजीका पूजन करके कर्मसे समाप्तिके देनेवाले दूसरे जो अमृत-पान करनेवाले देवता हैं उनको भाग दिया ॥५६॥ फिर सब कर्मको समाप्त करके स्तुति करने लगे, ऋत्विजोंको साथ लेकर उसने सबका भाग दे पीछे यज्ञांत स्नान किया और विप्रोंके लिये दक्षिणा देकर यथासुख विहार करने लगा ॥५७॥ भगवान्‌की कृपासे दक्षको अपने ही प्रभावसे सब सिद्धियां प्राप्त हो गयी थीं, तो भी धर्ममें बुद्धि रहनेका वरदान देकर सब देवता सुरपुरको चले गये ॥ ५८ ॥ इस प्रकार दक्षसुता सतीने अपने पूर्वतनुको त्यागकर पीछे हिमाचलकी भार्या मैना नाम्नी रानीमें जन्म लिया, यह बात हम सबने सुनी है ॥ ५९ ॥ वह हिमाचलकी पुत्री अम्बिका, भवानी, पार्वती, प्रलयकालमें सोई हुई शक्ति जैसे आद्य पुरुषको प्राप्त होती है, इसी प्रकार फिर दूसरी वार भी उन्हीं शिवजीको प्राप्त हुई, जो एकवृत्तिसे भक्तोंके मुख्य आश्रयरूप है ॥ ६० ॥ दक्षप्रजापतिके यज्ञविनाशक भगवान् शिवजीका यह कर्म भागवत बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुना था, वह आपको सुना दिया ॥ ६१ ॥ पापपुञ्जका हर्ता और कोटिकष्टविनाशकर्ता, यश और आयुका बढ़ानेवाला तेजका चमकानेवाला, यह अत्यन्त पवित्र शिवजीका चरित्र है, जो मनुष्य प्रेम प्रीतिसे सुने और सुनाये वह प्राणी शिवजीकी भक्तिके प्रतापसे सब पापसे छूट जाता है वे महादेवजी कैसे हैं—

भजन—शंकर सुख करन सदा, संतन सुखदाई
सेवत सुर नर मुनीश, आद्यरूप जगत् ईश ॥

सोहत नितगंग शीश, भस्म अंग छाई ॥ १ ॥
पंचवदन अति विशाल,सोहत दृग लाल लाल ।
बालचंद्र लसत भाल, शोभा अधिकाई ॥ २ ॥
पूरण आनंद कन्द मेट सकल द्वन्द फन्द ।
बैठे निर्द्वन्द मंद, मैनको जराई ॥ ३ ॥
ज्ञान भक्ति मुक्ति धाम, रटत रहत अष्टयाम ।
राम राम रामराम, रघुपति रघुराई ॥ ४ ॥६२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा—ध्रुव अष्टम अध्यायमें, मात वचन सुनि कान ।
गये विपिन तप करनको, मिले आय भगवान् ॥

मैत्रेयजी बोले कि सनकादिक, नारद, ऋतु, हंस, अरुणि और यति इन ब्रह्माजीके पुत्रोंने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होनेके लिये गृहस्थाश्रम नहीं किया, ऊर्ध्वरेता हुए ॥ १ ॥ हे शत्रु दमन ! अधर्म भी ब्रह्माजीका पुत्र है, इसलिये उसके वंशका भी वर्णन करते हैं, अधर्मकी मृषा नाम पत्नीमें दंभ नामक पुत्र और माया नाम्नी कन्या उत्पन्न हुई, सो मृत्युके पुत्र नहीं था, इसलिये उन दोनोंको अपने घर उसने रख लिया ॥ २ ॥ हे महामते ! दंभकी माया नाम भार्यामें लोभ नामक पुत्र और निष्कृति नाम पुत्री हुई, लोभकी निष्कृति नाम स्त्रीमें क्रोध नामक सुत और हिंसा नाम्नी सुता उत्पन्न हुई। क्रोधके हिंसा नाम्नी पत्नीमें कलि नाम तनय और दुरुक्ति नाम्नी तनया प्रकट हुई ॥३॥ हे सत्तम ! कलिकी दुरुक्ति नाम स्त्रीमें भय नाम पुत्र और मृत्यु नाम दुहिता प्राप्त हुई, भयकी मृत्यु नामक स्त्रीमें निरय नाम बेटा और यातना नाम्नी बेटी हुई ॥४॥ हे अनघ ! संक्षेपसे मैंने यह सर्ग वर्णन किया जो पुरुष तीन बार इस अधर्म-वंशावलीको सुने उसके शरीरके सब मलका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ हे परीक्षित ! पुण्य कीर्तिवाले श्रीभगवान्‌के अंशसे जिनका जन्म हुआ उन स्वायंभुवमनुका वंश वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति मनुके भगवान् वासुदेवकी कलासे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए और जगत्‌की रक्षामें स्थिर रहने लगे ॥ ७ ॥ राजा उत्तानपादकी दो रानियां थीं, सुनीति और सुरुचि, सो उनमें सुरुचिपर उस राजाका अधिक प्रेम था और सुनीति जो ध्रुवजीकी माता थी, वह राजाको प्यारी नहीं थी ॥ ८ ॥ एक दिन वह राजा सुरुचिके पुत्रको गोदमें बिठाकर खिला रहा था, उसका नाम 'उत्तम' था, उसी समय ध्रुवजी भी कहींसे आ गये और जब पिताकी गोदीमें बैठनेको उपस्थित हुए, तब पिताने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ९ ॥ और आरोहण करनेकी इच्छा करते हुए अपनी सौतके पुत्र ध्रुवजीको सुनाकर सुरुचिने राजाके सम्मुख ईर्षासे अभिमानके वचन कहे ॥ १० ॥ सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! आप राजकुमार हो तो भी राजसिंहासनके बैठने योग्य नहीं हो; क्योंकि तुमने मेरी कुक्षिमें जन्म नहीं लिया है ॥ ११ ॥ अरे अभी तू बालक है इसी लिये तुझे इस बातका कुछ ज्ञान नहीं, कि मैं दूसरी स्त्रीके गर्भमें जन्मा हूँ। जो चेष्टा तू करता है, वह मनोरथ तेरा

बहुत दुर्लभ है ॥ १२ ॥ यदि तू राजसिंहासनकी इच्छा करता है तो तपसे आदिपुरुष परमात्माकी आराधना कर। जब उनकी कृपासे मेरे गर्भमें जन्म लेगा, तब राज्य-सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करना ॥ १३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सौतेली माताके दुर्वाक्योंको कठिन बाणोंसे बिंधा हुआ, वह ध्रुव रोषसे श्वास लेता, दंडहत उरगके सदृश, मौन साधे देखता हुआ, पिताके पाससे रोता हुआ; माताके समीप गया ॥ १४ ॥ क्रोधके मारे अधर होठ जिसके फड़क रहे थे। अपने पुत्र ध्रुवको गंभीर श्वास लेता हुआ देखकर उसकी माता सुनीतिने दौड़कर उसको गोदीमें उठा लिया और जो कुछ उसको सौतने कहा था वह बात पुरवासियोंके मुखसे सुनकर अत्यन्त पीड़ित हुई ॥ १५ ॥ और धैर्यको त्याग शोक दावाग्निके मध्यमें स्थित लताकी नाईं कुँभलाकर वह अबला विलाप करने लगी और सौतके वचनोंको स्मरण कर करके वह कमलाक्षी कमलवत् लजीले नेत्रोंसे आंसू बहाने लगी ॥ १६ ॥ लंबे-लंबे श्वास भरती, दुःखके पारको न पाती वह अबला अपने बालकसे बोली कि हे पुत्र ! औरोंका अपराध मत मानो, जो पहले दूसरेको दुःख देता है; उसको उसका फल निःसन्देह भोगना पड़ता है ॥ १७ सुरुचिने जो कहा सब सत्य है, क्यों कि एक तो तूने मुझ भाग्यहीनके उदरमें जन्म लिया, दूसरे मेरे स्तनोंका दूध पीकर इतना बड़ा हुआ, राजा मुझको भार्या कहते तो हैं, परन्तु मनमें अत्यन्त लज्जित होते हैं ॥ १८ ॥ हे वत्स ! ईर्षा छोड़कर निष्कपट होकर जो सत्य वचन तेरी विमाताने कहा है, उसको तू स्वीकार करके श्रीवासुदेव भगवान्के चरणारविन्दोंका आराधन कर, जो उत्तमकी नाईं राज्यसिंहासनकी इच्छा हो तो ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणी जिन भगवान् वासुदेवके संसारके पालनेके लिये आत्म श्वास जीतनेवाले जिनकी वंदना करते हैं, ऐसे चरणकमलकी सेवा कर, ब्रह्माजी निश्चय ही ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥ २० ॥ उसी भाँति तुम्हारे पितामह भगवान् मनुने जिन आदि पुरुष अविनाशी अंतर्यामीका एकाग्र बुद्धिसे उत्तम दक्षिणावाले यज्ञद्वारा पूजन करके और उपायसे नहीं मिले, ऐसे भूमिके और स्वर्गके सुखके साथ-साथ मुक्तिके सुखको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! जिन भक्तवत्सल श्रीनारायणके चरणारविन्दोंके पथको मुमुक्षु लोग खोज रहे हैं, तुम भी उन भगवानका आश्रय लो और दूसरा भाव न हो, ऐसे निज-धर्मसुशोभित मनमें आद्यपुरुषको स्थित कर श्रीभगवान् वासुदेवका भजन करो ॥ २२ ॥ विना कमलनयन भगवान्के तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला मुझको कोई नहीं दिखायी देता, हे वत्स ! ब्रह्मादिक सब देवता जिसकी खोजमें रहते हैं और लक्ष्मीजी कोमलकमलसे हाथमें कमल लिये जिनकी चाहना करती हैं, उनके चरणारविन्दकी उपासना करो ॥२३॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे मनोवांछित माताके मधुर वचन सुन—

दोहा—धरि धीरज मतिधीर ध्रुव, छोड़ राज्यकी आश।
चला तुरत ही तमकके, उर धरि रमानिवास ॥ १ ॥
अब हम बनको जात हैं, छांड़ि सकल धन धाम।
जो चाहो सो राज्य लो, हमें नहीं कुछ काम ॥ २ ॥
मनमें यह प्रण करत हौं, ढूँढ़ों श्रीरघुवीर।
जो नहिं दर्शन होयँगे, तौ तज देहुँ शरीर ॥ ३ ॥

अपनी मातासे और छोटे-छोटे अपने संगके खेलनेवाले बालकोंसे यह बात कह और

वासुदेव भगवान्‌को अपना हितू जान, पिताके पुरसे चल दिया ॥ २४ ॥ भगवान्‌के परम-भक्त पापनाशक नारदजी इस बातको सुनकर उसके मनका पूर्ण दृढ़व्रत जान अपना हस्त-कमल उसके शिरपर धरकर विस्मित हो मनही मनमें कहने लगे ॥२५॥ अहो ! क्षत्रियोंका तेज ऐसा उग्र है कि यह अपने मानभङ्गको किंचिन्मात्र भी सहन न कर सका, यह बालक है तो भी विमाताके दुर्वाक्योंको हृदयमें धारण नहीं कर सका ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि हे कुमार! खेल-खिलौने आदिकोंमें आसक्त बालकोंका कोई अपमान करे, वा संमान करे तो उसमें हम कुछ बुरा भला नहीं देखते॥२७॥जो तुमको मान अपमानका ज्ञान है, तो सन्तोषके हेतु ये भिन्न नहीं है क्योंकि संसारमें पुरुषको मोहसे ही सुख-दुःख होते हैं और किसी प्रकारसे नहीं होते ॥ २८ ॥ हे तात ! इस लिये जब ईश्वर सहायक होते हैं तो कार्य भी सिद्ध होते हैं, इस बातको निश्चय कर परमात्मासे जो कुछ प्राप्त हो, उतनेमें मनुष्यको चाहिये कि अपने मनमें सन्तोष कर ले॥२९॥और तू माताके कहे हुए योग करने योग्य है, जिनका प्रसन्न होना पुरुषोंपर बहुत कठिन है, दुःखसे आराधन करने योग्य है, यह मेरी भी सम्मति है ॥३०॥ मुनिलोग सबका संग तजकर तीव्रयोगसमाधिसे अनेक जन्मोंसे उनकी पदवीका अनुसरण करते हैं, तो भी जान नहीं सकते॥३१॥इसलिये इस हठको छोड़ दे, क्योंकि यह तेरी हठ अच्छी नहीं है और अभी फलदायक भी नहीं होगी, जब योगसाधनका समय वृद्धावस्था आ जायगी, तब इसके लिये भी प्रयत्न करना ॥३२॥ दैवने जिसके भाग्यमें जो लिखा है, उसको उचित है कि सुखसे दुःखसे उतनेमें ही अपने मनको प्रसन्न रखो, क्योंकि उतनेमें ही अपनी आत्माको सन्तुष्ट रखता है, वह पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है ॥ ३३ ॥ जो आपसे गुणमें अधिक हो तो उसको देखकर आनंदित होना चाहिये, उसकी निंदा न करें और जो आपसे हीन हो तो उसपर अनुग्रह रखना चाहिये, उसका अनादर न करे और जो अपने समान हो तो उससे मित्र भाव रखना चाहिये परन्तु उससे अपनी उन्नति न चाहे। जो पुरुष इस रीतिसे चलता है, उसका किसी प्रकारसे तापसे विनाश नहीं होता ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी बोले कि अपने सुख-दुःखसे नष्ट मनवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान्‌ने यह शांतिका उपाय दिखाया है, पर हम सरीखे मतिमन्द मनुष्योंको इसका ज्ञान भी नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥ तो भी घोर क्षत्रियसुभावको धारण किये मुझ अवनीत अभागेके हृदयमें यह आपका उप-देश ठहर नहीं सकता, क्योंकि सुरुचिके दुर्वाक्यरूपी शरोंसे मेरा हृदय विंधा पड़ा है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! संसारमें जो उत्तम पद है उसको कोई नहीं पा सकता; जिस पदको हमारे पिता-पितामह और कोई दूसरा भी उस पदवीको नहीं पहुँचा हो; ऐसे त्रिभुवनके उत्तम पदको जीतनेका मेरा मनोरथ है, वह उपाय कृपा करके मुझे बताओ—

दोहा—जेहिं उपायसे परमपद, मोहिं सहज मिल जाय ।
हे विरंचिनन्दन सोई, दीजै आप बताय ॥ ३७ ॥

आप साक्षात् भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हो और वीणा हाथमें लिये जगत्‌के हितके हेतु मार्त-ण्डकी नाई खण्ड-खण्डमें घूमते हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, नारद ध्रुवके ऐसे गम्भीर वचन सुनकर, अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्य वाक्योंसे उस बालकपर परम स्नेह किया॥३९॥ नारदजी बोले कि तेरी जननीने जो तेरे अभिप्रायका पंथ बताया है, वह निश्चय मोक्षदायक और वासुदेव भगवान्‌से मिलनेवाला है, इसलिये मनको सावधान करके उन्हींका भजन कर

॥४०॥जो मनुष्य अपना सुख चाहे तो वह धर्म, कर्म, अर्थ, काम, मोक्षके निमित्त श्रीमन्नारायण के चरणारविंदका आराधन करे, क्योंकि प्रधान कल्याणका कारण वही है ॥४१॥ इसलिये हे पुत्र श्रीयमुनाजीके तटपर अत्यन्त रमणीक मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां श्रीकृष्णचन्द्र आनंद-कंद सदा विराजते हैं, वहां तू जा, निश्चय तेरा कल्याण होगा ॥४२॥ उस पवित्र आश्रममें जाकर नित्य यमुनाजीके अमृतरूपी जलमें त्रिकाल स्नान कर, अपने नित्यकृत्यसे निश्चित हो, दृढ़ आसन जमाकर तू वहां रहना॥४३॥पूरक, रेचक, कुम्भक, यह तीन प्रकारकी जिसकी वृत्ति हैं, ऐसे प्राणायामसे धीरे-धीरे प्राण इन्द्रिय मनके मलको दूर करके धीर मनसे गुरुरूप कृष्ण भगवान्का ध्यान कर॥४४॥जनोंके ऊपर प्रसन्न होनेमें सुमुख, निरन्तर प्रसन्नवदन; सुन्दर नेत्र सुन्दर नासिका, सुन्दर भ्रुकुटी; सुन्दर कपोल देवताओंमें सुन्दर ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ तरुण अवस्था, रमणीय अंग, अरुण होंठ, देखने योग्य बिम्बवत् अधर, नम्रीभूत आश्रितोंके सुख-दायक, शरण्यरूप, करुणानिधान ॥४६॥ श्रीवत्सका चिह्न धारण किये, मेघवत्, श्यामवर्ण वनमाली, अन्तर्यामी, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभित चतुर्भुज हैं॥४७॥किरीट, कुण्डल, केयूर, कङ्कणसे देदीप्यमान, कौस्तुभ मणि और आभरण, ग्रीवामें देदीप्यमान पीताम्बर पहरे ॥४८॥ कटिमें क्षुद्रघंटिका धारण किये, कञ्चनके नूपुर चरणारविंदोंमें सजाये, अत्यन्त दर्शन योग्य शांतिचित्त, मन और नेत्रोंके आनंदवर्द्धक ॥ ४९ ॥ नख-मणिपंक्तिसे शोभित, पूजित चरण, हृदयकमलकी कलियोंपर विराजमान, जीवात्मामें स्थित हैं ॥ ५० ॥ मंद-मंद मुसकाते, प्रेम-सहित अवलोकन, वरदायकोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपका पहले धारणासे दृढ़ हुए एकाग्र मनसे ध्यान कर ॥५१॥ इस प्रकार मङ्गलदायक श्रीयदुनायकके स्वरूपका जो ध्यान करता है, उस पुरुषका मन तुरंत परमानंदित हो अन्यविषयोंसे निवृत्त हो जाता है ॥ ५२ ॥ हे नृपनंदन परम गुह्य जो जपने योग्य मन्त्र है सो सुन, जिसको सात रात्रि मनुष्य जपे तो आकाशके सब देवता प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं ॥५३॥ "ॐनमो भगवते वासुदेवाय" उत्पत्ति, पालन, संहार कर्ता, षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीव जिनमें निवास करें, उनके लिये नमस्कार है, सज्जन पुरुषोंको उचित है कि इस मन्त्रसे भगवान् वासुदेवकी नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे देशकालके विभागोंको जानकर द्रव्यमयी पूजन करे ॥ ५४ ॥ पवित्र जल वनके फल फूलादिक सुंदर अंकुर, वस्त्र, तुलसीदलसहित भगवान् वासुदेवका पूजन करे ॥५५॥ शालग्रामशिलादिककी मूर्ति बनाकर द्रव्यमय पूजा करे, अर्चाका पृथिवी जलआदिकसे पूजन करे; इंद्रियोंको जीत, मनको शांत कर, मौन बन, वनके कन्दमूल खाय ॥५६॥ और अपनी इच्छासे जो अवतार धारण करते हैं; उनका चिंतन करे और विष्णु भगवान् फिर अपनी अचिंत्य मायाके अवतार ले सुन्दर सुन्दर लीला करेंगे, इस प्रकार हृदयमें ईश्वरका ध्यान करे ॥५७॥ पहले ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंने भगवान् वासुदेवकी परिचर्य्या जिस प्रकार की है उन्हीं विधानोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रका उच्चारण करके मन्त्रमूर्तिके अर्थ प्रयोग करे ॥ ५८ ॥ उस प्रकार मन, वचन, शरीरसे मनोगत ईश्वरकी परिचर्य्या करे, इस भांतिकी सेवा करनेसे भग-वान् भक्ति करनेवालेको मनोवांछित फल देते हैं॥५९॥निष्कपट भजन करनेसे पुरुषोंको भाव-वर्द्धन करनेवाले भगवान् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ और जो मन अभिलषित धन पुत्रादिक फल चाहते हैं, उसी समय उसको देते हैं॥६०॥जो भक्त मुक्ति होनेकी इच्छा करे वह विरक्त होकर भक्तियोगके दृढ़ किये हुए भावसे साक्षात् निरन्तर भावसे भजन करे ॥६१॥

नारदजीके ऐसे मनोहर वचन सुनकर सुनीतिकुमार ध्रुवजीने उनकी परिक्रमा दे प्रणाम कर भक्तिरूप हरिचरणारविंदसे शोभित मथुराके निकट मधुवनको गमन किया ॥६२॥ ध्रुवजीके वनमें जानेके उपरान्त नारदजी राजा उत्तानपादके अन्तःपुरमें पहुँचे, राजाने नारदजीको आता देख अर्घ्य दे बड़े आदरसत्कारसे पूजन कर आसन दिया; उसपर आनन्दपूर्वक विराजमान होकर ॥६३॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपका मन मलिन, तन छीन हो रहा है; ऐसी क्या चिन्ता है ? आपका धर्म, अर्थ, कर्मसहित नष्ट तो नहीं हो गया ॥६४॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्त्रीके विवश होकर निर्दयपनसे सकल सुलक्षणधाम महात्मा अपने पांच वर्षके बालक पुत्रको उसकी माता समेत घरसे निकाल दिया । यहांपर माता-समेत निकालनेका तात्पर्य यह है कि उसकी माता सुनीतिको भी अनादृत कर रखा है॥६५॥ हे नारदजी ! जिसका कोमल मुखारविन्द कुम्हला रहा है, ऐसे अनाथ भूखे थके हुए सोते बालकको कहीं भेड़िया न खा जाय, क्योंकि वनमें अकेला होगा ॥६६॥ हाय ! मुझ दुरात्मा दुर्जन दुर्भागी स्त्रीजितकी ओर तो देखो, वह बालक प्रेमसे मेरी गोदमें चढ़ता था और मुझ महानीचने नारीविवश हो उसको गोदीमें न लिया ॥ ६७ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! आपने-अपने पुत्रकी महिमाको नहीं जाना, वह बड़ा प्रतापी है और भगवान् उसके रक्षक हैं इस लिये ऐसे सुतका सोच तुम न करो, क्योंकि "जिसका राम रक्षक उसका कौन भक्षक"॥

दोहा–जगमें अनुपम यश करै, हरै सकल भ्रमजाल ।
भयो न है नहिं होयगो, महीमाहिं महिपाल ॥ ६८ ॥

जो लोकपालोंसे भी न हो सके; ऐसे-ऐसे महाकठिन कर्म करके वह ध्रुव तुम्हारा यश विस्तार करता हुआ बहुत शीघ्र आयेगा ॥ ६९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजा उत्तानपाद नारदजीका यह वचन सुनकर पुत्रका सोच करने लगे और राज्यलक्ष्मीका किंचिन्मात्र भी आदर न किया ॥ ७० ॥ ध्रुवजीने देवर्षिकी आज्ञानुसार मथुराजीमें आ यमुनाजीमें स्नान कर वहां एक रात्रि उपवास किया, फिर सावधान हो एकान्तचित्त कर भगवान्का ध्यान करने लगा ॥७१॥ तीन-तीन रात्रिके अंतमें कैथ और बेरोंके आहारसे अपने शरीरकी स्थितिके अनुसार एक मास व्यतीत किया और अत्यन्त प्रीति बढ़ाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरणारविन्दका ध्यान किया ॥७२॥ दूसरे मासमें ध्रुवजीने छठे-छठे दिन आपसे आप गिरे हुए तृण और पत्तोंको खा खाकर उदरपूर्ति की और हरिका भजन किया ॥७३॥ तीसरे मासमें नौ-नौ दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोक ईश्वरका समाधिसे पूजन किया ॥७४॥ चौथे महीनेमें १२-१२ दिनमें श्वासको जीतकर वायु भक्षण कर श्रीगोविन्दके चरणारविंदका ध्यान किया॥७५॥ जब पांचवाँ मास प्रारंभ हुआ तब नृपनंदन ध्रुवजी श्वासको जीत खम्भकी नाईं एक चरणसे खड़े होकर परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे ॥ ७६ ॥ इसके अनन्तर सब ओरसे मनको खींचकर हृदय पञ्चभूत अर्थात् शब्दादि विषय और इंद्रिय अंतःकरणमें भगवत्के रूपका

१ शंका–कटहल, बदरीफल, सूखे पत्र, जल, वायु इन भोजनोंसे ध्रुवकी भूख भी नहीं गयी और उपवासका व्रत भी भ्रष्ट हो गया, तब इन फलोंको छोड़कर केवल उपवास ही करके ध्रुवजीने तप क्यों नहीं किया ।

उत्तर–यह वचन धर्मशास्त्रमें लिखा [illegible] कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जो यज्ञोपवीत नहीं लेने पाये और बालपनमें ही वनको चला जाय तो विना जनेऊके तप करना चाहिये, परंतु विना आहार किये उसे तपकी सिद्धि न होगी, बड़े बुद्धिमान ध्रुवने ऐसा [illegible] फल और पत्ते खाकर तप किया, ऐसा भोजन करनेपर उपवास भी नहीं हुआ और तृप्ति भी नहीं हुई !

ध्यान करने लगे। ऐसे कृष्णमय हो गये कि जहां देखो वहां कृष्ण ही कृष्ण दिखायी देते थे ॥ ७७ ॥ जब महत्तत्त्वादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वरकी उसने इस प्रकार धारणा की तब एकाएकी तीनों लोक कांप उठे ॥ ७८ ॥ जब वह नृपकुमार एक चरणके आधारसे खड़ा रहा तब धरणी उसके अंगूठेसे दबी तो झुकने लगी, जैसे गजेन्द्रके एक पग दक्षिण और वाममें धरनेसे पद-पद पर नौका झुक जाती है, ऐसे थोड़ीसी एक ओरको झुक गयी ॥७९॥ अनन्य मन प्राण जीत दशों द्वारोंको रोककर आत्माके साथ अभेददृष्टिसे विश्वात्मा विष्णु भगवान्का जब उसने ध्यान किया तब श्वासके रोकनेसे सब विश्वका श्वास रुका और लोकोंका दम घुटने लगा। तब लोकपाल और सब देवता महादुःखी हुए और इस भेदको न जाने, भगवान्की शरणमें गये ॥ ८० ॥ देवता बोले कि हे भगवन्! सर्वान्तर्यामी चराचरलोकके प्राण क्यों रुक गये, इसका कारण हम नहीं जानते, हे शरणागतवत्सल! हम सब आपकी शरण हैं, इस महाविपत्तिसे हमें बचाओ ॥ ८१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुम कुछ भय मत करो, एक बालकने तप किया है, उसको मैं अभी जाकर निवृत्त करूँगा। तुम अपने-अपने स्थानको जाओ। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके तप करनेसे मुझमें उसकी आत्मा सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हुई है ॥ ८२ ॥

राग भैरव—

भक्त हैं मेरे जीवन प्रान ॥
जब जब भीर परत भक्तनपर धरत हमारो ध्यान।
उसी समय सुधि लेत गरुड़ चढ़ त्याग खान अरु पान ॥१॥ भक्त०॥
भक्त हेतु अवतार लेत हूँ भूमंडलमें आन।
हम भक्तनके भक्त हमारे करत सदा सम्मान ॥ २ ॥
जो कोइ मेरी शरण लेत हैं मुझको अपनो जान।
मेरे हृदय वसत सो निशिदिन सज्जन सुजन सुजान ॥ ३ ॥ भक्त० ॥
मैं अपने पूरण भक्तोंको देत हृदय सुस्थान।
शालिगराम नामसे बढ़कर और कौन सो दान ॥ ४ ॥ भक्त० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य मधुवन समागमवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—इस नवमें अध्यायमें, ध्रुव हरिसों वर पाय।
आय भवन सबसे मिले, मातचरण शिर नाय ॥

मैत्रेयजी बोले कि, जब उन देवताओंका भय दूर हो गया, तब सब भगवान् वासुदेवको प्रणाम करके सुरपुरको चले गये और श्रीभगवान् गरुड़पर चढ़कर अपने भृत्यके देखनेके लिये मधुवनमें आये ॥ १ ॥ ध्रुवजी नेत्र बंद किये अपने ध्यानमें मग्न थे। योगसे पकी हुई तीव्र बुद्धि करके हृदयकमलके कोशमें प्रकाशित चपलासम चमकवाले भगवत्के चतुर्भुजी स्वरूपको जब हृदयमें न देखा तो एकाएकी चौंक उठे और आंख खोलकर चारों ओरको देखा तो वही सुन्दर सुहावनी मनभावनी मूर्ति जिनका हृदयमें ध्यान कर रहे, वेही

भगवान् सन्मुख विराजमान हैं ॥ २ ॥ उनका दर्शन करके विस्मयको प्राप्त हो, देहको पृथ्वीमें नवा दण्डवत् की और ऐसा जान पड़ा कि मानो मनोहर छबिके रसको नेत्रोंसे पियेंगे। मुखसे चुम्बन करेंगे। भुजाओंसे मिलेंगे, इस प्रकार ध्रुवजीने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया ॥३॥ और कुछ भगवान्की स्तुति करनेकी इच्छा थी, परंतु कुछ कहना नहीं जानता था, इस भोलेभाले बालकके और सब जीवमात्रके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् वासुदेवने उसके मनकी भावना जान हाथ जोड़ खड़ा देख, उसपर अनुग्रह करके पांचजन्य शंख उसके कपोलोंसे छुवा दिया॥४॥ ध्रुवजी उसी समय देववाणीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे जीव और ईश्वरके निर्णयको जान ज्ञान, विज्ञान और भक्ति भावसे सब प्रकार प्रगट है प्रताप जिनका ऐसे ध्रुव स्थान-निवासी भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ ध्रुवजी बोले कि जो अखिल शक्तिधारक मेरे भीतर प्रवेश कर, मेरी सोयी हुई वाणीको और हाथ, पांव, कर्ण, त्वचा,प्राणादिकोंको सर्वशक्ति-धारी अपने तेजसे जिलाते हैं, उन भगवान् पुरुषके लिये मेरा नमस्कार है ॥६॥ हे नाथ! तुम एक हो, अपनी मायारूप अनेक गुणशाली शक्तिसे महदादिक; सब यह जगत् रचकर पीछे उसमें प्रविष्ट होकर इस मायाके असत् गुणोंमें नानारूप होकर प्रकाशित होते हो, जैसे काष्ठमें अग्नि नानारूप होकर प्रकाश करती है ॥ ७ ॥ हे भगवन्! शरणागत ब्रह्माने आपके दिये हुये ज्ञानसे जैसे सोता हुआ उठता है, ऐसे इस विश्वको देखा, अतः हे आर्तबन्धो! आपके किये उपकारोंका जाननेवाला, मुक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले आपके पादमूलको किस प्रकार भूल सकता है?॥ ८ ॥ जन्म-मरणसे मोक्ष देनेवाले आपको जो पुरुष विषयादिक कर्मोंके लिये भजते हैं, निःसन्देह वे आपकी मायामें भ्रष्टमति हैं, क्योंकि कल्पवृक्षके सदृश आपको पूज-कर वे पुरुष मृतककी नाईं, शरीर करके उपभोगकी चाहना करते हैं, हाय! अरे मूर्खो! विषयजन्य सुख तो प्राणियोंको नरकमें भी प्राप्त हो सकता है ॥ ९ ॥ हे नाथ! शरीर-धारियोंको जो सुख आपके चरणारविन्दके ध्यानसे अथवा आपके वैष्णवजन ब्राह्मणोंकी कथा श्रवणसे होता है, वह आनन्द अपनी महिमामें और ब्रह्ममें तो है ही नहीं, फिर यमराजके खड्गरूप कालसे मरनेवाले, विमानसे गिरनेवाले सुरपुरवासियोंको कहां मिल सकता है॥१०॥ हे अनन्त! सदा आपकी निरंतर भक्ति करनेवाले, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरणवाले महात्मा जनोंका सदा सत्संग बना रहे। जिन सज्जनोंके मुखसे आपके गुणोंकी कथारूपी अमृतके पान करनेसे उन्मत्त हो इस महादुःखदायी संसारको विना प्रयास उलंघन करूंगा ॥ ११ ॥ हे ईश! हे कमलनाभ! जो पुरुष आपके चरणकमलकी सुगंधिके लोभी हृदयवालोंका सत्संग करते हैं, वे लोग न अतिशय प्रिय अपनी देहको समझते हैं और न इस शरीरसंबन्धी सुत, सुहृद, भवन, धन, स्त्री इत्यादिका अनुसंधान करते हैं ॥१२॥ हे ईश! हे परम!! पशु, पक्षी, पर्वत, द्विज, सर्प, देव, दैत्य, सत्, असत्, विशेषसमेत महदादि अनेक कारणवाले आपके केवल इस विराट्रूपको तो मैं जानता हूँ, परन्तु इससे परे उस परमेश्वर

१. शंका–ध्रुवने पहले भगवान्को अपने हृदयमें देखकर फिर तुरंत अपने सन्मुख भगवान्को खड़ा देखकर फिर जानबूझकर मूर्ख क्यों हुए, भगवान्के किंचिन्मात्र नाम लेनेसे मनुष्य परमज्ञानी हो जाते हैं और ध्रुवजीने तो दर्शन किया फिर पीछे मूर्ख क्यों हुए?

उत्तर–पांच वर्षकी अवस्थामें ध्रुवको पिताने त्याग दिया, इसलिये रात दिन ध्रुव दुःखी हुए और भगवान्को देखकर प्रेमसे ध्रुवकी आंखों से जल बहने लगा और कंठ गद्गदहो गया, शरीर पुलकायमान हो गया, इस कारण ध्रुवसे बोला नहीं गया, और भगवान्की स्तुति भी ध्रुवसे नहीं हो सकी।

स्वरूपको नहीं जानता, जहां कोई वादविवाद न कर सके और शब्दका भी सञ्चार नहीं है ॥ १३ ॥ महाप्रलयके समय इस विश्वको उदरमें रखकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीको गोदमें एक पुरुषरूप शयन करते हो, जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न हुए सुवर्णमय लोककमलकी कर्णिकामें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, उन भगवान्को मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥१४॥ तुम नित्यमुक्त हो, सब ओरसे विशुद्ध हो, सदा ज्ञानवान् हो, सर्वव्यापक हो, सर्वान्तर्यामी हो, आदिपुरुष हो, भगवान् हो, त्रिगुणोंके ईश्वर हो जो बुद्धिकी अवस्था है उन्हें अखंडित अपनी दृष्टिसे देखते हो, विश्वकी स्थितिमें अतिपूज्य हो, सबसे पृथक् होकर तुम रहते हो ॥ १५ ॥ जिसमें विरुद्ध-गतिवाले विद्यादिक सर्व शक्तियाँ क्रमसे निरन्तर होती हैं,उस विश्वके उत्पन्न करनेवाले अनन्त, अखण्ड, अनादि, निर्विकार, आनन्दमय परब्रह्मकी मैं शरण हूँ ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! पुरुषार्थ मूर्तिके तुम्हारे चरणकमलके भजन करनेवालोंके आशीर्वादसे सब सत्य आशिष (परमार्थफल) निश्चित होते हैं, हे श्रेष्ठ ! यह वार्ता ऐसे है, तथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने बछड़ेको दूध पिलाकर सिंहादिकसे रक्षा करती है, उसीकी नाईं आप अनुग्रह युक्त करुणारससे कातर होकर मुझसरीखे दीनोंकी सब ओरसे रक्षा करते हो ॥१७॥ मैत्रेयजी बोले कि सत्संकल्पवाले बुद्धिमान् ध्रुवने जब इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तानुरागी भक्तवत्सल भगवान्ने आनंदित होकर यह वचन कहा ॥१८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजपुत्र ! तेरे मनका विचार मैं जानता हूँ, उसे मैं देता हूँ, हे सुव्रत ! तेरा मंगल हो, हे ध्रुव ! वह पद और दूसरे मनुष्यको आजतक दुःखसे भी नहीं मिला ॥ १९ ॥ हे भद्र ! जो प्रकाशमान ध्रुवस्थान है, वहां और कोई स्थित नहीं है, जिसमें ग्रह, नक्षत्र, ताराओंका ज्योतिश्चक्र अर्पित है॥२०॥घान निकालनेका घूमते हुए पशुके बन्धनका जो बीचका खम्भ होता है, उसको मेढी कहते हैं, जिनमें ज्योतिश्चक्र मेढीमें लगे हुए वृषभचक्रवत् स्थित है और ऊपरके कल्पवासियोंसे अधिक स्थायी है अर्थात् त्रिलोकीका लय होनेपर भी उसका लय नहीं होता । धर्म, अग्नि, कश्यप, शुक्र वनवासी मुनि अर्थात् सप्तऋषि ॥ २१ ॥ तारामण्डलसहित जिसकी परिक्रमा करके विचरते हैं, हे ध्रुव ! वह सबमें सिद्ध ध्रुवस्थान मैंने तुझको दिया ॥ २२ ॥ अब तू अपने नगरको जा, तेरा पिता तुझको राज्यतिलक देकर बनको जायगा और तू गन्धर्वोंसे युद्ध कर अपना मनोरथ पूज धर्मानुसार छत्तीस सहस्र वर्षपर्यन्त भूमण्डलकी रक्षा करेगा ॥२३॥ तेरा भाई उत्तम आखेटको जायगा और वहां उसका प्राण नष्ट होगा, तब अपने पुत्रके ढूँढ़नेके लिये उसकी जननी वनमें जायगी और वहां जब वह न मिलेगा, तो उसीके ध्यानमें दावानलमें जलकर मर जायगी ॥२४॥ तब तू महाचक्रवर्ती हो यज्ञ करेगा और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणा दे इन्द्रसे भी अधिक विभूतिको प्राप्त करेगा और बहुतसे यज्ञ करके और सब सत्य आशीर्वाद यहां भोग अन्तमें मेरा स्मरण करेगा ॥ २५ ॥ फिर सब लोक जिसको प्रणाम करते हैं, सप्तऋषियोंसे भी ऊपर उस मेरे स्थानको जायगा और ऋषि तेरी स्तुति करेंगे, जहांका गया फिर लौटकर यहां नहीं आ सकता ॥२६॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार पूजित हो, अपना स्थान दिखा उस बालकके देखते-देखते गरुड़ध्वज भगवान्ने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥२७॥ यद्यपि वह ध्रुव विष्णु भगवान्के पादारविन्दकी सेवामें लब्धसंकल्प मोक्षरूप अपनी मनःकामनाको प्राप्त हो गया था, तो भी अपने मनमें प्रसन्न न हुआ; क्योंकि श्रीपति भगवान्के दर्शनका वियोग विचारकर अत्यन्त दुःखी हो अपने नगरकी ओरको चला ॥ २८ ॥ विदुरजी बोले कि

जो विष्णु भगवान्‌का परमपद सकाम पुरुषोंको महादुर्लभ है, वह भगवत्‌के पदार्चनसे उस सिद्धिको एक ही जन्ममें प्राप्त होकर उसने अपने आपको निष्फलसा क्यों समझा ! ध्रुव तो सब अर्थवेत्ता थे ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि विमाताके वाक्यरूपी बाणोंसे बिंधे हुए हृदयमें दुर्वचनोंका ध्यान बना रहा, और मुक्तिपति भगवान्‌से मुक्ति नहीं मांगी, राज्यका ही अनुराग मनमें लगा रहा इसीसे उसको संताप हुआ ।—

दोहा—राज्य लियो ताते प्रथम, कियो सुदुर्लभ भोग ।
अन्तसमय हरिधामको, जैहैं तजि सब सोग ॥ ३० ॥

ध्रुवजी बोले कि, अनेक जन्मोंसे समाधि लगाकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदनादिकोंने जिस पदको नहीं पाया, वह मैं छः मासमें अव्यक्त भगवान्‌की पदछायाको प्राप्त होकर, हाय ! मैं भिन्नमति फिर संसारका संसारमें रहा ॥ ३१ ॥ अहो ! मंदभागी मेरी दुरात्माका भाव तो देखो, संसारनाशक भगवत्‌के चरणकमलको प्राप्त होकर नाशवान् पदार्थको मांगा ॥ ३२ ॥ मेरे वरदानको सुनकर देवतालोग सहन न कर सके, उन देवताओंने मेरी मति हर ली, हाय ! मेरी मति मंद होनेका कारण यही है, जो मुझ दुरात्माने नारदजीका वचन न माना ॥ ३३ ॥ जगत्‌में कोई दूसरा मेरा विरोधी नहीं था तो भी दैवी मायाके अधीन होकर जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें द्वितीय अनेक असत् वस्तु देखता है, वैसे ही व्यर्थ भाईका ही जो हृदयमें शत्रुभाव लग रहा है, उस क्लेशसे वृथा संतापको प्राप्त होता हूँ ॥ ३४ ॥ जैसे आयुक्षीणकी चिकित्सा करना वृथा है, इसी प्रकार मैंने जो यह मांगा है, वह सब वृथा है, क्योंकि मुझ कर्महीन अभागेने विश्वात्मा विश्वाधार जो अनेक जन्म तप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्रसन्न होते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को प्रसन्न करके फिर इस नाशवान् संसारको ही मांगा, धिक्कार है, धिक्कार है, मेरी इस अज्ञानताको, सब ठौर भाग्य बलवान् है, न तप है, न विद्या है ॥३५॥ भगवान् तो मुझको परमधाम देते थे और अपने समान बनाते थे, परंतु मुझ भाग्यहीनने अपनी शठतासे शठ बन मान मांगा, जैसे निर्धन पुरुष चक्रवर्ती राजाको प्रसन्न करके धनधान्यको छोड़ धानोंका तुष मांगे, इस प्रकार मैंने मांगा । एक दृष्टांत स्मरण हुआ "चार पंडित रोजगारके लिये अपने घरसे परदेशको चले । उनमें एक ज्योतिषी, दूसरा नैयायिक, तीसरा वैयाकरण, चौथा वेदान्ती था । वे एक नगरमें पहुँचे और सबने यह विचार किया कि राजासे मिलना चाहिये । ज्योतिषीसे कहा कि कोई श्रेष्ठ मुहूर्त विचारो, ज्योतिषीजीने कहा कि आधीरातका मुहूर्त बहुत श्रेष्ठ है । यह विचार चारों आधीरातके समय राज्यभवनको चल दिये । वहांका दरवाजा बंद हो गया था । बहुत सोच-विचार किया कि अब क्या करें ? निदान परनालेके मार्ग होकर प्रवेश किया । देखा तो वहां एक धानकी भूसीका ढेर पड़ा है, सब बोले कि इसीको ले चलो । हमारी भैंसकी सानीके ही काम आयेगी । यह कह चारोंने भूसी बांधी ! व्याकरणशास्त्री बोले कि राजासे भेंट हुईही नहीं, भाई ! राजासे भेंट कर लो, जाकर देखा तो राजा पलँगपर सो रहे हैं । इनको निहार राजा पुकार उठा कि चोर हैं ! चोर हैं ! पकड़ लो, यह बोले कि हम चोर नहीं हैं; हम पंडित हैं, आपके दर्शन करनेके लिये आये हैं, तब राजाने दण्डवत् करके कहा कि आपने बड़े कुसमयमें शुभागमन किया ? पंडित बोले-महाराज मुहूर्त इसी समयका था फिर राजाने कहा कि आपकी जो इच्छा हो वह मांगो । पंडितोंने कहा केवल आपके दर्शनोंकी ही कांक्षा थी और लेनेके लिये तो पहले

ही भूसीकी गठरियाँ बांध चुके। राजाने कहा तुम्हारी इच्छा, मार्गमें आकर बड़ा पश्चाताप चारोंने किया," सोई गति ध्रुवजीकी हुई॥३६॥ मैत्रेयजी बोले कि हे तात ! आपके समान जो भगवान् वासुदेवके चरणमूलके सेवा करने वाले दास हैं, वे दास्यभावके विना और पदार्थकी इच्छा नहीं करते क्योंकि मानकी समृद्धि तो यदृच्छासे ही प्राप्त हो जाती है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ नगरके निकट जब ध्रुव आया तो दूतोंने राजासे कहा कि महाराज ! आपका पुत्र ध्रुव आता है। पुत्रका आना सुन राजाको विश्वास न आया, जैसे मरे हुएके आनेका वृत्तान्त सुनकर कोई विश्वास नहीं करता है ऐसे ही पुत्रका आना सुन राजाको श्रद्धा न हुई और कहा कि मुझ अमांगलिकके मंगल कहांसे आया ? ॥ ३९ ॥ फिर नारदजीके वाक्योंमें विश्वास करके आनन्दके वेगसे धर्षित हो, ध्रुवजीके आनेका समाचार सुन दूतोंको बहुत धन और हार दिये ॥ ४० ॥ सुन्दर-सुन्दर सुवर्णके रथ उत्तम-उत्तम वस्त्रोंसे मढ़े जिनमें श्यामकर्ण घोड़े जुते, ऐसे-ऐसे सुहावने मनभावने रथोंपर बैठ-बैठकर, ब्राह्मण, गुरु, कुलवृद्ध, मंत्री, सज्जन बन्धुजनोंको साथ लिया ॥ ४१ ॥ और शंख, दुन्दुभी, बाँसरी बजाते, ब्राह्मण, वेदध्वनि करते हैं, इन सबके साथ पुत्रके दर्शनकी उत्कण्ठासे राजा शीघ्र पुरसे चला--

चौ०--कनककलस शिर धरि पुर नारी ❋ दधि तंदुल दूर्वा भरि थारी ।
चलीं करत कल मंगल गाना ❋ सजि शृँगार अनेक विधाना ॥
रोरी चन्दन कुंकुम केशर ❋ छिरकत चलीं जात मग सुंदर ॥
कहत जात सब चंपकवरनी ❋ धन धन धन सुनीतिकी करनी॥
गयो भयो सुत फिर आयो है ❋ मनहु सुनीति बहुरि जायो है॥४२॥

सुनीति और सुरुचि दोनों राजा उत्तानपादकी स्त्री सुंदर शृंगार करके सुवर्णकी पालकियोंमें बैठकर उत्तम कुमारको संग ले ध्रुवकी अगवानीको चलीं ॥ ४३ ॥ उपवनके समीप ध्रुवको आता देख राजा शीघ्र स्यन्दनसे उतरकर प्रेमविवश पुलकायमान हो पुत्रके पास गया ॥ ४४ ॥ और मनमें अत्यन्त उत्कलित होनेके कारण श्वास लेता हुआ भगवत्के चरण-स्पर्शसे जिस ध्रुवके सब पाप नष्ट हो गये थे, उस अपने सुतसे भुजा पसारकर मिले ॥ ४५ ॥ वारंवार उसका शिर सूंघकर राजाने शीतल नेत्रोंके जलसे सुतको स्नान कराया और राजा उत्तानपादके मनके सब मनोरथ सफल हुए ॥ ४६ ॥ फिर ध्रुवने पिताके चरणोंको दण्डवत प्रणाम किया। राजाने बहुत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, फिर विमाताके पदोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया। जो ध्रुव सज्जनोंमें अग्रणीय और आदर-सम्मान पानेवाला था ॥ ४७ ॥ अपने पावोंसे उस ध्रुवको उठा हृदयसे लगाकर नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई गद्गदकण्ठसे सुरुचि बोली कि हे पुत्र ! युग-युग जीओ ॥ ४८ ॥ जो सुरुचिने ध्रुवमें अत्यन्त प्रेमप्रीतिभरी बातें कीं तो क्या आश्चर्य ? जिसके ऊपर स्वयं हरि भगवान् मैत्रीआदि गुणोंसे प्रसन्न होते हैं, उसको सब प्राणीमात्र नमस्कार करते हैं, जैसे जल आपसे आप नीचेकी ओरको ढला चला जाता है ॥ ४९ ॥ उत्तम और ध्रुव दोनों प्रेमविवश परस्पर मिलनेसे रोमांचित हो नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे ॥ ५० ॥ फिर सुनीति ध्रुवकी जननीने अपने प्राणोंसे भी प्यारे सुतसे मिलकर हृदयकी दाहको शीतल किया और अंगके स्पर्शसे परमानन्द हो सब विषाद मनसे त्याग दिया ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे विदुर !

उस समय सुनीतिके स्तनोंसे दूध टपकने लगा और नेत्रोंसे निर्मल जलकी धारा बहने लगी, उस समय वीरपुत्रको जननी दोनों धाराओंसे वारम्वार सींच रही थी ॥ ५३ ॥ उस सुनीतिकी सब लोग सराहना करने लगे कि बहुत अच्छा हुआ, जो भक्तोंका दुःख हरनेवाला; समस्त भूमण्डलका रक्षक, पांच वर्षका तेरा पुत्र जो नगरसे निकल गया था, वह धरणी और धर्मका आधार कुशल पूर्वक तुझको मिला ॥ ५४ ॥ निश्चय होता है कि भगवान् वासुदेव प्रणतोंके दुःखभञ्जन, भक्तमनरञ्जन, श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविन्दका तूने भलीभांति आराधन किया है, जिनके ध्यान करनेवाले वीरपुरुष महाकठिन मृत्युको भी जीत लेते हैं ॥ ५५ ॥ इस प्रकार ध्रुवकुमारको वारम्वार लाड़लड़ाते और देख-देख सुख पाते थे। उस ध्रुवको उत्तम कुमार समेत हथिनी पर चढ़ाकर राजा आनन्दपूर्वक नगरकी ओरको चले और सब लोग आगे-आगे स्तुति करते हुए चले ॥ ५६ ॥ उस नगरमें जहां-तहां मरकतमणि लस रहे थे। तोरण, वंदनवार द्वार-द्वार पर विराज रहे थे। केलेके खंभोंके जहां-तहां समूहके समूह, वैसे श्रीफल सुपारीके छोटे-छोटे वृक्ष शोभा दे रहे थे ॥५७॥ आम्रपल्लव वस्त्र माला और मोतियोंके लम्बे-लम्बे हार जिनमें लटक रहे थे, द्वार-द्वार पर दीपोंकी जगमग ज्योति हो रही थी, उनके प्रकाशसे सुवर्णके कलश कलशियां बिजलीसी झमझमा रही थीं ॥ ५८ ॥ नगरकोट, कोटद्वार, गोपुर, मंदिर मंदिरपर सुन्दर-सुन्दर सुवर्णकी सामग्री सुशोभित और सब ओरसे श्रीमत् विमान शिखरोंकी कांतिसे देदीप्यमान थे ॥ ५९ ॥ जहां सुन्दर-सुन्दर चौवटियां, बीथी, अटा, अटारी और मार्ग सेवतीके जलसे छिड़का हुआ, चन्दनसे चर्चित, खीलें, चावल, पुष्प, फल, तंदुल, लौंग, बखेर, रहे हैं और भेटें धरी हैं ॥ ६० ॥ दधि, दुर्वा, सरसों, फल, अक्षत थालोंमें धरकर पुरकी स्त्रियाँ दौड़-दौड़कर ध्रुवसे मिलनेको आती थीं ॥ ६१ ॥ और अत्यन्त स्नेहसे सत्य आशीर्वाद देती थीं, उनकी कोकिलकंठियोंके मनोहर गीतोंको सुनते हुए ध्रुवजी पिताके भवनमें चले गये ॥६२॥ महामणियोंके मनोहर गीतोंको सुनते हुए ध्रुवजीका पिताने बहुत लालन किया, स्वर्गमें देवता जैसे वास करते हैं ऐसे पिताके भवनमें ध्रुवजी निवास करने लगे ॥ ६३ ॥ जिसमें हाथीदांतके पायोंका पलंग, सुवर्णकी सामग्री, दूधके फेनके समान शय्या बिछी हुई थी, बहुमूल्य आसनोंकी शोभा हो रही थी और सब कर्मकी सामग्री ठौर-ठौर धरी थी ॥ ६४ ॥ बिल्लौरकी भींतें जिनमें महामरकतमणिके आले बने हुए, उनमें मणियोंके दीपक जहां-तहां धरे जगमगा रहे हैं और स्त्रीरत्न जहां बहुत इकट्ठे हैं ॥ ६५ ॥ अत्यन्त रमणीक जहां बाग लग रहे हैं, वहां विचित्र कल्पद्रुम समान वृक्षोंपर रंग-रंगके पक्षियोंके जोड़े अपनी-अपनी मनोहर बोलियाँ बोल रहे थे, और मतवाले भ्रमरोंके झुण्डके झुण्ड गुञ्जार कर रहे थे॥६६॥ कनकमयी बावड़ी-तड़ागोंमें निर्मल नीर झकोल रहे थे, वैदूर्यमणियोंकी सुन्दर शोभायमान् सोपान चारों ओर वन रही थीं। पद्म, कंज, उत्पल, कह्लार जिसमें चार प्रकारके कमल फूल रहे थे और हंस, सारस, बक, चकवे, चकवियोंके समूहके समूह किलोलें कर रहे थे। सुरेन्द्र, नागेन्द्र और किसी नरेन्द्रके जो विभूति आजतक नहीं हुई वह सब ऐश्वर्य भगवान्की कृपासे ध्रुवजीके नगरमें उपस्थित था ॥ ६७ ॥ उत्तानपाद राजा अपने ऋषिपुत्रका अद्भुत प्रभाव कानोंसे सुनकर और नेत्रोंसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। ध्रुवजीको हरिभक्त जानकर और अपनी वृद्धावस्था देखकर प्रजा और मंत्रियोंको बुलाकर बोला कि अधिकार

तो उत्तम कुमारका है, क्योंकि वह ज्येष्ठ पुत्र है परन्तु मेरे मनमें यह विचार है कि राज्यपद ध्रुवजीको दूँ, क्योंकि ध्रुवमें सब गुण हैं–

दोहा–रूपवान् गुणवान अति, शीलवान मतिमान।
भटप्रधान छोटा कुँवर, भूरिभक्त भगवान्॥

सचिव और प्रजागण एकवार पुकार उठे कि हे पृथ्वीनाथ ! आपने ठीक विचार किया है, ध्रुवजीका ही राज्याभिषेक करना चाहिये। प्रजाओंकी सम्मतिसे सबको अनुरागी देख राजाने राज्याधिकार दे पृथ्वीका पति ध्रुवको किया ॥ ६८ ॥ और राजा उत्तानपाद अपना देह वृद्ध जानकर सबसे विरक्त हो अपनी आत्माकी गति विचार करके तप करनेके लिये वनको चल दिया ॥ ६९ ॥

भजन

तप है परम धर्म सुखदायक ॥
तपबलसे अज सृष्टि रची है, तपबल भये विनायक ॥ १ ॥
तपहीते भये शेष सहसमुख, शंकर संकटघायक ॥
तपहीसे खलदलघालक भये, हनूमान हरिपायक ॥ २ ॥
तपहीसे भये सनक सनन्दन, नारदादि सुरनायक ॥
तपसे शालग्राम और कोउ, दूजो नाहिं सहायक ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य भगवत्कृपया राज्य प्राप्तवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–इस दशमें अध्यायमें, ध्रुव अलकापुर जाय ॥
जैसे मारे यक्ष सब, अति वीरता दिखाय ॥ १॥

मैत्रेयजी बोले कि शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमी नाम्नी कन्यासे ध्रुवजीने विवाह करके उसमें 'कल्प' और 'वत्सर' नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इला नाम्नीसे महाबली ध्रुवजीने 'उत्कल' नामक पुत्र उत्पन्न किया और उसी रानीसे एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ उत्तम कुमारने अपना विवाह ही नहीं किया था। वह पहले ही हिमालय पर्वतके भीतर आखेट खेलनेको गया था, वहां एक बलवान यक्षने उनको मार डाला और उसकी माता भी उसके समान गतिको पाकर मर गयी ॥ ३ ॥ जब ध्रुवजीको मालूम हुआ कि उत्तमकुमार यक्षके हाथसे मारा गया, तब कोप अमर्ष शोकमें मग्न हो जयदायक रथमें बैठकर अकेले ही पुण्यजनोंके निवासस्थल (अलकपुर) पर चढ़ाई की ॥ ४ ॥ रुद्रके अनुचर जिसमें वास करते हैं ऐसी उत्तर दिशामें जाकर हिमालय की गुफामें ध्रुवजीने अलकापुरी देखी–

१. शंका–ध्रुवने अपने भ्राता उत्तमकुमारके मरनेका वृत्तान्त सुनकर बड़ा भारी युद्ध मूर्खोंके सदृश क्यों किया ? भगवान्‌का प्यारा होकर विचारसे हीन काम करना यह बड़े आश्चर्यकी बात है और राज्यके लिये क्षत्रियोंको युद्ध करना यह बड़ी शोभा है, बिना प्रयोजन युद्ध करना यह अत्यन्त मूर्खपन है।

उत्तर–भाईके मरणका कारण सुनकर क्षत्रियोंको विदित है,ऐसा ध्रुवजी जानते रहे तो भी लोककी निन्दासे डरे कि सब जगत्‌में दुर्नामता होगी कि ध्रुवके भाईको यक्षोंने मारडाला और ध्रुवने कुछ भी उनसे बदला नहीं लिया और यक्षोंको त्रास नहीं दिया, यह कायरपन क्षत्रियों को नहीं करना चाहिये, इस लोकनिन्दा के भयसे भगवान्‌के प्यारे ध्रुवजीने यक्षोंके साथ युद्ध किया ?

दोहा-जहँ कोटिन हरगण बसहिं, कोटिन गुह्यक वीर।
कोटिन राक्षस यक्ष तहँ, फिरें महारणधीर ॥ ५ ॥

तब बड़ी बाहुवाले ध्रुवने शंखध्वनि, की, जिसके शब्दसे आकाश और दशों दिशायें गूँज उठीं; मानो वज्रपात हुआ, हे विदुर! उद्विग्नमन करके यक्षोंकी स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत हुईं ॥ ६ ॥ तब शंखनाद सुनकर कुबेरके महाबली उपदेव, महाभट, गुह्यक, राक्षस, गंधर्वोंने प्रथम तो पृथ्वी और पर्वतोंकी ओर देखा; जब कुछ दृष्टि न आया तो क्रोधवंत हो कुबेर बोला कि ऐसा कौन बली है, जो हमसे युद्ध करने आया और शंख बजाया-

दोहा-ताहि मार यमलोकको, दीजै तुरत पठाय।
तासु शीश तुम काटके, दीजै मोहिं दिखाय ॥

चौ-०सुनत सुभट धनपतिकी वाणी ❋ चले सकल गहि आयुध पाणी।
कोउ तुरंग कोउ चढ़े मतंगा ❋ कोउ स्यन्दनमें कन्ध निषंगा ॥
औरहु विविध भाँतिके वाहन ❋ विविध भाँति आयुध अरिदाहन।
विविध भाँति कर शोर कठोरा ❋ विविध भाँतिके आनन घोरा ॥
हर अनुचर गन्धर्वहु नाना ❋ अरु गुह्यक अतिशय बलवाना।
विद्याधर चारण औ यक्षा ❋ औरहु भूमि भयानक रक्षा ॥
निकले सकल नगरसे जबहीं ❋ लखे अकेले ध्रुवकहँ तबहीं।
लम्बी भुजा सोमसम आनन ❋ मानहुँ ठाढ़ कुपित पंचानन ॥
निपट निडर डर नेकु न मनमें ❋ तेजपुंज सोहत स्यन्दनमें ॥

ध्रुवजीको देख यक्षपति बोला कि सावधान हो जाओ, यह वीर कोई बड़ा बलवान् तेजस्वी है, जो सिंहके समान निःशंक अकेला चला आता है, भयका नाम भी इसके निकट कहीं दिखाई नहीं देता-

तोमर छन्द-

गन्धर्व गुह्यक सर्व, राक्षस पिशाच अखर्व। कढ़िकै नगरसे वीर, लखि ध्रुवहिं ध्रुव धुरधीर ॥ कोइ काढ़कर करवाल, निज अंग ढाँपे ढाल। कोउ लिए शूल अतूल, धाये चलावन हूल ॥ कोउ परिघ परशु प्रचंड, कोउ दौर दंडनदण्ड। कोउ लिये चक्रन वक्र, कोउ धनुषबाणन चक्र ॥ कोउ तोमरानि अतूल, जे करत अरि निर्मूल। कोउ भिंदिपाल कराल, कोउ गदा परमविशाल ॥ कोउ लिये मूशल घोर, कोउ पाश लै बरजोर। कोउ लिये वृक्षन हाथ,कोउ शैल धरि निज माथ ॥ कोउ लिये पीन पषान, कोउ वमन वदन कृशान। कोउ नख निकासे पैन, कोउ तकत तिरछे नैन ॥ कोउ गहे परशु महान, कोउ शक्ति भट बलवान। कोउ लिये भुशुंडी शूर, कोउ लिये शतघ्नी क्रूर ॥ कोउ लिये मल्लतवल्ल, कोउ सूध कीन्हे भल्ल। धाये सबै तेहि ओर, जहँ ठाढ़ भूपकिशोर ॥ कोउ मकरआनन घोर, कोउ गजवदन वरजोर। कोउ खल खरानन फार, कोउ गृध्रकी

अनुहार ॥ कोउ वीर वदनवराह, कोउ मृगनमुखसे उछाह। कोउ सकल अङ्गनिनंग, धाये करन हठ जंग ॥ कोउ क्षुषित लम्ब शरीर, दृगकूपसरिस गँभीर। धरु मारु धरु धरु मार, चहुँओर करहिं पुकार ॥ बहु योगिनीन जमात, कर लिये खप्पर जात। कोउ तहँ पिशाचनि क्रूर, दोउ हाथमें लिये धूर ॥ कोउ करहि कटकट दंत, कोउ ठठाय हसँत। कोउ करहि खरसम सोर, कोउ धावती चहुँ ओर ॥ कोउ चलहि गति अतिबंक, किलकार करहिं निशंक। कोउ खड्ग खप्पर धार, कज्जल अचल आकार ॥ यहि भाँति योगिन यूह, धाई करत अतिहूह। तहँ भयो धुन्धाकार, रवि छिपो तेज अपार। इकवार करके सोर, धाये ध्रुवकी ओर ॥

दोहा—धावत आवत रिपुन लखि, घोर मचावत सोर।
अति निशंक भूपतिसुवन, तानेउ धनुष कठोर ॥ ७ ॥

ध्रुवजी प्रचण्ड कोदण्ड हाथमें लेकर सारथीसे बोले कि शीघ्र रथको ले शत्रुसेनाकी ओरको चल, आज इस शत्रुदलको मारकर मनकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा। नृपनंदनके गम्भीर वचन सुन सूतने रथको ऐसे दौड़ाया कि पवन भी मनमें लज्जित होता था। जाते ही धनुष टङ्कार कर मारमार मचा दी और रथको ऐसा दौड़ाता फिरता था, जैसे घनमें दामिनी दौड़ती है। कभी यहां कभी वहां बाणोंसे चारों ओर ऐसा अन्धकार छा गया कि वीरोंको दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रहा, कि कहां है पूर्व और कहां है पश्चिम? एक-एक यक्षके तीन-तीन बाण एक सङ्ग मारे ॥८॥ जब उनके मस्तकोंमें तीक्ष्ण बाणोंके घाव लगे तब सब अपने आत्माको पराजय मानकर ध्रुवके पराक्रम और वीरताकी प्रसंशा करने लगे॥९॥ परंतु ध्रुवजीकी धीरता और वीरता यक्षोंसे सही नहीं गयी, जैसे भुजङ्गके अङ्गमें पांव लगनेसे वह उसका सहन नहीं कर सकता, इसी प्रकार यक्षोंके हृदयमें क्रोधकी दावानल भड़की और महाक्रोधवंत हो ध्रुवसे द्विगुण बाण चलाने लगे क्योंकि इनको तो अपना बदला लेना था ॥ १० ॥ परिघ, निस्त्रिंश, पाश, शूल, खड्ग, परशु, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी और विचित्र पक्षोंवाले विशिख वर्षाने लगे ॥११॥ एक लक्ष, तीस सहस्र १३०००० यक्षोंने ध्रुवजीको चारों ओरसे आकर घेर लिया और अपने-अपने रथोंपर बैठे अत्यन्त कुपित हो बाण चला रहे थे ॥१२॥ उस समय उत्तानपादका पुत्र बहुत शस्त्रोंसे ऐसे ढक गया जैसे अधिक वर्षा होनेसे सुमेरुपर्वत घटामें छिप जाता है॥१३॥ जो सिद्ध लोग आकाशमें विमानोंपर बैठे देख रहे थे, उनमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ कि हाय! आज सर्वनाश हो गया, आज मनुवंशका मार्तंड पुण्यजन रूपी सागरमें डूब गया ॥ १४ ॥ जय चाहनेवाले यातुधान जब युद्धस्थलमें जय-जय शब्द उच्चारण करने लगे, उस समय ध्रुवके रथका एक ऐसा प्रकाश हुआ जैसे कुहरामेंसे सूर्य निकलता है और दशों दिशाओंमें प्रकाश हो जाता है ॥१५॥ उस समय ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार कर द्वेष और खेदके उत्पन्न करनेवाले शत्रुओंके शस्त्रसमूहोंको अपने तीव्र बाणोंसे काटकर ऐसे बखेर दिया, जैसे पवन मेघोंके समूहको खण्ड-खण्डकर देता है ॥ १६ ॥ ध्रुवके धनुषसे जो बाणोंके निकर निकलते थे, वे यक्षोंके कवचोंको भेदकर उनके शरीरके भीतर ऐसे घुस जाते थे

जैसे वज्र पर्वतको तोड़कर भीतर प्रवेश करता है। एक-एक बाण दश-दश राक्षसोंके हृदयको विदीर्ण कर निकल जाता था, ऐसे लक्षों बाण ध्रुवने यक्षोंको मारे ॥ १७ ॥ कंचनके कुण्डल जिनमें झलक रहे, ऐसे-ऐसे सहस्रों शिर शरोंसे छिदे हुए हैं और हेमतालसम जंघा, कंकण, भुजबंद, जिनमें शोभित ऐसी सहस्रों भुजायें काट डालीं ॥ १८ ॥ हार, केयूर, मुकुट, पगड़ियोंसे ढकी हुई संग्रामभूमि योद्धाओंका मन मोहनेवाली ऐसी अनुपम शोभा दिखायी देती थी मानो नये शृंगार किये आनंदमें मग्न हैं ॥ १९ ॥ क्षत्रियवंश उजागर जो ध्रुवजी हैं, उनके तीक्ष्ण बाणोंसे जिनके अंग कट गये थे ऐसे वीरपुरुष रणस्थलमें पड़े थे और जो मरनेसे बच रहे थे वे संग्रामांगणसे ऐसे भाग गये, जैसे पंचाननको देखते ही हाथियोंके यूथके यूथ पलायन कर जाते हैं और एक ओर योगिनी अलग ही बाणोंकी मारी आरत शब्द पुकार-पुकार घूम-घूम पृथ्वीपर गिरती थी, और शरीरकी कुछ सुध-बुध नहीं थी। किसीके केश मुड़ गये थे, किसीके कान उड़ गये थे, किसीके दांत टूट गये थे, किसीके कपोल फूट गये थे, किसीकी नाक कट गयी थी, किसीकी खोपड़ी फट गयी थी, किसीके हाथ पांव ही बाणके साथ आकाशको चले गये थे, कहीं रथोंका चूरा हुआ पड़ा था, कहीं सहस्रों वीर अंग-भंग लोट रहे थे, कहीं मरे हुए हाथी पर्वतसे जान पड़ते थे, रणस्थलमें चारों ओर हाहाकार शब्द सुनायी पड़ता था, ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं था जो ध्रुवके धाराप्रवाह बाणोंको रोक सके। न कोई सायक चला सकता था, न कोई ध्रुवके समीप जा सकता था, जहाँ यक्षोंका समूह ध्रुव देखता था, वहाँ ऐसा बाण मारता था कि चारों ओर काईसी फट जाती थी, जब यक्षोंने हार मानी तो सब अपना मरण विचार एकवार ही ध्रुवके ऊपर ऐसे धाये जैसे दीपशिखापर पतंग दौड़ते हैं। उस समय ध्रुव धनुषको टंकार मंडलाकार कर चारों ओरको बाण चलाने लगा और दशों दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया, तब तो सब यक्षोंके तेजका सूर्य अस्त हो गया॥

दोहा—गिरत उठत झूमत झुकत, उभर समरमें यक्ष।
पुनि पुनि धावत ध्रुवहिपर, मानहुँ मृत्यु प्रत्यक्ष ॥

छंद किरबान

जहँ लक्षनप्रत्यक्ष यक्ष आयुधमें दक्ष, धाये बोल भक्ष भक्ष पक्षवानसे दिखान।
कोई मच्छपै सवार कोई कच्छपै सवार, कोई अक्षविकरार वीर राक्षस महान ॥
कोई कहै गच्छ गच्छ कोई कहै रक्ष रक्ष,तेग काढ़े स्वच्छ स्वच्छ किये लक्ष नृप जान।
तहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जान बान झारे बेप्रमान ॥१॥
जहँ मुंडनके झुण्ड भरे शोणितके कुंड, परे रुंड खंड खंड खंड खण्ड दरसान।
जहँ आयुध उदंड हने वीर बरबंड, भरे भारी हैं घमंड परचण्ड सोरवान ॥
जहँ टोकै दोरदंड दंड पायकै अदंड, धुंधकारभो अखंड मार्तंड हू छिपान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिर जहान बान झारे बेप्रमान॥२॥
जहँ कुंभिनकरार घाटवाजि बेशुमार, वीरवारके सेवार मुंडपुंडरीक भान।
जहँ रतनकरतार अहै कंकर अपार, मीनतेग और कटार नक्रचक्र है महान ॥
जहँ शोणितकी धार भुजभुजगविहार, ढालकच्छ अनुहार शिशुमारसो हनान।

जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान ॥३॥
जहँ भूत औ वैताल रूप धारे विकराल, शोर करत कराल देख परै चहूँ घान।
जहँ लैलै करबाल रोक बाननको ढाल, पिलेजात मनोकाल नैन लाल कोपवान।
जहँ वीरता विशाल वदैं फूल फूल गाल, हटै नेकहू न हाल भरे भेदजात मान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान॥४॥
जहँ गिद्ध हरषान लगे मांसमेद खान, कहूँ आंतले उड़ान काककंक दरसान।
जहँ शोणितको पान करि जंबुक अघान, करैं भूतगुणगान जुरी योगिनी जवान॥
जहँ कंध धैकयान ते कबंध तेगवान, धावै मध्य मैदान मचा घोर घमसान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान॥५॥
जहँ कोई कहै आऊ कोई कहै जाउ जाउ, कोई कहै खाउ खाउ वैरी बलवान।
जहँ कोई कहैधाउ कोई कहै लाउ लाउ, कोई कहै मारु धाउ यक्ष,वृद्ध और जवान॥
जहँ बाढ़ो है उछाउ देहि मूछन पै ताउ, भूलो शत्रु मित्रभाउ देखे दाउ दर्प्पवान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान॥६॥
जहँ शीश नट्टबट्ट से अनेक फट्टफट्ट, फूटैं भट्टभट्ट भट्ट गिरैं भूमि भासवान।
जहँ उठैं झट्टझट्ट पिलैं बीर ठट्टठट्ट, गदा चलै चट्टचट्ट चट्टपट्टपट्टवान॥
जहँ रक्त शर घट्ट घट्ट शोणितको घट्ट, भट्टयोगनी गरट्ट करैं घट्ट घट्ट पान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान॥७॥
जहँ युद्ध बीच आय वीरमुंडनउठाय, लेहि मालन बनाय सुख छायाके इसान।
जहँ वीरन भगाय कोई भागो न बचाय, कोई लोथिन लुकाय रहे मृतकसमान॥
जहँ यक्षसमुदाय मध्य मचो हायहाय, प्रलयहोतसीदिखाय भयो सोच देवतान।
जहँ तेज अंशुमान धराधीश धीरवान, ध्रुव जाहिरजहान बान झारे बेप्रमान॥८॥

दोहा–ध्रुव धरेश शरधारसे, हने वीर बरियार।
भागत भे सब समरसे, कर कर हाहाकार॥
जैसे मत्त मतंगदल, मृगपति देत भगाय।
तैसे राक्षस यक्षगण, ध्रुव दीने बिचलाय॥ २०॥

मनुकुलभूषण ध्रुवजीने जब उस महासंग्राममें किसी शस्त्रधारीको खड़ा न देखा तो शत्रुकी पुरीमें जानेका विचार किया; फिर मन ही मनमें विचारा कि यह गुह्यक लोग बड़े मायावी होते हैं, न जानिये क्या उपद्रव कर बैठें? इनके कर्तव्यको मैं नहीं जान सकता। हे सारथी! तेरी क्या इच्छा है? मैं नगरमें जाऊं वा न जाऊं? सारथी बोला कि हे नाथ! कदापि भूलकर भी नगरमें पैसार न कीजिये, क्योंकि माया रचनेमें ये यक्ष लोग बड़े छली और बड़े बली हैं, कोई न कोई छल अवश्य करेंगे तो फिर जीती हुई बाजी हाथसे जाती रहेगी और सदा पश्चात्ताप मनमें बना रहेगा॥ २१॥ ध्रुव विचित्ररथी अपने सारथीसे यह

बातें कर रहे थे और वैरियोंके पुनुरुद्योगकी शंकासे विचारपूर्वक रथको रोके हुए खड़े थे, कि इतनेमें आश्रित समुद्रके गर्जन-सा शब्द सुनायी दिया और चारों ओरसे आंधी-सी धूरि उड़ती दृष्टि पड़ी। पवन ऐसे वेगसे चलने लगी, मानो आज ही सब भूमिके भूधरोंको उखाड़कर फेंक देगी ॥२२॥ एक क्षणमात्रमें सब गगनमंडल मेघसमूहोंसे व्याप्त हो गया, संसारमें अन्धकार छा गया, चारों ओर अनेक प्रकारकी दामिनी दमकने लगी, महाभयानक वज्रपात होने लगा और बादलके गर्जनेका ऐसा महाघोर शब्द होता था,मानो आज ही प्रलय हो जायगी ॥ २३ ॥ हे पापरहित विदुर ! क्षणमात्रके पश्चात् आकाशसे रक्तकी धारा वर्षने लगी। पुरीष, पीव, मूत्र, चर्वी, मांसादिक अधम पदार्थोंकी वृष्टि होने लगी और ध्रुवके आगे आकर कबन्ध गिरने लगे॥२४॥फिर आकाशमें एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पहाड़ दिखायी दिया, मानो चारों दिशाओंमें एक वितान तान दिया है, और फिर उसमेंसे लाखों पाषाण गिरने लगे, फिर दशों दिशाओंसे अंगार के अंगार, गदा, परिघ, मुसल, खड्ग और महाकठोर कुठार गिरने लगे ॥२५॥ फिर कुपित हो वज्रसमान श्वास लेते हुए सहस्रों सर्प फण उठाये फुंकारते कुपित हो आंखोंसे अग्निसी लपटें निकालते ध्रुवपर धाये, फिर मतवाले, मतंग, सिंह, व्याघ्र, वराह, ऋक्ष, श्वानोंके समूहके समूह चारों ओर दौड़ने लगे, फिर दो-दो शिरवाले; पांच-पांच शिरवाले, दश-दश शिरवाले, पांच भुजावाले, दश भुजावाले, वीस भुजावाले, तीन चरण-वाले, छः चरणवाले, नौ चरणवाले, अनेक-अनेक भांतिके भूत, प्रेत, वैताल आने लगे और ध्रुवजीको भय दिखाने लगे ॥ २६ ॥ फिर समुद्र भयंकर लहरें लेता चारों ओरसे भूमिको डुबाता भूधरोंको गिराता चला आता है और प्रलयकालके समान महाघोर शब्द करता हुआ भयानकरूपसे ध्रुवजीके समीप आ गया ॥ २७ ॥ कायरोंको ऐसे अनेक प्रकारके तीक्ष्ण त्रास दिखानेके लिये असुरोंने अपनी आसुरी माया रची ॥ २८ ॥ असुरोंने जब ध्रुवजीपर अत्यन्त दुस्तर मायाओंका प्रयोग किया, तब ऋषीश्वर और मुनीश्वर अत्यन्त कृष्णभक्त ध्रुवको दुःखी देखकर आकाशसे पुकार-पुकार मंगलवाची शब्द कहने लगे ॥ २९ ॥ सप्तऋषि बोले कि हे ध्रुव ! उत्तानपादके कुमार ! ! कुछ शंका न कीजिये श्रीगोविन्दके चरणारविन्द का ध्यान लगाओ वह शार्ङ्गधन्वाधारी भृत्योंके भयहारी, वासुदेव भगवान् शरणागत प्रतिपालक तुम्हारे शत्रुओंका शीघ्र नाश करेंगे। हे ध्रुव ! जिनका नाम लेने सुननेसे विना परिश्रम, विना उपाय इस संसारसे पार हो जाते हैं वह प्रभु कैसे हैं ?—

॥ भजन ॥

श्रीगोविंद परमानन्द संतन हितकारी ॥

दीनबन्धु दामोदर, मधुसूदन मुरलीधर। विश्वनाथ विश्वंभर व्रजपति बनवारी ॥ १ ॥ जनपर जब परत भीर, तुरत धरत नरशरीर। क्षण भरमें हरत पीर सांवरे बिहारी ॥ २॥ हरि हरि जब टेरो गज; धाये झट खग पति तज। धन धन धन गरुडध्वज, भक्तनभयहारी ॥ ३ ॥ करुणाकर कष्ट हरण, बीरोत्तम धीरधरण। अब तो हूँ चरण शरण, हे प्रभु तुम्हारी ॥ ४ ॥ दुःशासन दुष्टराज, नग्न करन चहत आज। देख रह्यो सब समाज, लाज

सब बिसारी ॥ ५ ॥ बेगि आय लो बचाय, नातो सब लाज जाय फिर तुम कहा करहु आय, जब न रहै सारी ॥ ६ ॥ हे गोविन्द हे गिरिधर, हे यदुपति हे श्रीधर। ऐसे कह आंसू भर द्रौपदी पुकारी ॥ ७ ॥ खगपतिपर हो सवार, धाये यशुदाकुमार। बढ़ादिये पट अपार, झटपट असुरारी ॥ ८ ॥ धन धन ध्रुव ज्ञानवान, भक्तनमें अतिसुजान। जगमें को तुम समान धर्म-ध्वजा धारी ॥ ९ ॥ जो जन हैं परमभगत, हरि हरि दिनरात जपत। तिनको नहिं देख सकत, एक क्षण दुखारी ॥ १० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य यक्षैः सह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—एकादश अध्यायमें, देख यक्षसंहार।
मनुने वर्जा ध्रुवको, हे सुत इनहि न मार ॥

मैत्रेयजी बोले कि सप्तऋषियोंका यह वचन सुनते ही ध्रुवजीने आचमन करके धनुषपर नारायणास्त्रका सन्धान किया ॥१॥ हे विदुर! नारायणास्त्रका सन्धान करते ही यक्षोंकी रची हुई माया क्षणमात्रमें ऐसे विनष्ट हो गयी, जैसे ज्ञानका उदय होते ही सब क्लेश दूर हो जाते हैं॥२॥ जब ध्रुवजीने नारायणास्त्रका प्रयोग किया उस समय सुवर्णके अन्तभागवाले मनोहर हंसोंके पंखरूपी बाण धनुषसे निकल निकलकर यक्षोंकी सेनामें प्रवेश करने लगे जैसे भयंकर शब्दवाले मोर वनमें प्रवेश करते हैं ॥ ३ ॥ कठिन धारवाले शरोंसे मारे हुए पुण्यजन संग्राममें अत्यंत क्रोधित हो शस्त्र उठा-उठाकर चारों ओरसे ध्रुवजीपर झपटे, जैसे गरुड़के सम्मुख सर्प फण उठाकर दौड़ता है ॥ ४ ॥ ध्रुवके बाणोंसे रणस्थलमें जिनके बाहु, ऊरु, जङ्घा, शीश, अधर, कन्धे, उदर, कट गये थे उनको सूर्यमण्डलसे परे जो परमधाम है वहां पहुँचा दिया, जहां भक्तजन सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं॥५॥ महाबाहु ध्रुवके हाथसे निरपराधी बहुतसे गुह्यकोंको मरे हुए देखकर करुणासागर मनुजी ध्रुवके पितामह सप्तऋषियों सहित ध्रुवजीके समीप आकर ॥ ६ ॥ मनुजी बोले कि हे पुत्र! यह क्रोध पापका रूप और नरकका देनेवाला है, इसको छोड़ दे, वृथा रोष करके इन पुण्यजनोंको तुमने मारा॥७॥ हे वत्स! हमारे कुलके योग्य यह कर्म तुम्हारा नहीं है, निरपराधी यक्षोंका मारना इस कर्मकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं ॥८॥ एक यक्षके अपराध करनेसे तूने सहस्रों यक्ष मार डाले। हे भ्रातृवत्सल! हे अंग!! एक भाईका वध होनेसे तुमने कुपित होकर सब यक्षकुलका विध्वंस कर दिया ॥ ९ ॥ हृषीकेश भगवान्‌के भक्तोंका यह मार्ग नहीं है, जो उत्तम शरीर पाकर आत्मज्ञानी होकर पशुओंके समान जीवोंकी हिंसा करते हो ॥ १० ॥ सब जीवमात्रमें अपने समान भाव जानकर सब जीव जिसमें वसते हैं, ऐसे हरिका आराधन करनेके प्रतापसे श्रीकृष्णचन्द्र के परमपदको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और तूने भगवान्‌का ध्यान भी किया है और श्रीवैष्णवोंमें श्रेष्ठ भी है और महात्मापुरुषोंके वृत्तकी शिक्षा भी पायी है, फिर यह निंदित कर्म क्यों किया? ॥१२॥ सहनशीलता, दया, मैत्री, क्षमा सब जीवमात्रमें करनी योग्य है, क्योंकि सबमें समताका भाव रखनेसे विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ जब भगवान् वासुदेव जिसपर प्रसन्न होते हैं, तब प्राकृत गुणोंसे वह पुरुष

छूटकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्माके आनन्दको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ और पंचभूतसे यह सब स्त्रीपुरुष जन्म लेते हैं और सब जानते हैं कि स्त्रीपुरुषके ही मैथुनकर्म करनेसे इस जगत्में नर-नारी उत्पन्न होते हैं, फिर पिता, भ्राता, पुत्रादि संबंध सब वृथा हैं ॥१५॥ हे राजन् ! परमात्माकी विचित्र माया द्वारा गुणोंके उलटे पुलटे होनेसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता रहता है ॥ १६ ॥ इसमें निर्गुणपुरुष श्रेष्ठ ईश्वर तो केवल निमित्त मात्र है, उसमें कोई गुण नहीं; जैसे चुम्बक पत्थरके निमित्तसे लोहा घूमता है, इसी प्रकार यह कार्य्यकारणात्मक संसार घूमता रहता है ॥ १७ ॥ संसार द्वारा जिनके वीर्यका विभाग किया गया है वह भगवान् अपनी कलाशक्तिसे आप अकर्ता है, तो भी इस संसारको वारम्वार रचता है और आप अहंता होनेपर भी इस संसारका वारम्वार संहार करता है, निश्चय है कि सर्वशक्तिमान् भगवान्की चेष्टा कोई जान नहीं सकता । चौपाई–"हरिचरित्रको जाननहारा । कहाकरत जो करत विचारा" ॥ १८ ॥ वह अनंत अन्त करनेवाला काल अनादि सबकी आदि करनेवाला है, वह जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युको कालरूप होकर मारता है ॥१९॥ वह परमात्मा प्रजाको समान भावसे देखता है, उस मृत्युरूप परमेश्वर कालरूपके न तो कोई अपना है न कोई पराया है। असमर्थ, अनाथ होकर यह सब जीवसमूह कर्मोंके वश होकर कालके दौड़नेसे उसके पीछे दौड़ते हुए चले जाते हैं, जैसे पवनके प्रसंगसे रजके कण उड़े चले जाते हैं ॥२०॥ जीवकी आयुकी हानि और रक्षा यह दोनों बातें कर्माधीन हैं और परमात्मा तो स्वयं इच्छा चारी है उसके न तो कभी क्षति है, न कभी वृद्धि है । कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ ऐसे जीवका भगवान् विधान करते रहते हैं ॥ २१ ॥ हे नृप ! इस संसारकी अद्भुत रीति है, आचार्य तो कर्मको ईश्वर कहते हैं, कोई स्वभावको ईश्वर कहते हैं, कोई कालको ईश्वर कहते हैं, कोई भाग्यको ईश्वर कहते हैं और वात्स्यायनादि ऋषि कामदेवको ईश्वर कहते हैं ॥२२॥ उस अप्रमेय, अव्यक्त, शांतरूप, महत्तत्त्वादि अनंत शक्तियोंके उत्पन्नकर्ता भगवान्की इच्छाको कोई नहीं जान सकता तो फिर उनके जन्मकर्मका भेद कैसे जान सकता है ? ॥ २३ ॥ हे वत्स ! इन कुबेरके यक्षोंने तुम्हारे भ्राताको नहीं मारा है । हे तात ! जन्म-मरण तो पुरुषके भाग्यसे होता है ॥ २४ ॥ वही विश्वका रचनेवाला है, वही पालन करनेवाला है और वही नाश करनेवाला है । यद्यपि ऐसा है तो भी अहंकारके त्यागनेसे गुण कर्मसे लिप्त नहीं होता ॥ २५ ॥ वही कालरूप ईश्वर भूतात्मा भूतोंका ईश, सबका पालक, अपनी माया शक्तिसे मुक्त होकर जीवोंको रचता है, पालता है, संहार करता है ॥ २६ ॥ हे तात ! जो अभक्तोंको मृत्युरूप, भक्तोंको अमृतरूप है, उस जगत्परायण सर्वात्माकी शरणमें तू जा, जिसको विश्वके रचनेवाले ब्रह्माजी बलि देते हैं, जैसे नथनोंमें पोई हुई रस्सीके वशीभूत हो "बैल" सब स्थानोंमें घूमता-फिरता है॥२७॥जब तू पांच वर्षका था, तब तूने अपनी माताको त्याग विमाताके मर्मभेदी वचनोंसे मर्मस्थानमें छिद्र होनेके कारण वनमें जाकर परमात्माके चरणारविंदका आराधन कर साक्षात् दर्शन किया और त्रिलोकीके मस्तकपर जो सर्वोत्तम स्थान है वह उच्चपद लिया ॥ २८ ॥ हे अङ्ग ! आत्मासे विरोधको दूर करके आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षरको आत्माविमुक्त आत्मदर्शीका अनुशरण कर जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होता है ॥ २९ ॥ जब तू दिव्य दृष्टि द्वारा परमात्माका अनुशरण करेगा उस समय पृथक् आत्मरूप, अनंत, आनंदमात्र, व्यापक सर्वशक्ति जिसमें प्राप्त ऐसे परमात्मामें

पराभक्ति होगी, फिर पीछे धीरे "मम" "अहंकार" जो अविद्याकी ग्रंथि वह कट जायगी, क्योंकि इस वार्तापर एक पद लिखता हूँ ॥ ३० ॥

राग भैरवी

इस प्राणीको कृष्णभजन ही, परमानन्द दिखाता है रे ।
विना किये हरिभक्त जगतमें मुक्ति न कोई पाता है रे ॥ १ ॥
धन दौलत अरु कुटुम कबीला, कोई काम न आता हैं रे ।
सब अपने अपने स्वारथके, मुख देखेका नाता है रे ॥ २ ॥
दारा पुत्र पौत्रके ऊपर, फूला नहीं समाता है रे
माया मोह लोभके वश हो, वृथा जन्म गँवाता है रे ॥ ३ ॥
अब भी समझ अरे अज्ञानी, कहे जिन्हें तू भ्राता है रे ।
अन्त समय कोई काम न आवै, आप अकेला जाता है रे ॥ ४ ॥
काल आय जब शिरपर गाजत, कफ घटमें घिर आता है रे ।
आंख फाड़ तब चहुँदिशि देखत, शिर धुनि धुनि पछताता हैं रे ॥ ५ ॥
हरि हरि भज राजस तामस तज, जो तेरा सुखदाता है रे ।
वोही सर्व जगतका स्वामी, सब दुखद्वंद मिटाता हैं रे ॥ ६ ॥
माया मोह द्रोह ममता तजि, जो नर हरि गुण गाता है रे ।
"शालिग्राम" वही इस जगमें, पूरण ब्रह्म कहाता हैं रे ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! जैसे औषधिके सेवन करनेसे रोग शांत हो जाता है, इसी प्रकार भगवत्-भजनसे इस क्रोधको शांत कर, जिससे तेरा कल्याण हो । यह क्रोध अमंगलका मूल है अनेक शास्त्रोंके सुननेका यही फल है कि चित्त जिससे शान्त हो जाय ॥ ३१ ॥ और जो पुरुष क्रोधके वशमें हो जाता है, उसको ज्ञान नहीं रहता, सबको डराता है, इसलिये जो अपने आत्माका अभय चाहे तो वह प्राणी क्रोधसे बचा रहे, क्योंकि क्रोध बुद्धिका विनाशक है ॥ ३२ ॥ शिवके भ्राता कुबेरका तुमने अपमान किया और यह समझकर यक्षोंका वध किया कि मेरे भाईको मार डाला है ॥ ३३ ॥ हे वत्स ! अब नम्रतासे मीठे वचनोंसे उनको प्रसन्न करो, क्योंकि महात्मा पुरुषोंके तेजसे हमारे वंशका नाश न हो जाय ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्वायंभुवमनुने अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा देकर उसकी वंदनाको स्वीकार करके सप्तऋषियोंको साथ ले अपने भवनको गमन किया ॥ ३५ ॥

दोहा—भवन वही राधारमन, जहँ नित करत निवास ।
हरि विन घरसे वन भलो, पुष्प देत जहँ वास ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कंधे मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा—द्वादशमाहिं कुबेरने, ध्रुव यश कियो बखान ।
तब ध्रुव निजपुर जायके, कीने यज्ञ महान ॥

मैत्रेयजी बोले ध्रुवजीको हिंसा करनेमे निवृत्त देख और क्रोधसे विगत हुआ जान भगवान् कुबेरने चारण, यक्ष, किन्नरोंके साथ हाथ जोड़े स्तुति करता ध्रुवजीको देखकर ॥ १ ॥ कुबेर बोले कि हे क्षत्रियनन्दन! हे पापरहित! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं क्योंकि तूने अपने दादाकी आज्ञा मानकर दुस्त्यज वैरको त्याग दिया ॥ २ ॥ न तो तुमने यक्षोंको मारा और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा, सब प्राणियोंके जीवन मरणका कारण काल ही है ॥ ३ ॥ "मैं" और "तू" यह बुद्धि पुरुषकी अज्ञानसे होती है; और सब स्वप्नवत् है, जैसे असत्पदार्थके ध्यान करनेसे स्वप्नद्रष्टाको सत् ही भासता है, यही बंध मोक्षका कारण है ॥ ४ ॥ हे ध्रुव! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम अपने स्थानको जाओ और भगवान् अधोक्षज सर्व भूतात्मविग्रह परमेश्वरको सर्वभावसे प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ जिनके चरणकमल भजनीय, संसारके नाशक, शक्तियुक्त, गुणमयी आत्ममायासे रहित परमात्माको संसार निवृत्तिके लिये तुम भजो ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन! जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो निशङ्क होकर वही वर मांगो, क्योंकि तुम वरदानके योग्य हो और हमने यह भी सुना है कि तुम भगवान् कमलनाभके चरणारविन्दके आश्रित हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजाओंके राजा कुबेरने जब परमात्माके परमभक्त महाविद्वान ध्रुवजीसे कहा कि वर मांगो, तब महाभागवत ध्रुवने यह वर मांगा, कि मेरा मन हरिमेंसे कभी चलायमान न हो, ऐसी ही रति सदा भगवत्की भक्तिमें बनी रहे; जिससे यह पुरुष इस दुरत्यय अंधकारसे विना यत्न किये पार हो जाते हैं ॥ ८ ॥ इडविडाके पुत्र कुबेर प्रसन्न मनसे ध्रुवको यह वरदान दे ध्रुवजीके सम्मुखसे अंतर्धान हो गये और ध्रुवजी अपने नगरको चल दिये ॥ ९ ॥ फिर जिसमें अनेक प्रकारकी दक्षिणा दी जाती है, ऐसे यज्ञोंसे यज्ञेशका पूजन कर द्रव्य क्रिया और देवतासंबन्धी कर्म करके साध्य जो फलरूप कर्म है उसके फलदायक यज्ञपति विष्णु भगवान्का यजन किया ॥ १० ॥ और सबके आत्मा, सर्वत्र व्यापक अच्युत भगवान्की तीव्र वेगवाली भक्ति करते-करते अपने आत्मामें और सब जीवोंमें स्थित एक सर्वसमर्थ भगवान्को देखने लगे ॥ ११ ॥ और शीलसिंधु, ब्रह्मण्य, दीनदयालु, धर्मकी सीमाके रक्षक, सर्व शास्त्र और श्रुतियोंके ज्ञाता उस ध्रुवको सब प्रजा पिताके समान मानने लगी ॥ १२ ॥ इसी प्रकार छत्तीस सहस्र ३६००० वर्षतक भूमंडलमें राज्य किया, भोगोंसे पुण्यको और अभोगोंसे अशुभ पापको क्षय करते रहे ॥ १३ ॥ इसी प्रकार बहुत कालतक जितेंद्रिय हो त्रिवर्गको व्यतीत कर अपने पुत्रको राज्यतिलक दे दिया ॥ १४ ॥ इस संसारको मायारचित मानकर अविद्यारचित स्वप्न व गंधर्वनगर समान जानने लगे ॥ १५ ॥ तन, धन, स्त्री, पुत्र, सुहृद, सेना, ऋद्धि, भंडार, अंतःपुर, रमणीक विहारकी भूमि और समुद्रपर्यन्त भूमंडलका राज्य इन सबको कालसे नष्टवान् मानकर ध्रुवजी बदरिकाश्रमको चले गये ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर सर्वेन्द्रिय विशुद्ध शुद्धचित्त हो, कल्याणरूप जलमें स्नान कर आसन लगाकर पवन, मन, सब इंद्रियाँ जीत, भगवान्के स्थूल विराट्स्वरूपमें मनको लगाया। फिर बहुत कालतक उस स्वरूपका ध्यान करते-करते अभेद हो समाधिमें स्थितप्रज्ञ हो, स्थूलस्वरूपको भी तज ब्रह्मरूप हो गये ॥ १७ ॥ श्रीहरि भगवान्की निरंतर भक्ति करते-करते यह गति हो गयी कि आनंदके बाष्पबिन्दुओंके प्रवाहसे वारंवार पीड़ित हो हृदय द्रवीभूत हो गया, देह पुलकायमान हो गया, लिंग शरीरके त्यागनेमे उसे अपने आत्माका भी स्मरण न रहा ॥ १८ ॥ उस समय

आकाशसे उतरता हुआ एक अनुपम विमान ध्रुवजीको दिखायी दिया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा दशों दिशाओंको प्रकाशित करता है, इसी प्रकार सब दिशाओंमें प्रकाश हो गया॥१९॥ उसमें देवश्रेष्ठ भगवान्‌के दो पार्षद नंद-सुनंद नामक बैठे देखे। चतुर्भुजी, श्यामवर्ण, किशोर वय, अरुणांबुज समान नेत्र, पीतपट धारण किये, किरीट, हार, भुजबंद, मकराकृति कुण्डल पहने, गदा हाथमें लिये खड़े थे॥२०॥ उनको विष्णु भगवान्‌के पार्षद जानकर शीघ्र उठ खड़ा हुआ और चित्तमें संमोह हो जानेके कारण पूजाके क्रमकी विस्मृति हो गयी और भगवान्‌केमुख्य पार्षद समझ भगवत्‌के नाम लेता हुआ दोनों हाथ जोड़कर दंडवत् प्रणाम करने लगा॥२१॥ भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दमें जिसका मन लग गया है, उस नम्रतापूर्वक कन्धा नीचेको किये, हाथ जोड़े ध्रुवको खड़ा देखा, तब सुनंद नंद उसके निकट आकर मंदमंद मुसकाय भगवान् कमलनाभके परम प्रधान पार्षदोंने कहा॥ २२॥ सुनंद नंद बोले, कि हे महाराज! तुम्हारा कल्याण हो सावधान होकर हमारी वाणी सुनो—आपने पांच वर्षकी छोटी अवस्थामें महा कठिन तप करके देवताओंको तृप्त करनेवाले भगवान्‌को प्रसन्न किया है॥ २३॥ उन सब जगत्‌के धारण-पोषण करनेवाले धनुषधारी श्रीनारायणके हम पार्षद हैं, तुमको भगवान्‌के परमधामको ले जानेके लिये हम यहाँ आये हैं॥२४॥जो महाऋषियोंसे न जीता गया आजतक विचार ही कर रहे हैं, उस विष्णुपदको तुमने जीता है, जिनके प्राप्त होनेके लिये बड़े-बड़े विवेकी खड़े सोच-विचार कर रहे हैं, उस स्थानपर चलकर तुम विराजमान हो, जहां सूर्य चन्द्रमादिक ग्रह, नक्षत्र, तारागण आपकी प्रदक्षिणा दिया करेंगे॥२५॥ हे ध्रुव! आजतक जिस स्थानमें न तो कोई आपका पुरुष पहुँचा, न कोई और प्राणी पहुँचा, वहाँ उस जगत्वंद्य विष्णु भगवान्‌का परमपद है, उसमें तुम निवास करो॥ २६॥ इसलिये परमोत्तम विमान देवताओंके शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान्‌ने तुम्हारे लिये भेजा है, अतः हे आयुष्मन्! आप इसपर चढ़ो॥२७॥मैत्रेयजी बोले कि उरुगाय भगवान्‌के प्यारे ध्रुवने भगवान्‌के परम अधिकारी पार्षदोंके सुधारूप वचन सुन स्नान कर, नित्यकृत्यसे निश्चित हो, मांगलिक अलंकार पहन मुनियोंको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लिया॥२८॥ फिर उसी विमानकी प्रदक्षिणाकर पूजनके पश्चात् पार्षदोंके चरणोंकी वंदना कर हिरण्यमय स्वरूप धारण करके उस उत्तम विमानपर बैठनेकी इच्छा की॥ २९॥ उसी समय मृत्यु आकर उपस्थित हुई और ध्रुवजीको प्रणाम करके बोली कि कृपानाथ! मुझे अंगीकार करो, तब ध्रुवजी बोले कि तू आगयी, यह बहुत अच्छा किया, परंतु थोड़ी देर विलम्ब कर इस प्रकार उसे बैठाकर उसके शीशपर चरण धर उस अद्भुत विमानपर बैठे॥ ३०॥ उस समय मृदंग, दुंदुभी, ढोल इत्यादिक अनेक-अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे, बड़े-बड़े मुखिया गंधर्वलोग गीत गाने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ ३१॥ जब ध्रुव ध्रुवलोकको जाने लगा तब उसको अपनी

१. शंका—त्रिलोकीमें अनेक प्रकारके भगवद्भक्त हुए, परंतु कोई भक्त ऐसा नहीं हुआ कि जिसने कालके मस्तकको पांवोंसे दबाकर श्रीविष्णु भगवान्‌के लोकको गया हो? और कल्पकल्पान्तर तप करते मुनियोंको व्यतीत हो गये हैं, परंतु कालके मस्तकको पांवसे छुवाकर कोई मुनिभी परमपदको आज तक नहीं गया और ध्रुवने बड़ा आश्चर्य किया कि, थोड़ेही दिनतप करके कालके मस्तकको पगमें दावकर भगवान्‌के लोकको गया; यह बड़े भारी सन्देहकी बात है?

उत्तर—तपस्वियोंमें ध्रुवजी कुछ बड़े तपस्वी नहीं हैं और बहुत तपस्या भी ध्रुवने नहीं की, परंतु भगवान् कृपाके सागर हैं और ध्रुवको समझा कि यह अत्यन्त बालक है। इसके पिताने घर से निकाल दिया है, इसके पिता हम ही हैं, ऐसा जानकर ध्रुवको भगवान्‌ने अनुग्रह किया, इसीके प्रभावसे ध्रुव कालके मस्तकको चरणसे दावकर भगवान्‌के परमपदको गया।

माता सुनीतिका स्मरण हुआ तब उसका अपराध क्षमा कर बोला कि यह सब सुनीतिका ही प्रभाव है, इस दीन अबलाको अकेला छोड़कर कैसे मैं स्वर्गको जाऊँ ? ॥ ३२ ॥ यह ध्रुवजीका निश्चय जान देवश्रेष्ठ सुनंद नंदने विमानमें बैठी आगे जाती सुनीतिको दिखाया ॥ ३३ ॥ जहां-तहां मार्गमें विमानोंपर बैठे देवता ध्रुवजीकी प्रशंसा करते थे और क्रम-क्रमसे सब ग्रह और देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ देवपथसे त्रिलोकीको उल्लंघन कर सप्त ऋषियोंको उल्लंघन किया, फिर सबसे परे अचल गतिवाले विष्णुपदको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ जो विष्णुधाम अपनी कांतिसे ही देदीप्यमान है, उसीके प्रकाशसे यह, तीनों लोक प्रकाशते हैं और जो मनुष्य मनुष्योंपर दया नहीं करते हैं वे वहां नहीं जा सकते क्योंकि दिन-रात शुभकर्म करनेवाले वहां जाते हैं ॥ ३६ ॥ और जिनके स्वभाव शांत हैं, समदृष्टि हैं, शुद्धचित्त हैं, सब जीवकी रक्षा करते हैं, अच्युत भगवान्‌को ही अपना प्रिय बांधव मानते हैं, वे लोग जिस लोकमें जाते हैं, वही लोक ध्रुवजीको प्राप्त हुआ ।

दोहा–तहँ पहुँचो जब भूप ध्रुव, तब प्रभु निकट बुलाय ।
दियो ताहि अब अचलपद, निजमहिमा दरशाय ॥ ३७ ॥

इस प्रकार उत्तानपादका तनय ध्रुव भगवत्परायण होनेसे त्रिभुवनका निर्मल चूड़ामणि हुआ ॥ ३८ ॥ हे विदुर ! गम्भीर वेग आलसरहित ज्योतिषचक्र जिसमें लग रहा है, वह इस प्रकार घूम रहा है कि जैसे मेढीमें बैलोंका समूह भ्रमण करता है, ऐसे पदको ध्रुवजी प्राप्त हुए ॥३९॥ नारदजीने ध्रुवजीकी महिमा देखकर वीणा बजाते प्रचेताके यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गानेके समय ध्रुवजीका चरित्र तीन श्लोकोंमें बनाकर गाया ॥ ४० ॥ श्रीनारदजी बोले कि, पतिव्रता सुनीतिके सुत ध्रुवजीको तपके प्रभावसे जो पदवी मिली उस परमपदवीको भगवद्धार्मिक वेदवादि लोग अनेक यत्न करनेसे भी नहीं पा सकते, तो और नरेशोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ४१ ॥ जिस ध्रुवने पांच वर्षकी अवस्थामें अपनी विमाताकी वाणीरूप बाणोंसे बिंधे हुए हृदयसे वनमें जाकर जो भगवान् विजयी होकर भक्तोंके गुणोंसे पराजित हो जाते हैं उन विश्वविजयी भगवान्‌को अपने वशमें कर लिया ॥ ४२ ॥ और जो क्षत्रबंधु भूमिमें उस पदवीको अनेक वर्ष तप करके भी नहीं प्राप्त कर सकते, वह पांच-छः ही वर्षकी अवस्थामें थोड़े दिनोंमें तप करके ध्रुवजी भगवान्‌को प्रसन्न कर उनके परमपदको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि महाप्रतापी, कीर्तिमान् महात्मा पुरुषोंका प्रिय ध्रुवजीका चरित्र जो आपने मुझसे पूछा, वह सब वृत्तांत मैंने आपके सम्मुख यथावत् वर्णन कर दिया ॥ ४४ ॥ यह ध्रुव चरित्र धन, यश, पुण्य, आयु, मंगल, स्वर्ग और ध्रुवपदका देनेवाला, आत्माको पवित्र करनेवाला, प्रशंसाको बढ़ानेवाला और सब पापोंका नाशक है ॥ ४५ ॥ जो कोई इस भगवान्‌के प्रिय मनोहर चरित्रको वारंवार श्रद्धासे सुनता है, उसको भक्ति प्राप्त होती है, जिससे सब क्लेश समूहोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ इस चरित्रके सुननेवाले अपनी मनःकामनाको प्राप्त होते हैं, बड़ाईवालेको बड़प्पन, शीलवालेको शीलता, तेजकी इच्छावालेको तेज और मनस्वियोंको मानका देनेवाला है ॥ ४७ ॥ परमपवित्र है आत्मा जिसकी ऐसे ध्रुवजीका यह उत्तम चरित्र प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके ब्राह्मणोंमें बैठकर सावधानतासे वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥ पूर्णमासी, अमावास्या, द्वादशी मिश्रित एकादशी, श्रवणादि नक्षत्रमें व्यतीपातयोगमें, संक्रांतिमें और रवि-

वारको जो पुरुष निष्काम होकर भगवान्‌की भक्तिसहित ॥ ४९ ॥ श्रद्धा धारण करनेवाले सज्जन पुरुषोंको यह चरित्र सुनाये, उसकी कोई कामना शेष नहीं रहती, वह आप अपने स्वरूपमें हो सिद्धिको पाकर सिद्ध हो जाता है ॥ ५० ॥ और जो पुरुष अज्ञानियोंको भगवान्‌के सन्मार्गको प्रदान करता है और ज्ञान देता है उस कृपालु और दीनोंके उद्धारक मनुष्यपर देवता सदा अनुग्रह करते रहते हैं ॥ ५१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जिस ध्रुवजीके पवित्र कर्म आजतक प्रसिद्ध हैं, उसका यह चरित्र तुम्हारे आगे वर्णन किया, कि जो ध्रुव बालकपनमें खेल खिलौने और अपनी माताके घरको त्याग कर भगवत्‌के चरणारविन्दकी शरण गया था, वे भगवान्‌के चरण सदा भक्तोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले और सब संशयके मिटानेवाले हैं ॥ ५२ ॥

भजन

हरियश सब दुःख काटनहारा ॥
यह संसार स्वप्नकी माया, जिसको सत्य विचारा ।
यहां कोई अपना नहिं दीखै, झूठा द्वन्द्व पसारा ॥ १ ॥
भाई बंधु औ कुटुँब कबीला, मात पिता सुत दारा ।
येही तेरे परम शत्रु हैं, जिन्हैं कहै तू प्यारा ॥ २ ॥
विन ब्रजचंद मुकुंद नंदसुत, कोई नहीं हमारा ।
जिनके चरणकमलसे निकली, श्रीगंगाकी धारा ॥ ३ ॥
तीनलोककी पावनकरनी, सगरवंश विस्तारा ।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पृथुसुत अंग सुजान ।
देखि पुत्रकी दुष्टता, वनको कीन पयान ॥

सूतजी बोले कि, पांच अध्यायोंमें तो ध्रुवचरित्र वर्णन किया और अब ग्यारह अध्यायोंमें राजा पृथुका चरित्र वर्णन करेंगे। ध्रुवजीके विष्णुपद प्राप्त होनेका वृत्तांत मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भगवान् अधोक्षजमें भाव उत्पन्न होनेसे विदुरजीने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना प्रारंभ किया ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे सुवृत्ति ! प्रचेता कौन थे, उनका क्या नाम था ? किसके कुलमें विख्यात हुए ? किसके पुत्र थे ? और किस स्थानपर यज्ञ किया ? वह सब भिन्न-भिन्न मुझसे कहो ॥ २ ॥ देवताओंके समान जिसका दर्शन उन नारदजीको मैं महाभागवत मानता हूं जिन्होंने भगवत्‌की परिचर्या विधि (योगक्रियाकी रीति) "पञ्चरात्र" ग्रंथमें कही है ॥ ३ ॥ स्वधर्मपालक प्रचेतासे पूजित यज्ञपुरुष भगवान्‌का वर्णन् भगवान् नारद मुनिने किया है ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कुछ वहां नारदजीने भगवत् कथा वर्णन की है वह मेरे आगे वर्णन करो, क्योंकि भगवत्कथा सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने पुत्र उत्कलको ध्रुवजी जब राज्य दे वनको चले गये, तब उत्कलने पिताकी सब

भूमि और राजलक्ष्मीके लेनेकी इच्छा नहीं की ॥६॥ वह जन्मसे शांतात्मा, सङ्गरहित, समदर्शी और अपनी आत्माको सब लोकमें पूर्ण और जगदात्माको अपनेमें मानता था ॥ ७ ॥ ब्रह्मसुखमें शांत हो अपने देहको भूल गया और ज्ञानरसमें निमग्न, आनन्दमय और मोक्षरूप परब्रह्म परमात्माको जानता था ॥८॥ और अखंडित योगाग्निसे उसके सब पाप और अन्तःकरणकी भावना जलकर भस्म हो गयी थी, अपने स्वरूपका अनुसन्धान कर अपनेसे भिन्न और किसीको नहीं देखता था ॥९॥ वह आत्मज्ञानी अकेला नगरसे निकलकर चल दिया, राखमें दबी अग्निसमान वह तेजधारी उत्कल मार्गमें जाता हुआ जड़, अन्ध, बधिर, उन्मत्त,मूककेसी आकृति किये बालकोंको दृष्टि आता था ॥ १० ॥ सचिव और कुलके वृद्धपुरुषोंने उत्कलको उन्मत्त और जड़ समझकर उससे कनिष्ठ भ्रमिके सुत वत्सरको राज्याधिकार दे दिया ॥११॥ वत्सरकी प्यारी बड़ी स्त्री स्ववींथिके पुष्पार्ण, तिग्मकेतु,इष, ऊर्ज, वसु और जय नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा और दोषा नाम दो पत्नी थीं; उनमेंसे प्रभाके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, प्रातः, मध्यंदिन और सायं ॥ १३ ॥ तीन पुत्र दोषाने उत्पन्न किये प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट और व्युष्टने पुष्करणी नाम भार्यामें सर्वतेजस नाम पुत्र उत्पन्न किया ॥१४॥ और सर्वतेजसकी आकूति नाम स्त्रीमें चक्षु नाम मनु पुत्र हुआ, मनुकी पटरानी नड्वलामें ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ पुरु १, कुत्स २, त्रित, ३, द्युम्न ४, सत्यवान् ५, ऋतव्रत ६, अग्निष्टोम ७, अतिरात्र ८, प्रद्युम्न ९, शिबि १० और उल्मुक ११ ॥ १६ ॥ उल्मुकके पुष्करणी नाम भार्यामें छः पुत्र उत्पन्न हुए-अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गय ॥ १७ ॥ अङ्गकी सुनीथा नाम पत्नीमें महाभयङ्कर वेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, कि जिसकी दुष्टतासे राजर्षि अङ्ग वैरागी होकर नगरसे निकल गया ॥ १८ ॥ हे विदुर ! वेनके महापाप कर्म देखकर मुनियोंने वाग्वज्ररूपी शाप दिया, शापके देनेसे उस वेनका प्राणान्त हो गया, तब मुनीश्वरोंने वेनकी दाहिनी भुजाको मथा ॥ १९ ॥ जब पृथ्वीपर कोई राजा नहीं रहा तो प्रजा चोरोंके भयसे अत्यन्त दुःखी हो गयी, तब मुनियोंने वेनके दाहिने हाथको मथा जिससे नारायणके अंशसे आद्यराज पृथुने पृथ्वीश्वर अवतार धारण किया ॥२०॥ विदुरजी बोले कि महाशीलवान्, साधु, ब्रह्मण्य, सज्जनोंके सम्मान करनेवाले महात्मा अंगके ऐसा अन्यायकारी दुष्ट पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ ? कि जिसका अन्याय देखकर राजा विमन हो वनको चला गया ॥ २१ ॥ और राजा वेनका क्या ऐसा पाप देखा जो मुनीश्वरोंने ऐसे दण्डधारी राजाको महाघोर शाप दिया ? ॥२२॥ उत्तम नीति तो यह है कि प्रजापालक पापात्मा भी हो तो भी प्रजाको उसका अनादर करना योग्य नहीं, क्योंकि राजामें आठ लोकपालका अंश होता है और अपनी सामर्थ्यसे लोकपाल देवताओंकी शक्ति धारण करता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मण्य ! राजा वेनका चरित्र सम्पूर्ण मुझसे कहो, क्योंकि इस चरित्रके सुननेकी मुझको परम अभिलाषा है और तुम्हारा भक्त हूँ ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजर्षि अंग राजाने महाअश्वमेध यज्ञ किया, उसमें वेदवादी विप्रोंके आह्वान करनेसे देवता लोग नहीं आये, तब आश्चर्यमय होकर ब्राह्मणोंने राजासे कहा कि ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आप श्रद्धासहित जो यज्ञके उत्तमोत्तम पदार्थ देते हो, तो भी तुम्हारा हवि हवनदेवता ग्रहण नहीं करते ॥२६॥ हे राजन् ! यह हवन योग्य जो है सो सब बहुत शुद्ध है और श्रद्धाविधियुक्त देते हैं, वेदमन्त्रोंका आजतक सार गया नहीं है, हविपदार्थका अनादर भी

देवताओंने कभी नहीं किया, न जानिये यह क्या कारण है, कुछ हमारी समझमें नहीं आता ? ॥ २७ ॥ कर्मके साक्षी देवता लोग जो अपना भाग नहीं लेते हैं ऐसा किंचिन्मात्र भी यहां कोई हमसे उनका अपमान भी नहीं हुआ ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब ब्राह्मणोंने यह वचन कहे तो अंगराजाने अति उदास हो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मौन वृत्तिको तजकर सभासदोंसे पूछा ॥ २९ ॥ कि हे सभासदो ! न तो देवता बुलानेसे आते हैं और न अपना भाग लेते हैं, ऐसा मैंने देवताओंका क्या अपराध किया है ? और मुझसे क्या व्यतिक्रम हुआ, मुझको समझाकर कहो ॥ ३० ॥ सभासदोंने कहा कि हे नरोत्तम ! इस जन्ममें तो आपने कोई पाप किया नहीं है, परन्तु यह कोई पूर्व जन्मका पाप है, जिससे आप पुत्र हीन हो। कहीं ऐसा भी लिखा है–'एक समय राजा अंग बालकपनमें मानसरोवरके निकट क्रीड़ा करनेको गये थे, वहाँ एक तरुवरपर किसी राजहंसके बच्चे घोंसलेमें रक्खे थे और हंस-हंसिनी कहीं वनमें चले गये थे। उनमेंसे एक बच्चेको राजाने बालपनकी चञ्चलतासे पकड़कर मुट्ठीमें दबा लिया और वह बच्चा दबनेके कारण मर गया। जब हंस-हंसिनी वहां आये और बच्चेको नहीं देखा, तब तो अत्यन्त व्याकुल हो नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि हाय ! हमारे प्यारे बच्चेको कौन ले गया ? हंस हंसिनीकी कुदशा देख किसीने कहा कि तुम्हारे बच्चेको राजा अंगने मार डाला। यह वृत्तांत सुन हंस बोला कि राजा अंगने जैसा हमारा वंश निर्वंश किया है, इसी प्रकार राजा अंगका भी वंश निर्वंश हो जायगा ॥ हंसिनी बोली कि हे स्वामी ! हम पशुओंसे क्या होना है ? राजासे तो अनेक प्राणियोंका पालन होता है, आपको ऐसा कठिन शाप देना उचित नहीं था, हमारे कर्ममें तो दुःख भोगना लिखा ही था, परंतु राजाको दुःखी क्यों किया ? हंसिनीकी मृदुलवाणी सुनकर हंसने वर दिया कि यज्ञपुरुषकी पूजा करनेसे राजाके पुत्र होगा। हे राजन् ! सो तुम यज्ञपुरुषका पूजन करो' ॥३१॥ इसलिये आप पुत्र होनेका कोई उपाय करो और इस मनोरथसे आप यज्ञपुरुष भगवान्‌का यजन भी करो कि जिसमें यज्ञपुरुष भगवान् आपको पुत्र दें ॥ ३२ ॥ जब ऐसा हुआ तो अपने-अपने भाग भी देवता ले लेंगे, क्योंकि पुत्रके अर्थ जो आप भगवान्‌का यजन करोगे तो उस यज्ञमें यज्ञपुरुष भगवान्‌के संग देवता आपसे आप आयेंगे ॥ ३३ ॥ पुरुष जिस-जिस मनोरथके लिये भगवान्‌का यजन करता है, भगवान् उसकी आशा पूर्ण करते हैं, क्योंकि जो जिस भावनासे भगवत् आराधन करता है, परमेश्वर वैसा ही फल उसको देते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब सब ब्राह्मणोंने निश्चय किया तब राजाने पुत्रके होनेके लिये सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक विष्णु भगवान्‌के पुरोडाशका हवन किया। पुरोडास उसका नाम है कि, एक स्रुवामें इमरती सोमलताके अमृतमें भीजी हुई देनेसे सर्वेश्वर भगवान्

---

१. शंका–राजा अंगने अश्वमेध यज्ञ किया, तब उसके यज्ञमें देवताओंने अपना-अपना भाग ग्रहण नहीं किया, तब राजा अंगने बड़ा दुःख माना ! उस समय ब्राह्मणोंने राजा अंगसे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र नहीं हैं इस लिये तुम्हारे यज्ञमें देवता भाग ग्रहण नहीं करते, क्योंकि अपुत्रके हाथका जल-अन्न, पितर और देवता ग्रहण नहीं करते फिर अनेक निर्वंशी राजाओंने यज्ञ किये तो उन राजाओंके यज्ञमें देवताओंने अपना भाग क्यों ग्रहण किया ?

उत्तर–अंगसे दूसरे गिनतीसे हीन जो और राजा थे, वे अपने-अपने कुलके धर्ममें निपुण थे और बड़े विवेकवान् थे, इसलिये पुत्रहीन थे तो भी ज्ञानहीन नहीं थे। इस कारण देवता उनके यज्ञोंमें भाग लेते थे, और राजा अंगकी सुनीथा स्त्री थी, उसके संग रात–दिन भोगकी इच्छासे अपने कुलके धर्मको भ्रष्ट कर दिया, नीचबुद्धि हो गया इसलिये अंगको पुत्रहीन जानकर अंगका दिया हुआ भाग देवताओं ने ग्रहण नहीं किया ॥

प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ जब ऐसा पुरोडास विष्णु भगवान्ने पाया तब उस कुण्डसे सुवर्णकी माला पहने, श्वेतवस्त्र धारण किये, कंचनके एक बड़े भारी थालमें सुन्दर खीर लिये हुए एक पुरुष निकला, उसका सबने दर्शन किया ॥ ३६ ॥ राजाने ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे वह खीर उस पुरुषके हाथमेंसे अपने हाथमें ले ली और उसे सूंघ उस उदारचित्त राजाने आनंदित होकर अपनी भार्याको दे दी ॥ ३७ ॥ उस पुत्र होनेवाली रानीने खीरको पाकर पतिके गर्भको धारण किया, जब समय पूर्ण हुआ तो पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ३८ ॥ वह बालक मृत्यु जो उसका नाना था उसके अनुसार हुआ। मृत्यु अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुआ था इसलिये वह अधार्मिक हुआ, उसके जन्मके समय बड़ा भयानक उत्पात हुआ और ब्राह्मणोंने इसका नाम वेन रक्खा, उसके सब आचरण नानाकेसे थे ॥ ३९ ॥ वह धनुषबाण धारण किये, वनमें फिरता था और जो मृग, साधु, दीन सम्मुख आता था उसको कभी न छोड़ता था और सब ही कहते कि यह वेन निर्दयी है ॥

दोहा—पशु पक्षी जलजीव बहु, औरहु कीट पतंग।
बिना वधे छोड़ै नहीं, सहसनको इक संग ॥

जब आखेट खेलकर घर आता था, तब पुरवासियोंको और बालकोंको बुलाबुलाकर पकड़ पकड़कर कोठरीमें बंदकर देता और उनको लात मुष्टिकाओंसे मारता और अनेक प्रकारकी गाली देता था। जब प्रजा वेनको देखती थी तब हाहाकार करके कोसों भागती थी, किसीके घर आग लगा देता, किसीको पकड़कर कुएँमें गिरा देता, किसीकी स्त्रीको बलात्कार पकड़ लेता, किसीको कुल समेत मार डालता था, जिस मार्गसे होकर निकलता था हाहाकार मच जाता था कि देखो निर्दयी वेन आता है, यह संसारमें पुकार पड़ी रहती थी ॥ ४० ॥ खेलनेके स्थानमें अपने समान क्रीड़ा करनेवाले बालकोंको अतिदारुण निर्दयी हठ करके अंहेरीकी नाईं पकड़-पकड़कर मार डालता था ॥४१॥ उस महानीच पुत्रका अत्याचार देख-कर राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, जब शिक्षा करनेका सामर्थ्य न रहा तो अत्यन्त दुःखित होकर आप ही आप कहने लगा ॥ ४२ ॥ कि जिन पुरुषोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने भगवान्का पूजन भलीभांति किया है क्योंकि उनको दुष्टसंतानका महाकठिन दुःख तो नहीं भोगना पड़ता है ॥४३॥ जिससे अपयश, अपकीर्ति, अधर्म मनुष्योंको होता है और सबको जिससे द्रोह और अनंत व्याधि होती हैं ॥४४॥ पुत्र आत्माको मोहित कर बंधन करनेवाला है, अतः कौन ऐसा पंडित है जो इससे अधिक मान करेगा,इसलिये अनेक क्लेशका देनेवाला घर है ॥४५॥शोक देनेवाले सुपुत्रसे कुपुत्रको मैं अच्छा समझता हूं क्योंकि कुपुत्रके घरमें रहनेसे पुरु-षके मनमें वैराग्य हो जाता है और ग्लानि मानकर घर छोड़ देना पड़ता है ॥४६॥ इस प्रकार वैराग्ययुक्त हो आधीरातके समय उठकर फिर सोया नहीं। किसी मनुष्यने देखा नहीं अपनी पत्नी सुनीथाको सोती ही छोड़कर सर्वसमृद्धि सहित गृहको त्याग वनको अकेला चल दिया ॥४७॥जब प्रातःकाल हुआ और राजा अंगको मंदिरमें न देखा, तब तो पुरोहित, सचिव,सुहृद्गण आदिकोंने अतिशोकसे कातर होकर सब पृथ्वीपर ढूँढा, परंतु राजा कहीं नहीं मिला, जैसे कुत्सित योगी हृदयमें भीतर अंतर्यामी पुरुषका अनुसरण करते हैं और नहीं पाते ॥ ४८ ॥ जब राजा अंग इनको कहीं नहीं मिला तो सब उद्यमसे हार मान नगरमें आये, सबने इकट्ठे होकर ऋषियोंकी वंदना की। हे विदुर ! नेत्रोंमें आंसू भरकर बोले कि राजा अंग आज

कहीं वनमें चले गये, क्योंकि दुष्ट पुत्र सदैव दुःख देनेवाले होते हैं। किसी कविका वचन है-

सवैया-आयसु मातपिताकी न मानत नीति तजै कुलरीति वहावत।
आप तो मान गुमान भरे सत संगनहूको गरूर गहावत॥
एकहू काम सरो न कभू निर्लज्ज अघी लघु लोभ लहावत।
कायर काम कुमारगगामि सुऐसो कुचाली कुपूत कहावत॥४९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे वेनसुतदुःखात् अङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

दोहा-इस चौदह अध्यायमें, अंग पुत्रभय मान।
गये विपिन तब वेनको, दियो राज्य सन्मान॥

मैत्रेयजी बोले कि भृगुआदि मुनिलोगोंने क्षेमचिंतक विना राजाकी पृथ्वीको देख मनुष्योंकी पशुसमान संज्ञा देखी॥१॥वह ब्रह्मवादी ब्राह्मण मंत्रीलोगोंने वेनकी माता सुनीथाको बुलाकर सब प्रजाकी असंमतिमें वहांला राज्यतिलक वेनको दिया॥ २॥ अति उग्र शिक्षक वेनको नृपासनपर बैठा देखकर सर्पके भयसे जैसे मूसे छिप जाते हैं, ऐसे सब चोर वटमार जहाँ-तहाँ छिप रहे॥३॥ राज्यासनपर बैठ,आठ लोकपालोंकी विभूतिसे गर्वित, महा अहंकारी अपने आपको उत्तम बलवान् माननेवाला वह महाअभिमानी वेन महात्माओंका तिरस्कार करने लगा॥४॥और निरंकुश हाथीकी नाई मदांध, अभिमानसे भरा हुआ पृथ्वी आकाशको मानो कम्पायमान कर रहा है, इस प्रकार रथमें बैठकर समस्त पृथ्वीपर विचरता था॥ ५॥ और सब प्रजाके लिये यह आज्ञा करादी कि कोई मनुष्य होम, यज्ञ, दान मत करो, नगरमें भेरी और धौंसा बजाकर धर्मका निवारण कर दिया॥ ६॥ उस दुराचारी वेनका यह अत्याचार देखकर लोगोंको दुःखी जानकर दया करके सब मुनिलोग एकत्र हो विचार करने लगे॥ ७॥ और परस्पर बोले कि अरे कष्ट! तू दोनों ओरसे लोगोंको सताने लगा, जैसे दोनों ओरसे काष्ठमें अग्नि लग जाती है, तो बीचमें चींटियां मर जाती हैं वही दशा अब इस प्रजागणकी हो रही है, क्योंकि एक ओर तो चोरोंका भय और दूसरी ओर राजाका भय, यह महाकठिन कष्ट इन लोगोंसे कैसे सहा जायगा?॥८॥ विना राजाके नगर सूना समझकर तो इस अयोग्यको हमने राज्यका भार सौंपा, अब इसकी ओरसे भी सब देहधारियोंको भय होता है फिर अब हम लोगोंका कल्याण कैसे होगा?॥ ९॥ जो भुजंगको दूध पिला-पिलाकर पालता है, वह अनर्थकारी सर्प प्रथम अपने पालनेवालेको ही काटता है, ऐसे ही यह महाक्रूर बुद्धि दुष्टस्वभाव वेन सुनीथाके गर्भमें जन्मा है॥१०॥ हमने अच्छा समझकर प्रजापालक बनाया था, किंतु यह दुष्ट उलटा हमारा ही नाश करता है, क्या करें अब तो हमने इसको अपना राजा बना ही लिया, इसलिये उसको चलकर समझा दें फिर हमारे शिर कोई दोष न रहेगा॥११॥ हमने जान बूझकर इस अत्याचारीको भूप बनाया है, अब साम दामसे समझायेंगे और वह मंदभागी हमारे समझानेसे भी नहीं मानेगा तो जानेंगे कि यह बड़ा अधर्मी है॥ १२॥ तब लोगोंके धिक्कारसे दग्ध हुए इस दुष्टको हमलोग अपनी शक्तिके तेजके प्रभावसे लेशमात्रमें जलाकर भस्म कर देंगे॥ १३॥ इस प्रकार परस्पर सोच विचारकर क्रोधको छिपाकर सब ऋषि, मुनि और प्रजागण उसके पास गये और उसके निकट

जाकर साम, दाम इत्यादिक उपायोंसे समझाया ॥ १४ ॥ सब मुनिलोग बोले कि, हे राजन् ! हे पुत्र ! ! हे नृपवर्य !!! हम आपसे वह बात कहने आये हैं, जिसमें आपकी आयु, बल, कीर्ति और लक्ष्मी अधिक हो,हम कुछ आपसे कहना चाहते हैं ॥१५॥ पुरुषोंको उचित है कि तनसे, मनसे, वचनसे, बुद्धिसे धर्मके आचरण करते रहें, क्योंकि धर्मके आचरणसे शोकरहित लोककी प्राप्ति होती है, जहां सर्व त्यागीलोग निवास करते हैं और सदा आनन्द रहता है ॥ १६ ॥ हे वीर ! वहां प्रजाकी कुशलसे आपके धर्मका नाश नहीं होता, इसलिये धर्मका नाश होनेसे राजा धर्म ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाता ॥ १७ ॥ हे राजन् ! दुष्टमन्त्री और चोरादिकोंसे राजा अपनी प्रजाकी रक्षा यथावत् करे और शास्त्र मर्यादाके अनुसार दण्ड ले तो राजाको इस लोकमें और परलोकमें परमानन्द प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जिस राजाके राज्यमें पुरमें भगवान् यज्ञरूप अपने वर्णाश्रम धर्मसे सदा पूजे जाते हैं ॥ १९ ॥ हे महाभागे ! जो राजा अपनी निज शिक्षामें स्थित हैं, उन राजाओंके ऊपर भगवान् सर्वधर्मपालक विश्वात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ २० ॥ और जब जगत्के राजाओंके भी महाराज जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हों तो उस प्राणीको कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? क्योंकि लोकपालसहित सब लोग उसके भयसे उसका आदर-सम्मान कर उसको भेंट देते हैं ॥२१॥ हे राजन् ! सब लोक, देवता, यज्ञ जिसमें सदा निवास करते हैं उन वेदत्रयीमय, द्रव्यमय, तपोमय ईश्वरको आपकी कुशलके अर्थ नानाविधिके विधानोंके विचित्र यज्ञोंसे सब प्रजा समृद्धिके लिये यजन करती हैं, वह आप उनके यज्ञोंमें सहायता करने योग्य हो ॥२२॥ हे वीर ! आपके देशमें ब्राह्मणलोगोंके यज्ञ करनेसे श्रीनारायणकी कला देवतालोग सन्तुष्ट होकर सबको मनोवांछित फल देंगे, इस लिये उन देवताओंकी अवज्ञा आपको नहीं करनी चाहिये ॥ २३ ॥ वेन बोला कि तुम सब मूर्ख हो, जो अधर्मको धर्म करके मानते हो, क्योंकि जो सब समृद्धियोंका दाता है, उस पतिको त्यागकर जारपतिकी उपासना करते हो ॥२४॥ जो मूढ़ नृपरूपी ईश्वरका अनादर करते हैं, वे प्रजागण इस लोक और परलोकमें कहीं सुख और कल्याण नहीं भोगते हैं ॥ २५ ॥ और वह यज्ञ पुरुष भगवान् कौन है ? जिसमें तुम्हारी भक्ति है, अरे मूर्खो ! तुम लोग ऐसे हो, जैसे परकीया स्त्रियाँ अपने पतिको तजकर जारसे स्नेह करती हैं, इसी प्रकार तुम्हारी झूठी भक्ति है ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इंद्र, उपेंद्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, सागर ॥ २७ ॥ यह और जो वर, शापदायक देवता हैं वे सब राजाकी देहमें वास करते हैं क्योंकि सर्वदेवमय नरेश होता है ॥ २८ ॥ इस लिये हे ब्राह्मणो ! ईर्षा, वैर त्यागकर सब कर्मोंमें मेरा पूजन करो और यज्ञ रूप मैं हूँ मुझको बलिदान दो, मुझसे अधिक और कौन दूसरा यज्ञरूप पूजन करने योग्य है ? ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार वह कुमार्गी, कुबुद्धि, पापी, पाखण्डमें स्थित सब मङ्गलोंसे भ्रष्ट उस वेनको बहुत समझाया, परन्तु उस दुष्ट नरेशने मुनियोंका उपदेश न माना ॥ ३० ॥ उस अभिमानी अपने आपको पंडित समझनेवाले वेनने घर आये ब्राह्मणोंका जब अत्यन्त अनादर किया । हे विदुर ! तब ब्राह्मण अपना उपदेश व्यर्थ समझकर बड़े क्रोधित हुए ॥ ३१ ॥ और उन मुनीश्वरोंने यह निश्चय किया कि इस पापीका स्वभाव महादारुण है, इस लिये इसका मारना ही उचित है, क्योंकि जो यह चाण्डाल जीता रहेगा तो अवश्य सारे संसारको भस्म कर डालेगा ॥ ३२ ॥ यह अत्याचारी नरदेवोंके योग्य सिंहासनपर बैठने योग्य नहीं है, क्योंकि यह

निर्लज्ज यज्ञ पुरुष भगवान्‌की निंदा करके धर्मका विध्वंश करना चाहता है॥३३॥जिस भगवान् ने अपनी कृपा करके इसको इस प्रकार विभव और बड़ाई दी है, उन भगवान्‌की इस अशुभ वेनके विना दूसरा कौन निंदा कर सकता है ? ॥ ३४ ॥ इस प्रकार क्रोधमें भरकर उन ऋषियोंने उस अच्युत भगवान्‌के निंदा करनेवाले वेनको एक हुंकार शब्दसे मार दिया, क्योंकि यह हुंकार शब्द मारणप्रयोगमें आता है ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे वेनको मारकर सब ऋषि मुनि अपने-अपने स्थानको चले गये। तब उस शोकवती सुनीथाने मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराकर उसको रख छोड़ा, क्योंकि वह ऋषियोंकी योगविद्या भलीप्रकार जानती थी ॥ ३६ ॥ एक समय सब मुनिजन सरस्वतीजीके जलमें स्नान कर अग्निमें हवनादिकसे निश्चित् हो सरिताके तटपर बैठे हुए सत्कथा कह रहे थे ॥ ३७ ॥ इतनेमें संसारके भयदायक उत्पात दृष्टिसे आने लगे, उसको देखकर ऋषिलोगोंने विचारा कि इस समय पृथ्वीपर कोई प्रजापालक नहीं है, इसलिये हमको इस अनाथ पृथ्वीपर चोरोंका भय है ॥ ३८ ॥ मुनिलोग यह विचारही रहे थे कि इतनेमें चोरोंके दलके दल घिर आये और उनके घोड़ोंके दौड़नेसे चारों ओर धूल उड़ती उनके देखनेमें आयी ॥ ३९ ॥ राजाके मर जानेसे लोगोंका सब धन चोर लूट ले गये और बड़ाभारी उपद्रव भी मचा, प्रजामें परस्पर मारपीट होने लगी, तब ऋषियोंने विचार किया और कहने लगे किः--

चौ०-रह्यो न कोउ अब धरणि अधीशा ❋ पालै प्रजा काटि शठ शीशा ॥
कहहिं परस्पर प्रजा विरोधू ❋ तिनको अब को करै प्रबोधू ॥
महा उपद्रव जगमें माच्यो ❋ काहूको कछु कहूँ न बांच्यो ॥
चोरहु आपसमें सब लरहीं ❋ एक एक धनहित संसरहीं॥४०॥

यदि ऐसा ही उपद्रव रहा तो हम लोगोंको बड़ा दोष लगेगा, क्योंकि जो ब्राह्मण समदृष्टि और शांति होनेपर भी उन लोगोंकी रक्षा करे तो उनका सब ब्रह्मतप क्षीण हो जाता है, जैसे फूटे पात्रमें दूध नहीं रहता, इसी प्रकार उनका तेज नष्ट हो जाता है ॥४१॥ ॥४२॥ यद्यपि आप इस उपद्रवको शांत कर सकते हैं तो भी राजर्षि अङ्गके वंशमें यह स्थित होने योग्य नहीं है, इस वंशमें सब राजा श्रीकृष्णाश्रय होनेवाले परमभक्त ही होते आये हैं ॥ ४३ ॥ इस प्रकार निश्चय कर सब ऋषिलोग मिलकर नगरमें आये और मरे हुए वेन महीपतिकी जङ्घा मन्त्रोंसे शीघ्र मथने लगे, तब उसमेंसे एक छोटासा पुरुष प्रकट हुआ ॥ ४४ ॥ काकके सदृश काला अत्यन्त छोटे-छोटे हाथ पांव, ठोड़ी बड़ी, गहरी नाभ, लम्बी नाक, लाल नेत्र और लाल ही शिरके बाल थे ॥ ४५ ॥ वह पुरुष नम्रीभूत दीनकी नाईं हाथ जोड़कर मुनियोंसे बोला कि मेरे लिये क्या आज्ञा है ? हे विदुर ! तब मुनियोंने उससे कहा कि "निषीद" अर्थात् बैठ जा; इसलिये उस पुरुषका नाम निषाद हुआ ॥ ४६ ॥ इसके वंशमें निषाद अर्थात् भील लोग हुए।

दोहा-दक्षिण दिशि सो जायके, गिरिकानन कियो बास ।
वंश आपनो करत भो, बहुविधि करत प्रकाश ॥
गोंड भिल्ल धीवर विधी, और निषाद कराल ।
वारि व्याध तैलक रजक, कोल किरात कलाल ॥

उस वेन दुष्टके शरीरमें महापाप भरा हुआ था, वही पाप निषादरूप बनकर बाहर निकला और जिससे वेनके शरीरका कल्मष ग्रहण किया इसी लिये उसके वंशवालोंको नगरमें वास करनेका अधिकार नहीं है, पर्वतोंकी खोहोंमें रहते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–पंचदशो अध्यायमें, मथे वेणुके हाथ।
ताते पृथु प्रगटो तुरत, भयो सो पृथ्वीनाथ ॥

श्री मैत्रेयजी बोले कि फिर उस अपुत्र वेन महीपतिकी भुजाओंको मुनियोंने मथा, तो उसमें एक जोड़ा अर्थात् एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥१॥ उस जोड़ेको जन्मा देखकर वे ब्रह्मवेत्ता ऋषि भगवान्की कला जान अत्यन्त सन्तुष्ट हो बोले ॥२॥ ऋषि बोले कि, यह परम पुरुष संसारकी रक्षाके लिये विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुआ है और यह देवी श्रीनारायणके हृदयमें नित्यप्रति वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजीकी कलासे प्रकटी है ॥ ३ ॥ यह जो पुरुष है, वह सब राजाओंमें आदिराज बड़ा तेजस्वी और यशस्वी महाराज पृथु नामसे प्रसिद्ध होगा और सब संसारमें अपना यश विस्तार करेगा ॥ ४ ॥ और यह सुन्दर सुदती देवी गुणभूषणोंसे भूषित वरारोहा, अर्चिनाम, छबिकी भी छबि बढ़ानेवाली, अपने पति पृथुकी सेवनीय होगी ॥ ५ ॥ और यह पृथु तो संसारकी रक्षाके लिये साक्षात् विष्णु भगवान्का अंश प्रकट हुआ है और यह श्रीनारायणके हृदयमें सदा वास करनेवाली, भगवत्परायण, श्रीलक्ष्मीजीने आकर अवतार लिया है ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार ब्राह्मण लोग उनकी प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व यश गाने लगे, सिद्ध लोग पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और देवांगना नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ स्वर्गसे शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभी आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते देवता, ऋषि, पितृगण ॥ ८ ॥ सब लोकपाल शिवको साथ लेकर जगद्गुरु ब्रह्माजी भी वहां आये और पृथुके दहिने हाथमें गदाधारी चक्रका चिह्न देखा ॥ ९ ॥ और दोनों पावोंमें कमलके चिह्न देखकर ब्रह्माजीने समझ लिया कि यह साक्षात् विष्णु भगवान्की कलासे उत्पन्न हुआ है, क्योंकि जिसके हाथोंमें दूसरी रेखाओंसे मिली हुआ रेखाका चक्र न हो उसको परमेश्वरका अंश जानना चाहिये ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंने उसके अभिषेकको आरंभ किया और सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ लोग लाने लगे ॥ ११ ॥ नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, नाग, गौ, खग, मृग, आकाश, पृथ्वी और सब जीवमात्र भेंट ले-लेकर उपस्थित हुए ॥ १२ ॥ और महाराज पृथुने स्नान करके सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन अलंकृत अर्चिपत्नीसे शोभित मानो दूसरा अग्नि विराजमान है, ऐसे देदीप्यमान दिखायी देने लगे ॥१३॥ हे विदुर! कंचनका सिंहासन तो कुबेरने उसके लिये दिया और वरुणने चन्द्रकांति समान छत्र समर्पण किया, जिसमेंसे सदा शीतल जल टपकता रहता है ॥ १४ ॥ और अत्यन्त विशाल दो चमर वायुने भेंट किये, धर्मने कीर्तिमय माया अर्पण की, इन्द्रने परमोत्तम किरीट दिया और यमराजने संयमन नाम दंड दिया जो दुष्टोंका विनाश करनेवाला था ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीने ब्रह्ममय कवच दिया, सरस्वतीने उत्तम हार समर्पण किया, श्रीहरि चक्रधरने चक्र सुदर्शन अर्पण किया और श्रीलक्ष्मीजीने अखण्डित ऐश्वर्य

दिया ॥१६॥ रुद्रने दशचन्द्र नाम खड्ग दिया, और शतचन्द्र नामक ढाल श्रीपार्वतीजीने दी, चन्द्रमाने अमृतमय घोड़े दिये और अत्यन्त सुन्दर रथ त्वष्टाने दिया॥१७॥अग्निने मेंढ़े और बैलके सींगोंसे बना हुआ धनुष दिया, सूर्यने किरणमय शत्रुके भस्म करनेवाले बाण दिये, भूमिने योगमय पादुका दीं; कि जिनको पहनकर जहां चाहे वहां चले जाओ और आकाश सदा पुष्पोंका हार देता रहा॥१८॥और आकाशमें विचरनेवाले नभचर लोगोंने नाट्य, सुन्दर गीत, बाजे और अंतर्धान होनेकी शक्ति दी, ऋषि मुनियोंने सत्य आशीर्वाद दिये, समुद्रने अपना पुत्र शङ्ख दिया ॥१९॥ समुद्र, पर्वत, नदियोंने उस महात्माके रथको मार्ग दिया। सूत, मागध, बंदीजन उसकी स्तुति करने लगे॥२०॥ उन स्तुति करनेवालोंको अपने समीप खड़ा देखकर महाप्रतापी वेनपुत्र पृथुने मेघसमान गंभीर वाणीसे हँसकर यह वचन कहा ॥ २१ ॥ पृथु बोला कि हे सूत ! हे मागध ! ! हे सौम्य बन्दीजनो ! ! ! अभीतक लोकमें मेरे गुण प्रकट नहीं हैं तुम किस लिये मेरी स्तुति करते हो ? संसारमें जिसके गुण विदित होते हैं, उसकी स्तुति करनी चाहिये, तुम्हारी वाणी मेरे लिये मिथ्या न होनी चाहिये, हे श्रेष्ठवाणीवाले पाठको ! इसलिये कालान्तरमें जब हमारे गुण प्रकट दीखने लगें ॥२२॥ तब तुम भले प्रकार हमारे वंशकी प्रशंसा करना, यह तुम नहीं कह सकते कि हम सभ्योंकी प्रेरणासे तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि उत्तमश्लोक परमेश्वरके गुणानुवादके आगे और मनुष्यके गुण सभासद नहीं गाते हैं ॥२३॥ आत्माके महागुणके सम्मुख स्तावकोंसे असंतोंके गुणकी सम्भावनामात्रसे कौन स्तुति कराये ? वे मूर्ख इस बातको नहीं जानते कि यह गुण मुझमें होंगे, इस बातसे वञ्चित होनेके कारण वे लोग मेरा उपहास करेंगे ॥ २४ ॥ जो सामर्थ्यवान्, लज्जावान् और कीर्तिमान् पुरुष हैं वे अपनी स्तुति करानेमें भी निंदा समझते हैं, जैसे विक्रमी ब्राह्मणका वध आदि पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं, ऐसे परम उदार पौरुषके सामने स्तुतिकी निन्दा करते हैं ॥ २५ ॥ हे सूतादिको ! हम श्रेष्ठ कर्म करके अभी लोकमें विख्यात नहीं हुए, फिर बालकके समान आपसे कैसे अपनी स्तुति करायें ? ॥ २६ ॥

कवित्त–जाने हरि त्यागे ताहि त्यागो सब लोगनने ऐसे ही वेननृपति डरो नाहिं पापसे। आपहीको ब्रह्मा शिव विश्वनाथ कहवायो, काहूको अधिक नाहिं समझे हैं आपसे॥ सूर्य और चंद्रमामें मेरा ही प्रकाश होत, देवतोंमें महातेज मेरे ही प्रतापसे। बुरो होत शालग्राम विप्रनको दुःख देनो, वेनको विनाश भयो विप्रनके शापसे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थ स्कंधे पृथोरवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–इस षोडश अध्यायमें, पृथुको अति सत्कार।
लोकपाल अरु सूतगण, कीनो विविध प्रकार॥

मैत्रेयजी बोले कि राजा पृथु तो इस प्रकार अपनी बड़ाईका उनसे निषेध करता ही रहा, परंतु मुनियोंकी प्रेरणासे पाठकगण और गायक अमृतरूपी वाणीसे उसकी सेवा और स्तुति प्रसन्न मन होकर करने लगे ॥ १ ॥ जो आपने साक्षात् देववर्य मायासे अवतार लिया है और

वेनके अंगसे उत्पन्न हुए हो, जब आपके पुरुषार्थोंमें बृहस्पत्यादिकोंकी भी बुद्धि भ्रमजालमें आ जाती है, तो फिर आपके चरित्र वर्णन करनेका हमारी क्या सामर्थ्य है ? ॥ २ ॥ यद्यपि आप ऐसे हैं तो भी उदारयशी और भगवान् विष्णुकी कलावतार पृथुके कथामृतमें आदृत होकर मुनिलोगोंका जैसा उपदेश है और उन्होंने अपने योगबलसे जैसा हमारे हृदयमें प्रकाश किया है, उसके अनुसार आपकी अनुपम महिमाका विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥ आप धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ हैं और लोगोंको धर्मके मार्गमें चलानेवाले हैं और धर्मकी सीमाकी रक्षाके लिये सेतु हो, धर्मकी मर्यादारूप सेतुके तोड़नेवालोंके नाशक हो ॥ ४ ॥ केवल आप ही अपनी देहसे तनु धारण करते हो, यही समय-समयके यथाभाव होना, लोकका हित करते हैं, एक देहमें लोकपालोंके शरीर धारण करते हैं ॥ ५ ॥ उसी प्रकार लोकपालोंके शरीरका पालन-पोषण और सुकालमें धन लेंगे और दुर्भिक्षकालमें धन देकर प्रजाकी सहायता करेंगे, सब जीवमात्रमें समान बर्ताव कर सब जीवमात्रपर समदृष्टि रखकर अपने प्रतापका प्रकाश बढ़ायेंगे ॥ ६ ॥ जैसे वसुमती सर्व संसारका भार सहन करती है, ऐसे ही यह कृपालु पृथु पृथ्वीकी गति धारण करके दीन दुःखी जन इसके ऊपर पग भी धर देंगे तो भी उनका अपराध क्षमा करेंगे ॥७॥ जो कभी इन्द्र वर्षा नहीं करेगा तो यह नरदेव देहधारी विना प्रयास श्रीहरि देव कृच्छ्र प्राणसे इन्द्रके सदृश वर्षा करके आर्तजनोंकी रक्षा करेंगे ॥ ८ ॥ चन्द्रवत् वदन, अमृतमूर्तिसे अनुरागी चितवनके देखनेसे मनोहर मन्द मुसकानसे सब संसारको तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ यह अप्रकट मार्ग होंगे जैसे वरुणके सब काम गुप्त हैं, ऐसे ही यह पृथ्वीनाथ गंभीर-बुद्धि रक्षितचित्त होंगे, इनके गमनागमन मार्गको कोई नहीं जान सकेगा और न इनके परिणामकी किसीको सुधि होगी कि यह क्या करेंगे और इनके प्रयोजनका भाव कोई नहीं जान सकेगा और यह अनन्त महात्माओंके गुणोंके एक धाम हैं, यह पृथु प्रचेताके समान जितेन्द्रिय होंगे ॥१०॥ वेनरूप अरणिसे प्रगट हुए पृथुरूप अग्निका कोई शत्रु शीतल करनेवाला न होगा और सबके निकट रहने पर भी शत्रुको ऐसे ज्ञात होंगे कि अत्यन्त दूर बैठा है और कोई पुरुष अपने पुरुषार्थसे इनको जीत न सकेगा ॥ ११ ॥ सब जीवमात्रके बाहर और भीतरके सब कर्मोंको चार द्वारा देखते हुए प्राणियोंका अधीश आत्मभूत वायुके समान उदासीन रहेंगे ॥ १२ ॥ धर्ममार्गमें ऐसे सत्यवादी होंगे कि अदण्डयको दण्ड कभी न देंगे, चाहे पुत्र हो, चाहे शत्रु, न्यायके समय किसीका पक्षपात न करेंगे, जो दण्ड देनेके योग्य होगा उसीको दण्डका भागी करेंगे ॥१३॥ इन पृथुका अखण्ड शासन मानसाचल-पर्वतसे लेकर जहांतक भगवान् भास्कर अपनी किरणोंसे तपते हैं, वहांतक राज्य करेंगे॥१४॥ अपनी चेष्टा करके सब लोगोंको प्रसन्न करेंगे फिर मनके आनंदकारी मनोहर वाक्योंसे प्रजाको अत्यानंद करेंगे और प्रजा प्रसन्न होकर कहेगी कि हमारे महाराज दुःखभंजन हैं ॥ १५ ॥ दृढ़व्रत, सत्यवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले, वृद्धजनोंके दास, शरणागतवत्सल, सब प्राणीमात्रके मानदाता, दीनदयालु होंगे ॥ १६ ॥ परस्त्रीको माताके समान माननेवाले,

१. शंका–जो-जो अवतार नारायणने धारण किये, वे सब त्रिभुवनपति हुए, परंतु सूतलोगोंने ऐसा कहा कि जहां तक सूर्य अस्त होगा वहां तक राजा पृथु रक्षा करेंगे ॥

उत्तर–तीन लोकके पति ईश्वरने राजा वेनसे पृथ्वीको नष्ट हुई जानकर और राजाओं की सनातन मर्यादा हुई, जानकर अकेले पृथ्वीको सुख देनेके लिये पृथु भगवान् प्रकट हुए, इसलिये राजा प्रभुको सूतोंने केवल भूपाल वर्णन किया ॥

अपनी भार्याको अपने अर्द्धांगसदृश जाननेवाले, प्रजामें पिताके समान प्रीति करनेवाले, ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके किंकर होंगे ॥ १७ ॥ सब देहधारियोंको अपनी आत्माके समान प्रिय, सुहृदोंको आनंद बढ़ानेवाले, निःसंग पुरुषोंकी संगतिवाले, दुष्टोंको दंड देनेवाले होंगे ॥१८॥ यह तो साक्षात् त्रिभुवननायक, निर्वेद भगवान्, त्रिगुणी मायाके अधीश सबमें वसे हैं, आत्माकी कलासे अवतार धारण किया है, जिसमें अविद्यारचित निरर्थक नानाभांतिके प्रतीत होते हैं ऐसे दृष्टि आते हैं ॥१९॥ यह नरदेवोंके नाथ उदयाचलसे लेकर सब भूमण्डलको जैसे मार्तंड प्रदक्षिणा देते हैं, इसी प्रकार अकेले जयप्रद रथमें बैठ धनुषबाण लेकर समस्त भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ आठों लोकपाल सहित सब राजालोग जहां-तहां इनके लिये भेंट देंगे और उन आदिराज चक्रायुधकी स्त्रियाँ इन आदिराजको श्रीनारायणकी कला समझकर वारंवार यश उच्चारण करेंगी ॥२१॥ यह अधिराज गोरूप धरणीको दुहेंगे और प्रजामें प्रजापतिकी नाईं वृत्ति करेंगे और लीलाकरके अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंको तोड़कर सब पृथ्वीको समान करेंगे, इन्द्रकी नाईं पर्वतोंको भेदकर चूर्ण करेंगे ॥ २२ ॥ जिस समय ये अपने अजगव धनुषका टंकार करके निर्द्वंद्व होकर संग्राममें विचरेंगे जैसे पूंछ उठाकर पंचानन पृथ्वीपर घूमता है, इस प्रकार विचरेंगे, तब सब दिशाओंसे दुष्टलोग भाग जायँगे ॥२३॥ जहां सरस्वती प्रगट हुई है, वहां ये सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करेंगे, जब सौ यज्ञ पूर्ण हो जायँगे तब अन्तमें वर्तमान होनेपर इन्द्र आकर इनका घोड़ा चुराकर ले जायगा ॥ २४ ॥ यह अपने स्थानके समीप उपवनमें भगवान् सनत्कुमारको इकला पाकर श्रद्धापूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल वासुदेव भगवान्के ज्ञानको प्राप्त करेंगे, कि जिस ज्ञानके जाननेसे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ जहां-तहां प्रजागण महापराक्रमी भूपतिका यश मधुर वाणियोंसे गाकर विख्यात करेंगे, तब अपने पराक्रमकी कथा अपने कानोंसे सुनेंगे ॥ २६ ॥ और इनकी आज्ञाको कोई भंग न कर सकेगा, सब दिशाओंको जीतकर अपने तेजसे सब लोकके शूलोंको निकालकर सुर-असुर, इन्द्र इनकी गाथाको गायेंगे और यह महानुभाव भूमिके पति होंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा—सत्रहमें सब अन्नको, धरणि बीज गइ खाय।
जब पृथु कोपे धरणि पर, धरणि शरण ली आय ॥

मैत्रेयजी बोले कि जब इस प्रकार उस भगवान् पृथुको गुणकर्मोंसे विख्यात किया, तब राजा पृथुने उनकी अत्यन्त सराहना कर प्रणाम किया, उनका पूजन कर आदरसत्कार सहित उनको संतुष्ट किया ॥ १ ॥ और ब्राह्मणादिक चारों वर्ण भृत्य, अमात्य, पुरोहित, पुरवासी सब प्रकृति प्रजाका राजा पूजन करने लगे ॥ २ ॥ विदुरजी बोले कि अनेक रूप धरनेवाली धरणीने क्यों गोरूप धारण किया ? और जब पृथुने उसको दुहा तो उस समय वत्स कौन था और दोहनी क्या थी ? ॥ ३ ॥ और स्वभावसे ऊँची-नीची पृथ्वीको समान क्यों किया ? और उसके पवित्र यज्ञके घोड़ेको इन्द्रदेवता क्यों चुराकर ले गया ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे वेदवादियोंमें श्रेष्ठ ! ! भगवान् सनत्कुमारसे परम ज्ञानको प्राप्त कर पूर्ण ज्ञानी हो

वह राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुआ ? ॥ ५ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद भगवान्‌का और भी जो कुछ सुन्दर विख्यात यश पुण्यदायक भगवान् पृथुकी कथाके आश्रित हो वह आप वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ आपके चरणारविन्द अनुरागी भगवत्का भक्त जो मैं हूँ, मुझसे आप कहो कि उस पृथुने वेनके अंगसे उत्पन्न होकर पृथ्वीको किस लिये दुहा ? ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि जब विदुरजीने वासुदेव भगवान्‌की कथाके लिये इस प्रकार प्रेरणा की तब उनकी प्रशंसा कर प्रसन्नमन होकर मैत्रेयजीने कहा ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले हे अंग ! जब पृथुको राज्यतिलक ब्राह्मणोंने दिया और प्रजापालनका आमंत्रण किया, तब सब भूतल अन्नरहित हो गया और सब प्रजागण क्षुधार्त हो कृशशरीर हो गये, तब प्रजापतिके समीप जाकर बोले ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हमको क्षुधा अत्यन्त पीड़ित कर रही है, जैसे वृक्षमध्यस्थित अग्निसे वृक्ष जलते हैं, ऐसे ही जठराग्निसे हम सब जल रहे हैं, हे शरणागतपालक ! हम तुम्हारी शरण हैं और ब्राह्मणोंने आपको हमारा अधिपति बनाया है, आप हमारी सब वृत्तियोंका साधन करो ॥ १० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! हमारी रक्षा करो, भूखके कारण हमारे प्राण पयान किया चाहते हैं, अन्न देनेके लिये आप कोई ऐसा यत्न करें कि जिससे हमको अन्न प्राप्त हो । हे नरदेव ! इतनी शीघ्रता करो कि अन्न विना हमारे प्राण न निकल जायें, क्योंकि जब हमारा शरीर ही न रहा तो फिर अन्न हमारे किस कामका ? चौपाई–"का वर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूक पुनि का पछताने ॥" आपको यह उपाय शीघ्र ही करना चाहिये, क्योंकि परमात्माने आपको जीविकाका पति और लोगोंका पालक बनाया है ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! प्रजागणोंके आर्तवचन सुनकर पृथुने बहुत कालतक विचार किया तो भलीभांति दुर्भिक्षके प्रयोजनको समझ लिया ॥ १२ ॥ कि वसुमती सब ओषधियोंके बीजको निगल गयी है. इसीसे अन्नको उत्पन्न नहीं कर सकती । यह बात अपने चित्तमें निश्चय कर धनुष बाण ले जैसे त्रिपुरासुरके मारनेके लिये शिवने धनुष चढ़ाया था उसी प्रकार भूमिके भस्म करनेको महाकालके समान क्रोधित होकर परम प्रचंड बाण धनुषपर संधान किया ॥ १३ ॥ जब पृथुको क्रोधसे लाल-लाल नेत्र किये और चाप चढ़ाये देखा तो पृथ्वी डरके कारण थरथर कांपने लगी और धेनुका रूप धरकर भागी; जैसे वधिकके भयसे मृगी भागती है, ऐसे ही वसुंधरा व्याकुल होकर भागी ॥ १४ ॥ भागती हुई भूमिको भूप देखकर रथपर चढ़, महाक्रोधित हो अरुणनयन कर, धनुषबाण चढ़ाये उसके पीछे दौड़े और जहां-जहां पृथ्वी गयी वहां-वहां पृथुने उसका पीछा न छोड़ा ॥ १५ ॥ वह देवी

---

१. शंका–प्रजाके वचनोंको सुनकर उस समय राजा पृथुने कुछ दूसरा और उपाय प्रजाके सुखी होनेके लिये नहीं विचारा, प्रजाके सुख देनेवाले सब यत्न त्यागकर बड़े भारी मूर्खोंकी नाईं पृथ्वीको मारनेके लिये क्यों उद्यत हुए ? क्योंकि प्रजाके सुख होनेके उपाय लोकशास्त्रमें अनेक प्रकारके वर्णन किये हैं और पृथ्वीको मारना किसी शास्त्रमें नहीं लिखा ?

उत्तर–बड़े दयावान् पृथ्वीराज अवतार धारण करके राजगद्दीपर बैठे तो क्या देखा कि महाघोर अन्याय पृथ्वीपर हो रहा है, उसको देखकर पृथु राजाने अपने मनमें विचार किया कि वेनके राज्यके राजा बिगड़े हैं अब और जो आगे होंगे, वह सब राजा भी इनको देखकर बिगड़ जायेंगे तो पृथ्वी रसातल को चली जायगी, इस लिये इन दुष्टोंको त्रास दिखाकर शिक्षा देनी चाहिये । दुष्टराजाओंको ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वीने प्रजाको दुःख दिया था वह वेनके राज्यसे अब पृथुराज पृथ्वीको प्रजाका द्रोही जानकर प्रजाके सुख देनेके लिये पृथ्वीको मारनेको धनुष उठाया, तब तो सब राजा परस्पर कहने लगे; कि अरे भाई प्रजाको सुख दो नहीं तो सब मारे जायेंगे । ऐसे दुष्ट राजा पृथुकी त्राससे प्रजाको सुख देने लगे; इसलिये पृथ्वीको मारनेका विचार राजा पृथुने किया था । कुछ क्रोध करके पृथ्वीको मारनेका विचार नहीं किया था ।

वसुमती दिशा, विदिशा, अवनि, आकाश, उनके मध्यका अंतरिक्ष जहां-जहां भागकर गयी, उन्हीं-उन्हीं स्थानोंपर पृथुको शस्त्र लिये आता हुआ अपने पीछे देखा, सब लोकपालोंके लोकोंमें अत्यन्त शोकाकुल हो भागी-भागी फिरी—

दोहा—इन्द्र वरुण अरु धनद यम, लोकपाल भूपाल।
राख सके नहिं निज भवन, पृथुभय अति विकराल॥ १॥
ब्रह्मलोकलौं मह्नि फिरी, अतिभय कंपित गात।
पृथुके भयसे धरणिकी, किनहुँ न बूझी बात॥ २॥

जैसे प्रजा मृत्युके सामने थरथर कांपती है और कोई नहीं बचा सकता, ऐसे ही पृथुके सामने किसीका सामर्थ्य न हुआ जो विना दीनदयालुके दीन पृथ्वीकी रक्षा करे। जब कहीं शरण न मिली तब भागनेसे निवृत्त हो पीछे लौटी॥१६॥१७॥ और मस्तक नवाकर महाबाहु राजा पृथुसे बोली—हे धर्म! हे शरणागतप्रतिपालक!! हे आपद्रक्षक!!! सब संसारके पालन करनेके लिये आप उत्पन्न हुए हो, तो मेरा भी पालन करो॥ १८॥ मुझ दीन निरपराधिनीको क्यों मारते हो? आप तो धर्मज्ञ कहलाते हो फिर मुझ अबलापर कैसे हाथ डालोगे?॥ १९॥ यदि स्त्री कोई अपराध भी करे तो साधारण मनुष्य भी उसको नहीं मारते और आप तो आर्तबंधु, प्रणतपाल, दीनवत्सल हो, आपका कहना क्या है?॥ २०॥ जिसमें सब विश्व स्थित ऐसी दृढ़ नौकारूप मुझको तोड़कर फिर इस संसारको और अपने शरीरके आधारको जलपर किस प्रकार धारण करोगे?॥२१॥ पृथु बोले कि हे वसुंधरे! तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, इसलिये मैं तुझको विना मारे कदापि न छोड़ूंगा, क्योंकि यज्ञमें तू अपना भाग लेनेको तो उपस्थित हो जाती है और धान्यादिक उपार्जन नहीं करती, फिर तू दंडकी भागी न होगी?॥ २२॥ और सुन जो गाय सदा घास और दाना तो खाय और दूध दे नहीं, तो उस दुष्टाको दंड देना योग्य है या नहीं॥ २३॥ तूने मुझे अयोग्य समझकर ब्रह्माजीके पहले रचे हुए जो औषधियोंके बीज थे उन्हें अपने उदरमें रोक लिये हैं उनको तू प्रकट नहीं करती॥२४॥ "चौपाई—रे धरणी कुमती दुखदाई, नहिं जानत मेरी प्रभुताई।" यह दीन प्रजा भूखोंकी मारी व्याकुल हो अत्यन्त दुःखी हो रही है, अतः अब अपने तीव्र बाणोंसे तेरा शरीर विदीर्ण कर तेरी मज्जासे इस आर्त प्रजागणको प्रमुदित करूंगा॥ २५॥ पुरुष, स्त्री, नपुंसक अपनी बड़ाई आप करनेवाला, प्रजाको क्लेश देनेवाला, दयाहीन, साधुओंसे द्रोह रखनेवाला और अधम, इतने पुरुषोंका मारना राजाको न मारनेके समान है क्योंकि इनके मारनेका कुछ दोष नहीं॥ २६॥ अरी गर्वीली कुमति भरी! दुर्मदवाली धरणी! तूने कपट करके गोरूप धारण किया, मैं तिल-तिल समान तेरे खंड-खंड करके अपने अनुपम योगबलके प्रतापसे प्रजाको जलके ऊपर धारण करूंगा॥ २७॥ क्या तूने मेरे प्रतापको कुछ नहीं समझा? इस प्रकार क्रोधमयी महाकराल मूर्ति कालके समान धारण किये पृथुको देख धरणी नम्र हो, थरथरार्ती-कांपती हाथ जोड़कर बोली॥ २८॥ धरा बोली कि जय परपुरुष पृथ्वीशकी, नाना प्रकारकी माया करके शरीर धारण करनेवाले, आत्मा स्वरूपके अनुभवसे दूर हुए हैं जिन्होंने द्रव्य, क्रिया और कारक संबन्धी अहंकारनिमित्तक रागद्वेषादिक, ऐसे धर्मज्ञको मैं वारंवार नमस्कार करती हूं॥ २९॥ जिस ब्रह्माने अपने रचे हुए जीवोंके लिये मुझको रचा है और मुझको सब प्राणिमात्रका आधार बनाया है। स्वेदज, अण्डज, पिंडज, जरायुज, यह चारों

प्रकारके जीव मेरे ऊपर वास करते हैं सोई स्वतन्त्र विश्वनाथ आज हाथमें धनुष-बाण लेकर मेरे मारनेको उद्यत हुए हैं, अब मैं परमात्माको छोड़कर और किसकी शरण लूं ? ॥ ३० ॥ आदिमें जिस परमेश्वरने अपने अधीन रहने वाली प्रवर्तक मायासे चराचरको उत्पन्न किया है और उसी अपनी मायासे संसारकी रक्षाके लिये हुआ है, वह धर्मपरायण परमात्मा मुझको किस लिये मारता है ॥ ३१ ॥ सत्य है कि परमात्माकी चेष्टा उनकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषोंसे नहीं जानी जाती जिसने स्वतः एक होनेपर भी मायासे अनेकरूप और स्वाधीन परमेश्वरने यह जगत् रचा है और ब्रह्माके द्वारा भी चराचर विश्वको उत्पन्न करवाया है ॥ ३२ ॥ द्रव्य, क्रिया, कारण, चेतन आत्मा द्वारा अपनी शक्तियोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, प्रलय करता है, अति उत्कट और निरुद्ध शक्तिवाले वेधा पर-पुरुषके अर्थ मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ ३३ ॥ हे विभो ! हे अज ! ! आपने उसी अपनी आत्मासे रचे हुए महाभूत इंद्रिय अन्तःकरणात्मक इस अपने उत्पन्न किये हुए विश्वको उत्तम रीतिसे स्थित करनेके लिये आदिरूप धर जो हिरण्याक्ष दुष्टको मार रसातलसे मेरा उद्धार किया था ॥ ३४ ॥ और पानीके ऊपर नौकारूपसे स्थापित आधारभूत मेरे ऊपर रही हुई प्रजाओंके पालन करनेके लिये जो आप पृथुरूप धारण करके उत्पन्न हुए हो; उसी धरणीके धारण करनेवाले आप उग्र बाण चढ़ाकर मेरे मारनेको उपस्थित हो, क्या कहूँ ! बड़े अचम्भेकी बात है ! ॥ ३५ ॥ निश्चय है कि मुझ सरीखे जिनके चित्त परमात्माकी मायासे मोहित हैं, वे पुरुष भगवान्के भक्तोंकी चेष्टा भी जब नहीं जान सके तो फिर परमात्माकी चेष्टा जाननी तो महा कठिन है, उसको कैसे जान सकते हैं ? भगवान्के समान जितेन्द्रिय वीर पुरुषोंके लिये बारम्बार मेरा नमस्कार है, कोई कहे कि पृथुने इतनी बड़ी पृथ्वीको व्याकुल कर दिया तो यह बात कुछ आश्चर्यकी नहीं है, भगवत्के भक्तोंको सब सामर्थ्य है ॥ ३६ ॥

भजन

कहाकमी जाके राम धनी ॥
मनसामाहिं मनोरथ पुरवे, शुभनिधान जाकी बात बनी ।
अर्थ धर्म कामना मोक्षफल, चार पदार्थ देतछनी ॥
इन्द्रादिक हैं जाके सेवक, नर बपुरेकी कौन गनी ।
कहा कृपणकी माया धनी है, करत फिरत अपनी अपनी ॥
खाय न सके खर्च नहिं जाने, ज्यौं भुजङ्गवश रहतमनी ।
आनँदमगन रामगुणगावत, बिसरत दुखकी काट तनी ॥
सूरदास प्रभुको सुमिरत नित, तिनसों हरिसों सदा बनी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुधरणीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, धरा वचन प्रियमान ।
वत्सपात्र सब जानके, लगे करन पयपान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, क्रोधसे होठ जिसके फड़क रहे थे, ऐसे पृथुराजकी स्तुति कर भयभीत पृथ्वी बुद्धिसे मनको सावधान करके फिर बोली कि ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! क्रोध शांत करो और मुझको अभयदान देकर मेरी विनय सुनो, जैसे भ्रमर पुष्पका सारसार रस ले लेता है। ऐसे ही जो बुद्धिमान विलक्षण लोग होते हैं वे सब वस्तुका सार ग्रहण कर लेते हैं ॥ २ ॥ इस लोकमें और परलोकमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुरुषोंके कल्याणकी सिद्धिके लिये योग-प्रयोग कृषी आदि उपाय बतलाये हैं और उन्होंने कर्मारम्भ किये हैं ॥ ३ ॥ जो महात्मा-जनोंने उपाय बतलाये उन प्रयत्नोंको जो लोग श्रद्धा सहित अच्छी रीतिसे सावधान हो अनुष्ठान करते हैं, वे प्रतिकूल पुरुष भी उन उपायोंके विना अनायास सफल हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जो अज्ञानी उन प्रयत्नोंका तिरस्कार करके अपने मनसे अथवा और किसी रीतिसे नूतन उपाय करते हैं तो उनके वारंवार प्रारम्भ किये हुए फल सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ हे विशांपते ! ब्रह्माजीकी पहली रची हुई ओषधि और जो अन्नादिक था, उनको वेन आदि व्रत रहित कुकर्मी लोगोंको भोगते मैंने देखा ॥६॥ जब आप जैसे लोक-पाल होकर न तो मेरा पालन किया और न प्रजाका पालन किया और उलटा उसका निरादर किया, जब लोकमें चोर ही चोर हो गये तब मैंने यज्ञके लिये सब औषधियोंको ग्रस लिया, क्योंकि यह औषधि पापियोंके योग्य नहीं है, जो इन औषधियोंको पापी भक्षण कर लेंगे तो फिर मुनिलोग यज्ञके समय कहांसे लायेंगे । मैंने अपने मनमें यह विचार कर सब अन्न भक्षण कर लिया, इसी कारण संसारमें दुर्भिक्ष हो गया ॥ ७ ॥ निश्चय है कि वह द्रुम-वेली अब अधिक समय व्यतीत होनेसे मेरे देहमें क्षीण हो गयी हो, जो कुछ उपाय महात्माजनोंने बतलाया है; उसी उपायसे और अपने योगबलसे आप मुझसे ले लो ॥ ८ ॥ हे वीर ! प्रथम तो एक वत्स कल्पना करो जिससे मैं तुम्हारी प्यारी रहूँ और दूसरे उसी प्रकारकी मेरे अनुसार दोहनी बनाओ जिससे मैं आप पर प्रसन्न होकर दुग्ध-रूपी आपकी सब अभिलाषा पूर्ण करूँ ॥ ९ ॥ हे महाबाहो ! हे भूतभावन ! ! जो तुम प्राणियोंके लिये मनोवांछित अन्नकी इच्छा करते हो तो किसी दुहनेवालेको स्थापित करो ॥ १० ॥ हे विभो ! हे राजन् ! ! आप मुझको बराबर कर दीजिये कि जिससे वर्षाऋतुके समाप्त हो जाने पर भी दैवका वर्षाया हुआ पानी मेरे ऊपर सदा नालोंमें भरा ही रहे ॥ ११ ॥ ऐसे प्रिय हितकारी वाक्य पृथ्वीके सुनकर भूपतिने मनुको वत्स बना, हाथोंमें सुन्दर दोहनी ले, धेनुरूप धरणीसे अन्न दुहने लगे ॥ १२ ॥ उसी प्रकार और भी ज्ञानी लोग सब ओरसे सार ग्रहण करने लगे और ऋषि मुनिआदिक पन्द्रह जनोंने भी महाराज पृथुकी वश की हुई पृथ्वीको अपनी इच्छानुसार दुहा ॥ १३ ॥ हे विदुर ! ऋषियोंने बृहस्पतिको वत्स बनाया और इंद्रियरूप पात्रमें परम पवित्र वेदमय दूधको दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको वत्स बनाया और कंचनमय पात्रमें अमृत वीर्य, ओज, बल, रूप पय दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुर श्रेष्ठ प्रह्लादको वत्स बनाकर लोहेके पात्रमें सुरा, आसवरूप दूध दुहा ॥ १६ ॥ गंधर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको वत्स बनाकर कमलमय दोहिनीमें मधुर वाक्य और सुन्दरतासहित गान विद्यारूप दूध दुहा ॥ १७ ॥ महाभगवान् श्राद्धदेवताने श्रद्धा करके अर्यमा नाम पितृको वत्स बनाकर कच्चे माटीके वर्तनमें पितृगणके योग्य अन्नरूप क्षीरको दुहा ॥ १८ ॥ और सिद्धलोगोंने कपिलदेवजीको वत्स बनाकर संकल्पमयी नाम सिद्धिविद्याको दुहा ॥ और जो विद्याधर आदिक थे, उन्होंने आकाशपात्र खींचकर विद्यारूप

दूधको दुहा ॥ १९ ॥ और जो मायावी लोग थे उन्होंने मयदैत्यको वत्स बनाकर गुप्त हो जाना इत्यादि अद्भुत प्रकृतिवाले पुरुषसम्बंधी संकल्पमात्रसे प्रकट होनेवाली मायारूप दूधको दुहा ॥ २० ॥ यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच जो रुधिरपान करनेवाले थे, उन्होंने रुद्रको वत्स बनाकर कपालोंमें रुधिररूप मदिराको दुहा ॥ २१ ॥ ऐसे ही वृश्चिकादिकोंने सर्प नाग तक्षकको वत्स बनाकर बिलरूप पात्रमें विषरूप दूधको दुहा, जिनके डसनेसे मनुष्य उसी समय मर जाता है ॥ २२ ॥ सब पशुओंने नंदिकेश्वरको वत्स बनाकर वनरूप पात्रमें मृगेंद्र-दंष्ट्रि करके घास तृणादिकरूप दुग्ध दुहा ॥ २३ ॥ मांसाहारी जीवोंने सिंहको वत्स बनाकर अपने शरीररूप पात्रमें मांसरूप दूधको दुहा और पक्षियोंने खगराजको वत्स बनाकर सब पक्षी चर कीटादि अचर फलादिरूप दूधको दुहा ॥ २४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर वनस्पति आदि अनेक प्रकारके रसरूप दूधको दुहा, पर्वतोंने हिमाचलको वत्स बनाकर, शिखर-रूप पात्रमें नानाप्रकारकी धातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ सब जनोंने अपने-अपने मुखियाओंको वत्स बनाकर अपने-अपने पात्रमें सब मनोवांछित फल देनेवाली पृथुराजकी वशीभूत की हुई पृथ्वीसे अपने मनमाना पृथक्-पृथक् दूध दुहा ॥२६॥ हे कुरुनन्दन ! ऐसा अन्नभोजन करने-वाले पृथुआदिक सर्वत्र पुरुषोंने अपने-अपने अभीष्ट अन्नको दुहा, परन्तु दोहिनी वत्सादि भेद हो जैसे उस दूधमें भी गया ॥ २७ ॥ फिर तो राजापृथु पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब कामदात्री पृथ्वीको अपनी प्यारी पुत्री बनायी और प्रेमसे दुहिताके वत्सल हुए ॥ २८ ॥ फिर राजाधिराज विभुने अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको तोड़-फोड़ कर इस भूमंडलको इकसार कर दिया ॥२९॥ फिर भगवान् पृथु प्रजाओंके जीवनका दाता, पिताके समान आनन्द देनेवाले जहां-तहां इस पृथ्वीपर यथायोग्य निवासके लिये उत्तम-उत्तम निवास-स्थानकी कल्पना करने लगे॥३०॥ग्राम, नगर, पुर, अनेक प्रकारके दुर्ग, गोशाला, ग्वालियोंके रहनेके लिये स्थान; सेनाओंके रहनेके लिये सैन्य, भवन, पर्वतके प्रान्तभागके ग्राम जहाँ-तहाँ वसा दिये ॥३१॥ पृथुके राज्यसे पहले पुर ग्रामादिककी रचना कहीं भी नहीं थी, जहाँ अपना सुख देखते थे, वहाँ निर्भय होकर स्थान बना लेते थे, उन्हीं लोगोंको हम वारंवार धन्यवाद देते हैं:—

कवित्त-वालमीकि नारद वसिष्ठ व्यास विश्वामित्र, भारद्वाज लोमशऋषि आदि जे कहावे हैं। दिनोंरात भगवतकी महिमा माहिं मग्न रहें जिनका यश वेद अरु पुराण सदा गावे हैं। घाम शीत वर्षा सब वनहीमें टेर करी, उन-हीको शालिगराम पूरण बतावे हैं। आज कालके मनुष्य थोरेसे जीवनपर, अटा औ अटारी न्यारी न्यारी बनवावे हैं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे दोहनवत्सादिभेदेन पृथुराज्ञा पृथ्वीदोहनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१. शंका—राजा पृथुके राज्यमें पहले पृथ्वीपर पुर, ग्राम, नगर, पट्टन नहीं थे और पहले पृथ्वीपर राजा तो अनेक हो गये, जो पृथ्वीपर राजा पृथुके पूर्वकालमें नगर, ग्राम, पुर, पट्टन और किसान लोगोंके रहनेको खेती करनेको ग्राम नहीं थे तो राजालोगोंका कोष (खजाना) किस प्रकार भरता था और राजाओंके लाखों रुपयेके काम किस रीतिसे होते थे? और राजालोग भाग किस वस्तुका लेते थे, इससे ज्ञात होता है कि पहले केवल जङ्गल ही रहा होगा ।

उत्तर—विद्वान्लोग पृथुके पहले अर्थमें बहुत दिन नहीं मानते । पृथुके पहले इस अर्थमें पृथुके पहले वेनका राज्य मानते हैं, वेनके राज्यमें सब नगर ग्रामादिक नष्ट हो गये थे। इस बातमें कुछ शंका नहीं करनी चाहिये ।

दोहा–उन्निसवें अध्यायमें, इंद्र हरो पृथुवाज।
ताके मारनके लिये, उद्यत भे पृथुराज॥

मैत्रेयजी बोले कि फिर राजा पृथुने सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया, जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं और ब्रह्मामनुका ब्रह्मावर्त क्षेत्र है॥ १॥ भगवान् इंद्रने पृथुका यह अभिप्राय समझा कि जो इसके सौ यज्ञ संपूर्ण हो जायँगे तो यह मेरा इन्द्रासन छीन लेगा, इस लिये उनके महोत्सवको न देख सका॥ २॥ उस यज्ञमें यज्ञपति साक्षात् भगवान् वासुदेव ईश्वर सर्वात्मा सर्व लोगोंके गुरु श्रीभगवान् आकर प्रत्यक्ष प्रकट हुए थे॥ ३॥ जिसके साथ चतुरानन ब्रह्माजी, पंचानन महादेवजी, लोकपाल और लोकपालोंके अनुचर भी उद्यत थे और गन्धर्व, मुनि, अप्सरागण सब आपका यश वर्णन कर रहे थे॥ ४॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, गुह्यक आदिक, सुनंद, नंद नामक मुख्य भगवान् हरिके पार्षद॥ ५॥ कपिलदेव, नारद, दत्तात्रेय, सनकादिक योगेश्वर और जो जिनके मन भगवत्के सेवनमें थे वे सब आकर उपस्थित हुए॥ ६॥ हे भारत! जहां सर्व मनोवांछित देनेवाली भूमि गोरूप धारण कर राजा पृथु यजमानको सब मनोरथ पूर्ण करनेवाले अर्थको देती है॥ ७॥ क्षीर, दधि, गोरस, सब प्रकारके रस नदियोंमें बहने लगे और जिनके विस्तृत देह ऐसे मधुस्रावि वृक्षफलादिक पदार्थ उत्पन्न करने लगे॥ ८॥ समुद्रने रत्नोंके समूह दिये, पर्वतोंने भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य चार प्रकारका अन्न लोकपालसहित सब लोगोंने भेंटें दीं॥ ९॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेव जिसके रक्षक ऐसे महाराजको पृथुराजके अत्यन्त उदयवाले कर्म देखकर भगवान् इंद्रके मनमें ईर्षा उत्पन्न हुई और पृथुके शुभकर्मका सहन उससे न हो सका, अर्थात् अपने मनमें बहुत दुःखी हुआ, क्योंकि जहां सुना वहीं पृथुका सुयश ही सुननेमें आया और जो सिद्ध, चारण गंधर्व पृथुके यज्ञमें गये उन्होंने राजा पृथुका ही यश गाया और परस्पर प्रशंसा करने लगे, कि आज दिन पृथुके विभवके आगे इन्द्रलोकका विभव फीका दृष्टि आता है। आज दिन राजा पृथु ही त्रिभुवनपति हैं, इन्द्र उनके सेवकके समान जान पड़ता है, इसी लज्जाके मारे यह अभिमानी पृथुके यज्ञमें नहीं गया! सब मुनियोंके मुखसे सुरेन्द्रने अपनी निन्दाके वचन सुने तब तो सुरपति अत्यन्त क्रोधित हो कुलिश हाथमें ले लाल-लाल नेत्र कर, सभाके मध्यमें महागम्भीर वाणीसे बोला–

दोहा–पृथ्वीका है कौन पृथु, जाकी करहु प्रशंस।
मैं हीं इक त्रिभुवनधनी, कश्यप कुल अवतंस॥

चौदह भुवनोंमें मेरे उज्ज्वल यशका मार्तंड प्रकाश कर रहा है, आजदिन ऐसा कौन बली है जो मेरे बलकी समता कर सके? एक छोटासा क्षुद्र क्षत्रिय क्षितिमें है, उसको मैं भलीभांति जानता हूँ; कि वह महाअत्याचारी वेनका पुत्र है, जिसको ऋषियोंने शाप देकर भस्म कर दिया था, उसके मृतक शरीरसे इसका अवतार है और किंचिन्मात्र प्रभुताई है जिसको तुम पृथ्वीपति बताते हो और एक बात बड़ी हँसी की है, जिसको कहते मुझे लज्जा आती है, उसी महापापी वेनके अंगसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी, उस अपनी बहनको पृथु कुकर्मीने अपनी पत्नी बनायी, प्रजागणने उसके शिरपर छत्र धरकर उसको भूप बना दिया, भला वह निर्लज्ज मेरे समान कैसे हो सकता? देखो! मैं आज ही उसका यज्ञ विध्वंस कर उसका

शिर काटूंगा, देखूं वह नीच मेरे वज्राघातसे कैसे बच सकता है यह कह ऐरावतपर चढ़, वज्र हाथमें ले, अत्यन्त क्रोधवंत हो पृथुका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये चला। उस समय राजा पृथुके निन्यानवे (९९) यज्ञ पूर्ण हो चुके थे। वह सौवां यज्ञ था जिस समय इन्द्र यज्ञ-शालाके निकट आकर, यज्ञका प्रबंध देख अपने मनमें विचार करने लगा, जो मैं इस यज्ञमें अब कुछ विघ्न करता हूँ तो यहां बड़े-बड़े वीर और योद्धा जो इस मखकी रखवालीके लिये उपस्थित हैं ये अवश्य पृथुके सहायक हो मुझसे युद्ध करेंगे और यह वीर मेरे वशके नहीं; इस लिये पहले तो यज्ञका तुरंग हर लेना चाहिये; जिससे यज्ञ ही भङ्ग हो जाय और जब यज्ञका अश्व ही नहीं रहेगा, तो फिर यह कहां ? फिर तो महादेव और ब्रह्मा आप ही अपने-अपने भवनको चले जायँगे, केवल भूप ही अकेला रह जायगा, फिर उसका मारना कुछ कठिन नहीं, झट उसे मार अपना यश विस्तार करूँगा, ऐसा विचार किया ॥ १० ॥ और यहां अंतके सौवें (१००) अश्वमेध यज्ञमें पृथु यज्ञपतिकी पूजा करने लगे, तब इन्द्र आत्मश्लाघा करके अंतर्धान हो यज्ञके घोड़ेको चुराकर ले गया ॥ ११ ॥ आकाशमार्गमें भागते हुआ इन्द्रको भगवान् अत्रिऋषिने देखा कि राजा पृथुके यज्ञका अश्व चुराये लिये जाता है; जिसने सब स्थानोंमें पाखंड फैला रक्खा है, जो अधर्मसे धर्मकेसा भ्रम करनेवाला है "उसी समय मखशालासे यह शब्द सुनायी पड़ा"

दोहा–लैगयो लैगयो अश्व कोउ, तहाँ भयो यह सोर।
चकितचित्त चितवन लगे, मुनिजन चारों ओर ॥ १२ ॥

अत्रिऋषिके संकेत करनेसे महाराज पृथुका पुत्र महारथी महाक्रोध कर उसके पीछे दौड़ा और पुकार कर बोला, खड़ा रह ! कहाँ भागा जाता है ? अरे चोर ! अरे अभिमानी ! ! किसने तेरा देवराज नाम रक्खा है, अरे निर्लज्ज ! अरे अधम ! ! मेरा तुरंग लेकर कहां जायगा, मैं अभी पकड़कर तेरा शिर काटूंगा, हमारे पिताके यज्ञका अश्व हर लेना तूने सहज ही समझ लिया, बस अब आगे न भाग ॥ १३ ॥ जब महारथी पृथुके पुत्र विजिताश्वने समीप जाकर देखा तो तनुमें भस्म मले, जटा धारण किये, यह तो मूर्तिमान् धर्म जान पड़ता है, अथवा यह कोई संन्यासी है, यह इन्द्र नहीं, ऐसा समझ उसपर बाण नहीं चलाया और उससे पूछा कि हे तपस्वी ! तुमने इन्द्रको घोड़ा लिये जाता देखा, तपस्वीने कहा कि इन्द्रको मैंने तुरंग लिये जाता नहीं देखा। तब जाना कि माया करके इन्द्र अंतर्धान हो गया निदान इंद्रके वधसे निराश होकर विजिताश्व लौटनेको उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ जब अत्रिने समझा कि पृथुराजका पुत्र इन्द्रके वधसे निवृत्त हो गया, तब अत्रि ऋषिने फिर उसके वध करनेके लिये विजिताश्वको भेजा और कहा कि हे पुत्र ! इस अधर्मीको मार यही तेरे पिताके मखका विध्वंस करने वाला है, यही सुराधम इन्द्र है, यह संन्यासी नहीं है, इसीने घोड़ा चुराया है ॥ १५ ॥ जब अत्रिने पृथुके पुत्रको इस प्रकार समझाया तब विजिताश्व अत्रिकी वाणी सुन

---

१. शंका—अत्रि मुनि मुनियोंमें बड़े श्रेष्ठ और भूत, भविष्य, वर्तमान कालके जाननेवाले ज्ञानियोंमें चंद्रमाके समान प्रकाशवान् ऐसे अत्रि मुनिके सन्मुख इन्द्र पृथुके यज्ञ में घोड़ेको चुराकर ले गया उस समय अत्रिमुनिने रक्षा क्यों नहीं की ?

उत्तर—पूर्वजन्ममें इन्द्रने जब सौ (१००) अश्वमेध यज्ञ किये थे, तब स्वर्गके राज्यको पाया था। इसी लिये इन्द्र देवता भगवान्को बड़ा प्यारा है, यज्ञ प्रभावसे भगवान् इन्द्रका मानभङ्ग नहीं करते। मुनिजन मन्त्रोंसे यज्ञकी रक्षा बहुत प्रकारसे करते हैं, परन्तु इन्द्र यज्ञमें तो भी विघ्न कर देता है। वेदमन्त्रोंका तथा ईश्वरका उसको किंचिन्मात्रभी भय नहीं होता, क्योंकि पूर्वकालके यज्ञोंका पुण्य उसके पास है, इसीलिये पृथुके यज्ञमें अत्रिको भी घोड़ेकी रक्षा करनेका वश नहीं चला।

फिर लौटा और धनुषबाण सन्धानकर बोले कि हे नाथ ! मुझे धोखा हो गया, परन्तु अब किसी प्रकार यह नहीं बच सकता, चाहे ब्रह्मलोकमें क्यों न जाय ? यह कह आकाश-मार्गमें होकर उसके पीछे धावमान हुआः–

दोहा–इन्द्र निकट अतिवेगसों, पहुँचो राजकुमार ।
जैसे रावणपै गयो, गृध्रराज ललकार ॥ १६ ॥

जब इन्द्रने जाना कि मैं इसके हाथसे नहीं बचूंगा, तब भागा । उस समय विजिताश्वने कोदण्डपर कठिन प्रचण्ड बाण चढ़ाया । तब वह इन्द्र अश्व और अपना पाखण्डरूप त्याग अन्तर्धान हो गया, वह महारथी अपने अश्वको लेकर पिताकी यज्ञशालामें आया और दण्डवत करके वह अश्व अपने पिताको दिखाया ॥ १७ ॥ बड़े-बड़े वेदवेत्ता महात्मा पुरुष और ऋषि लोगोंने उसके अद्भुत विक्रमको देखकर और सुरेन्द्रको पराजय कर घोड़ा ले आनेसे इसका विजिताश्व नाम रक्खा ॥ १८ ॥ वह सामर्थ्यवान् पुरंदर फिर वहां आया और घोर अन्धकार फैला फिर गुप्तरूप धरा, कि जिसको कोई पहचान न सके । यज्ञके खम्भमें जो सुवर्णकी संकलासे तुरंग बँध रहा था उससे खोल संकल समेत घोड़ेको चुरा ले गया "परंतु यह भेद किसीने न जाना" जब इंद्र वाजिको कुछ दूर ले गया तब सब अन्धकार जाता रहा ॥ १९ ॥ फिर अत्रिने आकाशमार्गमें इन्द्रको घोड़ा लिये जाता हुआ देखा तो फिर राज-कुमारसे कहा कि हे विजिताश्व ! जिस अश्वको तू इन्द्रसे छीनकर लाया था, उस अश्वको इन्द्र फिर चुराकर ले गया, विजिताश्वने कहा कि अब इन्द्रको जीता ही न छोडूंगा जो फिर उपद्रव करे । यह कह फिर धनुष बाण ले इन्द्रके पीछे हुआ और अरुण नेत्र कर बोला–

चौ०–रे रे देवराज तैं चोरा ❋ जै है कहां अश्व लै मोरा ।
रे निरलज्ज अधम अन्याई ❋ अश्व हरत तोहिं लाज न आई ॥
अस कहि इंद्र निकट नगिचानो ❋ तब तो इंद्र महाभय मानो ।
कालहु ते कराल यह वीरा ❋ अब नहिं बचि है मोर शरीरा ॥

यह विचार झट अपनी माया रच अघोरी रूप धारण कर लिया, माथेपर मनुज कपाल धारे, एक हाथमें मृतक शरीर लिये एक हाथसे बैलकी नाथ पकड़े आगे-आगे जाता देखा, परंतु कपाल खट्वांग धारण किये देखकर राजकुमारने इसपर बाण प्रहार न किया, फिर विजिताश्वने पूछा कि इधरको कोई पुरुष घोड़ा लेकर गया है । अघोरीने कहा कि हमने नहीं देखा, उस समय विजिताश्व निराश हो फिर अपने भवनको लौटा ॥ २० ॥ अत्रिने फिर प्रेरणा की कि अरे पुत्र यही है देवराज घोड़ेको चुरानेवाला, तब विजिताश्व फिर क्रुद्ध होकर शरसंधान किया, फिर इंद्र अश्वको और उस रूपको तजकर अंतर्धान हो गया॥२१॥फिर आगे बढ़कर विजिताश्वने देखा तो घोड़ा खड़ा है, परंतु पुरंदर नहीं । वह महाबलवान् तुरंगको लेकर फिर पिताके यज्ञमें आया और महर्षि महात्मा और पिताके चरणोंमें प्रणाम किया । उस समय सब सिद्ध मुनि और समाजके मनुष्य विजिताश्वकी प्रशंसा करने लगे कि कौन इनकी समता कर सकता है ? कि जिसने सुरेशको जीतकर घोड़ा छुड़ा लिया और पुरंदरने जो-जो पाखण्डरूप धारण किये थे, उन्हीं निन्दनीय वेषोंको अज्ञानी और मूर्ख लोग धर्म समझ-कर ग्रहण करते हैं ॥ २२ ॥ घोड़ेके चुरानेके मनोरथसे वासवने जो-जो वेष धारण किये वही

पापके चिह्न खण्डखण्डमें प्रकट हुए ॥ २३ ॥ पृथुके मखभंग करनेकी अभिलाषासे अश्वके चुरानेके लिये जो-जो रूप धरकर इन्द्रने अपना पीछा छुड़ाया उन पाखण्डोंमें मनुष्योंकी मति लगी रहती है ॥२४॥ वह पाखण्ड धर्म यह है, दिगम्बर अर्थात् नग्न रहना, जैसे जैन रक्तपट अर्थात् बौद्ध भगोंए वस्त्र धारण करनेवाले और कापालिक शिरपर जटाजूट बांधे शरीरमें भस्म लगाये, सेली, सींगी गलेमें डाले, हाथोंमें झोली-खप्पर लिये जैसे गोरखपंथी और कोई परमहंस कहलाते हैं, अनेक प्रकारके जो यह धर्मके समान प्रकट होनेवाला पाखण्ड मार्ग प्रसिद्ध हैं, इनको धर्मका मार्ग समझकर बहुधा बहुत मनुष्य भ्रांतिमें आकर इनके भ्रम-जालमें फँस जाते हैं, क्योंकि यह बाहरसे देखनेमें बड़े शोभायमान और मनोहर और हेतुवादमें विलक्षण होते हैं, परंतु भीतर कपट, क्रोध, लोभ, मोहमें लवलीन रहते हैं। हे विदुर! ऐसे पाखण्डी लोगोंका संग विद्वान् लोग नहीं करते क्योंकि पाखंडियोंका संग सदा पाप और अज्ञानको उत्पन्न करता है ॥२५॥ इन्द्रका यह अनर्थ देखकर और यह अभिप्राय जान भगवान् पृथुने उस अभिमानी इन्द्रपर महाक्रोधित हो धनुष हाथमें लेकर बाण सँभाला उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मानो ब्रह्मांडको अभी खण्ड-खण्ड कर देंगे, दशों दिशाओंमें अग्निसी प्रज्वलित हो गयी और सब ओर लाल ही लाल दृष्टि आने लगा, धरणी कँपकँपाने और कूर्म कुलमलाने लगा, उल्कापात आकाशमें प्रकट हो गये, समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी, दिग्गज चिक्कारने लगे, त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया, प्रजागण व्याकुल हो गयेः-

दोहा-बाणज्वालकी ज्वालते, जरन लगे तिहुँ लोक।
बाढ़त भौ तेहिकालमें, देवनके उर शोक॥

अब हमको भलीभांति जान पड़ता है कि इन्द्र किसी प्रकार नहीं बच सकता। राजा पृथु अभी अपने आसनसे उठा नहीं, बाण हाथसे छोड़ा नहीं, तब तो यह गति है और जिस समय बाण हाथसे छोड़ेगा, न जानिये उस समय क्या गति होगी? हम जानते हैं कि पृथ्वी लोट-पोट हो जायगी, इन्द्रलोक भस्म हो जायगा, बड़ा अनर्थ होगा, ऐसा विचार कर सब देवता और ऋत्विज पृथुके समीप गये ॥ २६ ॥ जिसके सम्मुख जाना तो क्या देखना भी अति कठिन है ऐसे असह वेगवाले पृथुकी इन्द्रके वधकी इच्छा जानकर मुनियोंने राजासे कहा कि अहो महाबाहो इस यज्ञमें पशुवधके अतिरिक्त और दूसरेका वध करना उचित नहीं ॥२७॥ और यदि इन्द्रके मारनेकी आपकी इच्छा है तो नृपनंदन! हे नृपेन्द्र!! तुम्हारे यशसे हतकांति, अर्थनाशक, मनोरथके विध्वंस करनेवाला अभिमानी इन्द्रको हम उन मंत्रोंसे आह्वान करके बुला लेंगे, जिनके सार नहीं गये हैं, फिर हम हठ करके आपके वैरी इन्द्रको इसी अग्निकुण्डमें होम कर देंगे, आप क्या तुच्छ इन्द्रपर शर चलाते हो, इसके पीछे लाखों जीवोंका घात करना यह धर्मात्माओंका काम नहीं, क्योंकि एक अकेला इन्द्र ही नहीं मरेगा, किंतु सब स्वर्गका क्षय हो जायगा॥२८॥ब्राह्मणोंका वचन सुन पृथुने कहा कि जबतक तुम उस अधर्मी इंद्रको मेरे सम्मुख अग्निमें न होम दोगे, तबतक मैं कदापि धनुषबाण हाथसे न त्यागूँगा, क्योंकि इस पापीने मेरे यज्ञमें विघ्न डाला है। हे विदुर! पृथुकी आज्ञा मान ऋत्विजने रोष करके अपने-अपने हाथमें श्रुवा उठा इन्द्रका उद्देश्य कर अग्निकुण्डमें आहुति देने लगे तब शक्रको गिरता देख उसी समय ब्रह्माजीने आकर मुनियोंसे कहा कि ॥२९॥ आप लोगोंके भस्म करने योग्य इन्द्र नहीं है, क्योंकि जिस इंद्रको मारनेकी तुम्हारी इच्छा है, वह यज्ञरूप भगवान् है,

उसीके यज्ञद्वारा यजन किये जाते हैं वह सब देवताओंका स्वरूप है, ईश्वरको परमप्रिय है, और दूसरे यह यज्ञ नाम मानवां इन्द्र साक्षात् भगवान्का अवतार है॥२०॥ हे ब्राह्मणो ! इन्द्रके वध करनेमें बड़ा अधर्म है, इस लिये तुम इन्द्रसे मित्रता करो, इन्द्रने जो पृथुके कर्मको विध्वंस करना चाहा और पाखण्ड वेष धारण किया केवल अधर्मके लिये अघोरी तनु धरा उसको देखो ॥ २१ ॥ हे पृथो ! एककम सौ यज्ञोंसे ही आपकी महाकीर्ति है और पूरे ही सौ यज्ञ हो गये तो क्या ? आपके भले प्रकार यजन किये हुए बहुत यज्ञ हो गये, अब आप और यज्ञ करके क्या करोगे ? क्योंकि तुम तो मोक्षधर्मके वेत्ता हो, क्या तुच्छ इन्द्रपदके लिये इतना परिश्रम करते हो जिसके सौ यज्ञ पूरे हो जाते हैं, वह इन्द्र होता है, आपको इन्द्रासनकी क्या आवश्यकता है, जो कीर्ति आपकी आजदिन संसारमें छा रही है वह सुरेशको स्वप्नमें भी नहीं मिल सकती ॥ २२ ॥ हे पृथुराज ! इन्द्र आपका ही स्वरूप है, इसलिये इन्द्रपर आपको कोप करना नहीं चाहिये, आपका जय हो, आप और सुरेश दोनों भगवत्का स्वरूप हो, यह बात सब संसारमें प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ हे महाराज ! अब इस यज्ञमें आप विघ्नकी चिंता मत करो, हमारा वचन आदरपूर्वक सुनो, जिस कार्यका दैव विनाश करता है और जो पुरुष उसका ध्यान चित्तमें करता रहता है, वह क्रोधका मारा अन्धा होकर मोहरूपी कूपमें जा पड़ता है, फिर उसका कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि चित्तपर शांति नहीं रहती और जो पुरुष क्रोधित चित्तसे कार्य करता है, वह नरकमें जाता है ॥ २४ ॥ अब इस यज्ञको मत करो, देवताओंके मनमें इसका दुराग्रह होता है, क्योंकि इन्द्रके अनेक प्रकारवाले पाखण्डोंसे महा अधर्म होता है ॥ २५ ॥ जिस इन्द्रने तुम्हारे यज्ञका घोड़ा चुराया और यज्ञ भङ्ग करनेके लिये अनेक उपद्रव किये, उस पुरंदरके रचे हुए नये-नये पाखण्डोंसे लोग धर्मको छोड़ अधर्ममें प्रवृत्त होंगे तो इस पापके भागी आप होंगे, इसलिये आप क्रोधको तज इन दीनजनोंकी ओर देखो ॥ २६ ॥ वेनके अधर्मसे सब धर्मोंका नाश हो गया, सब वस्तु लुप्त हो गयीं और उसीके तनुसे आप भगवद्रूप भगवत्की कला उत्पन्न हुए हो, हे वेन वंशोद्भव पृथो ! धर्मकी मर्यादा और महात्मा पुरुषोंकी रक्षाके लिये आपने संसारमें अवतार लिया है ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! हे प्रजापते ! ! इस विश्वकी उत्पत्ति विचार इस विश्वका मंगल जैसे हो सके वैसा ही उपाय करके विश्व रचनेवाले प्रजापतियोंके संकल्प परिपूर्ण करो और पाखण्डरूपी इन्द्रकी माया प्रबल प्रचण्ड नवीन मार्ग चलानेवालीका नाश करो ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार जब जगद्गुरु ब्रह्माजीने राजा पृथुको समझाया तब राजा पृथुने यज्ञकी हठ त्याग वात्सल्य भाव कर इन्द्रसे मिलाप कर लिया ॥ २९ ॥ जब राजा पृथु यज्ञांतके समय दीक्षान्त-स्नानसे निवृत्त हो गये तब उस महाकर्मकारी पृथुके यज्ञमें ब्राह्मणोंने जो मांगा वही वस्तु दे उनके मनोरथ पूर्ण किये ।

चौ०-भये अयाचक याचकवृंदा ❋ गावत पृथुयश होत अनंदा ॥
सादर विप्र दक्षिणा पायी ❋ हो हो आनँद करत बड़ाई ॥
बार बार वर देत विप्रवर ❋ अचल राज्य तुम करहु धरणिपर ।

हे महाबाहो ! हम सब आपके बुलानेसे यहां आये और आपने अपने योग्य पितृ, देवता, ऋषि और मनुष्य सबका यथायोग्य दान-मानसे आदर-सत्कार किया, जैसे श्रीकृष्णचन्द्र

आनन्दकंदने आधीरातके समय वंशी बजाकर गोपियोंको बुला लिया था और रास-विलास कर उनको प्रसन्न किया था, उसी प्रकार आपने हम लोगोंको बुलाकर सुख दिया—

लावनी

गोपीवचन-अहो श्रीकृष्णचंद्र नंदलाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥
सुनी जबसे वंशीकी तान, हमारे तनुसे निकल गये प्रान।
हरघड़ी यही चित्तमें ध्यान, क्या करैं कहाँ जायँ भगवान ॥
कुञ्ज कुञ्ज वृन्दावन ढूँढ़ी, यमुनाके सब घाट।
पलको कल नहीं पड़े चितमें, लगा यही उच्चाट।
चलो अब मधुवनको ततकाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल॥१॥
न फिरते चैन न बैठे चैन, तड़फते हो गई सारी रैन।
न मुखसे निकले सावित बैन, छिनको नहीं चैन लैन दे मैन ॥
जबसे वंशि सुनी भागी हम, छोड़ छोड़ सब लाज।
येही चित्तमें वसी किसी ढब, देखें कृष्णको आज ॥
हमारा किया हाल बेहाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥ २ ॥
कृष्णवचन-सत्य है महा पुरुषोंकी बात, सदा मूरख नारीकी जात।
छोड़ पति पुत्र भ्रात और मात, इकेली आई आधीरात ॥
कपटी कुटिल कुरूप कापुरुष, कैसा ही पति होय।
नारिधर्म है यही पियै नित, उसके चरणों को धोय ॥
कहैं सब वेद शास्त्र यह हाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥ ३ ॥
गोपीवचन-तुम तो हो बड़े कपटी महाराज, जरा नहीं कहे सुनेकी लाज।
सदासे किये हमारे काज, करो हो यह बातें तुम आज ॥
जब जब बिपदा परी आप ही, रहे हमारे पास।
तुमसे ज्यादा पति कौन हमारा, जिसकी करे हम आस ॥
आप ही हैं हमारे प्रतिपाल, वंशीमें क्या जादू दिया डाल ॥ ४ ॥
कविवचन-समझकर सत्य बात नँदनन्द, दिया सबको पूरण आनंद।
धन्य हो श्रीमुकुन्द ब्रजचन्द, रचायो रास होके निरद्वन्द्व ॥
छैः महीनेकी रात बनाकर, दियो सबको आराम।
चरणशरण नित राखो यही, वर मांगत शालिगराम ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरित्रे इन्द्रकृतपाखण्डमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा—पृथुहि बीस अध्यायमें, आन श्रीभगवान्।
करी परस्पर प्रीति अति, दीन्ह महावरदान॥

मैत्रेयजी बोले कि श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथ यज्ञपति यज्ञोंके भोक्ता, विभुने सुरेशको अपने साथ ले यज्ञोंसे प्रसन्न हो राजा पृथुने कहा॥ १॥ श्रीभगवान् बोले कि इस इन्द्रने आपका सौवां (१००) अश्वमेधयज्ञ भंग करना चाहा था, अब यह आपकी शरण है और आपसे अपना अपराध क्षमा कराना चाहता है, आप इसका अपराध क्षमा करिये॥२॥ हे नरदेव! उत्तम बुद्धिवाले साधुपुरुष संसारमें जीवोंसे द्रोह नहीं रखते, क्योंकि वे लोग भली भांति जानते हैं कि देह आत्मा नहीं है॥३॥ जब आप सरीखे पुरुष द्रोह करें और देवमायासे मोहित हो जायँ तो फिर बरसों तकका किया हुआ सन्तोंका सत्संग, शास्त्रोंका प्रीतिपूर्वक श्रवण करना वृद्धपुरुषोंकी सेवा करनेसे क्या फल हुआ? केवल वृथा परिश्रम किया॥ ४॥ देखो! अविद्याजन्य, कामनाकृत कर्मोंसे यह अधम शरीर रचा गया है, जो ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार इस शरीरको क्षणभंगुर समझते हैं वे आत्माज्ञानी पुरुष इस देहमें कभी आसक्त नहीं होते॥५॥ जो इस देहमें आसक्त नहीं हैं, वे महात्मा लोग इस देहसे उत्पादित घरमें, पुत्रमें, धनमें कब मन लगा सकते हैं! ॥ ६॥ यह आत्मा शरीरसे अलग है, क्योंकि आत्मा एक है और बालक, युवा, वृद्धादि भेदसे अनेक प्रकारके रूप दृष्टि आते हैं, आत्माशुद्ध चैतन्य है, शरीर मलिन है, आत्मा स्वयं प्रकाश है, शरीर जड़वस्तु है, आत्मा निर्गुण है, शरीर सगुण है, आत्मा गुणोंका आश्रय है, शरीर कारणभूत गुणोंके आश्रित है, आत्मा सर्वव्यापक है, शरीर परिच्छिन्न है, आत्मा आवरणरहित है, शरीर घरद्वारसे आवृत्त है, आत्मा सबका साक्षी है, शरीर दृश्य है, आत्मा निरात्म है शरीर स्वात्म है, आत्मा सब जीवोंसे परे है॥ ७॥ जो पुरुष इस प्रकार सब आत्माओंको आत्मामें स्थित ऐसे सबमें ईश्वरको जानते हैं, वे मायासे स्थित भी हैं, तो भी मायाके गुणोंमें लिप्त नहीं हो सकते, क्योंकि वह मुझसे स्थित हैं॥ ८॥ हे राजन्! फलकी कामनाको त्यागकर श्रद्धायुक्त स्वधर्मसे जो पुरुष सदा मेरा भजन करता है, उसका चित्त धीरे-धीरे प्रसन्न हो जाता है॥ ९॥ जब पुरुष विशालहृदय प्रसन्नचित्त हो गया, तब सब गुणोंको त्याग, ज्ञानी हो; शांतिको प्राप्त होकर कैवल्य ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १०॥ उदासीनके समान द्रव्य, ज्ञान, क्रिया, आत्माके भीतर स्थिर परमात्माको जो जानते हैं, वे पुरुष निःसन्देह मोक्षको प्राप्त होते हैं॥ ११॥ इस नाशवान् भिन्नलिंग शरीरका संसार है द्रव्य, क्रिया, कारक और चेतनके चिदाभासात्मक दीखता है और जो ज्ञानी पुरुष मुझसे स्नेह रखते हैं, वे सदा सम्पत्ति और विपत्तिको समान समझकर विकारको प्राप्त नहीं होते॥ १२॥ हे वीर! सम, उत्तम, मध्यम, अधम सुख-दुःखमें समदृष्टि हो, इंद्रिय और अन्तःकरणको जीत, अपने रचे हुए लोगोंको लोकयुक्त होकर जो मैंने तुमको सचिवादिकका अधिकारी किया है, उसको अपने सङ्ग रखकर सब लोगोंका पालनकर॥ १३॥ राजाका धर्म है कि प्रजाकी पालना करे, उसीमें उसका कल्याण होता है। जो राजा प्रीतिपूर्वक प्रजाकी रक्षा करता है, वह उस सुकृतका छठा भाग परलोकमें पाता है और जो प्रजाका पालन नहीं करता, उससे दण्ड लेता है, उसका सब पुण्य क्षय हो जाता है और प्रजाका पाप भोगना पड़ता है॥ १४॥ इस उत्तम ब्राह्मणोंमें ब्रह्मोत्तमोंने जो परम्पराके धर्मको मुख्य रक्खा है, उसमें प्राप्त होकर और अन्य धर्मोंमें आसक्त न होकर पृथ्वीकी रक्षा

करोगे तो प्रजागण आपसे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और कुछ काल व्यतीत होनेपर सनकादिक तुम्हारे स्थानपर आयेंगे और आनंद सहित उनका दर्शन आपको होगा, क्योंकि सब लोक आपसे अनुरक्त हैं ॥ १५ ॥ हे मानवेन्द्र ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, कुछ तो वर मांगो, क्योंकि मैं आपके गुण और शीलके वशीभूत हो गया हूँ न तो मैं यज्ञसे प्रसन्न हूँ, न तपसे, न योगसे, मैं तो केवल समदर्शी पुरुषोंसे प्रसन्न हूँ और उन्हींके हृदयमें सदा वास करता हूँ ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब विश्वनाथ भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा की तो विश्वविजयी पृथुने विष्णु भगवान्‌की आज्ञा अपने शिरपर धारण की ॥ १७ ॥ और प्रेमसे श्रीगोविन्दके चरणारविन्दकी वंदना की ।

दोहा—यदपि विश्वविजयी रह्यो, पृथ्वीपति पृथुराज ।
तदपि कर्म निज देखके, मानी मन अतिलाज ॥

इस प्रकार राजा पृथु नीचे नेत्र कर इन्द्रसे मिला और मनसे सब शत्रुताका परित्याग कर दिया ॥ १८ ॥ फिर विश्वात्मा भगवान्‌का राजा पृथुने पूजन किया और अनेक प्रकारकी भेंट आगे धरी और अधिक प्रेमभरी भक्तिसे भगवत्‌के पदाम्बुज ग्रहण किये ॥ १९ ॥ यद्यपि श्री वैकुण्ठनाथ वैकुण्ठके जानेको उद्यत थे; परन्तु अपने प्रिय भक्त पृथुपर कृपा करके विलम्ब किया और सज्जन सुहृद कमलनयन विष्णुभगवान् पृथुकी ओर देखने लगे और निज धामको न गये ॥ २० ॥ वे आदिराज पृथु हाथ जोड़े खड़े हैं परंतु हरिको देख न सके, क्योंकि नेत्रोंमें जल भर रहा था और मुखसे वचन इस लिये न निकल सके कि पुलकायमान शरीर होनेसे गद्गदकंठ हो गया, मुखसे नहीं बोला गया, बैठकर हृदयमें भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ २१ ॥ फिर कुछ कालोपरान्त आंसू पोंछकर आदिराजने आदिपुरुषका दर्शन किया, परन्तु हरिकी मनोहर मूर्तिको देखते-देखते नरेशकी तृप्ति न हुई, यद्यपि देवता धरणीपर पांव नहीं रखते, परंतु प्रेमके वशीभूत हो भगवान् पदसे पृथ्वीका स्पर्श करे और गरुड़जीके ऊंचे कंधेपर करका अग्रभाग धरे दृष्टिगोचर श्रीनारायणसे नरनाहने जैसे-तैसे कर कहा ॥ २२ ॥ पृथु बोला कि हे प्रभो ! सब वर देनेवाले परमात्माको सम्मुख पाकर बुद्धिमान् पुरुष कैसे वर मांग सकता है, ब्रह्मा होना, इन्द्र होना, यह तुच्छ वरदान देहधारी नरक वासी देहधारियोंको भी प्राप्त हो सकते हैं, इस लिये हे कैवल्यपते ! हे विश्वेश ! ! यह वर मैं आपसे नहीं मांगूगा ॥ २३ ॥ हे हृदयानंद ! वह वर तो अलग रहे; परंतु मुझको तो मोक्षकी भी इच्छा नहीं, क्योंकि वहां महात्माजनोंके अंतर्हृदयसे मुख द्वारा निकला हुआ, तुम्हारे पदपंकजका मकरंद अर्थात् श्रवणादिक आनंद नहीं है, फिर मैं उस ब्रह्मानंदको लेकर क्या करूं ? इस लिये, हे नाथ जो आप मुझपर प्रसन्न हो और मुझको वरदान देना चाहते हो तो,

दोहा—मम मन आशा यह अहै, दीजै यह वरदान ।
कृष्णकथाके श्रवणहित, देहु सहस दश कान ॥

वारंवार मैं यही वरदान मांगता हूँ ॥२४॥ हे उत्तम श्लोक ! महत्पुरुषोंके मुखारविन्दसे निकलती हुई आपके पदाम्बुजकी कथारूप सुधाकी कणिकासे मिली हुई पवन भी तत्त्व मार्गकी विस्मृतिसे मार्गमें भूले पड़े हुए उन कुत्सित योगी जनोंको स्पर्श करते ही आत्मज्ञानका ध्यान कराती है, इस लिये मैं तो आपकी भक्तिका सारग्राही हूँ, मुझको और वरदानोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ हे सुश्रव ! महात्मापुरुषोंके सत्संगमें जो मनुष्य एकवार भी

आपके मंगलदायक यशको श्रवण कर लेता है, यदि वह गुणज्ञ हो तो उससे कभी अवसान नहीं पाता और जो पशु ही हो तो उसकी गिनती नहीं और श्रीलक्ष्मीजी भी त्रिभुवनकी ठकुरायनी और सब गुणोंको संग्रह करनेकी इच्छासे आपके ही सुयशका वर्णन करती हैं ॥ २६ ॥ इसलिये आप जो सब पुरुषोंमें पुरुषोत्तम और गुणोंके स्थान हो, लक्ष्मीकी नाईं आपके चरणारविन्द सेवन करूंगा । यद्यपि एक ही कालमें एक ही पतिकी एकही प्रकारकी सेवा करनेसे हम दोनोंमें परस्पर कलह होनेका भय है और जो आप यह कहो कि सेवा करनेका अपना-अपना समय नियत कर लो तो क्लेश न होगा, सो हे स्वामी ! समयका व्यतीत करना महा कठिन है, हमसे क्षणभर भी आपका वियोग नहीं सहा जायगा, भला कहीं जीव भी शरीरसे भिन्न हो सकता है। परंतु इतना मैं मानता हूँ कि लक्ष्मीजीका और मेरा क्लेश न होगा, क्योंकि मेरा और लक्ष्मीजीका चित्त आपके चरणोंमें ही एकाग्र रहेगा, तो फिर उसमें किसी प्रकारकी कलहका अंकुर नहीं उत्पन्न होगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जगज्जननी लक्ष्मी जिस हृदयेशके चरणारविन्दोंमेंसे मेरे भाग लेनेकी इच्छा करती है, उससे कदाचित् विरोध भी होगा तो भी कुछ संदेह नहीं, क्योंकि आप दीनदयालु हो, इससे मेरी तुच्छ सेवाको भी बहुत करके मानोगे और आप तो अपने स्वरूपानंदमें रमण करते हो, इस लिये आपके मनमें लक्ष्मीका कुछ पक्ष नहीं, आपका नाम तो समदर्शी है ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष मायाके गुणोंके कार्यसे रहित हैं, वे ज्ञानी पुरुष आपका भजन करते हैं, उन सज्जन पुरुषोंको आपके चरणकमलके अनुस्मरणके अतिरिक्त और दूसरा कुछ भी अभिप्राय हमको नहीं जान पड़ता ॥ २९ ॥ आपके भजन करनेवाले जो भक्तलोग हैं, उनसे जो आप कहते हो कि वरदान मांगो, यह कहना आपका विशेष करके विश्वको मोहने वाला है, यह मैं भली प्रकार जानता हूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप वाणीरूपी डोरीमें ये जन बँधे हुए हैं, और जो यह बँधे हुए न होते तो वारंवार मोहित जीव फिर कैसे कर्म कर सकते हैं ? ॥३०॥ हे ईश्वर ! साक्षात् आपकी मायाने आपके सत्यस्वरूपसे अलगकर रक्खा है और अज्ञानी लोग आपके परमानंद स्वरूपको त्यागकर पुत्र-पौत्रादिककी आशा करते हैं, इसलिये इन मनुष्योंमेंसे मैं भी एक जीव हूँ वह मुझे वरदान क्या करना है ? मेरा हित तो आपको इस प्रकार करना चाहिये,जैसे पिता विना प्रार्थना किये अपने पुत्रपर प्यार करता है और कुमार्गसे बचा सुमार्गमें चलाता है ॥ ३१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार आदिराजने विश्वनाथ भगवान्‌की स्तुति की, तब वासुदेव भगवान् शार्ङ्गपाणि हँसकर बोले कि हे राजन् ! तुम्हारी प्रीति मेरे चरणोंमें अधिक है इसलिये मेरी पूर्ण भक्ति तुमको प्राप्त होगी, मुझको बड़ा आनंद हुआ जो आपने मेरी भक्ति करनेकी इच्छा की, ऐसी इच्छासे मेरी दुस्त्यज मायासे जीव तर सकता

---

१. शंका—श्रीमद्भागवतमें प्रथम तो श्रीशुकदेवजीने वर्णन किया कि पृथुराजा विष्णुका रूप है और फिर पृथुके यज्ञके अन्तमें भगवान्‌ने राजा पृथुसे कहा कि, हे राजन्। हमारे स्वरूपमें तुम्हारी भक्ति तथा तुम्हारी बुद्धि सर्वदाकाल इसी प्रकारकी बनी रहेगी। इस बातसे ज्ञात होता है कि राजा पृथु भगवान्‌का अवतार नहीं है। मनुष्यके समान भगवान्‌ने वरदान दिया, कौन पृथु है? हमको यह बड़ा सन्देह है।

उत्तर—आप स्वयं भगवान् अवतार नहीं धारण करते, पृथ्वीका भार नाश होनेके लिये अपने अंश करके अवतार लेते हैं भगवान्‌के अंश अनेक प्रकारके रूप धरकर, भगवानसरीखे कार्य करते हैं। किसी अवतारमें भगवान् अपने अंशको सिखाते हैं और भूमिमें आकर किसी अवतारमें नहीं भी सिखाते, सिखाना क्या? भगवान् कहते हैं कि तुम हमारे अंश हो, हमको भूलना नहीं, इसलिये पृथुको भी सिखा गये हैं कि हमारे रूपमें तुम्हारी भक्ति और बुद्धि सदा बनी रहेगी।

है ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते ! महामोहको त्यागकर जो पुरुष मेरी आज्ञानुसार सावधानतासे चलता है वह सब ठौर आनन्द पाता है ॥३३॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार वेनवंश उत्पन्न पृथुराज ऋषिके गंभीरवचनोंकी सराहना कर पूजन करवाय उसपर अनुग्रह कर वासुदेव भगवान्‌ने वैकुण्ठ जानेका विचार किया ॥ ३४ ॥ वहां देवता, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य, खग और जो अनेक प्राणी ॥ ३५ ॥ यज्ञमें आये थे उनको यज्ञरूप ईश्वरकी बुद्धिसे राजाने सबको वाणीधनसे आदर-सत्कार सहित हाथ जोड़कर संमान किया था, उन सबको भगवद्रूप मान बिदा किया और उनके पीछे भगवान्‌के पार्षद भी चले गये ॥ ३६ ॥ और भगवान् भी राजर्षि उपाध्याय सहित अच्युतः राजा पृथुका मन हरकर अपने परमधामको चले गये ॥ ३७ ॥ आत्मरूपके उपदेशक, जिनकी महिमा जाननेमें नहीं आती; वह देवाधिपति देव श्रीवैकुण्ठनाथ इस पदको कहते हुए अन्तर्धान हो गये, तब उनको नमस्कार कर राजा पृथु अपने पुरमें आया और मुरलीमनोहरने यह भजन गाया—॥ ३८ ॥

भजन

भक्त हैं मेरे प्राणाधार ॥

जहाँ भक्त तहाँ वास हमारो, जानत सब संसार ॥ १ ॥
जब जब असुर बढ़त पृथ्वीपर, करत भ्रष्ट आचार ।
तबहिं धार अवतार असुर हनि, हरत भूमिको भार ॥ २ ॥
भक्त सदा मुझको पूजत हैं, निशिदिन विविध प्रकार ।
मैं भी उन्हींको ध्यावत हूँ, चितसों वारंवार ॥ ३ ॥
सांची भक्ति मोहि अति प्यारी, जहँ न कपट व्योहार ।
जैसे विदुर सुदामा शबरी, लाई बेर अहार ॥ ४ ॥
द्रुपदसुता पर भीर परी जब, हरि हरि करी पुकार ।
तुरत जाय पट अधिक बढ़ाये, नेक करी नहिं वार ॥ ५ ॥
मैं अपने भक्तन ही के हित, लेत सदा अवतार ।
भक्त समान और नहिं कोई, जगमें हितू हमार ॥ ६ ॥
अर्जुनको मैं बनो सारथी, बलिको चौकीदार ।
शालिग्राम करत हित चितसे, भक्तन पै मैं प्यार ॥ ७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे विष्णुना पृथोर्यज्ञे अनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा—इक्किसवें अध्याय में, आये देव दिनेश ।
राजा पृथुने सबनको, दियो ज्ञान उपदेश ॥

मैत्रेयजी बोले कि जब राजा पृथु नगरमें गया तो देखा कि मोती, पुष्पमाला, वस्त्र, सुवर्णके तोरणोंसे सब नगर देदीप्यमान हो रहा है और महासुगंधित धूपकी जहां-तहां सुगंध हो रही

है ॥१॥ चन्दन अगरके जलसे बीथी, चौहटे, राजमार्गोंमें छिड़काव हो रहा है। पुष्प, अक्षत, फल, अंकुर, खीलें, दीपमालिकाकी शोभा ऐसी विदित होती थी मानो मणियोंकी माला लटकी है ॥२॥ सुंदर-सुंदर सुगंधित पुष्पफलादिक लगे हुए केलेके खम्भ और छोटे-छोटे पूगीफलके वृक्ष थोड़ी-थोड़ी दूरपर लगा दिये हैं, आम्रपत्रकी बन्दनवारें उनमें शोभित हैं, अनेक वृक्षोंके पल्लव और मालाओंकी शोभा ठौर-ठौर बनायी गयी है ॥३॥ उज्ज्वल-उज्ज्वल मणियोंसे जटित कुण्डल कानोंमें पहिने सुन्दर-सुन्दर कन्याएँ दधि, दूर्वा, फल, फूल, अक्षत, रोली, चन्दनादि मांगलिक द्रव्यके थाल हाथोंमें लिये राजा पृथुका शुभागमन सुन–

चौपाई–लेन चले पृथुको अगवानी ❀ बालक वृद्ध युवति गुणखानी।
कनककलश ले विप्रकुमारी ❀ जात सकल मिलि आनँद भारी ॥४॥

शंख, शहनाईके, दुन्दुभीके शब्दसे और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिसे सब नगर पूरित हो रहा था और सब प्रजागण उनकी स्तुति करते थे, परन्तु सब प्रकारका ऐश्वर्य होनेपर भी राजा पृथुने अपने मनमें किसी प्रकारके अभिमान न मान अपने राजभवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ महाकीर्तिमान् पृथुराजने जहां-तहां नगरवासियोंसे सम्मान पाकर फिर पीछे सब पुरवासियोंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और अत्यन्त प्रसन्न हो उन लोगोंको नाना प्रकारके पारितोषिक और प्रिय पदार्थ प्रदान किये ॥६॥ निंदारहित शुभकर्मकर्ता महात्मा पृथुराजने अनेक प्रकार श्रेष्ठ कर्म करके जगत्की रक्षा की और अपने पूर्ण प्रतापके मार्तण्डका समस्त भूमण्डलमें प्रकाश किया और श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके चरणोंमें अनुराग कर मोक्षको प्राप्त हुए ॥७॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक मुने! अनेक गुणसम्पन्न और महात्मा पुरुष जिनकी श्लाघा करते हैं ऐसा आनन्ददायक महाराज पृथुराजका सुयश सुनकर, उस उत्तम यशके वर्णन करनेवाले मैत्रेयजीका आदर-सम्मान कर भगवान्के परमप्रिय सभाजित विदुर भगवान्ने कहा ॥८॥ विदुरजी बोले की जब राजा पृथुका ब्राह्मणोंने राज्य तिलक किया था और देवतालोगोंने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ पदार्थ भेंटमें दिये थे और विष्णु भगवान्ने अपना तेज दिया था, उस तेजको अपनी बाहुओंमें धारण करके उन बाहुओंसे वसुधाको दुहा ॥ ९ ॥ ऐसा कौन अभिज्ञ पुरुष है जो उस महाभागवत पृथुकी कीर्तिको न सुने? क्योंकि जिनके किये हुए पराक्रमके उच्छिष्ट सब भूप हैं और उनकेही वसुमतीके दुहनेसे सब लोक लोकपाल और देवताओंकी तबतक प्रतिपालना होती है, इसलिये उसका पावन (पवित्र) चरित्र मुझसे कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि गंगा-यमुना नदियोंके बीचके क्षेत्रमें राजा पृथु निवास करते थे, सुखकी इच्छाके लिये नहीं केवल अपने किये पुण्यका त्याग करनेकी इच्छासे अपने भाग्यके भोगको भोगने लगे ॥ ११ ॥ सातद्वीप नौ खण्डमें जिनकी आज्ञाको कोई उल्लंघन न कर सका और सब संसारमें केवल यही एक दंडदाता राजा पृथु था, एक तो ब्राह्मणकुलको कभी दंड नहीं दिया, दूसरे अच्युत गोत्रवाले वैष्णवोंसे कभी दंड नहीं लिया, जो कि भगवत्के पूर्ण भक्त थे॥१२॥ हे पांडुवंशभूषण! एकसमय राजा पृथुने महायज्ञमें दीक्षा ली, तो वहां सब भूपति, देवता, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, लोगोंका बड़ा भारी समाज जुड़ा ॥ १३ ॥ उस समाजमें जो बड़े-बड़े महात्मा पुरुष आये थे, उन सबका यथायोग्य आदर सम्मान पूजन करके सब राजा उठे तो ऐसा विदित होता था, कि जैसे तारागणके मध्यमें चन्द्रमा उदय होता है ॥ १४ ॥ उसके अंगकी अनुपम शोभा थी। उन्नत शरीर, पुष्ट और दीर्घ बाहु, गौरवर्ण, कमलवत् अरुण नयन, सुन्दर नाक, चन्द्रमासा

मुख, सुधासम मृदुल वाणी, सौम्य स्वरूप, ऊंचे कन्धे, मदनमदहरण रद और मंद मुसकान मनको मोहनेवाली थी ॥ १५ ॥ विशाल वक्षःस्थल, दीर्घ कटिपश्चाद्भाग, त्रिवलीसंयुत उदरमें गोल रेखा, गंभीर नाभी मानो छबिका कूप, महापराक्रमी, कंचनसे उज्ज्वल कदलीवत् उरू, उठे अग्रभागवाले चरणारविन्द थे ॥१६॥ सूक्ष्म कुटिल श्याम और चिकने शिरके बाल, कंबु सम कंठ, कामधनुषसी भ्रुकुटी, अर्धचन्द्रसम त्रिपुंड्र भालपर विराजमान, अमूल्य वस्त्र पहिने और यज्ञोपवीत धारण कर रहे थे ॥ १७ ॥ सब शरीरकी शोभा उन झीने वस्त्रोंमें प्रकट हो रही थी और नियममें सब आभूषणोंको त्याग कृष्णमृगका चर्म धारण कर लिया था और कुशा हाथमें लिये श्रीलक्ष्मीवान् अपने यज्ञकृत्यसे निश्चिंत होकर सभामें बैठे थे ॥ १८ ॥ शरद ऋतुके प्रकाशवान् ताराओंके समान चिकने और दाहके बुझानेवाले प्रेमसरोवर नक्षत्र मानो पुतलीके समान शोभायमान नेत्र हैं, ऐसे नेत्रोंसे राजा पृथुने चारों ओरको देखकर सब सभासदोंका हर्ष बढ़ाया और चार चित्रपद मुनिमन हरनेवाली मनोहर गम्भीर वाणीसे उस समय बोले ॥ १९ ॥ राजा बोले कि सभासदो ! आपका कल्याण हो ! जो-जो साधु सज्जन पुरुष यहां आये हों मैं सबकी सेवामें यह वचन निवेदन करता हूँ, जिसमें सबके लिये आनन्द हो, केवल मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि जो बुधवर अपने सब धर्मके जाननेकी इच्छा करें वे अपने विचारको महात्मा जनोंके सम्मुख प्रकट करें ॥२०॥ प्रजाकी रक्षा करनेको, चोर और दुष्टात्माओंके दंड देनेको, अपनेको आजीविका देनेको, सब धर्मके सुन्दर सेतुओंमें उत्तम धर्मकी मर्यादा पृथक्-पृथक् सबको स्थापन करनेको सब कार्योंमें मुझको नियत किया है कि ॥२१॥ मुझको वह लोक कामदायक प्राप्त हो, जिसकी प्रशंसा ब्रह्मवादी लोग करते हैं, मुझको निश्चय है कि जिनपर भगवान् संतुष्ट होते हैं, उन वेदवेत्ता पुरुषोंकी संपूर्ण कामना सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ जो राजा प्रजासे दंड लेते हैं और धर्म नहीं सिखाते वे प्रजाके पापको भोगते हैं और अपने ऐश्वर्यका नाश करते हैं ॥२३॥ इसलिये हे प्रजागणो ! मेरा मंगल करनेके लिये भगवान्में चित्त लगाकर तुम अपने धर्मका पालन और अपना कर्तव्य कर्म और तुम द्वेष छोड़कर विष्णु भगवान्की भक्ति करोगे तो मैं तुम्हारा अत्यन्त उपकार मानूंगा ॥ २४ ॥ हे देवर्षि, पितृगण, देवता, ऋषि, निर्मल बुद्धिवालो! तुम भी मेरे कहनेको सराहना करो, क्योंकि धर्मके विषयमें कर्ता, शिक्षक, आज्ञा देनेवालोंको मरने उपरांत परलोकमें बराबर फल मिलता है ॥२५॥ हे पूजनीय महात्माजनो ! कोई तो ऐसे हैं, जो ईश्वरको नहीं मानते, कोई-कोई ऐसे भी हैं जो ईश्वरको मानते हैं और कोई ऐसे हैं कि न आप मानें, न दूसरेको मानने दें, इन तीनोंको विभिन्न प्रकारका फल प्राप्त होता है और यह फल सयुक्तिक भी प्रतीत होता है ॥२६॥ इस लोकमें और परलोकमें कोई तो अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य और आरोग्य देह पाता है और कोई भिखारी और रोगी दिखायी देता है, इससे विदित होता है कि कोई जगतका कर्ता ईश्वर न होता तो इसका होना कैसे होता ? मनु, उत्तानपाद, महीपति ध्रुव, प्रियव्रत राजर्षि और हमारे पिताका पिता अर्थात् दादा राजा अङ्गको जो करनेके योग्य था वह किया ॥ २७ ॥ इसी प्रकार ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, राजा बलि, धर्मकी मर्यादा बांधनेवाले ये सब श्रीभगवान् वासुदेवको अपना इष्ट देव और उत्पन्नकर्ता मानते रहे और यह कहते रहेः–

चौपाई–श्रीहरि सकल कर्मफलदाता ❋ ऐसे हि करत वेदविख्याता ।
बिन भगवत् दूजो नहिं नाथा ❋ जो त्रिभुवनको करत सनाथा ॥

इसी प्रकार और सब महात्मा लोगोंने भी कहा है कि कर्म जड़ है, यह कुछ आप फल नहीं दे सकता, इसलिये कर्मका फल देनेवाला निश्चय परमेश्वर है ॥ २८ ॥ राजा वेन परमेश्वरको नहीं मानते थे और धर्मसे विमोहित, इसलिये स्वर्ग और अपवर्गके निन्दा करने योग्य थे, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मिलनेमें सबका एकसा विचार किया जाय तो कर्म जड़ होनेसे उसका दातृत्व नहीं घटना और देवता पराधीन हैं, इसलिये देवता भी फल देने योग्य नहीं, इस प्रकार दो पुरुषोंके कर्म समान होनेपर भी उनके फलमें अन्तराय नहीं पड़ता है और किसी समय कर्म करनेसे भी उसका फल नहीं मिलता, इसलिये अपने आप सब कर्मका कर्ता-अकर्ता सर्व सामर्थ्यवान् निश्चय एक परमेश्वर ही जान पड़ता है ॥ २९ ॥ उस परमेश्वरके चरणारविन्दका स्नेह दिनरातका बढ़ा हुआ महात्मा जनोंके जन्म-जन्मके पापका नाश करता है, जैसे विष्णुके पदांगुष्ठसे निकली हुई श्रीगंगा बुद्धिके मलका नाश करती है ॥ ३० ॥ मनके सकल मल नष्ट होनेसे वैराग्यके लिये विशेष विज्ञानवाला, वीर्यवान्, जिनके चरणकमलके मूलमें जिनका वास ऐसे पुरुष क्लेशके देनेवाले संसारमें नहीं आते ॥३१॥ सब छल-कपट त्याग तुम सकल कामना सिद्ध करनेवाले चरणारविन्दको अपनी आत्माकी वृत्तियों द्वारा तन, मन, वचन, काय, गुण, अपने कर्मोंसे भजो, यह भलीभांति समझ लो कि जैसे अधिकार हैं वैसी ही अर्थकी सिद्धि होगी, क्योंकि भगवत्के पदारविन्द सब मनोरथके पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ यद्यपि विष्णु भगवान् स्वरूपसे पवित्र अनेक गुणवान और निर्गुण हैं,तो भी कर्ममार्गमें नाना प्रकारके यज्ञरूप भी वही हैं, क्योंकि यज्ञरूप सबसे पृथक् विधि है। द्रव्य, गुण, क्रिया, मंत्र, संकल्प, पदार्थशक्ति उक्तियों करके अर्थ अन्तःकरण लिंगनाम करके विशुद्ध विज्ञानस्वरूपसे प्राप्त होते हैं, परन्तु यह सब कर्म भगवत्के ही रूप हैं ॥३३॥ माया काल अन्तःकरण धर्म संग्रहमें यह शरीर चेतना प्राप्त होकर क्रिया फलके भावसे विभु भगवान् ही आनन्दरूपमें प्रकाश करते हैं, जैसे अग्नि एकरूप होनेपर भी काष्ठकी संगतसे काष्ठहीके सदृश हो जाती है, इसी प्रकार परमात्माका विचार है ॥३४॥ अहो ! यह सब मुझपर अनुग्रह करेंगे, क्योंकि यज्ञभोक्ताओंके ईश्वर श्रीभगवान् वासुदेव सब गुरुको अपने धर्मके योग्यसे पृथ्वीमें निरन्तर दृढ़व्रतधारी मेरे जन यजन करते हैं, ये धन्य हैं ॥३५॥ अब हरिभक्तिकी दृढ़ताके लिये ब्राह्मणोंकी भक्ति प्रथम करे। यह कहते हैं कि भगवान् जिनके देवता ऐसे ब्राह्मण देदीप्यमानमें राजकुलसे किसी प्रकार तिरस्कार नहीं हो सकता, महर्षि-सी सहनशीलता,तपविद्यासे कुछ नहीं होता है॥३६॥ ब्रह्मण्य देव और महत्पुरुषोंमें प्रधान पुरातन पुरुष भगवान् नित्य जिनके पादारविन्दकी वंदना करनेसे अखंडित लक्ष्मी और जगतका पवित्र करने वाला यश और सब बड़ोंमें अग्रगण्यताको प्राप्त हुए॥३७॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश जिनको अत्यन्त प्यारे हैं,उन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंमें अनुराग देखनेसे बहुत संतुष्ट होते हैं, इसलिये उन सर्वधर्मपरायणोंके कहे हुए धर्मोंमें मन लगाना और सब प्रकारसे ब्राह्मणोंके कुलकी सेवा करनी उचित है॥३८॥जिनके नित्य संबन्ध जिनकी नित्यप्रति सेवा करनेसे आपसे आप ही तत्काल हृदय शुद्ध हो जाता है और उन्हींकी सेवासे मोक्षको प्राप्त हो जाता है,उन्हींकी सेवासे मनको समता और सुख प्राप्त हो जाता है,ऐसे ब्राह्मणोंसे बढ़कर और देवताओंका मुख कौनसा है ? अर्थात् ब्राह्मण ही देवताओंके मुख हैं॥३९॥ यह निश्चय है कि तत्त्ववेत्ता अपने हाथसे श्रद्धासहित,ब्राह्मणोंको भगवान्की चैतन्यमूर्ति समझकर जिन-जिन

देवताओंके नाम ले-लेकर ब्राह्मणोंके मुखमें उत्तम-उत्तम भोजन कराते हैं उस उत्तम मिष्टान्नको अनन्त भगवान् प्रसन्न होकर भोजन करते हैं। जिसको कुछ ज्ञान नहीं ऐसा जो अचेतन अग्नि है उसमें हवन करनेसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। विप्रोंकी सेवा करनेवाले परमहंसोंको जो गति मिलती है,वह गति उनको प्राप्त होती है॥४०॥ हे आर्य पुरुषो! जो ब्राह्मण नित्य निर्मल सनातन श्रद्धा, तप, मङ्गल, मौन, संयमोंसहित समाधिसे अर्थदृष्टिके निमित्त इस वेदको धारण करते हैं; जिसमें यह संसार दर्पणके सदृश प्रकाश करता है,मङ्गल इसका नाम है ॥४१॥ उन ब्राह्मणोंकी चरणरजको समस्त आयुपर्यन्त अपने किरीटपर धारण करूं मेरा यह मनोरथ है, इसलिये इस सुन्दर रजको तुम लोग भी अपने शीशपर धारण करो, क्योंकि जो इस रजको अपने शीश पर धारण करते हैं,उनके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और सब गुण उस जीवको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ सब गुणोंके स्थान, शीलवान्, धनी, वृद्धोंके आश्रमोंकी सब सिद्धि उसका आप वर्णन करती हैं जो ब्राह्मणोंके कुलका दास है,उन ब्राह्मणोंका कुल, गौओंका कुल सब मुझपर प्रसन्न हों और जनार्दन अपने पार्षदोंसहित मुझपर प्रसन्न हों ॥४३॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि जब राजाने इस प्रकार मधुर वचन कहे, तब राजासे पितृदेव, द्विजाति, देवता महात्मा पुरुष प्रसन्न मनसे धन्यवाद देकर राजाकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥ पुत्रके सुकर्मसे पिता स्वर्गलोक जीत लेता है और यही सत्य-सत्य वेदकी वाणी है और ब्राह्मणोंके शापरूपी दण्डसे मरा हुआ पापात्मा वेन पृथ्वीके पुण्य प्रभावसे नरकसे तर गया ॥४५॥ देखो, हिरण्यकशिपु भगवत्‌की निंदा करके नरकमें जाता था, परन्तु पुत्रके प्रभावसे नरकसे बचकर स्वर्गवासी हुआ ॥ ४६ ॥ हे वीरवर्य पितः ! हे पृथ्वी नाथ ! ! भगवान् आपको दीर्घायु करे और तुम सब प्रजाका पालन करो,क्योंकि आपने त्रिभुवनके स्वामी श्री नारायणके चरणारविन्दमें दृढ़ भक्ति की है, आपके समान ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाला और दूसरा कौन है ? ॥ ४७ ॥ हे पवित्रकीर्तिवाले ! बड़े आनन्दका समय है कि तुमसे नाथ पाकर आज हम सनाथ हुए, क्योंकि हम जानते हैं कि जो श्रीमुकुन्द हमारे नाथ हैं, तुम उन परम पवित्र उत्तमश्लोक ब्रह्मण्यदेव विष्णु भगवान्‌की कथाका उपदेश कराते हो ॥ ४८ ॥ हे नाथ ! सब जीवमात्रको शिक्षा करना आपको कुछ अति अद्भुत बात नहीं है, क्योंकि दयालु महात्माओंका प्रजापर दया करनेका स्वभाव ही होता है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! हम अभागी अपने अभाग्यसे नष्टदृष्टि होकर इस संसारसागरमें पड़े भटक रहे थे, आपने अपनी वाणीरूप नौका पर चढ़ाकर आज हम अज्ञानियोंको पार उतार दिया ॥ ५० ॥ चारों वर्णमें प्रवेश करके अपने तेजसे प्रजाको और इस विश्वको धारण करनेवाले और प्रजाके हितकारी सत्त्वगुणोंकी खानि विश्वनाथ विश्वम्भरको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥

भजन

प्रभुजी तुम बिन कौन सहाई ॥
सब अपने अपने स्वारथके, कुटुंब लोग और भाई ॥ १ ॥
संपतिसे मित्राई राखत, गुण अवगुण न गनाई ।
बिपति पड़े कोई संग न लागत, छांड़त मीत मिताई ॥ २ ॥

घरकी नारी गारी भाषत, नित उठि करत लराई।
कर्मरेखको दोष न लावत, निन्दा करत पराई ॥ ३ ॥
सब विधि भक्त भयो कमलापति, यदुनायक यदुराई ॥
सिंधु अथाह बीजके बोवत, तुम बिन कौन गहाई ॥ ४ ॥
ज्यों गज अरु प्रहलाद उबारे, महिमा ध्रुवहि दिखाई।
बिपति-विदारण पतित-उधारण, तुमरो नाम कहाई ॥ ५ ॥
कीजे लाज नाम अपनेकी, संकट मेटो आई।
सूर पुकारत आरत तेरी, राखि लेहु शरणाई ॥ ६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे प्रजानामनुशासने ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा-बाइसवें अध्यायमें, हरिआज्ञा अनुसार।
ब्रह्मज्ञान वर्णन करत, पृथुसों सनत्कुमार ॥

मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार महापराक्रमवाले राजा पृथुकी सब प्रजागण स्तुति कर रहे थे, उसी समय वहां सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनि सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार राजा पृथुकी सभामें आकर उपस्थित हुए ॥ १ ॥ उन सिद्धेश्वरोंको राजा पृथु और उनके भृत्योंने अपने तेजसे लोगोंका पाप नाश करते आकाशसे उतरते देखा और अपने जीमें जान लिया कि यह तेजपुंज अघभञ्जन मुनिमनरञ्जन सनकादिक महाराज हैं ॥ २ ॥ उनके दर्शनसे गये हुए प्राण मानो फिर पीछेको लौटे, इस प्रकार सभासद और भृत्यों सहित राजा पृथु उठ खड़ा हुआ, जैसे महाउत्कंठासे जीवात्मा गन्धादिक विषयोंके संमुख जाता है ॥ ३ ॥ फिर विनती कर शिर नवाय राजा पृथुने गौरवके वशीभूत हो उन ऋषियोंको कनकासन अर्घ्यादि देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा और आदर-संमान किया ॥ ४ ॥ और उनके चरणारविंदको धोकर वह चरणोदक अपने शिर पर सींचा, उस शीलसिंधु नृपतिका यह कृत्य शीलवानोंका अत्यन्त आदर-सत्कार करनेवाला था ॥ ५ ॥ कंचनके सिंहासनपर बैठे ऐसे शोभायमान दृष्टि आते थे जैसे वेदीके बीचमें अग्नि प्रज्वलित होती है। नीतिसहित दोनों हाथ जोड़कर उन शिवजीके ज्येष्ठ भ्राता सनकादिकोंसे राजाने श्रद्धा-संयमसंयुक्त प्रसन्न होकर प्रार्थना की ॥ ६ ॥ पृथु बोले कि हे मङ्गलायनो ! अहो ! मैंने ऐसा क्या सुकर्म किया है, जो मुझको आपका दर्शन हुआ ? क्योंकि योगीजनोंको भी आपका दर्शन महाकठिन है ॥ ७ ॥ उसको इस लोकमें और परलोकमें कौनसी बात दुर्लभ है जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न हैं और जिनपर ब्राह्मणोंकी दयादृष्टि है उनपर महादेव और भगवान् पार्षदों सहित सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ८ ॥ यद्यपि आप त्रिभुवनमें पर्यटन करते हैं और आपको कोई नहीं देख सकता, संसारके वशीभूत बुद्धिवाले जैसे सर्वव्यापक परमात्माको नहीं देख सकते ॥ ९ ॥ वह निर्धन साधु गृहस्थ भी धन्य हैं, जिनके घरमें पूज्योंमें श्रेष्ठ लोग जल, तृण, भूमिसे आदर-सत्कार पाते हैं, उनको परम श्रेष्ठ और भाग्यवान् जानना चाहिये ॥ १० ॥ जिनके घर तीर्थपादीय श्रीवैष्णवोंके पादतीर्थसे वर्ज्जित है, वे सर्व धनधान्यसे

परिपूर्ण हों तो भी सांपोंके बिलके समान हैं और घरके वासी वृक्षवत हैं अर्थात् उनकी सम्पदा किसी कामकी नहीं ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन व्रतोंको मुमुक्षुलोग श्रद्धासे धैर्य धरकर करते हैं वह नियम आपने बाल अवस्थासे किये हैं, आपका शुभागमन हमको बहुत अच्छा हुआ ॥ १२ ॥ हे समर्थो ! हम लोग विषयोंको ही स्वार्थ मानते हैं और अपने कर्म करके अनेक व्यसनवाले संसारमें हमसे पतित भी सकुशल हैं ॥ १३ ॥ आप सरीखे आत्माराम महात्मा पुरुषोंसे कुशल पूछना उचित नहीं, क्योंकि आप तो जगत्को कुशल-दायक हो और भगवान्के प्रेममें मग्न रहते हो, आपके तो कुशल और अकुशल यह सब चित्तकी वृत्ति है ॥ १४ ॥ आप तपस्वी पुरुषोंके मित्र हो, इसलिये आपकी प्रतीत करके मैं आपसे पूछता हूं, कि इस संसारमें विना परिश्रम किये क्षेम किस प्रकारसे होता है ॥ १५ ॥ निश्चय है कि अज्ञानियोंकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले आप साक्षात् भगवत्के स्वरूप हो और आपने अपना अजन्मसिद्ध रूप जो धारण किया है और पृथ्वीपर पर्यटन करते हो, यह अपने दासोंपर अनुग्रह करनेका कारण है ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पृथुकी सुन्दर सारभरी मधुरवाणी सुनकर, प्रीतिसे मंद-मंद मुसकाकर सनत्कुमारोंने कहा ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाराज पृथो ! आप कौनसी बात नहीं जानते; क्योंकि सब जीवमात्रका हित करके आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया । हम आपकी प्रसंशा नहीं कर सकते, महात्मा पुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही परोपकारिणी होती है ॥ १८ ॥ निश्चय है कि साधु लोगोंका सत्संग दोनोंके लिये सुखदायक है, क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर द्वारा ज्ञानवैराग्यसे परिपूर्ण कल्याणका विस्तार होता है ॥ १९ ॥ ! हे राजन् ! आपने अपने मोक्षका साधन तो ठीक-ठीक बना ही रखा है, क्योंकि मधुनामक दैत्यके मारनेवाले मधुसूदन भगवान्के पद-पंकजके गुणानुवादमें अलौकिक प्रीति आपकी है, यही मोक्षका मुख्य साधन है और यही अत्यन्त कठिन है वह आपने भली प्रकार साध ही रखा है। जिस भगवत्के चरणारविन्दकी रतिसे नैष्ठिकी मति आत्माके भीतर कोमल काम वासनाओंका कषायरूप मल नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥ मनुष्योंके मंगलके लिये शास्त्रोंमें भली प्रकार विचार कर यही साधन सिद्ध किया है, किसीके संग नहीं अर्थात् सबसे पृथक् व्यापक आत्मा, निर्धन ब्रह्ममें अच्छी पूर्ण प्रीति होनी यह सब सिद्धान्तोंका सिद्धांत है ॥ २१ ॥ और प्रीति होनेका मुख्य साधन भी यही है, कि श्रद्धा करना, भगवद्धर्म का आचरण करना, परमात्माके जाननेकी इच्छा करना, आत्मविद्या-योगमें निष्ठा रखना, योगेश्वरोंकी उपासना करना, सदा पुण्ययशवाले श्रीमन्नारायणकी पुण्य-रूप कथा नित्य प्रसन्न होकर सुनना ॥ २२ ॥ धन, इन्द्रिय, बाग गोष्ठी इनमें तृष्णा न करना, इनके संमत जो कामादिक उनका संग्रह न करना, एकान्तमें भगवान्के अनुसंधानमें रुचि रखकर अतिसंतुष्ट रहना, श्रीहरिके गुणरूप अमृत को पान करके अपनी आत्माको प्रसन्न रखना ॥ २३ ॥ जीवमात्रकी हिंसा न करना, परमहंसोंकी नाईं सदा मग्न रहना, श्रीमुकुन्द आनंदकन्दके चरितामृतका प्रेमसे पान करना, कामवासना त्यागकर यम-नियम धारण करना, हानिमें किसीके अनुचित कर्म देखकर भी निन्दा न करना, किसी वस्तुमें चेष्टा न करना, लाभ हानिमें हर्ष-विषाद न करना, दुःख–सुखको समान समझना, शीत-उष्ण सदा सहना ॥ २४ ॥ श्रीनारायणके भक्तोंके वारंवार कार्य पूर्ण करनेवाले भगवान्के गुण-नामोच्चारण करना, अर्थात् प्रातःकाल महाभारत, मध्याह्नकालमें रामायण और सन्ध्याकालमें

श्रीमद्भागवतका श्रवण करना, इस प्रकार अपना सब समय व्यतीत करना और अत्यन्त भक्तिमें मन लगाना, सत्-असत्में संग न करना, इस प्रकार साधन करनेसे सम्पूर्ण कार्यकारणरूप पदार्थसे प्रबल भक्ति और वैराग्य उत्पन्न होता है और अनात्मा निर्गुण ब्रह्ममें अनायास प्रीति होती है ॥ २५ ॥ जब ब्रह्ममें अत्यन्त निष्ठाकी बुद्धि होती है, तब विज्ञानकी अग्नि हृदयमें ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे बढ़ती है,वह ज्ञान विना आचार्य और गुरुजनोंके प्राप्त नहीं हो सकता, उसके प्रतापसे महापंचभूतात्मक जीवके रहनेका कोश हृदयकी अविद्या आदि पंचक्लेशरूप लिंग शरीरका अंकुर पीछे उत्पन्न न हो जाय वह ज्ञानाग्नि सब वासनाओंको भस्म कर देती है, जैसे बढ़ी हुई दावानल काष्ठको भस्म कर देती है, फिर अहंकारका वीर्य उत्पन्न नहीं होता ॥२६॥ जब अंतःकरण दग्ध हो गया, तब सब विध गुणोंसे मुक्त आत्माको बाहर-भीतर कुछ अंतर नहीं जान पड़ता, उसके कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं, फिर परमात्मा जीवात्माका भेद जो कि पहले रहता है वह सब निवृत्त हो जाता है, फिर वह प्राणी जैसे स्वप्न अवस्थाके भावको स्वप्न व्यतीत हुए पर नहीं देखता इसी प्रकार अपने स्वरूपसे संसारके घटादिक पदार्थोंको और अंतःकरणके दुःखसुखोंको भी नहीं देखता ॥२७॥ आत्मा इन्द्रियोंके अर्थ जीव ईश्वरमें भेद अंतःकरणरूप उपाधि होनेसे पुरुषको प्रतीत होता है और किसी प्रकारसे नहीं, क्योंकि जाग्रत् और स्वप्नमें अंतःकरणकी उपाधि होनेसे आप देखनेवाला और देखनेकी वस्तु और उनका मेलकर्ता, अहंकार दृष्टिमें आता है, परंतु सुषुप्तिमें हृदयकी उपाधि न होनेसे कुछ भी देखनेमें नहीं आता ॥२८॥ यहां साक्षीके लिये दृष्टान्त है, यह सब संसार जल अथवा दर्पण आदि निमित्त होनेसे पुरुष आपमें और अपने प्रतिबिम्बमें भेद समझता है और कहता है कि एक मैं हूँ और दूसरा प्रतिबिम्ब है, परंतु जब जल और दर्पण नहीं रहता तो फिर एक ही दृष्टि आता है, दूसरा नहीं दिखायी देता, ऐसे ही जीवका और ईश्वरका भेद है और किसी प्रकार नहीं ॥ २९ ॥ विषयोंकी ओर ध्यान करनेवाले प्राणियोंकी इन्द्रियोंको विषय अपनी ओर खींच लेता है और इन्द्रियां मनको खींच-खांचकर अपने वशीभूत कर लेती हैं और मन बुद्धिकी विचार चेतनाको हर लेता है; जैसे सरोवरके तटपर विशीर्ण मूलका वृक्ष वह अपने मूलद्वारा नीचे ही नीचे नीरको खींच लेता है इसी प्रकार समझ लेना, परंतु वह गुप्त भेद अज्ञानी पुरुषोंके ज्ञानमें नहीं आता इसी प्रकार इन्द्रियोंकी खिंचावट अज्ञानी लोगोंके ध्यानमें नहीं आतीः—

दोहा—नशे ज्ञान हरिकी सुरति, भूल जात तत्काल।
हरिके मिलनेमें नृपति, यह अवरोध कराल ॥३०॥

बुद्धिकी चेतनाके अचेत होनेसे सब अगली-पिछली वारंवारकी स्मृति नष्ट हो जाती है और स्मृतिके नाश होनेसे चित्त ज्ञान दोनों भ्रंश हो जाते हैं, उनके रोकनेको महात्मा पुरुष आत्माका वश करना कहते हैं ॥ ३१ ॥ इससे अधिक पुरुषको और कोई भी अपने स्वार्थका नाश नहीं है, क्योंकि जिस परमात्माको तजकर विषयको प्रिय समझा है, यह सब अपनी ही आत्माकी हानि करनी है ॥ ३२ ॥ अर्थ और इन्द्रियोंका ध्यान करना और रात-दिन विषय वासनाका विचार रखना, यही पुरुषके सब पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है, क्योंकि यह तृष्णा और विषयवासना शास्त्र जन्य ज्ञान और स्वरूपानुभव दोनोंका नाश कर देती है और इनका विनाश होनेसे जीव स्थावर संज्ञाको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष इस

गूढ़ अन्धकार नरकसे पार होनेकी इच्छा करे, वह पुरुष कभी विषयवासनाओंका संग न करे, क्योंकि यह विषयवासना अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थोंकी अत्यन्त क्षतिकारक है ॥ ३४ ॥ इन चारों पदार्थोंमें मोक्ष ही प्रधान समझा जाता है, क्योंकि अर्थ, धर्म और काममें सदा कालका भय बना रहता है, परन्तु मोक्षमें किसी प्रकारका भय नहीं ॥ ३५ ॥ जगत्‌में ब्रह्मा शिवादिक जो आपसे उत्पन्न हुए उन सबके अस्मदादिक जो भाव हैं, वे गुणोंके उलट-पुलट होनेसे ईश्वरसे सबके आशीर्वादोंका विध्वंस हो जाता है इसलिये यथार्थ सुख किसीको प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे नरेन्द्र ! जगत्‌के स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहंकारसे आवृत जो क्षेत्र जीव है, उनके अन्तर्यामी हृदयमें सब प्रकारसे प्रकाशमान हो प्रत्यक्ष तथा देश, काल तथा वस्तुके प्रमाणसे रहित हो प्रकाशते हैं और अंतर्वृत्तिसे जो ज्ञात भी होते हैं, वह आदिरूप अविनाशी चिदानन्द भगवान् मैं ही हूं इस प्रकार समझते हैं ॥ ३७ ॥ मायाका विवेक जिसमें नहीं है उसमें यह विश्व सत्-असत् भावसे प्रकाश करता है, जैसे मालामें सर्पके समान मायारूप भासता है, ऐसे जानो, वह परमात्मा जो नित्यमुक्त, शुद्ध, चैतन्य, ज्ञानस्वरूप सब ओरसे जाना गया, तब कर्मोंसे मलिन प्रवृत्ति जिससे दूर हो गयी है, उन परमेश्वरकी शरणमें मैं हूँ ॥ ३८ ॥ तिनके चरणारविन्दकी पल्लवरूप उँगलियोंकी सुन्दरताकी भक्ति करके बड़े-बड़े सज्जन पुरुष कर्म आशयरूप हृदयकी ग्रंथियोंको साधुजन दूर करते हैं, ऐसे ही विषयोंकी ओर जाती हुई अपनी इंद्रियोंको रोककर यतीलोग वासुदेव भगवान्‌का भजन करते हैं, परन्तु—

दोहा—सन्यासी योगी यती, विज्ञानी व्रतवान ।
प्रेमकी समता कबहुँ, लहै न भूप सुजान ॥
तातें प्रीतिसहित सदा, भजिये नंदकुमार ।
भक्तिप्रेम बाढ़े अधिक, लहै पदारथ चार ॥ ३९ ॥

इस दुस्तर महासागर संसारमें छः इन्द्रियरूप मगर जिसमें सदा वास करते हैं ऐसे महागम्भीर संसाररूप समुद्रको जो योगादिक साधनोंसे हरिनामरूपी नाव विना पार उतरनेकी चेष्टा करते हैं, उन मनुष्योंको अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है, इसलिये आप तो सब बाधाको त्याग, भगवान्‌के भजन करने योग्य चरणकमलरूप नाव बनाकर इस दुस्तर कष्टरूप संसार-सागर से पार होओ ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारको इस प्रकार सुंदर आत्मज्ञानका मार्ग दिखाया, तब राजा पृथु सनत्कुमारकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥४१॥ राजा बोले कि हे भगवन्! आर्तरक्षक हरिने प्रथम ही मुझपर अनुग्रह किया था उसके सिद्ध करनेके लिये हे ब्रह्मन् ! आप लोग यहां आये॥४२॥और आप दयालु धर्मवेत्ताओंने दया करके मेरा सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया, यह राज्य और मेरा देहादिक जो है, सब साधु लोगोंका ही उच्छिष्ट है। हे नाथ!गुरुदक्षिणामें मैं अब क्या दूँ?॥४३॥ हे ब्रह्मन्! प्राण,स्त्री,पुत्र, गृह, सब परिवार, राज्य, सेना, धरणी, भण्डार यह सब साधु लोगोंका ही है, इसी लिये मेरा

१. शंका—ऐसा हमने शास्त्रोंमें सुना है, कि सनकादिक मुनियोंने न तो किसीकी स्तुति की है और न किसीकी निन्दा की है। सब देहोंमें भगवान्‌का रूप देखते हैं, फिर राजा पृथुकी प्रशंसा क्यों की।

उत्तर—सनकादिक मुनि नित्यप्रति भगवान्‌की स्तुति करते हैं तथा पृथु भी भगवान्‌के अंश हैं इस लिये सनकादिक मुनियोंने पृथुकी प्रशंसा की तो अयोग्य नहीं अर्थात् योग्य ही है॥

इनपर कुछ अधिकार नहीं है, अब मैं दक्षिणामें इनको कैसे दे सकता हूँ यह तो सब आपका ही है, जैसे दास स्वामीकी ही वस्तु स्वामीको देता है, इसी प्रकार आपका सर्वस्व आपको ही समर्पण करता हूँ ॥ ४४ ॥ सैनापत्य, राज्य, दंड, न्याय और सबको प्राप्त करना, सब लोकोंका स्वामित्व और वेदशास्त्राज्ञाका धारण करना, यह सब ब्राह्मणलोगोंके ही अधिकारके योग्य हैं ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपने ही पदार्थको आप भोगते हैं, अपनी ही वस्तुको आप धारण करते हैं और अपना ही द्रव्य आप लेते हैं और ब्राह्मणोंके ही चरणारविन्दके अनुग्रहसे क्षत्रियादिक विप्रोंके दिये हुए अन्नको नवीन-नवीन प्रकारसे भोग लगाते हैं ॥ ४६ ॥ निगमागम और ब्रह्मविद्यामें कुशल वेदके जाननेवाले आपने जो मुझको अध्यात्मज्ञानका उपदेश किया और हरिके मिलनेका मार्ग दर्शाया, उस उपकारका प्रत्युपकार केवल विनय करनेके अतिरिक्त और कुछ मैं नहीं कर सकता हूँ ? और गुरुजनोंमें कोई किसी उपायसे उऋण नहीं हो सकता और जो उऋण होना चाहे वह सब प्रकारसे शठ और अज्ञानी है, इसलिये हे महादयालो ! आप ही अपने किये हुए उपकारसे मुझपर दया करो ॥४७॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि जब इस-प्रकार उन मुनियोंका राजा पृथुने अत्यन्त आदर-सम्मान किया, तब वह आत्मयोगके अधिपति आदिराज श्रीपृथुराजाके शीलस्वभावकी वारंवार सराहना करते हुए सनकादिक सब मनुष्योंके देखते-देखते आकाशमार्ग होकर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ४८ ॥ पृथुमहाराज महात्मा पुरुषोंमें श्रेष्ठ अध्यात्मविद्यामें स्थित होकर सब कामके सदृश पूर्ण आत्माको कृतार्थता मानता हुआ वह राजा कैसा प्रतापवान् था कि-

दोहा—धर्मधुरंधर धरधुरा, धरणि धर्मकी धाक ।
धरी धुरीणनको अधिप, पृथु धरेन्द्र ध्रुवसाक ॥ ४९ ॥

उस राजा पृथुने देश, काल, धन, बल और योग्यताके अनुसार जो-जो उचित कर्म थे उसी रीतिसे करके ब्रह्मको साक्षात् मानने लगा ॥ ५० ॥ और कर्मोंका फल ब्रह्ममें समर्पण करके कर्मोंकी आसक्तिको त्याग, सावधान होकर,सब कर्मोंका अध्यक्ष आत्माको प्रकृति से परे मान करके राजा पृथु अपने नगरमें राज्य करता रहा ॥ ५१ ॥ यद्यपि वह राजा पृथु घरमें वास करता था और सब पृथ्वीका चक्रवर्ती राज्य था और लक्ष्मीसे सर्वत्र भवन परिपूर्ण था, परन्तु तो भी इंद्रियोंके अर्थमें आसक्त न हुआ और अहंकारको त्याग सूर्यके समान दूसरे ही अपने प्रतापके तेजसे संसारके अंधकारको दूर करता रहा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ब्रह्मज्ञानसे कर्मोंको करने लगा, तब उस राजा पृथुने आर्चिनाम स्त्रीमें अपने समान पांच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५३ ॥ विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण, वृक, सब लोकपालोंके गुणोंको राजा पृथु अकेला धारण करता था,जैसा-जैसा समय आता था राजा पृथु उसी प्रकार सृष्टिकी रक्षा करता था और जगत् सृष्टिकी रक्षाके लिये भगवान्के अवताररूप राजा पृथु अपने मन, वाणी और शीलस्वभावकी वृत्तियोंसे सुन्दर गुण करके प्रजाओंका मनोरञ्जन करता था ॥ ५४ ॥ सोमराजके समान आप पृथु नाम धारी राजा हुए, जैसे सूर्य आठ महीने-तक पृथ्वीका जल सोखता रहता है और चार महीनोंमें सब त्याग देता है, इसी भांति यह राजा पृथु भी अपने समय पर द्रव्य प्रजासे लेता था और उनकी आवश्यकताके समय उनको दे देता था ॥५५॥ पावकके सदृश दुर्धर्ष तेजस्वी और महेन्द्रके समान दुर्जय, क्षमामें क्षितिकी नाईं और स्वर्गके समान मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला था ॥५६॥

जैसे घन वर्षा करके सब संसारके जीवोंका मनोरथ पूर्ण करता है, इसी प्रकार राजा पृथु सबको मनोवांछित वस्तु दे देकर सन्तुष्ट करता था। वह समुद्रके समान अगाध बुद्धिवाला और पराक्रममें सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल और धैर्यवान् था ॥ ५७ ॥ शिक्षामें धर्मराजकी नाईं, आश्चर्य कर्म करनेवालोंमें हिमाचलके समान; धनमें कुबेरके सदृश और अर्थ गुप्त रखनेमें वरुणके समान था ॥५८॥ बल, विक्रम और वेगमें पवनवत् पृथ्वीपर भ्रमण करता था और दुःसहमें भगवान् भूतनाथ रुद्रके समान शत्रुओंको देखता था ॥ ५९ ॥ स्वरूपमें कामदेवके समान, मनस्वितामें मृगराजके समान, मनुष्योंपर स्नेह रखनेमें मनुके समान और प्रभुतामें भगवान् ब्रह्माजीके सदृश ॥ ६० ॥ वेदवादियोंमें सुरगुरुके समान, स्वाधीनता और आत्मज्ञानियोंमें साक्षात् श्रीविष्णु भगवान्के समान, गौ, ब्राह्मण, गुरु और हरिभक्तोंकी भक्ति करनेमें मानो लज्जा, विनय, सुशीलता और परोपकारमें सदा अपने आत्माके समान था ॥ ६१ ॥ कीर्तिवान् पुरुष जहां-जहां त्रिभुवनमें उच्चस्वरसे पृथुराजाका यश गाया करते थे, इसलिये उसका सुयश रामचन्द्रके यशके समान सुरसुन्दरी मधुरवाणीसे वारंवार इस भजनको गाती थीं ॥ ६२ ॥

भजन

धन धन धन पृथुराज पृथ्वीपति, संतनके सुखदायक हो जी।
याचक किये अयाचक तुमने, गोद्विज साधुसहायक हो जी ॥
पुत्र समान प्रजा सब पाली, राजनमें नृपनायक हो जी।
सकल देवता करत प्रशंसा, हे प्रभु! तुम सब लायक हो जी।
महिमा अपरम्पार तुम्हारी, गुणियोंके गुणनायक हो जी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

दोहा—तेइसवें अध्यायमें, जग तज पृथु महिपाल।
नारि सहित आनंदसे, गयेउ स्वर्ग तत्काल ॥

मैत्रेयजी बोले कि एक समय आत्मज्ञानी राजा पृथुने अपनी आत्माको वृद्ध देखा, जिसमें अपनी आत्मासे संसारके पदार्थ बढ़ाये सो प्रजापति हुए ॥१॥ स्थावर, जंगम, जगत्के सब जीवोंकी जीविकाके दाता, महात्मापुरुषोंके धर्मधारी, जितेंद्रिय राजा पृथुने जिस कार्यके लिये पृथ्वीपर जन्म लिया था, परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार वह सब कार्य सिद्ध किये ॥ २ ॥ विरहसे रुदन करती हुई पृथ्वीको अपने पुत्रोंको सौंप कर, प्रजामें जिसका मन नहीं, वह राजा पृथु अपनी स्त्रीको साथ लेकर तप करनेके लिये तपोवनको चल दिया ॥ ३ ॥ वहां भी दृढ़तासे नियमोंको धारण करके वैखानस आश्रममें सम्मत हो वानप्रस्थमार्गमें मन लगाकर उग्र तप करना आरम्भ किया, जैसे पहले धरामण्डलके विजय करनेमें बड़ा परिश्रम किया था, वैसे ही वानप्रस्थ पुरुषोंके परममान्य तप करनेमें प्रयत्न किया ॥ ४ ॥ कभी तो कंद, मूल, फलआहार करके दिन व्यतीत करते हैं, कभी सूखे हुए पत्तोंका भोजन करते हैं, कितने एक पक्ष जल ही पी-पीकर रहे, फिर पीछे पवनका भक्षण करने लगे ॥५॥ वीर मुनि ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तापते रहे और चातुर्मासकी वर्षाका जल अपने शिरपर सहते रहे

शीतकालमें कण्ठपर्यंत जलमें खड़े रहते थे और सदा पृथ्वीपर सोते थे ॥ ६ ॥ उस सहनशीलने प्रथम वाणी जीती, फिर इन्द्रियोंको जीत ऊपरको वीर्य चढ़ाया फिर पवनको जीतकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी उपासनाके अर्थ अति उत्तम तप करने लगा ॥७॥ धीरे-धीरे तपकी शक्ति अधिक होनेसे कर्म नष्ट हो जानेसे राजाका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और प्राणायामके प्रभावसे छः इंद्रियाँ वश में हो गयीं और सब बन्धन छूट गये ॥८॥ सनत्कुमार भगवान्‌ने जो परम आध्यात्मिक ज्ञानकी शिक्षा की थी,उसी योगमार्गसे परमपुरुष परमेश्वरका वह पुरुष श्रेष्ठ राजा पृथु भजन करने लगा ॥ ९ ॥ भगवद्धर्मी साधु श्रद्धाके यत्न करनेसे उस महात्मा राजा पृथुकी भगवान् ब्रह्ममें एक ईश्वरकी निष्ठावाली अनन्य भक्ति हो गयी ॥ १० ॥ सब कर्म शुद्धसत्त्वात्मा उन भगवान्‌की वारंवार संस्मरणरूप अनुभूतिसे राजाको विरक्त ज्ञान हुआ, उस तीक्ष्णज्ञानके प्रभावसे उसने संदेहके स्थानको तोड़कर निज जीवकोशकी ग्रंथियोंको काट दिया ॥ ११ ॥ सब बंधन छिन्न हो जानेसे निज स्वरूपको प्राप्त हुआ और आत्मा गतिचेष्टाको त्यागकर धीरे-धीरे सब वासनाको त्याग दिया, फिर ब्रह्मज्ञान उदय करके इस शरीको त्यागते हुए, परन्तु जबतक योगगतियोंमें प्रमत्त नहीं होता तबतक योगीकी सिद्धियोंमें रूपके आसक्त होनेकी भूल हुआ करती है इसलिये राजा पृथुका हरि भक्तिमें अनुराग होनेसे सिद्धियोंकी ओर चित्त चलायमान न हुआ ॥१२॥ इस प्रकार उस वीरोत्तमवीर पृथुने आत्मामें मन लगाकर साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो दृढ़ समय पाकर अपने कलेवरको त्याग दिया और ब्रह्मोपासनाको आरंभ किया ॥ १३ ॥ पांवकी एडीसे गुदाको दाबकर मूल आधारसे शनैः-शनैः पवनको रोककर नाभि कोठोंमें स्थित किया, वहांसे हृदयमें फिर उरः स्थानमें, फिर कण्ठमें फिर शिरमें चढ़ाते हुए ॥ १४ ॥ सबसे इच्छा छोड़ अनुक्रमसे इस वायुको ब्रह्मरंध्रमें पहुँचाया। वायुको वायुमें और शरीरके पार्थिव भागको पृथ्वीमें और तेजके भागको तेजमें मिला दिया॥१५॥ आकाशको आकाशमें और जलका अंश जलमें इस रीतिसे अपने-अपने विभागसे पांचों तत्त्वोंको पांचों तत्त्वोंमें मिला दिया। फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें ॥ १६ ॥ मनको इंद्रियोंमें और इंद्रियोंको इंद्रियोंकी मात्रामें जो जिससे उत्पन्न हुआ था उसको उसीमें मिला दिया फिर आकाशको तामस और अहंकारमें लीनकर, अहंकारको महत्तत्त्वमें मिला दिया ॥१७॥ और सब कार्योंके निवासरूप महत्तत्त्वोंको प्रकृतिमें मिला लिया, उस प्रकृतिको जीवमें धारण किया और जीवको आत्मामें लगाया और आत्माको परमात्मामें लगाकर॥१८॥ फिर ज्ञान और वैराग्य वीर्यसे परब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर कैवल्य मुक्तिको राजा पृथु प्राप्त हुए। जब समर्थ हो जाता है तब प्रसन्न आत्मा जीव वैकुण्ठको जाता है॥१९॥ अर्चिनाम उनकी महारानी जो कि अतिसुकुमारी, छबिकी खानि, जिसने कभी चरण पृथ्वीपर नहीं धरा था वह अपने पतिके पीछे चली गयी थी ॥२०॥ और जिस-जिस रीतिसे राजा पृथु जिस धर्मका अनुष्ठान करते थे उसीका अनुष्ठान यह भी करती थीं और ऋषियोंकीसी वृत्ति करके कन्द, मूल, फल आदि खाकर अपने स्वामीकी सेवा करती थीं और सेवाके परिश्रमसे उनका शरीर भी बहुत दुर्बल हो गया था, परन्तु तो भी उस पीड़ाको वह नहीं मानती थीं, क्योंकि अपने प्यारे पतिके कर-स्पर्श और मान मिलनेके सुखसे उस क्लेशको किंचिन्मात्र भी नहीं समझती थीं ॥२१॥ जब सब चेष्टा जाती रही, तब अपने प्यारे पृथ्वीके पतिका मृतक शरीर देखकर उस सतीने

कुछेक विलाप किया और दुःखित होकर नेत्रोंसे नीर बहाया, फिर मनमें धैर्य धारण कर पर्वतके निकटवर्ती भूमिमें ईंधन इकट्ठा कर, चिता बनाकर उसमें अपने स्वामीकी देहको धरा ॥ २२ ॥ और फिर उसने आप भी नदीमें स्नान कर चिताके समीप आकर मृतक संस्कार सब करके उदार कर्म करनेवाले अपने भर्ताको जलांजली देकर, आकाशमें देखनेको जो देवता आये थे, उनको नमस्कार कर, अग्निकी तीन परिक्रमा दे, अपने पतिके पादारविन्दका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ अपने भर्ता वीरवर राजा पृथुके पीछे उस महाराजेश्वरी पतिव्रता अर्चिको सती हुई देख वरदान देनेके लिये सहस्रों देवांगनायें देवताओंको संग लिये उसकी स्तुति करती थीं ॥ २४ ॥ उस मन्दराचल पर्वतकी चोटीपर पुष्पोंकी वर्षा कर करके देवांगना और देवता आकाशमें दुंदुभी बजा-बजाकर परस्पर उसकी प्रशंसा करते थे ॥२५॥ देवांगना बोलीं, अहो ! यह पृथुपत्नी संसारमें बड़ी भाग्यवती और पतिव्रता है; इसके शीलकी प्रशंसा हम नहीं कर सकतीं, क्योंकि श्रीलक्ष्मीजी जैसे यज्ञपुरुष नारायणकी सेवा करती हैं ऐसे ही इस भाग्यशीलाने सब प्रकार अपने स्वामीका सेवन किया है ॥ २६ ॥ यह सती निश्चय करके महाराज पृथुके पीछे-पीछे जाती है, देखो ! बिचारमें नहीं आ सकता, ऐसे अचिन्त्य कर्मके प्रतापसे अस्मदादिकोंको उल्लंघन करके अपने पतिके सङ्ग वैकुण्ठको जाती है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इस संसारमें चञ्चल आयुको पाकर भगवत्पदके देनेवाले आत्मज्ञानका साधन करे, हम विचारपूर्वक कहते हैं कि, उन पुरुषोंको कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है ॥२८॥ महाकष्टसे इस मुक्तिदायक मनुष्य देहको पाकर जो पुरुष विषयोंके वशीभूत हो जाता है, उसको आत्मद्रोही और ठगा हुआ जानना चाहिये ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि देवताओंकी स्त्रियाँ इस प्रकार स्तुति कर रही थीं, उस समय आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवद्भक्त पृथु राजाने जिस लोकमें गमन किया था, उसी लोकमें अर्चिमाताने भी गमन किया ॥ ३० ॥ महाप्रतापी राजा पृथुका ऐसा पराक्रम था। वह उस अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्रवाले पुण्यात्माका चरित्र जैसा था वैसा हमने आपसे वर्णन किया ॥३१॥ जो मनुष्य सावधान होकर इस महापुण्यरूप चरित्रको एकाग्रचित्त हो श्रद्धासहित पाठ करे और सुने अथवा औरको सुनाये वह पृथुकी पदवीको पायेगा ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण तो ब्रह्मतेजस्वी होगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति होगा, वैश्य जो पाठ करेगा तो समृद्धिवान् होगा और शूद्र सुने तो शुद्ध हो जायगा ॥३३॥ जो नर-नारी इस चरित्रको आदर सहित तीन बार सुने तो अपुत्रको पुत्र प्राप्त होगा और निर्धनको धन प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ अकीर्तिमान्की कीर्ति अधिक होगी, मूर्ख चतुर होगा, यह उत्तम चरित्र पुरुषोंको परम मङ्गलदायक और अमङ्गलका नाश करनेवाला है ॥३५॥ यह चरित्र धन, यश, आयुका बढ़ानेवाला और परमधामको पहुंचानेवाला है और कलिमलका नाशक है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको सिद्धिदायक है ॥३६॥ और उनको

---

१. शंका—श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा था कि, राजा पृथुने ब्रह्ममें लीन होकर अपने शरीरको त्याग किया। क्योंकि ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीको अग्निसंस्कार नहीं लिखा है और ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणियोंकी दाह-क्रिया हम लोगोंने आजतक कहीं नहीं सुनी ?

उत्तर—आपका कहना बहुत सत्य है। ब्रह्ममें लीन होनेवाले प्राणीका दाह होना नहीं लिखा, परन्तु पतिव्रता स्त्रीको अपने पतिके साथ जलना लिखा है, पृथुकी स्त्री पतिव्रता थी। पृथुकी देहके संग अपनी इच्छा से अपने प्यारे पतिकी प्रीतिसे अपने पतिकी देहको जलाकर उसी पतिकी देहके साथ आप भी जलकर पतिलोकको चली गयी। इसलिये राजा पृथु ब्रह्ममें लीन हो गये, परन्तु स्त्री अपने पतिमें लीन होने लिये पतिकी देहको चितामें धरकर उसके संग आप जलकर भस्म हो गयी।

उचित है कि इस उदार चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनें, क्योंकि इन चारों पदार्थोंका यह चरित्र मुख्यकारण है, परमेश्वरके परमधामका प्राप्त करानेवाला और मोक्षदायक है ॥ ३७ ॥ जो राजा दिग्विजय करनेके लिये निकले उसको उचित है कि चलते समय इस उत्तम चरित्रको घरसे सुनकर चले, क्योंकि जिन-जिन राजाओंके देशमें वह जायगा, वह जैसे राजा पृथुको भेंट देते थे ॥ ३८ ॥ उसी प्रकार उस राजाके आगे भेंट रखकर उसकी प्रार्थना करेंगे इसलिये ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि सर्वसंग त्याग केवल भगवत्में निष्प्रयोजन भक्ति रखकर यह राजा पृथुका पावन पवित्र पुराणरूप चरित्र सुनें सुनायें और प्रेमसहित पढ़ें ॥ ३९ ॥ हे विचित्रवीर्यके पुत्र विदुर! महामाहात्म्यका सूचक यह आख्यान हमने तुमसे कहा, जो पुरुष इसको मन लगाकर सुनेगा वह राजा पृथु की गतिको प्राप्त होगा ॥ ४० ॥ प्रतिदिन जो मनुष्य इस चरित्रको आदरसहित सुने अथवा सुनाये वह श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द जिनके चरणारविन्द भवसागरसे पार उतारनेको नौकारूप हैं, उनकी उत्तम गतिसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ "सो विना भगवत् भजन नहीं" इस वार्तापर एक भजन है—

भजन

(राग खंमाच तिताला)

याते सब तज भज हरिनाम ॥
बिन हरिभजन त्रिलोकीमाहीं, किन पायो विश्राम ॥ १ ॥
शिव विरंचि नारद जाको यश, गावत आठों याम ।
सो त्रिभुवननायक सुखदायक, जनपालकघनश्याम ॥ २ ॥
पतित उबारन भवभयटारन, नाम एक श्रीराम ।
शालिगराम नाम ही निर्मल, भक्तिमुक्तिको धाम ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा—भये बर्हि प्राचीनके, पृथु परपौत्र सुजान ।
तिनके परचेता भये, रुद्र गीत कियो गान ॥

मैत्रेयजी बोले कि, वनगमनके पश्चात् महा यशस्वी राजा पृथुका पुत्र विजिताश्व महाराजा हुआ। उसने अपने छोटे भाइयोंपर अत्यन्त स्नेह करके सब दिशाओंका राज्य उनको दिया ॥ १ ॥ हर्यक्षको पूर्वकी ओरका, धूम्रकेशको दक्षिणकी ओरका, वृकसंज्ञकको पश्चिमकी ओरका और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥ राजा पृथुने जब अश्वमेध यज्ञ किया था, तो इंद्रने यज्ञका घोड़ा चुराकर ले गया था, उस घोड़ेको यह इंद्रके पाससे ले आया था, तब इंद्रने इसको अन्तर्धान होनेकी विद्या सिखा दी थी, तबसे इसका नाम लोग अन्तर्धानी कहने लगे थे। फिर शिखंडिनी नाम स्त्रीमें इसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए, पावक, पवमान और शुचि ॥ ३ ॥ ये तीनों अग्नियोंके नाम हैं, यह तीनों अग्नि पहले वशिष्ठजीके शापसे विजिताश्वके घर पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए, फिर यहांसे मोक्ष पाकर अपनी योगगतिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ अन्तर्धानविद्यावाले विजिताश्व राजाने दूसरी नभस्वती नाम स्त्रीमें हविर्धान नाम पुत्र उत्पन्न किया, वह ऐसा

प्रतापी था, जिसने अश्व चुरानेवाले इन्द्रको जान भी लिया परंतु तो भी उसको नहीं मारा ॥५॥ राजाओंकी वृत्ति यही है कि कर लेना, दण्ड देना और विना मूल्य दिये किसीकी वस्तु भय दिखाकर ले लेना, यह सब निर्दय कर्म समझकर राजा विजिताश्वने दीर्घकालसे यज्ञके मिष करके सब कर्म त्यागकर बनमें वास किया ॥ ६ ॥ वहां भी सब भयभञ्जन भक्तमनरञ्जन परमात्मा हंस पुरुष सर्वान्तर्यामी भगवान्का एकाग्रचित्तसे पूजन करता था, वह ब्रह्मज्ञानी अपनी समाधिसे विष्णुलोकको प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ हे विदुर ! हविर्धानने हविर्धानी अपनी भार्यामें छः पुत्र उत्पन्न किये, बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ॥८॥ हे राजा परीक्षित ! उन हविर्धानके पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र महाभाग्य बर्हिषद राजा बड़ा उग्रबुद्धि और धर्मपरायण हुआ और कर्मकाण्डमें पारंगत था, योगविद्यामें अत्यन्त विलक्षण था ॥ ९ ॥ इस महाप्रतापी राजाने समस्त भूमण्डलमें कोई स्थान यज्ञ विना नहीं छोड़ा और जिसके देवयजनमें वारंवार यज्ञ होते थे और प्राचीदिशाकी ओर अग्रभाग करके कुशाओंसे इस सब वसुधाको परिपूर्ण कर दिया, इसीलिये इस राजाका नाम प्राचीनबर्हि हुआ ॥ १० ॥ इसने ब्रह्माकी आज्ञासे शतद्रुति नाम समुद्रकी पुत्रीसे विवाह किया। कन्या सर्वांगसुन्दरी, नवयौवना, किशोरवय, मनमोहिनी, छबिकी धाम, सोलह शृङ्गार किये, सर्वभूषणसम्पन्न विवाहमें अग्निकी प्रदक्षिणा कर रही थी, जैसे अग्नि सप्तऋषियोंकी स्त्री शुकीपर मोहित हो गया था ऐसे ही उसकी मनोहर कांति देखकर राजा प्राचीनबर्हि उसपर आसक्त हो गया ॥ ११ ॥ उस नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे दश दिशाओंके दिक्पाल, देवता, दैत्य, गंधर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग लोकके नागोंको मोहित कर लिया॥१२॥ यह कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है कि "एक समय सप्तऋषियोंके यज्ञमें सप्तऋषियोंकी स्त्रीको देखकर अग्नि कामाग्निसे संतप्त हो उसपर मोहित हो गया, तब अग्निकी भार्या स्वाहाने सप्तऋषिभार्यारूपधारिणी होकर अग्निको रमाया" ॥ १३ ॥ प्राचीनबर्हि शतद्रुति नाम भार्यामें दश पुत्र उत्पन्न किये, यह दशों प्रचेता नामसे

---

१. शंका—राजा प्राचीनबर्हिने यज्ञमें बड़े विस्तारसे पूर्वदिशाको कुशोंका मुख किया और पश्चिमदिशाको कुशोंका मूल किया। इस प्रकार कुशोंको बिछाकर अनेक यज्ञ किये। सात द्वीप पृथ्वीकुशोंके बिछौनेके नीचे हो गयी जैसे पलंग बिछौनेके नीचे हो जाता है। यह बड़े कौतूहलके समान सुननेमें आया और बड़ा अयोग्य वाक्य है कि सात द्वीप पृथ्वी कुशोंके बिछौनेके नीचे हो गयी; यह बात हम लोगोंको अत्यन्त कौतुकरूप जान पड़ती है?

उत्तर—मैत्रेय ऋषिने सातद्वीप पृथ्वीको वसुधातल नहीं कहा था। ब्राह्मणोंका शरीर जो उसको वसुधातल कहा था, वसुधा नाम भगवान्का है, उन भगवान्को जो हृदयमें धारण करे उसका नाम वसुधा है। भगवान् में प्रीति रखना उसका नाम भी वसुधा है, भगवान्की प्रीति ही सुन्दर आनन्दभवन है, वही ब्राह्मणोंका हृदय है और साक्षीके लिये ये श्लोक हैं—

महीतलं न मुनिना प्रोक्तं हि वसुधातलम्। ब्राह्मणानां शरीरं तु कथ्यते वसुधातलम् ॥ १ ॥
येश्वरं च वसुधत्ते सा प्रोक्ता वसुधा द्विजैः। विष्णुप्रीतिस्तलं तस्य द्विजानां हृदयं स्मृतम् ॥ २ ॥
आत्मदेहं दर्शयित्वा विदुराय महामुनिः। स्वकरांगुलिनिर्देशं ब्राह्मणास्तेन तर्प्पिताः ॥ ३ ॥

भगवान्ने अपनी देह अपने हाथकी अंगुलीसे विदुरजीको दिखायी कि, हे विदुर! यह मेरा हृदय जो है, वही वसुधातल है। इसी वसुधातलको प्राचिनबर्हिष राजाने कुशाओंका बिछौना करके शरीरको ढक दिया और ब्राह्मणोंको तृप्त कर दिया, क्योंकि कोविदोंको विना मांगे दिया और संकल्प करनेके समय हाथमें कुशले तो कुशाका मुख पूर्व दिशाकी ओर रखे और कुशाकी मूल पश्चिम दिशाकी ओरको रखनी चाहिये यह शास्त्रकी रीतिसे संकल्पकी विधि है। राजाने इस प्रकार कुशा हाथमें लेकर संकल्प किया और ब्राह्मणोंके हृदय वसुधातलको कुशाओंके बिछौनेके नीचे कर दिया, ऐसा अर्थ मैत्रेयजीने कहा था, प्राणियोंके बसनेवाली इस वसुधाको नहीं कहा था।

विख्यात थे और एकसे नाम, एकसे व्रत धारण करनेवाले और सब धर्मपरायण थे, सृष्टि रचनेके लिये पिताने इन सबको आज्ञा दी; तब यह सब तप करनेके लिये समुद्रके तटपर गये, वहां इन्होंने जलमें खड़े होकर दशसहस्र वर्षतक तप करके तपोंके पति श्रीमन्नारायणका पूजन किया ॥ १४ ॥ जब वह तप करनेके लिये घरसे चले थे उस समय मार्गमें शिवजीने दर्शन देकर प्रसन्नतापूर्वक जिस मन्त्र और पूजनका उपदेश किया था, उसी उपदेशके अनुसार एकाग्रचित्त हो, इन्द्रियोंको जीत, वासुदेव भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्रचेताओंसे शिवजीका मार्गमें जिस प्रकार समागम हुआ और प्रीतिपूर्वक उनको उपदेश किया वह और जो दिनरात के तप करनेमें प्रसन्न हुए वह सब यथावत् वर्णन करो ॥ १६ ॥ हे विप्रर्षे ! योगसाधनवाले योगीजन भी आठ पहर जिन महादेवका एकाग्रमनसे ध्यान करते हैं, परंतु साक्षात् उनका दर्शन नहीं पाते ऐसे कल्याणरूप ब्रह्मानंद सदाशिवका दर्शन प्राणियोंको होना महाकठिन है ॥१७॥ भगवान् शिव आप आत्माराम भी हैं तो इस लोककी रक्षाके लिये महाभयानक अपनी शक्तिको संग लिये घूमते-फिरते हैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि वह साधु प्रचेता पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण कर तप करनेकी अभिलाषासे पश्चिम दिशाकी ओर चले गये ॥ १९ ॥ चलते-चलते समुद्रके निकट पहुँचे, वहां एक अत्यन्त विस्तृत महागंभीर सागरके समान एक सरोवर देखा, वह सरोवर सज्जनोंके मनके समान निर्मल जलसे भर रहा था और जलमें क्रीड़ा करनेवाले जलजंतु मच्छ कच्छादिक अत्यन्त प्रसन्नताके साथ प्रीतिपूर्वक आनंदसहित रहते थे ॥ २० ॥ नीलकमल, रक्तकमल, उत्पल, अम्भोज, कह्लार, इन्दीवर आदिक अनेक प्रकारके कमलोंकी खानि थी, जिसमें हंस, सारस, चकवा, चकवी, कारंडव पक्षी जहां-तहां मनोहर शब्द कर रहे थे ॥ २१ ॥ मतवाले भ्रमरोंके सुन्दर स्वरीले शब्दोंसे वृक्ष और लताओंके रोम खड़े हो रहे थे और कमलोंके समूहोंकी पराग पवनके संग दशों दिशाओंको सुगंधित कर रही थी ॥ २२ ॥ वहां दिव्य मार्ग था, गंधर्वोंका मनोहर गान हो रहा था। सुंदर मृदंग ढोलका शब्द सुनायी देता था, उस मनोहर शब्दको सुनकर दशों राजपुत्र विस्मित हो गये ॥ २३ ॥ उसी समय उस सरोवरसे पार्षदोंसहित श्रीभगवान् महादेवजी भी निकले तो इन दशों कुमारोंको आनंदसहित शिवजीका दर्शन हुआ, उनके सम्मुख देवगण गंधर्व आदि स्तुति कर रहे थे ॥ २४ ॥ तपे हुए सुवर्णके समूहके समान कांतिमान् त्रिनेत्र प्रसन्न होनेमें सुमुख ऐसे नीलकंठ भूतनाथको महाआनंदसे प्रणाम किया ॥ २५ ॥ तब शरणागतप्रतिपालक, धर्मवत्सल, दीनदुःखहरण, धर्मके जाननेवाले, शीलसंपन्न श्रीभगवान् शिवजी प्रीतिसहित मधुरवाणीसे प्रचेताओंसे बोले ॥ २६ ॥ रुद्र बोले कि हे प्राचीनबर्हिके पुत्रो ! जो कुछ तुम्हारी करनेकी इच्छा है वह हमने जान ली, तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मैंने तुमको दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो कोई वेगसे परे साक्षात् त्रिगुण जीवसंज्ञितसे परे जो भगवान् वासुदेवकी शरणागत है, वह मेरा परम प्रिय है ॥२८॥ जो पुरुष अपने धर्ममें निष्ठा रखता है वह सौ जन्मोंमें ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, सहस्र जन्म जो पुण्यमें निष्ठा रखता है वह मेरे पदको पाता है और जो परम भागवत हैं, वे तो निःसंदेह माया रहित विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं, सब देवता और मैं अविकारीके अंतमें परमेश्वरके लोकको प्राप्त होते हैं, अब मैं शिव होकर अधिकारीके समान वर्तमान हूँ ॥ २९ ॥ तुम

सब भागवत भगवत्के भक्त हो इस लिये मुझको अधिक प्यारे हो! भगवद्भक्तोंसे परे और कोई दूसरा मुझको अधिक प्यारा नहीं ॥ ३० ॥ इस लिये यह स्तोत्र परम पवित्र और सर्व मंगलमय, मोक्षदायक और सब विघ्नोंको शांत करनेवाला है, वह मैं तुमसे कहता हूँ, तुम चित्त लगाकर सुनो और जिस प्रकार हो सके उस प्रकार एकान्तमें बैठकर जप करना ॥३१॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे परमदयालु दीनानाथ भगवद्भजनमें परायण, भगवान् शिवजी हाथ जोड़े खड़े देख, उन राजपुत्रोंको उपदेश करने लगे ॥ ३२ ॥

श्रीरुद्र उवाच-जितं ते आत्मविद्धुर्यस्वस्तयेस्वस्तिरस्तु मे।
भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥ ३३ ॥

श्रीरुद्र बोले-कि हे प्रभो! आपकी महिमा बड़े-बड़े आत्मज्ञानी पुरुषोंको परमानंददायक है तो वह आनंद मुझको भी देना चाहिये, जो सदा सिद्धिदायक मंगलरूप है, आपने उसका सेवन किया है, इस लिये मैं सबकी आत्माके अर्थ नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥ ३४ ॥

कमलनाभ, जिनकी नाभिमें भूतसूक्ष्म और पंच महाभूत इन्द्रियोंके आत्मा सर्वान्तर्यामी अपने आप प्रकाशरूप जो वासुदेवरूपसे चित्तके नियन्ता निर्विकार हो, हे भक्तिरूप! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ३४ ॥

संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च।
नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३५ ॥

संकर्षणरूपसे आप अहंकारके हरनेवाले, सूक्ष्म अनंत और मुखाग्निसे प्रलयके समय लोकको दाह करनेवाले हो और विश्वके ज्ञानदायक यदुकुलके नायक सर्वान्तर्यामी प्रद्युम्नके अर्थ मेरा नमस्कार है ३५ ॥

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने।
नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३६ ॥

सब इन्द्रियोंके ईश, सब इन्द्रियोंके आत्मा अनिरुद्धके निमित्त मैं वारंवार नमस्कार करता हूं, जो आप सूर्यरूप धारण कर समस्त भूमंडलको अपने तेजसे प्रकाशित करते हो और जो आप परमहंस पूर्ण क्षयवृद्धिरहित हो, आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३६ ॥

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः।
नमोहिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३७ ॥

स्वर्ग मोक्षके द्वाररूप सदा पवित्र हृदयमें निवास करते हो, आपके लिये नमस्कार है, हिरण्यसम जिसका वीर्य, चातुर्होत्र करनेवाले अर्थात् यज्ञोंके साधनरूप और यज्ञोंका विस्तार करनेवाले अग्निरूप मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३७ ॥

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे।
तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३८ ॥

पितृ और देवताओंके अन्नदाता, तीनों वेदोंके पति और यज्ञ वीर्य रूपवाले चन्द्ररूप

आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ, प्राणियोंके तृप्तिदायक और सब रसमय जलरूप आत्मा आपको, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३८ ॥

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ।
नमस्त्रैलोक्यपालाय सह ओजोबलाय च ॥ ३९ ॥

सब जीवमात्रके शरीररूप, पृथ्वीरूप स्थूल तनुधारी, त्रिभुवनके पालनेवाले, मन इन्द्रिय शरीरके बलरूप ईश्वरको मेरा प्रणाम है ३९ ॥

अर्थलिंगाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने ।
नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४० ॥

अर्थ, चिह्न, गुणोंसे सबको नाम देनेवाले आकाशरूप बाहर-भीतर जिसकी आत्मा पुण्यलोकरूप अत्यन्त तेजस्वी पवित्र स्वर्गरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥ ४० ॥

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥ ४१ ॥

प्रवृत्ति, निवृत्ति मार्गरूप, पितृदेवरूप कर्मवाले धर्मदायक और मृत्युरूपसे अधर्मका फलरूप क्लेश देनेवाले आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नमस्त आशिषामीशमनवे कारणात्मने ।
नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ ४२ ॥

सब आशीर्वादोंके ईश्वर मनुरूप, कारणरूप जिसकी आत्मा, दीर्घ धर्मवाले अखण्ड ज्ञान रूप आदिपुरुष मंत्ररूप कृष्णमूर्तिको मेरा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ।
ब्रह्मणे परिपूर्णाय वैकुण्ठपतये नमः ॥ ४३ ॥

पुराणपुरुष सांख्य योगके ईश्वर बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्यरूप परिपूर्ण श्रीवैकुण्ठनाथके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४३ ॥

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ।
चेतआकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये ॥ ४४ ॥

कर्ता, कर्म, कारण तीनों शक्तियों सहित, रुद्ररूपधारी अहंकारमय (आनंद) आत्माके लिये मेरा नमस्कार है। ज्ञान, क्रियारूप, वाणीको नानाप्रकारसे उत्पन्न करनेवालेके लिये मेरा नमस्कार है ॥ ४४ ॥

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ।
रूपप्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४५ ॥

सब भागवतोंसे पूजित, अत्यन्त प्रियतम रूपधारी, अपने भक्तोंके लिये सब इन्द्रिय गुण अंजनरूप जो आपका दर्शन है, वह दर्शन कृपा करके हमसे दीन दासोंको दो, क्योंकि हमारे चित्तमें सदा इस दर्शनकी लालसा बनी रहती है ॥ ४५ ॥

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ।
चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ॥ ४६ ॥

सघन वर्षाकालके मेघवत् श्यामवर्ण, सब सुन्दरताके राशि, सुन्दर विस्तृत चार बाहु, शोभायमान, अत्यन्त रुचिर मुखकी छबि है ॥ ४६ ॥

पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् ।
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४७ ॥

कमलकोशके अन्तर्गत पत्रोंके समान शोभायमान नेत्र, सुन्दर भ्रू, सुन्दर नाक, सुंदर दांत, सुन्दर कपोलवाला मुखारविंद जिसमें सुशोभित समकर्णसहित ॥ ४७ ॥

प्रीतिप्रहसितापांगमलकैरुपशोभितम् ।
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४८ ॥

प्रीतिसे हास्ययुक्त नेत्र और अलकोंसे शोभायमान सुशोभित कमलकी पीली केसरके समान पीताम्बर धारण किये, उज्ज्वल-उज्ज्वल कुण्डल कानोंमें देदीप्यमान हैं ॥ ४८ ॥

स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ।
शङ्खगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ॥ ४९ ॥

दमकते हुए किरीट, वलय, हार, नूपुर और छुद्रघंटिकासे मंडित, शङ्ख, चक्र,गदा, पद्म धारण किये, वनमाला और कौस्तुभ मणिकी अद्भुत सम्पदाओंसे भूषित ॥ ४९ ॥

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥
श्रियाऽनपायिन्याऽऽक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥५०॥

सिंहके समान कंधोंपर कुण्डलादि भूषणोंकी शोभा धारण किये, ग्रीवामें कौस्तुभ मणि सौभाग्ययुक्त विराजमान, विश्लेषरहित लक्ष्मीजीकी स्वर्णरेखांकित पाषाण कसौटीरूप वक्षः-स्थलमें शोभित है ॥ ५० ॥

पूररेचकसंविग्नवलीवल्गुदलोदरम् ।
प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगंभीरया ॥ ५१ ॥

पूररेचकसे संविग्न कंकणवत् मनोहर पीपल पत्रके समान उदर, श्वास और उच्छ्वासके कारण चलायमान त्रिवलीसे शोभित जलके भ्रमरके समान गम्भीर नाभि, मानो उसीमेंसे विश्वकी उत्पत्ति हुई है और फिर विश्वको उसीमें प्रवेश करनेके लिये उपस्थित है ऐसा जान पड़ता है ॥ ५१ ॥

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ।
समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु निम्नजानु सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥

श्याम कटिपश्चाद्भागपर सुन्दर पीताम्बरके ऊपर सुवर्णकी कौंधनी पहिने, समान श्रेष्ठ चरण, जङ्घा, ऊरूमें अनुन्नत जानु शोभित है ॥ ५२ ॥

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरोर्मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५३ ॥

शरत्कालसम्बन्धी मनोहर कमलपत्रके समान शोभायमान कांतिवाले नखोंकी कांतिसे अन्तःकरणके अज्ञानका नाश करनेवाले, पादारविंदसे अपने प्यारे ध्रुव प्रह्लादादिक भक्तोंके

भय दूर करनेवाले, आप अपने मनहरण स्वरूपका दर्शन हमको दिखावो । हे गुरो ! हमसे तमोगुण सेवियोंको मार्गके दिखानेवाले गुरु आप ही हैं ॥ ५३ ॥

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सता ।
यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५४ ॥

जिस पुरुषको अपनी मलिन आत्माको शुद्ध करनेकी इच्छा हो, उसको चाहिये कि आपके इस मनोहर स्वरूपका ध्यान करे और अपने धर्मको न छोड़े, क्योंकि, जो अपने धर्ममें स्थित है, उनको आप भक्तियोग और अभयदान देनेवाले हो ॥ ५४ ॥

भवान् भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ।
स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५५ ॥

स्वर्गवासी देवता भी जिनकी आशा करते हैं और आत्मज्ञानी लोगोंकी आप गति हो और देहधारियोंको दुर्लभ हो,परन्तु तो भी आप अपने भक्तिमान् पुरुषोंको सुलभ हो ॥५५॥

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया ।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५६॥

महात्माजनोंको भी जिस भक्तिका मिलना महादुर्लभ है, उस एकांतभक्तिसे दुराराध्य आपकी उपासना करके और आपके मनोहर चरणारविंदोंके मूल छोड़कर और किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते, क्योंकि वह आनन्द स्वर्गादिकमें भी नहीं मिलता ॥ ५६ ॥

यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ।
विश्वं विध्वंसयन् वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५७ ॥

जो काल अपने तेज और बलवीर्यके प्रभावसे अपनी भ्रुकुटीके चढ़ानेसे ही विश्वका विध्वंस कर सकता है, वह भी आपके चरणसेवियों पर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकता और उसपर अपना अधिकार नहीं चला सकता और दण्ड देना तो बहुत कठिन है ॥५७॥

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५८ ॥

भक्त जनोंके सत्सङ्गकरनेवालोंकी सङ्गतिके आगे अर्द्धक्षणके समान न तो मैं स्वर्गको समझता हूँ और न मुक्तिको और न मनुष्योंके आशीर्वादोंको और राज्य आदिक सुखकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥ ५८ ॥

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ५९ ॥

इसलिये पापहारी तीर्थरूप यशस्वी आपके चरणारविंद हैं, उनके सेवन करनेसे और गङ्गाजीके स्नान करनेसे जिनके बाहर-भीतरके सब पाप नष्ट हो गये हैं, सब जीवोंपर दया करते रहते हैं, निर्मल अन्तःकरण और शीलस्वभाववाले महात्मापुरुषोंसे हमारा सत्सङ्ग बना रहे, यह अनुग्रह मैं आपका चाहता हूँ ॥ ५९ ॥

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिः ॥ ६० ॥

जब महात्मा पुरुषोंकी सेवा करनेके लिये चित्त विषयोंके विक्षेपसे रहित हो जाय और हृदय गुप्तका तम दूर हो जानेसे जब अंतःकरण विशुद्ध हो तब उस चित्तमें योगीजनोंको आपकी अद्भुत गति और आपका मनोहर स्वरूप देखनेमें आता है ॥ ६० ॥

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ।
तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६१ ॥

जिस ब्रह्ममें यह सब विश्व दृष्टि आता है और सब विश्वमें जो ब्रह्म दिखायी देता है, वह तत्त्व परब्रह्म ज्योतिस्स्वरूप आकाशवत् सबमें आप ही व्यापक हो और आपका ही विस्तार है ॥ ६१ ॥

यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥ ६२ ॥

बुद्धिमें भेद करनेवाली माया है, वह आपके विषे कोई नाम भी नहीं कर सकती, ऐसी बहुरूपधारिणी मायासे जो ईश्वर आप निर्विकार होकर इस विश्वको रचता है, पालता है, नाश करता है, जिसमें किंचित् भेदबुद्धि नहीं, सत्यके समान प्रकाशवान् है, ऐसे स्वाधीन ईश्वरकी हम शरणागत हैं ॥ ६२ ॥

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।
भूतेंद्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६३ ॥

यह मुझको भली प्रकार निश्चय है कि आप मंद भावसे रहित हो तो भी पंचभूत इंद्रिय और अन्तःकरणसे जाने जाते हो। महात्मालोग श्रद्धासहित नानाप्रकारकी क्रियाओंसे आपके अद्भुत रूपका अनेक विधियोंसे पूजन करते हैं, उन्हीं पुरुषोंको हम वेद शास्त्रमें चतुर कहते हैं जो ऐसे विलक्षण स्वरूपको त्यागकर केवल ज्ञानमें मनको लगाते हैं उनको हम विलक्षण नहीं समझते ॥ ६३ ॥

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजस्सत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयोभूतगणा इदं यतः ॥ ६४ ॥

आप ही एक आद्य पुरुष हो क्योंकि प्रलयके समय तो आपकी मायाशक्ति निद्राके वशीभूत हो जाती है और विश्व रचनेके समय उस माया शक्तिसे जब आप रज सत्त्व तमका भेद करते हो, तब उन भेदोंसे महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल, देवता, ऋषि, भूतगण और भी अनेक पदार्थोंकी खानि यह विश्व जिनसे उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं परमात्मांशकेन ।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ॥ ६५ ॥

आप अपनी शक्तिके प्रभावसे अपने रचे हुए विश्वमें प्रविष्ट होकर अपने आत्माके अंशसे इस विश्वरूप पुरमें चार-चार प्रकारके जीवको रचते हो। स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज इन जीवोंमें आप प्रवेश करते हो, इसी लिये इस जीवका नाम पुरुष है और ऋषिलोग बाहर-भीतर वसके इंद्रियोंके द्वारा सुखभोग भोगते हैं ॥ ६५ ॥

स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥ ६६ ॥

महाप्रचण्ड जिसका वेग सबको चलायमान करता है, सो यह काल है, उसको आपने अपने वशमें कर रखा है, पंचभूतोंसे पंचभूतोंका तत्व अनुमान करते हो; जैसे मेघपंक्तियोंको पवन जहां चाहे वहां खींच ले जाती है, इसी प्रकार जीवोंको दूसरे जीवोंसे चलायमान कर आप खींच ले जाते हो; परन्तु यह सब संसारका खींचनेवाला आपका कालरूप किसीके देखनेमें नहीं आता ॥ ६६ ॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तःसहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६७ ॥

प्रमत्त महाचितासे प्रवृद्ध जिसका लोभ, विषयोंमें जिसकी लालसा और विषय प्राप्त होनेपर भी अत्यन्त लोभ करनेवाले प्राणी नित्य सावधानतासे रहनेवाले कालरूप आप क्षुधासे गलफुओंको चाटता हुआ सर्प जैसे मूसेको निगल जाता है; ऐसे ही झटपट आप उसको झपट लेते हो ॥ ६७ ॥

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पंडितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।
विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६८ ॥

ऐसा कौन पण्डित है, जो आपके चरणकमलको त्यागेगा, जो आप कहें वह अपमानसे व्यथित भी हैं और उनका शरीर जीर्ण भी हो गया है तो भी आपको कभी नहीं त्यागेंगे, जिसकी शंकासे हमारे गुरु ब्रह्माने आपके चरणारविंदोंका पूजन किया है, जिसकी प्राप्तिके लिये दृढ़ विश्वाससे चतुर्दश मनुओंने मृत्युके भयसे भजन किया है ॥ ६८ ॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम् ।
विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥ ६९ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मन् ! ! सब विश्व रुद्रके भयसे त्रासवान् हो रहा है, इस लिये जाननेवाले जो हम हैं, आप ही हमारे शरणरूप और भयनाशक हैं ॥ ६९ ॥

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥ ७० ॥

महादेवजी बोले कि, हे नृपनन्दनो ! एकाग्रचित्त करके इस रुद्रगीत स्तोत्रका जप करो और स्वधर्ममें निष्ठा रक्खो और अन्तःकरण भगवतको अर्पित करो, इसीमें तुम्हारा मंगल होगा ॥ ७० ॥

जो सबकी आत्मामें स्थित आत्मा है और सब प्राणीमात्रमें स्थित हैं, उन्हींका पूजन करो, उन्हींका ध्यान करो, उन्हींकी स्तुति करो, उन्हीं हरिका वारम्वार स्मरण करो ॥७१॥ इस योग आज्ञाको धारण करके मुनिव्रत करो और चित्तको सावधान करके सब कोई आदर-सत्कारपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करो और अभ्यासपूर्वक आदरसे इसका जप करो ॥ ७२ ॥ जब हम सब ब्रह्माजीके पुत्र भृगुआदिसे सृष्टि रचनेकी इच्छा की तब प्रथम प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने सृष्टिके बढ़ानेके लिये हमको यह स्तोत्र पढ़ाया था, हमने इसी स्तोत्रका पाठ

करके तमोगुणको ध्वस्त किया और विविध प्रकारकी प्रजा रची ॥७३॥ यदि मनुष्य नित्य सावधान होकर इस मन्त्रका जप करे तो वह भगवान् वासुदेवमें परायण होगा और थोड़े ही कालमें कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ७४ ॥ इस विश्वमें सब कल्याणोंका कल्याण देनेवाला परमश्रेष्ठ और सबसे प्रधान यह ज्ञान है, जिस पुरुषको ज्ञानरूप नाव प्राप्त हो जाती है वह इस महादुस्तर अपार संसारसे बेखटके पार हो जाता है ॥७५॥ जो कोई श्रद्धासहित मेरे गाये हुए इस भगवत् स्तोत्रका पाठ करेगा, वह विना प्रयास दुराराध्य भगवान् वासुदेवका आराधन करेगा ॥ ७६ ॥ परमेश्वरसे जो पुरुष जिस वस्तुकी आशा करता है, वह सब पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं और मेरे इस गीतको जो प्रीतिसे गाते हैं, उनसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ज्ञान दे अपावनको भी पावन कर अनेक प्रकारके मंगल देते हैं ॥ ७७ ॥ जो कोई प्रातःकाल उठकर हाथ जोड़ श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करे वा सुने अथवा औरको सुनाये, वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता ॥ ७८ ॥ हे राजकुमारो ! परमपुरुष परमात्माका जो यह स्तोत्र मैंने गाया है, उसको जपो और एकाग्रमन करके महातप करो, तो अन्तमें तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा ! "इसलिये मनुष्यको चाहिये कि प्रातःकाल उठकर भगवान् वासुदेवका ध्यान इस रीतिसे करे"–

भजन

पूजा इस विधि प्रभुकी करिये ।
धूप दीप नैवेद्य पुष्प फल, हरिके सम्मुख धरिये ॥ १ ॥
गद्गद कण्ठ अंग पुलकावलि, प्रेमनीर चख भरिये ।
गाय गाय गुण प्रेम प्रीतिसों, भवसागरसों, तरिये ॥ २ ॥
श्रीयदुवरकी चरण शरण गहि, कलिमलते क्यों डरिये ।
शालिग्राम दया करि हे हरि, पाप ताप सब हरिये ॥ ३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा–मनबुद्धिके संगते, जन्म मरणको भाव ।
पच्चिसवें अध्यायमें, कथा पुरंजन राव ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि, अब राजा पुरंजनका उपाख्यान वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर सुनिये । जब इस प्रकार शिवजीने राजपुत्रोंको उपदेश किया तब प्रचेताओंने विधिपूर्वक शिवजीकी पूजा की, उस पूजाको अंगीकार कर राजकुमारोंके देखते-देखते हर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१॥ रुद्रका गाया हुआ भगवत् स्तोत्रका जप करते-करते उन सब प्रचेताओंको जलके भीतर खड़े-खड़े दश सहस्र वर्ष बीत गये ॥ २ ॥ हे विदुर ! प्राचीनबर्हि राजाका मन कर्मोंमें अत्यन्त ही आसक्त था, उसको परमकृपालु वेदांततत्त्वज्ञाता नारदजीने ज्ञानोपदेश दिया ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! कर्म कर-करके तुम कौनसा कल्याण चाहते हो ? एक कल्याण तो वह होता है कि जिसमें दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्ति हो, वह इस यत्नके करनेसे प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ राजा प्राचीनबर्हि बोले कि, हे महाभाग !

मेरी बुद्धि तो कर्मोंसे बिंध रही है, मैं कल्याणको नहीं जानता, आप मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान कहो कि जिसके प्रभावसे मैं कर्मोंके बन्धनसे मुक्ति पाऊं ॥५॥ जिसमें अनेक प्रकारके छल छिद्ररूप धर्म हैं, ऐसे घरमें पुत्र, दारा, धनको मुख्य समझनेवाले अज्ञानी लोग संसारमार्गमें ही घूमते-फिरते रहते हैं और परमेश्वरको नहीं जानते ॥ ६ ॥ श्री नारदजी बोले कि हे राजन् ! हे प्रजापते ! आपने अपने यज्ञमें निर्दयी बनकर सहस्रों पशुओंको मार डाला, उन जीवोंको देखकर तुमको दया नहीं आयी ॥७॥ यह सब पशु तुम्हारा मरण चाहते हैं, और तुमने जो-जो दुःख इनको दिये हैं उनको स्मरण करके अपने मनमें क्रोध उत्पन्न करते हैं, जब तुम मरोगे तो यह लोहेके मढ़े हुए शृङ्गोंसे तुम्हारा शरीर विदीर्ण करेंगे ॥ ८ ॥ अब मैं इस विषयमें एक पुरातन इतिहास वर्णन करता हूँ, जिसमें राजा पुरंजनका चरित्र है, वह आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! बड़ा यशस्वी एक पुरंजन नाम राजा था, जिसका अविज्ञात नामक एक सखा था, जो सब चेष्टाओंको जानता था ॥ १० ॥ इस कथाको आगे पंचम स्कन्धमें विस्तारसहित वर्णन करेंगे और किसी-किसी कठिन शब्दका व्याख्यान जहां शब्द आयेगा उसको वहीं कहेंगे जैसे—"स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः । न विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरः तस्य सखा" अविज्ञातनामा । पुरंजन जीवका नाम है, अविज्ञात व चेष्टित ईश्वरका नाम है, वह पुरंजन राजा अपनी राजधानीके लिये उत्तम स्थानके ढूँढनेको समस्त भूमंडलमें फिरा परन्तु अपने समान कोई स्थान नहीं पाया, तब मनमें अत्यन्त दुःखी हुआ ॥११॥ विषयसुख भोगनेवाले उस राजाकी पृथ्वीपर जितने पुर हैं उनमेंसे एक पुर भी सब सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला, वे पुर कौनसे हैं ? पशु, पक्षी कीटादिक जो-जो देह हैं, वह सब दुःखोंकी खान हैं, कोई मनोवांछित सुखका देनेवाला नहीं, और है तो मनुष्य देह है सो अनेक जप, तप करनेसे प्राप्त होता है, इस लिये कोई दूसरा देह उसको सुखकी प्राप्तिके लिये नहीं मिला ॥ १२ ॥ एक समय वह राजा फिरता-फिरता हिमाचल पर्वतकी दक्षिण-भूमिके नीचे चला गया, वहां उसने एक अद्भुत नगर देखा, कि जिसमें अत्यन्त सुन्दर नव-द्वार सर्वसुलक्षण सम्पन्न किसी प्रकारका दोष उसमें नहीं जान पड़ा, वह मनुष्य देह था, उसमें मुख, नेत्र, श्रवण, नासिका, गुदा और लिंग आदि नवद्वार हैं, वहां अंधा, लँगड़ा, लूला, कोई भी अंग वैकल्यरूप दोष नहीं था। हिमाचलके दक्षिण ओर कहनेका कारण यह है कि भरतखंड हिमाचलके दक्षिणकी ही ओर है जो भरतखंड कर्मभूमि कहलाता है, ऐसा मनोहर नगर देखा ॥१३॥ यह नगर प्राकार, उपवन, अटारी,खाई,झरोखे,तोरणोंसे अत्यन्त देदीप्यमान था और सोने, चांदी, लोहेके शृङ्गोंमें चारों ओर सब भवन जगमगा रहे थे, यह जो उस नगरकी शोभा वर्णन की, वह जो अष्टांग और देहमें षट्चक्र हैं, वही मंदिर अटा अटारी हैं और वह जो राजस, तामस आदिक चित्तकी वृत्तियां हैं वही स्थानोंपर सोने, चांदी, लोहेकी कलश कलशियां हैं ॥ १४ ॥ इस नगरके मंदिर, स्थान, नीलमणि, स्फटिक, वैडूर्य्य, मुक्ता, मर-कतमणि और माणिकादिक रत्नोंके बने हुए हर्म्यस्थलीसे प्रकाशित हैं, श्रीयुक्त नागपुरी अर्थात् नाग लोगोंकी भोगपुरीसे इस नगरकी शोभा कुछ न्यून नहीं थी ॥१५॥ कहीं सभा, चौराहे, राजमार्ग, हाटें, कहीं विश्रामस्थान ध्वजा, पताका और मूङ्गोंकी वेदियोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान थे ॥१६॥ इस पुरीके बाहरकी ओर एक सुन्दर उपवन दिव्य वृक्षलता-ओंसे सघन चन्दनादिसे सुगंधित हो रहा था, तालोंमें कंजोंपर भ्रमरोंका गुंजार और अनेक

प्रकारके जहां तहां कोलाहल हो रहे थे ॥ १७ ॥ पुष्प और शीतल जलके झरनोंके कणोंसे लगी हुई पवन त्रयतापकी हरनेवाली बह रही थी, उससे चलायमान मूंगोंके समान वृक्षोंकी शाखा और पत्तोंकी शोभा सरोवरके जलमें झलक रही थी, उन तालोंमें जो कमलिनीं खिल रही थीं, उनकी पराग जो उड़ती थी उससे सब भूमि सुगंधित हो रही थी ॥१८॥ चौपाई०—"सरसीकर सरसरसर माहीं । विकसित वारिज बहु दरशाहीं ॥" अनेक वनके मृगसमूह मुनिव्रत धारण किये, अहिंसाधर्मका पालन कर रहे थे और निर्भय एकसंग विचरते फिरते थे, कोकिला कुंजोंमें जो कूज रहे थे, तो उनकी मधुर वाणियोंसे यह बात ज्ञात होती थी कि मानो पथिकोंको अपने निकट बुला रहे हैं-

चौ०—ऐसे पुरमें भूप पुरंजन * कियो निवास देख मनरंजन ।
पुर उपवनमें नृप इकवारा * गये करन मनमुदित विहारा ॥१९॥

वहां क्या देखा ! कि उस उपवनमें अपनी इच्छासे एक सुन्दर स्त्री दश अनुचरोंको साथ लिये फिरती है और एक-एक दासीके सङ्ग सौ-सौ पुरुष उनके चारों ओर खड़े रक्षा कर रहे हैं ॥ २० ॥ एक पांच शीशवाला सर्प उस मनोरमा स्त्रीकी रक्षामें उपस्थित है । वह कामरूप कामिनी जिसकी सोलह वर्षकी अवस्था परमसुन्दरी उस उपवनमें अपने लिये किसी वरको ढूँढ़ती फिरती है ॥ २१ ॥ उस यौवनवती बालाके दाडिम-बीज जैसे दांत, शुककीसी नासिका, आरसीके सदृश गोल कपोल, चन्द्रमाके समान श्रेष्ठ मुख और एक प्रकारके दोनों कुण्डल कानोंमें विराजमान हैं ॥ २२ ॥ पीले रङ्गके वस्त्र पहिने, सुन्दर कटिपश्चाद्भागवाली, श्यामवर्ण अति सूक्ष्म कटिमें सुवर्णकी कौंधनी धारण किये, चपलाकीसी चञ्चलाहट और चरणोंमें रत्नजटित नूपुरोंकी झनझनाहटसे ऐसा विदित होता था मानो देवमाया पृथ्वीपर उतर आयी ॥२३॥ यौवन, अवस्थाकी झलकाहटसे कञ्चनके कलशके समान स्तन प्रकट हो रहे हैं; दोनों इकसार चकवी—चकवाके समान व्यवधान रहित थे; वह मत्तमतंग गतिवाली लज्जाके मारे वारम्वार उरोजोंको अञ्चलसे ढांपती थी, बड़े कष्ट पाकर अंचल इन कुचोंपर पहुँचा है—

कबित्त—वर्षा शीत सहिकै सूखो है फिर धूपमाहिं, पाछे अपनो तन चरखीमें उटायो है । तानकै नितान्त फिर धुनियां निर्मोहीने धनुहीसे मेरे रोमरोमको उड़ायो है ॥ नारिन विचारनने कातकूत सूत कियो, बुनकै जुलाहेने अति दुःख दिखरायो है । धोबीने आंच पे धर पाटापर पीटो मोहि, एते दुःख सहिकै दर्श स्तनको पायो है ॥ १ ॥ २४ ॥

लज्जासहित मन्दमुसकानसे अत्यन्त शोभायमान दृष्टि आती थी; वह चञ्चलाक्षी मनोहर कटाक्षसे और ऊपरकी ओर घूमती हुई भ्रुकुटीरूप धनुषसे छूटे हुए प्रेम भरे बाणोंसे और नेत्रोंकी अनीरूप भालोंसे, राजा पुरञ्जनके हृदयमें शाल हो गये, तब राजा पुरञ्जनने बड़ी चतुराईके साथ उस मृगनयनीसे पूछा ॥ २५ ॥ हे पिकबयनी ! तुम कौन हो ? और किसकी दुहिता हो ? और हे सती ! यहां कहांसे आयी हो ? यह पुरी किसकी है, नगरीके निकटवर्ती इस उपवनमें किस कारण फिरती हो और तुम्हारी क्या इच्छा है ? वह मुझसे कहो ॥२६॥ यह ग्यारह जो महाभट तेरे संग हैं यह कौन हैं ? इनमें ग्यारहवां बड़ा बलवान् जान पड़ता

है, सो इसका क्या नाम है ? और सौ-सौ ललना जो इनके साथ हैं, यह कौन हैं ? और यह जो तुम्हारे आगे-आगे रक्षाके लिये सर्प चलता है, यह कौन है ? ॥ २७ ॥ तुम लज्जा तो नहीं हो ? जो धर्म अपने पतिको ढूंढ़ती फिरती हो ? वा भवानी हो जो शिव ब्रह्मज्ञानीको खोज रही हो ? जैसे सरस्वती ब्रह्माका और लक्ष्मी नारायणका अनुशरण करती है, ऐसे मुनिवत् इस एकान्त वनमें किसके अनुशरणमें विचरती फिरती हो ? मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तुम्हारा जो प्रियतम होगा, उसकी सब अभिलाषा तुम्हारे चरणारविंदके प्रभावसे परिपूर्ण होती होगी, अब मुझको सब प्रकारसे निश्चय होता है कि तुम साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी हो, परन्तु यह बतावो कि तुम्हारे हस्तके अग्रभागोंमें जो कमलका फूल था, वह कहां गिरा दिया ॥ २८ ॥ हे सुमुखी ! मैं भलीभांति जानता हूँ कि तुम पूर्वोक्त स्त्रियोंमें नहीं हो और यह सब देवांगना हैं, मध्यमा भूमिकी छूनेवाली और कोई नहीं है, इस लिये लक्ष्मी जैसे श्रीनारायणके साथ वैकुण्ठलोकको शोभित करती है ऐसे जो मैं महावीर अनेक कर्मकारी सकल सुलक्षणधाम हूं, मेरे साथ रहकर तुम इस पुरीको सुशोभित करो क्योंकि मेरे साथ इस पुरीमें रमण करने योग्य तुम्हीं हो ॥ २९ ॥ हे शोभने ! तेरी लाज भरी मृदु-मुसकान, घूमती भ्रुकुटीसे प्रेरित किया हुआ मनोभव तुम्हारी दृष्टिकी तिरछी चितवनकी पैनी अनीसे खंडित इंद्रियवाला मुझको बाधा करता है ॥ ३० ॥ इस लिये हे मृदुहासिनी ! तुम्हारा यह मनोहर मुखारविन्द इंदुका लजानेवाला, जो कि बांकी भ्रुकुटी और चंचल नेत्रोंसे शोभित, लम्बे-लम्बे श्याम रंग अहिशावकसम अलकोंके समूहसे घिरा हुआ, कोकिलावत् मधुरवाणी बोलनेवाला है। तुम लाजके मारे इस अपने मुखको मेरे सम्मुख नहीं करती ?

चौ०—सो मुख घूँघटको पट डारी ❋ मोहिं दिखाव दुराव न प्यारी।
वचन सुधासम मोहिं पियाई ❋ देहु मदन डर ताप नशाई ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार राजा पुरंजन अधीरवत् उस नारीके सम्मुख याचना कर रहे थे, तब वह नारी भी राजाकी छबि देखकर मोहित हो गयी ॥३२॥ और अत्यन्त आदर-सत्कार करके राजाका वचन मान हँसकर बोली-हे पुरुषसिंह ! मैं उसका नाम नहीं जानती कि किसने मुझे उत्पन्न किया है और यह भी विदित नहीं कि मेरा क्या नाम रक्खा है और क्या गोत्र है ॥ ३३ ॥ हे वीर ! मैं यह भी नहीं जानती कि कबसे मेरी आत्मा है, मुझको तो केवल इतनी सुध है कि अभी मैं इस उपवनमें आयी हूँ, इससे अधिक और कोई बात मुझको ज्ञात नहीं। मैं इतना भी तो नहीं कह सकती कि यह नगरी किसने बसायी और कौन इसका बनाने वाला है ॥३४॥ हे मान देनेवाले ! यह जो ग्यारह पुरुष हैं, ये मेरे मित्र हैं, जो यह नारियां हैं ये मेरी सखियां हैं और जब मैं सो जाती हूँ तो यह नाग जागता रहता है और इस नगरीकी रक्षा करता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुनाशक !! आपने बहुत अच्छा किया जो यहां शुभागमन किया, मुझको परमानंद हुआ, आपका कल्याण हो, जो आपको सांसारिक विषयवासनाओंके भोगनेकी चाहना है, तो मैं अपने बन्धुओंसमेत और इनके साथ जो यह स्त्री हैं, इन सबको साथ लेकर आपकी सेवा करूंगी ॥३६॥ हे विभो ! यह जो नवद्वारकी नगरी है इसको आप अपनी समझकर इसमें विराजमान हो, सौ वर्षतक मेरे संग सुखसे आनंद भोग करो ॥३७॥

आपसे अधिक रसिक शिरोमणि और दूसरा पुरुष कौन है जिससे मैं रमण करूं ? जो कि न तो रतिके आनंदको जानता है, न वह पण्डित है, न किसी और ही विद्यामें विचक्षण है, सब विषयवासनाओंको त्याग चिंतन कर बैठ गया है, न परलोककी चिंता है न इस लोककी चिंता है, पशुप्राय है ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र, सुख, मोक्ष, अमृतसम सुयश, शोक और जो गुण जिसमें लेशमात्र भी नहीं ऐसे निर्मल लोग बहुत मिलते हैं, परंतु संन्यासी लोग इनको कुछ नहीं समझते ॥ ३९ ॥ सब लोग इस गृहस्थाश्रमको ही पितृ, देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी सब जीवमात्रके आत्माका परमसुख देनेवाला कहते हैं ॥४०॥ वीरोंमें विख्यात, उदार, रूपवान् प्रियदर्शनदायक आपसरीखे पतिको पाकर मेरे समान कौन ऐसी स्त्री है, जो आपसे वरको न वरे ॥ ४१ ॥ हे महाबाहो ! भुजंग देहके समान लम्बी भुजावाले आपसे पुरुषोंमें किसका मन आसक्त न होगा, जो आप अनाथ समूहोंके सब दुःखको दयायुक्त मंद हास्यके अवलोकनसे ही दूर करनेके लिये विचरते फिरते हो ॥४२॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वह स्त्री–पुरुष, दोनों उस स्थानपर परस्पर रीति-प्रीतिकी बातें कर पुरंजनीका हाथ पकड़, राजा पुरंजन उस पुरीमें प्रवेशकर सौ वर्षकी अवधि बांधकर आनंद भोग करने लगे ॥ ४३ ॥ जहां-तहां उस राजा पुरंजनकी उत्तम कीर्ति गायक लोग ललित रागोंमें गा रहे थे और स्त्रीसहित पवित्र पुष्करिणीमें स्नान कर करके जल-क्रीड़ा कर रहे थे ॥४४॥ उसी पुरीमें जो सात द्वार हैं, वे पृथक् पृथक् देशोंके जानेके मार्ग हैं, सात द्वार तो ऊपरके हैं और दो द्वार नीचे हैं, मुख, नासिका २, नेत्र २, कान २, यह सात ऊपरके द्वार हैं और गुदा, लिंग यह दो नीचेके हैं, ये नवों छिद्र पृथक्-पृथक् विषयोंके भोगके लिये बने हैं, इसमें जो सत्यस्वरूप आत्माराम है उसको कोई नहीं जानता ॥४५॥ इस पुरीमें पांच (५) द्वार तो पूर्वकी ओर हैं, एक दक्षिणकी ओर है एक उत्तर की ओर और दो पश्चिमकी ओर हैं। हे महीश्वर ! अब इन देशोंके नाम पृथक्-पृथक् मैं तुमसे कहता हूँ ॥४६॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी दो द्वार नेत्र हैं ! पटबीजनेकी नाईं थोड़ा प्रकाश करता है वह वामनेत्र और अधिक प्रकाश जो करता है वह दक्षिण नेत्र है। यह दोनों एक सूधपर बनाये गये हैं, इन दोनों द्वारोंमें राजा पुरंजन विभ्राजित नाम देशमें (रूप) द्युमान् नाम (चक्षु इंद्रिय) मित्रके साथ जाता है ॥ ४७ ॥ नलिनी और नालिनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्वकी ओर हैं । यह भी एक ही सूधमें हैं, वामदक्षिण दोनों नाकके छिद्र हैं, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन अवधूत (घ्राण) नाम सखाके संग सौरभ नाम (गंध) देशमें जाता है ॥ ४८ ॥ उसी दिशामें मुख्या (मुख) नाम पांचवां द्वार है इस द्वारसे पुरंजन राजा (बोलना) अनेक प्रकारके अन्नका स्वाद लेना, रसज्ञाता, व्यवहारकारी, अन्न नाम देशमें रसज्ञ नाम (रसना) प्रीतमके साथ जाता है ॥ ४९ ॥ इस पुरीमें पितृहू (दक्षिणकर्ण दक्षिणकी ओरके पितरोंका बुलानेवाला है, इन द्वारोंसे राजा पुरंजन दक्षिण पांचालदेश, प्रवृत्तिमार्गवाला कर्मकाण्डविषयक शास्त्र) में श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइंद्रिय) अपने प्यारेके साथ जाता है ॥ ५० ॥ इस पुरीमें देवहू नाम (वामकर्ण) यह द्वार उत्तरकी ओर देवताओंका बुलानेवाला है, इस द्वारसे राजा पुरंजन श्रवणसे उत्तर पांचाल नाम (निवृत्तिशास्त्र) देशमें श्रुतिधर नाम (श्रोत्रइन्द्रिय) सखाके साथ जाता है ॥ ५१ ॥ इस पुरीमें आसुरी नाम (शिश्न) पश्चिमकी ओरका द्वार है, इस द्वारसे पुरंजन दुर्मद नाम (उपस्थइन्द्रिय)

मित्रके साथ ग्रामक (मैथुनसुख) नाम देशमें जाता है ॥५२॥ निर्ऋति नाम (गुदा) पश्चिमकी ओरका द्वार है इस द्वारसे राजा पुरंजन लुब्धक नाम (पायुइन्द्रिय) मित्रके संग वैशस नाम (मलत्याग) देशमें जाता है ॥५३ ॥ इस मनोहर पुरमें नव द्वारोंके व्यतिरिक्त निर्वाक (पैर) और पेशस्कृत् (हाथ) नाम दो द्वार और भी हैं। इसपर दो अंधे द्वारपाल सदा बैठे रहते हैं, परंतु यह कभी खुलते नहीं, सदा बंद ही रहते हैं, इनमेंसे निर्वाक नाम द्वारसे इंद्रियोंका राजा पुरंजन चलाता है, दूसरे द्वारवाला अंधा उससे कार्य कराता है ॥ ५४ ॥ यह राजा विषूचीन (मन) नाम द्रष्टाको साथ लेकर अपने अंतःपुर (हृदय) में जाता है तब अपनी भार्या (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियोंके परिणाम) की संगतिमें मोह (तमोगुणका कार्य), प्रसाद (सत्त्वगुणका कार्य) और अत्यन्त हर्ष (रजो गुणका कार्य) को प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ इस प्रकार कर्मोंके वशीभूत हो, कामकी आतुरतासे मोहके जालमें फँसकर ठगा हुआ यह मूर्ख राजा पुरंजन (जीव अपनी पत्नी बुद्धि) की आज्ञानुसार कार्य करने लगा ॥ ५६ ॥ जिस समय वह बाला पुरंजनी मदिरा पीती है, तो यह आप मदिरा पीता है, उसके मदमें ऐसा विह्वल हो गया कि जो कुछ वह करती है वही यह करता है, जब वह भोजन करती और जल पीती है तो उसी समय आप भी भोजन करता और जल पीता है ॥५७॥ जब पुरंजनी गाती है तो यह भी गाता है, जब वह रोती है तो आप भी रोने लगता है, जब वह हँसती है तो आप भी हँसने लगता है, जब वह बोलती है तो आप भी बोलता है ॥५८॥ और जब वह पुरंजनी भागती है तो आप भी भागता है, वह बैठ जाती है तो आप भी बैठ जाता है, जब वह सोती है तो आप भी सो जाता है ॥ ५९ ॥ जो पुरंजनी किसीकी बात सुनती है तो यह भी सुनता है और पुरंजनी किसीकी ओर देखती है तो यह भी देखता है और वह कुछ अपनी नासिकासे सूंघती है तो यह भी सूंघता है, जो वह किसीको छूती है, तो यह भी उसको स्पर्श करता है ॥ ६० ॥ जो उस पुरंजनीको शोकाकुल देखता है तो आप भी शोकके समुद्रमें डूब जाता है, जो उसको हर्षित देखता है तो आप भी हर्षित हो जाता है, जब वह प्रफुल्लित होती है तो आप भी प्रफुल्लित हो जाता है ॥ ६१ ॥ जब सब प्रकारसे उसकी स्त्रीने उसको ठगकर वशमें कर लिया, तो उसकी विना इच्छा वह कोई कार्य नहीं करता था।

दोहा—ऐसे नारीके विवश, भयो पुरंजनराज।
यंत्रीवश जिमि दारुमृग, नाचत तजि सब लाज ॥६२॥

कवित्त—धनीको न जानो धनहीं सौं मन मानो यह, विषैसुखसानो शठ तीनों पनहार है। नारीकीही आज्ञा मानी इंद्रिनसों प्रीति ठानी, गई जब ज्वानी तिय करत न प्यार है॥ पुत्रनसों हित धारो नेकहू न कर न्यारो यत्नन सो पारो सोई अंतमुख जार है। सुनो मन अन्ध अब भजो क्यों न दीनबन्धु, होयगा उद्धार जभी गोविन्द संभार है ॥ १ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महा० उपनाम—शुक० शालग्राम० चतुर्थं० पुरंजनीरमणचरित्र वर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा-छब्बिसमें आखेट अरु, जाग्रतस्वप्नवृतान्त ।
रहो नारिके नेहमें, कियो नाहिं चित शांत ॥

श्री नारदजी बोले कि वह महाधनुषधारी पुरंजन राजा (जीव) एक समय सुवर्णका कवच (रजोगुण) पहन कंचनमय रथ (स्वप्न अवस्था सम्बन्धी देह) में बैठकर अक्षय तूणीर (अनंत वासनाओंसे भरा हुआ अहंकार) पंचप्रस्थनाम (पांच विषय) वनमें मृगया खेलनेके लिये गया; वह रथ अत्यन्त वेगगामी और शीघ्र चलनेवाला था, (स्वप्न अवस्थाका देह जाग्रत अवस्थाकी देहके समान नहीं रहता इस लिये वेगगामी कहा, अत्यन्त तीव्र वेगवाले उसमें पांच अश्व जुते हैं (पंच ज्ञानेन्द्रिय) उसमें दो दंडी हैं (अहंता और ममता), दो उसमें चक्र हैं (पुण्य और पाप), एक उसमें जुवा है (माया अर्थात् ज्ञान) जिसमें तीन वेणुकी ध्वजा हैं, (त्रिगुण-सत्त्व, रज, तम) पांच जिसमें बन्धन हैं (पंचप्राण) ऐसे शोभायमान रथमें बैठकर राजा पुरंजन वनमें विहारके लिये गया ॥ १ ॥ जिसमें एक वागडोर है (मन), एक सारथी है (बुद्धि), एकही रथवानके बैठनेका स्थान है (अंतः-करण) और दो धुरे हैं (शोक और मोह) । पांच उसकी विक्रम गति हैं (पंच कर्मे-न्द्रिय), सात उसमें बरूथ हैं (सात धातु), पांच प्रकारकी इस रथकी सामग्री पांच विषय) प्रक्षेप करनेवाली हैं ॥ २ ॥ उस पुरंजन राजाने सुवर्णके आभूषण पहन, कञ्चनका कवच (रजोगुण) अक्षय बाणरूप तरकस (अनंत बासनाओंसे भरा हुआ अहंकार उपाधि), एक बड़ा भारी धनुष (कर्ता और भोक्ता मैं ही हूँ ऐसा अभिनि-वेश) धारण किये, दश अक्षौहिणी (दश इंद्रिय) और एक उनका सेनापति (मन) को पुरंजन राजा (जीव) अपने सङ्ग लेकर पंचप्रस्थ नाम (पांच विषय) वनको चला ॥३॥ वह महा अहंकारी राजा पुरंजन धनुष (विषय भोगमें अभिनिवेश), बाण (रागद्वेषादिके) हाथमें उठा अपनी परम प्रिया रानी (बुद्धि) जो त्यागनेके योग्य नहीं थी, उस विवेक-वती बुद्धिको त्यागकर (मृगरूपविषयों) के मारनेसे (भोगनेकी इच्छासे निर्जन वनमें जाकर मृगया खेलने लगा (विषय भोगने लगा) ॥ ४ ॥ वह महा निर्दयी क्रूरचित्त राजा पुरंजन असुरबुद्धि तीक्ष्ण शरोंसे वनमें जाकर वनके जीवोंको मारने लगा ॥ ५ ॥ आखेटके लिये शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है, तीर्थ श्राद्धादिक जब आये तो राजा पवित्र पशुओंको वनमें जाकर लुब्धककी नाईं मार लाये, परन्तु उन्हीं पशुओंको मारना कि जिनका मांस धर्मशा-स्त्रमें पवित्र लिखा है, उनको भी वनमें ही मारना, घरपर उनके मारनेका भी निषेध है, फिर इसी प्रकारकी शास्त्रमें और भी अनेक विधि हैं, यह कभी मत समझना कि शास्त्रमें इनके मारनेकी ही विधि है, देखो ! जब बालकका चित्त अत्यन्त खेलनेमें लवलीन हो, तब वह एकाएकी किसी प्रकार नहीं रुक सकता, उसको शनैः-शनै रोकोगे तो रुक जायगा, और कोई विघ्न नहीं होगा, कोई समय उसके खेलनेका नियत कर दिया जाय कि तू पांच श्लोक कण्ठाग्र करके फिर अपना खेल खेलो, परंतु उसमें भी इतना ध्यान रक्खो कि कुलीन और सुबोध लड़कोंके साथ खेलना, उसमें भी इतना और विचार लेना कि धूप न हो, ठण्ढका समय देख-लेना, परंतु रात भी न हो, जब उसके सब समय छुड़ा दिये केवल एक सन्ध्याका समय शेष रह गया, फिर उसका यज्ञोपवीत करके संध्या पढ़ा दी और कहा कि हे पुत्र ! विना संध्या-तर्पण किये गति-मुक्ति नहीं होती । जब वह संध्या, तर्पण

करने लगा तो उसका संध्याका खेलना भी छूट गया, ऐसे ही शास्त्र भी जो एकाएकी लोगोंको रोकता तो लोग कभी नहीं मानते और अनेक विघ्न होते, इस लिये शास्त्रने विषयी लोगोंका मान रखनेके लिये कुछ-कुछ नियम लिखकर हिंसाका निषेध किया है कि जिससे लोग आपसे आप ही कुछ दिनों पीछे समझ-बूझकर हिंसासे निवृत्त हो जायँ ॥ ६ ॥ जिस प्रकार शास्त्रने हिंसामें नियम किये हैं इसी रीतिसे और कर्मोंमें भी नियत नियम किये हैं। जो विद्वान पुरुष इस प्रकार निश्चय करके कर्मोंको करते हैं, उन मनुष्योंको अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे वह पुरुष किसी प्रकारके कर्ममें लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ और जो इन नियमोंके विरुद्ध कर्म करे तो उसका हृदय शुद्ध नहीं होता और हृदयकी शुद्धि विना ज्ञान कहां, तो फिर अज्ञानी बन मदमत्सरताके वशीभूत हो ऐसे करने लगता है कि "मैं कर्ता हूँ" इस प्रकार अभिमानमें आरूढ़ होकर बुद्धिका विनाश कर लेता है, जब बुद्धि न रही तो बुद्धिहीन बन संसार सागरकी लहरोंमें पड़कर महानीचसे नीच योनिमें जन्म लेता है॥ ८ ॥ उस राजा पुरंजनके उस वनमें चित्र विचित्र पक्षवाले शरोंसे अनेक जीवोंके अंगभंग हुए और दुःख पाने लगे, उन दुःखी जीवोंका नाश हुआ, यह बात दयालु-पुरुषोंसे नहीं सही गयी ॥ ९ ॥ शशा, शूकर, अरण्यमहिष, लीलगाय, रुरु, शेही, पवित्र अपवित्र अनेक प्रकारके पशुओंको मारता-संहारता राजा पुरंजन अत्यन्त श्रमित हो गया ॥ १० ॥ स्वप्नावस्थाका वर्णन तो तुमको सुनाया, अब जाग्रत अवस्थाका वर्णन करते हैं:- तब भूख--प्याससे अत्यन्त पीड़ित हो, थकाथकाया लौटकर पुरंजन अपने घरपर आया; श्रम दूर कर स्नानसे निवृत्त हो भोजन करके शय्यापर शयन किया, निद्राके आनेसे शरीरकी सब थकावट दूर हुई ॥ ११ ॥ आंख खुल गयी तो सुगन्ध, चन्दन, पुष्पहारादिकसे शरीरको सुगन्धित और सुशोभित कर, तब अङ्गोंमें सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहन, स्त्रीके समीप जानेकी इच्छा की ॥ १२ ॥तृप्तिचित्त, प्रसन्नवदन, अभिमानमें भरा हुआ, कामविवश चित्त होकर रनवासमें गया, वहां श्रेष्ठ बुद्धिवाली शय्यायोग्य, गृहस्थिनी, अपनी सुमुखी भार्याको नहीं देखा ॥१३॥ तो उस समय अत्यन्त उदास होकर उस वरारोहा अपनी प्रियाकी सखियोंसे पूछने लगा, कि हे स्त्रियो ! तुम्हारी कुशलता तो है ? जैसे तुम अपनी स्वामिनीसमेत पहले आनंद चित्त विचरती फिरा करती थीं,ऐसे आज क्यों नहीं विचरती ? इसका क्या कारण है ?

दोहा-जिन विन यह गृह नहिं लसत, वृथा विभूति लखात।
सो प्यारी कितको गई, सूनो भवन दिखात ॥ १४ ॥

जिस घरमें घरकी शोभा शुभानना स्त्री वा सर्व सुख देनेवाली माता नहीं होती, अथवा पति विना स्त्री ही हो तो उस घरकी सम्पदा शोभाको प्राप्त नहीं होती। ऐसे घरमें कौन विद्वान पुरुष वास कर सकता है ॥१५॥ कौन चतुर पुरुष विना पहियोंके रथमें आरूढ़ होगा ? कहां है वह मेरी प्राणप्यारी जो क्षण-क्षणमें उत्तम परामर्श दे और प्यार कर-करके मेरे मनको मोहित करती थी ॥१६॥ वह ललना कहां है? जो इस व्यसनरूप सागरमें डूबते हुए मुझे उबारती थी और पद-पदपर मेरी बुद्धिको सावधान करती रहती थी, वह कहां चली गयी ? ॥ १७ ॥ स्त्रियां बोलीं—हे नरनाथ! हे शत्रुनाशक! ! हम नहीं जानतीं कि तुम्हारी क्या इच्छा है। परंतु बिना बिछौना बिछाये पृथ्वीमें पड़ी सो रही हैं, चलकर देख लो ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि पुरंजन अपनी स्त्रीको पृथ्वीमें पड़ी देखकर-जिसके सङ्गसे इसका सब ज्ञान नष्ट हो गया था, अत्यन्त दुःखित

हुआ ॥१९॥ राजा पुरंजन मनमें अत्यन्त उदास हो मधुरवचनोंसे सांत्वना कर दुःखी चित्तसे अपनी प्यारीके प्रेमको बढ़ाने लगा और जो क्रोधदृष्टि थी उसको अपने आत्मामें मान लिया, परंतु उसके देखनेमें ऐसा चिह्न और लक्षण कोई भी नहीं जान पड़ा कि जानबूझकर यह किस कारण कोप किया है ॥ २० ॥ फिर प्यारीको प्रसन्न करनेके लिये वह वीर राजा पुरंजन धीरे-धीरे उसके समीप गया और उसके चरणारविंदको छू अपनी गोदीमें बैठाकर इस प्रकार अपनी प्यारीकी प्रार्थना करने लगा ॥ २१ ॥ पुरंजन बोला कि हे चन्द्रानने ! निश्चय है कि तुम्हारे किये हुए पुण्यरूप ईश्वरके समान वह भृत्य प्रसन्न रहते हैं और स्वामी उनको अपना समझकर शिक्षा और दंड दे और जो स्वामी दासको दंड नहीं दे तो दासोंको भाग्यहीन जानना चाहिये ॥ २२ ॥ अपने भृत्योंको जो स्वामी दंड दे तो भृत्योंको अपना अहोभाग्य समझना चाहिये, हे कृशोदरि ! वृद्धोंके दंड देनेका जो बालक दुःख मानते हैं और क्रोध करते हैं, वे अत्यन्त मंदभागी हैं, क्योंकि वह बालक अपने वृद्ध पुरुषोंको नहीं जानते कि यह हमारे हितकारक हैं ॥२३॥ हे सुदति ! सुभ्रु ! ! हे मनस्विनि ! ! ! तेरा मनोहर मुखारविन्द चन्द्रवत्, अनुरागभारसे भूपित, लाजसे शोभित, मधुरहास्य युक्त, तिरछी चितवनके अवलोकनके कारण अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता है, जिसमें श्याम वर्ण सर्पिणीसी अलकें कपोलोंपर पड़ी अमृतके कणोंको चाट रही हैं। सुभग नासिका और मनोहर भाषणवाले मुखपरसे घूँघटपट उठाकर क्यों नहीं अपना चन्द्रवदन अपने प्रेमियोंको दिखाती हो ॥ २४ ॥ हे वीरबाला ! ब्रह्मवंश और भगवद्भक्तके व्यतिरिक्त और किसी दूसरेने तेरा अपराध किया हो तो मुझे बता, उसे मैं दंड दिये विना कभी न रहूंगा, यह तू निश्चय समझ लेना क्योंकि त्रिभुवनमें अथवा चौदह भुवनोंमें निरंतर मेरा भय न मानकर प्रसन्न रहनेवाला कोई भी वीरपुरुष मुझको नहीं दिखायी देता ॥ २५ ॥ आजतक तेरा मुखारविन्द विना तिलक, मलीन, हर्षरहित, कोपसे भयानक, प्रेमशून्य मेरे देखनेमें नहीं आया था और यह तेरे मनोहर कुच भी शोकसे लचे, नेत्रोंके जलसे भीजे नहीं देखे और बिंबफलसे लाल रंगवाले सुधा रस भरे कोमल अधर तांबूलके न खानेसे कुंकुमकेसी कांति जिसमें नहीं दीखती, ऐसे अधर कभी मेरे देखनेमें नहीं आये ॥ २६ ॥ इतना अपराध तो मुझसे अवश्य हुआ है कि तुझसे विना पूछे व्यसनमें आतुर होकर आखेटको चला गया, वह अपराध क्षमा कर, कामदेवके बाणोंके वेगसे सब ऐश्वर्यको त्याग धैर्य रहित हो, जिस पत्नीका पति बारम्बार उसके चरणोंमें पड़े तो अपने वशीभूत अपने पतिकी अभिलाषा न पूर्ण करनेवाली ऐसी कौन स्त्री है जो अपने पतिको कण्ठसे न लगायेगी ? जो कुलीन स्त्री हैं, वे सदा अपने पतिकी सेवामें तनमनसे उपस्थित रहती हैं, उनकी महिमामें एक कवित्त हैः--

कवित्त--नारी ही स्वर्गरूप नारी ही जीवनप्राण, नारी ही जगतरूप सुर मुनि कहत हैं। नारी ही तरण तारण कोटिकष्टहूं निवारण, ब्रह्माशिवविष्णु शोभा नारीसों लहत हैं॥ वृंदासी नारीको धारी शीश शालिग्राम, चतुर औ अनारी सब नारीको चहत हैं। नारी ही सारे संसारकी है जीवनमूल, अंत समय सबके प्राण नारीमें रहत हैं॥

इति श्रीभापाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनेन स्वापराधक्षमापनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, पुत्रादिककी प्रीत ।
भई पुरंजन राजके, कन्याकाल प्रतीत ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार पुरंजनको पुरंजनीने अपने मधुर वाक्य और सुन्दर कटाक्षोंसे मोहित करके वशमें किया और उसको विहार कराती हुई आप विहार करने लगी ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस राजा पुरंजनने सुन्दर स्नान की हुई चन्द्रमुखवाली, सुंदर शृंगार की हुई स्वस्त्ययन जिसका किया हुआ और तृप्त अपने समीप आती हुई अपनी राजमहिषीका बहुत आदर-सम्मान किया ॥ २ ॥ दोनों अत्यन्त लिपट-लिपटकर मिले, फिर हृदयसे लगाकर एकान्तमें गुप्त भाषणसे उस कामिनीका मन अपने वश कर, ज्ञान, ध्यानको तज, उस मनमोहिनी बालाको ही सर्वसाधनरूप समझने लगा और ऐसा आसक्त हुआ कि दिन-रात दुरत्यय कालके प्रचण्ड वेगको भी भूल गया और उसीके संग रहने लगा ॥ ३ ॥ सुंदर सुहावनी रसीली शय्यापर अपनी मनरंजनी पुरंजनीकी भुजाका तकिया लगाये, वह मदांध महामनस्वी शयन करता और उसीको सर्वोत्तम अत्यन्त श्रेष्ठ मान अपने सत्य-स्वरूपको भूल गया और अपने परायेका भी कुछ ध्यान न रक्खा ॥४॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब अत्यन्त कामासक्त हो रमण करनेसे ऐसा बेसुध हुआ कि उसकी युवावस्था क्षणार्धकी नाई व्यतीत हो गयी॥५॥तब राजा पुरंजनने अपनी भार्या पुरंजनीमें ग्यारहसौ (११००) पुत्र उत्पन्न किये, (ग्यारह इंद्रियोंके परिणाम) इतनेमें सम्राटकी आधी आयु व्यतीत हो गयी ॥६॥ हे प्रजापते ! उसके एकसौ दश (११०) पुत्रियां उत्पन्न हुई (बुद्धिकी वृत्तियां) माता पिताका यश और कीर्ति बढ़ानेवालीं और सबै शीलवान् गुणनिधान उदारतासे युक्त थीं ॥ ७ ॥ अब पौरंजन वंश चला सो पांचाल देशके (शब्द–स्पर्श आदि विषय) अधीश्वर उस राजा पुरंजनने अपने वंशको वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका अच्छी कुलीन कन्या (हित, अहित, चिंता,) के साथ विवाह किया और कन्याओंका भी उनके समान वर (योग, विषय भोग) देखकर विवाह कर दिया ॥ ८ ॥ राजा पुरंजनके पुत्रोंमेंसे एक-एक पुत्रके सौ सौ (१००-१००) पुत्र (अनेक प्रकारके कर्म) उत्पन्न हुए जिनसे राजा पुरंजनका वंश पांचाल देशमें बहुत बढ़ा ॥ ९ ॥ घरमें धन अधिक देख, पुत्र पौत्रोंकी प्रीतिके वश हो मोहपाशमें फँस विषयके बंधनमें बँध गया जैसे मर्कट और कीर पिंजरेमें बन्द हो जाते हैं ॥१०॥ उस राजा पुरंजनने भी तेरे समान पशुमारक अनेक प्रकारकी घोर पशुओंकी दीक्षा लेकर महाभयानक पशुवाले यज्ञोंसे देव पितृ और भूतपतियोंका यजन किया ॥११॥ इस प्रकार उस योग्य प्रमत्त, कर्महीन, परिवारासक्त चित्त राजा पुरंजनका वह समय आया (वृद्धावस्था) जो समय स्त्रियोंको अत्यन्त अप्रिय है ॥ १२ ॥ हे महीश्वर चण्डवेग नाम (वर्ष) गन्धर्व लोकका अधीश्वर है, और तीनसौ साठ (३६०) महाभट योद्धा उसके समीप (दिन) रहते हैं ॥१३॥ और उतनी ही उनकी भार्या हैं। (रात्रि) मैथुन योग्य सित-असित हो जाती हैं (कृष्णपक्षकी और शुक्लपक्षकी)। प्रतिदिन अपने पतियोंके साथ ही विचरती रहती हैं, और पुरुष–स्त्री दोनों मिलकर सदा पुरंजनकी शोभायमान पुरीको लूटते रहते हैं। (अवस्थाको) ॥१४॥ जब चण्डवेगके अनुचर पुरंजनकी नगरीको अधिक सताते हैं तब इस पुरीका पुराधीश (रक्षा करनेवाला) पंचवक्त्र सांप (पञ्चप्राण) उनको रोककर उनसे युद्ध करनेको उपस्थित होता है ॥ १५ ॥ सात सौ बीस (७२०) महाबलवान् गन्धर्व-गन्धर्विनियोंसे पुरंजन नगरीके नरेशने सौ वर्षतक युद्ध

किया ॥१६॥ अपने सब सम्बन्धी जब क्षीयमाण हो गये और आप अकेलेने जब बहुत-बहुत पुरुषोंसे युद्ध किया, तब वह सर्प बलहीन हो गया और पुरंजन सब नगरवासियों समेत अपने कुटुम्बियोंके निकट बैठकर चिन्ता करने लगा ॥१७॥ वह मधुभोगी अपने अनुचरों-सहित पांचालदेशमें वास करता और जो कुछ उसके पार्षद भेज देते उसीको ग्रहण कर अपने मनको सन्तुष्ट करता और नारीके वशीभूत हुआ, वह राजा पुरंजन देश छिन जाने और शत्रु (मृत्यु) के आनेके भयसे भी कुछ भयभीत न हुआ ॥१८॥ हे राजन् ! उसी समय कालकी पुत्री अपने वरके लिये सब त्रिलोकीमें ढूँढ़ती फिरी, परन्तु उसको किसीने अंगीकार नहीं किया ॥ १९ ॥ तब उस दुर्भागिनीका दुर्भगा नाम जगत्में विख्यात हुआ, प्रथम इस दुर्भगाको राजा पुरुने वरा, तब उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा पुरुको राज्य दिया॥२०॥ एक समयमें ब्रह्मलोकसे मैं मृत्युलोकको आता था और यह कालकन्या चारों ओर पर्यटन करती फिरती थी, मार्गमें मुझे मिली और मुझको देखकर मोहित हो गयी और मुझसे बोली कि हे स्वामिन् ! मुझको वर लो, वह अपने जीमें यह भी जानती थी कि यह पूर्ण ब्रह्मचारी है परन्तु कामके वशीभूत हो फिर हठकर मेरे निकट आयी और कहा हे स्वामिन् ! मुझको वरना पड़ेगा ॥ २१ ॥ जब मैंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया तब वह मेरे ऊपर बड़ी क्रोधित हुई और मुझको यह दुःसह शाप दिया कि हे मुने ! तूने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया अब तू एक स्थानपर वास नहीं कर सकेगा ॥ २२ ॥ जब उसकी अभिलाषा पूर्ण न हुई तब वह निराश होने लगी, तब मैंने उसको कहा कि तू यवनोंके राजा भयको वर ले, वह मेरी आज्ञा मान भय नरेशके निकट गयी ॥ २३ ॥ हे वीर ! आप यवनेश हैं इस लिये मुझे अधिक प्रिय जान पड़ते हो, इस लिये मेरा मन आपके वरनेको चाहता है, जो स्त्री-पुरुष अपनी जिस कामनाके लिये आपके पास आता है, उसकी मनःकामना पूर्ण होती है ॥ २४ ॥ लोक अथवा शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो पदार्थ देने योग्य है, उस पदार्थकी कोई आकर याचना करे और वह पदार्थ उसको न मिले, अथवा जो पदार्थ लोक और शास्त्रकी रीतिके अनुसार लेने योग्य है, वह पदार्थ कोई उसको समर्पण करे और वह उसे स्वीकार न करे तो वे दोनों मूर्ख और अज्ञानी हैं ॥ २५ ॥ हे मंगल रूप ! अब आप मुझको अंगीकार करो, क्योंकि मैं आपके ऊपर मतवाली हूँ आप मुझपर दया करो दीनों पर दया करना ही साहसी पुरुषोंका परम धर्म है ।

दोहा–ताते मोपर करि कृपा, करहु मोहिं निजनारि ।
यही पुरुष का धर्म है, परदुख देत निवारि ॥ २६ ॥

जब कालकन्याने इस प्रकार विनयपूर्वक वचन कहे, तब यवनेश्वर, भय जो कि बात देवताओंकी समझमें भी आनी कठिन (मरण) है वह मुसकाकर उससे बोला ॥ २७ ॥ मैंने अपने आत्मज्ञानसे तेरे लिये पति अनुसरण कर लिया है, वह तू अमंगलरूप श्रेष्ठ पुरुषोंके योग्य नहीं है, यदि तू किसीके सम्मुख जाकर विनय करेगी, तो भी कोई तुझको अंगीकार नहीं करेगा ॥ २८ ॥ इस लिये तू मेरा कहना मान, कर्मसे विनिर्मित लोकको तू प्रकट गतिसे भोग, यह किसीको विदित न हो कि कहांसे आयी और कैसी है, कोई तुझको न पहिचाने, इस प्रकार सब संसार (सब शरीर) जो कि कर्मोंसे बने हुए हैं, उनको बलात्कार पकड़ कर भोग और मेरी सेना अपने संग ले जा, इस रीतिसे एक क्या सब संसारके पुरुष तेरे पति

हो सकते हैं, (सब प्रजा नाशको प्राप्त हो सकती है) ॥२९॥ नारदजी बोले कि हे बर्हिष्मन् ! तू यह भी भय मत करना कि संसारमें मुझको कोई हत्यारा समझकर मार डालेगा; तू ही सबको अपने वशमें रक्खेगी और प्रजा गन्धर्व मेरा भ्राता है और तू मेरी भगिनी बन जा, मैं भी अपनी भयानक सेनाको साथ लिये तुम दोनोंके पीछे-पीछे सब संसारमें गुप्त होकर फिरता रहूंगा, परन्तु ऐसे महात्मा पुरुषोंको नहीं सताऊँगा ।

कवित्त–मानुषको जन्म पाय कीन्हो जिन साधुसंग, गुरुसों लह्यो जु भेव सोई बड़भागी है । कुमतिको विदार सुमतिसों बढ़ाई प्रीति, वोहि है संयोगी जाकी सूरत शब्द पागी है ॥ सोई संन्यासी जो शून्यशिखरवासी भयो, कर्मको विनाशी हरिपद अनुरागी है । होमनको त्यागी अनुरागी ईश दरशनको, सोई है वैरागी जाकी रामसों लौ लागी है ॥ ३० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे कालकन्योपाख्यान वर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा–अट्ठाइस अध्यायमें, वैदर्भी आख्यान ।
पुरञ्जनीको जन्म पुनि, मोक्ष परम बलवान ॥

श्री नारदजी बोले कि हे बर्हिष्मन् ! भय नामक यवनेशकी सेनाके जो बलवान् योद्धा (रोग) थे वह प्रज्वार और कालकन्याके संग संसारमें घूमने लगे ॥ १ ॥ हे नरेश ! उन्होंने एक दिन वेगसे भूमिके भोगयुक्त जीर्ण प्राणरूप सर्पसे रक्षित थी, उस पुरंजनकी पुरीको आकर झटपट घेर लिया ॥ २ ॥ कालकन्या पुरंजनकी पुरीको बलात्कार भोगने लगी, जिससे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ सब नगरीके चारों ओरके द्वारोंमें होकर यवनराजके सैनिक नगरीमें घुस भांति-भांतिकी पीड़ा देकर उसे लूटने लगे ॥ ४ ॥ जब इस प्रकार अपनी पुरीमें पुरंजनने पीड़ा देखी, तब वह अभिमानी पुरंजन कुटुम्बकी ममतासे व्याकुल हो, अनेक प्रकारके तापोंसे पीड़ित होने लगा ॥ ५ ॥ उस कालकन्याने जिससे मिलाप किया वह श्रीहीन, कृपण, विषयमें लगी हुई आत्मा बुद्धि उसकी नष्ट हो गई और गन्धर्वोंने बलसे सब ऐश्वर्य नष्ट कर दिया ॥६॥ जब पुरंजनकी पुरीका सब विभव लूट-कर विध्वंस कर दिया तब पुत्र, पौत्र, भृत्य (इन्द्रियाँ और कार्यकर्ता इन्द्रियोंके देवता) को प्रतिकूल चलता देखा, (मनवांछित विषय न देने और अवांछित विषय देनेसे) निरा-दर करने लगे (अपने वशमें न रहे) और प्यारी पत्नीने भी सुहृदता त्याग दी, (बुद्धि-भी ठिकाने न रही) स्त्री भी अपनी नहीं रही ॥ ७ ॥ अपनी देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पांचाल देशको (विषय) शत्रुओंसे (विघ्न) दुःखित देखकर राजा पुरंजन मनमें अत्यन्त चिन्ता करने लगा, उसके दूर होनेका कोई यत्न न बन सका ॥८॥ जब सब विषय कालकन्याके भोगनेसे निःसार हो गये और कुटुंबियोंने भी स्नेह त्याग दिया तो भी वह दीन पुरंजन उनकी वांछा ही करता रहा । परलोकसम्बन्धी कल्याणोंसे अथवा इस लोकसंबंधी परिवारादिकोंकी प्रीतिके छूटनेपर भी पुत्र दाराका लालन-पालन चित्तमें बना ही रहा ॥ ९ ॥ जब गन्धर्व यवनोंने उस पुरीमें भारी उपद्रव मचाया और कालकन्याने पुरवासियोंका मर्दन किया और पुरंजनको नगरसे बाहर निकालना चाहा परंतु उस समय पुरंजनकी इच्छा

निकलने की नहीं थी ॥ १० ॥ निदान बेवशीको निकलना ही पड़ा। उस समय भय (मृत्यु) का बड़ा भ्राता प्रज्वार (कालज्वर) आकर उपस्थित हुआ और अपने भाईके हित करनेके लिये उसने उस नगरीको भस्म कर दिया ॥ ११ ॥ जब सब परिवारसमेत वह पुरी जलकर भस्म हो गयी, तब कुटुम्बी उस कुटुम्बिनीके साथ वंशसहित अत्यन्त संताप करने लगे ॥ १२ ॥ यवनोंने सब स्थान जब घेर लिये और कालकन्याकी पुरीको ग्रसा और प्रज्वारने पुरीको धरकर आग लगा दी, तब वह पुरपालक (सर्प) भी परिताप करने लगा ॥ १३ ॥ अत्यन्त दुःखसे थरथर कांपने लगा और जब नगरीकी रक्षा उससे न हो सकी तब उस जलती हुई आगमेंसे निकलकर भागनेकी इच्छा की, जैसे जलते हुए वृक्षकी खखोड़लमेंसे सांप निकलकर भागता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! जब सब अवयव उसके ढीले हो गये और सब पुरुषार्थ गंधर्वोंने हर शत्रु यवनोंने पुरीको चारों ओरसे घेरा तब वह पुरंजन नेत्रोंसे आंसू बहाने लगा ॥ १५ ॥ दुहिता, पुत्र, पौत्र, बहू, जामाता, अनुचर, गृह, कोष, सब परिवार जिसमें केवल एक सत्वमात्र शेष रह गया, कि यह मेरे हैं, यह सत्यभाव हुआ ॥ १६ ॥ और उसको मोह-ममतासे अपना समझकर घरोंके भीतर कुबुद्धिसे बँधा हुआ, उस दीन पुरंजनका जब भार्यासे वियोगका समय उपस्थित हुआ तब पुरंजन मनमें विचारने लगा ॥ १७ ॥ कि जब मैं इस लोकको त्यागकर परलोकको चला जाऊँगा, तो यह अनाथा कुटुम्बिनी मेरी पत्नी अपने छोटे-छोटे बालकोंका किस प्रकार पालन-पोषण करेगी ॥१८॥ यह ऐसी शीलवती और पतिव्रता थी कि इसने आजतक विना मेरे भोजन कराये कभी भोजन नहीं किया, पहले मुझको स्नान कराकर तो पीछे आप स्नान किया और जब कभी मैंने क्रोध किया, तो थरथर काँपने लगी और सदा मेरे स्नेहमें परायण रहती थी, जो मैं ललकारता तो नीचेको शिर झुकाकर चुप साध लेती ॥ १९ ॥ जब मेरा क्रोध शांत होता, तो यह सुबोधा मुझको बोध कराती, जब मैं कभी परदेशको जाता तो यह शोककी मारी आधी भी नहीं रहती थी, यह पुत्र पौत्रवती भी है और गृहस्थीके सब व्योहारोंको भी जानती है, परन्तु तो भी मुझ विना मृतकके समान हो जाती है ॥ २० ॥ हाय ! यह पराये घरकी धन पुत्री और यह अनाथ छोटे- छोटे पुत्र मुझ विना कैसे अपने दिन व्यतीत करेंगे, मैं भली-भांति जानता हूँ कि इनकी वह कुगति होगी, कि जो दुर्दशा समुद्रमें नाव टूट जानेपर नावमें बैठनेवालोंकी होती है ॥२१॥ यह अपनी कृपण बुद्धिसे इस प्रकारसे सोच करने लगा परंतु यह ऐसे कठिन शोक करनेके योग्य नहीं (परमात्माका अंश) था, उसी समय उसके पकड़नेके लिये भयनामक यवनोंका राजा आकर उपस्थित हुआ ॥ २२ ॥ और पशुकी नाईं इस राजा पुरंजनको जब यवन लोग बांधकर अपने घरकी ओर ले चले, तब उसके अनुयायी अत्यन्त व्याकुल हो शोकमें डूबे हुए हाहाकार करते उसके पीछे भागे ॥ २३ ॥ उस समय नागसे भी कुछ उपाय न बन पड़ा, तब वह भी नगरीको छोड़कर चल दिया, उसके जाते ही सब पुरी विशीर्ण होकर अपने-अपने ठिकानेको चली गयी ॥ २४ ॥ और जब बलवान् यवनोंने पुरंजनको बलात्कार पकड़ लिया और घसीटने लगे तो भी उस अज्ञानीको अपने पूर्व सुहृदका स्मरण नहीं हुआ ॥ २५ ॥ उस दयालुने यज्ञादिक सकाम कर्मोंमें निर्दयी बनकर जिन-जिन पशुओंको मारा था, वह सब पशु उसके अपराधको स्मरण कर, महाक्रोधित हो कुल्हाड़ोंसे उसका शरीर छेदन करने लगे ॥ २६ ॥ और अपारतमसे स्मृति जिसकी

विस्मृत हो गयी और प्रमदाके प्रसङ्गसे दूषित हो गया, ऐसे उस राजा पुरंजनने अनेक वर्ष तक पीड़ाको भोगा ॥ २७ ॥ परन्तु मनमें उसी पुरंजनीका ध्यान बना रहा, उसी ध्यानसे वह उत्तम-स्त्री विदर्भराज सिंहके घरमें जाकर उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ इस प्रसंगसे यह जान लेना कि स्त्रीके ध्यानसे स्त्री ही होता है, धार्मिक विशुद्ध मलयध्वज नामक भागवत्के संग हुआ, उस सत्संगके कारण विष्णुभक्ति और वैराग्यके हेतु उसी पतिरूप गुरुकी पतिव्रताके धर्मसे सेवा करते-करते भगवत्की कृपासे ज्ञान प्राप्त होनेके कारण स्त्रीजन्म लेनेवाले पुरंजनकी मुक्ति हुई। इस विदर्भराजाकी पुत्री (पूर्वजन्ममें जो राजा पुरंजन था वह) का स्वयंवर हुआ, उस स्वयंवरमें ऐसा नियम किया गया था कि जिस नरेशका विक्रम अधिक हो, उसको यह कन्या दी जाय, (पण्डा अर्थात् बुद्धि पांडय बुद्धिमान्) जो कि शत्रुओंका जीतनेवाला, और दक्षिण-देशमें (दक्षिणदेशमें भक्ति अधिक है, इससे ज्ञात होता है कि वह परम वैष्णव था) श्रेष्ठ और पराक्रमी गिना जाता था, उस राजाने संग्राममें दूसरे शत्रुओंको पराजित कर विदर्भराजाकी पुत्रीका पाणिग्रहण किया (पुरंजनको भगवद्भक्तका सत्संग हुआ) ॥२९॥ उस मलयध्वजने उस स्त्रीमें एक मनोहर कन्या श्रीकृष्ण अनुरागिनी श्यामकमलसे नेत्रवाली उत्पन्न की, फिर उस कन्याके जन्म होनेके उपरांत उस राजाके सात पुत्र और उत्पन्न हुए श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, अर्चन, वन्दन और दास्यरूप, जो कि द्रविण देशके रक्षक गिने जाते हैं॥३०॥ हे राजन्! इन सात पुत्रोंसे एक एकके अनेक सुत उत्पन्न हुए (श्रवण आदिक भक्तिके सात्त्विक, राजस और तामसादिक अनंत भेद हैं) जिनके वंशके(अनेक संप्रदाय) इस पृथ्वीकी मन्वन्तरसे भी कुछ अधिक कालतक रक्षा करेंगे फिर अज्ञानादिकोंसे बचायेंगे॥३१॥ पांडय-राजाकी कन्या (कृष्णसेवा रुचि) जो कि उत्तमव्रत (शम दमादिक) धारण करनेवाली थी, उसका विवाह अगस्त्य (मन) मुनिके साथ हुआ। अगस्त्यमुनिने इस स्त्रीमें दृढच्युत नाम (वैराग्य) पुत्र उत्पन्न किया, दृढच्युतके इध्मवाह नामक पुत्र हुआ, (ब्रह्मज्ञानी गुरुकी शरणागत लेना, ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा लेनेके लिये गुरुके समीप जाना)। उस समय समिध हाथमें लेनेके लिये वेदमें आज्ञा है, इस कारण इध्म (समिध) को वाह अर्थात् उठानेका यह अर्थ है, वह गुरुकी शरणागत होनेसे सूचित करता है, वैराग्य होनेसे गुरुकी शरणागत जाना बन सकता है इसलिये वैराग्य और इध्मवाहके पिता-पुत्रका संयोग कहा और वैराग्यपिता अगस्त्य अर्थात् मन और माता कृष्णसेवारुचिको कहा, वह भी होना ही है ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वजने अपने पुत्रोंको पृथ्वीके विभाग करके पृथक्-पृथक् सबको बांट दिये (नवधा-भक्तिके श्रवणादिक नौ प्रकारके पुत्रोंको उसके अन्तर्गत बता दिये) फिर उस राजाने भग-वद्भजन करनेको कुलाचल पर्वतको जानेकी भावना की ॥ ३३ ॥ मदभरे नेत्रवाली रानी वैदर्भी, गृह, पुत्र, भाजनको त्यागकर ऐसे चलने लगी, जैसे चंद्रिका चन्द्रमाके पीछे-पीछे चलती है, ऐसे ही अपने स्वामीके पीछे दौड़ी। स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही मुख्य है, क्योंकि स्त्रियोंके तो पति ही परमेश्वर हैं ॥ ३४ ॥ वहां चन्द्रवासा, ताम्रपर्णी और वटोदका नाम बड़ी गम्भीर-गम्भीर नदियां हैं, उनके पावन (पवित्र) जलसे मज्जन कर दोनों स्त्री-पुरुषोंने अपनी अन्तःकरणकी शुद्धि और देहके मलोंका विनाश किया ॥३५॥ कन्द, मूल, फल, दल, तृण व जलसे धीरे-धीरे निर्वाह किया, फिर शरीरको कृश कर ऐसा महाकठिन तप करने लगा ॥ ३६ ॥ कि शीत, गर्मी, पवन, वर्षा, क्षुधा, प्यास, प्रिय, अप्रिय और सुख

दुःख इन सबको जीत समदर्शी हो गया ॥ ३७ ॥ जब जप, तप, यम, नियमोंके करनेसे सब वासनाएँ भस्म हो गयीं, तब राजाने इन्द्रियाँ, पवन, अन्तःकरण, मनको जीतकर अपने आत्माको परब्रह्ममें लगाया ॥ ३८ ॥ देवताओंके सौ वर्षतक खम्भकी नाईं स्थित होकर वह राजा एक स्थानपर खड़ा रहा और निरंतर भगवान् वासुदेवमें प्रीति रखनेसे उसको शरीरादिक अनात्म वस्तुओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ ३९ ॥ आत्माकी व्यापकता मान और आत्मासे भिन्न भी नहीं है यह जान संसारको स्वप्नसमान समझकर साक्षीसे विरामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जिसका साक्षात् भगवान्रूप गुरुने भली प्रकार वेदमें विचार किया है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानदीपकके चारों ओर प्रकाश होनेसे विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति हो गयी, तब जाना कि जो अनन्त ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ और जो मैं हूँ वह ब्रह्म है, यह तत्त्वज्ञान महात्मापुरुषोंने यथार्थ वर्णन किया है ॥४१॥ परब्रह्ममें तो सब प्राणियोंको माना और परब्रह्मको सब प्राणियोंमें जाना, इस दृष्टिसे सब विश्वको देखकर अपने शरीरका त्याग किया ॥ ४२ ॥ विदर्भराजाकी पुत्री जो महाश्रेष्ठ पतिव्रता थी, वह सब सुखभोग त्यागकर ब्रह्मज्ञानी पतिको देवता समान मान मलयध्वजकी प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगी ॥४३॥ और नियम, धर्म, व्रतोंके करनेसे वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी, बालोंकी लटायें बँध गयीं और बल्कल वसन पहने ऐसी दिखायी देती थी, मानो धूमरहित अग्निकी शिखा अग्निके शांत होनेपर आपसे आप शांत और शीतल हो जाती है, ऐसे वह शीलवती भी अपने पतिके निकट रहनेसे शांतस्वरूप हो गयी थी ॥ ४४ ॥ और इसने अपने प्रियतमके मरनेका कुछ ध्यान नहीं किया, जैसे नित्यप्रति पतिकी पूजा किया करती थी उसी प्रकार स्थिर हो आसनपर बैठकर अपने पतिकी सेवा करने लगी ॥ ४५ ॥ जब पतिकी सेवा करते-करते चरणारविन्दोंका स्पर्श किया तो पद गरम नहीं जान पड़े, तब तो संविग्न हृदय हो ऐसी शोकाकुल हुई जैसे पतिसे बिछुड़कर मृगी शोकसागरमें डूब जाती है ॥ ४६ ॥ वह अनाथिनी अबला अपने आत्माका सोचकर अश्रुधारासे स्तनोंको सींच अत्यन्त व्याकुल हो, उस महागम्भीर वनमें उच्चस्वरसे रो-रोकर विलाप करने लगी ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे ! हे प्रियतम ! ! हे भयहरण ! ! ! उठो, उठो यह दीन पृथ्वी चोर और अधम क्षत्रियोंके भयसे व्याकुल हो रही है, इस दीन दुखियाकी रक्षा कौन करेगा ? विना आपके इस कार्यका करनेवाला मुझको कोई दृष्टि नहीं आता ॥४८॥ इसलिये आप समुद्र पर्यन्त इस वसुधाकी रक्षा करो, ऐसे विलाप कर करके वह अनाथिनी बाला वनमें पतिका अनुसरण कर फिर अपने स्वामीके चरणोंमें शिर धरकर अश्रुधारा बहाने लगी ॥ ४९ ॥ फिर उसने मनमें धैर्य धारण कर काष्ठ बटोर चिता रचकर उसपर पतिका देह धर अग्नि लगाकर आप भी उस चितामें बैठनेको प्रस्तुत हुई ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! उसी समय इसका प्राचीन सखा (ईश्वर) जो कि परमज्ञानी था; वह विप्ररूप धरकर वहां आया और मनोहर वाणीसे धैर्य देकर उस रोती हुई वैदर्भीसे यह वचन कहा ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण बोला कि तू कौन है ? और किसकी कन्या है ? और यह चितामें जो सो रहा है यह कौन है ? जिसके सोचमें तू मग्न हो रही है; और तू मुझको भी जानती है कि नहीं मैं तेरा प्राचीन सखा हूँ और सृष्टिके समय मुझमें स्थित होकर तूने मेरे संग अनेक प्रकारके सुखविहार किये थे[1] ॥ ५२ ॥ हे सखे

१. शंका—जब पुरंजन स्त्री बनकर अपने पतिके संग भस्म होनेके लिये चितामें बैठनेको उपस्थित हुआ तब भगवान्ने ब्राह्मणका रूप–

आप मुझको जानते होंगे परन्तु इतना तो मुझको ध्यान आता है कि मेरा एक अविज्ञात नामक सखा था (परमात्मा) और मुझको त्याग भूमिकी इच्छासे विषयवासना भोगनेके लिये आश्रमके खोजनेको गया था ॥ ५३ ॥ हे आर्य ! हम तुम तो दोनों मानसरोवर (हृदय) वासी हंस (शुद्ध) हैं, अतः हम और आप दोनों मित्र सहस्रों वर्षोंतक विना ही स्थान रहे थे (महाप्रलय हुआ उस समय तक) जीव तुम हो ईश्वर मैं हूँ ॥ ५४ ॥ हे बन्धो ! उस समय विषयोंमें आपकी बुद्धि थी;अतः मुझको त्यागकर विषयके सुखकी कामनासे तुम पृथ्वीमें गये और किसी स्त्री (माया) की रचीं हुई पुरी तुम्हारे देखनेमें आयी, उसमें तुम विचरने लगे, ऐसे पृथ्वी पर मैंने तुमको देखा; अब उस पुरीका वर्णन आपसे करते हैं॥५५॥ उस पुरीमें पांच तो उपवन थे और नवद्वार थे, एक उस पुरीका रक्षक था, तीन कोट थे, छः वणिक थे, पांच हाटें थीं और पांच ही मूलकारण थे और एक स्त्री वहांकी स्वामिनी थी ऐसी वह पुरी थी ॥५६॥ हे प्रभो ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह तो पांच उपवन समझो,देहमें जो प्राणरूप नव छिद्र हैं, उन्हींको नवद्वार समझो, एक जो प्राण है, वही पुरीका रक्षक समझो; पृथ्वी, तेज, जल यही तीनों दुर्ग समझो; श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञानेंद्रिय और छठा मन, इन छहोंको वणिक समझो ॥ ५७ ॥ कर, पद, वाणी, शिश्न, गुदा इन्हीं पांच कर्मेंद्रियोंको हाटें समझो; क्षिति,जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतोंको मूलकारण समझो और बुद्धिको स्वामिनी समझो, उसका पति जो आत्मा है, अपनी भार्याके विवश होनेसे अपने निज स्वरूपको भूल जाता है ॥५८॥ उस पुरीमें क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होता है, जिसका नाश कभी नहीं होता वह भूत प्रकृति है और इसमें जो पुरुप है, वह शक्तिका अधीश है, वही उस पुरीमें वास करता है, परन्तु जाना नहीं जाता है ॥ ५९ ॥ ज्ञात हुआ कि आप उस पुरीमें जाकर उस स्वामिनीके दास बने और उसके संग रमण करने लगे, इस कारण तुमको अपने स्वरूपकी स्मृति नहीं रही, हे प्रभो ! उसी कुसंगसे इस पापीय दशाको आप प्राप्त हुए ॥ ६० ॥ न तुम विदर्भराजाकी पुत्री हो और न यह राजा पांडच तुम्हारा स्वामी है, न पुरञ्जनीके तुम पति हो, केवल उस नौ द्वारवाली पुरीमें मोहके वशीभूत होकर रुक रहे हो ॥ ६१ ॥ यह सब माया मेरी ही रची हुई है, जो तुम पूर्वजन्ममें अपने लिये पुरुष मानते थे और अब अपने लिये सती स्त्री मानते हो, यह यथार्थमें दोनों बातें वृथा हैं, यह माया तो मेरी ही रची हुई है, हम तुम तो दोनों शुद्ध हंस हैं, अब मैं अपना सत्यस्वरूप वर्णन करता हूँ, उसे कान लगाकर सुनो और मेरी गति देखो ॥ ६२ ॥ हे जीव ! हम तुम दोनों एक ही हैं, जो तू है, वह मैं हूँ, इस बातको ज्ञानरूपी नेत्रोंसे विचार कर देख ले, भिन्न नहीं हैं। जो पंडित हैं, वे कभी हमारे तुम्हारे बीचमें भेद नहीं समझते ॥ ६३ ॥ तो अल्पज्ञ सर्वभेद कैसे मानते हैं ? उसका उत्तर यह है कि जैसे एक देहका प्रतिबिम्ब आदर्शमें देखा जाय तो दीर्घ, विमल और स्थिर दिखायी देता है, उसी प्रतिबिम्बको कोई दूसरे दर्पणमें अपनी ही आंखसे देखे तो लघु, मलीन और चञ्चल

–धरकर ज्ञानसे जीव स्त्री हो गया था उसको सब हाल बतलाने लगे, परन्तु प्रथम ज्ञान क्यों नहीं दिया कि ऐसा जीव दुःख पाता है, यह सन्देह है ?

उत्तर—प्रथम स्त्रीरूप पुरंजन अपने अभिमानसे बड़ा उन्मत्त हो रहा था। भगवान्ने ज्ञान दिया, वह सुन लिया परन्तु स्मरण नहीं रक्खा, जब अभिमान नष्ट होता है तो जीव ज्ञान सीखता है, मानवालेको ज्ञान कहां ? भगवान्ने जीवरूपस्त्रीको बड़ा अभिमानी जानकर पहले वारंवार ज्ञान नहीं कहा, जब मान नष्ट हो गया तब कहते ही जीवने ईश्वरको मान लिया।

दृष्टि आता है, उसमें दर्पणके छोटे-बड़े होनेका भेद है, प्रतिबिम्बका भेद नहीं, इसी प्रकार दोनोंमें विद्या और अविद्यारूप उपाधिके विकारका भेद है, परन्तु वास्तवमें किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार उस मानसहंस जीवको उस मानससरोवरवासी हंस ईश्वरने ज्ञान दरशाया, तब इसने अपने स्वरूपमें स्थित होकर ध्यान किया तो ध्यानके करते ही उसको वह स्मृति हुई कि मैं ब्रह्म हूँ और ईश्वरके वियोगकी बुद्धिरूप स्मृति जो नष्ट हो गयी थी वह फिर प्राप्त हो गयी–

दोहा–बहु दिनकी भूली सुरति, तुरत गई तेहि आय ।
शोक और संताप सब, क्षणमें दियो विहाय ॥ ६५ ॥

हे प्राचीनबर्हिष्मन् ! मैं तेरे आगे साक्षात् आत्मज्ञानकी कथा कहता तो कभी तू नहीं समझता और न तेरे ध्यानमें आता, इसलिये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करके हमने तुझे दिखाया। परोक्ष उसको कहते हैं, जो नेत्रोंसे देखनेमें न आये और परोक्ष रीतिसे वर्णन करनेका यह अभिप्राय है कि भगवान् विश्वपालक इस इतिहासके विचारनेसे चित्तमें प्रकट हो जाते हैं–

भजन

जाको तू नरतन मानत, यह आपरूप भगवान् है ॥
अहंकारने जबसे घेरो, कहन लगो मेरो और तेरो ।
भूल गयो निजरूप अनेरो, तू सर्वज्ञ सुजान है ॥ १ ॥
भली बुरी करनी जब करि है, बंधनमें तबही तो परि है।
निष्क्रियको कछु नाहीं डर है, तोको कर्मकी आन है ॥ २ ॥
मैं हूँ देह ये देह है मेरी, केवल यह भूल है तेरी ।
पंचतत्त्वकी यह तो ढेरी, जान क्यों भया अजान है ॥ ३ ॥
सतचित् आनंद भाव सवारो, पंचकोशते हो जा न्यारो ।
नाम रूप कछु नाहिं निहारो, येही निर्मल ज्ञान है ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वप्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उनतिसवें अध्यायमें, करूं स्पष्ट परोक्ष ।
नारिसङ्गसे नरक है, हरि प्रसंगसे मोक्ष ॥

प्राचीनबर्हि नृप बोले कि, हे भगवन् ! आपका वचन मेरी समझमें अच्छी रीतिसे नहीं आया, क्योंकि ऐसी महाकठिनार्थ वार्ताको तो वे समझ सकते हैं; जो वेदान्ती, आत्मज्ञानी, कविजन हैं और मैं तो केवल कर्मकाण्डमें मोहित हो रहा हूँ, ऐसी गूढ़ बातोंको मैं कैसे समझूं, इसलिये मुझको फिरसे समझाकर कहो ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि जिसको मैंने राजा पुरंजन कहा है, उसको जीव समझना चाहिये, क्योंकि जीव अदृष्टरूप द्वारसे अपने आत्मा के पुरोंको प्रकट करता है कि जिन जीवोंमें कितने तो एक-एक पगवाले होते हैं, कितने दो पांवके होते हैं, कोई तीन चरणवाले, कोई चार चरणवाले, कोई अनेक पगवाले होते हैं और कोई

विना ही चरणके होते हैं ॥ २ ॥ और अविज्ञात नामक जो जीवका सखा कहा उसको ईश्वर समझना चाहिये, वह ईश्वर नाम, क्रिया, गुणोंसे किसीके जाननेमें नहीं आ सकता ॥३॥ जब सम्पूर्णतासे पुरुष प्रकृतिके भोगनेकी इच्छा करता है तब उस शरीरमेंसे नव छिद्र, दो हाथ, दो पांववाले नरदेहको उसने बहुत उत्तम मानकर वास किया ॥४॥ और जिसको मैंने पुरंजनी कहा वह बुद्धि है, जिसके सम्बन्धसे जीव 'मैं' और 'मेरा' कहने लगता है और इस देहमें जीव बुद्धिके आश्रित होकर इंद्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता है ॥ ५ ॥ उस पुरंजनीके जो दश (१०) सखा कहे, वे इन्द्रियां हैं, जिनमेंसे किसी-किसी इंद्रियसे विषयका ज्ञान होता है और किसी-किसी इन्द्रियसे केवल कर्म ही होता है, इसमें जो पुरंजनीकी सहेलियां कही हैं वे इंद्रियकी वृत्तियां हैं, और पांच शिरका सर्प जो हमने कहा, वह पंचवृत्तिरूप प्राण है (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान) ॥ ६ ॥ जिसको मैंने महाबलशाली सेनापति कहा वह मन है, वह मन ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय, दोनोंका नायक है और पांचाल-देश जो कहा वह पांच इंद्रियोंके विषय हैं, जिसमें नव द्वारका पुर है ॥ ७ ॥ जिसमें दो नेत्र, दो नासिका, दो श्रवण, एक मुख, एकलिंग, एक गुदा, यह नव द्वार हैं, इन नव द्वारोंसे जीव इंद्रियोंको अपने साथ लेकर बाहर आता है ॥ ८ ॥ दो नेत्र, दो नासिका और एक मुख, यह पांच तो पूर्वके द्वार हैं, दक्षिण कान, दक्षिणकी ओरका द्वार और वाम कान उत्तरका द्वार है ॥ ९ ॥ पश्चिमकी ओर नीचेको दो द्वार एक गुदा, और एक शिश्न इस शरीरमें हैं। खद्योत और आविर्मुखी नाम जो कहे, वह दोनों समासम एक सूधमें निर्माण किये हैं, इनको नेत्र समझना ॥१०॥ इन्हीं द्वारोंसे जीवात्मा चक्षु इन्द्रियकी सहाय-तासे विभ्राजित नाम देशोंमें जाकर रूपको देखता है और नलिनी नालिनी नाम जो दो द्वार कहे वह नासिका है और सौरभ देश जो कहा वह गन्ध है जिससे सुगंध ज्ञान होता है ॥११॥ नाक, मुख दोनोंको कम्पायमान करनेवाली व्यवहारकारी वाणी रस ज्ञानी यहां रस आपण व्यवहार है, विचित्र अन्न बिहूपन है, वाणी और रसना यह दोनों परममित्र हैं, बोलना उसका धर्म है और भोजनका निवारण करनेवाला है ॥ १२ ॥ पितरोंको बुलानेवाला दाहिना कान है और देवताओंको बुलानेवाला बांया कान है। दक्षिण पांचालदेश प्रवृत्ति-मार्गका शास्त्र है और उत्तर पांचालदेश निवृत्तिमार्गका शास्त्र है ॥ १३ ॥ पितृयान और देवयान शास्त्र सुन,जैसे पितृलोग और देव लोकका वास होता है। आसुरी नाम जो पश्चिम-द्वार कहा, वह शिश्न है, वह नीचेका द्वार है, जिससे मैथुन करते हैं; वह मैथुन करनेवाले ग्रामक लोग हैं ॥ १४ ॥ दुर्मदमित्र जो उपस्थ इंद्रिय है और निर्ऋति गुदाका देवता है, लुब्धक जो कहा, वह पायु इंद्रिय है और वैशसदेश वह नरक है, लुब्ध जो अन्धी इन्द्रिय है, वह मैं कहता हूँ ॥ १५ ॥ अन्धद्वार हाथ पांव दो हैं जिनसे यह पुरुष कर्म करता है और चलता है, जो अन्तःपुर कहा वह हृदय है और उसमें जो द्रष्टा कहा वह मन है ॥ १६ ॥ जिसके सत्त्व, रज और तम से हृदयमें प्रमाद, हर्ष, मोह उत्पन्न होता है और

१. शंका—नारदमुनि सबके हृदयकी बात जाननेवाले थे, और प्राचीनबर्हि राजाको अत्यन्त मूर्ख समझ लिया था, तो फिर गूढ़ ज्ञान के वचन राजासे क्यों कहे, क्योंकि गूढ़ार्थको चतुरप्राणी समझते हैं मूर्ख लोग कभी नहीं समझते ।

उत्तर—नरादजीने पहले ही प्राचीनबर्हि राजाका ज्ञानसे कच्चा हृदय जानकर और श्रेष्ठकर्मोंसे हीन समझकर उन्मत्त, कामी क्रोधी जान राजाके ऊपर अनुग्रह करके एक क्षणमात्रमें प्राचीनबर्हिको परमज्ञानी बनाकर फिर महागूढ़ार्थ वचन राजासे कहे।

जीवात्मा सब जानता है, तो भी बुद्धिके उन-उन गुणोंकरके गुणोंसे युक्त होकर दर्शन स्पर्शन आदिक जो-जो कार्य बुद्धि करती है, उन सब कर्मोंको अपना कर्तव्य मानता है और स्वप्नमें उसीके अनुसार विकारको प्राप्त होता है, अथवा जागनेपर भी उसी प्रकार इन्द्रियोंको बदलता रहता है ॥ १७ ॥ कभी विकारी होता है, कभी उसी प्रकार जो उपद्रष्टा जीव है वह उन वृत्तियोंको करता रहता है। रथ जो कहा वह स्वप्न अवस्थाका देह है इंद्रियरूप घोड़े जिसमें जुत रहे हैं, रथकी उग्रगति जो कही वह संवत्सरका वेग है, जो किसी समय नहीं रुकता ॥ १८ ॥ और दो पहिये जो कहे वह पुण्य और पाप हैं, तीन ध्वजा जो कही वे सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं, पांच बंधन जो कहे वह पांच प्राण हैं, रस्सी जो कही वह मन है, सारथी जो कहा वह बुद्धि है, बैठनेका स्थान जो कहा वह हृदय है, जुआ जो कहा वह सुख-दुःख आदि द्वंद्व हैं ॥ १९ ॥ सामान जो कहा वह पांच विषय हैं, यवनिका जो कही वह सप्तधातु हैं, आकूति जो कही वह प्राणोंकी शक्ति है, रथका पराक्रम जो कहा वह मृगतृष्णाका दौड़ना है ॥ २० ॥ उसके संग सेना जो कही वह एकादश इंद्रियाँ हैं और जो आखेट कहा वह पंच ज्ञानेंद्रियोंका आनंद देनेवाला है और चंडवेग गंधर्व जो कहा वह महाप्रचंड वेगवाला संवत्सर है, जिससे काल उपलक्षित होता है ॥ २१ ॥ तीन सौ साठ जो गंधर्व कहे, वह संवत्सरके दिन हैं और तीन सौ साठ ही सांवली और गोरी जो उनकी स्त्रियां कहीं, वह कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके वर्षभरकी रात्रि तथा दिन हैं और ये आयुका क्षय करती हैं ॥२२॥ कालकी सुता जिसका कोई भी सम्मान नहीं करता है, वह जगत्में वृद्धा अवस्था है, उस मृत्युको लोगोंका क्षय करनेके लिये यवनेश्वरने अपनी बहिन बनाया ॥ २३ ॥ उस मृत्युके चारों ओर घूमनेवाले सैनिक जो कहे वह आधि-व्याधि उस यवनकी सेनाके वीर हैं और जो प्रज्वार कहा वह शीतोष्ण दो प्रकारका ज्वर समझना; जो मृत्युका भ्राता है और सब प्राणियोंको पीड़ा देनेमें महाप्रचण्ड जिसका वेग है, वह प्रज्वार नामक अनेक प्रकारका ज्वर है॥२४॥ ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके आध्यात्मिकादिक त्रयताप क्लिश्यमान शरीरमें शरीर ही तमोगुणमें होकर ज्ञानी स्वयं निर्गुण होनेपर भी अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता है ॥२५॥ प्राण इंद्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चय करके निर्गुण जीव विषयोंकी तृष्णाके लवमात्र सुखका ध्यान कर सो जाता है और मम, अहं यह कर्म करता है॥२६॥स्वयं परमात्मारूप होनेपर भी यह जीवात्मा जो कि परमात्मा परमगुरु वासुदेव भगवान् हैं उनको जानकर भी अविद्याकी प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त हो जाता है ॥ २७ ॥ तब गुणोंका अभिमान जीव परमवश होकर सात्त्विक, राजस,तामस कर्म किया करता है और उन कर्मोंके करनेसे महाकष्टदायक लोकोंमें जाता है और उन्हीं कर्मोंके अनुसार वारंवार संसारमें जन्म लेता है ॥२८॥ सात्त्विक कर्म करनेसे महाप्रकाशवान् लोकोंमें जाकर उत्तमकुलमें जन्म पाता है। राजस कर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें परिश्रमसे पूरित मध्यम वंशमें जन्म लेता है॥२९॥और तामसकर्म करनेसे महादुःखदायक लोकमें अज्ञान और क्लेशकारी लोगोंके घरमें उत्पन्न होता है ॥३०॥ यह महा अधम जीवात्मा अपने कर्मोंके गुणानुसार कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षीका जन्म धारण करता रहता है॥३१॥जैसे भूखा श्वान दीन होकर घर-घरमें भटकता फिरता है, कहीं तो अच्छेसे अच्छा भोजन खाता है और कहीं मार खाता है, अपने भाग्यके अनुसार भोग भोगता है॥३२॥

ऐसे ही कामासक्त हृदयवाला जीव, स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें ऊंच-नीच जातिमें भ्रमण करता हुआ प्रारब्धानुसार सुख-दुःख पाता रहता है ॥३३॥ कष्टके दूर करनेका सच्चा उपाय तो संपूर्ण है ही नहीं और जो किया भी जाय तो भी दैवसे, भूतसे, आत्मा हेतुसे किसी रीतिसे भी जीवका वियोग नहीं हो सकता ॥३४॥ जैसे बहुत बोझके भारको मनुष्य शिरपर धरकर चलता है, जब शिर दुखने लगता है तब उस भारको कंधेपर धर लेता है परंतु वह सब भार शरीरपर ही है, ऐसे ही दुःख दूर करनेके जो उपाय हैं, वे भी दुःखरूप ही हैं, इसलिये यह प्राणी दुःखसे कभी छूट नहीं सकता ॥ ३५ ॥ दुःखके जड़भूत तो कर्म ही ठहरे, वे कर्म और कर्म करनेसे कभी नहीं छूट सकते, क्योंकि कर्म केवल ज्ञान रहित और वासना सहित हैं; इसलिये जैसे अपने दूसरे कर्मको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं कर सकता जैसे एक स्वप्नमें दूसरा स्वप्न दीखता है, तो वह पहला स्वप्न दूसरे स्वप्नको यथार्थ रीतिसे दूर नहीं कर सकता, इसी प्रकार एक कर्म और उसका दूर करनेवाला दूसरा कर्म यह दोनों अज्ञानजन्य होनेके कारण एकरूप होनेसे उसमेंका एक कर्म दूसरे कर्मको दूर नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥ यद्यपि स्वप्न झूठा है, तो भी उपाधिरूप मनकी जबतक स्वप्नावस्था रहती है, तब-तक वह उपाधि मिट नहीं सकती, ऐसे यह संसार सम्पूर्ण मिथ्या है, तो भी चित्तमें जब-तक विषयोंका ध्यान बना रहता है, तबतक वह किसी रीतिसे मिट नहीं सकता ॥ ३७ ॥ इसलिये अज्ञान जो महाबलवान् है, जिसके हेतु परमपुरुषार्थ रूप आत्मा अखंड प्रवाहरूप संसार हुआ है, उस अज्ञानका विध्वंस परमगुरुरूप भगवान्‌की भक्तिसे ही हो सकता है॥३८॥ वासुदेव भगवान्‌में अत्यन्त प्रीतिसे दृढ़ भक्ति योग किया जाय तो उससे ज्ञान और वैराग्य दोनों उत्पन्न होते हैं ॥३९॥ हे राजर्षे ! भक्तियोगका मुख्य कारण केवल अच्युत भगवान्‌की कथा है, इसलिये जो पुरुष श्रद्धासहित भगवान् वासुदेवकी कथा सुनते हैं और निरंतर अपने चित्तमें ध्यान करते हैं, उनको स्वल्पकालमें भक्ति योग प्राप्त हो जाता है ॥ ४० ॥ हे राजन् ! भगवद्भक्त, निर्मल अंतःकरणवाले साधु भगवत्‌के गुणानुवाद श्रवण व कीर्तनमें जिनका चित्त लग रहा है, ऐसे महात्मा सज्जन पुरुष जहां होते हैं, वहां मधुदैत्यके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दके चरित्रामृतकी नदियाँ सब ओर बहती रहती हैं। हे राजन् ! इन सुधारूप नदियोंका जल जो पुरुष छल-छिद्ररहित होकर सावधानतासे श्रवणद्वारा पान करते हैं और तृप्त नहीं होते, उन भक्तजनोंको क्षुधा, पिपासा, भय, शोक, मोह कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता ॥४१॥ विना सत्संगके यह जीव सदा दुःखी रहता है, यह बातें सब स्वभावसे होती हैं; स्वाभाविक क्षुधा तृषादिक उपद्रवोंसे आलसी पुरुषोंके लिये हरिकथामृतरसकी प्राप्ति होनी महाकठिन है और अहंकारी पुरुष भगवान् वासुदेवकी कथारूप अमृतके सागरमें पहुँ-चकर भी प्रेमरूपी सुधाका पान नहीं कर सकता॥४२॥प्रजापतियोंके पति साक्षात् ब्रह्माजी, भगवान् शिवजी, मनु, दक्षादिक प्रजापति, सनकसनंदनादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥ ४३ ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं भगवत्‌कथामें जो कि ब्रह्म-चारी ॥ ४४ ॥ अबतक वेदवाणियोंके वक्ता, तप, विद्या, समाधि करके सबके देखनेवाले परमेश्वरको देख रहे हैं तो भी उसको जान नहीं सकते हैं ॥ ४५ ॥ क्योंकि वेदका विस्तार और उनकी महिमा अपरम्पार है और कोई अर्थोंका भी पार नहीं पाता, इसलिये वेदवादी जो महात्मा पुरुष हैं, वे वेदके मन्त्रोंमें कहे हुए चिह्नवाले इंद्रादिक देवताओंकी कर्मके आग्रह सहित

भक्ति करते हैं; उनको भी परब्रह्म परमात्माका ज्ञान होना महाकठिन है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इस लिये हृदयमें चिन्तन करनेसे जिस समय भगवान् आत्मासे भावित जिसपर अनुग्रह करते हैं, तब वह पुरुष जगत्के व्यवहार और कर्मकाण्डको त्याग वेदमार्गमें लग जाता है॥४८॥ हे प्राचीनबर्हिष्मन् ! इसलिये यज्ञादिक सकाम कर्म अज्ञानसे सत्यके समान प्रतीत होते हैं और उनके फलादेश सुननेसे कानोंको प्रिय लगते हैं, ऐसे कर्ममें परमार्थ दृष्टि मत करो, वे कर्म केवल श्रोत्रइंद्रियस्पर्शी हैं; सिद्धान्त वस्तुके स्पर्श करनेवाले ये कर्म नहीं हैं ॥ ४९ ॥ वे लोग अपने लोकको नहीं जानते, जहां भगवान् जनार्दन देव विराजमान हैं। धूम्रसमान बुद्धिवाले लोग कहते हैं कि वेदका तात्पर्य केवल कर्मोंपर है, वे मूर्ख वेदके तात्पर्यको न जानकर अकर्मवेदको सकर्म करते हैं ॥ ५० ॥ तुझको किंचिन्मात्र अभिज्ञान नहीं, क्योंकि पूर्वकी ओर जिनके अग्रभागवाले कुशाओंको बिछाकर समस्त भूमण्डलपर अनेक यज्ञ किये और महाभिमानी बन अनेक पशुओंका वध किया और तू ऐसा मूर्ख बन गया कि यथार्थ कर्म और सत्यधर्मको नहीं जाना, इसी लिये भगवान् तुझसे प्रसन्न नहीं हुए, जिस कर्मसे भगवान् प्रसन्न हों, वही सत्यकर्म है और जिससे परमात्मामें मन लगे, वही सत्यविद्या है, वही वर्ण उत्तम है, वही कुलश्रेष्ठ है, वही आश्रम शुभ है जिसमें भगवत्भक्त होते हैं॥५१॥ नारायण ही सब देहधारियोंके आत्मा हैं, आप ही प्रकृतिके ईश्वर हैं, इसलिये उन्हींके चरण-कमलकी शरणागति लेनेसे पुरुषोंको अनेक प्रकारके मङ्गल और सिद्धियां होती हैं ॥ ५२ ॥ वे भगवान् सबके प्रियतम आत्मा हैं और उनकी भक्तिमें किसी प्रकारका अणुमात्र भी भय नहीं होता, जो लोग इस प्रकार परमेश्वरको जानते हैं, वे ही जगत्में विद्वान् हैं और जो पुरुष विद्वान हैं वे ही गुरु हैं, वे ही भगवान् हैं ॥ ५३ ॥ नारदजी बोले कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! तूने मेरे कहे हुए इतिहासका जो स्पष्टार्थ पूछा वह मैंने भिन्न-भिन्न कर तुझसे कहा, अब मैं वह गुह्य सुन्दर वार्ता तुझसे कहता हूँ जो इस विषयमें पूर्ण निश्चय की हुई है, तुम मन लगाकर सुनो ॥ ५४ ॥ "एक और प्रकारसे जीवका वर्णन करते हैं सो सुनो" तुच्छ पदार्थका चरनेवाला मृग पुष्पोद्यान (स्त्री) साथ उसीमें मतवाला हो रहा है, और भ्रमरगणोंके गानेसे उसके कान लुभा रहे हैं; सम्मुख भेड़ियेके समान दिन, पक्ष, मासादिक कालके विभाग तेरी आयुके भक्षणके लिये उपस्थित हैं और तू उनको कुछ नहीं समझता और बैठा आहार-विहार कर रहा है और पीछे व्याधरूप काल धनुषबाण लिये तेरे हृदयको वेधन करनेके लिये बैठा है, अब तुझको अपने आत्माका विचार करना चाहिये॥५५॥पुष्पोंके समान जिनके धर्म, ऐसी स्त्रियोंके शरणरूप पुष्पवाटिकामें पुष्पोंकी मधुगन्धके सदृश अत्यन्त तुच्छ जो काम कर्मके फलसे उत्पन्न जो कामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषयभोगादिको ढूंढ़ें, स्त्री-पुरुष दोनों उन विषयोंपर मन लगाकर, भ्रमरगणके सुन्दर गीतकी नांई अतिमनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यन्त लोभित जिसका मन, कर्ण ऐसा यह जीव आगे भेड़ियोंके यूथवत् आपकी आयु हरनेवाले, दिनरात कालके लव विषे उनको कुछ न समझकर घरमें विचरे, विहार करे, पीठकी ओरसे नहीं दीख पड़े, ऐसे प्रवृत्त एक वधिकरूप यम धर्मराज वह हृदयमें बाणसे जीवका भेदन करता है, ऐसे उस आत्मा जीवको हे राजन् ! उसका हृदय भिन्न हुआ ऐसे देखनेको तुम योग्य हो ॥ ५६ ॥ तुम इस प्रकार अपनी चेष्टा उस मृगके सदृश विचारो और इस बातका विचार करके अपने

मनको हृदयमें आकर्षित कर और सब बहिर्वृत्तियोंका रोध करो, परन्तु इस गृहस्थाश्रमको त्यागकर जिसमें नीच कामी पुरुषोंके यूथकी बातें हैं और जो कि भगवान् प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उनको प्रसन्न करो, इस प्रकार अनुक्रम करके सबसे विराम कर ॥५७॥ प्राचीनबर्हि बोले कि हे ब्रह्मन् ! हे नारदजी ! जो आपने कहा, वह मैंने सुना और विचारा परंतु उस बातको यह उपाध्याय जो मुझको कर्मका उपदेश करते हैं, क्या वे नहीं जानते थे। और जो जानते थे तो मुझसे क्यों नहीं कहा ! ॥५८॥ हे नारद ! इन विषयरूपाध्यासोंमें जो असंभावना रूप है, (मैं ईश्वर हूँ वा नहीं) यह मेरे मनमें बड़ा भारी संशय था, वह आपके अनुग्रहसे सब कट गया, इसी प्रकारका एक दूसरा संदेश और है, जहां इंद्रियोंकी वृत्ति नहीं जा सकती है और ऋषिलोग भी उसमें मोहित हो जाते हैं, वहां और दूसरेकी क्या सामर्थ्य है? ॥ ५९ ॥ जिस देहसे पुरुष इस जगत्में कर्मोंको करता हैं, और देहको यहां छोड़कर परलोकको चला जाता है और वहां जाकर दूसरे शरीरसे इन कर्मोंके फलोंको भोगता है, वह मुझको यह सन्देह है कि इस देहसे किये हुए कर्म दूसरे देहसे किस प्रकार भोगे जाते हैं ?॥६०॥ यह बात वेदवादी लोग सदा कहा करते हैं और आप भी पहले कह चुके हो, कि पुरंजनने जो-जो कर्म किये थे, उनका फल मरनेके पश्चात् उसको अगले जन्ममें मिला, वह आपका कहना सत्य है, परंतु इसमें मुझको बड़ा संशय है, क्योंकि कर्म करनेवालेको कर्मका फल मिलना चाहिये, परंतु दूसरे शरीरके किये कर्मोंके भोगको दूसरा शरीर भोगे यह कहना आपका किसी प्रकार संभव नहीं, जो शरीर कर्मोंको करे उसी शरीरको उसका फल मिलना चाहिये और जिस शरीरने कर्म किये ही नहीं, उसको उसका फल मिलना यह महाअन्याय है और धर्मके विरुद्ध है, फिर मुझे एक संशय और बड़ा भारी हैं, कि पुरुष वेदविरुद्ध जो कर्म करता है वह तो किंचित् कालमें ही अदृश्य हो जाता है, जैसे कोई अग्निमें हवन करे और वहां जितनी देरतक हवन करता रहेगा, वह उतनी ही देर तक दृष्टि आता रहता हैं और हवन होनेके पश्चात् वह थोड़े ही कालमें अदृष्ट हो जाता है। जो कर्म छिप गया, अथवा नष्ट हो गया, उसका फल परलोकमें मिले यह बात किसी प्रकारसे मेरी समझमें नहीं आती, फिर संदेह किस प्रकारसे शमन हो सकता है ? ॥६१॥ श्री नारदजी बोले कि कर्तृत्व और भोक्तृत्व स्थूलदेहको कुछ नहीं है, क्योंकि लिंगशरीर अर्थात् जिसमें मुख्य है, वह अन्तःकरण है, यह अन्तःकरण स्थूलदेहके साथ नष्ट नहीं होता, वरन् एक स्थूलदेहका नाश होकर दूसरा जो स्थूलशरीर मिलता है, उसमें वही अन्तःकरण रहता है, इसलिये जिस अन्तःकरणने एक स्थूलशरीरमें कर्म किया था, वही अन्तःकरण दूसरे स्थूलशरीरके कर्मका भोग पुरुष भोगता है ॥ ६२ ॥ अब हम लिंगशरीरको स्वप्नदृष्टांतसे स्पष्ट दिखलाते हैं, परंतु उसमें वास्तविक रीतिसे भोक्तृत्व अन्तःकरणका है और वह अन्तःकरण जाग्रत अवस्थाके शरीरमें जो था वही स्वप्नके शरीरमें है, इसलिये मैं तुम्हारे सम्मुख वर्णन करता हूं कि जैसे अपने जीते जी ही पृथक्-पृथक् शरीर प्राप्त होते हैं, परंतु उस शरीरमें भोक्ता नहीं फिरता, ऐसे ही मरण पश्चात् शरीर बदल जानेपर भी उसमें भोक्ता जो अन्तःकरण है, वह नहीं पलटता। जाग्रत् अवस्थामें मनके अन्तर संस्काररूपसे जो कर्म लगे हुए हैं, वे ही स्वप्नअवस्थामें दूसरा शरीर प्राप्त होनेपर भोगने पड़ते हैं। इसी प्रकार एक जन्ममें अन्तःकरणके अन्तर संस्काररूपसे जो कर्म लगे हुए हों, वे ही कर्म दूसरे जन्ममें

भोगने पड़ते हैं, सबकी जड़ तात्पर्य यह है कि स्थूलशरीरको कर्तृत्व नहीं है,क्योंकि अन्तः-करण जो कर्म करनेवाला है,उसमें यह स्थूलशरीर केवल द्वाररूप है ॥६३॥ यह अन्तःकरण अनेक पुत्रादिकोंके स्थूलशरीरमें स्नेह रखता है, कि यह मेरा पुत्र है यह मेरा पौत्र है और अपने स्थूलशरीरमें भी ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व आदिका घमण्ड कर बैठता है;तो इससे यह भली प्रकार विदित होता है कि अन्तःकरणके केवल अभिमान करनेका जड़स्थान स्थूलशरीर है परन्तु इस बातसे स्थूलशरीरका कर्त्तापन निश्चय नहीं हो सकता, वास्तविक कर्त्ता अन्तःकरण ही है और अन्तःकरणने जिस शरीरमें अहंकार किया हो उसी शरीरमें रहकर किये हुए कर्मसे अन्तःकरणके ही कारण पुनर्जन्म होता है,इस बातसे यह निश्चय हुआ कि कर्त्ता भी अन्तःकरण ही है और भोक्ता भी अन्तःकरण ही है ॥ ६४ ॥ पहली शंकाका समाधान किया । अब दूसरी शंकाका समाधान करते हैं–कर्मका नाश हो जाना यह बात मुक्तिसे विरुद्ध है और जन्मका कर्म किसी प्रकार नहीं मिटता, यह बात युक्तिसे निश्चय होती है । सब इंद्रियोंके अपने-अपने विषयोंके संग एक कालमें मेल होनेपर भी उन सब विषयोंका ज्ञान अपने आपको एकसंग नहीं हो सकता, इससे यह अनुमान जान पड़ता है कि इंद्रियोंका अधिष्ठाता भी कोई वस्तु अवश्य है,उसीका नाम मन प्रसिद्ध कर रक्खा है, मनका जबतक इंद्रियोंके सङ्ग मेल नहीं होता, तबतक इंद्रियोंका विषयके सङ्ग मेल होनेपर भी अपने आपको उस विषयका ज्ञान नहीं हो सकता, यह बात सबमें प्रसिद्ध है, इस भांति चित्तकी वृत्तियां भी एक ही कालमें उत्पन्न नहीं होतीं, परंतु अनुक्रमसे होती हैं, इसी बातसे अनुमान होता है कि चित्तकी वृत्तियोंका उत्पन्न करने-वाला पूर्वशरीरका सम्बन्ध कर्म है, जो-जो कर्म जिस-जिस समय भोगनेके होते हैं उस-उस समयमें वह कर्म अपना भोग देनेके अनुकूल चित्तकी वृत्तिको प्रकट करता है, इससे पूर्वसं-बन्धी कर्म किस प्रकार विनष्ट नहीं हो सकता, परन्तु अवशेष रहता है ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! इस वर्तमान शरीरसे किसी कालमें किसी स्थानमें जिस प्रकारका और स्वरूपका पदार्थ अनुभवमें नहीं आया हो तथा कभी देखनेमें नहीं आया हो और सुननेमें भी न आया हो उसी प्रकारका और उसी स्वरूपका किसी कालमें स्वप्न और प्रयोजनमें अपने मनमें आता है, यह तो सब बातसे अवश्य मानना पड़ता है कि पूर्वजन्ममें उस पदार्थका वैसा अनुभव अवश्य हुआ होगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि जिस वस्तुको कभी नहीं देखा हो, वह वस्तु चित्तमें कभी नहीं भासती इस बातसे उसका अनुभव करने योग्य पूर्व शरीर होनेका अथवा पूर्वशरीरका और इस शरीरका चित्त एक होनेका और पूर्वशरीरके कर्मोंका संस्कार मनमें लगे रहनेका ठीक-ठीक निश्चय होता है ॥ ६७ ॥ वर्तमान समयमें होनेवाला प्राणी पूर्व जन्म उच्चयोनिमें था, वा नीच योनिमें और अब अगला जन्म उच्चयोनिमें होगा, अथवा नीचयोनिमें, यह बात भी भली-बुरी चित्तकी वृत्तियोंसे जानी जा सकती है, इस बातसे भी जान पड़ता है, कि पूर्वजन्म था और आगेको जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि मनुष्यका मन जो है उसीको पूर्वरूप कहते हैं, तुम्हारा कल्याण होगा, अथवा न होगा, ऐसे जान लेना ॥६८॥ इस विषयमें मनुष्य अनेक-अनेक प्रकारका तर्क-वितर्क करते हैं । पूर्वजन्ममें देखी हुई वस्तु इस जन्ममें स्वप्नके देखनेमें आती हो, तो वह वस्तु किसी कालमें भी देखनेके योग्य नहीं, फिर वह वस्तु स्वप्नमें कैसे दीख सकती है ? स्वप्नमें तो कभी पहाड़के शिखरपर समुद्र दिखायी देता है, दिनमें तारे दृष्टि आते हैं और अपना शीश-भुजा कटी हुई दीख पड़ती है, यह

क्या कारण है ? उसका प्रत्युत्तर यह है; कि समुद्र तो पृथ्वीपर है और तारा रात्रिमें ही हैं और अपनी कटी हुई भुजा शीशका प्रतिबिम्ब पानी वा तैलादिकमें देखना यह यथार्थ है, वहां पहाड़के शिखररूप स्थलका, दिवसरूप कालका और संग्रामादिक क्रियाका जो भेद है, वह केवल निद्राआदिका दोष है, यह मानना अत्यंत सुगम है, परन्तु पूर्वजन्मको न मानकर इस जन्ममें न हुआ हो, वही स्वप्नमें दिखायी देता है, ऐसे माननेवालेको भी देश-काल और क्रियामें भेद पड़नेके हेतु केवल निद्राके ही दोष मानने पड़ेंगे, इस विषयमें जिनकी प्राप्ति न हो वह दोनों पक्षोंमें समान है, इसलिये प्रतिपक्षवालेका तर्क करना सम्पूर्ण अयोग्य है ॥ ६९ ॥ जो पुरुष महादरिद्र हो, वह भी कभी स्वप्नमें अपने आपको चक्रवर्ती राजाके समान देखता है, परन्तु इस बातमें कुछ असम्भव नहीं है क्योंकि सब इन्द्रिय गोचरक्रमके अनुसार मनमें समूहके समूह आते हैं और भोगनेके पश्चात् चले जाते हैं और सब प्राणी मनसहित ही आते-जाते हैं । कोई मनुष्य मनरहित हो जाय, ऐसा नहीं हो सकता, परन्तु सब प्राणी मनवाले हैं—और जब मनवाले हैं तो मनमें अनुक्रमानुसार पदार्थोंका प्रवेश होना निश्चित है, इसलिये सम्पूर्ण वस्तुका अनुभव न हुआ हो, ऐसी वस्तु कोई भी नहीं है, सबके पदार्थ अनुभवमें आते हैं, केवल इतना ही कहनेसे पूर्ण नहीं होता क्योंकि किसी-किसी समय सब पदार्थ एकसङ्ग ही देखनेमें नहीं आते ॥७०॥ केवल एक सत्त्वगुणमें निष्ठा पाया हुआ मन भगवान् वासुदेवके विराट्रूपका ध्यान मनमें समा जाता है, उस समय सब विश्व मानो मनमें व्याप्त हो जाता है, यह ऐसे विदित होता है, यद्यपि राहु अदृश्य है, तो भी चन्द्रमाके संबधमें जब आता है तो स्पष्ट दिखाई देता है, इसी भांति यद्यपि सब विश्वका दीखना अपने आपको असंभव है, परंतु शुद्धचित्तमें सब विश्वका संचित दीखना योगीश्वरोंको प्रत्यक्ष है ॥७१॥ इस प्रकार स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी लिंगशरीरका नाश नहीं होता, इस बातसे यह दोष किसी रीतिसे नहीं आता, कि कर्त्ता और भोक्ता और है यदि किसीको यह शंका हो कि लिंगशरीरके कतृत्वके और भोक्तृत्व स्थूल शरीरके द्वारा है, परन्तु स्थूलशरीररहित केवल लिंग शरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व है ही नहीं, इसलिये किसी समय स्थूलशरीर न हो तब लिंगशरीरमें कर्तृत्वके भोक्तृत्व न रहनेसे मुक्ति अवश्य होनी चाहिये, परन्तु सबका सिद्धांत यह है—कि बुद्धि, मन, इंद्रियाँ और विषयोंका समूहरूप यह अनादि लिंगशरीर जबतक है, तबतक प्राणीके स्थूलशरीरका सम्बंध किसी भांति नहीं मिट सकता ॥७२॥ सोना, मूर्छा, महाकष्ट, मृत्यु और ज्वरमें इन्द्रियोंका विनाश होनेसे स्थूलशरीरमें मृत्युप्रज्वारके समान मैं हूँ, ऐसा अहंकार सदा नहीं प्रकाशता परन्तु सूक्ष्मरूपसे बना रहता है, मानो उस समय स्थूल शरीरको लिंगशरीरसे विधान होता है, यह बात कदापि न समझना ॥७३॥ गर्भमें और बाल अवस्थामें इंद्रियाँ पूर्ण न होनेसे तरुण अवस्थामें जिस प्रकार स्थूल शरीराभिमान एकादश इन्द्रियोंसे स्पष्ट चिह्न नहीं प्रतीत होता, जैसे अमावस्याके चन्द्रमाका बिम्ब विद्यमान होनेपर भी चन्द्रमा स्पष्ट दिखायी नहीं देता, ऐसे ही गर्भ और बाल्यावस्थामें स्थूलशरीरका अभिमान विद्यमान होनेपर भी स्पष्ट दृष्टि नहीं आता, इसलिये जबतक स्थूलशरीरका सम्बंध नहीं मिटता, तबतक संसार भी नहीं मिट सकता, यही सबका सिद्धांत है॥७४॥ अर्थके अविद्यमान होनेसे संसारकी निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि स्वप्नमें जैसे अनेक प्रकारका अनर्थ दीखता है और जबतक वह स्वप्न दीखता रहता है

तबतक वह अनर्थ दूर नहीं होता, ऐसे ही यह जीवात्मा जबतक विषयोंके ध्यानमें लगा रहता है, तबतक इस असार संसारकी निवृत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ७५ ॥ ऐसे ही पञ्चभूतात्मक, त्रिगुणमय, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रारूपसे यह विस्तृत विकारात्मक लिंगशरीर चैतन्यपरमात्माकी चैतन्यतासे युक्त होनेपर जीव इस नामसे कहा जाता है, अर्थात् परमात्माका अंश यह आत्मा जब लिंगशरीरसे युक्त होता है, तब जीव कहलाता है और जब लिंग शरीरको त्याग देता है तब वह पूर्णब्रह्मरूप हो जाता है ॥७६॥ यह जीवात्मा इसी लिंगशरीरसे अनेक देह धारण करता है और इसी लिङ्गशरीरसे सबका त्याग करता है, यह लिंगशरीर जिस स्थूलशरीरको त्याग देता है, उस स्थूलशरीरकी मृत्यु कही जाती है और जिस दूसरे स्थूलशरीरको ग्रहण करता है उस स्थूलशरीरका जन्म हुआ कहलाता है। हर्ष, शोक, भय, दुःख, सुख भी जीवात्माको लिंगशरीरहीके कारण प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥ जैसे जोंक पूर्वके तृणको तबतक नहीं छोड़ती है जबतक वह दूसरे तृणको नहीं पकड़ लेती, ऐसे ही मरणके समय जीव जबतक पूर्वदेहके अभिमतको नहीं छोड़ता, तबतक प्रारब्ध समाप्त होकर दूसरा स्थूलशरीर नहीं मिलता, तबतक उसके पूर्व शरीरका अभिमान नहीं जाता, अर्थात् पहले शरीरकी स्थितिको नहीं भूलता ॥७८॥ हे नरेन्द्र! जबतक कर्मोंके वियोगसे और दूसरी देहको यह जीव प्राप्त नहीं होता, तबतक सब जीवोंका मन जो है वही केवल इस संसारका हेतु है ॥ ७९ ॥ जिस समय इंद्रियोंके आचरण किये हुए विषयोंका चिन्तन कर करके जो यह पुरुष वारंवार कर्म करता है, उन्हीं कर्मोंके सम्बन्धसे मन संसारका हेतु है और आत्मा असंग है, तो भी अविद्याके कारण शरीरादिक जड़ पदार्थके सम्बंधि कर्ममें आत्माका बंधन नहीं होता है ॥ ८० ॥ इसलिये सब बन्धन दूर करनेके लिये सर्वात्मभावसे सब विश्वको भगवद्रूप जानकर श्रीनारायणका भजन करो, कि जिन नारायणसे इस जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होता है ॥ ८१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, भक्तोंमें मुख्य भक्त भगवान् नारदजी इस भांति प्राचीनबर्हि राजाको जीव ईश्वरके स्वरूपका भेद दरशाकर, उस राजासे आज्ञा लेकर वहांसे सिद्धलोकको चले गये, जिसका नाम सत्यलोक है ॥ ८२ ॥ प्राचीन-बर्हि राजर्षि प्रजागणकी रक्षा करनेमें सब पुत्रोंको लगाकर आप तप करनेके लिये गंगा-सागरके निकट गया, जहां कपिलमुनिका आश्रम था, और सबका संग त्याग दिया ॥८३॥ वहां जाकर वह महावीर एकाग्रचित्त कर, गोविंद भगवान्के पदाम्बुजका भक्तिभावसे भजन कर मुक्तसंग हो वह राजर्षि मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ ८४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे अनघ ! यह अध्यात्म-परोक्ष देवर्षिसे वर्णित आत्मज्ञानसम्बन्धी आख्यानको जो सुनेंगे वा सुनायेंगे वे दोनों लिंगशरीरसे मुक्त हो जायेंगे ॥ ८५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके यशके प्रभावसे सब विश्वको पवित्र करनेवाला; देवर्षिवर्यके मुखसे निकला हुआ, हृदयका शुद्ध करनेवाला और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ फलोंका देनेवाला यह इतिहास है, जो पुरुष इसका कीर्तन करते हैं, वे निःसन्देह ब्रह्मलोकको चले जाते हैं और सब बंधनोंसे मुक्त होते हैं, इस संसारमें कहीं भी भ्रमण नहीं करते ॥ ८६ ॥ यह अद्भुत अध्यात्म-परोक्षज्ञान मैंने तुमसे कहा। इससे परलोकमें कोई भी कर्म भोगना नहीं पड़ता और देहाभिमान और सब संशय मिट जाता है, "जबतक इस प्राणीके संशय मोह दूर नहीं होते, तबतक मोक्ष प्राप्त नहीं होता क्योंकि महात्मा लोगोंने भी इस प्रकार लिखा है":-

सवैया—अतिदुर्लभ है तनु मानुषको यह पारसज्ञान निहारिये जी।
गुरुमंत्र दियो जो दया करके सोई श्वासनश्वास उचारिये जी॥
सतप्रेमकी ज्वाला प्रचण्ड करो नरपापके बीजको जारिये जी।
दुखभंजन नाम निरंजनको कबहूँ मत भूल बिसारिये जी॥८७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने अध्यात्मज्ञानवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

दोहा—भये तीस अध्यायमें, अति प्रसन्न भगवान।
दई प्रचेतन तरुसुता, और राज्यवरदान॥

विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन्! प्राचीन बर्हिके पुत्रोंका वृत्तांत जो आपने कहा था, वह रुद्रगीतसे श्रीभगवान् वासुदेवको प्रसन्न करके कौनसी सिद्धिको प्राप्त हुए॥ १॥ हे कैवल्य नाथके परमप्रिय! बार्हस्पत्य श्रीबृहस्पतिजीके शिष्य मैत्रेयजी उनके समीपके वासी श्रीशिव-शंकर महादेवजीको यदृच्छासे प्राप्त होकर शिवजीके कृपापात्र प्रचेताओंको मोक्ष तो निश्चय मिली होगी, परंतु मुक्त होनेके पहले इस लोकमें अथवा परलोकमें उनको क्या प्राप्त हुआ॥ २॥ मैत्रेयजी बोले कि वह परम आज्ञाकारी प्रचेता, समुद्रके मध्यमें पिताकी आज्ञाको शिरपर धारण करके रुद्रगीतसे जपरूप यज्ञसे त्रिलोकीके उत्पन्न करनेवाले श्रीनारायणको प्रसन्न करने लगे॥ ३॥ जब तपस्या करते-करते उनको दशसहस्र वर्ष बीत गये, तब सनातन पुरुषने उनको दर्शन देकर अपनी शांतिरुचिसे उनके तपका सब कष्ट शमन किया॥ ४॥ जैसे सुमेरु पर्वतके शिखरपर श्यामघटा शोभा देती है, ऐसे ही श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान् गरुड़के कन्धेपर विराजमान थे, पीतवसन धारण किये, कौस्तुभमणि कण्ठमें झलकाये, दशों दिशाओंके अन्धकारका नाश कर रहे थे॥ ५॥ कनकवर्ण, सुन्दर प्रकाशमान भूषणोंसे कपोल और मुख प्रकाशित हो रहा था, किरीट शीशपर झलक रहा था, अष्टायुध भुजाओंमें धारण कर रहे थे, अनुचर, मुनि, सुरेंद्र और देवता सेवामें उपस्थित थे, गरुड़जी किन्नरोंकी भांति अपने पंखोंके शब्दसे उनका यश वर्णन कर रहे थे॥६॥ पुष्ट विशाल अष्ट-भुजाओंके मण्डल मध्य वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी तथा वनमालासे आद्यपुरुष भगवान् सब ओरसे शोभित थे। बर्हिष्मान् राजाके शरणागत पुत्रोंसे मेघनादसम वाणीसे दयायुक्त अवलोकनसे देख, अपना दास विचार यह कहा॥ ७॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नृपनन्दनो! तुम मुझसे वर मांगो, तुम्हारा कल्याण होगा! तुम अपनी सुहृदतासे एक हो, एक ही धर्म पालन करते हो, तुम्हारी सुहृदता देखकर मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ॥ ८॥ जो पुरुष सन्ध्याकालमें प्रतिदिन तुम्हारा ध्यान करेगा, उसके भ्राता बन्धुजनोंमें सदा अत्यन्त स्नेह बना रहेगा, जैसा तुम परस्पर स्नेह करते हो वैसे सब जीवमात्रमें सुहृद्भाव होगा॥ ९॥ जो पुरुष सावधान होकर सन्ध्याकाल और प्रातःकाल रुद्रगीतके पाठसे मेरी स्तुति करेंगे, उनके सब मनोरथ मैं सिद्ध करूँगा और सुन्दर बुद्धि दूँगा और जो कुछ तुमको दूँगा, उसका तो कहना ही क्या है?॥ १०॥ जो तुमने आनंदित होकर पिताकी आज्ञा शिरपर धारण की है, इसलिये तुम्हारी महासुन्दर कीर्ति त्रिभुवनमें व्याप्त होगी॥११॥ और गुणोंमें ब्रह्माजीके समान सर्वगुणनिधान परमज्ञानवान् महाविख्यात पुत्र तुम्हारे होगा जो अपनी

संतानसे सब त्रिलोकीको पूर्ण करेगा ॥ १२ ॥ हे राजकुमारो ! कंडुऋषिके प्रम्लोचना नाम अप्सरामें कमललोचना कन्या उत्पन्न हुई, उस कन्याका जन्म होते ही वह अप्सरा उसको वनमें त्यागकर स्वर्गको चली गयी, तब वृक्षोंने उस कन्याको ग्रहण कर लिया। उसकी कथा इस भांति है-'एक समय कंडुऋषि वनमें तप करते थे, उनका तप भङ्ग करनेके लिये इंद्रकी भेजी 'प्रम्लोचना' नाम अप्सरा कंडुऋषिके समीप रहने लगी, कुछ दिन पीछे उस अप्सराके कंडुऋषिसे एक कन्या उत्पन्न हुई, तब वह उस कन्याको वृक्षोंमें डालकर आप स्वर्गको चली गयी" ॥ १३ ॥ वह कन्या क्षुधासे व्याकुल होकर रोने लगी, तो उस समय कन्याको दुःखी देखकर वृक्षोंके राजा चन्द्रमाने उसपर दयालु होकर उसके मुखमें अपनी कन अंगुली देदी, कि जिसमेंसे सदा अमृत टपकता रहता है ॥ १४ ॥ प्रजाके रचनेमें सृष्टि करनेके लिये पिताने मुझको आज्ञा की, उस आज्ञाको सफल करनेके लिये, इस श्रेष्ठकन्याका शीघ्र विवाह कर, इसमें विलम्ब करना उचित नहीं ॥ १५ ॥ तुम सब एकसे ही धर्मशील और एक ही स्वभाव-वाले हो, तुम सबके बीचमें यह एक ही स्त्री हो और तुम्हारे ही समान शीलवती हो और उसका मन सदा तुममें लगा रहे, इस स्त्रीमें तुम मन लगाओ, मेरी कृपासे दिव्यसहस्रवर्ष पर्यंत महाबली बनकर भूमिके लोगोंको भोगोगे ॥ १६ ॥ पीछे वियोगरहित भक्ति मुझमें करना गुणहृदय जब तुम्हारा पुष्ट हो जायगा तो मेरे धामको जाओगे और इस नरकरूप संसारके सुखोंमें वैराग्य उत्पन्न होगा, उस समय मेरी अखण्ड भक्ति करनेसे सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता दूर हो जायगी ॥ १७ ॥ जो लोग घरमें घुसे रहकर भी कर्म करें तथा मुझको समर्पण करें और मेरी ही वार्तामें दिन-रात व्यतीत करें, ऐसे पुरुषोंको गृह बंधनकारी कभी नहीं होता ॥ १८ ॥ जो मैं साक्षात् ब्रह्मवादियोंके हृदयमें क्षण-क्षणमें नवीन-नवीन रूपसे प्रकट होता हूँ और ऐसा उत्तम उनको स्थान देता हूँ कि जहांके गये न तो मोहको प्राप्त होते हैं न शोकको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ जो तुम मेरी कथा का दिन-रात कीर्तन करते रहोगे तो तुम्हारे घरका किंचिन्मात्र भी बंधन न रहेगा ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार पुरुषार्थके पात्र और अत्यन्त सुहृत्तम, परमोपकारी जनार्दनके वचन सुनकर प्रचेता, कि जिनका रज, तम रूप मल श्रीनारायणके दर्शनसे शान्त हो गया है, वे प्रचेता हाथ जोड़ गद्गद्वाणीसे श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ सब प्रचेता बोले कि हे क्लेशविनाशन ! गुण विभासन, वेदने तुम्हारे उदार गुणनाम निरूपण किये हैं, ऐसे जो तुम हो, आपके अर्थ नमस्कार है, मन वचनके वेगसे आगे जिनका वेग, सब इन्द्रियोंके मार्गसे जिसका मार्ग नहीं जाना जाय, ऐसे जो भगवान् हैं, उनके लिये वारंवार नमस्कार है ॥ २२ ॥ अपनी निष्ठा करके शुद्ध शांतमनमें व्यर्थ प्रकाशित हैं, ऐसे अद्वैतरूपके निमित्त हम प्रणाम करते हैं, विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहारके लिये मायाके गुणोंसे ब्रह्मादिक मूर्ति धारण करते हैं, उन भगवान्को हमारा वारंवार प्रणाम है ॥ २३ ॥ विशेष करके सत्त्व-शुद्ध जिसका स्वरूप, सब दुःखोंका शमन करनेवाला और संसारके मोहको हरनेवाला जिसका ज्ञान ऐसे वासुदेव श्रीकृष्ण सब यादवोंके उत्पन्न कर्ता भव भय हर्ता भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ २४ ॥ हे कमलाक्ष ! हे कमलनाभ ! ! कमलोंकी माला धारण करनेवाले कमलपाद भगवान् आपको बारंबार हमारा नमस्कार है ॥ २५ ॥ कमलके केसरके सदृश निर्मलपीत वस्त्रवाले बांकेबिहारीके अर्थ मेरा नमस्कार है, सर्वजीव मात्रके अन्तर्यामी,

सबके साक्षी आपको हमारा प्रणाम है ॥ २६ ॥ हम सरीखे क्लेश पानेवालोंको जो आपने सब क्लेशका क्षय करनेवाला स्वरूप प्रकट करके दर्शन दिया, वह बड़ा अनुग्रह किया, इससे अधिक और कौनसा अनुग्रह होगा ?॥२७॥ हे विश्वनायक ! हे दीनदयालो ! ! समर्थ पुरुषोंको दीनोंपर ऐसे ही अनुग्रह करना योग्य है, जो अपनी बुद्धिसे समय-समयपर स्मरण करना, इतना ही दीनवत्सल कृपालुओंका होना बहुत है ॥ २८ ॥ क्योंकि जब कृपालु लोग स्मरण करते हैं, तो दीन पुरुषोंके हृदयमें शांति हो जाती है। जब आप तुच्छ जीवोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी रूपसे विराजते हो तब हमलोग जो आपके उपासक हैं,उनके मनोरथको कैसे जानोगे ? ॥२९॥ हे जगत्पते ! यही वर हम चाहते थे कि मोक्षमार्गके दर्शनवाले परम पुरुषार्थरूप जो आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ३० ॥ हे नाथ ! परेसे परे जो आप हो और कारणके भी कारण हो इससे वारंवार यह वर मांगते हैं, क्योंकि भक्तजनोंको देनेयोग्य आपकी विभूतियोंका अन्त नहीं है, इसी कारण जगत्में आपका नाम अनन्त विख्यात है ॥३१ ॥ अनायाससे भ्रमरको जब कल्पद्रुम मिल जाता है, तब वह और किसी दूसरे वृक्षकी इच्छा नहीं रखता, ऐसे ही अब हमको साक्षात् आपका पादमूल प्राप्त हो गया है, अब हम आपसे कौन-कौनसा वर मांगे ? और मांगनेकी भी इच्छा हो तो क्या मांगे ? क्योंकि मनमें अनेक-अनेक प्रकारकी कामनायें उत्पन्न होती हैं और कामनाओंका अन्त नहीं है ॥ ३२ ॥ इसलिए हम इतना वरदान मांगते हैं कि आपकी मायासे और अपने कर्मोंसे जबतक हम इस संसारमें भ्रमण करें तबतक आपके प्रसन्न करनेवाले हमको जन्म-जन्ममें श्रीवैष्णव लोगोंका सत्संग सदा बना रहे ॥ ३३ ॥ आपके भक्तलोगोंके लवमात्र सत्संगके समान न तो हम स्वर्गको समझते हैं, न हम मोक्षको मानते हैं और मनुष्यको राज्यादि सुखकी तो गणना ही क्या है ? ॥ ३४ ॥ जिसके सत्सङ्गसे सुन्दर-सुन्दर कथाओंकी स्तुति की जाती है, जिससे सब तृष्णाओंका नाश हो जाता है, जहां सब जीवमात्रमें वैर नहीं है, जहां किसी प्रकारका उद्योग नहीं है, वे ही लोग वैकुण्ठ गामी हैं, इस विषयमें एक दोहा हैः—

दोहा—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अङ्ग ।
तुलहि न ताहि सकल मिलि, जो सुख लवसत्सङ्ग ॥ ३५ ॥

सब संन्यासियोंको गति देनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीमन्नारायणकी सत्यकथाओंमें सब संग जिन्होंने त्याग दिए हैं, ऐसे मुक्त संग पुरुप बारम्बार नारायण की स्तुति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ वह आपके भक्तजन तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे विश्वमें अपने-अपने चरणोंसे विचरते रहते हैं। उनके सत्संगसे संसारसे भयभीत मनुष्यकी आपमें रुचि होती है, आपके भक्तोंका समागम ऐसा शुभ है ॥ ३७ ॥ हे आद्यपुरुष ! श्रीकृष्णचन्द्र प्यारेके सखा सुन्दर चिकित्सक शिवमृत्युके वैद्य भगवान् शिवजीके क्षणमात्रके सत्संगसे यन्म-मरण असाध्य रोगके शमन करनेवाले महावैद्यरूप आपके हम चरणशरणको प्राप्त हुए हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! दूसरा वरदान हम आपसे यह मांगते हैं कि हमने जो वेद पढ़ा है गुरु, ब्राह्मण वृद्ध, पुरुषोंकी निरन्तर सेवा करके प्रसन्न किया है, सज्जनों, मित्रों, और भ्राताओंको नमस्कार किया है और किसी प्राणीमात्रसे वैर नहीं किया है, उसका यह उत्तम फल है ॥ ३९ ॥ हे ईश्वर ! जो हमने अन्न तजकर चिरकालतक समुद्रके भीतर रहकर सुन्दर तप किया यह सब कर्म जलमें सोते हुए भूमा पुरुषके सन्तुष्ट करनेके लिए हमने किया है ॥४०॥ मनु, स्वयंभू, भग-

वान् पितामह शिव, तपसहित ज्ञान विशुद्ध चित्तवाले और सत्त्वगुणी महात्मापुरुष आपकी महिमाका पार न पाकर सदा आपकी स्तुति करते हैं, ऐसे ही हम अपनी बुद्धिके अनुसार आपकी स्तुति करते हैं ॥४१॥ सब जीवमात्रमें समरूप शुद्ध,परम, पुरुष, वासुदेव सत्त्वगुणमय जो भगवान् श्रीमन्नारायण हो, आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥४२॥ मैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार प्रचेताओंने जब भगवान् वासुदेवकी स्तुति की तब शरणागतवत्सल हरि भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि "एवमस्तु" ऐसा ही होगा और जब दर्शन करते-करते नेत्रोंकी तृप्ति न हुई, तो प्रचेताओंने चाहा कि भगवान् यहांसे किसी प्रकार न जांय तो भी अकुंठित प्रभाववाले महावीर्यवान् श्रीवैकुण्ठनाथ अपने वैकुण्ठधामको चले गये ॥ ४३ ॥ तब प्रचेता समुद्रके जलसे बाहर निकलकर चल दिये और वृक्षोंसे ढकी पृथ्वीको मानो सब ओरसे दाब देंगे ऐसे वृक्षको देखकर प्रचेता महाकोप करने लगे ॥४४॥ हे राजन् ! महाक्रोधित हो प्रचेता पृथ्वीको वृक्षविहीन करनेके लिये प्रलयकालकी कालाग्नि रुद्रके सदृश अपने-अपने मुखोंसे आगसी उगलने लगे ॥४५॥ उस कालाग्निसे सब वृक्षोंको जलते हुए देखकर ब्रह्माजी यहां आये और राजा बर्हिष्मानके पुत्रोंको उन्होंने नीतिके वचनोंसे ठंढा किया ॥४६॥ और उस कालाग्निके जलनेसे जो वृक्ष बचे उन्होंने प्रचेताओंसे डरकर और ब्रह्माजीके उपदेशसे अपनी पुत्री प्रचेताओंको दे दी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्षोंकी कन्याके साथ विवाह किया । इस सुन्दरभार्यामें प्रचेताओंके 'दक्ष' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ "यह दक्ष पहले जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र था, परंतु शिवजीके निरादर करनेके कारण इसका दूसरा जन्म क्षत्रिय कुलमें हुआ ॥ ४८ ॥ जो शरीर ब्रह्माजीका पुत्र था, वही कालकी गतिसे मृत्युको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें प्रचेताओंके घरमें उत्पन्न होकर यह दक्ष ईश्वरकी प्रेरणासे चाक्षुष नाम मन्वंतरमें जब प्रथम रचनामें प्राप्त हुआ, तब अपने भनके समान प्रजा रचने लगा ॥ ४९ ॥ इस दक्षने सब तेजस्वियोंके मध्यमें अपनी कांतिसे सब पुरुषोंका तेज हरण किया और जो जन्मा उसको आपने ग्रहण किया, यह अपनी दक्षता (चतुरता) से सब कर्मोंमें श्रेष्ठ था इससे इसका नाम सब दक्ष-दक्ष कहने लगे ॥ ५० ॥ प्रजाकी रक्षा करनेमें ब्रह्माजीने इसका अभिषेक करके सबका पति नियत किया, इस लिये वह दक्ष मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने-अपने काममें सदा आज्ञा करता रहता था । देखो ! भगवत्की कृपा ऐसी होती है ।"

भजन

सब तज भज हरिनाम पियारे ॥
दीनदयालु कृपालु दयानिधि, भक्तनके रखवारे ।
पापी पतित गीध गणिकासे, कोटिन जन निस्तारे ॥१॥

---

१. शंका—प्रचेता भगवान्के बड़े भक्त और महात्मा होकर दयाहीन प्राणियोंके समान वृक्षोंको क्यों भस्म किया ? महात्मा पुरुषोंका यह कर्म नहीं है, यह नीच कर्म महाचाण्डालोंका है ।

उत्तर—तुम्हारा वाक्य सत्य है, निर्दयी कर्म चाण्डालोंका है, परन्तु जितना काम राजाओंका है वह सब काम विना दंड कभी नहीं सिद्ध हो सकता । चाहे अनेक उपाय करे परन्तु त्रास दिये विना नहीं हो सकता, इसीलिये प्रचेता वृक्षोंकी कन्याके साथ अपना विवाह करना चाहते थे, इस कार्यके लिये वृक्षोंको भस्म किया, कुछ निर्दयपनसे भस्म नहीं किया ॥

जहँ कहुँ कष्ट परो भक्तन पर, सुनतहि तुरत सिधारे ।
कनककशिपुरावणसे योधा, महायुद्ध कर मारे ॥ २ ॥
द्रुपदसुताकेदुःशासनने, जब ही वस्त्र उघारे ।
जाय बढ़ाय दिये पट लाखन, खैंचनहारे हारे ॥ ३ ॥
कृपानिधान ज्ञानगुण सागर, श्रीनँद नंद दुलारे ।
गावत शालिगराम रातदिन, अद्भुत चरित तुम्हारे ॥४॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थ-स्कन्धे दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा—इकतिसवें अध्यायमें, सौंप दक्षको राज ।
गये प्रचेता विपिनको, मोक्षमार्गके काज ॥

मैत्रेयजी बोले कि जब राजकार्य करते-करते और संसारके सुख भोगते सहस्रों वर्ष बीत गये तब प्रचेताओंके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ और भगवद्वचनका शीघ्र स्मरण कर पुत्रोंपर अपनी स्त्रीको छोड़ संन्यास ले, दंड धारण कर घरसे वनको चल दिये ॥१॥ सब प्राणिमात्रमें जिनका आत्मज्ञान है, वह ब्रह्मयज्ञमें दीक्षित होकर पश्चिम दिशामें समुद्रके तीरपर जिस आश्रममें जाजलि नामक ऋषि सिद्ध हुए थे वहां जाकर तप करना आरंभ किया ॥ २ ॥ प्राण, मन, वचन, जीतकर दृष्टिको वशमें कर, दृढ़ आसन लगाय, शांतसमान विग्रह हो, निर्मल पर-ब्रह्ममें आत्माको निश्चित कर वहां कुछ काल व्यतीत किया, तो भ्रमण करते-करते नारदजी वहां आये कि जिनकी देवता और दैत्य नित्य स्तुति किया करते हैं ॥ ३ ॥ नारदजीको आता देखकर प्रचेताओंने उठकर दंडवत् प्रणाम किया और आदरसत्कारसे यथायोग्य पूजन करके सुखसे बैठे हुए नारदजीसे प्रचेताओंने कहा ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि, हे देवर्षे ! आज आपका आना बहुत अच्छा हुआ, धन्य है हमारा भाग्य ! जो आपने मंगलमय दर्शन हमको दिया । हे ब्रह्मन् ! जैसे सूर्यका आगमन अभयके लिये है, ऐसे ही आप भी त्रिलोकीका भय दूर करनेके लिये विचरते हो ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! शिवजीने और विष्णु भगवान्ने जो ज्ञान हमको दिया था, वह सब ज्ञान हम घरके प्रसंगमें आसक्त होकर भूल गये ॥ ६ ॥ इसलिये वह अध्यात्मज्ञान हमसे कहो, जिससे तत्त्व—अर्थका दर्शन हो, जिस ज्ञानसे इस महादुस्तर संसारसागरसे सहजमें हम पार उतर जायँ ॥७॥ मैत्रेयजी बोले कि, भगवान् नारद-मुनिकी प्रचेताओंने जब इस प्रकार स्तुति की, तब महाकीर्तिमान् भगवान् नारदजी उत्तम-श्लोकोंमें जिनकी आवेशित आत्मा, वे प्रचेताओंसे बोले ॥८॥ नारदजी बोले कि इस विश्वमें विश्वके आत्मा विश्वनाथ भगवान् वासुदेवकी सेवा जिनसे बन सके उन्हीं पुरुषोंका जन्म, कर्म, आयु, मन और वचन सफल है ॥ ९ ॥

---

१. शंका—सब प्रचेता शिवजीसे भगवान्से तथा नारदजीसे ब्रह्मज्ञान सीखे फिर नारदने प्रचेताओंको ज्ञान क्यों दिया ?

उत्तर—प्रथम तो अभिमानसे नारदमुनि मायाको कुछ भी नहीं जानते थे, मायाने नारदमुनिको बहुत दुख दिया, उस दिनसे मायासे डरने लगे और अपने शिष्यको भी सिखाने लगे कि मायासे सावधान रहियेगा । इस लिये नारदजीने विचारा कि भगवान्की माया बड़ी बलवती है, किसीसे जानी नहीं जाती । प्रचेता ज्ञानमें पक्के तो हैं परन्तु और पुष्ट कर दें जिससे माया कभी इसकी बुद्धिको भ्रष्ट न करे, इसी लिये नारदजीने दूसरी बार प्रचेताओंको ज्ञान दिया ॥

दोहा-सोइ मन है जो कृष्णपद, छांड़ि अन्त नहिं जाय ।
वचन सफल सोइ जानिये, जिसमें यश यदुराय ॥ ९ ॥

अपने स्वरूपके उत्पन्न करनेवाले ईश्वरकी सेवा और उनका आत्मज्ञान हो सके तो शौक्ल (शुद्ध माता पितासे प्रथम जन्म), सचरित्र (सावित्र यज्ञोपवीत होनेसे दूसरा जन्म) और याज्ञिक (यज्ञकी दीक्षा लेनेसे तीसरा जन्म इस तीन प्रकारके जन्म होनेसे क्या फल हुआ ? अर्थात् क्या प्रयोजन निकला ? और देवताओंके समान आयु होनेसे भी क्या लाभ हुआ ? ॥१०॥ अनेक शास्त्र सुननेसे तप करनेसे, वाणीके वाक्यविलाससे, चित्तकी वृत्तियोंके वश करनेसे निपुण बुद्धिसे जितेन्द्रिय मनसे ॥११॥ प्राणायाम आदि योगसे, सांख्य शास्त्रके ज्ञानसे, संन्यासमतके लेनेसे, वेद पाठके करनेसे और श्रेयमांगलिक कृत्य करनेसे क्या होता है ? अर्थात् जो आत्माके प्रसन्न करनेवाले भगवान् वासुदेव ही प्रसन्न न हुए, तो इन साधनोंसे कुछ नहीं होता ॥१२॥ सबका सिद्धांत यह है कि सब शुभाचरणोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं और सब जीवमात्रके हरि ही आत्मा हैं और फलोंमें प्रधान और अंतिम फल केवल आत्मा ही है और सब पदार्थ आत्माके लिए ही हैं। सब जीवमात्रमें जो आत्मा है वही परमात्मा है, जो परमात्मा सब अविद्याका विनाश करके निजस्वरूपको प्रकाशित करता है, वही आनंदका दाता सबका प्रिय है, इसलिए परमात्माकी सेवा और आत्मज्ञान हो जाय तो सब सफल है ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जड़में जल सींचनेसे उस वृक्षके गूदे, शाखा, उपशाखा, फूल, फल, पत्रादि सब तृप्त हो जाते हैं और जैसे मुखद्वारा भोजन करनेसे प्राणरूप हो सब इंद्रियोंकी तृप्तिको करता है, ऐसे ही अच्युत भगवान्की पूजा करनेसे सब देवतामात्रकी पूजा हो जाती है ॥ १४ ॥ जैसे वर्षाऋतुमें जल सूर्यसे उत्पन्न होता है और ग्रीष्मऋतुमें समय पाकर वह जल सूर्यमें ही लय हो जाता है, ऐसे ही भूमिमें जितने जीवमात्र हैं, वे और जो स्थावर, जंगम हैं वे, सब श्रीनारायणमें लीन हो जाते हैं ॥ १५ ॥ यह जो विश्व है, परमात्माका सर्व उपाधिरहित स्वरूप है, क्योंकि यह सब जगत् उसी परमात्मासे उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह जगत् उससे भिन्न नहीं है, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यसे भिन्न नहीं है, ऐसे ही जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं है, जैसे आकाशमें गंधर्व नगर किसी समय दृष्टि आ जाता है, ऐसे ही परमात्मामें जगत् किसी समय स्वरूपज्ञान रहनेसे दीखा जाता है, जैसे जाग्रत अवस्थामें सब प्राण इंद्रिय स्पष्ट दृष्टि आती हैं, परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें उन सबकी शक्ति निर्बल हो जाती है, ऐसे ही अज्ञानके समय जगत् दृष्टि आता है, परंतु ज्ञान होनेसे उसका किंचिन्मात्र भी चिन्ह नहीं रहता, पंचभूत इंद्रियाँ और उनके देवताओंका भेद, भ्रम, दिव्य, क्रिया, ज्ञान ये सब भगवान्के स्वरूपसे ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिए भगवान्के स्वरूपका होनेसे ये सम्पूर्ण भ्रम दूर हो जाते हैं ॥ १६ ॥ हे प्रचेताओ ! आकाशमें जैसे मेघमण्डल कभी तमरूप कभी प्रकाशरूप दिखाई देते हैं और फिर पीछे उसीमें लय हो जाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्ममें अज्ञान दृष्टिसे यह रज, तम, सत्त्व देखनेमें आते हैं, जब ज्ञानदृष्टिसे देखा जाय तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, इसी प्रकार इस संसारका प्रवाह है, ज्ञानसे लीन और अज्ञानसे फिर भासने लगते हैं ॥ १७ ॥ इसलिए सब जीवमात्रमें एक आत्मा, सब देहधारियोंमें काल प्रधान पुरुष, परेश अपने तेजसे सबके कारण हैं, जिनके सत्यस्वरूपका ज्ञान होनेसे संसारका प्रवाह कभी देखनेमें नहीं आता, ऐसे परमात्माको दृढ़-

भावसे अपनी आत्मा समझकर परोक्ष रीतिसे साक्षात् उसका भजन करो॥१८॥ और संकल्प-विकल्प अद्वय जिससे दूर होता है, द्वय आत्मवाद जिससे उपरामको प्राप्त होता है ऐसे अनादि, मध्य, अन्त रहित निरन्तर आनन्दमात्र ज्ञानघन परमात्माको इस दिव्य दृष्टिसे भजो॥१९॥ सब जीवमात्र पर तो दया करो और जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष रक्खो, क्योंकि सब इंद्रियोंको शांत रखनेसे जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥ २० ॥ लोक, धन और पुत्रकी तृष्णा सब जिस शरीरमेंसे दूर हो गयी, ऐसे निर्मल अन्तःकरणमें निरन्तर वर्द्धित भावनासे बुलाये हुए, निज जनोंके वशमें रहनेवाला जो व्यापक आत्मा छिद्रवत् अक्षर ब्रह्म है, वह भक्तोंके हृदयमेंसे कभी अलग नहीं होता ॥ २१ ॥ जिनकी, बुद्धि निंदित है उनकी की हुई पूजाको भी भगवान् ग्रहण नहीं करते। वे तो निर्धनके धनदाता, श्री कृष्णचन्द्र गिरिधारी भक्तहितकारी परमरसज्ञ हैं। यश, धन, कुल, कर्मके मदसे जो लोग महानिष्किंचन भगवद्भक्तोंका तिरस्कार करते हैं और उनको त्याग देते हैं। जैसे-"एक समय दुर्योधन श्रीकृष्णचंद्र को निमन्त्रण कर आये और घरपर आकर रसोई बनानेवालोंसे बोले कि ऐसा स्वादिष्ट भोजन बनाना जो श्री कृष्णने कभी न खाया हो थोड़ी देर पीछे श्रीकृष्ण को विदुरजी आकर निमन्त्रण कर गये, तब श्रीकृष्ण दुर्योधनके घर तो न गये, परंतु विदुरके घरपर पहुँचे, विदुराणी महाराणीने घरमें बैठाकर बहुत आदर-सम्मान किया और वृंदावनविहारीकी मनोहर छबि देखकर ऐसी मग्न हुई कि कुछ सुध न रही और भोजन भी कुछ न बना सकी, परंतु केलेकी फली रक्खी थी, उन्हींको छील-छील खिलाने लगी। बेसुधि तो थी ही, केलेकी फलियोंके छिलके तो श्रीकृष्णचंद्रको खिलाती जाती थी और सुन्दर-सुन्दर गूदा बगेलती जाती थी। विदुरजी देखकर बोलेकि हे प्रिये! तुझे क्या हो गया, जो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण हैं उनको फलियोंके छिलके खिला रही है। और गूदा पृथ्वीपर डाल रही हो। तब भगवान् बोले कि हे विदुर! जो स्वाद छिलकोंमें है वह इन गहलोंमें नहीं। क्यों तुम तो उपायांतर बुद्धिसे मुझको फली खिलाते हो और विदुराणीके उपायांतर बुद्धि नहीं है। यह कह आचमनकर बाहर निकले, देखे तो सम्मुखसे दुर्योधन आते हैं और आकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले कि हे पुण्डरीकाक्ष! भीष्म, द्रोण और मुझको परित्याग करके विदुर शूद्र दासीपुत्रके घर जाकर फलाहार किया; धन्य है आपको श्लोकः-"भीष्मं द्रोणं परित्यज्य मां चैव मधुसूदन! किमर्थं पुण्डरीकाक्ष कृतं वृषलिभोजनम् ॥" यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि भगवद्भक्त शूद्र नहीं होते, किंतु विप्र हो जाते हैं, भागवत कहलाते हैं, सब वर्णोंमें वे शूद्र हैं जो जनार्दनके भक्त नहीं हैं, श्लोकः-"न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः! सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने" ॥२२॥ अपनी सेवा करनेवाली श्रीमहालक्ष्मी और लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले ब्रह्मादिकोंको, राजाओंको अथवा देवताओंको सबको त्यागते हैं; अब अपनेसे ही पूर्ण हैं, निज भृत्यस्वरूपमें प्रसन्न रहते हैं, ऐसे परमेश्वरको कौन कृतज्ञ पुरुष त्याग सकता है? अर्थात् कोई नहीं त्याग सकता ॥२३॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि इस प्रकार चतुराननके पुत्र देवर्षि प्रचेताओंको यह आख्यान और इसके अतिरिक्त और भी अनेक कथा सुनाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २४ ॥ और प्रचेता भी नारदजीके मुखसे त्रिभुवनके पापनाशक श्रीनारायणका सुयश सुनकर उनके चरणारविंदका ध्यान करते-करते मोक्षको प्राप्त हो गये ॥ २५ ॥ हे विदुरजी! जिसमें श्रीनारायणका वर्णन है वह प्रचेता और नारदजीका

संवादरूप आख्यान जो तुमने मुझसे पूछा था, सो मैंने प्रीतिसहित तुमसे कहा ॥२६॥ शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार स्वायंभुव मनुके पुत्र राजा उत्तानपादका वंश तुमको मैंने सुनाया, हे नृपसत्तम ! अब राजा प्रियव्रतके वंशका वर्णन करता हूँ, वह तुम सुनो ॥२७॥ जो राजा प्रियव्रत नारदजीसे आत्मविद्या सीखकर फिर पृथ्वीपर आये और अन्तसमय सब पृथ्वीका राज्य अपने पुत्रोंको विभागकर परमेश्वरके परमधामको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ श्रीमैत्रेयजीसे वर्णित श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदकी यह सत्कथा विदुरजी सुनकर भक्तिकी वृद्धिके प्रभावसे नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु बहाने लगे और मैत्रेयजीके चरणारविन्दोंको शिरपर और श्रीकृष्णके पदांबुजोंको हृदयमें धारण किया ॥ २९ ॥ विदुरजी बोले कि हे महायोगिन् ! हे महामुने मैत्रेयजी महाराज ! ! हे दीनदयालु करुणाकर ! ! ! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले आपने अपना अनुग्रह करके आज यह अंधकारसे पार करनेवाला मार्ग मुझको दिखा दिया जहां किसी वस्तु की कांक्षा नहीं, जिसमें विरक्त पुरुषोंका जीवनमूल भगवान् वासुदेवके स्वरूपका मुझे ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पांडुकुलभूषण ! शांतचित्तवाले विदुरजी इस प्रकार महामुनि मैत्रेयजीको नमस्कार कर, उनसे आज्ञा ले अपने सुहृदजनोंके देखनेकी अभिलाषासे विदुरजी हस्तिनापुरको गये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके चरणारविन्दमें जिनका चित्त लगा हुआ है, ऐसे राजाओंके चरित्र जो सुनते हैं वे आयु, धन, यश, कल्याणदायक गति और ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे राजा परमभक्त थे और श्रीभगवान्के नामका निशि-वासर ध्यान करते रहते थे और उसीको वेदका सार समझ संसारको स्वप्नवत् मानते थे, इस लिए जो हरिके भक्त हैं वे इस संसारमें धन्य हैं।

भजन

धन धन रामभक्त सुखखानी, ॥
वाल्मीकि नारद घटजोनी, अम्बरीष विज्ञानी ।
विश्वामित्र व्यास सनकादिक, हरिश्चन्द्रसे दानी ॥
ध्रुव प्रह्लाद सुदामा द्विजने, पायो पद निर्वानी ।
जगतमाहि विख्यात आजलों, जिनकी अकथ कहानी ॥
ब्रह्मा शेष गणेश अत्रि शुक, शंकर और भवानी ।
निशिदिन रटत पार नहिं पावत, थकित भई निजबानी ॥
आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, श्रीधर सारँगपानी ।
अपने मुख अपने भक्तनकी, महिमा आप बखानी ॥
भक्तहेत अवतार धार हरि, हरे असुर अभिमानी ।
शालिग्राम भक्तजन महिमा, भक्तोंहीने जानी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासी-शालग्रामवैश्यकृते चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति चतुर्थस्कन्धः समाप्तः ।

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा चतुर्थ स्कन्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

पञ्चम स्कन्ध ५.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



जड़ भरत और राजा रहूगण

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

पंचम स्कन्ध

दोहा–अजर अमर अव्यक्त अज, अविनाशी अविकार।
अलख अचिन्त्य अनादि अज, आर्त अनाथाधार॥

सोरठा–हे ब्रजेश ब्रजचन्द, नन्दनँदन वसुदेवसुत।
यशुमतिके सुखकंद, हरहु मोर दुख द्वन्द सब॥ १॥
श्रीगोविंद गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति।
कीजै कृपा कृपाल, कंसारी कालीदमन॥ २॥
हे प्रभु सर्वाधार, करअँगुलीपर धारि गिरि।
ज्यों ब्रज लियो उबार, ऐसेहि मोहिं उबारिये॥ ३॥
ज्यों वारनकी वार, वार न कीनी एक पल।
ऐसे हि मोहिं उबार, बारबार विनती करौं॥ ४॥

(प्रियव्रतका राज्यभोग करना और फिर ज्ञानमें निष्ठा होना)

राजा प्रियव्रतका प्रथम आत्मज्ञान,फिर गृहस्थ आश्रममें अनुराग, उसके पीछे सब संगको छोड़कर मोक्षके पानेकी कथा सुन राजा परीक्षित् विस्मयचित्त होकर श्रीशुकदेवजीसे बोले– कि हे मुने ! महात्मा प्रियव्रत परम भागवत थे इससे तो उनकी रति आत्मामें ही हो सकती है, वह किस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रत हुए थे ? यह आश्रम दोषरहित नहीं है, क्योंकि यह कर्मसे-बँधा हुआ है और अपने-अपने रूपके तिरस्कार का मूल है॥१॥और गृहस्थाश्रममें रति उसके विषयमें अभिनिवेश करनेसे होती है । मुक्तसंगी भागवत पुरुषोंका तो कभी घरमें अभिनिवेश हो ही नहीं सकता ॥२॥ कुटुम्बकी लालसा करनेवाली बुद्धि होनेसे गृहस्थाश्रममें सत्य-सत्य रति होती है, परन्तु जो महान् पुरुष हैं, उनके चित्त सदाही भगवान्‌के चरणारविंदोंकी छायामें लगे रहते हैं, फिर भला ऐसे पुरुषोंकी कुटुम्बकी ओर लालसा होनेवाली बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! राजा प्रियव्रतने पुत्र, कलत्र और गृहादिमें अनुरागी होकर जो सिद्धि पायी और भगवान्‌में उसकी अचल भक्ति हुई, इसका भी मुझे एक बड़ा भारी सन्देह है कि गृहस्थाश्रममें आसक्त पुरुषकी किस प्रकारसे सिद्धि और भगवान्

की अटल भक्ति मिल गई थी ?॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सत्य तो यह है कि भगवान्के चरणारविंद-मकरन्दके रसमें जिन पुरुषोंका चित्त लगा हुआ है, भगवत्की कथाको ही अपनी परम मंगलकी पदवी समझते हैं और जो कदाचित् उसमें किसी प्रकारका विघ्न भी पड़ जाय तो भी वे इसका परित्याग नहीं करते, यह बात बहुत ही यथार्थ है ॥ ५ ॥ तात्पर्य यह है कि उन मनुजीने अपने पुत्र प्रियव्रतको राजनीतिमें कहे हुये सब प्रधान-प्रधान गुणोंका आश्रय जानकर इसको पृथ्वीका पालन करनेमें नियुक्त करना चाहा, परन्तु इन राजपुत्रने राज्यभारको ग्रहण नहीं किया। हे राजन्! प्रियव्रतके राज्यभार न लेनेका कारण यह है कि वह परम भागवत् था। और देव ऋषि नारदजीके चरणोंके आराधन करनेसे उनको आत्मतत्त्व भलीभांति ज्ञात हो गया था, इससे उन्होंने मनमें विचार किया कि, आत्मध्यानरूप कार्यके द्वारा नियम ग्रहण करेंगे और उन्होंने पहले ही चित्तको ग्रहण करके भगवान् वासुदेवको अपनी सब इंद्रियोंका क्रियाकलाप अर्पण कर दिया था, हे महाराज ! यद्यपि पिताकी आज्ञाका उलंघन करना बड़ा अनुचित है, तथापि प्रियव्रतने यह विचार किया था कि राज्याधिकार मिथ्या है और राज्यके प्रपञ्चसे पराभव होनेकी सम्भावना है, इस कारण प्रथम वह राज्य का भार लेना नहीं चाहता था ॥ ६ ॥ परन्तु भगवान् आदि-देव ब्रह्माजी सब मूर्तिमान वेद और मारीचि आदि समस्त जिन जनोंके साथ अपने भवन सत्यलोकसे उतरनेका विचार कर, हे राजन् ! जैसे राजदूत लोगोंके द्वारा अपने आधीनस्थ मण्डलेश्वर राजाओंके अभिप्रायको जानता है, वैसेही गुणमय सृष्टिकी बढ़ानेवाली चिंताके द्वारा समस्त जगत्का अभिप्राय निश्चय करते हैं, वही ब्रह्माजी प्रियव्रतका वृत्तांत जानकर नारदजीके निकट जानेको अपने लोकसे उतरकर आने लगे ॥ ७ ॥ सत्य लोकके उतरनेके समय स्थान-स्थानमें चन्द्रमाके समान उसकी ज्योति प्रकाशित हुई और मार्ग ही मार्गमें देवता लोग उनकी पूजा करने लगे और सिद्ध,साधक,गंधर्व,चारण और मुनि इत्यादि यशका बखान करने लगे। ब्रह्माजी इस प्रकार पूजा प्राप्त करते-करते अपनी द्युतिसे गन्धमादन पर्वतकी गुफाओंको प्रकाशित करते प्रियव्रतके पास पहुँचे ॥ ८ ॥ उसी समय गंधमादन पर्वतकी गुफामें नारदजी प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश कर रहे थे और मनुजी अपने पुत्र प्रियव्रतको लेनेके लिए वहां आये थे। हंसकी सवारीको देखतेही नारदजीने जान लिया कि हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजीका आगमन हुआ, इसलिये मनु और प्रियव्रतके साथ हाथ जोड़कर उसी समय उठ खड़े हुए और पूजाकी सामग्री हाथमें लेकर ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ हे भारत ! पूजाकी सामग्री उनके सामने रखकर फिर मीठे वचनोंसे उनके गुण व यश और सर्वोत्कृष्टताके विषयका वर्णन करने लगे। इसलिये ब्रह्माजी दया प्रकट करके कुछ हँसे और कृपादृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देखकर कहा ॥ १० ॥ ब्रह्माजी स्नेह सहित बोले कि हे तात ! जो मैं कहूँ सो सुनो, सत्स्वरूप अप्रमेय भगवान्में आरोप करके दोष देखना उचित नहीं है, क्योंकि हे वत्स तुम, तुम्हारे पिता, तुम्हारे गुरु, यह महर्षि नारद और हम सब ही अवश होकर जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ ११ ॥ कोई देहधारी तपस्या, अथवा विद्या व योगसे, अथवा समाधिके बढ़ाये हुए बलसे अपने आप वा दूसरेके आश्रयसे वरन् किसी प्रकार भी उस परमेश्वरकी आज्ञाके नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं। और अर्थ व धर्मसे भी उसके लिये कार्यको अन्यथा करनेमें कोई समर्थ नहीं है ॥१२॥

हे प्रियव्रत ! सब लोकोंमें उत्पत्ति, नाश, शोक, मोह, भय, सुख, दुःख इन सबके निमित्त कर्म करनेको परमेश्वरका दिया हुआ यह देह सब ही जीव धारण करते हैं, उसके अन्यथा करनेमें किसीको भी कुछ सामर्थ्य नहीं है ॥१३॥ हे वत्स ! कर्म करनेमें भी किसीको स्वाधीनता नहीं है, हम परमेश्वरकी वाणीरूपी रस्सीमें सत्त्वादिगुणपूर्वक जो सब कर्म हैं, उनके निबन्धनसे ब्राह्मणादि शब्द द्वारा दृढ़ बंधनकर सब उस परमेश्वरकी पूजा करते हैं, अर्थात् उनको ही बलि देते हैं । इस कारण बैल इत्यादि चौपाये जिस प्रकार नाकमें नाथके पड़नेसे द्विपद मनुष्योंकी इच्छासे उनके लिये कर्म करते हैं, वैसे ही हम सब भी परमेश्वरकी इच्छासे उनके लिये कर्म किया करते हैं ॥१४॥ हे वत्स ! जैसे नेत्रवाला पुरुष अन्धेको छाया अथवा धूपमें जहां चाहे ले जाय, वहां ही उस अन्धेको जाना पड़ता है,ऐसे ही परमेश्वर हमारा प्रभु है,वह अपनी इच्छासे हमारे लिये पशु,पक्षी अथवा मनुष्यका जो कोई भी देह दे देता है, हमलोग उसको ही अंगीकार करके सुख व दुःख भोग किया करते हैं, वह सुख दुःख गुण कर्मके संग–हेतुसे वही ईश्वर देता है । अर्थात् बैल इत्यादि जैसे किसानके देनेपर ही घास आदि खानेको पाते हैं; अपनी इच्छासे खानेको नहीं पा सकते,वैसे ही हमलोगभी परमेश्वरका दिया हुआ सुख व दुःख भोग करते हैं, हमारी इच्छासे कुछ भी नहीं हो सकता ॥१५॥ निद्रासे उठे हुये पुरुषको स्वप्नमें देखे हुए पदार्थका केवल स्मरणमात्र रहनेसे अभिमानशून्य होकर प्रारब्धके कर्मभोग करते हुए देह धारण करना पड़ता है, परन्तु उनको दूसरी देहके सम्बन्धी गुण वा कर्म अथवा वासना नहीं रहती, क्योंकि ईश्वरकी इच्छामें कर्मोंका भोगना केवल अज्ञानीके लिये ही नहीं वरन् ज्ञानीको भी उसकी इच्छासे कर्मभोग भोगना पड़ता है, चाहे जीवनन्मुक्त भी हो जाय परंतु जबतक प्रारब्ध कर्म रहेगा तबतक निज शरीरको तो अवश्य धारण करना पड़ेगा ॥ १६ ॥ उस स्थलमें अपने मनमें ऐसा मत समझ लेना कि घरमें रहकर इस लोकका भोग करने पर अभिमानका त्याग वा मोक्षकी संभावना नहीं रहती, अत एव घरका त्याग करना ही ठीक है । हे वत्स ! जो पुरुष असावधान है और उसने अपनी इंद्रियाँ नहीं जीती हैं वह पुरुष यदि संगके भयसे एक वन से दूसरे वनमें भागा-भागा फिरे तो उसको वनसे भी भय हो सकता है, क्योंकि वह पुरुष बुद्धि और पांच इंद्रियाँ इन छः दुश्मनोंके साथ मिला हुआ है, परन्तु जिसने इंद्रियोंको जीत लिया है और आत्मामें ही जिसको रति उत्पन्न हुई है, उसके लिये गृहाश्रम क्या अनभल कर सकता है ? ॥ १७ ॥ वत्स प्रियव्रत ! जो पुरुष इन छः शत्रुओंको जीतना चाहे, तो प्रथम उसको घरमें ही रहकर इन सबकी गति रोककर जयके लिये प्रयत्न करे, जब रिपु दुर्बल हो जाये तब पीछे घरमें वा और कहीं घूमे, क्योंकि मनुष्य किलेका आश्रय करनेसे ही बलवान् वैरीको विजय करते हैं, पश्चात् जैसी इच्छा हो दुर्गमें अथवा और कहीं निवास करे ॥ १८ ॥ हे वत्स ! यह गृहरूपी दुर्गका आश्रय प्राकृत लोगोंके लिये ही जानना, तुम सरीखोंके लिये नहीं है, तुमने भगवान् वासुदेवके चरणकमलरूपी दुर्गका आश्रय लिया है, इससे यद्यपि तुमने अपने छः शत्रुओंको जीत लिया है, तथापि जबतक देह रहे तबतक ईश्वरके दिये हुए सब भोगोंको भोगकर फिर संग परित्याग करके अपने-अपने रूपोंकी भावना करना, अर्थात् आत्मनिष्ठ हो जाना ॥ १९ ॥ महर्षि शुकदेवजी इतनी कथा वर्णन करके राजा परीक्षितसे बोले हे महीपाल ! महा भगवद्भक्त प्रियव्रत ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर मनमें विचा-

रने लगे कि हम एक क्षुद्र प्राणी हैं, हमको त्रिभुवननाथ ब्रह्माजी ऐसा भला उपदेश देते हैं, उनको शिर झुकाकर बोला—"जो आपकी आज्ञा है मैं वही करूंगा" यह कहकर ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी ॥ २० ॥ ऐसा होनेसे मनुजीको बहुत ही संतोष प्राप्त हुआ उन्होंने आनंदित चित्तसे यथाविधि ब्रह्माजीकी पूजा की, ब्रह्माजी उसको ग्रहण करके प्रियव्रतका और नारदजीके सामने ही अपने लोकको जो मन और वाणीके अगोचर होनेसे व्यवहारशून्य हैं, जानेके लिये अंतर्धान हो गये। ब्रह्माजीने मनमें समझा था कि प्रियव्रतका योग भ्रष्ट होनेसे और नारदजीका एक शिष्य निकल जानेसे यह दोनों जन जानेके समय हमें क्रोधकी दृष्टिसे देखेंगे, परंतु ऐसा नहीं हुआ, बरन् प्रियव्रत व नारदजी एकटक लोचनसे ब्रह्माजीको देखते रहे। प्रियव्रतको योगसे हटाकर ब्रह्माजीका कार्य जब सिद्ध हुआ तब ब्रह्माजीके हृदयमें निवृत्त हुए प्राणीको फिर संसारमें लगा देनेसे विषाद हुआ था ॥ २१ ॥ मनुजीने अपने मनमें यह अभिलाष किया था कि पुत्रके हाथमें राज्यका भार सौंपकर वनको चले जायँगे, भगवान् ब्रह्माजीसे उनका मनोरथ सिद्ध होनेपर वह नारदजीकी सम्मतिसे समस्त भूमंडलका पालन और रक्षा करनेके लिये अपने पुत्रको अभिषिक्त करके विषम विषमय संसारकी भोग वासनासे विरत हुआ ॥ २२ ॥ प्रियव्रतने यद्यपि जिन भगवान् आदि पुरुषके प्रभावसे सब जगत्‌के बंधन कट जाते हैं, उनके दोनों चरणोंका नित्यप्रति ध्यान करनेसे सब रागादिक मलोंको जला डाला था और शुद्ध चित्त हो गये थे, तथापि आज्ञाका पालन करनेसे ब्रह्माजीका मान बढ़ानेके लिये उन्होंने पृथ्वीपति होकर पृथ्वीका पालन करना आरंभ किया। हे महाराज! यद्यपि प्रियव्रत निवृत्तिमार्गका पथिक था, तथापि ईश्वरकी इच्छासे फिर उसको कर्मका अधिकार प्राप्त हुआ ॥२३॥ जब कुछ समय प्रियव्रतको राज्य करते बीत गया तो उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी कन्या बर्हिष्मतीके साथ विवाह किया। इस स्त्रीके गर्भसे दश पुत्र उत्पन्न हुए और उर्जस्वती नाम एक कन्या उत्पन्न हुई और दशों पुत्र राजा प्रियव्रतके ही समान रूप, गुण, शील, वीर्य और कर्म द्वारा उदार हुए, कन्या उन सबसे छोटी थी॥२४॥हे राजन्! प्रियव्रतके इन दश पुत्रोंके यह नाम हुए यथा—आग्नीध्र १, इध्मजिह्व २, यज्ञबाहु ३, महावीर ४, हिरण्यरेतस् ५, घृतपृष्ठ ६, सवन ७, मेधातिथि ८, वीतहोत्र ९ और कवि १० अग्निके नामपर ही इन सबके नाम थे॥२५॥इन दश पुत्रोंमेंसे कवि, महावीर और सवन, यह तीन पुत्र निष्ठावान् ब्रह्मचारी हुए। उन्होंने बालकपनसे आत्मविद्यामें परिश्रम करके परमहंस आश्रममें प्रवेश किया था ॥ २६ ॥ वह तीनों जन महाज्ञानी और शांत स्वभाववाले हुए, जो सब जीव समूहके निवासभूत और भयभीत जनोंकी रक्षा करनेवाले हैं, उन सच्चिदानंद मुकुंदके चरणारविंदका स्मरण करके अखंडित भक्तियोगके प्रभावसे अपने-अपने अंतःकरण भलीभांति शुद्ध कर लिये थे। वे उन अंतःकरणोंमें सब भूतोंके आत्मा भगवान्‌के प्रतिष्ठित होनेसे देहादि उपाधिसे रहित होकर तादात्म्य (भगवद्रूपता) को प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ हे राजन्! प्रियव्रतके एक और दूसरी रानी थी, उससे भी तीन पुत्र उत्पन्न हुए, यथा—उत्तम, तामस और रैवत। यह तीनों पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार जिसके तीन पुत्रोंने जाति पायी, उस महात्मा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षतक पृथ्वीका पालन किया, उस राजामें दोर्दण्ड अखण्डनीय बल परिपूर्ण था। जब वह राजा पूर्णबलसे धनुषकी टंकार करता था तो विना युद्धके ही धर्मका विपक्ष करनेवाले सब

ही पुरुषोंका नाश कर देता था, उसका भोग-विलास भी थोड़ा नहीं था, परमप्यारी बर्हिष्मती नारीके साथ प्रतिदिन आमोद-प्रमोदादि द्वारा मानो उसके विज्ञान और विवेकको पराजित कर दिया था। इस कारण वह विषयमें आसक्त करनेके लिये भोग विलास करनेके समय ऐसा प्रतीत होता था मानो आत्माको भूल गया हो ॥ २९ ॥ एक समय भगवान् सूर्य जब कि सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश कर रहे थे, उसका आधे-भूमण्डलमें प्रकाश था और आधी पृथ्वी पर अँधेरा छा रहा था, तब उस समय इस राजाने सूर्यकी ओर दृष्टि करके विचार किया, कि भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वतकी परिक्रमा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश करते हुए आधी पृथ्वीको प्रकाशित कर रहे हैं और आधी धरापर अन्धकार छा रहा है, यह बात तो कुछ भली नहीं इस लिये इस विषयमें अप्रसन्नता प्रकट करके प्रतिज्ञा की, कि हम अपने प्रभावसे रात्रिको भी दिन करेंगे। यह विचार सूर्यके समान वेगवान् अपने ज्योतिर्मय रथपर आरूढ होकर दूसरे सूर्यकी भांति सात वार सूर्यके चारों ओर घूमे। हे राजन् ! प्रियव्रतने जो ऐसा आचरण किया, इसको कोई असम्भव न समझे, क्योंकि भगवान्‌की भक्ति करनेमें उसका अलौकिक प्रभाव वर्द्धित हुआ था, परन्तु जिस समय कि राजा प्रियव्रत ऐसा कर रहे थे, उस समय चतुर्मुख ब्रह्माजीने उनके निकट आकर उन्हें इस कार्यसे निवारण किया और कहा कि हे वत्स ! यह तुम्हारा अधिकार नहीं है ॥ ३० ॥ पृथ्वीनाथ प्रियव्रतके रथके पहियोंसे जो सात गढ़े पड़ गये थे, वही सात समुद्र हुए और उन्हीं समुद्रोंसे पृथ्वीके सात द्वीप हुएं ॥ ३१ ॥ उन सात समुद्रोंसे ही जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप, यह पृथ्वीके सात द्वीप बने। हे राजन् ! अब इन सब द्वीपोंका प्रमाण सुनो, यह सातों द्वीप

---

१. शंका—राजा प्रियव्रतका एकरथ, जिसमें बैठकर रात्रिके नाश करने और आठ प्रहरका दिन करनेके लिये सूर्यके पीछे-पीछे राजा प्रियव्रत क्यों घूमता फिरा ? राजा प्रियव्रत रथमें बैठकर आकाशमें घूमा करता था, फिर रथके पहियोंसे पृथ्वीमें सात समुद्र कैसे होगये ? जो पृथ्वीपर रथ घूमता तो निःसन्देह पहियोंके चिन्हसे समुद्र हो जाते और कुछ शंका न होती; परन्तु आकाशमें रथ चलनेसे पृथ्वीमें पहियोंसे सात समुद्र, सात द्वीप हो गये, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, तथा रथ तो एक ओर चौड़ाई लम्बाई एक प्रकारकी, फिर क्या कारण कि एकसे दूना दूसरा, दूसरेसे दूना तीसरा, तीसरेसे दूना चौथा, चौथेसे दूना पाँचवां, पाँचवेंसे दूना छठा, छठेसे दूना सातवां समुद्र और सात द्वीप हुए, यह बड़ी भारी शंका है ?

उत्तर—पहले तो प्रियव्रतने अपने तपके अभिमानसे विचार किया कि रात्रिका मैं नाश करदूंगा, केवल अकेला दिन ही रक्खूंगा क्योंकि यह रात्रिका अन्धकार महादुःखदायक है, ऐसा मनमें विचार किया और अपने तपके तेजप्रकाशसे अन्धकार न होने दिया और सूर्य नारायणके पीछे-पीछे अपना रथ कर लिया। परन्तु फिर पीछे राजाको ज्ञान हुआ, समझा कि दिन-रातकी मर्यादा भगवान्‌की की हुई है, जो मैं रात्रिको नष्ट करूगा तो भगवान् अत्यन्त कोप करके मुझको दण्ड देंगे। इस प्रकार अपने मनमें भय मान रात्रिका नाश नहीं किया। दूसरी शंकाका उत्तर—राजा प्रियव्रत तपके बलसे आकाशमें घूमता फिरता था, कभी-कभी भूमिपर भी घूमता था। कुम्हारके चक्रके समान रथको फिराता था जब भूमिमें रथको फेरने लगा तब बड़े वेगसे जो रथ घूमता था उसके पहियोंके चिन्ह पृथ्वीमें सात समुद्र हो गये और सात द्वीप हो गये। सातचक्र पृथ्वीके राजाने दिये थे श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌ने विचार किया कि पृथ्वीपर अपनी बनायी हुई सनातनकी मर्यादा सात समुद्र सात द्वीप एकसे एक दूना उसको नष्ट देखकर जो पृथ्वीपर सदासे चले आये हैं, वह सात समुद्र और सात द्वीप पृथ्वीपर क्यों नहीं ? मैं जानता हूं, कि ब्रह्मा स्वयंभूने मनुसे जब सृष्टिकी रचना करायी, तब उन्होंने सात समुद्र और द्वीप नहीं बनाये, इस लिये अपनी माया करके वासुदेव भगवान् राजा प्रियव्रतके सारथी हुए और राजाने नहीं जाना कि मेरे सारथीको उठाकर दूसरे स्थानपर बैठा दिया और आप सारथी बनकर अपनी इच्छासे रथकी लम्बाई चौड़ाई तथा रथके पहियोंको जितना बड़ा करना चाहते थे, उतना ही बड़ा कर लेते थे और घोड़ोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर एक वारमें दूना, दूसरी वारमें तिगुना, तीसरी वारमें चौगुना इसी प्रकार समुद्र और द्वीप एकसे एक दुगुना जैसे प्रथम कल्पमें थे वैसे ही बनाकर वैकुण्ठधामको चले गये। इसी कारण समुद्र और द्वीप दूने-दूने हुए ॥

क्रमशः एक-दूसरेके प्रमाणसे दूने हैं और समुद्रके बाहरी भागमें चारों ओर बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सब समुद्रोंके बाहरी भागोंमें एक द्वीप है इसी प्रकार सब द्वीपोंके बाहर एक-एक समुद्र अर्थात् खारीजल, इक्षुरसजल, सुराजल, घृतजल, दधिजल, दुग्धजल, और शुद्धजल, यह सात समुद्र सातों द्वीपोंकी मानो परिखा (खाई) हो गये हैं। यह सब द्वीप जो कि समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। इनका प्रमाण ऐसा है कि उसके ही तुल्य यथाक्रमसे पहले एक समुद्र, फिर उस एक समुद्रके परे एक द्वीप है यह सब सागर अलग-अलग असंकीर्ण रूपसे बाहरी भागमें ही व्याप्त हो रहे हैं, भीतर नहीं फैले हैं, राजा प्रियव्रतने यह सात द्वीप अपने तुल्यचरित्रवान् सात पुत्रोंको अर्थात् अग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र नामक सात पुत्रोंको एक-एक द्वीपका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ उनके ऊर्जस्वती नामक जो एक कन्या थी उसका विवाह शुक्रसे हुआ, उसके ही गर्भसे देवयानी नामक शुक्रकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष भगवान्के भक्त हैं और उन्होंने भगवान्के चरणकी रेणुद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, उनमें इस प्रकारका पौरुष होना असंभव नहीं है, क्योंकि अनन्त चाण्डाल पुरुष भी भगवान्का नाम केवल एक वार उच्चारण करनेसे संसारके बंधनसे छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कुछ हो, राजा प्रियव्रत देवर्षि नारदजीके श्रीचरण-आश्रय करनेके समय जो राज्यादि प्रपंच आ पड़ा उसके सम्बन्धसे अपने आत्माको अनिर्वृत समान मन ही मन वैराग्य करता हुआ ग्लानिसहित यह वचन बोला ॥ ३६ ॥ कि हाय ! मैंने अच्छा नहीं किया, जो अविद्यारचित विषयरूप विषम अंधकूपमें इंद्रियोंके वश होकर गिरा, सब ही वृथा है, अहो ! मैं अपनी स्त्रीका क्रीड़ामृग बना; मुझे धिक्कार है, यह कहकर राजा अपने आप ही आप अपनी बहुतसी निन्दा करने लगा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके प्रसादसे राजा प्रियव्रतको ज्ञान प्राप्त हो गया और वह अपने आज्ञाकारी पुत्रोंके मध्य पृथ्वीका विभाग कर धन संपत्ति सहित अपनी स्त्रीको मृत शरीरके समान परित्याग करके फिर देवर्षि नारदजीके किये हुए उपदेश मार्गके अनुसार वर्तने लगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! स्त्री और धन ऐश्वर्यको बहुत दिन-तक भोगनेसे फिर उनका त्यागना कठिन हो जाता है। परंतु प्रियव्रतका हृदय खेदरहित था और भगवान्के विहारकी चिंतामें मग्न रहनेसे उसका प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था, इस लिये उसको स्त्री और धन संपत्तिका त्यागना कुछ कठिन नहीं हुआ, उसकी महिमाके विषयमें पहला कहा हुआ एक श्लोक है, वह मैं कहता हूँ आप सुनो, यथा—प्रियव्रत जो कर्म कर गया ईश्वरके विना कौन पुरुष उसके करनेको समर्थ हो सकता है ? उसके प्रभावकी कथाका कौन वर्णन कर सकता है ? उसने अंधकारका नाश करनेके लिये घूमते-घूमते अपने रथके पहियोंसे सात समुद्र खोदे थे ॥ ३९ ॥ फिर जिसने विभागपूर्वक द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीकी शांति और सब प्राणियोंका विवाद निवारण करनेके लिये नदी, पर्वत, बनादि द्वारा प्रत्येक द्वीपकी सीमा नियत कर दी ॥ ४० ॥ भगवद्भक्तोंके प्यारे जिस प्रियव्रतने भूमिका, स्वर्गका मनुष्यका और योग व कर्मके विभवको नरकके समान समझा था, उस परम भागवतकी समता कौन कर सकता है और किसका सामर्थ्य है ? ॥ ४१ ॥

कवित्त—आपहू तरे हैं और जग सब तार दीनो, नगरके वासिनको पुत्र ज्यों निहारो है। चोर और तस्करको नाम नहिं राखो कहूँ, जाको वा

निहारो सोई धर्म कर्म वारो है॥ मनुजीके वंशमें पूरण अवतंस भयो, जाके परकाशको त्रिलोकीमें उजारो है। शालिग्राम दीनबन्धु नाम सत्य करिबेको देखो कैसो प्रियव्रत प्रिय व्रत धारो है॥ १॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतस्य प्रथमवैराग्यं पश्चाद्गृहस्थाश्रमःपुनर्वैराग्येण मोक्षप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दोहा–या दूसर अध्यायमें, श्री आग्नीध्र चरित्र।
वर्णत भाषामें कछुक, सुखद विचित्र पवित्र॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, इस प्रकार राजा प्रियव्रत परमार्थ साधन करनेके लिये चला गया, तब उसका पुत्र आंग्नीध्र उसकी आज्ञाको धारण कर धर्मकी ओर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीपनिवासी प्रजाको अपने पुत्रके समान लालन-पालन करने लगा॥ १॥ उसने एक समय पुत्रकी कामना करके मंदराचल पर्वतकी गुफामें प्रस्थान किया और पुष्पादि विविध भांतिकी सामग्री एकत्र कर एकाग्र चित्तसे भगवान्‌की आराधना करने लगा॥ २॥ उसके अभिप्रायको बहुत ही शीघ्र श्रीआदिपुरुष भगवान्‌जी जान गये। उन्होंने आग्नीध्रकी तपस्याका कारण जानकर देवताओंकी सभामें जो एक पूर्वचित्ति नामक अप्सरा गा रही थी, उसको आग्नीध्रजीके साथ रमण करनेके लिये भेजा॥ ३॥ पूर्वचित्ति अप्सरा आदिपुरुषकी आज्ञानुसार गमन करके आग्नीध्रके आश्रमके समीप जो वन था उसमें घूमने लगी। यह उपवन अतिशय रमणीय था, वहां सघन विविध वृक्षोंको शाखाओंके समूहोंके ऊपर अनेक-अनेक स्वर्णवल्लियाँ लिपट रही थीं, उसके ऊपर बहुतसे थलचारी पक्षी, मयूर, कीट, कोकिलादि अपने-अपने जोड़ोंके साथ षड्जादि मधुर स्वरसे गानकर रहे थे, उनके कण्ठका शब्द-सुनकर हंस, कारण्डव आदि जलचारी पक्षी भी कमलोंकी खानपर सावधान होकर विचित्र भांतिके शब्द कर रहे थे, जिससे बोध होता था, कि मानो वहांके सब तालाव ही कोलाहल कर रहे हैं॥ ४॥ यह अप्सरा सुललित गमन करनेके लिये ऐसे हावभाव बताकर पग धरने लगी, कि उससे अद्भुत गीत और विलास प्रकट हुआ और पग-पग पर उसके मनोहर चरणोंके गहने खन-खन ध्वनि करने लगे। यह नारद नरेश्वरकुमार आग्नीध्रजीने जब सुना, तब उन्होंने अपने दोनों नेत्र (जो समाधियोगमें सब भांतिसे लगे हुए थे) कुछ एक नेत्र खोलकर देखा॥ ५॥ तब यह अप्सरा दृष्टि आयी, उसको देखते ही राजकुमार कामदेवके वशीभूत हो गये। हे राजन्! विप्रचित्ति अप्सराको देखकर आग्नीध्रका कामके वश हो जाना कुछ विचित्र नहीं है। यह अप्सरा उनके बहुत ही निकट मधुकरीके समान पुष्पोंको सूंघ रही थी, उसकी गति विहार लजीली व विनययुक्त चितवन, मनोहर वचन

---

१. शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है, कि राजा आग्नीध्रने स्त्रीके लिये तप किया। जो वह तप न करता तो क्या उसका विवाह न होता? राजा आग्नीध्र समस्त जम्बूद्वीपका अधिष्ठाता था। उसको राजा लोगोंने अपनी कन्या क्यों नहीं दी? सब राजा लोग आग्नीध्रके अधीन थे फिर विवाह के लिये तप क्यों किया?

उत्तर—सृष्टिकी आदिमें कोई भी क्षत्रिय नहीं था। अकेले स्वायंभुवमनुके पुत्र क्षत्रिय थे, जब मैथुनी सृष्टि ब्रह्माने बनायी तब पीछे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, जब क्षत्रिय पृथ्वीपर नहीं थे, तो आग्निध्रको कन्या कौन देता? इस लिये आग्निध्रने विवाहके कारण तप किया॥

और नेत्रादि अंग बहुत ही मनहरणकारक थे। इन नेत्रादिकोंके द्वारा मानो वह दर्शकगणोंके नसोंमें कामदेवके प्रवेश करनेका द्वार किये देती थी और दूसरे उसके मुखसे अमृतोपम स्वादवाले और आसवतुल्य मादक जो हँसीके वचन झरते थे, उनके साथ सुगंधित पवनके तुल्य श्वास निकलनेसे उसकी गंधसे मधुकरोंके झुंडके झुंड अन्धे होकर उसके वदनको घेर रहे थे, उन भौंरोंके भयसे जो वह शीघ्र-शीघ्र चरण उठाती थी उससे उसके पयोधर और वेणी व किंकिणी मनोहर भांतिसे डोल रही थीं। ऐसा हावभाव देखकर किसको मोह उत्पन्न नहीं होगा, इससे आग्नीध्र मोहित होकर कामदेवके वश हुए और जड़के समान हो कभी स्त्री, कभी पुरुष इस प्रकार उसको पुकार-पुकार कर कहने लगे ॥ ६ ॥ आग्नीध्रजी बोले—हे मुनिवर ! तुम कौन हो ? इस पर्वतपर क्या करनेकी वासना करते हो ! तुम क्या भगवान् पर देवताकी माया हो ? फिर उसीकी दोनों भ्रुकुटियोंको देखकर कहा—सखे ! तुम यह दो प्रत्यञ्चा रहित धनुष क्या अपने निमित्त धारण करते हो ? इन दोनोंसे क्या कुछ तुम्हारा अपना काम है ? अथवा मृग तुल्य अजितेन्द्रिय हम सरीखोंको खोजते हुए फिरते हो क्या इसी लिये यह अपने साथ रक्खे हो ? अर्थात् हमको वश करनेके लिये क्या यह दो धनुष धारण करते हो ? ॥ ७ ॥ फिर उसपर आक्षेप करके कहा कि भाई तुम्हारे यह दोनों कटाक्ष बाणरूप हुए हैं ॥

कवित्त—लागत ही हृदयको वेध देत ठौर ठौर, पीरको न नाम कहीं ऐसे तो बेपीर हैं। करत जापै चोट सो सुरत लोट पोट होत, पड़े पड़े सिसक रहे बड़े बड़े वीर हैं ॥ कोउ नाहिं छोड़ो विना दागी किये पृथ्वीपर हार हार मान बैठे जेऊ नामी रस धीर हैं। पारथके बाणहू लजाने देख शालिग्राम, प्यारी तेरे नैन हैं कि नावकके तीर हैं ॥ १ ॥

तुम्हारे दोनों कमल नयन इनके दो पलक हैं, अहो दोनों ही भ्रमरके कारण शान्त हो रहे हैं। यद्यपि उनमें पंख नहीं हैं, तथापि वे विना पंखोंके अतिशय कठिन दृष्टि आते हैं और फिर दोनोंका ही अगला भाग अतिशय तेज है, क्या तुम उसके बिना चलाये शांत न होगे ? अच्छा किसके ऊपर यह चलाना चाहते हो ? हमारी समझमें कुछ भी नहीं आता और डरके मारे हम जड़के समान हो रहे हैं, इस लिये हम केवल तुम्हारी इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि आपका यह पराक्रम (घूमना) हमारा मङ्गल करनेके लिये हो तो अच्छा है ॥ ८ ॥ पीछे उसके शरीरकी सुगंधिसे जो अन्धे होकर कुछ भौंरे उसके पीछे-पीछे चले आते थे, उनको देखकर बोले कि हे ईश ! क्या तुम्हारे ये सब शिष्य हैं ? और आपके चारों ओर फिरकर सरहस्य सामवेदका पाठ और गान कर रहे हैं ? तुम्हारे मस्तकको शिखासे जो यह सब फूल खसे पड़ते हैं, अब भौंरे इस प्रकार उनका सेवन करते हैं कि ऋषिलोग जैसे वेदकी शाखाओंका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ फिर नूपुरध्वनि सुनकर कहा ब्रह्मन् ! तुम्हारे दोनों चरणोंमें पड़े हुए दोनों नूपुररूपी पींजरोंके अंतरगत सब रत्नरूपी तीतरियोंको अतीव मनोहर केवल शब्द तो मैं सुनता हूँ, परन्तु यह वचन कौन कहता है, उस बोलनेवाले व्यक्तिका मुखारविंद मुझको नहीं दीखता, फिर उसके पीले वर्णवाले पहननेके वस्त्रको नितम्बकी कांति समझकर बोले कि तुमने अपने सुन्दर नितम्बमण्डलमें यह कदम्बके फूलोंकी दीप्ति कहांसे पायी फिर पीछे मेखला देखकर बोले कि यह जिसमें अंगारोंकी लंगारकी लंगार दृष्टि आती है और दीपमालिकाका

चक्रसा जो बन रहा है, यह क्या है ? और तुम्हारा वल्कल कहां गया ? ॥ १० ॥ फिर दोनों स्तन देखकर बोले, कि हे द्विज ! इन दोनों स्तनोंके मध्यमें क्या कोई मनोहर पदार्थ आपने भर रक्खा है ? मैं इस कारण देखता हूँ कि तुम मध्यभागमें दुर्बल होकर अतिकष्टसे जिनको धारण करते हो, वह भाव देखकर हमको इस बातका अनुमान होता है और देखो हमारी दृष्टि केवल इन्हीं दोनोंके ऊपर लग रही है, फिर दोनोंके ऊपर कुंकुम लगा हुवा देखकर बोले, कि तुम्हारे दोनों कुचोंके ऊपर यह अपूर्व अरुण रंगका कीचड़ कैसे लग गया, जिससे कि तुम हमारे आश्रमको आमोदित कर रही हो ॥११॥ हे सुहृद् श्रेष्ठ ! तुम कौनसे स्थानमें रहते हो ? वह हमको दिखाओ, हमको विदित होता है कि आपके रहनेका स्थान बहुत ही चमत्कृत होगा, अहो ? वहांके रहनेवाले लोग छातीपर ऐसा अपूर्व अवयव धारण करते हैं, तुम्हारी छातीकी इन दो अवयवोंकी सजावट गढ़ावटका क्या वर्णन करूँ ? इनको देखकर हम सरीखे लोगोंका मन अतिशय क्षुभित हो जाता है, हे बन्धो ! तुम्हारे स्थानके रहनेवाले केवल यह अपूर्व अवयव ही धारण नहीं करते, वरन् उनके मुखमें मधुर आलाप और विलास सहित अद्भुत अधरामृत भी है ॥ १२ ॥ हे सखे ! तुमसे और एक बात पूछते हैं, कि लोकके मध्यमें तुमने देह धारण करनेके लिये कौनसी वृत्तिका आश्रय लिखा है ? हमको जान पड़ता है कि भोजनसे तुम्हारी जीवन वृत्ति नहीं है, विना भोजन ही तुम प्राण धारण करते हो, क्योंकि तुम विष्णुजीके अंश हो विष्णुजी भोजन नहीं करते, सो तुम उनके वंशमें हो फिर भला किस प्रकारसे तुम्हारा भोजन संभव है ? सखे ! हम कुछ अपने मनसे ही गढ़के तुम्हें विष्णुजीका अंश नहीं बताते, बरन् यह जो देखते हैं कि तुम्हारे दोनों कानोंमें विष्णुजीकी नाईं दो मकराकृति कुण्डल दीप्तमान हो रहे हैं, फिर उनके निकट ही निमेषशून्य दो नयन शोभा विस्तार कर रहे हैं, दूसरे तुम्हारा यह वदन मानो ठीक सरोवरके समान हैं, क्योंकि इसमें यह दो नेत्र चंचल मीनयुगलके सदृश क्रीड़ा कर रहे हैं और मुखारविन्दके भीतर यह दांतोंकी पंक्ति राजहंसोंकी कतारके समान शोभा विस्तार कर रही है और समीपमें यह केश कलाप अलिकुलकी नाईं शोभा फैला रहे हैं ॥ १३ ॥ हे बन्धु ! तुम अपने करकमलसे जो इस गेंदको वारंवार उछालती हो, यह सब ओर घूमती हमारे दोनों नेत्रोंको चंचल करती है, अली ! तेरे यह वेणीबन्धन खसे पड़ते हैं, क्या तुम्हें इनकी सुध नहीं है ? अरी प्यारी ! यह धूर्त अत्याचारी पवन तुम्हारी नीवीके बन्धनको हरण करता है, सो क्या इसका भी तुमको स्मरण नहीं है ? ॥ १४ ॥ हे तपोधन ! तुम्हारा यह रूप रंग तपस्वी लोगोंके तपका नाश करनेवाला है तुमने किस प्रकार तीव्र तपस्या करके यह अपूर्वरूप प्राप्त किया ? हे मित्र ! तुम अनुग्रह करके हमारे साथ तपस्या करो क्योंकि वे मनभावन ब्रह्माजी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर तुमको स्त्री कर दें॥१५॥हमको समझ पड़ता है कि भगवान् ब्रह्माजीने तुमको हमारे ही लिये भेजा है, इसलिये हम तुमको नहीं छोड़ेंगे, तुममें हमारे नेत्र और मन लगे हुए हैं, अब यह किसी प्रकार नहीं छूट सकता, इसलिये हे शुभानने ! चतुराननकी प्रदानकी हुई तुमको मैं कभी नहीं बिसार सकता, हे श्रेष्ठ अंगवाली जहां तुम्हारा मन चाहे उसी स्थानमें हमको ले चलो, क्योंकि हम तुम्हारे ही अधीन हैं और तुम्हारी ये सखियाँ भी अनुकूल होकर हमारे साथ-साथ रहें ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! आग्नीध्र राजा देवताओंके समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंके मनानेमें भी वह अति विलक्षण और चतुर था,

इस प्रकार उस आग्नीध्रने ग्राम्य जनोंके भीतर चतुरतावाली परिपूर्ण भाषाके द्वारा उस अप्सरा पूर्वचित्तिका भली-भांति आदर-सम्मान करके उसको मनाया ॥१७॥ जो वीर-समूहोंका पति है उसकी उत्तम विद्या, बुद्धि, वयस, रूप, श्री, उदारता और शीलता देखकर पूर्वचित्तिका भी चित्त उससे लग गया और दश करोड़ वर्षतक जम्बूद्वीपाधिपति इस पृथ्वीनाथके साथमें पृथ्वी और स्वर्गका दिव्यसुख भोगती रही ॥१८॥ कालक्रमसे उसके गर्भमें राजा आग्निध्रसे नव पुत्र उत्पन्न हुए—नाभि, किं पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मयकुरु, भद्राश्व और केतुमाल ॥ १९ ॥ पूर्वचित्तिने प्रत्येक वर्षमें एक-एक सन्तान उत्पन्न की। इसी प्रकार जब नौ पुत्र उत्पन्न हुए तब वह उन सबको घरके भीतर ही परित्याग करके फिर अपना मन भगवान् ब्रह्माजीकी उपासनामें लगा दिया ॥२०॥ हे राजन्! आग्नीध्रके यह नव पुत्र जो हुए वे सब माताकी कृपाके स्वभावसे ही बड़े हृष्ट-पुष्ट और बलवान् हुए, इसलिये आग्नीध्रने उनके मध्यमें पृथ्वीके विभाग कर दिये, वे उन विभागोंके अनुसार अपने-अपने नामसे जम्बूद्वीपके नवखण्ड कर अपना राज्य भोगने लगे ॥२१॥ आग्नीध्रराजा विषय-भोगसे परितृप्त नहीं हुवा, वह सदा विषयके सुख-साधन करनेको ही बड़ा करके मानता रहा, इसलिये वेदोक्त कर्म करनेसे जहां पितृलोक आमोद-प्रमोद करते हैं और जहां कि वह पूर्वचित्ति अप्सरा थी उसी लोकको राजा आग्नीध्र गया ॥ २२ ॥ जब राजा आग्नीध्र परलोकवासी हुए तब उनके नौ पुत्रोंने मेरुकी नौ कन्याओंका पाणिग्रहण यथाक्रम किया, उन सब कन्याओंके ये नाम थे—मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति ॥ २३ ॥

चौ०—नाभि मेरुदेवीको व्याही ❋ प्रतिरूपा किंपुरुष उछाही ॥
उग्रदंष्ट्रि व्याही हरि वरषा ❋ लता इलावृत लई सहरषा ॥
रम्या रम्यक लई ललामा ❋ गही हिरण्यक वामा श्यामा ॥
नारिसंग कीन्हों कुरु काजा ❋ भद्रा भद्र अश्व महराजा ॥
केतुमाल लिये देववीतिको ❋ दीन्ही सगरी रीति प्रीतिको ॥
यहि विधि नव आग्नीध्रकुमारा ❋ व्याही मेरुसुता सुखसारा ॥
निज निज खंडन कियो निवासा ❋ पालत परिजन सहित हुलासा ॥
नीतिरीति महिमाहिं चलाई ❋ अपनी अपनी फेरि दुहाई ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—मंगलमय नृपनाभिको, कहिहौं चरित बखान।
ह्वै प्रसन्न जेहि यज्ञमें, प्रगट भये भगवान् ॥
ता पाछे करुणायतन, शोभासिन्धु खरार।
ह्वै तावश वा भवनमें, लीन ऋषिभ अवतार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा परीक्षित! तदनन्तर आग्नीध्रके पुत्र नाभिने पुत्रकी कामनाके लिये अपनी भार्या मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्तसे यज्ञानुष्ठान करके भगवान् यज्ञपुरुषकी अराधना की ॥ १ ॥ श्रद्धासहित पवित्र भावसे पूजामें वर्तमान इस राजाके प्रवर्ग नामक

यज्ञके कर्म हो रहे थे, उस समय यद्यपि भगवान् विष्णुजी द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विक् दक्षिणा और विधि इन सात उपायोंकी संपत्तिसे भी नहीं प्राप्त होते, तथापि भक्त जनके ऊपर दया करनेके लिये स्वयं सुन्दर शरीर धारण करके उनके सामने अपने रूपको प्रकट किया, हे महाराज! भगवान्का स्वरूप धारण कर प्रकट होनेका यह तात्पर्य है,कि भक्त जनोंकी मन-मानी हो जाये, सो ऐसी वासना उनके भक्तोंने की, तब ही उनका चित्त आकर्षित हो गया था। नारायणजीने नाभिके सम्मुख जो अपनी मूर्ति प्रकट की वह स्वतन्त्र थी; उसके सब अंग मन और नेत्रोंके आनन्दवर्द्धनकारी थे, इससे वह मूर्ति अतिशय सुंदर और सुखदायक थी॥ २॥ हे राजन्! भगवान्की जो मूर्ति नाभिके सामने प्रकट हुई, उसमें चार भुजा प्रकाश-वान् थीं, वह अतिशय तेजस्वी और पीतांबर पहिने, छातीमें श्रीवत्सका चिह्न शोभित हो रहा था और शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणि इत्यादि आभूषणोंसे अत्यन्त शोभायमान लगती थी। अधिक श्रेष्ठमणिजटित मुकुट, कुण्डल, कंकण, कटिमेखला, हार, केयूर, नूपुर, इत्यादि सब भूषणोंकी मनोहर किरणोंकी झलकसे उस मूर्तिका सब शरीर जगमगा रहा था, उस समय ऋत्विक् सभासद और यजमान सबने ऐसा मनहरण अद्भुत शृङ्गार किये हुए विष्णुभगवान्के सुन्दर स्वरूपको देखकर उसका बहुत आराधन कर मस्तक नवाकर विविध भांतिके उपहारद्वारा उनकी पूजा करने लगे, जैसे दरिद्री संपदाको देख अति प्रसन्न होकर उसका बहुत सम्मान करता है; इसी प्रकार ऋत्विक् प्रभृति लोग स्तुति करते-करते बोले कि हे पूज्यतम! तुम परिपूर्ण होनेसे भी हम सरीखे भृत्य जनोंकी पूजा वारंवार स्वीकार करनेके योग्य होओ। हे प्रभो! हम लोगोंमें इतना सामर्थ्य नहीं है कि आपकी स्तुति कर सकें, आपका स्वरूप जानना महादुर्लभ है, इसलिये हमने सत्पुरुष साधुगणोंके निकट केवल "नमस्कार! नमस्कार!!" इतनी ही स्तुति करना सीखा है॥ ३॥ ४॥ हे भगवन्! प्रकृति पुरुषसे परे जो ईश्वर हैं, उनके जो जो नाम और रूप (आकार) लोग कल्पना किया करते हैं वे सब कभी भी आपको स्पर्श नहीं कर सकते, इस लिये उन सब कल्पित नाम रूप आकारके द्वारा कौन पुरुष आपका स्वरूप निरूपण करनेमें समर्थ है? इस मनुष्यकी बुद्धि प्रकृतिके गुणसे प्रपंचमें ही आसक्त रहनेसे स्वयं अपने ऊपर भी उसका अधिकार नहीं, आपके जो सब शिवतम और श्रेष्ठ गुण अपने जनोंके अनन्त पापोंका नाश करते हैं, उन उत्तम गुण गणोंके एक देशका अवश्य वर्णन कर सकता है। इसके सिवाय इस मनुष्यको और किसी प्रकारकी क्षमता नहीं है, अर्थात् ऐसे मनुष्य केवल आपके गुणगणोंका वर्णन करनेमें ही समर्थ हैं॥ ५॥ हे परमेश! परिजनगण अनुरागके वश होकर गद्गद वचन द्वारा जो आपकी स्तुति किया करते हैं और जल, तुलसीदल, पत्र, दूर्वा तथा पवित्र पल्लवसे आपकी सेवा किया करते हैं, तो आप उससे भी प्रसन्न हो जाते हैं॥ ६॥ विना

१. शंका—राजा नाभिने अपने यज्ञमें प्रकट भगवान् वासुदेवको देखा, फिर उनको नमस्कार और स्तुति क्यों नहीं की? इसका क्या कारण? और जो यज्ञमें ऋषीश्वर मुनीश्वर थे, उन्होंने भगवान्को अनेक-अनेक प्रकारसे नमस्कार और स्तुति की और राजा नाभि दूसरे मनुष्यके समान सम्मुख खड़े रहे, जैसे कुछ यज्ञसे इनका संबंध नहीं, यह बड़ी भारी शंका है?

उत्तर—राजा नाभि अपने यज्ञमें भगवान्को देखकर स्त्रीसहित अपने नेत्रोंमें जल भर लाये और भगवान्‌के दर्शन करके ध्यानमें मग्न हो गये। जब राजा नाभि स्त्रीसमेत बोल नहीं सके, पृथ्वीपर गिर पड़े, प्रेमके वशीभूत हो शरीरके रोमांच हो गये, इस प्रकार राजाको प्रेमातुर देखकर ऋषियोंने राजा नाभिकी ओरसे भगवान् वासुदेवकी स्तुति की। इसलिये नाभि राजाने भगवान्को नमस्कार तथा स्तुति नहीं किया॥

प्रीति हम अनेक अंगोंसे परिपूर्ण जो यह यज्ञ करते हैं, इससे आपका कोई प्रयोजन भी दृष्टि नहीं आता ॥ ७ ॥ हे नाथ ! आप सदा स्वतन्त्र साक्षात् स्वयं ही प्रकट हुए हो संपूर्ण पराक्रमके स्वरूपभूत अर्थात् परमानन्दब्रह्मस्वरूप हो, परन्तु हम कामना वाले भक्तोंके निमित्त केवल आपकी उपासना मात्र बन सकती है। हे प्रभो ! मूर्ख पुरुष स्वयं आपकी श्रेष्ठताको नहीं जानते, उनके निकट परात्यर्थ गुणवाली पुराणके द्वारा अपवर्ग (मोक्ष) नाम अपनी महिमा तथा उनकी अभिलाषा सिद्ध करनेके लिये तुम पूजित न होकर भी और दूसरे सापेक्ष व्यक्तियोंके समान दिखाई पड़ते हो, इसलिये हमारी पूजासे आपका कोई उपकार नहीं होगा, यह हमारे ही उपयोगी होकर आपने अपना दास जानकर हमको दर्शन दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे पूज्यतम ! यद्यपि आप वर देनेके लिये प्रकट हुए हैं, तथापि हमारे राजाके इस यज्ञमें जब कि वरदाता आप अपने भक्तजनोंके अर्थात् हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए तब तो बस, यही हमारा वर हो गया, अब हम और क्या वर मांगे ? ॥१०॥ हे भगवन् ! आपका दर्शन अति दुर्लभ है, जिन सब आत्मा राम मुनिलोगोंका वैराग्य द्वारा तीक्ष्णीभूत ज्ञानरूप अग्निमें अनन्त मल जलकर भस्म हो गया है, उन लोगोंके लिये भी केवल आपका गुणगण परम मङ्गलदायी होता है, इससे वे सदा ही आपके गुण समूहोंकी स्तुति किया करते हैं ॥११॥ हे प्रभो ! यद्यपि आपके दर्शनसे ही हम लोग कृतार्थ हो गये, तथापि एक वर मांगते हैं; कि भूँख लगने, गिरने जंभाई लेने, अंगड़ाई और दुरवस्थाके समय पर जब कि हम आपको स्मरण करनेमें असमर्थ हों, उस कालमें और ज्वर व मृत्युके समयमें भी आपका गुणसहित नाम हमारी वाणीसे निरंतर निकलता रहे, हे भगवन्! आपके सब नामोंके प्रभावका हम क्या वर्णन करें, जिनके उच्चारण करते ही सब कलिमल विध्वंस हो जाते हैं। कलिकालमें हरिनामके समान और कोई मोक्षका उत्तम उपाय नहीं है ॥

श्लोक–हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥ १२ ॥

हे देव ! हमारी और भी प्रार्थना है, कि आप स्वर्ग और अपवर्गके स्वामी हैं, आपके निकट पुत्रका चाहनेवाला यह राजर्षि आपके समान पुत्रकी इच्छा करता है, जैसे कोई मनुष्य धनवान्से धान्यके ऊपरका छिलका मांगे, ऐसे इस लोकके फल आप समान पुत्रकी प्रार्थना करता है, क्योंकि यह संतान होनेको ही पुरुषार्थ करके समझता है, इस कारण आपसे यह प्रार्थना की है॥१३॥हे नाथ ! दूसरे राजर्षिकी यह प्रार्थना कुछ असंगत भी नहीं है, क्योंकि आपकी माया अजेय है, उसकी पदवी कोई नहीं जान सकता, उस आपकी अपराजित मायासे किसीकी बुद्धि पराजित नहीं होती और महापुरुषोंके चरणोंकी उपासना नहीं करनेसे किसीकी बुद्धि विषयरूप विषके वेगसे नहीं घिर जाती है ? ॥ १४ ॥ हे अनेक कार्य करनेवाले नाथ ! हमने अति लघु कार्यके लिये यहां आपको बुलाया, हम लोग बड़े मूर्ख हैं, कुछ नहीं जानते, पुत्रको ही परम पुरुषार्थ मानते हैं। हे देवदेव ! आपके प्रति जो हमारी अवहेलना होती है, इसे आप सहन करनेके योग्य हो। हे नाथ ! आप सबको ही एकसा समझते हैं, इससे हम यदि कुछ विरुद्ध वर्ताव भी करें तो भी उससे आपको असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! अग्नीध्रसुत नाभि राजाके ऋत्विक्जनोंने इस प्रकार गद्यमय वाणीसे श्रीभगवान्‌की स्तुति की। उसके पीछे जम्बूद्वीपाधिपति इस नाभि राजाने जिन सब मनुष्योंको वन्दना करनेके लिये नियत किया था, जब वे लोग भगवान्‌के चरणारविंदके

वंदन करनेमें नियुक्त हुए, तब भगवान् वासुदेव दया प्रकट करके यह वचन बोले ॥१६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ऋषिगण ! आप लोगोंके वचन कभी व्यर्थ नहीं होते, परन्तु आपने हमसे बड़ा कठिन वर मांगा, कि उस राजाके हमारे समान पुत्र हो, यह आपकी प्रार्थना सरल नहीं है, बड़ी कठिन है, क्योंकि हमसा दूसरा नहीं है, अपने समान हम ही हैं तो फिर इस राजाके किस प्रकार हम-समान पुत्र हो सकता है ? हम किस प्रकारसे यह तुम्हारी प्रार्थना परिपूर्ण कर सकते हैं ? और तुमने यह वर मांगा है जो कुछ भी हो, ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या होना उचित नहीं है, क्योंकि सब ब्राह्मणगण देवताके तुल्य हैं और ब्राह्मणकुल हमारा मुख है, ऐसा वेदमें कहा है ॥ १७ ॥ इसलिये हमारे समान दूसरा कोई न होनेसे हमको ही नाभिका पुत्र होकर अवतार लेना पड़ा ॥१८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीभगवान्की यह वार्ता नाभिकी स्त्री मेरुदेवी सुन रही थी और राजा नाभि भी उस समय वहां खड़े थे, इसलिये श्रीभगवान्‌जीने ऋत्विजोंसे जो बात कही वह राजाने भी सुनी, ऐसी आज्ञा नाभिको कर भगवान् वासुदेव अंतर्धान हो गये ॥१९॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे विष्णुदत्त परीक्षित ! जब महर्षिलोगोंने यज्ञमें इस प्रकारसे प्रश्न किया तब भगवान् विष्णुजी राजा नाभिके प्रिय करनेकी इच्छा करते हुए, इसके पीछे नग्न तपस्वी, ज्ञानी तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको उपदेश देनेके लिये राजा नाभिके अन्तःपुरमें उनकी रानी मेरुदेवीके गर्भमें शुक्ल शरीर धारण कर ऋषभदेवजीने अवतार लिया ॥ २० ॥

भजन

जन्म लियो ऋषभदेव महाराज ॥
परम अनूप स्वरूप मनोहर, सब छबि रही विराज ॥ १ ॥
जगतारण संकट नीवारण, साधारण जनके काज ।
प्रगटे ऋषभदेव आनँदनिधि, देवनके शिरताज ॥ २ ॥
दियो पूर्ण उपदेश देश, देशांतरमें सुखसाज ।
थाम लियो झटपट दोउ करते, बूड़त भक्त-जहाज ॥ ३ ॥
घर घर आनँद छयो जगतमें, पाप ताप गयो भाज ।
शालिग्राम भक्त लोगनके, हैं अद्भुत अंदाज ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे नाभि नृपस्य मेरुदेव्याम् ऋषभावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–या चतुर्थ अध्यायमें, ऋषभदेव अवतार ।
कीन्हों जस कछु राज्य सो, वरणौं मति अनुसार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ऋषभदेवजीके उत्पन्न होते ही उनके अंगमें भगवान्‌के लक्षण सब थे, दाहिने चरणमें वज्र और दाहिने हाथमें चक्र और अंकुशादिके चिह्न प्रकट दिखायी देते थे, और सर्वत्र समभाव, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और बड़ी-बड़ी संपत्तियोंसे जिनका प्रभाव दिन-दिन बढ़ने लगा, यह सब देखकर प्रजा, राज्य, मन्त्री, ब्राह्मण और देवताओंके मनोंमें यही इच्छा थी कि ये ही राजा होकर प्रजाका पालन करें ॥१॥ हे महाराज !

ऋषभदेवजीका आकार कवि लोगोंके वर्णन करनेके योग्य और अतिशय श्रेष्ठ हुआ और वे स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कांति यश इत्यादि गुणोंमें सर्व प्रधान हुए। इसलिये सर्वोपरि होनेसे उनके पिता नाभि राजाने उनका नाम "ऋषभ" रक्खा ॥२॥ हे परीक्षित ! ऋषभदेवजीके प्रभावका क्या वर्णन करें ? एक समय देवराज इंद्रने उनकी उन्नति देखकर ईर्षासे उनके राज्यमें जल नहीं वर्षाया, यह योगेश्वर भगवान इस वार्ताको जानकर कुछेक हँसे और अपनी आत्मयोगमायाके द्वारा अपने अजनाभ खण्डमें धूम-धामसे जलकी वर्षा की ॥ ३ ॥ जो कुछ हो, अभिलाषानुरूप सन्तान प्राप्त होनेसे राजा नाभि अत्यन्त हर्षमें भरकर अतिशय विह्वल हुए और भगवान् पुराण पुरुष जिन्होंने अपनी इच्छानुसार मनुष्य का अवतार स्वीकार किया, ऐसे भगवान् वासुदेवका पुलकायमान शरीर और गद्गद अक्ष-रोंवाली वाणीसे 'हे वत्स ! हे तात !' इस प्रकारके स्नेहयुक्त वचन पुकारकर बड़े अनुरागसे उनका लालन-पालन करके अतिशय प्रीति करने लगे। हे राजन् ! राजा नाभिका इस प्रकार आचरण करना असंभव नहीं है, क्योंकि यद्यपि साक्षात् भगवान्ने उनके गृहमें अवतार लिया, तथापि मायामोहित होनेके कारण "यह हमारे पुत्र हैं" ऐसी बुद्धि करके वह परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥४॥ जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब नाभि राजाने देखा कि पुत्र अब सब भांति योग्य हो गया है, पुरवासी लोग और अमात्यवर्ग भी सब इसके अनुरागी हो रहे हैं, यह समझ धर्मकी मर्यादा रक्षण करनेके लिये ऋषभदेवजीको राज्या-भिषेक दे और उनको ब्राह्मणोंकी गोदमें रखकर अपनी स्त्री मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रममें चले गये और वहां जाकर निर्मल व तीव्र तपस्याके प्रभावसे चित्तको सावधान कर नरना-रायण नामक भगवान् वासुदेवकी उपासना करते-करते कुछ काल उपरांत समय पाकर योगकी समाधिके द्वारा जीवन्मुक्त हो गये ॥५॥ हे पाण्डवेश ! उस नाभि राजाके विषयमें महर्षि लोग दो श्लोकोंका पाठ किया करते हैं, उनका अर्थ यह है:—भगवान् नाभिके वह प्रसिद्ध कर्म उनके पीछे और कौन पुरुष करनेको समर्थ होगा ? वे क्या साधारण पुरुष हैं जिनके शुद्ध कर्म द्वारा भगवान् हरि स्वयं उनके यहां पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे ॥ ६ ॥ और उन राजर्षि नाभिके सिवाय और कौन ब्रह्मण्य (ब्रह्मतेजसे युक्त) है ? उनके यज्ञमें ब्राह्मणलोग दक्षि-णादिसे पूजित होकर मन्त्रके बलसे यज्ञेश्वर भगवान्के दर्शन करनेमें समर्थ हुए थे ॥७॥ जब राजा नाभि पुत्रको राज्य तिलक देकर चले गये तब भगवान् ऋषभदेवजीने अपने 'अजनाभ' नामके राज्यखण्डको कर्म क्षेत्र मानकर लोगोंके उपदेशार्थ कुछेक दिन विद्या पढ़नेके लिये गुरुकुलमें वास किया। फिर गुरुलोगोंकी आज्ञा लेकर घरको आये और लोगोंको धर्मशिक्षा देना और श्रुतिस्मृतिरूप दोनों प्रकारकी कर्मविधिका अनुष्ठान करने लगे। फिर इन्द्रने उनको जयन्तीनामकी एक कन्या दी थी, समयानुसार उसी स्त्रीमें उनके एक सौ (१००) पुत्र उत्पन्न हुए ॥८॥ हे राजन् ! उन सौ पुत्रोंमेंसे भरत सबसे बड़े थे, वे महायोगी और श्रेष्ठ गुणसम्पन्न थे। उनके ही नामसे लोकमें इस खण्डको भारतवर्ष कहते हैं। हे महाराज ! ऋषभ-

१. शंका—हमने शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा लिखा देखा है कि, क्षत्रियकुलमें जो बालक जन्म लेता है तो उसका नाम वेदकी रीतिके अनुसार ब्राह्मण रखते है, परन्तु राजा नाभिने अपने पुत्रका नाम आपही क्यों रक्खा ?

उत्तर—सतयुग, त्रेता, द्वापरमें सब प्राणी अपने बालकोंके दो नाम रखते थे, वेदकी रीतिसे तो ब्राह्मणोंसे नाम रखवाते थे और बालकोंके कर्म देखकर उनका नाम आप रखते थे, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर अपने पुत्रोंके कर्म देखकर, दान करके, ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके तब राजा नाभिने अपने पुत्रोंका नाम आप रक्खा; कुछ अभिमान करके वेदकी रीति नहीं त्यागी।

देवजीके और जो निन्यानवे (९९) पुत्र थे; उनके मध्यमें कुशावर्त, इलावर्त ब्रह्मवर्त मलय केतु, भद्रसेन, इंद्रस्पृक्, विदर्भ और कीटक, यह नव नव्वेसे बड़े थे, परंतु भरतजीके अनुगत थे ॥९॥ हे राजन् ! उन नव पुत्रोंसे छोटे और नव जन अर्थात् कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन, यह सब भगवत् धर्मके बतलानेवाले परमभक्त जन थे, इनका चरित्र भगवान्‌की महिमामें बढ़ाकर सबका चित्त शांत करनेके लिये पीछेसे (ग्यारहवें स्कंधमें) वर्णन करेंगे ! उसमें वासुदेव और नारदजीका संवाद रहेगा॥१०॥११॥इन सबमें छोटे जयन्तीके जो इक्यासीवें (८१वें) पुत्र थे, वे पिताकी आज्ञा पालनेवाले, अतिशय विनीत, वेदोंके जाननेवाले थे, अतः वे यज्ञशील विशुद्ध कर्म करनेसे ब्राह्मण हो गये ॥ १२ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि हमारे प्रभु अनर्थकी परंपरासे दूर रहनेवाले और शुद्ध आनंद व ज्ञानस्वरूप ईश्वर हैं, तथापि अनीश्वरवादियोंके तुल्य विविध कर्म करते थे, इसका कारण यह था कि समयानुसार जो धर्म उत्पन्न हुआ है, उसको स्वयं आचरण करके वे अज्ञानी लोगोंको शिक्षा देते थे और वे परमदयालु, समदृष्टि शांतचित्त और सबोंसे सुहृद्भाव रखनेवाले ऋषभदेवजी यद्यपि दयावान् होकर वे धर्म, अर्थ, यश, प्रजा, भोग, मोक्ष संग्रहके द्वारा घरोंमें लोगोंको नियमित करते थे ॥ १३ ॥ संसारकी रीति है, कि जो बड़े-बड़े महात्मा और राजा लोग जैसा-जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही दूसरे लोग भी कर्म किया करते हैं, क्योंकि कहा भी है कि-"यथा राजा तथा प्रजाः-" इसी कारणसे भगवान् ऋषभदेवजी इस प्रकारके कर्म करने लगे थे ॥ १४ ॥ यद्यपि वे सब धर्मोंके बतलानेवाले वेदके रहस्य स्वयं जानते थे तो भी ब्राह्मणोंके कहनेपर जैसा कुछ वे लोग कहते थे उसीके अनुसार साम, दाम, दंडादिक उपायोंसे सब प्रजाओंको शिक्षा देते थे ॥१५॥ उन्होंने सब भाँतिसे विधिपूर्वक सौ-सौ वार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके वह सब यज्ञ साधारण नहीं हुए। द्रव्य, देश, काल, यौवन, श्रद्धा, ऋत्विक् आदि द्वारा अनेक देवताओंके अर्थ अतिशय बढ़-चढ़कर हुए थे ॥ १६ ॥ भगवान् ऋषभदेवजी इस भारतवर्षके स्वामी होकर सब प्रकारसे इस देशकी रक्षा करने लगे। उस समय किसी पुरुषकी दूसरे किसी पुरुषसे अपने लिये आकाश कुसुमकी नाईं कुछ भी प्रार्थना करनेकी इच्छा नहीं होती थी और कोई भी पुरुष दूसरेकी वस्तुपर दृष्टि नहीं करता था, अधिक क्या कहें ! ऋषभदेवजीके राज्यके समय प्रजाओंको अपने स्वामीके लिये क्षण-क्षणमें वृद्धि, शील, स्नेह, उद्रेकके सिवाय और कुछ चाहना नहीं थी ॥ १७ ॥ यह भगवान् ऋषभदेवजी एक समय सब देशोंमें घूमनेके लिये निकले। चलते-चलते ब्रह्मावर्त वर्षमें पहुँचे, वहां बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें प्रवेश करके देखा कि हमारे पुत्र गण भी बैठे हैं ! यद्यपि वे संमत चित्त थे और विनय नम्र व प्रणय द्वारा सुयंत्रित थे, तो भी प्रजाके उपदेश करनेके लिये उनको सबके सामने शिक्षा प्रदान करके वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १८ ॥

कवित्त-ब्रह्म तो वही है जौन सच्चिद आनन्दघन, निर्विकार निर्विकल्प स्वयं नित प्रकाशै है। माया वही है रज तम सत्त्वगुणको धार, नानारूप नामोंमें उपजै औ विनाशै है॥ ईश्वर वही है निजरूपको न भूले कभी,

माया गहै मायासे जो पृथक ही भासै है। जीव तो वही है जो अविद्याको संयोग पाय, भूल निज रूप भ्रम फांस ना निकासै है॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवस्य शतसन्तानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

दोहा ऋषभदेव वर्णन कियो, निज पुत्रनसो ज्ञान।
परमहंस अरु मोक्षपद, सोही कहौं बखान॥

ऋषभदेवजी बोले कि, हे पुत्रगण! जो सब जीव मनुष्य लोकमें जन्म लेकर मनुष्य देहको प्राप्त हुए हैं; उनको यह देह दुःखके देनेवाले समस्त विषयोंमें नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि यह सब विषय भोग तो विष्ठा-भोगी वराह आदिकोंको भी मिल जाता है, इस लिये हे सब पुत्रो! दिव्य तपस्या करो, तपस्या ही श्रेष्ठ वस्तु है, क्योंकि इससे अंतःकरण शुद्ध हो जाता है और अंतःकरण शुद्ध होनेसे परब्रह्मानंदकी प्राप्ति होती है॥ १॥ पंडितलोग महात्मा जनोंकी सेवाको मुक्तिका द्वार और स्त्री परिवारादिके संगको संसारका कारण कहते हैं। अर्थात् नरकका द्वार है, परन्तु महात्माजन किसको कहना चाहिये, तुम सुनो-जो सबका सुहृद हो, शांत चित्त हो, क्रोधरहित हो, सदाचारी हो और जिसका चित्त सब प्राणियोंमें समान है वे ही महात्माजन हैं॥ २॥ और सब पुरुषोंमें मैं जो ईश्वर हूँ मुझमें प्रीति करके जो पुरुष उसको ही पुरुषार्थ समझते हैं, जिसकी विषयासक्ति सब पुरुषमें तथा पुत्र, कलत्र और मित्रादि युक्त गृहमें प्रीति नहीं है और जो कि लोकमें देहयात्रा निर्वाह करनेके अतिरिक्त अधिक धनमें जिनकी चाहना नहीं है, वे ही मनुष्य महात्माजन हैं॥३॥ हे पुत्रो! वह मनुष्य चतुर होकर जब कि इंद्रियोंकी प्रीतिके लिये परिश्रम करता है, तब निःसंदेह मतवालासा होकर विरुद्ध कर्म (पाप) करता है। एक वारके विरुद्ध कर्म करनेसे आत्माको दुःख देनेवाला यह देह उत्पन्न हुआ है, भला फिर भी उस विरुद्ध कर्मका वारंवार करना अच्छा है? हम तो इसको अच्छा नहीं समझ सकते॥ ४॥ पुरुष जबतक आत्मतत्त्वके जाननेकी इच्छा नहीं करता, तभीतक उसके निकट अज्ञानतासे आत्मस्वरूपका तिरस्कार होता है॥५॥ क्योंकि जबतक क्रिया रहती है, तबतक यह मन कर्ममें लगा रहता है और वह कर्म स्वभाव ही शरीरके बंधनका कारण है। इससे पहला किया हुआ कर्म ही मनको अपने वशमें अर्थात् फिर भी कर्ममें लगाता है। जबतक अविद्यासे उपाधि युक्त आत्मस्वरूप जो मैं वासुदेव हूँ, मुझमें प्रीति नहीं करता तबतक देहके इस संबन्धसे जीव नहीं छूटता॥ ६॥ हे वत्सगण! केवल देहसे मुक्ति नहीं होती, इतना ही नहीं वरन् और अनर्थ भी वर्तमान रहते हैं क्योंकि स्वार्थके विषयमें प्रमत्त रहनेसे पुरुष विवेक युक्त होकर सब इंद्रियोंकी चेष्टाको मिथ्या नहीं जानता, अर्थात् यह सब आत्मासे संबन्ध नहीं रखती, ऐसा नहीं निश्चय किया तो भी आत्मस्वरूपके भूल जानेसे मैथुन सुख पापगृहको प्राप्त होकर संताप पाता है॥ ७॥ वत्सगणो! इस संसारमें स्त्रीके साथ मिलनेसे सुख प्राप्त होता है, संताप नहीं होता, ऐसा जो कहते हैं, वे महा भ्रममें पड़े हुए हैं, क्योंकि स्त्री और पुरुष इन प्रत्येकके जन्म लेते ही एक एक हृदयग्रंथि होती है और फिर जब कि पुरुष स्त्रीके साथ मिल जाता है, तब और एक-एक हृदयग्रंथि हो जाती है, वह बहुत बड़ी और दृढ़ग्रंथि पड़ती है। प्रत्येक हृदयग्रंथिसे

केवल देह और सब इंद्रियोंमें "हम हमारा" इस प्रकारके ज्ञानसे मोह उत्पन्न हो जाता है। इस दृढ़ हृदयग्रंथिसे गृह, क्षेत्र, पुत्र कुटुम्ब, धन, इत्यादिके विषयमें महामोह उत्पन्न होता है। इस कारण संसार-आश्रममें स्त्रीके साथ मिलना सुखका कारण नहीं। वरन् महामोह उपजानेवाला और दुःख दिखानेवाला है ॥८॥ परन्तु ऐसा भी मत समझो कि पुरुष स्त्रीके साथ मिलनेसे उसका यह भाव कभी नहीं छूटता, जब कि पुरुषकी कर्मसे बँधी हुई दृढ़ मन-रूपी हृदयकी गांठ उस मिथुनी भावसे निवृत्त हो जाती है, तब संसारका हेतुभूत जो अहंकार है, उसको छोड़कर मुक्तिरूप परमपदवीको वह पहुँच सकता है ॥९॥ हे पुत्रो ! यदि कोई कहे कि अहंकारका त्याग करना किसी प्रकारसे नहीं हो सकता, ऐसा नहीं, अहंकारके त्यागनेके चौबीस २४ कारण हैं। जैसे परमहंस और शुक्लस्वरूप मैं हूँ मुझमें भक्ति करना १, मुझमें अनावृत्ति करना २, तृष्णा रहित होना ३, सुखदुःखके भारको सहना ४, इस लोक और पर-लोकमें सब प्राणियोंके दुःखको देखना ५, तत्त्व जिज्ञासा ६, तपस्या ७, काम्यकर्मका छोड़ देना ८ ॥ १० ॥ मेरे निमित्त कर्म करना ९, मेरी कथा कहना-सुनना १०, जो सब पुरुष मेरे भक्तोंको ही परम आराधना करने योग्य देवता जानते हों, उन मेरे भक्तोंका सत्सङ्ग करना ११, मेरे गुण कीर्तन करना १२, वैररहित होना १३, सबको समान समझना १४, उपसम अर्थात् इंद्रियोंका रोकना १५, आत्मा शरीर और घरमें "यह मेरा यह पराया" ऐसी बुद्धि को छोड़नेकी वासना करना १६ ॥ ११ ॥ अध्यात्म शास्त्र (वेदान्त शास्त्र) का विचारना १७, निर्जनमें वास करना १८, प्राण इंद्रिय और मनको भलीभांति जीतना १९, शास्त्रमें श्रद्धा रखनी २०, ब्रह्मचर्य्य धारण करना २१, कर्तव्य कर्मका त्याग नहीं करना २२, वचनोंको नियममें रखना २३ ॥१२॥ सर्वत्र हमारे अनुभव करनेका निपुण अनुभव तत्त्व ज्ञान और समाधि २४, इन सब साधनोंमेंसे धैर्य, यत्न और ज्ञान युक्त होकर अहंकारका नाम उपाधिका त्याग करे॥१३॥ हे पुत्रो ! इस प्रकारसे जब अहंकार दूर हो जायँ, तब फिर सब कर्मोंका अपराधरूप हृदयमें जो ग्रंथिका बंधन, जो अविद्यासे पड़ गया है उसको सावधान होकर उपायसे, जैसा कि मैंने उपदेश किया है, वैसे ही भलीभांतिसे त्यागकर पश्चात् इस उपायसे भी अलग हो जाना ॥ १४ ॥ हे पुत्रगण ! जो हमारे लोकके जाननेकी कामना करे, हमारा अनुग्रह रूप प्रयोजनका जो आशय है वह पिता-पुत्रोंको और गुरु-चेलोंको, राजा-प्रजाओंको ऐसी शिक्षा दें। परन्तु उपदेश किये जानेपर भी यदि कोई सिखाया हुआ विषय न करे, तो उससे सिखानेवालोंको क्रोध न करना चाहिये। कारण कि अधिक करके जो पुरुष तत्त्व नहीं जानते, वे अच्छा समझ-कर कर्म ही करनेमें लगे हुए हैं उनको फिर सकाम कर्मोंमें लगाना चाहिये, क्योंकि फिर सकाम कर्मोंमें लगाना अन्धोंको कुएँमें डालनेके समान है, फिर उनसे क्या परिश्रम हो सकता है ? ॥१५॥ जो पुरुष बहुत ही कामना करता है और उसकी दृष्टि अच्छा-बुरा देख-नेमें अन्धी है और धनकी चेष्टा करता है, किंचित् सुखके कारण परस्पर वैर करना चाहता है, वह मूर्ख इस बातको नहीं जानता, कि अन्तमें मुझको दुःख प्राप्त होगा, वह दुःखको सुख समझता है॥१६॥ऐसे कुबुद्धि व्यक्ति अविद्यामें पड़े रहते हैं, उनको देखकर कौन सदय विद्वान् जानबूझकर इस विषयमें उसको प्रवृत्त करायेगा ? अर्थात् कोई भी उससे वियोग नहीं करायेगा। जो अन्धा मनुष्य बुरे कर्ममें पड़ जाय तो उसको बुरे मार्गमें जाता हुआ देखकर क्या कोई विद्वान् और सावधान मनुष्य उस अन्धेको उसी मार्गमें जानेका उपदेश

देगा ? ॥१७॥ परन्तु इस प्रकारसे संसारको प्राप्त हुए जीवको परम भक्तिके मार्गका उपदेश दे करके मुक्त करना आवश्यक है। जो उसको इस संसारसे नहीं छुड़ाता वह उसका गुरु नहीं, सगा नहीं, पिता नहीं, माता नहीं, देव नहीं और पति भी नहीं है। वरन् शत्रु कहना चाहिये ॥१८॥ हे पुत्रगण ! हमारा यह मनुष्यरूपका शरीर अवितर्क्य अर्थात् अपनी इच्छासे हमने धारण किया है। भाव यह है कि मैं प्राकृत मनुष्य नहीं हूँ और हमारा हृदय जिसमें सत्त्व वर्तमान है, वैसा यह शुद्ध तत्त्वस्वरूप है, क्योंकि हमने अधर्मको पीठपर करके निकाल दिया है, इस कारण श्रेष्ठ पुरुष मुझको ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥ १९ ॥ तुम सब मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो इसलिये द्वेष त्यागकर सब मिलकर स्थिर बुद्धिसे अपने सहोदर इन बड़े भ्राता भरतजीकी सेवा करो, हे पुत्रो ! इनकी सेवा करनेसे तुम्हारा प्रजा-पालन और मेरी सेवा भी हो जायगी, अर्थात् यह भरत तुम्हारे सबसे बड़े सहोदर भाई हैं, सो इनकी आज्ञामें रहना तुमको आवश्यक है, बस ऐसा करनेसे तुम्हारे सब ही कर्तव्य कर्म सफल हो जायँगे ॥२०॥ ऐसे ही ब्राह्मणोंकी सेवा करना भी तुम्हारा धर्म है, क्योंकि चेतन-अचेतन सब प्राणियोंमें स्थावर श्रेष्ठ हैं। स्थावरमें सर्पादि जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं जङ्गमसे ज्ञानयुक्त पशु श्रेष्ठ हैं, पशुओंसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंसे भूत प्रेतादि प्रथम गण श्रेष्ठ हैं, प्रथम गणसे गन्धर्व गण श्रेष्ठ हैं, गन्धर्व गणोंसे सिद्धगण प्रधान हैं, सिद्धोंसे किन्नरगण श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ किन्नरोंसे असुरगण श्रेष्ठ हैं, असुरोंसे देवता लोग बड़े हैं। देवताओंसे इंद्र बड़े हैं, इन्द्रसे ब्रह्मपुत्र दक्षादि श्रेष्ठ हैं। दक्षादिकोंसे शङ्कर श्रेष्ठ हैं, यह शङ्कर ब्रह्माजीके बलसे बलवान् हैं, इस कारण उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, ब्रह्माजी हमारी पूजा करते हैं, इस कारण ब्रह्माजीसे हम श्रेष्ठ हैं हम इन ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, इससे ब्राह्मणगण हमसे भी श्रेष्ठ होनेके कारण सबके पूजनीय हैं। इस कारण तुम अवश्य विप्रोंके चरणोंकी सेवा करो ॥२२॥ फिर वहां बैठे हुए ब्राह्मणोंको पुकार सब बोले, कि हे विप्रगण ! हम किसी प्राणीको विप्रके समान नहीं देखते। और ऐसी आशा भी नहीं है, कि किसी प्राणीको ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ देखेंगे अर्थात् जब कि हमारे मतके अनुसार ब्राह्मणके समान कोई नहीं तब ब्राह्मणसे अधिक श्रेष्ठ कोई कहांसे होगा ? ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ क्यों है, उसे कहता हूँ, तुम सुनोः-मनुष्यलोग श्रद्धा सहित भलीभांति जो ब्राह्मणके मुखमें अन्नादिका होम करते हैं (अर्थात् उनको भोजन कराते हैं) सो उनसे हमारा भोजन होता है, अग्निमें होम करनेसे हमारा वैसा तृप्तिकर आहार नहीं होता ॥ २३ ॥ और जो ब्राह्मण इस लोकमें हमारी वेदरूप प्राचीन मूर्ति धारण किये हुए हैं और जिनमें परम पवित्र सत्त्वगुण, शम (मनको वशमें रखना), दम (इन्द्रियोंको रोकना), सत्य, दया, तपस्या, तितिक्षा, (सहनशीलता) और प्रताप आदि गुण विराजमान हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ मैं किसको समझूँ ? ॥२४॥ हे विप्रगण ! ब्राह्मणोंके सन्तोषकी वार्ता क्या कहूँ ? हम जो अनंत और परात्पर विष्णु स्वर्ग और अपवर्गके अधिपति हैं, हमसे भी तो वे कुछ प्रार्थना नहीं करते, इसलिये उनकी अन्यराज्यादि लेनेकी इच्छा कब हो सकती है ? अर्थात् कभी सम्भव नहीं हो सकती। बस वे लोग अकिंचन हैं, केवल मेरी भक्ति करते हैं। फिर भला वे और किसीसे किस पदार्थकी प्रार्थना करेंगे ? ॥ २५ ॥ हे पुत्रो ! स्थावरजङ्गम जितने भूत हैं, उन सबमें हमारा निवास जानकर तुम क्षण-क्षणमें उनका सम्मान करो। जिससे तुम्हारी दृष्टि मत्सरादि दोषोंसे रहित हो जाय। हे वत्सगण ! सर्व जीवोंका सम्मान

करना है हमारी पूजा है ॥ २६ ॥ और हमारी पूजा करना ही मन, वचन, चक्षु, व अन्य इंद्रियोंके व्यापारका साक्षात् फल है। हमारी पूजाके विना पुरुष महामोहमय यमकी फांसीसे किसी प्रकार नहीं छूट सकता ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! महानुभाव भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि उनके पुत्रगण सब प्रकारसे स्वयं ही शिक्षित थे, तथापि संसारी लोगोंको उपदेश करनेके लिये पुत्रोंको इस प्रकारका उपदेश देकर आप शांत स्वभाव और कर्म-बन्धनसे रहित प्रधान मुनियोंकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्यलक्षण और परमहंस धर्म सिखानेकी वासनासे अपने सम्मुख पुत्रोंमें बड़ा पुत्र महाभागवत और महाभागवतोंका दास भरत था, उसको पृथ्वीका पालन करनेके लिये राज्यका भार सौंपकर उनका शरीरमात्र परिग्रह रह गया तब संसारका मायामोह त्याग उन्मत्तकी नाईं दिगंबर वेष किये; खुले बाल रहकर अग्निहोत्रकी अग्निको अपने रूपमें ही आरोप कर संन्यास धारण करनेके लिये ब्रह्मावर्तसे चल दिये ॥२८॥ लोग उनसे बोलते हैं तो भी वे उनके बीचमें जड़, मूक, अन्धे, बहिरे, पिशाच, मतवालेके समान विना बोले खड़े रहते थे, क्योंकि उन्होंने मौन व्रत ग्रहण कर लिया था और अवधूत अर्थात् संन्यासीके सदृश उनका वेष हो रहा था ॥२९॥ वे इस प्रकारसे इकले पुर, ग्राम, खान, किसानोंके ग्राम, पुष्पादि वाटिका, सेना निवासके डेरे, गोपस्थान, गोशाला यात्रियोंके मिलनेके स्थान, पर्वत, पुष्पादि वन और मुनियोंके आश्रम इत्यादि जहां ही जाते थे, उस स्थानके ही मार्गमें मक्खियाँ जिस प्रकार बनैले हाथीको व्याकुल करना चाहती हैं, वैसे ही दुष्ट दुरात्मा लोग इन्हें भय दिखलाते, ताड़ना करते, शरीरपर पेशाब कर देते, थूँक देते, पत्थर, विष्ठा और धूलि फेंकते, संमुख अधोवायु छोड़ते और दुर्वचन आदिक अनेक प्रकारकी दुष्टता करते थे, परन्तु ऋषभदेवजी इन सब बातोंको कुछ भी नहीं गिनते थे क्योंकि यह शरीर असत्य पदार्थोंका स्थान है। मिथ्यामय जो यह सब संसार नाममात्रका सत्य है, इसमें असत्का अनुभवरूप जो अपनी ममता और अहंकारकी स्थिति है, उसके द्वारा उनका अपना मेरा इस बातका अभिमान दूर हो गया था इसलिये कोई बात भी उनके मनमें किसी प्रकारका विकार न उपजा सकी,सदा अकेले पृथ्वीपर विचरते रहते थे ॥३०॥ यद्यपि उनके हाथ, पैर, वक्षस्थल, कन्धे, आदि अंग अतिशय कोमल थे और भलीभांति सुडौल होनेसे सब ही मनोहर शोभा धारण कर रहे थे और वह आप ही स्वभावसे सुन्दर थे और स्वाभाविक हँसनेसे उनके मुखपर अत्यंत शोभा विदित होती थी, दोनों नेत्र नवीन कमलदलके समान चौड़े और लंबे व अरुणवर्ण थे, उसमें सन्तापके नाश करनेवाले तारे झलक रहे थे और कपोल, कर्ण, कण्ठ, नासिका, यह सब अंग बराबर और सुशोभित थे। यद्यपि गूढ हास्ययुक्त वदनके महोत्सव निहार कर पुरनारियोंके मनमें मदन उत्पन्न हो जाता था, तथापि अग्रभाग पद कपिशवर्ण, जटायुक्त, कुटिल केशभार लम्बा होनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उनका शरीर यत्न न करनेसे मलिन हो रहा है। इस कारण उस समय वह ऐसे जान पड़ते थे, जैसे किसीको ग्राहने ग्रस लिया हो ॥३१॥ जब उन्होंने विचारा कि लोग बहुत तंग करते हैं और ऐसे योगका साधन नहीं होगा, क्योंकि संसारके लोगोंका संग दुःखका मूल है, तब इन सबसे पीछा छुड़ानेके लिये उन्होंने अजगर नामक व्रत धारण किया अर्थात् एक ही स्थानमें रहकर शयन करना, भोजन करना, जल पीना, चर्वण करना, मल मूत्र त्याग करना, इत्यादि क्रियायें करनी उन्होंने आरंभ कर दीं और विष्ठाके ऊपर लोटने लगे, इससे शरीरके बहुत अंगोंमें विष्ठा

लग गया ॥ ३२ ॥ परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि उनके विष्ठामें दुर्गन्धिका नाम नहीं था, वरन् उसकी सुगंधिसे वहाँकी पवनतक अतिशय सुगंधित हो गयी, उस पवनसे उस स्थानके निकट दशयोजन तक सुवासित हो गया ॥३३॥ भगवान् ऋषभदेवजी संन्यासाश्रममें प्रविष्ट होकर इस प्रकार गौ, मृग, एवं कागके तुल्य आचरण करने लगे, कभी चलते-चलते, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे-बैठे ही भोजन, पान और मल-मूत्र त्याग कर देते थे, इससे गौ, वा मृग, अथवा कागके तुल्य उनके समस्त आचरण हो गये थे ॥३४॥ हे राजन् ! योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभदेवजी इस प्रकार लोगोंकी भीड़ निवारण करनेके लिये और योगियोंको किस प्रकारका आचरण चाहिये, उसके दिखानेके लिये विविध भांतिकी योगचर्य्या करते थे, परन्तु वे स्वयं भगवान् और अपने स्वरूपभूत केवल परब्रह्ममें देहादिके अनुसंधानरहित और परम महत् अर्थात् उत्तरोत्तर शतगुण रूपसे बढ़ा हुआ जो आनंद है, वह उनका स्वरूप है ! और ऐसे सब प्राणियोंके आत्मा जो वासुदेव हैं इस कारण उपाधि भाव परित्याग करनेसे स्वतःसिद्ध व समस्त फलोंसे भरपूर थे। इस कारणसे आकाशगमन, मनके समान शरीरका वेग होना, अंतर्धान होना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना और दूरकी वस्तुको ग्रहण कर लेना आदि जो योगकी सिद्धियें हैं वे यदृच्छासे प्राप्त हो गयी थीं, परन्तु ऋषभदेवजीने अपने मनसे उनका आदर नहीं किया था ॥ ३५ ॥ इसपर एक कवित्त हैः–

कवित्त–आयेको हर्ष नहीं गयेका भी शोक नहीं, कैसो निरद्वन्द्व भयो समझकी बात है। देह नेह नेरे नहीं, लक्ष्मीकोहू हेरे नहीं मनको कहूँ फेरे नहीं पाहन सम गात है॥ लोकनकी रीति नहीं काहूसों सुप्रीति नहीं, हार नहीं जीत नहीं वर्ण है न जात है। ऐसो जब ज्ञान होत तब ही कछु ध्यान होत ब्रह्मके समान होत ब्रह्ममें समात है॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे श्रीऋषभदेवानुचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१. शंका—आजतक हमने शास्त्र-पुराण बहुत सुने परन्तु किसी मनुष्यके पुरीषकी प्रशंसाका वर्णन किसी कविने नहीं किया । भगवान्के अवतार भी हुए उनके पुरीषकी प्रशंसा किसीने नहीं की और यहाँ लिखा है, कि, ऋषभदेवजीके पुरीषकी सुगंधित पवनके प्रशंगसे दशयोजन अर्थात् ४० चालीस कोसके घेरे में चारों ओर सब दिशाओंमें महकती रहती थी। यह आश्चर्य होता है कि मलमें सुगंध किस प्रकार हुई ? जैसे कीड़ा अपनी पीठपर पर्वतको धरकर चले । मच्छर, माखी; डाँस यह सब समुद्रके जलको सोख जाँय, यह आश्चर्य बातें हैं, परन्तु यह सबसे बढ़कर आश्चर्ययुक्त बात है कि पुरीषमें सुगंधि कैसे हुई यह सब शंकाओंसे बढ़कर शंका है ?

उत्तर—जैसे बालकोंके रोग दूर करनेके लिये माता, पिता, भाई-भौजाई प्रभृति अनेक उपाय करते है कि, किसी प्रकार औषधि खाले, परन्तु जब वह औषधि नहीं खाता तो उसको प्यार करके मीठी-मीठी वस्तुका लोभ दिखाते है कि ले बेटा यह अमृती है, यह बतासे हैं, यह हम अपने बेटेको पेड़ा देते हैं; परन्तु वह होती कड़वी दवाई ही है और मीठे पदार्थोंका नाम इस लिये लिया जाता है कि किसी प्रकार पुत्रका रोग जाता रहे। ऐसे ही सब संसारके जीव भ्रष्ट हो रहे है, उन प्राणियोंको मोक्ष देनेके लिये भगवान् लोभ दिखाते हैं। ऋषभदेव भगवान् मोक्षमार्गको नष्ट देखकर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विचार किया। हमको तो बहुत दिन मृत्युलोकमें रहना ही नहीं और बिना बहुत दिनके सत्संगसे मोक्षमार्ग प्रकट नहीं हो सकता, ऐसा विचार कर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विष्ठामें सुगंधि उत्पन्न करके जगत्को दिखाया कि, सत्संगमें ऐसा चमत्कार है। ऐसे अद्भुत चमत्कारोंको देखकर सब संसारके लोग इस लोभमें फँस जायेंगे और इससे अधिक और कोई उत्तम उपाय नहीं है; यह लालच दिखाकर लोगोंसे कहने लगे कि, हे भाइयो ! मोक्ष मार्गका सेवन करो, देखो ! ऋषभदेव मोक्ष मार्गका सेवन करते-

दोहा-गर्व रहित तनुतज ऋषभ, षडध्यायके माहिं।
जारे दावानलहि जो, देखत देखै नाहिं॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित बोले कि हे भगवन्! जिन पुरुषोंकी आत्मामें ही रति है, उनकी योगसे प्रदीप्त हुई ज्ञानरूप अग्निमें कर्मबीज, (रागद्वेषादिक) दग्ध हो जाते हैं और उनके पास यदृच्छासे सिद्धियां आजाती हैं तो उनके क्लेशकी देनेवाली हो नहीं सकतीं, फिर किस लिये भगवान् ऋषभदेवजीने यदृच्छासे आयी हुई सिद्धियोंका अनादर किया?॥ १॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे राजन्! तुमने कहा वह सत्य है, परन्तु इस पृथ्वीपर कुछ एक बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार शठ किरात मृग पकड़ लेनेपर भी उसका विश्वास नहीं करता ऐसे ही चंचलतायुक्त इस मनके सम्यक् रूपका विश्वास नहीं करते॥२॥ इस कारण तत्त्वोंके जाननेवालोंने कहा है, कि मन अत्यन्त चंचल है अतएव कहीं किसीके साथ मित्रता करनी न चाहिये, क्योंकि इस प्रकार मनका विश्वास करनेसे शिवजीकी बहुत कालसे संचित की हुई तपस्या विष्णुजीकी मोहिनी रूपको देखकर क्षणमात्रमें क्षीण हो गयी थी॥३॥ हे राजन्! इसका कारण यही है कि जो योगी इस प्रकारके चंचल मनका विश्वास करता है, उसका मन जिस प्रकार विश्वासी पतिकी व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्रोंको अवकाश देकर पतिको मरवा डालती है, वैसे ही कामदेवको और उसके अनुचर क्रोधादिक रिपुगणोंको उनकी इच्छानुसार कर्म करने देना, अपने भ्रष्ट करनेको अवकाश देना है॥४॥ हे महाराज! काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, और भय आदि सब कर्मबंधन जिसके कारणसे होते हैं, उस मनको कौन ज्ञानी पुरुष अपने आधीन मानेंगे?॥ ५॥ भगवान् ऋषभदेवजी यद्यपि लोकपालोंके शिरोमणि थे;तथापि पीछे उनके संगमें कोई अनुचर भी नहीं रहा,सब संन्यासीके समान अनेक वेष भाषा और अनेक-अनेक आचार-व्यवहारका अवलम्बन करनेसे उनमें किसी रीतिसे भगवत्‌का प्रभाव नहीं दीखता था। उन्होंने इस प्रकारसे कुछ कालतक घूमते रहकर फिर यह भी दिखाया कि किस प्रकारसे देह त्याग करना चाहिये, यह योगियोंको सिखलानेके लिये अपने शरीरके त्याग करनेकी इच्छा की, इसलिये आत्मामें ही साक्षात् ठहराये हुए परमात्मा को अपने साथ भेद रहित स्वरूपसे देखकर देहाभिमानका त्याग कर दिया॥६॥ यद्यपि उनका देहाभिमान इस प्रकारसे निवृत्त हो गया था, तथापि योगमाया और वासना द्वारा उनका देह जिस प्रकार कुम्हारका चाक एकवार चलानेसे देरतक घूमा करता है, वैसे ही संसारके वश होकर बार-बार भ्रमण करते-करते कोङ्क, वेङ्क, कुटक और दक्षिण कर्णाटक देशमें आपसे आप ही पहुँच गये। वहां कुटकाचलके वनके निकट उन्होंने किसी वासनासे कुछ छोटे-छोटे पत्थर लेकर अपने मुखमें डाल लिये। फिर बावलेके समान बाल खोलकर नङ्गी देहसे इधर-उधर घूमने लगे॥ ७॥ दैवात् वायुके वेगसे उस वनमें (जहां कि ऋषभ-देवजी घूमते थे,) बांस बहुत ही कंपायमान हुए। उन सबके परस्पर रगड़नेसे शीघ्र ही भयानक दावानल प्रज्ज्वलित होकर वनको सर्व भांतिसे ग्रास कर लिया, उन (ऋषभ-देवजी) की देहको भी साथ ही भस्म कर दिया, और वे अग्निमें ही प्रविष्ट होगये, क्योंकि अग्निके संस्कारसे शुभगति प्राप्त होती है॥ ८॥ हे राजन्! भगवान् ऋषभदेवजी पंडितोंकी

—है, तो जिनके मलमें चालीस कोसतक अतर-फुलेलके सी सुगंधि आने लगी, तो इनको यमका भय क्यों होगा? आप लोग भी मोक्षमार्गका सेवन करेंगे तो आपकी भी ऐसी ही कीर्ति और शक्ति होगी।

वर्णन की हुई अवस्थामें भ्रमण करते-करते जिस प्रकारके आचरण किये थे, उसको जानकर कोंक, वेंङ्क, कुटकादि देशके अर्हत नामक राजा स्वयं इस प्रकारकी शिक्षा करेंगे और निडर हो अपना धर्म छोड़-छाड़कर अपनी बुद्धिसे पाखण्डरूप कुमार्ग प्रवृत्त करायेंगे क्योंकि कलियुगमें अधर्मकी ही वृद्धि होगी, इसलिये भवितव्य अर्थात् प्राणियोंके पूर्व संचित किये हुए पापके फलसे इन राजाओंकी बुद्धि विमोहित होजायगी ॥९॥ इन अर्हत राजाओंसे ही कलियुगी मनुष्यगण देवमायासे मोहित होकर अपने-अपने शौच आचार परित्याग करके देवताओंका निरादर, आचमन न करना, शौच न करना, केश नोचना, इत्यादि खोटे-खोटे कर्म अपनी-अपनी इच्छासे धारण करेंगे। इसीसे उन सब पुरुषोंकी बुद्धिका नाश हो जायगा, जब बुद्धिका नाश हो जायेगा तो वे सब सदा ही वेद, ब्राह्मण, विष्णु व सज्जन पुरुषोंकी निन्दा किया करेंगे॥१०॥ये सब लोग अंधपरम्पराके तुल्य अवेद मूलक इस प्रकारकी इच्छा-नुसार प्रवृत्तिका विश्वास कर अपने आप ही घोर अंधकार (नरक) में गोते खायेंगे ॥ ११ ॥ यद्यपि भगवान्‌का यह अवतार ही ऐसा अनर्थ करनेवाला हुआ तथापि जो पुरुष रजोगुणमें व्याप्त हैं, उनका मोक्ष किस प्रकारसे हो? यह सिखानेके लिये यह अति प्रयोजनीय हुआ, इस कारण पंडित लोग उस अवतारका गुण वर्णन करते हुए अनेक श्लोकोंको गाया करते हैं ॥१२॥ उन सब श्लोकोंका अर्थ यह है, यथाः-अहो! ससागरा पृथ्वीमें इन सब दीपोंमें यह भारतवर्ष अतिशय पुण्यवान् खण्ड है, क्योंकि यहांके जन्मे हुए लोग श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद भगवान्‌के और ऋषभावतारयुक्त चौवीस अवतारोंके उत्तमोत्तम कर्म और पवित्र चरित्र गाया करते हैं॥१३॥अहो! राजा प्रियव्रतका वंश यश करके आश्चर्यरूपसे पवित्र हुआ क्योंकि पुराण पुरुष भगवान् उनके वंशमें अवतार लेकर मोक्षमूल धर्मका आचरण कर गये हैं ॥ १४ ॥ वे ऋषभदेवजी अज हैं अर्थात् जन्म नहीं ग्रहण करते और क्या कोई योगी मनोरथ करके भी उन ऋषभदेवजीकी रीतियोंपर चल सकता है? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने अवस्तु समझकर जिस योग मायाका अर्थात् सिद्धियोंका अनादर किया था, उनको ही प्राप्त करनेके लिये योगीजन विविध भांतिके यत्न करते हैं ॥१५॥ हे राजन्! भगवान् ऋषभदेवजी लोक, वेद, देव, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु थे। उनके विशुद्ध चरित्रके मध्य जो कुछ कहा गया है, वह पुरुषोंके सब पापोंका नाश करनेवाला और परम मङ्गलदायक है। जो बुद्धिमान पुरुष श्रद्धापूर्वक इसको सुनता वा सुनाता है, उसकी दोनों जन्मोंमें ही भगवान् वासुदेवजीकी एकांत भक्ति रहा करती है ॥ १६ ॥ जिसके लिये कविगण अपने आत्माको जो अनेक प्रकारके पापरूप संसारके संतापमें निशिदिन तपते रहते हैं और मनको वारंवार स्नान कराकर उसीके द्वारा परम निवृत्तिको प्राप्त होते हैं और उसी भगवद्भक्तिको मङ्गलमय समझकर अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। और वे महात्मा जन उसीमें मग्न होकर फिर उससे परम पुरुषार्थ रूप जो मुक्ति पदार्थ है, उसको विना प्रार्थनाके श्री भगवान्‌जीके प्रसादसे आप उपस्थित होनेपर भी उसका आदर नहीं करते, क्योंकि जो भगवान्‌के भक्त हैं उनको सब पदार्थ आप ही मिल जाते हैं, परन्तु वे सब प्रकारसे भगवान्‌की भक्तिको ही सुख मानते हैं ॥ १७ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! भगवान् हरि तुम्हारे और यादवोंके पति अर्थात् पालन करनेवाले गुरु अर्थात् उपदेशक, दैव अर्थात् उपासना करने योग्य प्रिय अर्थात् सुहृद और कुलके नियन्ता और

कभी-कभी दैत्यादि कार्योंमें सेवक भी बन जाते थे तो भी हे महाराज ! भगवान् तुम्हारे प्रति अनुकूल थे और जो लोग उनका भजन करते हैं उनको तो वे मुक्ति दे देते हैं, परंतु भक्तियोग तो कभी किसीको नहीं देते, जिसको प्रेमलक्षण कहते हैं ॥ १८ ॥ हम भगवान् ऋषभदेवजीको नमस्कार करते हैं। निरन्तर अनुभव किया हुआ जो स्वरूप है, उसके लाभ होते ही उनकी सब तृष्णा दूर हो गयी थी। देहादि सुखनिमित्त तथा अनेक मनोरथोंकी सिद्धिके विषयमें जिन पुरुषोंकी बुद्धि सदा लगी रहती है उनके ऊपर करुणा करके ऋषभदेवजीने उभय लोकका उपदेश किया था, ऐसे ऋषभदेवजीको वारंवार नमस्कार है। वह यह मन्त्र सबको देते थेः–

कवित्त–रामहीका नाम रटे बुद्धि बल प्रबल होय, रामहीका नाम रटे उत्तम कुल पावै है। रामहीका नाम रटे चक्रवर्ती राज्य मिलै, रामहीका नाम परमधामको दिखावै है। रामहीका नाम रटे ऋद्धि और सिद्धि होत, रामहीका नामइन्द्रासनपै बिठावै है। रामहीका नाम रटे निर्भय नर देह मिलै, राम राम रटत निर्वाणहू होय जावै है ॥ १९ ॥ (१)

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे श्रीऋषभदेवचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–राज्य करत यागादिसों, हरिचरणनमें प्रीति।
करी भरत नृपनेह कर, वरणों सोई नीति ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाभागवत भरतजी भगवान् ऋषभदेवजी अपने पिताकी आज्ञा मान पृथ्वीकी रक्षा और प्रजाके पालनमें नियुक्त हुए और उनकी ही आज्ञानुसार उन्होंने विश्वरूपकी पुत्री पंचजनीका पाणिग्रहण किया ॥ १ ॥ अहंकारसे जिस प्रकार सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस स्त्रीके गर्भसे उनके पांच पुत्र उत्पन्न हुए, वे पांचों पुत्र संपूर्ण भावोंसे अपने पिता भरतजीके समान हुए ॥ २ ॥ उनके नाम यह थे-सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। हे राजन् ! पृथ्वीके इस वर्ष का नाम पहले अजनाभ था; परंतु जबसे भरत राजा हुआ तबसे इसका नाम भारतवर्ष होकर प्रसिद्ध हुआ। राजा भरत सर्वज्ञ थे, पृथ्वीनाथ होकर अपने बाप एवं दादेके तुल्य प्रजाके ऊपर वत्सलता प्रकाश करते रहे, अपने-अपने कर्ममें रत प्रजागणका लालन-पालन करते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ और श्रद्धा सहित अनेक छोटे और बड़े यज्ञ करके उनके द्वारा यज्ञमूर्ति और क्रतुमूर्ति विष्णु भगवान्जीकी पूजा करते रहे अर्थात् उनको जिस-जिस अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयज्ञमें अधिकार था, उन सबोंके द्वारा कभी सर्वाङ्गयुक्त, कभी विकलाङ्ग करके दोनों भांतिसे भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे, और चातुर्होत्र विधिसे सदा ही उपासना करते रहते थे ॥ ५ ॥ और जिनकी अंग क्रिया नित्य करनेमें आती है ऐसे यज्ञ जहां होते थे और ऋत्विक् लोग अग्नि छोड़नेके लिये जब हवि ग्रहण करते थे, तब यजमानरूप यह राजा उसका अनुष्ठान करनेके लिये अपूर्व जो इन सब क्रियाओंका फल है और जिसका नाम धर्म है, वह परब्रह्म परमात्मा यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवमें ही वर्तमान है। इस प्रकार विचार करके यज्ञका भाग लेनेवाले सूर्यादि देवताओंके भी भग-

वान् वासुदेवको चक्षु इत्यादि अवयवमें विचार कर ध्यान करता था। हे महाराज ! राजर्षि भरत यज्ञादि क्रियाओंके लिये अपूर्व भगवान् वासुदेवका जो ध्यान करता था इसका कारण यह है, कि इन्हीं सब देवताओंमें भगवान् ही मुख्य हैं, ऐसा माना जाय; तो भी वेदके मन्त्रोंसे बोधित किये हुए इन्द्रादि देवताओंके नियंता होनेसे सबके ही कर्ता नहीं हुए, इस कारण उन्हीं परम देवता यज्ञपुरुष भगवान्के अर्थ यज्ञका समर्पण करना उचित है। भरतजी इस प्रकारका विचार करके आत्माकी चतुराईसे शीघ्र ही राग द्वेषादिक मलसे निवृत्त हो गये ॥ ६ ॥ और इन सब विशुद्ध कर्मोंके करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा, उससे हृदयके बीचमें स्थित हुआ जो आकाश है, वही है जिनका पहँचाना हुआ स्थान, वहीं परब्रह्म भगवान् वासुदेवका महापुरुषरूपसे दर्शन होता था, जो महापुरुषाकार हैं और श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, वनमाला, शंख, चक्र, और गदा इत्यादि धारण करनेसे जो विराजमान हो रहे हैं और अपने भक्त नारदादिकोंके हृदयमें चित्रिततुल्य पुरुषरूपसे अपने आप ही देदीप्यमान हैं, वह उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवमें राजा भरतकी बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई और उस भक्तिका वेग दिन-दिन अधिक बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ महात्मा भरतजीने अपने राज्यसंबन्धी भोगके प्रारब्ध समयकी समाप्तिका काल सहस्रों वर्षतकका नियम नियत किया था, वह समय जब इस प्रकार व्यतीत हो गया तब अन्त समय आया जानकर उन्होंने अपने पिता, पितामहका राज्यबन्धन, जिसको अपने अधिकारसे भोग रहे थे उसको शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको यथायोग्य विभाग करके बांट दिया और सब ऐश्वर्य सम्पदाओंसे परिपूर्ण भवनको त्याग, संन्यास धारण कर, पुलस्त्य मुनिके आश्रममें तप करनेके लिये चले गये। (हरिक्षेत्रमें वह आश्रम है, वहीं विद्याधर कुण्ड है) ॥ ८ ॥ वहांके वास करनेवाले सज्जन पुरुषोंको भगवान् वासुदेव प्रेमके वशीभूत हो आजतक भक्तोंकी इच्छानुसार वत्सलतासे दर्शन देते हैं ॥ ९ ॥ उस आश्रममें गंडकी नाम परमोत्तम नदी है, जिसको चक्र भी कहते हैं, वहीं विद्याधरकुण्ड है, जिसकी शिलाओंमें ऊपर-नीचे हिरण्यगर्भ नाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं, उन्हींका नाम शालग्राम। जो गण्डकी अपने चक्रोंसे ग्राम और प्रदेशोंको चारों ओरसे पवित्र करती है।

भजन

(राग भैरव)

शालिग्राम कृपाके सागर, मन तू क्यों नहिं ध्यावत है रे।
सतयुग–द्वापर–त्रेता कलिमें, एकहि रूप पुजावत है रे ॥ १ ॥
शुद्ध हिमाचल पर्वत भीतर, मुक्ती क्षेत्र कहावत है रे।
एकबार चरणामृतले जो, सो फिर जन्म न पावत है रे ॥ २ ॥
भक्त होयकर भोग लगावै, अन्त स्वर्गमें आवत है रे।
हरि प्रसाद देवनको दुर्लभ, तनुके पाप नशावत है रे ॥ ३ ॥
जन्म-जन्मके पाप कटत हैं, पार्षद हो सुख पवात है रे।
हरिके निकट रहत निशिवासर,हरि हरि हरि हरि गावत है रे ॥ ४ ॥

धूप दीव नैवेद्य आरती, कर जो शंख बजावत है रे।
पुरुषोंमें पुरुषोत्तम सो नर, तुलसी पत्र चढ़ावत है रे॥ ५॥

इस प्रकार हरिक्षेत्रके उपवनमें राजर्षि भरत अकेले रहा करते थे और भाँति-भाँतिके कुसुम, किसलय, तुलसी, जल, कन्द, फलादिक, चढ़ाकर श्रीभगवान्‌की सदा शुद्ध मनसे आराधना करते रहते थे और विषयोंकी तृष्णाको त्याग शान्तिकी वृद्धि कर परमानन्दमें मग्न रहते थे ॥ १० ॥ ११ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन भगवानका पूजन करनेसे उनका अनुराग बढ़ गया और अनुरागके बढ़नेसे उनका हृदय शिथिल होता जाता था और हर्षके प्रभावसे उनका शरीर पुलकायमान हो गया, दूसरे हर्षके वेगसे उनकी देहमें वारंवार रोमाञ्च होते थे और उत्कण्ठाके वश होनेसे प्रेमके आंसू निकलकर दोनों नेत्रोंकी दृष्टिको रोकने लगे, तो दर्शनशक्ति बन्द हो गयी। भरतजी जब इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त हुए तब स्वयं भगवान्‌की आराधना करने लगे परन्तु उसका भी बराबर स्मरण नहीं रखते थे, क्योंकि अपने प्रियतम प्यारे भगवान्‌के अरुण चरणारविन्दका ध्यान करते-करते भक्तियोग की प्राप्ति हो गयी थी, उससे हृदयमें सर्वत्र परमानन्द उफनकर चारों ओरको फैल जानेसे उसमें भरतजीका मन निमग्न हो गया था ॥ १२ ॥ वे भरतजी मृगचर्म पहन कर तीनों कालकी सन्ध्या करते हुए नित्यप्रति स्नान करनेके कारण पिंगल वर्ण और कुटिल जटासमूह सदा गीला रहनेसे अतिशय शोभित होते थे। इस प्रकार भाँति-भाँतिके भगवद्व्रत धारण करके उदय होते हुए सूर्यमण्डलके प्रकाशक ऋक्‌मंत्र विशेष से भगवान् हिरण्यमय पुरुषकी आराधना इस मंत्रसे किया करते थे ॥ १३ ॥

मंत्र–परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिंगिरामिमः॥

सब जगत्‌का उत्पन्न करनेवाला, प्रकाशात्मक परमेश्वर रजो गुणसे परे सब कर्म फलदायक तेजरूप है, उसने मनसे ही इस विश्वको उत्पन्न किया, फिर इस विश्वमें अपनी चित्तशक्तिसे प्रवेश करके रक्षा की, इच्छावाले जीवको मनुष्योंमें रहनेवाली बुद्धिकी वृत्तिको उपजानेवाले उन सूर्य नारायणके आत्मरूपवाले तेजकी हम शरण हैं ॥ १४ ॥

भजन

प्रभु टुक मेरी ओर निहारो।
विपतिविदारण नाम तुम्हारो, हमरिहु बिपति बिदारो ॥ १ ॥
गणिका गीध व्याधसे तुमने, तारे पतित हजारो।
वाल्मीकिको भक्त बनायो वेद पढ़ाये चारो ॥ २ ॥
द्रुपदसुताकी लज्जा राखी, जलते गजहि उबारो।
हिरनकशिपु रावण कंसासुर, केश पकर कर मारो ॥ ३ ॥

---

१. शंका--पुलह मुनिके आश्रममें विश्राम करके भरतने जो तुलसीपत्र और पुष्पोंसे पूजन किया, वह किसका पूजन किया? क्योंकि वेदके जाननेवाले ऋषि, मुनियोंने भगवान्‌के अनन्तरूप कहे हैं।

उत्तर—भरतने एकाग्रचित्त द्वारा श्रीवैकुण्ठवासी जगत्पति भगवान्‌का ध्यान करके, उन्हीं भगवान्‌के मन्त्रोंसे जो अपने मनमें वस्तु थी वह सब वस्तु उन्हीं वैकुंठनायके चरणोंमें समर्पण करके अत्यन्त प्रेमसे वैकुण्ठ नायका पूजन किया।

जब जब भीर परी भक्तनपर, तब तब नरतनु धारो ।
शालिग्राम नाम यदुपतिको, सब दुख मेटन हारो ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे श्रीभरतकृतहरिक्षेत्रपूजन-शालग्रामोत्पत्ति–गण्डकीमाहात्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–हरि सेवत नृप भरत नित, चितमें अष्टाध्याय ।
अन्तरायसे मृग भये, मृगसुत–सों मन लाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! एक समय भरतजी महानदी गंडकीमें स्नान और नित्य नैमित्तिक और सब आवश्यक कर्म समाप्त करके तीन मुहूर्तका नियम लेकर नदीके तीर बैठ ओंकारका जप कर रहे थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! उस समय एक हरिणी जल पीनेकी इच्छासे अकेली उस नदीके निकट आयी ॥ २ ॥ वह हरिणी अधिक प्यास लगनेसे जल पी रही थी कि इतनेमें निकट ही एक सिंह गर्ज उठा, उसका गर्जना लोकोंका भय उपजानेवाला बड़ा तीक्ष्ण था ॥ ३ ॥ हरिणीका हृदय एक तो स्वभावसे ही व्याकुल था और दूसरे सिंहकी गर्जना सुनकर उसके मनमें और भी अधिक भय उत्पन्न हुआ और उसके हृदयको महाव्याकुल करने लगा, इस कारण वह हरिणी इधर-उधर घूमकर चकित हो देखने लगी, यद्यपि उसकी प्यास नहीं बुझी थी तो भी डरके कारण सहसा छलांग मारकर नदीके पार होनेको हुई ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वह हरिणी गर्भवती थी, महाभयसे उसका गर्भ अपने स्थानसे विचलित हो गया, इस कारण जैसे ही उसने छलांग भरी कि उसका गर्भ योनिद्वारा निकलकर नदीकी धारमें गिर पड़ा ॥ ५ ॥ एक तो हरिणीके अंतःकरणमें महाभय उपस्थित हुआ था, दूसरे गर्भ गिरा और गर्भ किस समय गिरा कि नदीके पार उछलनेमें छलांग मारते समय, तीसरे वह अपने झुण्डसे बिछुड़ी हुई थी, इस कारण ऐसा परिश्रम पड़नेसे बहुत पीड़ित होकर एक पर्वतकी गुफामें जा पड़ी और पड़ते ही शीघ्र उसके प्राण शरीरसे निकल गये ॥ ६ ॥ यहां राजर्षि भरतजीने नदीके तट पर बैठे हुए देखा, कि दीन हरिणीके बच्चेकी माता बच्चेको छोड़कर चली गयी और बच्चा नदीकी धारमें बहने लगा, तब बंधुके समान दया करके मरी हुई हरिणीके बच्चेको उठाकर भरतजी अपने आश्रममें ले आये ॥ ७ ॥ उस हरिणीके बच्चेका क्रम-क्रमसे "यह हमारा ही है" ऐसा अभिमान और स्नेह भरतजीको उत्पन्न हुआ । इस कारण वह दिन रात घासादि लाकर उसका पालन-पोषण और भेड़िया इत्यादि जंतुओंसे रक्षण, प्रीणन और चुम्बनादिसे प्यार करनेमें लगे रहते थे । इन कार्योंके करनेसे दिन-रात उस बच्चेमें अनुरागी रहनेके कारण उनके नियम (स्नानादि), यम (अहिंसादि) और अर्चा (ईश्वरकी आराधनादि करना) प्रतिदिन एक-एक करके थोड़े-थोड़े कम होने लगे और कुछ दिन पीछे एक साथ ही सब छूट गये ॥ ८ ॥ और वह सदा यही चिंता करते रहते कि अहो ? यह हरिणीका बच्चा अति दीन है, कालकी गतिसे यह अपने संगके बंधु-बाँधवोंसे छूट गया है, अब परमेश्वरने इसको हमारी शरणमें किया है, अब यह हमको ही माता, पिता, भ्राता, जातिवाला और यूथपति जानता है, हमारे सिवाय यह किसीको नहीं जानता और हमारा ही बड़ा विश्वास

करता है, इसलिये हमको भी असूया त्याग करके, अर्थात् इसके वास्ते हमारा स्वार्थ नष्ट होता है, यह दोषदृष्टि दूर करके अपना आश्रय लिये हुए इस हरिणके बच्चेको घासादि दें, भेड़िये इत्यादि जीवोंसे रक्षा कर, इसके शरीरको थपथपा कर और चुम्बनादिसे पालन करना चाहिये, क्योंकि शरणागतके निरादर करनेसे जो दोष होता है, उसको मैं भलीभांति जानता हूँ, इसके पालनमें ध्यान देना हमारा कर्तव्य नहीं है ॥९॥१०॥ बड़े और महाशील स्वभाववाले ही साधु और दीनबंधु होते हैं वे लोग ऐसे कार्यके लिये अपने बड़े भारी स्वार्थपर भी ध्यान नहीं देते ॥११॥ इस प्रकारसे उस मृगबालकके साथ बैठना, उठना, शयन करना, भ्रमण करना, स्नान करना और भोजनादि कार्योंमें ही भरतजी आसक्त हो गये और उस मृग-छौनाके ही स्नेहमें उनका हृदय फँस गया। अपने लिये कुश, कुसुम, समिध, फल, मूल, जल लेनेके लिये जब वनमें जाने लगते थे, तब भेड़िया, सिंह आदि आकर इस मृगबालकको खा न जायँ, इस लिये उस बच्चेको भी अपने साथ ही वनमें लेकर जाते थे ॥१२॥ कोमल स्वभाव उस भोले-भाले बच्चेके लिये भरतजीका हृदय स्नेहके भारसे भर गया था, इसलिये मार्गमें जाते-जाते मोहके भावसे आसक्तमति होकर स्नेहके मारे उसको कंधेके ऊपर उठाकर ले चलते थे और कभी गोदीमें, कभी छातीसे लगाकर अत्यन्त लाड़-प्यार व पुचकार कर परमहर्षको प्राप्त होते थे ॥१३॥ अपने कर्तव्य यज्ञादि क्रिया आरंभ करके समाप्ति न होनेपर बीचमें उठ बैठते थे और जब उस बच्चेको देखते थे तब उनका अन्तःकरण स्वस्थ हो जाता और उसको पुकार कर आशीर्वाद प्रार्थना करके यह कहते थे, कि हे वत्स ! तुम्हारा सब प्रकारसे मङ्गल हो ॥१४॥ यदि कदाचित् यह बच्चा इधर-उधर चला जाता था तो जिस प्रकार कृपण पुरुष धनका नाश होनेसे शोक करता है, वैसे ही भरतजी अति उद्विग्न चित्त होते थे और अत्यंत ही उत्सुकताके हेतु उस बच्चेके विरहमें उनका हृदय विकल और सन्तापित होता था, इस लिये महामोहमें पड़कर उसके लिये शोकसे विह्वल हो करुणा कर-करके भरतजी यह वचन कहा करते थे॥ १५ ॥ अहह ! यह क्षीण हरिणीका बच्चा मृत जननीका बालक अति दीन है, यद्यपि मैं अनार्य भाग्यहीन और शठ हूँ और किरातके समान मेरी मति छलनेवाली और अति टेढ़ी है, तो भी उस हरिणीके बच्चेने मेरा विश्वास किया है, इसलिये सुजनके समान अपना चित्त निर्मल होनेसे वह हमारे अपराध (शाठ्यादि) न गिनकर क्या नहीं आयेगा ? ॥१६॥ बोध होता है कि मैं उसे इस आश्रमके स्थानमें निर्विघ्न कोमल तृण भक्षण करते हुए देखूँगा, भगवान् उसकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ कोई भेड़िया व्याघ्र अथवा और कोई हिंसक जन्तु उसको अकेला जानकर कहीं खा न जाय ! ॥ १८ ॥ जिनके उदय होनेसे

१. शंका—राजा भरतने जिन भगवान्‌की पूजा-भक्ति करनेके लिये अपने राज्यको त्याग दिया और वनको चले गये। ऐसा श्रेष्ठ पूजन, हरि-भक्ति और अपना क्रिया-कर्म मृगके बच्चेके लिये क्यों छोड़ दिया ?। कोई कहे कि मृगीके बच्चेके मोहसे व्याकुल हो करके हीन पुरुषोंकी नाईं भगवान्‌का पूजन त्याग दिया; तो भी बड़ा भारी आश्चर्य होता है, क्योंकि राज्य और कुटुम्बका मोह छोड़ दिया और पशुके मोहमें व्याकुल होना ऐसा जान पड़ता है, जैसे पंगु पुरुषका पर्वत पर चढ़ जाना कदापि नहीं हो सकता, यह बड़ा भारी आश्चर्य विदित होता है ?

उत्तर—जब राजा भरत एक दिन वनको गये, तो वनमें जाकर क्या [illegible] हैं कि, धवल मुनि संसारकी लज्जासे आप मृगस्वरूप धारण करके और अपनी सुन्दर स्त्रीको मृगी बनाकर रमण कर रहे हैं, उनको देखकर राजा भरत हँसे, तब उसी समय राजा भरतको धवलमुनिने शाप दिया कि हे दुष्ट ! मृगीके बालककी तू रक्षा करेगा, उस मृगीके बच्चेकी रक्षासे तेरा एक जन्ममें मोक्ष नहीं होगा, तीन जन्म जब बीत जायँगे तब मुक्ति होगी। इस शापसे भरतने कौतूहल समान मृगछौनामें मन लगाकर उसीके मोहमें भगवान्‌का पूजन आदि त्याग दिया था।

सब संसारका मङ्गल होता है, वेदस्वरूप सूर्यदेव अस्ताचलको गमन करना चाहते हैं। परंतु अब तक उस मृगवधूका धरोहर स्वरूप वह मृग-शावक क्यों नहीं आया ?॥१९॥अहो ! वह राजकुमारके समान हरिणका शिशु देखने योग्य, मनोहर अनेक प्रकारकी बाललीला करके अपने स्नेही जनोंके खेदको दूर करनेवाला फिर क्या आकर मुझको सुखी करेगा ? ऐसा मैंने कोई असुकृत नहीं किया फिर किस प्रकार मेरे भाग्यमें यह सुख प्राप्त होगा ? ॥२०॥ अहो ! खेलनेके समय मिथ्या, स्नेहके कोपके मिषसे समाधिके छलसे जब मैं दोनों नेत्र मूंद लेता था, तब वह मृगछौना मेरे चारों ओर फिरता और चकित होकर कोमल सींगोंके अग्र भागसे मुझको स्पर्श करता था॥२१॥फिर कुशोंके ऊपर मैं होम करनेकी सामग्री रख देता था तब वह हरिणसुत खेलते-खेलते चपलताके वश हो; दांतोंसे कुश पकड़कर यद्यपि उस सामग्रीको दूषित कर देता था परन्तु जैसे ही मैं क्रोध प्रकाश करता था कि उस क्रोधके करनेसे वह अतिशय भयभीत होकर तत्क्षण ऋषिकुमारके समान क्रीड़ा परित्याग करके निश्चल होकर नीचेको मुख कर लेता था ॥२२॥ राजर्षि भरतजी इस प्रकार अत्यन्त विलाप करके आश्रमसे चलते हैं और आगे उन्हें खुरोंके चिह्न दृष्टि आते हैं, तब संभ्रांत चित्त होकर फिर आप ही आप कहने लगते हैं कि आह ! यह पृथ्वी अतिशय भाग्यवती है। न जाने इसने क्या तप किया था ? जो स्थान-स्थानमें अंकित उस हरिणछौनाके चरण चिह्नोंकी पंक्तिसे हमारे निकट उसके घरका मार्ग बतलाती है और अपनेको भी उन चरणचिह्नोंसे भूषित करके ब्राह्मणोंके यज्ञ करनेका स्थान बताती है, हम उस मृगशावकके अतिशय विरहमें दुःखित हो रहे थे, अब इन खुरोंके चिह्नोंको पृथ्वीमें अंकित हुआ देख कुछ धैर्य आया ॥ २३ ॥ उसके पीछे चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमण्डलमें मृगका चिह्न देखकर कहने लगे, अहो ! क्या जब हमारा छौना आश्रमसे बाहर निकलकर कहीं चला गया तो उसे दीनोंको प्यार करनेवाले तारा-पति भगवान् चन्द्रमाजी महाराजने अपने आश्रमका भूला भटका, मृतक जननीका बालक, बांधवोंके समूहसे बिछुड़ा हुआ; भोली भाली मनोहर छबि देखकर, दया करके अपने निकट रखकर उसकी रक्षा करते हैं ॥२४॥ फिर चन्द्रमाकी किरण जो उनकी देहपर पड़ी तो उसके स्पर्शका सुख पाकर कहने लगे—अहो ! उस मृगबालकके ढूंढ़नेसे जो उसके वियोगकी तपती हुई दावाग्निकी शिखाके समान जो हमारे हृदयरूप स्थल कमलको सन्तापित करती थी, इसको जानकर भगवान् चन्द्रमाजीने दया करके सुशीतल शांत वदनके सलिलरूप अमृत-मय किरणसे हमको सुख उपजाया, लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि मुखकमलके जलसे तापको शांत करते हैं ॥२५॥ हे राजन् ! वह योगधारी तपस्वी भरतजी इस प्रकारके असंभव मनोरथसे व्याकुल हृदय हो मृगशावकके समान प्रकाशमान् अपने आराधक कर्मोंके द्वारा योगानुष्ठानसे और भगवान्‌की आराधना रूप कर्मसे नष्ट भ्रष्ट हो गये, महाराज ! अपने कर्मसे ही उनकी आराधना व योग नष्ट हुआ। यदि ऐसा न होता तो जिस पुरुषने पहले मुक्तिमें विघ्न जानकर अत्याज्य पुत्रोंको भी परित्याग कर दिया था, उसको फिर दूसरी जातके मृगशावकमें सहसा अपने पुत्रके समान आसक्ति क्यों होती। जो हो, इस प्रकार विघ्नोंके पड़ जानेसे योग भ्रष्ट हुए, अपने आत्माकी चिन्ताको जलांजलि दिये हुए राजर्षि भरतजी उस मृगशावकके ही लालन-पालनमें नियुक्त हो गये हैं तो इतनेमें ही सर्प जिस प्रकार मूषकके बिल अर्थात् भक्षकको प्राप्त होता है, वैसे ही तीव्र वेगवाला, जो

टालनेसे न टले; ऐसा मृत्युसमय उपस्थित होकर उनको प्राप्त हुआ ॥२६॥ उस समय भी वह ध्यानयोगमें देख रहे थे, कि मानो वह मृगका बच्चा पुत्रकी नाईं बगलमें बैठकर शोक करता है, इस कारण मृगमें ही अनुरागपूर्वक आसक्त चित्त होनेसे उस मृगशावकको ही देखते हुए आत्मादेह परित्याग करके साधारण पुरुषोंके समान मृगशरीरको प्राप्त हुए, परंतु उनके पहले जन्मकी स्मृति देहके संग नाशको नहीं प्राप्त हुई, क्योंकि भगवान्‌की आराधना करनेके कारण पहले जन्मकी स्मृति उनको बनी थी, इससे अत्यन्त अछतापछताकर मृगरूप भरतजी आप ही आप कहने लगे ॥२७॥२८॥ कि बड़ा विघ्न हुआ, क्या कष्ट है ? मैं उन वीर ज्ञानी जनोंके मार्गसे भ्रष्ट हुआ, सब संगका परित्याग करके पुण्य वनमें रहता हुआ अतिधीर भावसे श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और भगवान्‌जीके स्मरण आदि कार्योंमें लगा रहता था और क्षणमात्र भी वृथा न खोकर बहुत समयमें सब भूतोंके आत्मा भगवान् वासुदेवमें जो मनको स्थापित और स्थिर किया था, सो अपने अज्ञानपनसे उस मृगशावकके संगमें एकवार ही उस विषयसे निकल गया, हा ! मैं कैसा मूर्ख हूं ॥२९॥ इस प्रकारसे उनके मनके बीच महा वेदना उपस्थित हुई, परंतु उन्होंने उसको प्रकाश नहीं किया और अपनी मृगी जननीका परित्याग करके जिस कालञ्जर पर्वतपर जन्मे थे, उस स्थानसे फिर हरिक्षेत्रमें पुलह ऋषिके आश्रमपर आये। हे राजन् ! यह आश्रम शांत स्वभाववाले मुनिजनोंका प्यारा है, उसके निकट ही जहां शालके पेड़ बहुत थे, वहां एक ग्राम था, उस ग्रामका नाम शालवृक्षसहित होनेसे शालग्राम था॥३०॥वहां जाकर संगके भयसे कि कहीं फिर किसीका संग न हो जाय, इस लिये भयभीत मनसे अकेला रहता और सूखी लता, पत्ते और तृणमात्र भोजन करके जीवन धारण करता था। जिस प्रारब्धसे मृगशरीर पाया है, वह निमित्त कब पूरा हो चुकेगा, केवल इतनी ही बाट देखता रहता था। कुछ समय व्यतीत होनेपर जब काल आया तो वहां गंडकी नदीके प्रवाहके मध्य खड़े होकर अपने मृग शरीरका त्याग कर दिया ॥ ३१ ॥

भजन

विनहि प्रयास भक्त तनु त्यागत।
देह गेह सों नेह न करहीं, तजत शरीर वार नहिं लागत ॥ १ ॥
जबहिं प्रसन्न होत हरि तिनपर, तब हरिसों या ही वर माँगत।
हमहिं न कछु इच्छा है स्वामी, राखहु सदा चरण शरणागत ॥ २ ॥
इसी हेत जप योग यज्ञ व्रत, तरत नियम नित निशिदिन जागत।
अन्त समय मुखसे हरि निकसत, शालिग्राम सकल भय भागत ॥३॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे भरतस्य मनुष्यदेहत्यागपूर्वक मृगशरीरप्राप्ति-वर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–नवाध्याय जडभरतके, नहीं गुण दोष विचार।
देवी ढिग मारन लगे, तबहुँ रहे अविकार ॥

श्रीशुकदेवजी मुनि राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि, हे राजन् ! एक ब्राह्मणके नव पुत्र

हुए। वह विप्र आंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुआ, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और शम, दम, तपस्या, वेद पढ़ना, दान, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, नम्रता, आत्मज्ञान और आनंदमें सदा अनुरागी था। उसके जो पुत्र उत्पन्न हुए वे भी सब अपने पिताके समान, विद्या, शीलता, आचार, उदारता, इत्यादिक गुणोंसे भूषित हुए। नव पुत्र तो एक स्त्रीसे प्रकट हुए थे और छोटी दूसरी स्त्रीसे पुत्र कन्याका एक जोड़ा उत्पन्न हुआ था ॥ १ ॥ हे राजन् उस जोड़ेमेंका पुत्र जो था, उसको सब ही कहते हैं कि यह पुत्र परम भागवत् है, वही राजर्षि भरतजी थे, उन्होंने अब मृग देहको त्यागकर उस देहमें फिर विप्रत्वको प्राप्त किया ॥ २ ॥ हे राजन् ! राजर्षिने विप्रकुलमें जन्म ग्रहण करके भी यह विचारा कि सङ्ग दोषसे फिर कहीं अपना पतन हो जाय, इसलिये भगवान्के युगल चरणारविंदका स्मरण और गुण वर्णन करनेमें कर्मके बंधनोंका नाश हो जाता है यह मनमें भली भांतिसे विचार करते हुए सब लोगोंके निकट अपनेको पागल व मूर्ख अथवा अन्धा, या बहरासा दिखाते थे। हे महाराज ! उनके मनमें आत्मभ्रंश–भयके उत्पन्न होनेका कारण यह था कि भगवान्के अनुग्रहसे और देह पाकर भी इनको अपने पूर्व जन्मकी याद आती थी ॥ ३ ॥ यद्यपि यह सन्तान जड़ हुआ तो भी उस ब्राह्मणका मन संतानके स्नेहमें बँध जानेके कारण उसने उनके समावर्तनान्त सब संस्कार यथाशास्त्र कही हुई विधिसे किये। और यज्ञोपवीत देकर उनके सब नियम शौच, आचमनादिक कर्मोंके नियम, यद्यपि इस पुत्रको अच्छे नहीं लगते थे, तो भी पिताका कार्य पुत्रको सिखानेका है, इस कारण उनको सब सिखाने लगा ॥ ४ ॥ परन्तु यह जड़ भरतजी पिताके शिक्षा देनेपर उनके समीप आचारादिमें गड़बड़ीका व्यवहार करने लगे इनके पिताने वेदव्रतादिके आदिमें श्रावणादि मासमें इसको प्रणवसहित त्रिपदगायत्री मन्त्र पढ़ायेंगे, ऐसा विचार किया अतएव वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें ही अर्थात् चैत्रादि चार मासमें (ओंकार) और शिर सहित गायत्री मंत्र सिखा देनेकी चेष्टा की परंतु तो भी उस ब्राह्मणका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ, अर्थात् जड़ भरत चार महीनेमें भी ओंकार और शिर सहित गायत्री मंत्र नहीं सीखे ॥ ५ ॥ वह ब्राह्मण उस जड़ पुत्रको अपने आत्माके तुल्य समझता था, इस कारण उसके चित्तका अनुराग जड़भरतमें बहुत था, "और संतानको पढ़ाना सिखाना आवश्यकीय कार्य है" इस असत् आग्रहमें व्यग्र होकर नियमित कालतक ब्रह्मचर्य धारण करनेवालोंके कर्तव्य कर्म शौच,, पढ़ना, व्रत, नियम, गुरुकी सेवा इत्यादि करना, यद्यपि उन सब कर्मोंके करनेमें पुत्रकी रुचि नहीं थी तो भी स्नेहके वश होकर सदा ही यह ब्राह्मण पुत्रको उपदेश करता था, कि पुत्र किसी प्रकारसे पंडित हो जाय, उसके मनमें यह जो वासना थी, वह किसी प्रकारसे पूरी न हुई, आशामात्र ही केवल काल व्यतीत करने लगी। यह विप्र इस प्रकारसे असावधान हो, जड़भरतके पंडित बनानेकी चिन्तामें था, इतनेमें सावधान कालने आकर उसका संहार कर डाला ॥ ६ ॥ जब उस ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी, तब उसकी छोटी स्त्री अपने उदरसे उत्पन्न हुए पुत्र कन्याको सवतके हाथमें सौंप आप पतिके साथ पतिलोकको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ पतिके मर जानेपर भरतके भाइयोंने उस भरतको जड़मति समझकर उपदेश देने व शिक्षा देनेका प्रबंध एक वारगी त्याग कर दिया। हे राजन् ! भरतके भाइयोंकी बुद्धि वेद विद्यामें नहीं थी, केवल कर्मविद्याको ही पुरुषार्थ समझते थे, परंतु ब्रह्मविद्यामें उन्होंने कुछ परिश्रम नहीं किया था, इस कारणसे भरतजीकी

महिमाके प्रभावको नहीं समझते थे ॥ ८ ॥ पशुओंके तुल्य पामर मनुष्य भरतको जड़ अथवा बहरा गूंगा समझकर उनके साथ जिस प्रकारसे वार्तालाप करते थे, भरतजी भी उनको वैसा ही उत्तर देते थे और जो कोई जो काम कराता था तो उसकी इच्छानुसार वही कार्य कर देते थे। मनुष्य विना वेतनके कार्य करानेके लिये इनको पकड़ लेजाने पर जो कुछ खानेकी सामग्री पाते अथवा वेतनसे वा प्रार्थना करनेसे अथवा आपसे ही जो कुछ अच्छा बुरा अन्न मिलता था उसको भोजन मात्र कर लेते, इससे इंद्रियोंकी प्रसन्नता होगी, ऐसा विचार नहीं करते थे क्योंकि उत्पादक शून्य, जिसका कोई बनानेवाला नहीं और कोई उसका प्रगट करनेवाला नहीं, ऐसा जो विशुद्ध अनुभव है और उसका स्वरूप जो आनंदमय आत्मा है, उसकी प्रीतिमें ही संतुष्ट रहते थे, अर्थात् आत्माका ऐसा रूप है, यह ज्ञान उनको प्राप्त हो गया था, दूसरे मान-अपमानादिका जो द्वन्द्व (झगड़ा) है और उससे होने वाले जो सुख-दुःख हैं, उनके विषयमें भी उनको देहाभिमान नहीं था ॥९॥ इस कारण शीत, गरमी, वात, वर्षादिमें वह नग्न शरीरसे अकेले बैलके समान घूमा करते थे। उनका शरीर बैलके समान हृष्ट-पुष्ट था, और अंग-प्रत्यंग सब कड़े थे, पृथ्वीमें शयन करनेसे तेलके न मलनेसे, स्नान न करनेसे, सदा उनके शरीर पर धूलि उड़ती रहती थी इस कारण ब्रह्मतेज महामणिके समान मलिन रहकर अप्रकाशित रहता था, दूसरे कमरमें मैले-कुचैले फटे-पुराने कपड़े और छातीमें मलिन यज्ञोपवीत पड़ा रहनेसे कोई उनकी महिमा नहीं जानता था। कोई उनको "यह पुरुष नीच ब्राह्मण जातिका है" कोई "ब्रह्मबन्धु" अर्थात् ब्राह्मणोंमें अधम कहकर उनका अपमान करते थे ॥ १० ॥ जब कि वे किसीसे उसका कार्य करके वेतन स्वरूप आहारकी प्रार्थना करते हुए फिरने लगे तब उनके भाइयोंने उन्हें आहारका लोभ दिखाकर चावलोंके खेतमें क्यारियोंके बनानेमें नियुक्त किया, तब जड़ भरतजी इस कार्यको ही करने लगे। परंतु यह, मिट्टी डालनेसे क्यारी बराबर होगी, या अधिक वा छोटी हो जायेगी, इस बातको जड़भरतजी नहीं जानते थे–

दोहा–खनन लगे तो खनत ही, देते कूप बनाय।
कहूँ ऊंच कर देत अति, जाते खेत नशाय ॥

कभी घासके संगमें अन्नको ही काटते थे और जो कोई पशु खेतमें आता था तो उसको अत्यन्त प्रेमसे चराते थे। कभी पक्षियोंको देखकर कहते कि–"आवो रे भाई ! चुग लो खेत, यहां छोड़ दो खाली रेत" उनके भ्राता चावलोंकी किनकी, खल तूष, भुने हुए उरद और बटलोईके नीचेका लगा हुआ अन्नादि जो कुछ भी देते थे उसको ही जड़भरतजी अमृतके समान जानकर भोजन कर लेते थे ॥११॥ हे राजन् । जड़भरतजीके यह जो चरित्र वर्णन किये इनसे स्पष्ट ही जान पड़ता है, कि उनमें राग, द्वेष व मनकी चंचलता कुछ भी नहीं थी। उनके विषयमें एक और कथा वर्णन करता हूं आप चित्त लगाकर श्रवण कीजिये–'एक समय किसी नगरमें एक सामंतक नाम शूद्रोंका राजा चोराधिपति भद्रकालीका परमभक्त था, उसके कोई पुत्र नहीं था, उसने देवीसे प्रार्थना की कि हे जगज्जननी ! हे आनंदवर्द्धिनी ! जो मेरे पुत्र होगा तो मैं तुझको नरबलि दूंगा, यह कह उसने अपनी कोठरीमें एक मनुष्यको बंद कर रक्खा था, कुछ कालोपरान्त उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पुत्रकी कामना पूरी होनेसे भद्र, कालीजीकी प्रीतिके लिये मनुष्यका बलिदान देनेकी तय्यारी की ॥ १२ ॥ उसका वह मनुष्य

पशु जो कि यज्ञमें बलिदान देनेके लिये रख छोड़ा था, दैवात् बंधनसे छूटकर भाग गया; तब उस राजाके अनेक अनुचर उस मनुष्य पशुको ढूंढनेके लिये इधर-उधर दौड़े, परंतु उसका कहीं पता नहीं लगा, तब वह अनुचर घूमते-घूमते अँधियारी निशामें दो पहर रात्रीके समय खेतकि ओर गये, तो वहां वह ब्राह्मणपुत्र जड़भरत एक निराली भांतिसे खड़े होकर अर्थात् वीरासनसे मृग शूकरादिकोंसे खेत रखाते थे, ऐसा उन अनुचरोंने देखा ॥ १३ ॥ और उसको देख सुलक्षण समझ यज्ञमें बलिदान बनानेके योग्य जान, परस्पर कहने लगे कि इससे ही हमारे स्वामीका कार्य पूरा हो जायगा ॥

दोहा--अहैं अंग मोटे सकल, बलिलायक यह नीक ।
तातै धरि ले चलहुँ अब, यह विचार है ठीक ॥

इस कारण हर्षसे प्रफुल्लित वदन होकर उन जड़भरतजीको पकड़कर देवीके मंडपमें ले गये ॥ १४ ॥ उसके पीछे चोरोंने अपने विधानके अनुसार जड़भरतजीको स्नान कराकर नये कपड़े पहनाये और गहने व सुगंधित मालायें पहना, तिलक आदि लगा अच्छा सजाया, फिर भोजन कराके, धूप, दीप, फूल, हार, चावल; नवीन पत्तोंकी कोंपलें और फलादि उपहार दे, पूजा करके संगीत, स्तोत्र और मृदंग व ढोलोंके बड़े-बड़े बाजोंके साथ उनको भद्रकालीके समीप ला, शिर झुकाकर बिठलाया ॥ १५ ॥ उसके पीछे तस्करराजको पुरोहित कर्मके करानेमें जो पुरुप नियुक्त था, उसने इस पुरुपरूप पशुके आसनसे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिये देवीके मन्त्रसे अभिमंत्रित की हुई तीक्ष्ण कराल करवाल ग्रहण की ॥१६॥ इन सब तस्करोंका स्वभाव रजोगुण और तमोगुण पूर्ण था और उन लोगोंका धन मदके कारण मर्य्यादारहित हो गया था इसलिये वे लोग भगवान्की कलायुक्त ब्रह्मकुलका अपमान कर अपनी इच्छानुसार उलटे मार्गपर चले । इस कारण ये लोग भयंकर कार्य करनेमें लगे, परन्तु भद्रकाली देवी क्या उनकी पूजा ग्रहण कर सकती हैं? वे पहले ही मूर्तिको परित्याग करके बाहर निकल आयीं ! क्योंकि जो ब्रह्मर्षिकी संतान, किसीसे वैरभाव न रखनेवाले, सब प्राणियोंके मित्र आपत्कालके समय लाकिकी हिंसामें भी जिनके मारडालनेकी आज्ञा नहीं हो सकनी, उनका शिर काटकर बलिदान होना, देवीजी सामने रहकर नहीं देख सकतीं अतःइस बातकी तय्यारी होते देखकर ही देवीजीका शरीर असह्य ब्रह्मतेजसे बहुत ही जलने लगा । इस कारण उन्होंने प्रतिमाका त्याग किया ॥ १७ ॥ अधिक करके देवीजीके शरीरमें दाह होनेके कारण उनमें अतिशय क्रोध और वेग आ गया उस वेगके कारण उनकी भ्रुकुटी और कराल डाढें अरुण वर्ण नयन भयंकर हो गये । वह मानों जगत्का नाश कर डालेंगी, इस प्रकारके भावसे क्रोधमें भरकर घोरतर शब्द सहित ठठाय-ठठाय हँसने लगीं । और उन पापात्मा दुष्ट तस्करादिकोंके ऊपर झपटकर उनके ही खड्गसे उन लोगोंका शिर काट लिया, शिर कट जानेसे उन सब तस्करोंके गलेसे जो अति गरम आसव तुल्य रुधिर निकलने लगा, उसको अपनी योगिनी पिशाचिनियों सहित जगदम्बाजीने पान किया । इतना पिया कि विह्वल होकर अपने पार्षदों सहित ऊँचे स्वरसे गाकर नृत्य करने लगीं । और उन मृतक तस्करोंके मस्तकोंको गेंदके समान उछाल-उछाल कर उनसे खेलने लगीं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा परीक्षित् । इन सब तस्करोंकी ऐसी दुर्गतिका होना कुछ विचित्र नहीं है, क्योंकि बड़े पुरुषोंके साथ अत्याचार करनेसे इसी प्रकारसे बहुधा अपने आप ही बुरे पुरुषोंका बुरा

हो जाया करता है, यह निश्चय जानो ॥१९॥ हे विष्णुदत्त परीक्षित्! जो सब पुरुष भगवत्की उपासना करनेवाले परमहंस हैं, उनकी देह आदिमें आत्मभावरूप हृदयग्रंथि छूट जाती हैं और वे सब प्राणियोंके मित्र आत्मा स्वरूप हो जाते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं रहता, स्वयं भगवान् सावधान होकर कालचक्ररूप प्रधान आयुसे, उन्हीं भद्रकाली इत्यादि रूपों द्वारा सदा ही अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। इससे जहांपर किसी प्रकारके भयकी संभावना नहीं है, उन भगवान्के चरणारविन्दोंकी जो कोई-शरण आते हैं, उनका यदि शिर भी कट जाय तो भी वे विना संभ्रमके रहते हैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। और उनसे परमेश्वर भी प्रसन्न रहते हैं और यह कहते हैं ॥ २० ॥

भजन

जो कोइ चितसे मोहिं न बिसारे मैं न बिसारूं प्रण है यही मेरा ॥ धर्मप्रिय हो धर्म बढ़ाऊं सफल कार्य कर अर्थ जताऊं। मुक्ति चहे तो पार लगाऊं छिन पल नाहिं न लागत बेरा ॥ १ ॥ रोग हरूं चिन्ताको टारूं अभय करूं शत्रुनको मारूं, निर्भयकर जग वेग उबारूं सेवा करूं आप बन चेरा ॥ २ ॥ भक्तहेत नरदेह धरत हूँ संकटमाहिं सहाय करत हूँ, असुर मार भूभार हरत हूँ भक्तन हृदय करत नित डेरा ॥ ३ ॥ बलिके द्वार रहो नित ठाढ़ो, द्रुपदसुताके अंबर बाढ़ो, बूड़त गजको जलते काढ़ो, भक्तनको नित करत निबेरा ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे जडभरतस्य बलिप्रदानान्मुक्तत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-भरत पालकी तर दिये, रहुगण दश अध्याय।
सुन उत्तर निज वचन रहु, उतर गहे निज पाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! किसी समय एक दिन सिन्धु और सौवीर देशका राजा रहूगण पालकीपर चढ़ा हुआ कहींको जा रहा था। उनका बड़ा प्रधानवाहक इक्षुमती नदीके तीर उपस्थित होकर जब कि और कहारोंको ढूंढ़ता था, तब भाग्यने लाकर इन्हें आगे कर दिया, इस प्रकारसे उस राजाके प्रधान कर्मचारी कहारोंके जमादारने द्विजवर जड़भरतजीको वहां देखा। वह इनको देखकर मनही मन कहने लगा कि यह मनुष्य, बड़ा लम्बा चौड़ा और हृष्ट-पुष्ट दृष्टि आता है, वह ऐसा जान पड़ता है कि यह मनुष्य, बैल अथवा गधेके समान बोझ ले चलनेमें समर्थ होगा। इस प्रकारसे विचार करके वह जिन सब कहारोंको बलात्कार पकड़कर पालकी लिवाये जाता था, उनके ही साथ जड़भरतको पकड़कर पालकीमें लगा दिया, महात्मा भरतजी यद्यपि पालकी उठानेके अयोग्य थे, तथापि और दूसरे कहारोंके संग पालकीको उठाकर ले चले ॥ १ ॥ किसी जीवकी हिंसा न हो, इस निमित्त भरतजी

१. शंका-राजा रहूगणने पालकीके ले चलनेवाले आठ ही कहार क्यों लिये क्या और पालकी ले चलनेवाले नहीं थे और राजा होकर एक आदमी अधिक नहीं रक्खा। जो गूंगा कुछ बात कहे तो लोगोंको आश्चर्य ज्ञान होता है। ऐसे यह भी आश्चर्य है क्योंकि बड़ा ही दरिद्री और जो लोभी भी राजा होगा उसके यहाँ भी पालकी ले चलनेवाले कहार बहुत होंगे, फिर क्या कारण जो रहूगणके यहाँ कहार एक भी-

आगेको बाण छोड़नेसे वह जितनी दूर जाकर गिरता है उतना स्थान देखकर तब आगेको चरण धरते थे उनके इस प्रकार चलनेसे सब कहारोंकी एक प्रकारकी चाल न हो सकी और पालकी टेढ़ी होकर गिरनेको हुई तो रहूगण राजाने इसको देखकर बेगारी कहारोंसे तर्जंगर्ज-कर कहा कि अरे ! तुम पालकी बराबर क्यों नहीं चलाते हो टेढ़ी क्यों हुई जाती है ? ॥२॥ कहार लोग राजाके तर्जन सहित वचन सुनकर दंडके भयसे शंकित हुए और विनय करके सब वृत्तांत कहने लगे ॥ ३ ॥ कि हे नरदेव ! हमारी असावधानता नहीं है। हम सब तो आपकी आज्ञानु-कारी होकर भली प्रकार पालकीको ले चलते हैं। यह मनुष्य जो इस मुहूर्तमें पकड़कर लाया गया है यह शीघ्रतासे नहीं चलता और इसके साथमें हम भी शीघ्र नहीं चल सकते। राजा रहूगणको कहारोंके यह वचन सुनकर निश्चय हुआ कि सत्य ही एक मनुष्यके संगसे सब संगीलोग दोषी हो सकते हैं, यद्यपि यह राजा वृद्धोंकी सेवा करनेवाला था, तो भी स्वभावके वश होनेसे उसको कुछ एक क्रोध आ गया। रजोगुणसे आच्छन्नबुद्धि होकर राखसे ढकी हुई अग्निके समान जिसका ब्रह्मतेज ढका हुआ था उन जड़भरतजीको धिक्कार देकर उप-हासके वचन बोला ॥ ४ ॥ ५ ॥ अहो ! भाई भरत ! हमको निश्चय बोध होता है कि तुम बहुत थक गये हो, अकेले बहुत दूरसे पालकी उठाकर लाये हो, तुम्हारा शरीर बड़ा दृढ़ नहीं है और तुम्हारे अङ्ग भी पुष्ट नहीं हैं। तुमको बुढ़ापा तो नहीं आ गया है ? क्यों, क्या यह सब मनुष्य तेरे साथी नहीं हैं ? रहूगण गर्वित होकर इस प्रकारसे तर्जन-गर्जन करता हुआ हँसीके वचन कहने लगा। भरतजीने उनको कुछ उत्तर न दिया किन्तु मौनी होकर पहलेके समान पालकीको ले जाने लगे। हे राजन् ! भरतजीके मौनी होनेका कारण यह है कि वह ब्रह्मस्वरूप होनेसे अपने चरम कलेवर जो इंद्रिय कर्म (पाप-पुण्य) अन्तःकरण अविद्या द्वारा रचित हुआ था, उसमें "मैं और मेरा" इस प्रकारके मिथ्या ज्ञानको भरतजीने त्याग कर दिया था ॥ ६ ॥ इस प्रकार जब जड़भरतजी पालकीमें जुड़े जाते थे, तब इतनेमें ही वह पालकी फिर टेढ़ी हुई। तब रहूगण अत्यन्त क्रोध करके बोला—अरे ! यह क्या तू जीता हुआ ही मृतक तुल्य है, तू मेरी आज्ञाका अपमान करता है ? अरे ! हमको तू अपना स्वामी नहीं समझता, तू बड़ा मतवाला है रह तो सही, यम जिस प्रकार प्राणि—समूहको शिक्षा देते हैं वैसे ही हम तुझको इस मतवाले-पनकी शिक्षा करेंगे। जिससे तू अपने आप अपने स्वभावको प्राप्त हो जायगा ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार रहूगण राजा अपनेको नरदेव और पंडित समझता था और इस बातका उसको अभिमान भी था, इस कारण रजो गुण और तमोगुणके बढ़े हुए मदमें मत्त होकर इस प्रकार अनेक असंगत वचनोंसे भगवान् वासुदेवके प्रिय भक्त भरतजीका तिरस्कार किया। वे भरतजी, जो सब प्राणियोंके मित्र

—अधिक न था कि, जो एक कहारके हारजानेसे पालकी जंगलमें पड़ी रही। अब दूसरे मनुष्यको पकड़कर मंगाया तो पालकी चली यह बड़ी आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर—राजा रहूगणके यहाँ सहस्रों कहार पालकी ले चलनेवाले थे, एक हार गया तो दूसरा उपस्थित था और वह भी हारा तो तीसरा उपस्थित था। इस प्रकार अनेक कहार पालकीमें लगाये, परंतु भरतके मुखारबिन्दसे राजाको ज्ञान प्राप्त लिखा था इसलिये जिसको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दी जाय वही दुःखी हो जाय। सात आदमी तो अच्छे रहें उनमेंसे एक मनुष्य दुःखी हो जाय। राजाने अनेक उपाय किये, परंतु सात कहार तो सुखी रहें आठवाँ दुःखी हो जाय, पालकीमें कन्धा दिया और कहारको रोगने ग्रसित किया और राजाको तीर्थके जानेकी अत्यन्त शीघ्रता थी, इसलिये जब पालकी चलानेके लिये कोई कहार शेष नहीं रहा, तब और मनुष्यका अनुसरण किया। राजा कुछ दरिद्री और कंगाल नहीं था।

सुहृद आत्मा और परब्रण-स्वरूप ब्राह्मण हुए थे, वे गर्वको त्यागे हुए कुछेक हँसे। हे परीक्षित! योगेश्वर लोगोंका आचार किस प्रकारका होता है? इस बात को रहूगणकी बुद्धि नहीं जानती थी, इसी कारणसे भरतजीका उन्होंने ऐसा तिरस्कार किया, कुछेक हँसकर भरतजी रहूगण राजासे बोले कि ॥ ॥ ८ ॥ हे वीर! तुमने उपहास करके जो कुछ कहा वह सब कुछ मिथ्या नहीं है। यदि जो वहनकर्ताका कोई भार हो और वह भार यदि उठानेवाली देहको लगता हो और उसके साथ मेरा भी कोई संबन्ध हो तो ऐसा होनेसे भी इस समय भार न रहनेके कारण तुम्हारे यह वचन विरुद्ध हो सकते हैं, परंतु हमसे इस विषयका कुछ संबंध नहीं है, इस कारण जो जो कहा, वह मिथ्या व असंगत नहीं है। परंतु तुमने हमको 'स्थूल नहीं' यह जो वचन कहा, ऐसा वचन पंडित जन चेतनके लिये कभी नहीं कहते; मूर्ख लोग ही कहा करते हैं क्योंकि इस प्रकारका वचन शरीरके ही ऊपर लग सकता है, आत्माके ऊपर कभी नहीं लग सकता, इस कारण यह शरीर पुष्ट है, कुछ मैं पुष्ट नहीं हूं ॥ ९ ॥ और दूसरे जो पुरुष देहके सहित उसके अभिमान द्वारा जन्मा हो, उसको ही मोटापन, दुबलापन, आधि, व्याधि, क्षुधा, तृषा, भय, क्लेश, इच्छा, जरा, निद्रा, रति, क्रोध, शोक, भय और अहंकार जनक मद उत्पन्न होता है। हमको देहाभिमान नहीं है, इस लिये इसमेंसे हममें कुछ भी नहीं है ॥ १० ॥ हे राजन्! और तुमने जो हमको "जीवित-मृतक" कहा इसमें यह कहना है कि कुछ हम ही जीवन्मृत नहीं हैं, सब संसार ही जीवन्मृतक है विकारी अर्थात् परिणामशील पदार्थमात्र ही जीवन्मृत दृष्टि आते हैं और विकृत सब ही पदार्थोंका आदि और अंत है और तुमने जो हमसे कहा कि "स्वामी की आज्ञाका निरादर करता है" इसके विषयमें यह कहना है कि जिस स्थलमें आपका वह स्वामि–भाव अविचल हो उस स्थानमें ही आदेश करना और मेरा कर्म करना युक्त हो सकता है, नहीं तो तुम्हारा राज्य ध्वंस हो गया और हमारा राज्य हुआ, तो इसके विपरीत होनेका संभव है अर्थात् हम आज्ञा करें और आपको कार्य करना पड़े ॥ ११ ॥ यद्यपि जबतक तुम राजा हो तबतक अपने आपको स्वामी कह सकते हो, तो भी एकमात्र व्यवहारके अतिरिक्त उसमें विशेष बुद्धिका थोड़ा भी अवकाश दृष्टि नहीं आता, क्योंकि प्रभु कौन है? प्रभुता क्या है? सो जो कुछ हो, यदि तुम अपने आपको प्रभु होनेका अभिमान रखते हो तो, हे राजन्! आज्ञा दो कि तुम्हारा क्या कार्य करें, हे राजन् तुमने जो हमको कहा कि "तू उन्मत्त है" और "तू अपने स्वभावको प्राप्त हो जायगा" इस बातमें हमको इतना ही कहना है कि हम उन्मत्त वा मत्त, अथवा जड़तुल्य हो रहे हैं, वह सत्य है, परन्तु वास्तवमें हम ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये हैं तुम उपाय करके दंड ही दो, अथवा शिक्षा ही दो, उससे हमारा कुछ नहीं बनता बिगड़ता, क्योंकि हम जीवन्मुक्त हैं, जीवन-युक्त हैं, हमारा अर्थ वा अनर्थ कुछ भी नहीं हो सकता और यदि हमको तुम जीवनयुक्त नहीं जानते और बावला समझते हो, यदि तुम्हारे मतके अनुसार हम वैसे ही हों तो भी हमको दंड देना; शिक्षा करना पिसे हुएको दुबारा पीसना है, क्योंकि वास्तव में जड़-स्वभाववाले मनुष्य शिक्षा पाकर भी चतुर नहीं हो सकते ॥ १२ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! शांत शीलवान् मुनिवर जड़भरतजी इस प्रकारसे रहूगण राजाके वचनोंका उत्तर दे, पूर्व जन्मके कर्म जो प्राप्त हुए थे, उनको भोगकर, प्रारब्ध कर्मोंका क्षय कर चुके थे, पूर्ववत इस राजाकी पालकीको लेकर चलने लगे। देहमें आत्मबुद्धिके

कारण जो अविद्या है, उससे वह छूट गये थे, इस लिये पालकी उठानेमें उन्होंने कुछ क्लेश वा अपमान नहीं समझा ॥ १४ ॥ हे पाण्डवेय परीक्षित्! सिंधु और सौवीर देशका अधिपति यह रहूगण राजा हृदयकी गांठको तुड़ानेवाले और अनेक-अनेक योगके ग्रन्थोंके अनुसरण करनेवाले भरतजीके यह वचन सुनकर पालकीसे उतर पड़ा। उत्तम श्रद्धा उत्पन्न होनेसे तत्त्वजिज्ञासामें उसको अधिकार प्राप्त हुआ, इस कारण "मैं राजा हूँ" इस गर्वको त्यागकर मुनिवर भरतजीके चरणकमलोंमें गिरकर अपना अपराध क्षमा कराकर कहने लगा ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन्! आपके कन्धेमें यज्ञोपवीत देखता हूँ, क्या आप ब्राह्मणोंमेंसे कोई हैं? वा आप दत्तात्रेयादिकोंमेंसे कोई अवधूत हैं? आप क्यों गुप्त भावसे फिरते हैं? आप किसके पुत्र हैं? कहां आपका निवासस्थान है? आप यहांपर किस कारणसे आये थे? यदि हमारे मंगल करनेके लिये आना हुआ हो तो क्या आप शुक्लमुनि अर्थात् कपिलदेवजी तो नहीं हो? ॥ १६ ॥ हे योगिन्! मैं देवराज इंद्रके वज्रका भय नहीं करता, महादेवजी के शूलसे भी शंका नहीं करता और यमदण्ड देखकर भी मैं नहीं डरता, अग्निके कोपसे, सूर्यके तापसे, पवनके वेगसे, कुबेरके पाशसे और सोमके अस्त्रसे मैं इतना भय नहीं मानता जितना ब्राह्मण जातिका अपमान होनेसे, मैं बहुत ही डरता हूँ ॥ १७ ॥ इस कारण आपसे जो प्रश्न किया, उसका उत्तर दीजिये।

दोहा—अब न छिपावहु कृपाकर, दीजै मोहिं बताय।
बिचरहु जड़मय जगतमें, ज्ञान प्रभाव छिपाय॥

यद्यपि आप अपने विज्ञानरूपका प्रभाव छिपाकर सङ्गको छोड़ जड़के समान फिरते हैं तथापि मेरे निकट आपकी अनन्त-महिमाका प्रकाश होता है। क्योंकि आपने योगसे गूँथे हुए जो समस्त वचन कहे, मैं मनमें भी उन वाक्यों का अर्थ प्रकाश करनेको समर्थ नहीं हूं॥ ८॥ हे ब्रह्मन्! आपके मुखसे यह वचन सुनकर ज्ञानके विषयमें कुछ प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा होती है इस लिये महायोगेश्वर और आत्मतत्वके जाननेवाले मुनियोंमें प्रधान और ज्ञानशक्तिसे अवतीर्ण, साक्षात् हरि कपिल मुनि जो आप हैं, आपको गुरु करके "इस संसारका निस्तार क्या है?" यह पूछनेको प्रवृत्त होता हूँ और हे नाथ! इसी कारण मैं आपके पास जाता था ॥ १९ ॥ हे प्रभो! मैंने जिस प्रकारसे वर्णन किया, आप वैसे ही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं और कदाचित् लोगोंके देखनेके वास्ते अपने चिह्न गुप्त करके आप घूमते हैं? हाय! घरमें फँसे मंदबुद्धि लोग किस प्रकार आपमें योगेश्वरोंकी गति देख सकते हैं॥ २० ॥ हे प्रभो! आपने पहले जो मेरे वचनोंके उत्तर दिये वे मुझको ठीक-ठीक नहीं जान पड़ते, आपने कहा कि-"हमको श्रम नहीं होता" यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती, भला यह किस प्रकारसे हो सकता है? क्योंकि जो पुरुष किसी कार्यको करता है तो उसके करनेसे उसको अवश्य ही श्रम होता है जब कि मैं अपने राज्यकी और युद्धादिककी क्रिया करता हूं, तो उसका श्रम अवश्य ही मुझको होता है। जब कि मैं अपने प्रभुत्व और युद्धादि क्रिया करनेके समय श्रम देखता हूं, तब सहजसे ही अनुमान होता है कि आपको भी भार ले चलनेसे श्रम हुआ है। दूसरे आपने कहा कि—"एकमात्र व्यवहारके सिवाय और कुछ दृष्टि नहीं आता" हे ब्रह्मन्! यह वार्ता भी संगत नहीं हो सकती। इस कारण व्यवहार विषय (संसार) झूंठा है, ऐसा समझ नहीं पड़ता, वरन् सत्य-सा समझ पड़ता है, क्योंकि जो घटादि पदार्थ मिथ्या हों तो उनसे किस प्रकार जलादि लानेके कार्य हो सकें? ॥ २१ ॥

और आपने जो कहा कि–"सुख दुःखादि केवल देहके धर्म हैं" वे वास्तवमें हमारे नहीं हैं इस बातसे भी मेरे मनमें यह संशय होता है कि यह सब शरीरका धर्म होनेपर भी सत्य क्यों न होगा ? क्योंकि देखता हूँ कि तौलीको आगके ऊपर चढ़ा देनेसे उस तौलीके तापसे उसके बीचमेंका दूध तत्ता अर्थात् गरम हो जाता है। उस दुग्धादिके उत्तापसे उसमेंके पड़े हुए चावलोंका बाहिरी भाग तप्त होता है। फिर बाहिरी भागके उत्तापसे चावलका मध्यभाग पक जाता है। यह बात सब प्रकारसे यथार्थ है किसी भांति मिथ्या नहीं, इस कारण परस्परके अग्निसम्बन्धसे जिस प्रकार चावल पक जाते हैं, वैसे ही देह, इंद्रिय, प्राण और मन यह सब शरीर धर्मकी अनुवृत्तिके द्वारा पुरुष संसारमें लग जायगा इसमें क्या असंभव है ? बस गरमी आदि पड़नेके हेतु शरीरको सन्ताप हुआ, उससे सब इंद्रियोंको, उससे प्राणोंको, फिर उससे जब मनका सन्ताप होना दृष्टि आता है, तब देह स्थूल होनेपर भी परस्परताके कारण आत्मा क्यों नहीं स्थूल होगी ? ॥ २२ ॥ और आपने जो कहा कि–"स्वामिभाव नित्य नहीं है" यह सत्य है, परंतु नित्य होनेपर भी जब जो पुरुष राजा होता है, तब उस समय तो वह प्रजाका शासन पालन करता ही है। दूसरे आपने कहा कि–"असावधान लोगोंको शिक्षा देना, पिसेको पीसना, अर्थात् निष्फल श्रम करना है," यह भी मुझको ठीक नहीं जँचता, क्योंकि जो पुरुष भगवान्‌के दास होते हैं वे कभी निष्फल कर्म नहीं करते। अर्थात् जड़ पुरुषको शिक्षा देनेसे यद्यपि उसकी जड़ताको दूर नहीं किया जा सकता, तथापि सबोंके शासन करनेवाले परमेश्वरकी आज्ञा पालन करनेसे उस जड़के लिये यत्न करना विफल नहीं होता परमेश्वरकी आराधना करना ही राजाका धर्म है। आज्ञा पालन करनेके द्वारा उसके लिये चेष्टा करनेसे पापोंके समूहसे छुटकारा हो जाता है ॥२३॥ हे प्रभो ! इस प्रकारसे आपकी कही हुई सभी बातें मुझको अनुचित जान पड़ती हैं। इससे आप अनुग्रह करके मुझपर स्नेहदृष्टि कीजिये। मैंने राजापनके अभिमानसे आप सरीखे साधु पुरुषोंका जो अपमान किया है, ऐसा अनुग्रह मेरे ऊपर कीजिये कि जिससे साधुओंके अपमान करनेसे जो पातक लगता है, उससे मेरा निस्तार हो जाय ॥२४॥ हे प्रभो ! आप विश्व (संसार) के सगे और सखा हो, इस लिये सबमें ही समदृष्टिके हेतु अपनी देहमें भी आपको देहाभिमान नहीं है, इससे मैंने जो अपका अपमान किया है उससे यद्यपि आपको कोई विकार नहीं हुआ है तथापि मेरे समान पुरुष क्या ? जो महादेवजीके समान सामर्थ्य रखते हों वे भी महात्मा पुरुषोंके अपमानसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ "क्योंकि जिसने परमेश्वरके भक्तोंको सताया है, उसने उसका फल तत्काल ही पाया है, देखो ! हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संग अत्याचार किया। भगवान्‌ने उसके बदलेमें उसका प्राण लिया, दुःशासनने द्रौपदीके साथ अधर्म किया भीमसेनने उसके बदले उसका रुधिर पान कर लिया, अतःसब महात्मा पुरुषोंका यही वचन है कि भक्तोंको सताना किसी प्रकार अच्छा नहीं है" ॥ २५ ॥

इति श्री भाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
पञ्चमस्कन्धे रहूगणजड़भरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–बूझो जब जड़भरतसे, निपुण रहूगण राय ।
परमज्ञान सो सब कह्यो, एकादश अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार रहूगण राजाके वचन सुनकर जड़भरतजी कहने लगे कि हे वीर ! तुम अविद्वान् होकर भी विद्वान् लोगोंके समान बातें करते हो, परंतु हमको जान पड़ता है कि तुम श्रेष्ठ विद्वान् नहीं हो, क्योंकि तुम स्वामी भृत्यादि लौकिक व्यवहार को अम्लान मुखसे सत्य कहते हो, पंडित लोग तत्त्वविचार करके कभी इस प्रकारसे नहीं कहते, बस, तत्त्वका विचार न करनेसे ही स्वामी भृत्यादिका व्यवहार प्रगट होता है, इससे वह सत्य नहीं है ॥१॥ हे राजन् ! दूसरे संसारी स्वामी भृत्यादिके व्यवहारके समान वैदिक कर्मकाण्डका व्यवहार भी सत्य नहीं है, कि जिन सब वेद वचनोंमें अनेक गृहसम्बन्धी यज्ञोंके विस्तारविषयक विद्याओंका प्रतिपादन है परन्तु उनमें शुद्ध अर्थात् हिंसादिरहित और रागादिरहित तत्त्ववाद प्रायः निश्चय रूपसे नहीं प्रकाशता, परन्तु जो कर्म करे वह नारायणार्पण कर दे तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेसे परमार्थ फलरूप तत्त्वज्ञानका हेतु हो जाता है ॥२॥ तथापि वेदान्त सुने हुए किसी-किसी पुरुषकी कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है, वह कुछ वैदिक धर्मकी सत्यता प्रमाण नहीं हो सकती, क्योंकि जिस प्रकार स्वप्नका सुख दिखाया वह जैसे अनित्य होनेसे त्याग करनेके योग्य है, ऐसे ही गृहस्थीका सुख भी दृश्य और अनित्य होनेसे अग्रहणीय है। ऐसा जिसने मनमें निश्चय नहीं किया, उस पुरुषको वेदान्तके वाक्य, यद्यपि वह तत्त्वज्ञानके अर्थ बहुत श्रेष्ठ हैं तो भी उसको तत्त्वज्ञान नहीं दे सकते ॥३॥ हे राजा परीक्षित् ! रहूगण राजाने प्रपञ्चरूप जगत्को जो सत्य कहा था, विप्ररूप योगीवर जड़भरतजीने इस प्रकार उसके वाक्योंका खण्डन किया और फिर उसकी कही हुई संसारकी नित्यता खण्डन करनेके लिये बोले-हे वीर ! जबतक पुरुषका मन रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके वश रहता है, तबतक ही वह निरंकुश रहकर ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंसे धर्म अधर्मका विस्तार किया करता है ॥ ४ ॥ और यह केवल मन पाप पुण्यकी वासनासे युक्त है, और वही आत्माके शरीर धारण करनेका हेतु आत्मस्वरूप है, इससे यह सब विषयोंमें रंग जाता है, उससे विषयोंके द्वारा चलायमान और विवृत अर्थात् कामादि परिणामयुक्त हो जाता है, परन्तु यह मन पंचमहाभूत और इंन्द्रियोंकी सोलह कलाओंके बीचमें मुख्य है। वही अलग-अलग नाम सहित पशु-पक्षी आदि विशेष-विशेष देह धारण करता है और उन देहोंके कारणोंसे ही आत्माकी श्रेष्ठता व नीचता प्रकट हो जाती है ॥ ५ ॥ दूसरे यह मन संसारचक्रके छलसे माया द्वारा शरीरोंकी रचना करके अपनी आत्माको आलिंगन करता हुआ, सुख-दुःख अथवा मोह जो अपने कर्मकी काल-प्राप्तिका अनिवार्य समय है, उसको भी सर्व प्रकार उत्पन्न करता है, यह मन ही जीवको अनेकप्रकारकी उपाधि करता है, इससे यही जीवको अपने भीतर मिथ्या अध्यात्म कराकर "मैं ही मन हूँ" इस प्रकार दरशाकर भवसागरकी लहरोंमें ग्रामकंटककी नाईं छलकर इधर-उधर घूमा करता है ॥६॥ इस लिये जबतक मन रहता है, तबतक जाग्रत्-स्वप्नरूप व्यवहार प्रकाशमान होकर सदा क्षेत्रज्ञ जीवका दृश्य होता है, इस कारण पंडित लोग इस मनको ही गुणोंके अभिमान करनेका रूप अधमता देनेवाला कहते हैं ! और यह भी विद्वान् लोग कहते हैं कि ॥७॥ प्राणियोंका मन गुणमें अनुरागी रहनेसे वह व्यसनका निमित्त होता है। अर्थात् जीवको जन्ममरणादिका कष्ट देता है।और जब वही गुणहीन हो जाता है तब वह कल्याणको देता है,जैसे जबतक दीप, घृत और बत्तीको जलाता रहता है तबतक उसमेंसे

धूमयुक्त शिखा निकलती रहती है, किन्तु दूसरे समय जब कि घृत नहीं रहता तब वह दीपक बुझकर तेजरूप धारण करता है। इसी प्रकार मन भी जब गुणकर्म्मोंमें लगा रहता है, तब ही अनेक प्रकारकी वृत्तियोंका आश्रय करता है और वही मन जो गुण कर्मोंसे अलग हो जाता है तो तत्त्वरूप हो जाता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सब वृत्तियाँ एकादश प्रकारकी होती हैं, उनमें पांच क्रियाकार और पांच ज्ञानाकार और एक अभिमान। पंडित लोग शब्दादि विषय ग्रहणादि कर्म तथा शरीर इन ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंको विषय कहते हैं ॥ ९ ॥ वह सब विषय यह हैं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह पांच ज्ञानेंद्रिय द्वारा ज्ञानाकार सबकी वृत्तियोंके विषय होते हैं, और जैसे ग्रहण, गमन, मलत्याग करना और रमण करना आदि पांच विषय पांच कर्मेंद्रिय द्वारा कर्माकार सब वृत्तियोंके विषय होते हैं। और शरीर ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि है, वह 'मेरा' इस प्रकार भोगायनत्व रूपमें अभिमानका विषय हो जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि इसके सिवाय मूढजनोंकी बारह वृत्तियाँ हैं, उनमें भी यह शरीर है, शय्या नाम ग्रहण करके विषय हो जाता है, शरीरका नाम पुर है, उसमें जीव अहंकार द्वारा शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है ॥ १० ॥ पांच ज्ञानेंद्रियोंके विषय रूप शब्द विसर्गादिक पञ्च कर्मेंद्रियोंके द्वारा कर्माकार वृत्तियोंके विषयमें भोग गति करना, शिल्प ग्यारहवां स्वीकार करना कि,यह ममकार है और शय्या अहंकारको बारहवां आचार्योंने कहा है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! पहले कही हुई ग्यारह प्रकारकी वृत्तियोंका विषय स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट और काल इन सबके कारणसे प्रथम शत प्रकार, फिर सहस्र प्रकार उसके पीछे कोटानुकोटि प्रकार हो जाती है, परंतु इन सबके इस भांतिसे कोटि प्रकार होनेपर भी यह क्षेत्रज्ञसे ही होते हैं और उसकी सत्तासे ही सत्ता प्राप्त होती है, परस्पर अथवा अपने आपसे ही नहीं हो जाते ॥ १२ ॥ मनुजोंकी मायारचित जीव अर्थात् जीवोपाधि और अविशुद्ध करता यह सब वृत्तियाँ उसकी माया हैं, यह सब नित्य हैं। कभी-कभी जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें आविर्भूत होती हैं, कभी सुषुप्ति दशामें तिरोहित हो जाती हैं, क्षेत्रज्ञ आत्मा-साक्षी हो इन सबको सब ही अवस्थामें देखता रहता है ॥१३॥ हे राजन् ! क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है, एक जीव, दूसरा ईश्वर। जीवका स्वरूप पहले बतला चुके हैं, अब ईश्वरका स्वरूप कहते हैं, वह सुनो। वह आत्मा अर्थात् सर्वव्यापी है। पुरुष अर्थात् पूर्ण स्वरूप है। पुराण अर्थात् जीवके कारणभूत है, साक्षात् अर्थात् अपरोक्ष है, परंतु स्वयंप्रकाश रूप दूसरे उसका जन्मादिक नहीं। और वहांपर जो ब्रह्मादि हैं उनका भी प्रभु है, वह नारायण अर्थात् जीव-समूह उनके अयन (वासस्थान) और वह भगवान् अर्थात् ऐश्वर्य्यादि संपन्न है। और वासुदेव है अर्थात् सब भूतोंका आश्रय और अपने अधीनमें जो माया है, उसके द्वारा आत्मामें अर्थात् जीवमें नियामक रूपसे वर्तमान रहते हैं॥१४॥ हे राजन् ! जिस प्रकार वायु प्राणस्वरूपसे देहमें

---

१. शंका—राजा रहूगणसे जड़भरतने कहा कि, मायासे जो बनाया हुआ जीव उसको जितने मनके पदार्थ हैं सो सब होते हैं, उन्हीं पदार्थोंको जीव भोगता है, परन्तु भरतने जीवको मायासे बनाया क्यों कहा ? जीव माया करके रचित नहीं है, जीव भगवानका अंश है, किन्तु मायाके वशीभूत हो रहा है, भरतने जीवको मायारचित क्यों कहा ?

उत्तर—जो प्राणी जिससे भय मानता है, वह प्राणी अपना त्रास देनेवाला छोटा भी होगा तो भी उसको बड़ा करके मानेगा। ज्ञानी पुरुषोंके सम्मुख माया सबसे छोटी है, परन्तु जड़भरतको बारंबार माया दुःख देती है, जब मायासे भरत डर गये, तब सब पदार्थोंको भरतने बड़ा माना। जड़भरतने अपने आपको मायासे दुःखी देखकर मायासे बहुत डरे इसी डरसे जीवको माया करके बनाया कहा है, क्योंकि उस समय भरत ऐसे मायासे डरे थे कि अपने मनमें विचारते थे कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव मायासे बड़े नहीं हैं, माया सबसे बड़ी है।

प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंके ऊपर प्रभुताई करता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ आत्मा परमपुरुष भगवान् वासुदेव सब जगत्में व्यापक होकर उसके ऊपर प्रभुता करते हैं ॥ १५ ॥ हे नरेन्द्र ! यह शरीर ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे जबतक मायाको नहीं छोड़ता और सब संगको और छः शत्रुओंको नहीं जीत लेता और जबतक अपनी आत्माको नहीं जान लेता तबतक संसारमें इधर-उधर घूमता-फिरता है ॥ १६ ॥ दूसरे जबतक इस मनको आत्माकी उपाधिका कारण और संसारके सब तापोंका क्षेत्र जानकर निश्चय नहीं होता, तबतक संसारमें छुटकारा नहीं मिलता। हे राजन् ! मनको संसारके तापका क्षेत्र क्यों कहते हैं वह सुनो-शोक, मोह, लोभ, क्रोध, राग, द्वेष, इन सबमें संयुक्त होकर मन ही ममताको जन्माता है और उससे ही संसारी ताप होता है। इससे मन ही सब संसारी तापोंका क्षेत्र है ॥ १७ ॥ इस कारण तुम अपने गुरुरूप जो हरि हैं उनके चरणोंके उपासनारूप जो अस्त्र हैं, उनको चलाकर सावधान हो इस मनका विनाश करो। हे राजन् ! यह मन महा पराक्रमी अत्यन्त प्रबल शत्रु है, उपेक्षा करनेसे उसकी अत्यन्त वृद्धि हो जायगी और यद्यपि वास्तवमें यह स्वयं मिथ्यास्वरूप है, तो भी आत्माको अज्ञान कर सकता है। इसलिये इसकी उपेक्षा मत करो। इस बातपर एक भजन कहता हूँ ॥

भजन

यह मन मायामें लिपटानो ॥
कथा पुराण झूठ सब समझत, कुटुम सत्य कर मानो ॥ १ ॥
बारबार समुझावत हूँ मैं, क्यों तू भयो दिवानो ।
झूठे घरको सत्य बतावत, सांचो गेह भुलानो ॥ २ ॥
अबहूँ समझ नाहिं कछु बिगरो, ज्योंका त्यों सब जानो ।
जब उड़ जाय पींजराते शुक, तब परि हैं पछितानो ॥ ३ ॥
चौरासीमें फिरै भटकता, कहुँ नहिं लगै ठिकानो ।
अंत समय कोउ होत न साथी, यमपुर परि हैं जानो ॥ ४ ॥
शालिग्राम काम नहिं आवत, अपनो और बिरानो ।
सब संसार स्वप्नकी माया, सांच राम गुण गानो ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे रहूगणमनोविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–बूझो पुनि जड़भरतसों, रहु संशय मन लाय ।
मेटो सब सन्देह तिन, द्वादशवें अध्याय ॥

रहूगण बोले कि हे योगीश्वर ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी यह देह परमेश्वरके समान सब लोकोंकी रक्षा करनेके ही लिये है। वास्तवमें आप आत्मस्वरूप अर्थात् परमानंदका प्रकाश करके आपने अपनी देहको तुच्छ समझा है। हे प्रभो ! इस द्विजबंधुके वेषसे आप अपने स्वतन्त्र अनुभवको छिपाकर रखनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! ज्वर-रोगसे ग्रस्त मनुष्यके लिये ओषधि जैसे सुखदायक होती है और

ग्रीष्मकी लुओंसे दग्ध पुरुषके लिये शीतल जल जिस प्रकार शांति करता है ऐसे ही मेरे लिये आपके यह सब वचन हुए हैं। इस निन्दनीय कार्यके मदरूप भुजङ्गने जो मेरी दृष्टिको डस लिया था, उस दृष्टिको अब आपके वचनरूपी अमृतकी ओषधि मिल गयी ॥ २ ॥ इस कारण जिस-जिस विषयमें संशय है वह तो मैं पीछे आपसे पूछ लूंगा, अब पहले जो आपने वेदान्त, अध्यात्मज्ञान योगमें सने हुए वचन कहे, वह सब अति कठिन हैं। मैं उनको कुछ भी नहीं समझ सका, उनको जिस प्रकार मैं भलीभांति समझ सकूं उस रीतिसे आप उनकी व्याख्या कीजिये, इस विषयको जाननेके लिये मेरे चित्तमें अत्यन्त उत्साह हो रहा है ॥ ३ ॥ हे योगीश्वर ! आपने जो कहा कि-वहनादि क्रिया और उसका फल श्रम होना, इत्यादिक प्रत्यक्ष दीखनेपर भी कुछ नहीं है। अर्थात् कारण होनेपर भी यथार्थ रूपमें तत्त्व विमर्शनार्थ समर्थ नहीं है, सो इस बातसे मेरे मनमें अत्यन्त भ्रांति हो रही है ॥ ४ ॥ जड़भरतजी बोले कि हे पार्थिव ! यह सब पृथ्वीका विकार है, जो पदार्थ पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है, वह किसी कारणसे पृथ्वी पर चलने लगता है, उसको अपने जन अथवा कहारादि नामोंसे प्रसिद्ध कर रक्खा है और जो स्थिर वस्तु है उसको आपने मृतिका वा पत्थर अथवा काष्ठादिक समझ लिया है, परंतु वास्तवमें विचार कर देखिये तो उस जनमें और पाषाणमें कुछ अन्तर नहीं है। पाषाण जड़ होनेके हेतु किंचिनन्मात्र भी परिश्रम वा भार आदि नहीं उठा सकता और न उसमें उठानेका सामर्थ्य है, इसी प्रकार कहारका भी भार उठाना अथवा परिश्रमादि कर्म समझना वृथा है। इसको भी जड़ समझना चाहिये, क्योंकि जिस वस्तुको परिश्रम होता है उसको जो सत्य-सत्य निरूपण हो सकता हो तो निश्चय अपने आपको अथवा औरको परिश्रम होना सत्य भी मान लेता, परंतु उसका सत्य होना ही असम्भव है, क्योंकि अंगोंके अतिरिक्त अंगोंका निरूपण ही किसी प्रकार नहीं हो सकता, प्रथम यह निश्चय कीजिये कि कहारकी देहमें क्या-क्या अंग हैं देखो ! जो पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ कहार है उसके पृथ्वीपर ही पांव हैं और पांवोंपर गुल्फ है, गुल्फपर जङ्घा है, जङ्घाओंपर जानु जानुओंपर सांथल, सांथलोंपर मध्य देश, मध्यदेशपर छाती, छातीपर ग्रीवा और शिर है और इधर-उधर कंधे हैं ॥५॥ कंधोंके ऊपर कोई अवयव भी हो सो भी नहीं है, उसके ऊपर काठकी बनी पालकी है, उस शिबिकामें भी कोई अंग नहीं है, उसमें सौवीर नाम एक राजा पार्थिव विकार (मिट्टीका थुवा) बैठा हुआ देखता हूं, इस पार्थिव विकारमें ही तुम्हारा आत्माभिमान है; कि मैं सिन्धु देशका नरेश हूँ और पालकीमें सवार हूं। बस इसी गर्वके मदसे तू अन्धा हो गया है ॥६॥ यह सब बोझा ढोनेवाले मनुष्य अधिक कष्ट भोग करके अति दीन मलीन तनु क्षीण हो रहे हैं। जिनको देखकर चित्त महादुःखी होता है, उनको तूने बलात्कार बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोता है, इस कारण तू अति-निर्दयी और महापापी है और इतनेपर निर्लज्ज हो कहता है कि मैं सबकी रक्षा करता हूं ऐसा कहकर जो तू अपनी बड़ाई करता है, यह सब मिथ्या है। तू अति दुष्ट है विवेकी जनोंकी सभामें तू शोभाको नहीं पा सकता ॥ ७ ॥ हे राजन् ! ऊपरके अंगोंका भार नीचेके अंगोंका लगता होगा ऐसा निश्चय नहीं होता, क्योंकि जैसा अंगवाले एक पदार्थका तथा अंगोंका भी निरूपण नहीं हो सकता, इस बातको मैं भली प्रकार जानता हूँ, जबकि पृथ्वीसे ही चराचर सब पदार्थोंका नाश और उत्पत्ति होती है तब पृथ्वी भी अलगका विकार नहीं

है, नाममात्रसे अलग है और कोई वस्तु इन सब व्यवहारोंका मूल है और अर्थ क्रिया द्वारा यह ज्ञानमें आये तो तू ही इसको निश्चय कर ॥ ८ ॥ इस प्रकार जिसमें पृथ्वी शब्दका व्यवहार है उसको भी मिथ्या समझना चाहिये । वह भी किसी प्रकार सत्य नहीं है, क्योंकि वह भी अपने कारिणीभूत सूक्ष्म परमाणुओंमें लय हो जाती है । हे राजन्! इससे ऐसा मत समझो कि (परमाणु सब नित्य हैं) हे वीर ! मनसे कार्यकी उत्पत्तिके लिये समस्त परमाणुवादियोंने कल्पित कर लिये हैं । उनके समूहसे ही अर्थात् पृथ्वी इत्यादि समझनेके आश्रयमें ही विशेष-विशेष पदार्थ रचे गये हैं । हे महाराज ! यह प्रपंच भगवान्की मायामें मिला हुआ है, इस कारण समस्त परमाणु भी अविद्यासे कल्पित हो सकते हैं, परन्तु किसी प्रकारसे यह परमाणु सत्य नहीं है ॥९॥ हे राजन् ! आत्मामें कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, कभी कार्य, कारण और कभी जड़ताका धर्म देखकर जो दूसरा (द्वैत) दीख पड़ता है, वह दूसरा भी मिथ्या है । द्रव्य, स्वभाव, आशय; काल कर्म इत्यादि यह सब मूलतत्त्व अविद्या प्रयुक्त हैं इनको तू जान, भला फिर सत्य क्यों है ? ॥१०॥ हे महाराज ! विशुद्ध जिसके बाहर-भीतर दूसरा कुछ भी नहीं है, परिपूर्ण अपरिच्छिन्न और निर्विकार जो ज्ञान है वही परमार्थ सत्य है । उसी ज्ञानका नाम भगवान् शब्द है, उस ज्ञानको ही पंडित लोग वासुदेव कहते हैं ॥११॥ हे रहूगण ! वह स्थान जहां परब्रह्म विराजमान है महत्पुरुषोंकी चरणरजकी सेवा किये विना न तो तपस्यासे, न वैदिक कर्म करनेसे न अन्नादिक दान करनेसे न गृहस्थ धर्ममें रहकर परोपकार करनेसे, न वेदाभ्याससे, न अग्निसे, न सूर्यकी उपासना करनेसे अर्थात् किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता । इस कारण बड़े पुरुषोंके चरणरजकी सेवा करनेसे ही परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! महान् पुरुषोंमें सदा ही भगवान्के गुणानुवादकी चर्चा रहती है, उनके निकट विषयवार्ताका किंचित् भी सम्बंध नहीं रहता, उस भगवत् गुणानुवादकी सदा सेवा करनेसे वही भगवत् गुणानुवाद भगवान्के प्रति मुमुक्षजनोंको श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करता है अर्थात् भगवत्संबन्धी आत्मज्ञान देता है ॥१३॥ हे रहूगण ! संसारका सङ्ग तो योगका विनाश करनेवाला है, इसको मैं भलीप्रकार जानता हूँ, क्योंकि मैं अपनी गति अपने नेत्रोंसे देख चुका हूं । मैं पूर्व जन्ममें भरतनाम एक राजा था, प्रथम ही अनेक दर्शन और श्रवण करनेसे संगके निमित्तका बन्धन छूट गया था, इस कारण मैं नित्य प्रति भगवान्की आराधना करता था, फिर दैवात् एक मृगके संग होनेसे मैं मृगत्वको प्राप्त हुआ, और मेरा सब स्वार्थ नाशको प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥ परन्तु हे वीर ! भगवत् आराधना भ्रष्ट हो जानेपर भी उद्धार कर देती है, देखो मैंने पूर्व जन्ममें जो भगवान्की आराधना की थी, उससे उत्पन्न हुई जो स्मृति, उसने मुझको मृग देहमें भी नहीं त्याग किया, अर्थात् पहले जन्मकी याद बनी रही । इस कारण लोगोंका संग हो जानेके डरसे मैं सबका सँग छोड़-छाड़कर अकेले

१. शंका-संसारमें जो वस्तु मोटी अथवा पतली, उत्तम वा मध्यम, बड़ी तथा छोटी, पाप वा पुण्य, रात वा दिन, हानि वा लाभ, जन्म वा मरण आदि जिसे जोड़ी कहते ह, वह दोका जोड़ है । वह सब मायाका बनाया हुआ है, ऐसा बचन रहूगण राजासे भरतने क्यों कहा ? क्योंकि यह तो सब भगवान्का बनाया हुआ है ।

उत्तर—बीज बिना कोई भी जीव जन्म नहीं ले सकता, इसी लिये ईश्वरकी आज्ञाको प्राप्त हुई माया, उसीको मुनीश्वरलोग शक्ति भी कहते हैं, उस मायासे भ्रम यह है कि विश्वास किसीका नहीं मानना, उसी भ्रम करके यह संसार उत्पन्न होता है, इस लिये बड़े योगी जड़भरतने मायासे किया हुआ कहा ॥

घूमा करता हूं॥ १५॥ इसी कारण मनुष्यलोग कुसंग त्याग महापुरुषोंके संगसे ज्ञानरूप तलवार उत्पन्न कर उससे अपने मोहको काट संसारमार्गके परे भगवान् हरिको प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि सज्जनोंके सत्संगसे भगवान्‌के सब कर्म दृष्ट और श्रवण गोचर हो जाते हैं और उसीसे अंत समय भगवान्‌के स्वरूपमें लय हो जाता है॥ १६॥

भजन

संतोंकी महिमा अपरम्पार।
सत्संगति सम धर्म न दूजो, कह रहे वेद पुकार। १॥
जप तप नियम ध्यान व्रत संयम, कीजे वर्ष हजार।
कठिनाईसे मिलत परम पद, कोटिन विघ्न विकार॥ २॥
सत्संगतिसे तुरत होत नर, भवसागरके पार।
संगतिकी गति शेष शंभु अज, जानत भले प्रकार॥ ३॥
सत्संगति से वसिष्ठ नारद, कीन्हों ब्रह्म विचार।
लव निमेषकी सत्संगतिको, लग न सकत युग चार॥ ४॥
सत्संगति प्रभावसे धारो, शेष धरणिको भार।
"शालिग्राम" भक्तकी संगति, अधम उधारन-हार॥ ५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे रहूगणाय जड़भरतब्राह्मणेन श्रीभगवत्कथास्वरूपनिरूपणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

दोहा–विषयीको वैराग्य दिय, यह तेरह अध्याय।
बनकर बरणो जगतको, सुनिये चित्त लगाय॥

जड़भरत ब्राह्मण फिर रहूगण राजासे बोले कि हे राजन्! संसारका मार्ग अति दुर्गम है, उसमें प्रविष्ट होकर रजोगुण, तमोगुण और सतोगुणमें विभाग की हुई जिसकी दृष्टि है और कर्म हैं उन सबको ही कार्य समझकर देखते हुये वेश्याके समान धनके बटोरनेकी चाहनासे चारों ओर घूमता है, परन्तु उस चारों ओर घूमनेसे भवाटवी अर्थात् जंगलमें चला जाता है, और किसी प्रकारसे सुखको प्राप्त नहीं होता॥ १॥ हे नरदेव! इस जंगलमें बड़े-बड़े छः चोर हैं, वे सब बनियोंके झुण्डवाले नायकोंको अयोग्य देखकर बलात्कार उनका धन लूट लेते हैं। और वहांपर बड़े-बड़े शृगाल भी हैं, जो कि वणिकोंके बीचमें प्रवेश करके जिस प्रकार भेड़िया भेड़ उठाकर ले जाता है, वैसे ही शृगाल बनियोंको खींचकर ले जाते हैं॥ २॥ इस अटवीमें अनेक वृक्ष, लता और गुच्छोंसे ढके हुए गहरे गढे हैं, वणिकलोग वहां बलात्कार विश्राम करके भयंकर डांस और मच्छरोंसे बड़ा उपद्रव पाते हैं। कहींपर यह वणिक लोग साश्चर्य गंधर्वपुरीको देखते हैं, किसी-किसी स्थानमें अतिशय वेग उल्मुकाकार ग्रह (पिशाच-विशेषका बबूला) देख उसको सुवर्ण समान देखते हैं और उसके लेनेका लालच करते हैं॥ ३॥ वासस्थान, जल और धन इन सबमें इन वणिकोंकी आत्मबुद्धि होनेसे उन्हीं वस्तुओंके लिये यह सदा उस अटवीमें इधर-उधर दौड़ा करते हैं। कहीं आंखोंमें धूल पड़ जानेसे अर्थात् पवनसे उड़ी हुई धूलके द्वारा नेत्रोंमें धुन्ध छा जाती है, तो उन धुँधली आंखोंसे छिपी हुई दिशा

विदिशाओंको नहीं देख सकता, कहीं झींगर बोल रहे हैं परंतु देखनेमें नहीं आते, उन झींगरोंकी झनकारसे उनके कानोंमें दर्द होता है, कहीं उल्लुओंके शब्दसे उनका मन अत्यन्त व्याकुल होता है। हे वीर ! यह सब वणिक इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, कहीं-कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौड़ते हैं अर्थात् मृगमरीचिकाके जलको दौड़ते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ और कभी वे लोग जलहीन जलाशयोंकी ओर जाते हैं, परंतु उसमें गिरते ही अंग-भंग हो जाते हैं, इस कारण जितनी दुःख मिलनेकी संभावना है, उतनी जल मिलनेकी आशा नहीं। और कभी जब उनके पास अन्न नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं, कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विपाद करते हैं। कभी इस लिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न ले लें ॥ ६ ॥ किसी-किसी स्थानमें और दूसरे लोगोंसे सर्वस्व हरे जानेपर विषादको प्राप्त हो उस सर्वस्वके लिये शोक करते-करते मूर्छित हो जाते हैं। कहीं गंधर्व-पुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्त भर आह्लाद किया करते हैं ॥ ७ ॥ कहीं-कहीं चलते-चलते पावमें कांटा खोवड़ादिके लगनेसे पर्वतपर चढ़नेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदाससे होते हैं। कहीं-कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीड़ित होनेसे भूखकी ज्वालासे क्षण-क्षणमें लोगोंके ऊपर क्रोध करते थे ॥८॥ कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा वा डसा हुआ जीव वनमें सोता है। कहीं हिंसक प्राणियोंके काटनेसे दुःख पाकर अंधतामिस्रवत् कुएमें गिर पड़ता है ॥ ९ ॥ किसी-किसी स्थानमें कोई-कोई वणिक क्षुद्ररस अर्थात् शहदके ढूंढनेको जाकर उनकी मक्खियोंके द्वारा काटनेसे अधिक दुःख पाते हैं यदि कदाचित बड़े कष्टसे इस विषयमें मान भी पाया, अर्थात् मधु मिल भी गया तो उसको भोग नहीं कर सकते, क्योंकि उनसे दूसरे बलवान् बलात्कारसे उस शहदको छीन लेते हैं ॥ १० ॥ कहीं कोई लोग शीत, गरमी, वायु, वर्षाकी रोक नहीं कर सकते और दुःख सहते बैठे रहते हैं। कहीं कोई लोग लेन-देन करके बहुत थोड़ा धन परस्परसे लेकर धनकी ठगाई करनेसे विद्वेषको प्राप्त हो रहे हैं ॥ ११ ॥ किसी-किसी स्थान-पर कोई-कोई लोग धनहीन होनेके कारण इस अटवीमें शय्या, आसन स्थान और विहारसे रहित होकर यही वस्तु दूसरेसे मांगते हैं, परन्तु औरसे कामना पूर्ण नहीं होती, तब परायी वस्तुकी अभिलाषा करके उसके लिये अपमानको सहते हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भवाटवीमें कोई व्यक्ति परस्पर धनसे और पदार्थोंका अदला-बदला करनेके कारण दूसरोंसे वैर बढ़ाते हैं। और कोई-कोई उनके साथ परस्पर बड़े-बड़े संबंध करते हैं कोई-कोई लोग बड़े-बड़े परिश्रम और धनका नाश व और-और उपद्रवोंके कारण नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ हे वीर ! उन सब नाशको प्राप्त हुए मनुष्योंको जहां पर कि वे मर गये वहीं छोड़कर, नये जो उत्पन्न हुए उनको साथ लेकर फिर कभी वहांसे नहीं लौटते अर्थात् जहांसे इन्होंने चलनेका आरंभ किया है वहांपर फिर लौटकर नहीं आते। सब वनियोंके झुण्डमेंसे कोई भी अबतक इस मार्गके द्वारको प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् इस संसार-मार्गका पार जो योग है, उसको भी नहीं पहुँच सकता ॥१४॥ हे वीर ! जो पुरुष शूर हैं और उन्होंने प्रधान-प्रधान दिक्पाल हाथियोंतकको जीत लिया है वे भी इस भवाटवीमें "हमारी भूमि है हमारी भूमि है" इस प्रकार भूमिके कारण परस्पर वैरभाव करके संग्राम स्थलमें गिरकर

शयन करते हैं अर्थात् मर जाते हैं, इस कारण निर्वैर संन्यासी लोग विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं, वे लोग इस गतिको कभी नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १५ ॥ हे राजन्! भवाटवीमें भ्रमण करनेवालोंका और भी वृत्तांत कहता हूँ, वह तुम सुनो :–कभी कोई पुरुष लता शाखाओंके आश्रयसे उनपर बैठे हुए पक्षियोंके कलरवकी ध्वनि श्रवण करनेके लिये लालसा करके उसमें आसक्त होता है। कहीं पर कोई कभी-कभी हरिचक्र (सिंहसमूह) से भीत होकर बगले, कौवे और गिद्धोंसे मित्रता करता है ॥ १६ ॥ परन्तु गिद्धादिकसे ठगे जाकर पीछे आपही हंसोंके कुलमें प्रवेश करता है, पीछे उनका भी आचार-व्यवहार प्रिय न समझकर वानरोंसे मेल करता है और इस जातिके खेल-कूदसे अपनी सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करता है, परस्पर एक दूसरेका मुख देखनेसे मोहित होकर अपनी अवधि कितनी है, अर्थात् जीवन समय कितना है, उसको भूल जाता है ॥१७॥ कहीं-कहीं कोई-कोई पुरुष पुत्र स्त्रीपर स्नेह करके उनके निमित्त सब वृक्षोंमें अर्थात् दृष्टार्थ विषयोंमें क्रीडा करनेके व्यवसायमें अति दीन हो जाता है। इस कारण अपने बंधनमें विवश अर्थात् परित्याग करनमें असमर्थ होता है, कहीं वही पुरुष असावधानीसे पर्वतकी कंदरामें गिर जाता है और वहां पर हाथियोंके भयसे लता पातोंको पकड़कर लटका रहता है ॥ १८ ॥ और वह पुरुष इन विपत्तियोंसे किसी प्रकार छूटकर अपने संगियोंके संगमें पहलेके समान मिल सकता है, परंतु संसारी मार्गमें मायासे पटका हुआ भ्रमणकारी कोई प्राणी अब तक यथार्थ तत्त्व नहीं जान सका है ॥ १९ ॥ हे रहूगण! तू भी मायासे इस संसारी संगमें फँसा हुआ है, इस कारण अपना राज्यकार्य छोड़ छाड़कर सब प्राणियोंके साथ मित्रता कर विषयोंमेंसे चित्तकी आसक्तिको उठाकर हरिकी सेवाके द्वारा तेज धारवाली तलवार हाथमें लेकर इस संसारके पार हो जा ॥ २० ॥ राजा रहूगण बोला कि हे ब्रह्मन्! मनुष्य जन्म सब जन्मोंकी अपेक्षा बहुत उत्तम है और हे प्रभो! यद्यपि स्वर्गीय देवादिकोंकी अपेक्षा यह जन्म श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु स्वर्गमें भी यदि आपके समान महात्मा पुरुषोंके साथ समागम न हो तो वहांपर देवादि जन्म प्राप्त होनेसे भी क्या लाभ है ? हे प्रभो! आप क्या साधारण मनुष्य हैं ? भगवान्‌का यश श्रवण करने और कहनेसे आपकी आत्मा पवित्र हो गयी है ॥ २१ ॥ इस कारण आपके चरण रेणुकी निरंतर उपासना करनेसे पुरुषकी पापराशि दूर होकर उसको भगवान्‌की निर्मल भक्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। इस बातमें मुझको अपना ही दृष्टांत दृष्टि आता है, कि एक मुहूर्त भर आपका समागम होनेसे मेरे कुतर्कोंका मूल जो अविवेक था वह विनाशको प्राप्त हो गया ॥ २२ ॥ न जाने ब्रह्मवेत्तालोग किस रूपसे घूमा करते हैं; यह न जाननेके कारण सबको ही नमस्कार करके कहा कि महत् पुरुषोंको नमस्कार, बालकोंको नमस्कार! युवा पुरुषोंको नमस्कार!! खेलमें मग्न विप्र कुमारोंसे लेकर सब ही ब्राह्मणोंको नमस्कार करता हूँ, और जो भी ब्राह्मणगण अवधूतोंका चिन्हसा धारण करके पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं, उनके लिये भी बहुत-बहुत नमस्कार। उन लोगोंका अनुग्रह राजा लोगोंके कल्याणार्थ हो ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे उत्तराके पुत्र परीक्षित्! सिंधु देशाधिपति रहूगण राजाने यद्यपि अपमान किया था तो भी ब्रह्मर्षितनय महानुभाव जड़भरतजीने परम करुणासे दया करके उसको ब्रह्म–विज्ञानका उपदेश किया। इसके पीछे जब राजा रहूगणने उन ब्रह्मर्षिके चरणोंकी वंदना की तब वे तरंग-पूर्ण समुद्रके तुल्य आनन्दसे

पूर्ण हो गये परंतु उनका अंतःकरण सदा ही स्थिर था । जो हो, इसके पीछे जड़ भरतजीने फिर पहले के समान घूमना आरंभ किया ॥ २४ ॥ सैवीर-पति रहूगण राजा भी भरतजीसे तत्त्वसहित परमात्मज्ञान प्राप्त करके तत्क्षण ही देहमें आत्मबुद्धि (जो अविद्याके कारण देहमें आरोपित हो गयी थी) त्याग कर दी । हे राजन् ! भगवान्के आश्रयवाले महात्मा भरत जीका आश्रय ग्रहण करनेसे रहूगण राजाका अहंकार शीघ्रही विनष्ट हो गया ॥२५॥ राजा परीक्षितने पूछा कि हे भागवतवर श्रीशुकदेवजी महाराज ! आप सब कुछ जाननेवाले हैं, आपने अपरोक्ष वचनोंके द्वारा वणिक सार्थसहित रूपक करके जो इस संसार अटवी मार्गका वर्णन किया, विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिसे इसका विपय कल्पित हो सकता है, अर्थात् वे लोग बुद्धिके बलसे इन्द्रियोंको दस्युतुल्य और पुत्र कलत्रादिकको शृगाल इत्यादिके सदृश जान करके इस विषयको समझ सकते हैं, परंतु अल्पबुद्धि मनुष्यको भली भांति इसे समझना कठिन है, इस कारण जो कुछ आपने कहा है, उसे सभीके समझनेके लिये कल्पना करके इस दुर्गम विषयको समझा कर कहो, जो मेरी समझमें सुगम रीतिसे आ जाय ॥ २६ ॥

रेखता

नहीं मैं कुछ समझता हूं, तुम्हारी ज्ञानकी बातें ।
मैं तो मतिमन्द अज्ञानी, समझमें है कठिन आनी ।
बखानी आपने जो जो, मेरे सम्मान की बातें ॥ १ ॥
रहा नित मूर्खोंके संग, चढ़े क्यों साधुओंका रंग ।
सदा पी भंग गाफिल हो, करी अभिमान की बातें ॥ २ ॥
मेरा मन डूब जाता है, समझमें कुछ न आता है ।
आपने जो कही मुझसे, महा उद्यानकी बातें ॥ ३ ॥
यत्न ऐसा निकालो अब, समझमें मेरी आवे सब ।
लिखी है वेदमें जो जो, सहजसी ईशकी बातें ॥ ४ ॥
यह शालिग्राम कह देंगे, जो सब कुछ जानते होंगे ।
छुटै जिससे महाममता ऐसी हो कल्याण की बातें ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे रहूगणाय सूक्ष्म भवाटवीवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा—वन रूपक कर जगतको, कहौं चौदहाध्याय ।
ताहीको अब खोल कर, कहौं प्रगट दरशाय ॥

जो राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा, वही प्रश्न शौनकने सूतजीसे किया, शुकदेवजीने और सूतजीने दोनोंको एक ही प्रकारका उत्तर दिया । राजा परीक्षितने जब इस प्रकार प्रार्थना की तब श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस संसारमें जीवगण धनके उपार्जन करनेमें वणिकोंके तुल्य तत्पर रहते हैं, यह भगवान्की मायासे संसारी मार्गमें गिरे हुए

हैं, इस कारण गुरु जो भगवान् हरि हैं, उनके चरणारविन्दके सेवकोंकी पदवी अर्थात् भगवत् जनों करके अनुष्ठित भक्तिका मार्ग अबतक प्राप्त नहीं होता। हे परीक्षित्! संसारी मार्ग सुगम नहीं है, जो सब पुरुष देहमें आत्माभिमान करते हैं उनके सत्त्वादि विशेष-विशेष गुणसे विभक्त सर्व कर्म मंगल अमंगल दोनोंमें ही मिल जाते हैं, उनके द्वारा विविध देहश्रेणी रची जानेसे उनसे संयोग-वियोगादि रूप अनादि संसार होता है। सब, संसारके अनुभवके द्वाररूप छः प्रकारकी इंद्रियाँ हैं, उन करके यह संसारमार्ग दुर्गम मार्गके तुल्य अतिशय कठिन हो गया है। हे राजन्! इस प्रकारके दुर्गम मार्गमें पग धरनेको किसीकी भी प्रवृत्ति नहीं होगी, ऐसा हम कह नहीं सकते। भगवान् विष्णुकी मायासे अवश होकर सब ही उसमें वास करते है। और अपनी-अपनी देहसे रचे हुए सब कर्मोंका फल वहां (भवाटवीमें) भोगा करते हैं। उन प्राणियोंकी चेष्टा कभी सफल होती है, कभी अनेकानेक विघ्नोंके कारण पूरी भी नहीं होती है। इस प्रकारकी संसार–अटवीमें जो विविध भांतिके ताप हैं उनको भगवत्–चरणारविन्दसेवकोंकी पदवी विनाश करनेको समर्थ है, परन्तु भगवान्‌की मायाके वश होकर जीवगणोंको वह पदवी सहजसे प्राप्त नहीं हो सकती, इस संसाररूप अटवीमें छः इंद्रियाँ हैं, वे ही कर्मोंके द्वारा महाप्रबल चोरोंके तुल्य हैं ॥ १ ॥ क्योंकि संसारमें बड़े कष्टसे बटोरा हुआ पुरुषका धन, जिसको पंडित लोग धर्मका स्वरूप कहा करते हैं, जहां यह जीव असावधान हुआ कि जिस प्रकार संगी लोग असावधान संगीका धन हरण कर लेते हैं, वैसे ही यह सब इंद्रियाँ जो चोर हैं यह दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, सूंघना और संकल्प, विकल्प इत्यादि गृहसंबंधी तुच्छ पदार्थोंमें लगाकर उसका यह धन हरण कर लेती हैं, वह मनुष्य अजितेन्द्रिय और घरमें ग्राम्य वस्तुओंके भोग करनेमें आसक्त रहता है, इससे वह अपने धन लेजानेवाली इंद्रियोंको कुछ भी नहीं जानता ॥२॥ हे राजन्! इस अटवीमें अनेक भेड़िये और शृगाल हैं परंतु वे नाममात्रके ही हैं। वास्तवमें संसारी परिवारमें जो कि स्त्री पुत्रादिक हैं, वही कार्य करनेमें शृगाल भेड़ियेके तुल्य हैं। क्योंकि अतिलोभी कुटुम्बी पुरुष अत्यन्त प्रयत्नसे रक्षापूर्वक मेढ़के समान सुन्दर धनको उसकी विना इच्छा बड़े छल-बल चतुराईसे उसकी आखोंमें धूल डाल भेड़ियेके समान भेड़वत् उसके संचय किये हुए धनको ले ही लेता है ॥ ३ ॥ दूसरे "उस भवाटवीमें अनेक घास बेलोंसे ढके हुए दुर्गम गढ़े हैं" इत्यादि जो कहा है, उसका तात्पर्य यह है, कि जिस प्रकार खेतमें प्रति वर्ष जो हल चलाया जाय तो उस खेतका बीज जल नहीं जाता, परन्तु फिर वह अन्न बोनेके समय तृण गुल्म, लता इत्यादिके उपजनेसे दुर्गम गढ़के समान हो जाता है वैसे ही यह गृहस्थाश्रम सब कर्मोंका क्षेत्ररूप है। इसमें भी सब कर्म एकबार भी नाशको प्राप्त नहीं होते क्योंकि यह गृहस्थाश्रम कामनाओंका भण्डार है, देखो जिस प्रकार किसी बरतनमें कपूर रक्खा हो और वह उड़ जाये तो भी उसकी सुगंधि उस पात्रसे नहीं जाती, ऐसे ही कर्म चाहे सब नष्ट हो जांय, परंतु जबतक वासना क्षय नहीं होती, तबतक उपजते ही रहते हैं ॥ ४ ॥ इस गृहस्थाश्रममें जो पुरुष रत होता है, उसका प्राण अर्थात् धन संपत्ति डांस, मच्छरके तुल्य नीच मनुष्य और टीड़ी, पक्षी चोर, चूहे इत्यादिकोंके तुल्य तस्कर लोग पीड़ा देकर छीन लेते हैं, तथापि यह पुरुष गृहस्थाश्रमके मार्गमें घूमनेसे शांत नहीं होता, बरन् मिथ्या दृष्टि होनेसे अविद्या काम और कर्मोंसे रँगे हुए मनके हेतु गन्धर्व–नगर तुल्य अघटमान नरलोकको सत्यरूप

देखता है ॥ ५ ॥ दूसरे किसी-किसी स्थानमें भोजन स्त्रीसंग इत्यादि व्यसनोंका लोलुप होकर मृगतृष्णाके जलके तुल्य सब विषयोंकी ओर दौड़ता है॥६॥और "किसी-किसी स्थानमें उल्मु-काकार गृह देखकर उनको श्रेष्ठ सुवर्ण समझ उनके लिये ललचाता है" इत्यादि जो कहा है, इसका अर्थ यह कि जिस प्रकार शीत निवारण करनेके लिये अग्निकी चाहना करनेवाले लोग वनमें अग्निके समान चमकते हुए पिशाच विशेषको देखकर उस पिशाचके पीछे-पीछे दौड़ा करते हैं, वैसे ही पुरुष इस संसारमें कहीं सुवर्ण प्राप्त होगा, यह इच्छा करके दौड़ता फिरता है, परन्तु यह वस्तु अशेष दोषोंका स्थान है, पवित्र भी नहीं है, विष्ठाविशिष्ट है क्योंकि ऐसा सुननेमें आया है कि अग्निकी विष्ठासे सुवर्ण होता है। पुरुषका उसके लिये बहुत इच्छा कर-नेका कारण यह है कि वह सुवर्णवत् लोहित वर्ण जो रजोगुण है, उससे ही पुरुषका चित्त घिरा हुआ है ॥ ७ ॥ हे वीर ! "निवास, जल, धन" इत्यादि जो कहा उसका अर्थ यह है, कि निवास, जल, धन, इत्यादि जो समस्त वस्तु अपने निर्वाहके लिये हैं, उनके लिये अभिनि-विष्ट होकर यह पुरुष इस गहन संसारमें इधर-उधर भटकता फिरता है॥८॥दूसरे "कहीं आंखोंमें धूल पड़ जानेसे हवा करके उड़ी हुई धूलीके द्वारा धूंधुली दिशा विदिशाओंको नहीं देख सकता" इत्यादि जो कह आये हैं, इसका अर्थ यह है कि इस संसारके मध्यमें कभी पवनके तुल्य जो स्त्री है पुरुष उसकी गोदीमें चढ़ बैठता है, गोदीमें बैठनेसे उस समय जो अनुराग जन्मता है, उस राजसी धूल पड़े हुए नेत्रोंके समान होकर मर्यादाको छोड़ देता है और रात्रिकालके भूतके समान दिशाओंके देवता जो कि अच्छे बुरे कर्मके साक्षी हैं उनको भी नहीं देखता और सब मर्यादाओंको त्याग कर देता है, जो मर्यादा छोड़नेके कारण साक्षिस्वरूप जो वर्तमान है उसको नहीं जानता ॥९॥ "और कहीं-कहीं सूर्यकी किरणोंको जल समझकर उसी ओर दौड़ते हैं।" इत्यादि जो कहा है उसका तात्पर्य यह है कि संसारमें पुरुष कभी-कभी आप ही आप एकवार ऐसा विचारता है कि सब विषय व्यर्थ हैं, परंतु देहाभिमानके कारण शीघ्र ही स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है, इस कारण मृगतृष्णाके जलके तुल्य फिर उन सब विषयोंकी ओर दौड़ता है॥१०॥हे राजन् ! "कहीं अनेक नदी देखते हुए झिल्ली नामक कीड़ोंकी झन-कारसे उनके कानोंमें दर्द होता है" यह जो कहा इसका अर्थ यह है कि संसारमें कहीं कहीं झिल्ली-झनकारके तुल्य अतिकर्कश विषयोंमें उत्साहके लिये प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रु-पक्षकी और राज-कुलकी फटकारसे पुरुषके कर्ण-शूल और हृदय व्यथा होती है ॥११॥ "यह सब वणिक इस प्रकारसे खिन्न होकर जब भूखे होते हैं, तब जिनकी छाया भी पापका कारण है, ऐसे अपुण्य वृक्षोंका आश्रय ग्रहण करते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, संसारमें जब पुरुषके पहले किये हुए सुकृत क्षीण हो जाते हैं, तब विषतिन्दुक इत्यादि अपुण्य वृक्ष लता और विषकूप समान इस लोक और परलोकके लिये धन खोकर स्वयं मृतकके तुल्य हो जाते हैं और जीवन्मृत लोगोंके निकट दौड़ते फिरते हैं ॥ १२ ॥ हे वीर ! और "कभी वे लोग जलहीन जलाशयोंकी तरफ जाते हैं" इत्यादि कहे हुए वचनोंका अर्थ कहता हूँ उसे श्रवण करो—कि संसारमें कभी-कभी असत्प्रसंगसे पुरु-षकी बुद्धि ठगी जाती है, इससे निर्जल नदीमें गिरनेसे जिस प्रकार उसी समय शिर फट जाता है और क्लेश होता है, वैसे ही पुरुष पाखण्ड पंथमें पड़ जानेके कारण इस लोक और परलोकमें दुःख पाता है ॥ १३ ॥ और "कभी जब उनके पास अन्न

नहीं रहता तब परस्पर एक दूसरेसे मांगते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि जब संसारके मध्यमें पुरुष भूख-प्याससे पीड़ित होनेके कारण बड़ा क्लेश पाकर अपने पास अन्न नहीं देखता, तब पिताको, पुत्रको और जिनके पास पिता वा पुत्रका कुछ थोड़ा भी लेना-देना रहता है उनको दुःख देता है ॥ १४ ॥ हे राजन्! "कभी दावानलके निकट पहुँचकर अग्निसे संतापित हो विषाद करते हैं" इत्यादि जो कहा, इसका अर्थ यह है कि, यह जो गृह है यही दावानलके तुल्य है और प्रिय वस्तुके निमित्त सन्तप्त है अर्थात् घरमें कुछ भी प्रिय वस्तु नहीं है और जिसमें सुखका लेशमात्रतक नहीं वरन् परिणाममें उसको महाकष्ट है, पुरुष दावानलके संतापको प्राप्त हो उस शोकानलमें दग्ध हो महासन्तापको पाता है ॥ १५ ॥ 'कभी इस लिये डरते हैं कि कहीं यक्षगण प्राण न ले लें' इस उक्तिका यह तात्पर्य है कि इस संसारमें कभी-कभी राजा लोग कालके वशमें पड़कर प्रतिकूल हो राक्षसोंके समान व्यवहार करते हैं अर्थात् प्रियतम धनरूप प्राण हरण कर लेते हैं, उससे पुरुषोंको मृतकके तुल्य जीवनलक्षणसे रहित होकर रहना पड़ता है ॥ १६ ॥ हे राजन्! "कहीं गन्धर्व-पुरमें प्रवेश करके एक मुहूर्तभर आह्लाद किया करते हैं" इत्यादिका तात्पर्य यह है कि पुरुष कभी-कभी बाप, दादा इत्यादि बीते हुए पुरुषोंकी चिंताको प्राप्त होकर उनको और उनके असत् धनको सम्मान कर कि वे लोग मानो वर्तमान हैं, इस प्रकारसे मनमें समझता हुआ क्षणभरके लिये स्वप्नकेसा सुख प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥ "कहीं-कहीं चलते-चलते कांटा कंकड़ आदिके लगनेसे पर्वतपर चढ़नेकी वासना पूरी न होनेसे कुछ उदास सा होता है" इस वचनका भाव यह है कि गृहाश्रममें जिन सब कर्मोंकी विधि है वे बहुत हैं, इस कारण वे समस्त पर्वतके तुल्य अति दुर्गम हैं। उनका अन्त करनेकी इच्छा होनेसे पुरुषका मन कभी भी लौकिक व्यसनोंमें खिंच जाता है, इससे कंटक और कंकड़वाली भूमिमें प्रवेश करनेके समान वह दुःख पाता है ॥ १८ ॥ "कहीं-कहीं कोई परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानलके द्वारा पीड़ित होनेसे भूखकी ज्वालामें लोगोंके ऊपर क्रोध करता है" यह जो कहा, सो इसका भाव यह है, कि बड़े परिवारका आदमी स्वच्छन्दतासे देहाभ्यन्तरवर्ती दुःसह जठरानलसे पीड़ित होनेके कारण निःसार होकर कभी परिवारवाले लोगोंके ऊपर क्रोध प्रकाश किया करता है ॥ १९ ॥ हे राजन्! "कभी इस भवाटवीमें अजगर सर्पसे ग्रसा व डसा हुआ जीव वनमें सोता है" इत्यादि जो कहा, उसका तात्पर्य भी कहता हूँ वह तुम सुनो, कि संसारमें पुरुष निद्रारूप अजगरके वश हो जाता है, निद्राके समय निर्जन वनमें सोनेके समान अन्धकारमें मग्न होकर शयन करता है और कुछ भी नहीं जानता इस कारण वह फेंके हुए मुरदेके समान जान पड़ता है। किसी प्रकारका ज्ञान नहीं रहता ॥ २० ॥ "कहीं अन्धे लोग अन्धे कुएमें गिरकर डूबे रहते हैं" इत्यादि वाक्यका अभिप्राय यह है, कि इस संसारके बीच कभी-कभी पुरुषकी गर्वरूप डाढ़ टूट जाती है और दुर्जनरूप हिंसक शूकर उसको निद्रा नहीं लेने देते। इस कारण हृदय व्यथित होनेसे उसके ज्ञानका क्षय हो जाता है और वह अज्ञानसे अन्धा होकर अन्धेके समान उस अंधे कूपमें गिर पड़ता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस संसारमें काम शहदकी बूंदके समान है। पुरुष कभी-कभी इस कामकी खोज करता हुआ फिरता है, परंतु जब परायी स्त्री और पराये धनके ऊपर झपट करता है तब उस स्त्रीके स्वामी अथवा राजासे मारा जाकर अपार नरकमें

गिर पड़ता है ॥ २२ ॥ इस कारण पंडित कहते हैं कि प्रवृत्तिमार्गमें अपना कर्म ही इस काल और परकालमें संसारमें जन्म होनेका क्षेत्र है ॥ २३ ॥ बस, संसार यदि एक जनकी झपटसे छूट जाये, तब दूसरा पुरुष देवदत्त उससे बलात्कार छीन लेता है। उससे फिर तीसरा जन विष्णुमित्र हर लेता है। इसी भांति धारावाहिक होता रहता है। इसी कारण उससे अनवस्था हो जाती है ॥ २४ ॥ संसारमें कभी-कभी शीत वायु इत्यादि बहुत भांतिके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापोंकी दुर्दशा निवारण करनेको असमर्थ होनेसे पुरुष अपार दुःखी हो चिन्ता करके शोक किया करता है ॥ २५ ॥ कहीं परस्परमें परस्परका धन व्यवहार करके दूसरेके निकटसे कुछेक अर्थात् कांकिणी मात्र (वीस कौड़ियें) या इससे भी कम लेकर ठगता है, फिर इस ठगाई करनेके कारण विद्वेष को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित ! इस संसार मार्गमें और बड़े-बड़े कष्ट इत्यादि उपसर्ग तो नित्य रहते हैं, इनके शिवाय सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्षा, अपमान, भूख,प्यास,आधि, व्याधि, जन्म, मृत्यु, जरा इत्यादि और भी अनेक बड़े-बड़े उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ संसारमें कहीं मायारूपी स्त्रीकी भुजलताओंसे आलिंगित होते ही पुरुष विवेक और विज्ञानसे रहित हो जाता है–

चौ०–ऐसी रची कठिन यह नारी ❋ देवहु को मनमोहन–हारी ।
शिव अज नारद शशि कविहीको ❋ क्षणमें मन मोह्यो सबहीको ॥

ऐसी स्त्रीके साथ विहार करनेके लिये, घरका आरंभ करनेके लिये उसका हृदय व्याकुल हो जाता है, इसलिये उसके आश्रयमें जो पुत्र कलत्र इत्यादि रहते हैं उनके देखने, व मृदुल वचन श्रवण करने और अनेक प्रकारकी चेष्टा अवलोकन करनेमें हृदय हरे जानेके कारण आत्माको अपार घोर अन्धकारमें फेंक देता है ॥२८॥ हे राजन् ! हरिचक्रका अर्थ भुजावान् विष्णुजीका चक्र, वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्ध जो काल है, वही उसका स्वरूप है। वह चक्र निरंतर परिवर्तित होकर अर्थात् भ्रमण करके बालादि अवस्थाओंके फेर फारसे तृण स्तम्बसे लेकर ब्रह्माजी आदिक समस्त भूतको अपने वेगसे हरण करता है, परंतु कोई भी उस चक्रका प्रतीकार करनेको समर्थ नहीं होता। क्योंकि यह चक्र सर्वभांतिसे अप्रमत्त अर्थात् अतिशय सतर्क है, इस कारण पुरुष कालस्वरूप इस हरिके चक्रसे उठकर यह कालचक्र ही जिनका आयुध है, वह ईश्वर जो साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुष हैं, उनका अनादर करता हुआ जो कि पाखण्डी देवता काक, गृध्र, बक और बटेर पक्षीके समान, श्रेष्ठ जनोंके आचारोंसे वर्जित उनको ही पाखण्ड शास्त्रकी रीतिके अनुसार भजने लगता है ॥२९॥ किंतु वह तो स्वयं ही ठगे हुए हैं, इस कारण यह पुरुष जब पाखण्डी देवताके निकट अतिशय ठगा जाता है, तब ब्राह्मण कुलमें जाकर वास करता है। परंतु उस अवस्थामें उसको ब्राह्मणोंके आचार-व्यवहार और श्रुति स्मृतिके कहे हुए कार्य जो भगवान् यज्ञपुरुषजीके आराधन करनेके कर्म हैं, वे सब उनको अच्छे नहीं लगते और वेदान्त आचारोंको जो शूद्र लोग अशुद्ध होनेके कारण पाल नहीं सकते वे पुरुष उनमें ही अनुरागी होकर शूद्र तुल्य हो जाते हैं, अग्निहोत्रादि तो कुछ

कर्म हैं नहीं, वानर जातिके समान केवल स्त्रीसंग और कुटुम्बका पालन-पोषण करना कर्म है ॥३०॥ यह पुरुष शूद्रतुल्य हो जानेके कारण रोगरहित इच्छानुसार विहार करता-फिरता है, अतः उसकी बुद्धि अतिशय मन्द होजाती है। इस कारण वह परस्पर एक दूसरेका मुख देखकर अपने मनमाने काम करता है और पशु कर्मोंमें इस प्रकार लग जाता है, कि अपने मृत्युसमय तकको भूल जाता है। हे राजन्! संसारमें कभी-कभी यह पुरुष जिस प्रकार बन्दर वृक्षों पर चढ़कर उछल-कूद करते हैं, वैसे ही इस लोकके गृहादि विषयमें क्रीड़ा करनेका अनुरागी हो जाता है और ऐसा होनेसे स्त्रीपुत्रादिकोंमें उसकी प्रीति हो जाती है और वह मैथुन करनेको ही परम उत्सव मानता है ॥३१॥ इस प्रकार संसार मार्गमें बंद होनेके कारण पुरुष मृत्युरूप हाथीके भयसे कभी-कभी गिरि गुफाओंके तुल्य घोर अन्धकारमें अर्थात् शोकादि विपत्तियोंमें गिर जाता है ॥३२॥ कभी शीत, वात इत्यादि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिकरूप विविध भांतिके दुःख निवारण करनेमें असमर्थ होकर क्लेश पाता है और अशेष विषयवासनाओंमें शोक किया करता है ॥३३॥ कभी-कभी परस्पर एक दूसरेसे लेन-देन कर ठगाई करके कुछेक धन इकट्ठा करता है, परन्तु उससे भी सुखी न होकर अपमानादिको प्राप्त होता है ॥३४॥ कभी-कभी धन न रहनेसे शय्या, आसन इत्यादि उपभोग पदार्थोंके न मिलनेसे मनोरथके द्वारा जो वांछित है, सदुपायसे उनको न पाकर फिर उनको बुरे पापों करके लाभ करनेका मनमें विचार करता है, जिससे कि उसको लोगोंसे बहुत ही अपमान मिलता है ॥३५॥ परंतु यह बड़े आश्चर्यकी बात है, कि धनकी आसक्तिसे परस्पर वैर भी बढ़ाते हैं और तो भी पुरुष एक दूसरेसे लेन-देन करता ही रहता है ॥३६॥ हे राजन्! इस प्रकारसे इस संसार मार्गमें अनेक-अनेक क्लेश वा अनेक उपद्रवोंसे बाधित होकर जो पुरुष आपदामें पड़ जाता है अथवा नाशको प्राप्त हो जाता है तो दूसरे मनुष्य उसको उसी स्थानमें त्याग कर नये-नये उत्पन्न मनुष्योंका साथ कर कभी शोर करते हैं, कभी मोह करते हैं, कभी भय पाते हैं, कभी सिंहनाद करते हैं, कभी विवाद करते हैं, कभी हर्षित होते हैं, कभी गाते हैं, कभी रोते चिल्लाते हैं, इस प्रकार संसारमें अधिक बँध जानेसे साधु पुरुषोंके सिवाय कोई अबतक इस संसार मार्गसे नहीं लौटा, जिस मार्गमें यह नरलोकसमूह बँधा हुआ है, पंडित लोग उस मार्गसे पार होनेके लिये सदा ही उपदेश किया करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! साधु लोगोंके सिवाय और पुरुषका इस संसार मार्गसे पीछे न लौटनेका कारण यह है कि यह मार्ग योगानुष्ठानसे भी नहीं रुक सकता, शांतिशील और मनको वशमें रखनेवाले जिन मुनियोंने दण्डतक छोड़ दिया है, वे इस मार्गको जानते हैं, बरन् उन लोगोंमें भी अनेक इस मार्गके रोकनेमें असमर्थ हुए हैं ॥३८॥ जो सब दिग्विजयी राजर्षि सदा योग, यज्ञ किया करते हैं, वे लोग भी इस मार्गके रोक लेनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ नहीं हुए। वे केवल रणशायी और इसी वसुधाकी मोह ममतामें फँसकर प्रत्येक मनुष्यसे अनेक-अनेक प्रकारकी शत्रुता ठानी और यही कहानी-गाते हैं कि "यह भूमि हमारी" ऐसा समझकर "सैन जोरि नित करत लड़ाई। धरणी हित जिय

१. शंका—चौरासी लाख योनियोंमें सब जीव मोहके वशीभूत होकर अपने-अपने परिवारके पालन-पोषण करनेमें रात-दिन लगे रहते हैं, परन्तु श्रीशुकदेवजीने सब जीवोंको त्यागकर परिवारके पालन करनेमें बानरकी उपमा क्यों दी? क्या बानर सब जीवोंसे अधिक परिवारका पालन करता है?

उत्तर—जगत्में सब जीव कुटुम्बके पालन-पोषण करनेमें चतुर हैं, परन्तु नीति शास्त्रमें लिखा है कि बानरके समान परिवारका मोह तथा पालन-पोषण कोई प्राणी नहीं कर सकता, इस लिये शुकदेवजीने बन्दरकी उपमा परिवारके पालन करनेमें दी।

देत गँवाई" संग्रामस्थलमें प्राण दे इस अपनी पृथ्वीको छोड़कर अकेले चले गये ॥ ३९ ॥ कोई-कोई लोग अपने कर्मसे सूत्रको पकड़ करके जैसे-तैसे संसारकी आपदासे छूट भी जायें परंतु फिर भी संसारी मार्गमें प्राप्त होनेसे नर-लोक समूहके ही निकट आ जाते हैं, स्वर्गमें गये हुए लोगोंकी भी यही गति होती है ॥ ४० ॥ योगिवर शुकदेवजी महाराज इस प्रकारसे जड़भरतजीकी कही हुई भवाटवीकी वास्तविक व्याख्या करके राजा परीक्षित्से बोले कि, हे राजन् ! उन राजर्षि भरतजीके पवित्र चरित्र इस प्रकारसे संक्षेपमें संग्रह करके लोग सदा गाया करते हैं। जिस प्रकार मक्खियाँ गरुड़के मार्गका अनुसरण नहीं कर सकतीं, वैसे ही और कोई राजा उन ऋषभदेवके पुत्र राजर्षि भरतके मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ४१ ॥ उन भरतजीने भगवान्की भक्तिके हेतु युवा अवस्थामें ही स्त्री, पुत्र, मित्र, राजत्व इत्यादि विषय, जो कि अत्यन्त मनोहर और त्यागनेके योग्य नहीं थे, उन सब पदार्थोंका क्षणमात्रमें विष्ठाके समान त्याग कर दिया ॥ ४२ ॥ उनके चित्तकी भक्ति भगवद्भक्तिके निमित्त प्रबल थी, इससे उन्होंने जो अत्याज्य राज्य पुत्र कलत्र और धन जन इत्यादिमें और सुरवरोंको प्रार्थनीया लक्ष्मी जो दया भजन होनेके निमित्त उनकी ओर दीन भावसे देखती थी, उसमें भी अनिच्छा की, यह कर्म उनके योग्य ही हुआ, क्योंकि जिन समस्त महापुरुषोंका चित्त भगवान्की सेवामें अनुरागी हो रहा है, उनका निकट परमपुरुषार्थवाली मुक्ति भी अति तुच्छ पदार्थ है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने मृग-देहका परित्याग करनेके समय जो यज्ञरूप भगवान् यज्ञादि फलदाता धर्मानुष्ठानकर्ता अष्टांगयोगरूपी ज्ञान ही जिसका प्रधान कार्य था ऐसे योग मूर्ति मायाके नियन्ता इस कारण नार (जीवसमूह) जिनको अयन (आश्रय) अर्थात् जो सर्व जीवोंके अन्तर्यामी हैं, उन भगवान् हरिको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ "यह वचन बड़े शब्दसे उच्चारण किया था" उनके मार्गका अनुसरण करनेको और कौन पुरुष समर्थ होगा ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! राजर्षि भरतके गुण और कर्म अतिशय पवित्र थे, प्रत्येक भगवद्भक्त इन दोनोंका सम्मान किया करते हैं, इस कारण महात्मा भरतजीका यह चरित्र अतिशय मंगलदायक, दीर्घायु करनेवाला तथा धन, यश, स्वर्ग और मोक्षका साधन करनेवाला है। जो पुरुष भक्तिसहित इस चरित्रको श्रवण करेंगे अथवा पढ़ेंगे और सुनकर हर्षित होंगे वे आपही आप अपने सब कल्याणोंको प्राप्त होंगे, दूसरोंके निकटसे उनका कल्याण ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं रहेगी ॥ ४५ ॥ इसपर एक भजन है-

भजन

जो जन निशि दिन हरिगुण गावत।
निसन्देह आनन्द सहित सो, भक्ति मुक्ति फल पावत ॥ १ ॥
काल व्याल दूरहिते काँपत, यम नेरे नहिं आवत।
सेवा करत पार्षद निशि दिन, ठाढे चँवर डुलावत ॥ २ ॥
सुन्दर सुभग विमान सजाकर, सब मिल ताहि चढ़ावत।
शंख मृदंग बजाय धूमसे, परमधाम पहुँचावत ॥ ३ ॥

विष्णुरूप हो जात विष्णुपुर, विष्णु दास कहलावत।
शालिग्राम भक्तिकी महिमा, शेष कहत सकुचावत ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने भवाटवीपरोक्षविवरणवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–भरतचरित वर्णन कियो, पंचदशो अध्याय।
अब मैं तिनके वंशके, सब नृप कहौं गिनाय ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि भरतका पुत्र सुमति हुआ, कोई-कोई पाखण्डी लोग इसको जीवन्मुक्त मार्गका अनुसरण करता हुआ देखकर अपनी पापीयसी बुद्धिसे "साक्षात् बुद्ध अवतार हुआ" यह कलियुगमें उसकी कल्पना देवतारूपसे करेंगे, किन्तु वेदमें इसके देवता होनेका कहीं प्रसंग भी नहीं है। जो हो, इस सुमतिसे बुद्ध सेनाके गर्भमें 'देवताजित' नामक एक पुत्र हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ देवताजितके आसुरी नाम स्त्रीमें देवद्युम्न नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, उसकी धेनुमतीके गर्भसे परमेष्ठी नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, परमेष्ठीकी स्त्री सुवर्चला थी, उससे परमेष्ठीके प्रतीह नामक महात्मा पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ जिस प्रतीहने सब लोगोंके निकट आत्मविद्याकी व्याख्या करके उसके द्वारा आप भी पवित्र हो भगवान् विष्णुजीके साक्षात् दर्शन किये थे॥४॥ इन प्रतीहके सुवर्चला नाम स्त्रीके गर्भमें प्रतिहर्ता प्रस्तोता और उद्गाता यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए, ये तीनों पुत्र यज्ञानुष्ठान करनेके विषयमें अत्यन्त पंडित और चतुर थे। उनके बीच प्रतिहर्ताकी स्त्री स्तुतिमें अज और भूमा यह दो पुत्र हुए ॥ ५ ॥ भूमाके ऋषिकुल्यानाम स्त्रीमें उद्गीथ नामक पुत्र हुआ, उद्गीथके देवकुल्यानामक स्त्रीमें प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ, प्रस्तावके नियुत्सा नाम स्त्रीमें विभु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, विभुके रति स्त्रीमें पृथुषेण, पृथुषेणके आकूति नाम स्त्रीमें नक्त और नक्तके द्रुतिनाम भार्यामें गय नाम पुत्र जन्मा। यह गय राजा बड़ा यशस्वी और राजर्षियोंमें परमोत्तम था और जो कि जगत्‌की रक्षा करनेकी वासनासे सत्त्वगुण धारण किया है, साक्षात् उन भगवान् विष्णुजीके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणोंसे महापुरुषताको प्राप्त हुआ था ॥ ६ ॥ यह राजर्षि-श्रेष्ठ राज्यमें अभिषेकित होकर राज्यधर्म कहकर प्रजागणोंका लालन-पालन-शासनादि धर्मके कार्य करता था और यद्यपि गृहाश्रममें रहनेसे उसके याग यज्ञादि धर्म भी आचरण करने योग्य थे, परन्तु उसके यह दोनों प्रकारके धर्म सब भांतिसे भगवान्‌में अर्पण होनेके कारण परमार्थ रूप हो गये थे, इस कारणसे इन दोनों धर्मोंसे और ब्रह्मज्ञानियोंकी चरण-सेवासे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा उसकी बुद्धि संस्कारित और शुद्ध हो गयी थी और उसके चित्तसे देहाभिमान दूर हो गया था, इस कारण वे सदा ही स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मानन्दका अनुभव करते थे, परन्तु इस प्रकारसे होकर भी वे अभिमान-

१. शंका—शास्त्रमें तथा लोकमें मुनियोंने शुकदेवजीको समदृष्टि कहा है, कि शुकदेवजी अच्छे बुरेको एक सम देखते हैं, ऐसे परमहंस होकर श्रीशुकदेवजीने दूसरे प्राणीको पाखण्डी क्यों कहा ?

उत्तर—शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें चारों वेदोंका राक्षस नाश करते हैं, परन्तु कलियुगमें पाखण्डी लोग निश्चय चारों वेदोंका नाश करेंगे। कलियुगमें जो प्राणी उत्पन्न होंगे उन प्राणियोंको सिखानेके लिये तथा चतुर करनेके लिये कलिकालके प्राणी विद्वान् होंगे तो वेदकी रक्षा होगी, इसलिये दूसरेको पाखण्डी कहा, क्योंकि अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये थोड़ा भेद करते हैं।

रहित होकर पृथ्वीका पालन करते थे। हे पाण्डववंशावतंस परीक्षित्! इस कारणसे इतिहासके जाननेवाले पुण्य पुरुष अनेक-अनेक गाथायें रचकर उनका यश और पवित्र चरित्र गाया करते हैं॥७॥८॥ उन गाथाओंका अर्थ यह है कि महात्मा गय यज्ञस्वरूप, मनस्वी धर्मरक्षक, श्रीमान् साधुजनोंकी सभाके पति और साधुओंके सेवक हैं, इससे भगवान्के अंशके विना और कौन नृपति कामादिकसे उनकी बराबरी कर सकेगा? अर्थात् वह भगवान्के अंश हैं वह अपने आप ही अपनी समता कर सकते हैं॥९॥ (और भी) जिन साध्वी दक्षकी कन्याओंका आशीर्वाद अव्यर्थ है ऐसी उन कन्याओंने नदियोंके सहित परमहर्षसे जिनका अभिषेक किया था और जिनके कल्याणविषयमें निराकांक्षी होनेपर भी गुणरूप वत्सद्वारा स्तनस्पृशा आनेसे धरणीने जिनकी प्रजागणोंके लिये अनेक-अनेक कल्याण स्वयं ही दोहन कर दिये थे, भला उनकी कर्मोंमें बराबरी करनेको कौन समर्थ होगा?॥ १०॥ (और भी) जिसके निष्काम होनेपर भी समस्त वेद अथवा वेदोक्त कर्म उसकी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण करते थे और राजालोग समरक्षेत्रमें शरोंसे पूजित होकर जिसको (कर) देते थे और ब्राह्मण लोग पालन और दक्षिणादिक पूजा पाकर अपने-अपने धर्म और पुण्यके फलका छठवां भाग जिसको देते थे, ऐसा कौन पुरुष उसके समान कार्य करनेको समर्थ होगा?॥ ११॥ (और भी) जिसके यज्ञमें बहुत सोमपान करनेसे यज्ञमूर्ति भगवान् इंद्र अतिशय मत्त होते थे और उससे श्रद्धा सहित शुद्ध और अविचल भक्तियोगसे अर्पण किये हुए यज्ञकी पूजाको पूज्य द्रव्यके समान श्रीभगवान् प्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते थे, उस महाप्रतापी राजाकी बराबरी कौन कर सकता है?॥ १२॥ (अथवा) जिन भगवान्के प्रसन्न होनेसे देवता, मनुष्य, पशु पक्षी, लता, तृण इत्यादिसे लेकर ब्रह्माजी और सब ब्रह्माण्ड प्रसन्न हो गया था, आप विश्वनाथ विश्वंभर सर्वान्तर्यामी साक्षात् वेदस्वरूप भगवान् विष्णुजी गय राजाके यज्ञमें "हम तुम्हारे यज्ञमें प्रसन्न हुए" यह कहकर स्वयं प्रसन्नता प्रकाश करते थे, इस कारण कौन पुरुष इस गय राजाके समान हो सकेगा॥१३॥ उक्त राजर्षि गयसे जयन्तीनाम स्त्रीके गर्भमें चित्ररथ, सुगति और अवरोधन नामक यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों पुत्रोंमें चित्ररथकी भार्या ऊर्णा हुई, उसके गर्भसे सम्राट् नामक एक पुत्रने जन्म लिया॥१४॥ सम्राट्ने उत्कला नामक स्त्रीमें मरीचिनामक एक पुत्र उत्पन्न किया। मरीचिसे बिंदुमतीके गर्भमें विंदुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुए, बिंदुमानसे सरधा नाम स्त्रीमें मधु नामक राजर्षिने जन्म लिया, इन मधुकी स्त्री तुमनामें वीरव्रत उत्पन्न हुए, इन वीरव्रतने भोजा नामिका अपनी स्त्रीके गर्भसे मन्थु और प्रमन्थु यह दो पुत्र उत्पन्न किये। उन मंथुकी स्त्री सत्या हुई, उससे भौमनका जन्म हुआ, इन भौमनसे दूषणा नाम स्त्रीमें त्वष्टाने जन्म लिया। उन त्वष्टाकी स्त्री विरोचना हुई, इसके गर्भमें विरज जन्मे, विरज बड़े महात्मा थे। उनकी स्त्रीका नाम विषूची था, उसके गर्भसे विरजके सौ (१००) पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई॥ १५॥ इन विरजका गुण कीर्तन करनेके विषयमें एक श्लोक है कि प्रियव्रतके वंशमें सबसे पीछे राजा विरजका जन्म हुआ; जिस प्रकार भगवान् विष्णुजी देवताओंको सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार विरजने अपनी कीर्ति और गुणोंसे इस वंशकी शोभाका विस्तार किया॥ १६॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

दोहा—रचना सकल सुमेरुकी, सोलहमें कहौं गाय।
पृथ्वीरूपी कमलकी, जुदे कर्णिका प्राय॥

अनन्तर श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् कहने लगे, कि हे ब्रह्मन्! भगवान् सूर्य नारायण अपनी किरणोंसे जहांतक प्रकाश करते हैं और जहां-जहां निशानाथ चन्द्रमा शुक्ल और कृष्णपक्षमें तारागणोंके सहित दीख पड़ते हैं, वहांतक भूमण्डलके विस्तारका विशेष वर्णन आप कर चुके हैं॥ १॥ उतने परिणाममें भूमण्डलके मध्य राजा प्रियव्रतके रथके पहियेसे खुदकर सात समुद्र बने हैं, दूसरे हे भगवन् अपने इन सात समुद्रोंसेही इस भूमंडलके मध्यका और सातों द्वीपोंका संक्षेपमात्र ही वर्णन किया है। इन सब द्वीपोंका परिणाम और लक्षण-युक्त विशेष विस्तार सहित सब वृत्तान्त सुननेकी हमारी अत्यन्त अभिलाषा है॥ २॥ हे योगिन्! भगवान्के गुणमय स्थूलरूप (ब्रह्मांड) में लगा हुआ मन भी कदाचित् निर्गुण सूक्ष्मतम स्वयं प्रकाश परब्रह्म स्वरूप जो परमपुरुष वासुदेव हैं, उनमें निवेशित होनेको सामर्थ्यवान् होगा, इसलिये हे गुरो! अनुगह करके इस विषयको वर्णन कीजिये॥३॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे महाराज! पुरुष यदि दैवसमान परमायुको प्राप्त हो तो भी विशेष रचनाके नाम और रूप भगवान्की मायाकी विभूतिका अन्त मन वचनसे जाननेको समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये प्रधान-प्रधान द्वीपोंके नाम, स्थिरता और चिह्न वर्णन करके ही तुम्हारे निकट भूगोलके सब स्थानोंकी व्याख्या करेंगे॥ ४॥ हे राजन्! यह भूमंडल एक बड़े भारी कमलका स्वरूप है, सप्तद्वीप उसके कोप हैं, इस सप्तद्वीपरूप कोषके मध्यमें मध्यवर्ती कोष जम्बूद्वीप है यह द्वीप पहला है, इसकी चौड़ाई और लम्बाई लक्ष योजनकी है यह जम्बूद्वीप कमलपत्रके समान चारों ओरसे गोल है॥ ५॥ इस द्वीपमें नौ खंड हैं, इन नौ खंडोंमें भद्राश्व और केतुमालखंडके सिवाय प्रत्येकका विस्तार नौ नौ सहस्र योजन है; यह नौ खण्ड आठ सीमा पर्वतोंसे सुन्दर भांतिसे विभक्त किये हैं॥६॥ इन सब खण्डोंके मध्यमें इलावृत्त नामक खण्ड है, जो सबके अभ्यन्तर है, उसके मध्यस्थलमें सब कुलाचल पर्वतोंका राजा और सर्वतः सुवर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है। इस सुमेरु पर्वतकी ऊँचाई और इस द्वीपका विस्तार परिणाम लक्ष योजन है, यह पर्वत चोटीकी ओर (बत्तीस हजार योजन) और मूलमें (सोलह हजार योजन) फैला हुआ है, और पृथ्वीमें भी सोलह हजार योजन गड़ा हुआ है और बाहिरी भागमें चौरासी हजार योजन दिखाई देता है, जो हो, यह सुमेरु पर्वत इस प्रकारसे भूमण्डल बड़े भारी कमलकी कर्णिका (डंडी) का रूप हुआ है॥७॥ हे राजन्! इलावृत्त वर्षके उत्तर भागकी उत्तरादि दिशाओंमें बराबर बगबर नीलगिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान् गिरि हैं, यह तीनों पर्वत यथाक्रम रम्यक वर्ष, हिरण्यमय वर्ष और कुरु वर्षके सीमापर्वत स्वरूप हो रहे हैं, यह तीनों पर्वत पूर्वकी ओर लम्बे हैं, इन तीनों पर्वतोंकी दोनों कक्षाओं (बगल) में क्षार समुद्रतक सीमा है, इनका विस्तार दो हजार योजन है। इन पर्वतोंमें-प्रथम पर्वतकी अपेक्षा पिछला पर्वत लम्बाईमें दशांशसे कुछ अधिक भागमें कम है। अर्थात् केवल एकादश अंश दीर्घताके परिणाममें छोटे हैं॥ ८॥ इस प्रकार इलावृत्त वर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक क्रमसे तीन पर्वत हैं, ये तीनों पर्वत पहले कहे हुए नीलादि पर्वतोंके समान पूर्व दिशाकी ओर लम्बायमान हैं और प्रत्येक दश-दश हजार योजन ऊँचे हैं। हे राजन्! यह तीनों पर्वत यथाक्रमसे हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष और

भारतवर्षके सीमा पर्वत हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकारसे उक्त इलावृत्त वर्षके पूर्व और पश्चिम दिशामें यथाक्रम माल्यवान् और गंधमादन नाम पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत उत्तरमें नील पर्वत और दक्षिणमें निषेधाचलतक लम्बे हैं और दो-दो हजार योजन चौड़े हैं। यह दोनों यथाक्रम केतुमाल और भद्राश्व वर्षकी सीमा हो रहे हैं ॥ १० ॥ सुमेरुके चारों ओर मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व और कुमुद नामक चार पर्वतरूपी खम्भ हैं, इन पर्वतोंमें प्रत्येकका विस्तार और ऊँचाई दश-दश हजार योजन है, इन चारों पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिम देशके पर्वत पूर्व पश्चिमको फैले हुए हैं ॥ ११ ॥ इन चारों पर्वतोंपर चार ही सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं, पूर्व दिशा की ओर मन्दर पर्वत पर आम, दक्षिण दिशामें मेरुमन्दर गिरिके ऊपर जामुन, पश्चिम दिशाकी लतामें सुपार्श्व भूधरके ऊपर कदम्ब और उत्तर दिशाकी सीमामें कुमुद शैल पर वट, यह वृक्ष पर्वतोंकी ध्वजाके समान दृष्टि आते हैं, और ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे और ग्यारह-ग्यारह सौ योजन उनकी शाखाओंका विस्तार है। और सौ-सौ योजनकी मुटाई है ॥ १२ ॥ हे भरतकुलश्रेष्ठ! इन चार वृक्षोंके निकट ही चार ह्रद हैं, उनमेंसे एकमें दुग्ध जल, दूसरेमें मधुजल, तीसरेमें ईखके रसका जल और चौथेमें शुद्ध मीठा जल है। इन चारों ह्रदोंके जलमें अतिशय चमत्कार है, उपदेवता लोग इन ह्रदोंके जलका सेवन करके स्वाभाविक योगैश्वर्य धारण करते हैं ॥ १३ ॥ इस स्थानमें ऊपर कहे हुए चार ह्रदों के अतिरिक्त चार श्रेष्ठ उद्यान भी हैं, इन सबके नाम यथा नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र हैं ॥ १४ ॥ इन सब उद्यानोंमें प्रधान-प्रधान देवता जो देवांगनाओंमें रत्नस्वरूप स्त्रियोंके पति हैं। वे अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ मिलकर विहार किया करते हैं इस प्रकारसे विहार करनेके समय उपदेवतागण उनकी महिमा गाया करते हैं ॥ १५ ॥ मन्दर पर्वतके मध्यमें देवताओंका जो एक आमका वृक्ष है, वह ग्यारह योजन ऊँचा है, उस वृक्षके अग्रभागसे सदा अनेक-अनेक अमृततुल्य बहुत मधु फल गिरा करते हैं। यह सब फल पर्वतोंके शिखरके समान बड़े-बड़े होते हैं ॥ १६ ॥ इन सब बड़े-बड़े फलोंकी अति मधुर सुगंधि है और जब यह गिरकर फटते हैं, तब सौरभ सुवासित अरुण वर्णका रूप होनेसे धाराप्रवाह इनका रस ही जल स्वरूप होनेसे उसमें अरुणोदा नामक एक नदी हुई है, वह नदी मन्दर पर्वतके शिखरसे निकलकर पूर्वकी ओर इलावृत्त खण्डको पवित्र करती हुई पूर्वकी ओर को चली गयी है ॥ १७ ॥ इस जलके सेवन करनेसे ही भवानीजीकी अनुचरी यज्ञाङ्गनाओंके अङ्गमें सुगंधि हो जाती है, उनके शरीरको छूकर पवनमें ऐसी सुगंधि हो जाती है कि चारों ओर दश-दश योजनतक वह सुगंधियुक्त पवन आमोदित करती रहती है ॥ १८ ॥ इस प्रकार जंबू वृक्षके समस्त फल जो हाथीके शरीरके समान बड़े और कृष्णवर्ण होते हैं और जिनकी गुठली अति छोटी होती है, जब वे ऊपरसे गिरते हैं तो फट

१. शंका—कदम्ब, आम्र जामुन, बड़ इन वृक्षोंका चरित्र सुनकर तथा इन वृक्षोंसे उत्पन्न हुए जो नदी तथा कुण्ड सब पदार्थोंको देनेवाले सुनकर हमारा चित्त अत्यन्त चकित हो रहा है, और कांपता है, क्योंकि आज तक ऐसी बात सुननेमें नहीं आयी, कि नदीमें और कुण्डमें सब पदार्थ भरे रहते हैं ?

उत्तर—जब ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब अपने-अपने धर्ममें और वेदके मार्गमें दृढ़ और स्थित थे। तब नदियोंका, कुण्डोंका, वृक्षोंका जो जो प्रभाव श्रीमद्भागवतमें लिखा है वह सब सत्य था। जब चारों वर्णोंने कलियुगमें अपने-अपने धर्मको और वेदमार्गको त्याग दिया और पाखण्डी बन पाखण्ड मतको ग्रहण किया, तब भगवान्ने समझा कि ये दुष्ट इन स्थानोंको भी भ्रष्ट करेंगे यह विचार कर उन कुण्ड और वृक्षोंको गुप्त कर दिया और सब किसीका प्रभाव हर लिया!

जाते हैं और उनके रससे जम्बू नाम एक नदी उत्पन्न हुई है, वह नदी मेरु मंदरके शिखरसे दश हजार योजन ऊँचेसे पृथ्वीपर गिरती है और जिस स्थानमें गिरती है उस स्थानसे अपने दक्षिणमें समस्त इलावृत वर्षमें व्याप्त होकर बह रही है ॥१९॥ इस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उसके जलके रससे भीगी वायु और सूर्यके संयोग भलीभांति पक जानेपर जम्बूनद नामक महामूल्यवान् सुवर्ण हो जाता है, जिस सुवर्णके देवादि सबही अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ मुकुट, कटक, कटिमेखला, इत्यादि आभरण बनाकर पहना करते हैं ॥२०॥ सुपार्श्वपर्वतकी कक्षामें महाकदम्ब नामक जो बड़ा भारी कदम्बका पेड़ है, उसके समस्त कोटरोंसे पांच-पांच मधुकी धारा उस पर्वतपरसे गिर अपने पश्चिमकी ओरमें इलावृत वर्षको अपनी सुगंधिसे चारों ओर सौ-सौ योजनतक सुवासित कर देती है ॥२१॥ जो प्रजागण इसी पर्वतकी मधुधाराओंका सेवन करते हैं, उनके वदनकी सुगंधिके स्पर्शसे वायु सुगंधित होकर सौ-सौ योजन तक चारों ओर महका देती है ॥२२॥ इसी प्रकारसे कुमुद पर्वतपर शतवर्ण नामक जो वटवृक्ष हैं उसके स्कन्धोंसे नीचे दही, दूध, घी, मधु, गुड अन्न इत्यादि हैं और वसन, भूषण, शयन, आसनादि समस्त मनोवांछित वस्तु दोहनकारी जो नद इस पर्वतके अग्रभागसे निकलकर अपने उत्तर इलावृत्त देशको महोपकार करके उत्तरकी ओर समुद्रमें मिल गये हैं ॥२३॥ इन नद नदियोंमें स्नान करनेसे वहां रहनेवाले प्रजागणोंको कभी अंगकी विकलता, थकावट, खेद, जरा, रोग, अकालमृत्यु, शीत वा गरमीके कारण विलावन और विघ्न आदि जो संतापविशेप हैं वह सब कुछ भी नहीं होते, केवल महासुख भोगमें ही समय बिताया करते हैं ॥२४॥२५॥ हे राजन् ! कुरंगी, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनि, वास, कपिञ्जल, शंख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नीरद प्रभृति वीस पर्वत सुमेरुके मूलमें चारों ओर बने हुए हैं, जिनसे कि यह पर्वत कर्णिका अर्थात् कमलपत्रके समान है और सुमेरु पर्वतके केशरकी नांई है॥२६॥सुमेरु पर्वतके पूर्व ओर जठर देवकूट पर्वत हैं। यह दोनों पर्वत प्रत्येक उत्तर दिशाको अठारह हजार योजन लम्बे और दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं। इसी प्रकार सुमेरुके पश्चिम दिशामें पवन और पारियात्र दो पर्वत हैं, जो दक्षिण दिशाकी ओर लम्बे हैं। दक्षिण दिशामें कैलास और करवीर गिरि हैं। यह दोनों पर्वत पूर्वकी दिशाको लम्बे हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और मकर नाम दो पर्वत हैं, यह पश्चिमकी ओर विस्तृत हैं, इस प्रकार मूलसे सहस्र योजन परित्याग करके चारों ओर अग्निकी परिधिके समान इन आठ पर्वतोंसे घिरा हुआ काञ्चनगिरि अर्थात् सुमेरु पर्वत चारों ओरसे प्रकाश कर रहा है ॥ २७ ॥ इसके जाननेवाले पंडित लोग कहते हैं कि इस सुमेरुके मस्तक पर सबसे ऊँची मध्यस्थलमें भगवान् आत्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी निर्मित है, उसका विस्तार दशहजार योजन है, वह सुवर्णकी बनी हुई है और चारों ओर समान चतुष्कोण है ॥२८॥ इस पुरीके ऊपरी भागमें पूर्वादि सब दिशाओंमें क्रमसे उत्तरादि अष्ट लोकपालोंकी आठ पुरी बनी हुई हैं, इन सब पुरियोंका वर्ण उनमें रहते हुए लोकपालोंके वर्णके समान है। और प्रत्येकका परिमाण ब्रह्मपुरीके परिमाणसे चतुर्थ अंश अर्थात् ढाई हजार योजन है ॥ २९ ॥ और इसमें जो कुछ अन्यथा हो, वह कल्पांतर भेदसे जान लेना, यथोक्तम्-

श्लोकः-मेरौ नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती।
तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गना परा ॥ १ ॥

श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया।
यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् ॥ २ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते पंचमस्कन्धे भुवनकोपवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–सत्रहवें सब दिशनमें, श्रीगंगाको गौन।
इलावृत्तमें शम्भुकृत, संकर्षण व्रत भौन॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परिक्षित् ! इस अध्यायमें कलिमलदल–हरणी, परमानन्दकरणी, सर्वसुखदायिनी, श्रीगंगामहारानीके माहात्म्यकी कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये। साक्षात् श्रीभगवान् विष्णुजीने जब बलि राजाके यज्ञमें जाकर अपना विराट्रूप धारण कर तीनों लोकोंको नापा, उस समय दाहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर जैसे ही बांयां चरण ऊपरको उठा रहे थे, वैसे ही वामचरणके अंगुष्ठ नखसे ब्रह्माण्डके ऊपरी भागके कटनेसे जो छिद्र हुआ था, उस छिद्रमेंसे चरण–विहारिणी, भयभवनिस्तारिणी, गंगाजीकी जो ब्रह्मधारा, ऊपर स्थित हुए ब्रह्माण्डके भीतर पैठी थी, यह वही धारा–मस्तकसे उतरकर पृथ्वीमें उतरी है। यह जलकी साधारण धारा नहीं है, इसकी धारासे धुलनेके कारण भगवान्के चरणकमलमें लगा हुआ जो कुंकुम अरुण वर्ण हो गया था उसके नागकेशर सदृश रंग जानेसे इस धाराने अत्यन्त शोभा धारण की थी। यद्यपि इससे अखिल जगत्का मल विनाशको प्राप्त हो जाता है, तो भी यह वारिधारा आप ही अत्यन्त निर्मल है और भगवान्के चरणोंसे उत्पन्न हुई, इस लिये इसके "जाह्नवी, भागीरथी" इत्यादि नाम रक्खे गये हैं, हे राजन् ! विष्णु भगवान्के चरणकमलसे निकली हुई, यह गंगाजी यद्यपि बलि राजाके यज्ञसमय उपस्थित ब्रह्माण्डके भीतर छिद्रमें प्रविष्ट हुई थीं, तो भी वहांसे सहसा पृथ्वीपर नहीं आयीं। बहुत बड़े काल अर्थात् दो सहस्र युगके पीछे स्वर्ग–मस्तकसे पृथ्वीपर उतरी हैं। हे राजन् स्वर्गका मस्तक किसे कहते हैं, उसका वृत्तांत भी संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, तुम श्रवण करो। पंडितलोग जिसको विष्णुपद कहते हैं, वही स्वर्गका मस्तक है ॥ १ ॥ उत्तानपादके पुत्र परमभागवत वीरव्रत, दृढ़संकल्प ध्रुवजी विराजमान थे, उन्होंने श्रीगंगाजीको देख मनमें परमानन्द मानकर कहा, कि यह हमारे कुलदेवता भगवान् हरिके चरणका जल है, ऐसा मनमें समझ प्रतिज्ञा सहित अबतक प्रतिदिन परम आदर-सन्मानसे अपने मस्तकपर उस वारिधारा (गंगा) को धारण कर रहे हैं। इन महात्मा ध्रुवजीके हृदयका मध्यभाग क्षण-क्षणमें बढ़ती हुई भक्तिके योगसे अत्यन्त द्रवीभूत होता है, इस कारण उत्कंठासे विवश उनके कुछेक बंद हुए कमलरूपी युगल नेत्रोंसे अश्रुबिंदु गिरते हैं, और सर्व शरीरमें रोमांच हो आता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! गंगाका प्रभाव जाननेवाले महर्षिगण "यही गङ्गा तपस्याकी परमसिद्धि है इनसे और कोई सिद्धि नहीं है" इस प्रकारका निश्चय करके अपनी-अपनी जटाके समूहमें इन गङ्गाजीको धारण करते हैं, हे भारतवंशावतंस ! सप्त ऋषियोंके इस प्रकारके निश्चय होनेका हेतु यह है कि, सबके आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवमें एकान्तिक भक्तियोग प्राप्त करनेसे और दूसरे पुरुषार्थ व आत्मज्ञानमें जिसकी आस्थामात्र नहीं वरन् उससे दूर रहनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये इस प्रकारके निर्लोभी मुमुक्ष जन जैसे

मुक्तिको धारण करते हैं, उन्हींके समान परमयत्न और आदर-सत्कार सहित वह सप्तर्षि गंगाजीको धारण किये रहते हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीके चरणसे उत्पन्न हुई यह गंग जी सप्तऋषियोंके स्थानसे हजारों करोड़ों विमानोंके समूह जिसमें शोभित हैं, ऐसे आकाश मार्गसे उतरकर चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई सुमेरु पर्वतपर स्थित हुए ब्रह्माके सदन (स्थान) में गिरती हैं ॥४॥ वहांपर अलग-अलग नामसे चार धाराओंमें विभक्त होकर सर्वतः (चारों ओरको) बहती हुई सरित्पति समुद्रमें मिली हैं। उन चारों धाराओंके नाम यह हैं—सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा ॥ ५ ॥ उन चार धाराओंमें प्रथम ही सीता ब्रह्मसदनसे प्रकट हो, केसराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई प्रधान-प्रधान शिखरोंपर गिरती है, इसके पीछे इन सब शृङ्गोंसे क्रमसे नीचेको बहकर गंधमादन पर्वतके शिखरोंपर गिरकर फिर भद्राश्व खण्डके मध्यमें बहकर पूर्वकी ओर लवण समुद्रमें मिल गयी है ॥ ६ ॥ इसी प्रकारसे चक्षुनामक धारा माल्यवान् पर्वतके शिखरसे निकलकर महावेगवती केतुमालखंडके सम्मुख होती हुई पश्चिम दिशाके समुद्रमें जाकर मिली है ॥ ७ ॥ भद्रा नामक धारा उत्तर दिशामें सुमेरुके शिखरसे गिरकर एक शिखरसे दूसरे पर्वतके शिखरपर होती हुई कुमुद पर्वतके शिखरसे चलकर नीलगिरि शिखरपर आयी है। वहांसे बहकर श्वेतपर्वतके शृङ्गपर वहांसे शृङ्गवानपर्वतपर पहुँच वहांसे नीचे गिरी और उत्तर कुरुदेशमें होकर क्षार समुद्रमें मिली है ॥८॥ अलकनन्दा नामक धारा भी इसी प्रकारसे पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती ब्रह्मलोकसे गिरती, बहुतसे गिरि-शृङ्गोंको उल्लंघन करती हुई, बड़े भारी तीव्रवेगसे लुढ़कती, हेमकूटमें होती हुई, भारतवर्षमें व्याप्त होकर दक्षिणकी ओर लवण समुद्रमें जा मिली है। गंगामें स्नान करनेके लिये आये हुए मनुष्योंको एक-एक पगपर अश्वमेध व राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ हे राजन् और भी बहुत भांतिके नद-नदी सुमेरु इत्यादि पर्वतोंसे उत्पन्न होकर प्रत्येक खण्डमें शत-शत धाराओंसे बहती हैं ॥ १० ॥ परन्तु जितने खण्ड हैं, सबमें भारतवर्षको ही कर्मक्षेत्र कहते हैं और जो आठ खण्ड हैं, वे स्वर्ग-वासियोंके शेष पुण्य भोगनेके स्थान हैं। वह स्वर्ग नामसे विदित भूमिके विकार ही हैं ॥ ११ ॥ इन आठ वर्षोंमें जो पुरुष वास करते हैं, उनकी आयु दश सहस्रवर्षकी होती है। देवताओंका सा रूप होता है, और दश हजार हाथियोंके समान उनमें बल होता है, वज्र तुल्य दृढ़ शरीर होता है, उस शरीरमें ऐसा बल वयस व हर्ष होता है, कि उससे सुरत सम्बन्धीय मिथुन (स्त्री पुरुष अतिशय प्रमुदित होते हैं) और सम्भोग करनेके अन्तमें एक वर्षकी आयु जब रह जाती है, तब उन लोगोंकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकारसे विषयसुखकी श्रेष्ठताके हेतु इन सब वर्षोंमें पुरुषोंका त्रेतायुगके समान परम सुखसे समय व्यतीत होता है ॥१२॥ इस लिये इन सब खण्डोंके मनुष्य देवपति हैं; वे सब अपने-अपने योग्य स्थानोंमें अपने-अपने मुख्य सेवकोंसे पूजित होकर अपनी-अपनी इच्छानुसार बड़े-बड़े महात्मा पुरुष आश्रमोंमें, पर्वतोंमें, कन्दराओंमें, और निर्मल जलाशयोंमें अनेक-अनेक प्रकारसे जलविहार करते रहते हैं और छहों ऋतुओंमें वहांके वृक्षोंकी शाखाओंमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे फूल रहे हैं, हरे-हरे पत्तोंके समीप कोमल-कोमल कोपलें पीली, लाल, हरित ऐसी शोभा दे रही हैं मानो मनको विनामूल्य मोल लिये लेती हैं और डाली-डालीपर फलोंकी छबि निराली ही समृद्धियोंसे भरी पृथ्वीकी ओर झुकी रहती हैं, जैसे धनी पुरुष धन पाकर नीचा हो

जाता है, उनपर भांति-भांतिके पुष्पोंसे लदी लहलहाती चुहचुहाती हुई लताओंने जिन लम्बे-लम्बे द्रुमोंका आश्रय ले रक्खा है, तो भी पुष्पोंके अधिक, भारसे और पवनके संचारसे नीचेको ऐसी झुक जाती हैं मानो पृथ्वीको अपनी जननी समझकर वारंवार शिर झुका-झुकाकर नमस्कार कर रही हैं और वायुके वेगसे जो सुमन गिरते हैं, मानो झरझर कर अपनी माता वसुन्धराको चढ़ाती ही हैं, ऐसे सुन्दर-सुन्दर शोभायमान वनके वृक्षोंसे आश्रमोंमें जहां-तहां अद्भुत छबि छा रही है और वहां जो सुन्दर-सुन्दर ताल और सरोवर हैं उनकी शोभा कहांतक वर्णन किया जाय ?

चौ०—सुन्दर नीर झकोरत निशिदिन * कच्छप मीन रहत तहँ श्रम बिन॥
सरसी सरस सरोवर सोहैं * विकसित वारिज वन मन मोहैं॥

उन नवीन-नवीन भांतिके विकसित कमल और कलियोंकी सुगंधसे प्रसन्न हो होकर राजहंस, कलहंस, जलमुर्गाबियां, कारण्डव, सारस और चकवे इत्यादि पक्षियोंके कलरवसे और भँवरोंके समुदायकी गुञ्जार जलाशयमें सुन्दर-सुन्दर सुरसुंदरी सुन-सुनकर मन ही मन आनंदित हो, परम पवित्र जल देख-देख अनेक-अनेक प्रकारकी जलकीड़ा कर कर कामदेवसे क्षुभित हास विलासादिकोंसे जिनके मन वशीभूत हो रहे हैं और उनके हावभावको निहार-निहार वहांके जलविहार करनेवाले देवताओंके मन और नेत्रोंका मकनातीस (चकमक) पत्थरके समान परस्पर खींचतानी हो रही थी ॥१३॥ इन कहे हुए खण्डोंमें महापुरुष भगवान् नारायण भक्तोंके ऊपर परम अनुग्रह करनेके लिये अपनी मूर्तियोंके समूहमें आजतक सम्यक् प्रकारसे विराजमान हो रहे हैं ॥ १४ ॥ इलावृत खंडमें सदा सहस्र शिरवाले संकर्षणका ही पूजन होता है और वही महादेवके हृदयमें वास करते हैं, इसलिये इलावृत—खंडमें भगवान् शिव ही एक पुरुष हैं, वहां और कोई पुरुष नहीं है, क्योंकि लोग श्रीभवानीके शापको जानते हैं, वे लोग कभी उस स्थानमें भूलकर भी पांव नहीं रखते और जो कोई पुरुष विना जाने-बूझे उस खण्डमें चला भी जाता है तो वह तत्क्षण स्त्रीस्वरूप हो जाता है, इसका विशेष वृत्तान्त पीछे नवम स्कन्धमें कहेंगे ॥ १५ ॥ इस इलावृतखण्डमें भवानीवल्लभ पार्वतीपति भूतनाथकी असंख्यता अर्बुद पार्वतीकी अनुचरी (स्त्रीगण) दिन-रात शिवजीकी सेवा करती हैं, शिवजी महाराज शेषभगवान्की आराधना किया करते हैं, वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस नामकी चार मूर्ति महापुरुषकी चौथी तामसी अपनी आत्माकी प्रकृति संकर्षण भगवान्कारूप धारण कर अपनी समाधि रूपसे जिससे स्वयं आप प्रकट हुए हैं, उसी प्रतिमासे अन्तर्वर्ति चैतन्य होकर भगवान् महादेवजी इस मन्त्रका दिन रात जप करते रहते हैं ॥ १६ ॥

श्रीसंकर्षण मन्त्र

"ओं नमो भगवते महापुरुषाय सर्व गुणसंख्याना-
यानन्तायाव्यक्ताय नमः ॥"

अर्थ—उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान् महापुरुष, सर्वगुणप्रकाशक, अनन्त अव्यक्त श्रीसंकर्षण भगवान् को मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥१७॥ हे भजनीय भगवन् ! सम्पूर्ण ऐश्वर्य देनेवाले, भक्तिके परम स्थान, अपने भक्तोंके अत्यन्त आदरदायक, अपने

जनोंको अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन देनेवाले, संसार नाशक, सब जन जिनकी भावना करें, ऐसे परमेश्वरके शरणागतरक्षक चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ॥१८॥ मायाके गुण चित्तकी वृत्तिसे आप प्रतिदिन देखते हैं, तो अपनी दृष्टिको किंचिन्मात्र लिप्त नहीं करते जैसे हम लोग क्रोधके वेगको जीतनेका सामर्थ्य नहीं रखते, इसलिये हमको इस संसार-सागरसे बचना कठिन है, ऐसे आप ही अपनी आत्माको जीतकर वशमें रखते हैं, इसलिये जो अपनी आत्माको जीतनेकी इच्छा करे; अर्थात् मोक्षपदको लेना चाहे, वह कौन सामर्थ्यवान् है जो आपका भजन न करे ? ॥ १९ ॥ अज्ञानी, कुबुद्धि, मायासे विमोहित असत् दृष्टिवाले मनुष्यको आपके मद भरे लाल-लालनेत्र मतवालेके सदृश, भयानक रूप मायासे दृष्टि आते हो, देखो ! कि लज्जाकी मारी नागवधू विधानपूर्वक आपकी पूजा भी करती हुई डरती हैं और आपके चरणारविन्दोंका स्पर्श भी नहीं कर सकतीं, क्योंकि मनोभावसे ग्रसी हुई कामातुर हो रही हैं, कदापि कोपदृष्टिसे देखकर हम भस्म कर दें और दूसरे चन्दन और पुष्पादिको कोई इसलिये भी नहीं चढ़ा सकतीं. कि आपके कोमल पदोमें चन्दनके कण और पुष्पोंकी पंखुरियां कहीं चुभ न जायँ ॥ २० ॥ इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहारके करनेवाले अनन्त और सन्त और वेद मन्त्र आपको उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयसे रहित कहते हैं आपके दश सहस्र मस्तकोंमेंसे न जाने कौनसे मस्तकपर यह अण्डकटाह सरसोंके दानेके समान रक्खा है, इस बातकी आपको इतनी भी सुध नहीं, ऐसे शेष भगवान्‌के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ जिनका आद्य महत्तत्त्व और सत्त्वगुण जिसका आश्रय है, वह आपके गुणसम्बन्धसे महाविज्ञानरूप सत्त्वप्रधान भगवान् वासुदेव हुए, उनकी नाभिसे भगवान् ब्रह्माजी हुए, जिनसे मैं रुद्र होकर त्रिगुणात्मक अपने तेज अहंकारसे, देवता-वर्गभूत-वर्ग और इंद्रिय-वर्गको उत्पन्न करता हूं ॥ २२ ॥ जैसे कीट और विहंग रस्सीसे बँधकर पराये वशमें हो जाते हैं, इसी प्रकार आपके वशमें होकर यह हम सब महत्तत्त्व, देवता, भूत और इंद्रियगण हो रहे हैं, जिनके अनुग्रहसे हम सव ब्रह्माण्डको बनाते हैं और आपको कारयिता कहते हैं ॥२३॥ जिनकी रची हुई माया कर्मोंकी पूर्वरूप धारिणी मायाको गुणसर्गोंसे मोहित होकर जो जन उसको सहज जानते हैं, परन्तु इस बातका कुछ भी उपाय नहीं कर सकते कि किस रीतिसे हमारा निस्तार होगा, जिनकी ऐसी मनमोहिनी अद्भुत माया है ऐसे विश्वके उत्पन्न पालन और नाशकर्ता भगवान्‌के अर्थ हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥ २४ ॥

भजन

तेरी महिमा अपरम्पार किसीने पार न पाया रे ।
योगी यती संन्यासी अमर है जिनकी काया रे ।
हरि हरि हरि रटते ही जिनने जन्म गमाया रे ॥ १ ॥
शष सहस मुख रटत पञ्चमुख शिवने गाया रे ।
चार मुख ब्रह्माने चारों वेदोंको सुनाया रे ॥ २ ॥
किसीने घरमें बैठ जनक सम योग कमाया रे ।
कोई बनके वैरागी त्यागी जगमें कहलाया रे ॥ ३ ॥

कोई विना तंतरी मंत्र मरघटमें जगाया रे।
किसीने बनके ध्यानी ध्यान रघुवरसे लगाया रे॥
हरिकी शालिग्राम जगतमें अद्भुत माया रे।
सबने खोजा पर खोज किसीके हाथ न आया रे॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे इलावृतखंडे भगवत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

दोहा–छहों खंडमें जो वसत, प्रभु अरु प्रभुके दास।
अष्टादशमें सबनके, कहौं चरित्र विलास॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! भद्रखंडमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा नामक खंडपति और उसके प्रधान-प्रधान सेवक लोग वास करते हैं, वे साक्षात् भगवान् वासुदेवकी धर्ममयी हयग्रीवजीकी परमप्रिय मूर्तिको उत्तम समाधिसे अपने-अपने हृदयमें धारण करके वक्ष्यमाण मन्त्रका जप करनेके समय यह स्तुति करते हैं॥ १॥

श्रीहयग्रीवभगवतो मन्त्रः

"ओं नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः॥"

भद्रश्रवा बोले कि–उत्पत्ति, पालन, संहारकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान्, आत्माके शुद्ध करनेवाले धर्मस्वरूप आपको वारंवार मेरा नमस्कार है॥ २॥ अहो श्रीभगवान्‌की गति अति विचित्र है, कि लोग प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे देखते हैं, कि दिन रात प्राणी कालके मुखमें चले जाते हैं, तो भी प्राण हरण करनेवाली मृत्युकी चिंता नहीं करते बरन् और अधिक असत् कर्मोंके सेवन करनेका ध्यान करते हैं और जब बालक सन्तान व वृद्ध पिताके मर जानेसे उनकी दाह क्रिया करके जानते भी हैं कि कालकी यह करालगति है तो भी अपने आपको अजर अमर समझकर उस धनको सम्मान भावसे ग्रहण करके उससे अपना जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं, सो यह भी नहीं कि उस धनसे धर्मको संचय करें, बरन् किंचित् विषयसुखके भोगनेकी लालसासे केवल पाप–कर्मका ही विचार किया करते हैं॥ ३॥ हे प्रभो! हम ऐसा नहीं कह सकते, कि विद्वान लोग इस विश्वकी आलोचना नहीं करते। हम प्रकट ही देखते हैं कि पंडित लोग इस संसारको नाशवान् कहते हैं और आत्मतत्त्वके जाननेवाले योगीजन समाधि लगानेके समय जिसको नाशवान् होना प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं तो भी हे अज! वे लोग तुम्हारी मायासे मोहित हो जाते हैं, आपकी यह चेष्टा भी साधारण चमत्कारक नहीं है, यह कृत्य भी आपका अत्यन्त विस्मय करनेवाला है, इससे अब हम शास्त्रादिक जाननेके लिये वृथा परिश्रम नहीं करेंगे, सब परिश्रमोंको त्यागकर केवल आपके चरणारविन्दोंको ही प्रणाम करते रहेंगे॥ ४॥ हे प्रभो! तुम निवारण और अकर्ता होनेपर भी वेदने इस विश्वका सृजन, पालन, प्रलयकर्ता आपको ही बनाया है, यही ठीक है, तुममें कुछ भी असंभव नहीं है, क्योंकि तुम मायेसे सबके आत्मस्वरूप और कार्यमात्रके पालक हो, इसलिये आपकी ही सब करतूत है और आप सबसे भिन्नरूप हो, इसीसे तुम्हारा अकर्तृत्त्व भी ठीक हो सकता है॥ ५॥ हे जनार्दन! उन चारों वेदोंका तामसी शंखासुरने तिरस्कार किया तो विक्षिप्त हो प्रलयकालके समय जलमें डूब गये थे, तब युगां-

तके समय आपने हयग्रीव शरीर धारण करके पातालसे सब वेदोंका उद्धार किया और ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर आपने चारों वेद उनको प्रदान कर दिये तुम यही भगवान् सत्य संकल्प जगत्के हितकारी हो, इस लिये आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥६॥ हे राजन् ! हरिखण्डमें विष्णु भगवान् नरसिंह रूप धरकर विराजते हैं, हे भरतवंशावतंस ! भगवान्‌ने जो यह अद्भुत स्वरूप धारण किया इसका कारण सप्तमस्कंधमें कहेंगे। प्रियरूप महापुरुष, गुणभाजन परम भागवत प्रह्लाद जिनके शील और आचार दैत्य और दानवकुलके लिये तीर्थके समान हैं वह प्रह्लाद इस खंडमें रहनेवाले पुरुषों समेत एकाग्रचित्त हो अत्यन्त भक्ति योगसे उस अद्भुत स्वरूपकी उपासना करके इस अधोलिखित मन्त्रका उच्चारण किया करते हैं ॥ ७ ॥

"ओंनमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे, आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ओं स्वाहा। अभय अभयमात्मनि भूयिष्ठाः ओं क्ष्रौम् ॥

अर्थ–ओंकार सहित भगवान् नरसिंहको वारंवार नमस्कार करता हूं, आप सब तेजोंके तेजस्वरूप होकर प्रकट हो और वज्र समान नखोंसे तथा वज्र समान डाढ़ोंसे कर्मरूप वासनाओंको रांधो रांधो अर्थात् भस्म करो, भस्म करो, अज्ञानरूप अंधकारको ग्रसो, ग्रसो अर्थात् नाश करो, नाश करो। हे भगवन् ! आत्मामें अभयरूप हो अभयरूप हो। "ओं क्ष्रौं" यह बीजमंत्र है ॥ ८ ॥ हे विश्वरूप ! जिससे सब संसारका मंगल हो। खललोग अपनी क्रूरता छोड़ दें, सब प्राणिमात्र अपने-अपने अंतःकरणमें परस्पर दूसरेके कल्याणकी चिंता करते रहें और उनका मन उपशम आदिका आश्रय करे, हमारी और दूसरे प्राणियोंकी बुद्धि निष्काम होकर भगवान् वासुदेवमें लगी रहे ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! हमारा किसीका संग न हो, और कदाचित् हो भी तो भगवान्‌के भक्तोंका साथ हो, क्योंकि वे ही भक्ति और मुक्तिका मार्ग दिखाते हैं और घर, स्त्री, पुत्र, धन और बंधुजनोंसे हमारा संग किसी प्रकार न हो, क्योंकि भोजन मात्रसे संतुष्ट होनेवाला जो प्राणी है, वह जैसा शीघ्र सिद्ध हो जाता है, वैसे इन्द्रियोंको प्रसन्न रखनेवाला, गृहमें आसक्त चित्त होनेवाला मनुष्य किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥१०॥ भगवद्भक्तोंके सत्संगसे पुरुष भगवान् मुकुन्दके विक्रमको जान जाता है। उस विक्रमके असाधारण प्रभावको श्रवण करके जो पुरुष उनकी सेवा करते हैं, विष्णुभगवान् श्रवण द्वारा उनके हृदयमें प्रवेश करके उनके मनके मल हर लेते हैं और गङ्गा-यमुना तीर्थादिकमें वारंवार स्नान करनेसे केवल मनुष्योंके तनका ही मल छूटता है, मनका मल वैसा ही बना रहता है, इस लिये भगवद्भक्तोंकी संगति करनेकी किसकी इच्छा न होगी ? और श्रीमुकुंदके चरित्रको कौन नहीं सुनेगा; भगवान्‌की ओर जिनकी निष्काम प्रीति होती है उनका मन आप ही शुद्ध हो जाता है, एवं मन शुद्ध होनेसे प्राणी आप ही हरिभक्त हो जाता है, फिर पीछे उनपर भगवान् वासुदेव भी प्रसन्न हो जाते हैं और भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेसे सब देवता धर्मज्ञानादि सहित उस पुरुषके हृदयमें नित्यप्रति वास करते हैं, परन्तु जो पुरुष गृहादिके अनुरागी हैं और हरिभक्ति रहित हैं, फिर भला उनमें उत्तम गुण, ज्ञान वैराग्यादिकोंके होनेकी संभावना कहां वह सदा केवल विषयके सुखोंको देख मनोरथ बांधकर दौड़ता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ जैसे जल मछलियोंकी आत्मा है और विना जल मछलियाँ कभी नहीं जी सकती, क्योंकि

उनका जल ही जीवन प्राण है, ऐसे ही भगवान् वासुदेव सब शरीरधारियोंकी आत्मा हैं, इस लिये जो पुरुष महत् प्रसिद्ध है वह यदि हरिको त्यागकर गृहमें आसक्त हो जायँ तो जैसे शूद्रादिजाति स्त्री-पुरुषोंको केवल आयुसे बड़प्पन प्रसिद्ध है वह उसी बड़प्पनको धारण कर सकते हैं, ज्ञानादिकोंसे पूजनीय स्त्री-पुरुषके मध्यमें पुरुषका जो अधिक महत्त्व है, वैसा महत्त्व उसमें कभी नहीं हो सकता ॥१३॥ इस लिये इस गृहका परित्याग करके निज नृसिंहजीके चरणोंमें रह कर निर्भय हो जाइये। तृष्णा, राग, विषाद, मृत्यु, मान-चाह, भय दीनता और मनकी पीड़ाका मूल संसार है, वह सबको डुबानेवाला है और जन्म-मरणका कारण है ॥१४॥ केतुमाल खण्डमें भगवान् नारायण कामदेवरूपसे विराजमान रहते हैं और सदा उनकी यही वासना रहती है, कि लक्ष्मीजी प्रसन्न रहें तथा संवत्सर और उनकी कन्या, रात्रिके अभिमानी देवता और उनके पुत्र दिनके अभिमानी देवतागण जो कि इस खण्डके पति हैं, वे प्रजापतिके पुत्र हैं, सौ वर्षके जितने दिन रात्रि होते हैं उतनी ही इन प्रजापतिके पुत्रोंकी संख्या है, अर्थात्–३६००० सहस्र हैं, इनपर भ वे परमहित करते हैं। हे भरतवंशावतंस! संवत्सरोंके विशेष हित करनेका हेतु यह है, कि महापुरुष भगवान्‌के चक्रके तेजकी तापसे उन कन्याओंके अंतःकरण अतिशय निर्बल और कंपायमान हो जाते हैं और उनके गर्भ, वर्षके अन्तमें पतित होकर प्राणरहित हो जाते हैं इस लिये उस खण्डमें पुरुषोंकी संख्या अधिक नहीं होने पाती ॥१५॥ और भगवान् कामदेवके रूपमें ललित गति विलास और मंद मुसकान सहित अवलोकनकी लीला प्रकट करते और अपनी भ्रुकुटियोंको कुछ-कुछ ऊंचा करते-करते मुखारविन्दकी शोभासे रमाको रमण कराकर अपनी इंद्रियोंको तृप्त करते हैं ॥ १६ ॥ वह रमा देवीजी भी संवत्सरके रात्रि समय उनकी कन्याओंके अर्थात् इन रात्रिकी अधिष्ठाता देवियोंके साथ और दिनमें इन कन्याओंके स्वामी अर्थात् दिनके अधिष्ठाता देवताओंके साथ मिलकर भगवान्‌के इस मायामय रूपकी उपासना कर सदा इस मंत्रका जाप किया करती हैं ॥ १७ ॥

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं, ओ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने, आकूतीनां चित्तीनां चेतसा विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामनाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥"

अर्थ–इंद्रियोंके अधिपति उन भगवान् हृषीकेशको हम नमस्कार करते हैं। जिनका स्वरूप सर्व श्रेष्ठ वस्तुओंसे जाना जाता है। जो ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेंद्रिय, (संकल्प व अध्यवसायादि) और उनके सब विषयोंके अधिपति हैं, ग्यारह इन्द्रियें और पांच विषय यह सोलह पदार्थ उनके अंश हैं, वह वेदमय हैं, अर्थात् वेदोक्त कर्मद्वारा वे होते हैं, दूसरे उनका देह अन्नसे बढ़नेवाला है, इस कारणसे अन्नमय है, परमानन्द प्रकाशमय तथा अमृतमय हैं। सबके विषय हैं, इस कारण सर्वमय हैं और सामर्थ्य और बल इन सबके कारण हैं, इन सबके सहित होनेसे सहःस्वरूप हैं और कान्ति और काम उनकी मूर्ति है, सो हम उनको नमस्कार करते हैं, वे हमारे लिये दोनों लोकोंमें (इस लोक और परलोकमें) अनकूल हों ॥ १८ ॥ फिर वे स्तुति करके कहते हैं कि हे प्रभो! आप स्वयमेव ही सब इन्द्रियोंके पति हैं, जो स्त्रियां

अनेक प्रकारसे तुम्हारी आराधना करके तुम्हारे सिवाय और पतिकी इच्छा करती हैं, वे उनके पतिगण उनकी प्रिय सन्तान, सन्तति, अथवा धन व आयुकी रक्षा कर सकते, क्योंकि वे तो आप ही परवश रहते हैं ॥ १९ ॥ इस कारणसे वे सब पतिहीन ही हैं, क्योंकि पति तो ऐसा होना चाहिये, जो कि स्वयं निर्भय और भयातुरकी सब भांति रक्षा कर सकता हो वही पति है, हे प्रभो ! इसी कारणसे एक आपही सबके पति हैं आपके सिवाय और दूसरा पति नहीं हो सकता । आत्मलाभके अतिरिक्त और किसी वस्तुको अधिक नहीं समझते, इसलिये आपका सुख किसीके भी आधीन नहीं है, हे प्रभो ! हम जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य ही है, नहीं तो यदि आपकी पराधीनता और नाना-रूपकी स्वीकारता स्वीकार की जाय तो मंडलेश्वरोंके समान आपको भी परस्परसे भयकी सम्भावना हो सकती है ॥२०॥ हे भगवन् ! जो स्त्री केवल आपके चरणकमलोंकी ही पूजा करनेकी कामना करती है और दूसरी वस्तुकी इच्छा नहीं करती, वह अति चतुर है, क्योंकि उसको सब कामनायें प्राप्त हो जाती हैं परन्तु जो कोई अबला किसी एक फलकी कामना करके आपकी पूजा करती है उससे अधिक बेसमझ और कोई नहीं, क्योंकि तुम उसको उसका केवल मनोवांछित ही फलदान करते हो, उससे अधिक नहीं देते, फिर जब भोगनेसे वह फल नष्ट हो जाता है, तब पीछेसे उस स्त्रीको अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ हे अजित ! मैं लक्ष्मी हूँ, इससे सुख सम्पत्तिकी कामना करके कभी-कभी सत्य ही ब्रह्म, शिव और दूसरे सुर, असुरगण भी मुझको प्राप्त करनेके लिये उग्र तप किया करते हैं परंतु आपके चरणारविंदोंकी शरण ग्रहण किये विना वे लोग मेरे विलसित ऐश्वर्यको प्राप्त नहीं हो सकते, इसका कारण यह है कि मेरा चित्त आपमें ही लगा हुआ है और इसीसे मैं आपके आधीनमें हूँ, सो जो पुरुष आपका ध्यान करते हैं, मैं उनकी ही ओर अवलोकन करती हूँ ॥ २२ ॥ इस कारण हे प्रभो ! आप वही पुरुष हैं कि जिनकी सेवा विना किये कोई कार्य ही सिद्ध नहीं हो सकता, आपके हस्तकमलसे सब कामनाओंकी वर्षा होती है और इसी लिये सदा साधु लोग जिनकी स्तुति किया करते हैं और जो कि आप अपने भक्तजनोंके मस्तकपर करकमल धर-कर सब मनोरथ पूर्ण करते हैं अनुग्रह करके वही हस्तकमल मेरे मस्तकपर भी धरो । हे वरेण्य ! मैं ऐसा नहीं कह सकती कि मेरे प्रति आपका आदर नहीं है, मैं प्रकट देखती हूँ आप छातीके ऊपर मुझको अपने श्री अङ्गमें धारण करते हैं, परंतु हे प्रभो ! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि मेरा तो केवल आप आदरही करते हैं परंतु अपने भक्तोंपर आपका बड़ा अनुग्रह है,

१. शंका–लक्ष्मीजीने भगवान्से पूछा कि, हे भगवन् ! जो मनुष्य त्रिलोकीमें आपका पूजन, सेवन, भजन नहीं करते, वे मनुष्य मुझको कभी भी प्राप्त नहीं होते, ऐसे वाक्य लक्ष्मीजीने क्यों कहे ? क्योंकि दुष्ट जीव जैसे कि दैत्य, दानव, अत्याचारी मनुष्य, यह सब चारों युगोंमें विष्णु भगवान्को नहीं जानते कि विष्णु भगवान् क्या वस्तु हैं और सेवन, पूजनका तो कहाना ही क्या है ? परंतु उनके घरमें लक्ष्मी अचल होकर रहती है, इस बातसे तो लक्ष्मीका वाक्य झूठा जान पड़ता है ।

उत्तर-दैत्य, दानव, म्लेच्छादि और जो कोई दुष्ट मनुष्य भगवान्को नहीं जानने और लक्ष्मीका सुख भोगते है, वे पूर्व जन्ममें भगवान्के सेवक थे, मृत्यु-लोकमें आकर अपने-अपने कर्मसे हो गये हैं और भगवान्को भूल गये हैं, तपसे भ्रष्ट होकर दुष्टबुद्धि मनुष्य कोई सुन्दर योनिको प्राप्त होता है, कोई नीचयोनिको प्राप्त होता है, परंतु भगवान्के सेवनरूप तपस्याके द्वारा [illegible] लक्ष्मीका सुख भोगता रहता है । जबतक भगवान्की सेवाका पुण्य उनका बना रहता है, तबतक अचल लक्ष्मीका सुख भोगते जब सेवाका पुण्य नष्ट हो जाता है और इस जन्ममें भगवान्का पूजन नहीं किये तो वे अन्तमें बहुत दुःख पाते हैं । इसलिये लक्ष्मीजीने भगवान्से कहा था कि जो मनुष्य आपका सेवन नहीं करते वे मुझको कभी नहीं प्राप्त होते ॥

अथवा आप इश्वर हैं सो आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सके, ऐसा किसका सामर्थ्य है ? ॥ २३ ॥ हे राजन् ! और दूसरे खंडोंका विवरण सुनो । रम्भकखण्डमें विष्णु भगवान् अपने मत्स्यरूपसे विराजते हैं, कि जो स्वरूप इस खण्डके अधिपति मनुजीको पहले दिखाया गया था, श्राद्धदेव मनुजी आजतक अत्यन्त भक्तिभाव और प्रेम रीतिसे भगवान्की उस मनोहर मूर्तिके पूजनमें नियुक्त हैं और यह मन्त्र निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं ॥ २४ ॥

यथा–मत्स्यमन्त्रः–"ओं नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः ॥"

अर्थ–हम महामत्स्यरूपी भगवान्को नमस्कार करते हैं, जो सत्त्वगुण प्रधान और सर्व मुख्य प्राणरूप और साहस, बल व सामर्थ्य इत्यादिके स्वरूप हैं॥२५॥और स्तुति करके कहते हैं कि हे प्रभो आप सब भूतोंके भीतर-बाहरसे घूमते रहते हैं और इतने पर भी लोकपालगण तुम्हारे रूपको नहीं देख सकते और शेषजी भी आपकी महिमाको नहीं कह सकते, परंतु आपका वेदरूप नाद अति बड़ा है, वह सत्य है, हे भगवन् ! लोग जिस प्रकार काठकी पुतलीको वश कर लेते हैं, वैसे ही जिन्होंने विधिनिषेधरूपवचनोंसे सब जगत्को अपने वशमें कर रक्खा है, आप वही ईश्वर हैं॥२६॥हे ईश ! इन्द्रादि लोकपालगण आत्मस्वरूप ज्वरमें ग्रसे रहनेके कारण आपको छोड़ करके अलगरूपसे दोपाये-चौपाये, अथवा स्थावर जंगम जो-जो इस जगत्में दृष्टि आते हैं, उनमेंसे किसी वस्तुके भी पालन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । इसलिये आप ही प्राणरूपसे सबके पालक और परम ईश्वर हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! यह पृथ्वीपर सब औषधि और लताओंके आश्रय है; इस कारणसे आप प्रलयकालकी बड़ी तरंगे उठते हुए सागरके जलमें डूबी हुई इस पृथ्वीको और हमको धारण करके रक्षा करनेके लिये आपने बड़ा उत्साह प्रकट किया था, वह हम आपको नमस्कार करते हैं । हे प्रभो ! आप ही सब जगत्के रहनेवाले प्राणियोंके नियन्ता हैं, आपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे राजन् ! हिरण्यमय खंडमें भगवान् नारायण कूर्म शरीर धारण करके विराजते हैं, वहां पर रहनेवाले पुरुषोंके साथ पितृगणोंके अधिपति अर्यमा निरंतर उनकी उपासना करते रहते हैं और क्षण-क्षण इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥ २९ ॥

यथा–"ओं नमो भगवते अकूपाराया सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोनमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥"

अर्थ–हम कूर्म भगवान्को नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! समस्तसत्त्वगुण आपका विशेषण है, ऐसे आपको नमस्कार है । हे भगवन् ! जलमें रहनेके हेतु आपका स्थान कोई देख नहीं सकता है, ऐसे आपको नमस्कार है । हे देव ! आप अतिशय बर्ष्माण हैं अर्थात् कालसे आपका अवच्छेद नहीं होता, आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप सर्वगत और सबके आधार हैं, आपको नमस्कार है ॥३०॥ हे भगवन् ! आपने अपनी मायासे जो यह आकृति प्रकाश की है, सो दृश्य पृथ्वी आदिसे लेकर सब पदार्थ इसी रूपमें हैं, इसी कारण आपसे अलग कुछ भी नहीं है । हे भगवन् ! आपका यह रूप अनेक रूपोंसे निरूपण किया जाता है परंतु यह मिथ्या है, तो भी दिखानेके कारण मृगतृष्णाके जलके समान इसकी संख्या नहीं की जा सकती है, इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! आपके आकार–विशेषको

कोई नहीं बतला सकता ॥३१॥ हे भगवन् ! जरायुज (मनुष्य गवादि), अंडज (पक्षी इत्यादि), स्वेदज (जूं इत्यादि), उद्भिज्ज (लतावृक्षादि), अर्थात् स्थावर, जंगम, देवता, ऋषि, पितृ, भूत, इंद्रिय, स्वर्ग; आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, गृह और नक्षत्र यह सब आपके ही नाम हैं आप एक ही हैं ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! आपके नाम, रूप और आकृतियोंके बहुत असंख्य भेद हैं, जिनकी संख्या नहीं की जाती, तथापि कपिलादि विद्वानोंने उनकी चौबीस संख्या कल्पना की है, वही संख्या जो तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है, आप ही उस तत्त्वज्ञानके नमूने हैं, अर्थात् परमार्थ ध्यानरूपी आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! उत्तर कुरुखण्डमें भगवान् यज्ञपुरुष वाराहरूप प्रकाश करके विराजते हैं, वहांपर यह पृथ्वी देवी कुरुगणसहित अविचल भक्ति प्रकट करके उनकी सेवा करती है और इन परम सिद्धान्त उपनिषद्के वाक्योंका उच्चारण करती है ॥ ३४ ॥

यथा–"ओं नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिगाय यज्ञक्रतवे, महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्म्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥"

अर्थः-हम भगवान्को नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! आप मंत्रसे जाने जाते हैं। अयूप–यज्ञ और सयूप-क्रतु इत्यादि जो कुछ दिखलायी देता है, वह सब आपका ही स्वरूप है। हे प्रभो ! आप कर्मोंसे शुद्ध अर्थात् यज्ञानुष्ठान करनेवाले और तीन युगके स्वरूप हैं। आपको हमारा वारंवार प्रणाम है ॥३५॥ अहो ! काष्ठके भीतर जिस प्रकार अग्नि गुप्त रहती है, उसी प्रकार अग्निके समान जिसका स्वरूप देह और इंद्रिय आदि पदार्थोंमें गूँथा हुआ है। निपुण विद्वान् लोग विवेकके साधन मन और कर्म व उसके फलसे जिनके दर्शन करनेकी वासनासे सदा खोजते फिरते हैं और उसी ढूंढभालसे जिसकी आत्मा प्रगट होती है, उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ जो कि मायाकार्यके विषय इंद्रियादि व्यापार, देवता, देह, काल और अहंकार इन सब उपलक्षणोंसे जिनका यथार्थरूप देखनेमें आता है और यम नियमादिकोंसे जो साधु लोग निश्चयात्मक बुद्धियुक्त हैं उनके निकट जिसकी मायासे बनी हुई आकृति दूर हो जाती है, उन्हीं भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥३७॥ जिस प्रकार चुंबकके निकट रहनेसे लोहा स्वयमेव उसके चारों ओर फिरा करता है, वैसे ही माया द्रष्टा (परमेश्वर) के दर्शनके हेतु जीवके निमित्त वांछा न होनेपर भी जीवकी वांछित इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती है, सो उस गुण कर्म और जीवोंके साक्षिस्वरूप भगवान्को हमारा प्रणाम है ॥ ३८ ॥ और जगत्के कारणरूप वाराह स्वरूप धारण करके रसातलसे मुझ पृथ्वीको डाढ़के अग्रभागपर धारण करके हाथीके समान प्रलय समुद्रमेंसे निकले थे और फिर दूसरे हाथीके समान दैत्य हिरण्याक्षको संग्राममें क्रीडा करते-करते मारकर बाहर निकल आये; उन सर्वव्यापक परमात्माको वारंवार हमारा प्रणाम है ॥ ३९ ॥ प्रभुकी महिमामें एक भजन है–

भजन

प्रभुकी महिमा अपरंपार।
पढ़त विरंचि वेद नित चारों, तऊ न पावत पार ॥ १ ॥
शेष महेश गणेश शारदा, निशि दिन करत बिचार।
हार मान चुप रहत रटत फिर, उरमें धीरज धार ॥ २ ॥

वाल्मीकिनारद वसिष्ठ भृगु, खोजत वारंवार।
नेति नेति कर कहत सकल मिलि, धन्य धन्य करतार ॥ ३ ॥
बड़े बड़े सुर सिद्ध मुनी जन, तन मन धन सब वार।
शालिग्राम लेत शरणागत, समझ जगत आधार ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे रम्यकोत्तरखण्डे सेव्यसेवकभुवनकोषवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—हरि अनुचर द्वैखण्डके, कह उनीसाध्याय।
बहुरो भारतवर्षकी, कहौं अधिकता गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि किंपुरुषखंडमें विष्णुभगवान् आदिपुरुष जानकीवल्लभ लक्ष्मणजीके भ्राता श्रीरामचन्द्र महाराजके चरणारविंन्दको हृदयमें धारण कर उनके संमुख हाथ जोड़े हुए भक्त-अनुरागी परमभागवत महावीर हनुमानजी किंपुरुषखंडके निवासियोंके साथ अत्यन्त भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ और गन्धर्वगण जो कि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका जो मंगलमय चरित्र है, चौपाई-"वाल्मीकिकृत श्रीरामायण, परम प्रेमसों राम परायण ॥ मारुत सुत ढिग नित सो गावत। वीण मृदंग सप्रेम बजावत ॥ रामकथा कलिकलुश-नशावन। आनँदनिधि भक्तन-मन-भावन" उसको हनुमान्जी आर्ष्टिषेणके साथ एकाग्रचित्तसे अपने अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुना करते हैं और इस मंत्रका निरंतर जप करते रहते हैं ॥ २ ॥

यथा-"ओं नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः। आर्य्यलक्षणशीलव्रताय नमः। उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः। साधुवादनिकर्षणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः ॥"

अर्थ—उत्पति-पालन-प्रलय-कर्ता भगवान् उत्तमश्लोकके लिये नस्कार है। जितने कि श्रेष्ठानुश्रेष्ठ चिह्न और शीलव्रत हैं, वे सब उनमें विराजमान हैं, उनका चित्त सदा ही वशमें है, सब लोकोंका विषय उनको ज्ञात है, वह कसौटी पत्थरके समान सज्जनताकी प्रसिद्धिके निर्धार स्थान है, वह ब्रह्मण्यदेव महापुरुष और महाराज हैं, उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

कबित्त—जाको शुद्ध हियो ताको अनुभव तुम्हारो होत नाथ निज तेजहिसे मायागुण नाशी हैं। जगतके व्यापी निज जापीको आतापी करो, नामरूप आपके अनंत दिव्य भासी हैं ॥ आपके समान नहीं अधिक कहाते होय, अहंकार क्षार होत ध्याये मुदरासी हैं। कालत्रासनाशी तत्काल करनिहाल देत, राजैं रघुराज जैसे अवध-विलासी हैं ॥

मैं उन परमात्मास्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरण हूं, जिनको वेदान्तके वचनोंसे एकरूप कहकर प्रसिद्ध करते हैं यह वही है, शुद्ध अनुभव ही उसका स्वरूप है। शांत स्वरूपके प्रकाश होनेसे उनके गुणोंकी सब जाग्रत आदि अवस्था नहीं है। वे दृश्य पदा-

थोंसे पृथक्, नाम-रूप-रहित और निरहंकार हैं। केवल शुद्ध चित्तसे उन परब्रह्मका रूप जाननेमें आता है। ऐसे परब्रह्म श्रीरामचन्द्र अवधेश रघुराजको मेरा वारंवार नमस्कार है॥ ४॥

कबित्त–नर अवतार नहीं केवल दनुज कुल-नाशनके हेतु यह परन विचार है। जनन सिखायबेको और हूँ दिखायबेको, नारिके अधीन जैसे होत दुःख भार है। अवधनिवासी सीता संगही विलासी नित, जगत प्रकाशी कौन उचित खँभार है तजके निवेश जाय कानन कलेश सह्यो, धन्य सो धरामें अवधेशको कुमार है॥

उन सर्वव्यापी राजादशरथके पुत्र होकर मनुज समान अवतार धारण करनेका तात्पर्य यह है कि रावणादि राक्षसोंका वध करें, क्योंकि इस घोर राक्षसने "मनुष्यके अतिरिक्त और किसीसे न मरूं" ऐसा वर पाया था। इस रामचन्द्र अवतार लेनेका केवल इतना ही आश्रय न था, वरन् मनुष्योंकी शिक्षाके लिये भी था, कि स्त्रीके संगसे मैं ईश्वर हूँ, तो भी इतने क्लेश सहने पड़े और मनुष्यका तो कहना ही क्या है? अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले विश्वके आत्मा उनको जानकीजीके विरहका कैसा दुःख?॥ ५॥

कबित्त–काल मनि रूप कीनो मंत्र अस ठानो प्रण, आवेगो जो इतै सोई है है वश कालके। द्वार दुरवास आये कोपित लषण लखौ, जाय कहो नाथसों हे लाल मुनि पालके॥ सबके नियन्ता सब लोकनके नाथ सोई, सांचे ईश शक्र करतार शशिभालके। प्रण पालबेको प्राणप्यारो बन्धु त्याग दियो, स्वामीके समान कौन दशरथके लालके॥

वह धैर्यवान् धीर पुरुषोंके आत्मा भक्तवत्सल परमप्रिय श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजी महाराज त्रिलोकीमें किसीपर भी आसक्त नहीं हैं, इसी लिये उनको धीर पुरुषोंकी आत्मा कहा और उनको स्त्रीमें मोह किसी प्रकार नहीं हो सकता और द्वारपर खड़े हुए लक्ष्मणजीका दुर्वासा ऋषिके आनेका संवाद देनेके लिये मंदिरमें प्रवेश करनेपर देव परामर्शसे उनको प्राणसे मार डालनेके लिये उपस्थित होकर भी वशिष्ठजीके वचनोंसे जो लक्ष्मणजीका त्याग किया था, सो यह युक्ति संगत नहीं हो सकती, परन्तु वह सब कुछ किया, निदान उसका वास्तविक तात्पर्य यही है कि सब संसारके लोगोंकी शिक्षाके लिये यह काम किये और वे तो आदिपुरुष अविनाशी कमलपत्रके समान सबसे अलग हैं॥ ६॥

कबित्त–कुलकी बड़ाई नाहिं धन-प्रभुताई नाहिं, जातिकी निचाई सब भांति अधिकाई है। बुद्धिहीनताई भूरि चित्तमें है चंचलाई, फल-फूल खाई बसै बनमें सदाई है॥ ऐसे हू छुटाई कछु चित्तमें न लाई प्रभु, आपहिते आई करी कीशन मिताई है। दीन दीनताई देख नहीं सहिजाई ऐसो, लक्ष्मणके ज्येष्ठ भाई राम रघुराई हैं॥

उच्च कुलमें जन्म, सुन्दर स्वरूप, मनोहर वाणी, गम्भीर बुद्धि, उज्ज्वल जातिसे श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि वे केवल एकमात्र भक्तिके ही करनेसे संतुष्ट होते हैं,

देखो, नीच कुलमें हमारा जन्म, न हममें कोई सुन्दरताई, न हममें कोई गुण, न कोई ऊंची जात और हमारी चंचलताई सब संसारमें प्रसिद्ध है–"प्रात लेय जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा" तो भी केवल भक्तिके वश होकर इन लक्ष्मणजीके बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीने हमको अपना सखा बनाया, देखो! मेरे स्वामी सुग्रीवसे "दो०–पावक साखी देइ कर, जोरी प्रीति दृढ़ाय" सो यह सुग्रीव कैसा था–

दोहा–नहिं कुल नहिं विद्या न तप, नहिं तनकौ छबिधाम।
जानत नहिं किस बातसे, हम पर रीझे राम ॥ ७ ॥

कवित्त–सुर नर नाग पशु पक्षी आदि जीवनके, कोटि अपराध निज चित्तमें न लाये हैं। नेक उपकारको सहस्र गुण मानत नाथ, केते केते पतितको पावन बनाये हैं ॥ भजो रे भजो रे रघुराज महाराजजीको, सरल स्वभाव ऐसे वेदने बताये हैं। अवधके नारि नर पशु पक्षी कीट जेते, राम सुखधाम निजधामको पठाये हैं ॥

इस लिये देवता व दानव अथवा नर-वानर कोई क्यों न हो? सबको चाहिये कि अनेक प्रकारसे यत्न करके उन मानवरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना अवश्य करें, क्योंकि वे बड़े कृतज्ञ हैं। थोड़े भजन करनेको भी अधिक मानते हैं, उनकी उपासना करनेसे महाफल मिलने की आशा है, वे सब अयोध्यावासियोंको अपने संग ले गये थे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजन्! भरतखण्डमें भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रममें गुप्त रूपसे विराजते हैं, जिनकी गति जानी नहीं जाती। धीर लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दुष्कर तपस्या करते हैं, तपस्याके समय उनका धर्म, ज्ञान और वैराग्य इस प्रकारसे अधिकताको प्राप्त होता है और वह इस प्रकार जितेन्द्रिय और निरहंकार होकर रहते हैं कि उनसे ही आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाता है ॥ ९ ॥ महात्मा देवर्षि नारदजीके पंचरात्र शास्त्रमें जो भगवान्के अनुभवका वर्णन है वही पंचरात्र भगवान्के कहे हुए सांख्ययोग सहित सावर्णि मनुको उपदेश करनेवाले हैं। इस कारण भारतवर्षकी वर्णाश्रम धर्मवाली प्रजागणोंके साथ परमभक्तिभावसे नारदजी इन भगवान् नर नारायणकी उपासना करते हैं और इस मन्त्रको जपते हैं ॥ १० ॥

यथा–"ओं नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामायाधिपतये नमो नमः ॥"

नारदजी बोले कि हम ऋषि ऋषभभगवान् नर नारायणको नमस्कार करते हैं। वह शांतस्वभाव निरहंकार वैराग्यवान् पुरुषोंके परमधन, परमहंसोंके परमगुरु, ज्ञानी पुरुषोंके अधिपति उन नर नारायण भगवान्को बारंबार नमस्कार है ॥ ११ ॥ और फिर यह गान करते हैं कि जो इस विश्वके सृष्टयादिका कर्ता होकर भी "मैं कर्ता हूँ" ऐसा कहकर अपने मनमें अहंकार नहीं करते और शरीरमें रहकर भी शरीरके धर्म, भूख-प्यास आदिसे पराभव नहीं पाते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्य पदार्थोंसे विकृत नहीं होती, उन भगवान्को हम नमस्कार करते हैं। वे किसीमें आसक्त नहीं हैं इससे उन शुद्ध चैतन्यस्वरूप और सबके साक्षी नारायणको हम नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥ फिर कहते हैं कि हे परमेश्वर! योगी

पुरुष जन्म लेकर अन्तकालके समयतक भक्तियोगसे देहाभिमानको छोड़कर तुममें जो मन लगाते हैं यही उनके योगकी चतुराई है, भगवान् हिरण्यगर्भजीने उसको ही पुरुष योग कहा है ॥१३॥ परंतु इस लोक और परलोककी कामनाके विषयमें मूर्खलोग जिस प्रकार स्त्री, पुत्र और धनकी चिंता करते हुए मृत्युके निकटसे भय पाते हैं, वैसे ही जो पुरुष विद्वान् होकर भी पाते हैं तो उनका शास्त्र पढ़ा हुआ केवल परिश्रम मात्र है ॥१४॥ हे अधोक्षज ! जिससे कि विद्वान् पुरुषकी भी ऐसी अवस्था है, उससे आप हमको सहज वासनारूप उस योगका उपदेश कीजिये । जिस आपकी मायासे मुझमें 'मैं' मेरा यह ममता लगी हुई है जो किसी भांति त्याग न होनेसे उपाय द्वारा भी नहीं भेदी जा सकती, सो यह छूट जाय ॥ १५ ॥ हे राजन् ! भारतवर्षमें भी बहुत नदियां और पर्वत हैं अर्थात् मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कूटल, कौल्लक, सह्य, देवागार, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्यमान, शक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूठ, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलाचल, गोमुख, इंद्रकील, कामगिरि व और भी सहस्रों पर्वत हैं और इनके तटसे उत्पन्न हुई नदियां व नद भी असंख्य हैं (ग्रन्थके अधिक हो जानेके कारण यहां पर उनका विस्तारसे वर्णन नहीं किया) ॥१६॥ उन नदियोंके नाममात्रके लेनेसे पुरुष पावन पवित्र हो जाते हैं, फिर भारत खण्डके वासी जो उन नदियोंके जलमें दिन-रात स्नान और क्रीडा करते हैं उन भारतवासियोंकी समता संसारमें आजदिन कौन कर सकता है ? ॥१७॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्ध, अन्ध, शोणभद्र, यह दोनों महागम्भीर नद हैं, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिमासा, शौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता असिक्नी और विश्वा यह बड़ी महानदी हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! इस वर्षमें जन्म प्राप्त करके पुरुषगण अपने-अपने सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके द्वारा यथाक्रमसे अपनी दिब्य तथा मानुष और नारक गतिका विधान करता है, क्योंकि यहांपर सब पुरुषोंकी गति सब प्रकारसे कर्मानुसार ही होती है ! जिस भांतिसे मोक्ष प्रकार अर्थात् संन्यास वानप्रस्थादि कहा है, उसके उल्लंघन न करनेसेमोक्षकी प्राप्ति भी इसी वर्षमें होती है[१] ॥ १९ ॥ हे राजन् ! मोक्ष जिस प्रकारसे होता है, वह श्रवण करो–जब विष्णुभक्त पुरुषोंका श्रेष्ठ सङ्ग होता है, तब भगवान् वासुदेव जो सब प्राणियोंके आत्म रागादि रहित, वाक्यके अगोचर, अनाधार और परमात्मास्वरूप हैं उनमें जो निष्काम भक्ति होती है वही मोक्षका स्वरूप है, क्योंकि शरीरकी अनेक प्रकारकी गति जो

---

१. शंका–मृत्युलोकमें जो छोटी नदियां हैं, जिनका नाम भी कोई नहीं जानता, उनका तो वर्णन व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें किया और उज्जैनके सम्मुख बहनेवाली क्षिप्रा नदी जिसका शास्त्रमें नाम विख्यात है, लोकमें और पुराणोंमें प्रजागण भी क्षिप्राको भलीभांति जानते हैं, ऐसी उत्तम क्षिप्रा नदीका भगवान् व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवत में वर्णन क्यों नहीं किया ?

उत्तर–एक दिन शिवरात्रिके समय बहुतसे मुनिजन शंकर महादेवके पूजन करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये । उसी दिन देवयोगसे क्षिप्रा नदी भी जलसे परिपूर्ण हो रही थी । मुनिजन उतरने लगे तो क्षिप्राने मार्ग नहीं दिया, मुनिलोग पश्चिम दिशाके तटपर बैठे ही रह गये । जब शिवरात्रिको शिवका पूजन न हुआ, सब रात्रि मुनियोंको नदीके निकट बैठे ही बीत गयी । तब सबने मिलकर शाप दिया कि हे दुष्टा नदी ! भागवतमें जिसका वर्णन हुआ वह धन्य है परंतु तेरा आदर भागवत पुराणमें नहीं होगा । इसलिये मुनियोंसे शापित जानकर व्यासजीने श्रीमद्भागवत में क्षिप्राका वर्णन नहीं किया ।

अविद्यारूपी ग्रंथि है, वह इस भक्तिसे टूट जाती है ॥२०॥ इस कारणसे भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म सब पुरुषार्थोंका साधन कहकर देवतालोग गान करते हैं। यथा–अहो! इन मनुष्यगणोंने क्या कोई अनिर्वचनीय पुण्य कार्य किया था जिससे कि हरि भगवान् स्वयं विना साधन किये ही इनके ऊपर प्रसन्न हो गये हैं अथवा इस बातमें आश्चर्य ही क्या है? इन सब पुरुषोंने भारत भूमिके मध्यमें मुकुन्द गोविंदकी सेवा करने योग्य जन्म पाया है। और हम तो भारतवर्षमें जन्म लेनेके लिये केवल लालसा ही लगाये रहते हैं ॥२१॥ हाय! हमारे यज्ञ दुष्कर तपस्या कठिन-कठिन व्रतानुष्ठान और दानादिकोंसे क्या हुआ? और यह जो तुच्छ स्वर्गकी प्राप्ति हुई है इससे ही क्या फल दीखता है? यहां पर स्वच्छंदतापूर्वक भगवान् नारायणके चरणकमल का स्मरण नहीं होता, कदाचित् जो कुछ होता भी वह अधिक इंद्रियोंकी सेवा करनेसे नष्ट हो गया ॥ २२ ॥ २३ ॥ हमने कल्पान्तपर्यन्त परमायु प्राप्त होकर जो इस स्थानको जीत लिया है वह इसके पीछे भी जन्म लेना पड़ेगा, इसलिये हमारे इस स्थान के जय करनेकी अपेक्षा मनुष्यगण अल्पायु होकर जो भारत भूमिको जीत लिये हैं, वह अच्छा है क्योंकि वे पुरुष मनुष्य देहसे अपना-अपना क्रिया-कर्म संन्यास लेकर भगवान् श्रीहरिके अभयपदको भली-भांति प्राप्त हो जाते हैं ॥ २४॥ जिस स्थानमें भगवान् हरिकी कथामृतरूप नदी नहीं बहती, जहां हरिकथाश्रय भगवद्भक्त साधुगण नहीं हैं और जहांपर नृत्यादि उत्सव–युक्त हरिकी पूजा नहीं है, वह स्थान यदि ब्रह्मलोकके समान हो तो भी उसकी सेवा नहीं करनी चाहिये ॥२५॥ क्योंकि जो पुरुष इस भारत भूमिमें ज्ञान और उसके अर्थ क्रिया व द्रव्यसमूहसे परिपूर्ण मनुष्य जन्मको प्राप्त होकर भी इस मोक्षके लिये यत्न करे तो वह पक्षियोंके समान फिर बंधनमें बँध जाते हैं अर्थात् जालसे बँधे हुए व्याधके हाथसे छूटकर भी फिर जिस प्रकार असावधान होकर वृक्षपर विहार करते हुए बँध जाते हैं, वैसे ही यह सब पुरुष भारतभूमिमें मोक्षार्थ जन्म प्राप्त करके भी अपने कर्मके दोषसे फिर संसारी बन्धनमें बँध जाते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु भारतवासी मनुष्यगण अतिशय भाग्यवान् हैं, क्योंकि ये लोग श्रद्धाभक्ति सहित पुरोडाशादिभेदसे उन देवताओंके उद्देश्यसे जो हवि छोड़ते हैं वह एक ही भगवान् इंद्रादि पृथक्-पृथक् नामोंसे आह्वान किये जाकर उस समस्तको ग्रहण करते हैं। यद्यपि ये सब कल्याणोंके प्रभु हैं और स्वयंही परिपूर्ण स्वरूप हैं, तथापि उस हविको त्याग नहीं सकते ॥२७॥ यद्यपि भगवान् याचना किये जानेपर याचक पुरुषोंका प्रार्थित विषय दे देते हैं, परन्तु तो भी उनको परमार्थ नहीं देते, क्योंकि इस प्रकार प्रार्थित विषय प्राप्त कर फिर भी उनको मांगनेकी सम्भावना है। परंतु जो कि निष्काम हैं, उनको किसी विषयमें प्रार्थना न करनेपर भी भगवान् उन लोगोंकी सब अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले अपने चरण पल्लव स्वयं दान करते हैं ॥२८॥ इसलिये हमने भलीभांतिसे जो यज्ञ किये हैं, वेदाध्ययन वा और कोई जो शुभ कर्म किये हैं जिससे कि यह स्वर्ग-सुखका भोग कर रहे हैं यदि उस पुण्यमेंसे कुछ बचा हो तो उससे भारतवर्षमें हमारा जन्म हो, जिससे कि भगवान् हरि ही एक सेवा करने लायक हैं, यह स्मरण रहेगा, अधिक करके श्री भगवान् जो इस भारतवर्षमें भजनकारियोंका कल्याण विस्तार किया करते हैं और वहांके वासियोंको परम सुख देते हैं ॥२९॥ यह सात श्लोक किसी-किसी पुरानी पुस्तकोंमें लिखे देखे, इससे हम भी लिखे देते हैं, जैसे–हे परीक्षित्! सब देवता भारतखण्डमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं, यहां महापुण्य

संचय करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है (१) ॥३०॥ हे भारत ! इस भूमण्डलमें कब हमारा जन्म होगा और कब हम महापुण्यसे परमपदको प्राप्त होंगे (२) ॥ ३१ ॥ जहां बड़े-बड़े महात्मा पुरुष अनेक प्रकारके दान, यज्ञ, तप करके क्षीरशायी भगवान्‌की पूजा करके उनका दर्शन करते हैं, वह भूमंडल हमको किस समय मिलेगा (३) ॥३२॥ श्रीभगवान् वासुदेवके कीर्तनमें तत्पर रहना, भगवद्भक्तोंसे स्नेह करना, महात्मा जनोंकी सेवा करना तथा महात्माओंका वंदन करना हमको कौनसे दिन प्राप्त होंगे ? (४) ॥ ३३ ॥ वेदके अर्थ सुननेमें हमारी बुद्धि कब लगेगी ? अष्टादश पुराण श्रवणमें जिनका मन है, सत्संगमें जिनका चित्त है, वे हमसे वंदनीय हैं; उत्तम हैं, भरतखण्डमें जन्म पाकर जो सत्कर्मसे रहित हैं, वे मानो अमृतके घटको त्याग विषय वासनाकी इच्छा करते हैं (५) ॥३४॥ जो भगवान् वासुदेवके पूजनको छोड़कर बुरे कर्मोंमें प्रवृत्त हैं, वे कामधेनुके दूधको त्याग आकके दूधको पीना चाहते हैं, वे महामूर्ख हैं (६) ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! ऐसे देवता इस भरतखण्डकी प्रशंसा करते हैं और उनमें इस खण्डमें जन्म लेनेकी लालसा सदा बनी रहती है, ऐसे उत्तम खण्डमें जन्म पाकर विषयमें आसक्त हो; उसको जानो कि यह परम अभाग्य है और भगवान्‌ने उसकी बुद्धिको ग्रस लिया है (७) ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि जम्बू-द्वीपके आठ उपद्वीप हैं । सगर राजाके पुत्रोंने यज्ञीय घोड़ेके ढूँढ़नेके समय जब पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा था तब उन लोगोंने यह सब द्वीप बनाये थे ॥ ३७ ॥ इन सब द्वीपोंके नाम, यथा–स्वर्गप्रस्थ १, चन्द्रशुक्ल २, आवर्तन ३, रमणक ४, मंदहरिण ५, पाञ्चजन्य ६, सिंहल ७ और लङ्का ॥ ३८ ॥ हे भारतवंशावतंसे ! इस प्रकार जम्बूद्वीपके खण्डोंका विभाग यथायोग्य मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ३९ ॥

कवित्त–कहूँ कहूँ सूर्यकी किरणोंको प्रकाश होत, कहूँ कहूँ चन्द्रमाकी निर्मल उजियाली है । कहूँ कहूँ रजनीकी श्यामता दिखाई देत, कहूँ कहूँ छाय रही घटा काली काली है ॥ कहूँ तो बृहस्पति कहूँ बुद्धकी अनोखी छबि, कहूँ कहूँ मंगलकी मंगलीय लाली है । कहूँ कहूँ मन्द मन्द चलो जात मारगमें, शालिग्राम शुक्रचाल सबसे निराली है ॥

इति श्रीभाषाभागवतेमहापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे जम्बूद्वीपे भरतखण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा–प्लक्ष आदि छै द्वीपकी, स्थित वीस अध्याय ।
बहुरो लोकालोककी कहौं कथा समझाय ॥

मुनिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अब प्लक्षआदि छः द्वीपोंका प्रमाण लक्षण और आकारसे सब वर्षोंके विभागका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपके विस्तारका जितना परिमाण है उतना ही अर्थात् लाख योजनके विस्तारवाले लवणसागरसे वह घिरा हुआ है, इस कारण जिस प्रकार जम्बू नामक द्वीपसे सुमेरु पर्वत घिरा हुआ है ऐसा ही प्लक्षद्वीप भी लक्ष योजन विस्तारवाले लवणसागरसे घिरा हुआ । यह प्लक्षद्वीप पहले कहे हुए जम्बूद्वीपसे दूना बड़ा है, इस द्वीपसे लवणसमुद्र घिरा हुआ है। अर्थात् जिस प्रकार बाहिरी

भागके उपवनसे खाई घिरी रहती है, वैसे ही प्लक्षद्वीपसे लवणसमुद्र घिरा हुआ है, वहांपर एक बड़ा भारी प्लक्षका वृक्ष है, उसकी उँचाईका परिमाण पहले कहे हुए जम्बूवृक्षके समान है, अर्थात् लक्ष योजन ऊँचा है; इस प्लक्षवृक्षसे ही इस द्वीपका नाम "प्लक्षद्वीप" हुआ है, यह वृक्ष सुवर्णके समान रंगवाला है। इस द्वीपमें सात जीभवाला अग्नि रहता है, राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व इस द्वीपके अधिपतिने इस द्वीपको सात द्वीपमें विभाग करके अपने सात पुत्रोंको जिनके नाम इन वर्षोंके ऊपर ही थे, उनको समर्पण करके आप समाधि लगाकर आत्मयोगसे अपने शरीरको त्याग दिया ॥ २ ॥ इध्मजिह्वके किये हुए इन सात वर्षोंके नाम, यथा-शिव १, यवस २, सुभद्र ३, शांत ४, क्षेम ५, अमृत ६, अभय ७, इन सात वर्षोंमें सात ही तो पर्वत अतिशय प्रसिद्ध हैं और सातही नदियां विख्यात हैं ॥ ३ ॥ उनमें सात प्रसिद्ध पर्वतोंके नाम यथा–मणिकूट १, वज्रकूट २, इन्द्रसोम ३, ज्योतिष्मान् ४, सुवर्ण ५, हिरण्यष्ठीव ६ और मेघमाला ७। और प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यह है--अरुण १, नृम्णा २, आंगिरसी ३, सावित्री ४, सुप्रभाता ५, ऋतम्भरा ६, सत्यम्भरा ७। इन सब महानदियोंका जल स्पर्श करनेसे पुरुषोंका राजस तामस गुण नष्ट हो जाता है। यहांके स्थानीय हंस, पतंग, उर्द्धायन और सत्याङ्ग नामक चारों वर्ण सहस्रवर्षकी आयुवाले होते हैं, उनका दर्शन और स्वरूप देवताओंके समान होता है, इसलिये वे लोग वेद विद्यासे जो भगवान् वेदमय सूर्यान्तर्यामी आत्मस्वरूप हैं, उनकी वेदत्रयीसे उपासना किया करते हैं और इस मंत्रका जप किया करते हैं ॥ ४ ॥

मन्त्र–"प्रत्नस्य विष्णोरूपं च यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि ॥

हे राजन्! उस समय जो मंत्र पढ़ा जाता है, उसको अर्थ सहित कहता हूँ वह तुम सुनो, यथा–पुराण पुरुष भगवान् विष्णुजीके मूर्तिस्वरूप उन सूर्य नारायणकी हम शरण ग्रहण करते हैं, वे अनुष्ठीयमान धर्म, प्रतीयमान धर्म, ब्रह्म बोधक देव और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं ॥ ५ ॥ हे भारतश्रेष्ठ! प्लक्ष प्रभृति पांच द्वीपोंमें पुरुषोंकी आय, इंद्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, विक्रम, बुद्धि और स्वभावकी सिद्धि सबमें समान भावसे वर्त्तमान रहती है ॥६॥ प्लक्षरूप अपने समान परिमाणवाले ईखरसके समुद्रसे घिरा हुआ है ॥ वैसे ही शाल्मलि द्वीप जो प्लक्ष द्वीपसे दुगुना बड़ा है वह भी अपने समान परिमाणवाले मदिराके समुद्रसे घिरा हुआ है॥७॥हे राजन्! इस द्वीपमें भी प्लक्षवृक्षके तुल्य विस्तारवाला बड़ाभारी शाल्मलीका पेड़ है, लोक जिसका भगवान् वेद करके स्तुत पक्षियोंके राजा श्रीगरुड़जीका स्थान बतलाते हैं, उसको शाल्मलिद्वीप कहते हैं।

---

१. शंका–द्वीपान्तरोंमें आपसे कुशके वृक्षकी, सेंमलके तरुकी, पाकरके पेड़की, शिरीषके पादपकी, जामुनके रूखकी और कमलकी इस प्रकार लंबाई चौड़ाई सुनकर हम सब लोगोंके मनमें अत्यन्त शंका बढ़ती है, क्योंकि यह वृक्ष है, कि आश्चर्यका रूप है?

उत्तर–राजा प्रियव्रतके किये जो कर्म हैं, उन कर्मोंमें शंका कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जो आश्चर्य करने योग्य कर्म राजा प्रियव्रतने किये हैं, वह सब कर्म भगवान्‌ने किये हैं। राजा प्रियव्रतको एक निमित्तमात्र नियत कर रक्खा है, क्योंकि पञ्चमस्कंधके प्रथम अध्याय १ श्लोक ३९ में व्यासजीने कहा है कि राजा प्रियव्रत द्वारा किये जो कर्म हैं उन कर्मोंको करनेके लिये केवल ईश्वरका ही सामर्थ्य है, और दूसरे पुरुषका सामर्थ्य नहीं है; ऐसा व्यासजीके वाक्यसे जान पड़ता है कि जो आश्चर्यरूप काम राजा प्रियव्रतने किये, वह सब काम भगवान्‌ने किये हैं, इसलिये राजा प्रियव्रतके किये हुए कर्मोंमें शंका करनी नहीं चाहिये, क्योंकि भगवान् क्या नहीं कर सकते? ।

शाल्मलिका वृक्ष होनेके कारण इस द्वीपका नाम शाल्मली हुआ ॥ ८॥ शाल्मलिद्वीपके अधिपति राजा प्रियव्रतके पुत्र महाराज यज्ञबाहुने इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके मध्यमें जिनके नाम सात वर्षोंके ऊपर ही थे, बांट दिये, उन सात खण्डोंके नाम, यथा--सुरोचना १, सौमनस्य २, रमणक ३, देववर्ष ४, पारिभद्र ५, आप्यायन ६ और अविज्ञात ७ हैं॥९॥इन सात खंडोंमें सात नदियाँ और सात पर्वत प्रसिद्ध हैं। सात पर्वतोंके नाम, यथा--स्वरस १, शातशृंग २, वासुदेव ३, कुंद ४, मुकुंद ५, पुष्पवर्ष ६ और सहस्रश्रुति ७ हैं। सात नदियोंके नाम, यथा--अनुमती १, सिनीवाली २, सरस्वती ३, कुहू ४, रजनी ५, नन्दा ६ और राका ७ हैं॥१०॥ हे राजन्! इन सब खण्डोंमें रहनेवाले पुरुषोंके श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर, और इषंधर इत्यादि चार वर्ण हैं, वे लोग वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रदेवको भजते हैं ॥ ११ ॥ अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्ल पक्षमें यथाक्रमसे पितृ और देवताओंके अन्तका विभाग करते हुये अन्न देनेवाले चन्द्रमा सब प्रजाके राजा हैं॥१२॥ हे राजन्! सुरोद सागरके बाहिरी भागमें कुशलद्वीप है, वह ऊपर वर्णन किये हुए प्लक्षद्वीपके परिमाणसे दूना है और पूर्वोक्त द्वीपकी नाईं समान परिमाणवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें देवताओंका बनाया हुआ एक कुशका स्तम्भ है, इससे ही उसका नाम "कुशद्वीप" हुआ है। यह कुशस्तम्भ ऐसा विदित होता है मानो साक्षात् दूसरा अग्नि है, अपनी कोमल शिखाकी दीप्तिसे समस्त दिशाओंको सदा ही प्रकाशमान करता रहता है ॥१३॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं, कि हे परीक्षित्! एक कुशद्वीपका अधिष्ठाता प्रियव्रतका पुत्र हिरण्यरेता अपने खण्डके नामवाले सात पुत्रोंको इस द्वीपके यथायोग्य विभाग करके आप तप करनेको चला गया। उसके सात पुत्र और सात खण्डोंके नाम यथा--वसु १, वसुदान २, दृढरुचि ३, इनाभिगुप्त ४, स्तुत्यव्रत ५, विविक्त ६, और वामदेव ७ ये सातोंके नाम हैं ॥ १४ ॥ इन सात पुत्रोंके सात खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं, इन सात पर्वतोंके नाम, यथा--चक्र १, चतुःशृङ्ग २, कपिल ३, चित्रकूट ४, देवानीक ५, ऊर्ध्वरोमा ६ और द्रविण ७। सात नदियोंके नाम, यथा-- रसकुल्या १, मधुकुल्या २, मित्रविन्दा ३, श्रुतिविन्दा ४, देवगर्भा ५, घृतच्युता ६ और मन्त्रमाला ७ ॥१५॥ इन सब नदियोंका जल स्पर्शकर पवित्र हो कुशद्वीपनिवासी जन कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्ण हैं, वे अपने कर्मकौशलसे अग्निस्वरूप भगवान्की अर्चना करते हैं और यह मन्त्र उच्चारण करते हैं ॥ १६ ॥

मन्त्रः-"परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज ॥" इति ॥

अर्थ--हे जातवेद! तुम परब्रह्मका हव्य साक्षात् पहुँचा देते हो, इस कारण देवताओंके यज्ञद्वारा परम पुरुष भगवान्की अर्चना करते हुए उनके सब अंगोंके नामोंसे दिया हुआ हव्य अग्निमें समर्पण करते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्! ऊपर कहे हुए कुशद्वीपके बाहिरी भागमें क्रौञ्चद्वीप है। यह द्वीप कुशद्वीपसे परिमाणमें दूना है और जिस प्रकार कुशद्वीप घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार यह द्वीप "क्षीरसागरसे" घिरा हुआ है। इस द्वीपमें क्रौंच नामक एक श्रेष्ठ पर्वत है, इस कारण यह द्वीप "क्रौंचद्वीप" नामसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ १८॥ यद्यपि स्वामिकार्तिकजीने अपनी शक्तिसे इस पर्वतके किनारे और कुंज तोड़ दिये थे, तथापि यह पर्वत चारों ओरवाले क्षीरसागर जलसे सींचे जाने और जलके देवता वरुणजीसे

रक्षित होनेसे निर्भय हो गया ॥ १९ ॥ इस "क्रौंचद्वीप" का अधिष्ठाता प्रियव्रत राजाका घृतपृष्ठ नामक पुत्र हुआ, उसने अपने द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामानुसार सात खंडोंमें विभाग करके अपने सब खण्डोंमें अपने पुत्रोंको अधिपति रूपसे स्थापित करके आप आत्मज्ञानी बन जिन भगवान् हरिका परम कल्याण स्वरूप है और जो सबके आत्मा हैं उन वासुदेवके चरणारविन्दका आश्रय ले लिया ॥ २० ॥ हे राजन् ! घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके नाम, यथा–आम १, मधुरुह २, मेघपृष्ठ ३, सुधामा ४, भ्राजिष्ठ ५, लोहितार्ण ६ और वनस्पति ७ । इन सात खण्डोंमें सात पर्वत और सातही महानदियाँ अतिशय प्रसिद्ध हैं । उन सात महानदियोंके नाम, यथा–अभया १, अमृतौघा २, आर्यका ३, तीर्थवती ४, वृत्तिरूपवती ५, पवित्रवती ६ और शुक्ला ७ ॥ २१ ॥ इन सब नदियोंका जल अति पवित्र और निर्मल है, इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुषगण इस जलको पीते हैं और " पुरुष ऋषभ, द्रविण, देवक" इत्यादि इस खण्डके रहनेवाले चारों वर्ण जल–अंजलिसे जलमय वरुण भगवान्की पूजा किया करते हैं और सदा यह मंत्र पढ़ा करते हैं ॥ २२ ॥

मन्त्रः–"आपः पुरुषवीर्याःस्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः ।
ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः ॥

अर्थ–हे आपः आप लोगोंने ईश्वरसे सामर्थ्य पाया है, इसीसे भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकरूप त्रिलोकीको तुम पवित्र करते हो, हम आपको स्पर्श करते हैं आप हमारे शरीरको पवित्र करो । आप अपने ही रूपसे पापका नाश करनेवाले हो, इसलिये सरलतासे हमको पवित्र करो ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इस द्वीपसे आगे शाकद्वीप है, उसका विस्तार बत्तीस ३२००००० लक्ष योजनका है । यह द्वीप भी अपने समान परिमाणवाले दधिसागरसे चारों ओर सब प्रकारसे घिरा हुआ है । इस द्वीपमें शाक नाम एक बड़ा भारी वृक्ष है; इस वृक्षके पत्ते भीतरसे कड़े स्पर्शवाले और बाहरसे कोमल स्पर्शवाले हैं, इस वृक्षसे ही इस द्वीपका नाम "शाकद्वीप" हुआ है, इस वृक्षकी अतुल सुगंधि है, जिससे कि यह द्वीप सर्वदा सुगंधित रहता है ॥२४॥ इस द्वीपके अधिष्ठाता भी राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि नाम राजा हुए । यह मेधातिथि इस द्वीपको अपने सात पुत्रोंके नामसे सात खण्डोंमें विभाग करके उन सब खण्डोंमें यथाक्रमसे पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वाधार इन नाम वाले सात पुत्रोंको सातवर्णोंमें अधिपतिरूपसे स्थापन किया । उसके पीछे आप भगवान् वासुदेवमें मन लगाकर तप करनेके लिये तपोवनमें चले गये ॥ २५ ॥ इन खण्डोंमें सात सीमा पर्वत और सात ही महानदियाँ अतिशय प्रसिद्ध हैं । उन सात सीमा पर्वतोंके नाम यथा–ईशान १, उरुशृंग २, बलभद्र ३, शतकेशर ४, सहस्रस्रोता ५, देवपाल ६, और महानस ७ । प्रसिद्ध सात नदियोंके नाम यथा–अनघा १, आयुर्दा २, उभयसृष्टि ३, अपराजिता ४, पंचपदी ५, सहस्रपदी ६ और निजधृति ७ हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन खण्डोंके रहनेवाले पुरुष "ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत" इत्यादि वर्णधारी होकर प्राणायामसे राजस, तामसको दूर करते हुए परम समाधियोगसे वायुरूपी भगवान्की उपासना किया करते हैं । और यह मंत्र सर्वदा उच्चारण किया करते हैं–

मन्त्रः–"अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥"

अर्थ–जो प्राणादि वृत्तिद्वारा सब प्राणियोंके अंतरमें प्रविष्ट होकर उनका प्रतिपालन करते हैं वे सबके अन्तर्यामी साक्षात् ईश्वर हैं, सब जगत् जिनके अन्तरमें विराजमान है, वह भगवान् (वायु) हमारी रक्षा करें ॥२८॥ इसी प्रकार दधि-जल-सागरके आगे पुष्पकरद्वीप है, यज्ञ द्वीप शाकद्वीपसे विस्तारमें दुगुना अर्थात् ६४००००० चौसठ लक्ष योजन है। यह द्वीप चारों ओर अपने समान परिमाणवाले शुद्ध स्वादुजल समुद्रसे बाहिरी भागमें सब भांतिसे घिरा हुआ है, इस द्वीपमें एक बड़ा भारी कमल है, वह अग्निकी शिखाके समान एक लक्ष निर्मल कनकमय पत्रोंसे सदा दीप्तिमान् रहता है। वही भगवान् भुवनेश्वर ब्रह्माजीका आसन कल्पित किया गया है ॥२९॥ इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एक पर्वत है। वह पूर्व और पश्चिम खण्डोंका सीमा पर्वत है, इसका विस्तार व उंचाई १०००० दश सहस्र योजन है इस द्वीपमें इंद्रादि लोकपालोंकी चार पुरी हैं। इन सब पुरियोंके ऊपरी भागमें सूर्यका रथ, जो कि सुमेरुपर्वतकी सदा चारों ओरसे परिक्रमा किया करता है। उसका चक्र देवताओंके अहोरात्र अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो अयनोंपर नियत कालमें भ्रमा करता है ॥३०॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रत–वंशीय वीतिहोत्र नामक राजा हुए। उनके दो पुत्र रमणक और धातकी हुए। वीतिहोत्र राजा इस द्वीपको दो खण्डोंमें विभाग करके, उनमें अपने दोनों पुत्रोंको खण्डोंका अधिपति बनाकर अपने चित्तको अपने बड़े भ्राताओंके समान भगवान्की आराधनामें लगा दिया ॥ ३१ ॥ इन दोनों खण्डोंके पुरुषगण ब्रह्मसालोक्यादि साधनोंसे पद्मासन ब्रह्मस्वरूप भगवान्की आराधना किया करते हैं और इस मन्त्रका जप किया करते हैं ॥ ३२ ॥

मन्त्रः–"यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः ॥" इति ॥

अर्थ–जो कि प्रसिद्ध कर्म फलोंके चिह्नरूप हैं जिनसे ब्रह्मा प्रकाश पाता है और परमेश्वरमें ही जिनकी निष्ठा है, इस कारणसे जो अद्वितीय हैं और सभी लोग जिनकी भक्तियोगसे अर्चना किया करते हैं, उन शांत स्वभाववाले षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान्को हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीसुखदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस द्वीपके आगे लोकालोक नामपर्वत लोक-अलोकके मध्यमें रचा हुआ है। लोक नाम उसका है जहां सूर्यका प्रकाश रहता है, और अलोक वह है जहां सूर्यका प्रकाश नहीं होता ॥३४॥ मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें जितने परिमाणवाली भूमि है, स्वादुजल समुद्रके आगे भी उतने ही परिमाणकी भूमि है। (शिवतन्त्रमें कहा है कि दो करोड़, त्रेपन लाख, पचास सहस्रके प्रमाणमें सब द्वीप और सातों समुद्र हैं, शिवजी कहते हैं, हे पार्वतीजी ! देशकोटमें सुवर्णमय भूमि है। देवताओंके विहारार्थ लोकालोक पर्वत उससे आगे हैं) वहां पर बहुतसे प्राणी वसते हैं। फिर उसके पीछे स्वर्णमयी भूमि है, वह भूमि दर्पण तलके सदृश अतिशय निर्मल है। यदि उसपर कोई पदार्थ रक्खा जाता है, तो फिर वह अति कष्टसे पाया जाता है। इसलिए इस भूमिमें देवताओंके सिवाय और प्राणी नहीं हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इन दो खण्डोंके बीचवाले पर्वतका लोकालोक नाम होनेका यही कारण है कि इस पर्वतके मध्य स्थलमें रहकर लोक अर्थात् सूर्यादि–लोक–विशिष्ट देश और अलोक अर्थात् उनके उजालेसे रहित देश इन दोनों

खंडोंको परस्पर अलग-अलग-स्थापित करता है। इसीसे इनका नाम 'लोकालोक' हुआ ॥३६॥ उसे त्रिलोकीके अन्तमें सब ओरसे ईश्वरने रचा है, जिससे कि सूर्यादि ध्रुव अपवर्ग ज्योतिर्गणोंकी किरणें कदाचित् पीछे की ओर न पहुँच जायें इतने परिमाणकी इस पर्वतकी चौड़ाई और ऊंचाई है। ऐसा यह पर्वत त्रिलोकींकी सीमा स्वरूप है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे पंडित लोगोंने नाम, लक्षण और आकारसे इन सब लोकोंकी रचनाका वर्णन किया है। हे भरतवंशावतंस! जिस लोकालोक पर्वतकी कथा पहले कही, वह पचास कोटि योजन है। इस भूगोलका चौथा भाग यह लोकालोक पर्वत है। अर्थात् मेरुसे चारों ओर साढ़े बारह करोड़ योजन दूर है ॥ ३८ ॥ इस पर्वतके ऊपरी भागमें चारों ओर सब गजपति विश्वगुरु ब्रह्माजीने स्थापित किये हैं। इन चारों दिग्गजोंके नाम यह हैं--ऋषभ, पुष्करचूण्ड, घामन, अपराजित। इन्हीं चारोंसे सब लोकोंकी स्थिति हो रही है ॥ ३९ ॥ दूसरे जो भगवान् महापुरुष ऐश्वर्य आदिकोंके पति और सब प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं; जो कि इन सब दिगहस्तियोंके और अपने विभूति स्वरूप इन्द्रादि लोकपालोंके विविध वीर्यको बढ़ानेके लिये और सब लोकोंका मंगल करनेके लिये, गिरिवरपर विराजमान रहते हैं, वहांपर वे निष्कर्म होकर नहीं विराजते, किंतु वे विशुद्ध सत्त्व, जिससे कि ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इत्यादि अष्ट महासिद्धि लक्षित होती हैं; उनको प्रकाशित करते हैं। उनको चारों ओरसे विष्वक्सेनादि प्रधान-प्रधान पार्षदगण घेरे रहते हैं। यद्यपि श्रीभगवान्‌जी इस पर्वतपर रहकर विशुद्ध सत्त्व प्रगट करते हैं तथापि उस समय भी उनके करकमल अस्त्ररहित नहीं रहते। अर्थात् अपने श्रेष्ठ हथियारोंसे युक्त भुजदण्ड सदा ही अतिशय शोभा पाया करते हैं ॥ ४० ॥ हे राजन्! ऊपर भगवान्‌जीके जिस प्रकार विराजमान होनेकी कथा कह आया, अब उसका तात्पर्य कहता हूँ, तो आप श्रवण कीजिये। यह जो सब विविध भांतिकी लोकयात्रा है, यह सब भगवान्‌की योगमायासे रची गयी है। इन सबकी रक्षा करनेके लिये भगवान् अपनी लीलाओंसे इस प्रकारके वेषकी रचना स्वीकार किया करते हैं ॥ ४१ ॥ हे भरतश्रेष्ठ! पहले लोकालोक नामक दो खण्डोंके प्रसंगमें अलोक खण्डका जो मध्यभाग विस्तारवाला कहा है, उससे ही इसका परिमाण जान लेना, क्योंकि यह खण्ड लोकालोक पर्वतके बाहिरी भागमें हैं, इसलिये उसका परिमाण सुमेरुके एक पार्श्वमें साढ़े बारह करोड़ योजन है। इस अलोक खण्डके आगे योगेश्वर लोग जा सकते हैं। ऐसा ऋषिलोग कहते हैं कि द्विज-पुत्रके लानेके समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था, इसी कारण वह अतिशय शुद्ध है और योगेश्वरोंकी गति वहां है ऐसा कहकर प्रसिद्ध हुआ है ॥४२॥ हे राजन्। विस्तारसे ब्रह्माण्डका परिमाण कह चुका। अब तुमसे चारों दिशाओंका परिमाण कहता हूँ। ब्रह्माण्डके मध्यस्थलमें सूर्यभगवान् हैं, स्वर्ग और भूमिके बीचमें जिनका अन्तर है, वही ब्रह्माण्डका मध्य स्थल है, सूर्य और अण्डकटाह इन दोनोंके मध्यस्थलका परिमाण पच्चीस करोड़ योजन है ॥४३॥ हे राजन्! सूर्यका नाम मार्तंड होनेका कारण यह है कि मृत अर्थात् अचेतनअण्डमें वह वैराजरूपसे प्रविष्ट हुये थे, इसलिये उसका 'मार्तंड' नाम हुआ और दूसरे वे हिरणमयाण्डसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये 'हिरण्यगर्भ' इस शब्दका भी उनके लिये प्रयोग होता है ॥४४॥ हे भरत वंशावतंस! सूर्यसे ही दिशा, आकाश, पृथ्वी आदिके विभाग हुए हैं और भोगस्थान मोक्षस्थान

व नरक और अतलादि सर्वप्रकारके लोकोंको सूर्य ही परस्परसे अलग करके विभाग करते हैं ॥ ४५ ॥ इस लिये सूर्यरूपी भगवान्‌की ही उपासना करनी चाहिये, क्योंकि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, पेटके बल चलनेवाले (सांप विच्छू आदि) और लता व बीजसमूहके आत्मा और तेजके अधिष्ठाता हैं ॥ ४६ ॥

भजन

रवि ही सकल वस्तु उपजावै ।
भाँति भाँतिके फल पुष्पादिक, शुभ सुगन्ध महकावै ॥ १ ॥
जो जो वस्तु रची ब्रह्माने, सबमें झलक दिखावै ।
सबमें भाषत तेज सूर्यको, पालै और सुखावै ॥ २ ॥
आठ मासमें जो जल सोखत, चार मास बरसावै ।
उस ही जलसे अन्न अनेकन, वृक्ष लता प्रगटावै ॥ ३ ॥
जेठ माससे तपत दशों दिशि, अग्निरूप दरसावै ।
शालिग्राम जगत्-सुखदायक, पूरण ब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपखण्डानां परिमाणलक्षणवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा-कालचक्रकर भ्रमत नित, रवि इकीस अध्याय ।
अपनी ही गतिसे बहुरि, सब राशिनमें जाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! भूमण्डलकी रचना इतना परिमाण अर्थात् विस्तारमें पंचशत कोटि योजनका प्रमाण और लक्षण दिखाकर वर्णन की । स्वर्गमण्डलका वर्णन जाननेवाले शास्त्रकार लोग इस भूमंडलके परिमाणसे ही स्वर्ग मंडलका परिमाण भी कहा करते हैं ॥ १ ॥ इस कारणसे जिस प्रकार चने आदिकी दाल की जाय तो एक दालकी दूसरी दालके समान ही हो सकती । उसके ही समान भूमंडलका जितना परिमाण है, उतना ही स्वर्ग-मंडलका परिमाण है, इन दोनोंके मध्यभागमें जो आकाश है, वह दोनोंसे मिला हुआ ॥२॥ उस आकाशके मध्य स्थलमें भगवान् सूर्यनारायण त्रिलोकीको ताप (धूप) देते हैं और अपनी दीप्तिसे त्रिभुवनको दीप्तिमान् करते हैं । सूर्य ही उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामक अपनी मंद, शीघ्र और समान गतिसे यथाकालमें ऊपर जाना, नीचे आना, समान स्थानमें चलनेको प्राप्त होकर नियत कालपर आकर मकरादि राशिमें रात-दिनको बड़ा-छोटा और समान कर देते हैं ॥ ३ ॥ अर्थात् जब सूर्य, मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं, तब दिन-रात प्रायः समान हुआ करते हैं, और जब वृषादि पंचराशिसे गमन करते हैं, तब दिन बढ़ जाते हैं और महीने महीनेसे रात्रि क्रमशः कमती होती जाती है ॥४॥ और जब सूर्य वृश्चिकादि पंच राशियोंमें वर्तमान होते हैं तब दिन रात उलट-पलट हो जाते हैं, अर्थात् दिन छोटा और रात्रि बड़ी हो जाया करती हैं ॥५॥ वास्तवमें जबतक सूर्य उत्तरायण रहते हैं तबतक दिन बड़े रहते हैं और जब दक्षिणायण होते हैं तबतक रात्रि बड़ी हुआ करती है ॥६॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे दिवाकरकी मंद, शीघ्र और समान चालसे मानसोत्तर पर्वत और मेरुके मध्यमें भ्रमण करनेका

मार्ग नव करोड़ इक्यावन लाख (९५१०००००) योजन है, ऐसा ज्ञानी पंडित और ऋषिगण कहा करते हैं। मानसोत्तरमें सुमेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी पुरी 'देवधानी' है। दक्षिणकी ओर यमकी पुरी 'संयमनी' है, पश्चिमकी ओर वरुणकी 'निम्रलोचनी' नाम पुरी है उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी नामक पुरी है, इन सब पुरियोंमें सुमेरु पर्वतके चारों ओर विशेष-विशेष समयमें उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्धरात्रि हुआ करती है। यह चार काल सब उदय-अस्त इत्यादि प्राणियोंकी प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण हैं अर्थात् सूर्य भगवान्‌का उदय-अस्त देखकर ही प्राणिगणोंकी चेष्टादि हुआ करती हैं।वहां भी सुमेरु दक्षिणकी ओर वसनेवालोंको इंद्रकी पुरीसे और जो पश्चिमके निवासी हैं, उनको यमपुरीसे, जो उत्तरकी ओरके रहनेवाले हैं उनको वरुणकी पुरीसे और जो पूर्वके रहनेवाले हैं, उनको चन्द्रमाकी पुरीसे उदयादिक होते हैं। महात्मा पुरुषोंने ऐसा कहा है ॥ ७ ॥ परंतु जो प्राणी सुमेरुपर बसते हैं, उनको मध्याह्नकालिक सूर्य ताप दिया करते हैं। यद्यपि सूर्य नारायण बायीं ओरको चलते हैं, अर्थात् नक्षत्रोंके संमुख होकर गमन करनेसे यद्यपि सुमेरुको बायीं ओर रखकर गमन करते हैं, तथापि प्रदक्षिणावर्तके प्रवर्तक प्रवाह नामक वायु ज्योतिश्चक्रको भ्रमण करनेसे प्रतिदिन एकएक वार दक्षिण दिशाको जाया करते हैं, इसलिये चक्रगतिके कारण अति दूरसे सूर्यको अत्यन्त भूमिके निकट ही लगा हुआ देखा जाय, इसका ही नाम उदय है, उनको आकाशमें चढ़ा हुआ देखना इसका ही नाम मध्याह्न है, भूमि विष्टका देखना अस्त कहलाता है। वहांसे अधिक दूरका चला जाना ही अर्धरात्रि है। वेदमें भी समुद्रके तीरकी दृष्टि क्रमसे कही हुई है कि दिवाकर प्रातःकालके समय जलमेंसे उदय होता है। और संध्याकालके समय जलमें प्रविष्ट हो जाया करते हैं। वास्तवमें यह बात कल्पित है कुछ सत्य नहीं है ॥ ८ ॥ परंतु जिस स्थानमें दिवाकर उदित होते हैं, उसके सूत्रपात स्थानपर ही अस्त हो जाते हैं, मध्याह्नकालके समय जहाँके प्राणियोंको पसीना उपजाते हुए धूप देते हैं, उसके सब सूत्रपात स्थानमें अर्धरात्रि होनेसे वहांके प्राणियोंको उस समय निद्रित कर देते हैं। इसलिये जो लोग उनका अस्त देख सकते हैं, वे इस स्थानमें आनेके कारण (सम्मुख सूत्र पड़नेके स्थानपर) सूर्य नारायणको नहीं देख सकते ॥ ९ ॥ जब सूर्य भगवान् इंद्रपुरीसे चलते हैं, तब पंद्रह घड़ीमें यमपुरी पहुँच जाते हैं, इतने कालान्तरमें सवा दो करोड़ साढ़े बारह लाख और पच्चीस हजार अर्थात् दो करोड़ सैंतीस लाख पिछत्तर सहस्र २३७७५००० योजन मार्ग चलते हैं। फिर सूर्य यमकी पुरीको जाते हैं ॥१०॥इसी भांति वहांसे वरुणपुरी और चन्द्रपुरीको जाते हैं और वहांसे फिर इंद्रपुरीमें आते हैं। इसी प्रकार दूसरे ग्रह चन्द्र आदि भी ज्योतिश्चक्रसे नक्षत्रोंके साथ ही तो उदय होते हैं और नक्षत्रोंके साथ ही अस्त हो जाते हैं॥११॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे सूर्य भगवान्‌का वेदमय रथ एक मुहूर्तमें पहले कही हुई चारों पुरियोंके चारों ओर चौतीस लक्ष आठसौ ३४००८०० योजन मार्गको घूम जाते हैं ॥१२॥ इस रथका एक ही पहिया है (इसका नाम संवत्सर है)। ऐसा कहते हैं कि उस पहियेके बारह आरे तो बारह मास हैं, और छः उसकी पुट्ठी हैं (जो ऋतु कहलाती हैं) और शीत, गरमी, वर्षा यह तीन उसकी नाभि हैं, उसकी धुरीका भाग सुमेरु पर्वतका मस्तक है और दूसरा भाग मानसोत्तर पर्वतपर स्थापित है। उस मानसोत्तरमें सूर्यका रथ स्थापित है, जिसमें पिरोया हुआ कोल्हूके पहियेके समान सूर्यके रथका चक्र मानसोत्तरपर बराबर घूमता रहता है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! सूर्यके रथमें दो धुरे हैं, प्रथम धुरा तो सुमेरु और मानसोत्तर-

तक फैला हुआ है, उसका परिमाण एक करोड़, सत्तावन लक्ष, पचास हजार १५७५०००० योजन है दूसरे धूरेका परिमाण इससे चौथाई है अर्थात् उन्तालीस लाख साढ़े तैंतीस सहस्र ३९३३५०० योजन है। पहला धुरा दूसरे धुरेके पूर्व भागमें बँधा हुआ है और कोल्हूके धुरेके समान ध्रुवलोकके वायुपाशसे उसका ऊपरका भाग बँधा हुआ है ॥ १४ ॥ इस नीड अर्थात् बैठनेका स्थान छत्तीस लक्ष ३६०००००० योजन बड़ा और उससे चौथाई अंश अर्थात् नव लाख ९००००० योजन ऊँचा है और इस रथका जुआ नव लक्ष ९००००० योजनका बड़ा है। इस रथमें गायत्र्यादि नामधारी सात अपूर्व्व तुरंग अरुण नाम सारथीके जोते हुए भगवान् मार्तण्डके रथको खैंचकर ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य महाराजके सारथी कर्ममें नियुक्त होकर अरुण यद्यपि आगे बैठे रहते हैं, परन्तु उनका मुख सूर्य नारायणके सम्मुखही रहता है ॥ १६ ॥ और वालखिल्य नामक ऋषिगण जिनके शरीरका परिमाण अंगुष्ठ-पर्वमात्र है और जिनकी संख्या साठ हजार है, वे सब इन सूर्य नारायणके सम्मुख संभाषण करनेके लिए नियुक्त होकर अनेक प्रकारसे सदा उनकी स्तुति किया करते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार और भी ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, देवता इत्यादि जिनकी संख्या एक-एक करके चौदह हैं और जोड़की रीतिसे सात जोड़ हैं, वे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम वाले सूर्य भगवान्‌की अलग-अलग कार्य करनेके द्वारा उपासना किया करते हैं। और इन सबके नाम भी पृथक् पृथक् हैं।

दोहा–यह सातों गण सङ्गमें, पृथक् पृथक् कर नाम।
अस्तुति करत दिनेशकी, गाय गाय गुण ग्राम ॥१८॥

हे राजन् ! दिवाकर इस रीतिसे परिवृत्त होकर भूमण्डलमें नव करोड़, एक लक्ष, पचास हजार ९०१५०००० योजन गमन करते हुए प्रत्येक क्षणमें दो सहस्र दो योजन मार्ग चलते हैं। सूर्य सबसे बड़े देवता हैं, सूर्य ईश्वर हैं ॥ १९ ॥

इति श्री भाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चम-स्कन्धे सूर्यरथमण्डलवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

दोहा–बाइस शशि शुक्रादिको, उत्तरोत्तर स्थान।
इन्हीं ग्रहोंकी चालसे, नर दुख सुख ले जान ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजीसे बोले कि,हे राजन् ! आपने जो यह वर्णन किया कि भगवान् सूर्य नारायणके सुमेरु और ध्रुवकी प्रदक्षिणा करके घूमते-घूमते सब राशियोंके सम्मुख विना प्रदक्षिणा किए हुए गमन करते हैं, तो यह बात हमारे विचारमें परस्पर विरुद्ध मालूम होती है। इस बातका किस प्रकारसे निर्णय किया जाय ? ॥ १ ॥ तब श्रीशुकदेवजी हर्षसहित बोले कि जिस प्रकार घूमते हुए कुम्हारके चाकके साथ उसके ऊपर घूमती हुई चींटियाँ आदिकी गति दूसरी प्रकार जान पड़ती है, क्योंकि चक्रके एक-एक भागको त्यागकर वे आती हुई ज्ञात होती हैं, ऐसे ही नक्षत्र राशियोंके द्वारा उपलक्षित कालचक्रसे

१. दृष्टांत–"एक पीपलके वृक्षपर एक उल्लूका घोंसला था। उस पीपलको प्रातःकाल आ–आकर मनुष्य जल दिया करते थे, तब उल्लूके बच्चे अपनी मातासे बोले [illegible] माता ! सूर्य तो दीखता ही नही यह सब मूर्खलोग किसको जल देते है ? उनकी माता बोली कि बेटा ! सूर्य तेरे बापने न देखा, न दादाने देखा, तू कहांसे देखेगा, क्योंकि सूर्यके तेजके कारण उल्लूके नेत्र मिच जाते हैं, उनको सूर्य नही दीखता, ऐसे ही मूर्खोंको परमेश्वर नहीं दीखते और सूर्यनारायण तो नित्य उदय होते हैं।"

ध्रुव और मेरुकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रतासे साथ चलनेके कारण उनके आश्रय सूर्यादि ग्रहोंकी गति और ही प्रकारसे नक्षत्रादिके मध्यमें ज्ञात होती है ॥ २ ॥ हे राजन् ! साक्षात् नारायण वह भगवान् आदि पुरुष लोगोंका मङ्गल करनेके लिए कर्म शुद्धिकी निमित स्वरूप जो अपनी वेदमय आत्मा है, उसको बारह प्रकारसे विभाग करते हुए वसन्त आदि छहों ऋतुओंमें सब कर्मोंके भोगानुसार उन-उन ऋतुओंके गुण अर्थात् शीत उष्ण आदिका विभाग करते हैं। परमपुरुषके इस व्यापारमें आत्मतत्त्वके जाननेवाले विद्वान् लोग भी इस शास्त्रकी आलोचना करके तर्क-वितर्क किया करते हैं ॥३॥ इसलिए सब पुरुष जो कि वर्णाश्रम आचारपर चलनेवाले हैं वे लोग वेदमें कहे हुए कर्मोंसे इंद्रादिरूपी और ध्यानादि योग विस्तार करके अन्तर्यामी उन सूर्य भगवान्की उपासना करके सब यथार्थ कल्याणको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४ ॥ यह सूर्य ही सब लोकोंके आत्मा हैं, स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें जो आकाश मण्डल है उसके मध्यमें काल चक्रमें स्थित होकर यही सूर्य बारह महीनोंकी (राशि) भोग करते हैं। मेषादि राशियोंके नाम ही इन सब मासोंके नाम हैं, यह सब मास संवत्सरके अंग हैं। हे राजन् ! सब महीने अलग-अलग भांतिके होते हैं यह चंद्रमाकी गतिसे दो पक्षका महीना होता है। सूर्यकी गतिके हिसावसे सूर्यके सवा दो नक्षत्र भोग करनेके कालको एक मास कहते हैं। यह एक महीना पितरोंके महीनेका एक दिन-रात होता है। अर्थात् इन दोनों कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षमें एक मास होता है, वह यथाक्रमसे पितृलोकका दिन और रात्रि होती है ॥५॥ हे राजन् ! सूर्यनारायण जितने कालमें संवत्सरका छठा भाग अर्थात् दो राशियोंको भोग करते हैं, वह काल ऋतु कहा जाता है इसलिये यह ऋतु संवत्सरका एक अंग है इस प्रकार सूर्यनारायण जितने समयमें पृथ्वीके आधे भागमें घूम जाते हैं, वह उतना काल अयन कहा जाता है ॥ ६ ॥ इस प्रकारसे सूर्य नारायण जितने कालमें स्वर्गमण्डल और पृथ्वीमंडल यह दो मंडल आकाश मंडलसहित संपूर्ण रूपसे भ्रमण कर भोग करते हैं वही काल संवत्सर है। इन सूर्यकी ही मन्द, शीघ्र और समान गतिसे संवत्सर, परिवत्सर, इडा वत्सर, अनुवत्सर और वत्सर इन पांच नामोंमें पांच प्रकार होते हैं, ऐसा पंडित लोग कहते हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! सूर्यमंडलके ऊपर लक्ष योजनके ऊपर चन्द्र ग्रह दृष्टि आता है। यह चन्द्रमा दो पक्षमें चलता है। सूर्यके एक संवत्सरमें चलता है। और चन्द्रमा सवा दो दिनमें सूर्यके एक मासके बराबर चलता है। और चन्द्रमा एक दिनमें सूर्यके एक पक्षके चलनेके बराबर चलता है ! शुक्लपक्षके पड़वाको संक्रांति जब हो तो सौरमास और चान्द्रमास दोनोंका प्रारंभ होता है, इस प्रकार वर्षका नाम संवत्सर है। और सूर्यकी गणनासे छः दिन बढ़ते हैं और चन्द्रमाकी गणनासे छः दिन घटते हैं। इस प्रकारसे बारह-बारह दिनका अन्तर होनेसे सूर्य और चन्द्रमा आगे पीछे हो जाते हैं, तो पांच वर्षके मध्यमें दो अधिक मास पड़ जाते हैं। छठे वर्ष दोनोंका हिसाब एक हो जाता है और फिर पड़वाके दिनसे संक्रांति होनेसे फिर वही छठा वर्ष संवत्सर कहलाता है। और इसी प्रकार प्रथम वर्षको संवत्सर, दूसरेको परिवत्सर, तीसरेको इडावत्सर, चौथेको अनुवत्सर और पांचवेंको वत्सर कहते हैं। कभी-कभी चन्द्रमाकी गति अति शीघ्र होनेके कारण यह ग्रह सूर्यके बराबरीसे भी आगे हो जाता है ॥८॥ चन्द्रमंडलकी सब कलायें जब आपूर्यमाण रहतीं अर्थात् बढ़ती हैं तब देवगणोंका दिन होता है। और जब क्रम-क्रसे कलायें क्षीण होती जाती हैं, तब पितृ लोकोंका दिन होता है। हे राजन् !

चन्द्र ग्रह इस प्रकारसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष द्वारा पितरोंका दिन-रात करते हुए तीस-तीस मूहूर्तमें एक-एक नक्षत्रको भोग करते हैं। यह ग्रह अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण सब जीवोंका प्राण और सबके जीवनका हेतु है। इसी कारण चन्द्रमाको जीवदाता भी कहते हैं॥९॥ इसलिये षोडशकलायुक्त चन्द्ररूपी भगवान् परम पुरुष मनोमय, अन्नमय तथा अमृतमय हैं। अधिक करके यह देवता, पितृ, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबके प्राणोंको तृप्त किया करते हैं और बुद्धिका देनेवाला है, इसलिये ऋषिलोग उसको सर्वमय कहकर वर्णन करते हैं। हे राजन्! पहले कहे हुए चन्द्रमंडलसे दो लक्ष योजन ऊपर सब नक्षत्र सुमेरुकी दक्षिण ओर कालचक्रके साथ ईश्वर करके जुड़े हुए होनेके कारण भ्रमण करते हैं ॥ १० ॥ उन नक्षत्रोंके नाम--अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३, रोहिणी ४, मृगशिर ५, आर्द्रा ६, पुनर्वसु ७, पुष्य ८, आश्लेषा ९, मघा १०, पूर्वाफाल्गुनी ११, उत्तराफाल्गुनी १२, हस्त १३, चित्रा १४, स्वाती १५, विशाखा १६, अनुराधा १७, ज्येष्ठा १८, मूल, १९, पूर्वाषाढ़ा २०, उत्तराषाढ़ा २१, श्रवण २२, धनिष्ठा २३, शतभिषा २४, पूर्वाभाद्रपदा २५, उत्तराभाद्रपदा २६ और रेवती २७। इन सबकी संख्या अभिजित नक्षत्रके साथ अट्ठाईस है ॥ ११ ॥ हे भारत ! नक्षत्रमंडलके दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र ग्रह है। सूर्यके सम्मुख किसी नक्षत्रको भोग करते हुए यह ग्रह उनके पीछेकी दिशामें रहता है और एक सङ्ग फिरनेके समय यह अति शीघ्रगामी होकर क्रमवाले नक्षत्रोंको उलङ्घन करके फिरा करता है। यह शुक्र ग्रह भी सूर्यके समान शीघ्र, मन्द और समान गतिवाला हो जाता है। यह सदा लोकोंके अनुकूल रहता है। प्रायः यह वर्षता भी है, इस कारण जो ग्रह वृष्टिके रोकनेवाले हैं, यह उनको भी शांत कर देता है ॥१२॥ हे राजन् ! शुक्रकी जिस प्रकारसे गति और स्थिति है, इसी प्रकार बुधकी गति जानना अर्थात् बुध ग्रह भी कभी सूर्यके आगे और कभी-कभी पीछे रहता है। परन्तु शुक्रग्रहसे दो लक्ष योजन ऊपर यह बुध ग्रह दृष्टि आता है। यह ग्रह भी प्रायः लोकोंका शुभकारी है। परन्तु जब सूर्यसे अलग हो जाता है, तब बहुधा अतिशय पवन, निर्जल, मेघघटा और अनावृष्टि इत्यादि भयका यह विस्तार किया करता है ॥१३॥ बुध ग्रहके ऊपर मंगल ग्रह है, वह भी दो लक्ष योजनसे दृष्टि आता है। यह ग्रह भी तीन-तीन पक्षमें क्रम-क्रमसे बारह राशियोंको भोग करता है और यदि उसकी टेढ़ी गति न हो तब यह बहुत करके अमंगलसूचक अशुभ ग्रहसे हो जाता है ॥१४॥ मंगल ग्रहके ऊपर दो लक्ष योजन पर भगवान् बृहस्पतीजी हैं। इनकी गति यदि टेढ़ी न हो तो यह एक वर्षमें एक-एक राशिको भ्रमण करते हैं। बृहस्पतिजी ब्राह्मण कुलपर बहुधा अनुकूल ही रहा करते हैं ॥१५॥ बृहस्पतिजीके ऊपर दो लक्ष योजनपर शनैश्चर ग्रह प्रकाश करता है। उसको एक-एक राशिके घूमनेमें तीस-तीस महीने लग जाते हैं। और उतने ही संख्याके वर्षोंमें अर्थात् तीस वर्षमें उसका सब राशियोंपर घूमना समाप्त होता है, यह ग्रह लगभग सब ही प्राणियोंको अशांतिका देने-

---

१. दृष्टांत-एक समय रावणने सब ग्रहोंको कारागारमें बंद कर दिया, परंतु शनैश्चर नहीं आया, जब रावणने शनैश्चरदेवताको न देखा, तो मंत्रियोंको बुलाकर बोला-कि क्या कारण जो शनैश्चर हमारे बंदी गृहमें नहीं है ? मंत्रियोंने कहा-कृपानाथ ! शनैश्चर क्रूर देवता है और अत्यन्त दुःखदायक है, इसलिये उसको नहीं लाये क्योंकि दुष्टको घरमें रखना अच्छा नहीं, ऐसा कहा है -"दुष्टसंग जनि देय विधाना" रावणके तो खोटे दिन आही गये थे, काल शिरपर गर्ज रहा था, अत एव बोला कि उसको अभी पकड़ लाओ सब मंत्री सेनाको लेकर शनैश्चरके पास गये और जाकर कहा-तुमको रावणने बुलाया है। शनैश्चरजी बोले कि अच्छा चलो, जब ही शनैश्चरने लंकाकी ओर आंख उठाकर देखा, तो दृष्टिके पड़ते ही लंकाके कंगूरे गिरने लगे। रावण बोला-यह क्या ? मंत्रियोंने कहा कि शनै-

वाला है ॥ १६ ॥ शनिग्रहसे उत्तरकी दिशामें ग्यारह लक्ष योजनके अन्तरमें ऋषिगण दृष्टि आते हैं। वह ऋषि समस्त लोकोंको शांति देते हुए भगवान् विष्णुके परमपदकी सदा प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥ १७ ॥ वह भगवान् कैसे हैं ?

कबित्त–आदि है न अन्त न अगम अनन्त है पावन असंग औ अव्यक्त अप्रमान है। एक है प्रकाशक हैं महाकाशव्यापक हैं, निर्गुण निरंजन हैं चिदानन्द ज्ञान हैं। दीनपै दयालु सदा अजर अविनाशी हैं, अलख अनीह औ अवाच्य निरबान हैं। विश्व करतार भरतार जगहार प्रभु, वेद रूपधारी दुखहारी भगवान हैं ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पंचमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रेनवग्रहाणां वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–वरणों ध्रुव स्थानको, तेइसवें अध्याय।
पुनि शिशुमार स्वरूपको, हर्षित कहौं सुनाय ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे भरतावतंस। देवर्षि लोगोंका जो स्थान हमने कहा उससे तेरह लक्ष योजन ऊपर विष्णु भगवान्का प्रसिद्ध स्थान है। जहां उत्तानपाद राजाके पुत्र महाभागवत ध्रुवजी, अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म इन सबके साथ जब नक्षत्र-रूपी हुए थे, उसी दिनसे आजतक प्रदक्षिणा दिया करते हैं। और कल्पभर जीवित रहनेवालोंके आधार होकर भगवान्की आराधना करते हैं! इन ध्रुव महाराजकी महिमा प्रथम (चतुर्थस्कन्ध) में वर्णन की गयी है ॥१॥ अनिर्भेद्य महावेग-युक्त कालकी गति बारी-बारीसे ग्रह नक्षत्रादि सब ज्योतिर्गणोंको निरंतर गगनमंडलमें घुमाया करती है, उसका भी अवलम्ब बनानेके लिये परमेश्वरने इन ध्रुवजीको एक थंभरूप बना दिया है, इसलिये उनका प्रकाश निरंतर ही होता रहता है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अन्न आदिके पीसनेके लिये मढ़ी स्तम्भ (कीली) में बँधे हुए पशुगण अपने-अपने स्थानमें रहकर समय-समयपर कीलोंके आश्रयसे घूमा करते हैं, वैसे ही यह ग्रहादि-नक्षत्र-गण भी कालचक्रके भीतर और बाहरमें बँधकर इस ध्रुवका ही अव-लम्बन किये हुए हैं और पवनके घुमाये हुए कल्पके अन्ततक चारों ओर घूमते रहते हैं, परन्तु जिस प्रकार मेघ और बाजादि पक्षीगण कर्मकी सहायतासे पवनके वश हो आकाश मंडलमें घूमा करते हैं और गिरते नहीं, वैसे ही ज्योतिर्गण भी जिनकी गति कर्मसे बनी हुई है सब वे उन परम पुरुषके अनुग्रसे आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ ३ ॥ कोई-कोई कहते हैं, यह ज्योतिश्चक्र शिशुमार रूपमें भगवान् वासुदेवजीकी योग-धारणासे टिका हुआ है, इसलिये इसके गिरनेकी कोई शङ्का ही नहीं है ॥ ४ ॥ यह शिशु-

---

–श्वर देवताने लंकाकी ओर दृष्टि उठाकर देखा है, इतनेमें शनैश्चर सम्मुख आकर पहुँच गया ? तब उसको देखते ही रावणने स्तुति की और कहा कि अब आप कृपा पूर्वक अपने स्थानको चले जाइये। यह सुन शनैश्चर बोले कि, अब घर लौटना कैसा ? अब तो हम घरसे चल ही दिये 'दुःखमयत्रा सुखम्' अब तो साढ़े सात वर्ष लंकापुरीमें ही निवास करेंगे। शनैश्चरके आते ही रावणकी बुद्धि बिगड़ी और जगत् जननी जानकीजीको हर लिया। तब कोशलेन्द्रने महाराजाधिराज रामचन्द्रजीने कुटुम्ब सहित उस रावणका विध्वंस कर दिया। इसी से ऐसा लिखा है कि –"सर्वेषामशान्तिकरःशनिः" इति ॥

मार चक्र नीचेको शिर किये और कुण्डली-भूत शरीर हो रहा है। इसकी पूछके अग्रभागमें तो ध्रुवजी हैं और पूछके आगे अधोभागमें प्रजापति, इन्द्र और धर्म यह तीन देवता हैं, पूछके मूलमें धाता-विधाता हैं और कमरमें सप्त ऋषिगण प्रतिष्ठित हैं। इस शिशुमारके दाहिनी ओर कुण्डलाकारवाले शरीरकी दक्षिण बगलमें अभिजित इत्यादि पुनर्वसुतक चौदह नक्षत्र हैं और वाम बगलमें भी पुष्यादि उत्तराषाढातक चौदह नक्षत्र हैं, इस लिये कुण्डलके विस्तारानुसार इस शिशुमारके सब अवयव दोनों पार्श्वोंमें सम संख्यावाले हैं और इस शिशुमारके पृष्ठ देशमें अजवीथी और उदरमें आकाशगङ्गा है ॥ ५ ॥ हे राजन्! ऊपर कहे हुए शिशुमारचक्रकी दक्षिण ओर वाम बगलमें जो सब नक्षत्र हैं, उनके हम विशेष-विशेष स्थान बताते हैं वह तुम श्रवण करो। पुनर्वसु और पुष्य यह दोनों नक्षत्र यथाक्रमसे शिशुमारके दक्षिण और वाम नितम्बपर हैं, आर्द्रा और अश्लेषा यथा चक्रसे उसकी दक्षिण और वाम चरणमें हैं। अभिजित् और उत्तराषाढ़ा यथाचक्रसे उसकी दक्षिण और वाम नासिकापर हैं। श्रवण, उत्तराषाढा यथाक्रमसे उसके दायें और बायें नेत्रमें हैं, धनिष्ठा और मूल यथाक्रमसे उससे दक्षिण और वाम कर्णमें हैं। मघा आदि अनुराधातक दक्षिणायन संबंधीय आठ नक्षत्र उसके वामपार्श्वकी अस्थिमें लगे हुए हैं, इसी प्रकारसे मृगशिरादि उसके उलटे अर्थात् उत्तरायण संबंधीय जो आठ नक्षत्र हैं, वे सब उसके दक्षिण पार्श्वकी अस्थियोंमें लगे हुए हैं और शतभिषा व ज्येष्ठा यथा क्रमसे उसके दांये और बायें कन्धोंमें स्थापित हैं ॥ ६ ॥ इस शिशुमारकी उत्तर ठोढीमें अगस्त्य, अधर ठोढ़ीमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, पृष्ठ-शृङ्गमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार प्राण व अपानमें बुध, गलेमें राहु, सर्वाङ्गमें केतु और रुओंमें अन्य तारागण लगे हुए हैं ॥ ७ ॥ हे राजन्! यह जो शिशुमारका चक्राकारका वर्णन हुआ, यही भगवान् विष्णुजीका सर्वमय रूप है, सब पुरुषोंका सदा ही संध्याके समय सावधान हो मौन धारण कर इस चक्रका देखना अवश्य कर्तव्य है और उस समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये।

मन्त्रः—"नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानि-
मिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि ॥"

अहो! ज्योतिर्गणोंके आश्रय और कालचक्ररूपी देवाधिपति, उन महापुरुषको वारंवार हमारा नमस्कार है, हम निरंतर उनका चिन्तन करते हैं ॥ ८ ॥ यह शिशुमार भगवान् ग्रह व नक्षत्रादिकोंके स्वरूप सर्व देवताओंके अधिपति हैं, इस लिये जो लोग त्रिकालमें उनका पहला कहा हुआ मंत्र जपा करते हैं उनके पापोंको शिशुमाररूप भगवान् नष्ट कर देते हैं; जो पुरुष तीन कालकी संध्यामें उनको प्रणाम करेगा वा उनका स्मरण करेगा उस पुरुषके

---

१. शंका—शिशुमारचक्रके हृदयमें और नवग्रहोंके बीचमें नारायण भगवान् वास करते हैं, ऐसा भागवतमें हम सबने सुना है और यह भी कहिये कि नारायण भगवान् कौन हैं? जो श्री वैकुण्ठनाथ श्रीनारायण हैं, वे ग्रहोंके बीचमें निवास कैसे करते हैं?

उत्तर—धर्मनन्दन जो श्री नारायण हैं, जिन्होंने बदरिकाश्रममें बहुत दिनतक तप किया, वे ही नारायण शिशुमारचक्रमें निवास करते हैं, जो सब देवता हैं, उनको सुन्दर धर्म सिखानेके लिये ग्रहोंके मध्यमें वास करते हैं ॥

तत्काल ही सब पाप नाशको प्राप्त हो जायँगे ॥ ९ ॥ क्योंकि भगवान् बड़े दयालु हैं, भूलसे भी नाम लेनेसे प्रसन्न हो जाते हैं । इसके ऊपर एक दृष्टान्त कहते हैं, वह तुम सुनो–

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे शिशुमारचक्रवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा–रविके नीचे ग्रह जिते, ते सब कहूं सुनाय ।
अनलादिक वर्णन करों, अब चौबिस अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कोई-कोई विद्वान् कहते हैं कि सूर्यके नीचेके भागमें दश सहस्र योजनके अन्तरपर यह राहु नक्षत्रके समान घूमता है । यह राहु सिंहिका राक्षसीका पुत्र असुरोंमें नीच, किसी प्रकारसे देवभाव और ग्रह-भावको प्राप्त होनेके योग्य नहीं था, केवल भगवान्की कृपासे इसने देव-भाव और ग्रह-भाव प्राप्त कर लिया है इसके जन्म और कर्मका वृत्तान्त फिर (आठवें स्कंधमें) कहेंगे ॥ १ ॥ इस राहुके अधोभाग रहकर सूर्य नारायण तपते हैं। कहते हैं कि सूर्य-मण्डलका विस्तार दशहजार योजन और चन्द्रमंडलका विस्तार बारह हजार योजन है, परंतु राहु मंडलका बिस्तार इन दोनोंसे बड़ा अर्थात् तेरह हजार योजन है, इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें बैठकर छल किया था, तब सूर्य व चन्द्रमाने उस समय विष्णु भगवान्को बता दिया था, कि यह देवता नहीं है, दैत्य है । तब विष्णु भगवान्ने इसका शिर काट डाला था परन्तु अमृतके पान करनेसे वह मरा नहीं और देवभाव व ग्रहभावको प्राप्त हो गया तबका वैर लेनेको अबतक पौर्णमासी वा अमावास्याके दिन जब सूर्य व चन्द्रमाका पूर्ण प्रकाश होता है तब उस प्रकाशको न सहन करके यह इन दोनोंके पीछे दौड़ता है ॥ २ ॥ भगवान् विष्णुजीने इस बातको जानकर चन्द्रमा और सूर्यकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन नामक अपना प्रिय अस्त्र अथवा

---

१. दृष्टान्त–एक बड़े मालदार लाला थे, उन्होंने अपने पुत्रका विवाह किया, तो सब नगरकी जोनार की और अनेक-अनेक प्रकारके षट्रस भोजन जिमाये और किसी समय युवा अवस्थामें उनकी किसी वेश्यासे रीति–प्रीति थी । सेठजीने अपने मनमें विचार किया कि जो मैं उसको अपने घर बुलाता हूँ, तो लोग हँसी करेंगे कि यह वृद्धावस्थामें भी वेश्याके वशीभूत हो रहे हैं। इन्हें बेटे–पोते की कुछ लज्जा नहीं । यह बात विचार एक थालमें कुछ थोड़ेसे लड्डू, पेड़े बरफी, अमिरती, खुरमें, खजले, हलुवा, पूरी, खस्ता, कचौरी, और अनेक प्रकारकी मिठाई धरकर बेटोंसे किसी और का नाम ले वेश्या के घर पहुँचे वह एक बड़े ऊँचेवाले खाने पर रहा करती थी । सेठजी सहज-सहजमें ऊपरको चढ़े, जब आधी दूर पहुँच गये तो उनके हाथ-पांव कांपने लगे । क्योंकि वृद्धावस्था में सीढ़ियों पर चढ़ना महा कठिन है, जब और ऊपरको न चढ़ा गया तो यह पुकारे, अरी ले अरी ले ! मेरा चित्त तो बहुत चाहता है, परंतु मैं तेरे निकट नहीं आ सकता । तब उनके मुखसे घबराहटमें 'अरी ले, अरी ले' तो न निकला, परंतु 'हरी ले, हरी ले' निकला, उसी समय इनका पांव जो रपटा तो जीनेसे नीचे गिरकर लालाजीकी इतिश्री हो गयी अर्थात् प्राण निकल गये । हरी हरी नाम सुनकर उसी समय भगवान् वासुदेव वैकुण्ठनाथने अपने पार्षदोंको बुलाकर कहा कि मेरे भक्तका देहान्त हुआ है, तुम अभी विमान लेकर जाओ और उसको हमारे समीप ले आओ, क्योंकि उसने अन्त समय मेरा नाम लिया, 'जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥' यह सुन भगवान्के पार्षद उसी समय उसको विमानपर बैठाकर परमधामको ले गये । देखो, धोखेमें नाम लेनेसे उस वैश्यकी मुक्ति हो गई और जो हितचितके परमेश्वरका नाम लेते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? ॥

२. शंका–राहु और केतु, सूर्य चन्द्रमाको अत्यन्त पीड़ा देते हैं और इन दोनों सूर्य चन्द्रमाकी रक्षा करनेके लिए भगवान् चक्र सुदर्शनको लेकर आते हैं, बारंबार आने-जानेमें चक्रसुदर्शनको भी महाकष्ट होता है, फिर ऐसे दुःख देनेवाले राहु केतुको भगवान् वासुदेव क्यों नहीं मारकर विध्वंस करते जो फिर किसीको दुःख न हो ? इसका उत्तर जो कोई दे कि राहु केतु अमृत पी गये थे, इसलिए यह किसीके मारनेसे नहीं मर सकते तो सत्य है, परंतु अमृत भी तो भगवान् ही का बनाया हुआ है, जिसको भगवान् मारना चाहते हैं तो उसकी रक्षा भगवान् भी नहीं कर सकते ?

भागवत चक्र नियत किया। इस चक्रका तेज अति असहनीय है और यह सदा ही घूमता रहता है इसलिये उस चक्रको घूमता हुआ देखकर राहु, सूर्य अथवा चन्द्रमाको पकड़नेके लिये एक मुहूर्तमात्रतक खड़ा होता है और पीछेसे डरकर दूसरे ही पीछेको लौट जाता है। इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके अन्तरमें जितनी देर राहु खड़ा रहता है, उसकोही लोग ग्रहण कहा करते हैं ॥ ३ ॥ राहु ग्रहके समान ही परिमाण योजन नीचे अर्थात् तेरह सहस्र योजन अधोभागमें सिद्ध, चारण और विद्याधरोंके रहनेका स्थान है ॥४॥ उनके नीचे यक्ष, राक्षस भूत, प्रेत और पिशाचगणोंसे विहार करनेका स्थान अन्तरिक्ष है, यह स्थान शून्यमात्र है, वहांपर ग्रहादि कुछ नहीं हैं। इस स्थानका परिमाण कहते हैं, वह तुम श्रवण करो जहांतक मेघमाला दृष्टि आती है और जहांतक वायु तीव्र वेगसे बहती है, इस स्थानका विस्तार भी वहीं तक है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! यक्षोंके स्थानोंके नीचे शत योजन दूर यह पृथ्वी है, इसके ऊपर भागवाले भूर्लोकादिकोंकी सीमा कहते हैं, वह तुम सुनो। जहांतक पृथ्वीके विकार हंस, भास, बाज, गरुड़ आदि पक्षिराज उड़ते रहते हैं, वहांतक इस भूर्लोककी सीमा है ॥ ६ ॥ हे कौरववंशप्रवीर ! पृथ्वीमें जैसी स्थिति और जैसे-जैसे सब स्थान हैं, वह मैंने समस्त ही आपसे वर्णन किये। हे राजन् ! पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, उनमेंसे एक-एक दश दश हजार योजनके मध्यमें विस्तारसे रचे हुए हैं। इन सात विवरोंके यह नाम हैं यथा—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ॥७॥ इन सब नीचेके भुवनोंमें अर्थात् पातालोंमें फुलवाड़ियां, विहार करनेके स्थान स्वर्गसे भी अधिक रमणीक और काम भोग, ऐश्वर्य आनन्द और विभूतियोंकरके सुन्दर समृद्धियोंसे पूर्ण हैं और वहां मंदिर, वन, उपवन, उद्यान, विहारस्थल, इन सब स्थानोंमें दैत्य, दानव और सर्पगण घरोंकी भांति रहकर परम सुखसे बसते हैं। उनके स्त्री, पुत्र, सुहृद, मित्र और नौकर-चाकर नित्य उनपर अनुरागी और सदा प्रफुल्लित रहा करते हैं। अधिकाईसे ईश्वर नारायणजीसे भी उनका कोई अभिलाष कभी अधूरा नहीं जाता, वे लोग सदा ही आनन्द उत्सव किया करते हैं ॥८॥ हे महाराज! इन सब पातालोंमें मयदानवकी मायासे बनायी हुई अनेक पुरियां सदा दीप्तिमान् रहती हैं। वहांके भवन, प्राकार, गोपुर, चित्तसारी अटारी, सुचित्त स्थान, सभा, चौराहे और आयतन इत्यादि बड़े-बड़े स्थान मणियोंसे बने हुए शोभित हो रहे हैं। वहां विवरेश्वर गणोंके बड़े-बड़े ग्रहोंके भूभाग नाग, असुर, कपोतोंके जोड़े, तोते, मैना आदि पक्षियोंसे भरपूर हैं ॥ इसलिये यह सब पाताल इन सब वस्तुओंसे मानो सर्व प्रकार सजकर विराज रहे हैं ॥ ९ ॥ वहांकी वाटिका और बागोंमें मालती, मदनबाण, गन्धराज इत्यादि अनेक प्रकारकी पुष्पलतायें पूरित ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे आलिंगन कर रही हैं और उन वृक्षोंकी शाखायें कोमल-कोमल हरी लाल, कोंपलों और फूल-फलोंके भारसे मानो नीचेको झुकी जाती हैं, जैसे सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर नीचेको झुक जाते हैं। उस अनुपम शोभाको देख-देख मन, इंद्रियें आह्लादसे पुलकायमान होती हैं, वहांके सब सरोवर निर्मल जलसे परिपूर्ण, जिनमें मछलियोंके क्रीडा करनेसे वह जल चञ्चल रहता है और उन जलाशयोंमें अनेक प्रकारके कमल खिल रहे हैं—कुमुद, कल्हार, कुवलय, नीलकमल और लाल कमलके फूलोंके वनके वन खिले

—उत्तर—भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे राहु-केतुको मारा था, तबसे राहु-केतु चक्र सुदर्शनको स्पर्श करनेसे पवित्र हो गया इसलिए भगवान् सुदर्शन चक्रसे पवित्र राहु केतुको नहीं मार सकते, दोनोंके शरीरमें सुदर्शन चक्रका जो चिन्ह उपस्थित है उसको देखकर भगवान् राहु-केतुके ऊपर प्रसन्न हो गये।

हुए रहते हैं। भांति-भांतिके पक्षियोंके जोड़े, उस स्वच्छ जलमें जहां-तहां पैरते रहते हैं, जब वे सब विहार करने और बोलने लगते हैं, तो ऐसा मनोहर शब्द निकलता है, जिसको सुनकर सुननेवालोंकी इंद्रियां स्थिर नहीं रहतीं और चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। यह नगर अमर नगरकी शोभासे भी अधिक शोभायमान है ॥१०॥ इन पातालोंमें सूर्यादि ग्रहोंके न रहनेसे वहां दिन-रात्रिके कालका भी विभाग नहीं। इसलिये कालसेन जो भयकी संभावना है, वह भी वहां नहीं है ॥ १॥ और यहांपर सब स्थानोंमें बड़े-बड़े सर्पराजोंके शिरकी मणियां अन्धकार का नाश करनेको सदा ही प्रकाशमान रहती हैं ॥१२॥ हे राजन्! इन सब स्थानोंमें जो लोग वास करते हैं; वे सदा ही दिव्य औषधियोंसे रस अन्न पिया खाया करते हैं, इसके पीने-खानेसे उनको कभी आधि (मनका दुःख) व्याधि (शरीरमें कुष्ठरोग) अथवा जरा आदि अवस्था नहीं प्राप्त होती, उनकी देहमें कुछ विवर्णता होनेकी कुछ सम्भावना नहीं। और दुर्गंधि अथवा पसीना परिश्रम अथवा उत्साहरहित होना इत्यादि यह बातें वहां कभी किसीको प्राप्त नहीं होती ॥१३॥ इसलिये तेजरूप भगवान् नारायणके चक्र बिना उनके ऊपर मृत्यु भी अपनी प्रभुताई नहीं कर सकती ॥१४॥ हे राजन्! भगवान्‌का चक्र सब कुछ करनेका सामर्थ्य रखता है क्योंकि उसको कुछ भी असाध्य नहीं है, उसके पातालमें प्रवेश करनेसे दैत्योंकी स्त्रियोंके गर्भ पतित हो जाते हैं ॥१५॥ इस समय हम अतलादि नीचेके भुवनमें रहनेवालोंका वृत्तांत तुमको सुनाते हैं, अतल नामक प्रथम पातालमें मयदानवका पुत्र बलनामक असुर बास करता है, इस बलासुरसे ही ९६ छयानवें माया उत्पन्न हुई! कोई कोई मायावी उन सब मायाओंके कुछ-कुछ अंश अबतक धारण करते हैं, जब उस बलासुरने जँभाई ली तब उसके मुखमें स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली यह तीन प्रकारकी स्त्रियां उत्पन्न हुईं। हे राजन्! जो स्त्रियां अपनी जातिके पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह स्वैरिणी, जो अपनी जाति और परायी जातिके सब पुरुषोंसे प्रीति करती हैं वह कामिनी और जो अनियमित हो व्यभिचार करनेवाली स्त्रियां हैं, वह पुंश्चली कहलाती हैं, यह सब स्त्रियां पहले कहे हुए पातालोंमें जो पुरुष आता है उसे सुहाटक नाम सुवर्ण रसके पिलानेसे भोग करनेमें समर्थ कर अपने असाधारण विलास-सहित अवलोकन, मंदहास्य, अनुराग सहित मीठे बोल और आलिंगन आदिसे अपनी इच्छानुसार केलि कराती हैं। हे राजन्! सुवर्णके रसका गुण बड़ा ही आश्चर्य देनेवाला है। उसके सेवन करनेसे पुरुष अपनेको 'हम ईश्वर हैं, हम सिद्ध हैं' इस प्रकारसे समझता है और दशहजार मतवाले हाथियोंके समान सामर्थ्यवान् होकर मदांधके समान किसीको कुछ न समझकर जहां-तहां निर्द्वन्द्वसा फिरा करता है ॥ १६ ॥ अतल नामक पातालके नीचे वितल नामक दूसरा पाताल है, वहां भगवान् हाटकेश्वर शिवजी अपने पार्षद गणों सहित और प्रजापतिकी सृष्टिको बढ़ानेके लिये भवानी-सहित मिथुनी भावसे विराजमान हैं। हे राजन्! इस वितल नामक भूविवरसे ही भव और भवानीके वीर्यद्वारा हाटकी नामक नदी उत्पन्न हुई है। हे कौरव कुमार! एक समय वायुकी उत्तेजनासे अग्नि, शिव और पार्वतीजीके वीर्यको पीते थे, जिसको पीकर उन्होंने हाटकनामक सुवर्ण उगला। इस स्थानके रहनेवाले असुराधिपोंके रनवासमें पुरुष स्त्रियों सहित उसी सुवर्णके भूषण धारण करते हैं ॥१७॥ हे राजन्! वितलके नीचे तीसरा पाताल सुतल है, वहांपर महायशस्वी, पुण्यकीर्ति विरोचननन्दन महाराज बलिजी अबतक निवास करते हैं। हे महाराज! भगवान् विष्णुजीने देवराजका प्रिय करनेकी इच्छा करके दितिसे वटु (वामन) रूप

शरीर धारण करके प्रथम इन बलिका त्रिलोकीका राज्य हरण कर लिया, परन्तु पीछे फिर अपने आप ही कृपा करके उनको अपने राज्यमें प्रवेश कराया, जिससे राजा बलिके इतनी समृद्धि लक्ष्मी हुई कि इंद्रादि देवताओंके पास भी वैसी संपत्ति नहीं, इस कारण राजा बलि इस स्थानमें रहकर निरन्तर उन आराधना करने योग्य भगवान्‌की आराधना कर निर्भय रहते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! राजा बलिका सुतल पातालके मध्यमें जो इतना ऐश्वर्य हुआ वह उसको कुछ भूमिके दानका फल नहीं है । हे महाराज ! भगवान् वासुदेव जो सब जीवोंके नियन्ता और आत्माराम हैं, इसलिये साक्षात् परमात्मस्वरूप जो उनको तीर्थके समान पात्र मिले, वह उनको श्रद्धा सहित सावधान मनसे परम आदरपूर्वक बलिराजाने उनको भूमिदान की, वही साक्षात् स्वर्गका द्वार हुआ । उसका फल परमपुरुषार्थ मुक्ति पदार्थ ही हो सकता है । यह अनित्य विभव किसी प्रकार उसका फल नहीं हो सकता ॥१९॥ क्योंकि क्षुधा, छींक, जँभाई गिरने आदिके समय भी जब पुरुष अवश होकर एकबार जिनके नामके उच्चार करनेसे निश्चय कर्मकी फांसीसे छूट जाता है । हे राजन् ! कर्मबन्धन कुछ साधारण बंधन नहीं है । मुमुक्ष पुरुष लोग इस बंधनके ही हटानेके लिए योगानुष्ठानादि बड़े कठिन-कठिन क्लेश सहा करते हैं ॥२०॥ इसलिए उन भगवान्‌में समर्पण किया हुआ भूमिदानका फल यह ऐश्वर्यमात्र है, यह कभी संभव नहीं हो सकता । विशेष करके भगवान् भक्त लोगोंके प्रिय, आत्मज्ञानियों को ज्ञानके और अपने स्वरूपके देनेवाले वह क्या अपने परमभक्त बलिके लिए किसी और प्रकारका आचरण कर सकते हैं ? ॥२१॥ इसलिये राजा बलिके पास सुतल लोकमें जो इतना विभव हुआ, वह राजा बलिके प्रति यह भगवान्‌का अनुग्रह नहीं हुआ, क्योंकि भोग विभव केवल मायामय है, इससे तो परमेश्वरका स्मरण छूट जाता है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! राजा बलिकी एकान्तिक भक्तिका वृत्तान्त कहता हूँ उसे तुम सुनो--भगवान्‌ने और उपाय न पाकर भिक्षाके छलसे राजा बलिके तीनों लोक हरण कर लिये थे । केवल राजाका शरीरमात्र शेष अर्थात् बच रहा था, ऐसा करके भी उनको सन्तोष नहीं हुआ और फिर वरुणकी फांसीसे राजाको भलीभांति बांधा और पर्वतकी गुहाके समान पातालमें डाल दिया । परन्तु राजा बलिने इतना दुःख पाकर भी केवल इतना कहा था ॥ २३ ॥ यह इंद्र जिनके बृहस्पतिजी बड़े ही सहायक हैं और जिनकी सम्मति करनेके लिये इंद्रने वरण किया था, हमको ज्ञात होता है कि ये भी पुरुषार्थके विषयको कुछ नहीं जानते, क्योंकि इन्होंने उन उपेन्द्रको त्याग करके उनके द्वारा हमारे पाससे त्रिभुवन मांगा और स्वयं उनके दास होनेकी प्रार्थना न की, इसलिये जब भगवान् प्रसन्न हों तो उनके निकट दासभावकी ही प्रार्थना करनी उचित है । इस त्रिभुवनके गम्भीर वेगवान् कालका मन्वन्तर है, उसके सामने यह त्रिलोकीका राज्य क्या पदार्थ है ? ॥ २४ ॥ इस कारण हमारे दादा (प्रह्लाद) ने भगवान्‌से दासपन की ही भिक्षा मांगी थी । जब प्रह्लादके पिता हिरण्यकशिपु मर गये, तब भगवान् उनको उनके पिताका कंटकहीन राज्य देनेको उपस्थित हुए थे और उस राज्यके ले लेनेसे कुछ भयकी भी संभावना नहीं थी, तो भी यह भगवान्‌से अलग है, यह विचार करके हमारे दादा प्रह्लादजीने उस राज्यको ग्रहण नहीं किया ॥ २५ ॥ परन्तु हम सरीखे पुरुष कि जिनके रागादि क्षीण नहीं हुए हैं, इससे भला ऐसे लोग जिनपर भगवान्‌की कृपा न हो किसे प्रह्लादजीके मार्गानुसार चलनेकी इच्छा न करें ॥ २६ ॥ योगी श्रेष्ठ शुकदेवजी इस प्रकारसे

राजा बलिके कुछेक प्रभावको वर्णन करके बोले-कि हे राजन् ! बलिका चरित्र हम आगे (आठवें स्कंधमें) वर्णन करेंगे । हे भारत ! राजा बलिकी महिमा क्या वर्णन करें ? कि अखिल जगत्के गुरु भगवान् नारायणजी हाथमें गदा धारण किये उसके द्वारपर आठों पहर द्वारपालके समान पहरा दिया करते हैं । एक समय दशकंधर (रावण) राजा बलिके द्वारपर दिग्विजय करनेके लिए आया, तब भगवान् वामनजीने अपने चरणोंके अँगूठेसे उसको उठाकर दश हजार योजनपर फेंक दिया क्योंकि भगवान्का हृदय अपने भक्तजनोंपर सदा ही दयासे पूर्ण रहता है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! सुतल लोकके नीचे तलातल नामक पाताललोक है । जिस प्रकारसे सुतललोकमें भगवान्का भक्त राजा बलि भगवान् हरिका स्थापित किया हुआ सुखसे वास करता है, वैसे ही मय नामक दानव मायावी दैत्योंका गुरु त्रिपुरका अधिपति, जो महादेवजीसे रक्षित होनेके कारण तलातलमें पूजा जाता है । भगवान् त्रिपुरारि जब त्रिलोकीके मंगल करनेकी कामनासे प्रथम उससे तीनों पुर दग्ध कर दिये थे और पीछेसे उसके प्रति प्रसन्न हो गये, उनके प्रसन्न होनेसे वह दानव फिर उनके चरणकमल प्राप्त करके निर्भय होय पूजा जाने लगा ॥२८॥ तलातल लोकके नीचे महातल पाताल लोक है । वहां बहुतसे फण धारण करनेवाले कद्रुके पुत्र सरोष सर्प वास करते हैं । उन सब सर्पोंके मध्यमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण इत्यादि मुख्य हैं, उनकी देह अतिशय दीर्घ है, वे सर्प भगवान्के वाहन गरुड़जीके भयसे सदा उद्विग्नचित्त रहते हैं और कभी-कभी असावधान चित्त होकर स्त्री, पुत्र, सुहृद और कुटुंबियोंके संगमें कहीं-कहीं विहार करनेको जाया करते हैं ॥ २९ ॥ महातल लोकके नीचे रसातल पाताल लोक है । वहांपर दितिके पुत्र दानवगण और निवातकवच इत्यदि कालेय असुर समूह जो कि हिरण्यपुरमें वास करनेसे देवताओंके शत्रु विख्यात हुए हैं, वह लोग बिलेशय (सर्प) के समान वास करते हैं, यह सब यद्यपि जन्मसे ही महाबलवान और महा साहसी होते हैं, परंतु जिन भगवान्के तेजसे सब लोक देदीप्यमान हैं, उस तेजसे ही इनके बलका अभिमान टूटता रहता है । वह अबतक इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण किये हुए मंत्ररूप वाक्योंसे देवराज इन्द्रसे भय पाते हैं । इस विषयमें यह इतिहास वेदमें प्रसिद्ध है, कि "एक समय असुर लोगोंने देवताओंकी गायें हर करके छिपा रक्खी थीं, देवराज इन्द्रने उनको खोजनेके लिये सरमा नामकदेवताओंकी कुतियाको भेजा, सरमाको देखकर दैत्यलोगोंके मनमें यह शंका हुई कि कदाचित् देवराज इन्द्रको गायें छिपानेका वृत्तांत ज्ञात हो गया, यह समझ उन्होंने संधि करनेके लिये इस सरमासे कहाकि तेरी क्या इच्छा है ? परंतु सरमाकी इच्छा संधि करनेकी नहीं थी, वह इन्द्रकी स्तुतिकर दैत्योंको क्रोध सहित वचन कहने लगी-अरे दैत्यो ! तुम देवराज करके मारे जाओगे, इस लिये शीघ्र भागो । तबसे यह सुन कर असुरगण सदा इन्द्रसे डरा करते हैं" ॥ ३० ॥ महातलके नीचे पाताल लोक है, वहांपर वासुकी इत्यादि नागलोगोंके अधिपति गण अर्थात् शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त इत्यादि महाफणधारी और महाक्रोधी सर्पवास करते हैं । रसातलके नीचे पाताल नामक सातवां लोक है । उसमें बड़े-बड़े महाकाय और महारोषवाले सर्प रहते हैं । उसका अधिष्ठाता राजा वासुकी नाम नाग है और महाकुलिश, महाशंख, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल अश्वतर और देवहत

वासुकी-सहित ये दश नाग उनमें प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। इन सब नागोंमें किसीके पांच मस्तक, किसीके सात, किसीके दश, किसीके शत और किसीके सहस्र शिर हैं। उनके फणोंमें दीप्तिशाली जो बड़ी-बड़ी मणियाँ हैं, वे सब मणियाँ अपनी-अपनी ज्योतिसे पातालके घोर तिमिरको दूर कर देती हैं ॥ ३१ ॥

सवैया-ज्ञानको भान प्रकाशत ही तम दूर भयो प्रगटो उजियारो। तुम मेरे नहीं मैं तेरा हूँ केशव बात यही भलिभाँति विचारो ॥ पानीकी लहर न लहरको पानी आँखन देख लियो भ्रम सारो। निर्भय रामते भिन्न नहीं कछु या विधि रामको रूप निहारो ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे अतलादिबिलवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा-शेष सात पाताल तल, थित पचीस अध्याय।
जिनते प्रकटे रुद्रजू, प्रलयकालको पाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! पातालकी जड़में तीस ३०००० सहस्र योजनकी दूरी पर भगवान्की जो तामसी नामक कला (अंश) है उसका नाम अनंत है। सारस्वत तंत्र निष्ठावाले अर्थात् भगवद्भक्त उनको संकर्षण कहा करते हैं। संकर्षण कहनेका यह हेतु है कि 'हम' 'हमारा' इत्यादि अभिमान जो मायाका चिह्न है, उस अहंकारके अधिष्ठान द्वारा वे द्रष्टा और दृश्यको खींचा करते हैं अर्थात् एकमें मिला देते हैं ॥ १ ॥ हे राजन्! सहस्र शिरवाले अनंत मूर्ति जो भगवान् शेषजी हैं उनके एक शिरपर यह अवनिमण्डल सरसोंके दानेके समान धरा हुआ है ॥२॥ जो प्रलय कालमें इस जगत्के संहार करनेकी वासनासे संकर्षण नामक एकादश व्यूहमें रुद्र होते हैं और क्रोधके वश होनेके कारण थमती हुई मनोहर दोनों भ्रुकुटियोंको टेढ़ी करते तीन शिखावाला शूल हाथमें उठाते हैं ॥ ३ ॥ जिनके युगल चरण कमलके अरुण वर्ण नख मणिमण्डल दर्पणस्वरूप होनेसे उनके मध्यमें नागपतिगण बड़े-बड़े भक्तोंके साथ एकांत भक्तिके सहित नमस्कार करते-करते हर्षित मनसे अपने-अपने वदनके प्रतिबिम्बको अवलोकन करते हैं। हे महाराज! नागपति गणोंका वदन वास्तवमें देखनेके योग्य है, उनके श्रवणमें अति उज्ज्वल कुण्डल देदीप्यमान रहनेसे उन कुण्डलोंके प्रभामण्डलद्वारा उनकी ग्रीवा अतिशय शोभित होती है ॥ ४ ॥ नागराजोंकी कुमारियाँ अपने-अपने कल्याणकी कामना कर लजीले नेत्रोंसे उनके मुखारविन्दको अवलोकन करती हैं। इस लिये शेष भगवान्के वलय विलसित, विपुल, धवल, सुभग और रुचिर भुजरूप जो दो चांदीके समान स्तंभ हैं उनमें नागराजकी कन्यायें सदा अगर, चन्दन और कुंकुमका लेप किया करती हैं, परन्तु उन भुजाओंके स्पर्श करते ही उनके हृदय मथित हो जाते हैं और मनमें मनोभाव जाग उठता है। उस समय उनका मन्द-मन्द हँसना अतिशय रुचिर और ललित हुआ करता है। हे भारत! नागराज कुमारियाँ भगवान्के जिस वदनको अवलोकन करती हैं, वह देखनेके ही योग्य है क्योंकि वह अनुराग और मदसे सदा ही हर्षयुक्त रहता है और उसी वदनमें करुणा अवलोकन युक्त दोनों नेत्र सर्वदा मदसे चलायमान और कुछेक रतनारेसे रहते हैं ॥ ५ ॥ कैसे वे नेत्र हैं कि

दोहा—"अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार ॥"

यह अनंत गुणसागर आदिदेव अनंतजी अपने क्रोधके वेगको रोककर सब लोगोंका मंगल करनेके लिये इस स्थानमें विराजमान हैं ॥ ६ ॥ वहांपर सुर, असुर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, उरग और मुनिगण निरंतर उनका ध्यान करते हैं और दोनों नेत्र मदसे सदा मुदित, विकृत और विह्वल रहते हैं, वे सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद देवतागणोंको सदा तृप्त किया करते हैं । नीलवर्ण वस्त्र धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, सुभग और सुन्दर दोनों भुजाये हैं । देवराज इन्द्रका हाथी जिस प्रकार कांचनमय जंजीर धारण करता है, वैसे ही शेष भगवान् वैजयन्ती माला धारण किये हुए हैं, उस मालाकी शोभा क्या कहें ? उसमें विमल सुगंधियुक्त मधुरसमें भ्रमरगण मत्त होनेसे उनके मधुगीती, चमत्कारी और श्रीधारी हो जाते हैं ॥७॥ शेष भगवान् इस प्रकार पूजन करनेसे और ध्यान धरनेसे मुमुक्षु जनोंके हृदयमें प्रवेश करके उनके अनादि काल कर्म वासनासे गूँथे हुए और उनका देहाभिमान जो कि त्रिगुणात्मकसे रचा गया हृदयमें अविद्यासे पूर्ण है उस विकारकी गांठोंको शीघ्र खोल देते हैं । देवर्षि नारदजीने ब्रह्माजीकी सभामें तुम्बुरु गन्धर्वके साथ उन भगवान्‌की महिमा इस प्रकारसे वर्णन की थी ॥ ८ ॥ यथा-इस जगत्‌की उत्पत्ति इत्यादिका कारण सत्त्वादि तीन गुण, जिनके कटाक्षसे अपने-अपने कार्य करनेको समर्थ हुए हैं जिनका स्वरूप अनादि और अनंत है, जिन्होंने एकमात्र वस्तुस्वरूप होकर आत्मामें अनेक प्रकारके प्रपंच लगा दिये हैं, उन शेष भगवान् का तत्त्व यह लोक किस प्रकार जान सकता है ? ॥ ९ ॥ जिनसे सत्-असत् प्रकट होता है और जो हमसे भक्त जनोंके ऊपर प्रसन्न होकर विशुद्ध तत्त्व मूर्ति धारण की है । अपने भक्त जनोंका मन वश करनेके लिये जिनकी रची हुई लीलाओंसे महा बलवान् पराक्रमी सिंह शिक्षा पाते हैं; ऐसे परमोदार अनंत बलवान् सहस्र शिरवाले शेष भगवान्‌को त्यागकर और किसकी आशा करें ? ॥ १० ॥ जिनका नाम औरके मुखसे सुन-कर आते अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसीसे एकवार भी उच्चारण कर लेता है, उस पुरुषके और सुननेवाले पुरुषोंके अशेष पापोंका नाश कर देता है, फिर इसके कह-नेकी आवश्यकता ही क्या है ? कि नाम शुद्ध है । इस लिये मुमुक्षु जन ऐसे भगवान्‌को छोड़-कर और किसी पुरुषका क्यों आश्रय करेंगे ? ॥ ११ ॥ अहो जिनके यह सहस्र शिर हैं और उनमेंसे जिनके एक माथेपर नदियाँ, समुद्र, पर्वत-सहित समस्त भूगोल परमाणुमात्र स्थिर हो रहा है, जिनका विक्रम अनंत और अधिक है, कौन पुरुष है जो सहस्र मस्तक प्राप्त करके उन महाकाय, बहुरूप, महावीर्यवान् परमेश्वरके वीर्यकी गिनती कर सकता है ? ॥ १२ ॥ अहो ! भगवान् अनंतजीका ऐसा प्रभाव है, उनके बल व अनुभवका क्या ठिकाना है ? परन्तु वे ऐसे होकर भी इस पृथ्वीके नीचे विराजमान हो लोकोंके हितार्थ लीलामात्र धरणीको धारण कर रहे हैं, उनका आधार कोई नहीं है, यह अपने आप ही अपने आधार हैं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा कह फिर राजा परीक्षित्‌से बोले कि हे राजन् ! हमने जिस प्रकारका उपदेश पाया था वैसे ही यह सब वृत्तांत आपसे वर्णन किया, सब लोकोंकी उनके कर्मानुसार गति बनायी गयी है । उसे सब मनुष्यगण अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त किया करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये पुरुषगण प्रवृत्तिलक्षण धर्म करनेसे उनके

फलस्वरूपमें उनको यह बड़ी-बड़ी और छोटी-छोटी गति प्राप्त हुआ करती है। आपने जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसके अनुसार ही सब वर्णन हमने आपसे किया अब इस समय तुम क्या सुनना चाहते हो, वह हमसे कहो ॥ १५ ॥ (परन्तु इस प्रवृत्तिमार्गमें लक्ष्मीके मदमें सब अन्धे हो जाते हैं)

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कंधे श्रीशेषस्वरूप वर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा-नरकनको वर्णन करूं, अब छब्बिस अध्याय।
धर्मदूत जहँ पापियन, देत दण्ड धमकाय ॥

अनन्तर राजा परीक्षित् निकट बैठे हुए श्रीशुकदेवजीसे बोले कि हे महाराज ! पुरुषकी ऐसी अलग-अलग गति क्यों होती है ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणोंके तारतम्यके हेतु जो कर्ता है, उनको विचित्र होनेसे श्रद्धाकी विभिन्नतासे सब कर्म अलग-अलग हो जाते हैं। अर्थात् सात्त्विकी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको परमानंद और अनेक प्रकारका सुख मिलता है, राजसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको सुख दुःख दोनों प्राप्त होते हैं और तामसी श्रद्धासहित कर्म करनेवालेको केवल कष्ट ही भोगना पड़ता है और यदि उन श्रद्धाओंमें भेद हो जाता है, तब सब प्रकारकी गतियोंमें भी भेद-भाव हो सकता है ॥ २ ॥ इस कारणसे अधर्म करनेवालेके तमोगुणमें भेद श्रद्धाका विपरीताचरण कर्म फल होता है। इसलिये अनादि अविद्याकृत सब कामनाओंको परिणाम स्वरूप वह सहस्र-सहस्र प्रकारकी नरककी गति (यातना) होती है। वह इस समय उनमेंसे प्रधान-प्रधान नरकका वर्णन करता हूँ आप ध्यान लगाकर सुनिये ॥३॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे भगवन्! क्या सब नरक पृथ्वीके मध्यमें हैं अथवा कोई देश विशेष है ? और क्या ब्रह्माण्डके बाहिरी भागमें हैं, अथवा ब्रह्माण्डके अभ्यन्तर पृथ्वीके व्यतिरिक्त कोई स्थान है ? ॥ ४ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि त्रिलोकीके मध्यमें दक्षिण दिशाकी भूमिके नीचे और जलके ऊपर जिस स्थानमें अग्निष्वात्तादि पितृलोग वास करके परम समाधिका आश्रय कर अपने-अपने वर्णवाले पुरुष लोगोंकी मंगलकामना किया करते हैं ॥ ५ ॥ अपने अथवा जिस स्थानपर पितृपति यमराज अपने गणोंके साथ अपने स्थानमें आये हुए मृतक गणोंके कर्मानुसार इनके दोषका विचार कर उनको दण्ड देते हैं, वे सब विषयमें किसी अंशसे भगवान्‌के शासनका उल्लंघन नहीं करते हैं। वहीं पर नरक है। ऋषियोंके मतसे इनकी संख्या इक्कीस है। हे राजन् ! मैं तुमसे इन सब नरकोंका नाम, रूप, लक्षण और वृत्तांत कहता हूँ, सो तुम श्रवण करो। हे महाराज, इन इक्कीस नरकोंके नाम ये हैं, यथा-तामिस्र १, अन्धतामिस्र २, रौरव ३, महारौरव ४, कुम्भीपाक ५, कालसूत्र ६, असिपत्रवन ७, शूकरमुख ८, अन्धकूप ९, कृमिभोजन १०, सन्दंश ११, तप्तसूर्मि १२, वज्रकंटकशाल्मली १३, वैतरणी १४, पूयोद १५, प्राणरोध १६, विशसन १७, लालाभक्ष १८, सारमेयादन १९, अवीचि २० और अयःपान २१ हैं। इनके सिवाय १

१. दृष्टान्त--एक बनिया रसोई जीमनेके लिये बैठा, तब मूसा थाली के समीप आकर नित्य कूदा करता था तब बनिया बोला इसके बिलमें कुछ धन है इससे यह कूदता है। उसका बिल खोदा तो बीस सहस्र रुपये २०००० निकले। फिर तो मूसेका कूदना बन्द हो गया। ऐसे ही धन पाकर सब संसार कूदता है, निर्धनसे चला भी नहीं जाता, यह बात प्रसिद्ध है।

क्षारकर्दम, २ रक्षोगणभोजन, ३ शूलप्रोत, ४ दंदशूक, ५ अवटनिरोधन, ६ पर्य्यावर्तन और ७ सूचीमुख यह सात नरक और हैं, इस प्रकारसे अट्ठाईस नरक अनेक प्रकारके कष्टके मूल हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य पराया धन, परायी स्त्री और पराया पुत्र हरण करते हैं, उनको भयंकर यमराजके गण घोर कालकी फांसीसे बांधकर बलात्कार तामिस्र नरकमें डाल देते हैं । इस नरकमें अन्धकार ही अन्धकार छा रहा है । उसमें गिर-कर पापी भोजन व जल न पाकर और दण्डके ताड़नेसे और तर्जना इत्यादि विविध व्यथाओंसे पीड़ित होता है, इसलिये आर्त होकर शीघ्र ही मूर्छाको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य किसीको छल करके उसकी स्त्री आदि लेकर आप भोग करते हैं, वे अन्धतामिस्र नरकमें गिराये जाते हैं; जिस प्रकार वृक्षोंको गिरानेके लिये उसकी जड़को काटते हैं वैसे ही यमदूत पाप करनेवालोंको विविध भांतिकी पीड़ा देकर इस नरकमें डाल देते हैं, जो कि इस नरकमें गिरनेसे मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति, व्यथाके मारे भ्रष्ट और नष्ट हो जाती है, इसलिये ऋषि-लोगोंने इस नरकका नाम अन्धतामिस्र रक्खा है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य इस संसारमें "यह शरीर मैं हूँ" और "यह धनादि हमारा है" इस प्रकारके अज्ञानमें मोहित होकर प्राणि-योंके ऊपर विद्रोहाचरण करके प्रतिदिन केवल अपना शरीर, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्बका भरण-पोषण करता है वह मनुष्य इस देह और कुटुम्बको त्याग करके इस पापके कारण रौरवनरकमें गिराया जाता है ॥१०॥ हे महाराज ! इस नरकका रौरव नाम क्यों हुआ ? सो इसका भी कारण कहते हैं, तुम सुनो-इस संसारके लोग जिस-जिस प्रकारसे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वे अपने किये हुए कर्मके दोषवश जब यमकी यातनाको प्राप्त होते हैं तब वे सब प्राणी रूरू होकर अर्थात् उनके किये हुए सब हिंसा कर्म 'रूरूरूप' परिणाम प्राप्त होकर उसी भांतिसे उनको मारते हैं, इसलिये ऋषि लोगोंने इस नरकको रौरव कहा है । हे राजन् ! जानते हो कि रूरू किसे कहते हैं ? सर्पसे भी अधिक खल भारश्रृङ्ग नामक एक जीव है उसका नाम रूरू है॥११॥ महारौरव नरक भी इसी प्रकारका है। इस संसारमें जो मनुष्य केवल अपनी देहका ही भरण-पोषण करते हैं, वे लोग इस महारौरव नरकमें गिरते हैं, वहां पर क्रव्याद नामक रूरूगण मांस ग्रहण करनेके लिये उसको विविध प्रकारकी पीड़ा देकर विनष्ट कर देते हैं॥१२॥ जो मनुष्य इस लोकमें अतिशय उग्रमूर्ति होकर अपने प्राणोंके पोषणार्थ पशु-पक्षियोंको जीवित ही पाक करते हैं। जो कि यह कर्म अति निर्दयी है, इसलिये राक्षसलोग भी इस कार्यकी निंदा करते हैं, जो ऐसा पाप करते हैं उनको परलोकमें यमदूत लोग कुम्भीपाक नरकमें डालकर तत्ते तेलमें भूनते हैं ॥१३॥ जो लोग पृथ्वीमें ब्राह्मण पिता और वेदसे विद्रोहाचरण करता है वह कालसूत्र नामक नरकमें गिराया जाता है । इस नरककी परिधि दश हजार योजन है, उसमें तांबेके समान गर्म भूमि है । ब्रह्मद्रोही इस नरकमें पड़कर ऊपरसे सूर्यकी किर-णोंको और नीचेसे अग्निके उत्तापको पाकर सन्तापित होते हैं । क्षुधा और प्यासके मारे उनकी देह भीतर और बाहर दग्ध होती है । वह जीव इस प्रकारकी पीड़ा से पीड़ित होकर कभी गिर पड़ता है; कभी बैठता है, कभी खड़ा हो जाता है, कभी चारों ओर भागता-फिरता है, पशुओंकी देहमें जितने रुवें हैं, उतने ही सहस्र वर्ष तक इस पापीको यह पीड़ा भोगनी पड़ती है। यह बात ठीक ही है कि--"अहिंसा परमो धर्मः" कहा भी है कि दोहा--दुर्बलको न सताइये, जाकी मोटी हाय। मुई खालकी श्वाससे, लोह भस्म ह्वै

जाय ॥'' इस कारण पशुओंका वध न करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो मनुष्य विना विपत्ति आये, इच्छानुसार वेदमार्ग छोड़ देते हैं और पाखंड धर्म ग्रहण कर लेते हैं, उनको यमके दूत असिपत्रवन नामक नरकमें लेजाकर कोड़ोंकी मार लगाते हैं। यह पापी वहांपर प्रहारकी वेदनासे इधर-उधर भागता फिरता है, वह भागनेके कारण तालवान् और असिपत्र, जिनकी तलवारकी धार समान अनी बनी हैं उनके लगनेसे उस पापीके अंग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। तब वह पापी हाय! मैं मारा गया, हाय! मैं मारा गया, कहकर अतिशय यंत्रणा पाकर तीव्र व्यथाके मारे मूर्छित होकर पग-पगपर गिर पड़ता है। हे राजन्! अपने धर्मको त्याग करनेवाला इस प्रकारसे अपने धर्मको त्याग पाखंड मत ग्रहण करनेका फल भोगता है, कहा भी है कि-"स्वधर्म्में निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" ॥१५॥ जो राजा अथवा राजपुरुष (नगरपाल, कोटपाल, इत्यादि दंड देनेवाले) विना दंडके योग्य पुरुषको दंड देते हैं वा ब्राह्मण जातिको प्राणान्तक दंड देते हैं, वे राजा और राजपुरुषादि अतिशय पापी होते हैं, वे लोग इस पापके करनेसे परलोकके मध्य शूकरमुख नामक नरकमें गिरते हैं, किसान लोग जिस प्रकार गन्नेको कोल्हूमें पेरते हैं, वैसे उस नरकमें अतिशय बलवान् राजा अथवा यमकिंकरगण राजपुरुषके अंगोंको इसी प्रकारसे पिची करते हैं,, जिससे पापी लोग चिल्ला-चिल्लाकर अति नाद करते हैं। जिस प्रकार राजा अथवा राजपुरुष निर्दोषी पुरुषोंको दंड देते हैं और उस समय वे मोहको प्राप्त होकर मूर्छित हो जाते हैं, वैसे ही नरकमें राजा और राजपुरुष मोहित और मूर्छित हो जाते हैं ॥१६॥ परमेश्वरने जिसका ब्राह्मणादि स्वभाव देखकर विधि-निषेधकी व्यवस्था कर दी है और परमेश्वरके दिये हुए विवेकके बलसे औरकी पीड़ा जाननेको जिनका सामर्थ्य है वह मनुष्य यदि उन प्राणियोंको कि जिनकी वृत्ति मनुष्यरक्त पीनेकी ईश्वरने बनायी है, उन खटमल आदि जीवोंको पीड़ा दे या मार डालें, तो इस पापके करनेसे परलोकके मध्य वह अन्धकूपमें डाला जाता है। ये सब प्राणी अर्थात् पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप, मच्छर, जूं, खटमल और मक्खी आदि जिस किसी जीवको जो कोई प्राणी मारता है, वही जीव सब चारों ओरसे उस नरकमें उस पापीको मारते काटते हैं और अन्धकारके मारे उस प्राणीको नींद नहीं आती, जीव जिस प्रकार पीड़ित शरीरमें रहकर अनेक दुःख भोगता है, वैसे ही यह मनुष्य अन्धकारमें पड़ा तड़फता रहता है और कहीं बैठनेका स्थान नहीं पाता, कीड़े दिनरात काटते रहते हैं ॥१७॥ जो मनुष्य किसी प्रकारकी भोजन करने योग्य उत्तम वस्तु उपस्थित होनेपर विना बाँटे किसीको न देकर और पंचयज्ञके अनुष्ठान करनेसे विमुख हो अकेला आप खा जाता है, ऋषिलोग उस पुरुषको कौएके समान आचारहीन कहकर वर्णन करते हैं, वह मनुष्य कृमिभोजन नामक नरकमें पड़ता है, उस नरकमें एक लाख योजन विस्तारवाला कृमिकुण्ड है। यह मनुष्य उसी कुण्डमें पड़कर स्वयं कृमि बन कृमियोंको ही भक्षण करता है, इस प्रकारसे जबतक उनके काटने और पंचयज्ञ न करनेके प्रायश्चित न करनेवाले पापीका पापक्षय नहीं होता तबतक उसकी आत्माको वहां कष्ट होता रहता है॥१८॥ जो मनुष्य चोरीसे अथवा बलसे ब्राह्मणका सुवर्ण या रत्नादि हरण कर लेते हैं अथवा विना आपदा आये किसी पुरुषकी वस्तु चुरा लेते हैं, तो यमकिंकर उसका शरीर लोहेके बने हुए तपाये चिमटोंसे तोड़ते हैं और सन्देश नामक नरकमें डाल देते हैं। हे राजन्! इस लोकमें जो पुरुष अगम्य स्त्रीसे गमन करता है वा स्त्री अगम्य पुरुषको भजती है, इन दोनों जनोंको

यमके दूत निर्दयी होकर वारंवार कोड़ोंकी मार किया करते हैं और पुरुष लोहेकी बनी तपायी हुई स्त्रीको मूर्तिसे और स्त्रीकी लोहेकी बनी तपायी हुई पुरुषकी मूर्तिसे लिपटाते हैं॥१९॥२०॥ जो मनुष्य पशु आदिकोंके संघ मैथुन करता है, उसको यमदूत नरकमें डालकर वज्रकंटक-युक्त शाल्मलीवृक्षके ऊपर चढ़कर छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ॥ २१ ॥ इस पृथ्वीमें जो राजा-लोग अथवा राजपुरुष अच्छे कुलमें उत्पन्न हो धर्मकी मर्यादाको तोड़ देते हैं, वे सब वैतर-णीमें गिराये जाते हैं वह वैतरणी सब नरकोंकी खाईस्वरूप है, वहाँ जलजन्तु गण इधरसे इन पापियोंको भक्षण करते हैं, जिससे कि उनकी आत्मा वियुक्त होकर प्राण निकल जाते हैं, वे पापी लोग अपने-अपने किये हुए अधर्म कर्मोंका स्मरण करके विष्ठा, मूत्र, पूय, रुधिर, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस और वसा बहनेवाली उस नदीमें गिरकर सब प्रकारसे सन्तापित हुआ करते हैं ॥२२॥ जो मनुष्य इस लोकमें शूद्रोंके पति होकर अपने-अपने शौच, आचार और नियमोंको नाश कर देते हैं और निर्लज्ज होकर पशुके समान इच्छाचारी होकर घूमते हैं, वे परलोकमें पूय, विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मा और लारसे पूर्ण हुए एक समुद्रमें गिर पड़ते हैं और अतिघृणित इन सब वस्तुओंको भक्षण करते हैं ॥२३॥ हे राजन्! इस संसारमें जो ब्राह्मणादि वर्ण कुत्ते और गधोंको पालकर उनके स्वामी बनते हैं और शिकार द्वारा विहार करते हुए शास्त्रके विना बताये समयमें मृगोंका वध करते हैं, जब उनकी मृत्यु होती है, तब यमदूत लोग उनको लक्ष्य बना-बना कर बाणोंसे वेधा करते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें दम्भयुक्त होकर दम्भके अर्थ किये हुए यज्ञोंमें पशुगणोंको मारते हैं, वे परलोकके मध्य वैशसन नामक नरकमें पड़ते हैं, यमदूत इस नरकमें ऐसे पापियोंको विविधि भांतिकी पीड़ा देकर उनके अंगोंको छिन्न-भिन्न किया करते हैं ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इस लोकमें कामके वशीभूत होकर अपनेसे विना व्याही स्वजातिकी स्त्रीमें वीर्य छोड़ता है, अर्थात् मैथुन करता है, तो मरे पीछे यमदूत लोग उस पापात्माको वीर्यकी नदीमें गिराकर वीर्य पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें चोर वृत्ति अवलम्बन करते हैं, अथवा गृहोंमें अग्नि लगाते हैं अथवा प्राणनाश करनेके लिये विष पिलाते हैं, और जो राजा अथवा राजसेना ग्राम मेलेको लूट लेते हैं ऐसे मनुष्योंके मरनेके पीछे सात सौ वीस (७२०) संख्यावाले यमदूत हैं, वे श्वानका रूप धर-कर अपनी वज्रतुल्य डाढोंसे उनको फाड़-फाड़ कर हड्डियोंसमेत चबा जाते हैं ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें गवाही देनेके समय, अथवा न देनेके समय, वा दान देनेके समय, किसी प्रकारसे मिथ्या बोलते हैं, तो उन्हें यमके किंकर नीचेको शिर करके सौ योजन ऊंचे पर्वतके शिखरसे अति ओछे अवीचि नामक नरकमें डालते हैं। हे राजन्! अवीचि नाम नरकका वृत्तांत कहते हैं वह तुम सुनो कि जहांपर पाषाणकी पृथ्वी भी जलके समान जान

१. शंका—हम सबने ऐसा कभी नहीं सुना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,श्वान, गर्दभ आदि और जो पशु हैं उनके पति होते हैं, शुकदेवजीने ऐसे वचन क्यों कहे ?

उत्तर—श्वानका पति होता सो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिए प्रकट ही है, क्योंकि उस श्वानको तीन वर्ण पालते हैं और गर्दभका पति होना तीनों वर्णोंको नहीं चाहिये। किसी-किसी देशमें बकरेको भी गर्दभ कहते हैं और बकरेका पालन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका चारों युगोंमें चला आया है। कोई यज्ञके लिये, कोई जीवको दया मानकर, इन तमाम कारणोंसे बकरेको पालते थे, इसलिए व्यासनन्दन श्री शुकदेवजीने तीनों वर्णोंको श्वान गर्दभका पति कहा, क्योंकि तीन वर्णोंको कुत्ता, बकरा, पालना धर्म शास्त्रमें अत्यन्त बुरा लिखा है, परंतु जो प्राणी प्रसादसे उनका पालन करते हैं, वे अत्यन्त दुःख भोगते हैं।

पड़ती है, इस लिये उस नरकका नाम अवीचि नियत किया है, यमदूत उन पापियोंको उस नरकमें डालते हैं, उनके देहके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं तो भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते और फिर उस पापीको पर्वतके ऊपर ले जाते हैं और वहांसे उसको गिरा देते हैं, इसी प्रकारसे अनेक भांतिकी पीड़ा देते हैं॥२८॥हे राजन् ! इस लोकमें जो ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय सुरापान करे वा और कोई मनुष्य जो कि अपने नियमसे रहित है और क्षत्रिय अथवा वैश्य यज्ञार्थ सोमपान करके फिर अज्ञानतासे मदको पीता है, यज्ञके देवता लोग ऐसे पापियोंको नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर लात मारते हैं और अग्निके संयोगसे पिघलाया हुआ कृष्ण-वर्णका लोहा उनके मुखमें डालकर सब शरीरपर छिड़कते हैं ॥२९॥ हे राजन् ! इस लोकमें अधम पुरुष जो अपनेको बड़ा कहकर अहंकार करते हैं, तपस्या, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रम आदि द्वारा श्रेष्ठ पुरुषोंका आदर-सम्मान नहीं करते, वे जीवितही मृतकतुल्य हैं और मरनेके पीछे परलोकमें वे क्षारकर्दममय नामक नरकमें नीचेको शिर करके डाले जाते हैं और अनेक यातना पाते हैं ॥३०॥ जो पुरुष इस लोकमें दूसरे पुरुषको मार करके उसको भैर-वादि देवताके यज्ञमें होम देते हैं और जो स्त्री पुरुष उस बलि दिये हुए मनुष्यके शुष्क मांस आदिको खाते हैं, वे निहत मनुष्य अथवा पशु परकालमें तमोरूप राक्षस हो जाते हैं और जिस प्रकार इन सब मनुष्योंने पहले इनको भक्षण करके नृत्य किया था वैसे ही वे यमसदनमें उन समस्त पुरुष स्त्रियोंको कसाइयोंके समान उनका शरीर अस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न करते हैं और हर्ष सहित उनका शोणित पान कर करके नृत्य करते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें विना अपराध प्राणियोंको ग्राममें अथवा वनमें विश्वासके उपायोंसे विश्वास दिलाकर शूल व डोरी आदिसे बाँधते हैं और जीवनकी रक्षा चाहनेवाले उन सब प्राणियोंको खिलौनेके समान समझकर उनके साथ निर्दयीपनेके खेल करके अनेक प्रकारकी ताड़ना देते हैं, उन्हें मरनेके पीछे परलोकमें शूलादि यमयातनासे छिन्न-भिन्न देह और क्षुधा, तृषासे मरना पड़ता है और कौए बटेर इत्यादि भयंकर चोंचधारी पक्षिगण उसको इधर-उधरसे आघात करते हैं, तब वह पापी जीव विषादपूर्वक आर्त होकर अपने किये हुए पापोंका स्मरण कर करके पछताते हैं ॥३२॥ जो मनुष्य राक्षसोंके तुल्य उग्रस्वभाव हो इस लोकमें प्राणियोंको व्याकुल करते हैं, वे परकालमें दन्दशूक नामक नरकमें गिरते हैं। हे राजन्! वहाँ पंचमुख और सप्तमुखवाले राक्षस उनको चूहेके समान धरकर निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें अंधकारमय गढ़े, कोठे और गुहादिकोंमें प्राणियोंको बंद करके यातना देते हैं, वे लोग परलोकमें इन ऊपर कहे हुए सब स्थानोंमें आप ही बंद हो जाते हैं और विषसहित अग्नि और धुएँसे महा पीड़ाको प्राप्त होते हैं ॥३४॥ जो मनुष्य इस लोकमें गृहस्वामी हो अतिथि और अभ्यागतको देखकर क्रोध करता है और रोषके वश हो मानो टेढ़ी आंखसे उनको दग्ध करता हुआ देखता है, वह मनुष्य परलोकके विषे नरकमें गिरता है और इस पाप-दृष्टि वाले मनुष्यकी दोनों आंखें वज्रतुल्य चोंचसे कंक, बटेर, गीध इत्यादि पक्षीगण बलसे निकाल लेते हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस लोकमें धनके गर्वसे "हम श्रेष्ठ हैं" इस प्रकारका अभिमान कर टेढ़ी दृष्टि करते हैं और सबके ही प्रति यह शंका करनेवाला कि यह धन हरण कर लेगा, धनके व्यय होनेका कारण नाश होनेकी चिन्तासे जिसका वदन सदा शुष्क रहता है इस लिये वह किसी प्रकारसे सावधान नहीं रह सकता है, वरन् वह पहरेदारके समान धनकी

केवल रक्षा किया करता है, जो मनुष्य इस प्रकारसे धनके इकट्ठा करनेमें, बढ़ानेमें और केवल उसकी रक्षा करनेमें ही अपने मनको लगाता है, ऐसा करनेसे वह पापी होकर परकालमें सूचीमुख नरकमें गिरता है, वहां उस धनके लालची पापी पुरुषको यमके दूत दरजियोंके समान सब भांतिसे सर्वाङ्गको विद्ध करके डोरीमें पोहते हैं ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपते ! यमालयमें इस प्रकारके सहस्रों नरक हैं, यहांपर जिन-जिन पापियोंका वृत्तान्त कहा, वे सब ही इन सब नरकोंमें डाले जाते हैं । हे भूपाल ! जिस प्रकार पापकारी लोग इन ऊपर कहे हुए नरकोंमें गमन करते हैं, वैसेही धर्मके आचरण करनेवाले अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होते हैं परंतु जिन सब पुरुषोंके भोगद्वारा धर्म और अधर्मका अंत होता है, तब वे लोग फिर जन्म ग्रहण करनेके लिये मृत्यु लोकमें आकर प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! निवृत्ति स्वरूप जो धर्मका मार्ग है वह पहले ही "दूसरे स्कन्धमें" मैंने आपको सुना दिया है और सब पुराणोंने जो इस भुवनकोषको चौदह प्रकारसे कल्पना किया है, वह सब प्रकारसे ऐसे ही हैं, जैसे हम वर्णन कर आये हैं, यही महापुरुष भगवान् वासुदेवकी मायाके गुणोंका स्थूलरूप है, इसका विवरण जो पुरुष आदर सहित श्रद्धा और भक्तिसे पढ़ता और श्रवण करता है, उनकी बुद्धि विशुद्ध हो जाती है, अतः वे भगवान् परमात्माके गूढ़ उपनिषद्-संबंधीय विषय जान सकते हैं ॥ ३८ ॥ इस लिये यती लोग भी भगवान्के स्थूल सूक्ष्मरूप यथावत् श्रवण करके स्थूलविषयोंकी चिन्ता करते हुए आत्माको जीत करके फिर बुद्धिद्वारा क्रम-क्रमसे सूक्ष्म विषयोंमें भी स्थापन कर लेते हैं ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! पृथ्वीके मध्यमें द्वीप, वर्ष, पर्वत, नदी, समुद्र, आकाश, दिक्, नक्षत्र, पाताल, नरक इत्यादिकी रचना जिस प्रकारसे हुई है, वह तुमसे सब हमने वर्णन की । यह समस्त लोक रचना भगवान् ईश्वरका स्थूल शरीर है जो सब जीवसमूहोंका आश्रय है ॥ इस बातपर एक कबित्त है ॥ ४० ॥

कबित्त–भक्तजन निज निज भावनाके अनुसार, सभी न्यारे न्यारे रूप रामके सँभारे हैं । मुनिजन सच्चित आनंदरूप रामहिको, प्रगट प्रलय चित्य हृदयमें बिचारे हैं ॥ योगीजन प्राणनको धारके कपालमाहिं, रामको प्रकाशरूप त्रिकुटीमें निहारे हैं । ज्ञानी जन रामहिको रूप लखे सर्व ठौर, नाना नाम रूपनकी कल्पना विडारे हैं । ॥१॥ कोटि कोटि यतनते छूटे नाहिं जन्म मृत्यु एक रामनाम सो सो बन्ध सब टारे हैं । कोटि कोटि मन्त्रनसे अन्तर न शुद्ध होत, रामहिका नाम एक कलिमल जारे हैं । कोटि कोटि वस्तु पाय तृष्णा नहिं दूर होत, एक रामनाम सब तृष्णाको विदारे हैं । कोटि कोटि देवनको ध्याये नहिं राम मिलें, राम हीके ध्याये निर्भय रामको निहारे हैं ॥२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासि–सुप्रसिद्ध–विद्वद्वर-माथुरवंशीयश्रीशालग्रामवैश्यकृते पञ्चमस्कन्धे अष्टाविंशतिनरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति पंचमस्कन्ध समाप्त

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

षष्ठ स्कन्ध ६.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



वृत्रासुर वध

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवत भाषा

★

षष्ठ स्कन्ध ६.

दोहा—विघ्नहरण मंगल करण, सोहत हाथ त्रिशूल।
विद्यावर—दायक सदा, सिद्धि—सदन सुखमूल॥ १॥
कृष्णचरण कोमल अमल, सकल-सिद्धि-दातार।
तिनकी रज अज शीशधर, रचत भुवन दशचार॥ २॥

कवित्त—लसत अमंद मंद हँसत मुखारविन्द, सोहे पटपीत और उर वनमाल है। बांयें हांथ बांसुरिया दायेंमें लकुट लिये, पांयनमें घुंघुरू औ अलबेली चाल है। अलकें अमोल लोल कुण्डल कपोल गोल, मौरि मोर पंखनको शीशपै विशाल है। कोटि मन्मथनके मनको मथनहारो, ब्रजमें उत्पन्न भयो नन्दजीको लाल है १॥

दोहा—पहिलेमें हरिदूतने, पापी लीन छुटाय।
यमदूतन यमराजसे, कही कथा सब जाय॥

राजा परीक्षित् योगिवर श्री शुकदेवजीसे विनय सहित वाणीसे फिर पूछने लगे कि, हे भगवन्! आप प्रथम (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्ग यथावत् कह आये हैं, जिसके क्रमसे अर्च्चिरादि लोककी प्राप्ति होकर फिर उससे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है और उसीसे ब्रह्माजीके संग मोक्ष हो जाता है॥ १॥ हे मुने! दूसरा प्रवृत्तिरूप जो मार्ग है स्वर्गादि सुख ही जिसका साधन है और प्रकृतिके लय न होनेसे जो पुरुषका बार-बार भोगार्थ देहारंभस्वरूप है, वह भी आप पीछे (तीसरे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं॥ २॥ और अधर्मस्वरूप जो अनेक प्रकारके नरक हैं, उनका भी वर्णन आप कर ही चुके हैं, और मन्वन्तरकी भी व्याख्या आपने कही ही है; जिसमें स्वायम्भुव मनु प्रथम हुए॥ ३॥ इसके पीछे आपने प्रियव्रत और उत्तानपाद राजाका वंश और उनका चरित्र वर्णन किया और द्वीप, खण्ड, समुद्र, नदी, पहाड़, उद्यान, वृक्षादिकी भी स्थिति आपने कही॥ ४॥ पृथ्वीमण्डलकी स्थिति, भाग, लक्षण, प्रमाण, ज्योतिश्चक्र और भूमिके विवर, जिस प्रकार ईश्वरने रचे, उन सबकी आपने व्याख्या की॥ ५॥ हे महाभाग! अब वे मनुष्यगण जिस उपायसे

घोर-कठोर विविध भांतिकी पीड़ाओंके आधार नरकोंको, प्राप्त न हो सकें, अतः इस समय अनुग्रह करके वही कथा आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जो पुरुष शरीर अथवा मन व वचनसे कोई पाप करके इस लोकमें उनका प्रायश्चित मनुआदि ऋषीश्वरोंके कहे अनुसार नहीं करते हैं, तो जिन नरकोंके नाम प्रथम कह आये हैं और जिसमें घोर पीड़ा विद्यमान रहती है, मरनेके पीछे वह पुरुष निःसन्देह उन नरकोंमें पड़ते हैं ॥ ७ ॥ इस लिये मरनेसे पहले ही अर्थात् जीवित अवस्थामें ही जितनी विपत्तियोंसे बचा जाय तबतक मनको नियमित रखकर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करनेको यत्न करना उचित है, नहीं तो अधिक समय बीत जानेसे दुगुना प्रायश्चित्त करना होगा। जैसे सब रोगोंके निदानका जाननेवाला वैद्य जिस प्रकार रोगका भारी और हलकापन विचार कर अर्थात् वात, पित्त, कफकी न्यूनाधिकता देखकर चिकित्सा करता है, वैसे ही छोटा-बड़ा पाप विचार कर उसके समान ही प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! पाप करनेसे राजा दंड देता है, यह तो प्रत्यक्ष ही है, इसके अतिरिक्त पाप करनेवाले नरकमें गिरते हैं, यह शास्त्रोंमें सुना ही है, इससे जाना गया कि अवश्य ही पाप अपना अहितकारी है, परन्तु ऐसा जान-बूझकर भी प्रायश्चित्त करनेके पीछे पुरुष विवश होकर फिर पाप करते हैं, इस लिये द्वादश वार्षिक व्रतादिकोंको किस प्रकार प्रायश्चित्त कहकर गिन सकें, क्योंकि इनसे मूलसहित दोषकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ दूसरे कभी प्रायश्चित्त करके पापसे निवृत्ति पाता है, कभी फिर वैसा ही पाप करता है। इसलिये यदि एक बार ही पाप जड़ (मूल) से न उखड़ गया, तब तो अवश्य ही नरकमें गिरना पड़ेगा जब यह प्रमाण पाया गया तब फिर प्रायश्चित्त करनेका प्रयोजन ही क्या है ? हम समझते हैं कि ऐसा प्रायश्चित्त हाथीके नहानेके समान व्यर्थ है, क्योंकि हाथी स्नान करनेके उपरान्त फिर अपनी देहको धूलिसे वैसा ही मलीन कर लेता है, वैसे ही मनुष्य प्रायश्चित्त करके यदि फिर पाप करे तो फिर भी उसको नरकमें पड़ना ही होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कर्मसे कर्मका विनाश नहीं होता और चान्द्रायणादि जो प्रायश्चित्त हैं उनसे इस प्रकारकी वाञ्छा नहीं की जा सकती कि इनसे एक बार ही पापका नाश मूलसहित हो जायगा, क्योंकि इन सब प्रायश्चित्तोंके अधिकारी अविद्वान् लोग हैं, उनकी अविद्याका नाश होनेपर प्रायश्चित्तसे एकबार पापका क्षय होनेपर भी संस्कारके वश फिर वे लोग दूसरे पाप करने लगते हैं, हे राजन् ! यदि तुम पूछो कि मुख्य प्रायश्चित्त क्या है ? तो इसका उत्तर यह है, कि ज्ञान ही मुख्य प्रायश्चित्त है ॥ ११ ॥ परन्तु नित्य सावधान होकर यत्न करनेपर क्रम-क्रमसे यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है; यह नहीं कि एकबार ही प्राप्त हो जाय। जैसे कोई नित्य ही केवल पथ्यसे अन्न ही भोजन करे तो धीरे-धीरे उसको सतानेके लिये सब व्याधि असमर्थ हो जायँगी ऐसे ही नियम करनेवाला पुरुष भी क्रम-क्रमसे ब्रह्मज्ञानके जाननेको समर्थ हो जाता है ॥ १२ ॥ इस कारण धर्मज्ञ वीरपुरुष श्रद्धायुक्त होकर तप (मन और सब इंद्रियोंकी एकाग्रता), ब्रह्मचर्य, शम (मनको रोकना), दम (बाहरी इंद्रियोंको रोकना), दान, सत्य, शौच, यम (अहिंसा) अथवा नियम (जपादि) से मन, वचन, कायसे किये हुए संपूर्ण बड़े-बड़े पापोंको भी नष्ट कर देते हैं। जैसे अग्नि बांसोंके वनको जला डालती है॥ १३॥ इस लिये ऐसा ही प्रायश्चित्त मुख्य

है, परन्तु इसके अतिरिक्त और भी प्रायश्चित्त हैं। अर्थात् वासुदेव परायण कोई-कोई जन केवल भक्तिसे ही अपने समस्त पापोंको उखाड़कर फेंक देते हैं, जैसे सूर्य भगवान्की किरणोंसे कुहरके अन्धकारका नाश हो जाता है ॥१४॥ हे कौरवराज! यह भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि पापी पुरुष भगवान्में मन समर्पण करके भगवद्भक्त पुरुषोंकी सेवामें मन लगानेसे जिस प्रकार पवित्र हो सकता है, वह तपस्यादिक करनेसे ऐसा पवित्र कभी नहीं हो सकता ॥ १५ ॥ इसलिये इस लोकमें भक्तिमार्ग ही सबसे उत्तम मार्ग है और परम कल्याणदायक है। इस मार्गमें किसी प्रकारके विघ्नादिकी भी संभावना नहीं हैं, सुशील, दयालु, निष्काम और नारायणपरायण साधु लोग इस मार्गमें नित्यवर्तमान रहते हैं। इसी कारण ज्ञानमार्गके समान दूसरा मार्ग नहीं, क्योंकि इस मार्गमें किसी प्रकारका भय और खटका नहीं है॥१६॥हे राजेन्द्र! एक भक्ति ही निरपेक्ष होकर पवित्र करनेको समर्थ है, कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त भक्तिके विना स्वयं पवित्र नहीं कर सकते। जिस प्रकार नदियां मदिराके घटोंको पवित्र नहीं कर सकतीं वैसे ही बड़ा भारी प्रायश्चित्त किये जानेपर भी नारायणसे विमुख हुए पुरुषको कोई प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं कर सकता॥१७॥भक्ति चाहे बहुत थोड़ी भी हो, परंतु पवित्र करनेको वह भलीभांति समर्थ है। इसका प्रमाण देखो,जो पुरुष भगवान्के पादारविन्दोंमें एकवार किंचिन्मात्र भी अपना मन लगा देते हैं। इस एक वारके मन लगानेसे उनका मन भगवान्में केवल अनुरागी हो जाता है, कुछ ज्ञानयुक्त नहीं होता, तथापि यम अथवा फांसी हाथमें लिये हुए यमदूत स्वप्नमें भी उस पुरुषको नहीं दिखायी देते, क्योंकि भगवान्में केवल एक बार ही मन लगानेसे सब प्रायश्चित्त आप ही हो जाते हैं॥१८॥हे राजन्! इस विषयमें अनेक लोग एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, विष्णुदूत और यमदूतोंके संवादोंमें यह इतिहास बनाया गया है, हम उसको कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ १९ ॥ हे राजन्! कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नामक एक ब्राह्मण दासीका पति हुआ था, सर्वदा दासीकी संगतिसे दूषित होनेके कारण उसके सब सदाचार विनष्ट हो गये थे ॥ २० ॥ वह ब्राह्मणबन्धु जुआ खेलना, दांव लगा देना, ठगाई और चोरी इत्यादि निन्दनीय कर्म किया करता था और उससे ही अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता था, इस कारण उस अजामिलसे सदा ही मनुष्योंको क्लेश पहुँचा करता था ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस प्रकार निंदित कर्मोंसे स्त्री पुत्रादिकका भरण-पोषण करते हुए उस ब्राह्मणका कालक्रमसे परमायु सम्बंधी बड़ा भाग निकल गया, अर्थात् उसकी अवस्था अट्ठासी ८८ वर्षकी हो गयी ॥ २२ ॥ और उसकी वृद्धावस्थातक उसके दश पुत्र उत्पन्न हुए। उन पुत्रोंमें सबसे छोटेका नाम नारायण था। सबसे छोटा बालक होनेके

१. कहीं ऐसा भी लिखा है कि, वह अजामिल सदा उस वेश्याके प्रेममें मतवाला रहता था, उसीको अपनी परमप्रियतमा समझता था। एकदिन वह उस स्त्रीके लिए बनमें जीव मारनेके लिए गया पीछे उस नगरमें साधुलोग कहींसे आये और लोगोंसे पूछा कि यहां कोई सदाव्रतवाला है? दो चार ठट्ठेबालोंने कह दिया कि हां, अजामिलके यहां बड़ा भारी सदाव्रत बंटता है वहां जाओ, वे साधु पूछते-पूछते अजामिलके घर गये। उसकी स्त्रीसे कहा सदाव्रत दो, वह बोली कि यहां सदाव्रत कैसा? तुमको किसीने झूठा बहका दिया। वह तो महानीच अत्यन्त, कुकर्मी, संतद्रोही है, उस दुराचारी के यहां सदाव्रत कहांसे आया? अच्छा, तुम आये हो तो थोड़ासा अन्न लेते जाओ। अन्न देकर वह दासी बोली [illegible] कृपासिंधु! हमको कोई ऐसा सहज उपाय बताओ कि जिससे हम दोनों पापियोंका सहजमें उद्धार हो जाय। साधु बोले कि, तेरे कोई पुत्र है? दासीने [illegible] नौ पुत्र हैं और दशवां पेटमें है। साधु बोले कि उनके नाम क्या हैं? दासीने कहा एकका नाम गुरुद्रोही, दूसरेका पापात्मा, तीसरेका बुद्धिहीन, चौथेका विप्रघाती, पांचवां धनहरण, छठा स्त्रीहन्ता, सातवां अघरूप, आठवां विद्याहीन, नौवां

कारण वह पुत्र पिता-माताका अत्यन्त प्यारा हुआ ॥ २३ ॥ जरा अवस्थाको प्राप्त हुआ वह अजामिल मधुर बोलनेवाले उस बालकमें ही प्रेम लगाकर सदा उसका खेल और कौतुक देखकर आनन्द पाता था ॥ २४ ॥ स्नेहके वश होकर भोजनके समय अथवा जल पीनेके समय उस बालकको संग लेकर ही भोजन पान करता था और अनेक- अनेक प्रकारसे लाड़-प्यार करता हुआ सदा छोटे पुत्रमें ही मन लगा रहनेसे कालके वश हो, काल जो अपने निकट आता जाता था, उसको वह अजामिल नहीं जान सका ॥२५॥ हे राजन् ! अज्ञानी अजामिल इस प्रकारकी दशामें वर्तमान था । जब उसका मृत्यु समय उपस्थित हुआ तब भी उसने नारायण नामक अपने छोटे पुत्रमें ही मन लगाया और नारायण ही नारायण वारं-वार मुखसे कहने लगा ॥ २६ ॥ मृत्युके समय अजामिलने देखा कि अतिशय भयानक-रूप, महाभयंकर वदन रोम जिनके उठे हुए हैं, ऐसे तीन यमदूत भूतके समान फांसी हाथमें लिये हुए सामनेसे आ रहे हैं, उनकी इच्छा यही थी कि अजामिलको यमपुर ले जाँय ॥ २७ ॥ ऐसे यमदूतोंको देखकर अजामिल अतिशय व्याकुल हुआ और कुछ दूर अपना नारायण नामक जो परमप्यारा दुलारा अपने खिलौनेको लिये हुए खेल रहा था; उसको झीनी वाणीसे पुकारने लगा; कि हे नारायण ! हे नारायण ! इन यमदूतोंसे मुझे बचा ॥ २८ ॥ हे महाराज ! अब आश्चर्यका वृत्तान्त सुनो, मृत्युके समय अजामिलके मुखसे नारायणका नाम कीर्तन सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद तुरन्त उसके निकट आकर उपस्थित हुए । विष्णु-दूतोंके अचानक आनेका कारण यह हुआ कि उन्होंने विचारा कि यह पुरुष अंत समयमें हमारे स्वामी का नाम ले रहा है ॥ २९ ॥ बस, नारायण नाम पुकारते ही विष्णु भगवान्के पार्षद अजामिलकी आत्मा उसके हृदयसे खींचकर ग्रहण करते हुए यमदूतोंको बलात्कार निवारण करके बोले कि तुम लोग इसको मत छूना ॥ ३० ॥ हे महाराज ! धर्मराजके दूतोंको अजामिलके ग्रहण करनेसे जब रोका तब महाक्रोध करके उनके सुन्दर विष्णुदूतोंसे बोले कि, तुम कौन हो, जो हमको धर्मराजकी आज्ञा पालन करनेसे रोकते हो ? ॥ ३१ ॥ तुम किसके दूत हो, यहां कैसे आये ? और किस लिये इस दुराचारी पापीको यम पुरमें ले जानेसे रोकते हो ? तुम देवता हो ? या उपदेवता हो ? प्रधान हो ? वा सिद्ध हो ॥ ३२ ॥ हम लोगोंने तुम्हारा परिचय नहीं पाया, इसलिये तुम हमारे इन वचनोंको सुनकर क्रोध न करना । हम तुम्हारे सबके ही लोचन कमलदलके समान देखते हैं, आप सब लोग रेशमी पीताम्बर धारण किये, कुंडल पहनते हैं और गलेमें फूलोंकी माला विराजमान हैं ॥ ३३ ॥ सब ही नवीन अवस्थावाले, चतुर्भुजधारी धनुष, तूणीर, कृपाण धारण किये, शंख, चक्र, पद्म और गदा हाथमें लिये हैं ॥ ३४ ॥ अपने चमत्कारकी कान्तिसे सब लोकोंकी दिशाओंके अंधकार हर-नेवाले और संसारमें अपने प्रभावका प्रकाश करनेवाले आप धर्मराजके अनुचर होकर हमको क्यों निषेध करते हो और इस पापीको यमपुर क्यों नहीं जाने देते ? ॥ ३५ ॥ श्रीशुक-देवजी बोले कि, हे राजन् ! जब यमदूतोंने ऐसा कहा तब भगवान्के आज्ञाकारी पार्षद विचारने लगे कि इन लोगोंको दण्ड्यादंड्यका ज्ञान नहीं है, निःसंदेह ये लोग तस्कर हैं,

---

दुष्टाचरण । साधु बोले कि राम राम ! ऐसे नाम तो राक्षसोंके होते हैं । अच्छा, अब जो तेरे पुत्र हो तो उसका नाम नारायण रखना । इसीसे दोनोंकी मुक्ति हो जायगी । कुछ दिनोपरांत उसके पुत्र हुआ उसका नाम नारायण रक्खा और वे दोनों प्राणी उसीके प्रेममें मतवाले रहने लगे और जब मृत्युका समय आया तो अजामिलने नारायण-नारायण पुकारा, अतएव विष्णुलोकको चला गया ।

हमारे भयसे भीत होकर यह अपने आपको यमराजका किंकर बनाते हैं, इस लिये विष्णुके दूत क्षण कालतक चुप रहे; फिर हँसकर मेघसम गंभीर वचनोंसे उनको उत्तर देने लगे ॥ ३६ ॥ विष्णुके दूत बोले हे पाशधारी पुरुषगण! तुम लोग धर्मराजके कैसे दूत हो? हम तुमसे धर्मविषयक प्रश्न करते हैं; बतलाओ तो कि धर्मका लक्षण और प्रमाण क्या है? ॥ ३७ ॥ और दण्डच प्राणियोंको किस प्रकार दण्ड दिया जाता है और दण्डका वांछित विषय क्या है? और जो लोग दण्डनीय होते हैं, उनके क्या कर्म हैं? क्योंकि मनुष्य ही कर्म किया करते हैं, पशु आदि तो कर्म करते नहीं, कर्म करनेवाले मनुष्योंमेंसे किस किसको दंड मिलता है? ॥ ३८ ॥ यमदूतोंने उत्तर दिया कि जो वेदविहित है, अर्थात् जिसका प्रमाण वेदोंमें पाया जाता है, वही धर्म है और जो उसके अविहित है, अर्थात् वेदोंसे निषिद्ध है, वही अधर्म है। इस लिये विधिनिषेध स्वरूपमें धर्माधर्मका प्रमाण वेद ही है। हे देवगण! वेदका प्रमाण क्या है? ऐसी आशंका नहीं की जा सकती, क्योंकि वेद नारायणसे उत्पन्न और साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और वे वेद परमेश्वरके निःश्वासमात्रसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये वे स्वयम्भू नामसे सुने जाते हैं ॥ ३९ ॥ यदि कोई कहे कि नारायण कौन है, तो सुनो–जिन्होंने अपने स्वरूपमें सात्त्विक, राजस, तामस गुणमय सब प्राणियोंको शास्तृत्वादि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्यनादि क्रिया और वर्ण व्यवस्थादि रूपसे यथावत् विभाग किया है, वे ही नारायण हैं ॥ ४० ॥ हे देवगण! अधर्म भी नारायणका ही किया हुआ है, क्योंकि उन्होंने स्वयं अग्नि, वायु, अकाश, देवता, चंद्र, सूर्य, संध्या, दिन, रात, दिग, जल, पृथ्वी और धर्म इन सबको बनाया है। यह सब जीवोंके आचरणको साक्षी देते हैं ॥ ४१ ॥ इस लिये ऊपर कहे हुए सूर्यादिसे जिस प्रकार धर्म जाना जाता है, वैसे ही अधर्म भी जान लिया जाता है। वह अधर्म ही दण्डका स्थान है, परन्तु दंड पाने योग्य जीव जिसका जैसा-जैसा अपराध होता है, उसको यथाक्रम वैसा ही दंड मिलता है ॥ ४२ ॥ हे पापरहित देवगण! कर्मी पुरुषोंसे अच्छे-बुरे दोनों ही कर्म होने संभव हैं क्योंकि उसको गुणोंका सदा संग बना रहता है। हां यदि कोई शरीर सर्व भांतिसे कर्मशून्य हो तब तो अवश्य उससे अशुभ कर्म नहीं बन सकता, परन्तु ऐसा प्राणी कहां है? जो देहधारी होकर कर्म न करता हो अर्थात् ऐसा प्राणी कहीं नहीं है, इसलिये समस्त कर्म करनेवालोंको पाप अवश्य ही होता है, इससे जाना गया कि सब ही दंडके योग्य हैं ॥ ४३ ॥ फिर जो जीव इस लोकमें जितना धर्म अथवा अधर्म बटोरता है वह स्वयं परलोकमें उस प्रकारसे ही उतना फल अवश्य ही भोग करता है, अर्थात् धर्मानुसार जिस प्रकार उसको सुख मिलता है वैसे ही अधर्म करनेसे दण्डको प्राप्त होता है ॥४४॥ हे देवप्रवरगण! इतना ही नहीं कि केवल सूर्यादिही धर्माधर्मके देखनेवाले और प्रकाशक हैं नहीं, वह युक्तिसे भी जान लिया जाता है, अर्थात् इस जन्ममें शांत–स्वभावसे, क्रूरस्वभाव मूढ़पन अथवा सुखसे वा दुःखसे और सुखदुःखके मेल इत्यादिसे गुणकी विचित्रताके हेतु सब प्राणियोंको जिस प्रकार त्रिविध देखा जाता है और जन्ममें भी यह वैसे ही हो सकते हैं; परन्तु धर्म और अधर्मके विना इस प्रकारका त्रिविध संभव नहीं। इसलिये वह अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ ४५ ॥ और भी वर्तमान वसन्तादि काल जिस प्रकार अतीत, अनागत वसन्तादिकालके समस्त गुणोंके (फूल फलोंके) जतानेवाले होते हैं, वैसे ही विद्यमान जन्म भी भूत-भविष्यत् जन्मके धर्माधर्मका बतलानेवाला

होता है ॥ ४६ ॥ हे देवगण ! ऊपर लिखे हुए नियमोंके अनुसार धर्माधर्मका ज्ञान और सब जीवोंको होता है । परंतु हमारे स्वामी धर्मराज अपनी पुरीमें बैठे-बैठे अपने मनसे ही सब जीवोंका पूर्वरूप अर्थात् धर्माधर्म विशेषरूपसे देख लेते हैं, फिर अपूर्व प्रकारसे अर्थात् जो जिसके योग्य होता है, उसका वैसा ही विचार किया करते हैं, परन्तु वह भगवान् और अज हैं इस लिये उनका इस प्रकारसे करना कुछ असम्भव नहीं है ॥ ४७ ॥ हे महाशयो ! जीव अज्ञानी अविद्याओंसे ग्रसा हुआ है । और भाग्यहीन कर्मोंसे लिप्त जो यह वर्त्तमान देह है, यह इसकी ही उपासना करता है, अर्थात् इस देहको ही आत्मा समझता है, पूर्व अथवा अपरको कुछ भी नहीं मानता, इस कारण उसको पूर्व जन्मोंकी स्मृति भूल जाती है । जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नवाले शरीरको ही सत्य समझता है, जाग्रत शरीरको वा स्वप्नसे प्रथम शरीरको कुछ भी नहीं समझता, वैसे ही पूर्व जन्म होनेपर पिछले जन्मका वृत्तांत यह प्राणी कुछ भी नहीं समझता ॥ ४८ ॥ यह जीव हस्तादि पांच कर्मेन्द्रियोंसे पांच कर्म करता है और श्रोत्र इत्यादि पांच ज्ञानेन्द्रियोंसे शब्दादि पांच विषय जानता है । अधिक करके षोडश पदार्थ जो मन है, उसके साथ मिलकर सत्रहवाँ स्वयं जीव होता है, परंतु यह जीव आप ही षोडश उपाधिके अन्तरमें हो सब इंद्रियोंके विषयका खोज करनेसे अकेला ही कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन इन तीनोंके सब विषयोंका भोग करता है ॥ ४९ ॥ हे देवप्रवर ! सोलह कलायुक्त शरीर और सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंके कार्यकी तीन शक्ति यह अनादि है, और यह इस जीवको केवल स्मृति उत्पन्न करा देती है, । जिससे हर्ष, शोक, भय और पीड़ा ही विद्यमान हो जाती है ॥ ५० ॥ हे सकलदेवश्रेष्ठ ! यह जीव अज्ञानी है और इसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा यह (६) छः वर्ग नहीं जीते हैं । इसके यद्यपि कुछ करनेकी इच्छा नहीं होती तो भी लिंग शरीर उससे कर्म कराता है, इस लिये कोशकार नामक कीड़ेके समान (रेशमका कीड़ा) जो अपने पूरे हुए रेशममें आपही लिपटकर मर जाता है, यह जीव भी अपने किये कर्मोंसे आप ही ग्रसकर मुग्ध हो जाता है । अर्थात् अपने निकलनेका कुछ भी यत्न उससे नहीं हो सकता ॥५१॥ यदि कहो की इसका प्रमाण क्या है कि लिंग-शरीर जीवको कर्म कराता है तो इसका उत्तर यह है कि अनुभव ही इसका प्रमाण है, क्योंकि प्रकट देखा जाता है कि कोई पुरुष एक क्षणभरके लिये भी निष्कर्म होकर नहीं रह सकता, सब ही विवश होकर पूर्वकृत कर्मके संस्कारसे उत्पन्न हुए गुणद्वारा अर्थात् गुणकार्य रागादिकसे कर्म करनेको बाध्य होते हैं और सब कर्म किया करते हैं ॥ ५२ ॥ उन सब कर्मोंके करनेसे जो भाग्य है, वही जीवके स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीरका कारण है अर्थात् जिसका जैसा भाग्य है उसकी वैसी ही वासना होती है वह वासना सबसे अधिक बलवती है, उसी वासनासे जीवको पिताके समान अथवा माताके समान देह प्राप्त होता है और वीर्य, रुधिर तो सबका एकसा ही है ॥५३॥ हे देवदूतगण ! प्रकृतिके सङ्ग वश होनेके कारण ही पुरुषकी इस प्रकारसे उलट-पुलट बुद्धि हो जाती है, परन्तु यदि पुरुष उसी बुद्धिसे परमेश्वरकी उपासनामें चित्त लगाता है तो शीघ्र ही माया विनष्ट हो जाती है ॥ ५४ ॥ हे महाशयो ! यह ब्राह्मण प्रथम अवस्थामें शास्त्रसम्पन्न, मृदुशील स्वभाव, सदाचारी, पूर्ण व्रतधारी कोमल चित्त तथा विविध गुणोंका आधार था, यह इंद्रियोंको रोककर, सदा नियमानुसार ईश्वरकी आराधना करने वाला था और इसके तुल्य सत्यवादी, मंत्रका जाननेवाला व पवित्र पुरुष

और कोई न था ॥ ५५ ॥ यह अहंकार रहित होकर गुरु, अग्नि, अतिथि, एवं वृद्ध जनोंकी सेवा करता था और सभी प्राणियोंके संग इसकी मित्रता रहती थी, विशेष करके यह साधुव्रत-धारी, अल्पभाषी और किसीकी निन्दा नहीं करता था। पहले यह ऐसा भोला-भाला था कि–॥ ५६ ॥ एक समय यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञा पालनेके लिये वनमें गया, वहांसे फल फूल, समिधा और कुश ग्रहण करके चला ॥ ५७ ॥ जब यह मार्गमें लौटता हुआ आ रहा था तो इसने एक कामी शूद्रको एक दासीके संग रमण करते देखा। मधुर मद पीनेसे उस दासीके नेत्र घूम रहे थे ॥ ५८ ॥ और उसके लहँगेका नारा (कमरबन्द) ढीला होनेके कारण खुल गया था, वह कामी शूद्र सदाचारको त्याग इस ब्राह्मणके सम्मुख ही निर्लज्ज हो उस दासीको चिपटाकर उसके संग हास्य परिहास्य और एक संग गान व अनेक प्रकारके क्रीडा कौतुक करता था ॥ ५९ ॥ यह ब्राह्मण उस कामी पुरुषकी चन्दनादि सुगंध युक्त भुजाओंसे उस युवतीको लिपटाये देख उसी समय मोहित हो कामके वश हो गया ॥ ६० ॥ इस ब्राह्मणमें जितना धैर्य और ज्ञान था इसने उसके बलसे बहुत देर तक अपने मनको बहुतेरा रोका, परन्तु तो भी कामसे कंपायमान मनको यह न रोक सका, दोहा–"शृङ्गी नारद शंभुको, भङ्ग कियो व्रत ज्ञान ! कामदेवके वेगको, रोकै को बलवान" ॥६१॥ इस लिये उस दासीके दर्शनके कारण कामरूप महाग्रहके बहानेसे दुष्ट ग्रहने इसको ग्रस लिया जिससे उसकी स्मृति नष्ट हो गयी, यह उसी तरुणीकी नित्य चिन्ता करता हुआ और अपना धर्म-कर्म सब छोड़ दिया ॥ ६२ ॥ वह दासी जिससे प्रसन्न हो वही वस्तु लाकर उसके आगे धरता था इसी प्रकार अपने पिताका सब धन और मनोहर-मनोहर अनेक-अनेक भांतिके पदार्थ देकर उसको सन्तोष उत्पन्न करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ६३ ॥ परन्तु उत्तम कुलमें हुई परमसुशील, प्रतिव्रता, धर्मपरायण, देवी स्वरूप उस अजामिलकी युवा अवस्थावाली भोली-भाली विवाहिता स्त्री थी, परन्तु इस पापात्माने उस स्वैरिणीके नेत्रबाणसे विद्ध हो शीघ्र ही उस सतीका परित्याग कर दिया ॥ ६४ ॥ चोरीसे, झूठसे, ठगाईसे, जुएसे, न्याय-अन्याय करके जहां तहांसे आप जितना धन लाता था वह सब दासीको देकर केवल उसके कुटुम्बका पालन-पोषण करता था ॥ ६५ ॥ इसलिये हे देवदूतगण ! यह अतिशय पापात्मा है। इसकी परमायु भी पापरूपी थी, इसने जीवित अवस्थामें मलरूप दासीका जूठा अन्न भोजन किया है। इसने शास्त्रका उल्लंघन करके स्वेच्छाचारी हो चिरकाल बिताया है ॥ ६६ ॥ इस कारण इस पापीको हम दण्डपाणि यमराजके निकट ले जायेंगे। इस दुरात्माने अपने किये हुए पापोंसे छुटकारा पानेके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है, इसलिये यह यमराजसे दण्ड पाकर शुद्ध होगा ॥ ६७ ॥

---

१. शंका–अजामिल बड़ा पंडित और ज्ञानी था, गुरुमहात्मा एवं अग्निकी सेवा करनेवाला भी था। ऐसे अजामिल शूद्रीके देखते ही क्षणमात्रमें अपने धर्म कर्मसे [illegible] हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है, क्योंकि कोई मूर्ख भी [illegible] प्रकार कामासक्त नहीं होता, यह इतना चतुर होकर एक क्षणमात्रमें क्यों भ्रष्ट हुआ ?

उत्तर–गंगाकी बीच धारामें पराशर मुनि कामकी पीड़ासे महादुखी हो गये, तब भीलकी कन्याके संग रमण किया। उन पराशर मुनिको देखकर अजामिल बहुत हँसा। अजामिलको हँसता देखकर पराशरजीने शाप दिया कि हे दुष्ट ! हमारी नाईं तू भी किसी समय शूद्रीको देखकर कामसे व्याकुल होकर ब्रह्मकर्मसे भ्रष्ट हो जायगा, हम तो एकबार भ्रष्ट होकर अपने शरीरको शुद्ध कर लेंगे, परंतु तुझमें किसी प्रकार भी ब्राह्मणत्व न रहेगा। एक क्षणमात्रमें चाण्डाल हो जायगा, इस शापके कारण अजामिल क्षणमात्रमें भ्रष्ट हो गया।

सवैया–दिव दीपक लोय बनी बनिता, जड़ जीव पतंग जहां परते।
दुख पावत प्राण गमावत हैं, बरजे नर हैं हठसों जरते॥
इस भाँति विचक्षण अक्षणके, वश होय अनीति नहीं करते।
परती लखि जे धरती निरखें, धन हैं धन हैं धन हैं नर ते॥ १॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कंधे अजामिलोपाख्यान वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दोहा–इस दुसरे अध्यायमें, हरि भृत्यन धर ध्यान।
यमदूतनसों विष्णुकी, कहो माहात्म्य बखान॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यमदूतोंके ऐसे वचन सुनकर न्यायकारी महाविद्वान् विष्णुके दूतोंने विस्मयको प्राप्त होकर यमदूतोंसे कहा॥ १॥ विष्णु दूत बोले, अहो! क्या कष्ट है? धर्मदर्शी साधुलोगोंकी सभाको अधर्मने स्पर्श किया, क्योंकि सभामें धर्मदर्शी पुरुष लोग पापरहित पुरुषोंको वृथा दण्ड देते हैं॥ २॥ अहो! जो साधु पुरुष सर्वत्र समदर्शी होकर प्रजाको पिताके समान पालन करते और शिक्षा देते हैं, उनमें ही यदि अदंडचदण्डनादि (निरपराधीको दण्ड) विषम भाव हो तो फिर प्रजा किसकी शरण जाय?॥ ३॥ जब ऐसे लोग ही अधर्माचरण करने लगेंगे तब और लोग भी वैसेही होनेके अनुरागी होंगे क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसे-जैसे आचरण करते हैं और लोग भी उनकेसे ही करनेकी चेष्टा करते हैं और सब सज्जन पुरुष जिसको प्रमाण कर लेते हैं, साधारण लोग भी उसके ही पीछे चलते हैं॥४॥ क्या आश्चर्य है? लोग जिसकी गोदीमें शिर धरकर निश्चिन्त हो सो जाते हैं, आप पशुके समान हैं, धर्म-अधर्मको कुछ भी नहीं जानते, तो वह आप विश्वासघाती कहलायेगा॥ ५॥ वह पुरुष सब प्राणियोंका वासस्थान है, उसको यदि दया हो तो वह किस प्रकारसे इस लोकमें उसका बुरा करनेके योग्य होगा, जिसने मित्रताके विश्वास हेतु उनमें अपना आत्मा समर्पण कर दिया है, उससे द्रोह कभी करना नहीं चाहिये॥ ६॥ अरे यमके दूतो! यद्यपि इस पुरुष (अजामिल) ने जन्मसे लेकर कोटि-कोटि पाप कर अपने और अपने परिजनोंका भरण-पोषण किया था, तथापि जो नाम जिसने पराधीन होकर भी उच्चारण किया है, वह केवल प्रायश्चित्त ही नहीं, परम ही स्वस्त्ययन अर्थात् मोक्षका देनेवाला है॥७॥ इस पुरुषने अपने प्रिय पुत्रको पुकारनेके मनसे "नारायण यहां आओ" इस प्रकार चिल्ला कर कुछ आभासमात्रसे "नारायण" यह चार अक्षरका नाम उच्चारण किया है, बस इस नामके लेते ही इस पापीके किये हुए सब पापोंका प्रायश्चित्त हो गया॥८॥ क्योंकि चोर, मद्य पीनेवाला, मित्र द्रोही, विप्रका घात करनेवाला, ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, हरिनिंदक, गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला, स्त्रीघातक, राजघातक, गोघातक, व और दूसरे जो जितने महापातकी नर हैं॥ ९॥ उन सब पापियोंको यह (नारायण) नाम ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। इसका कारण यह है कि नामका उच्चारण करते ही उनके विषय भगवन्मय हो जाते हैं, अर्थात् भगवान् आप विचार करते हैं, कि यह नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष हमारा भक्त है, इसकी सब भांतिसे रक्षा करना हमारा कर्तव्य है॥ १०॥ हे यमके अनुचरो! मन्वादि ब्रह्मवादी मुनियोंने पापसे छुटकारा पानेके लिये जो व्रतादि प्रायश्चित्त कहे हैं, उनसे

पापी पुरुष ऐसा शुद्ध नहीं होता, जैसा हरिभगवान्के नाममात्रका उच्चारण करनेसे शुद्ध हो जाता है। दूसरे नामका उच्चारण करनेसे पापनाशके सिवाय और फल भी मिलते हैं, क्योंकि नामका उच्चारण उत्तमश्लोक भगवान्के गुणोंको भी प्रकट कर देता है, नामका फल कृच्छ्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तके समान पापका क्षय करके ही नहीं जाता रहता वरन् सदा बना रहता है ॥ ११ ॥ प्रायश्चित्त और व्रतादिकोंके करनेसे पापोंसे छुटकारा हो जाता है, किन्तु यदि असत् पापोंमें अर्थात् पाप मार्गमें फिर मन दौड़ जाता है, तो यह प्रायश्चित्त एक बार ही पापका शोधक नहीं हो सकता, इसलिये जो पुरुष एक बार ही पापके क्षय करनेकी इच्छा करते हैं, उनके लिये भगवान् हरिका गुण कीर्तन करना ही एक उत्तम प्रायश्चित्त है। क्योंकि एक श्रीभगवान् ही चित्तके शुद्ध करनेवाले हैं, जब चित्त शुद्ध हो गया तो फिर पाप कहां ? ॥ १२ ॥ यह सब पापोंका प्रायश्चित्त कर चुका, इसलिये तुम लोग इस पुरुष (अजामिल) को पाप करनेवालोंके मार्ग पर न ले जाओ, इसके अनन्त पापोंका नाश हो गया। क्योंकि इसने मृत्युके समय नारायणका नाम संपूर्ण रूपसे ग्रहण किया है ॥ १३ ॥ हे धर्मराजसेनागण ! पुत्रादिकोंके लाड़-लड़ानेमें हो, हँसीमें हो गीत आलापके पूर्ण करनेमें हो, अथवा पराधीनतामें लिया गया हो, जिस किसी प्रकारसे भी हो, नारायणका नाम लेनेसे अनेक पापोंका नाश हो जाता है ॥१४॥ अधिक क्या कहें, ऊँचे घर इत्यादिकों परसे गिरनेसे अथवा मार्गमें जाते-जाते गिर पड़नेसे, शरीरका कोई अंग टूटनेसे अथवा सर्पादिकोंके डसनेसे समय अथवा ज्वरादिकसे संतापित होनेमें, दंडादि द्वारा मार पड़नेके समय अवश होकर भी जो कोई पुरुष यदि "हरि" यह नाम उच्चारण करेगा, उसको नरककी पीड़ा स्पर्श नहीं कर सकेगी॥१५॥ मन्वादिक महर्षियोंने सब पापोंकी छुटाई-बड़ाई विचारकर बड़े पापका बड़ा प्रायश्चित्त और छोटे पापका छोटा प्रायश्चित्त जो कुछ कहा है, उसकी व्यवस्था वही है, परन्तु हरिनाम किसी व्यवस्थामें नहीं, इसका स्मरण करते ही सब पापोंका नाश हो जाता है, जैसे वारुणीके एक बिंदु पीनेसे महापापी हो जाता है, ऐसे ही नारायणका नाम लेनेसे महापापका क्षय हो जाता है ॥१६॥ और महर्षियोंके कहे हुए व्रत दान तपस्यादिसे पापोंका ही शोधन हो जाता है, परन्तु पाप करनेवालोंका जो अधर्म करनेके कारण मलिन हृदय, अथवा किये हुए पापको जो सूक्ष्मरूप संस्कार है वह शुद्ध नहीं हो सकता और भगवान्के चरणकमलकी सेवासे पापकी वासनाका भी शोधन हो जाता है, इसलिये और और प्रायश्चित्तादिकोंसे हरिनामका कीर्तन करना ही सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है ॥ १७ ॥ यहांपर इस पुरुषने "पापका प्रायश्चित्त है" ऐसा समझकर कभी हरिनामका उच्चारण नहीं किया, यह आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि अज्ञानसे हो अथवा ज्ञानसे हो, उत्तमश्लोक भगवान्का नाम कीर्तन करनेसे पापके समूह भस्म हो जाते हैं, जैसे अग्नि काष्ठके समूहको जलाती है ॥ १८ ॥

कबित्त–नामके प्रभाव बाल्मीकि आदि ऋषि भये, नामके प्रभाव नन्द कृष्णपुत्र पायो है। नामके प्रभाव टेक राखी प्रह्लादजूकी, नामके प्रभाव द्रौपदीको पट बढ़ायो है ॥ नामके प्रभाव अजामिलसे उधारे खल, नामके प्रताप वैकुण्ठमें पठायो है ॥ सोई नाम पापनके काटिबेको शलिग्राम, वेदने भी तत्त्वरूप नामको बतायो है ॥

यदि तुम कहो कि इस अजामिलने भगवद्भक्त पुरुषोंके निकट उपदेश नहीं पाया, इसलिए इसका लिया हुआ नाम किस प्रकारसे प्रायश्चित्त हो पापका नाश करेगा ? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कोई न जाननेपर भी इच्छानुसार अतिशय वीर्यवान् औषधि भक्षण कर ले तो वह औषधि अपना गुण अर्थात् आरोग्यता प्रकट कर देती है, वैसे ही हरिनाम-रूप मन्त्र अजानेमें भी उच्चारण करनेसे अपना कार्य अवश्य करता है, इसका कारण यही है कि शक्तिशाली वस्तु श्रद्धादिकी बाट नहीं देखती ॥१९॥ हे दूतगण ! इस धर्ममें जो सन्देह हो तो तुम अपने स्वामी यमराजसे पूछ लेना क्योंकि वह धर्मकी परमगुप्त वार्ताओंको भी भलीभांति जानते हैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उन विष्णुदूतोंने इस प्रकारसे भगवत धर्मको निर्णयपूर्वक कहकर उस ब्राह्मण (अजामिल) को यमकी फांसीसे छुड़ाकर मृत्युकी पीड़ासे उद्धार किया ॥२१॥ यमदूत लौटकर अपने स्वामी यमराजके निकट आये और जो बात हुई थी, वह आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तांत यमराजको सुनाया ॥२२॥ इस ओर इस ब्राह्मण (अजामिल) ने यमकी फांसीसे छूट भय त्याग सावधान हो मस्तक नवाकर उन विष्णुदूतोंको प्रणाम किया और उनके दर्शनसे परमानन्दको प्राप्त हुआ ॥२३॥ फिर भगवान् विष्णुके दूतोंने अजामिलका भाव देखकर समझा कि यह हमसे कुछ कहना चाहता है, इसलिए वे उसके सामनेसे उसी समय अंतर्धान हो गये ॥ २४ ॥ अजामिलने विष्णु और यमराजके दूतोंका कथोपकथन सगुण और निर्गुण धर्म सुना ॥२५॥ अर्थात् यमदूतोंके मुखसे तीनों वेदोंका प्रतिपादन किया हुआ सगुणधर्म और विष्णुदूतोंके मुखसे भगवत् प्रणीत निर्गुण धर्म जाननेसे भगवान्में अतिशय भक्तिसम्पन्न हो गया अर्थात् भगवान्का माहात्म्य सुनकर परमेश्वरमें अजामिलकी शीघ्र ही भक्ति हो गयी; इसलिए वह अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मोंका स्मरण करके बहुत ही पछताने लगा ॥ २६ ॥ खेद करते-करते बोला कि अहो ! अजितेंद्रिय होकर रहनेसे हमको बड़ा कष्ट हुआ क्या घृणाकी बात है; मैंने दुष्ट स्त्रीके गर्भमें सन्तान उत्पन्न करके अपनी ब्राह्मणजातिका नाश कर दिया ॥२७॥ मैंने अत्यन्त कुकर्म किया, मैं अपने कुलका कलंक हूं, सज्जनोंमें निंदाका पात्र हूं, मुझको धिक्कार है, धिक्कार है, क्या यह मेरा साधारण दुष्कर्म है, कि जो मैंने अपनी व्याही तरुणी पतिव्रतास्त्रीको त्याग करके सुरापान करनेवाली स्त्रीसे भोग करके काल बिताया ॥ २८ ॥ हाय ! मैंने अपने पिता-माता अत्यन्त वृद्ध तपस्वी और अनाथ, जो अन्य पुत्रादि व बन्धु बांधवों करके विहीन होनेसे सदा ही दुःख सन्तापमें रहते थे, वह मैंने नीचके समान अकृतज्ञ होकर ऐसे समयमें उनको त्याग दिया। उस समय मुझपर वज्र भी न टूट पड़ा ॥ २९ ॥ जैसा मैं पापी हूं इससे तो यही स्पष्ट होता है कि मुझको उसी घोर नरकमें पड़ना होगा, जहां धर्मके शत्रु कामी पुरुष यमकी पीड़ाको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ३० ॥

शंका—नारायणका नाम मरते समय अजामिलने लिया तो उसका पातक सब नष्ट हो गया, अजामिल शुद्ध हो गया तब भगवान् के दूतोंसे कुछ बात करनेकी इच्छा अजामिलने की तो दूतने विचार किया कि यह हमसे बोलेगा तो हम सबको पाप लगेगा, ऐसा समझकर क्यों चले गये ? क्योंकि अजामिल तो सब पापोंसे छूट गया था ।

उत्तर—नारायणके नामको अजामिलने जब लिया तब उसी नामके प्रभावसे यमराजकी त्राससे अजामिल छूट गया, परंतु सब पापोंसे नहीं छूटा, क्योंकि जो सब पापोंसे छूट गया होता तो भगवान्के दूत अजामिलको एक क्षणमात्रमें वैकुंठ धाम को ले जाते पृथ्वी पर तपस्या करनेका फिर क्या काम था ? दूतोंने अपने मनमें विचारा कि पापीके साथ बात करनेवाले प्राणीको ब्रह्म-हत्याका पाप लगाता है, ऐसा समझकर भगवान्के पार्षद अजामिलको छोड़कर चले गये, तब अजामिल पापका नाश करनेके लिये तप करने गया ।

अभी थोड़ी देर पहले यहां मैंने अद्भुत स्वप्न देखा था, क्या वह जगत्में मुझको दिखायी दिया अथवा क्या वह स्वप्न था ? नहीं-नहीं स्वप्न किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता, यह सब चरित्र जागतेमें प्रत्यक्ष मैंने अपनी आंखोंसे देखा कि कई पुरुष हाथमें फांसी लिये मुझको पकड़कर घसीटे लिये जाते थे। इस समय वे लोग कहां चले गये ॥३१॥ मैं फांसीसे बंधा हुआ पृथ्वीके बिचले भागमें जा रहा था, उस समय एकाएक आकर जिन्होंने मुझको इस फांसीसे छुड़ाया वे चार सिद्ध पुरुष कहां हैं ? जिनका अति मनोहर दर्शन करके दोनों नेत्र तृप्त हुए थे ॥ ३२ ॥ यद्यपि इस जन्ममें मैं बड़ा पापी हुआ तो भी उन देवताओंका दर्शन प्राप्त करनेसे मुझको अनुमान होता है, कि पहले जन्मका मेरा बड़ा पुण्य था, जिससे कि उन देवताओंके दर्शनसे इस समय मेरा यह आत्मा प्रसन्न हो रहा है ॥ ३३ ॥ जो मेरे प्रथम जन्मका पुण्य न होता तो भला मुझ अशुचि दासीके पतिकी जीभ मरनेके समय नारायणका नाम लेनेमें क्यों समर्थ होती ? ॥ ३४ ॥ कहां तो मैं कपटी, निर्लज्ज, पापी, ब्रह्मद्रोही, ब्राह्मण धर्मका नाशक और कहां यह परम मङ्गलदायक भगवान्का "नारायण" नाम ? जो पहला पुण्य न होता तो क्या यह नाम मेरे मुखसे निकल सकता था, कभी नहीं ॥३५॥ अब इस समय प्राण, मन और इंद्रियोंको रोककर ऐसा यत्न करूं कि जिससे घोर अन्धकारमें फिर कहीं न पड़ जाऊँ ॥ ३६॥ इस समय अविद्या, काय, कर्मके बंधनको छोड़कर प्राणिमात्रसे सुहृद भाव, शांत दयावान् और आत्मवान् होकर अपनी आत्माको मुक्त करूं ॥ ३७ ॥ इस स्त्रीरूप भगवान्की मायाने इस मेरे आत्माको ग्रास कर लिया था, हाय ! इस निंदनीय मायाने शाखामृगके समान हमको बहुत नचाया ॥ ३८ ॥ अच्छा, इस मायाने जो किया सो किया, परंतु इस समय सत्यवस्तुमें मेरी बुद्धि उत्पन्न हुई; अब मैं देह इत्यादिमें "अहंता-ममता" इत्यादि बुद्धिको छोड़कर भगवान्में अपना चित्त लगाऊँगा। उनके नामका कीर्तन इत्यादि करके मेरा चित्त शुद्ध हो गया है, इसलिये अवश्य उनमें मेरा मन लग जायगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! अजामिलको क्षण भरके लिये साधुसंग प्राप्त हुआ कि जिससे उसको इस प्रकारका सुन्दर ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके पीछे वह अजामिल पुत्रादि स्नेहरूप समस्त बन्धन तोड़कर गंगा-किनारे वास करनेके लिये हरिद्वारको चला गया ॥ ४० ॥ और वहांपर एक देवालयमें योगासन लगाकर योगमार्गमें स्थित हो समस्त इंद्रियोंको विषयोंसे खींचकर आत्मामें मनको लगा दिया ॥ ४१ ॥ उसके पीछे देह इंद्रिय इत्यादिसे आत्माको भलीभांति शुद्ध कर चित्तकी एकाग्रतासे आत्मा को ज्ञानमय निज स्वरूप (परब्रह्म) में लगा दिया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे परब्रह्ममें ही उसका चित्त निश्चल हो गया। उस समय उसने कई एक पुरुषोंको देखा, देखते ही पहचान लिया कि पहले भी इन महात्माओंको कहीं देखा है, इसलिये देखते ही शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! उनके दर्शन करनेके पीछे अजामिलने इस तीर्थमें अपनी देह गंगाजीके मध्य त्यागकर भगवान्के पार्षदोंका स्वरूप ग्रहण कर लिया ॥ ४४ ॥ वह महा-पुरुष उन सब देवदूतोंके साथ सुवर्णमय विमानपर बैठकर जहां भगवान् श्रीपति विराज-मान रहते हैं, आकाशमार्गसे वहांपर पहुँचा ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! अजामिल ब्राह्मण होकर दासीका पति होनेसे निंदित कर्मोंके द्वारा पतित हो गया था, जिससे कि उसके सब धर्म व स्वदार नियमादि समस्त वृत्त नष्ट हो गये थे, इसलिये यमदूत उसको नरकमें डालने के

लिये, लिये जाते थे, परन्तु भगवान्‌के नामकी महिमा देखो कि अन्तकालमें पुत्रको पुकारनेके लिये मनसे "नारायण" नाम लेते ही सब पापोंसे छूट गया ॥४६॥ इस लिये परम पवित्र भक्तजनोंको मोक्षदायक भगवान्‌के कीर्तनके सिवाय और कोई पापोंको जड़से उखाड़नेवाला दूसरा उपाय नहीं है। इस कारण जितने प्रायश्चित हैं, उनमें रजोगुण व सत्त्वगुणसे मन सदा मलिन ही रहता है; परन्तु-कीर्तनसे मन निर्मल हो जाता है और फिर कर्ममें आसक्त नहीं होता ॥ ४७ ॥ हे राजन्! यह इतिहास परमगुप्त और पापका नाशक है, जो पुरुष श्रद्धासहित इसको श्रवण करेगा अथवा भक्तिके साथ औरको सुनायेगा ॥ ४८ ॥ वह कभी नरकमें नहीं जायगा, अधिक क्या कहें, यमके दूत उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकते, वह पुरुष कैसा ही दुराचारी और अतिशय अमङ्गलरूप क्यों न हो? परन्तु तो भी विष्णुलोकमें पूजित होता है ॥ ४९ ॥ हे महाराज! अजामिलने मृत्युके समय पुत्रके ही नामसे भगवान्‌का नाम उच्चारण किया था, जब कि वह इस नामके लेते ही समस्त पापोंसे छूट नारायणके धामको चला गया, तब जो श्रद्धासहित उनके नामको उच्चारण करते हैं उनके पाप छूट जांय तो इसमें संशय क्या है? और जो मनुष्य नित्य "हरे कृष्ण! जय गोविंद!! हे नारायण!!!" ऐसा ही कहते रहते हैं, उनकी तो महिमा ही क्या है? वह तो परम प्रेमी हैं ॥

भजन

प्रेमी पूरण प्रेम निवाहैं ॥
सोई धन्य प्रेमी जो निशिदिन, निज प्रीतमको चाहैं।
प्रीतम प्रेम रंग जो राते, तिनको सकल सराहैं ॥
जिस मनमें प्रेमाग्नी प्रकटी, सकल कल्पना दाहैं।
कहैं रघुवीरदास प्रीतमको, प्रेम करत उतसाहैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कंधे अजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा तिसरेमें यमराजने, वैष्णव धर्म बखान।
शांति कर दिये दूत सब, कहकर उत्तम ज्ञान ॥

राजा परीक्षितने पूछा कि, हे भगवन्! धर्मराजके दूतोंको जब भगवान्‌के दूतोंने निकाल दिया तब अपने स्वामीके निकट आकर अवश्य ही सब वृत्तांत कहा होगा, सब लोक जिनके वशमें हैं, उन्होंने दूतोंके मुखसे अपनी आज्ञाका भंग सुन उन लोगोंको क्या उत्तर दिया? ॥ १ ॥ हे योगिवर! यमके दण्डका भी भंग हो जाता है, यह तो किसी कालमें हमने किसीके मुखसे नहीं सुना सो इस बातसे सभी लोगोंको बड़ा भारी संशय होगा, वह आपके सिवाय और कोई इस हमारे संशयको नहीं छुड़ा सकता यह हमको निश्चय है इसलिये यह आप मुझे समझा कर कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले-कि हे राजा परीक्षित्! विष्णुके दूतोंने जब यमदूतोंको निकाल दिया, तब वे लोग भग्नचित्त हो अपने स्वामी (धर्मराज) के निकट गये और समस्त वृत्तांत कह सुनाये ॥ ३ ॥ यमदूतोंने यमराजसे कहा-कि हे प्रभो! जीव-लोकोंके शासन करनेवाले कितने हैं, हम तो जानते हैं कि जीव तीन प्रकारके कर्म

किया करते हैं, परन्तु उनके कर्म फलको प्रकट करनेके कितने कारण हैं ? ॥४॥ यदि बहुतसे शासन करने वाले और दण्डधारी हों तब परस्पर उन सबमें विरोध करनेसे किसी प्राणीको सुख और किसीको दुःख दोनों ही हो सकते हैं और जो सबका एक मत हो तो किसीको सुख-दुःख नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ कर्म करनेवाले पुरुष बहुत हैं, उनके कर्मफलोंके लिये यदि शिक्षा भी बहुतसी हो तो प्रभुत्व हो सकता है, परंतु इससे सब शिक्षाओंमें मुख्य जो शासन करना है, वह मण्डलान्तर्वर्ती शासन करनेवालोंकी शिक्षाके समान एक देशमें केवल उपकारके समान हो जाता है। अर्थात् जिस प्रकार चक्रवर्ती ही मुख्य शासन करनेवाला होता है, मंडलेश्वर राजाओंकी प्रभुताई तो केवल एक उपचार है वैसे ही सर्व शिक्षाओंका सिखाना और शासनकर्ताओंके लिये उपचरित पड़ता है ॥ ६ ॥ यह समझकर, कि शासन करनेवाले बहुतसे नहीं होते, हम यही जानते थे कि एक आप ही ईश्वरके सहित प्राणियोंके अधीश्वर शासन करनेवाले और दण्डधारी और आप ही मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ परंतु आपका किया हुआ दंड इस समय लोकोंके मध्यमें नहीं चल सकता, क्योंकि चार अद्भुत सिद्ध पुरुषोंने लीलासे ही आपकी आज्ञाको भंग कर डाला ॥ ८ ॥ हम लोग आपकी आज्ञासे एक पापीको बाँधकर यातना–गृहमें ला रहे थे कि उन लोगोंने अचानक आकर आपकी फाँसी तोड़ताड़कर बलात्कार उस पापीको हमसे छुड़ा लिया ॥९॥ सो हे प्रभो ! यदि आप हमारा हित चाहते हैं, तो हमको यह बतला दीजिये कि वे कौन हैं ! हम आपके निकट उनके जाननेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि यदि हम लोगोंने अज्ञानसे उनकी अवज्ञा की तो कहीं उलटा आपका ही बुरा न हो जाय ! हे देव ! उन पुरुषोंका बड़ा ही प्रभाव है क्योंकि उस पातकीने "नारायण" इतना ही शब्द उच्चारण किया था कि वे लोक "भय नहीं, भय नहीं" ऐसा कहते हुए शीघ्रतासे आ गये ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब दूतोंने इस प्रकार पूछा तो प्रसन्न हो भगवान् हरिके चरणारविन्दोंको स्मरण करते-करते उत्तर देने लगे ॥ ११ ॥ यमराज बोले-कि हे दूतगण ! हमारे सिवाय एक और पुरुष इन सब स्थानोंपर सबके ही सर्व-प्रधान अधीश्वर हैं, हम तो उनके किंकर हैं और उनके बनानेसे ही जंगम पदार्थके ईश्वर हुए हैं, उनमें भी केवल पापी मनुष्योंके ऊपर ही प्रभुताई करनेकी हमें सामर्थ्य है, जिस प्रकार तागे (डोरे) में वस्त्र टँका हुआ रहता है, वैसे ही जिसमें यह विश्व टँका हुआ है, जिसके अंशस्वरूप ब्रह्मा, महेश्वर आदिसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, एवं लय होती है, यह समस्त लोक ही नथे हुए बैलके समान उनके वशमें चलते हैं ॥१२॥ जिस प्रकार रस्सीमें बैल बँधे रहते हैं, ऐसे ही भगवान्ने ब्राह्मणादि नामसे वेदवाक्यरूप सूत्रमें सब लोकोंको बांध लिया है अधिक करके यह सब जीव जो नाम और कर्मरूप बंधनसे बँधे हुए हैं और यही जीव चकित होकर जिसके निमित्त बलि वहन करते हैं, अर्थात् जिसके वश हो रहे हैं और कर्म करते हैं ॥१३॥ जिसकी लीला अचिंतनीय है, इस लिये हम, महेन्द्र, निर्ऋति, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, महेश्वर, विश्वेदेवगण, वसुगण, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण, और सिद्धगण ॥ १४ ॥ और प्रधान-प्रधान देवता जो कि इस विश्वके रचनेवाले हैं और भृगु इत्यादि महर्षि जो लोग कदापि रजोगुण और तमोगुणको देखते भी नहीं हैं, वे सत्त्वगुण प्रधान होकर भी जिसकी चेष्टाको नहीं जान सकते, हे दूतगण ! इनके सिवाय दूसरे पुरुष जो कि मायामें लिपटे हुए हैं, वे लोग

किस प्रकार उन्हें जान सकते हैं ? ॥ १५ ॥ माया मोहमें लगा हुआ कोई भी प्राणी उनके जाननेको समर्थ नहीं हो सकता और जो इंद्रिय आदिकोंके भी विषय नहीं हैं, अर्थात् इंद्रिय, मन, प्राण, चित्त और वाक्य इत्यादि द्वारा किसी प्रकारसे भी प्राणिगण जिसको नहीं देख सकते और जो कि सब जीवोंके हृदयमें अन्तर द्रष्टा स्वरूप हो वर्तमान हैं इस-लिये रूपादिकको जिस प्रकार नेत्र प्रकाश नहीं कर सकते हैं, वैसे ही इंद्रियादिक उनके प्रकट करनेको असमर्थ हैं, सो इस प्रकारके अधीश्वर केवल एक ही हैं ॥ १६ ॥ वे आत्म तत्त्व-स्वरूप सबके प्रभु, परमाधिपति अतिशय महात्मा हैं, तुम लोग जिनका वृत्तान्त कहते हो वह हमको निश्चय है कि वे सब उन्हीं भगवान्‌के दूत होंगे, क्योंकि भगवान्‌के दूत प्रायः उनके ही तुल्य रूप, गुण, प्रभाव और स्वभावयुक्त हो मनोहर मूर्ति धारण किये हुए घूमा करते हैं ॥ १७ ॥ हे दूतो ! भगवान्‌के भृत्यगण देवताओंसे पूजित हैं, जिनका दर्शन अति कठिनतासे प्राप्त होता है, इसलिये महाअद्भुत विष्णुके दूत विष्णु भक्त मनुष्योंकी सर्वदा शत्रुसे और अग्नि जल इत्यादि सर्व पदार्थोंसे सब भांति रक्षा किया करते हैं ॥ १८ ॥ तुम लोग इस प्रकारकी शंका अपने मनमें मत लाओ कि उन्होंने विष्णुभक्त हो किस प्रकारसे अजामिलको छुड़ाकर अकर्मका पक्षपात किया, क्योंकि साक्षात् भगवत्-प्रणीत जो धर्म है, उसको क्या भृगु इत्यादि ऋषि,क्या देवता, क्या सिद्धगण, क्या असुरनिकर, क्या विद्याधर, क्या चारण, कोई भी नहीं जानता, फिर उनको मनुष्य लोग किस प्रकार जान सकेंगे ? ॥ १९ ॥ हे दूतो ! केवल स्वयम्भू १, शम्भु २, नारद ३, सनत्कुमार ४, मनु ५, कपिल ६, प्रह्लाद ७, जनक ८, भीष्म ९, बलि १०, शुकदेव ११ और हम १२ ॥ २० ॥ बस, यह केवल बारह जन ही भागवत-धर्मको जानते हैं, वह धर्म अतिशय गुप्त है, अत्यन्त दुर्बोध है, परन्तु इसके जान लेते ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥ २१ ॥ हे सेनागण ! नाम कीर्तनादिसे भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोगका करना है, वही इस लोकमें पुरुषोंका परम धर्म है, उनको ही भागवत धर्म कहते हैं ॥ २२ ॥ हे सब पुत्रो ! भगवान्‌के नाम उच्चारण करनेका माहात्म्य देखो कि केवल नामका ही उच्चारण करके पापी अजामिल मृत्युकी फांसीसे छूट गया ॥ २३ ॥ इस लिये भगवान्‌के गुण, कर्म और नाम इन सबका भली प्रकार कीर्तन करना ही मुख्य है, वह सब पापको क्षय कर सकता है, क्योंकि महापापी अजामिलने अपवित्र व मरणा-वस्थामें 'नारायण' कहा, अपने पुत्रके पुकारनेके बहानेसे उसका पाप ही नहीं छूटा, वरन वह मुक्तिको भी प्राप्त हो गया ॥२४॥ यदि कहो कि भगवत्-नामके स्मरणमात्रसे ही जो अशेष पापोंका क्षय हो जाता है, तब द्वादश वार्षिक प्रायश्चित्त इत्यादि क्यों हैं ? (उत्तर) इन सब स्मृतिकार महापुरुषोंकी मति दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रही थी, इस लिये इस गुप्त नामके माहात्म्यको न जानकर उन्होंने द्वादश वार्षिक व्रतादि प्रायश्चित्त मान लिये हैं।

---

१. शंका–यमराजने दूतोंसे कहा कि, हे दूतो ! भागवत रूप धर्मको ऋषि लोग नहीं जानते, प्रह्लाद और जनकजी आदिसे लेकर हम बारह जन भागवत धर्मको जानते है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिन मुनियोंको भगवान्‌का दास कहते हैं, वे मुनिजन भगवान्‌के धर्मको क्यों नहीं जानते हैं ?

उत्तर–मुनिजन भगवान्‌से भी बड़े है, दूसरे प्राणीसे किसी काममें छोटे क्यों होंगे ? भक्त त्रिलोकीमें सबसे बड़े हैं, परंतु तपस्याके अभिमानसे भागवत रूप धर्मको नहीं देखते और देखते विचारते है क्या हमारे तपसे भागवत धर्म बड़ा है, ऋषिजन तपस्या करके अभिमानी हो रहे हैं इस लिये भागवत धर्मको नहीं जानते और प्रह्लाद जनक आदि सीधे साधु हैं, इनको भगवान्‌के सिवाय और कोई दूसरा आधार ही नहीं, इसलिये भागवत–धर्म न जाननेको यमराज अपने दूतोंसे कहे थे।

अर्थवादसे मनोहर जो सब वेदकी विधि है, उसमें ही उनका चित्त नष्ट हो गया था, इसलिये वे स्वयं श्रद्धासहित वेदोक्त अग्निष्टोमादि बड़े-बड़े भारी यज्ञादिक कर्म करनेमें लगे रहते थे, अतः वे लोग नामके माहात्म्यको नहीं जानते थे, पूर्वोक्त बारह ऋषियोंसे अतिरिक्त जो और स्मृतिकार थे, वे सब दैवी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे थे और पुष्पके समान जिसकी सुगंधि दशों दिशाओंको पवित्र कर रही है और चांदनीके तुल्य जगत्में छिटक रही है, ऐसी वेदत्रयी रूप परमोत्तम वाणीमें जड़बुद्धि बन रहे थे और इस गुप्त नामके माहात्म्यको कुछ भी नहीं जानते थे, अतएव द्वादश वार्षिक व्रतादि बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बतलाये हैं और वे स्वयं आज तक महाभारी यज्ञादिक कर्मोंमें लिपटे रहते हैं और भगवान्‌के नामको छोटा प्रायश्चित्त समझते हैं, फिर छोटे लोगोंकी श्रद्धा उनमें कैसे हो सकती है ? इसलिए उन लोगोंने बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बताकर सांसारिक पुरुषोंको भ्रम जालमें डाल रक्खा है ? यद्यपि वाल्मीकि नारदकी कथाको वे भी भली-भांति जानते हैं और रामनामके प्रभावका जानना तो महा कठिन है, परन्तु यह जानते हैं कि रामनाम मोक्षदायक है, परन्तु छोटे लोगोंको बड़ा प्रायश्चित्त बताते हैं, क्योंकि मूर्खोंका चित्त बड़ी वस्तु पर जमता है, वे छोटी वस्तुको बहुत तुच्छ समझते हैं, इस लिए रामनामका जो गूढ मंत्र है, उसकी महिमा मूर्खोंके सामने प्रकट नहीं करते कि दो अक्षरों पर उनकी श्रद्धा न होगी, इस कारण उन मुनि लोगोंने बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बताये हैं और यह भी समझा कि जो सभी मनुष्य नामके माहात्म्यको जान लेंगे तो जीवन मुक्त हो जायँगे, जैसे जो अमृत सञ्जीवनीको नहीं पहचानते तो वे वैद्य रोगीके रोग शांतिके लिये सोंठ, मिर्च, जीरा, इलायची, हींग, पोदीना, सुहागा और सेंधा नमकका चूर्ण बता देते हैं अथवा निम्बादिके चूर्ण बताते हैं। प्रथम तो संजीवनीका जानना कठिन और जिन्होंने जान रखी है वे अमूल्य समझकर किसीको देते नहीं। जैसे मृगराज सिंह अपने वशमें हो तो चतुर लोगोंको उचित है कि श्वान गीदड़ हरिणादिक छोटे-छोटे जन्तुओंपर उसको न छोड़े। वैसे ही तुच्छ पापकी निवृत्तिके लिये सर्वानन्ददायक परममांगलिक रामनामका उपयोग करना ठीक नहीं, क्योंकि किञ्चिन्मात्र पापके लिये ऐसे अमूल्य रत्न रामनामसे प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं, इस बात पर एक दृष्टांत[1] है ॥ २९ ॥ हे वत्सगण ! जैसे बुद्धिमान् मनुष्य यह सब विचार करके भगवान् अनन्तमें सम्पूर्ण अंतःकरणसे भक्ति योगका विधान करते हैं, वे कभी हमारे दण्डको प्राप्त होनेके योग्य नहीं हैं, उनमें पाप हो ही नहीं सकता, यदि कदाचित् हो भी जाय तो भगवान्‌के

---

१. दृष्टांत–एक मुनीश्वर तप कर रहे थे। इतनेमें कोई (कोढ़ी) उनकी शरणमें आया और कहा कि, हे दीनदयालु ! मेरे कुष्ठका आप कुछ उपाय बताइये। परंतु वह तो ध्यानमें थे कुछ उन्होंने न सुना, उसने फिर कहा, फिर मुनिने न सुना, फिर उसने तीसरी वार कहा, फिर मुनिने ध्यान न किया, जब फिर वह चौथी वार कहने को हुआ, तब मुनिके चेलेने अपने मनमें विचारा कि जो इसके गंभीर शब्दसे गुरुजीकी समाधि छूट गयी तो मेरे ऊपर बड़ा भारी क्रोध करेंगे इसलिये उसने भय मान कुष्ठीसे कहा कि तीन बार रामका नाम ले। तेरा कुष्ठ सब जाता रहेगा और शरीर शुद्ध हो जायगा। उसने जो तीन बार राम राम कहा तो सब कुष्ठ जाता रहा और शरीर कुंदनके समान लाल हो गया। मुनीश्वर जब समाधिसे जागे तो चेलेकी ओरसे मुंह फेर लिया और न बोले। तब तो चेलेने अपने मनमें बड़ा दुःख माना और मनमें कहने लगा कि ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जो गुरुजी क्रोधित हो गये ? फिर चरणोंमें शिर झुका विनती कर बोला कि हे स्वामिन् ! मुझ दीनसे ऐसा क्या अपराध हुआ जो मेरी ओरसे आपने मुख फेर लिया ? कृपा करके मुझसे कहिये, जो मेरे मनका संदेह जाय, तब मुनि बोले कि अरे मूर्ख ! तूने रामनामकी महिमाको कुछ न जाना, जिस राम नामके एकबार कहनेसे करोड़ों कुष्ठी अच्छे हो सकते हैं ऐसे रामनामको तीन बार कहलाकर एक कुष्ठी तूने अच्छा किया, तूने रामनामके प्रभावको तुच्छ समझा ? अच्छा अब जो किया सो किया, फिर कभी ऐसा मत करना। रामनामकी महिमाको शेष, शारदा और ब्रह्मा तथा नारद भी नहीं जानते।

नाम कीर्तन करनेसे ततक्षण उस पापका नाश हो जाता है ॥ २६ ॥ इस समय तुम सब हमारी आज्ञा और वचन सुनकर मनमें स्मरण रखो कि जो साधु नारायणकी शरण हैं, सर्वत्र समदर्शी हैं, देवता और सिद्ध लोग जिनकी पवित्र कथाओंको रात-दिन वर्णन किया करते हैं, ऐसे साधुओंके निकट तुम लोग कभी मत जाना क्योंकि उनके निकट भगवान्‌की गदा सदा सर्व प्रकारसे रक्षा किया करती है, इसलिये उनको दण्ड देनेके लिये हमारी क्या सामर्थ्य है ? काल भी उनका कुछ नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ परंतु जो अपने धर्मका है जो कि निष्किंचन परम हंसोंके संगसे हीन हो सदा उनकी निंदा किया करते हैं उन मुकुन्दके पादारविंदमकरन्दका रस पान करनेमें विमुख नरकके मार्ग स्वरूप जो अपने धर्मका शून्य गृह है उसमें ही तृष्णा बांधे रहते हैं, उन लोगोंको हमारे निकट बेखटके ले आया करो ॥ २८ ॥ और जिनकी जीभ कभी भगवान्‌का गुण वर्णन या नाम उच्चारण नहीं करती और जिनका मस्तक कभी भगवान्‌के चरणकमलमें नहीं झुका, जिन्होंने एकवार भी नारायणका व्रत नहीं किया, उन्हीं सब आसक्त पुरुषोंको हमारे निकट लाना ॥ २९ ॥ धर्मराज अपने दूतोंको इस प्रकार आज्ञा करके फिर भगवान्‌से अपना अपराध क्षमा कराने लगे और बोले-कि हे नाथ ! इस समय हमारे पुरुष जो अन्याय कर्म कर आये हैं और आपके भक्तोंका तिरस्कार किया है, हे पुराण-पुरुष भगवान् आप इस अपराधको क्षमा करें । हम लोग तो आपके ही बनायें हैं, हम माहात्म्यको न जानकर अपराध करके हाथ जोड़ रहे हैं, इसलिये हमारा अपराध क्षमा किया जाय ॥ ३० ॥

कवित्त–दूतनसों ऐसे कहि हरि पाद ध्याय उर, कहै यमराज अब दाया रस भीजिये । पुरुष पुरातन नारायण त्रिलोकीनाथ, विनती हमारी चित देके सुन लीजिये ॥ मेरे दूत विना जाने कियो अपराध आज, कृपासिंधु कृपाकर क्षमा कर दीजिये । क्षमाके करैया क्षमाभारके हरैया क्षमा-सिंधुके धरैया मेरो दोष क्षमा कीजिये ॥

इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से बोले–कि हे कौरव ! भगवान् विष्णुजीका नामकीर्तन करना जगत्‌का मंगलरूप है. निश्चय जान लो कि इस नामके संकीर्तनसे बड़े-बड़े पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३१॥३२॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके उद्यम वीर्य पराक्रमके बार-बार श्रवण करने और कहनेवाले पुरुषोंका चित्त उत्पन्न हुई भक्ति द्वारा जिस प्रकार शुद्ध होता है वैसे व्रतादिकोंसे शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ इसलिये जो पुरुष भगवान्‌के चरणारविंदका स्वाद एकवार प्राप्त कर लेता है उसकी पापाचारमें फिर रति नहीं होती । परन्तु इस स्वादसे जो पुरुष वंचित हैं, वे कामसे हत हो अपने पापसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्त रूप उस कर्मके ही करनेकी चेष्टा करते हैं जिससे फिर पाप उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यमके दूत अपने स्वामी यमराजके मुखसे भगवत् नामका माहात्म्य श्रवण करके विस्मित चित्त हुए ! उस समयसे नारायणके भक्तको देखते ही "अरे यह पुरुष हम लोगोंका नाश कर देगा" ऐसी आशंका करते उसकी ओरको देखते हुए डरते हैं ॥ ३५ ॥ हे कौरव ! महर्षि अगस्त्यजीने मलयाचलपर बैठकर भागवतमें विश्वास होनेके

लिये वारंवार भगवान् हरिके चरणारविन्दोंकी पूजा करते-करते यह गुप्त इतिहास कहा था, इसपर एक पद है–

ठुमरी

हरे राम कहो हरे राम कहो, राम राम कहो हरे हरे ॥ टेर ॥
मीन वराह हरी कच्छप, रामचन्द्र अवतार धरे ।
परशुराम नरसिंह कृष्ण बल, सनकादिक चारों विचरे ॥ १ ॥
नरनारायण यज्ञ पुरुष हैं, कपिलदेव हयग्रीव तरे ।
दत्तात्रेय ऋषभ मन्व-तर, पृथु मोहिनी अति सुधरे ॥ २ ॥
नारद वामन हंस व्यास प्रभु, बौद्ध होयकर ज्ञान करे ।
कल्की कलियुग अंतमाहिं भये, यह चौवीसों रूप धरे ॥ ३ ॥
रंगनाथजी जगन्नाथजी, पुरी द्वारका-नाथ वरे ।
गोवर्द्धनके नाथ नाथ जग, बद्रीनाथ नरनाथ खरे ॥ ४ ॥
जगदीश्वर परमेश्वर स्वामी, सर्वेश्वर सब ठौर सरे ।
कमलनयन कमलापति केशव, कंशकेशिकर काल करे ॥
मनमोहन मथुरामन मज्जन, मन्मथ मुरली मुकुट धरे ॥६॥३६॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने स्वभटान्प्रति यमेन भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

दोहा–चौथेमाहिं प्रजान हित, तपे दक्ष परवीन ।
हंस गुह्य स्तोत्रसे, हरि–आराधन कीन ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सुर, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षी इत्यादि सृष्टिकी कथा आपने जो संक्षेपसे प्रथम (तीसरे स्कंधमें) कही है ॥ १ ॥ अब उसको ही विस्तारसे हम आपके मुखसे सुनना चाहते हैं और परम पुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रत्येक सर्गमें जिस शक्तिके द्वारा जिस प्रकारकी सृष्टि रची है उस शक्ति सहित और जो पीछे सृष्टि रची गयी उसके सुननेकी हमारी अभिलाषा है ॥२॥ इतनी कथा कहनेके उपरान्त पुराणवक्ता सूतजी शौनकादि मुनिगणोंसे बोले–कि हे ऋषिवर्यवर्ग ! महायोगी, व्यास पुत्र श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित्की इस प्रार्थनासे प्रसन्न हुए और आनन्द प्रकट करके कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीशुदेवजी बोले–कि हे राजन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्र दश प्रचेताओंने समुद्रके भीतरसे निकलकर देखा कि पृथ्वीमंडल विविध वृक्ष लताओंसे युक्त हो रहा है। हे कुरुवंशावतंस ! वृक्ष लतादिकोंसे इस प्रकार पृथ्वीके छा जानेका कारण यह है कि नारदजीके उपदेशसे प्रचेतालोगोंने निवृत्तिमार्ग अवलम्बन कर लिया, जिससे कि उन राजाके पृथ्वीपर खेती इत्यादि नहीं हुई ॥ ४ ॥ तपस्याके करनेसे प्रचेतालोगोंको क्रोध उत्पन्न हुआ था। उस पृथ्वीको इस प्रकार लता वृक्षादिकोंसे छायी हुई देख वे लोग वृक्षोंके ऊपर महाकुपित हुए और इन सबको भस्म करके निर्मूल करनेके लिये तत्क्षण उन लोगोंने अपने मुखसे वायु

और अग्नि उत्पन्न की ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! जब वायु और अग्निसे वृक्ष भस्म होने लगे तब वृक्षादिकोंके राजा भगवान् चन्द्रमा प्रचेता लोगोंका कोप शांत करनेकी कामना कर उनसे बोले ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! वृक्ष अतिदीन हैं, इनपर द्रोह करना आपको उचित नहीं, क्योंकि आप तो प्रजापति हो,इसलिये विशेषरूपसे, प्रजाके बढ़ानेकी तुम लोग इच्छा करने वाले हो । इन वृक्षोंको इस प्रकार निर्मूल करना आपके लिये अति अयोग्य बात है ॥७॥ हे वत्सगण ! प्रजापतियोंके पति सर्वान्तर्यामी भगवान्ने पृथ्वीके वृक्ष व ओषधियोंको भक्ष्य और अन्नको उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ इसलिये अचर पदार्थ चर पुरुषोंके खाद्य हैं अपद पदार्थ पादचारियोंके भक्ष्य हैं, हस्तरहित प्राणी हस्तयुक्त प्राणियोंके भोजन हैं और चौपाये जन्तु दुपाये जन्तुओंके आहार हुए हैं । अतः उन भक्ष्य, भोज्य इत्यादिको भस्म करके निर्मूल करना प्रजापतिलोगोंको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ हे पापरहित वत्सगण ! तुम लोगोंके पिता देवदेव प्राचीनबर्हिजीने तुम लोगोंको प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है और इन वृक्षोंसे प्रजाकी जीविका होती है, और फिर भला इन वृक्षोंको तुम कैसे भस्म करना चाहते हो ? ॥ १० ॥ आप लोग शान्त हो और साधु पुरुष जिस मार्गपर चलते हैं, उसीपर तुम भी चलो । और यह महाकोप जो तुमको उत्पन्न हुआ है, उसको त्याग दो । वत्सगण ! हम तुमसे जिस मार्गका अवलम्बन करनेको कहते हैं, उस मार्गका सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे पिता, पितामह और प्रपितामह जिस मार्गका सेवन करते आये हैं और कुलमें आजतक ऐसा काम किसीने नहीं किया ॥ ११ ॥ और विचार करके देखो कि जिस प्रकारसे बालकोंके पिता माता ही रक्षक हैं, आंखोंके पल्क ही रक्षक हैं, स्त्रियोंके पति ही रक्षक हैं, भिक्षुकोंके गृहस्थ ही रक्षक हैं, अज्ञानियोंके ज्ञानी ही ज्ञानदायक हैं; वैसे ही प्रजाके प्रजापति लोग रक्षक हैं, तुमलोग प्रजापति हो इसलिये प्रजाकी जीविकाका नष्ट करना तुम्हें किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ १२ ॥ और सब भूतोंके भीतर आत्मस्वरूप परमेश्वर भगवान् वर्तमान रहते हैं, इसलिये सब जीवोंमें भगवान् हरिका स्थान समझना चाहिये । इस प्रकार करनेसे ही तुम लोग भगवान्को सन्तोष करा सकोगे ॥१३॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष आत्म स्वरूप आकाशसे अकस्मात् उत्पन्न हुए महातीव्र क्रोधको ब्रह्मज्ञानसे जीत लेता है, उसने मानो सब ही गुणोंको जीत लिया ॥ १४ ॥ इसलिये तुम अब इन दीन-हीन वृक्षोंको मत जलाओ जो जल गये वे जल गये, बचे हुए इन सब वृक्षोंको रहने दो, तुम्हारा मंगल हो ! इन सब वृक्षोंने एक कन्याका प्रतिपालन कर रखा है, तुमको वही कन्या दान करते हैं, यह कन्या अतिश्रेष्ठ है, तुम पाणिग्रहण करके इसको अपनी पत्नी बनाओ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! चन्द्रमाने इस प्रकार समझा-बुझाकर आप ही उद्योगी हो प्रम्लोचा अप्सराकी वह कन्या प्रचेता लोगोंको दे दी । उन लोगोंने भी धर्म सहित उसका पाणिग्रहण किया ॥१६॥ उस कन्याके गर्भमें प्रचेताओंसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए, जिनकी उत्पन्न की हुई प्रजासमूहसे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह दक्ष अपनी बेटियोंको बहुत प्यार

१. शंका—चन्द्रमाने प्रचेताके पुत्रोंसे कहा कि मनुष्यका आहार पशु है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर—द्विपदानां चतुष्पदः—इस श्लोकका अर्थ चन्द्रमाने चतुष्पद अर्थात् चार पदवाले पशुको नहीं कहा । यहां ऐसा अर्थ किया है,चार प्रकारके भोजन हैं, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, इन चार प्रकारके भोजनोंको चतुष्पद कहा । चार प्रकारके स्वाद हैं; वे ही पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाले आहार हैं, यही बात विचार कर कही है, कुछ चतुष्पद (चार पांववाले पशु) को चन्द्रमाने नहीं कहा ।

करते थे। उन्होंने जिस प्रकार शुक्र और मनके द्वारा सब भूतोंकी सृष्टि उत्पन्नकी, अब सावधान होकर यह सब वृत्तांत तुम हमसे सुनो ॥ १८ ॥ हे कौरव श्रेष्ठ ! प्रजापति दक्षने प्रथम सुर, असुर, मनुष्य इत्यादि आकाशचारी, भूमिचारी और जलचारी सब प्रजाओंको मनसे उत्पन्न किया ॥ १९ ॥ परन्तु इस प्रजाकी सृष्टि किसी प्रकारसे भी नहीं बढ़ी, यह देखकर दक्षप्रजापतिने संन्यास धर्म ग्रहण कर विंध्याचलके निकटवाले एक छोटे पर्वतपर जाकर अति दुष्कर तपस्या करनी आरम्भ की ॥ २० ॥ उस पर्वतके निकट ही अघमर्षण नामक एक पाप नाश करनेवाला तीर्थ था। चित्रकूटसे बाहर १२ कोश अग्नेय कोणकी ओर और प्रयागसे बीस २० कोश नैर्ऋत दिशाकी ओर और रीवांसे बारह १२ कोश वायव्य कोणकी ओर वह पर्वत था। उसी तीर्थमें तीनोंकालकी संध्यामें स्नान करके दक्ष भगवान् हरिको सन्तोषित करने लगे ॥ २१ ॥ और हंसगुह्य नामक प्रसिद्ध स्तोत्र पढ़कर भगवान् अधोक्षजकी स्तुति करने लगे। हे राजन्! भगवान् हरि जिस प्रकारसे प्रजापति दक्षके ऊपर प्रसन्न हुए वह हम तुमसे कहते हैं, तुम सुनो ॥ २२ ॥ उस हंसगुह्य स्तोत्रसे प्रजापति दक्षजीने इस प्रकार स्तुति की थी कि उनकी चिर शक्ति सत्य है, इस लिये वह जीव और माया दोनोंके नियम कहे। परन्तु इस प्रकार होनेसे भी जिन समस्त जीवोंके गुणोंमें ही तत्त्वबुद्धि है, वह उनका स्वरूप नहीं देख सकते, क्योंकि उनका परिमाण और सीमा नहीं है और वह स्वयं प्रकाश पाते हैं। इसी कारण सिद्धरूप हैं, ऐसे सर्वोत्तम देवको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ गुण अर्थात् विषय जिस प्रकार गुणीके अर्थात् इंद्रियादि विषयोंके सख्य अर्थात् प्रकाशत्वको नहीं जानता वैसे ही सख्य जीव भी इस वेदरूप पुरमें वास करके इस स्थानमें वास करनेवाले जो सखा हैं उनके इंद्रिय प्रवर्तकत्वादिरूप सख्यको नहीं जान सकते, क्योंकि उस जीवकी दृष्टि प्रपञ्चमें ही बँधी रहती है, ऐसे महाऐश्वर्यवान् ईश्वरको मैं नमस्कार करता हूं ॥२४॥ अहो ! देह, प्राण, इंद्रियाँ, अंतःकरण, पंचभूत, पंचतन्मात्रा यह सब आत्माको, अर्थात् अपने स्वरूपको और इंद्रियवर्ग तथा इन दोनोंमें श्रेष्ठ देवतावर्गको नहीं जान सकते, यद्यपि पुरुष अर्थात् जीव इन तीनके मूलभूत समस्त गुणोंको जानते हैं, तो भी यह ऐसे ज्ञात होकर भी सर्वज्ञ भगवान्को नहीं जान सकते। ऐसे अनंत भगवन्की मैं स्तुति करता हूं ॥ २५ ॥ जिनके द्वारा नाम-रूपका निरूपण होता है, वह मनकी दृष्टि, स्मृति, विनाशके हेतु जब उपराम अर्थात् समाधिको प्राप्त हो जाते हैं, उस समय केवल स्वरूप ज्ञानसे जो प्रतीत होते हैं उन शुद्ध हंसको हम नमस्कार करते हैं, उनके प्रतीत होनेका स्थान भी अतिशय पवित्र है ॥ २६ ॥ जो प्रकृति पुरुष महत् अहंकार और पंचतन्मात्रा इन नव और तीन गुण और षोडश विकार स्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा हृदयके मध्यमें निश्चल हो रहे हैं और जो लोग यज्ञ करनेवाले पंद्रह सामिधेनी मंत्रोंसे प्रकाशित होते हैं, इसलिये अलौकिक अग्निके समान अतिशय गूढ होनेके कारण विवेकी पुरुष बुद्धिसे विचार पूर्वक खींचकर जिनका ध्यान करते हैं ॥ २७ ॥ वह परमात्मा हमपर प्रसन्न हो जो ईश्वर सबसे बड़ा है, जिनके अनंत विशेषण हैं और जिनके मोक्ष सुखका अनुभव मायाके द्वारा नष्ट नहीं होता, वही भगवान् सर्व नामधारी ईश्वर और विश्वरूप हैं, जिनकी आत्मीय शक्तिका कोई वर्णन नहीं कर सकता है वे परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥२८॥ अहो ! जो स्वयं प्रकाश है, इसलिये वचनसे कहनेमें नहीं आता है, बुद्धिके द्वारा जिनका व्यवहार होता है, इन्द्रियोंसे जो निरूपित

होता है, मनके द्वारा जो संकल्पित होता है और ये सम्पूर्ण भी जिसका स्वरूप नहीं हो सकते, क्योंकि यह सब पदार्थ गुणोंसे बढ़ते हैं, वह परमात्मा इन सबसे अलग है, क्योंकि वे सब गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयसे अलग दृष्टि आते हैं ॥ २९ ॥ जिस अधिकरणमें जिस अपादानसे, जिस कारणसे जिसके सम्प्रदानको जिस कर्मको और जिस करके जिस प्रकारसे जो कर्म कृत अथवा कारित होता है, वही सबका ब्रह्म है, वही सबका कारण है, क्योंकि वह सबके आगे अपने आपसे ही सिद्ध हो रहे हैं, वह पर और अपर सबका ही परम कारण है। और विजातीय शून्य है ॥ ३० ॥ जिनकी शक्तिवाद विवाद करनेवाले वादियोंके विवाद संवादकी भूमि है। और ब्रह्म ही अपनी-अपनी सब कहते हैं, जब सब पदार्थोंमें ब्रह्मका ही स्वरूप है और सब पदार्थोंका कारण है, फिर मीमांसक लोग परस्पर क्यों वाद-विवाद करते हैं? कोई कहता है, यह जगत् सदा ऐसे ही चला आता है और यह जगत् न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नष्ट होता है और विवादी लोग लोकमें अनेक-अनेक प्रकारके वाद-विवाद किया करते हैं और मोह-ममता जो ब्रह्माकी माया है उस अविद्या आदिकी शक्तियोंसे मोहित हो चित्तमें भांति-भांतिके संकल्प- विकल्प उठते रहते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मके स्वरूपमें इनमेंका कोई पदार्थ भी नहीं, वह परब्रह्म परमात्मा तो सबसे विलग है और ब्रह्मवादी लोग मीमांसा करके उनको समझाते भी हैं, परंतु तो भी वे सब अपनी-अपनी ही गीत गाते रहते हैं। जिसकी ऐसी अद्भुत माया है, उस अनंत गुणरूप भूमा भगवान्‌को मैं वारंवार नमस्कार करता हूं ॥ ३१ ॥ कोई कहता है यह वस्तु है, कोई कहता है नहीं है, सबके मत मतान्तरोंमें अंतराय है और परस्पर विरुद्ध है। अहो! जो योगशास्त्रमें "पदादि हैं" कहकर जिसकी उपासना-विधि बतलाते हैं और जो सांख्यशास्त्रमें "पदादि नहीं है" कहकर जिनकी उपासनाका निषेध करते हैं परस्पर विरुद्ध उन योग और सांख्य शास्त्रके द्वारा जो कुछ प्रतीत होता है वह बृहद्वस्तु ब्रह्मविवादमें और अविवादमें आस्पद है, अर्थात् वही परब्रह्म है, योग और सांख्य शास्त्रोंमें यदि कोई "पदादि हैं" और "पदादि नहीं हैं" ऐसा कहकर विवाद करनेसे इन दोनोंका धर्म अलग-अलग हो तो इन दोनोंका विधि और निषेध एक वस्तुमें निष्ठ होनेसे उनका विषय एक ही हो गया है, जो कुछ हो, वही वस्तु परम कल्याणरूप है, क्योंकि विधि और निषेधके विषयमें नहीं है और विना अधिष्ठानके पदादि कल्पना और विधिके निषेध असंभव होनेसे वह वस्तु अनकूल अर्थात् इन दोनोंके उपपादकरूपमें भी सिद्ध है ॥३२॥ अहो! जो प्राकृत नाम रूप रहित होकर भी पादमूलके उपसनाकारी पुरुषोंके निमित्त अवसरोंके द्वारा विशुद्ध सत्त्व अनेक-अनेक रूप और कर्मोंसे अनेक नाम ग्रहण करते हैं, जिनका ऐश्वर्य अचिन्तनीय है, वह अनंतरूप परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार वायु पद्मादि विशेष-विशेष पदार्थकी विशेष-विशेष गंधका आश्रय करके अनेक गंधयुक्त हो प्रकाश पाती है और पृथ्वीकी रेणुका आश्रय कर काली—पीली—धुंधली इत्यादि अनेक रूपवाली हो जाती है वैसे ही जो भगवान् अर्वाचीन उपासनाके मार्ग द्वारा मनुष्य गणोंकी वासनाके अनुसार उन-उन ही देवताओंके रूपमें विविध प्रकारसे प्रकाश पाते हैं अर्थात् जो एक परमेश्वर ही उपासकों कि वासनाके अनुसार उनकेही इष्टदेव रूप हो विशेष-विशेष फल प्रदान किया करते हैं वही परमेश्वर हमारे मनोरथ सफल करें, और किसी देवतासे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—कि हे कुरुश्रेष्ठ! प्रजापति दक्षने जब इस प्रकार स्तुति की तब भक्तवत्सल

भगवान्‌ने उनके ऊपर सन्तुष्ट और प्रसन्न हो उस तीर्थमें ही प्रकट होकर अति चमत्कार रूपसे उनको दर्शन दिया ॥२५॥ श्रीभगवान् गरुड़पर बैठे थे, आठ विशाल बाहु जानु पर्यन्त लंबित हो रहे थे, आठों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, खड्ग, पाश यह आठ आयुध शोभायमान थे ॥२६॥ पीताम्बर पहने, श्यामवर्ण, प्रसन्नवदन, कमलवत् नेत्र, सर्वदा प्रसन्न, कण्ठसे लेकर चरणों तक वनमाला लटकाये, हृदयमें श्रीवत्सचिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि झलकाये ॥२७॥ मस्तक पर किरीट मुकुट सजाये कानोंमें मकराकार कुण्डल झलकाये उन त्रिभुवनेश्वर भगवान्‌के चरणोंमें नूपुर पड़े, कटिमें किंकिणी कौंधनी इत्यादि भूषणोंमें हीरे रत्न जड़े, अंगूठी, बाजूबंद, कड़े हाथोंमें शोभायमान थे ॥२८॥ इस प्रकार सजे हुए पुरुषोत्तम नामक त्रैलोक्यमोहनरूप धारण करके वे प्रकट हुए। हे राजन्! इस प्रकार वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो श्रीभगवान् अकेले नहीं प्रकटे वरन् नारद, नन्द इत्यादि पार्षद और समस्त लोकपाल उनको चारों ओरसे घेरे खड़े थे ॥२९॥ और गान करते हुए सिद्ध, चारण व गन्धर्वगण दोनों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। हे राजन्! इस प्रकारसे अति आश्चर्यरूप देखकर प्रजापतिके अंतःकरणमें परमानंद उत्पन्न हुआ ॥४०॥ मनके द्वार सब पूर्ण हो गये, अतिहर्षित चित्त होकर भूमिपर शिर नवाकर दंडवत् प्रणाम किया परंतु प्रेमके मारे कोई बात उनके मुखसे निकल न सकी ॥ ४१ ॥ झरनेवाली नदी जिस प्रकार जलसे भर जाती है, वैसे ही अति भारी हर्षसे प्रजापतिके इंद्रियोंके द्वार परिपूर्ण हो गये थे, अर्थात् अति भारी आनन्दमें परिपूर्ण होनेके कारण उनकी रागादि इंद्रियोंकी वृत्ति मानो शून्य हो गयी। इस लिये वह वचन कहनेको समर्थ नहीं हुए और पुरुषोत्तमकी केवल वंदना ही की ॥४२॥ यद्यपि उन्होंने कुछ नहीं कहा तो भी सर्व भूतोंके चित्तकी जाननेवाले श्रीभगवान्‌ने उसी भांति अपने प्रणत परमभक्त इन प्रजापति दक्षसे कहा ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोले–कि हे प्रचेतापुत्र महाभाग दक्ष मुझमें भाव सहित परमश्रद्धा करके तुम तपसे सिद्ध हो गये ॥ ४४ ॥ हे प्रजानाथ! तुम्हारी यह तपस्या विश्वको बढ़ानेवाली है, इससे हम तुम्हारे ऊपर अतिशय प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि सब प्राणियोंकी विभूति भलीभांति बढ़े यही कामना है, वह तुम्हारे द्वारा हमारी कामना पूर्ण हुई इसलिये हम तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हैं ॥ ४५ ॥ हे वत्स! तुम सब प्रजापति, ब्रह्मा, शिव मनुष्यगण और देवेश्वरगण ये सब हमारी विभूति और सब प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन्। तप अर्थात् यम-नियमादि सहित ध्यान हमारा हृदय है, विद्या अर्थात् सांगमंत्र जप हमारा शरीर है, क्रिया अर्थात् भावना शब्द वाच्य पुरुष अपार हमारा आकार है, यज्ञ हमारा अंग धर्म है अर्थात् यज्ञानुष्ठानजनित अपूर्व हमारा मन है, यज्ञ भोक्ता देवगण हमारे प्राण हैं ॥ ४७ ॥ मुझमें अनंत गुण हैं, गुणोंसे गुणका विग्रह होता, जब आद्य हम ही हैं, तब स्वयं ब्रह्माजी हुए ॥ ४८ ॥ हे दक्ष! आगे केवल हमही थे हमारे सिवाय कुछ भी बाहर भीतर नहीं था अर्थात् केवल चैतन्यमात्र था, वह भी इंद्रिय वृत्तिसे जाना जाता है इसलिये यह जगत् सर्वत्र सोते हुएके समान था ॥ ४९ ॥ उसके पीछे अनंतगुण जो हम हैं; हमसे माया द्वारा गुणमय विग्रह यह ब्रह्माण्ड जब प्रकाशित हुआ, तब उस समय ही आद्यस्वयम्भू अयोनिज होकर उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ वह हमारे वीर्यसे वर्द्धित होनेके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेको उद्यत हुए थे परंतु जब कि, उन्होंने अपनेको इस कार्यमें असमर्थ समझा तब हमने उनको तपस्या करनेका उपदेश दिया जिससे कि उन्होंने कठिन

तपस्या की और उसी तपस्याके प्रभावसे नव (९) विश्व उन्होंने तुम उत्पन्न करनेवालोंको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ इस लिये हे दक्ष ! प्रसिद्ध प्रजापति पंचजनकी यह कन्या यहां पर है, जिसका नाम असिक्नी है, तुम इसको अपनी स्त्री बनाओ ॥ ५२ ॥ स्त्री पुरुषका रतिक्रीड़ा रूप जो मैथुन धर्म है उसी मैथुन धर्मका आश्रय लेकर इस रूपवती और धर्मवती कन्यामें तुम अनेक प्रजा उत्पन्न करोगे ॥५३॥ हमारी मायाके वश होकर तुम्हारे पीछेकी सब प्रजा भी स्त्रीके साथ मैथुन धर्मसे पुत्रादिरूपमें उत्पन्न होगी और हमारे लिये भेंट देगी ॥५४॥ श्रीशुकदेवजी बोले--कि हे राजन् ! विश्वभावन भगवान् इस प्रकार कहकर दर्शनकारी दक्षके सामने स्वप्नमें प्राप्त हुए पदार्थकी नाईं उस स्थानमें ही अन्तर्धान हो गये, तब दक्षजीने यह कवित्त कहा ॥

कवित्त–राग उदै भोग भाव लागत सुहावनेसे, विना राग ऐसे लगे जैसे नाग कारे हैं। राग हीसे पाग रहै तनुमें सदैव जीव, राग गए आवत गिलानि होत न्यारे हैं। राग ही से जगरीति झूठी सब सत्य जाने, राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं। रागी वीतरागीके विचार में है बड़ो भेद, जैसे भटापथ्य काहू काहूको बयारे हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे लालाशालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे प्रचेतसां दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

दोहा–पंचममाहीं देवऋषि, कूट वचन कहे आप।
दीने पुत्रनि मारु सब, दक्ष दिये तब शाप ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि प्रजापति दक्षने विष्णु भगवान्‌की मायासे चढ़कर उस पंचजनकी कन्या असिक्नीके गर्भमें हर्यश्व आदि दश पुत्र उत्पन्न किये ॥१॥ हे नरेन्द्र ! उन सब पुत्रोंका एकसा आचार-व्यवहार और एक ही प्रकारका स्वभाव हुआ, जब प्रजापति दक्षने उसको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी तो वे सब पश्चिम दिशाको चले गये ॥२॥ पश्चिम दिशाके उस स्थानमें कि जहां सिंधुनदी समुद्रके साथ मिली है, उसी स्थानमें नारायणसुर नामक एक तीर्थ है वह अतिशय पुण्यदायक है, बड़े-बड़े महात्मा मुनि लोग और सिद्ध गण सदा उसकी सेवा किया करते हैं ॥ ३ ॥ दक्षके पुत्र हर्यश्वगण उसी तीर्थमें पहुँचे और उसका जल स्पर्श करते ही उनके अन्तःकरणोंका अनंत मल भलीभांति भूल गया और परम हंस धर्ममें उनकी बुद्धि उदित हुई ॥४॥ तथापि उनके पिताने जो उनको सृष्टिके रचनेकी आज्ञा दी थी वह सब उसी काममें लगे हुए सृष्टिके उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़ी घोर तपस्या करने लगे। एक दिन देवर्षि नारदजी उस स्थानपर होकर जा रहे थे, उन्होंने जाते-जाते देखा कि ये सब हर्यश्व पवित्र और शुद्ध होकर भी अपने पिताकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हो रहे हैं ॥ ५ ॥ इस लिये देवर्षि नारदजी उनसे बोले—कि हे हर्यश्वगण ! तुम लोग बालक हो, कैसे खेदकी बात है कि तुम सब सृष्टि उत्पन्न करनेके लिये तपस्या करते हो, यह बड़ी मूर्खता है। भला इस पृथ्वीका अंत विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे ॥६॥ जहां अकेला

१. शंका–हर्यश्व जो दक्षके पुत्र हैं, वे सब भाई मिलकर सृष्टि रचनेके लिये तपस्या करने लगे तब उन सबको नारदजीने सृष्टि बनानेके लिये निषेध करके योग करनेकी क्यों आज्ञा दी ? सृष्टिके उत्पन्न होनेमें नारदजीको क्या हानि थी ?

उत्तर–दक्षके पुत्रोंकी इच्छा सृष्टिके रचनेकी नहीं थी, योग करनेकी इच्छा थी, परंतु पिताकी आज्ञा मानकर सृष्टि रचनेकेमिष तप करनेके लिये गये, तब नारदजीने उनके हृदयकी बातको जानकर सृष्टि रचनेका निषेध किया और योग करनेका उपदेश दिया।

ही पुरुष है, वह राज्य और जिससे कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल और जिनके बहुत रूप हों वह स्त्री और जो पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष ॥ ७ ॥ और वह नदी जो दोनों ओरको बहती है और वह गृह जो पच्चीस(२५)पदार्थोंसे अति अद्भुत है और उसमेंका ही वह चित्र-विचित्र ध्वनि युक्त हंस जो कठिन-कठिन शब्दोंसे और वज्रसे बना है, स्वतन्त्र और अपने आप घूमता है ऐसा तीक्ष्ण चक्र ॥८॥ इन सबको विना जाने तुम किस प्रकारसे सृष्टि उत्पन्न करोगे ? तुम्हारे पिता सर्वज्ञ थे, उनके अनुरूप आज्ञा क्या है ? उसको भी भली भांतिसे पहले जान लेना कर्तव्य है, इन सब बातोंको विना जाने सृष्टि उत्पन्न करनेका शीघ्रतासे एकाएकी उपस्थित हो जाना किसी प्रकारसे हमको ठीक नहीं जँचता है ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले- कि हे परीक्षित्! हर्यश्वगण इस बातको सुन अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे नारदजीके कहे हुए कूट वचनोंका उत्तर देनेको परस्पर विचार करते-करते कहने लगे कि ॥१०॥ देवर्षि नारदजीने दश वाक्य कहे। "विना जाने" इत्यादि जो वाक्य कहे हैं उनका अर्थ यही है-कि, भूमि अर्थात् क्षेत्र जीव संज्ञक यह लिंगशरीर जो आत्माके बंधनका कारण है, इसलिये देवर्षि नारदजीके इस वाक्यका यही तात्पर्य होगा कि लिंग शरीरके अंत अर्थात् विनाश दर्शन करके मोक्षके विरुद्ध असत् कर्म करनेसे क्या फल होगा ? ॥११॥ और देवर्षि नारदजीने- "जहां एकमात्र पुरुष है, वह राज्य" इत्यादि जो वचन कहे हैं उनका भी यह अर्थ है कि एकमात्र ईश्वर ही सबके साक्षी हैं, उनका आश्रय और कोई नहीं है, वह अपने आप ही अपने आधार हैं, उन नित्यमुक्त ईश्वरको विना जाने और उनमें समर्पण विना किये वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा ? ॥१२॥ और देवर्षि नारदजीने-"जिसमें कभी किसीको निकलते न देखा जाय वह बिल विना देखे" इत्यादि जो वचन कहे हैं उनका तात्पर्य यही है-कि पुरुष जहां जाकर बिल स्वर्ग अर्थात् पातालमें गये हुए पुरुषके समान वहांसे फिर पीछेको न लौट सके, वह परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं, उस ब्रह्मको विना जाने निरर्थक नाशवान् स्वर्गके साधनकरनेवाले कर्मोंके करनेसे क्या फल मिलेगा?॥१३॥ और देवर्षिजीने "जिसके बहु रूप हों वह स्त्री" यह जो कहा, इसका अर्थ यह जान पड़ता है कि अपनी बुद्धि स्वैरिणी स्त्रीके समान मोहकी करनेवाली और रज इत्यादि अनेक गुणोंसे युक्त है। जो पुरुष उस बुद्धिके अंतको प्राप्त नहीं होता, उसके अशान्तकर्म करनेसे उसको क्या फल मिलेगा ? ॥१४॥ और नारदजीने "पुंश्चली स्त्रीका पति हो वह पुरुष" इत्यादि जो कहा है,इसका आशय यह है-कि इस माया संगके वश जिसका ऐश्वर्य भ्रष्ट हो गया है, इस लिये कुत्सित स्त्रीके स्वामीके समान जो उस मायाके सुख दुःखरूप गतिका पीछा करते हैं, उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेकसे किये हुए कर्मोंके करनेसे क्या फल होगा ? ॥ १५ ॥ और मुनिने-"वह नदी जो दोनों ओरको बहती है" यह जो बात कही, इसका अर्थ यही है-कि संसारमें सृष्टि और प्रलय करनेवाली जो माया है, वही नदीस्वरूप है, क्योंकि प्रलय और सृष्टि यही दो इसके प्रवाह हैं, जो दोनों ओरको बहते हैं, यद्यपि तपस्या और विद्या इत्यादि इस नदीके कूल अर्थात् निर्गमस्थान हैं तथापि निर्गमको रोकनेके लिये जो पुरुष उस नदीके तेजको विना विचारे कर्मोंको करे तो उससे क्या फल होगा ! ॥१६॥ और देवर्षिने-"वह गृह जो पच्चीस (२५) पदार्थोंसे अति अद्भुत है" जो कहा, इसका तात्पर्य यह है कि अंतर्यामी पुरुष

पच्चीस तत्त्वके अति आश्चर्यवाले आश्रय हैं, वह कार्य, कारण और संघातके अधिष्ठाता हैं, उनको जो पुरुष नहीं जानता उसको मिथ्या और स्वतंत्रतासे किये हुए कर्मोंसे क्या फल होगा? ॥१७॥ और देवर्षिने "विचित्रकथायुक्त हंस" इत्यादि जो कहा इसका आशय यह है कि ईश्वरके प्रतिपादक शास्त्रोंमें चित्त और जड़रूप वस्तु विशेष रूपसे विचारी जाती है, इस लिये वह हंसस्वरूप है, हंस जैसे दूध और पानीको अलग-अलग कर देता है, ऐसे यह शास्त्र अचेतन और चैतन्य वस्तुको भिन्न-भिन्न कर देता है, किस कर्ममें बंधन और किस-किस कार्यसे मुक्ति है इसको दरशाया करता है, इस लिये उसकी सब कथा विचित्र है। इस शास्त्रको त्याग करके अर्थात् न जान करके केवल बहिर्मुख कर्म मात्रके करनेसे क्या फल होगा ? ॥ १८ ॥ और देवर्षिने-"शस्त्र और वज्रादिसे बना हुआ स्वयं घूमता तीक्ष्ण चक्रका" जो वर्णन किया उसका अर्थ सुतीक्ष्ण कालचक्र है, वही अपने आप रात-दिन घूमता रहता है और यही सब संसारको संहार करता रहता है इस लिये वह स्वतन्त्र है, उस कालचक्रकी गतिको विना जाने असत्कर्मोंके करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ १९ ॥ और नारदजीने जो हमसे कहा कि-"तुम्हारे पिताकी अनुरूप आज्ञा क्या है, उसको भलीभांति विना जाने कैसे सृष्टि उत्पन्न करोगे ?" इसका तात्पर्य यही है कि शास्त्र ही हमारा पिता है, क्योंकि वह द्वितीय जन्मका कारण है, निवर्तक होना ही उसकी आज्ञा है, उस निवर्त्तक आज्ञाको जो पुरुष नहीं जानता वह गुणयुक्त प्रवृत्ति-मार्गमें विश्वासवान् हो सृष्टि इत्यादि कार्योंमें किस प्रकार लग सकता है ? दक्षकूट "मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायान्तरात्मनाम् । शास्त्रकालोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिः" ॥ इति ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार निश्चय करनेके पीछे दक्षके पुत्र हर्यश्वगण एक मति करके नारदजीकी बातका प्रमाण और उनकी प्रदक्षिणा कर जिस मार्गमें फिर लौटना नहीं होता उस मार्गमें प्रस्थान करते हुए ॥ २१ ॥ देवर्षि नारदजी भी ब्रह्मस्वरूप भगवान् हृषीकेशके चरण कमलमें अपने मनको संपूर्ण रीतिसे लगाकर अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे और यह गाने-लगे ॥ २२ ॥ ॥-

(स्वर ब्रह्मकी यह सरगम भैरवी है, तिताला धीमा टप्पा.)

सारे गम धम पग धध पम गम पधम पग ॥ आस्ताई ॥ धधनि सा धनि सागरे सानिध गरे सानी धपमगरे सा, सारे गमरे गम पग मग ॥ धमप धनिप धनिसा सानिधप निध पम धप गग पम गरे मगरेसा ॥ १ ॥

कुछ समय बीतनेके पीछे प्रजापति दक्षजीने देवर्षि नारदजीके मुखसे ही सुना कि सब पुत्रगण, जो सुशीलतासे सदा शोभा पाते थे, वे अब अदृश्य हो गये हैं; यह जानकर दक्षजी शोकयुक्त हो अपने पुत्रोंके लिये शोक-सन्ताप करने लगे। अच्छे पुत्रवाला ही शोकका स्थान है, फिर भला सर्वश्रेष्ठ सन्तान हर्यश्वगणोंके लिये दक्षजीको शोक क्यों नहीं होगा ? ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दक्षजी शोकके मारे व्याकुल हुए, तब भगवान् ब्रह्माजी उनके निकट आये और अनेक प्रकारके वचनोंसे उनको समझा-बुझाकर चले गये। प्रजा उत्पन्न करनेकी दक्षके अंतःकरणमें बड़ी इच्छा थी। जब ब्रह्माजीने उनको समझाया-बुझाया तब दक्षजीने फिर प्रजा उत्पन्न करनेके मनसे अपनी स्त्री उसी पाञ्चजनीके गर्भमें शबलाश्व नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये॥२४॥प्रजापति दक्षजीने शबलाश्व नामक इन पुत्रोंको भी प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा

दी। यह भी व्रत धारण कर जहाँ इनके पहले भ्राता तप करके सिद्ध हुए थे, ये भी उसी नारायण सरोवर पर गये ॥२५॥ हे राजन्! नारायण सरोवरका पवित्र जल स्पर्श करते ही शबलाश्वगणोंका पाप धुल गया और चित्त शुद्ध हो गया। तब परब्रह्मस्वरूप अर्थात् प्रणवका जप करके बड़ा भारी तप उन लोगोंने आरंभ किया ॥ २६ ॥ कुछ महीने जल पीकर, कुछ महीने केवल वायु (हवा) भोजन कर उन्होंने बिताये और इस मंत्रका अभ्यास करते हुए उस मंत्रपति भगवान्‌की आराधना करने लगे ॥ २७ ॥ यथा—

"ओं नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥"

परम पुरुष महात्मा नारायण विशुद्ध सत्त्व गुणके आश्रय परमहंसरूपी भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥२८॥ हे राजन्! शबलाश्वगण प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे इस प्रकार तप करनेमें ध्यान लगा रहे थे, कि एक दिन देवर्षि नारदजी उनके निकट आये और जैसे इन्होंने हर्यश्वोंको कूट वचन कहे थे, उन लोगोंको भी इसी प्रकार कूट वचन कहे ॥ २९ ॥ नारदजी बोले—कि हे दक्षनन्दन शबलाश्वगण! हमारे उपदेश किये वचनोंको तुम सुनो, तुम सब भाइयोंको प्यार करनेवाले अपने बड़े भाइयोंकी पृथ्वीको देखो ॥३०॥ जो धर्मज्ञ भ्राता अपने भाईकी गतिको जाता है, वही पुण्यबंधु है, भ्राताके चाहनेवाले देवतागण उसको लेकर आनंद मनाया करते हैं॥३१॥हे आर्य! हे राजवर्य! देवर्षि नारदजी केवल इतना ही कहकर अपने स्थानको चले गये। उनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, इस लिये उनके इन वचनोंसे शबलाश्वगण भी अपने बड़े भाइयोंके मार्गकी रीतिपर चले ॥३२॥ वे लोग बहुत सुन्दर प्राचीन परमेश्वरके मार्गको गये। जिस प्रकार पश्चिमको गयी राति लौटकर नहीं आती वैसे ही आजतक वे लौटकर नहीं आये ॥ ३३ ॥ हे राजन्! इस ओर प्रजापति दक्षको अनेक-अनेक भांतिके उत्पात दीखने लगे, उन्होंने थोड़े दिन पीछे सुना कि नारदजीकी सम्मतिसे शबलाश्वनामक पीछे उत्पन्न हुए पुत्रगण भी विनाशको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ इसलिये दक्षपुत्र शोकसे मूर्छित हो महर्षि नारदजीके ऊपर क्रुद्ध हुए। देवर्षि नारदजीने पहले ही जान लिया था कि पुत्रोंकी पारमहंस्य धर्ममें निष्ठाकी कथा सुनकर प्रजापति दक्ष क्रोधित होंगे इसलिये नारदजी अनुग्रह प्रकट करनेके लिये उनके निकट गये। तब दक्षजी क्रोधवेगके मारे अधरों (होठों) को फड़काकर नारदजीका अपमान करने लगे ॥ ३५॥ दक्ष बोले—कि अरे असाधु! तेरा केवल वेष ही साधुके तुल्य है परन्तु वास्तवमें तू साधु नहीं, क्योंकि तूने हमारे पुत्रोंके ऊपर अतिशय असाधुपनका व्यवहार किया है, हमारे पुत्र निज धर्ममें प्रवृत्त थे, तूने उनको भिक्षुकमार्गका उपदेश किया, क्या यह साधुका कर्म है ? ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण जन्म लेते ही तीन ऋणोंसे ऋणी होता है, वह तीनों ऋणोंसे विना छूटे मुक्त नहीं हो सकता। हे पापरूप! अभी हमारे पुत्रोंका ऋषिऋण नहीं छूटा। पुत्र उत्पन्न करना और यह यज्ञानुष्ठान तो पीछे करना होता है फिर भला इन दो कार्योंके ही करनेसे देवऋण और पितृऋणसे किस प्रकार मुक्ति हुई, जो हो, तू अतिशय पापी है, क्योंकि संसारी सुख छुड़ाकर तूने हमारे पुत्रोंका यह लोक ही नहीं, वरन्, परलोक भी बिगाड़ दिया, क्योंकि अब उनका मोक्षमें अधिकार नहीं रहा। मनुस्मृतिमें है कि—"ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः"। श्रुतिः—"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण

ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजाया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी" इति ॥ ३७ ॥ तू बड़ा निर्दयी है, बालकोंकी पुत्रादि उत्पन्न करनेकी मति तूने बिगाड़ दी। क्या आश्चर्य है, तू इस प्रकारसे भगवान्का यह नाश करनेवाला होकर किस भांतिसे उनके पार्षद-गणोंके बीचमें फिरा करता है, क्या निर्लज्जता है! ॥ ३८ ॥ अरे! हम देखते हैं कि तेरे सिवाय सब भगवद्भक्त सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें उपस्थित रहते हैं परन्तु तू मित्रोंसे द्रोह करनेवाला है और जो वैरी न हो उसे तू वैरी बना देता है, इस प्रकारसे सब प्राणियोंका अप्रिय करनेमें तुझे लज्जा नहीं आती ॥३९॥ यदि तूने अपने मनमें ऐसा समझा है कि वैराग्यसे उपशम और उपशमसे स्नेहकी फाँसी टूट जाती है और विरक्त पुरुषोंके तीन ऋणोंका दूर करना अनावश्यक है, तो भी ज्ञानके विना मिथ्या इस प्रकारका वेष धारण कर इस प्रकार मति चलायमान करनेसे पुरुषोंको कभी वैराग्य नहीं हो सकता, जब वैराग्य ही नहीं, तब उपशम कहांसे होगा? जब उपशम नहीं तब स्नेहपाश छूटनेकी क्या संभावना है? ॥ ४० ॥ जबतक यह किसी बातका अपने आपही अनुभव करता है, तबतक विषयोंकी तीक्ष्णतासे जो आप वैराग्यवान् हो तो ठीक है औरोंके सिखाने-बहकानेसे जो बुद्धि भिन्नकारणसे ज्ञान होता है, वह कुछ भी नहीं है॥४१॥जो हो, हम लोग साधु हैं कभी किसीका अप्रिय करना नहीं जानते, तूने हमारा यह सहनेके अयोग्य अप्रिय कर्म किया, इसको हमने सहन कर लिया ॥४२॥ परन्तु हे अधम! संतानके नाश करनेवाले तूने हमारा जो अभद्र अर्थात् पुत्रगणोंका स्थान भ्रष्ट करके अमंगल किया इसलिये लोकोंके मध्यमें तुझे कहीं स्थान प्राप्त नहीं हो सकेगा अर्थात् एक स्थानपर बैठेगा तो तेरे मस्तकमें दर्द हो जायगा, तेरा जन्म भटकते ही भटकते कटेगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! साधुसम्मत देवर्षि नारदजीको जब पुत्रशोकसे व्याकुल हुए दक्षजीने शाप दिया तब नारदजी कुछ न कहकर उस शापको अंगीकार कर लिया, क्योंकि प्रतिशाप देनेमें समर्थ होनेपर भी उसका सह लेना ही साधुओंका मत है ॥ ४४ ॥

भजन

मेरा कछु नाहिं प्रभु तेरी प्रभुताई है।
तूने ही विश्व रचा तू ही विश्वरूप हुआ।
तेरा ही तमाशा सब तू ही तमाशाई है॥
ध्यान है हर आन तेरा हरदम है बयान तेरा।
जबसे कुछ ज्ञान हुआ तबसे समझ आई है॥
तेरा ही दास सदा दर्शनकी आश सदा।
कीजिये सहाय सदा सन्तन सुखदाई है॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे नारदशापवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-साठ सुता उत्पन्न की, दक्ष छठे अध्याय।
भिन्न-भिन्न वर्णन करौं, तिनके कुल-समुदाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले–कि हे राजन् ! इसके पीछे दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीकी आज्ञासे असिक्नी अपनी स्त्रीमें अतिप्यारी (६०) साठ कन्या उत्पन्न कीं क्योंकि स्त्रियोंको एकाएकी ज्ञान नहीं प्राप्त होता है ॥१॥ उन साठ कन्याओंसे दश धर्मको, तेरह कश्यपजीको और सत्ताइस चन्द्रमाको व्याह दीं । भूतनाथ, अंगिरा और कृशाश्व इन तीन मुनियोंको दो-दो कन्या व्याहीं और बाकी चार गरुड़जीको दे दीं ॥ २ ॥ हे राजन् ! प्रजापति दक्षजीकी सब कन्या पुत्रवती हुईं, उनके नाम अलग-अलग कहता हूं तुम सुनो । उनके ही पुत्र पौत्रादिकोंसे पृथ्वी परिपूर्ण हो गयी ॥ ३ ॥ हे महाराज ! भगवान् धर्मने जिन दश कन्याओंका पाणिग्रहण किया उनके यह नाम हैं, यथा–भानु १, लम्बा २, ककुभ ३, जामि ४, विश्वा ५, साध्या ६, मरुत्त्वती ७, वसु ८, मूहूर्ता ९ और संकल्प १०, अब इनमेंसे प्रत्येकके वंशका विवरण कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भानुका पुत्र देवर्षभ, देवर्षभका पुत्र इन्द्रसेन । लम्बानामक जो धर्मकी पत्नी हुई उसके गर्भसे विद्योत, विद्योतके स्तनयित्नुनाम पुत्र हुए ॥ ५ ॥ हे राजन् ! ककुभ नामक धर्मकी स्त्रीके संकट नामक पुत्र हुआ, इस संकटका पुत्र कीकट हुआ, इससे पृथ्वीके समस्त दुर्ग अर्थात् दुर्गाभिमानी देवतागण उत्पन्न हुए, जामिका पुत्र स्वर्ग जिससे नन्दिगणकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन् ! विश्वाके पुत्र विश्वेदेवगण हुए, इसके कोई संतान नहीं हुई, इसी लिये इनको लोकमें अप्रजा कहा करते हैं, इस प्रकारसे साध्याके संतान साध्यगण और उनका पुत्र अर्थसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ मरुत्त्वतीके गर्भमें दो पुत्र हुए । उनके नाम मरुत्वान् और जयन्त हुए । उनमें जयन्त वासुदेवके अंशसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये सब उनको उपेंद्र भी कहते हैं ॥८॥ हे राजन् ! मौहूर्त्ताके गर्भमें मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए, वे लोक प्राणियोंको अपने कालका उत्पन्न हुआ फल दान किया करते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पाके पुत्र संकल्प और उनके काम नामक पुत्र हुआ । हे राजन् ! वसुके पुत्र आठ वसु हुए, उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ द्रोण १, प्राण २, ध्रुव ३, अर्क ४, अग्नि ५, दोष ६, वास्तु ७, विभावसु ८ । ये ही बस, ये ही आठ वसु हैं ! इनमें द्रोणकी स्त्री अभिमतिके गर्भसे हर्ष, शोक भय इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ प्राणकी स्त्री ऊर्जस्वती भार्याके गर्भमें सह, आयु और पुरोजक पुत्र हुए, ध्रुवकी स्त्री धरणीने विविध पुत्र उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ अर्ककी भार्या वासनासे तर्ष, भय आदि अनेक पुत्र पैदा हुए, अग्निकी स्त्री–वसुधाराके गर्भमें द्रविणिक इत्यादि अनेक पुत्र और स्कंद जन्म ग्रहण किये ॥ १३ ॥ यह स्कंदजी लोकमें कृत्तिकाके पुत्र भी कहे जाते हैं, परन्तु उनसे ही विशाखादिककी उत्पत्ति हुई । हे राजन् ! दोपनामक वसुकी शर्व्वरी नामक स्त्रीमें भगवान् हरिके अंशमें शिशुमार पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वसु नामक वसुकी भार्या अंगिरसीमें विश्वकर्मा नामक वे पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवता लोगोंके शिल्पाचार्य प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! विश्वकर्माजीसे चाक्षुष मनु उत्पन्न हुए, जिनके पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण हुए । हे कौरवश्रेष्ठ ! विभावसु नामक वसुकी स्त्री ऊपाने व्युष्ट, रोचित, आतप यह तीन पुत्र उत्पन्न किये, इन तीन पुत्रोंके मध्य आतपसे पञ्चयाम अर्थात् दिवसकी उत्पत्ति हुई जिससे कि सब प्राणी अपने-अपने कर्मोंमें लगे रहकर जागते रहते हैं ॥१६॥ हे राजन् ! प्रजापति दक्षजीने जो अपनी दो कन्या भूतको दी थीं, इस समय हम उनके वंशको कहते हैं, तुम सुनो भूतकी स्वरूपा नामक स्त्रीने रुद्रगणको उत्पन्न किया, उनके नाम ये हैं–जैसे–रैवत १, अज, २, भव ३, भीम ४,

वाम ५, उग्र ६, वृषाकपि ७ ॥१७॥ अजैकपाद ८, अहिर्बुध्न्य ९, बहुरूप १० और महान् ११ । हे राजन् ! यह ग्यारह रुद्रोंके पार्षद जो प्रेतादि हुए वे इस भूतकी दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न हुए॥१८॥हे राजन् ! अंगिरा प्रजापतिकी स्वधा व सती नामक दो भार्या हुई। उनमें स्वधाने पितृगणको अपना पुत्र मानकर स्वीकार कर लिया और सतीने अथर्वांगिरह नामक एक वेदको पुत्र करके मान लिया ॥ १९ ॥ हे राजन् ! कृशाश्व प्रजापतिकी अर्चि और धिषणा नामक दो भार्यां थीं। कृशाश्वने अर्चिके गर्भसे धूमकेशको उत्पन्न किया और धिषणाके गर्भमें वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु यह चार पुत्र उत्पन्न किये। तार्क्ष्य प्रजापतिकी चार स्त्रियाँ हुईं, विनता, कद्रू, पातंगी और यामिनी, इनमें पातंगीने पातंगोंका प्रसव किया, यामिनीने शलभ (टीडी) पुत्र उत्पन्न किये॥२०॥विनताने गरुड़ और अरुण नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, उनमें गरुड़जी साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुजीके वाहन हुए और अरुण सूर्य नारायणजीके सारथी हुए। हे राजन् कद्रूके गर्भसे अनेक नाग उत्पन्न हुए॥२१॥हे भारत ! चन्द्रमाकी पत्नी कृत्तिकादि हुईं; परंतु प्रजापति चंद्रमा सब स्त्रियोंका निरादर करके केवल रोहिणीसे ही अति प्रीति किया करते थे, इसलिये और कन्याओंका दुःख देखकर दक्षजीने शाप दिया है तुम्हें क्षयी रोग हो जाय, इसलिये चन्द्रमासे इनकी स्त्रीके गर्भमें कुछ सन्तान नहीं हुई॥२२॥फिर प्रजापति चन्द्रमा क्षयी रोग हो जानेसे अपने मनमें महादुःखी रहने लगा, तब अनेक विनयसे दक्षको प्रसन्न किया। पीछे दक्षने प्रसन्न होकर यह वर दिया कि कृष्णपक्षमें जो तेरी कला क्षीण हो जाती हैं वह कला शुक्लपक्षमें पूरी हो जाया करेगी, इस प्रकार कला तो होने लगीं, परंतु संतान तो एक न हुई। हे राजन् ! कश्यपजीकी जो स्त्रियाँ हुईं; वे सब लोकोंकी जननी हैं, इसलिये उनके कल्याणकारी नाम सुनो ॥ २३ ॥ २४ ॥ क्योंकि यह सब जगत् कश्यपजीकी स्त्रियोंसे ही उत्पन्न हुआ है। अदिति, दिति, दनु, काष्ठ, अरिष्टा, सुरसा इला ॥२५॥ मुनि क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि, यह सब कश्यपकी स्त्रियाँ हुईं। इनमेंसे तिमिके पुत्र यादोगण अर्थात् समस्त जलजन्तु उत्पन्न हुए और सरमाके पुत्र हिंसा करनेवाले चतुष्पद विशेष हुए ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! सुरभीके पुत्र गो-महिष और दो खुरवाले और दूसरे पशु हुए, ताम्राके श्येन (शिकरा) गीध इत्यादि विहंगमगण और मुनिकी सन्तान अप्सरायें हुईं॥२७॥हे राजन् ! क्रोधवशाके पुत्र दन्दशूक और सर्प इत्यादि पेटके बल चलनेवाले उत्पन्न हुए, इलाके पुत्र सर्व प्रकारके भूरुह (वृक्ष-लतादि) जन्मे और सुरसाके पुत्र राक्षस हुए ॥ २८ ॥ अरिष्टाके गंधर्वगण जन्मे, काष्ठाके संतान एक खुरवाले (घोड़े आदि) उत्पन्न हुए। हे राजन् ! कश्यपप्रजापतिकी दनु नामक स्त्रीके ६१ एकसठ पुत्र हुए, उनमें १८ अठारह प्रधान-प्रधान पुत्रोंके नाम सुनो ॥ २९ ॥

---

१. शंका—कश्यपमुनिकी तिमि, सुरसा, इला, सरमा, आदि स्त्रियां थीं? जिनके तृण, सर्प, गीध, जलचर कुत्ते इत्यादि ऐसे-ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके ऐसे-ऐसे पुत्र हुए, वे सब स्त्री जातिकी ब्राह्मणी थीं, उन्होंने स्वाभाविक जो पुत्र उत्पन्न किये, उनका स्वरूप उनकी माताओं कासा था अथवा और किसी प्रकारका था ? यह मुझको बड़ा भारी संदेह है कि ब्राह्मणियोंके उदरसे ऐसी कुत्सित सन्तान क्यों उत्पन्न हुई ?

उत्तर—जैसे सीपमें मोती होता है, वैसे ही हाथीके मस्तकमें गजमोती होता है, जैसे मृगकी नाभिमें कस्तूरी होती है, जैसे गायके कानमें गोरोचन होता है, जैसे बांसमें वंशलोचन होता है, वैसे ही ब्रह्माकी इच्छासे तिमि, सुरसा, इला आदि कश्यप मुनिकी स्त्री थीं और जातिकी ब्राह्मणी भी थीं, कुछ पशु पक्षीरूप नहीं थीं, परंतु विधाताकी गति बड़ी अपरम्पार है, इसलिये ब्राह्मणियोंके पेटसे सब जीव, जन्तु, पशु, पक्षी उत्पन्न हुए।

द्विमूर्द्धा १,सम्बर २,आरिष्ट ३,हयग्रीव ४,विभावसु ५,अयोमुख ६,शंकुशिरा ७, स्वर्भानु ८, कपिल ९, अरुण १०, ॥३०॥ पुलोमा ११, वृषपर्वा १२, एकचक्र १३, अनुतापन १४, धूम्रकेश १५, विरूपाक्ष १६; विप्रचित्ति १७ और दुर्जय १८॥ ३१ ॥ हे राजन्! इन कहे हुए दानवोंके मध्यमें स्वर्भानुकी सुप्रभा नामक जो एक कन्या हुई, नमुचिने उसका पाणिग्रहण किया और वृषपर्वाके शर्मिष्ठा नामक जो एक कन्या हुई, नहुष पुत्र बली ययातिने उसके साथ यथा विधि विवाह किया ॥३२॥ हे राजन्! दनुके पुत्र जो वैश्वानर हुए उनके चारुदर्शनवाली ४ कन्या हुईं, यथा उपदानवी, हयशिरा पुलोमा, और कालका ॥ ३३ ॥ उनमें उपदानवीके साथ हिरण्याक्षने विवाह किया और हयशिरा क्रतुकी स्त्री हुई। और पुलोमा व कालका इन दोनों दानवकन्याओंके साथ प्रजापति कश्यपजीने ब्रह्माजीके कहनेसे विवाह किया ॥३४॥ उनके निवातकवच इत्यादि ६० हजार पुत्र हुए। यह सब पुत्र पौलोम और कालकेय नामसे प्रसिद्ध हुये थे और वे अनंतवीर्यवान् होनेसे सदा, युद्ध (विग्रह) करनेमें लगे रहते थे, और ऋषि, मुनि इत्यादिकोंके यज्ञमें सदा बाधा डाला करते थे ॥३५॥ हे राजन्! इसलिए तुम्हारे पितामह अर्जुनको स्वर्गमें इन्द्रने कहाकि तुम मेरे परममित्र हो, उनको मारकर मेरा भय दूर करो, तब इंद्रके कहनेसे अकेले ही अर्जुनने इन सब दानवोंको मार डाला। हे राजन्! इस कर्मके करनेसे तुम्हारे पितामह अर्जुन देवराज इन्द्रके अतिशय प्यारे हुए थे ॥३६॥ दितिके सुत हिरण्याक्ष,हिरण्यकशिपु हुए और एक सिंहिका नामक कन्या हुई॥३७॥ हे महाराज! यह सिंहिका विप्रचित्ति दानवकी भार्या हुई। इस सिंहिकाके गर्भमें एक शत एक १०१ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सबमें बड़े राहु-केतु हुए, ये ग्रहभावको प्राप्त हुये ॥३८॥ अब अदितिके वंशका वर्णन करते हैं, वह तुम सुनो-इस वंशमें भगवान् विभु अपने अंशसे स्वयं अवतीर्ण हुए थे ॥३९॥ हे राजन्! विवस्वान् १, अर्यमा २, पूषा ३, त्वष्टा ४, सविता ५, भग ६, धाता ७, विधाता ८, वरुण ९, मित्र १०, शक्र ११ और उरुक्रम १२ यह बारह सूर्य अदितिके पुत्र हुए ॥४०॥ उनमें विवस्वान्से भाग्यवती संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव नामक मनु हुए और यम, यमुना, यह दो पुत्र कन्या उत्पन्न हुए, हे राजन्! इस संज्ञाने ही वड़वा होकर अर्थात् घोड़ीका रूप धारण करके अवनिमंडलमें चरते-चरते दो अश्वनीकुमारोंको उत्पन्न किया ॥४१॥ और छायाने विवस्वान्से शनैश्चर और सावर्णिमनु दो पुत्र और तपती नामक एक कन्या उत्पन्नकी ॥ तपती कन्याने संवरणको पति बनाया ॥ ४२ ॥ अर्यमाकी मातृका स्त्रीके गर्भमें चर्षणी नामक अनेक संतानें हुईं। इन सब पुरुषोंके मध्यमें विशेष आत्मानुसंधानसे भगवान् ब्रह्माजीने मनुष्य-जातिकी कल्पनाकी है ॥ ४३ ॥ पूषाके कोई सन्तान नहीं हुई, वह पुत्ररहित और दंतहीन होकर पिसी हुई सामग्रीको भक्षण करता है, क्योंकि पहले दक्षजीके ऊपर कुपित भगवान् शिवको निहारकर अपने सब दांत निकालकर यह पूषा ऊँचे शब्दसे हँसा था, इसी कारण इसके सब दांत शिवजीके गणोंने तोड़ डाले थे ॥४४॥ हे राजन्! त्वष्टा प्रजापतिकी रचना नामक स्त्री हुई,इसके गर्भमें सन्निवेश और विश्वरूपकी उत्पत्ति हुई यद्यपि यह विश्वरूप शत्रु लोगोंकी भगिनी (बहन) के तनय थे, तो भी जब अंगिरागोत्री बृहस्पतिजीने देवतावोंको त्याग दिया था, तब देवता लोगोंने इन्हीं विश्वरूप जीको अपना पुरोहित बनाया था और सबने इस प्रकार स्तुति की थी--

सवैया

ध्यान हुताशनमें अरि ईंधन, झोंक दियो रिपुरोक निवारी ।
शोक हरो सब लोकनको, वर केवल भान मयूख उधारी ॥
लोक अलोक विलोक भये, शिव जन्म जरा मृत पंकपखारी ।
सिद्धन थोक बसैं शिव लोक तिहीं पग धोक त्रिकाल हमारी ॥४५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे
दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा--सप्तममाहीं देवगुरु, दियो इंद्र बिसराय ।
विश्वरूपको इंद्र पुनि, कियो पुरोहित जाय ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे यह प्रसंग सुन, शिर नवाकर राजा परीक्षित् फिर बोले कि हे भगवन् ! देवता लोग तो बृहस्पतिके बड़े भारी शिष्य थे, उनको देवगुरु बृहस्पतिजीने किस कारणसे त्यागा ? बृहस्पतिजीके चेलोंने क्या अपराध किया ? वह अनुग्रह करके वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् । देवराज इंद्र त्रिभुवनके ऐश्वर्यको पाकर एक समय मदोन्मत्त हो सन्मार्गको छोड़ मरुद्गण ४९, वसुगण ९, रुद्रगण ११, आदित्यगण १२, ऋभुगण, विश्वेदेवगण, साध्यगण, और दोनों अश्विनीकुमारोंके साथ बैठे थे ॥ २ ॥ सभाके मध्यमें सिंहासनके समीप सिद्ध, चारण, गंधर्व, एवं ब्रह्मवादी मुनि ॥ ३ ॥ विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, पतंग, उरगादि खड़े होकर इनकी सेवा और स्तुति करते थे ॥ ४ ॥ गंधर्वगण इंद्रके प्रसन्न करनेको सुललित स्वरसे गीत गा रहे थे, मस्तकपर चन्द्रमण्डलके समान छत्र लगा हुआ था और दोनों बगलोंमें चामर व्यजन इत्यादि महाराजोंके समस्त चिह्न शोभायमान हो रहे थे, इन सबसे युक्त होकर देवराज इंद्र अपने आधे आसनपर अपनी प्यारी शचीको बैठाये बैठे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ उसी अवसरमें देवताओंके और इन्द्रके गुरु बृहस्पतिजी जो एक प्रधान मुनि हैं, वे वहां पर आ पहुँचे । तब इन्द्रने न तो इनको आसन दिया, न कुछ आदर-सत्कार ही किया ॥ ७ ॥ वाणियोंके पति, सुर-असुर जिनको देखते ही प्रणाम करते हैं, ऐसे बृहस्पतिजीको देख इन्द्र अपने आसनसे नहीं उठा और न इनको बैठनेके लिए-आसन ही दियां ॥ ८ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रके इस व्यवहारको देखकर देवगुरु बृहस्पतिजी इनको ऐश्वर्यका मद जान उसी समय सभासे लौटे और किसीसे कुछ न कहा, मौन साधे अपने आश्रमको चल दिये ॥ ९ ॥ कौरवश्रेष्ठ ! जब बृहस्पतिजी वहांसे चले आये, तब देवराज इन्द्रको चैतन्यता आयी, वह विचार कर यह अपने आपको

---

१. शंका–तीन लोकका राज्य करते-करते इन्द्रको बहुत युग बीत गये और बृहस्पति जो उनके गुरु थे वे प्रति दिन इन्द्रकी सभामें आते थे, कभी गुरुका निरादर नहीं किया, परंतु उस दिन इन्द्रने गुरुका निरादर क्यों किया ? क्यों बुद्धि [illegible] हो गई ?

उत्तर–राजा बलिको दुःखी देखकर शुक्राचार्य्य शत्रुको जीतनेके लिये राजा बलिसे यज्ञ कराया और उस यज्ञकी समाप्तिके लिये जो-जो सामग्री इकट्ठी की थी, उससे आनंदपूर्वक वह यज्ञ समाप्त हो गया । उसी दिन इन्द्रका पुण्य नष्ट हो गया, तब बलिके यज्ञके पुण्यसे इन्द्र उन्मत्त अर्थात् पागल हो गया, तब बलिके यज्ञवाले शुक्राचार्य्यने विचार किया कि जब इन्द्र अपने गुरुका निरादर करेगा तब इन्द्रको राजा बलि पराजित करेंगे, सिवाय इस उपायके इन्द्रको जीतनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं पाया जाता, ऐसा विचार कर बलिके शत्रु इन्द्रको मोहित करके इन्द्रसे बृहस्पतिका निरादर कराया, इस लिये उस दिन इन्द्रने गुरु बृहस्पतिजीका निरादर किया ।

बहुत धिक्कार देने लगा, कि मैंने गुरुजीका बड़ा निरादर किया, आप ही आप अपनी निन्दा करने लगा ॥१०॥ इन्द्र बोले- कि मैंने जो कर्म किया वह अतिशय बुरा है, हाय ! कैसे खेदकी बात है, मैं कैसा मन्दबुद्धि हूं ? जो मेरे गुरुजी सभामें आये और मैंने ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर उनका कुछ भी आदर नहीं किया, वरन् और निरादर किया ॥११॥ मेरे ऐश्वर्य व सम्पत्तिको धिक्कार है। अब आगे कौन ज्ञानी पुरुष स्वर्गाधिपतिकी लक्ष्मीको चाहेगा ? मैं सात्त्विक देवतागणोंका ईश्वर हूं, मुझको भी इस लक्ष्मीने इस प्रकारका आसुरभाव प्राप्त कराया ॥ १२ ॥ जो प्राचीन पुरुष कहते हैं कि सिंहासनपर बैठा हुआ राजा किसीको देखकर न उठे, मैं निश्चय कहता हूं कि वे श्रेष्ठ धर्मको नहीं जानते ॥१३॥यह सब पुरुष निन्दनीय मार्गका उपदेश करनेवाले स्वयं ही नरकके अंधकारमें गिरते हैं और जो लोग उनके वचनोंका विश्वास करते हैं, वे लोग मानो पत्थरकी नावसे पार जानेकी इच्छा करते हैं, जैसे नावके डूब जानेपर सब डूब जाते हैं, ऐसे ही अंधतामिस्र नरकमें अवश्य पड़ेगा ॥१४॥ जो हो, अब मैं शठभाव छोड़कर गुरुजीके मनानेकी चेष्टा करता हूं क्योंकि वह सब देवताओंके आचार्य ब्राह्मण हैं, उनकी बुद्धि अति गम्भीर है, मैं जाकर मस्तक झुका उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा॥१५॥हे राजन् ! देवराज इन्द्रका इस प्रकारसे अछताना-पछताना बृहस्पतिजी जानकर अति शीघ्रता कर गृहसे बाहर हो अदृश्य गतिको प्राप्त हो गये। क्योंकि यह वृत्तान्त उन्हें अध्यात्मविद्यासे ज्ञात हो गया ॥१६॥ अनन्तर महेन्द्र देववृन्दके साथ गुरुजीको ढूंढ़ने लगे। परन्तु सर्व ज्ञानके उपाय द्वारा सब जगह देखनेपर भी इन्द्रको उनका पता न लगा, इसलिये यह सब देवताओंके साथ अतिशय दुःखित हुआ और किसी प्रकार भी इन्द्रका मन सावधान न हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रजीके विमर्शकी वार्ता सुनते ही असुरगण अपने आचार्य शुक्राचार्यका मत ग्रहण कर शस्त्र उठाकर देवताओंके साथ संग्राम करनेको उपस्थित हुए और युद्ध होने लगा ॥१८॥ दैत्यलोगोंके तीक्ष्ण-तीक्ष्ण बाणोंसे देवता लोगोंके मस्तक, बाहु, ऊरु इत्यादि अंग छिन्न-भिन्न होने लगे इसलिये देवता लोग कातर होकर देवराज इन्द्रके साथ ब्रह्माजीके निकट गये और शिर नवाकर शरणकी प्रार्थना करने लगे ॥१९॥ स्वयम्भू ब्रह्माजीके हृदयमें देवेन्द्रको इस प्रकार कातर होकर आये देखकर अतिशय दया उत्पन्न हुई और करुणासहित वचनोंसे समझाते बुझाते हुए उनसे बोले ॥२०॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरवरगण ! तुमने बड़ा बुरा कार्य किया है, कि जितेंद्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका आदर-सत्कार नहीं किया ॥ २१ ॥ उसी अन्यायके आचरणका फल यह हार है, जिस हारको मनमें धारण कर तुम आये हो, नहीं तो तुम समृद्धिशाली हो। तुम लोगोंके वैरी वर्ग सदा पराजित होते आये हैं, अर्थात् हन्ता होकर क्षीण हो रहते थे, वे लोग तुम्हें कभी न जीत सकते ॥ २२ ॥ परन्तु हे इन्द्र ! गुरुका तिरस्कार और सत्कार ही घटती बढ़तीका कारण है, उसका दृष्टान्त देखो। तुम लोगोंके विद्वेषी असुरगण एकबार अपने आचार्यका निरादर करके क्षीण हो गये थे, इस समय भक्तिपूर्वक अपने उन आचार्यकी आराधना करनेसे फिर वह कैसे बुद्धिशाली हो गये हैं ॥२३॥ शुक्राचार्यको इष्ट देवता माननेसे इस समय उन दैत्योंका ऐसा प्रभाव है, कि उन्होंने आपके वासका स्थान भी बलसे हरण कर लिया ॥२४॥ हे देवराज! शुक्राचार्यजीके शिष्योंका इस समय अमंगल नहीं होगा, क्योंकि ब्राह्मण और भगवान् गोविन्द जिस नरेशके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं उसका कभी

अकल्याण नहीं होता और जिनसे यह रूठे हुए हैं, ऐसे पुरुषोंका तो पग-पगपर अमंगल है ॥२५॥ जो हो गया सो हो गया, इस समय तो उसका उपाय ही नहीं, इस समय तुम लोग एक काम करो, कि त्वष्टाके पुत्र विश्वासरूप ब्राह्मणके पास जाकर उनका आदर-सत्कार करो, वे जितेन्द्रिय और तपस्वी हैं। वे तुम लोगोंसे आदर-सत्कार पाकर अवश्य कामना पूर्ण करेंगे। परन्तु कब, जबकि तुम इसके असुरपक्षपाती कर्मको क्षमा करोगे ॥ २६ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! ब्रह्माजीसे इस प्रकारके वचन सुनकर देवतागण त्वष्टाके पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वरूप ऋषिके समीप गये और उनको भेंट देकर कहने लगे कि हम अतिथि तुम्हारे आश्रममें आये हैं, तुम्हारा मंगल हो। हे तात! बड़े लोगोंकी समयानुसार प्रार्थना को तुम पूर्ण करो। हे राजन्! सत्पुरुषोंका बड़ोंकी सेवा करना ही परमधर्म है, जो पुत्र पुत्रवान् हैं उनको भी चाहिये कि पितृसेवा अवश्य करें फिर, इसमें ब्रह्मचारियोंकी तो बात ही क्या है? ॥२७॥ हे तात! जो उपनयन कराते हैं, जो आचार्य वेद पढ़ाते हैं वे वेदकी मूर्ति हैं, पिता प्रजापतिकी मूर्ति है, भ्राता मरुद्गणोंकी मूर्ति है और माता साक्षात् पृथ्वी मूर्ति है ॥ २८ ॥ बहन दयाकी मूर्ति है, अतिथि साक्षात् धर्मकी मूर्ति है, अभ्यागत पुरुष अग्निकी मूर्ति और सब प्राणी ईश्वरकी मूर्ति हैं, अर्थात् सर्व प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखना उचित है ॥ २९ ॥ इसलिये हे तात! हम लोग तुम्हारे पितृगण दानव लोगोंकी उत्पत्तिसे अतिशय आर्त हो रहे हैं, हमारे वैरियोंसे पराभवरूप पीड़ा अपनी तपस्यासे निवारण करके तुम, हम लोगोंका आदेश पालन करनेके योग्य हो ॥ ३० ॥ हे वत्स! तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, इसलिये गुरु हो, हम लोग आपको अपना पुरोहित बनानेकी वासना करते हैं, क्योंकि तुम्हारे तेजसे हम अपने वैरियोंको सहज ही जीत लेंगे ॥ ३१ ॥ हे वत्स! तुम हमसे छोटे हो, उससे तुमको पुरोहित बनाने और हमारे प्रणाम करनेसे लोकमें निन्दा होगी, ऐसी शङ्का तुम मत करना, क्योंकि लोकमें अपने प्रयोजनके लिए छोटेके चरणोंमें प्रणाम करनेसे निन्दा नहीं होती, दूसरे मंत्रभिन्न स्थान ही वयसमें बड़ाईका कारण है, इसलिये मंत्र देनेसे तुम ही हमारे बड़े हो जाओगे ॥३२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! परीक्षित् जब महातपस्वी विश्वरूपसे इस प्रकार देवताओंने पुरोहिताईके लिये आर्त होकर कोमल वचनोंसे कहा ॥३३॥ तब विश्वरूप बोले कि, हे देवगण! यद्यपि शील पुरुष लोग अधर्मका हेतु कहकर पुरोहिताईके कर्मकी निन्दा करते हैं और यह कर्म पूर्वसिद्ध ब्रह्मतेजका क्षय करनेवाला है तथापि आप लोगोंकी प्रार्थनाके भयसे यह हमको स्वीकार करना पड़ेगा ॥ ३४ ॥ हे नारायण! आप लोग लोकोंके ईश्वर हैं, आप लोगोंकी चाहनाकी बात हम सरीखे पुरुष किस प्रकारसे न माननेमें समर्थ होंगे? हम आप लोगोंके शिष्य अर्थात् शिक्षाके योग्य हैं, आप शिक्षा देनेवालोंका वचन न स्वीकार करना शिष्यका स्वार्थ है ॥ ३५ ॥ हे अधीश्वरगण! जिन पुरुषोंको कुछ चाहना नहीं है, जिन लोगोंके शिल अर्थात् क्षेत्रमें स्वामीका उपेक्षित कणिस (बाल) ग्रहण और उञ्छ अर्थात मार्गादिमें गिरे हुए धान्यादिका एक-एक कण बीनकर ग्रहण करना ही धन है, हम उन लोगोंकी वृत्तिके द्वारा ही गृहाश्रममें साधु लोगोंकी समस्त क्रियाओंका निर्वाह किया करते हैं। खोटी मतिवाले लोग पुरोहिताईके प्राप्त होनेसे हर्षित होते हैं, परन्तु हमारे लिए यह तिरस्कार है। इसलिये यद्यपि पुरोहिताईका कर्म करना हमारा कर्तव्य नहीं है ॥३६॥ तथापि आपलोग हमारे गुरु हैं अतः आप लोगोंकी

इस प्रार्थनाका अंगीकार न करना यह हमको उचित नहीं। हम आप लोगोंकी संपूर्ण बातें प्राण और धन (तपोबल) से अवश्य पूरी करेंगे ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! देवता लोगोंको इस प्रकार वचन देकर महातपस्वी विश्वरूप देवता लोगोंके मध्य पुरोहिताईमें प्रवृत्त हो बड़े उद्योगके साथ पुरोहिताईका कार्य करने लगे ॥३८॥ शुक्राचार्यकी विद्यासे यद्यपि देवता लोगोंके द्वेषी दानवोंको लक्ष्मी रक्षित होती थी तो भी इन महर्षिने "नारायण कवच" स्वरूप वैष्णवी विद्याके बलसे उन (दैत्यों) के निकटसे उस लक्ष्मीको हटाकर इन्द्रको अर्पण कर दी। हे कौरव! उदार बुद्धि विश्वरूपने वही विद्या इन्द्रको दी है,कि जिस विद्यासे देवराज इन्द्रने रक्षित होकर असुरसेनाको जीत लिया। इन्द्रका सहस्राक्ष नाम इस कारण हुआ कि एक समय महारूपवती गौतमकी स्त्री अहिल्यासे विहार करनेको इन्द्रका मन चलायमान हुआ, तब इन्होंने चन्द्रमाको अरुणशिखा अर्थात् मुर्गा बनाकर गौतमजीके आश्रमपर बुलवाया। जब गौतम प्रभात हुआ जान स्नान करनेको गये, तब इन्द्र गौतम मुनिका वेष धारण कर उनके स्थानपर आये। वहां गौतमजी जब गङ्गाजी पर पहुँचे तब गङ्गाजीने कहा अभी तो आधी रात है, स्नान करनेका समय नहीं, तुम्हें किसीने छल तो नहीं लिया, जो इस समय स्नान करने चले आए? यह सुन गौतमजीने घरपर आकर सब लीला देखी कि चन्द्र इंद्र विराजमान हैं, तब चन्द्रमाके धोतीका छींटा मारा, कि जिसका उसके हृदयमें कलंक हुआ, इन्द्रको शाप दियाकी तुम तो एकही भगके लिए यहां आये, अब तुम्हारे ही शरीरमें हजार भग हो जायँगे कि जिससे फिर तुम्हें आवश्यकता ही न पड़े। जब इन्द्रने गौतमजीको बहुत मनाया तब इन्होंने कहा कि जब राम अवतारमें इक्ष्वाकु-कुल तिलक, दशरथ-अजिर-विहारी दैत्यसंघारी, असुरारी, अवधविहारी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करने जाओगे तब यही हजार भग तुम्हारे हजार नेत्र हो जायँगे। इसलिए जब रामावतार हुआ और इन्द्रने त्रिलोकीनाथ जानकीपति, दशरथनन्दन, जगवन्दन, दुष्टनिकन्दन श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविंदका दर्शन किया तब ही सहस्र भगोंके सहस्र नेत्र हो गए और सहस्र नेत्र होनेसे ही इनका 'सहस्राक्ष' नाम हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वास्तवमें यह बात सत्यही है कि परस्त्री संगति अवश्य अनेक दुःखोंकी देनेवाली हैः—

सवैया

जो परनारि निहारि निलज्ज हँसैं विलसैं बुध होत बड़ेरे।
जूँठनकी जिमि पातल पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे॥
जे जनकी यह टेव अहे तिनकी जगमें अपकीरति हेरे।
है परलोक विषे बिजली, सु करै शतखण्ड सुखाचल केरे॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे इन्द्रादिदेवैर्विश्वरूपपौरोहित्याय प्रार्थनावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-विश्वरूप जो इन्द्रको, दे नारायण वर्म।
सब दैत्यनको जीतके, राखौ अपने धर्म॥

इसके उपरांत राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! आपने कहा कि देवराज इंद्रने "नारा-

यणकवचसे रक्षित होकर वाहन सहित शत्रुकी सब सेना सरलतासे जीतकर त्रिलोकीके धन और संपत्तिको भोगा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह कवच किस प्रकारका ? देवराज इन्द्रने उससे रक्षित होकर किस प्रकारसे अस्त्र उठाये हुए शत्रुओंको जीता, वह कहिये ॥२॥ यह सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजन् ! विश्वरूपको पुरोहिताईमें वरण करके देवराज इन्द्रने उनसे कवचको पूछा था, तब विश्वरूपने उनको नारायण नामक कवचका उपदेश दिया जिस प्रकारका यह कवच है, और विश्वरूपने उसको जिस प्रकारसे उपदेश किया, मैं वह सब प्रसंग कहता हूँ तुम सावधान हो श्रवण करो ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रके पूछनेपर विश्वरूपने उनसे कहा था कि हे महेन्द्र ! हाथ-पांव धो आचमन करके, पवित्री धारण कर, उत्तरकी ओर मुख करके बैठ, अष्टाक्षर–"ओं नमो नारायणाय" बारह अक्षर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" मंत्रोंसे अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणीको जीते ॥४॥ फिर नारायण कवचको बांधे, परन्तु जब किसी प्रकारका भय उपस्थित हो, तभी इस कवचका बांधना कर्तव्य है । हे देवेन्द्र ! पाँव, जानु, उर, उदर, आस्य, वक्षःस्थल॥५॥ मुख और मस्तक इन्हीं सब अंगोंमें प्रणवपुटित मन्त्रका विपर्यय एक-एक वर्णका आदिसे लेकर ओंकार आदिका विन्यास करे "ओंनमो नारायणाय" इस मंत्रका विपर्यय अर्थात् उलटा करे अर्थात् पादादि मस्तकान्तमें न्यास न करे मस्तकसे चरण पर्यन्त न्यास करनेसे भी हो सकेगा॥६॥ हे सुरराज ! इस मंत्रके अतिरिक्त और मन्त्रोंसे भी न्यास हो सकता है । "ओं विष्णवे नमः" इस मंत्रके ओंकारको हृदयमें धारण करे, विकारको मस्तकमें, षकारको दोनों भ्रुकुटियोंके मध्यमें, णकारको शिखा पर, वेकारको दोनों नेत्रोंमें, नकारको सब संधिस्थानोंमें ॥ ७ ॥ न्यास करके फिर मकारको अस्त्र रूपमें ध्यान करनेसे विद्वान् स्वयं मंत्रमूर्ति हो जायगा । इससे पीछे इसी मंत्रको विसर्गयुक्त और "फट्" शब्द अन्तमें करके सब दिशाओंको निर्देश करे, अर्थात् "ओं विष्णवे नमः अस्त्राय फट्" यह मंत्र पूर्वादि दिग्बंधमें प्रयोग करे । इस प्रकार क्रिया करनेसे बुद्धिमान् मंत्ररूप हो जायगा ॥८॥९॥ सुरराज ! इस प्रकार न्यास करनेके पीछे फिर ध्यान करनेके योग्य ईश्वररूप उस आत्माका ध्यान करे, जो ऐश्वर्य आदि छः शक्तियोंसे संयुक्त है, इसके पीछे नारायण-कवचका मंत्र, जिसकी विद्या, तेज और तपस्या ही मूर्ति है, उस मंत्रका उच्चारण करे ॥१०॥११॥ उस मंत्र का अर्थ यह है कि–"गरुड़जीकी पीठपर जिनके चरणकमल विराजमान हैं, जो अष्टबाहुयुक्त हैं और उन आठ भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष, बाण, ढाल और पाश धारण किये हुए वे अष्टगुणी भगवान् हरि मेरी रक्षा करें ॥१२॥ और भी मत्स्यमूर्ति वह भगवान् जलके मध्यमें जलजन्तु समूहरूप वरुणकी फांसीसे मेरी रक्षा करें ॥१३॥ जो माया के योग करके बटु(वामन) हुए थे, वह स्थलके मध्यमें मेरी रक्षा करें । जो विश्वरूप और त्रिविक्रममूर्ति हैं वह भगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें; जिन्होंने असुरके यूथप हिरण्यकशिपुके

१. शंका–राजा परीक्षित्की मृत्यु जब समीप आ गयी, तब राजाने भगवान्की कथा तो पूछनी छोड़ दी । नारायणवर्म क्यों मुनिसे पूछा ? नारायणवर्म तो शरीरके रक्षार्थ है, शरीर तो राजाका छूटनेवाला; फिर नारायणवर्मसे क्या प्रयोजन निकला ?

उत्तर–सज्जन पुरुष अपने सुखके लिये कुछ भी कर्म नहीं करते; किन्तु दूसरेके सुखके लिये अनेक कर्म करते हैं, जैसे नदी रात दिन जलसे भरी रहती है, परंतु अपने लिये नहीं भरी रहती; दूसरे जीवोंके सुखके देनेके लिये जलसे भरी रहती है और पर्वत, चारा, लकड़ी, औषधि इत्यादि अनेक वस्तु अपने ऊपर रखता है परंतु अपने लिये नहीं; एवं जैसे वृक्ष दूसरेके सुखके लिये फल, फूल, पत्र आदि रखते हैं और दूसरे कार्य सिद्ध करते हैं ऐसे ही राजा परीक्षित भी आप तो मरणासन्न हो गये हैं परंतु और प्राणियोंके सुखके लिए नारायणवर्म पूछा था ।

मारनेके लिये नरसिंहमूर्ति धारण की थी, जिनके विकट अट्टहाससे सब दिशा प्रतिध्वनित होकर स्त्रियोंके गर्भ गिर गये थे, वह संग्राम व दुर्गम मार्ग इत्यादिमें मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ जो अवयवरूप यज्ञसे निरूपणीय होते हैं और जिन्होंने अपनी कराल डाढ़से इस पृथ्वीका उद्धार किया था, वह प्रसिद्ध वाराहजी मार्गमें हमारी रक्षा करें और पर्वतोंके शिखरमें परशुराम भगवान् हमारी रक्षा करें और भरतजीके बड़े भाई अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी महाराज प्रभु लक्ष्मणजीके साथ परदेशमें हमारी रक्षा करें ॥१५॥ और भगवान् नारायण अभिचारादि स्वरूप समग्र उग्रधर्म और समस्त अनवधानोंसे हमारी रक्षा करें और नररूपी वह प्रभु गर्वसे हमारी रक्षा करें,और दत्तात्रेयरूपी वह भगवान् जो सब यज्ञोंके नाथ हैं, वह योगभ्रंशसे हमारी रक्षा करें, कपिलमूर्ति वह प्रभु जो सब गुणोंके ईश्वर हैं, वह कर्मबन्धनसे हमारी रक्षा करें, ॥१६॥सनत्कुमाररूपी भगवान् कामदेवसे हमारी रक्षा करें। हयग्रीवमूर्ति भगवान् मार्गमें देवहेलन अर्थात् देवता लोगोंको नमस्कार न करके गमन रूप अपराधसे हमारी रक्षा करें। देवर्षिश्रेष्ठ अर्थात् नारदरूपी भगवान् बत्तीस अपराधरूप जो देवपूजाके छिद्र हैं, उनसे हमारी रक्षा करें। कूर्मरूपी हरि अनंत नरकोंसे हमारी रक्षा करें ॥१७॥ (और भी) धन्वन्तरिरूपी भगवान् अपथ्यसे हमारी रक्षा करें, जितेन्द्रिय ऋषभमूर्ति भगवान् सुख-दुःखादि झगड़ोंके भयसे हमारी रक्षा करें। यज्ञमूर्ति भगवान् लोकापवादसे हमको बचायें। बलभद्ररूपी भगवान् लोक-सम्बंधी उपघातसे हमारी रक्षा करें। शिवरूपी भगवान् क्रोध-वशवर्ती सर्पोंके गणसे हमारा उद्धार करें ॥ १८ ॥ अज्ञानसे वेदव्यासजी हमारी रक्षा करें, प्रमाद व पाखण्ड गणसे बुद्ध भगवान् बचायें और कल्किरूपी भगवान् जिन्होंने धर्मकी रक्षा करनेके लिए उस बड़े अवतारका धारण करना स्वीकार किया है, वह कलिके मङ्गलस्वरूप कालसे हमारी रक्षा करें ॥ १९ ॥ हे सुरराज इन्द्र! इसके पीछे प्रातर्मध्याह्नादि दिनके छठवें भागमें और रात्रिमें और प्रदोषादिकके समय इस प्राकारसे प्रर्थना करें, यथा-भगवान् केशव प्रातःकालमें गदासे रक्षा करें,भगवान् गोविंद वेणु धारी होकर संगव कालतक सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें भगवान् नारायण शक्ति ग्रहण करके पूर्वाह्नकालमें हमारी रक्षा करें, विष्णु भगवान् चक्र हाथमें लेकर मध्याह्नके समय हमारी रक्षा करें ॥ २० ॥ भगवान् मधुसूदनजी उग्र धनुष ग्रहण करके अपराह्नकालमें हमारी रक्षा करें। त्रिधामा अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी भगवान् सायंकालमें हमारी रक्षा करें। भगवान् माधव प्रदोषके समय हमारी रक्षा करें, वह एक पद्मनाभ देव जो विषय और इंद्रियगणोंके ईश्वर हैं, वे आधीरातके समयतक हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥ और वह भगवान् ईश श्रीवत्स ही जिनका धाम है, वह पिछली रात्रिमें हमारी रक्षा करें। भगवान् जनार्दन जो कि खड्गधारी हैं, वे प्रत्यूषके समय हमारी रक्षा करें। भगवान् दामोदर प्रभातके समय हमारी रक्षा करें। भगवान् विश्वेश्वर जो कालकी मूर्ति हैं, वे प्रतिसन्ध्यामें हमारी रक्षा करें ॥२२॥ अहो! भगवान्के इस चक्रकी नेमि(धारा)प्रलयकालके अग्निके तुल्य अतिशय तीक्ष्ण है। हे चक्र! तुम भगवान् द्वारा प्रयुक्त होकर जिस प्रकार पवनका सखा अनल सूखे हुए तृणोंको जला देता है, वैसे ही हमारे शत्रुकी सेनाको बहुत शीघ्र भस्म करो ॥२३॥ हे गदे! तुम्हारी चिनगारियोंका छूना वज्रके स्पर्श समान है और तुम अजित भगवान्के प्रिय हो और हम भी उन्हीं भगवान्के दास हैं, इसलिये विघ्न करनेवाले कूष्मांड, वैनायक, यक्ष, राक्षस और भूतप्रेत, व स्कंदगणको तुम पीस डालो, पीस डालो और समस्त शत्रुओंको चूर्ण करो, चूर्ण करो,

॥२४॥ हे पाञ्चजन्यशंख ! तुम भगवान् विष्णुजीकी मुखके वायुसेपूरित होकर भयंकर शब्द करते हुए राक्षस, प्रमथ, भूत प्रेत पिशाच इत्यादिकोंको और ब्रह्म राक्षस व और दूसरे घोर दर्शन दुरात्मा लोगोंको भगा दो, जिससे कि शत्रुगणोंका हृदय कांप जाय ॥२५॥ हे श्रेष्ठ-खड्ग ! तुम्हारी धार अति तीक्ष्ण है। तुम भगवान् नारायण करके चलाये जाकर समस्त शत्रुकी सेनाको काट डालो, काट डालो। हे चन्द्रमाकेसे शतमण्डलवाली ढाल! तुझमें मण्डलाकार शतचन्द्रमा देदीप्यमान हैं, तुम पापी विद्वेषियोंकी आँखोंको ढक लो, ढक लो ! और उग्रदृष्टिवाले इन सब पुरुषोंकी दृष्टि हरण करो ! हरण करो ! ! ॥ २६ ॥ अहो ! समस्त ग्रहकेतु सर्प और कराल डाढ़वाले हिंसक जन्तु पापी भूत प्रेतादिसे हमको अभय करो ! अभय करो ! ! ॥२७॥ हे भगवन् ! आपके नामरूपी कीर्तनसे वे सब सदा ही क्षयको प्राप्त हों। और जो कि हमारे इष्ट आनंदमें विघ्न करनेवाले हैं, उनका भी विनाश हो जाय ॥ २८ ॥ और भगवान् गरुड़जी जो बृहद्रथंतरादि सामरूप स्तोत्रोंसे स्तुति किये जाते हैं, वेद सब जिनकी मूर्ति हैं जिनको विष्वक्सेन कहा जाता है, वे अपने सब नामोंसे अशेष पापोंसे हमारी रक्षा करें। "स्तोत्रैः स्तोम्यत इति स्तोत्रस्तोमः" ॥ २९ ॥ और भी भगवान्के नाम, रूप, यान, वाहन और अस्त्र-शस्त्र तथा प्रधान-प्रधान पार्षद लोग हम लोगोंकी बुद्धि, इंद्रिय, प्राण और मनको अनन्त विपदाओंसे बचायें ॥ ३० ॥ अहो मूर्त्त, अमूर्त यह सब ही जगत् वास्तवमें भगवान्का ही स्वरूप है, ऐसा हमारा निश्चय है। इसी सत्यसे हमारे सब उपद्रवोंका विनाश हो ॥ ३१ ॥ और जो पुरुष ऐकात्म्य ध्यान करते हैं, उन लोगोंसे अभिन्न होकर भी जो भगवान् अपनी मायाके छलसे भूषण, आयुध और लिंगादि विविध शक्ति धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ यही उनकी सत्यताका प्रमाण है, वह अपने शरीरके प्रमाण करनेको सर्वज्ञ भगवान् हरि अपने स्वरूपोंसे सदा हमारी सब स्थानोंमें रक्षा करते रहें ॥ ३३ ॥ और वह भगवान् नृसिंहजी सब दिशा-विदिशाओंमें, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर, सर्व भावसे हमारी रक्षा करें उनकी ध्वनिसे सब लोगोंका भय दूर हो जाता है और उनके निज प्रभावसे दिग्गज, विष, शस्त्र, जल, वायु और अग्नि इत्यादिका तेज विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ ३४ ॥ हे देवराज ! नारायणमय कवच इस प्रकारका है, वह हमने तुमसे कहा, इसको तुम पहनो, तब अवश्य ही असुर यूथपति लोगोंको जीत सकोगे ॥३५॥ हे महेन्द्र ! इस कवचका धारण करनेवाला पुरुष जिसको नेत्रोंसे देखे अथवा चरणसे स्पर्श करे, उस पुरुषको भयसे छुटकारा मिल जाता है तो भला फिर इसके धारण करनेवाले पुरुषको कहांसे भयकी सम्भावना हो सकती है ! ॥ ३६ ॥ इसलिये जो पुरुष इस विद्याको धारण करता है, उसको राजा, चोर नवग्रह व्याधि इत्यादि किसीसे भी कुछ भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वकालमें कौशिकी नामक किसी ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके विना जलवाले मरुदेश "मारवाड़" में योगकी धारणासे अपने शरीरको छोड़ दिया था ॥ ३८ ॥ जहांपर उस ब्राह्मणके शरीरका क्षय हुआ था, उसके ऊपर होकर एक समय चित्ररथ नामक गंधर्वपति अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर चढ़ा हुआ जा रहा था ॥ ३९ ॥ जैसे ही वह गंधर्वपति इस स्थानके ऊपर आया कि उसकी गति रुक गयी और वह उसी समय विमानके सहित उलटकर आकाशसे पृथ्वीमें गिरा ॥४०॥ इस बातके होनेसे गन्धर्वपतिके मनमें बड़ी चिंता उत्पन्न हुई तब उसने वालखिल्य मुनियोंके उपदेशसे वहांपर पड़ी हुई उस ब्राह्मणकी अस्थियोंको बीनकर प्राचीवा-

हिनी सरस्वतीके जलमें डाल दिया। और फिर इस नदीमें स्नानकर अपने स्थानको चला गया॥४१॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! जो पुरुष इस नारायणकवचको सुअवसरमें सुनता है, अथवा जो जन आदरपूर्वक इसको यंत्रमें धारण करता है, उसको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं और वह पुरुष सर्व प्रकारसे सब भांतिके भयसे छूट जाता है ॥४२॥ अधिक क्या कहें, देवराज इन्द्र महर्षि विश्वरूपसे इस विद्याको प्राप्त होकर समरमें असुर लोगोंका संहार कर त्रिलोककी लक्ष्मीका भोग करने लगे॥ ४३ ॥ उस समय शचीनाथके सम्मुख एक अप्सराने अपने कोयलविनिन्दित स्वरसे इस ठुमरीको गाया।

ठुमरी

आनन्दकन्द ब्रज कुमुद चन्द नंद नंदन ही म्हाने हटको ॥ टेर ॥
वो निडर छैल करैं फिरत शैल तकि गैल रहै उत ही अटको ॥ १ ॥
एक देश अली मैं जात चली उन गली आय गह कर झटको ॥ २ ॥
होगई डराय अंग थर थराय झट धाय खोल घूंघट पटको ॥ ३ ॥
जब दई आवाज आई सखि समाज गए भाज तुरत यमुनातटको ॥ ४ ॥
पनघट न जाहिं तऊ बनत नाहिं हियमाहिं रहैं गुरुजन खटको ॥ ५ ॥
संकेत अलीछबि देख भली लख चली सुघर नागर नटको ॥ ६ ॥
दधि आप खाय और दे लुटाय पीछें फोरत है मटकी मटको ॥ ७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते षष्ठस्कन्धे नारायणकवचवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—इन्द्र नवममें कोप कर, विश्वरूप दियो मार।
तब त्वष्टाने पुत्र इक, प्रगटो परम जुझार॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ऐसा सुना जाता है कि विश्वरूपजी जो देवता लोगोंके पुरोहित बने थे, उनके तीन शिर थे, वे एक मस्तकसे सुरापान, एकसे सोमपान और एकसे अल्पमात्र भोजन करते थे ॥ १ ॥ जो कुछ हो, विश्वरूप यज्ञके समय विनीत भावसे देवता लोगोंको प्रकट हव्यका भाग देते थे, क्योंकि देवतालोग उनके पितृपक्षमें थे ॥ २ ॥ परन्तु माताके स्नेहके वश हो यज्ञ करते-करते आप असुर लोगोंको भी छिपाकर यज्ञका भाग दिया करते थे ॥ ३ ॥ उनके अन्यायका यह आचरण एक दिन देवराज इन्द्रने देख लिया, इससे वह बहुत ही डरे, और रोषके वेगको रोकनेमें असमर्थ होकर विश्वरूपके तीनों मस्तक काट डाले ॥ ४ ॥ हे राजन्! विश्वरूपका जो मस्तक सोमपान करता था, वह कटकर कपिञ्जल (चातक) हुआ, सुरा पीनेवाला मस्तक कटकर कलविङ्क (चटक) हुआ और अन्नवाले मस्तकसे तीतर पक्षी हुआ ॥ ५ ॥ हे कौरववंशावतंस! इन विश्वरूपजीके शिर काटनेसे देवराज इन्द्रको जो ब्रह्महत्या लगी, यद्यपि वह इसके निवारण करनेमें समर्थ थे, तो भी उस ब्रह्महत्याको अंजली फैलाकर ग्रहण किया और एक वर्षतक इस पापसे कलुषित होकर रहे। एक वर्षके पीछे फिर लोक निन्दासे भीत होकर सबके सम्मुख अपनी विशुद्धि अर्थात् कलंक मिटानेके लिये इस पापको चार भागोंमें बांटकर ॥ ६ ॥ एक भाग भूमिको

दिया, एक जलको दिया, एक वृक्षोंको दिया, एक स्त्रियोंको दिया, इस प्रकारसे चार भागोंमें यह ब्रह्महत्या इन्द्रने बाँटदी। हे राजन् पृथ्वीने खातसे पूर्ण होनेका वर पाकर अर्थात् जो गढ़ा होगा, वह अपने आप ही भर जायगा, इस वरसे मोहित होकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चौथा भाग ग्रहण किया, वह पाप अबतक ऊषर रूपसे पृथ्वीपर दृष्टि आता है इसी कारणसे ऋषिलोगोंने ऊषर भूमिपर बैठकर अध्ययनादिका निषेध किया है ॥ ७ ॥ और वृक्षोंने कट जानेपर फिर उपजनेका वर पाकर मोहित हो चार अंशोंमेंसे ब्रह्महत्याका एक अंश लिया। हे भूपाल ! वृक्षोंमेंसे जो निर्यास (गोंद-रस) दिखलाई देता है वही ब्रह्महत्याके पापका अंश है ॥८॥ और स्त्रियोंने सदा संभोग करनेका वर पाकर इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण किया, स्त्रियोंको महीनेके महीने जो ऋतु (रज) होता है, वही इस ब्रह्महत्याके पापका चिह्न दिखाई देता है, इस कारणसे यद्यपि इन्द्रके वरसे और सब समय गर्भधारण करनेपर प्रसवकाल तक अर्थात् जबतक कि बालक उत्पन्न नहीं होता तबतक स्त्रियोंसे मैथुन करना ठीक है, तथापि ऋतुकालमें तीन दिन स्त्रीसंगका निषेध किया है ॥ ९ ॥ जो कुछ हो, देवराज इन्द्रकी हत्याका बचा हुआ चौथा अंश जलने ग्रहण कर लिया, इन्द्रने जलको यह वर दिया कि दुग्धादि जिस वस्तुमें तुम मिल जाओगे वह वस्तु बढ़ जायगी। यह कह इन्द्रने जलको अपने पापका चौथा अंश समर्पण किया, हे राजन् ! जलमें बुद्बुद फेन सिवारादि जो दीखते हैं, यह उसी ब्रह्महत्याका चिह्न है ॥१०॥ हे कौरववंश विश्वरूपके मारे जानेपर उनके पिता त्वष्टाने क्रोध करके इन्द्रको मार डालनेके लिये उसके शत्रुकी उत्पत्ति होनेकी कामनासे होम करना प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥ किंतु आहुति दे प्रार्थना करनेके समय जब कि यह वचन कहने लगा हे "इन्द्रशत्रो !" तू वृद्धिको प्राप्त हो और शीघ्र शत्रुका विनाश कर तब भाग्यके वश "इन्द्रशत्रो" इसका आदिशब्द उदात्त स्वरमें उच्चरित होनेसे इंद्रका शत्रु इस प्रकारका अर्थ न ज्ञात होकर है इंद्र जिसका शत्रु यह अर्थ निकलने लगा ॥१२॥ थोड़ीसी आहुति डालनेपर यज्ञकी दक्षिणाग्निसे युगान्तकालिक कृतान्तके समान भयंकर आकारवाला एक असुर उत्पन्न हुआ ॥१३॥ उसका शरीर चलाया हुआ बाण जितने हाथ दूर पर गिरे मानो दिन-दिन सर्व भाँतिसे उतना बढ़ता था, उसका वर्ण जले हुए पर्वतके समान मलिन था, उससी दीप्ति संध्यासमयके बादलके समान अतिभयंकर थी, उसकी शिखा व मूँछ तपे हुए तांबेके समान रंगवाली थी, दोनों नेत्र दुपहरियाके सूर्यके समान अतिशय उग्र थे ॥१४॥ और प्रकाशमान तीन अनीवाले त्रिशूलोंमें मानो पृथ्वी और अंतरिक्षको छेद डालता है, वारंवार ऐसा प्रतीत हो रहा कि यह असुर पैरोंके आघातसे पृथ्वीको कम्पायमान कर नाच

१. मन्त्र–"यदब्रवीत्स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति । तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवत" शिक्षामें है कि मन्त्र स्वर वर्णसे बोलनेमें हीन होनेसे मिथ्याप्रयोग होता जाता है, उलटा यह वाणी रूप वज्र यजमानको मारता है जैसे इन्द्रशत्रुमें स्वरके अपराध होनेसे उलटा हुआ, तथाहि –" मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न समर्थमाहमवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।।"

२. शंका–पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन चारों दिशाओंको ओर नित्य प्रति चार-चार हाथ अर्थात् सोलह हाथ चारों ओरको वृत्रासुरका शरीर दिन-दिन बढ़ता था। यह बात बड़े आश्चर्यकी है, वरन् एक प्रकारका कौतुक है, क्योंकि वर्ष वर्ष लेखा लगाया जाय तो कितना मोटा शरीर हो सकता है और वृत्रासुर लाखों वर्षतक जीता रहा, तब कैसा शरीर हो गया होगा, उसकी लंबाई चौड़ाईका जोड़ आपने लगाया हो तो मुझको बताओ, जिससे मेरे मनका संदेह जाय।

उत्तर–"इषुमात्र" इस श्लोकमें विद्वान् लोग इषुको बाण नहीं कहते, क्योंकि विश्वकोश, कमण्डलुकोश आदि कोशमें इषुको सीक भी कहते हैं, मात्रको मोटा भी कहते हैं, इस प्रमाणसे इषुका मात्र कहिये सीकसरीखा अर्थ है। वृत्रासुरकी देह नित्य चारों ओर बढ़ती थी, चार हाथ प्रमाण एक धनुषका है, सो नित्य धनुष प्रमाण अर्थात् चार हाथ देह नहीं बढ़ती थी ॥

नाचकर गर्ज रहा था ॥१५॥ और पर्वतकी कन्दराके समान गम्भीर और मत्त कठिन कराल डाढ़ोंवाले वदनको वारंवार फैलाकर जँभाई ले रहा था, हे राजन् ! उसका यह वदन मानो पृथ्वीको खानेके लिये और समुद्रके पीनेके लिये उपस्थित था और जीभ मानो नक्षत्रको चाटनेके लिये लपलपा रही थी, इसलिये वह मानो त्रिलोकीके ग्रास करनेको खड़ा था ॥ १६ ॥ उसका वदन अतिशय बड़ा, उस वदनके दांत अत्यंत भयंकर थे, उसको उस प्रकारके वदनसे वारंवार जँभाई त्याग करते देखकर सब लोक डर गये और आबाल वृद्धोंको जिस ओर अवसर मिला वे उसी ओर भाग खड़े हुए ॥ १७ ॥ हे कौरवराज ! इस त्वष्टाके पुत्ररूप अंधकारने, जिसकी मूर्तिका वर्णन किया । जिससे उसने तपस्याके बलसे समस्त लोकोंको अंधकारसे ढक लिया था, इसी कारण इस परमदारुण पापात्माका नाम "वृत्र" हुआ ॥१८॥ जो कुछ हो, देवता लोग इस दानवको देखते ही अपने दल-बल सहित अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र ले उस असुरको मारने लगे, परंतु किसी प्रकारसे उस राक्षसका संहार न किया गया । वरन् वह देवता लोगोंके सबही अस्त्र शस्त्रोंको लील अर्थात् निगल गया ॥१९॥ यह देखकर सब देवता लोग बहुतही विस्मित और शोकाकुल हुए और देवताओंका प्रभाव मानो अस्त होनेपर हुआ तब सबने परामर्श करके भगवान् आदि पुरुष जो अंतर्यामी और त्रिभुवनव्यापी हैं, सावधान होकर उसी स्थानमें एकाग्रचित्त हो भगवान्की स्तुति करने लगे। महाराज ! भयके आ जानेपर नारायणके विना और किसीसे भी उद्धार होनेकी सम्भावना नहीं, यह विचारकर देवता लोग सावधान होकर भगवान् हरिकी शरणमें गये, "महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति ॥ हरिमेव प्रपद्यन्ते सुराः शरणमासुरा" ॥२०॥ देवता लोग बोले कि पवन, गगन, अनल, जल और पृथ्वी यह पञ्चभूत और पञ्चभूतोंसे बने यह तीन भुवन और इन सबके स्वामी ब्रह्मादि देव और उनसे अर्वाचीन हमलोग सबही सभय होकर जिस कालकी पूजा करते हैं वह ऐसा काल भी जिनसे डरता है, उन्हीं परमेश्वरसे हमारी रक्षा हो ॥२१॥ यह निरहंकार, शांत, रागादिशून्य, अपने स्वरूपलाभसे ही पूर्ण, नाम उपाधिकृत आडंबरोंसे हीन इन परमेश्वरको छोड़कर जो पुरुष और दूसरेकी शरण लेता है, वह अति अज्ञानी है, क्योंकि कुत्तेकी पूंछ पकड़ वह समुद्रके उतरनेकी इच्छा करता है, जिस प्रकार कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्रका उतरना असम्भव है, वैसे ईश्वरके सिवाय और दूसरेका आश्रय लेनेसे संसारसागरसे निस्तार नहीं हो सकता ॥२२॥ अहो ! महाभयके समयमें हम लोगोंने उनको ही रक्षा करनेवाला देखा है, क्योंकि महाप्रलयके समयमें सत्यव्रत मनु उनके ही विशाल शृङ्गमें पृथ्वीरूप अपनी नाव बांधकर उस कालकी विपत्तिसे बचे थे, इसलिए हम उन जलचर अर्थात् मत्स्य मूर्ति भगवान्की शरणमें जाते हैं, वे आश्रित हुए हम लोगोंकी अवश्यही रक्षा करेंगे ॥२३॥ अहो प्रलयकालिक ! समुद्रके जलमें जबकि प्रचण्ड पवनसे भयंकर लहरें उठ रही थीं, उस समय उस तरंगमें नाभिकमलसे उत्पन्न हुए पितामह ब्रह्माजी जिन करके भयसे छूटे, वही इस विपदसे हम लोगोंको विना किसीकी सहायताके पार करें ॥२ ॥ जो एक ईश्वर हैं जिन्होंने अपनी मायासे हम सबको बनाया और उन्हींके अनुग्रहसे हम विश्वसृष्टि रचते हैं, जो प्रभु हमसे प्रथम ही अन्तर्यामी रूपसे चेष्टा करके फिरते हैं, तो भी हम लोग उसका रूप नहीं देख सके, क्योंकि "ईश्वरको पृथक्-पृथक्" इस प्रकारसे मानते हैं॥२५॥ अहो ! विपक्षी लोग जब हमारा निर्दयतासे मर्दन करते हैं, उस समय जो मायाका अवलंबन

करके देवता, ऋषि, पशु, सब पक्षी और मनुष्योंके मध्यमें अवतार लेकर इन सब लोगोंको अपने आधीनमें करते हुये युग-युगमें पालन करते हैं ॥२६॥ उसी परमात्मारूपी देवताकी शरणमें हम सब प्राप्त हुए हैं, वे विश्वमूर्ति हैं, वे परमपुरुष हैं, वे ही प्रधान हैं इसलिये चलो—हम सब लोग उन्हीं परमेश्वरकी शरण लें। उनसे अवश्य ही हम सबका कल्याण होगा॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्! जब देवता लोग इस प्रकार स्तुति कर रहे थे कि कुछ देर पीछे प्रथम उनके हृदयमें और फिर पश्चिम दिशाकी ओरसे शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् प्रकट हुए ॥ २८ ॥ उसी समय देवता लोगोंने उनको सम्मुख देखा, अपने समान (१६) सोलह पार्षद साथ लिये, श्रीवत्सकौतुभमणि धारे, शरद्कालीन कमलतुल्य नेत्रवाले ईश्वरकी उपासना करने लगे ॥२९॥ उन ईश्वरको देख सब देखनेवाले आनन्दसे विह्वल हो दण्डकी नाईं भूमिमें साष्टांग दंडवत् करके धीरे-धीरे स्तुति करने लगे ॥३०॥ हे राजन्! देवता लोग यह कहकर स्तुति करने लगे, कि हे भगवन्! यज्ञ ही जिनका वीर्य, अर्थात् स्वर्गादि अवस्थारूप सामर्थ्यवान् कालस्वरूप, दैत्योंके ऊपर चक्र चलानेवाले और अनेक नामवालेके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे धातः! तुम तीनों गुणोंके ईश हो, तुम्हारी त्रिगुणात्मिका तीन गति जो परम पर अर्थात् निर्गुण स्वरूप है, उसको अर्वाचीन अर्थात् आजकलके पुरुष किस प्रकार जाननेमें समर्थ होंगे, इसलिये हम तुमको नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! हे नारायण! हे वासुदेव! हे आदिपुरुष! हे पुरुष! हे महानुभाव! हे परममङ्गल! हे परमकल्याण! हे परमकारुणिक! हे केवल जगदाधार! हे गदाधर! हे लोकनाथ! हे सर्वेश्वर! हे लक्ष्मीनाथ! परमहंस परिव्राजक लोग अष्टांगयुक्त आत्मयोगसे जो परम समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होते हैं, उस समाधिका अनुष्ठान करके जो परिस्फुट परमहंस धर्मका अनुशीलन करते और उससे जब उनके चित्तके तमरूप किवाँड़ खुल जाते और प्रत्यक्षरूप आत्मलोक प्रकाशमान होते हैं, उस समय जो निजसुख स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है, तुम उसके अनुभवस्वरूप हो, इसलिये हम सब देवता आपको नमस्कार करते हैं ॥३२॥३३॥ हे भगवन्! तुम्हारा विरहयोग अर्थात् क्रीडाका उपाय हमारी समझमें नहीं आता है, क्योंकि आपका आश्रय नहीं और आप शरीरधारी नहीं हैं, आप स्वयं अगुण हैं तथापि आपकी आत्मा करके इस सगुण विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है और आपकी आत्माको किसी प्रकारका विकार नहीं होता, इसपर आश्चर्य यह है कि आप सृष्ट्यादि कार्योंमें हम लोगोंकी कुछ सहायता नहीं चाहते हो ॥ ३४ ॥ इसलिये देवदत्त (इस नामका कोई पुरुष) जिस प्रकार गृहादि बनाकर उससे अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल पाता है, तुम ब्रह्मस्वरूप होकर भी गुणसृष्टिरूप संसारके वश पड़ते, या तद्रूप स्वकृत कुशलाकुशल भोग करते हो या स्वयं जो आत्माराम और उपसमशील तद्रूप ही रहकर अप्रचलित सदा रहनेवाली शक्तिके प्रभावसे उस विषयमें उदासीन रहते हो, अर्थात् केवल या साक्षिस्वरूपसे ही वर्तमान रहते हो, इस बातका भेद नहीं जान सकते हैं ॥३५॥ परंतु हे प्रभो! आपसे यह दोनों ही अविरुद्ध हैं, इसलिये दूसरेका दृष्टांत देखकर आपमें सन्देह करना ठीक नहीं, क्योंकि आप ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र हैं—किसीके वश नहीं आपमें अपरिमित गुणोंके समूह प्रकाशमान हैं, आपका माहात्म्य तर्क करने योग्य नहीं है, इस कारण जिन शास्त्रोंमें विकल्प अर्थात् "ऐसा अथवा ऐसा" इस प्रकारकी चिंता वितर्क अर्थात् "यह इसी प्रकारसे

है" ऐसा निश्चय विवाद और उसके अनुकूल प्रमाणभास और कुतर्क यह समस्त देदीप्यमान हैं, (परंतु यह सब किसी प्रकारसे भी वस्तु स्वरूपके स्पर्श करनेको समर्थ नहीं है,) इन सब शास्त्रोंमें जिन दुराग्रहियोंका अंतःकरण व्याकुलित होता है, ऐसे दुराग्रहोंका आश्रय लेकर जो पुरुष विवाद करते हैं, आप उन लोगोंके विवादस्थानसे परे हैं, आप समस्त मायामें संसारसे अलग और केवलरूप हैं, मायाको मध्यमें रखकर आपमें कौनसा विषय दुर्घट है, इस कारण वास्तवमें यदि आप कर्तृत्वादि हो तब ही विरोधकी संभावना है,वह कदापि नहीं क्योंकि आपके स्वरूप दो नहीं देखे जाते, अर्थात् आपके स्वरूपमें कुछ भेद नहीं॥३६॥हे प्रभो! यद्यपि आपका अनुग्रह-निग्रह नहीं है, तो भी मनुष्योंकी मति इस प्रकारकी नहीं। कुछ लोगोंकी बुद्धिसमान है और कुछ लोगोंकी मति अलग-अलग है, इसलिये सर्पादिविषयक बुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये इन्हींमें जिस प्रकार सर्पभ्रम उत्पन्न होता है, वैसे आप भी इन समस्त समविषम युक्त बुद्धिवाले लोगोंके अभिप्रायानुसार होकर अनेकरूप हो जाते हो ॥३७॥ अहो जो सब वस्तुमें अनेक रूपसे प्रतीयमान् हुआ करते हैं, वही समस्त वस्तु अर्थात् सत्स्वरूप, सबके ईश्वर अखिल जगत्के कारण और सर्व जीवोंके अन्तर्यामीपनके हेतु सर्व विषयोंके प्रकाशमें देखे जाते हुए अर्थात् उनके विना कोई विषय प्रकाशित नहीं होता। परंतु उनका आकार किसी प्रकारका नहीं, श्रुतिमें "नेति नेति" "यह नहीं यह नहीं" इस प्रकारकी युक्ति द्वारा कहकर जिनको बखानते हैं ॥३८॥ हे मधुमथन ! कारण कि आप ही इस प्रभावसे परमेश्वर हैं, इसलिये ये परम भागवत पुरुष आपके चरणकमलकी सेवा किस प्रकार त्याग सकते हैं ? ये सब पुरुष पुरुषार्थविषयमें अति कुशल होनेके कारण आत्मा जो आप हैं, आपको ही प्रिय और अपना सुहृद समझे हुए हैं, इसलिये वे लोग साधु अर्थात् रागादिशून्य हैं, हे प्रभो ! आपकी महिमा ही अमृतका सागर है, उस सागरका एक बूंद जल भी एक वार पी लेनेसे फिर मनमें उससे जो सुख निरंतर प्राप्त किया करते हैं, उसको पाकर यह समस्त महापुरुष श्रुतिदृष्टिविषयक छोटे सुखको भूल गये हैं, इस कारण आपमें ही इसका मन अत्यन्त अनुरागी होकर लगा हुआ है। हे प्रभो ! हे भगवन् ! यह कोई नहीं कह सकता कि आपकी सेवासे साधारण फल होता है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि आपकी ही सेवाका यह अनुपम फल है कि संसारका आवागमन छूट जाता है ॥३९॥ हे भगवन् ! आप त्रिभुवनके आत्मा और भवन हैं, आप त्रिविक्रम हैं, आपने ही इस त्रिलोकीको बनाया है, आपका प्रभाव तीनों लोकोंका मन हरण करनेवाला है। हे प्रभो ! दैत्य, दानव इत्यादि सबही आपकी विभूति हैं, हे दंडधर! आपने सब दैत्य दानवोंको "यह उद्योगका समय है" ऐसा विचारकर उनके ऊपर जब दण्ड धारण किया है, यदि इच्छा हो तो इस समय भी वैसे ही दंड धारण करके इस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका संहार कीजिये ॥४०॥ हे तात ! हे हरे ! ! हम सब आपके ही जन हैं, आपके चरणों में नमस्कार करते हैं और निरन्तरही आपके दोनों चरण-कमलका ध्यान करते हैं, और उनमें ही हमारा हृदय अति गाढरूपसे बँध गया है और आपने भी अपनी मूर्ति प्रकट करके हम लोगोंको अपना भक्त कहकर माना है, इस कारण हे अनघ ! अनुग्रह प्रकाश करके अनुराग विशद रुचिवाली मंद मुसकान सहित अवलोकन तथा मुखारविन्दसे निकले हुए मधुर मनोहर वचनरूप कलासे हमारे अन्तःकरणके तापको शांति देने योग्य हो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् !

हम जिस कार्यकी प्रार्थना करते हैं, वह आपसे किस प्रकार कहें ? जिस प्रकार आगकी चिनगारियाँ अग्निको प्रकाशित नहीं कर सकतीं, वैसे ही हम भी आपके निकट अपना अभिलाष प्रकट नहीं कर सकते, जो विषय माया सब जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण रूपसे प्रकट होती है, उसी मायाके साथ आप विहार किया करते हैं, इस कारण समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अंतर्यामी स्वरूपमें और बाहरी प्रधान स्वरूपमें देश, काल, देह, अवस्था विशेष अतिक्रमण करके इन सबके उपादान और उपलंभक स्वरूपमें अनुभव किया करते हो, इस कारण आप स्वयं समस्त प्रयत्नके अर्थात् बुद्धि इत्यादिके साक्षी समस्त ही जानते हो। हे प्रभो ! साक्षी होनेका कारण यह है कि आपका स्वरूप आकाशके समान किसीमें भी लिप्त नहीं है, हे भगवन् ! आपके शरीरके किसीमें लिप्त न होनेका कारण यह है कि आप साक्षात् परब्रह्म अर्थात् निरुपाधि और परमात्मा अर्थात् सत्त्वमूर्ति हैं॥४२॥ इस कारण हम जिस कार्यकी कामनासे आपके निकट आये हैं, सर्व तत्त्वोंके जाननेवाले गुणोंसे स्वयं उस कार्यको जानकर आप हमारे उस कार्यको पूर्ण करें। हे भगवन् ! आप परम गुरु हैं, आपके चरण-कमलोंकी छाया जो संसारके अनेक परिश्रमोंका नाश करने वाली है, वह हम सबने उसी छायाका आश्रय लिया है ॥४३॥ हे ईश ! त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुर का आप संहार शीघ्र ही करें। इस असुरने त्रिलोकीको ग्रसित किया। हे प्रभो ! दुष्टने हमारे अस्त्र, शस्त्र और तेजको भी ग्रस लिया ॥४४॥ अहो शुद्ध ! सब दुःखके हरनेवाले श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके अर्थ हम नमस्कार करते हैं। उनका हृदयके आकाशमें निवास है, वे बुद्धि इत्यादिके साक्षी हैं, सदा आनंदमय हैं, शुद्ध हैं, उनका यश रुचिर है, आदिरहित हैं, साधु लोग उनकी सेवा करते हैं और वे संसाररूप मार्गमें सदा वर्तमान रहते हैं जो पुरुष इनकी शरण लेता है, वह उसके अर्थ संसारके अन्तमें उत्तम गतिके स्वरूप हो जाते हैं, इस कारण वे सब दुःखोंके हरण करनेवाले हैं, "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इस प्रकार निरुक्ति है॥४५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब देवता लोगोंने इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् हरि अत्यन्त संतुष्ट हो उनसे वक्ष्यमाण वचन बोले॥४६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे सुरश्रेष्ठगण ! हमारे स्तोत्रसे युक्त तुम्हारे ज्ञानसे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्तोत्रके साथ ज्ञानमें पुरुषकी आत्माका ऐश्वर्य अर्थात संसारकी असारताका स्मरण होगा और मुझमें एकान्तकी भक्ति उत्पन्न हो जायगी॥४७॥ हे विबुधश्रेष्ठ ! हमारे प्रसन्न हो जानेपर फिर भक्तोंको कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं होती अर्थात् सब ही वस्तु प्राप्त हो जाती है, शेष कुछ प्राप्त करनेको नहीं रहती, इस कारण तत्त्वज्ञानी पुरुष हमको ही एकान्त भावसे अपना चित्त समर्पण कर मतवाले हो जाते हैं और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करते ॥ ४८ ॥ हे वत्सगण ! जो पुरुष विषयमें तत्त्वोंको देखता है, वह अतिकृपण है, अतः वह अपनी भलाईको नहीं जानता, इसलिये विषयमें जो उसकी इच्छा है, उसका पूर्ण कर देना दयावान् पुरुषको उचित नहीं वरन् उसके ही समान अज्ञानी पुरुष उसको पूर्ण कर दिया करते हैं॥४९॥ और जो विद्वान् हैं अपने भले बुरेको जानते हैं वे कभी अज्ञानीको प्रवृत्ति-मार्गका उपदेश नहीं कर सकते क्योंकि रोगीके चाहनेपर भी भला वैद्य क्या उसको अपथ्य दे सकता है ? अर्थात् नहीं दे सकता ॥५०॥ हे राजन् ! इस प्रकार तत्त्व-कथनसे अनौचित्य हरण करके

इन्द्रका अभिप्राय जानकर वे भगवान् कहने लगे, कि हे इन्द्र ! तुम इस समय अपने स्थानको जाओ, तुम्हारा मङ्गल होगा। दधीचि ऋषिका शरीर विद्या, व्रत और तपस्या करनेसे अतिदृढ़ हो गया, जाकर तुम उनके शरीरको मांगो, अब विलम्ब करनेका अवसर नहीं है, शीघ्र ही जाओ ॥५१॥ हे देवेन्द्र ! वह मुनि अध्यात्मविद्यामें अतिशय बलवान् हैं, वह शुद्ध ब्रह्मको जानकर दोनों अश्विनीकुमारोंको वह विद्या दान किया, जो ब्रह्म अश्वके शिरद्वारा कहा गया था, इस कारणसे अश्वशिरा नामक प्रसिद्ध हुआ है, इसी विद्यासे अश्विनीकुमारोंको जीवन्मुक्तिका लाभ हुआ था, इस विषयमें यह प्रसिद्ध इतिहास है कि "अश्विनीकुमार दधीचि मुनिको ब्रह्म-विद्यामें निपुण व अर्थवक्ता श्रवण कर उनके निकट जाकर बोले कि हे भगवन् ! आप जिस विद्यामें विशारद हुए हैं वही विद्या आप कृपापूर्वक हम लोगोंको भी पढ़ाइये, जब अश्विनीकुमारोंने यह प्रार्थना की, तब इन मुनिने उत्तर दिया कि इस समय हम भगवत्-कर्म करनेमें स्थित हैं, अब जाओ फिर आना, तब पढ़ायेंगे, जैसे ही कि अश्विनीकुमार आश्रमसे बाहर आये, वैसे ही इंद्रने ऋषिके निकट पहुँचकर कहा–हे मुने ! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, वैद्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश न देना चाहिये, इस कारणसे आप यह विद्या उन्हें न बतायें। यदि हमारे वचनोंका निरादर कर यह विद्या उन्हें बताइयेगा, तो निश्चय ही हम आपका शिर काट लेंगे, यह कह कर इन्द्र चले गये। फिर बहुत शीघ्र अश्विनीकुमार विद्यार्थी होकर इन दधीचिके आश्रममें आये और इनके मुखसे इन्द्रकी कहीं हुई वार्ता सुनकर बोले–कि हम पहले आपका यह शिर पलटकर अश्वका मस्तक धड़पर जोड़ देते हैं, तब आप इस मुखसे हमको ब्रह्म विद्याका उपदेश दीजिये; जब इन्द्र आकर आपका यह शिर काट डालेगा, तब फिर आकर हम आपका यह निज मस्तक आपके धड़पर लगा देंगे और फिर आपको इस विद्या पढ़ानेकी गुरुदक्षिणा दी जायगी। दधीचि मुनिने यह वार्ता सुनकर अश्विनीकुमारको अश्वमस्तकसे प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्याका उपदेश किया था, इस कारणसे यह विद्या अश्वशिरा नामसे प्रसिद्ध हुई"॥५२॥ हे इंद्र ! दधीचि मुनिको मेरी आत्माका श्रीनारायण कवच प्राप्त हुआ और उन्होंने ही त्वष्टाको यह कवच पढ़ाया, त्वष्टासे यह कवच विश्वरूपको प्राप्त हुआ और विश्वरूपने यह कवच तुमको दिया है। इस कारण दधिचि मुनिका गात्र नारायण कवचके प्रभावसे अति दृढ़ है, अतः तुम लोग जाकर उनके अङ्गकी हड्डी मांगो। हे देवेन्द्र ! यह देह सबको ही अत्यन्त प्रिय होती है, फिर यह मुनि इस देहको क्यों देंगे ? श्रीभगवान् कहने लगे कि इस प्रकारकी शंका तुम लोग मत करो क्योंकि वे परम धर्मज्ञ हैं, तुम्हारे ऊपर विशेष करके अश्विनीकुमारके मांगनेसे शिष्यकी प्रीतिके वश होकर उसी समय वह अपना शरीर दे देंगे, उस शरीरकी अस्थिसे विश्वकर्माजी जो आयुध बनायेंगे, वह श्रेष्ठ आयुध बन जायगा अर्थात् वज्र हो जायगा ॥५३॥५४॥ तुम हमारे तेजसे बढ़कर इस शस्त्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट डालना, हे देवगण ! जब यह दानव मर जायगा, तब तुम फिर अपने तेज अस्त्र और सम्पदाको प्राप्त होगे ॥५५॥ यह असुर बड़े आकार वाला त्रिभुवनको ग्रास करनेवाला तुमको ग्रास कर जायगा, ऐसी शंका तुम मत करना; क्योंकि जो पुरुष हमारे भक्त हैं, उनकी हिंसा करनेको कोई भी सामर्थ्य नहीं रखता, तुम बहुत ही शीघ्र अपना मङ्गल देख पाओगे ॥ ५६ ॥

भजन

जो कोई चित्तसे मोहिं न बिसारे मैं न बिसारूं प्रण है यही मेरा
धर्मप्रिय हो धर्म बढ़ाऊँ सफल कार्य कर अर्थ बताऊं,
मुक्ति चाहे तो पार लगाऊं छिन पलमाहि न लागत बेरा ॥
रोग हरूं चिन्ता सब टारूं अभय करूं शत्रुनको मारूं,
अचल भक्त जन बेगि उबारूं सेवा करूं आप बन चेरा ।
मेरा नाम भक्त-सुखदायक सदा विपतिमें होत सहायक,
जो कोइ रटत कृष्ण यदुनायक ताके हृदय करत नित डेरा ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते षष्ठस्कन्धे इन्द्रादिदेवकृतगद्यात्मकस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–मुनि दधीचिकी अस्थिको, रचकर वज्र कठोर ।
वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! विश्वभावन भगवान् इन्द्रको इस प्रकारकी आज्ञा देकर दर्शन करनेवाले देवताओंके सामने ही अन्तर्धान हो गये॥१॥उसके पीछे देवता लोग महान् आथर्वण दधीचि मुनिके निकट जाकर उनके शरीरको मांगने लगे। हे भागवत ! देवता लोगोंके मुखसे इस ऋषिको धर्म सुननेकी बड़ी अभिलाषा थी, इसलिये मन ही मन आनंदित हो हँसकर बोले ॥२॥ हे वृन्दारकवृंद ! शरीरधारियोंको मारनेपर जो दुःख होता है, वह हम जानते हैं, उसको तुम नहीं जानते,हे सुरगण! मृत्युकी पीड़ा अत्यन्त कठिन होती है,वह चेतनाका नाश कर देती है ॥३॥ जो जीव जीवित रहनेकी इच्छा करते हैं, उनको उनका शरीर अति प्यारा होता है, यदि तुम लोग कहो कि हम तुम्हारा देह नहीं चाहते, वरन् हम लोगोंके मुखसे भगवान् तुम्हारे शरीरको मांगते हैं, इसका उत्तर यह है कि अपनी प्यारी देहको भगवान् विष्णुके मांगनेपर भी कौन दे सकता है ? ॥४॥ दधीचि मुनिके यह वचन सुनकर देवता लोग बोले कि हे ब्रह्मन् ! जो महापुरुष आप सरीखे दयावान् हैं, पुण्यवान् लोग सदा जिनके कर्मोंकी बड़ाई किया करते हैं, वे लोग परोपकारके लिये कौनसी वस्तुको नहीं दे सकते ? ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह ठीक है कि स्वार्थपर लोग दूसरेके क्लेशका विचार नहीं करते, परन्तु ऐसे स्थानपर हमारा यह कहना है कि याचक पुरुष यदि पराया दुःख समझ सके तो भी वह जिस प्रकार मांगना नहीं छोड़ता, वैसे दान देनेमें समर्थ पुरुष भी दूसरेका कष्ट समझकर "ना" नहीं कह सकता अर्थात् हम लोग जिस प्रकार स्वार्थवश होनेसे आपके कष्टकी ओर नहीं देखते, आप भी वैसे ही सूखा उत्तर देकर हम लोगोंकी उस विपत्तिको नहीं समझते ॥ ६ ॥ वे महात्मा ऋषि विनय करके बोले कि हे देवगण ! आप लोगोंसे धर्म सुनने की कामनासे हमने ऐसा कहा था, यद्यपि हमारा यह देह प्यारा है, तो भी एक दिन यह अवश्य ही हमको छोड़कर चला जायगा, फिर जब कि आप लोग हमसे इस देहको मांगते हैं, तब तो हम अभी इसका आपके लिये त्याग किये देते हैं ॥७॥ हे नाथगण ! यह देह नित्य नहीं है, इस शरीरसे सब प्राणियोंके ऊपर दया करके जो पुरुष धर्म और यश बटोरनेकी चेष्टा नहीं करता, उसके लिये अचे-

तन स्थावर तक भी शोक किये करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभुवर्ग ! जो महात्मा स्वयं प्राणियोंके शोकमें शोकाकुल और उनके हर्षमें हर्षित होते हैं, उनके वह सब अव्यय धर्म-पुण्यवान् लोकोंमें उन धर्मीपुरुषोंकी सेवा किया करते हैं ॥ ९ ॥ अहो ! जो यह धन, पुत्र, शरीरादि पदार्थ दृष्टि आते हैं, यह सब कुत्ते और गीदड़ादिके भोजन हैं, यह स्वार्थके कुछ भी उपयोगी नहीं और स्थायी भी नहीं, वरन् क्षणमें नष्ट हो जानेवाले हैं और क्षण-क्षणमें नष्ट होते जाते हैं, फिर इन सबसे परोपकार न करना कैसे नष्ट और कैसे कृपणपनका काम है ? ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! मुनिवर दधीचिने ऐसा निश्चय करके परब्रह्मके साथ अपनी आत्माको मिलाकर शरीरको छोड़ दिया ॥११॥ उनकी इन्द्रिय, प्राण, मन, और बुद्धि यह सब वशमें थीं और यह आप ही आप तत्त्वोंको देखते थे इसलिये इनके सब बंधन छूट गये थे, इस कारण परम योगका अवलम्बन करनेसे उन्होंने अपने शरीरका छूटना भी तो नहीं जाना॥१२॥फिर पीछे इन मुनिके शरीरकी अस्थी लेकर विश्वकर्माने वज्र बना दिया। श्रीभगवान्के तेजसे युक्त उस वज्रको धारण करके इन्द्र उठा ॥१३॥ और गजेन्द्र (ऐरावत)ःकी पीठपर शोभायमान होने लगा, देवतागण चारों ओरसे उसे घेरकर खड़े हो गये और सब ऋषिगण स्तुति करने लगे, जिससे कि समस्त त्रिभुवन मानो हर्षयुक्त हो गया ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे देवराज इन्द्र वृत्रासुरके ऊपर दौड़े। यद्यपि वह वृत्रासुर असुरसेनाके यूथपोंसे घेरा हुआ था, तो भी अतिशय क्रोध करके रुद्रजीने जिस प्रकार अन्तकासुरके ऊपर चढ़ाई की थी, वैसेही सुरराज इंद्रने बलपूर्वक इस असुरपर चढ़ाई की ॥१५॥ फिर असुरोंके साथ देवता लोगोंका परस्पर संग्राम होने लगा। हे राजन् ! सतयुगके अंत और त्रेताके आरंभमें नर्मदा नदीके किनारे संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इस युद्धमें ८ वसु, ११ रुद्र, १२ सूर्य, २ अश्विनीकुमार, ३ पितृगण, ३ अग्नि, ४९ पवन, ऋभु साध्य और विश्वेदेवादिके साथ ॥१७॥वज्रधारी इन्द्र अपनी श्रीसे अधिक शोभायमान हुए कि जिसको शत्रुलोग वृत्र इत्यादि असुरगण न सहन कर सकें॥१८॥और नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख॥१९॥पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल इत्यादि दैत्य और सहस्र-सहस्र यक्ष, दानव खड़े होकर॥२०॥ और इल्वल, बल्वल, दंदशूक, वृषध्वज, कालनाभ, महानाथ, भूतसंतापन, वृक ॥ २१ ॥ सुमाली, माली, इत्यादि असुरगण सुवर्णके वख्तर पहिने सिंहनाद करते हुए इन्द्रकी सेनाको जो कि मृत्युसे भी दुरासन थी, उनको रोककर मार डालनेका विचार करते हुए अतिशय मदोन्मत्त होनेके कारण उन राक्षसोंको कुछ भी भय या भ्रम नहीं हुआ॥२२॥अनेक गदा, परिघ, बाण, पाश, मुद्गर, तोमर॥२३॥ शूल, फरसे, खड्ग, शतघ्नी, भुशुण्डी इत्यादि अस्त्र-शस्त्र वर्षाकर देवता लोगोंको सब प्रकारसे और सब ओरसे घेरकर लड़ने लगे ॥२४॥ बाण जालसे सब ओरसे ढके हुए देवता अदृश्य हो गये, बाणोंपर बाण गिरने लगे, राक्षसोंके चलाये हुए बाणोंसे देवता लोग ऐसे ढक गये जैसे

---

१. शंका–विश्वरूपने देवताओंसे कहा कि, ऐसे प्राणीको वृक्ष शोच करते हैं कि इसकी सुन्दर गति किस प्रकारसे होगी, यह बड़ा दुष्ट है, इसमें मुझको यह बड़ी भारी शंका है कि वृक्ष तो जड़ पदार्थ हैं, उनको किस प्रकारका शोक संताप ? वृक्षोंको तो किसी प्रकारका दुःख-सुख हो ही नहीं सकता और जो हो भी तो वृक्ष मनुष्यका सोच क्यों करेंगे ।

उत्तर–"ससोच्यः स्थावरैरपि" इस श्लोकमें व्यासजीने वृक्षोंको स्थावर नहीं कहा था, भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें जो मुनिलोग नित्यप्रति मनको स्थित करते थे उनको व्यासजीने स्थावर कहा था; ऐसे मुनिजनोंने विश्वरूपसे कहा और वही मुनिलोग शोच करते थे ।

आकाशमण्डलमें बादलोंसे तारे छिप जाते हैं ॥ २५ ॥ परंतु असुर लोगोंके अस्त्र-शस्त्र देवसेनाके ऊपर गिर नहीं सके, क्योंकि लघु हस्तसे देवता लोगोंने आकाशमें ही उनके सहस्त्रों टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥२६॥ जब असुर लोगोंके सबही अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये तब वे वृक्ष पर्वतोंके शिखर और पत्थरोंको लेकर देवताओं पर वर्षाने लगे परन्तु प्रथमकी नाईं देवता लोगोंने इन सबको काटकूट डाला॥२७॥ इस प्रकार अनेक-अनेक अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे भी देवसेनाको वृक्ष पत्थर तथा विविध पर्वतोंके शिखर चलानेसे भी उनको घावरहित देख वृत्रासुरकी सेनाके असुरगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥२८॥ इसके पीछे फिर भी उन्होंने देवता-लोगोंके विरुद्ध जो-जो करनेका यत्न किया, वह देवता लोगोंके ऊपर होनेसे वह सब ही यत्न उसके निष्फल हुए, जैसे छोटे लोगोंके कहे कल्याणकर कठोर वचन बड़े पुरुषको क्षोभदायक नहीं होते, वैसे ही दैत्य लोगोंकी चेष्टासे देवता लोगोंको कुछ भी ग्लानि नहीं हुई ॥ २९ ॥ हे राजन् ! असुर लोगोंकी भक्ति भगवान्में नहीं थी, इस कारण युद्धमें उनका समस्त दर्प बहुत शीघ्र टूट गया और उनका धैर्य देवता लोगों द्वारा ग्रहण कर लिया गया, इस कारण यद्यपि वे बड़े भारी योधा थे, तो भी समरके प्रारम्भ होते ही अपने स्वामीको परित्यागकर वह अपने छुटकारेका मार्ग देखने लगे ॥ ३० ॥ वृत्रासुर स्वयं ही महावीर था, जब इसने देखा कि हमारे अनुचर असुरलोग भागनेको तैयार हो रहे हैं और समर त्यागकर भागते हुए देखा, तब वृत्रासुर हँसकर कहने लगा ॥३१॥ उसके वह सब ही वचन ठीक-ठीक इस अवसरके योग्य और मनस्वी लोगोंके लिये मनोहर थे, उसने कहा-हे विप्रचित्ति ! हे नमुचि ! हे पुलोमन् ! हे मय ! हे अनर्वन् ! हे शंबर ! हमारे वचन सुनो ॥ ३२ ॥ जन्म लेनेसे मृत्यु निश्चय ही होती है किसी प्रकारसे भी वह मृत्यु टल नहीं सकती। इससे यदि उस मृत्युसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्ग होनेकी संभावना हो तो कौन विद्वान् ऐसी मृत्युको न चाहेगा ? ॥ ३३ ॥ हे वीरगण ! इस लोकमें दो प्रकारकी मृत्यु मिलनी अतिदुर्लभ है, ऐसी मृत्यु हरेकके भाग्यमें कहां, वे दो मृत्यु यह हैं-प्रणवके द्वारा योगधारणा करके शरीरका छोड़ देना और दूसरी सेनाके आगे होकर संग्रामभूमिमें परमानंदसे प्राण त्यागकर देना ॥ ३४ ॥ इसलिये धर्म शास्त्रमें भी कहा है कि योगयुक्त, परिव्राजक और सम्मुख युद्धमें शरीर देनेवाला वीर यह दोनों पुरुष सूर्यमण्डलको भेदन करके गमन करते हैं। तथाच स्मृतिः-"द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राड् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हतः-" यहां पर सवैया लिखते हैं-

सवैया-इन्द्रिन जीतिकै योग-विधानसों, छोड़त देह हरी गुण गावत।
कै रणमें तनु लोभको छोड़िकै, प्राण तजै अरु सन्मुख धावत ॥
जय रघुराज कहैं दोउ भांति, जो त्यागत देह न मोह बढ़ावत।
ते रविमण्डल भेदि हरीपुर, जात चले जग फेरि न आवत ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे वृत्रयुद्धे असुरपराजयवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा-वृत्रासुरसे इन्द्रने, कियो युद्ध अति घोर।
भक्ति ज्ञान चर्चा करी, ग्यारहमें रण छोर ॥

इतनी कथा वर्णन कर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! असुरोंके स्वामी वृत्रासुरने इस प्रकारके धर्मयुक्त वचन कहे, परन्तु असुर लोगोंने उनकी एक न सुनी, किन्तु त्रस्त होकर घबड़ाकर सब भागने ही लगे ॥ १ ॥ इसके पीछे देवता लोग उनको खदेड़ रहे थे कि जिससे असुरलोगोंकी सेना अनाथके समान छिन्न-भिन्न हो रही थी, क्योंकि उस समय देवतालोगोंको काल अनुकूल था ॥ २ ॥ यह देखकर असुर श्रेष्ठ वृत्रासुरका अंतःकरण अत्यंत संतापित हुआ। इन्द्रका शत्रु वृत्रासुर इन सब असुरोंके सामने इस अवस्थाको देख सहन करनेको समर्थ न हुआ, तब वह भयंकर क्रोध करके बलपूर्वक देवताओंको रोक और उनकी निंदा करके कहने लगा ॥ ३ ॥ हे देवगण! तुमलोग माताके विष्ठामात्र हो, वृथा क्यों दौड़ते हो? भागते हुए दैत्योंके मार डालनेसे क्या होगा? इसमें धर्म व यश किसीकी भी संभावना नहीं, क्योंकि जो लोग अपने आपको शूर कहकर गर्व करते हैं, उसको डरे हुएको मारनेकी अभिलाषा स्वर्ग नहीं देगी ॥४॥ हे क्षुद्र देवगण! यदि तुम लोगोंमें श्रद्धा हो व तुम्हारे हृदयमें धैर्य हो और यदि तुम लोगोंने इस लोकमें भोग करना व लालच छोड़ दिया हो तो हमारे आगे रणमें क्षणभर खड़े होकर देखो ॥ ५ ॥ हे राजन्! इस प्रकारसे क्रोधित होकर अपने कराल शरीरसे वैरी देवता लोगोंको डराते हुए उस महाबलवान् असुरने ऐसा घोर सिंहनाद किया कि जिससे त्रिलोकी अचेतसी हो गयी ॥ ६ ॥ हे महाराज! वृत्रासुरके सिंहनादसे सब ही देवता वज्रसे मारे हुएके समान मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े। महाअसुर वृत्रासुर संग्राममें दुर्म्मद होकर सुरसेनाको आतुरतासे गिरते और भयके मारे उनके नेत्र बन्द होते देखकर भी दयावान् नहीं हुआ, वरन् जिस प्रकार मदमाता यूथपति गज अपने चरणोंसे कमलके वनको मसलता है, वैसे ही शूल उठाकर पृथ्वीको तेजसे कम्पाता हुआ दोनों चरणोंसे उस गिरी हुई देवसेनाको मसलने लगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस असुरका ऐसा आचरण देखकर वज्रधारी देवराज इन्द्रका क्रोध प्रज्वलित हुआ, फिर इन्द्रने इस अपने शत्रु वृत्रासुरको अपनी ओर आता हुआ देखकर उसके ऊपर एक बड़ी भारी गदा चलायी॥९॥हे राजन्! वृत्रासुरका बल साधारण नहीं था, कहीं गदासे उसको भय हो सकता है? इन्द्रकी गदाको गिरते-गिरते उसने लीलासे ही अपने बांये हाथसे पकड़ लिया और महाक्रोध कर ऊँचा शिर उठाकर गर्जकर उसी गदाको देवराजके वाहन ऐरावत महागजके मस्तकमें मारा। यह देखकर विपक्षके लोग भी वृत्रासुरकी इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रका ऐरावत हाथी वृत्रासुरकी गदासे घायल होकर वज्रसे मारे हुए पर्वतके समान घूमने लगा और अत्यन्त आर्त होकर मुख टूट जानेसे रुधिर वमन करते-करते इन्द्रसहित संग्रामभूमिसे सात धनुष पीछे हट गया ॥ ११ ॥ वृत्रासुर अति महात्मा था इस कारण इन्द्रका वाहन जब व्याकुल हो गया और चित्त भी उसका ठिकाने नहीं रहा तब फिर वृत्रासुरने उसके ऊपर

१. शंका–श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्से कहा कि, हे राजन्! वृत्रासुरके गंभीर शब्दोंसे सब लोग व्याकुल हो गये, यह बात सुनकर बड़ा संदेह होता है, क्योंकि लोग तो बहुत हैं, वृत्रासुरने ऐसा कैसा शब्द किया कि जिससे सब लोक व्याकुल हो गये यह बड़ी भारी शंका है, जो सब लोक शब्दसे व्याकुल हो गये तो किसीमें विष्णु, किसीमें ब्रह्मा, किसीमें शिव, किसीमें सूर्य, किसीमें चन्द्रमा, किसीमें इन्द्रादिक देवता और बड़े-बड़े ऋषि, मुनि महात्मा पुरुष रहते सो यह सब लोक व्याकुल हो गये होंगे ?

उत्तर–लोक शब्द मुनियोंने लोकोंके लिए नहीं कहा है, प्रजा लोगोंको भी मुनि लोग लोक कहते हैं, तब लोकको व्यासजी भी ऐसा कहते हैं कि इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धके समय जो चारों ओर के लोक कहे, सो प्रजालोग सब व्याकुल हो गये, सब लोकोंके लिए व्याकुल होना व्यासजीने नहीं कहा है।

अस्त्र न चलाया, इसलिये देवराज इन्द्र अपने वाहनके घावका स्थान अमृत झरनेवाले अपने हाथसे छूकर उसकी व्यथा दूर करते हुए क्षण भरतक स्थिर रह गये ॥ १२ ॥ हे महीश ! जब वृत्रासुरने देखा कि इन्द्र समर त्याग करके नहीं जाते और फिर समर करनेकी वासनासे खड़े हैं, इस लिये वज्रधारी और अपने भाईके मारनेवाले इस देवताके सब क्रूरकर्म जो कि पापरूप थे, स्मरण करके शोक मोहसे युक्त हो हँसते- हँसते बोला ॥ १३ ॥ वृत्रासुरने कहा, कहो ! ब्रह्मघातकी और विशेष करके अपने गुरु और हमारे भ्राताको मारनेवाले तुम हमारे सम्मुख खड़े हो, यह बड़े ही भाग्यकी बात है। हे प्रधान असत ! तुम्हारा पाषाणतुल्य हृदय शूलसे भेदकर आज हम शीघ्र ही अपने भाईके ऋणसे छूटेंगे, अतः मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ ॥ १४ ॥ अहो ! हमारे जो बड़े भाई विश्वरूप ब्राह्मण आत्मज्ञानी पापरहित दीक्षित होकर यज्ञ कर रहे थे वे तुम्हारे शत्रु नहीं, वरन् परमगुरु थे, करुणासहित होकर स्वर्गकी कामना किये यज्ञ करनेवाला जिस प्रकार यज्ञके पशुओंका शिर काट डालता है, वैसे ही खड्गसे तुमने उन महात्माका मस्तक विश्वासघात करके काट डाला ॥ १५ ॥ निश्चय जाना जाता है कि दया, लज्जा, श्री, कीर्तिने तुम्हारा त्याग किया है, अपने कर्मके दोषसे तुम राक्षसोंके निकट भी तो निंदाके पात्र हुए हो, इसलिये हम इस शूलसे तुम्हारे हृदयको फाड़ेंगे, तुम्हारे इस पापमय शरीरको अग्निको स्पर्श नहीं करेंगे, किंतु गीधगण इसका भक्षण करेंगे ॥ १६ ॥ और दूसरे अज्ञानी देवता जो कि यहांपर आये हैं वे अधम यदि तुम्हारा पक्ष लेकर शस्त्रसे हमारे ऊपर प्रहार करेंगे; तो बड़े तीखे शूलसे इनकी भी गर्दन उड़ाकर हम रुधिरकी धारा बहाकर गणोंके सहित भूतनाथ (शिवजी) का यज्ञ करेंगे ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! अथवा हठ करके जो तुम ही इस वज्रसे हमारे शिरको काट डालोगे तो भी कुछ हानि नहीं, हम कर्मबन्धनसे छूटकर अपनी देहसे सब प्राणियोंको बलि देकर धीर जनोंकी गतिको प्राप्त होंगे ॥ १८ ॥ फिर ज्ञानके उदय होनेसे जीनेकी अपेक्षा मरनेको ही श्रेष्ठ जान वृत्रासुर बोला कि हे सुरेश ! हम तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामने खड़े हैं, सो हमारे ऊपर तुम अपना वज्र क्यों नहीं चलाते हो ? हे देवेन्द्र ! यह वज्र अमोघ है,तुम ऐसा संशय मत करो कि गदाके समान यह भी निष्फल हो जायगा कि जैसा कृपणसे किसी प्रकारकी वाञ्छा करना निष्फल होता है ❋ हे शत्रु ! तुम्हारा यह वज्र भगवान् हरिके तेज और दधीचि मुनिकी तपस्यासे

---

* दृष्टांत–" एक कृपणकी नांव जब गंगाजीमें डूबने लगी, तब उसने कहा कि हे जगदम्बा ! जो इस विपत्तिसे छूट जाऊंगा तो (१००) सौ ब्राह्मणोंको भली–भांति भोजन कराकर दक्षिणा दूंगा। ईश्वरकी कृपा व गंगाजीकी महिमासे ज्यों–ज्यों नाव भंवरसे निकल किनारे लगती गयी, त्यों–त्यों कृपणने संक्षेप करते–करते केवल एक ब्राह्मणके भोजन करानेको स्वीकार किया। जब घर आया तो हरेक ब्राह्मणसे पूछने लगा कि,महाराज ! आप कितना भोजन करते हैं, कोई पांचसेर कोई ढाईसेर मोहन भोगकी क्षुधा बताने लगा। इन सब ब्राह्मणोंको उचित न जान यह कृपण एक महा दुबले-पतले दीन–हीन ब्राह्मणके निकट पहुंच कर पूछने लगा कि हे विप्र ! आप कितना भोजन करते हैं। विप्रने कहा–आधासेर आटा, आधापाव दाल, दो सांभरकी कंकडी, बस और कुछ नहीं। यह सुनतेही प्रसन्नतापूर्वक कृपण इसको अपने घर लेजाकर अपनी स्त्रीसे यह कहकर चला गया कि इस ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करा देना, उस स्त्रीने ब्राह्मण देवतासे पूछा कि महाराज ! क्या भोजन बना दूं ? तब वह ब्राह्मण बोला कि १० दस सेर मोहनभोग कि जिसमें एक-एक ग्रासपर एक- एक अशरफीकी दक्षिणा देनी होगी, स्त्रीने कहा एक-एक अशरफी क्या दो-दो अशरफी लीजिये। इस प्रकार इसने कोई दो सहस्र अशरफीकी दक्षिणा लेकर घर आय अपनी स्त्रीसे कहा कि कोई हमें पुकारने आये तो कह देना, कि किसी ऐसे कुमार्गीके यहां भोजन करने गये कि जहां उसने भोजनमें विष भक्षण करायां, जिससे शरीर छूट गया। जब कृपण घर आया और अपनी स्त्रीसे सब वृत्तान्त सुना तब बोला कि 'वाहरे सेठानी। घरको नाश करे छे' यह कह रोता–बिलपता, कलपता उठता, बैठता हुआ ब्राह्मणके स्थानपर आया और वहां पर ब्राह्मणीको रोदन करते देख पूछा क्यों रोती हो ? ब्राह्मणी बोली कि, आज हमारे स्वामी न जाने कहांसे भोजन कर आये जो मृत्युके वश हो गये ? यह सुन डरके मारे और २०००) रुपये उसको घरसे लेकर दे आया, कृपण वाञ्छा करनेसे नहीं देता, किंतु भगवान्‌की कृपासे ही देता है ? "

अत्यन्त तीक्ष्ण हो गया है। तुम वज्रसे शत्रुका वध करो, तुम विष्णुके भेजे हुए समरमें आये हो, इसलिये तुम्हारे पराजित होनेकी शंका नहीं, क्योंकि जहां नारायण वहीं जय, श्री और सकल गुण वर्त्तमान रहते हैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र! ऐसी भी शंका मत करो कि तुम्हारे वज्रकी चोटसे हमको कुछ पीड़ा होगी, हमारे प्रभु शेषजीने हमको जिस प्रकारका उपदेश किया है, हम वैसे ही उनके चरणारविंदोंमें चित्त लगाकर देहको त्याग योगी पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होंगे, इस तुम्हारे वज्रसे हमारा अपकार न होगा। वरन् विषय-भोगरूप ग्राम्य-सुखकी फांसी टूट जायगी ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र! हम भी भगवान्‌के भृत्य हैं, तुम ऐसी शंका भी मत करना कि; वे हमको स्वर्गादि सम्पत्ति देंगे, क्योंकि जो पुरुष एकांतभावसे भगवान्‌में ही अपने चित्तको लगाते हैं, और जिससे कि वे उनके ही जन कहलाकर गिने जाते हैं, उनको श्रीनारायण स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोकको सम्पत्ति नहीं देते क्योंकि इन सम्पत्तियोंसे उद्वेग, मनोव्यथा, मतवालापन, झगड़ा, विपत्ति और अनेक क्लेश हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ यदि कहो कि फिर वह भक्तजनोंका क्या विधान करते हैं? वह हम कहते हैं, श्रवण करो। हमारे प्रभु भगवान् अपने भक्तके लिये धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्ग विषयक आयासका नाश विष्णुने किया है, हे इन्द्र! इस आयाशकी शांतिसे ही भगवान्‌की प्रसन्नताका अनुमान कर लिया जाता है और किसी प्रकारसे भी वह प्राप्त नहीं हो सकता। अकिंचन (भिक्षुक) जन सरलतासे इस प्रकारका भगवत्प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं। और दूसरे जन इस प्रसादको नहीं पा सकते उनके लिये यह अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २३ ॥ हे कौरवराज! वृत्रासुर इस प्रकार इन्द्रके निकट अपने अभिप्रायको प्रकट करके भगवान्‌को पुकारकर प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवन्! तुम्हारे ही चरण कमलका जिनको आश्रय है, वह मैं उन दासोंका भी दास हूं। मेरा मन आपके गुणोंका स्मरण करे और हमारे वाक्य तुम्हारा गुण कीर्तन किया करें ॥ २४ ॥ हे देव! आपके विना स्वर्गपृष्ठ क्या, सार्वभौम क्या, पृथ्वीका आधिपत्य क्या, योगसिद्धि क्या, अपुनर्भव अर्थात् मुक्ति, आपके वियोगमें किसीकी भी चाहना मैं नहीं रखता ॥ २५ ॥ हे अरविंदनेत्र! जब कि पंख न जमे हुए पक्षियोंके बच्चे क्षुधा इत्यादिसे पीड़ित होकर जननीके देखनेकी इच्छा करते हैं, जैसे भूखसे आर्त होकर बँधे हुए बछड़े थनोंके देखनेके लिये व्यग्र होते हैं, जिस प्रकार काम-बाणसे व्याकुल हुई प्यारी दूर देशमें गये हुए अपने प्यारेके देखनेकी इच्छा करती है, वैसे ही त्रिविध तापसे सन्तापित हुआ मेरा मन सब कार्योंमें बँधा हुआ कामादिसे पीड़ित होनेके कारण आपके ही देखनेकी अभिलाषा करता है ॥ २६ ॥ इस लिये हे प्रभो! मैं अपने कर्मोंमें बँध कर संसार-चक्रमें घूम रहा हूं, इस क्लेशकी शांतिके लिये तुम्हारे भक्त जनोंके साथ मेरी मित्रता हो जाय। भगवन्! आपकी मायाके वश इस समय जो पुत्र, कलत्र, देह, गेह आदिमें मेरा चित्त आसक्त हुआ है, वह आप ऐसी कृपा कीजिये, कि जिससे फिर इन बातोंमें मेरा चित्त आसक्त न हो, यह मेरी इच्छा है–

भजन (राग कालिंगडा)

तुम विन कोई न मेरो प्रभुजी, तुम विन कोई न मेरो रे।
कृपासिन्धु सेवक सुखदायक, मम उर करो बसेरो रे॥

तात मात औ भ्रात तुम्ही हो, निज सेवकको हेरो रे।
काम क्रोध मद लोभ मोहने, आन कियो उर डेरो रे।
ऐसे प्रबल दुष्टगणहूसों, को कर सकै निवेरो रे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे वृत्रस्तोत्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–वृत्रासुरसे हारकर, बहुरि भयो उत्साह।
महायुद्ध कर इन्द्रने, मारो निशिचर–नाह ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे परीक्षित् ! वृत्रासुर इस प्रकार समर क्षेत्रमें अपने देहके त्यागनेकी इच्छा करता हुआ विजयसे मृत्यु होना श्रेष्ठ मान शूल ग्रहण कर इन्द्रके ऊपर ऐसे दौड़ा जैसे महाप्रलयके जलमें मधुकैटभ दैत्य भगवान् विष्णुजी पर दौड़ा था ॥ १ ॥ फिर पीछे जिस शूलके अस्त्रकी अनी प्रलय कालके अग्निके समान भयंकर थी, उस शूलको अति वेगसे घुमाकर वृत्रासुरने इंद्रके ऊपर चलाया, तत्पश्चात् सिंहनाद कर क्रोधमें भरकर बोला–कि अरे पापी ! अब तू मेरे हाथसे किसी प्रकार नहीं बच सकता, आज तुझे अवश्य यमपुर भेजूंगा, इस प्रकारके कटु वचन कहने लगा ॥ २ ॥ हे राजन् ! वृत्रासुरका यह शूल उल्कापात ग्रह और उलूकके समान देखनेमें अयोग्य घूमता हुआ चला आता था, तथापि उसको देखकर देवराज इन्द्र कुछ भी व्याकुल न हुए। और उन्होंने शतधारवाले वज्रसे सरलता पूर्वक उसको काट डाला और उसके साथ ही साथ एक भुजा इस असुरकी जो कि सर्पाकार थी काटकर गिरा दी ॥ ३ ॥ जब एक भुजा कट गयी तब वृत्रासुरने महाक्रोध कर दूसरी भुजामें परिघ धारण कर वज्रधारी इन्द्रकी ओर झपटा और वह परिघ जाकर गजेन्द्रकी और इन्द्रकी ठोड़ीमें मारी, जिससे देवराज इन्द्रका हाथी ताड़ित हुआ और इन्द्रके हाथसे भी वज्र छूटकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ४ ॥ हे महाराज ! वृत्रासुरका यह महाअद्भुत कर्म देखकर सुर, असुर, सिद्ध चारण और गंधर्वगण अनेक प्रकारसे प्रशंसा करने लगे, परन्तु इन्द्रके ऊपर बड़ी विपत्ति पड़ी देख बहुत ही शीघ्र सब ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हाथका वज्र गिर जानेसे इन्द्र लज्जित होकर अपने शत्रुके सम्मुख फिर उस वज्रको नहीं उठा सका, तब वृत्रासुरने हँसकर इन्द्रसे कहा कि हे इन्द्र ! वज्र उठाकर अपने शत्रुका वध क्यों नहीं करते ? यह विषाद करनेका समय नहीं है ॥ ॥ ६ ॥ हे पुरंदर ! उत्पत्ति, स्थित और प्रलय एक सर्वज्ञ सनातन आदि पुरुषके सिवाय और दूसरेके हाथ नहीं है क्योंकि सर्वत्र सदा विजयी तो केवल भगवान् ही हैं। पराधीनात्मा आततायी युयुत्सु पुरुषोंकी सदा जय नहीं होती है, कभी जय होती है, कभी पराजय होती है, फिर तुम शोक किसलिये करते हो ? ॥ ७ ॥ हे देवराज ! लोकपाल सहित यह समस्त लोक जिसके जालसे बँधे हुए पक्षियोंके समान अवश होकर अपने-अपने व्यापारमें चेष्टा करते हैं, परन्तु जय-अजयका कारण वह कालरूप परमात्मा ही है ॥ ८ ॥ हे देवराज ! वे भगवान् ही सामर्थ्य, साहस, बल, प्राण अमृत और मृत्युके स्वरूप हैं। परन्तु कैसा आश्चर्य है ? कि लोग उनको जयादिका कारण न जानकर जड़रूप वर्त्तमान जो यह देह है, इसको ही सबका कारण मानते हैं ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! जिस प्रकार काठकी बनी हुई स्त्री

अथवा जिस प्रकार यंत्रमय मृग पराधीन होकर स्वयं कोई चेष्टा नहीं कर सकते अर्थात् जैसे कोई नचाता है वैसे ही नाचता है, वैसे ही यह सब भूत भगवान्के वशमें हैं, विना भगवान्की इच्छाके कोई कार्य करनेको समर्थ नहीं हो सकता ॥ १० ॥ पुरुष, प्रकृति, अव्यक्त, आत्मा, पंचभूत, इन्द्रियां अन्तःकरण यह सब सृष्टिके आदिमें विना उसकी कृपाके कुछ भी नहीं कर सकते ॥११॥ हे देवराज ! कोई-कोई पुरुष यह कहा करते हैं कि जीव अपने कर्मोंसे ही सृष्टयादिका हेतु है, यह बात नहीं हो सकती क्योंकि देह किसी प्रकार से स्वतंत्र नहीं है। अविद्वान् पुरुष ही देहको ईश्वर अर्थात् स्वाधीन करके मानते हैं। यदि कहो कि पित्रादिसे सृष्टि और व्याघ्रादिसे विनाश दृष्टि आता है, तो उसका उत्तर यह है कि यह भी परवश है, वरन् भगवान् ही स्वयं पित्रादि भूत सबोंसे सब प्राणियोंकी सृष्टि किया करते हैं और वही व्याघ्रादि भृत्योंसे सब भूतों का ग्रास भी कर जाते हैं॥१२॥ हे देवराज ! तुम हमसे पराजित हुये हो, तुम ऐसा मत समझो कि अब हमारी कभी जय नहीं होगी क्योंकि पुरुषोंकी कीर्ति, श्री, ऐश्वर्य,आयु और आशीष यह सब भयादि कालमें अवश्य ही होते हैं,परन्तु इस तत्त्वविषयमें अनिच्छु होनेसे विपरीत अर्थात् अकीर्ति इत्यादि हुआ करती है ॥१३॥इसलिये हे महेन्द्र ! जब कि सब ही ईश्वरके अधीन हैं, तब इसी कारणसे कीर्ति,अकीर्ति,तप,पराजय, सुख, दुःख और जीवन, मरणमें समान अर्थात् हर्ष-विषादसे शून्य होना उचित है ॥१४॥ हे भगवन् ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण यह तीन मायाके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं। जो पुरुष आत्माको इन तीन गुणोंका साक्षिस्वरूप जानते हैं, वे हर्ष शोकादिमें कभी नहीं बँधते ॥ १५ ॥ हे शक्र ! हर्ष-विषादको दूर करनेके लिये इस समय मैं ही तुम्हारा गुरु होता हूँ। मुझको देखो कि तुमसे मैं हार गया हूँ, और मेरे अस्त्र-शस्त्र भी टूट गये हैं, तो भी तुम्हारे प्राण संहार करनेकी वासनासे यथाशक्ति युद्ध करते ही जाता हूँ ॥१६॥ हे देवराज ! हमारा यह समर द्यूतरूप है। इसमें परस्पर प्राण लगाना ही दांव है, वाण जो चलाते हैं, यही पाशेरूप हैं, वाहनरूप इसकी नरदें (गोट) हैं और पृथ्वीरूप चौपड़ है, इस समय कोई नहीं जान सकता कि इस द्यूतमें किसकी हार और किसकी जीत होगी ? ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वृत्रासुरके निष्कपट वचन सुनकर देवराज इंद्र विस्मित हुये और कपटरहित जानकर उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर विस्मय त्याग और वज्र ग्रहण कर हँसकर बोले ॥१८॥ हे दानव ! तुम सिद्ध हो गए हो अहो ! तुममें इस प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हुई है, इससे जाना जाता है कि सबके अन्तःकरणमें सबके आत्मा और सुहृद जो जगदीश्वर हैं उनकी सेवा तुमने बहुतकी है ॥ १९ ॥ अतएव सब जनोंको मोहनेवाली वैष्णवी मायाको भी तुमने पार पा लिया है, क्योंकि तुममें असुरभाव नहीं पाया जाता, वरन् उसके बदले तुममें वह भाव है जो कि महापुरुषोंके निकट होता है ॥ २० ॥ परन्तु यह अति आश्चर्य की बात है कि तुम रजोगुणी होकर किस प्रकार सत्त्वसंपन्न भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी दृढ़ मति हुई ॥२१॥ जो कुछ हो जब कि सबके मोक्ष देनेवाले भगवान् हरिमें तुम्हारी मति लगी है और जब कि तुमने अमृतसागरमें गोता लगाया है, तब तुच्छ गर्त्तादिके तुल्य स्वर्गादि जो हैं इसमें तुम्हारा कुछ भी प्रयोजन नहीं है,यह हमने निश्चय जान लिया है॥२२॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! धर्म-ज्ञानकी वासनासे इस प्रकार कहते-कहते इंद्र और वृत्रासुर दोनों जनोंमें घोर युद्ध होने लगा, दोनों ही महावीर और महायोद्धा थे, इसलिए किसी पक्षकी ओर

किंसी भांतिसे हानि नहीं पाई गई ॥ २३ ॥ हे राजन्! वह बलवान्, पराक्रमी वृत्रासुर लोहेका बना हुआ घोर परिघ बांयें हाथमें ग्रहण करके इन्द्रके ऊपर चलाया ॥२४॥ परन्तु उसका चलाया हुआ यह परिघ और उसकी यह परिघतुल्य भुजा दोनोंको ही देवराज इंद्रने तेजधारवाले वज्रसे एकही बारमें काट डाला ॥ २५ ॥ जब दोनों भुजाओंकी जड़ कट गई तब उनसे अनिवारित रुधिरकी धारा बहने लगी। तब उस असुरकी ऐसी शोभा हुयी कि मानो इन्द्रके वज्रसे पंख कटा हुआ पर्वत आकाशसे गिरा है ॥ २६ ॥ इसके पीछे वह वृत्रासुर अपनी नीचेकी ठोढ़ी पृथ्वीमें लगाकर ऊपरकी टोड़ी आकाशमें छुवाकर आकाशके समान गम्भीर मुख और सर्पके तुल्य जीभ निकाल ॥ २७ ॥ मृत्युके समान कराल डाढ़ोंसे मानो वह असुर त्रिलोकीको ग्रास करनेके लिये उपस्थित हुआ है और फिर अपने बड़े भारी शरीरके वेगसे मानों पर्वतोंको चलायमान कर देगा, ऐसा प्रतीत होने लगा ॥ २८ ॥ पर्वतराजके समान पादचारी हो पृथ्वीको चूर्ण करता हुआ वज्रधारी पुरन्दरके निकट आकर वह ऐरावत सहित इन्द्रको निगल गया। ॥ २९ ॥ हे राजन्! महा अजगर सर्प जिस प्रकार हाथीको निगल जाता है, वैसे ही यह महाबलशाली महाप्रतापी वृत्रासुर सुरपति इन्द्रको निगल गया ॥ ३० ॥ देवतालोग इंद्रको वृत्रासुरसे ग्रसा हुआ देख भय और वेदनाके मारे पीले पड़ गये और महर्षियोंके साथ "हाय क्या कष्ट है" ऐसा कह कहकर सन्ताप करने लगे। हे राजन्! इन्द्रको वृत्रासुरने निगल लिया और अपने पेटमें डाल लिया, तो भी "नारायण कवच" बांधनेके प्रभावसे और योग मायाके बलसे देवराज इन्द्रकी मृत्यु न हुई ॥ ३१ ॥ एक क्षणभरमें वज्रसे इस असुरकी कोख फाड़कर देवराज इन्द्र निकल गये और अपने तेजसे पर्वतके शृङ्गके समान वृत्रासुरका मस्तक इन्द्रने काट डाला ॥ ३२ ॥ हे राजन्! यद्यपि इन्द्रका यह वज्र अतिशय वेगवान् था, तथापि इस असुरके कंधे काटता यह वज्र सब ओर घुसने लगा और जिस समयको ज्योतिषियोंने वृत्रासुरके मारनेको निर्धारित किया था, उतने ही अहर्गणमें वह सिर उसका कटकर गिरा ॥ ३३ ॥ हे कौरव श्रेष्ठ! घोर वृत्रासुरके मारे जानेपर आकाशमें नगाड़े बजने लगे और सिद्ध-गंधर्व-गण व महर्षियोंके समूह इंद्रके वीर्यका प्रकाश करनेवाले मन्त्रोंको पढ़ पढ़कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रु नाशक राजन्! उस समय वृत्रासुरके देहसे निकलकर उसकी आत्मज्योति निर्गत होकर दर्शनकारी देवगणोंके सामने ही भगवान्के लोकमें जाकर भगवान्में मिल गई। देखो राक्षस होने पर भी मुक्त ❋ हो गया ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे वृत्रासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१. शंका–इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरके मस्तकको बारह महीनेमें काटा यह बड़े आश्चर्यकी बात है! सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, इन चारों युगोंमें अनेक राक्षस हुए, परंतु किसीके मस्तक काटनेमें बारह महीने नहीं लगे, हमने किसी शास्त्रमें वा पुराणमें ऐसा आश्चर्यमय वचन नहीं सुना?

उत्तर–(ज्योतिष) अपने इस श्लोकमें ज्योतिषका अर्थ ज्योतिषशास्त्र व्यासजीने नहीं किया, ज्योतिषका अर्थ व्यासजीने इस प्रकारका किया कि ज्योतिष नेत्रोंकी दीप्ति अर्थात् आंखोंकी ज्योतिका अयन अर्थात् स्थान, भगवान्के कोमल कमलसे चरणारविंद है, उनहीं भगवान्के चरणारविंदोंको मरनेके समय वृत्रासुर जबतक देखता रहा तबतक रात दिनके एक-एक क्षणमें उस वृत्रासुरके मस्तकको वज्रसे काट डाला, ऐसा अर्थ व्यासजीने कहा है। बारह मास-अर्थात् छः छः महीनेके दो अयन नहीं कहे।

❋ एक समय एक महाकृपण वणिक मृत्युके वश हो रहा था, उन्होंने दानके भयसे तो कभी "द" अक्षरका उच्चारण भी अपने मुखसे नहीं निकाला था,–

दोहा—वृत्रासुरके वधनकी, हत्या मान अगाध।
इन्द्र छिपे वरसों तलक, बहुरि हरि हरी व्याध॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! वृत्रासुरके मारे जानेपर इन्द्रके विना लोक-परलोकके साथ ब्रह्मादिक शीघ्र ही सब ज्वरोंसे मुक्त हुए॥ १॥ देव, ऋषि, पितृ, भूत, दैत्य और देवानुचर व ब्रह्मा, ईश इत्यादि सब ही हर्ष-समुद्रमें मग्न होकर स्वयं अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ २॥ श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखारविन्दसे इतनी वार्ता श्रवण करके राजा परीक्षित् हाथ जोड़कर बोले—कि हे भगवन्! जब सबको ही अपूर्व सुख अह्लाद प्राप्त हुआ, तब इन्द्र किस लिये दुःखी हुए?॥ ३॥ यह सुन संदेहोंके शमन करनेवाले योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे राजन्! महर्षियों सहित सब देवता वृत्रासुरके विक्रमसे घबड़ाये तब उसका वध करनेके लिये सबने इन्द्रके निकट आकर प्रार्थना की, परन्तु वृत्रासुरके मारनेसे ब्रह्महत्या होगी, इस लिये प्रथम वृत्रासुरके मारनेको इन्द्रकी इच्छा नहीं थी॥ ४॥ इन्द्र बोले कि विश्वरूपका वध करके एक वार जो पाप किया था, स्त्री, भूमि, वृक्ष और जल इन्होंने अनुग्रह करके यह पाप परस्पर बांटकर ग्रहण कर लिया, अब वृत्रासुरका संहार करके यह पाप किसको दूंगा? क्योंकि यह असुर भी तो ब्राह्मणसे ही उत्पन्न हुआ है॥ ५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इन्द्रके यह वचन सुनकर ऋषि लोगोंने कहा था कि हम लोग तुमसे अश्वमेध यज्ञ करायेंगे, कि जिससे तुम्हारा मंगल होगा, तुम भय न करो॥ ६॥ हे देवेन्द्र! अश्वमेध यज्ञसे परमपुरुष परमात्मा नारायण देवकी पूजा करनेपर एक ब्रह्महत्या क्या समस्त जगत्को वध करनेके पापसे भी छूटकर मोक्षको प्राप्त हो जांओगे॥ ७॥ हे इन्द्र! ब्रह्मघाती, पितृघाती गोघाती, मातृघाती, ऋषिघाती, आचार्यघाती, और कुत्तेका खानेवाला, चाण्डाल इत्यादि महापापकारी लोग भी जिनके नामका कीर्तन करके उन पापोंसे शुद्ध

—परंतु अंत समय लालाजीकी अनिच्छा रहते भी पुत्रोंने बलात्कार (५) पांच रुपेकी गाय लाकर लालासे दान करादी थी। गाय ऐसी दुर्बल थी, कि एकही घड़ी पीछे वह मर गयी, तब लालाजी की भी इतिश्री हो गयी और वह यमपुरीको कृतार्थ करनेके लिये वहाँ पहुँचे, तब गायने कहा कि दान किये पीछे १ घड़ी में जीवित रही हूं। इस लिए घडी भर इच्छानुसार कार्य तुम मुझसे करा लो, तब वणिकजी कहते क्या हैं कि यमराजके पेटमें सींग भोंग दे। गौ यह सुन यमराजके पीछे दौड़ी। यमराज भागकर वैकुण्ठमें नारायणके पास आकर बोले कि कृपानिधान! इस गायसे हमें बचाइये। तब भगवान्के पार्षदोंने यमराजको बचाकर वनियेको धक्का दे दिया और स्वर्गसे निकालने लगे। तब वनियेने कहा कि भला कहीं नारायणके लोकमें आकर कोई संसारमें लौट गया है कि हम ही जायें? यह कहां का न्याय है? यह कह वहीं धरना दे उस लोकका अधिकारी बन गया। धन्य है! वनिये की चतुराताको, जो नीच कर्म करने पर भी वैकुण्ठवासी हुआ।

१. शंका—मुनियोंने इन्द्रसे बड़े आश्चर्य की बात कही है, कि हे इन्द्र! तीनलोक चौदह भुवनोंमें जो चर-अचर जीव हैं उनको मार डाला; फिर अश्वमेध यज्ञ करके जो भगवान्का जप करेगा तो पहले मारे हुए जो जीव हैं उनकी हत्यासे छूट जायगा और जो पिता, गुरु, माता, ब्राह्मणको मार डाले और कुत्ता आदि जीवोंका मांस भक्षण करे, ऐसा चाण्डाल हो तो भी अश्वमेध यज्ञ करके पापसे छूट जायगा, ऐसा अनुचित वचन कहना मुनियोंको नहीं चाहिये; यह तो सुननेवालेको भी दूषित करता है?

उत्तर—देखो भाई! नीतिशास्त्रमें, धर्मशास्त्रमें वेदमें और पुराणमें लिखा है, अपने शरीरका नाश होता हो तथा बालक मारा जाता हो वा गौ मारी जाती हो अथवा स्त्री मारी जाती हो और ऐसा समझ ले कि झूठ बोलनेसे सब विघ्न दूर हो जायेंगे तो झूठ बोलकर इन सब प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करे। उस झूठ बोलनेका कुछ दोष नहीं गिना जाता, ऐसा कुछ ब्राह्मणोंने विचार कर इन्द्रको यज्ञका लोभ दिखाकर झूठ बोलकर इन्द्रसे वृत्रासुरको मारवाया, क्योंकि वृत्रासुर तीनों लोकोंको चर-अचरको दुःख दे रहा था त्रिलोकीकी रक्षा करनेके लिए झूठ बोलकर इन्द्रसे वृत्रासुरका वध कराकर सबका दुःख मिटा दिया। इसलिये अश्वमेधकी प्रशंसा मुनिलोगों ने इन्द्रसे की थी।

हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हम महायज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करेंगे तुम उसमें श्रद्धासहित श्रीभगवान् वासुदेवकी पूजा करना, तो उस पूजा करनेसे यदि तुमने चराचर विश्वको भी संहार कर डाला हो तो उसका पाप तुम्हें न होगा, फिर भला खलके मारनेका पाप कहीं हो सकता है? एक नारायणका नाम लेनेसे सहस्रों पापोंका क्षय हो जाता है, एक दैत्यके मारनेका आपको इतना संताप है? ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यद्यपि ऋषि लोगोंके इस प्रकार समझाने-बुझाने विश्वासादि दिलानेसे वृत्रासुरका वध किया तो भी ब्राह्मण वृत्रासुरके मरते ही ब्रह्महत्या इंद्रके ऊपर आ गयी ॥ १० ॥ जिससे कि इन्द्रको बड़ा शोक-संताप हुआ और देवराज इंद्र किसी प्रकार उस ब्रह्महत्यासे छुटकारा न पा सके। हे राजन्! यद्यपि इन्द्रमें धैर्यादि अनेक शुभ गुण थे, तो भी, जो कि निंदनीय कर्म करके लज्जायुक्त होता है उसको समस्त शुभ गुण भी सुखी नहीं कर सकते ॥११॥ तब इन्द्रने चाण्डाल रूप धारिणी मूर्तिमती भागकर आती हुई, वृद्धवस्थाके कारण कम्पायमान अंग, राजरोगसे ग्रस्त, वस्त्रोंमें रुधिर लगाये ब्रह्महत्याको देखा ॥ १२ ॥ वह ब्रह्महत्या अपनी शिरकी लटोंके बाल बिखेरे "खाऊँ खाऊँ" शब्द ऊँचे स्वरसे उच्चारण कर रही थी। उसके श्वासकी पवन ऐसी दुर्गन्धियुक्त थी कि मानो मछलियोंकी दुर्गन्धि है, जिससे मार्ग भी दूषित हो रहा था ॥ १३ ॥ हे राजन्! इन्द्र देखते ही भयभीत हो उससे अपना पीछा छुड़ानेके लिये पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें भागा फिरा परंतु कहीं अपने उद्धारका ठिकाना न पाया, फिर उत्तर और पूर्व दिशामें जाकर वहांके मानस सरोवरमें बड़ी शीघ्रतासे घुस गया ॥ १४ ॥ और वहांपर एक कमलनालमें घुसकर बैठा रहा, अग्निदूत अर्थात् अग्नि ही उनको यज्ञभाग पहुँचा जाता, परंतु जलके मध्यमें अग्निका प्रवेश करना असंभव है। इस कारण इन्द्र जबतक उस कमलनालमें बसते रहे, तबतक यज्ञभाग उनको नहीं मिलता था। हे राजन्! देवराज इन्द्र सहस्र वर्षतक यहां अलक्षित भावसे वसते हुए यही चिंता किया करते थे किस प्रकार इस ब्रह्महत्याके महापातकसे छूटेंगे ॥ १५ ॥ जबतक इन्द्र यहांपर छिपे रहे, तबतक विद्या, तप और योग-बलके प्रभावसे नहुष राजाने स्वर्ग लोकका पालन किया है। हे राजन्! मनुष्योंका स्वर्गका राज्य किस प्रकारसे हो सकता है, ऐसा मनमें समझ शंका मत करना क्योंकि तपस्या और योगके प्रभावसे नहुषमें स्वर्गका राज्य पालन करनेका सामर्थ्य था परंतु कुछ ही काल पीछे यह राजा इस स्वर्गकी अतुल सम्पदाके मदसे ऐसा मतवाला हुआ कि इंद्राणीने उपाय करके इस राजाको सर्पयोनि प्राप्त करायी। इसलिये स्वर्गसे यह नहुष गिर गया। "इस विषयमें एक इतिहास है कि नहुष राजाने स्वर्गमें राज्य करते-करते एक दिन इंद्राणीसे कहा था कि इस समय हमी इन्द्र हैं, इस कारणसे तुम हमको भजो। नहुषके यह वचन सुन धर्म लोप होनेके भयसे इन्द्राणी बहुत डरी। और उस समय नहुषसे कुछ न कहकर गुप्त भावसे यह वृत्तान्त सुरगुरु बृहस्पतिजीसे जाकर निवेदन किया। देवगुरु बृहस्पतिजी इस दुरात्माके स्वर्गसे गिरनेका विचारकर बोले कि हे भद्रे! तुम इस दुरात्मासे यह कहना कि ब्राह्मणोंको पालकीमें जोत, उसमे चढ़कर हमारे पास आओगे तो हम तुम्हारी सेवा पत्नी बनकर करेंगी। ब्राह्मणोंसे पालकी उठवानेके कारण अवश्य ही शापसे उसका नाश हो जायगा। इसके पीछे नहुषने फिर इंद्राणीसे कहा कि तुम हमारी भार्या हो इन्द्रणीने कहा अच्छा, ब्राह्मण शिबिकामें जोत उसमें चढ़कर हमारे पास आना, क्योंकि

इन्द्र इसी प्रकारसे हमारे पास आया करते थे। नहुष कामान्ध होकर अगस्त्यादि मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको शिबिकामें लगाकर शीघ्रताके मारे इन सब ब्राह्मणोंसे सर्प सर्प (चल-चल) कहकर अगस्त्यजीके चरणप्रहार कर दिया। इसलिये ब्राह्मण श्रेष्ठ अगस्त्यजीने क्रुद्ध होकर "तू सर्प हो जा" यह शाप दिया, शापके देते ही उसी समय नहुष अजगर सर्प होकर स्वर्गसे गिर पड़ा" ॥ १६ ॥ इसके पीछे देवराज ब्राह्मणोंके बुलानेसे फिर स्वर्गमें चला गया, सत्यपालक भगवान् हरिका ध्यान करनेसे इन्द्रकी ब्रह्महत्याका पाप विध्वंस हो गया था, हे राजन्! पहले भी ब्रह्महत्या इन्द्रके पराजय करनेमें समर्थ नहीं हुई थी, क्योंकि पूर्वोत्तर दिशामें विराजमान दिग्देवता रुद्रने उनकी रक्षा की थी ॥ १७ ॥ हे महाराज! यद्यपि ध्यान करते ही देवराज इन्द्रका पाप छूट गया था, तो भी फिर उनके स्वर्गमें आनेपर ब्रह्मर्षि लोग उनके समीप जाकर जिस अश्वमेध यज्ञमें भगवान् हरिकी आराधना करना ही प्रधान कर्म है, उस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रको दीक्षित करके यथाविधिसे वह यज्ञ उनसे कराने लगे ॥ १८ ॥ हे राजन्! ब्रह्मवादी मुनि लोगों करके जो यज्ञ कराया गया उसमें सब देवता ही जिनकी मूर्ति उस परम पुरुषकी जब महेन्द्र अर्चना करने लगे ॥ १९ ॥ तब उनकी बड़ी ब्रह्महत्या जो कि वृत्रासुरके मार डालनेसे हुई थी, वह हत्या उन परम पुरुषसे संपूर्णतः इस प्रकार नाशको प्राप्त हो गयी, कि जैसे सूर्य भगवान्के उदय होनेसे तम (अंधकार) का नाश हो जाता है ॥२०॥ हे राजन्! इस प्रकार मरीचि इत्यादि महर्षियोंके कराये हुए अश्वमेध यज्ञसे यज्ञनाथ पुराण पुरुषकी आराधना कर पाप क्षय होनेसे इन्द्र पहलेके समान फिर अपने उसी बड़प्पनको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ हे महाराज! यह आख्यान अति श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें तीर्थपद भगवान् हरिका कीर्तन, भक्तजनोंका वृत्तांत और इन्द्रका पापसे छूटना और विशेष करके इन्द्रकी ही जय इसमें कही गयी है, इसलिये इसमें अनन्त पाप धुल जाते हैं और भक्तिका उदय होता है ॥ २२ ॥ पंडितगण सदा इस आख्यानका पाठ करें और पर्व-पर्वमें इसको श्रद्धासहित सुनें तो इससे इन्द्रियाँ वशमें होती हैं; धन-यश मिलता है, अखिल पापका नाश हो जाता है, और शत्रुओंको जीत लिया जाता है। अधिक करके यह आयुका बढ़ानेवाला है इसलिये इस उपाख्यानका पाठ करना या श्रवण करना, कराना परमकल्याणकारी है ॥ २३ ॥

भजन—रागपूर्वी।

समय न आवत बारंबार ॥
तू प्रमाद निद्रा में सोयो, अब तो नयन उघार ॥
यह मनुष्य तनु उत्तम पायो, प्रभुको सुयश उचार ॥
वृथा गँवाई इतनी आयुष, क्यों नहिं करत विचार ॥
तब रघुवीर दास पछतावें, जब तनु तजे असार ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठ स्कन्धे इन्द्राश्वमेधयज्ञ वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा—अति दुखसे इक सुत भयो, सोउ लीन विधि छीन।
चित्रकेतु विलखत परो, जैसे जल बिन मीन ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित विनयपूर्वक श्रीशुकदेवजीसे पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! महापापी वृत्रासुरका स्वभाव रजोगुण और तमोगुणसे परिपूर्ण था; फिर भगवान् वासुदेवमें किस प्रकार उसकी दृढ़ मति हुई ? ॥ १ ॥ शुद्ध सत्त्वगुणी देवतागण और निर्मल आत्मावाले ऋषि लोगोंके भी चित्तमें इस प्रकार मुकुन्द गोपालकी भक्ति नहीं उपजती, तो फिर पापी वृत्रासुरको किस प्रकारसे चरणोंमें भक्ति उत्पन्न हुई ? ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीमें अनंत जीव हैं, उनकी गिनती पृथ्वीके रजःकणोंके समान अनंत हैं, परन्तु इतने अनंत जीवोंमेंसे कई एक मनुष्यादि अपने-अपने कल्याणके लिये यत्न किया करते हैं अर्थात् धर्माचरण किया करते हैं॥३॥ हे भगवन् ! इन कई एक मनुष्योंमें भी सब ही मोक्षके अभिलाषी नहीं होते, वरन् उनमेंसे भी कोई एक मोक्षको चाहते हैं और वे मोक्षार्थी सब ही जीव सिद्ध नहीं होते, वरन् सहस्रोंमें कभी कोई एक ही पुरुष गृह इत्यादिका सङ्ग त्याग करके तत्त्वज्ञानी सिद्ध होता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष मुक्त और इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी हो जाते हैं, ऐसे करोड़ों जनोंके मध्यमें नारायण-परायण महाशान्त स्वभाववाले पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, और ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलते अर्थात् बहुत कठिनतासे देखनेमें आते हैं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! वृत्रासुर साक्षात् पापका रूप होकर सब लोककी हिंसा करता-फिरता था और सदा संग्राम करनेके लिये तैयार रहता था फिर उसकी मति किस लिये भगवान्में ऐसी दृढ़ हुई ? ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस बातसे हमको बड़ा संशय है और इसको सुननेके लिये चित्तमें परमोत्साह हो रहा है । वह कृपापूर्वक विस्तारसहित आप वर्णन कीजिये । हे योगिन् ! वृत्रासुर इन्द्रके भयसे भगवान्की शरणमें आया था, ऐसा तो हम नहीं कह सकते, क्योंकि उस समय वृत्रासुरने ऐसा विक्रम प्रकट किया कि इन्द्र भी उससे प्रसन्न हो गया था ॥७॥ सूतजी बोले कि हे मुनिगण ! श्रद्धावान् महाराज परीक्षित्के यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ ८ ॥ कि हे राजन् ! इस विषयमें एक इतिहास महर्षि व्यासजीके मुखसे तथा नारदजीके व देवलके सम्मुख सुना है वह हम तुम्हारे सम्मुख वर्णन करते हैं, सावधान होकर तुम श्रवण करो ॥ ९ ॥ हे महाराज ! पहले शूरसेनदेशमें "चित्रकेतु" इस नामसे विख्यात एक राजा था, उसका ऐसा प्रताप था कि पृथ्वी उसको मनोवांछित वस्तु दिया करती थी ॥ १० ॥ हे महाराज ! इस चित्रकेतुके करोड़ रानियां थीं । यद्यपि वह राजा पुत्रके उत्पन्न करनेमें समर्थ था, तथापि उसके इन सब स्त्रियोंमें एक भी पुत्र कन्या नहीं हुई अर्थात् कुभाग्यसे इसकी स्त्रियाँ वंध्या थीं ॥ ११ ॥ सब रूप,

---

१. शंका–राजा चित्रकेतुके करोड़ १०००००० स्त्रियां थीं, उन स्त्रियोंका रति आदि द्वारा भरण–पोषण किस प्रकार होता था, यह बड़ें आश्चर्यकी बात है?

उत्तर–राजा चित्रकेतु चित्र बनानेमें बड़ा चतुर था इसीलिये उसका नाम चित्रकेतु था । उसने करोड़ शयन भवन अत्यन्त मनोहर बना रक्खे थे, और उन्हीं मंदिरोंमें एक-एक स्त्रीका चित्र भी बना रक्खा था, प्रत्येक मंदिरमें एक स्त्रीका चित्र भी ऐसा मनहरण था मानो साक्षात् स्त्री विराजमान है । राजा चित्रविद्या तो जानता ही था, परंतु उसमें एक बात और महा अद्भुत थी, चित्रको सजीवन करनेकी विद्या भी जानता था, जब चित्रकेतुकी इच्छा होती थी कि अब इसको सजीव करना चाहिये उसी समय सजीव कर लेता था और उनके संग हास्यविलास करके फिर तुरंत विसर्जन कर देता था । जब राजाका विवाह होता था उसी समय उस स्त्रीको चित्रकी मूर्ति बना देता था । विवाहसे प्रथम चित्र नहीं बनता था,जब राजा चित्रकेतुके पुत्र नहीं हुआ तब तो नित्य स्त्रियोंको सजीव करता था, पुत्रके हुए पीछे पुत्रका मुख देखकर आनंदमें मग्न हो गया, तब नित्य स्त्रियोंको सजीव नहीं करता था । जब कभी स्मरण होजाय तब पांचवें-सातवें दिन किसी स्त्रीको सजीव कर लेता था । एक दिन चित्रकेतु सब स्त्रियोंको सजीव करके पहलेके सदृश सब काम करने लगा, परंतु दैवयोगसे विसर्जन करना भूल गया, तब तो सब स्त्रियोंने उन स्त्रियोंकी झारनेवाली जो दासी थीं वे सब कहने लगीं किजबसे राजाके पुत्र हुआ तबसे हमारा तुम्हारा निरादर कर दिया । निरादर क्या,–

लावण्य, वयस, विद्या, कुलीनता, ऐश्वर्यता, उदारता इत्यादिमें संपन्न और सर्व गुणोंसे अलंकृत होनेपर भी बांझ स्त्रियोंका स्वामी होनेसे चित्रकेतुके अन्तःकरणमें क्रमक्रमसे चिन्ताका प्रवेश होता ही रहता था ॥१२॥ इसलिए समस्त सम्पदा, सकल चारुलोचना महिला और अखिल भूमि किसी वस्तुसे भी इस चक्रवर्ती राजाका मन प्रसन्न नहीं होता था ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अगिरा महर्षि अपनी इच्छानुसार समस्त भूमण्डलमें भ्रमण करते-करते इस राजाके स्थानपर आ पहुँचे ॥ १४ ॥ महर्षिको देखते ही राजा हड़बड़ाकर उठा और साष्टांग दण्डवत कर उनको आसन दिया और अनेक भांतिसे उनकी पूजा कर अतिथिके समान उनका आदर-सत्कार किया। जब राजाके दिये हुये आसनपर यह महर्षि बैठ गये, तब राजा भी नियम सहित उनके निकट आसन बिछाकर बैठ गया ॥१५॥ समीप बैठे हुए राजाको विनय करते, पृथ्वीमें झुककर प्रणाम करते देख महर्षि अंगिरा सत्कार करके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१६॥ तब अंगिराजीने पूछाकि हे महाराज! कुशल सहित हो? तुम्हारे राज्याङ्ग और शरीरका मंगल तो है? हे राजन्! जिस प्रकार महदादि सप्त प्रकृतिसे जीव नित्य रक्षित रहता है, और उसके बिना क्षणमात्रको भी नहीं रह सकता, वैसे ही राजाको भी सप्त प्रकृति अर्थात् स्वामी (गुरु), अमात्य (कर्मसहाय), राज्य, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र (सलाहका देनेवाला) इन सातोंमें गुप्त रहना पड़ता है अर्थात् इस प्रकारके सुरक्षित राज्यसे ही राजा इन समस्त प्रकृतिका अनुवर्तन करके राज्य सुख भोग कर पाते हैं ॥१७॥ हे राजन्! राजाके सुखी होनेसे प्रकृति अर्थात् राज्यके समस्त अंगोंमें धनकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥ हे महाराज! हम पूछते हैं कि स्त्री, पुत्र, मंत्री, अमात्य भृत्य (नौकर-चाकर) तो तुम्हारे वशमें हैं, जो समस्त वणिक् विशेष-विशेष नियम कर दल बांधकर रहा करते हैं वे लोग पुरवासी, देश-प्रदेशके पति और प्रजा यह सब तो आपके वशमें रहते हैं? ॥ १९ ॥ हे राजन्! जिस पुरुषका मन अपने वशमें रहता है, ऊपर कहे हुए यह सब पुरुष उसके वशमें रहते हैं। और यही समस्त लोग लोकपालोंके संग आलस्य रहित होकर राजाको भेंट पूजा किया करते हैं, इसलिये तुमसे हम पूछते हैं कि तुम्हारा मन तो तुम्हारे वशमें है ॥ २० ॥ परन्तु हे राजन्! हम जानते हैं, कि तुम आत्मासे सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारा यह भाव क्या अपने आपसे हुआ है या किसी औरसे हुआ है? इसलिये हम तुम्हारा वदन चिन्तासे युक्त एवं मलिन देखते हैं, इससे प्रकट दिखाई देता है कि तुमने अपनी वांछित वस्तु नहीं पायी है ॥ २१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! मुनि श्रेष्ठ अंगिरा यद्यपि सब जानते थे, तो भी इस प्रकारसे संशय प्रकट करके जब पूछा तब पुत्रकी चाहनावाले राजा चित्रकेतुने हाथ जोड़कर मुनिसे निवेदन किया ॥ २२ ॥ चित्रकेतुने कहा–कि हे भगवन्! शरीरधारियोंके भीतर और बाहर जो कुछ वर्तमान बातें हैं पापरहित योगिराज तपस्या, ज्ञान और समाधिके-बलसे वे किस बातको नहीं जानते हैं; और इनसे कौनसी बात छिपी है? ॥ २३ ॥ यदि आप मुझसे मेरी मानसिक चिन्ताके विषयमें पूछते हो तो आपकी आज्ञासे

—नित्य तुमको सजीव करता था – किंतु अब पांचवें दिन सजीव करता है, हम तुम सबको नित्य झारती हैं और नित्य शुद्ध करती हैं। इस प्रकार दासियोंके वचन सुनकर सब स्त्रियोंने मिल उस बालकको विष दे दिया, बालक नष्ट हो गया। तब राजाने शोक–संतापसे दुःखी होकर उन स्त्रियोंको विसर्जन नहीं किया, इसलिये वह सब जीती रह गयीं। ब्राह्मणोंने बालहत्या शान्त करनेके लिये जो उपाय बताये वह किया, इस प्रकार चित्रकेतुकी करोड़ स्त्रियां थीं; परंतु चित्ररूप थीं ॥

मैं सब कहता हूं ॥ २४ ॥ यद्यपि राज्य, ऐश्वर्य और संपत्ति, इनकी प्रार्थना लोकपालगण भी करते हैं, परन्तु जिस प्रकार भूखेको पुष्पमाला चंदनादि सुख नहीं देते, ऐसे ही मुझको यह द्रव्यादिक कुछ भी सुख नहीं देते ॥ २५ ॥ इसलिये हे महाभाग ! इस दुष्कर नरकमें पित्रादि पूर्व पुरुषों सहित पड़ा हुआ हूँ, जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो और इस नरकसे पार हो सकूं, कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय बता दीजिये॥२६॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब राजा चित्रकेतुने अंगिराऋषिसे इस भाँति विनय की तब ब्रह्माके पुत्र परमदयालु अंगिरा जीने उसी समय वह त्वाष्ट चरु सिद्ध कर त्वष्टाकी पूजा करवायी और यज्ञ किया ॥ २७ ॥ हे भारत ! यज्ञ समाप्त होनेपर राजाकी करोड़ रानियोंके बीचमें जो सबसे बड़ी और सबसे श्रेष्ठ "कृतद्युति" स्त्री थी, ब्राह्मण अंगिराजीने उसको यज्ञका शेष अन्न प्रदान किया ॥२८॥ इसके पीछे वह राजासे बोले, कि इस प्रसादको भोजन करनेसे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा, परन्तु उस पुत्रसे तुम्हें हर्ष और विषाद दोनों होंगे अर्थात् वह जन्मसे तुम्हें सुख देगा और मरणसे तुमको शोक उत्पन्न करायेगा। हे राजन् ! ब्रह्मकुमार अंगिराजी यह कहकर वहांसे अपने स्थानको चले गये ॥२९॥ हे भारत ! यज्ञशेष (चरु) भोजन करके चित्रकेतुकी रानी कृतद्युतिने जिस प्रकार कृत्तिकाने अग्निकी आत्माको धारण किया था ॥३०॥ हे राजन् ! शूरसेन देशके अधिपति राजा चित्रकेतुके वीर्यसे रानी कृतद्युतिका यह गर्भ शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान दिन-दिन प्रकाश करने लगा ॥ ३१ ॥ इसके पीछे जब गर्भमास पूर्ण हो गये तब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। हे कौरवनाथ ! राजकुमारका जन्म होना सुनकर शूरसेन देशके निवासियोंको परमानंद प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥ राजा चित्रकेतु पुत्रका जन्म सुन आनंदसागरमें मग्न हो गया और स्नान-ध्यान कर पवित्र हो सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर ब्राह्मणोंसे यथाविधि आशीर्वाद पाकर अपने पुत्रका जातकर्म और संस्कार विधिपूर्वक कराया ॥३३॥ फिर पीछे राजाने उन सब ब्राह्मणोंको सुवर्ण, चांदी, वसन, आभूषण, हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, पुर, ग्राम और साठ (६०) करोड़ गायें बच्चोंसहित दान दीं॥३४॥और फिर अपने अति बड़े मनसे मेघ जिस प्रकार सब जीवोंके हितार्थ जल वर्षाता है, वैसे ही इस उदारचित्त राजाने पुत्रके यश और आयुके बढ़ानेके लिये धन दे-देकर सब देश प्रदेशके मनुष्योंके मनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी ॥ ३५ ॥ अधिक करके जिस-जिस वस्तुके दान करनेसे कुमारका सौभाग्य बने और दीर्घायु हो, उसके दान करनेमें राजाने किसी बातका भी संकोच नहीं किया। हे परीक्षित् ! बहुत कालके पीछे महाकष्टसे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होनेसे, जिस प्रकार किसी व्यक्तिको बड़ी कठि-नाईसे धन मिले और वह उससे स्नेह करता है ऐसे ही इस पुत्रके प्रति पिता चित्रकेतुका स्नेह उत्पन्न होकर दिन-दिन बढ़ने लगा ॥३६॥ और माता (कृतद्युति) का इस पुत्रमें ऐसा वात्सल्य उत्पन्न हुआ कि जिससे मोह उत्पन्न होता है, परंतु उसकी जो समस्त सपत्नियाँ (सौतें) थीं, वे अपनी सौतको पुत्रवती देखकर अपनी-अपनी संतानका अभिलाष होनेसे पुत्रकामनारूप संतापसे संतापित हुईं और सौतियां डाह करने लगीं ॥३७॥ अधिक करके महाराज चित्रकेतु दिन प्रतिदिन पुत्रका लालन-पालन करनेकी पुत्रवती स्त्रीमें ऐसी प्रीति दिखाने लगे कि जिससे और इनकी रानियोंको दुःखसा होने लगा क्योंकि और रानियोंमें यह ऐसी प्रीति नहीं दिखाते थे ॥ ३८ ॥ इससे और सब रानियाँ ईर्षाके वश होकर आप ही आप अपनी निन्दा-करने लगीं और निःसंतान होनेसे राजाके निकट अनादर पाकर मनके दुःखसे

बहुत ही सन्तापित हुई ॥३९॥ वे रानियाँ बोलीं कि जिस नारीके संतान नहीं वह अति पापिनी है, उसको धिक्कार है, वह अपने स्वामीके निकट भी भार्या कहकर नहीं गिनी जाती, क्योंकि उसकी जो सौतें पुत्रवती होती हैं, वे सब दासीके समान उस निःसंतान नारीका निरादर करती हैं ॥४०॥ यद्यपि दासियोंका संताप क्या है? स्वामीकी सेवासे ही उनको मान मिलता है, यह बात सत्य है। परंतु हम दासियोंकी दासियोंसे भी कुभागिनी हैं? ॥४१॥ हे महाराज परीक्षित्! कृतद्युतिकी पुत्रसम्पत्ति देखकर उसकी सब सौतें एक-एक करके ईर्षामें जल रही थीं, तिसपर निःसन्तान होनेसे राजाकी भी प्रीति उसमें कम हो गयी, इसलिये उस राजकुमारके ऊपर रानियोंका बड़ा शत्रुभाव उत्पन्न हुआ ॥४२॥ हे राजन्! वैरके मारे इन सब स्त्रियोंकी बुद्धि ऐसी नष्ट हुई और चित्त इस प्रकारका निर्दय हुआ कि वे अपने पति नरपति राजा चित्रकेतुका सौभाग्य न सहन कर प्राण संहार करनेकी वासनासे उन्होंने इस राजकुमारको विष दे दिया ॥४३॥ हे राजन्! अपनी सौतोंका यह पापकर्म कृतद्युति कुछ भी नहीं जानती थी, उसने नहीं जाना कि विष देनेसे राजकुमारका प्राणान्त हो गया। वह यही समझ रही थी कि राजकुमार शयन कर रहे हैं, यद्यपि रानी घरमें आयी, तो भी इसने समझा कि कुमार अबतक सो रहे हैं, इस कारण कुमारके निकट न गयी और इधर-उधर फिरती रही ॥ ४४ ॥ दूसरे घरमें जाकर कुछ देर पीछे रानीके मनमें यह बात आयी कि आज राजकुमार बहुत देरसे सो रहा है इस कारण धायको पुकार कर कहा, कि हे कल्याणकारिणी! हमारे पुत्रको उठाकर यहांपर ले आओ ॥ ४५ ॥ धाय उस घरमें गयी जहां राजकुमार सो रहा था, देखा कि उस लड़केकी आंखोंकी पुतली ऊपरको चढ़ रही हैं देहमें प्राण और इन्द्रिय व आत्मा नहीं हैं, वह यह देखते ही हाय मरी! हाय मरी!! कह बड़े जोरसे आर्त्तनाद करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिर पड़ी ॥ ४६ ॥ दूध पिलानेवालीकी यह आर्त्त वाणी रानी कृतद्युतिके कानमें पड़ी, इसलिये वह भी अनिष्टकी शंका करती विलाप कर छाती पीटती-पीटती उस घरमें आयी और समीप आकर देखा कि पुत्र अचानक मरा हुआ पड़ा है॥४७॥ हे राजन्! देखते ही रानी कृतद्युति पृथ्वीमें गिर पड़ी और अत्यन्त शोकके कारण उसी समय उसको मोह उत्पन्न हो गया; इसलिये मस्तकके केश खुलने और शरीरके कपड़े खिसकनेकी रानीको कुछ भी सुरति नहीं रही ॥४८॥ उसके पीछे राजाके अन्तःपुरचारी नरनारीगण यह बात सुन शीघ्र वहां पर आ अतिदुःखित हो रानीके तुल्य खिन्न होकर रोने लगे। हे राजन्! कृतद्युति रानीकी जिन सौतोंने यह दुष्कर्म किया था, वे भी सब आ कपटभाव ग्रहण कर रोदन करने लगीं ॥४९॥ फिर राजा चित्रकेतुने सुना कि पुत्र अचानक मर गया, परन्तु उसके मरनेका कारण प्रकाशित नहीं हुआ। सुनते ही अकस्मात शोकसे राजाकी दृष्टि जाती रही, अंधा हो गया। वह मरे हुए पुत्रके देखनेके लिये उत्सुक हो शोकके मारे गिरता-पड़ता हुआ आने लगा, अतिस्नेहके कारण राजाका शोक बराबर बढ़ता ही जाता था, राजा वारंवार मूर्च्छित होने लगे। इसलिये मंत्री इत्यादि राजपुरुषगण राजाके सङ्ग चले और ब्राह्मण लोग भी चारों ओरसे घेरकर राजाके संग चले ॥ ५० ॥ राजा वहां आकर उस मरे हुए बालकके चरणोंमें गिर पड़ा। उसके केश खुले और कपड़े स्खलित हो रहे थे, आंसू भर आनेसे और हिचकी लेनेसे राजाका कंठ रुक रहा था, इसलिये वह केवल बड़े-बड़े श्वास लेने लगा, वचन कहनेका सामर्थ्य राजामें न रहा ॥ ५१ ॥ पतिको इस प्रकार शोकमें देखकर

और अपने वंशकी आशा जो संतान थी उसको मृतक देखकर रानी कृतद्युतिको बड़ा दुःख हुआ, वह सब पुरवासियों, करके मन्त्री इत्यादिकोंका शोक संताप बढ़ाती हुई विचित्र प्रकारसे विलाप करने लगी रानीके दोनों स्तन कुंकुमसे रँगे हुए थे, उनके ऊपर आँसुओंकी धारा पड़नेसे मानो रानीका अभिषेक होने लगा और रानीने इस प्रकारसे अपने केश छिटकाये कि जिससे समस्त मोतियोंकी मालायें खुल गयीं। इसके पीछे मृतक बालकके लिये कुरींके समान शब्द कर रानी आश्चर्यमय विलाप करने लगी ॥५३॥ फिर विधाताके ऊपर दोष लगाकर रानीने कहा अरे विधाता! तू अतिशय मूर्ख है, क्योंकि तू अपनी सृष्टिमें उलटी चाल चलता है, वृद्धके जीवित रहते बालकका मरना कैसा? और वृद्धमें सृष्टिकी सामर्थ्य नहीं, उसके जीवित रहने तथा बालकके मृतक होनेसे सब सृष्टिका ही नाश हो जायगा, अरे विधि! यदि तू इस समय अपनी सृष्टिके विपरीत हो रहा है, तब सब ही प्राणियोंको दुःख देनेवाला है, इस कारण नित्य शत्रु तुमको कृपालु कौन कह सकता है? ॥५४॥ यदि इस लोकमें शरीरधारियोंके जन्म-मरणका कोई क्रम न हो, अर्थात् जन्म-मरणके कर्माधीन होनेसे पुत्रके जीते जी पिताकी मृत्यु हो जाय और पिताके जीवित रहते ही पुत्र जन्मे ऐसा नियम न हो तब लोगोंके आत्मकर्मद्वारा ही जन्मादि हो फिर तुमसे किसीका क्या कार्य? यदि कहो कि कर्म जड़ है, केवल कर्मसे जन्म-मृत्यु सिद्ध नहीं हो सकती, उत्तर सिद्ध न हो, तथापि इस आचरणमें तूने अपना मार्ग बढ़ानेके लिये जो स्नेहकी फांसी बना रखी थी, उसको आप ही तोड़ डाला। अब ऐसे दुःख देखकर कोई भी पुरुष अपने पुत्रादिकमें स्नेह न करेगा और सृष्टिके रचनेमें तुमको बड़ा बखेड़ा पड़ेगा ॥ ५५ ॥ फिर मृतक पुत्रको पुकार-पुकार विलाप करती हुई रानी कहने लगी—कि हे बेटा! हम अति दीन और अनाथ हैं, हमको इस प्रकारसे छोड़ जाना तुमको उचित नहीं है। हे वत्स! जरा अपने पिताकी ओर तो निहारकर देखो कि यह तुम्हारे शोकमें महासन्ताप पा रहे हैं, हे पुत्र हम तो सदा यह जानती और आशा करती थी कि निःसंतान पुरुषको जो नरक होता है उस नरकके पार हम सरलतासे हो जायँगे। देखो पुत्र! हमको त्यागकर तुम दयाहीन कालके संग दूर न जाओ। हाय! हमने बहुत उपाय किये, परंतु तो भी इस निर्दयी यमराजने नरकसे नहीं छोड़ा ॥ ५६ ॥ हे तात! उठो, ये तुम्हारे साथके खेलनेवाले तुम्हारे सखा द्वारपर खड़े तुमको खेलनेके लिये बुला रहे हैं, हे राजकुमार बहुत देरसे शयन कर रहे हो, तुम्हें भूख लगी, होगी, हे लालन! कुछ खाओ, दूध पियो, भइया! इन सब अपने कुटुम्बियोंके और मैयाके शोकको दूर करो॥५७॥हे प्राण पुत्र! हम बड़ी अभागिनी हैं, कि जो प्रथम ही हमने यहां आकर तुम्हारे मुखकमलका मनोहर हँसना नहीं देखा, हाय! अबतक भी बेटेके मनोहर वचन हमको सुनायी नहीं देते; हे वत्स! तुम्हारे दोनों नेत्र बंद हो रहे हैं, क्या क्रूर काल तुमको लोकांतरमें (जहांसे फिर आना-जाना नहीं होता) ले गया है? ॥५८॥ इतनी कथा कह योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कौरववंशावतंसपरीक्षित! जब कृतद्युति पुत्रके लिये इस प्रकारसे शोक कर रही थी, तब राजा चित्रकेतु रानीके अत्यन्त विलापसे महा संतापित हो पुत्र-पुत्र पुकार धाड़ मार मारकर रोने लगे॥५९॥ हे राजन्! इन स्त्री-पुरुष दोनोंका विलाप देखकर राजाके नौकर-चाकर नर-नारी सबही रुदन करने लगे। और फिर बड़े भारी शोकके कारण मोहके वश हो सब ही अचेतन हो गये॥६०॥ हे कौरव्य! जब चित्रकेतु राजाके ऊपर इस प्रकारका दुःख पड़ा तब यह वृत्तांत महर्षि अंगिरा

जी जानकर नारदजीके साथ वहां पर आये,उस समय राजभवनमें सब मूर्छित होकर गिर पड़े थे। जब किसी जीवपर भगवान् क्रोध करते हैं, तो ऐसा ही हुआ करता है ॥ ६१ ॥

कवित्त-देवी शेष शीतला वराहीकी जगावैं रात, उत पितर मीराको रेवड़ी चढ़ावैं हैं। क्षेत्रपाल गंगा देव भैरों भूपाल आदि, जगतके जेते तेते देवता मनावैं हैं ॥ कोई नगरकोटको जावे है व्याह काज, कोई कलकत्तेकी कालीको ध्यावैं हैं। पूजें नित भूत प्रेत सुमिरैं न राम नाम, शालिग्राम ऐसे नर बहुत पछितावैं हैं।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुपुत्रमृत्युवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा-देवऋषी अरु अंगिरा, दियो परम उपदेश।
तत्वज्ञानसे भूपको, मेटो सकल कलेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! चित्रकेतु राजाको मृतक शिशुके शवके समीप शवके समान पड़ा हुआ और शोकसे व्याकुल देखकर महर्षि अंगिरा और नारदजी बहुत समझा-बुझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम जिसके लिए इस प्रकारसे शोक करते हो वह पुरुष तुम्हारा कौन है ? और तुम भी इस प्रजारूपी सृष्टिमें इसके बंधुओंमें कौन जन हो ? यदि तुम कहो कि हमारा पुत्र है, हम इसके पिता हैं, इसमें यह कहना है, कि क्या ? पहले भी तुम्हारा परस्पर इसी प्रकारका सम्बन्ध था ? क्या अभी है, इसके पीछे क्या होगा ? निदान जो कि पूर्व जन्ममें जो जिस पित्रादि रूपमें संयुक्त रहता है, वह मरणके द्वारा उससे वियुक्त होकर वर्तमान जन्ममें कदाचित् उसका, कदाचित् दूसरेका पुत्रादि हो सकता है। और इस समय भी जो जिसके पुत्र-कलत्रादि हैं, वे भी दूसरे जन्ममें उसके वा और दूसरेके पुत्र-कलत्रादि वा शत्रु-मित्रादि हो सकते हैं, इसलिए यह तुम्हारा पुत्र और तुम उसके पिता ऐसा क्या नियम है ? कैसे इसको तुमने अपना पुत्र जाना ? ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार जल प्रवाहके वेगसे बालू किसी स्थानसे बहकर किसी दूसरे स्थानमें जाती है, उसी प्रकारसे यह जीव भी कालके वेगसे कभी परस्पर मिल जाता है और कभी अलग हो जाता है ॥ ३ ॥ हे महाराज ! बीजमें बीज होता तो है, परंतु जिस प्रकार किसी-किसी बीजमें बीज नहीं उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, वैसेही परमेश्वरकी माया वश पुत्रादिरूप सर्वप्राणी, पित्रादिरूप सर्वप्राणियोंमें कभी नियोजित हो सकते हैं। कभी नियोजित नहीं हो सकते। इस हेतुसे बीजोंमें जनकत्व सत्व रहनेपर भी जिस प्रकार पितृ-पुत्र भाव नहीं कहा जा सकता, वैसे ही इस स्थानमें भी पितृ-पुत्रभाव है, फिर इनमें शोककी कौनसी बात है ? ॥ ४ ॥ हे राजन् ! हम, तुम और यह सब चराचर जगत् जो वर्तमान कालमें एकत्र हो रहा है, हम जिस प्रकार जन्मके पहले नहीं थे ऐसे ही मृत्युके पीछे भी नहीं रहेंगे, इस समय भी वैसे नहीं हैं, इसलिए यह सब यदि प्रथममें और अंतमें न रहा तो असत् (मिथ्या) और केवल स्वप्नतुल्य है ॥ ५ ॥ और जो कहो कि यदि सब ही असत् (मिथ्या) है, तो फिर प्रतीति क्यों होती है, और हम इसके पिता हैं ऐसा अभिमान क्यों होता है ? (उत्तर) सर्व जीवोंके स्वामी मायाके योग प्राणियोंका सृजन, पालन और

संहार किया करते हैं, इसलिए परमेश्वरकी मायासे बननेके कारण सृष्टि प्रतीत होती है और प्राणियोंके इस विषयमें केवल निमित्तमात्र होनेसे उनको अभिमान उत्पन्न हुआ करता है, परन्तु हे राजन्! परमेश्वरके सृष्टयादि वीर्य देखकर अपूर्णकामनाकी आशंका मत करना, सर्वभूत आत्मसृष्ट है, परन्तु है सब पराधीन, दूसरे उनका इन सबमें प्रयोजनमात्र भी नहीं है, वह अनपेक्ष होकर भी बालकके समान लीला करके सब जीवोंकी सृष्टयादि किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार बीजसे बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही देही जो पित्रादि हैं, उनकी देहसे देहीकी अर्थात् पुत्रादिका देहमात्रादिक देहसे उत्पन्न होता है, परन्तु भूम्यादि पदार्थके समान जीव सदा कालवर्ती है ॥ ७ ॥ यदि कहो कि देहीका देह प्रतियोगी है सो जब नाशवान् दीखता है तब देही भी वैसा ही हो सकता है, शाश्वत नहीं हो सकता (उत्तर) जिस प्रकार सामान्य और विशेष यह दो विभाग सन्मात्र वास्तवमें अज्ञानसे कल्पना कर लिये जाते हैं, वैसे देह और देहीका परस्पर प्रतियोगीविभाग अनादिकालसे अविवेककृत चला आता है ॥ ८ ॥ नानाभव, जन्म, यश, क्षय, वृद्धि, क्रिया, फल ये असत्यपनसे द्रष्टामें भासते हैं, जैसे अग्निकी विक्रिया काष्ठमें ॥ ९ ॥ असत्यपनसे यह जीव देहके संयोगसे आत्मामें भाषता है, जैसे स्वप्नमें सब भय अभय उपस्थित होता है ॥ १० ॥ इसका अहंकार न होनेसे घोर संसार भी प्रकाशमान नहीं होता, ऐसेही जीवित निरहंकारी विमुक्तका जन्मनाश नहीं है॥११॥इस कारण मनका विलासमात्र अहंकार ममतारूप अंधकारका त्याग कर दीजिये। और आत्मा ईश्वर भगवान् वासुदेवमें मन लगाइये ॥१२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! उन दोनों ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुनकर राजा चित्रकेतुको प्रबोध हुआ और वह आश्वासित होकर अपने मुखको (जो मनकी पीड़ासे व्यथित होनेके कारण मलिन हो रहा था) हाथसे पोंछ, कर जोड़कर कहा॥१३॥राजा चित्रकेतु बोले कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! आप दोनों जन कौन हो? हम देखते हैं कि आपलोग ज्ञान सम्पन्न, बड़ोंसे भी बड़े हो, ज्ञात होता है कि आप लोग अवधूतका वेष धारण करके गुप्त भावसे यहांपर आये हो ॥१४॥[1] क्योंकि भगवान्के प्यारे विप्रगण उन्मत्तके समान स्नेहधारी होकर भूमण्डलपर ग्राम्य बुद्धिवाले हम सरीखे लोगोंको बोध देनेके लिये इच्छानुसार विचरते हैं ॥१५॥ निदान सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल, असित अपान्तरतम, वेदव्यास जिनका आन्तरिक तिमिर दूर हो गया है—मार्कंडेय, गौतम ॥ १६ ॥ वशिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, अरुणि ॥ १७ ॥ रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय आसुरी, पतञ्जलि, वेदशिरा ऋषि, धौम्य तथा पञ्चशिर, मुनि ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव और ऋतुध्वज, ये सब और इनके तुल्य और दूसरे सिद्धेश (जो लोग ज्ञानके कारण हैं) सदा ही ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भ्रमण किया करते हैं ॥ १९ ॥ इसलिये हम ग्राम्य पशुके तुल्य मूढ़ व्यक्ति हैं, दोनों ही जन हमारे रक्षक हो, हम घोर अंधकारमें डूबे जाते हैं, अब अनुग्रह प्रकट करके ज्ञानमय प्रदीपका प्रकाश कीजिये ॥ २० ॥ चित्रकेतुके यह मधुर वचन सुनकर वह महर्षि अंगिराजी बोले कि हे राजन्! तुम्हारे पुत्रकी कामना करनेपर हमने ही तुमको सन्तान प्रदान किया था; हम वही अंगिरा हैं

१. शंका—राजा चित्रकेतु अत्यन्त चतुर था और त्रिलोकीमें जितने ऋषि मुनि थे सबको जानता था, फिर जब नारद और अंगिरा उसके घर गये तो उसने क्यों नहीं पहचाना जो उनसे पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है?

उत्तर—राजा चित्रकेतुको नारद और अंगिराने ज्ञान उपदेश दिया, तो भी पुत्रशोकमें राजा बहुत दुःखी हो रहा था, इसलिये पहचाना नहीं गया कि यह नारदजी और अंगिरा मुनि हैं।

और हमारे साथ जो दूसरे हैं ये ऋषि भगवान् नारद साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ २१ ॥ हमको स्मरण हुआ कि तुम इस प्रकारसे पुत्रशोकमें पड़ घोर अंधकारमें डूब रहे हो, तुम भगवान् हरिके भक्त हो, तुम्हारा इस प्रकारसे अंधकारमें डूबना उचित नहीं इसलिये तुम्हारे ऊपर अनुग्रह प्रकट करनेके लिये हम दोनों जन यहांपर आये हैं। हे राजन्! तुम ब्रह्मण्य और भगवान्के भक्त हो, तुम्हें इस प्रकारसे व्याकुल होना योग्य नहीं है ॥२२॥२३॥ हे महाराज! जब कि प्रथम हम तुम्हारे घरपर आये थे, उसी समय तुमको ब्रह्मज्ञान देनेकी हमारी अभिलाषा थी, परन्तु उस समय तुम्हारा चित्त और ही विषयमें लगा हुआ था, यह जानकर हम उस समय तुमको पुत्र दे गये॥ २४ ॥ परन्तु पुत्रवान् लोगोंको कैसे-कैसे सन्ताप उत्पन्न होनेका डर रहता है, उसको तुम स्वयं ही अनुभव कर रहे हो। स्त्री, भवन, धन और विविध ऐश्वर्य संपदा यह सब भी इसी प्रकार संतापकी देनेवाली हैं ॥२५॥ शब्दादिक राज्य विभूतिमें पृथ्वीका राज्य, सेना, कोष, नौकर, चाकर, मन्त्री, सुहृद ये सब अपने-अपने प्रयोजनके साथी हैं ॥२६॥ हे चित्रकेतु! यह सब गन्धर्व नगरीके तुल्य अर्थात् कभी आपसे आप आकर उपस्थित हो जाते हैं, और कभी आपसे आप ही चले जाते हैं, वास्तवमें स्वप्न, माया और मनोरथ इत्यादि जिस प्रकारसे कल्पित हैं वैसे ही यह समस्त भी कल्पित ही हैं ॥ २७ ॥ हे राजन्! ये सब ही पदार्थ मनसे गढ़े हुए हैं, क्योंकि सात्विक स्वरूपके विना एक क्षणभर दृश्यमान होकर भी दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाते हैं, जो यथार्थ होते तो क्षणभरमें उनका आना-जाना किसी प्रकार संभव नहीं। इस कारण मनसे ही कल्पना किये। ये सब ही पदार्थ स्वप्नादिके तुल्य मिथ्या हैं। हे राजन्! मीमांसक लोगोंके मतसे यद्यपि सब पुण्य पापोंके फल हैं तो भी कर्मकी वासनाका अनुध्यान करनेसे ही पुरुषके मनसे कर्म हुआ करते हैं, इस कारण सब कर्म भी मनसे ही उत्पन्न हैं इस कारण कर्मसाध्य विषय भी मनसे ही उत्पन्न कहे जाते हैं ॥२८॥ हे राजन्! प्राणीका यह देह जो द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक अर्थात् आधिभूत, आधिदैव और अध्यात्मस्वरूप, यही देहीका अर्थात् "मेरा देह" इस प्रकारसे समझनेवाले जीवको अनेक संताप मिलते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण एकाग्रमनसे ब्रह्मविद्याका विचार करके द्वैतवस्तुमें "यह वस्तु नित्य है" ऐसा जो तुम्हारा विश्वास है, उसको छोड़ दो, और शान्तिभावको प्राप्त हो ॥ ३० ॥ महर्षि अंगिराजीने जो ब्रह्म विद्याका उपदेश किया वह परमेश्वरकी प्रसन्नताके विना अति दुर्गम है, यह विचार कर परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अंगिराजीके कह चुकने पर देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके प्रति मंत्रविद्याका उपदेश करनेके लिये बोले कि हे राजन्! जो मंत्र उपनिषद् अर्थात् जिससे परमश्रेष्ठ (उपनिषण्ण) की प्राप्ति होती है, उसको तुम सावधान होकर धारण करो। इसके धारण करनेसे निश्चय ही सात (७) रात्रिके मध्यमें संकर्षण प्रभुका तुम दर्शन पाओगे ॥ ३१ ॥ हे नरेन्द्र! शर्वादि

१. एक ब्राह्मण भगवत् भक्त एक वैश्यके घरपर आया कि, उसी समय उस बनियेका शाला भी आया, सेठानीने अपने भाईके अर्थ सुन्दर पकवान पूरी कचौरी, लड्डू, इत्यादि नगद माल एक थालमें परोसे और दूसरे थालमें परामठे और साग, परोस-परोस अपने स्वामीसे कहा कि, इस थालको अपने सालेके आगे और दूसरेको बाबाजीके आगे परोसना, तब उस भगवत् भक्तने साले का थाल साधूके आगे, और परामठोंका [illegible] सालेके आगे धरा। तब [illegible] बनियेकी बहूने कहा कि इस बातमें नाक कटेगी। यह सुन बनियेने कहा यहांकी कटी तो जुड़ जायगी, परंतु जहांका यह ब्राह्मण भक्त है, वहां की कटी फिर न जुड़ेगी। वास्तव में भक्तोंकी अधिक शुश्रूषा करना उचित है।

पूर्वतन देवगण जिनके चरणकमलके मूलमें शरणागत हो द्वैत भ्रम त्याग सद्यः जिनके समान और अधिक नहीं है उस महिमाको प्राप्त हुए हैं इस लिये तुम भी शीघ्र ही उसको प्राप्त होगे, परन्तु जिस समय इतनी बातको समझ लोगे ॥ ३२ ॥

भजन

सबमें केवल प्रेम प्रधान।
प्रेम करत प्रीतम सो निसि दिन, प्रेमी चतुर सुजान।
क्यों नर करत परिश्रम अधिकहिं, बहु व्रत तप कर दान॥
प्रीति करो श्रीव्रजनन्दनसों, यही परम प्रिय ज्ञान।
कह रघुवीर मिटै जब आपा, तबहि मिलैं भगवान ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे पुत्रशोकातुरचित्रकेतवे अंगिरोज्ञानदानवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा—चित्रकेतु सुत वचन सुन, भये मग्न सुख मान।
नारद पुनि भाषण लगे, शेषनागको ज्ञान ॥

देवर्षि नारदजी चित्रकेतुके पुत्रके मुखसे ही पिता-पुत्रादिका सम्बन्ध मिथ्या कहलानेके लिये योगबलसे उस मृतक बालकके जीवात्माको उसके जातिवालोंका दिखाया॥ १ ॥ उसके पीछे फिर उस जीवात्माको पुकारकर नारदजी बोले कि हे जीवात्मन्! तुम्हारा मंगल हो, अपने माता-पिताको देखो। तुम्हारे यह सब सुहृद बंधु तुम्हारे शोकमें अत्यन्त ही संतापित हो रहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपने देहमें फिर प्रवेश करो। अकालमृत्युसे मरे हो, अब भी तुम्हारी परमायु शेष है, तुमको तुम्हारा पिता राज्य भोग करने देंगे। उठो! और बन्धु बान्धवोंके साथ पिताका दिया धन भोगो और राज्य सिंहासनपर बैठो ॥ ३ ॥ देवर्षि नारदजीके यह वचन सुनकर मृतक राजकुमारका जीव आकाशमें स्थित हो प्रेत शरीरमें रहकर उत्तर देने लगा कि यह किस जन्ममें हमारे माता-पिता हुए थे? हम कर्मोंके द्वारा देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, इन योनियोंमें वारंवार भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४ ॥ मेरे मर जानेसे पुत्र कहकर यदि इन लोगोंको शोक हुआ हो तो यह मुझको शत्रु समझकर हर्ष क्यों नहीं करते? क्योंकि सम्बन्ध सदा एक प्रकारका नहीं है। सब ही पुरुष बारी-बारीसे सबके बन्धु, जाति (सपिण्ड), शत्रु (घातक), मध्यस्थ (न शत्रु न मित्र), मित्र (रक्षक), विद्वेषी (द्रव्यादिके लिये द्वेष करने वाले अर्थात् ईर्षा करनेवाले) और उदासीन (तद्व्यतिरिक्त) हो सकते हैं ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मोल लेने और बेचनेके योग्य सुवर्णादि वस्तु व्यवहार करनेवालोंमें घूमती है। इसी प्रकार जीव अनेक योनियोंमें घूमता हुआ फिरा करता है ॥ ६ ॥ जन्मान्तरका सम्बन्ध सदा नहीं फिरता फिर भला यह तो अधिक बात है, एक जन्ममें ही उसका अनित्य तत्त्व जान पड़ता है, देखो, जीवित पश्वादिक सम्बन्धमें सदा नहीं रहता, विक्रियादिसे निवृत्ति पाया करता है और जबतक जिससे सम्बन्ध रहता है, तबतक ही उसकी ममता रहती है ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे जीव पित्रादि सम्बन्ध प्राप्त होनेपर भी आप नित्य ही रहता है, शरीरके जन्मादि द्वारा जीवके जन्मादि नहीं होते, इस कारण जीव वास्तवमें निरहंकृत अर्थात् "मैं इसका पुत्र हूं" इस प्रकारके अभिमानसे शून्य है, वह पित्रादि सम्बन्धियोंमें अपने कर्मके वश हो

जबतक सम्बन्ध बना रहता है, तबतक ही उसमें पित्रादिका अधिकार है॥८॥, नित्य अविनाशी सूक्ष्म प्रभु अपनी मायाके गुणसे विस्वस्वरूप आत्माकी सृष्टि किया करता है इस लिये जन्मादि युक्त देहादिक आश्रय है, इसका कारण यह है कि जीव स्वयंप्रकाशमान है, इसलिये वह जन्मादि शून्य है, सूक्ष्मत्वप्रयुक्त अन्यय अपक्षय रहित और अनित्य है ॥ ९ ॥ और इस जीवको प्यारा, कुप्यारा, कोई भी नहीं है अर्थात् अपना भी कोई नहीं है और पराया भी कोई नहीं है, वह एक अर्थात् सुहृदादिके संगसे रहित है, गुणदोषकारी जो सब मित्रादि हैं यह जीव केवल उन लोगोंकी विचित्रबुद्धिका साक्षीमात्र है। इसलिये हमारे सुहृद न होकर संताप करें और सुहृद बंधुओंके मनको दुःख देना यह बात असम्भव है॥१०॥और "राज्यादि भोगकर" यह युक्ति भी अयुक्ति है, क्योंकि गुण (सुख), दोष (दुःख) और क्रिया फल (राज्यादि) इन सबको जीव ग्रहण नहीं कर सकता, वह सदा उदासीनके समान है इसलिये जीव कारण और कार्यका साक्षीमात्र होकर इसका भोगनेवाला नहीं है क्योंकि यही ईश्वर अर्थात् देहादिकी परवशता रहित है इसलिये मेरे और तुम्हारे सबके इसी प्रकार होनेसे किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है। फिर इसमें शोक-मोह कैसा ?॥११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सबके सामने इस प्रकार कहकर वह राजकुमारका जीव वहांसे चला गया। उसकी जातिवाले जो शोकसे विलाप कर रहे थे, इस बातको सुनकर उन सबने अत्यन्त विस्मय प्राप्त किया परन्तु उसके पीछे बहुत शीघ्र सबने प्रेम जंजीर तोड़कर समस्त शोक-मोह छोड़ दिया॥१२॥अनन्तर उस जातिका मृतकदेह यथाविधि निहार अर्थात् उसका संस्कार करके और यथोचित उसके क्रिया-कर्मोंका निर्वाह कर त्यागनेके अयोग्य स्नेहको जो शोक, मोह, भय और आर्त्तका कारण था एकवार ही त्याग कर दिया॥१३॥हे राजन् ! कृतद्युति रानीकी जिस पत्नीने विष देकर इस राजकुमारका प्राण विनाश किया था, वह लज्जित और बालककी हत्या करनेसे दीप्तिरहित होकर "पुत्रादि केवल दुःखके कारण हैं" महर्षि अंगिराजीके इन वचनोंको स्मरण करके पुत्रकामना छोड़कर निर्मत्सर हो यमुनाके तीरपर चली गयी और वहांपर बैठकर ब्राह्मणोंने जिस प्रकारसे विधि बतायी वैसे ही वे सब रानियाँ बालहत्या व्रतका अनुष्ठान करने लगीं कि जिससे यह पाप छूटे। "राजा चित्रकेतुकी ये रानियाँ पहले जन्ममें गिजाई होकर एक उपलेके नीचे बैठी थीं, और चित्रकेतुका पुत्र प्रथम जन्ममें हाथी था, दैवयोगसे उसका पैर पड़नेसे यह सबकी सब मर गयीं। इस जन्ममें उन्हीं सब गिजाइयोंने रानी होकर इस बालकको विष देकर मार डाला इसलिये इन सबका बदला हो गया। और कोई इस कथाको इस प्रकारसे कहते हैं कि पूर्व जन्ममें भी राजा चित्रकेतु एक राजा था वह दिग्विजय करता हुआ एक राजाके नगरमें आया, जब इन दोनोंमें युद्ध हुआ तो एक अपनी सेनाको छोड़ वनमें भाग गया और अत्यन्त ग्रीष्म पानेके कारण व्यथाका मारा एक नदीमें स्नान किया, स्नान करके जब ये बाहर किनारे पर आया तब उसने अपनी धोतीको निचोड़ा, उस धोतीका निचोड़ा हुआ पानी एक बिल (भट्टे) में गया, कि जिसमें करोड़ों चिटियां रहती थीं, उस पानीके पड़नेसे वे सब मर गयीं। इसी कारण दूसरे जन्ममें पराजित हुआ, राजा चित्रकेतुको दुःख देनेके लिये उसका पुत्र हुआ और इन सब रानियोंने अपना बैर साधनेके लिये इसको विष भक्षण करा दिया" ॥ १४ ॥ हे राजन् ! राजा चित्रकेतु भी ब्राह्मणोंके वचन सुनकर और इस प्रकारसे प्रबोध पाकर जिस

प्रकार हाथी तलैयाकी अदनसे निकल जाता है, वैसे ही गृहरूपी अंधकूपसे निकल आया ॥१५॥ फिर यमुनाके निकट जाय वहां स्नान करके यथाशास्त्र तर्पणादि समाप्त कर मौनी और जितेन्द्रिय हो उन ब्रह्म पुत्र नारद व अंगिरा दोनोंकी वंदना करने लगा ॥१६॥ भक्त जितेंद्रिय राजा चित्रकेतु जब इस प्रकारसे शरणमें आया तब प्रसन्न हो अंगिराके सहित नारदजीने इस स्थानमें आकर उसको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया ॥१७॥ वह विद्या यह है–प्रभो ! तुमको हम नमस्कार करते हैं । और भगवान् वासुदेवको मनसे नमस्कार करते हैं और उन प्रद्युम्न अनिरुद्ध व संकर्षणके प्रति वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ वे भगवान् विज्ञानमात्र हैं केवल आनंद ही उनकी मूर्ति है, वे आत्माराम और शांत अद्वैत दृष्टिसे रहित आपको हम नमस्कार करते हैं ॥१९॥ हे प्रभो ! तुम आत्मा नंदके अनुभव माया निमित्त (कारण) राग-द्वेषादिको भगा देते हो और स्वयं विषय इंद्रियोंके ईश्वर हो, अति बड़े और अनंतमूर्ति आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२०॥ अहो ! मनके सहित वाक्य, अथवा समस्त इंद्रियाँ जिसको प्राप्त नहीं कर सकतीं जो अकेले ही प्रकाशित होते हैं, जिनका नामरूप कुछ भी नहीं है, और जो चिन्मात्रस्वरूप व कार्य और कारणके भी कारण हैं, वे संकर्षण हमारी रक्षा करें ॥२१॥ प्रभो जिनमें यह कार्य कारण रूप जगत् स्थिर रहता, लयको प्राप्त होता और जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है और मिट्टीके समस्त पदार्थोंमें मिट्टीके समान चराचर पदार्थोंमें दिखाई देते हैं, तुमही वह ब्रह्मा हो, इस लिये हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ और आकाशके समान बाहर-भीतर फैले रहने पर भी जिनको मन, बुद्धि, इंद्रियाँ, प्राण इत्यादि क्रिया शक्तिसे स्पर्श करने और ज्ञान शक्तिसे जान नहीं सकतीं, वही ब्रह्म है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥२३॥ देह इंद्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि ये जिनके अंशसे बिंधे हुए कर्ममें जागते और स्वप्नमें विचरण करते हैं, सोते व मूर्छादिक समयमें चैतन्यका अंश न रहनेपर विना गर्म हुआ लोहा जिस प्रकार नहीं जला सकता, वैसे ही अपने-अपने कार्य करनेको समर्थ नहीं होते, इसलिये जैसे लोहा अग्निकी शक्तिसे जलानेवाला हो जाता है, परंतु अग्निको जलानेकी शक्ति उसमें नहीं होती । वैसे ही देहादि ब्रह्मगत ज्ञान भी क्रिया शक्तिसे यद्यपि क्रियावान् और ज्ञानवान् होता है तो भी (ईश्वरको) स्पर्श नहीं कर सकता और जान भी नहीं सकता, यद्यपि यह बात सत्य है कि जीव द्रष्टा रहता है तो जीवको भी जानेकी सम्भावना नहीं क्योंकि जाग्रदादि अवस्थामें इस जीवके निमित्त ही वह भगवान् "द्रष्टा" इस नामको प्राप्त होते हैं ॥२४॥ अहो महापुरुष भहानुभाव, महाविभूतिपति, उन भगवान्को हम नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविंद युगलके प्रधान-प्रधान भक्त समूहके कर-कमल मुकुलद्वारा सदा उपलालित होते हैं, हे श्रेष्ठ ! हे परमेष्ठिन् ! सर्वेश्वर ! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कौरवनाथ ! शरणागत भक्त चित्रकेतु राजाको इस प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करके भगवान् नारदजी महर्षि अंगिराजीके साथ ब्रह्मधामको चले गये ॥२६॥ देवर्षि नारदजी तो इस प्रकार कहकर चले गये, परंतु राजा चित्रकेतु वैसे ही सावधान होकर एक सप्ताहभर केवल जलपान कर उस विद्याको धारण किया ॥२७॥ हे राजन् ! शतरात्रिके पीछे इस धारणकी हुई विद्याके प्रभावसे चित्रकेतुको एक बड़ा भारी अवान्तर फल प्राप्त हुआ कि उसने अचल विद्याधरोंके राज्यको प्राप्त किया, इस राज्यमें किसी प्रकारका कोई कंटक नहीं था ॥ २८ ॥ उसके पीछे कुछ दिन बीतने

पर इस विद्यासे ही उस राजाका मन दीप्तियुक्त हुआ जिससे कि वह मनके द्वारा गतिशील होकर देवदेव भगवान् शेषजीके चरण समीपमें पहुँच गया ॥२९॥ और देखा कि प्रभु शेषजी सिद्धेश्वरोंसे परिवेष्टित हो रहे हैं। उनका वर्ण मृणालके तुल्य गौर है, नीलाम्बर पहने हुए हैं, यथा-स्थानमें किरीट, केयूर और कंकणादि गहने सजे हुए अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं, दूसरे उनका वदन प्रसन्न और लोचन अरुणवर्ण हैं ॥३०॥ ऐसे श्रीशेषजीका दर्शन करते ही राजा चित्रकेतुके समस्त पापोंका नाश होकर उनका अंतःकरण निर्मल व सावधान हो गया, और प्रेमके मारे आंखोंके कोये अश्रुजलसे परिपूर्ण हो गये और गद्गद होकर सब शरीरमें रोमाञ्च हो गया, बस राजा चित्रकेतु सब छोड़-छाड़ आदिपुरुषकी शरण हुए और अति भक्ति श्रद्धासे उनको प्रणाम किया॥३१॥ परन्तु वह बहुत देरतक उनकी स्तुति न कर सके क्योंकि उत्तमश्लोक भगवान्के पादपद्मरूपी दो आसन प्रेमाश्रुबिंदुसे राजा चित्रकेतु वारंवार पखार रहा था, इस कारण शीघ्र ही प्रेमके वश होनेसे बाष्पसे कण्ठ रुद्ध होनेके कारण राजामें कुछ कहनेकी शक्ति न रही ॥३२॥ कुछ देर पीछे जब फिर राजाको बोलनेका सामर्थ्य प्राप्त हुआ, तब वह समस्त इन्द्रियोंकी बाहिरी कृति रोक बुद्धिसे मनको सावधान करके और श्रीनारद-पंचरात्रमें अथवा भगवत्-भक्तोंके शास्त्रका वर्णन करनेवाली जिनकी मूर्ति है, उन जगद्गुरु भगवान्के प्रति राजा चित्रकेतु निम्नलिखित प्रकारसे निवेदन करने लगा ॥ ३३ ॥ चित्रकेतु बोला कि हे अजित ! हे भगवन् ! यद्यपि आप अजित हैं और किसीके जीतनेमें नहीं आते, तथापि समबुद्धि जितात्मा साधुगणोंने आपको जीत करके अपने अधीन किया है, क्योंकि अतिशय दयामय हैं, परन्तु यद्यपि वे सब साधु निष्काम हैं, तो वे लोग भी आपके निकट पराजित हुए हैं, आप महात्मा पुरुषोंको आत्मदान दिया करते हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! भक्तके सिवाय किसीसे भी आपके पराजित होनेकी सम्भावना नहीं, क्योंकि जगत्के सृष्टि, स्थिति, प्रलय, प्रवेश नियमादि जो कुछ दिखलायी देते हैं, वे सब आपके विभव अर्थात् महिमामात्र हैं, हे प्रभो ! आप विश्व रचनेवाले हैं, ब्रह्मादि देवता आपके ईश्वर नहीं हैं, किंतु आपके अंश जो पुरुष हैं, उनके भी अंश हैं। हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो यह सब पुरुष "हम अलग-अलग ईश्वर हैं" कहकर वृथा गर्व करते हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! सूक्ष्म मूल कारण जो परमाणु और अंतिम कार्य जो परम महत् है,इन दोनोंके ही आदि, अन्त और मध्यमें आप ही वर्तमान रहते हैं, इस कारण आपका आदि, अन्त और मध्य नहीं है, इस लिये आप ध्रुव हैं, जो समस्त कार्य सत् रूप प्रतीत होते हैं और सबके ही आदि, अंत, मध्यमें सुवर्णादिकी नाई जो रहता है, वही ध्रुव है, आप इन समस्तके सृष्टिकर्त्ता हैं, इस कारण यह समस्त किसी प्रकारसे भी ध्रुव नहीं है ॥३६॥ हे प्रभो ! ध्रुव होनेसे आपके जिस प्रकार कालकृत परिच्छेद नहीं, वैसे ही देशकृत परिच्छेद भी नहीं है, यह ब्रह्माण्डकोष यथाक्रम होकर प्रथम इससे ही दशगुण अधिक क्षिति इत्यादि सप्त पदार्थों करके ढक जानेसे वास्तवमें सत्य ही सत्य अति बड़ा हो रहा है, परन्तु ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड भी आपके निकट परमाणु तुल्य होकर

१. शंका-सब राजा जिस लोकको गये हैं और उन सब राजाओंकी स्त्री भी उनके साथ उसी लोकको गयी हैं, ऐसा हमने सब शास्त्रोंमें सुना है, परंतु चित्रकेतु तो विद्याधरोंका राजा हुआ तब उसकी स्त्री किस लोकको गयी।

उत्तर-जैसे सबके देहकी छाया देहके संगको नहीं छोड़ती, ऐसे ही पतिव्रता स्त्री अपने पतिके संगको नहीं छोड़ती जहां पति जाता है उसी स्थानको स्त्री भी जाती है इस विचारसे चित्रहेतु विद्याधरोंका राजा हुआ तो वे विद्याधरोंकी रानी हुई, ग्रन्थ बहुत बड़ा हो जायगा इस लिये व्यासजीने रानियोंकी कथा वर्णन नहीं की, विचार किया कि पंडित लोक आप जान जायँगे ॥

घूमा करते हैं, इस कारण आप अनंत हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! जिन लोगोंकी विषयमें ही तृष्णा लगी हुई है, वे लोग मनुष्योंके आकारवाले पशु हैं, क्योंकि वे लोग अपनी तृष्णाको पूर्ण करनेके लिये आपकी विभूति जो इन्द्रादि देवता हैं, उनकी पूजा किया करते हैं, परन्तु वे लोग परम पुरुष परमेश्वर आपकी पूजा नहीं करते। परन्तु हे ईश ! यह सब पुरुष अपनी-अपनी कामना पूर्ण करनेके लिये इन देवताओंकी पूजा करके भी अपनी-अपनी अभिलाषित वस्तुको बहुत समय तक भोग नहीं कर सकते हैं, जिस प्रकार राजकुलके नाश हो जानेपर उसके सेवकोंकी भलाईका नाश हो जाता है, वैसे ही इन लोगोंके पूजनीय देवताओंका नाश होनेपर इनकी कामनायें भी नष्ट हो जाती हैं ॥ ३८ ॥ हे परमेश्वर ! जिनके चित्त कामवासनामें आसक्त हैं, वे लोग यदि आगमें ही अपनी-अपनी कामनाकी रचना करें अर्थात् उसको पूर्ण करनेका संकल्प करके यदि आपकी ही सेवा करनेमें रत हो जांय तो भूने हुए बीजके समान फिर वह कामना उत्पन्न नहीं हो सकती, इस कारण फिर देहान्तरोत्पत्तिका अभाव हो सकता है, क्योंकि जीवके जो गुणगण हैं, उनसे ही सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके समूह उत्पन्न होते हैं, आप निर्गुण हैं आपकी पूजा कामनाके सहित करनेसे धीरे-धीरे निर्गुण हो सकता है ॥ ३९ ॥ इस कारण हे प्रभो ! फलकी कामना भी करनेपर आपकी आराधना करनेसे जब कि मोक्षका हेतु हो जाता है, तब फिर भागवत धर्मके माहात्म्यका तो वर्णन ही क्या करें ? आपकी स्तुति करते हैं, हे प्रभो ! जब कि आपने अनवद्य भागवत धर्म कहा है, तब सर्व श्रेष्ठमें आप वर्त्तमान हैं। हे भगवन् ! कौन पुरुष इस धर्मका माहात्म्य कह सकेगा, जो समस्त मुनि सनत्कुमारादि अकिञ्चन और आत्माराम अपवर्गको प्राप्त करनेके लिये इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! काम्य धर्ममें जिस प्रकार "तुम, हम, तुम्हारा, हमारा" इस भांतिकी विषयबुद्धि है, भागवत धर्ममें ऐसी विषयमति नहीं है, हे भगवन् ! यद्यपि और सब काम्यधर्म भी वेदोक्त हैं तो भी विषयबुद्धिसे शत्रु मरणादि कामनामें जो विधान है; राग, द्वेषकी मूलकता होनेसे वह अविशुद्ध है और उसका फल नाशवान् है इसलिये इन सर्व कर्मोंका क्षय हो जाता है और हिंसादिकी अधिकता होनेसे अधर्मका मूलक है ॥ ४१ ॥ ये सब कर्म आपके और दूसरेके द्रोह करनेवाले हैं इसलिये इन कर्मोंसे आपका व दूसरेका क्या मंगल ? और किस कार्यमें आ सकते हैं ? किसी कार्यमें भी नहीं आते ! वरन् कायक्लेशसे अपने द्रोहके हेतु आपको पीड़ा और परद्रोहसे अधर्म और क्लेश ये सब ही होते हैं। गीतामें कहा है कि, दूसरेको पीड़ा देना ही अधर्म है "कर्षयन्तःशरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान्" ॥४२॥ इसलिये यद्यपि रागान्ध पुरुषोंको कुछ वेदमार्गमें प्रवृत्ति करनेके लिये आपने ही काम्य धर्म कहा है, तो भी वह तत्त्वदृष्टिसे नहीं कहा गया है, इसलिये उस धर्मसे अपना पराया धर्म हुआ करता है, परन्तु भागवत धर्ममें किसी प्रकारसे भी द्रोहकी सम्भावना नहीं, क्योंकि आपकी दृष्टिका कभी व्यभिचार नहीं होता, अर्थात् जो कभी परमार्थका त्याग नहीं करती उसी दृष्टिके द्वारा यह धर्म रचा गया है, इस कारण समस्त भगवद्भक्त मानव, स्थावर, जंगम प्राणिसमूहमें समबुद्धि रखते हैं, वे लोग इस धर्मकी सेवा किया करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आप ऐसे भागवत धर्मके प्रचार करनेवाले हैं, फिर आपके दर्शनसे मनुष्योंके जो अखिल पाप नाशको प्राप्त होंगे इसमें विचित्रता ही क्या है ? हे स्वामिन् ! आपका नाम केवल एकवार मात्र श्रवण

करनेसे महानीचको भी संसारमें धनसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ४४ ॥ इस कारण केवल आपका दर्शन करनेसे ही हम लोगोंके अंतःकरणका मैल दूर हो गया, हे भगवन् । देवर्षि नारद आपके ही पुरुष हैं; उन्होंने जो कुछ कहा है, वह क्या कभी अन्यथा हो सकता है ? देवर्षिके ही उपदेशसे हमने आपके दर्शनका लाभ किया ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! आप जगदात्मा, सर्वान्तर्यामी, इस कारण कोई पुरुष कोई भी आचरण करे, वह सब आपको विदित हो जाता है, जैसे पटबीजनके द्वारा सूर्यके निकट कोई पदार्थ प्रकाशनीय नहीं हो सकता, पटबीजनकी तो क्या सामर्थ्य है, जो प्रकाश करे ? वैसे ही हे परमगुरु ! आपके निकट हम क्या प्रकाश कर सकते हैं ? हम आपके निकट कुछ भी प्रकाशनीय नहीं हैं॥४६॥अहो ! हम उन भगवान् परमहंसको नमस्कार करते हैं, जो सब जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर्त्ता ईश्वर हैं, कुत्सित योगिगण भेददृष्टि होनेके कारण उनका निज तत्त्व नहीं जान सकते॥४७॥ अहो ! जिनके श्वास लेनेसे विश्व रचनेवाले श्वास लेते हैं,जिनको देखनेसे ज्ञानेन्द्रिय स्वारूढ़ दर्शनशील होकर देखती हैं; जिनके मस्तकपर यह बड़ा भारी भूमण्डल एक सरसोंके दानेके समान धरा हुआ है, उन सहस्रशिरवाले भगवान् शेप अनंतजीको हम नमस्कार करते हैं ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुभूषण परीक्षित ! इस प्रकारकी स्तुति करनेसे भगवान् अनन्त जी अत्यन्त प्रसन्न होकर विद्याधरपति राजा चित्रकेतुपर प्रसन्न हुए और उसको सम्बोधन करके इस वक्ष्यमाण वाक्यका प्रयोग किया ॥४९॥ अनन्त भगवान् बोले कि हे राजन् ! देवर्षि नारद और अंगिराजीने तुमको हमारे विषयमें जो कुछ भी उपदेश किया था, उस उपदेश और उसी विद्याके प्रभावसे तुमको हमारे दर्शन हुये और हमारे दर्शन पाकर तुम सर्व प्रकारसे सिद्ध हुये ॥ ५० ॥ हे वत्स ! हम ही भूतभावन अर्थात् सब जीवोंके प्रकाशक और कारण हैं, इसलिए हमही सब जीवरूप और समस्त जीवके आत्मा अर्थात् भोक्ता हैं, इस कारण हमारे शिवाय भोक्ता और भोगात्मक विश्व नहीं है, हे राजन् ! कोई पुरुष "शब्द ब्रह्म प्रकाशक और परब्रह्मकारण" जो कहा करते हैं, यह भी सत्य है, परंतु ये दो अर्थात् शब्दब्रह्म और परब्रह्म हमारे ही पुराने शरीर हैं ॥५१॥ इस कारण तुम लोकमें अर्थात् भोग्य प्रपञ्चोंमें आत्माको भोग्यत्वरूपमें वितत अर्थात् अनुगत और आत्मामें भोग्यत्वरूपसे व्याप्त देख करके इन दोनों कहे कारणात्मा जो हम हैं हममें ही व्याप्त और हमसे ही ये दोनों कल्पित हैं, ऐसा स्मरण करो ॥५२॥ जिस प्रकारसे सोया हुआ पुरुप गिरि वनादिरूप वृक्ष भिन्न-भिन्न देहव्यापी होनेपर भी आत्मामें सब देख पड़ता है अर्थात् स्वप्नमें जिस प्रकार सोया हुआ पुरुष स्वप्न देखता है, और जैसे स्वप्नकी अवस्थामें ही उठकर अपनेको एक देशमें अर्थात् शयन किया हुआ समझ जाग्रत अवस्थाका अनुभव करता है ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार से जीवोपाधि बुद्धिकी अवस्था जो समस्त जागरणादि है, वह सृष्टि आत्माकी केवल माया-मात्र है, हे राजन् ! इस प्रकार विशेषरूपसे जानकर उन सब अवस्थाके देखनेवाले और इन सब सहित जो आत्मा है इसका ही स्मरण करना कर्तव्य है ॥५४॥ हे राजन् तुम ऐसा मत जानना कि स्वप्नावस्थामें दृश्य न रहनेपर द्रष्टा भी नहीं है, भलीभांति सोया हुआ पुरुष अर्थात् जीव जिससे अपनी निद्रा और इंद्रियोंके सुखको जान सकता है, वही वस्तु अर्थात् आत्मा उस समय भी वर्तमान रहता है, उस कालमें निद्रा और सुखका ज्ञान नहीं होता, ऐसा भी हम नहीं कह सकते, क्योंकि मैं सुखसे सोया था, यहांतक कि मुझे कुछ ज्ञान न रहा इस

प्रकारसे स्मृति सबको ही अनुभव सिद्ध है, इस कारण स्वप्नादि अवस्थामें भी आवर्तमान रहता है, वही आत्मा ब्रह्म है, और वही ब्रह्म जो है सोई हम हैं, ऐसा तुम जानो ॥ ५५ ॥ यदि कहो निद्रावस्थामें साक्षी जो वस्तु देखेगा, वह साक्षी उसको जाग्रत अवस्थामें किस प्रकारसे स्मरण करेगा, एकका देखा हुआ कभी दूसरा स्मरण कर सकता है ? (उत्तर)-निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंको खोज करनेसे निद्रा और जागरण प्रकाशत्वरूपमें जो कुछ अन्वित हो और एक दूसरेका अपायसे भी अपाय न होनेपर जो कुछ इन दोनोंसे अलग है, इसी ज्ञानके प्रभावसे ऐसा स्मरण हुआ करता है, वह ज्ञान नहीं परब्रह्म है, इस कारण बाल्यावस्थामें दृष्टिविषय जिस प्रकार यौवनमें दृष्टिगोचर होता है वैसे ही जागनेमें दूसरी अवस्थाके होनेपर भी निद्रा और आनन्दका स्मरण कर सकता है, यह जो कुछ भी हो, फल यह है कि, ऐसे ब्रह्मको ही आत्मा जानना ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! जो हमारा यह स्वरूप अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ यह भूलकर आत्माके निकटसे अलग हो जाय, तब तो फिर पुरुषको अपार संसारमें घूमना-फिरना होता है, उस संसारका स्वरूप यह है कि, इस देहसे दूसरी देह, अर्थात् जन्मान्तर, पुनर्जन्म और मृतकसे फिर मृतक अर्थात् मरणके पीछे फिर मरण होना ॥५७॥ हे राजन् ! मनुष्यजन्ममें ही शास्त्रज्ञान और परीक्षाज्ञान प्राप्त करने की बड़ी सम्भावना है, इस मनुष्यजन्मको प्राप्त करके जो पुरुष परमात्माको न जानकर उसके विषयमें ज्ञान नहीं करता उसका कल्याण किसी समय भी नहीं होता ॥५८॥ इस कारण प्रवृत्तिमार्गमें जैसे क्लेश और फल भी उसके उलटे हो जाते हैं, और निवृत्ति मार्गमें जिस प्रकारका फल जो कि अनिर्वचनीय फल (मोक्ष) प्राप्त हो सकता है, उसको याद करके फलके संकल्पसे विमुख होना उचित है ॥५९॥ हे महाराज ! सुख अथवा दुःखके छुड़ानेके लिये संकल्प करके मनुष्यगण स्त्री-पुरुष दोनों अनेक प्रकारके क्रियाकलाप किया करते हैं, परंतु उनके क्रियाकलाप करनेसे न तो दुःखसे छुटकारा ही होता और न सुखकी प्राप्ति ही होती है ॥६०॥ जिन मनुष्योंको अपने ज्ञानका अभिमान है कि "हम उद्यम करनेमें बड़े प्रवीण हैं" वह इस उलटी बातको जानकर तीनों स्थानोंसे आत्माकी विलक्षण सूक्ष्म गति है, ऐसा जानते हैं ॥६१॥ अपने तेजसे देख सुन शब्दादि तन्मात्रसे छूटकर ज्ञान-विज्ञानसे संतुष्ट होकर पुरुष मेरा भक्त होता है ॥६२॥ हे राजन् ! परमात्माका और जीवका जो केवल एक रूपमें दर्शन करता है, उसको ही योगमें निपुण हुए मनुष्यगण सर्व प्रकारसे स्वार्थ कहकर जानते हैं, इस कारण इससे अधिक और परम पुरुषार्थ नहीं है ॥६३॥ तुम यदि सावधान होकर हमारे यह वचन श्रद्धासहित श्रवण करके धारण करोगे तो बहुत ही शीघ्र ज्ञानविज्ञान युक्त होकर सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥ इतनी कथा वर्णन कर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! जगत्-गुरु विश्वात्मा भगवान् हरि संकर्षण इस प्रकार चित्रकेतुको समझा-बुझाकर फिर उसके सामने ही अन्तर्ध्यान हो गये ॥ ६५ ॥ चित्रकेतु बोले-

भजन

श्यामसुन्दरकी अद्भुत शोभा, बिसरत नाहि बिसारी है रे ॥
शीशमुकुट मकराकृति कुंडल, उर वनमाल सँवारी है रे ।
नयन विशाल नासिकाकी छबि, मनकी मोहनहारी है रे ॥

पीतवसन और हँसन दशनकी, शोभा परम पियारी है रे ॥
शालिग्राम छिपे क्यों हमसे, यह अचरज मोहिं भारी है रे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कंधे चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा-चित्रकेतु आकाशमें, घूमत सिद्धी पाय ।
हँसी करी जब शम्भुकी, गिरिजा दियो गिराय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-कि हे राजन् ! भगवान् अनन्तजी जिस दिशामें अन्तर्ध्यान हुये विद्याधर चित्रकेतुने उसी ओरको प्रणाम किया और फिर आकाशचारी होकर वह इच्छानुसार विहार करने लगा ॥१॥ उसका बल नहीं घटा था, न उसकी इंद्रियां क्षीण हुई थीं, इस कारण लक्ष-लक्ष वर्षतक वह सरलतासे घूमता रहा और वह महायोगी था, इस कारण मुनि व सिद्धचारण लोग उनकी स्तुति करते थे॥२॥ कुलाचल पर्वतकी गुफामें जहां कि अनेक संकल्प सिद्ध हो जाते हैं वहांपर यह राजा चित्रकेतु श्रीहरिके गुण गाता हुआ विद्याधरोंकी स्त्रियोंके साथ रमण करने लगा ॥३॥ एक समय यह राजा चित्रकेतु भगवान् विष्णुजीके दिये हुये दीप्तिमान विमानमें आरूढ़ होकर गमन करते-करते देखा कि, भगवान् भूतनाथ शिवजी सिद्ध चारण लोगोंसे सेवित होकर ॥४॥ मुनि जनोंकी सभामें भगवती पार्वतीजीको अंक (गोदी) में लिये भुजाओंसे चिपटाये बैठे हुए हैं, चित्रकेतु श्रीमहादेवजीको इस प्रकार बैठे देख क्षण भर तक खड़ा रहा और कुभाग्यके वश होकर उनका उपहास करके यह वक्ष्यमाण वचन उनसे बोला-इन वचनोंको भगवती पार्वतीजीने भी सुना ॥ ५ ॥ चित्रकेतु बोला कि, जो समस्त लोगोंके गुरु, साक्षात् धर्मके कहनेवाले और शरीर धारियोंमें प्रधान हैं, इनका आचरण देखो ? भरी सभाके बीच अपनी भार्याको गोदीमें चिपटाये हुए बैठे हैं ॥६॥ और फिर यही जटाधारी तीव्र तप करनेवाले, ब्रह्मवादी और इस सभाके पति हैं, कैसा आश्चर्य है कि, एक साधारण मनुष्यके समान एकबार ही लाजविहीन हो गये हैं, कि सभाके बीचमें इस प्रकार स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ? ॥७॥ अहो ! साधारण मनुष्यभी एकान्तमें ही स्त्रीको प्यार व आलिंगन करते हैं परन्तु यह बड़ा भारी व्रत धारण करके भी सभामें किस प्रकारसे स्त्रीको गोदमें लिये बैठे हैं ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ शिवजीका मन अत्यन्त गंभीर है, वे चित्रकेतुके यह वचन सुनकर कुछेक हँसकर चुप हो रहे, उस सभामें जितने सभ्य लोग बैठे थे, उनमेंसे कोई कुछ न बोला और सब ही महाराज भोलानाथके अनुगामी होकर चुप रहे ॥९॥ परन्तु चित्रकेतुको ऐश्वर्यकी प्राप्ति होनेसे विजातीय गर्व उत्पन्न हो गया था, "और मैंने इंद्रियोंको जीत लिया है" इस बातका उसको अभिमान भी था, इसलिये

---

१. शंका-राजा चित्रकेतु अनेक जन्मका ज्ञानी था और सब देवताओंका पूजन करनेवाला था, नारदजीका चेला भी था, शेषजीकी कृपा चित्रकेतुके ऊपर बहुत थी । वह सर्व सुलक्षणयुक्त होकर राजा चित्रकेतु जगत्के माता पिता शिव पार्वतीको देखकर क्यों हंसा ?

उत्तर-जैसे राजा बलिने यज्ञ करके इन्द्रका राज्य ले लिया और आप इन्द्र हो गया, तब जिस पुण्यके प्रभावसे इन्द्रासन पाया था वह पुण्य नष्ट नहीं हुआ थोड़ा रह गया था, इस लिये भगवान्ने वामन रूप धरकर इन्द्रको राज्य दिया । वैसा ही कर्म चित्रकेतुने भी किया, विद्याधरोंके राज्यका पुण्य नष्ट नहीं हुआ था परंतु चित्रकेतु मंत्र जपकर विद्याधरोंका राजा हुआ इस लिये भगवान् अपनी मायाको आज्ञा देकर मायासे चित्रकेतुको मोहित करके महादेवजीसे द्रोह कराकर राजा चित्रकेतुको नष्ट किया ।

भगवान् महादेवजीके प्रभावको न जानकर उसने इस प्रकारके अमङ्गल वचन बारबार कहे कि जिनको भगवती पार्वतीजी न सह सकीं और क्रोध प्रकट कर बोलीं ॥१०॥ पार्वतीजी बोलीं कि यह पुरुष क्या इस समय लोकोंका शासन करनेवाला है ? या दण्डधारी प्रभु है ? इसको हम अपने समान लोगोंका अत्यन्त ही विरोधी देखती हैं, यह तो कोई बड़ा दुष्ट और लाज रहित है॥११॥ कैसा आश्चर्य है, कमलयोनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते हैं,ब्रह्माजीके पुत्र भृगु व नारदादिको धर्मका ज्ञान नहीं, सनत्कुमार और कपिल मुनि भी धर्मके जाननेवाले नहीं, महादेवजी महाराज शास्त्रका उल्लंघन करके चलते हैं और क्या ये समस्त मुनि उनका निवारण नहीं कर सकते ? फिर किस कारण यह दुष्ट खोटे वचन कह रहा है ॥१२॥ अहो ! जिनके चरणकमल ब्रह्माजीसे भी धोने-योग्य, जो समस्त मंगलोंके मंगल अर्थात् परम धर्ममूर्ति हैं, यह नीच क्षत्रिय विद्याधर समस्त देवताओंके स्वामी भगवान्‌को कुछ न समझकर शासन करता है, इस कारण यह दण्ड देने योग्य है ॥१३॥ साधुलोग सदा जिस वैकुण्ठमें भगवान् के चरणके निकट जानेकी इच्छा करते हैं, यह पुरुष उस वैकुण्ठके योग्य नहीं है क्योंकि इसको "मैं बड़ा हूँ" इस प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ है, इसी कारणसे इसमें नम्रता भी नहीं है ॥१४॥ इस प्रकार भगवती पार्वतीजी स्वयं चित्रकेतुके दण्डको विचार उसे पुकारकर बोलीं कि हे पुत्र ! तुमको दुर्मति उत्पन्न हुई है, जाओ और पापीयसी आसुरी योनिको प्राप्त हो, ऐसा होनेसे बड़े पुरुषोंका अपराध करनेमें फिर तुम्हारा साहस नहीं होगा ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत ! चित्रकेतुको जब इस प्रकार पार्वतीजीने शाप दिया तब वह उसी समय विमानसे उतरा और मस्तक झुकाकर सतीजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगा ॥ १६ ॥ चित्रकेतु बोला कि हे अम्ब ! जो आपने शाप दिया उसको मैं दोनों हाथोंसे मस्तक पर चढ़ाता हूं, हे मातः देवता लोग मनुष्यके प्रति जो कुछ कहते हैं, वह प्राचीन कर्म उस पुरुषको अवश्य ही प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ यह संसारचक्रका स्वभाव ही है इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, जीव अज्ञानसे मोहित होकर संसाररूपी चक्रमें घूमता हुआ सदा सर्वत्र जो सुख और दुःख भोग करता है,स्वयं वा और उस सुखका कर्त्ता नहीं है, जो पुरुष अज्ञानी है, वही इस विषयमें अपनेको अथवा दूसरेको कर्त्ता कहकर मानते हैं, इस कारण आपने जो हमको शाप दिया, इस विषयमें आपका व हमारा कोई दोष नहीं है ॥ १८ ॥ १९ ॥ परंतु मा ! यह संसार समस्त मायामय गुणोंका प्रवाहस्वरूप है, इसमें शाप क्या है, अथवा अनुग्रह क्या है ? स्वर्ग क्या है ? वरन् सुख-दुःख भी क्या है ? ॥ २० ॥ एक परमेश्वर निमित्त भूत मायासे प्राणियोंके और उनके बन्धन मोक्ष व सुख दुःखकी सृष्टि किया करते हैं, परन्तु वह स्वयं निष्फल अर्थात् बन्धन शून्य है ॥२१॥ यद्यपि भगवान्‌का प्यारा-कुप्यारा जाति, अथवा बंधु पराया अपना कोई भी नहीं है, क्योंकि सर्वत्र समान हैं, और संगरहित हैं इसलिये उनमें अनुराग भी नहीं है, फिर भला मनमें अनुरागका स्वामी रोष किस प्रकारसे हो सकता है॥२२॥ तो भी उनकी मायासे जो समस्त विसर्ग अर्थात् पुण्य पापादिरूप कर्म होते हैं, वही शरीरधारियोंके सुख, दुःख, हित, अहित, बन्धन, मोक्ष, जन्म, मृत्यु और संसारके निमित्त समर्थ हुआ करते हैं ॥२३॥ इस कारण हे माता पार्वती ! आप प्रसन्न हों, केवल यही प्रार्थना है, यह विनती मैं कुछ शाप छुड़ानेके लिये नहीं करता हूँ, मां ! मैंने तो साधु उक्ति ही की थी परंतु उससे जो तुम अपने आपको असाधु समझ गयी हैं, सो यही मेरा अपराध आप क्षमा करें ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे शत्रुदमनकारी राजन् ! चित्रकेतुके इस प्रकारसे

भवानी और महादेवजीको प्रसन्न करनेके वचन सुन गौरी और गिरीश (महादेव) को अत्यन्त विस्मय उत्पन्न हुआ, इसके पीछे चित्रकेतु उन विस्मित देव-देवीके सम्मुख ही अपने विमानपर बैठकर चला गया ॥२५॥ उसके पीछे रुद्राणीसे श्रवणकारी देवर्षि दैत्य सिद्ध और पार्षदगणोंके सामने ही भगवान् रुद्र यह वचन बोले ॥ २६ ॥ श्रीरुद्रजी बोले कि, हे सुन्दरकटिपश्चाद्भागवाली ! अद्भुतकर्मकारी भगवान् हरिके भक्तगण कैसे महात्मा और कैसे श्रद्धा सहित होते हैं, उनका माहात्म्य अब तुमने प्रत्यक्ष देखा ॥ २७ ॥ हे भार्ये ! जो पुरुष नारायणपरायण हैं, वे किसीसे भी भय नहीं पाते । स्वर्ग, नरक, मुक्ति इन तीनोंको ही वे समतासे देखा करते हैं ॥ २८ ॥ क्योंकि परमेश्वरकी लीलासे ही प्राणियोंके देहसंयोग और उसके द्वन्द्व अर्थात् सुख, दुःख, जन्म, मरण और शाप अनुग्रह हुआ करते हैं ॥२९॥ इन सब सुख-दुःखादिकोंके बीचमें गुण-दोष विकल्प अर्थात् इष्टानिष्ट भेद जो कुछ भी प्रकाश पाता है, वह पुरुषके आत्मामें सुखादि भेद स्वप्नावस्थामें जिस प्रकार अविवेककृत होते हैं, वैसे ही अज्ञानकृत जानना और मालामें जिस प्रकार सर्पमालादि भेद अज्ञानकृत होता है, वैसे ही यह अविवेककृत जानना ॥ ३० ॥ हे देवि ! जो पुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करते हैं, वह ज्ञान और वैराग्यके वीर्यसम्पन्न हैं, उनमें "यह अच्छा है" ऐसी बुद्धिमें आश्रय करनेवाला अर्थ नहीं है, अर्थात् उनको किसीके आश्रयकी इच्छा नहीं है ॥ ३१ ॥ यह पुरुष (चित्रकेतु) भगवानका दास है, इस कारण इसमें ऐसी उदारताका होना विचित्र नहीं है । हे देवि ! भगवान् हरिके माहात्म्यका क्या वर्णन करें ? हम (रुद्र), ब्रह्मा, सनत्कुमार, ब्रह्मसुत नारदादि ऋषि, प्रधान-प्रधान देवगण, हम सब लोग भी जब कि उनकी लीलाको नहीं जान सकते फिर भला देवता जो उनके अंश होनेपर भी अपनेको पृथक्-पृथक् ईश्वर कहकर मानते हैं, वे लोग किस प्रकारसे उनके स्वरूपको जान सकते हैं ! ॥३२॥ परन्तु उन भगवान् हरिका न कोई प्यारा भक्त है, न कोई कुप्यारा है, न कोई अपना न कोई पराया है, यह सर्व प्राणियोंके आत्मा इस कारण आप ही सब प्राणियोंके प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ परन्तु यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं हरिका प्यारा भक्त है क्योंकि यह पुरुष शान्त और सबको बराबर देखनेवाला है । हे सती ! हम भी उन्हीं अच्युतसे प्रेम किये हुए हैं, इस कारणसे इसके ऊपर हमको क्रोध नहीं हुआ ॥ ३४ ॥ अतः हे देवि ! तुम विस्मयको छोड़ दो । यह सब महात्मा पुरुष महापुरुषके भक्त शान्त, और सबको सम दृष्टिसे देखनेवाले हैं इस कारण इनका स्वभाव एक ही रूपका है ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् महादेवजीके यह वचन सुनकर भगवती पार्वतीजीने विस्मय छोड़कर अपने चित्तको सावधान किया ॥ ३६ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि वह परम भागवत चित्रकेतु भवानीजीको भी शाप दे सकता था, परन्तु उसने जो भगवती सतीजीका शाप अपने माथेपर

१. शिवजी ऐसे दयालु हैं कि, एक शिवालयमें किसीने ५००० पांच हजार रुपयेके मूल्यवाली सुवर्णकी घंटी चढ़ाई । यह देख एक चोरने रात्रिमें उस घंटी के चुरानेका विचार किया, परंतु जब वह चोर शिवालयमें गया, तब घंटी उसके हाथसे एक हाथ ऊंची निकली । तब चोर पिंडीपर चढ़कर घंटी उतारनेका यत्न करने लगा तब 'वरं ब्रूहि' यह शब्द हुआ । तब चोर बोला कौन है ? तब सदा शिव बोले कि, हम हैं हमारा घंटा क्यों उतारते हो ? जा यहांसे थोड़ी दूरपर वट वृक्ष है, उसके नीचे २०००० बीस हजार रुपये गड़े हैं तू निकाल लेना, मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, कारण कि और कोई तो मुझपर पुष्प और जल ही चढ़ाता है परंतु तूने तो मुझपर [illegible]ना सब शरीर ही चढ़ा दिया है, तुझे धन्य है ! सदा शिवको ! "धन धन भोलानाथ तुम्हारे कौड़ी नहीं खजानेमें । तीन लोक बस्तीमें बसाये आप बसे वीरानेमें ।"

चढ़ाय लिया यही उसकी साधुताका लक्षण था ॥ ३७ ॥ उसके पीछे चित्रकेतु दानवीयोनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें उत्पन्न हुए और पीछे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर "वृत्र" इस आख्यायिकाके नामसे विख्यात हुए ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वृत्रकी असुर भावसे उत्पत्ति और भगवान्में मति होनेका कारण जो आपने पूछा, वह हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ३९ ॥ हे कौरवेश ! महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र चरित्र जो भागवत लोगोंके माहात्म्यसे परिपूर्ण है; उसके सुननेसे मनुष्य बंधनसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवान् हरिका स्मरण करके वाणीको वशमें कर श्रद्धासहित इस इतिहासका पाठ करता है, उसकी परमगति हो जाती है। वह ऐसे कहने लगता है ॥४१॥

भजन

कल न पड़े पलभरको तुम बिन, क्या जादू पढ़ डारा है।
अपना बिगाना कुछ नहिं सूझत, केवल ध्यान तुम्हारा है ॥
आठ पहर दिनरैन छिनक पल,दम भरको नहिं न्यारा है।
सुख सम्पति तन मन सुत दारा, सबको तुमपर वारा है ॥
जो कुछ हो तुमही हम नाहीं, अब तो यही विचारा है।
निर्भय कौन समझता उसको, जो कुछ हाल हमारा है ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे पार्वतीशापेन चित्रकेतोरसुरभाववर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा—अदिती सुतके वंशसे, विश्वरूप आख्यान।
पुनि दितिके सुत मरुत गण, तिनको करहुँ बखान ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे परीक्षित् ! सविताकी स्त्री पृश्निने अपने स्वामीसे सावित्री, व्याहृति, वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और पंचमहायज्ञ इन सब संतानोंको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ हे सुव्रत ! भग नामावली आदित्यकी स्त्री सिद्धिने महिमा, विभु, प्रभु ये तीन पुत्र और आशीर्नामक एक उत्तम कन्या उत्पन्न की ॥ २ ॥ धाताकी संतान कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति ये चार यथाक्रमसे, सायं, दर्श, प्रात और पूर्णमास नामक संतान उत्पन्न की ॥ ३ ॥ विधाता नामक आदित्यकी स्त्री क्रिया, उसके गर्भमें इन आदित्यसे पुरीष्य नामक पांच अग्नि उत्पन्न हुए। वरुणजीकी स्त्री चार्षिणी, जिससे भृगुजी उत्पन्न हुए, जो पहले ब्रह्माजीके पुत्र थे, अब फिर जन्म ग्रहण किये ॥ ४ ॥ हे राजन् ! महायोगी, वाल्मीकिजी जो वल्मीकसे उत्पन्न हुए वह भी वरुणजीके पुत्र थे, इस कारण वरुणजीके भृगु और वाल्मीकि यह दोनों ही पुत्र असाधारण थे, परन्तु अगस्त्य, वशिष्ठ यह दोनों ऋषि वरुणजीके और मित्रके साधारण पुत्र हुए। क्योंकि वरुण और मित्र ॥ ५ ॥ इन दोनों जनोंने ही उर्वशीको देख कामके वश हो उसके निकट एक घड़ेमें अपना वीर्य डाला, जिससे कि इन दोनों ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६ ॥ हे राजन् मित्र नामक आदित्यके लिखे हुए सात पुत्रोंके सिवाय असाधारण पुत्र भी थे, अर्थात् उन्होंने अपनी स्त्री रेवतीके गर्भमें उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ये तीन पुत्र

उत्पन्न किये थे, हे राजन्! इन्दु नामक आदित्यकी स्त्री पौलोमी हुई, ऐसा सुना है कि इन्द्रने उसके गर्भमें तीन पुत्र उत्पन्न किये थे। उनके नाम जयन्त, ऋषभ, मीढुष ॥ ७ ॥ उरुक्रम नामक आदित्य जिन्होंने प्रथम अपनी मायासे वामनरूपी बन बड़ाभारी विक्रम प्रकाश किया और उनकी कीर्तिनामक स्त्रीमें बृहत् श्लोक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके पुत्र सौभाग इत्यादि कश्यपवंशावतंस हुए। इन महात्माके गुण कर्म और वीर्यादि पश्चात् (अष्टमस्कन्धमें) कहेंगे ॥८॥ और जिस प्रकारसे अदितिमें अवतीर्ण हुए वह भी समय-समय पर वर्णन करेंगे ॥ ९ ॥ हे कौरवेश! कश्यपकी अदिति नामक स्त्रीमें जो (१२) बारह आदित्य उत्पन्न हुए हैं उनकी सन्तानका सब वृत्तान्त हमने कहा, इस समय इन महात्माकी दिति नामक स्त्रीमें दैतेय कहकर प्रसिद्ध जो यह सब दायाद हैं, जिनके मध्यमें श्रीमान् महाभागवत प्रह्लाद और बलि भी थे, उनका विवरण हम कहते हैं, तुम सुनो ॥ १० ॥ हे राजन्! दितिके दो पुत्र हुए हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, ये दोनों जन ही दैत्य-दानव लोगोंके वंदनीय हुए थे, उनका वृत्तान्त (तीसरे स्कन्धमें) हम कह ही आये हैं। ॥११॥ हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधू नाम दानवी जंभकी बेटी थी वह चार पुत्र उत्पन्न करती हुई ॥१२॥ उनके नाम यथा-संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद, उनकी बहिन जो सिंहिका थी, विप्रचित्त दानवकी स्त्री हुई, वह अपने स्वामी विप्रचित्त दानवसे राहुनामक दो पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई ॥१३॥ देवता लोगोंके साथ अमृत पान करनेसे भगवान् हरिने अपने चक्रसे जिनका शिर काट लिया था ॥१४॥ ह्लादकी धमनि भार्या इल्वल वातापीको उत्पन्न करती हुई, जो अतिथि अगस्त्यजी इल्वल[1] वातापीको पचाय गये थे ॥ १५ ॥ जो कुछ भी हो अनुह्लाद दानवकी भार्या सूर्य्या उसके गर्भमें बाष्कल और महिष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, प्रह्लादकी स्त्री दर्वी उसने विरोचनसे जन्म ग्रहण किया उसका पुत्र बलि हुआ ॥१६॥ बलिकी स्त्री अशना इसके गर्भसे राजा बलिके (१००) शतपुत्र उत्पन्न हुये, उनमें बाणासुर सबसे बड़ा हुआ जिसका प्रताप कि महापुण्यरूप है, जो कि पीछे भली भांति वर्णन करेंगे ॥ १७ ॥ बलिका सबसे बड़ा पुत्र बाणासुर भगवान् महादेवजीकी आराधना करके शिवका मुख्य गण हुआ, उसके पार्श्वमें भगवान् पुरपालक अबतक वर्तमान हैं ॥१८॥ हे राजन्! उनचास ४९ पवन भी इस दितिके पुत्र हैं, ये सब ही पुत्रहीन हुए। देवराज इंद्र इन सबको साथ लेकर देवभावको प्राप्त करा दिये ॥ १९ ॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! दितिके गर्भमें उत्पन्न होनेसे मरुद्गण जन्मसेही असुरभावयुक्त थे। इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है, वह किस प्रकारसे असुरभाव परित्याग करके इन्द्रसे सुरभावको प्राप्त हुए। उन्होंने ऐसा क्या श्रेष्ठ कर्म किया था? ॥२०॥ हे भगवन्! यह विषय जाननेके लिए यह ऋषिगण हमारे सहित श्रवण करनेको श्रद्धा सहित बैठे हुए हैं, हमारे निकट इसकी यथावत् व्याख्या कीजिए ॥ २१ ॥ सूतजी इतना वृत्तान्त वर्णन करके महर्षि शौनकजीसे बोले कि हे

१. श्रीवाल्मीकिजीने लिखा था कि इल्वल-वातापी दोनों भाई थे। इनमेंसे इल्वल ऋषि लोगोंको भोजन करानेके बहाने ले आये और गुप्त भावसे अपने भाईको मार उस ऋषिको खिलावे। पीछे यह पुकारता कि "वातापी भइया निकल आओ" तब संजीवनी विद्याके प्रभावके कारण यह वातापी; ऋषियोंका पेट फाड़कर निकल आता। एक समय अगस्त्यजीके साथमें भी इन्होंने ऐसा ही किया, परंतु अगस्त्यजी योगबलके प्रभावसे वातापीको हजम कर गये और वातापीको संजीवनी विद्या एक काम न कर सकी, तब इस प्रकारसे श्लोक हुए—" अगस्त्यं कुम्भकर्णञ्च शांति च वडवानलम्। आहारपरिपाकार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम् ॥ आतापी मारितो येन वातापी येन भक्षितः ॥ समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥"

सत्रायण ! व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीने राजाके यह मिताक्षर और बहु युक्त वचन श्रवण करके मन ही मनमें उसकी बड़ाई की और बोले ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! विष्णुकी सहायतासे इन्द्रने सब पुत्रोंको मार डाला; तब दितिके चित्तमें शोक अत्यंत प्रबल हुआ और वह मन ही मनमें यह चिंता करने लगी ॥ २३ ॥ दुरात्मा इंद्र केवल इंद्रियोंके सुखमें लगा हुआ है, जिसका हृदय अति कठिन है और उसमें दयाका नाम भी नहीं है, आः । इस क्रूर भाईके मारनेवाले पापीको नाश करके हम सब सुखी होंगे ॥ २४ ॥ अहो इस समय जो प्रभु कहकर विख्यात हैं, उनके पीछे स्वामियोंका देह मरनेके पीछे दो या तीन दिन रहकर कृमि, विष्ठा और भस्मकी संज्ञाको प्राप्त हुआ है, कारण कि मृत देहका संस्कार न होनेसे दो तीन दिन पीछे सड़कर वह कृमियुक्त या श्वापदादिके भक्षण करनेसे विष्ठारूपको प्राप्त होता है और दग्ध होनेसे केवल भस्म ही शेष अर्थात् बाकी रहती है, उस स्वदेहकी रक्षाके लिये जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह रखता है, वह क्या स्वार्थको जानता है ? कभी नहीं क्योंकि प्राणियोंके साथ वैर करनेसे घोर नरक होता है ॥२५॥ जो कुछ हो इन्द्र देहादिको नित्य समझकर अतिशय उन्नद्धचित्त हो गया है, अब हमको ऐसा यत्न करना चाहिए कि जिससे उसके गर्वका हरण करनेवाला पुत्र हो ॥ २६ ॥ इस कारण पतिका प्रियाचरण करना ही इस विषयमें सदुपाय है, ऐसा निश्चय करके शुश्रूषा, अनुराग, विनय, इंद्रियदमन और भक्ति प्रकट करना इत्यादि उपायोंसे दितिजी वारंवार कश्यपजीका प्रियाचरण करने लगीं ॥ २७ ॥ भावकी जाननेवाली दिति हाव-भावके सहित मनमाना प्रिय भाषण तिरछी चितवन तथा मंद मुसकानसे अपने पतिको वशमें कर लेती हैं॥२८॥ हे राजन् ! विद्वान् पुरुष मनमानी स्त्रीसे ऐसे ही उसके वशीभूत होते हैं, उनके पीछे वशमें होकर "तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे" ऐसा उनका कहना कुछ विचित्र नहीं है ॥ २९ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीने प्रथम सब प्राणियोंको संगरहित देखकर यह विचार कर स्त्री पुरुषके संसर्गसे "सृष्टिके निमित्त" अपनी आधी देहको स्त्री बनाया था, जिसके द्वारा अनेक पुरुषोंकी मति हरी जाती है ॥ ३० ॥ इस लिये हे तात ! दिति एकान्त भाव हो इस प्रकारसे जब शुश्रूषा करने लगी, तब भगवान् कश्यपजी शीघ्र ही प्रसन्न हो गये, और एक दिन आनन्द प्रकाश करके हँसकर दितिके प्रति प्रसन्नताके वचन कहते हुए ॥ ३१ ॥ कश्यपजी बोले कि हे वामोरु ! हम तुमसे अत्यन्त ही प्रसन्न हुये हैं अब जो तुम्हारी अभिलाषा हो वह तुम हमसे मांगो ? हे सुन्दरी ! पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रियोंको क्या इस कालमें क्या परकालमें कोई अभिलाषा अप्राप्त नहीं रहती ॥ ३२ ॥ हे साध्वी ! स्त्रियोंका पति ही परमदेवता है- देवताके प्रसन्न होनेसे सब ही कामना पूर्ण हो जाती हैं- "नारिनके पति देव वेद नित यही बखाने । ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारि पतिहीको जाने" ॥३३॥ हे सुन्दरी ! यद्यपि सर्व प्राणियोंके अन्तःकरणवर्ती भगवान् वासुदेव ही लक्ष्मीपति अथवा परम देवता सत्य ही सत्य हैं, तथापि पुरुष लोग अनेक प्रकारसे उनके ही इन्द्रादि नाम और वज्रहस्तत्वादि रूप कल्पना करके पूजा करते हैं, और वही स्त्रियोंके निकट पतिरूपधारी होकर पूजे जाते हैं ॥ ३४ ॥ हे सुमध्यमे ! श्रेयस्कामा पतिव्रता स्त्रियां अनन्यभावसे पतिकी ही सेवा करती हैं, कारण कि पति ही आत्मा और पति ही ईश्वर हैं ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! हम तुम्हारे वही स्वामी हैं तुम ही करके भक्तिभावसे पूजे गये हैं

१-एक वृद्ध तपस्वीने अस्सी हजार वर्षकी तपस्या करके क्रोधमें भरकर जो ऊपरको दृष्टि उठायी तो इसकी दृष्टिके पड़ते ही एक पेड़के ऊपर बैठी हुई

जो तुम्हारी कामना है वह हम पूर्ण करेंगे, वह असती स्त्रियोंको महादुर्लभ है ॥३६॥ दिति बोली कि हे ब्रह्मन्! अनुग्रह करके यदि आप मुझ पुत्र मरनेवालीको वर देनेको तैयार हुए हैं तो इंद्रको मार डालनेवाला मैं ऐसा एक पुत्र चाहती हूं वह आप कृपा करके मुझको दीजिये, हे प्रभो! दुरात्मा इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर मेरे दोनों पुत्रोंको मार डाला है कि, जिससे मैं अपुत्रिणी होग यी हूं ॥३७॥ दितिके यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ कश्यपजी अतिविमन हुए और अछता-पछताकर कहने लगे कि आज हमको बड़ा भारी अधर्म उपस्थित हुआ, क्योंकि भगवत्रूप इन्द्र और असुर ये सबही मुझे एकसे हैं ॥३८॥ अहो! विषय और इंद्रियोंके सुखमें रत हो जानेसे स्त्रीरूप मायाने मेरे मनको क्या ही अपने वशमें कर लिया है? निःसंदेह हमको नरकमें गिरना पड़ेगा ॥३९॥ इस अबलाका क्या अपराध है? यह तो अपने स्वभाव हीके पीछे चली है, मैं जो अपने स्वार्थको नहीं जानता, इस कारण मुझे ही धिक्कार है। किस कारणसे हम जितेन्द्रिय नहीं हुए ॥४०॥ स्त्रियोंका वदन शरदकालके कमलके तुल्य खिला हुआ होता है, वचन इनके दोनों कानोंके लिये अमृत होते हैं, परन्तु हृदय छुरीकी धारका सहोदर भाई है, इस कारण ऐसी किसीकी सामर्थ्य है? जो इन स्त्रियोंके मनकी चेष्टा जान सके ॥ ४१ ॥ जो कि स्वार्थकी कामनासे आत्माके समान प्रिय रूपमें प्रतीयमान होती तो हैं परन्तु वास्तवमें उनके कोई प्रिय नहीं होता, वे अनर्थके लिये पति, पुत्र और अपने भ्राताको भी नष्ट कर सकती हैं ॥४२॥ जो कुछ भी हो हमने इस स्त्री दितिको "वर देता हूं" ऐसा जो कहा है यह मेरा कह देना, और इन्द्रका वध, ये दोनों ही अनुचित हैं, अतः इस विषयमें इस समय यही उचित है कि, पुत्रके लिये इसको वैष्णव व्रतका उपदेश करूं जिससे कि इसका चित्त शुद्ध हो जानेपर इन्द्रके प्रति जो क्रोध इसको उत्पन्न हुआ है वह कदाचित् छूट भी सकता है। और यह व्रत बहुत समयमें पूरा हो सकता है, यदि कुछ भी इसमें खोट हुई तो इंद्रका मारनेवाला पुत्र न उत्पन्न हो सकेगा ॥ ४३ ॥ हे कुरुनंदन! भगवान् कश्यपजी इस प्रकारसे चिंता करके कुछेक कोपायमानके समान हो फिर अपने आप ही अपनी निंदा करते हुए ॥ ४४ ॥ उसके पीछे दितिसे बोले कि हे भद्रे! यदि तुम एक वर्षतक यथावत् व्रत धारण कर सकोगी तो तुम्हारे गर्भसे इन्द्रका मारनेवाला और देवताओंका बंधु एक पुत्र उत्पन्न होगा ॥४५॥ यह सुनकर दिति हर्षित हो बोली कि बहुत अच्छा? मैं यह व्रत धारण करूंगी, उस व्रतमें जो-जो आवश्यक हैं और जो-जो विषय इस व्रतमें हानिके देनेवाले हैं और जो-जो उसमें वर्जित नहीं हैं, वरन् अभ्यनुज्ञात हैं वह समस्त मुझे आप उपदेश कीजिये ॥ ४६ ॥ कश्यपजीने कहा कि उस व्रतको करके किसी प्राणीकी हिंसा न करे, किसीके प्रति क्रोधसे शाप न दे, झूठ न बोले, नाखून न कटवाये, रोम न काटे, अमंगल मृतकका कपाल या हड्डी आदि अपवित्र वस्तुका स्पर्श न करे ॥ ४७ ॥ नंगा हो जलमें खड़े होकर स्नान न करे किसीपर क्रोध न करे, दुष्टोंके साथमें बातचीत न करे, धुला वस्त्र न पहने? एक बार धारणकी हुई मालाको फिर दूसरी बार न पहने ॥ ४८ ॥ जूठा अन्न, वा जिस

—समस्त चिड़ियां मरकर गिर पड़ीं, इन्होंने जाना कि अब हमारा तप सिद्ध हो गया। यह सोच समझकर तपस्वी शहरमें भिक्षा मांगने एक पतिव्रता स्त्रीके घर गया और पुकारा कि अलख! परंतु बहुत देरके पीछे एक स्त्री भिक्षा लेकर आयी। तपस्वीजी कहते भये हैं—" कि इतनी देरमें भिक्षा लायी है, जा हम इस भिक्षाको नहीं लेते" यह कह क्रोधकी दृष्टिसे उस स्त्रीको देखा, तब उसने कहा कि "महाराज! मैं चिड़िया नहीं हूं जो आपकी दृष्टिसे भस्म होकर गिर पड़ूंगी" पतिव्रता स्त्रियोंका ऐसा ही माहात्म्य होता है।

अन्नमें चीटियें पड़ी हों उसको वा मांस मिला हुआ अन्न न खाय, शूद्रोंका लाया हुआ अन्न हो अथवा रजस्वलाका छुआ अन्न हो उसको न खाय और अंजली बांधकर जल न पिये ॥४९॥ हे सुन्दरि ! जिस समय घरसे बाहर निकले उस समय जूठा मुख न हो, विना कुल्ला किया हुआ मुख, संध्याके समय खुले केश, शरीरको विना शृंगार किया न रक्खे। वाणीको जीत ले और नंगा होकर इस व्रतमें घूमना न चाहिये ॥ ५० ॥ हे दिति ! इस व्रत करनेवालेके शयनमें आठ विषय निषिद्ध हैं, यथाः-इस व्रतमें दोनों पांवको विना धोये अथवा अपवित्र, वा गीले पांव रखकर शयन नहीं करे, उत्तरको शिर करके या पश्चिमको शिर करके भी शयन करना उचित नहीं है और नंगा या किसी दूसरेके साथ शयन करना और दोनों संध्या मिलनेके समय शयन करना यह सब बातें वर्जित हैं ॥ ५१ ॥ हे दिति ! इस व्रतमें जो कार्य करने होते हैं, उनको भी मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करो-धुले हुए कपड़े पहन कर पवित्र और समस्त मंगलोंसे संयुक्त होकर प्रथम भोजनके पहले गौ विप्र और लक्ष्मी नारायणकी पूजा करे॥५२॥सुहागन स्त्रियोंको सुगंध, माला, वस्त्र, भूषण, उपहार देकर पूजा करे और अपने पतिकी भी पूजा करके सेवा करे और उसको अपने कोष्ठमें बैठाकर रात-दिन चिंता करे॥५३॥निर्विघ्न यह व्रत पूरा हो जानेपर अभिलषित पुत्रकी उत्पत्ति होती है। तुम यदि एक वर्षतक इस व्रतको धारण करो और जो किसी प्रकारसे तुम्हारा यह व्रत लोप न हुआ तो तुम्हारे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जब कश्यपजी ऐसा कह चुके तब मनस्विनी दितिजीने "इस प्रकारसे ही करूंगी" अत्यन्त प्रसन्न होकर इस व्रतको स्वीकार किया और कश्यपजीसे गर्भधारण करती हुई और कश्यपजीने जिस प्रकारसे व्रतका उपदेश किया था, उसको यथार्थ समझकर दिति उसका आचरण करने लगी॥५५॥अपनी सौतेली माताका यह अभिप्राय जानकर देवेन्द्र इंद्र अपने स्वार्थको विचार आश्रममें बैठी हुई दितिके समीप आये और अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगी ॥५६॥ इन्द्र प्रतिदिन दितिजीके लिये फल, मूल, समिधा, कुशा, पत्र, फूल, अंकुर, मही, जल यह सब वस्तु समय-समय पर लाने लगे ॥५७॥ हे राजन् ! व्याध जिस प्रकार मृगोंको धोखा देनेके लिये कभी-कभी स्वयंभी मृगका वेष धारण कर लेता है, वैसे व्रतमें छिद्र पानेकी कामनासे इंद्र कपटी साधुका वेष धारण करके व्रत करती हुई दितिके निकट आये ॥ ५८ ॥ यद्यपि इंद्र बड़े सावधान होकर सदा ही देख भाल करते रहे, परंतु शीघ्र उनके व्रतमें छिद्र न मिल सका, तब तो इन्द्रको बहुत ही चिंता हुई, कि अब किस उपायसे हमारा मंगल होगा ? ॥ ५९ ॥ इतनेमें ही कुभाग्यसे एक दिन दितिको मोह आया कि वह सन्ध्या समय जूठे मुख, व्रतसे कर्षित, विना कुल्ला किये विना चरण धोये सो गयी ॥ ६० ॥ योगेश इन्द्र यह अवसर पाकर योगमायाकी सहायतासे दितिके उदरमें प्रवेश करते हुए। दिति अचेत होकर नींद ले रही थी, उसने इस बातको कुछ न जाना ॥ ६१ ॥ इसके पीछे इन्द्रने उदरमें प्रवेश करते ही अपने हाथमें

---

१. शंका–दितिने इन्द्रके नाश करनेके लिये गर्भको धारण किया, तब इन्द्र दितिके गर्भके नाश करनेके लिये कपट करके, दितिका सेवन करने लगा, परंतु दितिको क्यों नहीं जान पड़ा कि यह इन्द्र है, क्योंकि दिति कुछ मूर्ख नहीं थी बड़ी चतुर थी, यह संदेह है ?

उत्तर–जब दितिने इन्द्रके नाश करनेका उपाय किया तब भगवान्ने दितिसे निषेध किया कि, अम्बाजी अभी ! इन्द्रका पुण्य बहुत है, अभी इन्द्रका नाश किसी प्रकार न होगा, वृथा परिश्रम मत करो। दितिने भगवान्की आज्ञाको नहीं माना, इन्द्रके नाश होनेके लिये गर्भ धारण किया। भगवान्के वचनोंको नहीं माना इस कारणसे इन्द्रके कपटको नहीं पहिचाना, मूर्ख हो गयी।

लिये हुए वज्रसे दितिके गर्भको (जिसकी प्रभा कनकके तुल्य प्रकाशमान हो रही थी) सात खण्ड करके काट डाला, इसके उपरान्त कट जाने पर यह गर्भके सातों खण्ड रुदन करने लगे, तब इन्द्रने उनके प्रति "रुदन मत करो" इस प्रकारका स्नेहयुक्त वचन कहकर फिर एक-एक खण्डके सात-सात खंड कर डाले ॥ ६२ ॥ हे राजन्! जब इन्द्रने उस गर्भके (४९) खण्डकर डाले तब वह समस्त खण्ड हाथ जोड़ कर देवराज इन्द्रसे बोले कि हे इन्द्र ! क्यों हमारी जान लेनेके लिये तैयार होते हो ? हम सब मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं, इस कारण हमें मत मारो ॥६३॥ तब इन्द्र बोले कि डरो मत, तुम लोगोंके साथ हमारा दूसरा भाव नहीं है, तुम लोग हमारे पार्षद होगे ॥६४॥ हे राजन्! यद्यपि इन्द्रने वज्रसे काटकर दितिके गर्भको (४९) उनचास खण्ड कर डाला, परन्तु भगवान्‌की कृपासे वह गर्भ किसी प्रकार नष्ट नहीं हुआ कि जिस प्रकार भगवान्‌की दयासे अश्वत्थामाके अस्त्रने तुम्हारा विनाश नहीं किया था ॥ ६५ ॥ हे कौरवेश ! जो भगवान् आदिपुरुषको केवल एक बार ही पूजा करता है, वह भी उनका पार्षद हो जाता है और दितिने तो प्रायः एक वर्ष तक उन भगवान् वासुदेवकी पूजा की थी, वर्ष पूर्ण होनेमें कुछ थोड़े ही दिन शेष अर्थात् बाकी रहे थे, फिर भला उसके गर्भका एक ही बार नष्ट हो जाना कैसे संभव है ? ॥ ६६ ॥ भगवान्‌के प्रसादसे वह सर्व मरुद्गण अर्थात् गर्भ सब ही इन्द्रके साथ मिलकर (५०) पचास देवता हुए। इसके पीछे माताका दोष छुड़ाकर उन लोगोंको सोमपान कराकर देवता बना लिया गया॥६७॥ जो कुछ भी हो, दिति अबतक सो रही थी, जब उसकी निद्रा छूटी और उठकर उसने देखा तो अनलके समान दीप्तिमान इंद्रके सहित(५०)पचास कुमार खड़े हैं॥६८॥ यद्यपि देखते ही दितिको सन्तोष उत्पन्न हुआ तथापि उन्होंने कुछ देर पीछे इन्द्रसे कहा कि हे तात ! हमने आदित्य लोगोंके भय देनेवाले पुत्रकी कामना करके इस अति कठिन व्रतका आचरण किया था ॥ ६९ ॥ अदितिकी सन्तानका संहारकारी एक पुत्र हो, यही हमारा संकल्प था, फिर (४९) उन्चास पुत्र किस प्रकारसे हुए ? हे पुत्र ! इस भेदको तुम कुछ जानते हो, तो यथार्थ कहना, हमारे निकट झूठ न बोलना ॥७०॥ दितिके अटपट वचन सुनकर इन्द्रजीभी कपटरहित होकर बोले कि हे अम्ब ! हम तुम्हारी यह कामना जानकर ही तुम्हारे निकट आये थे, इतने दिनोंसे केवल छिद्र ढूँढ़ रहे थे, आज अवसर पाकर उदरमें प्रवेश कर तुम्हारे इस गर्भको काट डाला। हे अम्ब ! जिसकी बुद्धि स्वार्थमें ही लगी रहती है, ऐसे पुरुष बहुधा धर्मके प्रति दृष्टि नहीं दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ हमने प्रथम तुम्हारे गर्भको सात खंड करके काट डाला, वह सात पुत्र हुए, फिर हमने उन खण्डोंमेंसे एक-एक खण्डके सात-सात खण्ड किये जिससे यह (४९) उन्चास पुत्र हुए ॥७२॥ परंतु जब कि हमने देखा कि इससे भी कुछ कुमार नहीं मरे तब हमने परम आश्चर्य देखकर ऐसा निश्चय किया कि तुमने आदि पुरुष भगवान्‌की आराधना करके आनुषङ्गिक सिद्धि पायी है ॥ ७३ ॥ हे मातः ! जो पुरुष निराकांक्षी होकर भगवान्‌की आराधना करनेका यत्न करते हैं और उस आराधनाके आगे मोक्ष पदार्थको भी कुछ नहीं समझते, वे अपने स्वार्थमें अत्यन्त कुशल हैं ॥ ७४ ॥ इस लिये जो भगवान् हरि जगत्-संसारके ईश्वर हैं, वह आराधना किये जानेसे अध्यात्म दिया करते हैं, यह विचार करनेसे बुद्धिमान् कौन पुरुष भोगका वर मांगेगा ? क्योंकि विषय भोग तो नरकमें भी प्राप्त हो जाता है ॥ ७५ ॥ परन्तु हे महत्तमे मातः ! मुझ मूर्खने जो दुर्जनता तुम्हारे

साथ प्रकट की है, उसको तुम क्षमा करो; यह भी बड़े भाग्यकी बात है कि तुम्हारा गर्भ मृतक होकर भी फिर जी उठा ॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके पीछे दिति शुद्ध भावसे प्रसन्न होकर इन्द्रको अनुमति देती हुई, तब देवराज इन्द्र उनको वारंवार प्रणाम करके मरुद्गणोंके सहित सुरपुरको चले गये ॥ ७७ ॥ हे परीक्षित् ! मरुद्गणोंका जन्मवृत्तान्त जो कुछ तुमने पूछा था, वह सब वर्णन किया, अब क्या श्रवण करनेकी इच्छा है, वह कहो । शीघ्र कहो विलम्ब करनेका समय नहीं है ।

भजन (राग सोरठ)

काम पक्का करो अपना, तुम्हें परदेश चलना है ॥
बन्धु सुत नारिको तजकर, बहुत मुश्किल निकलना है ।
नेह जिस देहका तुमको, इसे इक रोज जलना है ॥
फँसके इस मोह ममतामें, जरा मुश्किल सँभलना है ।
यहाँ विनु भक्त शालिग्राम, एक पलको कुशल ना है ॥ ७८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे एकोनपंचाशन्मरुज्जन्मवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-कश्यप जो दितिसो कह्यो, व्रत हरि करन प्रसन्न ।
सो भाषत विस्तार युत, करत ज्ञान उत्पन्न ॥

इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! आपने जो पुंसवन व्रत कहा, कि जिससे विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नता होती है, उसका वृत्तान्त विस्तारसे जाननेकी हम वासना करते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अगहनके महीनेमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे पतिकी आज्ञा लेकर स्त्रियाँ इस व्रतको जो कि कामका दाता है, प्रारंभ करें ॥ २ ॥ ब्राह्मण लोगोंसे सम्मति लेकर दंतधावन कर, नहाय धोय पवित्र हो मरुद्गणोंके जन्मका वृत्तान्त सुन, फिर शुक्ल वस्त्र पहनकर और शृंगार कर प्रातःकालिक भोजनके पहले लक्ष्मीके सहित भगवान् नारायणकी पूजा करें ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पूजन करनेके समय जिन मंत्रोंके द्वारा नमस्कार करना होता है, वह हम तुमसे कहते हैं, वह श्रवण करो । "हे भगवन् ! आप ही सबमें व्याप्त हो रहे हैं, आपको और किसीसे कोई कार्य नहीं है इसलिये आपको हम नमस्कार करते हैं, हे प्रभो ! आपको किसीकी चाहना नहीं है, आप पूर्णकाम हैं, महा विभूतिके अर्थात् लक्ष्मीजीके पति हैं ! आपमें अणिमादिक सर्व सिद्धियाँ विराजमान हैं आपको हम नमस्कार करते हैं॥४॥हे ईश ! आप दया, धैर्य, तेज,सामर्थ्य और महिमा इत्यादिमें व दूसरे सर्व गुणोंमें यथावत् संतत सेवित हैं, इस कारणसे आप सदा भगवान् कहलाये जाते हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं" ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान्‌को नमस्कार करके फिर लक्ष्मीजीको नमस्कार करे, यथा-हे मायामाये ! हे विष्णुपत्नि ! ! तुममें परमेश्वरके समस्त निरपेक्षत्वादि लक्षण वर्त्तमान हैं, इस लिये हे महाभागे ! हमारे प्रति प्रसन्न होइये ! हे लोकमातः ! तुमको हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ उसके पीछे सावधान होकर "महानुभाव भगवान् महापुरुषको नमस्कार करते हैं, महाविभूतिके सहित उन महाविभूतिपति भगवान्‌के लिये

हम पूजोपहार देते हैं" इस मन्त्रसे भगवान्‌का आवाहन करके पाद्य, अर्घ्य, स्नानीय, वसन, भूषण, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादि विविध भांतिके उपहार दे॑ ॥७॥ इसके पीछे अग्नि-स्थापना करके उन सब उपहारोंके जो कुछ बचे हुए द्रव्य रहें, उनसे अग्निमें बारह आहुतियां देना। होमका मन्त्र यह है—"भगवान् महापुरुष महाविभूति पतिको नमस्कार स्वाहा" ॥८॥ हे राजन्! भगवान् विष्णु और महामाया श्री यह दोनों देवता ही वरके देनेवाले हैं, इनसे ही समस्त आशिष वचनोंकी उत्पत्ति होती है, लोकमें यदि सर्व प्रकारसे सम्पत्तिकी अभिलाषा करे तो नित्य भक्ति भावसे इन लक्ष्मी नारायणकी ही पूजा करे ॥९॥ और भक्ति द्वारा नम्र चित्त होकर पृथ्वीमें झुककर दण्डवत प्रणाम करे इसके पीछे दश वार मन्त्र पढ़कर स्तोत्रका पाठ करे ॥१०॥ वह स्तोत्र यह है—"हे भगवन्! हे भगवति! आप दोनोंजन विश्वके विभु और जगत्‌के परमकारण हैं, हे भगवन्! यह प्रकृति जो कि सूक्ष्म मायाकी महाकठिन शक्ति है ॥११॥ आप हमारे भी अधीश्वर हैं इसलिये आप ही साक्षात् परम पुरुष हैं। हे प्रभो! आप ही सर्व यज्ञ हैं, सब यज्ञमें यजन पूजारूप महालक्ष्मी हैं, सबके फलको भोगनेवाले एक आप ही हैं ॥१२॥ और यह देवी लक्ष्मीजी सत्त्वादि गुणोंकी प्रकाशक और भोगनेवाली है, हे प्रभो! आप ही सर्व प्राणियोंके आत्मा हो। श्री, शरीर, इंद्रिय और प्राणस्वरूप हो, आप ही नाम और आप ही रूप हो, और आप ही इन दोनोंके प्रकाशक और आप ही इन दोनोंके आधार हो। हे भगवन्! आप ही दोनों जन परमेष्ठी और त्रिलोकीके वर देनेवाले हो, हे उत्तम-श्लोक! आपके प्रसादसे हमको नित्य महा-महा आशिष मिलें अर्थात् हमारे मनोरथ सिद्ध हों॥१३॥१४॥हे राजन्! इस प्रकारसे लक्ष्मीजीके सहित वर देनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्‌की स्तुति करके निवेदनकी हुई सब उपाहारकी वस्तुओंको वहांसे हटा ले और आचमन करके पूजा करे ॥१५॥ इसके पीछे चित्तको भक्तिसे नम्र करके फिर स्तोत्रसे स्तुति करे। यज्ञके उच्छिष्टको सूँघे और पूजा करे ॥ १६ ॥ फिर व्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री अपने पतिको ईश्वर समझकर उसको प्यारी-प्यारी वस्तु देकर पतिकी सेवा करे॥१७॥ और पति भी प्रेमवान् होकर स्त्रीके किये हुए ऊँचे-नीचे सब कर्मोंका पालन करे ॥१८॥ हे राजन्! इस पुंसवन व्रतको स्त्री पुरुष दोनों जनोंमेंसे एक भी कोई करे तो भी यह दोनोंको ही फल देनेवाला होगा। हे राजन्! स्त्री यदि व्रत करनेके अयोग्य हो,तो पति ही सावधान चित्त होकर इस व्रतका अनुष्ठान करे। श्रीविष्णु भगवान्‌का यह व्रत कभी नाश करनेके योग्य नहीं है॥१९॥हे राजन्! भगवान् विष्णुका यह व्रत धारण करनेसे किसी प्रकारसे संतानका वियोग नहीं रहता, अवश्य संतान होती है। इस व्रतमें ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियोंको माल्य, चंदन, मिष्टान्न और गहने देकर पूजा करे और नियम धारण कर भक्तिसहित दिन-रात श्री विष्णु भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करता रहे॥२०॥ इसके पीछे आराध्य देवताको, उनके निजधाममें वासार्थ विसर्जन दे। उनके आगे निवेदन किये हुए मिष्टान्नमें से आत्माकी शुद्धि और सर्व कामसमृद्धिके लिये कुछ एक भोजन करे॥२१॥

---

१. शंका—छठे स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायके सातवें श्लोकमें विष्णुके वाहन आदिके पूजनका मन्त्र ओंकार सहित दितिसे कश्यपजीने कहा था आठ और नौ श्लोकमें होम करनेकी विधि कही थी, परंतु ओंकारको और वेदके मन्त्रोंको स्त्री कैसे पढ़ सकती है,क्योंकि स्त्रियोंको वेद पढ़ना और ओंकार मन्त्र पढ़ना सुनना निषेध है, दितिको कश्यपजीने सुनाया तो [illegible] है, महात्मा हैं परंतु दितिने पठन कैसे किया होगा, यह शंका हमको बड़ी भारी है ?

उत्तर—दिति पतिव्रता स्त्री थी, अपने पति जो कश्यपजी थे, उनसे ओंकारका और वेदका मन्त्र पढ़कर आप दूसरा जो अक्षर है स्तोत्रमें जैसे—"नमो भगवते" इसको आदि लेकर उनको पढ़ने लगी इस लिये [illegible] दोष नहीं हुआ ओंकार और वेद मन्त्र आप पढ़ती तब दोष होता, अपने पतिसे पढ़वाकर आप सिद्ध कर लिया।

इस प्रकारसे पूजाका अनुष्ठान बारह मास (एक वर्ष) बिताकर कार्त्तिक मासमें देव उठनी एकादशीसे पूर्णमासीतक ब्राह्मणादि जिमाकर इस व्रतका विसर्जन करे। कार्तिक मासके शेष दिनको उपवास करना उचित है॥२२॥ प्रभात होनेपर आचमन इत्यादि कर प्रथमके ही समान भगवान्की पूजा करके गरम दूधमें घृत मिष्टान्न मिलाकर स्रुवेसे वहन करे॥२३॥ पाकयज्ञके विधानसे अर्थात् पार्वणीय स्थालीपाक प्रकरणसे दुग्धपक्क घृतसहित चरु देकर प्रति अग्निमें बारह आहुति प्रदान करनी चाहिये॥२४॥ फिर ब्राह्मणगण प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दें, शिर चढ़ाकर उनको ग्रहण करे और भक्तिपूर्वक मस्तक नवाय प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर फिर आप भोजन करें॥२५॥ उसके पीछे आचार्यको आगे कर वाणीको जीतता हुआ बंधु-बांधवोंके सहित स्त्रीके निकट जाय, उसको वह बचा हुआ चरु (जिससे शत पुत्र उत्पन्न होकर सौभाग्य होता है) दान करे॥२६॥ हे राजन्! भगवान् विष्णुजीका यह व्रत पुरुषसे यथाविधि किये जानेपर यह मनवांछित लाभ देता है और स्त्रियाँ इस व्रतको करनेसे सुहाग, संपत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश और सद्गृहको प्राप्त होती हैं॥२७॥ कुमारी कन्या इस व्रतको करनेके प्रभावसे सर्व लक्षण संपन्न पतिको प्राप्त करती हैं, और विधवा स्त्री जो इस व्रतको करे तो उनके पाप क्षय हो जाते और वह स्वर्गकी गति(मोक्ष)को प्राप्त होती है, जिसके बालक मर जाते हों, ऐसी स्त्री जो इस व्रतको करे तो उसके बालक जियें। जो कुभागिनी स्त्री इस व्रतको करे तो सुभग हो जायँ और जो कुरूप स्त्री इस व्रतको करे तो मनोहर रूपवाली हो जायँ॥ २८॥ हे राजन् इस व्रतके माहात्म्यसे रोगीजन बहुत कालके रोगसे छूट जाते हैं और इंद्रियोंके सहित समर्थ देहको लाभ कर सकते हैं। हे राजन्। जो पुरुष शुभकृत्यके समय इस व्रतका वृत्तान्त पढ़े या सुने, तो उसके पितरोंकी और देवताओंकी अत्यन्त तृप्ति हो जायगी॥ २९॥ और होमके अंतमें अग्नि, श्रीलक्ष्मीजी और श्रीहरि यह संतुष्ट होकर सब कामना पूर्ण करेंगे। हे महाराज! जो कुछ आपने पूछा, वह मरुद्गणोंका यह पुण्यजनक और दितिके इस महद्व्रतका वृत्तान्त हमने आपके निकट वर्णन किया॥३०॥ अब भगवान्की कृपासे षष्ठस्कन्ध समाप्त हो गया इस लिये एक भजन लिखता हूँ—

भजन—श्रीभगवान भक्त सुखदायक, पूजत आश दासके मनकी॥
दुष्ट मार भूभार उतारत, रक्षा करत रहत मुनि जनकी।
भक्तहेतु करपर गिरिवर धर, की सहाय गोपी गोपनकी॥
संतन-हित तजि अवध पुरीको, सैर करी बरसोंलों वनकी।
खर दूषण त्रिशिरादि मारकर, भस्म करी लंका रावणकी॥
हरि हरि हरि द्रौपदी पुकारी, राखो लाज आय निज जनकी।
कोटिन पट बढ़ाय दिये झटपट, चकित भई मति दुःशासनकी॥
जब जब भीर परत भक्तन पर, आय सहाय करत त्रिभुवनकी।
शालिग्राम यही वर मांगत, चरण शरण रहूँ ब्रजमोहनकी॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इति षष्ठस्कन्ध समाप्त॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

सप्तम स्कन्ध ७

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



हिरण्यकशिपु वध

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवत भाषा

★

सप्तम स्कन्ध ७.

सोरठा–गिरिजानन्द गणेश, आनँदनिधि ऋधिसिधिभवन।
मंगल करन हमेश, मंगलसुत मंगल करहु ॥ १ ॥
जय श्रीनन्दकिशोर, मोरमुकुट मुरलीधर।
मुरलीकी धुनि घोर, सुनो चहत मन मोर यह ॥ २ ॥
जय व्रजेश व्रजचन्द, नन्दनँदन गोपनसखा।
सुख दीजै सुखकन्द, सुखासीन सुखके भवन ॥ ३ ॥

दोहा–जय जय जय श्रीराधिका, जय श्रीनन्दकुमार।
जय जय गोपी गोप सब, मम उर करहु विहार ॥ १ ॥
पहिलेमें द्विजशापसे, कनककशिपु कर क्रोध।
भक्त पुत्र प्रहलादसे, राखन लग्यो विरोध ॥ २ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! हे ब्रह्मन्! श्रीभगवान् सब जीवमात्रको समदृष्टिसे देखते हैं और सबके प्रिय और सुहृद रूप हैं, फिर इन्द्रके लिये दैत्योंको क्यों मारा? इस बातसे विषम भाव ईश्वरमें विदित होता है ॥१॥ साक्षात् सच्चिदानन्दरूप विमल और दिव्यस्वरूप जिनकी आत्मा, उनको न तो कुछ देवताओंसे प्रीति, न कुछ असुरोंसे शत्रुता और कुछ उनसे उद्वेग भी नहीं है, क्योंकि वे तो निर्गुण हैं ॥ २ ॥ हे सुमहाभाग! श्रीनारायणके गुण विचार कर हमको बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ है इस मेरे संशयको दूर कर दीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! भगवत्के अद्भुत चरित्रोंके विषयमें आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, जहां भागवतका माहात्म्य है, वह वहां सदा भगवान्‌की भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ ४ ॥ उस पावन पवित्र अद्भुत चरित्रको परमपुण्य श्री नारदादि ऋषियोंने गाया है, श्रीवेदाचार्य, वेदप्रवर्तक महामुनि व्यासजीको नमस्कार करके श्रीभगवान् वासुदेवकी कथा वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ जो पुरुष श्रेष्ठ जिह्वा पाकर श्रीविष्णु भगवान्

---

१. शंका–राजा परीक्षित्‌से श्रीशुकदेवजीने कहा कि व्यासजीको नमस्कार करके हरिकी कथा अब मैं कहूंगा, इस बातके कहनेसे यह विदित होता है कि सातवें स्कन्धसे पहले जो ६ स्कन्ध वर्णन किये; उनमें हरि भगवान्‌की कथा नहीं है ?

का कीर्तन नहीं करते और मोक्षकी सीढ़ीको पाकर भी उस पर नहीं चढ़ते, उनको दुष्टबुद्धि समझना चाहिये ॥६॥ इसलिये श्रीगोविंदका माहात्म्य आनंदरस सहित सुन्दर है, जो पुरुष इसको सुनते हैं अथवा कीर्तन करते हैं वे धन्य हैं और कृतार्थ हैं इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ इस लिये बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि श्री गोविंदके चरित्रोंसे परिपूर्ण पुण्यदायक श्रीयदुनाथकी कथाको मन लगाकर सुनें। हे नृपसत्तम ! वह महापुण्यकी देनेवाली है ॥ ८ ॥ यद्यपि ईश्वर अपनी प्रकृतिसे परे, अजन्मा, निर्गुण, अज, अव्यक्त और सब संसारसे पृथक् भी है तो भी अपनी मायाके गुणोंमें प्रवेशकर मित्र और शत्रुभावको प्रकट कर मरनेवाला और मारनेवाला भलीभांति विदित होता है ॥९॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह प्रकृतिके गुण हैं, कुछ आत्माके गुण नहीं और जो ये गुण परमात्मामें हों तो प्रकृतिपुरुष की नाईं परमात्मामें भी विषमता होनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता है। हे राजन् ! उनमें कभी कोई गुण बढ़ जाता है,कभी कोई गुण घट जाता है ॥१०॥ जयके समय सत्त्वगुण बढ़कर देवता और ऋषियोंको बढ़ाता है पराजयके समय रजोगुण बढ़कर असुरोंकी वृद्धि करता है और जब तमोगुण बढ़ता है तब यक्ष राक्षस दोनोंकी अधिकता होती है, जिस-जिस समय जैसा-जैसा होता है, उस-उस समयके अनुसार भगवान् वैसे ही हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जैसे पावक एक रूप है, परंतु काष्ठादिकमें अनेक रूपसे दृष्टि आता है, जैसे जलका एक ही रूप है परन्तु रंगोंमें मिलकर अनेक प्रकारका भासने लगता है, ऐसे ही भगवान् एक रूप हैं, परंतु ज्योति आदिकी नाईं प्रकाश करते हैं जिसके संग पृथक् प्रतीत नहीं होते, परंतु देवता, दैत्य,असुरोंमें अलग-अलग दिखायी देते हैं। आत्मामें स्थित हो आत्माको मथन कर महात्मा लोग हृदयमें भगवान्का दर्शन करते हैं, विना मथन किये दारुसे अग्नि प्रकट नहीं होती ऐसे विना आत्माका मथन किये भगवान् प्रकट नहीं होते॥१२॥जैसे भूमिके भागोंके संयोगसे पानी मीठा, खारा और मैला होजाता है, ऐसे ही मायाके संगसे सत्त्वगुण आदि भेदत्रय भावयुक्त परमात्मा परपुरुष होता है ॥१३॥ आत्मा जीवके भोगके लिये जिस समय परमेश्वरकी इच्छा देह (प्रजा) के रचनेकी होती है, तब वह अपनी मायामें साम्य भावसे स्थित जो रजोगुण हैं उसे अलग रचते हैं।जब विचित्र पुरियोंमें रमण करनेकी इच्छा होती है तब सत्त्व गुणकी अधिकता करते हैं तब शयनकी इच्छा होती है तब तमोगुणको अधिक करते हैं ॥१४॥ नरदेव ! प्रधान पुरुषसे सत्य कर्त्ता ईश्वर सबके आश्रय विचरते हैं और कालको आप ही रचते हैं। हे राजन् ! जब यह कालके ईश्वर सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय देवताओंको रचकर बढ़ाते हैं ॥ १५ ॥ देवता जिनको परमप्रिय ऐसे ईश्वर देवताओंके शत्रु असुरोंको रजोगुणके समय बढ़ाकर मारते हैं। यदि यह ईश्वर निश्चय करके तमोगुण बढ़ाकर यक्ष और राक्षसोंको बढ़ाते हैं और संहार करते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! राजसूय यज्ञमें जिस राजा युधिष्ठिरका कोई शत्रु नहीं था, उस राजा युधिष्ठिरने ऐसा ही प्रश्न किया था तब युधिष्ठिर पर प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्वक श्री नारदजीने यह इतिहास कहा था ॥१७॥ राजसूय यज्ञमें महा

उत्तर–श्रीशुकदेवजीने ऐसा विचार करके राजा परीक्षित्‌से नहीं कहा था कि, [illegible]: स्कन्धोंमें भगवान् हरिकी कथा नहीं है, अब हरि भगवान्‌की कथा मैं कहता हूं । श्री शुकदेवजीने जान लिया कि प्रह्लादकी रक्षा करनेके लिये भगवान् नृसिंहका रूप धरकर प्रकट होंगे, शास्त्रमें सिंहका नाम हरि है, इसलिये शुकदेवजीने कहा था कि, हे राजन् ! हरि जो सिंहरूप भगवान् हैं उन हरि भगवान्‌की कथा अब मैं कहता हूं, श्री शुकदेवजी महाराजने ऐसा कहा था ।

अद्भुत चरित्र राजा युधिष्ठिरने देखा कि चेदिदेशके नरेश शिशुपालको भगवान्‌ने चक्रसे मारा और शिशुपाल भगवान् वासुदेवमें सायुज्य मोक्षको प्राप्त हो गया ॥ १८ ॥ उसी समय उस यज्ञमें सब मुनिजनोंके सम्मुख पाण्डु सुत राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त विस्मित होकर बैठे हुए देवर्षि नारदजीसे पूछा ॥१९॥ युधिष्ठिर बोले कि जो परमतत्त्वरूप भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति परम एकांत महात्मा पुरुषोंको मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है,वह निरन्तर विद्वेषी शिशुपालको प्राप्त हुई यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२०॥ हे मुने ! इन सब बातोंके सुननेकी मुझको अत्यन्त अभिलाषा है देखो ! भगवान्‌की निंदा करनेसे राजा वेनको ब्राह्मणोंने नरकमें डाल दिया था ॥२१॥ उसी प्रकार इस दमघोषके पुत्र महादुर्बुद्धि शिशुपालको भी नरकमें डालना चाहिये था, देखो ! इस चाण्डाल शिशुपाल और दन्तवक्रने जिस दिनसे जन्म लिया उस दिनसे दोनों ही आजतक श्रीगोविंदसे दुर्भाव ही रखते थे और उनकी निंदा करते रहते थे ॥२२॥ और वारंवार साक्षात् अविनाशी परब्रह्म विष्णु भगवान्‌को गालियाँ देते रहते थे,फिर जब ऐसे क्रूरकर्मी थे तो उनकी जीभमें कोढ़ होकर क्यों न गलकर गिर गयी ? और नरकमें भी न गये, इसका क्या कारण ? ॥ २३ ॥ देखो जिनके स्वरूपकी प्राप्ति होनी योगीजनोंको भी महादुर्लभ है, उन भगवान्‌में विना प्रयत्न किये सबके देखते-देखते कैसे लीन हो गये । भला यह बात ध्यानमें आनेके योग्य है ॥२४॥ इस आश्चर्यको देखकर हमारी बुद्धि अत्यन्त चकित हो रही है, जैसे दीपककी शिखा पवनके लगनेसे स्थिर नहीं रहती इस बातका भेद मुझको निश्चय समझा कर कहो,जिससे मेरे चित्तको शांति हो, क्योंकि इस बातके जाननेमें तुम ही मुख्य कारण हो ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीनारदजी राजा युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब सभाके सभासदोंके सुनते जो कुछ कथा कहने योग्य थी वह सुन्दर कथा कहने लगे ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि निंदा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार इत्यादि बातोंके लिये परमात्माकी देहको जो मानना है वह देह प्रकृति पुरुषके अज्ञानसे कल्पित है ॥२७॥ हे पार्थिव ! हिंसा, अभिमान, दण्ड, कठोर वचन कहने 'मेरा है, यह मैं हूँ' बातें तो अभिमानी संसारके जीवोंमें हैं, ऐसी बातें ईश्वरमें कभी नहीं हो सकतीं ॥२८॥ जिस शरीरमें इसने अभिमान मान रखा है, उसी शरीरसे प्राणियोंका बंधन है, जैसे उसको जान पड़ता है, कि मेरा वध हुआ ऐसे परमेश्वरको नहीं होता, क्योंकि परमात्मा आप कैवल्यरूप सबका आत्मा है, इस लिये उसके देहाभिमान और विषमता नहीं है, भगवान् सदा दैत्योंको दण्ड देते हैं और उनका वध करते हैं परन्तु वह भी उनके ऊपर दया ही है, कुछ शत्रुभावसे उनका बुरा-भला नहीं विचारते और कोई कल्पना करे कि ईश्वरको पीड़ा होती है ? नहीं, यह सम्पूर्ण भ्रम है । जब आत्मा ईश्वरमें हो तो मोक्ष होता है, इस बातपर एक दृष्टांत है ❀ जो सबके

• दृष्टांत–कोई दीन ब्राह्मण महानिर्धन धनके लिये एक ठाकुरद्वारेमें बैठकर रामचन्द्रकी रामायणकी कथा सुनाने लगा । वहां रामचन्द्र, लक्ष्मण, हनु-
मानकी तीन मूर्ति थीं और कोई मनुष्य कथा सुननेको वहां नहीं आते थे, परंतु कभी-कभी अकस्मात् महा अभिमानी, अत्यन्त क्रोधी, मदान्ध एक वैश्य दर्शनके
लिये चला आता था । जब ब्राह्मणको कथा कहते-कहते बहुत दिन हो गये तब उस वैश्यके सामने रामचन्द्रने हनुमानसे कहा कि कल उस ब्राह्मणकी कथा समाप्त
होगी, उसमें कितने रुपये चढ़ेंगे ? तब हनुमान बोले– कि एक सहस्र, रामचन्द्रने कहा यहां कोई मनुष्य तो आता ही नहीं, सहस्र रुपये कौन चढ़ायेगा ? हनुमान
बोले महाराज ! जहां हम तुम हैं वहां किस बातका टोटा है, हनुमानकी यह बात सुन वह वैश्य उसी समय ब्राह्मणके घर गया और कहा कि मैं नित्य ठाकुरद्वारमें
जाता हूँ, परन्तु अकेला ही आपको कथा कहते देखता हूँ और कोई आपकी कथा सुनने नहीं आता फिर वहाँ रुपया पैसा कौन चढ़ायेगा।
ब्राह्मण बोला कि सेठजी ! मनुष्यका क्या सामर्थ्य है ? परमेश्वर सबका देनेवाला है, वैश्यने कहा कि तुम अपनी कथाका ठेका कर लो ।
ब्राह्मण बोला कि मेरी इसमें कुछ हानि नहीं, कहो क्या दोगे ? वैश्यने कहा कि पांच सौ रुपये, ब्राह्मण बोला मैं प्रसन्न मेरा परमेश्वर–

दमन करनेवाले भगवान् हैं, वे किसीकी निंदा नहीं करते और किसीको नहीं मारते। इसलिये वैरसे, भक्तिसे, भयसे, प्रीतिसे, कामसे, मुक्तिसे ये पांच उपाय हैं, जैसे हो सके वैसे ईश्वरमें मन लगाना। वह सच्चा न्यायकारी है, किसीको दुर्भावसे नहीं देखता, सबको एकसा देखता है इसीसे उसका नाम समदर्शी है॥ २९ ॥ ३० ॥ चाहे प्रेमसे, चाहे वैरसे, चाहे कामसे परमेश्वरको किसी प्रकारसे भजे, परन्तु परमेश्वर शुभ गति ही देता है, वैर करनेसे प्राणी जैसे परमेश्वरमें लीन हो जाता है॥ ३१ ॥ ऐसा भक्तियोगसे परमेश्वरमें तन्मय नहीं हो सकता, ऐसा हमारा निश्चित मत है, भ्रमरी जिस कीड़ेको पकड़कर अपने छिद्रके भीतर ले गयी, वह कीड़ा क्रोधसे और भयसे भ्रमरीरूप ही हो जाता है॥ ३२ ॥ ऐसे ही क्रोधसे, भयसे उन्हींके समान भावको जीव प्राप्त हो जाता है, इसी लिये विष्णु भगवान्ने माया करके श्रीकृष्ण अवतार धारण किया॥ ३३ ॥ उनसे वैर बांधकर पापी पावन और पवित्र होकर मुक्त हुए और उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दमें शिशुपालादिकसे सहस्रों लय हो गये, इसलिये कामसे, वैरसे, भयसे, स्नेहसे ईश्वरमें मन लगाये॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णमें मन लगाकर अनेक मनुष्य उनकी गतिको प्राप्त हुए, गोपी तो कामसे ईश्वरको प्राप्त हुईं, कंस भयसे मुक्त हो गया, शिशुपाल आदिक नरेश वैर करनेसे वृन्दावन-विहारी कृष्ण मुरारीमें लय हो गये॥३५॥ सम्बन्ध विवाहादिकसे यादव भगवल्लोकको चले गये, स्नेहसे युधिष्ठिर अर्जुनादिक आप सब मुक्त हो गये, विभुकी भक्तिसे हम मुक्त हुए, इन पांचोंमें राजा वेन तो कुछ भी नहीं था इसलिये वह नरकमें पड़ा॥ ३६ ॥ इसलिये किसी प्रकारसे श्रीकृष्ण बांकेविहारीमें मन लगाना चाहिये। हे पाण्डव! तुम्हारी फूफीका पुत्र शिशुपाल और दन्तवक्र था॥ ३७ ॥ ये दोनों विष्णुके पार्षदोंमें श्रेष्ठ थे, विप्रोंके शापसे वे अपने स्थानसे गिर पड़े।

दोहा—ताते इनकी मुक्तिमें, कौन अहै सन्देह।
पापिहु हरिसों वैर कर, पावहिं गति तज देह॥

धर्मराज राजा युधिष्ठिर नारदजीकी वाणी सुन विस्मित होकर बोले-भगवान्के दास तो एकांतके रहनेवाले हैं, उनको शाप किसने दिया और किस कारण दिया?॥ ३८ ॥ यह बात किसी प्रकार हमारे ध्यानमें नहीं आती, कि हरिके एकांती भक्तोंका संसारमें जन्म लेना, क्योंकि वैकुण्ठके वासी तो देह इंद्रिय प्राणरहित और सब अप्राकृत हैं॥३९॥ उनके शरीर मायाके नहीं हैं, तो वह मायाके संबंधी कैसे हुए? यह वृत्तान्त मुझे समझाकर कहो।

—प्रसन्न। वैश्यने पांच सौ रुपये ब्राह्मणके घर पहुँचा दिये और कथा समाप्त होनेके दिन दुपहर से ही सेठजी ठाकुरद्वारमें जा बैठे और ब्राह्मण देवताने बहुतेरा शंख घड़ियाल बजाया, परन्तु एक मनुष्य भी कथामें नहीं आया, और न एक कौड़ी चढी, जब रात हो गयी तो वैश्यको अत्यन्त सोच हुआ और महाक्रोध बढ़ा, तब तो हनुमानसे चिल्लाकर बोला कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि, देवता भी झूंठ बोलने लगे, यह कह लाल-लाल नेत्र कर हनुमानजी के एक लात मारी। हनुमानजीने झट उसकी टाँग पकड़ ली, उसने बहुतेरा हाय-हाय की परन्तु हनुमानने उसकी टाँग न छोड़ी। जब तीन पहर बीत गये तो रामचन्द्रजी बोले कि कथा समाप्त हो गयी? हनुमानजीने कहा हो गयी, पांच सौ रुपये तो ब्राह्मणके घरमें भिजवा दिये पांच सौ जो बाकी रहे हैं उनमें वैश्यराजकी एक टाँग गहन रख ली है। पांचसौ रुपया और देगा तो इसकी टाँग छूटेगी, क्योंकि देवताओंको इसने झूंठा बताया, इसलिये इसीसे पांचसौ रुपये और लेकर ब्राह्मणको हजार रुपये कर दिये जायंगे और नहीं देगा तो यह अभिमानी ऐसे ही पड़ा रहेगा। वैश्यने समझा कि बिना पांचसौ रुपये दिये मैं किसी प्रकार नहीं छूट सकता यह विचार उसने और पांच सौ रुपये ब्राह्मणको भेंट किये तब छूटकर अपने घर गया, इसलिये मनुष्यको चाहिये कि अभिमान न करे।

नारदजी बोले कि एक समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकने विष्णुलोकमें जानेकी इच्छा की ॥४०॥ त्रिलोकीमें भ्रमण करते-करते वैकुण्ठलोकमें गये, वे मुनि कैसे थे ? देखनेमें तो पांच छः वर्ष के बालक विदित होते थे, परंतु अवस्थामें मरीचि आदि ऋषियोंसे भी बड़े थे ॥ ४१ ॥ उनका दिगम्बर वेष देख और बालक जानकर भगवान्‌के द्वारपाल जय-विजयने उनको भीतर नहीं जाने दिया, द्वार पर ही रोक लिया; तब तो उन्होंने महाक्रोध करके जय-विजयको शाप दिया कि तुम वैकुण्ठमें रहनेके योग्य नहीं हो ॥ ४२ ॥ क्योंकि शुद्ध सत्व विष्णु भगवान्‌के चरणारविंद रज-तमसे रहित हैं, फिर तुमको तमोगुण कैसे आया ? इसलिये हे मूर्खो ! अभी तुम असुरयोनिको प्राप्त हो मृत्युलोकमें विचरो ॥ ४३ ॥ जब सनकादिकने उनको इस प्रकारका शाप दिया तो पार्षद वैकुण्ठसे नीचे गिरनेको हुए, उस समय उनपर दयालु हो, उन परम दयालु सनकादिकने कहा कि हे द्वारपालो !

दोहा–तीन जन्मभर पाइहो, असुरयोनि महिमाहिं ।
पुनि ऐहो वैकुण्ठपुर, यामें संशय नाहिं ॥ ४४ ॥

यह दोनों द्वारपाल पृथ्वीपर आकर दैत्य और दानवोंके परमपूज्य कश्यपमुनिकी स्त्री दितिके पुत्र हुए। जिनमें ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष, यह दोनों महाबलवान् और बड़े पराक्रमी हुए और दैत्योंने अपना अध्यक्ष बनाया ॥ ४५ ॥ इनकी अनीति देख हरिने नृसिंह अवतार धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा और पृथ्वीका उद्धार करनेके समय वाराह अवतार धारण करके हिरण्याक्षका वध किया॥४६॥हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लाद, जो कि सब धर्मोंकी मर्यादा और कृपापात्र श्रीनारायणका परम प्रिय भक्त था, उसके मारनेके लिये नाना प्रकारके कष्ट और त्रास दिखाये ॥४७॥ सर्वान्तर्यामी विश्वात्मा भगवान् जिसके हृदयमें स्थित, प्रशान्त, समदर्शी और भगवत्‌के तेजसे स्पष्ट हुए प्रह्लादको मारनेके लिये हिरण्यकशिपुने सहस्रों उपाय किये, परन्तु परमेश्वरकी कृपासे प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

दोहा–सभामध्य प्रह्लादपर, करके कोप महान ।
मारनको ठाढ़ो भयो, काढ़ि कराल कृपान ॥

ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके शूल दिखाये ॥ ४८ ॥ फिर उन दोनों पार्षदोंने विश्रवा ऋषिकी भार्या केशिनीमें जन्म लिया और रावण-कुम्भकर्ण नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और अपने बाहुबलसे त्रिलोकीको जीत देवताओंको भयभीत कर दिया ॥४९॥ उस समय भी श्रीनारायणने राजा दशरथकी पत्नी कौशल्यामें रामचन्द्र अवतार लेकर शापमोचन करनेके लिये लंकामें जाकर दोनोंका वध किया, हे प्रभो ! मार्कंडेयजीके मुखसे आप रामचरित सुनोगे॥५०॥ उन दोनोंने अब तीसरी वार क्षत्रियवंशमें जन्म ले तुम्हारी माताकी भगिनीके सुत शिशुपाल और दन्तवक्र नामसे विख्यात हुए, उनको श्रीद्वारकानाथने चक्रसुदर्शनसे मार निष्पाप कर सनकादिकके शापसे मुक्त कर दिया ॥ ५१ ॥ तीव्र वैर करनेसे और रात-दिन भगवान्‌के ध्यानमें रहनेसे श्रीनारायणकी समताको प्राप्त हुए और फिर ये दोनों पार्षद हरिके निकट पहुँचे ॥ ५२ ॥ युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन् दैत्यवंशमें भगवद्भक्त प्रह्लाद कैसे उत्पन्न हुए ? और ऐसे सुबुद्धि महात्मा अपने प्यारे पुत्रपर हिरण्यकशिपुने

किस लिये विद्वेष किया और प्रह्लादको हरिकी भक्ति प्राप्त हुई ? वह प्रह्लादचरित्र कृपा करके मुझसे कहो ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे जयविजयत्रिजन्मकथावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, असुर कियो हरिद्रोह ।
भ्राताको सुत देखकर, उपजो मनमें मोह ॥

नारदजी बोले कि हे राजन् ! वाराहरूपधारी भगवान्ने इन्द्रकी सहायताके लिये मेरे भाई हिरण्याक्षको मारा, इसलिये हिरण्यकशिपुने अपने मनमें बड़ा शोक-संताप किया ॥ १ ॥ और क्रोधसे जिससे नेत्रोंसे अग्निकी लपटें निकलने लगीं, दांतोंसे होठोंको चबाने लगा, कोपमें जलते हुए नेत्रोंमेंसे आकाश जो क्रोधाग्निके धुयेंसे धुआंधार हो रहा था, उसकी ओरको देखकर बोला ॥ २ ॥ महाविकराल दाढ़ें, भयानक दृष्टि और वैसे ही भयंकर बक्र भ्रुकुटी कपालको चढ़ी हुईके कारण उसके भयावने मुखकी ओरको किसीसे भयके मारे देखा नहीं जाता था, इस प्रकार क्रोधमें भरा हुआ शूलको उठाकर सभामें आकर दैत्योंसे ललकारकर बोला ॥ ३ ॥ कि हे दानवो ! हे दैत्यो ! हे द्विमूर्द्धा ! हे त्र्यक्ष ! हे शंबर ! हे शतबाहु ! हे हयग्रीव ! हे नमुचे ! हे पाक, हे इल्वल ! ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ते ! हे पुलोमन् ! हे शकुनादिको ! मेरा वचन सुनो और जो मैं कहूँ शीघ्र करो, विलम्ब मत करो ॥ ५ ॥ देखो भाई ! विष्णु भगवान् सबको समान मानते हैं, परन्तु मेरे क्षुद्र शत्रु देवताओंने उनकी बहुत टहल टकोरी करके अपना पक्षपाती बनाया, तब उसने महानीच शूकरका रूप धरकर कपटसे मेरे भाई हिरण्याक्षको मार मुझसे शत्रुता ठानी ॥ ६ ॥ और अपने सुन्दर समदर्शी स्वभावको छोड़ मायासे निर्दयी वाराहरूप धारण किया और जो उसको भजते हैं उनको वह भी भजता है, बालकके सदृश उसका मन चञ्चल है ॥ ७ ॥ जबतक उस निर्दयी वनवासी शूकरवपुधारीकी गर्दन मैं अपने त्रिशूलसे निर्मूल कर बहुतसे उसके रुधिरसे अपने रुधिरप्रिय भ्राताको तर्पण करके तृप्त न कर लूंगा, तबतक मेरा मन सब व्यथाओंसे निश्चिन्त नहीं होगा और सब सन्ताप और परिताप नहीं मिटेगा ॥ ८ ॥ जब वह महाकपटी विष्णु नष्ट हो जायगा तो जैसे वनस्पतिका मूल कटनेसे उसकी शाखा आपसे आप सूख जाती है, ऐसे ही विष्णु जिनके प्राण वह देवता भी आपसे आप नष्ट हो जायँगे, क्योंकि इनका जीवनमूल विष्णु ही है ॥ ९ जबतक मैं उसके मारनेका उपाय करूं तबतक तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय जिस पृथ्वीपर बहुत बढ़ गये हैं, उस पृथ्वीपर जाकर तप, जप, यज्ञ, वेदपाठ, व्रत और दान करनेवालोंका वध करो ॥ १० ॥ क्योंकि यज्ञरूप, धर्म और ब्राह्मणोंकी क्रिया विष्णुका मूल है और देवता, ऋषि, पितृ, भूत और धर्म इनका परायण विष्णु ही है ॥११॥ और जहां-जहां ब्राह्मण, गौ, वेद, वर्णाश्रमधर्मके कर्ता और कर्मकाण्डी हों, उन-उन देशोंमें आग लगा दो और सबको मार डालो ॥ १२ ॥ क्योंकि वे लोग मुझको कुछ नहीं समझते और विष्णुका पूजन करते हैं, इसलिये उन सबको मारना ही उचित है, उसी समय अपने नाथकी आज्ञा शिरपर धारण कर हिरण्यकशिपुसे आदर-सत्कार पा; प्रजाका विध्वंस करना जिनको अत्यन्त प्रिय था वह दानव दैत्य प्रजाका

विध्वंस करने लगे ॥ १३ ॥ और पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान, क्षेत्र, वाटिका, आश्रम, खान, किसानोंके निवासस्थल, पर्वतकी कन्दरा, उनके नीचेके स्थान, घोष और राजधानी इत्यादि सबमें आग लगाने लगे ॥ १४ ॥ और कोई-कोई दैत्य कुदालोंसे सेतु, प्राकार, गोपुर, द्वारोंको तोड़ने लगे, कोई-कोई फरसे हाथोंमे लेकर उन वृक्षोंको काटने लगे कि, जिन वृक्षोंसे आजीविका हो अर्थात् आम, जामुन, कदली, नासपाती इत्यादि ॥ १५ ॥ कोई-कोई जलती हुई लकड़ियाँ हाथमें लिये प्रजा गणोंके घरोंको ठोक-ठोककर जलाने लगे, वे ही राक्षस कलियुगमें मनुष्यजन्म धारण करके सद्वैदिक धर्मोंकी निन्दा करेंगे ॥ १६ ॥ दैत्ये-न्द्रके भृत्योंने जब संसारमें इस प्रकारका उपद्रव मचाया तो देवता लोग अलक्षित हो स्वर्गको त्याग भूमिमें पर्यटन करने लगे और हिरण्यकशिपुने भाईके मारनेसे महादुःखी हो उसकी दाहादिक क्रिया कर तिलांजलि दे भाईके पुत्रोंका सांत्वन किया, इस बातपर एक दृष्टान्त है ❋ ॥ १७ ॥ १८ ॥ फिर शकुनी, शंबरासुर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच नाम असुर ॥ १९ ॥ भ्रातृज और उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता दितिको समझा-बुझाकर देशकालका जाननेवाला सब असुरोंका अधिष्ठाता यह कहने लगा ॥ २० ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि हे जननी हे वधू ! ! हे पुत्रो ! उस बलशाली महावीरका शोक मत करो, क्योंकि जिस वीरका शत्रुके सम्मुख मरण हो वह शूर सराहना करने योग्य है, इस बातको हम बहुत अच्छा समझते हैं ॥ २१ ॥ हे सुव्रते ! भूतोंका जो इस संसारमें सम्बन्ध है वह ऐसा है तो कर्मों द्वारा एकत्रित हो जाते हैं और अपने कर्मोंसेही बिछुड़ जाते हैं, इस संसारमें संग ऐसा है, जैसा प्याऊपर पानी पीनेके लिये एकत्रित हो जाते हैं और पानी पी-पी कर सब अपने-अपने मार्गको चले जाते हैं॥२२॥ देखो इस आत्माका कभी नाश नहीं होता, यह अनेक योनियोंमें निवास करता है और देहादिकोंसे भिन्न है इसलिये इसको किसी प्रकारका भय नहीं, क्योंकि यह तो सदा शुद्ध, अविनाशी, अव्यय, सर्वगत, सबका आत्मा, परेसे परे जो परमात्मा है उसकी माया करके गुणोंका त्याग कर सबके आत्माओंके स्वरूपोंको धारण करता है ॥ २३ ॥ जैसे कोई पुरुष जलमें नौकापर बैठकर चले तो उसको नदीके तटके सब वृक्ष चलते हुए दिखायी देते हैं, जैसे मनुष्य गोल चक्र बांधकर घूमे तो उसके नेत्र घूमने लगते हैं, और उसको भूमि घूमती प्रतीत होती है, ऐसे ही गुणोंकी उपाधिसे लिंग शरीर विचरता रहता है, इसलिये यद्यपि आत्मा सदा शुद्धरूप है; तो भी अज्ञानी लोगोंने उसका जीवन-मरण मान रखा है॥२४॥हे भद्रे ! आत्माका और लिंग शरीरका सम्बंध नहीं है, गुणोंके द्वारा मनके घूमनेसे अविकल पुमान् उसके समान भावको प्राप्त होता है, ऐसे ही ईश्वर शरीरसे रहित है ॥२५॥ आत्माका उलट-पलट होना जैसे शरीरसे आत्माका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तो भी कहता है, मैं देह हूँ, यह देह मेरी है, ऐसे चित्तमें निश्चय कर लेना यही अज्ञानता है। प्रिय अप्रियपन अर्थात् प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका संयोग यही है, इस कारणसे ही अनेक योनियोंमें जन्म लेता है

* दृष्टान्त—एक वैश्यने अपनी कुलवर्द्धिनी स्त्रीकी सांत्वना की, थोड़े दिन पीछे उस वैश्यके एक कन्या उत्पन्न हुई, तब उस वैश्यने बड़े प्यारसे उसका नाम दुर्नामता रक्खा। समय पाकर दैवयोगसे वह कन्या मर गयी, तब उस वैश्यकी स्त्री शिर पीट-पीट कर अत्यन्त बिलाप करने लगी, हाय दुर्नामता हाय दुर्नामता! तू मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चली गयी, अब मेरे दिन कैसे कटेंगे ? तब वैश्यने अपनी स्त्रीके बिलाप-कलापोंको सुनकर कहा, हे प्रिये ! रोवो मत, हम तुम जीते हैं तो बहु तेरी दुर्नामता हो जायेंगी, ऐसा कह उस वैश्यने फिर अपनी स्त्रीको सांत्वना दिया।

॥ २६ ॥ उत्पन्न होना, नाश होना अनेक प्रकारका शोक करना, अज्ञान, शोच विचार, स्वरूपकी चेष्टा ये सब शरीरके अभिमानके ही विकार हैं ॥ २७ ॥ इस प्रसंगके उदाहरणके लिये एक पुरातन इतिहास यमका और मृतक शरीरके समीप बैठे हुए सम्बन्धियोंका है वह तुम सुनो ॥ २८ ॥ उशीनर देशमें सुयज्ञ नामक एक प्रसिद्ध नरेश था। शत्रुओंने उसको युद्धमें मार डाला। उसके सब संबन्धियोंने चारों ओरसे उसको घेर लिया और रोने-पीटने लगे ॥ २९ ॥ उसका रत्नजडित कवच टूट गया था, अलंकार और मालाके मोती बिखर गये थे, बाणोंसे हृदय उसका बिंध रहा था रुधिरमें सब शरीर डूबा पड़ा था ॥ ३० ॥ बाल शिरके बिखर रहे थे, आँख खुलीकी खुली रह गयी थी, होठोंको दातोंसे चाबतेका चाबता रह गया था, मुखकमल धूलके उड़नेसे मलीनसा हो रहा था और समरभूमिमें आयुध और भुजा उसकी कट गयी थीं ॥३१॥ विधाताने जब उसकी यह दुर्दशा कर दी तब उसकी रानियाँ अपने पतिकी यह दुर्गति देख,अत्यन्त दुःखी हो,रो-रोकर कहने लगीं कि हे प्राणनाथ! हम मरीं, फिर दोनों हाथोंसे छाती पीटती-पीटती उसके पांवोंमें जा पड़ीं ॥३२॥ और उच्चस्वरसे रुदन जो किया तो स्तनोंकी कुमकुम धुल-धुलकर जले हुए रक्तके सदृश जो बिन्दु गिरते थे, उन्हीं आँसुओंसे अपने पतिके चरणारविन्दोंको सींच रही थीं, केश और आभूषण उनके बिखर रहे थे, उनके कठिन विलापोंको सुन-सुनकर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें शोक उत्पन्न होता था॥३३॥ अरे निर्दयी विधाता! तूने हमारे स्वामीको दृष्टिसे अगोचर कर दिया, जो पहले उशीनर देश के रहनेवालोंको जीविका देनेवाले थे, हाय! वह आज उन लोगोंको शोकके देनेवाले हो गये ॥३४॥ हे महीपते! तुम सरीखे सुहृद विना हम जीकर क्या करेंगी? इसलिये हे प्राणपति! जहां आपके जानेकी इच्छा हो वहां हमको भी अपने साथ ले चलो, क्योंकि वहां आपके चरणोंकी सेवा कौन करेगा? ॥ ३५ ॥ इस प्रकार सब रनिवासकी रानियाँ मृतक पतिका गोदमें शिर धरे रो-रोकर विलाप कर रही थीं और उसका संस्कार नहीं करने देती थीं, इस रोयापीटीमें सूर्य अस्त हो गया ❋ ॥ ३६ ॥ तब उस राजाके शवके समीपके बैठने वालोंका रोना सुन यमराज बालकका रूप धरकर वहाँ आये और उन लोगोंसे कहा ॥ ३७ ॥ यमराज बोले कि हे मनुष्यो! तुम सब मुझसे बहुत बड़े हो और बहुत कालसे संसारके लोगोंका जीवन-मरण देखते आये हो, इतने पर भी तुम लोगोंको बड़ा भारी मोह है, यह पुरुष जहांसे आया था वहां चला गया, अब तुम लोगोंका शोच-विचार करना वृथा है॥३८॥ तुमसे तो हम ही बहुत अच्छे हैं, जो हमारे माता-पिताने इस बाल्य अवस्थामें अकेला त्याग दिया और हम वनमें मारे-मारे फिर रहे हैं तो भी किसी बातका सन्देह नहीं और सिंह व्याघ्रादिक भी हमें कोई नहीं खाता। हमको निश्चय है कि जिस परमेश्वरने गर्भमें हमारी रक्षा की है वही सब ठिकाने हमारा रक्षक है ॥३९॥ जो अविनाशी पुरुष अपनी इच्छा करके इस जगत्को रचता है वही इसकी रक्षा करता है, वही संहार करता है। हे स्त्रियो! यह सब चराचर जीवात्मक संसार उस परमात्माका खिलौना है, इसलिये सबका मारने जिलानेवाला प्रभु ईश्वरही है ॥ ४० ॥

* शंका—प्राणी दुःखी हो चाहे सुखी हो परन्तु तीन लोकोंमें प्राणियोंको सुख होने के लिये मुनि लोग उपदेश किया करते थे, ऐसा शास्त्रमें सुना है, परन्तु यमराजने किसीको उपदेश नहीं किया ऐसा भी सुना है। यमराजने सुयज्ञकी स्त्रियोंको उपदेश क्यों किया?

उत्तर—सुयज्ञ राजाकी स्त्री बाल्यावस्थामें यमराजका सेवन करती थीं, इसीलिये रानीको दुःखी देखकर यमराजने रानीके सम्मुख आकर ज्ञान दिया और सब शोक दूर किया। अन्त समय पतिके लोकको भेज दिया। रानी ज्ञान पाकर अपने पतिके पास गयी, इसीलिये यमराजने उनको उपदेश किया।

देखो ! जो मार्गमें पड़े हुये हैं उनकी रक्षा परमात्मा करता है उनको कोई मार नहीं सकता है और जिनकी आठों पहर अत्यन्त रक्षा होती है और घरहीमें बैठे रहते हैं, वे मर जाते हैं, जिनका कोई पालन-पोषण करने वाला नहीं और अनाथ हैं, वनमें अकेले पड़े हैं और परमात्माकी उनपर दृष्टि है तो वे सदा आनंद करते हैं,और जिनकी घरमें सब रक्षा करते हैं और परमात्माकी रक्षा नहीं वह किसी प्रकार जी नहीं सकता ॥४१॥ इसी प्रकार जीव अपने कर्मोंके अनुसार समय पाकर जन्मते हैं और कर्मों ही द्वारा मरते हैं । यद्यपि आत्मा मायामें स्थिर है परंतु तो भी मायाके गुणोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, जीव ही बन्धनमें आकर नष्ट हो जाता है ॥४२॥ यह देह अज्ञानसे परमात्मारूप दृष्टि आता है, परन्तु विचार करके देखो तो वह आत्मा सबसे भिन्न है, जैसे प्राणी मिट्टीके घरमें रहता है और वह अज्ञानी उसको अपना मानता है, परंतु वास्तवमें वह घर उससे भिन्न है । ऐसे आत्मारूप अनुमान किया हुआ यह देह भी आत्मासे भिन्न है, जलसे उत्पन्न हुए जलके बबूलेकी नाईं और पृथ्वीसे उत्पन्न हुये घटादिकके तुल्य और सुवर्णसे उत्पन्न हुये कड़े कुण्डल इत्यादिकके सदृश कोई समय पाकर बन जाते हैं जब उनका विकार नहीं रहता तो फिर कुछ कालोपरान्त सब विनष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही जीवको जानो, कुछ शरीरके नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता ॥ ४३ ॥ जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न प्रतीत होता है और उसीमें व्याप्त रहता है, जैसे पवन देहसे विगत जान पड़ता है और देहमें ही स्थित रहता है, जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु किसीमें आसक्त नहीं होता ऐसे ही यह आत्मा शरीरमें वास करनेपर भी शरीरादिकके जन्म-मरणादिक गुणोंमें आसक्त नहीं होता ॥४४॥ हे मूर्खो ! यह सुयज्ञ तुम्हारा अधीश तुम्हारे सम्मुख सो रहा है फिर तुम शोक किसका करते हो ? और जो तुमको यह सन्देह हो कि अभी तो यह बोलता था सुनता था, और अब नहीं बोलता, इस बातका शोक करते हैं, सो इस बातका शोक करना तुम्हारा व्यर्थ है,क्योंकि जो श्रोता और वक्ता देहमें है उसको तो तुमने देखा ही नहीं था, उसका शोच करना क्या ? ॥ ४५ ॥ न तो इस देहमें कोई सुननेवाला है, न कोई बोलनेवाला है, केवल मुख्य इसमें एक महाप्राण है जो इंद्रियोंके द्वारा वासनाका ग्राहक आत्मा है वह इस शरीरसे सम्बन्ध नहीं रखता ॥ ४६ ॥ भूत, इंद्रिय, मन,लिंग, उच्च नीच देहोंको धारण करता है, त्यागता है, और आत्मा सबसे पृथक् है तो भी प्राण, इंद्रिय, मनके संबन्धसे छिन्न-भिन्न देहोंको ऐसे मानता है कि 'मैं हूँ, मेरा है' तब ही तक क्लेश सहता है और जब इसको ज्ञान हो जाता है तब सब अभिमान तज निस्कलंक हो जाता है ॥४७॥ जबतक लिंगशरीरके संग आत्मा है तब ही तक उसको कर्मोंका बन्धन है और विपर्यय आदि क्लेश मायायोग बर्तें है ॥४८॥ यह सब झूठा भाव है,गुणोंमें अर्थकी दृष्टिका वचन मानना और सुखदुःखको आत्माका धर्म मानना और उसमें ही लिप्त रहना, यह वृथा मन लगाना है और इंद्रियसंबंधी जो अनित्य पदार्थ आत्मामें प्रतीत होते हैं,वे सब मनोरथ स्वप्नवत् व्यर्थ हैं, इसलिये महात्मा पुरुष आत्मा और शरीरादिकके संबन्धको अनित्य समझकर किसी बातकी चिन्ता नहीं करते॥४९॥जो लोग नित्य अनित्यका विचार करनेवाले हैं वे नित्य अनित्यका शोच नहीं करते, क्योंकि जो भवितव्यता है वह किसी प्रकार मिट ही नहीं सकती,फिर शोक-सन्ताप करनेका क्या प्रयोजन ! इसलिये पुरुषको चाहिये कि किसी प्रकारका उपाय न करे, क्योंकि इसका कोई उपाय ही नहीं॥५०॥ शोकग्रस्त मनुष्योंके चित्त शान्त करनेके लिये एक दृष्टांत कहते हैं–परमेश्वरका रचा हुआ पक्षियों

का मारनेवाला महाभयंकर लुब्धक नाम एक व्याध था, वह जहाँ-तहाँ पक्षियोंके फांसनेके लिये जाल फैला तन्दुलोंका लोभ दिखाकर सदा जीवोंको मारा करता था ॥५१॥ एक दिन उसने एक कुलिङ्ग पक्षीका जोड़ा वनमें विचरता देखा और उसकी कुलिंजिनीको लुब्धकने उसी समय लुभा लिया॥५२॥कालविवश वह कुलिंजिनी उसके जालमें फँस गयी। उसको फँसी देखकर वह कुलिङ्ग अत्यन्त व्याकुल हुआ और अनेक प्रकारके विलाप करने लगा ॥५३॥ स्नेहसे छुड़ानेमें असमर्थ कृपण उस अपनी पत्नीको दुःखित देख महाशोक करने लगा और बोला कि अहो दैव ! तू बड़ा निर्दयी है, जो ऐसी दयावाली स्त्रीसे मेरा वियोग करा दिया ॥ ५४ ॥ मुझ कृपणका शोक करनेवाली इस दीनासे यह क्या काम निकालेगा ? ऐसे कठिन दुःखसे मुझे भी ईश्वर अब उठाले। क्योंकि आधे शरीरसे मेरा क्या प्रयोजन निकलेगा ? ॥ ५५ ॥ इससे वियुक्त दीन दुखिया मैं दुःखसे जीवन बिताकर क्या करूंगा ? देखो ! अभी इन छोटे-छोटे बच्चोंको पंखतंतु भी नहीं निकले, हाय ! आज वे विना जननीके हो गये,उन माता विहीन बच्चोंको मैं रखूँगा और कौन उनका पालन करेगा ? ॥५६॥ अरे मंदबुद्धि विधाता ! वह कोमल पंखहीन बच्चे घोंसलेमें बैठे हुए अपनी माताकी बाट देख रहे होंगे कि हमारे खानेके लिये कुछ भोजन लाती होगी, वे अपनी जननीका मरण सुन क्या करेंगे और कैसे धैर्य धरेंगे ? और मैं विना प्राणप्यारीके कैसे जीऊंगा ? हाय ! आज मेरा सब गृहस्थाश्रम नष्ट हो गया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नीके वियोगसे आतुर हो विलाप करता और आँखोंसे आंसू बहाता जालके पास गया, तब कालप्रेरित बाणसे उस वधिकने झट उसको भी मारकर गिरा दिया ॥५८॥ हे मूर्खों ! ऐसे ही तुम्हारी भी मृत्यु होगी, इस देहका क्या विचार करते हो ? ज्ञानी बनो, इसका सौ वर्षतक शोक करनेसे भी उसको नहीं पाओगे॥५९॥हिरण्यकशिपु बोला कि, यह बात बालककी सुन सब स्त्री पुरुष अत्यन्त विस्मित हुये और सब जातिके मनुष्योंने तथा राजमहिषियोंने माना कि सब संबन्ध मिथ्या है ॥६०॥ इतनी कथा कहकर यमराज तो अंतर्धान हो गये और सुयज्ञके सजातीय सब मिलकर उस मृतकका संस्कार करने लगे ॥ ६१ ॥ इस लिये हे जननि ! तुम भी शोक मत करो, आत्मा सबसे परे है, अपना पराया कोई नहीं है, ये सब अज्ञानपनकी भूल है यहां अपना कौन है ? और पराया कौन है ? तुम कौन हो ? और दूसरा कौन है ? ॥ ६२ ॥ ये सब अज्ञानतासे अपने व पराये मान रखे हैं, जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष हैं वे ज्ञानसे अज्ञानका दर्शन करते हैं ॥ ६३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार पुत्रवधू सहित दिति दैत्यपतिका यह वाक्य सुन शोक सन्तापको क्षणभरमें त्याग अपना मन परमेश्वरके ध्यानमें लगा दिया और यह समझा कि वही राम सबमें रम रहा है।

कवित्त–ऊखमें है मधुराई सेंधमें है नमकाई, तिलोंमें है तेल जैसे शीतलता ओलेमें। नीम कडुवाई जैसे मिर्चमें है तीक्षणता, दूधमाहिं घृत औ सुगन्ध जैसे बेलेमें ॥ आममें खटाई जैसे अग्निमें है उष्णताई, सोरेमें है खारापन रूई ज्यों बिनोलेमें। काष्ठमें है अग्नि जैसे बीजमाहिं वृक्ष छिपा, ऐसेही श्रीराम छिपे प्राणियनके चोलेमें ॥ ६४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे उशीनराख्याने कुलिङ्गकथाकथने दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा-इस तृतीय अध्यायमें, कनककशिपु तप कीन्ह ।
ब्रह्माने सुप्रसन्न हो, ताहि महावर दीन्ह ॥

नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने अपने आपको अजर-अमर समझकर कहा, आज पृथ्वीपर मेरे समान कोई नहीं ऐसे अपने आत्माको एक बड़ा राजा मान सब पृथ्वीका राज्य करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ वह हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वतकी कन्दरामें जाकर महादारुण तप करनेके लिये ऊपरको हाथ उठा आकाशकी ओरको दृष्टि कर एक पांवके अंगूठेके सहारेसे खड़ा हुआ ॥२॥ जब तपस्या करते-करते कुछ समय व्यतीत हुआ तो धूमसहित तपकी अग्नि उसकी जटाओंमें कैसी चमक रही थी, जैसे प्रलयकालके सूर्यके किरणोंकी कांति शोभायमान होती है, जब वह इस प्रकार महाकठिन तप करने लगा, तब सब देवता अपने-अपने स्थानोंपर आये ॥३॥उसके महाबलका उद्योग देखकर और सुनकर सब देवता डरके मारे घबड़ा गये और जहां जिनके सींग समाये वहां चल दिये, उस समय हिरण्यकशिपुके शिरमेंसे उत्पन्न हुई तमोमय धूमसहित अग्निकी प्रचण्ड ज्वाला तिरछी, बांकी ऊँची, नीची, चारों ओरको फैलकर त्रिभुवनको तपाने लगी ॥ ४ ॥ नदी और समुद्र चलायमान हो गये, सातों द्वीप पर्वतोंसमेत भूमि कांपने लगी, ग्रहोंसहित तारागण टूट-टूट कर गिरने लगे, दशों दिशा प्रज्वलित हो गयीं ॥ ५ ॥ उस अग्निके तपनेसे देवता लोग स्वर्गको छोड़ ब्रह्मलोकमें गये और वहां जाकर विनयपूर्वक ब्रह्मासे कहा कि हे देवदेव ! हे प्रजापते ! ॥ ६ ॥ हे दीनदयालु ! दैत्येंद्र हिरण्यकशिपुके तपके प्रभावसे तप्त हुए स्वर्गसे हम निवास नहीं कर सकते । हे समर्थ जो लोकका कल्याण चाहो तो उसकी शीघ्र शांति करो ॥७॥ क्योंकि कहीं जबतक बलि देनेवाले भूमिवासी नष्ट न हो जायँ, वह उपाय करो और जो आपके बलि देनेवाले ही नष्ट हो गये तो फिर क्या ? आपको यह भी प्रकट है कि नहीं ? कि महाविकराल तप करके उस दैत्याधीशने जो संकल्प किया है, वह किस लिये कर रहा है ! ॥ ८ ॥ यद्यपि आप सब जानते हैं और कोई बात छिपी नहीं है, परंतु जैसा हमने सुना वैसा आपके सम्मुख कहते हैं, और हमने पहले भी आपसे कहा था ।

दोहा-कनककशिपुने यह सुना, तपकर विधिपद लीन्ह ।
सो विचार विधि होन हित, दैत्य कठिन तप कीन्ह ॥ ९ ॥

केवल तप, योग, समाधिके बलसे ब्रह्माने सब विश्व और चराचरको रचा है और सब स्थानोंसे श्रेष्ठ स्थानमें जैसे ब्रह्माजी आप बैठते हैं, उसी ढंगसे मैं भी कठिन तप करके अपने आत्माको वैसा ही प्रतापी बनाऊँगा, जैसे कि चतुरानन हैं ॥ १० ॥ कालात्मा नित्य होनेसे मुझको भी कालका भय नहीं रहेगा, मैं आप कालरूप होकर अपने पराक्रमसे उनको अन्यथा करूंगा ॥११॥ और दैत्योंको देवता और देवताओंको दैत्योंकी पदवी दूंगा और पातालके लोगोंको आकाशमें, आकाशके लोगोंको पातालमें वसाऊँगा, पापको पुण्य और पुण्यको पाप बनाऊँगा, परंतु जो चाहे सो हो एकबार विश्वको लोटपोट करके दिखा देना और जिस वैकुंठको श्रेष्ठ समझ रखा है उसमें नीच लोगोंको बसा देना और नरकका वह नाम ही न रखूंगा और कल्पके अन्तमें वैष्णवादिक कालके कौर मेरा क्या कर सकते हैं ? मेरा और तो किसी नाशवान् पदवीसे प्रयोजन ही नहीं, केवल मुझको तो एक ब्रह्मपदवीकी अभिलाषा है, ऐसी हठ उसकी हमने सुनी है, इसलिये वह महाकठिन तप कर रहा है,

॥ १२ ॥ हे त्रिभुवनेश्वर ! पहले इस कामको कर लो और काम पीछे करना । हे जगत्पते ! गौ और ब्राह्मण आपके मुख्य स्थान हैं और आप ही भक्तहितकारी हैं ॥ १३ ॥ आप ही उत्पत्ति, कल्याण, लक्ष्मी, कुशल और विजयके लिये हैं, इसलिये हे त्रिलोकीनाथ ! जब आपका ही स्थान छिन गया तो फिर हम क्या कर सकते हैं ? नारदजी बोले हे राजन् जब भगवान् स्वयंभूकी देवताओंने इस प्रकार प्रार्थना की ❋ ॥१४॥ तब भृगु, दक्ष आदि प्रजापतियोंको संग लेकर ब्रह्माजी हिरण्यकशिपुके आश्रममें गये । बांबी, तृण और कीचकोंसे उस दैत्यको कढ़ा हुआ देखकर ब्रह्माजीने समझा कि मिट्टीका ढेर है, फिर समीप जानेसे एक छिद्रमें कोई ऐसा प्रकाश दृष्टि आया, जैसे घटमें सूर्य चमकता है ऐसे उसके नेत्र चमके, देखा तो चींटी और कीड़ेने उसकी त्वचा, मांस और रुधिरको चाट लिया था, केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गयी थीं तो भी वह अपने तपके प्रतापसे त्रिलोकीको भष्म किये डालता था । मेघके ढके हुए मार्तण्डके सा प्रचण्ड तेज था॥१५॥१६॥ उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो हंस वाहन ब्रह्मा हँसकर बोले हे कश्यपतनय ! तेरा कल्याण हो, उठ, उठ; तेरा तप सम्पूर्ण हुआ, तेरा सब काम सिद्ध होगा ॥१७॥ हम तेरे समीप वर देनेको आये हैं, अब जो तेरी इच्छा हो वर मांग, तेरे हृदयका जो अद्भुत सार है वह हमने जान लिया और तेरे समान धैर्य्यवान् कौन होगा ? तेरे सब शरीरको डांसादिक कीड़ोंने खा लिया है, केवल तेरे प्राण मात्र हड्डियोंमें रह गये हैं, ऐसा कठिन तप अबतक न तो किसीने किया और न तो कोई आगे करेगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ विना जलपान किये देवताओंके दिव्य सौ वर्षतक कौन ऐसा प्राणी है जो शरीरमें अपने प्राणोंको धारण कर सकता है ? यह तेरा निश्चय और महाघोर तप बड़े-बड़े धैर्यवानोंसे भी होना बहुत कठिन है ॥ २० ॥ हे दितिनन्दन ! तेरा निश्चय देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि तूने तपमें पूर्ण निष्ठा करके मुझको जीता है, हे दैत्योंमें श्रेष्ठ ! मैं तुझे सत्य आशीर्वाद देकर तेरा सब मनोरथ पूर्ण करूँगा ॥ २१ ॥ तेरा जो देह मरनेसे मुक्त नहीं हो सकता और मैं तो मरनेसे मुक्त हूँ, सो तुझको मेरा दर्शन निष्फल कभी नहीं हो सकता । नारदजी बोले कि सबसे प्रथम देहधारी ब्रह्माजीने इतनी बात कहकर हिरण्यकशिपुकी ओर फिर देखा, जिसका शरीर चींटियोंने चाट लिया था ॥ २२ ॥ अत्यन्त दिव्य अमोघ तेजवाले कमण्डलुके जलको छिड़का, उसके छिड़कते ही वह दैत्येन्द्र उस कीचक वाल्मीकसे साहस, तेज बल सहित जैसे काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होती है ऐसे उठा ॥ २३ ॥ सब अवयवोंसे सम्पन्न, वज्र समान अंग, युवा अवस्था, चित्तका सामर्थ्य बढ़ा हुआ, तपे हुए सुवर्णके समान कांतिकी झलझलाहट, अग्निके समूहकी नाईं उठकर खड़ा हो गया ॥ २४ ॥ आकाशमें हंसपर विराजमान हंसवाहन देवोंके देवको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ उनको शिरसे पृथ्वीपर दंडवत प्रणाम कर दर्शन किया और मनमें परमानंद माना ॥ २५ ॥ उस समय भृगु आदि प्रजापतियोंको ब्रह्माजीके साथ देख हिरण्यकशिपुके चित्तमें अत्यन्त हर्ष बढ़ा, नेत्रोंसे आंसू निकलने लगे, शरीर पुलकायमान हो गया,

❋ शंका—जिस-जिस प्राणीने ब्रह्माजीकी तपस्या की। उन सबको ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार वर दिया, परन्तु देवताओंने ब्रह्मा जीकी प्रार्थना नहीं की कि इसको वर दो, परन्तु इस हिरण्यकशिपुको देवताओंके कहनेसे वर क्यों दिया ? यह बड़ा आश्चर्य है !

उत्तर—हिरण्यकशिपुने मनमें यह विचार कर तप किया था कि पहले वरदान लेकर पीछे भगवान् को बन्धनमें डालूंगा, हिरण्यकशिपुके मनकी बात जानकर ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुको वरदान नहीं दिया था, परंतु जब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा, हम सब लोग दुष्टके तपके तेजसे जले जाते हैं तब ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको वरदान दिया। इस लिये देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्माने वर दिया था ।

गद्गद वाणीसे ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगा ॥२६॥ हिरण्यकशिपु बोला कि कल्पके अन्तमें कालसे रचे हुए अत्यन्त अन्धे तमसे ढके हुये इस विश्वको जिन परमात्माने आप अपनी ज्योतिसे प्रकाश किया है, उस स्वयंप्रकाश परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥२७॥ जो आप त्रिगुणात्मक स्वरूपसे इस सृष्टिको उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहारते हो, ऐसे रज, सत्त्व, तम, तेज रूपवाले परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥२८॥ आद्यबीज, ज्ञानविज्ञान–मूर्ति, प्राण,इन्द्रिय,मन,बुद्धिरूप वैकारिक व्यक्तिको धारण करनेवाले परमात्मा आपको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ आपही स्थावर, जंगम, जगत्के ईश हो आपही प्रजाओंके प्राण हो आप ही मन-इंद्रियोंके पति हो, आप ही चित्तके चित्त हो, आपही आकाशादिक पंच महाभूतगणोंके और शब्दादिक पञ्चविषयवासनाओंके उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ३० ॥ आप ही वेदत्रयीके चार होता करके सात यज्ञोंके कर्ता हो आपही प्राणियोंके आत्मा और आत्मज्ञानियोंके अनादि अनन्त अपार अखंडित पंडित सर्वान्तर्यामी हो ॥३१॥ आप ही कालके प्रवाहरूप लव, क्षण इत्यादिक करके विभागोंसे जीवमात्रकी आयुको क्षय करते हो, आप ही कूटमें स्थित आत्मा, ब्रह्मान्तर्यामी, अजन्मा, अविनाशी, सबसे बड़े इस जीवलोकके जीवनमूल और आत्मा हो ॥ ३२ ॥ आपसे परे स्थावर जंगम कुछ भी चलायमान नहीं है न आपसे ऊपर है, और जो चलायमान है वह आपसे पृथक् नहीं है, चौदह विद्या, सोलह कला ये आपके ही रूप हैं, आपके ही उदरमें यह सब ब्रह्माण्ड वास करते हैं, ऐसे परब्रह्म और त्रिगुणात्मक आप ही हो ॥ ३३ ॥ हे समर्थ ! यह भी भली प्रकार विदित है कि यह स्थूल शरीर कि, जिससे इंद्रिय, प्राण, मनसे विषयोंको भोगते हो और अतिगुप्त आत्मा पुरुष पुराण ब्रह्मधाममें आप ही विराजमान हो ॥ ३४ ॥ हे अनंत ! अव्यक्तरूपसे जिसने यह सब विश्व विस्तृत किया है और विद्या-अविद्या शक्तियुक्त जो आपकी अद्भुत माया है, मन वचन कर्मसे नहीं जानी जाती, उस परब्रह्म परमेश्वरको वारंवार मेरा नमस्कार है॥३५॥ हे वरदोत्तम! जो आप मुझको वर देते हो मेरे मनोवांछित वर दो, मैं यह वर मांगता हूँ कि आपकी सृष्टिके रचे हुए किस पदार्थ वा किसी जीवमात्रसे मेरी मृत्यु न हो ॥ ३६ ॥ बाहर, भीतर, दिनमें, रातमें आपके रचे हुए शस्त्रोंसे, भूमिमें, आकाशमें, मनुष्यसे, मृगसे ॥ ३७ ॥ प्राणधारी अथवा विना प्राणधारी, सुर, असुर, महासर्प इत्यादिकसे युद्धमें मेरी हार न हो और संसारमें एक राज्य मेरा ही हो ॥३८॥ जिस प्रकार सब लोकपाल आपको मानते हैं वैसे ही मुझको मानें। तप योग प्रभाव मेरा कभी क्षीण न होने पाये और मेरा ऐश्वर्य कभी नष्ट न हो। हे नाथ! जो देना तो यह वर मुझको दीजिये ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–इस चौथे अध्यायमें, कनककशिपु वर पाय।
जीत चराचर देव सब, चढ़ो विष्णु पर धाय ॥

नारदजी बोले कि जब हिरण्यकशिपुने इस प्रकार ब्रह्माजीकी विनय की तब उसके तपसे प्रसन्न होकर वह वर ब्रह्माजीने उसको दिया जो और पुरुषको मिलनेमें महादुर्लभ है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे तात ! ये वर मनुष्योंके लिये महा कठिन हैं, जिन्हें तू मुझसे मांगता है परंतु तो भी मैंने तुझको दिये, क्योंकि तूने बड़ा भारी तप किया है।

चौ०–तातें मन वांछित वर दीन्हा ❋ अनुचित उचित विचार न कीन्हा ॥२॥

नारदजी बोले कि हिरण्यकशिपुने मनोवांछित वर पाकर परमेष्ठीका पूजन किया, तब अमोघ अनुग्रही समर्थ सदा प्रजापति जिसकी स्तुति करते हैं वे भगवान् ब्रह्माजी अपने ब्रह्म-लोकको चले गये ॥ ३ ॥ इस प्रकार सब दैत्येन्द्रको वर मिले तो वह कञ्चनकेसा तनु धारण करनेवाला कनककशिपु अपने भाई हिरण्याक्षके मरणका स्मरण कर विष्णुको अपना वैरी समझकर उनसे वैर करने लगा ॥ ४ ॥ और सब लोक, दशों दिशा, देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गंधर्व, गरुड़, उरग ॥५॥ सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यक्षोंके राजा, कुबेर, राक्षस, पिशाच, ईश, भूतेश्वर ॥ ६ ॥ इनके अतिरिक्त और संपूर्ण जीवमात्रको उनके अधीश्वरोंको जीतकर अपने वशमें किया और उस विश्वविजयी दैत्यराज हिरण्यक-शिपुने लोकपालोंके स्थान तेजसहित हर लिये ॥ ७ ॥ देवताओंके उपवनोंसे सौंदर्य देव-लोकमें जाकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया और जो महेंद्रके राज्यभवन विश्व-कर्माने अपने हाथोंसे निर्माण किये थे ॥ ८ ॥ वे सुन्दर-सुन्दर मंदिर जो सदा सम्पदाओंसे पूरित, त्रिलोकीकी लक्ष्मी जहां सदा विराजमान उस सुरेन्द्रके स्थानमें हिरण्यकशिपु नामका महावलवान् दैत्येन्द्र निवास करने लगा ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें विद्रुमके सोपान महामर-कतमणिकी पृथ्वी, स्फटिकमणिकी भीतें, वैदूर्यमणिके खम्भोंकी मनभावनी सुहावनी अद्भुत कांति झलक रही थी ॥१०॥ जहां चित्र-विचित्र चंदोवे तन रहे थे, पद्मरागमणियोंके मनोहर आसन बिछ रहे थे,दूधके फेन सम श्वेतवर्ण और नाना प्रकारके रंगोंकी कोमल-कोमल शय्या शोभा दे रही थी और उनमें चारों ओर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं ॥११॥ जिनके नूपु-रोंकी झनकारसे संसार मोहित हो जाय ऐसी-ऐसी सहस्रों देवांगनायें कुन्दकलीसम दातों-वाली उस मनोहर रत्नस्थलीमें झन-झन करती चारों ओर विचरती फिरती थीं और अपने सुन्दर-सुन्दर चंद्रवदनके प्रतिबिम्बको निहार-निहार प्रसन्न होती थीं॥१२॥ ऐसे शोभायमान, सुरेन्द्रके भवनमें महाबलशाली, पूर्णप्रतापी, उदारचित्त, विश्वविजयी, महाप्रचण्ड तेजस्वी, तपके तेजके प्रभावसे सब देवता जिसके चरणोंकी वारंवार वंदना करते थे ऐसा वह दैत्येंद्र पूर्ण प्रतापी अपने प्रतापसे चण्ड शासन करके दिन-रात सुरपुरमें रमण करता था॥१३॥हे राजन् ! महातीव्र सुगंधित वारुणीके मदसे विकराल लाल-लाल नेत्र, जिसके तप, योग, बल और पराक्रमसे सब स्थानोंके अधिकारी और लोकपाल अनेक-अनेक प्रकारकी भेटें लिये खड़े रहते थे। केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिवने ही उसकी सेवा नहीं की॥१४॥हे पाण्डव ! इन्द्रके आसन-पर अपने पराक्रमसे बलात्कार बैठे हुए उस हिरण्यकशिपुने सम्मुख-विश्वावसु, तुम्बुरु, अस्मदादिक सदा गाया करते थे और गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरा वारंवार उसकी स्तुति करते रहते थे ॥ १५ ॥ जो कोई वर्णाश्रमी जगत्में यज्ञ करता था वह पहले बहुतसी दक्षिणा देकर उसको पूजन कर लेता पीछे और काम करता था। यह अपने तेजके प्रतापसे यज्ञका हविर्भाग भी लेता था ॥१६॥ सातों द्वीपोंकी पृथ्वी उसके भयकी मारी विना जोते-बोये सब प्रकारके अन्न और फलादिकोंको उत्पन्न करती थी और आकाश सबकी मनकी आशा पूर्ण करता था और अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी सम्पदायें प्रकट होती थीं ॥१७॥ रत्नाकर भांति-भांतिके रत्न अपनी लहरोंसे बाहर निकाल-निकालकर डालने लगा।

चौ०–लवण मद्य, मधु, दधि, घृत, क्षीरा, ❋ बहन लगे सरितनयुत नीरा ॥ १८ ॥

शैलोंकी कन्दराओंके भीतर महासुखदायक क्रीड़ास्थल आपसे आप बन गये। वृक्ष छहों ऋतुओंमें फूलफलोंसे फलने लगे। सब लोकपालोंके गुण पृथक्-पृथक् इकला हिरण्यकशिपु धारण करता था॥१९॥इस प्रकार दिग्विजयी सम्राट् दानवराज दिग्विजय कर अपनी इच्छानुसार प्रिय विषयोंका आनन्दपूर्वक भोग भोगने लगा परंतु इंद्रियोंके न जीतनेके कारण उसके मनको संतोष नहीं हुआ ॥२०॥ इस भांति ऐश्वर्यसे मदान्ध, अभिमानसे भरा हुआ पाखण्डी वह हिरण्यकशिपु महा अनीति करनेवाला हुआ, जिसके भयसे इन्द्र इकहत्तर ७१ चौकड़ी तक राज्यसे भ्रष्ट रहा; ब्रह्मशापसे राक्षसतनुपानेवाले उस दैत्यको समस्त पृथ्वीका राज्य करते-करते जब अनेक युग बीत गये ॥ २१ ॥ जब ऐश्वर्य पाकर मनुष्य मदान्ध हो जाता है तब सब धर्म कर्मको भूल जाता है, देखो ! ब्रह्माजी उस असुरके सम्मुख आये, परन्तु इस अज्ञानीको किंचिन्मात्र भी न ज्ञान हुआ, इतनेपर भी मतवाला बना रहा। इस बातपर एक दृष्टान्त है ❋ उस हिरण्यकशिपुके प्रचण्ड दण्डसे भयभीत हुए सब देवता और लोकपाल सात द्वीप नौ खण्डोंमें भागे-भागे फिरे जब कहीं कोई रक्षा नहीं देखा तो सब देवता और लोकपाल मिलकर श्रीअच्युत भगवान् वासुदेवकी शरण गये ॥ २२ ॥ जहाँ सर्वात्मा जनार्दन भगवान् हैं और निर्मल हृदय शान्त स्वभाववाले संन्यासी जहाँ जाकर फिर संसारमें नहीं आते, उस दिशाको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥२३॥ ऐसे कह मनको सावधान कर, बुद्धिको सुधार निद्राको तज, इंद्रियोंको जीत, समाधि लगाकर पवनके भोजनके आश्रयसे हृषीकेश भगवान्का भजन करने लगे ॥ २४ ॥ जिसका कोई स्वरूप नहीं, मेघके समान गम्भीर शब्दवाली, सब दिशाओंको गर्जित करती, साधु सन्तोंकी अभयदायक आकाशवाणी उनको सुनायी दी ॥ २५ ॥ हे देवो ! तुम कुछ भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी वाणी और मेरा दर्शन

---

* दृष्टान्त—गंगाजीके किनारे एक ऋषीश्वर कथा करते हैं। वहाँ अनेक साधु-संत कथा सुननेके लिये आते और एक राजा भी कथा सुननेको आता था। प्रसादके लालचसे वहाँ एक खाजभरी कुतियाभी आ जाया करे और राजाके समीपही बैठे। राजाने कथामें आना छोड़ दिया। बहुत दिनों पीछे वह राजा कोई पर्व समझकर गंगा स्नानको आया और उन कथा कहनेवाले ऋषीश्वरको दंडवत् प्रणाम किया। ऋषि आशीर्वाद देकर बोले कि हे राजन्! आप कथा सुनने क्यों नहीं आते? राजाने कहा कि वहाँ कुतिया खुजली की मारी खुरखुर करती रहती है इसलिये कथामें नहीं आता, ऋषि बोले कि आना, हम इस बातका भी प्रबंध करेंगे, ऋषिने अपने योगबलके प्रभावसे उस कुतियाको अपसरा बना दिया। राजा ऋषिके कहनेसे कथामें आया और यह अप्सरारूप कुतिया फिर राजाके ही निकट बैठी। तब तो राजा उसको देखकर अत्यन्त ही मोहित हुआ। सबसे पहले आये और उसीके पास बैठे। दिन-रात उसीके ध्यानमें मतवाला रहे, सब घरबार छोड़ दिया, दिनमें चार फेरे वहांके करे और नित्यप्रति परमात्मासे यही प्रार्थना करता था कि, हे परमेश्वर! वह दिन कौनसा होगा, जिस दिन वह मृगनैनी पिकबैनी चन्द्रकांता मेरी कान्ता होगी? कभी कुछ विचार करता, कभी कुछ विचार करता, इसी सोच सागरमें डूबा रहता था। एक दिन ऋषीश्वरने राजासे पूछा कि हे राजन्! यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी? राजा नीचेको नेत्र कर बोला कि इस मनमोहिनीने मेरे मनको मोह लिया है; जो मेरे संग इसका विवाह हो तो मेरे प्राण बचें और नहीं तो यह प्राण नहीं बचेंगे। उसके दीन वचन सुन ऋषिने उसी समय उस नवयौवनाको राजाके साथ कर दिया, वह सुन्दरी राजाके मंदिरमें रहने लगी; रातको जब राजा सो जाता था तो वह कुतियारूपी स्त्री दीपकोंके तेलको चाटा करती थी। एक दिन सोतेसे राजाकी आँख खुल गयी तो देखता क्या है कि, यह चन्द्रमुखी दीपकका तेल चाट रही है, तब तो राजा अत्यन्त घबड़ाकर ऋषीश्वरके पासको भगा और अपने अनुचरोंसे कह गया कि इसको बांधकर अभी गङ्गातीर पर ऋषीश्वरके यहांसे लाओ। राजाकी आज्ञानुसार भृत्य उसको बाँधकर ले चले, राजाने ऋषीसे कहा कि, हे ऋषिराज! यह स्त्री तो डाकिनी निकली, इसको तो घरमें नहीं रखनेका विचार है, ऋषीश्वर बोले कि, हे भाग्यहीन कुतिया! अब क्या करूं मैंने तो तुझे राजमंदिरतक पहुँचा दिया परन्तु तूने तो भी अपने स्वभावकी प्रकृतिको नहीं छोड़ा और दीपकका तेल चाटा, सत्य है प्राणी अपनी प्रकृतिको नहीं त्यागता, ऐसे ही तपके प्रभावसे हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीसे मिला, परन्तु अपने राक्षसी स्वभावको नहीं छोड़ा और उसने-ऐसे ऐसे कुकर्म किये, पाखण्डी बने। यहाँ ग्रन्थके अधिक हो जानेके कारण इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त नहीं लिखा।

सब जगत्का मङ्गलदायक है ॥ २६ ॥ उस दुष्ट दैत्यकी दुष्टता मैं भलीप्रकार जानता हूँ; इसकी शांति मैं बहुत शीघ्र करूंगा, अभी कुछ काल तुम धैर्य धरो ❋॥२७॥ जो मनुष्य, देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे वैर करते हैं, वे शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं॥२८॥

दोहा–समदरशी अरु शान्तचित, मेरा भक्त उदार ।
नाम जासु प्रह्लाद है, धरा धर्म आधार ॥

ऐसे अपने पुत्र महात्मासे वैर करेगा तो यद्यपि वर भी मैं उसको दे चुका हूँ, तो भी उसको विना मारे कभी नहीं रहूँगा ॥२९॥ नारदजी बोले कि श्रीलोकगुरु आदिपुरुष अविनाशीकी यह वाणी सुनकर देवताओंने अत्यन्त सुख माना और परमात्माको प्रणाम कर सब अपने-अपने स्थानोंको चले गये और उसी दिनसे असुरको मरा समझ लिया ॥३०॥ उस दैत्यपतिने महाअद्भुत परम उदार चार कुमार उत्पन्न किये, उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा परन्तु गुणमें सबसे बड़ा और परमेश्वरका पूर्ण भक्त था ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणोंका रक्षक, शीलसंपन्न, सत्यवादी जितेन्द्रिय और सर्वत्र जीवमात्रको अपने आत्माके समान मानने वाला और सबका प्यारा सुहृद था॥३२॥सज्जन पुरुषोंके चरणोंका दासकी नाईं सेवन करता। पिताके समान दीन जनों पर दया रखता, अपने सदृश जो नगरनिवासी थे उनको भ्राता के तुल्य मानता और गुरुजनोंको ईश्वर समान जानकर पूजन करता था। विद्या, धन, रूप और कुलमें परिपूर्ण अर्थात् उत्तम होनेपर भी उसको इन बातोंका गर्व नहीं था,॥३३॥कभी मनमें उद्विग्न नहीं होता, सब व्यसनोंसे दूर रहता, सुनता-देखता सब कुछ, परन्तु इस लोकके और परलोकके पदार्थोंको अनित्य समझता, सदा इंद्रिय, प्राण, शरीर, बुद्धिको दमन करता रहता मनमें ही सब कामनाओंको शान्त करता रहता था। यद्यपि असुरके घरमें जन्मा था, परन्तु तो भी सुरोंको सुख देनेवाला था ॥३४॥ हे राजन्! जिसके गुणोंको कविलोग वारंवार ग्रहण करते हैं ईश्वरके गुण जैसे छिपाये नहीं छिप सकते, ऐसे ही प्रह्लादके गुण भी आजतक जगत्में प्रकट हो रहे हैं॥३५॥ हे नरेश! सुर असुरलोगोंके शत्रु हैं, परन्तु जहां कहीं कथा वार्ता और बड़े-बड़े महात्माओंकी गणना होती है, वहां पहले प्रह्लादकी ही उपमा देते हैं और आप सरीखे सज्जनोंका तो कहना ही क्या है? ॥ ३६ ॥ यह तो सब मैंने उसके गुणोंकी और यशकी बड़ाई की और उसके गुणोंकी तो गिनती ही नहीं, भला फिर उसके गुणोंकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है? उसके असंख्य गुण समझने चाहिये जिसकी वासुदेव भगवान्में स्वाभाविक प्रीति है ॥३७॥ बालपनका उसने कोई खेल न खेला और न कोई खिलौना हाथमें लिया, केवल शालग्रामकी मूर्त्तिको ही खिलौना समझता रहा और सब संसारके खेलोंको छोड़ विष्णु भगवान्के चरणारविन्दोंमें ही मनको लगा रखा था और भगवान्रूप ग्रहने उसके आत्माका ग्रहण कर लिया था, केवल जड़की नाईं रहता था और संसारको कुछ नहीं समझता था कि संसार क्या वस्तु है? ॥ ३८ ॥ बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते, जागते,

* शंका—हिरण्यकशिपुने जिस दिन ब्रह्मासे वरदान पाया, उसी दिनसे धर्मसे, भगवान्से, देवताओंसे, गायोंसे, ब्राह्मणोंसे, वेदोंसे एका एकी वैर करने लगा तब भगवान्ने देवताओंसे क्यों कहा कि देवता लोगो! डरो मत, जब हमसे, धर्मसे, देवताओंसे, वेदसे ब्राह्मणोंसे, साधुओंसे गायोंसे वैर करेगा तब हम उसी समय हिरण्यकशिपुको मार डालेंगे, यह बड़ी भारी शंका है।

उत्तर—इन सबसे पृथक्-पृथक् वैर राक्षस करता था, राजनीति विचारके फेरफार करके वेदसे और भगवान्से तो बहुत शत्रुता करता था, परन्तु ब्राह्मणोंसे प्रीति भी करता और वैर भी करता था, ऐसी चतुराईसे वैर किया था और भगवान्ने कहा था कि जो सबसे एक बार वैर करेगा, तो उसी समय मार डालेंगे।

बोलते, बतलाते, गोविन्दरूपमें लीन होनेके कारण उसको इन बातोंकी सुध नहीं थी ॥ ३९ ॥ श्री भगवान्‌के ध्यानमें ऐसा मतवाला रहता था कि कभी रोता; कभी हँसता, कभी उसकी लीलाओंका स्मरण कर पुकार-पुकार मनही मनमें मग्न होता था ॥४०॥ कभी उत्कण्ठित हो 'हरे-हरे' पुकार उठता, कभी लाजको तज नाचने लगता, कभी भगवान्‌की भावना कर तन्मय हो अनेक प्रकारका विहार करता था ॥४१॥ कभी भगवान्‌की मनोहर छबिके ध्यानमें मग्न होकर मौन हो जाता, कभी आनंदित हो आंखोंसे आंसू बहाता, कभी नेत्र बन्द कर हृदयमें उस मनोहरकी मनमोहनी छबिका दर्शन करता था ॥४२॥ उत्तमश्लोकके चरणोंकी सेवा करनेवाला चाहे कुछ न चाहे, परन्तु सेवाका फल उसको अवश्य मिलता है। उस भगवच्चरणकी सेवाके प्रतापसे यह अपने मनमें परमानन्द मानता था और कुसंगसे आर्त हुए और लोगोंके मनको भी शान्त करता था ॥४३॥ हे राजन्! ऐसे महाभागवत बड़भागी अपने पुत्रसे वह दैत्यराज अकारण वैर करने लगा ॥ ४४ ॥ युधिष्ठिरने पूछा कि हे सुव्रतधारी नारदजी! इस बातके सुननेको मेरा मन बहुत चाहता है, कि उस शुद्धचित्त सत्पुत्रसे उसके पिता हिरण्यकशिपुने वैर क्यों किया? (सब बातका मुझको अत्यन्त संदेह है) ॥ ४५ ॥ चाहे पुत्र अपने अनुकूल न हो तो भी पिता पुत्रपर प्रेम रखता ही है और शिक्षा देनेके लिये क्रुद्ध भी हो जाय, परंतु तो भी शत्रुके समान उसको कठिन दुःख नहीं देता ॥ ४६ ॥ और जो कुलमें सत्पात्र पुत्र हो पिताकी सेवा करे; गुरुको अपना इष्टदेव माने, ऐसे साधु पुत्रसे तो कोई भी शत्रुता नहीं करता, फिर वैर करनेका क्या कारण? हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! ये बड़े कौतुककी अद्भुत बात सुनकर मेरे मनमें बड़ा भ्रम है, सो विस्तारपूर्वक आप यह मेरा भ्रम दूर कीजिये ॥ ४७ ॥ पिता पुत्रका जो द्रोह हुआ और उसके पिताको भगवान्‌ने मारा, हे विद्वज्जन्! हे द्विज नारद! इस बातसे मेरे मनमें बड़ा संकट होता है, विस्तारपूर्वक आप इस इतिहासको वर्णन कर मेरा संशय दूर कीजिये ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्राम वैश्यकृते सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपुदिग्विजय-प्रह्लादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-गुरुकी शिक्षा छोड़कर, श्रीहरिकी स्तुति कीन्ह।
दैत्य भक्त प्रह्लादको, महाकठिन दुख दीन्ह ॥

नारदजी बोले कि एक समय दैत्योंने भगवान् शुक्राचार्यको अपना पुरोहित किया था उन शुक्राचार्यके शण्ड और आमर्क नामक दो बेटे थे, उनका स्थान भी हिरण्यकशिपुके निकट ही था ॥१॥ यह दोनों दैत्यराजके भेजे हुए प्रह्लाद जो नीतिशास्त्रमें अत्यंत कुशल थे, उनको और उसके अतिरिक्त और-और जो असुरोंके बालक थे, उनको दण्डनीति आदिके ग्रन्थ पढ़ाते थे ॥ २ ॥ प्रह्लादको जो गुरुजी पढ़ाते थे उसको सुनकर और समझकर गुरुके आगे वैसे ही पढ़ लेता था परंतु पीछे उसपर किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न करता था, क्योंकि-

दोहा-नीतिशास्त्रमें होत है, शत्रु मित्रको भेद।
समदरशी प्रह्लादको, सुनत होत अति खेद ॥

यह अपने, पराये असत् आश्रय, झूठे जगत्से क्या प्रयोजन रखता था? इसलिये

गुरुकी बात इसको अच्छी नहीं लगती थी ॥ ३ ॥ हे पाण्डव ! एक दिन हिरण्यकशिपुने अत्यन्त लालन-पालन कर अपने सुत प्रह्लादको अपने निकट बुलाकर गोदीमें बैठाकर पूछा हे पुत्र ! जो वस्तु तुझको अच्छी लगती हो वह मुझसे-कह, मैं अभी तुझको मँगा दूँ ॥४॥ यह सुन प्रह्लाद बोला कि हे असुरोत्तम पिता ! सदा उद्विग्न बुद्धिवाले शरीरधारियोंके आत्माका नाश करनेवाला नरकमें डालनेवाला अंधकूपरूप गृह है, उसको तज वनमें जाकर हरिभजन करना और उसीकी शरणमें रहना यही साधु और अतीव उत्तम है ॥५॥ श्रीनारदजी बोले कि दैत्यराज शत्रुके पक्षका आश्रय लेनेवाली अपने पुत्रकी वाणी सुनकर, सभामें हँसकर बोला कि बालककी बुद्धि शत्रुकी ओरको फिर गयी, क्योंकि बालकोंकी बुद्धि स्थिर नहीं होती, दूसरेके पास बैठनेसे वैसी ही हो जाती है ॥ ६ ॥ इसलिये गुरुसे कहो कि इस बालकको अपने घरमें बैठाकर अच्छी रीतिसे पढ़ावे जिससे इसकी बुद्धि विष्णुके पक्षवाले छिपे हुए भागवत कहीं पाठशालामें जाकर न फेर लें, मुझको विष्णुका यह बड़ा भारी खटका है कि वह मेरे घरमें कहीं बिखण्डा न डाल दे ॥ ७ ॥ शुक्राचार्यके दोनों लड़के हिरण्यकशिपुके घर आये और प्रह्लादको अपने पास बैठा मधुर वाणीसे प्रशंसा और श्लाघा कर साम वाक्योंसे पूछा ॥ ८ ॥ हे वत्स प्रह्लाद ! हे असुरेशकुमार ! तेरा कल्याण हो, तू सत्य कह, झूठ मत कहना, सब बालकोंसे तेरी बुद्धि श्रेष्ठ है, पर इन सब बालकोंकी बुद्धिमें अन्तर न पड़ा फिर तेरी बुद्धिमें यह विपरीत भाव क्यों पड़ा ? ॥९॥ हे दैत्यकुलनन्दन ! तुझे किसी औरने सिखाया कि तेरी बुद्धि आपसे आप फिर गयी ? इस बातके सुननेकी हमको अभिलाषा है, वह शीघ्र कहो ॥ १० ॥ प्रह्लाद बोले कि जिस परमात्माकी मायाने अपना पराया यह भेद मनुष्योंके मनमें डाल रखा है, और असत् वस्तुका मोह उत्पन्न किया है, परंतु वह मोह उन्हींके मनको मोहित करता है, जिसकी मतिको उसकी मायाने मोह लिया है, उस परमात्माको वारंवार नमस्कार है ॥ ११ ॥ यह परमेश्वर जब पुरुषोंके अनुकूल होता है, तब पशुवत् बुद्धिवालोंका भी बुद्धिभेद निवृत्त हो जाता है, यह और है, हम और हैं, यह द्विविधा सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है, इस बातपर एक श्लोक स्मरण हुआ । श्लोक—"अन्धकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका ॥ त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्धाः सम्मुखे च विधातरि ॥ १ ॥" ❋ ॥ १२ ॥ यह आत्मा अपना पराया जो

* अर्थ—जब विधाता सम्मुख होता है, तब अन्याय करनेसे भी कार्य सिद्ध हो जाता है । जैसे अन्धे, कुबड़े और तीन स्तनकी राजकन्याका कार्य सिद्ध हुआ। एक अन्धा क्षत्रिय कुबड़ा ब्राह्मण, दोनोंने मालीकी विनती कर राजाके बागमें ठहरनेके लिये थोडासा ठौर माँग लिया, जब भूख लगी तब दोनों परस्पर कहने लगे कि भोजनका बड़ा प्रबन्ध है। अन्धा बोला कि तू कन्धेपर चढ़कर फल तोड़ हम तुम दोनों खा लेंगे। जब यह मत दोनोंने कर लिया तो अन्धा नित्य कुबड़ेको अपने कन्धेपर चढ़ाकर फलोंसे दोनोंजने अपना उदर पूर्ण कर लिया करें। एक दिन राजा बागमें आया तो उसने वृक्षोंपर फल कम देखे। मालीसे पूछा वृक्षोंपर फल थोड़े क्यों हैं ? मालीने हाथ जोड़कर निवेदन किया, महाराज ! यहाँ तो कोई आता ही नहीं फिर फल कौन तोड़ता ? हाँ एक अन्धा और एक कुबड़ा तो यहाँ अवश्य रहते हैं, वे किसी प्रकार फल तोड़ नहीं सकते, यह सुन राजा बोला कि निस्संदेह वे ही चोर हैं। मालीसे कहा कि छिपकर देखो, मालीने छिपकर देखा तो निश्चय उन्होंनेही अपनी विद्या और चतुराईसे फल खाये और छिलके गड़ा खोदकर दबा दिये, माली दोनोंको पकड़कर राजाके पास लाया, राजाने कहा इन दोनोंको तो विधाताने पहलेसे दण्ड दे रक्खा है हम इनको क्या दंड दे ? राजाने उनसे पूछा कि तुम कौन जाति हो ? वे बोले हममें अन्धा तो क्षत्रिय और मैं ब्राह्मण हूँ, राजाने ब्राह्मण समझकर कुबड़ेका तो अपराध क्षमा कर दिया और अन्धेको क्षत्रिय जानकर और दुखी देखकर तीन स्तनवाली अपनी कन्या विवाह दी और अलग उनके रहनेके लिये बागमें एक स्थान दे दिया । अन्धा नित्यप्रति आनन्दसे आहार-विहार करने लगा। कुबड़ा अन्धेको देख-देख मनमें जलने लगा। एक दिन कुबड़ेने मरा हुआ साँप कहींसे लाकर उसको हाँड़ीमें बन्द करके पकाया अन्धा बोला भाई ! आज कुछ साग भी बनाया है ? कुबड़ेने कहा हाँडीमें रखा है, ले ले। अन्धेने ज्यों हाँड़ी उघाड़ी त्यों ही साँपकी—

समझे है यही मूर्खपन है, इसके दूर करनेका कोई उपाय करो, देखो परमेश्वरकी गति कैसी अपरंपार है, जिसके वादमें वेदवादी ब्रह्मादिक भी मोहको प्राप्त होते हैं। हाय! ऐसे परमेश्वरके भजनको त्यागकर अज्ञानी लोग दूसरेको अपना समझते हैं उसी भगवान्‌ने मेरी मतिको फेर दिया है और मेरे हृदयमें वास कर वही मुझको सिखा रहा है ॥१३॥ हे ब्रह्मन्! जैसे चुम्बुक पत्थरकी आकर्षणशक्ति लोहेको अपनी ही ओर खींचती है, ऐसे ही मेरे मनको भगवान् चक्रपाणि अपनी ओरको खींचते हैं, परंतु इस बातको मैं कुछ नहीं जानता कि भगवान्‌का ऐसा अनुग्रह मुझपर क्यों हुआ?॥१४॥ नारदजी बोले कि, गुरुसे यह बात कहकर महात्मा प्रह्लाद चुप हो गया, तब वह कुपित हुआ ब्राह्मण राजा का सेवक महादीन हो प्रह्लादको धमकाकर कहने लगा ॥१५॥ अरे लड़को! बेंत तो लाओ यह सीधे स्वभाव नहीं मानेगा, क्योंकि हमारे यशका नाशक, अपनी अपकीर्ति करानेवाला, राजवंशमें अंगारेकी नाई उत्पन्न हुआ है। इस दुर्बुद्धिको उपायोंमें चौथे उपायका दमनरूप दंड देना चाहिये ॥ १६ ॥ हमारे दैत्यवंश चन्दन वनमें यह महाकण्टक करील वृक्षके समान कहांसे प्रकट हो गया? हमको ऐसा जान पड़ता है कि दैत्यवंशके वनका विध्वंस करनेवाले विष्णुरूप कुठारका यह दंड हुआ, जबतक यह हमारे घरका भेदी विष्णुसे न मिलेगा, तबतक कोई हमारा बाल बांका नहीं कर सकता * ॥१७॥ इस प्रकार उन ब्राह्मणोंने अनेक-अनेक भांतिसे प्रह्लादको डराकर धर्म, अर्थ, कामके उपाय-सम्बन्धी विद्या सिखाने लगे ॥ १८ ॥ कुछ दिन उपरान्त गुरुने अपने मनमें जाना कि यह साम, दाम, दंड, भेद चारों बातें अच्छी सीख गया, तब प्रह्लादको उसकी माताके द्वारा स्नान कराकर, सब शृंगार सजाकर दैत्यराजके समीप ले गया ॥१९॥ जाते ही प्रह्लाद हिरण्यकशिपुके चरणोंमें गिर गया, दैत्येन्द्र आशीर्वाद दे, आदर-सम्मान कर, शिरपर हाथ फेर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर! उसको गोदमें बैठाकर, शिर सूंघ, प्रेमके वशीभूत हो नेत्रोंके जलकी धारासे स्नान कराया, उस दैत्यराजने अत्यन्त प्रसन्न हो कोमल-कमलसे मुखवाले प्रह्लादसे कहा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु बोला हे प्रह्लाद! हे पुत्र! हे

–बापसे अन्धेके नेत्र खुल गये, देखा तो उस स्त्रीके संग कुबड़ा प्रसंग कर रहा है। अन्धेने क्रुद्ध होकर कुबड़ेके एक लात मारी, लातके लगते ही कुबड़ेका कूबड़ अच्छा हो गया। उस अबलाको सबला समझ एक लात उसकी भी छाती में मारी। उसी समय उसका तीसरा स्तन अस्त हो गया। प्रह्लादने कहा—देखो भाइयो बालको! हरिका [illegible] और सुखके दिन ऐसे होते हैं, तुम भी हरिका भजन करो, जिससे तुम्हारे भी सब काम सिद्ध हों, देखो यह अन्धा राजा हुआ और वह स्त्री रानी हुई कुबड़ा मन्त्री हुआ तीनों आनन्द करने लगे।

१. शंका—जिन शुक्राचार्यके भयसे इन्द्रादिक देवता रात-दिन थर-थर कांपते थे, वही शुक्राचार्य कृपादृष्टिसे राक्षसोंको देखते हैं तब आनन्द करते हैं। जब राक्षसोंके ऊपर शुक्राचार्य कृपा नहीं करते तब उसी समय राक्षस महादुःखी हो जाते हैं, इसका क्या कारण? ऐसे प्रतापी जो शुक्राचार्य उनके पुत्रको नारदजीने राजाका सेवक क्यों कहा? और यदि कोई विद्वान् ऐसा अर्थ करते हैं कि शुक्राचार्य के पुत्रका सेवक राजा है इसलिये राजसेवक कहा, तो फिर शुक्राचार्यका पुत्र दुःखी क्यों हुआ?

उत्तर—धर्मशास्त्र का यह मत है कि जिस मनुष्यका जो पुरोहित होता है वह उसका सेवक कहलाता है; पुरोहितमें और सेवकमें कुछ भी भेद नहीं है, इसलिये शुक्राचार्यके पुत्रको नारदजीने राजाका सेवक कहा: इसमें कोई संशयकी बात नहीं।

* इस बात पर दृष्टांत है—पचीस गाड़ी कुल्हाड़ियोंसे भरी हुई एक वनमें होकर निकलीं, पेड़ उनको देखते ही दूरसे चिल्लाकर बोले कि आज हम सबकी मृत्यु आ गयी, क्योंकि एक कुल्हाड़ीसे सैकड़ों वृक्ष कट सकते हैं और यह तो सहस्रों कुल्हाड़ी हैं फिर हमारा क्या बचना है? उनमें से एक वृक्ष बोला कि इनमें कोई हमारे घरका भेदी तो नहीं है? वृक्षोंने कहा कोई नहीं, केवल गाड़ी ही गाड़ी है; अशोकने कहा तो फिर क्या सन्देह है? अरे जबतक इनमें हमारी जातिका बेंट न पड़ेगा तबतक यह दीन कुल्हाड़ी हमारा कुछ नहीं कर सकती। अब तुम संशय को त्याग आनन्द करो।

दीर्घायु ! इतने दिनोंमें जो कुछ तुमने अपने गुरुसे भलीभांति पढ़ा हो और जो अच्छा स्मरण हो, वह अपने मुखसे मुझे सुनाओ ॥ २२ ॥ प्रह्लादजी बोले; किः–

श्लोकः–श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

नारायणकी कथा सुने, विष्णुका नाम ले, भगवान्‌का स्मरण करे; जनार्दनकी परिचर्या पूजन करे, चक्रपाणिका अर्चन करे, परमेश्वरकी वन्दना करे, वृन्दावनविहारीका दास बने, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दसे सुहृद्भाव माने, अपनेको श्रीविश्वनाथ विश्वंभरकी भेंट करे यह नौ प्रकारकी भक्ति है, इनमेंसे प्रत्येक भक्तिके उपासक नौ भक्तोंके साथ पुनः नौ प्रकारकी भक्तिको इसके अगाड़ीके श्लोकमें कहते हैंः–

–"श्रीविष्णो श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने, प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने । अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः, सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्कृष्णाप्तिरेषा परा॥२३॥ परीक्षित् शुकदेव, प्रह्लाद, लक्ष्मी, पृथु, अक्रूर, सुग्रीव, अर्जुन, बलि, ये नौ भक्त क्रमशः श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन पूजन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनरूप भक्तिको प्रधानतासे करते हैं) यह नौ प्रकारकी भक्ति भगवत्‌में करनी । यही उत्तम पढ़नेका सार है परन्तु इतने दिनोंमें जो भी कुछ मुझको गुरुजीने पढ़ाया उसमें ऐसा उत्तम कोई भी विषय पढ़नेमें नहीं आया ॥२४॥ नारदजी बोले कि, इस प्रकार पुत्रके मुखसे जब यह वचन सुना तो हिरण्यकशिपुको अत्यन्त क्रोध बढ़ा, जिससे होंठ फड़कने लगे, उसी समय गुरुपुत्रको बुलाकर कहा ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणाधम ! हे दुर्मते ! तूने यह क्या किया ? मेरे शत्रुके पक्षकी असार बात सिखा-सिखाकर लड़केको बिगाड़ दिया और मेरा इस प्रकार अनादर किया ॥ २६ ॥ आजकल संसारमें शठ साधुओंका वेष बनाये अपना रूप छिपाये बहुत फिरते हैं, परन्तुः–

दोहा–अवशि खुलत कपटिन कपट, कछुक कालको पाय ।
जिमि पापिनको पाप हठि, रोग व्याज दरशाय ॥

कहीं ऐसा भी लिखा हैः–

श्लोकः–ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यामदन्तकः ।
स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥

ब्रह्महत्यावालोंको क्षयरोग होता है सुरापान करनेवालोंके दांत काले पड़ जाते हैं, सोना चुरानेवालोंके नाखून बिगड़ जाते हैं; और गुरुतल्पगामीका चमड़ा बिगड़ जाता है ॥२७॥ गुरुपुत्र बोले कि, हे इन्द्रशत्रो ! इस तुम्हारे पुत्रको न तो मैंने पढ़ाया और न किसी औरने सिखाया है, क्योंकि आपके डरके मारे कोई इसके पास भी नहीं जाने पाता, यह अपने ही मनसे ये बातें करता है, इसकी स्वाभाविकीबुद्धि ही ऐसी है; हे राजन् ! हमारे ऊपर तो आप वृथा क्रोध करते हो, हमको दोषी मत बनाओ; इसमें आपका आगमविद्यमान हुआ है ॥२८॥ नारदजी बोले कि जब इतनी बातें गुरुने कहीं, तब दैत्येन्द्रने फिर प्रह्लादसे कहा कि हे अभद्र ! जो यह बातें तूने गुरुसे नहीं सीखी तो फिर यह विपरीत बातें और खोटी बुद्धि तुझमें कहांसे आई ? ॥ २९ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और पापकी रीतिको नहीं छोड़ा, वे अन्धे नरकमें जानेवाले कुटुम्बकी ममतामें बारंबार चाबे हुए चर्वणको चाबनेवाले अर्थात् भोगे हुएको भोगनेवाले हैं, ऐसे गृहस्थ पुरुषोंकी बुद्धि न अपने

आपसे, न दूसरेके सिखानेसे और न शत्रु मित्रके कहनेसे विष्णु भगवान्‌की ओरको प्राप्त होती है ॥३०॥ महाअभिमानी, दुष्टहृदयवाले, विषयवासनामें लवलीन, न परमार्थको माने न विष्णुको जाने, न अपने स्वार्थको पहिचाने, परमात्माकी वेदलक्षणा वाणी सकाम कर्म करानेवाली रस्सीमें बँधे हुए ऐसे ही पुरुषोंसे गुरुदीक्षा लेनेवाले मनुष्य परमेश्वरको नहीं मानते, वह नरकमें जाते हैं, जैसे अन्धा अन्धेको लेकर कुएमें गिर पड़ता है ॥ ३१ ॥ जो शठ, दुर्मति विषयवासनाके मदमाते जब तक महात्मापुरुषोंके चरणारविन्दकी रजको अपने शीशपर धारण नहीं करते,तबतक उनका अनर्थ किसी प्रकार दूर नहीं हो सकता, और न कोई मनोरथ सिद्ध हो सकता है, न श्री गोविन्द भगवान्‌के पदारविंदमें मन ही लग सकता है ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन्! इतनी बात कह प्रह्लाद जब चुप हो गया, तब हिरण्यकशिपुने उसे अत्यन्त कुपित हो गोदसे लेकर पृथ्वीमें पटक दिया ॥३३॥ फिर क्रोधसे रोषाविष्ट हो विकराल नेत्रकर महागंभीर वाणीसे बोला कि हे दैत्यो मेरे आगेसे इस दुष्टको ले जावो और अभी मार डालो, क्योंकि यह अधम वध करनेके ही योग्य है ॥३४॥ यही विष्णु मेरे भ्राता हिरण्याक्षका वध करनेवाला है, देखो! अपने सुहृत्सम्बन्धियोंको त्याग चाचाके मारनेवाले विष्णुके चरणोंको यह दासकी नाई पूजता है ॥३५॥ देखो! पुत्रको इस संसारमें अपने माता-पिताकी प्रीतिका त्यागना महाकठिन है वह इस दुष्टने पांच ही वर्षकी अवस्थामें माता-पिताकी प्रीतिको क्षणमात्रमें त्याग दी और कुछ आगा-पीछा न सोचा, फिर यह निर्मोही विष्णुके साथ क्या भलाई करेगा? ॥३६॥ अपना हो या पराया उसीको अपना पुत्र समझना चाहिये जो अपना हितकारी हो और अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुआ तो क्या? जो अपना भला न चाहे, उसको रोगकी नाई दुःखदायी समझना चाहिये इन दोनोंका काटना ही अच्छा है, ज्यों-ज्यों ये बढ़ते हैं त्यों-त्यों अधिक दुःख देते हैं, पुत्र जो शत्रु हो जाय तो उसका कहना ही क्या? पुत्र दूसरा देह है परन्तु शरीरके अंग भी हाथ-पाँव आदिक कष्ट-दायक हो तो निःसंदेह उन्हें उसी समय काट डाले,क्योंकि उनके काटनेसे और जो देह है उसको तो सुख होगा, ऐसे ही एक पुत्रके मारनेसे और परिवारको तो सुख होगा ॥३७॥ यह विश्वा-सघाती अपना होकर शत्रुका कार्य करता है इसलिये इसका मारना ही अच्छा है खाते, पीते, सोते,जागते, उठते,बैठते अथवा विष देनेसे जिस उपायसे बने उस उपायसे इसको मारो, जैसे मुनि दुष्ट इन्द्रियको मारते हैं ॥३८॥ हिरण्यकशिपुकी ऐसी कठोर वाणी सुनकर बहुतसे दैत्य त्रिशूल हाथमें लिये पैने दांतवाले, विकरालमुख, ताम्रवर्णकी दाढ़ी मूँछवाले ॥ ३९ ॥ भैरवकी नाई भयंकर नाद करने लगे-मारो-मारो, काटो-काटो, पकड़ो-पकड़ो न जाने दो न जाने दो, ऐसे कह प्रह्लादके मर्मस्थलोंमें त्रिशूल मारने लगे ॥४०॥ जो परब्रह्म परमात्मा किसीके देखनेमें नहीं आता वह वासुदेव भगवान् सर्व अगोचर सर्वान्तर्यामी जिसके हृद-यमें रात-दिन वास करे, ऐसे प्रह्लादपर सब दैत्योंके प्रहार वारंवार निष्फल होते थे।

दोहा–जैसे उद्यम करें बहु, पुरुष भाग्यके हीन।
मिलत न धन तिनको तनक, रहत दीनके दीन॥

इस प्रकार सब असुर मन मार-मार कर रह जाते ॥४१॥ हे युधिष्ठिर! राक्षसोंके सब परि-श्रम जब व्यर्थ हो गये, तब दैत्येन्द्र अपने मनमें बड़ा शंकित हुआ और प्रह्लादके मारनेके लिये अनेक-अनेक प्रकारके प्रयत्न करने लगा ॥ ४२ ॥ मतवाले हाथियोंसे खुदवानेके लिये उनके आगे डाल दिया कि यही इसको पाओंसे खूंदकर मार डालेंगे, परन्तु जो श्रीकृष्ण

मुरारी भक्तहितकारी का प्यारा है उनको कौन ऐसा बली है जो मार सकता है ॥४३॥ हाथियोंको वह रूप महाभयानक प्रज्वलित अग्निका समूहसा दिखाई दिया, तो जलनेके भयसे चिंघाड़कर पीछेको भागे,इस बातको सुनकर ज्ञानी पुरुषोंको तो कुछ आश्चर्यही नहीं होता परंतु मूर्खोंको तो बड़ा ही सन्देह हुआ होगा ॥४४॥ कुञ्जरोंकी यह दशा देख हिरण्यकशिपु अपने मनमें अत्यन्त व्याकुल हुआ और सोच-विचार करने लगा कि अब मैं क्या उपाय करूं जिससे यह दुष्ट मारा जाय इसी सोचसागरमें पड़े-पड़े यह सोचा ॥ ४५ ॥ पश्चात् उस दुष्टबुद्धिने बड़े-बड़े विषधर सर्पोंको बुलाया जो उसके भयके मारे थरथर कांपते थे और विना उसकी आज्ञाके किसीको भी नहीं काटते थे। उनको आज्ञा दी कि इसने श्रीनारायणको बहुत प्रसन्न किया है इसलिये यह अधम अस्त्रशस्त्रसे नहीं मरनेका, अशस्त्रसे वध करने योग्य है॥४६॥इसलिये इसको तुम विषरूप शस्त्रोंसे अभी मारकर भस्म कर डालो, हिरण्यकशिपुकी आज्ञाको नागलोगोंने शिरपर धारण किया क्योंकि वे लोग उसके आज्ञाकारी थे ॥४७॥ वे महाभयंकर जलते हुए दन्त और कराल फणों मणियोंसे चमकते हुए दशसहस्र महाविषवाले सर्प, जिनसे कोई भी मरवानेके योग्य नहीं थे, परन्तु वे सर्प ईश्वरकी महिमासे युक्त प्रह्लादके मारनेके लिये नियुक्त हुए और मारे रोषके श्रीनारायणके प्यारेके ऊपर जा कूदे ॥४८॥ यद्यपि उनके विष ही आयुध थे, परंतु भगवान् वासुदेवके बलका ऐसा प्रताप था कि नागोंने अत्यन्त परिश्रम किया और उसके मर्मस्थानोंमें काटा परंतु प्रह्लादके अंगकी किंचिन्मात्र भी खाल न काट सके किन्तु हरिके पालन-पोषण किये हुए शरीर काटकर वे दीन दन्तविहीन हो गये ॥४९॥ और मुखसे रुधिर बहनेके कारण उदासीनमूर्ति और फटे-टूटे मस्तकों वाले,विना दातोंके सब भुजंग अंग-भंग ऊर्ध्वश्वास लेते, फण नीचेको किये पीड़ाके मारे थरथर कांपते हुए दैत्यराजके सम्मुख जाकर सविनय यह निवेदन करने लगे ॥५०॥ हे प्रभो। हमने पर्वतोंको भी काटा तो उसी समय जलकर उसकी राख हो गयी और कभी हमारा काटा आजतक कोई नहीं बचा परन्तु प्रह्लाद को न जाने कि आज क्या हो गया कि जिस कामके लिये आपने हमको नियुक्त किया था, उस कामके करनेमें आज हम असमर्थही नहीं हुए बरन् महानुभाव तुम्हारे इस पुत्रके मारनेके लिये नियुक्त होनेसे विना दातोंके भी हो गये और आगेको किसी कामके न रहे॥५१॥इस प्रकार सब सर्प अत्यन्त कठिनताका वृत्तान्त कह मनमें हार मानकर चले गये। तब प्रह्लादकी ऐसी समर्थताका कारण विचार हिरण्यकशिपु अपने मनमें अत्यन्त चकित हुआ कि अब क्या उपाय करूं ? ॥५२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! तब हिरण्यकशपुने मंत्रियोंको बुलाकर परामर्श किया कि अब इसके लिये क्या यत्न करना चाहिये ? मंत्री बोले कि हे असुरेन्द्र! यह प्रह्लाद दण्ड देनेसे साध्य नहीं है, इसलिये अवध्य दण्डसे साधन करना चाहिये क्योंकि जो समुझाने बुझानेसे ही मान जाय तो भारी उपाय करने की क्या आवश्यकता है ? ॥५३॥ मंत्रियोंका यह मन्त्र सुन, हिरण्यकशिपुने,वन्दना करते हुए निर्मल चित्तवाले प्रह्लादको अपने पास बुलाकर गोदीमें बैठाकर अत्यन्त प्यारसे कहा कि ॥५४॥ हे प्रह्लाद! अपने अंगसे उत्पन्न हुआ है अर्थात् पुत्र,वह जो दुष्ट भी हो तो भी मारनेकेयोग्य नहीं हैं क्यों कि अपने अंगसे जो उत्पन्न हो वह भी अपना अंग है, इसलिये हे पुत्र तुमको देखकर मेरे हृदयमें दया आती है और इसी कारणसे तुझको नहीं मार सकता, केवल भय ही दिखाता रहता हूं ॥५५॥ हे पुत्र! मेरा हित वचन सुनो जो राम, गोविंद,कृष्ण, विष्णु, माधव, श्रीपते ऐसा कहते हैं, वे हमारे शत्रु हैं॥५६॥हे पुत्र ! यह बात हमने सबको सिखा दी है कि कोई भी ऐसा परुष वचन मत कहना

फिर तुमने यह वचन कहांसे सीखे और किसने सिखाये ।॥५७॥ पिताके वचन सुनकर धीमान् प्रह्लाद अभय होकर बोला कि हे पिता ! हे दैत्यकुलभूषण ! कभी ऐसा मत कहना, क्योंकि सब ऐश्वर्योंका भवन और धर्मादिकोंका बतानेवाला, सर्वानन्दका देनेवाला ऐसा जो कृष्ण-नाम उसको जो पुरुष कहता है, वह अभयपदको प्राप्त होता है ॥५८॥ और कृष्णकी निंदा करनेका महापाप है,इस पापका किसी प्रकार क्षय नहीं हो सकता इस लिये तुमको उचित है कि अपने शुद्ध होनेके लिये पूर्ण भक्तिसे राम,गोविन्द,कृष्ण,विष्णु,माधव, मुकुन्द ऐसा स्मरण करो क्योंकि तुमने कृष्णकी बहुत निन्दाकी है ॥५९॥ असुर यह बात सुन फिर एकाएकी तमक उठा और बोला कि अरे नीच ! तूने फिर हमारे वैरीका नाम लिया ? और मेरे वचनोंपर कुछ ध्यान न दिया ? मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तेरी मृत्यु निकट आ पहुँची है॥६०॥इस बातको सुनकर बड़ी शीघ्रतासे राजाके पुरोहित जो शब्दशास्त्रोंमें निपुण ब्राह्मण लोग थे, वे सब हाथ जोड़कर बोले कि हे दैत्यराज ! हे दीनदयालो ! अब इस दीन पुत्रपर रोष न कीजिये आप दयाही करने योग्य हैं, क्योंकि देवने आपको दयानिधान बनाया है ॥६१॥ जिस समय आप प्रह्लादके मारनेकी इच्छा करते हो तो तीनों लोक कांप उठते हैं,फिर इसके ऊपर कोप करनेसे क्या लाभ है? पुत्र चाहे कुपुत्र हो जाय परन्तु माता कुमाता और पिता कुपिता नहीं हो सकते ॥६२॥ हे राजन् ! पुरोहितोंका ऐसा वचन सुनकर वह चुप हो गया परंतु मनसे विद्रोह न छोड़ा जब कुछ वश न चला तो और एक कार्य विचारा, जो करने योग्य नहीं था ॥६३॥ एक दिन सब दैत्योंको एकान्तमें बुलाकर आज्ञा दी कि आज रात्रिके समय सोते हुए दुष्ट प्रह्लादको बड़े कठिन नागपाशोंसे बांधकर समुद्रके बीचमें डुबा आओ,उस दैत्येन्द्रकी आज्ञा शिरपर सब दैत्य धारण कर प्रह्लादके समीप गये और उसे बैठा देखा ॥६४॥ उनको तो रात्रि परम प्रिय थी ही, वे उस समय एकाग्रचित्त किये श्रीभगवान्का ध्यान कर रहे थे, परंतु सोते हुएके समान जान पड़ते थे, जिन्होंने नारायणकी भक्ति करके राग, द्वेष, लोभ, मोहके कठिन बंधनोंको काट डाला था उनको॥६५॥उन दुष्ट राक्षसोंने जाकर छोटे-छोटे सर्परूप रस्सोंसे बांधा, परंतु वे ऐसे मूर्ख और मन्दबुद्धि थे कि गरुड़ध्वज गरुड़वाहन भगवान्के भक्त प्रह्लादजीको सर्पोंके बंधनोंसे बांधा ॥६६॥ बादमें जलशायी श्रीनारायण करुणासागरके प्यारेको ले जाकर सागरमें डुबाया, क्योंकि बलवान् तो वह दुष्ट थे ही, इसलिये बहुतसे पर्वत लाकर उनके ऊपरसे दबा दिया ॥६७॥ बादमें उसी समय आकर यह संदेश हिरण्यकशिपुको सुनाया; उसने सुनकर उन लोगोंका बड़ा आदर-सत्कार किया और यहां समुद्रमें वडवानलके समान॥६८॥ श्रीविष्णुभगवान्के तेजके प्रतापसे अग्निसमान प्रज्वलित प्रह्लादको जान, भयके मारे मच्छ, कच्छ, घड़ियाल आदि जन्तुओंने उसको किसी प्रकारका दुःख नहीं दिया वह प्रह्लाद पूर्ण चिदानन्द समुद्रके मध्यमें एकाग्रचित्त होकर बैठे आनंदसे परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे ॥६९॥ उन्होंने यह नहीं जाना कि मैं बँधा हुआ हूँ और समुद्रके बीचमें पड़ा हूँ, वहां ब्रह्मरूप सुधासागरमें प्राप्त हुए श्रीप्रह्लादजीको अपने आपमें स्थित जान ॥७०॥ जैसे दूसरे समुद्रके मिलनेसे एक समुद्र बढ़ता है इसी प्रकार क्षीर सागर भी बढ़ा और बड़े-बड़े क्लेशोंसे ऊपरको उछलती हुई लहरें ॥७१॥ प्रह्लादजीको ऊपरको लायीं और किनारे पर पहुँचा दिया, जैसे गुरुके श्रेष्ठ वचन शिष्यको ले जाकर भवसागरके किनारेपर कर देते हैं,वैसे ही समुद्रकी लहरोंने प्रह्लादको समुद्रके किनारे पर निकालकर डाल दिया॥७२॥ ध्यान करनेसे विष्णुभक्त

प्रह्लादको तटपर स्थापित करके अनेक-अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर रत्न लेकर समुद्र उनके दर्शनको आया, तबतक श्रीभगवान्की आज्ञा पाकर प्रहृष्ट हो गरुड़जी ॥ ७३ ॥ सर्व सर्प-रूप बन्धनोंको काटकूट भक्षण करके चले गये, तब प्रह्लादकी ओर देख महागंभीर वाणीसे वारीश बोला ॥७४॥ प्रथम तो महादिव्य मनुष्यरूप धारण करके प्रह्लादजीको प्रणाम किया, तब समाधि लगाये हुए हरिके प्यारे प्रह्लादने न सुना, फिर समुद्रने गम्भीर वाणीसे कहा ॥७५॥ हे भगवद्भक्त पुण्यात्मा प्रह्लादजी! मैं समुद्र हूँ, अपने दोनों नेत्रोंसे देखकर अपने समीप आये हुए मुझ अर्थीको कृतार्थ करो। समुद्रकी मधुर वाणी सुनकर हरिके परमप्रिय महात्मा प्रह्लादने ॥७६॥ शीघ्रतासे नेत्र खोलकर ऊपरको देखा तो सम्मुख समुद्र खड़ा है; समुद्रको नमस्कार करके प्रह्लाद बोले कि हे महात्मन् नदीश ! आप कब आये ? यह सुन समुद्र बोला ॥७७॥ हे योगीन्द्रनाथ ! आप इस वृत्तान्तको नहीं जानते, दुष्ट असुरोंने आपका बड़ा अपराध किया है, हे वैष्णव ! तुमको सर्पोंसे बांधकर रातको मुझमें डाल गये थे ॥ ७८ ॥ फिर मैंने आपकी भक्तिका प्रकाश देख अपनी लहरोंसे आपको तीरपर बैठा दिया और भगवान् गरुड़वाहनके भेजे हुए गरुड़जीने आकर सर्पोंको खा लिया और नारायणके निकट चले गये ॥७९॥ हे महात्मा प्रह्लादजी ! सत्संगके अर्थी मुझपर अनुग्रह करो और इन रत्नोंको ग्रहण करो क्योंकि हमारे जैसे हरि भगवान् पूज्य हैं वैसे ही उनके दास आप भी हमारे पूज्य हैं ॥ ८० ॥ यद्यपि इन रत्नोंसे कुछ प्रयोजन आपको नहीं है तो भी मैं आपको भेंट करता हूँ, जैसे भक्तिमान् पुरुष सूर्यको दीपदान देकर निवेदन करते हैं, परंतु उससे सूर्यका कुछ प्रयोजन नहीं निकलता ॥ ८१ ॥ आप तो घोर आपत्तियोंमें विष्णु भगवान्से ही रक्षित होते हो और आपके तुल्य निर्मल महात्मा दूसरा नहीं है, जैसे सूर्य समस्त भूमंडलमें प्रकाश करनेवाला एक ही है दूसरा नहीं ॥ ८२ ॥ बहुत कहनेसे क्या है ? मैं आपके सम्मुख खड़ा हूँ, इसीसे कृतार्थ हूँ और एक क्षणमात्रकी भी आपके संगकी वार्ता करनी इस फलकी उपमा और किसीको नहीं दिया चाहता ॥ ८३ ॥ जब इस प्रकार मधुर वचनोंसे प्रह्लादजीकी स्तुति की, तो भगवत्प्रिय प्रह्लादजी लज्जित हुए ॥ ८४ ॥ प्रह्लादजी रत्नोंको ग्रहण करके समुद्रसे बोले कि हे महात्मन् ! तुम बड़े धन्यभागी हो, जो तुममें विष्णु भगवान् शेषशय्यापर नित्य शयन करते हैं ॥ ८५ ॥ और कल्पान्तमें भी एकार्णवीभूत तुममें सम्पूर्ण जगन्मय श्रीजगन्नाथ सोते हैं ॥ ८६ ॥ हे जलनिधि ! अब मैं अपने नेत्रोंसे श्रीविष्णुभगवान् जगन्नाथको देखना चाहता हूँ, तुम तो उनका दर्शन नित्य करते रहते हो, इससे तुम बड़े धन्यभागी हो मुझको भी दर्शनका उपाय बताओ ॥ ८७ ॥ समुद्र बोला कि हे योगींद्र ! तुम भी तो सदा अपने हृदयमें विष्णु भगवान्को देखते हो ॥ ८८ ॥ जो अब अपने नेत्रोंसे विष्णु भगवान्को प्रत्यक्ष देखना चाहते हो तो उन श्रीनारायणकी स्तुति करो, वे तो भक्तवत्सल हैं आप ही आपको अवश्य दर्शन देंगे, यह कह समुद्र अपने जलमें प्रवेश कर गया ॥८९॥ समुद्रके चले जानेपर रात्रिको एकाग्रचित्त हो अकेले बैठकर उनके दर्शनको असम्भव मानकर भक्तिसे प्रह्लादजी नारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ९० ॥ प्रह्लादजी बोले कि सैकड़ों वेदान्तके वाक्य पवनोंसे बढ़े हुए वैराग्य अग्निकी शिखासे परितप्यमान्, जिसके दर्शनके लिये योगी लोग संशोधन करते हैं, वे भगवान् कैसे मेरे नेत्रोंके सम्मुख होंगे ? ॥ ९१ ॥ मात्सर्य, रोष, काम, लोभ, मोह, मदादि अति दृढ बन छहोंसे और ऊपरके नाना प्रकारके दुराचारोंसे भली

प्रकार बँधा हुआ हमारा मन और कहां हम, बहुत बड़ा अन्तर है ॥९२॥ जिसको ब्रह्मादिक देवतागण नाना प्रकारके भय शांति करनेकी इच्छासे समुद्रके समीप जाकर उत्तम स्तोत्रोंका पाठकर किसी प्रकारसे दर्शन कर ही लेते हैं, अहो बड़े आश्चर्यकी बात है कि उन ही नारायणके देखनेकी मेरी अभिलाषा है ॥९३॥ यह कह प्रह्लाद अपने आपको परमेश्वरके दर्शनके अयोग्य समझ और उनके न मिलनेसे हार मान, उद्वेगके समुद्रमें डूब आंसुओंकी धारा आंखोंसे बहा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया ॥ ९४ ॥ हे नरेन्द्र ! उस समय एक क्षणमात्रमें चार भुजा धारण किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथोंमें लिये, शुभ आकृत बनाये भक्तजनोंके परमप्रिय श्रीविष्णु भगवान्‌ने वहीं प्रगट होकर दुःखमें पड़े हुए अपने भक्तको अमृतमय हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिये, उनके अंगके स्पर्शसे प्रह्लादकी मूर्छा जाती रही, नेत्र ऊपरको उठाकर देखा तो, प्रसन्नवदन, कमलनयन, आजानुबाहु, यमुना नदीके जलके समान श्यामवर्ण शरीर ॥ ९५ ॥ परम उदार, तेजोमय रूप प्रणाम करनेके योग्य गदा, शंख, चक्र, कमलोंसे चिह्नित प्रभुको अपने सम्मुख स्थित देख समालिंगन करके विस्मय, भय और हर्ष तीनोंसे कांपने लगे ॥ ९६ ॥ उसको स्वप्नही मान और यह भी ध्यान किया कि मैं स्वप्नमें कृतार्थ श्री भगवान्‌को देखता हूँ, इसी सोच-विचारमें महाहर्षके सागरमें मग्नचित्त हो अपने आनन्दकी मूर्छाको वह फिर प्राप्त हो गये ॥ ९७ ॥ तब वैसे ही बिना बिछौनेकी पृथ्वीपर बैठकर अपनी गोदमें प्रह्लादको बैठाकर दीनबन्धु अपने जनोंके रक्षक श्रीभगवान्‌ने अपने करपल्लवसे धीरे-धीरे पवन को और बारम्बार मुख चूमकर माताके समान हृदयसे लगा लिया, फिर बहुत देर पश्चात् प्रह्लादने भगवान्‌के सम्मुख मुख करके विस्मय युक्त चित्तसे श्रीभगवान्‌को देखा ॥९८॥ ९९ ॥ और जाना कि बहुत देरसे श्रीलक्ष्मीजीकी गोदमें शयन करने वाले श्रीमन्नारायण मुझको अपनी गोदमें लिये खुरीं भूमिपर बैठे हैं, उसी समय एकाएकी गोदसे कूदकर भय और भ्रमसंयुक्त हो ॥ १०० ॥ प्रणाम करनेके लिये पृथ्वीपर गिर पड़े और प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, वारम्वार कहने लगे। यद्यपि वेद, शास्त्र और पुराणोंको प्रह्लाद भली प्रकार जानते थे; परन्तु प्रेमके वशीभूत हो दूसरी पूजाकी उक्तिका कुछ स्मरण नहीं किया ॥ १०१ ॥ तब शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारण किये हुए भक्तहितकारी भवभयहारी श्रीभगवान्‌ने अपने अभय देने वाले हाथसे पकड़कर पृथ्वीपरसे उठाकर गोदमें बिठा लिया। दीनदयालु, दुःखभञ्जन, दयानिधान तो उनका नाम ही है, फिर क्यों ऐसा न करें ? ॥१०२॥ करकमलके स्पर्शके आह्लादसे आंखोंमें आंसू बहाते और कांपते हुए प्रह्लादको समझाते-बुझाते आह्लादित करते हुए श्री भगवान् बोले ॥ १०३ ॥ हे वत्स हमारे गौरवसे उत्पन्न हुए भय और संभ्रमको छोड़ो, भक्तोंमें तुम्हारे समान और दूसरा हमको प्रिय नहीं है, अब अपने अधीन हमको जान प्रार्थना करना ॥ १०४ ॥ नित्य सब कामोंसे पूर्ण विविध प्रकारके हमारे कीर्तन हमारे भक्तोंको सुनाते रहो, बताओ इससे अधिक और आपको क्या प्रिय है ? वह भी दें ॥१०५॥ यह सुन डबडबाये नेत्रोंसे भगवान्‌का मुखारबिन्द देख प्रह्लाद हाथ जोड़ नारायणसे बोले ॥ १०६ ॥ प्रभो ! यह वरदान देनेका समय नहीं है, बस मेरे ऊपर आपका प्रसन्न रहना ही परमदान है, क्योंकि आपके दर्शनामृतके स्वादको छोड़कर और किसी वरदानसे हमारा मन सन्तुष्ट नहीं होगा ॥ १०७ ॥ ब्रह्मादिक देवताओंको बड़े कष्टसे दिखाई देनेवाले आपको

इस प्रकार अपने सन्मुख विराजमान देखकर मेरा मन जैसा प्रसन्न हुआ है वैसा सहस्रों कल्पों तक और किसी समय तृप्त न होगा ॥१०८॥ सन्तापसे तप्त मेरा चित्त आपको देखकर अब और किसी वस्तुके याचनेकी आकांक्षा नहीं रखता, ऐसे प्रह्लादके प्रेमभरे वचन सुन, कुछ-कुछ मुसकाते हुए रूप अमृतसमूहोंसे अपने प्यारे प्रह्लादजीको प्रिय दृष्टिसे पूरित करते हुए॥१०९॥ और मोक्ष लक्ष्मीसे योजित करते हुए जगत्पति उनसे बोले कि हे वत्स ! हमारे दर्शन और कुछ तुमको प्रिय नहीं है, यह बात सत्य है ॥११०॥ परन्तु हमारा मन तुमको कुछ देनेको चाहता है, इससे हमको प्रसन्न करनेके लिये हमसे कुछ वरदान मांगो, तब धीमान् प्रह्लाद बोले कि हे देव ! जन्मजन्मांतरोंमें भी ॥१११॥ मैं आपका दास रहूँ, जैसे गरुड़जी आपके भक्त हैं। यह सुन श्रीभगवान्‌ने कहा कि तुमने हमको यह बड़ा भारी कष्ट दिया॥११२॥ क्योंकि हम चाहते थे कि हम अपने आपको दे डालें, परन्तु हम सेवकही रहना चाहते हैं, इसलिये हे दैत्यपुत्र ! तुम और वर मांगो ॥ ११३ ॥ प्रह्लाद फिर भक्तोंके कार्य पूर्ण करनेवाले भगवान्‌से बोले कि हे नाथ ! हे दीनवत्सल ! हे भक्तवरदायक! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ और आपकी स्थिर भक्ति सदा मेरे चित्तमें बनी रहे ॥ ११४ ॥ और इसी भक्तिसे सदा आपको नमस्कार करता रहूँ, और पूर्ण प्रीतिसे आपकी स्तुति करता रहूँ, इस बातको सुनकर प्रेमसे सन्तुष्ट हुए प्रिय बोलनेवाले श्रीभगवान् अपने प्रिय भक्तसे बोले कि ॥ ११५ ॥ हे वत्स ! जो-जो तुमको अभिलाषा हो, वे सब मनोकामनायें तेरे मनकी पूर्ण हों और सदा सुखी रहो और हमारे अन्तर्धान होने पर यहां तुम किसी प्रकारके खेदको मत प्राप्त होना॥११६॥ हे महामते ! तेरे मनसे हम कभी अलग न होंगे जैसे क्षीरसागरमें सदा हम बसते हैं, इसी प्रकार तेरे हृदयमें सदा वास करेंगे और तीन दिन पीछे फिर तुम दुष्ट हिरण्यकशिपुके वध करनेमें हमको उद्यत देखोगे ॥ ११७ ॥ परन्तु इस स्वरूपसे दर्शन नहीं देंगे, वरन् अपूर्व दैत्योंके भयभीत करनेवाले नृसिंहरूपसे दर्शन देंगे, यह कह प्रणाम करनेवाले और अत्यन्त लालसासे देखनेवाले ॥ ११८ ॥ असंतुष्ट प्रह्लादके सम्मुखसे विष्णु भगवान् अपनी माया करके अन्तर्धान हो गये, जब प्रह्लाद बहुत हठसे देखते ही रहे, परन्तु हरि नहीं दिखायी दिये, तो प्रह्लाद बोले कि भगवान् भक्तवत्सल हैं तो भी छोड़कर चल दिये ॥ ११९ ॥ ऐसा कह आंखोंसे आंसू बहाकर प्रह्लादने प्रणाम किया इतनेमें चारों ओरसे मनुष्योंके बोलनेका शब्द सुनायी आने लगा ॥ १२० ॥ रात्रि व्यतीत हुई, सूर्यनारायणका दर्शन हुआ। प्रह्लाद समुद्रके किनारेसे उठकर नगरकी ओरको चल दिया और गुरुके स्थानपर आकर निवास किया॥१२१॥ जब प्रह्लादको उन दैत्योंने गुरुके घर बैठा देखा जो उसको समुद्रमें डाल आये थे, तो उन्होंने अत्यन्त विस्मित होकर हिरण्यकशिपुसे यह वृत्तांत कहा ॥ १२२ ॥ यह सुन हिरण्यकशिपु बोला कि प्रह्लाद समुद्रमें भी न डूबा ! बड़े आश्चर्यकी बात है, अब मैं क्या करूं ? मैंने तो अपने बसाते सब उपायकर लिये परन्तु प्रह्लादको किसी प्रकारका भय नहीं हुआ ॥१२३॥ और अब हिरण्यकशिपु सब उपाय कर रहा है और ढुण्ढा ❋ नाम हिरण्यकशिपुकी भगिनी भी उसको न मार सकी, तब तो दैत्याधीशको अत्यन्त

❋ इसका एक इतिहास है, ढुंढा राक्षसीने अग्निका एक ऐसा मन्त्र सिद्ध कर रक्खा था कि चाहे जिसको अपनी गोदीमें लेकर अग्निमें बैठ जाय और लाखों मन ईंधन उसके ऊपर जला दो, परन्तु वह न जले। यह उपाय उसने प्रह्लादजी पर भी किया, परंतु उस हरिके प्यारेको कुछ भी नहीं हुआ और आप ढुंढा ही जलकर मर गयी, प्रह्लाद को किसी प्रकार की आँच भी न आयी। जब वह जलकर मर–

ही चिन्ताने घेर लिया और कोई भी उपाय न बन सका, उस समय प्रह्लादने अपने पितासे कहा कि, हे पिता !

भजन

हरिकी महिमा नेक निहारो ।
गिरिते गेर सिन्धुमें डारो, अग्निमाहिं मोहिं जारो ॥
सकल उपाय आप कर हारे, जो वश चलो तुम्हारो ।
अजहुँ छांड़ि भ्रम मोह दुराशा, हरिचरणन चित धारो ॥
हरिसम को दयालु जगमाहीं, चित दे तनक बिचारो ।
बिगरेहूँ सब काम बनत जब, हरि विश्वास सँभारो ॥
जौभर सूँड़ रही जल ऊपर, तब गजराज उबारो ।
एकबार सब मिल सप्रेमसे, श्रीहरिनाम उचारो ॥१॥१२४॥

हिरण्यकशिपु बोला—इस प्रह्लादके मारनेके लिये मैंने अपने प्रयत्न किये; अधर्म, निर्मोह, द्रोह, असद्धर्म-भांति-भांतिके प्रयोग, तो भी यह चाण्डाल अपने तेजके प्रभावसे बच जाता है ॥ १२५ ॥ देखो ! यह मायावी मेरे सम्मुख निःशंक बैठा है, अपने मनमें कुछ शंका नहीं मानता और अपनी हठको नहीं छोड़ता जैसे श्वानकी पूँछको कितनी ही सीधी करो परंतु वह कभी सीधी नहीं होती मैं जानता हूँ कि, थोड़े दिन उपरांत यह दुष्ट बालक मेरे कर्त्तव्यको नहीं भूलेगा ॥ १२६ ॥ क्योंकि इस प्रह्लादका अप्रमेय प्रभाव है, मैं जानता हूँ कि यह अमर है, इसी लिये किसीसे भय नहीं मानता, मुझको यह निश्चय होता है कि इसीके विद्रोहसे मेरी मृत्यु होगी, और किसी प्रकार मेरा देहपात न होगा ॥१२७॥ इस चिन्तासे किञ्चित् चित्तमें ग्लानि मान, शोभाहीन, मन मलिन; नीचेको मुख किये हिरण्यकशिपु शोकाकुल बैठा था, उसी समय शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और आमर्कने एकान्तमें आकर यह कहा॥१२८॥ हे नाथ ! आपने अकेले अपने महाप्रचंड तेजके प्रभावसे तीनों लोकका विजय किया और आपकी किंचिन्मात्र भ्रुकुटीके चढ़ानेसे सब लोकपाल थर-थर कांपने लगते हैं, फिर आप ऐसे पराक्रमी और त्रिलोकीनाथ होकर अनाथकी नाई क्यों चिंता करते हो ? बालकोंके गुण-दोषका कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनकी बातका कुछ विश्वास नहीं ॥१२९॥ अब इसको वरुणपाशसे बांधकर एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द कर रक्खो, जो कहीं भाग भी न सके, थोड़ी देरमें पिता शुक्राचार्य भी आनेवाले ही हैं, कभी उन्हींके समझाने-बुझानेसे कुछ समझ जाय; क्योंकि यह बात तो जगत्में विख्यात ही है कि, पुरुषोंकी बुद्धि युवा अवस्थासे और वृद्धजनोंकी सेवासे बढ़ती है ॥१३०॥ हिरण्यकशिपुने गुरुपुत्रोंका उपदेश मान, उनसे ही कहा कि तुम ही इसको अपने घर ले जाओ और जो गृहस्थी राजाओंके धर्म और भयानक कर्म हैं, वह सब सिखाओ॥१३१॥हे राजन्! शण्डामर्क सत्-साधु प्रह्लादको अपने घर ले जाकर संक्षेपसे धर्म, कर्म, अर्थ, काम और असुर कुलके धर्म भयानक कर्मोंका विषय पढ़ाना आरंभ किया

—गयी और प्रह्लादका बाल भी बांका न हुआ; तब उसको श्री नृसिंहजीने मरी देखकर यह वरदान दिया कि इसका सब संसार में पूजन होगा, क्योंकि इसने मेरे भक्तके हेतु अपना देह जलाया है, इसलिये इसका नाम आजसे होली होगा। हे युधिष्ठिर! उसी दिन से "होलिका" नाम जगत्में प्रसिद्ध हुआ।

॥१३२॥ जो-जो विषय गुरुने प्रह्लादको सिखाये उनमेंसे कोई विषय प्रह्लादके चित्तसे न जमा, क्योंकि संसारके दुःख सुखकी बातें विषयासक्त इत्यादि शिक्षासे भक्तजनोंका क्या प्रयोजन? ॥ १३३ ॥ जब गुरु गृहस्थाश्रमके कर्मोंमें लग जाते थे तब उस अवकाशमें प्रह्लाद अपने बराबरके बालकोंको अपने पास बुला लेते थे। महाबुद्धिमान् प्रह्लाद मधुर वाणीसे उन बालकोंपर कृपा करके हँसते और उनको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा करते थे ॥१३४॥ यह बालक प्रह्लादके गौरवसे सब खेल-कूदको त्याग देते थे, सुख-दुःखकी शिक्षावाली बातोंसे किसी बालककी बुद्धि दूषित नहीं होती थी ॥ १३५ ॥ हे राजन्! विद्वान् प्रह्लादजीमें सब बालक हृदय, दृष्टि लगाकर चारों ओरसे घेरकर बैठ जाते थे तब वे परम कृपालु सबका सुहृद, महाभागवत प्रह्लाद उन बालकोंको इस प्रकार उपदेश करते और यह भजन सबको सिखाते थे ॥ १३६ ॥

भजन

भजो भाई हरिहर हरिहर हरिहर।
आदि ब्रह्म अद्वैत निरंजन, भयभंजन धरणीधर ॥ १ ॥
जब भक्तनको असुर सतावत, प्रगट होत तेहि अवसर।
दुष्ट मार भूभार उतारत, विश्वनाथ विश्वंभर ॥ २ ॥
कबहुँ विहार करत भक्तन सँग, धर धर वेष मनोहर।
कबहुँ सँहार करत सब जगको, धर कर वेष भयंकर ॥ ३ ॥
ऐसे प्रभुको भजन करो तुम, मन लगाय निशि वासर।
शालिग्राम वेही बोलत हैं, आठ पहर घट भीतर ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे नवधाभक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा-छठयेमें प्रह्लाद नित, बालक सकल बुलाय।
देत ज्ञान उपदेश शुभ, कथा प्रसंग सुनाय ॥

प्रह्लाद बोला कि चतुर लोगोंको उचित है कि बालपनसे वैष्णवधर्मकी उपासना करें, क्योंकि प्राणीको मनुष्य जन्म मिलना महादुर्लभ है वह भी स्थिर नहीं, परंतु सब अर्थका देनेवाला यही जन्म है ❋ ॥१॥ पुरुषको इस जगत्में आकर श्रीभगवान् वासुदेवके चरणारविंदकी शरणागति रहना यही मुख्य है, कि क्योंकि वह परमात्मा सब जीवमात्रका व्यापक और आत्मा है, इसीसे सबका प्रिय और सुहृद है ॥२॥ हे दैत्यपुत्रो! संसारमें आकर पुरुपको विषयसुखके लिये कोई उपाय नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तो खग, मृग, मनुष्यको कर्मगतिसे आप ही मिल जाता है, फिर इसमें परिश्रम करके वृथा अपनी आयुको व्यतीत करनेसे क्या प्रयोजन? परंतु भगवान् वासुदेवकी भक्ति करनेसे जैसे आनन्द प्राप्त होता है ऐसा और किसी प्रकार नहीं

❋ शंका—दैत्योंके बालकोंसे प्रह्लादने भगवान्का भजन त्यागकर मनुष्यके जन्मकी प्रशंसा की। तब वे दैत्योंके बालक मनुष्य नहीं थे, वे तो राक्षसोंके पुत्र थे इसका क्या कारण?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि मनुष्य जन्म सबसे उत्तम है, उन मनुष्योंमें भगवान्का भक्त और भी उत्तम हैं, इसलिये दैत्योंके पुत्रोंको भय दिखलाने के लिये मनुष्य जन्मकी प्रशंसा की। प्रह्लादने विचार किया कि ये लोग मनुष्योंके कर्म सुनकर मनुष्योंकी नाईं भगवान्में प्रीति करेंगे।

हो सकता ॥ ३॥ इसलिये और कर्मोंमें क्यों अपनी आयुको व्यर्थ क्षय करे उसीमें परिश्रम न करे जिससे श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दमें प्रीति बढ़े सदा मंगल हो और आगेका खटका मिट जाय ॥४॥ जबतक देहमें अच्छा पुरुषार्थ बना रहे और कोई विपत्ति न आये, मनुष्यको उचित है कि पहले ही अपने मोक्षके लिये उपाय करे,क्योंकि युवा अवस्थामें ही कोई भक्तिका उपाय न किया तो फिर बुढ़ापेमें क्या हो सकता है ? ॥ ५ ॥ महाकठिनतासे विषयानुरागी पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी होती है, उसमें पचास वर्ष तो वृथा ही जाते हैं, कुछ रात्रिके सोनेमें, कुछ महामोहरूपी निद्रामें व्यतीत होते हैं ॥ ६ ॥ दश वर्ष तो बाल्यावस्थामें गये, दश युवावस्थामें गये, बीस बुढ़ापेकी हाय-हायमें, शरीरके रोगमें, असमर्थपनमें समाप्त हो गये ॥ ७ ॥ शेष दश रहे वह काम, क्रोध, मोह, लोभादिके आसक्त होनेमें और कुटुम्बकी तृष्णामें व्यतीत होते हैं॥८॥ऐसे कौन जितेन्द्रिय पुरुष हैं जो घरकी ममतामें फँसे हुए और कुटुम्बकी दृढ़ फासी में बँधे हुए संसारकी मायामें आसक्त हो अपने मनको अलग कर सकते हैं ? ॥९॥ जो धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है और जो तृष्णा किसीसे नहीं त्यागी जाती, जिस धनके लिये प्राणोंकी आशा छोड़कर चोर चोरी करता है, जिस धनके कारण सेवक अपना तन-मन बेंचकर सेवा करता है, जिस धनके निमित्त व्यापारी देश-विदेशमें विचरता फिरता है और शरीरका खोना अंगीकार करके पुरुष धनको प्राप्त करते हैं ऐसे धनके मोहको त्यागनेका किसका सामर्थ्य है ? ॥ १० ॥ फिर परमसुसीला नारी प्यारीके संग रहस्य और सुन्दर एकान्तका परामर्श, सुहृदोंका शोक, बालकोंकी मनोहर वाणीसे चित्त मोहित, ऐसे स्नेहमें फँसे हुए मनको क्योंकर निकाल सकते हैं ? ॥ ११ ॥ फिर पुत्र, पुत्री, भाई,बहनका स्मरण, अत्यन्त दीना माता पिताकी प्रीति, अति रमणीक मनोहर घर, उसके सुन्दर-सुन्दर पदार्थ, कुलपरम्परासे जो चली आये वह जीविका; अनेक प्रकारके पशु, सेवक मित्रोंकी प्रीति, लोभकी तृष्णा जो नित्यप्रति अधिक होती रहती है, भला उसे कौन पुरुष त्याग सकता है ? ॥ १२ ॥ फिर जो पुरुष शिश्नेन्द्रिय और जिह्वाके विषयोंको बहुमान्य करनेवाला अधिक मोहसे निरन्तर दिन-रात उसीको मनमें लगाये रहता है, जैसे रेशमका कीड़ा ऐसा घर बनाता है कि निकलने मात्रको भी मार्ग नहीं रखता, ऐसा कर्मकारी पुरुष संसारकी मायामें लवलीन होकर भला किसका सामर्थ्य है, जो ऐसे संसारका त्याग करे ? ॥ १३ ॥ देखो ! यह पुरुष परिवारके लालन-पालनमें कैसा मतवाला हो रहा है यह भी जानता है कि नित्य एक दिन घटता है, परन्तु इतने पर भी मदमें ऐसा उन्मत्त हो रहता है कि आगे-पीछेकी कुछ सुधि नहीं और यह नहीं जानता कि घड़ी-घड़ी मेरा पुरुषार्थ घटता जाता है। परिवारके स्नेह रखनेवालेको सदा तीन ताप दुख देते हैं परंतु यह दुःखको सुख समझता है॥ १४॥ इंद्रियोंके वशीभूत हो मनको सदा धनमें ही लगाये रहता है और पराया चित्त हरनेवालोंके दोषोंको भी भली भांति जानता है कि इस लोकमें और परलोकमें कैसी बुरी गति होती है, परंतु तो भी वह कुटुम्बी पुरुष धनकी तृष्णाको चित्तसे शांत नहीं करता और पराया द्रव्य हरनेकी इच्छा बनी ही रहती है॥ १५॥ हे दनुजपुत्रो! यह सब बातें जानते हैं तो भी परिवारका पालन-पोषण करते ही रहते हैं और वैकुण्ठके जानेकी भी इच्छा रखते हैं, परंतु अपने परायेके भेद-भावको धारण कर वैकुण्ठके बदले नरकमें जाते हैं ॥१६॥ स्त्रियोंके मोहमें ऐसे कामासक्त हो रहे हैं और कामदेव ही आठ प्रहर जिनकी दृष्टिमें वास करता है उन स्त्रियोंके विहारमें रात-दिन

मर्कटकी नाईं नाचा करते हैं, (लवलीन हो दीन बन) अपने तनकी रक्षा हो चाहे न हो परंतु उनके कार्यमें असमर्थ नहीं होते और पुत्र पौत्रादिकोंकी मोहरूपी ऐसी कड़ी बेड़ी हथकड़ी हाथ पावोंमें पड़ी है, कि इस बंधनसे मनुष्य किसी समय अपने आत्माको छुड़ानेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १७ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये इन विषयासक्त दैत्योंका संग छोड़ो और सब देवोंके देवश्रीआदिपुरुष अविनाशी वासुदेव भगवान्‌का भजन करो, क्योंकि कुसंगका त्यागना ही मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ हे दैत्योंके बालको ! अच्युत भगवान्‌के प्रसन्न करनेमें कुछ अधिक परिश्रम नहीं होता, क्योंकि भगवान् तो सब प्राणी मात्रका आत्मा है और सब प्रकारसे सिद्ध है ॥१९॥ पर-अवर जीवमात्रमें ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका तक सब स्थावर जंगम जो पाञ्चभौतिकके बने निर्जीव पदार्थमें पांचभौतिक विकारमें नारायणका ही वास है ॥ २० ॥ गुणोंमें, गुणोंकी समतामें, गुणोंकी उलट-पलटमें एक पर-अवर आत्मामें एक ही आदि पुरुष अविनाशी सच्चिदानंद भगवान् विराजमान हैं उसी परमात्माका भजन करो, तीर्थ करो, दान करो, ब्राह्मणोंको भोजन कराओ, नवधा भक्ति करो, वेद पढ़ो, पढ़ाओ, विद्याका अभ्यास करो, ब्रह्मविद्या सीखो-सिखाओ; क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, निन्दा, छल, बुराई, मारना, दुष्टता, मान, मद, दर्प, हिंसा, चोरी, जुआ इत्यादिको त्यागो यही मोक्षका उपाय है ॥२१॥ यद्यपि वह सच्चिदानन्द जगदीश्वर आपरूप एक ही हैं, तो भी आत्मास्वरूप सबके देखने योग्य व्याप्त है और व्यापक निर्देश योग्य कभी नहीं दिखाई देता और संकल्प-विकल्प ब्रह्म भी है ॥२२॥ केवल अनुभवसे आनन्दस्वरूप परमात्माने मायासे सब ऐश्वर्य छिपा रक्खे हैं और गुणोंकी रचने वाली मायासे ही जाने जाते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये सब जीवमात्रमें प्रीति करो, सबसे सुहृद् भाव बर्तो और असुरभावको छोड़ो, क्योंकि असुर भावके त्यागनेसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ जब आद्यदेव अनन्त भगवान् प्रसन्न हो जायँ तो सब वस्तु प्राप्त हो जाती हैं, जो अपने आप सिद्ध कर्मादिक हैं, उनको इस संसारमें गुणोंके उलटे भावसे निर्गुणको जैसे धर्म, अर्थ, कामसे कुछ प्रयोजन नहीं, इसी प्रकार मोक्षकी इच्छासे हमको क्या प्रयोजन है ? ॥ २५ ॥ धर्म अर्थ, काम जो यह त्रिवर्ग है वह आत्मविद्यासे वेदत्रयी, नीति, दंड और अनेक प्रकारकी वार्ता, यह सब वेदके सार हैं, परन्तु इनका भी सार यह है कि परम पुरुष परमात्माको अपना आत्मा समर्पण करना यह परमश्रेष्ठ तप है ॥२६॥ यह महाकठिन निर्मल ज्ञान नरके सखा श्रीमन्नारायणने नारदजीसे कहा था, जो पुरुष सच्चे भगवान्‌के भक्त और आनन्दरूप हैं उनके चरणकमलकी रजसे जो स्नान करनेवाले हैं, उनको ही यह निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ देवसमान दर्शनवाले भगवान् नारदजीके मुखसे विज्ञान सहित यह ज्ञानरूप, भागवत धर्म पहले शुद्ध चित्त से मैंने सुना था ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्र बोले कि हे प्रह्लाद ! हम और तुम इन गुरु शण्डामर्कके अतिरिक्त दूसरेको नहीं जानते और उनसे हमने-तुमने एक संगही पढ़ा है फिर यह निर्मल ज्ञान तुमको कैसे हो गया ? और दूसरा गुरु तुमको मिला ही नहीं ॥ २९ ॥ हे प्रह्लाद ! तुम बालकपनसे तो रनिवासमें अपनी जननीके पास रहे, वहां सज्जन पुरुषोंका जाना महाकठिन था; हमारे मनमें यह बड़ा भारी संशय है, वह संशय हमारा दूर करो, जिससे भगवान्‌की भक्तिमें हमारी श्रद्धा हो और हमारे मनमें विश्वास हो ॥ ३० ॥

भजन

विन हरि भजन कौन सुख पायो।
हरिका नाम परम सुखदायक, सब भक्तनने गायो ॥ १ ॥
जिन घर द्वार मोह ममता तजि, हरिसों ध्यान लगायो।
निःसन्देह यह देह त्यागकर, सुरपुर जाय बसायो ॥ २ ॥
सब भक्तनमें भक्तशिरोमणि, पूर्ण भक्त कहायो।
करत पुराण प्रशंसा निशि दिन, त्रिभुवनमें यश छायो ॥ ३ ॥
भक्तहेत भगवान जगतमें, मनुजरूप धर आयो।
दुष्ट मार भूभार उतारो, आनँद सबन दिखायो ॥ ४ ॥
भक्तिभावसे शेष शीशपर, भूको भार उठायो।
शालिग्राम प्रताप भक्तिको, दुरती नाहिं दुरायो ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे प्रह्लादस्य बालानां ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-सप्तममें प्रह्लाद जो, सुनो गर्भमें ज्ञान।
सो लड़कनके सामने, लागे करन बखान ॥

नारदजी बोले कि जब असुरोंके बालकोंने इस प्रकार दैत्यपुत्र प्रह्लादसे पूछा, तब मेरे ज्ञानोपदेश-भाषणका स्मरण कर प्रह्लाद मुसकाकर उन बालकोंसे यह कहने लगे ॥१॥ प्रह्लाद बोले कि हमारे पिता जब मन्दराचल पर्वतपर तप करनेके लिए चले गये तब इन्द्रादिक देवताओंने दैत्योंको विना नरेशके निर्बल समझ कर उनके ऊपर आक्रमण किया ॥ २ ॥ और परस्पर इन्द्र और देवता कहने लगे कि जैसे चींटी साँपको भक्षण कर लेती है ऐसे ही मनुष्योंके सतानेवाले हिरण्यकशिपु पापीको उसके पापनेही भक्षण कर लिया, हम लोगोंके लिये यह बड़ा आनन्द हुआ ॥ ३ ॥ उनके बलका अत्यन्त उद्योग देखकर असुरोंके सेनापति देवताओंके भयके मारे भयभीत हो सब दिशाओंको भाग गये और कोई-कोई दैत्य देवताओंके हाथसे मारे भी गये ॥४॥ तब नारदजी बोले कि कुटुम्ब, पशु, सम्पत्ति और सब सामग्रियोंको छोड़ अपने-अपने प्राण लेकर देश-विदेशको भाग निकले ॥ ५ ॥ तब विजयकी अभिलाषा करनेवाले देवताओंने सेनानिवासस्थानको लूट लिया और मेरी माता राजमहिषी कयाधु दानवीको इन्द्र पकड़कर ले चला ॥ ६ ॥ जैसे व्याधके पकड़नेसे टिटिहरी चिल्लाने लगती है ऐसे ही मेरी माता कुररीकी नाईं चिल्लाने लगी और अनेक-अनेक प्रकारके विलाप करके रोती थी और इन्द्र बलात्कार उसे पकड़े लिये जाता था, अकस्मात दैव इच्छासे उस मार्गमें कहींसे नारदजी भी चले आते थे और मेरी माताको रोती हुई उन्होंने देखा॥७॥तब नारदजी बोले कि हे देवराज! इस अबला निरपराधिनीको क्यों लिये जाते हो? इसको कभी नहीं ले जाना चाहिये, हे महाभाग! इस दीन सती स्त्रीको छोड़ दे, यह तेरे योग्य नहीं है, यह महाशीला पतिव्रता परस्त्री है, जो इसका पति आवेगा तो क्षणमात्रमें तेरी सब लाज खोदेगा और तू भागा-भागा फिरेगा और इन्द्रलोकमें रहना कठिन हो जायगा॥८॥इन्द्र बोला कि इसके पेटमें

हिरण्यकशिपुका गर्भ है, वह महाभयानक और देवद्रोही होगा, इसलिये जबतक इसका गर्भ बाहर न आयेगा तबतक मैं इसको अपने पास रखूंगा और जबतक इसके पुत्र न होगा कभी उसको नहीं छोड़ूंगा, जब इसके पुत्र होगा उसको मारकर मैं इसको छोड़ूंगा ॥९॥ नारदजी बोले कि इसके उदरमें जो स्थित है वह निष्पाप और भागवतोंमें उत्तम और परमश्रेष्ठ है, वह तुमसे किसी प्रकार नहीं मरेगा, क्योंकि वह परमात्माका परमभक्त है और तुम जानते हो कि ईश्वरके भक्त महाबली और पूर्ण प्रतापी होते हैं, इसलिये क्यों वृथा कलंक लेते हो छोड़ दो ॥१०॥प्रह्लाद बोले कि नारदजीके वचनोंको सत्य मान मेरी माताको उसने छोड़ दिया और उसके उदरमें भगवत्का भक्त जान मेरी माताकी परिक्रमा की और प्रणाम कर इन्द्र अपने लोकको चला गया॥११॥तब नारदजी मेरी माताको अपने स्थानपर लाकर आशा-भरोसा देकर बोले कि हे वत्से ! जबतक तेरा स्वामी न आये तबतक तू यहां निवास कर❋॥१२॥ जबतक मेरा पिता घोर तपसे निवृत्त हो लौटकर नहीं आया तबतक मेरी माता मुनिके मनोहर वचनोंको मान सब भय त्याग निर्भय हो मुनिके आश्रमपर निवास करने लगी ॥१३॥ उस पतिव्रता गर्भवती मेरी माताने अपने गर्भकी कुशलता और इच्छापूर्वक पुत्र होनेके लिये परम भक्तिसे वह धर्मशीला ऋषिकी सेवा करने लगी ॥१४॥ परम दयालु और सर्वसमर्थ मुनिने मुझको भक्त जान धर्मका तत्त्व और निर्मल ज्ञान दोनों मेरी जननीको दिये ॥ १५ ॥ उस ज्ञानको बहुत काल पाकर अधिक दिन व्यतीत होनेसे और स्त्रीपनके स्वभावसे मेरी माता तो भूल गयी, परंतु ऋषिकी कृपासे मुझको वह ज्ञान अबतक स्मरण है, मैं उसको किंचिन्मात्र भी नहीं भूला ॥१६॥ हे दैत्यपुत्रो ! जो तुम भी मेरे वचनोंको श्रद्धापूर्वक सुनोगे तो तुमको भी तत्त्वज्ञान उत्पन्न होगा और श्रद्धा होनेसे स्त्री और बालकोंको भी मेरे समान ब्रह्मज्ञान हो सकता है॥१७॥महासमर्थ कालके हेतु होते हैं, जन्मता है, बढ़ता है, कुछका कुछ होता है, कभी क्षीण, कभी क्षय इत्यादिभाव द्रष्टाको होते हैं, देहके व्यापक आत्माको नहीं होते, क्योंकि छः विकार शरीरकेही होते देखनेमें आते हैं, जैसे वृक्ष जब हो तभी उसके फलके विकार होते हैं, वैसे आत्मा के होनेसे ही विकार देहको हो सकते हैं॥१८॥आत्मा नित्य है और देह अनित्य है, आत्मा क्षीण नहीं होता और देह क्षीण हो जाता है, आत्मा शुद्ध है और देह अशुद्ध है, आत्मा एक है और देह अनेक हैं, आत्मा देहादिकको जानता है और शरीर जड़ है, आत्मा सबका आश्रय है और शरीर आत्माके आश्रय है, आत्मा निर्विकार है और शरीर सविकार है, आत्मा स्वयं प्रकाश है और शरीर परप्रकाश है, आत्मा सबका कारण है और देह कार्य पदार्थ है, आत्मा सर्वव्यापक है और देह व्याप्य है, आत्मा असंग है, और देह संगी है तथा आत्मा किसीसे आवृत नहीं होता और देह वस्त्रादिकसे आच्छादित हो जाता है ॥१९॥ आत्माके परेसे परे इन द्वादश लक्षणोंका ज्ञान विद्वान्को 'अहं मम' यह असद्भाव देहादिकमें जो मोहसे लगा है

❋ शंका—राक्षसोंके बालकोंसे प्रह्लाद ने कहा कि, नारदमुनि मेरी माताको अपने आश्रम पर ले गये, जब तक मेरा पिता हिरण्यकश्यपु ब्रह्माजी से वरदान लेकर घरपर नहीं आया तब तक मेरी माता नारदजीके आश्रम में विश्राम करती रही। हम लोगोंने शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा सुना है कि नारदमुनि का कोई आश्रम नहीं था और नारदमुनि किसी स्थान पर दो-चार घड़ी से अधिक ठहर ही नहीं सकते थे, फिर नारदजीके आश्रम पर प्रह्लादकी माता कैसे बहुत दिन तक ठहरी यह संदेह है।

उत्तर—भगवान्के भजन करनेके लिये बदरिकाश्रममें नारदजीका गुप्त आश्रम है। तीनों लोकोंमें घूमघामकर नारदजी अपने उसी गुप्त आश्रमपर आकर भगवान्का भजन करते हैं। नारदजीके आश्रम पर जो जीव बसते हैं, उनको किसी का भय नहीं होता, इसलिये प्रह्लाद दैत्योंके बालकोंसे कहते थे।

उसका त्याग करना चाहिये ॥२०॥ जैसे सोनेको सब प्रकारसे जाननेवाला सुनार कसौटी आदि पत्थरोंमेंसे लगे हुए सोनेको निकालकर अलग कर लेता है, इसी प्रकार अध्यात्मको जाननेवाले शरीरमध्यवर्ती जीवके द्वारा होकर आत्मालक्ष्यरूप योग करके ब्रह्मकी गतिको जान लेते हैं ॥२१॥ माया, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह आठ प्रकृति; सत्त्व रज और तम यह तीन मायाके गुण हैं, यह पृथक् नहीं गिने जाते, ग्यारह इंद्रियाँ और पांच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुए, इन षोडश विकारोंके न होनेसे कपिलाचार्यने जीव ब्रह्म एक कहा है और प्रकृतियां और सोलह विकार मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं, सबके साक्षीपनका सम्बन्धी आत्मा एक ही है ॥२२॥ इन्हीं चौबीस तत्त्वोंके सम्बन्ध होनेसे शरीर कहलाता है । स्थावर और जंगम इस शरीरके दो प्रकारके भेद हैं, उस मनुष्य देहमें ही जीवद्वारा पुरुष परब्रह्मको खोज लेना चाहिये, इस बातमें कुछ कठिनता नहीं है, बहुत सहजमें हो सकती है, क्योंकि ऐसे समझे कि यह भी आत्मा नहीं है वह भी आत्मा नहीं, इस प्रकार दृश्य वस्तुओंको अलग करते-करते यह आत्मा अपने आप सबसे अलग हो जाता है ॥२३॥ देखो अक्षर मसीसे भिन्न नहीं है परंतु मसी अक्षरोंसे भिन्न है, उसी प्रकार देहादिक आत्मासे पृथक् नहीं परंतु आत्मा इनसे पृथक् है,जैसे मणियोंमें सूत पुहा हुआ है इसका नाम अन्वय है और मणियोंकी डोरीसे पृथक् है, इसका नाम व्यतिरेक है; ऐसे शुद्ध ज्ञानके जाननेवाले मनसे सृष्टिकी उत्पत्ति,पालन,संहारका निश्चय करनेवाले वेदकी श्रुतियोंको धीरे-धीरे विचारनेवाले धीर पुरुषोंके जाननेके योग्य ब्रह्म है ॥ २४ ॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन वृत्तियां बुद्धिकी हैं, इनका जो अनुभव नहीं करता है, वह सबका साक्षी पर-पुरुप ईश्वर है॥२५॥इन तीनों वर्णोंसे बुद्धिभेद करके क्रियासे आत्माके स्वरूपको जाने । सबमें व्यापक होनेसे गन्धके गुणसे वायु जानी जाती है, इसी प्रकार बुद्धिको धर्मरूप तीनों अवस्था-ओंको जाननेवालेको आत्मा भिन्न प्रतीत होता है ॥२६॥ बुद्धिके गुण और कर्मों करके बन्धन होता है, यही संसारके द्वार हैं; इसका मूल कारण अज्ञान है,इसीसे यह मिथ्या है, परंतु मिथ्या होनेपर भी पुरुषको स्वप्नवत् दिखायी देता है ॥२७॥ इसलिये त्रिगुणात्मक कर्मोंका बीज जो अज्ञान है उसके नाश करनेके लिये तुम सब योगका साधन करो ॥

दोहा–ताते तीनों गुणनके, कर्म तजहु सब कोय ।
विषय वासना तजेते, बुद्धि विमल यश होय ॥

जिससे तीनों अवस्थारूप संसारका प्रवाह दूर हो जाय वही श्रेष्ठ है॥२८॥ और इन्हीं सहस्रों उपायोंसे बढ़कर यह उपाय भगवान्ने गीता आदि शास्त्र और पुराणोंमें अपने मुखसे वर्णन किया है कि हे बन्धुगणो ! जिस धर्म-कर्मसे भगवान् वासुदेवके चरणारविन्दोंमें रुचि हो,उसी धर्म-कर्मको मनुष्यको करना चाहिये ॥२९॥ गुरुकी सेवा करनेवाली जो उत्तम भक्ति है वह सम्पूर्ण लाभोंकी देनेवाली है वह भगवान् वासुदेवको समर्पण करे। सत्संगतिसे, साधु महात्मा-जनोंकी भक्तिसे परमेश्वरका आराधन करे तो भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥३०॥ भग-वान्की कथा श्रद्धापूर्वक सुने, ईश्वरके सुन्दर-सुन्दर गुण और कर्मोंका कीर्तन करे, उनके मनोरंजन भयभंजन पदांबुजोंका ध्यान करे और उनके परमसुखदायक अघघायक अत्यन्त सुहावन मनभावन सुन्दर स्वरूपका दर्शन व पूजन करे ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण आदिपुरुष

अविनाशी भगवान् सब जीवमात्रमें और जल-थलमें विराजमान हैं, ऐसा निश्चय जान प्रत्येक प्राणिमात्रका तनमनसे पूजन करे ॥ ३२ ॥

चौ०–देख परे हरि जल थल माहीं । सब मनके संशय मिट जाहीं ॥
जब हरिचरण परमरति होई । पिछला पाप रहै नहिं कोई ॥

इस प्रकार काम क्रोधादिक छः शत्रुओंको जीतकर ईश्वरमें भक्ति करे, जिससे अधिक प्रीति हो जाय ॥३३॥ भगवत्‌के अतुल गुण, कर्म, वीर्य और जो-जो लीला अनेक-अनेक प्रकारके अवतार धारण करके की हैं उनको हित चित्तसे सुने । अत्यन्त जब हर्ष बढ़े और शरीर पुलकायमान हो जाय, नेत्रोंमें आंसू भर आयें, गद्गदवाणी हो जाय, उच्चस्वरसे कभी गाने लगे, कभी रोने लगे, कभी हँसने लगे, कभी नाचने लगे॥३४॥जब इस प्रकार प्रेमलक्षणा भक्ति हो जाती है तब वह पुरुष ग्रहगृहीतके समान कभी हँसता हे, कभी पुकारता है, कभी ध्यानमें आ जाता है, कभी जीवोंको प्रणाम करता है, कभी वारंवार श्वास लेकर, हे हरे ! हे जगत्पते ! हे मुकुन्द ! हे गोविंद ! हे नारायण ! कहता है । ऐसी आत्माकी गति हो जाती है और कुछ लज्जा नहीं रहती॥३५॥जब ऐसा प्रेम उत्पन्न हो जाता है तब पुरुष सब बन्धनोंसे छूटकर मनमें भगवान्‌की भावनाको कर वैसे ही कर्म करने लगता है । महाभक्तिप्रयोग करके, काम कर्मके-बीजरूप अज्ञानकी वासनाओंको भस्म करके भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है ॥३६॥ अधोक्षज भगवान्‌का जो स्पर्श होता है, वही प्राणियोंके सब शरीरोंके अशुभ कर्मोंका नाशक है, वही संसार चक्रका विनाश करनेवाला है, वही ब्रह्मका महानन्द सुख उपजानेवाला है, उसीको बुध जन मोक्षरूप जानते हैं । हे भ्रातृगणो ! इसलिये तुम सब भी मिलकर अपने हृदयमें नारायणको भजो ॥३७॥ हे बांधवो ! श्रीनारायण तो हृदयछिद्रमें आकाशवत् सदा विराजमान हैं, इसलिये फिर परमेश्वरकी उपासना करनेमें किसी प्रकारका परिश्रम नहीं है । भगवान् अपने आत्मामें स्वभावसे सब शरीरके मध्यमें सामान्यभावसे रहते हैं, तुच्छ प्राणियोंके समान विषयोंके सेवन करनेसे क्या लाभ है ? ॥ ३८ ॥ स्त्री, धन, पशु-पुत्रादिक, मंदिर, वसुधा, हाथी, कोष, विभूति और इनके अतिरिक्त और भी जो वस्तु और मनोभिलाषा जो अति चंचल है वह क्षणभंगुर आयुवाले मनुष्यको कुछ प्यार नहीं कर सकती, क्योंकि वह आप चलायमान है ॥३९॥ ऐसे यज्ञादिक करनेसे जो स्वर्गादिक लोक प्राप्त होते हैं वे भी अनित्य ही हैं, क्योंकि यह भी सब नाशवान् हैं, पुण्यकी न्यूनता अधिकता है, निर्मल नहीं है, इसलिये जिनमें कभी दूषण देखनेमें और सुननेमें न आये ऐसे भगवान् वासुदेवको अपने आत्माकी प्राप्तिके लिये तुम सब मिलकर भजन करो ॥४०॥ जिसका संकल्प कर विद्वज्जन पुरुष अपनी विद्याके अभिमानसे फलकी इच्छासे कर्म करते हैं उनको इच्छाके विपरीत फल प्राप्त होता है ॥४१॥ सब जानते हैं, कर्म करनेवाले पुरुषका संकल्प दुःखके दूर करनेको और सुखकी प्राप्तिके लिये होता है परंतु दुःख प्राप्त होता है और चेष्टा न करनेसे सुख प्राप्त होता है, क्योंकि सुख तो केवल कर्मोंके त्यागनेसे ही होता है ॥ ४२ ॥ सकामिक कर्मसे पुरुष जिस सुखके लिये कामोंकी चाहना करता है वह देह तो पराया है, परंतु क्षणभंगुर है, कभी प्राप्त हो जाता है कभी नाश हो जाता है॥४३॥स्त्री, पुत्र, घर, धनादिक, राज्य, भण्डार, हाथी, मंत्री, भृत्य यह देहसे दूर और ममताके स्थान हैं, इनसे होना ही क्या ? ॥ ४४ ॥ जो आत्मा अजय, अव्यक्त, अविनाशी, आनन्दका महासमुद्ररूप है उसको तुच्छ समझना और जो सुख महाअनर्थकारी है

और विनाशी है और देहसे होते हैं और भूलसे सुखदायक दृष्टि आते हैं, परमेश्वरके सम्मुख वह सन्तान, स्त्री, वेश्यादिक कुछ वस्तु नहीं हैं ॥ ४५ ॥ इस बातपर एक दृष्टान्त है-किसी समाजमें एक वेश्या नाच रही थी और मनोहरतासे यह सवैया गाय-गाय रिझा-रिझाकर हाथ उठा-उठाकर सबकी ओरको बता रही थी। वहां कोई बुद्धिमान् किसी चतुर पंडितसे पूछने लगा कि यह वेश्या हाथ उठा-उठाकर किसको बता रही है ? पंडितजी बोले कि मित्र ! तुम नहीं जानते इस बातपर आपको एक सवैया सुनाते हैं-

सवैया-पट उज्ज्वल धारके बैठे सभा, मन काममें लागि रह्यो जिनको।
सो मृदंग कहे हरि भक्ति विना, धिक है धिक है धिक है तिनको ॥
मनजीरन बूझ लियो विधिसां, किनको किनको किनको किनको।
वह पातुर हाथ उठाय कहै, इनको इनको इनको इनको ॥

हे असुरपुत्रो ! जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त जब अपने कर्मोसे क्लिश्यमान हैं तो देहधारियोंको यह क्या स्वार्थ है ? ॥ ४६ ॥ यह जीव अपने आत्माके अनुसार देहसे कर्मोंको आरम्भ करना चाहता है और कर्मोंसे देह होता है, परंतु सुख भोगनेका इसको कोई समय प्राप्त नहीं हो सकता और विचार करके देखते हैं तो कर्म और देह दोनों अज्ञानपनसे होते हैं ॥ ४७ ॥ सब जीवमात्रके आत्मा श्रीहरि परमप्रिय भगवान् हैं और पञ्चभूतोंके रचे हुए सब प्राणीमात्र हैं ॥४८॥ तुम अपने मनमें यह न समझना कि हम दैत्यदेह हैं हमको भगवत्के भजन करनेका अधिकार नहीं है, यह बात नहीं; देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व इत्यादि कोई प्राणी क्यों न हो, श्रीमुकुन्दके चरणारविन्दके भजन करनेसे स्वस्तिमान् हो जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे सुहृद्गण ! ब्राह्मणपन, देवतापन, ऋषिभाववृत्त, सदाचार, बाहुलता, ज्ञान, दान, तप, यज्ञ, पातिव्रत कोई भी भगवान्का प्रसन्न करनेवाला नहीं दीखता ॥ ५१ ॥ और जो इनसे कदाचित् प्रसन्न होते भी हैं तो बहुत कालमें होते हैं और भगवान् तो केवल निष्कपट प्रीति और भक्तिमे ही प्रसन्न हो जाते हैं और शेष सब बातें कहने मात्र की हैं ॥ ५२ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! इसलिये श्रीभगवान्की भक्ति निष्कपट मनसे तुम सब मिलकर करो, सबको अपने समान जानकर सब जीवमात्रमें श्रीभगवान् वासुदेवको ही समझो ॥ ५३ ॥ दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी, खग, मृग और दूसरे भी पापी जीव भक्तिके प्रभावसे ही मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ बस, इस लोकमें मनुष्यका परमस्वार्थ इतना ही है कि भगवान्की निश्चल भक्ति हितचित्तसे करनी और सर्वत्र भगवान्का ही वास जानना, इससे अधिक और कोई उपाय मुक्ति होनेका नहीं है ॥

भजन

भज मनहरन श्री यदुवीर !
भक्त लोगनपर परत जब, कठिन भारी भीर।
करत आय सहाय तुरतहिं, धार मनुजशरीर ॥ १ ॥
दुष्ट दुःशासन करी जब, अति अनीति गँभीर।
जायके झटपट बढ़ाये, द्रौपदीके चीर ॥ २ ॥

इन्द्र कर जब कोप व्रजपर, अधिक छोड़ो नीर ।
धार गिरि कर तुरत मेटी, सब जननकी पीर ॥ ३ ॥
कंसके दुखसे भये जब, दुखी सकल अहीर ।
पकर चोटी कंस मार्यो, जाय यमुना तीर ॥ ४ ॥
पूतनाके प्राण खैंचे, पियो ऐसो क्षीर ।
सदा शालिग्राम जनके, धरनहारे धीर ॥ ५ ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे प्रह्लादेन ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-अष्टममें अति कोप कर, दियो पुत्रको त्रास ।
तब हरि नरहरिरूप किय, कनककशिपुकर नास ॥

नारदजी बोले कि सब दैत्यपुत्रोंने प्रह्लादका वर्णन सुककर निर्दोष होनेके लिये उन्हीं बातोंको अंगीकार किया और गुरुकी शिक्षा नहीं मानी ❋ ॥ १ ॥ जब सब बालकोंकी बुद्धि इस प्रकार नारायणमें लगी हुई देखी, तब शुक्राचार्यके पुत्र अपने मनमें बहुत डरे और अच्छी रीतिसे सोच-समझकर सब वृत्तान्त जैसेका तैसा हिरण्यकशिपुसे जाकर कहाः

चौ०—वह सुत शठ प्रह्लाद तुम्हारो ❋ मानत नहिं कछु कहा हमारो ॥
सकल बालकन निकट बुलाई ❋ कहत भजहु हरि हरि यदुराई ॥
वोही भक्ति मुक्तिके दायक ❋ वोही सकल सृष्टिके नायक ॥
हरि हरि हरि दिनरात बखाने ❋ वचन हमार एक नहिं माने ॥
ताते उऋण होन हम आये ❋ जात सभामें सबहि सुनाये ॥
इसमें कुछ हमार नहिं दोषू ❋ वृथा न कीजै हमपर रोषू ॥ २ ॥

यह असह्य अप्रिय महाकठिन पुत्रका अत्याचार सुनकर क्रोधमें मतवाला हो लाल-लाल नेत्र कर कांपने लगा और पुत्रके मारनेका विचार मनमें किया ॥ ३ ॥ जिस परमेश्वरके भक्तका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता उस प्रह्लादकी कठोर वाणी और तिरछी आंखसे निरादर करने लगा । वह जितेन्द्रिय प्रह्लाद नम्रतासे हाथ जोड़े खड़ा था, उस दारुण प्रकृति-वाले ॥ ४ ॥ हिरण्यकशिपुने पांवसे मसले हुए सांपके सदृश फुंकार कर प्रह्लादसे इस प्रकार बोला ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत ! हे मंदमति ! हे कुलकलंक । हे कुलमें भेद डालनेवाले ! हे अधम !

❋ शंका—राक्षसोंके लड़कोंने प्रह्लादसे ज्ञान सीखा, परंतु ज्ञानियोंका नाम लोकमें और शास्त्रमें सब प्राणियोंको विदित हो जाता है, परंतु उनका नाम शास्त्रमें लोकमे हमने नहीं सुना कि वह लड़के किधर गये ? छोटे तपस्वियोंका, बड़े तपस्वियोंका और जो-जो तपस्वी अथवा ब्रह्म ज्ञानी हैं उन सबका नाम सुना, परन्तु प्रह्लादके शिष्योंका नाम हमने कहीं नहीं सुना यह भ्रम है कि प्रह्लादसे ज्ञान सीखकर वह लड़के किस लोक में गये ?

उत्तर—जब प्रह्लादका और हिरण्यकशिपुका उत्पात होना आरंभ हुआ तब शुक्राचार्य उसके पास नहीं थे, पीछे शुक्राचार्य आकर सब उत्पात और राक्षसोंके बालकोंको श्रेष्ठकर्म करता देखकर लड़कोंसे शुक्राचार्य बोले कि [illegible] कर्म तुम सब जन त्याग दो और जो नहीं त्यागोगे तो हम तुम सबको भस्म कर देंगे, ऐसा डर मानकर लड़के फिर राक्षसकर्म सीखने लगे । [illegible] लड़के तपस्या करनेमें कच्चे थे इसलिये उन्होंने डरके कारण श्रेष्ठ कर्म करने छोड़ दिये और राक्षसकर्म करने लगे, इस कारण वह लड़के तपस्वी नहीं हुए, विना [illegible] किये उनका नाम प्रसिद्ध कैसे हो ।

गर्वी ! तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया है, मैं तुझको यमलोकमें भेजूंगा ॥ ६ ॥ हे मूढ ! जा मेरे आगे से चला जा अरे नीच ! मेरे क्रोधसे दशों दिक्पाल और सब लोकपाल त्रिलोकी समेत ईश्वर तक कांप रहे हैं और तू निःशंक होकर मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, ऐसा तुझको किसका बल है ? ॥७॥ प्रह्लाद बोला कि हे राजेन्द्र ! सब चर-अचर-जीवजन्तु ब्रह्मादिकोंको जिसने अपने वशीभूत कर रखा है, उसी आदि पुरुष अविनाशीका मुझको और तुमको बल है वरन् मुझमें और आपमें ही नहीं, सब संसारके बलवानोंमें उसीका बल है॥८॥काल, उरु, ओज, क्रम, सह, बल, इन्द्रिय, आत्मा और सत्त्व वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंसे सृष्टिको रचते हैं, संहार करते हैं और वही तीनों गुणोंके ईश हैं ॥९॥ अब आप इस अपने असुरस्वभावको छोड़ दो, मनमें सबसे समानभाव रखो, कोई किसीका शत्रु नहीं है, केवल अजित और पाखंड मतमें स्थित और खोटे मार्गमें चलनेवाले आत्माको तुम श्रीअनन्त भगवान्‌में उसे अर्पण करो और उनका पूजन करो इसीमें आपका भला है ॥ १० ॥ कोई-कोई पुरुष आप सरीखे ऐसे भी हुए हैं कि, अपनी इन्द्रियोंको विना जीते दशों दिशाओंको जीता मान लिया, परन्तु कुछ न जीता, क्योंकि जिसने अपने वैरियोंको ही नहीं जीता उसने क्या जीता ? खटका तो बना ही रहा जिसके घरमें शत्रु घुस रहा, वह बाहरके शत्रुओंको जीतकर कैसे सुखकी नींद सो सकता है ? और जिसने अपनी आत्माको जीत रक्खा है, ऐसे ज्ञानी पुरुष सब देहधारी मात्रमें समानभाव वर्तें हैं ऐसे साधुजनोंको अपने मोहसे दुःख नहीं होते औरोंका तो कहना ही क्या है ? ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि उसे प्रह्लादके नीतिभरे वचन बाणके समान लगे, तब तो क्रोधवान् होकर हिरण्यकशिपु बोला कि, अरे अधम ! मुझको भलीभांति निश्चय हुआ कि तू अपने मरनेकी इच्छा करता है, जो ऐसे निर्द्वन्द्व वाक्य बोलता है । हे मन्दआत्मन् ! जिनका काल शिरपर आ जाता है उनकी ऐसी ही अयोग्य वाणी निकलती है और सब ज्ञान जाता रहता है ॥१२॥ अरे कुलकलंक ! मेरे अतिरिक्त तूने जो जगत्‌का कर्ता और कोई दूसरा बताया, अब बता वह कहां है जो तू कहता है कि वह परमात्मा सर्वत्र है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दीखता ?

चौ०–तब प्रह्लाद सभामें बोला * भेदभाव मनका सब खोला ॥
पिता मोर प्रभु है सब ठाऊँ * जाके हैं अनंत गुणनाऊँ ॥
मुझमें तुममें सभा सदनमें * जलमें थलमें शैल नदनमें ॥
पिता नहिं ऐसो कोउ ठाहर * जहँ न विराजत श्रीनरनाहर ॥
मुझको देख परत सब ठाहीं * तुमको देख परत कहुँ नाहीं ॥
देखो सम्मुख कृष्ण विराजत * लख छबि कोटि काम मन लाजत ॥

देखो खम्भेमें वह दीखता है १३॥ हिरण्यकशिपुने जब खम्भेमें नहीं देखा तो बोला कि

छन्द

अरे मूढ यह तो भली बात बोले । सबै तोर पाखंड हौं देत खोले ॥
जु अब खम्भते ना कढ़ो तोर ईशा । तौ मैं काटि हौं खड्गते तोर शीशा ॥
प्रथम खंभते ही निकरनौ कठिन है । तेरी झूंठ बाते यहां को गिने है ॥
यदा नीकले खंभते तोर स्वामी । दोऊ संग हुइहौं यमैलोकगामी ॥

महेशो गणेशो दिनेशो सुरेशो । सकै तोहिं ना राखि शेषो प्रजेशो ॥
चहै जो बचायो तुझे काल आजै । तऊ ताहिकी मैं करौंगो पराजै ॥
अभीलौं न तू मोहि जानो कुमारा । कवन भूल फूलौ फिरै तू गँवारा ॥
सुनौ रे सभाके सकल वीर प्यारे । कहे देत हूँ आज सबसे पुकारे ॥
तनय जान इसको अबैलौं बचायो । बड़ा खेद इसके लिये मैं उठायो ॥
न दीजो कोई आज कुछ दोष मुझको । परै कालके गाल यह बाल रोको ॥१४॥

इस प्रकार वह हिरण्यकशिपु, वचनोंसे और क्रोधसे महाभागवत प्रह्लाद अपने पुत्रको पीड़ा दे खड्ग हाथमें ले महाक्रोध कर ललकारता-फटकारता गर्जता-तर्जता झट-झपटकर आसनसे उछल कर उठा, कवचकी कड़ियाँ तड़कने लगीं, भुजायें फड़कने लगीं और तेलके समान आंसू आंखोंसे ढलकने लगे, योधा क्रोधानलसम रूप देख-देख सरकने लगे, उस समय महागम्भीर नाद कर खम्भमें एक मुष्टिक मारा ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे अभिमन्युनन्दन ! सुनोः—

छन्द नाराच

विकुष्ट दुष्ट जोर जुष्ट मुष्ट खम्भमें हन्यो, अतीवगर्व पुष्ट कोप तुष्ट चित्त ना गन्यो ॥ तहां अखण्ड अण्ड खण्ड खण्डसो विखंडते, भयो प्रचण्ड शोर दैत्य दण्ड खम्भ दण्डते ॥ धरा धरा धरो अधार छोड़ कै टरक्क गे । सुमेरु शृङ्ग तुंगहू तुरन्त ही तरक्क गे ॥ विरञ्चि सञ्चि बैठ चौंक चौंक कै सरक्कगे, सगौरि वे गिरीश ऊशि रीशते सरक्क गे ॥ प्रचण्ड मारतण्डको उदण्ड तेज ठण्ड भौ, गँभीर नीर थम्भ सात सिन्धुको अखण्ड भौ ॥ फणीश कान फूट गे फणो इकट्ठ जूट गे, दिशान दिग्गजानके दिशान सानै छूट गे ॥ सुरेश शङ्क धार वार वारही चिकार ही, कहां भयो महान वज्रपात एक वार ही ॥ विना समय अबै कहां समस्तको सँभार भौ, सु यों चित्त सँभारको विसार वे अधार भौ ॥ किधौं प्रलै पयोद एक वार ही गराज ही, किधौं सबै सु पौन जोर शोर कै विराज ही ॥ करैं विचार ऐस ही न नेक ठीक पावहीं, सशंग उद्दिजात देवता न स्वस्ति गावहीं ॥ सुने सुखम्भते तबै महा कठोर शोर है, सुवीर धीरमें अधीर ताकि चार ओर है ॥ कितान कर्ण फूट गे कितान शस्त्र छूट गे, महान आसमान तार चन्द्र भानु जूट गे ॥ दिशानके मुखानमें अमान शोर जात भौ, त्रिलोकमें तुरन्त ही अनन्त गर्भपात भौ ॥ सनंक विश्वमें भरी सबै बली सनंक भौ, अशक ते सशंक भौ जनंक को अनंक भौ ॥ मकान दानवानके गिरे धरा धड़ाक दै, सभा फटी सुवर्णकी किला फटा पड़ाक दै ॥ निसम्प दैत्य हू कड़ी विश्वम्भरा भड़ाक दै, उठो सँभार कोपकै प्रवीरसो झड़ाक दै ॥

अरे वीरो! आज क्या है? इस महाभयंकर शब्दके होते ही पृथ्वी लोट-पोट होने लगी, पहाड़ जड़से उखड़कर गिरने लगे, दिग्गज चिंघाड़ने लगे, समुद्रोंने मर्यादा छोड़ दी, आज सब लोकोंका विध्वंस हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं, मैं जानता हूं कि आज महाप्रलयका समय आ गया ॥ १६ ॥

छन्द दण्डक

आशु तेहि ठौर बर जोर अति शोर बल चोर सुन रोर दानव अधीशा।
चितै चहुँ ओर कछु मनहि भौ भोर जेहि जोरसों शोर भो सो नदीशा॥
चकित चित थोर नहि चौंक चिन्तन लगो कहा यह भयो का रचो ईशा।
देख नहिं परत कछु श्रवणमहँ रव भरत डरत दानव सर्व बीस बीशा॥ १॥
गुणत अस हिरणकशिपुहिकी सभामधि कड़कके फाटि गौ खंभ भारी।
काढ़ि विकराल तहँ कालसी कालकी ज्वालकी माल अति भीतकारी॥
जरत जहँ असुर बहु धीर उर नहीं धरत भरत उर शोक सुधि बुधि बिसारी।
करत नहि बनत कछु भजत एक एक डरत गिरत पुनि परत आरत पुकारी॥ २॥
जरत कहुँ पाग कहुँ फेंट कहुँ कंचुकौ रंचकौ वंचकौ बचत नाहीं।
भभरि भागत फिरत हहरि हारत तुरत दररि दारत दुरत दीनकाहीं।
महा भयभीत लख रीति तज नीति तज भये विपरीत दिति सुवन आहीं।
कटक घटघट उठी तिहि घटी सटपटी तटी सम नटत खिसिसभामाहीं ३॥१७॥
सत्य निज भृत्य प्रह्लादके वचन हित ताहि हठ वधन हित रचत लीला।
माधव मास सित चतुर्दशि वार शनि समय गोधूरि हरि दयाशीला॥
खम्भते प्रकट द्रुत झपट अशुरन दपट रपट बहु कपट ह्वै नाहि ढीला॥ ४॥
भ्रुकुटि अति बंक मनु मीचको अंक दृग तप्त हेमाभ मनु कालकाला।
शीशकी सटा मनु करत खलदल कटा उड़हिं जेहिं जोर बढ़ि घटाजाला॥
बिहद विस्तार युत महाविकरार मुख करत संहार मनु जगत हाला।
पविहुते पीन पर पैन परचण्ड अति दुष्ट द्रुत अन्तकर दन्तमाला॥ ५॥
भरत चख चौंध चंचल चंचला सी चपल चलत चहुँ ओर अधरान-माहीं।
काल करवालसी भीषणी तीक्ष्णी लाल रसना लसत वदन पाहीं॥
मेरुके तुंग युग भृंगसे श्रवण दोउ क्षणहिं क्षण कोपते कँपत आहीं।
सुन्दरे मन्दिरे सरिस जग नासिका नासिका रन्ध्र अतिशय सुहाहीं॥ ६॥
परम विकराल पाताल मुख सरिस मुख हरत सुख शठन दुख द्रुतहि दाता।
नकत त्वन मनहु सर वृन्दके आयतन ग्रीव अति छोट अति मोट गाता॥
वक्ष वर विशद मनु वज्रके पाट युग क्षीण कटि मुद्रिका वपु विख्याता।
सोमकर सरिस तहँ तोम तन रोम हैं जोमसों युक्त मुख सुच्छ जाता॥ ७॥

परम परचण्ड बरबण्ड भुजदण्ड बहु दैत्य–दुति खंडकर चंड भासी।
करन कुल कठिन कुटिलानका रेजके नेजसे रेज कर तेजरासी॥
पुच्छ अति सुच्छ लगि कुच्छ अरि तुच्छकर रुच्छ नहिं मुच्छछबिकी प्रकाशी।
दीर्घ दुर्धर ध्रुवं दीन उद्धत सदा क्रुद्ध तिर शुद्ध भौ युद्ध आशी॥ ८॥

दोहा–निकले नरहरि खम्भते, कोटिन भानु प्रकाश।
देख परो सब सभामधि, करत शत्रु–दल–नाश॥

सब दैत्य खड़े-खड़े परस्पर विचार ही कर रहे थे कि उसी सन्ध्याके समय खम्भको फाड़कर श्रीनृसिंह भगवान् प्रकट हुये। अपने भृत्य प्रह्लादने जो कहा था कि देखो खम्भेमें भी दीखते हैं; इस कारण अपने भृत्यका वचन सिद्ध करनेके लिये तथा सर्वत्र जल-थलमें विष्णु व्यापक हैं, इसको साक्षात् दरशानेके लिये, अपने निज भृत्योंको जिनका नाम जय-विजय था सनकादिकोंने शाप दिया फिर उनको निर्दोष समझकर बहुत पछताये और पश्चाताप करके, उन्होंने कहा कि तीन जन्मोंमें तुम्हारा शापमोचन होगा इस बातको निश्चय करनेके लिये अपने निजभक्त हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे जो वर मांगा था कि "मैं आपके रचे हुए जीव, जन्तु, मनुष्योंसे न मरूं, अथवा बाहर, भीतर, रात दिनमें न मरूं" इस वचनको दृढ़ करनेके लिये अपने निज आज्ञाकारी ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुसे कहा था–"तथास्तु" जैसा तू चाहता है तेरा सब मनोरथ पूर्ण होगा। ब्रह्माजीने जो वचन अपने मुखसे कहा था उनके वाक्योंको सत्य करनेके लिये अपने निज पार्षद हिरण्यकशिपुने कहा था कि "कहीं मेरी मृत्यु पुत्रके विरोधसे ही न हो जाय" इस कथनको ठीक करनेके लिये अपने निज भक्त नारदजीने जो इन्द्रसे कहा था कि यही कयाधूके गर्भमें जो बालक है, तुझसे नहीं मरेगा, और यह "बड़ा प्रतापी होगा" इस बातको सत्य करनेके लिये, आपने भी अपने सेवकोंसे अनेक बार कहा था कि अपने प्यारे भक्तोंकी मैं आप रक्षा करता हूँ, उस बातको सिद्ध करनेके लिये, अपने प्यारे भक्तोंकी वाणी सत्य करनेके लिये, सब स्थावर जंगममें अपनी व्याप्ति दिखानेके लिये न मनुष्य, न पशु, ऐसा अद्भुतरूप धार सभाके खम्भको फाड़कर सर्वव्यापक श्रीनारायणने वही नृसिंहरूप धारण कर सबको दर्शन दिया॥ २॥

छन्द तोमर–तहँ हिरणकशिपू वीर, लखि नरहरी रणधीर।
सोचन लगो मन माहिं, कछु ठीक परतो नाहिं॥
अर्ध उर्द्ध सिंह स्वरूप, अरु अर्द्ध नरको रूप।
भारी भयंकर भूरि, हिय तेज सब थल पूरि॥
अस कहुँ न कान सुनान, अबलौं न कहुँ दरसान।
धौं रचेउ बिधि मम मीच, प्रगटेउ जुअतिही नीच॥
धौं कृष्ण भ्रात प्रबीन, यह रूप निज करलीन।
मोसौं करन हित युद्ध, आयो दलत रद क्रुद्ध॥
वे हैं जो सत्य मुकुन्द, तौ चलहि नहिं कछु फन्द।
यह कहा करि है मोर, अबलौं दुरेउ डर चोर॥

मोहि ब्रह्मको वरदान, मोसरिस को बलवान।
मम मीच है कहुँ नाहिं, जीतेउ भुवनत्रयकाहिं॥
अस गुनि सु पुनि धरिधीर, निज भटनसों कह वीर।
निज कुलहि सुधि बिसराय, कत जाहु सकल पराय॥
नहिं वीर भागन धर्म. करिबो उचित निज कर्म।
नरहरि जो यह भय दीन, प्रह्लाद माया कीन॥
दोहा-यह धोखो चोखो नहीं, रोषो रे रणधीर।
रूप अनोखो देखकर, भागो मति सम भीर॥

देखो भाइयो! यह भागनेका समय नहीं, मैं जानता हूँ, कि तुम इसके विकट रूपको देखकर डर गये, ऐसे पशुओंके सम्मुखसे मुख फेरकर भागना यह बड़े आश्चर्यकी बात है। तुम सब अस्त्र शस्त्र बाँधकर चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ, इस पशुका मारना क्या बड़ी बात है?

छन्द तोमर-सुन कनककशिपू बैन, भट भीत तज भर चैन।
सब फिरे एकहिबार, गहि हाथमें हथियार॥
कोइ परिघ परशु कृपान, कोउ असी तबल कमान।
कोउ भल्ल मल्ल तबल्ल, कोउ भिन्दिपाल प्रबल्ल॥
कोउ मुष्ट जुष्टन जुष्ट इमि पुष्ट दुष्टहु रुष्ट।
नरहरीपर एकबार, धाये असुर बिकरार॥
जिमि दीप गिरहिं पतंग, नहिं जरत जानहिं अंग।
जिमि मशक नयननमाहिं, निज मरण हित घुसजाहिं॥
तिमि नरहरी पर आय, दिये अग्निशस्त्र चलाय।
नरसिंहके चहुँ ओर, किये घेर दानव शोर॥
तहँ लगत नरहरि श्वास, बहु उड़हिं बिनहिं प्रयास।
कोउ केश उरझ प्रवीर मर गये पावत पीर॥
जहँ लगत नखन कठोर, नशि जात दैत्य करोर।
बहु गये चरण दबाय बहु पिसे दंतन धाय॥
लग पुच्छकी फटकार, कट गये असुर अपार।
बहु गये दिशन पराय, बहु रहे अवनि लुकाय॥
दोहा-दौरदण्डको दण्ड धृत, शठ प्रचण्ड वरिबण्ड।
खण्ड खण्ड तनु खण्डभे, लहि नृसिंह भुजदण्ड॥

छन्द तोमर-निज सुभट निरखि विनाश, तिमि बढ़त नरहरि भास।
कोपित भयो असुरेन्द्र, जिमि पद दलित भुजगेन्द्र॥

कर कर गदा वर जोर, कर घोर शोर अथोर।
नरसिंहके ढिग जाय अस वचन कहेउ ठठाय ॥
कहँ रहेउ अबलों चोर, नहिं खोज पायों तोर।
जानो नहीं तव दम्भ, लुक रहो मेरे खम्भ ॥
प्रथमहि जो लेतो जान, करतो उपाय न आन।
इहि खम्भकाहिं विदार, तोहिं तबहि तुरत निकार ॥
राखत मैं बन्धन बांध, एक कोठरीमें आंध।
पुरजन लखत सब आय, यह कौनको चितचाय ॥
तैं अबहुँते भलकीन्ह, जो दरश मोको दीन्ह।
तोहिं देख गुनि अपराध, मोहिं बढ़त क्रोध अगाध ॥
अब बचब दुस्तर दुष्ट, मैं हेमकश्यप रुष्ट।
छलकर हनेउ मम भ्रात, सो दुख न मोहिं सहिजात ॥
सुत नीक यही गुण कीन, जो प्रगट तोहिं कर दीन।
अबकर कितेक उपाय, पैहै न अब कहुँ जाय ॥

दोहा-अस कहि नरहरिहननको, गिरि गुरु गदा उठाय।
जात भयो अतिशय निकट, कोपित दानवराय ॥

हिरण्यकशिपु महाघोर शब्द कर बोला-अरे पशु! अरे मायावी! तूने छल बलकर बहुत जनोंको छला है, परन्तु मैं तेरे वशका नहीं, ले अब सावधान हो। आज तुझको मारकर तेरे ही रुधिरसे अपने भ्राता हिरण्याक्षका तर्प्पण करूंगा। यह कह गदा लेकर नृसिंहजीके ऊपरको झपटा ॥

छन्द तोटक

असुरेश नृसिंहहिं संग भिरो, जिमि पावकमाहिं पतंग गिरो।
लखके नरसिंह प्रकाश महा, नहिं दानवनाथ दिखात तहाँ ॥
जेहि तेज नशात महातम है, जिनको यह केतिक बात अहै।
तहँ दानव वीर खड़ो बलसों, नरकेहरिके शिरमें छलसों ॥
द्रुत मार गदा पुनि तर्क गयो, नरसिंहहु ताहि बचाय लयो।
पुनि दौर गदा मुख माहिं हन्यो, असुरेश अतीव अमर्ष सन्यो ॥
लग दन्त गदा गुरु चूर भई, असुरेश तुरंतहि पाश लई।
नरसिंह गलेमहँ डार दियो तिहिको प्रभु टूकहि टूक कियो ॥
शठ कुन्तहु एक कराल लयो, यमदंडसमान प्रकाश छयो।
कर जोर हन्यो हरिके उरमें, जिमि बालक बाण धरा धुरमें ॥

ह्वै चूरन धूरनके कणमें, मिलिगो नहिं देखि परो क्षणमें।
कर लै सितधार कुठार तबै, तेहि मारनको ढिग जाय जबै॥
तब ही नरसिंह सुराजत भो, करते छुटिगो अतिलाजत भो।
यह भाँति अनेकन आयुधको, एक वार पवाँरि दियो युधको॥
न गड़े तनुमें सब टूट गये, कितनोहिको नरहरि घूट गये।
लखकै निज शस्त्रन व्यर्थ जबै, कछु शंकित भो असुरेश तबै॥

दोहा-बार बार तेहि वारमें, असुर महा बलबार।
कछुक वार लग वार लग, किया विचार दितिवार॥

असुर अपने मनमें कहने लगा कि हे विधाता ! मैं तो अपने मनमें यही जानता था कि मेरा ही शरीर ऐसा है कि किसी अस्त्रशस्त्रसे न कट सके, परंतु इस नरहरिका शरीर तो मुझसे भी कठोर निकला॥

छन्द तोटक

नरकेहरिको बहु शस्त्र हन्यो, यह तो नहिं नेकहु चित्त गयो।
कुलिशैं सरिसैं गिरिछेदनते, नहिं भेद कियो अरिभेदनते॥
तेहिते कर ले धनु सायकको, अब नाश करौं मृगनायकको।
गुनि यों दितिनन्द अमर्षत भो, सुरनायकपै शर वर्षत भो॥
घन ज्यों जलधार धराधरमें, तिमि मूँदि लियो हरिको शरमें।
महि व्योमहि सायक छाय गयो, दिन नाथ तहाँ न दिखात भयो॥
नभचारिनकी गति रुद्ध भई, सब देवनके उर भीति छई।
शरजालहि फारि नृसिंह कढ़े, पुनि दानव ओरहि आशु बढ़े॥
जरगे मुख ज्वालहि सायक हैं, दिवि देख परे दिननायक हैं।
हनि बाणनको पुनि मूँद लियो, पुनिकै सुरनायक छार कियो॥
यहि भाँति दुरात दिखात हरी, जिमि श्रावण मेघन धौंस करी।
शठ पावक अस्त्र तजो निकटै, नहिं ज्वाल गई हरिके निकटै॥
इहि भाँति अनेकन शस्त्र तज्यो, करपान हरी अति जोर गज्यो।
असुरेन्द्र तहां अति कोपित भो, नरसिंहहि मारन चोपित भो॥
विधिते यकअस्त्र अखण्ड लियो, प्रभुको तुरते तकि छोड़ दियो।
हरिको ढिग जातहि शान्त भयो, असुरेश तहाँ लखि भ्रांत भयो॥

दोहा-पुनि कोपित ह्वै असुरपति, पुनि नरसिंह प्रचण्ड।
जीतन हित बरबण्ड तहँ, माया कीन्ह अखण्ड॥

अब विना माया किये इस नृसिंहसे किसी प्रकार विजय नहीं पा सकता, क्योंकि यह पशुपति मुझको अधिक बलवान् जान पड़ता है:-

जलधार तहां प्रगटी अपार, हरितेज लखत ह्वै गयो छार।
प्रगटी पुनि पावक ज्वालजाल, मनु दहन चहत तिहुँपुर विशाल॥
मिल गई नाथके तेज-माहिं, नहिं दीख परी पावक तहाहिं।
तहँ असुर करत भौ अन्धकार, दुरिगे दिनेश रजनीश तार॥
पुनि रुधिर वृष्टि कीन्हीं अपार, त्वच मांस हांड औ पीप बार।
पाषाण वृष्टि भइ अतिमहान, पुनि वृक्षवृष्टि चहुँदिशि दिखान॥
धाये कराल तत्काल व्याल, मुख तजत अग्निकी ज्वालजाल।
पुनि प्रगट भई योगिनि जमात, आभूत भूत आकूत पात॥
तहँ शारदूल प्रगटे अनन्त, हरि हनन हेत धावत लसन्त।
पुनि रचे आपने अमित रूप, नरसिंहहु के तिमि दैत्य भूप॥
एक असुर हनत नरसिह एक, अस देख परे आउब अनेक।
लखि देव कियो हाहा पुकार, नहिं रहेउ तनक तनुको सँभार॥
लै लै विमान भागे सभीत गुनि लियो कियो शठ अति अनीत।
सब असुर अनन्दित भये अपार, निजनाथहिको गुनि विजयवार॥
तेहि घेर लियो नरहरी कोप असुरेशन धनकी बढ़ी चोप।
एक क्षणहिमाहिं माया विदारि प्रगटत प्रकाश ज्यों कुहर फारि॥

दोहा--जिमि साधन उपदेश बहु, परन मूर्खके कान।
सब निष्फल ह्वै जात हैं, आवत नेक न ज्ञान॥

छन्द पद्धरी

कोपित नृसिंह कह पुनि निहारि, कर गदा धार धायो सुरारि।
चहुं दिशि नृसिंहके फिरन लाग, निज दाउ द्रुतै देखत सराग॥
जहँ जहँ हिरण्यकश्यप दिखात, तहँ तहँ नृसिंह अतिचपल जात।
जहँ जहँ नृसिंह धावत प्रचण्ड, तहँ तहँ सुरारि आवत उदण्ड॥
यहि भांति करत दोउ युद्धघोर, चहुं ओर भरत अति भीमशोर।
तहँ असुर वेग कर गदा हाथ, चाही नृसिंहके हनन माथ॥
नरसिंह तहां अतिकोप छाय, गहि लियो हिरण्यकश्यपहि धाय।
जिमि गरुड़ भुजंगहि बिनुप्रयास, गहिलेत आशुकर अभय आश॥
जिमि गरुड़ चोंचसे सर्प छूट, झट झपट उड़त कर बल अटूट।
कर असुर तहाँ अतिछोट रूप, गयो नाथसे असुर भूप॥
पुनि भीम रूप असुरेश कीन्ह, द्रुत पुच्छ नाथकी पकरि लीन्ह।
तब ताहि गहन को फिरे नाथ, तब दूर कूद गयो गदा हाथ॥

प्रभु पाणि छुटो लख असुरकाहिं, सुर सब सशंक भये मनहि माहिं।
हाहा पुकार एकबार कीन, आधार छोड़ भये शोकभीन॥
उर दैत्यकाहि छिप घननओट, पुनि लखन लगे धर धीर मोट।
नरसिंह करनते छुटो जान, प्रभुको शठ निर्बल लियो मान॥
तब असुर नाथ करके घमण्ड, धायो प्रचारि कर रव प्रचण्ड॥

दोहा–गदा हनी हरि शीशमें, करके जोर अथोर।
मार लियो अस मान मन, पुनि कीन्हों अति शोर॥

छन्दरोला–टूकटूक है गदा तेहि क्षण क्षिति महँ छहरी। मनो नभते एक वार तारावलि झहरी॥ तब असुरेश विचार कियो अपने मनमाहीं। नरहरिमन उपाय कीनो कौनो अब नाहीं॥ तेहितें लेकर ढाल कठिन करवाल करालैं। काटि लेहुँ गहि केश शीश नरहरिको हालै॥ अस विचार तरवार ढाल कर धार प्रचारी। धायो नरहरि ओर घोर करशोर सुरारी॥ तब अखण्डबल दोरदण्ड युग परमप्रचण्डा। निकसे नख कुलिशौ कठोर द्युति शतमार्तंडा॥भुज ऊरधकर तहँ नृसिंह धायो विकराला। हनो हस्त असुरेश शीश कर कोप विशाला॥ रोक ढाल हरि हस्त असुर कछु दूर कूदगौ। नरहरिको वर तेज लगत तेहि तेज मूँदगौ॥ पुनि नरमृगपति दौर कियो तेहि तलहि प्रहारा। सोऊ गयो बचाय सेक ढाले बलवारा॥ पुनि अकाशमें आशु अशुर उड़ अति अनखाई। हनकृपाण नरसिंह शीश युग गयो पराई॥ तासु संग नभ गये नृसिंह कर वेग अभंगा। करन लगे रणरंग उभय आकाशहि जंगा॥ कहुँ धरणि कहुं शैलमध्य कहुं सिन्धुन पाहीं। कबहुँ वनहिं उपवनहिंकूदि पुनि भवनन माहीं॥ करत युद्ध अति क्रुध होय नरहरि अति घोरा॥ चकित देव जानत न भेव चितवत चहुँ ओरा॥ रहेउ न अस कहुँठौर जहाँ दोउ युद्ध न कीन्हा। जगत कनककश्यपु नृसिंह–मय सुर–गण लीन्हा॥ कियो युद्ध नरसिंह दैत्य सुरवर्ष हजारा। सुर मुनि करैं उचार युद्ध अस कहुँ न निहारा॥ पुनि दोउ लरतहि लरत तुरत अवनीमहँ आये। निजपद जोरहिं बार बार धरणीदरकाये॥ होन लगी दिगदाह अवनि बहु लूक निपाता। ग्रसो राहु शशि रविहि काल बिनु केतुहि खाता॥

दोहा–होत भये ऐसे तहाँ, नभ महिमें उत्पात।
मानहु सुर मुनि नर सहित, भयो त्रिलोक निपात॥
गर्जत तर्जत दैत्यपति, लिये कर ढाल कृपान।
बोले श्रीनरसिंहसे, अब न बचहि तव प्रान॥
हरि जानी अब देव सब, मनमें अधिक उदास।
अट्टहास कर गर्जेऊ, शब्द सर्व गयो भास॥

महाभयानक अट्टहास शब्द करके अपने पूर्ण तेजसे उस सिकरेके समान वेगवाले अनेक शस्त्रधारी पृथ्वी आकाशके भ्रमण करनेवाले हिरण्यकशिपुके नेत्र बन्द कर अत्यन्त तीव्र वेगवाले नृसिंहजीने चपलाकी नांई चमककर उसको पकड़ लिया ॥ २९ ॥ जैसे सर्प मूसेको विना ही प्रयास सहजमें पकड़ लेता है। उस समय दैत्येन्द्र आतुरतासे चारों ओरको तड़फड़ाने लगा और छूटनेके लिये अनेक उपाय किये, परन्तु नृसिंहजीके पंजोंसे न छूट सका। उसकी खाल ऐसी कठोर थी, जो वज्रसे भी कभी नहीं कटी, उस हिरण्यकशिपुको अति निःशंक हो अंकमें भर जङ्घाओंपर धर कर सन्ध्याका समय विचारकर देहली पर खड़े होकर कहा—अरे प्रह्लादके दुःख देनेवाले! जो-जो वचन तुझको दिये थे उनमेंसे तो कोई बात नहीं है ? देख ले। न दिन है, न रात है, न पृथ्वी है, न आकाश है, न पशु है, न मनुष्य है, न वन है, न वज्र है, न शस्त्र है, न घर है, न द्वार है सब प्रकारसे विचार ले, यह कह—

दोहा—महा कुपित ह्वै नरहरी, चारों ओर निहार।
अमुर उदर निजनखनते, क्षणमें डारो फार॥

गरुड़ जैसे महाविषधर सांपको फाड़कर बगेल देता है, ऐसे ही विना परिश्रम क्रीड़ामात्रसे नृसिंहजीने हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला। देखो! भगवत्‌की अद्भुत गति सन्ध्याका तो समय था अतः न दिन था न रात थी जंघाओंपर धरकर मारा, न धरती थी न आकाश था, नखोंसे चीर डाला, न कोई अस्त्र था न कोई शस्त्र था और वह नख न जीवित थे, न मृतक थे और नृसिंह रूप जो धारण किया, न कोई पशु था न पुरुष था ॥ ३० ॥ क्रोधसे भरा विशाल रूप महाविकराल लाल-लाल प्रलयकालके कृशानुके समान नेत्र, अत्यन्त विस्तारवाला फटा हुआ मुख, मृत्युभवनके सदृश अपनी जिह्वासे अपने होठोंको चाट रहे थे और रुधिरके लगनेसे मुख लाल-लाल हो रहा था, दैत्यकी आंतोंका हार कंठमें पहिन रहे थे और जहाँ तहाँ रक्तके बुन्द जो शरीरमें लग रहे थे वे ऐसे विदित होते थे मानो पर्वतपर वीरबहूटी घूम रही हैं। और गलेमें आंतोंका हार ऐसी शोभा देता था जैसे सिंह हाथीको मारकर उसकी अँतड़ियोंका हार अपने कण्ठमें डाल लेता है ॥३१॥ श्रीनृसिंहजी महाराजने दैत्येन्द्रके हृदयकमलको नखोंके अंकुरोंसे विदीर्ण किया था, उसको तो फेंक दिया और उसके अनुचर और भृत्यगण, जो कि शस्त्र उठाये घूम रहे थे उन यूथपति और पक्षपातियोंको नखोंसे, भुजाओंसे पांवोंसे चीर-फाड़ मसल-मसल सहस्त्रोंको मारकर नष्ट कर दिया, देखिये वह तो सब शस्त्र धारी और नृसिंहजी केवल भुजाओंसे ही सब काम ले रहे थे ॥ ३२ ॥ नृसिंहजीकी सघन जटाओंसे कंपित मेघ सब फट गये, ग्रह, तारागण नृसिंहकी दृष्टिकी चमकसे छिन्न-भिन्न हो नष्ट हो गये, उनके श्वाससे मारे हुए समुद्र अपनी मर्यादाको छोड़ चलायमान हो गये और नृसिंहके दहाड़नेका शब्द सुनकर दशों दिशाओंके दिग्गज भयभीत हो चिंघाड़ने लगे ॥३३॥ जटाकी लपेटसे विमान आकाशमें रह गये थे, उससे सर्वत्र आकाश व्याप्त हो गया और उन पदोंके भारसे वसुधा पीड़ित हो डमाडोल हो गयी और उनके तेजके वेगसे पर्वत उखड़-उखड़ कर गिरने लगे, उनके वेगके प्रभावसे आकाश और दिशायें छबिहीन हो गयीं ॥३४॥ उस समय सभाके मध्यमें सर्वोत्तम राज्यसिंहासनपर श्रीनृसिंहजी महाराज विराजमान हुए, महातेज समूहोंसे पूरित जिनके सम्मुख कोई भी सामर्थ्यवान् शत्रु देखनेमें नहीं आता था, उन प्रचण्ड क्रोधी महाकराल वदनवाले श्रीनृसिंह भगवान्‌के समीप कोई

भी नहीं जा सकता था ॥ ३५ ॥ जिस समय तीनों लोकोंके कष्टदायक मस्तकके शूलके सदृश उस दैत्यनायक हिरण्यकशिपुको भगवान् वैकुण्ठनायकने मारा उस समय सब देवांगना उसका मरण सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे प्रफुल्लित जिनके मुख हो रहे थे वे वारंवार 'जय जय' शब्द पुकार-पुकार और भगवान्का अद्भुत रूप निहार-निहार आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा कर रही थीं ॥३६॥ जब कि नृसिंह भगवान्ने दैत्यराजको मारा उस समय नृसिंहजीके दर्शनके लिये सब पुरवासी और देवताओंके विमानोंकी पंक्तियोंसे सब आकाश मंडल आच्छादित हो गया, सब मिलकर दुंदुभी बजाने लगे और मुख्य-मुख्य गंधर्व गाने लगे, अप्सरायें मीठे-मीठे स्वरोंसे मनोहर गान करके सबके मनोंको मोहित करने लगीं ॥ ३७ ॥ उस समय वहां ब्रह्मा, शिव, इंद्रादिक देवता, ऋषि, मुनि, पितृ, सिद्ध, किन्नर, महोरग ॥ ३८ ॥ मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किंपुरुष, बेताल, सिद्ध, किन्नर ॥ ३९ ॥ और सब वैकुण्ठनाथके पार्षद (नन्द, सुनन्द, कुमुद, कुमुदाक्षादिक) अञ्जलियोंके सम्पुट शिरपर धरकर जहां राजसिंहासनपर महातीव्र तेजस्वी श्रीनृसिंह भगवान् विराजमान थे ॥ ४० ॥ सब देवता न तो अति दूर और न अति समीप खड़े होकर पृथक्-पृथक् भावसे संसारी जीवोंके उपकारके लिये यंत्र, मन्त्र, कवच, अष्टक, स्तोत्रोंसे श्रीनृसिंहजी महाराजकी स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच

श्लोक–नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैःस्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥४२॥

सवैया–जग जन्म औ पालन नाशनहू अपने गुणसों करि लीला करो ।
तुव शक्ति दुरन्त अनादि अहो हे अनन्तअनन्त हि रूप धरो ॥
प्रभु आप चरित्र पवित्र बड़े हैं पवित्र अमित्र न शोक धरो ।
गुण आगर सागर हो करुणा तुमको है नमामि प्रसाद भरो ॥४२॥

ब्रह्माजी बोले कि हे अनन्त ! दुरन्तशक्तिधारी, विचित्रवीर्य, पवित्र चरित्रकारी सृष्टिके उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले, अपने सत्त्वादि गुणोंसे अनेक प्रकारकी लीला रचनेवाले अव्यक्त अविनाशी परमात्मा नृसिंहजी ! आपको मेरा वारंवार नमस्कार है ॥ ४२ ॥

श्रीरुद्र उवाच

श्लोक–कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४३ ॥

दोहा–जगनाशक प्रभु कोप कर, हनेउ अल्प असुरेश ।
ता सुत की रक्षा करो, तजिये कोप रमेश ॥ ४३ ॥

महादेवजी बोले कि संसारके अन्तकालके समय आपके कोप करनेका समय है । हे भक्तवत्सल ! अभी तो आपने इस तुच्छ असुरको ही मारा है, अब आप अपने कोपको शांत करके इस शरणागत आये हुए अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करो ॥ ४३ ॥

इन्द्र उवाच

श्लोक-प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते ॥
मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४४ ॥

घनाक्षरी

असुर प्रचण्ड बरिबण्डको विनाश कैकै यज्ञनको भाग आप हमको दिवायो है ।
जगत प्रशंस मम संशयकी फांसि सरिताकोहि विध्वंस मन सुख उपजायो है ॥
यातो वहि बहुत जनात रावरेको नाथ मुक्तिहूको दास तू तो लघु ठहरायो है ।
दीन निज दासनको दारहु दुरित द्रुत ताते दयासिन्धु यह नाम प्रभु पायो है ॥

महा प्रचण्ड दैत्यका वध करके हमारे भाग हमको दिलवाये और आपके वास करनेका स्थान जो हमारा हृदयकमल सो दुराचारी असुरके डरसे व्याप्त हो रहा था उसको अभय करके हमारा चित्त प्रफुल्लित किया, जो सदा कालके वशीभूत रहता है ऐसा त्रिलोकीका राज्य आपके भक्तोंको क्या वस्तु है ? हे नाथ ! वे तो मुक्तिको भी आपके आगे कुछ वस्तु नहीं समझते, फिर और सुखोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥ ४४ ॥

ऋषय ऊचुः

श्लोक-त्वं नस्तपःपरममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्याशरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥४५॥

छन्द भुजंगप्रयात

रचै विश्वको जो हिये धारि धाता, जेहीते तुम्हारौ विभौ जानि जाता ।
पढ़ाये हमैं आपने वेद सोई, महादुष्ट सो दैत्यने दीन खोई ॥
धरों नारसिंहै स्वरूपै कृपाला, हनो दैत्य दुष्टै रहो जो कराला ॥
दिये हैं हमैं फेरके वेद चारो, निजै दासको आशु ही कष्ट टारो ॥४५॥

सब ऋषि बोले कि हे आदिपुरुष ! हे शरणागतरक्षक ! आपके आत्मामें मिला हुआ जो यह विश्व है इसको रचकर उस तेजोरूप तप करनेकी आपने हमको आज्ञा दी, सो हे दीनवत्सल ! वह तप अभीतक इस असुरने विनाश कर रखा था, सो आज हमारी रक्षाके लिये आपने नृसिंह रूप धरकर फिर तप करनेके लिये हमको आज्ञा दी ॥ ४५ ॥

पितर ऊचुः

श्लोक-श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
र्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ॥
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छे-
त्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४६ ॥

छन्द पद्धरी

सुत पितहि दियो जो पिण्डदान, सो लियो खाय यह शठ महान।
जो दीं तिलांजलि तीर्थमाहिं, यह दैत्य पान कर लीं तहांहिं॥
निजनखन असुरको पेट फार, सो हमहिं दियो निजजन विचार।
जय जय नृसिंह जय दीनबन्धु, जय धर्मपाल जय दयासिन्धु॥ ४६॥

सब पितर बोले कि हमारे पुत्र पौत्रादिकोंके दिये हुए श्राद्धके पिण्ड यह असभ्य दुष्ट बलात्कार हमसे छीनकर खा जाया करता था और कभी किसी तीर्थमें जाकर वह तिलांजलि और जलदान दिया करते थे तो उन तिलोंको वह चबाकर जल पी लिया करता था, आज आपने उस असुरका पेट नखोंसे चीरकर जो हमारे पदार्थ थे वह आपने आंतोंसे और रुधिरसे निकालकर हमको दिये, इसलिये हे सर्व धर्मपालक! आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं॥ ४६॥

सिद्धा ऊचुः

श्लोक-यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन॥
नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह॥ ४७॥

छन्द तोटक

अणिमादिक जो गण सिद्धि सबै, तपके बल छीन लियोसु तबै॥
अतिगर्व भरो नहिं काहु डरो, सब लोकनको अतितंग करो॥
नखते तेहिको उर फार हरी, सब लोकनकी अति भीति हरी॥
तुम्हरे पदके हम दास अहैं, नित आप सदा निहशंक रहैं॥ ४७॥

सब सिद्ध बोले कि जो हमने अपने योगबलसे अणिमा महिमादिक सिद्धियोंको प्राप्त किया था वह सब इस राक्षसने हर लीं, उस अनेक प्रकारके गर्ववाले गर्वित दैत्यका उदर नखोंसे विदीर्ण किया ऐसे आपके नृसिंह रूपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं॥ ४७॥

विद्याधरा ऊचुः

श्लोक-विद्यां पृथग् धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः॥
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम्॥४८॥

छन्द वामन-सब योग विद्या जौन॥ यह असुर हर लियो तौन॥
गरवी परम बलवान॥ जो रहेउ मूर्ख महान॥
पशुसरिस ताको नाथ॥ रणमें हनेउ निज हाथ॥
नरहरी तुमहिं प्रणाम॥ दायक सदा सुखधाम॥४८॥

विद्याधर बोले कि पृथक् ध्यानसे अनन्त ध्यानादिक विद्या जो हमने सीख रखी थी उन विद्याओंको बलवीर्यसे गर्वित इस अज्ञानीने नहीं करने दी थीं, आज आपने उस दुष्टको रणमें पशुवत् मारकर विध्वंस कर दिया; ऐसी माया करनेवाले श्रीनृसिंहजीको वारम्वार हम नमस्कार करते हैं॥ ४८॥

नागा ऊचुः

श्लोक-येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥
तद्वक्षः पाटनेनाऽऽसां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥

छन्द-इन वैर कियो हमसे भारी, हर ली हमारि सम्पति नारी ।
उत्तम उत्तम सब वस्तु हरी, घरवारहि छीन अनीति करी ॥
तेहिको उरफार विनाश कियो, घर बैठेहि आनके दर्श दियो ।
सब देवनकी प्रतिपाल करी, जय जय श्रीनरसिंह हरी ॥४९॥

सब नाग बोले कि जिस दुष्टने हमारे सब स्त्रीरत्न और उत्तम पदार्थोंको हर लिया था, वह आपने हमारे उपकारके लिये नृसिंहरूप धारण कर उस पापीका पेट फाड़कर हमको और इन सब स्त्रियोंको प्रफुल्लित कर परमानन्द दिया ऐसे जो आप नृसिंहरूपधारी हैं उन आपको हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

मनव ऊचुः

श्लोक-मनवो वयं तव निर्देशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किंकरान्॥५०॥

छन्द रोला-हम हैं मनु प्रभु सदा, बावरे शासनधारी ।
तिनको यह दितिनन्द दियो दुख अतिशय भारी ॥
ता उर निज कर फार दर्द हियकी हरि लीनी ॥
कहा करैं प्रभु कहो आप आज्ञा सुखभीनी ॥ ५० ॥

सब मनु बोले-हे नृसिंहदेव ! हम सब मनु आपकी आज्ञानुसार शास्त्रकी रीतिसे अपने धर्म-कर्म जो कर रहे थे, उन सब वर्णाश्रमोंकी मर्यादा दुष्ट हिरण्यकशिपुने विनष्ट कर दी, इस महादुष्टका आपने नखोंसे वध किया, यह काम आपने बहुत ही अच्छा किया, क्योंकि वर्णाश्रमोंकी मर्यादायें बँधी रहीं । हे प्रभो ! हम जो आपके दास हैं, हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हमलोग अब क्या करें ? ॥ ५० ॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धा ॥
स एष त्वयाभिन्नवक्षा नु शेते जगन्मंगलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ५१ ॥

कुण्डलिया-परजापति हमकहँ रचेउ, जगत सृजनके हेतु ॥
ताको सिरजन नहिं दियो, खेचर दानवकेतु ॥
खेचर दानवकेतुसरिस कीन्हेउ उतपाता ॥
ताको नखन विदारि प्रगट यश किय अवदाता ॥
अब दाता हो तुमहिं मोदके नहिं आचरजा ॥
सत्त्वमूर्ति अवतार करहु मंगल अब परजा ॥ ५१ ॥

सर्व प्रजापति बोले-हे प्रजेश ! हमको आपने रचा और आपकी प्रेरणासे हम प्रजाको रचते थे, परन्तु उस दुष्टके प्रतिषेध करनेसे हम लोग उसको त्याग अपने-अपने स्थानोंमें छिप-छिपकर बैठे रहे थे, अब उस दुष्ट असुरका आज आपने उदर विदीर्ण कर वध किया, अब हम प्रसन्नतापूर्वक आपकी आज्ञानुसार प्रजा रचेंगे। हे सत्त्वमूर्तें ! आपका अवतार संसारके मंगलके लिये है ॥ ५१ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

श्लोक-वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एषनीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थःकुशलाय कल्पते ॥५२॥

छप्पय-नाचत गावत रहे सबै हम तुम दरबारहि ॥
निरखि आपको लहत रहे आनंद अपारहि ॥
तिन हमको कर निज अधीन दानव बलवारो ॥
निजहि नवाय गँवाय कियो निज सजित अखारो ॥
यहि दोषहिते यह नाश भो कुशल कि कुपथहिं पग दिये ॥
अस कहत सर्व गन्धर्वगण प्रभुहि दण्डवत बहु किये ॥ ५२ ॥

सब गन्धर्व बोले-हे समर्थ ! हम जो आपके नट नाटक बजाने और गानेवाले हैं, हमको जिस दैत्यने अपने बल, वीर्य और पराक्रमसे अपने वशीभूत कर लिया था उस दुष्ट दानवको आपने इस गतिको पहुँचाया ऐसा ही करना चाहिये। कहीं पाखण्डमें स्थित होनेवालेकी भी कुशल हो सकती है ? अर्थात् कभी नहीं ॥ ५२ ॥

चारणा ऊचुः

श्लोक-हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५३ ॥

छन्द-पदारविन्द रावरो भवार्णवैनकामनो ॥
तेही सदाहि धावहीं पुनीत प्रीति छामनो ॥
कियो विरोध साधुते अतीव दानवेश है ॥
कियो विनाश ताहिते कुपन्थमें कलेश है ॥ ५३ ॥

सब चारण बोले-हे नृसिंहजी महाराज ! भक्तजनोंके दुःख देनेवाले इस पापी दैत्य हृदय-भेदीको आपने मारा यह बहुत अच्छा किया, इस लिये हे दीनबन्धो भगवन् ! संसारमें मोक्ष देनेवाले जो आपके मोक्षदायक चरणकमल हैं, उन चरणारविन्दोंकी हम सब शरणागत हैं ॥५३॥

यक्षा ऊचुः

श्लोक-वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥ ५४ ॥

सोरठा–हम तुम अनुचर यक्ष, तिनको यह वाहक कियो ॥
मुनि तनु ताप प्रत्यक्ष, नाशो नरहरि देहधरि ॥ ५४ ॥

सब यक्ष बोले–हे नृसिंहजी महाराज ! पचीस तत्त्वोंके अधीश हम लोग आपकी इच्छानुसार कर्म करनेमें आपके मुख्य सेवक थे, इस दुष्ट दितिपुत्रने हमको अपना भार उठानेवाला अनुचर बनाकर रक्खा था। आपने अपने भक्तोंका संताप देखकर इस परिताप देनेवाले दुष्ट राक्षसको आज मारकर हमारा ताप दूर किया ॥ ५४ ॥

किंपुरुषा ऊचुः

श्लोक–वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५५ ॥

चौबोला–हम किंपुरुष आप पर पूरुष यह कुपुरुष भयो तीजो।
जाको कियो साधु सब धिक धिक निज कर्मनते छीजो॥
ताको मार कोप करियत अति आपहि बड़ी न बाता।
परमातमा परहिं हम पाँयन प्रभु पौरुष विख्याता॥५५॥

किंपुरुष बोले–हम किंपुरुष हैं और आप आदि पुरुष पुरुषोत्तम हैं, हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं ! यह कुपुरुष (नीच) हिरण्यकशिपु तो उसी समय मर चुका था जब कि इसका साधु पुरुषोंने निरादर किया और धिक्कार दिया था ॥५५॥

वैतालिका ऊचुः

श्लोक–सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे।
यस्तां व्यनैषीद्भृशमेषदुर्जनो दिष्ट्याहतस्ते भगवान्यथाऽऽमयः ॥५६॥

छन्द झूलना

देव दरबारमहँ गाय तुव अमल यश, किये सब लोग शुचि अति सदाहीं।
ताहिते पाय सत्कार जेहि पार नहिं, रही संसारकी भीति नाहीं ॥
हमहिं इस असुरने दियो है दुसह दुख, जीति सबलोक विन शोकमाहीं।
धार नरसिंह वपु तासु वध आप किय, दियो कर दूर मम बिथाकाहीं ॥५६॥

वैतालिक लोग बोले कि सभाओंमें और यज्ञोंमें आपका निर्मल यश गानेसे बड़ी पूजा हम लोगोंको प्राप्त होती थी और यह दुर्जन दुष्ट हमारी पूजाको ले लिया करता था और यशका विनाश करता रहता था, आपने इसको मारकर हमारे रोगका नाश कर दिया, आपका कल्याण हो जो सब दिनका ताप आपने हमारा मिटा दिया ❋ ॥ ५६ ॥

---

* एक वार्ता—उस समय वैतालोंमेंसे कोई बोला—महाराज ! अब न जाने कोई दुष्ट फिर भी उत्पन्न हो जाय इसलिये बारंबार हमारी सबकी यह विनय है कि सब प्राणिमात्रको अपने परमधामको ले चलो, तब नृसिह बोले कि चलो। कौन-कौन हमारे परमधाम को चलते है ? तब एक वैताल प्राणियोंके बुलानेको बाहर निकला; देखा तो एक शूकरी कीचमें पड़ी लोट रही है, वेतालने कहा—हे शूकरी ! तू नृसिंहके निकट चल, हम तुझको वैकुंठ भिजवायेंगे वह बोली कि वैकुंठमें क्या है ? वैताल बोला कि अरी मूर्ख ! तू नहीं जानती कि वैकुण्ठमें क्या है ? वैकुण्ठमें बड़े सुख हैं। सुन्दर-सुन्दर षट्रस भोजन मिलते हैं, पीने को अमृतके समान स्वच्छ शीतल जल मिलता है, बैठनेके लिए उत्तमासन, सोनेके लिये दूध फेनसम शय्या, नित्यप्रति श्रीनारायणके दर्शन, दिन-रात भगवान्का गुणानुवाद, इसके अतिरिक्त और अनेक प्रकारके आनन्द भोगनेमें आते है। यह सुनकर वह शूकरी बोली कि तुमने विष्ठेका नामतो लिया ही नहीं यह तो कहो कि विष्ठा वहाँ–

किन्नरा ऊचुः

श्लोक-वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५७॥

छन्द त्रिभंगी

हम किन्नर सारे दास तुम्हारे, पद रति धारे सुख सारे ।
तिनको खलभारी कोप पसारी, मो दुखकारी जय धारे ॥
नरहरि जग भासी ताहि बिनासी, दिय सुखरासी हमकाहीं ।
यहि भांति सदा ही तुव भुजछाहीं, भय कछु नाहीं हमपाहीं ॥ ५७ ॥

सब किन्नर बोले कि हे निरंजन ! हे भक्तभयभञ्जन ! हम सब किन्नरगण आपके अनुचर हैं, इस दुष्ट असुरने हमको भार उठानेवाला अपना किंकर बनाया था और हमारी ताड़ना करता था । हे हरे ! आपने महाकष्टरूप इस दुष्टका वध किया, हे नराकार शार्दूल ! हे नाथ ! आप हमारा मंगल करो ॥ ५७ ॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

श्लोक-अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥५८॥

छन्द रूप-घनाक्षरी

आजही निहारो रावरेको रूप ऐसो नाथ, कबहूँ न देखो हम आजतक निज नैन । जन रखवारे और सन्तनके अतिप्यारे, दयाकरन वारे देनवारे विश्व मोद ऐन ॥ आय पारषद यह विप्रवर शापहीते, भयो असुरेश जीतो लोक मन कियो भै न । ताको वध कीनो अहै सत्य तापै कृपा कीनो, वैरभाव नेकहू परत जान सोह मैं न ॥ ५८ ॥

विष्णु भगवान्के पार्षद बोले कि हे शरणागत-प्रतिपालक ! यह नृसिंहरूप महा अद्भुत तो हमको आपने भला दिखाया जो आजतक कभी नहीं देखा था; सब लोकोंका मंगलकारी आनन्ददायक यह स्वरूप है । हे विधिकर ! यह तो वही हिरण्यकशिपु आपका दास था कि जिसको सनकादिकोंने शाप दिया था, इसका आपने विध्वंस किया, यह तो आपने इसपर बड़ा ही अनुग्रह किया, परन्तु हमने अत्यन्त सुख माना जो इसके द्वारा हमको आपके इस अद्भुत रूपका दर्शन हो गया ॥ ५८ ॥

-खानेको मिलता है या नहीं । वंताल बोला-अरी नीच ! वहां ऐसी निषिद्ध वस्तुका क्या काम, वहां तो मेवा मिष्ठान्न सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न इच्छानुसार मिलते हैं । शूकरी बोली कि क्या मैं वैकुण्ठमें आग लगाऊँ, चूल्हेमें जाय मेवा मिष्ठान्न, ऐसे वैकुण्ठ जानेकी मेरी इच्छा नहीं, वहां से तो मैं यहीं सुखी हूँ, भोजन तो भरपेट मिलता है, घरके कुटुम्बमें मिलजुल कर रहती हूं, दश बारह बेटी-बेटे संग रहते हैं, इससे अधिक और कौन सा वैकुण्ठ है ? शूकरीके रूखे वचन सुन वंतालने नृसिंहजीसे कहा कि महाराज ? शूकर तक भी वैकुण्ठका जाना स्वीकार नहीं करते, नृसिंहजी बोले कि यह जीव जिस योनिमें जहां जन्म लेता है उसी स्थान को वैकुण्ठ समझता है ।

भजन

प्रभु तव नाम कोटि भयहारी ।
अगणित पुरुष तरे हरि हरि कह, निशिदिन रटत शेष त्रिपुरारी ॥ १ ॥
वाल्मीकि नारद सनकादिक, गावत गुण ब्रह्मा मुख चारी ।
जन प्रह्लाद याद जब कीनो, खम्भ फार भये प्रकट खरारी ॥ २ ॥
गजको ग्राह गह्यो जब जलमें, तब रारा कह गिरा उचारी ।
इस विपत्तिमें हे रघुनन्दन, तुम बिन हरे कौन दुख भारी ॥ ३ ॥
हे मुकुन्द ब्रजचन्द दयानिधि, यह कह जब द्रौपदी पुकारी ।
यह दुःशासन दुष्ट सभामें, आज लाज चहै लेन हमारी ॥ ४ ॥
झटपट आ पट अधिक बढ़ायो, अपने जनको जान दुखारी ।
शालिग्राम शरण तजि आयो, राखो चरण शरण बनवारी ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम–शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते हिरण्यकशिपुदैत्यवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–नवमाध्यायमें हरिनिकट, भेजो अज प्रह्लाद ।
क्रोध शांत कर विनय की, हरिकी सह आह्लाद ॥

श्रीनारदजी बोले कि क्रोधके वेगसे अत्यंत भयंकर श्रीनरसिंहजीको देखकर ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि देवताओंमें कोई सम्मुख न जा सका, जो सदा समीप रहते थे वे सब देवता भी दूर ही खड़े हुए स्तुति कर रहे थे ॥ १ ॥ निदान सब देवता मिलकर श्रीलक्ष्मीजीके निकट गये और हाथ जोड़कर बोले कि हे जननि ! श्रीनृसिंहजीके तेजसे त्रिलोकी भस्म हुआ चाहती है, आप चलकर उनके क्रोधको शान्त कीजिये, यह कह साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीको नृसिंहजीके सम्मुख भेजा उस महाभयंकर रूपको देखकर लक्ष्मी भी पास न जा सकीं, क्योंकि ❋ ॥ २ ॥

चौ०–देख कराल भयंकर आनन ❋ जो न लखो दृग सुनो न कानन ॥
भवको भय उपजावनहारो ❋ जो न आजलों किनहुँ निहारो ॥

तब भागवत प्रह्लादको निकट बैठा हुआ देखकर ब्रह्माजी बोले कि, हे पुत्र ! तेरे ही कारण तेरे पिता अत्यन्त क्रुद्ध हो रहे हैं, उनके समीप तू ही जा और उनके क्रोधको शांत कर ॥ ३ ॥ हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरपर धारण कर महाभागवत वह भोलाभाला प्रह्लाद हाथ जोड़कर शिर नवाकर सहज-सहजमें नृसिंहजीके निकट जाकर दंडवत् प्रणाम किया ॥४॥ तब अपने चरणोंमें पड़े हुए उस बालक प्रह्लादको देखकर श्रीनृसिंहजीने कृपासे परिपूर्ण होकर उसको उठा लिया और उसके शिरपर कालरूप सर्पके भयसे डरनेवाले बुद्धिमानोंका अभयदायक

❋ शंका—प्रह्लादके ऊपर तो नृसिंह भगवान्का परम् अनुग्रह था, फिर शीघ्र क्रोधको त्यागकर वरदान क्यों नहीं दिया, ऐसी प्रीति करके फिर वर देनेमें विलम्ब क्यों किया ?

उत्तर—नृसिंहजीने शीघ्र क्रोध त्याग नहीं किया और प्रह्लादको शीघ्र वरदान भी नहीं दिया, इसका कारण यह है कि लोकमें प्रह्लादकी भक्तिकी प्रशंसा करानेके लिये, क्रोध त्यागनेमें और वरदान देनेमें विलंब किया, लोकमें सब ऐसे वचन कहेंगे कि सब देवताओंने नृसिंहजीकी स्तुतिकी परन्तु क्रोध शांत नहीं हुआ, जब प्रह्लादने स्तुतिकी तब उसी समय क्रोध को त्याग दिया, ऐसा नृसिंह भगवान्को प्रह्लाद प्यारा था, इसलिये क्रोधके त्यागनेमें विलम्ब किया और इसीलिये तुरन्त वरदान भी नहीं दिया ।

अपना करकमल रखा ॥५॥ श्रीनृसिंहजीके हस्तकमलके स्पर्शसे उनकी सब अशुभ वासना दूर हो गयी और उसी समय उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया, तब हर्षितचित्त, रोमावली खड़ी हो गयी, अङ्ग प्रफुल्लित हो गया, आंखोंमें प्रेमके आंसू भर आये और अति आनन्दित हो भगवान्‌के चरणकमलका ध्यान करने लगा ॥६॥ एकाग्रमनसे स्वस्थ सावधान होकर प्रेमभरी गद्गद वाणीसे वह भक्त प्रह्लाद अपने लोचन और अन्तःकरणको श्रीनृसिंहजीके स्वरूपमें लगाकर भगवान् वासुदेवकी प्रार्थना करने लगा ॥७॥ प्रह्लाद बोला, कि सत्त्वगुणमें एकाकार बुद्धिवाले ब्रह्मादिक देवताओंके गण, मुनि और सिद्ध पुरुष गम्भीर वाणियोंसे अनेक महागुणोंसे आज-तक जिनकी आराधना और प्रार्थना करनेको समर्थ नहीं होते, वे उग्ररूपधारी नृसिंह भगवान् मुझ दानव जाति मन्दबुद्धिपर किस प्रकार सन्तुष्ट होंगे ? तो भी उनकी कृपासे उनकी स्तुति करता हूं ॥ ८ ॥ धन, जाति, रूप, तप, पांडित्य, श्रुत, तेज, ओज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग इन सबमें कोई भी उपाय परमेश्वरकी आराधना करने योग्य नहीं, क्योंकि भग-वान् तो केवल भक्तिभावके भूखे हैं; देखो, सुदामाके तन्दुलोंपर ही प्रसन्न हो गये ॥९॥ चाहे चार वेदका विभागकर्ता, अनेक यज्ञोंका करनेवाला, अनेक गुणसम्पन्न, धनमें कुबेरके समान और जातिका ब्राह्मण हो, परन्तु भगवद्भक्तिसे विरुद्ध हो जो वह ब्राह्मणोंकी गणनामें नहीं है और जो जन जातिका चाण्डाल, महापापी और नित्य सुरापी भी हो, परन्तु अपने मन, वचन, कर्म, तन, धन और अपने प्राणोंको नारायणको समर्पण कर देता है, वह महाश्रेष्ठ है और धन्य है ! वह श्वपच भी अपने सब परिवारको संसार-सागरसे तार सकता है और अधिक अभिमानी और अज्ञानी ब्राह्मण भी आपके चरण कमलसे विमुख रहनेवाला किसी प्रकार अपने परिवारको पावन और पवित्र नहीं कर सकता और वह धन भी केवल तनका पालन करनेवाला है, कुछ मङ्गलदायक नहीं है ॥ १० ॥ हे प्रभो ! आपके अज्ञानी जीवोंसे अपने लिये आप कुछ पूजा भेंट नहीं मांगते । आपको तो किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि आप तो अपने ही स्वरूपके भागसे परिपूर्ण हो और दयालु हो । मनुष्य जो-जो पदार्थ भगवान्‌के अर्थ प्रदान करता है और आदर-सम्मानसे भगवान्‌को चढ़ाता है, वह सब अपना ही प्रयोजन सिद्ध करता है, जैसे अपने मुखके तिलकादिककी शोभा अपने ही प्रति-बिंबकी कांतिको झलकाती है, ऐसे ही जो प्राणी जिस वस्तुको भगवत् अर्पण करता है, वह सब उसी प्राणीको मिल जाता है ॥११॥ इसलिये मैं जो अधमबुद्धि मायाके जालमें फँस रहा हूं । आपकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता, परंतु अपनी मति अनुसार (जैसी मेरी बुद्धि है) आपकी स्तुति करता हूं । आपके चरित्र गानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, इसलिये मैं आपकी स्तुति करता हूं ॥१२॥ हे ईश ! हमारे समान इस स्वरूपसे डरते हुए यह सब ब्रह्मादिक देवता आपके दास हैं, सत्त्वगुणधाम अवतारोंकी जो मांगलिक क्रीड़ा है, उसको संसारके मंगलके अर्थ और अपने आत्माके सुखके लिये आप करते हो ॥१३॥ इसलिये हे शान्तस्वरूप ! अब आप अपने क्रोधको शान्त करो, क्योंकि हम लोगोंको दुःख देनेवाले असुरको आपने मार ही लिया; फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता है ? वृश्चिक और सर्पको जब कोई मार डाले तो साधु लोगोंको बड़ा आनन्द होता है, ऐसे ही इस दुष्ट हिर-ण्यकशिपुके वध करनेसे साधु लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ । हे नृसिंहजी, अब सब लोग आपके समीप आये हैं । ये अपना भय दूर करनेके लिये आपका स्मरण करते हैं, आपके इस अद्भुत स्वरूपका ध्यान करनेसे ही भय दूर हो जायगा, फिर अब क्रोध करनेकी क्या आवश्यकता

है ? ॥१४॥ हे अतीत ! यह आपका रूप–जो महाभयंकर मुख, जीभ सिंहकीसी, सूर्यके समान लाल-लाल नेत्रोंसे मानो अग्निकी ज्वाला भड़क रही है। बंक भ्रुकुटियोंका चढ़ाना और अतिविकराल डाढ़ोंको देखकर भय दिखायी देता है, आँतोंकी माला पहननेसे और सटाके बाल रुधिरसे भीगे हुए, केलेके पत्रोंके समान कान ऊँचे-ऊँचे खड़े दिखायी देते हैं, नखोंके अग्रभाग वैरियोंके उदरके विदीर्ण करनेवाले महागंभीर शब्दसे सब दिशाओंके दिक्पाल भय मानकर कंपायमान होते हैं, इनका तो मुझको कुछ भय नहीं ॥१५॥ परंतु हे कृपावत्सल ! इस संसारचक्रके दुःसह दुःखसे मैं महादुःखी हूं, आपके चरणारविंदकी कृपासे साधारण संसारचक्रका मुझको कुछ भय नहीं, परंतु अपने कर्मोंके बंधनमें जो मैं बँधा हिंसक जीवोंमें पड़ा हुआ हूं, इस बातसे मेरा मन बहुत डरता है। हे कृपालु ! मुझपर दयालु होकर आप अपने मोक्षरूप और शरणरूप चरणशरणमें मुझको कब बुलाओगे ? ॥ १६ ॥ हे भूमन् ! इस प्रिय-अप्रिय पदार्थोंके वियोग-संयोगसे जो प्रकट हुई शोकरूप अग्नि है उस अग्निसे सब योनियोंमें रात-दिन जला करता हूं और संसारमें दुःख दूर होनेके लिये जो अनेक यत्न हैं वे भी सब दुःखस्वरूप हैं, कभी पित्त अधिकहो जाता है, कभी बात बढ़ जाता है, कभी कफ घेर लेता है, यह देहाभिमान भटक रहा है। इसलिये हे सत्तम ! अब आप दासभाव सजीवन मूल औषध बताओ, जिससे फिर यह दुःख मुझको न व्यापे ॥१७॥ हे प्रभु ! संसारके बन्धनोंसे मोक्ष पाकर आपके चरणशरणमें रहनेवाले महात्मा पुरुषोंके सत्सङ्गसे परम सुहृद और परम गूढ ब्रह्माजीके मुखसे पाये हुए आपके अद्भुत चरित्र सम्बन्धी कथाओंका अभ्यास करते-करते इस संसार-सागरके महाकठिन दुःखोंसे धीरे-धीरे मैं भी पार उतर जाऊँगा अर्थात् आपकी नामरूप नौकापर चढ़कर पार उतरना क्या बड़ी बात है ? ॥१८॥ हे नृसिंह ! बालककी रक्षा माता-पिता कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते, रोगीको ओषधि बचा भी सकती है, और मार भी सकती है, समुद्रमें डूबते हुएको नाव निकाल भी सकती है और डुबो भी सकती है, परन्तु आपकी रक्षा सर्वोपरि है। रोगियोंके कष्ट दूर करनेके लिये संसारमें अनेक उपाप और अनेक ओषधियाँ हैं, परन्तु आपकी इच्छा विना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। सबका यही तात्पर्य है कि जब शरीरधारी आपकी उपेक्षा करे तो उसको दुःख है और आपकी चाहना करे तो सुख है॥१९॥भिन्न-भिन्न स्वभाववाले ब्रह्मादिक देवता अथवा उनसे पीछे जो उत्पन्न हुए पिता-पितामहादिक जो कोई पुरुष जिस कालमें, जिस हेतुसे, जिस सम्बन्धसे, जिसके लिये, जिस प्रकारसे, जिसकी प्रेरणासे जो कुछ होता है, वह सब आपका ही स्वरूप है ॥२०॥ पुरुषको काल द्वारा प्रेरित जिसके गुण हैं ऐसी यह माया अपने अनुसार काल करके कर्ममय, वेदमय मनको रचती है और मायासे प्रेरित सोलह विकाररूप जिसमें आरे; ऐसे संसाररूप चक्रवाले मनको आपकी कृपा विना कौन तार सकता है ? ॥ २१ ॥ हे ईश्वर ! हे जगदीश ! अपनी चैतन्य शक्तिसे सदा बुद्धिके गुणोंको जीतनेवाले, अपनी सर्वगुण मयी मायाके प्रेरक, कार्य और साधनोंके साधक, सर्व शक्तियोंको अपने आधीन करनेवाले आप हैं और मैं जो इस मनमोहिनी मायासे सोलह आरेवाले संसार चक्रमें पड़ा हुआ कोल्हूके भीतर गन्नेकी नाई पिल रहा हूँ, अब हे शरणागतवत्सल ! मुझ शरणागत मन्द बुद्धिके मनको मारकर शीघ्र मुझे अपनी ओरको खींचो क्योंकि रस निकल चुका है, कुछ सूक्ष्म रस शेष रहा है, जो यह भी निकल गया तो फिर किसी कामका न रहूँगा ॥ २२ ॥ हे विभो ! सब स्थान पालकोंकी आयु, लक्ष्मी, वैभव, स्वर्ग

जिनकी यह प्राणी सदा इच्छा करते रहते हैं, उनको तो मैंने सब प्रकार देख लिया, क्योंकि वह सब तो मेरे पिताके कुपित हास्यसे और चढ़ी हुई भ्रूभंगमात्रसे ही एक क्षणमें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया, उस सर्व संहारी मेरे पिताको आपने विना शस्त्र नखोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ २३ ॥ इसलिये मैं अज्ञानी किसी बातको न जाननेवाला प्राणियोंके आशीर्वादको ब्रह्मा पर्यंतकी आयुको, लक्ष्मीको, इंद्रियोंसे भोगनेवाले सुखको और संसारके अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादि भोगोंको, भोगनेकी मेरी इच्छा नहीं और सिद्धियोंको भी मैं नहीं चाहता, क्योंकि वे भी आपके कालरूप प्रबल पराक्रमसे खंडित होनेवाली हैं, इसलिये हे प्रभो ! मुझको तो आप अपने दासोंके दासोंकी चरण शरणमें रखना ॥२४॥ कानोंसे कानोंको सुख देने वाले अन्तमें मृगतृष्णारूप इस आशीर्वादसे क्या प्रयोजन है ? अनेक रोग जिससे उत्पन्न हों ऐसे शरीरसे क्या प्रयोजन है ? यद्यपि इस बातको सब जानते हैं, तो भी लवमात्र मधुर कामरूप अग्निके मुखमें लवलीन हैं, इसको दूर नहीं कर सकते और जो विद्वान् हैं उनको किसी प्रकार वैराग्य नहीं होता, वे तो पंडित नहीं हैं, किन्तु मूर्ख हैं। हे प्रभो ! आपकी माया बड़ी बलवती है ॥२५॥ हे नृसिंहजी महाराज ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ तो मेरा देह, तमोगुणकी खानवाले राक्षसवंशमें मेरा जन्म सदा दैत्योंके बालकोंका संग, फिर कहां तो मैं और कहां आपका अनुग्रह ? जिस अनुग्रहसे अभयदायक दुष्टदमन आपकी भुजाओंकी छाया जो कि आजतक ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी अपनी परमप्यारी पत्नीके ऊपर नहीं की थी, वह उन भुजाओंकी छाया आज आपने मेरे ऊपर की॥२६॥हे प्रभो ! आप समदर्शी हैं, आपके यहां दुर्भाव नहीं है, ब्रह्मादिक देवता उत्तम हैं और यह दैत्य नीच है, यह बुद्धि अधम लोगोंकी है आपकी नहीं क्योंकि आप तो सर्व जगदाधार और सबके सुहृद् हो, तो भी कल्पतरुके समान जो जैसी सेवा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। आपकी कृपा कल्पद्रुमके सदृश है और कल्पद्रुमको सब इकसार है, तो भी जो मनुष्य कल्पवृक्षके नीचे वास करते हैं, वे मनोवांछित फल पाते हैं, इसी प्रकार आपको सब एक सार हैं, परंतु सेवकोंको सेवाके अनुसार फल देते हो, आपके यहां कुछ दुर्भाव नहीं॥२७॥हे नाथ ! जिस प्रकार आपने मुझको संसाररूप कूपमें पड़ा देख अवतार धारण किया और मुझको अपनाया इसी प्रकार नारदजीने भी मुझे संसाररूप भयंकर सर्पवाले अँधियारे कूपमें पड़ा देखा और यह भी जाना कि विषयानुरागी लोगोंके कुसंगसे अन्धा होकर इसमें गिरगया और इसके सब अंग भुजङ्गने डस लिये, उसीके विषसे यह ऐसा बेसुध हो रहा है कि उस कूपको ही अपना घर समझ रखा है, उस समय उन्होंने भी मेरे ऊपर दया दृष्टि करके मुझे उस कूपसे बाहर निकाला, मैं आपके भृत्यलोगोंकी सेवा कैसे त्याग दूँ ?॥२८॥ हे अनन्त आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की और मेरे पिताको मारा, अपने भृत्य नारदका वाक्य सत्य करनेके लिये यह अद्भुत अवतार लिया, क्या इस बातको मैं नहीं जानता ? खोटा कर्म करनेकी इच्छा करके मेरा पिता खड्ग हाथमें लेकर बोला कि तू किसकी आराधना करता है ? मुझसे परे कौन ईश्वर है जिसको तू अपना रक्षक बतलाता है ? उसको मुझे दिखा मैं अभी उसको मारूंगा और जो नहीं बतायेगा तो तेरा शिर काट डालूंगा, अत एव आपने अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और अपने भक्तोंको अभय करनेके लिये और मेरा वचन सत्य करनेके लिये उसी समय खम्भ फाड़कर प्रकट हुए, क्या इस बातको नहीं जानता ? ॥२९॥ हे जगदाधार ! केवल एक आप ही जगदाधार और जगत्रूप हो, क्योंकि इस जगत्के आदि और अंतमें एक आपही

रक्षक हो और मध्यमें भी आप ही हो। आप अपनी मायाके गुणोंसे इस विश्वको रचकर नानाप्रकारसे उन गुणोंके दृष्टि आते हो और अन्तर्यामी रूपसे सब अचर रूपमें व्याप्त हो रहे हो, मायाके गुणोंसे भिन्न-भिन्न रूप आपका प्रतीत होता है। कोई शत्रु समझता है, कोई मित्र समझता है, आपके भेद अपार हैं, उन भेदोंको कोई समझ नहीं सकता॥३०॥हे ईश! सत्-असत् आप ही हो और यह सब मायाके गुण हैं, अर्थात् मायासे भिन्न नहीं हैं, आप जगत्से भिन्न भी हो तो जगत्‌रूप आप ही हो और यह सब मायाके गुण हैं। यह मेरा है, यह पराया है, ज्ञानदृष्टिसे देखो तो कुछ न अपना है, न पराया है, सब एक रूप हैं। वृक्ष जैसे धरामय बीजरूप है, बीज सूक्ष्म बीजरूप है और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप है, इसी प्रकार यह जगत् पञ्च महाभूतरूप है, पञ्चमहाभूत अपने सूक्ष्मभूत रूप हैं और सूक्ष्मभूत ब्रह्मरूप है जो पदार्थ जिससे उत्पन्न हो वा जिससे प्रकाशित हो, अथवा जिसमें लय हो वह तद्रूप होता है ॥३१॥महाप्रलयके जलमें इस विश्वको रखकर आप अपने सुखका अनुभव करते समय अचेष्ट होकर योगसे दृष्टिको मीचकर स्वरूपके प्रकाशसे निद्राका पराभव करके आत्माकी चतुर्थ (तुरीय) अवस्थामें स्थित होकर तम और सब गुणोंका संयोग त्यागकर शयन करते हो॥३२॥अपनी कालशक्तिसे प्रकृतके गुणोंकी प्रेरणा करते हो उन्हींका स्वरूप यह जगत् है, जब आपकी इच्छा होती है तब प्रलयसम्बन्धी जलमें शयन करते-करते समाधिसे निवृत्त होकर आपके नाभिकमलके सूक्ष्म बीजमेंसे जैसे बड़ा बड़का वृक्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रलयके जलमेंसे महाकमल उत्पन्न होता है; जिस समय शेषनागके शयनसे आप जागतेहो ॥३३॥ उस कमलमेंसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तो आँख खोलकर सब ओरको देखा, परंतु सिवाय कमलके और कुछ देखनेमें नहीं आया, क्योंकि स्वयं बीजरूप आप ही अपने आपमें व्याप्त हो रहे थे। फिर आपही प्रकट हो, विचार कर सौ वर्षतक जलमें ढूंढते रहे तो भी आपका पता नहीं लगा। सत्य है, अंकुरके निकलनेसे बीज कहां रह सकता है ? ॥३४॥ तब ब्रह्माजी अति विस्मित हो पीछेको लौटे और उसी कमलपर बैठकर तपस्या करने लगे। जब तपस्या करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गया, तब उसी तीव्र तपके प्रभावसे मनका अति शुद्धभाव हो गया। तब तो भूत, इंद्रिय और मायामय आत्मामें ही सन्मात्ररूपसे वर्तमान अतिसूक्ष्म रूपसे अपने अन्तःकरणमें ही ईश्वरको देख पाया, जैसे पृथ्वीसे सूक्ष्म सुगन्ध निकलती है ॥ ३५ ॥ वह मायामय अद्भुत स्वरूप कैसा था कि जिसमें सहस्र मुख, सहस्र चरण, सहस्र शिर, सहस्र हाथ, सहस्र उरु, सहस्र नासिका, सहस्र कान और सहस्र नेत्र थे और हाथोंमें सहस्र-सहस्र आभूषण और सहस्र-सहस्र आयुधोंसे परिपूर्ण थे; परन्तु आपका यह रूपमाया-मय प्रधान है, क्योंकि पातालादि प्रपंचसे चरणादि रचना हुई थी। हे महापुरुष ! आपके इस साधुओंके देखने योग्य स्वरूपको देखकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ ॥३६॥ हे भूमन् ! उस कालमें इसरूपसे आपने ब्रह्माजीको दर्शन दिया, यह उनके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया था, क्योंकि हयग्रीव-स्वरूप धारण करके वेदद्रोही महाबली वर पानेसे उन्मत्त मधु व कैटभ नामक दोनों असुरोंका वध करके ब्रह्माजीको श्रुतिगण लाकर रज, तम समर्पण किया। हे प्रभो ! ऋषि लोग कहते हैं कि सत्त्वगुण आपका प्यारा शरीर है ॥३७॥ हे महा-पुरुष ! आप इस प्रकार मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता और मत्स्यादि अवतार धारण कर सब लोकोंकी रक्षा करते हो और जो संसारके प्रतिकूल होते हैं, उनका विध्वंस करते हो यह युग

युगमें आपका धर्म चला आया है, उसकी रक्षा करते हो और कलियुगमें आप गुप्तरूपसे रहते हो, इसलिये इस युगमें आप ऐसा नहीं कर सकते। आप तीन युगोंमें अवतार लेते हैं, इसीसे आपका नाम संसारमें त्रियुग प्रसिद्ध हुआ है ॥३८॥ हे वैकुण्ठनाथ! यह मेरा मन अधर्मसे दूषित है, सदा बाहरी बातोंमें लगा रहता है, जीतनेमें नहीं आता। कामसे आतुर है, इस लिये हर्ष, शोक, भय, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तापोंके दुःखसे पीड़ित हो आपकी कथावार्त्तामें प्रीति नहीं करता। हे प्रभो! ऐसा मन होनेपर मैं दीन पराधीन होकर फिर आपके तत्त्वका विचार कैसे कर सकता हूँ ॥३९॥ हे अच्युत! जीव तृप्त होकर अनेक ओरको अर्थात् जिस ओर मधुरादि रस हैं उसी ओरको खिंचता है। त्वचा स्पर्शकी ओरको खींचती है, पेटकी भेंट देनी ही कठिन है, क्षुधासे सन्तप्त होकर जिस प्रकारकी आहारकी वस्तु देखता है, मार-मारकर उसी ओरको खींचता है; जिस ओरसे सारंगी मृदंगकी ध्वनि और मधुर-मधुर स्वरोंसे कोकिलकण्ठियोंके गानेका शब्द सुनायी पड़ता है, यह कान अज्ञानसे बलात्कार उसी ओरको खींचते हैं, नाक अनेक-अनेक प्रकारके सुगंधित गन्धराज, मालती, मदनबाणादिक पुष्पोंकी गन्धकी ओरको खींचती है, यह चंचल नयन किसी प्रकार चैन नहीं लेने देते, यह पापी ऐसे अधैर्यवान हैं कि इनको किसी समय धैर्य ही नहीं होता, न जाने विधाताने किन दिनोंमें इनको बनाया है। कभी तो इतना क्रोध, कि देखते ही भस्म कर दे, कभी इतने दयालु, कि जिसकी ओरको देखे वह दिन-रात सम्मुख ही खड़ा रहे कभी ऐसे निर्द्वन्द्व जो बन्द हो जायँ तो किसीसे कुछ प्रयोजन ही नहीं, किसीने इनकी प्रशंसामें ये दोहे कहे हैं-

दोहा-अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुक झुक परत, जिहि चितवत इक बार ॥

फिर कैसे हैं?

दोहा-समझाये समझत नहीं, पलक देत नहिं चैन।
नीर भरे प्यासे रहैं, निपट अनोखे नैन ॥

फिर कैसे हैं?

दोहा-अनियारे तीखे कुटिल, अंकुशसे दृगबान।
लागत सीधे आनके, पीछे खैंचत प्रान ॥

जिधर रूपरस देखते हैं उधरको ही खींचते हैं। सब कर्मेंद्रियाँ अपनी-अपनी ओरको खींच रही हैं जैसे एक पतिकी बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं और वह अपनी-अपनी ओरको खींचती हैं और घबड़ा देती हैं; ऐसे ही यह मेरी इन्द्रियाँ मुझको व्याकुल कर रही हैं ॥४०॥ हे भगवन्! जिस प्रकार मेरी कुगति है इसी प्रकार सबकी कुगति है और इसी कुगतिमें संसाररूप वैतरणी नदीकी धारमें उछलते-डूबते बहे चले जाते हैं! अनेक जन्म लेते मरते खाते डरते डराते अपने परायेके साथ शत्रुता-मित्रता करते रहते हैं। हे उद्धारकारक विश्वनाथ! उन भयभीत जनोंको अपने नेत्रोंसे देख अनुग्रह प्रकाश करके आज ही यमद्वारवाली वैतरणी नदीसे पार उतार कर रक्षा कीजिये, क्योंकि ये जन मूढ़ और दीन हैं ॥४१॥ हे भगवन्! आप सब जगत्के गुरु हैं और इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और विनाशके कारण आप ही हैं, फिर आपको सब भक्तोंके तार देनेका क्या परिश्रम है? अर्थात् सब भक्तोंका तार देना

कुछ आपको दुष्कर कर्म नहीं है। हे प्रभो ! समस्त जनोंके बंधु हैं, क्योंकि मूढजनोंके ऊपर भी आपका कितना अनुग्रह है कि जो विना भक्तिके ही तार देते हो, इस लिये आपका नाम देवताओंने आर्तबन्धु रखा है। हम लोग आपके भक्तजनोंके सेवक हैं, हम लोगोंका उद्धार करोगे तो क्या कुछ बड़ी बात है ? यह भी एक आपका तुच्छ कार्य है ॥ ४२ ॥ हे सर्वोत्तम ! आपकी गुणगान रूप महा अमृतधारामें जिनके मन मग्न हो रहे हैं, वे तो इस दुष्पार संसाररूप वैतरणी नदीका भी कुछ भय नहीं करते, परंतु जो मूर्ख लोग इस महा-अमृत नदीसे विमुख हो इंद्रियोंके निमित्त जो मायाका सुख है, उसके लिये कुटुम्बादिकका भार होते हैं, उनको देखकर मुझे अत्यन्त शोक होता है ॥४३॥ हे देव ! मुनिलोग बहुधा अपनी-अपनी मुक्तिकी कामनाके लिये एकान्त स्थानोंमें मौनी बनकर तप करते हैं और वन-वन घूमते-फिरते हैं, परन्तु दूसरा यत्न हम उनका नहीं देखते। हे भगवन् ! यह हमारे संगी असुरोंके बालक अतिशय दीन हैं, इनको अकेला छोड़कर मैं अपनी मुक्ति पानेकी इच्छा नहीं रखता। हे नित्यमुक्त ! मैं इन बालकोंके लिये और किसीके निकट प्रार्थना नहीं कर सकता, क्योंकि आपके सिवाय और किसी पुरुषको इन भ्रान्त लोगोंका उद्धार करनेवाला नहीं देखता ॥४४॥ हे प्रभो ! ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, ये लोग स्त्रीसंग संभोगादिक द्वारा सुखभोग करते हैं, दीन नहीं हैं, किन्तु हे भगवन् ! स्त्रीसंगादि जो गृहस्थधर्म है वह बड़ा तुच्छ है, क्योंकि उससे दोनों हाथोंके खुजानेके समान दुःखपर दुःख ही दिखायी देता है। हे स्वामिन् ! गृहस्थीका सुख इस प्रकार अन्तमें दुख देनेवाला है, जैसे ओसका सोना, उसमें आसक्त पुरुष बहुतसा दुःख भोगकर भी खुजानेके समान इस सुखसे तृप्त नहीं होते। एक दुःख बीतने नहीं पाता, दूसरा आकर उपस्थित हो जाता है। देहमें खुजाहटका रोकना ऐसे-वैसे पुरुषोंका काम नहीं है, अतः कोई धीरपुरुष ही खुजलीके समान कामदेवके वेगको सहन कर सकता है, परन्तु कौन ? जो कोई आपका परमभक्त होगा ॥ ४५ ॥ हे अन्तर्यामिन् ! मौनव्रत, श्रुत, तप, अध्ययन, स्वधर्म, धर्मव्याख्या, एकान्तमें वास, जप और समाधि यह मोक्षके साधन प्रसिद्ध हैं, इनको मैं तो असत्य नहीं कर सकता, परन्तु ये बहुधा अजितेन्द्रिय पुरुषोंकी आजीविकाके उपाय हैं, इनके करनेवालोंको देख-देखकर कोई-कोई अजितेन्द्रिय लोग हँसते भी हैं और कहते हैं कि यह सब ठगविद्याके साधन हैं और दम्भका फल सदा एकसा नहीं रहता, इसलिये दम्भी लोगोंके लिये सब मौनादिक कर्म कभी आजीविकाका उपाय हो सकता है और कभी नहीं भी हो सकता है ॥ ४६ ॥ देखो ! बीज और अंकुरके समान यह सत् और असत् अर्थात् कारण और कार्य आपका रूप कहकर वेदने प्रकाशित किया है। वास्तवमें आप प्राकृतरूपादिसे शून्य हैं, इससे तत्त्वादिक रूपके समान आपका और रूप नहीं है, इसलिये योगिराज लोभ भक्तियोगसे काष्ठमें अग्निके समान कार्य और कारण दोनोंमें ही आपको अनुगत देखते हैं। हे भगवन् ! ये (कार्य और कारण) प्रधान अथवा परमाणु इत्यादिसे नहीं हो सकते हैं, इसलिये आप ही सबके कारण हैं, आप ही सब वस्तुओंमें दिखायी देते हैं, आपके सिवाय और किसी वस्तुसे कार्य और कारणकी उत्पत्ति होती नहीं जानी जाती ॥४७॥ हे प्रभो ! वायु, अग्नि, धरणी, आकाश, जल, मात्रा, प्राण, इंद्रियाँ, हृदय, चित्त, अहंकार, देवता, स्थूल और सूक्ष्म यह सब आपके ही रूप हैं। हे भूमन् ! सगुण-निर्गुण आप ही हैं और मन वचनसे जो कुछ कहा जाता है वह सब आप ही हैं

॥४८॥ यह गुण, अवगुण, महत्तत्त्वादिक, मन आदिके देवता और मनुष्य जो भली प्रकार आदि अन्तके जाननेवाले हैं, उनमें कोई भी आदि अन्तके सिवाय आपके स्वरूपको नहीं जान सकता; अर्थात् सब आप ही हैं इससे हे उरुगाय ! बुद्धिमान् पुरुष सब पाठ पूजन छोड़ केवल समाधिसे आपका ही ध्यान किया करते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये हे अत्यन्त पूजनीय ! नमस्कार, स्तुति, सर्व-कर्म-समर्पण, पूजन, चरणारविन्दकी स्मृति और कथाका सुनना, यह षडंग भक्तिकी सेवा, आप जो परमहंसोंके गतिरूप हो, आपकी भक्ति विना मुक्ति कहां ? इसलिये आप अनुग्रह कर मुझको अपने दासोंका दास बना लो ॥५०॥ नारदजी बोले कि भगवद्भक्त प्रह्लादने जब इस प्रकार भक्तिसे भगवान्के गुण वर्णन किये, तब अलौकिक गुणविशिष्ट, नरसिंहजीने क्रोध शान्त कर नम्र प्रह्लादपर प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ५१ ॥ भगवान् बोले कि हे दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद ! हे भद्र ! हे असुरोत्तम ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझपर अति संतुष्ट हूं जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग, मैं सब मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूं ॥५२॥ हे आयुष्मन् ! मुझको विना प्रसन्न किये मेरा दर्शन होना महाकठिन है और मेरा दर्शन करके फिर यह प्राणी किसी प्रकारका शोक-सन्ताप नहीं सह सकता ॥५३॥इसलिये महात्मा पुरुष कल्याणकी इच्छा करनेवाले भाग्यशाली पुरुषोंको सब प्रकारके आशीर्वाद देनेवाला मैं हूँ ॥५४॥ नारदजी बोले कि सब लोकोंको लुभानेवाले वरदानोंसे यद्यपि प्रह्लादको अनेक प्रकारका लोभ दिखाया, परंतु तो भी उस प्रह्लाद भगवान्के परम-भक्तने किसी वरदानकी चाहना नहीं की और प्रेममें मग्न होकर यह भजन गाने लगाः-

भजन

प्रभु मैं सब विधि दास तुम्हारो ॥
अपनी चरणशरणसे मोको, इक पल भर न बिसारो ॥१॥
यह विशाल विकराल रूप प्रभु, दुष्टदमनकर तारो ॥
बसो रहै दिन-रात हृदयमें, यह अभिलाष हमारो ॥२॥
जब गज गह्यो ग्राहने जलमें, कोटि जतन कर हारो ॥
जौ भर सूँड रही जल ऊपर, तब हरिनाम पुकारो ॥३॥
धाये बेगि गरुड़पर चढ़कर, सब दुख द्वन्द्व निवारो ॥
शालिग्राम भक्तसे बढ़कर, और न कोई प्यारो ॥४॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा-दशवेंमें प्रह्लादपर, कर हरि कृपा महान् ।
शिव अजको समझायकर, हरि भये अन्तर्धान ॥

नारदजी बोले कि भक्तियोगमें यह सब कामनादिक विघ्नरूप प्रह्लादने जानकर हँसकर श्रीनृसिंहजीसे कहा ॥ १ ॥ प्रह्लाद बोले कि मैं जन्मजन्मोंसे वरदानका फल जान रहा हूँ कि यह विषयका मूल है और आजतक वरदानरूप विषयोंमें आसक्त हूँ और मुझको वरदानोंका लोभ दिखाकर मत लुभाओ,विषयोंके संसारसे तो मैं अत्यन्त डरा हुआ हूं। मुक्तिकी कामना

कर आपकी शरण आया हूँ ॥२॥ हे प्रभो ! दासके लक्षण जाननेकी इच्छा कर मेरी परीक्षा करते हो, संसारके बीजरूप और हृदयकी ग्रन्थिरूप विषयोंमें प्रेरणा करते हो और यह भी देखते हो, कि यह मेरा भक्त अन्तःकरणसे है,वा ऊपरके मनसे ? हे नाथ ! स्वामीको अवश्य चाहिये कि दासकी परीक्षा करता रहे । मेरा मन यह साक्षी देता है कि आप विषय-रूप मृगतृष्णाके समान वरदान मुझको कभी न देंगे,क्योंकि आप तो दयानिधान हैं आपके हृदयमें दया भरी हुई है ॥ ३ ॥ जो दास अपने स्वामीसे संसारी सुखकी इच्छा रखे और उसकी बात-बातमें लोभ दिखायी देता हो, उसे दास कहना नहीं चाहिये वह कुदास है, क्योंकि जब उसकी बात-बातमें लोभ भरा हुआ है फिर दासभाव कैसा वह तो व्यापारी बनियां ठहरा और जो स्वामी दाससे सेवाकी आशा करके उसको अपने पास रखे और आशी-र्वाद अथवा और कोई मनवांछित वस्तु दे तो उसको किसी प्रकार स्वामी नहीं कहना वरन् अनुगामी कहना चाहिये ॥ ४ ॥ मैं तो निष्काम आपका भक्त हूँ और आप निष्काम मेरे स्वामी हैं और कुछ मेरा आपका प्रयोजन नहीं ॥ ५ ॥ हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ जो कामना आप मुझको देते हैं, तो आपसे यही वरदान मांगता हूँ कि मेरे हृदयमें किसी प्रकारकी कामनाका अंकुर न उत्पन्न हो ॥६॥ हे नाथ ! कामनाका अंकुर उत्पन्न होते ही इंद्रिय, मन, प्राण, आत्मा, धर्म, धैर्य, मति, लाज, श्री, तेज, स्मृति और सत्य यह सब मांगनेके नामसे ही नष्ट हो जाते हैं ॥७॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! जब मनुष्य मनसे कामनाओंका त्याग करता है, तब वह प्राणी भगवत्के भावको प्राप्त हो जाता है ॥८॥ फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा "–ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने । हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥"जो कि आप भगवान् महापुरुष परमात्मा पर ब्रह्म हरि और अद्भुत नरसिंहरूप हो मैं ऐसे अद्द्भुत स्वरूपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥९॥१०॥ श्रीनरसिंहजी बोले कि हे प्रह्लाद ! तुझ सरीखे जो मेरे एकान्ती भक्त हैं वे इस लोकमें वा परलोकमें सुखकी इच्छा कभी नहीं करते, तो भी तू मेरे कहनेसे एक मन्वन्तरका दैत्यकुलमें रहकर आनंदसहित राज्य कर और सुख भोग॥११॥ मेरे सुन्दर-सुन्दर चरित्रोंकी कथाओंका सेवन करना; मैं जो ईश्वर सब पदार्थोंमें व्याप्त हूँ और यज्ञोंका स्वामी हूँ मुझको हृदयमें रखकर सदा मेरा ध्यान करना,यजन करना, योगसे कर्मोंका त्याग करना और जो कर्म करें यह मेरे अर्थ समर्पण करना और उन कर्मोंके फलकी आकांक्षा न रखना ॥१२॥ और भोगसे पुण्यका भोग करना,कुशलसे पापका भोग करना। जिसको देवता सदा गाते रहें, ऐसी विशुद्ध कीर्ति विस्तार करके, बन्धनसे मुक्त होकर फिर मुझको प्राप्त होगा ॥१३॥ तेरा गाया हुआ जो मेरा स्तोत्र है,उसका जो कोई मनुष्य पवित्र चित्तसे कीर्तन करेगा अथवा मृत्युके समय तेरा वा मेरा स्मरण करेगा वह निःसन्देह कर्मोंके बन्धनसे छूट जायगा ॥१४॥ प्रह्लाद बोला कि हे महेश्वर ! हे वर देनेवालोंके स्वामी ! आपकी आज्ञानु-सार आपसे मैं यह वर मांगता हूँ कि मेरे पिताने आपको जाना नहीं और न आपके तेज व ऐश्वर्यको पहचाना इससे आपकी निन्दा की ॥ १५ ॥ और क्रोध अभिमानके मदमें आकर उन्मत्तकी नाई बकवाद करता रहता था कि " मेरे भ्राताका मारनेवाला विष्णु ही है और सब दैत्योंको इसीने मारा है" इस कुदृष्टिसे उसने साक्षात् सर्व लोकके गुरु भग-वान् आपको तो दुर्वाक्य कहे और आपका भक्त जानकर मुझको भांति-भांतिके दुःख दिखाये, परन्तु आपके प्रभावको न जाना, क्योंकि वह सदा ही क्रूरबुद्धि था ॥ १६ ॥

वह मेरा पिता महादुस्तर पापसे मुक्त होकर पावन और पवित्र हो जाय ऐसा अनुग्रह करिये । हे भक्तवत्सल ! यह कहना भी मेरा मूर्खपन है, क्योंकि यह तो पवित्र उसी समय हो गया था, जब कि आपने खम्भ फाड़कर दर्शन दिया था, परन्तु कठोर वाक्य जो आपको कहे हैं उनका अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे साधो ! हे पापरहित ! तेरा पिता इक्कीस कुल सहित पवित्र हो गया, क्योंकि जब तुम सरीखे साधु कुलपावन उसके घर जन्मे ॥ १८ ॥ जिन-जिन स्थानोंमें मेरे भक्त प्रशान्त समदर्शी साधु और श्रेष्ठाचार करनेवाले हैं, वे कीकट देशको भी पवित्र कर देते हैं ॥१९॥ हे दैत्येन्द्र ! जो लोग किसी जीवकी हिंसा नहीं करते और छोटे-मोटे जीवोंको मेरे भावसे चाहते हैं, उनको किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥ जो लोग इस लोकमें वा परलोकमें आपके अनुवर्ती होंगे, जैसे तू मेरे सब भक्तोंका प्यारा है वैसे ही वे सब मेरे प्यारे होंगे ॥२१॥ हे अङ्ग ! सब भाँतिसे तेरा पिता परमपवित्र है, उनका तू मृतक कर्म कर । एक तो इसका मेरे अंगसे स्पर्श हो गया है, दूसरे इसके तेरे समान सुपुत्रका होना, फिर इसके स्वर्ग जानेमें क्या सन्देह है ? हे तात ! ब्रह्मवादी लोग जिस प्रकार स्मृतियोंमें आज्ञा कर गये हैं वैसे ही मुझपर आसक्त होकर सब कर्म कर और मेरे चरणोंमें मन लगा कर पिताके सिंहासन पर बैठकर राज्य कर ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! जो-जो पिताकी मृतक क्रिया थी वह सब प्रह्लादने की, फिर जैसे भगवान्‌ने कहा पीछे ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक उसका अभिषेक किया ॥ २४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न जानकर सुमुख श्रीनृसिंह भगवान्‌को पवित्रवाणीसे स्तुति कर सब देवताओंको साथ ले चतुरानन ब्रह्माजी कहने लगे ॥ २५ ॥ हे देवदेव ! हे अखिलाध्यक्ष ! हे भूतभावन ! हे पूर्वज ! सर्वलोकसन्तापी पापी असुरका आपने वध किया यह बड़ा मंगल हुआ ॥ २६ ॥ एक तो इसने यह वर मुझसे मांग लिया था कि आपकी (ब्रह्माकी) सृष्टिमें मैं किसीसे न मरूं, दूसरे तपयोगके प्रभावसे ऐसा उन्मत्त हो गया था कि सब वेदोंका नाश कर दिया था ॥२७॥ सबसे उत्तम काम तो यह आपने किया कि परमभागवत भगवद्भक्त महासाधु इसके छोटे सुतको मृत्युके मुखसे आपने बचाया और यह बहुत ही अच्छा किया कि जो इसके पुत्र प्रह्लादको आपने अपनी शरणमें रख लिया ॥ २८ ॥ हे भगवन् इस आपके नरसिंह अवतारका सावधान होकर जो ध्यान करे तो मृत्युके और सब प्रकारके त्राससे मुक्ति पायेगा ॥

दोहा—वचन न मम झूठो भयो, हनो असुर बलवान ।
आप सरिस को नरहरि, दूजो कृपानिधान ॥ २९ ॥

श्रीनृसिंहजी बोले कि हे चतुरानन ! ऐसा वर राक्षसोंको मत दिया करो क्योंकि क्रूर स्वभाववालेके वर भी सब उलटे हो जाते हैं, जैसे सर्पको दूध पिलानेसे दूना विष बढ़ता है ॥ ३० ॥ नारदजी बोले कि हे महाराज युधिष्ठिर ! ब्रह्माजीसे यह बात कहकर और उनकी पूजा स्वीकार कर सब लोगोंके देखते-देखते श्रीनरसिंह भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्माने

---

१. शंका—प्रह्लादसे नृसिंहजीने कहा कि, तेरा बाप इक्कीस पीढ़ीको संग लेकर वैकुण्ठधामको गया, यह बड़े सन्देहकी बात है, क्योंकि हिरण्यकशिपु सहित गिनो तो चार पीढ़ी होती हैं ब्रह्मा १, मरीचि २, कश्यप, ३ हिरण्यकशिपु ४, फिर भगवान्‌ने इक्कीस पीढ़ी क्यों कहा।

उत्तर—चार पीढ़ी तो बीती हुई और १७ पीढ़ी अगाड़ी की लेकर इस प्रकारसे इक्कीस पीढ़ी भगवान्‌ने कही ॥

कहा कि "सबका मोक्ष कर दो तो अच्छा है, नरसिंह बोले कि जो कोई अपना मोक्ष न चाहे तो उसका मोक्ष हम कैसे कर दें, कि जिसको मोक्षकी इच्छा हो उसको हमारे पास लाओ। ब्रह्माजी नगरमें गये और जाकर देखा कि बड़ा भारी एक सेठ गद्दीपर बैठा है और चारों ओर असामी उसके पास हाथ जोड़े बैठे हैं। ब्रह्माजीने कहा कि सेठजी! वैकुण्ठके चलनेका यह समय अच्छा है और इसकी बराबर और कोई दूसरा लाभ नहीं है, क्योंकि अच्छेसे अच्छे तो भोजन जीमनेको मिलेंगे और दिन-रात भगवान्‌के सम्मुख रहना होगा, मब देवताओंसे रीतिप्रीति रहेगी। सेठ बोला कि मैं वैकुण्ठको कभी नहीं जाऊंगा, क्योंकि एक तो वैकुण्ठ पराया गांव, दूसरे दिन-रात सामने खड़े रहनेकी नौकरी, तीसरे नये लोगोंसे मेल करना; मुझको ऐसे वैकुण्ठमें जानेकी आवश्यकता नहीं, मुझको तो यहीं वैकुण्ठ हो रहा है, जो सैकड़ों मनुष्य मेरे आगे हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और अपने घर सेठ बना बैठा हूँ, बाल-बच्चे हाथ पांव दाबते हैं और दूधमें मिश्री डालकर पिलाते हैं, इससे अधिक कोई वैकुण्ठ और है। सेठकी यह बातें सुन ब्रह्माने सब कथा नरसिंहसे कही तब भगवान् नरसिंहजी बोले कि हे ब्रह्माजी! जो पुरुष जहां बसता है वह वहीं सुख मानता है, यह कह भगवान् नृसिंहजी वैकुण्ठको चले गये।" ॥ ३१ ॥ तब प्रह्लादने ब्रह्मा, शिव, प्रजापति और सब देवताओंकी वन्दना करके शिर झुका कर प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीने उस समय शुक्राचार्यादिक बड़े-बड़े मुनियोंके सामने सब दैत्यदानवोंका राजा प्रह्लादको बनाया॥३३॥ महाराज सब देवता प्रह्लादकी सराहना कर परमोत्तम आशीर्वाद दे सब पूजा भेंट ले-लेकर ब्रह्मादिक देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥३४॥ इस प्रकार यह दोनों विष्णुके पार्षद दितिके पुत्र हुए और दोनोंने भगवान्‌को हृदयमें धर फिर वैरभाव करके महाघोर युद्ध किया और विष्णु भगवान् के ही हाथसे मारे गये ॥३५॥ फिर यही दोनों सनक सनन्दनके शापसे पुनर्जन्ममें विश्रवाके घरमें रावण और कुम्भकर्ण नामक असुरयोनिमें उत्पन्न हुए और उनको दशरथनन्दन दुष्टनिकंदन श्रीरामचन्द्रजी महाराजने अपने पराक्रमसे मारा ॥ ३६ ॥ जब रामचन्द्रके तीक्ष्ण बाणोंसे उन दोनोंका हृदय विदीर्ण हो गया और युद्धस्थलमें शयन करने लगे तब पिछले जन्मके तुल्य श्रीरघुनाथजीके चरणारविंदका स्मरण उनके चित्तमें बना रहा और उसी समय दोनोंने देह त्याग दिया ॥ ॥ ३७ ॥ फिर वही दोनों दन्तवक्र और शिशुपाल हुए और श्रीकृष्णचन्द्रसे वैर करते रहे।

दोहा—राजसूय जब रावरी, भई युधिष्ठिर राज।
तब हरि सबके देखते, मारो मध्य समाज ॥

और उसी समय दोनोंने सायुज्यमुक्ति पायी ॥३८॥ श्रीकृष्णसे वैर करनेवाले जो राजा थे और दिनरात भगवान्‌की निन्दा करते रहते थे, परन्तु हृदयसे ध्यान नहीं विसारते थे, उसी ध्यानके प्रभावसे सब मुक्त हो गये, जैसे भृंगी कीड़ेके ध्यानसे और दूसरा कीड़ा भी भृङ्गीके समान हो जाता है ॥ २९ ॥ भगवान्‌से अभेद दृष्टि रखनेसे भक्तोंको जो-जो परम पदवी मिलती है; ऐसे ही शिशुपालादिकोंने भगवान्‌का चिन्तन करके परम गति पायी ॥४०॥ जो जो इतिहास आपने मुझसे पूछे वह सब मैंने आपके सामने कहे, दमघोसके पुत्र शिशुपालादिकने जिस प्रकार श्रीकृष्णसे वैर करके मोक्ष पायी ॥४१॥ महात्मा ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌के पुण्यरूप अवतारकी कथा कही कि जिसमें आदिदैत्य हिरण्याक्ष और

हिरण्यकशिपुके मारनेका वृत्तान्त है ॥४२॥ भगवद्भक्त प्रह्लादका चरित्र व हरिकी भक्ति,ज्ञान, वैराग्यका लक्षण व विरक्तभाव और त्रिगुणपति भगवान्‌का तत्त्व ॥४३॥ सर्ग, स्थित, संहारके स्वामीके गुण और कर्मोंका अनुवर्णन, पर अवर स्थानोंका कालसे महान् नाश हो जाना ॥ ४४ ॥ भागवतोंका धर्म जिससे भगवान्‌का निरूपण हो और उनकी प्राप्ति हो इस आख्यानमें हमने सम्पूर्णतासे अध्यात्मज्ञान पूर्ण रीतिसे दर्शा दिया है ॥ ४५ ॥ जो कोई इन पूर्णरूप कथाओंका कीर्तन करे और श्रद्धासे सुने कि जो विष्णु भगवान्‌के वीर्यसे संवर्द्धित है, वह पुरुष सब कर्मके बन्धनोंसे छूट जायगा ॥ ४६ ॥ जो पुरुष आदिपुरुष भगवान्‌की नृसिंह लीलाको और हिरण्यकशिपुवधके चरित्रको सावधान होकर पढ़ेगा और महात्माजनोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादके पवित्र चरित्रको सुनेगा वह निःसन्देह परमपदवीको प्राप्त होगा और किसी प्रकारका भय नहीं देखेगा ॥ ४७ ॥ इस मृत्युलोकमें आजकल तुम बड़े बड़भागी हो, कि त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले मुनिजन आपके यहां आते हैं और आपके घरमें साक्षात् नराकार रूप धर श्रीकृष्ण परब्रह्म निवास करते हैं,श्रीकृष्ण परमतत्त्व स्वरूप हैं, ईश्वर हैं, परात्पर हैं; श्रीमन्नारायण हैं, यही सर्वेश्वर हैं, अविनाशी हैं, निरंजन हैं, निराकार हैं, गोपीजनमनमोहन हैं, भक्तवत्सल हैं, सर्वोपास्य हैं, जगदीश्वर हैं, प्रभु हैं, परब्रह्म हैं,निरीह हैं, निष्कलंक हैं; अदृश्य हैं, परंतु भक्तोंको दृश्य हैं ॥४८॥ नारदजी बोले कि यह श्रीकृष्ण वही परब्रह्म हैं, जो महात्माजनोंके ढूँढ़ने योग्य कैवल्य मोक्षसुखका अनुभव करनेवाले प्यारे सुहृद् हैं, तुम्हारे मामाके पुत्र आत्मा पूजनीय आज्ञानुवर्ती गुरु श्रीकृष्ण हैं, तुम्हारे भाग्यकी बड़ाई कहांतक कोई कर सके ? ॥ ४९ ॥ जिसका रूप साक्षात् शिव और ब्रह्मादिक देवताओंसे भी नहीं कहा जाता, वह श्रीकृष्ण तुम पर आपसे आप प्रसन्न हैं और हम तो उनको मौन भक्तिसे इंद्रियोंको जीतकर शांत्यादिक अनेक साधनोंसे प्रसन्न करते हैं और वारंवार यह कहते हैं कि हे भक्तभावन! भगवन् ! हमपर सन्तुष्ट होओ ॥५०॥ हे राजन् ! पहले रुद्रदेवके यशको अनन्तमायावी मय दैत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, तब इन्हीं श्रीकृष्णने सहायता करके महादेवजीके यशका विस्तार किया था ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर बोले कि कालमूर्ति त्रिकालज्ञ भूतेश्वर महादेवजीके यशको किस प्रकार मायावी मयदैत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था और कैसे उनके यशका श्रीकृष्णने विस्तार किया वह हमसे कहो ॥५२॥ नारदजी बोले कि एक समय देवताओंने विष्णु भगवान्‌की सहायतासे संग्राममें उत्तम उपाय करके सब असुरोंको जीता तब सब असुर मायावियोंका परम आचार्य मयदैत्य जो महाबलशाली और परम चतुर था उसकी शरण गये ॥ ५३ ॥ इस महापुरुषार्थी मयदैत्यने तीन पुर सोने, चांदी और लोहेके ऐसे कठिन बनाये कि उनके आनेजानेका मार्ग कोई नहीं जान सकता था और उसकी ऐसी कठिन सामग्री थी कि किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उनका उपाय कर सके ॥५४॥ हे नृपभूषण ! उन पुरोंसे असुर सेनापतिने ईश्वर सहित त्रिलोकीके विनाश करनेकी इच्छाकी और अलक्षित होकर पहले वैरका स्मरण किया ॥५५॥ तब सब लोकपाल और प्रजागण मिलकर शिवजीके समीप गये और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोले—हे विभो ! हे देव ! हमारी रक्षा करो, त्रिपुरासुरके पुरमें रहनेवाले दैत्य हम लोगोंका नाश किये डालते हैं ॥५६॥ तब सर्वसमर्थ शिवजीने लोकपालोंपर दया करके उनको धैर्य दिया और कहा डरो मत, हम तुमको अभय किये देते हैं, यह कह धनुष पर शर चढ़ाकर तीनों पुरोंपर अस्त्र चलाये ॥ ५७ ॥ तब अग्निके समान महातीक्ष्ण बाण

धूर्जटी मंत्र पढ़-पढ़कर चलाने लगे, जैसे प्रलयकालके मार्तंडमण्डलसे कालरूप महाविकराल किरणजाल निकलते हैं, ऐसेही उन बाणोंके समूहोंसे आच्छादित होकर त्रिपुरासुरके तीनोंपुर छिप गये ॥५८॥ और उन तीक्ष्ण बाणोंके लगनेसे त्रिपुरके असुर घायल हो होकर पृथ्वीपर गिरने लगे। जो दैत्य मरे वह मायावी दैत्य उस मृतक दैत्यको उसी समय अपने बनाये हुए सुधाकूपके रसमें डालता गया ॥५९॥ उस कूपका रस लगनेसे सबके सब एकसंग जी उठे। वज्रकासा अंग, महापराक्रमी, मेघमालाके समान गर्जनेवाले, काले वर्ण, बिजलीके सदृश तेज कांतिवाले, मानो अग्निकी लपटेंसी जहां-तहां निकलने लगीं॥६०॥ इस आश्चर्यमयी कौतुकको देख शिवजी अपने मनमें बहुत उदास हुए कि आज हमारा संकल्प भंग हुआ, अब क्या उपाय किया जाय ? मनही मनमें यह कहकर भगवान्‌का ध्यान करने लगे। शिवजीको दुःखी देख उसी समय इन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने आकर सहायता की और एक अद्भुत उपाय किया ॥६१॥ ब्रह्माजीको वत्स बनाया, आपने अपना गोरूप धारण किया, इधर-उधर घूमघाम अवसर पाकर सहजमें त्रिपुरके भीतर घुस गये और अमृतमय कूपका रस पीना आरम्भ किया॥६२॥ यद्यपि असुरोंने इनको अमृत पीता हुआ देख भी लिया, परंतु भगवान्‌की मनमोहिनी मायासे मोहित हो ऐसे बेसुध हुए कि किसीने उनको नहीं रोका॥६३॥ जब सुधाकूपकी सुधा सब चुक गयी, तब रसकूपके रखनेवाले दैत्य अत्यन्त शोकाकुल हो घबड़ाने लगे। उस समय धैर्यवान् सज्ञान मय दैत्यने इसको दैवगति जान उन दैत्योंसे कहा॥६४॥कि क्यों वृथा शोक करते हो ? हे शोकपीडितो ! दैवगतिका स्मरण करो। देवता, असुर, नर, किन्नर कोई क्यों न हो; अपने आत्माको और दूसरेको दैवकी गतिसे कोई नहीं बचा सकता, जो भाग्यमें लिखा है उसका कोई मिटानेवाला नहीं। इसके बाद विष्णु भगवान्‌ने अपनी शक्तियोंसे शिवजीकी सांग्रामिक सामग्री प्रस्तुत की ॥ ६५ ॥ उस समय विष्णु भगवान्‌ने अपनी धर्म, ज्ञान, विरक्त, ऋद्धि, सिद्धि, तप, विद्या और क्रियादिक शक्तियोंसे शिवजीने संग्रामके लिये रथ, सूत, ध्वज, अश्व, धनुष, कवच और शर आदि जो-जो संग्रामकी सामग्री चाहिये वह सब मँगायी। फिर महादेवजी कटिवद्ध हुए और धनुष-बाण हाथमें लेकर रथपर बैठे॥६६॥हे नरेश ! फिर तो शिवजीने धनुषपर शरसंधान कर उस बाणसे अभिजित मुहूर्तमें उन दुर्भेद्य पुरोंको भस्म कर दिया ॥ ६७ ॥ जब तीनों पुर भस्म हो गये तब सुरपुरमें दुंदुभी बाजे बजने लगे, सैकड़ों विमान आकाशमें आ-आकर छा गये। देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश जय-जय शब्द पुकार-पुकार पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्व, किन्नर, प्रसन्न हो होकर हरका यश गाने लगे और अप्सरायें अनेक-अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं ॥६८॥६९॥ हे महाराज ! त्रिपुरारी इस प्रकार तीनों पुर जलाकर ब्रह्मादिकोंकी स्तुति स्वीकार कर अपने आश्रमको चले गये ॥ ७० ॥ भगवान् अपनी माया द्वारा भाँति-भाँतिकी लीला करते हैं, कभी मनुष्य अवतार धरते हैं, कभी नरसिंहरूप धरकर दुष्टोंको मारते हैं, कभी मनुज देह धरकर भूमिका भार उतारते हैं, इन विश्वरूप विश्वात्मा भगवान्‌के ऐसे-ऐसे चरित्र संसारके पवित्र करनेवाले ऋषिवर्योंने गाये हैं।

दोहा—जो जो बूझो धर्म नृप, सो सो दियो सुनाय।
कहा सुननकी लालसा, सो मोहि देहु बताय॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–ग्यारहमें वर्णन करौं, चार वर्णके धर्म।
फिर कछु नारिनके धरम, वरणों सहित सुकर्म॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! साधुसभामें जिसने प्रशंसा पायी ऐसा चरित्र सुनकर महात्माओंमें अग्रणी भगवत्‌में जिनकी आत्मा वह युधिष्ठिर प्रह्लादचरित्र सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो फिर नारदजीसे पूछने लगे॥१॥ युधिष्ठिर बोले कि हे भगवन्! मनुष्योंके सनातनसे जो धर्म चले आये हैं, उन धर्मोंको सुननेकी मेरी अभिलाषा है, वर्ण व आश्रमके आचारसे यह पुरुष परमेश्वरको प्राप्त होता है॥२॥ हे ब्रह्मन्! साक्षात् प्रजापतिके सब पुत्रोंमें आप तप, योग, समाधि करके बड़े प्यारे पुत्र हो॥ ३॥ जो ब्राह्मण आपके समान नारायण-परायण हैं और परमगुप्त धर्मको जानते हैं, वह दयालु साधु शांत रूप तुम्हारे सदृश हैं वैसे और दूसरे नहीं हैं ❋॥४॥श्रीनारदजी बोले कि सब लोगोंके धर्मके लिये भगवान् श्रीमन्नारायण को नमस्कार करके जो श्रीमन्नारायणके मुखसे मैंने सुना है वह सनातन धर्म आपके आगे कहता हूँ॥५॥जो आप आत्माके अंशसे दक्षकी पुत्री मूर्तिसे जन्म लेकर धर्मसे सब लोकोंके कल्याणके लिये तप करनेको बदरिकाश्रममें विराज रहे हैं; याज्ञवल्क्यने लिखा है–"श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥" और मनुस्मृतिमें यह लिखा है–"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदा। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च" इति॥ अर्थात् हे राजन्! धर्मके मूल भगवान् हैं, सर्व देव मय हरि हैं, वेद-रूप भगवान् ही सब धर्मोंमें प्रमाण हैं, जैसे धर्मके विषयमें वेदोंका प्रमाण है ऐसे ही वेदविद महात्माओंकी स्मृतियां प्रमाणित हैं, जिन हरिके स्मरण करनेसे आत्मा शुद्ध और प्रसन्न हो वही धर्म प्रमाणित हैं॥ ६॥ ७॥ अब सामान्य धर्म कहते हैं– सत्य बोलना १, दया करना २, तप करना ३, शौच करना (एकादशीव्रतादि) ४, सहनशीलता ५, योग्यायोग्य (यह काम करना यह न करना) ६, ज्ञान सीखना ७, मनको जीतना ८ बाह्य इंद्रियोंको जीतना ९, हिंसा न करना १०, ब्रह्मचर्य रखना ११, दान देना १२, यथोचित वेदपाठ करना १३, सरलता–सबसे सीधा रहना १४॥८॥ संतोष (जो दैवसे मिले उसमें संतोष) करना १५, बड़ोंकी अर्थात् महात्मापुरुषोंकी सेवा करना १६, ग्राम्यधर्मकी चेष्टा त्यागे १७, धीरे-धीरे निष्फल क्रियाओंको न करे १८, वृथा बकवाद न करे १९, परमेश्वरका चिन्तन करे २०॥ ९॥ हे पाण्डव! यथायोग्य अन्नादिक प्राणीमात्रको देता रहे २१, उन प्राणियोंमें परमात्मा व्याप्त है, यह विचार कर, अन्न, वस्त्र, घर, हाथी, घोड़ा, शय्या, गौ, पात्र, पुस्तक, औषध, अभय, पृथ्वी इत्यादि दान करता रहे॥ १०॥ भगवान्‌की नवधा भक्ति करे, जैसे श्रवण (भगवान्‌की कथा सुने), कीर्तन (नारायणका यश गावे), स्मरण (हरिकी लीलाओंका ध्यान करे), सेवा (महात्मा पुरुषोंकी सेवा करे), अर्चा (देवताओंका पूजन् करे), नमस्कार (सबको नारायणमय समझकर दण्डवत् करे), दास्य (सबसे दासभाव

* शंका—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें सब ब्राह्मण भगवान्‌के गुणोंको जानते थे, जो कोई ब्राह्मण ज्ञानकी बातको थोड़ा समझता था वह भी धर्म-कर्ममें सावधान और भगवान्‌के चरणकमलमें प्रीति रखता था। फिर नारदजीसे युधिष्ठिरने क्यों कहा था, कि भगवान्‌के चरित्रोंको आप सरीखे ब्राह्मण जानते हैं, दूसरा नहीं जान सकता, यह बड़ी शंका है कि नारदजी तो ज्ञानी ठहरे और सब अज्ञानी हैं?

उत्तर—युधिष्ठिरजीने किसी-किसी ब्राह्मणको तपस्याहीन उन्मत्त जानकर किन्हीं-किन्हीं राजाओंको उन्मत्त जानकर नारदजीसे ऐसा वचन कहा—

रखे), सख्यता (परमात्माको अपना सखा समझे) और स्वात्मसमर्पण (अपना तन, मन, धन, परमेश्वरको अर्पण करे) ॥११॥ हे राजन् ! सब मनुष्यमात्रका यह तीस लक्षण-वाला परमधर्म कहलाता है, जिसके करनेसे भगवान् सर्वात्मा सन्तुष्ट होते हैं ॥१२॥ ब्रह्मा-जीने कहा है कि, वेदमंत्रोंसे जिसका संस्कार किया जाय उसको द्विज कहते हैं और यह संस्कार वेदकी रीतिसे जिसके होने चाहिये उसीके होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जन्म, एवं संस्कारसे द्विज कहलाते हैं। इज्या, अध्ययन, दान यह तीन कर्म द्विजन्माके लिये करनेकी आज्ञा है और इन्हींको आश्रमसम्बन्धी क्रिया करनेकी आज्ञा है, उसका आश्रम जिसमें हो वह उनकी क्रियाओंको करे, तथा च श्रुतिः--"गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत्, त्रिष्टुभा राजन्यम्, जगत्या वैश्यम्, न केनचिच्छूद्रम्"। एवं स्मृतिरपि--"विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा। न केनचित्समसृजच्छन्दसा ते प्रजापतिः" ॥१३॥ विद्या पढ़नी, विद्या पढ़ानी, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना-लेना ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं, इनमें तीन कर्म पिछले ब्राह्म-णोंकी आजीविकाके लिये हैं। विद्या न पढ़ावे, दान न ले, यज्ञ न कराये, कोई प्रतिग्रह न ले, प्रजाकी रक्षा करे, ब्राह्मणसे दण्ड न ले, यह कर्म क्षत्रियके हैं ॥ १४ ॥ खेती करे और व्यापारादिसे अपनी आजीविका करे और सदा ब्राह्मणकुलकी सेवा करे, यह कर्म वैश्यके हैं, ब्राह्मणोंकी सेवा करे, अपने स्वामीसे कुछ धन लेकर निर्वाह करे, यह कर्म शूद्रके हैं ॥ १५ ॥ खेतीसे, वृत्तिसे, विना माँगे प्राप्त हो उस धनसे, प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लाना और शिलोंछन अर्थात् खेत काटनेके समय जो अन्न खेतमें गिर पड़े उसको बीनकर लाना, बाजारमें बिखरा पड़ा हुआ अन्न उठा लाना, यह चार वृत्ति ब्राह्मण आपत्तिकालमें करे, और इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ नीच वृत्ति क्षत्रिय न करे, जब कोई महा विपत्ति ही आ जाय तो भले ही क्षत्रिय नीच वृत्तिको करे ॥ १७ ॥ ऋतसे, अमृतसे, मृतसे, प्रमृतसे वा सत्यानृतसे अपना निर्वाह करना चाहिये, परन्तु श्वानवृत्तिसे आजीविका करनी अच्छी नहीं ॥ १८ ॥ खेतमें अथवा हाटमें स्वामी जो धन अपनी इच्छासे छोड़ दे इसको बीन लाना इसका नाम ऋत है, विना मांगे मिले उस धनका नाम अमृत है; नित्यप्रति भिक्षा मांगकर लाना इसका नाम मृत है, किसानी आदि वृत्ति करे उसका नाम प्रमृत है ॥ १९ ॥ व्यापा-रादिकका नाम सत्यानृत है, आपसे नीच वृत्तिवालेकी सेवा करनी यह श्वानवृत्ति है ब्राह्मण और क्षत्रियको इस निन्दनीय श्वानवृत्तिका सदा त्याग करना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण तो सर्व-वेदमय हैं और क्षत्रिय सर्व देवमय हैं ॥ २० ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, शान्ति, कोमलता, ज्ञान, दया, भगवद्भक्ति और सत्य यह ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ शौर्य, वीर्य, धीरता, तेज, दान, मनोजय, क्षमा, विप्रभक्ति, प्रसन्नता और प्रजाकी रक्षा करनी ये क्षत्रि-यके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवभक्ति, गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, धर्मवृद्धि, धनवृद्धि, सुखवृद्धि, आस्तिक रहना, नित्य उद्यम करना और निपुणता यह वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ अपने आपसे उत्तम वर्णको दण्डवत् करना, पवित्र रहना, निष्कपटभावसे अपने स्वामीकी सेवा करना, विना मंत्र पढ़े वैश्यदेवादि पंचयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना और गोब्रा-ह्मणकी टहल करनी ये शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥ अपने पतिकी सेवा करना, पतिके अनु-कूल रहना, देवर- जेठकी सेवा करना और उनकी आज्ञा मानना, ये धर्म पतिव्रता स्त्रियोंके हैं ॥ २५ ॥ घरके सब पदार्थोंको शुद्ध रखना अर्थात् लीपना, पोतना, बुहारी देना, आंग

नमें चौक पूरना, अपना भी सुन्दर शृंगार बनाये रखना, सब घरकी सामग्री पवित्र रखना, बालकोंको नित्यप्रति स्नान कराकर अच्छे-अच्छे शृङ्गार कर वस्त्र आभूषण पहिनाना अच्छी रीतिसे उनका लालन-पालन करना, सास-श्वसुरकी सेवा करनी और उनकी आज्ञा माननी चाहिये ॥ २६ ॥ साध्वी स्त्री छोटे-मोटे ऊँचे-नीचे घरके सब काम करे, नम्र रहे, इन्द्रियोंका पराजय करती रहे प्रिय वचनोंसे समय-समयपर प्रेमपूर्वक अपने स्वामीकी सेवा करती रहे ॥ २७ ॥ जो कुछ भाग्यमे प्राप्त हो जाय उसीपर सन्तोष रखे, भोगोंमें लोलुपता न करे, आलस्य न रखे, सत्य बोले, मदान्ध न रहे, पवित्र रहे, मधुर वचन बोले, अपतित पतिकी सेवा करे और उससे स्नेह रक्खे ॥ २८ ॥ जो स्त्री पतिको हरिभाव करके लक्ष्मीके समान अपने पतिको परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करे, वह स्त्री विष्णुरूप अपने पतिके सङ्ग लक्ष्मीके सदृश विष्णुलोकमें आनन्दसहित अपने पतिके सम्मुख बैठी पतिका मुख ताकती रहती है, कि न जाने किस समय क्या आज्ञा करें ॥ २९ ॥ अपने कुलकी आजीविकासे अपना निर्वाह करे ॥

चौ०--नट बेड़ी अरु रजक चमारा * केवट गोंड़हु कोल कहारा ॥
यह आठों हैं डोमसमाना * परसत इनकहँ पाप महाना ॥

हे राजन् ! बहुधा बहुत धर्म ऐसे हैं, कि युग-युगमें मनुष्योंके स्वभावके समान होते हैं, यह वेदपुरुप भगवान्‌ने कहा है, पराये धर्मके अनुसार अपना धर्म नीच भी हो तो भी वही धर्म अपने लिये सुखदायक है, जो जो धर्म धर्मशास्त्रके वेत्ताओंने कहा है, वही धर्म इस लोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ स्वभावसे की हुई वृत्तिसे जो वर्तमान है वह स्वकर्मकर्ता स्वभावजन्य कर्मको त्याग धीरे-धीरे निर्गुणताको प्राप्त हो जाता है॥३२॥ वारंवार जिस खेतमें बीज बोया जाता है, वह खेत आपसे आप निर्वीर्य हो जाता है, फिर उस खेतमें धान्य उत्पन्न नहीं हो सकता, बरन् जो बीज बोया जाता है वह भी सब नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥ हे राजन् जब कामनाओंसे मन परिपूर्ण होकर तृप्त हो जाता है, तब उसको किसी प्रकारके भोग भोगनेकी इच्छा नहीं रहती, फिर आपसे आप वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, जिस प्राणीकी कामना अधिक बढ़ी हुई होती है, फिर उससे एकाएकी वासनाओंका त्याग नहीं हो सकता, इससे उस पुरुषको चाहिये कि वेदोक्त रीतिसे विषयोंको भोगे, परन्तु नित्यनैमित्तिक कर्मोंको दिन-दिन बढ़ाता रहे। देखो ! कर्म करते-करते विषयोंमें दोष देखनेसे राजा ययाति और सौभरि ऋषिको धीरे-धीरे आपसे आप वैराग्य हो गया। जैसे अग्निमें थोड़ा घृत डालनेसे शान्त नहीं होता, बरन् उसकी लपटें और अधिक निकलती हैं, ऐसी ही इस चित्तकी वृत्ति है, थोड़ा-थोड़ा विषयोंके भोगनेसे शांत नहीं होती, अधिक विषयोंके भोगनेसे आपसे आप शान्त हो जाती है ॥ ३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णका जो लक्षण कहा है, वह लक्षण उनके सिवाय और दूसरे वर्णवाले पुरुषमें दिखाई दे तो उस पुरुषको भी उसी वर्णके लक्षणवाला जानना चाहिये न कि उस जातिका * ॥

* इस बातपर एक दृष्टांत है—एक कहार किसी तालके किनारे मछली पकड़ रहा था, मार्गकी ओर देखा तो कोई राजा चतुरंगिनी सेना लिये धूमधामसे चला आता है। आगे-आगे बन्दी लोग यशगान कर रहे थे; [illegible] राजाकी वीरता बखान रहे थे, कहार ने अपने मनमें विचार किया कि जो मैं मछली मारता रहा तो अवश्य राजा मुझको दंड देगा और जो प्राणोंका भी गाहक हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं और सेना निकट आ गयी, [illegible] यहाँसे भाग भी नहीं सकते। तब यह सोचा कि इस समय साधुका वेश बनानेसे पीछा छूटता है।—

दोहा–जौन वृत्ति जेहि होत है, ता अनुगति तेहि नाम ।
लेत नाम सब कर्मका, जाति न आवत काम ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–वर्णधर्म सब कह चुके, अब कछु आश्रमधर्म ।
कहत अहों सुनि लीजिये, धर्म कर्मको मर्म ॥

नारदजी बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके कुलमें जितेन्द्रिय बनकर वास करे और गुरुका हित आचरण करता रहे, दासकी नाईं नीच बना रहे, गुरुमें अत्यन्त दृढ़तासे प्रेम करे ॥ १ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और सब देवताओंकी उपासना करे, सांझ सबेरे वाणीको जीत सावधानीके साथ गायत्री मन्त्रका जप करे ॥ २ ॥ जब गुरु पढ़नेको बुलाये तब वेद पढ़े और पाठके प्रारम्भमें और अन्तमें जब उठे तब गुरुके चरणारविन्दको शिरसे वन्दना करे ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञानुसार मेखला, मृगछाला, जटा, वस्त्र, दंड और कमंडलु धारण करे, कुशा हाथमें ले यज्ञोपवीत धारण करे ॥ ४ ॥ सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा मांगकर लाये, वह सब पदार्थ गुरुकी भेंट करे और जो गुरु आज्ञा दे तो उस भिक्षाके अन्नको भोजन करे और जो गुरु आज्ञा न करे तो उपवास करे ॥ ५ ॥ शील स्वभाव रखे, थोड़ा भोजन करे, सावधान रहे, श्रद्धा रखे, जितेन्द्रिय रहे, स्त्रियोंमें और स्त्रीसंग करनेवाले पुरुषोंसे जितना प्रयोजन हो उतना ही रखे अधिक व्यवहार न रखे ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मुखसे कथा न सुने, ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे, दृढ़तापूर्वक व्रत धारे या करे, क्योंकि यह इंद्रियां बड़ी बलात्कार करनेवाली हैं, बड़े-बड़े यतियोंको जीत लेती हैं ॥ ७ ॥ जो गुरुकी स्त्री तरुण हो तो उससे बाल बहुत मलमल कर न धुलाये, उबटन अंगमें न लगवाये, बहुत मलमल कर स्नान न करवाये, नेत्रोंमें अञ्जनादिक न लगवाये ❋ ॥८॥ निश्चय है कि स्त्री अग्निरूप है और पुरुष घृतके कुम्भके समान है,इससे एकांतमें अपनी पुत्रीके साथ भी नहीं बैठे, केवल प्रयोजनमात्रकी बात करे ॥ ९ ॥ अपने आत्माका जबतक आभास कल्पना न करे तबतक भगवान् इसका द्वैतभाव और मिथ्याभाव दूर नहीं कर सकते और जबतक द्वैतभाव दूर नहीं होता तबतक विषयवासनाकी ओर मन चलायमान हो जाय तो सन्देह नहीं; इसलिए महात्मा पुरु-

---

–झटपट तालसे मिट्टी निकाल उसी का माथे पर तिलक लगा और एक चितामें से राख लेकर शरीर में मल ली और आसन मार तालके किनारे पर मौन साध कर बैठ गया। इतनेमें कटक भी निकट आ पहुंचा। राजाने साधु समझकर उसको दण्डवत प्रणाम किया और बहुत सा धन दिया। सिपाहियोंसे भी जो कुछ बन सका वह चढ़ाया। थोड़ी देरमें रुपयोंका एक ढेर लग गया, उस समय जाति वर्णको किसीने नहीं पूछा। लोग सत्य कहते—"जाति पाँति बूझत नहि कोई। हरि को भजै सो हरिका होई ।।"

* शंका—यह बात हम लोगोंने शास्त्रोंमें भी नहीं सुनी और लोगोंमें भी नहीं देखी कि गुरुकी स्त्री शिष्यके शरीरमें तेल, फुलेल मलकर स्नान कराये और अपने हाथसे उसके नेत्रोंमें अंजन लगाकर उसका शृंगार करे, फिर नारदजीने क्यों कहा कि शिष्यकी युवावस्था हो जाय तो अपनी आंखमें अंजन आदि कर्म गुरुकी स्त्रीसे नहीं कराना?

उत्तर—जब नारद और युधिष्ठिरजीका संवाद हुआ उस समयसे थोड़े ही दिन पीछे भूमिपर कलियुगका प्रवेश होनेवाला था, नारदजीने इस बातको जानकर यह बात राजा युधिष्ठिरसे कही थी, कि अब जो आगे को कलियुगमें मनुष्य जन्मेंगे उन मनुष्योंको सिखाने के लिये, क्योंकि कलियुगमें ज्ञान रहना बहुत कठिन है।

षोंका वचन है कि जहाँतक हो सके स्त्रियोंसे अलग ही रहना अच्छा है * ॥ १० ॥ ये धर्म ब्रह्मचारियोंके कहे, परन्तु गृहस्थोंको भी मानना चाहिये, गृहस्थ ऋतुकालमें स्त्रीसङ्ग करे परन्तु गुरुकी वृत्ति विकल्प करके करे ॥ ११ ॥ आंखोंमें अञ्जन, शिर धोना, तेल लगाना, मर्दन करना, स्त्रीको वा स्त्रीके चित्रको भूलकर न देखना, मद्य, मांस, हार, चन्दन, लेप अलंकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोगोंको नहीं चाहिये ॥ १२ ॥ द्विज गुरुके यहां रहकर इस प्रकार वेदत्रयी सांगोपनिषद अपनी शक्तिके अनुसार जितना प्रयोजन हो उतना अभ्यास बढ़ाये ॥ १३ ॥ जो अधिक समर्थ हो तो गुरुको गुरुदक्षिणा देकर फिर गुरुसे आज्ञा लेकर इच्छानुसार घरमें रहे अथवा वनमें वा संन्यास लेकर वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुके ही स्थानपर वास करे ॥ १४ ॥ अग्नि, गुरु, आत्मा सब जीवमात्रमें विष्णुभगवान्‌का चिन्तन करे, अर्थात् अग्नि आदि सब भगवान्‌रूप होनेसे फिर किसी वस्तुमें दोष नहीं आता ॥ १५ ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थ इस प्रकार विचरनेसे विज्ञानपनमें होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ अब मुनियोंके संमत वानप्रस्थके धर्म कहते हैं, इस संसारमें जिस वानप्रस्थ धर्ममें स्थित होनेसे ऋषि लोगोंकी गतिके विना प्रयास प्राप्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥ जोतने बोनेसे जो अन्न उत्पन्न हो उस अन्नको न खाना और जो विना समयका फल अथवा अन्न हो उसको खाना भी वर्जित है, जो फल वा अन्न आपसे उत्पन्न हो अथवा सूर्यकी किरणोंके तेजसे पके उसको खाये ॥ १८ ॥ वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदि पदार्थोंसे शास्त्रने जिस समयमें यज्ञादिक करनेको कहा है उस समयमें चरु व पुरोडास कालप्रेरित त्याग करे और नवीन-नवीन अन्नादि प्राप्त हों तो पुरानी वस्तुका परित्याग कर दे ॥ १९ ॥ अग्निकी रक्षाके लिये पर्णशाला में रहे, व पर्वतकी कन्दरामें वास करे। हिम, वायु, अग्नि, वर्षा और ग्रीष्म यह सब आप सहे ॥ २० ॥ बाल, रोम, नख, दाढ़ी, मूछ, जटा, कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, छालके वस्त्र, अग्नि और अग्निहोत्रकी सामग्री यह सब रखे ॥ २१ ॥ इस प्रकार वनमें बारह वा आठ वार चार वा दो अथवा एक वर्षतक रहे, जिससे तपके कष्टसे बुद्धिका विनाश न हो जाय इतना विचार कर वह पक्ष धारण करे जिससे ज्ञान शीघ्र हो जाय ॥ २२ ॥ जब शरीर वृद्ध हो जाय

इस बात पर एक दृष्टांत है—एक साधु बड़े जितेन्द्रिय थे। आठ पहर भगवान्‌के भजनमें लवलीन रहते थे। किसीकी ओरको दृष्टि उठाकर देखते न थे, कण्ठाग्र जिनको भगवद्‌गीताके अठारह अध्यायका पाठ, आठ दिन तक भोजन न करे, जल ही पी-पी कर रह जाया करते थे। एक दिन उसके पास एक पाखण्डी-पण्डित आये और गीताका गुटका उनके हाथमें जिसमें सुनहरी अक्षर चारों ओर रंगीन जदंवेल खिची हुई। अध्याय-अध्याय पर कृष्ण भगवान् अर्जुनादिककी मनोहर मूर्ति बनी हुई, वह गुटका साधुको भेंट किया। साधु उस पुस्तकको देखकर मोहित हो गये और अपने मन ही मनमें कहने लगे कि यह भली सुन्दर पुस्तक मिली। बड़े यत्नसे एक रेशमी वस्त्रमें बांधकर रखी। दैवयोगसे रातको मूसेने उसके तीन-चार पत्रे काट डाले, तवतो साधु पुस्तकको देखकर बड़े दुःखी हुए और क्रोध कर बोले कि उस दुष्ट मूसेको मैं आज ही मार डालूंगा। यह कह वह उसी समय एक गांवमें गये और वहांसे एक बिल्ली लाये तब तो मूसेका निकलना बन्द हो गया। परन्तु बिल्ली भूखकी मारी म्याव-म्याव करने लगी साधुने कहा यह बड़ी भारी हत्या लगी, पाठके रहे न पूजनके। उसके लिए गांवमें नित्य जाते और दूध लाते, कभी मिलता कभी न मिलता, हारकर साधुने एक गाय पाली तब तो दूधकी मानो एक नदी घरमें बहने लगी। आप पियें और कुछ बिल्लीको भी पिलायें जो रहे वह औरोंको पिला दें। अब गाय की सानी-पानी करनी भारी पड़ गयी। वहां गांवमें एक गोपकी कन्या बाल्यावस्थाकी रांड़ रहा करती थी। बाबाजीने उससे कहा हमारी गायकी भी सानी-पानी तू कर जाया कर और गोबर पाथ जाया कर, दूध तुझको दे दिया करेंगे। जब वह नवयौवना चन्द्रमुखी कोकिलकण्ठी, गजगामिनी बाबाजीके पास आने लगी तब तो बाबाजी कामान्ध हो गये। उधर वह बाला मदान्ध थी ही घर जाना भी बन्द कर दिया। निदान उस स्त्रीको आधान रहा, कुछ दिन पीछे उसके एक सन्तान पैदा हुई तब तो बाबाजीको ज्ञान हुआ और कहने लगे-देखो स्त्री का संग भूलकर न करना, थोड़े दिनोंमें एक साधुके दो साधु हो गये।

और व्याधिके आ जानेसे क्रिया कर्मका सामर्थ्य न रहे और वेदविद्यामें भी असमर्थ हो जाय तब अनशनादि वृत्ति धारण करे ॥ २३ ॥ फिर अहंकार ममताको त्यागकर आत्मामें अग्निको धारण कर उनके कारणोंमें रखे जो-जो उनके योग्य स्थान हैं, वहां-वहां अग्निको लगाये ॥ २४ ॥ उत्पत्तिके अनुसार शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, गर्मीको तेजमें, रुधिर, श्लेष्म, थूक, पीपादिको जलमें अस्थि आदि जो विकार पृथ्वीसे उत्पन्न हुए हैं उनको पृथ्वीमें लीन करे ॥ २५ ॥ वाणी और उनके कर्मकारक वक्तृता सहितको अग्निमें लीन करे, कर और शिल्पता सहित उनके कर्मरूपको इन्द्रमें, गति सहित पद और उनके कर्मरूपको विष्णुमें, रति उपस्थ और उनके कर्मरूपको प्रजापतिमें लीन करे ॥२६॥ गुह्यद्वार और उसके कर्मरूप मलोत्सर्गको मृत्युमें, नाद सहित श्रोतृ इंद्रिय दिशाओंमें, स्पर्शसहित त्वचाको वायुमें लीन करे ॥ २७ ॥ चक्षुसहित रूपको ज्योतिमें, वरुणसहित जिह्वाको जलमें और नाक अश्विनीकुमारों सहित पृथ्वीमें लीन करे ॥ २८ ॥ मनोरथसहित मनको चन्द्रमामें, ज्ञानसे बुद्धिको ब्रह्मामें, अहंकार और उसके कर्मोंको जिससे अहंकार ममतापूर्वक क्रिया होती है उनको रुद्रमें, अध्यात्मज्ञानसहित क्षेत्रज्ञ गुणोंसे वैकारिक देवताओंको परब्रह्ममें लीन करे ॥ २९ ॥ पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको मायामें, मायाको परब्रह्ममें, लीन करे ॥ ३० ॥ इस प्रकार अक्षरता करके आत्माका जो चिन्मात्र शेष रहे उसको अद्वितीय ब्रह्म समझकर विराम करे, जैसे सब काष्ठको जलाकर अग्नि अपने स्वरूपमें लय हो जाती है, वैसे ही अग्निके समान अपने आप विरामको प्राप्त होना चाहिये, क्योंकि अग्नि साक्षात् ईश्वरका स्वरूप है ऐसा ऋग्वेदमें लिखा है–"अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्"॥(अंगानि नयतीत्यग्निः)अर्थात् अग्नि ही सब अंगोंको बनाती है और सब अग्निमय है, अतः अग्निके उपासक सब सुखोंको भोगते हैं–"अग्न्युपासकः सर्वं सुखमेति" अग्निमें हवन करनेसे सब देवताओंको भाग पहुँचता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
सप्तमस्कन्धे आश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा–वानप्रस्थ असमर्थकी, देहत्यागविधि भाष ।
अब समरथकी विधि कहौं, सुनहु सहित अभिलाष ॥

नारदजी बोले कि जो पुरुष ब्रह्मविचारमें प्रवृत्त हो, उसको चाहिये कि संन्यास धारण करके शरीरमात्र शेष रखे और सब वस्तुका त्याग कर दे और किसी प्रकारकी अपेक्षा न रखे, पृथ्वीपर विचरता रहे और नगरमें वा वस्तीमें एक रात्रिसे अधिक वास न करे ॥ १ ॥ जो संन्यासीको वस्त्र धारण करनेकी इच्छा हो तो उतना वस्त्र धारण करे कि जिससे कोपीन देखनेमें न आये और जटी, कमंडलु, दंडादिक चिह्नको आपदामें भी न त्यागे, इनके सिवाय और कुछ वस्तु रखनी नहीं चाहिये ॥ २ ॥ जब भिक्षाकी इच्छा हो तो अकेला भिक्षा मांगे, अपने आत्मामें आप रमे, किसीका आश्रय न रखे, सब जीवमात्रसे सुहृद्भाव रखे, शान्त स्वभाव रहे, श्रीनारायणमें परायण रहे ॥ ३ ॥ पर पुरुष परमेश्वरमें इस विश्वको और अपने आत्माको देखे और कार्य कारणमय सब विश्व परब्रह्ममें विराजमानहै, इस प्रकार विचार करता रहे॥४॥

सुषुप्ति अवस्थामें तमोगुणका कारण आत्मस्वरूप ढँका रहता है, जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें विक्षेप होनेके कारण उसका प्रकाश नहीं होता, परंतु बात यह है कि जब अवस्थाओंकी संधि होती है तब तमोगुणका विक्षेप नहीं होता। ऐसे समयमें आत्मरूपका लक्षण जानकर आत्माका अवलोकन करना चाहिये॥५॥ इस शरीरका नाश जो कि अवश्य होनेवाला है उसके मरणकी चाहना न करे ऐसे ही जो सदा जीवित न रहेगा उसके जीनेकी आशा न करे जो सब प्राणीमात्रका नाशक पालक काल है, उसकी प्रतीक्षा करता रहे॥६॥ यह संन्यासियोंका धर्म है। असत् शास्त्र अर्थात् अनात्मप्रतिपादक नाटकादि शास्त्रसे आसक्त न हो, किसी आजीविकाके ग्रन्थका पक्षापात न करे, जैसे ज्योतिष, वैद्यक, इन्द्रजालादिक ग्रंथ हैं, तर्क और अयोग्य वाद विवादका परित्याग करे, किसी पक्षका आश्रय न ले॥७॥ बहुतसे चेले न करे, बहुतसे ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, सभा जोड़कर किसी ग्रंथकी व्याख्या न करे, अपने रहनेके लिये किसी स्थानके बनानेका आरंभ न करे॥८॥ जबतक चित्तमें ज्ञान उत्पन्न न हो तबतक संन्यासीको चाहिये कि संन्यस्तके चिह्न धारण करे और आत्माकी शुद्धिके लिये संयम-नियम करके ज्ञान प्राप्त करे, परन्तु ज्ञान होनेके उपरान्त उन नियमोंके करनेका कुछ प्रयोजन नहीं और संयम भी आपसे आप प्राप्त हो जाते हैं, इस लिये उस समयके शांतचित्ती संन्यासधर्मके चिह्न धारण करे, चाहे न करे, चिह्नोंके रखनेसे किसी प्रकारका धर्म नहीं होता और न रखनेमें कुछ हानि है, उनको चिह्नोंका रखना और न रखना दोनों समान हैं॥९॥ ऊपरके चिह्न रखनेसे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता, परंतु भीतरसे अन्तःकरणको अवश्य शुद्ध रखना चाहिये। संन्यासीको चाहिये कि विद्वान् होनेपर भी उन्मत्त और बालकोंकीसी वृत्ति रखे और कवि होनेपर भी मूकके समान बना रहे, अपनी बुद्धिको सावधान रखे और समदृष्टिसे सबको देखे॥ १०॥ प्रह्लाद और अजगरवृत्तिवाले एक मुनि (दत्तात्रेय) का परमहंसधर्म सम्बन्धी एक संवादरूप प्राचीन इतिहास कहते हैं, सुनो॥ ११ जब बहुत दिन राज्य करते करते व्यतीत हो गये तब प्रह्लादजी एक दिन लोकोंकी रीति-भांति देखनेके लिये कुछ एक अमात्यगणोंको साथ लेकर देशांतरोंका पर्यटन करनेके लिये निकले॥ १२॥ घूमते-घामते दक्षिण दिशामें कावेरी नदीके निकट पहुँचे। देखा तो पृथ्वीपर सोये हुए और शरीरके सब अवयव धूरिसे अट रहे थे और उसका निर्मल तेज छिपा हुआ था, अतः यह महायोगी न जान पड़े॥१३॥ कर्मसे, आकृतिसे, वाणीसे वर्णाश्रमके चिह्नोंसे किसीने पहिचाना नहीं कि यह दत्तात्रेय हैं॥ १४॥ उस योगिराजको नमस्कार करके विधिवत्पूजन कर पश्चात् चरणोंपर शिर धरकर जानेके लिये महाभागवत असुरवंशावतंस प्रह्लादजीने पूछा॥ १५॥ प्रह्लाद बोले कि जो उद्यम करनेवाले भोगी हैं उसके सदृश आपका शरीर पुष्ट है, क्योंकि उद्यम करनेवालोंको धन प्राप्त होता है और धनवालोंको सुखभोग प्राप्त होता है, भोगियोंका शरीर पुष्ट होता है; परंतु विना सुखभोगके शरीर ऐसा पुष्ट नहीं हो सकता॥१६॥ हे ब्रह्मन्! आप तो निरुद्यमी हो, सदा शयन करते रहते हो और विना उद्यम किये धन कहां और धन विना भोग करनेकी कोई सम्भावना नहीं और विना धन शरीरका पुष्ट होना कठिन है, इसलिये मैं आपसे विनयपूर्वक निवेदन करता हूँ, अभोगी यह आपका शरीर किस प्रकार पुष्ट है? हे विप्रवर! जो यह बात कहनेके योग्य हो तो कृपा करके कहिये और न कहनेके योग्य हो तो मेरा अपराध क्षमा कीजिये॥ १७॥ धन उपार्जन कर-

नेके लिये असमर्थ लोग भी अनेक उद्यम करते हैं, और आप समर्थ होनेपर भी कोई उद्यम नहीं करते, यह क्या कारण? आप तो कवि, समर्थ, चतुर, विद्वान्, निपुण दृष्टिवाले, वार्तालापसे लोगोंका चित्त प्रसन्न रखनेवाले,इतने पर भी सोते रहते हो और लोग अपने-अपने काम करते हैं उसको देखते रहते हो और किसीका देखादेखी भी कोई काम नहीं करते, न किसीकी भलाई करनी, न किसीकी बुराई करनी, आप तो कोई योगीजन जान पड़ते हो ? ॥ १८ ॥ नारदजी बोले कि दैत्यपतिसे प्रह्लादने जब इस भाँतिका प्रश्न किया तब उसकी अमृतरूप वाणीके वशीभूत हो योगिराज हँसकर बोला ॥१९॥ दत्तात्रेयजी बोले–हे असुरश्रेष्ठ ! जो बड़ोंकी सम्मति है, वह सब तुम जानते हो और ज्ञानियोंमें आप प्रशंसनीय हैं, प्रवृति और निवृत्तिमें पुरुषोंको कैसा फल प्राप्त होता है, उसको तुम अन्तर्दृष्टिसे भली-भांति जानते हो ॥ २० ॥ जिसके हृदयमें नारायणदेव भगवान् सदा वास करते हैं उसके हृदयसे सम्पूर्ण अज्ञानका नाश हो जाता है, जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाता है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जो-जो प्रश्न आपने हमसे किये उन-उन प्रश्नोंका उत्तर हम आपको देंगे, क्योंकि आत्माकी शुद्धि करनेवालोंसे आप प्रशंसनीय हैं, आपका अवश्य सत्कार करना चाहिये ॥२२॥ इस संसारमें भ्रमानेवाली और जन्म-मरणके प्रवाह चलानेवाली तृष्णा है, जो योग्यकर्म हैं उसको भी पूरा नहीं करने देती और विषयकर्म कराकर मुझको अनेक योनियोंमें तृष्णा ही घुमाती है ॥

दोहा स्वर्ग नरक अपवर्गका, दाता मनुजशरीर ।
करै कर्म तस फल लहै, यहि तनुते मतिधीर ॥

अपने कर्मोंसे भ्रमता हुआ यदृच्छासे इस लोकमें जन्म लेता है,यह लोक स्वर्ग एवं अपवर्गका द्वार है। कभी पशु बना, कभी पक्षी बना, इसी तृष्णा द्वारा अब दैत्यगतिसे इस मनुष्ययोनिमें डाला गया हूँ। मनुष्यदेहके पुण्यसे स्वर्गका और पापसे नीच योनिका, पाप-पुण्यके मिश्रित होनेके पीछे मनुष्यदेहका और निवृत्तिसे मोक्षका द्वार है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस संसारमें मनुष्य जन्म पाकर सुख पानेको और दुःख मिटानेके लिए अनेक प्रकारके कर्म लोग-लुगाई किया करते हैं, परन्तु उसकी इच्छानुसार फल उसको नहीं मिलता, किन्तु उनकी इच्छाके प्रतिकूल फल मिलता है। अतः इस तृष्णाका कौतुक देखकर मैं सब कर्म करनेसे निवृत्त होकर यहां एकांतमें आ बैठा हूँ ॥२५॥ इस मनुष्यके आत्माके अनुरूप सुख तब हो सकता है, कि जब चेष्टाओंको यह देह त्याग दे और मनके स्पर्शजन्य भोगोंको देखकर चुपचाप हो रहे, यह सुख इस जीवका स्वरूप है और जब उसकी सब क्रिया बन्द हो जाती हैं, तब वह आपसे आप प्रकाशता है, मैं अनेक प्रकार भोगोंको और मनकी कल्पनाओंको अवास्तविक समझकर सब उद्यमोंको छोड़ बैठा हूँ और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाता है उसीमें सन्तोप कर लेता हूँ ॥२६॥ अपना सुखरूप पुरुषार्थ अपने आपमें ही है, यह पुरुप भूलकर चित्रविचित्र असत् द्वैत पदार्थ अवास्तविक होनेपर भी घोर संसारके प्रवाहमें भटकता फिरता है ॥२७॥ जैसे कोई प्राणी जलकी कामना करके कोई आदिसे छिपे हुए जलको छोड़कर मृगतृष्णाको दौड़ता है, ऐसे अपने स्वरूपमें परमेश्वरको छोड़कर विषयोंकी ओर दौड़ता है और परमात्माको नहीं भजता ॥२८॥ परमेश्वरके अधीन देहादिक हैं, इनसे आत्माके सुखकी इच्छा करनेवाला मूर्ख है, दुःखका नाश समझकर निष्फल क्रियाओंको करता रहता है, परमेश्वरका भजन करता नहीं, इसीसे सदा दुःख पाता है। इसलिये ईश्वरको भजो और सबका त्याग करो, यही हमारी

आज्ञा है, षट्विध शरणागत करे, परमहंसवृत्ति धारे, क्रोध, लोभ, मोह, निंदा, छल, कपट, तृष्णा, निर्लज्जता, दुष्टता और क्लेशका जो त्याग करेगा वह निःसंदेह वैकुंठधामको जायगा ॥२९॥ यह निश्चय जानो कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे जो कभी मुक्त नहीं हुआ है और जिसके शिरपर सदा काल घूम रहा है, ऐसा पुरुष अत्यन्त कठिनतासे भी द्रव्य अथवा सुख प्राप्त कर ले तो भी उससे उसको क्या ? ॥ ३० ॥ लोभी, अजितेंद्रिय, धनी मनुष्योंको नित्य क्लेश और चिंतामें ही पड़ा देखते हैं और इतने भयभीत रहते हैं कि मारे भयके रातको नींद तक नहीं आती और सब ओरसे शंका बनी रहती है ॥३१॥ राजासे, चोरोंसे, शत्रुओंसे, स्वजनोंसे पशुपक्षियोंसे, भिखारियोंसे, कालसे और निजसे भी नित्य प्राणोंसे अधिक धनका भय बना रहता है ॥३२॥ शोक, मोह, भय, क्रोध, रोग, दीनता और पारिश्रमादिक सब धनके मूल हैं, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि प्राण और धनकी चाहना न करे ॥३३॥ इस जगत्में दो हमारे परमगुरु हैं, मधुकी माखी और अजगर, जिनकी शिक्षा पाकर हम वैराग्य और परितोषको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ मधुमक्षिकासे तो मैंने सब कामसे विराग होना सीखा है; शहदकी नाईं महाकष्टसे धनवान् लोग धन इकट्ठा करते हैं और चोर बटमार उनको मारकर उनका धन लूटकर ले जाते हैं, जैसे मुहालकी मक्खियोंको मारकर वधिक लोग शहद ले जाते हैं ॥३५॥ सन्तोषमें मेरा गुरु अजगर सर्प है, कि विना उद्यम किये भाग्य से जो कुछ प्राप्त हो जाता है उसीमें सन्तोष कर लेता हूँ, कोई समय ऐसा भी हो जाता है कि महीनोंतक कुछ नहीं मिलता, उस समय किसी प्रकारका उद्योग भी नहीं करता, अजगरके तुल्य धैर्य धारण किये, विना खाये-पिये पृथ्वीपर पड़ा लोटता रहता हूँ, न किसी बातकी चिंता की न किसी बातका हर्ष किया॥३६॥कभी थोड़ा कभी बहुत, कभी स्वाद कभी बेस्वाद कभी बहुगुणयुक्त कभी गुणहीन, जो कुछ भोजन मिल जाता है वही खा-पीकर अपना उदरपूर्ण कर लेता हूँ❀॥३७॥कहीं कोई श्रद्धासे भोजन करा देता है तो कर लेता हूँ अश्रद्धासे करा देता है तो कर लेता हूँ, कभी दिनमें कुछ फल अन्नादि मिल जाता है, कभी रातको मिल जाता है; जिस समय मिल गया उसी समय खाकर अपना चित्त प्रसन्न कर लेना ॥३८॥ रेशमका वस्त्र वा सूतका वस्त्र, मृगचर्म वा चीर वल्कल अथवा भोजपत्र, जैसा मुझको प्रारब्धसे मिल जाता है उसीको सन्तोष करके पहन लेता हूँ ॥३९॥ कभी धरणीपर सो रहता हूँ, कभी घासपर, कभी पत्तों पर, कभी पाषाणकी शिलापर सो रहता हूँ, कभी राखमें ही लोटता रहता हूँ और कभी कोई आदर-सत्कार करके अपने घर ले जाता है, उसकी प्रसन्नताके ऊँचे-ऊँचे अटा-अटारियोंमें सुन्दर-सुन्दर शय्याओंपर सो रहता हूं ॥ ४० ॥ हे राजन्! कभी नहाता हूं कभी शरीरपर मिट्टी लगा लेता हूं; कभी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण कर लेता हूं, कभी माला और कण्ठी समेत भांति-भांतिके गहने पहन लेता हूं कभी रथपर, कभी घोड़ेपर, कभी हाथीपर चढ़ जाता हूँ और

* शंका—अजगर मुनिने प्रह्लादसे कहा कि हमारे लिये कोई चीज अच्छी बुरी जो कोई मनुष्य देता है उस वस्तुको हम ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु इच्छा किसी वस्तुकी हम नहीं रखते। संसारमें जीव अनेक प्रकारके होते हैं, कोई मसखरापनसे स्त्री अथवा मदिरा आदि लेकर अजगर मुनिको देगा तो वह उसको ग्रहण करेंगे या नहीं ? उस समय अजगर मुनि क्या करेंगे, ग्रहण करेंगे तो नरकवासी होंगे और त्याग करेंगे तो भेददृष्टि कहावेंगे फिर क्या होगा ?

उत्तर—अजगरमुनिने सत्य कहा है, सब वस्तुके भोगनेवाले अजगर मुनि थे, परन्तु जो कोई ऐसा दुष्ट कर्म करनेका विचार भी करेगा तब उसको उसी समय भगवान्का सुदर्शनचक्र भस्म कर देगा, क्योंकि अजगर मुनिकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शनचक्रको भगवान्ने आज्ञा कर रक्खी है कि जो कोई इनको सतावे और दुःख दे, उसको उसी समय भस्म कर देना ।

कभी दिगम्बर होकर ग्रहकी नाईं घूमता फिरता हूँ ॥ ४१ ॥ न तो मैं किसीका निंदक और न किसीकी स्तुति करनेवाला; यह जीव स्वभावसे विषम भावको प्राप्त है, परन्तु सब जगत्का कल्याण और भगवतमें लीन होना चाहता हूँ ॥४२॥ जाति भेदको मनकी वृत्तियोंमें, मनकी वृत्तियोंको पदार्थरूप चंचल मनमें होमे, मनको अहंकारमें होमें और अहंकारको महत्तत्त्वद्वारा मायामें होमे ॥४३॥ सत्यद्रष्टामुनि मायाको आत्माके अनुभवमें होमे और निश्चेष्ट होकर मुनि अपने अनुभवमें स्थित होकर विचरे ॥४४॥ मेरा जो गुप्त सिद्धान्त था वह सब तुम्हारे सामने वर्णन किया कि तुम भगवान्के भक्तहो और मूर्ख लोग तो इन बातोंको शास्त्रके विरुद्ध समझते हैं ॥४५॥ नारदजी बोलेकि श्रीप्रह्लादजी इस प्रकार दत्तात्रेयजीके मुखसे परमहंसधर्म सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दत्तात्रेयजीका पूजन कर मस्तक नवाकर आज्ञा ले अपने घरको चलने लगे, तब दत्तात्रेयजीने यह कवित्त पढ़ा, कि इस प्रकार संसारका त्याग करना ॥

कवित्त–जैसे फल झरेको बिहंग छांड़ि देत रूख, भुवा देख सुवा छोड़े सेमरकी डारको। सुमन सुगन्ध बिन जैसे अलि छाँड़ि देत मोती नर छांड़ि देत विना आबदारको॥ जैसे सूखे तालको कुरङ्ग छाँड़ि देत पंथ, मन फटे छांड़ि देत मानसहू यारको। जैसे चक्रवाक देश छांड़ि देत पावसमें, ऐसे ज्ञानी छांड़ि देत झूँठ या संसारको॥ ४६॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवाद प्रह्लादाय दत्तात्रेयेण पारमहंस्यधर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–चौदहमें गृहधर्म सब, सुखदायक आचार।
भिन्न-भिन्न वर्णन करूं, सज्जन लेहिं विचार॥

युधिष्ठिरजी बोले-हे देवऋषि! मुझ सरीखा गृहस्थ मूढबुद्धिवालापुरुष,संन्यासधर्मकी पदवी मोक्षको विना प्रयास जिस विधिसे प्राप्त हो, वह कहो ॥१॥ नारदजी बोले-हे राजन्! गृहस्थ मनुष्यको चाहिये कि घरमें बैठा हुआ जो कुछ वेद विहित कर्म है उनको करता रहे परन्तु उन कर्मोंको भगवान् वासुदेवको अर्पण करता रहे और साक्षात् महामुनियोंकी उपासना करे॥२॥ भगवान्के अवतारसम्बन्धी कथामृतको वारंवार श्रद्धासहित सुने और नित्यप्रति महाशान्त महात्माजनोंका सत्संग करे॥३॥स्त्री और पुत्र आदि जिनसे एक दिन अवश्य वियोग होनेवाला है उनकी संगति धीरे-धीरे छोड़ जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नमें अपने सुहृद् पुत्रादिकोंसे अधिक स्नेह और लालन-पालन करता है और जागने पर सबको छोड़ देता है, इसी प्रकार अपने आप उनसे रीति-प्रीति और उससे सब संबन्ध त्याग दे ॥४॥ ज्ञानी लोगोंको चाहिये कि देह-गेहमें उतना प्रयोजन रखे कि जितनेमें कार्य सिद्ध हो, अधिक नहीं रखना चाहिये। चित्तमें वैराग्य धारण कर ले, ऊपरके मनसे गृहस्थ पुरुषोंके समान पुरुषार्थ करता रहे ॥५॥ जातिके लोक, माता, पिता, पुत्र, भ्राता और मित्र जो कुछ कहें अथवा जो कुछ उनकी इच्छा हो वह काम करे, परंतु ममता और मोहको त्याग दे ॥६॥ स्वर्गका, पृथ्वीका, आकाशका, जो भगवत्का दिया हुआ धर्म है, उसको यह समझे कि भगवान्ने मुझको सब कुछ दिया है, आनन्दसे उसे भोगे, परन्तु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भगवान्में दिन-रात मन लगाये रहे ॥ ७ ॥ जितनेमें उदर पूर्ण हो उतना धन तो प्राणी अपना समझे और उससे अधिक जो

धन हो, उस धनका अभिमान न करे और जो उसको अपना समझेगा वह चोरके समान दंड देनेके योग्य है ॥८॥ मृग, ऊँट, गर्दभ, बन्दर, मूसा, सांप, बिच्छू, पशु, पक्षी और मक्खी इनमें और अपने पुत्रमें कुछ भेद न समझे ॥ ९ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि अर्थ, धर्म, काममें सदा लगा रहे। जैसा देश काल हो और जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय उसीमें अपना निर्वाह करे ॥१०॥ कुत्ते, बिल्ली और श्वपच इत्यादि पर्यन्त सब जीवमात्रको भी अपनेमेंसे यथायोग्य अन्नादि देता रहे और जो मुख्य अपनी पत्नी है और अपनी सेवा करनेके लिये है, जिसमें लोगोंका 'यह स्त्री हमारी है, इसके स्वामी हम हैं' ऐसा ज्ञान है उस अपनी प्यारी नारीको भी धर्मशास्त्रकी आज्ञानुसार साधुसेवामें लगा दे ॥ ११ ॥ जिस स्त्रीके लिये अपने प्राण तज देते हैं और अपने पिता और गुरुको भी मार डालते हैं, कुलकी लाज तज देते हैं, उस स्त्रीसे अपने स्नेह और ममताको जिसने छोड़ दिया, ऐसे अजित पुरुषोंको भगवान्‌को वश करना क्या बड़ी बात है ? *॥१२॥ कहां तो यह तुच्छ शरीर, जिसके अन्तकालमें विष्ठा, राख और कीड़े हो जाते हैं और कहां वह स्त्री, जिससे शरीरके सुखके लिए रीति-प्रीति करते हैं और कहां वह आदिपुरुष अविनाशी सर्वव्यापक परमात्माका स्वरूप ? इसलिये सबसे अनुराग त्याग भगवान्‌में मन लगाये ॥ १३ ॥ जो कुछ अन्न फलादि भाग्यसे मिल जाय उससे पञ्चमहायज्ञ करे, जो कुछ उसमेंसे बचे उससे अपना उदर पूर्ण करे और उदर-पूर्णसे जो कुछ अवशेष रहे वह साधु सन्तोंको बांट दे, संग्रह करना अच्छा नहीं,

दोहा—अधिक भोज्यको करत है, सत चकोर परित्याग।
जो चकोर संग्रह करे, परमें लागै आग ॥ १४ ॥

अपनी वृत्तिसे जो धन प्राप्त हो उस धनसे देवता, ऋषि, भूत, पितर और बहुतसे जीवोंका आदर सत्कार करे और अपना भी पालन करे, इस प्रकार पूजा सत्कार करनेसे अन्तर्यामी परमात्माका ही पूजन होता है ॥ १५ ॥ जो आत्माके अधिकार आदिक सब यज्ञ सम्पदा हैं उनके द्वारा एवं वैतानिक विधि करके अग्निहोत्रादिसे यजन करे ॥१६॥ हे राजन् ! यज्ञपुरुष भगवान् सर्वयज्ञोंके भोक्ता हैं, वे अग्निमुखसे भोगते हैं, परंतु ब्राह्मणके मुख द्वारा हवन करनेसे अर्थात् ब्राह्मणोंको अच्छे-अच्छे मिष्टान्न लुचई, मोहन भोग, लड्डू, अमृती, पेड़े, बैकुण्ठी आदि भोजन करानेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, ऐसा घृतादिक पदार्थोंके अग्निमें हवन करनेसे कभी प्रसन्न नहीं होते ॥ १७ ॥ उससे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण देवता हैं; इनका यथायोग्य पूजन करे, यही सब कामनाओंके सिद्ध करनेवाले हैं; यही परमपूजनीय हैं; यही सर्व जीवमात्रके क्षेत्रोंको जाननेवाले हैं, अतः इनको ही अन्तर्यामी जान-दान सम्मान देना चाहिये क्योंकि अन्तर्यामी भगवान्‌का मुख्य मुख ब्राह्मण ही हैं ॥ १८ ॥ द्विजवर्णको चाहिये कि भादों मासकी पूर्णमासीसे लेकर कुआँरकी अमावस्या तक माता-पिताका कुटुम्ब सहित श्राद्ध करे, और जिस-जिस तिथिमें जिनका देहान्त हुआ हो, उन्हीं तिथियोंमें उनका श्राद्ध करे और जिसके

* शंका—आज तक ऐसा हमने नहीं सुना और लोकमें कहीं न देखा कि स्त्रीके लिये कोई अपना प्राण त्याग दे वा पिता गुरुको मार डाले और जो कोई ऐसा कहे कि जानकीजीके लिये रामचन्द्रने रावणको मार डाला वह ब्राह्मण था, और द्रौपदीके लिये श्रीकृष्णने द्रोणाचार्य आदि गुरुको मरवा डाला तो ऐसा नहीं मानना चाहिये, क्योंकि रामचन्द्र और श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म थे, पामरजीवोंके लिये नारदजीने क्यों कहा ?

उत्तर—तृष्णारूप स्त्रीके लिये नारदजीने कहा है, संसारकी स्त्रियोंके लिये नहीं कहा, तृष्णारूपी स्त्रीके लिये मनुष्य अपना तनु त्याग देते हैं और पिता गुरुको भी मार डालते हैं।

मरनेकी तिथिका स्मरण न हो उसका श्राद्ध अमावस्याके दिन कर दे ॥ १९ ॥ दक्षिणायन अर्थात् कर्कके सूर्यमें, उत्तरायण अर्थात् मकरके सूर्यमें, विषुवत् अर्थात् मेष और तुलाके सूर्यमें व्यतीपातमें क्षयतिथिमें, सूर्यग्रहणमें चन्द्रग्रहणमें, श्रवणद्वादशीमें ॥२०॥ वैशाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तीजमें, कार्तिक शुक्ल नवमी अर्थात् आमला नवमीमें, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें चार अष्टका नाम तिथि, जैसेः-

दोहा—श्रवण द्वादशी भाद्रसित, अछय तृतीया सोय।
नवमी कार्तिक मासकी, चार अष्टका होय ॥ २१ ॥

माघ शुक्ल सप्तमीमें, मघायुक्त अमावस्यामें माघ शुक्ल पूर्णमासीमें और दूसरे महीनोंकी अपने-अपने नक्षत्रोंवाली राका और अनुमति नाम पूर्णमासियां, जैसे चैत चित्रा, वैशाख विशाखा, ज्येष्ठ ज्येष्ठा, आषाढ़ पूर्वाषाढ़ अथवा उत्तराषाढ़, श्रावण श्रवण, भाद्रपद पूर्वाभाद्रपद अथवा उत्तराभाद्रपद, आश्विन अश्विनी, कार्त्तिक कृत्तिका, मार्गशिर मृगशिरा (इसका नाम अगहन भी है) पौष पुष्य और फाल्गुन पूर्वाफाल्गुनी अथवा उत्तराफाल्गुनी ॥२२॥ द्वादशी तिथिमें और जिनमें अनुराधा, श्रवण,उत्तराफाल्गुनी पूर्वाषाढ और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो, उन तिथियोंमें,जन्मनक्षत्रमें और वामनद्वादशीमें विधिपूर्वक श्राद्ध करे ॥ २३ ॥ यह श्रेष्ठ दिन केवल श्राद्ध करनेके ही लिये नहीं हैं, किंतु पुरुषके कल्याणको भी बढ़ानेवाले हैं,इसीलिये इन पुण्यकालकी तिथियोंमें शुभ कार्य करना। व्रत, देवद्विजकी पूजा लिखी है, क्योंकि पुण्य करना आयुकी वृद्धि करनेवाला है ॥२४॥ इन श्रेष्ठ तिथियोंमें स्नान, जप, हवन व्रत, देवद्विज पूजा जो कुछ शुभ कार्य किया जाता है वह सब अक्षय होता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! अपनी अर्धांगिनी भार्याको पुंसवनादि संस्कारके समय,तथा अपने पुत्रपौत्रके अथवा अपने संस्कारके समय, प्रेतकी दाहक्रियाके समय, संवत्सरके श्राद्धके समय और जब कल्याणकारी कार्य करनेका समय हो उस समय शुभ कार्य करना चाहिये॥२६॥ धर्मादिक मङ्गलके देनेवाले पुण्यतम देशोंके नाम तुमसे कहता हूं—जहां-जहां चराचरके निवास स्थान वासुदेव भगवान्‌की मूर्ति विराजमान है और सत्पात्रोंका समागम है ॥ २७ ॥ वह देश परमपुनीत जानना, एवं जहां विद्यावान्, तपस्वी और दयावान् ब्राह्मण लोग निवास करते हैं,जहां-जहां बांकेविहारी कृष्णमुरारीकी मोहिनी मूर्ति विराजमान है, वह देश कल्याणका स्थान है। जहां पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियोंका प्रवाह हो रहा है वह अत्यंत पुण्यतम देश है॥२८॥ २९॥ पुष्करादिसरोवर जहां महात्मापुरुषोंका निवास क्षेत्र है, जैसे—कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहऋषिका आश्रम ॥३०॥ नैमिषारण्य, बल्गुतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर, प्रभासक्षेत्र, द्वारकापुरी, काशी, मथुरा, पंपासुर, बिन्दुसरोवर ॥३१॥ और हे राजन् ! नारायणाश्रम, नंदा और जहां सीतारामके आश्रमादिक हैं, जहां सब कुलाचल, महेन्द्र, मलयगिरि आदि बड़े-बड़े पर्वत हैं ॥३२॥ वे पुण्यतम देश हैं, जहां श्रीहरिकी अर्चा विग्रहरूप होके बसती है, जो मनुष्य अपना मंगल चाहे वह वारंवार इन देशोंका सेवन करे, क्योंकि इन श्रेष्ठ देशोंमें जो पुण्य कर्म किया जाता है, वह सहस्रगुणा फल देनेवाला होता है ॥ ३३ ॥ हे महाराज युधिष्ठिर ! अच्छे पात्रवेत्ता पंडितोंको सुपात्र कहते हैं, परन्तु सबसे अधिक श्रीनारायणही एक परमपात्र हैं, क्योंकि सब चराचरमय वासुदेव भगवान् हैं ॥३४॥ हे राजन् ! राजसूयमें अग्रपूजाके समय सब देवता ऋषि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रादिक सब थे परंतु वहां अग्रपूजनीय श्रीकृष्णचन्द्र महाराजको सम-

झकर पहले पूजा द्वारिकाधीशकी ही हुई थी॥३५॥सब जीवराशियोंसे भरा यह ब्रह्मांड एक बड़ा वृक्षरूप है और उसका मूल भगवान् हैं, इसलिये भगवान्की पूजा करनेसे सब जीवात्माओंकी तृप्ति हो जाती है, जैसे वृक्षकी जड़के सींचनेसे सब शाखा और पत्ते हरे हो जाते हैं ॥३६॥ सब पुर अर्थात् शरीर भगवान्ने ही रचे हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, देवता और ऋषि, यही श्रीकृष्ण भगवान् जीवरूप धर-धरके सब प्राणियोंके शरीररूप पुरमें शयन करते हैं इसलिए इनका नाम पुरुष रखा है ॥३७॥ हे राजन् ! इन सबमें भगवान् न्यूनाधिक भावसे रहते हैं इसलिये पात्र परमेश्वर हैं ! जैसी जिसकी आत्मा है वैसे ही वर्तमान हैं। तपसे, पूजासे, प्रार्थनासे जिसमें भगवान्का अंश अधिक पाया जाता है उन मनुष्योंको उत्तम पात्र जानना चाहिये ॥३८॥ जब मनुष्य सत्पात्र और भगवद्भक्त थे, तब मनुष्योंके शरीरमें ही भगवान्की पूजा किया करते थे, जब मनुष्योंके मनमें विकार आ गया और परस्पर भेद समझने लगे और एकको एक आज्ञा करने लगे तब त्रेतायुगके प्रारम्भमें कवियोंने भगवान्की अर्चा मूर्तियोंमें करनी आरम्भ कर दी ॥३९॥ बहुतेरे लोगोंने समझ रखा है, कि मूर्तिमें ही भगवान् हैं, यह समझकर जो मूर्तिका पूजन करते हैं उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं और जो मनुष्य परस्पर द्रोह करते हैं उन लोगोंको वह प्रतिमा फल नहीं देती ॥ ४० ॥ हे राजन् ! पुरुषोंमें वही ब्राह्मण सत्पात्र है जो तपसे, विद्यासे, सन्तोषसे, भगवान्के शरीररूप वेदको धारण करते हैं, उनको ही उत्तम पात्र महात्मा लोग बतलाते हैं ॥ ४१ ॥ यह ब्राह्मणोंका ही सामर्थ्य है जो अपने चरणोंकी रजसे त्रिलोकीको पवित्र कर सकते हैं, यह ब्राह्मण जगत्के आत्मा श्रीकृष्ण भगवान्के परमप्रिय देवता हैं जैसे सुदामा ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते सप्तमस्कन्धे सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—वर्णाश्रमकी रीति सब, मोक्ष धर्मको सार ।
भिन्न भिन्न वर्णन करौं, पन्द्रहमाहिं विचार ॥

नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! किसी ब्राह्मणकी तो कर्मोंमें निष्ठा है, किसीकी तप करनेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढ़नेमें निष्ठा है, किसीकी वेद पढ़ानेमें निष्ठा है, किसीकी ज्ञानमें निष्ठा है और किसीकी योगमें निष्ठा है ॥ १ ॥ जो मनुष्य देव-पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें अनन्त फलका अभिलाष करे तो उसको चाहिये कि ज्ञाननिष्ठावाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक श्राद्धान्न दे, जो ज्ञान निष्ठावाला कहीं नहीं मिले तो और कोई जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हो उसको यथायोग्य भोजन कराये ॥ २ ॥ जिन ब्राह्मणोंको निमंत्रित श्राद्धमें किया जाय वह विप्रवर सब प्रकारसे श्रेष्ठ और शुद्ध होने चाहिये। विश्वदेव निमित्त दो ब्राह्मण जिमाने चाहिये और पितृकर्ममें तीन ब्राह्मणोंको जिमाये; बरन् श्रद्धापूर्वक एक-एक ब्राह्मणका जिमाना भी अच्छा है और जो अधिक धन हो तो भी विस्तार करना चाहिये ॥ ३ ॥ देशकालके योग्य श्रद्धा, द्रव्य, पात्र, पूजन यह सब बहुत विस्तार करनेसे, श्राद्धमें स्वजनोंके जिमानेकी इच्छासे श्राद्ध श्रद्धापूर्वक नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ देश काल सुन्दर प्राप्त हो जाय तो श्रीभगवान् वासुदेव जिनके देवता ऐसे मुनि अन्न, जौ, मूँग, भात, पूरी, कचौरी, अमृती इत्यादिसे श्रद्धा करके सुपात्रको जिमाये तो वह अन्न कामनाओंका पूर्ण करनेवाला है और अक्षय फलका देनेवाला

है ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पितर, जीवमात्र अपने देह और स्वजन लोगोंका वह अन्न विभाग करके दे तो ईश्वरके ही समान है ॥ ६ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाला तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको चाहिये कि श्राद्धमें मांसको नहीं दें और न आप खायँ, मुनियोंके अन्नसे परमेश्वर प्रसन्न होते हैं कुछ पशुओंकी हिंसासे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होते ॥ ७ ॥ सद्धर्मकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इससे परे कोई और कठिन धर्म नहीं है कि तन-मन वचनसे किसी जीवको कष्ट न देना ॥ ८ ॥ आचार्य, यज्ञवेत्ता, ज्ञानी, कर्ममय यज्ञोंको आत्माके संयम करनेवाले ज्ञानी दीप्त मनमें सब चेष्टाओंको होम देते हैं ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञोंसे जब यज्ञ किया जाता है उन यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको देखकर सब जीव थर-थर कांपते हैं कि यह निर्दयी प्राणपोषक अज्ञानी इन सब जीवोंको मारेंगे ॥ १० ॥ इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि देव अन्न जो ऋषियोंको सन्तुष्ट करनेवाला है, उस तन्दुलादिक अन्नसे अपनी नित्यप्रति नित्य नैमित्तिक क्रिया करे और सन्तुष्ट रहे ॥११॥ विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा, छल यह पांच अधर्मकी शाखा हैं, वह धर्मके जाननेवालोंको चाहिये कि अधर्मकी नाईं उनको त्याग दे ॥१२॥ धर्मकी बाधाको विधर्म कहते हैं, पराये धर्मको परधर्म कहे हैं, मनुष्योंने आश्रमकी पद्धति जो अलग धर्म अपनी इच्छासे चलाया हो उसको आभास कहते हैं; जो पाखंडका धर्म हो उसको उपमा कहते हैं, दम्भ अथवा धर्मशास्त्रके वाक्योंका उलटा अर्थ करे उसको छल कहते हैं ॥ १३ ॥ धर्मशास्त्रके वाक्योंसे जो निश्चय हो और तत्त्ववेत्ताओंके स्वभावके अनुसार हो, वह धर्म मनुष्योंको शांति देनेवाला है ॥१४॥ निर्धन पुरुष धर्मके अर्थ अथवा यात्रा अर्थात् अपने निर्वाहके लिये धर्मकी कोई अपेक्षा न करे, क्योंकि अजगरवृत्तिवालेको घर बैठे ही सब मिल जाता है ॥ १५ ॥ सन्तोषी, अचेष्टावान्, आत्माराम और निरीह पुरुषोंको आनन्द प्राप्त होता है, वह लोभसे धनकी चेष्टा करनेवालेको और सब दिशाओंमें घूमनेवालेको कब मिल सकता है ? ॥१६॥ जो सदा सन्तुष्टचित्त है उसको सब दिशाओंमें परमानन्द है, जैसे कांटा, कंकर आदि बचानेवाले पांवमें जोड़ा सुखदायक है ॥१७ ॥ हे राजन् ! वह कौनसी वस्तु है, जिस वस्तुसे सन्तोषी पुरुष अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता ? और पदार्थोंका तो कहना ही क्या है ? केवल जलका पात्र ही लेकर जो उसके सामने उपस्थित हो तो उसीसे अपना कार्य सिद्ध कर लेता है और असन्तोषी पुरुष उपस्थ इंद्रिय और जिह्वाके भोगार्थ श्वानके समान घर-घर अपना अपमान करता फिरता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण सन्तोष नहीं करता उसका इन्द्रियोंकी चपलताके मारे तेज, विद्या, तप, यश सब नष्ट हो जाता है और ज्ञान तो किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहता ॥१९॥ कामका अन्त भूख-प्यासके मारनेसे हो जाता है, क्रोधका अन्त शत्रुओंके जीतनेसे हो जाता है, परन्तु लोभका अंत किसी प्रकार नहीं हो सकता, चाहे कुबेरका धन और उदय अस्ततक सब पृथ्वीका राज्य मिल जाय ॥ २० ॥ हे राजन् ! बड़े-बड़े ज्ञानी गूढ़ सन्देहोंके मिटानेवाले सभाओंके पति, षट्शास्त्री पंडित सन्तोष न करनेसे घोर नरकमें चले गये ॥२१॥ मनुष्यको चाहिए कि संकल्प-विकल्पको त्यागकर कामनाओंको जीते, कामनाओंका त्याग करके क्रोधको जीते, धनको अनर्थ समझकर लोभको जीते और तत्त्व विचारसे भयको जीते ॥२२॥ ब्रह्मविद्यासे शोक-मोहको जीते, महात्मा पुरुषोंकी उपासनासे दम्भको जीते, मौनवृत्ति धारणकर योगके विघ्नरूप मिथ्या वार्तालापको जीते, शरीरकी चेष्टाओंको त्यागकर हिंसाओंको जीते ॥ २३ ॥ जिन जीवोंसे भय उत्पन्न हुआ हो

उन्हींसे स्नेह करके भूतज दुःखोंकों जीते। दैवकृत क्लेशोंको समाधिसे जीते, योगबलसे जीवात्माके कष्टको जीते, और सात्त्विक भोजनादिकी उपासनासे निद्राको जीते॥२४॥ सत्त्वगुणसे रज तमको जीते, शांतिसे सत्त्वगुणको जीते, यह तो प्रत्येक पदार्थके जीतनेके लिए भिन्न रीतिके साधन कहे, परन्तु संसारमें गुरुभक्ति ही ऐसी बलवती है कि पुरुष उससे विना प्रयास त्रिलोकीको जीत सकता है॥२५॥ हृदयमें ज्ञानरूप दीपकके प्रकाश करनेवाले साक्षात् गुरु भगवान्‌को जो मनुष्य अपने अज्ञानसे मनुष्यके समान जानकर उनसे जो-जो ज्ञान सुनता है वह सब हाथीके स्नानके समान है॥२६॥ गुरुरूप साक्षात् भगवान् प्रधान पुरुष ईश्वर हैं और योगेश्वर जिनके अचल कोमल चरणकमलको खोजते रहते हैं उस गुरुको लोग संसारी मनुष्यके समान मानते हैं और परस्पर अज्ञानतासे कुतर्क करते हैं कि गुरु भगवान् कैसे है ? इनके तो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, सुहृद, बन्धु सब हैं, जैसे हम हैं, वैसे ही वे हैं, किन्तु एक विद्या ही अधिक समझ लो ॥ २७ ॥ षड्वर्ग अर्थात् छः इन्द्रियोंके जीतनेके छः ही उद्देश्य तत्त्ववेत्ताओंने कहे हैं। इन्द्रियोंके जीतनेके पीछे भी जो उनसे ज्ञान,ध्यान,धारणा और समाधिका साधन न बन सका तो सब परिश्रम करना वृथा है और देहको दुःख देना है ॥ २८ ॥ जैसे वार्तादिक योगके अर्थको सिद्ध नहीं कर सकती वह सब वार्ता अनर्थकरी हो जाती है। पूर्त, इष्ट इत्यादि जो अनर्थबुद्धि करे तो करना वृथा है ॥ २९ ॥ जो पुरुष मनको जीतनेकी इच्छा करे तो सब परिग्रहसे संग त्यागकर एकान्तमें बैठे, अकेला रहे और भिक्षा मांगनेसे जो कुछ थोड़ा बहुत अन्न मिल जाय उसीसे अपना निर्वाह करे ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पवित्र और सम भूमिमें आसन बिछाये और उसपर सरल अंग करके बैठे और ॐकारका जप करे ॥ ३१ ॥ प्राण, अपान वायुको जीते, पूरक, कुम्भक, रेचक करके जब तक मन सब कामनाओंको न त्याग दे तबतक अपनी नाकके अग्र भागको देखता रहे ॥ ३२ ॥ महत् विषयोंके द्वारा घूमता हुआ मन जहां-जहां जाय, उन-उन स्थलोंसे उसको लौटा कर लावे और धीरे-धीरे उसको रोककर उसे अपने वशमें करे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार अभ्यास करनेवाले यती पुरुषोंको थोड़े कालमें ही निरन्तर सुख प्राप्त हो जाता है, जैसे विना काष्ठकी अग्नि शांत हो जाती है ॥ ३४ ॥ कामके बंधनोंसे छूटकर, सब वृत्तियोंसे शान्त होकर ब्रह्मानन्दको जो प्राप्त हो गया, फिर ऐसा चित्त कभी ईश्वरसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥ जो नर त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, कामको प्रथम तो त्यागकर संन्यासी हो जाय, फिर पीछे उसी त्रिवर्गका सेवन करे, उस संन्यासीको ऐसे समझो कि पहले निगलकर पीछे फिर खा लिया और मानो थूककर फिर चाट लिया ॥३६॥ जिन पुरुषोंने अपने देहमें आत्माका स्मरण नहीं किया और यह देह कृमि, विष्ठा, भस्म समझा और वही फिर पीछे अज्ञानी बनकर इस शरीरको अपना मान और अभिमानमें आकर उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३७ ॥ जो गृहस्थ अपने कर्तव्य कर्मको त्याग दें, ब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचर्य धर्मको छोड़ दें, वानप्रस्थ होकर नरकमें वास करें और संन्यासी होकर इंद्रियोंके भोगको भोगें, वे लोग दोनों लोकोंसे जाते रहते हैं, वे कहीं के नहीं रहते, उनको पाखण्डी समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ वे लोग सब आश्रमोंके नाशक हैं और सच्चे आश्रमोंका अनुकरण करते हैं परन्तु उनसे शत्रुता रखते हैं ! नारदजी बोले कि हे पांडुकुलमुकुटमणि ! देवमायासे मोहित इन मूर्खोंपर दया करके इनके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो जन अपने आपको परब्रह्म समझ कर विषयवासनाओंसे निवृत्त होते हैं, फिर वे किस लिये लोलुप-लम्पट बनकर शरीरका लालन-

पालन करते हैं ? ॥ ४० ॥ मुनिलोग शरीरको रथरूप कहते हैं, उसमें इंद्रियां घोड़े हैं और चंचल मन उसकी बागडोर है, शब्दादिकमात्र उस रथके चलानेका मार्ग है, विषयवासना उसके पहुँचनेके देशदेशांतर हैं; बुद्धि उसकी हांकनेवाली सारथी है और चित्त उसका बंधन है, यह अद्भुत रथ ईश्वरका बनाया हुआ है ॥ ४१ ॥ दश प्राण अक्षयधुरीरूप हैं, धर्म और अधर्म दो पहिये हैं, जीव अभिमानी उसमें चढ़नेवाला है, प्रणव धनुष है, बाण शुद्ध जीव है, परमेश्वर लक्ष्य हैं ॥ ४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निंदा, माया, हिंसा, मत्सरता ॥ ४३ ॥ रजोगुण, प्रमाद, भूख और निद्रा आदि रजोगुण, तमोगुण प्रकृति तो इसके वैरी हैं ही, परन्तु किसी समय पर परोपकारी सत्त्वगुणकी प्रकृति भी वैर भाव करने लगती है ॥ ४४ ॥ जिस समयतक यह नर शरीर रथके इन्द्रियादिक अङ्ग और आत्मा अपने वशमें है; उस समय तक गुरुमहात्माके चरणारविन्दकी कृपासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग लेकर और भगवान्का बल लेकर, सब वैरियोंको मारकर प्रसन्न और शांत हो परमात्माकी शरण लेकर मोक्षरूप यशका प्रकाश करे ॥४५॥ और जो परमात्माका आश्रय न लिया हो तो उस रथके इंद्रियरूप घोड़े और मतिरूप सूत असावधान रथमें बैठनेवालेको कुपन्थमें अर्थात् प्रवृत्तिमार्गमें खींचकर ले जाते हैं और विषयरूप लुटेरोंकी सेवामें डाल देते हैं। जब इन तस्करोंके फन्देमें फँसा, फिर कब निकलने देते हैं ! उसी समय घोड़े और सारथी समेत उस पुरुषको महाअन्धतम जहां मृत्यु और भय मुख पसारे बैठे हैं, उस संसाररूप कूपमें गिरा देते हैं ॥ ४६ ॥ वैदिक मतवालोंने दो प्रकारके धर्म कहे हैं, एक तो प्रवृत्तिमार्ग है और दूसरा निवृत्तिमार्ग है। प्रवृत्तिमार्गसे तो संसारमें आना जाना होता है और निवृत्तिमार्गसे मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥ ४७ ॥ हिंसक यज्ञ, काम्यक यज्ञ, द्रव्यमय यज्ञ अग्निहोत्रादिक ये सब अशान्तिके करनेवाले हैं। दर्श, पौर्णमास, चतुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग ॥४८॥ वैश्यदेव और बलिदानादिक जो कर्म हैं, वे सब पदार्थोंके उपयोगसे होते हैं, उन्हींको इष्टकर्म कहते हैं और देवालय, बाग, कूप, तडाग आदि जो कर्म हैं, उनको पूर्त कहते हैं ! यही कर्म सकाम किये जायँ तो प्रवृत्ति कहलाते हैं ॥ ४९ ॥ द्रव्ययज्ञका सूक्ष्म फल होता है, द्रव्ययज्ञ करनेवाला मनुष्य चरु और पुरोडाशादिकके किञ्चिन्मात्रसे उत्पन्न हुए शरीरको धारण करके धूमके देवके समीप जाता है वहाँसे रात्रिके देवके सम्मुख जाता है, वहाँसे कृष्णपक्षके देवके निकट जाता है, वहाँसे दक्षिणायनके देवके पास जाता है, वहाँसे सोमके लोकमें जाता है ॥ ५० ॥ इन-इन स्थानोंमें जाकर जब पुण्यका क्षय होता है, तब पुण्यके क्षयहोनेसे शोकाग्नि उत्पन्न होती है, फिर अत्यन्त दुर्बल होकर वृष्टिरूप तथा चंद्रमाकी किरणोंके द्वारा ओषधी-लता और अन्नमें आता है,फिर वीर्यमें-क्रम क्रमसे आकर इस संसारमें आ जाता है॥५१॥जन्मसे लेकर मरणपर्यंत संस्कार जिसके हुए हों ऐसे विप्र,क्षत्रिय और वैश्यको प्रवृत्ति कर्म करनेका यह फल मिलता है, अब निवृत्ति कर्मकी गति कहते हैं—महात्मा लोग इंद्रियोंके व्यापाररूप इष्टापूर्तादिक कर्मोंको विज्ञानसे दीप्तिवाली इंद्रियोंमें हवन कर देते हैं, यह इष्टधर्म इंद्रियोंसे भिन्न नहीं है,ऐसे समझते हैं ॥५२॥ मनके वेगमें इंद्रियोंको लीन करते हैं, वेदवाली वाणीमें वैकारिक, मनको लीन करते हैं, वाणीको वर्णोंके समूहमें लीन करते हैं और अक्षर वर्णोंके समूहोंको तीन अक्षर (अ,उ,म्) वाले ओंकारमें लीन करते हैं,ॐकारको बिन्दुमें बिन्दुको नादमें, नादको प्राणमें, और प्राणको ब्रह्ममें लीन करते हैं ॥ ५३ ॥ इस प्रकार निवृत्तिकर्म करके ज्ञान निष्ठावाला मनुष्य पहले अग्निदेवके

पास, फिर सूर्यदेवके पास, वहाँसे दिवस देवके समक्ष, वहाँसे दिनके अन्तमें होकर शुक्लपक्ष-देवके निकट; वहाँसे शुक्लपक्षके अंतमें हो उत्तरायणदेवके सम्मुख फिर वहांसे ब्रह्माजीके सामने जाता है। वहांपर कुछ दिन भोग भोगकर फिर स्थूलदेह उपाधिवाले विश्वमें जाता है, उस स्थूल देहको सूक्ष्ममें लीन कर सूक्ष्म उपाधिवाले तेजसमें जाता है, फिर सूक्ष्मको कारणमें लय करके, कारणको शरीरकी उपाधिवाले प्राज्ञमें, कारण शरीरको तीनों शरीरोंमें व्यापक साक्षी स्वरूपसे लीन करके चौथा शरीर सबसे अलग हो जाता है। सब दृश्य पदार्थोंका लय होनेसे शुद्ध होकर मोक्ष हो जाता है ॥ ५४ ॥ जिस मार्गमें पुर्वोक्त कर्मानुसार प्राप्त होता है, उस मार्गको ब्रह्मज्ञानी लोग देवयान कहते हैं। आत्माका ही यजन करनेवाला आत्मज्ञानी आत्मामें ही बसा हुआ और महाशांति पाया हुआ जो इस मार्गमें आ गया वह फिर लौटकर नहीं जाता, क्योंकि परमात्मामें लय हो जाता है ॥५५॥ वेदके कहे हुये देवयान और पितृयान यह दो मार्ग हैं। शास्त्ररूप नेत्रोंसे दृष्टि आते हैं, परन्तु जबतक ज्ञानरूपी चन्द्रमाका हृदयमें प्रकाश नहीं होता, तबतक मार्गोंका कंकड़ कांटा देखनेमें नहीं आता। फिर वह आत्मज्ञानी पुरुष देहमें स्थित होनेपर मोहित नहीं होता॥ ५६॥ जन्मोंके आदि अन्तमें वास करने वाला भोग्य, भोक्ता, ऊँच, नीच, ज्ञान,ज्ञेय, शब्द, अर्थ, अन्धकार और प्रकाश इन सबको ज्ञानी पुरुष अपने आपसे भिन्न नहीं समझते कि जिससे मोह और ममता हो ॥५७॥ वृक्षकी छाया कुछ वृक्ष नहीं है, तर्क करनेसे आभास सब प्रकारसे अवास्तविकता पाई जाती है, तो भी जैसे कोई पदार्थ रूपसे माना जाता है, ऐसे संसार भी किसी इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता, जैसे वृक्षकी छाया देखनेमें आती है परन्तु वह कुछ वस्तु है नहीं, केवल मनका विकार है, क्योंकि कभी वृक्षके नीचे होती है और कभी वृक्षसे दूर होती है, ऐसे संसार भी किसी प्रकार निश्चित नहीं हो सकता, तो भी मानो कोई एक पदार्थ है ऐसे कल्पना की जायगी ॥ ५८ ॥ हे राजन्! पृथ्वी इत्यादि पञ्चमहाभूतोंकी छाया (ऐक्यावलम्बन) देहादिक संघात आरंभ परिणाम इनमेंसे एक भी नहीं हो सकता, जैसे वृक्षोंके संघातसे वन होता है, वैसे पञ्चभूतोंके संघातसे देह नहीं है, क्योंकि एक देशके आकर्षणसे सब देश आकर्पित नहीं होते, एक वृक्षके खिंचनेसे सब बन नहीं खिंचता, ऐसा विकार अर्थात् आरब्ध अवयवी अथवा परिणाम नहीं है, क्योंकि वह अवयवसे अत्यन्त अलग नहीं है और किसीसे मिलकर भी नहीं रहता है, इससे देहादिकके सब पदार्थ मिथ्याही जानना ॥५९॥ हे राजन्! देहादिक जिस प्रकार मिथ्या हैं, उन सबके हेतु स्वरूप पृथ्वी आदि भी वैसेही मिथ्या हैं, क्योंकि समस्त पञ्चमहाभूत अवयवी पदार्थ हैं, इससे अवयवों विना उनका कुछ छिन्न निरूपण हो सके ऐसा भी नहीं हो सकता, इसलिये वह अवयवी कारणसे कुछ अलग पदार्थ नहीं है यही निश्चय हुआ। इस प्रकार अवयवीके असत् और मिथ्या होनेपर निदान अवयव भी असत् और मिथ्या हो गये तो किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते। यद्यपि सत्य रीतिसे जो विचार किया जाय तो परमकारणरूप परमात्माके अतिरिक्त और कोई पदार्थ सत्य नहीं है, जब सब पदार्थ असत् माने गये तो उनमें भेद मानना भी वृथा है, क्योंकि उसी समय तक भेद है जबतक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ यदि कहो कि अवयवीकी सत्ता स्वीकार करनेपर आगमस्थायी बाल्यादि अवस्थामें "यह वही देवदत्त है" ऐसा प्रत्यभिमान किस प्रकार हो सकता है? तो उत्तर यह है कि अवि-

द्याका विकल्पसे रहनेसे पहले-पहल आरोप सादृश्यके हेतु "यह वह नहीं है" इस प्रकार संभ्रम हो सकता है, परन्तु जबतक अविद्या नहीं छूटती तबतक ही यह भ्रम रहता है, फिर नहीं। हे राजन्! जो सब ही मिथ्या हुआ तो शास्त्रकी विधिनिषेधता किस प्रकारसे रह सकती है, ऐसी आशंका मत करना। स्वप्नमें जिस प्रकार कभी-कभी जाग्रत और निद्राकी व्यवस्था होती है, वैसे ही न्यायशास्त्रकी विधिनिषेधता हो सकती है ॥ ६१ ॥ इसलिये मननशील योगी भावनाका अद्वैत, क्रियाका अद्वैत, द्रव्यका अद्वैत विचार करके आत्मतत्त्वके अनुभवसे जाग्रत इत्यादि तीन अवस्थाओंका निवारण किया करता हैं ॥ ६२ ॥ भावनाका अद्वैत किसको कहते हैं वह सुनो-जैसे वस्त्र कोई पदार्थ नहीं है। उसका मुख्य पदार्थ सूत है, ऐसे ही जाग्रत् अवस्था कोई पदार्थ नहीं परब्रह्म ही मुख्य पदार्थ है इस वस्त्र और सूतके समान कार्य और कारणको जो एक वस्तुरूपसे विचारना है, उसको भावाद्वैत अर्थात् भावनाका अद्वैत कहते हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन्! मनसे, वाणीसे और शरीरसे साक्षात् परब्रह्ममें जो सब कर्मोंका समर्पण करना है उसका नाम क्रियाद्वैत है, फल प्राप्त होनेकी इच्छासे जो फलोंका संकल्प करते हैं, उनकी भिन्नतासे क्रियाओंकी भिन्नता हो जाती है, परन्तु परमात्माको समर्पण करनेसे फलोंकी भिन्नता नहीं रहती, इसलिये इसका नाम क्रियाद्वैत है ॥ ६४ ॥ पुत्र, स्त्री, आप और सब देहधारियोंमें जो अपने हैं और पराये हैं वे सब पञ्चभूतात्मकतासे एकरूप हैं और सबका भोक्ता भी एक परब्रह्म परमेश्वर है, उन सबके अर्थ और कामको भी एकरूपताका जो देखना है उसको द्रव्याद्वैत कहते हैं ॥६५॥ हे राजन्! पहले आश्रम सम्बन्धी धर्म संक्षेपसे कहते हैं-जिस यत्नसे, जिसके पाससे, जिस स्थानपर, जिस द्रव्यका, जिस मनुष्यके लिये शास्त्रने निषेध नहीं किया, उस यत्नसे, उसके पाससे, उस स्थानपर, उस द्रव्यसे, वह मनुष्य वह कर्म करे और जबतक आपत्तिकाल न हो तबतक कर्मोंको न छोड़े ॥ ६६ ॥ हे राजन्! पहले कहे हुए कर्म और वेदोक्त कर्म अथवा भगवद्भक्ति करनेसे मनुष्य घरमें बैठा हुआ भी परमपदवीको पा सकता है ॥ ६७ ॥ हे नृपेन्द्र! यह बात सर्व साधारणके लिये है और भक्तजनोंकी तो भक्ति ही सब काम सिद्ध करती है! देखो! आप कैसी महाकठिन विपत्तियोंके समुदायोंसे बचे, यह सब वैकुण्ठविहारी कृष्णमुरारीका ही अनुग्रह था और उन्हींके चरणसरोरुहकी सेवाका प्रताप था जो आपने अनेक दिग्विजय किये और सब दिशाओंमें अपनी जीत का डंका बजा दिग्गजोंको जीतकर बड़े भारी-भारी यज्ञ किये ॥ ६८ ॥ अभिमान और महात्मापुरुषोंका अपमान करनेसे भगवान्की सेवा छूट जाती है और उन्हींके अनुग्रहसे सब काम सिद्ध हो जाते हैं, पिछले जन्मका मुझको अच्छा स्मरण है कि गत महाकल्पमें मैं उपबर्हण नामक एक गन्धर्व था और सब गन्धर्व मेरा अत्यन्त आदर-सम्मान करते थे ॥ ६९ ॥ रूप, सौंदर्य्य, माधुर्य और सुगंधिके कारणसे सब मनुष्योंको मेरे दर्शनकी अभिलाषा रहती थी और स्त्रियोंको परम प्रिय और कामोदीपन करनेवाला था ही, परन्तु मुझसे बढ़कर संसारमें कोई लम्पट और लबार नहीं था ॥७०॥ एक समय देवताओंके समाजमें भगवान् वासुदेवकी गाथा गानेके लिये प्रजापतियोंने अनेक गन्धर्व और अप्सराओंके समूहके समूह बुलाये ॥ ७१ ॥ उस समय मैं भी सुन्दर- सुन्दर स्त्रियोंको अपने संग लेकर गाता बजाता वहां पहुँचा, मुझको देखकर प्रजापति महाकुपित हुए और अपनी शक्तियोंसे मुझको शाप दिया और यह कहा कि तूने हमारी अवज्ञा की, तू बड़ा निर्लज्ज है इस

लिये तू नष्ट होकर अभी शूद्रयोनिमें जाकर जन्म ले॥७२॥ शापके देते ही मैं तनु त्यागकर दासीपुत्र हुआ और जन्मसे ही महात्माओंकी सेवा और उनकी सत्संगतिके प्रभावसे तीसरे जन्ममें आकर मैंने ब्रह्माजीके घरमें जन्म लिया॥ ७३ ॥ पापका विनाश करनेवाला गृहस्थ लोगोंका धर्म मैंने आपके समाने वर्णन किया। जिस धर्मके करनेसे गृहस्थ लोग विना परिश्रम परमपदवीको पहुँच जायँगे। जिस पदवीको संन्यासी लोग जाते हैं॥७४॥ हे राजन्! मृत्युलोकमें तुम बड़े भाग्यशाली हो क्योंकि तुम्हारे घर त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले महात्मालोग चारों ओरसे आते हैं और मनुष्य अवतार धरकर साक्षात् आदिपुरुष अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द विराजते हैं॥ ७५ ॥ यह आदिपुरुष अविनाशी जिनको मुनिजन समाधि लगाकर खोजते रहते हैं और उनके ध्यानमें नहीं आते, वे श्रीकृष्ण आपके परममित्र ममेरे भाई, आत्माराम, परमपूज्य, जगद्गुरु, आपकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले आपके साथ दिन- रात रहते हैं, वह मोक्ष सम्बन्धी आनंदके सुखका अनुभव करनेवाले यही हैं॥ ७६ ॥ शिव ब्रह्मादिक देवता जिनका साक्षात् स्वरूप किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते कि भगवान्का स्वरूप कैसा है, निदान मौन होकर इन्द्रियोंको शान्त करके भक्तिसे भगवान्का पूजन करते हैं, यह भक्तवत्सल परमकृपालु श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनविहारी हम सबपर प्रसन्न हों॥ ७७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार राजा युधिष्ठिर देवऋषि नारदजीके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेमसे विह्वल होकर नारदमुनिसहित श्रीकृष्ण महाराजकी सबने मिलकर पूजा की॥ ७८॥ पूजा-सम्मान पाकर नारदजी महाराज श्रीकृष्ण भगवान् और युधिष्ठिरसे बिदा मांगकर वहांसे चल दिये और राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण देवकीनंदनको परब्रह्म परमात्मा सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए॥ ७९॥ यह सब दक्षप्रजापतिकी पुत्री दाक्षायणीके वंश पृथक्- पृथक् मैंने आपसे वर्णन किये, कि जिन वंशोंमें देवता, दैत्य और मनुष्य आदि सब चराचर लोक उत्पन्न हुए। धन्य हो प्रभुजी! आपकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है, जब सहस्र मुखवाले शेषजी ही 'नेति नेति' कहते हैं फिर औरका क्या सामर्थ्य है?॥ ८०॥

छन्द नाराच

नमो नमो निरंजनं शरण्यपाप भंजनं नमो नमो गुणाग्रजं सुभक्त हेत आग्रजं।
नमो नमो सुराधिपं जगत्तके नराधिपं नमो नमो विरंचितं महेंद्ररुद्रवंदितं॥
नमामि शेषशायिनं अखण्डभक्तिदायिनं नमो अरीसँहारणं सुश्यामरूपधारणं।
नमो नमो मनोहरं सुवेषधारभूधरं नमो नमो चतुर्भुजं विनाशते जगतरुजं॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासिलालाशालग्राम-
वैश्यकृते प्रह्लादानुचरिते सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचार-
निर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इति सप्तमस्कन्धः समाप्तः

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा सप्तम स्कन्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

अष्टम स्कन्ध ८.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित.



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



विराट्रूप श्रीनारायण और बलि राजा.

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

अष्टम स्कन्ध ८.

सोरठा–अहो विहारी लाल, भयहारी आनँदभवन।
जयति जयति नँदलाल, गोपेश्वर राधारमण ॥ १ ॥
हे ब्रजेश ब्रजराज, ब्रजवल्लभ ब्रजलाडिले।
राखी ब्रजकी लाज, धर करपर गिरिवरहरी ॥ २ ॥
अहो लड़ैते लाल, कीजे कृपा कृपायतन।
गोपसखा गोपाल, गोपीवल्लभ गोपपति ॥ ३ ॥
जटा जूट अर्द्धंग, संग विराजत रात दिन।
कुन्दइन्दुसम अङ्ग, करहु दया दायासदन ॥ ४ ॥

दोहा–स्वायंभुव स्वारोचिष, उत्तम तामस चार।
मनुओंका वर्णन करूँ, प्रथमाध्याय विचार ॥

महाराज परीक्षित् योगिवर श्रीशुकदेवजीसे पूछने लगे कि हे भगवन्! स्वायम्भुव मनुके वंशका वृत्तान्त तो हमने विस्तार सहित सुना, इस मन्वन्तर में ही मनुकी कन्याओंमें विश्वके रचनेवाले मरीचि आदि पुत्र पौत्रादिरूपसे उत्पन्न हुए थे, अब आप कृपा करके मनु लोगोंका वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥१॥ हे ब्रह्मन्! उन सब मन्वन्तरोंमें हरिका महत्तर जन्म और कर्मका विवरण जो पंडित लोग कहा करते हैं, मैं उनके सुननेकी इच्छा करता हूँ, आप सब मुझसे कहिये ॥ २ ॥ भगवन् विश्वभावनने पिछले-पिछले मन्वन्तरोंमें जो-जो चरित्र किये और आगेको जो-जो करेंगे और वर्तमान मन्वन्तरमें जो कुछ लीला करते हैं वे सब आप कहें ॥ ३ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस कल्पमें स्वायम्भुव मनु आदि छः मनु हैं, उनमेंसे स्वायम्भुव मनु,-कि जिससे देवता आदिकोंकी उत्पत्ति हुई, उनका वृत्तान्त हम तुमसे कह चुके हैं॥ ४ ॥ भगवान् विष्णुजीने धर्मज्ञानोपदेशके लिये स्वायम्भुव मनुकी आकूती और देवहूती नामक दो बेटियोंमें कपिल और यज्ञरूप जन्म ग्रहणकरके उनके पुत्रत्वको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् कपिलजीका कार्य प्रथम वर्णन कर आयेहैं और यज्ञ भगवान्ने जो कुछ किया वह पीछे कहेंगे ॥ ६ ॥ शतरूपाके पति प्रभु (मनु) कर्मयोगसे

विरक्त हो, राज्य भोगको छोड़ तप करनेके लिये अपनी स्त्रीको साथ ले वनमें चले गये॥७॥उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे एक पांवसे खड़े होकर सौ वर्षतक निरंतर अति कठोर तप करके विस्मितके समान हो यह वक्ष्यमाण वचन कहे थे॥८॥मनुजीने कहा था कि स्वतः चित्स्वरूप और इसी करके प्रयुक्त जो चिदात्मा हैं, उससे विश्व चैतन्य होता है, परन्तु यह विश्व उसको सचेतन करनेको समर्थ नहीं है और इस पुरुष (जीव) के शयन करनेपर जो जाग्रत् अर्थात् साक्षिस्वरूप वर्तमान रहते हैं, क्या आश्चर्य है कि यह जन उसको नहीं जानता परन्तु वे इसको जानते हैं ॥ ९ ॥ लोकमें जो कुछ प्राणियोंके सहित दिखायी देता है, वह सब ही ईश्वरकी सत्ता और चैतन्य शक्तिसे व्याप्त है, इसलिये ईश्वरने जो कुछ दान किया है, उससे ही सब भोगोंको भोगो और अपने लिये पराये दानकी वांछा न करो अथवा और किसीके पास धन है ही क्या जो उसकी वाञ्छा करोगे ॥ १० ॥ इसके अतिरिक्त वह परमात्मा सबको देखता है परन्तु लोक अथवा किसीके भी नेत्र उसको नहीं देख सकते क्योंकि वह नेत्रादिकका विषय नहीं है, परन्तु जैसा घटादिके नाशसे देवदत्तादिका तद्विषयक चाक्षुषज्ञान नाशको प्राप्त नहीं होता वैसे आकारोंकी उत्पन्न हुई वृत्ति ही नाशको प्राप्त होती है। स्वतः सिद्ध ज्ञानका विनाश नहीं होता, क्योंकि प्रकाश्य वस्तुके विनाशसे सूर्यके प्रकाशका नाश कभी नहीं होता, इसलिये सर्व भूतोंके अन्तर्यामी असंग उन ईश्वरका भजन करो ॥ ११ ॥ जिसका आदि, अन्त, मध्य, अपना, पराया, भीतर और बाहर कुछ नहीं है, परन्तु जिससे विश्वके यह सब आदि, अन्त प्रभृति होते हैं और यह विश्व जिसका स्वरूप है, वही सत्य और परिपूर्ण ब्रह्म हैं ॥ १२ ॥ वही ईश, अज, सत्य, स्वयंप्रकाश और निर्विकार हैं, यह विश्व उसीका शरीर है, उसके नाम बहुत हैं, वह अपनी मायासे विशेष जन्मादि विधान करते और नित्य सिद्ध विद्याके हेतु इस मायाको त्यागकर निष्क्रिय हो रहे हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे ईश्वर कर्म करके फिर उनको छोड़ कर्मरहित होनेसे ऋषिलोग भी अकर्मार्थ अर्थात् मुक्तिके लिये पहले यत्न करते हैं क्योंकि जो पुरुष चेष्टा करते हैं, वे प्रायः निःचेष्टताको पाते हैं ॥ १४ ॥ चेष्टाकारी पुरुष कर्मोंके द्वारा घिर जाते हैं, अथवा वे कोषाकार कीड़ेके समान बंधनसे बँध जाते हैं। इस प्रकारकी शङ्का नहीं की जा सकती, क्योंकि भगवान् ईश्वर चेष्टा करते हैं और उसमें आसक्त नहीं होते इसलिये जो पुरुष उनकी अनुवृत्ति करते हैं वे भी आत्मलाभ होनेसे चरितार्थ हो जाते हैं और कभी उसमें आसक्त नहीं होते ॥ १५ ॥ इसलिये जो राम कृष्णादि नाना अवताररूप निज मार्गमें भली भांति अवस्थित हो वेदोक्त कर्माचरण करते हैं और स्वयं पूर्ण, अहंकाररहित, स्वयं प्रभु हैं, इस कारण किसी दूसरेसे वे नियुक्त नहीं होते और जो अखिलधर्मका प्रचार करनेके लिये अपने आचारसे मनुष्योंको शिक्षा देते हैं, हम उन्हीं ईश्वरकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! शतरूपाके पति यज्ञमें समाधि लगाकर उपनिषद्के मन्त्र उच्चारण करते थे, असुर और राक्षसगण उनको देखकर अवशके समान समझ भूख लगनेसे उनको खानेको दौड़े॥१७॥ वह यज्ञ स्वयं सर्वगत हरि उन असुर और राक्षसोंका ऐसा कर्म जानते ही अपने पुत्र याम नामक देवताओंके साथ उस (दैत्य) को मारकर आप स्वयं इन्द्र होकर स्वर्गका पालन करने लगे * ॥१८॥ हे राजन् ! अग्निका पुत्र स्वारोचिष

* शंका—स्वायम्भुव मनुके खानेके लिये जो राक्षस दौड़े, उनको मारकर त्रिविष्टपको भगवान्ने शिक्षा दी, वह त्रिविष्टप कौन था ? उत्तर—चोरी, जारी, जुआ [illegible] तीन दुष्ट कर्मोंसे जो तीनों लोकोंकी रक्षा करे उसका नाम त्रिविष्टप है। त्रिविष्टप नाम शास्त्रमें—

दूसरा मनु हुआ। उसके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मान् आदि पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें रोचन नामक इन्द्र और तुषितादिक देवता हुए और ऊर्जस्तम्भादि ब्रह्मवादी सप्त ऋषि हुए ॥१९॥ ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिके तुषिता नाम जो पत्नी थी, उसके गर्भमें इस ऋषिके विभु नामसे विख्यात भगवान् उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ इन विभुका चरित्र कहते हैं तुम सुनो। जब इन विभुने कौमार ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण किया, तब अट्ठासी सहस्र (८८०००) व्रतधारी मुनियोंने उनके निकट व्रतकी शिक्षा पायी ॥ २२ ॥ प्रियव्रतका पुत्र तीसरा उत्तम नाम मनु हुआ, उसके पुत्र पवन, सृञ्जय और यज्ञहोत्रादि हुए ॥ २३ ॥ इस मन्वन्तरमें ऊपर कहे हुए प्रमदादि सप्त ऋषि हुए। सत्य, देवश्रुत और भद्र ये देवता हुए और सत्यजित इन्द्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी मन्वंतरमें धर्मकी सूनृता नामक भार्यासे भगवान् पुरुषोत्तम सत्यव्रत गणोंके साथ उत्पन्न हो सत्यसेनके नामसे विख्यात हुए ॥ २५ ॥ उन्हीं सत्यसेनने इन्द्रके मित्र होकर झूठ बोलनेवाले दुःशील, असत्, यक्ष, राक्षस और भूतद्रोही प्राणियोंको मार डाला ॥२६॥ तीसरे मनु उत्तमके भ्राता तामस नामक चौथे मनु हुए। उनके पृथु, ख्याति, नरकेतु आदि दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ इस मन्वंतरमें सत्यक, हरि और वीर नामक देवगण व त्रिशिख नाम इंद्र और ज्योतिर्धामादि सप्तऋषि हुए ॥ २८ ॥ हे राजन् ! तामस मन्वंतरमें ऊपर कहे हुए सत्यकादिकें अतिरिक्त अतिपराक्रमी वैधृतिगण भी देवता हुए थे, जो कि विधृतिके पुत्र थे, हे महाराज ! जब कालके वश होकर वेद नष्ट हो रहे थे, तब इन्हीं सब देवताओंने अपने-अपने तेजसे उन सबको धारण किया था ॥ २९ ॥ जिन्होंने ग्राहके मुखसे गजेन्द्रको छुड़ाया था, उन भगवान् विष्णुने भी हरि मेधाकी हरिणी नामक स्त्री के उदरसे इसी मन्वंतरमें जन्म लिया और वह हरि नामसे विख्यात हुए थे। राजा परीक्षित् बोले कि, हे व्यासनन्दन! ग्राहद्वारा पकड़े हुए गजेंद्रको भगवान् हरिने किस प्रकारसे छुड़ाया था, उस कथाको मैं आपके मुखसे विस्तार सहित सुनना चाहता हूँ ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसमें उत्तमश्लोक भगवान् हरि गाये जाते हैं, वह कथा अतिशय पवित्र, धन्य, शुभदायक और मंगलकारी है ॥३१॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मण ! जब इस प्रकार प्रायोपविष्टव्रत धारणकर राजा परीक्षित्ने योगिश्रेष्ठ शुकदेवजीसे भगवत् कथा कहनेके लिये प्रार्थना की, तब उन व्यास पुत्रने श्रवण करनेवाले मुनियोंकी सभामें राजा परीक्षित्के वचनोंपर आनन्द प्रकट करते हुए कथा आरम्भ किया॥३२॥

सवैया—स्थावर जंगम रूप जिते, सब भाँति अनेकन रूप धरे हैं।
सच्चित आनँदरूप महा प्रभु, आतम एक प्रकाश करे हैं ॥
सो बिनुजानेते सिन्धुसमान, औ जानेते गोपद बिन्दु तरे हैं।
वन्दत ताहि सदाशुकदेवजी, ब्रह्म चराचर रूप परे हैं ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

-इन्द्रका है और दूसरा अर्थ यह कि काम, क्रोध, लोभ इन तीन शत्रुओंसे जो त्रिलोकीकी रक्षा करे उसका नाम भी त्रिविष्टप है और सन्तो-
षका भी नाम त्रिविष्टप है क्योंकि काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंका नाश सन्तोषके सिवाय और दूसरा कोई नहीं कर सकता, इन्द्र तो अभि-
मानके समुद्रमें डूबा हुआ था, वह किसीको भी शिक्षा नहीं मानता था, इसलिये यज्ञभगवान्ने सन्तोषकी शिक्षा दी, कि भाई ! तुम काम,
क्रोध और लोभ इन दुष्टोंसे तीनों लोकोंकी रक्षा करो। यहाँ त्रिविष्टप नाम सन्तोषका है।

दोहा-दूजेमें करि करिनि युत, जलमें करत विहार।
जब पकड़ो गज ग्राहने, तब गज करी पुकार॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजन्! त्रिकूट नामक एक प्रधान पर्वत है, वह पर्वत अतिशय श्रीमान् और चारों ओर क्षीरसागरसे घिरा हुआ है और दश सहस्र योजन ऊँचा है॥ १॥ और चारों ओर उसका विस्तार भी दशसहस्र योजनका है। वह पर्वत अपने चांदी, सोने और लोहेके तीन बड़े-बड़े शृगोंसे समुद्र और सब दिशाओंको शोभायमान कर रहा है, इसी लिये उसका नाम त्रिकूट हुआ है॥२॥ त्रिकूट पर्वतके और दूसरे शिखर अनेक भाँतिके रत्न और धातुओंसे चित्रित हैं। उन शिखरोंसे और विविध भाँतिकी लता, बेल, झाड़ी और वृक्षोंसे झरनोंके गिरते हुए जलके शब्दसे सब दिशाओंकी शोभा हो रही है॥ ३॥ और जलकी तरंगसे इस पर्वतका मूलभाग धुलनेसे पलाशके समान रंगवाली मरकत मणिसे निकटकी भूमि मानो श्यामवर्ण हो रही है॥४॥ इस पर्वतकी कन्दरायें क्रीड़ा करते हुए सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, किन्नर और अप्सराओंसे सदा ही परिपूर्ण रहती हैं॥५॥ इस पर्वतकी जो कंदरायें ऊपर कहे हुए किन्नर इत्यादिके संगीत शब्दसे शब्दायमान हैं उनमें इसी स्थानके रहनेवाले मदगर्वित सिंहोंके झुंड दूसरे सिंहोंकी आशंकासे उस शब्दको न सहकर गर्जन करते हैं॥६॥ और इस पर्वतकी सब गुफायें विविध भांतिके बनैले पशुओंके समूहसे सदा भरपूर और उनके व्याप्त रहनेसे मानो स्वयं (आप) ही सज रहीं हैं। त्रिकूट पर्वतके ऊपर जो देवता लोगोंकी फुलवाड़ियाँ हैं उनमें भांति-भांतिके चित्रविचित्र पुष्पोंके वृक्ष लग रहे हैं, उनपर बैठे हुए रंग-रंगके विहंग निरंतर मधुर-मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं॥७॥ यह पर्वत अनेक निर्मल नदी और सरोवरोंसे भूषित है, उन सब नदी और सरोवरोंके किनारे मणिमय बालू बिछा हुआ है। देवताओंकी स्त्रियाँ जब उस नदी और सरोवरोंमें स्नान करती हैं तब वहां अति सुगंध फैल जाती है, जिससे वहांके जलमें और पवनमें सुगंध हो जाती है॥ ८॥ हे राजन्! उस पर्वतकी गुफामें महात्मा वरुणजीका एक उपवन है, उसका नाम ऋतुमत् है और वहां देवता लोगोंकी स्त्रियाँ क्रीड़ा करती हैं और वहांके वृक्षोंमें सब दिन फलफूल लगे रहते हैं कि जिससे यह उद्यान (बाग) सदा सब प्रकारसे शोभायमान रहता है॥ ९॥ हे महाराज! इस त्रिकूटपर्वतके ऊपर कितने वृक्ष हैं, उन सबका वर्णन मैं नहीं कर सकता, परंतु कुछ संक्षेपसे कहता हूँ-मन्दार, पारिजातक, पाटल, अशोक, चम्पा॥ १०॥ आम, चिरौंजी, कटहर, आम्र, आम्रातक, सुपारी, नारियल, खजूर, दाड़िम,॥११॥ महुआ, साल, ताल, तमाल, पीतसाल, अर्जुन, रीठा, गूलर, पिलखन, बड़, ढाक, चन्दन,॥ १२॥ नीम, कचनार, पिचुमन्द, कोबिदार, स्वरूपा, देवदारु, दाख, किसमिस, ईख, केला, जामुन, बेरी, बहेड़ा, हड़, आमला, कपित्थ॥१३॥ बेल जंभीरी और भिलावे आदि असंख्य वृक्षोंसे यह पर्वत शोभायमान है॥ १४॥ इस त्रिकूट पर्वतपर एक बड़ा भारी सरोवर है, उसमें सुवर्णके कमल सदा प्रकाशमान रहते हैं और अगणित कुमुद (बबूले), कह्लार, कमल और शतपत्रकी शोभासे वह अति उद्दीप्त है और यह सरोवर मतवाले भौंरोंके शब्दोंसे शब्दायमान है॥ १५॥ और मधुर बोली बोलनेवाले विशेष करके हंस, कारंडव, चक्रवाक और सारसोंसे व्याप्त है, व जलमुर्गावी, पपीहे, दादुर इनके समूह भी वहां गूंज रहे हैं॥१६॥ और मच्छ व कछुए इस प्रकारसे पैरते हैं, जिनसे कमलके फूल हिल जाते हैं और उनके परागसे सरोवरका जल विभूषित हो जाता है। उसके

चारों ओर कदम्ब, बेत, नरसल, लोटन कदम्ब, धूलिकदम्ब, दाडिम, बेल ॥ १७ ॥ कुन्द, कुरबक, अशोक, शिरस, कुटज गोन्दी अर्जक स्वर्णजुही नागकेशर पुन्नाग ॥१८॥ जाही, जुही, चमेली, कमल, माधवी, मालती, गन्धराज, मदनबाण,चांदनी, कनेर, सेवती, गुलाब, मोतिया, गेंदा, हरसिंगार, ऐचक, पेचक, मौलसिरी, जालक ऐसे अनेक लताओंके रहनेसे वह सरोवर चारों ओरसे घिरा हुआ है। इनके अतिरिक्त और जो पेड़ किनारे पर हैं, उन सब पर सदा फल फूलोंके रहनेसे वहां मानो सब ऋतुयें नित्य वर्तमान रहती हैं, इस कारण इन वृक्षोंके लगे रहनेसे वह सरोवर अत्यन्त ही शोभायमान है ॥१९ ॥ वहांपर एक दिन पर्वतके वनमें रहनेवाला हाथियोंके यूथका पालन करनेवाला, बड़े बलवाला हाथी हथिनियोंके सहित विचरण करता हुआ प्याससे पीड़ित अपने यूथको साथ ले जल पीनेको सरोवरके निकट आया। काटोंके सहित कीचक, ठोस बांस और बेंतोंसे युक्त बड़ी-बड़ी लताओंके समूह और बड़े-बड़े वृक्षोंको तोड़ता हुआ चला आता था ॥ २० ॥ उसका ऐसा प्रताप था कि उसकी गन्ध पाते ही सिंह, गजेन्द्र, व्याघ्रादि और गैंडे, कृष्ण सांप, शलभ, कूल और चमरगाय भयके कारण भागने लगे ❋ ॥२१॥ परंतु भेड़िया, सुअर, भैंसे, रीछ, मेह, लंगूर, कुत्ता, बंदर, हरिण, खरगोश आदि जो क्षुद्र जीव हैं ये उसकी दृष्टि बचाकर उसके अनुग्रहसे निर्भय होकर विचरण करते हैं ॥ २२ ॥ यह गजेन्द्र ग्रीष्मसे संतापित हो प्यासका मारा अपने यूथको साथ लिये अतिवेगसे इस सरोवरके निकट आया। उसके साथमें बहुत हथिनियाँ थीं और मद चुआते हुए बहुत सारे बच्चे भी दौड़कर पीछेसे आ रहे थे। वह गजेन्द्र ऐसे बड़े भारी दलको साथ लेकर निकला कि उसके भारसे त्रिकूट पर्वत सर्वतः कम्पायमान हो गया। उसके गण्डस्थलसे जो मद चू रहा था, उसमें मदका जल पीनेवाले भौंरे उसकी सेवा कर रहे थे॥ २३ ॥ इस सरोवरकी वायु जो कमलके परागसे सुवासित होकर आती थी, उसकी सुगन्धको पाकर उस गजेन्द्रके दोनों नेत्र मदके मारे विह्वल हो रहे थे॥२४॥ यूथपति सरोवर पर जाकर स्नान करके अपने ऊपर जल छिड़क-छिड़क थकावटको मिटाकर फिर काञ्चन कमल और उत्पलरेणुसे सुगंधित निर्मल और मीठा जल शुण्डमें भरकर पीने लगा ॥ २५ ॥ इसके उपरांत शुण्डमें भरे शीतल जलसे वह दयावान् गृही पुरुषोंके समान अपनी हथिनियों और बच्चोंको स्नान कराने लगा और जल भी पिलाया। वह गजेन्द्र अतिशय दुर्मद और परमेश्वरकी मायासे मोहित था इस कारण इस कार्यके करनेसे दूसरे किसीको जो बड़ा भारी कष्ट होता था उसको वह नहीं जान सका॥२६॥ परन्तु हे राजन्। इसी सरोवरमें एक बलवान् ग्राह (नाका) रहता था। थोड़ी ही देरके पीछे उसने दैवप्रेरितके समान आकर विजातीय क्रोधसे इस गजेन्द्र (हाथी) के पैरको झप-टकर पकड़ लिया, यह यूथपति भी अति बलवान् था, जब यह इस प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा, तब अपने छुटकारेके लिये यथासाध्य विक्रम प्रकट करने लगा ॥ २७ ॥ ग्राहमें भी थोड़ा

* शंका—हाथियोंका अभिमान भंग करनेवाले जो सिंह हैं, वे सब उस गजके देहकी सुगन्धको सूंघकर बनको छोड़ इधर-उधर भाग गये। बड़े आश्चर्यकी बात है एक सिंहको देखकर हाथियोंके यूथके यूथ भाग जाते हैं, फिर एक हाथीकी गंधको पाकर सब बनके सिंह क्यों भाग गये ?

उत्तर—आपका कहना सत्य है सिंहके सामने हाथी नहीं ठहर सकते वरन् सिंहके वनमें हाथी जाते भी नहीं, यह बात जो प्राकृत हाथी होता है उसकी है और यह हाथी तो तपस्वी था, शापसे हाथी हो गया था परन्तु रात-दिन इसके पूर्व जन्मका तप रक्षा करता था, उस तपकी अग्निके गन्धसे सब सिंह भाग गये थे।

बल नहीं था, वह भी उत्तेजित हो महावेगसे गजेन्द्रके चरणको पकड़कर खैंचने लगा। यह देखकर हथिनियाँ हीनमन हो केवल हाहाकार करने लगीं और जो हाथी थे वे इस गजेन्द्रको पकड़ रहे थे परन्तु उस ग्राहके बलसे इसको छुड़ानेके लिये समर्थ न हुए ॥२८॥ हे राजन्! इस प्रकार गजेन्द्र और ग्राह दोनोंका महाघोर युद्ध हुआ। वे दोनों एक दूसरेको जलके बाहर भीतरको खींचते थे, इस प्रकारसे एक सहस्र वर्ष बीत गये, परंतु इस बीचमें किसीके भी प्राण न गये, हाथी भी जीवित रहा और ग्राहके प्राण भी न निकले। देवतालोग यह बात देखकर अति आश्चर्य करने लगे ॥ २९ ॥ इसके उपरांत बहुत कालके पीछे गजेन्द्र का उत्साह, शारीरिक बल, शक्ति और इंद्रियोंका वीर्य घटने लगा, इससे ग्राहसे जलमें खींचे जानेपर वह गजेंद्र व्याकुल होने लगा और उस नाकेकी उत्साहशक्ति क्रम-क्रमसे बढ़ती ही जाती थी ॥ ३० ॥ यह यूथपति जब इस प्रकार प्राणोंके संकटको प्राप्त हुआ और किसी प्रकार अपनेको न छुड़ा सका तब बहुत देरतक चिंता करता रहा, इसके पीछे उसके मनमें यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ कि मैं अत्यन्त व्याकुल हो गया हूँ और मेरी जातिवाले हाथी भी मुझको छुड़ानेको समर्थ नहीं हैं और मैं स्वयं भी समर्थ नहीं हूँ, फिर इसकी क्या आशा की जाय कि यह हथिनियाँ मुझे छुड़ायेंगी? मैं ग्राहरूप विधाताकी फांसीसे बँध गया हूं, इस फांसीसे यद्यपि मुझको कोई नहीं छुड़ा सका, तथापि जो ब्रह्मादिके देवगणोंके आश्रय हैं उन शुद्ध सच्चिदानंद परब्रह्म परमेश्वरकी मैं शरण होता हूँ ॥ ३२ वे अनिर्वचनीय ईश हैं, अत्यन्त प्रचण्ड वेगसे दौड़ते हुए बलवान् मृत्युरूप सर्पसे डरकर जो उनकी शरणमें आते हैं, उनकी वे रक्षा करते हैं, उनके भयसे मृत्यु भी भाग जाती है, अतः मैं उनकी ही शरण जाता हूँ ॥ ३३ ॥

सवैया—ह्वै अति आरत मैं बिनती बहु, बार करौं करुणारस भीनी ॥
कृष्ण कृपानिधि दीनके बन्धु सुनी असुनी तुम काहेको कीनी ॥
रीझत रंचक ही गुणसों वह, बान बिसारि मनो अब दीनी ॥
जानि परी तुमहूँ प्रभुजी, कलि–कालके दानिनकी गति लीनी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—जिन हरिकी स्तुति करी, जब गजेन्द्र बहुबार।
तिसरेमें गजराजको, उन हरि लियो उबार ॥

अब श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, हे राजा परीक्षित्! उस गजेन्द्रने बुद्धिसे इस प्रकार निश्चय करके हृदयमें अपने मनका समाधान किया और पूर्वजन्ममें जो इंद्रद्युम्न नामक राजा था और यह स्तोत्र अपना सीखा हुआ था, उसका उसने जप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ गजने कहा कि मुझको ग्राहने पकड़ा है, इस कारण ऐसी शक्ति नहीं की मैं कायिक प्रणाम कर सकूं, इसलिये उन भगवान्के प्रशान्तस्वरूपका ध्यान करता हूँ। क्योंकि उनसे ही यह समस्त देहादि सचेतन हुए हैं, जो पुरुष अर्थात् देहरूप पुरमें कारणस्वरूपसे प्रविष्ट हैं उन आदि बीजस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ और जिसमें यह विश्व अधिष्ठित है और जिससे यह उत्पन्न है और जिस करके यह स्पष्ट दिखायी देता है और जो स्वयं

इस विश्वके रूप हैं, कार्य और कारणसे भिन्न हैं, उन स्वतःसिद्ध विभुकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ जो अपनी आत्मामें निजमाया द्वारा विश्वको धारण किया है उसीसे यह विश्व कभी लीन होता है, कभी प्रकाशमान होता है । जो साक्षी होकर कार्य और कारण दोनोंको ही सदा देखते हैं, क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं और वे स्वयंप्रकाश परात्पर एवं प्रकाशक जो चक्षुरादि हैं, उनके भी प्रकाशक हैं, वे परमेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ कालके वश समस्तलोक और सबके कारण लोकपाल संपूर्ण रूपमें विनाशको प्राप्त होनेपर उस समय जो दुर्भेद्य अनन्त अन्धकारमात्र था तब विभु उस अन्धकारराशिके पार रहकर विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥ देवगण और ऋषिगण भी जिसके स्वरूपको नहीं जानते, फिर आज कलका और कौन प्राणी उसके जानने वा कहनेको समर्थ होगा ? वह नटके समान अनेक आकार धारण कर चेष्टा किया करता है, उसका चरित्र जानना अति दुर्लभ है, वह मेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ सब प्राणियोंमें सुहृद् साधुगण, चित्तके मंगलकारी जिसके चरणोंके दर्शन करनेकी वासनासे सब प्राणियोंमें समान दृष्टि कर अक्षय ब्रह्मचर्य व्रतका आचरण करते हैं वही परमात्मा हमारी गति हों ॥ ७ ॥ और जिनका जन्म कर्म नहीं, नाम रूप नहीं, गुण दोष नहीं, तथापि लोककी उत्पत्ति और विनाशार्थ जो अपनी मायासे समय-समयमें यह समस्त (जन्मादि) स्वीकार करते हैं, मैं उन भगवान्को नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ वह अरूप ब्रह्म हैं और वही बहुरूपी व अनन्त शक्तिमान् हैं, क्योंकि उनके सब कर्म अति आश्चर्यकारी हैं इसलिये मैं उस परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ वह सबका प्रकाशक है, इसलिये वह आप दूसरे प्रकाशका विषय नहीं है और वह परमात्मा अर्थात् जीवका नियन्ता है, उसको मेरा नमस्कार है । जो वाणी, मन और चित्तकी वृत्तिमें आनेके योग्य नहीं है, उसको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ परंतु वह इस प्रकारके होकर भी निर्गुण और शुद्ध संन्यासयोगसे प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ करता है, उस कैवल्यनाथको मैं नमस्कार करता हूँ, उसका स्वरूप मोक्षके आनंदका देनेवाला है ॥ ११ ॥ और वह शांत, घोर, मूढ़ और सत्त्वादि धर्मानुकारी हैं, उनका विशेष नहीं है, वह समस्त विश्वरूपी और ज्ञानघन हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! आप क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सर्वाध्यक्ष और सर्वसाक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! आपके क्षेत्रज्ञ सबके मूल हैं और मूलके भी (प्रधानके भी) उत्पन्न होनेके हेतु हैं, क्योंकि आप पूर्णस्वरूप हैं, इससे मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप सब इंद्रियोंके विषय देखनेवाले हैं और सब इंद्रियोंकी वृत्ति आप जानते हैं, असत् जो अहंकार आदि प्रपंच है, उसके द्वारा असत्रूप छायाद्वारा आप कहलाये जाते हैं, अर्थात् प्रतिबिम्बद्वारा बिम्बके समान संकुचित हो जाते हैं, क्योंकि विषयमें आपका सद्रूप आभास विद्यमान रहता है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप सर्व कारणरूपी हैं, इसलिये स्वयं निष्कारण हैं, परंतु कारण होनेपर भी मृत्तिकादिके समान आपको विकार नहीं होता; अर्थात् आप अद्भुत कारण हैं और जो पंचरात्रादि आगम और वेद हैं, उन सबके उत्पत्तिस्थान हैं, सब प्राणियोंके लिये पर्यवसानस्थान और मोक्षरूपी हैं, इसलिये उत्तम साधुजनोंके आश्रय आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आप गुणरूप अरणिसे ढके हुए हैं, ज्ञानाग्निस्वरूप हैं, परंतु उन सब गुणोंका कार्य आपके मनकी वृत्तिमात्र नहीं है । जो लोग आत्मतत्त्वके विचारसे विधिनिषेधरूप आगम छोड़ देते हैं, उनके बीचमें भी

आप स्वयं प्रकाश करते हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! मेरे समान शरण आये हुए पशुका भी त्रास (अविद्या) आपके सम्मुख छूट जाता है, क्योंकि आप मुक्त और आपकी करुणा अपार है, अधिक करके करुणा बांटनेके विषयमें आपको आलस्य नहीं है, इस लिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे प्रभो ! समस्त देहधारियोंके अंतरमें प्रस्थित जो ज्ञान है, आप अन्तर्यामी रूपसे उसके स्वरूप हैं और सब प्राणियोंके प्रतीत करानेको समर्थ हैं और शरीरधारियोंके अन्तःकरणमें जो स्थित हो रहे हैं इससे परिच्छिन्न नहीं हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७॥ हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि देह, पुत्र, गृह, वित्त, सेवक इत्यादिमें आसक्त पुरुष आपको नहीं पा सकते, क्योंकि आप गुणसंगवर्ज्जित हैं, इस लिये देहादिमें अनासक्त मनुष्यलोग ही आपका ध्यान कर सकते हैं, आप ज्ञानात्मा ईश्वर हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ अहो ! धर्म, अर्थ, काम व मुक्तिके कामी पुरुष जिनका भजन करके अपने-अपने अभिलाष किये धर्मादिकोंको नहीं प्राप्त होते, परन्तु उनके अतिरिक्त अकामना किये हुए प्राणियोंको आशिष और अव्यय देह भी जो स्वयं प्रदान किया करते हैं, वे भगवान् जो महादयावान् हैं, केवल मुझको इस ग्राहसे छुड़ायें और मैं कुछ कामना नहीं करता ॥ १९ ॥ मैं भक्तिके सुखको नहीं जानता, इसलिये मैंने केवल इतनी ही प्रार्थना की और जो लोग उनके एकान्त भक्त हैं, मुक्त पुरुषोंकी सेवा करके कामना रहित हो गये हैं; इसलिये केवल उनका सुमंगल चरित्र गान करके आनन्दके समुद्रमें मग्न रहते हैं, वे किसी अर्थकी वांछा नहीं करते ॥ २० ॥ वह परेश, अक्षर, अव्यक्त, परब्रह्म, आध्यात्मिक योगसे गम्य, सूक्ष्म पदार्थके समान इंद्रियोंकी दृष्टिमें न आनेवाले, जो बाहिरी दृष्टिमें सबसे अति दूर, अनन्त, आद्य और परिपूर्णस्वरूप हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥ जिसके अति छोटे अंशमें समस्त वेद, ब्रह्मादिदेव और चराचर लोग पृथक्-पृथक् नामवाले होकर बने हुए हैं ॥२२॥ और जिस प्रकार अग्निसे लपटें और सूर्यसे किरणसमूह उत्पन्न होते हैं और उसमेंही लीन हो जाते हैं वैसे ही जिससे गुणप्रवाह अर्थात् बुद्धि, मन और शरीर उत्पन्न होते हैं उसीमें लीन हो जाते हैं ॥ २३ ॥ वह देव नहीं, दानव नहीं, मनुष्य नहीं, पशु नहीं, पक्षी नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक नहीं, और लिंगत्रयशून्य प्राणिमात्र भी नहीं हैं और गुण नहीं, कर्म नहीं, सत् नहीं, असत् नहीं, सब पदार्थोंके निषेधके अवधिस्वरूपमें जो शेष रहता है, परन्तु वह मायासे अशेषात्मा है, वह भगवान् मेरे छुड़ानेके लिये शीघ्र प्रकट हों ॥ २४॥ मैं इस ग्राहसे शरीरके छुड़ाने और इसके बचानेकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि भीतर- बाहर में व्याप्त इस गजजन्मसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है, आत्माके प्रकाशका ढकना जो अज्ञान है, मैं उस अज्ञानसे मोक्षकी इच्छा करता हूँ, क्योंकि कालसे मोक्षका नाश कभी नहीं हो सकता । अथवा देहके नाशसे देहका बंधन अवश्यही नाश होगा, फिर मोक्षकी प्रार्थनाका क्या प्रयोजन है ? आत्म प्रकाशका ढकना जो कालसे भी नष्ट नहीं होता, जो सबके अज्ञानको नष्ट करने वाला है, उससे ही मेरा छुटकारा हो ॥२५॥ जिसके निकट यह प्रार्थना करता हूँ उसको मैं नहीं जानता ! वह संसारको रचनेवाला विश्वरूप और विश्वसे पृथक् है, विश्व उसका उपकारण है, वह विश्वकी आत्मा है और अज (ब्रह्मा) परमपद स्वरूप है, मैं केवल उस योगेश्वर भगवान्को नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ भगवद्धर्मरूप योगसे जिनके समस्त कर्म भस्म हो गये हैं ऐसे योगी मनुष्य योगसे शुद्ध हुए हृदयमें जिनको देखते हैं मैं उन योगेशको प्रणाम करता हूँ ॥२७॥

हे भगवन् ! आपको नमस्कार ! नमस्कार ! ! आपकी तीन शक्तियोंका वेग अर्थात् रागादि अतिशय असह्य हैं। आप सब इंद्रियोंमें शब्दादि विषय स्वरूपसे प्रतीयमान होते हैं, इस कारण जिनकी इंद्रियाँ कुत्सित हैं, वे आपके मार्गको नहीं पा सकते हैं ॥२८॥अहो ! जिनकी मायाके वश अहंबुद्धिसे आवृत अपनी मायाको यह पुरुष नहीं जानता है, उसका माहात्म्य अति दुरंत है, उन्हीं भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वह गजेन्द्र इस प्रकारसे मूर्तिभेद न करके परम तत्त्वका वर्णन करता रहा । ब्रह्मादि देवगण पृथक्-पृथक् मूर्तिके अभिमानी हैं, इस कारण उसके छुड़ानेको जब वहाँ न गये, तब अखिलके आत्मा, अकारण, देवमय भगवान् हरि स्वयं प्रगट हुए ॥ ३० ॥ जगन्निवास भगवान् उस गजेन्द्रको इस प्रकार आर्त देखकर और स्तुति करनेवाले देवता लोगोंके समूहके साथ उसकी की हुई स्तुति सुनकर चक्रायुध धारण किये और गरुड़पर सवार हुए जहां गजेंद्र व्याकुल हो रहा था वहां अति शीघ्रतासे चले❋ ॥३१॥ गजेंद्र सरोवरके भीतर महाबलवान् ग्राह(नाका) से अतिशय आर्त हो रहा था । वह आकाशमें गरुड़के ऊपर चक्रधारी भगवान्को आते हुए देखकर कमलके फूलके साथ अपनी शुण्डको उठाता हुआ और अति कष्टसे "हे नारायण ! हे अखिलगुरो ! ! हे भगवन् ! ! ! आपको मेरा नमस्कार है" यह वाक्य कहने लगा ॥ ३२ ॥ भगवान् उसको अत्यन्त पीड़ित देखकर दयाके कारण अपने मनहीमन कहने लगे कि "गरुड़ तो धीमी चालवाला है" इस कारण ऊपरसे सहसा उतर पड़े और वहां वेगसे दौड़कर गजेंद्र के निकट जाकर नाके सहित उसको सरोवरसे निकाल लिया उसके पीछे दर्शनकारी देवता लोगोंके सामने चक्रसे उस ग्राहका-वदन विदीर्ण कर गजेंद्रको छुड़ा दिया ॥ ३३ ॥

भजन

एक यही अचरज मोहि आवे। नाथ कैसे गजके फन्द छुड़ाये ॥
गज औ ग्राह लड़े जल भीतर, लड़त लड़त गज हारे।
जौ भर शुण्ड रही जल ऊपर, तब हरि नाम पुकारे ॥
नाथ कैसे गजके फन्द छुड़ाये ॥ १ ॥
शबरीके बेर सुदामाके तन्दुल, रुचि रुचि भोग लगाये ।
दुर्योधन घर मेवा त्यागो, साग विदुर घर खाये ॥
नाथ कैसे गजके फन्द छुड़ाये ॥२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टम-स्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–चौथेमें गंधर्व बन, ग्राह गयो निज धाम ।
गजको अपने संग ले, परम धाम गये राम ॥

---

*. शंका—थोड़ासा काम था, जिसके लिये भगवान् आप दौड़कर आये और गजेन्द्रको छुड़ाया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? इतना काम तो किसी देवताको भी भेजकर करा देते तो हो जाता, ऐसा ग्राह क्या; दूसरा रावण था ?

उत्तर—ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, तप, दान आदि जो सुन्दर कर्म हैं उन कर्मों करके पुकारे हुए भगवान् शीघ्र प्रगट नहीं होते परंतु भगवान्का नाम लेकर जो कोई प्राणी पुकारता है तो भगवान् ऐसे दौड़ते हैं, जैसे वत्सका शब्द सुनकर गाय दौड़ती है। गजेन्द्रने भगवान्का नाम लेकर पुकारा था इसलिये भगवान् अपने नामको सुनकर शीघ्र दौड़े थे।

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन्!उस समय ब्रह्मा, महेश इत्यादि देवगण, ऋषिगण, गन्धर्वगण भगवान्के इस कार्यकी प्रशंसा करते हुए फूल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, गन्धर्व नाचने- गाने लगे,ऋषि और चारण व सिद्धगण उन पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २॥ हे राजन् ! 'हूहू' नामक जो गन्धर्व था, वह देवल मुनिके शापसे ग्राह हो गया था जैसेही भगवान्ने चक्रसे उसका हृदय विदीर्ण किया वैसे ही वह आयुरहित हो अतिशीघ्र पापसे छूटकर अपना परम आश्चर्यमय गंन्धर्वरूप धारणकर लिया ॥ ३ ॥ और उत्तमश्लोक अव्यय अधीश्वर भगवान्को मस्तक झुका कर प्रणाम करके उनके गुण गान करने लगा । हे राजन् ! भगवान् विष्णु परमयशके आश्रय हैं, इसलिये उनका गुण—कीर्तन करनेके योग्य व उनकी कथायें भी श्रेष्ठ और कहनेके योग्य हैं ॥४॥ इसके उपरान्त भगवान्की कृपा करनेपर उस गन्धर्वने उनको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा करके निष्पाप हो गया और दर्शनकारी सब लोगोंके सम्मुख अपने गन्धर्व लोकको चला गया ॥ ५ ॥ और यह गजेंद्र श्रीनारायणके स्पर्श करने से अज्ञानस्वरूप बन्धनसे छूट पीतवसन और चार भुजा धारण करके भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हो गया ॥ ६ ॥ ❀ ॥ हे राजन् ! यह गजेंद्र पूर्वजन्ममें इन्द्रद्युम्न नामक विख्यात पांडुदेशका राजा था, यह नरनाथ विष्णुव्रतपरायण होकर अपना समय व्यतीत करता था ॥ ७ ॥ एक समय जितेंद्रिय, मौनव्रती, जटा धारण किये, तपस्वी वेष धारण करके मलयाचलमें जाकर वहां आश्रम बनाकर वास करने लगा और उपासनाके सहित यत्नसे भगवान् हरिकी पूजा करने लगा ॥ ८ ॥ एक समय महायशस्वी अगस्त्यजी शिष्योंके सहित उसके आश्रममें आकर उपस्थित हुए, परंतु राजा इस प्रकारसे आराधनामें मग्न था कि उसने अगस्त्यजीका कुछ भी आदर- सम्मान न किया, न कुछ पूजा ही की । निर्द्वन्द्व जिस प्रकार बैठा था, वैसेही बैठा रहा । यह देखकर अगस्त्यजीने इस राजर्षिके ऊपर महाकोप किया ॥९॥ और उसी समय यह शाप दिया कि यह दुरात्मा अतिशय असाधु है, इसकी बुद्धि सुशील नहीं यह ब्राह्मणका अपमान करता है, अतः यह इसी समय तामिस्र गतिको प्राप्त हो ।जैसे हाथी बैठा रहता है, यह दुष्ट भी वैसे ही बैठा रहा, इस कारण यह हाथीका जन्म ग्रहण करे॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! महर्षि अगस्त्यजी इस प्रकार शाप देकर अपने शिष्योंके साथ चले गये । राजा इन्द्रद्युम्न इस घटनाको होनहार जान हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ, जो आत्मविस्मृतिका कारण है परन्तु उसने बहुत काल-तक भगवान् हरिकी पूजा की थी, इस कारण हाथीकी योनि प्राप्त होनेपर भी उसकी स्मृति बनी रही ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवान् पद्मनाभने इस प्रकारसे गजयूथपतिको

---

१. एक समय यह गन्धर्व अपनी स्त्रियोंको साथ लिये हुए सरोवरमें क्रीडा करता था, उसी समय उस सरोवरमें देवल ऋषि स्नान करने लगे, तब गन्धर्वने जलमें गोता लगाकर इन मुनिका चरण पकड़कर खींचा। मुनिने क्रोध कर शाप दिया कि अरे दुष्टात्मा ! कुमति तूने विना अपराध मुझको खींचा, इसलिये ग्राह हो जा। जब उस गन्धर्वने बड़ी स्तुति की, तब देवल ऋषिने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि जब तू गजराजका चरण पकड़ेगा और उसके छुड़ानेको विष्णु भगवान् स्वयं आयेंगे तो सुदर्शन चक्रसे तुझे मारेंगे तब तेरा उद्धार हो जायगा।

* शंका—अनेक तपस्वी जिनसे भगवान् वारंवार मिलते थे, वे तपस्वी तो भगवान्के रूप में प्राप्त नहीं हुए और गजेन्द्र क्षुद्रकर्म करके भगवान्के रूपको प्राप्त हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

उत्तर—गजेन्द्रको तप करते करते अनेक युग बीत गये, परन्तु गजेन्द्रकी तपस्याका वृत्तान्त व्यासजीने अधिक वर्णन नहीं किया, तपके बलसे गजेन्द्र भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हुआ।।

छुड़ाकर पार्षद बनाकर अपने साथ ले लिया। मुरलीधरके इस कर्मसे गन्धर्व, सिद्ध और देवता लोग गान करने लगे, इसके पीछे हरि भगवान् अपने अद्भुत लोकको चले गये ॥ १३ ॥ हे महाराज ! यह गजेन्द्र – मोक्षरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दका प्रभाव मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया। हे कुरुश्रेष्ठ ! जो इस वृत्तान्तको श्रवण करते हैं उनको स्वर्ग और यश प्राप्त होता है और कलिमल नष्ट होकर दुःस्वप्न बंद हो जाते हैं ॥१४॥ इस कारण श्रेष्ठ कामना-वाले द्विजातिगणों को प्रातःकाल ही उठकर पवित्र हो बुरे स्वप्नोंकी शान्तिके लिये यथावि-धिसे इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये ॥१५॥ हे कुरुक्षेत्र ! सर्वभूतात्मा भगवान् हरिने प्रसन्न होकर श्रवणकारी सब प्राणियोंके सामने शापसे छूटे हुए उस गजेंद्रसे ऐसे वचन कहे थे। श्री भगवान् बोले कि हे अंग ! जो पुरुष हमको और तुमको स्मरण करेंगे और इस सरोवर, गिरिकंदर वन, बेत, कीचक, (खुक्खल बांस जिसमें बाँसुरीकेसा शब्द हुआ करता है), ऐसा झोंपड़ियोंको और कल्पवृक्ष इन सबका ॥ १६ ॥ १७ ॥ और जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्थान है तीनों शृङ्गोंको और हमारे प्रियधाम क्षीरसमुद्र और दीप्तिमान श्वेत द्वीपका स्मरण करेंगे वे सब पापोंसे छूट जायेंगे ॥ १८॥ और हमारे श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि, वनमाला, कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र, पञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़ ॥ १९ ॥ शेषनाग और हमारी सूक्ष्मकलारूपिणी और हृदयमें रहनेवाली श्री देवी, महेश, देवर्षि नारद, प्रह्लाद ॥ २० ॥ और मत्स्य कूर्मादि अवतार द्वारा हमारे किये, कर्म, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि ॥ २१ ॥ प्रणव (ॐ कार), सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षण, धर्म, धर्मपत्नी, सोम और कश्यपकी स्त्रियाँ (जो कि हमारी बेटी हैं) ॥ २२ ॥ गङ्गा, सरस्वती, नन्दा और कालिंदी यह पुण्यमयी नदी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पुण्यश्लोक मानवगण यह सब हमारी विभूतियाँ हैं॥२३॥ इसलिये जो लोग रातके पिछले प्रहर उठकर नियम सहित एकाग्रचित्त हो इन सबका स्मरण करेंगे वे भी सब पापोंसे छुटकारा पायेंगे ॥ २४ ॥ हे अंग ! जो पुरुष रात्रिके पिछले प्रहर जागकर इस वृत्तान्तको पढ़ेंगे अथवा हमारा स्मरण करेंगे उनको हम मृत्युके समय निर्मलचित्त कर श्रेष्ठगति देंगे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! भगवान् हृषी-केश उस गजेन्द्रको इस प्रकारसे आज्ञा दे और शंखध्वनि करते हुए अपने स्थानको जानेके लिये देवता लोगोंके साथ हर्ष प्रगट करते हुए अपने वाहन (सवारी) गरुड़जीपर आरूढ होकर यह कहते हुए चले गये ॥ २६ ॥

कबित्त–पाय प्रभुताई कछु कीजिये भलाई यहां, न है थिरताई बैन मानिये कविनके। यश अपयश रहिजात बीच पुहुमीके, मुलक खजाना रूप साथ गये किनके ॥ और महिपालनकी गिनती गिनावै कौन, रावणसे ह्वै गये त्रिलोकी वश जिनके। चोपदार चाकर चमूपति चँवरदार, मंदिर मतङ्ग ये तमाशे चार दिनके ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
अष्टमस्कन्धे गजेंद्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—पँचयेमें पँचयें छठे, मनुको करूँ बखान।
विप्रशापसे निधन वन, धरो कृष्णको ध्यान॥

इतनी कथा राजा परीक्षित्‌को सुनाकर श्रीव्यासपुत्र शुकदेवजी कहने लगे कि हे कौरववंशावतंस! भगवान् हरिका चरित्र गजेन्द्रमोक्ष नामक पापोंका नाश करनेवाला है, वह आपसे मैंने कहा। अब रैवत मनुका वृत्तान्त कहते हैं, वह सुनो॥१॥ पञ्चम रैवत मनु चौथे मनु तामसका सगा भाई था। रैवत मनुके पुत्र अर्जुन बली और विंध्यादि हुए॥२॥ हे राजन्! इस मन्वन्तरमें विभुनाम इंद्र और भूतरयादि देवता हुए और हिरण्यरोम, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्त ऋषि हुए॥ ३॥ और सुभ्रूकी जो विकुण्ठा नामक पत्नी थी, उसके गर्भमें सुभ्रूके वीर्यसे भगवान् वैकुण्ठनाथ स्वयं वैकुण्ठवासीने देवता लोगोंके साथ अपने अंशमें जन्म ग्रहण किया॥ ४॥ इन्हीं वैकुण्ठनाथने लक्ष्मीजीकी प्रार्थनासे उनका प्रिय कार्य करनेकी वासनासे लोकनमस्कृत वैकुण्ठलोक बनाया॥ ५॥ उन(वैकुण्ठनाथ) का प्रभाव, ब्रह्मण्यतादि गुण और बड़ी भारी ऋद्धियोंका विवरण (तीसरे स्कन्धमें) कुछेक वर्णन किया गया है। हे राजन्! भगवान् विष्णुजीके सब गुणोंका वर्णन करनेका किसमें सामर्थ्य है? जो पुरुष उनके सब गुणोंका वर्णन कर सके, वह पृथ्वीपरके धूरिकणोंकी भी गणना (गिनती) कर लेगा॥६॥ अब छठे मनुका वृत्तान्त सुनो। चाक्षुप नामक छठा मनु हुआ। उसके पूरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि उत्पन्न हुए॥७॥ हे राजन्! इस मन्वन्तरमें मंत्रद्रुम, इंद्र, आप्यादिगणदेवता, हविष्मत और वीरकादि ऋषि हुए॥ ८॥ उक्त (ऊपर कहे हुए) मन्वन्तरमें वैराजके ओरसे और देवसम्भूतिके गर्भसे जगत्पति भगवान् विष्णुजी अपने अंशसे जन्म ग्रहण करके अजित नामसे विख्यात हुए॥ ९॥ जिन्होंने समुद्रको मथ करके देवता लोगोंके लिये अमृत निकाला और कूर्म रूप धारण करके जलके बीच भ्रमण करते हुए मन्दराचल पर्वतको धारण किया॥१०॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! भगवान् विष्णुने किस प्रकार क्षीरसमुद्रको मथा? और किस कारण उन्होंने कूर्मरूप होकर मन्दराचलको धारण किया था? वह सब आप मुझसे कृपा कर े वर्णन कीजिये और देवता लोगोंने जिस प्रकार अमृतको प्राप्त किया और उनसे और भी जो जो कार्य हुए वे समस्त कार्य अवश्य ही अद्भुत होंगे, इसलिये आप विस्तार सहित उनको वर्णन कीजिये॥ ११॥ हे योगिन्! आप भक्तवत्सल भगवान्‌की जितनी महिमा कहते हैं, उससे मेरा चित्त किसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं होता, वरन् निरन्तर सुननेको चित्त चाहता है, क्योंकि मेरा हृदय अत्यन्त सन्तापित हो रहा है॥१२॥ यादवपति भगवान्‌की विविधतापकी नाश करनेवाली जो महिमा है, उन भगवान्‌की कथा सुननेसे मेरा मन तृप्त ही नहीं होता॥१३॥ सूतजी बोले-हे द्विजगण! द्वैपायनतनय शुकदेवजीसे जब इस प्रकार राजा परीक्षित्‌ने पूछा, तब राजाकी प्रशंसा और आनन्द प्रगट करके श्रीशुकदेवजी भगवान् हरिके सामर्थ्यका वर्णन करने लगे॥१४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! जिस समय दानवलोग समरमें अस्त्र-शस्त्र चलाकर देवता लोगोंका वध करने लगे तब बहुतसे देवतालोग निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और फिर जीवित नहीं हुए॥ १५॥ और जब दुर्वासा मुनिके शापसे ❋ इन्द्रसहित त्रिभुवनकी श्री नष्ट हो गयी और यज्ञ यागादि भी लुप्त हो

❋ किसी समय दुर्वासा ऋषि मार्गमें चले जाते थे, उन्होंने मार्गमें इन्द्रको देखकर अपने कण्ठकी माला उन्हें दे दी, इन्द्रने लक्ष्मीके मदसे गर्वित हो उस मालाको कुछ न समझ ऐरावत हाथीके मस्तकपर डाल दी। तब उस उन्मत्त हाथीने शुण्डसे उठाकर उस मालाको पैरोंसे मसल-

गये ❋ ॥१६॥ और महेन्द्र व वरुण इत्यादि देवगण यह देखकर जब स्वयं मन्त्रसे कोई उपाय न पाये ॥ १७ ॥ तब इकट्ठे हो परस्पर अर्थात् आपसमें सम्मति कर सुमेरु पर्वतके ऊपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और शिर नवाकर विनीत भावसे पितामहके निकट सब वृत्तांत निवेदन किया ॥१८॥ इन्द्र, चन्द्र, वायु इत्यादि निःसत्त्व और प्रभारहित सब लोगोंका अमंगल और असुरोंको बलवान् देख ब्रह्माजीको अत्यन्त विस्मय प्राप्त हुआ ॥१९॥ कुछ देरके पीछे सावधान मन हो भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण कर प्रफुल्लितमुख हो ब्रह्माजी सब देवताओंसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे देववृन्द ! मैं (ब्रह्मा), महेश (महादेव), तुम, असुर और मनुष्य, तिर्यक् (पशु-पक्षी), द्रुम इत्यादिक कर्मज जाति अर्थात् जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज ये सब ही जिसके अवताररूप पुरुषोंके अंश जो ब्रह्मा हैं, उसकी कलासे सृष्टि अर्थात् पुत्र-पौत्रादि द्वारा उत्पन्न हुए हैं, चलो हम उन्हीं अव्यय परब्रह्म परमेश्वरकी शरणमें चलें ॥ २१ ॥ यद्यपि उनका कोई वध्य नहीं, रक्षणीय नहीं, त्यागनेके योग्य नहीं और आदरणीय भी नहीं, तथापि सृष्टि, स्थिति, प्रलयके निमित्त समय-समय पर सत्त्वगुण, तमोगुण और रजोगुणको धारण करते हैं ॥ २२ ॥ वे शरीरधारियोंके पालन करनेके लिये सत्त्वगुणको धारण करते हैं, यह उनकी स्थिति और पालनका काल है इसलिये इस समय उन जगत्-गुरुकी शरण लेनेसे वह आत्मीय जो अस्मदादि हैं, अवश्य हमारा कल्याण करेंगे ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्माजी देवता लोगोंसे इस प्रकार सम्मति कर उन सबके साथ जिस क्षीरसाग-रमें अजिन भगवान् हरि वास करते हैं, उसी परमस्थानको गये ॥२४॥ वहांपर पहुँचकर साव-धान हो एकाग्रचित्त कर वेदवाक्योंसे नहीं देखा है स्वरूप जिनका परन्तु पहले श्रवण किया है, उन भगवान् हरिकी सब देवगण स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने कहा हे देव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन् ! आपके मध्य विकार नहीं है, आप सत्य, अनन्त, सर्वान्तर्यामी हैं, निरूपाधि हैं और तर्क करनेके अयोग्य हैं; आप मनके भी आगे चलते हैं। वचनद्वारा आपको निर्गतचित्त नहीं किया जा सकता, ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ ॥ अहो ! जो प्राण, मन, बुद्धि और आत्माको जानता है और विषय व इंद्रियाँ इन दोनों रूपोंमें प्रकाश पाता है, जो स्वप्न देखनेवालेके समान अज्ञानरहित है और जिनमें देह नहीं है, जो अक्षर और आकाशवत् सर्वव्यापी है और जिसमें जीवोंका पक्ष करनेवाली अथवा उनमें लीन करनेवाली अविद्या कुछ भी नहीं रहती, जो तीनों युगोंमें प्रकट होते हैं, हम उन्हींकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ और इस जीवका चक्र अर्थात् चक्रवत् घूमते हुए देहादि जो माया करके प्रेरित होते हैं, उनके जो अक्ष अर्थात् अधिष्ठान हैं हम उन्हीं सत्यरूप परमेश्वरकी शरण जाते हैं, जीवका जो मनोमय चक्र है, दस इंद्रिय और पञ्चप्राण यह पंद्रह उसके अक्ष (आल) सत्त्वादि तीन गुणोंके समान उसमें वर्तमान हैं, वह बिजलीके समान चञ्चल है और यथार्थ धुरीके समान उसका आवरण है ॥ २८ ॥ जो भक्त लोगोंकी

तुम तीनों लोकों सहित सम्पत्तिहीन हो जाओ।
–डाला, तब दुर्वासा ऋषिने शाप दिया कि हे इंद्र ! इस तेरी सब लक्ष्मीका नाश हो जायगा, परन्तु तीनों लोकोंको शाप
* शंका—दुर्वासा मुनिने अकेले इन्द्रको शाप दिया, फिर त्रिलोकी लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गयी ?
नहीं दिया था, फिर त्रिलोकी लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गयी ?
उत्तर—मुनिका शाप इन्द्रको हुआ, तब तीन लोकोंका राज्य राजा बलिको हुआ, इस कारण तीनों लोकोंको यक्ष करके तथा लक्ष्मी से
राक्षसोंने हीन कर दिया, इसलिये तीनों लोक यज्ञसे और लक्ष्मीसे हीन हो गये।

रक्षा करनेको गरुड़पर आरूढ (सवार) हैं परन्तु ज्ञानके स्वरूप और प्रकृतिसे परे हैं। अदृश्य, अव्यक्त,देशकालसे जिनका परिच्छेद नहीं होता और धीर पुरुष योगरूप उपायसे जिनका भजन किया करते हैं, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करतेहैं॥२९॥ जिनकी मायाका कोई पुरुष उल्लंघन नहीं कर सकता वह माया साधारण नहीं है, उससे पुरुष मोहित होता है और अपने स्वरूपको नहीं जान सकता, हम उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करते हैं। उन्होंने माया और मायाके गुण दोनोंको जीत लिया है और सब प्राणियोंमें समानरूपसे वर्तमान हैं, ऐसे जो परमेश्वर हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ॥३०॥ हम देवता और ऋषि हैं जिनके प्रियमूर्तिस्वरूप सत्त्वगुणके द्वारा उत्पन्न हुए हैं, बाहर-अन्तरकी सत्ता और प्रकाशसे जिसकी सूक्ष्म गति अर्थात् निरुपाधि स्वरूप नहीं जान सके, उसे रजोगुण, तमोगुण-प्रधान असुरादि किस प्रकारसे जान सकते हैं, इसलिये हम उनको प्रणाम करते हैं ॥३१॥ अहो! जिस पृथ्वी पर जरायुजादि चार प्रकारके प्राणी उत्पन्न होते हैं, यह पृथ्वी जिसके दो चरणरूप है, वैराजरूपी वे ही महापुरुष हमारे ऊपर प्रसन्न हों। यद्यपि उसके चरणादि हैं तथापि वे किसीके वश नहीं हैं, क्योंकि उनका स्वरूप कभी विच्युत नहीं होता और महदाश्चर्यशाली है ॥ ३२ ॥ जिस जलसे समस्त लोक और लोकपाल उत्पन्न होते हैं, जीते रहते हैं और वृद्धि पाते हैं, वह उदारशक्ति युक्त जल जिनका वीर्य है वे महा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जो उदार चन्द्रमा देवता लोगोंके अन्न, बल, आयु स्वरूप हैं और जो सब वृक्षोंके अधिकतासे बढ़ानेका कारण है, पंडित लोग उसी सोमको जिनका मन कहते हैं, वे महाविभूतिशाली महेश हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ जिससे वेदरूप धन उत्पन्न होता है और वेदोंके प्रतिपाद्य कर्मोंके लिये जिनका जन्म है और जो अन्तःसमुद्र अर्थात् उदरमें जठराग्निरूपसे भोजन और अन्नादि पाक किया करते हैं; वही अग्नि जिसका मुख है, वे महाभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ जो सूर्य देवयान अर्थात् अर्चिरादि मार्गके देवता वेदत्रयीमय ब्रह्मकी उपासनाके स्थान हैं और देवयान तत्त्वके हेतु मुक्तिके द्वार हैं और पुण्यश्लोकोंके हेतु हैं, अमृतस्वरूप और परकालरूपत्व होनेसे मृत्युरूप हैं, वह सूर्य जिनकी आँख हैं वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ जिनके प्राणसे वह वायु उत्पन्न हुई है, जो चर-अचर सब प्राणियोंका तेज बल व सामर्थ्यादि धर्मयुक्त प्राण है, सेवक लोग जिस प्रकार महाराजाधिराजके पीछे-पीछे चलते हैं, वैसे ही हम लोग बुद्धि इत्यादिके अधिष्ठाता देवता जिनका अनुसरण किया करते हैं वे महाऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके श्रवणोंसे दिशा, जिनके हृदयसे इंद्रियाँ और नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ, जो पञ्चप्राण, इंद्रियाँ, मन, नाग, कूर्मादि वायु और शरीरके आश्रय हैं, वे महासम्पन्न विभु हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे महेन्द्र, प्रसन्नतासे सुरगण, क्रोध (गुस्से) से गिरीश, बुद्धिसे ब्रह्मा, छिद्रसे समस्त भेद, मेढ्रसे ऋषि और प्रजापतिगण उत्पन्न हुए हैं, वह महाऐश्वर्यशाली पूर्ण ब्रह्म भगवान् हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनकी छातीसे लक्ष्मी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग और विहारसे अप्सरागण उत्पन्न हुईं, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और परमगुप्त वेद, दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य एवं चतुरता और चरणोंसे शूद्र और सेवा उत्पन्न हुई है। वे महाविभूतिशाली परमेश्वर

हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ, (नीचेके) ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कांति उत्पन्न हुई है और स्पर्शसे पशुओंका हितकारी काम और दोनों भौंहोंसे यम, पलकोंसे कालका जन्म हुआ है, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ और पञ्चभूत, काल, कर्म, गुण, लौकिक प्रपञ्च इन सबको ज्ञानी लोग जिनकी योगमायासे उत्पन्न हुए कहा करते हैं और उसी मायासे द्रव्य, काल, कर्म, गुण, भौतिक प्रपञ्च यह उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहते हैं और फिर पृथक्-पृथक् विद्वान लोग इन सबका खण्डन किया करते हैं, वे महाविभूतिशाली परमेश्वर हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ अहो ! हम लोग उन परमेश्वरको नमस्कार करते हैं, उसकी शक्ति उपशांति है, स्वर्गका राज्यलाभ करनेके लिये वे आत्माको परिपूर्ण करते हैं, परन्तु दर्शनादि द्वारा मायारचित गुणोंमें आसक्त नहीं होते उनकी लीला पवनके समान है,हम उनको नमस्कार करते हैं ॥४४॥ हे भगवन् ! हम शरणापन्न होकर आपके स्मितमुखारविन्दका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं, आप हमारी इंद्रियोंके गोचर हो अर्थात् अपना स्वरूप दिखाओ ॥ ४५ ॥हे प्रभो ! आप भक्तजनोंकी इच्छाके अनुसार रहा करते हैं, इसके भूरि प्रमाण हैं; जिन कर्मोंके करनेमें हम अशक्य होते हैं, आप काल-कालमें इच्छानुसार अतवार ले करके उनसे स्वयं उन कर्मोंको सम्पन्न किया करते हैं ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! जो शरीरधारी विषयके लिये आर्त हैं, उनके कर्म जैसे अनेक क्लेश और अति थोड़े फलके देनेवाले हैं, आपके भक्तोंके अर्पित हुए कर्म ऐसे नहीं हैं ॥ ४७ ॥ अति थोड़ा जो कर्माभास है, वह भी परमेश्वरमें अर्पण किये जानेपर विफल नहीं होता, क्योंकि ईश्वर पुरुषोंका आत्मा है, दयावान् और हितकारी है, वह प्रिय और हितकारी आत्मामें जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह क्या निष्फल हो सकता है ? ॥ ४८ ॥ जैसे पेड़की जड़में जल देनेसे शाखा, चोटी सबका सींचना हो जाता है, वैसे ही विष्णु भगवान्‌की आराधना करनेसे सबकी आराधना हो जाती है ॥ ४९ ॥ हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं, जो कुछ कर्म करते हैं वह आपको समर्पण कर देते हैं । हम लोगोंका यह क्लेश जिस कारणसे हुआ है, आप स्वयं ही जानते हैं, क्या निवेदन करें ? आप अनन्त, निर्गुण, गुणेश और सत्त्वस्थ हैं आपका स्वभाव और चेष्टा तर्क करनेके योग्य नहीं है, अतः हमलोग केवल आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥

सवैया

जाप जप्यो नहिं मन्त्र थप्यो नहिं वेद पुराण सुन्यो न बखानो ।
बीति गये दिन योंहीं सबै मन, मोहन मोहनके न बिकानो ॥
चेरो कहावत तेरो सदा पुनि, और न कोई मैं दूसर जानो ।
कै तो गरीबको लेहु निवाज, न छोड़ गरीबनिवाजको बानो ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृतेऽष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा—छठवेंमें प्रगटे हरि, असुर प्रार्थना कीन्ह ।
दैत्यनको धोखा दियो, देवन अमृत दीन्ह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब सब देवता लोगोंने इस प्रकारसे स्तुति की तब श्रीभगवान् हरि उनके सामने ही प्रगट हुए । सहस्र सूर्यके उदय होनेसे जिस प्रकार दीप्ति

होती है, वैसे ही उस समय श्रीनारायणजीकी भी दीप्ति प्रकाशित होने लगी ॥१॥ उस द्युतिसे सब देवताओंकी दृष्टि तिलमिला गयी, कि जिससे देवता लोग आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपने आपको भी न देख सके, फिर उन विभुको किस प्रकार देख सकें ? ॥ २ ॥ बहुत देरतक ब्रह्माजीने भलीभांति देखकर महादेवजीके सहित उनकी स्तुति करनी आरम्भ की। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! भगवान्‌की मूर्ति मरकतमणिके समान श्यामवर्ण और स्वच्छ थी, इससे पद्मगर्भके समान अरुणवर्ण उनके दोनों नेत्र शोभायमान हो रहे थे ॥३॥ और वह मूर्ति तपाये हुए सुवर्णके समान पीतवर्ण पीताम्बर धारण किये हुए थी, श्रीभगवान्‌के समस्त अंग प्रसन्न और अतिशय मनोहर थे और भ्रुकुटीकी शोभा भी अत्यन्त सुन्दर थी ॥ ४ ॥ मस्तकपर महामणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट था, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द और नौरतन विराजमान थे, कानोंमें कुण्डलोंका हिलना अति मनोहर था, उन कुण्डलोंके द्वारा कपोलोंकी दीप्ति होनेसे मुखारविन्द पर अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित हो रही थी ॥ ५ ॥ और काञ्चीकलाप, कंकण, हार, नूपुरसे वह मूर्ति विशेष शोभायमान हो रही थी। वे कण्ठमें कौस्तुभमणि और वक्षस्थलमें लक्ष्मीजीको धारण किये हुए थे और उनका हृदय वनमालासे शोभायमान हो रहा था ❋ ॥६॥ अधिक करके सुदर्शनादि अपने अस्त्रोंसे भी वे शोभायमान हो रहे थे, यह सुदर्शनादि उनके अस्त्र अपनी-अपनी मूर्तियां धारण कर चारों ओर खड़े होकर उनकी उपासना कर रहे थे, यह मूर्ति देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, शिव और सब देवता लोग उनको प्रणाम करने लगे॥७॥ब्रह्माजी बोले कि हे भगवन् ! श्रीमूर्तिका आविर्भावमात्र हम लोगोंके समान आपके जन्मादि नहीं हैं; क्योंकि आपको जन्म, स्थित, संयम यह तीनों उत्पन्न नहीं होते, इसका कारण यह है कि आप निर्गुण हैं, इसलिये ज्ञानी लोग आपको 'निर्वाण सुखका समुद्र' कहा करते हैं, परन्तु आप इस प्रकार जाननेके योग्य न होनेसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हो, वास्तवमें आपकी मूर्तिकी सीमा नहीं है। हे प्रभो ! हमसे जो कुछ भी कहा यह कुछ भी असम्भव नहीं है, क्योंकि आपका स्वभाव अचिन्तनीय है, इसलिये आपको नमस्कार ! नमस्कार ! ! नमस्कार ! ! ! है ॥ ८ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! हे धातः ! कल्याणके चाहनेवाले पुरुष लोग वैदिक और तान्त्रिक उपायसे आपकी इस मूर्तिकी सदा पूजा करते हैं। हे भगवन् ! हम देवतालोग पूज्यरूपसे प्रसिद्ध तो हुए हैं, परन्तु आपमें त्रिभुवनसहित हम सब कुछ देखते हैं, आपकी यह मूर्ति ब्रह्माण्डका आधार है, इसलिये आपका यह रूप परिच्छिन्न नहीं है ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आप स्वतंत्र हैं, यह जगत् प्रथम आपमें ही था, मध्यमें भी आपमें ही रहा है और अंत समय भी आपमें ही रहेगा। मिट्टी जैसे घड़ेकी आदि, अन्त और मध्य है, वैसे आप इस जगत्‌के आदि, मध्य और अवसान हैं, क्योंकि आप प्रधानसे भी परे (श्रेष्ठ) हैं ॥ १० ॥ हे भगवन् ! आप निजाश्रित माया द्वारा इस विश्वकी सृष्टि करके पीछे इसमें प्रविष्ट होते हैं, इसलिये शास्त्रके जाननेवाले विवेकी योगी लोग सबके परिणाममें भी आपको निर्गुण देखते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! जैसे काष्ठमें अग्नि, गौमें घृत, पृथ्वीमें अन्न और पुरुषार्थमें जीविका वर्तमान है, मनुष्यगण उपायसे

❋ शंका—भगवान्‌ने हार, नूपुर, कंकण, कुण्डल, भुजबन्द आदिक गहने बालक और स्त्रीके क्यों पहिने ?

उत्तर—ब्रह्मादि देवताओंको बालकरूप भगवान्‌की उपासना बड़ी प्यारी है, इसलिये शीघ्र बालकरूप बनकर अथवा बालकके सब गहना धारण करके ब्रह्मादिकको दर्शन देते हैं, इसलिये बालकके गहना धारण करते हैं।

इन सबको प्राप्त होते हैं, अर्थात् मथे जानेपर काष्ठसे अग्नि, दुहे जानेसे गौमें घृत और खोदने पर पृथ्वीमें अन्न और जल, वाणिज्य इत्यादि करनेपर पुरुषार्थसे जीविका प्राप्त होती है। ऐसा ज्ञानीलोग कहते हैं कि आप भी वैसे ही गुणमें वर्तमान हैं और वह बुद्धिके योगसे आपको प्राप्त कर लेते हैं ॥१२॥ हे नाथ! हे पद्मनाभ! आप हमारे बहुत दिनोंके वांछा किये हुए अर्थ हैं, आप योगगम्य होकर भी स्वयं प्रगट हुए, दावानलसे पीड़ित हुये हाथी गंगाजलको देखकर जैसे आनन्द पाते हैं, वैसे ही हम लोग आज आपका प्रत्यक्षदर्शन पाकर परम आनंदको प्राप्त हुए हैं ॥१३॥ इस समय इन सब लोकपालोंके सहित हम जो इच्छा करके आपके कोमलकमल चरणकमलकी शरण आये हैं, उस कार्यको आप पूर्ण कीजिये। हे अन्तरात्मन्! आप अनन्त पदार्थोंके साक्षी हैं फिर भला हम क्या बतायें? आप सभी कुछ जानते हैं ॥१४॥ हे भगवन्! मैं (ब्रह्मा) महादेव और देवता, दक्षप्रजापति हम सभी अग्निकी चिनगारीके समान आपसे अलग प्रकाशमान होते हैं, हम नहीं जानते कि आपमें क्या श्रेष्ठता है? इसलिये आपही द्विज और देवतालोगोंकी मंत्रणा कहिये अर्थात् "यह करो" ऐसी आज्ञा कर उपाय बताइये ॥ १५ ॥ इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजीमुनि कहने लगे कि हे पाण्डुनन्दन परीक्षित्! जब ब्रह्मादिक देवतालोगोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की तब श्रीभगवान् उनके मनके अभिप्रायको जान मेघ समान गम्भीर बाणीसे बोले-हे राजन्! उस समय सब देवताओंने अपनी इंद्रियोंको अपने वशमें कर लिया था ॥१६॥ यद्यपि भगवान् देवताओंके उस कार्यको अकेले कर सकते थे, तो भी समुद्रमंथनादि विहार करनेकी इच्छा कर उनसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे कि, कैसे खेद्की बात है? ब्रह्मन्! अहो शम्भो! हे देवगण! हे गन्धर्वगण! तुम सब सावधान होकर हमारे वचन सुनो। हे देवसमूह! जिस प्रकारसे तुम्हारा भला हो वही हम कहते हैं, तुम सुनो ॥१८॥ दैत्य-दानव सब पर ही शुक्राचार्यजीने अनुग्रह किया है, तुमलोग उनके पास जाकर उनसे तबतक संधि (मेल) कर लो जबतक अपने आपसे तुम्हारी वृद्धि न हो जाय ॥ १९ ॥ हे देवगण! कार्य और अर्थके गौरवसे अर्थ साधनेमें तत्पर पुरुष कभी सांप और चूहेके समान शत्रुके साथभी संधि अर्थात् मेल कर लेते हैं, जैसे पिटारीमें रुका हुआ सर्प उनमेंसे निकलनेके लिये चूहेसे मेल करता है और जब वह चूहा छेद कर देता है, तब वह सर्प बाहर निकलकर चूहेको भक्षण करता है इसी भांतिसे तुम दैत्योंसे मिलाप कर लो ॥ २० ॥ तुम दैत्योंके साथ संधि करके शीघ्र अमृत निकालनेका यत्न करो, क्योंकि अमृतके पीनेके प्रभावसे मृत्युसे ग्रसा हुआ भी मनुष्य अमर हो जाता है ॥ २१ ॥ जाओ! क्षीरससुद्रमें शीघ्र तृण, लता और औषधियोंको डालो फिर उसमें मंदराचलकी रई और वासुकी नागकी डोरी करके ॥ २२ ॥ मेरी सहायता लेकर आलस्यरहित हो समुद्रको मथो। हे देवगण! यद्यपि दैत्यलोग तुम्हारे साथ मिलकर समुद्र मथेंगे, तो भी उन लोगोंको क्लेशही मिलेगा और मथनेका फल तुम्हीं पावोगे ॥ २३ ॥ हे सुरगण! बलवान् साथीके द्वारा जो कोई कार्य सिद्ध करना हो तो उसकी इच्छानुसार कार्य करना चाहिये। इसलिये असुरलोग जो कुछभी इच्छा करें, तुम उसमें ही प्रसन्न होना! जिस प्रकार शांतिके मार्गसे शीघ्र अर्थकी सिद्धि होती है, वैसी क्रोधके मार्गसे नहीं होती॥ २४ ॥ हे देवगण! समुद्रके मथनेसे कालकूट उत्पन्न होगा, उससे कुछ भय न करना और मथते-मथते जो कुछ श्रेष्ठ वस्तु निकलेगी, उसके लिये लोभ न करना और लोभके वश होकर

क्रोध भी मत करना ॥ २५ ॥ श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवान् पुरुषोत्तम देवता लोगोंको इस प्रकार आज्ञा करके उनके सामने ही अंतर्धान हो गये । हे राजन् ! वे ईश्वर हैं उनकी गति स्वाधीन है ॥२६॥ श्री भगवान्‌के अंतर्धान होनेपर ब्रह्माजी और महादेवजी उन आदिपुरुषको प्रणाम करके अपने स्थानको चले गये, फिर देवता लोग संधि करनेका विचार कर राजा बलिके स्थान पर गये ॥२७॥ दैत्यराज बलि संधि (मेल) और विग्रह (लड़ाई) का अवसर भलीभांति जानते थे । इसी कारण वह यशस्वी थे, इसलिये शत्रु होनेपर भी इंद्रादि देवताओंको असज्जित देखकर क्षोभको प्राप्त हुए अपने सेनापतियोंको युद्ध करनेसे रोका ॥ २८ ॥ और जहां विरोचनका पुत्र त्रिलोकी को जीत असुर यूथपोंकरके रक्षित हो सुन्दरी रमणियोंसे सेवित हो विराजमान थे, देवता लोग वहां जाकर पहुँचे ॥२९॥ और महामति वाले इन्द्र मनोहर वचनोंसे समझाते हुए राजा बलिके निकट भगवान् पुरुषोत्तमजीने समुद्र मथनेके विषयमें जो कुछ सिखा दिया था वह सब ही बतलाने लगे ॥ ३० ॥ इन्द्रके वचन राजा बलिको प्यारे लगे और वहांपर शम्बर, अरिष्टनेमि इत्यादि असुर और वृत्रपुरवासी जो-जो दानव थे, उन सबने भी इन वचनोंको माना ॥३१॥ हे परंतप ! इसके पीछे दानव और देवता लोगोंने परस्पर मिलाप किया और अमृतके निकालनेकी शपथ कर उसके लिये अत्यन्त यत्न करने लगे ॥ ३२ ॥ दानव लोग बल पूर्वक मन्दराचलको उखाड़कर लाये और सिंहनाद करते-करते उस पर्वतको क्षीरसमुद्रकी ओर ले चले ॥ ३३ ॥ यद्यपि इंद्रादिक देव-गण और बलि इत्यादि दानव अतिशय शक्तिमान् थे, और उनकी भुजायें परिघके समान थीं, तो भी दूरसे बड़ा भारी बोझ लानेके कारण देवता और दैत्य दोनों शीघ्र ही थक गये और उस पर्वतके बोझको जब न सँभाल सके तो मार्गमें ही रख दिया ॥ ३४ ॥ इन्द्र और बलि आदि देवता व असुरोंने जब उसको लाते-लाते मार्गमें छोड़ दिया तब वह पर्वत भारी बोझसे अनेक देवता व असुरोंको पूर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥३५॥ देवता और दान-वोंकी जब इस पर्वतके लानेमें बांहें टूट गयीं, जांघें कट गयीं और उनके मन मलिन हो गये तब भगवान् गरुड़ध्वज यह बात जानते ही उसी समय वहां आकर उपस्थित हुये ॥ ३६ ॥ और पर्वतके गिरनेसे देव दानवोंको पिसा हुआ देख उन्हें अपनी दृष्टिसे सावधान करके फिर जिला दिया ॥ ३७ ॥ इसके पीछे लीलापूर्वक एक हाथसे उस पर्वतको अपने वाहन गरुड़जीपर रख और स्वयं उसके ऊपर चढ़ समुद्रकी ओर ले चले और सुर-असुर भी चारों ओरसे घेरकर उनके पीछे चले ॥३८॥ समुद्रके निकट पहुँच गरुड़जीने अपने कन्धेपरसे आप ही उस पर्वतको उतार दिया, तब श्रीभगवान्‌ने जलके समीप भेज दिया । तात्पर्य यह है कि जहां गरुड़जी हों वहांपर वासुकी नहीं आ सकता ॥ ३९ ॥ जिन हरिके वाहनकी ऐसी महिमा है फिर उन हरिकी महिमाका क्या कहना है ?

कवित्त—तारो है निषाद प्रह्लादको उबार लियो, सादर अहिल्या तरी पाद-रज लायके । कहै जगन्नाथ हाथ धारि गिरि व्रजनाथ, पालो व्रज पन्थतें पुरन्दर लजायके ॥ बार न करी है नेक बानरके तारनमें, कारन कहा है जगतारन कहायके । जोवत इतै हो नहिं सोवत कितै हो प्रभु, ऐसे ही वितै हौ कि चितै हौ चित लायके ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टम-स्कन्धेऽमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा-सप्तममें सागर मथ्यो, प्रकट्यो गरल कराल।
डरकर सब शिवपहँ गये, कीजै दया दयाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुवंशावतंस परीक्षित् ! "समुद्रके मथनेसे जो अमृत निकलेगा, इसमें तुम्हारा भी भाग रहेगा" यह कह देवता व असुर लोगोंने वासुकी नागको मथानीकी डोरी बनाकर उसको मन्दराचल पर्वतसे लपेटा, फिर आनन्दपूर्वक समुद्रका मंथन करने लगे ॥ १ ॥ वासुकी नागका मुख विषके दांत रहनेसे अत्यन्त तीव्र था, इसलिये चतुरतासे भगवान् हरिने प्रथम मथनेकी डोरीका वासुकीके मुखकी ओरका सिरा थामा, और देवता लोग भी उसी ओर गये। दैत्यपति लोग यह देखकर समझे कि मुखकी ओर पकड़ना विक्रमका कार्य है; इसलिये उन्होंने मुखकी ओर पकड़नेकी इच्छा की और बोले-देवतालोग मुखकी ओर नहीं पकड़ें ॥२॥ उन दैत्योंने उसमें बाधा देकर कहा कि हम वेदपाठ करते हैं और शास्त्र सुने हुए हैं, जन्म और कर्म द्वारा सर्वत्र विख्यात हैं, सर्पकी पूँछका भाग अमंगल है, हम उसको ग्रहण नहीं करेंगे ॥ ३ ॥ दैत्यलोगोंके यह वचन सुन भगवान् हरि मनमें मुसकाये और उन्होंने उसी समय वासुकी नागके शरीरका अग्रभाग छोड़कर देवता लोगोंके सहित पुच्छ भाग ग्रहण किया ॥४॥ हे राजन् ! कश्यपनंदन दानवगण इस प्रकारका स्थानका विभाग करके मथनेकी डोरी पकड़ परमयत्नसे अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्रको मथने लगे ॥ ५ ॥ यद्यपि महाबलवान् और पराक्रमी देवता-असुरों द्वारा मन्थानदण्ड मंदर पर्वत पकड़ा गया था, तो भी मथन करते यह मन्दर आधार-शून्य हो समुद्रके जलमें डूबने लगा ॥६॥ हे राजन ! बलवान् भाग्यके वश इस प्रकारसे अपने-अपने पौरुषको नष्ट देखकर उन देवता व असुर लोगोंके अंतःकरण अतिशय क्षुभित हुए और मुख अत्यन्त मलिन हो गये ॥ ॥७॥ नारायण वीर्य अत्यन्त दुरंत और उसका संकल्प अत्यन्त सत्य है, उन्होंने उस समय अमृत निकालनेमें यह विघ्न हुआ देख उसी समय बड़ा भारी अद्भुत कच्छपरूप धारण किया और समुद्रमें प्रवेश करके पीठपर भलीभांति उस पर्वतको उठाकर अपने ऊपर धारण कर लिया ॥८॥ कुलाचल मन्दरके फिर उठने पर देवता और दानवलोग महाहर्षित हुए और फिर सबने समुद्र मथनेका उद्यम किया, कूर्मशरीरधारी भगवान् हरिने अपनी पीठका विस्तार लाख योजनका कर लिया उसपर एक भले द्वीपके समान वह मन्थानदंड मंदरगिरिको धारण किये रहे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! देव दानवोंके भुजवीर्यसे कम्पायमान यह पर्वत सब प्रकारसे भ्रमण करने लगा, अप्रमेय आदि कूर्म प्रशस्त पीठपर धारण करके उस पर्वतके घूमनेको खुजलीके समान समझने लगे कि मानो कोई पीठपर खुजा रहा है ॥ १० ॥ फिर श्रीनारायणने असुराकारसे असुरोंमें प्रवेश कर उनके बल-वीर्यको बढ़ा दिया और देवाकारसे देवता लोगोंमें प्रवेश कर उनको चैतन्य किया और अबोधरूपसे नागेंद्र (वासुकी) में प्रवेश कर उसको सबल कर दिया ॥ ११ ॥ इसके पीछे हजार भुजा धारण करके दूसरे पर्वतके समान अपने हाथके द्वारा ऊपरसे मंदराचलको दाबकर स्थित रहे, यह आश्चर्य देख देवलोकमें ब्रह्मा, इंद्रादि देववृन्द फूल वर्षा-वर्षाकर श्रीनारायणकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवान् हरिके ऊपर, नीचे और आत्माके अर्थात् देव दानवोंमें और पर्वत मन्थान रज्जु वासुकीमें प्रवेश कर जानेपर मदोत्कट देव दानवगण उत्कंठित हो मन्थानरूपी मंदराचलसे ऐसे वेगसे मथने लगे कि एक क्षणमें समुद्रके वास करनेवाले सब ग्राह क्षुभित हो गये ॥१३॥

और वासुकी नागके सहस्त्रों विकराल फण और श्वासोंसे अग्नि और धुँआ निकलने लगा कि जिससे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर लोगोंका तेज नष्ट हो गया, इसलिये वह अति शीघ्र दावानलसे भस्म हुए सरकण्डेके समान प्रभाहीन हो गये ॥ १४ ॥ देवतागण भी वासुकीके श्वाससे निकली हुई अग्निकी शिखासे प्रभाहीन होते थे और उनके वदन, वसन, भूषण, कंचुकादि धूम्रवर्ण हो रहे थे, परन्तु भगवान्‌के वश हुए मेघोंने उनके ऊपर जल वर्षाया और समुद्रकी तरंगोंके संयोगसे आया हुआ शीतल पवन उनके ऊपर चलने लगा इस लिये वे असुर लोगोंके समान व्याकुल नहीं हुए ❋ ॥१५॥ देवता असुर लोगोंके समूह करके मथे हुए समुद्रसे जब अमृत न निकला तब भगवान् हरि अजित अपने आपसे समुद्रको मथने लगे ॥ १६ ॥ मेघसमान श्यामवर्ण श्रीनारायण सुवर्णके समान पीताम्बर धारण किये बिजलीकी दमकके समान चमकीले कुण्डल पहने, जिनके मस्तकपर अलकें छिटक रहीं, माला पहने हुए, लाल-लाल नेत्र किये अपने अभय देनेवाले हस्तकमलोंसे मंदराचल द्वारा समुद्रको मथने लगे। उस समय ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो एक पर्वत दूसरे पर्वतको मथ रहा है ॥१७॥ जब इस प्रकारसे समुद्र मथा गया तब उसमेंके मत्स्य, मकर, कछुए, सर्पादि अतिशय व्याकुल हुए और तिमि, जलहस्ती, नाके और तिमिंगिल सब घबड़ा गये। इसके पीछे उस समुद्रसे प्रथम हलाहल नाम महोल्वण विष निकला ॥ १८ ॥ अति उग्र वेगवाले, दशों दिशाओंमें ऊपर-नीचे उफनकर आनेवाले प्रतिकार रहित विषको देखकर देवता लोग विष्णु भगवान्‌से भी रक्षा न पाकर अत्यन्त भीत हो वे सब भूतनाथ भगवान्‌की शरणमें गये ॥ १९ ॥ उस कालमें देवदेव महादेवजी त्रिलोकीके उद्भवार्थ भगवती पार्वतीजीके सहित कैलास पर्वतपर विराजमान थे और जो मुनिलोगोंको मोक्षकी देनेवाली हैं, उस तपस्याको श्रीभोलानाथ कर रहे थे। प्रजापतिलोग समीप जाकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ हे देवदेव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन ! हम लोग आपकी शरणमें आये हैं, समुद्रसे निकला हुआ यह कालकूट विष त्रिलोकीको दग्ध किये डालता है, इससे हम लोगोंकी रक्षा कीजिये॥२१॥ हे भगवन् ! आप सब जगत्‌के बन्धन करने और मोक्ष देनेवाले ईश्वर हैं, निपुण ज्ञानी लोग आपकी ही पूजा किया करते हैं, आप परमगुरु और शरण आये हुओंकी आर्तिके हरनेवाले हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! आप गुणमयी अपनी शक्तिसे, जब कि इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं तब हे भूमन् ! आपका ज्ञान स्वयं सिद्ध है, आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यह तीन संज्ञा धारण करते हैं॥२३॥आपका ज्ञान ही परम गुह्य ब्रह्म है, आपसे ही देव तिर्यगादि सत् और असत् समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं, बस, आपके अतिरिक्त और उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है, आत्मरूपी आप ही अनेक शक्तियोंसे जगतरूप हुए हो इसलिये आप ही ईश्वर हैं ॥ २४ ॥ हे भगवन् ! आप ही वेदकी योनि हैं अर्थात् समस्त वेद आपसे ही उत्पन्न हुए हैं, इस कारण आपका ज्ञान स्वत सिद्ध है, आप जगत्‌के आदि अर्थात् महत्तत्त्व हैं और जिनके गुण, प्राण, इंद्रिय और द्रव्यके कारणीभूत हैं, वह राजसादि त्रिविध अहंकार भी आप ही हैं और आप ही स्वभाव, काल, संकल्प और सत्य व

* शंका—सर्पके मुखकी श्वाससे निकला जो विष, उस विषकी अग्निसे जो देवता मूर्छित हो गये थे उन देवताओंको देखकर भगवान्‌की आज्ञा माननेवाले मेघोंने केवल उन्हींके ऊपर किस लिये वर्षा की?

उत्तर—विषके वीर्यको नाश करनेवाला रस अश्विनीकुमार वैद्यने मेघोंको दिया, उसी रसको मेघोंने जलमें मिलाकर अकेले देवताओंके ऊपर वर्षा की थी।

ऋतु जो धर्म है, यह भी सब आप ही हैं; क्योंकि त्रिगुणात्मक जो प्रधान, उसे ज्ञानी लोग आपके आश्रय कहा करते हैं ॥ २५ ॥ हे लोकभावन् ! समस्त देवतास्वरूप अग्नि आपके मुख हैं, पृथ्वी आपकी चरण है, काल आपका चलना है, सब दिशायें आपके कान हैं, वरुण आपकी रसना (जीभ) है, हम आपकी शरण हैं ॥२६॥ आकाश आपकी नाभि है, पवन आपका श्वास है, सूर्य आपके नेत्र हैं, जल आपका वीर्य है, ज्ञानी लोग आपको-अहंकारको पर और अपर जीवोंका आश्रय कहा करते हैं, इसलिये हे भगवन् ! चन्द्रमा आपका मन और स्वर्ग आपका मस्तक है ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! तीनों वेद आपकी मूर्ति हैं, समस्त समुद्र आपकी कोख है, समस्त पर्वत आपकी हड्डियाँ हैं, सब प्रकारकी ओषधि और लतायें आपके शरीरके रोम हैं, छन्द वेद तुम्हारे सात धातु हैं और प्रसिद्ध धर्म आपका हृदय है ॥२८॥ हे ईश ! पञ्च उपनिषद् अर्थात् तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान, यह पाँच मन्त्र आपके मुख हैं, इन मुखोंसे (३८) अड़तीस मन्त्र वर्ग होते हैं अर्थात् प्रथम कहे हुए पांच मन्त्रोंके पदच्छेदसे अड़तीस शकलात्मक मंत्र होते हैं। हे देव ! शिवनामसे प्रसिद्ध जो परमात्मतत्त्व है, वह आप ही हैं, आपकी उपरतावस्था स्वयं ज्योति है ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! आपकी छाया अधर्मकी ऊर्मियों (लहरों) में अर्थात् दम्भ लोभादिमें वर्तमान है, जिन लहरोंसे संहार हुआ करता है और सत्त्व, रज व तम ये तीन गुण आपके तीन नेत्र हैं। हे प्रभो ! आप शास्त्रकारी हैं, सांख्यज्ञान आपकी आत्मा है। हे देव ! छन्दमय पुराण ऋषि अर्थात् वेद आपकी दृष्टि हैं ॥३०॥ हे गिरीश ! आप परमज्योति अखिल लोकपाल ब्रह्मा, विष्णु और सुरेन्द्र इंद्रके गम्य नहीं हैं, इस ज्योतिमें रज अथवा तम वा सत्त्व कुछ भी नहीं है वह निरन्तर परब्रह्मस्वरूप है ॥३१॥ हे भगवन् ! आपने कन्दर्प्प (कामदेव), दक्ष, यज्ञ, त्रिपुरा, कालकूट इत्यादि बहुतेरे प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले प्राणियोंका विनाश किया तो है, परन्तु वह सब कर्म तुम्हारे स्तुत्यर्थ नहीं हो सकते। आपके लिये तो यह कार्य अति छोटे हैं, क्योंकि प्रलयकालमें आपके नेत्रकी चिनगारीसे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान यह बड़ा भारी ब्रह्माण्ड जो भस्म हो जाता है; उसको भी तो आप अनदेखा करते हैं॥३२॥हे भगवन् आत्माराम और विश्वके हितोपदेशक ज्ञानीलोग अपने-अपने हृदयमें आपके दोनों चरणोंका ध्यान किया करते हैं। आप ऐसे ही हैं ऐसा कोई नहीं जान सकता और आप सदा तप करनेमें लगे रहते हैं,जो लोग पार्वतीके साथ घूमता हुआ देखकर उनपर नितांत अनुरागी जान आपको कामी कहा करते हैं और श्मशानमें फिरता देखकर आपको कठोर और हिंसक कह कर प्रलाप करते हैं, वह क्या आपकी लीलाको जानते हैं? हम निश्चयसे कहते हैं कि वे कुछ भी नहीं जानते,इस कारणसे निर्लज्ज हो विचार न करके ऐसा प्रलाप करते हैं। अहो ! जिनके चरणोंकी आत्माराम लोग सेवा करते हैं, क्या उनको कामदेव उत्पन्न हो सकता है ? किन्तु जो सदा तप किया करते हैं वे शांत मूर्ति ही हो सकते हैं, उनमें हत्यापन वा कठोरपन किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? ॥३३॥ इसलिये हे देव ! सत् और असत्से परे और परमपुरुष जो आप हैं उन आपका यथार्थ स्वरूप ब्रह्मा आदि भी जाननेको समर्थ नहीं हैं, फिर भला वे आपकी स्तुति करनेको कैसे समर्थ होंगे ? हे प्रभो ! हम उन ब्रह्माजीकी सृष्टिमें अत्यन्त नये हैं, फिर हम भी आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं ? तथापि यह स्तुति जो कि यह केवल आत्मशक्तिका परिणाम है ॥ ३४ ॥ हे परमेश्वर ! यद्यपि हम सबने आपके अतिरिक्त और

जो श्रेष्ठ रूप है, उसे नहीं देख पाया तथापि इसको ही देखकर कृतार्थ हो गये क्योंकि आप अव्यक्त कर्मकारी हैं; आपका इस रूपसे प्रगट होना लोककी रक्षा ही करनेके लिये हैं ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित् ! भगवान् भूतनाथ (शिव) जो सब प्राणियोंके सुहृद हैं, वे प्रजागणोंका दुःख देखकर करुणानिधान करुणाके वश हो अत्यन्त दुःखित हुए और निकट बैठी हुई अपनी प्रिया सतीजीसे बोले ॥ ३६ ॥ कि हे प्यारी ! देखो ! देखो ! क्षीरसागरके मथे जानेसे उसके मध्यसे यह कालकूट निकला और फिर इससे प्रजा लोगोंको कैसा दुःख उपस्थित हुआ है ॥३७॥ ये सब प्रजा प्राणोंकी रक्षा करनेको अत्यन्त व्याकुल हुई हैं, इनको अभय देना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि दीन जनोंका पालन करना ही सामर्थ्यवान् पुरुषोंका कर्तव्य है, इसलिये साधुलोग क्षणभंगुर विचार कर अपने प्राणोंसे भी दूसरोंकी रक्षा करते हैं॥३८॥हे भद्रे ! जो पुरुष परमात्माकी मायासे मोहित होकर परस्पर वैर बांध हिंसा करते हैं, उनके ऊपर जो पुरुष दया दिखाते हैं उनके प्रति सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ हे देवि ! भगवान् हरिके प्रसन्न होनेसे चराचर सहित हम भी प्रसन्नताको प्राप्त होते हैं, इसलिये हम यह विष भक्षण करते हैं, जिससे हमारे द्वारा प्रजापुञ्ज सुखसे जीवनधारण करे ॥ ४० ॥ हे परीक्षित् ! भवानीसे इस प्रकार कह भगवान् वृषवाहन (महादेवजी) उस विषको भक्षण करनेके लिये प्रस्तुत हुए। भगवती पार्वतीजी महादेवजीके प्रभावको जानती थीं, इसलिये वे हर्षित हुई ॥४१॥ इसके पीछे करुणा सागर भूतभावन महादेवजी सब दिशाओंमें व्याप्त हुए उस हलाहल विषको ग्रहणकर हथेलीपर रखके भक्षण कर गये ॥४२॥ परन्तु हे राजन् ! उस कालकूटने महादेवजीको भी अपना पराक्रम दिखा दिया, क्योंकि उससे श्रीमहादेवजीका कण्ठ उसी समय नीलवर्ण हो गया, परन्तु वह करुणामय ईश्वरका भूषण स्वरूप हुआ॥४३॥हे महाराज ! साधु पुरुषगण और दूसरेके सन्तापसे सन्तापित हुआ करते हैं, इसलिये अखिलात्मा परम पुरुषकी आराधना करनाही श्रेष्ठ है ॥४४॥ देवदेव महादेवजीका यह आश्चर्यमय कार्य देखकर व सुनकर प्रजागण दाक्षायणी, ब्रह्मा, वैकुण्ठनाथ सब ही बड़ाई करने लगे ॥४५॥ महाराज ! उसी हलाहलके पीनेके समयमें जो महादेवजीकी हथेलीसे खसककर विष गिर पड़ा था, वह बिच्छू, साँप, विषमय औषधि और दन्दशूक गणोंने ग्रहण किया था, इसलिये यह सब तीव्र हुए हैं, जब यह इतने अधिक तीव्र हुए तब इसका विचार भी सहजसे ही किया जा सकता है कि वह कालकूट कितना तीव्र विष रहा होगा ॥४६॥ सिवाय शिवके उसको और दूसरा कौन ग्रहण कर सकता है ? वह शिव कैसे हैं:—

छप्पय—जय महेस भुजगेश शेष वर हार विभूषण।
जय त्रिलोक भट अजित विजित कामादिक दूषण ॥
जयतिबालविधु सकल कलित अति ललित भालतल।
जय मृकण्डमुनितनय विनयवश हलित कालबल ॥
जय जय लीला लव तुहिनगिरिकुँवरि मनोहर मनहरण।
जय जयति वशीकृत करण जग मम इच्छापूरणकरण ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने शिवकृतगरादननिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-अष्टम प्रगटी लक्ष्मी, वरे विष्णु भगवान् ।
सुधा लिये धन्वन्तरी, पुनि प्रगटे सज्ञान ॥

अनन्तर श्री शुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे, कि हे परीक्षित् ! जब भगवान् वृषवाहनजीने कालकूट पान किया, तब देव और दानवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर अतिशीघ्रतासे समुद्रको मथने लगे, तब समुद्रमें सुरभी गौ निकली ॥१॥ ब्रह्मवादी ऋषि लोगोंने ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाले जो यज्ञ हैं,उनमें पवित्र हविके लिये इस गायको ग्रहण किया॥२॥ इसके पीछे उच्चैःश्रवानामक चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण एक घोड़ा निकला, उसके लेनेकी इच्छा दैत्यराज बलिने की, परंतु ईश्वरकी शिक्षासे देवराज इन्द्रने उसके लेनेकी अभिलाषा न किया ॥ ३ ॥ इसके पीछे ऐरावत नामक गजेन्द्र निकला । इस हाथीके चार दाँत, पर्वतके शिखरके तुल्य और वह चन्द्रमाके तुल्य श्वेतवर्ण था । वह अपने श्वेतवर्णवाले चार वदनोंसे कैलास पर्वतकी महिमाको हरण कर रहा था ॥ ४ ॥ इसके पीछे समुद्रसे कौस्तुभ नामक महामणि निकली, भगवान् हरिने उसकी दमक देखकर उससे अपनी छातीको सजानेकी अभिलाषा किया अर्थात् ग्रहण किया ॥ ५ ॥ इसके पीछे पारिजात (कल्पवृक्ष) निकला, यह वृक्ष देवलोकका भूषण हुआ । हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जैसे आप अर्थ देकर याचकोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हो, वैसेही वह वृक्ष निरन्तर समस्त काम देकर याचना करनेवालोंकी प्रार्थनाको पूर्ण करता है ॥६॥ इसके पीछे सब अपसरायें निकलीं, कण्ठमें मणियाँ धारण किये हुए और अत्यन्त शोभायमान वस्त्राभूषण पहन रही थीं, वे मनोहर चालढाल और कटाक्षके अवलोकनसे स्वर्गवासियोंको रमण कराती हैं॥७॥ हे राजन् ! इसके पीछे साक्षात् लक्ष्मीजी मूर्ति धारण कर प्रकट हुईं । ये भगवत्परायण समुद्रसे प्रकट हो स्फटिकादि मणिमय पर्वतके शिखरपर चमकती हुई बिजलीके समान अपनी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं ॥८॥ उनका रूप, उदारपन, वयस, रंग और महिमाको देखकर सुर असुर, सबका ही हृदय खिंच गया इसलिये सबने ही उनके प्राप्त करनेकी अभिलाषा की ॥९॥ लक्ष्मीजीको देखते ही देवराज इन्द्रने अभिषेकके लिये उनके अर्थ बड़ा भारी अद्भुत आसन ला दिया और बड़ी-बड़ी नदियाँ मूर्तिमान् होकर सुवर्णके कलशोंमें पवित्र जल भर लायीं ॥१०॥ अभिषेक करनेमें जिन औषधियोंकी आवश्यकता होती है; उन सबको पृथ्वीने ला दिया और गायें पवित्र पञ्चगन्ध और वसंतऋतुके चैत महीनेका उत्पन्न हुआ मधु (शहद) ले आयीं ॥११॥ फिर ऋषि लोगोंने शास्त्रके अनुसार अभिषेकके लिये विधिका विचार किया । इसके पीछे गन्धर्व लोगोंने मीठे-मीठे स्वरोंसे गाना आरम्भ किया और समस्त नदी नृत्य करने लगीं ॥ १२ ॥ और मेघोंके समूह मृदंग, ढोल, मुरज, नगाड़े, सहनाई, शंख, अलगोजे आदि जिन बाजोंकी बड़ी ध्वनि होती है उन सबको बजाने लगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे दिग्गजोंने पूर्ण कलश और ब्राह्मणोंके उच्चारण किये गये वेदमन्त्रोंसे कमल हाथमें लिये उन लक्ष्मीजीका अभिषेक किया ॥१४॥ इसके पीछे समुद्रने लक्ष्मीजीके पहननेको पीतवर्णके दो रेशमी वस्त्र दिये, वरुणजीने मतवाले भौंरे जिसके चारों ओर घूमते हैं ऐसी वैजयन्ती माला दी ॥१५॥ विश्वकर्माने विविध भूषण, सरस्वतीजीने हार, ब्रह्माजीने पद्म और सब सागरोंने कुण्डल लाकर दिये ॥१६॥ इसके पीछे स्वस्तिवाचन की हुई लक्ष्मीजी नाद कर रहे हैं भौंरे जिसमें ऐसी कमलकी माला हाथमें लेकर चलनेकी इच्छा करने लगीं । उनका वदन कपोलों-

पर लटकते हुए दो कुण्डलोंसे और सलज्ज हास्यसे अतिशय शोभायमान हो रहा था ॥१७॥ और दोनों उरोजोंपर चन्दन और कुंकुम लगा हुआ था, वह कृशोदरी रमा मनोहर नूपुरोंकी झनकार करती हुई इधर-उधर चरण धरती हुई चञ्चल हेमलताकी नाईं महाशोभाको पा रही थीं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! वे अपने दोष रहित आश्रयके लिये चारों ओर देखने लगीं, परन्तु जिसमें नये सद्गुण विराजते हों ऐसा आश्रय गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, चारण वा स्वर्गके रहनेवाले देवता इन सबमें किसीको न पाया, इन सबोंमें एक न एक दोष लक्ष्मीजीको जान पड़ने लगा ॥१९॥ बस, उन्होंने विचार कर देखा कि किसी-किसी पुरुषमें (दुर्वासादिमें) तपस्या तो है, परन्तु क्रोधका जीतना नहीं है, किसी-किसी पुरुषमें(शुक्रादिमें)ज्ञान तो है, परंतु संगका त्याग नहीं है, कोई-कोई पुरुष (ब्रह्मा-सोमादि) महान् तो हैं परंतु कामजयी नहीं हैं, और जो पुरुष (इन्द्रादिक) हैं, वे पराई राह तकनेवाले हैं, फिर भला वे ईश्वर कैसे हो सकते हैं ? ॥ २० ॥ और किसी-किसी पुरुषमें (परशुरामादिमें) धर्म तो है, परन्तु सब प्राणियोंके ऊपर दया नहीं है, किसी राजामें (शिबिप्रभृतिमें) त्याग है तो सही, परंतु मोक्षार्थका त्याग नहीं है, किसी-किसी पुरुषमें (कार्तवीर्य्यार्जुनादिमें) वीर्य तो है, परंतु कालका वेग उनसे नहीं रुक सकता, जो लोग (सनकादि) गुणसंगसे रहित हैं वे समाधिपरायण हैं, इसलिये वे भी विवाह के योग्य नहीं हैं ॥२१॥ कोई पुरुष (मार्कण्डेयादि) चिरञ्जीवी तो हैं, परंतु वे भी मंगलशील नहीं हैं, कोई-कोई पुरुष (हिरण्यकशिपु आदि) मंगलशील तो हैं परंतु उन लोगोंकी आयु की स्थिरता नहीं जानी जाती; एक पुरुषमें (रुद्रमें) शील-स्वभाव और आयुका स्थिरपन दोनों बातें हैं और कोई दोष भी नहीं है, परन्तु तो भी वे स्वयं अमंगल रूप हैं, क्योंकि उनका श्मशानमें सदा वासादि करना अमंगलकी ही चेष्टा है। लक्ष्मीजी यह विचार करके फिर श्रीमुकुंदजीको निहारकर बोलीं कि यहाँपर ये तो सब भाँतिसे सुमंगलरूप हैं, परंतु ये आत्माराम हैं, इसलिये जी नहीं चाहता, कि हम इनको वरें और अपना प्राणेश्वर बनायें ॥२२॥ हे राजन् ! लक्ष्मीने इस प्रकारसे विचार करके देखा कि भगवान् मुकुंद अव्यभिचारी धर्मज्ञानादि सद्गुणशाली और अपने ही नित्य आश्रित हैं, इसलिये सर्वापेक्षा उत्तम जानने-पर यद्यपि उन्होंने (लक्ष्मीजीने) इन (श्रीनारायणजी) को दृष्टि उठाकर नहीं देखा, तो भी इनको प्राणेश्वर बनानेकी अभिलाषा की। अधिक करके भगवान् मुकुंद प्रकृतिके गुणसे परे हैं, विशेष करके अणिमादि गुण सब उनमें वर्त्तमान हैं, यह देखकर लक्ष्मीजीने इनके वरनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की "अर्थात् लक्ष्मीजीने कहा कि यद्यपि भगवान् स्वयं आत्माराम होनेके कारण औरकी अपेक्षा नहीं करते तथापि इसका आश्रय जो अणिमादि सिद्धि किये हुये हैं और उन सबकी भी यह जैसे उपेक्षा नहीं करते वैसे ही जब मैं इनका आश्रय लूँगी, तब ये मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे, इससे मैं इनकी सेवा कर कृतार्थ हो सकूंगी, फिर और प्राकृत देवादिकोंसे क्या होगा ?" यह विचार कर श्रीनारायणको ही वरण किया ॥२३॥ इन लक्ष्मी-जीके हाथमें जो कमलफूलोंकी कमनीय माला थी, जो कि मतवाले भौंरोंके गुंजार करनेसे शब्दायमान हो रही थी, लक्ष्मीजीने वह प्रथम माला श्रीवैकुण्ठनाथके गलेमें डाल दी और उनके अनुग्रहकी वाट देखती हुई चुपचाप हो अलग खड़ी हो गयीं, परंतु उनका भाव देख-कर भलीभाँति जाना गया कि सलज्ज हास्यसे विकासमान नमन योगसे मानो भगवान्का वक्षस्थल जो निजधाम है, उस अपने धामको लक्ष्मीजी प्राप्त हुई हैं। बस, वह लजीले

नेत्रोंसे भगवान्‌के वक्षस्थलकी प्रतीक्षा करने लगीं ॥ २४ ॥ फिर शीघ्र ही रमानाथने अपने वक्षस्थल्को जगज्जननी अतिविपुल वैभवशालिनी उन लक्ष्मीजीका वासस्थान निश्चय कर दिया। हे राजन्! भगवान्‌के बक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होकर लक्ष्मीजीकी करुणासहित चितवनद्वारा अपनी प्रजा और लोकपालों सहित त्रिलोकीको वर्द्धित करने लगीं॥२५॥ यह देखकर देवतागणोंके सेवक लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ नाचने लगे और शंख, तुरही, मृदंगादि सबका पृथक्-पृथक् शब्द हुआ॥२६॥ और ब्रह्मा, रुद्र, अंगिरादि यह सब विश्वके उत्पन्न करनेवाले फूल वर्षाकर विष्णुप्रतिपादक यथार्थ मंत्र उच्चारण करके श्रीभगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवतागण और प्रजापतिसमूह लक्ष्मीजीकी दृष्टिसे देखे जानेपर शीलादि गुणसम्पन्न हुए और उन सबको परम आनन्द हुआ ॥२८॥ परन्तु लोलुप दैत्य व दानवगण लक्ष्मीजीसे उपेक्षित होनेपर सत्त्वरहित और निरुद्यम होने लगे॥२९॥इसके पीछे कमललोचना कुमारीरूपसे वारुणी देवी अर्थात् अन्नमयी सुरा उस समुद्रसे निकली भगवान् हरिकी अनुमति (सलाह) से असुर लोगोंने इस कन्याको ग्रहण किया ॥ ३० ॥ इसके पीछे फिर देवता व दैत्यगण समुद्रको मथन करने लगे। हे राजन्! तब समुद्रसे एक परम आश्चर्यमय पुरुष निकला ॥ ३१ ॥ उसकी भुजायें लम्बी और पुष्ट थीं; गर्दन शंखकी नाभिसमान तीन रेखाओंसे अंकित और सुन्दर गोल थी, उसका रंग श्याम था और अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर रहा था ॥३२॥ उसके सब वस्त्र पीले थे; छाती चौड़ी थी और दोनों कानोंमें मणिजटित कुण्डल पहने हुए थे, उसके केश अति सुन्दर प्रांतभागतक चिकने और घूँघर वाले दृष्टि आते थे और उसका विक्रम सिंहके समान था॥३३॥ वह भुजाओंमें कंकण पहनकर अमृतका पूर्ण कलश धारण किये हुए था। हे राजा परीक्षित्!वह पुरुष साक्षात् श्रीभगवान् वैकुण्ठनाथके अंशसे उत्पन्न हुआ था ॥ ३४ ॥ इनका नाम धन्वन्तरि था, आयुर्वेदके पारदर्शी और यह यज्ञभागके पानेवाले थे। इन धन्वन्तरिजीके हाथमें अमृतका भरा हुआ कलश देखकर असुर लोगोंने सब अमृत पानेकी वासना करके बलपूर्वक उस कलशको छीन लिया ॥ ३५ ॥ जब अमृतका कलश लेकर असुर भागनेको उपस्थित हुए तब देवता लोग अत्यन्त शोकाकुल हो श्रीभगवान् हरिकी शरणमें गये ॥३६॥ अपने सेवक लोगोंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले श्रीभगवान् देवता लोगोंकी ऐसी दीनता देखकर उनको समझाकर बोले कि हे देवगण! हम योगमायासे तुम्हारे अर्थकी सिद्धि करेंगे, तुम लोग शोक मत करो ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इसके पीछे असुर लोगोंमें परस्पर क्लेश आरम्भ हुआ। अमृतके लिये सबही अभिलाषी होकर कहने लगे कि–"प्रथम हम, प्रथम हम" "तुम नहीं, तुम नहीं" ॥ ३८ ॥ और जो दानव लोग बल नहीं दिखा सकते थे, वे लोग मत्सरयुक्त होकर कलशधारियोंको वारंवार रोकने लगे कि देवता लोगोंने भी अमृत निकालनेमें बराबर परिश्रम किया है इसलिये सच्चाईसे जो उनका अंश हो उस अंशको देवता लोग भी पायें जिसको जो भाग लेना है उसको वह देना ही सनातन धर्म है ॥३९॥४०॥ हे परीक्षित्! इस समयमें सब उपायोंके जाननेवाले भगवान् विष्णुने परम आश्चर्यमय अनिर्वचनीय स्त्रीका रूप धारण किया ॥ ४१ ॥ यह रूप देखनेमें नील कमलके फूलके समान श्यामवर्ण; दोनों कर्ण समान और मनोहर, कर्ण फूलोंसे भूषित कमलकेसे नेत्र और सुंदर नासिका॥४२॥और नये यौवनके वेगसे जो उरोजोंका भार हुआ था इसलिये उदर अतिकृश हो रहा था। हे राजन्! उसके

मुखकी सुगन्धसे भ्रमरगण अनुरागी हो रहे थे, कि जिससे उसके दोनों नेत्र चकित हो रहे थे ॥ ४३ ॥ उसके केशोंमें चँबेलीके फूल गुँथे हुए थे, सुन्दर कण्ठपर मनोहर भूषण लटककर चटक रहे थे, दोनों भुजाओंमें भुजबन्द देवता दैत्योंके बन्द ढीले कर रहे थे ॥ ४४ ॥ उसके नितम्बस्वरूप दीप निर्मल बसनसे ढके हुए थे, उनमें कमनीय काञ्ची (तगड़ी) पड़ी थी, चलनशील चरणोंमें नूपुर झनकार कर रहे थे ॥ ४५ ॥

दोहा–मुखद्युति ज्यों रतिपति गढी, लिखी न सो छबि जाय ।
यह सुन्दर शोभा निरखि, चन्द्र गयो शरमाय ॥
रहत न मन वश ऋषिनके, प्यारी देखि चितौन ।
मृगछौना खंजन लखत, ठिठक रहे गहि मौन ॥
ठुमकि ठुमकि पग धरत है, इत उत नैन चलाय ।
मनहुँ मदन विषयी नये, बाण रह्यो बरसाय ॥
मन्द हँसनि बोलिनि मधुर, अधर सुधा रसखानि ।
गढ़े मार निज करनसों, मनमोहन जिय जानि ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे महाराज ! वह कामिनी लजीले शरमीले हास्य सहित जो कटाक्ष कर रही थी; उसके विलाससहित अवलोकनसे वारंवार दैत्यलोगोंके मनमें मार, मार मारकर रहा था ॥ ४६ ॥

दोहा–कामबाण जाके हिये, लागत तिरछो आय ।
लोटपोट सो होत है, चोट सही नहिं जाय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे भगवन्मोहिनीरूपधारणनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–मोहित होकर दैत्य सब, सुधा कलश दै दीन्ह ।
सब असुरोंको मोहिनी, नवमें वंचन कीन्ह ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! असुर लोग परस्पर सुहृदपन त्याग उस अमृतपूर्ण कलशको छीन चोरोंके समान आचरणकर धक्कमधक्का करने लगे कि, इतनेमें ही उन्होंने देखा कि एक मनमोहिनी सोहनी तरुणी स्त्री उनके निकट चली आती है॥१॥यह दैत्य लोग उसके देखते ही कामदेवके वश होकर कहने लगे कि अहो ! यह क्या मनोहर सुन्दरता है, कैसी अद्भुत कांति है, कैसा अनुपमवाला यौवन है । इस प्रकारसे कहते-कहते उन कामातुर दैत्योंने उसके निकट जाकर पूछा कि॥२॥ हे कमलदलनयनी ! तुम कौन हो ! और कहांसे आयी हो ? क्या करनेकी इच्छा है ? तुम किसकी वधू अथवा सुता हो ? वह कहो । हे सुन्दर जंघाओंवाली ! तुमको देखकर हमारा मन मोहित हो गया है ॥३॥ हे सुन्दरी ! हम लोगोंको निश्चय जान पड़ता है कि–देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण अथवा लोकपाल इनमेंसे किसीने भी अभीतक तुमको नहीं छुआ है, फिर इसकी क्या सम्भावना है कि मनुष्यगण तुम्हें स्पर्श कर सकें।॥४॥ हे सुभ्रु ! हम जानना चाहते हैं कि शरीर धारियोंकी सब इंद्रियाँ और अन्तःकरणमें प्रीति उपजानेके लिये दयावान् होकर क्या विधाताने तुमको यहां भेज दिया है ? या अपनी इच्छानुसार यहां आयी हो ? हम तो जानते हैं कि विधाताने तुमको भेजा होगा ॥ ५ ॥ हे भामिनी !

हमारी यह सब जाति एक वस्तुकी चाहना कर परस्पर झगड़ा कर वैर बांधे हुए है, वह तुम हम सबका झगड़ा निपटाकर हम लोगोंका मंगल करो ॥ ६ ॥ हम कश्यपजीकी सन्तान हैं परस्पर भाई-भाई हैं। सभीने पौरुष प्रकट किया है यह अमृतका कलश लेकर तुम न्यायानुसार हम सबको बांट दो कि जिसमें हम लोगोंके बीच परस्पर भेद न हो ॥७॥ हे राजन् ! मायाके द्वारा स्त्रीका रूप धारण किये हुए भगवान् विभु इस प्रकार दैत्य लोगोंकी प्रार्थना सुनकर हँसे और मनोहर कटाक्षसे देखते-देखते वक्ष्यमाण वचन कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे कश्यपपुत्रगण हम व्यभिचारिणी हैं, तुमने किस प्रकार हमारा विश्वास किया ? पण्डित लोग कदापि स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते * ॥९॥ हे देवरिपुगण ! शालावृक (कुत्ता) और व्यभिचारिणी स्त्री इनकी मित्रता अनित्य है, क्योंकि यह दिनदिन नये-नये ढूंढते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! असुरलोग इस मोहिनी नारीके ऐसे परिहास वचनोंको सुन उसका विश्वास कर किसी अभिप्रायसे गम्भीरतापूर्वक हँसने लगे और पीछे वह अमृतका कलश उसको सौंप दिया ॥ ११ ॥ मोहिनीरूप हरि अमृतका कलश हाथमें लेकर मन्द मुसकानसे मुखको शोभायमान कर कहने लगे कि हम जो कुछ करें, वह भला हो चाहे बुरा हो उसको जो तुम अंगीकार कर लो तो हम इस अमृतको बांट सकती हैं ! उनके यह वचन सुन प्रधान-प्रधान असुर लोग "अच्छा ऐसा ही होगा" यह कहकर सम्मत हुए और उन मोहिनीरूप श्रीनारायणकी इच्छाको नहीं जाना ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके उपरान्त असुरोंने उपवास करके स्नान किया और हव्यसे अग्निमें होम कर गौ, ब्राह्मण और सब प्राणियोंको नमस्कार करने लगे, फिर ब्राह्मणलोगोंने उनके मंगलके लिये स्वस्तिवाचन किया ॥ १४ ॥ फिर वे असुरलोग अपने-अपने मनमाने नये-नये वस्त्र पहनकर सब ही सुन्दररूपसे विभूषित हो पूर्वकी ओरको बिछे हुए कुशोंपर जाकर बैठ गये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जिस गृहमें अमृत बांटना नियत हुआ था, वह गृह धूप-दीपसे सुगंधित और मालाओंसे सजाया गया था। देव-दानवलोग उसमें पूर्वकी ओरको मुख करके बैठे ॥ १६ ॥ फिर वह मनमोहिनी नारी लचक-मचक अमृतका कलश हाथमें ले उनके बीचमें गयी। उसकी दोनों जाँघें केलेके समान चिकनी, श्रोणीतट रेशमसे ढका हुआ है, नितम्बोंके भारसे चाल मन्द-मन्द है, दोनों नेत्र मदसे मतवाले हैं दोनों कुच अनारके समान हैं, वह कनकमय नूपुरोंकी ध्वनि व झनकारसे मानों अव्यक्त ध्वनि कर रही थी ॥ १७ ॥ कानोंमें रत्नजटित कुण्डल धारण किये, मनोहर कपोल, चन्द्रमासा मुखारविन्द, मनहरण नासिका, परदेवता नाम लक्ष्मीजीकी सखी, जिसके स्तनोंपरका झीना वस्त्र वारंवार पवनकी झकोरसे गिर-गिर पड़ता था और वह सँभालती जाती थी, इसलिये उस मोहिनी-सोहिनी प्यारी नारीको देखकर देवता व असुर सबको ही मोह उपन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जब इस प्रकार देव-दानव दोनों दल मोहित हो

---

* शंका—दैत्योंके छलनेके लिये भगवान्ने सब रूपोंको त्यागकर संसारमें अत्यन्त निन्दायोग्य वेश्याका रूप क्यों किया। यदि कोई कहे कि राक्षसोंको मोहनेके लिये माया करके वेश्याका रूप धारण किया तो भी अन्याय है, क्योंकि क्या और किसी दूसरे रूपसे राक्षसोंको नहीं मोह सकते थे ? भगवान् बड़े-बड़े महात्माओंको मोह उत्पन्न कर देते हैं तो राक्षसोंको मोह उत्पन्न कर देना क्या बड़ी बात थी।

उत्तर—सत्ययुगमें भगवान् नारदमुनिको माया द्वारा स्त्री बना दिया था, देवी भागवत्में लिखा है कि जब नारदजीको बने सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये तब नारद मायासे छूट पुरुषरूप हुए। तब भगवान्को शाप दिया कि हे भगवन् ! तुम भी कभी हम सरीखे स्त्री रूपमें हो जाओगे इसलिये भगवान्ने वेश्याका रूप धारण किया।

गये तब मोहिनीरूप श्रीभगवान्ने विचारा कि सर्पोंको दूध पिलानेके समान असुर लोगोंको अमृतका पिलाना अन्याय है, दैत्य लोगोंने हमारे किये बुरे भले कर्म सब स्वीकार कर लिये हैं, इससे हम देवतालोगोंको ही अमृत पिलायें, अधिक करके दैत्योंने न्यायानुसार बांट बांटकर लेनेको कहा और इन दैत्योंकी सब ही जाति क्रूर है, इसलिये उनको अमृतका अंश देना ठीक नहीं। यह विचार कर मोहिनीने दैत्योंको अमृतका भाग देनेकी इच्छा नहीं की ॥१९॥ इसके पीछे उस मनमोहनीने देवता व दैत्योंकी पृथक्-पृथक् पंक्ति करके उनको अलग-अलग अपनी-अपनी पांतिमें बैठाया ॥ २० ॥ इसके पीछे कलश ग्रहण करके बहुत मान और प्रिय भाषणादिसे धोका दे, दैत्योंको उल्लंघन कर देवता लोगोंके दूर रहनेपर भी उनको ही जाकर अमृत पिलाने लगी कि जिस सुधा (अमृत) से न कभी मृत्यु हो, न बूढ़ापन ही सताये ॥ २१ ॥ हे राजन्! असुर लोगोंने स्वयं मोहिनीका करना-धरना सब स्वीकार कर लिया था, इसलिये अपने किये समयको चुपचाप पालन कर रहे। कभी-कभी मोहिनी भगवान् कनखियोंसे दैत्यलोगोंके ऊपर कटाक्ष करते जाते थे, इस लिये वे असुर यह विचार करते थे कि स्त्रीके साथ विवाद करना ठीक नहीं, यह समझ चुपचाप रहे ॥ २२ ॥ अधिक करके मोहिनीमें जो दैत्योंका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया था, वह प्रेम कहीं छूट न जाय, इस लिये वे दैत्य लोग कुछ अप्रिय वचन भी न कह सके और मोहिनीसे मान पाकर फिर अप्रिय वचन कहनेको उनका सामर्थ्य भी न रह गया, इसलिये चुपचाप बैठे रहे। धन्य है प्रेम! हजारों लक्षों अभागे तेरी कुहुकिनी मायामें पड़कर अपना तन, मन, धन खो बैठते हैं, प्रेमके ही वश होकर कितने ही विद्वानोंने ठोकरें खायीहैं यह प्रेम क्या मोहिनीशक्ति रखता है? इसको आजतक कोई भी न समझ सका! जो लोग शत्रुके बाण, खड्ग, कटारी आदि अस्त्र शस्त्रोंसे नहीं मरते, वही लोग अपने प्यारेके क्रोधित होनेसे और उसके अपमान करनेसे बहुत ही डरते हैं; डरना ही क्या, बरन् उनको लोक परलोकका भी कुछ ज्ञान नहीं रहता ॥ २३ ॥ हे राजन्! दानवगणोंमेंसे राहु देवताओंका वेष धारण कर देवताओंकी पंक्तिमें चन्द्रमा और सूर्यके मध्यमें बैठा हुआ अमृत पी रहा था कि उसी समय चन्द्रमा और सूर्यने उसको दैत्य जानकर श्रीभगवान्से कहा-महाराज! यह राहु दैत्य है, इसे अमृत न पिलाइये ॥ २४ ॥ तब छूरेके समान धारवाले सुदर्शनचक्रसे भगवान् हरिने उसका शिर काट डाला, उसके शरीरमें अमृत नहीं छुआ गया था इसलिए वह कट गया ॥२५॥ और शिरसे अमृत छुवा गया था, इस कारण वह अमरताको प्राप्त हुआ। इसलिये ब्रह्माजीने सूर्यादिके तुल्य उसको भी ग्रहपदका अधिकार दिया। राहु इसी वैरके कारण अबतक पौर्णमासी और अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्रमाको ग्रहण कर लेता है॥२६॥ जब देवता लोगोंने सब अमृत पी लिया, तब लोकभावन श्रीभगवान् हरि दर्शनकारी उन प्रधान-प्रधान असुर लोगोंके सामने ही मोहिनीरूप छोड़ फिर अपना वही रूप धारण कर लिया ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! देव-दानवोंका समुद्र मथना देश, काल, हेतु, अर्थ, कर्म और बुद्धिमें यद्यपि समान था, तथापि फल विचित्र हुआ अर्थात् किसीको सम्पूर्ण फल हुआ, किसीको कुछ न मिला, इसलिये देवगणोंने जिसके चरण पृष्ठ परागका आश्रय लिया था, इससे वह यथार्थ मनोऽभिलषित फलको प्राप्त हुए और दैत्यलोग जिन करके ठगे गये वही सेवनीय हैं ॥२८॥ हे महाराज! मनुष्य लोग धन, प्राण, कर्म; मन और राज्यसे देह और स्त्रीपुत्रादिके लिए जो कुछ करते हैं,

सो भेदाश्रयसे मूल त्याग करके शाखाके सींचनेके समान वह व्यर्थ होता है, परन्तु इन्हीं धनादि द्वारा ईश्वरके लिये जो कोई कर्म करे, तो भेदभाव छोड़ देनेके कारणसे जड़के सींचनेके समान वह फलदायक होता है, क्योंकि ईश्वर सबमें ही अनुगत है, जैसे जड़के सींचनेसे फूल व शाखा सबका सींचना हो जाता है वैसे ही ईश्वरके अर्थ कर्म करनेसे और भी सब देव प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २९ ॥

कबित्त—पूरण पुराण परमानंद तू परेश प्रभु, पारावारहूते परे प्रकृती प्रधानमें । घट घट तेरो वास सदा तू स्वयंप्रकाश, तेरी चिदाभास सो न बनत बखानमें ॥ विधि औ निषेध भावाभावते रहित तू है शुद्ध बुद्ध तू है धाता ध्येय और ध्यानमें । तू है निहसंग तोमें गुणके प्रसंग ऐसे, जैसे रङ्ग देखियत फटिक पषानमें ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम-शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे अमृतमथनेऽमृतदानिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा—दशवेंमें लड़ने लगे, दैत्य महाबलवान् ।
तब घबराये देव सब, प्रगट भये भगवान् ॥

इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यद्यपि दैत्य, दानवगण कर्ममें योग्य और सावधान थे तो भी श्रीमहाभगवान्‌से विमुख होनेके कारण उनको अमृत न मिला[1] ॥१॥ श्रीभगवान् विष्णु अमृतको सिद्ध कर और उन अपने भक्त देवता लोगोंको पिलाकर दर्शन करने वाले सब प्राणियोंके सामने ही अपने स्थानको चले गये ॥२॥ उसके पीछे अदितिके पुत्र ईर्ष्याके मारे अपने शत्रु देवतालोगोंका कार्य सिद्ध देखकर न सह सके और अस्त्र-शस्त्र उठाकर देवता लोगोंके साथ युद्ध करनेको उपस्थित हुए ॥३॥ अमृत पीनेसे देवतालोग सब प्रकारसे समृद्ध हुए थे; वे लोग भी श्रीभगवान्‌के चरणोंका आश्रय करके अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर संग्राम करने लगे ॥४॥ उस समुद्रके तीर सुर-असुर लोगोंका महा घोर कठोर दारुण संग्राम हुआ, कि जिसका वृत्तान्त सुननेसे रोयें खड़े हो जाते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! देव दानवगण संग्राम करनेमें अपना मन लगाकर परस्पर एक-दूसरेको ताककर खड्ग, बाण व और दूसरे विविध प्रकारके आयुधोंसे मारने लगे ॥६॥ वहां पर शंख, तुरही, मृदंग, भेरी, डमरू और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल इन सबका महाघोर शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ रथी रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे, घोड़ोंके समूह घोड़ोंसे और हाथियोंके यूथ हाथियोंसे संग्राम करने लगा॥८॥ और कितने ही योद्धा ऊंटों पर चढ़कर कितने ही वीर हाथियों पर सवार हो और कितने ही सैनिक गधोंपर आरोहण कर अपने-अपने शत्रुओंके सम्मुख युद्ध करने लगे। हे राजन् ! कोई-कोई वीर गौरमुख (वानर विशेष) को ले, कोई-कोई अनुचर रीछोंको ले, कोई-कोई व्याघ्र ले

---

१. शंका—राक्षस तो भगवान्‌के शत्रु थे, इसलिये उन्होंने अमृतको नहीं पाया,, परन्तु राजा बलि तो भगवान्‌का भक्त था उसको अमृत क्यों नहीं मिला? यह बड़े संशय की बात है।

उत्तर—अमृतलेनेकी इच्छा राजा बलिको नहीं थी। अच्छा यदि अमृत लेनेकी इच्छा नहीं थी तो यह काम क्यों किया ? (समाधान) राजाका धर्म देखनेके लिये, कि राजाको सब कामकी परीक्षा लेना चाहिये तथा जातिधर्म देखकर, जातिकी आज्ञा बलि न मानता तो जाति-गणविद्रोही हो जाते, इसलिये यह काम राजा बलिने किया और राजा बलिको अमृत प्राप्त नहीं हुआ।

और कोई-कोई सिंहको ले लड़नेके लिये रणस्थलमें आ आकर उपस्थित हुए ॥९॥ कोई-कोई वीर गिद्धोंपर, काकोंपर, बगलोंपर, सिकरोंपर और कोई भैंसोंपर चढ़कर झपटे। कोई मछलियोंपर, कोई शरभोंपर, कोई गैडोंपर, कोई बैलोंपर, कोई-कोई गवयों (लीलागायों) पर चढ़कर आये॥१०॥ कोई-कोई गीदड़ोंपर, कोई-कोई काले चूहोंपर, कोई-कोई खरगोशोंपर, कोई मनुष्योंपर, कोई बकरोंपर, कोई-कोई काले हरिणोंपर, कोई-कोई हंसोंपर और कोई-कोई शूकरोंपर चढ़कर आये ॥११॥ और कुछेक योद्धालोग जलचारी व थलचारी, पक्षी व विकटाकार और दूसरे प्राणियों पर चढ़कर आये। हे राजा परीक्षित्। इस प्रकारके वीरगण दोनों ओरकी सेनाओंके आगे-आगे आकर रणभूमिमें विराजमान हुए ॥ १२ ॥ हे राजन् ! चित्र-विचित्र ध्वजा पताका, स्वच्छ निर्मल और बड़े मोलके रत्नोंसे जड़ी हैं, डंडियें जिसकी, ऐसे चमर और व्यजन ॥१३॥ पवनसे कम्पायमान, उपरने, पगड़ी, जामा, पटका, कवच इनसे व तेजसे प्रकाशित और सूर्यकी किरणोंसे अतिशय प्रकाशमान निर्मल शस्त्र और वीरश्रेणी ॥ १४ ॥ इन सबसे देवदानवोंका बल अर्थात् दोनों ओरकी सेना इस प्रकारसे प्रकाशित होने लगी, कि जैसे दो समुद्रोंमें जलजन्तु शोभायमान होते हैं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! विरोचनका पुत्र बलि इस संग्राममें सेनापति हुआ, वह वैहायस नामक विमानमें आरूढ़ (सवार) हो, उदयगिरिके शिखरपर विराजमान हुआ, चन्द्रमाके समान दीप्तिमान् होने लगा। यह वैहायस नामक विमान मय दानवने बनाया था ॥१६॥ यह विमान इच्छानुसार चलनेवाला था और इसमें युद्धकी सब सामग्री भरी हुई थी, यह विमान आश्चर्ययुक्त था और तर्कसे भी निश्चय नहीं किया जा सकता था। यह कभी दिखलायी देता था और कभी छिप जाता था ॥ १७ ॥ हे महाराज ! जब उस सर्वश्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार हुआ, तब समस्त सेनापतियोंने उसको चारों ओरसे घेर लिया और इधर-उधर चामर, व्यजन, और मस्तक पर छत्र लगाया गया तब उदयाचलपर विराजमान हुए, चन्द्रमाके समान उसकी शोभा होने लगी ॥१८॥ पृथक्-पृथक् यूथके अध्यक्ष असुरलोग अपने विमानोंके सहित सेनापति राजा बलिके साथ गमन करने लगे ॥१९॥ हे राजन्। नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप-वज्रदंष्ट्र, विरोचन ॥ २० ॥ हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्राजित, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल॥२१॥अरिष्ट, अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप, व और पौलोम, कालेय निवातकवच इत्यादि ॥२२॥ जो असुर लोगोंके अमृत न मिलनेसे क्लेश पाया था, वे सब ही क्रोधित हो सिंहनाद करते हुए महाशब्दसे शंखकी ध्वनि करने लगे, कि जिसकी ध्वनिसे सब दिशायें परिपूर्ण हो गयीं। हे राजन् ! असुरलोगोंको इस प्रकार बलसे उन्मत्त देखकर स्वर्गनाथ इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥२३॥२४॥ वे देवराज इन्द्र गगनमण्डलसे जल झरण करते हुए ऐरावत हाथीपर इस प्रकार सवार हुए, कि जैसे झरना झरते हुए उदयाचल पर्वतपर सूर्य भगवान् आरोहण करते हैं, उस समय ऐसी ही शोभा देवराज इन्द्रकी हुई ॥२५॥ हे महाराज ! जब इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुए तब देवता लोग विविध भांतिके वाहन आयुध और ध्वजाओं सहित वायु, अग्नि, वरुणादि लोकपाल अपने-अपने गणोंका साथ ले इन्द्रके चारों ओर आ मिले ॥२६॥ इसके पीछे द्वंद्वयुद्ध करनेवाले वे देवता और दैत्यगण परस्पर एक दूसरेके साथ हो अपना-अपना नाम सुना-सुनाकर एक दूसरेकी भर्त्सना करके पुकारने लगे और आगे बढ़कर युद्धारम्भ कर दिया

॥२७॥ महाराज इन्द्रके सम्मुख राजा बलि आ भिड़ा, तारकासुरके संगमें स्वामिकार्तिकजीका संग्राम हुआ, हेतिके संग वरुणजीने युद्ध किया, प्रहेतिके साथ मित्रका संग्राम होने लगा ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहते हैं कि हे पाण्डुनन्दन ! इसी प्रकार कालनाभके साथ यमराज, मयदानवसे विश्वकर्मा, त्वष्टाके साथ शम्बर और विरोचनके साथ सूर्यभगवान् जा भिड़े ॥ २९ ॥ अपराजितके सङ्ग नमुचि, वृषपर्वाके साथ अश्विनीकुमार, राजा बालिके बाण इत्यादि शत पुत्रोंके साथ एक सूर्यदेवका संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥ और राहुके साथ भगवान् चद्रमाने युद्ध किया, पुलोमाके साथ वायुका समर हुआ । हे अरविन्द ! निशुम्भ और शुंभके साथ वेगवती भद्रकाली देवीका संग्राम हुआ ॥३१॥ जम्भासुरके साथ वृषाकपि शिव, महिषके साथ विभावसु (अग्नि), वातापि और इल्वलके साथ ब्रह्मपुत्र ॥३२॥ कामदेवके साथ दुर्मर्ष, मातृगणोंके साथ उत्कल, शुक्रके साथ बृहस्पति, नरकासुरके साथ शनिने युद्ध किया॥३३॥ निवातकवचोंके साथ मरुत देवता, कालेय नामक असुर लोगोंके साथ वसुगण संग्राम करने लगे, पौलोम असुरोंके साथ विश्वेदेवगण लड़ने लगे और क्रोधवश असुरोंके साथ रुद्रगणोंने संग्राम किया॥३४॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे दानव और दैत्यवृन्द विरुद्ध हो प्रत्येक पृथक्-पृथक् पुरुषसे युद्ध करते-करते परस्पर जीतनेकी इच्छा किये हुए तीक्ष्ण बाण, खड्ग और तोमरादि अस्त्र-शस्त्रोंको उठाकर महावेगसे चोट लगाने लगे ॥३५॥ और भुशुण्डी, चक्र, गदा ऋष्टि, पट्टे, शक्ति, तोमर, पाश, फरसा, खड्ग, भाले, गदा मुद्गर, भिंदिपाल(गोफन) से बराबर शत्रुओंके शिरोंको काटते थे ॥३६॥ और हाथी, घोड़े, रथ, पैदल व सवारों सहित विविध वाहन विविध भांतिके शस्त्रोंके प्रहारसे खण्ड-खण्ड हो गये उनकी भुजायें जांघें कंधे चरण कट गये और ध्वजा; धनुष, कवच, भूषणादि छिन्न भिन्न हो गये॥३७॥ हे राजन् ! इन दैत्यलोगोंके चरणाघातसे और रथके पहियोंसे रणभूमिमें बड़ी धूल उड़ी, कि जिसने प्रथम गगन मंडल और सूर्यभगवान्को ढक लिया, पीछे वह रुधिरके संयोगसे गीली हो इस कार्यसे निवृत्त हुई अर्थात् फिर आकाशको न उड़ सकी ॥३८॥ हे राजन् ! वह रणभूमिमें अनेक योद्धाओंकी भूषणभूषित छिन्न भिन्न भुजाओंसे शुण्डोंके समान जांघोंसे और बड़े-बड़े मस्तकोंसे ढककर बड़ी शोभाको प्राप्त हुई । संग्राम स्थलमें जो मस्तक कटे हुए पड़े थे, उन सबके किरीट और कुण्डल गिर पड़े थे, उन शिरोंके नेत्र क्रोधके कारण लाल-लाल हो रहे थे और दांतोंसे ओठोंको चबा रहे थे ॥३९॥ इसके पीछे गिरे हुए अपने-अपने शिरोंकी आँखोंसे देखते-देखते अनेक-अनेक कबन्ध उठने लगे । यह कबन्ध अपने-अपने हाथोंमें विविध भांतिके आयुध उठा-उठाकर सेनाके ऊपर धावमान होने लगे ॥४०॥ इसके पीछे महाअसुर राजा बलिने दशबाणोंसे इन्द्रको, तीन बाणोंसे उसके वाहन ऐरावतको, चार बाणोंसे ऐरावतके चार रखवालोंको और एक बाणसे हाथीके महावतको मारा ॥४१॥ परंतु राजा इन्द्रने हँसकर इन वेगवान् बाणोंको अपने ऊपर गिरनेसे पहले ही उतने ही अपने तेज भालोंसे कट डाला ॥४२॥ हे महाराज ! देवराज इंद्रका यह प्रशंसा करने योग्य कर्म देख राजा बलि ईर्षाके कारण इनको न सह सका और उसने महाक्रोध कर अतिवेगवान् शक्ति ग्रहण की, परंतु वह शक्ति राजा बलिके ही हाथमें रहकर जब उल्काके समान प्रज्वलित हो रही थी, उसी समय देवराज इन्द्रने अपने अस्त्रसे उसको काट डाला ॥ ४३ ॥ इसके पीछे दैत्यराज बलिने शूल ग्रहण किया फिर प्रास (अस्त्रविशेष) लिया, फिर तोमर (अस्त्रविशेष) और इसके पीछे ऋष्टि ली, परंतु राजा बलि

जिस अस्त्रको ग्रहण करता था शचीनाथ इन्द्र उसको ही काट डालते थे॥ ४४ ॥ इसके पीछे यह असुर राजा बलि अचानक अन्तर्धान हो गया और आसुरी माया प्रकट की, कि जिससे अकस्मात् देवताओंकी सेनाके ऊपर एक बड़ा भारी पर्वत आकर गिरा ॥४५॥ इसके पीछे बहुत वृक्ष दावानलसे भस्म होकर गिरने लगे और टांकीके समान पैनी अनीवाली बहुत सी शिलायें गिरकर शत्रु सेना को चूर्ण करने लगीं॥४६॥और दंदशूक, बड़े-बड़े सर्प, बिच्छू और सिंह, व्याघ्र, बाराह व भागते हुए बड़े-बड़े हाथी गिरने लगे और नंग धड़ंगी शूल धारण किये सैकड़ों सहस्रों निशाचरी और बहुतेरे राक्षस धावमान हो, "मार मार काट काट" कहकर भयंकर कोलाहल करने लगे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इसके पीछे आकाश मंडलमें बड़ा भारी मेघ उदय हो गम्भीर और कठोर ध्वनि करने लगा व दूसरे बादल पवनसे टकरा कर अंगारोंकी वर्षा करने लगे ॥४९॥ महाअसुर बलिने जो अपनी मायासे अग्नि उत्पन्न की थी, वह प्रलयके आगके समान भयंकर हो देवता लोगोंकी सेनाको भस्म करने लगी ॥५०॥ फिर चारों ओर से समुद्र उफना हुआ दिखायी दिया । प्रचंड पवनके चलनेसे जो उसमें तरंगें उछलने लगीं और भवंर पड़ने लगे उससे रणभूमि अत्यन्त ही भयंकर दिखायी देने लगी॥५१॥और मायावी दानवगण अदृश्य रहकर इस प्रकारसे जब रणभूमिमें विविध भांतिकी माया उत्पन्न करने लगे तब देवता लोगोंकी बहुतसी सेना नाशको प्राप्त हो गयी॥५२॥ हे राजन् ! जब इंद्रादि देवता लोगोंने इस मायाका कोई उपाय न देखा तब श्रीभगवान्‌का ध्यान किया, जैसेही ध्यान किया कि उसी स्थानमें भगवान् विश्वभावन प्रगट हो गये ॥५३॥ उस समय पीतवसनधारी नवीन कमलके समान नेत्रवाले भगवान् गरुड़के कन्धे पर चरणपल्लव धरे; आठ भुजाओंमें आयुध धारण किये सबको दिखायी दिये । अपने वाहन गरुड़जीके दोनों कन्धोंपर उनके दोनों चरण रक्खे हुए थे और श्री-कौस्तुभ, बड़े मोलका किरीट और दोनों मनोहर कुण्डल यथायोग्य अंगोंपर धारण किये जानेसे अत्यन्त शोभा विस्तार कर रहे थे॥५४॥ जैसे जाग्रद्दशाके आनेसे स्वप्नावस्था भाग जाती है, वैसे ही मुरलीमनोहरके रणक्षेत्रमें आते ही असुर लोगोंके मन्त्रोंसे उत्पन्न हुई माया शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो गयी । हे राजन् ! श्रीभगवान् हरिकी महिमा ऐसी ही है कि उनके स्मरण करते ही सब दुःख नाशको प्राप्त हो जाते हैं, फिर उनके आनेसे देवता लोगोंका दुःख दूर होनेमें क्या आश्चर्य है?॥५५॥कालनेमि नामक जो असुर सिंहपर चढ़ा हुआ शूरवीरता प्रकट कर रहा था, वह रणभूमिमें गरुड़जी पर चढ़े हुए भगवान् नारायणको घायल करनेकी इच्छासे शूल चलाने लगा, उस शूलको गरुड़जीके मस्तकपर गिरता हुआ देखकर त्रिगुणाधीश भगवान् हरिने लीलासे ही पकड़ लिया और उस शूलसे ही वाहन सहित उस कालनेमिका शिर काट लिया ॥५६॥ इसके पीछे अतिबलशाली सुमाली युद्धमें आया, तब श्रीभगवान्‌ने चक्र चलाकर दोनोंके शिर काट लिये, तब माल्यवान अति पैनी गदा लेकर गरुड़जीके संहार करनेको दौड़ा और तुरंत ही भगवान्‌ने चक्र चलाकर उसका भी मस्तक काट लिया ॥ ५७ ॥ भगवान् के सम्मुख कौन लड़ सकता है ?

कवित्त—बैर प्रीति करिबे की मनमें न राखै शंक, राजा रंक देखके न छाती धक धाकरी । आपनी उमंगकी निबाहिबेकी चाह जिन्हैं, एकसे दिखात तिन्हैं बाघ और बाकरी ॥ ठाकुर कहत मैं विचारके विचार देखो, यहै मरदा-

ननकी टेक बात आकरी। गही जौन तौन गही छोड़ी तौन छांडि दई, करी तौन करी बात ना करी सो ना करी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे भगवत्प्रादुर्भावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा--ग्यारहमें सब देवतन, हने असुर बलवान।
मरे परे लखि शुक्रने, सबहिं दीन्ह जिवदान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इसके पीछे इंद्र, वायु आदि देवता लोग परम पुरुष भगवान्‌की कृपासे सावधान हो उन असुर लोगोंके ऊपर अति वेगसे आघात करने लगे, कि जिन राक्षसोंने पहले उनको मारा था॥१॥ जब देवराज इन्द्र क्रोधित होकर विरोचनके पुत्र राजा बलिके मारनेको वज्र उठाकर दौड़े, तब प्रजा हाहाकार करने लगी ॥ २ ॥ मनस्वी राजा बलि प्रस्तुत होकर महारणमें घूम रहा था कि इतनेमें वज्र हाथमें लिये देवराज इन्द्रने सम्मुख खड़े हुए उस दानवका तिरस्कार करके कहा ॥३॥ कि अरे मूढ़! कपटवृत्तिवाले चोर लोग जैसे बालकोंके नेत्र व कान बंद करके उनके धन हर लेते हैं, वैसे तू भी माया कर हम लोगोंके जीतनेकी वासना करता है, परंतु यहां तेरी कामना पूरी नहीं होगी, क्योंकि हम मायाके ईश्वर हैं॥४॥ अरे! तू हमारा प्रभाव सुन, जो लोग मायासे स्वर्गमें चढ़नेकी वांछा करते हैं वा जो लोग स्वर्गका उल्लंघन करना चाहते हैं, हम उन सब चोरोंको उनके पदसे भी नीचे पटक देते हैं॥५॥ अरे मंदात्मन! हम इस शतधारावाले वज्रसे अभी तेरा शिर काटे डालते हैं, तू अपनी जातिवालोंके साथ युद्ध करनेका यत्न कर॥६॥ राजा बलिने कहा कि हे इन्द्र! इतना गर्व क्यों करते हो ? जो सब पुरुष कालसे प्रेरित होकर संग्राम करते हैं उन सबको क्रमसे कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु प्राप्त हुआ करती है॥७॥ इस कारण पंडित लोग इस जगत्‌को कालसे बँधा हुआ समझते हैं बस इससे इन सब बातोंके लिये हर्ष अथवा शोक कुछ नहीं करते, परन्तु तुमने यह विचार नहीं किया, क्योंकि तुम इस विषयमें चतुर नहीं हो इसलिये इन सब कीर्ति जयादिकोंमें अपना कारण समझकर तुम मर्मके पीड़ा देनेवाले वचन कहते हो परन्तु हम तुम्हारे इन वचनोंपर कान नहीं देंगे, क्योंकि तुमको कुछ बोध नहीं है, बरन् तुम्हारे लिये हम शोक करते हैं॥८॥९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि वीरमर्दनकारी राजा बलिने इस प्रकार इंद्रका निरादर कर कानतक धनुष खींच देवराजके बाण मारे। हे राजन्! एक तो शचीनाथ राजा बलिसे तिरस्कार पाकर घायल हुये ही थे और दूसरे बाणोंके लगनेसे फिर घायल हुए॥१०॥ यद्यपि इन्द्र इस प्रकारसे यथार्थ कहनेवाले अपने शत्रुसे तिरस्कृत किये गये तो भी अंकुश खाये हुए हाथीके समान इन्होंने राजा बलिके तिरस्कारको नहीं सहा❋ ॥११॥ और उसी समय अमोघ (जो कभी व्यर्थ ही न हो) वज्र हाथमें लेकर राजा बलिपर चलाया, कि जिसके लगनेसे दानवराजा बलि पंख कटे पर्वतके समान विमानसे गिरकर भूतलमें पतित हुआ अर्थात् पृथ्वीपर गिर पड़ा॥१२॥ राजा बलिका मित्र जम्भासुर अपने सखाको संग्राम स्थलमें गिरता हुआ देखकर आहत सुहृद

---

* शंका—शुक्राचार्य तो मरे हुए राक्षसोंको अपनी संजीवनी विद्यासे जिला देते थे, फिर राक्षसोंका नाश कैसे हो गया ?

उत्तर—शुक्राचार्य राक्षसोंको जीवित कर सकते थे। परंतु जब राक्षसोंके स्वामीका ही तेज नष्ट हो गया तब शुक्राचार्य राक्षसोंको कभी नहीं जिला सकते थे, क्योंकि समयके प्रतापको भगवान् भी मानते हैं तो शुक्रकी क्या बात है ?

के साथ सुहृदपनका आचरण करनेके लिये धावमान हुआ ॥१३॥ और सिंहवाहनके समीप जाकर वेगसे गदा उठाकर इन्द्रके और उनके वाहन ऐरावत हाथीके कन्धेमें जहां जोड़ा होता है वहां मारी॥१४॥देवराजका हाथी गदाके प्रहारसे अत्यन्त व्यथित हो गया,और उसने आगे दोनों घुटने पृथ्वीमें टेक दिये और बड़े मोहको प्राप्त हुआ॥१५॥हेपाण्डुकुलभूषण परीक्षित् ! यह देखकर इसका सारथी मातलि ऐसा रथ लेकर पहुँचा, कि जिसमें एक सहस्र घोड़े जुते हुए थे। तब देवराज इन्द्र हाथीको छोड़कर उस रथमें बैठ गये॥१६॥जम्भासुर देवराज इन्द्रके सारथीका यह कार्य देखकर प्रशंसा करने लगा, परंतु दूसरे क्षणमें ही गर्व प्रगट करके संग्रामके बीच उसने प्रदीप्त शूल चलाकर मातलिको मारा॥१७॥देवराज इन्द्रके सारथी मातलिने अपने बलका आश्रय करके उस शूलके प्रहारकी दुःसह व्यथाको सहन किया, तब स्वर्गनाथ इन्द्रने क्रोधित होकर वज्र चलाकर जम्भासुरका मस्तक काट डाला॥१८॥ हे राजन्! जम्भासुरके मारे जानेका समाचार देवर्षि नारदके मुखसे सुन उसकी जातिवाले नमुचि, बल और पाक ये तीन दानव बड़ी शीघ्रताके साथ वहां आये ॥१९॥ और विविध प्रकारके कठोर वचनोंसे इन्द्रका मर्म भेदन करने लगे, जैसे मेघ जलकी वर्षा कर पर्वतको ढक लेते हैं वैसे ही बाण वर्षाकर इन तीन राक्षसोंने देवराज इन्द्रको रूँध लिया॥२०॥बल नामक असुर बड़ी शीघ्रताके साथ बाण छोड़ता था। उसने रणक्षेत्रमें दस सौ बाण चलाकर देवराज इन्द्रके एक हजार (१०००) घोड़ोंको मारा ॥२१॥ पाक नाम असुरने दो सौ बाण देवेन्द्रके सारथिके और रथके मारे। केवल एक बारहीके चढ़ानेसे और छोड़नेसे अर्थात् इन क्रियाओंके साथ प्रकाशित होनेसे समर भूमि अद्भुत जान पड़ने लगी ॥ २२ ॥ इसके पीछे नमुचिने सुवर्णकी फोंक लगे हुए बड़े भारी पन्द्रहबाणोंसे देवराज इन्द्रको बींध डाला और रणक्षेत्रमें जल भरे बादलके समान भयंकर गर्जना करने लगा॥२३॥ अम्बुदपटल (मेघगण) जिस प्रकार शरत्कालके सूर्य भगवान् को ढक लेते हैं, वैसे ही असुर लोगोंने बाणोंके समूहसे रथ और सारथीके साथ इन्द्रको ढक लिया॥२४॥तब देवता लोग इन्द्रको न देखकर अपने अनुचरोंके साथ विह्वल हो इस प्रकारसे चिल्लाने लगे, कि जैसे समुद्रमें जहाजके फट जानेसे बनिये व्याकुल होकर हाय-हाय करते हैं। उन सब देवता लोगोंने जाना, कि आज हम स्वामी रहित हुए॥२५॥ इसके पीछे देवराज इन्द्र असुर लोगोंके द्वारा बाणोंसे बांधे पिञ्जरेमें ध्वजा, अश्व, रथ और सारथीके सहित निकलकर रात्रि बीत जानेपर सूर्य भगवान्के समान अपने तेजसे पृथ्वी, आकाश व समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उदित हुए॥२६॥ और सेनापति लोगोंको समरमें शत्रु लोगोंसे पीड़ित देख वज्र धारण कर वैरियोंका नाश करनेके लिये क्रोधके कारण अपना शस्त्र (वज्र) उठाने लगे ॥२७॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रने अष्टधातुवाले वज्रसे एक ही समयमें बल और पाक दो असुरोंका मस्तक काट लिया। यह देखकर इन दोनों दानवोंके जातिवाले भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥२८॥ परन्तु बल और पाकका नाश देख दानवश्रेष्ठ नमुचि शोक और अमर्षयुक्त हो क्रोधसे परिपूर्ण हुआ और इन्द्रका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा करके अनेक यत्न करने लगा ॥ २९ ॥ वह घंटायुक्त और सुवर्णसे भूषित लोहेका शूल ग्रहणकर महाक्रोधसे "मार लिया, मार लिया" कहकर गर्जता हुआ देवराज इन्द्रके ऊपर झपटा और सिंहके समान गम्भीर गर्जन करते देवराज इन्द्रके ऊपर इस राक्षसने शूल चलाया ॥३०॥ हे राजन् ! इस महाशूलको आकाशमार्गमें उछलता देखते ही स्वर्गाधिपति इन्द्रने अपने बाणोंसे काटकर हजार टुकड़े कर

डाला और फिर क्रोधकर नमुचिका शिर काटनेके लिये उस दानवकी गर्दनमें बड़े जोरसे वज्र मारा ॥३१॥ यद्यपि इन्द्रने महावेगसे तेजस्वी वज्र चलाया, तथापि वह उस दानवकी खालको भी न काट सका। वज्रने अतिवीर्यवान् वृत्रासुरको भी छिन्न भिन्न कर डाला था, वही वज्र नमुचिकी गर्दनपर लगकर खुटला हो गया। सत्य है-"समयके फेरसे सुमेरु होत माटीको" बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई ॥३२॥ हे राजन्! जिससे इन्द्रके वज्रका अति तिरस्कार होता था, देवराज उससे महा भय करते थे, इसलिए इस व्यापारको देखकर देवराज इन्द्र विस्मित हो आप ही आप कहने लगे कि दैवयोगसे यह क्या विमोहन हुआ॥३३॥ अहो! जब-जब प्रजा लोगोंपर दुःख हुआ है, कि पर्वत बोझसे भारी हुए पंखोंसे उड़ते-उड़ते प्रजा लोगोंके ऊपर गिर पड़ते थे, तब जिस वज्रसे हमने उनके पंख काटे हैं॥३४॥और त्वष्टाके तपके प्रभावसे जो उत्पन्न हुआ वह वृत्रासुर जिससे मारा गया है, वह बलवान् शूरवीरकि जिनकी खाल किसी अस्त्रसे नहीं कटी, वे लोग भी जिससे मारे गये, वही वज्र इस क्षुद्र असुर पर चलाया और लगा भी परंतु इसके घाव भी न आया ॥३५॥ हाय! डंडेके समान इस वृथा वज्रको हम अब नहीं धारण करेंगे। कैसे खेद की बात है, द्विजश्रेष्ठ दधीचिका सामर्थ्य भी व्यर्थ हो गया ॥३६॥ हे राजन्! जब देवराज इन्द्र इस प्रकार शोक कर रहे थे कि अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) ने उनसे कहा-हे देवेन्द्र! यह दानव सूखी व गीली वस्तुसे नहीं मारा जायगा ॥३७॥ क्योंकि मैंने इसको वर दिया है कि सूखी व गीली वस्तुसे तेरी मृत्यु नहीं होगी,इसलिये इसके मारनेका कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥ ३८ ॥ आकाशवाणी सुन देवराज इन्द्रने सावधानतापूर्वक ध्यानकर गीला और सूखा उभयात्मक उपाय देख लिया ॥३९॥ कि जलका फेन यह न सूखा है न गीला है, यह विचार उसीको वज्रमें लपेटकर नमुचिका मस्तक काट लिया हे राजन्! नमुचिके मारे जानेपर मुनिलोग देवेन्द्र इन्द्रकी भली-भांति स्तुति करने लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥४०॥ गन्धर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु गाने लगे, देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सरायें आनन्दके कारण नृत्य करने लगीं॥४१॥ हे महाराज! इन्द्रने जिस प्रकार नमुचिका शिर काट डाला; वायु, अग्नि, वरुणादि देवता लोगोंने भी उसी प्रकार असुरलोगोंका प्राणसंहार किया, कि जैसे केशरी (सिंह) मृगोंका वध करते हैं॥ ४२ ॥ परन्तु उसी समय ब्रह्माजीके भेजे हुए देवर्षि नारद देवता लोगों के निकट आ गये और दानवोंका नाश देखकर उनको निवारण करने लगे॥ ४३ ॥ श्रीनारदजी कहने लगे कि हे देववृन्द! तुमलोगोंका भगवान्‌की भुजाओंके बलसे अमृत प्राप्त किया है, और सर्व सम्पत्तियोंसे युक्त हुए हो, अब फिर युद्ध क्यों करते हो? इस युद्धसे अलग हो जाओ ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि नारदजीके वचनों को मानकर देवता लोगोंने उसी समय अपना क्रोध छोड़ दिया और अपने अनुचरोंके साथ स्वर्गको चले गये ॥४५॥ रणभूमिमें दानव लोगोंके जो बचे बचाये वीर थे; वे नारदजीकी सम्मतिसे मरे हुये राजा बलिको साथ ले अस्ताचल पर्वतपर चले गये ॥४६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत! रणभूमिमें मरकर गिरे हुए जिन दानवोंके अंग सम्पूर्णतः नष्ट नहीं हुए थे और जिनकी गर्दनें विद्यमान थीं उनको दैत्यगुरु शुक्राचार्यने संजीवनी विद्याके बलसे फिर जिला दिया ॥ ४७ ॥ दैत्यराज बलि शुक्राचार्यके हाथोंमे स्पर्श किये जानेपर फिर इंद्रिय और स्मरण शक्तिको प्राप्त हो गया! यह राजा बलि लोकतत्त्वको भली भांति

जानता था, इसलिये पराजित होकर भी उसने खेद नहीं किया ॥ ४८ ॥ देखो अच्छे लोग अच्छे ही काम करते हैं और यह संसारकी माया तो जीते ही जी है ॥ ४९ ॥

कबित्त–हेम हय हाथी हथियारहु न भये साथी, सुन्दरी न मुन्दरी जड़ाऊ खटा छपरा । आड़ धन गाड़धरे मोहरें भँडारनमें, धधाधूरी छायेबेते बन्ध गये धपरा ॥ कहै देवदत्त काहू खायो न खवायो अरु, खायो तीन पाव चून पहिरै तीन कपरा । हो नहीं अचेत भये रेत खेत परे रहे, देखो दुष्ट लोगनकी खोपरीको खपरा ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टम स्कन्धे देवासुरसंग्रामवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–द्वादशमें भगवान्ने, धरो मोहनी रूप ।
मोहित कर शिवको बहुरि, दीन्हों ज्ञान अनूप ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! श्रीभगवान्ने स्त्रीरूपधारण करके दानवोंको मोहित कर देवता लोगोंको अमृत पिलाया था ॥ १ ॥ यह सुन उस रूपको देखनेके लिये वृषभध्वज गिरीश महादेवजी अपने वाहन नंदीपर चढ़कर समस्त भूपगण और पार्वतीजीके साथ उस स्थानमें गये कि जहां भगवान् मधुसूदन विराजमान थे ॥२॥ श्रीपार्वतीजीके साथ महेश्वर महादेवजीको आया हुआ देखकर श्रीभगवान्ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और यथायोग्य पूजा करके बैठनेके लिए आसन दिया । महादेव भी आनंदपूर्वक बैठे और श्रीभगवान्की पूजा कर विस्मय युक्त वचन उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवदेव ! जगद्व्यापिन् ! हे जगन्मय ! हे जगदीश ! आप सब पदार्थोंके कारण होनेसे ईश्वर हैं ॥४॥ हे भगवन् ! जिससे इसजगत् का आदि, अन्त और मध्य होता है और अव्यक्त होनेसे जिसमें यह आदि, मध्य और अन्त नहीं है और जो "यह" शब्दके आस्पद दृश्य पदार्थ और "हम" इस शब्दके आस्पद द्रष्टा और "बहिः" इस पदके वाच्य भोज्य और भोक्ता हैं, वही सत्यस्वरूप चिद्रूप ब्रह्म आप हैं, इससे यद्यपि आपको जगन्मय कहकर सम्बोधन किया तो भी आपमें विकारादिकी शंका नहीं है ॥५॥ हे भगवन् ! आप जो ऐसे हैं इसमें मुमुक्षुजनोंका आचार ही प्रमाण है, क्योंकि श्रेयस्काम निराशी मुनि लोग इस कालमें और परकालमें संग छोड़ आपके चरणकमलकी बंदना किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथापि उदासीन नहीं हैं, आप इस जगत् प्रपंचके सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और प्रपंचोपाधि हैं सब जीवोंके ईश्वर हैं अर्थात् वैसे ही फलके दाता हैं किन्तु आप राजा लोगोंके समान कुछ अपेक्षा करके सेवकोंको फल नहीं देते अर्थात् दूसरेमें तत् तत् (उन उन) आत्माके द्वारा तत्तत् फल पदार्थ जैसी अपेक्षा की जाती हैं, वह फल देनेके विषयमें आपको वैसी अपेक्षा नहीं है । फलतः आपपूर्ण सुखस्वरूप, नित्य आनंदमय, अगुण और अशोक हैं । आपसे, अलग दूसरा पदार्थ नहीं और आप, सब पदार्थोंसे भिन्न हैं । हे भगवन् ! आप ऐसे सुखात्मक ब्रह्मस्वरूप हैं इसलिए आपको किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, आपका ऐश्वर्य केवल भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये है,

आत्मार्थ नहीं है ॥ ७ ॥ हे देव ! जैसे कुण्डलादिरूप सुवर्ण और केवल सुवर्ण, यह दोनों एक ही वस्तु हैं, वैसेही सत् और असत् अर्थात् कार्यकारणरूप रूपद्वय (दो) हैं और परम-कारणरूप अद्वय एक आप ही हैं, अज्ञानके वश होकर लोग आपमें भेद कल्पना किया करते हैं परंतु वास्तवमें आप निरूपाधि हैं, गुणद्वारा ही आपका भेद होता है स्वयं कोई भेद नहीं है ॥ ८ ॥ हे भगवन् अज्ञानके वश होकर लोग अनेक भांतिसे आपका वर्णन किया करते हैं, परंतु कोई भी तत्त्व नहीं जानता । कोई पुरुष (वेदांती लोग) आपको ब्रह्म मानते हैं, कोई-कोई (मीमांसक) आपको धर्म कहते हैं, कुछ लोग (सांख्य जाननेवाले) प्रकृति पुरुषसे परे आपका वर्णन करते हैं और दूसरे (पंचरात्रज्ञ पुरुष) नवशक्ति युक्त परमपुरुष कहकर आपको बताते हैं और कुछ (पातंजल दर्शन जाननेवाले) अव्यय स्वतंत्र महापुरुष आपको कहते हैं ॥ ९ ॥ हे ईश ! ब्रह्मा मैं (महेश्वर) और मरीचि प्रभृति मुनि जो कि सत्त्व गुणसे उत्पन्न हुये हैं वे आपकी माया द्वारा चित्त हरे जानेपर जब वह भी आपके रचित ब्रह्माण्डके तत्त्वको नहीं जानते तब दैत्य मनुष्यकी जितनी उत्पत्ति और वृत्ति राजस-तामससे हुई है वे आपको क्या जानेंगे ? अर्थात् वे आपको नहीं जानते ॥ १० ॥ परंतु आप जग-त्का जन्म, स्थिति, नाश, सब प्राणियोंकी चेष्टा जगत्के बन्धन और मोक्ष सबको ही जानते हो । जिस प्रकार वायु चर-अचर देवसमूह और आकाशमें व्याप्त हो रहे हैं, वैसे ही आप भी आत्मस्वरूपसे सब चराचरमें व्याप्त हो रहे हैं । आप ज्ञानस्वरूप हैं, इस कारण सबके आत्मा हैं ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! आप गुणद्वारा क्रीड़ा करके जो-जो अवतार धारण करते हैं मैं उन सबको देखता हूँ; इसलिये अब जो आपने मोहिनीरूप धारण किया है, मैं उसे देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ जिस मोहिनी रूपसे आपने दुर्दम दानवोंको मोहित किया और देवताओंको अमृत पिलाया, मैं वही मोहिनीरूप देखनेके लिये यहां आया हूँ, क्योंकि इसके लिये मुझे बड़ा कौतूहल हुआ है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब शूलपाणि महादेवजीने ऐसी प्रार्थना की तब श्रीभगवान् मुसकाकर गम्भीर वाणीसे महादेवके प्रति कहने लगे ॥१४॥ श्रीभगवान् बोले—हे देवदेव ! जब अमृतका पात्र देवता लोगोंके हाथसे छीनकर असुर लोगोंके पास गया तब मैंने विचारा कि "स्त्रीका" रूप ही धारण करनेसे देवता लोगोंका कार्य सिद्ध होगा, अर्थात् उन्मत्त दैत्योंको ठगकर देवताओंको अमृत पिलाया जायगा, परंतु विना दूसरारूप धारण किये यह कार्य नहीं हो सकता, इसलिये दानव लोगोंके कौतूहलार्थ ठगाई मोहनादिका सारस्वरूप यह कामिनीरूप हमने धारण किया ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! आप हमारे उस मोहिनीरूपके देखनेकी इच्छा करते हैं, अच्छा आपको दिखाया जायगा, उस रूपको कामीपुरुष बहुत ही मानते हैं उससे मीनकेतु (कामदेव) का उदय हो जाता है॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भगवान् इस प्रकार कहते-कहते वहांही अन्तर्धान हो गये । उस समय महादेवजी अपनी भार्या पार्वती सहित चारों ओर दृष्टि करते हुए रूपके देखनेकी उत्कण्ठासे बैठे रहे ॥ १७ ॥ कुछ देरके पीछे उपवनमें कि जहांपर वृक्षोंमें चित्रविचित्र कुसुम और अरुण वर्णके पल्लव शोभायमान हो रहे थे, वहां-पर परम सुन्दर एक स्त्री श्रीमहादेवजीने देखी । उसके नितम्ब उज्ज्वल रेशमी वसनसे ढक रहे थे । उसमें मेखला (जञ्जीर) की लड़ियाँ ऐसी दीप्तिमान हो रही थीं कि मनुष्यका मन उसकी ही कड़ियोंमें उलझे रहे, वह स्त्री गेंद उछालकर देखनेवालोंके मनको भी मानों

उसीके साथ उछालती है ॥ १८ ॥ गेंदके ऊपर नीचे उछालनेके कारण उसके शरीरके झुकने और ऊँचे होनेसे उसकी दोनों छातियाँ (स्तन) व मनोहर हार बार-बार कम्पायमान होता था। उस समय ऐसा जान पड़ता कि मानो उन (स्तनों) के भारी भारसे उसकी कमर लचकती थी, कि जिससे वह अपने मूंगेके तुल्य लाल कोमल चरण इधर-उधर धरती थी ॥१९॥ सब दिशाओंमें गेंदके उछलने उसके चंचल भावसे उद्विग्न हुए तारेके समान विशाल नेत्र अपने कानोंमें प्रकाशित होते हुए कुण्डलोंसे उसके कपोल शोभायमान हो रहे थे और इधर मुखपर छिटकी हुई अलकें अलग ही अपना जाल फैला रही थीं कि जिससे उसकी आश्चर्यमय ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो अमृतके लोभसे अमृत पीनेको चन्द्रमाके पास छोटे-छोटे नागोंके बच्चे आये हैं ॥२०॥ शरीरसे खसके हुए दुपट्टेको और मस्तकसे खुली हुई वेणीको अपने बायें हाथसे जो इन दोनों बन्धनोंको सँभाल दाहिने हाथसे गेंद उछाल रही थी, उस समय ऐसी शोभा हो रही कि मानो यह अपनी मायासे जगत्को मोहित कर लेगी। अहो ! इसके रूप लावण्यका क्या ठिकाना ! मानो जगत् जीतनेके लिये कामदेवने यह पताका प्रस्तुत अर्थात् तैयार की है। अब केशोंकी शोभा सुनिये-केशोंको देख महाप्रलयकालकी अंधेरी अंधी हो गई, कज्जल गिरिने मुख नयन नीचेको कर लिए और सावन भादोंकी घटा सटपटाककर फट गई।

कबित्त—कारी लट कारे केश मृदुता भरी है बेश, मखतूल श्याम कैधों काहूके अँधेरे हैं। शालग्राम वैश्य यह कहत बिचार बात, कैधों तमधार आय चन्द्रमाको घेरे हैं॥ जम्बुफल हारे देख कालिया अनूप छबि, कैधों अम्बु यमुनाके शीशपै बसेरे हैं। निबिड पयोद चहुँ कोद ऋतुपावससी, छूट कुच अङ्कर छ्वैछबि लटकेरे हैं॥ १ ॥ बाला बाल छोड़िकै निवारत है बारबार, तार तार फैल रहे चौग्रिद मुखेन्दुके। लहरत एडिनलों छहरत चूमे भूमि, समझके मोति परे पुञ्जन जलेन्दुके॥ भनै शालिग्राम किधौं जानिकै सुधाके बिन्दु, जात चले मुदित मनोहर मलिन्दुके। मानो चन्द्रमण्डलपै कुण्डलमें अमीहेतु, धाय गये छोना छाय लाखन फणिन्दुके॥ २ ॥

चोटीको छबि देखकर नागिनी लोटी-लोटी फिरती थी और वारंवार कहती थी, कि हे परमेश्वर ! हमसे क्या अपराध हुआ जो हमारे प्राणघात करनेको प्राणघातिनी उत्पन्न कर दी ?

कबित्त—अतर फुलेल मेल हेम कंघईसों ओंछ, पोंछकै सयान दई केशरतरौटी है। नाईन शिवारसे सम्हार बार बार बार, त्रिलर सुधार गुन्थ कीन्ही एक सोटी है॥ भनै शालिग्राम किधौं आनँद अगोटी रस, राजसों रँगौटी रतिचोटी कर खोटी है। कैधौं व्याल जोटी युत पन्नगी सुमोटी बाल, कैधों तुम भालपै सुहाई लसीचोटी है ॥३॥ मोहर ज्यो मुकुताकी युगुल विकारी दई, लोचन तरङ्ग कैधौं चाबुक मसन्दको। लहकि लहकि टेढ़ी बेढ़ीसी अलक दोउ, बहकि बहकि करे चरचा अनंदको॥ लटकि कपोलन कपोलन करत झूमि,

फैली फहरानी कैधौं ध्वजा काम फन्दको। विषम कटो है ऐसो हयसे कुशल सिंह, नागिनके छौनापै बिछौना कियो चन्दको॥ ४॥

सिंदूरसे भरी हुई मांगका वर्णन।

कबित्त-वारों काम कामिनी करोड़ कामिनी तनूपै, सुरभी चम्पा बनी सुगन्धता चमेलीकी। सौतिनको गरब गमावनी गुमान भरी, शोभा निबटावनी सुजातरूप बेलीकी॥ भनै रघुनाथ दिव्य दामिनी दुरावनी सु,-चांदनी चुरावनी है द्युति अलबेलीकी। निजछबिछावनी छिपावनी छपाकी छबि, प्यारे मनभावनी सुहावनी नबेलीकी॥ ५॥

भालको देखकर अष्टमीका चन्द्र मतिमन्द हो मुख बन्द कर बैठ गया अर्थात् कुछ कह न सका।

सवैया

सोहत कञ्चनपत्र किधौं कलि कीधौं सु अष्टमि चन्द्र विशाल है।
काम कलानिके सीखिबेको किधौं कामके बामकी पाटी रसाल है॥
भाषै सुनी रघुराज किधौं रसराजको राजै सभा छबिजाल है।
कीधौं वशीकर यन्त्रके मन्त्रकी पीठि लसै कीधौं मोहिनी भाल है॥६॥

उस चञ्चलाक्षीके चञ्चल नेत्र देख खञ्जन और मृग मौन साध वनमें जा छिपे और मीन दीन हो जलमें डूब गये और पानीमें पड़े ही पड़े कभी-कभी यह कह उठते थे कि हे विधाता! यह नयी नबेली अलवेली कहांसे प्रकट की? जो कवि लोग हमारे नेत्रोंकी उपमा दिया करते थे वह भी आज छिन गयी॥

कबित्त-अलक अमोल अलबेलीकी अनोखी आंखि, अति अलसात ओप अजब अमेजेमें। मन्द मुसकान मांग मोती मोहिनीके नीके, मोद मदमाती मन मदन मजेजेमें॥ यौवन जलूस ज्योति जोयकै नारायण जू, सकल शृङ्गार नखशिखते सहेजेमें। चन्द्रमुखी चञ्चल चलांक चञ्चलासी चारु, चसक लगाय गयी कसक करेजेमें॥ ७॥ मीन ह्वै कमीने परे पानीमें निहार हार, हारिकै चकोर ताते चुगत अँगारे हैं। भूपति भनत मञ्जु कञ्जनके खञ्जनके, गञ्जन गरब करि डारिकै निकारे हैं। डारे रतनारे तारे कारे औ सितारे सेत, उपमा सितासित तरङ्गिनमें भारे हैं। प्यारी तेरे मान दृग पानि पर सान धरे, कैरव कसीस वै कमान वारे वारे हैं॥ ८॥

कपोलोंकी कोमलता देख कमलके फूल कुम्हला गये, गुलाब मुरझा गया, कि ये तो हमारे मनको मोल लिये लेते हैं, यह कपोल है यह कुण्डलोंके कलोल करनेके परम रमणीक गोल-गोल स्थान हैं।

कबित्त-मुकुरसे मंजुल झलकि रहे माणिक ज्यों, हँसत परत गाड़ अमल अमोल ये। कमल की कोमलाई लागत ना नेक जामे, रसभरे चीकने लटेते बने

गोल ये ॥ गदगद गोरे भोरे कठिनई थोरे थोरे, अरुनाई बोरे चोरे चितहि बिलोल ये । अधरन के प्यारे कैधौं मानहूँके तारे शिव, नाथ छबिवारे चन्द्र निरखि कपोल ये ॥ ९ ॥

नासिकाका रंग ढंग देख कीर अधीर हो गये, शरीर छोड़नेको उपस्थित हो गये, तिलके फूल लज्जित हो शिरमें धूल डालने लगे और सब सुधि बुधि भूल गये कि यह शूलका दर्द परमेश्वरने कहांसे उत्पन्न कर दिया ?

कबित्त–सुरपतितियकी द्युति फीकी होत जाहि देख, रहत रतीक ना गरूरता रतीकी है । तीन लोकीकी कहौं जीकी होये जाते अति, नारिमें निकाई द्रौपदीकी नाक नीकी है ॥ भनै रघुनाथ चारु अमल सुढार वेष, अति सुख-दान जान प्राणपतिहीकी है । वर शुकनासाते बुलाक नथ बासा मंजु, परमप्रकाश पुञ्ज नासा मोहिनी को है ॥ १० ॥

अधरोंको देख विद्रुम अपना हृदय विदीर्ण करने लगे, बिम्बाफल लताओंमें ऐसे लटकने लगे कि जैसे कोई लाजका मारा फांसीपर लटकाया जाता है, बन्धूक साजकी मारी मुख छिपाने लगी ।

कबित्त–गुलगुले कन्दके सुमन्द कर दाखनको, देखहु दुचन्द कलाकन्दकी कमाईसी । कहैं पदमाकर त्यों साहिबी सुधाकी सब, ब्रजवसुधामें धौं कहां धौं परी पाईसी ॥ खरक खरीको मधुहूकी माधुरीको शुभ शारदा सिरीको मिसिरीको लूटि लाईसी । सांवरी सलोनीके सलोने अधरानमें सुमन्द मुसकान भरी मंजुल मिठाईसी ॥ ११ ॥

उस मनोरमाके दांतोंकी पंक्ति देखकर दाड़िमके दांत खट्टे हो गये और हृदय फट गया हारकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जा दुबके । मोतियोंकी लड़ी व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी और मनमें बड़ी ग्लानि मानी कि हम क्या मुख दिखायेंगी ? क्योंकि परमेश्वरने हमको जगत्में मुख दिखाने योग्य नहीं रक्खा ! घड़ी-घड़ी पछता-पछता कर रोती थीं ।

कबित्त–कैधों पद्मरागनकी पंगति विशाल कैधों, हीरनके जालके प्रबाल अलबेलीके । कुन्दकलिका हैं पुञ्ज कुसुम जपा हैं कैधों, दाडिमके बीज कैधों पुहुप चमेलीके ॥ भनै रघुनाथ शुभ्र स्वच्छ शुचि शोभावान, तापे लसे पान लाल रंग रसरेलीके । मोहित है कन्त यों दुरंत द्युति सौतिनके अतिद्युतिवन्त दंत निरखि नवेलीके ॥ १२ ॥

मुखको देख चन्द्रमा चकित हो चारों ओरको देखने लगा कि पृथ्वीपर दूसरा चन्द्रमा कहांसे आया ? जब दूसरा चन्द्रमा प्रकट हो गया तो मुझे कौन पूछेगा ? करवा चौथ और जन्माष्टमीको मेरे देखनेकी अभिलाषा कौन करेगा ? इस क्लेशमें थकित होकर उदय होना छोड़ दिया; पन्द्रह दिन पीछे निकला और छिप गया ।

कवित्त-आनन अनूप छवि छलकी छटासी होत, ज्योति जोन्ह निंद निशिकर चन्द नीको है। देखत चकोरसे न मुरत सुरेश मन, ममता मदादितम करै खण्ड नीको है॥ व्यास सनकादि वेदविदित विरंचि हरि, शम्भुसे विवेकी जासु करैं वन्दनीको है। कामताप्रसाद कला सोरहो अखण्ड मुख चन्द्रहूते यह रूप नीको मोहिनीको है॥ १३॥

वाणी सुनकर मोर और कोकिला बोलना भूल गये कि अब हमारी बोली कौन सुनेगा? वांसुरीने जाकर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी शरण ली कि हे नाथ! मुझे संसारसे मत खोओ।

कबित्त-केकीपिककोकिलाअवाजनपै गाज परो, कैलिया लजाय छोड़ी सौरभ पराई हैं। भनत दिवाकर तिलोत्तमा न ढूंढ़े कोऊ, रूरे राग सुने सब सरी शरमाई हैं॥ कैधों आय शारद निवास कियो रसनामें, बातनके ब्याज बोलि झरत मिठाई हैं। मोहिनीकी वाणी कैधों सानी हैं पियूषरस, देते वरदानी ऐसी वेद मुनि गाई हैं॥ १४॥

शीतलाके दाग वर्णन

कबित्त-चन्द्रकीमरीचिकान तोरि बिधुराय दीन्ही, कैधों हीरा फोरिकै कनूका धरि धरि गये॥ कैधों काममन्दिरकी झंझरी बनाई विधि, कैधों सोनजुहीके पुहुप झरि, झरि गये। कामिनी मनोरथ है आलबाल शिवनाथ, मैनक मतङ्ग माते बेली चरि चरि गये। अमल कपोलनपै दाग नहीं शीतलाके डीठि गड़ि गड़ि गई दाग परि परि गये॥ १५॥

ग्रीवाकी लटक देख कपोत लज्जाके कारण मौन हो बैठ गया और बोलना छोड़ दिया।

कबित्त-सात सुर तीन ग्राम रागनको धाम धन्य, मूर्च्छना सुतान श्रुति ग्रहमति पनीको॥ कैधों चन्द्रमण्डलको परम अधार शुद्ध उज्ज्वल अनूप स्वच्छ दच्छ पिकबैनीको॥ भनै रघुनाथ शील शोभाको निवास यही, प्रीतमकी प्रीतिकी प्रतीति करदैनीको॥ कम्बुते सुढार रम्भ चार है कपोतहूते, रंभारती कण्ठते सुकण्ठ मृगनैनीको॥ १६॥

भुजाओंको देख कमलनाल पानीमें छिप गये।

कबित्त-कैधौं अर्थ धर्म काम मोक्षफल दाता वृक्ष स्वच्छ दच्छ दान भृत्यपक्षको अथोरीके॥ रम्भासे सुधारचारु उज्ज्वल मृणालहूते, पंकज गुलाबरङ्ग रतिमदमोरीके॥ भनै रघुनाथ ऋद्धिसिद्धिके निवास कैधौं, परम प्रकाशमान पियचित्त चोरीके। सुकृत जरूरे पतिपदरत रूरे यह, दीपत प्रपूरे कर नवलकिशोरीके॥ १७॥

कुचोंको देखकर अनार शिर मारमार कर रोने लगे और मोहके मारे ठण्डे हो गये।

कबित्त—सुन्दर सजीले परलम्ब सहजीले याके, परम लजीले शुभ काजन कजीले हैं। बेलन वसीले अलि बेलिन हँसीले आदि, रसमें रसीले रूप यशमें यशीले हैं॥ नेह रस शीले परनेह परशीले अनु, नैन बहकीले चटकीले भटकीले हैं। तेरे कुच नीले छटिछबिसे छबीले मानो, पन्नग रँगीले मैन मंजुवत कीले हैं॥ १८॥

हृदयवर्णन

कबित्त—कुमति सुशील अम्बु सरवर शोभावान कैधों प्रिय प्रेमको पयोनिधि सुनीत है। बिम्बकुचबीच रोमराजि अति शोभित है, मेरुतें प्रकाशी मनो भानुजा पुनीत है॥ भनै रघुनाथ चारु हीरनको हार गंग, लालनकी माल बहै शारदा प्रतीत है॥ तेरे तनु तीरथ प्रयागमें त्रिवेणीतट, प्यारी उर माधवको मंदिर पुनीत है॥ १९॥

पीठकी छबि देख कदलीके पत्र अत्यन्त व्याकुल होते थे।

कबित्त—सुखकी नदीमें कैधों परत गंभीर भौंर, धराको तखत पिय लोचन अरथ की। कैधों वरषामें रोम राजि रहे पन्नगकी, कैधों खानि खुली है जवाहिरके गथकी॥ घासीराम कैधों सौति सुखनकी भाकसीसी मान भई खिरकी उरज गढ़ पथकी। ए री मेरी बीर तेरी नाभी रसभरी कैधों, दौत करताकी कै मथानी मनमथ की॥ २०॥

कटिको देख मृगराज बनको चला गया और झाड़ियोंमें जा छिपा, इसलिये मनुष्योंको खाता है।

कबित्त—छहरति छबि छिति छोरनलों छटि छटा, वश किये छैलन छकाये हिरलति है। छीरदकी छोहरीसी छयासी प्रबीन वेनी, छपामें छपाकरकी छातीमें लसति है॥ छला छाप छाजत छराके छोर छिटकत, छवनि छुवत छन द्युतिसी लसति है। छीन कटिछोटीसी छबीलीने छटाक भरी, छाई छलछन्द छितिपालहि छलति है॥ २१॥

नितम्बवर्णन

कबित्त—कैधौं खरी खीन कटि निकसी नितम्ब पीन, कैधौं रति समर प्रहार ताके छालसी। भनत दिवाकरकी मदन तमूर धरे, मेखलाके रव सोई बाजत है झालसी॥ कैधौं जातरूप युगहण्डिका उलटि राखे, होत जगमग ज्योति सभा वर झालसी। हरुवे वदन ताके थम्भन लगी यों मानो सौति उरशालत है पेखि पेखि सालसी॥ २२॥

जँघाओंकी शोभा देखकर कदली कपूरको खा गयी।

कबित्त—हाटक समान रम्भखम्भसी लसत जानु, केलिमें निधानु मानो भानुरात प्रातके॥ भनत दिवाकर वितुण्ड शुण्ड गोलरोल, उपमा अतोल

रसराज कीन्ह घातके ॥ घनसार स्वच्छता सुवासता धसीसीजामें, एतो मैन मान वोतो देववृन्द जातके । कौन कौन बातकी बड़ाई करौं खोजि खोजि, कामिनीके जंघ युग डारि पारिजातके ॥ २३ ॥

मुरवा वर्णन

सवैया-लखि लाजत जाहि मराल गती, गजराज तजै गति आतुरवा ।
द्युति देखत दामिनी हू सकुचै, दुरि जात घने घनके कुरवा ॥
रघुनाथ भनै मृदु जाल चलै, अति प्यारे लगैं सँकरी चुरवा ।
मनमोहन हैं जगमोहनकी, मनमोहनिके पगके मुरवा ॥ २४ ॥

पांवोंको देख कमलके फूलोंके पांव फूल गये

कवित्त-सुन्दर सुरंग नैन, शोभित अनंग रंग, अंग अंग फैलत तरंग परिमलके । बारनके भार सुकुमारिको लचत लंक, राजे परयंकपर भीतर महलके ॥ कहै पदमाकर बिलोकि जन रीझे जाहि, अम्बर अमलके सकल जलथलके । कोमल कमलके गुलाबनके दलके सु-जात गडे पाँयन बिछौना मखमलके ॥ २५ ॥

अब अधिक उस मोहिनीके मोहस्वरूपकी शोभा कहांतक कही जाय ?॥२१॥ हे राजन् ! इस मोहिनीके रूपको निहारते ही महादेवजी अपने आपको भूल गये । गेंदको उछालते हुए जो वह कामिनि कुछेक लाज प्रकट कर रही थी, उससे मन्द मुसकान सहित उसके छोड़े हुए कटाक्षसे महादेवजी एक ही बारमें मोहित हो गये, इस कारण उसको देखनेसे और उस द्वारा देखे जानेसे इन दो क्रियाओं द्वारा विभुका मन अत्यन्त विह्वल हो गया, इसलिये उन्होंने अपने निकट अपने सेवकोंको और पार्वतीजीको न जाना ॥ २२ ॥ वह मोहिनी जिस गेंदको उछाल रही थी, वह गेंद एक बार उसके हाथसे उछलकर दूर गिर पड़ा, उस गेंदके लेनेको जब वह बाला दौड़ी तब वायुके वेगसे काञ्चीसहित उसका कटिवसन उड़ गया, और देवदेव महादेवजी खड़े होकर एकटक उसको देखने लगे ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे जैसे ही महादेवने उस मनोरमा रामाको देखा कि वैसेही वह भामिनी कुञ्चित कटाक्ष चलाकर उनको देखने लगी, तब महादेवजीका मन उसपर अनुरागी हो गया ॥ २४ ॥ मोहिनीके हावभावसे देवदेव महादेवजीका ज्ञान नष्ट हो गया और वह उस कामिनीके किये हुए कामविलाससे ऐसे विह्वल हुए कि पार्वती सामने खड़ी होकर देखती रहीं तो भी वे निर्लज्ज होकर उस सुन्दरीके समीप चले गये ॥२५॥ यह मोहिनी कामिनी वस्त्ररहित थी, महादेवजीको निकट आते हुए देखकर लज्जित हो गयी और हँस-हँस वृक्षोंकी आड़में जाने लगी, वहां खड़ी न हुई ॥२६॥ भगवान् महादेवजीकी इंद्रियाँ प्रबल हो गयीं । वे शंकरजी पंचबाणके वश हो उस स्त्रीके पीछे-पीछे इस तरह दौड़ने लगे कि जैसे यूथपति हाथी हथिनियोंके पीछे-पीछे दौड़ता है ❋ ॥ २७ ॥ जब वह साधारण चालसे महादेवजीके हाथ न आयी, तब वह अतिवेगसे

❋ शंका—महादेवजी कामके नाश करनेवाले हैं, फिर भगवान्का स्त्रीरूप देखकर कामके वशीभूत भूतनाथ क्यों हो गये? यह बड़े आश्चर्यकी बात है?

उत्तर—अनेक युग "नमः शिवाय । नमः शिवाय" इस मन्त्रको जपकर माया तप करने लगी, तब एक दिन शिवजी बोले—कि हे मायें !—

दौड़े और उस स्त्रीको अपने संगकी इच्छा न करते देख केश पकड़ दोनों भुजाओंसे उसको अपने हृदयसे लगा लिया॥२८॥हाथी जिस प्रकार हथिनीका आलिंगन करता है वैसे ही वह मनमोहिनी बाला भूतेश्वर भगवान् भवानीपतिके हृदयसे लिपटी हुई इधर-उधर दौड़ने लगी, कि जिससे उसके केश छूट गये॥२९॥ हे राजन् ! इसके पीछे देवमायाकी बनाई हुई बड़े-बड़े नितम्बवाली वह स्त्री अतिकष्ट करके महादेवजीकी भुजाओंसे अपनेको छुड़ाकर भागी ॥३०॥ हे राजन् ! यह अद्भुत कथा श्रवण करो, श्रीभगवान् विष्णु ही माया विस्तार करके यह स्त्री हुए थे। जब श्रीभगवान् स्त्री बनकर भागे, तब भूतनाथ (शिव) अपने सदाके वैरी कामदेवसे पराजित हो फिर उसकी पदवीका अनुसरण करने लगे॥३१॥ हे महाराज ! वासिता के (ऋतुमती हथिनीके) पीछे-पीछे दौड़ते हुए कामी हाथीका वीर्य जिस प्रकार गिर जाता है, वैसे ही उस मोहिनीके पीछे पड़े हुए अमोघ वीर्यवान् भगवान् शिवजीका वीर्य गिर गया ॥३२॥ हे कुरुवर ! देवश्रेष्ठ महादेवजीका वह वीर्य पृथ्वीके जिस-जिस स्थानमें गिरा उन सब स्थानोंमें सुवर्ण और चांदीकी खानें हो गयीं ॥३३॥देवदेव महादेवजी इस प्रकारसे मोहिनीके पीछे दौड़ते-दौड़ते नद, नदी, सरोवर, गिरि, वन, उपवन और जहां-जहां ऋषिलोग रहते थे, उन सबही स्थानोंमें पहुँचे ॥ ३४ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! जब वीर्य गिर गया, तब भगवान् भवने जान लिया कि हम देवमायासे मोहित हुए हैं, तब वे इस व्यापारसे निवृत्त हुए ॥ ३५ ॥ जिस जगदात्माका वीर्य जाननेके योग्य नहीं है, उसके माहात्म्यका महादेवजीने स्मरण किया और उनकी माया करके अपनेको मोहित हो जानेका भी कुछ आश्चर्य नहीं माना ॥ ३६ ॥ इसके पीछे मधुदैत्यके मारनेवाले भगवान् मधुसूदन अपना पुरुष रूप धारण करके फिर प्रगट हुए और उन देवदेव महादेवजीको क्षोभरहित व लज्जारहित देखकर प्रसन्न हो यह वचन कहने लगे ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवश्रेष्ठ ! आप हमारी स्त्रीरूप मायासे मोहित होकर भी जो फिर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए यह बड़े भाग्यकी बात है। आप निःसन्देह अपनी आत्मामें स्थिर हैं ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपके विना ऐसा कौन पुरुष है, जो अनुरागी होकर फिर हमारी मायासे पार पा सके ? हमारी माया अनिर्वचनीय भाव प्रकट किया करती है, कच्ची बुद्धिवाले पुरुषकी क्या सामर्थ्य है जो इससे पार पाये ॥३९॥ भला जो हुआ सो हुआ, अब यह गुणमयी माया सृष्टचादि निमित्त कालके वश होनेसे कालरूपी हमारे साक्षात् रजोगुण प्रभृति अंशमें मिली हुई है अर्थात् मेरे अधीनमें है, अब यह कभी आपको न सता सकेगी ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! श्रीवत्सांक भगवान् विष्णुने जब इस प्रकार कहा और नमस्कार किया, तब देवदेव महादेवजीने सम्भाषण कर उनकी प्रतिष्ठा की और फिर श्रीभगवान्‌की अनेक प्रकारसे स्तुति कर और उनसे बिदा हो अपने भूतगणोंके साथ कैलासको चले आये ॥ ४१ ॥ फिर अपनी अंशरूपिणी उस माया रूपी भवानीसे, जिसको प्रधान मुनि लोग मानते हैं उनसे प्रीति प्रकट करके भगवान् महादेवजी प्रिय वचन कहने लगे ॥ ४२ ॥

—जिस वरकी तुमको इच्छा है वह वर माँग। माया बोली कि हे शम्भो ! तीन लोकमें जो देहधारी प्राणी ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मनुष्य, असुरादिक हैं सो सब मेरे वश हों, एक आपको छोड़कर, परन्तु आधी घड़ीके लिये आप भी मेरे वशमें हों; शिवजीने मायासे कहा कि हम आधी घड़ीतक ही तेरे वशमें होंगे। सो इसलिये महादेव कामके वश हुए, कुछ कामी होकर कामके वश नहीं हुए।

हे प्यारी ! परदेवता परपुरुष भगवान्‌की मायाको देखनेसे प्राणी अवश्य मोहित हो जाते हैं, क्योंकि जब मैं भी उसके वशमें पड़कर मोहित हो गया तो फिर पराधीनको मोहित होना क्या आश्चर्य है ? ॥४३॥ हे सती ! सहस्र वर्षके पीछे योगसे निवृत्त होनेपर तुमने जिनकी कथा हमसे पूछी थी यह वही साक्षात् पुराणपुरुष हैं, उनमें काल भी प्रवेश नहीं कर सकता और दैवका भी उनपर वश नहीं चल सकता ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! भगवान् शारंगधारी, जिन्होंने समुद्र मथनेके समय अपनी पीठपर महापर्वत मन्दराचलको धारण किया था, उनके विक्रमका वृत्तांत तुमसे कहा ॥४५॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस कथाको कहेंगे अथवा सुनेंगे, उनका उद्योग कभी निष्फल नहीं होगा, क्योंकि उत्तम श्लोक भगवान्‌के गुणानुवाद कीर्त्तन करनेसे समस्त क्लेशों और पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ जिन्होंने कपटपूर्वक मोहिनी रूप धारण कर दानव लोगोंको मोहित कर समुद्र मथन करनेसे उत्पन्न हुआ अमृत अपने चरणोंकी शरण आये हुए देवता लोगोंको पिलाया था उनके चरणकमल असज्जन लोगोंके ध्यानमें नहीं आते, केवल उपासनासे प्राप्त होते हैं । अपने आश्रित जनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले जो विष्णु भगवान् हैं, उनको हम भक्तिसहित नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृतेऽष्टमस्कन्धे शङ्करमायामोहन नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—तेरहवें अध्यायमें, सप्तम मनु विस्तार ।
षड्विध मन्वंतर कथा, कहिहौं सहित विचार ॥

इतनी कथा सुनाकर महामुनि श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहने लगे कि हे नृपश्रेष्ठ ! विवस्वान्‌के पुत्र श्राद्धदेव नामक सप्तम मनु हुए, जो अभी वर्तमान हैं, उनकी संतानका वृत्तांत कहता हूँ तुम सुनो ॥ १ ॥ हे परंतप ! इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ करूष, पृषध्र, और वसुमान् ये दश वैवस्वत मनुके पुत्र हुए ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, दो अश्विनीकुमार और भृगु देवता हुए; पुरंदर इन सब देवताओंका इंद्र हुआ ॥ ४ ॥ कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज, यह सप्तऋषि हुए ॥ ५ ॥ इन मन्वन्तरको भी प्रजापति कश्यपजीसे अदितिके गर्भमें भगवान् विष्णुका अवतार हुआ । विवस्वान्, अर्यमा पूषा इत्यादि जो द्वादश (१२) आदित्य हैं, सबके पीछे उनके बीच जन्म लेकर यह विष्णु भगवान् वामनरूप हुए थे ॥६॥ वह सात मन्वन्तरोंकी कथा तो मैं तुम्हारे निकट वर्णन कर चुका हूं । अब भगवान्‌के अवतारोंसे युक्त जो मन्वंतर आगेको होंगे, उनकी कथा कहता हूँ, वह आप सावधान होकर सुनिये ॥ ७ ॥ हे राजन् ! विवस्वान् (सूर्य) की दो स्त्रियाँ थीं, वे दोनों विश्वकर्माकी कन्या थीं, संज्ञा और छाया उनके नाम थे, कि जिनका वृत्तांत पहले कह चुका हूँ ॥ ८ ॥ कोई ऋषि कहते हैं कि विवस्वान्‌के तीसरी स्त्री भी थी, कि जिसका नाम वडवा था, परंतु हमारे मतसे तो संज्ञाका ही नाम पीछे वडवा हुआ जो कुछ भी हो, इन स्त्रियोंमें संज्ञाके तीन सन्तान हुई, यथा—यम, यमी (यमुना) और श्राद्धदेव । अब छायाकी सन्तानका वृत्तान्त कहते हैं, वह सुनो ॥ ९ ॥ छायाके एक पुत्रका नाम सावर्णि हुआ और तपती

नामक एक कन्या, जो कि संवरणकी स्त्री हुई। इस छायाके शनैश्चर नामक एक तीसरा पुत्र हुआ। विवस्वानके वडवा नामक जो तीसरी स्त्री थी उससे ही दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ ❋ ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित् ! आठवें मन्वंतरके आनेपर सावर्णि नामक मनु होंगे। निर्मोक, विरजस्क इत्यादि इस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे ॥ ११ ॥ उसके समयमें सुतपा, विरजा और अमृतप्रभा यह देवता और विरोचनका पुत्र बलि इन्द्र होगा ॥१२॥ यह राजा बलि कोई साधारण पुरुष नहीं है, स्वयं भगवान् विष्णुने इसके द्वारपर जाकर तीन चरण पृथ्वी माँगी थी, तब राजा बलिने समस्त पृथ्वी दान कर दी और सातवें मन्वन्तरमें भगवान्‌के प्रसादसे पाये हुए इन्द्रपदको त्याग यह सिद्धिको प्राप्त होंगे ॥१३॥ हे राजन् ! प्रथम तो वामनजीने राजा बलिको बांधा, फिर प्रसन्न होकर सुतलनामक पातालमें स्थापित किया; वह राजा बलि वहां स्वर्गसे भी श्रेष्ठ उस स्थानमें इन्द्रके समान वास करता है ॥१४॥ इस मन्वंतरमें गालव, दीप्तिमान् परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और हमारे पिता भगवान् बादरायण (व्यास) जी महाराज ॥१५॥ यह सप्तऋषि होंगे। ये लोग इस समय योगावलम्बन करके अपने-अपने आश्रमोंमें वास करते हैं ॥१६॥ हे राजन् ! इस आठवें मन्वन्तरमें देव गुह्यसे सरस्वतीके गर्भमें भगवान् उत्पन्न होकर सार्वभौम नामसे विख्यात होंगे, वह ईश्वर पुरंदरसे स्वर्ग छीनकर फिर राजा बलिको दे देंगे ॥ १७ ॥ अब नवम मनुका वृत्तांत कहते हैं दक्षसावर्णि नववें मनु होंगे। वरुणसे उनकी उत्पत्ति होगी। उनके पुत्र भूतकेतु, दीप्तिकेतु इत्यादि होंगे ॥ १८ ॥ इस मन्वन्तरमें पार, मरीचि गर्भ इत्यादि देवता होंगे। अद्भुत इनके इन्द्र और द्युतिमान् प्रभृति ऋषि होंगे ॥१९॥ और आयुष्मान्‌से अम्बुधाराके गर्भमें साक्षात् भगवान् विष्णु जन्म लेकर ऋषभदेवजीके नामसे विख्यात होंगे और तात्कालिक अद्भुत नामक इन्द्रको सर्वसंपत्ति और समृद्धिमान् त्रिलोकीका भोग करायेंगे ॥ २० ॥ हे नृप ! दशवाँ मनु उपश्लोकका पुत्र ब्रह्मसावर्णि होगा; भूरिषेण आदि इस मनुके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान् प्रभृति ब्राह्मण होंगे अर्थात् हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति इत्यादि ऋषि और सुवासन विरुद्धादि देव और शम्भु देवराज होंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ दशवें मन्वन्तरमें भगवान् विभु विषूचीके गर्भमें अंशांशसे जन्म ग्रहण कर विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध होंगे और उसी समयके देवराज शम्भुके साथ उनकी मित्रता होगी ॥ २३ ॥ ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा, उसके सत्य धर्मादि दश पुत्र होंगे ॥२४॥ इस मन्वन्तरमें विहंगम, कालंगम और निर्वाणरुचि प्रभृति देवता होंगे, वैधृति उनका इन्द्र होगा, अरुणादि ऋषि होंगे ॥ २५ ॥ और भगवान् हरि एकांशसे वैधृतिके गर्भसे जन्म ले आर्यकके पुत्र हो धर्म सेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे। हे राजन् ! उस समय भगवान् हरिका यही अंश त्रिलोकीको धारण करेगा ॥ २६ ॥ २७ ॥ फिर बारहवें रुद्रसावर्णि मनु होंगे जिनके पुत्र देववान् उपदेश और देवश्रेष्ठादि होंगे ॥२८॥ उस मन्वन्तरमें ऋतधामा इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे तथा तपोमूर्ति, तपस्वी व आग्नीध्रक आदि ऋषि होंगे ॥२९॥ और भगवान् हरिका अंश सत्यसह

---

* शंका—शनैश्चर सूर्यनारायणके तो पुत्र तथा सावर्णि मनुके छोटे भाई हैं, ऐसे कुलमें जन्म लेकर फिर नित्यप्रति संसारके लोगोंको क्यों दुःख देते हैं?

उत्तर—त्रिलोकीको उन्मत्त देखकर शनैश्चरने विचार किया कि सब प्राणी अभिमान वश परमात्माको भूल गये, तब शनैश्चरने ब्रह्मासे बरदान माँग संसारमें जो उन्मत्त हैं, उनके अभिमान नष्ट करनेके लिये उन दुष्ट जीवोंको दुःख देते हैं और जो सज्जन पुरुष हैं उनको किसी प्रकार दुःख नहीं देते।

विप्रकी सूनृता नामक कन्यामें उत्पन्न होगा, वह भगवान् स्वधामा नामसे विख्यात होंगे, जिनके कारण इस मनुका समय अत्यन्त प्रसिद्ध होगा ॥३०॥ तेरहवां मनु देवसावर्णि होगा। चित्रसेन, विचित्रादि उसके पुत्र होंगे॥३१॥ मन्वन्तरमें सुकर्मा सुत्रामादि देवता इस दिवस्पति देवराज और निर्मोक तत्त्वदर्शादि ऋषि होंगे ॥ ३२ ॥ इस मन्वन्तरके समय भगवान् हरि बृहतीके गर्भमें एक अंशसे अवतार लेकर देवहोत्रके पुत्र होंगे और योगेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो तात्कालिक दिवस्पति नामक इंद्रका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३३ ॥ फिर इंद्रसावर्णि नाम चौदहवां मनु होगा। उरु, गम्भीरब्रध्न प्रभृति उसके पुत्र होंगे॥३४॥इस मन्वंतरमें पवित्र चाक्षुष प्रभृति देवता शुचिनायक देवराज और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध,मागध प्रभृति ऋषि होंगे ॥३५॥ हे महाराज ! इस कालमें भगवान् हरि विनताके गर्भसे अवतार धारण करके सत्रायणके पुत्र होंगे और बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध हो क्रिया-कलापका विस्तार करेंगे ॥३६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वर्तमान, भूत, भविष्य इन तीनों कालोंके अनुगत चौदह (१४) मनुओंका वृत्तांत हमने आपके सामने वर्णन किया, इन चौदह मन्वन्तरोंके समयका प्रमाण एक सहस्र युगका है॥३७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा-पृथक्-पृथक् मनुकी कथा, यहि चौदह अध्याय ।
वर्णन करि हौं यथामति, भिन्न-भिन्न समुझाय ॥

श्रीशुकदेवजी महाराजके मुखसे इतनी कथा श्रवण कर राजा परीक्षित हाथ जोड़ फिर बोले-हे भगवन् ! इन मन्वन्तरोंके लोक जिस प्रकारसे जिस करके जिस कर्ममें नियुक्त होते हैं, वह अनुग्रह करके आप मुझसे कहिये ॥१॥ राजा परीक्षितकी ऐसी प्रार्थना सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग ! समस्त मनु, मनुके पुत्र मुनि, इन्द्र और सब देवता यह परम पुरुष ईश्वर करके यज्ञादि अवतार द्वारा नियोजित हुआ करते हैं ॥२॥ इन सब मन्वंतरोंमें यज्ञादि जो पौरुषी मूर्ति अर्थात् ईश्वरके अवतार लेनेको वर्णन की गयी हैं उन समस्त, मूर्तियों द्वारा नियोजित हो मनु आदि लोग जगत्का कार्य किया करते हैं ॥३॥ हे महाराज ! चारों युगोंके अन्तमें श्रुतिगण कालग्रस्त हुए थे, इन मन्वन्तरोंमें ऋषिलोग अपने-अपने तपसे उन सबका दर्शन किया करते हैं। उन श्रुतियोंके ही द्वारा सनातन धर्म फिर प्रगट होता है ॥४॥ भगवान् हरिसे प्रेरित हुए मुनिलोग चार पावोंवाले धर्मको साक्षात् अपने-अपने समयमें पृथ्वीपर फैलाते हैं ॥५॥ प्रजापाल अर्थात् मनुके पुत्रगण जबतक कि मन्व-न्तरका अन्त नहीं होता; तबतक पुत्र-पौत्रादिकके कर्मसे उस धर्मका पालन करते हैं और देवता लोग यज्ञभाग ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्की दी हुई त्रिलोकीकी बड़ी सम्पत्तियोंको भोगते हुए इन्द्रदेवता तीनों लोकोंका पालन करते हुए जलकी वर्षा करते हैं ॥७॥ हे राजन् ! भगवान् हरि प्रत्येक युगमें सनकादिक सिद्धरूप धारण करके ज्ञानोपदेश करते हैं, याज्ञव-ल्क्यादि ऋषिरूप धारण करके योगोपदेश करते हैं। मरीच्यादि प्रजापतिरूपी होकर प्रजा-सृष्टि, राजमूर्ति होकर चोरोंका वध और कालरूपी होकर समस्तका संहार किया करते हैं, उस कालमें उनके शीतोष्णादि गुण अलग-अलग हो जाते हैं ॥८॥९॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! लोग अनेक शास्त्रोंके साथ उन हरिके तत्त्व निरूपण करनेका यत्न करते हैं, परन्तु नामरूपात्मिका

माया करके उनके आत्माके मोह जानेके कारण बहुत यत्न करके भी उनको नहीं देख पाते ॥ १० ॥ हे महाराज ! कल्प और अवान्तर कल्पका प्रमाण यह आपके सामने मैंने कहा, कि जिसमें पुरावृत्तके जाननेवाले चौदह मन्वन्तर वर्णन किया करते हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
अष्टमस्कन्धे मनुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा–कियो यज्ञबलि नृपति जिमि, जय कीन्हों सुरलोक।
सो पन्द्रह अध्यायमें, सुनकर होहु विशोक ॥

यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्राह्मण ! भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके ईश्वर हैं उन्होंने दीनके समान बन तीन चरण पृथ्वी राजा बलिसे किस लिये मांगी थी ! और मुंह-मांगी वस्तु पाकर फिर राजा बलिको किस लिये बांधा ? ॥१॥ हे योगिन् ! हम इस वृत्तांत के सुननेकी अभिलाषा करते हैं, इस बातको जाननेके लिये हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, क्योंकि पूर्णस्वरूप ईश्वरकी याचना और निरपराधी राजा बलिको बांधना, यह दोनों बड़े ही आश्चर्यकी बातें हैं ? ॥२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! युद्धमें राजा बलिका इन्द्रसे पराजय तो हुआ था; परंतु शुक्राचार्यके अनुग्रहसे वह दानव (बलि) उस युद्धके पीछे उन (शुक्राचार्य) का चेला हो सब तन,मन,धन अपना उनको अर्पण कर यत्नपूर्वक शुक्राचार्यकी उपासना करने लगा ॥ ३ ॥ राजा बलिकी सेवासे शीघ्रही भृगुवंशी ब्राह्मण प्रसन्न हो गये, वह महान् ब्राह्मण यह जानकर कि राजा बलि स्वर्गके जीतनेकी इच्छा करता है, संतुष्ट हुए और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ शुक्राचार्यजी महाभिषेकद्वारा यथाविधिसे राजा बलिका अभिषेक कर उससे विश्वजित् यज्ञकी विधिसे यज्ञ कराने लगे ॥ ४ ॥ जब उस यज्ञकी अग्निमें उचित हवि होम दी गयी तब अतिशीघ्र उस अग्निमेंसे सुवर्णके पटसे बँधा हुआ एक इन्द्रकेरथके घोड़ोंके समान हरे वर्णके घोड़े और सिंहकी मूर्ति जिसपर विराजमान ऐसी एक ध्वजा ॥ ५ ॥ सुवर्णके बंदोंसे बँधा हुआ दिव्य धनुष,एवं अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दो तूण (तरकस) और दिव्य कवच यह वस्तु निकलीं। जब राजा बलिने यज्ञाग्निसे इन सब सामग्रियोंको पाया, तब उनके दादा परम भक्त प्रह्लादजीने उनको एक फूलोंकी माला दी, कि जिसके गूँथे हुए फूल कभी नहीं कुंभलाते थे और शुक्राचार्यने एक शंख दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! भृगुवंशीय ब्राह्मणोंने राजा बलिको इस प्रकारसे रणकी सामग्रियाँ दिलवायीं और फिर उनका स्वस्त्ययन किया, तब राजा बलिने प्रणाम कर उन सबकी प्रदक्षिणा की, फिर चरण छूकर अपने दादा प्रह्लादको प्रणाम किया ॥ ७ ॥ फिर भृगुजीके दिये हुए दिव्य रथपर सवार हो शोभायमान माला पहन कवच धारण किया, फिर धनुष और कवच ग्रहण करके पीठमें तरकस बांधा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सुवर्णके भुजबंदोंसे राजा बलिकी दोनों भुजायें दीप्तिमान हो रही थीं, दोनों कानोंमें मकराकार कुण्डल दमक रहे थे, इस प्रकार राजा बलि रथारूढ़ हो कुण्डमें विराजमान अग्निके समान शोभायमान होने लगा ॥ ९ ॥ जिनका बल और ऐश्वर्य राजा बलिके ही समान था और जो गगनमण्डलको अपनी दृष्टिसे पान कर और दिशाओंको मानो भस्म ही कर देते थे ॥ १० ॥ ऐसे दैत्ययूथपतिगण अपने-अपने यूथोंके साथ जाकर राजा बलिके साथ मिल गये। राजा बलि उन सब असुरोंकी बड़ी भारी सेनाको संग ले सब

सम्पत्तियोंसे भरी-पुरी अमरावतीकी ओर चला। राजा बलिके चलनेके समय मानो पृथ्वी स्वर्ग दोनों कम्पायमान हो रहे थे ॥ ११ ॥ हे राजन्! इंद्रपुरीके विभवका क्या वर्णन किया जाय? यह पुरी शोभायमान नन्दनादि उपवन व उद्यान समूहोंसे युक्त होकर अतिशय रमणीय हो रही थी, उन उपवनों व उद्यानोंमें पक्षियोंके जोड़े कलरव कर रहे थे और मतवाले भौंरे मीठी गुञ्जारसे अपूर्वही गान गा रहे थे॥१२॥ वहां जो देवताओंके वृक्ष हैं उन सबकी शाखायें प्रवाल और फलफूलोंके भारी बोझसे झुक रही थीं और वहांके सब सरोवरोंमें सुरसेवित स्त्रियाँ परमकौतूहलसे विहार कर रहीथीं, उन सरोवरोंमें जो कमलिनी खिल रही थीं, वे हंस, सारस, चक्रवाक और कारंडव आदि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त थीं ॥१३॥ हे राजन्! उस इन्द्रपुरीके चारों ओर आकाशगंगा है, मानो यही अमरावतीकी खाँई है। इस इन्द्र पुरीके चारों ओर अतिऊंची चहारदीवारी है, उस चहारदीवारीके ऊपर सामरीक अड्डे (बुर्ज) बने हुए हैं ॥ १४ ॥ यह पुरी विश्वकर्माजीकी बनाई हुई थी, यहांके द्वारोंके कपाटोंपर सुवर्णके पत्ते जड़े हुए थे, वहांके गोपुर (फाटक) स्फटिक मणिके बने हुए थे और उस पुरीमें बड़े-बड़े सुन्दर राजमार्ग बने हुए थे॥१५॥ वह पुरी सभा, चौक, गली इनसे सम्पन्न थी, दश करोड़ गन्धर्व और अप्सरा वहांपर रहते थे अनन्त विमान वहांपर धरे थे, हीरा, मूंग मोती भी वहां ढेरके ढेर रखे थे, और बाजार समस्त सम्पत्तियोंसे भरे हुये थे ॥ १६ ॥ हे राजन्! इंद्रपुरीकी स्त्रियाँ बहुत रूपवती थीं, जिनका यौवन और सुकुमारता कभी नष्ट नहीं होती, जिनके श्यामवर्ण थे और वचन भी निर्मल थे, वे इस प्रकार शोभायमान् होती थीं कि जैसे शिखासहित अग्नि प्रकाशमान होती है ॥ १७ ॥ उस अमरावती पुरीमें देवता लोगोंकी स्त्रियोंके केशोंसे हुई सुगंधित मालाओंकी सुगंध ग्रहण किये हुए पवन प्रत्येक मार्गमें बह रहे हैं ॥ १८ ॥ सुवर्णके झरोखोंसे निकले हुए श्वेत अगरके धुएँसे ढके हुए राजमार्गमें देवताओंकी प्यारी अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड उस पुरीके राजमार्गमें चले जाते थे ॥ १९ ॥ यह पुरी मुक्तामय वितान (चंदोवा) सुवर्णमय ध्वजा और विविध पताकाओंसे सजे-धजे हुए विमानोंके अग्रभाग (छज्जा) से व्याप्त थी और मोर, कबूतर, भौंरे आदिके शब्दसे शब्दायमान थी और विमानमें बैठी हुई स्त्रियोंके मनोहर गीतोंसे मंगलस्वरूप हो रही थी ॥ २० ॥ अधिक करके यह पुरी मृदंग, शंख, ढोल, दुन्दुभी इत्यादिकी ध्वनि और तालसहित बीणा, मुरज, वंशीके नाद, गन्धर्वों के गीत, नृत्य आदिकोंसे अतिमनोहर हो रही थी, उसमें ऐसी प्रभा प्रकाशित होती थी कि मानों इसने सबकी कान्तिको जीत लिया है ॥ २१ ॥ हे राजन्! इस पुरीमें अधार्मिक, भूतद्रोही, खल, अभिमानी, कामी लोभी जन नहीं जा सकते, जिनमें यह दोष नहीं होते वे ही लोग वहांपर जाते हैं ॥२२॥ सेनापति बलिने इस देवपुरीमें जाकर सेनाके द्वारा उस पुरीका बाहरी भाग चारोंओरसे घेर लिया और देवताओंकी स्त्रियोंको भय दिखानेके लिये शुक्राचार्यका दिया हुआ शंख बजाने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजा बलिका उद्यम जान देवराज सब देवता लोगोंको साथले अपने गुरु बृहस्पतिजीसे जाकर कहने लगे ॥२४॥ कि हे भगवन्! हम अपने वैरी राजा बलिका फिर बड़ा भारी उद्यम देखते हैं। हम अनुमान करते हैं कि उसका यह उद्यम हम लोग नहीं सह सकेंगे। हे गुरो! किस लिये राजा बलिका ऐसा तेज बढ़ गया ॥ २५ ॥ हमको जान पड़ता है कि किसी उपायसे इस दैत्यराज बलिको यहाँसे दूर नहीं कर सकेगा, क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि यह बलि मुखसे मानो सब जगत्को पिये लेता है और जीभसे दशों दिशाओंको चाटता

है, नेत्रोंसे दशों दिशाओंको भस्म किये देता है। निःसन्देह ऐसा ज्ञात होता है कि, यह दानव प्रलयके अग्निके समान उठा है। हे गुरो! यह हमारा शत्रु इस प्रकार दुर्द्धर्ष कैसे हुआ ? इस शत्रुमें इस प्रकारका सामर्थ्य कैसे हुआ ? और ऐसा तेज व साहस किस कारण हुआ ? क्योंकि सामर्थ्यादिके होनेसे ही युद्धकी सामग्रियाँ हो रही हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥२६॥२७॥ यह सुनकर श्रीबृहस्पति जी महाराज कहने लगे कि देवराज इन्द्र ? तुम्हारे इस वैरीकी उन्नति होनेके कारणको हम जानते हैं। यह दानव ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंका शिष्य (चेला) है, उन ब्राह्मणोंने स्नेहके वश होकर अपने शिष्यका तेज बढ़ा दिया है ॥२८॥ इसलिये स्वयं हरिके अतिरिक्त तुम अथवा तुम्हारे ही समान कोई पुरुष तेजस्वी राजा बलिके जीतनेको समर्थ नहीं होगा, अब ब्रह्मतेज सम्मुख आया है उसको कौन जीत सकता है ? जिस प्रकार लोग कालके सामने खड़े नहीं हो सकते उसी प्रकार कोई उस ब्रह्मतेजके आगे खड़े होनेको समर्थ नहीं होगा ॥ २९ ॥ बस अब हम आपको यही सम्मति देते हैं कि जबतक शत्रुका विनाश हो तबतक कालकी प्रतीक्षा कर स्वर्गको छोड़ तुम अदृश्य हो जाओ ॥ ३० ॥ ब्राह्मणोंके ही बलसे बलिका बल बराबर बढ़ गया है कि जिससे यह अब महाविक्रमशाली हो गया है, ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे यह स्वयं अपने वंशके साथ नाशको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥३१॥ अर्थ और कामके जाननेवाले गुरु बृहस्पति जीने जब इस प्रकार से करने योग्य कार्य बताकर श्रेष्ठ सम्मति दी, तब सब कामरूपी देवता लोग स्वर्गको छोड़कर अन्तर्धान हो गये ॥३२॥ शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जबसे देवतालोग अदृश्य हो गये तब विरोचनका पुत्र राजा बलि स्वर्गमें विराजमान हुआ और तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया ॥३३॥ हे राजन् ! शिष्योंपर स्नेह करनेवाले भृगु लोगोंने अपने आज्ञाकारी शिष्य विश्वविजयी बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेवाले उससे शत अश्वमेध यज्ञ कराये ॥ ३४ ॥ शत अश्वमेध यज्ञ करनेके प्रभावसे राजा बलिकी कीर्ति दशों दिशाओंमें फैल गयी और वह नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान विराजमान हुआ ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण लोगोंने जो बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करा दी इसलिये राजा बलि अपनेको कृतार्थ मानकर उस सम्पत्तिको भोगने लगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–सोलहवें सुत–दुर्दशा, देखि अदिति भय मान ।
कश्यपकी विनती करी, कश्यप दीन्हों ज्ञान ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजा परीक्षित् ! जब देवता लोग इस प्रकारसे छिप गये और दैत्योंने स्वर्गपुरीको छीन लिया; तब इंद्रकी माता अदिति अनाथके समान हो परितापको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ इनके पति कश्यपजी बहुत कालके पीछे समाधि बिसार एक दिन उत्सवहीन व आनन्दरहित अदितिके आश्रममें आये ॥ २ ॥ और यथाविधि पूजित हो आसनपर बैठ अपनी स्त्रीका मलिन मुख देखकर पूछने लगे कि ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! लोकमें ब्राह्मण लोगोंका तो कोई अमंगल नहीं हुआ ! अधर्म तो प्राप्त नहीं हुआ ? और मृत्युके वशमें पड़े लोगोंका तो कोई अशुभ नहीं हुआ ? अथवा तुम्हारे गृहमें धर्म, अर्थ,

कामकी तो कोई अकुशल नहीं हुई है? हे गृहिणी! गृहस्थाश्रम साधारण नहीं है, इस गृहस्थाश्रमसे अयोगी लोग भी स्वधर्मादि करके योगके फलको पाते हैं ॥ ५ ॥ हे सति! इतनी मलिन क्यों हो? अथवा तुम्हारे कुटुम्बके विषय अनुरागी रहनेपर कोई अतिथि विना पूजा और आदर पाये तुम्हारे घरसे तो नहीं चला गया? गृहसे अतिथिका विमुख होकर चला जाना वास्तवमें क्षोभकी बात है ॥ ६ ॥ जिस घरमें केवल जलसे भी अतिथिका सत्कार नहीं होता, वह गृह शृगालराजके भट्ठेके समान है ॥ ७ ॥ हे साध्वि! तुम्हारे अनमने होनेका क्या कारण है? हमारे परदेशमें चले जानेपर उद्विग्नचित्त हो क्या? किसी दिन यथासमयपर तीनों अग्नियोंमें हवि देना तो नहीं भूल गयी? ॥ ८ ॥ गृहस्थ पुरुषको तीनों अग्नियोंमें अवश्य होम करना उचित है, क्योंकि ब्राह्मण और अग्नि सर्वदेवमय विष्णु भगवान्‌का मुख है, अग्निकी पूजा करनेसे पुरुषगण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले लोकोंको प्राप्त होते हैं ❋ ॥ ९ ॥ हे मनस्विनी! तुम्हारे पुत्र तो सब मंगलसे हैं? मुखमलिनतादि लक्षणोंको देखकर जान पड़ता है कि तुम्हारा अंतःकरण सावधान नहीं है, बताओ तो सही, ऐसी अनमनी किसलिये हो रही हो? ॥ १० ॥ यह सुनकर अदितिने कहा कि हे स्वामिन्! गो, ब्राह्मण, धर्मादि सबका ही मंगल है। गृहमेधिन्, जो-जो गृह धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका उद्भव स्थान है वह भी कुशलसे है, अर्थात् धर्मादि त्रिवर्ग भी यथारीतिसे निर्बाह होते हैं ॥ ११ ॥ और मैं जो आपका ध्यान करती हूँ, उसके प्रभावसे अग्नि अतिथि, भिक्षु प्रभृति जो कोई भी हैं, वे सबही बलि (भोजन) की कामना करते हैं और अघाये हुए हैं ॥ १२ ॥ आप हमारे प्रजाध्यक्ष हैं और ऐसा ही धर्मोपदेश करते हैं, फिर भला हमारे मनकी कामना पूर्ण क्यों नहीं होती? ॥ १३ ॥ हे प्रजेश! सब प्रजा आपके ही मन और शरीरसे उत्पन्न हो सत्त्व, रज अथवा तमोगुणका अवलम्बन करती है। सुरादि सब प्रजाओंमें यद्यपि समानभाव हैं, तो भी महेश्वरगण भक्त पुरुषके प्रति विशेष अनुग्रह करते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये मैं भक्ति करके आपको भजती हूँ, सो आप मेरी भलाईका विचार करें। हे प्रभो! मेरी सौतके पुत्र दैत्य लोगोंने हमारे पुत्रोंकी लक्ष्मीको हरण किया और स्थान भी छीन लिया, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा करें और दितिके पुत्रोंने हमको निकाल दिया है, इसी कारण मैं दुःखके समुद्रमें डूब रही हूँ। हे ब्रह्मन् दानवोंने प्रबल होकर हमारे पुत्रोंका ऐश्वर्य, यश, लक्ष्मी और स्थान जो-जो वस्तु थीं, वे सब हरण कर ली हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे कल्याणकारिन्! हमारे पुत्र उन सबको जिस प्रकार फिर प्राप्त हों वैसा ही कल्याण आप अपनी बुद्धिसे विचारें ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब अदितिने इस प्रकारसे कश्यपजीकी प्रार्थना की, तब महर्षि कश्यपजी विस्मित होकर बोले कि अहो! भगवान् विष्णुकी माया कैसी बलवान् है? कैसा आश्चर्य है, यह जगत्

* शंका—अदितिसे कश्यपजीने कहा था कि, हे प्रिये! हम किसी दूसरे ग्रामको गये थे [illegible] तुमने अग्निमें होम नहीं किया, इसलिये उदासीन बैठी हो क्या? लेकिन विना वेदमन्त्रोंसे तो होम होता नहीं और वेदमन्त्र पढ़नेका स्त्रियोंको अधिकार नहीं तो फिर ऐसा अनुचित वाक्य कश्यपजीने क्यों कहा?

उत्तर—प्रायश्चित्तकदंब श्लोक एक [illegible] [illegible]००००० [illegible]था विधानपारिजातक एक लक्ष १००००० श्लोक अथवा दशस्मृति बावन सहस्र ५२००० श्लोक और बड़े-बड़े धर्मशास्त्र हैं, उन धर्मशास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि यदि स्त्रीका पति एक महीनेके लिये दूसरे ग्रामको चला जाय, और अपने अग्निहोत्रकी अग्नि आदि सामग्री [illegible] ले जा सके तब स्त्रीको उचित है कि अपने पतिके नामसे मन्त्र पढ़कर होम कर दे, पतिके होमका विघ्न किसी प्रकार न होने पावे, ऐसा धर्मशास्त्रका मत जानकर कश्यपजीने अदितिसे पूछा था।

स्नेहकी फाँसीमें बँध रहा है ॥१८॥ हे भद्रे ! कहां तो पंचभूतका बना हुआ देह और प्रकृतिसे परे वह आत्मा और कौन किसका पति है और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोह ही इन सबका कारण है ॥१९॥ हे राजन् ! महर्षि कश्यपजीने जब इस प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेश कर देखा कि इससे अदितिको सन्तोष न हुआ तब फिर बोले कि हे भद्रे ! सब प्राणियोंके अंतर्यामी, जगत्के गुरु, आदिपुरुष, वासुदेव भगवान्‌की तुम पूजा करो ॥ २० ॥ वे दीनदयालु अर्थात् दीनोंपर दया करनेवाले भगवान् अवश्य ही तुम्हारी मनःकामना पूर्ण करेंगे। हम भली भांति जानते हैं कि भगवत्सेवा ही अमोघ है, इसके सिवाय और कुछ अमोघ नहीं है ॥ २१ ॥ यह सुनकर अदिति प्रसन्नमन हो कहने लगी कि हे ब्रह्मन् किस विधानसे जगद्गुरु भगवान्‌की उपासना करूं, जिस प्रकारसे वह सत्यसंकल्प हमारा मनोरथ पूर्ण करें ॥२२॥ और पुत्रोंसहित दुःखी हुई मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जायें, आप मुझको वैसे ही वह पूजा करनेकी विधि बतला दीजिये ॥ २३ ॥ यह सुनकर कश्यपजीने कहा कि हे भद्रे ! हमने पहले पुत्रकी इच्छा करके पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह बात पूछी थी, तो उन्होंने मुझको केशवतोषण नामक जिस व्रतका उपदेश किया था वही व्रत हम तुमसे कहते हैं, वह तुम सचेत हो मन लगाकर सुनो ॥ २४ ॥ फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें बारह दिनका पयोव्रत करे, इस व्रतमें भक्तियुक्त होकर कमललोचन भगवान्‌की पूजा करे ॥ २५ ॥ हे सति ! जो मिल सके तो जंगली शूकरकी खोदी हुई मिट्टी शरीरमें लगाकर नदीके जलमें स्नान करे और स्नान करनेके समय इस मंत्रको पढ़े ॥ २६ ॥

मन्त्रः—त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं मे पापानि प्रणाशय ॥ २७ ॥

हे देवि ! स्नानकी इच्छा करके आदिवराहजीने तुम्हारा रसातलसे उद्धार किया था, हे पृथ्वी ! तुमको नमस्कार है । तुम हमारा पाप दूर करो ॥ २७ ॥ इसके पीछे नित्य नैमित्तिक नियमोंको पालन कर सावधान चित्तसे मूर्तिमें, पृथ्वीमें सूर्यमें, जलमें, अथवा अग्निमें व गुरुमें जहां इच्छा हो वहां भगवान्‌की पूजा करे ॥ २८ ॥ पूजाके समय निम्नलिखित नव मन्त्रोंको पढ़कर भगवान्‌का आवाहनादि करना चाहियेः—

मन्त्रः—नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥

हे भगवन् वासुदेव ! आप बड़ेसे भी बड़े पुरुष हैं, सर्व प्राणियोंके निवास स्थान हैं, एवं सबके साक्षी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

मन्त्रः—नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥

आप चौबीस तत्त्वोंके जाननेवाले हैं, सांख्य योगका विस्तार करनेवाले हैं, ऐसे अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुष, आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

मन्त्रः—नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३१॥

वे विष्णुभगवान् यज्ञके फलका विस्तार करनेवाले हैं, और यज्ञरूपी हैं जिनके दो शिर (प्रायणीय और उदयनीय) हैं, तीन चरण (सवनत्रय) हैं, चारशृंग (चारों वेद) हैं, सात हस्त (सात छेद) हैं, त्रयी विद्या आत्मा है, उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

मन्त्रः—नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥

शिव और रुद्ररूपी उन भगवान्को नमस्कार है, जो शक्तिधर एवं सर्वविद्याओंके पति हैं और प्राणियोंके अधिपति हैं, उनको हमारा नमस्कार है ॥ ३२ ॥

मन्त्रः—नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥

जो जगत्के आत्मा योगेश्वर हैं, और जिनका शरीर ही योगका कारण है, उन हिरण्यगर्भको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

मन्त्रः—नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४ ॥

हे भगवन् ! आप आदि देव हैं, सबके साक्षीरूप हैं, नारायण, नर और हरि हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

मन्त्रः—नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

हे भगवन् ! आप केशव हैं, आपका शरीर मरकत मणिके समान श्यामवर्ण है, आप पीतांबर धारण किये हुए हैं, आप श्रीको प्राप्त हुए हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

मन्त्रः—त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।
अतस्तेश्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥

हे वरेण्य ! हे वरदश्रेष्ठ !! आप पुरुषोंको सब वर देते हैं, इस कारण वीरलोग कल्याणके लिये आपकी चरणरजको पूजते हैं ॥ ३६ ॥

मन्त्रः—अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥

अहो ! देवता लोग और लक्ष्मीजी जिनके चरणकमलके सौरभकी चाहना करती हैं, वे भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥

इन मन्त्रोंसे आवाहन कर सम्मान करे, इंद्रियोंके ईश्वर भगवान्को श्रद्धायुक्त हो पाद्य व आचमनादिसे तथा गंध-मालादिकसे पूजन स्नान कराये और "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस बारह अक्षरके मन्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करे ॥ ३८ ॥ गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर भगवान्को दूधसे स्नान कराये। फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप, नैवेद्यादि उपचारोंसे द्वादशाक्षर मन्त्रको पढ़ पढ़कर हितचित्तसे पूजन करे ॥ ३९ ॥ हे सति ! जो आपसे हो सके तो दूधमें खीर बनाकर उसका श्रीनारायणको भोग लगाओ। फिर घृत और गुड़के सहित उस खीरको निवेदन करके मूलविद्या अर्थात् बारह अक्षरके मन्त्रसे

होम करे ॥ ४० ॥ फिर निवेदन किये हुए पदार्थ भगवद्भक्तको भोजन कराये, अथवा स्वयं भोजन कर ले । हे भद्रे ! पूजा करनेके पीछे आचमन कराकर फिर ताम्बूल निवेदन करे ॥४१॥ फिर एकशत आठ (१०८ वार) द्वादशाक्षर मन्त्र जप करके पहले कहे व और दूसरे मन्त्रोंसे भगवान्‌की स्तुति करे । फिर भूपरिक्रमाकरके भूमिपर गिर साष्टांग दंडवत् प्रणाम करे और निर्माल्य ग्रहण करके फिर देवताका विसर्जन करे ॥ ४२ ॥ फिर खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन कराये कि जिनकी गिनती दोसे कम न हो ॥ ४३ ॥ फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले बन्धु बांधवों सहित अपने आप भी भोजन करे, फिर रात्रिमें ब्रह्मचारी रहकर प्रभातको प्रथम दिन ॥ ४४ ॥ प्रातःकाल स्नान कर पवित्र हो जाय, फिर गायके दूधसे भगवान्‌को स्नान कराये और पूजा करे, जबतक व्रत समाप्त न हो तबतक ऐसे ही करना चाहिये ॥ ४५ ॥ हे देवि ! केवल दूध ही पान करके विष्णु भगवान्‌का पूजन आदरपूर्वक करता हुआ व्रत करे और पहलेके ही समान अग्निमें होम करे और ब्राह्मण भोजन कराये ॥४६॥ इस प्रकार बारह दिनका पयोव्रत करे अर्थात् पड़वा तिथिसे शुक्ला त्रयोदशी तक होम, पूजन और ब्राह्मण-भोजनादिसे भगवान् वासुदेवकी आराधना करे ॥ ॥ ४७ ॥ इन बारह दिनतक ब्रह्मचर्यका पालन करना, पृथ्वीमें शयन करना और तीनों संध्याओंमें स्नान करना आवश्यक है ॥ ४८ ॥ वासुदेव–परायण होकर असाधु लोगोंसे संभाषण न करे, सर्व प्राणियोंकी हिंसा एवं ईर्ष्या न करे। त्रयोदशीके दिन पञ्चामृतसे विष्णु भगवान्‌को विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी बतायी हुई विधिसे शास्त्रानुसार स्नान कराये ॥ ४९ ॥ और धानादिकी कांक्षा छोड़कर बड़ी भारी पूजा करे, फिर दूधसे चरु तैयार कर भगवान् विष्णुको निवेदन करे ॥ ५० ॥ और अच्छे प्रकार पवित्र व सावधान हो पिछले कहे हुए मंत्रोंसे पूजा करे, जिससे परम पुरुष प्रसन्न हो जायँ वैसे ही गुणयुक्त नैवेद्यका भोग लगाये ॥ ५१ ॥ फिर वस्त्र, भूषण और गोदान करके ज्ञानसम्पन्न आचार्य और पुरोहित लोगोंको संतुष्ट करे। हे सति ! इन सबके प्रसन्न करनेसे भगवान्‌की आराधना अपने आप हो जाती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इन सब पुरुषोंको व और जो ब्राह्मण वहांपर उस समय आ जायँ, उन सबको अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम भोजन कराये। फिर ऋत्विज और गुरुको यथायोग्य दक्षिणादि देकर और जो पुरुष आ गये हों उनको अन्नादि देकर तृप्त करे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ दीन, अन्धे, कृपण, इन लोगोंको भोजन करानेसे भगवान् हरिका प्रसन्न होना जानकर इनको भी भोजन कराये और फिर आप जातिभाइयों सहित भोजन करे ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! व्रतके समय प्रतिदिन गाना, बजाना, नाचना, स्तुतिपठन, स्वस्तिवाचन और भगवतकथा इत्यादिसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ ५७ ॥ हे महाभागे ! इसका नाम पयोव्रत है; इससे ही परमपुरुषका आराधन होता है । पितामह ब्रह्माजीने हमको यह व्रत बताया था, हमने प्रीतिके वश हो तुम्हारे आगे वर्णन किया ॥ ५८ ॥ श्रीकश्यपजी बोले कि हे महाभागे ! तुम इस व्रतको भलीभांति करके इससे जितेन्द्रिय होकर भजनेके योग्य अव्यक्त भगवान्‌की आराधना करो ॥ ५९ ॥ इस व्रतका नाम सर्वयज्ञ है, यही सर्व व्रत, यही तपका सार है, यही बड़ा भारी दान और यही ईश्वरका तर्पण है ॥ ६० ॥ हे भद्रे ! जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वही नियम, वही उत्तम संयम, वही तप, वही दान, वही

व्रत और वही यज्ञ है ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम नियमसहित और श्रद्धापूर्वक इस व्रतको करो, भगवान् इससे शीघ्र ही प्रसन्न होकर तुमको मनोवांछित वरदान देंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे अदितिपयोव्रतवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–व्रत करनेसे अदितिपर, है प्रसन्न भगवान् ।
सो सत्रह अध्यायमें, धारो तनु सुखदान ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! अपने स्वामी महर्षि कश्यपजीके इस प्रकार कहनेपर अदितिने श्रद्धापूर्वक आलस्य त्याग इस बारह दिनके व्रतको आरंभ किया ॥ १ ॥ वह अपनी बुद्धिको सारथी बनाकर इंद्रियरूप दुष्ट घोड़ों को वशमें कर एकाग्रचित्तसे परमपुरुष ईश्वरके ध्यानमें मग्न हुई ॥२॥ और एकाग्रबुद्धिसे अखिलात्मा वासुदेव भगवान्में मन लगाकर बराबर पयोव्रतको करने लगी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस व्रतके करनेसे भगवान् आदिपुरुष शीघ्र ही पीताम्बर धारण किये हुए हाथमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये अदिति के सामने आकर प्रकट हुए ॥४॥ उनको देखते ही अदिति आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठी और प्रीतिसे विह्वल हो पृथ्वीमें गिरकर दण्डेकी नांई प्रणाम किया ॥५॥ हे राजन् ! फिर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण अदिति हाथ जोड़े हुए उठी परन्तु स्तुति करनेको ही समर्थ न हुई, बरन् उसके मुखसे बाततक न निकली, उसके दोनों नेत्रोंमें आनन्दके आंसू भर आये, शरीर पुलकायमान हो गया और उत्सवरूपी भगवान्का दर्शन् पाकर सब शरीर कम्पायमान होने लगा ॥६॥ हे कुरु श्रेष्ठ ! उन यज्ञपति, जगत्पति, रमापतिको देखकर कश्यपजीकी स्त्री अदिति नेत्रोंसे मानो पान करते बहुत देरके पीछे प्रीतिके भरे गद्गद वचनोंसे श्रीभगवान् की स्तुति करने लगी ॥७॥ अदितिने कहा कि हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अद्भुत ! हे तीर्थपाद ! हे तीर्थकीर्ति ! आपका नाम श्रवणगोचर होते ही मंगलकारी है, आपका उदय शरणमें आये हुए भक्त लोगोंके पापोंका नाश करने वाला है। हे आद्य ! हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप हमारा कल्याण करें। आप दीनदयालु हैं ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! यद्यपि आप विश्वस्वरूप हैं और विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं इच्छानुसार मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, तथापि आप स्वस्थ हैं अर्थात् आपका स्वरूप अप्रच्युत है, नित्य बढ़ता हुआ जो पूर्ण बोध है उससे आपने परमात्मामें मायारूप तम नित्य निरस्त किया है, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ९ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेसे मनुष्योंको ब्रह्माकीसी आयु, सुन्दर रूप, अतुल लक्ष्मी, स्वर्ग पृथ्वी, सर्वयोगके गुण, धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान यह सब प्राप्त हो जाते हैं, फिर वैरियोंपर विजय पानेका आशीर्वाद जो आपसे मिलेगा, इसमें क्या बड़ी बात है ? ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब अदितिने इस प्रकार स्तुति की, तब प्राणियोंके अन्तर्यामी कमललोचन भगवान् उनसे यह वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवजननि ! तुम्हारी सौतके पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो चिन्ता करती हो, वह भी छीन लिया है, उन अपने पुत्रोंके लिये अनेक दिनसे तुम जो चिन्ता करती हो, धन हम जानते हैं ॥१२॥ तुम्हारी वासना यह है कि दुर्मद दानव लोगोंको समरमें पराजित कर तुम्हारे पुत्रगण विजयको प्राप्त हों और तुम उनके सहित एक जगह रहो ॥ १३ ॥ और इन्द्रादि

तुम्हारे पुत्रगण विद्वेषियोंको जब संग्राममें मार डालें तब उन शत्रुओंकी स्त्रियाँ जो दुःखसे रोदन करें उन्हें तुम देखो ॥ १४ ॥ और तुम्हारा अभिलाष यह भी है कि तुम्हारे पुत्रगण अपनी जयलक्ष्मीको पाकर भलीभांति वृद्धिको प्राप्त हों और पहलेके समान स्वर्गमें विहार करें, कि जिसको देखकर तुम प्रसन्न होओ ॥ १५ ॥ परन्तु हे देवि ! हमको जान पड़ता है कि असुर-यूथलोगोंके ऊपर सहसा आक्रमण नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि सामर्थ्यवान ब्राह्मणलोग अनुकूल होकर उनकी रक्षा करते हैं फिर जहांपर ऐसी बात है, वहांपर विक्रम प्रकाश करनेसे सुख नहीं मिलेगा ॥ १६ ॥ किन्तु हे देवि ! तुमने पयोव्रत करके हमको बहुत संतोषित किया है, सो अब हम अवश्य इस विषयका उपाय करेंगे, क्योंकि हमारी पूजा करनेसे निश्चय इच्छानुसार फल मिलता है, हमारी पूजाका विफल होना उचित नहीं है ॥१७॥ हे देवि ! तुमने सन्तानकी रक्षा करनेके लिये जो पूजा की और प्रयोव्रत करके हमारी स्तुति की, इससे हम परम प्रसन्न हुए हैं । मैं अपने अंशसे तुम्हारा पुत्र होकर कश्यपजीके तपमें स्थित हो तुम्हारे पुत्रोंका पालन करूँगा ॥ १८ ॥ इसलिये तुम इस समय अपने पापरहित पति प्रजापति कश्यपजीके समीप जा उनकी सेवा करो और हमको भी इसी प्रकारसे अपने पतिमें अवस्थित हुआ चिन्तन करना ॥१९॥ हे देवि ! यह बात किसी औरके निकट किसी प्रकारसे भी प्रकट मत करना, क्योंकि देवता लोगोंका रहस्य भलीभांति छिपाये रहनेसे ही सिद्ध होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अदितिसे यह सब वचन कहकर भगवान् वासुदेव उसी स्थानमें अंतर्धान हो गये,उसके पीछे अदिति अपने गर्भमें दुर्लभ भगवान्का वास होना सुन मनमें कृतार्थ हो गयीं और परमभक्तिके साथ पतिके निकट गयीं ॥ २१ ॥ महर्षि कश्पजीकी अभ्यर्थ दृष्टि थी, अतः उन्होंने भी योगकी समाधिमें देख लिया कि भगवान् हरिका अंश हममें प्रविष्ट है ॥ २२ ॥ सावधान मनवाले वह मुनि यद्यपि सब पुत्रोंको समान देखते थे, तो भी जैसे 'सब कहीं रहनेवाला वायु काष्ठकी रगड़से वनकी जलानेवाली अग्निको उत्पन्न करता है, वैसे ही अदितिजीके गर्भमें दैत्योंका क्षय करनेवाला बहुत कालसे संचय किया हुआ वीर्य धारण किया ❋ ॥ २३ ॥ हे राजन् ! भगवान् सनातन विष्णुको अदितिके गर्भमें विराजमान हुआ जानते ही हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी गुह्यनामसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि उरुगाय भगवन् ! आपकी जय हो । हे उरुक्रम आपको नमस्कार है ! हे प्रभो ! आप ब्रह्मण्यदेव हैं, आपको नमस्कार है । हे त्रियुग ! आपको वारंवार नमस्कार है, नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! पूर्व जन्ममें इन अदितिका नाम पृश्नि था; आप उनके गर्भसे भी अर्भक होकर जन्मे थे, आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आप विधाता हैं, सब देवताओंमें प्रकाशमान हैं, आपको नमस्कार है । हे भग-

---

* शंका—भगवान्के जन्म होनेके लिये कश्यपजीने अदितिके शरीरमें वीर्य स्थापित किया, यह बड़ी भारी शंका है कि विना वीर्य स्थापन किये क्या भगवान्का जन्म नहीं हो सकता ? क्योंकि वीर्यसे जन्म तो चौरासी लक्ष योनिका होता है और भगवान् तो सर्वव्यापी हैं, उनके जन्म होनेके लिये वीर्यस्थापनका क्या काम था ?

उत्तर—भगवान् अनेक प्रकारका दुःख सहकर अपनी बनायी मर्यादाकी रक्षा करते हैं, यह बात शास्त्रमें और लोकमें सबको प्रगट है, कि विना वीर्य संसारकी उत्पत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती, इसलिये वीर्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये वीर्यसे आप प्रगट होते हैं, जो वीर्यकी मर्यादा तथा अपनी बनायी लोककी मर्यादा न रक्खे, तो परमेश्वर सब वस्तुमें विराजमान हैं फिर जन्म लेनेकी क्या आवश्यकता थी ? परमेश्वरको सब बातका अधिकार है वैकुण्ठमें बैठे-बैठे जो चाहें सो करें, इसलिये कश्यपजीने वीर्य स्थापित किया ।

वन् ! स्वर्ग, मृत्यु, पाताल यह तीनों लोक आपकी नाभिमें वर्त्तमान हैं और आप त्रिलोकीके ऊपर स्थित हैं, सब जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हुए हैं, हे सर्वव्यापी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ हे ईश ! आप इस भुवनके आदि, अन्त और मध्य हो आप ही अनन्तशक्ति पुरुष कहे जाते हैं, जैसे गंभीर प्रवाह जलमें गिरे हुए तृणादिको आकर्षण करता है, वैसे ही कालरूपी जो आप हैं, प्रलयकालमें इस विश्वको आकर्षित किया करते हैं ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आप स्थावर–जंगम सब प्रजा और प्रजापति अर्थात् लोगोंके उत्पन्न करनेवाले हैं । आपके जन्मादि नहीं हैं । हे देव ! जलमें डूबते हुए मनुष्यके लिये जैसे नाव प्राण बचानेका अवलम्बन है, वैसे ही आप स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंके परम आश्रय हैं, इसलिये निःसंदेह आपका यह अवतार देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके कारण हुआ है, आप बहुत शीघ्र स्वर्गसे निकाले हुए देवतालोगोंको फिर स्वर्गमें स्थापित कीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
अष्टमस्कन्धे अदितिवरदानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, बलिके यज्ञमँझार ।
श्रीवामनजी जिमि गये, सो संवाद उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्‌के कार्य और वीर्यकी स्तुति की तब जन्ममृत्युहीन वह भगवान् अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए । उनके नेत्र कमलदल के समान बड़े-बड़े थे, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुध देदीप्यमान हो रहे थे और कमरमें पीताम्बर पड़ा हुआ था ॥ १ ॥ उनका शरीर श्याम और गौर वर्ण था मकराकार कुण्डलोंकी श्री उनके वदनारविंदको प्रकाशमान कर रही थी, वक्षस्थलमें श्रीवत्सचिह्न विराजमान था और वलय व अंगद (बाजू) सहित उनके किरीट और काञ्ची मनोहर नूपुर यथास्थानमें शोभायमान हो रहे थे ॥२॥ और अत्यन्त सुन्दर वनमाला जो कि बहुतसे भ्रमरगणोंकी गुञ्जारसे शब्दायमान हो रही थी उससे श्रीनारायण विराजमान हो अपने शरीरसे प्रजापतिजी(कश्यपजी)के गृहके अन्धकारको दूर कर रहे थे,और उनकी गर्दनमें प्रसिद्ध कौस्तुभमणि पड़ी हुई थी ॥३॥ जैसे ही श्रीभगवान् इस प्रकारसे उत्पन्न हुए कि वैसे ही सब दिशायें और जलाशयोंने निर्मल रूप धारण किया, प्रजा हर्षित हुई और समस्त ऋतु अपने-अपने गुणोंसे (फलपुष्पादिसे) शोभायमान हुईं । स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी और सब पर्वतोंपर मनोहर शोभा होने लगी । देव, द्विज, गायें, इन सबके ही मनमें परमहर्ष हुआ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवन् किस समयमें उत्पन्न हुए वह तुम सुनो । भादों महीनेकी शुक्ल द्वादशी जो कि श्रवणद्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है, उसी तिथिको श्रवण नक्षत्रमें प्रथमांशके मध्य अभिजित् मुहूर्त्तमें श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया,उस कालमें अश्विनी आदि सब नक्षत्र और गुरु शुक्रादिक सब ग्रहोंने अनुकूल रहकर उनका जन्म उदार किया था, अर्थात् उनके जन्मकालमें ग्रह नक्षत्रादि सब ही शुभ पड़े थे ॥५॥ हे महाराज ! जिस द्वादशीमें भगवान् वामनजीने जन्म लिया वह प्राचीन कवि लोग कहते हैं कि उस द्वादशीके दिवाभागमें ही श्रीनारायणका जन्म हुआ था, उस समय सूर्य भगवान् मध्याह्नमें स्थित थे, अर्थात् भलीभांति दुपहर हो गया था, इस द्वादशीका नाम विजया है ॥ ६ ॥ जिस समय श्रीभगवान्‌ने जन्म लिया, उस समय शंख,

नगाड़े, भेरी, ढोल, आनक, तुरही वा और बाजोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ अप्सरायें प्रसन्न होकर नाचने लगीं और गंधर्व लोग गाना आरंभ करने लगे, मुनि लोगोंने स्तुति करनी आरंभ की, फिर देववृन्द, मुनिवर्ग, पितृगण, सब अग्नियें ॥८॥ सिद्ध विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण देवता लोगोंके सेवक व आदित्यगण नाच-नाचकर गुण गाने लगे ॥९॥ और प्रशंसा करकर फूल वर्षा-वर्षाकर कश्यपजीके आश्रम को छा लिया ॥ १० ॥ हे राजन् ! अपने गर्भसे उन परमपुरुषको उत्पन्न हुआ देखकर अदितिको विस्मय और हर्ष एक साथ हुआ । प्रजापति कश्यपजी योगमायासे अवतार लिये हुए उन श्रीभगवान् हरिको देखकर विस्मययुक्त हो यही वचन बोले कि हे भगवन् तुम्हारी जय हो ! हे राजन् ! भगवान् हरिने जो यह अवतार मनुष्यका धारण किया कि जिससे चित्त अव्यक्त था, अपनी द्युति, भूषण व आयुध सहित उस शरीरमें नटकी नाई दर्शनकारी मातापिताके सामने ही वामन वटुकरूप हो गये, उसकी गति दिव्य थी, ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं है ॥११॥ इन वामनजीका दर्शन करके महर्षि लोग आनन्द प्रकट करते-करते कश्यपजीके स्थानपर गये ॥१२॥ और उनको आगे कर नारायणका जातकर्म संस्कार कराने लगे ॥ १३ ॥ उसके उपरान्त जब इन वामनजीका यज्ञोपवीत हुआ, तब सूर्य नारायणने स्वयं इनको गायत्री सिखायी; वृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र (जनेऊ) दिया और कश्यपजीने मेखला पहनायी ॥ १४ ॥ भूमिने मृगचर्म दिया, सब वनोंके पति चन्द्रमाने दण्ड दिया, माताने कौपीन दी और उन जगतपतिको स्वर्गसे छत्रदान किया ॥१५॥ अधिक करके वेद-गर्भ ब्रह्माजीने कमण्डलु,सप्तर्षियोंने कुशा और सरस्वतीने अक्षमाला लेकर उन अविनाशीको उपहार दी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जब वामनजीका जनेऊ हो गया तब कुबेरने उनको भिक्षा-पात्र दिया और साक्षात् सती अम्बिकाजीने उनको भिक्षा दी ॥१७॥ यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचारी वामनजी इस प्रकार आदर-सत्कार पा, अपने तेजसे ब्रह्मर्षियोंकी सभाको भी अतिक्रमण करके शोभायमान होने लगे ॥१८॥ अग्निके परिसमूहके द्वारा कुशोंको बराबर कर समाधान करके होम करने लगे ॥१९॥ इसके उपरान्त वामनजीने सुना कि भृगुवंशियोंके प्रवर्तित किये हुए अनेक अश्वमेध यज्ञोंसे राजा बलि यज्ञ कर रहा है, इसलिये अखिल बलसे पूर्ण हो अपने भारसे पग-पगपर पृथ्वीमण्डलको कम्पायमान करते हुए राजा बलिके यज्ञस्थानमें वामनजीने गमन किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर्मदाके उत्तर किनारेपर भृगु कच्छ नामक क्षेत्रमें बलिके श्रेष्ठ ऋत्विज जो यज्ञको करा रहे थे; उन्होंने अपने उदय हुए सूर्यनारायणके समान इन वामनजीको देखा ॥२१॥ श्रीवामनजीके तेजसे सब ऋत्विज सभासदगण और यजमान असुरश्रेष्ठ राजा बलि यह सब तेजरहित हो गये और यह कहकर परस्पर तर्क-वितर्क करने लगे कि "क्या यज्ञ देखनेकी इच्छासे सूर्य भगवान् आ रहे हैं ? वा अग्नि है वा सनकादिक ऋषियोंका आगमन हुआ ?" ॥ २२ ॥ शिष्योंके सहित भृगुगण करके इस प्रकार विविध भांतिसे वितर्कित हो भगवान् वामनजी छत्र, दण्ड, जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए राजा बलिके अश्वमेधमण्डपमें आये ॥ २३ ॥ मुञ्जकी मेखला पहने हुए मृगके चर्मका उत्तरीय जो जनेऊके समान बायें कन्धेपर पड़ा था, ऐसे जटिल विप्र मायारूपी वामन उन हरिको ॥ २४ ॥ यज्ञशालामें प्रवेश करते हुए देखकर उनके तेजसे व्याकुल हो शिष्योंके सहित भृगुलोग उठ खड़े हुए और उनका आदर-सम्मान करने लगे ॥ २५ ॥

दर्शन करने योग्य मनोहर रूपवाले अनुकूल अङ्गयुक्त श्रीवामनजी महाराजको देखकर प्रसन्न हो राजा बलिने अपने हाथसे आसन दिया और कहा कि "भले आये महाराज ? विराजिये" यह कह कोमल तथा अमल चरणकमलको धोकर उन सुकुमार मनोहर हरिकी पूजा करने लगा ॥ २६ ॥२७॥ हे राजन् ! भगवान्‌के मंगलकारी चरणोदकको, जो कि कलिमलका नाश कनेवाला है, राजाबलिने अपने मस्तकपर चढ़ाया । हे महाराज ! आप इस बातको कुछ विचित्र न समझो,क्योंकि चन्द्रमौलि देवदेव गिरीश भूतेश्वर महादेवजी भी परम भक्तिसे इस चरणामृतको अपने मस्तकपर चढ़ाया करते हैं ॥२८॥ तब राजा बलि भक्तिके प्रकाशित होनेसे कुतूहलके कारण कहने लगा कि हे ब्रह्मन् ! आपका आगमन बड़ा ही सुखदायक हुआ मैं आपको नमस्कार करता हूँ, मैं आपका कौनसा कार्य करूं वह आज्ञा कीजिये । हे श्रेष्ठ ! हमको जान पड़ता है कि आप ब्रह्मर्षि लोगोंके मूर्तिमान तप हैं, अतः आज मैं कृतार्थ हो गया ॥ २९ ॥ आज जो मेरे स्थानपर आकर सुशोभित हुए इस कारण हमारे पितृगण तृप्त हो गये, आज मेरा कुल पवित्र हो गया और आज मेरा यह यज्ञ भलीभांतिसे पूर्ण हुआ॥३०॥ आज हमारा अग्नियोंमें भलीभांति होम करना सफल हुआ, हे ब्राह्मणकुमार ! आपके चरणोदकसे हमारा सब पाप धुल गया और आज आपके छोटे-छोटे चरणोंके पड़नेसे यह भूमि पवित्र हो गयी ॥ ३१ ॥ हे विप्रनन्दन ! हम अनुमान करते हैं कि आप कुछ मांगनेके लिये आये हैं जो इच्छा हो वही आप मुझसे लीजिये ! हे पूज्यतम ! गौ, सुवर्ण, श्रेष्ठ गृह, मीठा तथा उज्ज्वल अन्न और पान, कन्या, ऋद्धि, सिद्धिसे भरे हुए ग्राम, अश्व, हाथी व रथ जिसकी आपको आवश्यकता हो वह मुझसे मांग लो, मैं देनेको प्रस्तुत हूँ ❋ ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—ऊनविंशमें तीन पग, धरणी मांगी ईश ।
कियो शुक्रने मने जिमि, कहौं सुमिरि जगदीश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे धर्मयुक्त सुन्दर राजा बलिके वचन सुन श्रीभगवान् प्रसन्न होकर और सम्मान करके राजा बलिसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नरदेव ! तुम्हारे यह वचन अत्यन्त सुन्दर, धर्मयुक्त, यशके देनेवाले और कुलके योग्य हैं, तुम ऐसा क्यों न हो, भृगुगण और कुलके बढ़ानेवाले प्रशान्त अपने दादा प्रह्लादजीको तुमने पारलौकिक धर्ममें प्रमाण पाया है ॥२॥ हे राजन् ! तुम्हारे इस कुलमें ऐसा निःसत्त्व अथवा कृपण पुरुष कोई नहीं हुआ, कि जिसने प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंका कार्य न किया हो अथवा कुछ देनेको कहकर न दिया हो ॥३॥ हे नृप ! दानके अवसरमें वा युद्धके कालमें याचकके मांगनेपर न देनेवाला अमनस्वी (अधीर) पुरुष तुम्हारे कुलमें नहीं हैं । इसका प्रमाण देखो

---

* शंका—सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें ब्राह्मण राजाओंसे दान मांगते थे, तब राजालोग गुरुसे अनेक बार पूछकर अर्थात् सुपात्र कुपात्र विचारकर दान देते थे । जब ऐसे विचारकर दान देते थे तब वामन भगवान्‌ने तो बलिसे दान मांगा नहीं, बिना मांगे दान देनेको बलि क्यों उद्यत हुआ ?

उत्तर—धर्मशास्त्रका यह मत है कि, यदि गृहस्थ ब्राह्मण दान मांगे तब राजा दान दे, पर विरक्त ब्राह्मण दान न मांगे तो भी राजाको उचित है कि दान दे । ऐसे धर्मशास्त्रके मतको जानकर राजा बलि विरक्त वामनको न मांगने पर भी दान देनेको उद्यत हुआ ।

आकाशमें जिस प्रकार नक्षत्रनाथ चन्द्रमा दीप्तिमान होते हैं वैसे ही तुम्हारे कुलमें निर्मल यशसे युक्त होकर प्रह्लादजी प्रकाशमान हैं॥४॥ और तुम्हारे इस विख्यात वंशमें महावीर हिरण्याक्षने जन्मग्रहण किया, जो कि गदा धारण किये दिग्विजय करनेको अकेले ही समस्त पृथ्वीमें घूमे, परन्तु उसे कहीं भी कोई युद्ध करनेवाला बली न मिला ॥५॥ श्रीभगवान् विष्णुने जब पृथ्वीका उद्धार किया था, उस समय यह महावीर हिरण्याक्ष वहां आया था, परंतु अति कठिनाईसे उस हिरण्याक्षको हराकर उसके पुरुषार्थको दमन कर भगवान्‌ने अपने आपको विजयी नहीं माना ॥ ६ ॥ और इस हिरण्याक्षके सगे भाई हिरण्यकशिपुने जब उस (हिरण्याक्ष) के वधका वृत्तांत सुना, तब यह भ्राताके मारनेवालेका प्राण संहार करनेको क्रोध कर भगवान् विष्णुके स्थानपर गया ॥ ७ ॥ माया जाननेवालोंमें श्रेष्ठ व कालको पहचाननेवाले इस दानवको शूल धारण किये कालके समान आता हुआ देखकर भगवान् विष्णुने यह चिन्ता की ॥ ८ ॥ कि जहां-जहां पर हम जाते हैं, वहीं-वहीं पर प्राणियोंकी मृत्युके समान हम इस दानवको अपने साथ ही देखते हैं, इसकी दृष्टि बहिर्भागमें ही है, इससे मैं इसके हृदयमें प्रवेश करता हूं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! भगवान् वासुदेव इस प्रकारसे विचार करके दौड़ते हुए उस शत्रुकी नासिकाके छेदसे उसके हृदयमें घुस गये, तथापि उनका चित्त विशेष उद्विग्न और श्वासकी अग्निसे अन्तर्हित हो रहा था ॥१०॥ हे राजा बलि ! जब हिरण्यकशिपुने विष्णु भगवान्‌को न देखा, तब उनके सूने स्थानमें घूम-घामकर सिंहनाद करने लगा और पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, विवर, समुद्र सबमें उसने खोज किया, परंतु विष्णु भगवान् तो उसके अंतरमें ही पैठ गये थे, इससे कहीं नहीं दीख पड़े ॥ ११ ॥ विष्णुको न देखकर हिरण्यकशिपुने यह कहा कि मैंने सब संसारको ढूँढा, परंतु अपने भाईके मारनेवालेका कहीं पता न पाया, हमको जान पड़ता है कि हमारा भ्रातृघाती उस स्थानमें चला गया है, कि जहांसे पुरुष फिर नहीं लौटता ॥ १२ ॥ हे राजन् ! देहाभिमानी पुरुषोंका मरनेतक वैरभाव और अहंकार अभिमानसे बढ़ा हुआ क्रोध इसी प्रकारसे हुआ करता है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है। बस, अज्ञानकी निवृत्ति होनेके पहले पौरुषका छोड़ना केवल मूर्खता है, इसीलिये हिरण्यकशिपुने अपने शत्रुकी खोज नहीं छोड़ी ॥ १३ ॥ हे असुरराज ! तुम्हारे पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन ऐसे ब्राह्मणवत्सल थे, कि अपना वैरी जान लेनेपर भी मांगनेपर द्विजवेषधारी देवता लोगोंको उन्होंने अपनी परमायु दे दी थी ॥ १४ ॥ तुमने भी गृहमेधी ब्राह्मण और पूर्वज शूरगण और उद्यमयुक्त यशस्वान महात्माओंके धर्मका आचरण किया है ॥ १५ ॥ इसलिये हम तुमसे कुछ भूमिकी भिक्षा मांगते हैं। हे दैत्येन्द्र ! हम इस अपने चरणके परिमाणकी तीन पग पृथ्वी चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तुम वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हो और इस जगत्‌के सत्य-सत्य ईश्वर भी हो, परन्तु हम आपसे इसके अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं मांगते, क्योंकि विद्वान् पुरुष उतना ही लेते हैं, जितनेका उनको प्रयोजन होता है और उतनेके ग्रहण करनेसे किसी प्रकारका पाप भी नहीं होता ॥ १७ ॥ राजा बलि यह सुनकर अति विस्मित होकर बोले कि बड़ा आश्चर्य है, अजी विप्रकुमार ! तुम्हारी यह बातें वृद्ध लोगोंकी बातोंके समान हैं, तुम बालक हो और तुम्हारी बुद्धि अजानके समान है, तुम अपने स्वार्थको कुछ नहीं जानते "राजा बलिकी इस बातका यह तात्पर्य है कि तुम

बालकके समान हो, वास्तवमें बालक नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि पण्डितोंकी बुद्धिके समान है, तुम अपना स्वार्थ नहीं जानते अर्थात् भक्तोंके अर्थ को ही समझते हो, क्योंकि स्वयं परिपूर्ण हो, भक्तका अर्थ पूर्ण करनेके अतिरिक्त स्वयं आपका स्वार्थ अप्रसिद्ध है" ॥१८॥ कैसे खेदकी बात है। हम सब लोकोंके ईश्वर हैं, एक द्वीपको भी दान कर सकते हैं, बहुत वचनों से आराधना करके फिर तुम हमारे पाससे अज्ञानीके समान केवल तीन पग भूमिका दान मांगते हो ? ॥ १९ ॥ हमसे प्रार्थना करके फिर किसीको दूसरेका याचक नहीं बनना चाहिये, इसलिये आप हमसे बहुत सी भूमि ले लीजिये। राजा बलिके वचन सुनकर श्रीभगवान् वामनजी कहने लगे कि ॥ २० ॥ जो पुरुष अजितेन्द्रिय है, जिसने अपनी तृष्णाको नहीं जीता है उसको त्रिलोकीमें जो कुछ भी श्रेष्ठ वस्तुयें हैं वे सब भी तृप्त नहीं कर सकतीं हैं ॥ २१ ॥ जो पुरुष तीन चरण भूमिसे असंतुष्ट है, उसकी तृष्णा एक द्वीप पानेपर भी नहीं छूटेगी, जब ऐसे पुरुषको एक द्वीप मिल जायगा तब वह सात द्वीपोंके पानेकी अभिलाषा करेगा ॥ २२ ॥ और ऐसा सुना भी है कि राजा वेन और गयादि नृपगणने सप्त द्वीपोंके अधिपति होकर भी अर्थ और कामके द्वारा तृष्णाका अन्त नहीं पाया ॥ २३ ॥ यदृच्छा द्वारा मिले हुए द्रव्यसे जो संतुष्ट हैं, वे ही सुखी हैं, असन्तुष्ट और जिसने अपनी आत्माको नहीं जीता है, वह तीनों लोक पाकर भी सुखी नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ इसलिये कवि लोगोंने कहा है कि अर्थ और कामके लिये जो असन्तोष है यही पुरुषके संसारका कारण है और दैवेच्छानुसार पाये हुएसे सन्तोष करना ही मुक्तिका हेतु है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! दैवेच्छानुसार वस्तुको पाकर सन्तोष कर लेनेसे ब्राह्मणोंका तेज बढ़ जाता है, नहीं तो जिस प्रकार जलके पड़नेसे अग्नि बुझ जाती है वैसे ही असन्तोषी ब्राह्मणका तेज शांति होकर नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे वरदश्रेष्ठ ! हम तुमसे केवल तीन चरण भूमिकी ही प्रार्थना करते हैं और इससे ही हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा, क्योंकि प्रयोजनानुसार वित्त ही सुखका देनेवाला है; शेष धन क्लेशका कारण होता है ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! जब वामनजीने इस प्रकार कहा तब राजा बलि हँसकर बोला कि–"तब जो आपकी इच्छा है वह ग्रहण कीजिये" यह कहकर भूमिदान करनेके लिये राजा बलिने जलका पात्र हाथमें लिया ॥ २८ ॥ कि इतनेमें ही दैत्योंके गुरु शुक्राचार्यजी विष्णुके कपटको जान गये इस कारण उनको भूमिदान करनेके लिये उद्यत देख अपने शिष्य राजा बलिपर क्रुद्ध होकर शुक्राचार्यजी यह वचन कहने लगे ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य बोले कि हे विरोचननन्दन ! यह साक्षात् सनातन विष्णु भगवान् हैं, कश्यपजीकी स्त्री अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए औरस पुत्र हैं, और यह अवश्य ही देवता लोगोंका कार्य सिद्ध करेंगे ॥ ३० ॥ यह तुमने क्या किया कि विना अर्थके विचारे इनको भूमिदान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली। हम जान गये कि अब मंगल नहीं है, दैत्यलोगोंके लिये बड़ा अनर्थ आ पहुँचा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा स्थान, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, तेज, यश और विद्या सब छीनकर इन्द्रको दे देंगे क्योंकि ये मनुष्य नहीं हैं, किन्तु ये भगवान् विष्णु मायाके योगसे वामनरूप हुए हैं ॥३२॥ तुमने वास्तवमें तीन चरण भूमिका देना स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु यह तीन चरणोंमें ही सब लोकोंको नाप लेंगे, क्योंकि ये विश्वमूर्ति हैं। फिर क्रोध करके कहने लगे कि अरे मूढ !

विष्णु को सर्वस्व देकर फिर तू कहां रहेगा ? ॥ ३३ ॥ यह एक पैर (चरण) से सब पृथ्वीको नाप लेंगे, दूसरे चरण से स्वर्गको नाप लेंगे, इनका विशाल शरीर आकाशमण्डलमें व्याप्त हो जायगा, फिर तीसरे चरणकी गति कहांसे होगी, यह तो बता ? ॥ ३४ ॥ जब तू वचन देकर फिर न देगा तब हमको जान पड़ता है कि तेरा नरकमें वास होगा, क्योंकि तू अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सकेगा ॥ ३५ ॥ अरे मूढ ! जिससे अपनी जीविका जाती रहे, वह दान प्रशंसाके योग्य नहीं होता, क्योंकि संसारमें जीविकावाले पुरुषके यहां ही यज्ञ, दान, तप और पुत्रादि कर्म हुआ करते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष धर्म, यश, अर्थ, काम और सुजन इन पांचोंके लिये अपने धनका विभाग कर देता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुखी होता है ॥ ३७ ॥ अरे ! अब तू इस विचारको छोड़ दे कि "वचन देकर अब किस प्रकार से मिथ्या बोलूँ ?" सत्य मिथ्याकी व्यवस्थाके लिये बह्वृच श्रुतिमें जो कहा जाता है, उसको तू हमसे सुन--"हां" बोल स्वीकार करके जो कहा जाता है; उसका नाम सत्य है और "न" जो वचन है वह मिथ्या है ॥ ३८ ॥ यह सत्य देहरूप वृक्षका पुष्प फल है, क्योंकि श्रुतिमें भी ऐसा ही कहा है, परन्तु जब यह देहरूप वृक्ष ही जीवित न रहेगा, तब यह पुष्प फल कैसे होंगे ? इसलिये अनृत देहका मूल है, बस, अनृतसे ही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ अतएव जिस प्रकार जड़के उखड़नेसे वृक्ष सूख जाता है और शीघ्र गिर जाता है, वैसे ही झूंठके नष्ट होनेसे देह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥४०॥ और सदा सत्य कहनेसे देहकी यात्राका निर्वाह होना असम्भव है, इस कारण सत्यके दोष और मिथ्याके गुण तुम हमसे श्रवण करो ॥ "हां" अक्षर जो है, यह सम्पत्तिको दूर ले जाता है और पुरुषको धनशून्य कर देता है, अथवा अपूर्ण किये रहता है अर्थात् याचककी आशाका अन्त नहीं है, क्योंकि किसीने कहा भी है कि-"याचक कहा न मांगहीं, दाता कहा न देहिं" इसलिये वह पूर्ण नहीं हो सकती । बस, याचकसे-"हां" कह स्वीकार कर लेना अच्छा नहीं ! देनेसे पुरुष न्यून हो जाता है अधिक करके जो पुरुष याचकसे "सब दूंगा अंगीकार कर उसको दे भी देता है उस दाताका अपना कार्य भी सिद्ध नहीं होता अर्थात् उसके अपने भोगका भी उपाय नष्ट हो जाता है, परन्तु "न" यह जो अनृत वाक्य है धनका व्यय न करानेके हेतु पूर्ण सुखस्वरूप है और अपनी ओरको दूसरेका खींचनेवाला है, क्योंकि जो पुरुष नित्य कहता है कि हमारे पास कुछ नहीं है, वह अपने अनृतसे दूसरेके धनको खींच सकता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे दैत्यराज ! हमारी इस बातसे तुम यह न समझ लेना कि अमृतके समान सदा ही अनृत सेवन करनेके योग्य है, क्योंकि जो सब ही समय "न" कहकर झूठ बोलता है वह अत्यन्त अकीर्तिका भागी होता है और जीवित रहते भी मृतकके समान रहता है ॥ ४३ ॥ केवल इन सब बातोंमें अर्थात् स्त्रियोंके वश करनेमें, परिहासमें, विवाहके समय, वरादिकी प्रशंसा करनेमें, जीविकाकी रक्षा करनेमें, प्राणके संकटमें इन अवसरोंमें और गौ ब्राह्मणके हितार्थ, एवं किसीकी हिंसा उपस्थित होनेपर झूठ कभी दोषका देनेवाला नहीं है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा–बलिसे जिमि संकल्प ले, बड़े भये भगवान् ।
कथा विंश अध्यायकी, सो वरणौं सुखदान ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, श्रेष्ठ ! दैत्यगुरु शुक्राचार्यके इस प्रकारसे कहनेपर गृहपति राजा बलि कुछ देर तक चुपचाप रहे और फिर सावधान होकर अपने गुरुजीसे यह वचन कहने लगे ॥ १ ॥ राजा बलिने कहा कि हे गुरो ! आपने जो कुछ भी आज्ञा की वह सब सत्य है, जिससे किसी कालमें भी अर्थ, काम, यश और जीविकाका व्याघात न हो गृहस्थोंका वही धर्म है ॥२॥ परन्तु मैं महात्मा प्रह्लादका पोता होकर "दूंगा" यह वचन कहकर फिर साधारण बनियेके समान धनके लोभसे ब्राह्मणसे किस प्रकार कहूँ कि "अब मैं नहीं दूंगा"॥३॥ असत्यके समान बड़ा अधर्म और कोई नहीं है, क्योंकि इस पृथ्वीने कहा है कि झूठ कहनेके सिवाय और सबका भार मैं अपने ऊपर सम्हाल सकती हूँ ॥ ४ ॥ हे गुरुजी महाराज ! जितना मैं ब्राह्मणोंके वचनोंसे डरता हूँ, उतना नरकसे, दुःखके समुद्रसे, दरिद्रसे, स्थानके भ्रष्ट होनेसे और मृत्युसे भी नहीं डरता ॥५॥ और इस लोकमें पृथ्वी आदि जो कुछ वस्तुयें दिखायी देती हैं, ये सब मृत पुरुषको अवश्य ही त्याग करेंगी, फिर जीते ही क्यों न दान किया जाय ? यदि कहो कि सर्वस्व दान करनेसे जीविकाके विषयमें संकट होगा; तब जीविकाका संकट दूर करनेके लिये आधा दो, पर इसमें यह कहना है कि जो आधेमें उस दानसे ब्राह्मणको सन्तोष न हो तो फिर उस दानके देनेका फल ही क्या हुआ ? बस, इसी कारणसे जितना माँगा है उससे थोड़ा देनेपर इन ब्राह्मणकुमारको सन्तोष न होगा, जिससे हमारा दान व्यर्थ हो जायगा, इसलिये जो कुछ भी इन्होंने मांगा है, हम वह सब देंगे ॥६॥ हे गुरो ! दधीचि, शिबि आदि साधु पुरुषोंने त्यागके अयोग्य प्राण देकर भी साधु लोगोंका उपकार किया है, फिर भला भूमि आदि साधारण वस्तुका क्या विचार किया जाय ? ॥७॥ युद्धसे विमुख न होकर जिन दैत्येन्द्रोंने इस पृथ्वीको भोग किया था, वह कराल कालने इनका इस लोक व परलोक दोनोंमें संहार किया, परंतु जो कुछ यश वे इस पृथ्वीपर इकट्ठा कर गये हैं, उसको काल भी नहीं संहार कर सका, इसलिये यशका इकट्ठा करना ही उचित है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! देहत्याग करनेकी अपेक्षा धनके त्याग करनेमें अधिक यश मिल सकता है, क्योंकि युद्धमें जिस प्रकार देहत्यागी अनेक पुरुष साधारण ही देखे जाते हैं, परन्तु ऐसे पुरुष बहुत थोड़े देखनेमें आते हैं, कि जो सत्पात्रके आनेपर उसको श्रद्धासहित धन दे दें ॥ ९ ॥ हे महाराज ! साधारण याचककी अभिलाषा पूर्णकरनेमें जो दरिद्रता आ जाय तो मनस्वी दयावान् पुरुषका इससे भी कल्याण होता है और आपके समान ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी अभिलाषा पूर्ण करनेमें जो हमें दरिद्रता आ जाय तो यह दरिद्रता भलाई क्यों नहीं गिनी जायगी ? अतएव जो कुछ इन ब्राह्मणने मांगा है वह हम अवश्य इनको दान देंगे ॥ १० ॥ हे मुने ! आप लोग वेदविद्यामें चतुर हैं, आप आदरपूर्वक योग यज्ञद्वारा जिनकी पूजा किया करते हैं, ये ब्राह्मण वही वरदानी विष्णुजी हों, या हमारे शत्रु ही क्यों न हों, परन्तु हम इनकी मांगी हुई भूमि अवश्य इनको दान करेंगे ॥ ११ ॥ हम निरपराध हैं, जो यह अधर्म करके हमको बांध भी लेंगे तो भी हम इन भीत ब्राह्मणरूपी शत्रुकी हिंसा न करेंगे ॥१२॥ जो यह उत्तम श्लोक विष्णु भगवान् हैं और अपने यशकी त्यागनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तब तो यह युद्धमें हमारा नाश कर इस सब भूमिको ले लेंगे अथवा हमारे द्वारा मारे जायँगे तो पृथ्वीमें शयन करेंगे ॥१३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परी-

क्षित् ! अपने शिष्य राजा बलिको श्रद्धारहित हो अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेसे विमुख देखकर भाग्यके भेजे हुएके समान दैत्यगुरु श्रीशुक्राचार्यने क्रोध करके सत्यप्रतिज्ञ, इस असुर श्रेष्ठराजा बलिको यह शाप दिया ॥१४॥ श्रीशुक्राचार्य बोले कि अरे अज्ञानी तू अपनेको पंडित मानता है, हमारी उपेक्षा करके तूने मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया, इसलिये तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा॥१५॥ हे महाराज ! महात्मा बलि अपने गुरुजीसे इस प्रकार शापित होकर भी अपने सत्यसे विचलित नहीं हुआ, उसने वामनजीका पूजन कर कुशको लेकर पृथ्वी दान करने लगा ॥१६॥ तब राजा बलिकी रानी विंध्यावली मोती जड़े हुए आभूषण पहन और मालायें धारण कर जलसे भरा हुआ एक कलश लाकर अपने स्वामीके निकट स्थापित किया ॥१७॥ यज्ञ करनेवाले राजा बलिने स्वयं उस जलसे परम हर्षके साथ श्रीवामनजीके दोनों चरण पखारे, फिर संसारके पवित्र करनेवाले उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया ॥१८॥ हे राजन् ! उस समय स्वर्गमें देवता लोग और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर व चारणादि सब ही राजा बलिके इस कर्मकी प्रशंसा कर परमहर्षके साथ उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे और बारंबार हजारों नगाड़े बजने लगे ॥१९॥ और गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुषगण यह कहकर गाने लगे कि राजा बलिने अति दुष्कर कर्म किया कि सब जान-बूझकर भी अपने शत्रुको त्रिभुवनका दान कर दिया। हे परीक्षित् ! राजा बलिने पहले "जो इच्छा हो वह ग्रहण कीजिये" यह जो कहा था, इसीसे भगवान्का वह वामनरूप आश्चर्यरूपसे बढ़ा । उस मूर्तिकी आत्मामें त्रिगुणके रहनेसे पृथ्वीपर आकाश, दिक्, विवर, समुद्र, पशु, पक्षी, देव और सम्पूर्ण ऋषि उसमें अवस्थित थे ॥२०॥२१॥ ऋत्विक् आचार्य और सभासदोंके सहित असुरराज बलि महाऐश्वर्यशाली हरिके त्रिगुणात्मक कलेवरमें पञ्चभूत, सब इंद्रिय, गन्धादि आशय, चित्त और जीवोंके सहित त्रिगुण विश्व देखने लगे ॥२२॥ अर्थात् इन्द्रकी सेना ही जिसकी सेना थी, उस राजा बलिने इस विश्वमूर्ति हरिके चरणोंके नीचे रसातल, दोनों चरणोंमें धरणी, दोनों जंघाओंमें पर्वत, घुटुओंमें सब पक्षी और दोनों ऊरुमें मरुद्गणोंको देखा ॥२३॥ भगवान् विभुके नेत्रोंमें संध्या, गुह्यमें प्रजापति, जंघाओंमें आप जिनके पति हैं ऐसे बहुतेरे असुर, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और छातीमें नक्षत्रमाला विराजमान देखी॥२४॥ और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलिने उन मुरारीके हृदयमें धर्म, दोनों स्तनोंमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षस्थलमें कमलका फूल हाथमें लिये कमला (लक्ष्मी), कण्ठमें सामवेद और समस्त वेद॥२५॥चारों भुजाओंमें इन्द्रादि देवता लोग, कानोंमें सब दिशायें, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नाकमें पवन, दोनों नेत्रोंमें सूर्य, शरीरमें अग्नि ॥२६॥ वाणीमें चारों वेद, रसनामें वरुण, दोनों भौंहोंमें विधि और निषेध, दोनों नेत्रोंकी पलकोंमें दिन और रात्रि, माथेमें क्रोध, अधरोंमें लोभ॥२७॥स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, चरण धरनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसनेमें माया, सब रोमावलियोंमें ओषधियाँ ॥२८॥ सब नाड़ियोंमें नदियाँ, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्मा सब इंद्रियोंमें देवता और ऋषिगण, और गातमें स्थावर-जंगम सब प्राणी राजा बलिने देखे॥२९॥ हे राजन् ! सर्वात्मा वामनजीके शरीरमें इस प्रकार त्रिभुवनको देखकर सारे असुरलोग विस्मयको प्राप्त हुए, परंतु असह्य तेजवाला सुदर्शनचक्र मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त शार्ङ्ग धनुष ॥३०॥ बादलके समान शब्दायमान पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, विद्याधर नामक शतचन्द्रयुक्त असि, उत्तम दो तरकस कि जिनमें अक्षय सायक थे ॥३१॥ इन सबके ईश्वर उन ईश्वरको घेरकर सुनन्दादि बड़े-बड़े पार्षदगण लोक-

पालोंके सहित इस विराट् रूपकी स्तुति करने लगे और श्रीभगवान् किरीट, बाजू व मकराकार कुंडलोंसे अलंकृत और रत्नोत्तम श्रीवत्स, मेखला और वस्त्रोंसे शोभित हो ॥३२॥ भ्रमरगण जिसमें गुंजार कर रहे हैं ऐसी वनमालासे व्याप्त हो अत्यन्त दीप्तिमान् हुए। इसके उपरान्त वामनजीने एक चरणसे राजा बलिकी समस्त भूमि, शरीरसे आकाश और दोनों भुजाओंसे सब दिशाओंको माप लिया॥३३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इन वामनरूपी भगवान्ने जब दूसरा चरण धरा तब स्वर्ग उनके लिये कुछ थोड़ासा स्थान हुआ, परंतु उस तीसरे चरणके लिये कुछ भी शेष न बचा, इसलिये यह चरण स्वर्गके ऊपर गमन करता हुआ, महर्लोक, जनःलोक, तपोलोकके ऊपर सत्यलोकमें जा पहुँचा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टम-स्कन्धे भूमिदाने विश्वरूपदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा-जिमि बाँधो प्रभु नृपतिको, एक चरणके काज।
सो इक्किस अध्यायमें, कहौं सुमिरि यदुराज ॥

अनन्तर योगिवर श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे-हे नरदेव! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें पहुँचा हुआ देख पद्मयोनि ब्रह्माजी व मरीचि प्रभृति व्रतधारी बड़े-बड़े ऋषि और सनन्दनादि योगिगण उस चरणके निकट गये। हे राजन्! उनके नखरूप निशाकरकी किरणसे ब्रह्माजीकी द्युति भी क्षीण हो गयी और वे उस तेजसे ढँक गये ॥१॥ इसके उपरान्त वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, शिक्षादि वेदाङ्ग, पुराण संहिताके जाननेवाले आये और जिनकी योगरूपी पवनसे ज्ञानाग्नि उद्दीप्त और उससे कर्मके मल भस्म हो गये थे, वे भी वहां आये ॥ २ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! यह सब भगवान्के चरणारविन्दोंका स्मरण करनेके लिये ब्रह्माजीके स्थानपर आये थे, इसलिये सब ही इस चरणकमलकी वंदना करने लगे। यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है समस्त कर्मोंके द्वाराभी प्राप्त नहीं होता ॥३॥ इसके उपरान्त पद्म-योनि ब्रह्माजी, जो कि स्वयं नारायणकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे जन्मे थे; उन्होंने हर्षित होकर उन वामनजीके चरणको धोया और भक्तिपूर्वक पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र! ब्रह्माजीके कमण्डलुका जल इन वामनजीके चरण धोनेसे पवित्र स्वर्गकी नदी हुई, वह नदी अबतक भगवान्की अमलकीर्तिस्वरूप होकर आकाशसे गिरती हुई त्रिभुवनको पवित्र करती है ॥४॥ इसके पीछे ब्रह्माजी आदिसे लेकर समस्त लोकपाल अपने-अपने सेवकगणोंके साथ आदरपूर्वक अपने स्वामी उन विष्णु भगवान्के लिये, जिन्होंने अपने विस्तारको सिकोड़ वामनरूप धारण किया था, भेंट देने लगे ॥५॥ अर्थात् सुशीतल जल, सुन्दर माला, सुगन्धित चंदन व उबटन, सुवासिक धूप, दीप, खीलें अक्षत, फल, अंकुर इनसे भगवान्की पूजा करने लगे ॥६॥ और भगवान्के पुरुषार्थकी महिमा, जय ध्वनि, अधिक करके नृत्य, गीत, वाद्य और शंख दुन्दुभीका शब्द इन सबसे वे देवतालोग स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥हे राजन्! फिर ऋक्षराज जाम्बवान भेरी बजाकर सब दिशाओंमें इस विजय महोत्सवको पुकारने लगा ॥ ८ ॥ हे राजन्! इस ओर असुरलोग तीन चरण भूमि मांगनेके मिषसे अपने प्रभु यज्ञदीक्षित राजा बलिकी समस्त पृथ्वी हरी हुई देख महाक्रोधसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि अरे! यह ब्रह्मबन्धु नहीं है, यह तो बड़ी भारी मायाका जाननेवाला विष्णु है, यह दुष्ट ब्राह्म-

णरूपसे हम लोगोंको ठग देवताओंका कार्य करनेको आया है ॥१०॥ बटुकरूपी इस शत्रुने भिक्षुक होकर हम लोगोंका सर्वस्व हरण कर लिया, हमारे स्वामी सदा सत्यव्रतवाले हैं, विशेषकरके इस समय यज्ञमें दीक्षित हुए हैं ॥ ११ ॥ सदा सत्य बोलते हैं, ब्राह्मणहितैषी हैं, दयावान् हैं और कभी मिथ्या नहीं बोल सकते हैं ॥ १२ ॥ इसको हम लोग यदि मार डालें तो ऐसा करनेसे हमें धर्म होगा और स्वामीकी सेवा भी हो जायगी, इस प्रकारसे कह राजा बलिके अनुचर लोगोंने अस्त्र-शस्त्र ग्रहण किये ॥ १३ ॥ ये लोग शूल, पट्टिश आदि हाथमें लेकर श्री भगवान् वामनजीको मार डालनेके लिये क्रोधसे दौड़े, परंतु राजा बलिकी ऐसी इच्छा नहीं थी॥१४॥ हे महाराज ! इन दानव सेनापति लोगोंको आता हुआ देखकर विष्णुभगवान्के सेवक हँसे और अपने-अपने शस्त्र उठाकर उन लोगोंको रोकने लगे ॥१५॥ हे राजन् ! नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन और गरुड़ ॥१६॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदंत, सात्त्वत यह विष्णुके अनुचर जिनमें एक-एकका बल दश-दश हजार हाथियोंके समान था; यह लोग अतिवेगसे असुरकी सेनाका नाश करने लगे ॥१७॥ राजा बलिने देखा कि इन महापुरुषके सेवक हमारी सब सेनाका नाश किये डालते हैं, इसलिये शुक्राचार्यके शापकी बात स्मरण कर अपने सब सेनापतियोंको रोका ॥१८॥ और यह कहा हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! ! हे निमि ! ! ! हमारी बात सुनो और इस समय युद्ध मत करो, क्योंकि यह समय हम लोगोंके लिये अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यगण ! जो सब प्राणियोंको सुख देनेके स्वामी हैं, उनका पौरुषसे अतिक्रमण करनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं है ॥ २० ॥ हे भाइयो ! जो भगवान् पहले हमारा मंगल और देवता लोगोंका अमंगल करते थे, वही भगवान् इस समय हमसे प्रतिकूल हो गये हैं ॥२१॥ और सुनो ! मंत्री,सेना, बुद्धि,दुर्ग, मंत्र, औषधादि और शमादि उपायोंसे किसी तरह कोई कालका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥२२॥ इन हरिके सेवक देवता लोगोंको तुमने बार-बार रणभूमिमें पराजित किया है,परंतु इस समय यह भाग्यके बलसे बलवान् हो गये हैं,इसलिये हमको युद्धमें जीतकर गर्ज रहे हैं ॥२३॥ हम लोगोंके ऊपर काल फिर प्रसन्न होता तब फिर हम इन लोगोंको जीत लेंगे, इससे जो काल हमको जितायेगा, अब तुम लोग उसी समयकी राह देखो ॥२४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अपने स्वामीकी यह बात सुनकर दैत्य-दानव लोग विष्णुजीके सेवकोंसे मार खानेके डरसे पातालमें घुसनेको प्रस्तुत हुए ॥२५॥ इसके पीछे पक्षिराज गरुड़जी श्रीभगवान्के अभिप्रायको जान यज्ञमें सोमाभिषेकके दिन वरुणकी फाँसीसे राजा बलिको बांधने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! प्रभावशाली भगवान् विष्णुने जब इस प्रकारसे राजा बलिको बँधवाया तब पृथ्वीकी सब दिशाओंमें महा हाहाकार मचने लगा ॥२७॥ इस प्रकार वरुण-पाशमें बँधनेसे जब राजा बलि श्रीभ्रष्ट हुआ, तब स्थिरबुद्धि और महायशस्वी उस महात्मा राजा बलिसे विष्णु भगवान् यह वचन कहने लगे कि ॥२८॥ हे असुरश्रेष्ठ ! जो तूने हमको तीन चरण पृथ्वी दान दी है वह हमारे दो ही चरणोंमें सब पृथ्वी माप गयी, अब तीसरे चरणकी भूमि कहां है ? शीघ्र बता ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सूर्यनारायणकी किरणें जहांतक पड़ती हैं,जहांतक निशानाथ चंद्रमा तारागणोंके सहित अपनी चाँदनी फैलाते हैं और जहांतक मेघ जल वर्षाते हैं वहाँतक तुम्हारी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥३०॥ हमने एक चरणसे समस्त भूलोकको माप लिया, मेरे शरीरसे आकाश और सब दिशायें व्याप्त हो गयीं । देखता नहीं कि तेरे

सामने ही दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको माप लिया, इस प्रकार हमने तेरा सर्वस्व मापा ॥ ३१ ॥ परन्तु यह सब लेनेसे भी तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हुई, इसलिये तुझको नरकमें वास करना चाहिये। अब तू अपने गुरु शुक्राचार्यजीकी आज्ञा लेकर नरकमें प्रवेशकर ❋ ॥३२॥ जो ब्राह्मणसे यह कहकर कि "दूँगा" और फिर नहीं देता, वह याचकके संग ठगाई करता है, उसका मनोरथ वृथा हो जाता है और उसको स्वर्ग अतिदूर है, अर्थात् वह नीचे गिरता है ॥३३॥ तूने देनेको कहकर फिर हमको नहीं दिया और कपट किया, इसलिये झूठका फल यही है कि आप कुछ दिन नरकका भोग कीजिये ॥३४॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टम-
स्कन्धे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा–सुतल लोक पठयो बलिहि, प्रभु दीनो वरदान ।
सो बाइस अध्यायकी, कथा सकल जग जान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार अंगीकार किये हुए राजा बलिको इस तरह भगवान्ने चलायमान भी किया तथापि अविचलित चित्तसे वह राजा बलि वक्ष्यमाण अविक्लव वचन बोला ॥ १ ॥ राजा बलिने ने कहा कि, हे उत्तमश्लोक भगवन् ! मेरी कही हुई प्रतिज्ञा असत्य नहीं है, आपने ही पहले कपटका आश्रय ले वामनरूप बनकर मुझसे भिक्षा मांगी और इस समय दूसरा रूप धारण किया। अच्छा जो इस प्रकारसे भी आप मेरी (प्रतिज्ञा) बातको झूठ मानें, तो भी मैं अपना वचन पूर्ण करता हूं। हमारा वचन ठगाईका नहीं हो सकता, आपने दो चरण तो माप ही लिये, तीसरे चरण का स्थान नहीं पाया, अतः मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ, इसपर यह अपना चरणकमल रखिये, क्योंकि मैं सब लोगोंका राजा हूं, तब क्या मेरा शरीर एक चरणके बराबर भी न होगा ॥ २ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार मैं अपकीर्तिसे डरता हूँ वैसा नरकसे, वरुणकी फांसीसे, अत्यन्त भयंकर विपत्तिसे नहीं डरता और धन के कष्टसे अथवा राज्यभ्रष्ट होनेसे भी मैं वैसा नहीं डरता ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपका किया हुआ यह दण्ड अपकीर्तिका कारण नहीं है, क्योंकि माननीय पुरुष जो दण्ड देते हैं, वह तो वाञ्छनीय है, क्योंकि माता अथवा पिता वा भ्राता किंवा सुहृद् लोग ऐसा दण्ड नहीं दे सकते, इस कारण आप हमारे हितैषी हैं, वह दण्ड जो दिया इससे तो मैं बड़ाईके ही योग्य हुआ ॥४॥ हे भगवन् ! आप वास्तव में शत्रुके रूपसे प्रगट हैं, प्रंतु यथार्थ आप शत्रु नहीं हैं, नहीं तो हम असुरलोगोंके भी आप ही परम गुरु हैं, क्योंकि हम लोग महामदसे अन्धे हो रहे थे, आपने हमारी ममताका नाश करनेके लिये हमारे ज्ञानके

❋ शंका—वामन भगवान् ने प्रथम तो बलिसे कहा था कि, तू महापापी है इससे नरकमें वास कर, फिर पीछे सुतल लोक, बलिको दिया, नरकमें क्यों न भेजा ? पामर जीवके समान यह कौतुक किया, जैसे कोई क्रोधी मनुष्य क्रोध आने पर जो चाहे वह मुखसे कह दे।

उत्तर—वामन भगवान्ने जो लोक बलिको देनेके लिये कहा था, वही लोक उसको दिया, क्योंकि निरयका अर्थ नरक नहीं है, किन्तु जो लोक अयस जो लोहा उस करके 'निर' कहिये रहित हो, अर्थात् जिस लोकमें लोहा न हो उस लोकको भी मुनिलोग निरय कहते हैं। भगवान्ने भी निरयका अर्थ ऐसा करके बलिसे कहा कि निरयमें वास करोगे । इसलिये निरय जो सुतल है वहां बलि को भेज दिया, क्योंकि सुतल लोकमें मणियोंके सिवाय दूसरी धातु कोई नहीं है। निरयका ऐसा अर्थ विचारकर वामनजीने कहा था, नरकमें जानेको बलिको नहीं कहा ।

नेत्र खोल दिये ॥ ५ ॥ अहो ! जिनसे वैर बांधकर अनेक असुरगण सिद्धिको प्राप्त हो गये और जिनको केवल एकान्तयोगी लोग ही प्राप्त होते हैं ॥६॥ अनेक कर्मकारी उन्हीं परमगुरु करके हमको दंड मिला और वरुणकी फांसीसे बँधे तो फिर इससे हमको लाज अथवा दुःख क्या हो सकता है ? बस, इस बंधनसे न मैं दुःखी हूं न लज्जित हूं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! मेरे ऊपर जो आपने दण्डरूप यह अनुग्रह किया, मैं इसका अधिकारी नहीं था, आपने अपने भक्तका पोता (नाती) जानकर मुझपर यह अनुग्रह किया, हमारे, पितामह प्रह्लादजी आपके परमप्रीतिपात्र हैं उनके साधुपन को सबही जानते हैं, आप उनके पराश्रय थे। यद्यपि वह आपके शत्रु अपने पिता हिरण्यकशिपु करके अद्भुत पीडाको प्राप्त हुए थे ॥८॥ तो भी यह विचार करके कि आयु के शेष में आत्मीय नामधारी चोररूपी जो पुत्रादि हैं; वे जो देहको छोड़कर चले जायँगे, उस देह से क्या फल ? और स्त्री संसारकी हेतुभूत है, इससे भी कुछ फल नहीं और घरसे भी क्या प्रयोजन है ? क्योंकि इससे केवल आयुका क्षय होता है, सुख कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! अगाध बोधसम्पन्न हमारे पितामह प्रह्लादजी ऐसा निश्चय करके, यद्यपि आप उनके पक्ष (पितादि निशिचरों) के क्षयकारी थे, तथापि स्वजनसे भीत होते हुए जहांपर किसी ओरसे भयकी संभावना नहीं और जो ध्रुव हैं, ऐसे आपके चरणकमलकी शरणको प्राप्त हुए थे ॥ १० ॥ हे भगवन् ! इस समय दैव करके मैं भी अपने शत्रु आपकी शरण आया हूँ, यह दैव हमसे अति अनुकूल है, क्योंकि बलात्कार इसने हमसे उस सम्पत्तिका त्याग कराया है, जिस सम्पत्तिसे पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकट आनेपर भी इस जीवन को अनित्य नहीं समझता है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ राजा बलि इस प्रकार कह रहा था कि इतने में ही भगवद्भक्त प्रह्लादजी पूर्ण चन्द्रमा समान आकाशसे उदय हो दैत्यराज बलिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥१२॥ श्रीप्रह्लादजी के दोनों नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे, श्यामवस्त्र धारण किये हुए थे, दोनों भुजायें अत्यन्त लम्बायमान थीं; वे अति ऊँचे थे, रंग श्याम था, अपनी कांतिसे विराजमान हो रहे थे, इस प्रकारसे पितामह महात्मा प्रह्लादजी को राजा बलिने देखा ॥१३॥ परन्तु वरुणजीकी फांसीमें बँधनेके कारण पहलेके समान भेंट देकर राजा बलि उनकी पूजा नहीं कर सका, आंखोंमें आंसू भरकर और शिर झुका केवल प्रणाम करने लगा। हे राजन् ! उस समय ऐसा जान पड़ा कि राजा बलिको अपने किये हुए अहंकारादि अपराधका स्मरण हुआ कि जिससे वह लाजके कारण चुपचाप मस्तक नवाकर रह गया ॥१४॥ हे राजन् ! सुनन्दादि पार्षदोंसे पूजित जगत्पति भगवान् हरिको राजा बलिके निकट बैठा हुआ देखकर प्रह्लादजीने विचारा कि इसके ऊपर निःसंदेह भगवान्का अनुग्रह हुआ है, इसलिये यह महात्मा पुलकावलीसे पूर्ण व अश्रुजलसे पूर्ण हो मस्तक झुकाकर वारंवार नमस्कार करते-करते भगवान्के निकट गये और निकट जाकर शिर झुकाकर प्रणामकर बैठ गये ॥१५॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे भगवन् ! आपने ही बलिको इन्द्रपदवी दी और आपने ही ले ली। आपने इसके इन्द्रपदको हरण नहीं किया, बरन् अपना पद फिर ग्रहण कर लिया, यह अच्छा नहीं हुआ। मैं अनुमान करता हूं, कि इस पर आपका बड़ा ही अनुग्रह हुआ है, क्योंकि ऐश्वर्य और सम्पत्ति आत्माको मोह करनेवाली हैं, यह इससे छूट गया ॥१६॥ हे भगवन् ! ऐश्वर्य व सम्पत्तिके मोहकी वार्त्ता क्या कहूँ ! इससे विद्यावान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं, इस-

लिये सम्पत्ति रहनेपर कोई पुरुष भली-भांति आत्मतत्त्वको नहीं देख सकता, आपने बलि की सम्पत्ति लेकर इसपर बड़ा ही अनुग्रह प्रकट किया । आप महा करुणाकर हैं, जगदीश्वर अखिल लोकके साक्षी नारायण हैं, मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ । श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इसके पीछे हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हाथ जोड़कर खड़े हुए, उन प्रह्लादजीके सामने ही उन वामनरूपी मधुसूदनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगे॥१७॥१८॥ हे राजन् ! उसी समय राजा बलिकी स्त्री विंध्यावली भगवान्से कुछ कहनेके लिये आयी, इस कारण ब्रह्माजी उसका सम्मान करनेके लिये कुछ देर चुपचाप रहे । बलिकी स्त्री विंध्यावली पतिको बँधा हुआ देखकर भयके कारण व्याकुल हो गयी, फिर हाथ जोड़ नीचेको मुख कर यह वचन कहने लगी ॥१९॥ विंध्यावली बोली कि हे ईश ! आपने अपनी क्रीडाके लिये यह जगत् बनाया है, परन्तु दुर्बुद्धि लोग इसमें अपना-अपना स्वामीपन कल्पित किया करते हैं । हे भगवन् ! आप त्रिजगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके करनेवाले हैं, कोई दूसरा आपको इस जगत्में क्या देगा ? जो लोग कहते हैं, "कि हमने आपको समर्पण किया " उनको लज्जा नहीं है, "हम स्वतंत्र हैं" उनमें केवल यही वाद आपने अवरोपित किया ॥ २० ॥ हे राजन् ! विंध्यावलीके इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि इस हमारे स्वामीने आपसे जो यह कहा कि हमने आपको तीनों लोक अर्पण कर दिये हैं और तीसरे चरणके पूर्ण करनेको अपनी देहका देना कहा, सो इन्होंने देहादिमें अपना स्वामीपन जानकर जो कुछ कहा उससे निर्लज्जता ही प्रकाशित होती, है क्योंकि आप सर्वव्यापी हैं, इसलिये मन्दबुद्धिवाले इस-राजाको आप कृपा करके छोड़ दीजिये ॥२१॥ यद्यपि भगवान् प्रह्लाद और रानी विन्ध्याव-लीके दीन वचनोंसे प्रसन्न हो गये, तथापि ब्रह्माजीने लोभ दिखानेके लिये बहुत सारी विनती और प्रार्थना करके कहा कि हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगन्मय ! आप राजा बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, अब इसको दण्ड न देकर छोड़ दीजिये॥२२॥ हे भगवन् ! यह असुरवर श्रेष्ठबुद्धिवाला है और इसने अपने कर्मसे प्राप्त किये सब लोकोंको दान कर दिया है, जिसने अकातर होकर प्रथम सर्वस्व और पीछे अपना देहतक अर्पण कर दिया वह फिर दण्ड पानेके योग्य नहीं हो सकता । हे भगवन् ! लोकोंमें शठताईको छोड़ जो आपके चरणामृतको पान करता है वह दूबके अंकुरोंके दान करनेसे भी उत्तम गतिको पाता है, फिर यह राजा बलि, कि जिसने क्लेशरहित होकर आपको त्रिलोकी दान कर दिया, फिर भी क्या यह दण्ड पानेके योग्य हो सकता है ? ॥२३॥ श्री भगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं, प्रथम उसके धनका नाश कर देते हैं, क्योंकि धनसे ममता उत्पन्न होती है, इससे पुरुष नम्रता रहित हो सब लोकोंको और मुझको भी कुछ नहीं समझता, इस कारण मदके दूर करनेके लिये सब धनका हरण करना ही अनुग्रह है ॥ २४ ॥ और जीवात्मा सदा परवश होकर अपने कर्मोंकरके कृमिकीटादि अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ फिर पौरुषी गतिको प्राप्त होता है, अर्थात् पुरुष होकर जन्मता है॥२५॥जो उस पुरुषजन्ममें जन्म, कर्म, वयस, सत्य, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिसे उसको स्तंभ (गर्व) न हुआ तो मेरा बड़ा ही अनुग्रह है ॥ २६ ॥ हमने ध्रुवादिकोंको जो सम्पत्ति दानकी है, उसमें एक कारण है,जो हमारे भक्त हैं वे अनम्रतादिके लिये भूत और सर्व प्रकार भलाईके प्रतिकूल जन्मादिके होनेपर भी कभी मोहित नहीं होते, इसलिये हम भक्तकी इच्छासे सम्पदा देते हैं, अभक्त सम्पदासे मोहित हो

जाता है, इसलिये उसपर अनुग्रह हम सब सम्पदा हरण करके करते हैं ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दानव (बलि) दैत्यलोगोंका अगुआ और कीर्तिका बढ़ानेवाला है, इसने दुर्जयमायाको जीत लिया है, इसलिये यह खेदको प्राप्त होकर भी मोहित नहीं होता है ॥ २८ ॥ यह निर्धन हो गया स्थानसे भ्रष्ट हो गया, शत्रुसे बांधा गया, झिड़कारा गया और इसके जातिवालोंने इसको छोड़ दिया व इसने अनेक प्रकारकी यातना भी पायी; अधिक करके इसके गुरु शुक्राचार्यजीने भी इसको बहुत धमकाया, शाप भी दिया, तो भी इसने अपने सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ २९ ॥ मैंने छलकरके जो धर्म इसको बताया उसको भी यह नहीं छोड़ता, इससे यह पुरुष अतिशय भक्तिमान् और सत्यवादी है ॥ ३० ॥ ऐसी निष्ठा रखनेके लिये मैंने भी इसको ऐसा स्थान दिया है कि जो देवता लोगोंको भी नहीं मिल सकता । अब हमने इस बलि का आश्रय लिया, यह बलि सावर्णि-मन्वन्तरमें इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ जबतक वह सावर्णिमन्वन्तर न आये, तबतक यह विश्वकर्माजीके बनाये सुतल लोकमें जाकर वास करे । यह स्थान साधारण नहीं है, जो लोग वहां पर वास करते हैं, हमारी दृष्टिके पड़नेसे उनको आधि, व्याधि और थकावट कभी नहीं होती है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजीको इस प्रकारसे उत्तर देकर भगवान् फिर करुणा परायण होकर राजा बलिसे बोले कि हे इन्द्रसेन ! हे महाराज ! तुम्हारा मंगल हो तुम अपने सब जातिवालोंके साथ सुतललोकको चले जाओ कि जिसे स्वर्गके रहनेवाले भी चाहते हैं ॥ ३३ ॥ उस स्थानमें लोकपालगण भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकेंगे, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ! जो दैत्यलोग तुम्हारी आज्ञाको न मानेंगे, उनका संहार हमारे चक्रसे हो जायगा ॥ ३४ ॥ सब सामग्रीके साथ और सब सेवकोंके साथ हम तुम्हारी रक्षा करेंगे । हे वीर ! क्या हमारे वियोगके मारे तुम वहाँ जानेकी इच्छा नहीं करते ? हम सत्य ही सत्य कहते हैं कि हमको तुम सदा उस स्थानमें देखोगे ॥ ३५ ॥ वहां दैत्यदानवोंके संग रहनेसे हुआ जो तुम्हारा असुरभाव वह मेरे प्रभावको देखकर उसी समय नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–सुतल लोकको बलि गये, इन्द्र मिल्यो सुरलोक ।
सो तेइस अध्यायमें, पढ़कर होहु विशोक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुरातनपुरुष भगवान्‌ने जब इस प्रकारसे कहा, तब समस्त साधुसम्मत महानुभाव राजा बलिके दोनों नेत्र आँसुओंकी कलाओंसे आकुल हो गये । वह भक्तिसे उत्कंठित हो हाथ जोड़कर गद्गद स्वरसे श्रीभगवान्‌से कहने लगा ॥ १ ॥ राजा बलि बोला कि अहो ! आपके प्रति नमस्कार करनेकी कैसी आश्चर्यमय महिमा है ? इसके लिये उद्यम करते ही भक्तजनोंके कार्य सिद्ध हो जाते हैं, आपको नमस्कार करनेके उद्यमने इस अधम असुरको भी उस अनुग्रहका दान किया, कि जो लोकपालोंको भी नहीं मिल सकता । हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं मैं अति अवस्तु हूँ; मैं भला क्या आपको त्रिलोकीका दान दूंगा ? बरन् मैंने तो आपको भली-भाँति प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेको उद्यम किया है, सो इतने ही उद्यमका ऐसा माहात्म्य है कि करोड़ों तप और

दान करनेसे जो अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता, वह मुझको मिल गया। हे महाराज! आपके प्रणाम करनेका माहात्म्य अति आश्चर्यमय है ॥२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित्! असुरश्रेष्ठ राजा बलिने इस प्रकार कहकर भगवान् वामनजीको और महेश्वरके साथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया इसके पीछे प्रीतिमें भर प्रफुल्लचित्त हो असुरसमूहके साथ सुतललोकको चला गया ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे भगवान् हरिने इन्द्रको फिर त्रिलोकी समपर्ण कर अदिति की कामना को साध स्वयं इंद्र बन सब जगत्का पालन किया था ॥ ४ ॥ इधर अपने वंशधर पोते बलिको छूटते हुए और भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करते हुए देख प्रह्लादजीने भक्तिसे गद्गद हो यह वचन कहे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि हे भगवन्! जिन लोगोंकी वन्दना सम्पूर्ण विश्व करता है, वे समस्त लोग आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं। आप "सर्व प्रकार से रक्षा करेंगे" यह कहकर जो हमारे दुर्गपाल हुए आपका यह प्रसाद अति दुर्लभ है। ब्रह्मा महेश्वर और लक्ष्मी कोई भी इस प्रसादको प्राप्त नहीं हुए, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? ॥६॥ हे आश्रयप्रद! आपके पदारविन्दमकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादि देववृन्द विभूतियोंका भोग करते हैं, हम खलयोनि किस प्रकारसे आपकी कृपादृष्टिकी पदवीको प्राप्त हों? ॥ ७ ॥ हे भगवन्! आपकी चेष्टा अतिशय आश्चर्यकी है, यह तो कुछ बात ही नहीं है, आप अचिन्त्य योगमायासे लीलापूर्वक त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं और सर्वात्मा व सर्वज्ञ होनेके कारण आप सबको समभावसे देखते हैं, आपका ऐसा विषम स्वभाव नहीं है परन्तु भक्तके ऊपर स्नेहवश हो आपका ऐसा कल्पतरुस्वभाव हुआ है ॥८॥ तब श्री भगवान् बोले कि हे प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो, तुम भी सुतललोकमें चले जाओ और अपने पोते बलिके साथ आनन्द करते हुए अपने जातिवालोंको सुख दो ॥ ९ ॥ हम वहां पर गदा हाथमें लिये खड़े रहेंगे और वहां तुम नित्य हमको देखोगे, हमारे दर्शन करनेसे आनन्द पाओगे और तुम्हारा ज्ञान भी नष्ट नहीं होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! निर्मलमतिवाला प्रह्लाद अपने पोते राजा बलिके साथ "यही करता हूँ" कह भगवान्की आज्ञा को स्वीकार किया। फिर सब असुर और सेनापति ॥ ११ ॥ हाथ जोड़कर महात्मा आदि पुरुषकी परिक्रमा दे प्रणाम कर उनकी आज्ञा लेकर उसी समय सुतललोक को चले गये, कि जो बड़ा भारी पाताल था ॥ १२ ॥ इसके पीछे भगवान् वामनजी संनिकट बैठे हुए ब्रह्मवादियोंकी सभामें ऋत्विक् लोगोंके बीच आसीन् महर्षि शुक्राचार्यजीसे बोले ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्मन्! आपके शिष्य राजा बलिके यज्ञमें जो कुछ त्रुटि रह गयी है, उसको आप स्वयं पूर्ण कीजिये। यदि तुम कहो कि यजमानके विना यज्ञ किस प्रकार पूरा हो सकता है? वह बात नहीं, क्योंकि ब्राह्मण करके देखे जाते ही सब कर्मों की विषमता समताको प्राप्त होती है, आपके करनेसे इस यज्ञ के पूर्ण हो जाने में क्या सन्देह है?॥१४॥ श्रीभगवान् वामनजीने ऐसे वचन सुनकर शुक्राचार्यजी बोले कि हे भगवन्! आप कर्मके प्रवर्तक, यज्ञफलदाता और यज्ञपुरुष हैं, आप जिस करके सर्व प्रकार पूजित हुए फिर उसके कर्मोकी विषमता कहां रही? ॥१५॥ मन्त्रसे स्वरादिभ्रंश द्वारा, तन्त्रसे क्रमकी विपरीतता द्वारा और देश, काल, पात्र, वस्तुसे दक्षिणादि द्वारा जो-जो न्यूनता होती है, आपका नाम लेते ही उन सब छिद्रोंको दूर करता है ॥१६॥ तथापि आप जो कुछ आज्ञा करते हैं, उसको मैं अवश्य

पालन करूंगा, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करनेसे ही पुरुषोंका कल्याण होता है ॥१७॥ हे राजन्! शुक्राचार्यजीने इस प्रकारसे भगवान्‌की आज्ञा पर हर्ष प्रकट कर सब ब्राह्मणों-सहित राजा बलिके छिद्रको अच्छिद्र किया अर्थात् यज्ञ पूरा कर दिया ॥१८॥ हे महाराज परीक्षित्! श्रीभगवान् वासुदेवने वामन अवतार ले इस प्रकार राजा बलिके सम्मुख भूमिकी भिक्षा मांग दानव लोगोंने जिसको हरण कर लिया था वह स्वर्ग फिर अपने भ्राता इन्द्रको दे दिया॥१९॥उसके उपरान्त कश्यप अदितिजी को प्रसन्न करने के लिये और सब प्राणियोंके हितार्थ देव, ऋषि, पितृगण, मनुवर्ग, दक्ष, भृगु, अंगिरादि मुनिगण और कुमार व भोलानाथ शिवके साथ प्रजापति ब्रह्माजीने उन वामनजीको लोक व लोकपालोंका अधीश्वर किया * ॥ २० ॥ २१ ॥ यद्यपि इन्द्र सब लोकोंके पति हैं तो भी समस्त वेद, सर्व देव, धर्म, यक्ष और सब प्रकारसे मंगल व्रतादिके पालन करनेमें निपुण वे वामनजी सर्व प्राणियोंका बहुत ऐश्वर्य बढ़ाने को इन्द्रके सहायक उपेंद्र बनाये गये, इसलिये उस समय सब प्राणियोंको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ॥२२॥२३॥इसके पीछे इन्द्रने विमानपर चढ़ाकर आगे कर उन वामन जीको स्वर्गमें ले गये। यह देखकर लोकपालोंके और ब्रह्माजीके मनमें परमानन्द हुआ ॥२४॥ हे महाराज! इस प्रकार इंद्र त्रिलोकीको प्राप्त हो उपेंद्रजीके बाहुबलसे उसको पालन करने लगा और परम श्रीसम्पन्न व निर्भय होकर सुख संभोगमें निमग्न हुआ ॥२५॥ इस ओर ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, भृगु आदि मुनि, पितृलोग और सर्व प्राणी, सिद्ध व वैमानिक सब ही भगवान् के इस अद्भुत कर्मकी प्रशंसा करते-करते अपने-अपने स्थानोंको चले गये और सब स्थानोंमें कश्यपजीकी स्त्री अदितिजीकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई ॥२६॥२७ हे कुरुनन्दन परीक्षित्! श्रीभगवान्‌के ये पवित्र चरित्र श्रोता लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं, वह हमने आप के संमुख सब वर्णन किये ॥२८॥ जिस पुरुषने बलसे अनेक भांतिके विक्रम करनेवाले भगवान् विष्णुकी महिमाका पार देख लिया है, वह पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या भी कर सकता है, अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं हो सकती, वैसे ही भगवान्‌के चरित्रों को गाते-गाते कोई पार नहीं पा सकता। इसलिये मंत्र और मंत्रदर्शी पुरुष लोगोंने स्पष्ट कहा है कि उत्पन्न हुये और उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंकी जातिमें क्या कोई पुरुष पूर्ण-स्वरूप पुरुषकी महिमाको प्राप्त हुआ है! अर्थात् कोई नहीं हुआ और न आगेको होगा॥२९॥ हे राजन्! अद्भुतकर्मकारी देवदेव भगवान् वासुदेवके वामनावतारविषयक चरित्र जो मनुष्य गायेंगे वा सुनेंगे अथवा सुनायेंगे व लिखेंगे उनको परम श्रेष्ठ गति प्राप्त हो जायगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित्! देवता अथवा पितरोंमें अथवा लौकिक कर्म करनेके समय जिस-जिस कार्यमें इस चरित्रका गान होगा, वे समस्त कार्य यथावत् पूर्ण होंगे, इस बातको पंडितगण भली प्रकार जानते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे वामनावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

* शंका—जगत्‌को उत्पन्न करने वाले, जगत्‌के स्वामी, जगत्‌के पालन करनेवाले जो भगवान् हैं, उन भगवान्‌को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माजीने राज्य दिया, अधीश तो इन्द्रभगवान्‌को ब्रह्माने किया, यह बड़ी शंका है?

उत्तर—भगवान्‌की आज्ञा मानकर ब्रह्माने बहुत प्रकारसे विचार किया और इन्द्रको त्रास देनेके लिये भगवान् को इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने अधीश्वर किया, क्योंकि लोकमें भी अपने बराबर पुत्रको भाईको देखकर लोग कुकर्म नहीं करते। इस प्रकारसे भगवान् इन्द्रके छोटे-

दोहा–कथा मत्स्य अवतारकी, चौबिसवें अध्याय ।
सत्य व्रत रक्षा करी, सो कहिहौं समुझाय ॥

राजा परीक्षित् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भगवन् ! आपने जो अनुग्रह करके वामन अवतारकी कथा मुझे सुनायी वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगी, अब कृपापूर्वक मुझे प्रथमावतारकी कथा सुनाइये कि जिसमें अद्भुत कर्मकारी भगवान्ने अपनी मायाके द्वारा मत्स्यरूप धारण किया था, मैं उसके श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ क्योंकि मत्स्य रूप लोकमें निंदित है और तमोगुणी स्वभाववाला होनेका कारण सहनेके अयोग्य है, ईश्वरने कर्मग्रस्तके समान होकर इस रूपको किस कारण धारण किया था ? ॥२॥ यह सब वृत्तांत आप मुझसे यथार्थरूपसे कहिये । हे योगिन् ! भगवान् उत्तमश्लोकके चरित्र सबको ही सुखके देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकारसे प्रार्थना की तब व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी वह सब लीला कहने लगे, जो कि विष्णुभगवान्ने मत्स्यरूप धारण करके की थी ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे कि हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद, साधु, कर्म और अर्थकी रक्षा करने के लिये समय-समय पर विष्णु भगवान् अवतार लिया करते हैं ॥ ५ ॥ बुद्धिके गुण करके ऊंचे-नीचे प्राणियोंके पवनके समान आदिपुरुष भगवान् विचरण करते हैं, परंतु निर्गुण होनेके कारण ऊंच-नीचको नहीं भजते और मत्स्यवतारका जो प्रयोजन है वह भी सुनो ॥६॥ अतीत कल्पके अंतमें जब ब्रह्माजीकी निद्राके लिये प्रलय हुआ, तब भूरादि सब लोग समुद्रके जलमें डूब गये ॥७॥ तब समयके वश होकर ब्रह्माजी सो रहे थे, उस समय उनके वदनमेंसे सब वेद निकले, कि जिनको दानवेंद्र हयग्रीवने हरण कर लिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जब दानवश्रेष्ठ हयग्रीवका यह कर्म भगवान् वासुदेवने जाना; तब वे इस दैत्यका दमन करनेके लिये शफरीरूप (मत्स्यरूप) धारण कर लिये ॥ ९ ॥ उसी समय कोई सत्यव्रत नामक नारायण परायण राजर्षि केवल जलका आहार कर तप करते थे ॥ १० ॥ वही राजर्षि इस महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र हो श्राद्धदेवके नामसे विख्यात और भगवान् हरिकरके मन्वन्तरके पदपर अभिषिक्त हुए ॥ ११ ॥ एक दिन यह राजर्षि सत्यव्रत कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे, कि इतनेमें ही उनकी अञ्जलीके जलमें एक मछली दिखायी दी ॥ १२ ॥ हे भारत ! यह देखकर दयावान् द्रविड़राज सत्यव्रत अंजलिके जलसहित इस मछलीको नदीके जलमें डालनेको प्रस्तुत हुए ॥ १३ ॥ राजर्षि सत्यव्रतको महा करुणाकर जानकर वह मछली करुणाके वचन कहने लगी कि हे महाराज ! आप दीनवत्सल हैं और मैं दीन, हीन क्षीण मीन हूँ, नदीके जलमें जातिका घात करनेवाले अनेक जन्तु हैं, उनके हाथमें हमको आप किस प्रकार छोड़ते हैं ? हे महाराज ! हम भीत हो शरण आयी हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत यद्यपि यह नहीं जानते थे कि हमारे ही ऊपर अनुग्रह करनेको स्वयं भगवान्ने यह सत्यस्वरूप धारण किया है, तो भी प्रीतिपूर्वक उस मछलीकी रक्षा करनेको मन स्थिर कर लिया ॥ १५ ॥ दीन वचन सुनते ही राजर्षिके मनमें दया उत्पन्न हो गयी और वह जलपूर्ण कलशमें रखकर मछलीको अपने आश्रममें ले आये ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कलशमें रह-

–भाई हैं, अतः वामन भगवान्के सम्मुख इन्द्र खोटा कर्म नहीं करेगा, इसलिये त्रिलोकीके नायको इन्द्रके हाथके नीचे ब्रह्माने स्वामी किया ।

नेपर एक ही रातके बीच वह मछली इतनी बढ़ी, कि वह फिर उसमें न समा सकी, इसलिये अपने सुभीतेके लिये उन राजर्षिसे कहने लगी ॥ १७ ॥ कि हे राजन् ! इस गगरीमें मेरा शरीर नहीं समाता, इसमें कष्टके मारे मैं वास नहीं कर सकती, अतः आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिये कि जहाँ मैं सुखसे रह सकूं ॥ १८ ॥ यह सुनकर राजा सत्यव्रतने उस मछलीको जलसे निकाल एक बड़े भारी कमण्डलुमें डाल दिया । हे राजन् ! उस कमण्डलुमें गिरते ही एक क्षणके बीचमें वह मछली तीन हाथ बढ़ गयी ॥१९॥ तब वह मछली कहने लगी कि इस कमण्डलुके बीच भी मैं सुखसे नहीं रह सकती,- अनुग्रह करके मुझको आप किसी बड़े भारी स्थानमें रखवा दें, क्योंकि मैं आपकी शरण आयी हूँ, इसलिये सब प्रकार आपको मेरी रक्षा करनी उचित है ॥ २० ॥ तब राजर्षिने इस मछलीको कमण्डलुसे उठाकर एक सरोवरमें डाल दिया परंतु डालतेही वह मछली अपने शरीरसे उस सरोवरमें बड़ी मछलीके समान बढ़ गयी और फिर राजर्षि सत्यव्रतसे निवेदन करने लगी कि हे महाराज ! मैं जलवासी हूँ, मुझको नहीं ज़ान पड़ता कि सरोवरका जल मेरे मंगलार्थ होगा ॥ २१ ॥ महाह्रदको पानेके प्रथम विना जलके जिससे मेरा नाश न हो जाय ऐसा उपाय करके तुम मुझको किसी ह्रदमें स्थापित करो, क्योंकि ह्रद स्वभावसे ही गम्भीर नीरवाले होते हैं उनका जल शीघ्र नहीं घटता ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब उस मत्स्यने इस प्रकारसे कहा तब राजर्षि सत्यव्रतने उसको लेकर जिसका जल कभी क्षीण न हो ऐसे अगाध जलाशयमें डाल दिया, परन्तु एक दिनमें ही वह मछली इतनी बढ़ी कि वह जलाशय भर गया, राजा सत्यव्रतने जब देखा कि इस मछलीका शरीर जलाशयमें भी नहीं समाता तो उसको समुद्रमें डालनेके लिये चला ॥२३॥ तब उस मीनने दीन भावसे राजर्षिके प्रति कहा कि हे राजन् ! यहांपर अति बलवान् मकरादि जन्तु हैं, वे हमको भक्षण कर लेंगे इसलिये आप हमको इस स्थानमें न छोड़िये ॥ २४ ॥ जब उस मत्स्यसे ऐसे वचन सुनकर राजर्षि सत्यव्रत अतिशय मोहित हुये तब मत्स्यसे बोले, "आप कौन हैं ? " और मत्स्यके रूपसे हमको क्यों मोहित करते हैं ? ॥ २५ ॥ हमने कभी इस प्रकारका जलचर न देखा, न सुना । आपने एक दिनमें अपना शरीर बढ़ाकर शत योजनके विस्तारवाले सरोवरको ढक दिया ॥ २६ ॥ हम निश्चय जानते हैं कि आप नारायण अथवा हरि हैं, प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने जलचररूप धारण किया है ॥ २७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है।। आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके अधीश्वर हैं । हे प्रभो ! हम आपके भक्त हैं और शरणागत हैं, आप हमारे आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ आपके समस्त लीला-अवतार प्राणियोंकी विभूतिके अर्थ हैं तो सही, पर इस रूपके धारण करनेका क्या कारण है ? वह मैं जानना चाहता हूँ ॥ २९ ॥ हे अरविन्दलोचन ! देहाभिमानी पुरुषोंकी उपासना जिस प्रकार व्यर्थ होती है, वैसे ही सर्व सुहृद् और प्रिय आत्मा आपके चरणोंकी उपासना व्यर्थ नहीं हो सकती, क्योंकि हम लोग केवल आपके भक्त हैं तो भी आपने ऐसी अनिर्वचनीय दया प्रकट करके हमको यह अद्भुत मूर्ति दर्शन कराया ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकारसे कहा तब जगत्पालक मत्स्यरूपी भगवान् प्रलयके समुद्रमें विहार करनेकी इच्छासे अपने मनकी बात उस राजासे कहने लगे, क्योंकि भक्तजन उनको अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥ ३१ ॥ मत्स्यरूपी

भगवान् बोले कि हे अरिन्दम ! आजसे सातवें दिन प्रलय होगा और उस प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूब जायगी ॥३२॥ हे राजन् ! जब प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी तब उस समय हमारी भेजी हुई एक बड़ी नाव तुम्हारे निकट आयेगी ॥ ३३ ॥ तुम उसको देखते ही सब प्रकारकी औषधियाँ और छोटे-बड़े समस्त बीज ग्रहण करके सप्तऋषियोंको लेकर सब प्राणियोंके साथ ॥३४॥ उस नावपर अतिशीघ्रताके साथ चढ़ जाना। उस नावमें चढ़कर विना खेदके तुम सब जगत् घूम सकोगे। हे राजन् ! जब सब जल ही जल हो जायगा तब उजाला नहीं रहेगा, परन्तु तुम ऋषिलोगोंके तेजसे सब कुछ देखनेको समर्थ होगे ॥३५॥ फिर प्रलय पवनके लगनेसे जब वह नाव कम्पायमान होने लगेगी, तब हम भी तुम्हारे समीप आ जायँगे, तब तुम बृहत् सर्परूप रस्सीसे हमारे सींगमें नावको बांध देना ॥ ३६॥ जबतक ब्रह्माजीकी रात रहगी तबतक हम उस नावको ऋषि लोगोंके सहित प्रलय समुद्रमें खींचते फिरेंगे ॥३७॥ हे राजन् ! परब्रह्मपदवाच्य जो हमारी महिमा है वह उसी समय तुम्हारे प्रश्न करने पर कहेंगे। तुम हमारी प्रसन्नतासे उस महिमाको अपने हृदयमें जान सकोगे ॥३८॥ श्री भगवान् इस प्रकार सत्यव्रतको आज्ञा दे उसी स्थलमें अन्तर्धान हो गये। इसके उपरान्त यह राजर्षि सावधान हो भगवान्की आज्ञा दिये हुए कालकी राह देखने लगे ॥३९॥ अर्थात् सत्यव्रत राजा मत्स्यरूपी भगवान्के चरित्रका स्मरण करता हुआ पूर्वकी ओरको हैं अग्रभाग जिनके ऐसे कुशोंको बिछाकर पूर्व उत्तरकी ओर को मुख करके बैठ गया ॥ ४० ॥ कुछ कालके पीछे दिखायी दिया कि समुद्र का नीर तटको तोड़ सर्व प्रकारसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ने लगा और भयंकर मेघ अनिवारित जलधारा वर्षाने लगे ॥ ४१ ॥ राजा सत्यव्रतने भगवान् की आज्ञाका विचार करते-करते देखा कि एक नाव निकट आ पहुँची। मत्स्यमूर्ति भगवान्की आज्ञाका स्मरण कर वह सत्यव्रत सब प्रकारकी औषधि व लतादि लेके सप्तऋषियोंके साथ उस नावपर आरूढ़ हो गया ॥ ४२ ॥ जब यह सत्यव्रत राजर्षि नौकापर चढ़े तब मुनिलोग बोले कि हे राजन् ! भगवान् केशवका ध्यान करो, वे ही हम लोगोंको इस संकटसे बचाकर मंगल करेंगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब राजा सत्यव्रतने ध्यान किया तब एक शृंग धारण किये मत्स्य भगवान् साक्षात् समुद्रमें प्रकट हुए। इनका यह शृंग सुवर्णका था और देहकी लम्बाई एक लाख योजनकी थी ॥ ४४ ॥ राजर्षि सत्यव्रत भगवान्की आज्ञानुसार अहिडोरसे इस मत्स्यकी शृंगमें नौका बांध प्रसन्नचित्त हो भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥४५॥ राजर्षि सत्यव्रतने कहा कि हे भगवन् ! जिन पुरुषोंका अन्तःकरण अनादि अविद्यासे ढका हुआ है, इस कारण जो अविद्यारूप संसारके परिश्रमसे आतुर हैं, वे लोग भी इस संसार में जिसके अनुग्रहके लिये आश्रित हो जिसको प्राप्त होते हैं आप वही पुरुष हैं, हम लोगोंको मुक्तिके देनेवाले आप परमगुरु हैं ॥४६॥ हे भगवन् ! यह जन अत्यन्त अबोध है, अपने कर्मोंसे ही इसका बन्धन हुआ है, यह सुखकी इच्छासे असुरोंकेसे कर्म करनेकी चेष्टा करता-फिरता है, परन्तु जिनकी सेवा करनेसे वह सुखकी इच्छा छूट जाती है वे हमारे हृदयकी गांठको खोल दे, वे ही भगवान् हमारे परमगुरु हैं ॥ ४७ ॥ अहो ! चांदी जिस प्रकार अग्निकी सेवा करके अपनी मलिनताको छोड़ अपने पहले रूपको प्राप्त हो जाती है, ऐसे ही जिन आपकी सेवासे मनुष्य अज्ञानको छोड़ अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, वे ही अव्यय ईश हमारे गुरु हों, क्योंकि वे ही गुरुके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ अहो ! देवता गुरु व सब श्रेष्ठजन एकत्र होकर भी जिसके प्रसादके दश हजार भागके एक किनकेको भी प्राप्त करने के लिये समर्थ नहीं हो सकते, हे भगवान् ! आप वही ईश्वर हैं, हम आपकी शरण हैं ॥४९॥ हे प्रभो। अंधा जिस प्रकार अन्धेको आगे करके चले, वैसे ही

अविद्वान् पुरुष अबोध को अपना गुरु बनाता है; हम वैसे नहीं हैं। आपके जाननेकी इच्छा करते हैं, इसलिये आपको ही गुरु बनाते हैं, आपका ज्ञान सूर्यके प्रकाशके समान स्वयंसिद्ध है और आप ही सब इन्द्रियोंके प्रकाशक हैं ॥५०॥ हे भगवन्! प्राकृत गुरु केवल अनर्थके हेतु हैं, वे पुरुषको कामादिककी मतिका उपदेश करते हैं; इससे मनुष्य तरनेके अयोग्य संसारको प्राप्त हो जाता है, आप इस प्रकारके नहीं हैं, आप यथार्थमें अव्यय और अव्यय ज्ञानका उपदेश दिया करते हैं, इससे सर्वसाधारण अर्थात् सब कोई आपके पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥५१॥ हे देव! यद्यपि आप सब पुरुषोंके सुहृद, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अष्टसिद्धिस्वरूप हैं, तो भी अनेक दूसरी बुद्धि और कामके वश होकर अपने हृदयमें स्थित हुए आपको नहीं जान सकते ॥५२॥ परन्तु हम ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आये हैं आप देवताओंमें श्रेष्ठ, वरेण्य और ईश्वर हैं। हे भगवन्! आप परमार्थप्रकाशक वचनोंसे हमारे हृदयमें उत्पन्न हुई अहंकारादिकी गांठ खोलिये और आज्ञास्वरूपप्रकाश करनेकी कृपा हो ॥५३॥ शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! जब राजर्षि सत्यव्रतने इस प्रकारसे स्तुति की तब मत्स्यरूपी भगवान् आदिपुरुषने प्रलयके महासमुद्रमें विहार करते-करते उस राजर्षिको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया था ॥ ५४ ॥ और सांख्ययोग व क्रियाविशिष्ट दिव्य पुराणसंहिता अर्थात् मत्स्यपुराण और अतिगुप्त करने योग्य आत्मतत्त्वको भी बड़ी भारी व्याख्याके सहित कहा था ॥५५॥ ऋषिगणोंके सहित सत्यव्रत राजर्षि नावमें बैठकर ब्रह्मा और श्रीभगवान्के कहे हुए उस समस्त आत्मतत्त्वको विशेष करके सनातन धर्मकी कथाको श्रवण करने लगा और उस कथाके श्रवण करनेसे कुछ संदेह भी हुआ ॥५६॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि हे भारत पहले प्रलयके अन्तमें जब ब्रह्माजी सोकर उठे तो उन मत्स्यरूपी भगवान्ने हयग्रीव असुरका संहारकर फिर सब वेद ब्रह्माजीको दे दिये ॥ ५७ ॥ और यह सत्यव्रत राजा भगवान्के प्रसादसे ज्ञानविज्ञान सम्पन्न हो इस कल्पमें वैवस्वतमनु हुआ है ॥ ५८ ॥ हे राजा परीक्षित्! सत्यव्रत राजर्षिके और मायामत्स्यरूपी भगवान् विष्णुके इस अवतार का बड़ा पवित्र आख्यान श्रवण करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ ५९ ॥ श्रीभगवान् वासुदेवके इस अवतारको जो मनुष्य दिन-प्रतिदिन कहते सुनते हैं उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं और अन्तमें परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६० ॥ अहो! प्रलय समुद्र के जलमें शयन करते हुए और शक्ति रहित विधाताके वदनसे निकले हुए सब वेदोंको जिस दानवने हरण कर लिया और जिन्होंने मत्स्यरूपी होकर उस हयग्रीव राक्षसको मार सब वेद सत्यव्रत और सप्तऋषियोंसे कहे थे, उन अखिलकारण मायामत्स्यरूपी भगवान्को हम वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ६१ ॥

छप्पय—जय जय नटवरवेष तरणितनयातटलंपट।
जय जय अटपट लटकचटक भूषित वंशीवट॥
जय जय मणिगणजटित सुहाटक घटित मुकुट धर।
जय जय उत्कट शकट विपाटक वेणु लकुट कर॥
जय जयति चटुलतर पीतपट धर अघटित घटनाचरण।
जय जयति निपट पटुकरण प्रभु मम इच्छापूरणकरण॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासिमाथुरवंशीय-सुप्रसिद्ध-वैद्यवरलालाशालग्रामवैश्यकृते अष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

इति अष्टमस्कन्ध समाप्तः

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

नवम स्कन्ध ९

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

श्रीराम-पञ्चायतन



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

*

नवम स्कन्ध ९.

सोरठा—जय वृन्दावन चन्द, जय मुकुन्द गोविन्द हरि ।
जय प्रभु आनंदकन्द, जगवन्दन दुष्टन दलन ॥ १ ॥
जय त्रिभुवन आधार, जय जय जीवन जगतपति ।
मम उर करहु विहार, कर मुरली शिर मुकुट धर ॥ २ ॥
हे वृन्दावनचन्द, यह वर दीजै दया करि ।
श्रीव्रजको आनन्द, नितप्रति मैं निरखत रहौं ॥ ३ ॥
शीश मुकुट उर माल, सँग राधा बाधाहरण ।
इहि छबिसों नँदलाल, बसहु सदा मेरे हिये ॥ ४ ॥
श्रीयमुनाके तीर, गाय चरावत सखन सँग ।
ता छबिसों यदुवीर, वास करहु मेरे हृदय ॥ ५ ॥
अहो मदन गोपाल, रासरसिक राधारमण ।
हरहु जगत जंजाल, करहु दया जन जानकर ॥ ६ ॥
कर त्रिशूल शशिभाल, शीश गंग मन्मथदहन ।
गलमें गरल कराल, आठ पहर झलकत रहत ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित बोले कि हे भगवन् ! सब मन्वन्तरोंका वृत्तान्त और मन्वन्तरोंमें अनन्तवीर्यवान् भगवान् हरिने जो वीर्य प्रकट किया; वह सम्पूर्ण आपके अनुग्रहसे मैंने सुना ॥ १ ॥ हे योगिन् ! अतीतकल्पके अन्तमें द्रविड़ाधिपति सत्यव्रत नामक राजर्षिने भगवान्‌की सेवा करके जो ज्ञान प्राप्त किया ॥ २ ॥ और वह वैवस्वतके पुत्र मनु हुए थे इसको भी मैंने सुना और उन वैवस्वत मनुके पुत्र जो इक्ष्वाकु आदि राजा हुए, उनका वृत्तान्त भी आप कह ही चुके हैं ॥३॥ हे महाभाग ! इन इक्ष्वाकु आदिका पृथक्-पृथक् वंश और वंशोंके चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ; उसे कृपापूर्वक आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥४॥ हे महाभाग ! इस वंशमें जो पुरुष हो गये हैं और जो आगे होंगे, जो अब वर्तमान हैं, पुण्यकी-

तिवाले उन सब मनुष्योंका विक्रम आप यथार्थ मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌ने जब इस प्रकारसे पूछा; तब परमधर्मज्ञ श्रीशुकदेवजी कथाका आरम्भ करने लगे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मनुके वंशका वृत्तान्त हम कहते हैं, तुम श्रवण करो परंतु इसका विस्तारसे वृत्तान्त तो हम सहस्रों वर्षतक नहीं कह सकते ॥ ७ ॥ हे राजन् ! जो परम पुरुष पर अपर भूतोंके आत्मा हैं आगे केवल वही थे; कल्पके अन्तमें उनके अतिरिक्त विश्वमें कुछ और वस्तु नहीं थी ॥८॥ उन परमपुरुषकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमल उत्पन्न हुआ । हे महाराज ! उस कमलसे चतुर्मुख ब्रह्माजीका जन्म हुआ ॥ ९ ॥ इन ब्रह्माजीके मनसे मरीच जन्मे, उनके पुत्र कश्यपजी हुए, इन कश्यपजीकी भार्या दक्षकी बेटी अदितिके गर्भमें कश्यपजीसे सूर्यका जन्म हुआ ॥ १० ॥ हे भारत ! इन सूर्यनारायणसे संज्ञाके गर्भमें श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुए । इन श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धा हुई कि जिसके गर्भसे इन महात्माके दश पुत्र उत्पन्न हुए । ॥११॥ उनके नाम यह हैं, यथा—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ १२ ॥ हे राजन् ! इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंकी उत्पत्तिके पहले मनुजी निःसन्तान थे, इसलिये महर्षि वशिष्ठजीने उनसे मित्रावरुणका यज्ञ कराया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मनुकी भार्या श्रद्धा उस यज्ञमें केवल दूध ही पीकर नियमसहित होताके निकट गयी और उसने प्रणाम करके यह प्रार्थना की कि आप ऐसा होम करें कि जिससे मेरे कन्या उत्पन्न हो ॥ १४ ॥ श्रद्धाकी प्रार्थनासे "यज्ञ करो" इस प्रकार अध्वर्य्युसे प्रेरित हो होताने हविके ग्रहण हो जाने पर मनमें इस प्रकारका ध्यान और मुखसे "वषट्" शब्द उच्चारण करके मनुभार्याकी प्रार्थना को पूर्ण किया॥१५॥ हे राजन् ! जब होताने इस प्रकारसे आचरण किया तब मनुके इला-नाम एक कन्या उत्पन्न हुई । पुत्रकी चाहना होनेके कारण पुत्रीके होनेसे मनुको संतोष नहीं हुआ, इसलिये असंतुष्ट हो वशिष्ठजीसे बोले कि ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! आप ब्रह्मवादी हैं आप लोगोंका यह विपरीत कर्म कैसे हुआ ? हा ! कैसा कष्ट है ? इस प्रकारसे मंत्रका उलटा होना उचित नहीं है ॥१७॥ आप लोग ब्रह्मज्ञ और योगी हैं, तपकी अग्निसे आपके अनन्त पाप भस्म हो गये हैं, देवता लोगोंमें अनृत (झूठ) के समान आप सब लोगोंमें इस प्रकार संकल्पकी विषमता कैसे हुई ? ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मनुके यह वचन सुनकर महर्षि वशिष्ठजी होताके व्यभिचारको समझ गये और मनुसे बोले कि ॥ १९ ॥ हे वत्स ! यद्यपि तुम्हारे होताने अन्य आचरण किया है, तो भी हम तुमको सुन्दर पुत्र ही देंगे॥२०॥हे राजन् ! वशिष्ठजी इस प्रकारसे कह मनुकी कन्या इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे भगवान् आदिपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ वशिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और संतुष्ट हो वशिष्ठजीको मनमाना वरदान दिया, उस वरके प्रभावसे मनुकी कन्या इला सुद्युम्ननामक श्रेष्ठ पुत्र हो गयी ॥२२॥ हे महाराज ! यह सुद्युम्न एक दिन, सिंधुदेशके उत्पन्न हुए घोड़ेपर चढ़कर और कुछेक मंत्रियोंको साथ लेकर आखेटके लिये वनमें विचरण करने लगा ॥ २३ ॥ उसके हाथमें रुचिर धनुष और विचित्र बाण था और शरीरमें दृढ़ बख्तर पहने हुए था, इसलिये वह मृगोंके पीछे निर्भय दौड़ता हुआ उत्तर दिशामें पहुँचा ॥ २४ ॥ वहां सुमेरुपर्वतकी तलैटीमें सुकुमार वन है, जहां भगवान् भूतनाथ भूतेश्वर सदा पार्वतीजीके साथ रहकर विहार किया करते हैं, मनुका पुत्र सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ उसी वनमें पहुँचा । उसने वहां पहुँचते ही अपने आपको स्त्री

देखा और अपने घोड़ेको घोड़ीरूप पाया ॥२५॥ २६ ॥ और उसके सब सेवक अकस्मात् अपने-अपने पुरुषपनमें विकार हुआ देख परस्पर एक दूसरेको निहारकर विस्मित हुए ॥२७॥ यह सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन् ! यह स्थान ऐसे गुणवाला कैसे हुआ ? और किस पुरुपने इस स्थानको ऐसा कर दिया ? इस बातको सुनकर हमको बड़ा कौतूहल हुआ है, आप कृपा करके इस प्रश्नकी व्याख्या कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे नृपश्रेष्ठ ! एक समय श्रेष्ठ बुद्धिवाले ऋषि लोग भगवान् गिरीश (महादेव) जीके दर्शन करनेकी वासनासे सब दिशाओंका अन्धकार दूर करते और प्रकाशको रहित करते अर्थात् केवल अपना प्रभाव प्रकाशित् करते हुए वनमें गये थे ॥ २९ ॥ उस समय भगवती अम्बिकादेवी विवसना अर्थात् वस्त्ररहित थीं, इसलिये मुनि लोगोंको देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और उन्होंने घबड़ाकर पतिकी गोदीसे उतर झटपट कटिवसन पहन लिये ॥३०॥ हरगौरीका विहार देखकर उन सब ऋषिगणोंका मन भी स्त्री प्रसंगसे कलुषित हुआ और वे उसी समय वहांसे लौटकर नरनारायणके आश्रमको चले गये ॥ ३१ ॥ इसके पीछे भगवान् भूतनाथ अपनी प्राणप्यारीका प्रिय कार्य करनेको समझाते-बुझाते हुए बोले कि आजसे जो कोई इस स्थानमें आयेगा, वह उसी समय स्त्री हो जायगा। ❋ हे राजन् ! तबसे सब पुरुषोंने इस वनको छोड़ दिया, कोई उस दिशाको भी तो नहीं जाता था ॥ ३२ ॥ राजकुमार सुद्युम्न अपने सेवकोंके साथ इस वनमें प्रवेश करनेके पीछे वन-वनमें भ्रमण करने लगे ॥ ३३ ॥ सखी सहेली नारियोंके साथ उस सुद्युम्नको अपने आश्रमके समीप भ्रमण करता हुआ भगवान् बुधजीने देखा ॥ ३४ ॥ देखते ही बुधके मनमें कामदेवका सञ्चार हुआ और वह सुद्युम्न, जो कि मनोहर स्त्रीके रूपमें थे, चन्द्रमाके पुत्र बुधको देख उनको पति बनानेकी अभिलाषाकी ॥ ३५ ॥ इसलिये बुधने उसका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे बुधके पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! ऐसा सुना गया है कि मनुके पुत्र सुद्युम्नने इस प्रकार स्त्रीपनको प्राप्त हो अपने कुलाचार्य महर्षि वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३७ ॥ स्मरण करते ही महर्षि वसिष्ठजी उनके समीप आये और उनकी यह दशा देख दयासिन्धु दयाके मारे अति दुःखित हुए और फिर उनको पुरुष करनेकी इच्छासे श्रीमहादेवजीके निकट जाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! वसिष्ठजीकी स्तुतिसे भगवान् उनके प्रिय कार्यको और अपने वचनको सत्य करनेके लिये यह बोले कि तुम्हारे गोत्रमें उत्पन्न हुआ सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहेगा। इस व्यवस्थासे यह सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करेगा ॥ ३९ ॥ हे राजन् इस प्रकारसे कुलाचार्य वसिष्ठजीकी कृपासे यद्यपि सुद्युम्न पुरुषत्व पाकर व्यवस्थापूर्वक पृथ्वीका पालन

❋ शंका—महादेवजी तो बड़े शीलवान और दयानिधान थे, फिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा कि हमारे स्थानके सामने जो कोई पुरुषमात्र आयेगा वह उसी समय स्त्री हो जायेगा। चौरासी लाख योनिमें किसी योनिका पुरुष क्यों न हो और तीन लोकमें जो चराचर प्राणी हैं वे सब अपने-अपने कामकी सिद्धिके लिये शिवके समीप कैलाशको जाते हैं और वे लोग स्त्री नहीं होते, क्या कारण है ?

उत्तर—जब शिवजी शाप दे चुके तो पीछे अपने मनमें विचारा कि अब क्या उपाय करना चाहिये ? तब उसी दिनसे कैलाश के चारों ओर अपने गण बैठा दिये; अतः जो कोई प्राणी कैलाशको जाता है तो शिवगण एक कोश आगे उसको रोक लेते हैं और शिवजीसे पूछते हैं कि, हे महाराज ! अमुक पुरुष आपके दर्शनके लिये आया है तब महादेव आज्ञा देते हैं कि आने दो, तब उस मनुष्यको दूतगण कैलाशकी सीमाके अन्दर ले जाते हैं, इसलिये वे लोग स्त्री नहीं होते। कोसभरपर खड़ा होनेका कारण यही है कि जिस सीमाके भीतर आनेमें स्त्री होते हैं उस सीमासे दूर वह एक कोशपर खड़ा करते हैं।

करता था परन्तु महीनेके महीने स्त्री हो जानेसे छिपकर सभामें नहीं आता था। इसलिये प्रजा उससे असंतुष्ट थी ॥ ४० ॥ इस राजा सुद्युम्नके तीन पुत्र थे-उत्कल, गय और विमल। ये तीनों धर्मपरायण थे और दक्षिण देशका राज्य करते थे ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठान पुरीका (जो अब प्रयागमें गंगाजीके पास झूंसी नामसे प्रसिद्ध है) पति सुद्युम्न प्राप्त हुई वृद्धावस्थाको देख अपने पुत्र पुरूरवाके हाथमें राज्यका भार सौंप वनको चला गया ॥४२॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा-मनु द्वै युत वैराग्यसे, रहे असुत वन जाय।
करुषादिक पँचसुतनकी, कथा द्वितिय अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे नृपोत्तम! जब सुद्युम्नकी इस प्रकारसे अव्यवस्था हुई तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामना करके शतवर्षतक यमुनामें तप किया था ॥ १ ॥ इसके पीछे सन्तानके अर्थ भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया, उस यज्ञके करनेसे उन्होंने अपने योग्य दश पुत्र पाये। इन दश पुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे ॥ २ ॥ हे राजन्! मनुके पृषध्र नामक जो पुत्र हुआ था, उसको मनुजीने गोपालक बताया, इस लिये वह पुत्र वीरासन व्रत धारण करके रात्रिके समय सावधान होकर गायोंकी रक्षा करता था ॥ ३ ॥ एक दिन रात्रिके समय जल वर्ष रहा था कि उसी समय एक व्याघ्र आकर गोठमें घुस गया। उसके घुसते ही गोठमें जितनी गायें सो रही थीं सब डकराकर इधर-उधर दौड़ने लगीं ॥ ४ ॥ गोठमें घुसा हुआ व्याघ्र अतिशय बलवान् था, वह एक गायको जब पकड़कर भागने लगा तब वह गाय अति आर्त होकर पुकारी, उस गायका डकराना सुनकर पृषध्र उस शार्दूलके पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥ एक तो रात ऐसी अँधियारी थी कि अपना देह भी नहीं दिखायी देता था दूसरे घनघोर घटासे और भी अन्धकार हो रहा था, कि जिससे कुछ नहीं दिखायी देता था, इसलिये पृषध्रने खड्ग ग्रहण करके समीप व्याघ्र समझ अज्ञानतासे एक गायका शिर काट डाला॥६॥ उस खड्गके चलानेसे व्याघ्रका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भीत हो मार्गमें रुधिर गिराता हुआ भाग गया ॥ ७ ॥ पृषध्रने मनमें समझाकी व्याघ्र मर गया, परंतु जब प्रभात हुआ तो देखा कि कपिला मारी गयी, तब बहुत ही दुःखित हुआ ॥८॥ हे राजन्! यद्यपि राजकुमार पृषध्रने यह अपराध अनजानमें किया था, तो भी कुलपुरोहितने गायके शोकसे व्याकुल हो उसको यह शाप दिया कि, रे पापिष्ठ! तू क्षत्रियोंका बंधु भी नहीं हो सकेगा, बरन् इसी जन्ममें शूद्र होगा * ॥९॥ जब इस प्रकारसे आचार्यने शाप दिया, तब पृषध्रने हाथ जोड़कर उसको

---

* शंका—गौका वध करनेवाला राजा पृषध्र जो था, उसको वशिष्ठजीने यह शाप दिया, कि गायका मारनेवाला तू इस दुष्ट कर्मके करनेसे शूद्र योनिको प्राप्त होगा। यही शाप उसको क्यों दिया, क्योंकि गायका वध करके शूद्र नहीं किन्तु चाण्डाल होना चाहिये।

उत्तर—सत्युगमें त्रिदण्डी नाम मुनि किसी समय बाज पक्षीका रूप धरकर संसारमें भ्रमण करता था, एक दिन अपनी इच्छासे यमपुरीका कौतुक देखनेके लिये गये। यमपुरी मुनिका चरित्र जानकर कौतूहल करनेके लिये गौका रूप धरकर पक्षीरूप जो मुनि थे, उनको अपने शृंगोंसे मारनेके लिये दौड़ी तब मुनिने शाप दिया कि बारह वर्ष तू गाय रूप रहेगी, इसलिये वह यमपुरीकी स्त्री गौ बनकर अयोध्याके राजाकी गायमें रहा करती थी। उसी गोरूप स्त्रीको पृषध्रने दैवयोगसे मार डाला, तब मुनिका शाप छूटकर पृषध्रकी होनेके लिये आशीर्वाद देकर अपने पतिके पास गयी। वसिष्ठजीने ध्यान करके सब चरित्र जान लिया और दो काम विचारकर गायोंका माहात्म्य बढ़ानेके लिये, कि—

अंगीकार किया, फिर ब्रह्मचर्य धारणकर मुनियोंके प्यारे व्रतको ग्रहण किया ॥ १० ॥ इसके पीछे सर्वात्मा निर्मल परमपुरुष भगवान् वासुदेवमें भक्ति करके एकान्तताको प्राप्त हो सर्व प्राणियोंका सुहृद् और सबको समान अर्थात् बराबर देखनेवाला हुआ। उसने संग छोड़ दिया, उसकी आत्मा शान्त हो गई, इंद्रियां उसके वशमें हो गयीं। संग्रहको त्याग अपने आपसे जो कुछ मिल जाता था, उसीसे अपनी जीविका करता था ॥११॥ और परमात्मामें आत्माको लगाकर ज्ञानसे तृप्त हो जड़,अंधे,अथवा बहरेके समान पृथ्वीपर घूमने लगा॥१२॥ हे राजन्! इस प्रकार आचार-व्यवहार युक्त हो पृषध्रने वनमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर दिया और परब्रह्मके पदको प्राप्त हुआ॥१३॥ हे महाराज! मनुका छोटा पुत्र कवि विषय का लालच छोड़ बन्धु-बांधवों सहित राज्यको छोड़नेके पीछे परमपुरुषको हृदयमें धारण करके किशोर अवस्थाके समयमें ही वनको चला गया। इसलिये उसका भी वंश आगेको न चला ॥१४॥ परन्तु मनुके करूष नामक जो पुत्र था, उससे कारूष नामसे विख्यात क्षत्रिय जातिकी उत्पत्ति हुई; वह जाति ब्रह्मनिष्ठ धर्मरक्षक और उत्तर मार्गके देशकी राजा हुई॥१५॥ इस प्रकार धृष्ट नामक मनुके पुत्र से धाष्टर्य नामसे प्रसिद्ध क्षत्रियोंकी जाति उत्पन्न हुई वह इस पृथ्वीमंडलपर ब्राह्मणपनको प्राप्त हुई है। हे राजन्! नृगनामक मनुका जो पुत्र था, उसका पुत्र सुमति, उसका पुत्र भूतिज्योति और उसका संतान वसु हुआ ॥१६॥ वसुका पुत्र प्रतीक उसका पुत्र ओघवान् हुआ, उस ओघवान्के औघवान नामक एक पुत्र और औघवती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। उस औघवती कन्याके साथ राजा सुदर्शनने विवाह किया ॥ १७ ॥ हे राजन्! नरिष्यन्त नामक जो मनुका पुत्र था उसका पुत्र चित्रसेन, उस चित्रसेनका पुत्र ऋक्ष, उसका पुत्र मीढ्वान् और मीढ्वान्से पूर्ण उत्पन्न हुआ, उस पूर्णसे इन्द्रसेन नामकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ इन्द्रसेनका पुत्र वीतिहोत्र और वीतिहोत्रसे सत्यश्रवाने जन्म ग्रहण किया। इस सत्यश्रवाका पुत्र उरुश्रवा और उरुश्रवासे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥१९॥ देवदत्तके पुत्र अग्निवेश्य हुए। यह स्वयं भगवान् अग्निस्वरूपसे उत्पन्न हुए थे यह अग्निवेश्य ही कानीन और जातूकर्ण नामसे विख्यात महान् ऋषि हुए थे और उसने ही अग्निवेश्यायन नामक प्रसिद्ध ब्रह्मकुलकी उत्पत्ति हुई है॥२०॥ हे नृप! नरिष्यंतके वंशका वर्णन हो गया। अब दिष्टवंशका वर्णन करता हूँ। उसे आप मन लगाकर एकाग्रचित हो सुनिये॥२१॥ दिष्टका पुत्र नाभाग पीछे जिस नाभागकी कथा कहेंगे वह यह नाभाग नहीं है, यह अन्य जो कर्मद्वारा वैश्यपनको प्राप्त हुआ था; इसका पुत्र भलन्दन और भलन्दनसे वत्सप्रीतिकी उत्पत्ति हुई ॥२२॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति, प्रमतिका पुत्र खनित्र और उससे चाक्षुषने जन्म ग्रहण किया, चाक्षुषका पुत्र विविंशति ॥२३॥ उसका पुत्र रम्भ, रम्भका पुत्र खनिनेत्र, जो कि परमधार्मिक हुआ, इस खनिनेत्रके पुत्र करन्धम राजा हुआ ॥ २४॥ करन्धमके पुत्र अविक्षित, अविक्षितके मरुत जो कि चक्रवर्ती हुए, जिसने अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने यज्ञ कराया था ॥२५॥ इस मरुतके यज्ञके समान किसीका यज्ञ प्रसिद्ध नहीं है। उनके यज्ञके मध्य सब पात्र सुवर्णके

आगे कोई ऐसा काम न करे और पृषध्रका मोक्ष होनेके लिये शाप दिया कि जा तू शूद्र हो जा। यदि कोई पूछे कि शूद्र होने का शाप क्यों दिया गया? तो शूद्र होनेका कारण यह है कि शूद्र अभिमान रहित होते हैं और श्रीगंगाजीका भाई भी शूद्र है, क्योंकि यह सबको विदित है कि भगवान्के चरणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं और गंगाजी भी भगवान्के चरणोंसे निकली हैं, इसलिये दो गुण करके शूद्रको मुक्ति शीघ्र होती है इसीलिये वशिष्ठजीने पृषध्रको शूद्र होनेको कहा था।

बने हुए शोभायमान थे ॥२६॥ जिसके यज्ञमें सोमपान करके सुरेन्द्र (बहुत) प्रसन्न हुए, अनेक प्रकारकी दक्षिणा पाकर ब्राह्मणोंको अत्यन्त हर्ष हुआ था। इस यज्ञमें मरुद्गण परोसने वाले और विश्वदेवगण सभासद् हुए थे ॥२७॥ इन मरुतके पुत्र दम, उनके पुत्र राजवर्द्धन, उनके सुत सुधृति, सुधृतिका पुत्र नर ॥२८॥ उनका पुत्र केवल, उससे धुन्धमान हुए धुन्धमान के पुत्र वेगवान, उनके पुत्र बुध, उनके पुत्र तृणविन्दु राजा हुए॥२९॥ यह राजा अतिउत्तमोत्तम गुणविभूषित था। श्रेष्ठ अप्सरा अलम्बुषा देवी उनके गुणोंपर मोहित हो उसके संग हुई, इस अलम्बुषा अप्सराके तृणविन्दुसे कई एक पुत्र और इलविला नाम एक कन्या उत्पन्न हुई॥३०॥ हे राजन्! योगीश्वर विश्रवाजी ऋषिने अपने पितासे परम विद्याको प्राप्त होकर इस इलविलाके गर्भमें कुबेरको उत्पन्न किया ॥३१॥ अब तृणविन्दुके पुत्रोंका वृतान्त सुनो। विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु ये तीन तृणविन्दुके पुत्र हुए, उनमें विशाल ही वंशकारी राजा हुआ और उसने वैशाली नामक एक पुरी भी बनायी॥३२॥इस विशालका पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्रका पुत्र धूम्राक्ष और धूम्राक्षका पुत्र संयम हुआ, संयमके देवल और कृशाश्व ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥३३॥ उनमें कृशाश्वका पुत्र सोमदत्त हुआ, कि जिसने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपति परम-पुरुषकी पूजाकर योगेश्वर लोगोंके समान उत्तम गति प्राप्त की॥३४॥सोमदत्तका पुत्र सुमति, सुमतिका पुत्र जन्मेजय हुआ। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्! विशालवंशमें यह राजा गण उत्पन्न हुए। ये सब राजा तृणबिन्दुका यश धारण करनेवाले थे ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—मनुसुत नृप शर्यातिके, भई सुकन्या एक।
तिसरेमें रेखन कथा, वरणौं सहित विवेक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित! मनुका पुत्र शर्य्याति अति ब्रह्मनिष्ठ राजा हुआ। उसने अंगिरागणोंके यज्ञमें दूसरे दिवसका कर्तव्य कर्म उपदेश किया ॥ १ ॥ इस राजाके कमलके समान नेत्रवाली सुकन्या नाम एक कन्या हुई। एक समय राजा उसको साथ ले वनमें गया, जहां कि च्यवन मुनिका आश्रम था ॥२॥ उस वनमें यह राजकुमारी अपनी सुकुमारी सखियोंके साथ फूलपत्तोंको एकत्र करते-करते एक स्थानमें गयी और उसने उसी वनके मध्य बँबईकी मट्टीके छेदमें पटबीजनेके समान दो प्रकाशवान् वस्तु देखीं ॥३॥ यह देखकर राजकुमारी सुकन्याको अति कौतूहल उत्पन्न हुआ, उसने भाग्यप्रेरितके समान हो उसी समय एक कांटा ग्रहणकर मोहसे उन प्रकाशित छिद्रोंको फोड़ दिया। हे राजन्! बिद्ध होते ही उस बम्बईके छिद्रोंमेंसे बराबर रुधिरकी धार निकलने लगी ॥४॥ अतएव राजा शर्य्या-तिके साथ जो सेना थी, उन सब वीरोंका मल मूत्र रुक गया। यह देखकर राजा शर्यांति विस्मित हुआ और अपने साथी पुरुषोंसे पूछने लगा ॥५॥ क्या तुममेंसे किसीने महर्षि च्यवन ऋषिका कुछ अपराध किया है? हमको भलीभांति जान पड़ता है कि हम लोगोंमेंसे किसीने महर्षिके आश्रमको दूषित किया होगा ॥ ६ ॥ यह सुनकर सुकन्याने भीत हो अपने पितासे निवेदन किया कि हे पितः! मुझसे कुछ अपराध हुआ है। मैंने न जानकर एक कांटेसे दो प्रकाशित पदार्थोंका बेध डाला है ॥७॥ बेटीके यह वचन सुनकर राजा शर्य्यातिको बड़ा भय

हुआ। बँबईमें मुनि अंतर्हित हुए हैं उनके निकट जा विविध भांतिकी स्तुतिसे प्रसन्न किया ॥८॥ इसके उपरान्त महर्षिका अभिप्राय जान राजाने अपनी कन्या उनको दे दी। हे राजन्! इस प्रकार राजा शर्याति विपत्तिसे छूटकर मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीसे सम्भाषण करनेके पीछे सावधान चित्तसे अपने स्थानको लौट गया ॥ ९ ॥ इस ओर अपने पति परमक्रोधी च्यवन ऋषिके योग्य चित्तकी जाननेवाली सुकन्या सावधान होकर सदा चित्तको देकर उनकी सेवा करती थी ॥ १० ॥ कुछ कालके बीतनेपर एक दिन दोनों अश्विनीकुमार उनके आश्रममें आये। मुनिश्रेष्ठ च्यवनजीने भलीभांति उनकी पूजा करके कहा कि आप दोनों बड़े वैद्य हैं, कृपा करके हमको आप युवा कर दीजिये ॥ ११ ॥ स्त्रियाँ जिस रूप और जिस वयसको चाहती हैं वही तुम हमको दे दो। तुम सोमपानरहित हो कभी सोमपान नहीं किया है अतः हम सोमयज्ञ करके तुमको सोमपूर्ण पात्र देंगे ॥१२॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवनजीके यह वचन सुनकर दोनों अश्विनीकुमारोंने कहा कि "यही करते हैं" यह कह फिर आनन्द प्रकाश कर बोले कि अच्छा तो पहले सिद्धोंके बनाये इस सरोवरमें स्नान करनेको चलिये ॥ १३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार कहनेसे जरासे ग्रस्त है देह जिनका, नसें दिखायी देती हैं, कुप्यारे पके हुए केशवाले महर्षि च्यवनजी इन दोनों देववैद्योंके साथ सरोवरमें घुसे अर्थात् दोनों अश्विनीकुमार इनको लेकर सरोवरमें घुसे ॥ १४ ॥ कुछ देर पीछे उस सरोवरसे सुडौल शरीरवाले रमणीप्रिय तीन पुरुष निकले। तीनों जनोंके गलोंमें कमलकी मालायें पड़ी हुई थीं, कानोंमें कनक (सुवर्ण) कुण्डल विराजमान थे, तीनोंका स्वरूप अनुपम था और वस्त्रोंकी शोभा एक अपूर्व ही भावको धारण किये हुई थी ॥१५॥ तीनों सूर्यके समान तेजस्वी, समान रूप और समान अवस्थावाले देख पतिव्रता सुकन्याको अति विस्मय प्राप्त हुआ और वह नहीं पहचान सकी कि हमारे पति कौनसे हैं? इसलिये दोनों अश्विनीकुमारोंकी शरण गयी अर्थात् उसने यह प्रार्थना की कि आपलोग पृथक् होकर हमारे पतिको हमे दिखादें ❋ ॥१६॥ सुकन्याका पतिव्रत देखकर अश्विनीकुमारोंको सन्तोष हुआ और अपने आप अलग हो उसे उसके पति च्यवनऋषिको दे दिया। इसके पीछे महर्षि च्यवनजीसे संभाषण कर वह दोनों अश्विनीकुमार विमानपर बैठ कर स्वर्गको चले गये ॥ १७॥ हे राजन्! कुछेक कालके पीछे शर्याति राजाने यज्ञ करनेके लिये च्यवन ऋषिके आश्रममें जाकर देखा कि कन्याके निकट सूर्यके समान एक तेजस्वी पुरुष बैठा हुआ है ॥ १८ ॥ सुकन्या पिताको देखकर शीघ्रतासे उठी और उनके चरण छुए। राजा शर्यातिने आशीर्वाद दिया, परन्तु यह विचार वे प्रसन्न न हुए कि हम जराजीर्णच्यवन ऋषिको अपनी कन्या दे गये थे, वे आश्रममें नहीं हैं बरन् उनके बदलेमें स्वरूपवान् एक और युवा पुरुष बैठा हुआ है, यह सोचकर उनको बड़ी शंका हुई। तब वह अप्रसन्न होकर अपनी

* शंका—सुकन्या अपने सम्मुख एक सरीखे तीन पुरुष देखकर अश्विनीकुमारकी शरणमें कैसे गयी? क्योंकि वे तो तीनों एक ठौर रहे थे, दीपक दीपकसे जलावे तो यह कैसे जान पड़ेगा कि यह तिलके तेलका है, यह अलसीके तेलका है, यह घीका दीपक है, ऐसे ही वे तीनों एक रूप थे फिर उसने अश्विनीकुमारको कैसे पहिचाना?

उत्तर—सुकन्याने अपने मनमें अश्विनीकुमारका ध्यान किया था और उन दोनों देवताओंके सम्मुख वह नहीं गयी थी, उसने अश्विनीकुमारका ध्यान करके वारंवार उनकी ही प्रार्थना की कि, हे महाराज! हे दीनवत्सल!! हे कृपासिन्धो!!! आप दोनों मेरे पिताके समान हो किसी प्रकार कृपा करके मेरे पतिको मुझे दिखा दो। जब अश्विनीकुमारकी इस प्रकार विनयकी तो उसका पति उसको मिल गया।

बेटीसे बोले ॥१९॥ कि यह क्या करनेकी वासना की है ? अरी असत्यन ! तेरे पति लोगोंके नमस्कार करने योग्य हैं, उनको तूने क्यों ठगा ? जराग्रस्त होनेके कारण तू उनसे प्रसन्न नहीं हुई, इससे ही इस पथिकको उपपति बनाकर तू भजती है॥ २० ॥ अरे कुलकलंकिनी ! तू अति उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है, ऐसी बुद्धि करनेका किस प्रकारसे साहस किया । हा ! हमारे कुलको दूषित किया । निर्लज्ज होकर उपपतिकी पूजा करती है । पिता और पतिके कुलको तूने एकबार ही डुबो दिया ॥२१॥ पिताजीके यह वचन सुन मन्द मुसकानवाली सुकन्या विस्मित हो कहने लगी-हे पिताजी ! यही आपके जमाई हैं,यही भृगुनंदन च्यवनजी हैं ॥२२॥ फिर जिस प्रकारसे इनको रूपयौवनकी प्राप्ति हुई थी, वह भी सब वृत्तान्त पिताजीको कह सुनाया । यह सुन राजा शर्याति विस्मित और प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी सुकन्याको हृद-यसे लगाया ॥ २३ ॥ हे राजन् ! इसके पीछे महर्षि च्यवनजीने शर्याति राजासे सोमयज्ञ कराकर सोम पीनेके योग्य न होनेपर भी अश्विनीकुमारोंको सोम पीनेको दिया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रको तत्काल ही बोध हो जाता है, अतः उसने यह देख च्यवन ऋषिका विनाश करनेके लिये वज्र हाथमें लिया था, परंतु भृगुनंदनने अपने ब्रह्मतेजसे वज्रसहित इन्द्रका हाथ स्तंभित कर दिया ॥ २५ ॥ यद्यपि पहले चिकित्सक होनेके कारण अश्विनीकुमार सोमयज्ञसे बाहर थे तथापि तबसे सब देवताओंने उनको यज्ञसोम देनेके लिये अंगीकार किया ॥ २६ ॥ इन शर्यातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानबर्हि, आनर्त और भूमिसेन । इन तीनोंमें आनर्तके रेवत नाम एक पुत्र हुआ ॥ २७ ॥ हे अरिन्दम ! यह रेवत सागरके बीचमें कुशस्थली नामक एक नगरी बसाकर उसमें विराजमान हो आनर्त्तादि देशोंका पालन करता था ॥ २८ ॥ उसके शत पुत्र जन्मे थे, उनमें ककुद्मी बड़ा और गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था ॥ २९ ॥ यह ककुद्मी रेवती नामक अपनी कन्याको साथ ले उसके लिये वर ढूँढ़नेको ब्रह्माजीके पास गया ॥ ३० ॥ उस समय ब्रह्माजीकी सभामें गन्धर्वोंका गाना हो रहा था, इसलिये अवसर न पाकर ककुद्मी वहां क्षण कालतक ठहरा और फिर अवकाश पाकर प्रणाम करके अपना सब अभिप्राय निवेदन किया । ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यह सुन ब्रह्माजी हँसकर बोले कि हे राजन् ! तुमने जिन पुरुषोंको विचारा है, उन सबको कालने संहार कर डाला, इस समय उनके बेटे, पोते और नातियोंका गोत्र व नाममात्र भी नहीं सुना जाता ॥ ३३ ॥ मूल बात यह है कि तुमको यहां सत्ताईस चौकड़ी युग बीत गये ॥ ३४ ॥ इसलिये जाओ देवदेवके अंशसे जो महाबलवान् बलदेव हैं, उन नररत्नको तुम यह अपनी कन्यारत्न समर्पण करो ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! जिनके कहने-सुननेसे पुण्य होता है वह भूतभावन भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतार ले चुके हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकारसे आज्ञा पाकर ककुद्मी ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने पुरमें आया । इनके भ्राता लोग यक्षोंके भयसे इस पुरीको छोड़कर सब दिशामें भाग गये थे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे दूषणरहित अंगवाली अपनी बेटीको बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदेवको इस राजाने दे दिया और आप तप करनेके लिये नारायणके स्थान बदरिकाश्रमको चला गया ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा-चौथे मनुसुत नभगको, कहौं सहित विस्तार।
अम्बरीष ताके तनय, भये भक्त-आधार॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि नभगका पुत्र नाभाग हुआ। इस नाभागने जब बहुत कालतक गुरुकुलमें वास किया तब उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भ्रातालोगोंने बांट करनेके समय इसके लिये पिताके धनका अंश नहीं रखा॥ १॥ जब नाभाग ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके गुरुकुलसे अपने घरपर आया, तब उसके भाइयोंने पिताको ही उसके भागमें रखा, अर्थात् जब नाभागने आकर भाइयोंसे पूछा कि तुमने हमारे लिये क्या रखा है? तब भाइयोंने कहा कि हमने तुम्हारे अर्थ पिताको ही अंशस्वरूप कर रखा है इसलिये तुम पिताको ग्रहण करो। यह सुन नाभागने पिताजीके निकट जाकर कहा कि हे पितः! हमारे बड़े भाइयोंने आपको किसलिये हमारा भाग बनाया है? तब पिताजी बोले कि हे वत्स! तुम उनकी बातका विश्वास मत करो; क्योंकि हम भागके समान भोगने योग्य वस्तु नहीं हैं॥ २॥ परन्तु तुम्हारे भ्राताओंने जो हमको तुम्हारा भाग बताया है इसलिये हम तुम्हारी जीविकाका उपाय बतलाये देते हैं। हे विद्वन्! अंगिरागोत्री मुनिलोग यज्ञ कर रहे हैं, वे लोग यद्यपि सुबुद्धिमान हैं, तो भी वे विहित षड्यज्ञ उपस्थित होनेपर प्रत्येक षष्ठ दिवसमें कर्मको प्राप्त होकर ज्ञानके अभावसे अनुष्ठान करनेमें मोहित होते हैं॥ ३॥ ४॥ जाकर उन महात्माओंको विश्वेदेव सम्बन्धी दो सूक्त पढ़ाओ। कर्मके समाप्त होनेपर जब वे स्वर्गमें गमन करेंगे, तब यज्ञका बचा हुआ धन अवश्य तुमको दे देंगे, जाओ विलम्ब न करो, इसी समय उनके निकट चले जाओ। हे राजन्! जब इस प्रकार नाभागने अपने पितासे सुना तो उन्होंने ऐसा ही किया और वह सब अंगिरा भी अपने यज्ञका बचा हुआ धन इस नाभागको देकर स्वर्गलोकमें चले गये॥ ५॥ जब नाभाग वह धन अंगीकार करने के लिये प्रस्तुत हुआ, तब इतनेमें ही श्यामवर्ण शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तरकी ओरसे आकर कहा कि यज्ञभूमिमें रखा हुआ यह सब धन हमारा है॥६॥ तब नाभाग बोले कि यह कैसे? यह धन तो हमको अभी ऋषिलोग दे गये हैं। नाभागके यह वचन सुनकर उस पुरुषने कहा "भाई! झगड़ा क्यों करते हो" तुम जाकर अपने पितासे तो पूछो। उस पुरुषके यह वचन सुनकर नाभागने अपने पिताके निकट जाकर यथाविधिसे पूछा॥७॥ यह सुनकर उसके पिता नभगने कहा कि वत्स! दक्षके यज्ञमें जो वस्तु बची थी, ऋषि लोगोंने उस सबको भगवान् रुद्रका भाग बताया था, अधिक करके वह ईश्वर सब ही कुछ पाने योग्य हैं फिर यज्ञमें बचे हुएका तो बात ही क्या है?॥८॥ यह सुनकर नाभाग फिर उस पुरुष (रुद्र) के निकट आकर शिर नवाकर बोले कि हे ईश्वर! यज्ञभूमिमें पड़े हुए सब धनके आप अधिकारी हैं, यह बात हमसे हमारे पिताने कही है; इसलिये प्रसन्न होकर आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये, हम मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करते हैं॥९॥ नाभागकी विनती सुनकर रुद्रजीने कहा-"तुम्हारे पिताने धर्मवाक्य कहा है और तुम भी धर्म वाक्य कहते हो, इसलिये तुम मन्त्रके जाननेवालेको हम ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देते हैं॥१०॥और यज्ञका बचा हुआ जो धन है इसको भी तुम ग्रहण करो, क्योंकि हमने यह तुमको दिया" हे राजन्! धर्मवत्सल भगवान् रुद्रजी इस प्रकारसे कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥११॥ जो पुरुष भलीभांतिसे साधवान हो सन्ध्या और प्रातःकालके समय इस उपाख्यानको सुनेगा वह इसके प्रभावसे विद्वान और मन्त्रका जानने-

वाला होकर यथेष्ट धन पायेगा॥१२॥श्री शुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित्!इसी नाभागसे अम्बरीषकी उत्पत्ति हुई,जो ब्रह्मशाप कहीं भी निष्फल नहीं होता,वह भी अर्थात् ब्राह्मण (दुर्वासा) की बनायी कृत्यारूप अग्नि भी जिनको स्पर्श न कर सकी,इसलिये वे परमभक्त और अतिशय बुद्धिमान हुए॥१३॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्!बुद्धिमान् राजा अम्बरीषके चरित्र सुननेकी मुझे बड़ी अभिलाषा है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि ब्रह्मनिर्मित कृत्यानल जो अति दुरत्यय है, वह भी राजा अम्बरीपको दण्ड देनेके लिये सामर्थ्यवान् न हुई ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग! राजा अम्बरीष सप्त द्वीप पृथ्वी, अक्षय सम्पद् और पृथ्वीके अतुल ऐश्वर्य पाकर यद्यपि ये सब पदार्थ और पुरुषोंको अति दुर्लभ हैं, स्वप्नके समान झूठे समझने लगा, क्योंकि, विभवके नाशका न जानने वाला पुरुष ही विभवमें अथवा उसके अंशसे मोहको प्राप्त होता है ॥१५॥१६ और यह राजा भगवान् वासुदेवमें और उनके भक्त सब साधुओंमें उस परमभाव (भक्ति) को प्राप्त हुआ था, जिससे यह विश्व अति तुच्छ जान पड़ता है ॥१७॥ अधिक करके उन्होंने श्यामसुन्दर श्रीकृष्णजीके पादारविन्दमें अपने चित्तको अर्पण कर दिया था और अपने वचनोंको वैकुण्ठनाथके गुणवर्णनमें लगाया था,अपने दोनों हाथ हरिमंदिरके मार्जनादिमें लगा दिये थे, अपने कानोंको अच्युत सत्कथाओंके श्रवण करनेमें लगा दिया था ॥१८॥ नेत्रोंको मुकुन्दके रूप देखनेमें लगा रखा था अंगसंगको भगवत्सेवकोंके शरीरस्पर्शमें,नासिकाको भगवच्चरणकमलके संयोगसे श्रेष्ठ तुलसीका जो सौरभ है इसके ग्रहणमें और रसना को भगवान्के प्रति निवेदित अन्नादिके स्वाद चखनेमें तत्पर कर रखा था और चरण हरिके क्षेत्रमें जानेके लिये नियत कर रक्खे थे। इनका मस्तक हृषीकेशके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये ही झुकता था, चन्दनादिकी सेवा दासभावसे करता था,कुछ विषयकी इच्छासे नहीं।उत्तमश्लोक भगवान्के जन जिस प्रकार इन वस्तुओंमें प्रीति रखते थे ॥१९॥२०॥ इस प्रकारसे सब कर्मकलापोंको राजाने यज्ञपति भगवान्को अर्पण कर दिया था और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्यका पालन करता था ॥२१॥ और अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधनामें सदा लगा रहता था। इन यज्ञोंके अंग और दक्षिणामें बहुत धन लगता था और यह सब यज्ञ वसिष्ठ, असित, गौतमादि ऋषियोंके द्वारा ही विस्तारित होते थे। हे राजन्! धन्वदेश (मारवाड़) में जहां सरस्वतीजी बहती थीं वहां पर राजा अम्बरीषने इन यज्ञोंको किया था ॥२२॥उनके यज्ञमें सदस्य और ऋत्विगादि वसन भूषणादि द्वारा सज-धजकर देवतालोगोंके समान रूपवाले दिखाई देते थे। आश्चर्य देखनेकी उत्कंठासे उन सभासदोंके पलक तनक भी नहीं लगते थे, इसलिये वे सब प्रकारसे देवता लोगोंके समान हो जाते थे ॥ २३ ॥ और राजा अम्बरीषकी प्रजा भी देवताओंके प्यारे स्वर्गलोककी चाहना नहीं रखती थी, केवल भगवच्चरित्र श्रवण और कीर्तन करनेमें लगी रहती थी, फिर इनसे उसके संबन्धमें क्या कहा जाय? बस, जो पुरुष अपने हृदयमें भगवान् मुकुन्दको देखता है और स्वरूप सुखके द्वारा जो अतिशय आनन्द पाता है इससे सिद्ध लोगोंको भी दुर्लभ जो समस्त विषय हैं वे सब इस पुरुषको आनन्द (हर्ष) नहीं उपजा सके ॥२४॥२५॥ अधिक करके इस प्रकार राजा अंबरीषने स्त्री, पुत्र, मित्र, हाथी, घोड़े, रथादि व अक्षय रत्न भूषणादि व अनंत कोषको भी वृथा समझा ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन्! यद्यपि राजा अंबरीष इस प्रकार विरागी हो

गया था तो भी अपने शत्रुओंको जीतनेको असमर्थ नहीं हुआ, भगवान् वासुदेवने इस राजर्षिके भक्ति भावसे प्रसन्न हो जिससे शत्रुकी सेनाको भय हो और भक्तोंकी रक्षा हो ऐसा सुदर्शन चक्र उनको दे दिया था ॥ २८ ॥ हे राजन् ! इस राजा अंबरीषने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी पूजा करनेकी इच्छासे अपनी भार्या जो कि शीलतामें अपने ही समान थी, उसके साथ मिलकर एक वर्षतक अखंड एकादशीके व्रतको धारण किया ॥ २९ ॥ एक समय मथुरामें जाकर व्रतके अंतमें, जब कार्तिक महीनेमें तीन दिन उपवास किया था, कालिंदीमें स्नान कर मधुवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजाकी ॥ ३० ॥ महाभिषेककी विधिसे सब सामग्रियोंकी संपत्तिसे वस्त्र, आभूषण, गंध, फूल-फल-मालाके द्वारा एकाग्रचित्तसे मुरलीमनोहरकी पूजा करने लगे। फिर बड़े भाग्यवाले सिद्धकाम ब्राह्मणोंकी भक्तिभावसे पूजा करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जिनके सींग और खुर चांदीमे मढ़े थे, शरीरमें शोभायमान वस्त्र पहन रही थीं दुधारी थीं सुशीलता, वयस, रूप और वत्सादि श्रेष्ठ सम्पत्तियोंसे भूषित थीं, ऐसी छः करोड़ (६००००००) गायें राजा अम्बरीपने साधु ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे दीं ॥३३॥ इसके पीछे ब्राह्मण लोगोंको षड्रस भोजन कराकर उनकी आज्ञा ले आप भी व्रतपारणा करनेको तत्पर हुआ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! राजा अम्बरीष व्रतपारणा करनेको जाता ही था कि इसी अवसरमें दुर्वासा मुनि अतिथिकी भांति उन राजा अम्बरीषके स्थानमें आये ॥ ३५ ॥ दुर्वासा मुनिको देखते ही राजा अम्बरीषने व्रतपारणा नहीं की और उसी समय आकर प्रणाम व पूजा करके उनका भलीभांतिसे आदर-सम्मान किया। फिर विनीतभावसे चरणोंके निकट खड़ा होकर भोजन करनेके लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ राजाकी इस प्रार्थनासे दुर्वासाऋषि हर्षित हो भोजन करना स्वीकार कर बोले कि अभी नियमित मध्याह्नके नित्यकर्म हमने समाप्त नहीं किये हैं, यह कहकर नित्यकर्म करनेको यमुनाके तटपर गये। इसके पीछे ब्रह्मचिन्ता करते-करते यमुनाके पवित्र जलमें स्नान किया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जब दुर्वासा मुनि मध्याह्न कालकी क्रिया करने गये तो वह बहुत विलम्ब होनेपर भी वहां नहीं गये। इस ओर द्वादशीका केवल अर्द्ध मुहूर्त्त शेष रह गया और इस मुहूर्त्तमें पारणा न करनेसे व्रतका फल नष्ट हो जायगा, ऐसा समझकर धर्मज्ञ अम्बरीष राजाधर्मसंकटमें पड़ ब्राह्मणोंसहित विचार करने लगे ॥३८॥ राजाने कहा कि जो दोषब्राह्मणके अतिक्रममें है, द्वादशी पारणा न करनेसे भी वही दोष है, अब क्या करें ? क्या करनेसे मेरा भला होगा ? और अधर्म मुझको न स्पर्श कर सके ? ॥३९॥ ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार विचार करके राजाने फिर यह निश्चय किया कि केवल चरणामृत पीकर व्रत समाप्त किया जाय तो ठीक है, क्योंकि केवल जलपान करनेको मुनि लोगोंने भोजन अभोजन दोनों कहा है ॥४०॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! राजा अम्बरीषने इस प्रकार मनमें भगवान् वासुदेवका स्मरण कर जैसे ही चरणामृत पिया वैसे ही द्विजागमन देखा ॥ ४१ ॥ अर्थात् उसी समय दुर्वासाजी नित्यकर्म समाप्त करके यमुनाके किनारेसे राजा अम्बरीषके स्थानपर आ पहुँचे। यद्यपि राजाने उन मुनिको देखकर आनन्द प्रकट किया और हाथ जोड़ उनके सम्मुख खड़े हुए तो भी इस राजा अम्बरीषका आचरण दुर्वासा ऋषिने ध्यान धरकर जान लिया ॥ ४२ ॥ इसलिये क्रोधसे कम्पितशरीर हो भौंहें टेढ़ी कर हाथ जोड़े खड़े हुए राजा अम्बरीषसे कहने लगे कि ॥ ४३ ॥ अहो ! यह पुरुष कैसा निर्लज्ज है, धन सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाला

हो रहा है, अपने आपको ईश्वर मानता है, इसके धर्मव्यतिक्रमको तो देखो ॥ ४४ ॥ हम इसके आश्रममें अतिथि आये हैं, इसने आप ही पहुनाई करनेके लिये हमको निमंत्रण दिया परन्तु हमारा भोजन होनेसे प्रथम ही यह इच्छानुसार भोजन करके बैठ गया । इसका फल इसको अभी दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार कहते-कहते क्रोधित हो मस्तकसे एक जटा उखाड़कर उस राजाके सामने कालाग्निके समान एक कृत्या बनायी ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! वह कृत्या खड्ग हाथमें ले अपने चरण धरनेसे पृथ्वीको कम्पायमान करती हुई प्रकाशपूर्वक प्रकट हुई । राजा अम्बरीष उसको अपने सम्मुख आती हुई देखकर भी अपने स्थानसे चलायमान नहीं हुए ॥ ४७ ॥ राजा अम्बरीष विष्णु भगवान्के परमभक्त थे, अतः उन्होंने अपने भक्तपर यह विपत्ति पड़ी देख अपने चक्रको आज्ञा दी । परमपुरुष भगवान्की आज्ञा पाते ही वह अपने तेजसे इस प्रकार कृत्याको भस्म करने लगा, जिस प्रकार दावानल वनमें रहते हुए क्रोधित सर्पोंको दग्ध करें ॥४८॥ जब दुर्वासा ऋषिने देखा कि हमारा किया यत्न विफल हुआ और अब यह चक्र हमारी ही ओरको चला आता है इसलिये भीत हो प्राणोंकी रक्षा करनेको त्रासके मारे सब दिशाओंमें भागने लगे ॥४९॥ हे राजन् ! जैसे लपटयुक्त उठी हुई दावानल बनैले सर्पोंके पीछे दौड़ती है, वैसे ही भगवान्का चक्र इन ऋषिके पीछे-पीछे दौड़ा । दुर्वासा मुनि चक्रको इस प्रकारसे अपने पीछे आता हुआ देखकर सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करनेकी इच्छा कर महावेगसे दौड़ने लगे ॥५०॥ दौड़ते-दौड़ते दिक्, आकाश, भूमि, विवर, सागर और लोकपालसहित सब लोकमें और स्वर्गमें भी दुर्वासा गये परन्तु जहां वे जाते थे, उस-उस स्थानमें दुर्धर्ष चक्रभी उनके पीछे लगा ही चला जाता था॥५१॥इस प्रकार शरण ढूँढ़ते सब जगहमें भ्रमण करके यह कहीं भी अपने किसी रक्षकको नहीं पा सके, तब त्रसित हो पद्मयोनि ब्रह्माजीके निकट गये और कातरता प्रकट करके बोले कि हे भगवन् ! हे आत्मयोने ! । इस दुःसह हरिके चक्रसे आप मेरी रक्षा करें ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि परार्द्धनामक कालक्रीडाके अन्तमें कालस्वरूप जो विष्णु भगवान् हैं, वे जब सबके दग्ध करनेकी वासना करते हैं, तब उनकी भ्रुकुटी टेढ़ी हो जाती है, ब्रह्माण्ड समेत हमारा यह स्थान भी भस्म हो जायगा और हम (ब्रह्मा,) शिव, दक्ष, भृगु आदि और प्रजापति, भूतपति, सुरपति, इत्यादि जिनकी आज्ञाको प्राप्त होकर जिस प्रकारसे लोगोंका हित हो उसी प्रकार अपने मस्तकपर सब नियमोंको रखते हैं, वह तुमने उनके ही भक्तसे द्रोह किया है इसलिये तुम्हारी रक्षा करनेका सामर्थ्य हममें नहीं है॥५३॥ ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! जब ब्रह्माजीने भी शरण नहीं दी, तब दुर्वासा कैलासके शिखपर गये और विष्णुचक्रसे अतिसन्तापित होनेके कारण कातरता प्रकट कर भगवान् महादेवजीकी शरण हुए ॥ ५५ ॥ महादेवजी बोले कि हे तात ! उन महान् परमेश्वरके सम्मुख हमारी प्रभुता कुछ नहीं चलेगी । उनसे ब्रह्मादिरूपका उपाधिभूत यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और इस प्रकारसे दृश्यमान ब्रह्माण्डका प्रमाण व और पदार्थ भी जिनमें कल्पित हैं, लोकपालाभिमानी हम हजार-हजार वार भ्रान्त हुआ करते हैं । हे वत्स ! सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिल (जिनके अंतःकरणका अन्धकार दूर हो गया था) देवल, धर्म, आसुरि और मरीचि आदि और भी सिद्धिगण सर्वज्ञ होकर भी जिनकी मायाको नहीं जान सकते, बरन् स्वयं उनकी मायासे घिरे हुए हैं, उन्हीं विश्वेश्वरका यह शस्त्र (चक्र) है, सो हमलोग किसी भांति इसे नहीं सह सकते, इसलिये तुम उन्हीं विष्णु भगवान्की शरण

जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकारसे दुर्वासाजीको महादेवजीने भी शरणमें न रखा और कोरा जवाब दे दिया तब वह भगवान्के धाम वैकुण्ठको गये कि जहां भगवान् श्रीनिवास लक्ष्मीजीके साथ विराजमान थे ॥ ६० ॥ यह ऋषि कम्पायमान होकर श्रीभगवान्के चरणोंपर गिर पड़े और कहने लगे कि हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे साधुजनोंके भय हरनेवाले ! हे प्रभो ! मैंने बड़ा भारी अपराध किया है। हे विश्वभावन ! मेरी रक्षा करो ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आपके परमप्रभावको न जानकर मैंने आपके प्रिय भक्तका अपराध किया है। अतः हे प्रभो ! अब इस अपराधका आप प्रायश्चित बताइये कि जिससे मेरा छुटकारा हो। हे भगवन् ! जो आपके भक्तका द्रोह करता है उसका छुटकारा नहीं हो सकता यह बात ठीक नहीं, क्योंकि जिनका नाम लेते ही नरकमें पड़ा हुआ पुरुष मुक्तिको प्राप्त हो जाता है, उसके लिये असाध्य क्या है ? ॥ ६२ ॥ यह वचन सुनकर श्रीभगवान् बोले कि हम भक्तके वश हैं, इसलिये परवश हैं । भक्तजन हमारे प्रिय हैं इससे भक्त साधुगण हमारे हृदयको ग्रसे हुये हैं ॥ ६३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन मनुष्योंकी गति एक मुझसे ही होती है उन सब साधुपुरुषोंके सिवाय अपनी आत्माको और लक्ष्मीको भी अत्यन्त प्यार नहीं करते ॥ ६४ ॥ जो पुरुषगण स्त्री, पुत्र, गृह, तन, धन, प्राण और इस लोक व परलोक सबको छोड़कर हमारी शरणमें आये हैं, हम उनको त्याग करके किस प्रकार उत्साहित हो सकते हैं ? ॥ ६५ ॥ हे मुनिमहाराज ! सर्वत्र समदर्शी साधुपुरुष लोग हममें अपने-अपने हृदयको बांध हमको अपने वश किये हुए हैं कि जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको अपने वश कर लेती है ॥ ६६ ॥ और वह भक्तगण साधुसेवा द्वारा सालोक्यादि चारों पदार्थोंके सम्मुख आनेपर भी उनके ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करते, किन्तु वे साधुसेवासे ही परितृप्त हो जाते हैं, इसलिये कालसे नाश होनेवाली और किसी वस्तुमें उनकी अभिलाषा होनेकी क्या सम्भावना है ? ॥ ६७ ॥ और जिन-जिन पुरुषोंने हमको अपना हृदय अर्पण कर दिया है, हम उनके हृदयको जानते हैं, वे हमारे अतिरिक्त और किसीको नहीं जानते और हम भी उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं समझते ॥ ६८ ॥ इसलिये हे मुने ! जिससे कि यह तुम्हे संकट उत्पन्न हुआ है उसके ही निकट तुम विना विलम्ब किये चले जाओ। हे मुने ! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि साधु लोगोंके ऊपर चलाया हुआ तेज प्रहार करनेवालेको ही अमंगल करता है ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंकी तपस्या और विद्या यह दोनों भला करनेवाली तो हैं परन्तु दुर्विनीत स्वामीके लिये यह दोनों विपरीत फल देनेवाली हैं परन्तु इस समय अपनी तपोविद्याको मनमें लाकर इस अनर्थ घटनापर विस्मय करना आपको योग्य नहीं है ॥ ७० ॥ इस समय तुम महाभाग नाभागपुत्र राजा अम्बरीषके निकट जाओ जिससे तुम्हारा मंगल हो, उसी पृथ्वीपतिसे क्षमा मांगनेका यत्न करो, तब इस उत्पातकी शांति होगी ॥ ७१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धेऽम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—अम्बरीष हरिचक्रकी, विनय करी शिर नाय।
ब्राह्मणकी रक्षा करी, इस पञ्चम अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! चक्रकी अग्निसे संतापित हुए दुर्वासा ऋषि विष्णु भगवान्‌की आज्ञासे उसी समय राजा अम्बरीषके यहां गये और दुःखित हो उस राजर्षिके चरण पकड़नेको झपटे * ॥१॥ यह जब चरण छूने लगे, तब राजर्षि अम्बरीष अत्यन्त लज्जित हुए और दुर्वासाजीको ऐसा व्याकुल देखकर स्वयं दुःखित होते हुए भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ राजा अम्बरीष बोले कि हे सुदर्शन ! तुम ही भगवान् सूर्य हो और तुम ही सब नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा हो, तुम ही जल, तुम ही भूमि, तुम ही आकाश, तुम ही पवन, तुम ही मात्रा और तुम ही सब इंदिय हो अर्थात् तुम्हारी ही शक्तिसे अग्नि आदि अपना-अपना कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये तुम्हें नमस्कार है। हे अच्युतप्रिय ! तुम्हारी हजार धार हैं। हे सर्वघातिन् ! हे पृथ्वीनाथ ! इस ब्राह्मणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सुदर्शन ! ब्राह्मणकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य कर्म है, क्योंकि तुम साक्षात् धर्म, अमृत, सत्य, यज्ञमूर्ति और सब यज्ञोंके भोगनेवाले हो, अधिक करके तुमही लोकपाल और ईश्वरका परम सामर्थ्य हो। हे चक्र ! तुम्हारा नाम सुदर्शन है, इसका अर्थ भगवान्‌के शोभायमानका दर्शन, भगवान्‌के दर्शनसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम ही सर्वात्मा हो ॥ ५ ॥ और तुम अद्भुतकर्मकारी हो क्योंकि अखिल धर्मके सेतुस्वरूप हो इसलिये तुम ही अधर्म करते हुए असुर लोगोंको धूमकेतु अर्थात् दाहक हो तुम्हारा तेजसमूह अतिउज्ज्वल है। तुम त्रिलोकीके रक्षक हो, तुम मनके समान वेगवान् हो, तुम्हारी स्तुति करनेका सामर्थ्य किसमें है। इसलिये मैं तुम्हारे प्रति केवल 'नमः' शब्दका प्रयोग करता हूँ ॥ ६ ॥ हे सुदर्शन ! तुम्हारे धर्ममय तेजसे अंधकार दूर होता है और महात्मा लोगोंकी दृष्टि प्रकाशित होती है। हे वाणीनाथ ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है। सत्, असत्, पर, अपर इत्यादि समस्त पदार्थ तुम्हारे ही स्वरूप हैं, क्योंकि सूर्यादिका प्रकाश भी तुमसे ही होता है ॥ ७ ॥ हे अनंत अनञ्जन ! भगवान्‌के करसे जब तुम छोड़े जाते हो; तब दैत्य-दानवोंके बीचमें प्रवेश कर उनकी भुजायें, पेट, जाँघे, चरण और कन्धोंको काटते हुए समरमें विराजमान होते हो ॥ ८ ॥ हे जगत्रातः ! तुम ऐसे गुणोंसे युक्त हो कि भगवान् गदाधरने खल पुरुषोंके मारनेको तुम्हें नियुक्त किया है, इसलिये हमारे कुलका सौभाग्य करनेको तुम इस विपत्तिमें पड़े हुए ब्राह्मणका मंगल करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा बड़ा भारी अनुग्रह मेरे ऊपर होगा ॥ ९ ॥ हे सुदर्शन ! यदि हमारे किसी दान करनेसे वा किसी यज्ञ

---

* शंका—दुर्वासा मुनि भगवान्‌के चक्रके तेजसे भस्म होनेको प्रस्तुत थे, तो फिर उन्होंने अम्बरीषके चरण कैसे ग्रहण किये ? यह तो बड़ा अयोग्य कर्म है, दुर्वासाऋषि कुछ कलियुगी ब्राह्मण तो थे नहीं, जो कि देहके सुखके लिये नीच कर्म करने लगते, वह तो महाप्रतापी और परम तेजस्वी ब्राह्मण थे, फिर इन्होंने नीच कर्म क्यों किया।

उत्तर—दशसहस्र (१००००) ब्राह्मणोंको साथ लिये दुर्वासा ऋषि बड़े अभिमान सहित त्रिलोकीमें घूमते फिरा करते थे और त्रिलोकीके मनुष्योंको शाप दे देकर बहुत दुखी कर दिया। जो कोई किंचिन्मात्र भी अपराध करता था, उसको ऐसा भारी शाप देते थे कि वह बहुत कालतक [illegible] पाता था। तीनों लोकोंको कंपायमान देखकर भगवान् महादेवने दुर्वासा ऋषिका अभिमान भञ्जन करनेके लिये वह यत्न करके त्रिलोकीको सुखी किया, क्योंकि दुर्वासाऋषिके चित्तमें अम्बरीषका चरित्र खटकने लगा यह विचारकर क्रोध करने लगे, इसलिये मोहको प्राप्त हुए दुर्वासाऋषिको अंबरीषके चरणोंको ग्रहण करना पड़ा।

करनेसे कुछ पुण्य हुआ हो, यदि मैंने अपने धर्मका भलीभांतिसे अनुष्ठान किया हो, यदि मेरे कुलदेवता ब्राह्मण हों तो मेरी यही प्रार्थना है कि उस धर्मके प्रभावसे यह मुनिजी शीघ्र निष्कंटक हो जायँ ॥ १० ॥ और अनुपम वह सब प्राणियोंके प्रति आत्मभावके हेतु सर्वगुणोंके आश्रय भगवान् यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो उनके प्रसादसे यह ब्राह्मण शीघ्र सन्ताप रहित हो ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब राजा अम्बरीषने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान्का सुदर्शन चक्र, जो ब्राह्मण श्रेष्ठ दुर्वासाजीको जलाये देता था, इन राजर्षिकी प्रार्थनासे शान्त हो गया ॥१२॥ इसलिए दुर्वासाजी अस्त्राग्निके तापसे छुटकारा पाकर कल्याणवान् हुए। फिर दुर्वासा मुनि राजाको आशीर्वाद दे अनेक-अनेक प्रशंसा करने लगे ॥१३॥ दुर्वासाजी बोले, अहो ! भगवद्भक्तोंकी अद्भुत महिमा आज हमने देखी। हे राजन् ! यद्यपि हमने अपराध किया तो भी तुमने हमारी भलाई ही चाही ॥१४॥ अथवा जिन पुरुषोंने सात्वतपति भगवान्को अपने वश किया है, उन महात्माको साधुपुरुषोंके लिये कौन बात दुस्त्यज वा दुर्लभ है ? ॥१५॥ जिनका नाम श्रवण करते ही पुरुष निर्मल हो जाता है, तीर्थपद भगवान्के उन दासोंसे कौनसा कार्य बच रहा है ॥१६॥ हे राजन् ! तुम अतिकरुणात्मा हो, हमपर आपने बड़ा भारी अनुग्रह किया, क्योंकि हमारे अपराधकी ओर न निहारकर हमारे प्राणोंकी रक्षाकी ॥१७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था। इस राजाने फिर भी इनके आनेकी प्रार्थना की और बारंबार इसके चरणकमलोंकी वन्दना करके भोजन कराया ॥१८॥आदरसहित आये हुए सर्वाभिलाषकी पूर्णकरनेवाली पहुनईको मानकर महर्षि दुर्वासाजीको अति सन्तोष उत्पन्न हुआ। दुर्वासाजी आहार करनेके उपरांत राजासे बोले कि हे महाराज ! तुम भी भोजन करो ॥१९॥ महीपाल ! तुम परमभागवत हो। हमारे ऊपर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह हुआ, तुम्हारे दर्शन करने और तुम्हारे संभाषण करनेसे, जिनसे आत्मामें बुद्धि होती है, ऐसा आतिथ्य जो तुमने किया इससे हमको बहुतही प्रीति उत्पन्न हुई है ॥२०॥ स्वर्गवासी देवता लोगोंकी स्त्रियाँ इस निर्मल कर्मको सदा गायेंगी और पृथ्वीके रहनेवाले सदा तुम्हारी परम पवित्र कीर्तिको गायेंगे॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! महर्षि दुर्वासाजी सन्तुष्ट मनसे इस प्रकार कहकर राजर्षि अम्बरीषके साथ वार्तालाप करके आकाशमार्गसे हो ब्रह्मलोकको चले गये ॥२२॥ परन्तु वह गमन करके जबतक न आये थे, तबतक एक वर्ष समयतकके बीतनेपर भी राजा अंबरीष उनके दर्शनकी इच्छासे केवल जल ही पीकर रहे थे ॥ २३ ॥ इसके उपरांत एक वर्ष पीछे जब वह ऋषि आये तब राजा अंबरीषने ब्राह्मणभोजनसे जो पवित्र हुआ आहार वही भोजन किया और ऋषिकी विपत्ति व उद्धारकी बात स्मरण करके अपने धैर्यादिरूप वीर्य और भगवान्के प्रभावको आधार मानने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! अंबरीष राजामें इस प्रकारके अनेक गुण थे, वह अपने क्रियाकर्मसे परमात्मा भगवान् वासुदेवके प्रति परमभक्ति दिखलाते थे, उसी भक्तिके प्रभावसे ब्रह्मपदके सहित सब प्रकारके भोग इनके संमुख सदा प्राप्त रहते थे, परंतु यह उनको नरकके समान जानते थे ॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत यह वीर अपने समान वीर्यवान् पुत्रको राजभार सौंप वनमें चला गया। जबकि इस राजर्षिने अपना मन व आत्मा भगवान्में लगा दिया था, इसलिए उनका गुणप्रवाह विध्वंस हो गया, अर्थात्

आवागमनसे इनका छुटकारा हो गया ॥ २६ ॥ हे राजन्! राजा अंबरीषके इस पवित्र चरित्रको जो मनुष्य सुनेंगे और ध्यान करेंगे, सो भगवान्के भक्त होंगे और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन महाराज अंबरीषके चरित्रको गान करेंगे वे समस्त भगवान् विष्णुके प्रसादसे सरलतापूर्वक मुक्तपदवीको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धेऽम्बरीषचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–अम्बरीष अध्याय षट, अरु शशाद इतिहास।
मान्धाता इक्ष्वाकुकुल, सौभरि–ऋषी विलास ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान् और शंभु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें विरूपका पुत्र पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥ रथीतरके पुत्र व कन्या कुछ नहीं हुआ अर्थात् वह निःसन्तान था। जब इसने सन्तानके लिये महर्षि अङ्गिराजीसे प्रार्थना की तब महर्षि अंगिराजीने उनकी भार्यामें ब्रह्मतेजसे युक्त कई पुत्र उत्पन्न कर दिये ॥ २ ॥ हे राजन्! अंगिराजीसे जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, वे रथीतरके क्षेत्रमें उलटा होनेके कारण यद्यपि रथीतर गोत्री हुए थे, तो भी अंगिराजीके वीर्यसे उनकी उत्पत्ति होनेके कारण आंगिरस नामसे विख्यात हुए। अधिक करके इनके क्षेत्रोपेत ब्राह्मण होनेपर रथीतरकी दूसरी सन्तानमें मुख्य थे ॥ ३ ॥ हे राजन्! मनुके दश पुत्रोंमें पृषध्र और कवि संसारत्यागी हुए थे; इसलिये उनका वंश नहीं हुआ। करूषादि सप्त पुत्रोंका वंश प्रथम कहा गया है। इक्ष्वाकुका वंश बहुत बड़ा है इस लिये पहले नहीं कहा, अब कहते हैं :–छींकें लेते हुए मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। इन इक्ष्वाकुके शत पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डकादि श्रेष्ठ थे ॥ ४ ॥ इन शत पुत्रोंमें पचीस जन विन्ध्याचल और हिमालय पर्वतके मध्यमें पूर्वकी ओर आर्यावर्तके सम्मुख समुद्रतक एक-एक मण्डलके राजा हुए। इसी प्रकार पश्चिममें भी इनमेंसे पचीस पुत्र एक-एक मण्डलके राजा हुए, परन्तु मध्यस्थलमें ज्येष्ठ तीन पुत्र और दक्षिण-उत्तरादि भागमें अन्य पुत्रगण राजसिंहासन पर बैठे॥५॥ एक दिन राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिये विकुक्षिको निकट बुलाकर कहा–हे वत्स! शीघ्र वनमें जाकर श्राद्धके लिये पवित्र मांस लाओ ॥ ६ ॥ विकुक्षि "बहुत अच्छा" कह वनमें चला गया और श्राद्धके योग्य अनेक पशुओंको मारने लगा। इसके उपरांत जब विकुक्षि थककर भूखा हो गया तब इसने भूलकर मारे हुए पशुओंमेंसे एक खरहे (खरगोश) का मांस भूनकर खा लिया ॥ ७ ॥ फिर अवशिष्ट मांस लेकर पिताके निकट आया और सब उनको दे दिया। इक्ष्वाकु राजाने उस मांसका श्राद्धोचित संस्कार करनेके लिये कुलगुरु वसिष्ठजीको बुलाया। तब वसिष्ठजीने कहा कि यह मांस दूषित हो गया, इसलिये श्राद्धकर्मके योग्य नहीं है ॥८॥ जब महर्षि वसिष्ठजीने सब ब्योरा भलीभांति कह सुनाया तब राजाने अपने पुत्रके कर्मको जानकर उसको अपने देशसे निकाल दिया, क्योंकि श्राद्धके योग्य मांसका प्रथम भाग ग्रहण कर लेनेसे उसका सदाचार छूट गया था ॥ ९ ॥ इसके पीछे राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठजीके साथ ब्रह्मज्ञानका विचार करने लगे। फिर राज्यभोगसे विरागी हो गये और योगके द्वारा शरीरको छोड़ परमतत्त्वको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ जब पिता वनको चले गये तब विकुक्षि अपने देशमें आकर शशाद नामसे विख्यात हो पिताके राज्यको ग्रहण कर उसको पालने लगा। इस शशा-

दने यज्ञोंको करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की। राजाने शशाका मांस जो खा लिया था इसलिये इसका नाम शशाद प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ शशादका पुत्र पुरञ्जय हुआ, यह पुत्र इन्द्रवाहन नामसे भी विख्यात था और कोई-कोई इसको ककुत्स्थ भी कहते हैं, जिन कर्मोंके करनेसे इसके यह कई नाम हुए, हम उनको कहते हैं, तुम श्रवण करो ॥ १२ ॥ पहले समयमें जब दानवोंके साथ देवता लोगोंका विश्वविनाशन संग्राम हो रहा था, उस समय देवताओंने दैत्योंसे पराजित हो इस वीरको अपना सहायक बनाया ॥१३॥ इसने कहा कि जो इन्द्र हमारे वाहन बनें तो हम अवश्य दैत्योंका वध करेंगे, यह कहकर इन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था। पहले तो इन्द्र लाजके मारे इस बातको नहीं माना, फिर विश्वात्मा देव-देव विष्णुके कहनेसे पुरंजयका वाहन होनेके लिये महावृषभ हुए। "जब इस प्रकारसे इन्द्र वाहन हुए तब इन पुरंजयका नाम इंद्रवाह हुआ" ॥ १४ ॥ इसके पीछे राजा पुरंजय वख्तर पहनकर दिव्य धनुष और बहुत सारे तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके उस बैलकी पीठपर जा बिराजे। यह देखकर देवतालोग उनकी पूजा करने लगे ॥ १५ ॥ फिर महात्मा पुरंजयने परमपुरुष विष्णुजीके तेजसे बढ़कर देवता लोगोंके द्वारा पश्चिम दिशासे दैत्योंकी पुरीको घेर लिया ॥ १६ ॥ इसके उपरांत इस पुरंजयके साथ दैत्यलोगोंका घोर संग्राम हुआ। जो दैत्य संग्राममें इनके सन्मुख आया, सबको ही इस नरनाथने यमराजके भवनको भेज दिया ॥ १७ ॥ प्रलयाग्निके समान इन महाराजके उल्बण बाणोंका उत्पात देख सब बचे-बचाये दैत्य पातालको भाग गये ॥ १८ ॥ दैत्योंके भागनेपर इस राजर्षिने स्त्रियोंके समस्त धन और पुर जीतकर देवराज इन्द्रको दे दिया। इन कार्योंके करनेसे इन महाराजका 'पुरंजय' नाम हुआ ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इस पुरञ्जयका पुत्र अनेना था, इसका पुत्र पृथु, उससे विश्वगंधिने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र चन्द्र और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ युवनाश्वका पुत्र शावस्त हुआ जिसने शावस्तीपुरी बसाई। इस शावस्तका पुत्र बृहदश्व, उसका पुत्र कुवलयाश्व हुआ ॥ २१ ॥ इस महाबलवान् राजाने उतङ्कऋषिका प्रिय कार्य करनेको अपने इक्कीस सहस्र (२१०००) पुत्रोंको साथ ले धुन्धुनामक असुरको मार डाला था ॥ २२ ॥ इसका नाम धुन्धुमार हुआ, परन्तु इसके समस्त पुत्र धुन्धुकी मुखाग्निसे भस्म हो गये ॥ २३ ॥ केवल तीन बचे थे अर्थात् दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ॥ २४ ॥ इन तीनोंमें दृढ़ाश्वका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ। निकुम्भका पुत्र बहुलाश्व हुआ, उससे कृशाश्व उत्पन्न हुआ। इस कृशाश्वका पुत्र सेनजित् नामक हुआ ॥२५॥ उसका पुत्र युवनाश्व हुआ। यह युवनाश्व सन्तानरहित था, इसलिये वनको चला गया। इसके सौ १०० स्त्रियां थीं, संतानके न होनेसे वनमें जाकर यह अपनी सब भार्याओंके साथ शोकाकुल रहा करता था, यह देख वनवासी ऋषिलोगोंने राजापर दया की और पुत्रके लिये सावधान हो उस राजासे इन्द्रदैवत्य यज्ञ यज्ञ कराने लगे ॥२६॥ हे राजन् ! अब आश्चर्यकी बात सुनोः—जब कि यज्ञ हो रहा ही था, तभी युवनाश्व एक दिन रात्रिके समय प्यासा हो जलके लिये यज्ञशालामें गया। उस समय यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण सो रहे थे, तब राजाने उस जलको उठाकर पी लिया कि जो

राजाकी स्त्रीको देनेके लिये मन्त्रसे पढ़कर रखा गया था ❋ ॥२७॥ जब पुरोहित लोग जागे तो उन्होंने देखा कि कलशमें जल नहीं है, इसलिये विस्मित होकर पूछा कि "यह कर्म किसका है ? पुत्रके उत्पन्न करनेवाले जलको कौन पी गया" ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त जब ज्ञान हुआ कि ईश्वर प्रेरित होकर राजाने यह जल स्वयं पान कर लिया है। तब "अहो ! भाग्य बड़ा बली है, पुरुषका बल किसी कामका नहीं" वाक्य उच्चारण करते हुए ईश्वरको वारंवार नमस्कार करने लगे ॥ २९ ॥ इसके पीछे जब समय पूर्ण हो गया, तब युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर चक्रवर्तिलक्षणोंसे युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३० ॥ यह देखकर ब्राह्मणलोग दुःखित हो यह कहकर चिल्लाने लगे कि, हा ! यह कुमार दूध पीनेको बहुत रो रहा है, वह अब क्या पीयेगा ? तब देवराज इन्द्र वत्स ! रोओ मत "मां धाता, अर्थात् मुझे पान कर" यह कहा और अपनी अंगुली पीनेको दी इसीलिये इनका नाम 'मान्धाता' हुआ ॥३१॥ मान्धाताके पिता युवनाश्व देव ब्राह्मणोंके प्रसादसे मरे नहीं, बरन् उन्होंने तप करके कुछ दिनों पीछे उसी स्थानमें सिद्धि प्राप्त की ॥ ३२ ॥ रावणादि चोरगण इस मान्धाताके प्रतापसे कम्पायमान हो त्रस्त होते थे, इसलिये इन्द्रने मांधाताका दूसरा नाम 'त्रसद्दस्यु' रखा था। इसके उपरान्त युवनाश्वका पुत्र सम्राट् हो भगवान् वासुदेवके तेजसे अकेला ही सप्तद्वीपोंको पालता था ॥ ३३ ॥ आत्मवान् होकर भी अनेक-अनेक दक्षिणा दे अनेक यज्ञ करने लगा, उसने यज्ञरूपी सर्व देवमय सर्वात्मक सब इंद्रियोंसे परे इन देवताकी पूजा करने लगा ॥ ३४ ॥ कि द्रव्य, मंत्र, बलि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विक्, धर्मोपदेश और काल ये सब जिनके स्वरूप हैं ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जहांसे सूर्य भगवान् उदय होते हैं और जहां अस्त हुआ करते हैं, इतनी दूरतक सब स्थान युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके क्षेत्र कहे जाते थे ॥३६॥ इस राजा मांधाताके शशबिन्दुकी पुत्री इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द ये तीन पुत्र हुए ॥ ३७ ॥ इन तीन पुत्रोंकी ५० पचास बहनें थीं, अर्थात् तीन पुत्रोंके अतिरिक्त मान्धाताके पचास कन्या हुई थीं और वे सब सौभरि ऋषिको व्याही गयीं ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! सौभरि यमुनाके जलमें बैठ तप कर रहे थे, तब उन्होंने मीनराजके मैथुनका आनन्द देखा कि जिससे इनका भी विवाह करनेमें बड़ा भारी अनुराग हुआ। इस लिये तप करना छोड़ मान्धाताके निकट जाकर अपनी स्त्री बनानेको एक कन्या मांगी ॥२९॥ मान्धाताने इन ऋषीश्वरकी प्रार्थना सुनकर कहा कि हमारी कन्याका स्वयंवर होगा, जो कन्या तुम्हें वरे उसको तुम लेना ॥ ४० ॥ यह सुनकर सौभरिने मनमें समझा कि हम जरा (बुढ़ापा) से जीर्ण हो गये हैं और हमारे केश श्वेत हो गये हैं, बड़ी अवस्था हो जानेसे मस्तक कम्पायमान होता है, इसपर भी हम तपस्वी हैं, यही सब जानकर राजा हमें कन्या देनेको सम्मत न हुए। इन्होंने हमें स्त्रियोंका कुप्यारा जान छलसे हमको लौटा दिया। अच्छा अब हम अपनी चेष्टा ऐसी बनाते हैं कि जिससे मनुष्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? सुरसुन्दरी भी

शंका—राजा युवनाश्वने आप उठकर चोरके तुल्य ब्राह्मणोंको सोता देखकर यज्ञका जल पी लिया, अनुचरोंके होते हुए यह बालकोंके समान कर्म राजाने क्यों किया ?

उत्तर—पुष्करजीमें राजा युवनाश्व गंगाजीके राजा शन्तनुके वीर्यसे गर्भ देखकर बहुत हँसा, परन्तु गंगाजीने युवनाश्वके अपराधका कुछ ध्यान न किया, और क्षमा किया परन्तु राजाके अपराधको भगवान्ने क्षमा नहीं किया. इसलिये राजाओंमें श्रेष्ठ जो युवानश्व राजा था उसको माया से मूर्ख बना दिया और वह जल पिलाकर उसको गर्भ धारण करा दिया कि जैसे तू गर्भ देखकर हँसा था ऐसे ही तेरा गर्भ देखकर लोग हसेंगे ।

देखकर चाहना कर बैठें। यह सोच-विचार इस कार्यके करनेको निश्चय किया ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त तप प्रभावसे इनका रूप वैसे ही हो गया जैसा कि इन्होंने सोचा था। एक समय राजपुत्री प्रतिहारी इनको राजकन्याओंके अन्तःपुरमें ले गयी। इससे पचासों कन्याओंने इनको अपना पति बनाया ॥ ४२ ॥ हे राजन्! मान्धाताकी कन्याओंमें प्रथम परस्पर बड़ा प्रेम था परन्तु सौभरि ऋषिसे ब्याह करनेके लिये उनमें चित्त लगाकर सबकी सब परस्पर क्लेश करने लगीं और बोलीं कि "यह हमारे योग्य वर है, तुम्हारे योग्य नहीं है" बस, इन ऋषिके लिये उनमें बड़ा झगड़ा मचने लगा। तब सौभरि ऋषि बोले कि तुम सब ही हमसे विवाह कर लो ॥ ४३ ॥ सौभरि ऋषि तप सामर्थ्य सम्पन्न थे, उनके कठिन तपःप्रभावसे उसी समय प्रत्येक भवनमें अनमोल सामग्री प्रस्तुत हुई और अनेक प्रकारसे वन, उपवन शोभायमान होने लगे, सरोवरोंमें सुगन्धित कुमुद, कल्हारके वन फूल उठे। जितने गृह थे, सब दास-दासियोंसे भलीभांति शोभायमान हो गये और सब कहीं भ्रमर गुंजार करने लगे, बन्दियोंने मधुर स्वरसे गाना आरंभ किया, वे ऋषि महामोलकी शय्या, आसन, बसन, भूषण, स्नान व उबटनादिसे सम्पन्न हो सब गृह व उपवनादिमें अपनी सब स्त्रियोंसहित सदा विहार करने लगे ॥ ४४ ॥ हे राजन्! सौभरिका गृहस्थाश्रम देखकर सात द्वीप पृथ्वीके राजा मान्धाताजी अति विस्मित हो गये। उन्होंने अपने राज्य और सम्पत्तिका गर्व छोड़ दिया ॥ ४५ ॥ सौभरि ऋषि इस प्रकारसे गृहस्थाश्रममें रहकर भोग विलासके सुख भोगने लगे परन्तु तो भी उनको किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं हुई, क्योंकि जिस प्रकार घीकी बूंदे गिरनेसे अग्नि बढ़ती ही है, घटती नहीं ॥ ४६ ॥ किसी समय ऋग्वेदाचार्य यह सौभरि ऋषि एकान्तमें बैठ कर अपने आपकी चिन्ता करने लगे। तब वह उस तपस्याकी हानिको समझे, जो उनको मत्स्यके संसर्गसे प्राप्त हुई थी ॥ ४७ ॥ इसलिये अछताय पछताय कर आप ही आप बोले कि हाय! हम साधुचरित्रव्रत और तपस्वी थे, हमारा यह नाश तो देखो कि हमने जलमें जलचरके संगमें रहनेसे सदाका इकट्ठा किया तपस्यारत्न खो दिया ॥ ४८ ॥ मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि दाम्पत्य धर्मवान् पुरुषोंका संग त्याग करें और इन्द्रियोंकी अग्नि उत्पन्न करनेको रोकना भी उनका आवश्यकीय कार्य है, अकेले निर्जन वनमें भ्रमण करके अनन्त परमेश्वरमें चित्त लगाना उचित है। जो कहीं प्रसंग आ जाय तो ईश्वरके लिये केवल धर्मवान् साधुका संग करना चाहिये ॥ ४९ ॥ हम अकेले जलमें तप कर रहे थे, वहां मत्स्यसंसर्गवश भार्या ग्रहण करनेकी हमारी अभिलाषा हुई और एकके बदले (५०) पचास स्त्रियां मिलीं और एक-एक स्त्रीके गर्भसे सौ-सौ पुत्र उत्पन्न हुए, कि जिससे सब पांच हजार हुए तो भी हम इस लोक व परलोकके मनोरथका अन्त नहीं पाते, क्योंकि मायाके गुणसे मेरी मति हरी गयी है, इसलिये मैं विषयमें ही पुरुषार्थ समझता हूँ ॥ ५० ॥ हे राजन्! जब सौभरि इस प्रकार गृहस्थाश्रम में वास करते-करते विरक्त हुए तब संग छोड़नेको वानप्रस्थ-धर्म धारण कर वनको चले गये। उनकी पतिपरायणा सब स्त्रियाँ उनके संग संग चलीं ॥ ५१ ॥ आत्मज्ञानके जाननेवाले मुनि जिससे परमात्मा मिल जाय ऐसी तीक्ष्ण तपस्या करके

तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें मिला दिये ॥ ५२ ॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! अपने पतिकी ऐसी आध्यात्मिक गति अर्थात् परब्रह्ममें लीन होते देख उनकी सब स्त्रियाँ सत्यके प्रभावसे उन्हींके संग गयीं, जैसे अग्निके शान्त हो जानेपर उसकी लपट उसके संग ही बुझ जाती है ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवम-
स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–सप्तम मान्धाता कुलहि, पुरूकुत्स हरिचन्द्र ।
भये सत्यव्रत जगतमें, पूरण परमानन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मान्धाताके श्रेष्ठ पुत्र अम्बरीषको युवनाश्वने पुत्रभावसे गोद लिया । अम्बरीषका बेटा हरीत हुआ, वह मान्धाताके गोत्रमें श्रेष्ठ हुआ ॥ १ ॥ हे राजन् ! उरगोंने अपनी बहन नर्मदाको पुरुकुत्ससे विवाह दिया, शेषजीके कहनेसे यह नर्मदा अपने स्वामी पुरुकुत्सको पातालमें ले गयी ॥ २ ॥ विष्णुशक्ति धारण करके वध करनेके योग्य अनेक गन्धर्वोंको निहत किया और पीछे अपने नागराजसे अनुपम वर प्राप्त किया; वह वर यह था कि नर्मदाका यह समस्त रसातलके आनेका व्यापार जो पुरुष स्मरण करेंगे, उनको सर्प-से भय नहीं होगा ॥ ३ ॥ पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु, इनके अनरण्य, उनके हर्यश्व हुए, जिनसे वरुणजीने जन्म ग्रहण किया ! वरुणका पुत्र त्रिबन्धन हुआ ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनका पुत्र सत्यव्रत जो कि दुःखके हेतु तीन दोषोंके रहनेसे त्रिशंकु नाम हुआ । हरिवंशमें यह तीन दोष प्रकट हैं:–"यथा पिताको असंतुष्ट रखना, गुरुकी दुधारी गायका वध करना, विना धुली वस्तुका सेवन करना" यहां पर एक इतिहास है कि विश्वामित्र मुनिसे राजसूय यज्ञ कराकर इस त्रिशंकुने ब्राह्मणकी कुमारी कन्याको हरण कर लिया था, इसलिये इनके पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि तू चाण्डाल हो जा । इसलिये ये चाण्डालपनको प्राप्त हुए थे । फिर विश्वामित्र मुनिके प्रभावसे शरीरके सहित स्वर्गको गये और अबतक आकाशमें टिके हुए हैं । देवतालोगोंने आवाक्‌शिरा होकर स्वर्गसे गिराना चाहा था, परन्तु महर्षि विश्वामित्रने इनको अपने बलसे वहीं थाम दिया ॥ ५ ॥ इन त्रिशंकुके पुत्र सत्यव्रतधारी महात्मा हरिश्चन्द्र हुए कि जिनका यह वचन प्रसिद्ध है–

दोहा–चन्द्र मिटैं दिनकर मिटैं, मिटैं त्रिगुणविस्तार ।
हरिश्चन्द्र नरराजको, मिटैं न सत्य विचार ॥

इन्हीं राजर्षिके निमित्त वसिष्ठ और विश्वामित्रजी परस्पर शाप देकर आड़ी और बक (बगला) पक्षी हुए और इन दोनोंने एक वर्ष तक घोर युद्ध किया था । यहांपर एक इतिहास प्रसिद्ध है कि–विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणामें सर्वस्व हरणकर राजा हरिश्चन्द्रको आर्त किया । यह सुन महर्षि वसिष्ठजी क्रोधित हो विश्वामित्रके पास जाकर यह शाप दिया कि अन्यायाचरण करनेके हेतु "तुम आड़ी पक्षी हो जाओ" । विश्वामित्रने बद-लेमें यह शाप दिया कि "तुम बगला हो जाओ" । फिर इन दोनोंने परस्पर आड़ी और बगला हो घोर युद्ध किया ॥ ६ ॥ इन हरिश्चन्द्रके प्रथम कोई पुत्र न था; इसलिये सदा अनमने रहते थे । एक समय देवर्षि नारदजीके उपदेशसे जलाधिपति वरुणजीकी शरण जाकर प्रार्थनाकी कि

हे देव ! आप हमें यह वर दें कि हमारे एक पुत्र हो। हे प्रभो ! जो हमारे वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो हम उसी पुरुषपशुसे आपका यज्ञ करें ॥ ७ ॥ वरुणजीने कहा कि ऐसा ही होगा। तब राजा हरिश्चन्द्रके रोहित नामक एक पुत्र हुआ। पुत्रके उत्पन्न होनेपर वरुणजी राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र हो गया, अब कहनेके अनुसार तुम हमारा यज्ञ करो कि जिसमें यह तुम्हारा पुत्र ही पशु बने। तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि हे देव ! दश दिन की आयु न होनेसे पशु पवित्र और यज्ञके योग्य नहीं होता, इसलिये मैं दश दिन बीतनेपर आपका यज्ञ करूंगा ❋ ॥८॥ हे राजा परीक्षित् ! दश दिनके बीतते ही वरुणजी फिर आकर बोले कि अब यज्ञ करो। तब महाराज हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत निकलनेपर यज्ञ किया जायगा ॥९॥ दांत निकलनेपर वरुणजीने आकर कहा कि दांत भी निकल आये अब तो यज्ञ करो। तब राजा हरिश्चन्द्र बोले कि दांत गिरनेपर यह महा पवित्र यज्ञ भलीभांति सम्पूर्ण होगा ॥ १० ॥ कुछ दिन पीछे रोहितके दांत गिर गये तब वरुणजी फिर राजाके निकट आकर बोले कि हे राजन् ! हमारे पशुके दांत गिर गये, अब तो यज्ञ अवश्य ही करना चाहिये। हरिश्चन्द्रने कहा कि दांत गिरकर जबतक फिर न उपजें तबतक पशु पवित्र नहीं होता, यह सुनकर वरुणजी अपने स्थानको चले गये ॥११॥ और कुछ समय उपरान्त फिर आकर बोले कि तुम्हारे पुत्रके दांत दूसरी बार उत्पन्न हो आये, अब तो यज्ञ करो। तब राजर्षि हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि हे वरुणदेव ! जब क्षत्रिय पशु कवच बख्तर पहरने योग्य होता है, तब वह पवित्र कहा जाता है, हमारा पुत्र अभी इस योग्य हुआ नहीं तो भला हम कैसे यज्ञ कर दें ॥ १२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! राजा हरिश्चन्द्रका चित्त स्नेहके वश हो गया था, उन्होंने पुत्रानुरागके वश यज्ञ करनेके लिये वरुणजीको जो-जो समय बताये, वह वरुणजी उसी समयकी राह देखने लगे॥१३॥ कि इतनेमें रोहित पिताका अभिप्राय अर्थात् अपनेको पशु बनाकर वरुणजीके यज्ञ करनेकी इच्छा जान गया, इसलिये वह अपने प्राण बचानेको धनुष ग्रहण कर वनको चला गया॥१४॥इससे वरुणजीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको सताया, इसलिये राजा हरिश्चन्द्रका पेट अति बड़ा हो गया। इसके पीछे रोहितने सुना कि पिताजीको वरुण देवने पीड़ा दी है, इसलिये अपनी पुरीमें जानेकी इच्छा की, परंतु देवराज इंद्रने वहां आकर रोहितको जानेसे रोका॥१५॥और कहा कि तीर्थोंकी सेवा करते हुए पृथ्वीपर विचरण करना अत्यन्त पुण्यदायक है, तुम ऐसा ही करो। यहां रोहिताश्वने एक वर्षतक वनमें वास किया था ॥१६॥इस प्रकारसे दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें वर्षमें जब रोहितने फिर पिताजीके पास जानेकी इच्छा की, उसी समय देवराज इन्द्र ब्राह्मण रूपसे उसके निकट आकर इस प्रकारसे कहने लगे-"पुण्यतीर्थोंमें विचरण करो" इसलिये रोहित राजकुमारने छः वर्षतक वनमें विचरण किया॥१७॥इस प्रकार जब रोहितको छठा वर्ष वनमें रहते बीत गया और पुरीमें आने लगा, तब यह रोहित अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेपको उसके पितासे मोल ले आये ॥१८॥

---

* शंका—राजा हरिश्चन्द्रने सब यज्ञको त्यागकर पुत्रके मांस द्वारा यज्ञ करनेका विचार क्यों किया और वरुण भी ऐसे उत्तम देव उससे बालहत्या ग्रहण करनेको क्यों अंगीकार किया ? इस बातसे जान पड़ता है कि हरिश्चन्द्र और वरुण महा पापी हैं।

उत्तर—राजा हरिश्चन्द्र अपने आपको पुत्रहीन जानकर मनमें राजनीति विचारकर पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया कि अभी मेरे पुत्र नहीं है, वरुणको लोभ देकर जो पुत्र मुझको हो जायेगा तो नहीं मारूंगा पुत्रके लिये झूठ बोलनेका पाप भी नहीं होगा, इसलिये हरिश्चन्द्रने पुत्रके मांससे यज्ञ करनेका विचार किया।

और इस शुनःशेपको अपने पिता राजा हरिश्चन्द्रको देकर प्रणाम किया ॥ १९ ॥ इसके पीछे महायशस्वी प्रसिद्ध महात्मा महाराज हरिश्चन्द्रजीने नरमेधयज्ञकी विधिसे वरुणदेवताका यज्ञ प्रारंभ किया । तब वरुणजीने राजा हरिश्चन्द्रकी उदरपीड़ा शांत कर दी ॥ २० ॥ इस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और आयास्य मुनि सामग हुए ॥ २१ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस व्यापारसे देवराज इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके ऊपर प्रसन्न हो उनको एक सुवर्णका रथ दिया । हे महाराज ! शुनःशेपका माहात्म्य (विश्वामित्र उपाख्यान के प्रसंगमें) आगे वर्णन करेंगे ॥ २२ ॥ हे महाराज ! भार्यासहित राजा हरिश्चन्द्रका सत्य, सामर्थ्य और धैर्य देखकर महामुनि ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, इसलिये उन्होंने महाराज हरिश्चन्द्रको अविहत अर्थात् परमज्ञान दिया था ॥ २३ ॥ तब इन राजर्षि हरिश्चन्द्रजीने अन्नमय मनको अन्नशब्दवाच्य पृथ्वीमें धारण अर्थात् पृथ्वीके साथ मिलकर फिर उसको जलके साथ मिलाया इसके उपरांत उस जलको तेजके साथ मिलाकर उस तेजको वायुके साथ मिलाया, फिर पवनको आकाशमें धारण कर उस आकाशको अहंकारमें मिला दिया,फिर उस अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाकर विषयकी ओरसे हटाकर ज्ञानांशका आत्मस्वरूपमें ध्यान कर उससे आत्माके आवरणभूत अज्ञानको भस्म कर डाला । फिर निर्वाण सुख संपत्तिसे ज्ञानांशको छोड़ मुक्त हो अनिर्देश्य और अप्रत्यक्ष स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–अष्टम रोहितवंशमें, प्रगटे सगर भुवाल ।
तिनके सुत ऋषिशापसे, भस्म भये तत्काल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! रोहितका पुत्र हरित हुआ । इस हरितसे चंपने जन्म लिया जिसने चंपापुरी बसायी । चंपका पुत्र वासुदेव और वासुदेवका पुत्र विजय हुआ ॥१॥ विजयका पुत्र भरुक, उसका पुत्र वृक और वृकसे बाहुकने जन्म लिया । जब शत्रुओंने इस बाहुकका राज्य छीन लिया तब यह अपनी स्त्रियोंको साथ ले वनमें चला गया ॥२॥ उसी स्थानमें वृद्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ । उनकी स्त्री उनके साथ सती होनेको जाती थी कि महर्षि और्वने उसको गर्भवती जानकर मरनेसे निवारण किया ॥ ३ ॥ रानीकी सौतोंने इसको गर्भवती जानकर हिंसाके वश हो उसके गर्भका नाश करनेको अन्नके सहित गरल (विष) मिलाकर उसे खानेको दे दिया, परंतु वह गर्भ विष देनेसे विनष्ट नहीं हुआ । तब इस गरलके संग उत्पन्न होनेसे उस पुत्रका नाम सगर हुआ ॥ ४ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! यह सगर बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ ।इस राजाने अपने गुरु और्वऋषीश्वरके कहनेसे तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर ॥५॥ इन जातियोंको मारा नहीं, किन्तु राजा सगरने प्रत्येक जातिको पृथक् पृथक् प्रकारसे विकृत किया था अर्थात् किसी जातिके केश सम्पूर्ण मुँडवा दिये, किसीके दाढ़ी मूछ रखवा दीं, किसी जातिको खुले केश किया और किसीको अर्धमुंडित ॥ ६ ॥ किसी जातिको अन्तर्वासविहीन करके केवल बहिर्वासधारी किया और किसी जातिको बहिर्वासहीन करके केवल कौपीनधारी किया । हे राजन् ! महाराज सगरने महर्षि और्वके बताये हुए उपायसे अश्वमेध यज्ञ करके सर्व वेद और सर्वदेवमय परमात्मा

परमेश्वर भगवान् हरिकी पूजा की। जब उसने पृथ्वीपर भ्रमण करनेको घोड़ा छोड़ा, तब उसको देवराज इन्द्रने हरण कर लिया ॥७॥ हे कुरुप्रवीर ! सगर राजाके दो स्त्री सुमति और केशिनी थीं। राजाने यज्ञका घोड़ा ढूँढ़नेके लिये सुमतिके साठ हजार ६०००० पुत्रोंको आज्ञा दी। तब आज्ञाको पाकर वे सुमतिके पुत्र अहंकार करके यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये सारी पृथ्वी खोजने लगे ॥८॥ जब पृथ्वीपर घोड़ा नहीं मिला तो चारों ओरसे पृथ्वीको खोदने लगे। कुछ दिन पीछे यह सगरके पुत्र उत्तर पूर्वके कोनेमें जहां महर्षि कपिलदेवजीका आश्रम था वहां पहुँचे ॥९॥ और वहांपर उस घोड़ेको बँधा हुआ देख "इसने हमारे घोड़ेको चुराया है, यही चोर है देखो कैसी आँखें बन्द कर ली हैं ? इस दुराचारी पापीको अभी मार डालो" इस प्रकारसे कहकर यह साठ हजार सहोदर भाई अस्त्र-शस्त्र उठाकर महात्मा कपिलदेवजीको मारने दौड़े। भगवान् कपिलजी उस समय समाधिमें स्थित थे, उन्होंने कुलाहल सुनकर समाधि त्याग दी और नेत्र खोले ॥१०॥ हे राजन् ! देवराज इन्द्रकी मायासे सगरके पुत्रोंकी बुद्धि नाशको प्राप्त हो रही थी, इसलिये वे महर्षि कपिलदेवजी पर ऐसा अत्याचार करनेको प्रस्तुत हुए, परंतु इस महाकुकार्यको करनेके हेतु अतिमहान् अग्नि, जो कि महर्षि कपिलदेवजीके शरीरसे निकलती थी, उससे यह सबके सब क्षणमात्रमें भस्म हो गये ॥११॥ हे परीक्षित् ! कोई-कोई यह कहते हैं कि कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निसे सगरके पुत्र भस्म हुए, यह साधुवाद नहीं क्योंकि भगवान् कपिलदेवजी शुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं उनका भी आत्मा जगत्को पवित्र करनेवाला है, आकाशमें पार्थिव धूरिके समान उन कपिलदेवमें किस प्रकारसे क्रोधरूपी तमोगुणका उदय हो सकता है ? ॥१२॥ और जिन कपिलदेवजीने इस संसारमें सांख्य शास्त्रकी अति दृढ़ नौका चलायी है, जिस नौकापर चढ़कर मुमुक्षु लोग तुरंत मृत्युके पथरूप संसारके पार होते हैं, उन सर्वज्ञ सर्वात्मारूप महामुनिमें शत्रु मित्रादि भेददृष्टिका होना किस प्रकारसे सम्भव है ? ॥ १३ ॥ सगर राजाके एक पुत्रका नाम असमंजस था " केवल अज्ञानी लोगही इनको असमंजस कहते थे, परंतु वास्तवमें यह समंजस ही थे," जो केशिनी रानीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, उन असमंजसका पुत्र अंशुमान् सदा अपने दादाके हितकारी कार्य करता था ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह असमंजस पहले जन्ममें योगी था, संग करनेके हेतु योगसे भ्रष्ट हुआ, इसलिये अपनी जातिका स्मरण कर दूसरे जन्ममें भी संगको छोड़नेको निन्दनीय कार्य करनेवाली जातिकी भांति निन्दनीय कर्म करता था अर्थात् लोगोंको उद्वेग उत्पन्न कर लोकनिंदित आचार और अपनी जातिके अर्थ विप्रिय कर्म करता हुआ खेल ही खेलमें बालकोंको सरयूके जलमें डाल देता था ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकारके कर्म देख इनके पिता राजा सगरने पुत्रपनका स्नेह छोड़कर त्याग दिया। तब इसने अपने योगके प्रभावसे मृतक बालकोंको फिर जिलाकर सबको दिखाया और फिर उस पुरीसे निकल कर चले गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! अयोध्यावासी प्रजाके लोग असमंजसके मारे हुए अपने-अपने बालकोंको सजीव देखकर महाविस्मित हुए और राजा सगरने फिर असमंजसके लिये महासन्ताप किया ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि हे कुरुकुलभूषण ! अब इधरकी कथा सुनिये कि जब सुमतिके सब पुत्र मारे गये तब राजा सगरने यज्ञके घोड़ेको खोजनेके लिये असमंजसके पुत्र अंशुमान्को भेज दिया, तब अंशुमान् उसी मार्गसे चले, जो कि उनके चाचा लोगोंने खोदकर बनाया था और फिर बहुत दूर जाकर भस्मके ढेरके समीप ही घोड़ेको बँधा हुआ देखा॥१९॥

हे राजन् ! उस स्थानमें कपिलमुनि साक्षात् भगवान्‌रूप बैठे थे, उनको बैठा हुआ देख महात्मा अंशुमान् सावधान चित्तसे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे॥२०॥ हे देव ! जो ब्रह्मा जन्मसे रहित हैं,उन्होंने भी अबतक आत्मासे परे जो परमेश्वर आप हैं;आपको समाधि लगाकर भी नहीं देख पाया, न वे युक्तिसे आपको जान सके फिर दूसरे अर्वाचीन पुरुष आपको कैसे देख सकते हैं ? ब्रह्माजीके मन, शरीर और बुद्धिसे जो विविध देव तिर्यक् नर आदिकी सृष्टि होती है, वे लोग उसमें ही उत्पन्न हुए हैं फिर उसपर हम उनसे भी मूर्ख हैं, इसलिये हमको आपके दर्शन पानेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है ॥ २१ ॥ हे देव ! जो पुरुष देहधारी है, यद्यपि आप उनकी आत्मामें भलीभांति विराजमान हैं तो भी आपको वे नहीं जानते, केवल सब गुणोंको देखते हैं अथवा गुण भी उनको दिखाई नहीं देते, केवल तमको ही देखते हैं क्योंकि उनमें त्रिगुणात्मिका बुद्धि ही प्रधान है, अर्थात् वह बुद्धिके वश हैं । इसलिये जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें विषय देखते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें केवल तम ही देखते हैं । आप निर्गुण हैं, इससे आपको किसी अवस्था में नहीं देख पाते,क्योंकि उनका चित्त आपकी मायासे मोहित हो रहा है॥२२॥हे प्रभो! आप ज्ञानघनस्वभाव अर्थात् शुद्धसत्त्वमूर्ति हैं इसलिये जिन पुरुषोंके माया गुण निमित्त भेद विध्वंसको प्राप्त हो गये हैं, ऐसे सनक,सनन्दनादि मुनिजनोंके भी आप विचारने योग्य हैं,मैं मूढ़ विचार करके भी किस प्रकार आपको जान सकता हूँ ? फलतः आप ज्ञानघनस्वरूप हैं, इसलिये ज्ञानगम्य नहीं हैं,यद्यपि आप विचारके विषय हों तो भी मैं मायाके गुणोंमें लिपटा हुआ हूँ, इससे विचार करनेको समर्थ नहीं हूँ॥२३॥ हे प्रशान्त ! मायाके गुणसे ही आपके विश्वसृष्ट्यादि कर्म हैं। आपका लिंग ब्रह्मादि रूप है,आप कार्यकारणसे परे हैं,आपने केवल ज्ञानका उपदेश देनेके लिये इस शुद्धसत्त्वमूर्तिको प्रकट किया है, इसलिये आप पुराण पुरुष हैं, मैं आपको केवल नमस्कार करता हूँ॥२४॥ हे विभो ! यह लोक आपकी मायासे बना हुआ है। इसमें वस्तु बुद्धि करके काम, लोभ, ईर्ष्या और मोहसे जिन मनुष्योंका चित्त भ्रान्त है, वे सब ही गृहादिमें भ्रमण करते हैं ॥ २५ ॥ परन्तु हे सर्वात्मन् ! आपकी कृपासे और आपका दर्शन होनेसे आज हमारा काम कर्म और इंद्रियोंका आश्रयरूप अतिदृढ़ मोहपाश छिन्न हो गया अर्थात् आपके प्रसादसे हम कृतार्थ हो गये ॥२६॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से बोले कि हे महाराज ! जब इस प्रकारसे स्तुति करके कपिलदेवजीका प्रभाव गाया,तब वे कपिलदेव भगवान् अनुग्रह कर सगरपुत्र अंशुमानसे यह वचन बोले॥२७॥भगवान् कपिलदेवजी बोले कि हे वत्स ! अपने दादाके यज्ञपशु इस घोड़ेको ले जाओ ।जब अश्व पाकर भी अंशुमान् आकांक्षाके साथ खड़े रहे तब महर्षि कपिलदेवजी इनके मनका अभिप्राय जानकर बोले-तुम्हारे चाचा लोग, जो कि भस्म हो गये हैं, गंगाजल पानेके योग्य हैं,अन्य जलसे इनकी गति नहीं होगी॥२८॥ यह सुनकर अंशुमान्‌ने मुनिको शिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके यज्ञका घोड़ा ले राजा सगरके पास आया, सगर राजाने उस घोड़ेको पाकर यज्ञका शेष कार्य समाप्त किया ॥ २९ ॥ ३० ॥ फिर राजा सगर निस्पृह हो गये और अंशुमान्‌के हाथमें राज्यका भार सौंप बन्धनोंसे छूट और मुनिके बताये योगमार्गमें जाकर उत्तमगतिको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–अंशुमान–कुलको कहौं, नृप खट्वांग समेत ।
गंगा लाये नवममें, भागीरथ श्रुतिसेत ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जिस प्रकार राजा सगर अपने पोतेको राज्यभार दे तपस्या करनेको चले गये, अंशुमान् भी उसी प्रकार अपने पुत्रको राज्य दे गंगाजीके लानेकी कामनासे बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, परन्तु उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई। कुछ समय पीछे राजा अंशुमान् कालवश हो मृत्युको प्राप्त हुए॥१॥ अंशुमान्के दिलीप नामक पुत्र भी गङ्गाजीके लानेमें असमर्थ होकर कालके कवल हुए। इनके पुत्र भगीरथने गंगाके लानेके लिये बड़ी तपस्या की ॥२॥ तब गंगाजी इनको दर्शन देकर बोलीं कि हे वत्स ! हम तुमपर प्रसन्न हो वर देनेके लिये आयी हैं, यह सुनकर भगीरथजीने अपना अभिप्राय निवेदन किया ॥ ३ ॥ तब श्रीगंगाजीने कहा कि हे राजन् ! जब हम आकाशसे गिरेंगी तब किसी पुरुषको हमारा वेग अवश्य धारण करना पड़ेगा, नहीं तो हम पृथ्वीको फोड़कर पातालको चली जाऊंगी, अतः यह तो कहो कि हमारा वेग कौन धारण करेगा ? ॥ ४ ॥ और मुख्य बात तो यह है कि हम पृथ्वीपर नहीं जा सकेंगी, क्योंकि मनुष्य लोग हममें अपवित्र पदार्थ धोयेंगे, सो बताइये कि उस अपवित्रताको हम कहां धोयेंगी ? ॥ ५ ॥ तब श्रीभगीरथजी बोले कि हे जननि ! संसारत्यागी ब्रह्मनिष्ठ साधुलोग अपने लोकपावन अंगोंसे आपकी अपवित्रता हर लेंगे, क्योंकि उनके हृदयोंमें सर्व अघहारी भगवान् नित्य विराजमान रहते हैं, इसलिये वे लोग पापके विनाश करनेको समर्थ हैं ॥६॥ और भगवान् रुद्र, जो कि सब शरीरधारियोंके आत्मा हैं और जिस प्रकार साड़ी सूतमें पोही हुई रहती है, वैसे ही वे शिवजी इस संसारमें अतिप्रीत हो रहे हैं, वे ही तुम्हारे इस प्रबल वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! राजा भगीरथ गंगाजीसे इस प्रकार कहकर तपस्या करके देवदेव महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिये यत्न करने लगे। शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजी इस राजर्षि पर बहुत शीघ्र प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ महात्मा भगीरथजीने जो कुछ प्रार्थना की उसको लोकहितैषी भगवान् महादेवजीने 'तथास्तु' कहा और सावधान होकर गंगाजीको धारण किया। हे राजन् ! गंगाजीके माहात्म्यका वर्णन कैसे करें ? उनका जल भगवान् वासुदेवके चरणस्पर्शसे पवित्र हुआ है ॥ ९ ॥ राजर्षि भगीरथजी भुवनपावनी गंगाजीको उस स्थानपर ले आये कि जहां उनके पितृलोगोंकी भस्मका ढेर पड़ा था। भगीरथजी पवनके समान वेगगामी रथपर सवार हो आगे-आगे चलने लगे और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगाजी उनके पीछे-पीछे बहती हुई सब लोकोंको पवित्र कर भस्म हुए सगरके पुत्रोंपर अपना पवित्र जल डालने लगीं ॥१०॥११॥ हे राजन् ! सगरके पुत्र ब्राह्मणका अपराध करके भस्म हुए थे, जबकी उनकी राखके ऊपर गंगाजीका जल पड़ा और वे स्वर्गको चले गये, तब उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा, जो कि श्रद्धापूर्वक श्रीगंगामहारानी जगत्सुखदायिनीकी सेवा करते हैं ॥ १२ ॥ सगरके पुत्र अपनी राखपर गंगाजीका जल पड़नेसे जब पवित्र हो गये और स्वर्गको सिधारे तब जो पुरुष गंगाजीका व्रत धारण करेंगे और श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करेंगे, उनका स्वर्गमें जाना कुछ विचित्र बात नहीं है॥१३॥हे कुरुश्रेष्ठ! यहां पर यह गंगाजीकी महिमा जो हमने वर्णन की, यह कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि ये भगवान्के चरणसे उत्पन्न हुई हैं और संसारके नाश करनेवाली हैं, अर्थात् इनकी सेवा करनेसे संसारका आना-जाना छूट जाता है ॥१४॥ हे परीक्षित !

अमल मुनिलोग श्रद्धासहित जिनमें मन लगाकर छोड़नेके अयोग्य देहका सम्बन्ध त्याग शीघ्र ही उन परब्रह्म भगवान् वासुदेवके रूपको प्राप्त हो जाते हैं, उनके चरणसे उत्पन्न हुई गंगाजीका प्रभाव अवश्य ही अनिर्वचनीय है ॥ १५ ॥ राजा भगीरथके पुत्र श्रुत, उनके पुत्र नाभ, उनके सिन्धुद्वीप उत्पन्न हुए और उनके अयुतायु जन्मे ॥१६॥ उन अयुतायुके ऋतुपर्ण हुए, जो कि नलके सखा थे। ऋतुपर्णने राजा नलको चौपड़की विद्या सिखाकर उनसे अश्व-विद्या सीखी थी। इन ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥१७॥ उसका पुत्र सुदास, उसका बेटा सौदास हुआ, जो मदयन्तीका पति था, जिसको कोई-कोई मित्रसह और कोई-कोई कल्माषपाद कहते हैं, इनके कोई सन्तान नहीं हुई। यह अपने कर्मदोष और वसिष्ठजीके शापसे, राक्षसयोनिको प्राप्त हुए ॥१८॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन्! महात्मा सौदासको वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया था? इस कथाके श्रवण करनेकी मेरी बड़ी अभिलाषा है, इसे कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥१९॥ व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! एक समय राजा सौदासने मृगयाके लिये वनमें जाकर घूमते-घूमते एक राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया इसलिये यह निशाचर राजासे बदला लेनेकी खोजमें रहा। यह निशाचर इस राजाका बुरा चाहने लगा, रसोइयेका रूप बनाकर घरमें रहने लगा। एक दिन राजपुरोहित वसिष्ठजीने आकर भोजनकी इच्छा प्रकट की, तब इसी कपटवेषधारी राक्षसने भोजन बनाया और उस भोजनमें मनुष्यका मांस भी मिला दिया ॥ २० ॥ २१ ॥ जब वह भोजन परोसा गया तब उस समय भगवान् वसिष्ठजीने दिव्य नेत्रोंसे देख लिया कि भोजनमें अभक्ष्य वस्तु मिलायी गयी है, इसलिये महाक्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि "मनुष्यका मांस व्यवहार करनेसे तुम राक्षसयोनि पाओगे" ॥ २२ ॥ परन्तु पीछे महर्षि वशिष्ठजीने जाना कि यह कर्म राक्षसका किया हुआ है, तब वसिष्ठजीने शापका क्षय करनेको बारह वर्षका व्रत किया ॥ २३ ॥ राजा भी विना अपराध शाप पाकर क्रोधित हो हाथमें जल लेकर गुरुजीको शाप देनेके लिये प्रस्तुत हुआ, परन्तु उसकी स्त्री मदयन्तीने उसको निवारण किया, तब राजाने रोषसे तीव्र हो वह जल अपने पैरोंपर डाल लिया। इस राजर्षिने यह जल इसलिये अपने पैरोंपर डाला कि दिक्, आकाश, पृथ्वी यह सब ही जीवमय हैं ॥ २४ ॥ यह राजा कल्माषपाद राक्षसभावको प्राप्त हो एक समय वनमें विचरण कर रहा था। हे राजन्! इस प्रकार वनमें घूमते हुए उसने एक ब्राह्मणको ब्राह्मणीके साथ रति करता हुआ देखा ॥२५॥ उस समय इस राजाको बड़ी भारी भूख लगी थी, तब इसने क्षुधासे पीड़ित हो उनमेंसे ब्राह्मणको भक्षण करनेके लिये पकड़ लिया। ब्राह्मणके पकड़ लेनेसे ब्राह्मणी अत्यन्त दीन तनु छीन मन मलीन होकर बोली कि ॥ २६ ॥ हे राजन्! तुम राक्षस नहीं हो, इक्ष्वाकुवंशियोंमेंसे एक महारथी वीर हो। मदयन्तीके पति हो, आपको अधर्म करना उचित नहीं है। यह ब्राह्मण हमारा पति है, हम सन्तानकी इच्छासे इनकी सेवा कर रही थीं, अभी इनकी रति समाप्त नहीं हुई है, इसलिये आप अनुग्रह करके हमारे पतिको छोड़ दीजिये ॥ २७ ॥ हे राजन्! इस मनुष्य देहके अखिल पुरुषार्थ होते हैं, इसलिये देहसे नाशको सब अर्थोंका नाश कहा जाता है ॥२८॥ अधिक करके यह ब्राह्मण विद्वान् तपःशील और गुणयुक्त है और महापुरुष नामवाले परब्रह्म जो गुणयोगसे सब प्राणियोंमें अन्तर्हित हैं "सर्व भूतके आत्मा" इस प्रकारकी चिन्तासे यह उनकी आराधना करना चाहते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रभो! हे धर्मज्ञ! तुम

राजर्षियोंमें श्रेष्ठ हो, इसलिये पितासे पुत्रके समान तुम्हारे हाथसे यह ब्राह्मण मारे जानेके योग्य नहीं है। हे राजन् ! कर्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके प्रति जो सुहृदाचरण करता है उसको ही विद्याविवेकसम्पन्न पंडित लोग शीलवान् कहा करते हैं ॥३०॥ हे धर्मज्ञ ! आप साधुजनोंके सम्मत हैं, आज आप किस प्रकार गोवधके समान इस निष्पाप और तीन वेदोंके वक्ता ब्राह्मणका वध संमत समझते हैं ? ॥३१॥ हे राजन् ! हम इनके विना एक क्षणको भी नहीं जी सकेंगी। इन हमारे पतिको यदि तुमने अवश्य ही अपना भोजन करना विचारा है, तो मृतकतुल्य हमको भी तुम पहले भक्षण कर लो ॥ ३२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्राणह्मकी भार्याने इस प्रकार अनाथके समान हो करुणाके वचन कहे, परन्तु तो भी शाप-मोहित सौदासने उस ब्राह्मणको भक्षण कर ही लिया,कि जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण कर जाता है ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि गर्भाधानकारी ब्राह्मणको राक्षसने भक्षण कर ही लिया, इसलिये अपने निमित्त शोक करते-करते क्रोधित हो इसने उस राजाको शाप दिया कि ॥३४॥ अरे पापात्मा ! तूने हमारे पतिको रतिसे अलग करके भक्षण कर लिया है,इसलिये तेरी मृत्यु भी रति ही करते होगी ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! पतिलोकपरायणा वह ब्राह्मणी इस प्रकार इस सौदास राजाको शाप दे पतिकी अस्थि जलती हुई अग्निमें डाल और स्वयं भी उसी चितामें बैठकर स्वामीकी गतिको प्राप्त हो गयी और जब बारह वर्ष बीत गये तब राजा सौदास शापसे छूट गया इसके पीछे जब यह राजा एक दिन मैथुन करनेको प्रस्तुत हुआ, तब इस राजाकी भार्याने ब्राह्मणीका शाप कहकर राजाको निवारण किया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तबसे राजा सौदास स्त्रीके सुखसे अलग हुआ और अपने कर्मदोषसे निःसन्तान रहा। कुछ कालके पीछे वसिष्ठ मुनिने राजाकी अनुमतिसे उसकी स्त्री मदयन्तीमें गर्भाधान किया ॥३८॥ परंतु यह अबला सात वर्षतक इस गर्भको धारण किये रही,किसी प्रकारसे उसने प्रसव नहीं किया,तब वसिष्ठने आकर अश्म (पत्थर) रानीके पेटमें मारा,इसलिये इस गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रका नाम अश्मक हुआ॥३९॥इस अश्मकसे मूलक राजाकी उत्पत्ति हुई। जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया उस समय उसकी स्त्रियोंने चारों ओरसे घेरकर परशुरामजीके कोपसे रक्षा की थी, इसलिये इसका एक नाम नारीकवच हुआ और पृथ्वी जब क्षत्रियहीन हुई तब ही क्षत्रियवंशके मूल हुए थे, इससे मूलक भी कहलाते थे ॥ ४० ॥ इन अश्मकसे राजा दशरथका जन्म हुआ, दशरथका पुत्र ऐडविडि उसका पुत्र राजा विश्वसह, उसके पुत्र चक्रवर्ती महाराज खट्वांग हुए। यह राजा खट्वांग अति अजित थे। जब देवतालोगोंने प्रार्थना की तब इन्होंने युद्धमें राक्षस लोगोंका वध किया,फिर जब प्रसन्न होकर देवतालोगोंने इनसे वरदान मांगनेको कहा तब इन्होंने कहा कि प्रथम तो यह बताओ कि हमारी परमायु कितनी है, तब देवतालोगोंने कहा कि आपकी परमायु दो घड़ी शेष है, यह जानकर खट्वांग राजा देवतालोगोंके दिये हुए विमानमें बैठकर अतिशीघ्र अपने नगरमें आये और परमेश्वरमें मन लगाया ॥ ४१ ॥ फिर पीछे उनको यह निश्चय हुआ कि कुलदेव जो ब्रह्मकुल है, उनसे अधिक प्राण, पुत्र, धन, संपत्ति, पृथ्वी, राज्य और स्त्री भी प्यारी नहीं है ॥४२॥ और हमारी मति कदाचित् थोड़े अधर्ममें भी रत नहीं हो और उत्तमश्लोक भगवान्‌के अतिरिक्त और किसी वस्तुको हम नहीं देख सकें ॥ ४३ ॥ इसलिये त्रिभुवनेश्वर देवता लोग प्रसन्न होकर जो हमसे कहते हैं कि अभिलषित वर मांगो परन्तु, भूतभावन हरिमें अपनी

भावना रहनेसे हम उनसे भी कुछ वर नहीं चाहते ॥ ४४ ॥ जिन पुरुषोंकी इंद्रियाँ चलायमान् और बुद्धि विक्षिप्त हैं वे देवता होकर भी अपने हृदयमें स्थित प्रिय आत्माको नित्य नहीं देख पाते, फिर और किसीको देखनेकी क्या संभावना है ? ॥ ४५ ॥ इसलिये गंधर्वपुरके समान ईश्वरकी मायासे रचे हुए जो गुण हैं, उनमें वह संग जो कि स्वभावसे ही आत्मामें आरूढ हो रहा है, विश्वकर्ताके भावसे छोड़कर हम केवल उनकी शरण जाते हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! राजा खट्वांग नारायणसंबंधिनी बुद्धिके योगसे इस प्रकार निश्चय कर देहादिके अभिमानरूप अज्ञानको छोड़ फिर अपने भावमें स्थित हुआ ॥४७॥ जो सूक्ष्म परब्रह्म और रागादिसे परे हैं,इसलिये शून्यके समान कल्पित होते हैं और अशून्यस्वरूप हैं और जिनके प्रति भक्तजन भगवान् वासुदेव शब्दका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि परब्रह्म ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भक्ति प्रकाशित करके वासुदेव होते हैं ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–दसवेंमें खट्वांगकुल, लीन राम अवतार।
रावणवध घर आवनो, राजकाज व्यवहार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् परीक्षित् ! खट्वांग राजाका पुत्र दीर्घबाहु हुआ, उससे रघुने जन्म लिया,रघुके पुत्र महायशस्वी अज हुए। हे महाराज परीक्षित् ! इन्हीं अजसे महात्मा दशरथजी उत्पन्न हुए ॥१॥ ब्रह्ममय हरि साक्षात् भगवान् देवतालोगोंकी प्रार्थनासे राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त हो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हुए थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! वाल्मीकादि तत्त्वदर्शी ऋषि लोगोंने इन्हीं सीतापति रामचंद्रजीका वर्णन किया है, यद्यपि यह चरित्र आपने बारंबार सुना है, तो भी हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं तुम सुनो ॥३॥जो पिताजीका सत्य पालन करनेको राज्य छोड़ जो प्यारी सीताजीके करस्पर्शका भी नहीं सहन कर सकते थे, ऐसे कमलके समान सुकुमार दोनों चरणोंसे वन-वनमें घूमे थे, वानरेन्द्र हनुमान् अथवा सुग्रीव और अनुज लक्ष्मण जिनके मार्गकी थकावट दूर करते थे शूर्पणखाके नाक कान काटनेसे विरूप करनेके कारण उसने रावणके निकट जाकर उसको स्त्रीका लोभ दिखाया,तब रावण आकर जिनकी प्यारी सीताजीको हरकर ले गया था,प्रियाका विरह होनेसे जिनकी भ्रुकुटीसे समुद्र त्रस्त हो गया और उसी समुद्रके कहनेसे जो समुद्रपर सेतु बांध रावणादि खल गणरूप गहन वनका विध्वंस किया, वही कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥४॥ उन्हीं श्रीरामचंद्रजीने महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें मारीचादि प्रधान-प्रधान राक्षसोंको अकेलेही मार डाला था, समीप खड़े होकर देखते हुए लक्ष्मणकी कुछ सहायता नहीं चाही ॥५॥ उन्होंने सीताजीके स्वयंवर गृहमें वीर पुरुष समूहके बीचमें महादेवजीके धनुषको गन्नेके समान उठा लिया था और ज्या चढ़ा लेनेके उपरान्त खींचकर बीचमेंसे तोड़ दिया। हे राजन् ! वह धनुष अतिभारी कि जिसे तीनसौ वाहक खींचकर लाये थे परंतु श्री रामचन्द्रजीकी लीला बालगजतुल्य अद्भुत है कि जिन्होंने एक खेलमें ही उस धनुषको तोड़ डाला ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त जिन सीताजीने उनके हृदयमें वास किया था, जिन सीताजीमें गुण, शील, वयस और अंगोंका गठन सब गुण श्रीरामचन्द्रजीके ही समान

थे, धनुष तोड़ उन सीताजीको ले जानेके समय धनुष टूटनेकी महाध्वनि सुनकर क्षुभित हुए परशुरामजीने जब धमकाया तब श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें गमन करते-करते ही उनका गर्वचूर्ण कर दिया। हे महाराज ! आप तो परशुरामजीको जानते हैं ? यह वही महात्मा परशुरामजी हैं कि जिनके बाहुबलसे यह पृथ्वी इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन हो गयी थी ॥ ७ ॥ किसी समय रानी कैकेयी पर प्रसन्न होकर राजा दशरथजीने यह वचन दिया था कि जब कोई वरदान तुम मांगोगी, हम तुम्हें अवश्य देंगे। जब श्रीरामचन्द्रजीको अभिषेक होनेकी तैयारियां हुईं, तब इस कैकेईने भरतजीका युवराज होना और श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना ये दो वरदान मांगे। यद्यपि महाराज दशरथजी स्त्रैण थे, तो भी यह जानकर कि वचन भंग होनेसे इनको महापाप होगा, अतः श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञाको मस्तकपर चढ़ाकर ग्रहण किया। कहा भी है कि "रघुकुलरीति सदा चलि आई। प्राण जाहि बरु वचन न जाई" फिर जिस प्रकार योगी लोग त्यागनेके अयोग्य प्राणोंको छोड़ देते हैं, वैसे ही राज्य, श्री, प्रणय, सुहृद् और रहनेका स्थान भी छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये ॥८॥ वनके बीच कामातुराशूर्पणखाके नाक, कान, काटकर खरदूषण, त्रिशिरादि उस शूर्पणखाके मुख्य बांधवोंसहित चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर डाला, फिर महाकठिन धनुष हाथमें लेकर बराबर ही विचरण करते हुए अतिकष्टसे वनमें रहने लगे। इस बीचमें जनककुमारी जानकीजीकी सुन्दरता सुनकर राक्षस रावणके हृदयमें कामाग्नि उबलने लगी और सीताजीका हरण करनेकी इच्छासे श्रीरामचंद्रजीको आश्रमसे दूर करनेके लिये उस दुरात्मा रावणने मारीच नामक राक्षसको नियुक्त किया, तब मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके श्रीरामचंद्रजीको आश्रमसे बहुत दूरतक भागता हुआ ले गया "प्रगटत दुरत करत छल भूरी। यहि विधि प्रभुहि गयउ लै दूरी" ज़ब श्रीरामचंद्रजी उस कपटमृगके पीछे बहुत दूरतक चले गये, तब उन्होंने हरिणरूपी निशाचरको अतितीक्ष्ण बाण चलाकर इस प्रकार मार डाला जैसे भगवान् रुद्रजीने मृगरूप धारण करके दौड़ते हुए ब्रह्माजीको बाण मारा था ॥९॥ १० ॥ इसी समयमें राक्षसोंमें नीच रावणने भेड़िया जैसे चुपचाप भेड़को उठा ले जाता है, वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके पीछे उनकी भार्या सीताजीका हरण कर लिया। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्राणप्यारीसे अलग हो स्त्री रखनेवालोंका परिणाम अतिदुःखितरूपी गतिको प्रकाशित करते हुए दीनके समान अपने परमप्रिय भाई लक्ष्मणको संग लिये वन वनमें घूमने लगे ॥११॥ और घूमते-घूमते देखा कि उनके ही लिये कर्म करके अर्थात रावणके साथ संग्राम करके जटायु गिद्ध मर गया है, उसका देह पड़ा था और शास्त्रोक्त संस्कार अर्थात् दहनादि संस्कार कुछ भी नहीं हुए थे, इसलिये इस पक्षीके मृतक देहको जला दिया और आगे चले। फिर उनके ग्रहण करनेको जो एक कबन्ध बाहें फैलाये मुख वाये हुए आ रहा था, उसका प्राणसंहार किया, फिर वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मित्रता करके वालिनामक वानरका वध कर उनकी सेनासे अपनी भार्याका खोज कराया। फिर उनका पता जानकर समुद्रके तटपर गये, इन श्रीरामचन्द्रजीने यद्यपि मनुष्यावतार धारण किया था परंतु महेश्वर और ब्रह्माजी भी उनके चरणों की वंदना करते थे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके तटपर जाकर तीन रात उपवास कर समुद्रके आनेकी बाट देखी, जब ऐसा करनेपर भी समुद्र न आया तब श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण श्रीरामचन्द्रजीकी भृकुटियाँ ऐसी टेढ़ी होरही थीं कि उनकी दृष्टि समुद्रमें पड़ते ही जलधिके रहनेवाले नाके आदि जलजन्तु अत्यन्त

व्याकुल होगये। तब समुद्र अपने शब्दको निवारण करके मूर्ति धारण कर मस्तकपर अर्घ्यादि पूजा उपहार लिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके निकट आकर कहने लगा ॥१३॥ हे भूमन् ! हम मन्दमति हैं, इसलिये अबतक आपको नहीं जान सके, आप निर्विकार आदिपुरुष और जगतके अधीश्वर हैं,अधिक करके जिनके वश हुए सत्त्व गुणसे देवतालोग, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे भूतपति उत्पन्न होते हैं, वह आपही गुणेश्वर हैं, ॥१४॥ हे प्रभो ! यदि आपकी इच्छा हो तो हमारे जलको लांघकर चले जाओ, विश्रवाके विष्ठाके तुल्य दुरात्मा रावण त्रिभुवनको क्लेशका देनेवाला है,उसका शीघ्र वध करके अपनी भार्या सीताजीको ग्रहण कीजिये, हे प्रभो ! यद्यपि हमारा जल आपके गमन करनेमें बाधा नहीं दे सकता, तो भी इसमें पुल-बांध दीजिये । सेतुके बांधनेसे सदाही आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी, क्योंकि इस सेतुके समीप आकर यह दुष्कर कार्य देख निःसन्देह राजालोग आपके यशको गायेंगे॥१५॥ हे राजन् ! समुद्रके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने विविध भांतिके पर्वतशिखर और वृक्षोंसे उनके ऊपर सेतु बांधा,उन पर्वतोंके शिखरोंपर बहुतसे पेड़ भी लगे हुए थे,उन वृक्षोंकी शाखा वानरेन्द्रोंकी भुजाओंसे अत्यन्त कम्पायमान हुई थीं; जब सेतु बांध लिया गया, तब विभीषणके परामर्शसे सुग्रीव,नील,हनुमानादि सेनाके साथ श्रीरघुनाथजीने लंकापुरीमें प्रवेश किया; श्रीरामचन्द्रजीके प्रवेश करनेसे प्रथम ही सीताजीके खोजनेके समय हनुमानजीने लंका पुरीको जला दिया था ॥१६॥ जैसे हि श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ लंकापुरीमें पहुँचे वैसे ही लंकापुरी घूमनेसी लगी, जिस प्रकार हाथियोंके समूहसे नदी चलायमान हो जाती है;क्योंकि वानरेन्द्रोंकी सेनाने वहांके विहारस्थान, खजाने, कोपगृहादिके द्वार, पुरद्वार, सभा, वलभी महलकी अग्रभागाच्छादनी (छज्जा) और कपोतपालिकादि स्थान घेर लिये और इस सेनाने वेदी(चबूतरे),पताका,स्वर्णकलश और चौराहे आदि सब तोड़-फोड़ दिये ॥१७॥ राक्षसराज रावणने यह देखकर निकुम्भ, कुम्भ,धूम्राक्ष,दुर्मुख,सुरान्तक,नरान्तक, सम्पूर्ण अनुचर और इंद्रजीत,प्रहस्त,अतिकाय,विकम्पादि पुत्रोंको और पीछेसे अपने भाई कुम्भकर्णको भेजा॥१८॥ हे महाराज परीक्षित् ! यद्यपि सब राक्षसोंकी सेना असि, शूल, धनुष,प्रास,ऋष्टि, शक्ति,शर, तोमर, खड्गादि विविध भांतिके शस्त्रोंसे अतिशय दुर्द्धर्ष थी,तो भी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीके माला पहिने हुए लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनसादि सेनापतियोंके साथ उनके ऊपर चढ़ाई की थी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजीके इन सेनापतियोंने रावणकी हाथी-घोड़ोंसे युक्त जितनी सेना आयी थी उनमें जिस प्रकारसे द्वन्द्वयुद्ध हो वैसे ही कार्य करने लगे अर्थात् उनके ऊपर झपटने लगे और पर्वत, गदा, बाण चला-चलाकर उन राक्षसोंका संहार करने लगे । महाराज ! राक्षसोंकी सेनाका संहार क्यों न हो ? जब कि बलात्कार जगज्जननी जानकीजीका अंगस्पर्श करनेवाला रावण जिसका स्वामी था, जिसका सब मंगल नाशको प्राप्त हो गया था ॥ २० ॥ इस प्रकारसे अपनी सेनाका नाश होता हुआ देखकर दुरात्मा रावण सहसा पुष्पकविमानपर आरूढ होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौड़ा उसी समय इंद्रका सारथी मातलि दीप्तिमान् देवराज इन्द्रका रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट आया-

चौ०-तेजपुञ्ज रथ दिव्य अनूपा * बिहँसि चढ़े कौशलपुरभूपा ॥

श्रीरामचन्द्रजीको रथारूढ देखकर दुरात्मा रावण तीक्ष्ण-तीक्ष्ण छुरेवाले बाण श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगा ॥ २१ ॥ तब सीतापति पाखण्डी रावणको ललकार कर बोले

कि अरे दुष्ट ! तू राक्षसोंमें विष्ठाके समान है, कुत्ता जैसे गृहस्वामीके पीछे घरमें प्रवेश करके किसी सामग्रीको चुराकर ले जाता है, वैसे ही हमारे पीछे हमारी भार्याको तू हरण कर ले आया है, तू अति निर्लज्ज है,क्योंकि नीच कर्म किया है, हमारा वीर्य अमोघ है। देख ? हम कृतान्तके समान अभी तेरे किये इस नीच कर्मका फल देते हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रावणको धिक्कार देकर वह बाण; जो कि धनुषपर चढ़ा हुआ था, श्रीरामचन्द्रने छोड़ा, उस बाणने निशाचरराज रावणके ऊपर गिरकर उसके हृदयको फाड़ डाला-

चौ०–सायक एक नाभिसर शोषा ❋ अपर लगे भुज शिर करि रोषा

दशमुख (रावण) दशों मुखोंसे रुधिर बहाता हुआ पुष्पक विमानसे नीचे गिर पड़ा।

चौ०–डोलीभूमि गिरत दशकन्धर ❋ क्षुभित सिन्धु सह दिग्गज भूधर ।
परेउ भूमि युग खण्ड बढ़ाई ❋ चापि भालु मर्कट समुदाई ॥

हे राजन् ! रावण पुष्पकविमानसे इस प्रकार नीचे गिर पड़ा कि जैसे पुण्य क्षीण होकर पुरुष स्वर्गसे नीचे गिरता है। रावणको गिरता हुआ देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे ॥ २३ ॥ इसके पीछे सहस्रों राक्षसियाँ लंकाके बाहर आकर मन्दोदरी नामक रावणकी स्त्री सहित रोती हुई रणभूमिमें घूमने लगीं ॥ २४ ॥ जिन राक्षसियोंके बन्धुबांधव वीर्यवान् लक्ष्मणजीके बाणोंसे मारे गये थे, वे राक्षसियाँ उनको अपने हृदयसे लगा लगाकर,शिर पीट-पीट और छाती कूट-कूट आर्त वाणीसे रोने लगीं ॥२५॥ राक्षसियाँ कहने लगीं कि हा नाथ ! हम मर मिटीं। हे रावण ! तुम लोकोंके रुलानेवाले थे परंतु अब हमारी लंकापुरी तुमसे बिहीन हो शत्रुसे पीड़ित हो रही है, इस समय हम किसकी शरण जायं ? ॥२६॥ हे महाभाग ! तुम कामके वश हो एकबार ही बुद्धिहीन हो गये थे;जनकनंदिनीके प्रभाव और तेजको नहीं जाना इससे ही तुम्हारी यह दशा हुई ॥२७॥ हे रावण ! तुम्हारे मारे जानेसे हम और यह लंकापुरी दोनों पतिहीन हुईं। तुमने अपने ही दोषसे अपनी देहको शृगालोंका भक्ष्य किया और आत्माको नरकभोगी बनाया ॥ २८ ॥

चौ०–रोदन करहिं अनेक प्रकारा ❋ परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित ! इसके उपरांत राक्षसेन्द्र विभीषणने महात्मा रामचंद्रजीकी आज्ञा पाकर अपने ज्येष्ठ भ्राता रावणके मृतक कर्म किये ॥२९॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी अशोकवनमें गये। वहीं शीशमके नीचे बैठी हुई अति क्षीण विरहके दुःखसे दुःखी जानकीजीको महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥३०॥ प्रियतमा जानकीजीको अत्यन्त दीन-हीन देखकर श्रीरामचन्द्रजीके कोमल हृदयमें दया आ गयी ॥ ३१ ॥ परंतु पतिके दर्शनसे आनन्द पाकर जनकनन्दिनी जानकीजीका वदनारविन्द भी विकसित होने लगा, फिर महात्मा लक्ष्मण और सुग्रीवके साथ श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको विमानपर बैठाकर फिर हनूमानजीके साथ आप भी उसपर बैठे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त विभीषणको राक्षसोंका राज्य दे लंकाका स्वामी बनाया और एक कल्पभरकी आयु दे दी, फिर चौदह वर्षका वनवास समाप्त करके विभीषणके साथ अयोध्यापुरीको चले। मार्गमें जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर लोकपालगणोंके हाथोंसे छूटी हुई फूलोंकी मालाओंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा आदि परमानन्दसे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र गाने लगे ॥३३॥ श्रीरामचन्द्रजीने मार्गमें

जाते हुए सुना कि भ्राता भरत अयोध्यासे बाहर भदरसामें आकर अपना डेरा किये हुये हैं, वह कुशोंपर सोते और वल्कल पहनते हैं, प्राण धारण करनेके लिये गोमूत्रमें पका केवल यवान्न खाते हैं। यह सुन रामचन्द्रजीका हृदय भर आया, रोवें खड़े हो गये और विलाप-कलाप करते हुये विभीषणसे बोले ॥ ३४ ॥

दोहा—तोर कोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुन तात।
दशा भरतकी सुमिरि मोहिं,पलक कल्प सम जात॥
तापस भेष शरीर कृश, जपै निरंतर मोहिं।
देखौं बेगि सो यत्न करु, सखा निहोरौं तोहिं॥
जो जैहौं बीते अवधि, जियत न पाऊँ वीर।
प्रीति भरतकी सुमिरि प्रभु,पुनि पुनि पुलक शरीर॥

महात्मा रामचन्द्रजी इस प्रकार विभीषणसे कहते विलाप करते चले जाते थे, हे महाराज परीक्षित्! जबसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, तबसे भरतजी अयोध्यामें न रहकर नंदिग्राम (भदरसा) में ही रहते थे, अब भतरजीने सुना कि—

चौ०—रिपु रणजीति सुयश सुर गावत ❋ सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥
सुनत वचन बिसरे सब दूषा ❋ तृषावन्त जिमि पाय पियूषा॥

तब भरतजी मंत्री, पुरोहित और पुरवासियोंके साथ उनको लिवा लानेके लिये श्रीरामचन्द्रके निकट चलेः-

चौ०—सुनत सकल जननी उठि धाईं ❋ कहि प्रभु कुशल भरत समुझाईं॥
समाचार पुरवासिन पाये ❋ नर अरु नारि हर्षि उठि धाये॥
जो जैसे तैसहि उठि धावहिं ❋ बाल वृद्ध कोउ संग न लावहिं॥
भरि भरि थार हेमवर भामिनि ❋ गावत चलीं सिंधुरगामिनि॥
एक एकसन पूछहिं धाई ❋ तुम देखे दयालु रघुराई॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी ❋ भई सकल शोभाकी खानी॥
भइ सरयू अति निर्मल नीरा ❋ बहै सुहावन त्रिविध समीरा॥

उस समय अनेक बाजे बजने लगे, गीत सुनाई पड़े और वेदपाठी ब्राह्मणोंके वेद पढ़नेका शब्द अति जोरसे होने लगा और सुवर्णमय अनेक पताकायें और चित्रमय ध्वजाओंसे शोभायमान असंख्य सुवर्णमय रथ, बख्तर पहने हुई बहुतसी सेना और पदाति सेवक भी बहुत सारे संग गये ॥ ३५ ॥

दोहा—हर्षित गुरु पुरजन अनुज, भूसुर वृन्द समेत।
चले भरत अतिप्रेममन, सम्मुख कृपा निकेत॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर स्वर हर्षित, करहिं सुमंगल गान॥
आवत देखे लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु आ गये, उतरेउ भूमि विमान॥

चौ०-आये भरत संग सब लोगा * कृश तनु श्रीरघुबीर वियोगा ॥
वामदेव वसिष्ठ मुनि नायक * देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाय धरे गुरुचरण सरोरुह * अनुज सहित अति पुलकितनूरुह ॥
भेंटे पूँछि कुशल मुनिराया * हमरे कुशल तुम्हारिहि दाया ॥
सकल द्विजन कहँ नायउ माथा * धर्म धुरन्धर रघुकुल-नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभुपदपंकज * नवहिं जिनहिं शंकर सुरमुनि अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये * बल करि कृपासिन्धु उर लाये ॥
श्यामलगात रोम भये ठाढ़े * नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

दोहा-सधन चोर मम मुदित मन, धनी गही जिमि फेंट ।
तिमि सुग्रीव विभीषणहिं, प्रभुहि भरतकी भेंट ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार राजाके योग्य चवँर,छत्र और सब सामग्री लेकर जब भरतजी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंपर गिर पड़े तब उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी कि जिससे उनके नेत्र व हृदय भीग गये। तब हाथ जोड़; दोनों करोंसे खड़ाऊँ आगे रख दीं और फिर नेत्रजलसे स्नान कराते-कराते बहुत देरतक भुजाओंसे पकड़ श्रीरामचन्द्रजीको अपने हृदयसे लगाये रहे। इनके पीछे श्रीरामचन्द्रसे सीता और-लक्ष्मणजीके साथ मिलकर ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको नमस्कार किया ॥ ३६ ॥

दोहा-पुनि प्रभु हर्षित शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाय ।
लक्ष्मण भेंटे भरत पुनि,प्रेम न हृदय समाय ॥

चौ०-भरत अनुज लक्ष्मण तब भेंटे * दुसह विरहसंभव दुख मेटे ॥
सीताचरण भरत शिर नावा * अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु विलोकि हर्षे पुरवासी * जनितवियोगविपति सबनाशी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी * कौतुक कीन्ह कृपालु खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला * यथायोग्य मिलि सबहिं कृपाला ॥
कृपादृष्टि सब लोग विलोका * किये सकल नरनारि विशोका ॥
क्षण महँ सबहिं मिले भगवाना * उमा मर्म यह काहु न जाना ॥
यहि विधि सबहिं सुखी करि रामा * आगे चले शीलगुणधामा ॥
कौशल्यादि मातु सब धाईं * निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं ॥

दोहा-भेंटेउ तनय सुमित्रा, रामचरण रति जानि ।
रामहिं मिलत कैकयी, हृदय बहुत सकुचानि ॥
लक्ष्मण सब मातन्ह मिले, हर्षे आशिष पाय ।
कैकयिकहँ पुनि पुनि मिले, मनकर क्षोभ न जाय ॥

इसके उपरान्त सब प्रजाने श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार किया ॥ ३७ ॥३८॥ और उत्तर कौशलाके सब रहनेवाले बहुत कालके पीछे अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको आया हुआ

देखकर आनन्दके समुद्रमें स्नान करने लगे और अपने-अपने दुपट्टे कंपाते हुए हर्षित हो फूलोंकी मालायें वर्षाकर नाचने लगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! जब महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये, उस समयमें भरतजीने उनकी खड़ाऊँ धारण कर ली थीं। विभीषण सुग्रीवने चामर और व्यजन लिया था । पवनकुमार हनुमान्‌जी श्वेत छत्र धारण किये हुए थे ॥ ४० ॥ शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस लिया और जगज्जननी जानकीजीने तीर्थोंके जलसे भरा हुआ कमण्डलु ग्रहण किया था और युवराज अंगदजी खड्ग और ऋक्षराज जाम्बवान् सुवर्णमय बख्तर ले आये ॥४१॥ पुष्पक विमानमें जब वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हुए, तब नारियोंने उनकी प्रशंसा की, बन्दीजनोंने यश बखाना, इस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे कि जैसे तारागणोंके साथ निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है ॥ ४२ ॥ अपने भ्राताओंसे सम्मानित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उत्सवयुक्त पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्रजीने राजभवनके भीतर जाकर कैकेयी इत्यादि गुरुपत्नी, अपनी माता और गुरुजनोंकी पूजा की । फिर अपने सखा और छोटे जनोंसे पूजित हो सबका यथोचित सम्मान किया ॥ ४४ ॥ इसके पीछे सीता और लक्ष्मणजी भी जाकर यथानियम इन सब गुरुजनोंसे मिले ॥ ४५ ॥ प्राणोंको पाकर जिस प्रकार देह उठ खड़ा होता है उसी प्रकार अपने पुत्रोंको सब पाकर मातायें सहसा उठ खड़ी हुई और उनको गोदीमें बिठाके नेत्रजलसे उनका अभिषेक कर अपना शोकसंताप दूर करने लगीं ॥ ४६ ॥ इनके उपरान्त ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीकी जटा छुड़वाय कुलवृद्ध पुरुषोंके साथ मिलकर समुद्रके व और सब तीर्थोंके जलसे उनका अभिषेक किया ॥ ४७ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार शिरसे स्नान कर प्रथम शोभायमान वस्त्र धारण किये, फिर हार और अलंकारोंसे सजकर वसन-भूषण पहन भाइयों और सीताजीके साथ दीप्तिमान हो विराजमान होने लगे ॥ ४८ ॥ इनके पीछे महात्मा भरतजीने प्रणाम कर जब श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न किया तब उन्होंने राजसिंहासन ग्रहण किया ॥४९॥

चौ०—प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब विप्रन आयसु दीन्हा ॥

स्वधर्मनिरत और वर्णाश्रमगुणोंसे युक्त प्रजापुञ्जको पिताके समान पालन करने लगे ॥ ५० ॥ हे राजा परीक्षित् ! सब प्राणियोंको सुखके देनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी जब राजा हुए उस समय यद्यपि त्रेतायुग वर्त्तमान था, तो भी वह काल सत्ययुगके समान जान पड़ने लगा ॥ ५१ ॥ समुद्र, नद, नदी, पर्वत, वन, द्वीप, खण्ड सब ही प्रजाका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हुए ॥५२॥ कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके राज्यके बीच आधि, व्याधि, जरा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा थकावट कुछ भी न रही। जबतक इच्छा न होती तबतक मृत्यु किसीको नहीं दबा सकती थी ❋ ॥५३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! श्रीरामचन्द्रजी पवित्र और एकपत्नी व्रतधारी होकर सब लोगोंको राजर्षियोंके अनुष्ठान किये

❋ शंका—रामचन्द्रके राज्यमें जो प्राणी मरनेकी इच्छा आप करता था उसीका मरण होता था और जो अपना मरना नहीं चाहता था उसका मरण कभी नहीं होता था, क्योंकि मृत्यु तो सब लोकमें है, किसी लोकमें जल्दी किसी लोकमें देरसे, परंतु ऐसा लोक कोई भी नहीं है कि जिस लोकमें मृत्यु न हो ?

उत्तर—"अनिच्छता" इस शब्दका अर्थ मरणकी इच्छा करना नहीं होता, इसका यह अर्थ है कि जो प्राणी रामचन्द्रके चरणारविन्दके त्यागनेकी इच्छा नहीं करते थे, अर्थात् दिनरात उन्हीं चरणोंमें उन्मत्त रहते थे, उन प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती थी।

हुए गृहमें धैर्य एवं धर्मका उपदेश करके स्वयं उसका भी पालन करने लगे ॥ ५४ ॥ और भावकी जाननेवाली देवी सीताजी अपने स्वामीका आश्रय ले प्रेम, सेवा, शीलता, भय और लाजसे उनके चितको हर लेती थीं ॥ ५५ ॥

दोहा—विधु महि पूर पियूषन, रवि तप जितनहिं काज ।
मांगे वारिद देहि जल, रामचन्द्रके राज ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवम-
स्कन्धे श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—ग्यारहमें श्रीरामने, अवधपुरीमें आन ।
यज्ञ किये भाइन सहित, सो सब कहौं बखान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इसके पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने आचार्य-लोगोंके साथ उत्तमोत्तम यज्ञ करके सर्व देवमय परमदेव जो आप हैं, अपनी ही पूजा करने लगे ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने होताको पश्चिम दिशा और ब्रह्माजीको दक्षिण-दिशा, अध्वर्युको पूर्वदिशा और सामगान करनेवालोंको उत्तर दिशा दे दी । इन दिशा-ओंके बीचकी जितनी भूमि थी, "इसको ब्राह्मण ही पानेके योग्य हैं" यह विचार निस्पृह श्रीरामचन्द्रजीने अवशेष पृथ्वी आचार्यको दे दी ॥ २ ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे दानिशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने जब सब दान कर दिया तब केवल उनके पास वसन भूषण बच रहे और राजराजेश्वरी श्रीमती जानकीजीके पास भी केवल वसन भूषण ही रहे अर्थात् इसके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्रजीने सब कुछ दान कर दिया॥४॥परन्तु ब्राह्मण देवता श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी वत्स-लता देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करके सब वस्तु श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दी❋ और बोले ॥५॥ हे भगवन् ! हे भुवनेश्वर ! आपने हमको क्या नहीं दिया है ? अर्थात् आपने हमको सब कुछ दिया, क्योंकि आपने हम लोगोंके हृदयमें प्रवेश करके अपनी प्रभा विस्तार-कर हमारे अन्धकारको दूर किया है ॥६॥ हे प्रभो ! आप ब्रह्मदेव अकुण्ठ बुद्धिमान् हैं, सो हम आपको नमस्कार करते हैं । हे भगवन् ! आप उत्तमश्लोकोंमें आगे गिने जाने योग्य हैं, मुनिलोग भी अपने-अपने चित्तमें आपके दोनों चरणकमलकी सदा चिंता करते हैं॥७॥बहुत दिन गये पीछे किसी समय श्रीरामचन्द्रजी गूढ वेष धारण कर यह जाननेके लिये कि हमारे राज्यमें लोग हमारी निन्दा करते हैं वा स्तुति, रात्रिकालमें गुप्तभावसे घूमने लगे। एक दिन अकेले घूम रहे थे कि एक पुरुष अपनी स्त्रीसे कुछ कटुवचन कहा कि जिसको वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने सुना ॥८॥ वह पुरुष अपनी स्त्रीसे कह रहा था कि तू पराये घर जाया करती है, तू अतिदुष्टा असती है

❋ शंका—जो वस्तु रामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको दान कर दी थी; [illegible] वस्तु ब्राह्मणोंने लेकर कुछ दिन पीछे प्रीति सहित रामचन्द्रजीको दे दी। तब रामचन्द्रने अपनी दान की हुई वस्तु ब्राह्मणोंसे क्यों ली ?

उत्तर—ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर अपना प्रसाद तुलसीदल फूल आदि लेकर तथा तीन लोकका सुखपर्यन्त जब क्षत्रियोंको [illegible] हैं तब उसी समय क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंको दिया हुआ प्रसाद प्रीतिपूर्वक [illegible] लेते हैं। जब कोई राजा नहीं [illegible] तो शीघ्र ही ब्राह्मण लोग उस राजाको शाप देते हैं, ऐसा रामचन्द्रने मनमें विचार कर अपनी दी हुई वस्तु प्रसाद समझकर ग्रहण की, कुछ लोभ [illegible] नहीं ली ।

मैं अब तुझे खाने पहननेको नहीं दूँगा। श्रीरामचन्द्रजीका ही स्त्रियोंपर अनुराग है कि पराये घरमें बहुत दिनोंतक रही सीताको फिर अपने घर लाकर पालन करते हैं। मैं रामचन्द्र नहीं हूँ, चली जा, अब तेरा मुख नहीं देखूंगा॥९॥अज्ञानी, दुराराध्य, बहुमुख लोकके मुँहसे यह वचन सुनते ही रामचन्द्रजीको अत्यन्त भय हुआ और उन्होंने अपने स्थानपर आकर अपनी प्रियतमा-जनकनंदिनी जानकीजीको त्याग दिया। गर्भावस्थामें पतिसे त्यागी हुई भीत जानकीजी महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें आयीं ॥ १० ॥ कुछ दिनोंमें जानकीजीके समय पूर्ण होनेपर दो पुत्र उत्पन्न हुए यह दोनों कुश, लव नामसे विख्यात हुए। महर्षि वाल्मीकिजीने उन दोनों पुत्रोंका जातकर्म आदि संस्कार किया॥११॥हे परीक्षित! इधर अयोध्यापुरीमें वीर्यवान् लक्ष्मणजीके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम अंगद और चित्रकेतु हुआ। महात्मा भरतजीके भी तक्ष और पुष्कल नामक दो पुत्र हुए और शत्रुहनजीके पुत्रका नाम सुबाहु और श्रुतसेन हुआ ॥ १२ ॥ उसी समय भरतजी दिग्विजय करनेके लिये गये, करोड़ों गंधर्वोंका संहार किया और उनका सब धन लाकर राजाको दे दिया ॥१३॥ शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवणासुरका प्राण संहार करके मधु वनमें मथुरापुरी बसायी ॥ १४ ॥ जनकनंदिनी जानकीजीका जब रामचन्द्रजीने त्याग कर दिया तब कुछ दिन पीछे अपने पुत्र महर्षि वाल्मीकिजीको सौंप अपने पति श्रीराम-चन्द्रजीका ध्यान करती हुई पृथ्वीके विवरमें समा गयी ॥ १५ ॥ यह बात श्रीरामचन्द्रजीने भी सुनी यद्यपि इन महाराज स्वयं ईश्वरने अपनी बुद्धिके बलसे शोक निवारण किया, तो भी प्राणप्यारीके गुणगण वारंवार याद आने लगे कि जिनके याद आनेको यह किसी प्रकार न रोक सके ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित्! स्त्री पुरुषोंका अनुराग सब कालमें इसी प्रकार भयका देनेवाला है। जब कि यह अनुराग अवतारोंको भी भयदायी हुआ, तब गृह-स्थीमें चित्त लगाये ग्राम्य पुरुषोंकी तो क्या बात है ? ॥ १७ ॥ उपरांत श्रीरामचन्द्रजी अखण्डित ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अग्निहोत्र करते रहे। उसके पीछे दण्डक-वनके काटोंसे जिनके चरणकमल विध गये थे उन्हीं चरणोंको स्मरणकारी भक्तजनोंके हृदयमें स्थापित करके अपने धामको चले गये ॥१८॥ हे राजन्! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रमें पुल बांधना और अस्त्रसमूहसे राक्षसादिका वधकार्य यद्यपि कविलोगोंने आश्चर्यमय वर्णन किया है तो भी इन कार्योंसे उनका यश कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि उनका यश बहुत है। वैरीको मारनेके समय बन्दर बिचारे क्या उनकी सहायता कर सकते हैं, इसलिये जिस प्रकार सुग्रीवादिके निकट इन श्रीरामचन्द्रजीका आश्रय लेना केवल लीलामात्र है, वैसा ही राक्षसोंका वधादि कार्य भी लीला ही है ॥१९॥२०॥ हे महाराज! आप ऐसा न समझ लेना कि हमारे यह वचन अयुक्त हैं। देवतालोगोंकी प्रार्थनासे लीला करनेके लिये ही भगवान्ने यह अवतार धारण किया था ॥ २१ ॥ अहो! जिनका निर्मल यश दिग-दिगन्तरमें व्याप्त होकर दिक्पाल हस्तियोंका आच्छादन पटस्वरूप हुआ है, इसलिये अबतक जिसको युधिष्ठिरादि नृपतियोंकी सभामें ऋषिलोग निरंतर गान करते हैं और जिनके चरणकमल देवता और नृपति लोगोंसे सेवित हैं, हम उन्हीं श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें जाते हैं। अयोध्यानिवासियोंने जिन पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रजीको स्पर्श किया वा दर्शन किया अथवा जिन्होंने उनको बैठाया था, किंवा जो लोग उनके अनुमत हुए थे, वे सब पुण्यात्मा लोग उस स्थानमें जायँगे, जहां कि योगीलोग जाया करते हैं ॥ २२ ॥ हे परीक्षित! जो पुरुष श्रवणोंके द्वारा

श्रीरामचन्द्रजीके इस आख्यानको धारण करेंगे, वह उपशम निष्ठ हो निःसन्देह कर्मबंधनसे छूट जायँगे ॥२३॥ इसके उपरांत राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे कि हे ब्रह्मन् ! भगवान् श्री रामचन्द्रजी स्वयं किस प्रकार वर्तमान थे ? उन्होंने अपने भ्राताओंसे, जो कि उनके अंशरूपी थे कैसा व्यवहार किया था और साक्षात् परमेश्वररूप जो श्रीरामचन्द्रजी थे, उनसे उनके भ्राता और प्रजा लोग कैसा व्यवहार करते थे ? ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षित्का प्रश्न सुनकर व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! त्रिभुवनके ईश्वर श्रीरामचन्द्रजीने अयोध्यामें आकर राजसिंहासनपर बैठनेके पीछे अपने भ्राताओंको दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा दी, फिर अपनी जातिवाले लोगोंके साथ बंधुत्व प्रकाशित कर अपने मित्रोंके साथ निरन्तर पुरीकी देखभाल करने लगे। जबसे श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक हुआ, तबसे अयोध्यापुरीके सब मार्गोंपर बराबर सुगन्धका जल और हाथियोंके मदका जल छिड़का जाता था, यह अयोध्या पुरी अपने स्वामीको प्राप्त होकर सब प्रकारसे समृद्धि सम्पन्न हुई थी। वहांके महल, पुरके द्वार पत्थरसे बने हुए थे और द्वारपर जलसे भरे हुए सुवर्ण कलश सदा रखे रहते थे, सर्व स्थानोंमें सदा ही पताका फहराती, गुच्छोंके साथ सुपारियें, केला और शोभायमान वसन, पाट और कौतुक बनानेके योग्य वस्त्र, माला इत्यादिसे स्थान-स्थानमें मंगलके तोरण बनाये गये थे ॥२५॥ और जहां-जहांपर श्रीरामचन्द्रजी गमन करते थे उसी-उसी स्थानमें पुरवासी लोग भेंट साथ लेकर आते थे और यह कहकर आशीर्वाद देते थे कि हे देव ! आपने प्रथम वराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था, अब इसका आप प्रतिपालन कीजिये ॥२६॥ राज्यकी प्रजा बहुत समयके पीछे अपने राजाके आनेका समाचार पाकर उनके दर्शन करनेकी वासनासे स्त्री-पुरुष सब ही अपने-अपने घर छोड़कर महलोंके छतपर चढ़े हुए थे और अपरितृप्त लोचनसे राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीको अवलोकन करके उनके ऊपर फूल वर्षा रहे थे ॥ २७ ॥ जिस समय श्रीरामचन्द्रजीने अपने गृहमें प्रवेश किया उस समय श्रीरामचंद्रजीका धनागार अत्यन्त अखिल रत्नादिसे परिपूर्ण और अनेकानेक महामोलकी सामग्रियोंसे सुशोभित था। यद्यपि इस धनागारको पहले श्रीरामचंद्रजीके सम्बन्धी लोग भोग कर चुके थे, तो भी यह पूर्ण था। वहांके द्वारोंकी देहलियाँ मूँगोंकी बनी हुई थीं, थम्भ वैदूर्यमणिके बने हुये थे, गृहोंके आंगन मरकतमय होनेके कारण अति स्वच्छ थे और स्फटिक मणिकी बनी हुई भीतें अत्यन्त दीप्तिमान् हो रही थीं, विचित्र पुष्पोंकेहारोंसे श्रेष्ठ पट्टिकाओंसे और वस्त्र व रत्नोंकी किरणोंसे यह भवन दीप्तिमान् हो रहा था और चैतन्यतुल्य उज्ज्वल मुक्ताफलोंसे व कमनीय भोगसाधन द्रव्यसमूहोंसे यह भवन सब प्रकार सुसज्जित था। सुगंधित धूपसे सुगंधित पुष्पमण्डलसे मण्डित और सब अलंकारोंके अलंकारस्वरूप देवताओंके समान स्त्री पुरुषोंसे यह भवन सेवित हो रहा था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि आत्माराम मुनि लोगोंके अग्रगण्य थे, तो भी उस भवनमें अपनी प्राणप्यारी श्रीजानकीजीके साथ विहार करते थे। इन रामचन्द्रजीने बहुत वर्षोंतक यथाकालमें सब अभिलषित भोगोंका भोग किया था। उस समय सब मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका ध्यान करते थे ॥२८॥ आत्माराम और धैर्यवानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने कालानुसार धर्मको विना पीड़ा दिये रमण किया था ॥२९॥

चौ०—पुनि लव कुशको दीन्हेउ राजू ❋ गये लोक साकेत समाजू ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा-द्वादशमें कुरुवंशकी, कहूँ कथा समझाय।
पुनि इक्ष्वाकुजवंशकी, कथा कहौं सब गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुशजीके अतिथि नामक जो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उनसे निषिध उत्पन्न हुए। निषिधका पुत्र नभ, उसका पुण्डरीक और उसका सुत क्षेमधन्वा हुआ ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, उसका पुत्र अनीह, अनीहके पारियात्र, पारियात्रका पुत्र बलस्थल, उसका पुत्र वज्रनाभ हुआ ॥ २ ॥ वज्रनाभका बेटा सगुण और उसका पुत्र विधृति हुआ ॥ ३ ॥ विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। यह हिरण्यनाभ महर्षि जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था, इसके ही निकट याज्ञवल्क्य ऋषिने उस अध्यात्मयोगको सीखा, जिसके सिद्ध होनेपर हृदयकी गांठ खुल जाती है ॥ ४ ॥ इस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य और पुष्यसे ध्रुवसंधिकी उत्पत्ति हुई। इसका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनका सुत अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र उत्पन्न हुआ। इस शीघ्रसे राजा मरु जन्मे ॥ ५ ॥ यह मरु योगमें सिद्धि प्राप्त करके कलापनामक ग्राममें विराजमान है। जब ये कलियुगके अन्तमें सूर्य वंशका नाश होता हुआ देखेंगे तब ये अपने वंशको फिर उत्पन्न करेंगे ❋ ॥ ६ ॥ इनके पुत्र प्रसुश्रुत, उनका पुत्र संधि, उनका पुत्र अमर्षण, अमर्षणका पुत्र सहस्वान् और सहस्वान्के विश्वबाहु हुआ ॥ ७ ॥ विश्वबाहुके प्रसेनजित्, प्रसेनजित्से तक्षक, तक्षकसे युत, युतके बृहद्बल उत्पन्न हुआ, कि जिसका तुम्हारे पिता अभिमन्युने संग्राममें संहार किया था ॥ ८ ॥ हे परीक्षित्! ऊपर कहे हुए राजा इक्ष्वाकुवंशमें हो गए हैं अब उनका वृत्तांत सुनो जो कि आगेको होंगे ॥ ९ ॥ इसके पीछे बृहद्बलसे बृहद्रणनामक पुत्र होगा उसका पुत्र वत्सवृद्ध॥१०॥ इस वत्सवृद्धसे प्रतिव्योम, उसके भानु और इस भानुसे सेनापति दिवाकरका जन्म होगा। उसका सहदेव, उसका पुत्र वीर बृहदश्व और उसका पुत्र भानुमान् होगा ॥११॥ इस भानुमान्का पुत्र प्रतीकाश्व, उससे सुप्रतीक जन्म ग्रहण करेंगे। उसके मरुदेव, उसके सुनक्षत्र और सुनक्षत्रसे पुष्कर नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥ उसके अन्तरिक्ष, उसका पुत्र सुतपा, उसके पुत्र अमित्रजित्, उसका पुत्र बृहद्राज, बृहद्राजके बर्हि और बर्हिसे कृतञ्जयका जन्म होगा ॥ १३ ॥ कृतञ्जयका पुत्र रणञ्जय और उससे संजयकी उत्पत्ति होगी। सञ्जयका पुत्र शाक्य, शाक्यका पुत्र शुद्धोद और उसका पुत्र लांगल होगा ॥१४॥ लांगलसे प्रसेनजित, उससे क्षुद्रक और क्षुद्रकसे रनक और रनकसे सुरथ जन्म लेगा ॥ १५ ॥ हे महाराज परीक्षित्! सुरथके यहां सुमित्र जन्म ग्रहण करेगा और ये सब राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे ॥१६॥ हे राजन्! इक्ष्वाकुके वंशमें सुमित्र तक ये सब राजा होंगे और सबसे पीछे सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश ध्वंस हो जायगा ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

* शंका—त्रिलोकोमें जो प्राणी जन्म लेता है, उसको काल खा लेता है, परन्तु राजा मरुको कालने क्यों नहीं खाया? जो राजा मरु कलियुगके नाश हुए पीछे सूर्यवंशको फिर उत्पन्न करेगा?

उत्तर—राजा मरु बाल्यावस्थासे ही परमेश्वरका भजन करने लगा था और भजन करते-करते बड़ा योगी हो गया और योगियोंको काल किसी प्रकार नहीं खा सकता, क्योंकि काल तो योगियोंका रूप देखकर डरता है, इसलिये राजा मरुको कालने नहीं खाया।

दोहा–तेरहमें इक्ष्वाकुसुत, निमिका वंश बखान।
तिसमें प्रगटे जनकजी,ज्ञानी परम सुजान॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने यज्ञ आरंभ करके महर्षि वसिष्ठजीको अपना ऋत्विज वरण किया, तब वसिष्ठजी बोले कि यज्ञ करनेके लिये देवराज इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं॥१॥ इस कारण विना इन्द्रका यज्ञ समाप्त किये हुए हम तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकते हैं,जबतक इन्द्रका यज्ञ समाप्त हो तबतक ठहरे रहो। यह सुनकर महाराज निमि कुछ न बोले अर्थात् चुपचाप रहे और महर्षि वसिष्ठजी देवराज इन्द्रका यज्ञ कराने लगे॥२॥वसिष्ठजीके जानेपर महाराज निमिने विचारा कि इस जीवनका क्या ठिकाना है, यदि इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेके प्रथम ही हमारी मृत्यु हो जाय,तो फिर यज्ञ न होगा,इसलिये जबतक कुलगुरु वशिष्ठजी न आयें तबतक किसी और ऋत्विजसे यज्ञ आरंभ कराऊं। यह विचार निमिराजाने यज्ञारंभ कर दिया॥३॥ इसके उपरान्त महर्षि वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ समाप्त कराकर राजा निमिके स्थानपर आये;शिष्यका अन्याय देखकर मुनिको क्रोध उत्पन्न हुआ और क्रोध करके यह शाप दिया कि पंडिताभिमानी इस निमिका देह शीघ्र छूट जाय ❋॥४॥ जब कुलगुरु वसिष्ठजीने इस प्रकार अधर्मवर्ती होकर शाप दिया, तब राजा निमि भी उनको यह शाप देने लगा कि "तुमने लोभके वश होकर धर्मकी ओरको नहीं देखा इसलिये तुम्हारा देह भी छूट जाय"॥५॥ यह कहकर राजा निमिने अपनी देहको छोड़ दिया। उसी समय वसिष्ठ ऋत्विक् का भी देह छूट गया परन्तु कुछ कालके पीछे मित्रावरुणके यज्ञमें उर्वशीके गर्भसे वसिष्ठजीने फिर जन्म लिया अर्थात् यज्ञ करते-करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणजीका जो वीर्य गिरा, उस वीर्यको उन्होंने कलशमें रखा था,उससे ही फिर वसिष्ठजी उत्पन्न हुये॥६॥ इधर जब यज्ञ करते-करते राजा निमिका देह छूट गया, तब मुनिलोगोंने सुगंधित वस्तुमें (उत्तम तैलमें) उनके शरीरको रख दिया, इसके उपरान्त जब यज्ञ समाप्त हो गया तो आये हुये देवता लोगोंसे बोले कि"आप लोग यदि प्रसन्न हों और सामर्थ्य रखते हों तो राजाका यह देह सजीव हो उठे"देवता लोगोंने कहा ऐसा ही हो। तब राजा निमिका शरीर गन्ध वस्तुमेंसे बोला कि हे प्रिय! हमें कभी देहका बन्धन न हो॥७॥८॥ हरिसेवक मुनिलोग वियोगके भयसे कातर हो कदापि देह धारण करनेकी वाञ्छा नहीं करते। वह केवल मुक्तिके लिये भगवान्‌के चरणकमलकी सदा वन्दना किया करते हैं॥९॥ और दुःख, शोक, भयके देनेवाले मनुष्यके शरीरकी मैं इच्छा नहीं करता क्योंकि इस देहकी सर्वत्र मृत्यु है,जैसे मछलियोंकी जलमें सर्वत्र मृत्यु है॥१०॥ तब देवतालोगोंने कहाकि यह निमि विना ही देहके सब प्राणियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार वास करे। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा होनेसे मुनिलोग जिस लिये राजाके जीवनकी प्रार्थना करते हैं, वह

वशिष्ठमुनि बड़े महात्मा पुरुष थे, उन दोनोंने फिर मूर्खों
❋ शंका—राजा निमि बड़ा ज्ञानी और ध्यानी था एवं मुनियोंमें पूजन करने योग्य
इसका क्या कारण?
के समान काम क्यों किया? राजाने मुनिको शाप दिया, मुनिने राजाको शाप दिया,
करनेकी इच्छा की तब राजा निमि और वसिष्ठ ये दोनों उनको देखकर
उत्तर—जब नारदमुनि स्त्रीके लिये मोहित हो गये और विवाह
हे राजा निमि! हम स्त्रीके लिये दुःखी हो रहे हैं हमारे मन में विवाह
बहुत हँसे। दोनों को नारद मुनिने शाप दिया कि हे वसिष्ठमुनि!
इसपर भी तुम दोनों जब हमारी हँसी करते हो, इसलिये
करनेकी इच्छा नहीं है, परन्तु भगवान्‌की मायाने हमको मोहित कर लिया है,
इसलिये दोनों जनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी।
तुम दोनों जने बहुत शीघ्र मायाके फन्देमें फँसकर हमारे समान बड़ी दुर्गतिको प्राप्त होगे

प्रार्थना सिद्ध हो जायगी और राजाको देहका सम्बन्ध भी नहीं होगा। हे राजन्! इसी वाक्यके अनुसार निमि जीवित हुए थे। नेत्रोंपर पलकका उघड़ना और पड़ना इन्हीं राजा निमिके कियेसे होता है॥ ११॥ परन्तु इसके पीछे महर्षियोंने विचारा कि विना राजाके राज्य सदा प्रजाका भय दिलाने वाला है इसलिये सबने राजकुमारकी कामना करके इन निमिके देहको मथा। मथन करनेसे राजा निमिके देहसे एक कुमार उत्पन्न हुआ॥ १२॥ उस निमिके पुत्रका असामान्य जन्म होनेके कारण जनक नाम हुआ। इस शब्दका अर्थ उत्पादक है और विदेहसे जन्म ग्रहण करनेके कारण इनका एक नाम 'विदेह' हुआ और मथनेसे जन्म होनेके कारण एक नाम मिथिला हुआ। अथवा मिथिलापुरीके निर्माणकर्ता होनेके कारण मिथिलाधिपति कहलाते थे॥ १३॥ इन जनकके पुत्र उदावसु, इनके पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए। नंदिवर्द्धनका पुत्र सुकेत और सुकेतका पुत्र देवरात हुआ॥ १४॥ देवरातसे बृहद्रथका जन्म हुआ, उसका पुत्र महावीर्य, महावीर्यका पुत्र सुधृति, उसका पुत्र धृष्टकेतु, उसका पुत्र हर्यश्व और हर्यश्वसे मरुकी उत्पत्ति हुई॥ १५॥ मरुका बेटा प्रताप, उससे कृतरथने जन्म लिया, उसका पुत्र देवमीढ और उससे विषुत पुत्र उत्पन्न हुआ और उससे महाधृतिने जन्म लिया॥ १६॥ महाधृतिका पुत्र कृतरात, उसका पुत्र महारोमा और महारोमाका बेटा स्वर्णरोमा हुआ तथा उससे ह्रस्वरोमाने जन्म ग्रहण किया॥ १७॥ उसके सीरध्वज जन्मा। ह्रस्वरोमा राजा यज्ञके लिये भूमि जोत रहे थे, उसी समय उसकी सीर अर्थात् हलके अग्रभागसे इस पुरुषका जन्म हुआ, इस कारणसे यह सीरध्वज कहलाता था॥ १८॥ सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज, उसका पुत्र धर्मध्वज, धर्मध्वजके कृतध्वज और मित्रध्वज नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १९॥ उनमें कृतध्वज से केशिध्वजने जन्म लिया और मित्रध्वजसे खाण्डिक्य जन्मा॥२०॥ हे राजन्! कृतध्वजका पुत्र आत्मविद्यामें विशारद हुआ और कर्मोंका भलीभांति जाननेवाला था। एक समय यह किसी कारणवश केशिध्वजके डरसे भाग गया॥ २१॥ इस केशिध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ, उसका पुत्र शतद्युम्न शतद्युम्नका पुत्र शुचि और इस शुचिसे सनद्वाज हुये॥ २२॥ सनद्वाजका पुत्र ऊर्ध्वकेतु, उसका पुत्र पुरुजित् पुरुजित्का पुत्र अरिष्टनेमि, उसका पुत्र श्रुतायु, उसका पुत्र सुपार्श्व॥ २३॥ सुपार्श्वसे चित्ररथ, उससे क्षेमाधि, क्षेमाधिका पुत्र समरथ, उसका पुत्र सत्यरथ उत्पन्न हुआ॥ २४॥ सत्यरथका पुत्र उपगुरु और उससे अग्निके अंशसे उपगुप्तने जन्म ग्रहण किया। उपगुप्तका पुत्र वस्वनन्त, वस्वनन्तका पुत्र युयुधान और उससे सुभाषणने जन्म लिया॥ २५॥ सुभाषणका बेटा श्रुत, उसका पुत्र जय, जयका पुत्र विजय और उसके ऋत उत्पन्न हुआ। ऋतका पुत्र शुनक, उसके वीतहव्य, उसके धृति और धृतिका पुत्र बहुलाश्व और उसका पुत्र कृति हुआ। यह बड़ा ही जितेन्द्रिय था॥ २६॥ हे राजा परीक्षित्! यह सब भूपाल मिथिलावंशके कहे गये। यह सब आत्मविद्यामें पंडित और याज्ञवल्क्यादि योगेश्वरोंकी कृपासे घरमें रहते हुए भी सुखदुःखादिके द्वंद्वसे छूटे हुए थे॥२७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नामत्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

दोहा—चौदहमें गुरुनारिसे, चन्द्र प्रगट कियो बुद्ध ॥
छः सुत प्रगटे बुद्धसे, आयु आदि चित शुद्ध ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! अब अत्यन्त पावन सोमवंशका वर्णन करते हैं वह आप सचेत हो चित्त लगाकर सुनिये॥१॥इस वंशके ही पुण्यकीर्ति ऐलप्रभृति राजा विख्यात हैं। हे महाराज ! सहस्रशीर्षा परमपुरुष भगवान्के नाभिकमलसे जगत्पिता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उनके पुत्र अत्रि, यह अत्रिजी गुणोंमें अपने पिताके समान थे ॥ २ ॥ इन अत्रिजीके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) नामक पुत्र उत्पन्न हुए। भगवान् ब्रह्माजीने इन चन्द्रमाको विप्र ओषधि और सब नक्षत्रोंका अधिपति किया था ॥३॥ चन्द्रमाने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय यज्ञ किया था; इन्हीं चन्द्रमाने गर्व करके बृहस्पतिजीकी स्त्री ताराको हर लिया था * ॥ ४ ॥ हे राजन् ! देवदानवोंके बीच संग्राम होनेके कारण तुम जानते हो, जब चन्द्रमाने ताराको हर लिया, तब देवगुरु बृहस्पतिजी अनेक बार चन्द्रमाके निकट गये और उनसे अपनी भार्याको मांगा परंतु मदमत्तताके कारण चन्द्रमाने अपनी गुरुभार्याको नहीं त्यागा बस; इसलिये दैत्य व सुरोंमें महासंग्राम हुआ था ॥ ५ ॥ बृहस्पतिजीसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य डाह रखते थे इसी लिये उन्होंने अपने शिष्य असुर लोगोंके साथ चन्द्रमाको ग्रहण किया अर्थात् चन्द्रमाका पक्ष लिया और भूतेश्वर (महादेव) अंगिराजीके निकट विद्या पानेसे सब भूतोंको साथ ले अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिजीकी ओर गये ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्र भी अपने सब देवताओंके संग मिल अपने गुरु बृहस्पतिजीकी ओर गये। इसके पीछे ताराके लिये सुर और असुरोंका नाशकारी महाघोर संग्राम होने लगा ॥ ७ ॥

चौ०—माचत भयो युद्ध अति घोरा * पूरि रहे आयुध चहुँ ओरा ॥
रुधिर धार तहँ बहत गँभीरा * कच्छ मच्छ सम तिरत शरीरा ॥

हे राजन् ! जब कुछ दिनोंतक युद्ध हुआ, तब देवगुरु बृहस्पतिजीने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा। यह सुन महात्मा ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बुलाकर बहुत डाटा और तारा बृहस्पतिजीको दिला दी॥८॥बृहस्पतिजी अपनी भार्या ताराको पाकर जान गये कि यह अबला अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भवती हुई है, इसलिये ताराके ऊपर घृणा प्रकट करके कहने लगे अरे दुर्म्मति रमणि ! हमारे क्षेत्रमें औरका गर्भ धारण किया। इसे शीघ्र गिरा दे, अरे असति ! तू ऐसा समझकर न डरना कि गर्भ गिरानेके पीछे तुझे हम मार डालेंगे ? और हमारे क्रोधकी अग्नि बहुत भड़क रही है तो भी तुझ स्त्रीजातिको हम क्या भस्म करेंगे ? और अधिक करके हम बहुत संतानकी इच्छा करते हैं ॥९॥ पतिके यह वचन सुनकर तारा अति लज्जित हुई और अपने गर्भसे तत्काल ही कनकप्रभ सुकुमारको त्याग दिया। हे राजन् !

* शंका—गुरुकी स्त्री तारा, उसको चन्द्रमाने क्यों ग्रहण किया ? गुरुकी स्त्री तो माताके समान होती है, उसके संग कैसे रमण किया ! और भगवान्ने भी ऐसे दुष्टको दण्ड नहीं किया बड़े आश्चर्यकी बात है।

उत्तर—बृहस्पतिसंहिता आदि और भी धर्मशास्त्रके प्रमाणसे बृहस्पतिजीने चन्द्रमाको शिक्षा दी थी कि अपनी इच्छासे स्त्री पुरुषके संग भोग करनेके लिये चाहती हो अथवा पुरुष स्त्रीकी प्रार्थना कर उसके संग भोग करनेकी इच्छा करता हो तो पाप नहीं होता और जो प्रार्थना नहीं माने तो पुरुषको महापाप लगता है और ताराको भी बृहस्पतिजीने यही सिखाया था कि जो पुरुषके संग स्त्री क्रीड़ा करेगी तो जबतक स्त्री मासिक धर्म न होगी तब तक तो अशुद्ध रहेगी और रजस्वला हुई तो तीन दिनमें शुद्ध हो जायगी अर्थात् पाप किंचिन्मात्र भी नहीं रहेगा। इस प्रकार बृहस्पतिजीने तारा और चन्द्रमाको उपदेश दिया था, इसीसे दोनों गुरु और पतिके वचनपर आरूढ़ रहे, अतः उनका कुछ दोष नहीं है।

उस कुमारको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंने लेना चाहा ॥१०॥ और दोनों परस्पर कहने लगे कि यह बालक तुम्हारा नहीं है हमारा है, इसलिये इन दोनों जनोंमें बहुत झगड़ा हुआ। पुत्रके लिये इन दोनोंमें झगड़ा होता हुआ देखकर ऋषि और देवता लोगोंने तारासे कहा कि यह वास्तवमें किसका पुत्र है ? परन्तु तारा लाजके कारण कुछ भी न कह सकी और चुप हो रही ॥ ११ ॥ इसलिये वह बालक अलीक लाजसे कोपायमान हो अपनी मातासे बोला-अरी अशुभे ! बोलती क्यों नहीं शीघ्र मेरे सामने अपना दोष वर्णन कर ॥ १२ ॥ और फिर ब्रह्माजीने एकान्तमें ताराको बुलाकर समझाया-बुझाया और कहा, हे वत्से ! बतलाओ यह किसका पुत्र है ? तब तारा नीचेको शिर झुकाकर लाजसहित धीरेसे बोली-पुत्र तो यह चन्द्रमाजीका है, ताराके मुखसे यह वचन निकलते ही चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया ॥ १३ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने इस बालककी गंभीर बुद्धि देखकर इसका नाम "बुध" रखा। हे राजन् चन्द्रमा पुत्रको पाकर परम हर्षित हुआ ॥ १४ ॥ इस बुधसे इलाके गर्भमें पुरूरवाका जन्म हुआ। यह पुरूरवा अत्यन्त विख्यात हुआ था ॥ १५ ॥ एक समय देवर्षि नारदजी देवराज इन्द्रकी सभामें पुरूरवाके रूप, गुण, धन, उदारता, शीलता और विक्रमका गान कर रहे थे। देववेश्या उर्वशी यह गुण सुनकर कामके वश हो गयी और राजाके निकट स्वयं ही आयी ॥ १६ ॥ हे परीक्षित् ! तुम ऐसी शंका मत करना कि उर्वशी स्वर्गकी अप्सरा होकर मनुष्यके निकट क्यों गयी ? यह अप्सरा मित्रा-वरुणके शापसे इस समय मनुष्यभावको प्राप्त हुई थी, इस लिये पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाको कामदेवके समान स्वरूपवान् सुनकर यह अधीर हो उनके निकट जाकर खड़ी हो गयी ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र आनन्दके कारण खिल गये। राजाने पुलकित हो मधुर वचनसे कहा ॥ १८ ॥ हे सुन्दरी ! हमारे साथ विहार करो। बहुत वर्षोंतक हम दोनोंका परम सुखसे रमण होगा और मैं यही चाहता हूं कि मेरा तुम्हारा स्नेह ऐसा ही बना रहे ॥१९॥ उर्वशी बोली कि हे सुन्दर ! तुम्हारे प्रति किसके नेत्र और मन अनुरागी न होंगे ? तुम्हारे हृदयको प्राप्त हो रमण करनेकी इच्छासे कोई इस हृदयसे दूर होनेकी इच्छा न करेगी ॥२०॥ इसके उपरान्त शापके अन्तमें प्रतिज्ञा भंग करनेके छलसे जानेके लिये कहने लगी कि हे प्रियवर ! मैं प्रथम ही आपसे यह वचन मांग लेती हूं कि मेरे यह दोनों भेड़ोंके बच्चे तुमको धरोहरके समान रखने पड़ेंगे और हमारे साथ तुम रमण करो, क्योंकि जो पुरुष बड़ाईके योग्य है, उसको ही स्त्रियाँ वरण करती हैं, इसलिये विजातीय होनेपर भी तुम्हारे वरण करनेमें हमें कोई दोष नहीं है ॥ २१ ॥ हे वीर ! परन्तु मैं तुम्हारे निकट रहकर घृत भक्षण करूंगी और मैथुनके अतिरिक्त किसी समय तुमको वस्त्ररहित न देखूं, जब तक इतनी बातें आप मेरी स्वीकार न कर लेंगे तबतक मैं आपके संग कदापि प्रसंग न करूंगी। राजा पुरूरवाने उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर यह सब बातें अंगीकार कर लीं ॥ २२ ॥ और कहा कि हे सुन्दरि ! तुम्हारा आश्चर्यमय रूप और आश्चर्यमय भाव देखते ही मनुष्यका हृदय मोहित हो जाता है। तुम स्वर्गकी देवी अपने आप यहां आयी हो, अतः कौन मनुष्य तुम्हारी सेवा न करेगा ? ॥२३॥ हे राजन् ! यह कहकर पुरुषप्रधान पुरूरवा उर्वशीके साथ देवतालोगोंके विहार-स्थल चैत्ररथादि वनोंमें विहार करने लगे और उर्वशी भी यथायोग्य उस नृपालको आनंद देने लगी ॥ २४ ॥

इस देवी उर्वशीके शरीरमें कमलके परागके समान सुगंधि निकलती थी। उर्वशीके साथ विहार करके राजा इसके वदनकी सुगंधिसे बहुत दिनतक हर्ष पाते रहे ॥ २५ ॥ इस ओर पुरमें देवराज इंद्रने उर्वशीका दर्शन न पाकर गन्धर्वोंको आज्ञा दी कि वह उर्वशी जहांपर हो वहांसे शीघ्र ले आओ, क्योंकि विना उर्वशीके हमारे स्थानकी शोभा नहीं होती ॥ २६ ॥ आधी रातके समय जब महाअन्धकार हुआ, उस समय वह इन्द्रके भेजे गन्धर्व मृत्युलोकमें आये और उन मेढ़ोंको हरण करके चल दिये जिनको धरोहरकी भांति उर्वशीने पुरूरवाके निकट सौंपा था ॥ २७ ॥ उन दोनों मेढ़ोंको उर्वशी पुत्रके समान मानती थी, जब उन मेढ़ोंको गन्धर्वगण हरण करके ले जाने लगे तब वह अति आर्त वाणीसे चिल्लाये। उस चिल्लानेके शब्दको सुनकर उर्वशी देवलोकमें जानेकी वासनासे खेदसहित राजा पुरूरवासे कहने लगी–"हाय ! मैं इस कुत्सित स्वामीसे मारी गयी। इस नपुंसकमें कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है, वरन् यह अपने आपको वृथा ही वीर जानकर अभिमान करता है ॥२८॥ इसके ऊपर विश्वास करनेसे मेरा नाश हो गया। हाय ! मेरे पुत्र समान मेढ़ोंको चोर हरण करके चले जाते हैं। अरे ! यह पुरुष कैसा है ? कि जो नारीके समान भीत रहकर दिन-रात घरमें पड़ा रहता है" ॥ २९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार हाथी अंकुशसे विद्ध होता है उसी प्रकार उर्वशीके वचन वाणके समान राजाके हृदयको वेध दिये और उसी समय खड्ग ग्रहण करके क्रोधके कारण वस्त्ररहित मेढ़ोंके हरनेवालोंपर झपटा ॥ ३० ॥ गंधर्वोंने देखा कि राजा हमारे पीछे आता है, तब गंधर्वगणोंने मेढ़ोंको छोड़ दिया और द्युतिमान होकर वहां प्रकाश करने लगे। तब राजा उन मेढ़ोंके बच्चोंको लेकर वहां आया, परन्तु उस समय उर्वशीने उनको नग्न देख लिया। हे कुरुश्रेष्ठ ! "मैथुनके अतिरिक्त नङ्गा न देख सकूँगी" इस बातको विचार वह अप्सरा वहांसे चली गयी। इसके उपरान्त राजा पुरूरवा सेजपर उर्वशीको न पाकर अत्यन्त विमन हुआ और उसीमें चित्त लगाकर कातरता प्रगट करके शोकके वेगसे उन्मत्तकी नाईं पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कुछ दिनों पीछे कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तट पर वह अप्सरा पांच सखियोंके साथ राजा पुरूरवाको दिखाई दी, तब राजाने सिटपिटाकर हर्षित हो यह वचन कहे ॥३३॥ हे प्यारी ! हे निर्दय बाले ! रहो, रहो। हे सुमुखि ! मैं अबतक सावधान नहीं हूँ। प्राणेश्वरी ! आओ तो दोनों एक स्थानपर बैठकर बातचीत करें ॥ ३४ ॥ हे देवि ! हमारा यह कमनीय शरीर तुमसे दूर किया हुआ जो यहां आया है अभी यहां गिरता है और देखो तुम्हारी प्रसन्नताके पात्र न होनेसे भेड़िये और गिद्ध इसको भक्षण कर जायँगे ॥ ३५ ॥ राजाके यह वचन सुनकर उर्वशी बोली कि हे राजन् ! मरो नहीं, तुम पुरुष हो। धैर्य धारण करो, यह भेड़िये अथवा प्रसिद्ध इन्द्रियाँ तुमको भक्षण न करें अर्थात् तुम इन्द्रियोंके वश मत होओ। हे राजन् ! कहीं भी स्त्रियोंकी मित्रता नहीं स्थिर होती, क्योंकि इनका हृदय भेड़ियोंके समान होता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंको स्वभावसे ही करुणा नहीं होती। यह क्रूर और शांतिरहित कहलाती हैं, अपने प्रीतमके लिये साहस करती हैं, थोड़ी सी बातके लिये वह विश्वासघातिनी पति अथवा भ्राताको प्राणोंसे मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ अधिक करके जो पुँश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी हैं इच्छानुसार घूमती हैं, वह सौहार्दको एक साथ ही छोड़ देती हैं, वह तो अज्ञानी पुरुषके सामने बाहरी (अलीक) प्रेम प्रकट करती हैं ॥३८॥ जब राजाने बहुत विनती

की तब उर्वशी बोली कि वर्षके अन्तमें तुम मेरे साथ एक दिन विहार कर सकोगे और उससे ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त राजा पुरूरवा देवी उर्वशीको गर्भवती देख उसके वचन मान अपने नगरको चला आया, परंतु वर्षके व्यतीत होनेपर फिर वहांपर गया, जहां कि पहले उर्वशीसे भेंट हुई थी। वहां वीर प्रसविनी उर्वशीको देखकर राजाको परम हर्ष हुआ और प्रमुदित चित्तसे उर्वशीके पास एक रात वास किया। फिर वियोगके भयसे राजाका चित्त व्याकुल हुआ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उर्वशी दीन राजाको विरहातुर देखकर कृपा करके बोली—हे राजन्! हमारे लिये शोक क्यों करते हो? गन्धर्व-लोगोंकी विनय करो। वे गन्धर्वगण प्रसन्न होकर हमको सदाके लिये तुम्हें दे देंगे। हे परीक्षित्! उर्वशीके यह वचन सुनकर राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी बड़ी स्तुति की कि जिससे गन्धर्वगण बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर राजाको अग्निस्थाली (टोकनी) दी। उसके देनेका तात्पर्य यह था कि जब इससे अग्निकर्म किया जायगा, तब ही उर्वशी प्राप्त हो जायगी, परन्तु राजा पुरूरवाने उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी समझा और उसको कांखमें दबाये वनमें घूमता फिरा परन्तु फिर राजाका भ्रम दूर हो गया अर्थात् यह समझ लिया कि यह उर्वशी नहीं किन्तु अग्निस्थाली है ॥ ४२ ॥ उसके उपरांत अग्निस्थालीको वनमें डालकर घर आया और घरमें आकर नित्य रात्रिके समय उर्वशीका ध्यान करने लगा। इससे त्रेतायुगके आरंभके समय राजाके हृदयमें कर्मबोधक तीन वेद उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ उसके पीछे राजा फिर वहीं पर गया कि जहां अग्निस्थाली पड़ी थी और देखा कि शमी वृक्षके गर्भमें अथवा शमी जिसके गर्भमें थी ऐसा एक पीपलका पेड़ जमा है, उसमें अग्निका होना भलीभांतिसे देख उर्वशी लोककी कामनासे राजाने उस पेड़से दो अरणी बनायी और उस अग्निको मथा। हे राजन्! राजा पुरूरवाने किस प्रकारसे अरणि-योंसे अग्नि निकालीं वह तुम सुनो। मंत्रके अनुसार नीचेकी अरणीको और उत्तरकी अरणीको आत्मा समझकर और उन दोनोंमें जो काठका टुकड़ा था, उसका यह राजा पुत्रकी भांति ध्यान करने लगे ॥४४॥४५॥ जैसे ही वह अरणी मथी गयी कि उसमेंसे अग्नि निकली। यह अग्नि साधारण नहीं, इससे भोज्यधन जन्म लेता है। इसके पीछे वह अग्नित्रयी विद्याकी विधिके अनुसार कहे हुए संस्कारसे त्रिवृत अर्थात् आहवनीयादि त्रिरूप हुई। फिर राजाने उस त्रिवृत अग्निको अपना पुत्र कहकर माना ॥४६॥ और इस राजाने उर्वशी लोककी कामना करके उस अग्निसे सर्व देवमय यज्ञेश भगवान् वासुदेवका यज्ञ किया ॥४७॥ हे राजन्! पहले सतयुगमें सब प्रकारके वाक्योंका बीजभूत ओंकार ही एकमात्र वेद था, नारायण ही अकेले देवता थे, वर्ण भी एक ही था और अग्नि भी एकही था ॥४८॥ फिर त्रेतायुगके आरंभमें पुरू-रवासे तीन वेद उत्पन्न हुए इसलिये इस युगमें यह राजा अग्निरूप प्रजा द्वारा गन्धर्वलोकको प्राप्त होकर उर्वशीके साथ विहार करने लगा। सत्ययुगमें सबही पुरुष सत्त्वगुण प्रधान थे इसलिये सब ही ध्याननिष्ठ हुआ करते थे। उसके पीछे रजोगुण प्रधान त्रेतायुगमें वेदादिके विभागसे कर्ममार्ग प्रकाशित हुआ है ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—पुरूरवाके वंशमें, भये गाधि गम्भीर ।
ता दौहित्रके पुत्र भे, परशुराम रणधीर ॥

इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! राजा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम यह हैंः—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥ इनमें श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतञ्जय हुआ, रयका पुत्र एकनामा हुआ । जयकी सन्तान अमित और विजयका पुत्र भीम हुआ । भीमका पुत्र काञ्चन और काञ्चनके होत्रक जन्मा । इस होत्रकके उन जह्नुका जन्म हुआ, जिन्होंने एक ही घूँटमें सब गंगाजीका जल पान कर लिया है ॥ २ ॥ जह्नुके पुरूरवा जन्मा, उसका बलाक, उसका बेटा अजक और अजकके यहां कुशने जन्म लिया । कुशके कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ उनमें से कुशाम्बुके महात्मा गाधिने जन्म ग्रहण किया । इन गाधिके सत्यवती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । ब्राह्मण ऋचीकने राजा गाधिसे उस कन्याको मांग लिया था । राजा गाधिने कन्याके योग्य यह वर न विचार कर निवेदन किया॥५॥ हे महाराज ! जिनका एक ओरका (बाँया अथवा दाहिना) कान श्यामवर्ण हो और जिनके सब अंगोंमें चन्द्रमाके समान ज्योति हो ऐसे एक सहस्र घोड़े तुम हमें इस कन्याके शुल्क स्वरूप भेंट दो तब हम तुम्हें यह कन्या दें । कुछ इन हजार घोड़ोंको आप अधिक न समझें,क्योंकि हम कुशिकके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! ऋचीक मुनि राजाके ऐसे वचन सुनकर सब अभिप्राय जान वरुणजीके निकट उसी समय चले गये और वहांसे एक हजार घोड़ोंको लाकर उसे देकर श्रेष्ठ मुखवाली कन्यासे विवाह किया ॥ ७ ॥ कुछ कालके पीछे ऋचीक मुनिकी भार्या और सासने ❋ पुत्रकी कामना करके इन ऋचीकसे प्रार्थना की,तब यह ऋषि अपनी भार्याके लिये ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिये क्षत्रिय मन्त्रसे चरु पकाकर स्नान करनेको चले गये ॥ ८ ॥ तब सत्यवतीकी माताने मनमें विचारा कि भार्याके ऊपर पतिका अधिक स्नेह हुआ करता है अतः जामाता मेरी कन्याके लिये जो चरु बनाकर गये हैं वह अवश्य ही हमारे चरुसे श्रेष्ठ होगा । यह सोच-विचार इसने अपनी कन्यासे वह चरु मांगा जो कि ऋषि इस अपनी भार्याके लिये बना गये थे । सत्यवतीने माताकी प्रार्थनासे ब्रह्ममन्त्रयुक्त अपना चरु उसको दे दिया और आपने क्षत्रियमन्त्रका पढ़ा हुआ चरु भक्षण किया॥९॥इसके उपरान्त जब मुनिने आकर यह बात जान ली तब अपनी स्त्रीसे बोले—"बड़ा नीच कर्म किया, चरुका अदल-बदल करने से तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधारी होगा और तुम्हारा भ्राता ब्रह्मचारी होगा"॥१०॥यह सुन सत्यवती अत्यन्त भीत हो अनेक भांतिकी अनुनय-विनय कर ऋषिसे बोली—"महाराज ! ऐसा न हो"तब भार्गव प्रसन्न होकर बोले कि तुम्हारा पौत्र भयंकर होगा, हे राजन् ! इसके पीछे सत्यवतीके 'जमदग्नि' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥११॥ हे राजन् ! फिर

❋ शंका—पुत्र होनेके लिये सब राजा लोग यज्ञ किया करते थे, परन्तु राजा गाधिने पुत्र होनेके लिये यज्ञ क्यों नहीं किया ? क्योंकि राजा गाधिकी स्त्रीने पुत्रहोनेके लिये अपने जामातासे याचना की थी, यह सन्देह हमारा निवारण करो ।

उत्तर—राजा गाधि नित्यप्रति यही चिन्ता करते थे किसी समय पुत्र होनेके लिये यज्ञ करेंगे यही विचार करते-करते बहुत दिन बीत गये । जबतक ऋचीक नाम भृगुवंश तपस्वी के संग राजा गाधिने जब अपनी सत्यवती कन्याका विवाह कर दिया, तब रानी अपने जामाता (जमाई) को सिद्ध समझकर पुत्रकी याचना करने लगी । रानीने अपने मनमें विचारा कि राजा यज्ञ करनेके लिये अभी विचार कर ही रहे हैं; परन्तु अभी यज्ञ करते नहीं । इसलिये रानीने जामातासे पुत्र होनेकी याचना की कि राजा यज्ञ करें वा न करें ।

वही सत्यवती अबला लोकपावनी महापुण्य मय कौशिकी नदी होकर बही है ॥१२॥ हे परीक्षित् ! इन महर्षि जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया । उस रेणुकाके गर्भसे इन ऋषिके वसुमानादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, उन सब पुत्रोंमें छोटे 'परशुराम' हुये ॥१३॥ प्राचीन कविलोग इनको भगवान् वासुदेवका अंश और हैहय नाम क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाला कहते हैं । इन परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया था ॥१४॥ पहले क्षत्रिय जातिके लोग रजोगुणसे व तमोगुणसे परिपूर्ण हो गर्वकारी और वेद विरुद्धाचारी हुए इसलिये यह पृथ्वीपर भारकी नाईं हो गये थे । यद्यपि अपराध इनका थोड़ा था तो भी परशुरामजीने इनको मार ही डाला । यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अजितेन्द्रिय क्षत्रियजातिने भगवान् परशुरामजीका ऐसा क्या अपराध किया था, कि जिससे उनका क्रोधानल बार-बार क्षत्रियकुलके ऊपर पड़ा था ॥ १५ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! इस प्रकार राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर सहर्ष श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! हैहयोंके अधिपति क्षत्रियश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनने नारायणके अंशके अंश भगवान् दत्तात्रेयकी सेवा करके सहस्र भुजायें प्राप्त की और इनके ही बलसे यह शत्रुओंपर दुर्द्धर्ष हुआ था । दत्तात्रेयकी सेवासे राजाको अव्याहत इन्द्रियसामर्थ्य, सम्पदा, प्रभाव, वीर्य, बल, योगेश्वरत्व और जिसमें अणिमादि सिद्धि विराजमान रहें ऐसा ऐश्वर्य भी उसने पाया था ॥ १७ ॥ इसलिये यह राजा पवनके समान अव्यर्थगतिवाला हो सब लोकोंमें विना बाधाके भ्रमण करने लगा ॥ १८ ॥ एक समय यह सहस्राज्र्जुन वैजयन्ती माला धारण कर बहुतसी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीके जलमें क्रीड़ा करने लगा । मदोन्मत्तताके कारण केलि करते-करते इसकी हजार बाहोंसे अचानक नर्मदाकी धारा रुक गयी ॥१९॥ उसी समय राक्षसराज रावण दिग्विजय करनेके लिये बाहर हो माहिष्मती पुरीके समीप डेरा डाल शिवलिंग स्थापित कर, इस नदीके किनारे उनकी पूजा करता था, जब कार्तवीर्यार्ज्जुनकी भुजाओंसे जलकी धार रुक गयी तब नदीकी धार प्रतिकूल हो नदीके किनारेको डुबाती हुई दूसरी ओरको लौटा । नदीकी धारके जलसे अपने डेरेको डूबता हुआ देखकर अर्जुन के वीर्यको वीर्याभिमानी रावण नहीं सह सका ॥ २० ॥ तब रावणने निरादर करते हुए सहस्रार्जुनको पराजित करनेका उद्योग किया । हे राजन् ! जब स्त्रियोंके सामने रावणने इस प्रकारका ढीठपन किया तब सहस्रार्जुनने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया और अपने नगर में बाँधकर ले आया और बंदरके समान कुछ दिन अपने घरमें बांधे रहा और फिर अवज्ञा कर छोड़ दिया ॥ २१ ॥ जिस तरह कार्तवीर्यार्जुन अपराधी होकर परशुरामजीके हाथसे मारा गया उसका भी वर्णन करते हैं, तुम सुनो—एक समय सहस्रार्जुन मृगयाके लिये विजय वनमें घूमता-घूमता अकस्मात् जमदग्निजीके आश्रममें आ पहुंचा ॥२२॥ मंत्री, सेना, सामन्त और अश्वादि वाहन सहित इस राजाको अपने आश्रममें आया हुआ देखकर जमदग्निऋषिने अपने कामधेनु गाय द्वारा भलीभांति इनका अतिथिसत्कार किया ॥२३॥ मुनिकी इस धेनुरत्नको अपने ऐश्वर्यमें श्रेष्ठ देखकर इस पहुनईसे सहस्रार्ज्जुनको सन्तोष न हुआ, अतः उसने हैहय लोगोंके साथ परामर्श करके इस गायके ले जानेकी अभिलाषा की ॥२४॥ इसलिये दर्प करके अपने पुरुषोंको आज्ञा दी कि ऋषिके अग्निहोत्रकी गाय लेलो । यह आज्ञा पाकर सहस्रार्ज्जुनके सेवक रोती और डकराती हुई बच्चे सहित गायको बलात्कार (जबरदस्ती) पकड़कर माहिष्मती नगरीको ले गये ॥ २५ ॥ जब राजा गायको लेकर

माहिष्मती पुरीको चला आया तब जमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी आश्रममें आये । वह इस राजाकी यह दुष्टता सुनकर चोट खाये हुए सर्पके समान क्रोधाग्निसे जल उठे ॥ २६ ॥ उसी समय परशुरामजी घोर परशा हाथमें ले तूण सहित धनुष बाण ले बख्तर पहनकर महा-क्रोधित हो उस राजाके पीछे दौड़े, जैसे सिंह यूथपति हाथीके ऊपर झपटता है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! कार्तवीर्यार्जुन जब अग्निहोत्रकी गाय लेकर अपनी माहिष्मती पुरीमें प्रवेश करना ही चाहता था कि इतनेमें ही उसने देखा कि भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी मृगचर्म पहने हुए बाणादि आयुध सहित धनुष धारण किये महावेगसे आ रहे हैं और सूर्यके समान प्रकाशमान इनकी जटा इधर-उधर छिटक रही है ॥ २८ ॥ यह देखकर सहस्रार्जुनने भीत हो अपने बचनेके लिये हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और गदा, असि, बाण, ऋष्टि (अस्त्रविशेष) शतघ्नी और शक्ति सहित सहस्र अक्षौहिणी भयंकर सेना भेज दी,परन्तु परशुरामजीने अकेले ही उस सब सेनाका संहार कर डाला ॥ २९ ॥ महात्मा परशुरामजीका वीर्य और वेग व मन पवनके तुल्य था, इस कारण शत्रुसेनाको नाश करनेके लिये वे अग्निके समान थे । वे अपना परशा चलाते हुए जहां-जहां गये उसी-उसी स्थानमें शत्रुसेनाके वीरगण छिन्नबाहु, छिन्नजंघ और छिन्नमुण्ड होकर पृथ्वीपर गिरने लगे और उनके अश्व सारथी सबही मारे गये ॥ ३० ॥ हैहयपति अर्जुन रणभूमिमें रुधिरकी धारासे कीच उठी देख और परशुरामजीके कुठार व बाण प्रहारसे वर्म,ध्वजा,धनुष,बाण और शरीर छिन्न-भिन्न होनेसे प्रायः सब ही सेना युद्धमें गिर पड़ी, यह देख क्रोधित हो सहस्रबाहु आप ही संग्राम करनेके लिये चला आया ॥३१॥ और परशुराम-जीका संहार करनेको अपनी सब भुजाओंसे एकबार ही पांच सौ (५००) धनुष ग्रहण कर उन-पर पांच सौ तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर चलाने लगा । हे राजन् ! महातेजस्वी परशुरामजी अस्त्रधारियोंमें आगे गिनने योग्य हैं । यद्यपि वे एक ही धनुष चढ़ाये थे तो भी उसी धनुषसे अगणित बाण चलाकर एक साथ अर्जुनके पांच सौ धनुष काट डाले ॥ ३२ ॥ धनुषोंके कट जाने पर अपनी भुजाओंसे समर करनेके योग्य अनेक-अनेक पर्वत और वृक्ष लेकर महावेगसे रणभूमिमें खड़े हुए परशुरामजीके ऊपर दौड़ा॥३३॥ यह देखकर परशुरामजीने अति पैनी धार वाले कुठारसे सर्पके फणोंके समान उसकी सब भुजायें काट डालीं और पीछेसे पर्वतके शिखरके समान सहस्रबाहुका मस्तक भी काट दिया । हे राजन् ! सहस्रबाहुके मारे जाने पर उसके दश सहस्र पुत्र भयके कारण भाग गये ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त परशुरामजी बच्चे सहित उस गायको लेकर आश्रममें आये और शत्रुके हाथमें जानेसे क्लेशित हुई उस गायको लाकर अपने पिताजीको सौंप दिया ॥३५॥ परंतु जिस समय परशुरामजीने अपना किया हुआ कर्म पिता और भ्राताओंसे वर्णन किया तब मुनिश्रेष्ठ जमदग्निको संतोष नहीं हुआ, अतः विराग दिखाते हुए बोले॥३६॥ हे राम ! हे महाबाहु ! तुम महापाप कर आये । कैसी खेदकी बात है ? नरदेव राजा सर्वदेवमयस्व-रूप है, उसको तुमने वृथा ही मार डाला ॥३७॥ हे तात ! हम ब्राह्मण क्षमागुणसे ही पूजित हुए हैं । यह गुण साधारण नहीं है । इसी गुणसे ब्रह्माजी लोकगुरु हो परमेष्ठी पदको प्राप्त हुए हैं ॥३८॥ हे महाराज ! जमदग्नि फिर बोले कि वत्स!क्षमासे ही सूर्य संबंधिनी प्रभाके समान ब्रह्म-सम्बन्धिनी श्री शोभायमान होती है और क्षमाशील पुरुषके ऊपर भगवान् वासुदेव शीघ्रही

प्रसन्न हो जाते हैं ॥३९॥ हे अंग! चक्रवर्ती राजाका वध ब्रह्मवधसे भी भारी है। इसलिए तुम भगवान् हरिमें मन लगाकर तीर्थ-सेवा और यम-नियमादि द्वारा अपने पापोंका नाश करो ॥४०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे परशुरामचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा—सोलहमें जमदग्नि वध, युत सुत कियो हजार।
परशुराम तासों करत, क्षत्रिनको संहार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुवंशावतंस परीक्षित्! पिताके उपदेशसे परशुरामजी "बहुत अच्छा" कह वनको चले गये और एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके आश्रममें लौट आये ॥१॥ किसी समय जमदग्निकी स्त्री रेणुकाने गंगाजीके निकट जाकर वहां पद्ममाली चित्ररथ नाम गन्धर्वराजको अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ देखा ॥२॥ रेणुका जल लानेके लिये गंगाजीपर गयी थी, विहार करते हुए गंधर्वराजके देखनेमें रेणुकाने उनकी चाहनाकी और होमका समय व्यतीत हो गया इसको भी रेणुकाने जाना ❋ ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कालको बीता जाता हुआ देखकर मुनिसे शापकी आशंका कर वह अत्यन्त भीत हुई और शीघ्र आ जलकलशको मुनिके आगे रख खड़ी हो गयी ॥ ४ ॥ इधर अपनी भार्याके मानसिक व्यभिचारको जान महर्षि जमदग्निको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तीक्ष्ण हो अपने पुत्रोंको पुकारकर यह आज्ञा दी कि तुम इसी समय अपनी पापिनी माताको मार डालो, परन्तु इन पुत्रोंने पिताका वचन नहीं सुना ॥ ५ ॥ और परशुराम अपने पिताकी समाधि, एवं तपस्याके प्रभावको जानते थे, अतः जब इनसे मुनिने कहा कि तुम अपने इन भाइयोंको और अपनी माताको मार डालो तब उन्होंने विचारा जो पिताकी आज्ञा उल्लंघन कर इनको नहीं मारता तो पिताजी क्रोधित होकर हमको शाप दे देंगे और जो हम इनको मार डालेंगे तो कदाचित् हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये तो ये हमारी माता और भ्राताओंको जिला भी सकते हैं। इसलिये जैसे ही पिताने आज्ञा दी वैसे ही महात्मा परशुरामजीने माताके सहित अपने भ्राताओंका संहार किया॥६॥ यह देखकर सत्यवतीके पुत्र जमदग्निमुनि परशुरामजीपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और परशुरामजीसे बोले—इच्छानुसार वर मांगो। तब परशुरामजीने यह वरदान मांगा कि हमारे भ्राता और माता फिर जी जायँ और यह इस बातको भी भूल जायँ कि हमने इनको मारा है॥७॥ वैसे ही जमदग्निमुनिने वर देकर कहा कि "ऐसा ही हो" तब उन मरे हुओंमें प्राण आ गया और जैसे सोया हुआ पुरुष नींदसे उठ बैठता है, वैसे ही ये सब उठ बैठे। हे राजन्! यह शंका मत करना कि परशुरामने ऐसा निंदित कर्म क्यों किया? यह परशुरामजी अपने पिताके तपोबलको भली-भांति जानते थे, इसलिये उन्होंने अपने सुहृदोंको मार डाला था ॥ ८ ॥

❋ शंका—रेणुकाकी वृद्धावस्था थी तो भी स्त्री पुरुषकी रतिका आनन्द देखती थी, यह बड़े सन्देहकी बात है ? वृद्धावस्थामें विषयकर्मका आनन्द क्यों देखा ?

उत्तर—बाल्यावस्थामें रेणुका अत्यन्त चञ्चल थी और अपने पिताके भवनमें रहती थी, तो भी प्रत्येक कार्य चंचलपनेके साथ करती थी। एक दिन बहुतसी सखियोंको संग लेकर स्नान करनेके लिये एक नदीपर गयी। एक वृद्ध चिड़ियाने अपने प्रिय पति-पक्षीके सङ्ग बिहार कर रही थी, उसको देखकर रेणुका बहुत हँसी। तब चिड़ियाने अत्यन्त कुपित होकर शाप दिया कि रे दुष्टबुद्धे! मैं तो अपने पतिके साथ रमण करती हूँ, परन्तु तू वृद्धावस्थामें दूसरे पुरुषके संग क्रीड़ा करेगी, अर्थात् सब क्रीड़ाओंका मूल आंखोंसे देखना है; वही क्रीड़ा तू करेगी इसलिये रेणुकाने वृद्धावस्थामें पाप किया, कोई दूसरा कारण नहीं था ?

हे महाराज ! इधर कार्त्तवीर्यार्जुनके दशहजार पुत्र परशुरामजीके वीर्यसे पराभव पाकर अपने पिताके वधको याद करके कहीं भी सुख स्वच्छन्दता पानेके लिये समर्थ नहीं हुए ॥९॥ एक समय परशुरामजी भ्राताओंसहित वनको गये थे तब कार्तवीर्यार्जुनके ये सब पुत्र अवसर पाकर पिछला वैर लेनेकी इच्छासे परशुरामजीके आश्रममें आये ॥१०॥ इन सबने वहां आकर देखा कि परशुरामजीके पिता जमदग्निमुनि भगवान् में चित्त लगाये अग्निशालामें बैठे हुए हैं। यह अवसर पाकर इन पापात्माओंने उसी समय इन मुनिको मार डाला ॥११॥ परशुरामजीकी माता रेणुका अपने पतिको मरा हुआ देख अतिदीन हो अपने पतिके प्राणोंकी भिक्षा चाहने लगी, परंतु तो भी निष्ठुर क्षत्रियोंको दया न आयी और बलपूर्वक रेणुकाके केश पकड़कर ले गये ॥१२॥ तब परशुरामजी की माता पति शोकसे आर्त हो अपनी छाती पीटती हुई "हा राम ! हा राम ! हा तात ! हा तात ! ! " कह बड़े जोरसे रोने और विलाप करने लगी ॥१३॥ दूरसे "हा राम ! " की पुकार और आर्तवाणी सुनकर वीर्यवान् परशुरामजी भ्राताओं सहित अतिशीघ्र अपने आश्रममें आये और वहां देखा कि पिता मृतक हुए पड़े हैं ॥ १४ ॥ पिताको मृतक देख सब भाइयोंको ऐसा दुःख, शोक, क्रोध, झुंझुलाहट और पीड़ा उत्पन्न हुई कि सबके सब मोहितसे हो गये ॥१५॥ इसके उपरान्त महात्मा परशुरामजी "हा तात ! हा साधो ! हा धार्मिक ! हमको छोड़कर आप स्वर्गको चले गये" इस प्रकार विलाप करने लगे और पिताके मृतक देहको अपने भाइयोंके निकट रखकर भयंकर परशा लेकर मनमें विचारने लगे कि अब हम (अवश्य) क्षत्रियोंके वंशका ध्वंस करेंगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! परशुरामजीने अति शीघ्र माहिष्मती पुरीमें जाकर उसके बीचमें अर्जुन पुत्रोंके मस्तक काट-काटकर एक बड़ा भारी पर्वत बना दिया। जब वह सहस्रार्जुनके पुत्र ब्रह्महत्या कर आये थे तब ही इस माहिष्मती पुरीकी शोभा जाती रही थी, मध्यस्थानमें मुण्डमय पर्वतके होनेसे वह पुरी और भी भयानक हो गयी। फिर तेजस्वी परशुरामजीने उस कार्तवीर्यार्ज्जुनके पुत्रोंके रुधिरसे एक नदी उत्पन्न की, वह नदी ब्रह्मद्वेषियोंको अत्यन्त भयकी देनेवाली हुई ॥१७॥१८॥ इसके उपरान्त क्षत्रिय जातियोंको अन्याय वश हुआ देख पिताके वधका स्मरण कर परशुरामजीने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया और स्यमन्तपञ्चक स्थानमें रुधिरके नौ कुण्ड भर दिये। हे राजन् ! परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंको क्यों मारा था, वह भी श्रवण करो। रेणुकाने सहस्राज्र्जुनके पुत्रोंकी दुष्टता देख दुःखके मारे इक्कीस बार अपनी छातीको कूटा था,इसलिये महात्मा परशुरामजीने इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश किया ॥ १९ ॥ उसके पीछे परशुरामजीने अपने पिताका शिर उनकी देहसे लगाकर कुशोंके ऊपर रख विविध यज्ञोंसे सर्वदेवमय आत्मा ईश्वरकी पूजा की ॥ २० ॥ उस यज्ञमें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्य्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणामें दे दी ॥ २१ ॥ अवान्तर दिशायें और दूसरे ऋत्विक् लोगोंको दे दीं ! मध्यस्थल कश्यपजीको दान कर दिया, फिर उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर सभासदोंको भी यथायोग्य भूमि दक्षिणामें दी ॥ २२ ॥ इसके पीछे महानदी सरस्वतीमें जाकर यज्ञान्तका स्नान कर अनन्त पापोंको दूर कर आकाशमें बादल रहित सूर्यके सामने विराजमान होने लगे ॥२३॥ इस ओर महामुनि जमदग्नि परशुरामजीसे पूजित होनेके कारण स्मृति ही जिसका शरीर है ऐसे अपने शरीरको प्राप्त होकर सप्तर्षिमण्डलमें जाकर सप्तऋषि हुये॥२४॥ हे राजन् !

कमललोचन जमदग्निके सुत भगवान् परशुरामजी भी आगामी मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करेंगे अर्थात् वह भी वेद प्रचार करनेवाले सप्तर्षियोंमें से एक होंगे ॥२५॥ वह परशुरामजी दण्ड छोड़ शांत चित्तसेअबतक महेन्द्रपर्वतपर विराजमान हैं।सिद्ध,चारण और गंधर्व गण सदा उनके विचित्र चरित्रको गाया करते हैं॥२६॥ हे राजन् ! इस प्रकारसे भगवान् विश्वात्मा ईश्वर हरिने भृकुगुलमें अवतार ले अनेक वार क्षत्रियोंका संहार कर भूमिका भार उतार दिया॥२७॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्!अब आगे सुनो । गाधिके प्रकाशमान अग्नितुल्य महातेजस्वी विश्वामित्रजी उत्पन्न हुए । हे राजन् ! यह तपके प्रभावसे क्षत्रियपन छोड़ ब्राह्मण हो गये॥२८॥हे महाराज!इन तेजस्वी विश्वामित्रजीके एक शत पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें यद्यपि केवल मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्द था तो भी सभी पुत्र मधुच्छन्द कहे जाते थे ॥ २९ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीने अजीगर्त्तके पुत्र शुनः शेपको भृगुवंशीय देवरात नामक पुत्र करके अपने सब पुत्रोंसे कहा था कि तुम सब इनको अपना बड़ा भाई समझना ॥ ३० ॥ हें राजन् ! इन शुनःशेपके पिता अजीगर्त्तने महाराज हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पशु बनानेके लिये मध्यम समझ ममता छोड़ बेंच दिया था परंतु यह पुरुषपशु (शुनःशेप) प्रजेशादि वरुणादि देवता लोगोंकी स्तुति करके पाशबन्धनसे छूट गया ॥ ३१ ॥ वह देवता लोगोंसे रात (प्रदत्त) होनेसे गाधिवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध हुआ परन्तु भृगुवंशमें उसका नाम शुनःशेप था ॥३२॥ विश्वामित्रके मधुच्छन्द नामक जो पचास पुत्र बड़े थे, उन्होंने शुनःशेप को बड़ा माननेमें अपना भला न समझा, इसलिये क्रोधित होकर विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यह शाप दिया कि तुम अति दुर्जन हो अतः आजसे म्लेच्छ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त मध्यम पुत्र मधुच्छन्दने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास आकर कहा कि "आप हमारे पिता हैं" हमको बड़ाई अथवा छुटाई जिसकी भी आज्ञा देंगे हम वही स्वीकार करेंगे ॥ ३४ ॥ यह कहकर इन्होंने मंत्रदर्शी शुनःशेपको अपना बड़ा भ्राता बनाया और सब एक वचन होकर बोले कि "हम सब ही तुम्हारे अनुगामी अर्थात् छोटे भाई हुए" यह सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो अपने इन पुत्रोंसे बोले कि तुमने हमारे मानको रखकर हमको पुत्रवान् किया इससे हमको बहुत सन्तोष हुआ और हम सन्तुष्ट होकर तुमको यह वर देते हैं कि तुम लोग पुत्रवान् होगे ॥ ३५ ॥ हे कुशिकगण ! ये देवरात भी तुम्हारा कौशिकगोत्री है, क्योंकि यह हमारा पुत्र हुआ है, इस लिये तुम इसके अनुगामी हो । हे राजन् ! इन पुत्रोंके अतिरिक्त विश्वामित्रके अष्टक हारीत, जय क्रतु, मानादि और भी अनेक पुत्र हुए थे ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार अनुगृहीत हुए और एक पुरुषको पुत्र मान लेनेसे विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक अनेक प्रकारका हो गया अर्थात् कुछ अभिशप्त और कुछेक प्रवरांतरको प्राप्त हुए । बस, देवरातको सबसे बड़ा माननेका ही यह कारण है ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–सत्रहमें पुरूरवाको, ज्येष्ठ पुत्र भयो आय ।
ताके पाचों सुतनको, वंश कहों सब गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! पुरूरवाके❋आयु नामक जो पुत्र हुआ था,उसके

❋ इस स्थानमें श्रीकृष्णावतारका प्रस्ताव करनेके लिये संक्षेपसे वंशका वर्णन किया जाता है । जिसके वंशमेंसे स्वयं भगवान् अवतार लेंगे । इस वंशका वर्णन पीछेसे विस्तार सहित किया जायगा । इसलिये पुरूरवाके पांच पुत्रोंमें से छोटे पुत्रका वर्णन करके अब ज्येष्ठके वंशका वर्णन करते हैं ।

पांच पुत्र हुए नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेना इनके नाम थे। उन क्षत्रवृद्धके वंशका
वृत्तांत अब कहता हूँ,तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ क्षत्रवृधके पुत्र सुहोत्रके काश्य, कुश और गृत्स-
मद यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए;इनमेंसे गृत्समदके शुनक उत्पन्न हुआ। उस शुनकसे ऋग्वेदियोंमें
श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए ॥२॥ काश्यका पुत्र काशी, उसका पुत्र राष्ट्र और उसका बेटा दीर्घतमा
दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरि हुए कि जिन्होंने आयुर्वेदका प्रचार किया। यह धन्वंतरि यज्ञ
भोक्ता भगवान्‌के अंश स्मरण करते ही रोगक्लेशका भय नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ इन धन्वंतरि-
जीका पुत्र केतुमान, केतुमानका पुत्र भीमरथ और उससे दिवोदासकी उत्पत्ति हुई। इनके
पुत्र द्युमान जो कि प्रतर्दन भी कहे जाते थे और शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्व
भी यही कहलाते थे ॥४॥ इस द्युमानके अलर्कादि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ उनमेंसे अल-
र्कने साठ सहस्र साठसौ अर्थात् छासठ(६६०००)सहस्रवर्ष तक युवा अवस्था रखकर राज्य
भोग किया था। हे राजन्! अलर्कके अतिरिक्त किसी युवाने इतने कालतक पृथ्वीका भोग
नहीं किया ॥ ६ ॥ इस अलर्कके संतति नामवाले राजाकी उत्पत्ति हुई। उसका पुत्र सुनीथ
सुनीथका पुत्र निकेतन, निकेतनका पुत्र धर्मकेतु और धर्मकेतुसे सत्यकेतुने जन्म ग्रहण
किया ॥ ७ ॥ सत्यकेतुके पुत्र धृष्टकेतु,उसके कुमार उत्पन्न हुए। उनका पुत्र वीतिहोत्र, उनके
सुत भर्ग और उनके पुत्र भार्गभूमि हुए ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्!
यह सब नरेश काशिवशीय हुए। यह काशके परदादा क्षत्रवृद्ध वंशके अनुगामी थे ॥ ९ ॥
हे परीक्षित्! अब रम्भके वंशका वर्णन करते हैं, आप सावधान हो चित्त लगाकर सुनिये।
रम्भका पुत्र रंभस, उसका पुत्र गम्भीर, उससे अक्रयकी उत्पत्ति हुई, अक्रयका पुत्र ब्रह्मवित्
हुआ। अब अनेनाके वंशका वर्णन करते हैं ॥ १० ॥ अनेनाका पुत्र शुद्ध हुआ, उसके
शुचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शुचिसे धर्मके सारथि त्रिककुद पुत्र उत्पन्न हुए, त्रिककुदके
पुत्र शांतरय हुए; जो कि बड़े जितेंद्रिय और ज्ञानी थे, इसलिये उन्होंने कोई पुत्र भी उत्पन्न
नहीं किया ॥ ११ ॥ हे महाराज! रजिके अत्यन्त बलशाली पांच सौ ५०० पुत्र हुए। एक
समय जब देवता लोगोंने प्रार्थना की तब इस रजिने दैत्योंका संहार करके इंद्रपुरी देवता
लोगोंको दी थी, परंतु फिर इन्द्रने उन रजिके चरणों की वंदना करते हुए अपनी पुरी उन्हें
दे दी ॥ १२ ॥ १३ ॥ राजा रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इंद्रने जब उनके पुत्रोंसे स्वर्गपुरी
मांगी,तब उनके पुत्रोंने नहीं दी और आप ही स्वर्गपति होकर यज्ञका भाग लेने लगे ॥१४॥
इसलिये देवगुरु बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिका नाश करनेके लिये अभिचार विधानसे
अग्निमें होम किया। उससे शीघ्र ही रजिके सब पुत्र नीतिमार्गसे भ्रष्ट हो गये और फिर देव-
राजइन्द्रने सरलतासे उन सबको मार डाला, कोई शेष नहीं रहा❋॥१५॥ हे राजन्! क्षत्रवृद्धका
पोता कुश, उसका पुत्र प्रति, प्रतिका पुत्र संजय, संजयका पुत्र जय, जयका पुत्र कृत और
उसका पुत्र हर्यवन राजा हुआ ॥ १६ ॥ हर्यवन राजाका पुत्र सहदेव उसका पुत्र अहीन
और अहीनका पुत्र जयसेन हुआ। जयसेनका पुत्र संस्कृति, उनका पुत्र जय, जयके क्षत्रधर्म

* शंका—बृहस्पतिजी अग्निमें किस वस्तुका होम करते थे? जिस बीजके होमके प्रतापसे रजिराजाके पुत्रोंको इन्द्रने मार डाला?
बृहस्पतिजी थे, वे राजा रजिके पुत्रोंको तेजोवधकारी मंत्रसे अग्निमें होम करते थे, इसी कारण राजा
उत्तर—रक्षा करनेवाले जो परमरक्षक बृहस्पतिजी थे, वे राजा रजिके पुत्रोंको तेजोवधकारी मंत्रसे अग्निमें होम करते थे, इसी कारण राजा
रजिके पुत्र तेजहीन होगये, तब रा..ा रजिके पुत्रको इन्द्रने मार डाला।

और क्षत्रधर्मके महारथ हुआ ॥ १७ ॥ ये सब भूपाल क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुए थे। अब आगे नहुषके वंशका वृत्तांत हम तुमसे वर्णन करते हैं, तुम सावधानता पूर्वक चित्त लगाकर श्रवण करो ॥ १८ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे चंद्रवंशानुवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा-अट्ठारहमें नहुषसुत, भयो ययाति जुझार ॥
षट्मित सुत तिनके भये, तिनमें छोट उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जैसे शरीरमें छः इंद्रियाँ होती हैं,इसी प्रकारसे नहुष राजाके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृत नामक छः (६) पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ इनमेंसे यति राज्यका परिणाम अर्थात्, राज्यको अनर्थका हेतु जान गया था, इसलिये पिताके राज्य देनेपर इसने ग्रहण नहीं किया, क्योंकि राज्यकार्यमें लगा हुआ पुरुष अपनी आत्माको नहीं जानता ॥२॥ इससे इन्द्राणीके ऊपर ढिठाईका व्यवहार करनेके हेतु पिता (नहुष) के स्वर्गभ्रष्ट और अगस्त्यादि विप्रोंके शापसे अजगर होनेपर मध्यम पुत्र ययाति ही राजा हुआ था ॥३॥ राजा ययातिने राजगद्दीपर बैठ अपने चार छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंमें राज्य करनेकी आज्ञा दे दी। आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी दो कन्याओंसे विवाह करके पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥४॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन ! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि और नहुषपुत्र ययाति क्षत्रिय था। यह ब्राह्मण-क्षत्रियका प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ था ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्!ईश्वरकी इच्छासे प्रतिलोम विवाह दोषदायी नहीं है। एक समय दानवराज वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या सहस्र सखी और गुरुकी कन्या देवयानीके साथ पुरके समीप ही एक उद्यानमें विहार करनेको गयी। वह उपवन अत्यन्त मनोहर था। वृक्ष फूलोंके भारसे झुके हुए थे और वहां निकट ही एक नलिनीकी रेतीमें भ्रमरगण कलवाणीसे गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ शर्मिष्ठाने सखियोंके साथ घूमते-घूमते बागमें एक सरोवर देखा। यह सब कन्यायें किनारे पर अपने वस्त्र-उतार परस्पर जलको उछालकर एक-दूसरेके ऊपर जल डाल खेल करने लगीं ॥७॥ उसी समय अचानक देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजी पार्वतीके साथ नन्दीश्वरपर चढ़े हुये इस ओरको आये। इनको देखकर सब कन्यायें अत्यन्त लज्जित हो झटपट सरोवरसे बाहर निकलकर अपने वस्त्र पहनने लगीं ॥ ८ ॥ घबड़ाहटके कारण भूलमें गुरुकन्याके वस्त्र शर्मिष्ठाने अपने समझकर पहन लिये, यह देख देवयानी अति क्रोधित होकर बोली ॥ ९ ॥ अरे ! इस दासीका अन्याय कर्म तो देखो, जिस प्रकारसे कुतिया यज्ञके हविको खा जाती है, वैसे ही इस दुष्टाने मेरे पहननेके कपड़े पहन लिये ॥ १० ॥ देखो जिन ब्राह्मणोंने तपस्या करके इस जगत्की उत्पत्ति की है, जो लोग परमपुरुषके मुख अर्थात् ब्रह्ममुखसे उत्पत्तिके हेतु सर्वश्रेष्ठ हैं, जो कि ब्रह्मको धारण किये हुए हैं, एवं जिन्होंने वेदको शुभ मार्ग बताया है और सब लोगोंके नाथ सुरेश्वर गण और भगवान् विश्वात्मा पावन श्रीनिवास भी जिनकी पूजा किया करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ वह ब्राह्मणजाति सहजसे ही माननीय है और उनमें फिर हम महाप्रभावशाली भृगुवंशमें उत्पन्न हुई हैं। इस दासीका पिता जो असुर है, वह भी हमारे पिताका शिष्य है, इस असत्यनकी चाल तो देखो कि इसने हमारे पहननेके वस्त्र पहन

लिये हैं, जैसे शूद्रजाति वेदोंको धारण करे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जब गुरुकन्या देवयानीने इस प्रकार तिरस्कार किया, तब शर्मिष्ठा धर्षित हुई सर्पिणीके समान बारंबार लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगी और क्रोधके मारे होठ चबा-चबाकर कहने लगी कि ॥ १४ ॥ अरी भिखमंगी ! अपने आचरणको विना जाने ही कटु वचन कहने लगी ? काकके समान क्या तुम हमारे गृहका मुख नहीं देखती रहती हो ? ॥ १५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकारके कठोर वचन भी गुरुकन्या देवयानीको कहकर शर्मिष्ठाका क्रोध शांत नहीं हुआ, बरन इसके वस्त्र उतार नंगी कर धक्का दे एक कुएँमें ढकेल दिया ॥ १६ ॥ देवयानीको कुएँमें ढकेलकर शर्मिष्ठा अपने घरपर चली आयी । भाग्यसे शिकार खेलकर घूमते-घूमते राजा ययाति भी उस वनमें आ पहुँचे और प्यासके मारे जल भरनेके लिये जैसे ही इस कुएँके समीप गये कि वैसे ही उन्होंने देवयानीको कुएँमें देखा ॥ १७ ॥ शुक्राचार्यकी कन्याको कुएँमें नंगी गिरी हुई देखकर राजाको अत्यन्त दया आयी और तत्काल अपना दुपट्टा राजाने उसे पहननेको दे दिया और अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उस दयावान् राजाने उसको कुएँसे बाहर निकाल लिया ॥ १८॥ देवयानी कुएँसे निकलकर प्रेमभरे वचन राजा ययातिसे बोली ॥ १९ ॥ हे महाराज ! आपने अनुग्रह करके हमारा हाथ पकड़ा है, अब यही प्रार्थना है कि जिस हाथको एकबार आपने ग्रहण किया उसको कोई दूसरा ग्रहण न करने पाये ॥ २० ॥ हे वीर ! यद्यपि प्रतिलोम विवाह ठीक नहीं तो भी मैं कुएँमें डूबकर मरती थी इसी अवसर-पर आपका दर्शन हुआ तब हमारा दोनों जनोंका यह बानक परमेश्वरने बनाया है,यह किसी पुरुषका बनाया नहीं है और हे नरेश ! ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं होगा ॥ २१ ॥ क्योंकि पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दिया था, तब उन्होंने भी हमको शाप दिया था । इसमें यह कथा है कि-" बृहस्पतिके पुत्र कच जब शुक्राचार्य मुनिके निकट मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करते थे उस समय एक दिन शुक्रकी पुत्री देवया-नीने उनके साथ विवाह करना चाहा था, तब कच बोले कि तुम हमारी गुरुकन्या होनेसे पूजने योग्य हो, फिर हम किस प्रकारसे तुम्हारा पाणिग्रहण करें ? तब देवयानीने कुपित हो यह शाप दिया कि" तुम्हारी विद्या प्रभाहीन होगी" तब कचने भी यह शाप दिया कि "तुम्हारा ब्राह्मणके साथ विवाह नहीं होगा" इसलिये ब्राह्मण हमसे विवाह ही न कर सकेगा ॥ २२ ॥ ॥ शास्त्रके प्रतिकूल और इच्छानुसार न होने परभी भाग्यसे प्राप्त हुआ जान और अपने अन्तःकरणको भी उसके प्रति सकाम देखकर यह निश्चय करके,कि मेरा मन अधर्ममें नहीं प्रवेश करता । देवयानीके वाक्यको राजा ययातिने अंगीकार किया ॥२३॥ इसके उप-रांत जब राजा ययाति चले गये तब देवयानी उस स्थानसे रोती-रोती पिताके निकट गयी और सब वृत्तांत निवेदन कर दिया अर्थात् शर्मिष्ठाने जो भिखमङ्गी कहा था और कुएँमें डालकर जो कुकर्म किया था, वह सब विस्तारपूर्वक इसने अपने पितासे कहा ॥२४॥ यह सुनकर शुक्राचार्यके मनमें बड़ा दुःख हुआ । पुरोहिताईकी निंदा करते और भिक्षावृत्तिकी प्रशंसा करते हुए वे दैत्यराजकी पुरीसे अपनी कन्यासहित बाहर चले ॥ २५ ॥ यह सुन-कर राजा वृषपर्वाने जाना कि गुरुजी अप्रसन्न होकर देवताओंकी जीत करेंगे, इसलिये शीघ्र ही मार्गमें जाकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और शिर नवाकर प्रसन्न करने लगा ॥२६॥ एक क्षणभरमें शुक्राचार्यका आधा क्रोध शांत हो गया और वह शिष्यसे बोले कि हे राजन् !

हमारी कन्या जो कुछ कहे,इसकी उस अभिलाषाको तुम पूर्ण करो, क्योंकि हम इस अपनी कन्याको छोड़कर रह नहीं सकते ॥ २७ ॥ गुरुजीके यह वचन सुनकर गुरुकन्याकी प्रसन्नता चाहता हुआ वृषपर्वा खड़ा रहा। तब देवयानी अपने मनकी बात प्रकाशित करके बोली कि हमारे पिता जहां हमारा विवाह करें, यह शर्मिष्ठा तुम्हारी कन्या उसी स्थानमें अपनी सब सखियोंके साथ जाकर हमारी दासी हो ॥२८॥ वृषपर्वाने विचारा कि गुरुजीके चले जानेसे हमारे ऊपर घोर संकट आ पड़ेगा और यहां रहनेसे हमारे कार्य सिद्ध होंगे। यह सोच-विचार कर राजा वृषपर्वा गुरुकन्या देवयानीके हाथमें सखियों सहित शर्मिष्ठाको सौंप दिया। जब पिताने शर्मिष्ठाको दे दिया तब यह हजार सखियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ इसके पीछे दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने शर्मिष्ठासहित देवयानीका राजा ययातिके साथ विवाह कर दिया और भलीभांतिसे कह दिया,कि यद्यपि हम अपनी कन्याके साथ शर्मिष्ठाको भी तुम्हें देते हैं तो भी तुम किसी समय इसको अपनी शय्यापर न ग्रहण कर सकोगे ॥३०॥हे महाराज परीक्षित्! किसी समय शर्मिष्ठाने देखाकि देवयानीने स्वामीके सहवाससे परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिये ऋतुकाल आ पहुँचनेपर अपनी सखीके पति ययाति राजाको एकान्तमें बुलाकर पुत्र उत्पन्न करनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३१ ॥ राजा ययाति अत्यन्त धर्मात्मा थे। ऋतुकालमें राजकुमारी शर्मिष्ठासे संतानके लिये प्रार्थित होकर विचारने लगे कि इसकी कामना पूरी करनेमें धर्म है, इसलिये शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण आनेपर भी उन्होंने दैवप्राप्त पितृयज्ञसे शर्मिष्ठाके साथ विवाह किया। राजा ययातिने धर्म समझकर ही शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूर्णकी थी, कुछ कामके वश होकर नहीं की। इसके उपरांत देवयानीने यदु और तुर्वसु दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु,अनु और पूरु इन तीनों पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! अपने स्वामीसे शर्मिष्ठाको गर्भकी उत्पत्ति जानकर देवयानी अभिमानसे परिपूर्ण होगयी और क्रोधके कारण मूर्च्छितसी हो तत्काल पिताके घरको चली गयी ॥३४॥ हे राजन्! राजा ययाति अत्यन्त कामी थे। वह प्यारीका क्रोध देखकर विनती करके प्रसन्न करते-करते अपनी प्रिय भार्याके पीछे-पीछे चले गये, परंतु अनेक प्रकारसे प्रार्थना द्वारा भी वह देवयानीको प्रसन्न नहीं कर सके ॥३५॥ हे महाराज ! इस ओरका कन्याके मुखसे सब वृत्तांत जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी महाक्रोधित हो घृणायुक्त वचनोंसे जामाताको कहने लगे- तू कामी होकर अन्यायके कर्म करता है। अरे मतिमन्द ! इस अपराधसे मनुष्योंको विरूप करनेवाली जरा (बुढ़ापा) तेरे शरीरमें प्रवेश करे ॥ ३६ ॥ यह शाप सुनकर राजा ययातिका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ और निवेदन किया; ब्रह्मन् ! आपकी बेटीके काम भोगसे हम अबतक भी सब प्रकारसे तृप्त नहीं हुए हैं। तब शुक्राचार्यजी बोले कि हां यदि कोई पुरुष तुम्हारी जरा ग्रहणकर ले तो उसकी वयस (अवस्था) से तुम इच्छानुसार काम भोग कर सकोगे ॥३७॥ हे राजन् ! इस प्रकार राजा ययाति जराके उतरनेकी व्यवस्था पाकर पहले अपने बड़े पुत्र यदुको बुलाकर बोले- हे तात यदो ! हमारी यह जरा अवस्था ग्रहण करके अपनी वयस हमको दो। बेटा! तुम्हारे नाना शुक्राचार्यने हमको जरा ग्रस्त किया है,परंतु हम अबतक विषय भोगसे तृप्त नहीं हुए हैं, इसलिये यह जरा तुम लो और तुम्हारी युवा अवस्था लेकर कुछ वर्षतक मैं विहार करूँगा ॥ ३८ ॥ यह सुनकर यदु बोले कि पिता ! आप मध्यम समयमें जराको प्राप्त हुए

हैं। आपकी इस जराके लेनेको हमारा चित्त नहीं चाहता, क्योंकि विना ग्राम्यसुखोंके भोगे कौन पुरुष उस (कामभोग) से तृष्णारहित हो सकता है?॥३९॥ हे भारत! इसके पीछे तुर्वसु और द्रुह्यु इन दो पुत्रोंसे राजाने युवा अवस्था मांगी, परन्तु उन्होंने भी कोरा जवाब दे दिया। हे राजन्! इन लोगोंको धर्मज्ञान नहीं था। यह अनित्य पदार्थको ही नित्य मानते थे। फिर भला इन लोगोंसे पिताकी आज्ञा मानी जानेकी क्या सम्भावना?॥ ४० ॥ परंतु राजा ययातिका सबसे छोटा पुत्र यद्यपि वयसमें छोटा था, तथापि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था, सबसे पीछे उसको बुलाकर राजा ययाति जरा लेनेके लिये बोले कि हे वत्स! तुम अपने बड़े भ्राताओंके समान हमसे "नहीं" कहने योग्य नहीं हो॥ ४१ ॥ जब इस प्रकार राजा ययातिने कहा तब पूरुने कहा कि हे मनुष्येंद्र! इस लोकमें कोई पुरुष भी पिताका प्रत्युपकार नहीं कर सकता है। पिता क्या साधारण पुरुष हैं? क्योंकि उनसे देहका सम्बन्ध है और उनकी प्रसन्नतासे पुरुष परमगतिको प्राप्त हो जाता है॥४२॥ तो भी जो पुत्र पिताका विचारा हुआ कार्य अपने आप ही कर देता है, वह उत्तम कहलाता है और जो आज्ञा पाकर कार्य करता है वह मध्यम है और जो आज्ञा पाकर भी उस कार्यको नहीं करता है, वह पुत्र नहीं किन्तु पिताका विष्ठामात्र है और नीच कहलाता है॥४३॥ इस प्रकार कह हर्ष प्रकट करके उसने पिताकी जरा अवस्था ग्रहण करली। राजा ययाति भी अपने पुत्रकी युवा अवस्था पाकर भलीभांति सुख भोगने लगा॥४४॥ हे महाराज! राजा ययाति सप्तद्वीपका राजा था। वह भलीभांति पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा इच्छानुसार विषयभोग भोगने लगा पुत्रकी युवा अवस्था पानेसे इस राजा ययातिकी सब इंद्रियाँ प्रबल और अनिवारित हो गयीं ❋ ॥ ४५ ॥ और देवयानी भी मन, वचन, कायसे व और भी सब भांति एकान्तमें दिनपर दिन अपने प्राणेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करती रहती थी॥ ४६ ॥ हे राजन्! राजा ययाति भी अनेक-अनेक दक्षिणा देकर अनेक यज्ञ कर सर्ववेदमय सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवका भजन करने लगे॥४७॥ अर्थात् आकाशमण्डलमें जलदावलि (बादलोंकी पंक्ति) के समान जिससे प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् विरचित होकर यावत् इंद्रियवृत्ति तावत् विचित्र रूपसे प्रकाश पाती है और इसी इंद्रियवृत्तिके उपरममें स्वप्न और मायारहित मनोरथ पाकर प्रकाशहीन होते हैं॥४८॥ राजा ययातिने विरागी होकर उन्हीं अन्तर्यामी परमसूक्ष्मरूप भगवान् वासुदेवके अनेक यज्ञ किये॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार सहस्र वर्षतक अपराङ्मुख पञ्च इंद्रिय और छठे मनसे सदा विषयभोग करके भी सर्वभूमीश्वर राजा ययाति सब भांतिसे तृप्तिको नहीं प्राप्त हुआ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

❋ शंका—राजा ययाति छोटे पुत्रकी अवस्था लेकरके उसी छोटे पुत्रकी माताके संग विहार करता था, इस बातसे जान पड़ता है कि, पुत्रने ही अपनी माताके साथ रमण किया, क्योंकि राजामें रमण करनेका सामर्थ्य होता तो पुत्रकी युवावस्था क्यों लेता? इसने यह महापाप क्यों किया? यदि कोई ऐसा कहे कि पुत्रको पिताकी आज्ञा पालन करनी चाहिये, यह भगवान्की बनायी मर्यादा है और धर्म शास्त्रका भी यही वाक्य है, सो सत्य है। निःसन्देह वह मर्यादा पूरी करनी चाहिये, परन्तु न्याय विचारकर कार्य करना चाहिये क्योंकि जो पिताकी बुद्धि मलिन होजाय और पिता आज्ञा करें कि मेरे लिये वेश्या अथवा वारुणी, अथवा बुरी वस्तुको ला दे और वह अनेक प्रकारकी कुत्सित वस्तुपर वृष्टि करे तो पुत्रको ऐसे पिताकी आज्ञा भी नहीं माननी चाहिये फिर पुत्रने ऐसे पिताके वचन क्यों माने।

उत्तर—शर्मिष्ठाके ओष्ठ पान करके ययातिकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और वह दैत्यकी कन्याका पुत्र था इसलिये दोनों पापी मिल गये इसीसे महापाप किया।

दोहा—नृप ययाति निजप्रियाको, अजसम चरित सुनाय।
बहुरि मोक्षभागी भयो, उन्निसवें अध्याय॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित्! राजा ययाति इस प्रकार विषयभोग करते-करते अकस्मात् एक दिन अपने आपको स्त्रैण समझकर अपनी आत्माका विकार जान वैराग्ययुक्त हो अपनी परम प्यारी देवयानीसे वर्णन करने लगे॥ १॥ कि हे भार्गवि! हमारे समान कोई कामी एक गांवमें रहता था। वनवासी धीरगण उसके आचरणोंपर अब-तब कभी-कभी शोक किया करते हैं। उस पुरुषकी अनुष्ठान की हुई गाथा मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, श्रवण करो॥ २॥ "एक छाग (पुरुष) ने वन (संसार) में अपने प्रिय विषयको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अचानक एक छागीको कर्मके वश कुएँमें गिरी हुई देखा॥ ३॥ इस अत्यन्त कामी छागने उस बकरीके निकालनेका उपाय सोचा और कुएँके किनारे अपने सींगसे मिट्टी खोदकर उसके निकालनेका मार्ग कर दिया॥४॥उस मार्गसे वह कांतियुक्त छागी कुएँसे निकल उसी छागकी अभिलाषा पूर्ण करने लगी। जब उस बकरीने इस बकरेको वरण कर लिया तो और बहुत सारी छागी भी मोटे-ताजे, रति करनेमें समर्थ, वीर्यके सींचनेवाले और मैथुन करनेमें चतुर समझकर उस छागको चाहने लगीं॥५॥ इसलिये वह एक ही बकरा इन बहुतसी बकरियोंकी रति बढ़ाता हुआ उनके साथ केलि करने लगा। वह छाग कामरूप गृहमें ऐसा फँस गया कि अपनी आत्माको भी न जान सका॥ ६॥ परन्तु जो छागी कुएँमें गिरी थी, और छागियोंको अपने से अधिक प्यारी और उनके साथ अपने प्रियतमको सदा रमण करता हुआ देख अत्यन्त क्रोधित हुई और उस छागका यह कर्म बहुत नहीं सह सकी॥७॥ इसलिये वह सुहृदरूपी, वास्तवमें दुहृद; क्षणसौहृद, इंद्रियासक्त और कामुक उस छागको छोड़कर दुःखित हो अपने स्वामीके पास चली गई॥ ८॥ वह छाग तो बहुत ही स्त्रैण था, इसलिये कातर हो शब्द करता हुआ उसको मनानेके लिये उसके पीछे-पीछे जाने लगा, परन्तु मार्गमें वह उस बकरीको किसी प्रकारसे भी प्रसन्न न कर सका॥ ९॥ उस स्थानमें इस छागीके स्वामी एक ब्राह्मणने क्रोध करके इस छागके दोनों लम्बायमान अण्डकोश काट डाले अर्थात् उसको भोग करनेके योग्य न रखा, परंतु वह ब्राह्मण उपाय भी जानता था,इस लिये अपनी बकरीके काम भोगार्थ फिर इस छागके अण्ड जोड़ दिये अर्थात् फिर उस छागको मैथुन करनेका सामर्थ्य दे दिया॥१०॥ हे भद्रे! इस प्रकारसे वह छाग सवृद्धवृषण अर्थात् रतिशक्तियुक्त हो कुएंसे निकाली हुई उस छागीके साथ बहुत कालतक विषयभोग करता रहा, परन्तु कामकी सेवासे अबतक उस बकरेको सन्तोष नहीं हुआ"॥ ११॥ हे सुभ्रु! इस छागके समान हम भी तुम्हारे प्रेममें बँधकर अत्यन्त दीन हो गये हैं। तुम्हारी मायासे मोहित होनेके कारण हम अपने आपको भी भूल गये हैं॥ १२॥ हे भद्रे! पृथ्वीमें जितना धान्य, सुवर्ण, जितने पशु, जितनी स्त्री और जो-जो वस्तु हैं,वे सब भी कामसे हत हुए पुरुषके मनको संतुष्ट नहीं कर सकती हैं॥ १३॥ भोग विलासके द्वारा कामकी किसी प्रकार शांति नहीं होती वरन् घृतद्वारा अग्निके समान विषयभोग बढ़ता ही जाता है, जैसे घृत डालनेसे अग्नि॥१४॥ परन्तु जिस समय पुरुष सब प्राणियोंसे अमंगल भाव अर्थात् रागद्वेषादिकी विषमताका त्याग कर देता है और सबसे समदृष्टि कर लेता है, तब उसको सब दिशायें सुखदायिनी हो जाती हैं॥ १५॥ इसलिये दुर्म्मति पुरुष जिसको नहीं छोड़

सकते और प्राचीन पुरुषके पास भी जो पुरानी नहीं होती और जो दुःखकी राशिके लिये रहती है, उस तृष्णाको सुख चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि शीघ्र छोड़ दे ॥ १६ ॥ और स्त्रीका सङ्ग तो सब प्रकारसे त्यागना आवश्यक है, अतः माता बहन अथवा कन्याके संग इकलेमें एक आसनपर बैठना ठीक नहीं क्योंकि इन्द्रियाँ अतिशय बलवान् हैं,विद्वान् पुरुषको भी खींच लेती हैं ॥१७॥ हे भद्रे ! विचार करके देखो बारम्बार विषयकी सेवा करते हुए पूरे एक सहस्र वर्ष बीत गये तो भी दिन-दिन तृष्णा बढ़ती ही जाती है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं पहले तृष्णाको छोड़कर फिर ब्रह्ममें मन लगाऊंगा, फिर सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित और निरहंकार हो मृगगणोंके साथ घूमूंगा ॥ १९ ॥ हे प्रिये ! जो पुरुष देखे-सुने संसारको भी आत्मनाशक और असत् जानकर उसका अनुध्यान व भोग छोड़ देते हैं, वे ही देखे-सुने विषयके अनुध्यानादिमें पण्डित और आत्मदर्शी हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! राजा ययातिने इस प्रकार अपनी स्त्रीको समझाकर छोटे पुत्र पूरुको उसकी युवा अवस्था लौटाकर उससे अपनी जरा अवस्था ग्रहण करली । फिर पीछे राजा ययातिको कुछ चाहना न रही ॥२१॥ पूर्वदिशा द्रुह्युको, दक्षिण दिशा यदुको, पश्चिम दिशा तुर्वसुको और उत्तर दिशाका अनुको राजा बनाया ॥ २२ ॥ फिर सब भूमण्डलका राज्य क्षत्रियोत्तम प्यारे पुत्र पूरुको * देकर और बड़े बेटोंको इस पूरुकी आज्ञामें रखकर आप वनको चले गये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक शब्दादि विषय समूहमें छः इन्द्रियोंके द्वारा सुख भोगा था, परन्तु उसने इस प्रकारसे स्पृहा छोड़ एक क्षणभरमें इंद्रियोंके सुखको छोड़ दिया, जैसे पंख जम आनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़ देते हैं ॥२४॥ राजा ययाति संगको छोड़कर आत्मानुभवसे त्रिगुणात्मकरूप लिंग निरस्त कर और भलीभांति विख्यात हो निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें शीघ्र ही भगवद्गतिको प्राप्त हो गया ॥ २५ ॥ हे महाराज ! स्त्री-पुरुषका परस्पर स्नेह हेतु परिहासके समान जो इतिहास कहा गया,देवयानी इसको सुनकर अपने प्रस्तोभ अर्थात् निवृत्तिमार्गमें उत्साहित हुई ॥ २६ ॥ और उस अबलाने प्याऊपर जानेवालोंके समान ईश्वरपरतन्त्र सुहृद्गणोंका वास मायाविरचित समझा, स्वप्नके समान उपमा देकर सबको मिथ्या जान सबका संग छोड़कर भगवान्में मन लगाकर अपने शरीरको भी छोड़ दिया ॥ २७ ॥ हे राजन् ! अब यह बतलाते हैं कि देवयानीने किस प्रकारसे भगवान् वासुदेवमें अपना मन लगाया था, वह तुम सुनो । भगवन् ! आप विधाता, वासुदेव, सर्वभूतोंके निवासस्थान परमशान्त और अतिबृहत् हो, इसलिये मैं आपको नमस्कार करती हूँ । इस तरह परब्रह्म परमात्माको पुकारती हुई मुक्त हो गयी ॥२८॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

* शंका—राजा ययाति बड़े बुद्धिमान् और गुणनिधान थे; तो भी ऐसा बड़ा [illegible] क्यों किया ? कि बड़े पुत्रोंको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य दिया, क्या कारण हैं ?

उत्तर—कामी, लोभी, क्रोधी, ऐसे-ऐसे जीव पृथ्वीपर हैं, परंतु न्याय अन्यायका विचार नहीं करते । नित्य अपने शरीरका सुख चाहते हैं, अर्थात् न्यायमें दुःख देखेंगे तब न्यायको त्याग देंगे, अन्यायमें सुख देखेंगे तब अन्याय करेंगे । जिसमें शरीरको सुख हो उसीको पुण्य जानते हैं और जिसमें शरीरको कष्ट हो उसको पाप समझते हैं, सुकर्म कुछ नहीं देखते । इसीसे ययाति राजाने छोटे बड़ेका विचार नहीं किया, जिसकी देहसे सुख पाया उसीको राज्य दिया ।

दोहा—ययातिसुत पुरु वंशमें, भये नृपति दुष्यन्त ।
भरत पुत्र तिनके भये, भक्त शिरोमणि संत ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरत ! अब पूरुके वंशका वर्णन करते हैं, वह तुम सुनो । इसी वंशमें तुमने जन्म लिया है । अनेक राजर्षि इस पूरुवंशमें उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुसे जन्मेजय उत्पन्न हुए । जन्मेजयका पुत्र प्राचिन्वान् और उससे प्रवीणने जन्म ग्रहण किया उसके पुत्र नमस्यु और उससे चारुपदका जन्म हुआ, चारुपदके यहां सुद्युने जन्म ग्रहण किया, उससे बहुगव उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र संयाति, संयातिका पुत्र अहंयाति और अहंयातिके रौद्राश्व जन्मा ॥ २ ॥ ३ ॥ इस रौद्राश्वने घृताची अप्सरासे दश पुत्र उत्पन्न किये उनके नाम यह हैं,—ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्म्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु हुआ । हे राजन् ! जिस प्रकार इंद्रियगण जगत्के आत्मभूत मुख्य प्राणके वश रहते हैं, वैसे ही यह दश पुत्र रौद्राश्वके वशमें रहते थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन रौद्राश्वके दश पुत्रोंमेंसे ऋतेयुके रंतिभार नामक एक पुत्र हुआ । उसके तीन पुत्र हुए, यथा—सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ । इन तीनोंमेंसे अप्रतिरथका पुत्र कण्व हुए ॥ ६ ॥ कण्वके मेधातिथि और उससे प्रस्कण्वादि द्विजातिगण उत्पन्न हुए । हे राजन् रंतिभार नामका बड़ा बेटा सुमति उसका पुत्र रैभ्य और इस रैभ्यके ही पुत्र राजा दुष्यन्त हुए ॥७॥ एक समय यह राजा दुष्यन्त आखेट करते-करते वनमें प्रवेशकर महर्षि कण्वके आश्रममें पहुँचे,वहांपर एक स्त्री बैठी लक्ष्मीके समान अपने शरीरकी प्रभासे आश्रमको शोभायमान कर रही थी । देवमायाके समान उस तरुणीको देखते ही राजा दुष्यंत मोहित हो गया ॥८॥ इसके उपरांत कुछ सेनाके सिपाही लेकर निकट जाकर उस वरारोहाके साथ राजाने सम्भाषण किया।हे राजा परीक्षित् ! उस सुन्दरीको देखते ही राजा दुष्यन्तको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ था और मानो उसको देखकर जङ्गलमें घूमनेसे जो थकावट हुई थी वह सब जाती रही ॥ ९ ॥ कामपीड़ित हो हँसते-हँसते मधुर वचनसे राजाने पूछा कि हे कमलपत्राक्षि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? ॥१०॥ और इस निर्जन वनमें क्या करनेकी वासना किये हुये हो ! हे सुमध्यमे ! पूरुवंशीय लोगोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं लगता है इसलिये स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम किसी क्षत्रियवंशकी बेटी हो ॥ ११ ॥ यह सुनकर शकुन्तलाने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैं विश्वामित्रकी पुत्री हूँ,मेनका नामक अपसरा मेरी माता है स्वर्गमें जानेके समय माता मुझको इस निर्जन वनमें अकेली छोड़कर चली गयी, इसलिये वास्तवमें क्षत्रियकी कन्या हूँ; इस बातको भगवान् कण्व ऋषि भलीभांति जानते हैं । हे वीर ! हम आपका कौनसा कार्य करें ? आज्ञा कीजिये ॥१२॥ हे महाराज ! आसन ग्रहण कीजिये और हमारी पूजा भी आप अंगीकार करें, यहां नीवारोंके चावल हैं, भोजन कीजिये और यदि रुचि हो तो रात्रिको यहां ही रहिये ॥ १३ ॥ राजा दुष्यन्त बोले कि हे सुन्दरी ! तुमने कुशिकके वंशमें जन्म लिया है वास्तवमें तुम्हारा आचरण ठीक है; क्योंकि राजकन्यायें समान वरको स्वयं वरण कर लेती हैं ॥ १४ ॥ शकुन्तलाने राजाकी बात सुनकर कहा कि 'हां' तब देशकालके जाननेवाले इस राजाने शकुन्तलासे गन्धर्व विवाह किया॥१५॥ हे भारत!अमोघवीर्यवान् राजा दुष्यन्त भार्या शकुन्तलामें वीर्याधान करके दूसरे दिन हस्तिनापुर जानेके लिये शकुन्तलासे कहने लगे ।

दुष्यंत–हमको सिधारन दे प्यारी ॥ हस्तिनापुर है जाना जरूरी, काम है
घरपर भारी ॥ १ ॥ हम० ॥
शकुं०–ऐसे ही जल्दी जो बिछुड़ना, काहेको की यारी ॥ २ ॥
याद मेरी तुम भूल न जाना, बरना मेरी है ख्वारी ॥ ३ ॥ हम० ॥
दुष्यं०–जल्दी तुझे बुलावेंगे हम, हाय न कर तू जारी ॥ ४ ॥
देता हूँ तुझ अपनी निशानी, यह ले अँगूठी हमारी ॥ ५ ॥ हम० ॥
शकुं०–खैर सिधारो वश नहिं अपना, जाओजी है लाचारी ॥ ६ ॥ हम० ॥

इसके उपरांत राजा अपने नगरको चले गये। तब यथायोग्य समयमें शकुन्तलाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ महर्षि कण्वऋषीश्वरने वनमें ही यथायोग्य उस बालककी संस्कारादि किया करा दी। हे राजन् ! यह कुमार बालकपनसे ही अपने बलसे सिंह पकड़ करके उनके साथ खेला करता था ॥१७॥ इसलिये महाविक्रमशाली देखकर प्रमदोत्तमा शकुंतला भगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न उस पुत्रको ले अपने स्वामीके निकट गयी ॥ १८ ॥ परन्तु राजा दुष्यन्तने अनिन्दित स्त्री और पुत्रको ग्रहण नहीं किया परन्तु जिस समय राजा दुष्यन्तने शकुंतलाका निरादर किया, तब श्रवणकारी सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशसे अशरीरिणी वाणी प्रकट हो राजाको पुकारकर बोली कि ॥१९॥ हे राजा दुष्यन्त ! माता भस्त्रा अर्थात् चर्मपात्रवत् आधारमात्र पिताका ही पुत्र है, क्योंकि आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, इसलिये अपने पुत्रको ग्रहण करके पालो और शकुंतलाका अपमान न करो ❋ ॥ २० ॥ हे नरदेव ! जो पुरुष वीर्य डालता है, पुत्र उसका ही यमालयसे निस्तार करता है और शकुन्तला यह सत्य कहती है, तुमने ही इस पुत्रको गर्भमें धारण किया था ॥ २१ ॥ हे भारत ! आकाशवाणीको सुनते ही राजा दुष्यन्तने पुत्रसहित शकुन्तलाको अंगीकार किया। कुछ कालके पीछे महाराज दुष्यन्तके स्वर्गवासी होनेपर राजाके महायशस्वी पुत्र यही भरतजी सिंहासनपर बैठकर चक्रवर्ती राजा हुए थे। महाराज भरत श्रीभगवान् हरिके अंशसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये उनकी महिमा समस्त भूमण्डलमें गायी जाती है ॥२२॥ उनके दाहिने हाथमें चक्र और दोनों चरणोंमें पद्मकोशका चिह्न विराजमान था। उन्होंने महाभिषेक कराकर राजाधिराज हो गंगाजीके किनारेपर पचपन (५५) अश्वमेध यज्ञ करके भगवान् वासुदेवजीकी पूजा की थी ॥२३॥ ये राजा भरत ममताके पुत्र मामतेय ऋषिको अपना पुरोहित बनाकर यमुनाके तटपर अश्वमेध यज्ञके अठहत्तर (७८) पवित्र अश्व (घोड़े) यथाक्रमसे बांधे। इन यज्ञोंके समय राजर्षि भरतजीने बहुतसा धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दिया था ॥ २४ ॥ हे राजन् ! श्रेष्ठ गुणवाले देशमें महाराज भरतजीकी अग्नि प्रणीत थी। उस अग्निप्रचयन कालमें ब्राह्मणलोग उन महाराज भरतजीकी दी हुई गायोंको एक-एक बद्धमें भाग करके ले गये थे। (एक बद्ध तेरह सहस्र चौरासी (१३०८४) का होता है) ॥२५॥ और महाराज भरतजीने एक-

---

* शंका—थोड़े ही दिनोंमें राजा दुष्यन्तने अपने चरित्रको भूलकर शकुन्तला और अपने पुत्रको क्यों नहीं ग्रहण किया ?
उत्तर—राजा दुष्यन्त बड़ा बुद्धिमान था और यह भली प्रकार जानता था कि यह हमारा ही पुत्र है और शकुन्तला हमारी स्त्री है, परंतु लोकापवादसे डरकर उसको ग्रहण नहीं करता था, आकाशवाणीसे सबको विदित हो गया तो राजाने ग्रहण किया।

बारमें ही एक सौ तैंतीस १३३ यज्ञीय घोड़े बांध राजा लोगोंके विभवको भी विस्मित कर देवतालोगोंका आक्रमण किया था। उनका ऐसा कर्म करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि वे भगवान् हरिको प्राप्त हुए थे ॥ २६ ॥ इन महाराज भरतने मष्णारनामक कर्ममें श्वेतदन्त और कृष्ण रंगके चौदह लाख १४०००००हाथी सुवर्णसे सजे हुए दान किये ॥२७॥ महाराज भरतजीने जो कर्म किये, उन कर्मोंको पहले हुए नृपतिगण भी प्राप्त नहीं कर सके और आगे जो राजा होंगे वह भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे जैसे भुजाओंके बलसे स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २८ ॥ २९ ॥ इन महाराज भरतजीने दिग्विजय करनेको जाकर किरात, हूण, यवन, पौंड, कंक, खग, शक,और दूसरे अब्रह्मण्य राजाओंके और सब म्लेच्छजातिका संहार कर डाला॥३०॥पूर्व समयमें जिन दानवोंने देवता लोगोंको जीतकर जिन रसातलादि स्थानोंमें वास किया था और बली दानव लोग देवता लोगोंकी स्त्रियोंको भी पातालमें ले गये थे। महात्मा भरतजीने उन सब देवांगनाओंका उद्धार किया था ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! महाराज भरतजीके समयमें स्वर्ग और पृथ्वीसे प्रजालोगोंकी सब अभिलाषा पूरी होती थी। इस राजा भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक राज्य करके सब दिशाओंमें अपनी सेना भेजी थी ॥३२॥ इस प्रकार राज्यभोग करके पीछे महाराज भरतजीने लोकपालोंका विभव, अधिराज्यकी सम्पत्ति अस्खलित सेना और आत्मप्राणादि मिथ्या विचार कर विषयसे मुँह मोड़ लिया ॥३३॥ इन भरतजीके विदर्भदेशके राजाकी बेटी सुसम्मत तीन स्त्रियाँ दी। एक समय राजाने कहा कि "यह पुत्र हमारे अनुसार नहीं है" इसलिये यह तीनों ऐसी शंका करने लगीं कि वारंवार अनुहारका विचार कर कहीं यह राजा हमपर व्यभिचारकी शंका न कर बैठे और हमको त्याग दे, इसलिये अपनी-अपनी सन्तानको मार डाला ॥३४॥ इस प्रकार वंशके व्यर्थ होनेसे महाराज भरतजीने पुत्रार्थ वायु और सोमका यज्ञ किया। उस यज्ञके मरुद्गणोंने प्रसन्न हो राजाके हाथमें भरद्वाजनामक एक पुत्र समपर्ण किया ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित् ! भरद्वाजके जन्मका वृत्तान्त और समर्प्पणकी कथा कहते हैं। अपने भ्राता उतथ्यकी स्त्री ममतासे एक दिन छिपकर बृहस्पतिजीने भोग करना चाहा था। परंतु उस समय गर्भके बीच एक और बालक था, फिर उस समय गर्भके मध्य दूसरे गर्भका स्थान कैसे हो ? इसलिये गर्भके बालकने बृहस्पतिजीको वीर्य डालनेके अर्थ निवारण किया परंतु बृहस्पतिजी कामान्ध हो रहे थे। उन्होंने क्रोधित होकर बालकको यह शाप दिया कि " तू अंधा हो जा" और अपना वीर्य ममताके पेटमें डाला ॥ ३६ ॥ बृहस्पतिजीके शापसे उतथ्यतनय दीर्घतमा हुए थे, परंतु उन्होंने अपनी एड़ी प्रहारसे बृहस्पतिजीके वीर्यको योनिके बाहर निकाल दिया, परंतु उस भूमिपर गिरे हुए वीर्यसे उसी समय कुमार उत्पन्न हुआ। पीछे हमको व्यभिचारिणी जान कर छोड़ न दें इस भयसे भीत होकर जब उतथ्यकी स्त्री ममताने उस कुमारको त्याग करनेकी इच्छा की, तब उस समय देवता लोगोंने बृहस्पति और ममताके विवाद रूप इस कुमारका नाम धरनेके लिये यह वचन कहे ॥ ३७ ॥ पुत्रको त्याग करके जाते हुए देख देवताओंने ममतासे कहा अरी मूढ स्त्री ! यह बालक एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे होनेके कारण इसका दो जनोंसे जन्म हुआ इसलिये यह तुम्हारे स्वामीका भी पुत्र है। स्वामीसे कुछ भयकी शंका नहीं, तुम इस बालकको पालो और बृहस्पतिसे भी कहा कि तुम भी इसका पालन-पोषण करो, क्यों कि तुम दोनों जनोंसे अन्यायके द्वारा यह बालक उत्पन्न

हुआ है। पर पिता माता द्वाज अर्थात् बृहस्पति और ममता झगड़ा करते-करते इस बालकको छोड़कर चले गये, इसलिये इसका नाम भरद्वाज हुआ, क्योंकि भर (पोषण) और (दोनोंसे उत्पन्न) इन दोनों शब्दोंके मिलानेमें 'भरद्वाज' नाम हुआ ॥ ३८ ॥ हे राजा परीक्षित्! देवता लोगोंके इस प्रकार कहते रहनेपर भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुए उस बालकको व्यर्थ समझकर उतथ्यकी भार्याने इस बालकको त्याग दिया। तब उस बालकको मरुद्गणोंने लेकर पालन किया था। जब भरतवंशके वितथ होनेका उपक्रम हुआ, तब उस समय मरुद्गणोंने इस पुत्रको लेकर महाराजाधिराज भरतजीको दे दिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा–भरतवंश इक्कीसमें, रंतिदेव अजमीढ।
तिनके कुलकी कीर्ति सब, वरणों सहित सपीढ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे महाराज परीक्षित्! वंशके वितथ होने पर भरतजीको मरुद्गणोंने यह बालक दिया, इसलिये इन भरद्वाजका नाम वितथ हुआ। इन वितथका पुत्र मन्यु, उनसे बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥ उनमें नरका पुत्र संकृति हुआ। उसका पुत्र गुरु और रंतिदेव हुआ। हे राजन्! रंतिदेवकी महिमा इस लोक और परलोक दोनोंमें गायी जाती है ॥ २ ॥ इस राजाका चित्त निरंतर व्ययमें नियुक्त था। वह आप भूखे रहकर भी जो कुछ मिलता था उसे तत्काल दान कर देता था। वह धीर नरपति सब कुछ दान करके निष्किञ्चन हो सपरिवार क्षुधाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ ३ ॥ और विना जलपान किये राजाको अड़तालीस दिन व्यतीत हो गये। सब परिवार विना आहारके कष्ट पा रहा था और आप भी भूख-प्यासके मारे कम्पायमान हो रहे थे। उसी समय घृत, खीर और हलुआ भोजन करनेके लिये राजाको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ उसको पाकर राजा प्रातःकाल भोजन करनेको चले ही थे कि उसी समय कोई ब्राह्मण अतिथि आ गया ॥ ५ ॥ तो राजाने श्रद्धापूर्वक सर्वदेवमय भगवान् हरिको देखते हुए आदरपूर्वक उस ब्राह्मणको भी उस सब अन्नमेंसे विभाग करके दिया और वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ इसके पीछे उस बचे हुए अन्नादिको अपने सब परिवारको बांट चूंट आप स्वयं भोजन करने जा रहे थे कि उस अवसरपर एक और कोई शूद्र अपनेको अतिथि बताकर आया तो इन रंतिदेवने भगवान् हरिका स्मरण करके उस बचे हुए अन्नमेंसे उस शूद्रको भी भाग दिया ॥ ७ ॥ एक शूद्र अतिथि आकर बिदा हो चला गया कि इतनेमें ही और एक जन बहुत सारे कुत्तोंको साथ लिये अतिथि बनकर वहां आया और आकर बोला–"मैं इन सब कुत्तोंके साथ बहुत ही भूंखा हूँ" अतः इस यूथके सहित मुझको तुम आहार दो ॥८॥ राजाने उसका बहुत ही आदर किया और सम्मान करके वह बचा हुआ अन्न कुत्तोंके यूथको और उनके स्वामीको खानेके लिये देकर उनको नमस्कार किया ॥९॥ उसके पीछे सब कुछ देकर एक जनकी तृप्तिके योग्य जो जल वहां बचा था, उसके ही पीनेका राजाने उद्योग किया कि इतनेमें ही पुल्कस (चाण्डाल) आया और करुणासहित यह वचन बोला कि हे महाराज! मैं बहुत थक गया हूँ, मुझ अशुभ पुरुषको कुछ जल दीजिये ॥ १० ॥ इस

चाण्डालके ऐसे करुणायुक्त वचन सुनकर राजा रंतिदेवको अत्यन्त दया आई और दुःखित हो यह अमृतमय वचन बोले कि ॥ ११ ॥ हम परमेश्वरसे अणिमादि अष्ट सिद्धि युक्त गति अथवा मुक्तिकी भी कामना नहीं करते। हमारी प्रार्थना है कि हम सम्पूर्ण देहधारियोंके दुःखको भोक्तारूपसे भीतर स्थिर होकर प्राप्त हों और हमसे सब प्राणियोंका दुख दूर हो जाये ॥ १२ ॥ यह दीन जन-जीवन धारण करनेकी वासना करता है, इसके जीवनके लिये जल अर्पण करते ही हमारी क्षुधा, तृष्णा, थकावट, अंगोंका घूमना, कातरता, क्रांति, खेद, विषाद,मोह सब ही निवृत्त हो गये ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर स्वभावसे ही दयालु महाराज रंतिदेवने स्वयं प्यासके मारे म्रियमाण होनेपर भी उस चाण्डालको अपने पीनेका जल दे दिया ॥ १४ ॥ हे राजन्! त्रिभुवनाधीश जो ब्रह्मादि देवता फलाकांक्षी पुरुषोंको फलदान किया करते हैं यह सब महाराज रंतिदेवके धैर्य और धर्मकी परीक्षा करनेके लिये विष्णुकी बनायी हुई मायासे अपने-अपने स्वरूपको दिखाते हैं ॥ १५ ॥ परन्तु महाराज रंतिदेवने इन सब देवताओंको नमस्कार किया और निःसंग व स्पृहारहित होकर केवल भगवान् वासुदेवको अर्पण कर दिया ॥ १६ ॥ इसलिये उन्होंने ब्रह्मादि देवताओंसे कुछ भी नहीं चाहा ॥१७॥ हे राजन्! रंतिदेवके ईश्वरातिरिक्त और किसी फलकी इच्छा न करनेपर अपने चित्तको ईश्वरावलम्बित करनेसे उनके निकट गुणमयी माया स्वप्नके समान आत्मामें ही विलीन हुई थी ॥ १८ ॥ उसके अनुगामी जनगण इस राजा रंतिदेवके संसर्ग प्रभावसे सब ही नारायणपरायण योगी हुये थे ॥ १९ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! मन्युके पुत्र नरका वंश कहा गया, अब गर्गके वंशका वृत्तांत कहते हैं, वह तुम सुनो। गर्गसे शिनि उत्पन्न हुए, शिनिसे गार्ग; ये ब्रह्मकुलके प्रवर्तक हुए ॥ २० ॥ अब महावीर्यके वंशका विवरण सुनो,महावीर्यसे दुरतिक्षय उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि ये तीनों जन क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए थे। अब मन्युके पांच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़ेका वंश सुनो। बृहत्क्षत्रका पुत्र हस्ती× हुआ,जिसने हस्तिनापुर बसाया॥२१॥इस हस्तीके अजमीढ, ❀ द्विमीढ और पुरुमीढ यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें अजमीढके वंशसे प्रियमेधादि ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए॥२२॥और इस अजमीढसे बृहदिषु नाम और एक पुत्र जन्मा, उसका पुत्र बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुकी सन्तान बृहत्काय,इसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥२३॥ जयद्रथका पुत्र विपद,उसका पुत्र सेनजित्,सेनजित्के पुत्र रुचिराश्व, दृढ़हनु,काश्य और वत्स ये चार पुत्र हुए। उनमें रुचिराश्वके पार नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। हे राजन्! पारका दूसरा पुत्र नीप और नीपके सौ(१००) पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और इसी नीपने शुककी कन्या + कृत्वीके गर्भसे ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया। योगी ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक एक पुत्र उत्पन्न

× इसी राजा हस्तीने "हस्तिनापुर" बसाया था जो अब तक गंगा भागीरथीके किनारेपर उपस्थित है।

❀ इसी अजमीढ़ने 'अजमेड़' नामक नगर बसाया था जो आजकल पुष्करजीके निकट 'अजमेर' नामसे विख्यात है।

+ शंका—राजा नीपने क्षत्रिय होकर ब्राह्मण शुकदेवजी की कन्याके साथ अपना विवाह क्यों किया ? क्षत्रियकी पुत्रीको तो ब्राह्मण सर्वत्र विवाहते रहे, परन्तु ब्राह्मणकी कन्याके साथ क्षत्रियका विवाह हमने आज ही सुना है, कभी देवयानीकी बात तो शापसे हो गयी, परन्तु यह कैसे हुआ ?

उत्तर—तीन लोकमें शुकदेवजीकी कन्या सब ब्रह्मज्ञानियोंमें परम ब्रह्मज्ञानी थी और ब्रह्मज्ञानी ही पुरुषको अपना पति करना चाहती थी और किसी दूसरे पुरुषको नहीं चाहती थी और राजा नीप बड़ा ब्रह्मज्ञानी था, ऐसा विचारके अपनी इच्छासे राजा नीपको उसने अपना पति बनाया, कुछ संसारकी रीतिसे यह विवाह नहीं हुआ था।

किया ॥ २५ ॥ जिसने जेगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्र प्रणयन किया था। इस विष्वक्सेनसे उदक्सेनने जन्म लिया, जिसके भल्लाद नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ राजा परीक्षित्! ये सब महीपाल बृहदिषुके वंशमें उत्पन्न हुये थे ॥ २६ ॥ द्विमीढका पुत्र यवीनर, यवीनरका पुत्र कृतमान, उसके यहाँ सत्यधृति नामक पुत्र जन्मा। सत्यधृतिका पुत्र दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमतिने जन्म लिया, उसका पुत्र सन्नति, उसका पुत्र कृति, जिसने हिरण्यनाभसे योगविद्या सीखकर प्राच्य सामकी छः संहिताओंका विभाग करके उनको पढ़ाया ॥२८॥ इस कृतिके नीप हुआ और नीपसे उग्रायुधकी उत्पत्ति हुई। उग्रायुधके क्षेमा, उसका पुत्र सुवीर, सुवीरका पुत्र रिपुञ्जय, उसका पुत्र बहुरथ हुआ। हे राजन्! हस्तीका पुत्र पुरुमीढ निःसन्तान रहा ॥ २९ ॥ अजमीढकी (अजमीढके वंशमें प्रियमेधादि कोई एक ब्राह्मण और बृहदिषु प्रभृति क्षत्रिय उत्पन्न हुए थे, उन दोनों वंशोंका वर्णन किया है। यह उनका वंशान्तर है) नलिनी नाम जो भार्या थी उससे नीलनाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ और नीलका पुत्र शान्ति जन्मा ॥ ३० ॥ शान्तिका बेटा सुशान्ति, सुशान्तिका पुत्र उरुज और उससे अर्कने जन्म ग्रहण किया,अर्कका पुत्र भर्म्याश्व और उसके मुद्गल, यवीनर, बृहदश्व, काम्पिल्य और संजय ये पाँच पुत्र जन्मे ॥ ३१ ॥ भर्म्याश्वने इन पुत्रोंको देखकर एक समय कहा था कि हमारे ये पाँच पुत्र पांच विषयके रक्षा करनेमें समर्थ हैं ॥ ३२ ॥ ये पाञ्चाल देशका पालन कर सकते हैं। इसी कारण इन पुत्रोंकी पाञ्चाल संज्ञा हुई और पांच देश इनके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ और मुद्गलसे मौद्गल्य गोत्री ब्रह्मकुल हुआ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे शुभनरा मिथुनने जन्म लिया। इनमें दिवोदास नर और अहल्या नाम नारी हुई थी। उसी समय अहल्यामें गौतमजीसे शतानन्दकी उत्पत्ति हुई ॥ ३४ ॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ, यह धनुर्वेदको भलीभांतिसे जानता था, उसका पुत्र शरद्वान हुआ, जिसका वीर्य उर्वशीके दर्शनसे शरकण्डेके समूहमें गिरा था। और फिर इसी वीर्यसे एक शुभ जोड़ा उत्पन्न हुआ॥३५॥जब शन्तनु राजा मृगया करनेको गया तब उसने दैवात् इस जोड़ेको देखा और दयाके वश हो अपने घरपर ले आया, उस नर-मिथुनमेंसे बालकका नाम कृप और बालिकाका नाम कृपी हुआ जो कि द्रोणाचार्य की स्त्री हुई ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकशागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे सोमवंशानुवर्णने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा--दिवोदासको वंश कह, ऋक्षवंश बाईस।
जरासन्ध औ धर्मसुत, दुर्योधन धनईस ॥

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! दिवोदासका पुत्र मित्रायु, उसका पुत्र च्यवन, च्यवनका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सहदेव और उसकी सन्तान सोमक हुआ। इस सोमकके सौ १०० पुत्र थे, उनमें जन्तु बड़ा था ॥ १ ॥ और पृषत छोटा हुआ। इस पृषतसे सर्व सम्पद् युक्त राजा द्रुपदने जन्म लिया। इन्हीं राजा द्रुपदसे द्रौपदीका जन्म हुआ॥२॥और इनके पुत्र धृष्टद्युम्नादि हुए धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु हुआ। यह सब भर्म्याश्वके पाञ्चाल वंशमें हुए और पंजाबके राजा थे ॥ ३ ॥ हे राजा परीक्षित्! अब अजमीढके

वंशका वृत्तांत कहते हैं, वह आप सुनिये- अजमीढका दूसरा पुत्र जो ऋक्ष था, उसका पुत्र संवरण हुआ; इस संवरणसे सूर्यकी कन्या तपतीके गर्भसे कुरुक्षेत्रपति कुरुने जन्म ग्रहण किया, इन कुरुके परीक्षित, सुधनु, जह्नु, और निषधाश्व ये चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ इनमें सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन और इनके कृती हुआ, कृतीका पुत्र उपरिचर नामक वसु हुआ, उससे बृहद्रथ प्रभृति उत्पन्न हुए ॥५॥ और पुत्रोंके यह नाम हैं, यथा--कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप इत्यादि । यह सबही चेदिप अर्थात् चन्देलीके राजा थे॥६॥बृहद्रथ से कुशाग्रका जन्म हुआ उसका पुत्र ऋषभ, उसका सुत सत्यहित, सत्यहितका पुत्र पुण्यवान् और उसका बेटा जह्नु हुआ,हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी भार्यासे एक पुत्र दो खण्ड होकर जन्मा था ॥७॥ उसकी माताने उस बालकको ऐसा देखकर बाहर फेंकवा दिया । फिर जरा राक्षसीने उसको देख "जीवित हो जीवित हो" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक क्रीड़ा करते उन दोनों खण्डोंको जोड़ दिया था उससे ही यह बालक सर्वावयव सम्पन्न हो जरासन्ध नामक हुआ ॥८॥ इस जरासन्धका पुत्र सहदेव, उसका पुत्र सोमापि, उससे श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई । हे राजन् ! कुरुपुत्र परीक्षितके सन्तान नहीं थी । जह्नुका पुत्र सुरथ ॥ ९ ॥ इससे विदूरथका जन्म हुआ । उसका पुत्र सार्वभौम, उसका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र राधिक, राधिकसे आयुतायुने जन्म लिया ॥ १० ॥ आयुतायुके क्रोधन, क्रोधनके देवातिथि, उनके ऋक्ष और ऋक्षसे दिलीपने जन्म ग्रहण किया और दिलीपके प्रदीप नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ इन प्रदीपके देवापि, शन्तनु और बाल्हीक नामक तीन पुत्र हुए । उनमें बड़ा पुत्र देवापि पितृराज्यको छोड़कर वनमें चला गया था ॥१२॥ इसलिये मध्यम पुत्र शन्तनु राजा हुए । पूर्वजन्ममें इनका नाम महाभिष था । यह शन्तनु अपने हाथसे जिस किसी वृद्ध पुरुषको स्पर्श करते थे वही युवा हो जाता था ॥ १३ ॥ और शांति प्राप्त कर लेता था, इस कर्मके ही करनेसे इनका नाम शन्तनु हुआ इन शन्तनुजीके राजा होनेपर देवराज इन्द्रने बारह वर्षतक पानी नहीं वर्षाया ॥ १४ ॥ तब राजाने उद्विग्न होकर ब्राह्मणोंसे इसका कारण पूछा, ब्राह्मणोंने इस विषयमें केवल इतना ही कहा कि महाराज ! बड़े भाईके रहते हुए जो पुरुष-- राज सिंहासन पर बैठता है, वह अपने समान पुरुष होने पर भी परिवेत्ता ही हो जाता है आप परिवेदन दोषसे दूषित हुए हैं । इस दोषको दूर करनेके लिये शीघ्र अपने बड़े भाई-को बुलाकर उनको राज्यभार दे दो । तब देवता जल वर्षायेंगे और राष्ट्रोंकी वृद्धि होगी ॥ १५ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा शंतनु उसी समय वनको चले गये और" प्रजा पालन करना ही राजाका परमधर्म है, अतः आप राज्यको स्वीकार कीजिये" यह कहकर अपने बड़े भ्रातासे राज्य ग्रहण करनेके लिये विनय करने लगे । परन्तु इससे पहले शंतनुके मन्त्री अश्ववारने देवापिको पाखण्ड करके राज्यके अयोग्य करनेके लिये उनके पास कुछेक ब्राह्मणोंको भेज दिया था । ब्राह्मणलोगोंकी पाखण्डमतानुयायी कथाके द्वारा जब देवापि वेदमार्गसे परिभ्रष्ट हुए तब उन्होंने शन्तनुकी प्रार्थना न मानी और वेदशास्त्रकी निंदा करने लगे, तब वेदोंकी निंदा करनेसे नीचता पानेके कारण राज्यके योग्य देवापि न रहे, फिर उसके उपरांत शंतनुके राज्य भोग करनेमें और कोई दोष नहीं रहा । फिर यथाकालमें वर्षा होने लगी । तबसे देवापि योगमार्गका अवलम्बन कर कलाप ग्राममें रहते हैं । जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके पहले वह देवापि फिर

चन्द्रवंशको स्थापित करेंगे ॥ १६ ॥ शंतनुके पुत्र बाह्लीकसे सोमदत्तकी उत्पत्ति हुई । इस सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए । हे परीक्षित् ! इन शंतनुके गंगाजीके गर्भसे भीष्मजीका जन्म हुआ था । यह भीष्मजी धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महाभागवत ॥ १७ ॥ विद्वान् और वीरगणोंमें अग्रगण्य थे,उन्होंने संग्राममें * परशुरामजीको भी प्रसन्न किया था । हे राजन् । इन शंतनुसे दास (धीवर) कन्यामें उपरिचरवसुके वीर्य द्वारा मत्स्यगर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी और केवट लोगोंने उसका पालन- पोषण किया था । इसलिये यह दासकन्याके नामसे विख्यात हुई,वास्तवमें इसका नाम सत्यवती था, इसके चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र जन्में ॥ १८ ॥ उनमें छोटा विचित्रवीर्य हुआ और बड़ा पुत्र चित्रांगद, जिसको किसी गन्धर्वने मार डाला था । शंतनु राजाके ग्रहण करनेसे पहले इस दाशकन्या (सत्यवती) में महर्षि पराशरसे साक्षात् भगवान् हरिके अंशसे कृष्णद्वैपायन मुनि (श्रीव्यासजी) का अवतार हुआ । हे परीक्षित् ! उनके जन्म होनेसे पहले समस्त वेद गुप्त हो गये थे, उनसे ही हमने श्रीमद्भागवत शास्त्र पढ़ा था, जो कि इस समय आप को सुना रहे हैं ॥ १९ ॥ इन भगवान् बादरायणके पैलादि अनेक शिष्य थे, परंतु वह सब शियोंको छोड़कर हमको, जो उनके स्वभावसे जानकार थे परमगुह्य श्रीमद्भागवत शास्त्रकी व्याख्या सुनाते थे क्योंकि मैं उनका शान्त पुत्र था ॥ २० ॥ इन विचित्रवीर्यने काशिराजकी दो कन्या अंबिका, अम्बालिकासे विवाह किया,इन दोनों कन्याओंको महाबलवान् भीष्म स्वयंवरमेंसे लड़कर छीन लाये थे ॥२१॥ इन दोनों स्त्रियोंमें विचित्रवीर्य अत्यन्त अनुराग करते थे इसलिये अल्पकालमें ही यक्ष्मारोगसे ग्रस्त हो मृत्युको प्राप्त हुए ॥२२॥ इनके कोई संतान नहीं हुई,तब इनके सहोदर भगवान् वेद व्यासजीने अपनी सत्यवती माताके कहनेसे अपने भाई विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र पांडु विदुर यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥२३॥ इनमें धृतराष्ट्रकी स्त्री गांधारी हुई, इस धृतराष्ट्रके गंधारीसे (१००) पुत्र जन्मे,उन पुत्रोंमें दुर्योधन सबसे बड़ा था,और दुःशला नामक एक कन्या हुई॥२४॥ हे राजन् ! पांडुराजा एक समय वनमें शिकार खेलनेको गये थे वहां उन्होंने मैथुन करते हुए एक मृगका वध किया, तब मृगने इनको शाप दिया कि जब तुम मैथुन करोगे तब तुम्हारी मृत्यु हो जायगी इन राजा पांडुकी स्त्री कुन्तीमें धर्म, पवन और इंद्रके वीर्य द्वारा क्रमसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन यह तीन पुत्र महारथी उत्पन्न हुए इन्हीं राजाकी माद्री नामक दूसरी भार्यामें अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ ॥ २५ ॥ इन पांचों पाण्डवोंकी भार्या द्रौपदी हुई द्रौपदीके गर्भमें युधिष्ठिरादि पांच पाण्डवोंसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए कि तुम्हारे पितृव्य थे ॥२६॥अर्थात् युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य,भीमसेन,श्रुतसेन और अर्जुनसे श्रुतकीर्ति,नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा उत्पन्न हुआ। हे राजन् ! इन पांच पाण्डवोंसे इनकी दूसरी भार्याओंमें इन पुत्रोंके अतिरिक्त (सिवाय) और भी पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥२७॥ युधिष्ठिरकी पौरवी

---

* शंका—रामचन्द्रके सामने त्रेतायुगमें परशुरामजी अपना धनुषबाण रखकर उत्तर दिशामें तप करने चले गये थे, रामायणमें ऐसा लिखा है, फिर द्वापरयुगमें भीष्मजीके संग युद्ध कैसे किया, उस समय परशुरामजीके पास धनुष बाण कहांसे आया ?

उत्तर—जब परशुरामजीने रामचन्द्रजीके सामने अस्त्रोंका त्याग किया, उस समय कुछ उन्होंने ऐसी शपथ नहीं कि थी आजसे हम कभी अस्त्र ग्रहण न करेंगे, इसलिये अम्बिकाको अत्यन्त दुःखी देखकर और अपने शरण आयी जानकर तपके प्रभावसे दूसरा धनुषबाण बनाकर भीष्मके संग युद्ध करने लगे ।

नामक जो दूसरी भार्या थी, उससे देवक नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भीमसेनके हिडम्बा नामक वनितामें घटोत्कचने जन्म ग्रहण किया। भीमसेन के काली नामक एक और भार्या थी जिससे सर्वगत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥२८॥ सहदेवकी दूसरी भार्या विजया नामक पर्वतकी बेटीने सुहोत्र नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। नकुलकी करेणुमती नामक वनितामें निर्मित नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे राजन्! अर्जुनने नागराजकी कन्या उलूपीके गर्भसे इरावन्त नाम एक पुत्र उत्पन्न किया और मणिपुराधीशकी बेटीमें अर्जुनने बभ्रुवाहन नामक पुत्र उत्पन्न किया था, वह पुत्र यद्यपि अर्जुनका बेटा था, तो भी नानाके गोद लेनेसे मणिपुरपतिका पुत्र कहलाया था॥ २९॥ और इनकी सुभद्रा नामक और एक भार्या थी, उससे तुम्हारे पिता अभिमन्युने जन्म लिया। यह अभिमन्यु समस्त अतिरथी वीरोंके जयकारी और महावीर थे। हे महाराज परीक्षित्! उनके ही औरससे उत्तराके गर्भमें आपने जन्म लिया॥ ३०॥ हे राजन्! अश्वत्थामाके छोड़े ब्रह्मास्त्रके तेजसे जब कुरुवंशका नाश हो रहा था, तब तुम भी उससे नष्ट होते थे परंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरके प्रभावसे मृत्युके हाथसे तुम छूट गये थे॥३१॥ हे तात! तुम्हारे इस समय जन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन यह चार पुत्र हैं॥३२॥ हे परीक्षित्! तुम्हारे इन पुत्रोंमेंसे जनमेजय तक्षक (सर्प) से तुम्हारी मृत्युका होना सुनकर रोषके कारण सर्पसत्र यज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञाग्निमें सब सर्पोंका होम कर देगा॥ ३३॥ और तुम्हारे ये पुत्र समस्त पृथ्वीको जीत अश्वमेध यज्ञ करेंगे और कावषेय वंशके "तुर" नामक ऋषिको पुरोहित बनाकर और भी बहुतसे अश्वमेध यज्ञ करेंगे॥ ३४॥ हे परीक्षित्! तुम्हारे पुत्र जन्मेजयके शतानीक नामक एक पुत्र होगा। यह शतानीक याज्ञवल्क्य मुनिसे तीन वेद पढ़ेगा और शौनक मुनिसे ब्रह्मविद्या और आत्मज्ञान सीखेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेगा॥३५॥ शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होगा, उससे अश्वध्वजकी उत्पत्ति होगी। उसका पुत्र असीमकृष्ण और उसका पुत्र नेमिचक्र होगा॥ ३६॥ इस नेमिचक्रके राजकालमें हस्तिनापुर गंगाजीमें डूबेगा। तब यह राजा कौशांबी नगरीमें वास करेगा। नेमिचक्रके उक्त नामक सन्तान होगी। उसका पुत्र चित्ररथ और उससे कविरथ जन्मेगा॥ ३७॥ कविरथका पुत्र वृष्णिमान और उसका पुत्र सुषेण नामक राजा होगा। सुषेणके सुनीथ नामक पुत्र जन्मेगा, उसका पुत्र नृचक्षु होगा और उससे सुखीनल जन्म लेगा॥ ३८॥ सुखीनलका पुत्र पारिप्लव होगा, उससे सुनय जन्म धारण करेगा, उसका पुत्र मेधावी, मेधावीका पुत्र नृपञ्जय और उसके दूर्व नामक पुत्र होगा और उसका पुत्र तिमि होगा॥३९॥ तिमिसे बृहद्रथकी उत्पत्ति होगी। उसका पुत्र सुदास और सुदाससे शतानीक जन्म धारण करेगा॥४०॥ शतानीकका पुत्र दुर्दमन, इनका बहीनर, बहीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका पुत्र नेमि और नेमिसे क्षेमक नामक पुत्र उत्पन्न होगा॥ ४१॥ हे महाराज परीक्षित्! देवर्षिसत्कृत ब्रह्मक्षत्रियवंश इस क्षेमकको राजा पाकर कलियुगमें समाप्तिको प्राप्त हो जायगा॥ ४२॥ श्रीशुकदेवजी इतनी कथा सुनाकर नृपश्रेष्ठ परीक्षित्से बोले कि हे कुरुवंशावतंस! अब मगधवंशमें जो राजा होंगे उनका वृत्तांत कहता हूँ, आप सचेत हो मन लगाकर सुनिये। बृहद्रथके पुत्र जरासन्धके सहदेव नामक पुत्र होगा सहदेवके मार्जारि और इस मार्जारिसे श्रुतश्रवा जन्म ग्रहण करेगा॥४३॥ इसका पुत्र अयुतायु, उसकी सन्तान निरमित्र, इसका पुत्र सुनक्षत्र, इस सुनक्षत्रसे बृहत्सेनकी उत्पत्ति होगी

इस बृहत्सेनका पुत्र कर्मजित्, उसके सृतञ्जय, उससे विप्र नाम एक नरेश उत्पन्न होगा। उसका पुत्र शुचि, शुचिका पुत्र क्षेम, उससे सुव्रत जन्मेगा। सुव्रतका पुत्र धर्मसूत्र और धर्मसूत्रके शम नाम पुत्र उत्पन्न होगा ॥४४॥४५॥ इस शमसे दृढ़सेनकी उत्पत्ति होगी, दृढ़सेनका पुत्र सुमति होगा। इस सुमतिका पुत्र सुबल उत्पन्न होगा, सुबलका सुनीथ, सुनीथका पुत्र सत्यजित्, सत्यजितका पुत्र विश्वजित और विश्वजितका पुत्र रिपुञ्जय उत्पन्न होगा ॥४६॥ हे राजा परीक्षित्! हजार वर्षतक यह राजा उत्पन्न होंगे और इनके उपरांत जो समस्त राजा होंगे वह पीछे (द्वादशस्कन्धमें) कहे जायँगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा–ययातिसुत अनु द्रुह्यु पुनि, वरणों तुर्वसु वंश।
पीछे ज्यामघ राज्य तक, यदुकुल कहौं प्रशंस ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण! पूरुका वंश तो कह चुके, अब राजा ययातिके चौथे पुत्र अनुके वंशका वर्णन करते हैं। अनुके सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सभानरका पुत्र कालनर, उसका पुत्र सृञ्जय और उसका पुत्र जन्मेजय हुआ। जन्मेजयका पुत्र महाशील और महाशीलका पुत्र महामना हुआ ॥ १ ॥ महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंमें उशीनरके शिबि, बल, शम और दक्ष यह चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ इनमें शिबिसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र, कैकेय यह चार पुत्र जन्मे। तितिक्षुका पुत्र रुपद्रथ, उसका पुत्र होम, उसका पुत्र सुतप और सुतपसे बलि नाम पुत्र हुआ ॥३॥ इस बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमासे अंग, वंग, कलिंगादि और सुह्म, पुंड्र और अन्ध्र नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ यह सब अपने-अपने नामसे छः जनपद और छः प्राच्य देशोंमें अंग वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्डरीक और अन्ध्र आदि बसाये ॥५॥ अंगसे खलपान नामक जो पुत्र जन्मा था उसका पुत्र दिविरथ, उसकी संतान धर्मरथ और उससे चित्ररथ जन्मा। चित्ररथके कोई संतान नहीं हुई। रोमपाद नाम करके यह राजा विख्यात था, उसके सखा दशरथ राजाने उसको पुत्रार्थ शांतानामक अपनी कन्या दान कर दी थी, इस कन्याका पाणिग्रहण ऋष्य-शृङ्ग मुनिने किया ॥६॥ हे राजन्! रोमपाद राजाके राज्यमें किसी कारणसे कुछ कालतक देवता लोगोंने जल नहीं वर्षाया। तब राजाकी अनुमतिसे वरांगनागण तपोवनमें जा गीत गाकर बाजे बजा-बजाकर नाचने लगीं और हाव-भाव कटाक्ष आलिंगन और अर्हण योगसे इन ऋष्य शृङ्गको ले आयीं ॥ ७ ॥ ऋष्य शृङ्गके आते ही जल वर्षा इसके उपरान्त इन मुनिने राजाको निःसंतान देख यज्ञ कराकर पुत्रका मुख दिखलाया ॥ ८ ॥ इन रोमपादसे चतुरंग उत्पन्न हुआ, उसकी संतान पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा, और बृहद्भानु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ इनमें बृहद्रथसे बृहन्मना जन्मा, उसका पुत्र जयद्रथ, जयद्रथका पुत्र विजय हुआ। इस विजयकी सम्भूति नामक भार्यासे धृतिने जन्म ग्रहण किया ॥१०॥ धृतिका पुत्र धृतव्रत, उसका पुत्र सत्कर्मा, उससे अधिरथ उत्पन्न हुआ। इस अधिरथने श्रीगंगाजीके किनारेपर क्रीडा करते हुए कुन्तीजीके बहाये संदूकमें एक बालक पाया और यह अधिरथ सन्तानहीन था, इसीलिये इसने संदूकसे पाये हुए

बालकको अपना पुत्र बना लिया । हे राजन् ! बालकका नाम कर्ण था और इससे ही वृषसेन की उत्पत्ति हुई ॥ ११ ॥ ययातिसुत द्रुह्युका पुत्र बभ्रु हुआ, बभ्रुका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरब्ध हुआ,उसका पुत्र गान्धार,उसका बेटा धर्म और उससे धृत जन्मा ॥१२॥धृतका पुत्र दुर्मना और उससे प्रचेताकी उत्पत्ति हुई। इस प्रचेताके सौ १०० पुत्र हुए, जो कि उत्तर दिशामें विराजमान होकर म्लेच्छाधिपति हुए हैं ॥ १३ ॥ तुर्व्वसुका पुत्र वह्नि, उसका सुत भर्व, उससे भानुमान्का जन्म हुआ। भानुमान्का त्रिभानु, उसका पुत्र उदारमति करंधम हुआ ॥ १४ ॥ करन्धम पुत्र मरुत, इन्होंने पुत्र रहित होनेसे कुरुवंशीय राजा दुष्यन्तको गोद लिया। यह दुष्यन्त राज्याभिलाषी होकर फिर अपने कुरुवंशको प्राप्त हुए थे ॥ १५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करते हैं। यह अति पवित्र वंश मानवमण्डलीके पापोंका नाश करनेवाला है ॥ १६ ॥ इस यदुवंशका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्यमात्र पापोंसे छुटकारा पाते हैं, क्योंकि इसी वंशमें भगवान् वासुदेव नराकारसे अवतीर्ण थे ॥ १७ ॥ यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल, रिपु ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित् हुआ ॥ १८ ॥ इसके महाहय, रेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए ॥ १९ ॥ इनमें हैहयका पुत्र धर्म, उसका पुत्र नेत्र और नेत्रका पुत्र कुंति हुआ,कुंतिसे सोहञ्जि जन्मा और उसका पुत्र महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २० ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए।इनमें धनकके कृतवीर्य,कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ये चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ इनमें कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ,जो कि सप्तद्वीपका अधीश्वर था और जिसने श्री भगवान्के अंश दत्तात्रेयजीसे योग गुण प्राप्त किया था ॥ २२ ॥ ऐसा जान पड़ता है कि कोई राजा यज्ञ, दान, तप, योग, वेदाध्ययन और शूरता, वीरता, व दयादिसे इन महात्मा अर्जुनकी गतिको नहीं प्राप्त हो सकता ॥ २३ ॥ इस राजाने अव्याहत पराक्रमसे पचासी हजार ८५००० वर्षतक अक्षय छः इंद्रियोंके सुखको भोगा था। इस राजाकी स्मरणशक्ति आश्चर्यमय थी कि जिससे कदापि वित्तका नाश नहीं होता था ॥ २४ ॥ इस अर्जुनके हजार पुत्र थे, इनमेंसे केवल पांच परशुरामके संग्राममें मरनेसे शेष बचे थे। जिनके नाम ये हैं-जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु, और ऊर्जित् ॥ २५ ॥ इनमें जयध्वजका पुत्र तालजंघ और इस तालजंघके तालजंघा नामवाले शत पुत्र हुए। इन सबको क्षत्रियोंके संग्राममें सगरने संहार किया था ॥२६॥ जो कुछ भी हो, तालजंघके उन सब पुत्रोंमें बड़ा वीतिहोत्र था। हे राजन् ! महात्मा वृष्णि तो मधुका पुत्र था। इस मधुके शत १०० पुत्र उत्पन्न हुए थे, यद्यपि वृष्णि और यदुके कारणसे मधुका कुल माधव वृष्णि और यादव इन तीन नामोंको प्राप्त हुआ था, परन्तु तो भी वृष्णि ही इस कुल में श्रेष्ठ था ॥२७॥ यदुका पुत्र क्रोष्टु,इसका पुत्र वृजिनवान्, वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि,उसका पुत्र रुशेकु, उसका सुत चित्ररथ और उससे महायोगी महाभाग शशबिन्दुकी उत्पत्ति हुई। यह प्रत्येक जातिके श्रेष्ठ चौदह महारत्नोंका (हाथी, रथ, स्त्री, बाण, निधि, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, माल्य,मणि,छत्र और विमानादिका)स्वामी और अपराजित चक्रवर्ती था॥२८॥ हे परीक्षित् ! इसके दश हजार १०००० स्त्रियाँ थीं। इनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके लक्ष-लक्ष १००००० पुत्र उत्पन्न हुए, जिससे सब मिलकर दश लाख हजार पुत्र जन्मे अर्थात् एक अर्व १०००००००००। इन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा इत्यादि छः पुत्र विख्यात हुए थे ॥२९॥ इन छः

पुत्रोंमें पृथुश्रवाका पुत्र धर्म हुआ, कि जिस धर्मके उशना पुत्रने सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये ॥३०॥ उशनाका पुत्र रुचक हुआ। इस रुचकके पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ यह पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥३१॥ इनमें ज्यामघकी भार्या शैब्या थी। इस ज्यामघके कोई सन्तान नहीं थी परंतु भार्याके डरसे और विवाह नहीं किया। यह एक समय इंद्रभवनसे भोज्या नामक कन्याको हरण करके ला रहा था ॥३२॥ कि उस कन्याको रथपर बैठे देखकर शैब्या अत्यन्य क्रोधित हुई और अपने पतिसे बोली कि कौन है ? जिसको मेरे बैठनेके रथपर चढ़ाकर ला रहे हो ॥३३॥ तब ज्यामघने भयके कारण उत्तर दिया कि यह तेरी पतोहू है। शैब्या विस्मित होकर बोली कि मैं तो वंध्या हूँ और मेरे कोई सौत भी नहीं कि यह कन्या जिसके बेटेकी बहू हो, फिर यह हमारी पतोहू कैसे हुई ? ॥३४॥ ज्यामघने कहा कि प्राणेश्वरी ! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी ही बहू होगी। हे राजन् ! विश्वे देव और पितृलोगोंने ज्यामघके इस दीन वचनपर आनन्द प्रकट किया, क्योंकि ज्यामघने पहले उनकी बहुत दिनों तक पूजा की थी, अतः उन्होंने कृपा करके वरदान दिया ॥३५॥ इसके उपरांत शैब्याको गर्भाधान हुआ और यथायोग्य कालमें इस रानीने एक श्रेष्ठ कुमार उत्पन्न किया। इस कुमारका नाम विदर्भ हुआ, फिर कुमार विदर्भने इस पतिव्रता कन्याका पाणिग्रहण किया, कि जिसको पिता हरण कर लाये थे और इसी राजा विदर्भने अपने नामसे विदर्भ देश बसाया ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा—चौबिसमाहिं विदर्भके, भये तीन सुत वीर।
रामकृष्ण तक वंश सब, कहौं सुनो मतिधीर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कुमार विदर्भने अपनी स्त्रीके गर्भसे कुश और क्रथ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये इसका तीसरा पुत्र रोमपाद हुआ ॥ १ ॥ इम रोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुसे कृतिने जन्म ग्रहण किया। कृतिका पुत्र उशिक, उससे चेदि और चेदिसे दमघोष राजा की उत्पत्ति हुई ॥२॥ हे राजन् ! विदर्भात्मज क्रथका पुत्र कुन्त हुआ, उसका धृष्टि, धृष्टिका पुत्र निवृत्त, उसके दशार्हनाम पुत्र हुआ, दशार्हके व्योम ॥३॥ व्योमका पुत्र जीमूत, जीमूतके भीमरथ और उससे नवरथने जन्म ग्रहण किया, उसका पुत्र दशरथ हुआ ॥४॥ उससे शकुनि, शकुनिके करंभि, करंभिके देवरात, देवरातके देवक्षेत्र, उसके मधु मधुसे कुरुवंश उत्पन्न हुआ कुरुवंशका पुत्र अनु ॥५॥ उसका पुत्र पुरुहोत्र, उसका पुत्र आयु और उससे सात्वतकी उत्पत्ति हुई। हे आर्य ! सात्वतके भजमान, भजिक, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज, ये सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥६॥ इनमें भजमान के दो स्त्रियाँ हुई। एक स्त्रीसे निम्लोचि, किंकिण, वृष्णि, ये तीन और दूसरी स्त्रीमें भी शताजित, सहस्राजित, और अयुताजित ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥७॥८॥ हे राजन् ! देवावृधकी संतान बभ्रु हुआ। इन पिता पुत्रके प्रसंगमें कवि लोग श्लोक ❋ गाया करते हैं। उस श्लोकका अर्थ यह है। हम दूरसे जैसा सुनते हैं निकटसे

❋ "बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू। तथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथान्तिकात् ॥ १ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ २ ॥

वैसा देखते भी हैं ॥ ९ ॥ महात्मा बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवावृध राजा देवताके समान हैं, इस वंशमें पंचषष्टि षट् सहस्र और आठ जो यह ६०७३ पुरुष हुए, ये सब बभ्रु और देवावृधके उपदेश मोक्षको प्राप्त हुए थे ॥१०॥ सात्वतके चौथे महाभोज अति धर्मात्मा थे। इनके वंशमें भोजगणोंकी उत्पत्ति हुई ॥११॥ हे परन्तप ! सात्वतके चौथे पुत्र वृष्णिके सुमित्त और युधाजित् नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। युधाजित्के पुत्र शिनि और अनमित्र हुए। उनमें अनमित्रका पुत्र निम्न हुआ ॥ १२ ॥ इस निम्नके सत्राजित और प्रसेन दो पुत्र हुए। राजन् ! अनमित्रके शिनि नामक एक दूसरा पुत्र जो था, उसके यहां सत्यक जन्मा ॥१३॥ सत्यकका पुत्र युयुधान (सात्यकि) युयुधानका पुत्र जय, जयका पुत्र कुणि और इस कुणिसे युगंधरका जन्म हुआ। हे कुरुश्रेष्ठ ! अनमित्रके वृष्णि नामक दूसरे पुत्रसे ॥१४॥ श्वफल्क और चित्ररथने जन्म लिये, श्वफल्कसे गांदिनीके गर्भमें अक्रूरजीके सिवाय और भी बारह पुत्र जन्मे, जो कि बड़े विख्यात हुए ॥१५॥ यथा—आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुवित गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन ॥१६॥ शत्रुघ्न, गन्धमाद और प्रतिबाहु बारह ये अक्रूरको लेकर तेरह पुत्र हुए और इनके सुचीरा नामक एक बहन भी हुई थी। अक्रूरजीके देववान् और उपदेव दो पुत्र हुए। चित्ररथका पुत्र पृथु, इसके अतिरिक्त विदूरथादि बहुतसे पुत्र हुए ॥१७॥१८॥ दूसरे कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष यह चार अंधकके पुत्र हुए उनमें कुकुरका पुत्र वह्नि और वह्निका पुत्र विलोमा ॥१९॥ उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र अनु हुआ, जिसका मित्र तुम्बुरु गन्धर्व था। उस अनुका पुत्र अन्धक, उससे दुन्दुभि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र अहिद्योत और उसका पुत्र पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए ॥२१॥ देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव, देववर्द्धन यह चार पुत्र उत्पन्न हुए। इन चार पुत्रोंके धृतदेवादि सात बहनें थी ॥ २२ ॥ यथा धृतदेवा, शांतिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी इन सात कन्याओंके साथ वसुदेवजीने विवाह किया ॥ २३ ॥ हे परीक्षित् ! उग्रसेनका पुत्र कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहु, राष्ट्रपाल, धृष्टि और तुष्टिमान् ये नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ और कंसा, कंसवती, कंका, शरभू, राष्ट्रपालिका, ये पांच कन्यायें वसुदेवजीके छोटे भाई जो देवभागादि थे इनकी भार्या हुईं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! पहले चित्ररथके बेटे विदूरथका जो वर्णन कर आये हैं, उस विदूरथके सूर उत्पन्न हुए, उसका पुत्र भजमान, उससे शिनिका जन्म हुआ, शिनिका पुत्र भोज और उससे हृदीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ उससे देवमीढ, शतधनु और कृतवर्मा, यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ उनमें देवमीढका पुत्र शूर हुआ। उसकी मारिषा नामक एक पत्नी थी, उसके गर्भसे शूरने दश पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम ये हैं—यथा वसुदेव, देवभाग, देवश्रवस, आनक ॥ २८ ॥ सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक। हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ उस समय स्वर्गसे देवतालोगोंने नगाड़े और ढोल बजाये थे ॥ २९ ॥ इसी लिये इन वसुदेवजीका एक नाम 'आनकदुन्दुभि' था, क्योंकि ये भगवान् हरिकी उत्पत्तिके स्थान थे। शूरसेनके इन पुत्रोंके अतिरिक्त वृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा ॥ ३० ॥ और राधिदेवा नामक पांच कन्यायें हुईं। यह इन दश पुत्रोंकी बहनें थीं। राजा शूरसेनने अपने सखा कुंतिराजको निःसंतान देखकर अपनी पृथा कन्या उसको दे दी ॥३१॥ हे परीक्षित ! किसी समय दुर्वासा ऋषिके गृहमें आनेपर पृथाने भली-

भांति सेवा कर उनको संतुष्ट किया और दुर्वासा मुनिने प्रसन्न होकर पृथाको देवाह्वान विद्या सिखा दी इसके उपरान्त पृथाने उस विद्याके बलकी परीक्षा करनेके लिये सूर्य भगवान्को बुलाया ॥३२॥ परंतु इस सूर्य भगवान्को तत्काल आता हुआ देखकर पृथा अति विस्मित हुई और विनयसहित यह वचन कहने लगी—हे देव! हमने केवल परीक्षाके लिये मन्त्र पढ़ा था, इस समय आपसे कोई विशेष काम नहीं है, इसलिये आप क्षमा करें ॥ ३३ ॥ यह सुनकर सूर्य भगवान् बोले कि देवदर्शन व्यर्थ नहीं होता, हम तुममें गर्भाधान करेंगे। पृथा बोली कि मैं कन्या हूँ अतः संसारमें दूषित हूँगी। सूर्यनारायणने कहा कि तुम कन्या समझकर अपने मनमें कुछ संकोच मत करो, हम ऐसा करेंगे कि जिससे तुम्हारी योनि दूषित नहीं होगी ॥३४॥ हे महाराज परीक्षित्! इस प्रकार गर्भाधान करके सूर्य भगवान् स्वर्गको चले गये। उसी समय दूसरे दिवाकरके समान पृथाके एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तो पृथाने लोकापवादसे डरकर उस पुत्रको संदूकमें बन्दकर नदीमें बहा दिया। इसके उपरांत पृथाको देखकर तुम्हारा परदादा महाराज सत्यविक्रम पाण्डु विवाह करनेके लिये ले गये ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित्! शूरसेनकी कन्या श्रुतवेदा कुरुवंशीय वृद्धशर्माकी भार्या हुई। उसमें दितिसुत दन्तवक्रने सप्तऋषि सनकादिके शापसे जन्म लिया ॥३७॥ और केकयवंशीय धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उससे सन्तर्दनादि पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ और अवन्तीके राजा जयसेनने राजाधिदेवीका पाणिग्रहण करके उससे बिंदु और अनुबिंदु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। हे राजा! चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ इसका पुत्र शिशुपाल उत्पन्न हुआ, कि जिसका वृत्तांत पहले वर्णन कर चुके हैं। अब वसुदेवजीके भ्राताओंका वृत्तांत कहते हैं। देवभागकी भार्या कंसाके चित्रकेतु और बृहद्बल ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ देवश्रवसकी भार्या कंसावतीके गर्भसे सुवीर और इषुमानने जन्म ग्रहण किया। आनककी वनिता कंकासे सत्यजित् और पुरुजित् ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥४१॥ सृञ्जयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष, दुर्म्मर्षणादि उत्पन्न हुए। श्यामककी शूरभूमि नामक भार्यासे हरिकेश और हिरण्याक्षने जन्म लिया। वत्सकने मित्रकेशी नामक अप्सराके वृकादि पुत्र उत्पन्न किये। वृककी पत्नी दुर्वाक्षीसे तक्ष, पुष्कर शालप्रभृति पुत्र उत्पन्न हुए। शर्माककी वनिता सुदामिनीने सुमित्र अर्ज्जुन और पाल इत्यादि पुत्र उत्पन्न किये। कंकने अपनी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतुधामा और जयनामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४२ ॥ हे महाराज परीक्षित्! वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अनेक पत्नियाँ थीं ॥ ४३ ॥ इन स्त्रियोंमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादि पुत्र उत्पन्न हुए ॥४४॥ पौरवीसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादि बारह पुत्र जन्मे ॥४५॥ मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और और शूरादि पुत्र उत्पन्न हुए। भद्राने कुलका आनन्द देनेवाला केवल केशी नामक एक ही पुत्र उत्पन्न किया ॥४६॥ रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद प्रभृति जन्मे। और इलामें उरुवल्क आदिसे लेकर यदु जिनमें मुख्य ऐसे अनेक पुत्र हुए ॥४७॥ धृतदेवाके वसुदेवसे विप्रष्टने जन्म ग्रहण किया। शांतिदेवामें प्रश्रम, प्रतिश्रुत, आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार उपदेवासे कल्प, वर्षादि दश पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीदेवके वसु, हंस, सुवंशारि छः पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४९ ॥ देवरक्षिताके गदप्रभृति नव पुत्र उत्पन्न हुए। जैसे साक्षात् धर्मने आठ वसु

उत्पन्न किये वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवामें पुरु विश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनसे देवकीमें आठ पुत्र उत्पन्न हुए, यथा—कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र, संकर्षण और अहीश्वर ये आठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे परीक्षित् ! वसुदेव देवकीके अष्टम पुत्र स्वयं विष्णु भगवान् हुए और तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्राजी भी उनसे ही उत्पन्न हुईं ॥ ५३ ॥ अधिक क्या कहें ? जिस जिस समय धर्मका क्षय अधर्मकी वृद्धि होती हैं, उसी-उसी समयमें भगवान् वासुदेव अपना अवतार लिया करते हैं ॥ ५४ ॥ नहीं तो जो लोग मायाके नियन्ता संगविहीन, सर्वसाक्षी, सर्वगत हैं उनका माया-विनोदके अतिरिक्त (सिवाय) जन्म अथवा कर्मका और क्या हेतु हो सकता है ॥ ५५ ॥ जिसकी मायाचेष्टा जीवके लिये अनुग्रहस्वरूप है, क्योंकि यह माया ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी निदान है, इसलिये जो सर्व जीवोंके अनुग्रह हैं फिर उनको कर्मादिके वश पड़कर जन्मादि सम्बंधकी क्या सम्भावना ? इनके मायाचेष्टित श्रूयमाण होनेपर उसके द्वारा सृष्टि-प्रभृतिकी निवृत्ति होनेपर वे ही जीवके मोक्ष होनेका कारण होते हैं ॥ ५६ ॥ हे परीक्षित् ! बहुतसी अक्षौहिणीके नृपरूपी असुरगण जब पृथ्वीको आक्रमण करते हैं और अपने बोझसे पृथ्वीको दबा लेते हैं तब भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान्का यह अवतार होता है ॥५७॥ क्योंकि जिन कर्मोंको सुरेश्वर लोग भी मनके द्वारा तर्क करके नहीं कर सकते भगवान् मधु-सूदन संकर्षणके साथ उन सब कर्मोंको लीलासे ही कर डालते हैं ॥५८॥ हे राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, यद्यपि वह संकल्प ही करके पृथ्वीके भारको हरण करनेमें समर्थ थे परंतु तो भी कलियुगमें जो भक्त होंगे, उनके प्रति अनुग्रह प्रकट करनेके लिये दुःख, शोक और तमोगुणका नाशक यह पुण्ययश भगवान्ने विस्तारित किया है ॥५९॥ यह श्रेष्ठ यश साधु-पुरुषोंके लिये कर्णामृत और श्रेष्ठ तीर्थस्वरूप है। केवल एक बार कर्णरूप अञ्जलिसे पान करनेपर पुरुष कर्म वासनाके त्याग देनेको समर्थ होता है ॥६०॥ इसलिये भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दाशार्ह, कुरु, सृञ्जय और श्रेष्ठ पाण्डुवंशीय सब मनुष्यगण भगवान्के चरित्रकी बड़ाई किया करते हैं॥६१॥उन्हीं भगवान्ने सुन्दर मनोहर मुसकान, दर्शन, उदारवचन, विक्रम-लीला और रमणीक मूर्तिके द्वारा सब मनुष्यलोकको प्रमुदित किया था ॥ ६२ ॥ मकराकार-कुण्डल, मनोहर कर्ण, चमकते-दमकते हुए कपोल, इन सबसे श्रीभगवान्का वदन अनुपम शोभायमान था, विलासयुक्त मुसकान मानो उसमें लगी हुई थी, इसलिये मानो सदा ही उत्सव होता था, उस वदनको दृष्टिके द्वारा पान करके नर नारी परितृप्त नहीं हुए अर्थात् वह सब आनंदित तो हुए थे परन्तु नेत्रोंको वारंवार पलक मारनेको न सहकर निमेषके बनानेवाले राजा निमिके ऊपर वारंवार कोप करते थे ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने अपने रूपसे जन्म ग्रहण किया, उसके पीछे मनुष्याकार हो पिताजीके घरसे व्रजको चले गये। वहांपर शत्रुओं का नाश कर व्रजवासियोंका अभिलाष पूर्ण कर धन सम्पत्तिको बढ़ाया। फिर बहु-तसी सुन्दरियोंसे विवाह कर उनसे सहस्रों पुत्र उत्पन्न किये, फिर लोकसमाजमें स्वकृत वेदमार्गका विस्तार करके अनेक यज्ञोंको कर आपने अपनी ही पूजा की ॥ ६४ ॥ फिर इन्होंने कौरव और पाण्डवोंमें द्वेष उत्पन्न कर पृथ्वीका भारी भार उतार दिया और दृष्टिसे ही युद्धभूमिमें खड़े हुए राजाओंको कम्पायमान कर दिया। फिर जब अर्जुनने रणमें

जय पायी तब उसकी कीर्तिका विकास कर उद्धवजीके परमतत्त्वका उपदेश किया और अन्तसमय अपने उसी स्वरूपसे परम धामको चले गये ॥ ६९ ॥ अब इसको समाप्त कर एक भजन लिखते हैं–

राग मालकोस

कृपासिंधु गोविंद दयानिधि, काम हमारो शीघ्र सँवारो ॥
तुम तो परमधामको धाये, भयो अनाथ आज व्रज सारो ।
अवसे कौन रह्यो या व्रजमें, गोप गायको पालनहारो ॥ १ ॥
कौन बचावै वृत्रासुरसे, नाथै कौन नाग अति कारो ।
कौन धरैगो कर पर गिरिवर, ऐसो कौन हमारो प्यारो ॥ २ ॥
ऐसो कोउ न दीखत व्रजमें, जाको अब हम तकैं सहारो ।
तुम विन सूनो परचो सकल व्रज, छाय रह्यो घरघर अँधियारो ॥ ३ ॥
चलती समय बात नहिं बूझी, कियो हमैं नैनन सों न्यारो ।
यह दुख हमसों सह्यो न जैहै, यकायकी तुम नेह बिसारो ॥ ४ ॥
प्रथमहि प्रभु जु मीनतनु धरकर, उदधिमध्य शंखासुर मारो ।
दूजे कच्छप रूप धारकर, मधु-कैटभ दानव संहारो ॥ ५ ॥
तृतिय वेष बाराह बनाकर, भूमिभार दन्तनपर धारो ।
वामन बन बलि छलो क्षणकमें, तीनलोकमें देह पसारो ॥ ६ ॥
धर नृसिंहको रूप भयंकर, हिरनाकुशको उदर विदारो ।
छठवें परशुराम तनु धर कर, क्षत्रिय वंश ध्वंस कर डारो ॥ ७ ॥
सप्तम रामचन्द्र जगपावन, रावण हित भक्तनको तारो ।
कृष्ण रूप धर सखन दियो सुख, कंस मार भूभार उतारो ॥ ८ ॥
बौध रूप धर धर्म सँवारो, सर्व जगतको संशय टारो ॥
कलिके अंत होयगो प्रभुजी, निष्कलंक अवतार तुम्हारो ॥ ९ ॥
भक्तकष्ट नहिं देख सकत तुम, तारे पामर पतित हजारो ।
गीध व्याध गज गाय अजामिल, नरसी धना भक्तको तारो ॥ १० ॥
नाथ कृपा कर एकबार फिर, व्रजमें आय अमिय पग धारो ।
शालिग्राम यही वर मांगत, सब संकट भ्रम मोर निवारो ॥ ११ ॥

इति श्रीभाषा भागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे माथुरवंशीय–मुरादाबाद निवासि–सुप्रसिद्ध-वैद्यवर लालाशालग्रामवैश्यकृते नवमस्कन्धे विदर्भवंशवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इति नवमस्कन्धः समाप्तः

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा नवम स्कन्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत-भाषा

दशम स्कन्ध १० (पूर्वार्ध)

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



* 'ब्रह्म' गोकुलमें और 'माया' मथुरामें *



यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदा गर्भसंभवाम् ॥४६॥ द. । अ. ३ ।

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

सवैया—जाकी कृपा शुक ज्ञानी भये, अरु ध्यानी भये शिवजू त्रिपुरारी ।
जाकी कृपा विधि वेद रचे, भये व्यास पुराणनके अधिकारी ॥
जाकी कृपाते त्रिलोकधनी सु कहावत श्रीब्रजचन्द बिहारी ।
मेरेहू काज करेगी सोई, सदा कृष्णप्रिया वृषभानुदुलारी ॥ १ ॥

कवित्त—काहूको भरोसो है गणेश शेष शारदाको, काहूको भरोसो है जु कालिका मशानीको । काहूको भरोसो उमा रमा सिया लक्ष्मीको, काहूको भरोसो महादेव ब्रह्मज्ञानीको ॥ काहूको भरोसो हनुमान गंग यमुनाको काहूको भरोसो सिंहवाहिनी भवानीको । तन मनसे यों कहै बार बार शालिग्राम, मोको तो भरोसो एक राधा महारानीको ॥ १ ॥

दोहा—हे मुकुन्द गोविन्द हरि, नन्दनँदन घनश्याम ।
चरण शरण मोहिं राखिये, कृपासिंधु सुखधाम ॥

श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित् बोले कि, हे दीनदयालु ! आपने प्रथम नवमस्कन्धमें चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जो-जो नामी राजा हुए उन दोनों वंशोंके सब राजाओंका अति विचित्र चरित्र विस्तारसहित वर्णन किया ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! धर्मशील महाराज यदुका वंश भी विस्तारपूर्वक आपने अच्छी रीतिसे कहा, परन्तु अब दया करके वह कथा कहो, जो महाराज यदुके वंशमें बलरामजीके साथ परिपूर्णरूपसे अवतार धारण करके संसारके सुख देनेको जो-जो अद्भुत लीलायें भगवान् वासुदेवने कीं, उनको विस्तार सहित हमारे सामने वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ सब प्राणियोंके प्रतिपालक भगवान् भूतभावनने यदुकुलमें जन्म लेकर जो-जो आश्चर्ययुक्त चरित्र किये वह भी सब यथावत् हमारे आगे कथन करो ॥ ३ ॥

भजन

कहो कृष्णके चरित मनोहर
कैसे कंस बंदिमें राखे, श्रीवसुदेव देवकी गहि कर ॥ १ ॥

कैसे भये देवकीके सुत, कैसे गये यशोदाके घर।
कैसे नन्दभवनमें प्रकटे, कैसे बजी बधाई घर घर ॥ २ ॥
कैसे कृष्ण दर्शको आये, नन्दमहरके घर शिवशंकर।
कैसे हनी पूतना हरिने, केशी कंस बकासुर निशिचर ॥ ३ ॥
कैसे दान लियो गोपिनसों, यमुना निकट बिकट पनघटपर।
कैसे लूट लूट दधि खायो, दियो सखनके दोना भरभर ॥ ४ ॥
कैसे रास रचो गोपिनसँग, मुरली अधर धरो मुरलीधर।
कैसे मान इन्द्रको मारो, कन उंगलीपर धरकर गिरिवर ॥ ५ ॥
कैसे हरे जाय यमुनापर, ग्वालनियोंके तनुके बस्तर।
कैसे कालीदहमें कूदे, नाथो नाग जाय जलभीतर ॥ ६ ॥
कैसे जाय द्वारका छाये, ग्वालबाल गोपिनसँग तजकर।
शालिग्राम श्यामसुन्दरके, कहो चरित्र विचित्र सविस्तर ॥ ७ ॥

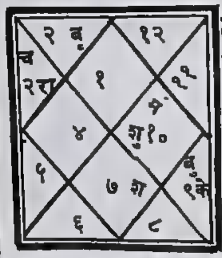
इस संसारमें तीन प्रकारके पुरुष हैं—एक तो ज्ञानी, दूसरे मुमुक्षु, तीसरे विषयी। इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको उत्तमश्लोक भगवान्के चरित्र परम प्रिय हैं, वे दिन रात उनको गाते रहते हैं और ज्ञानी लोगोंको परमेश्वरके चरित्र सुननेसे संसारकी सब वासना छूटनेका उत्तम उपाय दिखाई देता है और जिन मुमुक्षु जनोंका मोक्षकी इच्छा है ऐसे नारद, उद्धवादिकोंको संसार-रूपी रोगोंके दूर करनेको सजीवन मूल औषध है और विषयमें जिनका मन है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानोंको परमानन्दका देनेवाला यही विषय है, सिवाय आत्मघातीके और पशु-घातीके ऐसा कौनसा मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवादको सुनकर आनन्दित न होगा ? ॥ ४ ॥ चाहे कुछ हो, परन्तु हमको तो वृन्दावन विहारी भक्त हितकारीका गुण दिन-रात गाना और उनके उत्तम-उत्तम चरित्रोंकी कथा नित्यप्रति सुननी है, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र तो हमारे कुलपूज्य ही थे, संग्राममें देवताओंको भी पराजित करनेवाले पितामह भीष्म और दुर्योधन आदि महारथीरूप जिसमें वड़वानल, सौबल और दुःशासनरूप महागम्भीर नीर, जो भारी भीड़ वीर योद्धाओंकी जहां-तहां घूम रही थी, वही उसमें तरंगें, शल्य, द्रोण, कर्ण आदि महारथीरूप ग्राह थे, मर्यादारूप राजाओंकी कतार थी, उस कौरवरूपी अत्यन्त गम्भीर समुद्रने जो द्रौपदीका चीर हरा वही उस समुद्रका जो विस्तार था, ऐसे दुस्तर महासागरको मेरे पितामह युधिष्ठिर आदिकोंने भक्तिरूप नौकाका आश्रय लेकर बछड़ेके खुरके सदृश समझकर बेखटके पार उतर गये ॥५॥ इतनाही मत समझना कि भगवान्ने कृष्ण अवतार केवल पाण्डवोंकी सहायता के लिये धारण किया था, मेरे भी प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णजीने ही की थी। कौरव और पाण्डवोंकी सन्तानका बीजरूप जो मेरा यह देह अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध होनेको था उसी समय मेरी माता उत्तराने महादुःखी हो श्रीकृष्णकी शरण ली, तब उत्तराको दुःखी जानकर भगवान्ने चक्र ग्रहण कर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रवेश करके मेरे तनकी रक्षा की है ॥ ६ ॥ हे विद्वन्! सब जगत्के प्रकाश करनेवाले प्राणियोंमें परमपुरुष कालरूप, संसारको मोक्ष देनेवाले और उसी रूपसे दुरात्मा लोगोंको मृत्युके देनेवाले, जिन्होंने भक्तोंके

ऊपर दया करके नर शरीर धारण किया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला हमारे आगे कहो, हमको उनके पराक्रमोंके सुननेकी बड़ी लालसा है ॥ ७ ॥ बलदेव संकर्षणको आपने पहले तो देवकीका पुत्र कहा था, अब दूसरी बार रोहिणीका पुत्र कहा, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि दो माताओंसे एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ ? ॥ ८ ॥ भक्तभावन भगवान् अपने माता-पिता वसुदेव देवकीको छोड़कर व्रजमें नन्द यशोदाके घर क्यों गये ? और भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी जातिवालोंको संग लेकर कहां निवास किया ? ॥ ९ ॥ गोप सखाओंके संग नन्दकुमार भगवान्ने व्रजमें नन्द यशोदाके घर रहकर कौन-कौनसे उदार चरित्र किये ! और मथुरामें जाकर अपने मामा कंसको अपने हाथसे कैसे मारा ! मामाको मारना किसी प्रकार योग्य नहीं, फिर उसका वध क्यों किया ? ॥ १० ॥ हे प्रभो ! मनुष्य देह धारण करके भगवान् वासुदेवने यादवोंके साथ मथुरापुरीमें कितने दिन तक वास किया ? और श्रीकृष्ण महाराजकी कितनी स्त्रियां थीं ? ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ जो-जो प्रथम मैंने आपसे पूछा उसके सिवाय और जो कुछ चरित्र मेरे पूछनेसे शेष रह गये हैं उन सबको मेरे सामने वर्णन करिये, क्योंकि मेरा चित्त श्रीकृष्णके गुणानुवादके सुननेको अधिक चाहता है और इस विषयमें मेरी बड़ी श्रद्धा है ॥१२॥ हे मुनिवर ! यद्यपि यह क्षुधा पियास जगत्में परम दुःसह है तो भी वे मुझे दुःख नहीं दे सकतीं, क्योंकि आपके मुखारविन्दसे जो भगवान्की अमृतरूपी कथाका अमृत टपकता है, उसको पीता हूँ उसके पीनेसे मुझको भूख-प्यासकी कुछ बाधा नहीं होती ॥ १३ ॥ सूतजी बोले कि हे भृगुनन्दन शौनकजी ! इस प्रकार भागवतोंमें मुख्य श्रीशुकदेवजी महाराजने यह उत्तम प्रश्न सुनकर राजा परीक्षित्की प्रशंसा करके कलियुगके पापोंके नाश करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहना आरंभ किया ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजऋषियोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! आपकी बुद्धिने अच्छा निश्चय किया है कि जिस बुद्धिसे आपकी कृष्णकथामें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥१५॥ भगवान् वासुदेवकी कथा तीन जनोंको पवित्र करती है श्रोताको, वक्ताको और प्रश्नकर्ताको, जैसे श्रीगङ्गाजीका जल तीन जनोंको पावन करता है। दर्शन, स्पर्श, और पान करनेवाले अथवा पुरोहितको, यजमानको और ग्रहण करनेवालेको ॥१६॥ हे राजन् ! अभिमानी राजा जिनका सदा दैत्योंकासा स्वभाव उनकी अधिक सेनाओंके भारसे पृथ्वी अत्यन्त दुःखी होकर गायका रूप धर ब्रह्माजीके निकट गयी ॥ १७ ॥ हे राजन् ! शरीर जिसका क्षीण, मन मलिन, जिनको देखकर सबके मनमें दया उपजे, इस प्रकार रांभती-डकराती हुई ब्रह्माजीके समीप जाकर खड़ी हुई और अपना सब दुःख उनसे कहा ॥१८॥ ब्रह्माजी पृथ्वीका दुःख सुनकर सब देवताओंको और शिवजीको अपने संग लेकर क्षीरसागरके समीप गये, जहां विष्णु भगवान् शेषशय्यापर शयन कर रहे थे ॥१९॥ वहां जाकर ध्यानपूर्वक जगदीश्वर भगवान् अर्थियोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले देवोंके देव विष्णु भगवान्की पुरुष सूक्तके इन षोडश "सहस्रशीर्षा पुरुषः" मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ॥ २० ॥ समाधिमें ही ब्रह्माजीको आकाशवाणी हुई, उस वाणीको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि हे देवताओ ! मुझको श्रीनारायणकी आज्ञा हुई है, उसको तुम सब लोग सुनो और सुनकर विलम्ब मत करो, शीघ्र वैसे ही करो ॥ २१ ॥ हमारी प्रार्थनासे पहले ही भगवान् इस पृथ्वीका दुःख दूर करनेका विचार कर लिया है अब जबतक सर्वदेवपति भगवान् अपनी कालशक्तिसे वसु-

धराका भार उतारनेके लिये धरणीपर मनुज अवतार धारण न करें, तबतक तुम सब अपने-अपने अंशोंसे यदुकुलमें जाकर जन्म लो ॥ २२ ॥ वसुदेव देवकीके भवनमें साक्षात् आदि-पुरुष भगवान् आकर प्रकट होंगे। उनके संग विहार करनेके लिये और अपने हितके लिये देवपत्नी भी व्रजमें जन्म धारण करें ॥ २३ ॥ और सहस्र मुखवाले स्वयंप्रकाश विष्णु भगवान्की अनन्त कलासे शेषनागजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रके साथ लीला करनेके लिये बलभद्रनामसे प्रथम ही वासुदेवजीके घर जन्म धारण करेंगे ॥ २४ ॥ फिर देवकीके गर्भको खींचनेके लिये और यशोदाको मोह करानेके लिये सब संसारके मनको मोहनेवाली परमेश्वरकी माया भी भगवान्की आज्ञाको मानकर अपने अंशों सहित यशोदाके भवनमें उत्पन्न होगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने देवताओंको आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर आप अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥ (प्रथम यदुवंशियोंमें एक बड़ा राजा भजमान था, जिसके पुत्र राजा पृथिकु, पृथिकुके विदूरथ, विदूरथके पुत्र राजा शूरसेन,जिन्होंने नौखण्ड पृथ्वीको जीत मार्तण्डके समान संसारमें अपना प्रकाश फैलाया था। वह राजा शूरसेन मथुरापुरीमें वास कर माथुरदेश और शूरसेन देश का राज्य करता था ! उसकी रानीका नाम मारिषा, जिसके दश पुत्र और पांच कन्यायें थीं। उनमें ज्येष्ठ पुत्रका नाम वसुदेव जिनकी स्त्री देवकीके आठवें गर्भमें श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने जन्म लिया। जिस समय वसुदेवजीका जन्म हुआ था तब देवताओंने सुरपुरमें परमानन्द माना था। वासुदेवजी जब समर्थ हुए तब पहले तो राजा रोहिणकी कन्या रोहिणीके साथ विवाह किया। इसी प्रकार सत्रह पटरानी वसुदेवजीकी हुईं, फिर उन्होंने अठारहवां विवाह राजा देवककी पुत्री देवकीके साथ किया, जो कि कंसकी चचेरी बहन थी। जब देवकीको बिदा कराकर वसुदेवजी अपने घरको चले,उस समय आकाशवाणी हुई कि इसके आठवें गर्भमें कंसका विध्वंस करनेवाला प्रकट होगा। यह सुन कंसने वसुदेव देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया और वहीं श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने जन्म लिया इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे कृपासिंधु ! कंस कौन था ? और किस प्रकार उसका जन्म हुआ और किसके प्रतापसे ऐसा महाप्रतापी एवं तेजस्वी हुआ और कैसे वसुदेव-देवकीके घर देवकीनन्दन जगद्वन्द्यने अवतार लिया और किस प्रकार नन्दयशोदाको सुख दिया, यह सब विस्तारसहित मुझे समझाकर कहो। राजा परीक्षित्की मधुर वाणी सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वृष्णिवंशमें एक आहुक नाम मथुरापुरीका राजा था। उसके दो पुत्र हुए, एकका नाम देवक, दूसरा उग्रसेन। देवकके मरनेके पीछे उग्रसेन वहां का राजा हुआ, जिसकी एक ही स्त्री उसका नाम पवनरेखा था,वह परम सुन्दरी और बड़ी पतिव्रता थी। सदा अपने स्वामीकी सेवामें रहती और विना पतिकी आज्ञा कोई काम नहीं करती थी। एक दिन पवनरेखा मासिक धर्मसे शुद्ध हो, अपने पतिसे आज्ञा ले सखी-सहेलियोंके साथ रथपर चढ़ वनविहार करनेके लिये वनको गयी,जहां अनेक प्रकारके घने-घने वृक्षोंपर सुन्दर-सुन्दर फल लटक रहे, रंग-रंगके फूल-फूल रहे,मन्द-मन्द लहरोंसे ठण्डी-ठण्डी पवन बह रही, जिसके संचारसे सुगन्धकी लपटें चली आती थीं और जहां-तहां मोर,कोकिला, कीर,कपोत मनभावनी सुहावनी बोलियाँ बोल-बोलकर कलोल कर रहे थे और एक ओर पहाड़को धोती यमुना न्यारी ही लहरें लेती हुई चली आती थी। ऐसी मनोहर शोभा देखते ही

पवनरेखा रथसे उतर वनमें इधर-उधर घूमने लगी और सखी-सहेलियोंसे विछुड़ अचानक एक ओर अकेली महाभयंकर वनमें चली गयी ! दैवयोगसे द्रुमिलक राक्षस भी घूमता-घामता वहां आ गया। इसके यौवनकी छटा देख मोहित हो कहने लगा कि किस प्रकार मैं इससे भोग करूं ? यह विचार उग्रसेनका रूप धर पवनरेखाके सम्मुख जाकर बोला कि हे मनमोहिनी ! मुझसे भोग कर ! इस समय भोग करनेको मेरा चित्त अत्यन्त चाहता है। रानी बोली कि हे स्वामिन् ! दिनमें प्रसंग करना महादोष है, क्योंकि इसमें शील और धर्म-कर्म सब जाता है, क्या तुम ऐसे ज्ञानवान् होकर इस बातको नहीं जानते, जो ऐसे कुसमयमें भोगकी इच्छा करते हो ? पवनरेखाने बहुत समझाया परंतु उस द्रुमिलक राक्षसकी समझमें कुछ न आया और बलात्कार पवनरेखाका हाथ पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और अपना मनोरथ पूरा किया। जब उसकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी तब उसने वही अपना राक्षसी रूप प्रकट करके दिखा दिया, तब तो पवनरेखा अतिदुःखित हो अकुलाकर बोली अरे दुष्टात्मा ! पापी ! चाण्डाल ! तूने यह क्या छल किया ? जो मेरा पतिव्रतधर्म बिगाड़ दिया, धिक्कार है तेरे इस कुकर्मके सिखानेवाले गुरुको और तेरे जनक जननीको, जिन्होंने तुझसा कुपूत उत्पन्न किया, ऐसे अन्यायी पूतके जन्मनेसे तो बांझ ही भली थी। अरे पापी ! जो मनुष्यदेह पाकर किसीका सत्त्व डिगाता है, वह जन्मजन्मांतर नरकमें जाता है "अपना किया भोग तू आप। मैं तुझको देती हूं शाप" द्रुमिलक बोला कि हे सती ! क्रोध मत कर और मुझको शाप मत दे, मैंने तुझको अपने धर्मका फल दिया है, क्योंकि तुझको असन्तान देखकर मेरे मनमें अत्यन्त शोक हुआ अब परमेश्वरने मेरा शोक दूर कर दिया–"अबसे तुझे रहा आधान। होगा पुत्र महाबलवान्" वह ऐसा प्रतापी और तेजस्वी होगा कि अपने भुजदण्डके बलसे नौखण्ड पृथ्वीको जीत निष्कण्टकराज्य करेगा और आद्य पुरुषपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चन्द्रके हाथसे मरेगा, पूर्वजन्ममें मेरा नाम कालनेमि था; हनुमानके हाथसे मेरी मृत्यु हुई थी, अब जो जन्म लिया तो मेरा नाम द्रुमिलक हुआ। अब तुझको पुत्र दे दिया, किसी बातकी चिन्ता मत करना। यह बात कहकर द्रुमिलक तो चला गया और पवनरेखाने देखा कि अब शोक-सन्ताप करनेसे क्या होता है, भगवान्की इच्छा ऐसी ही थी, क्योंकि भगवान्की गति किसीसे जानी नहीं जाती, परमेश्वरको जैसा करना होता है वैसा ही संयोग बना देता है। प्रारब्धका लिखा किसी प्रकार मिट नहीं सकता, मेरे प्रारब्धमें ऐसा ही लिखा था। ऐसे विचार अपने मनमें धैर्य धर आगेको चली तो देखा कि सखियाँ खड़ी हैं, पवनरेखाको देखकर पूछने लगीं कि हे प्यारी ! इतनी देर तुम कहां थी ? और तुम्हारी क्या गति हो गयी ? हृदय धकधकाता है,शरीर कांपता है, श्रृंगार बिगड़ गया है, मुख पीला पड़ रहा है। पवनरेखा बोली–जब तुमने मुझे अकेली वनमें छोड़ दी तब मैं भूली-भटकी रोती फिरती थी। इतनेमें एक बन्दर कहींसे आ गया और उसने मुझको देखकर मुंह फैलाया और मेरी ओर को देखकर घूरा, उसके डरसे मैं वेसुध होकर पृथ्वीपर गिर गयी, जब वह चला गया, तो मैं इधरको भागी। अभीतक मेरा कलेजा धक-धक करता है और इससे मेरा शरीर पीला पड़ रहा है, यह बात सुन सबकी सब हक-चकीसी रह गयीं और घबड़ाकर बोलीं–अरी ! शीघ्र चलो, यह कहकर रानीको रथपर चढ़ाकर राजभवनमें ले आयीं। जब दश महीने व्यतीत हुए तो एक लड़का उत्पन्न हुआ उस समय ऐसी महाप्रलय कालकीसी भयंकर आंधी आयी, कि दशों दिशाओंमें अँधियारा

हो गया, लाखों वृक्ष जड़से उखड़-उखड़ कर कोसों तक उड़ते चले गये, दिनसे रात हो गयी, तारे टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे, भूमण्डल डगमगाने लगा, कूर्म कुलमुलाने लगा, बादल गर्जने लगे, बिजली तड़कने लगी। इस प्रकार माघसुदी तेरस बृहस्पतिके दिन रानीके पुत्र हुआ, फिर जब शांति हुई तब राजा उग्रसेनने अतिप्रसन्न होकर सब नगरके मंगलमुखियोंको बुलाकर मंगलाचरण कराकर याचकोंको इतना धन दिया, कि उनको अयाचक कर दिया, फिर ब्राह्मण और ज्योतिषियोंको बुलाकर अत्यन्त आदर-सत्कारसे उनको ऊँचे आसन दे-देकर बैठाया तब सब पंडितोंने अपने-अपने पुस्तक पत्रे खोल मुहूर्त विचार लग्न साध कुण्डली बनाकर कहा कि हे पृथ्वीनाथ! मृगशिरा नक्षत्रके तीसरे चरणमें राजकुमारका जन्म हुआ है, इसलिये बालकका नाम कंस रखना चाहिये और इसकी जन्मकुण्डली खींचकर देखी



तो मेष लग्न है, दूसरे स्थानमें बृहस्पति, तीसरे घरमें चन्द्रमा और राहु, सातवेंमें शनैश्चर, नवमें स्थानमें बुध और केतु, दशमें (राज्यभवन और पिताके) घरमें मंगल शुक्र और सूर्य हैं, बहुत अच्छे ग्रह पड़े हैं, यह लड़का आपके वंशमें ऐसा बलवान् और तेजस्वी होगा कि सब पृथ्वीके राक्षस इसके अधीन रहेंगे और साधु सन्त हरिभक्तोंको अधिक दुःख देगा और देवताओंको होम, यज्ञ, पूजा, तप नहीं करने देगा, आपका राज्य छीन तुमको अपने अधीन रखेगा और प्रजालोगोंको सदा सताता रहेगा। जब इसके अधर्म करनेसे संसारमें हाहाकार मचेगा और पृथ्वी महादुःख मानकर पुकार करेगी कि हे नाथ! यह महापापका भार मुझसे नहीं सहा जाता, तब वसुधाकी पुकार सुन विष्णु भगवान् अवतार लेकर इसको अपने हाथसे मारेंगे, ब्राह्मणोंका यह वचन सुन राजा उग्रसेन पहले तो अपने मनमें बहुत दुःखी हुए, फिर कहने लगे हरि इच्छा बलवती है; इसमें किसीका क्या वश है? यह समझ ज्योतिषियोंको द्रव्य और वस्त्र आभूषण दे विदा किया और कंस दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। जब पांच वर्षका हुआ तब नगरनिवासियोंके बालकोंको अनेक प्रकारके दुःख देने लगा और छोटे-छोटे बालकोंको पकड़कर वनमें ले जाता था और उनको मार-मारकर उनकी लोथें पर्वतोंकी गुफाओंमें डाल आता था और जो बड़े-बड़े लड़के मिलें उनको वृक्षोंमें रस्सी डाल-डालकर फांसी दे देता था। इस भयसे सब अपने बालकोंको दुराते-छिपाते रहे और घरसे बाहर नहीं निकलने देते थे कि कंस अन्यायी कहीं इनको पकड़कर न ले जाय। यह दुष्ट कंस राजा उग्रसेनका बिंदु नहीं है, किसी दुष्ट राक्षसने हमारे सतानेको इस भोलेभाले साधु पुण्यात्मा राजाके घरमें आकर जन्म लिया है। ऐसा विचार कर सब प्रजाने मिलकर राजा उग्रसेनसे निवेदन किया कि हे नाथ! यह कंस हमको रहने नहीं देता। हमारे बालकोंको मार मारकर यमुनामें बहा देता है आपके सिवाय अब हम किसकी शरण लें? प्रजाका दुःख सुन राजा उग्रसेनने कंसको बुलाकर उनके सामने उसे बहुत बुरा-भला कहा और समझाया, परन्तु उस पापी चाण्डालके चित्तमें कुछ न समाया, बरन् और दूना उन लोगोंको सताने लगा, तब राजा मनमें अत्यन्त दुखी होकर कहने लगा कि, हे पुत्र! तुझसे पुत्र होनेसे अपुत्र ही भला था। अरे दुष्टात्मा! तूने नहीं सुना कि जिसके घरमें दुष्ट सन्तान उत्पन्न होती है उसका यश और धर्म एकाएकी संसारसे उड़ जाता है, परंतु वह नीच किसीकी न सुनता था। उग्रसेन अपने मनमें अनेक प्रकारकी चिंता करते रहते और कहते कि यह निर्लज्ज उसी समय मर जाता तो मैं इतना क्लेश

क्यों पाता ? इसी भांति दिन-रात राजा शोच-शोच अपनी अवस्था व्यतीत करते थे,परंतु कंस-पर कुछ वश नहीं चलता था। जब कंस आठ वर्षका हुआ तब अकेला मगधदेशपर चढ़ गया। वहांका राजा जरासंध बड़ा प्रतापी और बलवान् था, उससे मल्लयुद्ध कर उसको परास्त किया। जरासंधने कंसको बलवान् जानकर अपनी दोनों पुत्री कंसको विवाह दीं, जब दोनों स्त्रियोंको लेकर आया तो पिताको शिर झुकाया और क्रोध करके बोला कि तुम नित्यप्रति क्या राम-राम कहा करते हो ? राम-राम कहना छोड़ दो और महादेवका नाम सदा लिया करो, क्योंकि शिव ही सब कल्याणके कर्ता हैं और वे ही सबके मनोरथ पूरे करते हैं ।

कबित्त–श्रेष्ठ गुण ज्ञान जाके कण्ठ वेद वाणी और, भौनमें भवानी सुख सम्मति रहा करै। कालकूट कण्ठ जाके चन्द्रमा ललाट जाके वासुकीसो दास जाके दारुण दहा करै ॥ चार वेद बन्दी जाके द्वारपाल नन्दिगण वरुण कुबेर यमराज हू हहा करै॥ जगत रिसाय यमराजकी कहा बसाय, शंकर सहाय तो भयंकर कहा करै ॥

यह सुनकर उग्रसेन बोले कि हे पूत ! आज तू हमारा नया गुरु शिक्षा देनेवाला उत्पन्न हुआ। मेरे तो कर्ता और दुःखहर्ता वही राम हैं, उनको छोड़कर इस अन्धकारमय संसारसे कैसे पार उतरूँगा?यह बात सुन कंसने उग्रसेनसे कहा–तो अब राम-राम कहना नहीं छोड़ोगे ? यह कह महा क्रोधकर एक लात मारी और राजसिंहासनसे उग्रसेनको नीचे ढकेल उसपर आप बैठा। सब नगरमें यह डोंडी पिटवा दी कि कोई मनुष्य जप, तप,दान,पुण्य, यज्ञ, होम न करे और रामका नाम न लेने पाये और जो कोई मनुष्य हमारी आज्ञा न मानेगा उसको यथायोग्य दण्ड दिया जायगा। फिर तो संसारसे शुभकर्मोंका नाम उठ गया। गो, ब्राह्मण, हरिभक्त महादुःख पाने लगे,जहां-तहां अधर्म होने लगा। इस अत्याचारको पृथ्वी न सह सकी, बोझकी मारी दबने लगी। जब सब पृथ्वीके राजाओंको कंसने जीत लिया तब एकदिन अपना सब कटक ले बेखटके राजा इन्द्रपर चढ़ गया।उस समय मंत्रियोंने कहा–महाराज ! विना सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये इंद्रासन किसी प्रकार आपको नहीं मिल सकता, आप यहां अपने बलका अभिमान न कीजिये, क्योंकि विना तप और यज्ञ किये इन्द्रासनकी इच्छा वृथा है, देखो अभिमानने रावण और कुम्भकर्णको कैसा खो दिया कि वंश नष्ट हो गया। इस प्रकार मन्त्री रात-दिन समझाते थे परंतु वह अहंकारी दुराचारी किसीकी न मानता था सत्य है जब दिन बुरे आते हैं तो वैसी ही बुद्धि हो जाती है। यदुपति शूरसेन पहले मथुरा पुरीमें वसता हुआ माथुर शूरसेन आदि देशोंको भोगता रहा ॥ २७ ॥ यह मथुरापुरी सदासे यदु-वंशियोंकी राजधानी थी और इसी मथुरापुरीमें श्रीकृष्णभगवान् सदा विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ कंसकी अनीतिसे उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहते थे और उग्रसेनका भ्राता जो देवक था उसकी कन्या देवकी जब विवाहके योग्य हुई तब उसने उग्रसेन और कंससे पूछा कि इस लड़कीका विवाह किसके साथ करें?कंस बोला–आजकल यदुवंशियों में शूरसेन बड़ा तेजस्वी और प्रतापी राजा है,उनके पुत्र वसुदेवके साथ इसका विवाह कर दो तो अच्छा है। देवकने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर शुभ लग्न निश्चित कर राजा शूरसेनके घर टीका भेज दिया। शूरसेन बड़ी धूमधामसे बारात सजाकर सब देशके नरेशोंको संग ले सब यदुवंशी मिल मथुरा-

पुरीमें वसुदेवजीको विवाहनेके लिये गये। जब बरात मथुराके समीप आयी तब उग्रसेन, देवक और कंस अपनी सेना संग ले आगे आये। आदर-सत्कारसे अगौनी कर बरातको नगरमें लाये और सुन्दर जनवासा दिया। फिर सब जनोंको अच्छे-अच्छे भोजन जिमाया और वेद विधिसे देवकने वसुदेवको कन्यादान दिया और बरातको बिदा किया। शूरसेनका पुत्र वसुदेव अपनी विवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथपर बैठे॥२९॥और उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी भगिनी देवकीके प्रसन्न करनेके लिये घोड़ोंकी रस्सी पकड़कर रथ हांकनेको बैठा। उसके संग सैकड़ों रथ रत्नजटित स्वर्णके और भी थे ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापर अत्यन्त प्रीति करनेवाले देवकने देवकीको बिदाके समय स्वर्णकी माला और रत्नजटित अम्बारीवाले चार सौ ४०० हाथी, दश सहस्र १०००० घोड़े, अठारह सौ १८०० रथ ॥ ३१ ॥ और शृङ्गारसहित सुन्दर सुकुमारी दो सौ २०० दासी उसकी सेवाके लिये दीं ॥ ३२ ॥ दूलह-दुलहनकी यात्राके समय मङ्गलके लिये शङ्ख, भेरी, मृदंग, दुन्दुभी आदि सब बाजे बरातके बजने लगे और उग्रसेन देवक आदि सब बरातके पहुँचानेको सङ्ग चले ॥ ३३ ॥ जब मथुरासे थोड़ी दूर बाहर बरात निकली और देवकीके रथके घोड़ोंकी बागडोर पकड़े जो कंस हांक रहा था, उस समय कंशको आकाशवाणी हुई, अरे मूर्ख! जिसको हर्षसहित तू पहुँचाने जाता है इसी देवकीके आठवें गर्भमें तेरे मारनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीको सुन वह अधम पापी भोजवंशियोंके कुलको कलङ्क लगानेवाला कंस बहनके मारनेके लिये उपस्थित हुआ और खड्ग हाथमें ले केश पकड़ देवकीको रथसे नीचे खींच लिया और क्रोधसे दांत चबा-चबा होठोंको काट-काट कहने लगा, कि जिस वृक्षको जड़से उखाड़ डाले तो फिर उसमें फल-फूल क्यों लगेगा? इसलिये इसीको न मार डालूँ कि जिससे पुत्र होनेका संशय ही न रह जाय; फिर निर्भय होकर अपना निष्कण्टक राज्य करूँ॥३५॥यह गति देख उस निंदनीय कर्म करनेवाले महामूर्ख निर्लज्ज कंसको बड़े ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी स्तुति और युक्तियोंसे और करुणा भरे मधुर वचनोंसे उसको शांत करके बोले कि हे कंस! तुम बड़े शूरवीर और योद्धाओंमें प्रशंसनीय गुणज्ञ और भोजवंशका सुयश फैलानेवाले हो। देखो इस समय एक तो विवाहका उत्साह, दूसरे यह साध्वी जाति स्त्री अबला, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन, फिर इस बिचारी दीन अबलाको मारना कौन धर्म है? बली कभी अबला पर हाथ नहीं डालते, क्योंकि स्त्रियोंके मारनेका शास्त्रमें महापाप लिखा है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जो मृत्युके भयसे इस बिचारी दीनको मारते हो तो मृत्यु तो किसी प्रकार मिटती ही नहीं, क्योंकि मृत्यु तो जन्म-धारी मनुष्योंके सङ्ग ही लगी रहती है, जिस मनुष्यका जन्म होता है, उसी दिन मृत्यु भी संग जन्मती है और जो अधिक जीवनके लिये इसको मारते हो तो आज, अथवा सौ १०० वर्षके अनंतर देहधारीका मरण निःसन्देह होगा ॥३८॥ और मनुष्यको उस समय पाप करना भी उचित है, यदि शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना न पड़े, यह कदापि हो नहीं सकता क्योंकि मरण समयमें भी यह प्राणी अपने वशमें नहीं रहता, यहां भी कर्मोंके अनुसार प्रथम दूसरे शरीरको प्राप्त कर लेता है, तब पीछे इस शरीरको त्यागता है॥

भजन—मृत्युने सब जग लीनो जीत।
इससे जगमें बचा न कोई, योगी यती अतीत ॥ १ ॥

रावण कुम्भकरण हरनाकुश, जो जो भये अजीत।
सो सब गये कालके मुखमें, गर्व गयो सब बीत ॥ २ ॥
कबहूँ तो बन जात पित्त कफ, कबहूँ बनकर शीत।
कबहूँ बन विषूचिका मारत, सब परिवार सभीत ॥ ३ ॥
इससे कोऊ बच न सकत है, पापी और पुनीत।
शालिग्राम न राखत जगमें, काहूसे यह प्रीत ॥ ४ ॥ ३९ ॥

जैसे चलनेके समय मनुष्य अपना अगला पांव सँभालकर रख लेता है, तब पिछले पांवको उठाता है, जैसे जोंक चलते समय पहले अगले तृणको पकड़ लेती है तब पिछले तृणको छोड़ती है, ऐसे ही यह देही जिसमें अनेक प्रकारसे संस्कार लग रहे हैं जीवात्मा दूसरे शरीरको प्रथम ग्रहण कर लेता है, पीछे पिछली देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखे हुए और सुने हुए देह जिसमें अनेक प्रकारसे संस्कार लग रहे हैं और मन उनके वशमें वह मन उसीमें वस देहका चिन्तन करता रहता है और वह मनुष्य स्वप्नमें भी वैसा नहीं देखता है और उसी देहको अपनी समझकर कहता है 'मैं हूँ,' यह मेरा देह दुःखी है, ऐसे अपने आपको राजा और इन्द्रादिकके समान मानकर अभिमान करता है और जाग्रत् देहकी सम्पूर्ण स्मृति भूल जाता है, फिर उसी संस्कार वाले मनसे मनोरथ करते-करते देहको भूलकर जाग्रत्में भी उसी प्रकारके मनोरथ देहको देखता है और थोड़ी देरमें कहने लगता है 'यह मैं हूँ' यह शरीर मेरा है, ऐसा मानता है और स्वप्नके देहकी स्मृति कुछ भी नहीं रहती इसी प्रकार कर्मोंके अधीन होकर पूर्व देहको छोड़ देता है और वैसा ही और देह प्राप्त कर लेता है॥४१॥फलके देनेवाले कर्मोंसे प्रेरित विकारोंसे भरा हुआ जो मन है,वह माया रचित पञ्चमहाभूतोंके बने हुए मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादिक जो शरीर हैं; जिस जिसकी ओरको दौड़ता है और अभिमानको बाँधता है उसी उस शरीरमें जीवको संग लेकर जन्म लेता है। यह मन ही सब बातका कर्ता हर्ता ठहरा तो मनको ही जन्म लेना चाहिये परंतु अकर्ता आत्मा क्यों जन्मता है? आत्मा उस मनको यह करके मानता है कि 'मैं हूँ' इस कारण आत्मा उस मनके साथ जन्म लेता है ॥४२॥ जैसे सूर्य चन्द्रमादिकोंका ज्योतिर्मय पदार्थ जलके भरे घटादिक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूप होकर पवनके वेगसे कम्पायमान प्रतीत होते हैं, ऐसे ही पुरुष अपनी अविद्या रचित देह में रोगके कारण प्रविष्ट आत्माभिमान करके मोहको प्राप्त होता है,आत्मामें देहादिककी भ्रान्ति होनेसे जैसे सूक्ष्म और स्थूल देहादिकके धर्म आत्मामें दिखाई देते हैं, वैसे ही देहादिकमें आत्माकी भ्रांति होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें दिखाई देते हैं इसलिये इंद्र और गर्दभादिके तनुमें प्रीति समान होनेसे मृत्युसे बचनेका प्रयत्न करना वृथा है॥४३॥ इसलिये अपने आत्माका कल्याण करने वाले प्राणियोंको चाहिये कि किसीसे शत्रुभाव न रखें। क्योंकि शत्रुता करने वाले पुरुषोंको दूसरे शत्रु और यमसे भी भय होता है ॥४४॥ इसी लिये हे राजन्! यह तुम्हारी छोटी बहिन है और अभी बालक है दीन है अबला है, देखो काठकी पुतलीकी नाईं तुम्हारे आगे खड़ी है और तुमको परमेश्वरने दीनहितकारी और स्वजनभयहारी बनाया है, यह मंगलरूपिणी आपके मारने योग्य नहीं है क्योंकि दीनको और पराधीनको मारनेका बड़ा दोष है ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरु-

वंशी राजा परीक्षित् ! ऐसे प्रिय वचन कहकर वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तो भी एक तो आप ही दुष्ट, दूसरे राक्षसोंका साथी, तीसरे आकाशवाणीका भय उस महा-क्रूर कंसने वसुदेवजीकी बात एक भी न मानी ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने समझा कि यह हठीला अपनी हठको कभी नहीं छोड़ेगा, ऐसा विचार और देवकीकी मृत्यु निकट आयी जानकर समय बितानेके लिये अपने मनमें यह विचार किया ॥४७॥ चतुर लोगोंको उचित है कि जहांतक अपना बल, विद्या, बुद्धि पहुँचे वहांतक मृत्यु दूर करनेका उपाय करें, जब इतने प्रयत्नोंसे भी मृत्युसे न बचे तो फिर पुरुषका कुछ दोष नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंशको देवकीके जो पुत्र होंगे उनके देनेका वचन देकर किसी प्रकार पहले तो इस दीन देवीके प्राण बचाऊँ । कदाचित् कोई कहे कि पुत्र देके देवकीके प्राण बचाये यह तो बड़ी अनीति है नहीं, समयका टाल देना बड़े चतुरोंका काम है, जब देवकीके पुत्र होगा उस समय देखा जायगा, अभी तो किसी प्रकार यह जीती बचे, न जाने बालकके जन्म होनेसे पहले यह दुष्ट कंस ही मर जाय तो फिर कुछ किसी बातका खटका ही न रहे कदाचित् इसके पुत्र ही न हो और जो पुत्र हो और कंस दया करके उसको न मारे तो अवश्य ही मेरा पुत्र कंसको मारेगा और जो यह उलटी बात न हो और कोई कहे कि तुम्हारा पुत्र बालक इस तरुण कंसको कैसे मार सकता है,तो आपही वसुदेवजी अपने वचनका समाधान करते हैं कि विधाताकी गति किसीके जाननेमें नहीं आती,जो प्राणी मरनेके योग्य हैं वे नहीं मरते हैं और जो मरने के योग्य नहीं वे मर जाते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ देखो जब वनमें आग लगती है तो जो वृक्ष जलने वाले नहीं वे समीपके बच जाते हैं और जो जलनेवाले दूरके होते हैं वे जल जाते हैं, जैसे गाँवमें अग्निके पासके घर जलनेसे रह जाते हैं और दूरके जल जाते हैं*श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जहांतक अपनी बुद्धि पहुँची वहांतक वसु-देवजीने विचार करके बड़े प्यारसे कंसका आदर-सत्कार किया ॥५१॥५२॥ कंसको विश्वास दिखानेके लिये वसुदेवजी लोकरीतिके सदृश प्रफुल्लित मुखकमलसे महाक्रूर निर्लज्ज कंसके सामने मुसकाकर बोले, परंतु मन तो अत्यंत ही दुःखी था ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे सौम्य ! जो भय आपके चित्तमें आकाशवाणीने उत्पन्न किया है वह भय तुम किञ्चिन्मात्र भी मत मानो,क्योंकि देवकीसे आपको कुछ भय ही नहीं है,इसके पुत्रोंसे कुछ भय है,वह भय मैं आपका

---

* इस बातपर एक मनोहर दृष्टान्त है—एक सेठजी मंदिरमें बैठे हनुमानजीकी पूजा कर रहे थे, उसी नगरमें आग लगी और सैकड़ों घरोंको फूंकती-फांकती सेठजीके निकट पहुँच गयी, तब तो सब लोगोंने सेठजीसे जाकर कहा कि, आग आपके घरके समीप आ गयी, शीघ्र पूजा छोड़-छाड़कर चलो । कुएँसे पानीके दश बीस घड़े भरकर रखो, जब घरपर आग आ गयी तो पानी कहां ? सेठजी बोले कि जिसकी हम पूजा करते हैं क्या वह आग नहीं बुझा सकता ? और वह हमारे घरको नहीं बचा सकता, हमको कुछ प्रयोजन नहीं, जिसका घर होगा वह आप बुझा लेगा, जब उसका नाम पवनपुत्र तो क्या अपने पिताको नहीं समझा सकता ? जिसके लिये हम बरसोंसे तनमन लगा रहे हैं, क्या वह एक घड़ीको भी हमारा काम नहीं कर सकता ? मुझको पूर्ण विश्वास है कि वह मेरा कार्य सिद्ध करेगा—

कवित

लंकको जरायो और सीताको बचाय दियो, आंच नहीं आई विभीषणके मकानको ।
लगते ही शक्तिके लखन गिरे पृथ्वी पं, ओषधिको भेजो राम वीर बलवानको ॥
मिली ना सजीवन तो पर्वत उठाय लाये, लखन जिवायो शिर नायो भगवान्‌को ।
दुष्टनके भक्षक रक्षक हरिभक्तनके, मोको तो भरोसो उन वीर हनुमानको ॥

उसी समय पुरवाई पवनसे पछाहियां पवन हो गयी और सेठजीका घर छोड़कर पवन पीछेको लौटी और सैकड़ों घर फूंक दिये, देखो किस-किसकी आशा थी और कौन-कौनसे घर जल गये । ऐसे ही प्राणियोंके जन्म-मरणका कारण भी विचारमें नहीं आता ।

दूर किये देता हूँ,जो कि पुत्र इसके होगा उसको मैं उसी समय आपको समर्पण कर दूँगा ॥५४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! वसुदेवजीके वचनको सत्य मानकर कंसने अपनी बहिनको मारनेसे छोड़ दिया और वसुदेवजी भी प्रसन्न हो कंसकी बड़ाई करके बरात समेत देवकीको लेकर अपने घर आये ॥५५॥ सब प्राणियोंके आत्मा वासुदेव भगवान्‌को पूजनेवाली देवकीने समय पाकर आठ पुत्र और एक कन्या एक-एक वर्षके उपरांत उत्पन्न किये ॥ ५६ ॥ प्रथम कीर्तिमान् पुत्र हुआ, उसको वसुदेवजी बड़े कष्टसे कंसके पास ले गये;क्योंकि मिथ्या बोलनेसे वसुदेवजी बहुत डरते थे ॥ ५७ ॥ अपने वचनोंका निर्वाह करनेवाले पुरुष ऐसी कौनसी वस्तु है जिसका सहन नहीं कर सकते ? देखो वसुदेवजीने अपने पुत्रको अपने हाथसे मृत्युके मुखमें दे दिया । एक परमेश्वरके सिवाय कोई पदार्थ सत्य नहीं है,ऐसे समझनेवाले मनुष्योंको किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, इसलिये वसुदेवजीने पुत्रके लाड़-प्यारको पहले ही त्याग दिया, क्योंकि विद्वान् पुरुषोंको सिवाय सत्यके और किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रहती, और वसुदेवजीने यह भी नहीं समझा था कि मैं पुत्रको आप ले जाऊँगा तो दया करके न मारेगा,यह बात वसुदेवजीके मनमें सैकड़ों कोसों तक भी नहीं थी,क्योंकि दुष्ट-जन कौनसी बात नहीं कर सकता, कंससे दुष्टके मनमें दया कब आ सकती है,कोई कहे कि पहले-पहल तुरतके जन्मे पुत्रको देवकीने कैसे दे दिया ? देवकीने समझा कि जिसका काल नहीं उसको मारनेवाला कोई नहीं और जो मार भी डाले तो ऐसे पुत्र बहुत होंगे । मेरे सच्चे पुत्र तो श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वैकुण्ठविहारी भक्तहितकारी हैं, यह समझ कंसको दे दिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी समता और सत्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे कंस बोला कि ॥ ५९ ॥ इस बालकको अपने घर फेरकर ले जाओ, क्योंकि इससे मुझको कुछ भय नहीं है । तुम्हारे आठवें पुत्र से मेरी मृत्यु निश्चित है ॥ ६० ॥ बहुत अच्छा ! यह कह वसुदेवजी पुत्रको लेकर अपने घरको चल दिये, परन्तु कंसके वचनका कुछ विश्वास नहीं किया, क्योंकि कंस क्षणिकबुद्धि है, उसका मन उसके वशमें नहीं है, अभी फेर दिया है, थोड़ा देरमें फिर मँगा ले । जब यह बात नारदजीने सुनी कि वसुदेव-जीका पुत्र कंसने फेर दिया, उसी समय आकर कंससे कहने लगे ॥ ६१ ॥ व्रजमें नन्दजी आदिसे लेकर जो गोप ग्वाल हैं और वसुदेवजी आदि लेकर वृष्णि यादव और देवकी आदिसे लेकर यादवोंकी स्त्री ॥ ६२ ॥ ये जो तुम्हारे समीपवर्ती हैं, हे कंस ! यह सम्पूर्ण वसुदेवजी और नन्दजीके वंशमें जाति, बन्धु, सुहृद यह सब देवता ही आकर प्रकट हुए हैं ॥ ६३ ॥ पृथ्वीपर जो दैत्यलोगोंका भार बढ़ा है, उसके उद्धारके लिये भगवान्‌ने अवतार लेनेके लिये यह उपाय रचा है, वह तुम जान लेना, फिर आठ लकीरें पृथ्वीपर खींचकर दिखायीं, इधरसे गिनी तो आठ हुईं और उधरसे गिनी तो आठ हुईं और बीचमेंसे गिनी तो भी आठ ही हुईं, तब नारदजी बोले कि आठवां गर्भ इनमें कौनसा समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ इस प्रकार समझा-बुझाकर नारदजी तो चले गये, तब कंसने यादवोंको देवता समझकर और देवकीके आठवें गर्भमें विष्णु भगवान् अवतार धारण करके मुझको मारेंगे यह निश्चय समझकर ॥ ६५ ॥ देवकी और वसुदेवको बन्दीघरमें बन्दकर पावोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी डाल दी और जो-जो इनके पुत्र हुए उन्हें विष्णु भगवान् की शङ्का मान मँगवाकर मारता रहा ॥ ६६ ॥ क्योंकि

संसारमें जो अपने प्राणोंकी रक्षा करने वाले अभिमानी, घातकी और लोभी राजा हैं वे माता, पिता, भ्राता और मित्रोंको भी मार डालते हैं ॥ ६७ ॥ कंस यह भी जानता था कि मैं पहले जन्ममें कालनेमि नाम एक बड़ा राक्षस था और विष्णुकी आज्ञासे महावीरजीने मुझको अपने हाथसे मारा था, अब मैं इस जन्ममें कंस हुआ, यही समझकर उसने यादवोंसे वैर किया ॥ ६८ ॥ यदुवंशी, भोजवंशी, अन्धकवंशियोंके राजा उग्रसेन अपने पिताको कारागारमें डालकर महाबली कंस आपही शूरसेन देशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे श्रीकृष्णजन्महेतुवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–इस द्वितीय अध्यायमें, कंस हतन हित देव ।
गर्भान्तर्गत देवकी, बिनवत विष्णु अभेव ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! प्रलम्बासुर, चाणूर तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुकासुर ॥ १ ॥ असुरोंके राजा बाणासुर और भौमासुरको सङ्ग लेकर मगध देशके राजा जरासन्ध आदि अपने सम्बन्धियों की सहायतासे महाबली कंस यादवों को अत्यन्त दुःख देने लगा ॥ २ ॥ यादवलोग कंसके भयसे दुःखित होकर कुरुदेश, पांचाल, कैकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, कौशलादि देशमें जा जाकर वास करने लगे ॥ ३ ॥ और बहुतसे अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी बन दिन-रात उसकी सेवा करने लगे । जब कंसने देवकीके छःबालक मार डाले ॥ ४ ॥ तब विष्णु भगवान् की कला शेषजी जिनका नाम कहते हैं, देवकीके गर्भमें स्थित हुए, यह गर्भ देवकीको हर्ष और शोकका बढ़ानेवाला हुआ, क्योंकि आनन्दरूप भगवान्का अवतार होगा, इस बातका तो हर्ष और पहलेके बालकोंके समान इस बालकको भी कंस मार डालेगा इस बातका शोक दिन-रात रहता था ॥ ५ ॥ तब विश्वभावन भगवान्ने जाना कि मेरे प्रिय यादवोंको कंस बहुत दुःख देता है उस समय अपने नेत्रोंसे योगमायाको प्रकट करके उसको आज्ञा दी ॥ ६ ॥ हे भद्रे ! हे देवी ! हे कल्याणरूपिणी ! जो ग्वाल और गौओंसे शोभित ब्रजभूमि है, तू वहां जाकर वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी नन्दरायजीके घर गोकुलमें है ॥७॥ और दूसरी वसुदेवजीकी स्त्रियाँ कंसके भयसे गुप्तस्थानमें वास करती हैं और देवकीके उदरमें मेरी कलारूप शेषनागजीने प्रवेश किये हैं, उनको वहांसे निकालकर रोहिणीके उदरमें पहुँचा दे, परंतु इस बातको कोई दूसरा न जाने और सब लोग तेरा यश बखान करें ॥ ८ ॥ हे मङ्गलरूपिणी ! जब तू गर्भको खींचेगी तो पीछे मैं परिपूर्ण रूपसे देवकीके पुत्रभावको प्राप्त हूँगा और तू नन्दरायजीकी भार्या यशोदाके उदरमें उत्पन्न हो॥९॥हे कल्याणि ! तू पुत्रादिकोंकी कामना करनेवाले मनुष्योंकी सब मनःकामना पूर्ण करनेवाली है और सब संसारके मनुष्य धूप, दीप, फल, फूलादि सामग्री और बलिदान भेंटकर कलियुगमें तेरा पूजन करेंगे और तू उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करेगी ॥१०॥ पृथ्वीपर मनुष्य तेरे स्थान, भवन और सुन्दर-सुन्दर मंदिर बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली,विजया, वैष्णवी ॥११॥ कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका इत्यादि नाम

धरेंगे ॥१२॥ गर्भके खींचनेसे संसारके लोग उस बालकका नाम 'सङ्कर्षण' कहेंगे और जगत्को रमानेवाले होंगे, अतः उनको 'राम' कहेंगे और महाबलशाली होनेसे उनको 'बलभद्र' कहेंगे। ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌की आज्ञा पाते ही उनकी परिक्रमा दे, वचनोंको स्वीकार करके पृथ्वीपर आकर वही कार्य किया और मोहिनी रूप बन मथुरामें वसुदेवके घर आयी और जो गर्भ छिपाकर लायी थी वह रोहिणीके उदरमें प्रविष्ट किया और सब गोकुलवासियोंने यही जाना कि पहला ही आधान है, योगमायाका भेद किसीको प्रकट न हुआ जब पूरे दिन हुए तो श्रावण शुदी चौदस बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और योगमायाने वसुदेव देवकीको स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारे पुत्रको ले जाकर रोहिणीको दे दिया है। अब तुम किसी बातकी चिन्ता मत करना। यह बात सुनते ही अचानक वसुदेव देवकी चौंककर सोतेसे जाग उठे और देवकी अपने पतिसे कहने लगी कि यह काम तो भगवान्‌ने बहुत अच्छा कर दिया, परन्तु कंसको इसी समय जाकर जता देना चाहिये, न जाने कि पीछे वह दुष्ट क्या उपद्रव मचाये? यह सोच समझकर रखवालोंको बुला सब वृत्तान्त कह दिया उन्होंने ज्योंका त्यों कंसको जा सुनाया कि हे महाराज! आज देवकीका गर्भ पतित हो गया बालक पूरा नहीं हुआ, यह बात सुनते ही कंस अकुलाकर बोला कि जो कुछ हुआ सो हुआ परन्तु अब आगे तुम आठवें गर्भकी अच्छी चौकसी रखना, क्योंकि मुझको आठवें गर्भका ही बड़ा खटका है ॥१४॥ वह योगमाया देवकीके उदरसे बालकको ले रोहिणीके उदरमें रख आयी, तब सब पुरवासी मनुष्य पुकार-पुकार कर कहने लगे कि अबकी बार कंसने अपनी बहन देवकीको ऐसा धमकाया कि उसका गर्भ अधूरा ही गिर गया, बालक पूरा होने नहीं पाया ॥१५॥अपने भक्तोंको अभयदान देनेवाले विश्वात्मा भक्तभावन भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे वसुदेव देवकीके मनमें आकर प्रकट हुए ॥ १६ ॥ जब वसुदेवजीके मनमें भगवान् आकर उपस्थित हुए, तब सूर्यके तेजके समान वसुदेवजीमें तेज हो गया, उस समय कोई मनुष्य, तेजके प्रकाशके कारण वसुदेवजीके सन्मुख न आ सके, ऐसा तेजस्वी वसुदेवजी हो गये॥१७॥ फिर विश्वके कर्ता सर्वात्मा मूर्तिमान् जो कि देवकीके पहलेसे ही विराजमान थे उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीके मनमें विराजमान किया, तब देवकीने भगवान्‌को इस प्रकार अपने मनसे अपने शरीरमें धारण कर लिया, जैसे पूर्वदिशा सर्वसुखदायक चन्द्रमाको परम प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करती है ॥ १८ ॥ जैसे घटके भीतर छिपे हुए दीपका प्रकाश नहीं होता और ज्ञानवंचक पुरुषोंमें छिपी हुई विद्या दूसरे लोगोंको आनन्द नहीं दे सकती वैसे ही सारे जगत्‌के निवासस्थानरूप भगवान्‌का निवासस्थान रूप होनेपर भी कंसके कैदखानेमें बंद होनेके कारण देवकी अधिक शोभाको प्राप्त नहीं होती थी ॥ १९ ॥ अजित भगवान्‌के देवकीके उदरमें रहनेसे कुछ-कुछ कांति झलकने लगी, उस कांतिने बन्दीगृहको प्रकाशवान् कर दिया और सुन्दर रूपवाली देवकी मन्द-मन्द मुसकाकर वसुदेवजीसे कुछ कह रही थीं, उसी समय वहां कंश आ पहुँचा और गर्भका प्रकाश देखकर कंस अपने मनमें कहने लगा कि मेरे प्राणोंका हरने वाला हरिरूप सिंह निश्चय इसी उदररूप यमगुफामें आकर बैठा है, क्योंकि पहले इस देवकीका इतना तेज नहीं था ॥ २० ॥ फिर तो कंस अपने मनमें अनेक प्रकारके विचार करने लगा कि अब मैं शीघ्र इसके लिये क्या उपाय करूँ? यह तो देवताओंका कार्य करनेको आ ही पहुँचा, अब सब प्रकारसे मुझको निश्चय होता है कि यह अवश्य

मुझको मारेगा, अब जो इस समय देवकीको मैं मारता हूँ तो संसारमें बड़ा अपशय होगा, क्योंकि एक तो स्त्रीकी जाति, दूसरे मेरी बहिन और उसपर भी फिर गर्भिणी, जो मैंने इसको मार डाला तो सब संसारमें मेरी अपकीर्ति होगी, दूसरे लक्ष्मी और आयुका नाश हो जायगा क्योंकि महात्माओंके मुखसे मैंने ऐसा सुना हैः--

दोहा–गर्भवती पर जो पुरुष, खैंचत है तलवार।
सात जन्म लौं नरकमें, जाय सहित परिवार ॥ २१ ॥

जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करता है, वह जीते जी ही मृतकके समान है और उसके सम्मुख ही लोग बुरा कहते हैं और बारम्बार धिक्कार देते हैं, निश्चय वह मनुष्य घोर नरकमें जाता है ॥२२॥ भगवान् वासुदेवसे वैर बांधकर पापरूप कंस आप मरनेको समर्थ (स्वतंत्र) था तो भी इस घोरतमभावसे आपही निवृत्त हो भगवान्के जन्मकी बाट देखने लगा ॥ २३ ॥ जब बैठते-उठते, सोते-जागते, भोजन करते और पृथ्वी पर विचरते, इंद्रियोंके ईश्वर भगवान्की ही चिन्तामें रहता था और सब जगत्को भगवत् रूप ही देखता था ॥ २४ ॥ इतनेमें ब्रह्मा, महादेव, नारदादिक मुनि और ऋषियों समेत देवता और गन्धर्व लोग वहां आकर गर्भमें ही सर्व कामनाओंके पूर्ण करनेवाले भगवान् वासुदेवकी मधुर वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ आप सत्यसंकल्प और सत्यपरायण हो, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें पृथ्वी, जल, पवन, तेज, आकाश इन पञ्चभूतोंके कारणरूप हो और पंचभूतोंके विनाश होनेके समय आप ही अवशिष्ट रहते हो, समदृष्टि और मनोहर वाणीप्रवर्तक और ज्ञानियोंके प्रेरणा करनेवाले सत्यरूप आप ही हो, हे नाथ! हम सब आपकी शरण आये हैं ॥ २६ ॥ यह देह ब्रह्माण्ड रूपी आदि वृक्ष आपकी मायासे उत्पन्न होकर आपके ही आश्रय रहता है और इसकी रक्षाके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं, इस वृक्षका आधार एक माया है। उसमें दो फल हैं सुख और दुःख। उसकी तीन जड़ हैं–सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण। उनमें चार रस हैं–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। उसमें पांच अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है नेत्र, रसना, नाक, कान, त्वचा। उसके छः स्वभाव हैं–क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु उससे सात प्रकारकी छाल हैं–रक्त, वसा, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, रेत। उसकी आठ शाखायें हैं–पृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। उसमें नौ खखोडल अर्थात् छिद्र हैं:– नेत्र दो, मुख, कान दो, नाकके दो छेद, उपस्थ और गुदा। उसमें दश पत्ते, हैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, और धनञ्जय। उसपर दो पक्षी रहते हैं– जीव और ईश्वर। यह देहरूप, वृक्ष है, कभी यह उपजता है, कभी कटता है, ऐसे ही यह देह कभी जन्म लेता है,कभी मरता है॥२७॥इस संसारके उत्पत्ति,पालन, संहार करनेवाले आपही हो। यह जगत् आपसे भिन्न नहीं है, आपकी मायाके वशीभूत हो जिनके चित्त भूल रहे हैं, वे लोग जगत्को आपसे भिन्न देखते हैं और आपको नानाप्रकारका जानते हैं और जो ज्ञानी पुरुष हैं वे आपको एक ही रूप मानते हैं ॥२८॥ हे प्रभो! एक रूप जो आप हो, ब्रह्मा बनकर जगत्को उत्पन्न करते हो, विष्णु बनकर रक्षा करते हो और शिव बनकर संहार करते हो। सत्त्वगुणसे संयुक्त सत्पुरुषोंको सुख देते हो और अधर्मियोंको दण्ड देनेवाले जो रूप हैं उनके लिये उनको धारण करते हो॥२९॥हे कमललोचन! समस्त जीवोंके जीवन आधार आप ही हो, इसीसे आपके विषे ज्ञानी पुरुष समाधि द्वारा चित्तको लगाकर महत्पुरुषोंकी सिद्धकी

हुई आपके चरणकमलरूप नौकाके आश्रयसे इस संसाररूप महासागरका अवगाहन करके बछड़ेके खुरके समान सुखपूर्वक पार उतर जाते हैं ॥३०॥ हे स्वयंप्रकाश! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वे महाभयंकर दुस्तर संसार समुद्रको पार उतरनेके लिये भजन, भावना और सम्प्रदाय यह जो आपके चरणकमलरूपी नौका है, उसको और दूसरे महात्माओंके पार उतरनेको छोड़ गये और आप भी पार उतर गये। प्रभो! आप अपने भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले हो ॥३१॥ हे कमलनयन! जो ज्ञानी पुरुष अपने आपको जीवन्मुक्त मानते हैं, वे आपके चरणारविन्दके विषे भावना नहीं रखते। इसीसे अशुद्ध बुद्धि बने रहते हैं और बड़े-बड़े कष्ट सहकर उच्च पदको प्राप्त होते हैं। वे उच्चपद किसको समझते हैं, कि उत्तम कुलमें जन्म होना और परिश्रम करके शास्त्रोंको पढ़ना, इनको ही उच्चपद जानते हैं, आपके चरणारविन्दकी भक्तिका निरादर करते हैं फिर पीछे विघ्नोंसे पराभव पाकर नीच योनिमें जन्म लेते हैं।

कबित–बने हैं अचारी कोई धर्मधुरधारी ध्रुव, कोई उपकारी बड़े कोई निर्विकारी हैं। कोई बड़े पण्डित बिरागसे न खण्डित अ,–दण्डित अवनिमें उद्दण्डित विचारी हैं॥ कोई षट शास्त्र पढ़े वाद औ विवाद बढ़े कोई कुल-काव्य गढ़े दया बढ़े भारी हैं। छाके नाहिं सीके पीके प्रेमरस पीके नीके कहा कीये जीके जीके फीके सुखकारी हैं॥

हे माधव! जो पुरुष आपके ही चरणोंमें प्रीति रखते हैं और आपके दास कहलाते हैं वे अपने मार्गसे कभी भ्रष्ट नहीं होते अर्थात् इन लोगोंको उन मिथ्याज्ञानियोंकी नाईं किसी प्रकारका विघ्न नहीं होता, वरन् हे प्रभु! आपके भक्त आपसे रक्षित होनेके कारण निर्भय होकर बड़े-बड़े भारी भयंकर विघ्नोंके माथेपर पाँव धरकर सदा संसारमें घूमते रहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे प्रभु! आप विश्वकी रक्षा करनेके समय सब प्राणियोंके पालनेके लिये और शुभ कर्मोंके फलदेनेके लिये शुद्ध सत्त्वगुण स्वरूप धारण करते हो। जिस स्वरूपसे ब्रह्मचारी वेद पाठसे, गृहस्थ कर्मयोगसे, वानप्रस्थ तपस्यासे, संन्यासी समाधिसे, सब अपनी-अपनी प्रीतिसे,आपका पूजन करते हैं। हे प्रभु! यदि आप संसारमें अवतार न लेते तो आपका पूजन बनना भी कठिन था, क्योंकि आपके सुन्दर स्वरूपकी मूर्तिमें भक्तोंका मन लगा रहता है ॥ ३४ ॥ हे विधाता! आपका सत्त्वगुण मूर्तिमान् सुन्दर स्वरूप प्रगट न होता तो अज्ञानका नाशक विज्ञान जो आपका प्रेरणा किया हुआ बुद्ध्यादिक गुणोंको प्रकाशित करता है, वह कैसा होता? और आपही सब प्रकारसे उन गुणोंके साक्षी हैं और ऐसे ही इन्द्रियोंके प्रकाशसे आपके स्वरूपका अनुमान होता है, परंतु आपका स्वरूप नेत्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान्! इस विश्वके परिपूर्ण साक्षी आप ही हो और आपके नाम, गुण, कर्म, जन्म वर्णन करनेमें नहीं आते। यद्यपि मन वाणीके द्वारा आपके स्वरूपका वर्णन नहीं होता, हे प्रभु! तो भी आपके जो भक्तजन हैं, वे ध्यान और उपासनामें आपके मनोहर स्वरूपका साक्षात् दर्शन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे मंगलरूप! आपके जो मंगलरूप नाम हैं उनको कानोंसे सुनते हैं, जिह्वासे उच्चारण करते हैं और दूसरे मनुष्योंको सुन्दर-सुन्दर आपकी कथा सुनाते हैं; स्मरण करते हैं और पूजनादिक क्रियाओंमें और आपके चरणारविन्दोंमें जिन मनुष्योंका मन लग रहा है फिर संसार

में उनका जन्म-मरण नहीं होता ॥३७॥ हे ईश ! आपके अवतार लेनेसे और आपके चरणारविन्द पृथ्वीपर रखनेसे भूमिका भार सब एक बार ही दूर हो जायेगा, यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपके छोटे-छोटे चरणारविन्द पृथ्वीपर जब पड़ेंगे और उनका हम दर्शन करेंगे तो आप अपने वैकुण्ठधामको जानकर पृथ्वी और स्वर्गपर कृपादृष्टि करोगे और उसको हम अपने नेत्रोंसे देखेंगे उस समय महामङ्गल होगा॥३८॥ हे भगवन् ! आप जो जन्मरहित हो, आपके जन्म लेनेका कारण सिवाय क्रीडा और विनोदके दूसरा और कोई हमारी समझमें नहीं आता। हे नित्य मुक्त ! प्राणियोंका भी जन्म, मरण और पालन केवल आपके स्वरूपको न जाननेसे होता है, यह अविद्या ही जन्म-मरणका मुख्य कारण है ॥ ३९ ॥ हे भक्तवत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम, वामनादि रूप धरकर आपने जिस प्रकार त्रिलोकीकी और हम लोगोंकी पहले रक्षा की थी, उसी प्रकार अब सब पृथ्वीका भार उतारो ! हे वैकुण्ठविहारी ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ अब सब देवकीसे कहते हैं कि हे माता हमारा कल्याण करनेके लिये साक्षात् परम पुरुष भगवान् अपने परिपूर्ण रूपसे तुम्हारी कोखमें आये हैं, यह आनन्द हुआ। हम निश्चितरूपसे कहते हैं कि अब कंसभी इनके ही हाथसे मारा जायगा। तुम किसी प्रकार मत डरो, तुम्हारा पुत्र सब यादववंशकी रक्षा करनेवाला होगा ॥ ४१ ॥

कबित–फेर देवकीसों सबै देव अस बोलेबैन, आदिपुरुष विश्वात्मा धाम है अशोकको। जगको निवास सो निवास्यो तेरी कुक्षिमाहिं, त्रास नाशबेको सब देवनके थोकको ॥ हे जननि जगमात धीर धरो धीर धरो, कंसकाल आय गयो काम नाहिं शोकको। यदुवंशपाल रु दुष्टकुल घालक सो, ह्वै है तुव बालक जो मालिक त्रिलोकको ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जिसका स्वरूप कहनेमें नहीं आये ऐसे जो परमपुरुष भगवान् हैं, उनकी इस प्रकार यथावत् स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजीको आगे करके सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेगर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–इस तृतीय अध्यायमें, प्रकट भये व्रजचन्द।
हरिको ले वसुदेवजी, गै गोकुल गृह नन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! जब श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्दके प्रकट होनेका समय आया वह समय सर्वगुणसम्पन्न परम शोभायमान हो गया और सुधाकर रोहिणी नक्षत्र पर आ गया, एवं शांतियुक्त शुभ ग्रह तारागण हो गये ॥ १ ॥ दशों दिशायें उज्ज्वल हो गयीं, आकाश निर्मल हो गया, समस्त तारागण उज्ज्वल उदित हुए पृथ्वी परममंगलरूपिणी हो गयी। पुर, नगर, ग्राम, ब्रज, आकर, वन, वाटिका अत्यन्त रमणीक शोभायमान दृष्टि आने लगे ॥ २ ॥ नदनदियोंका जल स्वच्छ और शीतल हो गया, तालोंमें कमल कमलिनी खिल गये, भ्रमर उन सुन्दर-सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंको सूंघ-सूंघकर उन्मत्त हो गुंजारने लगे, वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियाँ बोलने लगे ॥३॥

सुखदायक शीतल, मन्द, सुगन्धिसनी पवन बहने लगी, ब्राह्मणोंके होमकी अग्नि शान्त प्रज्वलित हो गयी ॥४॥ सिवाय कंसादिक राक्षसोंके सब महात्माओंके मन प्रसन्न हो गये। स्वर्गमें भगवान्‌के अवतारसूचक दुन्दुभी बजने लगी ॥५॥ किन्नर-गन्धर्व भगवान्‌का यश गान करने लगे। सिद्ध, चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियाँ और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥६॥ मुनि और देवता व्रजपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, समुद्र आनन्दमें भरकर लहरें लेने लगा, मेघ मन्द-मन्द शब्दसे गर्जने लगे, चपला क्षण-क्षणमात्रमें चमकने लगीं ॥ ७ ॥ इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधी रातके समय देवरूपिणी देवकीकी कोखमें सर्वान्तर्यामी भक्तभावन भगवान् साक्षात् अपने रूपमें प्रकट हुए जैसे आधीरातके समय पूर्वदिशामें पूर्णमासीका चंद्रमा उदित होता है ॥ ८ ॥

छन्द

सरसिज युगनैना सुषमाऐना, दायक चैना अनियारे कछु अरुणारे।
भुज चार विशाला, उर बनमाला, मनहु रसाला कर धारे आयुध चारे॥
श्रीवत्स ललामा जलधरश्यामा, तनु अभिरामा दुख भारे नाशनहारे।
मणिमुकुट विराजै कुण्डल राजै, अलक समाजै मदहारे अहिसुतकारे ॥ ९ ॥
कंकण करमाहीं अतिहि सुहाहीं,अरु भुज पाहीं छबि खासी कटि चौरासी।
पट पीत सुहावन तडितलजावन, मुनिमनभावन छबिरासी अंगदभासी ॥
सोहत नखश्रेणी मुनिमुददेनी, शशिछबिलेनी अघनाशी सुरसरि तासी।
मंजुल मंजीरा जटित सुहीरा, छबिगम्भीरा पद वासी जो सम कासी ॥१०॥

विष्णु भगवान्‌को अपना पुत्र जान आश्चर्यसे वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और मनमें धैर्य धर उसी समय दश सहस्र गोदानका मानसिक संकल्प ब्राह्मणोंको देनेके लिये किया॥११॥ हे भारत! हे अभिमन्युकुमार! उस बालककी कांतिसे प्रसूतिकागार ऐसा प्रकाशमान हो रहा था कि किंचिन्मात्र भी अन्धकार नहीं रहा। वसुदेवजी पुत्रको परब्रह्म परमात्मा समझकर उनके प्रभावको देख शुद्धि बुद्धिसे हाथ जोड़, शिर झुकाकर, निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥१२॥हे भगवन्! आपको मैंने भलीभांति जाना, आप मायासे परे साक्षात् परम पुरुष हो, केवल अनुभव और आनंद ही आपका स्वरूप है और सम्पूर्ण जनोंकी बुद्धिके द्रष्टा हो ॥ १३ ॥ मैं भलीभांति जानता हूँ कि आप वही हैं, जिन्होंने पहले अपनी मायासे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण रूप यह विश्व रचा है, आप उसमें प्रविष्ट नहीं होते और सद्रूपसे प्रविष्ट सदृश देखनेमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सातों पदार्थ, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेंद्रिय और ग्यारवां मन, पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन सोलह विकारोंके संग मिलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको रचते हैं और पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्डके उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं रखते ॥ १५ ॥ और उत्पन्न होनेके उपरान्त ब्रह्मांडमें प्रविष्ट होकर जैसे जाननेमें आते हैं, यथार्थ रीतिसे प्रथम कारणरूपसे प्रविष्ट ही थे, इस कारण उत्पन्न हुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना सम्भव नहीं हो सकता, ऐसे ही आपका प्रवेश पीछेसे सम्भव नहीं ॥ १६ ॥ और ऐसे ही आपके रूप बुद्ध्यादिक

इंद्रियोंसे जाननेमें नहीं आते, विषयोंमें अपार हो, परंतु विषयोंके साथ आप ग्रहण करनेमें नहीं आते, जैसे नेत्रोंमें रूप ही देखनेमें आता है, रसका ज्ञान नेत्रोंसे किसी प्रकार नहीं हो सकता, ऐसे विषयोंके ग्रहणमें आपका ग्रहण नहीं हो सकता। परिच्छिन्न पक्षीका घोसलेमें प्रवेश होता है, आप अपरिच्छिन्न हैं, इसलिये आपके स्वरूपमें बाहर-भीतरका भेद नहीं है, गर्भमें आप कब रह सकते हैं। आवरण करके रहित हो, सर्वस्वरूप हो, सर्वात्मा हो, सर्वव्यापक हो और परमार्थ वस्तुरूप हो॥१७॥आत्माके जो दृश्यगुण देहादिक हैं उनको आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानते हैं वह अतिशय अज्ञानी हैं। विचारकर देखो तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूठ ही है इसलिये झूठे देहादिकोंको जो पुरुष सत्य मानते हैं वे अज्ञानी हैं॥१८॥ हे विभो! निरीह, निर्गुण, निर्विकार आपही हो। आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता है, आपही ईश्वर और ब्रह्मस्वरूप हो, इसलिये आपसे कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेकर तीनों गुण ही विश्वको रचते हैं, इसीलिये आपका नाम कर्त्ता है॥१९॥ आप अपनी मायासे सृष्टिके पालनके लिये सत्त्वगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप धारण करते हो और जगत्की उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मादिरूप धारण करते हो और विश्वके संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारण करते हो॥ २०॥ हे सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण! हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर! आप इस विश्वका पालन करनेके लिये मेरे घरमें उत्पन्न हुए हो और क्षत्रिय जिनका नाम, ऐसे करोड़ों असुरोंके समूह जहां-तहां चलायमान हो रहे हैं, उनका विध्वंस करोगे॥ २१॥ हे देवेश! दुष्ट कंसने तुम्हारे जन्मका वृत्तान्त हमारे घरमें सुनकर आपके बहुत भ्राता मार डाले हैं, अभी जो कोई मनुष्य उस दुष्टसे कह देगा कि आपका अवतार हुआ तो वह सुनते ही शस्त्र हाथमें लेकर यहां चला आयेगा॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब इस प्रकार वसुदेवजी स्तुति कर चुके तब पीछे देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्के सब लक्षण जानकर और मधुर मुसकान देख कंसके भयसे धीरे-धीरे पुत्रकी स्तुति-करने लगी॥२३॥ अनादि, व्यापक, ज्योतिस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, दिव्यगुण-राशि, निर्विशेष और चेष्टारहित जो तुम हो, यह स्वरूप किसीके जाननेमें नहीं आता। वेद आपके स्वरूपका वर्णन करते हैं, तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवाले साक्षात् विष्णु भगवान् हो॥ २४॥ जिस समय ब्रह्माजीकी सौ १०० वर्षकी अवस्था होती है, उस समय प्रलयकालमें सब लोग नष्ट हो जाते हैं। पंचमहाभूत अपनी-अपनी तन्मात्राओंमें मिल जाते हैं और तन्मात्रा प्रधानमें लीन हो जाती हैं, प्रधानके जाननेवाले उस समय केवल एक आपही अजन्मा अवशिष्ट रह जाते हो॥ २५॥ हे मायाप्रेरक! यह जो काल है इसको अपनी माया वर्णन करती है। इसी कालसे विश्व होता है, पल आदिसे लेके जिसकी वर्षतक गणना है यह परार्द्धरूपसे बड़ा है, ऐसे आप निर्भयरूप हो, मैं आपकी शरणागत हूँ॥२६॥ हे आदिपुरुष! सब मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयसे सब लोकोंमें भागे-भागे फिरते हैं और उनको बैठनेके लिये निर्भय स्थान कहीं नहीं मिलता, जब किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे आपके चरणारविन्दका आश्रय मिल जाता है, तब उस निर्भय स्थानको प्राप्त करके निर्भय होकर सो रहता है, फिर मृत्यु भी उसके निकट नहीं आती; दूरसे दूर भागती है॥ २७॥ महाभयानक स्वरूपवाला उग्रसेनका पुत्र जो कंस है उससे हम भयभीत हैं, उस दुष्टसे आप हमारी रक्षा करो। भक्तोंके भय दूर करनेवाले और जाननेवाले, ध्यान करनेके योग्य आप भगवान् स्वरूप हो,

अब आप अपने इस श्याम सुन्दर स्वरूपको चर्मचक्षुवालोंको मत दिखाओ ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो मेरे यहां हुआ है इस बातको यह पापी कंस न जानने पाये, क्योंकि अधीर चित्तवाली स्त्री जाति जो मैं हूँ, आपके कारण उस कंसके भयसे अत्यन्त भयभीत हूँ ॥२९॥ हे विश्वात्मक ! शंङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे शोभायमान जो यह आपका चतुर्भुज और अद्भुत स्वरूप है इसको छिपा लो ॥ ३० ॥ यह जो जगत् प्रत्यक्ष कालमें दृष्टि आता है, प्रलयकालके समय विना परिश्रम ही उस सृष्टिको आप अपने उदरमें धारण कर लेते हो, आप मेरे गर्भमें प्राप्त हुए हो, यह बड़े हास्यकी बात है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र मुसकाकर बोले कि अहो मातः ! तुमको अपने पूर्वजन्मकी सुध नहीं है, उसे सुनो, स्वायंभुव मन्वन्तरमें पहले तुम्हारा पृश्नि नाम था और वसुदेवजी उस समय पापरहित सुतपा प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ तब तुम दोनोंको ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी तब आपने इन्द्रियोंको रोककर बड़ा भारी तप किया ॥३३॥ वर्षा, वायु, धूप, गर्मी, शीत, इन सब कालोंके गुणोंका ग्रहण किया और श्वास रोककर मनके मैलको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥ सूखे पत्र और पवनका भोजन करके वर्षोंतक रहे और मुझसे वरदान प्राप्त करनेके मनोरथसे आप दोनों जन शान्तचित्त हो मेरी आराधना करने लगे॥३५॥ हे मातः ! तुम दोनों जनोंने मुझमें चित्त लगाकर बड़ा भारी तप किया और करते-करते देवताओंके बारह सहस्र वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप ! जब तुमने तप करनेके समय श्रद्धा भक्तिसे हृदयमें मेरा ध्यान किया उसी समय इस देहसे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तुम दोनोंके मनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये मैं उसी समय इसी शरीरसे आपके सम्मुख आकर प्रकट हुआ और आपसे कहा 'वर मांगो', 'वर मांगो', 'वर मांगो'। तब आपने यह वर मांगा कि हे भगवन् ! जो आपके वर देने की इच्छा है और हमपर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि आपके समान हमारे पुत्र हो ॥३८॥ संसार के विषय सुख आपने नहीं भोगे थे और कोई सन्तान भी नहीं थी, आपने मेरी मायासे मोहित होकर मुक्ति नहीं मांगी ॥३९॥ उस समय मैंने तुमको मनोवांछित वर दिया कि "तुम्हारे मेरे ही समान पुत्र होगा" तुमको यह वर देकर मैं अन्तर्धान हो गया और अपने मनोरथ प्राप्त करके विषयोंका सुखभोग भोगने लगे ॥ ४० ॥ जब मैंने शील, उदारता आदि गुणोंसे युक्त अपने सदृश दूसरा कोई पुरुष कहीं नहीं देखा; तब पृश्निगर्भ नामसे विख्यात होकर मैं ही आपका पुत्र हुआ ॥ ४१ ॥ फिर पीछे दूसरे जन्ममें आप कश्यप और अदिति हुए। वहां भी मैंने उपेन्द्र नामसे आपके ही घर आकर फिर जन्म लिया। हे जननि ! उस अवतारमें मेरा शरीर बहुत छोटा था, इसलिये मेरा नाम वामन विख्यात हुआ ॥४२॥ फिर अब तीसरी बार उसी रूपसे आपके घर जन्म लिया है। हे मातः ! मेरा वचन सत्य मानो। देखो तुमने एक बार वर मांगा, मैंने तुम्हारे घर तीन बार जन्म लिया ॥४३॥ पहले जन्मका स्मरण करानेके लिये मैंने तुमको यह रूप दिखाया है, जो और प्रकारसे मनुष्यके बालकका रूप धरकर प्रकट होता तो तुम क्या जानते ? और तुमको कैसे विदित होता कि परमेश्वरने हमारे घर आकर अवतार लिया ॥ ४४ ॥ अब आपकी इच्छा है चाहे पुत्र भावसे मेरा सम्मान करो चाहे ईश्वर जानकर मेरा ध्यान करो, मुझसे स्नेह करोगे तो परम गतिको प्राप्त होगे ॥ ४५ ॥ और जो तुमको कंसका यह भय है कि मेरे इस पुत्रको भी वह दुष्ट मार डालेगा, तो तुम मुझको

गोकुलमें नन्दरायजीके घर पहुँचा दो और यशोदाके गर्भसे प्रकट हुई जो योगमाया है उसको इसी समय अपने घरको ले आओ ॥ ४६ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह बातें समझा-बुझाकर भगवान् चुप हो गये और अपनी मायासे माता-पिताके देखते साधारण बालक हो गये ॥४७॥ वसुदेवजीसे भगवान्ने यह जो कहा था कि जो तुमको कंसका भय है तो मुझको गोकुल पहुँचा देना और यशोदाकी कन्या जो मेरी मायारूप है उसको यहां ले आना। पुत्रकी अद्भुत छबि देखकर वसुदेवजीको इस बातका कुछ ध्यान न रहा, वे देवकीसे कहने लगे कि हे प्रिये ! अब क्या उपाय करूं और ऐसे मनोहर पुत्रको कहां छिपाऊं ? चाहे मेरा धर्म न रहे, परन्तु इस पुत्रको तो मैं कंसको कभी न दूंगा। देवकी बोली कि हे स्वामी ! मेरी भी यही इच्छा है परन्तु इस समय कोई ऐसा उपाय करो जो उस हत्यारे कंसके हाथसे इस बालकके प्राण बचें; इसको कहीं और ही ठौर पहुँचा दो। वसुदेवजी बोले हे प्रिये ! इस समय ऐसा कौन हमारा हितकारी है जो इस हमारी भारी विपत्तिमें आकर सहायता करे। यहां तो कोई बात मुखसे निकालते डर लगता है, क्योंकि नङ्गी तलवारें लिये रखवाले शिरपर जाग रहे हैं, पांवोंमें बेड़ी पड़ी है; प्रथम तो यहांसे निकलना ही कठिन है और जो किसी प्रकार यहांसे निकल भी गया तो उस दुष्टके सम्मुख ऐसा कौन सामर्थ्यवान् है, जो हमारे बालकको अपने घर रख ले। सत्य है, विपत्ति में कोई किसीका नहीं होता। यह कहते-कहते वसुदेवकी आंखोंमें आंसू भर आये,तब देवकी बोली कि हे पति ! यह समय रोनेका नहीं है, धैर्य बांधो और अब जो इतना दुःख मानते हो तो उस समय कंसके हाथसे मुझे क्यों बचा लिया,काहेको ऐसा कठिन दुःख देखना पड़ता ? अब सावधान होकर कटिबद्ध हो इस बालकको गोकुल पहुंचा दो, क्योंकि इस समय मुझको एक बातका स्मरण आ गया कि जिस दिन मुझको कंस दुष्टने वन्दीगृहमें डाला था उससे एकदिन पहले कार्तिकी पूर्णमासी का जो पर्व था, उस दिन मैं यमुनाजी स्नान करनेके लिये गयी थी, दैवयोगसे वहां नन्दजीकी स्त्री यशोदा भी आ गयी। जब मैंने सब विपत्ति अपनी उसे सुनायी, तो वह सुनकर आंखोंमें आंसू भर ली और मुझसे कहा—हे बहन ! तू घबड़ा मत, तेरे पुत्रको मैं रख लूंगी और अपना बालक तुझको दूंगी। इस प्रकार उसने मुझको वचन दे दिया है, इस बालक को लेकर शीघ्र गोकुल जाओ, स्त्रीकी और भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिकाघरमें से पुत्रको लेकर बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय गोकुलमें नन्दरायजीकी स्त्री यशोदाके उदरसे योगमायाने जन्म लिया ॥ ४८ ॥ उस समय योगमायाने सब पुरवासी और द्वारपालों का ज्ञान हर लिया, उसी समय सब निद्राके वशीभूत होगये, पांवोंकी बेड़ी गिर पड़ी;जब श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजी चले तब द्वारोंके बड़े-बड़े जो किवाड़ थे उनमें जो लोहेकी भारी भारी संकलें पड़ी थीं और ताले लग रहे थे, वह सब आपसे आप खुल गये, जैसे सूर्यनारायणके उदय होनेसे सर्वत्र अन्धकार दूर हो जाता है, ॥ ४९ ॥ और मन्द-मन्द शब्दसे मेघ गर्ज-गर्ज कर बरसने लगे, आधीरात सायँ-सायँ कर रही थी, अँधेरी झुक रही थी, मार्ग देखनेमें नहीं आता था, कभी-कभी बीच-बीचमें बिजली चमक जाती थी। उसके आश्रयसे धीरे-धीरे जाते थे, परन्तु वर्षा इनके ऊपर नहीं होती थी, क्योंकि पीछे-पीछे शेषजी महाराज फणरूप छत्रछायासे जलका निवारण करते थे ॥ ५० ॥ उस समय मेघोंके वर्षनेसे यमुना ऐसी चढ़ रही थी कि कोसों तक जल ही जल दिखायी देता था। पवनके वेगसे जलमें

ऊँची-ऊँची तरंगें उठती थीं और जलके घरघराहटका शब्द दूरतक सुनायी देता था। उस गम्भीर नीरमें महाभयानक सैकड़ों भँवर पड़ते थे, वसुदेवजी मनमें विचारने लगे कि पीछे लौटता हूँ, तो सिंह दहाड़ रहा है और आगे अथाह यमुना बह रही हैं, हे विधाता! मुझे किस विपत्तिमें डाल दिया, इस समय मेरी वही कहावत हुई कि "घरका रहा न घाटका" अब मैं क्या करूँ, कहां जाऊँ? फिर पुत्रके वशीभूत हो कुछ आगा-पीछा न सोच भगवान्‌का ध्यान कर जलमें घुस ही पड़े। यमुनाने जाना कि आज मेरे स्वामीका जन्म हो गया और वसुदेवजी लेकर मेरे समीप आ गये, वह भी उत्साहित हो उमँगमें भर चरण छूनेको उमड़ी। ज्यों-ज्यों वसुदेवजी श्रीकृष्णको ऊपर उठाते थे, त्यों-त्यों यमुनाजी ऊपरको प्रवाह लेती थीं। जब नाक तक जल आ गया तब तो वसुदेवजी और भी अधिक घबड़ाये। वसुदेवजीको व्याकुल देख कृष्णचन्द्रने अपना चरण नीचेको लटका दिया, चरणारविन्दके छूते ही जल गुल्फपर्यंत हो गया, जैसे लङ्काकी चढ़ाईके समय श्रीरामचन्द्र महाराजको समुद्रने मार्ग दिया था, उसी प्रकार यमुनाने वसुदेजीको मार्ग दे दिया ॥५१॥ जैसे-तैसे कर वसुदेवजी गोकुलमें पहुँचे और नंदजीके द्वारपर जाकर देखा तो किवाड़ खुले पड़े हैं। भीतर घुसकर देखा तो सब नींद में मतवाले पड़े हैं और यशोदा मायाके मोहसे ऐसी बेसुध पड़ी थी कि उसको कन्याके उत्पन्न होनेका भी ध्यान नहीं था। उसको सोती हुई देखकर वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और उसकी कन्याको उठाकर अपनी राह ली। वहां देवकी प्रेमविवश अतिव्याकुल हो अकुलाने लगी कि हाय! मुझ अभागिनीने क्या किया जो महाअँधियारी भयकारी आधीरातके समय इस वर्षामें अपने पति और पुत्रको भेज दिया।

सोरठा—बैठत उठत अधीर, व्याकुल सूनी सेजपर।
मोचत नयनन नीर, रोय सकत नहिं कंसभय॥

मनहीमन देवताओंको मनाकर यह कहती थी कि हे विधाता! इस भेदको कोई जान न जाय और तुम ऐसी कृपा करो कि यह रखवाले अभी न जागें और दुष्ट मार्गमें न मिल जाय और मुझको इस बातका बड़ा भारी शोक है कि उस पुत्रका जो मुखारविन्द चन्द्रमाके समान है उसकी उजियालीको कौन छिपा सकता है, दूसरे मार्गमें यमुना महागम्भीर चली जाती होगी, उसको किस प्रकार पार उतरेंगे, क्योंकि इस समय रातमें नाव बेड़ा भी न होगा। यह मुझे बड़ा भारी संशय है कि गोकुलमें पहुँचे या नहीं, क्या कारण जो अबतक स्वामी न आये? इस प्रकार शोच-सङ्कोचमें पड़ी और एक-एक क्षण कल्प-कल्पके समान कटता था, फिर अकुलाकर कहने लगी कि मुझको निश्चय होता है, मेरे स्वामीको कंसके रखवालों ने पकड़ लिया, न जाने वह दुष्ट कंस अब मेरी क्या दुर्दशा करे, इससे पहले ही प्राणोंका खो देना अच्छा है यह कह जब ही प्राण खोनेको प्रस्तुत हुई उसी समय कन्याको लेकर वसुदेवजी आगये ॥५२॥ और उसी बन्दीगृहमें आकर कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने उसी प्रकार पावोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी पहन ली और उसी भांति बैठ गये ॥५३॥ वसुदेवजीको देख देवकी पूछने लगीं कि स्वामी! कुशलपूर्वक गोकुलमें पहुंचे? पुत्र तो आनंदसे है? वसुदेवजीने कहा सब नारायण की कृपा है। उसी समय यहां गोकुलमें नन्दरायके घर यशोदाजीके मनसे जब माया हटी तो जाना कि मेरे प्रसव हुआ, परंतु कुछ परि-

श्रम और कष्ट न पड़ा, क्योंकि योगमायाने पहले ही स्मृति भुलाकर नींदके वश कर दिया था और यह भी कुछ ज्ञान नहीं रहा कि मेरे पुत्र हुआ या कन्या ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–चौथे चण्डीवचन सुनि, अतिसभीत भयो कंस ।
मंत्रिनसहित विचार कर, कियो बालविध्वंस ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बाहर-भीतर के द्वार उसी प्रकार बन्द हो गये और कन्या रोने लगी तब बालकका रोना सुन कर सब रखवाले सावधान हो तोपें, बंदूकें छोड़ने लगे; हाथी, चिंघाड़ने लगे, सिंह दहाड़ने लगे; भादोंकी अँधेरी झुक रही थी; मेघ बरस रहा था ॥१॥ सब चौकीदार और द्वारपाल पुकारते हुए उसी समय कंसके पास दौड़े गये और जाते ही देवकीके बालक होनेका समाचार सुनाया, जो कंस उद्विग्न मनसे आठवें गर्भका मार्ग जोह रहा था ॥२॥ सुनतेही कंस घबड़ाकर यह कहता उठ खड़ा हुआ, क्या मेरा कालरूप बालक उत्पन्न हो गया॥ खुले बाल, गिरता, पड़ता, ठोकरें खाता, कांपता हुआ, खड्ग हाथमें ले प्रसूतिका भवनकी ओरको दौड़ता हुआ बहनके पास गया॥३॥ देवकी कंसको देख दीन होकर करुणा वचन बोली कि हे भ्राता ! हे कल्याणरूप ! जिसके सुननेसे सबके मनमें अत्यन्त दया उत्पन्न हो रही है यह पुत्र नहीं है, यह देवीरूप कन्या है, इसको मत मार, क्योंकि यह तेरी भानजी है और जो कदाचित् यह जीती रहेगी तो मैं तेरे ही पुत्रके संग इसका विवाह कर दूंगी ॥४॥ हे भ्राता ! अग्निके समान तेजवाले मेरे सात पुत्र जो तूने मारे हैं, वह ताप मेरे हृदयसे अभी नहीं गया। परंतु उसमें तेरा भी क्या दोष है, दैवने तेरी बुद्धि भी वैसी ही कर दी, अब यह कन्या तो मेरा हृदय ठण्डा करनेको मुझे छोड़ दे ॥५॥ हे सामर्थ्यवान् । तूने बहुत पुत्र मेरे मारे, अब दया कर, मैं तेरी छोटी बहन हूँ, महादीन हूँ, मन्दभागिनी हूँ, यह मेरी अन्तकी पेट-पोछनी कन्या है, इसको तू मुझे अपनी करके दे दे, जिससे मेरा थोड़ा-बहुत धैर्य बँधा रहे॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोलेकि हे राजन् ! देवकी इस प्रकार कंसकी विनती कर कन्याको छातीसे लगाकर अतिदीनकी नाईं रुदन करने लगी। देवकी दीन तो नहीं थी, क्योंकि मनमें अत्यन्त प्रसन्न थी कि मेरा पुत्र तो और स्थानपर पहुँच ही गया और यह कन्या योगमाया है, यह इस दुष्टसे किसी प्रकार मर ही नहीं सकती, तो भी देवकीके हाथसे उस दुष्टने कन्याको छीन ही लिया। देवकीने नम्र होकर बहुतेरी प्रार्थना की, परंतु उस दुष्टने न माना और कहा कि इस कन्याको मैं कभी जीती न छोडूँगा, क्योंकि जो कन्याके साथ विवाह करेगा वह मुझको मारेगा ॥ ७ ॥ यह कह अपने स्वार्थके सिद्ध करनेके लिये तुरन्तकी उत्पन्न हुई अपनी भगिनीकी कन्याका चरण पकड़ घुमाकर ज्योंही पटकने लगा ॥ ८ ॥ उसी समय वह कन्या कंसके हाथसे छूट उसके माथेपर पांवधर उछलकर आकाशको चली गयी और वहां प्रत्यक्ष देवीका दिव्य स्वरूप देखनेमें आया, अति विशाल लाल नेत्र ललाटपर चन्दनका तिलक, कण्ठमें पुष्पोंकी माला, सुन्दर शोभायमान वस्त्र, रत्नजटित आभूषण, आठ भुजा जिनमें धनुष, त्रिशूल, ढाल, कृपाण, गदा, पद्म, शङ्ख, चक्र, आयुध लिये थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग यह बारम्बार बलिदान देते और प्रार्थना करते थे ॥ ११ ॥ अरे अधम कंस ! मेरे मारनेसे तेरे हाथ क्या आया ? तेरे पूर्व जन्मका वैरी, जो

कि तेरा मारनेवाला है वह पहले ही और कहीं दूसरे स्थानमें जन्म ले चुका । अरे मूर्ख ! बालकोंको मारकर और मुझको पटककर वृथा तूने अपने शिरपर पापका भार धरा तेरा मारनेवाला सर्पके समान है और तू दादुरके सदृश है,दादुरको इतना सामर्थ्य कहां है जो सर्पको निगलनेकी इच्छा करे । अब तू सावधान रहना,अब वह बहुत शीघ्र तुझको मारकर भूमिका भार उतारेगा ॥१२॥ इस प्रकार भगवान्‌की दैवी योगमाया कंससे कहकर बहुत स्थानोंमें दुर्गा, भद्रकाली, भगवती, भवानी, महामाया नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥ १३ ॥ इस प्रकार योगमायाका वचन सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुआ और वसुदेव देवकीको कारागारसे उसी समय छोड़ दिया और वेड़ी हथकड़ी उनके हांथ पांवोंसे निकलवा दी और विनय करके बहन-बहनोईसे बोला कि ॥ १४ ॥ अहो भगिनी ! अहो भाम ! मैं आपका बड़ा अपराधी हूँ, मुझ पापी अधर्मीने तुम्हारे संग बड़ा अनर्थ किया और अपने सुखके लिये तुम्हारे छः बालक मार डाले जैसे कोई राक्षस अपने पुत्रों को अपने हाथसे मारे और मेरा मनोरथ भी पूरा नहीं हुआ ॥१५॥ देखो मैं कैसा निर्दयी और हत्यारा हूँ, अपने जातिवाले हितकारी और सम्बन्धियोंका संग मैंने छोड़ दिया । हाय ! मैं महापापी नीचबुद्धि न जाने कौनसे नरकमें जाऊँगा ? ब्रह्मघातीकी नाईं मैं जीता ही मृतकके समान हूँ, यह कलंक मेरा कैसे छूटेगा और मेरा कैसे उद्धार होगा ?

सवैया

कीजै क्षमा अपराध मेरो ये, कही नृप देवकीसो शिर नायकै ।
तेरो कियो अपराध घनो तोहिं, नाहक दुःख दियो घबरायकै ॥
वैसो उपाय बनै भगिनी विधि, की मरजी जस होत है आयकै ।
यों नृप कंस विचारत शोचत, शत्रु भयो कहुँ अन्तहि जायकै ॥ १६ ॥

कोई कहे कि मनुष्य ही झूठ बोलते हैं,परंतु देवता भी झूठ बोलते हैं । जिन्होंने कहा था कि देवकीके आठवें गर्भमें पुत्र होगा सो कन्या उत्पन्न हुई । हाय ! मैंने झूठी आकाशवाणीके कहनेसे अपनी बहनके बालक मारे, मेरी क्या गति होगी ? ॥१७॥ हे महाभागियो ! तुम अपने पुत्रोंके मरनेका शोक मत करो,यह प्राणी अपने किये हुए कर्मोंका भोग भोगता है और दैवाधीन है, सर्वदा एकत्र नहीं कर सकता । तुम समझना कि हमारे पुत्रोंकी आयु इतनी ही थी ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार घट-पट इत्यादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और फूट फट जाते हैं,इनके होनेमें पृथ्वीका विकार नहीं आता, ऐसे ही यह देह जन्मता और मरता है, कुछ इसके संग आत्मा नहीं मरता-जीता ॥ १९ ॥ मूर्ख लोग ऐसे नहीं जानते, वह देहको ही आत्मा मानते हैं और देहको आत्मा माननेसे "मैं हूँ" "तू है" यह अनेक प्रकारसे बुद्धिभेद उत्पन्न होता है, इस भेदसे पुत्रादिकके देहसे योग-वियोग होता है, इसीसे उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती ॥२०॥ हे मंगलरूपिणी ! मैंने तेरे पुत्रोंको मारा है तो भी तू उनका शोक-सन्ताप मत कर, क्योंकि सब प्राणियोंको परतंत्रतासे अपने-अपने किये हुए कर्मोंका भोग-भोगना पड़ता है ॥२१॥ जब तक प्राणी अपने स्वरूपको नहीं जानता और यह कहता है कि मैं मारता हूँ और मैं मरता हूँ तब तक वह देहाभिमानी अज्ञानी पुरुष मरता है और मारता है ॥२२॥ हे दीनदयालु ! हे सत्यवक्ताओ ! अब आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, क्योंकि साधुजन दीनोंपर सदा ही दया करते हैं । यह कह आखोंमें आंसू भरकर कंस,वसुदेव देवकीके चरणोंमें गिर

पड़ा ॥२३॥ और योगमायाने जो यह वचन कहा था कि तेरा मारनेवाला कहीं उत्पन्न हो गया, इस वाणीपर विश्वास कर वसुदेव और देवकीके पांवोंकी बेड़ी कटवा दी और अपनी सुहृदयता और मित्रता जताने लगा ॥ २४ ॥ हे देवकी ! अब मेरा अपराध क्षमा कर ! देवकी अपने भ्राता कंसको अत्यन्त व्याकुल देखकर बोली कि हे भय्या ! मैंने तेरा सब अपराध क्षमा किया, तू मत डर, यह कह उसकी आखोंसे आंसू पोछने लगी और वसुदेवजी उससे शत्रुता तजकर मुसकराकर बोले ॥ २५ ॥ हे महाभाग कंस ! जैसे तुम कहते हो वैसे ही है। देहधारियोंको अज्ञानसे अहंकार होता है इसी अहंकारने मेरा तुम्हारा परस्पर भेद कर दिया ॥ २६ ॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह जिनको लग रहे हैं वे मनुष्य इन चारोंसे आपही मरते हैं, उनको कौन मारता है? वह उन्मत्त पुरुष यह नहीं जानते कि परमेश्वर ही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करता है और उस परमात्माको नहीं देखते और अज्ञानी पुरुष मैं मरता हूँ, मैं मारता हूँ ऐसे मानते हैं ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार प्रसन्न हो शुद्ध अन्तःकरणवाले वसुदेव देवकीसे आज्ञा लेकर कंस अपने राजभवनको गया ॥ २८ ॥ और जैसे-तैसे करके रात काटी, प्रातःकाल होते ही कंसने अपने सब मंत्रियोंको बुलाकर जो कुछ योगमायाने कहा था कि "तेरा मारनेवाला उत्पन्न हो गया है" वह सब वृत्तान्त मंत्रियोंके सामने ज्योंका त्यों कह सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके वचन सुनकर देवताओंके शत्रु अविवेकी देवताओंपर क्रुद्ध होनेवाले जो अघासुर, तृणावर्त्त, आदिक मंत्री थे वे कंससे बोले कि ॥३०॥ हे यादवेन्द्र ! जो ऐसा हो तो भी क्या चिन्ता है ? कुछ सन्देह न कीजिये, केवल इतना काम करो कि—पुर, ग्राम खिरक इत्यादि जितने स्थान हैं, उनमें दश-पांच दिनके भीतर जो बालक उत्पन्न हुए हैं, उनको मारने की हमको आज्ञा दे दीजिये। हम आज ही सब बालकोंको बीन-बीनकर मार आयेंगे। उनमें जो आपका शत्रु होगा वह भी मारा जायगा ॥३१॥ और जो देवता संग्रामके नामसे थरथर कांपते हैं, वे आपके सामने क्या पराक्रम करेंगे ? आपके धनुषका टंकार ही सुनकर निरंतर व्याकुल रहते हैं ॥३२॥ जिस समय आप धनुषपर बाण चढ़ाकर चारों ओरको प्रहार करते हो, उस समय देवता अपने-अपने प्राणोंको लेकर रणस्थलसे भाग जाते हैं और भाग जाना ही उनके लिये अच्छा है ॥३३॥ उनमें कोई-कोई तो शस्त्र त्याग दीन बन हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और कोई निकच्छ होकर शरणमें आता है और कहता है 'हम हार गये, हम हार गये, हमको मत मारो' ॥३४॥ आपके सामने रथ जिनके टूट गये शस्त्र हाथोंमेंसे छूट गये, भयभीत हो भाग गये, युद्धसे विमुख, धनुष जिनके हाथोंसे गिर गये और जो संग्राम छोड़कर भागने लगते हैं उनको तो आप मारते ही नहीं हो ॥३५॥ जहां कोई शूरवीर और युद्ध करनेवाले योद्धा नहीं होते, उस निर्भय स्थानमें बैठकर झूठा बकवाद करनेवाले देवताओंसे और जो क्षीरसागरमें शेषशय्या पर पड़ा दिन-रात लक्ष्मीसे भोग-विलास करता रहता है उसीके ध्यानमें नित्य मतवाला हो आलस्यके कारण कोई काम नहीं करता, जो आपके डरसे क्षीरसमुद्रमें छिपा हुआ पड़ा है उस लक्ष्मीकी आश करनेवाले विष्णुसे युद्ध कब हो सकता है ? इलावृत खण्डका रहनेवाला जहां जाते ही पुरुष स्त्री हो जाता है, दिनरात पार्वतीके संग क्रीडा करनी और उसी के मोह जालमें मग्न रहनेवाला, विषके पीनेसे जिसका चित्त नित्य उद्विग्न रहता है ऐसे बावले बहुरंगे शिवसे क्या ? ॥ ३६ ॥ तुच्छ पराक्रमी, किंचिन्मात्र विपत्ति पड़नेसे देवताओंको ले भगवान्के

पास जाकर पुकार मचाता है, आपने सुना ही होगा कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु और रावणादिक अनेक असुरोंने उनकी कैसी-कैसी दुर्दशाकी और बताओ आजतक किसको जीता, सदा घर बैठेही वज्र घुमाता रहता है, ऐसे असमर्थ इन्द्रसे क्या ? रहा ब्रह्मा, वह दिन-रात पूजा पाठमें लगा रहता है, उसको अपने ही कामोंमें पलभरको अवकाश नहीं फिर बताओ कि इन लोगोंसे हमको क्या भय है और कौन इनमें हमसे युद्ध कर सकता है ? परन्तु तो भी वैरी ही हैं, न जाने कलको क्या उपद्रव कर बैठें, क्योंकि शत्रुको और सर्पको छोटा न समझे इसी लिये इन लोगोंको छोड़ना अच्छा नहीं। इस समय तो इनकी जड़ उखाड़नेको हम उपस्थित हैं, हम लोगोंको आज्ञा दीजिये ॥ ३७ ॥ जैसे विना उपाय किये शरीरका रोग जड़ पकड़ जाता है, तो फिर पीछे उपाय करनेसे कुछ नहीं हो सकता, जैसे योगीजन पहले इन्द्रियोंसे विषय भोग करके फिर पीछे उनको रोकना चाहे तो फिर वे नहीं रुक सकतीं, ऐसे ही शत्रु को छोटा समझकर जो छोड़ देते हैं, फिर पीछे प्रबल होकर वह शत्रु जीतनेमें नहीं आता और जो कदाचित् जीत भी लिया तो बड़ी विपत्ति उठानी पड़ती है और दांत खट्टे हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ सब देवताओंकी जड़ विष्णु हैं और विष्णुकी जड़ सनातन धर्म है और सनातनधर्मकी मूल गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस ! इसलिये वेद-पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण, यज्ञके उपयोगी और दूध देनेवाली गायोंको हम अवश्य मारेंगे ॥ ४० ॥ गौ, ब्राह्मण, सत्य, वेद, तप, दम, शम, श्रद्धा, क्षमा और यज्ञ सब विष्णु भगवान्‌के अंग हैं ॥४१॥ वह विष्णु सब देवताओंमें मुख्य, दैत्योंका द्रोही और सबके हृदयमें वास करनेवाला और महादेवजी सब देवता और ऋषियोंका मूल भी वही है, इसलिये ऋषीश्वरों-मुनीश्वरोंका मारना, यही विष्णुके मारनेका ठीक उपाय है ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! दुष्टबुद्धि कंस कालके फन्देमें फँसा हुआ इस प्रकार दुष्ट मंत्रियोंके साथ सम्मति करके ब्राह्मणोंको मारकर अपना कल्याण चाहा ॥४३॥ महापुरुषोंका कष्ट जिनको प्रिय, इच्छापूर्वक रूप धारण करनेवाले ऐसे असुरोंको सब देश-विदेशोंमें साधु-संतोंके मारनेके लिये आज्ञा देकर भेज दिया और आप अपने राजमन्दिरोंको चला गया ॥ ४४ ॥ राजस, तामस स्वभाववाले दुर्बुद्धि, अज्ञानसे जिनका अन्तःकरण आच्छादित हो रहा, मृत्यु जिनके शिरपर खेल रही, ऐसे-ऐसे दैत्य साधुओंके विद्रोही होकर उनसे वैर करने लगे ॥ ४५ ॥ सत्पुरुषों से द्वेष रखनेवाले पुरुषकी आयु, धन, यश, धर्म, परलोक, सुख, महात्माओंका आशीर्वाद और मंगल इन सबका नाश हो जाता है, इसलिये सब छलछन्दको छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका ध्यान करना चाहियेः–

भजन

मन जो तू करै हरिपद निवास, तब शीघ्र होय सब दुःख नास ॥ तेरी चंचलता नहिं रहै एक उपजे विराग जो पुनि विवेक, किंचित न रहै जग सुखकी आस । क्यों जानबूझकर रहा भुलाय, क्या बार बार यह समय आय मत उरझ तुच्छ विषयन बिलास । मैं बारबार करहूँ पुकार, कहना नहिं मानत तू गँवार, विन नीर पिये किमि बुझै प्यास । अब करले तू प्रभुमाहिं प्रेम इससे न परे कोई और नेम, सब छल तज बन रघुवीर दास ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसोद्यमनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा—पंचममें उत्सव अधिक, भयो नन्दके भौन ।
मथुराको वसुदेवने, किये मिलनहित गौन ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब नन्दरायकी वृद्ध अवस्था हो गयी और कुछ संतान न हुई तब तो नन्दरायको बड़ा संदेह हुआ और सब व्रजवासियोंके भी मनमें अत्यन्त चिंता होने लगी । एक दिन नंदरायजी अपनी अथाईमें बैठे, कि कहींसे दश बारह ज्योतिषी ब्राह्मण आये और वे सब उनके संमुख होकर निकले । उनको देखकर नंदरायजीने नमस्कार किया । ब्राह्मणोंने नंदरायको आशीर्वाद दिया, कि महाराजाधिराजकी जय हो, धनवान् हो, पुत्रवान् हो । इस प्रकार नन्दजी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद सुनकर बोले कि महाराज ! मेरी हँसी किसलिये करते हो ? तब ब्राह्मण बोले कैसी हँसी ? तब नन्दजीने कहा आपने मुझको आशीर्वाद दिया कि धनवान् हो, पुत्रवान् हो, आपके चरणारविन्दकी कृपासे धन तो है, परन्तु पुत्र कहाँ ? यह सुनकर सब ब्राह्मण सभामें आकर बैठ गये और यह कहने लगे कि आपने यह क्या कहा ? हमको ऐसा ब्राह्मण मत समझो जो कि हम झूठ बोलें ।

श्लोक—दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः ।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद्ब्राह्मणदेवताः ॥

परमेश्वरके वशमें तो सब संसार है और मंत्रोंके वशमें सब देवता हैं; वे मंत्र ब्राह्मणोंके अधीन हैं और हमारे मन्त्रोंके अधीन सब देवता हैं । ऐसे मत जानो कि हम पेट भरनेवाले ब्राह्मण हैं । हे महाराज ! हमको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं केवल वरणही हमारा करदो । हम सब उस मंत्रका जप करेंगे, जिससे इस वर्षके भीतर आपकी मनःकामना सिद्ध हो, नहीं तो वह विद्याकी जीविका ही करनी छोड़ देंगे, क्योंकि जिस विद्यामें सिद्धि ही नहीं तो वह विद्या ही क्या ? ऐसी कठिन प्रतिज्ञा जब उन ब्राह्मणोंने की तब नंदरायजीने कहा हम आपका वरण किये देते हैं । उसी समय नंदजीने स्नान करके सब ब्राह्मणोंके चरण धोये और वह चरणोदक सब मंदिर में छिड़क दिया और सुन्दर-सुन्दर ऊनी गलीचे, बनाती आसन बिछवा दिये उनपर ब्राह्मणोंको बैठाकर केशर, कपूर, कुंकुमादि सुगन्ध मलयागिरि चन्दनमें मिलाकर सबके माथेपर तिलक कर दिये और सुन्दर डहडहे कमलके फूलोंकी माला और मालती, मदनबाण, चम्पा, चमेली, कुन्द, केतकीके हार बना बनाकर सबके कण्ठमें पहना दिये और वरणकी सामग्री थालोंमें रखकर क्रमसे एक-एकका पूजन कर, संकल्प कराकर पुष्पोंकी वर्षा की । फिर रोली, अक्षत, जनेऊ, पान, सुपारी, बतासे, धोती, अँगोछा, उपरना, माला, मुन्दरी, गोमुखी, आसन, छत्री, पादुका, थैली, लोटा, घंटी, आचमनी, दक्षिणा इत्यादि सामग्री दी । फिर सब ब्राह्मण वरण लेकर बोले कि महाराज ! अब जप करनेके लिये स्थान बताओ । तब नन्दरायजी बोले यमुनामैयाके तटसे अधिक उत्तम और कौनसा स्थान है । सब ब्राह्मण सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी सामग्री लेकर यमुनाजीके निकट जाकर परमेश्वरका ध्यान कर जप करने लगे । उसी समय नन्दजीने अनुचरोंको बुलाकर अन्नकी गठरी बँधवा-बँधवा कर और उत्तम-उत्तम वस्त्र मँगाकर सब ब्राह्मणोंके घर भिजवा दिये, जिससे उन ब्राह्मणोंके बालबच्चे प्रसन्न हो जायँ और बहुत-बहुतसे दूधवाली गायें सबके घर बँधवा दी । चुगनेके लिये गांव दे दिये, जिन धरतियोंमें बड़ी-बड़ी अच्छी दूब आदि घास होती हैं वह भी देकर खोलने बांधनेको ग्वालिये नियत कर दिये और नित्य दूध दुहा जाय और औटा

औटाकर मिश्री इलायची डाल-डालकर नारायणके आगे भोग धरके ब्राह्मणोंके सम्मुख लावें सो वह उस अधौटे दूधको पी-पीकर आनन्दसे रातको शयन करें और प्रातःकाल उठ देहकृत्य कर सन्ध्यावन्दन पाठ पूजनसे निश्चिन्त हो, मिश्री पड़ा हुआ कच्चा दूध पी-पीकर श्रीयमुना महरानीके निकट जाकर आसन बिछा-बिछाकर ध्यान लगाकर दो पहर जप करें। इसी प्रकार जब दो चार मास बीते तो महरानी यशोदाजीको ज्ञात हुआ, जो गोपी नन्दरायके घर आती हैं वे व्रजरानीजीका स्वरूप देखकर परस्पर बातें करती हैं कि अरी! हमारी व्रजरानीका मुख हमको कुछ पीला-पीला दिखाई देता है, कुचाग्र तुंग हो रहे हैं, कुछ-कुछ कटि भी भरीसी दृष्टि आती है, शरीर भी शिथिल हो रहा है यह तो सब लक्षण पांव भारीकेसे जान पड़ते हैं ऐसे कान-कानमें बात फैलने लगी। तब नन्दजी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और नन्दरानी जो-जो अपेक्षा करती थीं नन्दजी उसी समय पूरी करते थे और ज्योतिषी ब्राह्मणोंकी बातोंका प्रभाव नेत्रोंसे देख उनको बुलाया और उनको विशेष दक्षिणा दी, तब वे पंडित प्रसन्न होकर ज्योतिषके बलसे विचार कर बोले कि महाराज! इस गर्भका प्रसव अष्टम मासमें होगा, ब्राह्मणका यह वचन सुन नन्दजीने आठवें महीनेके लगते सुनँदानामा अपनी बहनको बुला लिया और अपने दास दासी सेवकोंको आज्ञा दी कि सब अपने-अपने काममें सावधान रहो और शांडिल्यनाम अपने पुरोहितको बुलाकर सब वृत्तांत सुना दिया कि जिस समय हम किसीको भेजें उसी समय कृपा करना फिर सब सेवकोंको बुलाकर राज्यभवन सजवाया, जहां स्फटिकमणिकी भीत, वैदूर्य मणिके खम्भे, मूंगोंकी देहरी, हीरोंके सिरगोल, नील मणिके कँगूरे पोखराजकी छत, पन्ने पीरोजोंसे जड़ी हुई पृथ्वी, भीतोंमें पद्मरागमणि, प्रकाश कर रहे सुनहरी कमलके बेलबूटोंसे छतें तन रहीं, द्वारपर हरी, लाल, पीली मखमल, अतलसके परदे पड़े हैं, बाहर सुन्दर चौक रत्नजटित भूमि, ऊपर जरीके चन्दोवे तने हैं, उनमें सुन्दर सुराहीदार मोतियोंकी झालर लटक रही, गण्डेदार शामियाने रेशमके रस्सोंसे खिंचे हुए,सोने-चांदीके फूल जिनमें लगे हुए,छत्तोंमें हांडी झाड लटक रहे,भीतोंमें सुन्दर-सुंदर फानूस लग रहे, मणि-माणिक आलोंमें धरे विराज रहे; भांति-भांतिकी चित्रपटी लग रहीं, ऐसे मनोहर मन्दिरमें व्रजरानीका पलँग बिछा दिया और नंदरायजी राजभवनमें सोते परंतु खटका व्रजरानीकी ओरका घड़ी-घड़ी लगा रहे कि परमेश्वर वह कौनसी घड़ी करेगा जिस समय बधाईकी बात अपने कानोंसे सुनूंगा। श्रीशुदेवजी बोले कि हे राजन्! जब भादोंका महीना लगा, व्रजरानीका प्रकाश और आह्लाद अत्यन्त बढ़ गया जैसे स्फटिक मणिके घटमें धरा दीपक भीतर और बाहर प्रकाश करता है, ऐसे ही व्रजरानीजीके उदरमें श्रीकृ-ष्णचन्द्र आनन्दकन्द भीतर और बाहर प्रकाश कर रहे थे। इतनेमें परम सुखदायक भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहणी नक्षत्र आकर उपस्थित हुआ, उस दिन यशोदाजीकी विशेष शिथिलता देखकर नंदरायजीने नंदीमुख श्राद्ध और पितरोंके पूजनेकी सामग्री जो-जो पुरा-णोंमें लिखी हैं ब्राह्मणोंसे पूछकर पहलेही परातोंमें धरके पुजारीजीको सौंप दी कि न जाने किस समय प्रसव होगा? तब देवपितरोंके पूजनेमें देर होना अच्छा नहीं। सब ब्राह्मण बोले हम अपने-अपने घर ही हैं, जब बुलाओगे उसी समय चले आयेंगे यह कह ब्राह्मण तो अपने-अपने घरको चले गये और नन्दजी सभामें जा बैठे। श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजन्! आधी-

रातका समय आया और चन्द्रमाभी संपूर्ण कलाओंसे उदय हुआ। राजा परीक्षित् बोले कि हे व्यासनंदन! अष्टमीके दिन तो आधा चन्द्रमा उदय होता है, फिर पूर्णचन्द्रमा कैसे उदय हो गया? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् चन्द्रमाने अपने मनमें विचारा कि आज मेरे वंशमें परमपुरुष भगवान्ने जन्म लिया और मेरा मान रखा, यह आनन्द मानकर सम्पूर्ण प्रगट हुआ, दूसरे यह दरशाया कि प्रथम रामावतारमें तो मर्यादापुरुषोत्तम हुए तो अनेक प्रकारकी आपत्ति भोगनी पड़ी इसलिये कृष्णावतारमें कुछ मर्यादा नहीं रखनी चाहिये,इसलिये चन्द्रमाने मर्यादा छोड़ दी कि मेरे वंशमें जो श्रीकृष्ण उत्पन्न होंगे, वह भी इसी प्रकार मर्यादाको त्याग देंगे। भगवान्ने जिस समय पूर्ण चंद्रमाको देखा उस समय आप, पृथ्वी और ब्रह्मा, रुद्रादिक देवता, नारदादिक ऋषि, व्यासादिक ब्रह्मर्षि, मुचुकुन्दादिक राजर्षि, उग्रसेन, अक्रूर,उद्धवादिक यादव, युधिष्ठिरादिक पाण्डव, श्रीवसुदेव, देवकी नंद, यशोदादिक, मथुरा, गोकुलवासी, द्वारकावासी-इन्द्रप्रस्थवासी, उर्ध्वाधोमध्य त्रिलोकवासी सबके ऊपर कृपादृष्टि करके कोटिकन्दर्पलावण्य नराकृति रूप धारण कर परब्रह्म चिदानन्द भगवान् आकर प्रथमदेवकीके घर प्रकट हुए, फिर कुछ कालोपरांत भगवान्की योगमाया कन्या धारण कर यशोदाके घर उत्पन्न हुई, जिसने यशोदापर मोहनी डाल उसको सुला दिया, उस समय वसुदेव कंसके भयसे पुत्रको लेकर नन्दके घर आये, यशोदाकी कन्याको तो उठा लिया और अपने पुत्रको उसके समीप सुला दिया। उसी समय यशोदाकी आंखे खुल गयीं तो उठ बैठी और अपने पुत्रको देखा। तब उपेक्षा करने लगी कि, हे विधाता! यह कैसा अद्भुत स्वरूप है। क्या श्याम कमलकी माला है? क्या नील मणियोंका जाल है? क्या सौभाग्य सम्पत्तिका सिद्धांजन है? उस समय मणिमय जितने दीपक थे, सब श्याम हो गये। श्रीकृष्णने उस समय कहा कि आज मैं सबका श्यामवर्ण कर दूँगा, सिवाय यशोदाके यह आनन्द और किसीके हाथ न आया,क्योंकि सब पड़े सो रहे थे। उस समय जैसे तुरन्तका हुआ बालक रोता है भगवान् ऐसे रोने लगे। तब'ॐकार ॐकार'शब्द मुखसे निकला,मानो इस उत्सवका मंगलाचरण करने लगे। उस शब्द को सुनकर नन्दजीकी बहन सुनन्दा जागी, उसने उठकर एक कांसीकी थाली बजा दी और मंदिरके द्वारपर जाकर संकल खड़का दी, तब नन्दराय सुनकर बोले कि क्या है? तब सुनन्दा बोली कि भय्या! तुमको बधाई है। यह शब्द सुनतेही नँदराय तो आनंदपूरित हो गये, जैसे बहुत कालसे सूर्यकालका तपा हुआ सरोवर सूख जाता है और आनन्दघन अमृतके वर्षनेसे हरित हो जाता है, ऐसेही पुत्र न होनेसे नंदरायजीका हृदय सूख रहा था, नंदजीका हृदयसरोवर हर्ष-वर्षासे उमंग चला। उस समय ऐसा प्रिय आनंद हुआ कि मानो आनन्द-मन्दाकिनीकी धारा हृदय सरोवरमें आकर मिल गयी। उसी समय नंदरायजी सरोवरके घरके द्वारे आकर अपने पुत्रकी उत्प्रेक्षा करने लगे कि यह नेत्रोंका निर्मल फल है, वा निजवात्सल्य नीलसरोवर नील कमल है, वा व्रजेश्वरीके सौभाग्यका सार है, वा जगन्मंगलोदयका आधार है, वा किसी सिद्धजनलताका फूल है, वा आनंदघनका मूल है, वा सकल उपनिषत्कल्पलताका फल है, वा कालिंदीका श्यामरूप जल है। ऐसा सुंदर स्वरूप देखकर नंदजीके हृदयमें आनंद भर आया, हे राजन्! पुत्रका जन्म होनेसे आनंदसहित उदारचित नंदरायजीने उसी समय स्नान कर पवित्र हो पीतांबर पहन

शृङ्गार कर, आसनपर जा विराजे ॥१॥ ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्ति वाचन कराकर मोतियोंसे चौक पुराकर उसपर सुवर्णका कलश स्थापनकर गणेश, गौरी, वरुण इत्यादि देवता, पितृ, लोकपाल, दिक्पाल, इन सबका संस्थापन करके जातकर्म संस्कारसे निश्चित हो ब्राह्मण बोले कि महाराज! अब पूजन करो, तब नंदजीने कहा–पंडितजी महाराज! हमारी ओरसे पूजन तुम ही कर दो,तब ब्राह्मण नन्दरायके हाथसे छुवा-छुवाकर अर्घ्यादिक चन्दन, अक्षत, माला, पान, फूल, पूगीफल, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा नमस्कारपर्यन्त षोडशोपचार सहित सब देवताओंका पूजन किया और नांदीमुखसंज्ञक पितरोंका पूजन करके ब्राह्मण नंदरायसे बोले कि पूजन तो हो चुका, अब अपने हाथसे ब्राह्मणोंका तिलक करो। नंन्दरायने केशरमें कपूर मिलाकर मलयागिरि चंदनसे सब ब्राह्मणोंके तिलक कर फूलोंकी माला पहनाकर पीछे रत्न-आभूषण दक्षिणा दे देकर विनय की कि इस समय मेरा मनोरथ तो अधिक दान देनेका है, तब ब्राह्मण बोले कि महाराज! आपके समान कौन धर्मज्ञ है यह समय दान करनेका ही है, इतनेमें सुनन्दा भीतरसे बोली कि नाल काटनेको बड़ी देर हो रही है, तुम शीघ्र-पूजन कर लो तो नाल छेदा जाय, सुनन्दाके वचन सुनते ही नन्दजी नारायणके मंदिरमेंसे बाहर निकल आये, वह सुन्दर नन्दालयका जो मणिजटित आंगन था उसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे कदलीके वृक्ष शोभित हो रहे थे, आम्रपात और पुष्पोंकी बन्दनवार उनमें लकट रही थी, ऊपर सुन्दर जरीका चन्दोवा तन रहा था; बीच-बीचमें मोतियोंकी झालरें शोभा दे रही थीं, उसके नीचे सुन्दर वेदी बन रही थी और सब मांगलिक सामग्री उसके समीप धरी थीं, वहां सोनेके खाटें बिछे हुए थे,उनपर भांति-भांतिके आसन शोभा दे रहे थे,जिनपर पंडित, पुरोहित, गुरुजन, वृद्धजन, महात्मालोग विराजमान थे और चांदनीके बिछौनेपर बराबरके भाई,बन्धु, गोप, ग्वाल, आ-आकर बैठने लगे उस समय उत्साह भरे नन्दराय भी वेदीपर आ बैठे और दान करने लगे ॥ २ ॥ दो लाख गायें रत्नसमूहसहित ब्राह्मणोंको दान करके दीं। स्वर्णसे जिनके सींग मढे हुए, तांबेसे पीठ, चांदीसे खुर,पूछोंमें रत्न गुथे हुए, जरीकी झूलें पड़ीं, बछड़े जिनके संग सबकी सब दूध देनेवाली, दूसरे ब्यान और पहले ब्यानकी थीं। आजकलके से लोभी लालची मत समझना प्रथम तो गाय पुण्य ही नहीं करें और जो दैवयोगसे पुण्य करें भी तो कहींसे ढूँढ भालकर तीन रुपयेकी गाय लायें। इस बात पर एक दृष्टान्त * है। और नंदरायजीने तो इतना काम और भी अधिक किया कि गायोंके चरनेके लिये और चरानेके लिये ग्वालिये और दुहनेवाले निराले ही नौकर रख दिये। तब दान करते २ नंदरायजी बोले कि आज मैं चक्रवर्ती राजा होता तो सुमेरुका भी दान कर देता। तब ब्राह्मण कहने लगे कि महाराज! तिलपर्वत भी सुमेरुके समान ही होते हैं,उसी समय सेवकोंको बुला-

---

* दृष्टान्त—अजमेर नगरमें एक धनाढ्य वैश्य निवास करता था, परन्तु वह इतना लोभी था कि भोजन भी भर पेट नहीं खाता था। एक दिन दैवयोगसे रोगग्रस्त हो गया तब उसके पुत्रोंने कहा कि पिताजी! हमारी इच्छा है कि आपके हाथसे एक गाय पुण्य करा दें। सेठजी बोले नहीं नहीं, ऐसा काम मत करना। पुत्र बोले–पिताजी! हम तो करेंगे ही। सेठजी बोले अच्छा भैया, जो तुम्हारी इच्छा है तो एक काम करो कि फकीरा जाटके एक गाय है वह मुझसे तीन रुपया मांगता था, मैं उसको दो रुपया देता था अब वह क़ाईमें देगा। तुम उसीको खोल ले आओ। बेटे बोले–पिताजी। तुम उस गायको किस लिये लेते थे? सेठजीने हँसकर कहा कि एक दिन कथामें गया था वहां सुना कि गाय देनेका बड़ा पुण्य है, यही संसारसे निस्तार करती है।

कवित्त—धरे हो रहेंगे धन धरणी धवल धाम, वृथा है लगानो नेह देह गेह धरनीसे।
ऊँचे ऊँचे अटा अरु अटारी हूं न्यारी होत, धरणी समावें और प्रगटत धरनीसे ॥–

कर नन्दजीने आज्ञा दी कि सात पर्वत तिलके बना दो। उन्होंने उसी समय सात पर्वत बनाकर ऊपरसे सुनहरी रंगका वस्त्र उढ़ा दिया। उनके भीतर मणि, माणिक, मोती, हीरे और अनेक-अनेक प्रकारके रत्न भर-भरके सातों पर्वत ब्राह्मणोंको दान कर दिये ॥ ३ ॥ कालसे तो पृथ्वी पदार्थ शुद्ध होता है, स्नान करनेसे शरीर शुद्ध होती है, धोनेसे वस्त्रादिक शुद्ध होता है, संस्कारसे गर्भादिक शुद्ध होता है, तप करनेसे इन्द्रियोंकी शुद्धि होती है, यज्ञ करनेसेब्राह्मणों की शुद्धि होती है, दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है, सन्तोषसे मनकी शुद्धि होती है और आत्मविद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है, यह विचार नन्दरायजीने अनेक प्रकार के दान दिये ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़ने लगे, पुराणवक्ता पुराण बांचने लगे, गायक वंशावली बखानने लगे, भाट बन्दीजन यश वर्णन करने लगे गायक गुण गाने लगे, और भेरी-नगाड़े जहां-तहां बजने लगे। जब नंदरायने बहुत दान दिये तब ब्राह्मण लोग, आशीर्वाद देने लगे तब नन्दजी बोले कि महाराज! मुझको आशीर्वाद दिया वह सफल हुआ, अब इस बालकको आशीर्वाद दो, तब सब ब्राह्मणोंने मिलकर यह आशीर्वाद दिया—

श्लोक—"मार्कण्डेयचिरायुरस्तु सुखदं तेजस्तु भानोरिव
कल्पद्रोरिव कामदत्वमभितः कांतिः सुधांशोरिव।
त्वत्पुण्यैर्व्रजवासिभाग्यनिचयैराशीर्वचोभिर्मम
नंद श्रीव्रजराज संततमयं पुत्रस्तवास्तां सुखी॥"

क्षणको भरोसो नाहीं बरसोंकी सामा करै, कोउ ना अघात इस माया मन हरनीसे।
काम नाहिं आवै कोउ अन्तसमै शालग्राम गैया ही तारत घन तरणी वैतरणी सेे॥

यह सुनकर मैंने उस गायके दो रुपये कह दिये थे। फिर मैं अपने घरके धन्धेमें लग गया और कुछ अवकाश भी न पाया और जो किसी समय अवकाश भी हुआ तो यही विचार रहा कि जहांतक हो सके थोड़े ही मोलमें मिल जाय तो ठीक है मैं कई बार गया और आध आना पाव आना अधिक भी कर आया, परन्तु उसकी इच्छा ढाई रुपयेसे कमकी नहीं पायी गयी। अब तुम जाओ। जो दो चार आनेकी ओच्छ हो जाय तब तो अच्छा है और ढाईको तो देही देना परन्तु इतना काम करना, नौकर की दस्तूरीके पैसे काट लेना। यह सुन उनके पुत्रने ढाई रुपयेकी गाय लाकर सेठजीके सामने खड़ी कर दी और पुरोहितको बुलाकर गायका संकल्प कर दिया। जब दक्षिणा देनेको था तो पुत्रसे पूछा कि दस्तूरीके पैसे कहां हैं? बेटा बोला—दस्तूरी उसने नहीं दी। सेठजीने सुस्त होकर उसी समय प्राण छोड़ दिये। दूसरे दिन वह गाय भी मर गयी, यम दूत लालाको यमलोकमें ले गये और त्रास देने लगे, तब सेठजी बोले कि हमको किस वास्ते मारते हो, हमने तो गाय पुण्य कर दी है। यमदूत बोले—कहां है गाय? इतनेमें गायभी आकर लालाके सम्मुख खड़ी हुई। लाला बोले क्यों रे गाय! मैंने तुझको पुण्य किया है, इस समय तू मेरी सहायता क्यों नहीं करती? गायने कहा कि सेठजी! आपके पुण्यके पीछे मैं एक दिन जीती रही हूँ एक दिनमें जो चाहे सो काम ले लो। लाला बोले कि एक दिनका काम तो दे और न्याय हम पीछेसे कर लेंगे। पहले तो यह काम करो कि यह जो यमराज बैठे हैं इनके पेटमें एक सींग मार, क्योंकि इन्होंने मुझे कैसे त्रास दिया है। गाय सेठजीकी आज्ञा पाते ही यमराजके पीछे हुई। यमराज सब यमलोकमें भागे भागे फिरे परंतु गाय और सेठजी यमराजके पीछे मार-मार करते चले जायें। अन्तमें हारकर यमराज वैकुण्ठमें भगवान्‌के पास गये और कहा कि, हे भगवन्! यह वैश्य मेरे प्राणोंका ग्राहक हो गया। इसने एक गाय पुण्य की है यह उसीसे त्रिलोकीका राज्य करना चाहता है और कोई दूसरा पुण्य किया नहीं। भगवान्‌से कहा कि, जैसा कर्म इसने किया है वैसा ही फल देना चाहिये। यमराज बोले कि कर्म तो इसके नरकके योग्य हैं, भगवान् बोले कि नरकमें ही भेज दो, वैश्य बोला कि महाराज! आपने भी अच्छा न्याय किया और यमराज तो पूरे न्यायी हैं ही परन्तु वेद और पुराण आज आपने सब झूठे कर दिये, क्योंकि उनमें लिखा है कि जो पुरुष स्वप्नमें भी भगवान्‌का दर्शन कर ले उसको वैकुण्ठका वास मिलता है और मैंने साक्षात् आपका दर्शन किया तो भी मुझको नरक! यह अन्याय! अरी गाय! इनको भी समझ। यह वैश्यका वचन सुनकर भगवान् हँस पड़े कि गाय क्या समझेगी, हम ही समझ गये कि तुम बड़े चतुर हो। अच्छा यमराजजी। तुम जाओ, इसको हम अपने ही पास रखेंगे, क्योंकि इसकी बात सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए। देखो जिसने ऐसी मरणासन्न गौ पुण्यकी उसको तो वैकुण्ठवास और जिन्होंने लाखों गायें पुण्य की हैं उनकी महिमा कौन वर्णन कर सके।

अर्थात्-हे व्रजराज, हे नंदराय ! आपके पुत्रकी मार्कण्डेय ऋषिकीसी आयु हो, सूर्यकासा तेज हो,कल्पवृक्षसा इच्छापूरक स्वभाव हो,चंद्रमाकीसी कांति हो, तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे, सब व्रजवासियोंके भाग्यसमूहसे और हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा पुत्र सदा सुखी रहे ॥ ५ ॥ व्रजमें द्वार-द्वार, आंगन-आंगन, घर-घर सब झाड़-बुहार हो रहे हैं और बजारोंमें, गलियोंमें, घाटोंमें, रजवाड़ोंमें, चौराहोंमें बुहारी लगाकर गुलाबके जलसे, केवड़ेके जलसे, सेवतीके जलसे, खसके जलसे, चन्दनके जलसे, छिड़कने लगे । सब गोकुल और महावन नन्दगांव सुगन्धसे सुगंधित कर दिया । सब अपने-अपने भवनोंकी शोभा निराले ही निराले ढंगकी बना दी । सुंदर स्फटिक मणिके द्वार,सुवर्णके किवांड़,वैदूर्यकी देहरी, मूंगोंकी चौखट, जिनमें पुष्प बिखर रहे, आमके पत्ते और फूलोंकी बन्दनवारें जहां तहां लटक रहीं, सुवर्णके कलश कलशियाँ द्वार-द्वार पर बिज्जुछटासी चमक रहीं,ध्वजा स्तम्भ गड़ रहे हैं जिनमें चित्र-विचित्र रंग ध्वजा पताका फहरा रहीं हैं,मोतियोंकी माला जहां-तहां लटक रहीं,मानो भवन-भवनमें पुत्रजन्मोत्सव हो रहा है॥६॥जबही ग्वाललोग गाय बछड़ोंको ले-लेकर वनको चले उसी समय एक गोप वृक्षपर चढ़कर पिछौरिया घुमाकर बोला-अरे भैया ! आज कोई व्रजवासी वनको मत जाना,हमारे नन्दरायजीके पुत्रका जन्म हुआ है। यह बात सुनकर सब ग्वाल-बाल आनंदमें मग्न हो गये और सब अपनी-अपनी गायोंका शृङ्गार बनाने लगे। पहले तो छोटी-छोटी गाय, बछड़े, बछियाओंको हलदी तेल लगाकर उबटन किया,फिर गेरू,मेंहदी,लाख हरतालसे रंगा और बीच-बीचमें हलदी और रोलीके थापे लगाये । जंगाल और सिंगरफसे उनके सींग रंगे और मोरछल जिनमें लटक रहे ऐसी शोभायमान झूलें उढ़ा दीं,मोरछलकी कलँगी न्यारी ही पहना दी । गलेमें घंटोंकी मालाका शब्द निराला ही सुनायी देता था और कोई-कोई गोप अपने-अपने घरोंसे सुनहरी आभूषणोंके डिब्बे और उत्तम-उत्तम वस्त्रोंकी गठरी उठा लाये, मोहनमाला, चन्दनहार, हमेल, पचलड़ी चम्पाकली, धुकधुकी बछड़े बछियाओंके गलेमें डाल दिये । पाँवोंमें पावटे,घुंघरू,कड़े झांझन पहरा दीं और ऊपरसे शाल-दुशाले जरीकी ओढ़नी ओढ़ा दीं । इस प्रकार सबने अपनी-अपनी गायोंका शृङ्गार किया ॥ ७ ॥ सब गोप-ग्वाल सुंदर-सुंदर सूही बैजनी ऐंठदार पाग बांध कर और दो चार पेंच गलेमें डाल सुंदर-सुंदर जामें पहन लिये । किसी-किसीने काछ बांध लिये, किसीने लटकवां धोती, रेशमी दुपट्टे ओढ़ लिये और भांति-भातिके आभूषण सज सुन्दर शृङ्गार बनाये, यमुनाकी रज मस्तक चढ़ाये, कन्धोंपर तलवारें धरे, कानोंमें फूलोंके तुरें घुरेसे हुए, शिरमें मोरके पंखोंकी कलँगी धरे, भारी-भारी लट्ठ लिये, पानसे मुख लाल किये, थालोंमें भेंट लिये, गायोंको आगे-आगे नचाते-कुदाते, गाते-बजाते, हँसते-हँसाते नन्दरायजीको बधाई देनेके लिये चले। उस समय नन्दजीके द्वारपर बड़ी भारी भीर हुई उस छबिको देख छबि भी लज्जाकी मारी एक कोनेमें छिपी हुई उस आनन्दको देख रही थी । इस उत्सवको देखनेके लिये स्वर्गसे ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेरादिक अनेक देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंको संग लिये मनुष्यरूप धारण किये गोपग्वालोंमें आ मिले और सब नन्दके द्वारपर पुकार-पुकार बार-बार यह कहते थे कि आज नन्दके घर बधाई है । उस समय नंदजी ऐसे मग्न थे कि अंगमें फूले नहीं समाते थे और सबके हाथ पकड़-पकड़ अत्यन्त आदर-सत्कारसे कुशलक्षेम पूछ-पूछकर मखमलके बिछौनों पर बिठाते

जाते थे और बार-बार सबको पान मिठाई दे-देकर वह कहते थे कि यह सब आपका ही प्रताप है। दूसरे दिन यह शुभ संवाद समीप-समीपके सब ग्रामोंमें भी पहुँच गया कि नन्दजीके पुत्रका जन्म हुआ। यह शुभ समाचार सुन सब व्रजवासी परमानंद हो होकर इन ग्रामोंमें हाथौरा, रीठा, कारब, सबल, लौहवन, महावन, धाराकुण्ड, बरसाना, गोपालपुर, विसौली, जसौली, रसौली, मांठ, आंठ, बिजौली, आढ़स, सुनर, वसई, छटीकरा, नरी, सेमरी, परासौली, कोठवन, मधुवन, बढ़ेन, करहैला, नन्दीश्वर, नन्दगांव, बनेई, ऊँचागांव, चिकसौली, सुमहरा, कामवन वृन्दावन, दीघम, होली, इत्यादि और अनेक गांवोंसे भेंटें ले-लेकर चले तो वृद्ध-वृद्ध जो गोप थे उन्होंने भी अपना-अपना शृंगार किया और युवा बालकोंका तो कहना ही क्या है? सुवर्णके थालों में ही हीरे, मणि, रत्न, पन्ना, पोखराज, हँसली, खंडुवे, कण्ठी, माला, कुरते, टोपी, रोली, चन्दन, पान, मिठाई, मेवा, श्रीफल, धर-धरकर सब व्रजवासी डफ, ढोल, झांझ, मृदंग, चङ्ग, मुहचङ्ग, उपंग बजाते और गीत गाते, धूमधाम मचाते, नन्दरायजीके द्वारपर आये और उनको दण्डवत् प्रणाम कर करके भेंट उनके आगे धरीं। उस समय नन्दराय उनको देख-देख प्रसन्न हो हो बड़े-बड़े गोपोंसे मिल-मिल सबको आदर-सम्मानसे आसन दे-देकर बैठाते थे। सब गोप बोले कि नन्दरायजी! हम आपके भाग्यकी बड़ाई नहीं कर सकते, आज आपका पूर्व पुण्य उदय हुआ, तुम बड़े धन्यभागी हो, तुमने हमारे मनके मनोरथ सिद्ध किये और आज हमारे मनकासा समाज सजा है। नन्दरायजी बोले कि भैया! यह सब तुम लोगोंके पुण्यका प्रभाव ऐसा है, नहीं तो बुढ़ापेमें मेरा भाग्य कहां था जो ऐसा परमानंद प्राप्त हुआ। कोई केवड़ा छिड़क रहा है, कोई गुलाब छिड़क रहा है, कोई पुष्पोंकी माला पहनाता केशर और चन्दन लगाता है, मानो त्रिलोकीका आनंद नन्दके घर छा रहा है॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब व्रजबालाओंने सुना कि हमारी व्रजेश्वरीके पुत्र उत्पन्न हुआ है। तब सब गोपियोंने सुन्दर शृंगार बनाकर मेहँदी महावर रचाकर नवीन-नवीन केशर कस्तूरी मिलाकर मस्तकपर तिलक लगाये, फिर पीछे रेशमी वस्त्र आभूषण पहन, नेत्रों में अञ्जन आंज, नखशिखसे अलंकृत हुई॥९॥ केशर मुखारविंदपर मली हुई हैं, कटि लचक रही हैं, नितम्ब जिनके पुष्ट हैं, कुच चलायमान हैं, भेंटे ले-लेकर नन्दरायजीके मंदिरको चलनेकी सब सुन्दरी अभिलाषा कर रही थीं॥१०॥ उज्ज्वल मणियों के जड़ाऊ कुण्डल कानोंमें शोभायमान हैं, अति सुन्दर मुक्ताओंके हार कुचोंके बीचमें लटक रहे हैं, मानो दो पर्वतों के बीचमें गंगाकी धार बह रही है। हाथोंमें कङ्कण, चित्रविचित्र वस्त्र धारण किये, कमलसे भी कोमल जिनके चरण उनमें अनवठ, बिछुवे, नूपुर, पगपान पहन रहीं, जब एक सङ्ग सब मिलकर पग उठाती हैं, तो उस समय पायल और नूपुरोंकी झनकार इस प्रकार हो रही मानो आनन्दमय घन गर्जता है और उस शब्दसे दशों दिशाओंका अमङ्गल दूर होता चला जाता है और क्षीण कटिकी लचकसे जो शरीर कम्पायमान होता था तो जूड़ेसे मालती और मदनबाणके फूलोंके हार खिसक-खिसक उनके चरणोंमें गिरते थे। वे हार आपसे आप नहीं गिरते थे, किन्तु केश उन चरणोंकी अद्भुत शोभा देख-देखकर रीझते थे, और बार-बार प्रसन्न हो-होकर पुष्पोंके हार उनपर चढ़ाते थे और दूसरा प्रयोजन यह भी था कि हमारे ऐसे भाग्य कहां थे, यही हमको श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करानेके लिए चलते हैं। इस प्रकार गोपियोंके झुण्डके झुण्ड नन्दजीके घरको चले जाते हैं, उस समयकी शोभाको

कौन कवि वर्णन कर सकता ॥११॥ तब सब गोपिका नन्दरायजीके आंगनमें आकर श्रीकृष्णचन्द्रको आशीर्वाद देने लगीं। हे कृष्ण! तुम चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो और हमारी बहुत दिनोंतक रक्षा करो। इस प्रकार बालकको आशीष देकर हलदीके चूर्णमें तैल और पानी मिलाकर परस्पर छिड़कती-छिड़काती गीतगाती आंगनमें केशर और चन्दनके रंगकी झारी और पिचकारी लिये धूपधाम मचा रही थीं ॥१२॥ विश्वेश्वर विश्वभावन भगवान्के व्रजमें आते ही मनुष्योंके मनमें परमोत्सव बढ़ गया और मंदिर-मंदिरमें भांति-भांतिके बाजे बजने लगे, सब गोपिका श्यामसुन्दरका मुखारविन्द देख-देख आनन्दित हो-हो न्योछावर कर नन्दरानीसे कह रही थीं कि हे यशोदा! तेरे पुत्रके तो चक्रवर्तीकेसे लक्षण हैं। चक्रादिक चिह्नोंके छिपानेके लिये अपने हाथोंकी मुट्ठी बांध ली है। तूने पूर्वजन्ममें भगवान्की बड़ी सेवा की है, जो ऐसा मनोहर पुत्र पाया है। यशोदा सबके पांवों पड़-पड़ कहती थी कि इसमें मेरा क्या है, यह सब तुम्हारा ही पुण्य है। सब गोपी अशीष देती हैं "कि सदा सुहागण रहहु तुम युग-युग जीवे बाल" ॥१३॥ व्रजवासियोंने उस दिन अत्यन्त प्रसन्न होकर घी, दूध, दही, माखन, जल, हलदी मिलाकर दधिकांदोका प्रबन्ध किया। प्रथम नन्दरायको बुलाकर उनके ऊपर छिड़का, फिर परस्पर ऐसा खेल मचाया कि जहां देखो वहीं दधि माखनकी ही रेलपेल हो रही थी। इस आनंदको देवता विमानों पर बैठे देखकर कह रहे थे, कि गोकुलवासियोंका धन्य भाग्य है! जिन परमपुरुष परमात्माका दर्शन शिव सनकादिकके ध्यान में महाकठिनता से आता है वह नन्दके घर जन्म लेकर व्रजवासियोंको आनन्द दिखा रहे हैं और देवांगनायें पछता-पछताकर कह रहीं थीं कि हाय! आज हम नन्दरायके घरकी दासी भी न हुई जो इस उत्सवके सुखको समीप से देखकर अपने मनको प्रसन्न करतीं। इस प्रकार दधिकांदोके उत्सवमें व्रजवासी विह्वल हो रहे थे ॥ १४ ॥ अति उदारचित्त नन्दरायजीने सूत, मागध, वंदीजन और जो-जो गुणीजन गाने बजानेवाले थे सबको वस्त्र, आभूषण, गाय, द्रव्य, दान दिया और नंदरायसे सब वृद्ध-वृद्ध जनोंने कहा—हे मित्र नन्द! आज तो नाचने का दिन है, हमारे सङ्ग नाच लो, सबने नन्दजीका हाथ पकड़ इनको उठाया और सब व्रजवासी मग्न हो होकर नंदके सङ्ग नाचने लगे और गोपियाँ बाजे बजा-बजाकर गीत गाने लगीं। इस समयकी शोभाको देख करके वर्णन करनेमें सरस्वती भी चकित हो अवाक्सी हो गयीं तो फिर और कवियोंकी क्या सामर्थ्य है, जो उस मनभावनी सुहावनी शोभाका वर्णन कर सकें? ॥१५॥ नंदरायजी उदारचित्त पुत्रके कल्याणके लिये विष्णु-भगवान्की आराधना करते थे और वारंवार यह वरदान मांगते थे कि हे नाथ! मुझपर प्रसन्न होओ और यह मेरा बालक चिरंजीव रहे; इसीलिये नंदजीके समीप जो-जो गुणीजन आ-आकर जिस-जिस वस्तुकी कल्पना करते थे, उनको वही वस्तु दे-देकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते थे और यथायोग्य उनका पूजन भी करते थे। नंदजी उठने को थे इतनेमें एक सूत आया, नंदजी बोले कि तुम कौन हो? वह बोला कि मैं आपके घर का सूत हूँ, आपको आशीर्वाद देनेके लिये आया हूँ।

श्लोक—अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरे ह्यनपहतमूर्मीगणशरैः।

अदृष्टं केनापि क्वचन च दिवानन्दसरसि
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत् ॥

महारानी यशोदाजीकी गोदरूपी नंदजीके सरोवरमें एक अद्भुत श्यामरङ्गका कमलसा ओज (शक्तिविशेष) उत्पन्न हुआ है। वह कमल कैसा है जिसको भौरोंने अभीतक नहीं सूंघा और पवनसे उसकी सुगंध भी नहीं हरी गयी और वह कमल उत्पन्न नहीं हुआ, किंतु आंनद सरोवरसे प्रकट हुआ है और लहरोंसे भी कभी ताड़ित नहीं हुआ और न अभीतक किसीने देखा, वह अद्भुत श्याम कमल श्रीयशोदा महारानीकी गोदमें है। यह सुन नंदरायजीने बहुत प्रसन्न होकर उसका मनोरथ पूर्ण किया और हाथीपर चढ़ाकर बिदा किया। उसी समय एक याचक और आया। उसका मुख नंदजीने पूछा, भाई! तुम कौन हो? कहांसे आये? याचक बोला कि महाराज! मैं गोवर्द्धनवासी आपके घरका दास हूं। नन्दजी बोले कि तुम जिस वस्तुकी इच्छा हो वह मांगो। तब याचक बोला—क्या मांगू!

दोहा—जो कुछ धन पायो यहां, सो सब दियो लुटाय।
धनकी कुछ इच्छा नहीं, कृष्णदर्शकी चाय॥

नन्दरायजी बोले फिर क्या इच्छा है? याचक बोला कि मेरा मनोरथ तो यह था कि जिस दिन नन्दलाल घुटनो-घुटनो चलकर मेरे समीप आकर मुझको दर्शन देंगे उस दिन मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी। यह सुन नन्दजीने प्रसन्न होकर अपने सेवकोंसे कहा कि राज-भवनमें इनके ठहरनेको स्थान दे दो। अनुचरोंने उनकी आज्ञानुसार उसको स्थान बताया और जो कोई कृष्णदर्शनाभिलाषी वहां आया उसको भी उसी मंदिरमें ठहराया। यह रहस्य देख महादेवजीने भी विचार किया कि हमारे चलनेका भी समय है। आज नंदरायजी सबके मनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं आज हमारी भी अभिलाषा पूर्ण करेंगे यह विचार योगीका वेष धर नंदीपर सवार हो नन्दके द्वारपर नन्दनन्दनके दर्शनको आये। अंगपर विभूति चढ़ी हुई, मूँजकी कौंधनी कटिमें कसी हुई, हाथमें त्रिशूल धारण किये, एक हाथमें डमरू लिए हैं, इस प्रकारके वेषधारी शंकरजीको देखकर चारों ओरसे गोप उन्हें घेर लिए और दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले कि बाबाजी महाराज! कहां से आना हुआ? किस वस्तुकी इच्छा है परंतु मौन व्रत धारण किये खड़े रहे। इनका अद्भुत स्वरूप देखकर सब गोपग्वाल उनका हाथ पकड़ भीतर राजभवनमें ले गये जहां सब गोपी बैठी थीं और नन्दरानी अपने पुत्रको खिला रही थीं। कोई-कोई गोपिका तो शिवका वेष देख डरकी मारी भाग गयीं और कुछ गोपिकाओंने उनको घेरघार नन्दरानीके द्वारपर ले जाकर खड़ा कर दिया। नन्दरानी उनके रूपको निहार सुनन्दादिक गोपियोंसे पुकारकर बोलीः-

भजन—देखो री एक बाला योगी, द्वारे मेरे आया है री॥
अंग विभूति गले मृगछाला, शेषनाग लपटाया है री॥
माथे जाके तिलक चन्द्रमा, शिरपर जटा बढ़ाया है री॥
ले भिक्षा निकली नँदरानी, मोतियन थाल भराया है री॥
ले भिक्षा योगी जाओ आसनको, मेरा गोपाल डराया है री॥
ना चहिये तेरी दौलत दुनिया, ना चहिये तेरी माया है री॥

अपने सुतका मुख दिखला दे, योगी दर्शनको आया है री ॥
ले गोपाल निकली नँदरानी, योगी दर्शन पाया है री ।
पांच वार परिकर्मा करके, सींगीनाद बजाया है री ॥

उस समय ऐसा प्रेम बढ़ा कि नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली, गद्गद कण्ठ हो गया, रोमांच हो आये और वारंवार अपनी जटाओंको उस बालकके पांओंसे लगा-लगाकर नाचने लगे और प्रेममें मग्न हो उस आँगनमें लोटने लगे ! इनकी यह दशा देख व्रजवासी भी आकर नन्दरायजीसे कहने लगे–

कबित्त–अहो ब्रजराज कोउ योगीवेष धारे आज, सुनि सुतजन्म आयो यशुमति भौन है । मोती मणि माणिक रु कञ्चन ना रत्न लेत, हय गयभूमि ग्राम लेत हमसों न है ॥ नगर अहोटे नाहिं भूमिमाहिं लोटे परो, अलख उचारे नाम बूझो तौन मौन है । बालकके पांवसों जटानको लगाय नाचे, योगी तीन आंखको कहांसे आयो कौन है ॥

यह सुन नन्दराय भवनमें जाकर योगीको मना लाये और सभामें बैठाकर सबको सुना दिया कि यह हमारे स्वामी शिवजी महाराज हैं, आज हमारा घर पवित्र करनेके लिये आये हैं, नन्दके भाग्यकी बड़ाई बखान शिवने यह आशीर्वाद दिया:–

श्लोक

जयति जयति पुत्रस्ते सदानन्दमूर्तिजगदघहरकीर्तिः सौख्यसौभाग्यमूर्तिः ॥
सकलरससरसालः प्रेमपीयूषजालो व्रजजनसुखपालो नन्दगोपालबालः ॥

सदा आनन्दकी मूर्ति, जगत्के पाप दूर करनेकी कीर्तिवाले, साक्षात् सुख और सौभाग्यका स्वरूप, सम्पूर्ण रसकी खान, प्रेमामृतके निधान, व्रजवासियोंके पुण्यपालक नन्दगोपालजी तुम्हारे पुत्रकी जय जयकार हो ! यह कह चल दिये । इतनी देरमें और बहुतसे याचकोंकी भीड़ हो गयी। तब नन्दरायने भण्डारीसे कहा कि आज सब याचकोंको अयाचक कर दो, जो फिर कहीं मांगनेकी इच्छा न करें। भण्डारीने कोषका धन लुटाना आरम्भ किया, उस समय शङ्खादिक द्रव्यने कुबेरका आश्रय लिया, सुमेरुने सब देवताओंकी शरण ली । डरके कारण कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, स्वर्गको चले गये और नारायण अपनी लक्ष्मीको लेकर क्षीरसागरमें जा छिपे कि कहीं मेरी लक्ष्मीको नन्दरायजी दान न कर दें । श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! नन्दराय ऐसे दानमें मग्न हो गये कि जिनको अपने तनकी भी सुध न रही अर्थात् सर्वस्व ही दान कर दिया ।

सवैया– पूत सपूत जन्यौ यशुदा, इतनी सुनिकै वसुधा सब दौरी ।
देवनकेर अनन्द भयो, सुनि धावत गावत मङ्गल गौरी ॥
नन्द कछू इतनो जु दियो, घनश्याम कुबेरहुकी मति बौरी ।
ब्रजदेखत ही जु लुटाय दियो, न बची बछिया छछिया न पिछौरी ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे कृपासिंधो ! नन्दजीने इस प्रकार दान क्यों किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब नन्दजीके घर जगदाधार श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने आकर अवतार लिया तब नन्दजीने अपने मनमें विचारा कि त्रिलोकीकी सम्पदा तो मेरे घर आ गयी फिर मुझको संसारके धनसे क्या प्रयोजन ? इसलिये नन्दजीने उदारता पूर्वक सब संसारका धन दान कर दिये और अपने मनमें कुछ अभिमान न किया और अपने सामर्थ्यके अनुसार सबका आदर-सम्मान भी किया, परन्तु इसी प्रयोजनसे कि सर्वान्तर्यामी विष्णुभगवान् प्रसन्न हों और इस बालककी दीर्घायु करें ॥ १६ ॥ नन्दरायजीके घर सब व्रजकी बहू और बेटी आयीं परन्तु रोहिणीजी नहीं आयीं, क्योंकि इनके पति मथुरामें थे। लिखा है कि जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो उसको शृङ्गार नहीं करना चाहिये और पराये घर न जाय, इसलिये नन्दजीके घर नहीं गयीं, तब नन्दजीने रोहिणीसे जाकर कहा कि तुम ही तो बड़भागिनी ठहरीं और तुम हमारे घर न आयीं, हमारे घर बधाई हो रही है, तुमको अवश्य चलना पड़ेगा वह घर तो आपका ही है, तुम हमको ऊपरी मत समझो,वह तो सोवरमें बैठी है, केवल एक सुनन्दा है उसको ऊपरहीके काम बहुत हैं, अतः जो गोपिकायें आती हैं उनका आदर-सत्कार कौन करे ? तब रोहिणी बोली कि तब-तक तुम चलो,तुम्हारे भतीजेको दूध पिलाकर मैं भी आऊँगी। तब नन्दराय बोले कि मेरे संग ही तुमको चलना पड़ेगा, क्योंकि कामका कारोबारी सिवाय आपके कोई दृष्टि नहीं आता। नन्दजीकी आज्ञानुसार सुन्दर-सुन्दर वस्त्र,आभूषण, मुक्तामाला,कण्ठाभरण पहन बलदेवजीको गोदमें ले प्रसन्न होती हुई नंदजीके संग चलीं और दासीके हाथमें पान-फूल मेवा-मिठाईकी थाली दे दी और यशोदाके समीप आकर कृष्णका मुख देख नौछावर कर नाइनको दी और आंगनमें जो-जो गोपी कुरता टोपी लिये बैठी थीं उनके हाथसे लेकर मंदिरमें धरने लगीं और यथायोग्य उनका आदर-सम्मान करने लगीं और सब गोपी यह आशीष देती थीं कि सदा नंदालयमें ऐसा ही उत्सव बना रहे ॥ १७ ॥ जिस दिनसे व्रजमें कृष्णजन्म हुआ उस दिनसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे नंदजी परिपूर्ण हो गये, नंदरायजी नित्य खजानेको लुटाते थे, परंतु फिर भाण्डागारको जैसाका तैसाही भरा पाते थे, क्योंकि जहां वैकुण्ठनाथकी भार्या लक्ष्मी व्रजमें आकर मालिनीका वेष धारणकर द्वार-द्वार वंदनवार बांधती फिरती थीं वहां और सम्पत्तियोंकी क्या गिनती है ? ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलदीपक ! एक दिन नंदरायजीने गोकुलकी रक्षा करनेके लिये बहुतसे गोपोंको सब प्रकार नियुक्त किया और आप कुछ ग्वालोंको संग ले और दूध, दही, माखन, मटकियोंमें भर-भरकर गाड़ियोंमें लाद और वार्षिक कर लेकर भेंट देनेके लिये मथुराको चले ॥ १९ ॥ अपने परम हितकारी नंदरायजीका आगमन सुनकर वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए कि आज हमारे मित्र नंदजी कंसजीकी बरसौडी देनेके लिये आये हैं। जब नंदजी कंसको कर दे चुके और किसी स्थानपर आकर विश्राम किया, उस समय वसुदेवजी कुछ भोजनादिक लेकर नंदजीसे मिलने गये ॥ २० ॥ जैसे मृतक देहमें प्राण आनेसे देह उठ खड़ा होता है, ऐसे ही वसुदेवजीको आये हुए देख नंदजी अकुलाकर शीघ्र खड़े हो गये और अपने प्यारे सुहृदका हाथ पकड़कर प्रेममें विह्वल हो हृदयसे लगाकर मिलने लगे।

चौ०-प्रेम विकल नयनन जल छाये ❋ मिलत दोउ छूटत न छुटाये
पुनि जस तस करि छूटे दोऊ ❋ धन्य कहै दोउन सब कोऊ ॥२१॥

हे राजन् ! नन्दरायजीने वसुदेवका पूजन कर सुखपूर्वक आसनपर बैठाकर कुशलक्षेम पूछने लगे और परमप्रिय पुत्रोंमें जिनका मन अत्यन्त लग रहा था, वे वसुदेवजी आदर-सत्कार कर बोले ॥ २२ ॥ अहो भ्राता नन्दजी ? तुम्हारे सन्तान नहीं होती थी और आपने पुत्र होनेकी आशा भी छोड़ दी थी, क्योंकि बहुत वृद्धावस्था हो गई थी, परमेश्वरकी कृपासे अब आपके पुत्र हुआ, यह सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए॥२३॥इस संसारमें रहकर पुनर्जन्मकी नाईं आपका मिलना हुआ, यह बड़े आनन्दका दिन है ! सब मिलते हैं, परन्तु संसारमें मित्रका मिलना बहुत दुर्लभ है ॥२४॥ अहो प्यारे ! नदीके प्रवाहसे काष्ठ और तृणादिक बहते हैं, कभी स्थिर होते हैं, परंतु एक स्थानपर संगम नहीं होता, ऐसे जो अपने प्यारे सुहृद हैं उनका एक स्थान पर रहना नहीं होता ॥२५॥ हे नन्दजी ! बहुत जल, तृण और गुल्मलता-युक्त पशुओंका हितकारी जो अत्यन्त रमणीक महावन है, जहां अपने संबन्धियों सहित आप निवास करते हो, वह महावन नीरोग तो है ? इस वचनसे ध्वनि निकली कि हमारे पुत्र जो आपके निवासस्थानपर वास करते हैं, वह तो अच्छे हैं ? जहां जल, तृण अधिक होगा तो वहां गायोंकी अच्छी उदरपूर्णता होगी और दूध भी अधिक होगा और नीरोग भी होगा तो उस दूधको हमारे पुत्र पियेंगे तो वे भी नीरोग रहेंगे ॥२६॥ वसुदेवजी बोले कि हे मित्र ! मेरा पुत्र अपनी जननीके संग आपके व्रजमें रहता है और आपको ही अपना पिता समझता है और आप ही उस बालकके प्रतिपालक हैं, वह अपनी मातासहित प्रसन्न है ? ॥२७॥ सत् पुरुष अपने प्रियतम प्यारेको संग लेकर ही धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पदार्थोंको करते हैं और जो अपने प्यारे स्नेहियोंको छोड़कर अकेले धर्म करते हैं, वा द्रव्यका भोग भोगते हैं, अथवा काम विषयका भोग करते हैं, तो यह त्रिवर्ग उनको सुखदायक नहीं होते ॥२८॥ वसुदेवजीके मधुर वचन सुनकर नन्दजी बोले कि अहो मित्र ! सब व्रजमें परमेश्वरकी कृपा है और आपके पुत्र बलरामजी भी अच्छे हैं, उनके उत्पन्न होनेके पीछे मेरे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ है,वह भी आपकी कृपासे अच्छा है,परंतु आपकी ओरका हमको बड़ा दुःख बना रहता है।

चौ०-हाय देवकी पुत्र तुम्हारे ❋ पापी कंस छहों हति डारे ॥
पीछे भई सुता इक जोई ❋ गगनपन्थ गमनत भइ सोई ॥
भाल लिखी जो लिखत विधाता ❋ और न होत होत सोइ भ्राता ॥२९॥

हे मित्र ! प्रारब्ध ही सर्वोपरि है, जिन पुत्रादिकोंका देनेवाला भाग्य हीन हो जाता है उस समय यह पुत्रादिक भी नहीं होते हैं, सब बिछुड़ जाते हैं और जब प्रारब्ध अच्छा होता तो फिर सब मिलते हैं। हे भ्रातः ! प्रारब्ध ही सुखका देनेवाला है और प्रारब्ध ही दुःखका देनेवाला है, जो पुरुष इस प्रकार जानते हैं वे कभी मोहको प्राप्त नहीं होते। इस वचनसे यह सूचित किया कि अहो वसुदेव ! अपने मनमें पुत्रोंका सोच संकोच मत करो, किसी समय आपके पुत्रोंका भी संयोग हो जायगा, हमसे वियोग हो जायगा ॥३०॥ वसुदेवजी बोले कि हे नन्दरायजी ! विधाताने जो हमारे भाग्यमें लिखा है, उसको कोई नहीं मेट सकता और इस संसारमें आकर ऐसा कौन है जो कष्ट नहीं भोगता ? और आपके

समान अपना मित्र हम किसीको नहीं देखते। देखो, हमने कंसके भयसे अपनी गर्भवती स्त्रीको आपके यहां निःसन्देह भेज दिया और जब उसके पुत्र हुआ तो आपने अपने पुत्रके समान उसका लालन-पालन किया यह परमोपकार आपका मैं कैसे भूल सकता हूँ ? जन्म-जन्मांतर मैं आपकी सेवा करूं तो भी उऋण नहीं हो सकता। जब सुना कि आपके यहां पुत्रोंका जन्म हुआ तो मैंने परमसुख माना हे मित्र ! मैं अपने पुत्रोंमें और आपके पुत्रोंमें कुछ भेद नहीं समझता, परन्तु इन दिनों कंसने बड़ा उपद्रव मचा रखा है, छोटे-छोटे बालकोंको मारनेकी आज्ञा दे रखी है और आज एक पूतना राक्षसीको गोकुलमें भी भेजा है, तुम वार्षिक कर कंसको दे चुके और हमसे भी मिल चुके, अब यहां रहना तुम्हारा बहुत दिनतक अच्छा नहीं, न जाने गोकुलमें पूतनाने क्या उत्पात मचाया होगा ? ॥ ३१ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीके वचन सुन नन्दरायने सब गोपोंको आज्ञा दी कि शीघ्र गाड़ी जोतो। यह कह वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर नन्दजी मथुरापुरीसे गोकुलको चल दिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्य कृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे नंदवसुदेवसमागमवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–छठयेमें नन्दरायजी, शोच करत मन जाहिं।
मरी परी इक राक्षसी, देखी मारग–माहिं ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! नन्दरायजी मार्गमें यह विचार करते हुये जा रहे थे कि वसुदेवका वचन तो मिथ्या हो ही नहीं सकता,उत्पातके भयसे भगवान्‌का स्मरण करने लगे कि हे जन प्रतिपालक!जो यह दो बालक आपने दिये हैं तो इनकी रक्षा भी आपको करनी पड़ेगी ॥ १ ॥ महाघोर रूपवाली बालघातिनी पूतना नाम राक्षसी कंसकी पठायी हुई जितने व्रजमें पुर, ग्रामादिक थे सबमें बालकोंको मारती-फिरती थी॥२॥ यह बात सुनकर राजा परीक्षित्‌के मनमें शंका हुई तो श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि यह पूतना नंदजीके मंदिरमें गई वा नहीं गयी ? और गयी तो क्या किया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! चिंता मत करो। जहां परमेश्वर का यश और यज्ञादिक कर्म नहीं होते वहीं राक्षसी जा सकती है और अपना पुरुषार्थ करती है और जिन स्थानोंमें भगवान्‌का स्मरण होता रहता है, वहां राक्षस लोग क्या कर सकते हैं ? और नंदजीके भवनमें तो साक्षात् अनन्त भगवान् विराजमान हैं फिर वहां पूतना विचारी क्या कर सकती है ? आप ही मारी जायगी ॥३॥ हे राजन् ! अनेक राक्षस गांव-गांवमें बालकोंको मारनेके लिए फिरते थे, परंतु तो भी कंसके मनमें धैर्य नहीं था और आठों पहर इसी शोचमें व्याकुल था कि उसी अवसर पर पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर अपना सब वृत्तांत कहा कि और किसीसे तो हमारा कार्य पूरा न हुआ परंतु मुझको विश्वास है कि तुमसे हमारा काम सिद्ध होगा और बालकका तो मुझको थोड़ा ही खटका है, परंतु गोकुलमें नंदके जो पुत्र हुआ उसका बड़ा भय है, तू गोकुलमें जा और उसको किसी प्रकार मारके आ मैं तुझको पूरा पारितोषिक दूंगा। यह बात सुनते ही पूतना कंसकी आज्ञा शिरपर धारण कर गोकुलको चल दी और मार्गमें यह विचार करती जाती थी कि किस प्रकार नन्दकुमारको मारना चाहिये ? सोचा कि और किसी प्रकार नहीं होगा, गोपी

का वेष बनाकर बधाई देनेके मिषसे नंदके घर जाऊँ और छलबलकर उस बालकको मार डालूं।

दोहा–यह विचार कर पूतना, धारि मोहिनी रूप।
विष लगाय दोउ कुचनमें, कियो शृङ्गार अनूप॥

इस प्रकार बन-ठन गोकुलमें पहुंची ॥ ४ ॥ उसकी चोटीमें मालतीके फूल गुँथे हुए थे, बड़े-बड़े नितम्ब सुन्दर स्तनोंके भारसे कटि जिससे नीचेको झुकी जाती थी, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रधारण कर रही थी, कानोंमें कर्णफूल, कुण्डलोंकी छवि शशिको लज्जित कर रही थी और केशोंसे जिसका मुख शोभायमान हो रहा था ॥ ५ ॥ मन्द-मंद मुसकान और बांकी चितवन ब्रजवासियोंके मनको मोहित करनेवाली; बेखटके राजभवनमें चली गयी और द्वारपालोंपर ऐसी मोहिनी डाली कि किसीने उसको नहीं रोका और उसके हाथमें एक कमलका फूल था उसको देखकर सब गोपियोंने कहा कि यह लक्ष्मी अपने पति नारायणके दर्शनके लिये आयी हैं और यशोदा रोहिणीने भी यही जाना। कोई गोपी बोलीः–

चौ०–रमा नहीं यह है इन्द्राणी * कोउ कह उमा कोउ कह वाणी॥
कोउ कह यह मनोजकी बाला * आयी लखन नन्दको लाला॥
अबलौं लखी न ऐसी कामिनि * भामिनि है कैहै यह दामिनि॥६॥

बालकोंको ग्रहरूप जो पूतना है, वह छोटे-छोटे बालकोंको खोजती हुई नन्दजीके मंदिरमें गयी, जहां दुष्टोंके मारनेवाले भगवान भस्म में दबी हुई अग्निके समान बालकरूपमें अपने तेज को छिपाये शय्यापर पड़े सो रहे थे, उनको देखा ॥७॥ स्थावर जंगम प्राणियोंके अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने इस बालघातिनी पूतनाको देखकर आंखें मीच लीं और हँसकर चुप हो रहे, उस दुष्टाने आते ही कालरूप भगवान्‌को गोदीमें उठा लिया, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष रस्सी समझकर सोते हुए सांपको उठा लेता है ॥८॥ जैसे मखमली म्यान की तलवार ऊपरसे मनोहर कोमल और भीतरसे महातीव्र तीक्ष्ण धारवाली होती है, ऐसी पूतनाको देख चकित होकर रोहिणी और यशोदा देखती रहीं, मुखसे कुछ न कहा, तब एक गोपी बोली कि तू कौन है ? तब उस कपटिन पूतनाने कहा कि मैं देवांगना हूं, तुम्हारे यहां बधाई देने आयी हूं। इस मनोहर बालकको देखकर जी खिलानेको चाहा, इसलिए गोदमें ले लिया परमेश्वर करे यह बालक करोड़ वर्ष जीता रहे ॥९॥ ऐसी रीतिप्रीति भरी बातचीत कर उस कपटरूप पूतनाने चुमकारके कृष्णको गोदमें ले लिया और भयानक विष लगा हुआ अपना स्तन पकड़के मुख कमलमें दे दिया, तब तो कुपित होकर कृष्णचन्द्रने दोनों हाथोंसे उसके स्तन पकड़कर प्राण सहित स्तनको ओषधि समझकर पी गये ॥ १० ॥ तब पूतना बोली– अरे लाल ! छोड़ दे छोड़ दे प्राण चलने चाहते हैं अतः बस, रहने दे, मेरा अपराध क्षमा कर, मेरे शरीरमें अत्यन्त पीड़ा होती है, जब नेत्र फटने लगे तो पुकारा–अरी यशोदा ! अपने लालसे मुझको छुड़ा, मैं मरी, यह तेरा बालक मनुष्य नहीं है, यह तेरी कोखमें कोई महाबलवान देवता उत्पन्न हुआ है। यह कहती ही कहती हाथ पांव पीटकर मर गयी ॥११॥ पूतना के महा गम्भीर शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान हो गयी, ग्रह तारा-गणसहित सब आकाशमण्डल चलायमान हो गया, रसातल और दिशाओंमें घोर शब्द पूरित हो गया, इन्द्रके वज्रपात होनेकी शङ्कासे मनुष्य पछाड़ खा-खाकर पृथ्वीपर गिर

गये ❋ ॥१२॥ स्तनोंकी व्यथासे प्राण जिसके निकल गये और मरते समय अपना कपट रूप जिसने त्याग दिया अर्थात् राक्षसीरूप प्रकट कर लिया, जैसे मरनेके समय वृत्रासुर कपट तजकर भूतलपर गिरा था; इसी प्रकार पूतनाभी हाथ-पांव पसारके पृथ्वीपर गिर गयी॥१३॥ श्रीशुकदेव जी बोले कि हे राजन्! जिस समय पूतना मरकर पृथ्वीपर गिरी उस समय छः कोशके बीचमें जो वृक्ष थे चूर्ण हो गये ॥१४॥ उस महाभयानक रूपवाली पूतनाके मुखमें हलके समान दाढें और पहाड़की कन्दराके समान जिसकी नाक पर्वतके शृङ्गके सदृश जिसके स्तन और महाभयंकर लोहित रंगके जिसके बिखरे हुए केश थे॥१५॥ अन्धकूपकी नाईं गम्भीर जिसके नेत्र, जैसे पुल बंधा हो वैसे ही जिसके हाथ-पांव जंघा और सूखे सरोवरके समान जिसका उदर है॥१६॥ ऐसा महाभयानक पूतनाका देह देखकर गोप-गोपी अत्यन्त भयभीत हुए, क्योंकि उसके गम्भीर शब्दसे पहले ही उनके हृदय, कान, मस्तक फट गये थे॥१७॥ उस पूतनाकी छाती पर निःशंक श्रीकृष्णचंद्र क्रीड़ा कर रहे थे, सब गोपी जो हड़बड़ाई हुई व्याकुल फिरती थीं झटपट उस राक्षसीके ऊपरसे श्रीकृष्णचन्द्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥१८॥ सब गोपी यशोदा रोहिणी व्रजनन्दको गायकी पूंछसे झाड़ा देकर फूंक मारने लगीं और अनेक विधियोंसे रक्षा करने लगीं ॥१९॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहन प्यारेको गोमूत्रसे स्नान कराकर गोरजमें लुटाय गोबर लगाय द्वादश अंगोंमें केशवादिक द्वादश नामोंसे रक्षा करने लगीं॥२०॥ सब गोपियोंका मन जो व्याकुल हो रहा था इसलिए पहले कुछ श्रेष्ठ उपाय न कर सकीं, फिर सावधान हो स्वस्थ चित्त कर सब गोपी स्नान कर आचमन ले अपने अंगोंमें तथा करोंमें पृथक्-पृथक् अंगन्यास और करन्यास करके फिर नन्दनन्दनके शरीरमें बीजन्यास किया ॥२१॥ हे यशोदानंदन ! अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणोंकी रक्षा करें, अणिमान् भगवान् तुम्हारे ऊरुओंकी रक्षा करें, यज्ञ भगवान् तुम्हारी जङ्घाओंकी रक्षा करें, अच्युत भगवान् तुम्हारी कटिकी रक्षा करें, हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करें, केशव भगवान् तुम्हारे हृदय की रक्षा करें, ईश्वर तुम्हारी भुजाओंकी रक्षा करें, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे मुखारविंदकी रक्षा करें, ईश्वर भगवान् तुम्हारे माथेकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करें, गदाधर भगवान् तुम्हारे पश्चाद्भागकी रक्षा करें, धनुषधारी मधुनाम दैत्यके हन्ता भगवान् और खड्गधारी अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बांये पार्श्वकी रक्षा करें, शङ्खधारी उरुगाय भगवान् चारों कोनोंकी रक्षा करें, उपेन्द्र भगवान् तुम्हारे ऊपरकी रक्षा करें, तार्क्ष्य भगवान् नीचे पृथ्वीकी रक्षा करें, हलधर भगवान् सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें ॥२३॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इन्द्रियोंकी रक्षा करें, नारायण भगवान् प्राणोंकी रक्षा करें, श्वेतद्वीपाधिपति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करें, योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करें॥२४॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करें, परम भगवान् तुम्हारी आत्माकी रक्षा करें, विहार के समय गोविंद भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, शयनके समय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा

❋ शंका—कंसकी भेजी हुई पूतनाने मरते समय ऐसा गम्भीर शब्द किया कि तीनों लोक कम्पायमान हो गये । बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है, हम लोगोंने तो कभी नहीं सुना कि राक्षसीके शब्दसे तीनों लोक कांप उठे ?

उत्तर—जब पूतनाने मरते समय शब्द किया उस समय गुप्त होकर तीन लोकोंमें स्थित जो प्रजा थी वह सब श्रीकृष्णके दर्शनके लिये ब्रजमें आयी थी, सब प्रजागण पूतनाके शब्दको सुनकर शीघ्र कांपने लगे, इस लिये तीन लोकका नाम व्यासजीने कहा था, क्योंकि लोक प्रजाका भी नाम है ।

करें ॥२५॥ वैकुण्ठनाथ भगवान् चलने-फिरनेके समय तुम्हारी रक्षा करें, लक्ष्मीपति भगवान् बैठनेके समय तुम्हारी रक्षा करें और सर्व ग्रहोंके भयको दूर करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥२६॥ डाकिनी,शाकिनी,यातुधानी,कूष्माण्ड,बालग्रह, भूत,प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायकगण ॥२७॥ कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादिक जो राक्षसी हैं वे और उन्माद अपस्मारादिक जो-जो रोगके करनेवाले देह प्राण इंद्रियोंके द्रोही हैं ॥२८॥ और जो-जो स्वप्नमें देखनेके उत्पात हैं-वृद्धग्रह,बालग्रह,योगिनी,वैताल,जो समस्त विष्णुभगवान्के नाम लेनेसे डरते हैं वे सब नष्ट हो जायें ॥२९॥ इस प्रकार हाथ जोड़ गोपियोंने विष्णु भगवान्की प्रार्थनासे रक्षा करके श्रीयशोदानन्दनको यशोदाको सौंप दिया। तब यशोदाजीने मनमोहन प्यारेको दूध पिलाकर घरमें छिपाकर शय्यापर सुला दिया ॥३०॥ उसी अवसरमें नन्दादिक व्रजवासी भी मथुरासे आ गये, तब मार्गमें मरी हुई पूतनाको पड़ी देख बड़ा आश्चर्य मानकर ॥३१॥ नन्दजी कहने लगे कि वसुदेवजी तो निश्चय कोई ऋषि वा योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि जो कुछ उन्होंने हमसे कहा था वही हुआ। हमसे कहा था कि तुम शीघ्र मथुरासे गोकुलको जाओ, वहां कोई नया उत्पात होनेवाला है, वह आते ही नेत्रोंसे देख लिया ॥३२॥ पीछे सब गोकुलवासियोंने पूतनाके देहको कुल्हाड़ोंसे काट-काटकर घरोंसे दूर ले जाकर चितामें धर उसको फूंक दिया ॥ ३३ ॥ जिस समय पूतनाका शरीर जलने लगा तो उसकी चितामेंसे अगर कीसी सुगन्धका धुवां निकलने लगा। श्रीकृष्णचन्द्रने उसके स्तन जो पान किये थे इससे सब पाप उसके दूर हो गये ॥३४॥ जगत्के बालकोंको मारनेवाली और रुधिरकी प्यासी पूतनाने भगवान्को स्तन पिलाकर मारनेकी इच्छा की, परंतु भगवान्ने तो भी उसको मोक्ष दिया ॥३५॥ फिर श्रद्धा और भक्ति करके श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्की माता अत्यन्त प्रिय पदार्थोंकी देनेवाली मुक्तिको पाये तो क्या आश्चर्यकी बात है ? ॥३६॥ अपने जनोंके हृदयमें वास करनेवाले और लोकवंदित देवताओंके भी पूजनीय ऐसे देवताधिपति ब्रह्मा जिनको प्रणाम करें ऐसे चरणारविंदोंसे पूतनाका अंग दाबकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्तनपान किया ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है; उस गतिको पूतना राक्षसीने प्राप्त किया और जिन गायों, गोपियोंका दूध श्रीकृष्णचन्द्रने पिया है जो वह सुन्दर गतिको प्राप्त हों तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३८ ॥ मोक्ष आदि समस्त पदार्थोंके देनेवाले देवकीके पुत्र भगवान्ने पुत्रके स्नेहसे गाय और गोपियोंका दूध परिपूर्ण होकर पिया ॥३९॥ हे राजन् ! कृष्णचन्द्रमें पुत्रभाव माननेवाली उन माता और गोपियोंको अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसार न होगा ॥४०॥ व्रजवासी लोग पूतनाकी चिताके धुएँकी सुगन्ध सूंघकर परस्पर कहने लगे यह आज क्या है और यह सुगंध कहांसे आती है ? यह कहते हुए नन्दादिक गोकुलमें आये ॥४१॥ तब ग्वालबालोंके मुखसे पूतनाका आना और उसका मरना और कुशलपूर्वक बालकका बचना सुनकर नन्दादिक व्रजवासी बड़ा आश्चर्य मानने लगे ॥ ४२ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! उदारबुद्धि नन्दजी मथुरासे आकर पुत्रको गोदमें लेकर परमानन्दको प्राप्त हुए और वारंवार उसके शिरको सूँघ-सूँघ मन ही मनमें प्रसन्न होते थे और चूम-चूमकर प्यार करते थे ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षित्ने पूछा कि हे भगवन् ! यह पूर्वजन्ममें पूतना कौन थी, जिसको श्रीकृष्णचंद्र महाराजने ऐसी उत्तम गति दी ? श्रीशुकदेवजी बोले कि प्रथमजन्ममें

यह राजा बलिकी कन्या थी और रत्नमाला इसका नाम था। वामनजीके स्वरूपको इसने देखा तो मन ही मनमें यह कामना की कि जो ऐसा सुंदर सुत मैं पाऊँ तो हृदय पर रखकर स्तन पान कराऊँ। श्री भगवान् वासुदेव सर्व घट-घटके वासी उन्होंने उसके हृदयकी गति जानकर कहा कि कृष्णावतारमें तेरी कामना पूर्ण करूँगा। दैत्यकुलमें इसका जन्म-था इसलिये तामसी देहके कारण राक्षसके ही घरमें जन्म लिया और "पूतना" नाम हुआ ॥४४॥ यह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानंदनका अद्भुत चरित्र पूतनामोक्षकी कथा जो कोई श्रद्धापूर्वक सुनेगा वह निश्चय गोविंद भगवान्का स्नेही होगा ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे पूतनामोक्षनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—इस सप्तम अध्यायमें, शकटासुरहि गिराय।
मााताको मुखमें दिये, तीनों लोक दिखाय॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे प्रभो ! छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सब प्राणियोंके दुःखोंके दूर करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र भगवान्ने जिन-जिन अवतारों को धारण करके जो-जो लीलायें की हैं वे सब मेरे कानोंको और मुझको प्रिय लगती हैं ॥१॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचंद्रके चरित्रोंकी कथा दिन-रात सुनते हैं,उनके मनकी ग्लानि जाती रहती है और अनेक प्रकारकी तृष्णा भी दूर हो जाती है,शीघ्र ही सम्पूर्ण अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है, भगवान्में भक्ति और प्रेम बढ़ता है और हरिभक्तोंसे मित्रता होती है इसलिये अनुग्रह करके श्रीकृष्णके मनोहर चरित्र मुझको सुनाओ ॥२॥ और मनुष्य देह धारण कर मनुष्योंकीसी लीला करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रका और भी मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे सामने वर्णन करो ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! जब बहुत दिन व्यतीत हुए तो श्रीकृष्णचंद्रजीकी वर्षगांठके उत्सवका दिन आया और उसी दिन जन्म नक्षत्रका योग भी आ गया, तो उस दिन महामंगल हुआ और सब गोपिका भी बधाई ले-लेकर आयीं ! नंदरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये,गीत गवाये, ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्तिवाचन पढ़वाया और श्रीकृष्णचंद्रको अभिषेक (स्नान) कराने लगीं ॥४॥ जब स्नान करवाया तो बाल मुकुंदके नेत्रोंमें निद्रा आ गयी तब सहजसे श्रीकृष्णको गाड़ेके नीचे पाल-नेमें व्रजरानीने थपकी देकर सुला दिया ॥५॥ भगवान्की बधाई लेनेसे जिनके मनमें अत्यन्त हर्ष बढ़ रहा था, वह यशोदारानी उदारचित्त घर आयी हुई गोपियोंका आदर-सम्मान कर रही थीं और ऐसी मग्न हो रही थीं कि अपने पुत्रके रोनेका शब्द भी नहीं सुन सकीं। श्रीकृष्णको भूख लगी तो दूध पीनेकी इच्छा हुई तब रोते-रोते पांव ऊपरको उठा लिये ॥६॥ गाड़ेके नीचे पालनेमें श्रीकृष्णके अति छोटे-छोटे कोमल कमलसे चरणारविन्द लाल-लाल मूँगोंके रंग उन चरणोंकी ठोकरसे गाड़ा गिर पड़ा और अनेक प्रकारके रसोंसे भरे तांबे पीतलके वासन गिर पड़े, पहिये न्यारे-न्यारे उखड़कर गिर गये, धुरी निकल गयी, जुआ टूट गया ॥ ७ ॥ यशोदा आदि जो व्रजकी स्त्रियाँ थीं और जो-जो भेंटें लेकर नंदके घर उत्सवमें आयी थीं, वह और नंदजी आदि जो-जो व्रजवासी वहां थे, वे सब उस आश्चर्यको देखकर व्याकुल हो गये कि आपसे आप गाड़ा किस प्रकार टूट पड़ा ॥८॥ कोई कुछ कोई कुछ परस्पर विवाद करके कहने लगे और मन ही मनमें व्याकुल थे,

परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहीं हुआ। तब नन्द यशोदाके समीपके खेलनेवाले बालकोंने कहा कि तुम किसी बातका सन्देह क्यों करते हो? हमने अपनी आंखसे देखा कि रोते-रोते श्रीकृष्णने पांवकी ठोकर मारी इससे यह शकट उलटकर गिर पड़ा इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं ॥९॥ बालक समझकर श्रीकृष्णके अनन्त बलको किसीने नहीं जाना इसलिए उन बालकोंकी बातका किसीने विश्वास नहीं माना और कहने लगे कि कहां श्रीकृष्णके कोमलकमलसे चरण और कहां यह महाकठोर शकट, छोटेसे बालककी ठोकरसे कैसे टूट सकता है? भाई! ऐसा तो किसी प्रकार विश्वास नहीं आता ॥ १० ॥ यशोदाने रोते हुए अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहने लगीं–आज कोई बड़ा खोटा ग्रह हमारे ऊपर आ गया था, परंतु तुम पञ्चोंके प्रतापसे मेरा बालक बचा। उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर बहुतसा दान-पुण्य कर स्वस्तिवाचन पढ़वाकर ब्रजभूषण प्यारेको दूध पिलाया और बार-बार यही विचार करती रहीं कि कहीं डर न गया हो ॥११॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको न जाना इसीसे ब्राह्मणोंके कहनेसे आठों दिशाओंमें बलिदान करके और सम्पूर्ण वस्तु धर-कर गाड़ा रख दिया और ब्राह्मणोंने नवग्रहादिकोंका पूजन होम कराकर दधि, अक्षत, फल, फूल, कुश, चंदन मँगाकर जलसे गाड़ेका पूजन किया, देखो! प्रेमी ब्रजवासियोंका धान्य खा-खाकर ब्रजके ब्राह्मण भी प्रेमी हो गये जो गाडेका पूजन किया ॥ १२ ॥ जिन पुरुषोंमें निंदा, झूठ, पाखंड, ईर्ष्या, हिंसा, अभिमान नहीं है उन सत्यवादी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥१३॥ यह बात मनमें विचार कर नंदरायजीने श्रीकृष्णको गोदमें लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मंत्रोंसे शुद्ध और पवित्र औषधियोंके पानीसे पुत्रका अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ फिर स्वस्तिवाचन और अग्निमें होम कराकर नंदरायजीने और गोप-गोपियोंने सावधान हो श्रेष्ठ गुणकारी अन्नका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥ १५ ॥ सर्वगुणवाली गायोंको सुंदर-सुंदर वस्त्रों की झूलें उढ़ाकर स्वर्ण, चांदी और पुष्पोंकी माला आभूषण पहनाकर काञ्चनसे सींग मढ़ा पुत्रके कल्याणके लिये दीं और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लिया ॥१६॥ वेदमन्त्रोंके जाननेवाले योग्य ब्राह्मणोंने जो-जो आशीर्वाद दिये वे उसी प्रकार होंगे, क्योंकि ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होता, यह बात शास्त्र और पुराणोंसे प्रकट है ॥१७॥ एक दिन नंदरानी श्रीकृष्णको लाड-प्यार कर रही थीं उसी समय श्रीकृष्ण-चन्द्रने पर्वतके समान अपने शरीर का भार बढ़ाया कि वह भारी भार यशोदाजीसे सम्हाला न गया। बोझ बढ़ानेका कारण यह है कि श्रीकृष्णचंद्रजीने जाना कि जो मैं माताकी गोद में रहा तो यह जो मेरे सम्मुख तृणावर्त्त उपस्थित है, यह मेरी माता सहित मुझको उठाकर ले जायगा। इसलिए मुझको कष्ट हो तो हो, परंतु मेरे कारण मेरी माताको कष्ट न हो ॥१८॥ यशोदाने श्रीकृष्णमें भारी भार समझकर बड़ा आश्चर्य माना और बोझसे अति पीड़ित होकर त्रिलोकीनाथको पृथ्वीपर बैठाकर परमेश्वरका ध्यान करने लगीं और मन ही मनमें विचार करने लगीं कि आज मेरे कन्हैयामें इस प्रकार बोझ क्यों हो गया? इसी सोच-विचार में घरके कार्यमें लग गयीं ॥१९॥ कंसका अनुचर तृणावर्त्त महाबलशाली था, कंशने कृष्णके मारनेके लिए उसको भेजा वह पवनके बबूलेका रूप धरकर आया और पृथ्वीपर खेलते हुए कृष्णको उड़ाकर ले गया ॥ २० ॥ सब गोकुल धूलसे आच्छादित हो गया और ऐसी धूरि उड़ी कि सबकी आंखे मिच गयीं और अन्धकार हो गया। उसके घोर

शब्दसे दिशा-विदिशाओंमें सन्नाटा होने लगा॥२१॥ दो घड़ी तक गोकुलमें अन्धकार छाया रहा, यशोदा व्रजभूषणके उठानेको आँगनमें दौड़ी आयी, देखा तो वहां कृष्णका पता ही नहीं ॥२२॥ तृणावर्त्तने कंकरी ठीकरियोंकी बड़ी भारी वर्षा की, जिससे सब गोकुलवासी मोहको प्राप्त होकर अपने ही आपको न देख सके, फिर दूसरेको देखना महाकठिन था॥२३॥ इस प्रकार महाकठिन धूलिकी वर्षा होनेसे और आंधीके चलनेसे यशोदाने ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कहीं भी व्रजभूषण प्यारेको नहीं पाया, तब अत्यन्त व्याकुल हो मरे हुए बछड़ेवाली गायकी नाईं निर्बल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और करुणा भरे वचन वह कहकर शोच करने लगी॥२४॥उस समय यशोदा का रुदन सुन-सुनकर पशुपक्षियोंका भी हृदय विदीर्ण होता था। अत्यन्त पीडित और महाव्याकुल हुई, नेत्रोंमें आंसू भरे गोपियाँ श्रीकृष्णको विना देखे रो-रोकर प्राण त्यागनेको प्रस्तुत थीं॥२५॥इतनेमें धूरि वर्षा आंधी तो थम गई और बबूलेका रूप धरनेवाले तृणावर्त्त दैत्यका वेग सब धरणीके धारण करनेवाले विश्वनाथ भगवान्‌के उठा ले जानेसे आकाशको न उड़ा गया तो शांत हो गया, इसी कारण उस दैत्यसे अधिक भारी भार लेकर ऊपरको न उड़ा गया ❋ ॥२६॥ जब तृणावर्त्तको बहुत बोझ ज्ञात होने लगा तब यह जाना कि मैं किसी बड़े पत्थरको उठा लिया हूं,क्या कोई वज्र मेरे हाथमें है?यह कह श्रीकृष्णसे छूटनेकी इच्छा करने लगा,परंतु श्रीकृष्णने उसका कण्ठ ऐसा गहकर पकड़ा था कि वह किसी प्रकार न छूट सका ॥२७॥ कण्ठके घुटनेसे उसकी चेष्टा हत हो गयी, नेत्र निकल पड़े, मुखसे शब्द न निकल सका, प्राणहीन होकर वह तृणावर्त❋दैत्य श्रीकृष्ण समेत गोकुलमें गिर पड़ा॥२८॥ जैसे महादेवके बाणका मारा त्रिपुरासुर पृथ्वीपर गिरा था, ऐसे ही आकाशसे वह विकराल दैत्य शिलाके ऊपर गिरा, जिसके सब अंग टूटकर चूर हो गये। उस तृणावर्तका वह महाभयानक रूप रोती हुई व्रजबालाओंने देखा ॥२९॥ उस तृणावर्तकी छातीके ऊपर निर्भय खेलता हुआ श्रीकृष्णको भी देखा तो तुरंत गोपियोंने दौड़कर श्रीकृष्णको उठाकर यशोदाकी गोदमें

❋ शंका—श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द मुनिमनरंजन भक्त भयभंजन भगवान्‌का नाम है, फिर कृष्णचन्द्रने अपनी माताको और व्रजवासियोंको दुःखी करके और अपनी माताको रुलाकर अपनी देहमें भारको बढ़ाया तो तृणावर्त्त हरिको हरकर ले चला तब भगवान्‌ने अपनी देहमें भार क्यों नहीं बढ़ाया, जो राक्षसके उठानेसे न उठते तो सबको कष्ट क्यों होता ?

उत्तर—ब्रह्माने पहले तृणावर्त्तको वरदान दिया था कि तेरे किये दुःख [illegible] यशोदाकी आंखोंसे आंसू गिरेंगे तब तेरी मृत्यु होगी, इसलिये श्रीकृष्णने अपनी देहमें भार नहीं बढ़ाया।

❋ राजा परीक्षित् बोले कि, हे प्रभो ! पूर्वजन्ममें यह तृणावर्त कौन था, जो इसने राक्षसका शरीर पाया ? यह सब कथा मुझको समझाकर कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यह तृणावर्त पाण्डुदेशका राजा था और 'विश्व विजय' इसका नाम था। दुर्वासा ऋषिके शापसे यह राक्षश होगया। परीक्षित्‌ने फिर पूछा कि क्या ऐसा खोटा कर्म उसने किया जो यह शाप दुर्वासाने दिया ? श्रीशुकदेवजी बोले कि इस राजाके एक सहस्र स्त्रियां थीं। एक दिन उन सब स्त्रियों समेत वनविहारके हेतु वनको गया और वहां ऊँचे-ऊँचे वृक्ष आकाशसे बातें कर रहे थे, सुन्दर फल-फूल खिल रहे थे। मोर, कीर, कोकिला बोल रहे थे, एक ओर गन्धमादन पर्वत निराला ही शोभा दे रहा था। उसके नीचे पुष्पभद्रा नदी न्यारी ही लहरें लेती चली जाती थी। ऐसा शोभायमान निर्जन वन देखकर उसी नदीमें स्त्री और आप नंगा होकर जलक्रीड़ा करने लगा। मद पी-पी कर स्त्री और राजा ऐसा मतवाला हो गया कि सम्पूर्ण लज्जा त्याग निर्लज्ज बन जलविहार करने लगा। उसी समय एक [illegible] शिष्यों को साथ लिये दुर्वासाऋषि भी उसी आश्रममें आगये, देखा [illegible] सब स्त्रियोंके संग राजा नंगा होकर केलि कर रहा है मुनिने कोप करके शाप दिया कि रे दुष्ट ! मेरे वचनके प्रतापसे तू असुर हो जा, भारतखण्डमें एक लाख वर्षतक भ्रमता फिरेगा, जब व्रजमें श्रीकृष्णचन्द्र अवतार लेंगे तो तू उनके हाथसे मृत्यु पायेगा। तब तेरी मुक्ति होगी। राजा यह शाप सुन बहुत उदास हुआ और अग्निकुण्ड बनाकर सब स्त्रियों सहित अपना शरीर भस्म कर दिया।

दे दिया बड़ा आश्चर्य मानकर सब गोपी यह कहने लगीं कि बालकको उठाकर यह राक्षस आकाशमें ले गया था, यह बालक मृत्युके मुखमेंसे फिर निकलकर आया है॥३०॥ नंदादिक गोप और गोपिकायें कृष्णको पाकर परमानंदको प्राप्त हुए और परस्पर कहने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है कि देखो इस राक्षसने इस बालकके मारनेमें कुछ भी कसर नहीं रखी, परन्तु भगवान् इसको बचाया और यह दुष्ट अपने पापसे आप ही मर गया और यह बालक साधुके समान है, इसलिए इस दुष्टके हाथसे छूट आया। साधु पुरुष अपनी समताके द्वारा भयसे छूट जाते हैं॥३१॥देखो हमने ऐसा कौनसा भारी तप किया है! क्या भगवान् वासुदेवका पूजन किया है? क्या कुआं, बावडी, तालाब खुदवाये हैं? क्या पंचयज्ञ किये हैं? क्या कोई बड़ा भारी दान किया है? अथवा भूखे-नंगे प्राणियोंपर दया की है? जिन पुण्योंके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हुआ हमारा बालक अपने माता-पिता और बन्धुओंके सुख देनेके लिए लौटकर आ गया? ॥३२॥ नन्दजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातोंको देखकर अपने मनमें बड़ा आश्चर्य माना। हमसे मथुरामें वसुदेवजीने पहले ही कह दिया है कि गोकुलमें बड़ा भारी उत्पात होगा, आज हमको वसुदेवजीके उस वचनका पूर्ण विश्वास हो गया ॥ ३३ ॥ एक समय यशोदाजी मनमोहन प्यारेको अपनी गोदमें बैठाकर मोहमें अति निमग्न होकर जिन स्तनोंसे दूध टपकता था वह स्तन पिलाने लगीं, देखो यशोदाके कैसे उत्तम भाग्य हैं!

दोहा–हलरावत गावत मधुर, लखि हरिबालविनोद।
जो सुख मुनिको सुर अगम, सो सुख लेत यशोद॥
कबहुँ झुलावति पालने, कबहुँ खिलावति गोद।
कबहुँ सुलावति सेजपर, यशुमति सहित विनोद॥

कुछ एक स्तन पिया पीछे यशोदाजी अपनी मन्दमुसकानसहित श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविंदके ऊपर अंगुली धरकर दूध पिलाने लगीं। इतनेमें ही हे राजन्! श्रीकृष्णने जँभाई ली, उस समय यशोदाने मुखमें यह सब संसार देखा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ हे राजन्! सब विश्वको तत्काल यशोदा-श्रीकृष्णके मुखमें देखकर डरके कारण कम्पायमान होकर अपने मृगकेसे नेत्र बन्द कर लिया और बड़ा आश्चर्य माना कि इस बालकके मुखमें मैंने क्या जञ्जाल देखा ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे शकटतृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा–अष्टममें श्रीगर्गमुनि, नन्दरायगृह आय।
नामकरण उत्सव कियो, मुखमें विश्व दिखाय॥

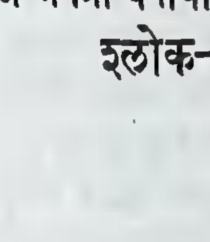
श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! बड़े तपस्वी यादवोंके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके भेजे हुए मथुरापुरीसे गोकुलमें नंदरायजीके घर आये ॥ १ ॥ गर्गाचार्यको देखकर नंदजी बहुत प्रसन्न हुए और उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और भगवान्के समान जानकर पूजन किया ॥२॥ गर्गाचार्यजीको सुन्दर आसन पर बैठाकर षड्रस भोजन कराया और मधुरवाणीसे नन्दरायजी बोले कि अहो ब्रह्मन्! आप तो परिपूर्ण हो, आपका पूजन हम किस

प्रकार कर सकते हैं ? ॥३॥ हे भगवन् ! दीन गृहस्थ लोगोंके कल्याण करनेके लिए आप सरीखे महात्मा अपने आश्रमसे गृहस्थोंके घर जाते हैं और उनसे अपना कुछ प्रयोजन नहीं रखते ॥४॥ और जो देखने और सुनने में नहीं आता उस ज्ञान का प्रकट करनेवाला और सूर्य-चन्द्र नक्षत्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाला ज्योतिषशास्त्र साक्षात् आपने कथन किया है; जिसके पढ़नेसे पुरुष भूत, भविष्य, वर्तमान कालका वृत्तान्त जान लेता है॥५॥ज्योतिष शास्त्रके कर्ता और वेदवादियोंमें भी आप परिपूर्ण हो, इसलिए तुम हमारे दोनों पुत्रोंका नामकरण-संस्कार करो। तब गर्गाचार्यजीने कहा कि जो तुम्हारे गुरु आचार्य हों उनसे नामकरण क्यों नहीं करा लेते ? तब नन्दजी बोले कि हे महाराज ! आपके सम्मुख और कौन है ? क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही सबके गुरु हैं ॥६॥ फिर गर्गाचार्यजीने कहा कि मैं यादवोंका पुरोहित हूँ और सब जगत्में विख्यात हूँ, जो मैं तुम्हारे पुत्रोंका नामकरण संस्कार कराऊँगा तो वह दुष्टात्मा कंस इन बालकोंको देवकीके पुत्र समझेगा॥७॥और आपकी और वसुदेवजीकी परम मित्रता है यह बात भी कंस भलीप्रकार जानता है और दूसरे कंसको यह भी सन्देह है कि देवकीके गर्भमें कन्या न होनी चाहिए, कहीं अपने पुत्रको पहुँचा न दिया हो, क्योंकि कंस दिन-रात सैकड़ों विचार किया करता है॥८॥और अब तो उसने देवकीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई समझ ही रखी है, और जो दूसरी यह बात सुनेगा कि गर्गाचार्यने नन्दजीके घर जाकर बालकोंका नाम रखा है, इससे निश्चय वह जानेगा कि यह वसुदेवजीके पुत्र हैं और कंस तो बिना ही जाने बालकोंके मारनेका उपाय कर रहा है और जो सत्य समझकर इन बालकोंको मरवा दिया तो बड़ा अनर्थ होगा ॥ ९ ॥ नन्दजी बोले कि, हे गर्गाचार्यजी ! वह उपाय करो जो हमारे साथी व्रजवासी भी नहीं जानें, इस प्रकार एकांत स्थान जहां गायोंका खिरक वहां बैठकर स्वस्ति-वाचन पढ़कर दोनों बालकोंका संस्कार किया, जो कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंको करना योग्य है ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार नन्दरायजीने जब प्रार्थना की तो एकांतमें गर्गाचार्यजीने छिपकर नामकरण किया, क्योंकि नामकरण करनेकी इच्छासे तो गर्गाचार्यजी आये ही थे ॥११॥ गर्गमुनि बोले कि यह रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करायेगा इसलिये इसका नाम 'राम' रखना चाहिये और बल अधिक होगा इस-लिये इसका नाम 'बलदेव' रखना चाहिये और बिछुरे यादवोंको मिलायेगा इससे इसका नाम 'संकर्षण' होगा ॥१२॥ और यह जो तुम्हारा दूसरा पुत्र है, यह युग-युगमें अवतार धारण करता है और इसके तीन रंग हुए–श्वेत, लाल, पीला । सत्युगमें शुक्लवर्ण हुआ, त्रेतामें लालवर्ण हुआ और द्वापरमें पीतवर्ण हुआ । अब इन्द्रनीलमणिके सदृश श्यामसुन्दर रूप धारण किया है, इसलिये इसका 'कृष्ण' नाम रखना चाहिये ॥ १३ ॥ किसी समय यह तुम्हारा महाभाग पुत्र वसुदेवजीके घर जन्मा था, इसलिए ज्ञानी पुरुष इसका नाम वासुदेव भी कहेंगे, तुम्हारे पुत्रके गुणकर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं और रूप भी अनेक हैं, उनको मैं नहीं जानता और कोई दूसरा पुरुष भी नहीं जानता, क्योंकि यह बालक परब्रह्म परमेश्वरका अवतार है, इसलिये इसका भेद ब्रह्मा, शिव, सनकादिक भी नहीं जान सकते हैं ॥ १४ ॥ गाय, गोप, गोपी और तुमको आनन्द देनेवाला यह तुम्हारा पुत्र होगा और नन्दरायजी ! तुम्हारे ऊपर बड़े-बड़े कष्ट आकर प्राप्त होंगे, उन कष्टोंको इनकी कृपासे सहजमें तर जाओगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे व्रजराज ! पहले जब कोई

राजा नहीं था । तब इस बालकने पृथ्वीपर सब दुष्ट चोरोंको पीड़ितकर महात्माओंकी रक्षा की और चोरोंको पराजित किया ॥ १७ ॥ और जो महात्मापुरुष इस तुम्हारे पुत्रसे स्नेह रखते हैं उनका शत्रु लोग कुछ तिरस्कार नहीं कर सकते,जिस प्रकार विष्णुके सहायक रहनेसे देवताओंका दैत्यलोग कुछ नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ हे नंदरायजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रतापमें विष्णु भगवान्‌के समान जान पड़ता है, सावधान होकर तुम इसकी रक्षा करना ॥ १९ ॥ और ज्योतिषशास्त्रकी रीतिसे भी मैंने तुम्हारे पुत्रकी जन्मपत्री बनायी है वह भी सुन लोः—

श्लोक—स्वस्तिश्रीसौख्यदात्री सुतजनजननी पुष्टितुष्टिप्रदात्री ।
माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री ॥
नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसामायुषो वर्द्धयित्री ।
सर्वापद्विघ्नहन्त्री गुणगणसहिता लिख्यते जन्मपत्री ॥ १ ॥

श्रीशुभवत्सरेऽस्मिन् भगवत्पूजनविशिष्टधर्मयुक्ते श्रीद्वापराख्ये युगे गताब्दाः ८६३८८० (आठ लाख त्रेसठसहस्र आठसौ अस्सी) तदंतर्गतसंध्यांशसमये भोजवंशावतंसस्य राज्ये दक्षिणायने रवौ वर्षासंज्ञकर्त्तौ भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे शुभतिथौ अष्टम्यां बुधवासरे रोहिणी-नाम नक्षत्रे आयुष्मान् योगे कौलवनामकरणे, एवं पञ्चांगशुद्धौ सिंहार्कगतांशाः ०७ । ०३ तत्र दिनमानम् ३२ तत्रेष्टम् ४६ तत्समये वृषलग्नोदये शुक्रक्षेत्रे सूर्यहोरायां, बुधद्रेष्काणे, शुक्रन-वांशे, भौमद्वादशांशे, गुरुत्रिशांशे ग्रहषड्वर्गबलोपन्ने लग्ने शुभग्रहांकितवेलायां यदुकुला-वतंसस्य वरीयसो गोपस्य पञ्चप्राणतुल्येषु पञ्चसुतेषु मुख्यतमस्य नन्दरायाभिधस्योढा धर्म-



पत्न्युभयकुलानंदकर्त्री इंद्रनीलमणिमरकत इव मौक्तिकमणिशुक्तिपुट इव परमानंदजनके व्रजनयनचंद्रचकोरसमं स्वमात्मजं स्वकुक्षेर्जनयामास । तस्यरोहिणीनामनक्षत्रस्य तृतीयचरणे वकाराक्षरे इकारस्वरे प्रसिद्धनाग-विपिनविहारीति प्रतिष्ठितम् । वृषलग्न चंद्रमा, मंगल, बुध, शनि यह चार ग्रह उच्चके पड़े हैं, वृषके चंद्रमा और केतुलग्नमें, सिंहके सूर्य; चौथे सुख स्थानमें, कन्याके बुध पाचवें विद्याके भवन्में , छठे शुक्र और शनैश्चर शत्रुके घरमें, वृश्चिक के राहु सातवें स्त्रीके घरमें, मकरके मङ्गल नवें भाग्यस्थानमें; मीनके बृहस्पति ग्यारहवें लाभ स्थानमें । हे नन्द ! तुम्हारे पुत्रके ऐसे शुभ ग्रह पड़े हैं कि यह त्रिलोकीका राजा होगा और दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारेगा यह साक्षात् पूर्ण ब्रह्म हैं ।

हे नंदजी ! नामकरण तो हो गया, अब इनका अन्नप्राशन भी कर लो, क्योंकि आजका दिन बहुत श्रेष्ठ है । माघका महीना है,चौदश तिथि है, बृहस्पतिवार है, शुक्लपक्ष है, रेवती नक्षत्र है, परमपुनीत मीन लग्न और शुभ योग, ऐसा उत्तम मुहूर्त मिलना बहुत दुर्लभ है और यह उत्सव शीघ्र करना चाहिये । यह वचन सुन नन्दजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर सेवकोंको आज्ञा दी कि शीघ्र पूजाकी सब सामग्री इकट्ठी करो । आज बलभद्र और कृष्णका अन्नप्राशन उत्सव होगा । बातकी बातमें सब सामग्री लाकर रख दी और सब ब्राह्मण भी आ आकर अपने-अपने आसनों पर बैठ गये और सब पूजाकी सामग्रियोंको देखने लगे ।

दोहा–दधि मधु घृत नवनीतके, बासन धरे अपार ।
दूध शर्करा तैल गुण, राजत विविध प्रकार ॥

तन्दुल, धान, मूँग, यव, गेहूँ,तिल,उड़द, मिष्टान्न, लड्डू, पेड़े, वैकुण्ठी, अमृती,जलेबी, धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अगर, कपूर, केशर, देवदारु, मृगमद, सुवर्णके कलश,झारी, लोटे, थाली, परात, कटोरे, छोटी कटोरी, नाना प्रकारके रत्नोंकी माला, मोतियोंकी माला, मूँगोंकी माला, कमलोंकी माला, चन्दनकी माला, भांति-भांतिके भूषण,वसन,रोली,चन्दन, पूगीफल, पान, श्रीफल, इत्यादिक अनेक पदार्थ नंदजीने पृथक्-पृथक् गर्गाचार्यको दिखाये। फिर जहां-तहां कदलीके खंभ गड़वा दिये,उनपर आम्रके नव पल्लवोंकी बंदनवारें, बीच-बीचमें तुलसीके वृन्द, चांदनी, चमेली, गंधराज, मदनबाणके पुष्पोंके हार द्वारपर लटका दिये, सब मार्ग चंदन और केवड़ेके जलसे छिड़कवा दिये,मंगल कलश और गंगाजलके कुम्भ भरवा-भरवा कर रखवा दिये। सब नगरमें निमंत्रण भेज दिया और जहां-जहां अपने सुहृद मित्र थे सबको पत्र भेज दिये। यशोदाने नायकको भेजकर सब गोपियोंको बुला लिया,मंगलाचार होने लगा, बधाई बजने लगी, ढोलक,मंजीरे बजा-बजा कर गोपियाँ गाने लगीं। बाहर जहां-तहां दुन्दुभी, ढोल रणसिंहे बजने लगे और ठौर-ठौर विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, देवांगना घूम-घूमकर नृत्य करने लगीं, गायक गाने लगे। उस मनोहर गानको सुन-सुनकर गोप गोपी आनंदमें मग्न थे। उस समय स्वजन मित्र,सुहृद सम्बंधी जो-जो आते थे, नंदजी सबकी कुशल पूछ-पूछकर आदर-सम्मान सहित हाथ पकड़-पकड़कर सबको यथायोग्य उत्तम-उत्तम ऊनी और रेशमी आसनोंपर बिठाते थे। और जो ऋषि मुनि महात्मा लोग आते थे उनको दण्डवत् प्रणाम कर बड़े आदर-सत्कारसे कुशासनोंपर पधारते जाते थे। लाखों याचक द्वारपर पुकार रहे थे। उस समय नगरमें ऐसा कोलाहल मच रहा था कि किसी की बात किसीको कठिनाईसे सुनाई पड़ती थी। उस अद्भुत उत्सवको देख-देखकर देवता आकाशसे फूल बरसा रहे थे। सबके मनमें उत्साह अधिक बढ़ रहा था। उस समय कुबेरने आकर स्वर्ण और रत्नोंकी तीन मुहूर्त्ततक ऐसी बर्षा की कि सब याचक अयाचक कर दिये। जब सब आ गये तब नंदजी स्नानकर पीतांबर पहन पवित्र हो आसनपर बैठे और एक रत्नजड़ित सुवर्णकी चौकीपर गर्गाचार्यजीको बिठाया। प्रथम गणेश और नवग्रहोंका पूजन करवाकर फिर पितृकर्म और देवकर्म जो-जो गर्गाचार्यजीने बताये वे सब कार्य किये। फिरः–

सोरठा–पीत झँगुलि पहिराय, शीश मुकुट धर अति सुघर ।
लियो गोद बैठाय, नन्दराय घनश्यामको ॥

थोड़ासा मिष्टान्न श्रीकृष्णके मुखमें दिया, फिर जो मित्रगण वहां आये थे सबको षड्-रस भोजन जिमाकर वस्त्रालंकार पहनाकर तांबूल, नारियल दे-देकर सबको बिदा किया और ब्राह्मणोंको उत्तम-उत्तम रेशमी वस्त्र, आभूषण, मणि, रत्न दक्षिणा दे-देकर आशीर्वाद लिया और गर्गाचार्यको इतना दान दिया कि जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। हे राजन्! उस समयके दानका वर्णन शेष-शारदा भी नहीं कर सकते फिर और किसी कविका क्या सामर्थ्य है? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब सब बिदा हो गये और गर्गाचार्य चलनेको हुए तो श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और पुलकायमान हो नेत्रोंमें जलभरकर बोले कि, प्रभो!

मुझको तो आपके दर्शनकी अभिलाषा थी वह पूरी हो गई और यह जो द्रव्य नंदरायजीने मुझको दिया इससे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं, मुझको तो एक आपके चरणारविंद की अविरल भक्ति चाहिये और अणिमादिक सिद्धियोंसे, योगसे, मुक्तिसे, परमतत्त्वसे, इन्द्रपद (स्वर्ग) से और सालोक्यसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं। मुझको तो केवल आपके चरणारविंदकी भक्ति ही परमपद है। हे प्रभो ! जो सर्वज्ञ और सर्वत्रगामी शंकरके समान हो और तुम्हारे चरण-कमलमें रति न हो तो वह क्या ! तुम्हारे ही चरणोंकी भक्तिके प्रतापसे शिवने मृत्युको जीता है, ब्रह्मा जगत्का कर्ता हुआ, धर्मने संसारमें साक्षिता पायी, शेषजीने दुर्जय कालको पराजित कर सर्वत्र पृथ्वीको शीशपर धारण कियां, लक्ष्मी सर्वसिद्धियोंकी दात्री हुई, जो दिन-रात आपके पदसरोजपर लोटती रहती है। पार्वतीने महादेवसे पति पाये, सरस्वतीको कैसा उत्तम पद मिला और राधिकाजीकी अद्भुत पदवीका तो वर्णन ही क्या है, जिनको आपने हृदयमें निवास दे रक्खा है। हे नाथ ! मुझपर यही अनुग्रह रखना कि मेरे हृदयमें आपके चरणारविंदकी भक्ति बनी रहे। नंदजी बोले कि हे स्वामी ! आपने जो राधा का नाम लिया सो राधा ऐसी भगवान्‌की परमभक्तिनी कौन है ? नंदजीके परमगूढ़ वचन सुनकर गर्गमुनि बोले कि हे व्रजेश ! तुम्हारा पुत्र और राधिका दोनों गोलोकके वासी हैं, श्रीदामा इनके परममित्र थे, एक दिन किसी बात पर श्रीदामा और राधिकामें क्लेश हो गया तब राधिकाने श्रीदामाको शाप दिया कि तू भूमण्डलमें जाकर असुर हो जा। श्रीदामाने राधिकाको शाप दिया कि तू भूमण्डलमें गोपिका होगी और वृषभानु तेरे पिताका नाम और कीर्ति तेरी माताका नाम होगा। हे नन्द ! कृष्णअर्द्धांशा राधाके समान भवबाधा हरनेवाली श्रीगोलोकवासिनी, अयोनिजन्मा, मूलप्रकृति ईश्वरी है, जो व्रजमें श्रीवृषभानुके घर आकर प्रकट हुई है, और दिन-दिन शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी नाईं बढ़ती है। हे नन्दजी ! एक मूर्तिकी दो मूर्ति हो गयी हैं इसीलिए इनका नाम "राधा–कृष्ण" संसारमें विख्यात है, जब राधा बरसानेमें आकर गोपी हुई तो श्रीकृष्णको भी आपके घर जन्म लेना पड़ा, क्योंकि अपनी प्रिया विना अकेले कैसे रह सकते हैं॥

चौ०–राधाहेत मनुजतनु धारो ❋ राधापति राधाको प्यारो॥
कंसासुर भय वृथा जतायो ❋ राधाहित गोकुलमें आयो।
भयके ईश इनहिं भयकाको ❋ केवल राधाहित है जाको॥

हे व्रजनाथ ! इसी राधाके साथ आपके पुत्रका विवाह होगा और यही राधा तुम्हारे कुलकी बाधा हरनेवाली होगी। यह कह सबको आशीर्वाद दे गर्गाचार्य बिदा होकर चल दिये, पीछे नन्दजी परमानंदित हो अपने मनोरथको सब प्रकार परिपूर्ण समझा॥ २१॥ जब कुछ और थोड़े दिन व्यतीत हुए तब बलदेवजी और श्रीकृष्ण दोनों भैया हाथ टेक-टेक कर घुटनों चलने लगे।

भजन

सिखवत चलन यशोमति मैया।
अरवराय कर पानि गहावत, डगमगात धरणीपर पैया॥ १॥
कबहुँ कि ठाढ़ी मुखतन हेरत, आनँदकर हरि लेत बलैया।

कबहूँ कुलदेवता मनावत, चिरजीवहु मम लाल कन्हैया ॥ २ ॥
कबहूँ बलको टेर बुलावत, इहि आंगन खेलें दोउ भैया ।
सूरदास प्रभु सुखनिधिदाता, हरी बलभद्र नन्दके छैया ॥ ३ ॥ २१ ॥

जिस समय कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई ब्रजकी कीचमें विचरते थे उस समय उनके पावोंकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीकी झनकारका सुन्दर शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मनही मनमें आनंदित होती थीं और जो पथिक मार्गमें जाते थे उन्हींके पीछे घुटनों-घुटनों थोड़ी दूर चले जाते थे, जब वह पुरुष इनकी ओरको देखते थे, तब डर कर अपनी माताके पासको भागते थे ॥२२॥ तब माता यशोदा और रोहिणी अपने-अपने पुत्रको उठाकर हृदयसे लगाकर उनके अङ्गोंको देखती हैं । कहीं तो ब्रजकी कीचमें लिपट रहे हैं और कहीं प्रमादकी केशर अंगमें लगी हुई है, जिनके स्तन दूधसे खिसिआये हैं, उनको खिला-खिलाकर दूध पिला-पिलाकर उनकी ओरको देख-देख प्रेममें मग्न हो रही हैं और उनकेमुखकी भोली-भाली मुसक्यान और छोटी-छोटी दन्तुरियोंकी छबि निहार-निहार वारंवार प्रसन्न होती थीं।

दोहा-सोहत कठला कण्ठमें, उर हरिनख छबिराश ।
मनहु श्याम घनमें कियो, नवशशि विमल विकास ॥

कभी बहुतसे गोपाल बालकोंके संग कृष्ण और बलदेव खेलते, कभी दौड़-दौड़कर द्वारपर जाते व कभी फिर भागकर घरको आते हैं, उस समय यशोदा और रोहिणी उनकी ओर को देखती ही रहती हैं कि कहीं यह बालक गिर न जायँ, क्योंकि इनको अभी पांव-पांव चलना नहीं आता। दिन-रात उन्हींके पीछे-पीछे फिरती थीं और घरका कुछ काम-धन्धा नहीं हो सकता था । उसी अवसर एक अपूर्व ब्राह्मण नंदजी के घर कहींसे आ गया कि श्रीयशोदाजी उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और मंदिरमें ले जाकर चौका लगवाकर दूध चावल मँगाकर ब्राह्मणसे बोलीं कि आप भोजन बना लो और घी, चून, मीठा और मेवा दे दी । तब उस ब्राह्मणने भोजन बनाया, थालीमें परोसा और भगवान्को भोग लगाया और नेत्र मूँदकर श्रीकृष्णका ध्यान किया कि हे विश्वंभर ! यह भोजन पाइये । उसी समय श्रीकृष्ण उसकी थालीमें जाकर भोजन करने लगे। उस ब्राह्मणने आंख खोलकर देखा तो यशोदाका बालक थालीमें खीर खा रहा है, ब्राह्मणने उस थालीका भोजन नहीं पाया और यशोदासे कहने लगा कि तुम्हारा बालक बड़ा चञ्चल है, हमारा भोजन जूंठा कर दिया । यशोदाने उस ब्राह्मणको मनाकर फिर दूध मँगाकर खीर बनवायी, उस ब्राह्मणने फिर थालीमें परोस भगवान् वासुदेवको भोग लगाकर नेत्र मूँदकर जब ध्यान किया तो फिर यशोदानंदन उसकी थालीपर जाकर खीर खाने लगे, कि उसने नेत्र खोलकर देखा तो वही लड़का थालीमें भोजन कर रहा है, तब ब्राह्मण क्रोध करके बोला--अरी यशोदा ! तेरा बालक बड़ा ही कुकर्मी है फिर मेरा भोजन छू लिया, तो हम बारबार भोजन ही बनानेके हो गये ।

सोरठा-महरि जोरि युगपानि, विनय करी द्विजराजसों ।
बालक अति अज्ञान, बहुरि पाक विधि कीजिये ॥

फिर यशोदाने ब्राह्मणको विनती करकराके प्रसन्न किया, और फिर दूध मिष्टान्न मँगाकर

भोजन बनवाया और ब्राह्मणने फिर थालीमें परोसकर नारायणको भोग लगाया और आंखे मीचकर ध्यान किया तो फिर श्यामसुन्दर थालीमेंकी खीर खाने लगे और फिर ब्राह्मणने देखा कि नन्दलाल थालीमें भोजन कर रहे हैं, तब तो ब्राह्मण परशुरामकी नाई उछल पड़ा और कुपित होकर बोला कि यशोदा ! तेरा लाल बड़ा नटखट है, भूखके कारण मेरे तो प्राण निकले जाते हैं और जब ही भोजन बनाता हूँ तब ही यह जूठाकर देता है,अब हम जाते हैं रहने दे अपना भोजन-छाजन। यशुदाने हांथ-पांव जोड़कर ब्राह्मणको ठण्ढा किया और कृष्ण से कहा—क्यों रे ! तू नहीं मानता, मैं तो प्रीतिसे ब्राह्मणको भोजन कराती हूँ और तू बार-बार जूठा कर देता है। यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि हे माता ! तू मुझको वृथा दोष मत लगा इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं; जब यह ब्राह्मण बारबार मेरी विनती-करके भोजनके लिये मुझको बुलाता है तब मैं इसकी भक्तिको देखकर भोजन करने लगता हूँ, नहीं तो मुझको इसके भोजनसे क्या प्रयोजन ? यह यशोदानन्दनके गूढ वचन सुनकर ब्राह्मणके हृदयके नेत्र खुल गये, कि यही हैं साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर जिनके दर्शनके लिये शिवब्रह्मादिक देवता भटकते फिरते हैं। वह दिन-रात नन्दके आंगनमें विहार करते फिरते हैं।

दोहा—धनि धनि गोकुल नन्द धनि, धन्य यशोदा माय।
धनि व्रजवासी धन्य व्रज, जहँ प्रगटे हरि आय ॥

हे प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे सब सुकृतका फल आज प्रकट हो गया जो मुझ दीनको आपने दर्शन दिया। हे दीनदयालु ! मेरा अपराध क्षमा करना,मैंने विना जाने वह कठोर वचन कहा मेरी रसोई जूठी कर दी, मैंने आपकी महिमाको नहीं जाना आपकी मायाने ऋषिमुनियोंको भुला रक्खा है तो मेरा क्या सामर्थ्य है ? जिसने आपकी शरण ली भवसागर पार हो गया। आप सबके घट-घटमें वास करते हैं और पतित उधारन आपका नाम है, मेरा भी उद्धार कीजिये। हे दीनदयालु ! हेभक्तवत्सल ! हे गोपाल ! मैं आपकी "शरण हूँ, शरण हूँ, शरण हूँ" यह कह नन्दरायके आंगनमें लोटने लगा; भगवान्‌ने उसको पूर्णप्रेमी समझकर अपनी अनपायिनी भक्ति उसको दी। ब्राह्मण प्रेममें मग्न हो वारंवार यह कहने लगा—"हे नन्दकुमार तुम्हारी जय हो ! हे नन्दकुमार तुम्हारी जय हो ! हे नंदकुमार तुम्हारी जय हो ! " यह आशीर्वाद देता हुआ चला। उस समय यशोदा यह चरित्र देखकर अत्यन्त चकित हुई और ब्राह्मणके चरण पूजकर बहुतसे रत्न-मणि दक्षिणा देकर बिदा किया। यशोदा फिर श्यामसुन्दरको गोदीमें उठाकर खिलाने लगी और उस मनोहर छबिपर बलिहारी हो-होकर मनहीं मनमें आनंदित होती थी, इसी प्रकार कृष्णचंद्र नई-नई लीला कर करके नंद यशोदाको सुख देते थे। एक दिन यशोदा रात्रिके समय कृष्णको आंगनमें खिला रही थी और शरदपूनोंका चंद्रमा उदय हुआ। यशोदा कृष्णचंद्रको दिखाने लगी कि तात ! इस समय चंद्रमाकी शोभा कैसी अद्भुत है,अपनी किरणोंसे अमृत बरसा रहा है और शीतलताई कैसी सुन्दर है जो प्राणियोंके हृदयके तापको दूर कर रही है, मनमोहन इकटक चंद्रमाकी ओर देखकर बोले कि माता ! यह क्या है,मीठा है, कि खारा,मुझको बड़ा प्यारा लगता है,किसी प्रकारसे मुझे मँगा दे, क्योंकि मुझे बड़ी भूख लगी है, अतः मैं इस मनोहर फलको खाऊँगा। अरी माता ! तू तो विलम्ब करती है और भूखके कारण मेरे प्राण निकले जाते हैं। यह कह गोदसे उतर पांव पटक-पटक कर रोने लगे। यशोदा मनहीं मनमें

पछताने लगी कि मैंने क्यों इनको चंद्रमा दिखा दिया, यह तो विना जाने रोता है। अब चंद्रमा कैसे आये जो यह माने। उस समय यशोदा कभी कुछ दिखाती थी, कभी कुछ दिखाती थी कि किसी प्रकार यह इस बातको भूल जायगा, अब मैं क्या उपाय करूँ ? कैसे इसको समझाऊँ। फिर बोली कि हे पुत्र ! यह खानेकी वस्तु नहीं है, यह तो जगतका खिलौना है, यही हमको माखन नित्य दिया करता है जो मैं तुझको थोड़ी-थोड़ी देरमें देती हूँ, जो तुम माखनके देनेवाले चंद्रमाको ही खा जाओगे तो फिर माखन कहांसे आयेगा ? हे मनमोहन ! अड़ मत करो, इसको दूरसे देखते रहो खाना नहीं चाहिये, खानेके लिये तो मेवा, पकवान, मिठाई बहुत रखी हैं, जो तेरी इच्छा हो वह खा ले और हठ मत कर। मैं अपने लालापर बलिहारी जाऊँ फिर कृष्ण बिचल पड़े और बार-बार यही कहने लगे कि मैं तो इसी चंद्रमाको लूँगा, कैसे हू मँगा, मैं तो इसी चन्द्रमाको लूँगा। यशोदा अपने मनमें कहने लगी कि अब क्या उपाय करना चाहिये, इसके लिये मैं चन्द्रमा कहांसे लाऊँ ? इतनेमें एक गोपी आकर बोली—अरी ! तेरा लाला बहुत देरसे क्यों मचल रहा है ? यशोदाने कहा—चन्द्रमाको मांग रहा है, मैं बहुतेरा समझाती हूँ एक नहीं मानता, भला चन्द्रमा कैसे आ सकता है ? गोपी बोली—चन्द्रमाको मैं अभी बुलाये देती हूँ तू सन्देह मत कर। वह घर जाकर एक परात लाकर आंगनमें धर उसमें पानी भर दिया और व्रजभूषणसे बोली-बेटा ! रोवो मत; अब चन्द्रमा आ गया, यह कह ऊपरको परात उठा पुकारने लगी कि चन्द्रमा ! शीघ्र आओ, तुझे मनमोहन प्यारा बुलाता, तू इसी पानीमें अपना रूप धरकर आ जा जो हमारे श्रीकृष्ण तुझको देखकर पसन्न हों, यह कह जल पात्रको पृथ्वीपर धर दिया और कहने लगी कि चन्द्रमा इसमें आ गया, मैंने बुला लिया, लो देख लो ! इतनी ही बातके लिये रोवा-पीटी मचा रखी थी। देखो इस भाजनमें चन्द्रमा विराजमान है, जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। जलमें चन्द्रमाकी परछाई देखकर दोनों हाथ पानीमें डाल उसको पकड़ने लगे, परंतु उसमें कुछ हो तो हाथ आये, फिर जलका पात्र उठवाकर उसके नीचे देखा वहां वह प्रतिबिम्ब भी दृष्टि न आया, इस कौतुकको देख-देख ब्रजनारी और यशोदा हँस रही थीं, माताको हँसती देख श्यामसुन्दर फिर लौट गये और सुसक-सुसक कहने लगे मैं तो चन्द्रमाको अपने हाथमें लूँगा तब मानूँगा; यह तो पानीमें भागा-भागा फिरता है मेरे हाथ क्यों नहीं आता ? ऊपर मुझको दिखाई दे रहा है, तू कह तो मैं पकड़ लाऊँ। यशोदा बोली कि हे मनमोहन ! तेरे मनोहर मुखको देख चन्द्रमा तेरे सम्मुख नहीं आता, अपने मनमें लज्जित होता है कि कहां मैं मन्द चन्द और कहां श्रीबालकगोविंदका मुखारविंद, इसलिये सकुचका मारा भागा-भागा फिरता है। फिर रोते ही रोते श्रीकृष्ण सो गये, तब यशोदाने उठाकर हृदयसे लगाकर शय्यापर पौढ़ा दिया और सहज-सहजमें थपकाने लगी कि आज मेरा मनमोहन प्यारा बहुत रोया है, यह कह यशोदा कृष्णचन्द्रके मुखारविन्दको देखकर—

सोरठा—होत मनहिं आनन्द, मधुरे स्वर गावत कछुक।
उठ बैठे व्रजचन्द, हड़बड़ाय अति चौंककर॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब श्रीकृष्णचन्द्र सोतेसे चौंक पड़े तब यशोदा फिर घबड़ाई कि कहीं फिर चन्द्रमाको न मांगने लगे; परंतु श्यामसुन्दर

को चन्द्रमाका कुछ भी ध्यान न रहा । यशोदा बोली--बेटा ! सो जा, मैं तुझको एक पुरानी कहानी सुनाती हूँ श्रीकृष्ण सो रहे तब यशोदा बोली कि अवधपुरी नामक एक महारमणीक नगर था वहां बड़े-बड़े ऊँचे मंदिर और अटारी थीं, और अत्युत्तम बाजार चन्दन और केवड़ेके जलसे छिड़का हुआ दिन-रात सुगन्धित रहता था अनेक प्रकारकी हाटें जिसपर भांति-भांतिकी वस्तु क्रय-विक्रय होती रहती थीं । वहां राजा दशरथकी राजधानी थी। कौशिल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उनकी तीन पटरानी थीं, उससे चार कुमार उत्पन्न हुए-राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न । चारों महातेजस्वी, बलशाली प्रतापवान् और सर्वगुणनिधान थे उनमें रामचन्द्र परमव्रतधारी भक्तिहितकारी जनमनरंजन भक्तभयभञ्जन और दुष्टदलगंजन थे और उनके गुरु एक विश्वामित्र ऋषि थे। उनको राक्षस दिन-रात सताते थे और पूजा, पाठ, होम, यज्ञ, नहीं करने देते थे । ऋषीश्वरने अपनी रक्षाके लिए राजादशरथसे दो पुत्र मांग लिये-राम और लक्ष्मण । जब रामलक्ष्मण उनके मखकी रक्षामें तत्पर हो राक्षसोंका विध्वंस करने लगे तब तो विश्वामित्रने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनको विद्या पढ़ाई और बहुत प्रसन्न होकर विद्याका आशीर्वाद दिया ।

सोरठा-तहां जनक इकभूप, धनुष यज्ञ ताने रचो ।
कन्या परम अनूप, जुरे तहाँ भूपति अधिक ॥

विश्वामित्र उन दोनों राजकुमारोंको अपने सङ्ग लेकर राजा जनकके स्वयंवरमें गये। राजा जनकने विश्वामित्र और इन दोनों भ्राताओंका बड़ा आदर-सत्कार किया और सभामें खड़े होकर राजा जनकने प्रण सुनाया कि जो कोई इस शिवके धनुषको उठा लेगा उसके साथ मैं अपनी कन्याका विवाह करूँगा । इस बातको सुनकर जितने राजा आये थे सबने धनुषको उठाया, परंतु धनुष तिलभर भी भूमिसे न उठ सका और जब सब नरेश उठा-उठाकर हार गये, तब जनकजीने कहा कि अबतक तो मैं जानता था कि पृथ्वीपर वीर हैं, परंतु आज मैंने जाना कि पृथ्वी वीरविहीन हो गई । यह बात सुनकर लक्ष्मणजीसे न रहा गया और कहा कि हे जनकजी ! जहां कोई रघुवंशी होगा वह इस वचनको न सुनेगा । लक्ष्मणजीकी बात सुनकर उसी समय रामचन्द्रजी धनुषको उठाकर दो खण्ड करके सभासे बाहर फेंक दिया और जनककी कन्या सीताके साथ अपना विवाह किया । फिर उन तीनों भ्राताओंका विवाह भी जनकने अपनी कन्याओंके साथ कर दिया । जब रामचन्द्र विवाह करके अवधपुरी आये तब राजा दशरथने राज्य-अधिकार रामचन्द्रको देना चाहा। उस समय कैकेयीको मंथरा दासीने बौरा दिया । राजा दशरथसे कैकेयीने वर मांगकर रामलक्ष्मणको वनवास दिलवा दिया।पिताके वचन सुन राम, लक्ष्मण और सीता वनको चल दिये । रामचन्द्रके जाते ही दशरथजीने प्राण तज दिये । जब भरत-शत्रुघ्नने सुना कि हमारी माताने बड़ा अयोग्य कर्म किया जो हमारे भ्राता रामलक्ष्मणको वनवास दिला दिया और पिताके प्राण लिए। हाय ! विना राम लक्ष्मणके हम राज्य करें, ऐसा कभी न होगा । यह कह सब नगरवासियोंको सङ्ग ले भगवान्से मिलने चित्रकूटको गये। तब रामचन्द्रने उनको निष्कपट देखकर चरणपादुका दी और अयोध्याको लौटा दिया और राजीवलोचन परमोदार रामचन्द्रने सीताके कहनेसे कपटमृग मारीचको मारा, तब पीछे रावण-सीताको हरकर ले गया उस समय सीताने पुकारा कि हा राम!हा लक्ष्मण!यह सुनते ही श्याम सुन्दर नींदको विसार चौंककर उठ बैठे और कहने लगे

कि हे लक्ष्मण! हे लक्ष्मण । मेरा धनुष शीघ्र ला । मोहनकी यह बात सुन यशोदा घबड़ा गयीं कि आज मेरे कन्हैयाको क्या हो गया जो अचानक चौंक पड़ा,क्या इसने स्वप्नमें कुछ देखा जो यह डर गया । यह विचार प्रथम तो राई नोंन उतारा, फिर कुछ यंत्र-मंत्र भी किया। आज सांझसे ही चन्द्रमाके लेनेकी हठसे रो-रोकर आंखे लाल की थीं, मैं जानती हूँ कि उसी चन्द्रमाका ध्यान इसके हृदयमें बसा रहा, यह कहकर फिर कृष्णको पालनेमें झुलाने लगी।

सोरठा—बड़भागिनि नँदनारि, महिमा वेद न कहि सके ।
हरिमुखचन्द निहारि, बिसरावति त्रयताप उर ॥

एक दिन श्रीकृष्ण शय्यापर सो रहे थे, नन्दजी उठकर उनके निकट आये और सहजमें मुखपरसे वस्त्र उघाड़कर कृष्णचन्द्रके मुखारविंदकी शोभा जो देखी तो कैसी अद्भुत छबि दिखायी दी, मानों दूधके मथनके समय फेनको फोड़कर चन्द्रमा निकल आया । नंदादिक व्रजके जो ग्वाल-बाल चतुर चकोररूप थे वे चारों ओरसे घिरकर एकटक निहारने लगे और यशोदा कुमुदिनीके समान फूलकर बोली कि हे पुत्र ! उठो प्रातःकाल हो गया ।

प्रभाती—जागिये गोपाल लाल आनँदनिधि नन्दबाल, यशुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे । नयन कमलदल विशाल प्रीति वापिका मराल, मदन ललित वदन ऊपर कोटि वारि डारे ॥ विगतशरद उगत अरुण शर्वरी शशांक किरण, हीन दीप मलिन क्षीण द्युति समूह तारे । मनहुँ ज्ञानघन प्रकाश बीते सब भवविलास, आशत्रास तिमिर तोष तरणितेज जारे ॥ बोलत खग मुखर निकर मनहु वेद बन्दीजन, मागध- गण विरद वदत जयति कैटभारे । विकसत कमलावलीक चल प्रफुल्ल चंचरीक गुंजत कल कोमल धुनि त्याग कंज न्यारे ॥ मनु विराग सकल पाय शोककूप गृह विहाय, प्रेम मत्त फिरत भृत्य गुणत गुन तिहारे । सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिशय दयाल, भागे जंजाल जाल विपुल द्वन्द्व टारे ॥ त्यागे भ्रम फन्द द्वन्द्व निरखिकै मुखारविंद, सूरदास अति अनन्द मोह मन्द मारे ॥

बेटा ! माखन रोटी पकवान मिठाई तेरे लिये रक्खी है, जो इच्छा हो सो कलेऊ कर ले । माखन और मिश्री लाकर मोहनके सम्मुख रक्खी और कुछ खिला-पिलाकर तप्त जलसे उनका मुख धोया। श्यामसुन्दरका सुन्दर मुखारविन्द देखकर नन्दरानी नन्दजीसे कहने लगी कि हे स्वामी ! अब मदनमोहनका कर्णछेदन कर दीजिये,क्योंकि कुण्डलसहित मुखारविन्दकी शोभा देखनेको चित्त चाहता है,नन्दजीने उसी समय ब्राह्मणको बुलाकर शुभमुहूर्त निश्चित कर सब सुहृद सम्बन्धियोंको निमंत्रण भेज दिया। कुलकी रीति करने लगे,गोपियाँ आंगनमें बैठ ढोलक मृदंग बजाकर मंगलाचार करने लगीं । देवता हर्षित होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे । प्रथम तो कृष्णचन्द्रका मुण्डन किया, फिर पानके ऊपर पूगीफल धरकर और भेली देकर कृष्णचन्द्रके मुखमें बतासे दे दोनों कान छेद दिये । ब्रह्मा शिव देवगणसहित उस कौतुकको देख-देखकर हँस रहे थे और यशोदाका हृदय धकधक कर रहा था, अत्यन्त कोमल कानोंके

छेदनेके समय अपना मुख सम्मुख न कर सकी कृष्णको रोता देखकर झट मन्दिरमें ले गयी। नंदजी हँसने लगे, सब स्त्रियाँ बधाई देने और निछावर करने लगीं, उस समय देवताओंकी स्त्रियाँ परस्पर कहती थीं कि धन्य हैं व्रजकी स्त्रियाँ! हम उनकी किङ्करीके समान भी नहीं। देखो व्रजकी स्त्रियोंका भाग्य कि जिन श्रीकृष्णका दर्शन ब्रह्मादिक देवताओंको भी दुर्लभ है, उन श्रीकृष्णपर व्रजबाला धन,मणि,भूषण,वसन न्योछावर कर-कर याचकोंको दे रही हैं और वह आनंद उनके हृदयमें नहीं समाता चारों ओरको उमड़ा चला जाता है। उनके यहां आनंद और मंगल रात-दिन क्यों न रहे? कि जिनके घर श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद मङ्गलमूर्ति आकर प्रगट हुए हैं, जिस प्रकार माता-पिता सुख पाते हैं सुखनिधान नित्य वही काम करते थे, जिसका भेद वेदतक नहीं पा सकते। क्या वह नंदके घर नाक-कान छिदावें? नहीं यह पूर्व जन्मका प्रताप है, जो अपने भक्तोंके लिये नर शरीर धारण कर अनेक प्रकारकी बाललीला करते हैं, श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! नंदके भवनमें इस प्रकार एक न एक लीला करते हैं, कभी तोतली बोलीसे गीत गाते हैं, कभी छोटे-छोटे बालकोंको निकट बुलाते हैं, कभी छोटे-छोटे चरणोंसे थिरक-थिरक नाचते हैं, जब मंद-मंद गतिसे नूपुरोंका शब्द होता था और अंगोंके भूषणोंका शब्द हो, उस समय आप ही आप रीझकर प्रसन्न होते थे ॥२३॥ जिस समय व्रजमें गोपियोंके देखनेके योग्य श्रीकृष्ण और बलराम बाललीलाओंको करने लगे और दौड़-दौड़कर बछड़ों की पूंछ पकड़-पकड़कर खींचते हैं और जब बछड़े भागते हैं तो यह उनके पीछे-पीछे खिंचे चले जाते हैं। इस प्रकारकी लीला वह गोपी देख घरोंके कामको छोड़-छोड़ हँस-हँसकर हर्ष को प्राप्त होती थीं ॥२४॥ माता यशोदा और रोहिणी अति चञ्चल खेलमें लगे हुए श्रीकृष्ण बलदेवको देखकर गाय, बैल, डाढ़वाले, जीव, बन्दर, अग्नि, जल, सांप, पक्षी, कांटोंसे रोक-रोक बचाती फिरा करती थीं और घरके काम-धन्धे सब छोड़ दिये थे जब रोहिणी और यशोदा फिरती-फिरती हार जाती थीं तब श्रीकृष्ण बलभद्र माताओंके मनकी गति जानकर आंगनमें खेलने लगते थे ॥२५॥ हे राजन्! व्रजमें रामकृष्ण दोनों कई थोड़े ही दिनों पीछे घुटनोंके ही बल नहीं वरन् चरणोंसे अनायास चलने लगे। कभी घरमें जाते, कभी बाहर आते, कभी भुजा उठा-उठाकर बालकोंको बुलाते, कभी धौरी, धूमरी, गोरी काली नाम ले लेकर गायोंको गुहराते, कभी माखन मिश्री मातासे मांग-मांगकर खाते, कभी मुकुरमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देता तो उससे कहते भैया! तू भी माखन खाले जब वह प्रतिबिम्ब न लेता तो दोनों हाथोंसे आधा-आधा कर एक भाग उसको देते, जब माखन पृथ्वीपर गिर जाता तो कहते थे कि भैया! अब क्यों नहीं लेते! वह बात भी बताओ इन अद्भुत चरित्रों को यशोदा मैया छिप-छिपकर देखती और मन ही मनमें प्रसन्न होती और झट आकर गोदमें उठाकर मुख चूम लेती थी। उस परमानन्दके सुखको कौन वर्णन कर सकता है?

सोरठा—कौतुकनिधि भगवान, करत चरित नित नित नये।
सुन्दर श्याम सुजान, व्रजवासिनके प्रेमवश ॥ २६ ॥

एक दिन मदनमोहन व्रजवासियोंके बालकोंके संग अपनी सिंहपौर पर खेल रहे थे सबकी एक अवस्था, भोलीभाली सूरत, कृष्णकी प्रीतिमें मतवाले अनेक-अनेक प्रकारकी लीला कर

रहे थे। कभी गाते, कभी हँसते, कभी किलकारी मारते, कभी अपनी माताको पुकारते, धन्य यशोदाके भाग्यको ! मदनमोहनकी उस मनोहर छबिको देख-देखकर व्रजवासी लोग स्त्री-पुरुष मनही मनमें कहते थे कि कोटि कामदेव भी इस शोभाकी समताको नहीं पा सकते। देखो बलराम और घनश्याम अपने समान अवस्थावाले व्रजवासियोंके बालकोंको संग लेकर नयी-नयी क्रीड़ा कर हम लोगोंको कैसा-कैसा आनंद देते हैं ॥ २७ ॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखकर सब जुड़ मिलकर आयीं और श्रीकृष्णचन्द्रकी माता यशोदाको सुनाकर यह कहने लगीं ॥ २८ ॥ अहो यशोदा ! तुम अपने पुत्रको बर्ज लेना। हमारे घरोंमें आकर द्वन्द्व मचाता है, हम तो गायोंको दुहने नहीं पातीं, वह पहले ही बछड़ोंको खोल देता है, बछड़े दूध पी-जाते हैं, दुहनेवाले ग्वालिये शिर मार-मार कर चले जाते हैं। यशोदा बोली—अरी ! तुम्हारे घर जब जाय तो इसको डाट दिया करो। यशोदाजीका वचन सुनकर गोपिका कहने लगीं कि जब हम इसको डाटती हैं तब यह हँस देता है, इसकी हँसी देखकर हमको भी हँसी आ जाती है और यह चोरीके उपाय करके दूध दही और जो कुछ मीठे-मीठे पदार्थ हमारे घरोंमें रक्खे रहते हैं, उनको स्वादसे चुरा-चुराकर खा जाता है और जो कुछ बचा रहता है, उसको बन्दरोंको खिला देता है और जो बन्दर भी नहीं खाते तो जान-बूझकर दूध दही घीके चिकने बासनोंको फोड़ डालता है और जो कदाचित् माखन दूध इसके हाथ नहीं लगता तो क्रोध करके गालियाँ देता है और कहता है कि इनके घरोंमें आग लग जाय, फिर पालनेमें सोते हुए हमारे बालकोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ और जो ऊँचे-ऊँचे छींकोंपर धरती हैं कि इसके हाथ न आये तब पीढ़ा, पट्टा, ऊखली इत्यादि धरकर चोरीका उपाय करता है और किसी-किसी छींकेके बासनमें छेद कर देता है, और नीचे सब बालक मुख लगाकर सब गोरस पी जाते हैं और जो मीठा होता है तब तो खा जाते हैं और जो खट्टा होता है तो गिरा देते हैं और जो मेवा मिष्टान्न होता है उसको बालकोंके कन्धेपर चढ़कर खा लेता है और जो हम अन्धेरे घरमें दही माखन कहीं छिपाकर भी धरती हैं, तो उसके आभूषणोंमें जो रत्न, मणि, माणिक, हीरे जड़े हैं, उनका प्रकाश हो जाता है, दूसरे इसका जो चन्द्रमासा मुख है उसकी उजियालीकी चांदनी हो जाती है, तब हमारा धरा ढका सब निकाल लाता है। जबतक हम घरमें बैठी रहती हैं उस समय आता है तो हमको देखकर भाग जाता है और जब हम अपने घरके काम-धन्धेमें लग जाती हैं, उस समय घरमें आकर घुस जाता है ॥३०॥ और जब कभी हम आकर इसको देख पाती हैं और कहती हैं कि अरे चोर ! तो यह लौटकर कहता है कि तुम ही चोर हो, मैं घरका स्वामी हूँ ऐसी हँसी की बातोंमें बातको टाल देता है। हमारे लिपे-पुते घरोंको बिगाड़ देता है, सब दिन सखाओंको संग लिये चोरीकी चिन्तामें फिरता रहता है, यह कन्हैया तुम्हारा बड़ा ढीठ है और पेटमें इसके सैकड़ों छल भरे हैं, परंतु मुंहका मीठा है, जो तुमको विश्वास न आवे तो हम पकड़के दिखा दें। कभी किसीके कपड़े फाड़ता है, कभी किसीको मारता है और सब व्रजमें धूमधाम मचा रक्खी है।

दोहा-तेरी हँसी करावतो, गलिन गलिन ब्रज गावँ।
नन्दरायको पूत है, चोर धरायो नावँ ॥

सवैया

भोरहिते व्रज छोरनको लिये, छोरनको बछरा अरु गैया।
धावत गावत है घर ही घर, मानत है न कहो कछु भैया॥
हो तुम ही ब्रजकी ठकुराइनि, जो तुम्हरो अस ह्वैगो कन्हैया।
तो यह बात कहो तुम ही अब, कैसे बसैं ब्रज लोग लुगैया॥
देव मनाय मनाय थकीं तब, नामी भयो यह नन्द बबाके।
श्याम सलोना हरे मनको शिशु, अंग हैं याके सबै उपमाके॥
बोले महा मधुरी बतियाँ सुनि, कै उपजै नहिं आनँद काके।
चंचल चोर जो होतो नहीं, तो अमोल रहे गुण तेरे ललाके॥

अब देखो! तुम्हारे आगे कैसा भोला-भाला बना खड़ा है मानो कुछ जानता ही नहीं। इस प्रकार जब गोपियोंने डराया तो उस समय भयसंयुक्त नेत्र उसमें श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये श्रीयशोदाजीसे आकर गोपियोंने उलाहना दिया, तब श्रीयशोदाजीने हँसकर मनमोहन प्यारेको गोदीमें उठा लिया और पुत्रसे कुछ कहा नहीं।

सवैया

प्रीति प्रमोद हिये यशुदा हँसि, लीन्हों गोविन्दहि अङ्क उठाई।
चूमके आनन काननमें लगि, बैन कह्यो बहु भांति बुझाई॥
दूध दही अरु माखनकी निधि, तेरेहि भौनमें है अधिकाई।
काहेको जात चबायनके घर, हैं मदमत्त यहांकी लुगाई॥

फिर यशोदा गोपियोंसे बोली कि तुम मेरे बालकको वृथा तो चोरी मत लगाओ; क्योंकि आजतक तो मेरा कृष्ण घरसे भी नहीं निकला और दही दूधकी मेरे घर क्या कमी है, जो तुम्हारा दही दूध चुराने जाता है? देखो तुम मेरे पुत्रका नाम मत निकालो।

कवित्त—पुत्रकी बुराई मेरे कसकै करेजेमाहिं, मेरो प्राण प्यारो तेरो कहा कर आयो हैं। मोसो कहो कोटि कोऊ कान्हाको न कछु कहो, जानै कैसे करि मैंने एक पूत पायो है॥ माखनको माठ लैके द्वारपै यशोदा बैठी, दूनो दूनो लेव बीर जाको जेतो खायो है। गोद मैं पसारत हूँ गोरसके काज आली, गारी मत देव मो गरीबनीको जायो है॥

श्रीकृष्ण बोले कि हे माता! मैं इनका दूध दही क्यों खाऊँ, क्या मेरे घर दूध दहीका घाटा है? ये गोपियां मुझको वृथा कलंक लगाती हैं, मैं नहीं जानता कौन इनका दूध-दही खा जाता है, मेरा नाम वृथा बदनाम कर रखा है। जब इनका जी चाहता है तब चली आती हैं। तुमसे झूठ-सच्च लगा जाती हैं। भला तुम इतना तो समझो कि मैं छोटे-छोटे हाथोंसे किस प्रकार इनके छींके परसे कोई वस्तु उतार सकता हूं? हे माता! ये गोपी बड़ी झूठी हैं, जब मैं कहीं जाता हूँ तो बलात्कार मुझको मार्गमेंसे पकड़कर अपने घर ले जाती हैं और मेरी दुर्दशा करती हैं। कोई तो मुख चूमती हैं, कोई मेरे वस्त्र उतारती हैं, कोई मेरे

गालोंपर गुलचे मारती हैं, कोई मुझको नाच नचाती हैं; कोई मुझको स्त्रियोंके कपड़े पहनाती हैं, ये मुझको किसी प्रकार चैन नहीं लेने देतीं। तुम इस गोकुलको छोड़कर और कहीं अन्यत्र चल कर रहो, क्योंकि किसी प्रकार इन निर्लज्जोंसे मेरा पीछा तो छूटे। ऐसी मीठी-मीठी बातें ब्रजभूषण प्यारेकी सुनकर यशोदाजीको गोपिकाओंकी बातका किंचिन्मात्र भी विश्वास न आया। उलाहना देनेवाली ब्रजयुवती मनमोहनकी बनावटवाली बातें सुनकर मनहीमन प्रसन्न होती अपने-अपने घरोंको चली गयीं और यशोदाके इस प्रकार समझाने पर भी नन्दकुमारने दही माखनकी चोरी करनी नहीं छोड़ी और जिस घरमें अँधेरा भी होता तो अपने चन्द्राननके प्रकाशसे दही दूध खोजकर ले आते, आप खाते और सखाओंको खिलाते और जब कोई गोपी यशोदाके पास उलाहना देने आती, तो यशोदा कहती कि तू झूठी है, मेरा श्यामसुन्दर ऐसा नहीं है। इस बातको तुम ही विचारो कि छोटासा बालक तुम्हारे इतने ऊँचे छींके परसे दूध-दही क्योंकर उतार सकता है। यह तुम्हारा दही दूध चुराना किसी बड़ी अवस्थावाले पुरुषका काम है। इस फूलसे बालकसे यह काम किसी प्रकार हो ही नहीं सकता, तुम मेरे बालकको वृथा कलंक मत लगाओ, क्योंकि क्वारे काचेका मेरा घर है जितने दामोंका तुम्हारा दधि-माखन है, तुम उससे दूना दाम मुझसे ले लो और आगेको अपने घरका प्रबन्ध ठीक रखो और यह रात-दिनका उलाहना मुझको अच्छा नहीं लगता और जो तुम सच्ची हो तो चोरी करते समय मेरे बालकको पकड़कर मेरे पास क्यों नहीं लाती ? यशोदाकी यह बात सुनकर गोपियां अपने-अपने घरोंको चली गयीं।

दोहा—घर घर प्रगटी बात यह, सखावृन्द लिय साथ।
माखनकी चोरी करत, नन्दसुवन ब्रजनाथ॥
पकड़ो तुम नँदनँदनको, काहू विधिसों आज।
फिर यशुमतिपै ले चलें, छाँड छोड़ सब लाज॥

फिर एक गोपी कहने लगी कि अरी! श्यामसुन्दरको दही-माखन खानेको कोई मत बर्जो, क्योंकि हम उसकी मोहिनी मूर्तिपर मतवाली हो रही हैं। जो मनमोहन प्यारा हमारे घर न आया तो हम किसको देखकर जियेंगी ? आली! यह बात तेरी सत्य है, परंतु हम यशोदाके सम्मुख मुख कैसे करेंगी। जबतक उसके छौनाको पकड़कर उसके सामने न ले जायँ। अब तो जो चाहे सो हो, कृष्णको पकड़े विना कभी न छोड़ेंगी। एक बोली—पकड़कर क्या होगा! हम तो यह चाहती हैं कि किसी प्रकार उस मनमोहन प्यारेका दर्शन हो जाया करे। एक बोली-जो अबकी पकड़ पाऊँगी तो कण्ठसे लगाकर अपना हृदय शीतल करूँगी। एक बोली-जो श्यामसुन्दरको मैं पकड़ पाऊँगी तो बहुत ही नाच नचाऊँगी, क्योंकि नित्य मेरा माखन खाकर मुझको अँगूठा दिखा जाता है। एक बोली—आज हमारे घर आया था, परन्तु मुझको देखकर दूर भाग गया। इस प्रकार ब्रजबाला प्रेममग्न होकर दिन-रात नन्दलालके ही ध्यानमें रहती थीं और पलभरको मनसे न बिसारतीं, मिलनेके सैकड़ों उपाय विचारतीं। यह बातें करती-करती गोपिका तो अपने-अपने काम-धन्धोंमें लग गयीं और कृष्णने उनके सूने घर पाकर आप तो घरमें घुस गये और सखाओंको द्वारपर खड़ा कर दिया।

दोहा—सब माखन देखो धरो, हरषे श्याम सुजान।
सखा बुलाये सैन दै, लै लै लागे खान॥

डरके मारे मनहिमन, इत उत चितवत जात।
उठि उठि झांकत द्वारको, बांट बांट दधि खात॥

और वह ग्वालिनी ओटमें खड़ी-खड़ी झांक रही और पड़ोसिनों को बुलाकर दिखाने लगी कि देखो श्यामसुन्दर कैसा आनन्द कर रहे हैं, अपने हाथसे अपने प्यारे सखाओंको खिला रहे हैं, यह कह सब ग्वालिनी छिप-छिपकर कनअंखिओंसे उस शोभाको देख रही थीं कि देखो मनमोहन प्यारे किस प्रकार दधि बांट-बांटकर खा रहे हैं। हे राजन्! उस समय मुखके समीप माखनसहित हाथ कैसा शोभायमान दिखायी देता था मानो चन्द्रमासे वैर छोड़कर कमल माखनकी भेंट लेकर मिलनेको जाता है और दही मुखसे टपक-टपक जो हृदय पर गिरता है मानो चन्द्रमा मोतियोंके हार-उपहारमें दे रहा है और सुधाकी बूँदे बरसा रहा है, उस समय श्यामसुन्दरके मुखारविंदकी छबि देख मौन हो गयी और शरीरकी सुधि भूल गयी और मनमोहनको बर्जनेको वाणी मुखसे न निकली। वह चतुर बाला मन ही मनमें विचार करने लगी कि, क्या कहें? ऐसी मोहनी मनमोहनने उनके ऊपर डाल दी थी। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! विश्वके पालन-पोषण करनेवाले विश्वम्भर कल्पवृक्ष और कामधेनु सदा जिनके सम्मुख हाथ जोड़े खड़े रहें वह भगवान् किंचित् दहीके लिये गोपियोंकी चोरी करते फिरें, यह सब प्रेमकाही प्रभाव है।

सोरठा—नित उठि करत विहार, ब्रजमें घर घर साँवरो।
ब्रजजन प्राणाधार, चोरी कर कर खात दधि॥

एक दिन ब्रजभूषण चोरी करनेके लिये एक ग्वालिनीके घरमें घुसे और चोरी करते हुए उस ग्वालिनीने उनको पकड़ लिया और यह कहने लगी कि अरे लाल! तुमने मेरे संग बड़ी नटखटी की है। आज बहुत दिनोंमें मेरे फंदेमें फँसे हो। रात-दिन मेरा दही खाते थे और मुझको खिजाते थे। दोनों हाथ पकड़कर खड़ी हो गयी और कहने लगी कि मेरा जितना दही माखन खाया है, जब सब दे जाओगे तब छूटने पाओगे। यह बात सुन श्रीकृष्ण उसके मुखकी ओरको ताकने लगे, फिर हँसकर बोले कि तेरी सौगन्ध मैंने इसमें एक रत्तीभर भी नहीं खाया इन ग्वालबालोंने खाया भी है और गिराया भी है। श्यामसुन्दरकी भोली-भाली बातें सुन मनसे सब रोष जाता रहा और हाथ छोड़कर हृदयसे लगा लिया और कहा कि हे प्यारे! हमारे घरसे मत जाओ, मैं तुम्हारे लिये मीठा दही मिष्टान्न लाती हूँ, तुम आनंद सहित पेट भरकर खाओ। वह ब्रजबाला दधि मिष्टान्न लेने गयी। मदनमोहन वहांसे हँसकर भाग निकले, कि हाय ग्वालिनीने जब मनमोहनको न देखा तो हकीचकीसी रह गयी और रोरोकर कहने लगी कि हाय! मैं क्या करूं? नन्दका छौना मेरा मन चुराकर ले गया। कृष्ण झट दूसरी ग्वालिनीके घर पहुँच गये। जाकर देखा तो सूना पड़ा है कोई घरके भीतर नहीं है, निशङ्क होकर काढ़-काढ़ उसका माखन खाने लगे, इतनेमें ही ग्वालिनी भी आगयी। इनको भागनेका तो उपाय न बन सका उसके घरमें ही छिप रहे, ग्वालिनी मथनीके निकट आकर खड़ी हुई तो दूध दहीके बासन रीते पड़े हैं और दूध दही औंधा पड़ा है। चकित होकर इधर-उधर देखने लगी, अभी तो मैं गयी थी और इन्हीं पावों चली आती हूँ। इतनी देरमें दधि-माखन चुराने कौन आ गया? जब भीतर कोठरीमें गयी तो देखा कि बालमुकुन्द एक कोनेमें खड़े हैं, जाते ही हाथ पकड़ लिया तो अपने मनमें कहने लगी

कि भगवान्‌ने आज तो मेरे मनचीते कार्य कर दिये, अड़ोस-पड़ोस की सब ग्वालिनियोंको बुलाकर मदनमोहनकी बांह पकड़कर यशोदाके पास ले गयी और जाकर बोली कि हे यशोदा। जो तुम अपने पूतकी बातें सुनोगी, तो बहुत हँसोगी। आज तुम्हारा पुत्र मेरे घर चोरी करनेको गया, माखनकी कमोरी भरी धरी देखकर कुछ खाया कुछ लुटाया इतनेमें ही मैं भी आ गयी, वह तुम्हारे कुलतारा मुझे देखकर कोठरीमें जा छिपे जब मैंने कहा घरके भीतर कौन है, तब अत्यन्त मधुर वाणीसे कहा कि मैं नन्दका छौना श्याम सुन्दर हूँ। यह कह नेत्रोंमें आंसू भरकर रोने लगे। तब मैं तुम्हारे डरके कारण कुछ न कह सकी, इतनेमें नन्दजीके द्वारपर ग्वालबाल इकट्ठे हो गये और कृष्णको माखनचोर कहकर पुकारने लगे। यशोदा बोली—आज मैं इसे रस्सीसे बांधकर अपने घर रखूँगी, उस समय रोहिणीने आकर गोदमें ले लिया कि कौन हमारे लालको बाँध सकता है जाओ री! ऐसी उलाहना मत लाया करो, सब ग्वालिनी अपने-अपने घरोंको चली गयीं। यशोदा श्यामसुन्दके मुखपर हाथ फेर चूमकर बोली कि पुत्र! ऐसा काम मत किया करो, इसमें बदनामी है। हे राजन्! श्रीकृष्ण यशोदाको धोखा दे घरसे बाहर निकल गये और सखाओंको संग ले फिर किसी ग्वालिनीके घर पहुँचे और सूना भवन देख बेखटके उसमें चले गये; मानो अपना ही घर है। ढूँढ़ भालकर रातका जमाया हुआ गोरस निकाला और ऐसे निस्संदेह होकर खाने लगे मानो आप ही जमाकर रख गये थे। बासनोंके धरने उठानेका शब्द सुनकर वह ग्वालिनी घर आयी। आभूषणोंसे झलकते हुए मंदिरमें श्यामसुन्दरको देखा। झट मनमोहन एक कोनेमें छिप रहे, दहीकी मटकी निकट रख ली। ग्वालिनी इधर-उधर देखने लगी, परंतु श्यामसुन्दर अँधियारेमें हाथ न आये। कहने लगी कि अभी तो आभूषण पहने मैंने ब्रजभूषणको देखा था, अभी कहां चले गये। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मथनीकी ओटमें बैठा देख लिया और हाथ पकड़कर कहने लगी कि पहचान लिया है, पहचान लिया। मेरी ओरको देखो नीचे गर्दन मत करो, कहो अंधियारे घरमें क्या कर रहे हो?

सोरठा—दधि मथनीमें हाथ, अब कह बात बनायहो।
सखा नहीं कोउ साथ, कहिये अब कैसी बनी॥

तब मदनमोहन बोले कि मैं धोखेसे अपना घर समझकर यहां चला आया हूं और दहीको जो देखा इसमें चींटी पड़ गयी थीं, वह चींटियोंको मैं निकाल रहा हूँ। यदुनन्दनके मधुर वचन सुनकर ग्वालिनी हँस पड़ी कि हे मोहन प्यारे! तुम बात बनानेमें बड़े चतुर और विज्ञानी हो। यह कह हृदयसे लगाकर मुख चूम कहने लगी, हे मनमोहन प्यारे! मेरा मन रात-दिन तुमहीमें पड़ा रहे। हे राजन! जब श्रीकृष्ण चले गये तो वह गोपी बहुत व्याकुल हुई और मनकी मनमें कहने लगी कि जिस प्रकार उस नंदकुमारका दर्शन हो, तब उसने यह उपाय निकाला कि उलाहनेके मिष यशोदाके पास जाऊँ यह विचार नन्दरानीसे जाकर कहा कि हे ब्रजेश्वरी! तुम्हारे सुतकी करणी क्या कहूं! कुछ कहने योग्य नहीं। नित्यप्रति दूध और माखन गिराकर चला आता है, कहां तक मैं चुप बैठी रहूं और आपसे न कहूं। मैं अपने घरमें अँधियारेमें माखन छिपा-छिपाकर रखती हूं यह किसी न किसी प्रकार जाकर बिगाड़ कर देता है। आज मैंने पकड़ लिया कि लाला यह क्या करते हो! तो उत्तर दिया कि मैं अपना घर जानकर आ गया और दहीमें से चींटियाँ निकाल रहा हूं, ग्वालिनकी यह बात सुनकर यशोदाने हँसकर

क्रोध किया और कृष्णसे कहा–अरे ? तू क्यों पराये घर जाकर उलाहने लाता है, मुझसे तेरे रात-दिनके उलाहने नहीं सुने जाते, अब तुम मेरी आंखोंके आगे सदा खेला करो और अपने सखाओंको भी यहीं बुला लिया करो, जो तुम्हारे खेल देखकर मेरा हृदय भी ठण्ढा हो। मुझसे लीजे जो तुमको मेवा मिठाई दूध दहीकी इच्छा हो। सब संसारके पदार्थ तो तेरे घर उपस्थित हैं, फिर तू पराये घर नाम रखानेको क्यों जाता है ? श्रीकृष्ण बोले–अच्छा मैया! तो थोड़ा माखन तू ही ला दे। यशोदा प्रसन्न होकर उसी समय ले आयी और आंचलकी ओट करके मनमोहन प्यारेको खिलाने लगी। श्रीकृष्ण बोले कि माता! मैं अपने हाथसे खाऊँगा। यशोदाजीने एक दोना भरकर हरिके हाथपर धर दिया, वे खाते हुए चल दिये और सखाओंके संग खेलने लगे। यमुना जल भरनेके लिये एक ग्वालिनको जाते देखा तो ये सब उसके घरमें जा घुसे, देखा तो दो बालक पड़े हैं और कोई नहीं है इधर-उधर देखा तो गोरस भी नहीं है, ऊपरको देखा तो छींकेपर धरा है। एक सखाके कन्धे पर चढ़कर उसका दही दूध सब उतार लिया और जितना खाया गया उतना खाया, बचे हुए को पृथ्वीपर गिरा दिया और बछरे सब खोल-खोलकर वनकी ओरको हाँक दिये। इतनेमें ग्वालिनी आ गयी। ग्वालिनीको देखकर सखा तो सब भाग गये परन्तु व्रजमोहन घरमें ही रह गये और उस ग्वालिनीने पौंरी रोक ली और चिल्लाकर बोली–अरे नन्दलाल! भागकर कहां जा सकता है ? आज बहुत दिनोंमें हाथ आया है, अत्यन्त क्रोधकर दोनों हाथ पकड़ यशोदाके पास लायी और कृष्णको आगे खड़ा करके बोली कि हे महारि! तुम्हारे पूतने गोकुलमें बड़ा उत्पात मचाया है। मैंने माखन छींकेपर रख दिया था। इसने एक ग्वालेके कन्धे पर पांव धरकर माखन उतारकर खा लिया और मेरे बालकोंके ऊपर दही छिड़ककर उन्हें रुलाया और बहुतसी बातें कहते हुये मुझको तुम्हारे सामने लज्जा आती है अपना शरीर खोलकर मैं तुमको कैसे दिखाऊँ, तुम्हारे श्यामके गुण मैं कहांतक कहूँ ? तुम्हारे आगे यह बालक बनकर आंसू ढलकाने लगता है, तुम अपने पुत्रको क्यों नहीं बर्जकर रखती। एक दिनका हो तो देखा जाय, नित्यकी हानि भला कोई कैसे सह सकता है ? जो वस्तु मैं जहां कहीं छिपाकर रखती हूँ वहींसे चुराकर वह ले जाता है और बछरोंको खोल देता है, वह वनमें मारे-मारे फिरते हैं। यह बड़ा छलिया है, इसके गुणोंको मैं ही जानती हूँ, तुमने तो इसे सूधा समझ रखा है इसलिए तुम कुछ नहीं कहती, जबतक इसको तुम ताड़ना नहीं दोगी तबतक यह नटखट कभी नहीं मानेगा। यशोदा ग्वालिनीके वचन सुनकर कृष्णकी ओर देखा तो आंखें डबडबाये भयभीत खड़ा है, तब तो यशोदा झुंझलाकर बोलीः–

सोरठा–चोर बतावत लोग, झूंठहिं मेरे श्यामको।
कब भयो चोरी योग, पांच बर्षको तनकसो॥

मदमाती ग्वालिनी चोरीके बहानेसे मेरे मनमोहन प्यारेको देखने आती हैं, मेरे फुलवासे बालकमें इतने पौरुष कहां हैं, जो छींकेपरका धरा दधि-माखन तुम्हारा उतार ले ? क्या मेरे पुत्रको कुछ डिठबंद आता है, तेरे घर जाकर बड़ा हो जाता है और मेरे घर आकर छोटा हो जाता है। चल, मेरे बालकको झूंठ मत लगा।

चौ०–हाथ नचावत आवत दौरी ❋ जीभ न करहिं समझकर बौरी।

घर ही माखन भरी कमोरी ❋ कबहुँ न लेत अँगुरिया बोरी ॥

ग्वालिनी यशोदाकी बात सुन ब्रजभूषणकी ओरको देखती चुपचाप कान दबाकर चल दी और यशोदा कृष्णको समझाने लगी, कि हे पुत्र ! मैं तेरे ऊपर बलिहारी जाऊं, मैंने अपने ही घरमें तेरे लिए भांति-भांतिके षट्रस भोजन बना रखे हैं तो फिर तू पराये घर जाकर किंचित् दही माखनके लिये इतने उपाय क्यों करता है? देखो हाट-बाटकी गोरस बेचनेवाली कुजाति ग्वालिनी न कुछ लाज न कान, यहां आकर जो जीमें आता है वह मुँह फाड़कर बकने लगती हैं और झूँठा दोष लगाकर ऐंड़ी-बैंड़ी बातें बनाकर निश्शंक हो सम्मुख विवाद करती हैं उन गवारियोंके घर कभी मत जाया कर, नौ लाख गायें तो मेरे ही घर दूध देती हैं, जितना माखन तुझको चाहिये खा और लुटा। यहां किसीने तेरा हाथ पकड़ रखा है जो तू दूसरेके घर जाता है और दुत्कारें खाता है ! तू इन बातोंको छोड़ दे, क्योंकि सब गांवके लोग मेरा नाम धरते हैं कि तू अपने बालकको पेट-भर रोटी नहीं देती है, इसलिए यह सब घरोंका दूध-दही चुराकर खाता है, उस समय मुझको बड़ी लज्जा आती है। सब गोकुलके लोग-लुगाई तुझको माखन चोर कह करके पुकारते हैं। तेरी इन बातोंसे मुझको ब्रजमें मुख दिखाना भारी पड़ गया, तू बड़े बापका बेटा होकर अपना नाम चोर धराता है। यशोदाकी बातें सुनकर श्यामसुन्दरने कहा कि हे मैय्या! अब मैं ऐसी छल-छन्दवाली ग्वालिनियोंके घर कभी नहीं जाऊँगा, झूठ सच्च बोलकर उस समय तो माताको ठण्ढी किया, परन्तु दूध-दहीका चुराना खाना नहीं छोड़ा। तब तो सब गोपियोंने मिलकर परस्पर परामर्श किया कि एक दिन इस माखनचोरको माखन समेत पकड़कर नन्दरानीके पास ले चलना चाहिये, क्योंकि यह ऐसे नहीं मानेगा, यह सम्मति कर एक दिन सब इधर-उधर झांकती रहीं और श्रीकृष्ण भी अपना दांव लगाकर एक गोपीके घरमें घुसकर दही-माखन खाने लगे और कई एक गोपियोंने आकर इनको पकड़ लिया और संगके ग्वाल-बाल सब भाग गये। तब सब गोपी श्यामसुन्दरको पकड़कर नन्दरानीके पास ले चलीं। उस समय यशोदानन्दनने अपनी मायाकी प्रेरणासे ऐसा छल किया कि जो गोपी श्रीकृष्णका हाथ पकड़े लिये जाती थी उसीके पुत्र का हाथ दही मुखमें लगाकर उसको पकड़वा दिया और आप वहांसे अन्तर्द्धान होकर बालकोंके साथ खेलने लगे और उस गोपीने और उसकी साथनियोंने भी यह भेद नहीं जाना कि मैं अपने ही पुत्रका हाथ पकड़े लिये जाती हूँ। उस ग्वालिनीने सब ग्वालिनियों समेत यशोदाके समीप जाकर कहा कि हे नन्दरानी ! तेरे लालके कारण सारे ब्रजमें दही और दूध नहीं ठहर सकता, हम सैकड़ों उपाय कर करके हार गईं और बहुतेरा छिपाकर रखा परंतु तुम्हारा पुत्र चुराये बिना नहीं मानता और जब माखन खाते समय उसको कोई पकड़ता है तब कहते हैं कि तुमने बलात्कार मेरे मुखमें दही लगा दिया है। मैं अपनी मातासे जाकर कहूँगा ऐसा कहकर धमकाता है। सबके बछड़े खोल-खोलकर दूध पिला देता है। रानीजी ! इसके गुण सुनोगी तो भूल रहोगी, इसके पेटमें सैकड़ों चरित्र भरे हैं, यह नहीं कि दही माखन ही खाकर हमारा पीछा छोड़ दे, साड़ी उतार लेता है, अंगिया फाड़ डालता है और जो-जो कुकर्म करता है हम आपसे कहांतक कहें हमको तो कहते भी लाज लगती है। सबके घरोंमें उत्पात मचाता रहता है और जो कुछ हम कहती हैं तो सूधे ही गाली देता है और जब तुम्हारे पास उलाहना देने आती हैं तो तुम हमको ही झूंठी ठहराती हो। इस

लिए डरके मारी हम तुम्हारे पास नहीं आतीं। आज हमने इसको माखन चुराते और खाते पकड़ लिया, इसलिये तुम्हारे पास लायी हैं। जब ग्वालिनी इसी प्रकारकी सैंकड़ों उलाहनेकी बातें कह चुकीं तब यशोदा हँसकर बोली कि आज तुमको क्या हो गया है? विजया खा ली है? वा उन्मत्त हो गई हो? तुम किसे पकड़कर लायी हो? यह मेरा मोहन प्यारा है? आंखें खोलकर देखो, दीपक हाथमें लेकर पहिचानो, तुम्हारा झूठ सच्च अभी प्रगट हो जायगा। अरी बैरियो! मेरा श्यामसुन्दर तो कलसे घरसे बाहर भी नहीं गया। यशोदाकी यह बात सुन सब गोपी बड़बड़ाकर जिस चोरको पकड़कर लायी थीं उसके मुखकी ओर देखने लगीं, तब तो वह अपना ही पुत्र निकला। यह अद्भुत चरित्र देखते ही गोपियोंने उसका हाथ छोड़ दिया और अपने मनमें लज्जित होकर नीचेको आंखें कर लीं और उत्तर ग्वालिनियोंसे न बन पड़ा। हारकर अपने-अपने घरको चली गयीं। तब यशोदा कृष्ण-प्यारेसे कहने लगी कि हे बेटा! मैंने तुझे इतना समझाया परंतु तूने चोरी करनी न छोड़ी और जो ऐसे ही तू रात-दिन चोरी करता रहेगा तो इस ब्रजमें कौन बसेगा? मैं बकती-बकती हार गई परंतु तेरे ध्यानमें अब तक कुछ नहीं आया।

दोहा—सुन सुत लाजन मैं मरूं, तू नहिं मानत बात।
अब तोहिं राखौं बाँधिकै, जानी तेरी घात॥

अब तू विना पीटे नहीं मानेगा और जो गोपी तेरा उलाहना लेकर मेरे पास आयेगी मैं उनसे भी कह दूँगी कि जब तुम्हारे घर जाय तो बिना मारे कभी मत छोड़ना, बांधकर अपने ही घर डाल रखना, जब वह तुझको बांध रखेंगी तब मैं तेरे बापको दिखाऊंगी कि तुम्हारा पूत ऐसे कौतुक करता फिरता है, जब वे तेरे हाथ-पांव बांधेंगे तब तू चैनसे बैठेगा। माताको कुपित देखकर मदनमोहन तुतलाकर बोले कि हे जननि! तुमको इन छल्लों-छिनालोंकी बातका किसी प्रकार विश्वास करना नहीं चाहिए, क्योंकि यह छल्ली छिनालें छलकी पुतली हैं, ये सदा झूँठी सच्ची सैकड़ों बातें बनाती हैं और ये सब मेरे पीछे-पीछे फिरा करती हैं मुझको पकड़कर अपने घर ले जाती हैं और सैकड़ों काम कराती हैं और मुझसे ऐसी-ऐसी बातें करती हैं जो मुझे तेरे आगे कहते हुये भी लज्जा लगती है और तेरे सामने और ही बातें बनाकर मुझे चोर बताती हैं, यह कह आंखोंमें आंसू भर लिये और कहा कि मैया! अब मैं कहां जाऊँ और क्या करूं? घर रहूँ तो तू बुरा भला कहे और बाहर जाऊँ तो गोपियाँ न चैन दें, अब मैं किसका होकर रहूँ? तू कहे तो मैं कहींको चला जाऊँ? श्यामसुन्दर प्यारेको रोता देख यशोदाने हँसकर गोदीमें उठा लिया और पुचकारकर बोलीं कि बेटा! तेरी बलाय कहींको जावे, मैं अपने छौनापर बलिहारी जाऊँ, तू इन निर्लज्ज गोपियोंके घर जाकर अपनी दुर्नामता करता है, तेरे घर किसी वस्तुकी कमी है, आनन्दसे खा और लुटा। यह सुनकर कृष्णने कहा कि माता! अब मैं किसीके घर नहीं जाऊँगा तेरे ही पास खेला करूँगा। मुझे अच्छे-अच्छे खिलौने मंगा दे। देखो! जो आदिपुरुष अविनाशी ब्रह्मादिक देवताओंके ध्यानमें नहीं आते, वे आज यशोदासे खिलौने मांग रहे हैं और ग्वालिनी अनेक-अनेक प्रकारके नाच नचाती हैं उनकी अद्भुत लीला किसीसे जानी नहीं जाती॥ २१॥ एक समय बलभद्रादिक गोपियोंके बालकोंमें क्रीड़ा कर रहे थे, वहां श्रीकृष्णचन्द्र मिट्टी खाने लगे, तब

सब बालकोंने कहा—आज कृष्णको कृष्णकी मातासे पिटवायेंगे और जाकर यह कहेंगे कि आज श्यामसुन्दरने मिट्टी खायी है। तब यह विचारकर सब बालक और श्रीदामा यशोदाजीके पास गये और जाकर कहा कि आज श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है॥३२॥तब परमहितकी करने-वाली श्रीकृष्णकी माता यशोदाने क्रोधित हो श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर धमकाया और भययुक्त चञ्चल नेत्र मोहन प्यारेसे यह कहा ॥३३॥ हे चपलगात चञ्चल ! तूने इकले जाकर मिट्टी क्यों खायी ? अरे अन्यायी ! जो यह बात गांवके लोग सुनेंगे तो घर-घर यह जवाब होगा कि नन्दरानी ऐसी जड़ (कंजूस) है कि अपने बालकको पेटभर रोटी भी नहीं देती, इसलिए वह मिट्टी खा-खाकर दिन पूरे करता है। यह बात सुनकर श्यामसुन्दर डरते-कांपते बोले कि हे माता ! यह झूंठ बात तुझसे किसने कही ? कदाचित् कोई बालक तेरे पास आकर मुझको झूंठा कलंक लगा दे तो उसमें मेरा क्या अपराध है ? तब यशोदाने कहा कि तेरे मित्र श्रीदामाने मुझसे कही है और तेरे ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊने भी कही है॥३४॥ हे मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खायी और श्रीदामाकी ओरको कड़ी दृष्टिसे देखकर बोले—क्यों रे श्रीदामा ! मैंने तेरे सामने मिट्टी कब खायी थी ? श्रीदामा बोले-मैंने तेरी मातासे कुछ नहीं कहा। तब यशोदाने छड़ी लेकर कहा सच्ची बता ? श्रीकृष्ण बोले कि मैय्या ! जो तुझको विश्वास नहीं हो तो मेरा मुख देख ले ॥३५॥ यह बात सुनकर यशोदा बोली—मुझको तेरी झूठी बातोंका किसी प्रकार विश्वास नहीं आता, जो तू सच्चा है तो अपना मुख फैलाकर दिखला दे। यशोदाकी यह बात सुन अनेक दुःखोंके दूर करने वाले अखण्ड ऐश्वर्यवान् भगवान् क्रीडा करने के लिये मनुजतनुधारी बालकरूप श्रीकृष्णचन्द्रने अपना मुखारविन्द फैलाकर यशोदा को दिखला दिया ॥३६॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर, जंगम, विश्व, अन्तरिक्ष दिशा, पर्वत, द्वीप,समुद्र,भूगोल,प्रवाह, वायु, अग्नि; चन्द्रमा, तारागण ॥३७॥ ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, आकाश, इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रिय, मन, शब्दादि और इनके विषय शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँचों, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव, कर्म, अन्तःकरण और उसके होनेवाले चराचर और सम्पूर्ण प्राणियोंके भेदसहित चित्र-विचित्र संसारको श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखा और उसमें ही ब्रजभूमि और अपने देहको देख यशोदाके मनमें भ्रम उत्पन्न हुआ ॥३९॥ और अपने मन ही मनमें कहने लगी कि मैं जो देख रही हूँ क्या यह स्वप्न है ? नहीं, यह स्वप्न नहीं क्योंकि स्वप्न तो सोतेमें दिखाई देता है, तो क्या फिर परमेश्वरकी माया है ! नहीं-नहीं, यह माया भी नहीं क्योंकि माया होती तो और लोग भी देखते; क्या जैसे मुकुरमें मुख दीखता है, ऐसे ही दिखायी दिया। क्या यह मेरी बुद्धिका ही भ्रमजाल है ? नहीं-नहीं, ऐसा भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होता तो दर्पणमें जैसे दर्पण दृष्टि नहीं आता वैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र भी दीखना अनुचित है और बाहर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीति किसी प्रकार न होनी चाहिये, अथवा मेरे पुत्र श्रीकृष्णका यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है॥४०॥जो ध्यान करके देखा जाय तो यह अंतिम पक्ष ही बलवान् जान पड़ता है, क्योंकि यह संसार जो किंचित् मन, वाणी और वचनसे अनायासपूर्वक भली प्रकार विचारमें नहीं आ सकता, वह किसके आश्रय है और किस रीतिसे प्रतीत हो सकता है, उस अचिन्तनीय स्वरूपको मैं बारंबार नमस्कार करती हूँ ॥४१॥ इन ब्रजराजके सम्पूर्ण धनकी अधिष्ठाता मैं हूँ, यह ब्रजनाथ नन्दजी मेरे स्वामी हैं, यह श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है और

ये सब गोप-गोपिका तथा गाय-बछड़े मेरे हैं, मायासे जिसकी ऐसी कुबुद्धि हो रही है, हे भगवन्! मैं अब तुम्हारी शरण हूँ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाजीको कृष्णमें जब ईश्वरकी बुद्धि हो गयी, तब श्रीकृष्णने विचार किया कि माता तो परमगतिको पहुँच गयी, अब मेरा लालन-पालन कौन करेगा? तब पुत्रने फिर स्नेहरूपी अपनी वैष्णवी माया यशोदापर फैला दी ॥ ४३ ॥ उस समय यशोदाजीने मनसे कृष्णचन्द्रकी ईश्वरबुद्धि अलग कर दी और पुत्रप्रभाव मानकर श्रीकृष्णको गोदमें बैठा प्रेममें मग्न होकर पहलेके समान वात्सल्यभाव करने लगी ॥४४॥ ऋग, यजु, साम ये तीनों वेद, सांख्ययोग समस्त निरंतर जिन वासुदेव भगवान्‌की महिमाको रातदिन गाते हैं उन श्रीकृष्णको यशोदा पुत्रभावसे मानती हैं ॥ ४५ ॥ यह बात सुन राजा परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि हे ब्रह्मन्! नन्दरायजीने ऐसा क्या पुण्य किया था जिसके प्रभावसे उनका ऐसा भाग्य उदय हुआ? और यशोदाजीने ऐसा कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था जिससे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दने उनका स्तनपान किया ॥ ४६ ॥ और सब लोकोंके पापको दूर करनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका बालचरित्र आजतक जिसे कवीश्वरलोग वर्णन करते हैं, उस बाललीलाका सुख देवकी और वसुदेवको प्राप्त नहीं हुआ और नन्द, यशोदाको प्राप्त हुआ इसका क्या कारण? ॥ ४७ ॥ यह गूढ वचन राजा परीक्षित्‌का सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! आठ वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोण नामक वसुने अपनी धरा नामक स्त्रीको साथ लेकर ब्रह्माजीकी आज्ञा शीशपर धारण कर परमेश्वरका तप किया। तब परमेश्वरने प्रसन्न होकर चतुराननसे कहा कि मेरे भक्त जो वर मांगे, वह देना। ब्रह्माने इन दोनोंके सम्मुख आकर कहा कि वर मांगो, तब वे स्त्रीपुरुष बोले कि हे प्रभो! जो हमपर प्रसन्न हो तो यह वर दो ॥४८॥ कि हमारे जन्म मृत्युलोकमें हों परंतु विश्वेश्वर देवोंके देव हरि भगवान्‌में हमारी भक्ति बनी रहे, जिससे अनायास इस संसारसागरसे पार उतर जायँ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने वर दिया कि जाओ पृथ्वीमें ही तुम्हारा जन्म होगा और तुमको भगवान्‌की भक्ति भी होगी, तब तो बड़े यशस्वी और तेजस्वी द्रोण वसु ब्रजमें जन्म धारण कर नन्दनामसे प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नामसे विख्यात हुई ॥५०॥ हे भारत! जितने गोप गोपी थे सबमें भगवान्‌की भक्ति थी, परंतु नन्द यशोदामें अधिक भक्ति थी, जिनके घर पुत्र होकर वास किया, यह ब्रह्माके वरदानका प्रभाव था॥५१॥ परमात्मा विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्माजीकी आज्ञा करनेके लिये बलदेवजीके साथ नन्द यशोदाके घर वास कर अपनी लीला करके गोप गोपियोंको आनन्द दिया ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे विश्वरूपदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—नवमें पय उफनत लख्यो, गइ यशुमति इक साथ।
पीछे मटुकी पटकि हरि, बांधे यशुदा हाथ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण! एक दिन घरकी सब दासी तो काम-धन्धेमें लग रही थीं, इसलिये यशोदा ही प्रातःकाल उठकर अपने हाथसे दही मथने लगी। उस समय दहीके मथनेका ऐसा गम्भीर शब्द होने लगा जैसे मेघ गर्जता है ॥ १ ॥ दधि मथनेके समय जो-जो लीला बालचरित्रकी इस संसारमें श्रीकृष्ण ने की है उनको स्मरण कर-करके गाने

लगी ॥२॥ सूत्रसे बँधी रेशमी सारी कटि मेखलासे लपेट पुत्रकी प्रीतिसे स्तनोंमें दूध भर रहा था और नेती खींचनेके अतिश्रमसे हाथोंमें चूड़ियोंका शब्द होता था और भुजाओंसे कङ्कण और कानोंमें कुंडल, कर्णफूल बिजलीसे चमक-चमक जाते थे, मुखारविन्दपर पसीनेके कण आ रहे थे,गुथी हुई वेणीमेंसे जूहीके पुष्प गिर रहे थे और भृकुटी ऐसी शोभायमान थी मानो इन्द्रने धनुष तान रखा है। इस अद्भुत छबिसे यशोदाजी दही बिलोड़ रही थी ॥३॥ इतनेमें श्रीकृष्णकी आंख खुली और रो-रोकर माँ! माँ! पुकारने लगे,जब उनके रोनेका शब्द किसीने न सुना तब आप ही माताके समीप आये और सुसक-सुसक,ठिनक-ठिनक आंखें मल-मल तुतलाकर कहने लगे कि, मां! तुझे सैकड़ों पुकारें दीं और तू मुझे दूध पिलाने न आयी यह कह मथनियां पकड़ ली कि पहले मुझको दूध पिलादे ॥ ४ ॥ यशोदा दूधसे भरा स्तन श्यामसुन्दरको गोदमें लिटाकर आंचलकी ओट करके पिलाने लगी और हरिकी मन्द-मन्द मुसकान देख यशोदा मन ही मन आनंदित होती थी, इतनेमें चूल्हेपर जो औटानेको दूध धरा था उसको उफनता देख ब्रजभूषणको भूखा ही गोदसे उतार दूध उतारनेको दौड़ी ॥ ५ ॥ उस समय श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध आया और लाल-लाल बिम्बाफलसे होठोंको दांतोंसे काट सब दही महीके बासन फोड़ डाले।झूठे आंसू बहाकर माखनकी कमोरी उठाकर अपने सखाओंमें जा बैठे और परस्पर बांट-बांटकर खाने लगे ॥६॥उस उफनते हुए दूधको यशोदा चूल्हेसे नीचे उतारकर दही मथनेको फिर आयीं, तो देखा कि सब घरमें दही मही बह रहा है और सब बासन फूटे-टूटे पड़े हैं और माखनके बासनका कहीं पता ही नहीं,जब मनमें विचारा तो समझा कि यह सब कौतुक श्यामसुन्दरके ही हैं, उसके विना ऐसा और कौन है और वह छलिया यहां है भी नहीं? तब यशोदा हँसकर कहने लगी कि देखो कामका काम बिगाड़ा और माखनकी मटकी लेकर कहींको सटक भी गया ॥ ७ ॥ बाहर निकलकर देखा तो घरके पिछवारे उलूखलको औंधा कर उसके ऊपर बैठे और चारों ओर सखा मण्डलीको बैठाये माखन बांट-बांट कर खा रहे हैं और कहीं माता न आजाय इस भयसे इधर उधरको देख भी लेते हैं,इतनेमें ढूंढ़ती-ढूंढ़ती यशोदा भी वहां जा पहुँची ॥ ८ ॥ छड़ी हाथमें लिये माताको आती देख उसी समय उलूखलसे कूद डरके मारे घबड़ाकर भाग निकले। यशोदा भी उनके पीछे हुई और चिल्लाकर बोली—खड़ा तो रह, तूने बड़ा शिर उठाया है, परंतु यशोदाके हाथ न आये। देखो एकाग्रचित्त कर योगीराज उनका ध्यान करनेवाले भी उनकी गतिको नहीं पहुँच सकते और तप करके तपस्वियोंका मन जिनकी गतिको नहीं जान सकता फिर यशोदा उनको कैसे पकड़ सकती थी ॥९॥ मनमोहनके पीछे यशोदाजीकी गति नितम्बके भारसे शिथिल हो गयी, दौड़नेसे शीशके केशोंके बन्धन खुल गये और चोटीमें जो मालतीके फूल गुँथ रहे थे वे पुष्प आगे गिरते जाते थे और यशोदा उनपर पांव धरती चली जाती थी, क्योंकि पुष्पोंकी सुगन्धसे चित्त व्याकुल नहीं होता, इसप्रकार यशोदाने महाकठिनतासे, श्यामसुन्दरको पकड़ा ॥१०॥ अपराधी तो थे ही, पकड़ते ही विह्वल हो गये,रो-रो कर काजल लगे हुये नेत्रोंको मलने लगे और हा-हा कर-कर यशोदासे कहने लगे कि मैया! मुझे छोड़ दे; मैं नहीं जानता दही मही किसने गिराया। तो कृष्णका हाथ पकड़ छड़ी उठाकर यशोदाने धमकाया और कहा कि सिवाय तेरे और दधिमाखनका चोर मेरे घर कौन आ गया ? ॥ ११ ॥ पुत्रपर हित करनेवाली और भगवान्‌की गति न जाननेवाली

यशोदाने मनमोहन प्यारेको व्याकुल समझकर छड़ी हाथमेंसे फेंक दी और पुत्रके पराक्रमको न समझकर रस्सीसे बांधनेको प्रस्तुत हुई॥ १२ ॥ जिस आदि पुरुष अविनाशीके बाहर-भीतर, आगे-पीछे कुछ भी नहीं है और जो पूर्ण अवतार हैं, जगत्‌के अन्तर, बाहर तथा आगे, पीछे रहने वाले एवं जो जगत्‌रूप हैं ॥ १३ ॥ इंद्रियोंकी जिनमें गति नहीं ऐसे-अव्यक्त भगवान्‌को पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सी लेकर उलूखलमें इस प्रकार बांधने लगीं जैसे कोई साधारण बालकको बांधता है ॥१४॥ अपराधी समझकर जब यशोदा अपने मनमोहन प्यारेको बांधने लगीं, उस समय वह रस्सी दो अंगुल ओछी रह गयी तब यशोदाने उसमें दूसरी रस्सी और जोड़ी ॥१५॥ परन्तु जो उसमें रस्सी जोड़ी थी वह भी दो अंगुल ओछी रह गयी, तब तीसरी और जोड़ी तो वह भी दो अंगुल ओछी हो गयी । इस प्रकार कितनी ही रस्सी जोड़ी परन्तु पूरा न पड़ सका ॥१६॥ तब तो यशोदाने सर्व घर भरकी रस्सी इकट्‌ठी करके जोड़ी और श्यामसुन्दर न बँधे तब तो सब गोपी आश्चर्य मान हँसने लगीं और मुसकराकर यशोदा भी विस्मित होने लगी ॥१७॥ सब शरीर पानीमें डूब गया, माला कण्ठसे टूट पड़ी, शिखासे शीशफूल खिसक गया । तब यशोदाको श्रमित देखकर करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र आप ही कृपा करके बन्धनमें बँध गये ॥ १८॥ हे राजन् ! ऐसे कष्ट हरनेवाले भगवान् ब्रह्मासहित सर्व विश्व जिनके अधीन है उन श्रीकृष्णचन्द्रने अपने भक्तोंको भक्तवश होना दिखाया कि जो भक्त मुझको बांधना चाहे तो बन्ध भी जाता हूँ, मैं इस प्रकार भक्तोंके वशमें हूँ ❋ ॥१९॥ हे राजन् ! भक्तिके देनेवाले श्रीकृष्णचंद्र भगवान्‌से जो पुत्रके सम्बन्धसे प्रसाद गोपियोंने पाया वह प्रसाद ब्रह्माको भी नहीं मिला था और शिवजी जो भगवान्‌की आत्मा हैं उनको भी प्राप्त नहीं हुआ और लक्ष्मीजी सदा हृदयमें विराजमान और भार्या हैं, तो भी उनको यह प्रसाद हाथ न आया जो प्रसाद यशोदाने पाया है ॥२०॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् जैसे भक्तोंको सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसे देहाभिमानी तपस्वी आदिकोंको और देहाभिमानरहित आत्मज्ञानियोंको सहज नहीं मिल सकते ॥२१॥ इनको बांध यशोदा तो घरके काम धन्धेमें लग गयी इतनेमें सर्व-सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् कुबेरके पुत्र जो प्रथम जन्ममें गुह्यक थे और अब आकर यमलार्जुन वृक्ष हुए हैं उनका समय जान भगवान्‌ने उनकी ओरको देखा ॥२२॥ प्रथम ये दोनों अत्यन्त शोभायमान नलकूबर मणिग्रीव नामसे विख्यात थे कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदसे नारदके शापसे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए थे ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशम-स्कन्धे पूर्वार्द्धे गोपीप्रसादोलूखलबन्धनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

❋ शंका—श्रीकृष्णचन्द्रने यशोदा माताको पहले तो बहुत दुःखी किया अर्थात् अनेक रस्सियोंसे भी नहीं बँधे, फिर पीछे रस्सीसे बँध गये इसका क्या कारण ?

उत्तर—जब श्रीकृष्ण भक्तभयहारी जगतहितकारीन मृत्युलोकमें आनेकी इच्छा की, तब सब गोलोककी गायें श्रीकृष्णके संग व्रजको आने लगीं । तब गोलोककी सेवा करनेवाली दासी रस्सी बनकर गायोंके चरणमें और कण्ठमें बँधकर चली आयीं। भगवान्‌ने विचारा कि गोलोककी गायोंकी सेवा करनेवाली तो नन्दबाबाके घर आ गयीं; [illegible] नन्दकी गायोंकी दासी जो यहां पर रस्सी बन गयी हैं इनको अब यहांसे गोलोक में भेजना चाहिये। ऐसा विचार [illegible] गायोंकी दासियोंको फिर गोलोकको भेजनेके लिये एक रस्सीसे नहीं बँधे, क्योंकि यदि एक रस्सीसे बँध जाते तो यशोदा सब घरभरकी रस्सी क्यों इकट्ठी करके ले आती ?

दोहा—यमलार्जुन वृक्ष दोउ, दीन्हे कृष्ण गिराय।
प्रगटे देवशरीर धरि, परे चरणमें आय॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! नलकूबर, मणिग्रीवके शापकी कथा वर्णन कीजिये कि उन दोनोंने ऐसा क्या निन्दित कर्म किया था कि जिससे नारदजीके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ और उन दोनोंको ऐसा कठिन शाप दिया॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि शिवजीके अनुचर ये दोनों अत्यन्त अभिमानी मद पीनेसे मतवाले कुबेरके पुत्र मंदाकिनी के तटपर कैलासकी पुष्पवाटिकामें घूम रहे थे॥ २॥ वारुणी मदिराके पान करनेसे उनके नेत्र मदसे चलायमान हो रहे थे और उपवनमें विचर रहे थे,उनके पीछे-पीछे परमसुन्दरी स्त्रियां भी घूम रही थीं॥३॥और कमलोंके समूहोंसे सुशोभित श्रीगंगाजीके मध्यमें जाकर स्त्रियोंको संग लेकर विहार करने लगे जैसे हथिनियोंके संग हाथी विहार करते हैं ❋ ॥४॥ हे कुरु-कुलभूषण! अनायास देवर्षि भगवान् नारदजी भी वहां आ गये और उनको अत्यन्त क्रीड़ा करता देखकर मतवाला समझा॥५॥ नंगी स्त्रियोंने नारदजीको देखकर लज्जा मानी और शापके भयसे कांपने लगीं। उसी समय शीघ्रतासे अपने-अपने वस्त्रोंके समीपको झपटीं परंतु नलकूबर, मणिग्रीवने वस्त्र नहीं पहिने अर्थात् नंगे ही खड़े रहे॥ ६॥ तब नारदजी कुबेरके पुत्रोंको मतवाला देखकर उनका मद दूर करनेके लिए और श्रीकृष्णचन्द्र आनंद-कन्दके दर्शनके निमित्त शाप देते हुये गान करने लगे॥ ७॥ तब नारदजीने कहा कि प्रियविषयोंके भोग करने वाले पुरुषकी बुद्धिको धनमदके बिना हास्य, हर्षणादिक कुली-नता पंडिताई आदिसे हुआ मद अथवा रजोगुण नाश नहीं कर सकता परन्तु धनका मद ही बुद्धि भ्रष्ट कर देता है, क्योंकि लक्ष्मीका मद जिसको होता है, वह स्त्रीप्रसंग करता है, अथवा जुआ खेलता है और वारुणीका पान करता है॥ ८॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दय होकर पशुओंको मारते हैं॥ ९॥ राजाके देहकी भी मरनेके पीछे तीन गति होती हैं, गाड़नेसे अथवा पृथ्वी पर डालनेसे कृमि हो जाते हैं, वा पशु आदिक खा जाते हैं तो विष्ठा हो जाती है और अग्निमें जलानेसे भस्म हो जाती है; इस कारण इस तुच्छ शरीरके लिये प्राणियोंसे विरोध करना अच्छा नहीं है; क्योंकि जीवोंके द्रोहसे तो नरक ही प्राप्त होता है॥ १०॥ फिर यह देह किसका कहना चाहिये? क्योंकि जो अन्न देकर इसका पालन-पोषण करता है, वह पुरुष कहता है,कि यह मेरा है,उसका कहना भी सत्य है। माता-पिता कहते हैं कि हमारा है, हमारे वीर्यसे और हमारे उदरसे उत्पन्न हुआ है, उनका कहना भी सत्य है। नाना कहता है कि यह मेरा दौहित्र है,मेरी कन्याके पेटसे उत्पन्न हुआ है उसका दिया पानी और इसका किया श्राद्ध मुझको प्राप्त हो सकता है,मेरे पुत्र न होनेके पीछे मेरे धनका अधिकारी यही है इस रीतिसे नानाका कहना भी सत्य है। मोल लेनेवाला कहता है कि यह मेरा है। उसका कहना

❋ शंका—किसी नदीमें भी कमलोंका वन होता है? हमने शास्त्रोंमें कहीं नहीं सुना और नहीं ऐसा आज तक किसी नदीमें हमने कमलका वन देखा, फिर दोनों यक्षोंने नदीके जलमें प्रवेश करके कमलके वनमें स्त्रियोंके संग विहार कैसे किया?

उत्तर—"अम्भोजवनराजिनि" इस श्लोकमें अम्भोजवनराजिनिका अर्थ व्यासजीने कमलका वन नहीं किया। इसका अर्थ व्यासजीने ऐसा किया है कि अम्भोज जो कमल है उसके वनको राजि कहिये प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है उसको साक्षी करके नदीमें स्त्रियोंके संग क्रीड़ा यक्षलोग कर रहे थे, यही अर्थ व्यासजीने किया है, कमलवनका नहीं किया।

भी किसी प्रकार असत्य नहीं है। कोई बलवान् पुरुष अपना दास व चाकर बनाकर रखे और यह कहे कि मेरा है तो उसका कहना भी वृथा नहीं। अग्नि कहती है कि यह मेरा है,क्योंकि मेरे ही तेजसे यह सबका काम करता है,उसका कहना भी सत्य है।पृथ्वी आदिक कहते हैं कि हमारा है, क्योंकि अन्त समय हमारे सिवाय और कहीं जा ही नहीं सकता उसके कहनेमें भी कुछ संशय नहीं और श्वानादिक कहते हैं हमारा है,एक दिन हम उसको खांयगे उनका कहना भी झूंठ नहीं ॥११॥इस प्रकार यह तुच्छ शरीर मायासे ही उत्पन्न होता है और मायामें ही लय हो जाता है और पांच-सात विवादी उसमें विवाद करें कि यह हमारा है, ऐसे झगड़ेके देहको पाकर केवल अज्ञानियोंके सिवाय ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो जीवोंकी हिंसा करे ? ॥१२॥ जो अज्ञानी पुरुष धनके मदसे अन्धे हो जाते हैं उनके लिये दरिद्र ही श्रेष्ठ अञ्जन है दरिद्र पुरुष सब प्राणियोंको दुःख-सुख में अपने समान देखता है, क्योंकि अपने मनमें निर्धन विचार लेता है कि मुझको दुःखने इस प्रकार बाधा की थी, ऐसे ही औरोंको बाधा करता होगा जैसे मुझको सुख होता है ऐसे औरको भो सुख होता होगा ॥१३॥ जिस पुरुषके पांवमें कांटा लगता है वह पुरुष दूसरेके पांवमें भी कांटा लगना नहीं चाहता,क्योंकि वह अपने मनमें विचार करता है कि जैसे मुझको कांटा लगनेसे पीड़ा हुई है,ऐसे ही सबको होती होगी और जिसके कांटा लगा नहीं वह कांटेकी पीड़ाको कैसे जान सकता है कि कांटा लगनेसे इतना कष्ट ❋ होता है ॥ १४ ॥ दरिद्री पुरुषका अहंकार,मद और संपूर्ण प्रकारका अभिमान नष्ट हो जाता है और जो कष्ट आकर प्राप्त होता है तो वह कष्ट ही उसकी तपस्याके समान हो जाता और तप

❋ इस बातपर एक दृष्टान्त है—बङ्गदेशमें एक धनंजय नामक राजा था। उसका पुत्र गुरुके पास विद्या पढ़ता था। जब राजाकी अवस्था अधिक हुई तो राजाने विचार किया कि अब इस मोह-ममताको त्यागकर तप करना चाहिये और मंत्रियोंको बुलाकर सब राज्यका प्रबन्ध कर दिया और राज्यसिंहासनका अधिकार पुत्रको देना चाहा। यह चर्चा उन गुरुके कानमें भी पड़ी जो उनके पुत्रको पढ़ाते थे। गुरुने अपने मनमें विचार किया, मैंने राजकुमारको सब विद्या पढ़ा दी; परंतु अभी तक इसको दुःख-सुखका ज्ञान नहीं हुआ। दुःख किसे कहते हैं और सुख किसे कहते हैं, ऐसी विद्या इसको अभी नहीं सिखायी। अभी तो यह मेरे वशमें है मैं सब कुछ कर सकता हूँ और जब यह अपने वशमें हो गया तो मैं कुछ नहीं कर सकता और जो यह ऐसा ही रहा तो न जाने किसको-किसको दुःख दे,यह सोच-समझ उसको अपने पास बुलाकर पांच-सात सोंटी ऐसी जोरसे मारी कि शरीरकी खाल सब उड़ गयी और रुधिर बहने लगा। इतनेपर भी एक कोठरी में बन्द कर दिया, तो तत्काल उपाय भी न कर सके और जब वह रोया तो रोने तक भी न दिया। दोपहर तक बंद रहा तब उसको खोल दिया, और चार लड़कोंके साथ राजकुमारको राजभवनमें राजाके पास भेज दिया। राजकुमारने अपने पितासे सब वृत्तान्त कहा कि बिना अपराध गुरुने मुझको मारा और अपना सब शरीर दिखाया। राजाने देखा, सोंटी जहांकी-तहां उछल रही हैं। रक्त बह रहा है। राजकुमारकी यह दशा देखकर उसके पिताको क्रोध आया और कोतवालको आज्ञा दी कि उस ब्राह्मणको अभी पकड़ कर शूली दे दो। उस निर्दयीने बिना अपराध राजकुमारको मारा है। राजाकी आज्ञाके अनुसार कोतवालने पकड़कर बधिकोंको सौंप दिया कि इसको शूली दे दो। बधिक जिस समय उस ब्राह्मणको शूली देने चले। तब उस ब्राह्मणने कहा कि मैं कुछ बात राजासे करना चाहता हूँ। बधिक बोले चल, ब्राह्मणने राजासे कहा मुझको शूलीकी आज्ञा किस लिये हुई ? आपने मुझको राजकुमारके पढ़ानेके लिये नियत किया था या शूली देनेके लिये ? राजाने कहा कि क्या हमने बिना अपराध मारनेके लिये दिया था ? ब्राह्मण बोला कि मैंने नहीं मारा, राजाने राजकुमारका सब शरीर दिखाया और कहा यह क्या है ? ब्राह्मणने कहा कि यह भी एक प्रकारकी विद्या है, राजा बोला कि यह कैसी विद्या है ? ब्राह्मण बोला कि मैंने सुना कि प्रातःकाल राजकुमार राज्यसिंहासनपर बैठेंगे और अभीतक वे नहीं जाने कि दुःख क्यों होता है और जो मैंने इनको दुख न दिखाया तो हजारों मनुष्योंको दुःख देंगे। अब इन्होंने दुःखका भेद जान लिया तो अब किसीको बिना अपराध दुःख न देंगे। अब इनको भली प्रकार दुःख रूप दरशा दिया। राजा ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और दश गांव और अनेक प्रकारके आभूषण उसको पारितोषिकमें दे हाथ जोड़कर कहा कि मेरा अपराध क्षमा करना मैंने आपकी गुप्त विद्याको नहीं जानता था ब्राह्मण राजा और कुंवरको आशीर्वाद देकर चला गया। देखो पहले ब्राह्मण कैसे चतुर होते थे।

में व्रत हो जाता है, क्योंकि दरिद्री अन्नके विना भूखा-प्यासा रहता है,जब दरिद्रीको अन्न न मिले तो निःसन्देह वह भूखा-प्यासा रहेगा तो वही व्रत हो गया॥१५॥अन्नकी आकांक्षा करने-वाले दरिद्रीके घर नित्य कड़ाके होते हैं, इससे उसका शरीर सूख जाता है, इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, फिर उससे हिंसा भी नहीं होती, जो आप ही मरता है तो वह दूसरेको कैसे मार सकता है? ॥१६॥ दरिद्री मनुष्य सबको समान देखता है और दरिद्रीको साधु महात्मा पुरुष भी मिल जाते हैं,कि जिस समय दरिद्री क्षुधित होकर अन्न-अन्न पुकारता है, तब साधु महात्मा उससे कहते हैं कि अरे ! कृष्ण, कृष्ण पुकार जो सब संसारका पालन-पोषण करनेवाले हैं। इस प्रकार वे साधु महात्मा लोग उसके अन्नकी तृष्णाको दूर कर देते हैं, तब शीघ्र उसका सन्ताप छूट जाता है ॥ १७ ॥ समचित्त और परमेश्वरके चरणानुरागी साधु महात्मा पुरुषोंको दरिद्री ही प्यारा होता है, उनको लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त दुष्ट लोगोंसे प्रयोजन ही क्या ? ॥१८॥ इसलिये इन दोनोंको जो कि वारुणीके मदसे मतवाले,लक्ष्मीके मदसे अन्धे स्त्रियोंके लम्पट और अजितेंद्रिय हैं,इनके अज्ञानसे हुए मदको मैं दूर करूंगा, क्योंकि इस समय ये अन्धे हो रहे हैं ॥ १९ ॥ देखो ! यह कुबेरके पुत्र होकर अज्ञानमें डूब रहे हैं, यह नहीं जानते कि हम नंगे हैं, इनको कुछ भी अपने तनुकी सुधि नहीं, अत्यन्त मतवाले हो रहे हैं ॥ २० ॥ इसलिये ये दोनों स्थावर होनेके योग्य हैं जिससे, फिर आगे इन्हें ऐसा मद न हो और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासे इनको सुधि बनी रहेगी ॥ २१ ॥ और भगवान् वासुदेवका दर्शन पाकर पीछे फिर स्वर्गमें जाकर देवता होंगे, परन्तु पहले देवताओंके सौ १०० वर्ष वृक्षयोनि भोगनी पड़ेगी, तदनन्तर इनको भक्ति प्राप्त होगी ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! देवर्षि नारदजी इस प्रकार कहकर नारायणके आश्रमको चले गये । अब नलकूबर,मणिग्रीव दोनों यमलार्जुन वृक्ष हुए ॥२३॥ अपने भक्तोंमें मुख्य श्रीनारदजीके वचन सत्य करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र महाराज यमलार्जुन वृक्षोंके निकट चले गये ॥२४॥ भग-वान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें विचार किया कि श्रीनारदजी मेरे प्रिय भक्त हैं और यह कुबेरके दोनों पुत्र हैं अतः नारद महात्माने इनके विषयमें जो कुछ कहा है वह सब सत्य करूंगा॥२५॥ इस प्रकार विचार करके यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें होकर निकले और वृक्षोंके बीचमें आकर उलूखलको तिरछा कर दिया ॥ २६ ॥ रस्सीसे उदरमें बँधे हुए उलूखलको बालकरूप श्रीकृष्णदामोदरने झटका मारकर खींचा तब दोनों वृक्ष जड़से उखड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े, श्रीकृष्णके पराक्रमसे गुदे, शाखा, डाली और पत्ते सब कांपने लगे, बड़ा भारी शब्द हुआ ॥२७॥ जैसे संघर्षणके उत्पन्न होनेसे अग्नि निकले ऐसे ही अति शोभायमान दशों दिशाओंको प्रकाशमान करते हुए दोनों पुरुष निकले, और भगवान् त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया तथा मदको त्याग हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करने लगे ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् तुम बालक नहीं हो परम कारणरूप हो और स्थूल सूक्ष्मरूप जो आप हो उस रूपको ब्रह्मवेत्ता जानते हैं॥२९॥सब प्राणियोंके देह, प्राण, इंद्रिय, अहंकारके आपही एक ईश्वर हो और संपूर्णमें व्यापक भगवान् कालरूप आप ही हो ॥३०॥ आप ही महान् रूप हो ! रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण और सूक्ष्म मायारूप सब तुम ही हो । देहोंके विकारके जाननेवाले साक्षी पुरुष आप ही हो॥३१॥आप प्रकृतिके गुण, बुद्धि,अहंकार इंद्रियादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आते हो । उत्पत्तिसे पहले ही स्वयंप्रकाशरूप जो आप हो

ऐसे आपको कारण गुण आच्छादित जीव कैसे जान सकते हैं ? ॥३२॥ आप अपने वासुदेव सर्वके कर्ता और स्वयंप्रकाशित किये हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढक रही है, ऐसे जो आप ज्ञानस्वरूप हैं, हम आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ हे भगवन् ! आप सबके शरीरमें रहकर भी शरीरके सम्बन्धसे रहित हो और यद्यपि आपका शरीर भी नहीं है, परंतु जब आप अवतार धारण करते हैं तब और प्राणियोंसे न होनेवाले जिनके तुल्य वा अधिक कोई नहीं कर सकता ऐसे-ऐसे चरित्रोंसे आपके अवतार जाने जाते हैं ॥३४॥ सब लोकोंके ऐश्वर्य और मोक्षके लिये निरन्तर परिपूर्ण रूप होकर अपने अंशोंसहित प्रकट हुए हो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप ! हे मंगलरूप ! आपको नमस्कार है। आपके शांतिरूपको नमस्कार है । हे वासुदेव ! यदुकुलकी रक्षा करनेवाले आपको वारंवार नमस्कार है ॥३६॥ हे परिपूर्ण भगवन् ! हम आपके दासोंके दास हैं, हमने भगवान् नारदजी महाराजकी कृपासे आपका दर्शन पाया है और आपको परिपूर्ण रीतिसे देख लिया, अब हमको आप आज्ञा दीजिये॥३७॥हमारी वाणी आपके गुणानुवादोंको निरंतर गाया करे, कान आपकी कथाओंको सदा सुनते रहें, हाथ आपकी सेवा और पूजनमें लगे रहें, हमारा मन सदा आपके चरणारविंदोंमें लगा रहे, हमारा मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करता रहे और हमारी दृष्टि तुम्हारी साधु मूर्तियोंका नित्यप्रति दर्शन किया करे। हे दीनबन्धो ! हम वारंवार आपसे यह वर मांगते हैं॥३८॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब इस प्रकार नलकूबर मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्की स्तुति की तब रस्सीसे उलूखल जिनके उदरमें बँध रहा ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन मुसकाकर बोले॥३९॥श्रीभगवान् बोले कि, हे यक्षो! करुणामय श्रीनारदजी लक्ष्मीके मदसे तुमको अन्धा देखकर शाप दिया और तुमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, इस सब इतिहासको मैं पहलेसे ही जानता था॥४०॥ समानचित्त ब्रह्मज्ञानी सनातन धर्ममें तत्पर उनमें भी मुझमें निरन्तर मन लगानेवाले महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे ऐसे पुरुषोंका बन्धन इस प्रकार कट जाता है, जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंका अन्धकार दूर हो जाता है ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरे भक्त होकर अपने स्थानको जाओ, तुम्हारी मेरे विषे सर्वदा भावना रहेगी और तुम्हारा जन्म-मरणरूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूट गया ॥४२॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के वचन सुनकर नलकूबर, मणिग्रीव वारंवार परिक्रमा करके प्रणाम करने लगे और उलूखलसे बँधे हुए श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा लेकर उत्तर दिशाको चले गये ॥ ४३ ॥

भजन (रागदेश)

उत्तर दिशा परम सुखदाई ।
तपोभूमि अतिपरम सुहावनि, चहुँ दिशि देत पहाड़ दिखाई ॥ १ ॥
पावन परम पवित्र मनोहर, सुन्दर, गंगोत्तरी सुहाई ।
जहां बदरिकाश्रम मनरंजन, भयभंजन त्रयताप नशाई ॥ २ ॥
गिरिकन्दराखोह अति अद्भुत, जहां वसत मुनिजन अधिकाई ।
शीतल पवन बहत निशिवासर, त्रिभुवनकी शोभा तहँ छाई ॥ ३ ॥
चन्दन अगरवृक्ष अतिसुन्दर, देवदारु तरुवर समुदाई ।

शालिग्राम बसत जहँ सब सुर, ता दिशिकी को करै बड़ाई ॥ ४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे नारदशापयमलार्जुनमुक्तिनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—ग्यारहमें बछरन सहित, वृदावन हरि आय ।
वत्सासुर अरु बकासुर, हने कहूँ सो गाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे कुरुकुलभूषण ! वृक्षोंके गिरनेका शब्द सुन यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ी और जहां उलूखलमें कृष्णको बांधा था वहां न तो कृष्णको पाया और न उलूखलको देखा, तब तो एकाएकी घबड़ाकर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! हा मोहन प्यारे ! कह-कहकर चिल्ला-चिल्ला रोने लगी। यशोदाकी चिल्लाहट सुनकर नन्दादिक समस्त गोप कहने लगे कि यह कोई वज्र गिरा अथवा कोई नया उत्पात हुआ ! इस भयसे भयभीत हो सब गोप वहां आये जहां वृक्ष गिरे थे ॥१॥ देखा तो पृथ्वीपर यमलार्जुन वृक्ष उखड़े हुए पड़े हैं, गिरनेका कारण विद्यमान है, परंतु गोपोंके मनमें भ्रम हुआ कि आंधी भी नहीं आयी वज्र भी नहीं टूटा, फिर यह वृक्ष आपसे आप कैसे उखड़ पड़े ? ॥२॥ रस्सीसे बँधे बालक श्रीकृष्णको उलूखल खींचते देखा तो भी व्रजवासियोंने न जाना और परस्पर कहने लगे कि यह किस राक्षसका काम है ? कहांसे यह आश्चर्यरूप उत्पात हुआ ? ऐसे कह व्रजवासी डरने लगे ॥ ३ ॥ वहां जो छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे उन्होंने कहा कि यह श्रीकृष्ण उलूखलको खींचते हुए वृक्षोंके बीचमें चला गया, जब यह उलूखल तिरछा होकर इन दोनों वृक्षोंके बीचमें अड़ गया तब इसने झटका मारकर खींचा इससे यह दोनों वृक्ष गिर पड़े, इनमेंसे दिव्यरूप दो पुरुष निकले उनको भी हमने देखा ॥ ४ ॥ बालकोंकी बातका व्रजवासियोंने तो विश्वास न माना और परस्पर कहने लगे कि इस बालकने जन्मसे ही ऐसे अद्भुत चरित्र किये हैं। जब बहुत ही छोटासा था तो पूतनाको मारा, तृणावर्त्तको मारा और गाड़ा पटक दिया, फिर यह दो वृक्ष उखाड़ डाले, तो क्या अचम्भा है ! ॥५॥ उलूखलको उदरमें बँधा देखकर नन्दरायजी बोले कि तुझको उलूखलसे किसने बांधा है ! तब श्यामसुन्दरने कहा कि, मेरी प्यारी मैयाने। कृष्णके तुतलाते मधुर वचन सुन नन्दरायने उलूखलसे खोल हृदयसे लगा लिया और हँसकर बोले कि चल बेटा ! तेरी मैयाको मारेंगे। श्रीकृष्ण बोले—पिताजी ! मेरी मातासे कुछ मत कहना, क्योंकि उसका कुछ दोष नहीं सब अपराध मेरा ही है ॥६॥ तब गोपियाँ बोलीं कि हे मनमोहन प्यारे ! हम तो ताली बजावें और तुम नाचो, हम तुमको बहुतसा माखन खिलायेंगी। यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कभी बालककी नाईं नाचते थे, और कभी भोले बनकर गाते थे, जैसे काठकी पुतली बाजीगरके हाथमें होती है और जिधरको फेरता है, उधरको फिरती है, ऐसे गोपियोंके प्रेमके वशमें परब्रह्म परमेश्वर हो रहे हैं।

सवैया

शंकरसे सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यान न धर्म बढ़ावैं।
नेक हियेमें जो आवतही रसखान महाजड़ मूढ़ कहावैं ॥

जापर सुन्दर देववधू नहिं वारत प्राण अवार लगावैं ॥
ताहि अहीरकी छोहरिया छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं ॥ ७ ॥

कभी यशोदाजी कहती हैं कि हे बेटा! पीढ़ा ले आओ, कभी कहती हैं, बाबाकी खड़ाऊँ ले आओ, तब तुरंत ही पीढ़ा ले आते हैं और तुरंतही खड़ाऊं ले आते हैं और जब कोई वस्तु नहीं उठती तब माता-माता पुकारते। इस प्रकार व्रजवासियोंको लीला द्वारा आनंद देते हैं ॥८॥ संसारमें पंडित लोगोंके दिखानेको कि "मैं इस प्रकार भक्त लोगोंके वशमें हूँ जैसे नचाते हैं, वैसे नाचता हूं" इस प्रकार बाललीला करके व्रजवासियोंको प्रसन्न करते हैं और व्रजवासी आनंदित होते हैं ॥९॥ एक समय फल लो, ऐसा मालिनीका शब्द सुनकर, संपूर्ण फलोंके देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् धान्य लेकर फल लेनेको चले। मालिनीने उनके धान्य डाल देनेके उपरांत मनमोहन प्यारेकी परमप्यारी छबि देख उनके दोनों हाथ फलोंसे भर दिये, तब व्रजरत्नने उसकी डलिया रत्नोंसे भर दी। यमलार्जुन वृक्षोंके उखाड़नेवाले श्रीकृष्ण यमुनाके तीरपर बालकोंके संग बलभद्रसहित खेल रहे थे, उनको रोहिणीने पुकारा ॥ १० ॥ दोनों भाई खेलमें ऐसे मग्न हो रहे थे कि रोहिणीके बुलानेसे भी न आये, तब पुत्रसे प्रेम करनेवाली यशोदाजीको रोहिणीने बुलानेके लिये भेजा ॥ ११ ॥ बालकोंके संग श्रीकृष्ण बलदेवके खेलते जब बहुत दिन चढ़ गया तब यशोदाके पुत्रके स्नेहके कारण स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा तब यशोदाजी श्रीमनमोहन प्यारेको बुलाने लगीं ॥ १२ ॥ हे कृष्ण! हे कमलदललोचन! हे पुत्र प्यारे! स्तन पान कर ले, तू खेलते-खेलते थक गया होगा, हे तात! तुझको भूख बहुत लगी होगी, अब खेलनेको रहने दे, सन्ध्याको फिर खेलना ॥१३॥ हे राम! हे मोहन! हे नन्दलाल! हे कुलभूषण! शीघ्र छोटे भाईको अपने साथ लेकर घरको आओ! प्रातःकाल ही कलेऊ करके गया है, अब आकर भोजन करलो॥१४॥ अरे खेलनेके मतवाले! व्रजनाथ तुझ विना भोजन करनेको बैठे हैं, तेरे आनेकी बाट देख रहे हैं, तुझको बूढ़े बाबाकी दया नहीं आती? तू आकर हमको प्रसन्न कर। इस बातको सुनकर कृष्ण आये तब बालक बोले कि जैसे-तैसे करके तो खेल जमा है, अब श्रीकृष्ण जाते हैं, अब इसको कभी नहीं अपने साथ खेलने देंगे, यह बात सुनकर श्रीकृष्ण फिर खेलने लगे, तब यशोदा बोलीं कि अरे बालको! तुम्हारे घरबार हैं कि नहीं! क्यों नहीं अपने घरोंको जाते! ॥ १५ ॥ हे पुत्र! तुम्हारा शरीर धूलिमें सन रहा है, अब तुम चलकर स्नान करो और आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है इससे पहले स्नान करके ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी दूध देनेवाली गायें दान करके दो ॥१६॥ जब मोहन प्यारे बुलानेसे न आये तब कहने लगी कि तेरी बराबरके बालकोंको उनकी माताओंने उनको स्नान कराकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण भी पहना दिये, देख तो ले तू उनके सामने कैसा बुरा लगता है, इससे तू भी शीघ्र स्नान करके भोजन करले फिर मैं तुझे अच्छे-अच्छे वस्त्र और गहने पहनाकर नेत्रोंमें काजर लगाकर चन्दनकी ऐसी सुन्दर खौर लगाऊंगी मानो तेरे मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्रमा उदय हुआ है॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित्! प्रेममें मतवाली यशोदाजी ब्रह्मादिकोंके मुकुटमणि श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र मानकर बलदेवसमेत श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर मन्दिरमें ले आयी, और शरीरमें उबटन मल गरम जलसे नहवाय, वस्त्र आभूषण पहनाके अच्छी-अच्छी दूधकी गायें मँगाकर उनके हाथसे दान करायीं। इस

प्रकारका उत्सव किया ॥१८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब व्रजमें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे तब नंदादिक वृद्ध-वृद्ध व्रजवासियोंने विचार किया कि महावनमें तो नित्य नये उत्पात होते हैं अब गोकुलके हितका कोई विचार करना चाहिये ॥ १९ ॥ उनमें जो कि ज्ञान और अवस्था करके अधिक देशकालके तत्त्व जाननेवाले और बलभद्र और श्रीकृष्णचंद्रसे अतिहित करनेवाले उपनंद नाम गोप थे, वे बोले ॥२०॥ गोकुलके हितकी इच्छा करके उपनंद कहने लगे कि हम यहांसे हटकर और स्थानपर वास करेंगे क्योंकि यहां बालकोंके विघ्न करनेवाले बहुतसे उत्पात होते हैं ॥२१॥ बालकोंकी घातिका पूतना राक्षसीके हाथसे जैसे-तैसे कर यह बालक बचा और एक समय संकट इसके ऊपर गिरा उस विपत्तिसे भी भगवान्‌की कृपासे बचा ॥२२॥ एक समय तृणावर्त बबूलेका रूप धरकर इस बालकको आकाशमें उड़ाकर ले गया और वहांसे उसने शिलाके ऊपर पटक दिया। वहां भी देवताओंने इसकी रक्षा की ॥२३॥ यह बालक उलूखलमें बँधा हुआ दोनों वृक्षोंके बीचमें फँस गया और मरनेसे बचा। वहां उस समय और बालक भी कोई नहीं था। वहां भी इस बालककी परमात्माने रक्षा की ॥२४॥ अब परमेश्वर और कोई दूसरा उत्पात व्रजमें न खड़ा कर दें, इससे पहले ही बालकोंको यहांसे लेकर और दूसरी ठौर कहीं चल बसें ॥ २५ ॥ पशुओंका हितकारी और नये बाग-बगीचे और पुष्पवाटिकावाला श्रीवृन्दावन नाम वन है और वही अतीव उत्तम गोपगोपी गायोंके रहने योग्य स्थान है और महापवित्र जहां गोवर्धन पर्वत है, यमुनाजीका किनारा है, वहां तृण, जल, लता और उत्तम सब प्रकारके वृक्ष हैं ॥ २६ ॥ इस वृन्दावनका वास सदैव अच्छा है, आपकी इच्छा हो तो गाड़ियोंको जोतो और गायोंको हांक लो। अब विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥ २७ ॥ इस प्रकार उपनन्द गोपने नंदजीसे कहा–

चौ०–जहँ उत्पात रात दिन होई ❈ तहँ बसकर सुख लहै न कोई ॥
सुदिन बूझकर चलहु व्रजेशा ❈ अब न रहन लायक यह देशा ॥

उपनन्द गोपके वचन सुनकर सब वृद्ध जनोंने कहा–धन्य है! आपकी बुद्धिको आपने बहुत अच्छा कहा। हे व्रजराज! उपनन्दका कहना बहुत ठीक है, हमारी भी सम्मति यही है वृन्दावनमें वास कीजिये। नन्दजीने कहा–हमारी भी यही इच्छा थी, परन्तु आपके कहनेसे और पक्की बात हो गयी। नंदजीकी बात सुन अपनी-अपनी गाड़ियोंको जोत घरकी सब सामग्री लादकर चल दिये॥ २८ ॥ हे राजा परीक्षित्! प्रथम सब सामानको गाड़ियोंमें भरकर ऊपर वृद्ध, बालक, स्त्रियोंको बैठाकर धनुषबाण हाथोंमें ले लेकर ॥ २९ ॥ सब व्रजवासी सावधान हो गायोंको आगे कर चारों ओर बड़े-बड़े रणसिंगा बजाते और तुरहीका शब्द करते पुरोहितको संग लेकर सब गोकुलवासी वृन्दावनको चल दिये ॥३०॥ गाड़ियोंमें बैठी गोपी नवीन केशर कुचोंमें लगाये, कठला, धुकधुकी कण्ठमें पहने; रथ और गाड़ियोंमें बैठी कृष्णकी लीला गाती जाती थीं॥ ३१ ॥ इसी प्रकार रोहिणी और यशोदा भी एक गाड़ीमें श्रीकृष्ण और बलदेवजीको साथ लिये बैठी थीं और उनकी लीला और चरित्रोंको सुन-सुनकर आनंदको प्राप्त होती थीं॥ ३२ ॥ सर्वानंदको देनेवाले वृन्दावनमें आकर गाड़ियोंको बराबर खड़ा करके अर्द्धचंद्रमाके समान गायोंके रहनेके लिये खिरक बनाया ॥ ३३ ॥ हे राजन्! वृन्दावन, गोवर्धन और यमुनाजीका अत्यंत रमणीक तट देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बहुत प्रसन्न हुए॥३४॥ इस प्रकार बाललीला और तोतली मधुरवाणीसे

ब्रजवासियोंको आनन्द देने लगे और जब दोनों भाई बछरे चराने योग्य हुए, तब वत्सपालक कहलाये ॥३५॥ ब्रजभूमिके निकट ही गोपालोंके बालकोंको संग लेकर श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई बछरोंको चराने लगे और भांति-भांतिकी क्रीड़ा नित्यप्रति करने लगे।

दोहा-बछरन नित्य खिलावहीं, अतिशय प्रीति बढ़ाय।
कहुँ खोलहिं कहुँ बांधहीं, कहुँ जल देहिं पियाय ॥ ३६ ॥

कभी बांसुरी बजाते थे और कभी आमलोंको गोफनमें धरकर चलाते थे, कभी पावोंमें घुँघुरू बांधकर ऐसा नाच नचाते थे कि अप्सराओंको लजाते थे। कभी परस्पर युद्ध करते थे, कभी कम्बल उढ़ाकर कृष्ण बलदेव दोनों भैया ग्वालोंको बैल बनाते थे और उनके संग आप भी बैल बनकर गम्भीर शब्द करते थे ॥ ३७ ॥ कभी पक्षियोंकी बोली बोल-बोलकर कहते हैं कि हम हंस हैं, कोई कहते हम मोर हैं, जैसे प्राकृत बालक खेल खेलते हैं, वैसे ही दोनों भाई वनमें जाकर नये-नये खेल खेलते थे ॥३८॥ एक समय यमुनाजीके तीरपर श्रीकृष्ण और बलराम बछरे चरानेको गये और वहां कंसने सुना कि नंदादिक गोप गोकुल छोड़कर वृन्दावनमें जा बसे हैं। तब कंसने अपने साथी वत्सासुरको बुलाकर विनयपूर्वक अपने दुःखका सब वृत्तान्त कहा कि, भाई! नन्दके पुत्रने मुझको बड़ा दुःख दे रखा है, कोई ऐसा उपाय करो जिससे वह बालक मारा जाय। कंसकी बात सुन वत्सासुर बछरेका रूप बनाकर वृन्दावनमें गया ॥३९॥ और जो बछरे कृष्ण और बलराम चराते थे, उन्हीं बछरोंमें मिलकर यह भी चरने लगा और उसका भयानक रूप देख सब बछरे डरकर जहां-तहांको भाग गये। तब श्यामसुन्दर उस राक्षसको पहचान कर आंखकी सैनसे बलदेवजीको जताया कि देखो भाई! यह दुष्ट राक्षस कंसका भेजा हुआ बछरेका रूप धारणकर मेरे मारनेके लिये यहां आया है, तुम भी इसका ध्यान रखना ॥४०॥ वत्सासुर घूमता-घामता अपनी घात लगाता हुआ धीरे-धीरे वृन्दावनविहारीके समीप आ पहुँचा। श्रीकृष्णचन्द्रने उसका पिछला पैर पकड़कर एक कैथके पेड़की जड़में घुमाकर ऐसा पटका कि उसके प्राण निकलकर परमधामको सिधार चले। बड़े भारी शरीरवाला वत्सासुर दैत्य कैथके वृक्षसहित पृथ्वीपर गिर पड़ा॥४१॥उसको गिरा हुआ देखकर सब बालक अत्यन्त विस्मित हो धन्य-धन्य कहने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हो देवताओंने आकाशसे फूल बरसाये ॥ ४२ ॥ समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भ्राता बछरोंके वत्सपाल होकर प्रातःकालका कलेवा लेकर वनमें जाकर बछरोंको चराते और अनेक-अनेक प्रकारकी लीला विहार करते थे ॥ ४३ ॥ जब कंसने वत्सासुरके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तो बड़ा शोच किया और उसके भाई बकासुरसे जाकर कहा कि तू अपने भाईका बदला ले और उस दुष्ट कृष्णको मारकर मेरी छाती ठण्डी कर। यह बात सुनकर बकासुर बगलेका रूप धारण कर वृन्दावनमें आया और कालिन्दीके किनारे पर्वताकार हो मुँह फैलाकर इस घातमें जा बैठा कि श्यामसुन्दर यहां आये तो निगल जाऊँ। उस दिन सब बालक अपने-अपने बछरोंके समूहोंको यमुनाजीके निकट जल पिलानेके लिये गये और वहां जाकर बछरोंको जल पिलाया और आप भी पिया ॥ ४४ ॥ और वहां उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके तुल्य बड़े मुखवाला एक पक्षी देखा और उसको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए ॥४५॥ यह महाबली तीक्ष्ण चोंचवाला बगलेका रूप धारण किये बकासुर नाम दैत्य था। यह बलवान् बकासुर आकर श्रीकृष्णको

शीघ्र ही निगल गया और बोला कि मैंने आज अपने वत्सासुरका बदला ले लिया ॥४६॥ जब श्रीकृष्णको बकासुर लील गया तब बलदेवादिक सब बालक विना प्राणोंकी इंद्रियोंके समान अचेत हो गये और रो-रो कर कहने लगे कि हाय! हम यशोदाको जाकर क्या उत्तर देंगे ? जिसने अपना प्यारा पुत्र हमको सौंप दिया था। सब दौड़े हुए बलदेवजीके पास आये और वृत्तान्त सुनाया कि हमने बहुतेरा बरजा परन्तु श्यामसुन्दरने हमारा कहना एक न माना, अब हम क्या करें और क्या न करें ? बलदेवजी बोले किं तुम घबड़ाओ मत, उस दैत्यको मारकर मनमोहन प्यारे अभी आते हैं। उसी समय गायोंके पालन करनेवाले नन्दके दुलारे, ग्वाल-बालोंके प्यारे यशोदाके नेत्रोंके तारे, जगत्के गुरु, ब्रह्माके पिता श्रीकृष्णजीने अग्निके अंगारके समान उसके तालूको जलाना आरंभ किया तब उस बकासुरने श्रीकृष्णको तुरन्त ही उगल दिया और उनके शरीरमें कुछ भी कष्ट न हुआ तब तो अत्यन्त क्रोध करके फिर बकासुर ब्रज-विहारीके ऊपरको धाया ॥४७॥ ॥४८॥ सज्जनोंके सहायक देवताओंके आनंददायक, श्रीकृष्ण यदुनायक कंसके सखा बकासुरको फिर आता देख दोनों हाथोंसे उसकी चोंच पकड़कर सब बालकोंके देखते-देखते ही तृणके समान चीरकर फेंक दिया ॥४९॥ उस समय सुरपुरनिवासी देवता बकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके ऊपर नंदनवनके मालतीके पुष्पोंकी वर्षा करके दुन्दुभी और शंख बजाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस कौतुकको देख-देख-कर ग्वालबाल आश्चर्य मानते थे ॥५०॥ जैसे इंद्रियाँ प्राण आनेसे आनंदित होती हैं, वैसे ही बलभद्रादिक सब बालक बकासुरके मुखसे निकले हुए श्यामसुन्दर प्यारेको देखकर आनन्दित हुए और छातीसे लगाकर सब बालक उनसे मिले और बछरोंको इकट्ठा करके संध्या-समय जानः—

दोहा—ब्रजमोहन घरको चले, जान सांझकी बेर।
लीन्हीं गैया घेर सब, मुरलीकी धुनि टेर ॥

सोरठा—चले बजावत बैन, ग्वाल वृन्दके मध्य हरि।
अंग अंग छबि ऐन, ब्रजमनमोहन सांवरो ॥
राँभत आवत गाय, वत्ससुरतिकर पय स्रवत।
हर्षि यशोदा माय, कहत श्याम अब आवहीं ॥

सब ब्रजवासियोंके बालक और राम कृष्ण घर आये। यशोदाने देखते ही दौड़कर हृदयसे लगा लिया। तब सब बालक कहने लगे कि हे नन्दरानी ! तुम्हारा पुत्र बड़ा बलवान् है, इसकी हमसे प्रशंसा नहीं होती, आज जब हम गाय चराने गये, वहां यमुनाके निकट एक असुर मुंह पसारे बैठा था, उसकी एक चोंच तो पृथ्वीमें थी और दूसरी आकाशमें थी। हमारे रोकते-रोकते कृष्ण उसके मुखमें चला गया, उसने चोंच बन्द करली, हम रोते-पीटते बलदेवजीके पास आये और सब वृत्तांत सुनाया। इतनेमें ही कृष्ण उसकी चोंचको चीरकर बाहर निकल आये। न जाने इन्होंने क्या उपाय किया। इस भेदको हमने अबतक नहीं जाना और कल भी इन्होंने ऐसा ही कौतुक किया था। एक असुर बछरा बनकर हमारे बछरोंमें आ मिला था, उन्होंने उसकी टांग पकड़ घुमाकर दे मारा था। यह बात सुनकर यशोदा, नंद अत्यन्त विस्मित हुए और वृद्धजनोंको बुलाकर कहने लगे कि अब क्या उयाय करना चाहिए ? जिस

लिये गोकुल छोड़ा विपत्ति यहां भी उपस्थित है, जिस दिनसे कृष्णका जन्म हुआ है उस दिनसे एक न एक नित्य ऐसा ही उत्पात होता रहता है ॥५१॥ यह सुनते ही गोप और गोपी बहुत संशय करने लगे। और बड़े आदर-सत्कारसे कृष्णको देखने लगे, जैसे कोई मृतक होकर घर आ जाता है और सब कुटुम्बियोंका चित्त उनको देखते-देखते तृप्त नहीं होता ॥५२॥ सब गोप कहने लगे कि इस बालकके ऊपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ पड़ीं, परंतु जो मारनेको आया वह आप ही मारा गया, क्योंकि पहले उन्होंने औरोंको भय दिखाया ॥५३॥ महाभयंकर रूप धर-धरकर अनेक असुर और राक्षस कृष्णके मारनेको आये, परंतु परमेश्वरकी दयासे इसका कुछ न कर सके, आप ही मरनेके लिये इसके पास आये, जैसे अग्निमें आकर पतङ्ग जल जाते हैं, वैसे आप ही आकर मर जाते हैं ॥ ५४ ॥ अहो ! वेदवादियोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती ! जो-जो बात गर्गाचार्य कह गये थे, वह सब बातें अब सत्य होती जाती हैं। यशोदा बोलीं–बेटा ! यहां तो दिन-दिन नये उत्पात होते हैं और तू अभी बालक है, वनमें गायें चरानेको मत जाया कर। मनमोहन कहा–मैया ! मैं भी यही कहनेको था, क्योंकि सब ग्वाल-बाल मुझसे ही कहते हैं कि तू गायोंको धरकर ला और जो मैं नहीं जाता तो मुझसे बलात्कार गायें घिरवाते हैं। मैया ! जब दौड़ते-दौड़ते मेरे पांव पिराने लगते हैं, जब मैं वृक्षकी छायामें जा बैठता हूँ, तो भी यह बालक वहां भी मुझको चैन नहीं लेने देत और जो मेरी बातका पतियारा न हो तो अपनी सौगन्ध दिलाकर भैया बलदेवजीसे पूछ लो। यह बात सुन यशोदा बोलीं मैंने तो श्यामसुन्दरको तुम्हारे संग खेलनेको भेज दिया था कुछ गायें घिरवानेको थोड़े ही भेज दिया था ?

दोहा–जानै कहा चरायबो, अबहीं मोहन गाय।
अति बारो मेरो सुवन, मारत ताहि थकाय ॥ ५५ ॥

इस प्रकार कृष्ण बलरामकी रस भरी बातें कह कहकर नंदादिक आनंदित होते और सुख पाते, जिन्होंने भवसागरकी वेदनाको कुछ न समझा ॥ ५६ ॥ इस प्रकार आंखमिचौनी, पुल बांधने, बन्दरोंके समान कूदना यह कौमार अवस्थाके खेल करके श्रीकृष्ण बलराम कौमार अवस्था व्यतीत किये ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे वत्सवकवधवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–द्वादशमें धरि सर्पवपु, निगल ग्वाल अरु बाल।
तासु अघासुरको हनो, कृपासिंधु गोपाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! एक दिन ब्रजभूषण वस्त्र आभूषण पहन, सुन्दर शृङ्गार बनाकर यमुनाके निकट खेलनेको गयें, वहां नटनागर नटवर जगत् उजागर वेष किये मुरली हाथमें लिये एक सखाके संग खड़े थे। वहां दैवयोगसे वृषभानुकी दुलारी, जो कि साक्षात् श्रीलक्ष्मीका अवतार थी, जब सात-आठ वर्षकी अवस्था हुई, तब वह विशालनयनी पिकबयनी सुन्दर शृङ्गार किये, नीलकमलका फूल हाथमें लिये, सखियोंके सङ्ग उमङ्गमें भरी यमुनाजीमें स्नान करने आयी। जब श्रीकृष्णचन्द्रने देखा कि आज मनमोहनी छबिकी छबि-

क्षीण करनेवाली, मुनियोंका मन हरनेवाली कहांसे आ गयी ? जब ब्रजविहारी और राधा-प्यारीकी आंख आँखसे मिली उसी समय पिछली प्रीतिका स्मरण करके मनमोहन तो राधापर मोहित हो गये और श्यामा श्यामसुन्दरपर मोहित हो गयी। अतःदोनोंके हृदयमें प्रीति बढ़ी, उस समय श्रीकृष्णने राधासे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है और कौनसे गोपकी बेटी हो ? हमने आजतक तुमको इस ब्रजमें कभी नहीं देखा। ऐसी रीतिप्रीतिकी सनी बातें सुन राधाने कहा कि यहां हमारे आनेका क्या काम है ? सदा अपने गांवमें खेलती रहती हूँ,कभी घरसे बाहर निकलनेका काम ही नहीं पड़ता,फिर तुम मुझको कहांसे देखो ? मैं तो यहां कभी आयी ही नहीं और नाम मेरा राधिका है और राजा बृषभानुकी पुत्री हूँ। चाहे तुमने सुना हो वा न सुना हो, परंतु मैंने तुम्हारा नाम भली प्रकार सुन रखा है कि बाबा नन्दका ढोटा ग्वालिनियोंका दही-माखन चुरा-चुराकर खाता है और अब मैंने नेत्रोंसे भी आपको देख लिया कि नंदलाल आपका ही नाम है। यह वचन सुनकर श्यामसुन्दरने कहा कि हे सुन्दरी ! हमने तुम्हारा तो कुछ नहीं चुराया, फिर तुम हमको चोर कैसे बताती हो ? राधा बोली-महाराज ! हमारे पास चुरानेको है ही क्या ? और जिसका जो नाम होगा,वही कहा जायगा। श्यामसुंदर हँसकर बोले कि अब तो तुमने ब्रज देख लिया। कभी-कभी यहां भी खेलने चली आया करो। ब्रजमोहनकी प्रेमभरी बातें सुनकर श्यामा भी तनमनसे श्यामसुन्दरपर मोहित हो गयी, परंतु सखियोंके सामने अपने प्रेमका भेद न खोला। फिर श्यामसुन्दर बोले कि हे श्याम ! तुमको बाबा वृषभानुकी सौगन्ध है,दो चार घड़ीको हमारे घर नित्य ही आया करोगे और जब बाबा नन्द गायें गिननेको तुम्हारे घर जाया करेंगे तो उनके संग हम भी आया करेंगे और जब तुम दूध दुहानेके लिये आया करो तो खरकमें मुझको भी बुला लिया करो। यह मनोहर वचन श्रीकृष्णके सुनकर राधा मन ही मनमें मुस्कायी और फिर पराधीन हो:—

सोरठा—चली सदन सुकुमार, उरमें उरझो साँवरो।
होइगइ बहुत अवार, मातुत्रास मनमें अधिक ॥

राधा ऊपरके मनसे सखियोंसे कहने लगी कि हे सखियो ! शीघ्र चलो,माता बाट देखती होगी और यह जो कृष्णने कहा कि हमारे घर खेलनेको आ जाया करो,भला हमारे घर खेलनेवालोंकी क्या कमी है, जो मैं इतनी दूर आऊं और अपने पांव थकाऊं, परंतु मनमें कृष्ण ही कृष्ण खटक रहे थे,जब घर गयी तो माताने पूछा कि हे पुत्री ! इतनी देर कहां थी ! मैं तुझे गायोंके खरकमें भी देख आयी। राधा बोली कि हे माता ! मैं गायोंको देखने चली गयी थी। यह कह माताको तो बतला दिया,परंतु आप कृष्णमय हो गयी।

कवित्त—बाटनमें घाटनमें वीथिनमें बागनमें, वृक्षनमें वेलिनमें वाटिकामें वनमें। दरन दिवारनमें देहरि दरीचिनमें हीरनमें हारनमें भूषणमें तनमें ॥ काननमें कुञ्जनमें गोपनमें गायनमें, गोकुलमें गोधनमें दामिनिमें घनमें। जहाँ जहाँ देखो तहाँ कृष्ण ही दिखाई देत, शालिग्राम छाय रह्यो नैननमें मनमें

परंतु माता-पिताकी त्राससे कुछ न कह सकती, मनमें यही आशा थी कि किसी प्रकारसे वृन्दावन विहारीका दर्शन हो, जैसे-तैसे करके दिन काटा, सन्ध्या होते ही मातासे बोली कि

मुझको दोहनी दे-दे, मैं खरकेमें गाय दुहानेको जाती हूँ मातासे दूधका बहाना कर श्यामसुन्दर प्यारेके पासको चली।

सोरठा-मगमें शोचत जात, कित देखूं उन श्यामको।
जिन मन लियो चुराय, खरक मिलन मोसों कह्यो॥

वहां जाकर देखा तो मनमोहनका कहीं पता नहीं, तब तो राधिका अपने मनमें बहुत चकित हुई और कृष्णको इधर-उधर ढूँढ़ने लगी और प्रेमके वशीभूत हो नेत्रोंमें आंसू बहाने लगी। हे प्रभो! प्रथम ही झूंठ? हारकर घरको फिरी, सामने देखा तो कृष्ण भी नन्दजीके संग आ रहे हैं देखते ही प्रसन्न हो गयी, मानो कृपणको धन मिल गया, उधरसे श्रीकृष्णने भी देखा राधा प्यारी खड़ी है, अपने निकट बुला लिया। नंद राधिकाको देखकर बहुत आनंदित हुए और कहा जाओ बेटी खेलो। फिर कृष्णचंद्रसे कहा-यह वृषभानुदुलारी तुम्हारे संग खेलनेको आयी है, इसको भी अपने संग खिलाओ, परंतु कहीं दूर मत जाना, घरमें ही खेलियो और इसकी ओर देखते रहना, कोई गाय बछड़ा न मार दे। कृष्णने राधाका हाथ पकड़ लिया कि अब मैं तुमको कहीं नहीं जाने दूंगा, मेरे पिताने तुमको मुझे सौंप दिया है और जो कहीं जाओगी तो मैं तुमको पकड़कर मँगा लूंगा। फिर श्यामसुन्दर ऊपरके मनसे कहने लगे कि राधे! मेरा हाथ छोड़ दे राधा बोली-मैं तुम्हारा हाथ कभी नहीं छोड़ूंगी, क्योंकि नन्दबाबाने तुम्हारा हाथ मुझको पकड़वा दिया, कदाचित् जो कहीं तुम चले गये तो नंदबाबा मुझे क्या कहेंगे और फिर मैं उनको क्या उत्तर दूँगी?

दोहा-परम नागरी राधिका, अति नागर ब्रजचन्द।
करत आपनी घात दोउ, बँधे प्रेमके फंद॥

सनातनकी प्रीति समझकर और ब्रजमें विहार करनेके लिए राधा और कृष्णने अवतार धारण किया है। श्रीकृष्णने मनमें विचार किया कि किसी प्रकार राधा हमारे घर चले। अकस्मात् श्रीकृष्णने ऐसी माया की कि चारों ओर घटा घिर आयी, मेघ गर्जने लगे, पवन झकोर लेने लगी, बिजली चमकने लगी, सब पृथ्वीपर अन्धकार छा गया, दूसरे सघन वनकी अँधियारी, उस समय श्रीकृष्णने बालकोंकी नाईं नंदजीसे कहा कि इस समय मेरा जी डरता है, मुझको किसी प्रकार घर पहुँचा दो। नन्दजीने राधिकासे कहा कि हे पुत्री! श्यामसुन्दरको घर पहुँचा दे, राधिकाने मनमोहन प्यारेका हाथ पकड़कर कहा-चलो, मैं तुमको पहुँचा दूं नवलकिशोर और नवलकिशोरी आनन्दित होते हुए घर आये, परंतु ब्रजबिहारीने अपना पिताम्बर तो प्यारीको उढ़ा दिया और प्यारीकी सारी आप ओढ़ली, जब घर आगये तो घटा बादली सब दूर होगयी। यशोदा देखकर चकित हो गयी कि आज कृष्णने किसकी सारी शिरपर ओढ़ ली। फिर मनमें विचारा कि आज किसी गोपीने मेरे मनमोहनको मोहनी डालकर मोह लिया, ऐसा समझ कृष्णसे हँसकर बोली कि हे पुत्र! पीत पिछौरी कहां विसारी और यह लाल सारी किसकी ओढ़ आये? कृष्ण बोले-मैया! मैं गायोंको पानी पिलानेके लिए यमुनापर गया था, वहां पनिहारी पानी भर रही थीं, मेरी गाय भागी, मैं अपना पीतांबर यमुना किनारेपर छोड़कर गाय फेरनेको गया। उस गोपीने भूलकर मेरे पीताम्बरको ओढ़ लिया और अपनी ओढ़नी छोड़ दी, मैंने तेरे डरके कारण उसकी ओढ़नी ओढ़ ली कि तू यह

न कहे कि अपना पीताम्बर कहाँ खो आया, मैं उसका नाम तो जानता नहीं परंतु सूरत पहचानता हूँ। तू कहे तो मैं जाकर बदल लाऊँ। माताने सूध स्वभाव कह दिया जा बदल ला। ब्रजविहारीने बाहर जाकर कुछ ऐसी माया की कि लाल सारीका पीताम्बर बनाकर माता से कहा कि ले माता मैं बदल लाया। यशोदाने कहा बहुत अच्छा किया, वहां राधिका श्रीकृष्णका पीताम्बर ओढ़े हुए अपने घर गई और जातेही माता-माता पुकारने लगी। कीर्तिने राधाकी गद्गद वाणी सुन घबड़ाकर बोली कि राधा ! अभी; तो अच्छी नीकी गयी थी इतनेमें ही तुझको क्या हो गया ? राधाने कहा कि, मेरे संग एक गोपकुमारी और थी, उसको मार्गमें सांपने काट खाया, वह बेसुध होकर पृथ्वीपर गिर गयी, तब तो मैं भी डरकर कांपने लगी और रोम खड़े होगये। इसी समय मनमोहन नन्दका कुमार कहींसे आ गया, तब उसने एक मंत्र पढ़कर कुछ ऐसा झाड़ दिया कि वह सचेत होकर बैठ गयी और उसका सब विष उतर गया। तब वह अपने घरको गयी और मैं अपने घरको चली आयी। उसी घड़ीसे मेरा कलेजा धकधक करता है और जी घबड़ाता है। कीर्तिने राधाको चूमकर हृदयसे लगाया और मुखपर हाथ फेरकर कहने लगी कि आज भगवान्‌ने बड़ा अनुग्रह किया जो तू कालके मुँहसे बची। न जाने कौनसे जन्मका पुण्य इस समय आकर सहायक हो गया, नहीं मरनेमें तो कुछ सन्देह ही नहीं था, इसलिए मैं बारंबार तुझसे कहा करती थी कि अबेर-सबेर तू दूध दुहाने मत जायाकर, परन्तु तूने मेरी एक बात भी नहीं सुनी। कभी खरकमें जाकर दूध दुहाती है; कभी अकेली यमुना नहाने जाती है, देखती कहींको है, चलती कहींकों, कहनेसे बुरा मानती है, इन तेरी बातोंको मैं अच्छा नहीं समझती, जो कुछ नेकी-वदी हो जाती तो मैं कैसे धैर्य धरती ! मुझको तो सौ बेटोंके समान तू एक बेटी है, मुझको तो तुमसे ही जगत्‌में उजियाला है, यह कह कीर्तिने राधाको तुरन्त ठण्ढे पानीसे स्नान कराकर नये वस्त्र पहनाकर कहा कि तुझे गये बहुत देर हुई, अब भूख लगी होगी कुछ भोजन कर ले और अब कहीं बाहर खेलने मत जाया कर, पास-पड़ोसकी लड़कियोंके संग खेलती रहकर राधिका अपने मनही मनमें कहने लगी कि आज तो मेरी माता छलमें आ गयी परन्तु कलको क्या ? और विना ब्रजचन्द्रका चन्द्रमुख देखे इस चित्त चकोरको धैर्य कैसे होगा ? फिर समझ सोच उस मनमोहनकी मनमोहनी मूर्तिको हृदयमें धारणकर माताके वचनोंकी लज्जासे कहा कि मैं अब घरसे बाहर खेलने कहीं नहीं जाऊँगी। परन्तु वनमालीके ध्यानमें ऐसी मतवाली थी कि किसी प्रकार श्यामसुन्दरका दर्शन हो, ज्यों-त्यों करके रात बितायी, प्रातःकाल होते ही दूध दुहानेके बहाने मनमोहनके घर गयी, और द्वार पर जाकर मनमोहन ! मनमोहन ! पुकारने लगी और यशोदाके लज्जाके कारण मन्दिरमें न गयी, राधाकी मनोहर वाणी सुनते ही ब्रजविहारीने जाना कि राधा प्यारी आ गयी, तब मातासे बोले कि हे माता ! यह द्वारपर मनमोहन। मनमोहन कौन पुकारता है ? तू जानती है मैया। कल मैं यमुनाजीसे आता था मुझे कुछ ऐसा भ्रम हुआ मैं घरका मार्ग भूल गया और दूसरे मार्गको हो लिया, तब यह मेरा हाथ पकड़कर मुझे यहां पहुँचा गयी, जो मुझको यह घर न पहुँचाती तो न जाने मैं कहां चला जाता, आज यह वही गोपी मेरे घर आयी है, परन्तु लज्जाके कारण मन्दिरके भीतर नहीं आती। तू उसको भीतर बुलाकर देख तो सही वह कैसी चतुर और विलक्षण है ! यह कह कृष्णने मातापर ऐसी मोहनी डाली

कि यशोदाके हृदयमें भी राधाकी ओरका प्रेम उत्पन्न हो गया, तब यशोदा कृष्णसे बोली कि उसे घरमें बुला ला, विपिन-विहारी बाहर आकर प्यारीकी ओर देख ऐसे आनंदित हो गये जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर प्रफुल्लित हो जाता है और हँसकर राधासे कहा–हे राधा ! चलो तुमको मेरी माता बुलाती हैं, यह कह राधाका हाथ पकड़कर घरको लिवा ले गये। यशोदा उसकी मनोहर छबि देख मोहित हो गयी और बड़े आदर-सत्कारसे अपनी गोदीमें बैठाकर उससे पूछा कि बेटी ! तू कौनसे गांवमें रहती है ? मैंने आजतक तुझको कभी नहीं देखा, तू किसकी बेटी है ? और तेरा क्या नाम है ! कल मेरा गोपाल मार्गमें बहक गया था, तब तूने हमारे संग बड़ा उपकार किया, जो मेरे कृष्णको पहुँचा गयी, तब गर्दन नीचे करके वृषभानुनंदिनी बोली कि मैं वृषभानुकी कन्या हूँ और 'राधा' मेरा नाम है और मेरी माताका नाम कीर्ति है, वह तुमको भलीभांति जानती है, अनेक बार तो यमुनापर भेंट हुई है, बरन दो चार बार मैं भी संग थी। यशोदा बोली–वही है तेरी माता ?

सोरठा–मैं अब लीनो जान, वह तो है कुलटा बड़ी।
हैं लंगर वृषभान, कौन नहीं जानत उन्हें॥

राधा बोली–मेरे पिताने तुम्हारे संग क्या लँगराई की ! इस प्रकार राधाके मधुर वचन सुन यशोदाने उठकर राधाको हृदयसे लगा लिया और राधाकी भोली-भाली बातें सुन मन ही मनमें विचार करने लगी कि यह कन्या तो मेरे कन्हैयाके योग्य है, जो इसके संग कन्हैयाका विवाह हो जाय तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो, क्योंकि ऐसी मनोहर जोड़ी मिलनी महादुर्लभ है, इस समय परमेश्वरने छबि और शृंगारको एक स्थानपर इकट्ठा किया है। यह विचार यशोदाने राधा की चोटी गूंध सुन्दर शृंगार किया। अच्छे-अच्छे आभूषण पहनाकर गोटकी ओढ़नी ओढ़ाकर मस्तक पर बिन्दी लगायी। गोरे बदनपर ईंगुरकी बिंदी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाके ऊपर मंगल। फिर मेवा-मिठाई खानेको दी और कहा कि जा अब तू श्यामसुन्दरके संग खेल। यशोदाकी बात सुनकर राधिका अत्यन्त प्रसन्न हो श्यामसुन्दरके संग खेलने लगी। उस समयकी शोभाका वर्णन करते हुए शेष और गणेशकी बुद्धि भी थकित होती थी फिर और किसीका क्या सामर्थ्य है, परंतु ऐसा जान पड़ता था कि मानो छबि और शृङ्गार दोनों परस्पर विहार कर रहे हैं। नन्दरानी उनके खेलको देख-देख मनही मन प्रसन्न होती थी और राधासे कहती थी कि बेटी ! तू यहां नित्य आकर कृष्ण प्यारेके संग खेल जाया कर। फिर ब्रजविहारी राधा-प्यारीसे मुसकाकर कहने लगी कि अब तुम सकुच मत किया करो और हमारे घर नित्यप्रति खेलने आया करो। तुम्हारे सङ्ग खेलनेसे मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है। श्यामसुंदरकी प्रेम-रसभरी बातें सुनकर राधा प्यारी हँसती हुई मोहनके निकट आकर बोली कि अब मैं घरको जाती हूँ, यहां बहुत देर हो गयी। कृष्ण अपनी मातासे बोले कि, मैया ! यह वृषभानुदुलारी अपने घरको जाती है, तब यशोदाने मेवा और तिलचावली उसकी गोदीमें भर दी और हृदयसे लगाकर कहा–कल सबेरे खेलनेके लिये हमारे घर आना। राधा मदन-मोहनकी ओरको देखकर अपने घरको चली गयी, परंतु मनकी अदल-बदल हो गयी अर्थात् कृष्णका मन तो आप ले गयी और अपना मन श्रीकृष्णको दे गयी। राधा जब नवीन वस्त्र और आभूषण पहने हुए अपने घर गयी तो कीर्तिने उससे पूछा कि इतनी देरसे आज तू कहां गयी और यह नये-नये वस्त्र और गहने तुझे किसने पहनाये हैं। राधा

बोली–मैया ! मैं यशोदाजीके घर गयी थी, उन्होंने बड़े लाड़-प्यारसे मुझको अपनी गोदीमें बैठाकर मेरा नाम पूछा, फिर बाबाका और तेरा नाम पूछा। तब हँसकर कहा कि कीर्ति जैसी है वैसी मैं जानती हूँ। यह कह तुझको गाली दी और फिर बाबाको गाली दी, तब तो मैंने कहा कि मेरे पिताने तुम्हारा क्या ठग लिया ! मेरी यह बात सुनकर मुझको हृदयसे लगा लिया, फिर मुझको गोदमें बैठाकर मेरी चोटी गुही और नयी सारी मँगाकर मुझको ओढ़ाई और जब मैं घरको चलने लगी तो मेवा, मिठाई और तिल चावलीसे मेरी गोद भरी और मुझको कहा–बेटी ! हमारे घर नित्य खेलनेको आया कर और तुझको फिर गाली दी। राधाकी यह बात सुनकर कीर्ति अत्यन्त प्रसन्न हुई और राधासे कहा कि बेटी ! तू बहुत अच्छा उत्तर दिया, परंतु जैसा उन्होंने मुझको और बाबाको बताया, वैसे वह आप ही हैं।

चौ०–हँस हँस कीरति कहत सुभाये ❋ मनमें अति आनन्द बढ़ाये।
फेर फेर यशुदाकी बातें ❋ बूझति हैं जननी राधातें॥

यह बात जब बरसानेकी गोपियोंने सुनी, तो वह भी यशोदाको गालियां देने लगीं और वृषभानुकी रानी मनही मनमें आनंदित होती थीं और कहती थीं कि मैं यशोदाके मनकी सब बात जान गयी। मेरी पुत्री चपलाके समान और श्यामसुन्दर श्यामघटाके तुल्य हैं। अतः दोनों की जोड़ी अत्यंत श्रेष्ठ है, यह उत्तम बानक विचार कीर्तिने यह सब वृत्तांत वृषभानुसे कहा कि दोनों अत्यन्त श्रेष्ठ स्वरूपवान् घन और दामिनीके समान हैं, ऐसा बालक मिलना बहुत कठिन है और पंडितोंके भी मुखसे सुना है–"नित्य दूलह श्यामश्यामा" वेद भी यही कहते हैं, वृषभानु कीर्तिकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा बानक बहुत अच्छा है, नंदजीके पुत्रको मैंने अपनी आंखोंसे देखा है, इसी प्रकार परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यहां ब्रजविहारी अपनी माता से बोले कि तूने मेरे खिलौने जहां-तहां डाल रक्खे हैं मुझको एक भय है कि कहीं मेरे कोई खिलौना राधा चुराकर न ले जाय, क्योंकि वह सांझ-सवेरे नित्य हमारे घर आती है, तब मैं अपनी मुरलीकी ओर देखता रहता हूं, क्योंकि मेरे प्राण सदा मुरलीमें ही बसते हैं, यह मुरली मेरी जीवन प्राण है, परन्तु तेरे भाये कुछ भी नहीं, चाहे मेरी मुरली रहे, चाहे न रहे और वह किसकी है, मुझको बलदाऊतककी भी प्रतीति नहीं। तू मेरी सब वस्तु उठाकर रख दे ! यशोदा हँसकर बोली कि हे मेरे लाल ! कौन ले सकता है तेरे खिलौने ! इस प्रकार कृष्णको समझा दिया और राधिका भी नित्यप्रति यशोदाके घर आने लगी। एक दिन राधिकासे यशोदा बोली कि हे वृषभानुदुलारी ! तूने मेरे श्यामसुन्दर पर क्या मोहिनी डाल दी है, कि दिन-रात तेरे ही ध्यान में रहता है, मेरी बात ही नहीं सुनता और उसको अपने तन-मनकी भी सुध नहीं। सूधे-सूधे खेल खेला कर और कृष्णकी ओर बहुत मत देखा कर। तेरे देखनेसे मनमोहन सब सुध-बुध भूल जाता है, फिर गायोंके दुहनेमें भी विघ्न पड़ता है। यह बात सुन राधा बोली कि मेरे ऊपर तो तुम रिसाती हो अपने पूतको नहीं समझाती, जो बारम्बार मेरे घर बुलाने आता है और तुम भी मुझसे कहती हो कि विना तेरे देखे मेरा मन मलीन रहता है और आज तुम यह बातें कहती हो, इन बातोंको सुनकर मुझको बड़ा क्षोभ लगता है और मैं अपने मनमें बड़ी लज्जित होती हूँ।

चौ०–सुख पावत आवत मैं ताते ❋ तुम कछु लावत औरहि बातें।
अब न कबहुँ आवहुँ मैं मैया ❋ सुतको बर्जि दुहावहु गैया॥

यशोदा सकुचा कर बोली कि मैंने तो भोले-भाले तुझसे यह बात कही थी, तू बुरा मान गई। यह कह राधाका हाथ पकड़कर यशोदाने हृदयसे लगा लिया और कहा–बेटी ! तू रोष मत कर, मैंने तो तुझसे हँसकर सिखानेकी रीतिपर कहा था और जैसे तेरी कीर्ति माता है वैसी ही मुझको समझना। मैंने तो तेरे ही भलेकी बात कही थी कि बेटीकी जातिको निमानी होकर रहना चाहिये, यशोदाने बहुत समझा-बुझाकर राधाके मनका क्षोभ मिटा दिया। राधा बोली कि अब मैं घरको जाती हूँ, बहुत देर हो गई प्रातःकाल की आयी हूँ, माता रिसियायेगी। यशोदाने उसके मुंह पर हाथ फेर कहा–अच्छा बेटी ! जाओ, कल सबेरे आना और मेरी विनय अपनी मातासे भी कह देना। राधा घरको जाती थी, मार्गमें मदनमोहन मिल गये, देखते ही प्रेमविवश हो गयी। मोहनने दोहिनी राधाके हाथोंमेंसे ले ली कि प्यारी ! आज तुम्हारी गायें हम दुहेंगे, राधा बोली–अहोभाग्य !

दोहा–धेनु दुहावत लाड़ली, दुहत नन्दको लाल।
सो सुख कापै जाय कह, देखत सब ब्रजबाल॥

सोरठा–बछरा पद अटकाय, गोथन लीनो हाथ हरि।
प्रियावदन दृग लाय, दूध धार छांड़त धरणि॥

मदनमोहन एक धार तो दोहनीमें डालते और एक धारसे प्यारीका शरीर पखारते थे, वे दूधकी धारोंके बिन्दु राधाके मुखारविन्दपर कैसी शोभा देते थे, मानो घनश्याम मयंकके कलंकको धो रहे हैं और नील साड़ीकी छबि कौन कवि वर्णन कर सकता है, मानो शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाको घटाने चारों ओरसे घेर रखा है, इस प्रकार मोहन प्यारे दूध दुह रहे थे और राधा प्यारी दुहा रही थी। जब नन्दलाल गाय दुह चुके तो राधा दुहनी मांगने लगी।

दोहा–दुही कुँवर नँदलालने, श्रीराधाकी गाय।
दुहनी देत न हँसि पिया, मांगत हाहा खाय॥

सोरठा–ज्यों ज्यों हँसत कन्हाय, त्यों त्यों प्रिय हा हा करत।
सो सुख वरणि न जाय, उरझे दोऊ प्रेमरस॥

कृष्ण राधासे बोले कि फिर हाहा कर, बाबानन्दकी सौगन्ध अवश्य दे दूँगा। फिर राधा हँसकर कहने लगी। तब हँसकर ब्रजविहारीने अपनी प्यारी मनमोहनीको दूध दोहनी दे दी। वृषभानुनन्दिनी माता-पिताकी लाजसे घरको जाना चाहती थी, परन्तु पांव पीछेको पड़ते थे। फिर-फिरकर पीछेको देखती जाती थी और बार-बार यह कहती कि धिक्कार है इस लाजको जो आज मनमोहन महाराजको नहीं देखने देती। ऐसे शोचती-शोचती घर पहुँची। राधाको देख सब सखी दौड़ी आयीं कि राधे! आज तुम्हारे ग्वाल कहां गये, जो मदनगोपालसे गाय दुहाकर लायी हो ? मदनगोपालका नाम सुनते ही राधा चकित हो पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर गयी। दूधकी दोहनी शिरसे ढलक गई, सब सखी इधर-उधरसे दौड़ पड़ीं और राधाको हाथों हाथ उठा लिया और परस्पर कहने लगीं कि राधाको क्या

हो गया ? और अभी तो अच्छी नीकी आ रही थी, अब कैसे मुरझाकर गिर गयी ? और दूधकी दोहनी हाथसे लुढ़क गयी, एक सखी बोली गिरते समय यह शब्द उसके मुखसे मैंने सुना था, मुझको काले विषधरने डँस लिया, ललितादिक सखी कहने लगीं कि इसको तो तन-मनकी भी सुरत नहीं अब क्या उपाय किया जाय ? एक सखी बोली—अभी अच्छी नीकी शिरपर दूधकी दोहनी धरे हुए आ रही थी, कालेने कहां डँसा ? मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि यह तो काले नन्दकुमारकी डँसी हुई है। उसने एक बार हमपर भी फुँकार मारी थी। उसकी मंदमुसकानका विष इसके रोम-रोममें फैल गया है और मनमोहनमें बस रहा है, इसीसे सब देहगेहकी सुधि भूल रही है। सब सखियोंने यह विचार करके जैसे-तैसे राधाको घर पहुँचाया और सबने मिलकर कहा कि हे कीर्ति ! अपनी लड़ैतीकी तो दशा देखो, कहीं मार्गमें इसको काले सांपने डँसा है और इस समय इसकी सुधि-बुधि भी ठिकाने नहीं, कहींसे गरुड़ियोंको बुलाओ और इसका शीघ्र उपाय करो, क्योंकि क्षण-क्षणमें इसका शरीर कुम्हलाता जाता है; ज्यों-त्यों करके इसको हम यहां लायी हैं। यह सुन कीर्ति एका-एकी घबड़ाकर बोली—क्या राधाको सर्पने काट खाया ! कि इतनेमें मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर गयी, कुछ कालोपरान्त चैतन्य हो बोली अरी बेटी राधा ! अरी बेटी राधा ! ! तुझको क्या हो गया ? मुझ अभागिनी अपनी माताको अकेली छोड़कर कहां जाती है ? अरी बेटी ! मुझे माता कहनेवाला और कोई संसारमें नहीं दिखाई देता। बेटी ! अब कौन मुझे माता-माता कहकर पुकारेगी, मैं किसका मुख देखकर अपने नेत्रोंको ठण्ढा करूँगी, किसको हृदयसे लगाकर अपने हृदयको शान्त करूँगी। हे पुत्री ! इस भाग्यहीन जननीकी गोद सूनी करके तू कहांको जाती है ? अब मैं अकेली जीवित रहकर क्या करूँगी ? बेटी देख तो तेरी माता कबसे तेरे पास बैठकर रो रही है, तू उठकर मेरे आंसू क्यों नहीं पोछती। बेटी ! अब तू माता माता क्यों नहीं पुकारती, हाय पुत्री ! हाय पुत्री ! यह मेरा कुलिशसम कठोर हृदय क्यों नहीं फटता ? वक्षस्थलमें कराघात कर, हाय ! यह पत्थरका हृदय क्यों नहीं फटता ? अरी ! यह पापी प्राण क्यों नहीं निकलते ? हे मेरे नेत्रोंकी पुतली ! क्यों बेसुध पड़ी है ? उठकर अपनी माताको धैर्य दे। बेटी जो मैं यह जानती कि तू अपनी माता को विलपती छोड़-कर चली जायेगी तो मैं पहले ही विष खा लेती। अरी ! मैंने तो तुझे बार-बार बरजा परन्तु तुझ हठीलीने मेरा कहना एक न माना। तू स्वप्नके रत्नकी नाई मुझको दिखाई देकर कहांको जाती है ? हे प्राणेश्वरी ! आज मुझे सब संसार शून्यमय जान पड़ता है, हे विधाता ! इस भारी विपत्तिमें तू भी कुछ सहायता नहीं करता। आज मेरी प्राणप्यारी मेरे आगेसे उठी जाती है। हे उमानाथ ! हे भूतेश्वर ! हे त्रिपुरारी ! तुम्हारी जय हो, तुम मेरी प्राणप्यारी राधाको अच्छी कर दो, क्योंकि सर्प तुम्हारे वशीभूत हैं। मैं राधाके प्राणार्थ बारंबार तुम्हारी प्रार्थना करती हूँ। हे गरुड़ ! विष्णुभगवान्‌के वाहन और विनताके पुत्र ? तुम ही मेरी रक्षा करो, सर्प तुम्हारे नामसे भयभीत होकर भागते हैं। हे देवी ! सर्वानन्दप्रकाशिनी ! चण्डमुण्डवि-नाशिनी ! मैं नवरात्रोंमें तुम्हारा पूजन और व्रत करूँगी, तुम मेरी राधाको अच्छी कर दो। यह कह फिर विलाप कर करके रोने लगी। हाय राधा ! हाय राधा ! कीर्तिके विलापोंको सुनकर ललिता और विशाखा बोलीं—महारानी ! तुम इतना रुदन क्यों करती हो ? किसी गारुड़ीको बुलाकर इसका उपाय करो, अभी राधाका बिगड़ा ही क्या है ? जो तुम रो-रोकर वृथा अपने

प्राण खोती हो ? कीर्ति बोली–प्रथम तो मैं किसी गारुड़ीको जानती नहीं, दूसरे मेरी सुधि-बुद्धि ठिकाने नहीं, यह भी काम तुमसे ही होगा, अरी ! मैं कैसे धैर्य धरूं ? प्रातःकाल घरसे अच्छी नीकी गयी है। हाय ! इस हठीलीने मेरी एक बात न मानी। अरी ! अब इसके जीने की क्या आशा है ! सब शरीरका रंग पीला पड़ गया, हाथ-पांव ओला हो रहे हैं। उसी समय वृषभानुने पुत्रीको सांप काटनेका वृत्तांत सुनकर बड़े-बड़े गारुड़ी लोगोंको बुलाया, वे सब अपने-अपने यन्त्र-मन्त्र कर झाड़ा देने लगे, परन्तु किसीका यंत्र-मंत्र उस कालके सामने न चल सका। जब सब गारुड़ोंने हार मानी तो वृषभानुकी रानी अत्यंत व्याकुल हुई, फिर राधाके संगकी सखियोंसे कहा कि कैसे-कैसे इसको सर्पने डँसा, मुझे बता तो दो। सखी बोली कि इतना तो हम जानती हैं कि अकस्मात् घूमकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और दूधकी दोहनी भी शिरसे लुढ़क गयी। उस समय यही शब्द इसके मुखसे निकला कि मुझको कालेने डँस लिया। उस काले नागको हमने भी देखा था, उसकी परछाईंसे विष चढ़ता था और हुंकारका तो क्या ठिकाना है, उसको ऐसा वैसा गुणी कोई नहीं उतार सकता, उसके विषको तो कोई पूरा गुणी उतारेगा।

दोहा–सो अब हम तुमसों कहें, मान लेहु यह बात।
बड़ो गारुडी आजकल, नन्दरायको जात ॥
देखत ही विष जायगो, लावहु ताहि बुलाय।
हमको पूरण आश है, तुरतहि लेहि जियाय ॥

हमने अपनी आंखोंसे देखा है कि कैसा ही सांपका विष हो परन्तु यह एक मंत्रसे उतार देता है। आज कल नंदके पुत्रके समान त्रिलोकीमें दूसरा कोई नहीं है। कीर्ति बोली कि यह तुम्हारी बात सत्य है, राधाने भी मुझको एक दिन कहा था, कि एक गोपीको सांपने काटा था तो नंदकुमारने अच्छा कर दिया था, यदि तुम कहो तो मैं नंदरानीके पास जाऊँ, ललिता बोली–मेरी समझमें भी यही आता है। यह सुन कीर्ति यशोदाके पास दौड़ी गयी कि हे महरि ! मैंने सुना है कि तुम्हारा पुत्र बड़ा गारुड़ी है, मेरी बेटी राधाको सांपने काट खाया है वह बेसुध पड़ी है, तनक अपने सुतको मेरे संग भेज दो, वह मंत्रको पढ़कर उसको अच्छी कर देगा, तो आपको बड़ा भारी यश होगा और मेरी बेटीके प्राण बच जायँगे। यशोदा बोली कि बहन ! तुमको किसने बहँका दिया है, मेरा कान्हा छः वर्षका अज्ञानी यह अभी यंत्र-मन्त्रको क्या जाने ? वरन् तुम्हारा वचन सुनकर मुझको आश्चर्य होता है कि कृष्ण किस दिनसे गारुड़ी हो गया ? आजतक यह बात मैंने किसीके मुखसे नहीं सुनी, सिवाय तुम्हारे। कीर्ति बोली कि मुझसे कई लोगोंने कहा और राधाने तो अपनी आंखसे देखा कि एक लड़कीको सांपने काटा और श्यामसुन्दरने अच्छा कर दिया, इसलिये मैं दौड़ी आयी हूँ। तुमको बड़ा पुण्य होगा, नेक श्यामसुन्दरको बुला दो। यह बात सुन यशोदा मन ही मनमें मुसकाकर कहने लगीं। अभी तो राधा मेरे घर आयी थी, इतनेमें ही क्या हो गया ? इसमें कुछ न कुछ कारण अवश्य है। फिर मोहन प्यारेको बुलाने गयी और यहां ललिता विशाखाने राधाके मनकी गति जान ली कि उसको वंशीधरने चितवनके फणसे डँस मुसकानका विष चढ़ा दिया और प्रेम-प्रीतिकी दावाग्निसे हृदयको संतप्त कर दिया है, इसलिये कोई यंत्र-मंत्र नहीं लगता। सब अपना-अपना उपाय करके हार गये। इस विषयको सिवाय मनमोहनके

और कौन उतार सकता है । यह समझ ललिताने ऊपर ही ऊपर एक सखीको श्यामसुन्दरके पास भेजा, तब उसने जाकर ब्रजविहारीसे कहा कि, हे नन्दलाल ! हे छली ! ! अनोखे गाय दुहैया ! ! ! ऐसी गाय दुहनी कबसे सीखे हो ? आज प्रातःकाल जिसकी गाय तुमने दुही थी, जाकर तो देखो उसकी क्या दशा है ? घर भी नहीं जाने पायी कि बीचमें ही अचेत होकर धरणीपर गिर गयी और गिरते समय मुखसे यह शब्द निकला कि मुझको कालेने डंस लिया । वृषभानुने दूर-दूरके गुणी बुलाये, परन्तु किसीसे कुछ न हो सका, अब वह बेसुध पड़ी है, आंख भी नहीं उघाड़ती । एक चतुर सखीने यह बात निश्चय करके मुझको तुम्हारे पास भेजा है कि यह विष मनमोहनकी मुसकानका है । अब जो तुम उसके प्राण बचाने चाहो तो शीघ्र दयादृष्टि करके उसका विष उतार दो और जो वह मर गयी तो संसारमें तुम्हारी बड़ी दुर्नामता होगी, क्योंकि गारुड़ीका धर्म है कि पहले सर्पके काटनेवालेकी सुध ले, पीछे और काम करे और जो गारुड़ी न जाय और सर्पका काटनेवाला मर जाय तो वह हत्या गारुड़ीको लगती है और हे घनश्याम ! मैं यह भी जानती हूँ कि तुम्हारे ही श्यामरंगका विष उसको चढ़ा है और जबतक तुम न जाओगे वह कभी अच्छी न होगी ।

चौपाई—अतिहि विकल वह विरह अधीरा । दरश दिखाय हरहु तनु पीरा ।
तुम अश्विनी कुमार कन्हाई । बेगि चलहु तेहिं लेहु जिवाई ॥

और जो तुम उसको न जिलाओगे तो मर ही जायेगी, परंतु हम भी सब नन्दके द्वारपर अपने प्राण तज देंगी । अब उसकी माता कीर्ति यशोदाके पास तुमको बुलाने आयी है, तुमको उचित है कि उसके संग जाओ, उस सखीकी बात सुनते ही ब्रजभूषण प्यारेने कहा कि जो राधाप्यारीको महाकाले विषधरने डंसा होगा तो मैं अपनी प्राणप्यारीका विष दूर कर दूंगा । यह कह सखीसे बोले कि तू जा कुछ होगा वह सब देखा जायगा । सखीको बिदाकर आप अपने घर गये । यशोदा बोली—अरे मैं तुझे ढूंढ आयी, तू कहां था ! मेरे समीप तो आ, कृष्ण बोले—क्यों माता ! यशोदा बोली कि बेटा ! मैंने सुना है कि तू कुछ सांपका मंत्र भी जानता है, यह कीर्तिजी तुमको बुलाने आयी हैं, कहीं राधाको सर्पने डंस लिया है जो तू कुछ यन्त्र-मंत्र जानता हो तो शीघ्र इनके संग जाकर कुंवरि राधिकाको प्राणदान दे और जगत्में भलाई ले । परन्तु यह तो मैंने आज ही सुना है कि तू गारुड़ी भी है । कृष्ण बोले कि हे मैय्या ! तेरी सौगंध एक मन्त्र मुझको ऐसा आता है कि सांपके डँसेको तो मैं 'हूं' भी कर दूँ तो अच्छा हो जाय । यशोदा बोली कि बेटा । तू इनके संग जा । माताका वचन सुन श्रीकृष्ण कीर्तिके संग प्रसन्न होकर चल दिये । तब कीर्ति श्यामसुन्दरको लेकर अपने घर पहुंची और राधिकाको अत्यन्त व्याकुल देखकर कीर्तिने हृदयसे लगा लिया । फिर कुँवरिको लेकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें शिर धरकर बोली कि हे मन्त्राधीश ! राधाको अबकी किसी प्रकार अच्छी कर दो । देखो, इसको तन-मनकी कुछ सुध नहीं है । कृष्ण बोले—कुछ सन्देह मत करो, शीघ्र अच्छी हो जायगी । किसी सखीने राधाके कानमें पुकार कर कह दिया कि मोहनप्यारे आ गये । मनमोहनका नाम सुनते ही हृदयमें ठण्डक पड़ गयी, आंखसे प्रेमके आंसू बहने लगे, तब ब्रजविहारीने कुछ मन्त्रसा पढ़कर अपनी बांसुरी राधाके अंगसे छुवा दी, तब वृषभानुललीने नेत्र खोल देखा तो मनमोहन प्यारा वंशी हाथमें लिये, मोरमुकुट, शिरपर धारण किये सम्मुख खड़ा है । झट सावधान हो वस्त्रसे अपना शरीर ढंक लिया और अपनी

मातासे पुकार कर कहा कि माता! आज हमारे घर क्या है ? जो बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे हैं। कीर्ति बोली कि, आज तू सर्पके डसनेसे मृतक समान होगई थी, तुझको नंदलालने आकर जिलाया है, इनसे तू क्या लाज करती है ? फिर नन्दकुमारका अत्यन्त आदर-सत्कार कर बोली कि, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया जो मेरी मरती हुई पुत्रीको जिला दिया। फिर कीर्ति श्यामसुन्दरको हृदयसे लगाकर मुख चूम बलायें लेने लगी और कहने लगी कि धन्य है कोख यशोदा महरि की जिसमें तुमसे गारुड़ी उत्पन्न हुए। फिर कुछ मेवा, पकवान, मिठाई खिलाकर ऊपरसे पान खिलाकर घनश्यामको विदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जब नँदलाल चलने लगे तब वृषभानु और कीर्ति परस्पर कहने लगे कि कृष्ण और राधिकाकी जोड़ी परमेश्वरने भली सुंदर मिलाई है, अतः इन दोनोंका विवाह हो जाय तो बहुत ही अच्छा है। ललिता और विशाखा बोलीं आजसे तुम्हारा नाम गारुड़ी रखा जायगा क्योंकि आज तुमने बड़ा ही भारी राधाका विष किंचित्कालमें उतार दिया। ऐसे तत्काल कार्य सिद्ध करनेवाले मंत्रको कभी मत भूलना। तुमने राधा मनमोहिनीपर मोहिनी डालकर उसको अपने अधीन कर रखा है। ललिताकी मनोहर बातें सुनकर व्रजविहारी मुसकराते हुए अपने घरको चले गये यशोदाने आते ही श्यामसुन्दरसे पूछा कि राधिका अच्छी हो गयी। कृष्णने कहा परमेश्वरकी दया है। यशोदा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और गोपीवल्लभको गोदीमें लेकर बहुत लाड-प्यार किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! एक दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रातःकाल उठकर सुंदर शृङ्गी बजाकर अपने प्यारे ग्वालबालोंको जगाकर कलेवा बांध बछरोंको आगेकर श्रीकृष्णचन्द्र घरसे निकले॥ १॥ उन श्रीकृष्णके संग स्नेही ग्वालोंके सहस्रों बालक उत्तम छीके, बेत, शृंगी और बांसुरी ले-लेकर सहस्रसे भी अधिक संख्यावाले अपने बछरोंके समूहोंको आगे करके आनन्दसहित घरसे चले ॥ २ ॥ असंख्यात श्रीकृष्णके बछरोंमें मिलाकर चराते-चराते बाललीला कर करके ये बालक जहां-तहां बिहार करते थे ॥ ३ ॥ मणियोंके जड़ाऊ सुवर्णके गहने पहने हुए थे, तो भी वनमें जाकर फलोंके, कोपलोंके, चौटलियोंके, गुच्छोंके, फूलोंके, मोरपुच्छके और खड़िया माटी, गेरूके तिलक लगा-लगाकर अपना-अपना शृंगार कर रहे थे ॥ ४ ॥ परस्पर छींका बेत आदि चुराते, जब जान लेते तो दूसरे बालकके पास फेंक देते। वे बालक फिर औरके पासको फेंक देते थे। जब वह छींकेवाले बालक रोने लगते थे, तब श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर उनके छीके बेत दिला देते थे ॥ ५ ॥ सुन्दर वनकी शोभा देखनेके लिए जब श्रीकृष्ण दूर चले जाते थे तब बालक परस्पर छोड़ बद-बदकर दौड़ते थे और कहते थे कि पहले मैं छुऊँ वह कहते थे कि पहले मैं छुऊँ, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको छूते थे और आनन्दित होकर खेलते थे ॥६॥ कोई बालक बांसुरी बजाते थे, कोई शृंगी शब्द सुनाते थे, कोई-कोई बालक भौंरोंके संग गाते थे और कोई कोकिलाकी वाणीमें मिलाते थे ॥ ७ ॥ और कोई आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके संग दौड़ते, कोई बालक हंसोंके संग धीरे-धीरे चलते, कोई बालक बगलोंकी पांतिके पास चुपके-चुपके जा बैठते और कोई बालक मोरोंके संग नाचते थे कोई बालक बंदरोंकी पूँछ पकड़-पकड़कर खींचते थे और कोई पूँछ पकड़े ही पकड़े ॥ ८ ॥ कोई बालक बंदरोंकी पूँछ पकड़-पकड़कर खींचते थे और कोई पूँछ पकड़े ही पकड़े उनके सङ्ग कूदकर वृक्षोंपर चढ़ जाते थे और कोई बालक अपने कान दबाकर आंख फैलाकर बंदरोंके सम्मुख खड़े हो घुड़की बताते थे। कोई वृक्षोंपर चढ़-चढ़ नीचेको कूदते

थे ॥ ९ ॥ कोई-कोई मेढ़कोंके संग फुफकारते थे, जब वह पानीमें डुबकी मारे तब आप भी उसके संग डुबकी (गोता) मारते हैं। कोई बालक अपनी परछाईं पानीमें देखकर उसकी हँसी करते थे, कोई बालक कुएँ बावड़ीमें अपनी प्रतिध्वनिको सुन उसको गाली देते थे॥१०॥ ब्रह्मज्ञानियोंको ब्रह्मस्वरूप करके जाननेमें आते हैं। दासभावके करनेवाले भक्त जिनको परम दैवतरूप स्वामी जानते हैं और मायासे मोहित हुए पुरुष उनको मनुष्यका बालक मानते हैं, जिनकी जैसी भावना है, उसको वैसे ही दिखाई देते हैं। धन्य भाग्य है ग्वालबालोंका देखो ब्रह्मज्ञानियोंको केवल भगवान्‌का अनुभव ही होता है, केवल भजन सर्वानन्द है, परंतु ग्वालबालोंकी ओरको देखिये कि इन्होंने कैसे उग्र तप किये हैं कि दिनरात भगवान् वासुदेव जिनके सङ्ग आहार-विहार करते हैं देखो यह सखाभावका प्रभाव है ॥ ११ ॥ योगीजनोंको भी अनेक जन्म महाकष्ट सहकर तप करनेसे जिनके चरणारविंदकी धूरि मिलनी अत्यन्त दुर्लभ है वे श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्द स्वच्छन्दविहारी वासुदेव भगवान् जिनके सम्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहें उन व्रजवासियोंके भाग्यकी कहांतक बड़ाई करें ॥१२॥ इन ग्वालबालोंकी सुखपूर्वक लीलाको न सहन करके अघासुर नाम दैत्य उस बनमें आया, अमृतपान करनेवाले देवता भी अपने जीनेकी इच्छासे नित्यप्रति जिसके मरनेकी राह देखते थे ॥१३॥ वह असुर कंसका भेजा हुआ, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता, कृष्णादिक छोटे-छोटे बालकोंको देखकर मनमें विचार करने लगा कि इसी कृष्णने मेरे भाई और बहनको मारा है, उन दोनोंके बदले आज ग्वालबाल बछड़े और बलदेव समेत इस कृष्णको मारूँगा ॥१४॥ और अपने भैया-बहनका भी इन बालकोंके संग तिलांजलि दूँगा, तब सब व्रजवासी मृतक समान हो जायेंगे, प्राण गये पीछे देहोंकी क्या चिंता है, क्योंकि प्राणधारी पुरुषोंके पुत्र ही जीवन प्राण है ॥१५॥ ऐसा विचारकर चार कोस लम्बा, पर्वतके समान मोटा, अजगर सांप का अद्भुतरूप धारणकर गुफाके सदृश मुख पसार बछड़े और बालकोंके निगलनेके लिए मार्ग में बैठ गया ॥१६॥ नीचेका होंठ तो पृथ्वीपर और ऊपरका होंठ बादलतक फैला रखा था, पर्वतकी गुफाके समान जिसका मुख, पहाड़के शिखरके सदृश जिसकी दाढ़ें, गूढ़ कन्दराके तुल्य मुखमें अंधकार, बड़े लम्बे-चौड़े मार्गकी नाईं जिसकी जीभ, कठोर पवनके समान जिसका श्वास और अग्निके तुल्य जिसकी दृष्टि थी ॥१७॥ सब बालक उस अजगरको देखकर वृन्दावनकी शोभा समझकर खेलते-खेलते फूले हुए उस अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने लगे॥१८॥और परस्पर कहते थे कि अहो मित्रो! यह तो कहो कि यह जो हमारे सम्मुख दिखाई देता है,कोई पक्षी है वा मनुष्य है!मानो हमारे निगलनेके लिए सर्पके समान मुख पसार रहा है ॥१९॥ सूर्यके किरणोंसे लाल-लाल बादल ऐसे दृष्टि आते हैं मानो सर्पका ऊपरवाला होठ है और सूर्यकी परछाईंसे सब पृथ्वी ऐसी लाल दिखाई देती है मानो सर्पके नीचेकी ठोडी है ॥२०॥ और इधर-उधर पर्वतकी कंदरासी महागंभीर अँधियारी ऐसी जान पड़ती है मानो सर्पके मुखका अन्त है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरसे हमको ऐसे दिखाई देते हैं मानो साक्षात् सर्प अजगरकी दाढ़ें हैं, तुम ध्यान करके देखो ॥ २१ ॥ यह लम्बा-चौड़ा मार्ग हमको ऐसा दृष्टि आता है मानो सांपकी जिह्वा है और इन शिखरोंके भीतर हमको ऐसा अंधकार दीखता है मानो सर्पके मुखके भीतरका भाग है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण-उष्ण महातीक्ष्ण पवन ऐसा लगता है मानो महाविषवाले सर्पका श्वास है और यह विचार कर देखो कि अग्निमें जैसे

जीव जलते हैं ऐसी दुर्गंधि आती है। यह सर्पके डँसे हुए मानो मांसकी दुर्गंधि है ? ॥२३॥ इस सर्पके मुखमें जो हम घुस भी गये तो क्या यह हमको निगल जायगा ? और जो यह हमको निगल गया तो श्रीकृष्ण इसको बकासुरकी नाईं क्षणभरमें मार सकते हैं वा नहीं ? इस प्रकार परपर कहते-सुनते बकासुरके विध्वंस करनेवाले श्रीकृष्ण का सुन्दर मुखारविंद देख हँसते-हँसाते ताली बजाते सब ग्वालबाल आगेको चले "ताली बजानेका कारण यह था कि जो सर्प होगा तो सरक जायगा और वृन्दावनकी यह अद्भुत शोभा होगी तो खेलेंगे" ॥ २४ ॥ श्रीवृन्दावनविहारी भक्तहितकारीने विचारा कि वास्तवमें तो यह सर्प ही है और सर्पका देह धारण किये हुए कोई दैत्य है और हमारे साथी बालकोंने इसे वृन्दावनकी शोभा समझकर फिर सर्पके भी सब लक्षण वर्णन किये तो भी अजान हैं और परस्पर भूलते बातें कर रहें हैं। ऐसा समझ सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् उन भोले बालकोंके वचन सुनकर जबतक उनको निषेध करना चाहा कि इसमें मत घुसो कि ॥२५॥ इतनेमें वह सब बालक बछरों समेत उस अघासुर दैत्यके मुखमें घुस गये, परन्तु अघासुरने अपने मरे हुये भाई-बहन की सुधि करके उन बालकोंको निगला नहीं, क्योंकि मनमें विचार किया कि बकासुरका मारनेवाला मेरा वैरी कृष्ण तो अभी आया ही नहीं ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् अनाथके समान दीन बालकोंको अपने हाथसे छूटे हुए जान और असाधुके घरमें घुसे हुए देखकर दयासे पीड़ित हुए आश्चर्यसे कहने लगे कि दैवकी कैसी अद्भुत गति है ॥ २७ ॥ अब इस समय क्या उपाय करना चाहिये ? कि यह दुष्ट तो मारा जाय और मेरे जीवनप्राण प्रिय ग्वालबाल बच जांय। ये दोनों बातें एकबारमें कैसे हों ? यह विचार करके उन दोनोंको जानकर संसारके द्रष्टा भगवान्ने अघासुरके मुखमें प्रवेश किया, क्योंकि मित्रताका यह धर्म नहीं है कि मित्र तो अघासुरके मुखमें चले गये और आप बाहर बड़े-बड़े कौतुक देखें, यह नहीं। जो कुछ मित्रोंकी गति होगी वह हमारी भी होगी, यह समझ आप घुस गये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटमें देवता खड़े होकर हाहाकार करने लगे और नैर्ऋतवंशी अघासुरके भाई-बन्धु कंसादि राक्षसोंको परमानन्द हुआ ॥२९॥ अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् देवताओंका हाहाकार शब्द सुनकर, ग्वालबाल बछड़ों समेत कृष्णको चूर्ण करनेकी इच्छावाले उस अघासुरके कण्ठमें बढ़े ॥ ३० ॥ तब उस बड़े शरीरवाले राक्षसका बल घट गया, आंखें बाहरको निकल आयीं, इधर-उधर छटपटाने लगा, देहमें श्वास रुक गया, बाहर निकलनेको मार्ग नहीं मिला; पवन उसके ब्रह्मरन्ध्रको छेदन करके बाहर निकल गया ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संग ही प्राण बाहर निकल गये तब सब बालक और बछड़ोंको मरा देखकर अपनी सञ्जीवनी दृष्टिसे अमृतकी वृष्टि करके जिला दिया। उनको साथ लेकर फिर श्रीमुकुन्द भगवान् अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥३२॥ उस दुष्ट अघासुरके देहमेंसे बड़ी अद्भुत ज्योति निकलकर अपने तेजसे दशों-दिशाओंको प्रकाशित करके आकाशमें स्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके बाहर निकलनेका पंथ जोहता रहा। जब श्रीकृष्ण उसके मुखसे बाहर निकले तब सब देवताओंके देखते ही देखते श्रीकृष्णके शरीरमें प्रविष्ट हो गया ॥३३॥ उस समय देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे फूल वर्षाकर श्रीकृष्णकी पूजा की, अप्सराओंने नृत्य किया, गन्धर्व गाने लगे, बाजेवाले बाजे बजाने लगे, ब्राह्मण जय-जय शब्द करके स्तुति करने लगे ॥३४॥ यह अद्भुत स्तोत्र और गीता, वाद्य, जय आदिक

अनेक उत्सव मंगल शब्दोंको सुनकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे शीघ्र ही चले आये और श्रीकृष्णकी महिमा देखकर आश्चर्यमय हुए ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि परीक्षित् ! उस अजगरका सूखा हुआ अद्भुत खखोड़ल वृन्दावनमें बहुत दिनतक व्रजवासियोंके बालकोंको खेलनेके लिये एक गुफा हो गयी, मुखके मार्गसे घुसें और नेत्रके मार्गसे निकल आयें। नेत्रोंके मार्गसे घुसें तो मुखके मार्गसे निकल आयें, इस प्रकार दिन-रात विहार करते रहे ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बालकोंको और अपने आपको मुत्युसे छुड़ाना और अघासुरको मोक्षका देना ये सब काम पांच वर्षकी अवस्थामें किये, परन्तु इसको आश्चर्य मानकर सब बालकोंने व्रजमें श्रीकृष्णकी पौगण्ड अवस्था अर्थात् पांच वर्षके व्यतीत होने के उपरांत छठे वर्षके मध्यमें यह अद्भुत लीला भगवान्ने की ऐसा कहा है ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्य बालक-रूप धारण किये हुए सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमके आदिकरण परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान्के स्पर्शसे महापापी अघासुर पवित्र हो गया। जो बात असत्पुरुषोंको महादुर्लभ है ऐसे भगवद्रूपमें वह लय हो गया, यह बात आश्चर्यकी नहीं है ॥ ३८ ॥ क्योंकि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने एक बार ही बलात्कार मनमें धारण की और उसीके प्रभावसे उन लोगोंने मोक्ष पायी तो सदैव अपने आत्मानन्दके अनुभवसे और माया करके रहित श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के शरीरमें अघासुरका प्रवेश होनेसे उसकी मुक्ति हुई तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥ शौनकादिक ऋषीश्वरोंसे सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अपनी माताके गर्भमें यदुकुलके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए राजा परीक्षित् अपनी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके विचित्र पवित्र चरित्र सुनकर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीसे फिर उसी प्रसङ्ग सम्बन्धी प्रश्न किया, क्योंकि उन चरित्रोंके सुननेसे राजा परीक्षित्का मन अपने वशमें हो गया था ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण महाराजने कुमार अवस्थामें जो लीला की वह बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें गायी,यह एक वर्षका अंतर बीचमें कैसे पड़ गया ? ॥ ४१ ॥ हे बड़े योगिराज ! हे गुरु ! यह बात मुझको समझाकर कहो, मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि यह निश्चय भगवान्की ही माया है और कुछ नहीं है ॥४२॥ हे गुरो ! हैं तो हम क्षत्रियवंशी परन्तु तो भी हम संसारमें अतिशय धन्य हैं ! क्योंकि जिस दिन ब्राह्मणका शाप हुआ उस दिनसे और भी धन्य हैं और जब तुम्हारे दर्शन किये तबसे धन्यतर हुए और अब जो तुमसे वारंवार कृष्णकथा अमृत पान करते हैं इसलिये अतिशय करके आज हम धन्य हैं ॥४३॥ श्रीसूतजी बोले कि हे हरिभक्तो ! इस प्रकार राजाने प्रश्न करके अपनी श्रद्धा दिखायी, दूसरे हरि का स्मरण करते ही प्रथम तो श्रीशुकदेवजीकी समस्त इन्द्रियाँ नारायणमें लय हो गयीं,फिर व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने बड़े कष्टसे फिर नेत्र खोलकर भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा परीक्षितसे कहाः—

दोहा—सोइ है पुरुषारथी, जिनका हरिसों नेह।
भक्ति जगत्में सार है, देह खेहकी खेह ॥
भक्ति मिलावत कृष्णसों,भक्ति देत धन धाम।
ताते कीजै भक्ति नित, भाषत शालग्राम ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेऽघासुरवधनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—तेरहमें अज मोहवश, हरे ग्वाल अरुबाल।
उसी रूपके कृष्णने, रचे बहुरि तत्काल॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! हे बड़भागी! हे भक्तभूषण! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया, क्योंकि ईश्वरकी कथाको श्रद्धासहित वारंवार सुनते हो इससे तुम परम श्रेष्ठ हो ॥१॥ सार वस्तुके ग्रहण करनेवाले सज्जनोंका यही स्वभाव है, क्योंकि जिन पुरुषोंकी वाणी, कान और मन, यह सब भगवान्‌की कथामें लगे रहते हैं। वाणीसे कृष्णचन्द्रके गुण वर्णन करते हैं, कानोंसे नित्य नयी कथा सुनते रहते हैं, मनसे श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं। इस प्रकार भगवान्‌की वार्त्तामें क्षण-क्षण प्रति ध्यान लगाये रहते हैं। और वे कथायें ऐसी प्रिय लगती हैं मानों कभी नहीं सुनी हैं, जैसे विषयी पुरुषोंको स्त्रियोंकी बातें प्यारी लगती हैं ॥२॥ हे राजा परीक्षित्! यह कथा परमगूढ़ है तो भी मैं आपसे कहता हूँ, क्योंकि कैसी भी गुप्त वार्ता हो, गुरुको चाहिये कि अपने प्यारे शिष्यके सामने सब कहे। उसे आप सावधान होकर सुनिये ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंसे मृतक बालक और बछरोंको जिलाकर यमुनाके किनारे अत्यन्त रमणीक रेतीमें उनको लाकर श्रीकृष्ण भगवान् यह कहने लगे ॥ ४ ॥ हे परम प्यारे मित्रो! यह अत्यन्त रमणीक रेती है और विहार करनेके लिये परम-श्रेष्ठ और शोभायमान स्थान है, देखो कैसे सुन्दर और स्वच्छ बालूके कोमल-कोमल बिछौने बिछ रहे हैं, रंग-रंगके कमल खिल रहे हैं, उनपर सुगंधके लोभसे भौंरे गुंजार रहे हैं और जलपक्षियोंके शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके वृक्ष शब्दायमान हो रहे हैं ॥५॥ यहां बैठ-कर कलेवा कर लो, दिन भी बहुत चढ़ गया और भूख भी अधिक लग रही है बछरोंको भी जल पिलाकर यहीं चरनेके लिये छोड़ दो, सहज-सहजमें घास चरते रहेंगे ॥६॥ श्रीकृष्णने सब बालकोंके वचनोंको मान बछड़ोंको पानी पिला हरी-हरी घासमें चरनेको छोड़ दिया और अपने-अपने छींकोंको खोल-खोल छाछ परोस-परोस श्रीकृष्णके संग सब भोजन करनेको बैठे ॥७॥ब्रजवासियोंके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारों ओर अनेक पंक्तियोंकी मण्डली बनाकर एक साथ बैठे। यदुनाथके सम्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित हो रही थी। जैसे कमलकी कलीके चारों ओर पखुरियोंकी छबि दिखायी देती है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तो कलीके समान थे और ग्वालबाल पखुरीके समान, इस प्रकार यमुनाकी रेतीमें शोभायमान जान पड़ते थे ॥८॥ किसी बालकने फूलोंकी पत्तल बनायी, किसीने पखुरियोंकी पत्तल बनायी, किसीने पत्तोंकी पत्तल बनायी, किसीने अंकुरोंकी पत्तल बनायी और किसीने फलोंकी पत्तल बनायी और किसीने वृक्षोंकी छाल-छीलकर पत्तल बनायी और उनपर भांति-भांतिके भोजन परोसे। किसी-किसीने छींकमें ही भोजन करनेका विचार किया, कोई शिलापर ही अपना भोजन परोसकर खानेको बैठ गया ॥९॥ सब बालक अपने-अपने भोजन पृथक्-पृथक् प्रकारके आप खाते और अन्योंको स्वाद दिखाते और चखाते परस्पर हँसते-हँसते ठट्ठे उड़ाते श्रीकृष्णके साथ भोजन कर रहे थे ॥१०॥ फेंटमें बांसुरी धारणकर रहे थे; शृंगी, बेतकी छड़ियोंको कांखमें दाब रहे थे, दही भातसे लिपटा हुआ ग्रास बायें हाथमें ले रहे थे और बेर, आमले, नींबू आम, जामुनादिक फल अंगुलियोंमें धर लिये थे। यज्ञभोक्ता भगवान् चारों ओर अपनी मित्रमंडलीमें बैठे उनसे हँसीकी बातें कह-कहकर उनको हँसाते जाते थे और धीरे-धीरे भोजन खाते जाते थे। इस बाल चरित्रको स्वर्गमें देवता देख-देखकर आश्चर्यमय हो मनही मन कहते थे कि देखो

यज्ञभोक्ता भगवान् किस प्रकार आनन्दित हो-होकर ब्रजवासियोंके बालकोंकी जूठन छीन-छीनकर खा रहे हैं, पूर्वजन्ममें इन्होंने पूर्ण पुण्य किये हैं ॥११॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णमें मन लगाये ग्वालबाल भोजन कर रहे थे और बछरे हरी-हरी घासके लोभसे बहुत दूर वनके भीतर चले गये ॥१२॥ जब बछरे दूर चले गये तब सब बालक अपने मनमें घबड़ाये, उस समय उनकी घबड़ाहट दूर करनेके लिये भगवान् भयहारी उनसे बोले कि हे मित्रो ! तुम भोजन करते रहो, उठो मत, क्योंकि ऐसी सुन्दर मण्डली फिर न बँधेगी, मैं अभी बछरोंको लिये आता हूँ ॥१३॥ इस प्रकार सबको धैर्य बंधाकर दही-भातका ग्रास हाथमें लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफाओंमें, वनमें, कुञ्जोंमें, गह्वर स्थानोंमें अपने बछड़ोंको ढूँढते-ढूँढते दूर चले गये ॥१४॥ हे कुरुकुल भूषण ! उसी अवसरमें कमलोद्भव ब्रह्माजी, जो कि प्रथम मायासे बालकरूप श्रीकृष्णका किया अघासुरका मोक्ष होना देखकर अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हो आकाशमें खड़े-खड़े देख रहे थे। अब वे फिर श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके लिये यहांसे तो बालकोंको और वनमेंसे बछरोंको देखकर चुराकर दूसरे स्थानमें लेजाकर अन्तर्धान हो गये ❋ ॥१५॥ जब वनमेंसे बछरोंको न देखा तब लौटकर फिर यमुनातीरके निकट आये तो यहां बालकोंको भी न पाया, उस समय बालकोंको और बछरोंको वनमें चारों ओर ढूँढते फिरे ॥१६॥ जब वनमें कहीं बछरों और बालकोंको न पाया तब विश्वभावन भगवान् सब विश्वकी गतिके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें जान लिया कि यह सब ब्रह्मका कौतुक है ॥१७॥ यह समझकर जगदीश्वर भगवान्‌ने विचार किया कि जो मैं चुप होकर बैठा रहा तो बालकोंकी माता रोवेंगी और जो ब्रह्माके पाससे छीनकर ले आऊँगा, तो ब्रह्मा अपने मनमें लज्जित होगा और उसके मनका मोह दूर न होगा, ऐसा विचार कर बालकोंकी माताओंको आनन्द देनेके लिये और ब्रह्माका मोह बढ़ानेके लिये विश्वके रचयिता श्रीकृष्णचन्द्रभगवान्‌ने अपने ही अनेक रूप धारण किये, अर्थात् बछरे भी आप ही बने और ग्वालबाल भी आप बने ॥ १८ ॥ जैसा जिसके बछरोंका और बालकोंका छोटा अथवा बड़ा, और जैसे जिनके हाथ-पांव थे, किसीके छः अँगुली थीं जैसी-जैसी उनके पास छड़ी, शृङ्गी, बांसुरी, छींके थे, जैसे जिसके आभूषण, वस्त्र, कुसुम्भी, हरी, पीली, गुलाबी पगड़ी थी, जैसा जिसका स्वभाव था वैसा ही स्वभाव, रूप, गुण, नाम, अवस्था, आहार, व्यवहार और लक्षण थे उसी प्रकारके सर्वात्मा भगवान् आप बने ॥१९॥ सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् आप ही बछरे बने, आप ही उनको घेर-घेरकर अपने खेलोंसे खेलने लगे। इसी प्रकारका विहार करते हुए आप ही व्रजमें पधारे ॥२०॥ हे राजन् ! जिन-जिन ब्रजवासियोंके बिछड़े थे, समूहमेंसे अलग-अलग होकर उन-उनके खिरकोंमें घुस गये और जिन-जिन ब्रजवासियोंके बालक थे वे अपने-अपने घरों को चले गये ॥२१॥ उन बालकोंकी माता बांसुरियोंका शब्द सुनकर शीघ्रतासे उठ-उठकर अपने-अपने घरोंसे बाहर निकलकर बालकोंके हाथ पकड़-पकड़ कर हृदयसे लगाने

❋ शंका—भगवान्‌के अनेक अवतार हुए, परंतु किसी अवतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न नहीं हुआ। यह बात शास्त्र और पुराणोंके वक्ता और आचार्य लोगोंसे सुन रखी है, परंतु कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह क्यों उत्पन्न हुआ ?

उत्तर—ब्रह्माने नारदजीको मायामें ग्रस्त हुआ देखकर उनकी हँसीकी, तब नारदने शाप दिया कि हे पिताजी ! आपको भी माया मोहित करेगी, किसी दिन श्रीकृष्णको भोजन करते देखकर उनकी मायामें मोहित होओगे। हे पिताजी ! श्रीनारायणकी माया सर्वोपरि बलवान् है। इस नारदके शापसे कृष्णावतारमें ब्रह्माको मोह उत्पन्न हुआ।

लगीं।स्नेहसे स्तनोंमें दूध भर आया,वही अमृतके तुल्य स्वादवाला दूध परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्रको अपने पुत्रमानकर पिलाने लगीं॥२२॥फिर पीछे उबटन करके पीछे मज्जन(स्नान)कराकर चंदन केशर लगाकर गहने पहनाने लगीं, फिर मस्तकपर तिलक लगाकर भोजन कराया। इस प्रकार सब गोपी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ाती थीं और वृन्दावनविहारी अपने सुन्दर-सुन्दर चरित्र दिखाकर उनको आनन्द देते थे,उस समय खेलका नियम साधकर सन्ध्याकाल ब्रजमें आते थे ॥२३॥ इस प्रकार गोपियोंका मोह कहकर अब गौओंका मोह कहते हैंः-गायें दौड़-दौड़कर रम्भाय ब्रजमें आती हैं और अपने-अपने बछरोंको बुलाती हैं। जब बछरे आते हैं तब अपने-अपने बछरोंको प्रेमसे अयनमें सञ्चित हुए दूधको उन्हें पिलाती हैं, वारंवार हित मानकर उनको चाटती जाती हैं॥२४॥इस कृष्णचन्द्रमें सब गोप गोपियोंका मैत्री भाव पहलेके समान हो गया, परंतु पहले इतना हित नहीं था, अब पहलेसे अधिक स्नेह बढ़ गया। गाय गोपियोंमें भी श्रीकृष्णकी बाल भावना पहलेके समान रीति-प्रीति हो गई परंतु मैं इसका पुत्र हूँ और यह मेरी माता है यह मोह नहीं रहा॥२५॥ब्रजवासियोंकी अपने बालकोंमें स्नेह रूपी लता एक वर्ष तक धीरे-धीरे ऐसी बढ़ी कि जिसकी वृद्धिका पारावार नहीं, जैसे पहले देवकीनंदनमें बढ़ी थी ॥२६॥ इस प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् बछड़े और बालकोंके बहाने आपरूप बछड़ोंको आपरूप ग्वालोंको बनाकर बछरे चराकर वनमें ब्रजमें एक वर्ष तक क्रीड़ा करते रहे ॥२७॥ जबकि एक वर्ष पूरा होनेमें पांच-सात दिन शेष रह गये तब एक दिन भगवान् बलभद्र भैयाको संग लेकर वनमें बछड़े चरानेको गये थे,वहां बलभद्रजीको ऐसा कुछ देखनेमें आया ॥२८॥ बहुत दूर जो गायें गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर चर रही थीं उन्होंने ब्रजके निकट अपने बछड़ोंको चरता देखा ॥२९॥ बछड़ेको देखते ही प्रेमके वश हो अपने तनमनकी सब सुधि भूल गयीं और उनके थनोंसे दूध टपकने लगा, गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछ भी ध्यान नहीं किया और ऐसी भागीं मानो दोही पांवोंसे चल रही हैं, मुख और पूँछ ऊपरको उठाये बड़े वेगसे हुँकार शब्द करती बछरोंके समीप पहुँचीं॥३०॥यद्यपि उन गायोंके और छोटे-छोटे दूसरे बछरे भी थे तो भी वह गायें गोवर्द्धन पर्वतसे नीचे आकर इन बछरोंसे मिल, उन बछरोंको दूध पिलाने लगीं और ऐसे उनके शरीरको चाटने लगीं मानो निगल जायँगी ॥ ३१ ॥ अब गोपोंका मोह कहते हैंः-जब गोपोंने गायोंको घेरा और गायें नहीं घिरीं तब लज्जित हो अपने मन ही मनमें कहने लगे कि हम बानैत गोप कहलाते हैं, परन्तु आज हमसे गायें भी नहीं रुकीं। तब अपने मनमें बड़ा क्रोध करने लगे और उन कठिन-कठिन मार्गोंमें बड़ी कठिनतासे नीचे आये, तब बलदेवजीके संग बछरोंको लिए अपने पुत्रोंको देखा ॥ ३२ ॥ उनको देखते ही वह गोप अत्यन्त ही प्रेम-रसमें मग्न हो गये, इससे सब क्रोध शांत हुआ और प्रेम बढ़ गया, तब तो बालकोंको हाथ उठा-उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनके माथेको सूँघकर ब्रजवासी बड़े आनंन्दित हुए ॥ ३३॥ फिर पीछे वृद्ध-वृद्ध गोप बालकोंको हृदयसे लगाकर बड़े प्रसन्न हुए और महाकठिनतासे सहज-सहजमें बालकोंको छोड़कर बाहर निकले। बालकोंकी सुधिले उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ यद्यपि उन बालकोंने दूध पीना छोड़ दिया था और बड़े भी हो गये थे, तो भी उन बालकोंमें ब्रजवासियोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख और उसके कारणको न समझकर बलराम अपने मनमें विचार करने लगे ॥ ३५ ॥

कि सर्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर जैसा प्रेम प्रथम था वैसा ही अपूर्व प्रेम अब बालकोंपर भी बढ़ता जाता है और यही नहीं मेरे हृदयमें भी वत्स और बालकोंपर क्षण-क्षणमें अधिक प्रेमकी वृद्धि होती चली जाती है, यह बड़ी अद्भुत बात है, न जाने यह क्या कारण है ? ॥३६॥ यह क्या है, देवताओंकी माया है, वा मनुष्योंकी माया है अथवा राक्षसी माया है, मैं नहीं जान सकता कि यह कहांसे आयी और कैसी अलौकिक माया है?क्योंकि इसने मुझको भी मोहित कर लिया, इससे मुझको यह जान पड़ता है कि यह माया मेरे स्वामी श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्दकी हो तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि और दूसरेकी माया मेरे मनको मोहित नहीं कर सकती॥३७॥इस प्रकार शोच-विचार कर दाशार्हवंशोद्भव बलदेवजीने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे देखा तो सब बछड़े और बालक सर्वात्मा श्रीकृष्णरूपमें दिखाई दिये ॥ ३८ ॥ सब देवता ग्वालबाल बने हैं और ऋषि-मुनियोंने बछड़ोंका रूप धारण किया है, यह मैं जानता हूँ, परंतु यह बालक अब देवता नहीं है और यह बछड़े ऋषि भी नहीं हैं, अब तो मुझको सबमें श्रीकृष्ण दृष्टि आते हैं, जब यह भ्रम हुआ तो श्रीकृष्णने पूछा कि हे प्रभु ! इस भेदको कहो कि यह क्या है ? आप सम्पूर्ण भेद भिन्न-भिन्न समझाकर कहो जिससे मेरे मनका सन्देह दूर हो जाय ? जब इस प्रकार बलदेवजीने श्रीकृष्णसे कहा तब श्रीकृष्णने सब वृत्तान्त समझाकर कहा कि हे भैया ! तुमको आज सुधि हुई है जब ब्रह्माको मोह हुआ और बछड़े और बालकोंको चुराकर ले गया, तब मैंने बालक और बछड़ोंका वैसा ही रूप धारण कर लिया, और उनके कुटुंबियोंको क्लेश न होने दिया,। इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेसे बलदेवजीने सब भेद जान लिया ॥३९॥ देखो यहां तो एक वर्ष बीत गया, परन्तु ब्रह्माका एक पल ही बीता था, तब ब्रह्माने फिर आकर देखा तो पहलेकी नाई बछड़े और बालकोंको सङ्ग लिए श्रीवृन्दावनविहारी नये ढंगके खेल खेल रहे हैं ॥ ४० ॥ यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे कि गोकुलमें जितने बछड़े और बालक हैं वे सब मेरी मायारूपी शयनमें पड़े सो रहे हैं और अभी तक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर यह मेरी मायासे अलग जो ग्वालबाल और बछड़े चर रहे हैं और अनेक प्रकारसे विहार कर रहे हैं, ये यहां कैसे आगये ? जितने मैं हरकर ले गया हूँ उतने तो उस स्थानपर हैं, यहां वर्ष दिनसे भगवान्‌के सङ्ग जो विहार कर रहे हैं ये कौन हैं ? ॥ ४२ ॥ इस प्रकार मोहित हो ब्रह्माजी बहुत देरतक विचार करते रहे कि इनमें कौनसे बालक और बछड़े सत्य हैं और कौनसे असत्य हैं ? मैं जो हरकर ले गया वे सत्य हैं वा यह जो ब्रजविहारीके सङ्ग विहार कर रहे हैं ये सत्य हैं ? दोनों एकसे दिखाई देते हैं, क्या करूँ ? मैं किसी प्रकार इस भेदको नहीं जान सकता ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कभी वनमें, कभी ब्रह्मलोकमें एक वर्षतक चकईके समान ब्रह्मा दिन-रात घूमते फिरे ! देखो। इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वके मोह करनेवाले और मोहरहित विष्णुभगवान्‌को अपनी मायासे मोहित करना चाहते थे, परंतु आप ही मोहित हो गये॥४४॥जैसे अँधेरी रातमें कुहर अंधकारसे अपना पृथक् आवरण नहीं कर सकता, क्योंकि उसी अन्धकारमें आप भी लय हो जाता है, जैसे दिनमें खद्योत (पटबीजना) अपना प्रकाश पृथक् नहीं कर सकता, ऐसे ही ऐश्वर्यवान् पुरुषोंपर कोई साधारण पुरुष अपनी माया करना चाहे तो उस अधमकी माया उत्तम पुरुषका कुछ भी नहीं कर सकती, बरन् चलाने-वालेके ही सामर्थ्यका विनाश करती है ॥४५॥ देखो ब्रह्माके देखते ही देखते क्षणमात्रमें और

एक अद्भुत आश्चर्य हुआ कि सब बछरे और बालक मेघवत् श्यामवर्ण, पीताम्बर पहने ॥४६॥ चतुर्भुजरूप धारे, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा पद्म लिये, मस्तकपर किरीट, मुकुट धारण किये, कानोंमें कुण्डल विराजमान, कण्ठमें मोतियोंके हार और वनमाला पहने ॥४७॥ श्रीवत्सकी कांतिसे शोभायमान, भुजाओंमें भुजवंद पहने रत्नजटित शंखके समान तीन रेखावाले कङ्कण करमें धारण किये, नूपुर, कटक, कमरमें तगड़ी और मुंदरियोंके धारण करने से शोभायमान ॥ ४८ ॥ बड़े पुण्यवान् सज्जनोंसे समर्पण की हुई तुलसी नवीन और कोमल मालाओंसे शिरसे पावों तक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाके सदृश स्वच्छ मन्दहास्यसे मानो अपने दासोंको सत्त्वगुणसे पालन करते और अरुणाई युक्त कटाक्षभरी चितवनसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको मानो रजोगुणसे उत्पन्न करते विदित होते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्मा आदिसे लेकर तृणपर्यंत स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी मूर्तिमान् होकर एक-एक बछड़ेके सम्मुख नाच और गांन आदिक अनेक-अनेक प्रकारसे उनकी पूजा और शिष्टाचार करते थे ॥५१॥ और अणिमादिक अष्ट सिद्धि, मायासे लेकर महदादि विभूति, चौबीस तत्त्व चारों ओर देदीप्यमान थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वाभाव, संस्कार, काम, कर्म, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, यह रूप धारण कर प्रत्येककी सेवा करते थे। इन सबकी स्वतन्त्रता श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाके आगे नष्ट हो गयी थी ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानरूप आनन्दमात्र एकरस जो ब्रह्ममूर्तिवाले तथा जिनके चक्षु आत्मज्ञान है ऐसे महात्मा पुरुष भी जिनकी महिमाके माहात्म्यको नहीं जान सकते, ऐसा सबका रूप ब्रह्माजीने देखा ॥ ५४ ॥ उस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ समस्त बछड़े और बालकोंको परब्रह्ममय देखा, जिस पर ब्रह्मकी कांतिसे संपूर्ण स्थावर-जंगम और यह विश्व प्रकाशमान हो रहा है ॥ ५५ ॥ उसके पीछे फिर बड़े आश्चर्यसे ब्रह्माजीकी सब इंद्रियाँ शिथिल हो गयीं और उनके तेजसे ब्रह्माजी चुप हो गये, जैसे ग्रामकी रक्षा करनेवाली पुतलोंके आगे चार मुखकी सुवर्णकी प्रतिमा खड़ी हो इस प्रकार खड़ा हुआ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कनारहित स्वप्रकाश सुखनिधान प्रकृतिसे परे और ब्रह्मसे पृथक् वस्तुसे मिथ्या जिनका ज्ञान प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदोंसे हो सकता है उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर यह क्या है ? ऐसे सोचते हुए ब्रह्माजी मोहित हो गये और उनकी अवलोकन करनेकी शक्ति भी जाती रही। तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्माजीकी सब दशा देखकर मायाका आवरण उनके हृदयसे दूर कर दिया ॥ ५७ ॥ तब तो ब्रह्माजीकी सब इंद्रियाँ चैतन्य हो गयीं जैसे मृतक पुरुष जी उठे हैं ऐसे बड़े कष्टसे नेत्रोंको खोलकर अपने आत्मासहित ब्रह्माजीने जगतको देखा ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखा तो सम्मुख ही चारों ओर प्रिय पदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके लिये वृक्षोंसे भरापुरा वृन्दावन है ॥ ५९ ॥ जिस वृन्दावनमें स्वाभाविक वैर करनेवाले सिंह, मृग और मनुष्य परस्पर परममित्रके समान रहते हैं ! श्रीवृन्दावनविहारीके सङ्ग रहनेसे सब प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूर हो गयी है॥६०॥ उस वृन्दावनमें गोपालवंशके बालकपनका आचरण करनेवाले अनन्त अगाध ज्ञानस्वरूप बछड़े और ग्वालबालोंको पहलेके समान ढूँढ़ते-फिरते थे और हाथमें दही भातका ग्रास लिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र मुरलीमनोहरका दर्शन ब्रह्माको हुआ ॥ ६१ ॥ इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको देख उसी समय ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपरसे

नीचे उतर कांचनके दण्डके तुल्य अपनी देहसे साष्टांग कर चारों मुकुटोंका अग्रभाग चरणारविन्दोंसे लगा दण्डवत् कर आनन्दरूप आंसुओंके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक करने लगे ॥ ६२ ॥ प्रथम जो भगवान्‌की अद्भुत महिमा देखी थी उसको वारंवार स्मरण कर करके श्रीगोविंद भगवान्‌के चरणारविन्दोंपरसे उठ और फिर गिर पड़े इस प्रकार बड़ी देर तक ब्रह्मा पाओंमें पड़े रहे ॥ ६३ ॥ फिर पीछे सहज-सहजमें उठ आंसू पोंछ, भगवान्‌की ओर निहार, लज्जाके कारण नीचेको गर्दन कर, हाथ जोड़, शरीर कम्पायमान, मुखसे कुछ-कुछ अक्षर निकले इस प्रकार गद्गद वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करने लगे कि हे नाथ ! ॥ ६४ ॥

दोहा—मैं अपराधी हीनमति, परो मोहके जाल ।
मम कृत दोष न मानिये, हे प्रभु दीनदयाल ॥

कवित्त—यदुकुल कमल दिवाकर क्षमाके खान, देव द्विज गऊ साधु उदधिमयंक जे। परमप्रचण्ड जो पखण्ड सो अखण्ड तरु, दोरदण्ड परशुविखण्डन निशंक जे ॥ छिति छल छन्दनके छयके करनहार, भूमिके हरन भार खलगण बंक जे । कोटिन कलप मेरे कोटिन प्रणाम तुम्हें, भानु आदि देवनते बन्द अकलङ्क जे ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम—शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे ब्रह्ममोहनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा—चौदहमें हरिके चरित, अद्भुत अलख लखाय ।
हरि अस्तुति अज ज्यों करी,कहौं कथा सो गाय ॥

ब्रह्माजी बोले कि हे स्तुति करने योग्य ! श्यामघटाके समान तुम्हारा शरीर; बिजली सम पीतांबर धारण किये, गुञ्जाओंके कर्णभूषण, मयूरपिच्छके मुकुटसे शोभायमान मस्तक, कण्ठमें वनमाला पहने, दही भातका ग्रास, बेतकी छड़ी, शृङ्ग बासुरीके चिह्नोंसे सुशोभित अतिसुन्दर कोमल चरणारविंदोंसे विचरते हो, हे गोपाल नन्दलाल ! आपको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ हे देव सच्चिदानन्द ! मेरे ऊपर कृपा करनेवाली और भक्तोंकी इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली पञ्चभूतरहित यह आपकी मनोहर मूर्ति शुद्ध सत्त्वयुक्त है, इस आपके अवतारकी महिमाको मैं (ब्रह्मा) क्या, किसीमें भी जाननेकी सामर्थ्य नहीं है। आप जो साक्षात् आत्मसुखके अनुभवरूप अवतारधारी हो, तुम्हारी महिमाको समाधि लगाकर भी कौन जान सकता है ? अथवा पञ्चभूतमय विराट्‌रूपकी महिमा जाननेको कोई समर्थ नहीं हो सकता, मेरे ऊपर आपने अनुग्रह करके दर्शन दिया ॥ २ ॥ हे अजित ! आप किसीके जीतनेमें नहीं आते, परन्तु जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेके परिश्रमको त्यागकर महात्मा पुरुषोंके मुखसे निकली हुई आपकी कथाको श्रवणद्वारा पान करके अपने घर बैठे-बैठे मनसे, वाणीसे, देहसे आपका अर्चन वन्दन करके जीते हैं उन लोगोंको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत सकता और वे लोग आपको अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! भुक्ति-मुक्ति देनेवाली आपकी भक्तिको त्यागकर जो लोग केवल ब्रह्मज्ञानी होनेके लिये अधिक क्लेश और खेद करते हैं उन लोगोंको केवल

क्लेश और खेद ही शेष रह जाता है कुछ नहीं मिलता। जैसे जो मनुष्य थोथे तुषोंको कूटता है, उसको दुःखके सिवाय अन्न किसी प्रकार नहीं मिल सकता ॥ ४ ॥ हे व्यापक ! हे भूमन् ! इस संसारमें पहले बहुतसे योगीश्वरोंको जब योगसे ज्ञान नहीं मिलता तो अपनी सब क्रिया और कर्म आपको समर्पण करनेसे और कथा सुननेसे भक्तिको प्राप्त हो उससे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कर फिर अनायास ही आपके पदको प्राप्त हुए ॥५॥ हे परिच्छेद-रहित! इस प्रकार आपके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका ज्ञान होना कठिन है और भक्तिसे ही आप जाननेमें आते हैं, तो भी निर्मल अन्तःकरणवाले जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष अपने अन्तःकरणके साक्षात्कारसे, निर्विकारतासे, अरूपतासे, एवं अनन्यबोधसे कुछ-कुछ आपकी महिमाको जान सकते हैं, परंतु और किसी प्रकारसे आप जाननेमें नहीं आते ॥६॥ हे गुणात्मन् ! आप गुणोंके आधार हो, इस विश्वका मंगल करनेके लिए आपने इस संसारमें अवतार लिया है ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणोंके तुम साक्षी हो,आपके इतने गुण हैं, जिसके गिननेके लिए कौन पुरुष सामर्थ्यवान् हो सकता है ? कोई चतुर बहुत दिनोंमें बहुतसे जन्म धारण करके पृथ्वीकी रेणुकी गिनती कर ले, आकाशके हिमकणकी गिनती कर ले और स्वर्गके नक्षत्रादि किरणोंके परमाणुओंको भी गिन सकता है, परंतु आपके गुणोंका पार कोई किसी प्रकार नहीं पा सकता ॥ ७ ॥ बहुतेरे भक्त जगत्में ऐसे भी हैं, और रात-दिन यही कहते रहते हैं, आप किस समय कृपा करेंगे ? इसकी बाट देखते-देखते आसक्तिसहित हो अपने किये कर्मफल दुःख-सुखको सहते हुए शरीर, मन, वाणीसे जो पुरुष आपको प्रणाम करते हैं, वे प्राणी भी मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं ॥८॥ हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखो कि आप जो समस्त मायावियोंके मोहित करनेवाले अनंतरूप परमात्मा हो आपपर भी मैंने अपनी माया फैलाकर अपना वैभव दिखाने की इच्छा की, इससे क्या हो सकता है, जैसे अग्निके सामने स्फुलिङ्ग (चिनगारी) तुच्छ है, अर्थात् कुछ नहीं कर सकता है, ऐसे ही आपके सम्मुख मैं तुच्छ हूँ, कुछ नहीं कर सकता॥९॥हे अच्युत ! हे अखण्डरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूपको नहीं जाना। आपसे भिन्न ही भगवान्को जाना, मैं अजन्मा जगत्का कर्ता हूँ इस अभिमानसे अन्धा हो रहा हूँ, आप मेरे स्वामी हो,मुझे अपना दास जानकर कृपा करिये, क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूँ, आप मुझको ब्रह्माण्डका नाथ कहो तो हे भगवन् ! माया,महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन,अग्नि,जल और पृथ्वीसे बने ब्रह्माण्डमें सात विलादिकी देहवाला मैं कहां और आपके रोमकूपरूप झरोखोंमेंसे ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डरूप परमाणु घूमते फिरते हैं, ऐसी आपकी अद्भुत महिमा कहां ? मुझमें और आपमें बड़ा अन्तर है, इसलिए मुझको अत्यन्त तुच्छ जानकर मुझपर अनुग्रह कीजिये और यह भी समझना चाहिये कि यह ब्रह्मा यद्यपि लोकोंका अधिष्ठाता है तो भी हमारा अनुचर ही है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! (इन्द्रियोंसे जाननेमें न आये) जो अनजान बालक अपनी माताकी गोदमें बैठकर पांव उछाले अथवा लात मारे तो क्या माता उसको अपराधी माने "कोई कहे ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता कैसे कहा ? ब्रह्माने श्रीकृष्णको माता इस प्रकार कहा है" कि स्थूल सूक्ष्म कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें विद्यमान है, जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता। जब सब विश्व आपके उदरमें ठहरा तो विश्वमें रहनेसे मैं भी आपके उदरमें हुआ, इसलिये मुझे अपना पुत्र समझकर मेरा अपराध क्षमा करो ॥१२॥ हे नारायण ! प्रलयकालमें जब भूर्लोक,

भुवर्लोक, स्वर्लोक इन तीनों लोकोंका नाश हो जाता है तब चारों ओरसे समुद्रका जल उमड़ आता है, और उस जलके भीतर नारायणकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न होता है, उस कमलनालसे ब्रह्मा उत्पन्न होता है, क्या यह बात झूँठ है ? क्या यह देववाणी नहीं है ? क्या मैं आपसे उत्पन्न नही हूँ ? या तो कह दो यह बात झूँठ है और जो कहो कि झूँठ नहीं है तो मैं आपका पुत्र ही हूँ तो मेरा अपराध सब प्रकारसे क्षमा करना चाहिये, क्योंकि चौपाई–"बड़े दया छोटनपर करहीं। गिरि निज शिरन सदा तृण धरहीं" ॥१३॥ क्या तुम नारायण नहीं हो!नहीं तुम नारायण हो और तुमही संपूर्ण देहधारियोंके आत्मा हो!हे अधीश! सबके प्रेरणा करनेवाले समस्त लोकोंको साक्षात् देखते हो। नार जो जीवसमूह और जल जो आपका अयन (वास, आश्रय) है, इसलिए 'नारायण' नाम आपका प्रसिद्ध है, वह आपकी मूर्ति है और जो विचार करकेदेखिये तो यह भी सत्य नहीं है,क्योंकि मुझको सब मायारूप ही जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ हे जगदीश्वर ! जगत्का आश्रयभूत आपका रूप जलके भीतर सत्य है तो जिस समय मैंने कमलनालके भीतर पैठकर सौ (१००) वर्षतक आपको ढूँढ़ा तब आप क्यों नहीं दिखाई दिये और हृदयमें भी क्यों नहीं प्रकट हुए ? फिर तप करनेसे तुरन्त ही क्यों आपका रूप दिखायी दिया !इसलिए यह सब आपकी माया ही है, तुम्हारी मूर्तिमें किसी देशकालका परिच्छेद नहीं बन सकता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनेवाले ! बाहर-भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनेवाले ! यदि यह जलादि प्रपञ्च तुमसे पृथक् हो तो इससे तुम्हारा परिच्छेद होना सम्भव है, परंतु यह मायासे उत्पन्न है, यह बात आपने इस अवतारमें यशोदा मैयाको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दिखाकर प्रत्यक्ष कर दिया, इससे यह प्रपञ्च मायाका ही किया हुआ है ॥१६॥ जिस प्रकार आपके उदरके भीतर आप समेत यह विश्व प्रकाशमान है वैसा ही बाहर प्रकाशमान है और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके बिना ही बन सकता है। जो बाहरके जगत्का तुममें प्रतिबिंब पड़े तो वह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिए और यदि आपको दर्पणस्थानमें माना जाय तो आपका दर्शन उसमें नहीं होना चाहिए इस कारण यह सब माया ही है ॥ १७ ॥ केवल आपके बिना यह सब संसार मायारूप है, क्या यह माया ही दिखायी है ? क्योंकि प्रथम आप अकेले थे, पीछे सम्पूर्ण ब्रजके बछड़े और ग्वालरूप हो गये, फिर कुछ कालोपरान्त सबके सब चतुर्भुज रूप हो गये, फिर एक-एक रूपके आगे मैं (ब्रह्मा), शिव, इन्द्र सहस्त्रों दृष्टि आये और एक-एकने एक रूपकी स्तुति की, फिर आप ब्रह्मरूप हो गये, फिर पीछे प्रणाम करनेमें भी नहीं आये, इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्मरूप अवशेष रह गये ॥१८॥ सर्वव्यापक आपके स्वरूपको मायामें स्थित हुए जो प्राणी नहीं जानते हैं,उन पुरुषोंके ऊपर मायाको फैलाकर स्वतंत्रतासे आप प्रकाशते हो, जगत्के उत्पन्न करनेके समय ब्रह्माका रूप धारण कर लेते हो, पालनेके समय विष्णुरूप धारण कर लेते हो और संहारके समय तीन नेत्रवाले रुद्ररूप बन जाते हो ॥ १९ ॥ हे ईश ! हे प्रभु ! हे जन्मरहित विधाता ! देवता, ऋषीश्वर, मनुष्य, पशु, पक्षी और जलके जीवोंमें आप साधु लोगोंपर कृपा करनेके लिए और दुष्टोंके अभिमान हरनेके लिये जन्म लेते हो ॥२०॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे योगेश्वर ! आप जब अपनी योगमायाका विस्तार करके जिस समय विहार करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेवाला है ! कि कहां हैं; कैसी हैं, कौन हैं और कितनी हैं ? ॥ २१ ॥ इसलिए यह मिथ्या स्वरूप

स्वप्नके समान प्रकाशमान दुःखरूप यह सब संसार केवल आपके नित्य सुख चैतन्यमय अनन्तस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होनेके कारण नित्यसुख और चैतन्यस्वरूपके समान भासता है, परन्तु वास्तवमें असत्स्वरूप,स्वप्नतुल्य, प्रतिभासे रहित, कष्टसे भी अधिक कष्टरूप अर्थात् कष्टमय ही है ॥ २२ ॥ केवल सत्यस्वरूप तो एक आप ही हो, क्योंकि आत्मा हो,आत्मा दृश्य नहीं इसलिये जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, जहांतक मन जाता है,वह सब माया है। आपमें कोई विकार नहीं इसलिये सत्यस्वरूप हो, आप सबके कारणस्वरूप हो,सबमें व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो,तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुखस्वरूप हो, अक्षर हो, अमृत हो,इसलिये आपका कभी विनाश नहीं होता,तुम अनन्त और अद्वैत हो इसलिये आपके देश कालका परिच्छेद नहीं, आप स्वयंप्रकाश,उपाधिरहित,असङ्ग हो, इसलिये ज्ञानके साधनसे आपकी प्राप्ति नहीं होती, आप निरञ्जन हो इसलिये आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कार भी नहीं है,आप नित्यमुक्तरूप हो, अमृत हो ॥२३॥ इसलिये आप सदा आत्मारूप हो और समस्त जीवोंके आत्मा हो जिन पुरुषोंने सूर्यरूप गुरुसे उपनिषदके ज्ञानरूप नेत्र प्राप्त किये हैं वे महात्मा आत्मासे ही आपका दर्शन करके संसारसागरके पार हो जाते हैं ॥२४॥ जबतक प्राणी आपके आत्मस्वरूपको आत्मरूप नहीं जानते तबतक उनको अज्ञानसे यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रकट भासता रहता है और वही प्रपञ्च आत्मरूपके जाननेसे लय हो जाता है। जब तक अज्ञान है तबतक रज्जुमें सर्परूप भासता है,जब ज्ञान हो जाता है,तब रज्जु,रज्जु ही जाननेमें आती है। अज्ञानसे रज्जुमें सर्प जानना अध्यास है और ज्ञानसे रज्जु ही जानना अपवाद है॥२५॥संसारमें बन्धन और मोक्ष केवल अज्ञानसे है,सत्य ज्ञानरूप आत्मासे भिन्न नहीं है। निरंतर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आप ही हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बंधन कुछ भी नहीं है,जैसे सूर्यके सम्मुख रात-दिन नहीं है,अर्थात् सदा प्रकाश ही रहता है ॥२६॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानकर और देहादिकको आत्मा मानकर यहीं खोये हुए आत्मरूपी पदार्थको देखो! बाहर खोजना यह मूर्खोंकी कैसी मूर्खता है,क्योंकि घरकी खोयी हुई वस्तु कोई वनमें खोजने नहीं जाता ॥२७॥ विना जाने झूंठ भी ❋ सत्यके ही समान विदित होता है।

❋ इस बातपर एक दृष्टान्त है–किसी राजाके यहां एक कुपठ (बेपढ़ा) पुरोहित था। परंतु बोलचालमें महाधूर्त और पाखंडी था। उसने राजाको "शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये" इस श्लोकका अर्थ दही बड़ेके बतला रखा था कि जो सफेद दही उसमें लिपटा है वह शुक्ल वस्त्र है और वेष्टीति विष्णु विशेष लिपटा होनेसे विष्णु है,गोल-गोल गोल चन्द्रमाके समान मुख है और चतुर्भुज अर्थात् चतुर पुरुषोंके भोजन योग्य है, ध्यान करते ही प्रसन्न मुख हो जाता है और भोजन करनेसे सब विघ्न शांत हो जाते हैं। राजाने इस श्लोकका यह अर्थ सत्य समझकर और उसको महात्मा जानकर उसका बड़ा आदर–सम्मान करता था। जो विद्वान् आता था, राजा उसीसे इस श्लोकका अर्थ पूछते थे। सब पंडित लोग विष्णु भगवान्का ही अर्थ करें, राजा कहे, यह अर्थ इस श्लोकका नहीं है। इसी प्रकार अनेक पंडितोंका तिरस्कार होता था, तब एक पंडित आये और उन्होंने रुपयेका अर्थ किया, कि देखो। यह रुपया श्वेतवर्ण है और चार चौवन्नी जो है वही चार भुजा हैं देखते ही मुख प्रसन्न हो जाता है, सब विघ्नोंका शांत करनेवाला है। इस अर्थको सुनकर राजाने कहा और पंडितोंसे तुम अच्छे हो, दशांश पारितोषिकके योग्य हो, परंतु सत्य अर्थ इसका आप भी नहीं जानते। एक महात्मा पंडितने विचारा कि यह राजा किसी मूर्खका बहँकाया हुआ है और यह राजा भी मूर्ख है। यह महात्मा पंडित राजाके पुरोहितके घर जाने लगे और उनसे बड़ी मित्रता कर ली और मिसरानीको भी एक बड़ी चिकनपटकी तोयल बना दी और आभूषण भी अनेक-अनेक प्रकारके दिये और अत्यन्त प्रेमसे उनकी सेवा करने लगे और दिन-रात माता ही माता कहते मुख सूखे। एक दिन उस ब्राह्मणीने कहा कि इतने दिनोंसे तू हमारे यहां रहता है, तूने कुछ अपना अभिप्राय नहीं कहा कि क्या मनोरथ है? ब्राह्मण बोला कि हे माता! मेरा तो नाम न लेना परंतु (शुक्लाम्बर) इस श्लोकका अर्थ अपने पतिसे पूछकर बता दो तो बहुत अच्छा है। वह बोली आज ही

हे अनन्त ! ज्ञानी पुरुष तो इस देहमें ही आपको खोजते हैं; "यहां भी आत्मा नहीं, यह भी आत्मा नहीं" ऐसे जड़ पदार्थोंका त्याग करते हैं, क्योंकि अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं भी है, परन्तु उनका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेका ज्ञान नहीं होता; सर्पके निषेध होनेके उपरांत रज्जु जाननेमें आती है ॥२८॥ हे देव ! जब ज्ञानसे ही मुक्ति हो जाती है तो मुक्तिकी क्यों बड़ाई की ? ब्रह्मा कहते हैं कि यद्यपि ज्ञान प्राप्त होना बहुत सुगम है तो भी आपके चरणारविंदोंके प्रसादकी कणिकाके कणिकाका अनुग्रह जिसपर हो गया वही तुम्हारी महिमाके स्वरूपको जानता है और जिसपर तुम्हारे चरणारविंदोंकी कृपा ही नहीं है वह चाहे कितना ही विचार किया करे और वर्षोंतक ढूँढ़ा करे तो भी आपकी महिमाको नहीं जान सकता । शुद्ध भक्तिसे ही आपकी महिमा जानी जाती है❋॥२९॥ हे नाथ ! इस ब्रह्माके जन्ममें; अथवा और कोई जन्म हो उसमें अथवा पशुपक्षियोंमें जन्म हो तो मैं अपना बड़ा भार मानूँगा, जब तुम्हारे ब्रजवासियोंमेंसे किसीके चरणारविंदकी सेवा करूंगा ॥ ३० ॥ देवताके जन्मसे अथवा और किसीके जन्मसे जिसमें आपकी भक्ति हो वही जन्म श्रेष्ठ है । इस प्रकार उत्कण्ठापूर्वक सात श्लोकसे स्तुति करते हैं:—अहो आश्चर्य ! ब्रजकी गाय गोपी धन्य हैं । हे प्रभो ! जिन गौ-गोपियोंके स्तनोंका दूधरूप अमृत बाल बछड़े बन आपने आनन्दसे पेट भरकर पिया, आपकी तृप्तिके लिये अबतक यज्ञ भी पूर्ण नहीं हुए, क्या यज्ञोंमें आपका पेट नहीं भरता है ? भगवान्के सखाओंकी महिमा किसीके कहनेमें और जाननेमें नहीं आती ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि नंदरायजी व ब्रजवासियोंका आश्चर्यरूप अहोभाग्य है ! परमानंद पूर्ण ब्रह्म सनातन जिनं

—लो, जैसे पुरोहितजी घर आये उसी समय पूछा कि हे स्वामिन् ! "शुक्लाम्बर" इस श्लोकका क्या अर्थ है? परंतु पुरोहितने बहुतेरी तीन-पांच की, "नारि विवश नर सकल गुसाईं । नाचहिं नट मर्कटकी नाईं" मिसरानीने एक न मानी निदान बताना ही पड़ा । मिसरानीने अगले दिन उन महात्माजीको बता दिया । महात्माजी अच्छे वस्त्र पहन, कांखमें पोथी दबा राजाको सभामें गये और बड़ी धूमधामके साथ राजाको उस श्लोकका वही दही बड़ेवाला अर्थ सुनाया । राजा सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम बड़े विद्वान् हो, हमारे पास रहा करो, और बहुत कुछ धन भी उसको दिया । पुरोहितजी इस बातको सुनकर शून्य हो गये और मनमें कहने लगे कि परमेश्वरने आज हमारी आजीविका यहांसे बन्द कर दी और महात्माजीने कहा यह राजा मूर्ख है और मूर्खके समीप रहना किसी प्रकार अच्छा नहीं, या तो इसको पढ़ाना चाहिये और जो वह न पढ़े तो यहांसे सिधारना अच्छा है । पंडितजीने राजासे कहा आप कुछ पढ़ा करें तो अच्छा है, राजाने स्वीकार किया और पंडितजीने राजाको पढ़ाना आरंभ किया । व्याकरणके पढ़नेसे राजाको पदपदार्थका बोध हो गया तो एक दिन उस श्लोकको विचारने लगे तो कहीं भी वही बड़ेका अर्थ न पाया । तब राजा चकित हो पंडितजी और पुरोहितको बुला भेजा और आते ही राजाने उससे क्रोध करके कहा कि, पुरोहितजी ! तुमने मुझे बड़ा धोका दिया, बताओ इसमें वही बड़ेका अर्थ कहां है ? पुरोहितजीके तो छक्के छूट गये । पंडितजीने कहा मैंने ही क्या सब ही पंडितोंने यह शुद्ध अर्थ किया था, तब आपने क्यों न माना ? तब राजा बोला उस समय मैं अज्ञानी था । पंडितजी बोले विना पढ़े यह ज्ञान कभी नहीं होता अब ज्ञान होनेसे आप समझे । ऐसे ही ये प्राणी मायाके वशमें हो उलटा ही समझते हैं ॥

❋ यहां एक दृष्टान्त है—एक राजाने अपने मंत्रीसे कहा कोई ऐसी औषधी भी है कि जिसके खानेसे परमेश्वरका दर्शन हो जाय । मंत्रीने कहा—हमारे दादा परदेशसे साढ़े तीन लाख रुपये देकर एक ऐसी पुड़िया लाये हैं, वह घर पर है । राजा बोला—मुझको ला दो, मैं खाऊंगा । मंत्रीने अपने घर आकर चूल्हेकी राखकी पुड़िया बांध लाये और राजासे कहा—इलायची, वंशलोचन इसमें मिलाकर शहदमें चाटो, परंतु इसका पथ्य अवश्य करना और जो पथ्य न करोगे तो औषधि क्या गुण करेगी ? विना पथ्य साढ़े तीन लाख रुपयोंकी औषधी वृथा जायगी । विचार देखो जो रोगी पथ्यको करे तो रोगको जीत लेता है, और कुपथ्य करे तो रोग औषधिको जीत लेता है, इससे पथ्यकी पुड़िया खाओ तो मनमें झूंठ मत लाना और झूंठ मनमें लाओगे तो परमेश्वरका दर्शन न होगा । यह कह मंत्री तो अपने घरको चले गये और प्रातः काल होते ही राजाने पुड़िया खायी तो औषधि मनमें झूंठ जान पड़ी, औषधि धर चित्तको सावधान कर दो घड़ी पीछे फिर वह औषधि खायी । वह फिर झूंठी समझ पड़ी तब तो औषधि रख दी । ऐसे ही शोच विचारमें तीन पहर बीत गये, कहा अब कल खायेंगे । सन्ध्याको मंत्री आया उसने पूछा औषधि खायी कि नहीं खायी ? राजा बोला झूंठ तो मनसे हटता नहीं खायें कैसे । मंत्री बोला कि यही उपाय भगवान्के मिलनेका है जो मनसे सब दुर्वासना निकल गयी और मन शुद्ध हो गया, तब भगवान्का दर्शन हो गया और तनक भी अन्तर रह गया तो भगवान् नहीं मिलते ।

व्रजवासियोंका सर्वदा मित्र हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ उन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कहनेको किसका सामर्थ्य है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता यज्ञ देवता, महादेव, बुद्धिके अधिष्ठाता, मैं (ब्रह्मा) ऐसे ग्यारह देवता महादेव आदिसे लेकर हम सब बड़ भागी हैं। सब व्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंसे आपके चरणारविंदका मकरन्द अमृतके तुल्य मधुर पीते हैं, जिस समय व्रजवासी तुम्हारा दर्शन नेत्रोंसे करते हैं, उस समय नेत्रोंका अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ हो जाता है और कानोंसे तुम्हारी बात सुनते हैं तब कानोंके देवता दिशा कृतार्थ हो जाती हैं, नाकसे तुम्हारा प्रसाद तुलसीपत्र सूँघते हैं तब नासिकाके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ हो जाते हैं, जब हाथोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं तब हाथोंके देवता कृतार्थ हो जाते हैं, इसी प्रकार सब इंद्रियोंके सेवनसे सब देवता कृतार्थ हो जाते हैं,सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवा करनेवाले व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा कैसे कही जाय ? ॥ ३३ ॥ इस लोकमें कदाचित् मेरा जन्म हो तो वृन्दावनमें हो, उसपर भी गोकुलमें, यह मैं नहीं कहता मनुष्य योनिमें ही, चाहे जिस योनिमें हो, परन्तु गोकुलमें हो तो मैं पूर्ण भाग्यशाली हो जाऊँ और मेरे धन्य भाग हो जायँ ? तब श्रीकृष्ण बोले हे ब्रह्माजी ! सत्यलोकको छोड़कर यहां जन्म लेनेसे तुमको क्या लाभ होगा ? तब ब्रह्मा बोले–जिस जन्ममें व्रजवासियोंके चरणारविंदकी रज मेरे मस्तकपर पड़ेगी वही मुझको परम लाभ होगा, तब श्रीकृष्ण बोले कि व्रजवासी लोग क्यों धन्य हैं ? तब ब्रह्मा बोले कि इन व्रजवासियोंका पूर्ण जीवन व्रज है, क्योंकि जहां श्रीमुकुन्दपरायण हैं, जिनके चरणारविंदकी रजको नित्यप्रति देव खोजते हैं, उस वृन्दावनकी रजका मिलना अहोभाग्य है ॥३४॥ इन व्रजवासियोंकी कृतार्थताका क्या वर्णन करूँ ? जिनकी भक्तिसे तुम भी ऋणीसे हो रहे हो । तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे–मैं किस वस्तुके देनेमें असमर्थ हूँ जो ऋणी रहूँ ! तब ब्रह्माजी बोले कि हे देव ! जगत्में विराजमान समस्त फलस्वरूप तुम हो, इसलिए और फल व्रजवासियोंको क्या दोगे ? यह जब विचार करता हूँ तब मेरा मन मोहित हो जाता है।तब श्रीकृष्णजी बोले–मैं अपने आपका ऋणी हो जाऊँगा?तब ब्रह्माजी बोले कि नहीं माताका स्वरूप धरकर पापिनी पूतना आयी थी उसको आपने अपना सर्वस्व दिया । तब श्रीकृष्ण बोले-व्रजवासियोंको परिवारसहित सर्वस्व और अपना धाम दूँगा । तब ब्रह्माजी बोले कि पूतनाका कुटुम्ब अघासुर बकासुरको आपने मुक्त कर दिया । तब श्रीकृष्ण बोले कि मेरे पास तो यही पदार्थ देनेको है । तब ब्रह्माजी बोले कि, जिन व्रजवासियोंने धाम, धन, सुहृद्, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अंतःकरण आपमें समर्पण कर रखे हैं, फिर ऐसे व्रजवासियों और वैरियोंको क्या बराबर ही रखोगे ? आप परमेश्वर हैं तो क्या है ? परंतु आपके यहां न्याय नहीं, कहां बपुरी पूतना और कहां परमहितकारी व्रजवासी ? आपको अपने ही मनमें न्याय करना चाहिए ॥३५॥ हे कृष्ण! जबतक रागादिक चोर इस शरीरमें उपस्थित हैं,तबतक घर कारागार (बन्दीखाना)रूप है, मोह भी तबतक ही पाँओंकी बेड़ी है जबतक प्राणी तुम्हारे चरणारविंदकी शरण नहीं आता । आपकी शरण लिए पीछे रागादिक जो चोर हैं वे भी चोरसे साहु हो जाते हैं, और जो घर हैं वे भी सुन्दर मंदिर हो जाते हैं और सम्पूर्ण मोह दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! तुम संसाररहित हो, तो भी संसारमें शरणागत भक्तोंको आनन्द देनेके लिए संसारमें वारंवार अवतार धारण करते हो ॥ ३७ ॥

हे नाथ ! हे प्रभो ! जो पुरुष आपको जानते हैं वह जानते होंगे, परंतु मैं बहुत क्या कहूँ ? मनसे, वचनसे, देहसे आपका वैभव मेरे जाननेमें किसी प्रकारसे नहीं आ सकता ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! अब मुझपर अनुग्रह करके मुझको सत्यलोकके जाननेकी आज्ञा दीजिये, आप सब जानते हो, अर्थात् अपनी अपार महिमा, मेरा ज्ञान, बल, पराक्रम देखनेवाले हो, आप ही इस जगत्के अधिष्ठाता हो, मैंने ऐसा ब्रह्मापना छोड़ा, यह जगत् आपकी ही भेंट है ॥३९॥ हे कृष्ण ! यदुकुलकमलपर स्नेह करनेवाले (दिवाकरके सदृश), इसमें सूर्यकी उपमा दी है। हे पृथ्वीके देवता ! ब्राह्मण, पशु, समुद्र इनकी वृद्धि करनेवाले हो, (सुधाकरके समान) इसमें चन्द्रमाकी उपमा दी है। पाखण्डरूप अन्धकारके विनाश करनेवाले, इसमें सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आयी, पृथ्वीपर कंसादिक राक्षसोंके मारनेवाले, इसमें फिर सूर्यकी उपमा आयी, हे सूर्य ! हे अर्हन् ! सबके पूज्य भगवन् ! अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत् है और नमस्कार है॥४०॥इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्!इस प्रकार सर्वव्यापक श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति कर,कल्पपर्यंत तीन प्रदक्षिण दे चरणारविन्दोंको नमस्कार कर, जगत्के विधाता ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोकको चले गये ॥४१॥ तब पीछे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार बछड़े और बालकोंको ले आये। प्रथमके समान ग्वालमण्डलीको उसी यमुनाकी रेतीमें ले आये जहां पहले बैठे भोजन कर रहे थे और इस भेदको किसीने न जाना। यह बात सुनकर राजा परीक्षित्ने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि इतने दिनतक बालक कैसे यमुनाके किनारे पर बैठे रहे और भोजन-पान कुछ न किया ? ॥४२॥ हे राजन् ! जब अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष बीत गया, तो भी भगवान्की मायासे मोहित हुए, उन बालकोंको वह समय आधे पलके समान जान पड़ा ॥ ४३ ॥ भगवान्की मायासे मोहित चित्तवाला पुरुष इस संसारमें क्या-क्या नहीं भूल सकता ? सम्पूर्ण जगत् भगवत्की मायासे मोहित होकर बारम्बार अपने आत्माको भूल रहा है ॥४४॥ सब ग्वालबालोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि भैया ! तुम तो बहुत शीघ्र आये, हमने तो तुम विना एक ग्रास भी अभी नहीं खाया, अब जाओ पहले शीघ्रतासे भोजन कर लो ॥४५॥ सब इन्द्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् बालकोंकी बात सुनकर हँसे और बालकोंके सङ्ग भोजन करके मार्गमें जो सूखा हुआ अघासुरका देह पड़ा था उसको दिखाते वनसे लौटकर ब्रजमें आये॥४६॥

सवैया

मोरपंखनके वनफूलनके शिर, मौर महाछबि छावत हैं।
बहु धातुन रंगते रंगित अङ्ग, हिये वनमाल सुहावत हैं॥
लकुटी करमें कटिमें कसिशृङ्ग, मनोहर वेणु बजावत हैं।
कहि नाम बुलावत हैं बछरा, नँदनंदन यों ब्रज आवत हैं॥

दोहा—गावहिं मधुरे स्वर सखा, हरि चरित्र सुखखान।
जहँ तहँ ठाढ़ी देखती, व्रजवनिता सुख मान ॥ ४७ ॥

वनसे आकर सब बालक अपनी माताओंसे कहने लगे कि आज यशोदानंदनने वनमें एक बड़ा भारी सर्प मारा और उससे हमारी रक्षाकी ॥४८॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंका इतना प्रेम श्रीकृष्णमें कैसे हुआ ? जो कि पराया पुत्र या अपने

पुत्रोंमें इतना प्रेम पहले नहीं था, यह बात मुझको समझाकर कहो॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्णका नाम सर्वात्मा है, इसलिये श्रीकृष्ण सब प्राणियोंके साक्षात् आत्मा ठहरे, फिर सब प्राणियोंको अपना आत्मा ही परमप्रिय है, इसलिये श्रीकृष्णमें सन्तानसे बढ़कर अधिक प्रेम था। स्त्री, पुत्र, धन आदिक और जो पदार्थ हैं वह सब आत्माके ही सुखके लिये हैं ❋ ॥ ५० ॥ इसलिये हे राजा परीक्षित् ! देहधारियोंको जितनी अपने आत्मामें प्रीति है उतनी ममताके स्थान अपने पुत्र, धन, घर आदि लेकर जो वस्तु हैं उनमें नहीं ॥५१॥ हे क्षत्रिय वंशोत्तम राजा परीक्षित् ! जो पुरुष देहको आत्मा कहते हैं उनको भी देह अत्यन्त प्रिय है और जो देहके अनुवर्ती स्त्री, पुत्र, धन आदिक हैं वे देहके समान प्यारे नहीं लगते॥५२॥ और देहको भी इस प्रकार मान लें कि यह मेरा देह है, अर्थात् यह जब ममताका स्थान हो जाता है तब यह देह आत्माके समान प्यारा नहीं रहता क्योंकि जिस समय यह देह जीर्ण हो जाता है अर्थात् अब यह देह किसी प्रकार स्थिर न रहेगा तो भी जीनेकी आशा बलवती रहती है कि किसी उपायसे दो-चार दिन और बच रहूँ तो अच्छा है ॥५३॥ इस बातसे यह निश्चय होता है कि सब देहधारियोंको अपना आत्मा ही अधिक प्यारा है। उस आत्माके ही लिये सब स्थावर-जंगम आदि संसारपर जो प्रीति होती है सब आत्माका ही कारण है॥५४॥ हे राजन् ! सब प्राणियोंके आत्मा जगत्के कल्याण करनेके लिये मनुष्यदेह धारण कर अपनी मायासे प्रकाश करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन ही हैं, इस कारण

❋ इस बातपर दृष्टान्त है–किसी नगरमें एक ब्राह्मण था। उसके सन्तान नहीं होती थी। प्रथम तो उसने यन्त्र मन्त्रा दिकके बहुतसे उपाय किये परंतु कुछ
न हुआ, फिर वैद्यलोगोंकी बहुतसी ओषधियां भी और ज्योतिषियोंने भी अनेक प्रकारके दान पुण्य कराये, परंतु किसी प्रयत्नसे भी उसने पुत्रका मुख नहीं देखा।
एक दिन वह वनमें पूजाके लिये फल-फूल लेनेको गया, वहां उसको उदास देखकर एक महात्मा पुरुष उससे पूछने लगे कि, हे ब्राह्मण ! तू क्यों इतना उदास है ?
ब्राह्मण बोला कि हे स्वामिन् ! मेरे सन्तान नहीं, इस बातका मुझको बड़ा क्लेश है, महात्माने कहा तू सन्तान गोपालका पाठ कर, तेरे पुत्र होगा। ब्राह्मणने
वैसा ही किया और भगवत्की कृपासे उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बड़ा हो गया तो साधु संतोंके समीप बहुत बैठता और इकला बेटा समझकर उसके
माता-पिता भी उसपर लाड़-प्यार करते थे और वह भी अपने माता–पितासे अत्यन्त प्रेम रखता था, एक दिन कोई साधु गीताका पाठ कर रहे थे, उसमें
यह श्लोक आयाः—

श्लोक–" अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥"

अर्थात् माता, पिता, सुहृद्, बन्धु कोई किसीका नहीं, यह सब केशवी माया है, इन लोगोंके लिये कभी शोच करना नहीं चाहिये। तुम बुद्धिहीनोंकी नाईं
उनके लिये शोक करते हो और कभी बुद्धिमानोंकी नाईं बात करते हो, परंतु ज्ञानी लोग मरने जीनेका कुछ शोक नहीं करते। ऐसा सुनकर वह लड़का
बोला–महाराज ! मेरे माता–पिता तो मेरे ऊपर प्राण खोनेको उपस्थित हैं और मुझको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं। साधु बोले यह सब झूठ है। लड़-
केने कहा–मेरी बात झूठ क्या हो सकती है। साधु बोले कि अच्छा, आज तू घर जाकर बीमार बनकर पड़े रह, फिर तू सबकी परीक्षा कर लेना और तुझको झूठ
सत्य सब प्रत्यक्ष दिखा देंगे। उस दिन द्विजपुत्रने वैसा ही किया। तब वैद्योंके उपाय और अनेक प्रकारके यन्त्र-मन्त्र बड़े-बड़े दान-पुण्य होने लगे। तब तो ब्राह्म-
णके बेटेने कहा कि अब उन महात्मा पुरुषको बुलाना चाहिये। जो कहते थे कि न कोई माता है, और न पिता है। तब उसने उस महात्माको बुलाया और जैसे
रुपयोंको कंकारी कर दिया था वह सब दिखाया कि देखो मेरे माता-पिता कितना रुपया खर्च कर रहे हैं। साधु बोले कि यह लड़का मर जायगा, तब उसके
माता–पिता बोले कि किसी प्रकार यह अच्छा भी होगा ? साधु बोला कि हां, एक उपाय तो है, कि तीन बार इसके ऊपर दूध उतारा जाय और जो उसको पियेगा,
वह तो मर जायगा परंतु यह अच्छा हो जायगा। तुम आपसमें सम्मत कर लो कि उस दूधको कौन पियेगा। तब तो सबको दिनमें तारे दीखने
लगे और एकको ओरको एक दीखने लगा, परंतु किसीने इस बातको अंगीकार न किया कि दूध मैं पिऊंगा और सबने अपने प्राणोंकी
रक्षा करनी चाही, तब बाबाजीने कहा कि बच्चा ! देख, कोई नहीं पीता तो इस दूधको हम पियेंगे, संसारमें कोई किसीका नहीं, सब अपने-अपने
प्राणोंके रक्षक हैं।

उनपर प्रेम होना सम्भव है ॥ ५५ ॥ यही न समझना कि श्रीकृष्णचन्द्र केवल देहधारियोंके ही आत्मा हैं, नहीं, वे सब जड़ पदार्थोंके भी आत्मा हैं, वास्तवमें इस सब विश्वके आदि-कारण श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं इस प्रकार माननेवाले पुरुषोंको सब स्थावर जङ्गममें भगवान्का ही रूप भासता है अर्थात् कोई वस्तु इस संसारमें भगवान् से भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ समस्त पदार्थोंको परमार्थरूपसे विचार कर देखिये तो कोई भी वस्तु अपने-अपने कारणोंसे पृथक् नहीं है और जो-जो कारण हैं, वे सब भगवान् से पृथक् नहीं, इससे सिद्ध हुआ कि कारणोंके भी मुख्य कारण श्रीकृष्ण भगवान् हैं फिर कौन-सी वस्तु श्रीकृष्णसे पृथक रही, तुम ही बताओ ? ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मल कीर्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्के चरणकमलरूप नौका जो परम प्रेमी सज्जनोंका आश्रय है, जो पुरुष उन चरणारविन्दरूपी नौकाका आश्रय करते हैं, उनको संसाररूपी समुद्र बछड़ेके खुरके जलके समान है और उनको परमधामका वास मिलता है, कभी कोई विपत्ति नहीं होती ॥५८॥ जो-जो लीला भगवान् व्रजविहारीने पांच वर्षकी अवस्थामें की, वह बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें अपने-अपने घर आकर कही। उसका कारण जो तुमने हमसे पूछा वह सम्पूर्ण हमने तुम्हारे सामने वर्णन किया ॥ ५९ ॥ मुरनाम दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रने मित्रोंके संग यह चरित्र किया कि अघासुरको मारा, यमुनाकी रेतीमें ग्वाल-बालोंके साथ भोजन किया, जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्त्वगुणीरूप ब्रह्माको दिखाया, बछड़े और ग्वालबालोंका तद्वत् रूप धारण किया, ब्रह्माने प्रेममय हो बड़ी स्तुति की, इस अद्भुत चरित्रको जो कोई मनुष्य कहेगा अथवा सुनेगा उस पुरुषके सब पुरुषार्थ सफल होंगे और श्रीकृष्णचन्द्रमें पूर्ण भक्ति होगी ॥६०॥ इस प्रकार आंखमिचौनी के खेलनेमें ठौर-ठौर छिपना, नदियोंके पुल बांधने, बन्दरके समान वृक्षोंपर चढ़ना और कूदना और अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके और कौमार्य अवस्थाके श्रीकृष्ण और बलदेवजीने विहार करके कौमार अवस्था पूर्ण की ॥ ६१ ॥

सोरठा—दैत्य अघासुर मारि, मित्रनको आनंद दियो।
धन धन कृष्ण मुरारि, दया दृष्टि निज राखियो ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे
पूर्वार्द्धे ब्रह्मकृतस्तुतिनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—पन्द्रहमें धेनुक हन्यो, लीनी गाय बचाय।
मित्रनको आनंद दियो, धन-धन श्रीयदुराय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब कुमार अवस्था व्यतीत हुई और पौगण्ड अवस्थाका आरम्भ हुआ, जब व्रजमें गाय चरानेके योग्य कृष्ण बलदेव दोनों भाई हुए तब ग्वालबालोंको साथ ले श्रीव्रजनाथने वृन्दावनको अपने कोमल चरणकमलसे अत्यन्त पवित्र किया ॥ १ ॥ मधुवंशके प्रगट होनेवाले श्री श्यामसुन्दर बांके बिहारी कृष्णचन्द्र अपने यश गानेवाले ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर बलदेव भ्रातासहित बांसुरी बजाते, बछरोंको कुदाते, गायोंको आगे-आगे कर क्रीड़ा करनेके मनोरथसे पशुहितकारी अनेक प्रकारकी फुलवारी जहां फूल रहीं उस वृन्दावनमें विहार करनेके लिये गये। वह वृन्दावन कैसा है:—

चौ०-जहँ बसन्त ऋतु रहत सुहावन * जो अतिशय आनँद उपजावन ॥
फूलैं फलैं वृक्ष चहुँ ओरा * बोलहिं कुञ्जन कुञ्जन मोरा ॥
कानन कलरव करहिं विहंगा * विहरहिं जहँ तहँ सकल कुरंगा ॥
सज्जन मनसम निर्मल नीरा * यमुनाको सोहत गम्भीरा ॥
बहत रहत जहँ त्रिविध समीरा * हरत सकल प्राणिनकी पीरा ॥
निर्मल जल बहु ताल तलाई * विकसित अरविन्दन समुदाई ॥

मधुर-मधुर वाणीवाले भौंरे मृग; अनेक प्रकारके पक्षी जहां बास कर रहे हैं, महत्पुरुषोंके मनके सदृश निर्मल जलसे सुन्दर सरोवर भरे हुए, जिनका स्पर्श करके कमल कमलिनी दोनों नित्य प्रफुल्लित रहते हैं। उनकी सुगन्धयुक्त पवन दिन-रात चलती रहती है ऐसे मनोहर वृन्दावनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्ने विहार करनेकी इच्छा की ॥ २ ॥ ३ ॥ जहां-तहां अरुणवर्णके पल्लव निकल रहे हैं उनकी अद्भुत शोभा हो रही है, फलफूलोंके भारसे झुककर जिनकी शाखाओंके अग्रभाग चरणोंमें लग रहे थे,ऐसे-ऐसे सुन्दर वृक्षोंको देखकर परमानंदित हो मुसकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचंद्रने अपने बड़े भ्राता बलदेवजीसे कहा ॥४॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओंमें श्रेष्ठ बलदेवजी! देखो यह बड़ा आश्चर्य है, यह वृन्दावनके देवताओंके पूजन योग्य अपने पापोंके नाश करनेके लिए मौन साध आपके चरणारविंदोंको फल-फूल भेंट ले-लेकर अपनी शाखाओंसे झुक-झुककर प्रणाम करते हैं, किसलिए कि जिस अज्ञानसे हमारा वृक्षजन्म हुआ है वह अज्ञान दूर हो जाय, "एक ग्वाल बोला कि यह बात सत्य-सत्य हमसे सुनो"-

चौपाई-परशि परशि वृन्दावन धरणी * वृक्ष सराहत आपनि करणी ॥
जो विधि हमहिं यहां उपजायो * तो हम दर्श कृष्णको पायो ॥
सखावचन सुनि कह यदुराई * मित्र बात यह सत्य बताई ॥

इसलिए झुके हैं ॥५॥ हे आदिपुरुष! सब लोकोंका पवित्र करनेवाला आपका यश है, उसको निरन्तर यह भौंरे गान कर करके आपका भजन करते हैं, अतः ऐसा जान पड़ता है कि ये भौंरे आपके मुख्य भक्त मुनिजन हैं। हे पापरहित! आप अपने दैवतरूपको छिपाये मनुजवेष बनाये इन ग्वालबालोंमें क्रीड़ा कर रहे हो तो यह मुनि भी भौंरेके रूपसे गुप्त होकर आपकी सेवा और भजन करते हैं। हे सर्वात्मन्! इन्होंने यहां भी आपका पीछा नहीं छोड़ा ॥ ६ ॥ हे स्तुति करने योग्य! देखो, ये मोर आपके समीप कैसा सुन्दर नृत्य कर रहे हैं और यह हरिणी गोपियोंकी नाईं चितवनसे भोलीभाली सूरत बनाये आपके ऊपर कैसा प्यार कर रही हैं।

दोहा-व्रजवनितन सम धन्य हैं, पीवहिं प्रेम पियूख।
तुम्हरे दर्शन हेत इन, तजी प्यास अरु भूख ॥

और देखो! यह कोकिलाओंके समूह कैसी मधुरबाणीसे शुश्रूषा कर रहे हैं,यह वनवासी भी धन्य हैं, क्योंकि अच्छे पुरुषोंका यही स्वभाव है कि जो कोई अतिथि अपने घर आये तो जो कुछ अपने पास फल-फूल हो वह उसकी भेंट करें ॥७॥ आज यह भूमि, तृण, लता

आपके चरणारविंदोंको स्पर्श करके आनन्द पाती हैं ! नदी, पर्वत, पक्षी, वनके पशु भी धन्य हैं !'जो आप दयापूर्वक इनपर दृष्टि डालते हैं, जिस वक्षस्थलकी लक्ष्मी इच्छा करती हैं उसका स्पर्श गोपियोंको होता है, इसलिये यह भी धन्य हैः–

चौ०–धनि धनि वृन्दावनकी धरणी ❋ तुव पद परसि भई मुद भरणी ॥
धनि वृन्दावन धनि लतिकाली ❋ तुव पदरज परसे वनमाली ॥
धनि वृन्दावन तरुगण कुञ्जें ❋ तुवकर परसि लहत सुख पुञ्जें ॥
धनि धनि गोवर्धन गिरिराजू ❋ जहँ बिहरहु तुम सहित समाजू ॥
धनि यमुना सरिता सुखदाई ❋ जहँ तुम नित मज्जहु यदुराई ॥
धनि वृन्दावन विहँग कुरंगा ❋ करहिं जो तुव दर्शन इकसंगा ॥
धनि गोपी जो तुव तनु परसैं ❋ जेहि उर लागि रमा नित तरसैं ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलमुकुटमणि ! ऐसी अद्भुत वृन्दावनकी शोभा देख प्रसन्नमन श्रीकृष्णचंद्र पर्वतके समीप यमुना नदीके तीरपर गौओंको चराते ग्वाल-बालोंके संग विहार करते थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरे जिस समय गुंजार करते थे,तब श्री-कृष्ण और बलराम आप भी उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गाते थे,वनमाला पहने हुए बलदेव-जीके साथ ग्वाल-बाल जिनके चरित्रोंको गाते थे ॥१०॥ कभी राजहंसोंकी मधुर वाणी सुन उनके संग वैसी ही मधुर वाणी बोलते थे ! कभी अपने साथी मित्रोंको हँसानेके लिये मोरोंको नाचता देखकर उनके सम्मुख आप भी जामा फैलाकर नाचते थे ॥ ११ ॥ कभी जो कोई गाय चरती-चरती दूर निकल जाती थी तो मेघके समान गम्भीर शब्दसे प्रसन्न हो उनके नाम ले-लेकर बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी चकई, चकोर, क्रौंच, चकवा, भारद्वाज, चातक, कीर, कपोत, सारिका, मोर इनके शब्द सुन आप भी उसी प्रकारका शब्द उच्चारण करते थे। कभी व्याघ्र सिंहको देख डरकर जैसे और पशु भागते हैं वैसे ही गायोंको देख भयभीत हो आप भी भागते थे ॥ १३ ॥ किसी समय खेलते-खेलते बलदेवजीको परिश्रम हो जाता था तब किसी मित्रकी गोदीमें शिर चरण रख उसकी जंघाका तकिया बनाकर सो जाते थे, तब श्रीकृष्णचन्द्र आप उनके पैर दबाकर पंखा करके उनकी थकावट दूर करते थे ❋ ॥ १४ ॥ किसी समय कृष्ण बलदेव परस्पर अद्भुत रीतिसे नृत्य करते, गाते, कूदते, लड़ते-भिड़ते और फिर ग्वालबालोंकी भुजा पकड़ हँसकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई कहते थे देखो कैसा नाच नाचा, कैसा गाना गाया, इस प्रकार अपनी-अपनी बड़ाई करते थे ॥ १५ ॥ किसी समय मल्लयुद्ध करते-करते जब हार जाते थे,तब श्रीकृष्ण वृक्षकी जड़के सहारेसे पत्तोंकी शय्यापर गोपोंकी गोदीकी तकिया बनाकर सो जाते थे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण

• शंका–श्रीकृष्ण विष्णु भगवान् होकर अपने अंश शेषजीको अपनेसे बड़ा क्यों किया ? उलटा श्रीकृष्णको बलदेवजीका सेवन करना पड़ा।

उत्तर–त्रेतामें लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत सेवा की थी और विना रामचन्द्रजीकी आज्ञा लक्ष्मणजीने कोई कार्य नहीं किया, तब रघुनाथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मणको वरदान दिया कि, हे भैय्या लक्ष्मण ! द्वापरमें तुमको अपना बड़ा भाई बनाकर हम तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम्हारा नाम बलदेव होगा और हमारा नाम विपिनबिहारी होगा, इसलिये शेषजी विष्णुसे बड़े हुए।

दाबते कोई पापरहित ग्वालबाल पत्तोंके और पुष्पोंके पंखे बनाकर श्यामसुन्दरको बयार करते थे ॥१७॥ कोई ग्वालबाल स्नेहभरी बुद्धिसे महात्मा श्रीकृष्णचंद्रकी नींद किसी प्रकार न उचट जाय इससे ऐसे-ऐसे मनोहर मलारोंके पद सहज-सहजमें गाते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार अपनी मायासे अपना ईश्वररूप छिपाये हुए नयी-नयी लीला करके गोपोंके बालकोंका अनुकरण करते थें, लक्ष्मी जिसके चरणोंमें लोटें वह श्रीकृष्ण सुखधाम ग्रामके रहनेवाले व्रजवासियोंके संग उनकी इच्छानुसार खेल खेलते थे और बीच-बीचमें कभी ईश्वरपनकी भी लीला दिखला देते थे ॥ १९ ॥ बलराम श्यामसुन्दरके मित्र श्रीदामा नाम गोप, सुबल-स्तोक, कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे ॥ २० ॥ हे राम ! हे राम ! हे दीर्घ-बाहो ! दुष्टोंके दलनहारे श्रीकृष्ण !-

चौ०-हमको अतिशय क्षुधा सतायो * घरहूते भोजन नहिं आयो ॥
क्षुधा मिटनकी जौन उपाई * सो हम तुमको देहिं बताई ॥

यहां थोड़ीसी दूरपर तालके वृक्षोंका एक बड़ा गम्भीर वन है ॥ २१ ॥ उस तालवनमें बहुतसे तालनके फल वृक्षोंके नीचे टूट पड़े हैं, और भी टूट-टूटकर बहुतसे गिरते हैं, परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां रहता है, उसने वे फल वहां रोक रक्खे हैं, न वह आप खाता है और न किसी दूसरेको खाने देता है ॥२२॥ हे राम ! हे कृष्ण ! वह दैत्य बड़ा पराक्रमी और बलशाली है, सदा गधेका रूप धारण किये रहता है और उसीके समान बड़े-बड़े योद्धा उसकी जाति के बहुतसे असुर उनके संग रहते हैं और उसके बीचमें वह मण्डली बनाये बैठा रहता है ॥ २३ ॥ हे दुष्टदमन ! वह दुष्ट जहां कहीं मनुष्योंको देखता है उनको खा जाता है, इस डरसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशुपक्षियोंने भी उसके भयके कारण वह वन छोड़ दिया है ॥ २४ ॥ आजतक किसीने नहीं खाये वे ऐसे सुगन्धित और मधुर फल हैं, न मानो तो चारों ओर उनकी सुगन्ध फैल रही है सूंघकर देख लो ॥ २५ ॥ हे कृष्णचन्द्र ! उनकी सुगंधसे हमारे मन लुभा गये हैं, तुम वे फल लाकर हमको दो, क्योंकि उन फलोंके खानेकी हमारी बड़ी इच्छा है जो आपकी भी इच्छा हो तो उस वनको चलें ॥ २६ ॥ इस प्रकार मित्रोंके वचन सुन उनको प्रसन्न करने के लिये सब मित्रोंको अपने संग ले दोनों भाई हँसकर तालवनको चल दिये ॥ २७ ॥ वहां जाकर बलदेवजीने ताल बजाकर हाथसे तालके वृक्षोंको हिलाया तो फलोंके ढेरके ढेर पृथ्वीपर गिर गये, जैसे मतवाला हाथी वृक्षोंको हिला-कर फलोंके ढेरके ढेर नीचे डाल देता है ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर वह गर्दभरूप धेनुकासुर पर्वतोंसमेत पृथ्वीको कम्पायमान करता हुआ दौड़कर बलराम-जीके सम्मुख आया ॥ २९ ॥ उस महाबलवान् धेनुकासुरने शीघ्रतासे आकर दोनों पिछले पाँवोंसे बलदेवजीके हृदयमें एक दुलत्ती मारी और गम्भीर शब्दसे रेंकने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन् क्रोधमें भरकर धेनुकासुरने फिर आकर मुख फेर बलदेवजीके पिछले पाँवोंसे एक दुलत्ती और मारी ॥ ३१ ॥ तब तो बलदेवजीने उसकी दोनों टांगें एक हाथसे पकड़कर ऐसे घुमाये जैसे लड़के गोफन घुमाते हैं, जब उसके प्राण निकल गये, तब तो फिर फिराकर एक तालके वृक्षके ऊपर फेंक दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जब धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उसके फेंकनेसे वह अत्यन्त भारी तालका वृक्ष टूटकर पृथ्वीपर गिर गया । उसके गिरनेसे

चारों ओरके वृक्ष टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिर गये, अर्थात् एककी चपेट से एक, इस प्रकार अनेक वृक्ष चूर्ण हो गये ॥२३॥ बलदेवजीने लीला करके जो धेनुकासुरको वृक्षपर फेंका तो उस गर्दभदेहकी चपेटसे सर्वत्र तालबनके वृक्ष कांपने लगे, जैसे महाबेगकी आंधीसे सब पृथ्वी तलके वृक्ष कम्पायमान हो जाते हैं ॥२४॥ बलदेवजीके इस पराक्रम करनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि वे अनन्त और जगदीश्वर हैं और यह विश्व उनमें ओतप्रोत हो रहा है, जैसे वस्त्र तानेबानेमें ओतप्रोत रहता है ॥२५॥ जब धेनुकासुर मर गया, तब उसके भाई बन्धु जातिवाले सब गधे क्रोधित होकर श्रीकृष्ण बलदेवके ऊपरको झपटे ॥ २६ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भाइयोंके सामने जो-जो गधे आये, उनकी टांगें पकड़-पकड़ घुमा-घुमाकर वृक्षोंके ऊपर फेंक दिये ॥२७॥ उस कालमें लाल-लाल तालके फलोंके समूहसे श्वेत-श्वेत मरे हुए गधोंकी लासोंसे, हरी-हरी तालके वृक्षोंकी शाखाओंसे और काली-काली उन वृक्षोंकी जड़ोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसे लाल, श्वेत, हरी, काली, घटाओंसे आकाश शोभायमान दिखायी देता है ॥ ३८॥ ऐसे अद्भुत चरित्र कृष्ण बलदेवके देख-देखकर देवता लोग प्रसन्न हो-होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करते थे और अनेक प्रकारके बाजे बजा-बजाकर स्तोत्र पढ़ते थे ॥ ३९ ॥ जब धेनुकासुर मारा गया तो फिर मनुष्य निःसन्देह होकर उन तालवृक्षोंके फलोंको खाने लगे और गायें भी निर्भय होकर घास चरने लगीं ॥ ४० ॥ और अनुचर गोप जिनकी स्तुति करते, कमलपत्रसे जिनके विशाल नेत्रोंको देखते और परमपवित्र जिनकी कथा और चरित्रोंको सुनते सब ग्वाल श्रीकृष्ण बलदेव सहित ब्रजमें आये ॥ ४१ ॥ गायोंकी खुरोंकी जो धूरि उड़ती थी उसके पड़नेसे जिनके केश धूसर वर्ण हो रहे हैं, मोरपुच्छोंके मुकुट शीशपर धारण कर रहे हैं, बनके पुष्पोंके तुर्रे कानोंमें लटक रहे हैं, तिरछी चितवनसे, मनोहर मुसकानसे इधर-उधरको देखते बांसुरी बजाते ग्वालबाल जिनका यश गाते, उन श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दनको देखनेके लिये सब गोपी हिल-मिलकर आयीं ॥ ४२ ॥ ब्रजबालाओंने नेत्ररूपी भवरोंकी श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलके रससे दिन-दिन तृष्णाको और श्यामसुन्दरके विरहके तापको शान्त करके लाजभरी मुस्कानसे और कटाक्षभरी चितवनसे जो आदर-सम्मान किया उसको स्वीकार करके ब्रजमें आये ॥४३॥ पुत्रोंमें जिनका परमस्नेह वह यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रोंकी इच्छानुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं ॥४४॥ ब्रजविहारीने ब्रजमें आकर उबटन लगाकर स्नान किया तो मार्गका सब श्रम दूर हो गया, उस समय दोनों भाइयोंने सुन्दर-सुन्दर पीताम्बर पहन सुगन्धित पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण कर चन्दन चोवा लगाकर ॥४५॥ जब निश्चिन्त हुए तो बड़े प्रेमप्रीतिसे माता माखन, मिश्री, मिष्टान्न और षड्रस भोजन परोसकर लायीं, उसको बड़ी प्रीतिसे भोग लगाया और आनन्दपूर्वक सुन्दर शय्यापर जाकर शयन करने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार वृन्दावनविहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्ण भगवान् नित्यप्रति वृन्दावनमें विहार किया करते थे। एक दिन विना बलरामको संग लिये अकेले ही ग्वालबालोंको साथ ले यमुनाके तीर धेनु चराने गये ॥४७॥ मार्गमें ग्रीष्मकी धूपसे अत्यन्त व्याकुल होकर गाय और ग्वालबाल बहुत तृषित हुए, तब सबने प्यासके कारण कालीदहमें जाकर विषसे दूषित यमुनाजीका जल पिया ॥ ४८ ॥ हे राजन्! उस जहरीले जलके पीनेसे वे ऐसे अचेत हुए कि तन-मनकी कुछ सुधि-बुधि न रही, मृतकके समान निष्प्राणसे हो मुरझा-

कर यमुनाके किनारे पर गिर गये और यहां श्रीकृष्ण वंशीवटकी छांहमें पड़कर सो गये, जब आंख खुली तो ग्वालबालोंका कहीं पता नहीं; तब इधर-उधर देखभाल मन ही मनमें कहने लगे कि अभी तो सब ग्वालबाल मेरे साथ ही गायें चरा रहे थे, न जाने अब कौनसे वनको चले गये, कहींसे गायोंके रम्भानेका और ग्वालोंके गानेका शब्द भी सुनायी नहीं आता, क्या कारण ? तब एक वृक्षपर चढ़कर इधर-उधरको देखा, जब दूरतक दिखायी न दिये तो गायों और ग्वालोंका नाम ले-लेकर पुकारने लगे।

दोहा—काली धोरी धूमरी, खैरी गोरी लाल।
श्रीदामा दामा सुबल, कहां कहो हो ग्वाल ॥

इतनेमें कालीदहकी ओरको गायोंके खुरोंके चिह्न दिखायी दिये, उनको देखते-देखते वन ढूँढते-ढूँढते श्रीकृष्ण कालीकुण्डके निकट पहुँचे। यहां ग्वालबालोंको गायों समेत अचेत पड़ी देखा तो मनमें विचार किया कि इन्होंने कालीदहका जल पिया इसलिये मूर्छित हो गये और कोई कारण नहीं परन्तु अब मैं क्या करूं ? और घरपर जानेसे इनके माता-पिता मुझसे पूछेंगे कि हमारे बालक कहां हैं तो उनको मैं क्या उत्तर दूँगा ? और मैंने पहले ब्रह्माके चुरा ले जानेसे दूसरे बछड़े और बालक रचे थे, अब जो फिर उसी प्रकार रचता हूँ तो ब्रजके लोग यहां आकर इनको देखेंगे तो कहेंगे, यह तो सब बालक और बछड़े यहां मरे पड़े हैं। ब्रजमें यही बालक और बछड़े कहांसे आये ? ऐसा विचार ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् अपने मित्र ग्वालबाल और गायोंको मूर्छित देख अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर सबको जिला दिया ॥ ५० ॥ जब सब गायें और ग्वालबाल जी उठे और श्रीकृष्णको अपने सम्मुख खड़े देखा तब तो एकाएकी सबके सब रोकर श्यामसुन्दरके गलेसे लिपट गये और कहने लगे कि हे प्राणप्यारे ! हमारे जीवन आधार तुम विना हमारी यह दुर्दशा हुई, तब श्रीकृष्ण भगवान् भक्तभयभञ्जन मुनिमनरंजन बोले कि तुम मुझे सोते छोड़कर यहां चले आये और इस कालीकुण्डका विषैला जल पिया इसीसे तुम सब मूर्छित हो गये थे। अब तुम सब लोगोंपर परमेश्वरने अनुग्रह किया जो तुम्हारे प्राण बच गये; मदनमोहनके मधुर वचन सुन सब बालक बोले कि हे जीवन आधार ! कालीदहका जहरीला जल पीनेसे हमारी यह दुर्दशा हुई, जो आप हमारे संग होते तो क्यों हमें दुख होता ? हे प्राणनाथ ! अब तुमने आकर हमको प्राणदान दिया, पहलेसे ही आप ब्रजकी रक्षा करते आये हो, जहां-जहां हम लोगोंपर भीड़ परी है वहीं-वहीं आकर आपने हमारी रक्षा की है। अब सन्ध्या हुई तो श्रीकृष्ण सबसे बोले कि, अब सब घरको चलो, अन्धेरा होता आता है, श्रीकृष्णका वचन मान सब ग्वालबाल गायोंको आगे कर हेर देते, हरिगुण गाते, वंशी बजाते, वृन्दावनकी ओरको चले। मुरलीकी ध्वनि सुन सब ब्रजवाला अपने-अपने घरोंके काम धन्धेको छोड़ श्यामसुन्दरके दर्शन करनेके लिये मृगीके समान धाईं और उनकी मनोहर छवि देख अपने हृदयको शीतल किया और एक-एकको उँगलीसे बतलाने लगीं कि:-

चौ०-वह देखो आवत है मोहन * सुबल सुदाम सुदामा गोहन ॥

कवित्त-मोहन मुकुट माथे हाथमें लकुट राजे, साजे गुञ्जमाल गले ललित रत्नते। सुन्दर कपोल श्रुति कुण्डल झलक राजै, जुलुफ अमोल

भरे गोरज परनते ॥ गायनके पाछे आछे काछनीको काछ काछे, गौरी राग गावत गवावत सखनते । आनँदके कन्द ब्रज लोगन चकोर चन्द, मन्द मन्द आवत गोविन्द वृंदावनते ।

गायोंको घेरोंमें बांध, सब बालक अपने घर गये और कृष्णचन्द्रका यश अपने माता-पिताओंसे कहने लगे और फिर नन्दरानीके सम्मुख जाकर सब ग्वालबाल बोले कि, आज हम विना कृष्णके पूछे धोखेसे कालीदहमें चले गये । वहां जल पीते ही हम लोग और गायें मूर्छित होकर यमुनाके किनारे गिर गये । तब श्रीकृष्णचन्द्रने जाकर अपनी अमृत-वर्षिणी दृष्टिसे हम सबको देखकर जिला दिया ॥५१॥ अब हमने श्रीकृष्णकी कृपादृष्टिका प्रभाव देख लिया, जिनके विष पीकर प्राण निकल गये थे और फिर जी उठे, हम सब इसे अपने परम प्यारे कृष्णकी कृपादृष्टि ही मानते हैं ।

दोहा-अब हमको कुछ भय नहीं, मन चाहै तहँ जायँ ।
जब हमपर हरिकी दया, तब हम काहि डरायँ ॥

सोरठा-परत गाढ़ जब आय, तब तब होत सहाय हरि ॥
चिरजीवहु दोउ भाय, यशुमति यह तेरे कुँवर ॥

बालकोंके मनोहर वचन सुन यशोदा अत्यन्त प्रसन्न हो मनहीमनमें कहने लगी कि गर्ग मुनि जो-जो कह गये थे, वे सब बातें अब सत्य होती हैं, इन दोनोंके नित्य नये-नये चरित्र सुननेमें आते हैं, ये कोई परम पुरुष हैं,इन्होंने हमारे पूर्वजन्मके पुण्यसे ब्रजमें आकर अवतार ले लिया है । धन्य हैं हमारे भाग्य जो हमने इनको पुत्र करके पाला है, यह कह यशोदा और रोहिणीने रामश्यामको हृदयसे लगा लिया और गरम जलसे स्नान कराकर षड्रस भोजन जिमाय शय्यापर सुला दिया; उस समय शय्यापर पड़े-पड़े अपने मित्रोंके शुभचिंतक भक्तोंकी चिंता मिटानेवाले कालीनागकी चिन्ता करने लगे कि गायें चरानेके लिये ग्वाल-बाल तो नित्य वनमें जायँगे ही और मैं कभी संग गया कभी न गया और मेरे सखाओंको फिर कष्ट हुआ तो अच्छा नहीं, इसलिये,-

चौ०-विषधरको रहनो जलमाहीं * वृन्दावन ढिग नीको नाहीं ॥
काली निकसि यहांते जाई * अब कछु ऐसो करूँ उपाई ॥

ऐसा विचार करते ही करते श्यामसुन्दर निद्राके वश हो गये । देखो शिव, ब्रह्मा, सनकादिक जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और दर्शन नहीं पाते, वही अचिन्त्यरूप परब्रह्म सच्चिदानन्द नंदके भवनमें अत्यन्त आनन्दसे शय्यापर सोते हैं और नन्दजी भी अपना पलँग बिछाये उनके पास सो रहे थे और यशोदा घरके काम धन्धेमें लग रही थी इतनेमें:-

चौ०-जाग परे नँदकुँवर कन्हैया * कहां गई मो ढिगते मैया ॥
इत उत चितवत अति अकुलाई * मैया मोहिं बचावहु आई ।
मैया मोहिं लगत डर भारी * बेगि आव तू करत कहा री ॥

मनमोहनकी यह बात सुनकर नंद और यशोदा अचानक चौंककर उठ बैठे और दौड़कर कृष्णको गोदीमें उठा लिया और घबड़ाकर कहने लगी कि हे बेटा ! क्या हुआ ? कृष्ण

बोले कि मैया मैंने ऐसा दुःस्वप्न देखा है कि परमेश्वर कुशल करे किसीने मुझको यमुनामें ढकेल दिया। यशोदा बोली मैं तुमको रात-दिन बर्जती रहती हूँ और तू यमुनापर गये विना नहीं रहता, न जाने तेरा वहां पर क्या धरा है, परन्तु तू बात का शोच मत करे, खेलकी बातका तुझको ध्यान हो गया है, चिन्ता नहीं, बालकोंका ध्यान आठों पहर खेलमें ही लगा रहता है। इस प्रकार कृष्णको समझा-बुझाकर एक ब्राह्मणको बुलाकर कृष्णके हाथसे कुछ दान-पुण्य करा दिया और स्वप्नकी बात झूठी समझकर अपनेमें धैर्य किया ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा–इस सोरह अध्यायमें, कालीदहमें जाय।
नाथो कालीनागको, पीछे करी सहाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! कालिन्दीको कालियसर्पके विषसे बिगड़ा देखकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके जलको शुद्ध करनेके लिए उस कालिय सर्पको वहांसे निकाल दिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने पूछा कि हे ब्रह्मन्! भगवान्‌ने महागम्भीर जलके भीतर कैसे कालियनागको दण्ड दिया और वह किस कारण कालिन्दीके महागम्भीर जलमें वास करता था वह कृपाकर विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वच्छन्दविहारी जो अपने भक्तोंको दिखानेके लिए अनेक प्रकारके चरित्र करते हैं, उन भक्तभावन भगवान्‌के गोपालनादिक परमोदार प्राणाधार चरित्रामृतके श्रवण द्वारा पान करनेसे कौन पुरुष तृप्त हो सकता है ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कालिन्दी (यमुना) में कालियनागका एक कुण्ड था, जिसमें विषकी अग्निसे नित्य जल औटता रहता था और आकाशके उड़ने वाले पक्षी उस गरलके तापसे जलकर उस जलमें गिर पड़ते थे ॥४॥ और उस विषैले जलकी लहरोंके जलकणोंसे मिली पवन जो चलती थी उसके लगनेसे किनारेके वृक्ष और घास सूख जाती थी और जो जीव उस कुण्डके तटपर भूलसे चले जाते तो उसी समय उस जलकी झेलसे जलकर तड़फ-तड़फ मर जाते थे ॥५॥ श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मनमें कहा कि इस कुण्डमें ऐसे विषधर सर्प का रहना अत्यन्त दुःखदायक है, क्योंकि जो कोई पशु पक्षी वा पुरुष इस जलको पीता है वह एक क्षणभर भी नहीं जीता, उसी समय अकुलाकर मर जाता है और दूसरे यमुनाके जलको दोष लगता है इसलिए ऐसे दुष्टका यहांसे निकालना ही अच्छा है, कारण जो यह यहां रहा तो लाखों जीवोंकी हत्या करेगा, जिसके विषकी लपटसे चार कोस तक जल खौलता रहता है ऐसा कोई सामर्थ्यवान् नहीं जो उस कुण्डके पास जा सके, जब इस प्रकार श्रीकृष्णने विचार किया तब नारदजी उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार कंसके पास गये। कंस उनको देखते ही खड़ा हो गया और दण्डवत् प्रणाम कर बड़े आदर सत्कारसे ऊँचा आसन देकर बैठाया। तब नारदने कंससे पूछा कि हे राजन्! कुशल तो है! आपका तन क्षीण और मन मलिन क्यों है? कंस हाथ जोड़कर कहने लगा हे नाथ! आपके चरणारविंदोंके प्रतापसे सदा ही कुशल रहता है परंतु एक शोच बड़ा भारी है कि गोकुलमें नन्दके यहां दो बालक बड़े उत्पाती और घाती उत्पन्न हुये हैं, जिन्होंने पूतना तृणावर्त प्रभृति दैत्योंको एक पलमें मारकर गिरा दिया उनके पराक्रमको देख-देखकर मुझको अपने प्राण बचनेमें संदेह जान पड़ता है।

चौ०–यह दोउ बन्धु महाबलधारी ❋ जान परत है कोउ औतारी ॥
देखन–माहिं अवस्था थोरी ❋ हने अघासुर धेनुकधोरी ॥
अब कोउ ऐसो करो उपाऊ ❋ मारे जायँ कृष्ण बलदाऊ ॥
जो यह जियत रहैं दोउ भाई ❋ मोर मरण जानहु मुनिराई ॥

कंसकी बात सुन मुनि मन ही मनमें मुसकाकर बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! आपका कहना सत्य है दोनों बालक अवतार ही हैं और यह भी मैं जानता हूँ कि यह तुम्हारे प्राणोंके भी ग्राहक हैं, अतः ऐसा उपाय करना चाहिये जो यह पृथ्वी पर न रहें, एक यत्न तो मैं बतलाता हूँ जो आपसे हो सके तो करो। कंस बोला–क्या ? नारदजीने कहा कि, जहां कालिय नाग यमुनामें रहता है वहां अनेक प्रकारके कमल फूल रहे हैं।उन कमलोंके फूलोंको मँगानेके लिए नन्दके पास एक दूतको भेजो। नन्द यह बात सुनकर अपने मनमें बहुत भयभीत होगा, क्योंकि वह फूल उसको किसी प्रकार नहीं मिल सकेंगे। या तो वह गोकुल छोड़ कहीं दूसरे स्थानको भाग जायँगे और या वह अपने बालकोंसे फूल मँगावेंगे। मैं यह भी जानता हूँ कि वे बालक निश्चय फूल लेने जायेंगे वहां कालिय नाग उस कुण्डमें रहता ही है उसी समय दोनों को डँस लेगा तुम्हारा पीछा सहजमें छूट जायगा। यह सुन कंस अत्यन्त प्रसन्न होकर कहने लगा कि हे मुनिराज ! आपने यह अच्छा उपाय बताया, यह कह नारद मुनि तो हरि-गुण गाते वीणा बजाते चल दिये और कंसने उसी समय एक दूत को बुलाकर नन्दको यह पत्र लिखा कि एक करोड़ कमल कालियदहसे प्रातःकाल ही हमारे पास भेज दो और जो कल कमल न भेजोगे तो तुमको पूरा दण्ड दिया जायगा। तुम्हारा घरबार खोदकर बगेल दिया जायगा, तुमको देश निकाला होगा और तुम्हारे पुत्रोंको बन्दीगृहमें बन्द कर दिया जायगा। दूत पत्र लेकर गोकुलमें नंदजीके पास गया, परंतु श्रीकृष्ण सर्वान्तर्यामी इस बातको पहले ही जानकर उस दिन गायें चरानेके लिए वनको नहीं गये और वहीं बालकोंके सङ्ग बालक्रीड़ा करते रहे उसी समय दूतने आकर नंदरायको पत्र दिया और सब संदेशा सुनाया। नंदजी पहले तो सुनते ही घबड़ा गये फिर कुछ मनमें धैर्य धरकर सब गोपोंको बुलाकर कंसके दूतका कहा हुआ सब वृत्तांत सुनाया। सुनते ही सब सोच करने लगे कि बैठे-बैठाये परमेश्वरने किस विपत्तिमें डाल दिया। बड़ी कठिनाई आकर लगी,क्या उपाय करना चाहिए एक करोड़ कमलका फूल कालियदहसे कौन ला सकता है ? ऐसा किसका सामर्थ्य है ? और उसने यह भी कहला भेजा है कि जो कलको कमल न पाऊँगा तो तेरे दोनों पुत्रोंको पकड़ मँगाऊँगा। अब इस समय हमको कोई सङ्गी-साथी नहीं जान पड़ता, दो चार दिनके लिए उसीके यहां अपने पुत्रोंको भेज देते। किसी-किसीने कहा–चलो कंसको ही हाथ-पांव पड़ मनायें जो वह मान जाय तो बहुत ही अच्छा है। नन्दजी बोले कि जो वह मानता तो ऐसा उपद्रव क्यों मचाता ? भाई जो कोई रक्तका प्यासा होता है वह पानीसे तृप्त नहीं होता।

दोहा–मेरे सुत दोउ नृपति उर, खटकत हैं दिन रात।
आज कह्यो ऐसो वचन, बल मोहनपर घात ॥
काल्ह कंस अति कोप कर, चढ़ि हैं व्रज पर धाय।
को राखै कित जाइये, भयो मरण अब आय ॥

और मुझको अपने मरनेका कुछ शोच भी नहीं है, बड़ा भारी शोच तो कृष्ण बलदेवका है, वह मुझको और मेरे प्राणको, घरबारको, चाहे अभी लेले, परन्तु मेरे प्राणाधार कृष्ण बलरामसे कुछ न कहे, नन्दके वचन सुनकर सब ब्रजवासियोंके नेत्रोंमें जल भर आया और कोई कुछ न कह सका, उधर नन्दरानी और रोहिणी अत्यन्त व्याकुल हो रो-रोकर कहने लगीं कि, हे विधाता ! तैने हमें किस विपत्तिमें डाल दिया ? भला कालियदहके कोटि कमल कैसे हम कंसको दे सकते हैं, हे राजन्! नन्द, यशोदा, रोहिणी इत्यादि सब गोप-गोपी शोच कर रहे थे जब वृन्दावनविहारीने जाना कि, मेरे माता-पिता पर इस समय बड़ा भारी कष्ट है यह विचार मंदिरमें आ सबको उदास और रोता देख मातासे बूझा कि हे मैया ! आज क्या हुआ जो सब रो रहे हैं, कृष्णको हृदयसे लगाकर यशोदा बोली कि, मेरे रोनेका वृत्तान्त अपने पितासे बूझो, माताकी बात सुनते ही श्यामसुन्दर पिताके पास गये और उनसे बूझा कि पिताजी ! आज सब लोग क्यों घबरा रहे हैं और माता भी बहुत उदास बैठी थीं । मुरलीमनोहरके मधुर वचन सुन नन्दजीने कहा कि:–

चौ०–जबते जन्मभयो सुत तेरो । करत कंस उत्पात घनेरो ॥
केती करवरटरी तुम्हारी । कुलदेवन कीन्हीं रखवारी ॥

उस दुष्ट कंसने तुम्हारे मारनेके लिये सैकड़ों उपाय किये, कभी पूतनाको पठाया, कभी तृणावर्त्त आया । जहाँतक उससे बसाया वहांतक उसने सताया परंतु परमेश्वरने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह रक्खा परंतु अब क्या किया जाय ?

दोहा–कालीदहके फूल अब, पठये भूप मँगाय ।
तबसे यह गाढ़ी परी, को कर सकै सहाय ॥
लिखो कंस मोहिं डाटिकै, जो नहिं आवैं फूल ।
बाँध मँगाऊँ सुत सहित, करों ब्रजहि निर्मूल ॥

हे पुत्र ! जिस कालीदहके जलके विषाग्निसे चार चार कोसके पशु-पक्षी तक जलकर भस्म हो जाते हैं, फिर भला वहां किसका सामर्थ्य है जो फूल ला सके ? इस कठिन कार्यसे मेरा चित्त उदास हो रहा है श्रीकृष्ण बोले कि हे पिता ! तुम वृथा इतना सन्देह क्यों करते हो ? जिस देवताने पहले आपकी रक्षा की थी; उसी देवताका स्मरण करो, वही देवता अब आपकी रक्षा करेगा और कंसको फूल पहुँचायेगा और वही आपका शोच मिटायेगा, वही कंसके केश पकड़कर मारेगा, वही असुरोंको मारकर भूमिका भार उतारेगा, आप कुछ सन्देह मत करो । श्रीकृष्णकी बात सुनकर सब ब्रजवासियोंको धैर्य हुआ, और सब अपने-अपने इष्टदेवको मनाय-मनाय विनती करने लगे ॥

चौ०–हे मुकुन्द गोविन्द मुरारी । दुष्ट निकन्दनजनहितकारी ॥
शरण शरण प्रभु शरण तुम्हारी । अबहूँ करहु सहाय हमारी ॥

इस प्रकार सबको समझा-बुझाकर आप ग्वालबालोंको संग ले यमुनाके निकट जाय श्रीदामासे गेंद मँगाकर गेंदका खेल खेलने लगे, एक-एकको मारता था, कोई रोकता था, कोई पुकारता था कि, एक टोल और ले जाता, कोई रो-रोकर भागता था कोई ऊपरको उछलता था, कोई किलकारी मारकर उछल जाता था, कोई चलती गेंदको बीचकी

बीचमें रोक लेता था, महा अद्भुत कौतुक हो रहा था इसी प्रकार खेलते-खेलाते काली कुण्डके निकट पहुँच गये क्योंकि उन भक्तभावन भगवान्‌को तो अपना कार्य सिद्ध करना ही था। श्यामसुन्दरने एक लड़केके मारनेके बहानेसे गेंद कालीदहमें फेंक दिया, जब गेंद जलमें जा पड़ा तो खेल बन्द हो गया और श्रीदामाने दौड़कर श्यामसुन्दरकी फेंट पकड़ ली कि, मेरे गेंद तैंने जानबूझकर दहमें डाल दिया है। मैं अपना गेंद जबतक न ले लूंगा तबतक तुझको कभी न जाने दूंगा। तुम मुझको और सखा मत समझना, मैं बड़ा बैंड़ा हूँ, मेरे सामने एक ढिठाई आपकी नहीं चलनेकी मैंने अच्छे अच्छोंका मुँह बिगाड़ दिया है, सब संगके सखा ताली बजा-बजाकर हँसने लगे कि, पहले तो उसका गेंद यमुनामें डाल दिया, अब हम भी तो देखें कहाँसे दोगे ? श्रीकृष्ण बोले कि, अरे श्रीदामा ! मेरी फेंट छोड़ दे एक गेंदके लिये इतना क्रोध करना अच्छा नहीं, उसके बदलेका दूसरा गेंद मुझसे लेले, परंतु मेरी फेंटको छोड़ दे और मेरी बराबरी मत कर, श्रीदामा बोला सुनो भाई ! मैं जानता हूँ कि तुम नंदरायके ढोटा हो, परंतु मैं किसी प्रकार तुमसे छोटा नहीं और लेनें-देनेमें क्या छुटाई-बड़ाई ? मेरा गेंद दे दो, अपने घरको चले जाओ और मेरे आगे बातें बनानेका काम नहीं चलनेका। देख ! बहुत बकवाद मत कर जिह्वाको रोककर बात कह। कृष्ण बोले क्योंरे ! मैंने तेरे सामने क्या बात बनाई ? क्या तू नहीं जानता हमारी बातको ?

कवित्त–पूतना बकासुरको मारके विध्वंस कियो, तृणावर्त्त मारो जाकी जगमें अवाई है॥ शकटासुर दैत्यको आकाशमें पछारो जाय, ताको मर्ण सुनके पछार कंस खाई है॥ अघासुर अजगर आनपरो मुख फार, अग्निरूप धार ताकी जीभहूँ जराई है॥ सच्च ही बताना तुझे कसम शालिगराम तेरे आगे बात मैंने कौनसी बनाई है॥ १॥

श्रीदामा बोला तुमने कागासुरको और वत्सासुरको मारा यह मैं जानता हूँ, फिर क्या मुझे भी मार डालोगे ! यह बातें आज ही हैं कलको सब चतुराई और वीरपन देखा जायगा, जब कंस कमलके फूल मांगेगा; जिसके कारण सबेरे हीसे घरमें रोना-पीटना पड़ रहा है, और नंदजी कहते फिरे हैं क्या करें ? कहां जायँ ! पुत्रोंको कहां छिपावें ? पिताकी तो यह गति और पुत्रोंका यह अभिमान ? धन्य है आपकी बुद्धिको मदनमोहन बोले, अरे श्रीदामा ! तू क्या कंस-कंस कहकर मुझे डरा रहा है, कंस विचारा क्या वस्तु है ? उसी कंसकी छातीपर चढ़, चोटी पकड़, मुष्टिक मार-मारकर प्राण निकाल दूंगा, जिसको तुमने बड़ा बलवान् और बुद्धिनिधान समझ रक्खा है, मैं इसलिये यहां आया हूँ अभी तेरे देखते-देखते एक करोड़ कमल कंसके पास भेजता हूँ और ब्रजवासियोंका सब शोक अभी निवारण करता हूँ, यह कह अत्यन्त क्रोधित हो श्रीदामाको एक धक्का दिया और झपटकर वहां एक बड़ा ऊँचा कदमका वृक्ष था उसपर जा चढ़े, तब सब ग्वालबाल ताली बजाकर कहने लगे कि, देखो श्रीदामाके डरके मारे श्रीकृष्ण भागकर कदमपर चढ़ गये यहां श्रीदामा रोकर बोला कि, मैं अभी तेरे माता-पितासे जाकर कहता हूँ कि, मेरा गेंद कालियदहमें बगेल आप कूदकर कदमके पेड़पर जा चढ़ा, श्यामसुन्दर बोले कि, हे श्रीदामा ! घबराय मत, मैं अभी तेरा गेंद लाता हूँ। यह कह वृन्दावनविहारी अपने प्रियभक्तोंके कार्य सिद्ध करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्‌ने महाबली, विषके अभिमानी कालिय नागको देखकर और उसके विषसे बिगड़ी हुई यमुनाको देखकर दुष्टोंको

दण्ड देनेके लिये जिन्होंने अवतार लिया है, उन श्रीकृष्णमहाराजने काछ बांध पीताम्बरसे कमर कस,उस महाऊँचे कदम्बके रूखसे ताल ठोंककर कालिय कुण्डमें कूद पड़े॥६॥पुरुषोत्तम भगवान् जिस समय जलमें कूदे उस समय उनके मारके झटकेसे और सर्पके गरलकी गर्मीसे कालियदहका जल बहुत ऊपरको उछला और विषकी लपटोंके प्रभावसे अत्यन्त खारी और महाभयानक तरल तरंगे जलमें उठने लगीं और चारों ओरसे यमुनाका जल सौ-सौ धनुष तक फैल गया,भगवान्‌का अनन्त बल है, इस कार्यमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

दोहा–कोमल तनु अति सांवरो, साजे नटवर साज।
जल भीतर पैठे तहां, जहं सोवत अहिराज ॥ ७ ॥

हे राजन् ! महाबलवान् हाथीके समान जिनका पुरुषार्थ जिस समय कालियदहमें जाकर गिरे, उस समय बलशाली भगवान्‌के भुजदण्डसे ताडित जलशब्दको सुनकर और श्रीकृष्णसे अपने घरका विनाश समझकर कालीनागकी पत्नी अपने घरमें कहने लगी कि, ऐसा कौन बलवान् है जो मेरे घरमें आकर धूम मचा रहा है, जब उससे न सहा गया तब झट झपट श्रीकृष्णके सन्मुख धाया " ई " ॥ ८ ॥ दर्शन करनेके योग्य सुन्दर स्वरूप, सुकुमार अवस्था, मेघवर्ण, हृदयमें भृगुलता चिह्न विराजमान्, पीत वसन धारण किये, मन्दहास्य सहित जिनका मुखारविन्द, निर्मल खिले हुए कमलसे जिनके पदपंकज, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌को निशंक उस विषैले जलमें विहार करता देख, अत्यन्त क्रोधित हो वक्षस्थलमें डसनेको दौड़ा " डी " परन्तु उस मोहनी मूर्तिको निहारकर मोहित हो गया "ई" ॥ ९ ॥ जब जलमें कोलाहल पड़ा और हलाहलकी झरें तरंगोंके संग उठीं और कृष्णजीको भीतर बहुत बिलम्ब हुआ तब तो सब ग्वालबाल घबराये और रो-रोकर कहने लगे कि हे मनहरण प्यारे ! तुमने किञ्चिन्मात्र गेंदके लिये इतना परिश्रम क्यों किया ? इस अधम श्री दामाने तुमको इतना दुःख दिया मिले वा न मिले परंतु तुम शीघ्र निकल आओ, क्योंकि इस कालियदहमें कालियका बड़ा भय है कहीं तुमको काट न खाय, शीघ्र निकलो, हमको तो एक-एक पल तुम बिना कल्पके समान जान पड़ता है। तुम जलसे बाहर क्यों नहीं आते ? हमसे अकेले नहीं रहा जाता, जब जलशायी जलसे न निकले, तब तो ग्वालवाल व्याकुल होकर शिर पीटने लगे कि हाय ! हम यशोदा माताको क्या उत्तर देंगे। कृष्ण-कृष्ण पुकारते थे और मनमें विचारते थे, निदान दो लड़कोंको वृन्दावनकी ओर भेजा कि, यह सब समाचार नंद-यशोदासे जाकर कहोकि,श्याम सुन्दर जलमें कूद पड़े। वे दोनों बालक श्रीदामाको गालियां देते हुए वृन्दावनकी ओर चले और यह यहां सब मूर्छित हो गये ॥१०॥ तब गाय, बैल, वत्स, छोटी-छोटी बछियाँ महादुःखी होकर रंभाने लगीं और टकटकी बांधकर मनमोहन प्यारे की ओर देखने लगीं और डरके कारण ऐसे सुस्त हो रहे थे मानो सो रहे हैं॥११॥हे राजन् ! यहां यशोदाने शोचा किः–

सोरठा–बलदाऊ यदुराय, भूखे होंगे प्रातके।
खेलतते अब आय, मोते भोजन मांगि हैं॥

यह विचार यशोदा रसोई चढ़ानेके लिये चली,उसी समय सामनेसे एक ग्वालिनने छींका, यशोदा वहीं ठिठक रही और मन ही मनमें कहने लगी कि सन्मुखकी छींक विपत्तिकी मूल है। उसी छींकका दोष मिटा कर थोड़ी देर पीछे फिर चौकेकी ओरको चली तो मार्जारी बाट काट

गई तब तो यशोदा बहुत उदास हुई और कहने लगी कि, न जाने आज परमेश्वरको क्या करना है जो वारंवार मुझको ऐसे अशकुन होते हैं यह कह घबराकर घरसे बाहर निकल आई और कहने लगी कि, न जाने आज मेरे राम कृष्ण प्यारे कहां हैं ? इतनेमें बायीं ओर काग बोला, दाहिनी ओरसे खरका शब्द सुनाई पड़ा तब तो यशोदा और भी व्याकुल हुई, कभी बाहर आती थी कभी घरमें जाती थी। और वारंवार मुखसे यही शब्द निकलता था, हे राम ! कृष्ण ! यशोदाका रोना सुन नन्दजी दौड़े, दाहिनी ओरसे किसीके रोनेका शब्द सुना, श्वानने कान फटफटाया, मस्तकपर कौवा बैठा तब तो नन्द अत्यन्त व्याकुल हुए और कहने लगे कि, आज कुछ न कुछ विघ्न अवश्य होगा, क्योंकि कलसे तीन प्रकारके उत्पात ब्रजमें हो रहे हैं, पृथ्वी डामाडोल होरही है, आकाशसे तारे टूट टूटकर गिर रहे हैं, पुरुषोंकी बाई भुजायें और बायें नेत्र फड़क रहे हैं, यह उत्पात विपत्तियोंको सूचित करते हैं॥१२॥ नंद-प्रभृति उन उत्पातोंको देखकर अत्यन्त भयभीत हुए कि, आज विना बलदेवको संग लिये कृष्ण अकेले गायें चरानेको गये हैं ॥१३॥ उन खोटे उत्पातोंसे श्रीकृष्णका निधन मानकर और उनके प्रभावको कुछ न जानकर श्रीकृष्णमें जिनका तन, मन, धन लग रहा था, वह इन कठिन उत्पातोंके भयसे अत्यन्त पीड़ित हो कहने लगे कि, कहीं यशोदाने यही वृत्तांत न सुना हो जो इस प्रकार रुदन कर रही है। घर आकर देखा तो यशोदा अति घबराई हुई कुररीकी नाई कृष्ण-कृष्ण पुकार रही है, नंदजी रोकर बोले कि, हे प्रिये ! क्यों ऐसा विलाप कर रही हो ? क्या सुना ? यह तो कहो कृष्ण बलराम तो कुशल हैं। यशोदा बोली स्वामी ! मुझे कुशल नहीं जान पड़ता, आज मैं जिस कामको हाथ उठाती हूँ अशकुन ही अशकुन होते हैं।

दोहा—चली रसोई करन जब, छींक भई मोहिं आज।
आगे होय बिलारि पुनि, गई दूसरे भाज॥

एक तो कंसकी पाती सुनकर छातीमें दाह-सी लग रही थी और दूसरे इन अशकुनोंको देख-देखकर और भी हृदय भड़कने लगा, न जाने रामकृष्णको कहीं उस दुष्टने पकड़ मँगाया, वा और कहीं चले गये ? नेत्रोंमें जल भरकर नन्दजीने कहा कि, हे सुभद्रे ! आज मुझको भी बुरे-बुरे शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ उस समय नंद यशोदादिक सब ब्रजवासी, बाल, वृद्ध, स्त्री, अत्यन्त व्याकुल हो 'रोते-पीटते पशुकी नाईं रामकृष्णके खोजनेको गोकुलसे बाहर निकले, क्योंकि पूर्णप्रेमसे जिनके मन श्रीकृष्णमें लग रहे थे ॥ १५ ॥ "यदुवंशी भगवान् बलदेवजी किसी वनमें बालकोंके संग विहार कर रहे थे, उनसे भी किसीने कहा कि, आज श्रीकृष्ण खो गये हैं। उनके ढूँढनेके लिये नन्द-यशोदादिक सब ब्रजवासी अति अधीर रोते-चिल्लाते फिरते हैं, और तुम्हारा भी नाम ले-लेकर पुकारते हैं बलदेवजी उनको अधीर व्याकुल समझ-कर हँसे" परंतु कुछ मुखसे न कहा क्योंकि वह तो अपने छोटे भ्राता श्रीकृष्णकी महिमाको, अच्छी रीतिसे जानते थे कि, वह किसीके वशके नहीं ॥ १६ ॥ वह सब ब्रजवासी श्रीकृष्ण प्यारेको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मार्गमें कृष्णचन्द्रके चरणचिह्न देखे, उन चरणचिह्नोंको देखकर सब पुकार कर कहने लगे कि देखो भाई और ग्वालबालोंके भी चरणचिह्न पृथ्वीपर लग रहे हैं, और गाय बछड़े भी उनके संग हैं, विदित होता है कि यमुनाकी ओरको गये हैं, यह कह सब ब्रजवासियोंने कुछ-कुछ धैर्य धारण किया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! वह लोग गायोंके मार्गमें और ग्वालबालोंके पदोंके बीचमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् जगदीश्वरके चरणोंके चिह्न कमल, यव, अंकुश,

वज्र, ध्वजाकी रेखा देखते-देखते बहुत शीघ्र चले। जिस प्रकार योगीजन वेदमार्गमें परम तत्त्वको ढूँढनेके लिये परिश्रम करते हैं, दूरसे देखा तो सामनेसे दो लड़के रोते-चिल्लाते दाढ़ें मारते कृष्ण-कृष्ण पुकारते कालीकुण्डकी ओरसे चले आते हैं। नंद यशोदाको देखकर कहने लगे कि हे यशोदामैय्या! आज हमारे मनहरण प्यारे, नेत्रोंके तारे यमुनामें डूब गये।

चौ०–सुनतहि परी धरणि गिरिमैया। कीन्हो स्वप्नो सत्य कन्हैया॥
तलफत दोउ मीनसम धरणी। प्रगटी कौन जन्मकी करणी॥
यह दुखदेख कठिन अतिभारे। तऊ न निकसत प्राण हमारे॥

अरे निर्दयी देव! क्या इससे भी कठिन कोई और दुःख अभी हमारे दिखानेको शेष रहा है? जो हमारे प्राण नहीं निकलते? यह हमारा हृदय ऐसा कठोर वज्रका हो गया जो ऐसे-ऐसे दुःख देखकर भी नहीं फटता? यह कह मूर्छित हो गई, इधर यह समाचार जब और व्रजवासियोंने सुना तब रोहिणी और सुनन्दादिक स्त्री, पुरुष वरसानेसे वृषभानु और कीर्ति सब कुटुम्ब सहित हाय-हाय करते रोते-चिल्लाते नन्दजीके पासको दौड़े आये। इधर नन्दजी यशोदाको कन्धेपर डालकर आगेको बढ़े॥ १८॥ सब स्त्री, पुरुष काली-दहके किनारे पहुँचे, जाकर देखा तो दहके भीतर कालीनाग श्यामसुन्दरके शरीरमें लिपट रहा है और उनकी चेष्टा विहीन हो रही है, किनारेपर जड़बुद्धि हुए ग्वालबाल पछाड़ खाये पड़े हैं, चारों ओर गाय-बछड़े रंभाते फिर रहे हैं, उन सबकी यह दशा देखकर सब महादुःखी हुए॥ १९॥ जिन गोपियोंका मन अनन्त भगवान्‌में लय हो रहा है वह गोपी मनमोहनमें मन लगानेवाली श्रीकृष्णचन्द्रका प्यार, मन्दमुसकान, तिरछी चितवन मधुर वचनोंकी सुधि करके अतिशय प्यारे श्यामसुन्दरको सर्पसे ग्रसित हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल होगईं और तीनों लोक सूने दिखाई देने लगे। आपसमें मिलकर कहने लगीं कि, "हे आली! हमारे देखते वनमाली इतना कष्ट सहे! हाय! इस काली नागको मृत्यु भी नहीं आती, जो हमारे प्राण प्यारेको इतना दुःख दे रहा है" इस प्रकार विलाप करके गोपियाँ कालीको गाली दे रही थीं॥ २०॥ इधर यशोदाको मूर्छित पड़ी देख सब ग्वालबाल और गोपोंने उठाया और धैर्य देकर समझाया, हे व्रजरानी! इतनी व्याकुल क्यों होती हो! सचेत हो, इधर-उधर देख अभी कृष्ण नहीं आया? फिर कहने लगीं, हा कृष्ण प्यारे! हा कृष्ण प्यारे! कहां हो? यशोदाके विलापोंको सुन नन्दजी बोले कि हे प्रिये! कहां है कृष्ण, कृष्णको तो काली-दहमें काली नागने पकड़ रक्खा है, हाय कृष्ण प्यारे! तुमपर यह दुःख और हम अपने नेत्रोंसे देखें! वह अचानक कालीकुण्डमें डूबनेको दौड़े, जैसे-तैसे करके लोगोंने उनको पकड़ा परन्तु यशोदा बलात्कार:–

दोहा–रानी घबरानी अधिक, विन सुखदानी श्याम।
पानीमें कूदी परै, लोग रहे सब थाम॥

परन्तु यशोदा बार-बार यह कहती थी कि, इस समय मुझे मत पकड़ो डूब ही जाने दो, हाय! जब मेरा धीरका धरैया और मुरलीका बजैया, कन्हैया ही न रहा तो अब मैं जीकर क्या करूँगी, धिक्कार है मेरे ऐसे जीवन पर:–

दोहा–को कहिहै मंजुल वचन, कानन सुधासमान।
को कानन गायन सहित, करिहैं प्रात पयान॥

को पालहि ब्रजराजकी, यह गायें नौलाख।
को पूरण करिहै कहो, मम मनकी अभिलाष॥

हे राजन्! नन्दरानी श्यामसुन्दर विना ऐसी बौरानी कि, तन-मनकी सुध भूल गई और अज्ञानियोंकी नाईं जो मनमें आया वह कहने लगी, कभी कहती, हे कृष्ण प्यारे! तुम्हारे लिये भोजन मिष्टान्न बना रक्खा है, शीघ्र आकर भोग लगाओ, भैया बलदेवको भी साथ लेते आना किस कार्यमें फँस गये। क्यों इतना विलम्ब किया? तुमको भूख लगी होगी शीघ्र आओ, आज ऐसा कैसा खेल खेलते हो जो अब तक सावकाश न हुआ। भोजनको सन्ध्या हो गई, प्रातःकालके गये हो आज कलेऊ भी नहीं किया। हे प्राणाधार! हे जीवन मूल! मुझे अपनी सांवली सूरत मोहनी मूरत क्यों नहीं दिखाते? और अपनी मधुरवाणीसे मुझे क्यों नहीं बुलाते, मैंने तो बेटा तुमको कुछ कहा भी नहीं! फिर तू क्यों बुरा मान गया? और जो कुछ मैंने तुझको कहा भी हो तो तुझको क्रोध करना नहीं चाहिये, क्योंकि, माता-पिताका धर्म ही है पुत्रोंपर क्रोध करनेका। बेटा! अब तू क्रोधको तज डाल, कलेऊ कर ले॥

दोहा-ब्रजयुवती सुन महरिके, वचन प्रेम आधीर।
अकुलानी रोवत सबै, बढ़ी कठिन उर पीर॥

सोरठा-वर्जत यशुदहिं ग्वाल, कहि कूकतहरि हैं कहां।
सुतवियोग विकराल, जो मन चाहत सो कहत॥

उस समय अचेत पड़ी हुई यशोदा एकाएकी चौंक पड़ी, जब तनकी सुधि आयी तो देखा जहां-तहां सहस्रों स्त्रियां-पुरुष रो रहे हैं। तब देखा कि हाय! मोहन प्यारा तो दहमें पड़ा है और मैं इधर-उधर कन्हैया-कन्हैया कूकती फिरती हूँ। हाय! यहां तो सब ही ब्रजके लोग-लुगाई कन्हैया प्यारेके लिये इकट्ठे हो रहे हैं और सखा विलाप कर करके कह रहे हैं।

दोहा-हाय मित्र कैसी करैं, कैसे बांधैं धीर।
तुम विन सही न जात यह, कठिन विरहकी पीर॥
अब को हमहिं बचावहीं, को करि हैं रखवार।
अस कह कह रोवत सखा, कर कर हाहाकार॥
माखन कौन चुरावहीं, काहि पकर ले जायँ।
यह कह कह सब गोपिका, खड़ी पछारें खायँ॥
जब हमपर संकट परो, तबहीं लियो बचाय।
अब इस भारी विपतिमें, क्यों नहिं होत सहाय॥

हे ब्रजभूषण प्यारे! जलमें क्या कर रहे हो, क्यों नहीं बाहर निकल आते? आपके होते हुए ये सब ब्रजवासी और तुम्हारे माता-पिता इतना दुःख पाते हैं और आपको किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं, बड़े आश्चर्यकी बात है! हे प्यारे मोहन! हमारे प्राण तो तुम्हारे सहारेसे थे, जो तुम जलसे न निकले तो हम सब भी जलमें डूब-डूबकर मर जायँगे, तुम विना यह ब्रज हमको सूना दिखायी देता है, हमको तो वही ब्रज है जहां आप हैं। यशोदा बोली कि ये सब ब्रजवासी मेरे ही प्राणवल्लभके कारण इतना विलाप कर रहे हैं और मुझको कुछ सुधि नहीं, तुम चुप हो जाओ, मैं बुलाती हूँ, अरे कन्हैया! यह तेरे सब सखा विलाप कर

रहे हैं, तू इनकी नहीं सुनता और तुझको अकेले जलमें डर भी नहीं लगता ? यह कह एकाएकी चिल्ला उठी, हाय ! मेरे श्यामसुन्दरको डर लगता होगा, मैं भी उसीके पासको जाती हूँ ॥

कवित्त-हे हे सुत सुखदानी अपनी ही हठ ठानी, एक नाहिं मानी तोहिं हारी समझायकै ॥ घर राजधानी जान ब्रजमें तू दानी बनो, नये नये खेले खेल मन उपजायकै । इकलो न रहै वीर मैयाकोहू ले ले संग, यह कहकर बौरी दौरी घबरायकै । सबै समझायो पर काहूकी हू मानी नाहिं, पानीमाहिं रानी अररानी अकुलायकै ॥

यशोदाकी यह दशा देख नन्दादिक सब ब्रजवासी दहमें डूबनेको दौड़े,उसी समय बलदेवजीने आकर सबको रोक झपटकर यशोदाका हाथ पकड़ लिया कि माता ! क्यों इतनी अधीर होती हैं ? कृष्ण अब आते हैं । बलरामका बोल सुनकर नन्दरानी नेत्र खोलकर बोली कि हे भैया! कन्हैयाको तूने अकेला कैसे छोड़ दिया ? कन्हैयाने तो एक क्षणको भी कभी अकेला तुझे नहीं छोड़ा, आज तू कहां चला गया था, क्या तुझे अभी भूख नहीं लगी ? आज तो सबेरेसे तूने कुछ खाया भी नहीं, यह माखन मिश्री ऐसे ही धरी पड़ी है, कन्हैया कहां है ? उसको बुला तो ला, क्योंकि उसने भी आज सबेरेसे कुछ नहीं खाया; मेरा फुलवासा कन्हैया भूखा होगा, यह कह फिर यशोदा मोहमें मग्न हो पुकारने लगी-हे ब्रजभूषण ! हे श्यामसुन्दर ! हे गोपीवल्लभ ! हे अपनी जननीके प्राण आधार ! अरे यह माखन मिश्री तो खा जा, पीछे खेल करते रहना । अरे कन्हैया तू मेरी सुनता नहीं ? अरे बालको ! तुम इसका पीछा नहीं छोड़ते । भैया ! इसको कलेऊ तो कर लेने दो, ऐसा क्या खेल खेलते हो ? भैय्या ! तुमने तो कन्हैयाको खेलका मतवाला कर दिया, अब तू न सुनेगा, क्या छड़ी लेकर आऊँ ? ज्यों उठनेको हुई, त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर गई । यशोदाके इन विलापोंको सुन-सुनकर पशु पक्षी भी रोते थे और मनुष्योंका तो कहना ही क्या !

चौ०-बारबार निज निज शिर धुनहीं * कोउ काहूकी बात न सुनहीं ॥
ब्रज गोपी नँदनन्दन प्यारी * हरि सनेह अस गिरा उचारी ॥
प्रीति रीति अब कौन निबाहै * कौन हमैं हित चितसे चाहै ॥
को करि है कटाक्ष सुखदाई * कौन लेयगो हमहिं लुभाई ॥
को ब्रजमें दधि दूध चुरै है * कौन दान गोपिनसों लै है ॥
कौन हमहिं अब लाड़ लड़ावै * कौन माधुरी वेणु बजावै ॥
गिरहिं उठहिं पुनि भ्रमहिं दुखारी * तनमनकी सुधि सकल विसारी ॥
छूटे केश न वसन सँभारैं * हाय हाय चहुँओर पुकारैं ॥
कबहुँ हृदयमें मारत हाथा * कबहुँ भूमिसों पटकत माथा ॥
उपजत क्षण क्षणमें दुख दूना * हरिबिनहमहि सकल ब्रज सूना ॥
चलो सकल डूबहिं दहमाहीं * जहाँ कृष्ण हम रहैं तहाँहीं ॥

बलदेवजी उनकी दशा देख कहने लगे कि हे गोपियो ! तुम ऐसी चतुर होकर इतना विलाप करती हो ? एक तो माताको समझानेसे गयी, दूसरे और शोकके समुद्रमें डूबोती हो ? इस

प्रकार गोपियोंको समझा बुझाकर थोड़ासा जल मँगाकर माताके मुखपर छिड़का तो सचेत हो इधर उधर देखा, अरे बलराम ! तू अभी कृष्णको बुलाकर नहीं लाया ? क्या तुझको कन्हैयाका कुछ भी मोह नहीं ? दोनों हाथ जोड़कर बलदेवजी बोले कि हे माता ! मुझको कृष्णका ध्यान नहीं ऐसा नहीं, मेरे तो तन, मन, धन, जीवनमूल श्रीकृष्ण ही हैं परन्तु इस समय इसलिए ध्यान नहीं है कि अपने प्यारे भ्राताके प्रभावको भली प्रकारसे जानता हूँ। यशोदा बोली कि हे पुत्र ! तू प्रभावमें रहा और मेरे प्राण जाया चाहते हैं।

चौ०-दिन सब गयो भयो अँधियारा * अबहुँ न निकसो मोर कुमारा ॥
अब फँसकर कालीकी फांसी * नशत हाय मम सुत सुख राशी ॥
कहा करौं को देव मनाऊं * हाय कौन विधि पुत्र बचाऊं ॥
विना कृष्ण मम जीवन नाहीं * दुतिय अधार परत लखि नाहीं ॥
केहि मनसे भूषण पहिरैहौं * केहि रुचिव्यंजन विविध खवैहौं ॥
केहि लखि मैं जीहौं व्रजमाहीं * अब दूसर अधार मोहिं नाहीं ॥
दियो वृद्धपन सुत प्रभु मोही * हाय बहुरि अब करत बिछोही ॥

बलदेवजी बोले कि, हे माता ! तुम किस लिये इतना क्लेश करती हो ? वह विश्वविजयी कृष्ण प्यारा तो अब इसी घड़ीमें आता है, माता तू मत घबराय कृष्णको कहीं भी भय नहीं, कंसने कमलोंके लिये जो पत्री भेजी थी उसको देखकर तुम सब उदास हुए तो तुम्हारी उदासी उससे देखी न गई उसी समय कमलके फूल लेनेके लिये कालीदहमें गये हैं, तुम इस बातकी कुछ चिंता मत करो कि, कृष्ण यमुनामें डूब जायँगे कि काली सर्प उनको डस लेगा और तुम तो उनके चरित्रोंको पहले ही अपनी आंखोंसे देख चुकी हो, पूतनाको मारा, अनेक दैत्योंको संहारा, तो भी तुमने उनके प्रभावको नहीं जाना ? माता ! मुझको त्रिलोकीमें कोई ऐसा बलवान् दृष्टि नहीं आता जो कृष्णको जीत सके, फिर घबराने का क्या कारण ?

दोहा-मोहिं दुहाई नन्दकी, अबहीं आवत श्याम ।
नाग नाथ ले आवहीं, तौ कहियो बलराम ॥
यशुमति मन धीरज भयो, सुन हलधरकी बात ।
फिर भी मन मानत नहीं, क्षण-क्षणमें अकुलात ॥

बलरामका हाथ पकड़कर यशोदा बोली कि बेटा ! मैं क्या नहीं जानती, परन्तु जिस मनमें वह मनमोहनी मूर्ति बसी हुई है वह मन तो नहीं मानता, अच्छा तेरे कहेसे बलात्कार मनको दो घड़ी और रोकती हूं, उस समय यशोदा और सब गोप-गोपी कालीदहकी ओरको टकटकी बांधकर देखने लगे कि, कौनसा समय होगा कि, हमारे प्राणप्यारे कृष्णचन्द्र दहसे निकलेंगे और उनके चन्द्रमुखका हमको दर्शन होगा ? ॥ २१ ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् उस दिन जितना शोक-सन्ताप नंद यशोदादिक ब्रजवासियोंको हुआ उसका वृत्तांत मैं किसी प्रकार नहीं कह सकता, क्योंकि श्रीकृष्ण तो यमुनाहीमें डूब रहे थे, परन्तु यह सब वियोगके समुद्रमें डूब रहे थे और वहां जिस समय नटवर वेष धरकर वनमाली कालीदमन करते

थे उस समय कालीनागकी नारी बाँकेबिहारीकी मनमोहिनी छबि देखकर तनमनसे बलिहारी हो श्रीकृष्णसे कहने लगी, हे कोमलांग ! हे मदनमोहन ! हे शशिवदन ! तुम ऐसे अद्भुत स्वरूपवान् होकर यहां कहां आगये ? तुमने नहीं सुना कि, यह कालीदहका स्थान है, यहां बड़े-बड़े बलशाली भस्म हो गये ! न जाने क्या कारण है जो आप अब तक बच रहे, नहीं तो और दूसरा अबतक कभीका जल-बलकर भस्म हो गया होता, परन्तु मैं जानती हूँ कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है जो इस समय नागनाथ सो रहे हैं, जो तुमको भागना है तो भाग जाओ क्योंकि मुझको तुम्हारी भोली-भाली सूरत देखकर दया आती है। नागिनीके यह वचन सुनकर कृष्णचन्द्र बोले कि, हे सर्पिणी ! तू अपने स्वामीको शीघ्र जगा दे, क्योंकि हमको अहिराजके पास राजा कंसने भेजा है और एक करोड़ कमलके फूल काली दहमेंसे मांगे हैं, मैं इनके कहनेसे आया हूँ कि, इसी समय फूल लेकर मेरे सङ्ग चले, नागिनी बोली कि अ ललारे ! तेरी क्या सामर्थ्य है जो उसके सम्मुख मुख उठाकर देखे, देवता भी उसकी फुङ्कारके सामने हुँकार नहीं निकाल सकते। हे चन्द्रवदन ! मुझको तेरी मृदु मुसकान और शोभायमान सूरत देखकर मोह उत्पन्न होता है जो तू अपना भला चाहे तो अभी भाग जा, मैं जानती हूँ तू अपने माता-पितासे विना बूझे कंसके कहनेसे यहां चला आया है; और उस मरीले कंसने यह न शोचा कि, ऐसे कुअँर कन्हैया विश्वमनमोहनको सर्पके मुखमें कैसे भेज दूँ, हाय ! उस अन्यायीको कुछ भी दया न आई, जो पराई मांके पूतको मरनेके लिए यहां भेज दिया और तू विना विचारे जान बूझकर कालके मुखमें चला आया। अरे ! यह तो कहो तेरी कुछ शत्रुता तो नहीं है ? तेरी इस बाल्यावस्थाको देखकर मुझको दया आती है कि जो ऐसा मनोहर बालक मर गया तो इसके माता-पिता कैसे जीवेंगे ? मैं बारम्बार तुझको समझाती हूँ और तेरे ध्यानमें कुछ नहीं आता। जा अब भी कहना मान, क्यों वृथा अपना प्राण खोता है ? इन प्राणोंको लेकर कुशलसे अपने घर चला जा। नागिनकी बात सुनकर वृन्दावनबिहारी बोले किः—

दोहा-अरी बावरी सर्पसे, कहा डरावत मोहिं।
जैसा मैं बालक प्रगट, अबहिं दिखाऊँ तोहिं॥

सोरठा-क्यों नहिं देत जगाय, देखूं तेरे नागको॥
उसपर कमल लदाय, ले जैहों अहिनाथ ब्रज॥

हे सर्पिणी ! इस नागको मैं मार तो अभी डालता, परन्तु सोतेको मारना महापाप है, इसलिए तू इसको जगानेमें विलम्ब मत कर, श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुनकर नागिनी अत्यन्त क्रोधित होकर बोली कि, इस छोटे मुखसे बड़ी बात तुमको कहनी नहीं चाहिए, क्यों वृथा बकवाद करता है, जा कुशलपूर्वक अपने घर जा जिस नागने बरसों तक गरुड़जीसे संग्राम किया और हार न मानी, अरे अज्ञानी ! तू उस नागनाथको नाथनेकी इच्छा करता है; अरे मूर्ख ! यह बातें तू नहीं कहता, तेरा काल यह बातें तुझसे कहलाता है, उसकी एक ही फुंकारसे यह साँवला शरीर जलकर छार हो जायगा, तू बपुरा अहिराजाके सामने क्या वस्तु है। ब्रजनाथ बोले कि, अरे गँवारिन सर्पिणी ! तू हमको बपुरा बताती है ? इस विषैले मुखसे सँभालकर नहीं बोलती, तू कह तो तुझे अभी बपुरा कहनेका फल दिखा दूँ और एक लातसे तेरे

इस नागको मारकर यमपुरी पहुँचा दूँ, परंतु सोते हुएको मारनेका महादोष है इसलिए मैं तुझसे वारम्बार कहता हूँ कि तू इसको जगानेमें देर मत कर। मैं भी देख लूँ तेरा नाग कैसा बलवान् है। नागिन बोली कि; तेरी मृत्यु ही तेरे शिरपर गाज रही है तेरा कुछ दोष नहीं, जो तुझको यह अभिमान है तो तू जगा क्यों नहीं लेता मुझे क्यों वृथा कलंकका भागी बनाता है; तब श्रीकृष्णने कहा अच्छा मैं ही जगाये लेता हूँ! फिर नागकी पूँछ अपने चरणकी अँगुलीसे दबाकर अरे अभिमानी! ऐसी नींद! उठ सीधा होकर बैठ, उसी समय नाग अकुलाकर एकाएकी उठ बैठा और अपने मनमें कहने लगा कि, आज खगराज यहां आ पहुँचे अब क्या उपाय करूँ? नेत्र खोलकर देखा तो एक कुमार अवस्थावाला बालक मेघवर्ण, अद्भुतस्वरूप; भृगुलताका चिह्न धारण किये, पीताम्बर पहने, मन्दमुसकानयुक्त शोभायमान मुख निर्भय खिले कमलके समान चरणारविन्दवाले श्रीकृष्ण भगवान्को जलमें विहार करता देख वह विपुल-बलशाली काली अत्यन्त क्रोधसे वनमालीके मर्मस्थानोंमें काटकर उनके शरीरसे लिपट गया और मनमें यह भी विचार करने लगा कि, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि; मेरे हलाहलके सामने किसी प्राणीका क्या सामर्थ्य है जो ठहर सके? यह गरुड़ ही तो कहीं बालक रूप धरकर न आ गया हो? फिर कुछ धैर्य धरकर पूंछ पटक रोषमें भरकर श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा।

दोहा—दाँव घात लागो करन, सहस फणन फटकार।
बार बार फुङ्कार कर, डारत विषकी झार॥
जरत यमुनको नीर, जात फेन उतरात विष।
परशत नाहिं शरीर, अहिमदमोचन श्यामके॥

जब दोनोंमें अत्यन्त भारी युद्ध मचा और श्यामसुंदरको कुछ विष न व्यापा तब तो नागिनीने समझा कि, यह बालक कोई बड़ा बलवान् और पुरुषार्थी है और ऐसा भी विदित होता है कि, यह कुछ मंत्र-यंत्र भी जानता है, जो कि यमुनाका जल विषाग्निसे अदहनकी नाई भदक रहा है और इसके शरीरमें एक छालातक भी नहीं पड़ता इसमें कुछ न कुछ कारण है। और इधर अहिराजने भी विचार किया कि; देखो मैं अपनी सौफणोंसे इसके अंगोंमें काटता हूँ, परन्तु इस बालकको कुछभी भय नहीं। जब कुछ उपाय चल न सका, तो हारकर मदनमोहनके शरीरको अपने शरीरसे पांवोंतक कसके बांध लिया, हे राजन्! उस समय सुर, मुनि, गन्धर्व अत्यन्त व्याकुल हो हाहाकार करते ब्रजमें आये और रक्षाके स्तोत्र पढ़ने लगे, इधर नागपत्नी श्यामसुन्दरकी सुहावनी मनभावनी छबि देखकर अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगी कि, देखो मैंने इस मूर्खको इतना समझाया परन्तु इसके ध्यानमें कुछ न आया, यह आपसे आप जानकर अहिराजके बन्धनमें बँध गया, अब इसका बचना अत्यन्त दुर्लभ है, सत्य है जब जिसका काल आता है, उसकी चोटी पकड़कर ले जाता है, उस अवसरमें कालीने भी जान लिया कि, यह बालक अब मेरे वशमें आ गया तब भगवान्की ओर देखकर कहने लगा कि अरे अज्ञानी! तू मुझे नहीं जानता कि, मैं अहीश हूँ, अब तेरे प्राणोंकी इतिश्री हुई, अब यह प्राण लेकर घरको जाना बहुत कठिन है, जो अपने इष्टमित्रका ध्यान करना हो तो करले, तब अभिमानभंजन भगवान्ने जाना कि, इसको अभिमान हो गया। इधर अपने गोकुलको अनन्यगति देखकर और कोई उनके क्लेशका मिटानेवाला

नहीं यह जानकर और स्त्री, बालक समेत सब ब्रजवासी मेरे लिये अत्यन्त दुःखी हैं, यह विचारकर मनुष्योंके सदृश लीला करनेवाले गर्वप्रहारी भगवान्‌ने दो घड़ी उस सर्पकी कुण्डलीमें रहकर फिर उस बन्धनसे छूटनेकी इच्छा की ॥ २३ ॥ तब श्रीकृष्णने अपना देह इतना बढ़ाया कि उसके अङ्गके सब बन्द-बन्द ढीले हो गये, नस-नस दुखने लगीं, हड्डियोंके जोड़-जोड़ टूटने लगे, तब तो वह नाग कृष्णचन्द्रको छोड़ महाक्रोध कर फणोंको उठा-उठाकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा और नथनोंमेंसे विषकी ज्वाला निकलने लगीं। आंखोंके पलक खुलेके खुले रह गये और मुखसे विषानलकी ज्वाला भड़कने लगी, ऐसा वह कालिय नाग कृष्णकी ओरको देख रहा था। ॥ २४ ॥ दो-दो फांकवाली जिह्वाओंसे अधरोंको क्षण-क्षण में चाट-चाटकर क्रोध करता था, उस विकराल विषानलभरी चितवनवाले कालियनागके चारों ओर फिर-फिरकर ब्रजविहारी विहार करते फिरते थे, जैसे गरुड़ सर्पके चारों ओर फिरता है और वह कालिय भी अपना अवसर देखता हुआ भगवान्‌के चारों ओर घूमता फिरता था। श्रीकृष्ण अपना दांव विचारते थे, कालिय अपना दांव विचारता था, श्रीकृष्णकी इच्छा तो यह थी कि मेरा दांव लगे तो कालियके फणोंपर चढ़कर नृत्य करूं और कालियके मनमें यह विचार था कि किसी प्रकार एक बार तो वनमालीको फिर लिपट जाऊँ। दोनों अपना-अपना दांव तक रहे थे ॥ २५ ॥ जब फिरते-फिरते कालियका पराक्रम घट गया तब कालियके ऊपरको उठे हुए फणोंको नीचे नवाकर श्रीकृष्णने झट झपटकर उसका फण पकड़कर चरणतले दाब उसकी नाकमें नाथ डाल दी और उसके शीशपर जा चढ़े।

कवित्त—शीशपै मुकुट धृत भ्रुकुटी विकट कटि पीतपट बांधे बलिहारी हौं बदनपर। ठम ठम ठुमकत उठत मृदुल गति, देव रति निसुसत निपुनी झननपर ॥ कुण्डल छजत मुख मुरली बजत, उर माल हुलसत हरिके बांके तननपर। व्यालीपति छाजै मुख बाजे करै थेई थेई, नाचै वनमाली आली कालीके फननपर ॥

वह रसिकविहारी उसके फणोंपर चढ़े आनंद कर रहे थे और उसके शिर चलायमान भी थे, परंतु तो भी उनपर थिरक-थिरककर नृत्य कर रहे थे, क्योंकि वह तो नाटक विद्यामें परम प्रवीण और चौंसठ कलाओंके जाननेवाले थे। उस समय कालियके फणोंमें जो मणि रत्न लगे थे, उनके स्पर्शसे कृष्णके चरणारविन्द अरुण हो गये, मानों कोई तरवारकी धारपर नाचता है, कोई बांसपर चढ़कर नाचता है, देखो! श्रीकृष्ण ऐसे नाचनेवाले कि सर्पके फणोंपर चढ़कर नाच किया ॥ २६ ॥ जिस समय नटनागर नटवरवेष धरकर कालियके फणोंपर नाचनेको खड़े हुए उसको देखनेके लिये गंधर्व, सिद्धि, सुरगण, चारण, देवांगना यह सब अत्यंत प्रसन्न होकर मृदंग, ढोल, नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजाते, गीत गाते, पुष्प वर्षाते, भेंट ले लेकर आये और भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥२७॥ हे राजन्! जिस कालियके एक सौ एक मस्तक थे उसने जो मस्तक ऊपरको उठाया उसको दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय पांवकी ठोकरसे नीचेको दबा दिया और जब वह क्षीण अवस्थावाला इधर-उधर गिरने लगा तब मुखसे नासिकासे रुधिरकी धारा निकलने लगी,

शरीर के बन्द ढीले हो गये, इस प्रकार दुष्ट कालियका दुष्टदमन भगवान्‌ने मर्दन किया ॥ २८ ॥ तो भी उस कालियनागने महाक्रोध करके लम्बे-लम्बे श्वास लिये और मुखसे विष उगला और फिर शिर ऊपरको उठाया। परंतु भगवान् शत्रुदमनने नृत्य कर करके चरणोंकी ठोकरोंसे उसके मस्तकोंको नीचेको झुका दिया; उस समय गंधर्व और देवताओंने अत्यंत प्रसन्न होकर शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले नारायणके समान जानकर यशोदानंदन भगवान्‌की पुष्पोंसे पूजा की ॥ २९ ॥

हे राजन् ! नटनागर भगवान्‌ने जो चित्र-विचित्र ताण्डव नृत्य किया, उससे कालियके फणरूपी क्षत्र टूट गये और सब शरीरकी नस-नस ढीली हो गयीं, मुखसे रुधिर बहने लगा, तब श्रीकृष्णको स्थावर-जङ्गमका गुरु पुराणपुरुष नारायण समझकर मनसे उनकी शरण ली ॥३०॥ समस्त ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें विराजमान है ऐसे विश्वभावन भगवान् मुरलीधरने त्रिलोकीका भार अपने देहमें धारण कर कालियके मस्तकपर मुरली बजा-बजाकर उछल-उछल तांडव नृत्य किया, उस समय मुरलीमनोहरका कौतुक देखनेके लिए देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरादिक अपने-अपने विमानोंपर बैठकर आये और अनेक प्रकारके बाजे बजा-बजाकर श्रीवैकुण्ठविहारीके उत्तम-उत्तम चरित्र गाने लगे। अप्सरायें भांति-भांतिके नृत्य करने लगीं, देवता आकाशसे पुष्प वर्षाने लगे। उस समय देवता, गन्धर्व, जो ताल स्वर सहित गाते थे, उसीमें मुरलीमनोहर अपनी मुरलीकी तान मिलाते थे और जब कालियके शिरोंपर ठुमक-ठुमक पग धरते थे और नूपुरोंका शब्द बाजोंमें मिल रहा था, उन नूपुरोंकी झनकारकी ध्वनि सुनकर पवन-पानी भी बहनेसे बन्द हो गये, उस समयका आनन्द वर्णन करनेमें ब्रह्मादिक देवता भी चकित होते हैं फिर और किसी दूसरेका क्या सामर्थ्य है जो उस आनंदका वर्णन कर सके ? जब त्रिभुवनपतिने त्रिभुवनका भार कालियके शिरपर रक्खा तब उसके सब अङ्ग शिथिल हो गये, मुखोंसे रक्तकी फुहारें निकलने लगीं, देह थककर जब मृतक समान हो गया और सब अभिमान जाता रहा, उस समय अपने जीवनकी आशा छोड़ फणोंको पृथ्वीपर पटकने लगा, मस्तकपर चरणारविन्दोंके चिह्न हो गये, उस समय कालियकी दुर्दशा देखकर वस्त्र-आभूषण जिनके अस्तव्यस्त हो गये, केश खुल गये, ऐसी कालियकी पत्नी पतिके शीशोंको छत्रके समान टूटे देखकर हृदयमें कराघात करती हुई नारायणकी शरण आयी ॥ ३१ ॥ अत्यन्त व्याकुल जिनके मन अपने-अपने छोटे-छोटे बच्चोंको आगे करके नागकी पतिव्रता स्त्रियां अत्यन्त पीड़ित हो प्रथम पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और अपने पतिके पाप छुटानेके लिए श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरण-शरणमें आयीं ॥ ३२ ॥ नागपत्नियाँ बोलीं—कि हे नाथ ! इस अपराधीको आपने दण्ड दिया वह अच्छा किया, क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये है, शत्रु और मित्रोंको आप एकसा समझते हो, इसलिए आपका नाम समदर्शी है, दुष्टको विचार कर दण्ड देते हो और मित्रोंको मित्र समझकर उनपर अनुग्रह करते हो। दुष्टोंको दण्ड देते हो यह आपकी कुछ विषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ इस सर्पको आपने दण्ड दिया सो इसके ऊपर बड़ा अनुग्रह किया क्योंकि आपके दण्ड देनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। जिस अपराधसे इसकी सर्पयोनि हुई, वह अपराध दूर हो गया, इसलिए आपका क्रोध भी कृपारूप ही है ॥ ३४ ॥ इस हमारे पतिने पूर्वजन्ममें ऐसा क्या तप किया है ? जिससे सबके प्राणदान

देनेवाले आप इसपर सन्तुष्ट हुए। इस मान रहित हमारे पतिने अपना मान तजकर औरोंका मान किया और सब लोगोंपर दया ही करता रहा, नहीं तो ऐसे क्रूरबुद्धि सर्पपर आप क्यों अनुग्रह करते ? ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशवान् ! यह सर्प आपके चरणारविन्दके रजके स्पर्श करनेका अधिकारी हुआ, सो कौनसी तपस्याका ऐसा श्रेष्ठ फल है ? यह हम नहीं जानतीं, जिन चरणारविन्दोंके स्पर्शके लिये लक्ष्मीजीसी उत्तम स्त्रीने सब कामनाओंको तजकर व्रतको धारण करके बहुत वरसोंतक तप किया ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषोंने आपके चरणारविन्दकी रजकी शरण ली है वे पुरुष न तो स्वर्गकी, न चक्रवर्ती राज्यकी, न शिवलोककी, न इन्द्रलोककी, न ब्रह्मलोककी, न पातालकी, न योगकी, न सिद्धियोंकी और न मोक्षकी चाहना करते हैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! लक्ष्मीजी आदि से लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको आपके चरणारविन्दकी रज महादुर्लभ है, उस रजको क्रोधके वश तमोगुणसे उत्पन्न विषवाले सर्पोंका राजा कालिय विना उपाय ही प्राप्त हो गया, क्योंकि अपने कर्मोंके वशसे संसारचक्रमें भ्रमते हुए तुम्हारे चरणारविन्दके रजकी शरण चाहनेवाले शरीरधारियोंको मनमानी सम्पत्ति मिलती है ॥ ३८ ॥

श्लोक-नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥

छन्द-जय परम कारण महा प्रभु जय सर्व जगत निवास ॥
जय आदि पुरुष पुराण श्रीभगवान परम प्रकाश ॥ ३९ ॥

छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त सर्वदेहोंमें अन्तर्यामी, रूप से रहित उनमें विराजमान रहते हो । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचभूतोंके आश्रयरूप, सबके आदिकरण, आप कारण से रहित ऐसे परमकारण परमात्माको हम वारम्बार नमस्कार करती हैं ॥ ३९ ॥

श्लोक-ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥ ४० ॥

छन्द-जय ज्ञाननिधि विज्ञाननिधि जय ब्रह्म शक्ति अनंत ॥
जय अगुण अप्राकृत विकार विहीन कमलाकंत ॥ ४० ॥

आप ज्ञान विज्ञान अर्थात् चैतन्यशक्ति करके परिपूर्ण हो, व्यापक हो, अनंत शक्तिमान्, त्रिगुण, निर्विकार, मायाके प्रवर्त्तक हो, हम बारंबार आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४० ॥

श्लोक-कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥

छन्द-जय काल जय जय काल नभ त्रयकाल साक्षी सत्य ॥
जय विश्वरूपी विश्वद्रष्टा विष्णु कारण नित्य ॥ ४१ ॥

आप कालरूप हो, कालशक्तिके आश्रय हो, कालके अंगोंको देखनेवाले हो, विश्वरूप हो, विश्वके देखनेवाले हो और विश्वके कर्त्ता हो और विश्वके कारण हो, तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ ४१ ॥

श्लोक-भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥

छन्द-जय भूत मात्रा प्राण इंद्रिय मनो चित बुधि नाथ ॥
जय अहंकार अदृश्य रूप स्वरूप नित मुदगाथ ॥ ४२ ॥

पृथ्वी, जल, वायु, शब्द, आकाश, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और दशइंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त इनके रूप हो, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ४२ ॥

श्लोक-नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

छन्द-जय सूक्ष्म जय कूटस्थ जय सर्वज्ञ जयति अनन्त ॥
जय विविध वाद प्रवृत्ति कारण शब्द अर्थ लसन्त ॥४३॥

आप अहंकारसे आच्छादित नहीं इससे अनन्त हो, दृष्टिगोचर नहीं इससे सूक्ष्म हो, एवं उपाधियोंका विकार नहीं इससे निर्विकार हो। कोई कहता है सर्वज्ञ हो, कोई कहता है सर्वज्ञ नहीं हो, कोई कहता है चिन्तनीय हो, कोई कहता है अचिन्तनीय हो, कोई कहता है बद्ध हो, कोई कहता है मुक्त हो, कोई कहता है एक हो, कोई कहता है अनेक हो इत्यादि जो अनेक प्रकार के झगड़े हैं उनमें मायासे जो जैसे कहते हैं उस समय वैसे ही हो जाते हो, नाम नामी यह जो शक्तिका भेद इससे अनेक रूप करके प्रतीक्षा करने योग्य जो तुम हो ऐसे आपको बारम्बार हमारा नमस्कार है ॥ ४३ ॥

श्लोक-नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥

छन्द-जय वेद शास्त्र पुराण कवि जय प्रवृति निवृति स्वरूप ।
जय जयति निगमागम प्रवर्त्तक उद्धरन भवकूप ॥ ४४ ॥

आप नेत्रों आदिसे लेकर सब इंद्रियोंके प्रकाश करनेवाले हो, स्वतः सिद्ध ज्ञानके विषयी हो, वेदके कारण हो, वेद आपके श्वासोंसे हुए हैं, प्रवृत्तिके प्रतिपादक वेदरूप आपको हम नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥

श्लोक-नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥

छन्द-जय कृष्ण जय बलराम वसुदेवसुत अरिकंस ।
प्रद्युम्न जय अनिरुद्ध जय यदुवंशके अवतंस ॥ ४५ ॥

शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाश करनेवाले; भक्तोंके रक्षक, रामकृष्णरूप वसुदेवतनय, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धरूप आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४५ ॥

श्लोक-नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छेदनाय च ।
गुण वृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

छन्द-जय गुण प्रदीप गुणावरण गुण वृत्ति दृश्य गुणेश ।
जय ज्ञान रूप विहार विमल वितर्क महिम महेश ॥ ४६ ॥

सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणके, प्रकाशक, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके प्रकाश करनेवाले अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, तीन गुणोंसे उपासकको चित्र-विचित्र फल देनेके लिए अपने आत्माको ढककर अनेक रूपसे भासते हो और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारसे चैतन्य निश्चय आदिको लेकर वृत्तिसे जाननेमें आते हो। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके साक्षी व अगोचर आपको नमस्कार करती हैं ❋ ॥ ४६ ॥

श्लोक-अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥

छन्द-जय सब प्रकाशिनके प्रकाश हृषीकेईश गोविंद।
जय आत्मराम मुनीश ज्ञाता पर अपर गतिविंद ॥ ४७ ॥

आपकी महिमा विचारनेमें नहीं आती, परंतु सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण जाननेमें आते हो, इंद्रियोंके प्रेरक, आत्मामें रमण करनेवाले सत्स्वभाव आपको हम वारंवार नमस्कार करती हैं ॥ ४७ ॥

श्लोक-परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥

छन्द-जय जगत पति जय जग विलक्षण जगतवपु जगदीश।
जय जगत-सिरजन-हरण पालन-कालशक्ति-अधीश ॥४८॥

स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेवाले हो; सम्पूर्ण विश्वके साक्षी हो, विश्व आपके स्वरूपमें नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं, आप विश्वके निषेधकी अवधि हो, जैसे सर्पके प्रकाशका आश्रय रस्सी है वैसे आप विश्व प्रकाशनेके आश्रय हो, आरोप और निषेधके साक्षी आप हो, विश्वका आरोप और निषेधके ज्ञान-अज्ञानके कारण हो; जहांतक विश्वज्ञान है वहांतक जाननेमें आते हो अर्थात् विद्यासे और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥

❋ दृष्टान्त- एक धनाढ्य ब्राह्मण कृष्ण के भक्त थे। परन्तु भोलेभाले भी बहुत थे। लोगों ने धोका दे-दिला कर और कुछ धन ले कर उनका एक चण्डाल की कन्या के साथ विवाह कर दिया। एक दिन वह कन्या खिड़की में बैठी थी। अकस्मात् उसके देश के लोग यहां आ निकले, वह देख कर बोले- अरी नत्थन की बेटी! तू यहां कैसे आ गयी? लोगों ने पूछा कि- तुम इसको क्या जानो? वह बोले कि- हमारे गांव की जन्मी, हमारे सामने उत्पन्न हुई नत्थन भंगी की बेटी है, तब तो वह ब्राह्मण बहुत घबड़ाये और पंडितों को बुला कर पूछा कि- हम को क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये? ब्राह्मणों ने कहा कि- सूखे हुए पीपल के वृक्ष के खखोड़ल में जलो तो पाप छूटेगा। तब ब्राह्मण पीपल का खखोड़ल देख कर उसमें माला ले कर बैठ गये और लोगों ने उसमें आग लगा दी, जब सब पीपल की लकड़ी जल कर भस्म हो गयी। ब्राह्मण बैठे माला फेरते रहे, तब सब लोग उन ब्राह्मण देवता को दण्डवत् प्रणाम कर बोले कि- उठो अब प्रायश्चित्त हो चुका, ब्राह्मण बोले कि- अब वह स्त्री क्या करे? लोग बोले कि- उसको बिरादरी को दे दो। ब्राह्मण ने चाण्डालों से कहा कि- इस स्त्री को तुम ले जाओ। चाण्डाल बोले कि- जब यह ब्राह्मण के घर में रही, तो अब हमारे किस काम की है? लोगों ने कहा- तुम इसको यही रहने दो। ब्राह्मण बोले कि- तुम मुझ से फिर प्रायश्चित्त कराओगे? लोग बोले- नहीं। अलग एक कोठरी में रख देना, दो रोटी दूर से ही दिया करना, दैवयोग से चाण्डाली का देह छूट गया। तब ब्राह्मण चाण्डालों से बोले कि- इसको उठा ले जाइये। तब चाण्डाल बोला- इसे उठाने से हम को बिरादरी में रोटी देनी पड़ेगी। अतः हम इसको नहीं उठा सकते, तुम ही उठाओ। ब्राह्मण बोला- मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा, ऐसे ही शोच-विचार करते दो घड़ी दिन रह गया। तब ब्राह्मण ही उसको उठाने चला। उसका वस्त्र उघाड़ कर देखा तो उसके समीप, फूल बहुत से पड़े थे और पार्षदों के पदों के चिह्न लग रहे हैं। वहां न कोई चाण्डालिनी, न कोई मृतक है; अर्थात् वह सदेह परमधाम को चली गयी। देखिये सत्संगति की ऐसी उत्तम महिमा है।

श्लोक–त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक्।
तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥

छन्द–जय सत्त्व रज तम गुण स्वभाव प्रकाशकारी एक।
जय जय अमोघविहार कारकदलन खलन अनेक ॥ ४९ ॥

हे प्रभो ! अब चेष्टा रहित हो कालशक्तिको धारण करके सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो। हे अमोघविहार ! अर्थात् सफल विहार (क्रीडा) करनेवाले ! आप अपनी इच्छासे उन संस्काररूपसे वर्तमान स्वभावोंको प्रतिबोधन करते हुए क्रीडा करते हो ॥ ४९ ॥

श्लोक–तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशान्ता उतमूढयोनयः।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुंसतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥

छन्द–तुव शांत अशांत लीला हेतु वपु हैं तीन।
अब शांतमूढ़ तुमको प्रिय करहु नितधर्मरक्षप्रवीन ॥ ५० ॥

त्रिलोकीमें शांतस्वभाव, अशान्तस्वभाव घोरस्वभाव, मूढस्वभाव इस प्रकार सत्त्वगुण रजोगुण, तमोगुणकी प्रधानतासे तीन स्वभावके प्राणी आपके खेलनेके लिए खिलौना हैं। साधुओंकी रक्षा करनेके लिये कटिबद्ध होकर अवतार धारण करते हो, इसलिये आपको शांतस्वभाव प्राणी ही प्रिय हैं, क्योंकि सज्जनोंके धर्म पालनेकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उनकी रक्षाके लिये अवतार लिया है ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब हम अबलाओंपर कृपा कीजिये नहीं तो यह कालिय सर्प प्राण छोड़ देता है, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम दीन अबलाओंपर अनुग्रह करके पतिरूप प्राणदान दीजिये ॥ ५१ ॥ स्वामीका यही धर्म है कि एकबार जो अपनी प्रजासे अपराध हो जाय उस अपराधको क्षमा कर दें। हे शान्तस्वरूप ! इस अज्ञानी कालियका अपराध अब क्षमा करो ❋ ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं कुछ आज्ञा करनी हो सो आज्ञा कीजिये, हम आपकी आज्ञाको श्रद्धापूर्वक करेंगी। हे नाथ जो आपकी आज्ञाको हितचित्तसे करते हैं, उनके सम्पूर्ण भय छूट जाता

❋ दृष्टान्त–जैसे एक राजाने किया, कि आधी रातके समय वेष बदलकर नगरकी सैरको निकला कि देखें कोतवाल और चौकीदार रातमें पहरा देते हैं वा नहीं देते। चौकीदारने पूछा कौन ? राजाने कुछ उत्तर न दिया, तब चौकीदारने पकड़ लिया और उनकी पगड़ी उतारकर उसी से उसके हाथ बांध लिये और बहुत मारा, परंतु राजा तो भी न बोले, तब चौकीदारने और मारा और कहा कि, अरे दुष्ट ! तूही रोज चोरी करके ले जाता था। आज बहुत दिनोंमें पकड़ा है, राजा तो भी न बोले, तब चौकीदारने हवालातमें पकड़कर बैठा दिया। जब दिन निकला और लोग इधर-उधरसे आने-जाने लगे, देखे तो राजा हवालातमें बैठे हैं, तब तो लोगोंने बड़ा आश्चर्य माना कि यह क्या बात है ? चौकीदारने सब वृत्तांत सुनाया और राजाके चरणोंमें गिर गया कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये और राजाके हाथ-पांव खोल दिये, परंतु मनमें डरता रहा कि न जाने राजा क्या दंड दें। राजा चुपचाप उठकर मंदिरमें चले गये और स्नान पूजा कर राजदरबारमें आये और चोबदारसे कहा कि जो चौकीदार रात गोपालगंजमें पहरा देता था उसको इसी समय हमारे पास लाओ। वह चौकीदार डरता-कांपता राजाके सम्मुख आया। राजाने प्रसन्न होकर सौ १०० अशरफी पारितोषिकमें उसे दीं और एक गांव उसकी सन्तानके वास्ते दिया। मंत्रीने हाथ जोड़कर पूछा कि इसकी क्या वीरता लिखी जायगी। राजाने अपना देह उघाड़कर दिखाया और रातका सब वृत्तान्त सुनाया। मंत्रीने कहा कि इसको शूली देनी चाहिये थी; राजा बोला-आप नहीं समझे, यह अपने काममें बहुत सावधान है, क्योंकि जो मुझसे ही न चूका, तो फिर यह औरसे कभी नहीं चूक सकता। देखिये-अपने काममें सावधान रहने वालेको सदा परमानन्द प्राप्त होता है।

हैं ॥५३॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्। जब इस प्रकार नागपत्नियोंने श्रीकृष्णचंद्र महाराजकी स्तुति की,तब भगवान्‌ने मूर्च्छित पड़े हुए उस भग्नमस्तक कालिय नागको चरणकी ठोकरसे प्रहार कर छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ सहजही में वह दीन कालिय सचेत होकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा और हाथ जोड़कर भगवान्‌से निवेदन करने लगा ॥ ५५ ॥ हे नाथ! जबसे हम उत्पन्न हुए हैं तबसे ही हम दुष्ट हैं, तामसी हमारा स्वभाव है, बड़ाभारी हमारा क्रोध है, लोगोंका खोटा आग्रहरूप स्वभाव नहीं छूटता ॥५६॥ हे सम्पूर्ण जगत्‌के रचनेवाले। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे आपने अनेक प्रकारका विश्व रचा है और जिसके स्वभाव, शक्ति, बल,बीज,योनि,संस्कार और आवृत्तियाँ,ये सब ही पृथक्-पृथक् प्रकारके हैं, यह विश्व आपका ही रचा हुआ है ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! उस विश्वमें हमें सर्प बनाये, जन्मसे ही हमारे हृदयमें अधिक क्रोध बढ़ा और हम आपकी ही मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥५८॥ सम्पूर्ण भेदोंके जाननेवाले जगत्‌के ईश्वर आप ही हो अतः आप मायाके छुड़ानेके कारण हो, जो काम आपने हमको सौंपा, उसपर हम ऐसे दुष्ट रहे कि आपसे भी न चूके। यह मानकर चाहे हमारे ऊपर कृपा करो, चाहे दण्ड दो। आप परमेश्वर हो, सब काम करने योग्य हो ॥ ५९ ॥ हे राजन्! जब दीनदयालु दीनानाथने व्यालको अत्यन्त बेहाल देखा, तब उसका श्रम दूर कर चतुर्भुज रूप दर्शन दिया, उस अचिंत्यरूप भगवान्‌का दर्शन करते ही सब चिन्ता जाती रही और अत्यन्त प्रसन्न होकर मन ही मनमें कहने लगा:—

सोरठा—किये बहुत फण घात, बारबार पछितात मन।
अस्तुति करत लजात, रह्यो दीनहो सकुच अति॥
सम्मुख होत न नैन, अपराधी हौं आपको।
जब कुछ और बनै न, क्षमा किये ही बनेगी॥

हे कृपासिंधु! जो कुछ अपराध मुझसे हुआ वह अनजानमें हुआ,मैंने जानकर नहीं किया, अब कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजिये, आप क्षमाके समुद्र हैं, मैं पामर कीट–सर्प योनिमें विषकी खानि, तामसी स्वभाववाला हूँ, किस प्रकार आपकी महिमाको जान सकता हूँ? ब्रह्मादिक देवता भी आपकी महिमाको नहीं जान सकते, फिर मैं अज्ञानी आपकी महिमाको कैसे जान सकूँ? आपने मुझको दर्शन देकर सनाथ किया। हे नाथ! अनाथ जो शरणके योग्य नहीं उसको आप शरणमें ले लेते हो और तुम सदा अनाथोंको सनाथ करते हो, इस बातमें वेद और पुराण आपके साक्षी हैं। आप सच पूछो तो मेरा कुछ भी अपराध नहीं क्योंकि विधाताने हमारी जातिका स्वभाव ही ऐसा बना दिया है, जो कोई हमको दूध पिलाता है तो वह अपने ही लिये विष बढ़ाता है। जैसा जिसमें गुण होता है वह किसी प्रकार बदल नहीं सकता, देखो गायको कैसे ही कडुवे पत्ते खिलाओ, परन्तु जब दूध देगी तो मीठा ही होगा। इसमें मेरा कुछ दोष नहीं, मैंने अपने स्वभावके अनुसार आपके ऊपर फणोंकी चोट की, अब अनुग्रहकी दृष्टि करके मुझे अपने चरणशरणमें रखिये और यह मेरा मस्तक धन्य है, जिसपर आपके चरणारविन्द रक्खे गये। अब इन चरणोंके स्पर्शसे मेरे जन्म-जन्मके पातक नष्ट हो गये। जिन तुम्हारे चरणारविंदोंको लक्ष्मी निशिदिन हृदयमें धारण किये रहती हैं

और शिव, ब्रह्मा, सनकादिक देवता और योगीजन रात-दिन ध्यान करते रहते हैं, उन्हीं चरणोंके चरणोदकका नाम सुरसरिता श्रीगङ्गामहारानी हुआ, जो त्रिभुवनकी पावनकरणी और भवभयरुजहारणी है, जिसने सगरके सुतोंको तारा और भगीरथका निस्तार किया, ऐसी गंगा जिन चरणोंसे निकलीं वह चरणकमल आज मेरे शिरोंपर शोभायमान हैं, शेषजीके एक फणपर आप शयन किया करते हैं, उस शेषनागकी इतनी प्रशंसा है कि सब देवताओंमें अग्रगण्य है और मेरे एकसौ एक मस्तकोंपर आपने चरण धरकर नृत्य किया है, फिर मैं अपने समान भाग्यवान् और सुखनिधान दूसरेको कब समझता हूँ, क्योंकि जो मुनि मनरंजन भक्तभयभञ्जन आपके चरणारविंद मेरे मस्तकपर इस समय विराजमान हैं।

दोहा-जिन पदपंकज परशते, गति पाई ऋषिनार।
सुर नर मुनि वन्दत जिन्हैं, सन्तनप्राण अधार॥
श्रीवृन्दावन जे चरण, फिरत चरावत गाय।
ब्रजवासी-जन-दुख-हरण, भक्तनको सुखदाय॥

ऐसे अमल कोमल कमलसे चरण विना ही जप,तप,यज्ञ,दान किये सहजमें ही पा लिये। मैं गरुड़के भयसे भागकर यहां आया था परंतु गरुड़ने मेरे संग शत्रुता नहीं की मित्रता की क्योंकि जो गरुड़ मुझको न सताता तो मैं यहां क्यों आता और क्यों आपका दर्शन पाता। यह गरुड़के ही प्रतापसे आपका दर्शन मुझको हुआ, आज मैं सनाथ हो गया, क्योंकि जो त्रिलोकीनाथने अपना चरण मेरे माथेपर रख दिया। इस प्रकार कालियकी मीठी वाणी सुनकर दीनबन्धु भगवान्ने कहा कि मैंने तेरे मस्तकमें अपने चरणसरोज छुवा दिये, अब तुझको किसी प्रकारका शोक-सन्ताप न होगा, परंतु अब तू इस कुण्डका वास छोड़कर रमणकद्वीपको चला जा ॥ ६० ॥ और अपनी जातिके सर्प और बाल-बच्चे, स्त्रियोंको भी साथ ले जा, क्योंकि अब मैं यहां जलक्रीड़ा किया करूँगा और गाय-बछड़े और ग्वालबाल यहांका जल पिया करेंगे, आजसे इसका नाम 'कालियकुण्ड' होगा। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर अथवा सन्ध्या समय इस चरित्रका पाठ करेगा उसको सर्प का भय न होगा ॥६१॥ यह कालियदह स्थान मेरे विहार करनेका है, जो पुरुष इसमें स्नान कर इस जलसे पितृदेवताका तर्पण करेगा वा व्रत और मेरा पूजन करेगा उसको अश्वमेध यज्ञ का पुण्य होगा और अन्तसमय परमधामको जायगा अर्थात् फिर इस असार संसारमें जन्म नहीं लेगा॥६२॥और हे कालिय! जबतक यमुनाजल रहेगा तबतक संसारमें तेरा नाम विख्यात रहेगा। मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, मैं तुझको अपना व्रज दिखाऊँगा, कंसने करोड़ कमल जो कालियदहके मांगे हैं वह तू अपने ऊपर लादकर शीघ्र व्रजमें राजा कंसके पास पहुँचा दे। कालियनागने विनयपूर्वक प्रार्थनाकी कि,स्वामी! मैं कमल कंसके पास अभी पहुँचाये देता हूँ,परंतु मुझको अपने चरणोंसे अलग करके रमणकद्वीप मत भेजो, क्योंकि मुझे वहां गरुड़ चैन नहीं लेने देगा। श्यामसुन्दर बोले कि हे कालिय! तू किसी प्रकार का भय मत कर, अब गरुड़ तुझसे कुछ नहीं कहेगा, क्योंकि मेरे चरणचिह्न तेरे मस्तकपर दूरसे चमक रहे हैं। यह कह व्रजविहारी अपने मनमें विचार किया कि जो आज कंसके पास कमलके फूल न पहुंचे तो कलको प्रातःकाल ही व्रजपर चढ़ आयेगा, इस प्रकार शोच-विचार कर कालियपर कमलके फूल लाद आह्लादपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे चलनेका विचार किया।

दोहा-काली ❋ अहिकी पीठपर, लादि कमलके फूल।
आप चढ़े तेहि शीशपर, यशुमति जीवन मूल॥
उरग नारि सब जोरि कर, प्रभुके सम्मुख आय।
करति विनय अति दीन ह्वै,पतिहित हरिहि सुनाय॥

सोरठा-इत यशुमति उरमाहिं, उठी लहर अति प्रेमकी।
कान्हर आयो नाहिं, कहत रोय बलदेवसों॥

बलदेवजी बोले कि माता! क्यों इतना अधीर होती हो? थोड़ी देर और ठहरो, हमारे प्राणप्यारे तुम्हारे नेत्रोंके तारे श्यामसुन्दर आना ही चाहते हैं यशोदा बोली कि भैया! तू झूठ बोल बोलकर मुझे बार-बार समझाता है और मेरा धैर्य बँधाता है, अब मेरा धैर्य किसी प्रकार नहीं बँध सकता। यह कह हृदयमें कराघात कर एकाएकी पुकार उठी, हे मेरे बालकृष्ण मनमोहन प्यारे! मुझे मेरी वृद्धावस्थामें तूने धोखा दिया, मैं अपने लालको कैसे देखूँ, कहां जाऊँ, किससे कहूँ, कहां ढूढूँ, हाय! हाय!! इस समय कोई भी ऐसा हमारा हितकारी ब्रजमें नहीं, जो मेरे कन्हैयाको दहमेंसे निकालकर मुझको दिखा दे, अब धिक्कार है मेरे यहां रहनेको, मैं ही अपने जीवनमूलको कालियकुण्डमेंसे निकाल लूंगी,ऐसा कहकर कुण्डकी ओरको दौड़ी, परन्तु मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गयी। ब्रजनारीकी यह दशा देख सब ब्रजवासी व्याकुल होकर कहने लगे कि हे ब्रजराज! आज तुम विना हमारे प्राण सिधारना चाहते हैं, अब शीघ्र आकर हमें बचाओ। हे प्यारे! प्रातःकालसे यमुना जलमें घुसे हुए क्या कर रहे हो, शीघ्र क्यों नहीं निकलते? हमको तुम्हारे देखे विना दो पहर दो युगके बराबर बीते हैं, तुमको हम लोगोंका कुछ भी ध्यान नहीं और यह भी सुध नहीं कि नन्द-यशोदाकी हम विना क्या गति होती होगी? इस समय वे दोनों ऐसे घबड़ा रहे हैं जैसे मणि विना सर्प व्याकुल होकर अपना फण पृथ्वीपै दे-दे मारता। यशोदा बार-बार यमुनामें डूबनेको दौड़ती हैं, ब्रजबाला बलात्कार पकड़-पकड़ कर रखती हैं इतनेमें यशोदा फिर सचेत होकर रो-रोकर कहने लगी-अभी कृष्ण नहीं आया? अरे बलदेव! झूठ बोल-बोलकर ही मुझको रखा! अब तेरी बातका मुझको विश्वास नहीं रहा।

❋ शंका- कालिय दह के तट पर कदम का वृक्ष तो गरुड़जी, जो अमृत लाये थे उस सुधाबिन्दु के प्रभाव से जम गया और एक करोड़ कमल के फूल जो कालीदह में कंस को ला कर दिये वे कमल उस कुण्ड में कैसे उत्पन्न हुए थे?

उत्तर- वह जो कदम का रूख कालिय के किनारे पर था, वह अमृत के प्रभाव से बच रहा था, तो उसको भी अमृत का ही रूप जानना चाहिये। इसलिये, रात्रि के समय जो ओस वृक्ष के पत्तों पर पड़ती थी, उन पत्तों के स्पर्श से वह अमृत का गुण देने लगती थी। उसके कण बन कर जो उस कुण्ड में टपक-टपक कर गिरते थें, उन पर विष की कुछ भी बाधा नहीं पहुचती था, उन्हीं बिन्दुओं के कमल हो जाते थे। दूसरे उस कुण्ड के नीचे की जो पृथ्वी थी; वह भी सजीव थी, क्योंकि सर्प की मणि में अमृत का गुण होता । और उस कुण्ड में कालिय की और उसके कुटुम्बियों की मणि रखी थी, इसी कारण से उस पृथ्वी में विष नहीं था, कालिय के श्वासों से केवल उसके जल में ही जहर था।

और किसी ग्रन्थ में ऐसा भी लिखा है कि- कालिय नाग ने जब बहुत दिनों तक शिवाराधन किया तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर कहा कि- 'वर मांग।' तब कालिय ने कहा कि "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो तो यह वर दीजिये कि ककाराक्षरियों को मेरा विष न व्यापे।" यदि कोई इस पर कहे कि- "इसने यह वर क्यों मांगा।" यह सब जानते हैं कि सर्प की जिह्वा में जहर होता है, कालिय ने समझा कि सर्पिणी प्यार कर के अपने बच्चों को चाटती है। परन्तु जिह्वा के जहर से मर जाते हैं। सर्पिणी १०० अण्डे देती है, परन्तु जहर से एक दो बच रहते हैं, शेष मर जाते हैं। इसलिये यह वर मांगा कि मेरे ब्रच्चे न मरें और बहुतसे हो जायें, तो अपने शत्रु गरुड़ को परास्त कर दूँ। उसी वर के कारण कदम्ब के वृक्ष को, कमल के फूलों को और कृष्ण को कालिय का विष नहीं व्यापा।

दोहा–कहत यशोदा नन्दसों, धृग धृग वारंवार।
कब केतिक दिन जियोगे, मरत नहीं मोहिं मार॥

सोरठा–हे पति गुणगणधाम, सुनी कहीं दशरथकथा।
इधर निकलगे राम, उधर प्राण तनते गये॥
कर देखो मन ज्ञान, ऐसे दुखमें मरण सुख।
नन्द भये बिनु प्राण, मूर्छि परे सुनि तिय वचन॥

जब नन्दजी अचेत होकर पृथ्वीपर गिरे, उसी समय बलरामजीने झपटकर उनको उठा लिया कि हे पिता! आप किस लिये इतना शोच करके अपने प्राण खोते हो,तुम यह नहीं जानते कि आज दिन संसारमें ऐसा कौनसा बलवान है, जो भगवान् श्रीकृष्णको पराजित कर सके? क्योंकि वे आदि पुरुष अविनाशी अन्तर्यामी आनन्दरूप सदा लक्ष्मी सहित क्षीर-सागरमें निवास करते हैं, फिर किंचिन्मात्र कालियदहमें कूदनेसे आप क्यों अधैर्य होते हो? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! बलदेवजी नन्द, यशोदा और ब्रजवासियोंको इस प्रकार समझा-बुझा ही रहे थे, कि उस समय यमुनाका जल उछलने लगा, झकझोर तरंगे उठने लगीं, तब गम्भीर शब्दसे पुकार कर बलदेवजी बोले कि देखो! अब वृन्दावनविहारी भक्त हितकारी कुण्डसे बाहर निकलना चाहते हैं। बलदेवजीका वचन सुनते ही सब व्रजवासी एक बार ही यमुनाकी ओरको निहारने लगे, उसी समयः–

चौ०–प्रगट भये जलते तेहि काला ❋ व्रज जन जीवन नँदके लाला॥
कमल भार काली शिर लीन्हे ❋ नटवर वेष मनोहर कीन्हे॥
भये सुखी सब व्रजके वाशी ❋ लखि हरिवदन परम सुखरासी॥

हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंदको देखकर नन्द यशोदा व्रजवासियों समेत ऐसे आनंदित हो गये जैसे मृतक शरीरमें प्राण आ जाते हैं डूबतेको नौका मिल जाती है, सबके शरीर पुलकायमान हो गये, मनमें ऐसा हर्ष बढ़ा कि कंठ गद्गद हो गये, प्रेमका जल नेत्रोंसे बहने लगा, चकित होकर एकटक भगवानकी ओरको देखते हुए सबके सब मिलनेको दौड़े,देखा तो श्यामसुन्दर कालियनागके फणोंपर नृत्य कर रहे हैं, मुरली अधरोंपर धरी है माथे में चन्दनकी खौर लग रही है।

छन्द–श्रवण कुण्डल लोल लोचन चारु मुकुट विराजहीं।
मनहुँ मरकत गिरि शिखर मणि मोर तापर राजहीं॥
पीतपट कटि काछनी उर मालमणि भूषण सजे।
नृत्य तांडव करत फण प्रतिव्योम दिव दुन्दुभि बजे॥
भई जयध्वनि गगन वर्षहिं सुमनसुर आनँदभरे।
गन्धर्व गुणगण गगन गावत तान तालन अनुसरे॥
उरग नारी श्याम सम्मुख करत अस्तुति आवहीं।
नाथ अब अपराध क्षमिकर कर कृपा पति पावहीं॥

राखे चरण निज शीश याके अति बड़ाई इन लई ।
ऐसी बड़ाई औरको प्रभु नाहिं तुम कबहूँ दई ॥
शेष इक ब्रह्माण्ड भर शिर राखि मन गर्वित कियो ।
कोटि कोटि ब्रह्माण्ड तुव तनअधिक इन यह भर लियो ॥
सुर असुर नर नाग खग मृग कीट जन सब रावरे ।
क्षमिय अब अपराध अहिके सुभग सुन्दर सांवरे ॥

दोहा–सुनि अहिनारिनके वचन, करुणामय यदुराय ।
उतर परे अहि शीशते, यमुनाके तट आय ॥

सोरठा–तट पर कमल धराय, कालीको आयसु दियो ।
उरगद्वीप अब जाय, करहु वास निर्भय वहां ॥ ६३ ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि अद्भुत लीलावाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब यह बात कही, तब नाग और नागकी स्त्रियाँ अत्यन्त आनंद-सहित श्रीकृष्ण भगवान्‌की पूजा करने लगीं ॥६४॥ दिव्य वस्त्र, माला, मणि, अमूल्य आभूषण और दिव्य सुगन्ध केशर, कस्तूरी, चन्दन आदिका लेपन और बड़ी-बड़ी कमलकी मालाओंसे ॥६५॥ गरुड़-ध्वज भगवान्‌की पूजा की और कालियसर्पने भगवान्‌की आज्ञा मान उसी समय परिक्रमा दे दण्डवत् प्रणाम-कर अपने कुटुम्ब समेत अपने उरगद्वीपको चला गया, उस समय देवता आकाशमें जय-जयध्वनि कर कहने लगे कि हे शरणागतवत्सल ! धन्य है आपको, जो कालियको अपने चरणशरणमें रख लिया और उसके फणपर चरणचिन्ह लगाकर गरुड़की कठिन त्राससे बचा दिया ।

दोहा–धन्य धन्य प्रभु धन्य कहि, मुदित सुमन वरषाय ।
गये देव निज निज सदन, हृदय परम सुख पाय ॥ ६६ ॥

तबसे वृन्दावनविहारी, विहारार्थ मनुजरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे यमुनाजीका जल अमृतके समान निर्मल हो गया, लेशमात्र भी विष न रहा ॥ ६७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोहा–सत्रहवें कालीयको, भेजो रमणकद्वीप ।
बंधु बचाये अग्निते, भेजे कमल महीप ॥

इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने पूछा कि हे भगवन् ! ऐसे परमोत्तम रमणकद्वीपको छोड़कर कालियनाग यमुनामें क्यों आया ? और क्या कारण जो अकेले कालियने ही गरुड़का अपराध किया ? इसका सब वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाबाहु राजा परीक्षित ! सुनो, "ब्रह्माजीके पुत्र कश्यपजी थे, उनके कई स्त्री थीं, उनमें कद्रू और दूसरी विनता नाम्नी थी, कद्रूसे कालिय सर्पादिक बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए और विनताके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक गरुड़जी (भगवान्‌के वाहन) और दूसरा अरुण

(सूर्यनारायणका सारथी) वह गरुड़जी और कालिय सर्पादिक रमणकद्वीपमें वास करते थे। कद्रू और विनता दोनों अत्यन्त प्रेम-प्रीतिसे रहती थीं, और परस्पर किसी प्रकारका विद्रोह नहीं था। एक दिन दोनों सौतें परस्पर वार्त्तालाप कर रहीं थीं, कद्रूने विनतासे पूछा कि सूर्यके रथमें जो घोड़े जुते हैं, वे किस रंगके हैं ? विनताने कहा श्वेत रंगके और कद्रूने कहा काले रंगके, इसी बात पर परस्पर दोनोंने होड़ बदी और प्रतिज्ञा की कि जिसकी बात सत्य होगी वह दूसरीको अपनी दासी बना लेगी और उसको दासी बनकर सत्यवालीके पास रहना पड़ेगा, देखो फिर किसी प्रकार का झगड़ा-रगड़ा न हो। दोनोंने स्वीकार किया कि जो हारेगी वह निस्सन्देह दासी होगी। इस बातको जब सर्पोंने सुना तब अपनी माता कद्रूसे कहा कि हे जननी ! तुमने हमसे बिना पूछे ऐसी कठिन प्रतिज्ञा कर ली, यह अच्छा नहीं किया, क्योंकि सूर्यके रथमें तो श्वेत घोड़े जुते हैं अब तुम विनतासे किसी प्रकार नहीं जीत सकती। पुत्रोंकी बात सुनकर कद्रू कहने लगी कि बेटा ! जो चाहे सो हो अब तो मैं उसको वचन दे चुकी हूँ भगवदिच्छा ऐसी थी, परंतु अब कोई ऐसा उपाय भी है जिससे मैं जीत जाऊँ ? नहीं तो निदान मुझको विनता की दासी बनना पड़ेगा। तब सर्प बोले कि हमने एक उपाय तो विचारा है यदि हो सके तो ! कद्रू बोली क्या ? सर्पोंने कहा—हम सब काले-काले सर्प जाकर सूर्यके घोड़ोंको लिपट जाते हैं, इससे वह अश्व श्यामवर्ण दिखायी देंगे तब तू निश्चय जीत जायगी। कद्रू बोली उपाय तो बहुत ठीक है। काले-काले सर्प मिलकर सूर्य-नारायणके रथके घोड़ोंकी देहसे जा लिपटे, इसलिए वे घोड़े काले-काले दृष्टि आने लगे तब तो कद्रूने विनताको बुलाकर वे घोड़े दिखाये, वह तो काले ही थे क्योंकि प्रथम ही सैकड़ों काले नाग उनको जा लिपटे थे, इसलिए कद्रू जीती और विनता हार गयी।

कवित्त—धोखेमें ही रावणने सीताको हरण कियो, धोखेमें ही कौरवने जीत लियो दांवको। धोखेमें ही राजा बलि छलो जाय वामन है, धोखेमें ही हनो वालि जानके प्रभावको॥ धोखेमें विष्णुने डिगायो सत्य बिंदा-केर शालिग्राम जानो, नहीं सतीके स्वभावको। ऐसी भोलीभालीको जु धोखेमें ही छल लीनो, कहा है ठिकानो भला ऐसे अनियावको॥

जब कि यह वृत्तांत गरुड़जीने सुना कि कद्रूके पुत्रोंने हमारी मा के साथ धोका किया उसी समय गरुड़जीने जाकर कद्रूसे कहा कि यह तुमने अच्छा नहीं किया, जो छल करके हमारी माताको अपनी दासी बनाना चाहा, ऐसा अन्याय तुमको नहीं करना चाहिये, अब जो कुछ हुआ सो हुआ, परन्तु अब इतना काम करो कि उसके बदलेमें जो वस्तु कहो वह हम तुमको ला दें, परन्तु माताको अपनी दासी मत बनाओ, क्योंकि इसमें हमारी तुम्हारी दोनोंकी निर्लज्जता है, गरुड़जीके वचन सुनकर सर्पोंने परस्पर परामर्श करके गरुड़जीसे कहा कि तुम हमको अमृतका एक घट भरकर ला दो तो हम तुम्हारी माताको दासी नहीं बनायेंगे। गरुड़-जीने सर्पोंका कहना स्वीकार किया और उसी समय उनको अमृतका घट भरकर ला दिया और अपनी माताको उनसे छुड़ाकर अपने घर ले आये। जबकि यह समाचार देवताओंने सुनाकि अमृतका कलशा भरकर गरुड़ने नागोंको दे दिया तब तो मनमें दुःखी होकर अत्यन्त सोच-विचार किया कि जो अमृत सर्पोंने पी लिया और अमर हो गये तो सैकड़ों जीवोंकी

हत्या करेंगे और हमको भी बहुत दुःख देंगे। उस समय हमको और मर्त्यलोकवासियोंको प्राण बचाने कठिन पड़ेंगे। यह सब सम्मति कर सब देवता गरुड़जीके पास गये और उनसे कहा कि भाई! अपने वचनानुसार अमृतका घड़ा नागोंको देकर अपनी माताको छुड़ाकर ले आइये, पीछे जैसा छल करके आपकी माताको उन्होंने दासी बनाया वैसा ही कोई छल तुम भी उनके साथ करो, क्योंकि वह भी तो जाने कोई हमको चतुर मिला ❋ अपने कार्य सिद्ध करनेके लिये अमृतका घड़ा उनसे कोई यत्न करके ले लो। गरुड़जीने यह सम्मति देवताओंकी स्वीकार कर ली और जब नागोंको गरुड़जीने अमृतका कलशा दिया तो देवताओंको दिखा दिया कि देखो! अमृतका घड़ा यह है,तब सब नाग मिलकर अमृतका घट सरोवर तटपर

❋ इस बात पर एक दृष्टान्त है– कलिङ्ग देश में एक राजपूत थे। वे घर से नौकरी करने के लिये कहीं परदेश को चले गये। एक कृपण राजा के यहां जा कर नौकरी की, भोजन मात्र भी कठिनता से पल्ले पड़ता था। जब दो-तीन वर्ष हो गये और घर से भी खर्च के मांगने कि चिट्ठियाँ आने लगीं, तो राजा से कहा– तीन वर्ष से कुछ वेतन नहीं मिला, जो आप कुछ दें, तो हम घर को खर्च भेजें। राजा ने बहुत दिनों तक टालबाल की कि-आज देंगे। निदान– इसी प्रकार चार महिने और बीत गये, तब तो ठाकुर साहेब ने कहा कि; ऐसी नौकरी हम नहीं करते, जो कुछ देना है वह हमारे हाथ पर रख दो। राजा ने कहा कि रुपया तो हमारे पास है नहीं; परन्तु एक बैल है, इसको तुम ले जाओ। वह राजपूत बैल ले कर वहां से चल दिया। मार्ग में उसको ठग मिल गये, पूछा कि– भाई! बैल बेचते हो? राजपूत बोला– हां। ठग बोले– क्या लोगे? राजपूत ने कहा– साठ रुपया। ठग बोले– ऐसे नहीं गांव में चलो, जो कोई भला मनुष्य कह दे, वह दाम ले लो। राजपूत ने कहा– बहुत अच्छा, गांव में उन ठगों का पिता रहता था, उसके पास ले गये और बैल का सब वृत्तान्त सुना दिया कि जो दाम तुम कह दो, वह दाम हम इसको दे दें। उस वृद्ध पुरुष ने कहा कि– मेरी दृष्टि में यह बैल छः टके का है। राजपूत ने सोचा कि जो अब कुछ तीन-पाँच करता हूँ, तो यह छः टके हाथ से जाते हैं, इससे इस वृद्ध का वचन मान लेना ही अच्छा है। राजपूत बोला– छः ही टके दे दो। छः टके ले कर मन में पश्चात्ताप करता हुआ घर आया और मार्ग का सब वृत्तान्त सुनाया और दो-चार दिन घर पर रह उसने कहा– ठगों को यदि मैं न ठगूं, तो मेरा नाम राजपूत नहीं। यह कह उसने स्नान कर बालों की पटियें गूंथ, मेहदी-महावर रचा कर, पान खा कर, नेत्रों में काजल लगा कर, दातों में मिस्सी मल और मस्तक पर सिंदूर की बिन्दी ऐसी लगायी मानो चन्द्रमा के निकट मंगल विराजमान है। पीछे हार, हमेल, पंचलड़ी चम्पाल की, धुकधुकी, मोहनमाला, कड़े, छड़े झामग, पायजेब, अनवठ, बिछुवे, पगमान आदिक भांति-भांति के गहने पहने, जिन के ऊपर चिकने की कुरती, जाली की ओढ़नी जिसमें गोटे और किनारी की छड़ी पड़ी हुई थी। मुख पर झालर और मुक्केश लग रही, खड़े धूमधाम का लहँगा पहन धूमधाम की ढोली मँगा उसमें बैठ उसी मार्ग पहुँची; जहां, कि वह ठग रहा करते थें। कहारों से कहा– डोली तो यहीं रखो और तुम जाओ। डोली रख कर कहार तो अपने घर आये और वह ठग डोली के निकट आये, उस स्त्री को देख ठगों की बुद्धि जाती रही कि यह नवयौवना चन्द्रमुखी, चम्पकवैनी, मृगनैनी, पिकवैनी रंभा और रति को लजाने वाली, यह भोली-भाली यहाँ कहा से आ गयी। ऐसा कह कर उसके समीप जा कर उससे पूछा कि– हे चन्द्रानने! तुम कौन हो? वह बोली कि मेरे स्वामी मेरे मइके से मुझको लाते थें, परन्तु मार्ग में चोरों ने उनको पकड़ कर मार डाला, अब जो कोई मुझको अपने घर में रख ले तो, मैं रह जाऊँ। पाँचो भाई आपस में लड़ने लगे, किसी ने कहा– इस मनमोहनी को मैं लूंगा, किसी ने कहा– यह चञ्चलाक्षी मेरे मन में बसी है, किसी ने कहा– इस गजगामिनी ने मुझे वचन दिया है, एक बोला– मैं सबसे बड़ा हूँ, यह मुझको चाहिये। एक बोला कि यह झगड़ा किस लिये करते हो? पिताजी के पास चलो, जिसको वह कह देंगे, वह लेना। यह बात सब के मन आ गयी। सब मिल कर पिताजी के पास गये। पिताजी उस चन्द्रकांता की छवि देख कर मतवाले हो गये, लड़कों से कह– भाई! तुम क्यों आपस में झगड़ा करते हो? वह मन्दहासिनी तो मुझ वृद्धजन की सेवा में रहे तो बड़े आनंद की बात है। यह विशालाक्षी बोली कि,– मैं भी इन्हीं से प्रसन्न हूँ। पहले हमारे घर नये वस्त्र पहन कर सत्यजित पूजे जाते हैं, सो अपने पिता को नये वस्त्र बनवाओ और मुझे भी नये वस्त्र पहनाओ और हनुमान् और कालभैरव का सवापाँच सेर का रोट होगा, देवी की ढाई सेर की कढ़ाई होगी और गुड़गाये वाली को अठावरी होनी चाहिये। सब सामग्री आज ही बहुत शीघ्र इकट्ठा करो। क्योंकि आज नवमी तिथि भी अच्छी है और मंगलवार का वार भी मंगलदायक है। चारों बेटे सामग्री लेने को नगर में गये। एक घर पर रहा, तब वह कमललोचनी बोली कि– एक बात मैं भूल गयी। चामुण्डे के लिये यह तो सवा रुपये के पेड़े-बतासे आये ही नहीं। बुढ्ढेने पाँचवें बेटे को झटपट पीछे से दौड़ा दिया। अब वह वृद्धजन और चन्द्रवदनी ही अकेले रह गये। वह सुमुखी बोली– स्वामी तुम! बड़े चतुर हो, बेटों से छीन-छान कर मुझको तुम ने ही लिया और मेरी इच्छा यही थी कि मेरे प्राणनाथ आप हों। वृद्ध बोला– प्यारी! मैं तेरी मनोहर छवि देखते ही मोहित हो गया और हे प्रिये! ऐसे सुन्दर वस्त्र और आभूषण मेरे पास हैं, जो कभी तूने देखे भी न होंगे। वह बोली– पहले मुझे दिखा दो। वह तो कामातुर था ही, सन्दूक का ताला खोल सब वस्त्राभूषण उसके सामने रख दिये और जो कुछ धन था वह भी सब दिखा दिया। राजपूत ने कहा ऐसा समय फिर हाथ आना बहुत कठिन है, यह विचार कांख में से कटार निकाल कर दो-चार हाथ ऐसे मारे कि बुढ्ढे के शरीर के खंड-खंड कर डाले और वस्त्राभूषण और धन ले कर अपने घर को चल दिया और अपना प्रयोजन सिद्ध कर दिया।

रख आप स्नान कर ध्यानमें लग गये, किं पवित्र होकर अमृत पीयेंगे। उसी समय गरुड़जी वहांपर गये और अमृतका घट सहजमें उठा लाये और देवताओंको दे दिया। देवताओंने अमृतका घट ले देवलोकको चले गये। नागोंने देखा अमृतका घट यहां से कोई उठाकर ले गया परंतु यह समझ गये कि यह कौतुक गरुड़का ही है और किसी दूसरेकी सामर्थ्य नहीं जो हमारे बीचमेंसे अमृतका कलशा उठा ले जाता, इसी दिनसे सांपोंने गरुड़जीसे बैर बांध लिया और गरुड़को सताने लगे। निशिदिन गरुड़को सर्पोंका भय रहने लगा, तब गरुड़ने हारकर एक दिन वासुदेवभगवान्‌की बहुत प्रार्थना की और कहा कि भगवन्! मुझको सर्पोंने बहुत दुःख दे रखा है, भगवान् बोले कि फिर तू क्या चाहता है? गरुड़ बोले कि हे जगन्नाथ! मेरा यह निवेदन है कि आजसे कोई सर्प हमको युद्धमें न जीत सके और नित्य प्रति सर्पोंका भोजन हम किया करें और उनका विष हमारें शरीरको न व्यापे। हे राजन्! उसी समय गरुड़ध्वज भगवान्‌ने इच्छानुसार वरदान दिया, तब तो गरुड़जी अत्यन्त प्रसन्न होकर नित्यप्रति नागोंको पकड़-पकड़ कर खाने लगे। जब गरुड़जीके सामने सर्पोंका कुछ बल न चल सका तब सब मिलकर ब्रह्माजीके पास गये और विनयपूर्वक प्रार्थना की कि हे पुरुषोत्तम जगत्कर्त्ता! हमको और गरुड़को आपने ही प्रसन्न किया है, वह गरुड़जी वरदान पानेसे हमको भक्षण कर लेते हैं, यह बड़ा अन्याय है कि बलात्कार गरुड़ हमको पकड़ कर निगल जाता है आपके सामने ऐसा अन्याय करना उनको नहीं चाहिये। ब्रह्माजीने सर्पोंका वृत्तांत सुनकर गरुड़को बुलाया और उनको समझाकर इस प्रकार दोनों जनोंका हेल-मेल करा दिया कि महीनेके महीने एक सर्प गरुड़जीको खानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक दे दिया करो। रातदिन तुमको क्लेश भोगना नहीं पड़ेगा, तब सर्प और गरुड़जी दोनों इस बातपर प्रसन्न होगये और सर्पोंने परस्पर सम्मत करके पारी नियत करली। प्रत्येक पूर्णमासीको एकसर्प पीपलके पेड़पर टांग दिया करें॥ २॥ सब सर्प अपनी बारीसे पीपलके वृक्षपर गरुड़जीकी भेंट रख दिया करते थे, कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये॥ ३॥ अपने विषके और पराक्रमके घमण्डमें अभिमानी कद्रूका पुत्र कालिय गरुड़को कुछ वस्तु न समझकर सर्पान्न गरुड़के भागको एक दिन आप ही खा गया ॥४॥ हे राजन्! भगवान्‌के प्यारे भगवान् गरुड़जीने जब यह बात सुनी कि हमारे भागका भोजन कालिय नाग खा गया, उसी समय क्रुद्ध होकर कालियके मारनेके लिये अत्यन्त वेगसे कालियके पीछे झपटे॥ ५॥ विष ही जिसका शस्त्र वह कालियनाग ऊपर को फण उठा दौड़कर गरुड़जीके सम्मुख आया, दन्तआयुध भयानक जीव पलक जिसमें लगे नहीं ऐसे भयङ्कर नेत्रवाला कालिय दांतोंसे गरुड़ को काटने लगा ॥६॥ तब तो तार्क्ष्यके पुत्र गरुड़जी बड़े क्रोधसे अपने अङ्गको छुड़ाया और सुवर्ण केसे प्रकाशवाले अपने पंखोंसे और चोंचसे कद्रूके पुत्र कालियको मारकर गिरा दिया॥ ७॥ गरुड़जी जिस समय पंख प्रहार करते थे तब पंखोंमेंसे वेदोंकी ध्वनि निकलती थी, उनके प्रहारसे और स्वरों की गुंजारसे सर्प व्याकुल होते जाते थे और कालिय भी अत्यन्त व्याकुल हो गया तो मनमें विचार करने लगा कि अब गरुड़से मैं किसी प्रकार न जीतूंगा। हारकर यह सोचा कि अब वहां चलना चाहिये जहां सौभरिऋषिने गरुड़को शाप दे रखा है कि यहां गरुड़ न आ सके,

दूसरे जलमें गरुड़का पराक्रम भी न चलेगा । इस प्रकार अपना बचाव समझकर वृन्दावनके निकट यमुनाके कुण्डमें जाकर निवास किया ॥ ८ ॥ क्योंकि उस दहमें एक समय गरुड़जी मछलियाँ खानेकी इच्छासे आये, तब सौभरिऋषिने गरुड़को रोका कि, भाई ! यह हमारे तपस्या करनेका स्थान है, यहां मछली मत मारो, परन्तु क्षुधार्थी गरुड़जीने ऋषीश्वरका वचन न माना ॥ ९ ॥ जब मछलियोंका पति एक बड़ा मत्स्य गरुड़जीने मारा तब मछलियोंको दीन और व्याकुल देखकर उनके बचानेके लिए सौभरिऋषिने महाक्रोधित होकर यह शाप गरुड़को दिया ॥ १० ॥ इस ह्रदमें गरुड़ आकर जो मछलियोंको खायेगा तो उसी समय गरुड़का देहान्त हो जायगा । यह बात मैं सत्य कहता हूँ , इस प्रकार प्राणीमात्रकी रक्षा करनेवाले सौभरिऋषिने गरुड़को यह शाप दिया ॥ ११ ॥ यह बात कालिय भली-भांति जानता था और किसीको यह सुधि नहीं थी कि गरुड़को सौभरिऋषिका शाप है । इस भयसे उस कुण्डमें कालिय वास करता था, श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुण्डसे निकालकर उसके प्राचीन स्थान रमणकद्वीपको भेज दिया ❋ ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन कुण्डमें सुन्दर माला पहने हुए, केशरचन्दन चर्चित वस्त्र धारण किये, मणि रत्नोंसे दीप्त सुवर्णके गहने पहने दहमेंसे निकले ।

सोरठा–व्रजपति दीनदयाल, जनरञ्जन भञ्जन कलिहि ।
आये निकसि गोपाल, ब्रजवासीजन सुखकरन ॥ १३ ॥

तब ब्रजविहारीको देखकर सब ब्रजवासी खड़े हो गये, जैसे मृतक शरीरमें प्राण आनेसे इन्द्रियां चैतन्य हो जाती हैं उसी प्रकार आनंदसे पूर्णचित्त हो दौड़कर सब ब्रजवासी ह्रदयसे-लगा-लगाकर मिले और विरहानलका जो ताप ह्रदयमें भड़क रहा था, वह सब शान्त हो गया ॥ १४ ॥ माताने दौड़कर कंठसे लगा लिया, शरीरके रोम खड़े होगये, मुखसे शब्द न निकल सका, नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी, वारंवार ह्रदयसे लिपटाय तनुकी पीड़ाको मिटाने लगी ।

चौ०–कहि कहि मेरो कुँवर कन्हैया ❋ दुहूँ करनसों लेत बलैया ॥
दौरि नन्द उरसों लिपटाये ❋ गये प्राण मानहुँ फिरि आये ॥
प्रेमाकुल देखी बल माता ❋ मिले रोहिणीसे सुखदाता ॥
निरखिवदनकह यशुमति मैया ❋ मैं बरजों नित तोहि कन्हैया ॥
यमुनातीर लाल मति जाहू ❋ तुम बरजो मानो नहिं काहू ॥

कृष्ण बोले कि मैया ! मेरा क्या दोष है, भवितव्यता किसीसे मिटी है ? मेरा अपराध क्षमा कर अब आगेको तुझसे और पितासे विना पूछे कोई काम नहीं करूँगा । मैया ! जो स्वप्न

❋ शंका–क्या उस कुंडको कालिय नाग ही जानता था और कोई दूसरा सर्प कुंडको नहीं जानता था ? इसका क्या कारण ?

उत्तर–कालिय नाग नारदजीका चेला था, इसलिये नारदजीने कालियको कुंड बताया था कि तुमको कभी विपत्तिकाल पड़े तो तू कुंडमें चला जाना । उस कुंडमें गरुड़का बल नहीं चल सकेगा । इसलिये केवल कालियको ही उस कुंडका वृत्तान्त विदित था ।

मैंने रात देखा था उसका फल तत्काल ही प्रगट हो गया, फिर मैया मेरा दोष तूने कैसे बताया ? दूसरे जब कंसने कालियदहके कोटि कमल मांगे तो सब व्रजवासी घबड़ाये और पिताजीके भी प्राण सूख गये। हे मैया तब मैं भी डरके कारण गैया चरानेके बहाने ग्वाल-बालोंको सङ्ग ले यमुनातीरको भाग आया।

दोहा—मैं गेंदहि खेलन यहां, आयों यमुनातीर।
मोहिं डारि काहू दियो, कालीदहके नीर॥

हे जननी ! जब मैं महागम्भीर जलमें गिर गया तो नीचेको ही चला गया, वहां जाकर :—

सोरठा—देखो उरग विशाल, जाय तहाँ मैं अतिडरो।
पूँछी मोहि व्याल, किन पठयो तोको यहां॥

तब मैंने डरते कांपते उस सर्पसे कहा कि मुझको राजा कंसने कमलके फूल लेनेके लिए तुम्हारे पास भेजा है, जब उस सर्पने कंसका नाम सुना तो वह डर गया और मुझको अपने मस्तकपर चढ़ा लिया और कमलके फूल अपनी पीठपर लादकर मुझको यहां पहुँचा गया। श्यामसुन्दरकी भोली-भाली बातें सुन पुचकारकर नन्द और यशोदाने हृदयसे लगा लिया, और कहने लगे कि आज हमारे कन्हैयाका दूसरा जन्म हुआ है, फिर सब सखाओंको प्रीति सहित कण्ठसेसे लगा-लगा मिले, और सबका कुशल पूछा। सब ग्वालबाल प्रसन्न होकर बोले कि भाई ! हमको तो तुम्हारा दर्शन ही कुशलरूप है। फिर श्रीकृष्णने पूछा कि श्रीदामा कहां है ? सखाओंने कहा कि मुँह छिपाये लज्जाके मारे ओटमें दुबके खड़ा है। श्रीकृष्णने झट झपट उसका हाथ पकड़ लिया।

दोहा—हे भैया क्यों छिपे हो, मुख तो देहु दिखाय।
तुमहमपर रिस कर गये, सो अब देहु भुलाय॥

हृदयसे लगाकर कहा—हे भाई ! हमारी तुम्हारी क्या लड़ाई ? जो कुछ मैंने रिसमें आकर आपसे कहा वह सब अपराध मेरा क्षमा कीजिये। मैंने तो सखाओंके ही सहारेसे सारे काम किये, नहीं तो मैं किस योग्य था, यह कह अपने प्यारे श्रीदामाको हृदयसे लगा लिया। श्रीदामा बोला कि हे व्रजराज ! आज मेरी आंखें आपके सम्मुख नहीं हो सकतीं क्योंकि मैंने तुच्छ गेंदके लिए आपको सैकड़ों कटु वचन कहे और यहां तक मैं कलंकी हुआ कि मेरे ही गेंदके लिये आप कालीदहमें कूदे और हाय ! मुझ पापीने आपको न रोका। अब मैं किसीके सामने मुख दिखानेके योग्य नहीं, आप इतने पर भी मुझसे मिले और मेरे कुवा-क्योंका किञ्चिन्मात्र ध्यान न किया, सत्य हैः—

दोहा—बड़े बड़ाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥

बांके विहारी हँसकर बोले—भाई ! तुम क्या समझ रहे हो ? इन बातोंको आप दूर करो मुझको तो कमलके फूल लेनेके लिए दहमें जाना ही था, फिर इसमें आपका क्या अपराध ? श्रीदामा—बोला भैया। अपनी माया आप ही जानो।

चौ०—कहत सखा सब धन्य कन्हैया * जो तुम कहो कियो सोइ भैया॥
तुम हो सब व्रजके सुखदानी * कंस मारिहौ तुम हम जानी॥

कहा भयो जो तुम हो बारे ❋ हैं तुम्हरे गुण सबते न्यारे ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलरामजी घनश्यामको छातीसे लगाकर हँसकर मिले और गाय, बछरे, बैलोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए जो और वृक्ष सूख गये थे वे सब हरे हो गये। तब सब ब्रजवासी बोले कि भाई बलराम! तुम भी अपने वचनके पूरे ही निकले जो तुमने कहा था वैसे ही हुआ, अब घर चलनेकी क्या इच्छा है ?॥ १६ ॥ उसी समय गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण अपनी-अपनी पत्नियों सहित नन्दरायजी कहने लगे कि परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कालियनागका डँसा हुआ तुम्हारा पुत्र बच गया। यह बड़े मंगलका समय है ॥१७॥ इनके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको मणि रत्न आभूषण सहित गोदान दीजिये। हे राजन्! उस समयकी बधाईमें नन्दरायजीने प्रसन्न होकर गायें और सुवर्णका दान ब्राह्मणोंको दिया ॥१८॥ धर्मशीला यशोदाजी भी बड़ी भाग्यवान् है,जिसका पुत्र कालके गालमें जाकर लौट आया, उसने अपने पुत्रको पाकर हृदयसे लगाय गोदमें बैठाकर वारंवार नेत्रोंसे आंसू बहाने लगी ॥१९॥ हे राजन्! भूख-प्याससे पीड़ित ब्रजवासी और सब गायोंको देखकर (जिनको भूखका नाम भी नहीं था) ❋ ब्रजभूषण नन्दादिक सब ब्रजवासियोंसे कहने लगे कि मेरे वियोगका आपको बड़ा क्लेश हुआ और भोजन तक भी नहीं किया, इसलिये आज यमुनाके ही तीर पर वास करना चाहिये, क्योंकि यहांकी अतिरमणीक सुहावनी भूमि है, सुगन्धसनी त्रिविध समीर बह रही है, यहीं भोजन करके प्रातःकाल अपने-अपने घरोंको चलेंगे। श्रीकृष्णकी आज्ञा मान सब ब्रजवासियोंने वहीं वास किया और नन्दरायने वृन्दावनसे षट्रस भोजन मँगाकर सबको आनंद सहित जिमाया। फिर श्रीकृष्ण बोले कि पिताजी! मेरा यह विचार है कि कमलके फूल भी कंसको अभी पहुँचा दो और ग्वालबालोंको साथ कर दो और जो फूलोंको भेजनेमें विलंब हुआ तो कलको वह निःसन्देह ब्रजपर चढ़ाई कर देगा। यह बात सुन नन्द और उपनन्द बहुत प्रसन्न हुए और बहुतसी गाड़ियाँ मंगाकर एक करोड़ कमलके फूल उनमें लदवा दिये और बड़े-बड़े दूध दही माखनके बर्तन अहीरोंके शिरोंपर रख चतुर-चतुर गोपोंको उनके संग कंसके पास भेज दिया।

❋ दृष्टान्त- एक वैद्य किसी राजा के पास एक डिबिया भर कर परमोत्तम कालकूट रस ले कर आये और कहा कि- इस रस में यह परमश्रेष्ठ गुण है, कि जो सीक भर कर हाथी को सुंघा दो वह उसी समय मर जाय और मनुष्य का तो कहना ही क्या है ? यह बाईस तोले दश हजार रुपये का है। राजा ने विचार किया कि उत्तम वस्तु सदा नहीं मिलती, इसलिये मन्त्री को आज्ञा दी कि; उसको दश सहस्र रुपये दे और यह औषधि ले कर एक नौकर को सौंप दो। एक दिन राजकन्या को उस नौकर ने कहीं खिड़की में बैठी देख ली और उस पर मोहित हो गया और फिर अनेक उपाय किये परंतु उस राजकन्या का दर्शन नहीं हुआ, तो उस नौकर ने राजकन्या के वियोग में वह औषधि खा ली, परन्तु वह मरा नहीं। जब एक वर्ष बीत गया तो उस राजा ने अपने नौकर से उस रस की डिबिया मांगी। राजा ने देखा कि डिबिया खाली है और उंगलियों के चिह्न रस में लग रहे हैं। राजा ने उससे पूछा कि औषधि कम क्यों है ? उसने उत्तर दिया कि- मैंने खा ली, परन्तु मैं मरा नहीं। राजाने वैद्य को बुला कर सब वृत्तान्त कहा। वैद्य ने नौकर को एकान्त ले जा कर सब सत्य-सत्य वृत्तान्त पूछा, तब उस नौकर ने जो कुछ बीता था सब सच्चा वृत्तान्त कह दिया। तब वैद्यराज राजासे बोले कि- हे राजन! इस रस में किसी प्रकार का दोष नहीं, यह रस बहुत सच्चा है, उसी समय वह रस एक सींक भर कर कुत्ते को सुंघाया और सुघते ही मर गया। तब राजा ने कहा- हमारा नौकर क्यों नहीं मरा ? वैद्यराज बोले कि- क्षणमात्र को राजकन्या को खिड़की में बैठा दो, तो अभी परीक्षा हो जायेगी और इस नौकर को भी यहीं पर खड़ा रहने दो। राजा ने वैद्य की आज्ञानुसार वैसा ही काम किया। राजकन्या की दृष्टि पड़ते ही नौकर तड़फड़ा कर मर गया; क्योंकि उसके प्राण राजकन्या में ही थे, वैसे ही व्रजवासियों के मन कृष्ण में अटक रहे थे। अब उसमें से निकले तो उनको भूख-प्यास लगी, इस कारण न कोई मरा और न किसी को भूख-प्यास लगी।

दोहा-बहुत विनय करि कंसको, दीन्हों पत्र लिखाय।
कहियो मेरी ओरते, नृपसों ऐसे जाय॥

सोरठा-गयो कमलके काज, कालीदह मेरो सुवन।
तुव प्रतापते राज, आप गयो पहुँचाय अहि॥

हे महाराज! आपने एक करोड़ कमलके फूलोंके लिये आज्ञा की थी वह हमने तीन करोड़ फूल मँगा लिये हैं, उनपर पानी छिड़ककर बहुत स्वच्छ स्थानमें रखवा दिये हैं, जो आज्ञा हो तो वे भी फूल आपकी सेवामें भेज दिये जायँ। तब बीचमें श्रीकृष्ण हँसकर बोल उठे कि कंससे मेरा नाम कहना, कि यह सब काम श्यामसुन्दरने किया है। कमलके फूल और माखनके भार गोप लोग लेकर राजा कंसके द्वारपर पहुँचे और राजद्वारपर गाड़ियोंको थामकर पौरियेके हाथ राजाको समाचार भेजा। पौरियेने उसी समय सब समाचार कंसको सुना दिया, सुनतेही पसीना आ गया और घबड़ाकर राजद्वार पर आया, देखा तो गाड़ियोंकी लगारकी लगार लग रही हैं। देखते ही चकित हो गया और सब सुधि-बुधि विसर गयी। वह कमलके फूल उसके हृदयमें शूलसम खटकने लगे। गोपोंने नन्दकी ओरसे विनय सुनाया, पत्र हाथमें दे भेंट आगे रख दी और गोपोंने फिर कहा कि हे पृथ्वीनाथ! नन्दके पुत्र श्यामसुन्दरने यह कह दिया है।

दोहा-हम कालीदह जायकर, कियो तुम्हारो काम।
नृप हमको जानत नहीं, कहियो मोर प्रणाम॥

सोरठा-सुनत श्यामसंदेश, देखि कमल अति भो विकल।
भीतर गयो नरेश, चित्त चिंता बाढ़ी अधिक॥

पत्रको बांचकर मनही मनमें यह कहने लगा कि इससे अब मेरा किसी प्रकार उबार न होगा; यह आदिपुरुष अविनाशी परब्रह्मका अवतार है,क्योंकि जिस- जिस दैत्यको मैंने भेजा उसको उसने विना मारे न छोड़ा। देखो कालियदह महा कठिन स्थान, उसमेंसे कमलके फूल लेकर मेरे पास भेज दिये, निश्चय वह पूरा पराक्रमी है, यह कह उदास हो शोचने लगा कि अब क्या उपाय करूं? कभी कहता कि इन गोपोंको मार डालूं, फिर भय मानकर घबड़ाता है कि न जाने कि वह नन्दकुमार क्या उत्पात करे? इसी सोच-विचारमें चार घड़ी बीत गयीं, फिर कुछ धैर्य करके गोपोंको राजभवनमें बुलाया और ऊपरके मनसे उनको आदर-सत्कार कर नन्दजीके लिये शिरोपाव दिया और कहा कि मेरी ओरसे नन्द-रायसे जाकर कहना कि आपने बड़ा काम किया और जो तुम्हारे पुत्र बलराम और कृष्ण हैं, उनको एकदिन अपनी सभामें बुलाकर देखूँगा, उन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया जो कमलके फूल मेरे पास भेज दिये,यह कह उनको बिदा किया। परन्तु हृदयमें महाशोक सन्ताप हुआ तब कंसने अपने मित्र दावानलको बुलाकर अपना सब वृत्तांत कहा, आज मैं तुम्हारे बल और वीर्यको देखना चाहता हूँ, तुम अभी जाकर ब्रजको और ब्रजवासियोंको फूंक दो।

सोरठा-जारि करो सब छार, व्रज सब ब्रजवासिन सहित।
बचहिं न नन्दकुमार, ऐसो यत्न विचार उर॥

दावानल कंसकी वाणी सुन बड़े घमण्डके साथ महाक्रोधित होकर बोला–आप कुछ सन्देह मत करो। एक क्षणमात्रमें सम्पूर्ण ब्रजको गोप गोपाल सहित भस्म कर दूँगा। जो मैं सबको एक स्थानमें पाऊँ तो आपका कार्य एक पलमें कर दिखाऊँ। इधर सब गोपग्वाल कंसको कमलके फूल पहुँचाकर यमुनाजीके किनारे आये, जहां नन्दादिक सब गोपग्वाल पड़े हुए थे और कंसने जो कुछ उनसे कहा था, वह सन्देशा कहा, उस बातको सुनकर नन्द, उपनन्द और सब ब्रजवासी बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु नन्दरानी अपने मनमें डरीं कि न जाने मेरे पुत्रोंको बुलाकर वह पापी कंस क्या करेगा ?

दोहा–कहत श्याम बलरामसों, हँस हँसकर यह बात।
नृप हम तुम देखन लिये, कह्यो बुलावन तात॥

ब्रजवासी अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुये, क्योंकि एक प्रसन्नता यह कि कृष्णचन्द्र कालियनागसे बचे और दूसरी प्रसन्नता यह कि कंसको कमल देकर उसकी त्राससे छूटे परंतु दिनभरके हारे-थके भूख-प्यासके कारण सब ब्रजवासी यमुनाके किनारे उस रातको रह गये थे ॥२०॥ गरमीकी ऋतु थी, आधीरातका समय था ठण्ढी-ठण्ढी पवन जो लगी तो सब ब्रजवासी पड़कर सो गये। तब सूखे वनको उस दावानल दैत्यने अग्निरूप बनकर जलाना आरंभ कर दिया और महाक्रोध करके सब ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया। उस समय पवनके वेगसे अनलकी ऐसी ज्वाला भड़कने लगी मानो चारों ओर सुमेरु पर्वत दिखाई दे रहा है ॥२१॥ सब पृथ्वी और आकाश लाल-लाल दीखने लगा, पशु-पक्षी व्याकुल होकर भागने लगे। जब महाकुलाहल हुआ तो सब ब्रजवासी घबड़ाकर जाग उठे और पुकार-पुकारकर कहने लगे कि भाई ! यह तो बड़ी भारी आग लगी, अब क्या उपाय करें ! कोई और मार्ग भी नहीं दिखायी देता ? भागकर किधरको जायँ ? जब कहीं निकास न देखा तो लम्बे-लम्बे श्वास भरकर कहने लगे कि अब तो दव निकट ही आ गयी, यह कहते हुए सब यमुनाके तटपरको भागे किसी प्रकार हमारा उबारा न होगा; क्योंकि अग्नि महा अपार बढ़ती चली आती है और अग्निकी झार चार-चार बांस ऊँची ऊपरको उठी चली जाती है। अब सबकी जलकर यहीं ढेरी होगी ॥ २२ ॥ यह कहकर सब अत्यन्त व्याकुल हो गये।

छन्द–डरे ब्रजजन अति विकल सब देखि अनल भयावनो।
धरा भई नभ ज्वाल पूरण धूम धुन्ध डरावनो॥
लपट झपटत तरुवर गिरत महि भहरायके।
उठत शब्द अघात चहुँदिशि बढ़त झर झहरायके॥
फटत फल फूटत पटक दल जरत बरत लता घनी।
कांस चटकत बांस पटकत लूक उचटत नभ तनी॥
हरिण मोर बराहवन पशु विकल पन्थ न पावहीं।
जरत जहँ तहँ जीव खग मृग विकल जित तित धावहीं॥

दोहा–दावानल अति क्रोध करि, लई दशहु दिशि घेर।
उठी अनलज्वाला प्रबल, मानहुँ अचर सुमेर॥

सोरठा—धूम धुन्ध विकराल, भयो अधेरो गगन सब ।
बिच बिच चमकत ज्वाल, तडितमाल जनु सघन घन ॥

जब ऐसी महाभयंकर प्रलयकालकीसी अग्निको देखा तब सब हाहाकार कर पुकारे कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! हे अत्यन्त पराक्रमी ! आप शीघ्र हमारी सहायता कीजिये, यह महाभयानक कृशानु हमको भस्म किये डालता है । हे संकटमोचन ! शीघ्र हमारी सहायता कीजिये; क्योंकि जब-जब हम लोगोंपर भारी भीड़ पड़ती है, तब-तब तुम ही सहायता किया करते हो । जैसे तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर और अघासुरको मार हमारी रक्षा की वैसे ही अब भी हमारी रक्षा करो, हम सब आपके ही हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! इस महाघोर कालरूप अग्निसे हम लोगोंको बचाओ । हे मित्र ! इस भयंकर अग्निमें जलनेसे भी नहीं डरते, केवल आपके चरणारविन्दके वियोगसे डरते हैं, उस आपके निर्भय-पदको हम नहीं त्याग सकते ॥ २४ ॥

चौ०—यशुमति सबसों कहति पुकारे ❋ दई परो है ख्याल हमारे ॥
रूप अनेक असुर धर आये ❋ कोउ खग कोउ पशुरूप बनाये ॥
आयो कोउ वपुधरि भयदायक ❋ भयो तहां कोउ पुण्य सहायक ॥
आज उरगसो बचो कन्हाई ❋ कमल भेजि नृप त्रास मिटाई ॥
अब यह बाढ़ी अग्नि अपारा ❋ करन चहत ब्रजको संहारा ॥
किमि बचिहैं यह बालक दोउ ❋ मोहि लखि परत उपाय न कोउ ॥

माताके भयभीत वचन सुन और सब ब्रजवासियोंको व्याकुल देख बांकेबिहारी बोले कि भाई ! कोई मत डरो, उसी देवताका ध्यान करो जिसका प्रथम पूजन किया था । उसने पहले रक्षा की थी वही अब भी आप लोगोंकी रक्षा करेगा, अब तुम सब अपने-अपने नेत्र बन्द कर लो । जब सबने अपने-अपने नेत्र बन्द कर लिये, तब जगन्नाथ जगदीश्वर अनन्त-शक्तिधर अनन्तरूप भगवान् सब अग्निको पान कर गये और धुन्धक राक्षसका विध्वंस कर डाला और दशों दिशाओंमें शांति हो गयी । पशु-पक्षी जहां-तहां आनन्दसे विचरने लगे, वृक्षादिक हरे-भरे दिखाई देने लगे, तब वृन्दावनविहारीने सब ब्रजवासियोंसे कहा, अपने-अपने नेत्र खोल दो, जब सब ब्रजवासियोंने अपने-अपने नेत्र खोलकर देखा तो कहीं उनको अग्निकी एक चिनगारी भी दृष्टि न आयी । यह अद्भुत चरित्र देख सब ब्रजवासी परस्पर कहने लगे कि पृथ्वीसे आकाशतक अग्नि ही अग्नि दिखायी देती थी और ठौर-ठौर महा विकराल लाल-लाल लपटें निकलती थीं, जल भी नहीं बरषा और किसीने बुझाया भी नहीं, फिर यह महाभयंकर ज्वाला किस प्रकार बुझ गयी ? इस बातका भेद हमने अबतक नहीं जाना । फूसकी आग पहले तो बहुत भड़क उठती है, फिर बुझ भी बहुत शीघ्र जाती है ।

सोरठा—ज्यों ओछेको प्यार, एकीएका बढ़त है ।
घटत न लागे बार, तैसेहि अग्नि बिला गई ॥
जाके रक्षक श्याम, कौन मार ताको सकै ।
जहां नित्य विश्राम, तहां कमी किस बातकी ॥

जो प्रभु अलख अपार, दुर्लभ शिवसनकादिको ।
धन्य नन्दकी नार, ता सुतको धरि मारही ॥

जब सब शोक-सन्ताप मिट गया और प्रातःकाल हुआ तब सब व्रजवासी अपने-अपने घर आये और मङ्गलाचार करने लगे और व्रजनायकको अपना सहायक समझकर उनसे अत्यन्त प्रेम प्रीति करने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा–अष्टादशमें ग्रीष्मसे, लक्षित सुखद वसन्त ।
हरिकी पाय सहाय कछु, हत्यो प्रलम्ब अनंत ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नरेन्द्र ! अग्निका पान किये पीछे श्रीवृन्दावनविहारी मनमें प्रसन्न होकर अपनी जातिके सब व्रजवासियोंको साथ लिये व्रजवासी जिनके चरित्र गाते चले आते थे, ऐसे श्यामसुन्दर गायोंके समूहोंसे शोभित व्रजकी ओर पधारे ॥१॥ गायोंके चरानेके बहानेसे अनेक प्रकारकी माया करके दोनों भाई व्रजमें विहार करते थे, उसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आ गयी । यद्यपि वह समय देहधारियोंके लिये सुखदायक नहीं है ॥२॥ परंतु तो भी वह ग्रीष्मऋतु भी वृन्दावनके गुणोंसे वसन्तऋतुके समान जान पड़ती थी, क्योंकि जहां साक्षात् श्रीवृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचंद्र भगवान् बलरामजीके साथ विराजते थे फिर भी वहां वसन्त न रहे ! बड़े आश्चर्यकी बात है ! वहां तो सदा वसन्त रहना चाहिये वृक्षोंपर बारहों मास फल-फूल खिलते रहे, त्रिविध बयारि झकोरती रहे, आमोंकी डालियोंपर कोकिला कूकती रहे, भांति-भांतिके पक्षी मनभावनी सुहावनी बोलियाँ बोलते रहें, मोर शोर कर-कर चारों ओर झिंगारते रहे और अनेक-अनेक प्रकारकी शोभा नित्यप्रति बनी रहे तो क्या आश्चर्य है ? क्योंकि जहां त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी विहार करें वहां भी यह शोभा न हो तो फिर कहां हो ॥ ३ ॥ जहां जलके झरनोंका ऐसा गम्भीर शब्द हो रहा था उस शब्दके सामने झींगरोंका शब्द सुनायी नहीं देता था और सदा झरनोंकी छीटोंसे हरे-हरे वृक्षोंके समूहोंसे वृन्दावन अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥४॥ वहां हरी-हरी घास ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी मानो हरे मखमलका बिछौना बिछ रहा है । उस वृन्दावनमें कह्लार, कञ्ज और उत्पल ये जो भांति-भांतिके कमल हैं, उनकी सुगन्धयुक्त नदी, सरोवर, झरनोंसे स्पर्श करके जो ठण्ढी-ठण्ढी पवन आती थी उससे वृन्दावनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और मार्त्तण्डका प्रचण्ड ताप नहीं सताता था ॥५॥ जहां अनेक नदियाँ हैं, जिनके तटपर पहुँचते ही जलकी तरंगोंसे टापुओंकी और किनारोंकी भूमिमें सजलताई आती है, उस पृथ्वीकी सजलताई और हरियालीको विषके समान भयंकर सूर्यकी किरणें नहीं सुखा सकती थीं ॥६॥ अनेक प्रकारके फूल जहां-तहां फूल रहे हैं, नानाप्रकारके जीव-जन्तु, पक्षी मीठी-मीठी बोलियाँ बोल रहे हैं ।

चौ०–कुसुमित तरुअवली जेहि कानन ❋ सो वृन्दावन परम सुहावन ॥
कीर कपोत केकि कल मोरा ❋ बोलत पिक चकोर चहुँ ओरा ॥

कोकिल चातक अति सुखदानी ❋ मुनिमन हरण सारिकाबानी ॥
विहरत ब्रजवन तिय सुत संगा ❋ चरत नवीने तृणन कुरंगा ॥
मत्त मधुप तहँ कुञ्ज निकुंजनि ❋ भ्रमरी संग करत कलगुंजनि ॥
वृन्दावन समान नहिं दूजो ❋ ताकी छबि नन्दन नहिं पूजो ॥७॥

उस अनुपम वनमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् बलदेवजीको और ग्वालबालोंको साथ लेकर बाँसुरी बजाते विहार करनेके लिये गाय बछड़ों सहित वृन्दावनको चले ॥ ८ ॥ बलराम श्रीकृष्णादिक ग्वालबाल, पत्र,मोरपुच्छ,गुच्छक माला, धातु अर्थात् गेरू, खड़िया, मनशिल हरतालसे शृङ्गार करके कभी नाचते थे,कभी गाते थे,और कभी परस्पर युद्ध मचाते थे ॥९॥ श्रीकृष्णचंद्र जब युद्ध करते थे और नृत्य करते थे उस समय कितने बांसुरी, करताल और शृङ्गी बजाते थे और कितने नयी-नयी रागिनी गाते थे, कितने उनके नाचकी बड़ाई करते थे ॥ १० ॥ हे राजन् ! देवता लोग गुप्त हो गोपोंका रूप धारण कर-कर श्रीकृष्ण और बलरामकी वारंवार इस प्रकार प्रशंसा करते थे, जैसे नट नटकी बड़ाई करते हैं ॥ ११ ॥ सब शिरपर बाल धारण किये श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई कभी चाई-माई खेलते, कूदते, कभी धक्का-मुक्की करते, कभी तालियां ठोंकते, कभी खैंचातानी करते और कभी मल्लयुद्ध करते इस प्रकार एकसे एक अद्भुत लीला करते थे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! कभी और दूसरे ग्वालबाल नाचते थे तो कृष्ण बलदेव दोनों भाई आप गाते थे और बाँसुरी बजाते थे और फिर उनकी प्रशंसा करते थे कि तुमने भला नृत्य किया ॥ १३ ॥ कभी बेलके फल हाथमें लेकर दो-दो चार-चार एक साथ ही उछालते, कभी कुंभी वृक्षके फलोंको फेंकते थे, कभी आंवलेके फल मुरलीमें रख-रखकर फेंकते थे, कभी छोटे-छोटे फल हाथमें लेकर पूछते थे,जो बतला देते तो फल ले लेते और जो नहीं बतला सकते थे, तो वह फल हार जाते थे ।

दोहा—सबहिं सखा कहुँ आयके, भाषहिं हरिबल पाहिं ।
खेलैं आँखमिचौहनी, अस हमरे मन–माहिं ॥

पहले तो बलरामने श्यामसुन्दरके नेत्र बन्द किये, सब सखा भागकर चारों ओर छिप गये, तब बलदेवजीने कृष्णको छोड़ दिया और उनकी आंखे खोल दी जिसको कृष्ण पकड़कर लाते थे। बलदेवजी उसकी ही आंखें मीचते थे, कभी कुरंगके संग दौड़ते, कभी विहंगके ढंगपर चलते थे ॥ १४ ॥ कभी सरिताओंके सोतेमें मेंढककी नाई कूदते और जो कोई कूदनेके समय पानीमें रपटकर गिर पड़ता तो सब सखा मिलके उसका हास्य करते थे। कभी वृक्षोंकी शाखाओंको पकड़-पकड़ कर झूलते थे और सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके आभूषण बना-बनाकर पहनते थे, कोई-कोई सखा कहते थे भाई ! हमारी तो यह इच्छा है कि बलरामको तो राजा बनायें और घनश्यामको मन्त्री बनायें और हम सब प्रजागण बने और श्रीदामादिक ग्वालबालोंको सिपाही बनायें और जो-जो ग्वालिनी इस मार्गको दधि लेकर निकलें उनसे दान लें ॥ १५ ॥ इस प्रकार राम-कृष्ण दोनों भाई जगतमें जो-जो खेल विख्यात हैं उन खेलोंको खेलकर प्रसन्न होते थे। कभी यमुनाजी नहाते, कभी गोवर्द्धनकी कन्दराओंमें घुस जाते, कभी कुञ्जोंमें विचरते फिरते थे। कभी वनमें आकर छिप-छिपकर विचरते,कभी सरोवरमें जलविहार करते और कभी कमल कुमुदिनीके फूल तोड़-तोड़कर कानोंमें पहनते थे ॥१६॥

इस प्रकार दोनों भाई ग्वालबालोंके संग वृन्दावनमें गायें चराते थे। कृष्ण बलदेवके हरनेके लिये कंसने प्रलम्बासुरको भेजा, उसने इनको सखाओंके साथ खेलता हुआ देख अपना रूप भी गोपका ही बनाकर इन ग्वालोंमें आ मिला ॥ १७ ॥ सर्वांतर्यामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जान लिया कि यह असुर आया और अपने मनमें उसके मारनेकी चिन्ता की, परंतु तो भी उसको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहा कि मित्र! आप भले खेलके समय आ गये ❋ ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानते ही हो। फिर सब सखाओंको बुलाकर कहा कि हे मित्रो! हम बराबरकी दो टोली बनाकर खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥

चौ०-एक ओर बलराम प्रधाना ❋ एक ओर भये श्याम सुजाना ॥
दोउ ओर है थोक बनाये ❋ आधे आधे दोउ दिशि आये ॥

बलराम और घनश्यामको दोनों टोलियोंका मुखिया बनाया और सबको यह वचन पुकार कर सुना दिया कि जो जीते वह हारेकी पीठपर चढ़े और हारा हुआ उसको अपनी पीठपर चढ़ाकर भाण्डीरवन तक उसी समय पहुँचा दे॥२०॥इस प्रकार चढ़ने-चढ़ानेवाले कई खेलोंको प्रारम्भ किया और परस्पर यह बात स्वीकार करली ॥२१॥ इस प्रकार चढ़ते-चढ़ाते गायोंको चराते श्रीकृष्ण अपने थोकको लेकर भाण्डीरवनमें पहुँचे ॥२२॥ हे राजन्! जब बलरामजीकी ओर श्रीदामा और वृषभादिक जीत गये तब श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरके उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर ले गये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब हार गये तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको चढ़ाया और प्रलम्बासुरने रोहिणीनन्दन बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ा लिया ॥ २४ ॥ जब कि उस प्रलम्बासुरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बलवान् समझा तो बलदेवको ही भाण्डीरक वनकी ओरको लेकर अत्यन्त शीघ्रता सहित झपटा चला गया ॥ २५ ॥ जब वह असुर पर्वतके समान बलदेवजीका भारी भार न उठा सका और पराक्रम उसका शिथिल हो गया तब इसने अपना असुरदेह धारण कर लिया, उस समय वह दैत्य सुवर्णके गहने पहने ऐसा शोभायमान दिखाई देता था जैसा चन्द्रमासहित बादलमें बिजली दमक जाती है और बलदेवजी उस दैत्यके काले शरीरपर कैसे दिखायी देते थे जैसे काली-घटामें चन्द्रमा, बलदेवजीके कानोंके कुण्डल कभी-कभी दामिनीके समान दमक जाते थे। गलेका दुपट्टा जो झटका खाकर नीचेको लटक गया था वह ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रका धनुष तन रहा है, गरमीके कारण उसकी देहसे स्वेद जो टपक रहा था वह ऐसा ज्ञात होता था मानो आकाशसे बुन्दधारा पड़ रही है ॥ २६ ॥ आकाशतक प्रकाशमान ऊँचे जिनके महाविकराल कालके समान लाल-लाल नेत्र मानो तत्काल ही ज्वालाको उगलेंगे, महाभयंकर बाढ़े-दाढ़े मानो धरी हुई बरछी है। बाल तांबेके सदृश लाल-लाल, भयकारी दोनों भुजदण्ड मानो ब्रह्माण्डके तोड़नेवाले हैं,कानोंमें कनककुण्डल,मस्तकपर मुकुटकी अद्भुत

❋ शंका-रावणादिक अनेक राक्षसोंको भगवान्ने मारा परंतु किसी राक्षसके मारनेमें ऐसी चिंता नहीं की जैसी छोटेसे प्रलम्बासुरके मारनेमें चिंता की। क्या कारण है जो उसके मारनेमें इतनी चिंता की।

उत्तर-प्रलम्बासुरकी मृत्यु ब्रह्माने शेषजीके हाथसे लिखी थी कि तू शेषके हाथसे मरेगा और किसी दूसरेके हाथसे नहीं मरेगा इस बातको भगवान् भली प्रकार जानते थे और यह भी जानते थे कि शेषके मनमें बड़ी दया है और उनके हृदयमें नम्रता है, कदाचित् दया करके शेषजी उसको न मारें और इस दुष्टको मारना अवश्य है क्योंकि जो यह बच गया तो ग्वालबालोंको बहुत दुःख देगा, इसलिये अधिक चिन्ता की।

शोभा और उस असुरकी मनोहर कांति देखकर हल मूसलके धारण करनेवाले बलदेवजी अपने मनमें कहने लगे कि कैसा गोप है ? मेरा जी डरता है ॥२७॥ पहले तो कुछ भयमाना परंतु पीछे सुध आ गयी कि यह तो असुर है, फिर भय त्याग बलदेवजीने जाना कि हमारे गोपोंसे अलग कर बलात्कार हमको लिये जाता है, तब तो अविनाशीने महाक्रोध करके इसके शीशमें एक मुष्टिक मारा, जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतको मारा है ॥ २८ ॥ मुष्टिके लगते ही उसका शिर कच्चे भांडकी नाईं फूट गया, दांत टूट गये, मुखसे रक्तका वमन होने लगा, मानो रुधिरकी धारा बह रही है जिह्वा और नयन निकलकर बाहर आ पड़े, हाथ-पांव पसार दिये और बड़ा घोर शब्द कर मुख फैलाकर पृथ्वीपर गिर गया, जैसे इंद्रके वज्रके मारे पहाड़ पृथ्वी-पर गिरते हैं ॥ २९ ॥ महाबलवान् बलदेवजीके हाथसे प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर—

दोहा—ग्वाल बाल सब चकित भे, भे प्रसन्न नँदलाल ।
धाय धाय बलरामसे, मिले सकल तेहि काल ॥

सोरठा—धन्य धन्य बलराम, धन्य तुम्हारे मातु पितु ॥
बड़ो कियो यह काम, कपट रूप मारो असुर ॥

हे भाई ! तुम दोनों बड़े वीर हो, हमसे तुम्हारी बड़ाई नहीं हो सकती, जहां-जहां हमपर विपत्ति पड़ती है, वहीं-वहीं आप सहायता करते हैं । भाई ! तुम इस समय यदि न होते तो यह एक न एक लड़केको पकड़कर अवश्य ले जाता, एक ग्वाल बोला—कैसे ले जाता ?

चौ०—यही सदा हमरे रखवारे ❋ वनके दुष्ट सकल इन मारे ॥
ताहि कहौ काको डर भैया ❋ जासु मीत बलराम कन्हैया ॥

इतनी कथा कहकर श्रीशुकदेवजी बोले कि उस समय सब ग्वाल बाल और नंदलाल मिलकर बलदेवजीको आशीर्वाद देने लगे कि चिरंजीव रहो, चिरंजीव रहो, फिर प्रशंसा योग्य बलदेजीवकी प्रशंसा करने लगे और जैसे कोई मरकर लौट आता है, ऐसे बलदेवजीसे मिलकर प्रेममें मग्न हो गये ॥ ३० ॥ पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ । बलदेवजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की और धन्यवाद देने लगे ।

दोहा—पुनि आनँद अति पायके, देव गये जिन धाम ।
गोपनयुत विहरन लगे, वृन्दावन बल श्याम ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे प्रलम्बासुरवधनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा—उन्निसवें अध्यायमें, मुञ्ज विपिनमें जाय ।
गोप गाय सब अग्निसे, क्षणमें लियो बचाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! जब सब ग्वालबाल खेलमें लग गये तब उनकी गायें, बछड़े अपनी इच्छासे चरते-चरते हरी-हरी घासकी लालचमें आकर सघन वनमें चले गये ॥ १ ॥ वह अजा ❋ अर्थात् ओसर गायें भैंसे उस वनसे चरती-चरती आगे धेनुकवनमें

❋ शंका—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको बकरीका पालना तथा भैंसका पालना अयोग्य है और शास्त्रमें भी इनका पालना अनुचित है, फिर कृष्णने बकरी और भैंसें क्यों पाली ?

उत्तर—पंडित लोग बकरीका नाम अजा कहते हैं, परंतु गायकी बछियोंको भी कहते हैं और ओसर भी कहते हैं और मुनियोंने अजाका ऐसा अर्थ किया है कि,-

चली गयीं और उसके आगे महाघोर मुञ्जवन है वहां चली गयीं क्योंकि वनमें चारों ओर दव जो लग रही थी उसकी गर्मीसे प्यासकी मारी घबड़ा रही थीं ॥ २ ॥ जब बलराम कृष्णादिक ग्वालबालोंने पशुओंको नहीं देखा तो मनमें अत्यन्त दुःखी हुए और जहां-तहां खोजने लगे परंतु पता कहीं नहीं लगा ॥३॥ और उनकी जीविकाका भी विनाश हो गया तो उनके चित्त स्थिर नहीं रहे और सब सुधि-बुधि जाती रही और पुकार-पुकार कहने लगे।

चौ०–लै लै नाम तिनहि गुहरावैं * वेणु श्रृंगके शोर मचावैं ॥
कहां गई सब धेनु हमारी * अस कहि कहि अति होत दुखारी ॥

फिर परस्पर विचार कर सब ग्वालबाल गायोंके खुरोंके चिह्नको और जो गायोंके दाँतोंसे कटा हुआ घास था, उसको देखते-देखते जहां-जहां होकर गायें गयी थीं वहां पहुँचे ॥ ४ ॥ मुञ्जवनमें घुस गये वहां जाकर मार्ग भूल गये। सीधा मार्ग अग्निसे रुक गया था, तब दुःखित हुई कुछ थोड़ीसी गायोंके समूहको देखा। भूखे और प्यासे ढूँढ़नेके खेदसे और भी घबड़ा गये, उन्होंने अपनी गायोंको घेरकर पीछेको लौटे ॥ ५ ॥ जो गायें इधर-उधर रह गयीं और दूर-दूर चरती थीं उनको मेघके समान गंभीर वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उनका नाम ले लेकर बुलाया।

चौ०–कारी, काजरि, धूसरि, धौरी * हंसिन, वंसिन, वासिन, बौरी ॥
पीरी, कबरी, भूरी, गोरी * गईं कौन वनको कित ओरी ॥

तब सब गायें अपने-अपने नाम सुनकर हर्षित होकर रम्भाईं। इससे यह सूचित किया कि हम तुम्हारी मनोहर वाणीको सुनती तो हैं परंतु मार्गमें आग जो लगी है इसलिए तुम्हारे समीप आ नहीं सकतीं, मार्ग बड़ा विकट है ॥ ६ ॥ वहां बड़ी धूमधामसे धूमध्वजावाला अग्नि चारों ओर वनवासी जीवोंका जलानेवाला लग रहा था और पवनके वेगसे प्रचण्ड हो रहा था और महाप्रबल लपटोंसे चराचरको भस्म करता चला जाता था और धुएँके धुन्धकार से सर्वत्र वनमें महाघोर अन्धकार छा गया था ॥ ७ ॥

दोहा–चटचटात तहँ बाँसगण, फूट फूट फट जात।
पटपटात तृणगण जरत, आरत पशु अकुलात ॥

जीव, जन्तु, पशु-पक्षी, धुएँसे अन्धे होकर जहांके तहां जल-जलकर रह जाते थे। कोई किसीको पूछता नहीं था।

चौ०–मनहुँ प्रलय पावक वन आयो * सिगरे जगको चहत जरायो ॥
लपटैं विकटैं झपटैं भारी * चटकहिं शिला अग्निको झारी ॥
ज्यों ज्यों अग्नि निकटको आवत * त्यों त्यों ग्वाल अधिक भय पावत ॥
गायें मरत प्यासकी मारी * मिलत न नीर पीर तनुभारी ॥

तब सब ग्वाल मृत्युके भयसे दुःखित हो बलदेवजी सहित श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर विनय करने लगे ॥८॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबलवान् ! हे राम ! हे अनन्त पराक्रमवाले !

—बालक जिसके न हुए हो उसका नाम अजा है और एक बार ब्याई हुई गौको महिषी कहते हैं और इनसे अतिरिक्तका नाम गाय है। श्रीकृष्ण भगवान् सब बछिया और वृद्ध, युवा गायोंका पालन किया करते थे, कुछ बकरी भैंसोंका पालन श्रीकृष्णचन्द्र नहीं करते थे।

यह वनकी अग्नि हमको भस्म किये डालती है, अब शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥९॥ हे कृष्ण ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको ऐसा कठिन कष्ट दिखाना नहीं चाहिये, क्योंकि हम इतने कष्ट सहने योग्य नहीं हैं, आप ही हमारे अधिष्ठाता हो और आपका ही हमको आश्रय है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब दुख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मित्रोंके दीनवचन सुनकर कहने लगे कि हे मित्रो ! भयभीत मत हो, अपनी-अपनी आँखे मींच लो ॥ ११ ॥ उसी समय श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार सबने अपने-अपने नेत्र मूँद लिए, तब योगेश्वर भगवान्‌ने उस महाभयंकर अग्निको पानकर अपने प्यारे मित्रोंको महाकष्टसे बचाया ॥१२॥ जब उन्होंने नेत्र खोले तो फिर भांडीरवनमें आ गये और अपने आपको और गायोंको अग्निसे छूटा देखकर बहुत विस्मित हुए कि यह क्षणमात्रमें ही क्या अचम्भा हो गया ? ॥ १३ ॥ योगमाया का प्रभाव प्रगट दिखानेवाली अग्निके बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको देखकर सब गोप कहने लगे कि श्रीकृष्ण हमारे समान मनुष्य नहीं हैं, देवता जान पड़ते हैं ॥१४॥ जब जाना कि सन्ध्या समय हुआ तब बलरामजी सहित श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्दन मंद-मंद चालसे गायोंको लिए बांसुरी बजाते गोपोंसे स्तुति कराते ब्रजमें आये ॥ १५ ॥ जब ग्रामके समीप आ गये तब मुरलीधरने मुरली बजायी, मुरलीकी ध्वनि सुनते ही सब ब्रजरानी अपने-अपने घरोंका काम तजकर मार्गमें आकर खड़ीं हो गयीं और गोपीवल्लभका दर्शन करते ही गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ और हृदयमें ठण्डक हो गयी, क्योंकि विना श्यामसुन्दरके देखे एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान व्यतीत होता था, सदासे उन गोपियोंका नियम था कि जब-तक मनमोहनी मूर्तिका दर्शन नहीं करती थीं, तब तक अन्न पानी नहीं खाती थीं अर्थात् व्रत ही रखती थीं। जब सन्ध्या समय होता था तब मदनमोहनकी मनोहर मूर्ति देखकर व्रतका पारण किया करती थीं। जब श्यामसुन्दर और बलराम अपने घरपर आये तब यशोदा और रोहिणीने उनको गोदीमें ले-लेकर अत्यन्त प्यार किया और ग्वालबालोंसे पूछा कि आज क्या कारण हुआ जो तुमको वनमें इतनी देर लगी ? तब उन्होंने सब वृत्तान्त प्रलंबासुरके मारनेका और मुंजवनमें अग्निके लगनेका कहा। तब यशोदा और रोहिणी इस बातको सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुईं और नंदजीने यह समाचार सुनकर बड़ा सन्देह किया कि देखो कृष्ण, बलदेवको हमने इतना समझाया, परंतु इन्होंने गायोंका चराना और वन जाना न छोड़ा और यह भी जानते हैं कि कंस हमारा पूरा वैरी है, परंतु इन बालकोंको कुछ ध्यान नहीं। जब यह समाचार घर-घर फैल गया तो सब ब्रजवासी बलराम और घनश्यामके देखनेको आये और दोनों भाइयोंको समझाने लगे कि देखो इतनी दूर वनमें खेलनेके लिए तुम कभी मत जाया करो। यहां नित्य नये-नये उत्पात होते हैं और आपकी ही दयासे हमारे बालक भी इस महाघोर पावकसे बच गये, नहीं तो मरनेमें कुछ सन्देह ही न था, परन्तु परमेश्वरने बड़ा अनुग्रह किया जो कुशलपूर्वक सब अपने-अपने घर आये। उस समय यथा शक्ति सबने अपने-अपने बालकोंके कल्याणार्थ पुण्य दान कराया और ईश्वरकी माया ऐसी विश्वमोहनी है कि यह भेद किसीने नहीं जाना कि यह कर्तव्य श्रीकृष्णके हैं ! इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसी प्रकार नित्य नये चरित्र कर करके श्रीवृन्दावन विहारी सब वृन्दावनवासियोंको नये-नये सुख देते थे और सब ब्रजबाला नन्दलाल पर ऐसी मत-

वाली हो रही थीं कि उनको किसी न किसी प्रकार ब्रजभूषणका दर्शन करना, कभी दही बेचनेके ही बहानेसे आतीं, कभी पानी ही भरनेको उधर होकर जाती थीं। जब श्यामसुन्दर उनको न मिलते तो सैकड़ों उपाय करतीं, क्योंकि विना मनमोहनके देखे उनका तो हृदय ही ठण्डा नहीं होता था। उनके सास, श्वसुर और माता-पिता, बहुतेरा समझाते थे, परन्तु उनकी समझमें कुछ नहीं आता था, क्योंकि उनके मन तो मनमोहनने पहले ही मोह लिये थे, परन्तु नन्दलाल भी यह जानते थे कि ये तन-मन-धनसे मेरे ऊपर मोहित हैं, इसलिये वह सर्वान्तर्यामी नयनपथगामी दिनमें एकबार मधुर मुसकान सहित अपनी बांकी-झांकी दिखाकर उनका चित्त सावधान रखते थे कि कहीं मेरे दर्शन बिना अपने प्राण न खो बैठे। एक दिन मनमोहन अपना नटवर वेष बनाकर सब सखाओंको संग ले कालिंदीके किनारे कदमकी छायामें जाकर खड़े हुए। उस समयकी मनोहर छबि देखकर कोटि काम लज्जित होते थे। शीशपर मुकुटकी लटक, माथेपर केसर और चन्दनकी खौर, घूँघरवाली अलकें, कानोंमें कुण्डलोंकी झलक, कण्ठमें वनमाल, मुक्तामाल, हृदयमें भृगुलताका चिह्नः—

चौ०—अरुणअधरदशनन द्युति नीकी * मुखमुसुकान मोहनी जीकी ॥
चटकीला पटपीत विराजै * कटि तट क्षुद्रघंटिका राजै ॥
भुजविशाल भूषण शुभ सोहैं * कर मुद्रिका जटित कण मोहैं ॥
तनु घनश्याम रसीले नैना * हँसि हँसि कहत सखनसों बैना ॥

देखो भाई! आज कैसा आनन्दका समय है, गगनमें घटा छा रही है, चपला चमक रही है, महीन-महीन फुहारें पड़ रहे हैं, कोकिल कूक रही है, मोर शोर कर रहे हैं, झिल्ली झिंगार रही है, दादुर बोल रही हैं, हरी-हरी भूमि चारों ओर दिखायी दे रही है मानो कि कामदेवने हरे मखमलका बिछौना बिछा दिया है और कैसी सुगन्धसनी समीर चल रही है कि जिसके स्पर्शसे कामी पुरुषोंके चित्त चलायमान होते हैं और यमुना न्यारी ही लहरें लेती चली जाती है और बीच-बीचमें जो भवँर पड़ते हैं, उनकी कैसी उत्तम शोभा है? इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस मनमोहनी छबिसे नटनागर पनघटपर खड़े बांसुरी बजा रहे थे और ग्वालबाल इधर-उधर खड़े थे। उसी समय बृषभानुनंदिनी श्रीराधा अपनी सब सखियोंको सङ्ग लिये पानी भरनेके बहाने मनमोहनप्यारेको देखनेके लिये यमुनाके तटपर आयी, समीप आकर देखा तो सखाओंको सङ्ग लिये मनमोहन प्यारा खड़ा है। राधा बोली कि आली! वह महा खोटा नन्दका ढोटा मार्गमें खड़ा हमारी ओरको ताक रहा है; ऐसा जान पड़ता है कि वह अवश्य हमको रोकेगा। सर्वान्तर्यामी श्यामसुन्दर राधाके मनकी गति जान ग्वालबालों सहित मार्गसे हटकर दूसरी ओरको चले गये। जब बृषभानुदुलारीने जाना कि ब्रजविहार हट गये तब आगेको सिधारी और यमुना जल भरकर अपनी-अपनी गागरें शिरोंपर धर धरकर जब घरकी ओर चलीं, उस समय बृषभानुनंदिनी सखियोंके समूह ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी जैसे गयंदिनियोंके झुंडमें राजगयंदिनी मन्द-मन्द चालसे झूमती चली जा रही है।

सोरठा—चली भवनकी ओर, शिरपट सोहति गागरी।
पीछेते चितचोर, घटको दियो लुढ़ाय महि ॥

ग्वालिनीने झट हाथ पकड़कर लकुटिया हाथमेंसे छीन ली और कहा कि अरे माखन-चोर ! और ही की गागर फोरकर छुटकारा पा गया होगा। मैं तेरे दांत खट्टे कर दूँगी ! जब नटनागर हँसकर उसी नागरीकी गागर देने लगे। तब वह रूपउजागरी बोली कि मैं खाली गागरी न लूंगी, जब तुम्हीं भरकर मेरे शिरपर धर दोगे तो लकुटिया दूंगी। जो तुम कहो कि मैं नंदका पुत्र हूं तो मैं भी बड़े महरकी बेटी हूं, मेरा तुम्हारा एक ग्रामका वास है, मैं किसी प्रकार आपकी बात नहीं सहूंगी, जो तुम एक कहोगे तो दश सुनोगे। मुझको तुम्हारा किसी प्रकारका भय नहीं है, यह सुनकर श्यामसुन्दर हँस दिये और कहा कि प्यारी ! तुम हमारी लकुटिया दे दो। मैं तुम्हारी गागर भरकर तुम्हारे शिरपर धर दूंगा, वांकी चितवन और मन्द-मुसकान देख राधा सहित सब सखियोंने तनमनकी सुरति विसार दी। मन तो श्यामसुन्दरके फंदेमें फँस गया, तनुमें मदनके बाण लगने लगे, ऐसी बेसुध हुई कि लकुटिया हाथसे गिरने की भी सुध न रही।

दोहा-तब घट भरि हरि भावसे, दीन्हों शीश उठाय।
नेकहु सुधि तनुकी नहीं, चली ब्रजहि समुहाय॥

सोरठा-कियो दृगनमें धाम, सुन्दर नट नागर सुखद।
जित देखो तित श्याम, पन्थ मोहि दीखत नहीं॥

उधरसे और एक सखी जल भरनेके लिये आती थी, राधाको देखकर कहने लगी कि हे राधा ! तुमको क्या हो गया, तेरे मनमें क्या शोच है जो तू उलटी-उलटी मार्गमें जा रही है। राधा बोली कि आली ! क्या कहूँ, उस वनमालीने मेरे ऊपर कुछ ऐसी मोहनी डाल दी है कि सिवाय श्यामसुन्दरके और मुझे कुछ दृष्टि नहीं आता। राधाकी मधुरवाणी सुन उसको भी मनमोहनके दर्शनकी अभिलाषा हुई और झपट वंशीवटके निकट पहुँची, परंतु मनमोहन प्यारेको वहां न देखा और कृष्ण एक वृक्षकी ओटमें खड़े हुए देखते रहे। विरहानलने उसके तनुको ऐसा तपाया कि तप्त तवेके समान हो गयी और श्यामसुन्दर न मिले तबः-

दोहा-चली नीर भरि भवनको, बार बार पछिताय।
भरत धरत शिर गागरी, रीती ह्वै ह्वै जाय॥

सोरठा-मनके जाननहार, देखि ग्वालनीको विकल।
प्रगटे नंदकुमार, आय अचानक निकट ही॥

हे प्रिया ! क्यों व्याकुल हो रही हो ? यह कह उसको हृदयसे लगा लिया और उसके हृदयकी सब ताप बुझा दी और उसके मुखारविन्दकी ओरको देखकर कहने लगे कि हे मृग-नयनी ! तू कौन है, मैंने आजतक तुझको कभी नहीं देखा। ग्वालिनी बोली कि, हे जीवन-मूल ! तुम मुझको क्या देखते ? पहले तो रूप दिखाकर हमारा मन हर लेते हो और फिर तरुकी ओटमें छिपकर हमारे प्रेमकी परीक्षा करते हो। हे चितचोर ! यह तो बताओ कि यह चित्त चुरानेकी विद्या तुमको किसने सिखायी ? यह बात सुनकर तिरछी चितवन कर मन-मोहन मुसकाये, वह सखी तिरछी चितवन और मन्दमुसकानको देख सब सुधि-बुधि भूल गयी और यह सुरत न रही कि कौन हूँ और कहा हूँ, शिरपर गागर तो धर ली परंतु इधर-उधर घूमने लगी और एक ब्रजबाला उधरसे आती थी उसने इसकी दशा देखकर निकट

बुलाकर पूछा कि क्या भूली-भटकीसी फिर रही है ? परंतु उसने कुछ नहीं सुना। जब फिर उसने कहा-क्यों री ! बतलाती नहीं कि तेरी क्या गति है ? फिर तो एकाएकी अचानक चौंक पड़ी, जैसे कोई स्वप्नसे जाग उठता है। आली ! मेरी दशा कुछ मत पूछो; श्यामवर्ण किशोर अवस्थावाला एक कुमार मुझको मिला; न जाने उसने मेरे ऊपर क्या टोना कर दिया उसकी बांकी चितवन देखते ही मेरी सुधि-बुधि बिसर गयी और ऐसी विरहाग्निकी ताप मेरे हृदयमें उठी कि जब ही जलकी गागर शिरपर धरकर चलती थी थोड़ी ही देरमें वह जल सूख जाता था, मैं जभी भरकर शिरपर धरती हूं, तभी सूख जाता है इसी प्रकार सैकड़ों बार शिरपर धरा, परंतु घट सूख ही सूख गया, तब मेरे मनकी लगन जानकर वह चित्तचोर मेरे समीप आकर उपस्थित हुआ और मुझसे कहने लगा, तेरा घर कहां है ? मैंने तुझे आजतक व्रजमें कभी नहीं देखा।

दोहा—ऐसे कहि चितयो विहँसि, मैं लखि रही भुलाय।
तबहींते वह ले गयो, मेरो चित्त चुराय॥

वह सखी उसको सावधान करके आप यमुनाकी ओर चल दी। देखा तो मुरलीधर मुरली हाथमें लिये एक वृक्षकी ओटमें खड़े हैं। मैंने जब ही जाकर यमुनामें गागर भरी और शिरपर धरी कि झट आकर मेरे निकट खड़ा हो गया और मेरी लट पकड़ ली और कहने लगा कि हे चन्द्रानने कहां चली ? फिर मेरी छातीपर हाथ रक्खा,तब मैं क्रोध करके बोली कि मुझको और ग्वालिनी मत समझना,मैं बड़े गोपकी कन्या हूँ। तुमको मेरे कुचोंपर हाथ रखते लज्जा नहीं आती ? तब वह मुझसे कहने लगा कि क्यों, इस बातपर तू रिसा गयी ? मैंने तुझको पहिचाना नहीं था इसलिये तेरा मुख देखने लगा था, मैंने तेरे हृदयपर हाथ कुछ पाप समझकर नहीं रक्खा, मैंने तो यह समझा था कि यह किसी बागमेंसे अनार तोड़कर लायी है और इसने अपने वस्त्रोंमें छिपा रक्खे हैं यह कह मेरी लट छोड़ दी और मुसका दिया। जब मैं घरकी ओरको थोड़ी ही दूर चली फिर आगे जाकर मार्ग भूल गयी और वहीं बैठ गयी। जब कुछ-कुछ सचेत हुई तो घरकी और गुरुजनोंका स्मरण हुआ तो मैं अत्यन्त लज्जित हुई और जैसे-तैसे कर घर पहुँची, परंतु हृदयसे वह सांवली सूरत और माधुरी मूरत क्षणमात्रको भी नहीं बिसरती और वह मन्द-मुसकान मनसे नहीं उतरती थी। उस ग्वालिनीकी बात सुनकर सब सखियोंको उत्साह हुआ कि किसी प्रकार श्यामसुन्दरका दर्शन हम भी करें। उस समय सब ऐसी मतवाली हो गयीं कि विना वनमाली एक क्षण काटना कठिन हो गया। सब अपनी-अपनी गागरें शिरपर धरकर यमुनाकी ओरको चलीं, देखा तो मार्गमें मनमोहन कदमके नीचे खड़े हैं।

चौ०—मोर मुकुट कटि कछनी सोहै * कुण्डल चटक लटक मन मोहै॥
पीत वसन लखि तड़ित लजाई * नयन विशाल अधर अरुणाई॥

सब सखी बोलीं कि अहो मनमोहन ? तुम बड़े ठग हो, जो पराई स्त्रियोंको ठगते-फिरते हो। श्रीकृष्ण बोले कि तुमने मुझको ठग कैसे समझा और मैंने तुम्हारा क्या ठग लिया ? ठगके लक्षण मुझे बताओ, क्योंकि तुमने मुझे कैसे ठग ठहराया ? गोपी बोली—घबड़ाओ मत हम ठगोंके लक्षण भी तुमको बतलाती हैं, ठगोंपर फांसी होती है, आपकी मृदुमुसकान फांसी है,ठगोंके पास धनुष बाण होते हैं, सो आपकी भ्रुकुटीकी मटक ही धनुष है और चितवन

बाण है। रूपकी ठगोरी डालकर ब्रजबालाओंके मन,धन और प्राण ठगते हो। सब ब्रजकी युवती लोकलाज कुलकान तजकर बोरी बावलीसी वन-वन भटकती फिरती हैं और उनको नन्दके लालने ठग लिया है, यह बात संसारमें विख्यात है। श्रीकृष्ण बोले कि अपने लक्षण मुझको लगाती हो और तुम जैसे लोगोंका चित्त चुराती हो वैसा ही हमको बताती हो यह बात भी सब संसारमें प्रकट है कि ब्रजकी स्त्रियोंने नन्द पुत्रोंको ठग लिया है, तुम नहीं कहती तो क्या है ? परन्तु सब संसार पुकार रहा है;बरन् सुर, नर,मुनि और देवता तक यह बात कहते हैं कि जो ब्रह्मा, शिव सनकादिकके भी ध्यानमें नहीं आते इन त्रिलोकी-नाथको आजकल ब्रजवनिताओंने अपने वशमें कर रक्खा है। श्यामसुन्दरकी यह बात सुन ग्वालिनी हँसकर बोली-हे नटनागर ! तुम बड़े नटखट हो, सब बातोंमें उलट-फेरकर देते हो तुम्हारी चातुरताको हम अच्छी रीतिसे जानती हैं। तुम अब इस ढिठाई और लँगराईको छोड़ दो, इसमें तुमको बहुत बुराई है। किसीकी गागर ढलका देते हो, किसीकी लट पकड़ लेते हो, किसीको अङ्कमें भर लेते हो, किसीको मार्गमें रोक लेते हो, कोई तुम्हारे डरके कारण घरसे नहीं निकलती, यमुनाका पानी भरना बन्द हो गया, इस नटखटपनको छोड़ दो और जो नहीं मानोगे तो हम यशोदासे जाकर कहेंगी तो फिर तुमको ऊखलमें बांधेगी।

दोहा–यह सुनि हरि रिस कर उठे, इंडुरी लई छिनाय।
कहो जाय सब मातुसों, लीजो मोहि बँधाय॥

यह बात कहकर इँडुरी यमुनामें फेंक दी। तब तो गोपी बोली कि महाराज ! हमारे वस्त्र भीग जायेंगे, हमारी इंडुरी जलमेंसे ला दो। श्रीकृष्ण बोले कि जलमें जाकर हमारी बलाय तुमको निकालनी है तो निकाल लाओ। ग्वालिनी बोली–आज तुम ऐसे हो गये, उस दिनको भूल गये, कि तनक-तनक दहीके कारण हमारे आगे हाथ पसारते थे और तुमको पकड़कर यशोदाके पास ले गयी थी और तुमको ऊखलमें बंधवाया था और अब भी तुम बड़े बापके बेटे हो तो खड़े रहो, हम अभी यशोदाको बुलाकर लाती हैं। तब गोपियोंने यशोदाके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा कि तुमने ऐसा उत्पाती पुत्र उत्पन्न किया है, जो किसीकी गागर पटकता है, किसीकी बांह पकड़कर झपटता है, किसीको गाली देता है, किसीकी इंडुरी छीन लेता है और बहुतसी बातें ऐसी करता है कि उनको कहते भी आपके सामने सकुच लगती है।

चौ०–अब न होय ब्रजवास हमारो * करत अचगरी पुत्र तुम्हारो॥
नेकु नहीं सकुचत मनमाहीं * महरि सुतहिं तुम बर्जत नाहीं॥

गोपसुताओंकी कोपभरी वाणी सुन यशोदा बोली कि मैं क्या करूँ ! यह मैं भी जानती हूँ कि यह बड़ा ढीठ हो गया, जो तुम उसको पकड़र मेरे सामने लाओ तो तुमको मैं अभी दिखाऊँ। देखो ! पहले तुम्हारे सम्मुख उसको ऊखलसे बांधा, सांटी लेकर मारनेको दौड़ी तब तुम्हींको दया आयी तो मुझको बर्जा और उसको छुड़वाया। अच्छा उसको घर आने दो; आज मैं उसको ऐसा पीटूंगी कि फिर कभी तुमसे आधी बात न कहेगा और जो मैं अभी

उसको पकड़नेको भी जाऊँ तो क्या वह मेरे हाथ आयेगा ? क्योंकि वह तो मेरे नामसे कोसों भागता है, तुम अबकी बार तो मेरे ऊपर कृपा करके यह अपराध क्षमा करो। इस प्रकार उन गोपियोंको समझा-बुझाकर उनके घर भेजा, वे ग्वालिनी अपने-अपने घरोंको जाती थीं, उधरसे श्यामसुन्दर आ गये, मार्गमें भेंट हो गयी। ब्रजभूषणने लज्जित होकर आँखें नीचेको कर लीं। तब गोपियोंने कहा कि माता बुलाती है घरको तो जाओ। हम तुम्हारी बहुत बड़ाई कर आयीं हैं। श्रीकृष्ण बोले तुम कुछ सन्देह मत करो मैं माता को समझा लूँगा। गोपियोंसे यह बात कहकर बृन्दावनविहारी सकुचते-सकुचते, डरते-कांपते घर आये और द्वार ही से इधर-उधरको देखा कि माता कार्यमें तो लग रही है, परंतु गोपियोंके उलाहनेका कोप चित्तमें भर रहा है और जो-जो बातें गोपी कह गई थीं, वे सब बात रोहिणीको सुना रही थी कि कन्हैया ऐसा ढीठ हो गया कि पनघटपर किसीको पानी नहीं भरने देता, वह बहुओंको गाली देता है, किसीकी बांह मरोड़ता है, किसीकी गागर फोड़ता है। उन लोगोंका उलाहना सुनकर जैसे-तैसे उनसे पीछा छुड़ाया है, परन्तु अब घर आये तो सांटीसे उसकी बात पूँछू। माता के क्रोधभरे वचन सुन श्यामसुन्दर बोले कि माता ! मेरे ऊपर क्रोध करती हो, ग्वालिनियोंके कर्तव्य अभी तुमने नहीं सुने, जो कुछ झूंठी-सच्ची बातें तुम्हारे सामने आकर बना गयीं, उन बातोंका तुमको भी विश्वास आ गया, इस बातको न विचारा कि वह बीस और मैं अकेला, उनको कैसे घेर सकता हूँ ? मैया ! मैं सत्य कहता हूँ, वे सब मिलकर बरजोरी मुझको पकड़ लेती हैं और ताली बजाकर नचाती हैं और जो मैं नहीं नाचता तो मेरे गालोंपर गुलचे मारती हैं और जब मटककर चलती हैं तो शिरपरसे गागर गिर पड़ती है वह तो सब मुझे लगाती हैं और फिर तेरे सामने आकर झूंठी बातें बनाती हैं। मुरली मनोहरके मनोहर वचन सुन और चन्द्रवदन देख यशोदा ठण्ढी हो गयी और सब क्रोध जाता रहा और कहने लगी कि मदमाती ग्वालिनी मेरे कान्हाको वृथा दोष लगाती हैं, मेरे आगे जोड़-जोड़कर बातें बनाती हैं। उन सबके गुण जानती हूँ कि मेरे श्यामसे बरजोरी अठलाती हैं, झूंठे लाञ्छन लगाती हैं।

दोहा-कहां श्याम मेरो तनक, वे सब यौवनजोर।
अब उरहन लै आवहीं, तब पठवहुँ सुख मोर॥

सोरठा-तू क्यों उन ढिग जात, मैं बर्जत मानत नहीं।
लावत झूंठी बात, वे सब ढीठी ग्वालिनी॥

यह बात कह यशोदाने श्यामसुन्दरको गोदमें उठाकर मुख चूम लिया और बहुतसा प्यार किया। अब ब्रजमें घर-घर यह बात प्रकट हो गयी कि पनघटपर नटनागर बड़ी धूम मचाता है कि यमुनापर कोई जल नहीं भरने पातीं। कदमके वृक्षपर बैठकर मुरली बजाता है और सबके चित्त चुराता है। किसीकी गागर पटकता है, किसीकी बैय्यां झटकता है। हे राजन्! इस प्रकार नन्दकुमार नित्य नयी-नयी लीला करके ब्रजवासियोंके मनको मोहित करते थे। और बांसुरी बजा-बजाकर सब ब्रजयुवतियोंके मन हरते थे और जो जिस भावसे श्यामसुन्दरको भजते थे उनको वैसा ही फल प्राप्त होता था। जैसे-

सोरठा–चिन्तामणि जिहि नाम, चिन्तितफलदायक जनन।
सबहीको सब ठाम, जैसेको तैसे सदा॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! वृषभानुदुलारी राधिका पूर्वजन्मके प्रभावसे श्रीकृष्ण प्यारेपर अत्यन्त स्नेह रखती थी और विना श्यामसुन्दरके देखे आठों पहर व्याकुल रहती थी। जब सुना कि पनघटपर मनमोहन प्यारा पनिहारियोंको रोकता है, तब सब सखियोंको बुलाकर वृषभानुकुँवरि बोली कि सखी! यमुनाजल भरनेके लिये फिर चलो। जो मुरलीमनोहरको देख-देखकर मेरे नेत्रोंमें ठण्ढक हो और हृदयकी दाह बुझे। यह बात सुनकर सब सखी अत्यन्त प्रसन्न हो शिरोंपर गागर धर-धरकर यमुनाकी ओरको चलीं। देखा, तो श्यामसुन्दर मुरली हाथमें लिए नटवर वेष किये यमुनाके किनारे पनघटपर खड़ा है। मुरलीमनोहरकी छबि देखकर राधाके मनमें बड़ा हर्ष उत्पन्न हुआ। इधर राधा प्यारीको देखकर वृन्दावनविहारीके मनमें परमानन्द बढ़ा। अर्थात् राधा मनमोहनपर मोहित हो गयी और मनमोहन राधापर रीझ गये। मन तो मनमोहनके फन्दमें फँस ही गया, परन्तु कुलकान और गुरुजनोंकी लाजकी मारी जल भरकर और गागर शिरपर धरकर घरकी ओरको चली। तब व्रजभूषण भी वृषभानुललीके पीछे-पीछे हो लिए। कभी आगे बढ़ जाते, कभी पीछे रह जाते, कभी पीताम्बर घुमाते, कभी बांसुरी बजाते, थोड़ी दूर निकल गये तब हँसकर बोले कि प्यारी! आज हमारी ओरको देखती भी नहीं। यह कहः–

दोहा-प्रेम ठगौरी डारके, चितवन बाण चलाय।
मन हर लीन्हों सबनको, दियो काम उपजाय॥

सोरठा–भई विवश सुकुमार, अँग उमँग उमँगिया दरद।
मोहीं नन्दकुमार, सुधि बुधि बिसरी देहकी॥

जैसे-तैसे करके सखियोंके सङ्ग गिरती-पड़ती घर आयी और सब सखी भी अपने-अपने घर गागर धर-धर कर राधाके पास आकर बोलीं कि प्यारी! अब क्या उपाय करें, चित्त तो हमारा नन्दकिशोर चित्तचोरने हर लिया, अब हम यहां कैसे रहें? विना बांकेविहारीकी मनमोहनी मूर्ति देखे एक पलमात्रको कल नहीं पड़ती क्योंकि तन यहां और मन वहां, कैसे निर्वाह हो? यह लाज दई मारी हमारी पूरी बैरन हो गई। राधा बोली, आली! विना वनमाली मेरी भी यही दशा है, माता-पिताके डरकी मारी कुछ भी नहीं कर सकती और यह मन तो वारंवार यही कहता है कि जिस प्रकार हो सके उस प्रकार नन्दकिशोरकी ओरको चलो। मैं इस मनको बहुतेरा रोकती हूँ परन्तु यह पापी मेरे रोकनेसे नहीं रुकता। अब मेरी यह इच्छा है कि सब लोकलाजको त्याग मनमोहन प्यारेसे सच्ची प्रीति करूँ, क्यों अपने शरीरको दुःख दूँ?

चौ०–कहा लाभ सो कहो सयानी ❋ जामें होय प्राणकी हानी॥
सोना कहा कान जेहि टूटैं ❋ अञ्जन कहा आँख जेहि फूटैं॥

प्यारी! जब प्राणप्यारेके वियोगमें प्राण ही न रहे तो लाजको लेकर क्या चूल्हेमें डालूंगी! इससे तो मेरी समझमें यही आता है कि मनमोहन प्यारेको अपना प्राणनाथ बनाकर अपने मनकी अभिलाषा पूरी करूँ। इस बातमें तुम्हारी क्या सम्मति है? राधा प्यारीकी बात सुनकर सब गोपकुमारी कहने लगीं कि प्यारी! जो गति तुम्हारी है वही हमारी भी समझनी चाहिये।

हम भी बहुतेरे उपाय कर हारीं, परन्तु उस मनमोहन प्यारेकी मनोहर छबि हमारे बिसारेसे नहीं बिसरती।

दोहा-बसी रहत नित चित्तमें, मोहनकी मुसकान।
कापै न्यारो होत रंग, हलदी चूना सान॥

सोरठा-मेटि लोक कुलकान, पतिव्रत राखैं श्यामसों।
यही लई अब ठान, बुरो भलो कोऊ कहे॥

एक गोपी बोली-आली! यह बात तो मैंने तुम्हारी मान ली, परन्तु विना तप किये श्रीकृष्ण भगवान्‌का मिलना बहुत कठिन है। सखी! ऐसा भाग्य हमारा कहां है? जो नन्ददुलारा हमारा पति हो। इससे मेरी यह इच्छा है कि जो वृन्दावनविहारीको अपना पति बनाना चाहो तो सब मिलकर तप करो, फिर पार्वती भवानीसे यह वर मांगो कि मनमोहन प्यारा हमारा वर हो, मैंने महात्मा पुरुषोंके मुखसे ऐसा सुना है-

दोहा-जप तप संयम नेमते, प्रभु प्रकटत पाखान।
ताते जप तप कीजिये, और उपाय न आन॥

सोरठा-कीजै यह दृढ़ नेम, प्रात जाय यमुना नदी।
पूजहिं सब करि प्रेम, तौ पावहिं पति श्यामको॥

देखो! तप करके योगीजन हरका ध्यान करते हैं और मनोवांछित फल पाते हैं और शिव-पार्वती सब कामनाओंके दाता हैं, यह भी मैंने बड़े-बड़े सज्जन पुरुषोंके मुखसे सुना है। सखी! हमको यही मनोवांछित फल है, जो नन्दकुमारके चरणारविंदमें प्रेम प्रीति बनी रहे। सखीकी प्रेम प्रीतिभरी वाणी सुनकर वृषभानुनन्दिनी बहुत प्रसन्न हुई और यह बात सबके चित्तमें चुभ गयी। तब राधासमेत सब सखी कहने लगीं कि धन्य है प्यारी! तेरी बुद्धिको, तू बड़ी चतुर है। हे राजन्! ब्रह्मादिक देवता भी वारंवार यही कहते हैं कि धन्य है गोपकुमारियोंको कि जिन्होंने वृन्दावनविहारीको अपना प्रीतम बनाया, ऐसी भाग्यशीला और कौन होंगी? कि आठों पहर जिनके हृदयमें कृष्ण भगवान् विराजमान रहते हैं और जो कुछ नियम, धर्म, जप, तप, दान, पुण्य, व्रत करती हैं, वह सब हरिके ही हित करती हैं॥ १६॥

दोहा-जाग्रत स्वप्न सुषुप्त व्रत, व्रज युवतिन मनमाहिं।
मोहनरँग राचीं सकल, तन मन श्याम बसाहिं॥

सोरठा-ऐसा कौन प्रवीन, प्रेमफन्द जो नहिं फँस्यो।
हरि छबि जल मन मीन, बिछुर सकत नहिं एक पल॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे दावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

दोहा-कहौं बीस अध्यायमें, पावस शरदानन्द।
जो जो कछु लीला करी, राम गोप नँदनंद॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र बलरामने अग्निसे जो सब ग्वालबालोंको बचाया और प्रलम्बासुरको मारा; यह अद्भुत कर्म गोपोंने स्त्रियोंसे कहा॥१॥ और

बड़े-बड़े वृद्ध गोप, गोपी यह बात सुनकर आश्चर्य करने लगे और श्रीकृष्णको मुख्य देवता समझा ॥२॥ जब ग्रीष्मऋतुने संसारके जीवोंको अधिक सताया, जब संसारीजीवोंको दुःखी देख पावस प्रचण्ड अपने बलके घमण्डमें भरा, मार्तंडके प्रकाशको दबाता, चारों ओर धूम-धाम मचाता, मेघोंका धौसा बजाता, बादलका दल संग लिये युद्धका सामान किये चढ़ आया। काली घटा जो घिर रही थीं, वही महारणधीर वीर योद्धाओंके समूह थे। बीच-बीचमें चपला जो चमकती थी, वही मानो शस्त्र चमक रहे थे। बगलोंकी पांतिकी पांति जो आकाशमें उड़ती थीं वह ऐसी दिखाई देती थीं कि मानो भांति-भांतिकी ध्वजायें फहरा रही हैं। दादुर, मोर, पपीहे जो चारों ओर झिंगार रहे थे उस समय ऐसा विदित होता था कि विरदावल पुकार-पुकार कर यश वर्णन कर रहे हैं। इन्द्रका धनुष जो दृष्टि आता था, वह ऐसा ज्ञात होता था, कि मानो पावसनरेशने शत्रुसेनाके संहार करनेको महा कठोर धनुष तान रखा है और बुन्द धार जो बार-बार पड़ती थीं वही मानो तीक्ष्ण बाणोंकी मार थीं और नदियोंका जो उमड़ना था, वही मानो रेलपर जलके दलके दल चले आते थे, ऐसी कटीली और सजीली सेनाको देखते ही ग्रीष्मराज हार मान रणभूमि छोड़ अपने प्राण ले भाग निकला। मेघराजने अपनी प्राणप्रिया पृथ्वीको जल बरसाकर परमसुख दिया और सब जीव-जन्तुओंको उत्पन्न करनेवाली और प्राणियोंको अनेक-अनेक प्रकारके आनन्द देनेवाली वर्षाऋतुने अपना अधिकार किया। सूर्य-चन्द्रमाके चारों ओर मंडल हो गया, आकाशमें गड़-गड़ाहट शब्द होने लगा ॥ ३ ॥ दामिनी दमकने लगी, बादल गर्जने लगे, घनमें श्याम घटा छा गयी, सूर्य चन्द्रमा तारागणोंका प्रकाश आच्छादित हो गया। उस समय आकाश ऐसा शोभायमान जान पड़ता था, जैसे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जीव आच्छादित हो रहा है। यह त्यागनेके योग्य दृष्टांत है, प्राणीको ऐसा नहीं चाहिये कि गुणोंसे आवृत हो जाय।

दोहा—करत शोर दामिनि सहित, घन लीन्हें नभ छाय।
जिमि अज्ञानावरणते, सगुण ब्रह्म छिप जाय ॥ ४ ॥

जैसे आठ महीने तक पृथ्वीका जलरूप द्रव्य सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे सोखते हैं और वर्षाऋतु आने पर बरसाते हैं, ऐसे ही राजाको भी चाहिये कि सुकालमें प्रजासे कर ले और अकालमें उनको अन्न धन देकर पालन करे। यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, राजाको ऐसा ही करना योग्य है।

दोहा—आठ मास निज किरणसों, जो जल सोखत भान।
चारि मास वर्षत सोई, ज्यों भूपति कर दान ॥ ५ ॥

प्रबल पवनकी झकोरसे बड़े-बड़े मेघ बिजली जिनमें चमकें, विश्वको तप्त देख पुष्टि करनेवाले जीवन (जल) बरसाने लगे। जैसे दयावान् पुरुष दुःखी जनोंको देखकर उनको सुखी करनेके लिये दया करके अपने प्राणतक दे देते हैं, वैसे ही बड़े मेघ अपने बिजली रूप नेत्रोंसे संतप्त विश्वको देखकर पवनसे चलायमान हो जल बरसाते हैं, यह ग्रहण करने योग्य दृष्टांत है, महात्मा पुरुषोंको ऐसा ही करना चाहिये।

दोहा—जल बरसै चपला सहित, घन लहि पवन झकोर।
द्रवहिं साधु जिमिदीनपर, प्राण देत तेहि ओर ॥ ६ ॥

पृथ्वी ग्रीष्मऋतुकी धूपसे अत्यन्त तप्त होकर जो सूख गयी थी, इन्द्रने जल वर्षाकर उसको सींचा तो फिर वर्षाऋतुमें फूली और वृक्षोंपर भांति-भांतिके फूल खिल आये और फल लग गये, ऐसे ही सकाम पुरुष धनकी अथवा पुत्रकी इच्छा करके तप करता है, तब पहले तो उसका देह दुर्बल हो जाता है फिर तपका फल मिलनेसे उसका शरीर जैसेका तैसा हो जाता है। यह त्यागने योग्य दृष्टांत है, पुरुषको उचित है कि, सकाम तप न करे।

दोहा-ग्रीषमताप तपी धरणि, लहि घनमें सुख भीन।
जिमि तपफल लहि तपकृशित, तपी होत तनु पीन ॥७॥

वर्षाऋतुमें सन्ध्या समय खद्योत(पटबीजन)प्रकाश करते हैं, तारागण प्रकाश नहीं करते। जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे पाखंडमार्ग चमकते रहते हैं, और वेदमार्ग अस्त हो जाते हैं, यह त्याज्य दृष्टांत है, चतुर पुरुषोंको ऐसा नहीं चाहिए जो पाखंडमार्गमें प्रवृत्त हों।

दोहा-नखत न भासित होत निशि, जो गुण भास अपार।
जिमि कलियुगमें वेद नहिं, होत पखंड प्रचार ॥ ८ ॥

वर्षाऋतुमें मेघका गर्जना सुनकर मेंढक बोलने लगते हैं जैसे विद्यार्थी गुरुके सम्मुख मुख बन्द किये चुप बैठे रहते हैं। जब नित्य नैमित्तिक कर्मसे निश्चिन्त होकर बोलते हैं, तब शिष्य अपना पाठ लेकर पढ़ते हैं यह ग्राह्य दृष्टांत है कि विद्यार्थियोंको यही चाहिए कि गुरु जब अपने कार्यसे निश्चिन्त हो जाय और वह कहे तब आप अपना पाठ पढ़ें।

दोहा-घनकी गर्जन घोर सुनि, दादुर कीन्हे शोर।
नेम समापत वेद जिमि, भाषत विप्र किशोर ॥ ९ ॥

क्षुद्र नदियां जिनका जल थोड़े ही दिनोंमें सूख जाता है, वर्षाऋतुमें जब अधिक जल वर्षता है तब अपनी मर्यादाको छोड़-छोड़कर वे चारों ओरको उफनने लगती हैं, जैसे अजितेंद्रिय पुरुष का मन, धन और ऐश्वर्य पाकर खोटे मार्गोंकी ओरको चलता है और सब ठौरको पांव फैलाता है। यह त्याज्य दृष्टांत है ऐसा नहीं चाहिए जो कुमार्गमें अपने मनको लगावे।

दोहा-क्षुद्र नदी बाढ़ी विपुल, कीन्हे वेग विशाल।
धन लहि चलत कुचाल ज्यों, जन्म केर कंगाल॥ १० ॥

वर्षाऋतुमें हरी-हरी घास उत्पन्न होनेसे लाल-लाल वीरबहूटियोंके फिरनेसे उच्छिलीन्ध्र (छत्रिका) जो चौमासेमें छत्रके आकार पृथ्वीमें उत्पन्न होती हैं, उनके फूलनेसे और सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंसे पृथ्वी ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी जैसे राजाकी सेना चित्र-विचित्र रंगसे सजी हुई छत्रछायावाली दिखायी देती है। यह ग्राह्य दृष्टांत है, राजाओंको ऐसा ही चाहिए, जो हरे लाल मखमलके नये-नये बिछौने बिछायें और श्वेत-श्वेत डेरे तम्बू तान दें।

दोहा-अरुण चांदनी हरित तृण, युत छत्राक बलाक।
जनु पावस आवत सदल, छाजत छत्र पताक ॥ ११ ॥

वर्षाऋतुमें हरे-हरे धानोंके खेतोंको देख-देखकर किसानोंका चित्त आनंदित होता था और लाभ हानि दैवाधीन है, इस बातको असत्य समझकर जिन लोगोंने अन्नसंग्रह किया

था, उनको क्लेश हुआ। यह त्याज्य दृष्टांत है, क्योंकि ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जिसमें सबका बुरा चिन्तन करना पड़े।

दोहा–कृषक कृषी बाढ़त निरखि, हर्ष लहत दिन दून।
जैसे लोभी धन निरखि, मानत कबहुँ न ऊन॥ १२॥

वर्षाऋतुमें जलाशयके रहनेवाले जीव नये जलके सेवन करनेसे सुन्दर स्वरूपवान् हो जाते हैं, जैसे हरिभगवान्का सेवन करनेसे हरिजन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्यको ही चाहिये।

दोहा–जल थलवासी जीव लहि, नव जल भे सुखरूप।
जिमि हरि भजन प्रभावते, होत रुचिर वपु भूप॥ १३॥

वर्षाऋतुमें समुद्रमें नदी आकर मिल गयीं और पवनके चलनेसे तरंगें उठने लगीं उस समय समुद्रका जल चलायमान हो गया जैसे चित्त विषयवासनामें और काममें चलायमान हो जाता है। यह त्याज्य दृष्टांत है, योगियोंको ऐसा नहीं चाहिये, जो विषयवासनामें चलायमान हो जायँ।

दोहा-मिलैं नदी सागर उठैं, पवन प्रसङ्ग तरंग।
विषय लहे योगी यती, जिमि मणिकर बहुरंग॥ १४॥

वर्षाऋतुमें मेघोंकी बुंदधार पड़नेसे पर्वत किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं मानते, वरन् धुल-धुल कर उनकी शिलायें स्वच्छ और उज्ज्वल हो जाती हैं। जैसे जिन मनुष्योंके मन भगवानमें लग रहे हैं, उनके ऊपर कैसा भी कष्ट पड़े अर्थात् पुत्र मर जाय, धन लुट जाय, तनु दुर्बल हो जाय, परन्तु वह कष्टको कुछ नहीं मानते, बरन् यह कहते हैं कि विपक्षियोंसे पीछा छुटा, यह ग्राह्य दृष्टांत है। ऐसे ही मनुष्योंको चाहिये कि विपत्तिमें व्याकुल न हों।

दोहा–हने जातजल धार गिर, पै नहिं करत खँभार।
जिमि हरिजनको विषयकी, बाधा नहिं संसार॥ १५॥

वर्षाऋतुमें तृण और घासके बढ़ जानेसे मार्ग ढक गये और संदिग्ध (सन्देह युक्त) हो गये, अर्थात् यह न जान पड़ता था किस ग्रामका कौनसा मार्ग है, जैसे कि ब्राह्मण एक वार वेद पढ़कर पुस्तक बांधकर रख देते हैं और अभ्यास छोड़ देते हैं फिर बहुत दिन उपरांत पुस्तकको खोलकर देखते हैं तो उनको अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न होते हैं। यह त्याज्य दृष्टांत है कि ब्राह्मणोंको ऐसा नहीं चाहिए, जो पढ़नेका अभ्यास छोड़ दें, नहीं प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म करें।

दोहा–जान परत मारग नहीं, तृण संकुल जल धार।
अनभ्यास जिमि वेदको, द्विजमुख नहिं संचार॥ १६॥

लोगोंके परमहितकारी मेघ हैं, उनमें चलायमान चपला क्षणमात्रको स्थिर नहीं रहती, कभी किसी बादलमें चमकती है, कभी किसी बादलमें चमकती है, जैसे ज्ञानी पुरुषोंमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर होकर नहीं बैठती; कभी किसीके घर कभी किसीके घर, अर्थात् एक पुरुषके घर नहीं ठहरती। यह ग्राह्य दृष्टांत है कि कभी भूलकर भी व्यभिचारिणी स्त्रीका विश्वास न करे।

दोहा-सुखकर घनमें क्षण छिपत, क्षण छहरत क्षण जोति ।
गुणिहु कन्त कुलटानिकी, जिमि थिर प्रीति न होति ॥१७॥

वर्षाऋतुमें गर्जन शब्दके गड़गड़ाहटवाले बादल आकाशमें प्रत्यञ्चा (रोदा) विना इन्द्रका धनुष शोभायमान दिखाई देता है, जैसे गुणोंके गम्भीर शब्दवाले प्रपञ्चमें आत्मा निर्गुण है तो भी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता है। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरुषको चाहिये कि ऐसे सुन्दर निर्गुण पुरुषका ध्यान करे ।

दोहा-इन्द्रधनुष आकाशमें, विनगुण अस छबि देत ।
विनगुणके बहु पुरुष जस, यहि जगमें यश लेत ॥१८॥

वर्षाऋतुमें अपनी चांदनीसे प्रकाशमान जो मेघ है, उनसे आवृत होकर चन्द्रमा शोभायमान नहीं दीखता, अर्थात् मलिनसा दिखाई देता है, जैसे आत्मासे प्रकाशमान अभिमानसे आच्छादित पुरुष अपने मनमें कहता है कि मैं ही ज्ञानी हूँ, मैं ही दानी हूँ, मैं ही शूरवीर हूँ, मैं ही रणधीर हूँ, मैं पंडित हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, वही उसमें मलिनता है, यह त्याज्य दृष्टांत है पुरुषको चाहिये कि अहंकार न करे ।

दोहा-जिनकर शोभित घननसों, छपित शशी न सुहाय ।
अहंकार सबलित पुरुष, जिमि न छजत नृपराय ॥ १९ ॥

वर्षाऋतुमें ग्रीष्मके तपे हुए मोर मेघोंका शुभागमन देख उनकी प्रशंसामें मनोहर शब्द करते थे जैसे घरमें सन्तप्त हुए वैराग्यवान् पुरुष महात्मा पुरुषोंके आनेसे हर्षित हो मनोहर वाणीसे उनका आदर-सत्कार करते हैं। यह नहीं कि हम ही भूखे मरते हैं, इनके लिये कहांसे लायें ।

दोहा-देखि उठी घनकी घटा, नचत मोर चहुँ ओर ।
दुखित गृही जिमि साधुको, लहि मुद लहत अथोर ॥२०॥

वर्षाऋतुमें गरमीसे तपे हुए देवतालोग वृक्षरूप धारण किये अपनी मूलसे जल पी-पीकर प्रफुल्लित हो हरे-हरे लाल-लाल नवीन पल्लवोंसे समृद्धिमान् हो रहे हैं, जैसे तपस्या करनेसे मनुष्योंका देह प्रथम तो दुर्बल हो जाता है फिर सुन्दर सुख भोग करनेसे और पुष्टिकारक भोजन मिलनेसे उनका शरीर लाल हो जाता है,यह त्याज्य दृष्टान्त है। मनुष्योंको चाहिये कि खाने-पीनेके लिये तप न करें ।

दोहा-नवजल लहि वनके विटप, नये सपत्र सशाख ।
तपी कृशित फल पाय जिमि, पूरहिं सुख अभिलाख ॥२१॥

वर्षा ऋतुमें कांटे और कीचमें संयुक्त किनारेवाले घरोंमें चकवी चकवे और सारस वास करते हैं, जैसे अनेक प्रकारके कर्म करनेकी पीड़ासे घरोंमें विषयी पुरुष वास करते हैं, यह त्याज्य दृष्टान्त है। मनुष्यको ऐसा नहीं चाहिये कि जो सदा घरमें ही शिर दिये पड़ा रहे नहीं, कुछ-कुछ भगवान् वासुदेवका भी भजन करे, जिसमें लोक और परलोक दोनों सुधरे ।

दोहा-सरतट कण्टक कीच बिच, कहुँ बस सारस कोक ।
जिमि कुमती लहि दुख अधिक, तजहिं न आपन ओक ॥२२॥

वर्षाऋतुमें जैसे इन्द्रके जल बरसानेसे नदियोंके जलका प्रवाह पुलोंको तोड़ता-फोड़ता चला जाता है और खेतोंकी मर्यादा भी टूट गयी, जैसे पाखण्डियोंके शब्द सुनकर कलियुगमें वेदमार्ग टूट जाते हैं। और धर्म-कर्म दूर हो जाते हैं। यह त्याज्य दृष्टान्त है मनुष्य पाखंडियोंके शब्द सुनकर वेदमार्गको न त्याग दे।

दोहा–सलिल धारके जोरसों, टूट गये बहु सेत।
वेदोंकी मर्याद जिमि, कलि पखण्ड हरि लेत ॥ २३ ॥

वर्षाऋतुमें मेघगण पवनकी प्रेरणासे प्राणियोंपर अमृतके तुल्य जल बरसा रहे थे, जैसे समय-समयपर राजा पुरोहितकी प्रेरणासे दान-पुण्य करते रहते हैं। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, पुरोहित गुरुजनोंको ऐसा ही चाहिये कि जो प्रेरणा करके यजमान और शिष्योंसे दान करायें और दीन पुरुषोंको दिलायेः–

दोहा–मारुतप्रेरित जलद जिमि, जीवन जीवन देत।
द्विज प्रेरित नृपसों यथा, प्रजा मनोरथ लेत ॥ २४ ॥

इस प्रकार चारों ओर जहाँ आम, जामुन, खजूर जिस वृन्दावनमें पक रहे थे और उनकी शाखायें पृथ्वीकी ओर ऐसी झुक रही थीं जैसे परोपकारी पुरुष धन पाकर नीचेको झुकते हैं और फूलजो टपक-टपककर सुधासम वसुधापर गिरते थे, ऐसा जान पड़ता था मानो दानी द्रव्यका दान कर रहे हैं और खजूरके वृक्ष ऊँचे-ऊँचे ऐसे विदित होते थे जैसे रणभूमिमें शूर खड़े हैं, ऐसे शोभायमान वनकी शोभा देखकर श्रीकृष्ण बलरामसमेत ग्वालबालोंको संग ले उस वनमें गायें चरानेके लिये गये ॥२५॥ बड़े-बड़े आयनोंके भारी-भारी भारसे हौले-हौले चलनेवाली गायें जब श्रीकृष्णचन्द्रने नाम ले-लेकर प्रीतिसे बुलायीं, तब स्तनोंसे जिनके दूध टपक रहा है वे सब गायें दौड़कर वृन्दावनविहारीके सन्मुख आकर खड़ी हो गयीं ॥२६॥ वनवासियोंको श्रीकृष्णने देखा, मधु और मकरन्द टपकानेवाली वृक्षोंकी लताओंमेंसे रस टपकता था। गोवर्धन पर्वतसे जलकी धारायें बहती थीं। कहीं-कहीं झरनोंसे जो पानी गिरता था उस पानीके शब्दसे ऐसा ज्ञात होता था मानो वृक्ष परस्पर बातें कर रहे हैं। निकटही गुफायें थीं उनको देख-देख ग्वालबाल और नन्दलाल प्रसन्न होते थे ॥ २७ ॥ कहीं-कहीं ऐसी वृक्षोंकी खखोडल और पर्वतकी कन्दरा थी कि जिनमें पानीकी बूँद भी नहीं जाती थी, जब भारी वर्षा होती थी तो उन्हींमें घुसकर बैठ जाते थे और वनके फल-फूल खा-खाकर प्रसन्न होते थे ॥ २८ ॥ इतनेमें यशोदाने दोपहरका समय देख अपने मनमें समझा कि मोहन प्यारेको भूख लगी होगी, यह विचार कई एक ग्वालिनियोंके हाथ दही, भात, माखन मिश्री और अनेक प्रकारके व्यञ्जन थालोंमें धर-धरकर श्रीकृष्ण बलरामके पास भेज दिये, सो श्रीकृष्ण सखाओं समेत यमुनाके निकट ऐसे रमणीक घाटपर गये जहां–

दोहा–मृदुल शिला छाया घनी, बहत धार चहुँ फेर।
तहँ हरि बल बैठत भये, सकल सखनको घेर ॥

शिलाके ऊपर ही भात धरकर भोजन करने योग्य गोपोंको और बलदेवजीको संग लेकर भोजन करने लगे और उसके स्वादकी सराहना कर करके कभी सखाओंको देते थे और कभी उनके हाथमेंसे ले लेते थे ॥२९॥ उस समय बैल बछड़े पेट भर जानेसे हरी-हरी घासपर बैठे आँखें मीचे जुगाल कर रहे थे और गायें भी दूधके भारसे थककर बैठी जुगाल कर

रही थीं रामकृष्ण उन गायोंको देख-देखकर प्रसन्न होते थे और भोजन करते जाते थे और वारंवार परस्पर कहते थे कि पावसके समान संसारमें सुख देनेवाली और दूसरी ऋतु नहीं है ॥३०॥ सब प्राणियोंकी आनन्दकारी और प्रेम प्रीतिकी बढ़ानेवाली पावसमें वृन्दावनकी शोभा और अपनी शक्तिसे युक्त वर्षा ऋतुको देखकर वृन्दावनविहारी वृन्दावनकी प्रशंसा करने लगे कि देखो ! वृन्दावनमें वर्षाऋतु कैसी अनुपम शोभा दे रही है॥ ३१ ॥ इस प्रकार ब्रजमें श्यामसुन्दर और बलरामके वास करते-करते बादलोंसे रहित निर्मल जल बहानेवाली और मन्द-मन्द त्रिविध पवन चलानेवाली परम सुखदाई शरद ऋतु आगयी ।

कबित्त–मंद भयो मारुत अमंद भयो चंद अर-विंदनके वृंद वे अनंद भरे विकसे । मत्त भे मतंग औ कुरंग औ विहंग बहु, त्योंहीं है अमत्त मोर दुरदैव निकसे ॥ पुलिन देखावती घटावती सलिल यों, सुहावती सरित आये खंजन पथिकसे । रघुराज मेघनके मण्डल मयंकके, मयूखको डराय नभमंडलते निकसे ॥

शरदऋतुमें कमल उत्पन्न होनेसे जल निर्मल और शीतल हो गया, जैसे योगीजनोंके चित्त योगसे भ्रष्ट होकर फिर योगका अभ्यास करनेसे शुद्ध हो जाते हैं । यह ग्राह्य दृष्टांत है, कि योगियोंको यही चाहिए कि चित्तको शुद्ध करके योगाभ्यास करें ।

दोहा–शरद पाय जल अमल भो, फूले कंज प्रसिद्ध ।
योगभ्रष्ट पुनि योगकर, जिमि सुधरत हैं सिद्ध ॥ ३२ ॥

वर्षाऋतुमें आकाशमें मेघ रात-दिन गर्जते रहते हैं, शरदऋतुमें उनका गर्जना बंद हो गया । वर्षाऋतुमें बहुतसे मनुष्य मिलकर एक स्थानमें रहते हैं, शरदऋतुमें सब अलग-अलग हो गये । वर्षाऋतुमें ठौर-ठौर कीच होती है, शरदऋतुमें सब भूमि सुहावनी हो गई । वर्षा ऋतुमें जल गँदला और मैला हो जाता है, शरदऋतुमें जल स्वच्छ और शीतल हो गया । जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी इन चारों आश्रमोंके भगवान्की भक्ति होनेसे सब क्लेश दूर हो जाते हैं । ब्रह्मचारियोंके लिए शिष्य तब ही तक जल भरा करते हैं, जबतक भक्ति प्राप्त नहीं होती । भक्ति होनेके पीछे जल भरनेका परिश्रम नहीं रहता । जब शिष्यको भक्ति प्राप्त हो जाती है तब उससे गुरु भी सेवा नहीं कराते । इस प्रकार बादलका गर्जना शरदऋतुमें बंद हो गया । गृहस्थके हृदयमें जबतक भक्ति उदय नहीं होती तबतक अपनी सन्तानादिकमें मोह ममता रखता है और भक्ति होनेके पीछे एकांत वास करनेकी इच्छा करता है और सबका सङ्ग छोड़ देता है; ऐसे ही प्राणियोंका जो एक स्थान-पर वास है, वह छूट गया । वानप्रस्थको जबतक भक्ति प्रकट नहीं होती तबतक उसका मन मलिन रहता है, भक्ति होनेके पिछे जैसे उसकी मलिनता दूर हो जाती है ऐसे ही पृथ्वीकी कीच सूख गयी और सुहावनी हो गयी । संन्यासीका कामवासनारूप मल श्रीकृष्ण वासुदेवमें भक्ति होनेसे दूर हो जाता है, ऐसे ही शरदमें जलका मल दूर हो गया ।

दोहा–नभके घन जन जुरि रहत, जल मल पुहुमी पंक ।
शरद हन्यो जिमि कृष्णकी, पदरति हरति कलंक ॥ ३३ ॥

शरदऋतुमें मेघ अपना सर्वस्व त्याग श्वेत-श्वेत रुईके फाहासे दिखायी देते हैं, जैसे धन, दारा, पुत्र और विषयवासनाके दूर होनेसे शांतस्वभाव मुनीश्वरलोग शोभायमान जान पड़ते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है; मुनिलोगोंको यही चाहिए कि सब वासनाओंको दूर करें।

दोहा—विघ्नहरण विन वारिके, विलसत वारिद सेत।
जिमि जग मुनि निर्द्वन्द्व है, लसत संत मति चेत ॥ ३४ ॥

पर्वत अपना कल्याणरूप निर्मल जल कहीं-कहीं को तो झरनोंसे बहाते हैं और कहीं को नहीं बहाते, जैसे ज्ञानी पुरुष समय-समयपर अपना ज्ञानरूप अमृत सुपात्रको देखकर देते हैं, और कुपात्रको नहीं देते। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, विवेकी पुरुषको यही चाहिये कि सुपात्र कुपात्रको देखकर उपदेश करे।

दोहा—कहुँ ढारत जलधार गिरि, कहुँ ढारत हैं नाहिं।
देन कबहुँ नहिं देत जिमि, ज्ञानी ज्ञानिहि काहिं ॥ ३५ ॥

शरदऋतुमें सरोवरमें थोड़े जलके रहनेवाले जीव-जन्तु नित्य-नित्य घटते जलको नहीं जान सके, जैसे अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष घरोंमें रहकर अपनी नित्य क्षीण होती हुई आयुर्बलको नहीं जानते। यह त्याज्य दृष्टान्त है, कुटुम्बी लोगोंको चाहिये कि अचेत न हो कुछ परमेश्वरकी ओरका भी चिन्तन करें।

दोहा—दिन दिन सूखन क्षुद्र जल, जानत है नहिं मीन।
जिमि क्षण क्षण आयुष घटत,गनत न जन मतिहीन ॥३६॥

शरदऋतुमें थोड़े जलमें रहनेवाले जलचर सूर्यके तेजसे जल गरम होनेसे दुःखी हो गये, जैसे कुटुंबी पुरुष इन्द्रियोंके वशमें न रहनेसे दरिद्रता और कृपणतासे रहकर कष्ट भोगते हैं। यह त्याज्य दृष्टान्त है, जो घरमें क्लेश हो तो उस घरको त्याग दे।

दोहा—होत दुखी लघुसरनके, जिय लहि तरणिप्रताप।
कृपण कुटुम्बी दारिदी, जिमि पावत बहु ताप ॥ ३७ ॥

शरदऋतुमें सहज-सहजमें सब स्थानोंकी कीच सूख गयी, लताओंका सब कच्चापन जाता रहा। जैसे मिथ्या देह गेहमें सज्जन पुरुष सहज-सहजमें मायाकृत अहंता ममताको त्याग देते हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, ज्ञानी पुरुषको यही चाहिये कि अभिमानका त्याग कर दे।

दोहा—क्रम क्रमसों कर्दम सुख्यो, पीन लता तरु डारि।
जिमि क्रम क्रम ममता तजैं, धीर धीरता धारि ॥ ३८ ॥

शरदऋतुके आनेसे समुद्रका जल निर्मल हो गया, जैसे आत्मज्ञान होनेसे महात्मा मुनियोंका पढ़ना-लिखना सब छूट जाता है। यह ग्राह्य दृष्टान्त है आत्माके जाननेके पीछे लिखने-पढ़नेका क्या प्रयोजन?

दोहा—रवि जब कम करि अचल जल, सिन्धु भयो सब ठाम।
परमहंस जन होत थिर, तज सिगरे जगकाम ॥ ३९ ॥

शरदऋतुमें खेतवाले किसान लोगोंने जहां-तहां भारी-भारी मेंड़े बाँध-बाँधकर पानी रोक लिया जैसे योगिराज इंद्रियरूप द्वारसे जाते हुए ज्ञानको रोक लेते हैं इंद्रियोंको रोककर फिर मनको रोकते हैं। यह ग्राह्य दृष्टान्त है, योगियोंको यही चाहिये कि ज्ञानको हृदयसे निकलने नहीं दें, अर्थात् इंद्रियोंको रोककर रखें।

दोहा—बांधि सेतु सींचत कृषी, लावत सलिल किसान।
जिमि विषयनते खैंच मन, थिर राखत मतिमान ॥ ४० ॥

शरदऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तापको रात्रिके समय चन्द्रमाने उदय होकर दूर कर दिया जैसे ज्ञान होनेंके पीछे देहके अभिमानरूप तापको शांतिरूप चन्द्रमा उदय होकर हर लेता है, ऐसे ही ब्रजवासियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र मुकुन्दने दूर कर दिया।

दोहा—तरणि ताप दिनकी हरत, जीवनको निशि चन्द।
जिमि विज्ञान अभिमान तिमि,ब्रजतिय ताप मुकुंद॥४१॥

शरदऋतुमें मेघ दूर हो गये, आकाश निर्मल हो गया, तारागणोंके प्रकाशसे आकाश शोभा पाने लगा,जैसे वेदके अर्थको दिखानेवाले सत्त्वगुणी चित्तके शुद्ध होनेपर शोभायमान जान पड़ते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, वही चित्त सुन्दर और शोभायमान है जिसमें वेदके अर्थका ज्ञान है।

दोहा—अमलतार निर्मल गगन, अतिशय शोभित होय।
वेद-अर्थ-धारी सतो,-गुणयुत मन जस सोय ॥ ४२ ॥

शरदऋतुमें समस्त मण्डलसे चन्द्रमा आकाशमें तारागणसहित शोभा देता है, जैसे पृथ्वीमें यदुपति श्रीकृष्णचन्द्र यादवों समेत शोभायमान जान पड़ते हैं, यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्योंको चाहिये कि जैसे चन्द्रमा आकाशमण्डलको प्रकाशित करता है, ऐसे ही शांतिरूप चन्द्रमासे हृदयको प्रकाशित करें।

दोहा—ॐ अखण्डल मण्डले, सोहत उडुयुत चन्द।
जिमि यदुनगरी यदुनयुत, सोहत श्रीयदुनन्द ॥ ४३ ॥

शरदऋतुमें पुष्पवाटिकाओंके पुष्पोंका स्पर्श करके जो पवन चलता है, उसके स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके तनुका ताप दूर हो जाता है; जैसे गोपियोंका ताप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके स्पर्शसे दूर हो जाता है! यह ग्राह्य दृष्टांत है, मनुष्योंको यही चाहिये कि भगवान्‌का स्पर्श करके सांसारिक तापोंको त्याग दे।

दोहा—ताप रहित सब जन भये, परसत त्रिविध समीर।
पै विन हरि हियरे लगे, मिटी न गोपिन पीर ॥ ४४ ॥

शरदऋतुमें गायें, हरिणी, पक्षिणी और स्त्रियाँ पुष्पवती हुईं, उनके पति उनके पीछे-पीछे कामातुर हो फिर रहे थे, जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिए पुरुष योग, यज्ञ, जप, तप करते हैं, उनके पीछे फल आपसे आप लगे फिरते हैं।

दोहा—भे सगर्भ गो खग मृगी, तिन पीछे पति जाहिं।
जिमि कीन्हें हरि भक्तिके, सिगरे फल पछिआहिं ॥ ४५ ॥

शरदऋतुमें कुमुदिनीके सिवाय और सब प्रकारके कमल सरोवरोंमें फूलते हैं, जैसे चोरोंके सिवाय सब प्रजागण राजाके उदय होनेसे प्रफुल्लित रहते हैं। यह ग्राह्य दृष्टांत है, ऐसा कौनसा मनुष्य है, जो अपने स्वामीको देखकर प्रसन्न न हो।

दोहा—भानु उदय कुमुदिन विना, विकसहिं कंज अथोर।
जिमि धर्मी लहि नृपतिको, प्रजा सुखी विन चोर ॥ ४६ ॥

शरदऋतुमें ग्राम और नगरोंमें नवीन अन्नके भोजनसे वैदिक उत्सवसे और इंद्रियोंके पुष्टताकारक विवाहादिक लौकिक उत्सवसे तथा श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके क्रीडा करनेसे पृथ्वी अत्यंत शोभायमान दृष्टि आती थी।

दोहा—पकी कृषी ग्रामन पुरन, सचरो अन्न नवीन।
घर घर उत्सव होत जिमि, हरि लहि महि सुखभीन ॥ ४७ ॥

वर्षाऋतुके थँमनेसे वणिक्, मुनीश्वर, राजा, ब्रह्मचारी ये शरदऋतुमें अपने-अपने कार्यमें लग गये, बनियें अपने-अपने व्यापारके लिये देश देशांतरोंको जाने लगे, साधु संन्यासी तीर्थयात्राओंके जानेका प्रबन्ध करने लगे, राजा लोग अपनी चतुरंगिणी सेना ले शत्रुओंके विजय करनेको चल दिये, ब्रह्मचारी विद्या पढ़नेके लिये पाठशालाओंको चलने लगे, जैसे मन्त्र और योगादिसे सिद्ध महात्मा आयुके बन्धनसे रुक रहे हों वह समय आनेपर दिव्य देह पाते हैं।

दोहा—व्रती वणिक नृप अर्थहित, गमन किये तजि ओक।
जिमि सुकाल लहि सिद्धजन, तन तजि जिन जस लोक ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे वर्षाशरदृतुवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा—इक्किसमें वृन्दाविपिन, गये श्याम सुखधाम।
वेणुगीत गोपीनको, वर्णत शालिग्राम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज! शरदऋतुमें निर्मल कमलोंकी सुगन्धयुक्त पवनवाले वृन्दावनमें,गाय-बछड़े और ग्वालबालोंको संग ले श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वृन्दावनमें गये।

कवित्त—पन्नासम पूरे नीर परम गँभीर सर, विकसी जलजभीर करै उर पीर हैं। शीतल सुगन्ध थीर बहत समीर तहाँ, तीर तीर तरुनमें बोल रहे कीर हैं॥ मुनि मति धीरहू विलोकत अधीर होत, मदन अभीर उर वेधे तीखे तीर हैं। क्षीरदा चरावनको सहित अहीरवृंद, वृंदावन पैठे बलबीर यदुवीर हैं ॥ १ ॥

फूली हुई वनकी पंक्तियोंके सौरभसे मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूहके शब्दसे सरोवर, नदी, पर्वत,गूँज रहे थे, ऐसे सुन्दर मनोहर वृन्दावनमें बलराम और ग्वालबालों सहित जाकर मुरली बजाने लगे और गायें-बछरे चरनेको छोड़ दिये।

कवित्त—फूल रहे फूल बहु फैल रहीं लोनी लता, फबि रही फटिकके फरससी धरनी। शीतल सघन कुंज पुंज तहाँ भौंरनके मुञ्जनकी कुंज छाई अति मुदभरनी ॥ रघुराज रंग रंगके बिहंग बोल रहे, आनँद उमँग भरे संग निजघरनी। मोहन जु मुरली बजाई तहाँ माधुरीसों, ब्रज वनितान जो मनोज वशकरनी ॥ २ ॥

प्रमादात्मक कामका प्रकाश करनेवाला वंशीका शब्द सुनकर कई एक ब्रजबाला श्रीकृष्णके पीछे अपनी सखियोंके सामने उनकी प्रशंसा करने लगीं।

कबित्त-बाँसुरीकी टेर ब्रज बालन के काननमें, काननसों आय सुधा धार हीसी ढरकी। चौंक चौंक चारों ओर चितय चकित ह्वैके चातुरी बिसारी भूल गई सुधि घरकी॥ रघुराज दौर दौर आईं जुरि एक ठौर, छूटी अलकान सारी सँभरैं न धरकी। आननमें आन रंग नैनन कलेवरमें, प्राणनमें पूरी प्रीति नन्दके कुँवरकी॥ ३॥

हे महाराज! जिस समय कुछ कहनेका प्रारम्भ किया, उसी समय मनमोहनी मनमोहनकी छबिका स्मरण हो गया। उस छबिका स्मरण होते ही कामदेवने उनके मन व्याकुल कर दिये, इसलिये उनसे श्यामसुन्दरकी कीर्तिका कुछ वर्णन नहीं हो सका।

कबित्त-कान्हर कलाको कछु कहनको चाहो चित्त, पै न कढ़ी नेक कहूँ वदनते बानी है। नन्दजूके नंदनकी मन्द विहँसन चित्त, वन औ चलन चारु सुधिकैं लुभानी है॥ मदन महीपने दुहाई तन फेर दीनी, कहै रघुराज ब्रजबाल बउरानी है। पलकैं परत नहीं ललकैं ललन लगी, ललना लगन लगीं लाजहु पराानी है॥ ४॥

मोर-पुच्छोंका मुकुट शीशपर धरके कछनी-काछके कानोंमें कनेरके पुष्प धारण करके सुवर्णके सदृश पीतपट ओढ़कर कण्ठमें वैजयन्ती और वनमाला धारण कर नटवररूप बनाकर बांसुरीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करते गोपोंके समूह जिनकी कीर्ति वर्णन करते हैं, वे श्रीवृन्दावनविहारी अपने चरणारविन्दोंके चिह्नसे रमणीक वृन्दावनमें गये। नटवर वेष बनानेका आशय यह है कि तुमको नृत्य दिखानेके लिये मैंने यह वेष बनाया है और कनेरपुष्प कानमें धरनेका कारण यह है कि जब गोपियोंकी बात कानमें सुनाई न आये तो कानोंमें अत्यन्त सन्ताप होगा तब कानोंको शीतल करनेके लिये पुष्प धारण किये हैं और पीताम्बर धारण करनेका कारण यह है कि राधा प्यारीका शरीर ऐसा ही पीतवर्ण है; इसको देखकर प्रीतमप्यारीके शरीरकी सुधि आती रहेगी। दूसरे प्यारीकासा पीतरंग मेरे हृदयसे लगा रहेगा और वैजयन्ती और मनमाला हृदयपर पड़े रहनेका अभिप्राय यह है कि प्यारीके वियोगका जो बिरहानल है,उसे शान्त करती रहे, गोपियोंने चरणचिह्नयुक्त मनोहर बृन्दावन जाकर बृन्दावनमें प्रवेश किया ऐसा सुन्दर मनमोहनका मनमोहनरूप देख धैर्य धर जैसे-तैसे कर एकसे एक कहने लगीं:-

कबित्त-काननमें सोहैं कर्णिकारके कुसुम आली, माथे मोर पंख मोर छबिको छवैया है। पुरट प्रभाको पट कटिमें विराज रह्यो, उर वैजयन्ती माल मनको हरैया है। वंशी-वेध आंगुरी दे तानमें प्रमोद भरे, रघुराज ग्वालनमें आगे किये गैया हैं। निज पद वृन्दावन धरणी करत धन्य, नटवरवेषवारो सांवरो कन्हैया है॥ ५॥

हे राजन्! इस प्रकार सब जीवोंके मनको मोहनेवाली मनमोहनकी बांसुरीकी टेर सुनकर ब्रजबाला परस्पर उसकी प्रशंसा करने लगीं। प्रशंसा करती ही करती परमानन्द रूपके सागरमें मग्न हो मुरली मनोहरका मनसे आलिंगन करती थीं।

दोहा–यहि विधि कहि कहि ब्रजवधू, सुनि सुनि वंशी टेर ।
लगीं करन वर्णन सबै, इक एकनसों फेर ॥ ६ ॥

गोपी कहने लगीं–हे सखियो ! उन्हीं नेत्रवान् पुरुषोंके नेत्र संसारमें धन्य हैं और हम दूसरेको धन्यवाद नहीं दे सकतीं, जिन्होंने सखाओं समेत गायोंको चराते, मुरली बजाते, प्रेम भरे कटाक्ष चलाते श्रीकृष्ण बलदेवका मुखारविन्द देखा है ।

सवैया–संग सखा ले चलैं तुलसी वन, धेनु चरावनको अनुरागी ॥
भौंह कमानको तानके नैनन, बानको मार करै री बिरागी ॥
श्रीब्रजराज बजायकै बांसुरी, देत सबै ब्रजको सुखपागी ॥
ता नँदनन्दनके मुखकी छबि, जे दृग पीवें तेई बड़भागी ॥ ७ ॥

दूसरी सखी बोली कि, आमके पल्लव मोरपुच्छ फूलोंके गुच्छे (उत्पल) कमलोंकी मालाओंसे देदीप्यमान नीलांबर पीतांबरोंसे चित्र-विचित्र वेष धारण किये, श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्वालमण्डलीमें गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे जैसे रंगभूमिसे दो नर नाटक कर रहे हैं ।

सवैया–लाल रसाल रसालकै पल्लव, नीरज मोरके पंख लगाई ।
सो पहिरे पटपीतके ऊपर, लाल हिये बनमाल सुहाई ॥
श्री रघुराज श्रृङ्गार किये अनु,रागनसों रह्यो रागन गाई ।
कुञ्ज कदंब तरे नटनागर, सोहत ग्वालन मध्य कन्हाई ॥८॥

तीसरी गोपी बोली कि, हे सखियो ! इस बांसुरीने ऐसा कौनसा तप किया है ? कि जिसके पुण्यके प्रभावसे हमारे पीने योग्य अधरामृतके रसको यह आप ही अपनी इच्छा पूर्वक पी रही है । जिन सरोवरोंके जलसे इस बांसुरीके बांसोंको सींचा है, उन सरोवरोंमें कमल नहीं फूलते, मानो आनन्दसे रोमांच हो आये हैं और जिन वृक्षोंके वंशमें इस बांसुरीके बांस उत्पन्न हुए हैं, इन वृक्षोंमें मद नहीं टपकता, मानो आनन्दके आंसू बहाते हैं । क्यों ? वह अपने आपको धन्यवाद देते हैं कि धन्य हमारे भाग्य जो हमारे वंशके बासोंमें ऐसी बांसुरी उत्पन्न हुई कि जो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके मुखारविन्दसे लगी रहती है । जैसे श्रेष्ठ मनुष्य अपने कुलमें सुपुत्रको भगवान्‌का भक्त देखकर आनन्द मान नेत्रोंसे आंसू बहाते हैं, इस समय मुझको एक भजन स्मरण हो आया–

भजन

मुरलियाने कियो है कठिन तप भारी ।
मुरलिया याही ते हरिने मुख धारी ॥
जन्मत ही कीनी मति गाढ़ी, वनमें रही एक पग ठाढ़ी ।
वर्षा शीत उष्णता बाढ़ी, सो सहि तनपर सारी ॥
मुरली निज तपके फल लीन्हे, ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वश कीन्हे ।
चेतन थे जड़ कर दीन्हे, अधरन चढ़ी विहारी ॥

एक मन्त्र विधि हरिसों पावैं, ताते इतनी सृष्टि उपजावैं।
याको हरि नित मन्त्र सुनावैं, अचरज भयो कहा री॥
हरि ब्रजमें नित वेणु बजावैं, तीन लोक धुनि सुनि सुख पावैं।
झब्बीलाल मनावैं ब्रजको, बास मिलै बनवारी॥

सवैया–जो सिगरी ब्रज नारिनको, रघुराज क्षणै क्षण देत हुलासु री।
पीवतही जिहि होत भई, विरहागि विथाको विशेष विनासुरी॥
पूरी भई यह सौति हमारि, करै नित लालनके मुख बाँसुरी।
पान करै हरिको अधरामृत, कौन कियो तप बांसकी बांसुरी॥९॥

चौथी सखी बोली कि, हे आली! यह वृन्दावन सुरपुरसे भी अधिक पृथ्वीका यश विस्तार कर रहा है, धन्य है! यह पृथ्वी, जिसपर ऐसा परमानन्ददायक वृन्दावन परमधाम है, जिसकी देवकीनन्दन श्रीकृष्णके चरणारविन्द धरनेसे और भी अधिक शोभा प्राप्त हुई। और इस वृन्दावनमें जिस समय मुरलीमनोहरकी मुरलीका शब्द होता है, उसको मन्द गर्जनेवाली श्यामघटा जानकर मोर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, उनका अनुपम नाच देखकर सब जीव-जन्तु निश्चल होकर बैठ जाते हैं, ऐसा परमानन्द किसी और दूसरे लोकमें भी सुना है? कहीं नहीं, यह पूर्णानन्द वृन्दावनमें ही है।

सवैया–जिनकी रज पावन देह अरी, जप योगी अनेकन योग करैं।
विरहानल ताप बुझावनको, हमहूं हठकै कचबीच धरैं॥
नँदनन्दनके पद पंकज सो, ब्रजके घरही घरमें विचरैं।
तुलसी बनसों रघुराज सखी, दृग दूसर देश न देख परैं॥ १०॥

पांचवीं सखी बोली कि, हे सजनी! यह पशु जाति मूर्ख हरिणी भी धन्य हैं? कि जो मुरलीका शब्द सुन अपने पतिके संग विचित्र वेष किये वृन्दावनविहारीके स्नेहकी चितवनसे सम्मान करती है और हमारे पति तो ऐसे निर्दयी हो गये कि हमको उनका दर्शन भी नहीं करने देते।

सवैया–मनमोहनिवा ध्वनिको सुनिकै घनश्यामहिको घनश्याम गनैं।
मन मोह महा मतवारे मयूर, नगीचहिं नाचैं छनैं ही छनैं॥
तिनको लखिनाचत औरहु जन्तु, रहैं सब ठाढ़े ठगेसे बनैं।
रघुराज कहो सखी कौन बनाय, गहाय दई मुरली मोहनैं॥११॥
जो मतिमन्द कहैं ब्रजकी, हरणीको सोई मतिमन्द अभागी।
सांवरेकी छबि मैं छकिकै ढिग, ठाढ़ी रहैं पति लै अनुरागी॥
श्रीब्रजराज ललाको कटाक्षन, सों सतकार करैं बड़भागी।
ते हरिकै हिय लागबेको हमैं, रोकत गोप गँवार कुरागी॥१२॥

छठी सखी बोली कि, हे प्यारी ! यह अद्भुत बात भी तो सुनो, कि स्त्रियोंके आनंदका देनेवाला श्यामसुन्दरका मनोहर रूप देखकर और उनकी बजाई बांसुरीकी मनोहर ध्वनि सुनकर विमानोंमें बैठ गमन करती हुई देवताओंकी स्त्रियाँ यद्यपि अपने पतियोंकी गोदीमें बैठी हैं, तो भी कामदेवके बाणोंके लगनेसे ऐसी व्याकुल हो गयीं कि उनके शिरके बालोंमेंसे पुष्प गिरे जाते हैं और नीवी खुली जाती है, जब देवांगना ही मनमोहनके स्वरूपको देखकर मोहित हो गयीं तो फिर हम मोहित हो गयीं तो क्या आश्चर्यकी बात है ?

सवैया–बालनवृन्द अनन्दको दायक, शील भरो नँदनन्दन रूप है।
ठाढ़ो कदम्बकी कुंजथली अलि, बाँसुरिकी ध्वनि छाई अनूप है ॥
सो सुनिव्योमविलासिनि वाम, विमानमें मोहैं विशाल स्वरूप है।
ढील भै नीवी खसै सुम केसते, यद्यपि सङ्ग सुरासुर भूप है ॥१३॥

श्रीकृष्ण प्यारे के मुखसे निकलते हुए बांसुरीके गीतरूप अमृतको गायें-बछड़े कानरूप पात्रोंसे ऊपरको उठाकर पीते हैं और श्रीकृष्णचन्द्रको दृष्टिसे आलिंगन करते, प्रेमके आंसू बहाते, चित्रके समान लिखेसे खड़े हैं बछड़ोंके मुखमें दूधके थन और गायोंके मुखमें घासके तृण मुखके मुखमें ही रह जाते हैं।

सवैया–वा मुरलीधुनि मंजु गोपालकी, गायन कान सुधासी ढरैं हैं।
चौंकके कान उठायके धाय, समीपमें गोगण आय अरैं हैं ॥
त्यों बछरा सुरभी मुख कौर, लिये नहिं लीलहि नाहिं झरैं हैं।
श्रीरघुराज निवारि निमेष, निहारि ललाको प्रमोद भरैं हैं ॥१४॥

हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं, वे सब मुनीश्वर हैं, मनोहर पत्रवाले वृक्षकी शाखाओंपर बैठकर नेत्रोंको मुँह मौन साध श्रीकृष्णचन्द्र मनमोहनप्यारेका दर्शन करते हैं और बांसुरीके मनोहर गीतोंको सुनते हैं क्योंकि मुनिलोग भी भगवान्के दर्शनके लिये काम कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो उनके विशालरूप कर्मोंका गुण ग्रहण कर सुखी हो मौन साध भगवान्के गुणानुवाद सुना करते हैं, इससे उनकी समतावाले ये पक्षी मुनिजन ही जान पड़ते हैं।

सवैया–बाँसुरिकी धुनि श्रौनके हेत, लगायके श्रौनन नेमसों खाँचैं।
बोलन बन्दकै कुन्द कदम्बनि, शाखनि बैठ अनन्दमें राँचैं ॥
नैनन मुँदि अचञ्चल है पियै, बेनु सुधा मनके नहिं काँचैं।
श्याम सनेही विहंग सबै, तुलसीवनके ये विहंग हैं साँचैं ॥ १५ ॥

चैतन्य जीवोंकी दशा जो कुछ थी वह तो थी ही, परंतु मुकुन्द भगवान्की बांसुरीकी टेर सुनकर नदियोंमें भी भँवर पड़ते हैं। उनसे यह सूचित होता है कि यह भ्रमर नहीं पड़ते, हमारे हृदयमें कामदेवके गढ़े पड़ते हैं, मानो जल स्तंभित हो आलिंगन करके आच्छादन करता है। ऐसे ही लहररूप हाथोंसे कमलके पुष्प भेंट ले लेकर मुरारी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको समर्पण करते हैं ❋।

❋ दृष्टांत–चार भंगेड़ी नशेमें चूर होकर आपसमें कहने लगे कि राजाके आदमी कितने होंगे। एक रणधीरसिंह बोला-फलाने परगनेमें राजाके आदमी एक लाख हैं। दूसरा व्रजपालसिंह बोला–फलाने परगनेमें पन्द्रह लाख आदमी हैं। तीसरा सरदारसिंह बोला–कि फलानेपरगनेमें राजाके पच्चीस लाख आदमी हैं।

सवैया–माधवकी अतिमाधुरिया, मुरली धुनिको सुनि आग अमन्दी ।
कामसों कांप उठो हियरो, भइ ताही समै अति वेगते मन्दी ॥
बांसुरी तान महान नदी, सखिया हिय डारत काम कमन्दी ।
श्रीरघुराज तरंग भुजानिसों, कंजनके गहि पुंज अनन्दी ॥ १६ ॥

और गोपी तो कृष्णका अमोल प्रेमामृत पी रही थीं जो कृष्णरूपका प्रबंध बांध दिया तो क्या बड़ी बात है? बलदेवजीको और ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर धूपमें व्रजकी गायोंको चराते, मुरली बजाते, अपने प्यारे मित्र घनश्यामको देख श्याम घन उनपर छत्र छायाकर, नन्हीं-नन्हीं बूंदोंकी वर्षा करने लगे। क्योंकि सच्चा मित्र श्यामसुन्दरका मेघ ही है। देखो कृष्णका भी श्याम रंग और मेघोंका भी श्यामरंग, कृष्णके भी पीत वस्त्र और मेघोंके भी पीत बिजली, कृष्णके मुक्तामाल और मेघोंके बगपाँति, कृष्णकी मुरली गजें और मेघ आपही गजें, कृष्ण अमृतकी वर्षा करें, और मेघ जलकी वर्षा करें, कृष्ण वनमें घूमे और मेघ आकाशमें घूमे, कृष्णपर भौंहोंके धनुष हैं, मेघोंपर इन्द्रका धनुष है, कृष्णके और मेघके सब लक्षण एकसे मिलते हैं।

सवैया–ग्वालन बालन संग लिये, बिचरे सुरभीनके पीछे कन्हाई ।
चेतनको तो अचेत करें, औ अचेतन चेतन बेणु बजाई ॥
श्रीब्रजराज प्रमोदित ह्व, घन आतप वारन देत तहांई ।
छत्रसे छाय रहे नभमें कल, कुन्दसे बुन्दनकी झरि लाई ॥१७॥

फिर दूसरी सखी बोली–आली! हमसे तो यह वनकी भीलनी धन्य हैं, क्योंकि प्रियाके स्तनोंमें जो चर्चित केशर, कस्तूरी जब रतिके समय कृष्णचंद्रके चरणोंमें लग गयी है और वह चरण अरुणाई लिए जब मनमें विहार करते समय घासमें लगे हैं, उनको देख कामातुर भीलनी उस केशर और कस्तूरीको घासपरसे लेकर अपने मुख और स्तनोंपर लगा-लगाकर कामाग्निके तापको शान्त करती हैं, हे सखी! हमारे भाग्यमें तो इतना भी नहीं; जो किसी प्रकार अपनी कामाग्निको शान्त करें।

सवैया–कमला कुच कुंकुम मण्डित मंजुल, कंजसे कोमल पायनिसों ।
तुलसीबनमें सुरभीनके पीछे, चलैं हरि चौगुणी चायनिसों ॥
रघुराज लग्यो तृणसों अँगराग, पुलिंदी उठाय उड़ायनिसों ।
विरहागि बुझावें लगाय हिये,धनिते हम ऐसी लुगायनिसों ॥१८॥

–फिर चौथा बलवन्तसिंह बोला–फलाने परगनेमें पचास लाख आदमी है और नौलाख यहां हैं, सब एक करोड़१००००००० हुए। अब इनका खर्च विचारो कि सालभरमें कुछ खजानेमें बचता है या नहीं? एक बोला–पचास लाख तो फौजका खर्च होता है, दूसरा बोला–पच्चीस लाख महलमें खर्च है, तीसरा बोला–दश लाख इमारतमें उठता है, चौथा बोला–पन्द्रह लाख वस्त्र आभूषणमें खर्च होता है इस हिसाबसे खजानेमें कुछ नहीं बचता। यह बात राजाके दूत सुन रहे थे। राजकाजकी बात सुन राजाको परचा लिख दिया। राजाने मन्त्रीको बुलाकर खर्चका हिसाब पूछा तो सब उन्हींके कहनेके अनुसार ठीक निकला। राजाने उन चारों भङ्गेड़ियोंको बुलाकर पूछा कि हमारे घरकी बात तुमने कैसे जानी? हमको ऐसा मालूम पड़ता है कि तुम हमारे खजाञ्चीसे मिले हुए हो। भङ्गेड़ी बोले कि, न हम चोर न आपके भंडारीसे मिले हैं। हम तो भंगके नसेमें अपनी बातें कर रहे थे, आपसे विधि मिल गयी होगी। देखो चार कौड़ीकी भंगके नशेमें राजाके घरका बंदोवस्त बांध दिया।

एक गोपी और बोली कि हे अबलाओ ! हे सहेलियो!यह गोवर्द्धन पर्वत भगवान्‌के भक्तोंमें कोई परमभक्त जान पड़ता है, क्योंकि इसके ऊपर बलराम और घनश्यामके चरणारविन्द लगनेसे तृणादिक जो उपजते हैं वे तृणादिक नहीं हैं, किंतु मेरी समझमें ऐसा आता है कि उसके रोम खड़े हो रहे हैं,और अपने आनंदमें मग्न हैं कृष्ण बलरामको अपने ऊपर आता देख उनको शीतल जल, हरी घास, कन्द-मूल-फल भेंट करके उनका आदर-सत्कार करता है ।

सवैया–नँदनन्दनके अरविंद पदै, तिनही लहि मोद उरै भरतो ।
फल फूलनसों, झरना जलसों, सतकार सखानि जु है करतो ॥
धनि है धनि है धरणी धर जो, मुरली सुनि धीरज ना धरतो ।
हम हाय तहाँकि शिला न भईं, कबहूँ हरिको पग तो परतो ॥ १९ ॥

एक और सखी बोली कि, हे सखियो ! ग्वालबालोंको सङ्ग लेकर कृष्णचन्द्र बलराम जब वृन्दावनमें गायें चराते हैं और सब त्रिलोकीके मोहने वाली मुरलीको मधुर स्वरसे बजाते हैं,तब उस मनोहर बांसुरीका शब्द सुनकर सब जंगम स्थावरकी नाईं स्थिर हो जाते हैं,अर्थात् जहांके तहां खड़ेके खड़े रह जाते हैं, अपने आनंदमें मग्न हैं और वृक्षोंकी जंगमोंकीसी गति है, अर्थात् उनके रोमांच हो जाते हैं । हे सखी ! यह अद्भुत आश्चर्य है, न आज तक कहीं आँखोंसे देखा और न कानोंसे सुना, परन्तु इतनेपर भी बलराम और नंदलाल अपना ग्वालपन दर्शा रहे हैं, कैसे ? गायदोहनके समय गायोंकी बांधनेकी रस्सी शिरसे बांध रहे हैं और पांशी कन्धे पर धर रहे हैं, उस समयका कुंजविहारीलालकी शोभा वर्णन करनेकी किसका सामर्थ्य है ?

कवित्त–जबते गोपाल निज मुखते लगाय लीन्ही, तबहीते वंशी ऐसो शानको सँभारती । जड़ते प्रगट पुनि जाति जड़केरी नाते, चेतनको जड़सों बनावनो विचारती ॥ रघुराज जातिहीकी मित्रता विचारि सब, जड़नको चेतनके आनँद पसारती । भुवनते भिन्न नई रीतिको चलावति है, छिन छिन्न ब्रजमें उछिन्न किये डारती ॥ २० ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण!इस प्रकार वृन्दावनमें विहार करनेवाले वृन्दावनविहारीके चरित्रोंका गोपियां परस्पर वर्णन करती-करती कृष्णमय हो गयीं॥२१॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे वेणुगीतवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा–बाइसवें अध्यायमें वरणौं चीरचरित्र ।
गोपिनको वरदान दे, कीन्हों यज्ञ पवित्र ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! हेमन्तऋतुमें पहला जो अगहन है उसमें सोलह सहस्र गोप कुमारी कन्यायें मूंग भातका भोजन करके कात्यायनी देवीका व्रत करना आरंभ किया और व्रत करके सूर्योदयके समय यमुनाजलमें स्नान कर तटपर बैठ बालूकी कल्याणी देवीकी प्रतिमा बनाकर ॥ १ ॥ २ ॥ चन्दन, सुगन्ध, फूल, फल, धूप, द्वीप, नैवेद्य, अक्षत और अन्य सामग्रियोंसे देवीकी पूजा करती थीं ॥ ३ ॥

अथ मन्त्र

श्लोक-कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

सवैया-मज्जन कै यमुनाजलमें, कात्यायनि देविका ध्यान लगायो ।
बालूकी मूरति लीनी बनाय, यथाविधिसों असनान करायो ॥
फूल औ पानी मिठान औ चन्दन, अक्षत लै नैवेद्य चढ़ायो ।
जोरि सबै कर माँगैं यही, पति होय हमारो यशोदाको जायो ॥

हे कात्यायनी देवि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधीश्वरि ! देवि ! नन्दराय गोपके सुतको हमारा पति बना, हम वारंवार तुमको नमस्कार करती हैं ॥ ४ ॥ वह सब गोपकुमारिका इस मंत्रका जप करके पूजा किया करती थीं । इसी प्रकार उनको पूजन करते-करते एक महीना व्यतीत हो गया और श्रीमनमोहनमें उनका मन दिनरात लगा रहता था ॥ ५ ॥ और नित्यप्रति प्रातःकाल उठकर यही वर मांगती थीं कि हमको नन्दकुमार श्यामसुन्दर वर मिलें, इस प्रकार एक-एकका नाम ले पुकार-पुकार कर परस्पर हाथ पकड़-पकड़ कर ॥६॥ उच्चस्वरसे अपने प्राणप्यारे यशोदानन्दनका नाम लेतीं और गुणानुवाद गातीं यमुनाजीपर स्नान करनेको जाया करती थीं ॥७॥ पहलेकी नाईं एक दिन यमुनाके किनारे पर अपने-अपने वस्त्र उतारकर सबने धर दिये और श्रीकृष्णचन्द्रके गुणगान कर करके यमुनाजलमें विहार करने लगीं, तब योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके मनोरथ जानकर ॥८॥ अपनी मण्डलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनः कामना सिद्ध करनेके लिये यमुनाके किनारे पर पहुँचे और उन कन्याओंके वस्त्र लेकर झटपट कदंबपर चढ़ गये ॥९॥ और बालकों समेत आप ठट्ठे मार-मार कर हँसने लगे और अनेक प्रकारकी मसखरी बातें करने लगे कि अबलाओ ! हमारे समीप आवो और अपने वस्त्र ले जाओ ॥१०॥ इस समय मैं ठठोलीसे नहीं कहता सत्य कहता हूँ, तुम व्रत करनेसे बहुत दुर्बल हो गई हो, इस बातको मेरे सखा सब प्रकारसे जानते हैं॥११॥मुझे कुछ दुर्भाव और आग्रह नहीं है,तुम एक-एक मेरे सम्मुख आती जाओ और अपने-अपने वस्त्र लेती जाओ,चाहे सब मिलकर एकबार ले जाओ और जबतक तुम ऐसा नहीं करोगी, मुझे अपने बाबा नंदकी सौगन्ध है तुम्हारे वस्त्र कभी न दूँगा ॥१२॥ मनमोहन प्यारेकी मीठी-मीठी बातें सुनकर गोपियां प्रेममें मग्न हो गयीं और लज्जित हो परस्पर देख-देखकर हँसने लगीं कि विना वस्त्र नंगी किस प्रकार जलसे बाहर निकलें ? यह शोच-विचार कण्ठतक शीतलजलमें जाड़ेकी मारी खड़ी-खड़ी कांप रही थीं । जब बहुत देर हो गयी तब गोपियां बोलीं कि हे नाथ ! अब हमको अत्यन्त जाड़ा लगता है और हमारे प्राणान्त हुए जाते हैं, तुमको हमारी दीनतापर कुछ भी दया नहीं आती ॥१३॥

दोहा-तन मन धन अर्पों तुम्हैं, जो जो हमरे पास ।
अब अम्बर दे दीजिये, जान आपनी दास ॥
हम दासी बिन मोलकी, अहैं तुम्हारी श्याम ।
लाज जाय जामें प्रभू, करो न ऐसो काम ॥

सोरठा–तब हँसि कह्यो कन्हाय, जो तन मन मोको दियो।
लेहु वसन यहँ आय, जो मानो मेरो कह्यो ॥

मनमोहन प्यारेके मनोहर वचन सुनकर गोपी बोलीं कि हे मनहरण प्यारे ! ऐसी अनीति मत करो, तुम नंदरायके पुत्र व्रजमें प्रशंसा करने योग्य हो। तुमको हमारी इतनी दया नहीं आती कि ये जलमें खड़ी-खड़ी ठिठर रही हैं ? अब कृपा करके हमारे वस्त्र दे दीजिये। हे सर्वान्तर्यामी ! हम तरुण अबला नंगी आपके सामने कैसे चली आवें, क्या हमको नंगी देखकर तुमको लज्जा नहीं आयेगी ? हे प्यारे ! आज तुम किसके सिखाने बहकानेसे ये बातें करने लगे, हमको नंगी देखकर क्या तुम नन्दके पुत्रसे किसी औरके पुत्र हो जाओगे ? ॥१४॥

दोहा–व्रजभूषण दूषणहरण, सुनिये चतुर सुजान।
राखो धर्म अधर्मकी, हिरदयमें पहिचान ॥
छाँड़ि देहु यह टेक हरि, बरु भूषण तुम लेहु।
शीत मरत हम नीरमें, वसन हमारे देहु ॥

सोरठा–दूषण होत अपार, जो तिय अँग-देखै पुरुष।
ताते नन्दकुमार, नंगी नारि न देखियो ॥
लगत हमैं अति लाज, तुव सन्मुख आवत नगन।
मनमोहन व्रजराज, वस्त्र हमारे दीजिये ॥

हे श्यामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे वही करेंगी, परन्तु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो, जब लाज ही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा ! हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहतीं, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, वस्त्र हमारे दे दो, नहीं तो हम नन्दरायसे अथवा-राजा कंससे जाकर कहेंगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ गोपियोंकी रस भरी बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि जो तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्दमुसकानवालियो ! तुम यहां आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

दोहा–सिगरी मिल आवहु इतै, वसन लेन इकबार।
चाहे इक इक आवहू, जैसे होय विचार ॥

मनमोहन प्यारेकी हठीली बात सुनकर–

दोहा–कहत सखी सब परसपर, हरि हठ छांड़त नाहिं।
चीर बिना कैसे बने, कौन भांति घर जाहिं ॥

सोरठा–चलो लीजिये चीर, इनहींकी हठ राखिये।
मनमोहन बलबीर, जो कछु कहै सो कीजिये ॥

फिर सब मिलकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोलीं कि हे व्रज भूषण प्यारे !–

दोहा–जो कुछ तुम कहिहो लला, हम करिहैं सब सोय।
कृपा करहु पीड़ा हरहु, जामें हँसी न होय ॥

जब कछु उपाय न चल सका तब हारकर शरदीसे कांपती हुई सँकोच करती सम्पूर्ण गोपिकायें दोनों हाथोंसे अपने कुच और योनिको ढक जलसे बाहरको आयीं, तब श्यामसुन्दर बोले कि दोनों हाथ जोड़कर सूर्यनारायणको प्रणाम करो ॥ १७ ॥ क्योंकि

तुमने व्रतमें विना वस्त्र स्नान करके सूर्यनारायणको अञ्जलियोंसे जल दिया है, नंगी होकर सूर्यको जल देनेका बड़ा दोष है। मुरलीमनोहरके मनोहर वचन सुन गोपी बोली कि हे ब्रज-विहारी ! हम सूधी साध्वी ब्रजनारी गँवारी इन बातोंको क्या जाने ? अब हम तुम्हारे वशमें हैं जैसे कहोगे वैसे करेंगी। यह बात कहकर कुचोंपरका हाथ ऊपरको उठाकर सूर्यको प्रणाम करने लगीं, तब श्यामसुन्दरने कहा कि एक हाथसे प्रणाम करनेका बड़ा अपराध है, दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करो। गोपी बोलीं–हे नन्दलाल वनमाली ! हम भोली-भाली अबलाओंको जैसा चाहो वैसा नाच नचा लो।

दोहा–जो कहिहौ करिहैं सभी, हँसि बोलीं ब्रजबाल।
लेहैं पलटो हम कभी, सुनहु श्याम नँदलाल ॥

उनके शुद्धभावको देखकर श्रीकृष्णमहाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनको शुद्ध कन्या कुमारी देखकर उनके वस्त्र कन्धोंपर धर मंदमन्द मुसकानसे प्रीतिपूर्वक बोले ॥ १८ ॥ कि हे शशिवदनियो ! तुमने जो व्रत करके नंगी हो यमुनाजलमें स्नान किया यह वरुणदेवताका अपराध हुआ, उस पापको दूर करनेके लिये हाथ जोड़ माथेसे लगाकर पृथ्वीमें प्रणाम करके अपने-अपने वस्त्र पहन लो ॥ १९ ॥ ब्रजबालाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी ये बातें सुन वस्त्र त्यागके नग्न स्नान करनेका व्रत खण्ड करनेवाला मानकर उसके पूर्ण करनेके लिये व्रतके और सब कर्मोंके फलदायक श्रीकृष्णभगवान्‌को नमस्कार किया, क्योंकि वही सर्व पापोंके दूर करनेवाले हैं ॥२०॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अधीनता करनेवाली गोपियोंको देखकर उनके वस्त्र दे दिये ॥२१॥ उनके संग बहुत छल किया, लाज उनकी छुड़ायी, हँसी उनकी की, खिलौनेकी नाई उन्हें खिलाया, वस्त्र उनके चुरा लिये, तो भी उन गोपियोंने कृष्णको दोष नहीं दिया, क्योंकि उनको अपना प्राणनाथ समझकर उनके संग परमानंद मान रही थीं ॥ २२ ॥ अपने-अपने वस्त्र पहनकर प्यारेके संग ऐसी वशीभूत हो गयीं और उनके चित्त हर गये कि श्रीकृष्णकी ओर खड़ी-खड़ी देखती ही देखती विकल हो गयीं, अतः उन लोगोंका वहांसे चलनेतकका सामर्थ्य न रहा ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र सर्वातर्यामी भगवान् दामोदरने उन अबलाओंके व्रतका संकल्प जान लिया कि इन गोपिकाओंने मेरे चरणस्पर्शकी चाहनासे यह व्रत किया है ॥२४॥ तब श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे सुशीलाओ ! जिसलिये तुमने मेरा व्रत किया है उस मनोरथको लाजके कारण तुम नहीं कहती, परन्तु तो भी मैंने तुम्हारे मनोरथको जान लिया और मैंने तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन किया, इसलिये तुम्हारा मनोरथ सत्य होगा ॥२५॥ हे मनोरंजनी ! अपने-अपने घर जाओ, मुझमें मन लगानेवालोंकी कामना विषयभोगके लिये नहीं होती, जैसे भुना हुआ अन्न दूसरी बार उपजनेके योग्य नहीं रहता ॥ २६ ॥ हे पूर्णव्रत करनेवालियो ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। हे पतिव्रताओ ! जिस प्रयोजनके लिये तुमने यह व्रत किया और कात्यायनी देवीकी आराधना की वह मैंने जान लिया। अब जब शरदऋतुकी रात्रि आयेगी तब तुम सब मेरे संग बिहार करियेगा और तुम इस समय अपने-अपने घरको जाओ ॥ २७ ॥ इतनी कथा, कह श्रीशुकदेवजी बोले कि जिन गोपियोंकी मनःकामना पूर्ण हो गयी, वे गोपी भगवान्‌की आज्ञा मान और उनके चरणकमलका ध्यान करती हुई अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने-अपने घरोंको चली गयीं और उसी दिनसे आठों पहर यही मनाती थीं कि वनमालीके सङ्ग परम-सुख देनेवाली शरदऋतु कब आयेगी ॥२८॥ तब देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंको

सङ्ग ले गायें चराते बलदेवजी सहित वृन्दावनसे भी और आगे बढ़ गये ॥ २९ ॥ बड़ी तीक्ष्ण ग्रीष्मकी धूपमें अपनी छायासे छाया करनेवाले सघन वृक्षोंको देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्रोंसे कहा कि ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीमन् ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! ॥३१॥ इन बड़भागी वृक्षोंको देखो तो, यह कैसे भाग्यशाली हैं और सदा परोपकारके लिये एकांतमें वास करते हैं। पवन, वर्षा, शीत, घाम, आप सहते हैं और हमको इनसे बचाते हैं॥३२॥अहो ! इन वृक्षोंका जन्म धन्य है, जिनसे हम सब लोग सुख पाते हैं और इनसे प्राणियोंकी जीविका है, जैसे किसी मनुष्यके पाससे याचक विमुख नहीं जाता ऐसे ही इन वृक्षोंके समीप आकर प्राणी नहीं जाता ॥ ३३ ॥ इस संसारमें ये पत्र, फल, फूल, छाया, जड़, वल्कल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, भस्म, कोयला, कोंपल आदिसे, सब प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं ॥३४॥ इस संसारमें उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है जो कि प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे परायेका भला करते हैं ॥ ३५ ॥ इस प्रकार हरे-हरे पात, गुच्छे, फल, फूल, कोंपलोंके समूहोंसे जिनकी शाखा झुक रही हैं, उन वृक्षोंके बीचमें होकर श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाकी ओरको गये ॥३६॥ हे राजन् ! उस यमुनाके तीर ग्वालबालोंने निर्मल जल मङ्गलरूप गायोंको पिलाया और आप भी पिया ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! उस यमुना महारानीके किनारेपर गायोंको चराते-चराते जब ग्वालबालोंको क्षुधा लगी तब घनश्याम बलरामजीके पास आकर यह बात कहने लगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कात्यायनीव्रतनिरूपण नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा—तेइसवें अध्यायमें, मांगो हरि यश जन्य ।
विप्रनने दीनों नहीं, दियो नारि ते धन्य ॥

हे राम ! हे राम ! हे महापराक्रमी ! हे कृष्ण ! हे दुष्टोंके संहार करनेवाले ! अब भूख हमको बहुत सताती है, आप इसके शांत करनेका उपाय करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गोपोंने जब श्रीकृष्णसे इस प्रकारकी प्रार्थना की तब देवकीनन्दन भगवान्ने अपनी भक्तिमती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके ऊपर प्रसन्न होकर यह कहा ॥ २ ॥ हे सखाओ ! वेदके पढ़नेवाले मथुरावासी ब्राह्मण स्वर्गकी इच्छा करके आंगिरस नाम यज्ञ कर रहे हैं, देवताओंका पूजन जहां हो रहा है, वहां जाओ ॥ ३ ॥ हे गोपो ! यहां उस यज्ञमें जाकर भोजन मांग लाओ और यदि तुमको भोजन मांगते लज्जा लगती हो तो तुम मेरा और मेरे भाई बलरामका नाम लेना कि उनके भेजे हुए हम तुम्हारे पास भोजन मांगने आये हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्की आज्ञा मानकर वे ग्वालबाल वहां जाकर भोजन मांगने लगे और ब्राह्मणोंको हाथ जोड़ पृथ्वीमें पड़कर दण्डवत् कर—

सोरठा—गोपन कियो प्रणाम, विप्रनको कर जोरकर ।
हमें पठायो श्याम, मांगत हैं भोजन कछुक ॥
अहो विप्र महाराज, भोजन हमको दीजिये ।
मांगत हैं ब्रजराज, भूख लगी उनको अधिक ॥

हे ब्राह्मणो ! हमारी बात सुनो, श्रीकृष्णमहाराजकी कृपासे सदा आपके यहां ऐसा ही मङ्गल होता रहे हम श्रीकृष्णके आज्ञाकारी हैं और जातिके गोप (अहीर) हैं, श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार बलदेवजीके भेजे हुए हम आपके पास आये हैं, आप उनको जानते ही होंगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई गायें चरानेको आपके निकट ही आये हैं और इस समय उनको भोजनकी इच्छा है और अधिक भूखे हैं, इसलिये आपसे भोजनकी चाहना करते हैं। हे ब्राह्मणो ! हे धर्मके जाननेवालोंमें उत्तम ! यदि आपकी श्रद्धा हो तो मांगनेवाले कृष्ण बलरामको भोजन दे दीजिये ॥७॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो ! तुम चुप क्यों हो रहे ? जो तुम कहो कि हम यज्ञ करनेवाले दीक्षित हैं, उनको हमारा भोजन करना नहीं चाहिये तो वहां यह विचार है कि दीक्षाके आरम्भसे लेकर पशुके हिंसनसे पहले सौत्रामण्य यज्ञसे और ठौर दीक्षावालेके अन्नखानेसे कुछ दोष नहीं लगता, सो पशुका हिंसन तुम्हारे यहां हो चुका है, सौत्रामण्य यज्ञ आपके है ही नहीं, वह आपके अन्न-भोजनमें हमको किसी प्रकारका दोष नहीं है ॥८॥ इस प्रकार गोपोंने उनको शास्त्रानुसार समझाया भी, परन्तु तो भी वे ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी बातको सुनी अनसुनी कर गये, क्योंकि वे ब्राह्मण तो क्षुद्रफलवाले स्वर्गके जानेकी इच्छा कर रहे थे। वह क्लेशकारी कर्ममें अपनी मूर्खतासे लग रहे थे और अपने आपको बड़ा ज्ञानी और महात्मा जानते थे ॥ ९ ॥ देश, काल, अलग-अलग चरु पुरोडाशादिक सामग्री, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यमराज, यज्ञ धर्मफल ये सब कृष्णमय हैं ॥ १० ॥ इंद्रियोंसे परे साक्षात् परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रको उन कुत्सित बुद्धिवाले मूर्खदेहाभिमानी देहको ही आत्मा माननेवाले ब्राह्मणोंने अज्ञानवश हो उनको कुछ भी नहीं पहचाना अतः मनुष्य ही जानकर अवज्ञा की ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परंतप ! उन ब्राह्मणोंने चुप साध ली, न तो अपने मुखसे हां की और न ना की तब गोप निराश होकर लौट आये और श्रीकृष्ण बलरामके पास आकर कहा कि भले ब्राह्मणोंके पास भेजा उन्होंने कुछ भी नहीं दिया देखो हमारा अपमान भी हुआ और भोजन भी नहीं मिला, अब क्या उपाय करें ? भूखके मारे तो प्राण निकले जाते हैं ॥ १२ ॥ जगदीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् इस बातको सुनकर हँसे और फिर गोपोंसे कहा कि कार्यवालेको निराश होना नहीं चाहिये और मांगनेवालेको मान कहां ? क्योंकि उनका मान तो सदैव ही भंग रहता है।

दोहा—मान बड़ाई प्रेमरस, गुरुआई अरु नेह।
ये पांचों तबही गये, जबहिं कह्यो कछु देहु ॥

लौकिकरीति दिखलानेके लिये फिर श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंसे कहा कि ॥ १३ ॥ अब तुम फिर जाओ और उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे कहो कि कृष्ण बलदेव दोनों भाई गायें चराते-चराते यहां आ गये हैं और भूखे हैं, तुमको मुँहमांगा भोजन देकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी; क्योंकि वह शरीरसे तो घरमें बास करती हैं, परंतु उनका मन मुझमें ही लगा रहता है, इसीसे मुझमें उनका बड़ा प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वालबाल फिर गये, देखा तो पत्नीशालामें सब ब्राह्मणी शृंगार किये बैठी थीं, उनके पास जाकर गोपोंने नमस्कार कर अधीनतासे यह वचन कहा ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणकी भार्याओ ! तुमको नमस्कार है, तुम हमारी एक बात सुनो ! श्रीकृष्णचन्द्र आपके समीप ही आ गये हैं, उन्होंने हमको

तुम्हारे पास भेजा है ॥१६॥ ग्वालबाल और बलदेवको संग लेकर गायें चराते-चराते इतनी दूर चले आये हैं और इस समय वे भूखे हैं और उनके मित्र हम भी भूखे हैं, वे कुछ भोजन चाहते हैं तुम कृपा करके हमको दो ॥१७॥ नित्य श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी चाहने वाली और कृष्णचन्द्रकी कथामें तन, मन, धन लगानेवाली वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ व्रजभूषणका आना सुनकर अत्यन्त हर्षवती हुई, क्योंकि उनका मन तो पहले ही श्रीकृष्ण-चन्द्रके चरणारविन्दमें लग रहा था ॥ १८ ॥ बड़े थालोंमें सुन्दर सुगंधयुक्त चार प्रकारका भोजन भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य (चने, चबैना, रोटी, पूरी यह भक्ष्य), (दाल, भात, इत्यादि भोज्य),(कडी,क्षीर इत्यादि लेह्य),(ऊख,आम,नींबू इत्यादि चोष्य) ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ अपने मनमोहन प्यारेके लिये भोजन ले-लेकर ऐसे धायीं जैसे नदियाँ समुद्रमें जाती हैं ॥१९॥ उनके पति, भाई, बन्धु, पुत्रोंने बहुतेरा रोका परन्तु वे न रुकीं, क्योंकि उनके मन तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दमें बरसोंसे लग रहे थे और दिनरात यही मनाती थीं कि देखिये विधाता वह दिन कौनसा करेगा, जो कृष्ण प्यारेका दर्शन होगा ? वह दैवयोगसे वही समागम बन गया, जब चलते-चलते कुछ दूर पहुँची तो कृष्णसखाओंसे पूछने लगीं कि अब मोहन प्यारे कितनी दूरपर हैं ? शीघ्र चलो, क्योंकि मनमोहन प्यारे भूखे होंगे, उनकी प्रेम प्रीति सनी मधुरवाणी सुन गोप बोले कि हे देवि ! हमारे प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे और थोड़ीसी दूर हैं । इस प्रकार वार्तालाप करती हुई वृन्दावनविहारीके दर्शन की अभिलाषाके आनँदमें मतवाली ब्राह्मणी चली जाती थीं, देखा तो–

दोहा–कालिन्दीके कूलपर, नवअशोकके कुञ्ज ।
बहत त्रिविध मारुत सुखद, गुंजत भृङ्गनि पुञ्ज ॥

उसी अशोकवृक्षके नवपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके निकट उपवनमें ग्वालबालोंको संग लिये भाई बलराम समेत मनमोहन प्यारेको फिरते देखा ॥ २० ॥ श्यामरूप, पीतवसन धारण किये, वनमाला पहने, मोरपुच्छका मुकुट शीशपर धरे, खरियागेरूके छाप लगाये, धातु मूँगा पहने, नटवर वेष बनाये, सखाके कण्ठमें भुजा डाले, दूसरे हाथमें कमलके फूलको घुमाते कानोंमें कमलके फूल लटकाये, कपोलोंपर अलकें छिटकाये, मन्द-मन्द मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥२१॥ हे राजन् ! जैसे-जैसे गुण कृष्ण प्यारेके अपने कानोंसे सुनकर देखनेकी अत्यन्त अभिलाषा थी वैसे ही प्रत्यक्ष जाकर अपने नेत्रोंसे देखे और अपने आपको परमबड़भागिनी समझकर उस ब्रजराजके अनूप स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें ले जाकर बहुत देरतक आलिंगन किया और मनमोहन प्यारेको वहीं रहनेका स्थान दे सर्वत्र तापको त्याग दिया । जैसे अहंकार वृत्तियां सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षी हैं,उनको आलिंगन करके और उनमें ही लीन होकर सब तापको त्याग देती हैं ॥२२॥ पुत्रादि गृहादिककी सब आशा छोड़ कर मेरा दर्शन करनेके लिये आयी हैं, उन ब्रह्मपत्नियोंको देखकर सबकी बुद्धिकी परीक्षा करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र मुसकुराकर बोले ॥२३॥ कि हे बड़भागिनियो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो यहां आयीं । आओ, हमारे समीप बैठो, इस समय हम तुम्हारी क्या शुश्रूषा करें ? हमारे लिये क्या आज्ञा है ? हमारा दर्शन करनेके लिये आयी हो, तुमको योग्य है, तुम हमको भूखा समझकर इस महानिर्जन वनमें भोजन लेकर आयीं, इससे अधिक और कुछ दया है ? इसके बदले हम तुम्हें क्या दें ? जो इस समय हमारा घर निकट

होता तो कुछ पान-फूल तुम्हारे आगे धरते, वह हमारा वृन्दावन भी यहांसे बहुत दूर है, हमसे आपकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी, इस बातका बड़ा पछतावा है और हमारा मुख नहीं जो आपके प्रेमकी और परिश्रमकी प्रशंसा कर सके, इस समय हम सब प्रकारसे लाचार हैं ॥ २४ ॥ अपने स्वार्थके देखनेवाले ज्ञानी पुरुष आत्मारूप प्रिय जो मैं हूँ, वह मुझमें फलकी अनिच्छा करके निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥२५॥ आत्मा सबसे अधिक प्रिय है। विचार लो प्राण, बुद्धि, मन, तनु, स्त्री, पुत्र आदिक सब वस्तु जिस आत्माके सम्बन्धसे प्रिय लगते हैं फिर भला उस आत्मासे बढ़कर और कौनसी वस्तु प्रिय है ? ॥२६॥

चौ०—ता आतमके आतम हम हैं ❋ सो को और जु प्रिय मोसम हैं ॥२७॥

इसलिये हे सुशीलाओ ! अब तुम अपनी यज्ञशालामें जाओ तुम कृतार्थ हो गयीं, पति तुम्हारे गृहस्थ हैं, जबतक तुम न जाओगी, तबतक यज्ञ पूर्ण न होगा, क्योंकि विना स्त्रीके यज्ञ पूरा नहीं होता इसलिये वे लोग यज्ञको तुम्हारे साथ ही पूरा करेंगे ॥ २८ ॥

सोरठा—तब बोलीं कर जोरि, द्विजनारी हरिछबि छकी ।
बहुविधि रहीं निहोरि, बैन विनयरसमें सने ॥

हे नाथ ! आपको अपने कोमल मुखारविन्दसे ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये, क्योंकि आपने ही गीतामें कहा है, " न मे भक्तः प्रणश्यति " अर्थात् मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता " न स पुनरावर्तते " अर्थात् मुझमें प्राप्त होकर फिर लौट नहीं आता, यह आपकी ही आज्ञा है, फिर आप प्रतिज्ञाको सत्य क्यों नहीं करते ? इधर-उधर क्या देख रहे हो ? तुमने अपने चरणसे जो तुलसीकी माला ठुकरा दी है उसको बड़े आदर-सत्कारसे शिरपर चढ़ानेके लिये अर्थात् आपके चरणारविन्दकी सेवा करनेके लिये आपकी शरण आयी हैं अब सब बन्धुजनोंको त्यागकर आपके चरण शरण हैं ॥ २९ ॥ हे नाथ ! अब हम घर जाकर क्या करें ? हे काम, क्रोध, लोभ, मोह भयादिक शत्रुओंके दण्ड देनेवाले ! हम अपने घर कैसे जा सकती हैं ? क्योंकि—

कबित्त—पति पितु तात मात भ्रात मित्र बंधु जेते, राखैंगे न भौन यह दोषको लगायकै। ऐनहीकी ऐसी दशा बाहरकी कौन कहै, सूझत न और ठौर आपको विहायकै ॥ पद अरविन्द मकरंदकी पियासी दासी, काहे दुख देहु निठुराई दरसायकै ॥ मनकी हरणहारी मूरत तुम्हारी त्याग, कौन दईमारे के समीप बसें जायकै ॥

हे दीनदयालु ! हम यही चाहती हैं कि आपके ही चरणारविन्दमें हमारे देह पड़े रहें, स्वर्गादिकका सुखभोग हम नहीं चाहतीं, हमको तो अपना दासभाव ही अच्छा है ॥ ३० ॥ द्विजपत्नियोंकी प्रेम-प्रीतिभरी मधुर वाणी सुनकर मनहरण प्यारे स्नेहयुक्त मनोहर वचन बोले कि, तुम निःसन्देह अपने घर जाओ। तुम्हारे पति, पिता, तात, माता, भ्राता, पुत्र तुम्हारी कुछ निन्दा न करेंगे और संसारमें भी कोई मनुष्य तुमको दोष न लगायेगा देवताओंको साक्षात् दिखलाकर कहा कि सब देवता और मनुष्योंको मेरा कहना स्वीकार है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें शरीरके स्पर्श होनेसे प्रीति नहीं रहती और अनुराग भी नहीं बढ़ता

इसलिये तुम घरमें रहकर मुझमें मन लगाओ तो बहुत शीघ्र मुझको पाओगी ॥३२॥ मेरा स्मरण, दर्शन, ध्यान, कीर्तन करनेसे जैसा भाव मुझमें होता है वैसा समीप रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुमको उचित है कि शीघ्र अपने मखभवनको जाओ ॥३३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इस प्रकार जब श्रीकृष्णने द्विजपत्नियोंको समझाया।

दोहा—ऐसे सुनि हरिके वचन, द्विजनारी सुख मान।
गवन कियो मखभवनको, हरियश विमल बखान॥

वे द्विजांगना यज्ञशालामें पहुँचीं और ब्राह्मणोंने कुछ अपराध उनको न लगाया, निर्दोष समझकर अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दपूर्वक यज्ञ समाप्त किया ॥ ३४ ॥ जिस समय सब स्त्रियाँ श्रीकृष्णके पास भोजन लेकर चलीं उस समय एक स्त्रीके पतिने अपनी स्त्रीको आनेसे रोक लिया था उसने जैसा श्रीकृष्णका रूप, रंग, स्वभाव कानोंसे सुन रखा था उसी रूपका ध्यान कर हृदयमें आलिंगन करके कर्मोंके अधीन जो देह था उसको त्यागकर चैतन्य-स्वरूप भगवद्रूपमें लय हो गयी ॥३५॥ और जो-जो पक्वान्न मिठाई द्विजपत्नियाँ लायी थीं उन चार प्रकारके व्यञ्जनोंको यमुनाके निकट कुञ्जोंकी छायामें बैठ, अतिप्रसन्न हो श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी अपने हाथसे भोजन कराते थे और सब सखा उस भोजनकी प्रशंसा कर करके प्रेमसे भोग लगा रहे थे। जब सखा भोजन कर चुके तो पीछे अपने आप भी भोजन करके ब्राह्मणियोंकी बड़ी सराहना की ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जब ब्राह्मणी यज्ञकर्मसे निश्चिन्त हुई तो कोठरीमें जाकर देखा तो एक स्त्रीकी लोथ पड़ी है। जिस ब्राह्मणकी स्त्री थी उससे पूछा कि तेरी स्त्री कब मर गयी? अभी थोड़ी ही देर हुई हमने इसको श्रीकृष्णके पास बैठे देखा था, द्विजनारियोंका यह वचन सुन वह ब्राह्मण बोला कि मुझ मन्दभागीकी तुम क्यों हँसी करती हो? जो मैं भी अपनी प्राणप्यारीको तुम्हारे साथ चले जाने देता तो क्यों अपने प्राण खोती? यह कह वह ब्राह्मण रोने लगा। ब्राह्मणी बोली—अरे मूर्ख? तू हँसी समझता है? हम सत्य कहती हैं, हम अभी तेरी स्त्रीको श्रीकृष्णके पास बैठी छोड़कर आयी हैं। यह सुन वह श्रीकृष्णके पास भागा गया और उसने अपनी आँखोंसे अपनी स्त्रीको श्यामसुन्दरके सम्मुख बैठी देखा तब तो ब्राह्मण आदिपुरुष अविनाशी समझकर श्रीकृष्णभगवान्‌के चरणोंमें झुककर गिर पड़ा और रो-रोकर कहने लगा कि हे सर्वान्तर्यामी! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। तब वृन्दावनविहारी बोले कि, तेरी स्त्रीकी भक्तिके प्रभावसे तेरा भी मोक्ष हो गया। तू भी मेरे लोकको चला जा। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष चतुर्भुजरूप धरकर परमधामको चले गये। इन स्त्री पुरुषोंको वैकुण्ठ जानेकी संसारमें चर्चा फैली तब जिन ब्राह्मणोंने गोपोंको भोजन नहीं दिया था, वे श्रीकृष्णचन्द्रको साक्षात् भगवान् परब्रह्म परमेश्वर जानकर बहुत पछताये कि देखो! हमसे बड़ा अपराध हुआ जो यज्ञकर्ता भगवान्‌ने हमसे भोजन मांगने भेजा और हम मूर्खोंने न जाना, हम तो यही समझते रहे कि श्रीकृष्ण बलदेव मनुष्य हैं और हमने कथा पुराणोंमें सुन भी रखा था कि नन्द यशोदाने पूर्व जन्ममें पुत्रके लिये बड़ा तप किया था तब भगवान्‌ने उनको यह वर दिया था कि तुम गोपकुलमें जन्म लो। मैं तुम्हारे यहां आकर पुत्रका सुख दूँगा। उसी आदि पुरुष अविनाशीने आकर नन्दरायके घरमें पुत्रभाव दरशाया है और हमने यह भी सुना है कि पूतना अघासुर आदि राक्षसोंको मारा परन्तु तो भी हम मूर्खोंने इस बातका कुछ ध्यान न किया

॥ ३८ ॥ उन अपनी पत्नियोंकी श्रीकृष्ण भगवान्में अलौकिक प्रीति देखकर और अपने आपको भक्तहीन समझकर अत्यन्त दुःखी हो वारंवार अपने आपको धिक्कार दे-देकर अपनी निन्दा करते थे ॥३९॥ शुद्ध माता-पितासे, सावित्री यज्ञोपवीत हुए से, यज्ञकी दीक्षा लिएसे यह तीन प्रकारका हमारा जन्म है, इसको, हमारी विद्याको, हमारे कर्मको और हमारी चतुराईको वारंवार धिक्कार है, हमारे व्रत करनेको धिक्कार है, हमारे अनेक शास्त्रके पढ़नेको धिक्कार है, हमारे कुलको धिक्कार है, क्योंकि हम जगदीश्वर भगवान्से विमुख हुए। धिक्कार है धिक्कार है, इस हमारी अधम बुद्धिको ॥ ४० ॥ निश्चय है कि भगवान् वासुदेवकी माया योगियोंको मोह उपजानेवाली है, इस मायासे मनुष्योंके गुरु-ब्राह्मण जो हम हैं, स्वार्थमें मोहित हो रहे हैं, हाय !

चौ०–हम लोगनके गुरू कहावैं * सबको बहु उपदेश सुनावैं ॥
मानै सब जग वचन हमारा * हमको सबने सिद्ध विचारा ॥
डूब गई अब सब सिद्धाई * जो न लखे त्रिभुवनपति राई ॥४१॥

अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, देखो, जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रियोंकी कैसी अलौकिक भक्ति है; देखो ! जिस भक्तिके गृहरूप मृत्युकी फांसियोंको काट दिया ॥४२॥ विचार तो करो यह स्त्री जाति कैसी अशुद्ध है, न तो इनके उपवीतसंस्कार है, न गुरुके समीप वास है, न तप है, न जप, है, न आत्माका विचार है, न पवित्रता है, न सुकर्म है ॥४३॥ तो भी योगेश्वरोंके ईश्वर पर पुरुष श्रीकृष्ण भगवान्में जैसी इन अबलाओंकी अचल भक्ति है ऐसी हम स्नान, सन्ध्या, जप, तप करनेवालोंकी भी नहीं तो धिक्कार है हमारे इस संस्कार और यज्ञव्यवहारको ॥४४॥ हम लोग कुछ भी अपने अर्थको नहीं पहचानते, घरके व्यवहारमें भूल रहे हैं और ऐसे अचेत हैं कि आगे-पीछेकी कुछ भी सुधि नहीं। महात्माओंके आनंददेनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्ने गोपोंके वचनोंसे हमें सचेत किया, हाय ! तो भी हम मूर्ख न चेते, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं, यह सब हमारे कर्मोंका फल है ॥ ४५ ॥ पूर्ण जिनका मनोरथ, मोक्षादिक सब मनोरथोंके अधीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उनको हमसे मायाके वशीभूत पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल भातका मांगना तो ईश्वरका कौतुक था ॥ ४६ ॥ देखो ! त्रिभुनेश्वरी लक्ष्मी, ब्रह्मादिक देवता और सब संस्कारोंको छोड़कर चरणारविंदके स्पर्शकी चाहना करके अपना चञ्चलपना और दोष दूर करनेके लिए जिनका दिन-रात भजन करते हैं। उन श्रीकृष्णका मांगना केवल हम लोगोंको मोहका उत्पन्न करनेवाला है॥४७॥ देश-काल अलग-अलग चरु पुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान यज्ञ, धर्म, यह सब श्रीकृष्णका रूप है ॥४८॥ साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके ईश्वरने यदुकुलमें आकर जन्म लिया है, यह बात हमने पंडित लोगोंके मुखसे सुनी थी, परंतु तो भी हम जान-बूझकर मूर्ख अज्ञानी हो गये ॥ ४९ ॥ कोई-कोई ब्राह्मण कहने लगे कि अहो ! हम बड़े धन्य हैं, क्योंकि हमारी ऐसी भक्तिमती स्त्री हुई कि जिनकी भक्तिके प्रभावसे श्रीकृष्ण भगवान्में हमारी भी दृढ़ भक्ति हुई ॥५०॥ अकुण्ठबुद्धि जो आप श्रीकृष्ण भगवान् हैं, आपके लिए वारंवार नमस्कार है, जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्ममार्गमें भटकते फिरते हैं ॥५१॥ संसारकी मायासे हमारा चित्त मोहित हो रहा है और आपकी महिमाको नहीं जानते, ऐसे जो हम अज्ञानी लोग हैं, हे दीनदयालु ! हमारा अपराध

क्षमा कीजिये ॥ ९२ ॥ हे श्रीकृष्णचन्द्र भगवन् ! हम जो आपके अपराधी ब्राह्मण हैं, अपने अपराधको स्मरण करके हमारी कृष्ण बलदेवके दर्शनकी इच्छा हुई, परंतु कंसके भय से नहीं जा सके ॥ ९३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा—चौबिसवें अध्यायमें, इन्द्र यज्ञको त्याग ।
गोवर्द्धन पूजन कियो, सबन सहित अनुराग ॥
यहि विधि आनँद देत हरि, व्रजमें करत विलास ।
बीत गयो कछु काल पुनि, लागो कार्तिक मास ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे पृथ्वीनाथ ! यशोदा नंदादिक सब गोपोंको बुलाकर कहने लगी कि तुम सब दिवालीकी धूमधाममें लग रहे हो और कलको इन्द्रकी पूजाका दिन है, उसका किसीको ध्यान भी नहीं ? जिसकी कृपासे हमारे घर किसी बातकी कमी नहीं, उसीकी कृपासे दूध और दहीकी नदी बह रही है और मथनियोंका शब्द मेघके समान गर्जता रहता है। उसीकी कृपासे दो पुत्र पाये हैं, उसीने हमारे सैकड़ों विघ्न मिटाये हैं, उसीकी कृपासे सम्पूर्ण ब्रजमें बड़ाई हो रही है और वह सुरपति ही हमारा कुलपूज्य और गोप-गायोंकी रक्षा करने-वाला है, बड़े आश्चर्यकी बात है जो उसीको भूल गये ।

दोहा—भली दिवाई मोहिं सुधि, कहत महरिसों नंद ।
भूल गये हम देवको, काज मोह वश मन्द ॥

हे प्रिये ! मुझसे जो यह अपराध हुआ वह अनजाने हुआ, परंतु यह बात अच्छी है अभी वह दिन नहीं आया, तुम कुछ सन्देह मत करो, मैं सुरपतिको प्रसन्न कर लूंगा, हे राजन् ! सब काम छोड़ नंदजी ।

सोरठा—हाथ जोरि शिर नाय, विनय करत सुरराजसों ।
तुमको गयो भुलाय, क्षमा कीजिये मोहि प्रभु ॥

इस प्रकार इंद्रकी विनय कर बड़े-बड़े गोपोंको बुलाकर कहा कि इंद्रके यज्ञके दिन समीप आ गये और मैं मोह-ममताके वशमें ऐसा लीन हुआ कि किसी बातकी सुधि-बुधि न रही परंतु आप भी मुझसे ही हो गये जो कुछ भी ध्यान न रहा, अब शीघ्र सब मिलकर इंद्रपूजाका प्रबंध करो । नन्दजीके वचन सुन सब गोप अपने-अपने घर पकवान मिठाई बनाने लगे और इधर यशोदा भी अपने घर पूरी, कचौड़ी, लुचई, मोहनभोग, अमृती, पेड़े, पूए, पपड़ी, पायस, लपसी, मोदक, वैकुण्ठी, मालपुए, कतरी, गूँझा आदिक अनेक प्रकारके षट्रस व्यञ्जन बनाने लगी और छिपा-छिपाकर रखने लगी ।

दोहा—सैंत सैंत अति नेमिसों, धरत अछूते जात ।
श्याम कहूँ परसै नहीं, यह मनमाहि डरात ॥

सोरठा—शंक करत मन माहिं, सुरपति पूजा जानि जिय ।
यशुमति जानति नाहिं, सब देवनके देव हरि ॥

खेलते-खेलते कहीं बाहरसे श्रीकृष्ण और बलरामजी भी वहां आ गये, देखा तो सब गोप-ग्वाल अपने-अपने घर पकवान मिठाई इत्यादि भांति-भांतिकी सामग्री इकट्ठी कर रहे हैं ॥ १ ॥ सब प्राणियोंके आत्मा भगवान् सर्वव्यापक सब बातोंके जाननेवाले, जानते भी थे इन्द्रके यज्ञका प्रबंध हो रहा है, तो भी नन्दरानीसे पूछने लगे कि माताजी ! आज क्या है ? जो घर-घर पकवान मिठाई बन रही है और तुम भी बड़ी धूमधाममें हो ? मुझे समझाकर कहो कि यह क्या भेद है? जिससे मेरे मनका संशय मिटे। यशोदा बोली कि पुत्र! इस समय मुझको अवकाश नहीं, यह सब वृत्तान्त तुम अपने पितासे जाकर पूछो, वह तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे। यह सुन नन्दजीके पास जाकर श्रीकृष्ण बोले ॥ २ ॥ कि पिता ! आज क्या है जो सब व्रजमें कड़ाही खटक रही है और अनेक-अनेक प्रकारसे व्यञ्जन बन रहे हैं, सब ठौर-ठौर कोलाहल मच रहा है और ग्वाल बाल चारों ओर भागे-भागे फिरते हैं, क्या उत्सव है ? किस देवताके नामका यज्ञ है ? क्या इसका फल है ? कौनसे देवताका पूजन है ? क्या-क्या उसमें गुण हैं? कौन इसका अधिकारी है ? किस-किस वस्तुसे यज्ञ होता है॥३॥ हे पिता ! मुझे इस बातके सुननेकी बड़ी अभिलाषा हैं, सज्जन पुरुष सब प्राणियोंमें और स्थानोंमें आत्माको देखते हैं, उनसे कोई कर्म छिपा नहीं है और छिपानेके योग्य भी नहीं है॥४॥साधु पुरुष अपना बिराना कुछ नहीं समझते, उनकी समदृष्टि है, मित्र, उदासीन वा वैरी भी उनका कोई नहीं होता, उदासीन तो शत्रुके सदृश वर्जित है,सुहृद आत्माके समान मानना चाहिये, इससे उसको अवश्य सम्मतिमें साथ कर ले॥५॥यह प्राणी जानकर भी कर्म करता है और विना जाने भी कर्म करता है, परन्तु जानकर जो करता है उसका फल तत्काल मिलता है और जो विना जाने कर्म करता है उसका कार्य किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता ॥ ६ ॥ आपने जो यह यज्ञका अनुष्ठान कर रक्खा है वह शास्त्रकी रीतिसे किया है अथवा लोकरीतिसे किया है और यह रीति आपके यहां परम्परासे चली आयी है या आज किसीने नयी-नयी बतायी है। यह आपसे मेरा निवेदन है कि आप कृपाकर मुझसे कहो ? ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके गम्भीर वचन सुनकर नन्दरायजी बोले कि बेटा ! क्या यह वृत्तान्त तुमने आजतक नहीं सुना ? मेघरूप भगवान् इन्द्र हैं और मेघ ही उनकी प्यारी मूर्ति है, वही प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करनेवाला है और सन्तोष देनेवाले जलकी वर्षा करता है ॥८॥ मेघोंका राजा भगवान् इंद्र है उसको हम भी और संसारके दूसरे पुरुष भी उसी मेघपतिके बरसाये जलसे उत्पन्न हुआ जो अन्न है उसीसे ये यजन करते हैं, उसके करनेसे देवता, पितृ प्रसन्न होते हैं, अनेक प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धि उत्पन्न होती हैं, वन फूलते हैं तृण-घास उत्पन्न होता है, उसीसे पशु, पक्षी, जीव, जन्तु आनंद पाते हैं और उस यजन करनेके उपरांत जो शेषान्न रह जाता है उसीकी प्राप्तिके लिये अपनी जीविका करके धर्म करते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका सेवन करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

दोहा—अन्नशेष ले पुनि सबै, कुलयुत करें अहार।
अर्थ धर्म अरु कामहू, ताते होत अपार ॥

हे पुत्र ! यह इंद्रयज्ञकी रीति हमारे यहां परम्परासे चली आयी है, कुछ आज ही किसी पंडितने नयी नहीं बतायी जो धर्म परम्परासे चला आया है और जो मनुष्य काम, लोभ, भय, द्रोहसे उसको छोड़ देते हैं, उन पुरुषोंका कभी कल्याण नहीं होता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! नन्दराय और वृद्ध-वृद्ध ब्रजवासियोंके ऐसे वचन सुनकर

इंद्रके ऊपर अत्यन्त क्रोध करके उसका मान घटानेके लिये श्रीकृष्णभगवान्‌ने अपने पिता नन्दादिकसे कहा ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पिताजी ! कर्मसे ही प्राणी जन्म लेता है और कर्मसे ही देहका त्याग करता है। सुख, दुःख, भय, कल्याण, कुशल ये सब कर्मके ही अधीन हैं ॥ १३ ॥

दोहा—भीति क्षेम सुख दुख सकल, होत कर्मते तात ।
विना कर्मते होत नहीं, कबहुँ नई कोइ बात ॥
कर्महि ईश्वर कर्म गुरु, कर्महि जगत प्रधान ।
ताते पूजहु कर्मको, अहै ईश नहिं आन ॥

कोई-कोई मतवाले ऐसा कहते हैं कि, ईश्वर प्राणियोंके लिये हुए कर्मोंके फलका देनेवाला है, इससे तो यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर कर्मोंके वशीभूत है, जैसा कर्म जिसने किया वैसा ही फल मिला; ईश्वर अपनी ओरसे कुछ नहीं कर सकता, इस बातसे यह निश्चय हुआ कि फलकी सिद्धि देनेवाला कर्म ही प्रधान रहा, इसलिये कर्म ही जब मुख्य ठहरा तो फिर ईश्वर क्या वस्तु है ? उसे तो ऐसा समझो कि जैसे बकरीके कण्ठके स्तन ॥१४॥ जब कर्म ही प्रधान ठहरा तो इंद्रसे क्या प्रयोजन ? जब सब प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भोग भोगते हैं, पूर्व जन्मके संस्कार जन्य जो कर्म हैं, उनको इंद्र भी किसी प्रकार नहीं घटा-बढ़ा सकता ॥१५॥ प्राणी स्वभावके वशीभूत हैं और स्वभावको वर्तें हैं। देवता, असुर, मनुष्य ये सब स्वभावके ही वशमें हैं और कर्मकी प्रवृत्ति भी स्वभावके अधीन है, तो फिर उस प्रवृत्तिमें ईश्वरकी कुछ आवश्यकता नहीं ॥१६॥ यह जीव कर्मसे ही छोटे-बड़े देह को पाता है और त्यागता है, कर्म ही शत्रु है; मित्र है, कर्म ही गुरु है, कर्म ही ईश्वर है ॥१७॥ इसलिये स्वभावमें स्थित होकर अपने कर्मोंका अनुष्ठान करे यही मुख्य है। यद्यपि देवताके नामसे यज्ञ, व्रत, पूजन, हवन, क्रिया सब उसे करनेका ही नाम कर्म है। यद्यपि तुमको यह सन्देह हो कि विना देवताके हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, वही हमारा कार्य करता है, तो भी देवता कर्मके ही अधीन ठहरा, देखो ! तुम किसी देवताका नाम लेकर अग्निपर दूधका पात्र रख दो, वह दूध औट जायगा और देवताका नाम नहीं भी लो तो औट जायगा, परंतु विना अग्निपर धरे किसी प्रकार नहीं औट सकता; तो मुख्य कर्म ही ठहरा, क्योंकि विना कर्म कुछ नहीं हो सकता। अनायासपूर्वक कर्मकी पूजा करे और जिससे जिस पुरुषका निर्वाह हो वही उसका देवता है॥१८॥जो पुरुष एक पदार्थका सेवन करके दूसरे पदार्थका सेवन करते हैं, वे पुरुष कभी कल्याणको नहीं पाते, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषका सेवन करके कल्याण को नहीं पाती॥१९॥हे पिता ! चारों वर्णोंको चाहिये कि अपने धर्मपर आरूढ़ रहें। ब्राह्मणको चाहिये वेद पढ़े और उसीसे अपनी आजीविका करे, क्षत्रियको चाहिये कि पृथ्वीकी रक्षा करे, वैश्य व्यापारादिसे अपना उदर पूर्ण करे और शूद्रको चाहिये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी सेवा करके अपना उदर पूर्ण करे ॥२०॥ खेती, वाणिज्य, गोरक्षा और व्याज लेना यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है। इन चारोंमें हमारे तो सदा गायोंसे ही जीविका है। जब गायें हमारे पुरुषाओंके अधिक हुई तो यह गोकुल हुआ; उसीसे हमारे कुलका नाम गोप हुआ, फिर इन्द्र बपुरा कौन है ? इन्द्रका पूजन करना तो जानबूझकर धर्मका मार्ग छोड़ देना है, इन्द्रके पूजनेसे कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह मोक्षदायक

और विपत्तिमें सहायक होने लायक नहीं, अच्छा तुमही बताओ कि इंद्रने किसकी मुक्ति की और किसको उसने परम पदवी दी ! हां, इतनी बात है कि जो सौ यज्ञ करता है, वह इन्द्र हो इन्द्रासनका भागी बन सुरपति कहलाता है, इन बातोंसे कुछ ईश्वर नहीं बन सकता। जब दैत्योंसे हारता है तब न जाने कहां भागा-भागा फिरता है और कौन कौनसी गुफाओंमें छिप-छिपकर अपनी विपत्तिके दिन पूरे करता है ॥२१॥ हे पिता ! ऐसा कभी मत समझना कि हमारी गायोंकी वृद्धि और आजीविका इन्द्रके ही आधीन है, क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन्हीं तीन गुणोंसे विश्वका पालन, उत्पत्ति और नाश होता है। इस रजोगुणसे स्त्री-पुरुष मिलकर त्रिविध जगत् उत्पन्न होता है ॥२२॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ सर्वत्र स्थानों पर जल वर्षाते हैं, उसी जलसे प्रजाका जीवन होता है, इन्द्र इसमें क्या कर सकता है ?

दोहा—ताते जीवन प्रजनको, होत सिद्ध सब काज।
पिता वृथा ही पूजकर, का करिहौ सुरराज ॥ २३ ॥

हमारे तो पुर, देश, नगर, ग्राम, घर कुछ भी नहीं है, हे तात ! केवल वन ही हमारा घर है और सदा वन और पर्वतोंमें हमारा वास है ॥२४॥ इसलिए गौ, ब्राह्मणकी सेवा करनी उचित है और पर्वतोंका पूजन करना चाहिए जिससे हमारी गायोंका और हमारा पालन-पोषण हो। हमारे समीप सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोवर्द्धन पर्वत है, उसीके यज्ञका आरंभ करो, जो इंद्रके यज्ञके लिए सामग्री इकट्ठी की है उसी सामग्रीसे गोवर्द्धनके यज्ञको प्रारम्भ करो, ॥२५॥ खीरसे आदि लेकर दालतक अनेक-अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाओ, गेहूँकी पूरी, कचौरी उड़द, मूँगकी दाल, कढ़ी, पकौरी, रायता, चुनौरी, शाक, वासमतीके चावलोंका भात, दूध, दही, रबड़ी, मलाई और सब गायोंका दूध इकट्ठा करो ॥२६॥ वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर हवनकी सामग्री मँगाकर अग्निमें होम कराओ, और उन ब्राह्मणोंको भांति-भांतिके अन्न गोदान दक्षिणा दो और अलंकार पहिनाओ॥२७॥ और दीन भीखारी कुत्ते चांडाल आदिसे लेकर पतिततकको यथायोग्य भोजन कराओ, गायोंको घास दो, गोवर्द्धन पर्वतको बलिदान दो ॥२८॥ अच्छे-अच्छे वस्त्र आभूषण पहन चन्दनका तिलक लगाकर नये-नये वस्त्र धारण करके शृङ्गार बनाओ; गौ, ब्राह्मणके, अग्नि, पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥२९॥ हे पिता ! मेरा तो यह मत है आगे आपकी इच्छा हो सो किजिये। यह गौ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन पर्वतका यज्ञ मुझको अत्यन्त प्रिय है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इन्द्रका गर्व दूर करनेके लिए कालरूप भगवान्‌का वचन सुनकर नन्दादिक गोपोंने और सब ब्रजवासियोंने परस्पर कहा कि, यह बालक देखनेको तो छोटा है परंतु इसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर है।

दोहा—पुनि हरिको मुख चूम कर, हँसि बोले नंदराय।
लाल कही जो बात तुम,-सोई करहुँ उपाय ॥

हे पुत्र ! मैं तेरा वचन किसी प्रकार नहीं फेर सकता और न कोई और फेर सके, जो बात तुमको अच्छी लगे हम सब उसीमें प्रसन्न हैं, इस बातको सुनकर बड़े-बड़े जो वृद्ध गोप थे, वे कहने लगे कि, कृष्ण सत्य कहता है, हमारा इंद्रसे क्या प्रयोजन है ? हमको तो नदी पहाड़, वन सदा बने रहें ॥ ३१ ॥

दोहा–अहो नंद सोइ कीजिये, कान्ह कहै जो बात।
सब ब्रजजन मिलि पूजिये, गोवर्द्धन चल प्रात॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जैसे-जैसे मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा उसी प्रकार सब ब्रजवासियोंने स्वीकार किया॥ ३३॥ नंदरायने एक दूतको बुलाय सब ब्रजमें कहला भेजा कि कल प्रातःकाल ही गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा होगी, जिस जिसके घरमें इन्द्रकी पूजाके लिए सामग्री बनाई गयी है, वह सब सामग्री लेकर प्रातःकाल ही गोवर्द्धनपर चलना होगा। अगले दिन सब ब्रजवासी प्रातःकाल ही उठ यमुनापर जाय स्नान ध्यान कर संध्या तर्पणसे निश्चिंत हो नन्दजीकी आज्ञानुसार सब अपनी-अपनी पूजनकी सामग्री बड़े-बड़े थालों परातोंमें धर-धरकर ढोल दमामे बजाते शंखध्वनि करते सब अपने-अपने मंदिरोंसे निकल-निकलकर यमुनाके तट पर इकट्ठे होते गये और अच्छे-अच्छे वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुला-कर गायोंको आगेकर स्वस्तिवाचन कराये, नन्दरायजी भी सब पूजाकी सामग्री हाथोंमें फूलोंकी माला लिए बड़ी धूमधामसे भांति-भांतिके बाजे बजाते, गोविन्दगुण गाते गोवर्द्धन पर्वतके निकट पहुँचे। प्रथम ब्राह्मणोंका पूजन कराय गायोंको हरी-हरी दूब डलवाय पर्वतके चारों ओर सोहिनी दिवाय ठौर-ठौर पाटम्बर बिछवा दिए, प्रथम ब्राह्मणोंसे पूजन कराकर वेदविधान सहित पञ्चामृतसे अन्हवाय भांति-भांतिके वस्त्र आभूषण पहिराया और अगर, तगर, चन्दन, कपूर, केशर, कस्तूरी जलमें मिलाय गिरिराजपर छिड़कवाय फिर मालती, मदन बाण, गेंदा, गंधराज इत्यादि अनेक प्रकारके फूलोंके हार आभूषण पहनाकर गिरि-राजको अर्पण किये।

दोहा–खुले फूल भर टोकरन, औरहु दिये चढ़ाय।
शैलनाथके मध्य जनु, सुमन शैल दरशाय॥

फिर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, अक्षत, पान, सुपारी, गिरिराजके आगे धर आरती कर मिष्ठान्नके ढेरके ढेर चढ़ाने लगे इतनी मिठाई चढ़ी कि सम्पूर्ण पर्वत ढक गया और दूध, दही, घृत इतना चढ़ाया कि नदियां बहने लगीं और जहां-तहां अनेक रंगके थानके थान तान दिये, उस समय गिरिराज ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे, मानो भगवान् विराट् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलनेको आये हैं, उस अद्भुत शोभाको देखकर ब्रजवासी प्रसन्न हो होकर गिरिराजकी प्रदक्षिणा देने लगे॥३४॥ उस समय सुन्दर गोपोंकी स्त्रियाँ कोमलांगी जिनसे पांवों नहीं चला जाता था वह गाड़ियों; रथोंमें विराजमान थीं और बड़े-बड़े चलनेवाले बैल उन रथ और गाड़ियोंमें जुत रहे थे और वह श्रीकृष्णचन्द्रके चरित्र गाती चली जाती थीं और जहां कहीं मार्गमें ब्राह्मण मिल जाते थे उनको दक्षिणा दे देकर आशीर्वाद लेती थीं और गिरिराजकी परिक्रमा देती थीं॥ ३५॥ वहां ब्रजवासियोंकी प्रतीत करानेके लिए श्रीकृष्णने एक और नया कौतुक किया, अपना दूसरा रूप और प्रगट किया कि मैं ही हूँ गोवर्द्धन पर्वत, अतिशय बृहत् शरीर, बड़ी लम्बी-लम्बी भुजायें, बड़ा चौड़ा लम्बा मुख अखंड प्रकाश, महास्थूल जङ्घा और जानु और शैलके शिखरके समान शीश, रत्नजटित मुकुट धरे, आभूषण पहने कंठमें वनमाला पीताम्बर धारण किये गिरिराजकी कन्दरामेंसे निकलकर बोले।

चौ०–भयो यज्ञ सब सफल तुम्हारो * लखो रूप प्रत्यक्ष हमारो ॥
असकहि अपना हाथ पसारा * लाओ भोजन विविध प्रकारा ॥

फिर तो सब गोप-गोपी भोजनके थाल और परातें उठा-उठा गिरिराजको पकड़ाते जाते थे और वह प्रसन्न हो-हो खाते थे और प्रत्येक भोजनकी प्रशंसा भी करते थे। निदान जो कुछ पकवान मिठाई नन्दादिक ब्रजवासी ले गये थे उन सबको निर्वार प्रसादमात्र छोड़ दिया, तब तो श्रीकृष्णचन्द्र सबसे पुकार कर कहने लगे कि हे पिता ! भ्रातृगण ! देखो गिरिराजने आज कैसा प्रत्यक्षरूपसे दर्शन दिया और तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया, देखा अपने गिरिराजका कौतुक ? कभी इन्द्रने भी इस प्रकार प्रगट होकर दर्शन दिया था और अपने हाथसे इस प्रकार भोजन किया था ? ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धननाथ अपने पूजनेवालोंपर सदा दयादृष्टि रखते हैं और जो कोई ब्रजवासी इनका तिरस्कार करनेवाले हैं उनको सिंह सर्पादिक रूपसे कालकौर कर लेते हैं इसलिये अपने और गायोंके मङ्गलार्थ इनको वारंवार नमस्कार और दण्डवत् करो ॥ ३७ ॥

दोहा–देख प्रत्यक्ष गुवाल सब, गोवर्द्धनको रूप ।
धन्य धन्य लागे करन, कौतुक पेख अनूप ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! नन्दादिक सब ब्रजवासी छोटे बड़े एक बार जय-जय शब्द उच्चारण कर उठे और शिर झुका-झुकाकर सबने दण्डवत् प्रणाम किया और परस्पर कहने लगे कि श्रीकृष्ण बालक नहीं कोई अवतार है, हमने ऐसा प्रत्यक्ष रूप कहीं नहीं देखा और न आजतक कानोंसे सुना जो अपने हाथसे प्रसाद कोई देवता खाता हो। ललिता और विशाखाने जाकर राधासे कहा, सखी ! गोवर्धनने प्रकट होकर सब ब्रजवासियोंका भोजन खाया, इस बातको देखकर सब नर-नारी चकित हो गये, परन्तु आली ! यह सब कौतुक उसी छलिया वनमालीके हैं वह तो सदाका बहुरूपिया है,अपना दूसरा रूप गोवर्धनमें प्रकट करके ऐसी गढ़ंत लगाया कि, सब ब्रजवासियोंकी पकवान मिठाई चाट बैठा और भोजन करके फिर अन्तर्धान हो गया। सखी ! मैंने सब लक्षण मिला लिये, यह सब कर्म उसी ठगियेके हैं।

चौ०–जैसे कान्ह श्यामतनु सोहै * तैसो ही गिरिवर मन मोहै ॥
तैसेहि कुण्डल तैसिहि माला * तैसेहि चञ्चल नयन विशाला ॥
तैसेहि मुकुट पीत पट तैसो * नख सिख रूप श्यामको जैसो ॥
जैसो है मन मोहन प्यारो * सोइ लक्षण गिरिमाहिं निहारो ॥
आपहि करी श्याम चतुराई * खान हेत पकवान मिठाई ॥
यह लीला सब वही बनावै * आपहि जेवत आप जिमावै ॥

राधा बोली आली ! हमारा मनमोहन प्यारा ऐसा गुणवान् और विद्यानिधान है। विशाखा बोली कि तू ऐसी ही भोली है कुछ जानती ही नहीं, राधा इस बातको सुन हँसकर चुप हो गयी कुछ न कहा, नन्दरायजीने प्रथम तो होम किया, फिर गोवर्धनकी परिक्रमा दे गौ ब्राह्मणोंको

भोजन कराकर पीछे सब ब्रजवासियों सहित आपने भोजन किया, दीन और भिखारियोंको बहुतसा द्रव्य और भोजन दिया और एक रात्रि वहीं वास कर प्रातःकाल वहांसे चल दिये ।

दोहा—सब लोगनको संग ले, ब्रजपति पूरणकाम ।
मन्द मन्द आवत भये, अपने घर घनश्याम ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा—पच्चिसमें ब्रजपर चढ़ो, इन्द्र खायकर खार ।
हरि ब्रजकी रक्षा करी, करपर गिरिवर धार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इन्द्रने ब्रजमें अपनी पूजाका लोप देखकर श्रीकृष्ण भगवान् ही जिनके नाथ हैं, उन नन्दादिक ब्रजवासियोंको अपना शत्रु समझ अत्यन्त कोप किया कि क्या कारण मेरी पूजा छोड़कर गोवर्द्धनकी पूजा ❋ की ॥ १ ॥ उसी समय प्रलय करनेवालोंमें मुख्य सांवर्तक नाम गणको बुलाकर आज्ञा दी "मैं ही इन्द्र हूँ" ऐसे अभिमानी इन्द्रने महाक्रोध करके अत्यन्त कठोर वचन कहा ॥२॥ "अहो ! बड़े आश्चर्यकी बात है, वनके रहनेवाले गँवार गायोंके चरानेवाले जातिके ग्वालियोंको लक्ष्मीका कैसा मद हुआ है, जिन्होंने मनुष्य कृष्णका आश्रय लेकर (मैं सुराधीश इन्द्र हूँ) मेरा अपराध किया और कुछ आगा-पीछा न विचारा । सत्य, मूर्ख कहीं ज्ञान सिखानेसे ज्ञानी हो सकता है ? ॥३॥ जो दृढ़नाम करके नौकाके सदृश यह कर्ममय यज्ञ है; इससे आत्माका कल्याण होता है, उस आत्म विद्याको छोड़कर हठकी करनीपर बैठ इस संसारसमुद्रके पार होना सहजमें ही चाहता है ॥४॥ वह वाचाल, मूर्ख, अज्ञानी किसीकी बातको नहीं मानता और अपने आपको बड़ा पंडित और ज्ञानी जानता है और ऊंच-नीचको कुछ नहीं पहचानता । ऐसे छोटी अवस्थावाले मूर्ख मनुष्य श्रीकृष्णका आश्रय ले उन गँवार ग्वालिनियोंने सब संसारमें मेरी अवज्ञा की ॥५॥ लक्ष्मीके मदके मतवाले गोप-कृष्णके सिखाने-बुझानेसे हमें इन गँवारोंने कुछ न समझा और हमारा तिरस्कार करके यज्ञभाग पर्वतको दिया । उस नाचनेवाले कृष्णका भरोसा करके अपने प्राणोंका कुशल चाहें तो कब हो सकता है और मैं जानता हूँ कि उनके धन बहुत बढ़ गया है, उसीका उनको अभिमान भी बहुत है ।

चौ०—सो मैं आजहि करहुँ विनाशा ❋ देखत हौं अब कृष्ण तमाशा ॥
राख चार गैया घर-माहीं ❋ आप सरिस मानत कोउ नाहीं ॥

हाय ! इस समय मुझको बड़ा क्रोध है, क्योंकि यह कृष्ण बलदेव नयी तांतीके कोई नया काम कर उठाते तो मुझको कुछ पश्चात्ताप नहीं था, परन्तु वह नन्दवृद्ध होकर शठ हो गया कि जिसने बालकोंकी बातको मानकर मेरा अपमान किया, फिर मुझको क्यों न पश्चात्ताप हो ? ।

❋ शंका—इन्द्रकी विनयसे भगवान्ने पृथ्वीमें अवतार लिया था । उसी इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा क्यों की ?

उत्तर—भगवान्की प्रिया जो देवी थी उसका अनादर इन्द्र अपने अभिमान और अज्ञानसे नित्य किया करता था, उस अपने इन्द्रके किये अनादरको स्मरण करके और अपना पक्षपाती श्रीकृष्णको समझकर प्रथम इन्द्रका उपद्रव देवीने नहीं किया, उस समय तो सहन कर लिया फिर पीछे श्रीकृष्णका पक्षपात कर देवीने इन्द्रको मोहित कर लिया । मोहको प्राप्त होकर इन्द्र उन्मत्त हो भगवान्को भूल गया और ब्रजके ऊपर प्रलयके करनेवाले मेघोंको भेजकर मूसलधार जल वर्षाया, यह कारण था ।

दोहा–जलधारा धावहु अबहि, वर्षै घोर जलधार।
बोरहु ब्रज गिरिवर सहित, करहु धेनुसंहार ॥ ६ ॥

और ठौर वर्षनेका कुछ काम नहीं, केवल चौरासीकोस ब्रजपर ही ऐसी वर्षा करो कि गोवर्द्धन पहाड़का खोजमात्र भी न रहे, और गाय-बछड़ोंका तो ऐसा विनाश करना कि उनका कोई नामलेवा और पानीदेवा भी न रहे। लाख वे हाय करें परंतु तुम कुछ दया चित्तमें मत लाना, क्योंकि जैसा उन्होंने किया है उस अपनी करणीका फल भोगें, तुम किसी प्रकारका सन्देह मत करना, मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़ देवताओंकी सेना समेत और सब प्रलय करनेवाले मेघोंको और उनचास मरुद्गण पवनोंको भी साथ लाऊँगा, ब्रज तो क्या वहांकी भूमितक बहा दूँगा फिर देखूँ जगत्‌में किसका सामर्थ्य है, जो ब्रजवासियों कि रक्षा करें।

दोहा–कृष्ण बचावन हेत जो, ऐहै विधि हर आज।
तो उनहूँको जीतके, मारहु सहित समाज ॥ ७ ॥

मेघ बोले कि महाराज! आप इतना परिश्रम क्यों करते हो? हमारे आगे ब्रज क्या वस्तु है? आपको थोड़ीसी बातके लिए क्रोध करना नहीं चाहिए। महाराज! क्या आप नहीं जानते, हमारे ही पानीसे प्रलय हो जाता है, केवल एक अक्षयवट ही रह जाता है। आप क्षमा कीजिये उनके खोज खोनेको तो हमहीं बहुतेरे हैं। यह सुन इन्द्रको कुछ धैर्य हुआ और मान बड़ाई कर पानका बीड़ा दे बिदा किया और सब मेघोंका बन्धन खोलकर उनके सङ्ग कर दिया। फिर उनचास पवनोंको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम भी मेघोंके साथ जाओ और मातलिको बुलाकर कहा कि मेरा ऐरावत हाथी जाकर लाओ। आज्ञा पाते ही मातलि हाथीको लाकर सम्मुख खड़ा कर दिया। सुरराजने वज्रका धनुष हाथमें ले लाल-लाल नेत्र कर कोपकी दृष्टिसे चारों ओरको देखा तो दिग्गज कांपने लगे, भूमि डोलने लगी। इस प्रकार देवताओंकी तैंतीस कोटी ३३०००००० चतुरंगिणी सेनाको सङ्ग ले सांवर्त्तादिक जो प्रलय करनेवाले मेघ थे उनको भी सङ्ग लिया।

दोहा–साजि सेन यहि भांति सब, मेघन पवन समेत।
चलो शक्र अति वक्र ह्वै, ब्रज नाशनके हेत ॥

उस समय इन्द्रका शरीर कम्पायमान हो रहा था, नेत्रोंसे अग्निकी लपटें निकलती थीं और होठोंको बारम्बार दांतोंसे काटता था।

संख्यानारी छन्द

चले मेघ आगे, महाकोप पागे। भयो अन्धकारा, नभैमें अपारा ॥
हले सिन्धु सातो, भरेते अघातो। करे शोर भारी, जगै भीतिकारी ॥
भरे घोर ओरा, गिरैं हैं करोरा। महावेग धाये, द्रुतै व्योम छाये ॥
ब्रजै खंड खंडा, करैंको प्रचंडा। भरे हैं घमंडा, बली हैं अखंडा ॥
दशोहू दिशानै, तमो भो महानै। भई यामिनीसी, दिपै दामिनीसी ॥
भई भीति भारी, कँपै भूमि सारी। कहै देवराजा, करो शीघ्र काजा ॥
ब्रजै बोरि दीजै, बिलम्बै न कीजै। हनो गोप ग्रामा, मिलेगा इनामा ॥

वचै एक नाहीं, कहूँ जो पराहीं । करै कृष्ण रक्षा, बली जो प्रत्यक्षा ॥

दोहा—यहि विधि भाषत वननसों, ब्रज चौरासी कोश ।
घेर लियो सुरपति कुमति, कर मनमें अति रोष ॥ ८ ॥

चारों ओरसे घटा घिर आयी, बिजली चमकने लगी, बादलोंके गर्जनेका गम्भीर शब्द होने लगा, तीव्र मरुद्गणोंने मेघोंको चलायमान कर ओलोंकी झड़ी लगा दी और मूसलाधार वर्षा होने लगी ।

छन्द—अतिही भयानक घटा कारी कज्जलहु पटतर नहीं ।
घेर लीन्हों ब्रज चहूँ दिशि पवन प्रबल झकोरहीं ॥
गर्जंत गगन घनघोर तड़पत तडित बारहि बारहीं ।
होत शब्द अघात ब्रज नर नारि चकित निहारहीं ॥
गये वन जे गाय ले ते धाय ब्रज फिर आवहीं ।
अन्ध धुन्ध अपार खोजत धाम पन्थ न पावहीं ॥
सतत जहँ तहँ वस्तु सब नर नारि मन शोचत महा ।
वैर सुरपतिसों कियो अब होन धौं चाहत कहा ॥

दोहा—उमड़ घुमड़ घहरात घन, परन लगे जल जोर ।
टेरत सुतको मातु पितु, ब्रजगलियन चहुँ ओर ॥

छन्द नाराच

जहां जलद्द जोर सो कियो कठोर शोर है ।
प्रलै समान भोर है गयो सु चार ओर है ॥
क्षणै क्षणै प्रकाशके करै दमंक दामिनी ।
मनो महाभयंकरी कराल कालयामिनी ॥
प्रचण्ड वेग कै तहां पवन्न उन्नचास हू ।
चलै दिशान चारते तजे निजै निवासहू ॥
ब्रजै धरा सु छैगई महान धूरि धार है ।
न देख नेकहू परै निजै भुजा पसार है ॥ ९ ॥

वर्षाकी धारा हाथीके सुण्डके समान मोटी बादलोंमेंसे अखण्ड गिरती थी, जिससे समस्त ब्रजमण्डल जलमें डूब गया और चारों ओरसे बादलोंके समूह उमड़ते चले आते थे, ऊँचे-नीचे गाढ़ गढ़ोल और पृथ्वी कहीं नहीं दिखायी देती थी ।

छन्द नाराच

तजै लगे अकाश ते जलद्द वारिधार हैं ।
अतीव आतुरै वितुण्ड सुण्डके अकार हैं ॥
गिरै लगे करोर घोर ओर चार ओर ते ।
महान शैलके समान ते अतीव जोरते ॥

अघात शोरते ब्रजै अनेक वज्रपात भे।
झकोर पौन तेज तक्ष तक्ष व्रात घात भे॥
न दीखती दिशानिशा नदिवसहू गुनोपरै।
न नेकहू नगीच कान बैनहू सुनोपरै॥
गँभीर ह्वै नवीन नीरधार धावती धरा।
परै अवर्तहू उठै तरंग शोर भर्भरा॥
परै न ऊँच नीच ठौर जान गोकुलै मही।
कलिन्दजा करारको विहाय ऊपरै बही॥
बनै न जान आवनो कहूँ ब्रजै पगैं भरै।
खड़े न होत ह्वै बनै कछू निहार न परै॥
कुरंग औ बिहंग चीतकार जो करैं लगे।
कहू भ्रमैं कहूँ थिरैं कहूँ चलैं कहूँ भगे॥
अनेक जीव गाजकी गराजसों अप्रान भें।
अनेक तासु ज्वाल लागि भस्मके समान भें॥
अनेक तासु ज्योतिको बिलोकि अंध ह्वैगये।
अनेक जात नीरधार मध्य डूबते भये॥
पराय बच्छ बाछि धेनु बैल गोष्ठमें गिरे।
तहाँ शिला प्रहार ते न बैठनो बनै थिरे॥
गुवाल औ गुवालिनी करैं हहा पुकार हैं।
न देहकी न गेहकी तिन्हैं कछू शुमार है॥
दोहा–यदपि घुसे घरमें सबै, तद्यपि पवन झकोर।
रहत बनत नहिं नेकहू, लागत ओर करोर॥ १०॥

बड़े वेगकी वर्षासे और महाप्रचण्ड पवनसे पशु-पक्षी सब थर-थर कांपने लगे और गोप-गोपी जाड़ेके कारण अत्यन्त दुःखी हो हाय-हाय करते थर-थर कांपते श्रीगोविन्द कृष्णकी शरणमें गये

छन्द तोमर।

बिलखात गोपी ग्वाल। सब कहहिं आयो काल॥
अब बचब दीखत नाहिं। हम भागि केहि थल जाहिं॥
नहिं नीक कीन्हो नन्द। कियो शक्रको मख बन्द॥
निजसुत कह्यो उर आन। दुख दियो गिरिमख ठान॥
अब होत ब्रजको नाश। सब तजो जीवन आश॥
अस कहत रोवत गोप। कियो कठिनवासव कोप॥

कोउ सुतनको उर लाय। गोपी रहीं शिर नाय॥
कोउ कहैं नारिन पासु। भजि आवरी इतआशु॥
लग ओल घास कराल। गिरती विशाल दिवाल॥
छप्पर उड़त लग पौन। टूटत शकटधृत भौन॥
फट फट फुटत घटवृन्द। तड़ तड़ टुटत तरुकन्द॥
कबहूँ न भो जिन सोग। ते अतिदुखी ब्रज लोग॥
भाषहिं परस्पर बात। जेहिहित भयो उत्पात॥
सो नँदसुवन नजीक। अव चलब सबको नीक॥
करि हैं अवशि सोइ रक्ष। समरत्थ कान्ह प्रत्यक्ष॥
बचि हैं न औरे ठौर। ये जहां नन्दकिशोर॥

दोहा—अस कह गोपी ग्वाल सब, हा हा करत पुकार।
इक एकनको पकर कर, गे जहँ नन्दकुमार॥ ११॥

मूसलाधार जो जल वर्षा तो उससे पीड़ित होकर गायें अपना शिर नीचे किये बछड़ोंको नीचे लिये थर-थर कांपती थीं और गोपिकायें गिरती-पड़ती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट जाकर बोलीं॥ १२॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे सामर्थ्यवान्! हे भक्तहितकारी गोकुलनाथ! इस महाक्रोधी इंद्रसे इस अपने गोकुलकी और हमारी रक्षा करो, यह कह चरणोंमें गिर पड़ीं। गोप-गोपियाँ हरिके चरणोंमें गिर कर कहने लगीं, हे गोपाल! हे नन्द-लाल! हे गोविन्द! हमने आपके ही कहनेसे इन्द्रकी पूजा छोड़ दी और गोवर्द्धनकी पूजा की, इसीसे इन्द्र अत्यन्त कोपकर ब्रजका लोप करना चाहता है, अब आप खड़े-खड़े क्या देखते हो? क्या जब हमारा प्राणान्त हो जायगा तब रक्षा करोगे?

चौ०—राखि लेहु अब हे ब्रज नायक ❋ तुम हीं यह दुख मेटनलायक॥
दावानल-सों राखो जैसे ❋ अब जलसों राखौ हरि तैसे॥
बकीविनाशन शकटसँहारन ❋ तृणावर्त्त वत्सासुर मारन॥
अघमर्दन बकवदन विदारन ❋ तुमहीं ब्रजजनके दुख टारन॥
कीजै अभय बेगि नँद लाला ❋ वर्षत मेघ महा विकराला॥
राखि लेहु बूड़त ब्रज खेरो ❋ महा कठिन यह कष्ट निबेरो॥

एक गोपी बोली कि महाराज! अब अपने गिरिराजको क्यों नहीं बुलाते, क्या पकवान-मिठाई ही खानेके लिये थे?

चौ०—जो पै बड़े देव गिरिराजू ❋ तौ किन आय बचावत आजू॥
नभ गर्जत तर्जत अतिभारी ❋ देखि डरत सब ब्रज नर नारी॥
मूसलधार परत जल भारी ❋ कीजै रक्षा शीघ्र हमारी॥

एक गोपी बोली—आली! तू क्यों बक-बक कर रही है, इसकी बातका क्या विश्वास! यह तो जन्मका छली है, यह किसका मित्र? इसने राधाको ही सैकड़ों धोखे दिये, जो इसकी परम-

प्यारी थी, फिर और किसका होगा? और एक ग्वालिनी बोली कि सखी! तू राधा ही राधा करती फिरती है, मुझे इस कपटीके सात जन्मका भेद विदित है—पहले तो इसने मीन-रूप धरकर शंखासुरको मारा, दूसरे कच्छपतनु धरकर मधुकैटभको संहारा, तीसरी बार वाराह रूप बनकर हिरण्याक्षको पछाड़ा, चौथेमें नरसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ा, पांचवें वामन बन बिना अपराध राजा बलिको छला, छठे परशुराम नाम धर सम्पूर्ण क्षितिके क्षत्रियोंको दला, सातवें रामचन्द्र अवतार ले वालिको मार रावणका वध किया, अब आठवीं-बार इस अवतारीने नन्दजीके घर अवतार लिया है गोकुलका संहार करेगा। एक और गोपी बोली बहन! एक बातको तू भी भूल गयी, नंद यशोदाका पूत नहीं है, यह तो वसुदेव देवकीके घर जन्मा था, जब जन्म भर वह कंसके यहां कारागारमें पड़े रहे तब हारकर नंद यशोदाके घर पहुँचाया जब इसने अपनी माता पिताकी विपत्ति न टाली तो फिर किसका मीत? एक बोली—सखी? यह तो सुखका साथी था, इसको किसीकी दुःख-पीड़ासे क्या प्रयोजन?

राग बिहाग

विपतिमें कोउ नहिं बूझत बात।
अपने अपने स्वारथके सब तात मात अरु भ्रात॥
विपति परेपर शत्रु मित्र अरु प्यारे जाने जात।
जस कीन्हो भोगो फल तैसो, अब काहे पछितात॥
इक दिन वह हो यह हमरे घर, मांग मांग दधिखात।
आज हमारी ओर न देखत, हम ठाढ़ी डकरात॥
जान बूझ जो करे शत्रुता, तासों कहा बसात।
शालिग्राम समय यहि हमको, अपनो कोउ न दिखात॥

आली! हमारे भाग्यमें विधाताने ऐसा ही लिखा था, एक और बोली—सखी! यह सब गोवर्द्धनके पूजनका फल है।

चौ०—दीन्हों गिरिवर यह फल भारी * लेहु सखी सब गोद पसारी॥
होत कहा है अब पछिताये * विधिके अंक न मिटत मिटाये॥

एक बोली—आली! ऐसे बातों-बातोंमें तो गोकुलका नाश हो जायगा और हमारे प्राण भी जाना चाहते हैं, दूसरी बोली—फिर और क्या? तीसरी बोली—फिर क्या होता है? इसी छलियाने यह नया कर्त्तव्य कराया था, उसका फल हाथका-हाथ मिल गया। अब चलो यशोदासे चलकर कहें। एक बोली—चलना हो तो चलो, फिर कब चलोगी? यहां तो ओलोंके कारण प्राण निकले जाते हैं, चलना है तो शीघ्र चलो। सब सखियोंने मिलकर कहा—महारानी! यह सब तुम्हारे ही पूतके कर्त्तव्य हैं, हमारे कुलमें सदासे सुरपतिका पूजन होता चला आया है आज इस तेरे कुँवरने सबको सिखा बहँकाकर गोवर्द्धन पुजवाया।

चौ०—चढ़ो कोपि गिरि ऊपर सोई * अब सहाय गिरि काहे न होई॥

कहो अब किसके पास जायँ, उसको बताओ। यशोदाने कहा–जो तुम्हारी गति है वही मेरी गति है, परमेश्वरका स्मरण करो, जिसने गजको ग्राहसे छुड़ाया, प्रह्लादको अग्निसे बचाया वही तुम्हारी भी सहायता करेगा। सिवाय धैर्यके और इस समय कोई उपाय नहीं। यशोदाका यह वचन सुनकर गोपी फिर पुकारने लगीं, हे जगदीश्वर! हे भक्तवत्सल! हे दीनानाथ! इस वर्षासे हमें बचाओ ॥ १३ ॥ जब बड़ी-बड़ी शिलायें ओलोंकी आकाशसे गिरने लगीं, उनसे बेसुध और व्याकुल गोकुलवासियोंको देखा, तब सबके दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌ने जाना कि यह सब कौतुक उसी महाक्रोधी इन्द्रके हैं ॥ १४ ॥ विना वर्षाऋतुके जो यह महाभयानक शिलाओंकी वर्षा हो रही है और महाप्रलयकीसी प्रचण्ड पवन चल रही है, केवल इसका यही कारण है कि मैंने जो इसके यज्ञको भङ्ग कर दिया और इसकी पूजा ब्रजसे उठा दी इसीसे इन्द्र हमारे विनाशके लिये मूसलाधार पानी वर्षा रहा है ॥१५॥ इस कारण अब मैं अपने सामर्थ्यसे इस महाघोर वर्षाका उपाय करूँगा और उस अज्ञानी लोकपाल और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओंको जो लक्ष्मीका मद हो गया है उस मदको हरूँगा॥१६॥मेरी भक्ति अथवा सत्त्व गुण जिन देवताओंके हृदयमें व्याप्त हो रहा है और मैं ही उनका ईश्वर हूँ। इस लिये उन देवताओंको अपने पराक्रम और बलका गर्व किसी प्रकार होना नहीं चाहिये क्योंकि अभिमानमें भक्ति और प्रेम कहां? इसलिये जबतक उन अभिमानियोंका मान खण्डन न होगा तबतक वह मेरा मान न करेंगे और मेरा मान किये विना उनका कल्याण कहां? ॥१७॥ इससे वह उपाय करूँ जो वे मेरी शरण आयें, क्योंकि मेरा नाम गोकुलनाथ है, जब मैं ही गोकुलका नाथ होकर गोकुलकी रक्षा न करूँगा तो और कौन रक्षा करने आवेगा? क्योंकि सब गोकुलवासी मुझको ही अपना प्राण आधार समझते हैं और मुझको ही अपना तन, मन, धन जानते हैं। यह सब मेरे ही दर्शनकी अभिलाषा करते रहते हैं, मेरे समान और किसी दूसरेको नहीं मानते। हाय! जो मैंने इनकी रक्षा न की तो पृथ्वीको उत्पन्न करके मैंने क्या किया! औरोंकी तो क्या सामर्थ्य है? जो मेरे दासोंको ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं सता सकते और यह क्षुद्र इन्द्र तो क्या वस्तु है, जो मेरे जीवनमूल ब्रजवासियोंको आंख उठाकर देख सके? अब ये लोग मेरी शरण हैं तो मैं अपने योग बलसे इनकी रक्षा करूँगा, यह मैंने अपने मनसे संकल्प कर रखा है कि जो कुछ हो, परन्तु अपने शरणागतकी रक्षा मैं अवश्य करूँगा, यह मेरा सदासे नियम है। यह कह गोप और गोपियोंसे बोले कि सब अपने बाल-बच्चे और गायोंको लेकर मेरे सङ्ग चलो, हे राजन्! यह कहकर–

दोहा–सबको अपने संग ले, जितने गोपी ग्वाल।
गवने गोवर्द्धन निकट, गिरि धारण गोपाल ॥ १८ ॥

कवित्त–महामदमत्त मघवाके भेजे महामेघ, महादुःख देन हेत महाजल डारो है। गौवनको गोपनको गोपिनको ताही समै, दूजो नहिं त्राता तीनों लोकमें निहारो है ॥ ब्रजराज एक हाथहीसों अति आतुरीसों क्षितिधर क्षणैमें छत्राकसो उखारो है। इन्द्रगर्व गरिबेको गोकुल उधारिबेको, अति भारि गोबर्द्धन कृष्ण कर धारो है।

यह कह नटवर रूप धर लीलामात्र एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़ बायें करकी कन-अँगुलीपर धर, ऊपरको उठाकर ब्रजमण्डलपर छत्रके समान तान दिया, जैसे कोई बालक छत्राकको उखाड़कर ऊपरको उठा लेता है (यह वह छत्राक है जिसको बालक सांपकी छत्री कहते हैं) ॥ १९ ॥ जब भगवान्‌ने पर्वतको उठा लिया तब पीछे गोपोंसे कहा कि हे भैया ! हे पिता ! हे ब्रजवासियो ! अपनी-अपनी गाय बछड़े बाल-बच्चोंसमेत सुखसे इस पर्वतके नीचे आ जाओ ॥२०॥ हे ब्रजवासियो ! अपने मनमें यह मत समझना कि कृष्णके हाथसे गिरि गिर जायगा, यह सब बाबा नन्दका प्रभाव है, इसमें मेरा कुछ पराक्रम नहीं है, यहां पवन पानीका कुछ खटका नहीं, अपने मनमें पूर्ण विश्वास करके गिरिकी छायामें चले आओ, मैंने तुम लोगोंकी रक्षा करनेके लिये गोवर्द्धनको हाथपर उठा लिया है; जबतक बहुत वर्षा हो तबतक इसके नीचे सुखसे वास करो ॥ २१ ॥ जिन लोगोंको श्रीकृष्णके बलवीर्यका पूरा भरोसा था उन्होंने गाय-बछड़े गाड़ी पुरोहितादिक जिसको पाया उसको अपने सङ्ग ले नन्द उपनन्द आनन्दपूर्वक पर्वतके नीचे गढ़ेलेमें घुस गये, उस समय सब श्रीकृष्णके मुखकी ओर निहार रहे थे, न किसीको भूख थी न प्यास थी ।

दोहा—लाखन गौवें बाछरे, अरु बाछिहू अनन्त ।
गोवर्द्धन तरमें रहे, नहिं संकेत सहंत ॥

हे राजन् ! जब पानी पहाड़के नीचे आने लगा तब वृन्दावनविहारीने चक्र सुदर्शनको आज्ञा दी कि तुम गोवर्द्धनके ऊपर चारों ओर घूमते रहो । फिर तो चक्रसुदर्शन पर्वतपर घूमा तो पानीकी जो-जो बूँद गिरती उसी समय भस्म हो जाती, जैसे गरम तवे पर बूँद गिरते ही भस्म हो जाती है । एक बूँद भी ब्रजमें न गयी और गिरिवरके नीचे श्रीकृष्ण-चन्द्रके मुखचन्द्रका ऐसा प्रकाश हो रहा था, जैसे शरद पूर्णमासीके चन्द्रमाका प्रकाश होता है । उस समय श्यामसुन्दरके ऐश्वर्यको देख ब्रजवासी लोग परस्पर कहने लगे कि हम जानते हैं कि श्रीकृष्ण साक्षात् विष्णुका अवतार है, नहीं तो मनुष्यकी क्या सामर्थ्य, जो पर्वतको कमलके फूलकी नाईं बायें हाथकी कन-अँगुलीपर उठा लेता । देखो, हमारे मनमोहन प्यारेको पर्वतका कुछ भी भार नहीं जान पड़ता । आनन्द सहित अपने मधुर-मधुर स्वरसे मुरली बजा रहे हैं । हे राजन् ! मुरलीमनोहरकी मुरलीकी ध्वनि सुन ब्रजवासी सब दुःख और पीड़ाको भूल गये और अति प्रसन्न हो बृन्दावनविहारीके गुण गाने लगे, परंतु यशोदाका चित्त उस समय अत्यन्त व्याकुल था और कृष्णकी ओरको निहार-निहार अपने प्राण आधार नन्दजीसे यह कहती थी, हे स्वामिन् ! देखो तो, कहां तो मेरा फूलवासा सात वर्षका कुमार और कहां करोड़ों मन गोवर्द्धन पर्वतका भार, सब खड़े- खड़े तमाशा देख रहे हैं, इतना भी नहीं कि कोई नेक सहारा लगा दे, बड़े आश्चर्यकी बात है । परमेश्वर ऐसा न करे और जो कदाचित् यह गिरि मेरे पूतके ऊपर गिर जाय तो मैं किसके पूतको पूत कहूँगी ? देखो चार दिन हो गये उसी प्रकार पहाड़ इसके हाथपर धरा है, यह अवश्य हार गया होगा, क्योंकि अन्नका एक दाना तक इसके मुखमें नहीं गया ।

चौ०—ऐसे हि खड़े भये दिन चारी * धरे हाथपर गिरिवर भारी ॥
हरिको कर पिरात अति होई * इक इक दिन धारो सब कोई ॥

को अस योधा धीर धरैया ❋ धारैगिरि जो धरे कन्हैया ॥
दाबत भुजा यशोदा मैया ❋ बार बार मुख लेत बलैया ॥
दुखती है हैं भुजा तुम्हारी ❋ धरराख्यो है गिरिवर भारी ॥
हे गिरिराज भक्तसुखदायक ❋ तुमहीं हो पूजनके लायक ॥
इतनो दान नाथ मोहिं दीजै ❋ इस बालककी रक्षा कीजै ॥
धरि पकवान मिठाई मेवा ❋ बहुरि पूजिहौं तुमको देवा ॥

फिर बलभद्रकी ओरको देखकर कहने लगी कि यह तुम्हारा छोटा भैया कन्हैया बात-बात में तुम्हारा सहायक होता था। अब तुमको भी उचित है कि इस समय इसकी कुछ सहायता करो। फिर थोड़ी देर पीछे नन्दरानी शिव और भवानीको मनाने लगी कि तुम्हीं मेरे पुत्रकी सहायता करो क्योंकि मुझ गरीबिनीके यही इकलौता बालक है। इसको किसी प्रकारका कष्ट न हो यह वरदान दो! जब बलरामने माताको अत्यन्त दुःखी देखा तो श्रीदामादिक ग्वालोंसे कहा कि हे भाई! तुम श्रीकृष्णके प्रभावको तो जानते ही हो कि एक गिरि क्या कोटि गिरिका भार भी भगवान्‌के लिये कुछ नहीं है, परंतु माताका चित्त सावधान करनेके लिये:-

चौ०—ले ले लकुट राखिगिरि लेहू ❋ मेटहु माता कर सन्देहू ॥
कोऊ लकुट कोउ हाथ लगायो ❋ काहू शीश लगाय उठायो ॥
जब हलधर अस मतो उपायो ❋ तब यशुमति उर धीरज आयो ॥

उस समय गोपी हँसकर बोली—हे मदन मोहन प्यारे! तुम बहुतसा दही और माखन चुरा-चुराकर खाया था उसीके बलके प्रभावसे यह गोवर्द्धन उठाया है, सो हे महाराज! आज वरसोंमें जाकर उस दूध माखनका बदला हमको आपने दिया है। एक गोपीने गिरिवर हाथपर धरे श्रीकृष्णको देखकर वह मनोहर छबि सखियोंसे वर्णन करने लगी।

कवित्त—तारनपै कञ्जकञ्जहूपै रम्भ खम्भ राजै, रम्भ खम्भहूपै सिंह तापै एक वापी है। वापीपै भुजङ्ग है भुजङ्गपै कपाटत्यों, कपाटपै कपोत तापै बिन्दु द्युति थापी है॥ तापै सुक तापै मीन तापै अहि बाल कारे, तापै अर्द्धचन्द्र तापै सूरज प्रतापी है। मध्यते उठो मृणाल तापै छत्र छाया किये, रघुराज ऐसी छबि मेरे दृग व्यापी है॥

एक और सखी बोली कि आली! और एक नया कौतुक देखो, मुझे कहते भी लज्जा लगती है।

कवित्त—सनमुख सांवरेके आय ब्रजबाल कोऊ, ताको तिरछो हैं चख चञ्चल चलायकै। ताही समै कान्हकर कांपतही कांपो गिरि, ब्रज जन जाने गिरि गिरत बनायकै॥ रघुराज राम तहां ऐसी दशा देखतही, बन्धुको विलोको नेक मन्द मुसकायकै॥ अवलोक अग्रजको आनन नवाय नैन, शैलको सँभारो फेर लालन लजायकै॥ २२॥

दोहा—गिरिधरको गिरि कर धरे, बीत गये दिन सात।
ब्रजवासी आनँद सबै, लगी न वर्षा बात॥

उस दिन ब्रजवासी भूख-प्यास तज चकोरकी नाईं श्रीकृष्णचन्द्रके चन्द्रमुखको ही देखते रहे और श्यामसुन्दर भी सात दिनतक पर्वतको धारण किये एक ही ठौर जहांके तहां खड़े रहे, एक तिलभर भी चरणको नहीं सरकाया ॥२३॥ और मेघ उसी प्रकार मूसलधार जल बरसता रहा, ओले पड़ते रहे, चपला चमकती रही।

दोहा–बार बार चपला चमक, चख चौंधत चहुँ ओर।
अरर अरर आकाशते, जल वर्षत घन घोर॥

और उधर चक्रसुदर्शन इस धूमधामसे पर्वतके ऊपर घूम रहा था और अपने तेजसे जलको ऐसे भस्म कर रहा था जैसे गर्म हवा पानीको जलाता चला जाता है। एक बूंद ब्रजमें न पहुँची सब प्रलय का पानी समाप्त हो गया और मेघ वर्ष-वर्षकर हार गये, परंतु ब्रजमें एक बूंद भी न गयी। यह बात सुन इंद्र चकित हो गया और कृष्णके योगबलका प्रभाव देख अपने मनमें बड़ा आश्चर्य मानने लगा और अपनी प्रतिज्ञाकी अवज्ञा देख अत्यन्त व्याकुल हुआ और सब अज्ञान अभिमान धूलमें मिल गया, मेघोंको वर्जने लगा कि अब तुम्हारा बल यहां नहीं चलेगा ॥२४॥ जब आकाशमें बादल छिन्न-भिन्न हो गये, सूर्यनारायण उदय हुए, भयानक वर्षा और पवन चलनेसे बन्द हो गयी, तब गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णमुरारीने गोपोंसे कहा कि ॥ २५ ॥ हे गोपो ! स्त्री, बालक, गाय, बछड़ोंको लेकर तुम इस पर्वतके नीचेसे बाहर निकलो, डरो मत। अब पवन, वर्षा थम गई, नदियोंका जल भी उतर गया॥२६॥ तब बांकेबिहारीकी मधुरवाणी सुन सब गोप गोपी अपने-अपने बाल बच्चे और गायोंके समूहोंको ले-लेकर और गाड़ियोंमें सब वस्तु धर-धरकर स्त्री, बालक, वृद्ध, सब सहज-सहजमें निकले ॥ २७ ॥ सर्व सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सब ब्रजवासियोंके सम्मुख पर्वतको जहांका तहां रख दिया ॥२८॥ प्रेममें प्रफुल्लित हो सब ब्रजवासी परस्पर आकर यथायोग्य मिलने लगे और स्नेहभरी गोपियां आनंदपूर्वक दही, अक्षत, जलसे पूजन कर मांगलिक आशीर्वाद देने लगीं।

चौ०–परो लाल तुमको श्रम भारी ❀ ह्वै हैं भुजा पिरात तुम्हारी ॥
अस कहि हरिभुज दाबन लागीं ❀ बोलहिं बचन प्रेमरस पागीं ॥२९॥

यशोदा, रोहिणी, नंदराय और बलियोंमें बलवान् श्री बलदेवजी महाराज श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर स्नेहमें मग्न होकर वारंवार आशीर्वाद देते थे ॥ ३० ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! अन्तरिक्षमें देवताओंके समूह, साध्यगण, सिद्ध, गंधर्व, चारण, सन्तुष्ट होकर स्तुति पढ़-पढ़ फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! स्वर्गमें देवता शंख और दुन्दुभी बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वपति श्रीमुकुन्द भगवान्के गुणानुवाद गाने लगे ॥ ३२ ॥ नन्दजीने यशोदासे कहा कि जो आज गिरिराज हमारी सहायता न करते तो इस समय न जाने हमारी क्या दुर्दशा होती, अब सबको उचित है कि उसी प्रकार फिर गिरिराजका पूजन करो।

दोहा–अब गिरिको पूजो बहुरि, सबको कह्यो सुनाय।
बूड़तते राखो ब्रजहि, कीन्ही बहुत सहाय॥

सोरठा–यह सुनि हर्ष बढ़ाय, गिरिवरको पूजो सबन।
अति हर्षित नँदराय, दियो दान विप्रन बहुत ॥

फिर नंद उपनन्द बलराम सहित मनमोहनप्यारे मित्रोंको सङ्ग ले ब्रजमें आये और गोपी परमानंन्द देनेवाली बनमाली श्री कृष्णकी मनोहर लीला गातीं चली आती थीं। इस प्रकार आनंदसहित सब अपने-अपने घर आये।

दोहा–घर घर ब्रज आनँद भयो, गावत मंगलचार।
आये सुरपति जीत कै, गिरिधर नंदकुमार ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे गोकुलरक्षानिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा–छब्बिसमें हरिके चरित, विस्मय युक्त निहार।
नन्द गर्गके वचन कह, वरणों यश विस्तार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! गोपोंने गोवर्द्धन उठाना और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक-अनेक कर्म और प्रभाव देख बड़ा आश्चर्य मान नन्दरायजीके पास आकर कहा ॥१॥ कि इस बालकके बड़े अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हमको संदेह होता है कि अपने स्वरूपके अयोग्य इस ग्रामके रहनेवाले पुरुषोंमें इनका जन्म होना कैसे संभव है? ॥२॥ क्योंकि जो सात वर्षके बालकने एक हाथसे लीला पूर्वक जिस प्रकार हाथी कमलको उठा लेता है, उसी प्रकार पर्वतको उठा लिया ॥३॥ और नेत्र मूँदे हुए अति छोटी अवस्थामें इस बालकने बड़े वेगवाली पूतनाके स्तनोंको प्राणसहित पान किया था, जैसे काल जीवन अथवा आयुर्बलको पीता है ॥४॥ देखो गाड़ीके नीचे पालनेमें सोते हुए रोते-रोते जो इस तीन महीनेके बालकने ऊपरको पांव उछाले तो चरणकी ठोकर लगकर गाड़ी उलटकर कैसी गिरी थी ? ॥ ५ ॥ और देखो ! जब एक ही वर्षका श्रीकृष्ण आंगनमें बैठा खेल रहा था, तब आकाशमें दैत्य तृणावर्त्त इसे हरकर ले गया, उस दैत्यका गला घोंटकर इसने कैसा मारा ? ॥६॥ और देखो ! कभी जब कृष्णने माखन चुराया था, तब यशोदाजीने इसे ऊखलसे बांध दिया और इसने वृक्षके बीचमें जाकर हाथोंसे उनको कैसा उखाड़ डाला ? ॥७॥ और देखो ! जब वनमें बलदेवजी सहित बछड़े चराते थे उस समय बकासुर इनके मारनेको आया, उसको दोनों हाथोंसे चोंच पकड़ कैसे चीर डाला ? ॥ ८ ॥ देखो ! बछड़ोंमें बछड़ेका रूप धरकर मारनेकी इच्छासे आये हुए वत्सासुरको मार उसकी देहको लीलापूर्वक कैथके वृक्षपर कैसा पटका था और लीलासे ही वह वृक्ष भी गिर गया ॥ ९ ॥ इसके उपरांत बलदेवजी सहित धेनुक असुरको मार और उसके संगियोंको भी मार फल जिसमें पक रहे उस तालवनको निर्भय कर दिया ॥१०॥ फिर महाबलवान् बलदेवजीसे अत्यन्त भयानक प्रलम्बासुर दैत्यको मरवाया और व्रजमें जो अग्नि लगी थी, उससे पशु तथा गोपोंको छुड़ा दिया ॥ ११ ॥ फिर देखो ! इसी कृष्णने अतिभयानक विषवाले कालियनागको दण्ड दे उसके मदको दूर कर बलात्कार दहमेंसे निकाल यमुनाको निर्विष कर दिया ॥ १२ ॥ हे नन्द ! हम सब व्रजवासियोंका इनमें बड़ा अनुराग है, अर्थात् इतना प्यार हो गया है कि छुड़ायेसे छूटना अत्यन्त

कठिन है और इन श्रीकृष्णका भी हममें स्वाभाविक प्यार है, अर्थात् यह श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं, यह शंका होती है ॥ १३ ॥ क्योंकि सातवर्षका बालक इतना बड़ा भारी पर्वत उठाले, यह बड़ा ही आश्चर्य है? इसलिए हे ब्रजनाथ! तुम्हारे पुत्रमें हमको शंका उत्पन्न होती है कि कदाचित् परमेश्वर न हों? इस कारण हम इसका विचार करेंगे कि तुम्हारे कैसा पुत्र हुआ है ॥१४॥ इस प्रकार गोपोंकी बातें सुन नंदजी बोले कि सन्देह करनेकी कुछ बात नहीं है, मैं इस बालककी जन्मपत्री लाता हूँ, जो कि गर्गाचार्यने बनाई है यह कहकर जन्मपत्री ले आये, और बोले कि हे गोपो! मेरी बात सुनो, जिससे इस बालकमेंसे तुम्हारी शंका मिट जायगी।गर्गाचार्यने इस बालकका नाम धरकर मुझे जो जो गुण बताये हैं,वह श्रवण करो॥१५॥ इस बालकके तीन वर्ण हैं और युग-युगमें देह धारण करता है; प्रथम इसका श्वेत वर्ण था, फिर रक्त और श्याम वर्ण हुआ और अब इसने कृष्णरूप धारण किया है ॥१६॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहां जन्म लिया है, इसलिए जाननेवाले इसको श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं, इसलिए जैसे-जैसे इसमें गुण होंगे वैसे-वैसे कर्म करेगा और उन्हींके अनुसार नाम होंगे ॥१८॥ ये तुम्हारा कल्याण करेंगे और गोप तथा गायोंको आनन्द देंगे, अधिक क्या कहें? इस कृष्णकी सहायतासे तुम सम्पूर्ण कष्टोंसे सहजमें ही छूट जाओगे ॥ १९ ॥ हे ब्रजराज! पहले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने राजा सहित पृथ्वीमें चोरोंसे पीड़ित साधुओंकी रक्षा की थी, तब साधुओंने वृद्धिको प्राप्त हो चोरोंको जीत लिया था॥२०॥जो बड़भागी पुरुष इन कृष्णसे प्रीति करते हैं, उनको वैरी सन्ताप नहीं देते; जिस प्रकार विष्णुभगवान्से रक्षित देवताओंको असुर नहीं सता सकते ॥ २१ ॥ इस कारण हे नंद! तुम्हारा यह पुत्र गुण, शोभा, कीर्ति, प्रभाव इत्यादिमें नारायणके समान है, अतः इसके कर्मोंमें आश्चर्य मत मानना ॥ २२ ॥ इस प्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मुझसे कहकर अपने घर को चले गये, उसी दिनसे बड़े-बड़े कार्य करनेवालोंमें श्रीकृष्णको मैं नारायणका अंश मानता हूँ ॥ २३ ॥ इस प्रकार ब्रजवासियोंने गर्गाचार्यका वचन नंदरायजीसे सुन प्रसन्न हो नंदजीकी पूजा की और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी शंका दूर हो गई ॥२४॥ यज्ञके नाशसे क्रोधित हो इंद्रने सात दिन-रात जब ब्रजपर मूसलाधार वर्षा की, उस समय ब्रजमें पत्थर पवनसे पीड़ित, ग्वालबाल पशु और स्त्रियोंको अपनी शरण आये देख जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दया आ गई और मुसकाकर जिस प्रकार बालक सर्पकी छत्रीको उखाड़ डालता है उसी प्रकार एक हाथसे गोवर्द्धनपर्वतको उखाड़ अपने हाथपर धारण कर ब्रजकी रक्षा की, वही इंद्रके मदको दूर करनेवाले गौवोंके इंद्र भगवान् वासुदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों❋॥२५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे गर्गगीतनिरूपणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

❋ शंका–सौ १०० यज्ञ करनेवाले राजा इन्द्रका तिरस्कार करके सुरभी जो गायें है, इन्होंने अपना इन्द्र श्रीकृष्णको क्यों किया। इन्द्र तो तीन लोकमें एक ही है हमने आजतक दूसरा इन्द्र सुना नहीं फिर उन्होंने दूसरा इन्द्र क्यों किया?

उत्तर–इन्द्रने गायोंका नाश करनेके लिये गोकुलमें बड़ी वर्षा की थी। गायोंको मारनेका विचार किया था इसलिये इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका विनाश हो गया। इन्द्रके दशवें अंशके पुण्यका नाश होनेसे सुरभियोंने अपना इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बनाया; क्योंकि गायोंने विचारा कि इन्द्र ऐसा चांडाल है कि जिसने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये अपना धर्म नहीं देखा और गोहत्यासे भी नहीं डरा तो और दूसरे कामसे क्या डरेगा? अबकी बार तो श्रीकृष्णचन्द्रने बचा लिया यह दुष्ट ऐसा कर्म फिर कभी करेगा तो हमारी बछिया-बछरे सब विध्वंस हो जायेंगे और वंशका नाश हो जायगा, इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्को अपना इन्द्र बनाया।

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, लख श्रीकृष्ण प्रभाव।
गाय इंद्र अभिषेक पुनि, वरणों सहज स्वभाव॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर जो ब्रजकी रक्षा की थी, देवराज इंद्रने जाकर सब बात कमलयोनि ब्रह्माजीको सुनायी तब ब्रह्माजी बोले कि इंद्र! तूने बड़ा अपराध किया पहले मैं भी उनके गोप, ग्वाल, बछड़े इत्यादि हरकर अपनी बूढ़ी पर धूल डाल चुका हूँ। यह बात सुनकर स्वर्ग लोकसे सुरभी गो और इंद्रलोकसे इन्द्र चले ॥१॥ और अपराध करनेके कारण अत्यन्त लज्जित हो इंद्रने एकांतमें आकर सूर्यके समान तेजवाले किरीटको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंसे लगाया ॥ २ ॥ अमित तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव जिस प्रकार कानोंसे श्रवण किया था, उसी प्रकार नेत्रोंसे देखा और उस समय 'त्रिलोकीका ईश्वर मैं हूँ।' यह मद भी जाता रहा, तब देवराज इन्द्र हाथ जोड़कर बोले ॥३॥ इन्द्रने कहा–तुम्हारा स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है अर्थात् एकरूप है, शांत-सर्वज्ञ है, रजोगुण-तमोगुणसे रहित है और मायाका जो कार्य अज्ञानसे जीवोंको लग रहा है, वही संसार है यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥४॥ हे ईश! देहसम्बंध तुमको नहीं है, तो उस देहसम्बंधसे किये हुए और अन्यदेहके कारण जो काम लोभादिक हैं वे कहांसे होंगे? बहुधा ऐसे काम लोभादिक जो अज्ञानी पुरुषोंको होते हैं; तुम्हारे काम लोभादिकके तो नहीं हैं, परंतु तो भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका मद दूर करनेके लिए तुम दण्ड देते हो ॥५॥ तुम जगत्के पिता, गुरु और ईश्वर हो, नाश रहित दंडके ग्रहण करनेवाले कालरूप हो, जीवोंका हित करनेके लिए और अपनेको ईश्वर माननेवालोंका मान दूर करनेके लिए अपनी इच्छापूर्वक रूप धरकर लीला करते हो, तुम्हारी लीलामें ही हमारे मान दूर हो जाते हैं; लोकोंकी वाहवाहमें जीवोंका सत्यानाश हो जाता है॥६॥ जो मुझ सरीखे अज्ञानी भी आपको जगत्का ईश्वर मानते हैं, वे भयके समय भी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्र ही ईश्वरत्वका मद त्याग कर देते हैं और गर्वको छोड़कर सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिको करते हैं, तुम्हारी सहजकी चेष्टा है, वही दुष्टोंको दण्डवत् ॥ ७ ॥ हे समर्थ! ऐश्वर्यके मदमें डूबे हुए तुम्हारे प्रभावको न जान तुम्हारा अपराध करने वाले मूढ़चित्त मेरे ऊपर क्षमा करो। हे ईश्वर! फिर मेरी ऐसी बुद्धि न हो, यही मैं प्रार्थना करता हूँ ॥८॥ हे अधोक्षज! इस संसारमें तुम्हारा अवतार बड़ा भार जिनसे हो ऐसे सैन्य पालन करने वाले मुख्य सेनापतियोंको मारनेके कारण और तुम्हारे चरणोंका सेवन करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिए है ॥ ९ ॥ ऐसे जो तुम भगवान् महात्मा पुरुष हो, तुम्हारे लिए नमस्कार है शुद्ध अंतःकरणके प्रकाशक भक्तोंके रक्षक वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिए देह धरनेवाले और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण रूप प्राणियोंके आत्मा तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन्! जब मेरा यज्ञ नाशको प्राप्त हुआ तब बड़ा क्रोध कर मुझ अज्ञानी अभिमानीने ब्रजका नाश करनेके लिए वर्षा और पवन चलाकर करनेके अयोग्य कार्य किये ॥ १२ ॥ यह आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया जो मेरा गर्व दूर कर दिया, उद्यम भी वृथा गया, तुम सबके ईश्वर आत्मा हो इसलिये मैं तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ ॥ १३ ॥ इस प्रकार जब देवराज इंद्रने स्तुति की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर मेघके समान

गम्भीर वाणीसे इन्द्रके प्रति बोले ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे इन्द्र ! मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करनेके ही लिये यज्ञका विध्वंस किया है, क्योंकि तुम देवताओंका राज्य पाकर अचेत हो गये थे, अपना स्मरण करानेके लिये यह मैंने किया है ॥१५॥ क्योंकि ऐश्वर्यमद और धनमदसे अन्धे हुए पुरुष दंड हाथमें लिये यह मुझे नहीं देखते और जिसके ऊपर मैं कृपा करनेकी इच्छा करता हूँ उस पुरुषकी प्रथम संपत्ति हर लेता हूँ ॥१६॥ इन्द्र अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, अहंकार त्याग कर मेरी आज्ञाका पालन करना और सावधान होकर अपने अधिकार पर रहना ॥ १७ ॥ इसके उपरांत जब इन्द्र स्तुति कर चुका तब उदारचित्त सुरभी गायें अपनी सन्तानसहित आकर गोरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार और सम्बोधन देकर कहा कि ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! अच्युत ! हे अखण्डरूप ! इन्द्रने तो हमें मारा ही था, परन्तु हे लोकोंके नाथ ! आपने बचाया ॥ १९ ॥ हे जगत्पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुम्ही गौ ब्राह्मणोंके देवता हो और जो साधु हैं उनके कल्याणार्थ हमारे इंद्र होओ ॥२०॥ ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा हुई है, इस कारण इन्द्रपदवी देनेके लिये हम तुम्हारा अभिषेक करेंगी । हे विश्वके आत्मा ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तुमने अवतार लिया है ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुल भूषण परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णचन्द्रका, यह कामधेनु अपने दुग्धसे अभिषेक करने लगी और ऐरावत हाथी की सूँड़से लाये आकाश-गङ्गाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इन्द्रने भी देवताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥ २३ ॥ और दशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उस समय तुंबुरू, नारदादि गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध चारण आकर लोकोंके पापोंको दूर करनेके लिये यश गाने लगे और अति आनंदित होकर देवांगनायें नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ इसके उपरांत देवताओंमें मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति और अद्भुत फूलोंकी वर्षा करने लगे, उस समय तीनों लोक परम आनन्दको प्राप्त हो गये । फिर गो दुग्धसे पृथ्वीको भिगोने लगी ॥ २५ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक किया, उस समय नदियाँ अनेक प्रकारके रसोंकी बहानेवाली हो गयीं और वृक्षोंमें मदकी धारा चूने लगी बिना जोते खेत भी आप ही पकने लगे और पर्वतोंने अपनी गुफाओंमेंसे मणियोंको बाहर निकालकर धर दिया ॥ २६ ॥ हे कुरुकुलके आनन्ददाता परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक हुआ, उस समय क्रूरस्वभाववाले सिंहादिक जीवोंका भी वैरभाव दूर हो गया ॥ २७ ॥ इस प्रकार गोकुलकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोविन्दाभिषेक कर वह इन्द्र देवताओंको सङ्ग ले स्वर्गको चला गया ॥ २८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे इन्द्रस्तुतिगोविन्दाभिषेक नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा-अट्ठाइसमें नन्दको, लाये कृष्ण छुटाय ॥
गोपोंको वैकुण्ठ सब, हित करि दियो दिखाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! नन्दजीने एकादशीको निराहार व्रत करके भगवान्का पूजन किया, दूसरे दिन द्वादशी दो घड़ी थी उस समय पारण करनेके लिये अरुणोदयसे पहले

रात्रिमें धर्मसत्रके बलसे स्नान करनेके कारण यमुनाको गये, तब नंदरायजीने आसुरीवेलाको न जानकर यमुनाजीमें प्रवेश किया ॥१॥ इसलिये वरुणका एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास ले गया ॥ २ ॥ नंदरायजीको न देख जो गोप संग गये थे, वे हे कृष्ण! हे राम! इस प्रकार पुकारने लगे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, पिताको वरुण ले गया यह बात सुन अपने भक्तको अभयके देनेवाले वरुणके पास गये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे बड़ा आनंद पाकर लोकोंके पालन करनेवाले वरुणजीने इंद्रियोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आये देख बड़ी पूजाकी सामग्रियोंसे पूजा करके कहा ॥ ४ ॥ वरुणजी बोले कि आज तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल हुआ और आज ही मेरे मनोरथ भी सफल हुए। हे भगवन्! तुम्हारे चरणारविंदोंका भजन करते हैं, वे संसारके पार हो मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ परिपूर्णरूप, सम्पूर्ण जीवोंके साक्षी, जिनके समान किसीका ऐश्वर्य नहीं, ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है और जिनके स्वरूपमें लोकोंकी रचना करनेवाली माया नहीं सुनी जाती ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमा और कार्यको नहीं जाननेवाला मूढ़ मेरा अनुचर तुम्हारे पिताको ले आया, वह अपराध क्षमा करो ॥ ७ ॥ हे श्रीकृष्ण! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करनेके योग्य हो, हे गोविंद! हे पितृवत्सल! अपने पिताको तुम ले जावो ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित्! इस प्रकार ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जब वरुणजीने प्रसन्न किया तब अपने पिता और बंधु बांधवोंको आनंद देते वहांसे चले ॥ ९ ॥ जो प्रथम कभी देखनेमें न आया, ऐसा वरुणका ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी प्रीति देख नन्दरायजी अति आश्चर्य मान अपनी जातिके गोपोंसे कहने लगे कि प्रथम मुझे ले जाकर एक कोनेमें बैठा दिया। इसके उपरांत यह कृष्ण गया, तब इसे देख वरुणने नमस्कार करके पूजा की ॥१०॥ हे राजन्! उत्कंठायुक्त बुद्धिसे ब्रजवासी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ईश्वर मान विचार कर कहने लगे कि, हे श्रीकृष्णचन्द्र! क्या हमको वैकुण्ठधाम प्राप्त कराओगे? ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रह्मस्वरूपका दर्शन करावेंगे ॥११॥ इस प्रकार सबके देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने ब्रजवासियोंका मनोरथ जान उसे पूर्ण करनेके लिये कृपा करके यह विचार करने लगे ॥१२॥ कि इस संसारमें प्राणी देहमें अहंकार, काम, कर्म, इत्यादिसे देवता, पशु, पक्षी आदि जो-जो योनि हैं, उनमें भटकता-फिरता है और अपना स्वरूप नहीं जानता ॥ १३ ॥ इस प्रकार करुणा निधान भगवान्‌ने विचार कर गोपादिक सब ब्रजवासियोंको ब्रह्मरूप दिखाया और इसके उपरांत मायासे परे जो वैकुण्ठधाम है उसका दर्शन कराया ॥ १४ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करते हैं, सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है, अनन्त अर्थात् देखनेमें न आये, ज्योति अर्थात् स्वयंप्रकाश है, गुणोंके निषेधमें सावधान मुनीश्वर उस रूपको देखते हैं ॥ १५ ॥ वह सम्पूर्ण ब्रजवासी ब्रह्मस्वरूप देहमें प्राप्त होते ही मग्न हो गये, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कृपा कर वहांसे निकाल वैकुण्ठ लोक दिखाया, जहां प्रथम महात्मा अक्रूरजी गये थे, यहां शंका है कि ब्रह्ममें डूबेको वैकुण्ठलोकका दर्शन नहीं बनता तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे पहले अक्रूरजीने दर्शन किया था, उन्हीं श्रीकृष्णकी कृपासे इन लोगोंने दर्शन किया, क्योंकि अचिंत्य ऐश्वर्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीमें कुछ यह बात अनुचित नहीं है ॥ १६ ॥ हे नृप! वहां वेदोंसे होती हुई भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति देख और नंदादि सब ब्रजवासियोंने वैकुण्ठधर्मका दर्शन कर परमानन्दसे सुखी हो बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥ १७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे गर्गगीतवर्णनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा–उनतीसमें हरिने कियो, रासविलास बनाय।
अन्तर्धान भये तुरत, सबन वहीं छिटकाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित्! गोपकन्याओंसे जिन रात्रियोंकी प्रतिज्ञा की थी जब वही शरदृऋतु आकर उपस्थित हुई कि जहां-तहां चमेली खिल रही थीं, उन रात्रियोंको देख योगमायाका आश्रय ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रमण करनेका मनोरथ करने लगे ॥१॥ और उसी समय सुखदायक किरणोंसे पूर्व दिशाके मुखको अरुण करते भगवान् चन्द्रमा उदय हुए, जैसे परदेशसे बहुत दिनोंमें पुरुष आकर अपनी प्यारीके मुखको केशर लगाकर लाल करता है ॥२॥ परिपूर्ण मण्डल और लक्ष्मीके मुखके समान कांति, नवीन केशरके तुल्य अरुण चन्द्रमाको देख और राकाकी कोमल किरणोंसे रँगे वृन्दावनको देख भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्त्रियोंके मन हरणकरनेवाले कलरवसे गीत गाने लगे, इस कलरवमेंसे ही बीजमंत्र 'क्लीं' निकलता है॥३॥प्रेमात्मक कामके बढ़ानेवाले गीतको श्रवणकर श्रीकृष्णचन्द्रने जिनके मन हर लिये हैं वे स्त्रियाँ जहां पति श्रीकृष्णचन्द्र थे वहां आयीं और "अरी किशोरी चलेगी?" इस प्रकार परस्पर कह अत्यन्त शीघ्रतासे चलीं। चलते समय उनके कानोंके कुण्डल हिलते जाते थे ॥ ४ ॥ कितनी ही गोपियाँ उत्कण्ठाके कारण दुहती हुई गायोंको छोड़कर चली आयीं और दूसरी चूल्हेपर चढ़े हुए दूधको वैसा ही छोड़कर चलीं, बहुत गोपियाँ गेहूँका पका हुआ पदार्थ चूल्हेपर ही छोड़कर चल दीं ॥५॥ कितनी ही एक पत्तल परोसती थीं, वे बंशीकी ध्वनि सुनते ही छोड़कर चली आयीं और कितनी एक गोपी अपने देवर जेठके बालकोंको दूध पिलाती थीं उनको छोड़कर आयीं। कोई-कोई गोपी अपने पतिकी सेवा करनेसे ही चलीं और कोई-कोई भोजन करनेसे ही चली आयीं ॥ ६ ॥

कबित्त–बाजी बौरानी बाजी देखिबेको धाईं बाजी बाजी, अकुलानी सुनि वंशी वंशीधरकी। बाजी न सम्हारैं चीर बाजी नहिं धरैं धीर बाजीनके उठी पीर विरहानल भरकी ॥ बाजी नाहिं बोलै बाजी संग लागि डोलै बाजी, बाजिनको बिसरिगी सुधि बुधि घरकी। बाजी कहैं बाजी बाजी बाजी कहैं कहां बाजी बाजी कहैं वन बाजी बंशी गिरिधरकी ॥

कोई-कोई गोपी घरोंको लीपती, कोई नेत्रोंमें अंजन लगाती, कोई पांवोंके गहने हाथोंमें पहन और हाथोंके पावोंमें पहन, लहंगा ओढ़, ओढ़नी पहर भगवान् मुरली मनोहरके पास आयीं ॥७॥ "यद्यपि गोपियोंके शृङ्गार उलटे-पुलटे थे, परंतु तो भी योगमायाने सुधार दिये थे" *

---

* दृष्टान्त–जैसे आठ छैलोंने शैर करनेको निकल बागमें जाकर कहा कि भांग बनाओ। सो मीठी ही छानी और मिठाईकी लालचसे तानकर लोटे-लोटे गड़गप्प कर गये अर्थात् पी गये। एक मित्र उनमें चतुर था, उसने मनमें विचार किया कि अभ्यास तो है नहीं और तीन-तीन लोटे चढ़ा गये हैं, जब ये बेसुध हो जायेंगे इन्हें कौन सँभालेगा? उसने एक चुल्लू भर ही पी थी। अब चढ़ा जो नशा तो किसीकी तो पाग गिर गयी, किसीका पटका छूट गया, किसीकी धोती खुल गयी, परन्तु जिसको नशा नहीं था उसने सबको सँभाल लिया। इसी प्रकार योगमायाने सबको सुधार दिया।

यद्यपि पति, पिता, माता, भ्राता, और जातियोंने मने भी किया परंतु तो भी भगवान् केशव मूर्तिने जिनके मन हर लिये थे, उन गोपियोंने किसीका कहना नहीं माना ॥ ८ ॥ किसी गोपीको उनके पुरुषोंने घरमें बन्द कर दिया, जब निकलनेका मार्ग न मिला, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी इच्छा कर आंखें मूँद उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥ सहन न किया जाय ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसे पाप जिनके दूर हो गये और ध्यानमें प्राप्त हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करके सुखके पुण्यसे बंधन जिनके दूर हो गये, ऐसे अत्यंत विरहके दुःख और श्रीकृष्णकी अत्यंत प्राप्तिके भोगसे एक संग ही सब प्रारब्धकर्म क्षीण हो जानेसे मुक्त हुई ॥१०॥ जारबुद्धिसे परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको पाकर बंधन जिनके कट गये, ऐसी गोपियोंने गुणोंके बने देहको तत्काल ही त्याग दिया और दिव्य देह धारण कर सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं ॥११॥ यह सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे महाराज! वह गोपियां श्रीकृष्णचन्द्रको केवल जार मानती थीं, ब्रह्मपनमें उनका किंचित भी भाव नहीं था, फिर गुणमय बुद्धिवाली उन गोपियोंके गुणोंका प्रभाव संसारसे कैसे छूट गया? ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यह बात मैंने आपसे प्रथम ही वर्णन की थी कि जब शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे शत्रुभाव रखता हुआ भी मुक्तिको प्राप्त हुआ, तब प्रीति करनेवाली गोपियोंके तरनेमें क्या आश्चर्य है ?॥१३॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियंता श्रीकृष्णचंद्रका जो प्रकट होना है, वह पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये है, इस कारण भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको जीवके समान कहना सम्भव नहीं ॥ १४ ॥ काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकभाव सौहृद जो पुरुष नित्य भगवान् वासुदेवमें करते हैं, वे पुरुष तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन्! अजन्मा योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें तुम आश्चर्य मत करो, क्योंकि उनमें प्रेम करनेसे स्थावर भी संसारसे छूट जाते हैं❋ ॥ १६ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने ब्रजकी स्त्रियोंको अपने पास आयी देख, बाणियोंके विलाससे मोहित करके कहा॥१७॥श्रीभगवान् बोले कि हे बड़भागिनियो! भली आयी, आओ। मैं तुम्हारा क्या आदर करूँ? ब्रजमें तो कुशल है और यहां कैसे आयी इसका कारण कहो ॥ १८ ॥

बृन्दावनमें रात समय तुम क्यों आई हो।
दीजो मोहिं बताय फिरत क्यों घबराई हो ॥

क्योंकि यह भयानक रात्रि है, सिंह व्याघ्रादि घोर प्राणी यहां फिरते हैं इस कारण तुम अपने घरको जाओ, हे सुमध्यमे! स्त्री जाति होकर यहां मत रहो ॥ १९ ॥

दोहा—तजकर पति अपने सखी, अर्द्धरात्रिके माहिं।
आई बनके भीतरे, ऐसी चहिये नाहिं ॥

देखो तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता, पति तुमको बिना देखे ढूंढ़ते होंगे, इसलिये बन्धुओंको घबड़ाहट मत करो ॥ २० ॥ क्योंकि फुलवारी जिसमें फूल रही, चन्द्रमाकी

❋ दृष्टान्त- प्रेम से भाव सहित श्रीनारायण की कथा सुन ले। कहीं श्रीमद्भागवत की कथा बैठी थी किसी ने कहा- लालाजी! सुनने को चलो। लालाजी ने उत्तर दिया कि जब दशम स्कन्ध प्रारंभ होगा तब चलेंगे, फिर दशम होने लगा, तो लाला ने कहा कि पंचाध्यायी में चलेंगे, जहां श्रीकृष्ण ने लाखों गोपी बुला कर उसके संग विहार किया था। हम भी वैसा ही करेंगे, जैसे वीर पुरुष कड़ावे सुन कर आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार विषयी विषय से और जगह जो भाव बिगड़े तो ठिकाना लग जाय और जो साक्षात् कृष्णकांता त्रैलोक्यजननी में भाव बिगड़ा तो उसका सत्यानाश ही हो जाता है।

किरणोंसे रँगा हुआ यमुनासे लगे मन्द पवनसे हिलनेवाले वृक्षोंके पातसे शोभायमान वन तुमने भली-भांति देख लिया ॥२१॥ इस कारण तुम ब्रजमें जाओ,अब विलम्ब मत करो,तुम पतिव्रता हो; पतियोंकी सेवा करो, क्योंकि वहां बछड़े रम्भाते होंगे, बालक रोते होंगे,जाओ ! बालकोंको दूध पिला और गायोंको दुहो ॥२२॥ अथवा मेरे स्नेहसे वशीभूत अन्तःकरणसे तुम आयीं, तुमको योग्य ही है, क्योंकि सब जीव मुझमें प्यार करते हैं ॥२३॥ हे मंगल रूपिणियो ! निष्कपट होकर पतियोंकी सेवा करो, देवरोंकी सेवा करो और पुत्रोंका पोषण करो; यही स्त्रियोंका परमधर्म है ॥२४॥ यदि कदाचित् अपना पति खोटे स्वभावयुक्त हो, दुर्भाग्य हो अथवा वृद्ध हो, मूर्ख हो, रोगी हो, दरिद्री हो, तो भी स्वर्गकी जिनको चाहना है, ऐसी स्त्रियोंके त्यागने योग्य नहीं है और पतित हो तो त्यागने योग्य है ॥ २५ ॥

नारिनके पति देव, वेद नित यही बखानै
ब्रह्मा विष्णु महेश, नारि पतिहीको मानै ॥

कलियुगकी स्त्रियोंको उपपतिके सेवन करनेसे स्वर्ग नहीं मिलता बरन् यश जाता है, इसलिये उपपतिका सेवन तुच्छ है, दुःखका देनेवाला है, और सर्वत्र निन्दाके योग्य है ॥२६॥ जिस प्रकार भाव मुझमें श्रवण,दर्शन,ध्यान,कीर्त्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं होता; इसलिये अपने घरको जाओ। ❀ श्रीकृष्णचन्द्रने इस कारण गोपियोंसे 'जाओ, जाओ' कहा कि जो मैं इनसे कहूँगा तुम मेरे साथ विहार करो तो यह गालियाँ देंगी और निकट भी न आयेंगी इससे प्रथम ही उनके मान खण्डन करूँ तो फिर यह आप ही मेरा पल्ला पकड़ेंगी ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियाँ गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित हुईं और मनोरथके सिद्ध न होनेसे बड़ी चिन्ता करने लगीं ॥ २८ ॥ चिन्ताके श्वाससे कुन्दरूके फलके समान उनके अरुण होठ सूख गये और अपने मुखोंको नीचा कर चरणके अँगूठेसे धरतीपर लिखने लगीं और रुदनके कारण नेत्रोंसे कज्जल-सहित जो आंसू निकल रहे थे उनसे कुचोंकी केशर धुल गयी, तब अत्यन्त दुःखके कारणसे गोपी चुपचाप होकर खड़ी हो गयीं ॥२९॥ जिनके लिये गोपियोंने सब घरबार छोड़ दिये उन अपने परमप्रीतम श्रीकृष्णचन्द्रके कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियाँ रोनेके कारण आसुओंसे पूर्ण नेत्रोंको पोछ कर कुछेक क्रोधित हो गद्गद कण्ठसे बोलीं॥३०॥कि हे समर्थ !

दोहा–अरे निर्दयी सांवरे, बोलत वचन कठोर ।
हम सबके मन हर लिये, मुरलीकी घनघोर ॥

---

* दृष्टान्त–देखो स्त्रियोंको पतिव्रतधर्म पालन करना चाहिये, क्योंकि पतिव्रताओंकी बड़ी महिमा है । एक स्त्रीकी गोदीमें उसका पति शिर धरे सो रहा था, उसका बालक खेलते-खेलते अग्निमें जा पड़ा स्त्रीने यह देखा। पतिकी निद्रा भंग न हो यह विचार अपना घुटुआ न उठाया और अग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल हो गयी, यथा :—

श्लोक–"सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता । अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः ॥ १ ॥" इस कारण हे सखियो ! अपने पतियोंके पास जाओ ।

■ दृष्टान्त–श्रीकृष्णने बंशी तो बजा दी, परंतु और [redacted] लाखों गोपियोंने आकर घेर लिया, तब बुद्धि विहारी हो गयी जैसे किसीके बालक घरमें रुईका फोहा जलाते हैं, और फिर प्रसन्न होते हैं सो बाजारमें किसी साहूकारके दूकानमें लाख रुपयेकी रुईका ढेर लगा देख उन्होंने मनमें विचार किया कि इसमें बड़ा तमाशा होगा । ढेरमें आग लगा दी जब तक वह ढेर थोड़ा-थोड़ा जला तब तक तो ताली बजाते रहे और जिस समय आग से ऊंची ऊंची लपटें निकलने लगी [redacted] तो घबड़ा गये । इसी प्रकार श्रीकृष्ण की दशा हुई, जब एकाध गोपीको कहीं देख पाते थे तब तो प्रसन्न होते थे, जब लाखों गोपियोंको देखा तो घबड़ाकर घर जानेको कहा ।

"जाओ जाओ" ऐसे कठोर वचन मत कहो, क्योंकि हम सब विषयोंको त्यागकर केवल तुम्हारे ही चरणोंका सेवन करती हैं। हे दुराग्रही! हमको मत त्यागो, जैसे आदिपुरुष भगवान्‌की शरण सर्व त्यागकर मुमुक्षुलोग जाते हैं, तो मुमुक्षु पुरुषोंको वह भजते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागकर हम आयी हैं, इसलिये हमारा सेवन करो, त्यागो मत ॥३१॥ हे धर्मवेत्ता कृष्ण! पति,पुत्र, सुतोंकी सेवा करो, यह स्त्रियोंका परमधर्म है, यह जो तुमने कहा, वह हमारी धर्म सुननेकी इच्छा नहीं है, क्योंकि हमें चाहना नहीं है, तुम धर्मके उपदेश करनेवाले नहीं हो, किन्तु देहधारियोंके प्यारे हो। आपने कहा—पति आदिकोंकी सेवा करना धर्म है; आत्मासहित पति आदिक प्रिय लगते हैं, स्त्रीको पति प्यारा लगता है, आत्मासे लगता है, वह आत्मा जब निकल जाता है, पीछे इस देहको बांधकर ले जाते हैं,और जला देते हैं। सबके आत्मा तुम हो; तुम्हारे सेवन करनेसे ही हमें सब धर्म स्वयं प्राप्त हो जायँगे, क्योंकि सब उपदेशवाक्य ईश्वरकी सेवा करना ही परमधर्म बताते हैं; इस कारण तुम सब जीवोंके आत्मा होनेसे परमबन्धु ईश्वर हो, तुमसे जो जीव बहिर्मुख हैं वे दग्ध होनेके योग्य हैं॥३२॥अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो, अतः आपमें विवेकी पुरुष प्रीति करते हैं, दुःखके देनेवाले पति पुत्रादिकोंसे क्या प्रयोजन है? इस कारण-तुम हमपर-प्रसन्न हो। हे कमलदल लोचन भगवन्! बहुत दिनोंसे तुममें आकाशरूपी लता लगायी है, उसे "जाओ जाओ" ऐसे कुठारी रूप वचनसे कैसे काटते हो? देखो! विषके वृक्षको भी बढ़ाकर विवेकी पुरुष नहीं काटते हैं ॥३३ ॥ तुमने कहा-जाओ,हम कैसे जायँ? क्योंकि जो चित्त सुखपूर्वक घरमें लग रहा था, वह तुमने हर लिया और जिन हाथोंसे घरका काम करती थीं, वह तुमने हर लिये। तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि, हे गोपियो! अब तुम जाओ,परसोंके दिन तुम सबके चित्त प्रसन्न कर देंगे,तो गोपियोंने कहा कि तुम्हारे चरण छोड़कर हमारे पाँव एक पग भी नहीं चल सकते,ब्रजमें कैसे जायँ?और जाकर हम क्या करें?॥३४॥ हे सखे! आपके हास्य,दर्शन और मधुर गीतसे उत्पन्न हुई हमारी कामाग्निको तुम अपने अधरामृतरूप पिचकारीसे शांत करो, नहीं तो हम एक तो कामकी अग्नि और दूसरी विरहकी अग्नि इन दोनोंसे दग्धशरीर हो योगी जनोंकी नाईं तुम्हारे ध्यानसे ही तुम्हारे चरणोंके निकट पहुँच जायँगी ॥३५॥तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि तुम अपने पतियोंके पास जाओ,वही तुम्हारी कामाग्नि बुझायेंगे। इसके उत्तरमें गोपी कहती हैं कि हे कमलदललोचन! वनवासी जिन्हें प्रिय है, ऐसे तुम हो और लक्ष्मीजीको किसी समय ही जिनकी सेवा प्राप्त होती है, ऐसे तुम्हारे चरणोंके तलुए हमने जबसे स्पर्श किये, उसी दिनसे उनका सुख अनुभव किया और उसी दिनसे औरके सम्मुख खड़ी भी नहीं हो सकतीं ॥३६॥ यद्यपि लक्ष्मीजी सदा वक्षस्थलमें रहती हैं परन्तु तो भी जिसका

---

* शंका—जैसे कामदेवसे पीड़ित होकर मनुष्योंकि स्त्री ओष्ठ चुम्बन करनेके लिये मनुष्योंकी विनती करती हैं और गोपी तो मोक्षकी रूप थीं परंतु कामकी शांति करनेके लिये पूर्णब्रह्म सरीखे जो श्रीकृष्ण हैं, उनसे ओठ चुम्बन करनेके लिये याचना क्यों की।

उत्तर—गोपियोंने विचार किया कि हम कुछ पढ़ी नहीं और श्रीकृष्णकी जैसे विद्वान् लोग स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, वैसी स्तुति हम भी करना चाहती हैं परंतु विना विद्या हम कैसे स्तोत्रोंसे स्तुति करें? परंतु हमने ऐसा भी सुना है कि श्रीकृष्णके ओष्ठमें सरस्वतीका वास है, जो हमारे सबके ओष्ठोंमें श्रीकृष्णके ओष्ठ छू जायेंगे तो हम सब विदुषी हो जायेंगी, तब अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति हम भी विद्वानोंके सदृश किया करेंगी, कुछ कामदेवकी पीड़ासे कृष्णके ओष्ठोंका चुम्बन करना नहीं चाहती थीं।

भक्तलोग सेवन करते हैं, ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुको तुलसीने सौत सहित चाहना की, जिस लक्ष्मीजीकी चितवनके लिये और देवता तप करके परिश्रम करते हैं, उन्हीं लक्ष्मीके समान हम भी तुम्हारे चरणकी रजको प्राप्त हुई हैं, अर्थात् शरण ली हैं ॥३७॥ हे दुःखके काटनेवाले ! तुम्हारे भजनमें आशा लगाये हम घर छोड़कर तुम्हारे चरणके पास आयी हैं, तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, तुम्हारी सुन्दर मुसकान चितवनसे बढ़े हुए कामदेवसे पीड़ित देहवाली हमको अपनी दासी करके कृपा कीजिए ॥ ३८ ॥ अलकावली जिसपर छूट रहीं और कुण्डलोंकी कांतिसे युक्त कपोल अमृत भरे ओष्ठमें हास्यसहित चितवनवाले तुम्हारे मुखको देख और भक्तोंको अभयदान देनेवाले तुम्हारे दोनों भुजदण्डोंको देखकर लक्ष्मीको एक ही प्रीतिके उपजानेवाले तुम्हारे वक्षस्थलको देख हम तुम्हारी दासी होती हैं हे कृष्ण ! मनोहर पदवाले बड़े बांसुरीके गीतसे मोहित होकर त्रिलोकीमें ऐसी कौन स्त्री है जो अपने धर्मसे चलायमान न हो । त्रिलोकीमें सुन्दर इस तुम्हारे रूपको देख गौ, पक्षी, मृग आदि भी रोमांचित हो जाते हैं, फिर हम इस मनमोहन रूपसे मोहित हो गयीं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसे त्याग करनेमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और आपने निश्चय व्रजके भय पीड़ा दूर करनेके लिये अवतार लिया है, जैसे आदि पुरुष श्रीनारायण स्वर्गकी रक्षा करते हैं । इस कारण हे दीनबन्धो ! हम तुम्हारी दासी हैं, हमारे कामदेवसे तप्त स्तन और शिरोंपर अपने हस्तकमलको धरो ॥ ४१ ॥

दोहा–अब तुमको यह उचित है, सुनो श्याम सुखराश ।
मन हमरो अपनायके, अब तुम करत निराश ॥

सोरठा–पाप पुण्य कह नाथ, यह तो हम जाने नहीं ।
बिकीं तुम्हारे हाथ, अधरामृतके लोभसे ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंका विलाप सुन हँसकर दयाको प्राप्त हो आत्माराम भी हैं तो भी गोपियोंके सङ्ग रमण करने लगे ॥४२॥ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवनसे प्रफुल्लित मुखवाली इकट्ठी हुई गोपियोंके सहित उदार जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हँसनिमें कुन्दकलीके समान कांतिवाले दांतोंसे श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे तारागण सहित चन्द्रमा शोभायमान लगता है ॥४३॥ गोपियां जिनका गान करें और स्त्रियोंके सैकड़ों यूथका पालन करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं गान करते वैजयन्ती माला पहने वनको शोभायमान करते विहार करने लगे ॥ ४४ ॥ शीतल बालूके बिछौनेवाले यमुनाजीके पुलिनमें गोपियों सहित आकर रमण करने लगे, वहां यमुनाजीकी लहरका आनंद और कमलोंकी सुगन्धसनी वायुसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥४५॥ भुजाओंका पसारना, आलिंगन करना, कर, अलक, ऊरू, नीवी, स्तन, इनका स्पर्श करना, परिहासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, क्रीड़ा, चितवन और हँसियोंसे व्रजसुन्दरियोंको भगवान् काम उद्दीपन कराकर रमण करने लगे ॥४६॥ इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रसे मान जिन्होंने प्राप्त किया, ऐसी गोपियां मानवती होकर पृथ्वीकी स्त्रियोंमें अपनेको अधिक मानने लगीं ॥४७॥ ब्रह्मा और महादेवको वशमें करनेवाले

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंको सौभाग्यके मदसे अपने अधीन देख उनका गर्व दूर करने और कृपा करनेके लिए उस रासमंडलमें ही अंतर्धान हो गये, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि अभी तो रासका प्रारंभ ही हुआ है। सेरमें पौन भी नहीं और इन्हें मान हो गया, जो ऐसे लाखों गोपियोंके पांव पड़ता फिरूँ तो वर्षों लग जायँ, फिर रास कैसे होगा! इस कारण उनका मानभङ्ग करनेको अंतर्धान हो गये। अथवा जो प्यारी थीं, उनका मान घटने लगा कि देखो हमको भी कृष्ण सबकी बराबर देखते हैं और साधारणका मान बढ़ा कि प्यारी गोपी हमारे अधीन हैं सो दोनोंका मान समान करनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हो गये।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनाम शुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धान नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा–तीसमाहिं सब ग्वालिनी, भई हाल बेहाल।
वन वन फिरत विरह दही, कहां गये नंदलाल ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित! जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रासमंडलमेंसे अंतर्धान हो गए, उस समय तत्काल ही ब्रजकी स्त्रियां तथा गोपियां उनके देखे विना अत्यन्त व्याकुल हो गयीं ॥१॥ जिस प्रकार हाथीके देखे विना हथिनियाँ व्याकुल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी चलनि, स्नेह भरी मुसकान, विलासपूर्वक चितवन और मधुर बोलनेकी क्रीड़ाओंमें मन जिनके लग रहे हैं, ऐसी गोपियाँ तन्मय हो गयीं, अतः उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥२॥ श्रीकृष्णचन्द्रका गमन, हास्य भरी चितवन और मधुर वाणियोंके विहार कर प्यारेमें आरूढ़ हो श्रीकृष्णचन्द्रका रूप बनकर कहने लगीं कि "मैं कृष्ण हूँ मैं कृष्ण हूँ" इस प्रकार चेष्टा करने लगीं ॥३॥ इसके उपरांत सम्पूर्ण गोपियां मिल श्रीकृष्णचन्द्रका ऊँचे स्वरसे गान करती मतवालेके समान वन-वनमें ढूँढ़ने लगीं, सब प्राणियोंमें आकाशके तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनको वृक्षोंसे पूछने लगीं ॥ ४ ॥

दोहा–हे बड़ पाकर ढाक अरु, पीपल दाडिम वीर।
देहु बताय गये कहां, सुन्दर श्याम शरीर ॥
चम्पा मरुवा मालती, सुनिये टेर अशोक।
सत्य करो जिन नामको, हरो हमारे शोक ॥

हे पीपलके वृक्ष! हे वटके वृक्ष! नंदका पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवन और हँसी करके हमारा चित्त चुराकर ले गया है, यदि आपने देखा हो तो हमको अत्यन्त दुःखी जान कृपापूर्वक बता दो, कोई बोली–अरी? यह क्या बतायेंगे; यह तो अश्वत्थ हैं इनकी तो जड़ थोड़ीसी ऊपर रही है; ये हमेशा ऐसी चिंता किया करते हैं, कि कहीं ऐसी पवन न आ जाय जो हमें उखाड़कर फेंक दे। कोई बोली–अरी? यही पीपल नारायणका रूप है, नारायण भक्तोंके कार्यमें मग्न रहते हैं, वे हमें क्या बतायेंगे, न्यग्रोध शिवका रूप है, यह योगमें मग्न रहते हैं हमको क्या बातायेंगे ❋ ॥ ५ ॥ हे कुबरक! हे अशोक! हे नाग! हे पुन्नाग! हे केशर!

❋ शंका–वृक्षोंसे गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको पूछा और वृक्ष जानते थे कि इसी मार्ग होकर श्रीकृष्णचंद्र गये हैं फिर वृक्षोंने गोपियोंसे क्यों नहीं कहा कि हमने श्रीकृष्णको देखा अथवा नहीं देखा, चुप क्यों हो गये?

उत्तर–जैसे कृष्णके प्रेममें गोपी उन्मत्त हो रही थी ऐसे ही कृष्णके ध्यानमें वृक्ष भी मतवाले हो रहे थे, अर्थात् वृक्षोंको तो अपनी देहका अथवा और किसी दूसरी वस्तुका ध्यान ही नहीं था और कुछ स्मरण भी नहीं था, क्योंकि भगवान्में मन लगा रहे थे इसलिये उत्तर नहीं दिया।

हे चम्पे ! हे मालती ! गर्व हरनेवाली जिसकी मुसकान ऐसा बलरामका छोटा भाई(कृष्ण)कहीं तुमने देखा ? फिर रामानुजियोंसे कहा कि कहीं बड़े भाईका प्रसाद भांगके चुल्लूमें तो नहीं पी गये ! जो हमारी यह रक्षा करते-फिरते थे। कोई बोली-अशोकसे क्या पूछती हो यह तो आप अशोच है, यह पराये शोचको क्या जाने ? ॥६॥ कोई वनमें कहती है कि हे तुलसी ! कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणोंकी अत्यन्त प्यारी और भौंरे जिसमें गुञ्जार करते हैं ऐसी तुम्हारी मालाको पहने, तुमने अपने अत्यन्त प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको कहीं देखा हो तो बता दो ॥ ७ ॥ हे मालती, हे मल्लिके ! हे यूथिके ! हे जाति ! क्या आपने कहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ? क्या हाथके छूनेसे तुम्हारी प्रीति उत्पन्न करते इसी मार्गसे गये हैं ? ॥८॥ हे आम ! हे चिरौंजी ! हे कटहर ! हे विजयसागर ! हे कचनार ! हे जामन ! हे बेल ! हे मौलसिरी ! हे सफरी ! और हे लोटन, कदम्ब ! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो, इस कारण हमें बता दो कि तुमने कहीं श्रीकृष्णचंद्रको जाते देखा है ? ॥ ९ ॥

हे कदम्ब हे अम्ब तुम्हैं सौगंध हमारी।
सांची कहो कहीं तुम देखे जात मुरारी ॥

जब किसीने उत्तर न दिया तो एक गोपी बोली कि पृथ्वीसे पूछो कि हे पृथ्वी ! ऐसा तूने क्या तप किया, जो केशव भगवान्का चरण स्पर्श हुआ ? जिससे तुझे आनन्दसहित रोमांच हुए हैं, जिसके कारण तू सुन्दर लगती है, यह आनंद प्यारेका चरण लगनेके कारण हुआ है, अथवा वामनजीने तुझे तीन पैग नापी है अथवा उससे पहले वाराहजी तुझे दाढ़पर रखकर ले आये हैं, तबका आनन्द है ? परन्तु वह आनंद तो पुराने पड़ गये, अभी प्यारेका चरणारविंद तूने स्पर्श किया है और तूने निश्चय देखा है, तो हमें बता दे ॥१०॥ हे सखी ! हरिणकी स्त्री ! अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र प्यारीको सङ्ग लिये अपने अंगोंसे तुम्हारी दृष्टिको आनंद देते यहां आये हैं ? क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रकी प्यारी जो अंगके सङ्ग है इसी कारण कुचोंकी केशरसे रंगी हुई कुंदकी मालाकी सुगंध यहां आती है "हे मृग-नयनी ! हमारी बातका ऐसा अनादर कि इस ओरसे दृष्टि भी फेर ली। फिर बोले कि तुम्हारा कुछ अपराध नहीं जब विधाता वाम होता है तो सब ठौर अपमान ही अपमान होता है" ॥ ११ ॥ आगे बढ़कर वृक्षोंसे कहने लगी कि हे वृक्षो ! प्यारीके कंधेपर भुजाको धारण किये और दूसरे हाथमें कमल लिये यहां फिरते, तुलसी सम्बंधी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे जाया करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्नेहभरी चितवनसे क्या तुम्हारी दण्डवत् यहां आकर कर ली है ? ॥ १२ ॥ कोई बोली कि वीर ? यह लतायें श्रीकृष्ण-चन्द्रसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यह अपने पति वृक्षकी शाखा रूप बांहोंका आश्रय कर रही हैं इससे ज्ञात होता है कि अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके नख इनमें लगे हैं, इस कारण रोमांच हो आये हैं, वृक्षोंके समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥

चौ०-हे कदम्ब जामन कचनारा * तुम कहिं देख्यो प्राण पियारा ॥
हे पाकर पीपर वट छोकर * कहां गये चित चोर मनोहर ॥
हे अनार कचनार रसाला * गये कहां मोहन नँदलाला ॥
हे अशोक सब शोक नशावन * मन लै इतै गये मनभावन ॥

साल तमालबेलसुखसागर ❀ गये कहांको श्रीनटनागर ॥
हे मृगगण हे सघन सरोवर ❀ तुमहिं बतावहु खोज कृष्णकर ॥
मौन कौन कारण तुम साधी ❀ के तव जीभ विरह दव दाधी ॥

दोहा—ऐहो श्रीफल सदा फल, सब फलके दातार।
किते गये प्रिय सबनके, मोहन नंदकुमार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार मतवालेकी भांति पूछती हुई श्रीकृष्णमें तन्मय और उनके ढूँढ़नेसे विह्वल होकर गोपियां भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ❀ ॥१४॥ इसके उपरांत कोई गोपी पूतना बनी कोई गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी और कोई गोपी बालक बन रोती हुई शकटासुर बनी और अन्य जो कोई गोपी है वह पांवकी ठोकर मारने लगी ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्य बनकर कृष्णके बालरूपको धरे, जो और गोपी हैं उसे हरकर ले गयी और एक गोपी घुँघरू बांध पांवोंको घसीटती घुटुओं चलने लगी ॥१६॥ दो गोपियां कृष्ण बलदेव बनीं, और कोई गोपी गोप बनी और कोई वत्सासुर बन उसको मारने लगी। एक गोपी बकासुर बनी, उसे और गोपीने मार दिया ॥ १७ ॥ जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूर चरती हुई गायोंको बुलाते थे उसी प्रकार एक गोपी गायोंको बुलाकर श्रीकृष्णका अनुकरण करने लगी, एक बांसुरीको बजाकर क्रीड़ा करती थी, और गोपियाँ धन्याद देती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कन्धेपर हाथ धरकर कहने लगी कि मेरी मनोहर नृत्यलीलाको तुम देखो, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रमें जाकर उनका मन लग गया ॥ १९ ॥ कोई गोपी "पवन वर्षासे भय मत करो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा" इस प्रकार कह एक हाथसे यत्न कर जैसे गोवर्द्धन पर्वत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उठाया था उसी प्रकार अपनी ओढ़नीको ऊँची उठा लिया ॥ २० ॥ हे नृप! एक गोपी अन्य गोपीके ऊपर चढ़ पांव शिर ऊपर धर एक गोपीसे कहने लगी कि रे दुष्ट सर्प! तू यहांसे निकल जा, क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला उत्पन्न हुआ हूँ ॥ २१ ॥ उस समय एक गोपी बोली कि हे गोपियो! इस वनमें अत्यन्त भयानक अग्नि लगी है, इसे देखो और शीघ्र नेत्र बंद कर लो, मैं इस अग्निको बुझाऊँगी तथा अनायास देखे विना कल्याण करूँ ॥ २२ ॥ कोई एक दुर्बल अङ्गकी गोपी मालासे ऊखलमें बांध दी तब वह डरकर सुंदर नेत्रवाले मुखको ढँक डरनेका अनुकरण करने लगी। जब लीला करते-करते रासलीला करने लगीं, तब ज्यों ही श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्धान होने की लीला आयी तभी श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण कर व्याकुल हृदय हो ढूँढ़ने लगीं ॥ २३ ॥ इस प्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षोंसे पूँछती-पूँछती आगे वनमें जाकर परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंका चिह्न देखा ॥२४॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश आदि इन चिह्नोंसे महात्मा नंदजीके बेटेका यह चरण निश्चय है, इस प्रकार खोज लगता है ॥ २५ ॥

❀ दृष्टांत—एक बड़ा गवैया था, वह अपनी खुशीसे गाता और किसीके कहनेसे नहीं गाता था। एक भले आदमीका मन उसका गाना सुननेको चाहा तो उसने क्या चतुराई की कि उसकी तानमें गाऊं, क्योंकि मुझसे ठीक बनेगी नहीं, इस कारण यह अपनी तान सुधारनेको आप ही गायेगा; वह गाने लगा तो तान वैसी न आयी, तब गवैयेने अपने मनमें कहा कि यह मेरी तान गा रहा है, परंतु विगड़ी जाती है, तब आप भी गाने लगा और उससे कहा कि ऐसे गाओ, इसी प्रकार गोपियोंने विचारा कि हम भी श्रीकृष्ण चंद्रकी लीला करें, तो हमसे ठीक बनेगा तो है ही नहीं, इस कारण उनके बतानेको श्रीकृष्ण स्वयं ही आ जायंगे।

रेत बीच यह चरणचिह्न कैसे झमकै हैं।
तामें अंकुश ध्वजा कमल रेखा चमकै हैं॥

इस प्रकार अबला गोपी चरणोंकी खोजसे श्रीकृष्णचन्द्रके जानेका मार्ग ढूँढ़ने लगी, आगे जाय श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके खोजमें प्यारीके चरणोंका खोज देख दुःखी हो यह कहने लगी ॥ २६ ॥ कि श्रीकृष्णचन्द्रके संग यह कौन गयी है, किसके चरण हैं, जिसने श्रीकृष्णके कन्धेपर अपना हाथ रक्खा है,जिस प्रकार हाथी हथिनियोंके ऊपर सूड़ धर लेता है ॥ २७ ॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इसने आराधना की है, जिस कारण हम सबको त्याग प्रसन्न हो श्रीगोविंद इसे एकांतमें ले गये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! इस गोविंदकी चरणरेणुको ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी सम्पूर्ण अपने पाप दूर करनेके लिये माथेपर चढ़ाते हैं, यह बड़ी धन्य है, जो इसे शिरपर धारण करोगी तो भगवान् मिल जायँगे ॥ २९ ॥ उस प्यारीके पांवके खोज हमको अत्यन्त व्याकुल करते हैं। देखो ! हम सबको त्याग अकेली एकांतमें ले जाय श्रीकृष्णचन्द्रका अधरामृत भोग करती है ॥॥३०॥आगे बढ़कर बोली की,यहां तो उसके चरण नहीं दिखाई देते, परन्तु इसका कारण यह विदित है कि जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरणतल पीड़ित हो गया है, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी प्रियतमाको कन्धेपर चढ़ा लिया होगा ॥ ३१ ॥ (हे वीर ! जिस समय कृष्णने प्यारीको उठाया तो उन कामके रसिया श्रीकृष्णचन्द्रके चरण पृथ्वीमें धस गये, देखो ! यह फूलोंके लिये अवश्य सखीको उठाया है) हे सखी ! यह देखो ! प्यारेने प्यारीके कारण फूल तोड़े हैं। इस स्थानमें चरणोंको उचकाकर खड़े होनेसे थोड़ा चिह्न दिखायी देता है ॥ ३२ ॥ कामासक्त श्रीकृष्णचन्द्रने कामिनीके इस स्थानमें केश बांधकर सुधारे हैं, प्यारीको बैठाकर केश गुहते समय प्यारा इस स्थानमें निश्चय बैठा होगा ॥ ३३ ॥

कबित्त-विरहानल डाही सब ठाढ़ीसी गिरी हैं भूमि, गाढ़ी पीर बढ़ी निज हाथ धुनैं माथ ही। मोहनके हेतसे अचेत ह्वै पुकार उठीं अब सुधि लेत ना हमारी प्राणनाथ ही। कैसी गति कीन दीन सुखद प्रवीण कान्ह, कहैं बलदेव मीन जैसे विन पाथ ही। दुःसह समोई दोउ दीननते खोई अति विरहमें सोई गोपी रोई एक साथ ही ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र आत्मरत आत्माराम स्त्रियोंके विलासोंसे अखण्डित हैं। परंतु तो भी उन्होंने कामी मनुष्योंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेके लिये उनके साथ रमण किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वे सब गोपियाँ अचेत हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ढूँढ़नेका विचार करने लगीं, अब श्रीकृष्णचन्द्र और स्त्रियोंको वनमें त्याग जिस स्त्रीको संग ले गये थे ॥३५॥ वह गोपी सब स्त्रियोंमें अपने आपको श्रेष्ठ मानने लगी, कि देखो चाहना करनेवाली गोपियोंको छोड़ श्रीकृष्णचन्द्र मेरे संग आनन्द कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत वह गोपी गर्वित होकर केशव श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी कि मुझसे चला नहीं जाता, जहां तुम्हारा मन हो वहां चलो, तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि प्यारी ! दश पग और चलो, तब किशोरीजी फिर बोली, हां जी, जैसे तुम चार पहर गायोंके

पीछे फिरते हो उसी प्रकार सबको जानते हो, हम तो कभी महलके बाहर भी नहीं निकलीं, मैं कैसे चलूँ ? ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब प्यारीने कहा तब श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—

दोहा—श्रीराधे चढ़ लीजिये, मेरे कांधे आय।
अपने कांधेपर प्रिये, ले चलुँ तोहिं चढ़ाय ॥

यह सुनकर ज्योंही राधिका चढ़ने लगीं कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अंतर्धान हो गये तब तो यह अत्यन्त घबड़ाकर मूर्छित हो गयी ॥ ३८ ॥

दोहा—हाहा हरि कितको गये, मोहिं अकेली छोड़।
हाय पिया केहि बातपर, गये मुझसे मुख मोड़ ॥

और कहने लगी कि हा नाथ! हे रमण करनेवाले! हे महाभुज! तुम कहां हो ? कहां हो ? हे सखे! तुम्हारी दासी कृपण मैं हूँ, उसको समीप आकर अपना दर्शन दो ॥ ३९ ॥

तुम विन मेरा पिया नहीं कोई हितकारी।
कहां गये मुझ छोड़ि अकेली कुञ्जविहारी ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! उन सब इकट्ठी गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दूरसे मार्ग ढूँढते-ढूँढते प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित उस स्त्रीको देखा ॥४०॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रथम मान मिला, फिर गर्व होनेसे अपमान मिला, यह बात उस स्त्रीके मुखसे श्रवण कर सब गोपियां बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ और निशानाथ चन्द्रमाकी चांदनीका प्रकाश जहांतक था वहांतक गोपियोंने ढूँढ़ा, आगे वृक्षोंकी छायाका अँधेरा देखकर लौट आयीं ॥ ४२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये कृष्णसंबंधी बातें और उन्हींकी लीला करती तन्मय हो उन्हींका गुणगान कर रही थीं कि कृष्णवियोगमें उन्हें अपने घरकी भी सुध न रह गयी ॥४३॥ इसके उपरांत सब लौट यमुनाजीके पुलिनमें आकर भगवान्में जिनकी भावना लग रही उनके आनेका पैंड़ा देख सम्पूर्ण गोपियां मिलकर श्रीकृष्णचन्द्रके गुण गाने लगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा—इकतिसमाहिं निराश हो, बहुरि यमुन तट आय।
करत प्रार्थना प्रेमसों, प्रगट होहु यदुराय ॥

इसके उपरांत सपूर्ण गोपी कहने लगीं कि प्रीतम ! तुम्हारे जन्म लेनेसे यह ब्रज अत्यन्त शोभायमान लगता है और आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी सदा वास करती हैं इस प्रकार सब ब्रजमें आनन्द हो रहा है। हे प्यारे ! तुम्हारे ही लिये प्राण धारण किये तुम्हारी दासियां तुम्हें ढूँढ़ती फिरती हैं ॥१॥ हे सुरतनाथ ! शरदऋतुके सरोवरोंमें भली प्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाको चुरानेवाली तुम्हारी दृष्टिकी विना मोलकी हम दासी हैं, सो उनको तुम क्यों मारते हो; यदि तुम कहो कि हम क्या मारते हैं ? तो क्या शस्त्रसे ही मारते हैं; दृष्टिसे नहीं मारते ? क्या इसीसे तुमने दृष्टिसे हमारे प्राण हर लिये हैं, उनके देनेके कारण

शीघ्र हमें दर्शन दो ॥ २ ॥ * इसी प्रकार हमारे नेत्र चोर तेरी रूपमाधुरीकी लूटमें पड़े हैं, पैर आप ही बँध गये, कपोलोंको देख फिर उससे भी सुन्दर नासिकामें लगे, फिर अधर चिबुकमें गये; सब अङ्ग एकसे सुन्दर हैं, हम भलीप्रकार देखने भी न पायीं, अब तो हमारे नेत्र तुम्हारे रूपमें बँध गये हैं, इस कारण छूट नहीं सकते। हे लाल! आपने बारंबार मृत्युसे रक्षा की, अब क्यों कामदेवको भेजकर दृष्टिसे मारते हो? क्योंकि विषके जलसे मृत्यु थी, उससे रक्षा की, फिर अघासुरसे बचाया; इन्द्रने महाघोर वर्षा और पवन चलाया उससे रक्षा की, बिजलीकी आग तथा वृषासुरसे बचाया, मयके पुत्र व्योमासुरसे और अन्य समस्त भयसे बचाया; फिर अब किसलिए हमको छोड़ते हो॥३॥तुम यशोदाके पुत्र नहीं हो, क्योंकि यशोदाके पुत्र होते तो "मापर पूत पितापर घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा" कुछ तो अपनी जातिका पक्ष आता। सब देहधारियोंकी बुद्धिके साक्षी हो, ब्रह्माने विश्व रचनेको जब प्रार्थना की, तब हे कृष्ण!तुम यादवोंके कुलमें प्रकट हुए और जब ब्रह्माजीने आपको रक्षा करनेके लिये कहा तब उसने यह कह दिया होगा कि सबकी तो रक्षा करना और गोपियोंको जला-जला कर मारना, ब्रह्मा तो ब्राह्मण है, इस कारण वह ऐसा अधर्म क्यों बतायेगा? ॥४॥ हे यादव-श्रेष्ठ कांत! संसारके भयसे तुम्हारे चरण सेवन करने वाले जो पुरुष हैं, उनको अभयदाता कामनाओंके देनेवाले और लक्ष्मीका हाथ पकड़नेवाला जो तुम्हारा हस्तकमल है वह हमारे माथेपर धरो ॥५॥ हे सखे! हे वीर! हे ब्रजवासियोंका दुःख हरनेवाले! अपने जनोंका गर्व दूर करनेवाली तुम्हारी मुसकानकी हम दासी हैं, उनका सेवन करो, क्योंकि पहली स्त्रियां हम हैं, उनको अपना मुखकमल दिखाओ ॥६॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारियोंके पापोंको दूर करनेवाले, गायोंके पीछे-पीछे चलनेवाले, शोभाके स्थान, कालीके फणपर नृत्य करनेवाले आपके कमलवत् चरण हैं, उनको कृपापूर्वक हमारे कुचोंपर धरकर काम की व्यथा दूर करो * ॥७॥ हे कमलदललोचन! हे वीर! सुन्दर वाक्यवाली गंभीर वाणीसे मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिलाकर जीवनदान दो ॥८॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जा चुके हैं, परंतु आपके कथामृतको पान करते हुए सुकृती जनोंने हमें बचा लिया, क्योंकि संसारमें तृप्त पुरुषको जिलानेवाले ब्रह्मादिक जिसकी स्तुति करें, ऐसे पापोंको दूर करनेवाले मंगल रूप शांत तुम्हारी कथारूप अमृतको जो पुरुष पृथ्वीमें कहते हैं वे बड़े दाता हैं। जब तुम्हारी कथा कहनेवाले धन्य हैं, तो जो तुम्हारा दर्शन करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है?

दृष्टांत–एक चोर किसी साहूकारके घरमें चोरी करनेको घुसा, जो जाकर देखा तो रुपयोंके ढेर लग रहे हैं, तब इसने रुपयोंकी गठड़ी बांधी; जब दूसरे कोठेमें अशर्फी देखी तो रुपयोंको छोड़ अशर्फियोंकी गांठ बांधी, तीसरेमें अशर्फी छोड़ मोती बांधे, चौथेमें हीरे-जवाहर [illegible] चकित हो गया। विचारने लगा कि अशर्फी लूं [illegible] मोती वा जवाहर? इस विचारमें ही [illegible] हो गया, अतः मुस्कें बँध गयीं।

* शंका–स्त्रियोंके स्तनोंको पुरुष हाथसे स्पर्श करता है तो स्त्रीको सुख होता है, कुछ पुरुषके चरण स्पर्शसे सुख नहीं होता? तब गोपियोंने कृष्णसे चरण अपने स्तनपर स्पर्श होनेकी क्यों याचना की? महाराज! आप अपने चरण हम सबके स्तनोंपर अर्पण करो। यदि कोई कहे, गोपी कामसे आतुर थीं उनको पदका और हाथका स्मरण न रहा, इसलिये चरणकी याचना की थी तो फिर कृष्णके दूसरे अङ्गकी याचना क्यों नहीं की? अकेले चरणोंकी ही सब देहमेंसे याचना क्यों की?

उत्तर–गोपियोंने सुना था और देखा भी था कि श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे कालियनागका जहर नष्ट हो गया। कालियनाग निर्विष हो गया इससे जो हमारे सबके स्तनोंपर श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श हो जाय तो हम सबके कामदेवका नाश हो जाय, क्योंकि कालियके गरलसे काम बड़ा नहीं है, कामदेवका नाश होनेसे सब संसारकी बाधायें छूट जायँगी। इसलिये गोपियोंने श्रीकृष्णके चरणोंको अपने स्तनोंसे स्पर्श करने की याचना की, क्योंकि गोपी तो वेदोंकी ऋचा हैं।

इससे अब दया करके दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! कपटी ! तेरा मुसकानसहित मुख, प्रेमभरी चितवन और ध्यानमें मङ्गलरूप तुम्हारा विहार, हृदयको स्पर्श करनेवाली एकान्तकी बातें हमारे मनको क्षोभ करती हैं, ॥१०॥ हे नाथ ! जिस समय गौ चरानेको आप ब्रजसे जाते हो, तब तुम्हारे कमलके तुल्य सुन्दर चरण कांकरी तृण अंकुर लगकर कष्ट पाते हैं, इसलिए हे कांत ! हमारा मन चंचल होता है, इस प्रकार प्रेम रखनेवाली दासियोंपर भी आप दया नहीं करते ? ॥ ११ ॥ संध्यासमय नील केशसे ढके गोरजसे धूसरित कमलके समान मुखको धारण कर बेर-बेर दिखाकर हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करते हो परंतु सङ्ग नहीं देते, यही तुम्हारा निश्चय कपट है ॥१२॥ हे कामकी पीड़ाको दूर करनेवाले ! आप नम्र देहधारियोंको कामनाओंके देनेवाले, जिनका ब्रह्माजीने पूजन किया, पृथ्वीको शोभायमान करनेवाले, आपत्तिमें ध्यानसे ही पीड़ा दूर करनेवाले, सेवामें सुखरूप ऐसे अपने चरणकमलोंको हमारे कुचोंपर धरिये ॥१३॥ हे वीर ! कामको बढ़ानेवाला, शोकको दूर करनेवाला, स्वरभरी बजती हुई बांसुरी भली प्रकार चुम्बित, मनुष्योंके चक्रवर्ती आदि सुखका भुलानेवाला, एवं सुखदायक आपका अधरामृत है, वही हमारे रोग शांत करनेको दीजिये। हे कृष्ण ! यह औषध मिलनेसे हम भली हो जायेंगी और जो तुम दवाका मोल मांगो तो दमड़ीकी बांसकी बंशी, जिसे दिन-रात मुखपर धरे रहते हो, वह तुम्हें क्या मोल देती है ? और यदि तुम कहो कि तुम कुपथ्य करती हो अर्थात् तुम अभी गैया, मैया, भाई और पत्यादिकोंकी वासनाका कुपथ्य करती हो अतः कुपथ्य करनेवालेको दवा न देनी चाहिए, तो हे प्यारे ! तुम्हारी औषधि यह सब दूर कर देंगी तुम हमें पिलाओ तो सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनके समय वनमें जाते हो तब तुम्हारे देखे विना आधा क्षण युगके समान व्यतीत होता है, यह तो विना देखेका दुःख कहा और जब घुँघुराले केशोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलका दर्शन करती है, उस समय पलकोंका बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होता है, क्योंकि पलकोंसे दर्शनमें बाधा होती है, यह दर्शनमें दुःख है और छः वर्षकी हमारी ननंद जब अपनी मांसे जाकर कहती है कि देख री मा ! भाबी उस नंदके पुत्रको देखने गयी हैं, तब सास त्रास दिखाती है, दूरसे ब्रह्मा वैर पड़ा है, अपनी आठ आंखें बनायीं, हमारी दो ही और उसपर भी पलक लगा दिये हैं ॥ १५ ॥ पति, पुत्र और वंशके बंधु-बांधवोंको त्याग तुम्हारे गीतसे मोहित होकर हम तुम्हारे पास आयी थीं और गानकी गतोंको और हमारे आगमनको जाननेवाले हे अच्युत ! हम तुम्हारे निकट आयी हैं, हे कपटी ! रात्रिमें आयी हुई स्त्रियोंको तुम विना ऐसा कौन है जो त्यागेगा ? ॥ १६ ॥कामदेवका प्रकट करनेवाला एकांतका संकेत देख और हँसीसहित मुख तथा प्रेमकी चितवन देख और लक्ष्मीके रहनेका स्थान तुम्हारा वक्षस्थल देखकर हमको बड़ी चाहना हुई है; एवं हमारा मन भी मोहित हो गया है ॥१७॥ अङ्ग अर्थात् हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारा प्रकट होना ब्रजवासी और वनवासियोंके दुःखको दूर करनेवाला है तथा अतिशय करके विश्वका मंगलरूप है, इस कारण तुम्हारे दर्शन बिना व्याकुल हमें अपने भक्तजनोंके मनकी पीड़ा दूर करनेवाली गुप्त औषधि दो, कृपणता मत करो। यह हम जानती हैं कि इस औषधिको तुम ही जानते हो ॥ १८ ॥

दोहा—श्याम निठुरता छोड़िकै, दर्शन दीजै आन।
तुमविन अब सब सखिनके, निकसन चाहत प्रान ॥

कठोर स्तनोंपर तुम्हारे चरणकमलोंको हम भयसे धीरे-धीरे धारण करती हैं, क्योंकि कहीं कोमलचरणोंमें गढ़े न पड़ जायँ और तुम उन चरणोंको वनमें उठा-उठाकर फिरते हो, क्या चरणोंमें कांटे कंकड़ी लगकर खेद नहीं होता ? जब यह विचार करती हैं, तो तुम्हें अपना जीवनधन माननेवाली हमारी बुद्धि मोहित हो जाती है, परंतु अब पुकारकर इतना तो कह दो कि अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तो पुलिनमें लताओंके नीचे सुखपूर्वक बैठा हूँ ॥१९॥

दोहा–तजती हैं सब प्राणको, तुम विन ब्रजकी बाल।
दर्शन आकर दीजिये, बेगि हमें नँदलाल ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृतेदशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दोहा–बत्तिसमाहिं वियोगते, द्रवीभूत भो हीय।
प्रगट भये तुरतहि हरी, अति प्रसन्न भइँ तीय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! इस प्रकार गान और चित्रविचित्र विलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी इच्छासे वे गोपियाँ बड़े-बड़े स्वरसे रोदन करने लगीं ॥१॥ उसी समय मुसकानयुक्त मुखकमल, पीताम्बर धारण किये, वनमाला पहने हुए, साक्षात् कामदेवका मनमोहित करनेवाले दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके बीचमें प्रकट होकर बोले ॥ २ ॥

दोहा–मेरे कारण जनि तजो, प्यारी अपनी देह।
देख लियो सब सखिनको, सुन्दर प्रेम सनेह ॥

कवित्त–राखैंगी न प्राण यह जानिकै कुमार कान्ह, प्रगटे सुजान बीच तान-बान मारे हैं। लखतहि गोपिनके वृन्दमें अनंद बढ़ो, मन्द मुसकात ब्रजचन्द यों निहारे हैं ॥ भनै बलदेव यह बानी सुधासानी सुनो, सकल सयानी तुम सबै दुःख भारे हैं। गले माल डारे तनु पीतपट धारे पिया, कहत पुकारे हम ऋणियां तुम्हारे हैं ॥

तब प्रीतिपूर्वक प्रसन्न और प्रफुल्लित सम्पूर्ण अबलायें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया देख इस प्रकार उठकर खड़ी हुई कि जैसे देहमें प्राण आनेसे हाथ-पांव एक सङ्ग उठने लगते हैं ॥३॥ और किसी गोपीने तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका बड़े आनन्दपूर्वक हस्तकमल पकड़ लिया और कोई चन्दनसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको कंधेपर ही धरने लगी ॥४॥ "काचित् करांबुज" यहां शुकदेवजीने "काचित्" कहा, नाम नहीं लिया, इसका कारण यह है कि नाम श्रीशुकदेवजीका परम इष्ट है, द्वै अक्षर मन्त्ररूप है, अतः जप मंत्रका प्रकाश करना भला नहीं। अथवा भगवान् महादेवजीने शुकदेवजीसे तत्त्वज्ञान कहा परंतु नामके दो अक्षर प्रकट नहीं किये, रारा कहा करते हैं दूसरा अक्षर नहीं कहते, कदाचित् कोई चुराकर ले जाय। एक बार तो तत्त्वज्ञान खोया जिसकी कथा वर्णन करते हैं–एक समय नारदजीने कैलाशपर आकर विचारा कि यहां कुछ आग लगानी चाहिये। जाकर पार्वतीजीसे कहा–तुम्हें महादेवजी कुछ प्यार भी करते हैं ? पार्वती बोली कि, कुछ अन्तर नहीं रखते, तब नारदजी

बोले कि तुम यह पूछो कि आपके गलेमें मुंडोंकी माला क्या वस्तु है ? यह कह नारद चले गये। जब वर्ष दिन पीछे महादेवजी समाधिसे जागे तो पार्वती बोलीं कि महाराज ! यह मुंडोंकी माला क्या वस्तु है ? बताओ, यह सुनकर शिवजी बोले कि जब तुम्हारा शरीर छूट जाता है तब धारण कर लेता हूँ। पार्वती बोलीं—मेरे तो सैकड़ों जन्म हुए और तुमने ऐसी क्या अमरौती खायी है, जो तुम अमर हो ? शिवजीने अपने मनमें कहा कि किसीने भली आग लगायी, फिर बोले—मुझे तत्त्वज्ञान है पार्वतीने कहा वह तत्त्वज्ञान मुझे बताओ, तब शिवजीने स्नेह हटाकर एक चुटकी बजायी कि उस स्थानके सब पक्षी उड़ गये। फिर एक चुटकी बजायी तो बच्चोंके पङ्ख जम आये; फिर बजायी तो सब बच्चे उड़ा दिए। उसी समय शुकीके गर्भमें शुकदेवजी आये थे। एक चुटकीसे बाहर आये, दूसरीसे अण्डा फूटा और तीसरीसे पर निकले, वे एक वृक्षकी डालीपर जा बैठे। जब महादेवजी पार्वतीसे तत्त्वज्ञान कहने लगे और पार्वतीने हुंकार देती सो गयीं। तब वह तोता 'हूँ हूँ' करने लगा और महादेवजी ब्रह्मानंदमें मग्न, नेत्र मीचे सम्पूर्ण कथा कह गये, जब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती सो गयीं और 'हूँ हूँ' तोतेने की, यह जान झट उसके मारनेको त्रिशूल चलाया और पीछे दौड़े। तोता भागा। व्यासजीकी स्त्री कोठेपर खड़ी थी उसने जो जँभाई ली तो शुकदेवजी उसके उदरमें प्रवेश कर गये। शिवजीने व्यासजीसे कहा कि तुम्हारी स्त्रीमें हमारा चोर है उसे निकाल दो। व्यासजी बोले कि आपके पास क्या है जो इसने चुराया है ? शिवजी बोले कि तत्त्वज्ञान, जिससे अमर होते हैं वह इसने चुराया है। व्यासजी बोले कि इसीसे आप भोलानाथ कहलाते हो, भला विचारो तो सही कि जिसने तत्त्वज्ञान सुन लिया वह त्रिशूलसे कैसे मरेगा ? महादेवजी हँसकर कैलाश चले गये और उसी दिनसे 'रारा' कहते हैं पूरा नाम नहीं लेते, शुकदेवजी सम्पूर्ण ही गुप्त रखते हैं, इसी कारण राधिकाका नाम नहीं लिया, और किसी कृश अङ्गवाली गोपीने श्रीकृष्णचन्द्रके मुखमेंसे तांबूलका बीड़ा अपने हाथमें ले लिया और कामसे कम्पायमान कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमल अपने स्तनोंपर धरने लगी ॥५॥ एक गोपी अपनी भौंहें चढ़ाकर कोपके आवेशसे विकल हो अपने होठोंको दांतोंसे दाब कटाक्षरूपी बाणोंसे मारती-सी देखने लगीं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! और गोपियाँ निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचन्द्रका मुखकमल भली प्रकार देखती भी हैं, परंतु तो भी बेर-बेर देखकर तृप्त नहीं हुई, जिस प्रकार साधु पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदके दर्शन करनेसे तृप्त नहीं होते ॥७॥ और कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयमें धारणकर नेत्र मूँद उन्हें आलिंगन कर रोमांचित शरीर हो योगीजनोंके समान महान् आनंदमें मग्न हो गयीं ॥ ८ ॥ और केशवमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करके आनंदसे सुखी हो सम्पूर्ण गोपियोंने विरहके तापको त्याग दिया, जैसे ईश्वरको पाकर मुमुक्षुजन ताप छोड़ देते हैं अथवा सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीको पाकर जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापको छोड़ देते हैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें इस प्रकार शोभायमान् होने लगे, जैसे परमात्मा सब शक्तियोंसे और उपासक पुरुष ज्ञानबल वीर्यादि जो शक्ति हैं, उनसे शोभायमान् लगता है ॥१०॥ इसके उपरांत उन गोपियोंको सङ्ग ले फूले हुए कुन्द और मंदारकी सुगंधयुक्त पवनके कारण जहां भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, ऐसे यमुनाके पुलिनमें सबको ले गये ॥ ११ ॥ कैसे पुलिन हैं कि शरदऋतुके चन्द्रमाकी किरणोंके

समूहसे रात्रिका अन्धकार जिनमेंसे दूर हो गया है और यमुनाजीका भी उसके समान रंगोंसे कोमल बालूके बिछौने जिसमें बिछ रहे हैं ॥१२॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण आनंदपूर्वक हृदयके रोग दूर कर रोगियोंने अपने मनोरथोंके अन्तको प्राप्त किया अर्थात् उनके मनोरथ पूर्ण हुए, जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरको देख आनन्दसे परिपूर्ण हो कामके सम्पूर्ण बन्धनोंका त्याग करती है और कुचोंकी केशरयुक्त अपनी ओढ़नियोंको उतार-उतारकर गोपियां श्रीकृष्णचन्द्रके बैठनेकी तकिया बनाने लगीं ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके भीतर जिनका कल्पित आसन है, वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तीन लोककी शोभाका एक ही स्थान क्या तीनों लोककी शोभा जिसमें आ रही, उसी प्रकार रूप धारण कर उस आसन पर बैठ गोपियोंसे पूजित हो उनकी सभामें शोभायमान होने लगे ॥ १४ ॥ कामदेवके बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी हास लीलापूर्वक चितवनसे चलायमान भ्रुकुटीसे सत्कार कर गोदमें धरे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंको हाथोंसे दाबती और स्तुति करती कुछेक क्रोधसे गोपियां बोलीं ॥ १५ ॥ सब गोपी बोलीं कि महाराज ! एक पुरुष तो भजते हुएको भजता है, वह कौन है ? एक ऐसे हैं कि जो नहीं भजते उसको भजते हैं, वह कौन है ? एक भजतोंको और न भजतोंको दोनोंको नहीं भजता है वह कौन है ? हे कृष्ण ! यह हमारे आगे भलीप्रकार समझाकर कहो ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे सखियो ! जो पुरुष परस्पर भजते हैं अर्थात् जितना वह उनको चाहें, उतना ही वह उनको चाहें, वह पुरुष तो अपस्वार्थी हैं,उस भजनमें स्नेह, सुख, धर्म कुछ भी नहीं है, वह तो केवल अपना ही भजन है ॥१७॥ और जो नहीं भजतोंको भजते हैं वे पुरुष दो प्रकारके हैं, एक तो करुणावान्, दूसरे स्नेही,जैसे माता-पिताको पुत्र नहीं चाहता है,परंतु वे उसके ऊपर कृपा करते हैं और इस भजनमें निर्दोष धर्म है। हे सुमध्यमाओ!दयालु होकर भजनमें सत्य धर्म है, और स्नेहसे भजनोंमें सत्य प्रेम है ॥१८॥ पर भजन विश्वाससे ही करना योग्य है, ❀ क्योंकि विश्वासमें ही भगवान् हैं और कहीं नहीं और जो पुरुष भजतोंहीको नहीं भजते तो अभजतोंको कहांसे भजेंगे। वे चार प्रकारके हैं—एक तो आत्मामें ही रमणकर रहे हैं और एक पूर्णमनोरथ हैं,जिनको किसी बातकी चाहना नहीं है और एक अकृतज्ञ हैं, जो उपकार नहीं समझते और एक गुरुद्रोही हैं, अर्थात् जो उपकार करे उसीसे द्रोह करते हैं ॥१९॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे सखियो मैं इनमेंसे कोई नहीं, केवल दयालु और स्नेही हूँ, जो कोई प्राणी मेरा भजन करता है, उनको अपनी ओर

शंका—जिन गोपियोंके मित्र श्रीकृष्ण, वे सब गोपी अपने पहिने हुए वस्त्रोंका आसन श्रीकृष्ण के बैठनेको क्यों देती थीं ? क्या गोपियां दरिद्रिनी थीं ? नया वस्त्र मँगाकर भगवान्‌के बैठनेको आसन क्यों नहीं दिया ?

उत्तर—जो प्राणी अपने काममें उन्मत्त हो जाता है, उसको कुछ नहीं जान पड़ता, कि यह काम अच्छा है, यह काम बुरा है, इसी प्रकारसे कृष्णके चरणोंमें गोपी उन्मत्त हो रही थी, उनको ज्ञात न हुआ कि वस्त्र हमारा पहिना हुआ [illegible] वा बिना पहिना है। इसलिये गोपी भगवान्‌को अपने पहिने वस्त्रको बैठनेके आसन देने लगी।

❀ दृष्टांत—एक मनुष्य किसी कार्यवश भगवान्‌का पूजन करता था, परंतु मनमें यही विचारता था कि यह पत्थरकी मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन कर सकेगी ? इस प्रकार चल विश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ, तब किसीने कहा [illegible] तू श्रीभगवती दुर्गा देवीकी पूजन कर, तुरंत काम सिद्ध होगा, वह मनुष्य ऊपरके आलेमें श्री ठाकुरजीकी मूर्ति रख नीचे दुर्गादेवीका पूजन करने लगा। एक दिन धूप देते समय मनमें विचारा कि धूप सीधी ऊपरको ही जाती [illegible], सोई नारायणको पहुँचती है, इस कारण दुर्गादेवीको पीछे मिलनेसे वह प्रसन्न नहीं होती इसका यत्न करूं, यह विचार रुई ढूंढ़ भगवत्मूर्तिकी नाकमें भरने लगा जिससे सुगंध न जाय। तब भगवान् तत्काल ही मूर्तिसे [illegible] होकर बोले कि भाई ! रुई मत ठूंस, वर मांग क्या चाहिये ? वह बोला कि महाराज ! मुझे क्या खबर थी, कि रुई ठूसनेसे [illegible] होते हैं, यह विधि किसी पद्धतिमें भी नहीं लिखी, भगवान् बोले कि, पहलेसे विश्वास नहीं था मूर्तिको पाषाण अर्थात् पत्थर जानता था आज वह बात जाती रही, आज मूर्ति ही ईश्वर जानी नहीं तो पत्थरमें सूंघनेकी शक्ति कहां ? आज तेरा विश्वास ईश्वररूपका था।

ध्यान लगानेके लिये मैं नहीं भजता हूँ, जैसे दरिद्री पुरुषको धन मिले और वह धन जाता रहे, तब वह उसी चिन्ताका मारा भूख-प्यास नहीं जानता ॥२०॥ हे बालाओ ! मेरे लिए ही लोकमर्यादा, वेदमर्यादा, पति पुत्रादिक तुमने त्याग दिये, वह तुम्हारी चित्तवृत्ति लगानेके लिये तुमको देखनेके लिए नहीं आया, तुम्हारे पास ही छिप रहा था, कुछ दूर नहीं गया था। हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुरा है, ऐसे मुझमें दोष मत लगाओ ॥ २१ ॥

दोहा—प्रीति परीक्षा लई है, करो न जिनमें रोष।
अपने मनसे त्याग दो, सखी हमारो दोष ॥

तुम निर्दूषित हो और तुम्हारे सङ्ग उपकारका बदला मुझसे यदि देवताओंके समान अवस्था हो तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो छोड़ी न जाय ऐसी घररूप बेड़ियोंको काटकर तुमने मेरी सेवा की इसलिए तुम्हीं कह दो कि कृष्ण हमारा ऋणिया नहीं है, तो मेरा छुटकारा है, मुझसे तुम्हारे उपकारका बदला नहीं हो सकता। कृष्णने "ऋणिया" कहा, इसका कारण यह है कि किसीके एक मित्र दरिद्री हो गये, वह महादुःखी अपने करोड़पति मित्रके पास गये, उसने उसे देखते ही हजामत बनवाकर अच्छी पोशाक और मोती गहने पहनाके लाख रुपये दे बिदा किया, अब जो यह दरिद्री अपने मित्रका बदला उतारना चाहे तो वह जब करोड़पति दरिद्री हो तब तो बदला दिया जाय इससे यह बात कुछ नहीं, जिससे मित्र का सत्यानाश न हो जाय इस कारण ऋणिया ही रहना भला है।

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे लालाशालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे रासक्रीडावर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दोहा—नारि मण्डलीके विषे, ठाढ़े श्रीयदुराय।
करत विहार प्रियान सँग, तेतिसवें अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार उन श्रीकृष्णचन्द्रके हस्त, चरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाकर गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अति कोमल वचन श्रवण कर विरहके तापको छोड़ दिया ॥ १ ॥ और इसके उपरांत गोविन्द श्रीकृष्ण भी वहां अपनी आज्ञा करनेवाली प्रसन्न मनसे परस्पर हाथ पकड़े खड़ी हुई स्त्रियोंमें श्रेष्ठ गोपियोंको संग ले रासक्रीड़ाको आरंभ करने लगे ॥ २ ॥ फिर गोपियोंके समूहसे शोभायमान रासका उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र रचने लगे और मण्डलाकर खड़ीं हुई दो-दो गोपियोंके बीचमें अपने-अनेक रूप धारण कर कण्ठमें गलबाही डाल गान करते श्रीकृष्ण आप भी खड़े हुए ॥३॥ हे राजन् ! जिन श्रीकृष्णचन्द्रको सब गोपियां प्यारा मेरे पास है, कोई बोली मेरे पास है, इस प्रकार अपने-अपने पास जानने लगीं और रास देखनेकी इच्छासे देवता लोग भी अपनी-अपनी स्त्रियोंको लेकर आये, उनके विमानोंसे आकाश छा गया ॥ ४ ॥ देवताओंके आनेके उपरांत नगाड़े बजने लगे, फूलोंकी वर्षा होने लगी और मुख्य-मुख्य गन्धर्व अपनी-अपनी स्त्रियोंको संग ले भगवान् श्रीकृष्णका निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ और प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रके संग जो स्त्रियाँ थीं, उनके कंकण, नूपुर, तथा किंकिणियोंका रासमण्डलमें

बड़ा झनकार शब्द होने लगा ॥६॥ जैसे दो-दो मणियोंके बीचमें एक-एक नीलमणि सुन्दर लगती है, उसी प्रकार उस रासमण्डलमें दो-दो गोपियोंके बीचमें एक-एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त शोभायमान लगने लगे ॥ ७ ॥ पावोंका धरना, भुजाओंका हिलाना, मुसकान सहित भ्रुकुटियोंका चढ़ाना, कमरका लचकाना, कुचों और वस्त्रोंका हिलाना, कपोलोंपर कुण्डलोंकी हलन, उनसे जिनके मुखपर पसीना आ गया, चोटियोंके नारोंकी गांठ जिनकी खुल गयीं, ऐसी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी वधू गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रके गुणानुवाद गान करतीं; जैसे मेघमण्डलमें बिजली शोभायमान होती हैं, उसी प्रकार शोभायमान होने लगीं ॥८॥ अनेक प्रकारके रंगोंसे कंठ जिनके रंग रहे । रति ही जिनको प्यारी और श्रीकृष्णचन्द्रका स्पर्श जिनको है उससे जिनको बड़ा आनन्द हो रहा है वे गोपियाँ नृत्य करती हुई ऊँचे स्वरसे गाने लगीं, जिनका गीत इस विश्वमें छा रहा है ॥ ९ ॥ और कोई गोपी मुकुन्द श्रीकृष्णचंद्रके संग उच्चस्वरोंसे आलापोंकी गतिको उठाने लगीं । कैसे स्वरोंकी जाति जो कि श्रीकृष्णने स्वर उठाया,उसमें मिलती थी । तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने प्रसन्न हो धन्य है, धन्य है इस प्रकार बड़ाई करने लगे । इसलिये जिन स्वरोंकी जातें लीं थीं उनको ध्रुवतालमें बांधकर गाती हुई गोपियाँ प्रशंसा करने लगीं,तब गोपियोंको श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत मान दिया ॥१०॥ कोई गोपी रासमें श्रमित हो गदा धारण करने वाले पासमें खड़े हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कंधेको हाथसे पकड़ने लगीं, चूरी तथा फूलोंके हार जिनके शिथिल हो गये । (यहां गदा वंशीको ही जानना, क्योंकि गोपियोंके हृदयको चूर करती है)॥११॥इसके उपरांत एक गोपीने रोमांच जिसके हो आये, कमलोंके समान सुगन्धवाली चन्दनसे चर्चित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको अपने कन्धेपर धरकर चुम्बन किया ॥ १२ ॥ और फिर नृत्यसे चलायमान कमलोंको श्रीकृष्णके कमलोंपर लगाती हुई गोपीको श्रीकृष्णचन्द्रने बीरीका जूठन दिया ॥ १३ ॥ और किसी गोपीने नूपुर करधनी जिसके बज रहे हैं नृत्य व गान करते हुए श्रम पाकर पास खड़े हुए मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका हस्तकमल अपने स्तनोंपर धारण किया❀॥१४॥ लक्ष्मीको अत्यन्त प्यारे अच्युत श्रीकृष्णको सुन्दर पति पाकर उनकी भुजाओंसे कंठमें गलबाहीं डाल गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रका यश गाती हुई विहार करने लगीं ॥ १५ ॥ उस रासमण्डलमें स्त्रियों सहित गंधर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजा रहे थे तथा गवैये बनकर गा रहे थे वे सब रासरसमें मोहित होकर नृत्य करने लगे, उस समय कंकण और नूपुर बाजेका कार्य और भौंरे गवैयोंका काम कर रहे थे । रासमण्डलमें ब्रजवनिता कृष्णके संग नृत्य करती हुई अत्यन्त शोभा पा रही थीं । उनके कानोंके अमल अलकोंसे युत कपोल और पसीनेकी बूदोंकी शोभा मुखपर छा रही थी और नृत्यसमयमें जो फूलोंकी माला गिरती थी उनसे ऐसी शोभा हो रही थी कि मानो तालोंकी गतिसे प्रसन्न

❀ शंका–गोपीने श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथसे पकड़कर अपने स्तनोंपर क्यों रक्खा ? जैसे मनुष्यकी स्त्री कर्म करती है, ऐसा कर्म क्यों किया ?

उत्तर–गोपीने विचार किया कि इन्हीं श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने हस्तकमलोंको प्रह्लाद के और ध्रुवके मस्तकपर रखा था तब प्रह्लाद और ध्रुव संसारके दुःखसे छूटकर भगवान्के भजनमें मग्न हो गये । इसलिये मैं भी अपने कुचोंपर भगवान्का हाथ धरकर इन दोनोंको भक्तजन बनाऊंगी । क्योंकि कामदेव कुपित होकर पुष्पधनुष संधान कर मेरे ऊपरको चढ़ता है, जो स्तनोंमें अधिक बाधा होती है, अब जो ये भक्त हो जायं तो संसारके सब दुःखोंसे निवृत्त हो जाऊंगी और कामदेव भी मुझको नहीं सतायेगा, उसकी बाधासे भी छूट जाऊंगी । पुरुषकी ममता शिरपर बहुत होती है और स्त्रीकी ममता स्तनोंपर अधिक रहती है, ऐसा विचार करके गोपीने कृष्णका हाथ अपने कुचपर रक्खा ।

होकर केश शिर हिलाकर चरणोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥१६॥ इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आलिंगन, हाथोंका स्पर्श, स्नेहभरी चितवन और बड़े विलासहास्य से जैसे बालक अपनी परछाहींसे खेलता है; उसी प्रकार ब्रजसुन्दरियोंके संग रमण करने लगे ॥ १७ ॥ हे कुरुकुलको आनन्द देनेवाले राजा परीक्षित् ! उस समय श्रीकृष्णके अंगमें जो आनन्द है, उससे जिनकी इंद्रियाँ विवश हो रहीं और जिन ब्रजकी स्त्रियोंके माला-गहने खिसक रहे थे वे अपने केश, शरीर, कुच और वस्त्रोंके सम्हालनेको भी समर्थ न हुई ॥१८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा देख आकाशमें देवांगनायें भी कामसे पीड़ित होकर मोहित हो गयीं और तारागणसहित निशानाथ चन्द्रमा भी आश्चर्य मानकर चलना भूल गया, तब और ग्रह भी जहांके तहां रह गये, इससे रति जो बढ़ गयी उससे सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ १९ ॥ जितनी गोपोंकी स्त्रियाँ थीं उतने ही अपने रूप धर आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके संग लीला करने लगे ॥ २० ॥ फिर अत्यन्त विहार से जिनको श्रम प्राप्त हुआ ऐसी गोपियोंके मुखका पसीना देख करुणाको प्राप्त हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे उनका मुख पोंछने लगे ॥ २१ ॥ वे मानवती गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हस्तकमल नखस्पर्शसे महासुख पाकर प्रकाशमान सुवर्णके कुण्डलसे कांतिमान् कपोल तथा रसभरी चितवन और मुसकानयुक्त श्रेष्ठ गुणभरे श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके सुन्दर चरित्र गाने लगीं ॥२२॥ मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब रास-विलास करते-करते थक गये तब उन गोपियोंको संग ले श्रम दूर करनेके लिये जलमें घुसे, कुचोंकी केशर जिसमें लगी अङ्ग-अङ्गसे रगड़ी मालाकी सुगंधिसे गंधर्वोंके समान भौंरे गाते हुए उनके पीछे चले जाते थे, जैसे हथिनियोंको संग लेकर हाथी जलविहार करनेको जाते हैं ॥२३॥ हे अंग ! इधर-उधरसे जलमें स्त्रियोंके छींटे देते हैं, जिस समय जलविहार करते समय व्यंग्य वचन बोले कि "उत्तिष्ठारात्तरिमेंतरुणि मम तरौ शक्तिरारोहणे का मुग्धे प्रस्तौमि चारुं तरणिमथ रवौ का वधूर्गन्तुमीष्टे । वार्तेयं नौ-प्रसंगे कथमपि भविता नावयोः सङ्गमायां वार्तापीति स्मितास्यं जितगिरिमजितं राधयाराधयामि ॥" हे तरुणि ! उत्तिष्ठारात् इत्यादि वाक्योंको व्यंग्यार्थ सुनकर प्रसन्न मुख हो जिस अजितकी वाणी राधाने जीत ली है, उनकी मैं आराधना करता हूँ । (आसत्) समीपमें (तरिः) नौका है (कस्मिन् तरौ) उसमें (आरोहणं कुरु) चढ़ो, यह तो कृष्णने कहा । तब राधा बोली-(तरौ आरोहणे मम का शक्तिः) वृक्षपर चढ़नेमें मेरी क्या शक्ति है ? कृष्ण बोले-हे मुग्धे ! (तरणिं प्रस्तौमि) तुम्हें तरणि कहता हूँ । राधा बोली-तरणि नाम सूर्यका है, सो (रवौका वधूर्गन्तुमीष्टे) सूर्यके पास कौनसी वधू जानेकी इच्छा करती है । कृष्णने कहा-(वार्तेयं नौप्रसङ्गे) यह तो नाव प्रसङ्गकी वार्ता है, राधिका बोली-(नावयोः सङ्गमायाम्) हमारे आपके तन संगकी वार्ता कैसे भी न होगी । इस प्रकार राधासे कहे हुये कृष्णकी आराधना करता हूँ ? और प्रेमपूर्वक कृष्णको देखकर हँसती है और भगवान्‌को जलसे भिगोती है । विमानोंपर बैठे देवता स्तुति और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं । हाथीके समान जिनकी लीला, ऐसे आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वहां जलमें अथवा गोपियोंके मण्डलमें क्रीड़ा करने लगे ॥ २४ ॥ जलक्रीड़ा करनेके उप-

रांत जल-स्थलके पुष्पोंकी सुगन्धभरी पवन जिसकी सब दिशाओंमें व्याप्त हो रही है, ऐसे यमुनाजीके बागमें भौंरेरूप गोपियोंके सङ्ग श्रीकृष्णचन्द्र विहार करने लगे, जैसे मदस्रावी हाथी हथिनियोंके संग विहार करता है ॥ २५ ॥ इस प्रकार सत्यसंकल्प भगवान् चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान उस शरद्ऋतुकी रात्रिमें साहित्यकाव्योंमें जो करनेकी विधि लिखी है, उसी प्रकार वह स्नेहभरी गोपियोंके संग वीर्यको धारण करने लगे और जितनी गोपी उतने ही श्याम। उतनी ही कुञ्जोंमें फूलोंकी शय्यापर लेटे हँसते-हँसते कोमल बातें करते थे ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे श्रीशुकदेवजी! धर्मके स्थानपर और अधर्मका नाश करनेके लिये जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परिपूर्ण रूपसे अवतार लिया ॥ २७ ॥ फिर धर्मकी मर्यादाको करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने परायी स्त्रीका स्पर्श करना यह अधर्म क्यों किया? ॥ २८ ॥ पूर्णकाम यादवोंके पति श्रीकृष्णने निंदित कर्म कैसे किया, इसका क्या अभिप्राय है? हे सुन्दर व्रतवाले शुकदेवजी! यह हमारा सन्देह शमन करो ॥ २९ ॥ यह वचन सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! सामर्थ्यवानोंका धर्मका उलांघना और साहस भी देखा है, जैसे अग्निमें भली-बुरी वस्तु डाल दो उसको भस्म कर दे और उसे दोष नहीं लगता, उसी प्रकार सामर्थ्यवान् तेजस्वी पुरुषोंको भी दोष नहीं लगता। कहा भी है–"समरथको नहिं दोष गुसाईं" ॥३०॥ बड़ोंकी रीतिमें न करें, क्योंकि उसमें पीछे पछताना पड़ता है ❋ सामर्थ्यवान् पुरुषोंके किये हुए कर्मको मनसे भी न करे और जो कदाचित् अज्ञानसे करे तो मारा जाय, जैसे रुद्र (शिव) के विना और कोई समुद्रके विषको पान नहीं कर सकता ॥ ३१ ॥ ईश्वरके वचनोंको ही सत्य माने और उनके आचरणोंको भी सत्य माने जैसा उन्होंने कहा है, उसके अनुसार बुद्धिमान् पुरुष करे। रामकृष्ण दोनों अवतार हुए हैं, श्रीरामचन्द्रजीने जैसा कहा वैसा ही किया, इसलिये उनका कहना करना दोनों करे और श्रीकृष्णचन्द्रने जो गीतामें कहा है, उसे करे और जो उन्होंने लीलायें की हैं उनको न करे और किन्तु ध्यान करे ॥३२॥ हे प्रभो! संसारमें जिनको अहंकार नहीं है, ऐसे सामर्थ्यवान् पुरुष जो अच्छा कर्म करें, उससे उनको पुण्य और निकृष्ट करनेसे पाप नहीं होता है, क्योंकि पुण्य पाप तो देहमें अहंकारके वशसे लगे हैं, इस कारण अहंकाररहित पुरुषको कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥ ज़ब और महात्माओंको भी पाप-पुण्य नहीं लगता तब समस्त प्राणी, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, जीव इनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पाप-पुण्य नहीं लगता है, इसमें कहना ही क्या है? ॥३४॥ जिनके चरणारविंदके पराग अर्थात् मकरंदको सेवन करनेसे तृप्त होकर भक्तजन और योग प्रभावसे सम्पूर्ण कर्मबन्धन दूर कर मुनीश्वर ज्ञानी बन्धनोंसे रहित हो अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं तो इच्छासे शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको बन्धन

❋ दृष्टांत–एक राजा रानीने सम्मति की कि हमारे यहां भी अनेक युद्ध हुए हैं इस कारण ऐसा महाभारत बनाना चाहिये। यह विचार पंडितोंको बुलाकर कहा कि एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ और वह व्यासजीके महाभारतसे किसी प्रकारसे न्यून न हो चाहे बढ़ जाय। नहीं तो तुम्हें देशसे निकाल दूंगा। ब्राह्मण आपसमें संमति कर राजाके पास आकर कहने लगे कि महाराज! महाभारत बनानेकी सामग्री सब प्रस्तुत है सब बातें अधिक ही करेंगे, एक बात आप बताइये। राजाने कहा क्या? ब्राह्मण बोले–महाभारतमें द्रौपदीके पांच पति थे, आपकी रानीके उससे अधिक कितने लिखें, सो बताइये और उनके नाम वर्णन कीजिये। सुनते ही राजाकी बुद्धि लोप हो गयी और घबड़ाकर बोला–महाराज! क्षमा करो, मुझे महाभारत लिखानेका सामर्थ्य नहीं, इसलिये बड़ोंके चरित्रों-पर शंका नहीं करनी चाहिये।

कहां ? ॥३५॥ गोपी और उनके पतियोंके व सम्पूर्ण देहधारियोंके साक्षीरूप होकर जो देहके भीतर रहते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रने क्रीड़ा करनेके लिये देह धारण किया है, इस कारण उनमें कुछ दोष नहीं हो सका; क्योंकि सर्वत्र वे ही रमण करते हैं और बाहर-भीतर व्याप्त हैं ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यदेह धारण करके ऐसी मनुष्य-लीला की है कि जिन लीलाओंके श्रवण करनेसे मनुष्य कृष्णपरायण होजाता है ॥ ३७ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको कुछ दोष नहीं लगाया और अपनी-अपनी स्त्रियोंको अपने-अपने पास ही जाना ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् चार घड़ी रात रहे श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार घर आनेकी जिनकी इच्छा नहीं ऐसी प्यारी गोपियाँ अपने-अपने घर आयीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका परमकौतुक जो ब्रजवधू गोपियोंके संग रासलीला है, इसे जो पुरुष श्रद्धासहित श्रवण और कथन करेंगे, वे पुरुष भगवान्में परमभक्ति प्राप्तकर थोड़े ही दिनोंमें धीर होकर शीघ्र ही हृदयके कामरूप रोगोंका त्याग कर देते हैं। परमेश्वरके चरित्र बड़े भाग्यसे सुननेको मिलते हैं ❋ ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे रासक्रीड़ावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

दोहा—चौंतिसमें नँदरायको, निगल गयो इक नाग।
शङ्खासुरको वध कियो, कृष्ण सकल भय त्याग ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! एक समय अत्यन्त उत्साहसे सब ब्रजवासी देवीकी यात्रा करनेके लिए बैलोंको जोत गाड़ियोंपर बैठकर देवीके वनमें गये ॥ १ ॥ हे राजन् ! वहां पहुँच सरस्वती नदीमें स्नान कर फिर महादेवजीका भलीभांति पूजन कर अंबिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ सम्पूर्ण ब्रजवासी महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों, इसलिये मधुयुक्त मधुर अन्न और गौ-ब्राह्मणोंको दान किया ॥३॥ और बड़े भाग्यवान् नन्दादिकों और सब ब्रजवा-सियोंने उस दिन रात्रिको जलका आचमन कर तथा तीर्थव्रत करके सरस्वतीके किनारे ही वास किया ॥ ४ ॥ हे नृप ! उस वनमें कोई अत्यन्त भूखा सर्प रहता था, उसने अकस्मात् आकर नन्दरायजीको ग्रसा ❋ ॥५॥ सर्पसे ग्रस्त होकर नंदजी पुकारने लगे कि, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! यह अत्यन्त भयानक सर्प मुझको निगले जाता है। हे पुत्र ! मैं तेरी शरण हूँ, तू मुझे छुड़ा ॥६॥ इस प्रकार नंदजीकी पुकार सुन घबराहटसे ब्रजवासी शीघ्र ही उठे, देखा कि नंदजीको सर्प निगले जाता है तो सुलगती लकड़ियोंसे उसको मारने लगे ॥ ७ ॥ यद्यपि ब्रजवासियोंने सुलगती लकड़ियोंसे उसे मारा परंतु तो भी उस सर्पने नन्दजीको न छोड़ा, तब भक्तोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस सर्पको अपने चरणकी ठोकर

❋ दृष्टांत—एक बुढ़िया बड़ी कहा सुनीसे कथा सुनने गयी, पीछेसे कटोरा जाता रहा। दूसरे दिन कथामें न आयी, लुगाइयोंने कहा—बुढ़िया ! तू कथा सुनने क्यों नहीं आयी ? वह बोली कि, खर्च बहुत पड़ता है, पहिले दिन तो कटोरा गया, अबकी सुनूंगी तो थाली लोटे परात [illegible] खो बैठूंगी, इस कारण मेरी तो कथाको दूरसे ही दंडवत् है।

❋ शंका सब सर्प प्राणियोंको काटते है, परंतु अपनी भूखकी शांतिके लिये नहीं काटते केवल प्राणियोंको डसना (काटना) सर्पोंका स्वभाव है, भागवतमें लिखा है कि भूखे सर्पने नन्दजीको डस लिया ऐसा क्यों लिखा ?

उत्तर—जिस सर्पका भागवतमें इतिहास है, वह [illegible] पूर्वजन्मका देवता था। जब मुनीश्वरने उसको शाप दिया था तब इससे कह दिया कि जिस समय श्रीकृष्णका चरण तेरी देहसे छू जायगा तब तेरा मोक्ष होगा, उस सर्पको वही आशारूपी क्षुधा थी, उसीसे दुःखी होकर सर्पने नन्दजीको ग्रसा।

मारी ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी ठोकर लगते ही उसके सब पाप दूर हो गये और उस सर्पने सर्पदेहको त्यागकर विद्याधर जिसका पूजन करें, ऐसे स्वरूपको धारण किया ॥९॥ इसके उपरांत प्रकाशमान रूप धारण किये सुवर्णकी माला पहने खड़े हुए उस पुरुषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पूछने लगे कि ॥१०॥ परम शोभायमान अद्भुत दर्शन तुम कौन हो ? और विवश होकर यह सर्पकी योनि तुमको कैसे मिली ? ॥११॥ यह सुनकर वह सर्प बोला कि महाराज ! मैं सुदर्शन नामसे विख्यात कोई गंधर्व था । सम्पत्ति और शरीरकी सुन्दरता से गर्वित हो विमानमें बैठकर दिशाओंमें विचरता था ॥१२॥ एक समय मैंने रूपके मदसे मत्त होकर कुरूप अङ्गिरा ऋषियोंकी हँसी की, तब उन्होंने शाप दिया । जिससे मेरी सर्प योनि हो गयी ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरोंने कृपा करनेके ही लिए मुझे शाप दिया था; जिस कारण त्रिलोकीके गुरु आपके चरणारविंदका स्पर्श करनेसे यह पाप छूट गये और यदि वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कैसे लगते ! ॥१४॥ संसारसे डरकर शरण आये हुए पुरुषका भय दूर करनेवाले आप हैं, तो मुझसे क्या पूछते हो ? हे पापनाशक तुम्हारे चरणस्पर्शसे मेरे सब पाप दूर हो गये ॥१५॥ हे महायोगिन् ! हे महापुरुष ! हे महासाधु-ओंके पति ! हे प्रकाशमान ! हे सब लोकोंके ईश्वर ! हे ईश्वरके ईश्वर ! तुम्हारी मैं शरण आया हूँ, मुझे आज्ञा दो ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! तुम्हारा दर्शन करके मैं शीघ्र ही ब्राह्मणोंके शापोंसे छूट गया क्योंकि जिनका नाम ही उच्चारण करके वक्ता-श्रोता अपनेको पवित्र करते हैं ॥१७॥ फिर तुम्हारे चरणोंसे मैं पवित्र हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इस-प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा ले, परिक्रमा दे, प्रणाम कर वह सुदर्शन स्वर्गको चला गया और नंदजी कष्टसे छूट गये ॥ १८ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वैभव देख आश्चर्यको प्राप्त हो ब्रजवासी तीर्थमें नियमको पूर्णकर बड़े आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र कहते हुए ब्रजमें आये ॥१९॥ किसी समय एक यात्राके उपरांत गोविंद और अद्भुत पराक्रमवाले बलराम दोनों भाई वनके बीच रात्रिमें ब्रज-स्त्रियोंके मध्यमें विहार करते थे ॥२०॥ स्नेहसे वद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियां भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र गा रही थीं और भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, केशर चन्दन लगाये, वनमाला और निर्मल वस्त्र पहने हुये थे ॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारंभ होनेसे तारागण और चन्द्रमा उदय हो रहा था, चमेलीकी सुगंधसे मत्त होकर भौंरे गुञ्जार कर रहे थे, फूली कुमुदिनीसे लगकर पवन चल रहा था ॥२२॥ उसकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानोंको आनंद-दायक स्वरके संग मण्डलोंकी मूर्च्छना करते हुए गाने लगे ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवका गाना सुनकर मूर्च्छाको प्राप्त हो गोपियोंके वस्त्र ढीले पड़ गये और चोटियोंकी गांठें खुल गयीं कि जिनसे फूलोंकी माला गिर गई । अधिक क्या कहें उन्हें अपने आपकी भी सुध न रही ॥२४॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भाई मतवालेके समान क्रीड़ा और गान कर रहे थे कि इतनेमें ही शङ्खचूड़ नाम एक कुबेरका टहलुआ आया ॥२५॥ हे राजा परीक्षित् ! कृष्णबलदेवके देखते-देखते निर्भय हो शंखचूड़ जब उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं, लेकर उत्तरकी ओर चला, उस समय वे गोपियां पुकारने लगीं ॥२६॥ जैसे सिंहकी पकड़ी गौ पुकारती है उसी प्रकार, हे कृष्ण ! हे बलदेव ! इस प्रकार पुकार करती गोपियोंको देख कृष्ण बलदेव दोनों भाई शंखचूड़के पीछे दौड़े॥२७॥

मत डरो ऐसे भयके दूर करनेवाले वचन कह शालका वृक्ष हाथमें लिए शीघ्रतासे कृष्ण बलदेव दौड़कर गुह्यकगणमें अधम शंखचूड़के पीछे गये ॥ २८ ॥ काल (मृत्यु) के समान पीछे दौड़े चले जाते श्रीकृष्ण बलदेवको देख स्त्रियोंको छोड़ मूढ शंखचूड़ अपने प्राण बचानेके लिए भागा ॥२९॥ जहां-जहां शंखचूड़ भागकर गया, वहां-वहां गोविंद श्रीकृष्णचन्द्र उसके शिरकी मणि लेनेके लिए उसके पीछे दौड़े और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षाके लिए वहीं रहे ॥३०॥ हे राजा परीक्षित् ! थोड़ी दूर पर जाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दुष्टमनवाले शंखचूड़को मुष्टिक मार शिरसहित उसके माथेकी मणि ले ली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार शंखचूड़ दैत्यको मार प्रकाशमान मणि लेकर सम्पूर्ण स्त्रियोंके देखते-देखते प्रसन्नतापूर्वक अपने बड़े भाई बलदेवजीको दे दी ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे शंखचूडवधनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशतमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दोहा—पैंतिसमें हरि वन गये, पीछे गोकुल नारि ।
वेणु गीत ही गायकर, दियो कष्ट सब टारि ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें गये तब श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियाँ विरहमें उनकी लीलाको गा-गाकर अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करने लगीं ॥ १ ॥ गोपियाँ परस्पर बोलीं कि हे सखियो ! बाईं भुजापर बायें कपोलको धर भ्रुकुटियोंको चढ़ाकर मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी अधरके ऊपर बांसुरीको धर और अपनी कोमल अंगुलियोंसे उसके छिद्रोंको दाब जिस समय बजाते हैं ॥ २ ॥ उस समय आकाशमें गमन करनेवाली देवताओंकी स्त्रियाँ अपने पतियों सहित बांसुरीको सुन प्रथम आश्चर्य मान लाजसहित कामके बाणोंसे परवश हो मन हर जानेके कारण नारोंकी भी जिनको सुध न रही, इस प्रकार मोहको प्राप्त होती हैं ॥३॥ हे अबलाओ ! यह आश्चर्य सुनो, हारके समान निर्मल जिसकी हँसनि, बांसुरी बजाते समय नीचा मुख करके जो हँसते हैं, तो उसकी हारोंमें प्रकाशित हँसनि होती है । अथवा हारके तुल्य छाती में शोभायमान जिसकी हँसनि है और छातीमें बिजलीके तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जिसके हृदयमें वास करती है, पीड़ित जनोंको सुख देनेवाला यह नन्दका पुत्र जिस समय बांसुरी बजाता है ॥ ४ ॥ तब दूरसे बांसुरीका शब्द सुन हर गये हैं मन जिनके ऐसे गौ, बैल और हिरणोंके समूहके समूह दांतोंसे कौर काटकर उसे पकड़ने लगे, कानोंको ऊँचाकर सोतेसे चित्र लिखेके समान खड़े हो गये, बड़ा आश्चर्य है कि पशु-पक्षियोंकी भी यह दशा है ॥ ५ ॥ हे सखी ! मोरपुच्छ, खड़िया, गेरू, मनसिल, पात इनसे मल्लोंके समान स्वरूपसे कभी बलदेव भाई सहित और गोपियों सहित जो मुकुन्द जिस समय बांसुरी बजाकर गौओंको बुलाते हैं, उस समय बांसुरीका शब्द सुनकर नदियोंका प्रवाह बहनेसे रुक जाता है और पवनसे उड़कर गयी हुई उनके चरणोंकी रजको हमारे तुल्य आकांक्षा करते हैं और हमारे तुल्य उनके उत्कृष्ट पुण्य नहीं हैं, इसलिए वह नदियोंको नहीं मिलती, प्रेमसे जिनकी लहर कांपती है, जल जिनके निश्चल हो जाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ गोप, ग्वाल और देवता जिनके निर्मल यशको गाते हैं, नारायणके तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मीवाले, वनके विचरनेवाले कृष्ण

जिस समय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपर चरती हुई गौओंको बांसुरी बजाकर बुलाते हैं उस समय फूल, फल जिनमें लग रहे हैं उनके बोझसे शाखा जिनकी झुक रहीं, प्रेमसे हर्षित चित्त, वनके लता, वृक्ष अपनेमें विष्णुको प्रगट करते मकरन्दकी धारा बहाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुन्दरोंमें अति सुन्दर अथवा सुन्दर देखने योग्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र श्याम ललाटमें केशरका तिलक लगाये, वनमाला पहने जिसकी दिव्य गन्ध और तुलसीके मकरंदसे मत्त हो भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानेको मान देते हैं, ऐसे भगवान् जब अधरके ऊपर बांसुरीको धरकर बजाते हैं उस समय सरोवरोंमें सारस, हंस और पक्षी गानसे मोहितचित्त हो उस स्थानमें आंखें मूँदे मौन धारण किये चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहते हैं। ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मालाओंसे व कानोंमें कुण्डलसे शोभायमान आनंदको प्राप्त बलदेव भाई सहित कृष्ण जब सब विश्वको आनंद दे बांसुरी के शब्दसे पूर्ण करते हैं, उस समय इन महान् कृष्णका अपराध न हो, इस प्रकार मेघ मनमें शङ्का मान मुरलीके शब्दके पीछे मन्द-मन्द गर्जते हैं और अपने मित्र श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हैं, छत्रसे छाया करते हैं, वह मेघ इनका सच्चा मित्र है, क्योंकि यह भी सांवरा और वह भी सांवरा ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपोंके खेलोंमें निपुण तुम्हारा पुत्र अधरके ऊपर बांसुरी धरकर अपने आप ही सीख गये क्योंकि षड्ज, निषाद, ऋषभ, गांधारादि स्वरोंमें अलापनेके भेद वह स्वयं ही उठा लेते हैं ॥ १४ ॥ उस समय इन्द्र, शिव, ब्रह्मा यह जिनमें मुख्य हैं, ऐसे बुद्धिमान् देवता मंद मध्य तारसे बांसुरीको सुनकर मोहित हो गये और नीचेको मुख करके कौन-सा स्वर गाते हैं यह भी निश्चय नहीं कर सके ॥ १५ ॥ ध्वजा, यव, अंकुश, कमल इनके चित्र-विचित्र चिह्नवाले अपने चरणकमलसे ब्रजभूमिको गायोंके खुर पड़नेसे जो खेद है उसको शांत किया और मतवाले हाथीके समान चलनेवाले श्रीकृष्ण बांसुरीको बजाकर जिस समय चलते हैं, उस समय विलासपूर्वक चितवनसे कामदेवके वेगमें भरी हमें वृक्षोंके तुल्य जड़ होकर चोटी और वस्त्रोंकी भी सुध नहीं रहती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगन्धवाली तुलसीकी मालाको पहने मणियोंकी सुमिरणी हाथमें लेकर गायोंको गिनते हुए, प्यारे मित्रके कन्धे पर हाथ रखकर जिस समय गाते हैं, उस समय बजती हुई बांसुरीका शब्द सुन चित्त हर जानेसे हिरणोंकी स्त्रियाँ (हिरणी) गुणोंके समुद्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर गोपियोंके समान घरकी आशाओंको त्याग सेवन करने लगती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदे ! गोपियोंको आनंद देनेके लिये कुन्दकी मालाओंसे आनन्दपूर्वक शृङ्गार किये, स्नेहियोंको आनंद देनेवाला यह तेरा पुत्र नन्दकुमार गोप गौओंको संग लिये जिस समय यमुनामें विहार करता है, उस समय चन्दनकीसी सुगंधिवाला शीतलस्पर्श पवन भी कृष्णका सम्मान करता हुआ अनुकूल मन्द-मन्द चलता है और गन्धर्वादिक तथा बन्दीजनोंकी नाईं बाजे बजाता गाता फूलोंकी वर्षा करके सेवा करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ देखो ब्रजमें गायोंका हित करनेवाला भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, जब इन्द्रने वर्षा की थी तब गोवर्द्धन उठाकर रक्षा की और बड़े-बड़े ब्रह्मादिक आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं और सन्ध्या समय जब गायोंको इकट्ठी कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बांसुरी बजाते और मित्रोंसे अपनी कीर्ति श्रवण करते श्रमभरी शोभासे आनंद देते, गायोंकी रज मालामें लग रही, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णचंद्र जो हैं वे

हमारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये आते हैं ॥२२॥२३॥ कुछेक मन्द-मन्द नेत्र जिनके घूम रहे, अपने स्नेहियोंको मान देनेवाले, वनमाला पहने, पके बेरके समान श्याममुख और कुण्डलोंकी कांतिसे कोमल कपोलोंको शोभायमान करते; मतवाले हाथीके समान जिनका विहार, प्रसन्न मुख; इस प्रकार यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने सन्ध्या समय जिस प्रकार चन्द्रमा उदय होता है उसी प्रकार उदय होकर ब्रजकी मायारूप हमारा बहुत दिनोंका ताप दूर कर दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण-चंद्रमें ही जिनका जीवन और वृद्धिको प्राप्त हुआ उत्सव, ऐसी व्रजबालायें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला गा-गाकर दिन व्यतीत करने लगीं ॥ २६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे रासक्रीडायां गोपिकायुगलगीतवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दोहा—कंस सुनो छत्तीसमें, मरो अरिष्ट बिसूर।
रामकृष्णके लेनको, भेजो जन अक्रूर॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवता गंधर्वादिक जिनका गान और नृत्य करें, बाजे बजाकर फूलोंकी वर्षा करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर परमउत्सव हुआ, इसके उपरांत उसी समय व्रजमें बैलका रूप बनाकर अत्यन्त विशाल देह और खुरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण और कम्पायपान करता हुआ अरिष्टासुर आया ॥१॥ अत्यंत रंभाता, खुरोंसे धरती खोदता, पूंछ उठाता, खेतोंकी मेड़ोंको तोड़ता ॥२॥ बीच-बीचमें गोबर और मूत्र करता, अत्यंत भयानक आंखवाला इस प्रकार अरिष्टासुरके रंभानेका शब्द सुनकर गाय और स्त्रियोंके विना समय ही गर्भ गिर गये। जैसे ककुद (टांट) के ऊपर पर्वत जान कर मेघ आ बैठते हैं ❋ ॥३॥४॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार अत्यंत पैने सींगवाले अरिष्टा-सुरको देखकर सब गोप और गोपी अत्यंत भयभीत हो गये। पशु खरकोंको छोड़कर डरके कारण भाग गये। हे कृष्ण ! इस प्रकार पुकारने लगे और सम्पूर्ण ब्रजवासी गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें आये इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने डरके मारे गोकुल वासियोंको भागता देखकर "भय मत करो" इस प्रकार कह अरिष्टासुरको निकट बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! हे असाधो ! ग्वाल गायोंके डरानेसे तुझे क्या मिलेगा ? मेरे सम्मुख आ, क्योंकि तुझ सरीखे मतवाले दुष्टोंका बल और मद दूर करनेको मैंने अवतार लिया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार कह कर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र खम्भ ठोक और अरिष्टासुरको क्रोध उत्पन्न कराकर मित्रके कंधे पर सर्पाकार भुजा पसारकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥ इस प्रकार क्रोधको प्राप्त हुआ अरिष्टासुर पूँछ उठाकर धरती खोदता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

❋ शंका—वृषभासुरके शब्दसे गायोंका और स्त्रियोंका गर्भ गिर जाता था, ऐसा भागवतमें लिखा है, तब वह दुष्ट वृषभासुर तो नित्य शब्द करता रहा होगा, तब गायोंकी और स्त्रियोंकी सृष्टिका नाश क्यों नहीं हुआ ? गायोंका और मनुष्योंका वंश नष्ट होना चाहिये था, क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर—वृषभासुरके प्रभावको जानकर भगवान्ने सुवीर्य और सुरपालक दोनों देवताओंको आज्ञा दी कि, जब यह दुष्ट शब्द करने लगे तब तुम दोनों उसका कण्ठ रोक लो। ऐसी भगवान्की आज्ञा पाकर वे वृषभासुरके पास रहने लगे। जब वृषभासुर गर्जन करता, तब दोनों देवता उसके कंठको रोक लेते थे। इसी प्रकार सब अवस्था व्यतीत हो गयी; वृषभासुरको शब्द नहीं करने दिया, जिस दिन मरनेका समय आया, उस दिन महागंभीर शब्द करके भगवान्के हाथसे मारा गया।

जीके सम्मुख आया ॥९॥ सींगोंका अग्रभाग आगे किये, पलक बिसारे, लाल-लाल आखें किये, अरिष्टासुरको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र देवराज इन्द्रके छोड़े वज्रसे भी शीघ्र उसके सम्मुख आकर उपस्थित हुए ॥१०॥ और आते ही उसकी सींग पकड़ जैसे हाथीको हाथी धक्का देता है, उसी प्रकार उलटे पांव करके उसे धकियाने लगे॥११॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रने अरिष्टासुरको ढकेल दिया, फिर वह उठकर पसीने चुआता अत्यन्त क्रोधित हो बड़े-बड़े श्वास लेता हुआ दौड़कर आया ॥१२॥ आते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसकी सींग पकड़कर पृथ्वीपर दे मारा और पांवसे छाती दबाकर जैसे गीले कपड़ेको निचोड़ते हैं उसी प्रकार उमेठ दे सींग उखाड़ उसका प्राण संहार किया ॥१३॥ उस समय उसके नेत्र चलायमान हो गये। रुधिरकी वमन और गोबर करता पावोंको पटकता अरिष्टासुर मर गया। तब देवतालोगोंने फूल वर्षाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति की ॥ १४ ॥ इस प्रकार अरिष्टासुरको मार, मित्रोंसे सम्मानित हो गोपियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें आये ॥ १५ ॥ अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मार डाला, तब देवताओंके समान देवर्षि नारदजीने यह वृत्तान्त कंससे जाकर कहा कि ॥ १६ ॥ हे राजन्! यशोदाके कन्या हुई और देवकीके कृष्ण हुआ था, बलदेव रोहिणीके पुत्र हैं, तुम्हारे भयके कारण वसुदेवजी अपने मित्र नन्दजीके घर रातोंरात पहुँचा आये थे और प्रत्यक्ष देख लो कि जितने दैत्य आपने भेजे वे सब कृष्ण-बलदेवने मार डाले। यह वचन नारदजीका श्रवण कर क्रोधके कारण कंस विकलेन्द्रिय हो गया ॥१७॥१८॥ तब वसुदेव-जीके मारनेके लिये कंसने अत्यन्त पैनी तलवार ग्रहण की परन्तु नारदजीने निवारण कर दिया। इसके उपरांत कृष्ण–बलदेवसे अपनी मृत्यु जान ॥ १९ ॥ देवकीसहित वसुदेवके पैरोंमें बेड़ी डाल दी। नारदजीके चले जानेपर फिर कंसने केशी नामक राक्षसको बुलाकर ॥ २० ॥ कहा कि तुम ही रामकृष्णको मार आओ और फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि जो मल्ल थे उन्हें बुलाया ॥ २१ ॥ इसके उपरांत मंत्रियों और हाथियोंके महावतोंको बुलाकर भोजवंशियोंका राजा कंस बोला कि हे वीर! हे चाणूर! हे मुष्टिक! मेरी बात सुनो ॥ २२ ॥ नंदजीके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण, बलराम रहते हैं उनके ही हाथसे निश्चय नारदजीने मेरी मृत्यु बतायी है ॥ २३ ॥ इसलिये वे जिस समय आयें उसी समय पांवोंसे दाब मल्ललीला करके मार डालना और मल्लोंकी जो रंगभूमि है उसमें अनेक प्रकारके मञ्चान बनाओ ॥२४॥ क्योंकि पुरवासी और देशवासी सम्पूर्ण उनपर बैठकर मल्लोंकी कुस्ती देखेंगे। इसके उपरांत मंगलरूप कुवलयापीड हाथीको रंगभूमिके द्वारपर खड़ा कर दो ॥२५॥ बस, ज्योंही कृष्ण बलदेव आयें त्योंही उन्हें हाथीसे मरवा डालना और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञकी तैयारी करो और सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले महादेवजीका पूजन करनेके लिये पवित्र-पवित्र पशु लाओ ॥ २६ ॥ हे राजन्! अपने अर्थके तत्त्वको जाननेवाले राजा कंसने अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा दी। इसके उपरांत यादवश्रेष्ठ अक्रूरको बुला हाथ पकड़कर कहा ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर! तुम एक हमारी मित्रताका कार्य करो, क्योंकि इस समय भोजवंशियोंमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अतिशय हितकारी कोई नहीं है ॥ २८ ॥ हे साधो! हे सौम्य! जैसे इंद्रने विष्णु भगवान्का आश्रय लेकर अपने मनोरथको प्राप्त किया था, उसी प्रकार अब मैं तुम्हारा आश्रय लेकर अपने मनोरथको

प्राप्त हूँगा, इसलिये मैंने तुम्हारा आश्रय लिया है ॥२९॥ अब तुम व्रजमें जाकर वसुदेवात्मज कृष्ण और बलदेवको शीघ्र ही रथमें बैठाकर ले आओ ॥ ३० ॥ क्योंकि विष्णुका आश्रय लेकर देवतालोगोंने मेरे मारनेके कारण कृष्ण बलदेवको उत्पन्न किया है, इसलिये तुम नंदादिक सम्पूर्ण व्रजवासियों सहित कृष्ण बलदेवको यहां ले आओ और मेरी ओरसे कहना कि चलकर राजा कंसको भेंट दो ॥ ३१ ॥ बस, जहां कृष्ण बलदेव आये कि यहां कालके समान कुवलयापीड हाथी उन्हें मार डालेगा और यदि हाथीसे भी छूट जायँगे तो बिजलीके समान मेरे मल्ल मार डालेंगे॥३२॥फिर जहां कृष्ण बलदेव मारे गये, तब उसी समय उनके शोकसे व्याकुल वसुदेवादि बंधु-बांधवोंको भी मार डालूंगा और इसके उपरांत वृष्णि, भोज, दाशार्हवंशमें उत्पन्न हुए सब यादवोंको भी मारूंगा ॥३३॥ यद्यपि उग्रसेन मेरे वृद्ध पिता हैं परंतु तो भी उनकी राज्यकी चाहना विद्यमान है, इसलिये इनको भी मारूंगा । अधिक कहनेसे क्या, जितने मेरे वैरी हैं, सबको ही मारूंगा । हे अक्रूर ! इसके उपरांत यह सब पृथ्वी कंटक रहित हो जायगी, फिर जरासंध है, वह मेरा श्वशुर है और द्विविद मेरा प्यारा मित्र है ॥३४॥३५॥ शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर, इत्यादिकोंने मुझमें स्नेह बढ़ा ही रखा है। बस, इनको संग लेकर जितने देवताओंकी ओरके राजा हैं, सबको मारकर आनंदपूर्वक पृथ्वीका राज्य करूंगा ॥३६॥ यह बात अपने मनमें गुप्त रखकर कृष्णबलदेवको शीघ्र ही लिवा लाओ और मेरी ओरसे कहना कि तुम्हारे मामाने धनुषयज्ञ किया है, उनको चलकर देख आओ, इसमें तुम्हें यादवोंकी पुरी मथुराकी शोभा भी देखनेको मिल जायगी ॥३७॥ यह सुनकर अक्रूरजी बोले कि हे राजन् ! तुमने भला विचार किया, तुम्हारी मृत्युको दूर करनेवाला यही उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें ईश्वर जाने, क्योंकि जो प्रारब्ध है वही फलका दाता है ॥ ३८ ॥ यह पुरुष बड़े-बड़े मनोरथ करता है परंतु जब दैव हत कर देता है तो दुःखी होता है, यदि मनोरथ पूर्ण हो जाय तब तो मनमें हर्ष माने और न हो तो शोक करे। इससे क्या ध्वनि निकली कि तुम कहते हो कि कृष्ण बलदेवको मरवाऊंगा, क्या जानें वे ही तुम्हें मार डालें, पर तो भी तुम्हारी आज्ञा करूँगा ॥३९॥ इस प्रकार राजा कंस अक्रूरजीको आज्ञा दे मंत्रियोंको बिदा कर अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी भी अपने घरको चले गये ❋ ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेऽक्रूरप्रेषणं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दोहा–सैंतिस केशी मरणको, नारद कियो बखान ।
व्योमासुर मारो यथा, सो सब सुनो सुजान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण राजा परीक्षित् ! मनसे भी अधिक वेगवान्

❋ दृष्टान्त–यदि कोई कहे की अक्रूरजी कंसके पास रहनेसे महात्मा कैसे रहे ? उसपर यह दृष्टान्त है कि महात्मा कुसङ्गतिसे भी महात्मापन नहीं त्यागता एक बाबाजी आधी रातको कहीं जा रहे थे, मार्गमें चोर मिले और चोर बोले–तू कौन ? बाबाजी बोले–जो तुम सो हम ! चोर बोले– कहां जाते हो ? बाबाजीने कहा जहां तुम जाते हो । चोरोंने जाना यह चोर है । सङ्ग ले लिया । बाबाजीने भी जाना कि यह चोर हैं । चोरोंने किसीके घरमें सेंध दिया और चोरी करने लगे । बाबाजी भी घुसे, एक बर्तन जो उघाड़ा तो इमरती रक्खी थी । बाबाजी सारे दिनके भूखे थे, झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शंख बजाया, शंख बजते ही घरके लोग जाग गये और चोरोंके सङ्ग बाबाजी भी पकड़े गये । बाबाजी तो वृत्तान्त सुनाकर छूट गये, चोरोंको दण्ड हुआ । साधु पुरुषोंको कुसङ्गतिका फल नहीं व्यापता । इसी प्रकार अक्रूरजीको कुसंगति अर्थात कंस की संगतिका फल नहीं व्यापा, किन्तु चोरोंकी नाईं कंसको ही मरवाया ।

कंसका भेजा केशी दैत्य बड़े घोड़ेका रूप धर टापोंसे पृथ्वीको खोदता, फुरहरी लेता, अपने कन्धोंसे इधर-उधर विमानको चलायमान करता और हींसनेसे संपूर्ण विश्वको डराता हुआ आया ॥१॥ कठोर हींसनेसे गौओंके समूहको बिडलाता, पुच्छ हिलाता, बादर चलायमान करता, युद्ध करनेकी इच्छासे श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़ता हुआ आया। तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आगे निकलकर अपने पास बुलाया, तब वह दैत्य इनको देख सिंहके समान गर्जने लगा ॥ २ ॥ केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर मुखसे मानो आकाशको पी जायगा, इस प्रकार मुख फैलाकर दौड़ता हुआ सम्मुख आया, जो किसीके जीतनेमें न आये, अत्यन्त वेगवान् ऐसा केशी दैत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको पिछले पांवोंकी दुलत्ती मारने लगा ॥ ३ ॥ जिनमें इंद्रियोंकी पहुँच नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्यकी दुलत्ती बचाकर अत्यन्त क्रोधित हो अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पांव पकड़ फिराकर जैसे गरुड़ सर्पको फेंक देता है उसी प्रकार अवज्ञा करके सौ (१००) धनुषपर फेंककर आप खड़े रहे ॥४॥ इसके उपरांत जब चेत हुआ तब केशी दैत्य फिर उठकर क्रोधयुक्त हो दौड़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हँसकर उस दैत्यके मुखमें अपना बायां हाथ जैसे सर्प बिलमें घुसता है उसी प्रकार डाल दिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका हाथ लगते ही केशीके दांत ऐसे गिर गये जैसे तपे हुए लोहके लगनेसे गिर जाते हैं और ओषधि न करनेसे जैसे जलंधर रोगसे उदर बढ़ जाता है उसी प्रकार केशी दैत्यके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी भुजा बढ़ने लगी ❋ ॥ ६ ॥ बढ़ती हुई कृष्णचंद्रकी भुजासे उसका श्वास रुक गया, अङ्गमें पसीना आ गया, नेत्रोंके तारे निकल आये, इस प्रकार केशी दैत्य पाओंको पटकता, लीद करता प्राणरहित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके पककर फटी हुई ककड़ीके समान मुखसे महाभुज श्रीकृष्णचंद्रने अपनी बांह निकाल ली। यद्यपि इन्होंने शत्रुको अनायास मारा; परन्तु तो भी भगवान्‌ने कुछ गर्व न किया, तब आश्चर्य मान भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर फूल वर्षाकर देवता लोग स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजीने क्लेशरहित कर्मवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर कहा कि ॥९॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे योगके ईश ! हे जगत्के ईश्वर ! हे वासुदेव ! हे जगदीश्वर ! हे विश्वके साक्षी ! हे अखिलावास ! हे सात्वतां प्रवर ! हे प्रभो ! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंमें व्यापक गूढ़ अर्थात् सबमें रहते हो। परंतु उनको दिखायी नहीं देते, क्योंकि बुद्धिके परे हो, साक्षी हो और आपका स्वरूप देखनेमें नहीं आता, महापुरुष ईश्वर हो इस कारण जीव आपके स्वरूपको नहीं जान सकते ॥ ११ ॥ तुम स्वतन्त्र हो इसलिये तुम्हें साधनकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि तुम तो अपनी मायाशक्तिसे ही गुणोंको बनाते हो, व उन्हींसे सत्य-

❋ शंका–शत्रुके मारनेके लिये शास्त्रमें और लोकमें अनेक उपाय लिखे है, परंतु केशीको मारनेके लिये सब उपाय त्यागकर श्रीकृष्णने अपनी भुजा केशीके मुख में क्यों दे दी ।

उत्तर–केशीको ब्रह्माने यह वरदान दिया था [illegible] हमारे हाथकी बनाई हुई सृष्टिसे तेरी मृत्यु न होगी, जब श्रीकृष्ण अपनी बाहु तेरे मुखमें डालेंगे [illegible] तेरी मृत्यु होगी। इसलिये केशीके मुखमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भुजा प्रवेश करा दी थी।

संकल्प ईश्वर आप इस जगत्को रचते हो, पालते हो और फिर संहार भी कर देते हो ॥१२॥ तुमने राजारूप दैत्य और राक्षसोंका नाश करनेके लिये और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके लिये अवतार लिया है ॥१३॥ यह बहुत ही उत्तम हुआ जो इस घोड़ेरूप दैत्यको लीलापूर्वक ही आपने मार डाला, जिसके हींसनेका शब्द सुनते ही भयके कारण देवता क्षणमें स्वर्ग त्यागकर भाग जाते थे ॥ १४ ॥ हे विभो ! परसोंको तुम्हारे हाथोंसे चाणूर, मुष्टिक और मल्लोंको तथा कुवलयापीड हाथी व राजा कंसको मरा हुआ देखूंगा ॥१५॥ कंसके मारनेके उपरांत शङ्खासुर, कालयवन, मुरदैत्य, नरकासुर इनका वध और स्वर्गसे देवराज इन्द्रको जीतकर जो कल्पवृक्ष लाओगे उसे देखूंगा ॥१६॥ जिनका पुरुषार्थ ही मूल्य है ऐसी राजकन्याओंका विवाह और हे जगतपति ! द्वारकामें जाकर जो नृग राजाको पापसे छुड़ाओगे वह देखूंगा ॥१७॥ जांबवतीके साथ स्यमन्तकमणिका पीछे लाना और सांदीपन गुरुके महाकालपुरसे मरे पुत्र को सजीव लाकर दोगे वह देखूंगा ॥१८॥ फिर मिथ्यावासुदेवका मारना, काशीपुरको जलाना, दन्तवक्रका मारना और राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालका मारना देखूंगा ॥ १९ ॥ और भी द्वारकामें वास करके तुम जो-जो लीला करोगे, उन लीलाओंका कवि लोग पृथ्वीपर गान करेंगे ॥ २० ॥ इसके उपरांत कालरूप तुम इस पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये अर्जुनके रथवान् होकर सेनाओंका संहार करोगे, वह सब हम देखेंगे ॥ २१ ॥ केवल ज्ञानमूर्ति अपनी पूर्णानंद स्थितिसे पूर्णकाम सत्यसंकल्प और अपनी चैतन्य शक्ति अपने तेजसे नित्य मायासे निवृत्ति और हम छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त तुम्हारी शरण प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ ईश्वर स्वतन्त्र अपनी मायासे सब प्रकारसे विशेषोंकी कल्पना करनेवाले क्रीडाके लिये अभी मनुष्यदेह धारण करनेवाले, यदु, वृष्णि, सात्वतोंमें अग्रणी आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भक्तोंमें श्रेष्ठ मननशील भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रसन्न हो नारदजी इस प्रकार यादवपति श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर और आज्ञा ले चले गये ॥ २४ ॥ व्रजवासियोंको सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रयुद्धमें केशीको मारकर ग्वालबालोंसहित पशुओंका पालन करने लगे ॥ २५ ॥ एक समय गायोंके पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपर गायोंको चराते हुए चौर पालनका मिसकर छिपाछिपी खेल करने लगे ॥२६॥ हे राजन् ! उस खेलमें कितने ही बालक चोर बने और कितने ही रखवाले बने, और कितने ही भेड़ बने, इस प्रकार निर्भय होकर खेलने लगे ॥ २७ ॥ इतनेमें ही मय दैत्यका पुत्र अत्यन्त मायावी व्योमासुर नामक दैत्य ग्वालका रूप धारण कर, चोर बन जो बालक चोर बने थे, उनको चुराकर ले जाने लगा ॥२८॥ वह दुष्ट दैत्य उनको ले-ले जाकर पहाड़की गुफामें डालकर शिलासे गुफाका मुँह बन्द कर देता था । जब केवल चार-पांच ग्वाल शेष रह गये ॥२९॥ तब साधु पुरुषके शरण देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें विचार किया हमने तो खेल किया है यह सच्चा ही चोर आ पहुँचा क्या ? इस कारण उस दुष्टका छल जान गोपोंको ले जाते व्योमासुरको, जैसे सिंह बलपूर्वक व्याधको पकड़ लेता है उसी प्रकार पकड़ लिया ॥३०॥ उस बलवान् दैत्यने अपना शरीर पर्वतके समान धारण कर लिया और छुड़ानेके लिये बहुतेरा यत्न किया, परन्तु पकड़नेसे आतुर हो गया, इसलिये कृतकार्य न हुआ ॥३१॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने व्योमासुरकी दोनों भुजा पकड़ पृथ्वीमें पटककर देवताओंके देखते-देखते

श्वास घोटकर मार डाला ॥३२॥ इसके उपरांत गुफाका ढकना तोड़ गोपोंको कष्टसे बाहर निकाल देवता और गोप जिनकी स्तुति करें, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोकुलमें आये॥३३॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे केशिव्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा-अड़तीसमें अक्रूर मन, जैसो कियो विचार ।
तैसो ही अक्रूरको, कियो कृष्ण सत्कार ॥

इतनी कथा सुनाकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! बुद्धिमान् अक्रूरजी भी उस रात मधुपुरीमें वासकर प्रातः होते ही रथमें चढ़कर नन्दजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ महाभाग अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त हो यह विचार करने लगे ॥ २ ॥ कि मैंने ऐसा कौन मंगलकर्म अथवा तप वा सत्पात्रोंको दान किया था, जिसके प्रभावसे ब्रह्मा, महादेवके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका आज दर्शन करूँगा ॥३॥ मैं जानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है, जैसे जिसका विषयोंमें मन, शूद्रकुलमें जन्म है ऐसे पुरुषको वेदका उच्चारण दुर्लभ है ॥ ४ ॥ अथवा ऐसे कहीं मुझ अधमको भी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन हो जायँ, कारण कि जिस प्रकार नदीमें बहते हुए तृणसे कदाचित् कोई तीरपर भी पहुँच जाय वैसे ही कर्मवशसे कालसे ले गये हुए जीवोंमेंसे भी कभी कोई तिर जाय ॥ ५ ॥ मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिवालानेको चला हूँ, इसलिए अब मेरा मङ्गल हुआ, जन्म सफल हुआ, क्योंकि योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण कमलोंमें आज नमस्कार करूँगा ॥६॥ अहो ! बड़ा आश्चर्य है, दुष्ट कंसने आज मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरे हुए हरि भगवान्का दर्शन होगा, जिनके नखमण्डलकी कांतिसे अम्बरीष आदि सब दुरत्यय सागरको तर गये ॥७॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा, महादेवादि देवता लोगोंने प्रकाशमान लक्ष्मी तथा मुनीश्वरोंने और भक्तोंने पूजे हैं और गाय चरानेके लिए जो चरणारविन्द ग्वालबालोंके संग वनमें फिरते हैं और जिन चरणारविन्दोंमें गोपियोंके कुचोंकी केशर लगी है, उन्हीं चरणारविंदोंका आज दर्शन करूँगा ॥८॥ सुन्दर कपोल, नासिका और मुसकानयुक्त चितवन, लाल डोरे जिनमें आ रहे घूमघुमारी अलकोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका आज निश्चय दर्शन करूँगा, क्योंकि हिरण भी मेरे दाहिनी ओर आये हैं ॥९॥ पृथ्वीका भार उतारनेके लिए अपनी इच्छासे अब मनुष्यरूप धारण करनेवाले, शोभाके धाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके शोभायमान रूपका जब दर्शन करूँगा, तब मेरे नेत्र सफल होंगे ॥१०॥ तीन लोकके कार्यरूप जगत् और कारणरूप महदादिक तत्त्वको यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चितवनसे ही करते हैं, परंतु तो भी उनको अहंकार नहीं है, अपने तेजसे अज्ञानके भेद भ्रमसे रहित हैं, अपने अधीन और मायाकी ओर चितवन करके अपने रचे जीव वृन्दावनके वृक्षोंके नीचे और गोपियोंके घरोंमें लीलापूर्वक वृद्धिसे दिखाई देते हैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्ण चन्द्रके अहंकार नहीं एवं जो आत्माराम हैं, उन्हें, लीला करना कैसे सम्भव है ? इसपर कहते हैं कि भक्तोंके ऊपर कृपा करनेके लिए लीला करते हैं । सबके पापोंको दूर करनेवाले सुन्दर, मंगलरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गुण-जन्म; कर्मसे मिली वाणी जगत्को जिलानेवाली है और शोभायमान करती है; पवित्र

करती है और जिन वाणियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला, गुण, जन्म, कर्म नहीं गाये गये हैं, उनको जो कहते हैं और श्रवण करते हैं वे अपवित्र हैं, जैसे मृत्युको प्राप्त हुआ शरीर अपवित्र है ॥१२॥ यादवोंके कुलमें जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार लिया है वे अपनी मर्यादाओंको पालन करनेवाले लोकपालोंको सुख देनेवाले लीलापूर्वक यश विस्तार करते व्रजमें रहते हैं और सबको मङ्गलकारी; उनके यशको देवता लोग गाते हैं ॥१३॥ महत् पुरुषोंको सुंदर गति देनेवाले, गुरु, त्रिलोकीमें सुन्दर नेत्रवाले पुरुषोंको आनन्द देनेवाले, लक्ष्मीके निवासस्थान, सुन्दर रूप धारण किये श्रीकृष्णचन्द्रका आज मैं निश्चय ही दर्शन करूँगा; क्योंकि आज प्रातःकालके समय मुझे श्रेष्ठ शकुन हुए हैं ॥१४॥ दर्शन करनेके उपरांत उसी समय रथसे उतर उन प्रधान पुरुष कृष्ण-बलरामके चरण, जिनका योगी पुरुष भी स्वरूपकी प्राप्तिके लिए केवल बुद्धिसे ही ध्यान करते हैं उनको मैं साक्षात् प्रणाम करूँगा और फिर इन सहित व्रजवासी सखाओंको भी प्रणाम करूँगा ॥१५॥ चरणोंमें पड़े हुए मस्तकपर सामर्थ्यवान् भगवान् अपना हाथ धरेंगे, जो हाथ कालरूप सर्पके वेगसे डरे हुए व शरण चाहनेवाले मनुष्योंको अभयकरने वाला है ॥ १६ ॥ जिस भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करके इन्द्रने इंद्रता पायी और ऐसे ही राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकी की इन्द्रता प्राप्त की और रासक्रीड़ामें व्रजकी स्त्री गोपियोंके श्रमके पसीनेको श्रीकृष्णने जिस हाथसे पोंछा था और जिन हाथोंमें कमलके समान सुगंधि आती है, वही हाथ मेरे मस्तक पर धरेंगे ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं राजा कंसका भेजा दूत हूँ, परंतु तो भी श्रीकृष्णचन्द्र मुझपर यह शत्रुका दूत है ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वे अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे चित्तकी बाहर-भीतरकी चेष्टाको नित्य देखते हैं, मैं ऊपरसे तो कंसका भेजा हुआ जाता हूँ, परंतु भीतरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका ही ध्यान लग रहा है, इस बातको नित्यज्ञान द्वारा भलीभांति श्रीकृष्णचन्द्र जानते हैं ❃ ॥१८॥ चरणारविंदमें गिरे, हाथ जोड़े मुझे मुसकाकर करुणाभरी दृष्टिसे जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र देखेंगे, उसी समय पाप और भय दूर हो जानेसे आशंकाओंसे रहित हो मैं परमानन्दको प्राप्त हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ जिनके अत्यंत हितकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अतिरिक्त और कोई देवता नहीं, वह भगवान् जिस समय अपनी जाति और कुटुम्बी जानकर मुझे भुजा पसार छातीसे लगायेंगे, उसी समय यह देह पवित्र हो जायगा और इस देहके कर्मरूप बंधन भी छूट जायँगे ॥ २० ॥ जब मैं भगवान् श्रीकृष्णसे मिल, मस्तक झुका हाथ जोड़ खड़ा होऊँगा, तब "हे काका अक्रूर" इस प्रकार बड़े यशस्वी श्रीकृष्ण मुझसे कहेंगे। उस समय हमारा जन्म सफल हो जायगा। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिस पुरुषका आदर-सम्मान नहीं करते, उस पुरुषको धिक्कार है ॥२१॥ यद्यपि उनको न तो कोई प्रिय है, न सुहृद है, न अप्रिय है और न उदासीन है, परंतु तो भी भगवान् भक्तको भजते हैं, जैसे कल्पवृक्षकी जो सेवा करे वह उसीको फल देता है ॥२२॥ जब मैं नमस्कार कर हाथ जोड़ूँगा, तब मेरी भुजा पकड़ हास्यपूर्वक छातीसे लगा

❃ दृष्टान्त–कृष्ण अन्तर्यामी हैं,इस कारण कपट प्रीति सबकी जानते हैं। एक बड़े भारी ठग थे, वह एक दिन बड़ी ऐंठमा पाग बांधकर चले तो लोग बोले कहां चले ? तो उत्तर दिया कि सबको तो हमने ठगा, परंतु जो परमेश्वरको ठगकर लायें तो हमारा नाम ठग है। ऐसा कह चले, परंतु थोड़ी ही दूर जाकर लौट आये। लोग बोले क्यों भाई ! लौट कैसे आये ? वे बोले –कि भाई ! क्या कहें, उन्हें ठगते तो सही परंतु वे तो अन्तर्यामी हैं, हमारे मनका कपट जान जायेंगे, अतः उनपर हमारा छापा नहीं लग सकता।

गृहमें ले जाकर भली भांति आदर-सत्कार करेंगे फिर बड़े भ्राता बलरामजी अपने बंधु यादवोंमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे । ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णकी चिन्ता करते रथमें बैठे हुए गोकुलमें पहुँचे, कि इतनेमें ही भगवान् सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुए ॥२४॥ समस्त लोकोंके पालन करनेवाले ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटोंके ऊपर जिनके चरणोंकी रेणुकाको धारण करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंके चिह्न महात्मा अक्रूरजीने ब्रजमें देखे, जो पृथ्वीके गहनेरूप थे और जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि चिह्न प्रतीत होते थे ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणचिह्नके दर्शनके आनंदसे सम्भ्रम और प्रेमसे रोमांच हो आये, नेत्रोंमें आंसू भर आये । अक्रूरजी रथसे उतर, अहो ! यह मेरे प्रभुके चरणोंकी रज है इस प्रकार कहते-कहते चरणोंके चिह्नोंमें लोटने लगे ॥२६॥ देहधारियोंका इतना ही पुरुषार्थ है, जो कंसका संदेशा ले दंभ, भय, शोच, त्याग श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्नका दर्शन व श्रवणादिकसे अक्रूरको प्रेम उत्पन्न हुआ ॥२७॥ इसके उपरांत ब्रजकी गोशालामें गाय दुहनेको जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीको महात्मा अक्रूरजीने देखा, जो पीताम्बर और नीलांबर धारण कर रहे हैं और जिनके शरद-ऋतुके कमलसे नेत्र हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था, श्याम और गौर स्वरूप, लक्ष्मीके शोभाके स्थान, लम्बी भुजा, सुन्दर मुख, स्वरूपवानोंमें अत्यन्त शोभायमान, हाथीके बालकके समान पराक्रमवाले ॥२९॥ ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुशके चिह्नवाले चरणोंसे भूमिको शोभायमान करते, जिन महात्माका अनुकंपाजन्य जो मन्द मुसकान व चितवन ॥ ३० ॥ एवं जिनकी उदार रुचिरक्रीड़ा है, वे मोतियोंके हार और वनमाला पहने पवित्र चन्दन और केशर लगाये, स्नान किये, निर्मल वस्त्र पहने ॥ ३१ ॥ प्रकृतिपुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनेवाले, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम केशवमूर्ति दो रूप धरके अवतार लिये हैं ॥३२॥ हे राजन् अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करते हुए जैसे सुवर्णसे नीलमणिका पर्वत अथवा रूपे का पर्वत जगमगाता है, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीके रूपको निहार ॥ ३३ ॥ स्नेहसे विह्वल हो महात्मा अक्रूरजीने शीघ्र रथसे उतर रामकृष्णके चरणोंमें दण्डवत् की ॥३४॥ हे महाराज परीक्षित् ! श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनके आनंदसे आंखोंमें आंसू आ गये, उत्कंठासे अङ्गमें रोमांच हो गये और प्रेमके कारण अपना नाम बतानेको भी समर्थ न हुए ॥ ३५ ॥ हित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरका अभिप्राय जान चक्रकी रेखावाले अपने हाथसे पकड़ प्रसन्न हो छातीसे लगाकर मिले । यहां मिलनेका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णने कंसके मारनेका सामर्थ्य जताया ॥३६॥ इसके उपरांत उदार मन बलरामजी दण्डवत् करते हुए अक्रूरजीको छातीसे लगाया, अपने हाथोंसे उनके दोनों हाथ जोड़कर श्रीकृष्णसहित घरमें लिवाकर ले गये ॥३७॥ "और भले आये" इस प्रकार कुशल पूछ अक्रूरजीके लिये आसन बिछाकर, विधिपूर्वक चरण पखार मधुपर्क (दधि, घृत, मधु) दे पूजा करने लगे ॥ ३८ ॥ विधिपूर्वक पूजा कर अक्रूरजीको गौदान दी, फिर मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविंद आदरसहित दबाकर गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अतिश्रद्धासे अक्रूरके आगे निवेदन की ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत जब अक्रूरजी भोजन कर चुके तब परमधर्मके जाननेवाले बलदेवजी बीड़ा, चंदन, केशर, अँतर और फूलोंके हार इत्यादिकोंसे उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ ४० ॥ सम्मान करनेके पीछे

अक्रूरजीसे नंदरायजी कहने लगे कि निर्दयी कंसके जीते हुए हे अक्रूरजी ! तुम्हारा जीवन किस प्रकार होता है। कसाईके घर रहती भेड़के समान तुम कैसे रहते हो। ॥४१॥ प्राणोंका पोषण करनेवाले दुष्ट कंसने विलाप करती जब अपनी बहिनके ही पुत्र मार डाले, तो उस दुष्टकी प्रजा तुम हो, तुम्हारा क्या कुशल पूछें ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब मधुर वचनसे पूछ नन्दरायजीने सत्कार किया तब महात्मा अक्रूरजीने मार्गके श्रमको त्याग दिया ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेऽक्रूरागमनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दोहा–उनतालिसमें नन्दसुत, मथुरा कियो पयान।
यमुनामें अक्रूरने, लखो भवन भगवान् ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! शय्याके ऊपर आनंदपूर्वक विराजमान श्रीकृष्ण बलदेवसे बड़ा सत्कार पाकर, अक्रूरजीने मार्गमें जो-जो मनोरथ किये थे, वे सब पूर्ण हुए। ॥ १ ॥ क्योंकि छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त परिपूर्ण शोभाके स्थान भगवान् श्रीकृष्ण ही जब प्रसन्न हो गये तब किस वस्तुकी कमी रहे। हे राजा परीक्षित् ! कृष्णपरायण भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करते ॥२॥ इसके उपरांत देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्यासमयका भोजन कर अपने यादवोंसे जैसे कंसका वर्ताव है, वह अक्रूरजीसे पूछने लगे और जो कुछ करनेका विचार है,उसको भी पूछा ॥३॥ श्रीभगवान् बोले कि हे सौम्य ! भला तुम्हारा आगमन कुशलक्षेमसे तो हुआ है ? तुम्हारा कल्याण तो है, जातिके बन्धु-बांधव तो सुखसे और आरोग्य हैं ? किसीको कुछ दुःख तो नहीं है ? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजी ! मामा कंस तो हमारे कुल का रोग बढ़ा है, फिर अपने बंधु-बांधव और प्रजाकी क्या कुशल पूछें ? ॥ ५ ॥ देखो–हमारे निरपराध माता-पिताको अत्यन्त कष्ट हुआ, हमारे लिये उनके पुत्र मारे गये और हमारे ही लिये वे बंदी हुए ॥६॥ हे साधु ! बहुत दिनोंसे तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा लग रही थी, आपने आकर हमको दर्शन दिया, यह बड़ा ही अनुग्रह किया। अब यह बताइये कि आपका आना कैसे हुआ ? ॥७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा अक्रूरजीने जब वृत्तांत वर्णन कर दिया कि कंस यादवोंसे शत्रुभाव रखता है और वसुदेवजीके मारनेका भी उद्योग उसने किया था ॥ ८ ॥ और जो संदेशा लाये थे, व जिस लिये स्वयं उनको दूत बनाकर भेजा था और देवर्षि नारदजीने जो कहा कि श्रीकृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं वह सब कह सुनाया ❁ ॥ ९ ॥ भगवान्

❁ शंका–व्रजमें नन्दादिकोंने अक्रूरसे पूछा कि आप किस कामके लिये व्रजमें आये हो ? तब अक्रूरने कृष्ण चन्द्रसे कहा कि आपको और बलदेवजीको मारनेके लिये यज्ञ देखनेके बहाने कंसने बुलाया है, ऐसा कहा–तब स्वामीका विश्वासघातकपनका पाप लगेगा क्योंकि यह बात गुप्त करके कंसने अक्रूरका विश्वास मानकर कही थी कि अक्रूर किसीसे नहीं कहेगा और जो कंस सरीखे कपट करके कहे कि महाराज आपका मामा है और कंस राजा भी है, यज्ञका कौतुक देखनेको बुलाया है, तब भगवान्की ओर कपटका पाप भोगेंगे ?

उत्तर–जब श्रीकृष्णने अक्रूरसे पूछा कि आपका आना व्रजमें कैसे हुआ। तब अक्रूरने अपने मनमें बड़ा दुःख माना, कैसा दुःख माना ? जैसे एक लकड़ी दोनों ओरसे जलती हो तो उस लकड़ीको कोई पुरुष हाथसे नहीं छू सकता, क्योंकि जो इस लकड़ीको पकड़ता है तो दोनों हाथ जलते हैं और हाथोंके बचनेका उपाय करता है तो लकड़ी हाथसे जाती है, ऐसे ही अक्रूर हो गये-कंस का पक्ष करते हैं तो भगवान्का द्रोही होना पड़ता है और भगवान्का पक्ष करते हैं तो कंसका-द्रोही होना पड़ता है। प्राणत्यागनेका विचार किया फिर श्रीकृष्णभगवान्का ध्यान किया, उस ध्यानमें श्रीरामचन्द्रने अक्रूरको आज्ञा दी कि तुम क्यों इतना कष्ट सहते हो? कंसका कपट हो सो आप प्रगट मत करो,हमारी ओरसे कपटमें तुमको कुछ दोष नहीं होगा। फिर भगवान्ने कहा–हमारी ओरसे कपटका त्रास त्याग–

श्रीकृष्णचन्द्र और बड़े-बड़े शत्रुओंका पराजय करनेवाले बलरामजीने महात्मा अक्रूरका वचन श्रवण कर कुछेक मुसकाते हुए नन्दजीसे राजा कंसका संदेशा कहा ॥ १० ॥ यह सुनते ही उन्होंने गोप लोगोंको आज्ञा दीः—

चौ०—दही दूध अरु माखन मेवा * जोरहु सबै करन नृप सेवा ॥
औरहु भेंट देनके साजू * सबै समेटि लेहु निशि आजू ॥

और गाडियाँ जोड़ ॥ ११ ॥ कल मथुराको चलकर राजा कंसको गोरस देंगे और बड़ा भारी उत्सव देखेंगे। देखो ! यह सब देशवासी जाते हैं, इस प्रकार नन्दजीने गोकुलमें ढँढोरा पिटवा दिया ॥ १२ ॥ इसके उपरांत संपूर्ण गोपियां इस समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुरा ले जानेको ब्रजमें अक्रूर आये हैं, यह बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई ॥ १३ ॥ बहुत गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि उसके सुननेसे जो हृदयमें ताप हुआ उससे गोपियोंके मुख कुम्हला गये और वस्त्र, कंकण, केशोंकी ग्रंथि सब शिथिल हो गईं ॥ १४ ॥ और बहुत स्त्रियोंकी यह दुर्दशा हुई कि श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानसे सब इंद्रियोंकी वृत्तियाँ जाती रहीं, मुक्त होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता है, वैसे ही वे देहका भान भूल गईं ॥ १५ ॥ बहुतसी गोपियाँ स्नेहसे मुसकाकर हृदयको आनन्ददायक, चित्रविचित्र बोलनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंका स्मरण कर मोहित हो गयीं ॥ १६ ॥ बहुतसी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनोहर चलन, स्नेहभरी चितवन, शोकको दूर करनेवाली बोल इत्यादि चेष्टा और बड़े-बड़े चरित्रोंको स्मरण करने लगीं ॥ १७ ॥ यह अवश्य ही जायँगे इस भयसे विरहमें कातर आंसू बहाती भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये हजारों गोपियोंके झुण्डके झुण्ड मिलकर सम्पूर्ण परस्पर यह कहने लगीं ॥१८॥ गोपियाँ कहने लगीं कि हे विधाता ! तुझे कुछ भी दया नहीं है, क्योंकि जीवोंका परस्पर मिलाप व प्रेम बँधाकर उनके पूरे सुख भोगनेपर भी वृथा वियोग कर देता है, इसीसे तेरी क्रीड़ा बालकोंके समान है, अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ जो तू श्याम अलकोंसे आच्छादित सुन्दर कपोल, ऊँची नासिकावाला, शोच मिटानेवाले मंद हास्यके लेशमात्रसे शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका एक बार दर्शन कराकर पीछे छिपा लेता है, हमने तेरा क्या अपराध किया है ! ॥२०॥ दान करके लेता है, इसलिये तू बड़ा कठोर है, (अक्रूर लिये जाता है मैं तो नहीं ले जाता, यदि विधाता यह कहे तो इसके उत्तरमें गोपियाँ कहती हैं कि) अरे विधाता ! निर्दयी अक्रूर नाम धरकर तू ही आया है, अपने दिये हुए कृष्णरूप नेत्र अज्ञानीके समान करके लिये जाता है; जिस तेरी दी हुई आंखसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके एक-एक अंगमें तेरी संपूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता हम देखती हैं ॥ २१ ॥ अरे ! रे ! क्षणभंगुर स्नेहवाले नंदके पुत्रकी मुसकानसे मोहित हुई घरमें बन्धु और पुत्र पतियोंको छोड़ हम साक्षात् उनकी दासी हुईं, परंतु बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह हमारी ओरको दृष्टि उठाकर देखता भी नहीं, जान पड़ता है कि उसे नित्यप्रति नये-नये प्यारे लगते हैं ॥ २२ ॥

-दो, क्योंकि हम सब संसारका कर्म जानते है, मनुष्योंकी नाई हम नहीं है, इस प्रकार भगवान्की आज्ञा पाकर अक्रूरने कंसके कपटरूप वचन कृष्णसे कहे, भगवान् तो सब जानते ही है, फिर क्यों गुप्त रखकर दोषका भागी बनूं, इसलिये कह दिया कि तुम दोनों जनोंको यज्ञ देखनेके लिये कंसने बुलाया है।

दोहा—नँदनंदन नहिं नेहकी, जानत नेकहु रीति।
सबसों राखत है कपट, मुख देखेकी प्रीति ॥

मथुराकी स्त्रियोंको इस रातका सबेरा अच्छा होगा, क्योंकि उनके मनोरथ निश्चय सच्चे होंगे। देखो, जो स्त्रियाँ मथुरामें पधारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मुख जो कि कटाक्षसे वृद्धिगण और मुसकानरूप जिसमें रस ऐसे सुन्दर रसका पान करेंगी ॥२३॥ हे बालाओ ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता, पिता आदिके पराधीन हैं और धीर हैं, परंतु तो भी उन स्त्रियोंके मधुके समान मीठे भाषणों से इनका चित्त हरण हो जायगा, व उन स्त्रियोंके लजीले मंदहास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे, इसलिये जो अपने गांवकी रहनेवाली हैं, उनके निकट पीछे किस प्रकार आयेंगे ॥ २४ ॥ आज तो मथुरामें दाशार्हवंशी, भोजवंशी और अन्धवंशी यादवोंकी आंखोंको निश्चय आनन्द होगा, क्योंकि लक्ष्मीके संग रमण करनेवाले संपूर्ण गुणयुक्त देवकीनन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको जो पुरुष मार्गमें देखेंगे उनके नेत्रोंको निश्चय ही बड़ा आनन्द होगा ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीका अक्रूर नाम किसने रखा है, जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे विना पूछे प्राणोंसे प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हमारी आंखोंसे दूर लिये जाता है ॥ २६ ॥ देखो ! यह कठोरबुद्धि कृष्ण रथमें जा बैठे, उसपर भी, यह अभागे ग्वाल गाड़ीको शीघ्र ही हांकनेकी चेष्टा करते हैं, ऐसी अनीतिको होती हुई देखकर कोई बड़ा-बूढ़ा भी मना नहीं करता। इस समय किसी गोपको विघ्न हो जाता तो बुरा शकुन विचारकर श्रीकृष्ण नहीं जाते, हाय ! हाय ! ! आज दैव ही हमारे प्रतिकूल है ॥ २७ ॥

दोहा—हाय दई कैसी भई, ब्रजमें यह अनरीति।
एक बार नँदलालने, छोड़ दई सब प्रीति ॥

फिर गोपियाँ बोलीं कि सखा ! हम चलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मने करेंगी और उनके रथके आगे जाय आड़ी पड़कर कहेंगी कि यदि आप जाते ही हैं तो हमारी छातीपर रथकी पहिया उतारकर चले जाओ और हमारे कुलके बड़े-बूढ़े भी क्या करेंगे ? क्योंकि जो अर्धक्षणको भी नहीं छूट सकते, उन्हीं मुकुन्दका वियोग कर दैवने हमारे चित्त दीन कर दिये हैं ॥२८॥ हे गोपियो ! और देखो, सखी ! उन्हीं कृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुसकान मनोहर लीलापूर्वक चितवन-आलिंगनसे रासकी सभामें अत्यन्त बड़ी रात्रियाँ एक क्षणके समान बीत गयी थीं, अब विना श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी ? ॥ २९ ॥ संध्या समय बलदेवजीके संग ग्वालबालोंसे वेष्टित हो बांसुरी बजाते जिनके बाल और माला गायोंके खुरोंकी धूरिसे परिपूर्ण रहते थे, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वनमें आनेके समय कुछेक हँसते हुए कटाक्ष सहित दृष्टिसे हमारे चित्तको हर लेते थे, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना अब हम किस प्रकार जीवन धारण करेंगी ? ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित ! इस प्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये गोपियाँ लज्जा त्याग हे गोविंद ! हे दामोदर ! हे माधव ! इस भांति पुकार-पुकारकर रोने लगीं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार गोपियाँ विलाप कर रही थीं, कि इतनेमें ही भगवान् सूर्य उदय हो गये, इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजीने संध्योपासन कर रथ हांका, तब गोपियाँ हाहाकार कर रोती हुई कहने लगीं ॥ ३२ ॥

चौ०–मोहन इधर देख तो लीजै ❀ बिछुरत लाल हमें कछु दीजै ॥
लेहु निहार विरजको खेरो ❀ बहुरो व्रजमें होत अँधेरो ॥
बार बार यशुदा यों भाखै ❀ कोऊ चलत गोपालहिं राखै ॥
सुफलकसुत वैरी भयो आई ❀ हरे प्राण धन बाल कन्हाई ॥

केशवमूर्तिके वियोगमें यशोदा व गोपियाँ इस प्रकार व्याकुल हो हाहाकार करने लगीं, इसके उपरांत नंदादिक सम्पूर्ण ब्रजवासी ग्वालबाल दूध-दही-माखनसे भरे कलशोंको ले गाड़ियोंमें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सङ्ग चले ॥ ३३ ॥ और कृष्णमें आसक्त मन गोपियाँ श्रीकृष्णके पीछे जाय कदाचित् श्रीकृष्ण लौट आयें, इस प्रकार पैंड़ा देखने लगीं, जब हरिके निकट गईं तब तो घबड़ाकर–

चौ०–धाईं कहत हाय! घनश्यामा ❀ कहां जात तजिकै व्रज धामा ॥
बालपनेकी प्रीति कन्हाई ❀ तोरि चले तिनकाकी नाईं ॥
कहत हते हमसों हे प्यारे ❀ तुम समान कोउ प्रिय न हमारे ॥
भूल गये रतियाकी बतिया ❀ सो सुधि करत फटत अब छतिया ॥
विरहवारिनिधिकतव्रजबोरत ❀ लालन लगनलता कत तोरत ॥

अरे निर्दयी ! जो यही इच्छा थी तो उसी समय क्यों नहीं डूब जाने दिया, यह दुःख क्यों देखनेमें आते ?

चौ०–होत दया नहिं कत मन तेरे ❀ रे कपटी कान्हा नँदकेरे ॥
तुम तो चले मधुपुरी प्यारे ❀ हमको काहे जात न मारे ॥
यहिविधिकहतविविधविधबानी ❀ चली जात रथसे लिपटानी ॥
गिरहिं परहिंपुनिउठहिं भामिनी ❀ छूटी वेणी खुली दामिनी ॥
रज रञ्जित ह्वैगे सब अङ्गा ❀ भो करदम महि आंसु प्रसङ्गा ॥

रथकी धूरि जो उड़ती थी सब अङ्ग उससे रङ्ग गये और नेत्रोंसे जो आंसुओंकी धारा निकली तो सब पृथ्वीपर ऐसी कीचड़ सी हो गयी कि पांव उठायेसे नहीं उठते थे, वहीं खड़ी हो हाय ! हाय ! करने लगी ।

चौ०–हाय हाय माचो चहुँ ओरा ❀ दुखित युवा जरठहु अरु छोरा ॥
काहू तनु नहिं तनक सम्हारा ❀ देखहिं दृग भर नन्द कुमारा ॥
ब्रज बनितनकरलखकर शोका ❀ गये शोकमढ़ि तीनहु लोका ॥
हरिणी हरिण हेर हरि रोवैं ❀ रहे अचलतरु हरि मन जोवैं ॥
बोल रहे वन विहँग चिरैया ❀ मनहु कहत कहँ जात कन्हैया ॥

दोहा–जिनके तन धन प्राणते, अति प्रिय नन्दकुमार ।
तिन ब्रजनारिनको विरह, को कहि पावत पार ॥ ३४ ॥

यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने चलनेके समय उन गोपियोंको व्याकुल देख "शीघ्र ही अऊँगा" ऐसे प्रेमसहित वचन दूतसे कहलवाकर शान्त किया ॥३५॥ हे परीक्षित् ! जहां

तक रथकी ध्वजा देखी, वहांतक तो रथकी धूल उड़ती देखी और तबतक गोपियाँ भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाये चित्रकी नाई लिखीसी खड़ी रहीं ॥ ३६ ॥ परंतु जब जाना कि अब मुरलीमनोहर नहीं आयेंगे, तब वे गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो लौटीं और शोक प्रकट कर परस्पर कहने लगीं ॥ ३७ ॥

दोहा—भयो ओट जब दृगनते, मुरछि परीं विलखाय ।
कहति गयो रथ दूर अब, धूरि न परत लखाय ॥

हे राजन् ! इस भांति वे गोपियाँ विलाप करती हुई ब्रजमें लौट आयीं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंको गाय-गाय शोक त्यागती दिनोंको बिताने लगीं । उधर पवनके तुल्य वेगवाले रथमें बैठ बलदेव अक्रूर सहित भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली यमुनाके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहां पहुँच हाथ-पांव धो आचमन कर, निर्मल मीठा जल पी, फिर बगीचेमें आकर बलराम सहित रथमें बैठ गये ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत महात्मा अक्रूरजी भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजीको रथमें बैठाकर और उनसे आज्ञा मांग विधिपूर्वक स्नान करने लगे ॥ ४० ॥ और जलमें गोता मारकर गायत्रीका जप करते-करते महात्मा अक्रूरजीने कृष्णबलदेवको देखा ॥४१॥ फिर अक्रूरजीको भ्रम हुआ कि रामकृष्णको तो मैं रथमें बैठा कर आया था, वे यहां कैसे आये ? कदाचित् रथमेंसे उतर तो न आये हों इसलिये निकलकर देखूँ इस प्रकार विचार करने लगे ॥४२॥ फिर अक्रूरजीने निकलकर देखा कि पहलेके समान कृष्णबलदेव रथमें विराजमान हैं, उस समय अक्रूरजी महाविस्मयको प्राप्त होकर कहने लगे कि जलके भीतर जो मुझे दर्शन हुआ, वह मिथ्या है, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर फिर गोता मारा तो सिद्ध, चारण, गंधर्व, देवता, नर्तक स्तुति कर रहे हैं और भगवान् शेषजी विराजमान हैं ऐसा देखा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिनके सहस्र शिर मुकुटोंसहित सहस्र ही फण नीले वस्त्र धारण किये कमलनालके तुल्य श्वेतवर्ण कैलासके समान प्रकाशमान शेषजीको देखा ॥ ४५ ॥ कुण्डलसे विराजमान उनके ऊपर श्याम और पीत वस्त्रोंको धारण किये चार भुजा शांतस्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंके समान अरुण नेत्र ॥४६॥ सुन्दर प्रसन्न मुख, सुन्दर हास्यभरी चितवन, सुन्दर भृकुटी और शोभायमान नासिका, सुन्दर कर्ण, सुंदर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥४७॥ लंबी-मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोल शंखसी ग्रीवा, तीन वली जिसमें पड़ रहीं ऐसे शोभायमान जिनकी नाभि, पीपलके पत्तेके समान चिकना उदर ॥४८॥ पतली कमर और बृहत् श्रोणीसे शोभायमान दोनों जंघा ॥ ४९ ॥ लंबायमान दोनों गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी कांतिसे वेष्टित कोमल अँगुली, सुंदर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलकी मणियोंसे जटित किरीट, कड़े, बाजूबन्द और कमरकर्धनी, यज्ञोपवीत, मोतियोंके हार, चरणोंमें नूपुर तथा कानोंमें कुण्डल जो पहन रहे हैं, उनसे अत्यंत ही प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल, शंख, चक्र और गदाको धारण किए, भृगुलताका चिह्न जिनकी छातीमें प्रकाशमान, कौस्तुभमणिकी जिनके धुगधुगी॥५२॥ सुनंद-नंद जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद, सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार और ब्रह्मा, महादेवादि देवता, मरीच्यादि जो ब्राह्मण, प्रह्लाद, नारद, वसु जिनमें मुख्य इस प्रकार उत्तम भक्त अलग-अलग भावसे उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, माया जिनका निरंतर सेवन करती

हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्णरूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो परमभक्तिको प्राप्त हो देहमें रोमांच हो गये और भक्तिके कारण नेत्रोंमें आंसू भर आये ऐसे महात्मा अक्रूरजी मस्तक नवाय, प्रणाम कर, सावधान हो, हाथ जोड़, धीरेसे सत्त्वगुणका आश्रय ले गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेऽक्रूरप्रतियाने भगवत्प्रयाणनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥

दोहा–चालिसमें अक्रूरने, लखि हरिचरित अपार ।
सगुण निर्गुणकी भक्तिसे, विनवत वारंवार ॥

अक्रूरजी बोले कि, हे कृष्ण ! सम्पूर्ण कारणोंके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी जिनकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलसे ब्रह्मा हुए और उस ब्रह्मासे यह लोक उत्पन्न हुआ, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, पुरुष-मन, इंद्रिय, समस्त इंद्रियोंके लिये विषयसे सम्पूर्ण देवता यह जो जगत्के कारण हैं, वह तुम्हारे ही अंगसे हुए हैं ॥२॥ ब्रह्मा आदिसे लेकर जड़ जो सम्पूर्ण तत्त्व हैं वे अपने स्वरूपको नहीं जानते और जीव हैं वे तत्त्वोंको जानते हैं अपने स्वरूपको नहीं जानते, मायाके गुणोंसे बँधे हुए जीव गुणोंसे अलग तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपासक महापुरुष ईश्वर तुम हो, तुम्हारी ही पूजा करते हैं और इन्द्रिय, पञ्चभूत देवता इनके साक्षी अन्तर्यामी तुम हो,इस लिये तुम्हारी साधुलोग पूजा करते हैं ॥४॥ और कोई एक कर्मोंमें निष्ठावाले ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेदसे यज्ञोंका विस्तार करके अनेक रूप देवताओंका नाम ले-लेकर पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ और कोई-कोई ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको त्याग समाधिमें आकर ज्ञानरूप तुम्हारा पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लेकर नारदपञ्चरात्रमें कही पूजाकी विधिसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत रूप और नारायणरूपसे एकरूप आपकी ही पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! और कोई-कोई पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्ग और पाशुपतमार्ग से शिवरूप तुम्हारी अनेक प्रकारसे उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे सर्वदेवतारूप ! हे समर्थ ! जो पुरुष और देवताओंके भक्त हैं और देवताओंमें उनके मन लग रहे हैं, वह सबके ईश्वर तुम्हारी ही पूजा करते हैं, क्योंकि आप सब देवताओंके रूप हैं ॥९॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकलीं मेघके जलसे परिपूर्ण हो नदियाँ चारों ओरसे बह-बहकर समुद्रमें जा मिलती हैं उसी प्रकार सब देवताओंके मार्ग अन्तमें तुममें ही आकर मिल जाते हैं॥१०॥सत, रज, तम यह तुम्हारी प्रकृतिके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्मा आदि स्थावरतक सब जीव पोये हुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति तुममें ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्त बुद्धि जिनके आत्मा सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी तुम हो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । अविद्यासे हुआ गुणका प्रभाववाला संसार देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इनकी देहमें ही प्रवृत्त होता है । इसलिये इनमें और आपमें बड़ा अन्तर है ॥१२॥ अग्नि तुम्हारा मुख है, पृथ्वी तुम्हारा चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा और समुद्र कांख है, पवन प्राणरूप तथा बलरूप कल्पना किया है ॥ १३ ॥ वृक्ष ओषधि देहमें रोम, मेघ तुम्हारे केश, पर्वत तुम्हारे हाड़ और नख हैं, रात्रि दिन पलकोंका खोलना तथा बन्द करना है, प्रजापति तुम्हारा मेढ्र है और वर्षाको तुम्हारा

वीर्य कहते हैं ॥१४॥ तुम अविनाशी पुरुषमें ही लोकपालोंसहित लोक स्थित हैं और वह बहुतसे जीवोंसे व्याप्त हैं, जैसे जलमें छोटे कीड़े चलते हैं, गूलरमें भुनगे उड़ते हैं, उसी प्रकार मनकी वृत्तिसे जाननेमें आनेवाले जो तुम हो उनमें अनन्त ब्रह्मांड फिरते हैं ॥१५॥ इस संसारमें लीला करनेके लिये आप जो-जो रूप धारण करते हो उनसे शोक दूर कर लोग आनंदसे तुम्हारे यशको गाते हैं ॥१६॥ सत्यव्रतको माया दिखानेके लिये मत्स्यरूप धरकर प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है । मधुकैटभ दैत्यको मारनेके लिये हयग्रीवरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है ॥१७॥ मंदराचल पर्वतके धारण करनेवाले बड़े कच्छपरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, पृथ्वी लानेके लिये वाराहरूप आपको नमस्कार है ॥१८॥ साधुपुरुषोंका भय दूर करनेवाले अद्भुत नृसिंहरूप धरनेवाले आपको नमस्कार है, वामनरूप होकर तीनों लोक नापनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ १९ ॥ गर्वीले क्षत्रियरूप वनको काटनेवाले भृगुवंशियोंके पति परशुराम तुमको नमस्कार है, रावणके मारनेवाले रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्ररूप आपको नमस्कार है ॥२०॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है, संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है, भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है॥२१॥ दैत्यदानवोंके मोहित करनेवाले शुद्ध-बुद्धरूप तुमको नमस्कार है, म्लेच्छ क्षत्रियोंको मारनेवाले कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥२२॥ हे भगवन् ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहित हो अहंता-ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्गोंमें भ्रमण करता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! मैं भी स्वप्नके समान आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन, भाई, बन्धु इत्यादि हैं उनमें मूर्खतासे सत्यबुद्धि कर भ्रमण करता हूँ ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप हैं उनको नित्य आत्मा सुखरूप जानता हूँ और सुख-दुःखमें क्रीड़ा करनेवाले अज्ञानसे भरा मैं अपने प्रिय तुमको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सिवारसे ढके जलको छोड़ सूर्यकी किरणोंसे बालू चमकते जलके लिये जाते हैं, उसी प्रकारसे ढके तुमको त्याग देहादिकोंमें मेरा मन लग रहा है ॥ २६ ॥ कृपण बुद्धि अर्थात् विषयोंमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभित हुए मनको रोकनेमें असमर्थ नहीं हूँ, परन्तु बलवान् इन्द्रियाँ मनको इधर-उधर चलायमान कर देती हैं ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयी पुरुषोंको दुर्लभ मैं आपके चरणारविंदोंकी शरण आया हूँ और तुम्हारी शरण आना यह भी आपके ही अनुग्रहसे हुआ है, ऐसे मानता हूँ क्योंकि जब पुरुषका संसार छूटनेवाला होता है, तब हे कमलनाभ ! साधुओंकी सेवा करते हैं, उस सेवासे तुममें आकर बुद्धि लगती है, परंतु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लगती है, परंतु तुम्हारी कृपा विना साधुओंकी सेवा भी नहीं बनती और तुममें बुद्धि भी नहीं लग सकती ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष काल एवं माया रूप ब्रह्म तुम्हीं हो, इसीलिये हे अनन्तशक्ति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२९॥ हे समर्थ ! हे इन्द्रियोंके प्रेरक ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणियोंके आश्रय तुमको मैं नमस्कार करता हूँ, तुम्हारी शरणमें प्राप्त हुए मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥

दोहा—तव गुण रूप अनंत प्रभु, हौं अजान जगदीश ।
यों स्तुति अक्रूर करि, नाये पदपर शीश ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दोहा-इकतालिस अध्यायमें, मथुरा कियो प्रवेश।
रजक वधो माली दियो, शुभ वरदान ब्रजेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्तुति करते हुए अक्रूरजीको जलके भीतर अपना स्वरूप दिखलाकर फिर जैसे नट अपने स्वांगको दिखलाकर समेट लेता है; उसी प्रकार समेट लिया ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी श्रीकृष्णचन्द्रको जलमेंसे अन्तर्धान हुआ देख अत्यंत शीघ्रतासहित जलमेंसे निकल सम्पूर्ण सन्ध्योपासन कर आश्चर्य मान रथके निकट आये ॥२॥ इनको देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे अक्रूर ! पृथ्वीमें, जलमें, आकाशमें तुमने ऐसी आश्चर्य वस्तु क्या देखी है, क्योंकि तुम आश्चर्यरूप चकितसे दिखाई देते हो ? ॥३॥ तब अक्रूरजी बोले कि इस संसारमें, पृथ्वीमें जलमें जितने आश्चर्य हैं वे सब आश्चर्य विश्वरूप आपमें विद्यमान हैं। आपका मैंने दर्शन किया ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! आपमें ही सब आश्चर्य भरे हैं, अतः जब आपका दर्शन मैंने कर लिया तो फिर पृथ्वी, आकाश और इस संसारमें क्या आश्चर्य देखना शेष रह गया ? ॥५॥ ऐसे कह गांदिनीके पुत्र महात्मा अक्रूरजीने रथ हांका और तीसरे ही पहरतक मथुरापुरीमें रामकृष्णको पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! मार्गोंमें ग्रामोंके मनुष्य जहां-तहां इकट्ठे हो कृष्णबलदेवका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके रूपसे अपनी दृष्टिके हटानेको भी समर्थ न हुये ॥७॥ हे महाराज ! इसी बीचमें नन्दादिक समस्त ब्रजवासी आगे आकर मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आनेका पैंड़ा देखने लगे ॥८॥ इसके उपरांत जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन ब्रजवासियोंके निकट आकर नम्र हो कुछेक मुसकान सहित अक्रूरसे कहा कि ॥९॥ हे अक्रूर ! तुम आगे रथको ले जाकर पुरीमें प्रवेश करो और अपने घर जाओ, हम यहां कुछ देर विश्राम लेकर मथुरापुरीको देखेंगे ॥ १० ॥ तब अक्रूरजी बोले कि हे प्रभो ! तुम विना अकेला मैं मथुरापुरी नहीं जाऊँगा। हे नाथ ! हे भक्तोंपर हित करनेवाले ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, इसलिए मुझे मत त्यागो ॥ ११ ॥ तुम आओ, हम तुम घर चलें। हे अधोक्षज ! हे सुहृदोत्तम ! आज अपने बड़े भाई बलदेवजी और ग्वाल-बालों सहित मेरे घर चलकर मुझे सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणोंकी रजसे मुझ गृहस्थके घरको पवित्र करो और तुम्हारे चरणोंकी धोवनसे ही मेरे पितृ, अग्नि, देवता, तृप्त हो जायँगे ॥ १३ ॥ देखो ! तुम्हारे युगल चरण धोनेसे राजा बलिका कैसा पवित्र यश हुआ, कि जिससे अत्यन्त दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ और अनन्य भक्तोंको जो गति मिलती है, वही गति उसने पायी ॥१४॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! तुम्हारी कथा-श्रवण और गुण-कथनसे भक्त पवित्र हो जाते हैं, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो। हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणारविंदका धोवन जल गंगारूप होकर त्रिलोकीको पवित्र करता है, उसी जलको शिवजीने अपने मस्तकपर धारण किया है और उसी जलके स्पर्शसे साठ हजार सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये ॥१६॥ तब श्रीभगवान् बोले कि यादवोंसे द्रोह करनेवाले कंसको मार सुहृदोंका प्रिय करूँगा, इसके उपरांत बड़े भाई बलदेवजीको सङ्ग ले मैं तुम्हारे घर आऊँगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन श्रवण कर अक्रूरजी विमन हो पुरीमें जा "राम कृष्णको ले आया" ऐसे कह अपने घरको चले गये ॥ १८ ॥ इसके उपरांत तीसरे पहरके समय बड़े भाई बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्ण-

चन्द्र गोप-ग्वालोंको संग ले मथुरापुरी देखनेके लिए चले ॥१९॥ उस पुरीकी कैसी शोभा है कि स्फटिक मणियोंके ऊँचे शहरपनाहके और घरोंके द्वार बने हुए हैं, उनमें बड़े-बड़े सोनेके किंवाड़ चढ़ रहे हैं, और ठौर-ठौर बन्दनवारें टंग रही हैं, अन्न भरनेके लिए तांबे तथा पीतलके कोठे बन रहे हैं, चारों ओर चौड़ी खाई बन रही है, उद्यान और उपवन आदिसे यह पुरी अत्यन्त शोभायमान हो रही है ॥२०॥ सुवर्णके चारों ओर मार्ग, साहूकारोंके महल और बड़े-बड़े कारीगर मनुष्योंके मकानोंसे यह पुरी शोभायमान हो रही है। वैदूर्य-मणि, हीरे, निर्मल नील मणि, मूँगे, मोती इनके काम जिनमें हो रहे, ऐसे शोभायमान छज्जे हैं ॥२१॥ जाली झरोखोंमें बैठे हुए मोर जहां-तहां शोर कर रहे हैं, राजमार्ग व गलियोंमें छिड़काव हो रहा है, उनमें पुष्पोंकी माला, अंकुर, धानकी खीलें और चावल यह मंगलद्रव्य फैल रहे हैं, ॥२२॥ चंदन दहीसे छिड़के फूल जिनपर धरे, ऊपर दीपकोंकी पंक्ति धरी, आमकी डाल जिन पर विराजमान, ध्वजा जिन पर फहरा रही है, दरियाईके कपड़े जिनकी नारिसे बंधे गहिरसहित केले व सुपारीके वृक्ष जिनके निकट लग रहे ऐसे जलके भरे कलश दरवाजोंपर रखे हैं, जिनसे वह पुरी बहुत ही शोभायमान हो रही है ॥ २३ ॥

दोहा—ध्वज पताक तोरण कलश, जहँ-तहँ ललित वितान।
मुक्ता झालर झलमलै, को करि सकै बखान ॥

बराबरके मित्रोंको सङ्ग ले मथुरापुरीके बीच बाजारमें हो जिस समय वसुदेवनन्दन कृष्ण-बलदेव निकले, उस समय इनको देखनेके लिए पुरीकी बहुत स्त्रियाँ दौड़ आयीं और बहुत सी स्त्रियाँ देखनेकी इच्छा से महलोंपर चढ़ गयीं ॥ २४ ॥

कबित्त—कोई सारी घाँघरेकी घाँघ रोंके सारी कोई, हार किंकिणीके किंकिणिको कोई हार है ॥ कोई एक कर्णफूल धारो है चरणहूमें, कुण्डल औ कंकड़ हू नूपुर श्रृंगार है ॥ परखो न कोऊ एक एकनको रघुराज, कीन्ही नहिं कोऊ एक एकन पुकार है ॥ बाम मथुरामें खड़ी ऊंचेन अटापै चढ़ी, बार बार गावैं आयो नन्दको कुमार है ॥

कोई-कोई स्त्री उतावलके मारे ओढ़नियोंको पहन लहँगेको ओढ़ हाथोंके गहने पावोंमें पहन कर चली आयीं। कोई एक स्त्री एक हाथ और एक पांवमें ही गहना पहनकर चली आयी और एक स्त्री एक कानमें कर्णफूल व एक पावमें पांयजेब पहनकर चली आयी, और कोई स्त्री एक ही आंखमें काजल लगाकर आ गयी ॥ २५ ॥

कबित्त—एक दृग खञ्जनमें अञ्जन लगाय चली, कोई एक कौर मुख खाती उठ धाई है। कोई अङ्गराग आधे अङ्गन लगाय चली, कोई पुरनारी चली आध ही नहाई है ॥ रघुराज कोई गृहकारज बिसार चली, कोई बाल अधप्यायो बालक बिहाई है। चहर पहर माचो शहर पहर दिनै, डहर डहर डोलै कुँवर कन्हाई है ॥

दोहा-परचो शोर मथुरा नगर, आवत नन्दकुमार।
सुनि धाये नर नारि सब गृहको काज बिसार॥

कोई-कोई स्त्री भोजन करते ही चली आयी और कोई-कोई स्त्री अंगमें तेल मल रही थी वह विना स्नान किये चली आयी। कोई सोतेसे ही उठकर चली आयी, कोई स्त्री अपने बालकको दूध पिला रही थी, सुना कि कृष्ण बलदेव आये हैं, वह बालकको रोता ही छोड़ कर चली आयी॥ २६॥

कबित्त-तकिकै तिरछे नैन बाण सम वेधि सैन, देत है परम चैन भ्रुकुटी नचायकै। सुषमानिकाय देखे काम बिक जाय ऐसो, रूप दरशाय कीन्हों विवश बनायकै॥ रघुराज आलिन समाजते परानी लाज, देखैं यदुराज प्यारी पलकैं बिहायकै। मन्द मंद गौनत गयन्दगति मोह्यो मन, मथुराके मगमें मुकुन्द मुसकायकै॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमवाले कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही हँसनि-चितवनिसे उन स्त्रियोंका मन चुरा लिया और लक्ष्मीको रमण करानेवाले अपने रूपसे उन स्त्रियोंकी आंखोंको आनन्द देने लगे॥ २७॥

कबित्त-साजिकै शृंगार सङ्ग रोहिणी कुमार सखा, सोहैं रघुराज मुरि मोदहिं भरत जात। करकै कटाक्षनि मृगाक्षिनि छकावे छैल, धाम धाम धूम धाम पुरमें करत जात। केती भईं कायल ते परीं भूमें घायलसी, केती बाल बायलसी जियरो जरत जात। जौनही डहर ह्वैके कान्हरो कढ़त तहाँ, तौनही डहरमें कहरसों परत जात॥ निमिष निवार घनश्यामको निहार चित्र, पुतरीसी ठाढ़ी पुरनारी आनँदै भरी। मोहनकी तकनि त्यों ही हँसनि सुधाकी सींची, पायकै सुहाग अनुराग युत हैं खरी। रघुराज प्यारो प्रेम बेड़ी पायनाय दीन्हीं, ताप हरि लीन्हीं भई पुलक घरैं घरी। माधवकी मूरतिको मथुराकी नारिनने, पलक कपाट दै कपाटी उरकोठरी॥

बारंबार बातें सुनकर उन कृष्णमें लगे हैं चित जिनके और उनकी चितवन मुसकान रूपी अमृतका जो सींचना है उससे सत्कार पानेसे रोमाञ्च हो आये। ऐसी स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देख नेत्र द्वारा हृदयमें ले जाकर आनन्दरूप श्रीकृष्णको आलिंगनकर, हे काम लोभादिकोंके दण्ड देनेवाले राजा परीक्षित्! श्रीकृष्णके विना मिले ही कामकी पीड़ाको त्याग दिया॥ २८॥

दोहा-चढ़िकै उच्च अटानिपर, विकसत मुख जलजात।
वर्षहिं हरि बल पर सुमन, हरषहिं पुलकित गात॥
बिन ब्याही ब्याही भई, ब्याही लेत उसांस।
गौनेकी मौने रहीं, देखि कृष्ण मृदु हास॥

इसके उपरांत प्रफुल्लित नेत्रवाली स्त्रियाँ महलोंके शिखरपर चढ़ी कृष्ण बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर-कर कहने लगीं॥ २९॥

दोहा—मणि कञ्चनके शिखर दोउ, किधौं मानसर हंस ।
कै प्रगटे ब्रज देन सुख, त्रिभुवनके अवतंस ॥

चौ०—इहि विधि जहां तहां नर नारी ❀ प्रभुहि बतावैं हाथ पसारी ॥
नील वसन गोरे बलरामा ❀ पीताम्बर पहने घनश्यामा ॥
सुनत हुती पुरुषारथ जिनके ❀ देखहु रूप नैनभरि तिनके ॥
अतिअभिराम श्याम छबिधारी ❀ इनही प्रथम पूतना मारी ॥

इस प्रकार परस्पर कहने लगीं, फिर दही, अक्षत,जलके भरे पात्र और माला चंदन भेंट लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रसन्न होकर कृष्ण बलदेव का पूजन करने लगे ॥ ३० ॥ और संपूर्ण मथुरावासी अत्यन्त आश्चर्य मान यह कहने लगे कि गोपियोंने ऐसा क्या उत्कृष्टतप किया है, जो गोपी मनुष्यलोकके बड़े उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवका दर्शन करती हैं ॥३१॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रोंको धोनेवाला और रँगनेवाला मार्गमें आता हुआ एक धोबी देखा और अतिनम्रता सहित उससे अति उत्तम धुले हुए वस्त्र मांगे॥३२॥ और कहा कि हे धोबी ! हमको हमारे योग्य वस्त्र दे दो, कारण कि हम इन वस्त्रोंके योग्य हैं और हमें वस्त्र देनेसे तेरा कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥३३॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार सब ओरसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धोबीसे वस्त्र मांगे तब अत्यन्त क्रोधित हो, कंसका सेवक अतिघमण्डी डाटकर बोला कि ॥ ३४ ॥

चौ०—वन वन फिरत चरावत गैया ❀ अहिर जाति कामरी उढ़ैया ॥
मुख तो देख लेहु तुम अपने ❀ पहिरे बसन कबहुँ अस सपने ॥
हो तुम गाय चरावन हारे ❀ पी पी छांछ भये मतवारे ॥
नृपके वस्त्र लेन अभिलाखो ❀ अपनी जाति सुरति नहिं राखो ॥
सूधे चले जाहु जहँ जाते ❀ कस बढ़ि बात बहुत बतराते ॥
जानो तुम मूरख दोउ भाई ❀ अनुचित उचित न परत जनाई ॥
अबहूँ मोरि सिखावन गहियो ❀ काहूसों अस वचन न कहियो ॥
नटको बेश साजिके आये ❀ नृप अम्बर पहरन मन भाये ॥

नित्य पर्वत और वनके फिरनेवाले ऐसे ही कपड़े पहनते हो ? हे उद्धत ! तुम राजाके वस्त्रोंके लिये क्यों मन ललचाते हो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! यदि अपना जीना चाहो तुम शीघ्र ही यहांसे निकल जाओ, फिर मत मांगना, क्योंकि राजा कंसके बहुत सेवक फिरते हैं और जो धूम मचाता है, उसे वे मारते हैं । लूटते हैं, बांधते हैं, तुम तो यह वस्त्र मांगते हो और मुझे यह जान पड़ता है कि कोई तुम्हारा भी वस्त्र न उतार ले ॥ ३६ ॥

चौ०—जाहु चले ह्यांसे अब नीके ❀ कै है हो अबहीं बिनु जीके ॥
नेक आश जीवनकी जोऊ ❀ खोवन चहत अबहिं पुनि सोऊ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बकवाद करते हुए उस धोबीका शिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने महाक्रोधित हो अपने हाथकी थापसे काट डाला ॥ ३७ ॥ जब मुख्य धोबी मारा गया, तब उसके टहलुये धोबी वस्त्रोंको पटक-पटक चारों ओरको भागगये, उस समय श्रीकृष्ण और बल-

रामजी मनमाने वस्त्रोंको पहनकर बाकी जो रहे वह गोप-ग्वालोंको दे दिये, और जो रहे सो वहीं छोड़ दिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

चौ०-रजक मारि सब वस्त्र लुटाये * आप पहिर ग्वालन पहनाये ॥
विविध रङ्ग बहुभांति नवीने * निज निज रुचि ग्वालन सब लीने ॥

हे महाराज ! इसके उपरांत जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और ग्वालबाल सब वस्त्र पहनकर चले उसी समय प्रसन्न मन एक दर्जी आया। उसने आते ही रामकृष्णके लाल, हरे, पीले जो वस्त्र थे, उनके माला, चपकली, बाजूबन्द और अनेक प्रकारके आभूषण बनाकर शोभायमान पोषाक बना दी ॥ ४० ॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी दोनों भाई अनेक प्रकारसे दर्जीके बनाये वस्त्रोंके आभूषणोंसे ऐसे शोभायमान लगने लगे, जैसे पर्वमें सांवरे, गोरे, शृंगार किये हाथीके छौने शोभायमान लगते हैं ॥४१॥ फिर उस दर्जीके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी सारूप्य मुक्ति दी और इस लोकमें सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य स्मरण, तथा इंद्रिय-शक्ति प्रदान की ॥ ४२ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम सुदामा मालीके घर गये, उसने इनको देखते ही पृथ्वीमें शिर लगाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ और आसन दिया, पाद्यार्घ्य इत्यादि पूजाकी सामग्रियोंसे दोनों भाइयोंका पूजन किया, फिर पीछे पानका बीड़ा और चन्दन इत्यादि अर्पण किया ॥ ४४ ॥ फिर माली बोला कि हे प्रभो ! आज आपके आनेसे हमारा जन्म सफल तथा कुल पवित्र हुआ और हमारे पितृ, देवता ऋषि सभी संतुष्ट हो गये ॥४५॥ आप निश्चय इस संसारके परमकारण हो और जगत्के कल्याण और वृद्धिके लिये ही अपने-अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ जगत्के हितकारी आत्मा आप ही हो, आपकी विषम दृष्टि नहीं है, सब प्राणियोंमें समवर्ती हो और जो आपका भजन करता है उसको आप भी भजते हो ॥४७॥ अब आप दासको आज्ञा करो मैं आपकी क्या पूजा करूँ? क्योंकि पुरुषोंको जो आपका दर्शन होता है, यही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्न मन सुदामा मालीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको शोभायमान सुगंधित फूलोंकी माला समर्पित की ॥ ४९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उस मालाको पहनकर मित्रोंके सहित प्रसन्न हो सुदामा मालीको वरदान दिया ॥५०॥ और सुदामा मालीने भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यही वर मांगा कि सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति बनी रहे और आपके भक्तोंमें स्नेह और जीवमात्रमें दया रहे ॥ ५१ ॥

दोहा-सुनि सप्रेम ताके वचन, रीझे श्याम सुजान ।
माली पूरण काम करि, दियो भक्ति वरदान ॥

इस प्रकार उस मालीको मनोवांछित वरदान दे और उसके वंशमें सदा रहनेवाली सम्पत्ति दे तथा बल, आयु, यश, शोभा दे बलदेवजीको संग ले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके घरमेंसे निकले ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

दोहा–कुब्जाको सीधी कियो, कियो शराशन भङ्ग
देखो परमोत्सव तहां, बयालीस भू–रंग ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित्! इसके उपरांत सुख देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्ग बाजारमें आकर ग्रहण किये चन्दनका पात्र, शोभायमान मुखवाली सामने तरुण कुबरी स्त्रीको देख हँसकर पूछा ॥ १ ॥ कि, हे सुन्दर जङ्घावाली ! तू कौन है ? और यह चन्दन किसका है, यह हमारे सम्मुख भलीप्रकार समझाकर कहो, क्योंकि जो यह उत्तम चन्दन हमको दो तो तुम्हारा अभी कल्याण होगा ॥ २ ॥ यह सुनकर कुबरी बोली कि हे सुन्दर ! मेरा नाम कुबरी है और कंसकी दासी हूँ और नित्यप्रति चन्दन घिसना यही मेरा काम है, क्योंकि मेरा घिसा चन्दन राजा कंसको अच्छा लगता है, परंतु अब आपके विना इस चन्दनके लगानेका कोई पात्र नहीं है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सुन्दररूप सुकुमारी और रसिकता, हँसनि-बोलनि तथा चितवनसे मोहित हो कुबरीने श्रीकृष्ण-बलदेवके चन्दन लगाया ॥ ४ ॥ केशर मिला हुआ चन्दन सांवरे अंगमें जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने लगाया और कस्तूरी मिला हुआ चन्दन गोरे अंगमें जिस समय बलदेवजीने लगाया उस समय दोनों भाई अत्यंत शोभायमान लगने लगे ॥ ५ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यंत प्रसन्न हो अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये सुंदरमुखी तीन स्थानसे टेढ़ी कुबरीको सूधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ और फिर कुबरीके पांवोंको अपने चरणोंसे दाब दो अँगुली जिसमें ऊँची की ऐसे हाथको ठोड़ीके नीचे लगाकर श्रीकृष्णने कुब्जाके देहको सीधा कर दिया ॥७॥ उस समय सीधे बराबर हैं अंग जिसके, बड़े नितम्ब और स्तनवाली, ऐसी कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हाथका स्पर्श होनेसे एक सुंदर स्त्री हो गयी ॥ ८ ॥ इसके उपरांत आप ही रूप, गुण, उदारता यह सब कुब्जामें आ गये, तब कामदेवसे पीड़ित हो वह कुब्जा दुपट्टेका छोर पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥९॥ कि हे वीर ! हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम मेरे संग चलकर मेरा भवन पवित्र करो, क्योंकि अब मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती और तुमने मेरा मन चलायमान किया है, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ १० ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार जब कुब्जाने कहा, तब उसी समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और अपने मित्रोंका मुख देख कुछेक मुसकाते हुए कुब्जासे बोले ॥ ११ ॥ कि हे सुंदरभ्रुकुटियोंवाली ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनको खींचती है, तुम हमारा दुपट्टा क्यों खींचती हो ? मैं कंसको मार अपने सुहृदोंका कार्य सिद्ध कर मनका दुःख दूर करनेवाले तुम्हारे घर आऊँगा । क्योंकि मैं तो बालब्रह्मचारी हूँ, किसीसे जान पहिचान नहीं और हमारा यहां घर नहीं, हमें तो केवल तुम्हारा ही आश्रय है, जब तुम्हारे ही यहां न आयेंगे तो और जायँगे कहां ? ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठे-मीठे वचन कह और कुब्जाको वहीं छोड़ आगे चले। तब बनियोंने पान, माला, चंदन इत्यादि भेंट ले बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ १३ ॥ हे महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेके कारण उत्पन्न हुए कामदेवके क्षोभसे मथुरापुरीकी स्त्रियां विह्वल हो गयीं, अर्थात् वस्त्र खुल गये, चोटी खुल गयीं, चूड़ी खिसक आयीं और जैसे कोई चित्र खींचकर खड़ा कर देता है, उसी प्रकार खड़ी रह गयीं ॥ १४ ॥ इसके उपरांत अच्युत भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्र मथुरावासियोंसे पूछते-पूछते धनुषशालामें गये और वहां जाकर इंद्रके धनुषके समान धरा हुआ धनुष देखा ॥१५॥ हे महाराज ! यद्यपि बड़े-बड़े बलवान् पुरुष उसकी रक्षा कर रहे थे, पूजा हो रही थी, अत्यन्त जिसकी शोभा थी, परन्तु तो भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लोगोंके मने करनेपर भी उसे उठा लिया ॥ १६ ॥ और लीलापूर्वक एक ही हाथसे उठाकर पलभरमें मनुष्योंके देखते-देखते बीचमेंसे खींचे । जैसे मतवाला हाथी गन्नेको तोड़ डालता है, उसी प्रकार तोड़ डाला ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जिस समय धनुष टूटा उस समय महा गम्भीर शब्द हुआ; उस शब्दसे पृथ्वी, आकाश, एवं स्वर्ग और सब दिशायें व्याप्त हो गयीं और उस शब्दको सुनकर कंसका हृदय भी अत्यन्त भयभीत हुआ ॥१८॥ इसके पीछे उस धनुषके रक्षकोंने अत्यन्त क्रोधित हो अपने-अपने अनुचरोंसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको "पकड़ लो, पकड़ लो" इस प्रकार कहते चारों ओरसे घेर लिया॥१९॥इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी इन असुरोंको अपने मारनेके लिए आया देख क्रोधित हो धनुषका एक-एक टुकड़ा हाथमें ले उन पुरुषोंको मारने लगे ॥ २० ॥ फिर कंसकी भेजी हुई सम्पूर्ण सेना मार धनुषशालासे बाहर निकल मथुरापुरीकी सम्पदा देख हर्षित होकर घूमने लगे ॥२१॥ मथुरावासी नरनारियोंने भगवान् कृष्ण-बलदेवका अद्भुत पराक्रम और धृष्टता देख अपने मनमें जाना कि ये कोई उत्तम देवता हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्!इस प्रकार कृष्णबलदेव विचर रहे थे कि इतनेमेंही भगवान् सूर्य अस्त हो गये और सन्ध्या हो गयी, तब भगवान् श्रीकृष्ण बलदेव गोपोंसहित मथुरापुरीसे बाहर निकले और जहां गाड़ियाँ छूटी थीं वहां पहुँचे ॥२३॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ब्रजसे चलते समय गोपियोंने विरहमें व्याकुल होकर जो-जो बातें कहीं थीं वे सब ही श्रीकृष्णचन्द्रके अङ्गकी शोभा देख मथुरावासियोंने सत्य जानी, क्योंकि लक्ष्मी भी अपने भजनेवाले ब्रह्मादिकोंको छोड़ इसी रूपकी चाहना करती हैं ॥२४॥इसके उपरांत चरण धो रामकृष्ण दूध-भातका भोजन कर कंसका विचार जान उस रात्रिको सुखपूर्वक वहीं रहे ॥२५॥ कंस धनुषका टूटना, रक्षकोंका मारना और अपनी सेना का वध सुनकर कि यह कृष्णका केवल खेल है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २६ ॥ ऐसा विचार कर मारे भयके उसे नींद न आयी, अर्थात् महाभयभीत हुआ, तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतानेवाले जागतेमें, सोतेमें बहुतसे खोटे स्वप्न देखने लगा ॥२७॥ दर्पण और जलमें मुख देखनेपर उसको अपना शिर नहीं दीखे, चन्द्रमा सूर्य दो-दो रूप नहीं हैं, परंतु उसे दो-दो दिखायी दिये ॥ २८ ॥ अपनी परछाहींमें छिद्र दिखे, अँगुली देकर कानमें देखा तो घू घू शब्द भी सुनाई नहीं आया, वृक्ष सोनेकेसे दिखाई देने लगे और कीच व रेतमें अपने पांवके चिह्न भी न देखे ॥२९॥ इसके उपरांत यह स्वप्न देखा कि भूत-प्रेत छातीसे लगाकर मिलते हैं और गंधेपर चढ़ा गुड़हरके फूलोंकी माला पहने, अकेला, तेलमें भीजा, जहर खाता, नग्न वेष किये मैं दक्षिण दिशाको चला जा रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार स्वप्नमें और जागतेमें खोटे-खोटे शकुन देख मृत्युसे डरे कंसको रात-भर चिन्ता के कारण नींद न आयी ॥३१॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! इस भांति ज्यों त्यों वह रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल हुआ, जलमें सूर्य निकला उस समय राजा कंसने मल्लोंकी कुस्ती लड़वानेके लिये बड़ा उत्सव कराया ॥ ३२ ॥ पुरुष रंगभूमिकी पूजा करने लगे, उसी समय भेरी बजने लगी, माला, पताका, और वस्त्रोंके बन्दनवारोंसे

मञ्चान सजाये गये ॥ ३३ ॥ और मञ्चानोंके ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि जिनमें मुख्य-मुख्य पुरवासी तथा देशवासी थे, सुखपूर्वक आकर बैठ गये ॥ ३४ ॥ इसके उपरांत राजा कंस भी अपने प्रधान मन्त्रीको संग ले अखण्डमण्डलवाले राजाके बीचमें एक राजमञ्चान था, उसके ऊपर आ बैठा, परंतु भयके कारण हृदय कांप रहा था ॥३५॥ नगारोंके बजते ही झटपट मल्ल खम्भ ठोक, जांघिये पहन, सिंदूरकी बिंदी लगा, धूरी मल, छोटी-छोटी चुटियाँ बड़े गर्व भरे अपने-अपने उस्तादोंको संग लेकर रंगभूमिमें आये ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, ये अखाड़ेमें आये और मनोहर बाजोंका शब्द सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत कंसके बुलाये नन्द आदिक सम्पूर्ण गोप भी राजा कंसको भेंट दे एक मञ्चानपर आकर बैठ गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कुब्जास्वरूपदानमल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

दोहा–मारि कुवलयापीड गज, रंगभूमि हरि जाय ।
वचन कहे चाणूरसों, तैंतालिस अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णभगवान्‌ने विचार किया कि यद्यपि हमने धोबीको मार धनुष तोड़ अपना ऐश्वर्य जताया, परन्तु तो भी हमारे माता-पिताको नहीं छोड़ता और हमको मारना चाहता है, इसलिये इस मामाके मारनेमें हमें कुछ दोष नहीं है, इस प्रकार दोषके दूर करनेका विचार कर कृष्ण बलदेव दोनों भाई, जहां मल्ल खम्भ ठोक रहे थे, नगाड़े बज रहे थे, उनका शब्द सुन देखनेको गये ॥ १ ॥ फिर श्रीकृष्णने रंगभूमिके द्वारपर जाकर देखा कि कुवलयापीड हाथी खड़ा है और महावत उसे आगेको पेल रहा है ॥ २ ॥ यह देखते ही शूरवंशोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र फेट बांधकर मुखपर छुटी हुई कुटिल अलकोंको सम्भाल, गलेकी लम्बी मालाको जनेऊके समान कन्धेपर डाल, मेघके तुल्य गर्जकर अत्यन्त गम्भीर वाणीसे बोले ॥ ३ ॥

चौ०–सुनहु महावत बात हमारी ❀ लेहु द्वारते गज तुम टारी ॥
जान देहु हमको नृपपासा ❀ नातर ह्वैहैं गजको नासा ॥

हे महावत ! हाथीको हटाकर हमको शीघ्र मार्ग दे और यदि नहीं हटायेगा तो अभी हाथीसहित तुझको मार यमलोकको भेज दूँगा ॥ ४ ॥

चौ०–यह सुनि गज गजपाल चलायो ❀ झटकि शुंड बहुरो गज धायो ॥

हे महाराज ! यह सुनते ही काल (मृत्यु) के समान क्रोधित हो महावतने हाथीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर हूल लिया ॥ ५ ॥ हाथीने अत्यन्त शीघ्रतासे आते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी सूँड़में पकड़ लिया, परंतु श्रीकृष्णचन्द्र भी उसकी सूँड़मेंसे फिसल और उसके मस्तकमें मुष्टिक मार पिछले पावोंमें छिप गये ॥ ६ ॥ और फिर जिस समय श्रीकृष्णको देख क्रोधित हो सूँघा सांचीकी दृष्टिवाले हाथीने इनके पकड़नेको सूँड़ चलायी। उस समय सूँड़ पकड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके पिछले पांवोंसे निकल गये ॥ ७ ॥ अत्यंत बलवान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने हाथीकी पूँछ पकड़ जैसे गरुड़ सर्पको घसीटता है, उसी प्रकार पचीस धनुषतक लीलापूर्वक ही घसीटा॥८॥पूँछ पकड़े हुए श्रीकृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये जब

दाहिनी ओर हाथी आता, तब श्रीकृष्ण उसे बांई ओर ले जाते और बांई ओर आता तो दाहिनी ओर ले जाते, अधिक क्या कहें ? जैसे गायोंके बछड़ोंके संग बालक फिरते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हाथीके पीछे फिर रहे थे ॥ ९ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आकर थप्पड़ मारा और उस हाथीको पटक दिया ॥ १० ॥ जब उसे गिरा दिया श्रीकृष्णचन्द्र भी लीलापूर्वक पृथ्वीपर गिरकर अत्यन्त शीघ्रतासे खड़े हो गये, तब श्रीकृष्णचन्द्रको गिरा जान वह हाथी दांतोंसे पृथ्वीको खोदने लगा ॥ ११ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस हाथीका बल घट गया तब हाथीको महाक्रोध उत्पन्न हुआ और महावतने जिस समय अंकुश मारा तब वह हाथी श्रीकृष्णचन्द्रपर फिर झपटा ॥ १२ ॥ मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सम्मुख आते ही हाथीकी सूँड़ पकड़ पृथ्वीपर पटक दिया ॥ १३ ॥ और सिंहके समान गर्जते हुए हाथीको पावोंके नीचे दाब लीलापूर्वक उसके दांत उखाड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन दांतोंसे महावतको मारा ॥ १४ ॥ जब हाथी मर गया, तब श्रीकृष्ण बलदेवने उसे वहीं छोड़ हाथमें हाथीके दांत लेकर कंधेपर धारण कर वहांसे आगे चले, उस समय रुधिर और मदकी बूँदें उनके लग रही थीं ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! कुछेक पसीना भी उनके मुखकमलपर आ रहा था, इस प्रकार शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गोप-ग्वालोंको संग लिये हाथीदांतके शोभायमान शस्त्र धारण किये कृष्ण-बलदेव दोनों भाई रङ्गभूमिमें पहुँचे ॥ १६ ॥

चौ०–चले जहां सब मल्ल गुपाला ❋ द्विरद दन्तधरि कन्ध विशाला ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मल्लोंको मल्लोंके समान दृष्टि आये, मनुष्योंको अत्यंत सुन्दर जान पड़े और स्त्रियोंने साक्षात् कामदेव स्वरूप समझा, दुष्ट राजाओंको कालके समान दिखायी दिये, वसुदेव देवकीने पुत्रके समान देखा, भोजपति कंसने तो यही देखा कि साक्षात् मेरी मृत्यु चली आती है, अज्ञानियोंको भयङ्कर रूप दृष्टि पड़े और ज्ञानियोंको परमतत्त्वरूप दृष्टि आये, यादवोंको परम देवतारूप जान पड़े, अधिक क्या कहें जैसी जिसकी भावना थी, उसी प्रकार दिखाई दिये ।

चौ०–यहि विधि रहा जाहि जस भाऊ ❋ तेहिं तस देखेउ यदुकुलराऊ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीको संग लेकर रंगभूमिमें पहुँचे ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! कुवलयापीड हाथीको मरा देख जो किसीके जीतनेमें न आये, ऐसे कृष्ण बलदेवको देख अत्यन्त धैर्यवान् राजा कंस भी डर गया ॥ १८ ॥ बड़ी भुजा, विचित्र वेष, आभूषण, माला इत्यादि वस्त्रोंको धारण किये भगवान् कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जाकर ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे उत्तम रूप धारण करनेवाला नट शोभायमान लगता है; इस प्रकार अपनी कांतिसे देखनेवाले पुरुषोंके मनको चुराते थे ॥१९॥ हे राजन् ! मञ्चानोंके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देख आनंदके वेगसे प्रफुल्लित मुख हो गये और अपने नेत्रोंसे उनके मुखकी शोभा देखकर तृप्त न हुए॥२०॥इस प्रकार नेत्र चलाने लगे कि मानो रूपको पी जायँगे, जीभ ऐसी चलाते थे,मानो चाट जायँगे,नासिका ऐसी चलाते हैं मानो सूँघ लेंगे, भुजा ऐसी चलाते हैं मानो लिपट जायँगे । जैसा श्रीकृष्णचन्द्रका रूप कानोंसे सुना था, उसी प्रकार आंखोंसे देखकर उनके रूप, गुण, माधुर्य्य, ढिठाईसे बुद्धि

जिनके हो गयी, ऐसे पुरुष जैसा सुने वैसा ही आपसमें कहने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ कि ये जो कृष्ण बलदेव हैं, वे साक्षात् भगवान् हरि नारायण हैं और अपने वंश सहित इस संसारमें वसुदेवके घर अवतार लिया है ॥ २३ ॥ देखो, यह जो सांवरा बालक है, इसने देवकीसे जन्म लिया था और अबतक छिपा रहा, क्योंकि पिताने गोकुल पहुँचा दिया था, इसलिये नन्दजीके घर वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इसी कृष्णने पूतना मारी और बगलेका स्वरूप धरे हुए बकासुर दैत्यको मारा, यमलार्जुन वृक्ष उखाड़े और केशी, अघासुर इत्यादिक बहुतसे दानव मारे ॥ २५ ॥ देखो जब वनमें अग्नि लगी थी, तब इसी कृष्णने गौ, ग्वाल बचाये थे काली सर्पको दण्ड दिया और इन्द्रका मद दूर किया ॥ २६ ॥ यही सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको हाथमें लिये रहा । वर्षा, पवन, वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की ॥२७॥ गोपियाँ इस कृष्णका नित्य प्रसन्न हँसन चितवनयुक्त श्रमरहित मुख देखकर अनेक तापोंको दूर करती हैं ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहें, इस कृष्णसे यह यदुवंश बहुत विख्यात हो सम्पत्ति, यश, बड़ाई पायेगा और इसी कृष्णसे सज्जनोंकी रक्षा होगी, इस प्रकार वे मनुष्य परस्पर बातचीत करने लगे ॥ २९ ॥ कमलके समान नेत्र स्वरूपवान् इस कृष्णके बड़े भाई बलरामजीने प्रलम्बासुर, धेनुकासुर मारे । क्यों जी ? मारे तो कृष्णने, बलदेवका नाम क्यों लेते हो ? देखी-सुनी बातोंमें भी भेद हो जाता है ॥३०॥ हे महाराज ! सब मनुष्य इस प्रकार कह रहे थे और नगाड़े बज ही रहे थे कि इतनेमें चाणूर नामक बलवान् श्रीकृष्ण बलदेवको सम्बोधन देकर बोला ॥ ३१ ॥ कि हे नन्दके पुत्र ! हे राम ! तुममें बल अधिक है और कुस्ती लड़ना भी भली प्रकार जानते हो, यही सुनकर राजा कंसने तुम्हें बुलाया है ॥ ३२ ॥ क्यों कि प्रजा मन, कर्म, वचनसे राजाका प्रिय करे तो कल्याण प्राप्त होता है और जो विपरीत करते हैं उनका कल्याण नहीं होता ॥ ३३ ॥ और यह बात भी प्रगट है कि प्रतिदिन बछड़ोंके चरानेवाले गोप प्रसन्न होकर व्रजमें कुस्तीका खेल करके गाय चराते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण हम तुम कुस्ती लड़कर राजा कंसका प्रिय करें तो राजा कंस प्रसन्न होंगे और फिर सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न होंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरका वचन सुनकर और कुस्ती लड़ना अपने योग्य जान बड़ाई करके उस समयके उचित वाक्य कहने लगे ॥ ३६ ॥ कि जिस कंसकी तुम प्रजा हो, उसी कंसकी हम वनमें रहनेवाली प्रजा हैं, इसलिये राजा कंसका नित्य प्रिय करें इसीमें हमारा कल्याण है ॥३७॥ परंतु देखो हम बालक हैं इसलिये हम अपने समानके बालकोंसे कुस्ती लड़ेंगे, जैसा उचितहो उसी रीतिसे कुस्ती लड़ो; क्योंकि मल्लोंकी सभामें अधर्म नहीं होना चाहिये ॥३८॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चाणूर बोला कि तुम बालक नहीं हो और बलियोंमें बलदेव भी बलवान् हैं, बालक नहीं हैं, किशोर नहीं हो, क्योंकि हजार हाथियोंका बल रखनेवाला कुवलयापीड हाथी तुमने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥ ३९ ॥ इसलिये हमारे संग तुम कुस्ती लड़ो, यह अनीति नहीं है । हे वृष्णिवंशमें जन्मे कृष्ण ! मेरी तुम्हारी और बलराम मुष्टिककी कुस्ती हो ॥ ४० ॥

चौ०-तब चाणूर कह्यो पुनि ऐसे ❀ तुमको बालक कहिये कैसे ॥
किये कर्म व्रजमें तुम जैसे ❀ देखे सुने नहीं कहुँ तैसे ॥

गिरि गोवर्धन करपर धारचो * जलते कालियनाग निकारचो ॥
औरो असुर महाबल भारे * सुनियत खेलत ही तुम मारे ॥
सो बल आज देख हम लेहैं * आगे जान तुम्हैं तब देहैं ॥

दोहा-लौन नृपतिको मानकर, नन्दसुवनसों आज ।
लड़ि मरिहैं कै मारिहैं, करे कंसको काज ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कुवलयापीडवधो, रंगभूमिप्रवेशनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

दोहा-कंसादिकको वध कियो, माँइन ज्ञान बताय ।
दर्श कियो पितु मातुको, चौवालिस अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! इस प्रकार निश्चय संकल्प कर नीलाम्बर पीताम्बरके कच्छे बांध, खम्भे ठोंककर खड़े हो गये । इसके उपरांत मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण तो चाणूरके सम्मुख हुए और रोहिणीनन्दन बलरामजी मुष्टिकसे जुटे ॥ १ ॥ हाथोंसे हाथ, पांवसे पांव मिलाकर परस्पर जीतनेकी इच्छासे एक एकको बलात्कार खींचने लगे ॥ २ ॥ अरत्निमें अरत्नि[1] मिलाय, घुटुएंसे घुटुएं मिलाय, शिरसे शिर, छातीसे छाती मिलाकर कृष्ण और चाणूर दोनों परस्पर कुस्ती लड़ने लगे ॥३॥

दोहा-शिरसों शिर भुजसों भुजा, दृष्टि दृष्टिसों जोरि ।
चरण चरण गहि झपटिकै, लपटि दपटि झकझोरि ॥

सोरठा-गहन न पावत घात, छूटि जात लपटात पुनि ।
शिव विधिपै न गहात, तिन्हैं मल्ल चाहत गहन ॥

चारों ओर घूमना, धक्का देना, परिरम्भण अर्थात् हाथसे बिडारना अपवातन अर्थात् नीचे पटक देना, उत्सर्पण अर्थात् छोड़कर पीछेसे आगे जाना, अपसर्पण अर्थात् पीछे जाकर खड़ा होना, इस प्रकार दाँव-पेंच कर करके लड़ने लगे ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पांव और घुटुएं मिलाकर गिरते हैं. उनका उखाड़ देना; चालन अर्थात् बंधे दावको दूर करना; स्थापन अर्थात् हाथ-पांव पकड़कर मिला देना, इस प्रकार परस्पर देहको पीड़ा देने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार इनका युद्ध देखकर वहांकी बैठी हुई स्त्रियाँ परस्पर कहने लगीं कि देखो यह कृष्ण तो निर्बल है और चाणूर सबल है, यह विचार वे स्त्रियाँ अत्यन्त दयाको प्राप्त हुईं ॥६॥ इन राजसभामें बैठनेवालोंको भी बड़ा अधर्म होगा क्योंकि राजाके देखनेको कहीं निर्बल सबलकी कुस्ती करायी जाती है ? ॥ ७ ॥ भला विचारो तो सही, कि कहां तो वज्रसे कठोर अंगवाले पर्वतके समान ऊँचे-ऊँचे सब मल्ल और कहां अति सुकुमार कोमल अंग जिनकी यौवन अवस्था भी अभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र ? ॥८॥ इस सभामें इस समय निश्चय धर्म नाश हो रहा है, इस कारण इस सभामें बैठना उचित नहीं, क्योंकि जहां धर्मका नाश हो वहां कभी न बैठे ॥९॥ विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जाना योग्य नहीं है, क्योंकि दोषोंका स्मरण कर बातको जानकर जो चुप बैठा रहे तो दोष लगे और किसीकी झूंठ-सच्ची कहे तो दोष लगे, अथवा हम किसीकी भली जाने न बुरी ऐसे कहे तो भी दोषका भागी हो। इस कारण सभामें

१ अरत्नि-समुष्टि हस्त अर्थात् कोहनीसे बीचकी अंगुलीतक ।

जाना योग्य नहीं है ॥१०॥ सत्य बोलनेवालेको दुःख नहीं होता, सत्ययुक्त पुरुषको कोई विघ्न दोष नहीं सता सकते, ❋शत्रुके चारों ओर दौड़ धूप करते श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकी शोभा देखो, कुस्तीमें जोर करनेसे इनके मुखपर पसीनेकी बूँदें आ रही हैं; जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बूँदें पड़ती हैं ॥११॥ अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभा देखो, मुष्टिकके ऊपर क्रोध आ रहा है तो भी मुसकान सहित है इसलिये सुन्दर लगते हैं ॥ १२ ॥ भूमिमें ब्रजभूमि परम-पवित्र है, क्योंकि जिसके वनके चित्र-विचित्र फूलोंको धारण किये पुराणपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित मनुष्यरूपमें छिपकर गौवोंको चराते समय बांसुरी बजाते खेलते फिरते हैं, जिनके चरणोंका महादेव और लक्ष्मीजी भी पूजन करती हैं ॥ १३ ॥ बड़ा आश्चर्य है, गोपियोंने ऐसा क्या तप किया है, जिस कारण जिससे श्रेष्ठ कोई नहीं और जिसके समान कोई नहीं, जिससे अधिक कोई नहीं, एवं जो आभूषण वस्त्र विना ही सुन्दर लगता है, यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनका एकान्त स्थान, अर्थात् सर्वदा जिसमें वास करें ऐसे प्यारेके स्वरूपको दृष्टिसे देखती हैं ॥ १४ ॥ हे सखियो ! ब्रज बालायें धन्य हैं ? जो गोपी गाय दुहानेके समय, धान छरते समय, दूध बिलोते समय; बालकोंको झुलाते समय और चुपाते समय, घरोंका काम-काज करते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त होकर उनके गुण गाती हैं, उस समय उनका मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें ही लगता है और प्रेमानंदसे उनके नेत्रोंमें आंसू आ जाते हैं ॥ १५॥ प्रातःकाल जब ब्रजसे गौ चरानेको जाते हैं और सन्ध्या समय जब गायोंको ले बांसुरी बजाते हुए आते हैं, उस समय वे महाभाग्यवती गोपियाँ बांसुरीका शब्द सुन शीघ्र अपने घरसे निकल मार्गमें आये सुन्दर मुसकान दयापूर्वक चितवनयुक्त श्रीकृष्णचन्द्रके मुखका दर्शन करती हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इधर तो स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार बातें कर रही थीं और उधर योगके ईश्वर सबका दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शत्रुओंके मारनेका विचार करने लगे ॥१७॥ भय सहित स्त्रियोंकी बातें सुन-कर पुत्रोंमें स्नेहके शोकसे व्याकुल और पुत्रोंके बलको नहीं जाननेवाले माता-पिता वसुदेव देवकी अत्यन्त दुःखित हुए ॥ १८ ॥ अनेक प्रकार कुस्तीके दांव पेचोंसे जैसे श्रीकृष्ण और चाणूर लड़ते थे उसी प्रकार महात्मा बलदेव और मुष्टिक लड़ने लगे ॥ १९ ॥ वज्रपातके समान कठोर भगवान्के अंगके प्रहारसे चाणूरका अंग चुरकुट हो गया जिससे वह बहुत दुःखित हुआ ॥ २० ॥ इसके उपरांत शिकरेके वेगके समान चाणूरने दोनों हाथकी मुष्टि बांध क्रोधमें भर, ऊपरको उछल भगवान् वासुदेवकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ २१ ॥

❋ दृष्टांत–एक राजाने एक बाजार बनवाया और कहा कि जो वस्तु यहां बेचनेको लायेगा और सन्ध्यातक न बिकेगी उसे मै स्वयं ले लूंगा । इस प्रकार वह बाजार विख्यात हो गया एक दिन एक लुहार लोहेकी शनैश्चरकी मूर्ति बनाकर लाया, एक लाख रुपया उसका मोल मांगा और कहा कि जिसके यहां यह मूर्ति रहेगी उसके यहाँ द्रव्यादि कुछ न रहेगा । अब उस अनिष्ट कारक मूर्तिको किसी ने न लिया । सन्ध्या समय राजाने देखा कि बड़ी भीड़ हो रही है, कारण पूछते ही राजाने विचारकर उस मूर्तिको ले लिया और लाख रुपये दे दिये । जब राजाने घरमें मूर्ति रक्खी तो पहले लक्ष्मी राजासे बोली –महाराज ! मैं जाती हूँ । राजा बोले क्यों ? लक्ष्मी बोली–जहां शनैश्चर देव रहते है वहां हमारा क्या काम ? राजाने कहा– जाओ । इसी प्रकार नीति, साम, दाम, दंड, भेद सब रूप धरकर आयें और राजाने जाने दिया । पीछेसे जब सत्यदेव आये तो राजासे कहकर जब जाने लगे तब राजाने हाथ पकड़कर कहा–कि आपके रखनेको तो हम शनैश्चर देवको लाये हैं, तुम कैसे जाते हो ? सत्यदेवसे कुछ उत्तर न बन पड़ा और रह गये, अतः सत्यके रहनेसे नीति, लक्ष्मी आदि सब लौट आये और सत्यके प्रभावसे शनैश्चर राजा का कुछ भी बिगाड़ न कर सके ।

चौ०–करके कोप मुष्टि इक मारी * फूल समान श्याम उर पारी ॥
भयो बेग अति हर्षि नियारो * कहन लग्यो मुरि अहिर पछारो ॥
देख्यो हँसत गुपालहिं ठाढ़ो * पर्‍यो शोच प्राणन अति गाढ़ो ॥
नन्दसुवन महिमा तब जानी * इनते मीचु आपनी मानी ॥
तब मोहन करि कोप हँकारो * जनु गजको मृगराज पुकारो ॥
सुनत हांक सब दांव भुलाने * थर थराय चाणूर डरानो ॥
धरो धाय तब झपटि कन्हाई * पटक्यो महि गहि भुजा फिराई ॥

हे राजन् ! जिस प्रकार हाथी फूलोंकी मालाके लगनेसे नहीं चलायमान होता, वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र उसकी मुष्टिकसे चलायमान न हुए इसके उपरांत अत्यंत क्रोधित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने चाणूरके दोनों हाथ पकड़ अनेक वार घुमाकर बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटक दिया, गिरते ही उसके प्राण निकल गये और गहने, केश-माला इत्यादि सब बिखर गये । गिरते समय ऐसा शब्द हुआ कि मानो इन्द्रवज्र गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिक, कि जिसने पहले बलदेवके मुष्टिप्रहार किया था, उसे बलदेवजीने थाप मारकरके गिरा दिया ॥ २४ ॥ मुष्टिक, कंपित हो मुखसे रुधिरका वमन करता पीड़ित हो प्राण निकल जानेसे जैसे पवनका मारा वृक्ष उखड़कर गिर पड़ता है, उसी प्रकार गिर गया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरांत दौड़ते हुए कूट मल्लको मारनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलापूर्वक तिरस्कार कर बांई मुष्टिसे मार डाला ॥ २६ ॥ शल, तोशलने अपने मनमें विचार किया कि दण्डवत्‌के बहाने चरण पकड़कर पटक देंगे, परन्तु भगवान् तो सबके बाहर-भीतरकी जाननेवाले हैं, यह जिस समय दण्डवत् करनेको आये; उस समय बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एक लात ऐसी मारी जिसके लगनेसे शिर फट गया, इस प्रकार शल, तोशल दो खण्ड विदीर्ण होकर दोनों पृथ्वीपर गिर गये ॥ २७ ॥

दोहा–जब मारे हरि मल्ल सब, परो कटकमें शोर ।
जिमि तारागण रवि उदय, छिपे असुर चहुँ ओर ॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, इत्यादि मुख्य-मुख्य मल्ल जब मारे गये, तब वहां और जो मल्ल उपस्थित थे, वे अपना प्राण बचानेके लिये भाग गये ॥ २८ ॥ बराबरके गोपोंको अखाड़ेमें कर श्रीकृष्ण बलदेव उनके सङ्ग विहार करने लगे उस समय बाजे बज रहे थे और श्रीकृष्णचन्द्र नूपुर नृत्य करनेसे परम सुहावन बन रहे थे ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके चरित्र देख कंसके बिना सब मथुरावासी प्रसन्न हो गये, मुख्य-मुख्य ब्राह्मण तथा सज्जन पुरुष "साधु-साधु" ऐसे कहकर स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

सोरठा–सखन सहित दोउ बीर, रङ्गभूमि राजत खड़े ।
हरण भक्त भय पीर, ब्रजवासी प्रभु नन्दके ॥

जब बड़े-बड़े मल्ल मर गये, और कितने ही भाग गये तब भोजवंशियोंके राजा कंसने नगाड़े बन्द करा दिये ॥ ३१ ॥ और क्रोधित होकर कहने लगा कि कुटिलकर्मा वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे बाहर निकाल दो और इनका धन छीन लो और कुटिलबुद्धि वसुदेवको बांध लो ॥ ३२ ॥

खोटी बुद्धिवाले वसुदेवको जल्दी मारो और इसके उपरांत शत्रुसे मिलनेवाले पिता उग्रसेनको भी अनुचरोंसहित बांध लो ॥ ३३ ॥

चौ०–बहुरि उग्रसेनको मारो ❋ पितादोष कछु हृदय न धारो ॥
ऐसे पुनि पुनि वचन उचारे ❋ कंपित रिसन खड्ग कर धारे ॥
क्षण बैठत क्षण उठत अधीरा ❋ मारे असुर सकल दोउ बीरा ॥
अति बलवन्त नंदके बारे ❋ तब सकोप नृप–ओर निहारे ॥

इस प्रकार जब राजा कंस बकने लगा, तब अत्यन्त क्रोधित हो अव्यय भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र धीरेसे उछल ऊँचे मञ्चानपर चढ़ गये ॥ ३४ ॥

चौ०–गये मँचान चकित चढ़ि दोऊ ❋ बाज झपट देखत बस कोऊ ॥
है गयो चकितनृपतिभय मान्यो❋आयो काल निकट यह जान्यो॥

तब धैर्यवान् अत्यन्त अभिमानी राजा कंसने अपने मृत्युस्वरूपको आता हुआ देख-आसनसे उठकर ढाल तलवार ग्रहण की ॥३५॥ तलवार हाथमें ले आकाशमें जैसे शिकरा पक्षी फिरता है, उसी प्रकार दाईं-बाईं ओर जल्दी-जल्दी फिरनेवाले कंसको असह्य और उग्र तेजवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने, तार्क्ष्यका पुत्र गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ लेता है, उसी प्रकार पकड़ लिया ॥३६॥ फिर उसकी फेंट तथा केश पकड़ ऊँचे मञ्चानपरसे रङ्ग भूमिमें पटक दिया और इसके ऊपर सब जगत्के आश्रय और स्वतन्त्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूद पड़े। केश पकड़नेका कारण यह है कि कंसने देवकीके केश पकड़े थे, इसलिये उसका बदला लिया ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत सिंह जैसे हाथीको खींचता है; उसी प्रकार सब जगत्के देखते मृतक हुए कंसको पृथ्वीमें घसीटने लगे। हे नरेंद्र ! उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे, शब्द हुआ ॥ ३८ ॥ कंस प्रतिदिन चलायमान चित्तसे जल पीते, बात कहते, चलते, सोते, और श्वास लेते चक्र आयुधवाले भगवान् का ही शत्रु भावसे ध्यान करता था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥

दोहा–जब पृथ्वीपर आकर, परचो उतानो भूप।
उर ऊपर दर्शन दियो, श्याम चतुर्भुज रूप ॥

इसके उपरांत उस कंसके कंक, न्यग्रोध आदि से लेकर छोटे आठ भाई अत्यन्त क्रोधित हो कंसका बदला लेनेके लिये दौड़कर आये ॥ ४० ॥ उसी समय रोहिणीके सुत बलरामजीने क्रोधित हुए हाथोंमें शस्त्र लेकर आये हुए कंसके भाइयोंको सिंह जैसे पशुओंको मारता है उसी प्रकार परिघ उठाकर मार डाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और भगवान्की विभूति जो ब्रह्मा महादेवादिक देवता हैं, वे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्त्रियाँ नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! इसके उपरांत पतिके मरणसे अत्यंत दुःखित हो नेत्रोंमें आंसू भर कंसकी स्त्रियाँ शिर पीटती जहां उसकी लोथ पड़ी थी, वहां आयीं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें पड़े पतिका आलिंगन कर शोकातुर स्त्रियाँ बारंबार नेत्रोंसे आंसू बहा-बहाकर पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं ॥४४॥ हा नाथ ! हे प्राणपति ! हे धर्मके जाननेवाले ! हे करुणानाथ ! हा दीन वत्सल ! तुम आप मरकर घर-

बारसहित और बालकोंसहित हमको क्यों मार गये ॥४५॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम विधवा होकर शोभायमान नहीं लगतीं उसी प्रकार तुम्हारे विना मथुरापुरी भी शोभा नहीं पाती क्योंकि सम्पूर्ण मङ्गल उत्सव इसमें से दूर हो गये ॥ ४६ ॥ निरपराध प्राणियोंसे बैरकरके कौन पुरुष सुख पाता है ? ॥४७॥ क्योंकि इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, पालन और नाशकर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं, इस लिए जो इनकी अवज्ञा करता है, वह कभी सुख नहीं पाता ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा कंसकी स्त्रियोंका समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया करायी ॥ ४९ ॥ इसके उपरांत माता-पिता देवकी वसुदेवको कंसके बंदीखानेसे छुड़ाया और रामकृष्णचन्द्र दोनों भाइयोंने माता-पिताके चरणोंमें शिर लगाकर प्रणाम किया ॥ ५० ॥ माता-पिता देवकी वसुदेव प्रणाम करते पुत्रोंको जगत्के ईश्वर जान भयभीत होकर उनसे नहीं मिले ॥ ५१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसादिवधवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

दोहा–पितु नंदादिक शान्तकर, उग्रसेन दियो राज ।
बहुरि गये गुरुके भवन, पैंतालिस सुखसाज ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मातापिताको ज्ञान प्राप्त हुआ जान विचारा कि यह ज्ञान अभी ठीक नहीं, इसलिये सब लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फिर फैलाई ॥१॥ यादव श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीको संग लेकर माता-पिताके पास आये और विनयपूर्वक नम्र हो, हे माता ! हे पिता ! इसप्रकार आदरपूर्वक प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे पिता ! सर्वदा तुम्हें चाहना ही बनी रही और हम पुत्रोंसे बाल्य अवस्था, पौगण्ड अवस्था तथा किशोर अवस्थाका सुख कभी तुमको न हुआ ॥ ३ ॥

दोहा–सबै जीव सन्तानसों, सुख पावत दिनरैन ।
तुम्हैं हमारे जन्मते, बहुतहि भये कुचैन ॥
यद्यपि हम अवगुण भरे, प्रगटे महा असाध ।
तद्यपि निज सुत जानिकै, क्षमा करो अपराध ॥

दैवके मारे तुम्हारे निकट वास भी न कर सके, पिताके घर बालक रहते हैं और उनका लालन-पालन होता है, आनन्द पाते हैं, हमको कुछ भी प्राप्त न हुआ ॥४॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पदार्थ जिससे हों, ऐसा यह देह जिन माता-पिताने उत्पन्न किया उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौ वर्षतक सेवा करे, तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता ॥५॥ जो पुत्र समर्थ होकर देहसे अथवा धनसे माता, पिताको जीविका नहीं देता, उसे परलोकमें यमके दूत उसका मांस उसे ही काट-काटकर भक्षण कराते हैं ॥ ६ ॥ माता, पिता, वृद्ध, सुशीला स्त्री, पुत्र बालक, गुरु, ब्राह्मण अथवा और कोई शरण आये इनका जो मनुष्य भरण-पोषण न करे, तो वह मृतकके समान है ॥७॥ असमर्थ और कंसके भयके कारण नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विना किये हमारे दिन व्यर्थ बीत गये ॥ ८ ॥ हे पिता ! हे माता ! पराये

अधीन होनेके कारण हमसे तुम्हारी सेवा न बनी और दुष्ट हृदय कंससे अत्यंत दुःखित रहे इसलिए अब हमपर तुम क्षमा करनेके योग्य हो, हमें क्षमा कीजिए ॥९॥ इस प्रकार मायासे मनुष्य रूपधारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसे मोहित होकर देवकी, वसुदेव पुत्रोंको गोदमें बैठाकर परमानंदको प्राप्त हुए ॥१०॥ हे राजा परीक्षित ! स्नेहके पाशसे बँधे (मोहित) देवकी वसुदेव आंसूकी धाराओंसे कृष्ण-बलदेवको भिगोते हुए कुछ भी न बोले ॥११॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार माता-पिताको सावधान कर नाना उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया ॥१२॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे महाराज ! हम तुम्हारी प्रजा हैं, हमें तुम आज्ञा करनेके योग्य हो और यदुवंशियोंको ययातिका शाप है, इस कारण यादवोंका सिंहासनपर बैठना और राज्य करना योग्य नहीं है ॥१३॥ मैं सेवकके समान तुम्हारे निकट सदा उपस्थित रहूँगा, बड़े-बड़े देवादिक तुमको भेंट देंगे और राज्य देंगे; इसमें कहना ही क्या है ॥१४॥ और कंसके डरके कारण जो अपनी जातिके यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह कुकुरादिक भाग गये ॥१५॥ उनको बुलाकर और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव कृश हो रहे थे, उनका सत्कार कर बहुतसा धन दे तृप्त कर सब विश्वके कर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने-अपने घरोंमें बसाया॥१६॥कृष्ण बलदेवकी भुजासे रक्षित हो पूर्ण मनोरथ पाकर पापोंको दूर कर वे यादव घरोंमें निवास करने लगे ॥ १७ ॥ और नित्य आनंदसे पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंदहास्यपूर्वक चितवनयुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलका दर्शन करके परमानंदित होते थे ॥ १८ ॥ भगवान् मुकुंदके मुखकमलके अमृतको पीकर उस समय वृद्ध भी तरुणावस्थाको प्राप्त हो अत्यन्त बलवान् हो गये ॥१९॥ हे राजन् ! इसके उपरांत भगवान् देवकीनंदन श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी नन्दरायके पास आकर मिले और यह वचन बोले ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम स्नेहियोंने हमारा पोषण किया, बहुत लाड़-प्यार किया अधिक क्या कहें माता-पिताकी अपने पुत्रोंमें अधिक प्रीति होती है, वह तुमने उनसे भी अधिक प्रीतिकी ॥२१॥ वही पिता है, वही माता है, जो पराये पुत्रको अपने पुत्रके समान पोषण करे और पोषण करनेमें जिनका सामर्थ्य न हुआ ऐसे हमारे माता-पिताने हमको बालकपनसे ही छोड़ दिया ॥२२॥ हे पिता ! अब तुम ब्रजको जाओ, हमभी बन्धु-बांधवोंका प्रिय करके स्नेहसे दुःखी जातिवाले और तुम्हारे देखनेको पीछेसे आयेंगे ॥२३॥ इस प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्रजवासियोंसहित नन्दरायजीको समझाकर और अनेक भांतिके वस्त्र-आभूषण तथा सोने, चांदीके वर्त्तन देकर बड़े आदरपूर्वक उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन नन्दरायजी कृष्ण बलदेवको छातीसे लगा, प्रेमसे व्याकुल हो, नेत्रोंमें आंसू भर, संपूर्ण ब्रजवासियोंको सङ्ग ले ब्रजको चले ॥ २५ ॥ इसके उपरांत हे राजन् ! शूरसेनके पुत्र वसुदेवजीने ब्राह्मण पुरोहितको बुलाकर पुत्रोंका यथायोग्य द्विजन्मा संस्कार कराया ॥ २६ ॥ फिर शृङ्गार की हुई रेशमी झूल व सुवर्णकी माला पहने अनेक गायें बछड़ों सहित ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने राम-कृष्णके जन्म नक्षत्रके समय जिन गायोंका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्मसे हर ली थीं उतनी ही गौ स्मरण करके ब्राह्मणोंको दान कीं ॥ २८ ॥ और सुव्रती कृष्ण बलदेव द्विजन्मा संस्कार पाकर यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसे गायत्रीका उपदेश ले ब्रह्मचर्य व्रतमें रहने लगे ॥ २९ ॥

यद्यपि सम्पूर्ण विद्या जाननेवाले सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननेवाले कृष्ण बलदेव सब जगत्के ईश्वर थे, परन्तु तो भी स्वतःसिद्ध निर्मल ज्ञानको मनुष्योंके समान चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखते थे ॥३०॥ इसके उपरांत कृष्ण बलदेव गुरुकुलमें वास करनेकी इच्छासे कश्यपगोत्री उज्जैनपुरीके वासी सांदीपनि गुरुके पास गये जो प्रकाश्य नामसे भी प्रसिद्ध थे ॥ ३१ ॥ जितेंद्रिय कृष्ण बलदेव भली प्रकार गुरुके पास आकर बड़े आदर-सत्कारसे भक्तिपूर्वक जैसे नारायणकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ शुद्ध भक्तिपूर्वक सेवासे सन्तुष्ट हुए द्विजन्माओंमें श्रेष्ठ गुरुजीने श्रीकृष्ण बलदेवको शिक्षादिक छः अंग और उपनिषदोंसहित समस्त वेद पढ़ाये ॥३३॥ तथा मन्त्र और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलाना धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक, तर्कविद्या तथा शत्रुसे मिलाप करना, युद्ध करना, उसके ऊपर चढ़ जाना, निकट जाकर रहना, अपनी ओर तोड़ लेना, मेल करना यह छः प्रकारकी राजनीति पढ़ायीं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! सब मनुष्योंमें तथा उत्तमोंमें उत्तम सब विद्याओंके चलानेवाले सावधान कृष्ण बलदेवके गुरुके विना बताये ही सम्पूर्ण विद्या सीख लीं ॥ ३५ ॥ चौंसठ रात्रियोंमें गाना, बजाना, नृत्य करना आदि चौंसठ कला सीखीं। हे राजन्! जब विद्या पढ़ चुके तब कृष्ण बलदेव दोनों भाई गुरुजीसे "गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करो" इस प्रकार कहने लगे ॥ ३६ ॥ तब सांदीपनिने कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देख, कि मनुष्योंमें ऐसी चमत्कारी कहां? स्त्रीसे परामर्श कर प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें डूबकर जो पुत्र मर गये थे, स्त्रीके कहनेसे उनको ही मांगा ॥ ३७ ॥ "तथास्तु" इस प्रकार कह अत्यन्त पराक्रमी, बड़े रथी कृष्ण बलदेव रथमें बैठ प्रभासक्षेत्रमें पहुँच समुद्रके किनारे जाकर एक क्षण बैठे रहे, तब समुद्र कृष्ण बलदेवको आया जान उनकी पूजा लेकर आया ॥३८॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उस समुद्रसे कहने लगे कि जो हमारे गुरुके बालक तूने यहां बड़ी लहरोंसे डुबा लिये हैं, वे गुरुके पुत्र ला दे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोला कि हे देव! मैंने तो तुम्हारे गुरुके पुत्र नहीं डुबाये, वरन् मेरे भीतर रहनेवाला शत्रुरूप धारण किये एक बड़ा दैत्य है ॥ ४० ॥ वह हर ले गया है और निश्चय उसके पास है यह सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शीघ्रतासे जलमें घुस पञ्चजन दैत्यको मार डाला, परन्तु उसके पेटमें बालक नहीं देखा ॥४१॥ इसके उपरांत उस दैत्यके अंगमेंसे शङ्ख ले श्रीकृष्णचन्द्र रथपर आये और वहांसे यमराजकी अति प्यारी संयमनी पुरीमें आये ॥ ४२ ॥ और वहां जाकर बलदेवजीसहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शङ्ख बजाया, तब प्रजाका दण्ड देनेवाला धर्मराज शङ्खका शब्द सुन ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगा और सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर बोला कि हे विष्णु भगवन्! लीलापूर्वक आपने मनुष्यका रूप धारण किया है, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? ॥ ४४ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे महाराज! यहां जो आप गुरुपुत्र ले आये हैं, उन्हें ला दीजिये। तब यमराजने कहा कि वह अपने कर्मोंसे बँधे पड़े हैं, कैसे लाऊँ? तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि उन्हें मेरी आज्ञा हुई है, कुछ मेरी आज्ञासे कर्म बलवान् नहीं है ॥ ४५ ॥ तब 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर यमराजने गुरुपुत्र ला दिये, इसके पीछे यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्ण बलदेव उन्हें ले अपने गुरुको देकर बोले कि और वर मांगो ॥ ४६ ॥ तब गुरु कहने लगे कि हे पुत्र! तुमने गुरुसेवा भली-भांति की और तुम

सरीखोंका जब मैं गुरु हुआ तब मेरी कौन-सी चाहना शेष रही ? ॥ ४७ ॥ हे वीर ! अब तुम अपने घरको जाओ, इस लोक और परलोकमें तुम्हारी पवित्र कीर्ति हो, तुम्हारे वेद नवीन पढ़े हुएके समान बने रहें ॥४८॥ हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार गुरुसे आज्ञा पाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव दोनों भाई पवनके समान शीघ्रगामी मेघके तुल्य गर्जने-वाले रथमें बैठकर अपने घरको आये ॥४९॥ बहुत दिनोंसे नहीं देखनेके कारण राम कृष्णका दर्शन कर प्रजा बड़े आनन्दको प्राप्त हुई, जैसे गया हुआ धन मिलनेसे आनन्द होता है॥५०॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे गुरुपुत्रानयनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

दोहा–छियालिस अध्यायमें, उद्धव ब्रजहि पठाय ।
शोक यशोदा नंदको, मेटो ज्ञान सिखाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्रिय मन्त्री सखा अर्थात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जो उद्धवजी थे ॥१॥ उन्हें शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने एकांतमें बुला हाथ पकड़कर कहा ॥ २ ॥ हे उद्धव ! हे साधु ! तुम ब्रजको जाओ, हमारे माता-पिताको प्रसन्न करो और गोपियोंको जो मेरे बिछु-ड़नेमें कष्ट हुआ है, उसे मेरा सन्देशा ले जाकर दूर करो ॥ ३ ॥ मुझमें जिनके मन और प्राण लग रहे हैं मेरे लिये पति पुत्रादिक त्याग दिये हैं, मैं ही प्यारा जिनके आत्मा हूँ, वे ही मुझमें मन लगाकर रहती हैं, मेरे लिये जिन्होंने इस लोक तथा परलोकके जितने सुखके उपाय हैं, सब त्याग दिये हैं, उनको मैं सुख देता हूँ ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनका प्यारा मैं जबसे दूर आया तबसे वे गोकुलकी स्त्रियाँ मेरी सुधि करके बिरहसे मेरी चाहके कारण विवश हो मोहित हो जाती हैं ॥५॥ क्योंकि जब मैंने उनसे कह दिया था कि मैं शीघ्र ही आऊँगा, इस कारणसे उसी प्रकार वे गोपियाँ प्राण धारण किये रहीं, वह भी महाकष्टसे व यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तो दग्ध हो जाता, वह तो मुझमें लीन है इसी लिये वह प्राण धारण कर रही हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब उद्धवजी बड़े आदरपूर्वक स्वामीके सन्देशेको ले रथमें बैठ नन्द-रायजीके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ और सूर्यके छिपते ही शोभायमान नन्दरायजीके गोकुलमें पहुँचे, तब सन्ध्यासमय आती हुई गायोंके खुरोंकी रेणुसे उद्धवजीका रथ ढक गया ॥ ८ ॥ पुष्पवती गायोंके लिये चारों ओरसे मतवाले बैलोंके युद्धका शब्द वहां हो रहा था और ऐनोंके भारसे ब्यायी हुई गायें दौड़-दौड़कर अपने बछड़ोंके पास आती थीं ॥ ९ ॥ जहां-तहां सफेद गायें, गायोंके बछड़े कूदते-फांदते हैं, गायोंके दुहनेका शब्द जहां-तहां हो रहा है, कोई कहता था "लाओ" कोई कहता था "देओ" ऐसा कोलाहल जहां-तहां मच रहा था और बांसुरी बजानेका भी शोर हो रहा था ॥१०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीके मंगलरूप कर्मोंको बनी ठनी गोपियाँ गाती हुई अत्यन्त शोभायमान लगती थीं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, अभ्यागत, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनके पूजनकी सामग्री जहां-तहां धरी थी, धूप हो रही थी, दीपक जल रहे थे, फूल धरे थे, गोपोंके घरोंमें पूजा होनेसे यह ब्रज मनोहर हो रहा था ॥ १२ ॥ सब ओरसे फुलवारी फूल रही थी, पक्षी बोल

रहे थे, भौंरे गुञ्जार रहे थे, राजहंस और कारण्डव पक्षी जहां-तहां बैठे थे, ऐसे कमलोंके समूहसे वह व्रज शोभायमान हो रहा था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्रिय मित्र उद्धवजीको आया जान नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक मिले, श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे आये हैं यह जानकर ईश्वर बुद्धिसे पूजन किया ॥ १४ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त श्रेष्ठ सामग्रियोंका भोजन कराकर शय्यापर सुखपूर्वक पौढ़ाकर चरण दाब मार्गका खेद मिटाकर उद्धवजीसे नन्दरायजी बोले ॥ १५ ॥ हे बड़भागी उद्धव ! कहो शूरसेनके पुत्र, हमारे सखा वसुदेवजी पुत्रोंसहित कुशलपूर्वक हैं ? कंसके बन्दीखानेसे छूटे हैं ? भाई-बन्धु हितकारियोंसहित प्रसन्न हैं ? ॥ १६ ॥ और पापी कंस समस्त सेवकोंसहित मारा गया यह बड़ा ही मङ्गल हुआ, क्योंकि वह कंस धर्मस्वभाववाले यादवोंसे सदा वैर करता था ॥१७॥ हे उद्धवजी ! और यह भी कहो कि वे कृष्ण भी कभी हमारी और अपनी माताकी सुधि करते हैं तथा सुहृद्, सखा एवं गोपियोंकी सुध करते हैं और जिसके आप ही रक्षक हैं, ऐसे व्रजकी भी कभी सुध करते हैं ? और गौ, ब्राह्मण, गोवर्द्धनपर्वतकी भी कभी सुध करते हैं ? ॥ १८ ॥

दोहा—सुरत हमारी करत हैं, कछु उद्धव बलवीर ।
पुलकि गात लोचन सजल, पूछत नन्द अधीर ॥
वह ग्वालन सँग खेलिबो, वह गोपिन सँग हास ।
कबहुँक लालन सुधि करत, मातु पितहि सुखरास ॥
बहुविधिसों रक्षा करी, व्रजवासिनकी जौन ।
अब उद्धव उत्पात हो, तो उद्धारै कौन ॥

गायोंके हित करनेवाले श्रीकृष्ण जब कभी अपने भाई-बन्धुके देखनेके लिये आयेंगे तब सुन्दर नासिका सुन्दर मुसकान चितवनयुक्त उनके मुखका दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्निसे, पर्वतसे, इन्द्रकी वर्षासे, विषयुक्त सर्पसे, अघासुर एवं बड़े-बड़े मृत्युओंसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने हमारी रक्षा की ॥२०॥ हे उद्धवजी ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रम और लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवन, हँसन और बोलनेकी सुध करते हैं, तब हमारी सम्पूर्ण क्रिया शिथिल हो जाती हैं ? ॥ २१ ॥ मुकुन्दके चरणोंके चिह्नयुक्त पर्वत, नदी, बन और उनके खेलनेके स्थानोंको जब देखते हैं तब हमारा मन कृष्णमय हो जाता है ॥२२॥ देवताओंका कार्य करनेके लिये इस संसारमें कृष्ण अवतार लेकर आये हैं, उन्हें मैं देवताओंमें उत्तम मानता हूँ और मैंने बड़ा गम्भीर गर्गाचार्यका वचन भी ऐसे ही सुना है ॥२३॥ दश हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस और मल्लोंको वैसे ही कुवलयापीड हाथीको सिंह जैसे पशुओंको मारता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाला ॥२४॥ फिर बड़ा भारी तीन तालके समान धनुष एक हाथसे उठाकर जैसे हाथी लठियाको तोड़ डालता है उसी प्रकार तोड़ डाला और सात दिनतक गोवर्द्धन पर्वतको बायें हाथकी अँगुलीपर धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, तृणावर्त्त, बकासुर आदि और भी जो-जो सुर-असुरोंके जीतनेवाले दैत्य थे, उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक ही मार डाले ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवाले नन्दरायजी इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सुधि करके आंखोंमें आंसू भर गद्गदकण्ठ प्रेमके भावमें व्याकुल होकर चुप हो गये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन किये जाते श्रीकृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवण किये

तो स्नेह स्तनोंमें दूध उमड़ आया और नेत्रोंसे आंसू बहने लगे ॥ २८ ॥

चौ०-उद्धव कहो कुशल दोउ भैया * नीको है मम लाल कन्हैया ॥
फाटत नहीं बज्रकी छाती * अब यह समुझि हृदय पछिताती ॥
ऐसो भाग्य कभी अब पैहौं * बहुरि श्यामको गोद खिलैहौं ॥

दोहा-ग्वाल सखा सँग जोरि अब, को गैयन ले जाय ।
को आवै सन्ध्यासमय, बनते गाय चराय ॥
उद्धव यद्यपि हमैं सब, समुझावत ब्रजलोग ।
उठत शूल तद्यपि निरखि, माखन प्रभु मुखयोग ॥
लाड़ लड़ायै विविध विधि, दूध पियाय पियाय ।
लालाने ऐसी करी, छोड़ी बूढ़ी माय ॥

इस प्रकार नन्दराय और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परम अनुराग देख उद्धवजी नन्दजीसे बोले ॥ २९ ॥ कि हे मान देनेवाले नन्दजी ! इस संसारमें देहधारियोंके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हो, क्योंकि जो सबके गुरुनारायण हैं, उनमें ऐसी बुद्धि लगायी है ॥ ३० ॥ यह जो कृष्ण बलदेव हैं, वे विश्वके लिये उपादान कारण हैं; इसीसे पुरुष प्रकृतिरूप हैं, सब प्राणियोंमें प्रवेश करके अनेक प्राणियोंके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राण छूटते समय यह पुरुष क्षणभर शुद्ध मनको जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लगा शीघ्र ही कर्मोंकी वासनाओंको छोड़ सूर्यके समान प्रकाशमान ब्रह्मरूप होकर परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ जब सबके आत्मा कार्य और कारणसे मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करके तुम भक्ति करते हो,तो फिर तुमको क्या करना शेष रहा ॥३३॥ अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र ही ब्रजको आयेंगे,क्योंकि वे भक्तोंका पालन करनेवाले हैं, इस लिये तुम्हें और यशोदाको वे थोड़े ही दिनोंमें आकर आनंद देंगे॥३४॥सब यादवोंके वैरी कंसको रंगभूमिमें मार तुम्हारे पास आकर श्रीकृष्णचन्द्रने जो वचन कहा था, उसे अवश्य सत्य करेंगे॥३५॥ हे बड़े भागियो ! अब तुम कुछ खेद मत करो, कृष्णको अपने पास ही देखोगे, क्योंकि जैसे ही लकड़ीमें ज्योति रहती है उसी प्रकार सब प्राणियोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रहते हैं॥३६॥श्रीकृष्णचन्द्रको न कोई प्यारा है, न कोई कुप्यारा है, न कोई उत्तम है, न कोई अधम है,न कोई समान है, न विषम है और न उन्हें अभिमान है किन्तु वे तो समदृष्टि हैं ॥३७॥ न उनके माता है,न पिता है,न स्त्री है, न पुत्रादिक हैं; न उनके देह है और उनका जन्म भी नहीं है ॥३८॥ इनका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म भी नहीं हैं, क्योंकि वह बात तो संसारमें देव,मनुष्य,नृसिंहादिकोंकी जो योनि हैं,उनमें खेलनेके लिये और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये प्रगट होते हैं ॥३९॥ निर्गुण भगवान् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इन तीन मायाके गुणोंको अंगीकार करते हैं । निर्गुणसे अलग अजन्मा भगवान् क्रीड़ा करके विश्वको उत्पन्न, पालन तथा संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे बालक चाई-माई खेलता फिरता है तब उसकी दृष्टि फिरती है और उससे पृथ्वी फिरती-सी दिखलाई देती है,उसी प्रकार चित्त जो कर्ता है उनमें अहंकारसे आत्मा भी कर्तासा दिखायी देता है ॥४१॥यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, वरन् सबके पुत्र हैं।आत्मा हैं,पिता हैं,

माता हैं और ईश्वरोंके ईश्वर हैं ॥४२॥ जो कुछ दीखता है और जो कुछ हो चुका और जो होता है और जो होगा और जो स्थावर-जंगम हैं, जो कुछ बड़ा छोटा है, वह सब श्रीकृष्णचन्द्रके विना अतिशय करके कहनेके योग्य नहीं है। परमार्थरूप श्रीकृष्ण है, वे ही सर्वरूप हैं ॥४३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुल भूषण परीक्षित् ! इसी प्रकार वार्ता करते-करते सब रात्रि बीत गयी और गोपियाँ प्रातःकालको उठ, दीवे बाल, देहलियोंका पूजन कर दही मथने लगीं ॥४४॥ दीवोंसे प्रकाशमान् मणियोंके जड़ाऊ गहनोंसे उस समय वे गोपियाँ अत्यन्त शोभायमान लगने लगीं। नेतियोंके खैंचनेसे भुजाओंके चूड़ी कंकण हिल रहे हैं, नितम्ब हिलते जाते हैं, स्तनोंपर हार भी हिलता है, कुण्डलोंसे प्रकाशमान कपोल और अरुण केशरकी खौर मुखपर लगी है ॥ ४५ ॥ कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र जब ब्रजबालाओंने गाया, तब वह गीत स्वर्गतक पहुँच गया और दहीके मथनेका शब्द भी उस गीतमें मिल रहा था, उन गोपियोंके गीतोंसे दिशाओंके सब अमङ्गल दूर हो जाते थे ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होने पर नन्दरायजीके दरवाजेपर सुनहरी साजका रथ खड़ा देखकर "यह किसका रथ है" इस प्रकार ब्रजवासी नर-नारी कहने लगे ॥ ४७ ॥ कि क्या कंसके कार्यका साधक अक्रूर आया है ? जो कमलदललोचन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रको मथुरा ले गया है, फिर अपने स्वामीको मरवाकर अब क्यों आया ? अब क्या हमें ले जाकर हमारे मांसके पिंड बनाकर देगा ? इस प्रकार गोपियां आपसमें बातें कर ही रही थीं कि इतनेमें ही उद्धवजी सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म करके आये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कंधे पूर्वार्द्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दोहा—उद्धव सैंतालीसमें, पाय कृष्ण आदेश।
गोपिनको जाके दियो, तत्त्वज्ञान उपदेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! लम्बी भुजा, नवीन कमलसे नेत्र, पीतांबर पहने, कमलकी माला धारण किये प्रकाशमान मुखारविन्द, स्वच्छ कानोंमें कुण्डल पहने, कृष्णके अनुचर उद्धवजीको देख ब्रजकी स्त्रियोंको आश्चर्य प्राप्त हुआ और परस्पर कहने लगीं ॥ १ ॥ कि सुन्दर रूप यह कौन है ? कहांसे आया है ? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकासा वेष है, वैसे ही गहने पहन रहा है, इस प्रकार सब गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका भक्त जान उद्धवजीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २ ॥ और अत्यन्त अधीनतासे नम्र हो लाजभरी हँसन, चितवन तथा मीठी वाणीसे सत्कार कर एकांत आसनपर बैठे उद्धवजीको श्रीकृष्णचन्द्रके पाससे सन्देशा लेकर आये जान वह गोपियां पूछने लगीं ॥३॥ कि हमें जान पड़ता है कि तुम श्रीकृष्ण चन्द्रके सेवक हो और माता-पिताके प्रसन्न करनेको तुम्हें श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है ॥४॥ क्योंकि इस ब्रजमें और कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें स्मरण आये और माता-पिताका तो स्नेह बड़े वैराग्यवान् पुरुषसे भी नहीं छूट सकता ॥ ५ ॥ इसी कारण औरोंसे यहां अपने कार्यके लिए मित्रता जनाई, जबतक काम रहा तब-तक तो मित्रता रखी, जैसे पुरुष स्त्रियोंसे प्यार करता है और भौंरा फूलोंसे प्यार रखता है, यह स्वार्थकी प्रीति है ॥ ६ ॥ यद्यपि उन श्रीकृष्णचन्द्रने हमसे प्रीति की थी परन्तु तो भी दरिद्री पुरुषको जैसे वेश्या त्याग देती है, प्रजा असमर्थ राजाको त्याग देती है और दक्षिणा

पाकर पुरोहित जैसे यजमानको त्याग देता है ॥७॥ पक्षी जैसे फल रहित वृक्षको छोड़ देते हैं, अभ्यागत भोजन करके जैसे गृहको त्याग देते हैं, जार पुरुष भोग करके जैसे स्त्रीको त्याग देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमको त्यागकर चले गये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दूत उद्धवजी जिस समय ब्रजमें आये, उसी समय गोपियोंकी वाणी, देह, मन इत्यादि गोविंदमें जा लगे, अधिक क्या कहें लौकिक व्यवहार खानपानादिक भी सब छूट गये ॥ ९ ॥ अपने प्यारके कर्मोंको गाने लगीं और भगवान् केशवमूर्तिकी बाल अवस्था तथा तरुण अवस्थाके जो चरित्र थे, उनको याद कर, लाज त्याग, रोती हुई उद्धवजीसे पूछने लगीं ॥१०॥ और कोई एक गोपी उद्धवजीका स्वरूप देख, श्रीकृष्णके संगका ध्यान कर भौंरेको देख, उसे प्यारेका भेजा हुआ दूत जान यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगी, अर्थात् भौंरेके बहाने उद्धवजीसे कहने लगी ॥११॥ गोपी बोली कि हे मधुप ! हे कपटी मित्र ! हमारे चरणोंका स्पर्श मत कर, क्योंकि भौंरोंका देह तो काला और मुख पीला होता है और तेरे तो सौतके कुचोंसे लगी पुष्पोंकी मालाकी केशर डाढ़ी मूछोंमें लगी है, जो तू स्पर्श करेगा तो हमें स्नान करना पड़ेगा। यदि कहो कि मुझे तो तुम्हारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णचन्द्रने भेजा है, तो तुम जाकर मथुराकी ही स्त्रियोंको प्रसन्न करो, जैसे तू हमारे पास आया है, इसी प्रकार यादवोंकी स्त्रियोंके पास भी गया होगा, परन्तु यादवोंकी सभामें इस बातकी हँसी हुई होगी कि कृष्णका दूत ऐसा निर्लज्ज है ॥१२॥ जैसा तू है, वैसा ही तेरा स्वामी है; जैसे तू फूलोंकी सुगन्ध ले उसी समय उनको छोड़ देता है; उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी मोहित करनेवाला अपने अधरोंका अमृत एक बार पिलाकर हमको त्याग दिया। परंतु बड़े आश्चर्यकी बात है कि लक्ष्मी उनके चरणकमलका कैसे सेवन करती हैं ? अनुमान होता है कि श्रीकृष्णके मीठे-मीठे वचनोंसे उनका चित्त हर गया होगा, इसलिए वे पड़ी रहती हैं ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! तू हमारे प्रसन्न करनेको श्रीकृष्णका चरित्र क्यों गाता है, क्योंकि हमने तो घर इत्यादि भी त्याग दिया है, श्रीकृष्णकी सखी मथुराकी जो स्त्रियाँ हैं, उनके आगे उनका प्रसंग गा, जिनकी कामाग्नि वे शांत करते हैं, वे प्यारी सखियां तुझे रीझकर कुछ देंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी ! कपटभरी रुचिर हँसीवाले श्रीकृष्णचन्द्रकी भ्रुकुटीकी मरोड़ ऐसी है कि स्वर्ग, पृथ्वी और पातालकी स्त्रियाँ भी उन्हें दुर्लभ नहीं हैं। लक्ष्मीजी जिनके चरणकी सेवा करती हैं, वहां हमारी क्या चल सकती है परंतु तो भी हमने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तमश्लोक नाम सुना है, वे जब हम गरीबिनियोंकी सुध लेंगे, तब उनका वह नाम रहेगा, नहीं तो जाता रहेगा ॥१५॥ अपने शिरको मेरे पांवोंसे उठा ले, क्योंकि मैं तेरी सम्पूर्ण बात जानती हूँ, तू मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे दूतकर्म सीखकर चतुर हो गया है, देखो हमने इस संसारमें श्रीकृष्णचन्द्रके लिए पति, पुत्र, लोक-परलोक सब छोड़ दिया और हमें वे छोड़कर चले गये। अब उनसे हमें क्या मेल मिलाप करना ? इस प्रकार गोपियां कहने लगीं ॥ १६ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पहले कर्मोंको सुध करके कहने लगीं कि हमको श्रीकृष्णसे भय लगता है; क्योंकि पहले अयोध्यामें राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्र हुए तो सुग्रीवकी ओर होकर वधिकके समान वालिको मारा। व्याध तो मांस खानेके लिए मारता है परंतु इन्होंने तो व्यर्थ ही मारा, बन्दरका कोई मांस नहीं खाता है। दुर्वांदलश्यामके सुन्दर रूपपर रीझकर रावणकी बहन शूर्पणखा आयी तो लक्ष्मणको सिखा

स्त्रीके वश हो उसके नाक-कान कटवा लिये। फिर वामन अवतार लेकर समान आचरण कर राजा बलिकी भेंट पूजा ले उसीको बांध दिया। इस कारण इस कालेकी मित्रतासे अघा गयीं; अब कभी भूलकर भी कालोंसे मित्रता न करेंगी। तब उद्धवजी बोले कि मैं जिस समयमें आया हूँ, तुम उनकी ही बातें कर रही हो, तो गोपी बोली कि जैसे उनमें गुण हैं उसी प्रकार यह अवगुण हैं, यद्यपि उनको दुःखदायी जानती हैं, परंतु तो भी उनकी बातोंका छूटना तो हमसे महाकठिन है ॥१७॥ जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लीलाचरित्ररूपी अमृतका कानोंसे एक कणका भी स्वाद लिया है, वे राग, द्वेष, त्याग असत्यके तुल्य हो दुःखरूप पुत्र पौत्रादिकोंको त्याग भोगोंको छोड़ पक्षीके समान घर-घर भीख मांगते फिरते हैं ॥१८॥ जैसे अज्ञानी कृष्णसार हरिणकी स्त्री हरिणी वधिकके गीतसे मोहित होकर घायल हो जाती है, उसी प्रकार हमने कपटी श्रीकृष्णका वचन सत्य मानकर यह देखा। जिनके नखोंके स्पर्शसे हमें भी कामदेवकी पीड़ा उत्पन्न हुई, इसलिये हे दूत! उस कपटीकी बात जाने दे और बात कह ॥१९॥ हे प्यारेके सखा! क्या तू फिर आया? तुझे प्यारे कृष्णने भेजा है इस कारण हे दूत! तू पूजा करनेके योग्य है और जो तुझे इच्छा हो वह वर मांग, क्या लक्ष्मीका सङ्ग न छोड़नेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके पास हमें ले चलना चाहता है? परंतु कैसे ले जायगा? क्योंकि उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मीजी सङ्ग ही रहती हैं, इसलिये हमारा क्या प्रयोजन है? ॥ २० ॥ हे सौम्य! भला श्रीकृष्णचन्द्र तो अभी मथुरामें वास करते हैं, कभी उन्हें अपने माता-पिता नन्द यशोदा आदिका भी स्मरण आता है और कभी अपने बंधु-बांधवोंकी भी याद करते हैं, कभी गोपियोंका भी स्मरण करते और कभी हमारी बात भी चलाते हैं, अगरके समान सुगन्धवाली भुजा कभी हमारे शिर पर भी आकर धरेंगे? ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनकी अभिलाषिणी गोपियोंकी सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सन्देशोंको समझाने लगे॥२२॥उद्धवजी बोले कि हे गोपियो! तुमने भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमें मन लगाया है इसलिये तुम निश्चय कृतार्थ हो गयीं और सम्पूर्ण लोकोंमें तुम्हारा यश होगा ॥२३॥ क्योंकि दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेद-पाठ, इंद्रियोंका रोकना, और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करनेका फल यही है, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें भक्ति हो ॥२४॥ बड़े मुनीश्वरोंको दुर्लभ भक्ति तुमने उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें की, यह बड़ा ही मङ्गलरूप है ॥ २५ ॥ पति, पुत्र, देह, भाई-बन्धु और घरोंको त्याग परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको तुमने अपना पति बनाया, यह बहुत बड़ा मंगल हुआ ॥२६॥ हे बड़भागिनियो! इंद्रियोंकी जिनमें गम नहीं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें विरहसे एकान्तभक्ति तुम्हें उत्पन्न हुई; यह तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥२७॥हे मङ्गलरूपिणियो! तुमको सुख देनेवाले प्यारेका सन्देशा कहता हूँ वह सुनो, श्रीकृष्णचन्द्रके रहस्यकार्यके करनेवाले सन्देशेको लेकर मैं आया हूँ॥२८॥उद्धवजी गोपियोंसे भगवान्ने जो श्रीमुखसे वचन कहे थे वह कहने लगे। श्रीभगवान्ने उपदेश किया है कि सबका उपादानकारण मैं हूँ, मुझसे तुम कभी दूर नहीं हो, जैसे आकाश, पवन, जल, पृथ्वी, तेज ये पञ्चतत्त्व समस्त प्राणियोंकी देहमें रहते हैं॥२९॥उसी प्रकार मन, बुद्धि, प्राण, इंद्रिय और गुण इनका आश्रय मैं हूँ। अपनेमें अपनेसे अपनेको उत्पन्न करता हूँ और अपनी मायाके प्रभावसे पञ्चभूत इंद्रिय, तीनों गुण, इनरूप जो अपनपो है इसीलिये सृष्टिको उत्पन्न, पालन

और नाश करता हूँ ॥३०॥ यहां यह शंका है कि आत्मा पञ्चभूतरूप हो तो उसे पञ्चभूतोंके संग दोष लगता है, इसका उत्तर देते हैं कि आत्मा तो शुद्ध है, क्योंकि मायाके गुणोंमें जाता है, सबसे अलग और ज्ञानरूप है; अहंकारके कारण जाननेमें नहीं आता। आत्माकी न्यारी अवस्था है, शुद्धता कैसे? तो कहते हैं, सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत ये जो मनकी वृत्तियाँ हैं, उनसे प्रतीत होता है ॥३१॥ जैसे जागता हुआ मनुष्य स्वप्नको झूठा ही जानता है, उसी प्रकार पंडितजन जिनको झूँठा मानते हैं ऐसे विषयोंका जिनसे चिंतन किया जाता है और जो चिंतन करते हैं उन्हीं लोगोंपर असर पड़ता है, उस मनको आलस्य त्यागकर रोकना चाहिये। जब जिस मनुष्यका मन रुक जाता है तब वह पुरुष कृतार्थ हो जाता है और यह कहते हैं कि वेद पढ़नेका, अष्टांगयोग करनेका, अनात्माके विचार करनेका त्याग, सब इंद्रियोंका जीतना, सत्य बोलना, इत्यादि कर्मोंसे विवेकी पुरुषोंसे मन रुकता है, यही फल है, जैसे नदियोंका अन्त समुद्रमें होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ जैसे दूर रहे प्यारेमें स्त्रीका मन लगा रहता है और जो सदा नेत्रोंके आगे रहता उसमें चित्त नहीं रहता ॥ ३५ ॥ यदि संपूर्ण वृत्ति त्याग मनको मुझ (कृष्ण) में लगाकर नित्य मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझे प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ हे मङ्गलरूपिणियो! जिस समय मैंने रात्रिके समय वृन्दावनमें रासक्रीड़ा की थी, उस समय जिन गोपियोंको उनके स्वामियोंने रोक लिया था, इसी कारण वे रासक्रीड़ामें न आ सकीं, तब वह मेरी लीलाओंका ध्यान करके मुझे ही प्राप्त हुईं ॥३७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार अपने प्यारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके उपदेशको सुनकर ब्रजकी गोपियाँ प्रसन्न हो उनका स्मरण कर उद्धवजीसे बोलीं ॥ ३८ ॥ सब गोपियाँ कहने लगीं कि यादवोंको दुःख देनेवाला अपने भृत्योंसहित राजा कंस मारा गया। यह बड़ा मङ्गल हुआ और पूर्ण मनोरथको प्राप्त हो अपना हित करनेवालों सहित श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हैं, यह भी बड़ा मङ्गल है ॥३९॥ हे साधु उद्धव! रामका छोटा भाई कृष्ण हमसे जो प्रीति करता था वह प्रीति क्या अब मथुराकी स्त्रियोंसे करता है? वह लाजभरी हँसनि और उदार चितवनसे उनका सत्कार करते हैं? ॥४०॥ रतिविशेषके जाननेवाले प्यारे कृष्ण मथुराकी स्त्रियाँ वचनोंसे विलासोंसे जब सत्कार करेंगीतब कैसे बँधेंगे?॥४१॥ हे साधु उद्धव! भगवान् गोविंद प्रसंग पाकर मथुराकी स्त्रियोंकी सभामें बैठ जब कभी बातें करते हैं, तब हमारा भी कभी स्मरण करते हैं? ॥ ४२ ॥ हे उद्धवजी! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कभी उन रात्रियोंका स्मरण आता है कि जिनमें कुमुदिनी कुन्द फूल रहे थे, और चन्द्रमाकी चांदनीसे रमणीय वृन्दावनमें पांवोंमें नूपुर बजते जाते थे, और हमारे संग रमण करते थे और हमने उनकी स्तुति की थी, अब वह कभी हमें याद करते हैं या नहीं? ॥ ४३ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्धवनके सींचनेको इन्द्र आता है, उसी प्रकार कृष्णके लिये शोकसे जली हुई हमको हाथके स्पर्शसे जीवन देने दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र कभी यहां आयेंगे कि नहीं? ॥ ४४ ॥ अब श्रीकृष्णचन्द्र यहां क्यों आयेंगे, क्योंकि अब उन्हें राज्य मिल गया, शत्रु मारे गये, राजाओंकी कन्या ब्याह लीं, सब मित्र उनके पास हैं, इसलिये वे वहां ही प्रसन्न हैं; यहां आकर क्या करेंगे? ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीजीके पति पूर्णकाम श्रीकृष्णको वनकी रहनेवाली हमसे और राजाओंकी कन्याओंसे क्या प्रयोजन है? ॥ ४६ ॥ आशाका त्याग ही बड़ा सुख है, यह पिंगला वेश्याने (एकादश स्कन्धमें) कहा है कि निरा-

शाके समान सुख नहीं है यद्यपि हम यह सब जानती हैं, परंतु तो भी हमारी आशा छूटनी अत्यन्त कठिन है ॥४७॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एकांतकी बातें कौन त्यागनेको समर्थ है यद्यपि उनके रखनेकी इच्छा नहीं, परन्तु तो भी लक्ष्मी अंगसे अलग नहीं होती है ॥४८॥ हे उद्धव ! बलदेवजीके संग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें विचरण करते थे, वे नदियाँ, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, बांसुरीका शब्द ॥४९॥ ये सब बार-बार श्रीकृष्णके चरित्रोंको याद दिलाते रहते हैं; लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिह्न देख हम भी विस्मरण नहीं कर सकतीं ॥५०॥ मनोहर चलन, उदार हँसनि, लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन इनसे जिन्होंने हमारी बुद्धि हर ली, उन श्रीकृष्णचन्द्रको हम कैसे भूल सकती हैं ॥५१॥ इसके उपरांत वे सब गोपियाँ मथुराकी ओरको हाथ उठाकर पुकारने लगीं कि हे रमानाथ ! हे ब्रजनाथ ! हे दुःख हरनेवाले ! हे गोविन्द ! यह नाम तो गायोंका पालन करोगे तभी रहेगा, नहीं तो इस नामसे हाथ धो बैठोगे और आपको स्मरण होगा कि इंद्रने जब वर्षा की थी तो तुमने संकल्प किया था कि मैं अपने ब्रजकी रक्षा करूँगा, अब तो तुम्हारे ही विरहरूपी समुद्रमें संपूर्ण गोकुल डूबा जाता है, इसका शीघ्र आकर उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! श्रीकृष्णके संदेशसे विरहताप मिटाकर उन गोपियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको परमेश्वर जान और परमेश्वरको अपना आत्मा निश्चय कर उद्धवजीकी पूजा की ॥५३॥ गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये कितने मास उद्धवजीने ब्रजमें वास किया और श्रीकृष्ण लीलाकी कथाओंको गा गाकर ब्रजवासियोंको परमानन्दित किया ॥५४॥ जितने दिनोंतक उद्धवजीने ब्रजमें वास किया वे दिन ब्रजवासियोंको श्रीकृष्णकी लीलागानसे क्षणके समान बीत गये ॥ ५५ ॥ नदी, पर्वत, वन, गुफा, पुष्पित वृक्ष इत्यादिकोंको देख हरिदास उद्धवजी ब्रजवासियोंको श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण कराने लगे ॥५६॥ गोपियोंके चित्तको इस प्रकार श्रीकृष्णमें लीन होनेसे व्याकुल देख परमप्रसन्न हो गोपियोंको दण्डवत् करने लगे ॥५७॥ इन गोपोंकी स्त्रियोंका पृथ्वीपर जन्म सफल है, क्योंकि सबके आत्मा गोविंदमें इनका अत्यन्त प्रेम हुआ है, जिस प्रेमका संसारसे भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करते हैं ! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथामें जिसका अत्यन्त अनुराग है, उसे ब्रह्मजन्मसे क्या प्रयोजन है ? अथवा एक तो शुद्ध माता-पितासे, द्वितीय गायत्री उपदेशसे, तृतीय यक्षदीक्षासे जो ब्राह्मणके तीन जन्म हैं, उनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ५८ ॥ वृन्दावनकी विचरनेवाली व्यभिचारदृष्टिसे दूषित गोपी स्त्रियाँ कहां और परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें आरूढ भाववाले मन कहां ? क्योंकि निरंतर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुष भी कल्याण प्राप्त करता है, जैसे अमृतका सेवन करनेवाला पुरुष अमर हो जाता है ॥५९॥ सर्वकाल अंगमें रहनेवाली लक्ष्मी पर भी यह प्रसन्नता न हुई और कमलके गन्धकीसी कांतिवाली देवांगनाओंको भी जो प्रसाद नहीं मिला वह रासके उत्सवमें श्रीकृष्णचंद्रके भुजदंडोंमें गलबांहीं डाल ब्रजसुन्दरियोंको मिला ॥६०॥ गोपियोंके चरणरजका सेवन करनेवाले वृन्दावनमें गुल्फ, लता, ओषधियोंमें कहीं भी मेरा जन्म हो, जो गोपियें दुस्त्यज अपने भाई, बन्धु, बड़ोंके मार्गका त्याग वेदगम्य मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रके मार्गका सेवन करती हैं ॥ ६१ ॥ जो लक्ष्मीसे पूजित पूर्णकाम, ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिंतन करते हैं, उन श्रीकृष्णके चरणारविंदोंको राजसभामें स्तनोंके ऊपर धर आलिंगन कर जिन गोपियोंने तापको दूर किया ॥ ६२ ॥

नंदके ब्रजकी स्त्रियोंके चरणकी रजको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ, जिन गोपियोंकी गायी हरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है ॥६३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरांत उद्धवजी गोपियोंसे, यशोदासे और नन्द आदिक सब ब्रजवासियोंसे आज्ञा मांग गमनसमय अपने रथमें जा बैठे ॥ ६४ ॥ उद्धवजीके बिदा होनेके समय नंद आदिक सब ब्रजवासी अनेक प्रकारकी भेंट हाथमें ले उद्धवजीके पास आकर स्नेहसे नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगे ॥ ६५ ॥ कि हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें लगी रहे और हमारी वाणी उनका नाम जप करती रहे और हमारा शरीर उन श्रीष्कृणको प्रणाम करता रहे ॥ ६६ ॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरेच्छासे जिस किसी योनिमें हम जायँ, तो जो कुछ हमने मंगलरूप कर्म किये हैं अथवा दान किये हैं उनका फल यही मांगती हैं कि श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति बनी रहे ॥ ६७ ॥

चौ०-उद्धव हरिसों कहियो जाई ❋ यशुदाकी आशीश सुनाई ॥
कमलनैन सुन्दर सुखदाई ❋ कोटि युगन जीवहु दोउ भाई ॥
कहियो बहुरि इतो समुझाई ❋ तुम बिनु दुखित यशोदा माई ॥
इतनी दया मातुपर कीजै ❋ एक बार फिर दर्शन दीजै ॥

दोहा-नन्द दोहनी भर दई, कह्यो नैन भर नीर ।
वा धौरीको दूध यह, भावत हो बलबीर ॥

सोरठा-दई यशोदा माय, मुरली ललित गुपालकी ।
उद्धव दीजो जाय, प्यारी ही अति लालकी ॥

हे महाराज ! इस प्रकार गोपियोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धवजीका सत्कार किया, तब उद्धवजी उनसे बिदा होकर कृष्णपालित मथुरापुरीमें आये ॥६८॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम कर ब्रजवासियोंकी भक्तिकी अधिकता वर्णन की । इसके उपरांत वासुदेव और बलदेवजीको प्रणाम करके राजा उग्रसेनको भेंट दी ॥ ६९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे भ्रमरगीतोद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

दोहा-अड़तालिस अध्याय हरि, कुबरी रमण कराय ।
हस्तिनपुर अक्रूरको, दीन्हों कृष्ण पठाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इसके उपरांत सबके आत्मा और सबके देखनेवाले छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कामसे पीड़ित कुब्जाका प्रिय करनेके लिये उसके घर गये ॥१॥ कैसा वह घर है कि जहां अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें धरी हैं; कामके उद्दीपन करनेवाले जिसमें चित्र लिखे हैं, मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं, पताकायें फहरा रही हैं, चन्दोवे तन रहे हैं, शय्या तथा शोभायमान आसन बिछ रहे हैं, सुगन्धकी धूप लग रही है, दीपक प्रज्वलित हो रहे हैं, और माला, अतर, अरगजा आदिसे वह घर अत्यंत शोभायमान हो रहा है ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने घरमें आया देख कुब्जा अति शीघ्रतासे आसनपरसे उठ, घबड़ाहटको प्राप्त हो सखियोंको संग लिये श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर सुन्दर आसन बिछाकर चरण धो सत्कार करने लगी॥३॥ उसी प्रकार भली भांति

पूजित हो, उद्धवजी आसन स्पर्शकर पृथ्वीमें बैठ गये और लौकिक लीलाओंके करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्रतासे सुन्दर बिछी हुई शय्यापर पहुँचे ॥ ४ ॥ इसके उपरांत कुब्जा भी स्नान कर, चन्दन लगाकर, वस्त्र पहन, गहने, माला, अतर, अरगजा, तांबूल और अमृतके समान मादक वस्तुसे अपनेको बना-ठनाकर लाजभरी लीलापूर्वक मुसकान, कटाक्षभरी चितवनसे मोहित हुई श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयी ॥ ५ ॥ नवीन समागमकी लज्जासे शंका-सहित कुब्जाको बुलाकर कङ्कणसे शोभायमान हाथको पकड़कर शय्यापर बैठाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसके साथ रमण ❋ करने लगे। अहो ! कुब्जा भाग्य, जिसने चन्दन ! लगानेके अतिरिक्त दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥ ६ ॥ कामदेवसे पीड़ित कुच और छाती तथा नेत्रोंके तापको अनन्त श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंमें लगाकर और उन चरणारविन्दोंको सूंघ स्तनोंके मध्यमें प्राप्त हुए सुन्दर आनन्दमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजाओंसे आलिंगन कर बहुत दिनोंसे बढ़े तापको त्याग दिया ॥ ७ ॥ चन्दनके अर्पण करनेसे मोक्षके देनेवाले दुर्लभ श्रीकृष्णको पाकर अभागिनी कुब्जाने यह मांगा ॥ ८ ॥ अहो प्यारे ! यहां कुछ दिनों तक रहकर मेरे संग रमण करो । हे कमल नेत्र ! मैं तुम्हें त्याग नहीं सकती ॥९॥ "एक बार तुम्हारे यहां नित्य आया करूँगा" इस प्रकार कुब्जाको कामवर दे उसका सम्मानकर मान देनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥१०॥ संपूर्ण ईश्वरोंके ईश्वर दुःखसे आराधन करनेमें आयें ऐसे विष्णु भगवान् को प्रसन्न करके जो पुरुष विषयोंका वर मांगे, वह बड़ा कुबुद्धि है क्योंकि विषय तुच्छ हैं ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजीको संग लेकर समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र कुछ कार्य करानेके लिए और अक्रूरका भला करनेके लिए उनके घर आये ॥ १२ ॥ अक्रूरजी मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बन्धु श्रीकृष्ण बलदेवको दूरसे देख प्रसन्न हो मिलकर अत्यानन्दको प्राप्त हुए ॥१३॥ तब श्रीकृष्ण बलदेवजी और उद्धवजी उन्हें नमस्कार किया । इसके उपरांत अक्रूरजीने कृष्ण बलदेवको प्रणामकर और आसनपर बैठा-कर उनकी पूजा की ॥१४॥ हे राजन् ! फिर कृष्ण बलदेवके चरणोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ा और दिव्य चन्दन, माला, वस्त्राभूषण इत्यादि भेंट दे नमस्कार किया और गोदमें चरणोंको रखकर दाबने लगे । इसके उपरांत अधीनता पूर्वक नम्र हो अक्रूरजी

❋ शंका—कुबरी और कृष्णका रमण सुन हमारे मनमें बड़ा भ्रम हुआ क्या कारण जो जगत्के ईश्वर होकर कुब्जाके सङ्ग रमण किया ?

उत्तर—चाहे संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य हो, चाहे पतित हो, चाहे नपुंसक हो, चाहे सब कर्मसे भ्रष्ट हो, चाहे स्त्री या पुरुष हो परंतु जो भगवान्‌की सेवा करे वही भगवान्‌को प्यारा है। सब कर्ममें नीच हो तो कुछ भगवान् बुरा नहीं मानते और बड़ा उत्तम हो और भगवान्‌की प्रीति न करे तो उसको भगवान् शत्रु समान मानते हैं । भगवान् भक्तजनोंकी प्रेमरूप रस्सीमें बँधे हुए हैं, अतः जैसा नाच भक्तजन भगवान् को नचाते हैं, वैसा नाच भगवान् नाचते हैं, जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले पुरुषके अधीन है, ऐसे ही भगवान् भी भक्तोंके अधीन हैं और जैसे बैलकी नाकमें नाथ डालके मनुष्य जहां चाहे वहां ले जाता है और वेदरूप कृष्ण वेदकी ऋचारूप कुब्जा भगवान्‌की दासी थी, इसलिये जैसी कुब्जाने इच्छा की वैसे ही भगवान्‌ने उसकी अभिलाषा पूर्णकी । अथवा कहीं ऐसा भी लिखा है कि पुष्पांगी नाम एक वेश्या थी, परंतु भगवान्‌में भक्ति करनेवाली थी; उसने यह सुना कि रामचन्द्र बनको गये तब पीछे-पीछे वह भी चल दी । बनमें जाकर उसको भगवान्‌का दर्शन हुआ और देखकर मोहित हो गयी और यह चाहा कि रामचन्द्रके साथ रमण करूं । एक समय रामचन्द्रको अकेला पाकर उनकी कुटीमें जा बैठी । पीछेसे सीताजी भी वहां आ गयीं और उस वेश्याको वहांपर बैठी देखा तो बड़ा क्रोधकर सीताने शाप दिया की अगले जन्ममे तेरे सब अङ्ग भंग होंगे, अर्थात् तू कुबरी होगी और राक्षसकी दासी होगी । तब श्रीरामचन्द्रजीने वेश्यासे कहा कि जब मैं कृष्णावतार लूंगा तो तेरा मनोरथ पूर्ण करूंगा अब तू जा । तब तो उस पुष्पांगी वेश्याने शापके भयसे बड़ी स्तुति की, तब भगवान्‌ने वर दिया जिस समय मेरा दर्शन तुझको होगा, उसी समय तेरा देह परमोत्तम हो जायगा और एक दिन तेरे घरमें वास करूंगा, उस समय तेरी सब कामना पूरी होगी ।

कृष्ण बलदेवसे कहने लगे ॥१५॥१६॥ कि मंत्रियोंसहित पापी कंसको मार बड़े कष्टसे आपने इस अपने कुलका उद्धार किया और कुलकी वृद्धिका यह बड़ा ही मंगल हुआ ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हो, जगत्के कारण हो, जगन्मय हो, तुमसे पृथक् कुछ कार्य कारण नहीं ॥१८॥ हे ब्रह्मन्! तुम अपने विश्वमें अपनी शक्तियों सहित प्रवेश करके श्रवण करने और देखनेमें बहुत प्रकार से प्रतीत होते हो ॥ १९ ॥ जैसे स्थावर, जंगम देहमें पृथ्वी आदि पञ्चभूत हैं उनमें अनेक प्रकारके प्रकाशते हो, उसी प्रकार अपने अधीन अकेले तुम आपही अपने कार्य पञ्च-भूत और पंचभूतोंके बने देहमें बहुत रूपसे प्रकाशते हो ॥ २० ॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण तुम्हारी शक्तियां हैं, उनके ही द्वारा विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हो। गुण और उत्पत्त्यादिक कर्मोंसे बँधे नहीं हो, ज्ञानरूप हो तुम्हें बांधनेवाली कोई अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ तुम्हारे तो बंधनकी शंका संभव ही कहां ? पर विद्योपाधि जीवात्माके भी वस्तुतः जन्म तथा जन्ममूलक भेद नहीं है, क्योंकि देहादि उपायका किसी प्रकार निरूपण होना सम्भव नहीं, अविद्यारहित होनेसे न तो आपके बन्धन हैं और न मोक्ष है, जो हमें बन्धन मोक्ष दिखाई देते हैं, वे केवल अज्ञानसे ही हैं ॥२२॥ जगत्का कल्याण करनेके लिए तुम्हारा कहा हुआ सनातन वेदमार्ग जिस समय असाधुओंके पाखण्डमार्गसे बाधित होता है,उस समय सगुणरूप धारण करते हो ॥२३॥ हे प्रभो ! तुमने इस संसारमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिए अपने अंश बलदेव सहित वसुदेवजीके घर जन्म लिया है, जिससे दैत्योंके अंशरूप राजा-ओंकी अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करोगे और यदुकुलके यशको बढ़ाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश आज हमारा घर निश्चय बड़भागी है। सब देवता, पितृ, मनुष्य, प्राणी, देवरूप तुम्हारे चरणारविंदका धोवन जल गंगारूप होकर लोकोंको पवित्र करता है, तुम जगत्के गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो, इसलिए हमारा घर बड़भागी है ॥२५॥ हे प्रभो ! भक्तवत्सल, सत्यवक्ता, सबके हितकारी, कृतके जाननेवाले आपको त्यागकर कौन ऐसा बुद्धिमान है जो औरकी शरण ले, भजन करनेवालेको तुम सम्पूर्ण कामना देते हो और अपना आत्मातक भी दे देते हो और तुम्हारे यह उत्तम है, यह नीच है यह भेद नहीं है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! आपने मेरे घर आकर दर्शन दिया यह बड़ा मंगल हुआ, योगेश्वर और देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं। पुत्र, स्त्री, धन, हितकारी और देहादिकोंमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है, वह हमें लिपट रही है, इसे शीघ्र ही काटो ॥२७॥ भक्त अक्रूरजीने इस प्रकार जब पूजन और स्तुति की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वाणीसे मोहित करते हुए मुसकराकर बोले ॥२८॥ श्रीभगवान् बोले कि आप हमारे गुरु हो इस कारण नित्य स्तुति करने योग्य हो, हम तुम्हारे लड़के हैं हमारी रक्षा करो, पोषण करो और हम पर कृपा करो ॥२९॥ हे पूज्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे समान बड़भागी कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंसे नित्य सेवा करने योग्य हैं, देवता स्वार्थी हैं, साधु महात्मा स्वार्थी नहीं होते ॥३०॥ क्या कहीं जलमय तीर्थ नहीं है ? और मृत्तिका शिलाओंके देवता नहीं हैं ? किन्तु वह सब बहुत दिनतक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष तो दर्शनसे ही पवित्र करते हैं ॥३१॥ हे अक्रूरजी ! तुम हमारे सुहृदोंमें उत्तम हो, इस कारण पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिए हस्तिनापुरको जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पांडुके मरनेके पीछे माता कुन्तीसहित दुखित

पाण्डव बालकोंको धृतराष्ट्र अपने पुरमें ले आया है, वे उसके पास रहते हैं ॥३३॥ लुब्धबुद्धि अंबिकाका पुत्र राजा धृतराष्ट्र भाईके पुत्र पाण्डवोंमें समता नहीं रखता और दुष्ट दुर्योधनादिके वशमें हो रहा है और उसकी दृष्टि भी अन्धेरी हो रही है ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम अब हस्तिनापुरको जाओ और बुरी-भली उनकी सब खबर लाओ, जब हमें वहांका भेद विदित हो जायगा, तो जिसमें पाण्डवोंको सुख होगा, वही उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अक्रूरजीसे कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव और उद्धवजीको संग लेकर अपने घर आये ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कुब्जारमणादिनिरूपणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दोहा–उनचास अक्रूरजी, हस्तिनपुरमें जाय।
विषम दृष्टि लखि भ्रातसुत, फिरो धरो नहिं पाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! पुरवंशी राजाओंके यशसे शोभायमान हस्तिनापुरमें जाकर अंबिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको अक्रूरजीने देखा और भीष्मपितामह, विदुर, कुन्ती तथा सोमदत्त, पुत्रसहित बाह्लीक, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पांचों पांडव और भी जो सुहृद थे, उन सबको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बन्धु-बान्धवोंके संग यथायोग्य मिलकर वे सुहृदोंकी वार्ता अक्रूरजीसे पूछने लगे और अक्रूरजी भी उनसे कुशलक्षेम पूछने लगे ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्पबुद्धि दुष्ट कर्णादिकोंके कहनेमें रहनेवाले धीरता रहित राजा धृतराष्ट्रका वृत्तान्त जाननेके लिये कितने एक महीनेतक अक्रूरजी वहां वास किया ॥४॥ तेज अर्थात् प्रभाव, ओजोबल अर्थात् शस्त्र चलानेकी निपुणता, वीर्य अर्थात् शूरता, पाण्डवोंमें प्रजाका स्नेह, वीरता आदि जो अच्छे गुण हैं, उन्हें न सहनकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी और जो कुछ आगे करनेकी इच्छा है उसे ॥ ५ ॥ और जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देना आदि अन्याय किया था, वह सम्पूर्ण वार्त्ता विदुरजीने अक्रूरजीसे कह दी ॥ ६ ॥ कुन्ती भाई अक्रूरको आया सुन मिलकर और अपने जन्मस्थानका स्मरण कर नेत्रोंसे आंसू बहाती अक्रूरजीसे बोली ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता-पिता कभी मेरा स्मरण करते हैं ? और मेरे भाई, बहन, भतीजे, कुलस्त्री, सखी यह सब कभी मेरी सुध करते हैं ? ॥ ८ ॥ शरणागतोंका पालक, भक्तोंका हितकारी, भाईके पुत्र श्रीकृष्ण कभी अपनी फूफीके पुत्रोंकी भी सुध करते हैं ? कमलके समान नेत्रवाले बलरामजी भी कभी हमारा स्मरण (याद) करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीचमें हरिणी घिर जाती है, इसी प्रकार वैरियोंके बीचमें घिरकर शोच करती हूँ, वे क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे समझायेंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे सबके अन्तर्यामी ! हे विश्वके पालनकर्त्ता ! हे गोविन्द ! बालकोंके सहित दुःखित होकर मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ मृत्युरूपी संसारके भयभीत मनुष्योंके ईश्वर तुम हो और मोक्षके देनेवाले तुम्हारे चरणकमलके बिना मुझे और कोई शरण देनेवाला नहीं दीखता ॥ १२ ॥ शुद्ध अर्थात् धर्मात्मा ब्रह्म अपरिच्छिन्न अर्थात् ढकनेमें नहीं आये, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा, योगेश्वर अर्थात्

अणिमादिक शक्तियुक्त योग, अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचन्द्र तुम हो, वह तुम्हें नमस्कार और तुम्हारी ही मैंने शरण ली है॥१३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णकी याद करके तुम्हारी परदादी कुंती दुःखित होकर रोने लगी ॥१४॥ अक्रूर और बड़े यशस्वी विदुर कुन्तीको समझाने लगे कि तुम्हारे पुत्र धर्म, पवन, इन्द्र इत्यादिकोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, तुम इतना शोच क्यों करती हो, इस प्रकार समझाने लगे ॥१५॥ चलते समय अपने पुत्रोंमें स्नेह और भतीजोंमें विषमता करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर सुहृदोंके बीचमें जो रामकृष्णने वचन कहे थे वह अक्रूरजी कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि हे धृराष्ट्र ! कौरवोंकी कीर्तिके बढ़ानेवाले भाई पांडुके मरनेके उपरांत राजसिंहासनपर बैठे हो ठीक है ॥ १७ ॥ बहुत उत्तम राज्य करो, धर्मसे पृथ्वीका पालन करो, क्योंकि अपनी प्रजाको सुखपूर्वक आनंदसे रखोगे, अपने बान्धवोंमें समान दृष्टि रखोगे तो तुम्हारा कल्याण और जगत्में यश होगा ॥१८॥ और जो विषमता रखोगे तो संसारमें निन्दा होगी और अन्तमें नरकको जाओगे, इस कारण पाण्डवोंमें और अपने पुत्रोंमें समता रखो ॥ १९ ॥ हे राजन् धृतराष्ट्र ! इस संसारमें सदा किसीका संग नहीं रहता है और अपना देह भी सदा नहीं रहता, विचार करके देखो कि स्त्री-पुत्र ये सदा नहीं रहेंगे ॥२०॥ जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है,अकेला ही पुण्यके फल (सुख) को भोगता है और अकेला ही पापका फल (दुःख) भोग करता है॥२१॥ अज्ञानी पुरुषोंने जो पाप करके धन सञ्चय किया है उसे स्त्री-पुरुष-भाई-बन्धु होकर लेते हैं, जैसे जलकी रहनेवाली मछलियोंका जीवन जल है और जब उसको उसके पुत्र भी लेते हैं तब उसे कष्ट होता है ॥ २२ ॥ पाप करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है और जिन्हें अपनी समझ अधर्मसे पोषण करता है, वह प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषण करनेवाले मूर्ख पुरुषको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, तब उसे पहले ही त्याग देते हैं ॥२३॥ जब स्त्री पुरुषादिक इसको त्याग देते हैं तब यह सच्चे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निज धर्मसे विमुख हो सबके पापको अपने शिरपर धर वही पूर्ण नरकमें गिरता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! जैसे स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनका विचार यह सब तुमको मिथ्याभूत दिखाई देता है, उसी प्रकार इस संसारको मिथ्याभूत समझ आप भी अपने मनको रोककर समता रक्खो और शान्त हो ॥ २५ ॥ तब राजा धृतराष्ट्र बोले कि हे अक्रूर ! यह जो तुमने कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहे, उनको श्रवण करते-करते मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे मनुष्य अमृत पीनेसे तृप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ परन्तु तो भी हे अक्रूर ! मेरा चञ्चल पुरुषोंमें स्नेह है, इसलिये विषम हृदयमें तुम्हारी प्यारी बात नहीं ठहरती, जैसे स्फटिक मणिके सुदामापर्वतपर बिजली चमककर स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ भगवान्की इच्छाका कौन पुरुष खण्डन कर सकता है ? अर्थात् उनकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता, सब उनकी इच्छानुसार ही होता है । जिन ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके कारण यदुकुलमें आकर अवतार लिया है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारनेमें न आये, वे अपनी मायासे उत्पन्न होकर अर्थात् उसमें प्रवेश कर कर्म तथा कर्मोंके फलको अलग-अलग कर जीवोंको देते हैं । जाननेमें न आये ऐसे लीलासे रचे हुए संसारचक्रके घुमानेवाले उन परमेश्वरको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस

परीक्षित् ! इस प्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान सुहृदोंसे आज्ञा ले मथुरामें आये ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! बलदेव श्रीकृष्णने जिस कारण अक्रूरजीको पाण्डवोंके पास भेजा था, वह अक्रूरजीने सब धृतराष्ट्रजीकी कही वार्त्ताका अभिप्राय जानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीसे कह दिया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे मुरादाबादनिवासी-माथुरवंशीय-सुप्रसिद्धकविवर-श्रीयुतशालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे पाण्डववृत्त-निरूपणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

दोहा-पूर्वारध हरिकी कथा, शुकसागर सुखखान ।
मैं निजमति-अनुसार कछु, भाषा करी बखान ॥ १ ॥
हरिलीलामृत जानकर, जहँ तहँ किय विस्तार ।
तासु दोष नहिं दीजिये, सज्जन परम उदार ॥ २ ॥

सोरठा-दशम अंशको आज, पूर्वारध पूरण कियो ।
सुमिरि कृष्ण ब्रजराज, हरिजन शालिग्रामने ॥

दोहा-यदपि मूलसम रचनको, मैं मन कियो विचार ।
वर्णत वर्णत बढ़ गयो, कृष्णचरित्र अपार ॥ ४ ॥

सोरठा-कृपा करी ब्रजचन्द, जब जन शालिग्रामपर ।
भयो परम आनन्द, ऋद्धि सिद्धि बाढ़ी अधिक ॥

इति दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध समाप्त ।

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा दशमस्कन्ध पूर्वार्ध

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष–बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

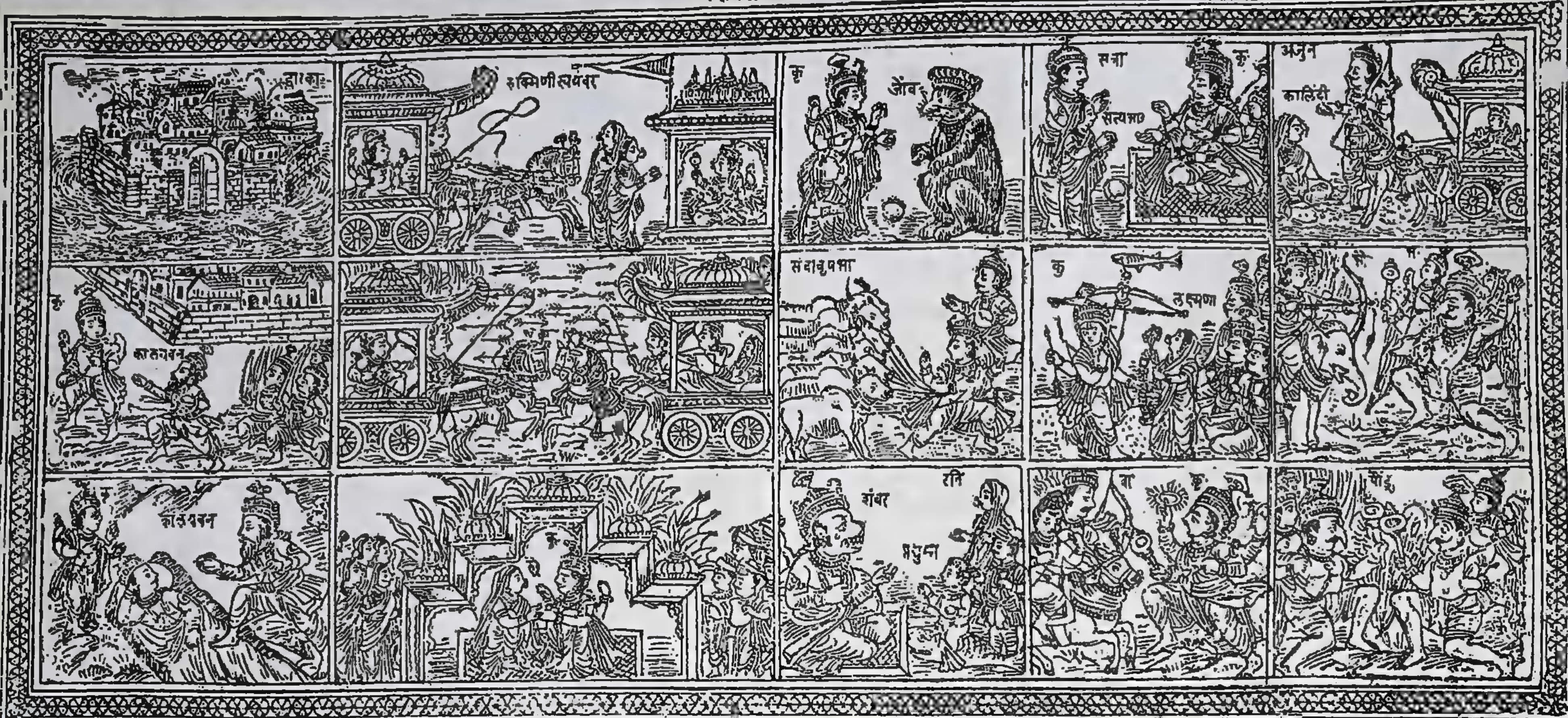
दशम स्कन्ध १० (उत्तरार्ध)

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

दशमस्कंध-उत्तरार्ध



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

दोहा–उत्तरार्द्ध प्रारंभमें, ब्रजपति चरित ललाम ।
कह पचास अध्यायमें, जरासन्ध–संग्राम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृप श्रेष्ठ परीक्षित् ! अब पूर्वार्द्धके उपरांत इकतालीस (४१) अध्यायमें जो कथायें हैं, वह हम वर्णन करते हैं कि जरासन्धके भयसे ही मानो समुद्रमें किला बनाकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको उसमें ले गये। व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! 'आस्ति' और 'प्राप्ति' ये दोनों कंसकी रानियां अपने पति कंसके मरनेसे अत्यन्त दुःखी होकर अपने पिताके घर चली आयीं ॥१॥ अपने स्वामीके मरनेसे शोकाकुल आस्ति, प्राप्ति दोनों बहनोंने अपने पिता मगधदेशके राजा जरासन्धसे जाकर सब वृत्तांत कहा ॥ २ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यह बात सुनते ही जरासन्ध अतिक्रोध कर अपने जामाताका शोक न सहकर पृथ्वीको यादवरहित करनेका उपाय करने लगा ॥ ३ ॥ और तेइस अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जरासन्धने यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारों ओरसे घेर लिया ॥४॥ जिस प्रकार अपनी मर्यादा त्यागकर समुद्र उमड़ता चला आता है उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाको आती हुई देखकर और सेनासे मथुरापुरीको ग्रस्त जान, अपने सुहृद यादवोंको व्याकुल देख ॥ ५ ॥ दुःखोंके नाशक, भूभार उतारनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस समय देशकालके योग्य अपने अवतारका कारण देखकर विचार करने लगे॥६॥कि पहले इस समस्त सेनाका संहार करूँ ? या जरासन्धका वध कर इसकी सब सेना अपने अधीन करूँ, अथवा सैन्यसहित जरासन्धका प्राणसंहार करूँ। ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प-विकल्प कर प्रथम सैन्यवधका विचार निश्चय किया, क्योंकि पृथ्वीका भाररूप यह सेना ही है, इसलिये प्रथम इसका ही मारना उचित है और इस समय सम्पूर्ण राजाओंकी सेनाओंको इकट्ठी कर ले आया है, फिर वारंवार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७ ॥ पहले पैदल, अश्व, हस्ती और चतुरंगिणी अनेक अक्षौहिणी * सेनाको ही मारना

* अक्षौहिणीका प्रमाण–इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर २१८७० रथ, इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर २१८७० गजपति. पैंसठ सहस्र छःसौ दश ६५६१० अश्वपति, एक लाख नौसहस्र तीनसौ पचास १०९३५० पैदल, इसका नाम "अक्षौहिणी" है।

योग्य है, जरासन्धको मारना योग्य नहीं, क्योंकि इससे अभी बहुत कार्य सिद्ध होंगे, यह सम्पूर्ण राक्षसोंको समेटकर ले आयेगा, मैं कहां-कहां ढूँढ़ता फिरूँगा ॥ ८ ॥ भूमिका भार उतार साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये ही मैंने अवतार लिया है॥९॥ जब-जब पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, तब-तब ही उस अधर्मको नष्ट करने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये मैं अवतार लेता हूँ ॥१०॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र विचार कर ही रहे थे कि उसी समय सूर्यके समान ध्वजा कवचसे सुसज्जित सारथिसहित दो रथ शीघ्र ही आकाशसे उतरे ॥११॥ तब अकस्मात् आये दिव्य शस्त्रोंसे सुसज्जित रथोंको देखकर हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदेवजीसे बोले कि॥१२॥हे आर्य ! हे श्रेष्ठ !तुम जिनकी रक्षा करते हो, आज उन्हीं यादवोंको आकर दुःख उपस्थित हुआ है और इसीलिये यह रथ और वीरघाती शस्त्र आये हैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठ सब सेनाका संहार कर अपने यादवोंका कष्ट दूर करो। हे ईश ! साधुलोगोंके कल्याणार्थ ही संसारमें आपका जन्म हुआ है ॥१४॥ तेईस अक्षौहिणी सेना आकर उपस्थित हुई है और इसीका पृथ्वीपर बोझ है, इसको दूर करो। इस प्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीने विचार कर, कवच पहन, सुन्दर शस्त्रोंको ले और कुछ थोड़ीसी सेनाके साथ पुरके बाहर निकल दारुक सारथीको लिये शंखध्वनि की ॥ १५ ॥ १६ ॥ "निकसे दोऊ यदुराय। पहुँचे सुदलमें जाय" इसके उपरांत जरासन्धकी सेनाके हृदय भयभीत हो कम्पायमान होने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजीको रणभूमिमें खड़ा देख जरासन्ध कहने लगा ॥१७॥ हे अधम ! मुझे तेरे साथ युद्ध करनेमें अत्यन्त लज्जा आती है, क्योंकि तू बालक है, इसलिये तेरे संग युद्ध नहीं करूँगा, रे मूर्ख ! तू गुप्त रहनेवाला अत्यन्त छली है, इसलिये तेरे साथ युद्ध करना उचित नहीं ॥ १८ ॥ हे राम ! जो तुझमें सामर्थ्य हो तो धैर्य करके युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटे हुए देहको त्याग स्वर्ग को जा, या संग्रामके बीचमें मेरा प्राण ले ॥ १९ ॥ हे परीक्षित् ! ऐसे जरासन्धके वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे जरासन्ध ! शूरवीर व्यर्थ बकवाद न कर अपने पुरुषार्थको दिखाते हैं और तुम्हारी मृत्यु निकट आ गयी है, इसलिये मैं तुम्हारे वचनों पर अधिक ध्यान नहीं देता हूँ ॥ २० ॥ जैसे पवन, बादल, धूरि ये सूर्य और अग्निको घेर लेते हैं, इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके निकट जाकर जरासन्धने उनको अपनी बलवती सेना, प्यादे, रथ, ध्वजा, घोड़े और रथवानों सहित घेर लिया ॥ २१ ॥ जब गरुड़ और तालकी ध्वजाके चिह्नवाले राम-कृष्णके रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुरीकी नारियां अटारी, महल और द्वारोंपर खड़ी हुई शोकसे व्याकुल हो मोह करने लगीं ॥ २२ ॥ शत्रुकी सेनारूप बादलोंमेंसे बारम्बार बाणोंकी भयंकर वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देखकर श्रीकृष्णचन्द्र देवता व असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्गधनुषमें टंकार करने लगे ॥ २३ ॥ तरकससे तीर निकालकर शीघ्र प्रत्यञ्चापर लगाकर प्रत्यञ्चाको खींचकर तीक्ष्णबाणोंके समूहोंसे रथ, हाथी, घोड़े, पैदल मारकर जैसे सुलगती लकड़ीके घुमानेसे चक्र बँध जाता है, उसी प्रकार बाणोंके पीछे बाण मारने लगे ॥ २४ ॥ मस्तक काटनेसे हजारों हाथी, नाड़ी कटनेसे घोड़े पृथ्वीपर गिरने लगे। रथोंकी ध्वजा कट गयीं और रथवान् गिर गये; भुजा गर्दन कटनेसे पैदल गिर गये ॥२५॥ युद्धमें पैदल, हाथी कटकर गिरने लगे तब उनके शरीरसे लोहूकी नदियाँ बहने लगीं, जिनमें भुजायें सर्पके सदृश दृष्टि आती थीं, मनुष्योंके शिर कच्छपसे जान पड़ते थे, मृत्युको प्राप्त हुए हाथी

टापूके समान दीखते थे और रुधिरकी नदीमें घोड़े ग्राहसे पड़े थे ॥२६॥ भुजा व ऊरू मछलीके समान, मनुष्योंके केश सिवारके समान थे और नदीमें जो तरंगे उठती हैं, वही रुधिरकी नदीमें धनुषोंके समान हैं। नदीमें झाड़-झंकाड़ होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें जो शस्त्र पड़े हैं वे ही झाड़-झंकाड़के समान हैं। नदीमें भँवर पड़ते हैं, वही रुधिरकी नदियोंमें ढालें मानो अति भयंकर भँवर पड़ रहे हैं। नदियोंमें कङ्कर-पत्थर इत्यादि होते हैं, रुधिरकी नदियोंमें मणि गहने कंकण पत्थरके तुल्य हैं ॥२७॥ हे राजन्! महातेजस्वी बलदेवजीने संग्रामके बीच मतवाले शत्रुओंको मुसलायुधसे मार-मार कर रुधिरकी नदियाँ बहा दीं, जो कि कायर पुरुषोंको भयकी देनेवाली और वीर पुरुषोंको आनंदकी देनेवाली हैं ॥ २८ ॥ हे परीक्षित्! दुर्मद वैरियोंको मूसलसे मार सागरके समान दुस्तर और भयंकर उस जरासन्धपालित सेनाको महापराक्रमी श्रीकृष्णबलदेवने मार-मार कर नाश कर दिया। वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाका नाश करना एक साधारण बात है, कुछ पराक्रम नहीं है ॥ २९ ॥ अनन्तगुणधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीलासे ही तीनों लोकोंका उत्पादन, पालन और संहार करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको जरासन्धकी सेनाका मारना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, तो भी मनुष्योंके अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके आश्चर्यमय कर्म तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ३० ॥ सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राणमात्र ही अवशेष रहा, तब बलवान् जरासन्धको जैसे सिंह सिंहको पकड़ता है, उसी प्रकार बलपूर्वक बलदेवजीने पकड़ा ॥ ३१ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले जरासन्धको वरुणपाश और मनुष्यपाशसे जब बलदेवजी बांधने लगे, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उसको छुड़ा दिया और कहा कि अभी जरासन्धसे और कुछ काम लेना है ॥ ३२ ॥ शूरवीरोंमें माननीय जरासंधको त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बलदेवने जिस समय छोड़ दिया, तब वह मनमें लज्जित होकर विचार करने लगा कि वनमें जाकर तप करना उचित है, घर जाकर क्या करूँगा? तब मार्गमें जाते हुए राजाओंने निवारण किया ॥ ३३ ॥ धर्मके उपदेश करनेवाले पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचन कहकर जरासन्धको समझाने लगे कि हे राजन्। कोई तुम्हारा बड़ा दुष्कर्म आकर प्राप्त हुआ जो तुच्छ यादवोंने तुम्हें परास्त किया अब तुम कुछ लाज मत करो ॥३४॥ जिस समय समस्त सेना नष्ट हो गयी और श्रीकृष्णचन्द्रने छोड़ दिया, तब वह बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध अत्यन्त उदास होकर मगध देशको चला गया ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षत् सेना सङ्ग लिये जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजीने मथुरापुरीमें प्रवेश किया, तब देवताओंने आकाशसे फूल वर्षाये और प्रशंसापूर्वक उनकी स्तुति की ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्र अपनी मथुरापुरीमें आकर खेदरहित प्रसन्नमन पुरवासियोंसे मिले। सूत, मागध, बन्दीजन उनके विजयके यश गान करने लगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र मथुरापुरीमें आये तब शङ्ख, नगाड़े, अनेक भेरी, तुरही, वीणा, बांसुरी और मृदंग यह सब बाजे बजने लगे ॥३८॥ मार्गमें छिड़काव हो रहा है; पताकायें लगायी गयी हैं और वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रके शुभागमनसे घर-घर बन्दनवारोंसे परिपूर्ण इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा हुई ॥३९॥ श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर स्त्री, पुरुष, पुष्प, दधि, अक्षत और अंकुरोंकी वर्षा करने लगे। स्त्रियाँ स्नेहसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखने लगीं॥४०॥ शूरवीर राजाओंकी शोभा कर-

नेवाले रणभूमिमें पड़े बहुत धन लाकर श्रीकृष्णचंद्रने यादवराज उग्रसेनको दे दिया ॥४१॥ इसी प्रकार जरासन्ध उतनी ही अक्षौहिणी सेना साथ ले-लेकर सत्रह बार चढ़ आया और श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित यादवोंसे उसने युद्ध किया ॥ ४२ ॥ हे राजा परीक्षित् ! यादवगण श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसे जरासन्धकी समस्त सेनाका संहार करने लगे, सम्पूर्ण सेना जब कट गयी और शत्रुने छोड़ दिया, तब जरासन्ध फिर अपने देशको चला गया ॥४३॥ अठारहवीं बार जरासन्ध तो जानेवाला था ही कि उसके पहले ही देवर्षि नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन आकर दिखाई दिया ॥ ४४ ॥ संसारमें जिसके समान कोई योद्धा नहीं, ऐसा कालयवन यादवोंको अपने समान जान, उसने तीन करोड़ महाम्लेच्छ अतिभयावने इकट्ठे किये, जिनकी मोटी भुजा, बड़े गले, मैले दांत, भूरे केश, घूँघचीके समान लाल-लाल नयन उन्हें साथ ले डंका दे मथुरापुरीपर चढ़ आया और चारों ओरसे घेर लिया। क्योंकि देवर्षि नारदजीने इससे कहा था कि यादव लोग तुम्हारे समान हैं, इसलिये उनसे युद्ध करो ॥४५॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवसहित इस दुरात्मा कालयवनको आया हुआ देखकर विचार करने लगे कि यादवोंको दोनों ओरसे कष्ट आकर उपस्थित हुआ है। बड़े ही आश्चर्यकी बात है ॥ ४६ ॥ क्योंकि अब तो यह महाबली कालयवन हमको घेर रहा है और फिर जरासन्ध आज या कल अथवा परसोंतक अवश्य ही आयेगा ॥ ४७ ॥ यदि इस समय हम इससे युद्ध करें और बीचमें जरासन्ध आ गया तो अवश्य ही हमारे बांधवोंका प्राण-संहार करेगा और जो न मारेगा तो बांधकर अपने पुरमें ही ले जायेगा, क्योंकि वह बलवान् है ॥४८॥ इसलिये जहां मनुष्य न प्रवेश कर सकें ऐसा एक किला बनाकर उसमें अपनी जातिके यादवोंको रख फिर कालयवनका वध करूँ ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रने इस प्रकार मनमें विचार कर अड़तालीस कोश (बारह योजनका) समुद्रके बीचमें एक दुर्ग (किला) और उस किलेके बीचमें एक महाअद्भुत आश्चर्यमय नगर बनाया ॥५०॥ इस कारीगरीमें सब विश्वकर्माकी कारीगरी दिखायी देती है, राजाओंके जाने योग्य बड़े-बड़े बाजार, गली और चौक बन रहे हैं ॥ ५१ ॥ बीच-बीचमें मार्ग बनानेके लिये जगह छोड़ दी गयी हैं, कल्पवृक्ष और लतावाले फूलोंके बगीचे, चित्र-विचित्र फुलवारी, सुवर्ण शिखरसे आकाशको स्पर्श करनेवाले ऊँचे-ऊँचे स्फटिकमणिके अंटा बन रहे हैं और ऊँचे-ऊँचे किलेके द्वार बन रहे हैं ॥५२॥ घोड़के बांधने और अन्न भरनेके लिये लौह और पीतलके स्थान बने हैं, उनके ऊपर सुवर्णके कलशे विराजमान हैं, जिनसे इस नगरीकी अत्यन्त ही मनोहर शोभा हो रही है, जिनके पद्मरागमणिके शिखर और महामरकत मणिकी जिसमें पृथ्वी, इस प्रकार शोभायमान सुवर्णके गृह जहां-तहां बन रहे हैं ॥५३॥ देवताओंके मंदिर और चित्र-विचित्र चित्रसारी बन रही हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र ये वर्ण जिसमें वास करते हैं यादव और देवराज उग्रसेनके महल तो अत्यन्त ही शोभायमान हैं ॥५४॥ देवराज इंद्रने भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रके लिये सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जो मनुष्य इस सभामें वास करता है, उसको भूख, प्यास, शीत, गरमी, शोक और मोह इत्यादि कुछ भी नहीं सताते ॥ ५५ ॥ वरुणजीने श्यामकर्ण, श्वेतवर्ण, मनके समान वेगवान् घोड़े भेजे। पालन करनेवाले कुबेरजीने पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, कुन्द, नील-कुमुद, शङ्ख, खर्व यह आठ विभूतियां भेजीं ॥५६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् वासुदेवने इन देवता लोगोंको अपने-अपने अधिका-

रकी सिद्धिके लिए जो कुछ सम्पदायें दी थीं, वे सब वस्तु जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वी पर आये उन्होंने लाकर अर्पण कर दीं ॥ ५७ ॥ उस द्वारकापुरीमें योगके प्रभावसे सब यदुवंशियोंको पहुँचाकर श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीसे कहने लगे कि, हे वीर! तुम यहां मथुरापुरीमें रहकर शेष प्रजाकी रक्षा करो, इस प्रकार बलदेवजीको आज्ञा देकर कमलनयन भगवान् कमलोंकी माला धारण किये शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेसे बाहर निकले ॥ ५८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धो-
त्तरार्द्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

दोहा–कालयवन मुचुकुन्दकी, दृष्टि परत भो क्षार।
जब हरिकी विनती करी, फिर इक्यावन बार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण ! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रजी रेशमी वस्त्र पहने हुए पुरसे बाहर निकले तो उनकी ऐसी शोभा हुई कि मानो निशानाथ चन्द्रमा उदय हुए ॥१॥ छातीमें भृगुलताका चिह्न, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारण किये, चतुर्भुज, नवीन कमलके समान अरुण नेत्र ॥२॥ नित्य प्रसन्न, शोभायमान और सुन्दर मुसकान, मकराकृति कुंडलसे देदीप्यमान मुखारविंद॥३॥इस प्रकार मनोहर मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रकी देखकर कालयवन अपने मनमें विचार करने लगा कि ठीक कृष्ण यही है ॥४॥ क्योंकि देवर्षि नारदजीने जो-जो लक्षण बताये थे वह सब इसमें पाये जाते हैं, इसके अतिरिक्त और कोई वासुदेव नहीं है और यह अकेला शस्त्ररहित चला जाता है, इसलिये मैं भी शस्त्ररहित पैदल होकर इसके संग युद्ध करूँ ॥ ५ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार कालयवन मनमें निश्चय करके पराङ्मुख होकर भागते हुए योगी जनोंके भी हाथ न आयें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पकड़नेको पीछे दौड़ा ❋ ॥६॥ पग-पग पर'अब पकड़ा अब पकड़ा'ऐसे अपने आपको दिखाते-दिखाते म्लेच्छराज कालयवनको श्रीकृष्णचन्द्र बड़ी दूर पर्वतकी गुफामें ले गये ॥ ७ ॥ "यादवोंके कुलमें तू जन्मा है, इसलिए तेरा भागना उचित नहीं है" इस प्रकार आक्षेप करता हुआ महावेगसे दौड़ने लगा, परंतु पापी होनेके कारण श्रीकृष्णको न पकड़ सका, क्योंकि विना पाप नष्ट हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति नहीं होती है॥८॥ हे परीक्षित्! जब म्लेच्छराज कालयवनने श्रीकृष्णचन्द्र पर दुर्वाक्यरूपी बाणोंका आक्षेप किया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी गुफामें घुस गये, कालयवन भी दौड़ता हांफता इनके पीछे-पीछे उस गुफामें घुस गया, वहां एक पुरुष और सो रहा था उसे देख कालयवन विचार करने लगा॥९॥ कि यह दुष्ट मुझे इतनी दूर लाकर यहां साधुकी नाईं शयन कर रहा है, इस प्रकार कालयवनने निश्चयकर उस सोते हुए पुरुषको कृष्ण जानकर एक लात मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष बहुत दिनोंका सोया हुआ था, इसलिए धीरे-धीरे नेत्र खोल चारों ओर देख उसने कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे भरतवंशी राज परीक्षित् ! उसी

❋ शंका–कालयवनको देखकर श्रीकृष्ण क्यों भाग गये, इसका क्या कारण ?

उत्तर–एक समय यदुवंशी अपनी सभामें अपने कुलकी कन्याके वचनोंका स्मरण कर गर्गाचार्यको हँसने लगे। गर्गाचार्य तो श्रीभगवान्के पूजनमें रात-दिन रहते थे और स्त्रीसे प्रीति कम रखते थे इससे उनकी स्त्रीने अपने यादवोंसे कहा कि गर्गमुनि नपुंसक है–इससे यदुवंशी उक्त मुनिकी हँसी किया करते थे, इसलिये गर्गने यादवोंका नाश करनेके लिये एक पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्रको वरदान दिया कि हे पुत्र ! युद्धमें यदुवंशी तेरे कुलके सामने जो खड़े होंगे तो उसी समय भाग जायेंगे श्रीकृष्णचन्द्र इस बातको जानकर भाग गये हैं।

समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखनेसे कालयवनके शरीरसे ऐसी अग्नि प्रकट हुई कि जिससे उसका शरीर क्षणभरमें जल भुनकर भस्म हो गया ॥ १२ ॥ यह सुन राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! जिसने अपनी क्रोधाग्निसे कालयवनका प्राण-संहार किया, उसका क्या नाम और वह कौन पुरुष है ? उसने किसके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, क्या उसका प्रभाव है, किसका पुत्र है ? और किसलिए इस गुफामें सोता था ? वह सम्पूर्ण वृत्तांत आप मुझे सुनाइये ॥१३॥ तब श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजा परीक्षित् ! इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न मान्धाताका पुत्र गुणवान् ब्राह्मणोंका भक्त मुचुकुन्द नाम राजा था ॥ १४ ॥ एक समय असुरोंसे भयभीत इन्द्रादिक देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिए राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की तो इन्होंने बहुत दिनों तक देवताओंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ इसके उपरांत स्वर्गके पालन करने वाले स्वामि-कार्तिकजीको आया देखकर सब देवता इनसे कहने लगे कि हे राजा मुचुकुन्द ! हमारी रक्षा करनेमें जो कुछ कष्ट आपको हुआ है, इससे निवृत्त होकर आराम करो ॥ १६ ॥ हे वीर ! तुमने मनुष्यलोकके निष्कंटक राज्यको त्यागकर हमारी रक्षा की है, इससे तुम्हारे विषयके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुम्हारे पुत्र, रानी, जातिके बन्धु-बांधव, प्रधान दीवान, मन्त्री, राज्यकी प्रजा इसमेंसे अब कोई शेष नहीं है, सबका कालने संहार कर दिया ॥ १८ ॥ काल बलवान्से बलवान् है, भगवान्की शक्ति है, समर्थ अविनाशी है और जिस प्रकार पशुओंका पालन करनेवाला ग्वालिया पशुओंको चराता है, उसी प्रकार क्रीड़ा करके सब प्रजाको इधर-उधर चलाता है ॥ १९ ॥ सब देवता कहने लगे कि हे राजा मुचुकुंद ! तुम्हारा कल्याण हो, मोक्षके अतिरिक्त और जो इच्छा हो, वह वर मांगो, क्योंकि मोक्षके दाता तो केवल एक विष्णु भगवान् ही हैं ॥ २० ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार देवतालोगोंने कहा तब महायशस्वी राजा मुचुकुन्दने बहुत दिनोंतक देवताओंकी रक्षा करनेसे श्रमित होनेके कारण यह वर मांगा कि मैं सोता ही रहूँ और जो कोई मेरी निद्रा भङ्ग करे, वह उसी समय भस्म हो जाय, यह वर मांगा । देवताओंने कहा ऐसा ही होगा, तब राजा मुचुकुन्द देवताओंकी आज्ञा पाकर पर्वतकी गुफामें जाकर सो रहा ॥ २१ ॥२२॥ इससे देवताओंने कह दिया था जो तुम्हारी निद्रा भङ्ग करेगा वह तत्काल ही जलके भस्म हो जायगा ॥२३॥ जब कालयवन जलके भस्म हो गया, तब चतुर्भुज रूप होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया ॥ २४ ॥ मेघके समान श्यामवर्ण, पीत वस्त्र धारण किये, हृदयमें प्रकाशमान भृगुलताका चिह्न और कौस्तुभमणि धारण करनेसे अत्यन्त ही देदीप्यमान हो रहे थे ॥ २५ ॥ चतुर्भुज वैजयन्ती मालासे सुशोभित और दमकते हुए मकराकृति कुण्डलोंसे शोभायमान हो रहे थे ॥ २६ ॥ देखने योग्य प्रेमभरी मुसकानसहित विलक्षण और नवीन अवस्थायुक्त मतवाले सिंहके समान पराक्रमी ॥ २७ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णका तेज देखते ही भयभीत होकर राजा मुचुकुन्द धीरे-धीरे पूछने लगा ॥ २८ ॥ राजा मुचुकुन्द बोला कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कौन हो ? कमलके समान कोमल आपके चरण हैं और इस पर्वतकी गुफामें किसलिये आये हो ? जो कांटोंके वनमें विचरते फिरते हो ? ॥२९॥ क्या आप तेजस्वी भगवान् अग्नि हैं वा सूर्य हैं अथवा चन्द्रमा हैं या इन्द्र हैं किंवा समस्त लोकपालोंके कर्ता या देवता हैं ? ॥ ३० ॥ अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओंमेंसे कोई हो ? मुझे जान पड़ता है कि आप विष्णु

भगवान् हैं क्योंकि जैसे दीपक अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश कर देता है, वैसे ही आपने अपने तेजसे इस गुफाका अन्धकार नष्ट कर दिया ॥ ३१ ॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले कि हे वीर ! हमें आपका जन्म कर्म व गोत्र सुननेकी अत्यन्त अभिलाषा है, वह प्रसन्नतापूर्वक हमें सुनाइये ॥३२॥ तब मुचुकुंदने कहा कि हे पुरुषसिंह ! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मान्धाताका पुत्र और मुचुकुंद मेरा नाम है ॥ ३३ ॥ मैं बहुत दिनोंमें जागा हूँ, इसलिये मुझे खेद प्राप्त हुआ है। नींदके कारण मेरी इंद्रियाँ चलायमान हो रही हैं क्योंकि मैं इच्छानुसार इस वनमें सो रहा था और अभी किसीने आकर जगा दिया ॥ ३४ ॥ और जिसने मुझे आकर जगाया, वह पुरुष उसी समय जलकर भस्म हो गया, उसके पीछे आपके दर्शन हुए ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारा असह्य तेज बहुत कालतक हम नहीं देख सकते, क्योंकि आप देहधारियोंके माननीय हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जब राजा मुचुकुन्दने प्रार्थना की तब संपूर्ण प्राणियोंके पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहने लगे ॥ ३७ ॥ कि हे मुचुकुन्द ! मेरे जन्म, कर्म और नामका अन्त नहीं है, इसलिये मैं भी उनकी गणना नहीं कर सकता ॥ ३८ ॥ अनेक जन्म धारण करके कदाचित् मनुष्य पृथ्वीके रजःकणोंकी तो गणना कर सकता है परन्तु मेरे गुण, कर्म, जन्म, नामकी गिनती नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥ हे मुचुकुन्द ! भूत, भविष्य, वर्त्तमान मेरे जन्मोंकी गणना करते-करते बड़े-बड़े ऋषि, मुनि भी पार न पा सके ॥ ४० ॥ तो भी हे अंग ! अभीके जो मेरे नाम कर्म हैं, वह मैं कहता हूँ, तुम श्रवण करोः—पृथ्वीका भार उतारने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रथम कमलयोनि ब्रह्माजीने मेरी प्रार्थना की थी ॥ ४१ ॥ इस कारण यदुवंशमें वसुदेवके गृह मैंने जन्म लिया, इसलिये मेरा नाम वासुदेव प्रसिद्ध हुआ ॥४२॥ हे मुचुकुन्द ! साधुद्वेषी कालनेमि कंस इत्यादिकका मैंने वध किया और यह जो कालयवन है, वह आपकी तीक्ष्ण दृष्टिसे भस्म हो गया ॥४३॥ हे राजन् ! पहले आपने मेरी प्रार्थना की थी, इसलिये मैं तुम पर अनुग्रह करनेके लिये इस गुफामें आया हूँ ॥४४॥ हे मुचुकुन्द ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, वर मांगो, क्योंकि मेरी शरण आनेसे मनुष्यको फिर किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब प्रसन्न हो गर्गाचार्यके वचन स्मरण कर उन्हें साक्षात् परिपूर्ण भगवान् जान प्रणाम करके राजा मुचुकुन्दने कहा ॥ ४६ ॥ कि हे ईश ! तुम्हारी मायासे ये लोग मोहित होकर अनर्थ (जगत्) की ओर दृष्टि लगाकर सुखके लिये दुःखमूल घरोंमें रहकर क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी ठगकर मोहित हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ जैसे कच्चा घड़ा क्षणभरमें फूट जाता है, बालूकी भीत (दीवार) जैसे क्षण भरमें गिर जाती है, ऐसे ही इस शरीरका भी विश्वास नहीं, इस शरीरका मैंने इतना अभिमान किया है कि रथ, घोड़े, हाथी, पैदल, सेना और मुख्य-मुख्य सेनाध्यक्षको साथ लेकर पृथ्वीपर विचरता रहा, परंतु कालरूप आपका स्मरण कभी न किया, इसलिये मेरा इतना समय व्यर्थ गया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अमुक-अमुक कार्य इस रीतिसे करना, संदेहोंमें प्रमत्त रहने वाले, मनोरथ पूर्ण होनेसे भी इच्छवाले और इच्छानुसार कार्य पूरा होनेपर भी लोभ और लालच जिसका बढ़ता जाता है, ऐसे मनुष्यको मुखसे जिस प्रकार गलाफू चाटता सर्प उन्दर (मूसा) को पकड़ लेता है, उसी प्रकार अप्रमत्त (सावधान) कालस्वरूप आप झपट लेते

हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मनुष्यदेव अर्थात् राजा यह नाम धरकर जो सुवर्णके बने रथोंपर बैठकर चलते हैं, वह देह दुरत्यय काल द्वारा मरे पीछे कुत्ते सियार यदि भक्षण कर लें तो विष्ठा हो जाय, पड़ा रहे तो कृमि पड़ जायँ और अग्निमें जला दिया तो भस्म हो जाय, इस प्रकार तीन नामोंको धारण करते हैं ॥५२॥ हे भगवन्! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशाओंको जीत लिया है, जिसको संग्राममें कोई शेष नहीं रहा और जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करते हैं, ऐसे उत्तम सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्ती राजा भी मैथुन करनेके लिये घरोंमें क्रीड़ामृगके समान स्त्रियोंसे नाच नचाये जाते हैं, जैसे बाजीगर बन्दरको नचाता है ॥ ५३ ॥

चौ०—नारिविवश नर सकल गुसाईं ❁ नाचहिं नट मर्कटकी नाईं ॥

प्रथम यह पुरुष विषयोंको त्यागकर तपमें बड़ी श्रद्धा कर पृथ्वीमें शयन करता है और ब्रह्मचर्य रखकर विषय भोगनेके लिये दान पुण्य करता है और फिर विचार करता है कि इस जन्ममें तप कर चक्रवर्ती राजा हो तपस्याके प्रभावसे फिर इंद्र हो जाऊँगा, इस प्रकार तृष्णाके बढ़नेसे उस पुरुषको कभी सुख नहीं होता ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! संसारमें जन्म-मरण प्राप्त हुए जीवको जिस समय आपके अनुग्रहसे संसारका अंत होता है, उस समय आपके भक्तोंका सत्संग हो तो सब संगको त्यागकर कार्य कारणके नियन्ता आपमें जो भक्ति करते हैं, वे संसारके बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ ५५ ॥ हे ईश्वर ! यह आपने बड़ा ही अनुग्रह किया, जो मैं अकस्मात् राज्यबंधनोंसे छूट गया, यह मैं मानता हूँ। राज्य छूटनेके लिये अकेला होकर वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले चक्रवर्ती राजा भी प्रार्थना करते हैं कि, हमारा किसी प्रकार राज्यबंधन छूट जाय, जिसमें स्वाधीन होकर वनमें जा बैठें ॥ ५६ ॥ हे समर्थ ! निष्किंचन साधुसे पूजित तुम्हारे चरणारविंदोंका सेवन करनेसे मैं और किसी वरकी इच्छा नहीं करता, क्योंकि साक्षात् मोक्षके देनेवाले तुम्हारा आराधन करके ऐसा कौन विवेकी पुरुष है आत्माका बन्धनरूप वर मांगेगा ? ॥ ५७ ॥ हे ईश ! इसलिये सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, इनके बन्धन और ऐश्वर्य, अथवा शत्रुका विनाश और धर्मादिक मनोरथको त्याग ज्ञानघन, निरंजन, उपाधिरहित, निर्गुण, अद्वैत ईश्वर मैं आपकी शरण आया हूँ ॥ ५८ ॥ हे अच्युत ! मैं इस संसारमें बहुत दिनोंसे कर्म फलोंके कारण दुःखी हूँ और कर्मोंकी वासनाओंसे पीड़ित हूँ और तृष्णा सहित जो ये छः इंद्रियरूप शत्रु मेरे पीछे पड़े हुए हैं इससे मुझे किसी प्रकारसे शांति नहीं है, अब मैं जैसे-तैसे शोकरहित भयके दूर करनेवाले तुम्हारे चरणारविन्दकी शरण आ गया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ ५९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उदार है, क्योंकि मैंने वर देनेके लिये कहकर तुम्हें लोभ उत्पन्न किया, तो भी कामना करके तुम्हारी बुद्धि चलायमान न हुई ॥६०॥ मैंने वर देनेके लिये कहकर जो लोभ उत्पन्न किया, वह तुझे सचेत किया है और हे राजन् ! यह तू निश्चय जान कि मेरे भक्तोंको कदाचित् दुःख आकर प्राप्त हो तो भी उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होती ॥ ६१ ॥ हे मुचुकुन्द ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वे प्राणायामादि साधनोंसे मनको वश करते हैं तो भी उनका मन विषयोंके लोभमें जाता हुआ दीखता है; क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे वीर ! मुझमें मन लगाकर जहां आपकी इच्छा हो वहां विचरण करो और तुम्हारी भक्ति नित्यप्रति मुझमें रहेगी ॥ ॥ ६३ ॥ क्षत्रियवंशमें

उत्पन्न होकर शिकार खेलकर जो जीवोंकी हिंसा की है, वह अब सावधान होकर मेरा आश्रय लेकर तप कर, जिससे तेरे सब पाप छूट जायँ ॥ ६४ ॥ हे राजा मुचुकुन्द ! दूसरे जन्ममें सब प्राणियोंके हित करनेवाले शुद्ध रूप मुझे प्राप्त होगे ॥ ६५ ॥

दोहा—करत गूढ़ तप जो पुरुष, मनुज जन्मके माहिं ।
पावत सो मेरा दरश, इसमें संशय नाहिं ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नाम एक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दोहा—बावनवें अध्यायमें, रुक्मिणिको सन्देश ।
द्विजवर लैगो द्वारका, जहँ श्रीकृष्ण ब्रजेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णसे अनुगृहीत होकर इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दे नमस्कार कर गुफासे बाहर निकल आये ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्य, पशु, लतादिक और छोटे-छोटे वृक्षोंको देखकर "अब कलियुग आ गया" इस प्रकार निश्चय कर उत्तर दिशाको चले गये ॥ २ ॥ वहांसे फिर श्रद्धापूर्वक सब संग त्याग संदेहरहित हो राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगाकर गंधमादन पर्वतपर चले गये ॥ ३ ॥ हे नृपोत्तम ! फिर नरनारायणके स्थान बदरिकाश्रममें जाकर समस्त द्वन्द अर्थात् सुख, दुःख, भूख, प्यास, शीत, उष्णादि सहकर शान्तस्वरूप मुचुकुन्द तप करके भगवान् वासुदेवकी आराधना करने लगे ॥४॥ फिर इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने म्लेच्छोंसे घिरी मथुरापुरीमें आकर म्लेच्छोंकी सब सेनाका संहार किया और उनका सब धन लेकर द्वारकापुरीको भेज दिया ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा पाते ही मनुष्य बैलोंके ऊपर धन लादकर जब ले चले तब जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढ़ आया ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी शत्रुकी सेनाको देख मनुष्य अवतारके कारण शीघ्र ही उठकर भागे ॥७॥ यद्यपि इन्हें किसीका डर नहीं था तो भी बहुत भयभीत हो गये, इसलिये बहुतसे धनको मार्गमें छोड़ कमलसे कोमल चरणोंसे बहुत दूरतक कोसों भागे चले गये ॥ ८ ॥ तब जरासन्ध बोला—"काहे डरके भागे जाते। ठाढ़े रहो करो कुछ बातें ॥ परत उठत कंपित अति भारी। आई है ढिग मीचु तुम्हारी ॥" मगधदेशके राजा जरासन्ध कृष्ण बलदेवको भागता हुआ देख हँसकर आप भी उनके पीछे दौड़ने लगा ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक भागनेके कारण श्रमित होकर श्रीकृष्ण और बलरामजी प्रवर्षणनाम पर्वतपर चढ़ गये, जिसपर देवराज इन्द्र नित्य जल वर्षाते रहते थे ॥ १० ॥ हे राजा परीक्षित् ! जरासंधने कृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान उनको बहुत ढूँढ़ा परंतु कहीं पता न लगा, तब उस पर्वतके चारों ओर आग लगा दी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जब पर्वत जलने लगा, तब श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव दोनों भ्राता उस ४४ चवालिस कोस ऊँचे पर्वतके शिखरसे उछलकर पृथ्वीपर कूद पड़े ॥१२॥ हे महाराज ! सेवकों सहित जरासंधसे अलक्षित यादवोंमें श्रेष्ठ कृष्ण बलराम समुद्रकी खाईसे युक्त द्वारकापुरीमें चले आये ॥१३॥ हे राजन् ! जब समस्त पर्वत जलकर भस्म हो गया तब मगधदेशके राजा जरासंधने विचार किया कि कृष्ण बलदेव भी इसीके संग ही जलकर

भस्म हो गये, इसीलिये अपनी सब सेना साथ लेकर मगधदेशको चला गया ॥ १४ ॥ यद्यपि अब श्रीकृष्णचन्द्रके विवाहकी कथा करनेके लिये प्रथम (नवमस्कन्धमें) बलदेवजीके विवाहकी कथा वर्णन कर आये हैं, तो भी फिर एक श्लोकमें वर्णन करते हैं। हे परीक्षित् ! आनर्त्तदेशके राजा रैवतने कमलयोनि ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री रेवतीका बलदेवजीसे विवाह कर दिया, यह पहले कह चुके हैं ॥ १५ ॥ हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! भगवान् वासुदेव भी स्वयंवरमें जाकर लक्ष्मीजीके अंशसे विदर्भ देशमें उत्पन्न हुई भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको विवाह लाये ॥ १६ ॥ शाल्व और शिशुपालादिक राजाओंकी सेनाको जीत सब लोकोंके देखते हुए जैसे देवताओंको जीतकर गरुड़जी अमृत ले आते हैं इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको ले आये ॥ १७ ॥ इतनी कथा सुनकर राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त स्वरूपवान् राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीको युद्धसे हरणकर श्रीकृष्णचन्द्रने ब्याहा, यह वार्त्ता हमने आपके ही मुखसे सुनी है॥१८॥हे व्यासनंदन ! जरासन्ध, शाल्व इत्यादि राजाओंको जीतकर जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीको लाये वह चरित्र सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है, वह प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अत्यंत पवित्र और मनोहर समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली है, नित्य नवीन सुननेके सारकों जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो ऐसी कथायें सुनकर तृप्त हो ? ॥ २० ॥ जब राजाने यह वचन कहा, तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! विदर्भदेशका पालन करनेवाला महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था, उसके पांच पुत्र और परमस्वरूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ उन पुत्रोंमें सबसे बड़ा रुक्मि, उससे छोटा रुक्मरथ, उससे छोटा रुक्मबाहु, उससे छोटा रुक्मकेश और रुक्मकेशसे छोटा रुक्ममाली, ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए और पांचोंकी बहन परम सुशीला पतिव्रता रुक्मिणी हुई ॥ २२ ॥ घरमें आये हुये देवर्षि नारदजीके मुखसे श्रीकृष्णचन्द्रका गुणानुवाद सुनकर श्रीरुक्मिणीजीने अपने समान जान विवाह करनेके लिये प्रतिज्ञा की ॥ २३ ॥ और इधर सुंदर बुद्धि, उदारता, रूप, पराक्रम, शोभायुक्त रुक्मिणीके गुण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान स्त्रीको ब्याहनेका अभिलाष किया ॥ २४ ॥ हे राजन् ! माता, पिता, भ्राता आदि सबकी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रके साथ करेंगे, परंतु श्रीकृष्णचन्द्रका शत्रु रुक्म "हम अपनी बहनका विवाह कृष्णके साथ नहीं करेंगे" इस प्रकार निषेध कर 'रुक्मिणीके योग्य वर शिशुपाल है' यह निश्चय मनमें किया ॥ २५ ॥ सुन्दर कटाक्षवाली विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीने सुना कि श्रीकृष्णके साथ मेरा भाई ब्याहनेको निषेध करता है, यह जान बहुत उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर श्रीकृष्णचन्द्रके लिवा लानेके लिये भेजा ॥ २६ ॥ हे राजन् ! वह ब्राह्मण जिस समय द्वारकापुरीमें पहुँचा उसी समय द्वारपालोंने इसे भीतर पहुँचाया, वहां इसने सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान आदिपुरुष भगवान् वासुदेवके दर्शन किये ॥ २७ ॥ गौ-ब्राह्मणोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र उस ब्राह्मणकों देखते ही सिंहासनपरसे उतर पड़े और ब्राह्मणको सिंहासनपर बैठाकर जिस प्रकार कोई अपने देवताकी पूजा करता है, उसी प्रकार पूजा करने लगे ॥ २८ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! जब ब्राह्मण भोजन कर चुका और मार्गकी थकावट दूर हो गयी, तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसके निकट जा अपने हाथोंसे उसके चरण दाबते-दाबते

यह पूछा ॥ २९ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वृद्धसम्मत तुम्हारा धर्म बहुत कठिनतापूर्वक तो नहीं चलता है ? सदा तुम्हारे मनमें सन्तोष तो वर्त्तमान है ? ॥३०॥ जिस किसी प्रकारसे ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर वर्ते अर्थात् जो वस्तु मिले उसीमें सन्तोष रखे, स्वधर्मसे च्युत न हो तो यही उसको समस्त फलका देनेवाला है ॥ ३१ ॥ और जिसके मनमें सन्तोष नहीं है वह ब्राह्मण यद्यपि इन्द्र हो जाय तो भी सब लोकोंमें घूमता फिरता है, तृष्णाके कारण एक स्थानपर स्थिर नहीं रहता । हे ब्राह्मण ! प्रारब्ध ही तो मनुष्यको राजा रङ्क करता है * और जिसके पास कुछ भी नहीं है और मनमें सन्तोष है, वह ब्राह्मण सब खेदको त्यागकर आनंदपूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥ जो द्विज आप ही मिली वस्तुमें सन्तोष करता है, अपने धर्ममें निष्ठ है और समस्त जीवोंकी रक्षा करता है, शान्तस्वभाव, अहंकार रहित है, उसको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस राजाके देशमें तुम वास करते हो, वह राजा तो तुम पर प्रसन्न है ? क्योंकि जिस राजाके देशमें भलीभांति गौ, ब्राह्मणका पालन होता है, वह राजा मुझे अत्यन्त प्यारा लगता है ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम ! समुद्रका उल्लंघन कर जिस कार्य करनेकी इच्छासे आप यहां पर आये हैं, जो कहने योग्य वार्त्ता हो तो हमारे सम्मुख कहो, जिससे उस कार्यके करनेका उपाय किया जाय ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे कुरुकुल-भूषण परीक्षित् ! श्रेष्ठ आसनपर विराजमान, लीलासे ही जिन्होंने मनुष्य देह धारण किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण बोला कि ॥३६॥ हे मधुसूदन ! रुक्मिणीने आपको एकांतमें यह पत्री दी है । तब श्रीकृष्णचन्द्रजीकी आज्ञासे उस प्रेमके चिह्नवाली पत्रीको खोलकर वह ब्राह्मण सुनाने लगा । रुक्मिणीने लिखा है कि "हे त्रिलोकीमें सुन्दर ! हे अच्युत अर्थात् अखण्डरूप ! जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा हृदयमें प्रवेशकर शोकसंताप दूर करनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप श्रीमान्‌का रूप सुना है, तभीसे मेरा मन आपमें लग रहा है ॥३७॥ हे मुकुन्द ! हे पुरुषशार्दूल ! कौन बलवान् उदारगुणयुक्त धैर्यवान् कन्या तुम्हें, जो कि मनुष्यलोकके अति-प्रिय कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन सबमें तुम्हारे ही समान हो, विवाहके

---

* दृष्टांत-एक घोड़ोंके व्यापारीके घोड़ेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जाता रहा, तब राजाने व्यापारीसे कहा कि इस घोड़ेकी कीमत ले लो । व्यापारीने कहा-महाराज ! यह घोड़ा कुमारके चढ़नेको मैंने वैसे ही दिया और मुझे द्रव्यकी इच्छा नहीं । जब उसने ऐसा कहा तब राजाने उसका बहुत आदर-सम्मान कर बिदा किया और कहा कि आते-जाते रहियेगा । अब कुछ वर्ष उपरान्त व्यापारीका प्रारब्ध बिगड़ गया, अतः धन सब चोरी हो गया । घोड़े सब मर गये और कुछ दिन जब कुछ उपाय न चला तो राजाके पास आया । राजाने यह समाचार सुन, उसे एक मकानमे टिका दिया और कुछ दिन पीछे उससे भेटकर पूछा कि तुमको क्या बनाना आता है ? व्यापारी बोला कि मैं चाबुक बनाना जानता हूँ । राजाने उसी समय पांच रुपये देकर कहा कि इसीसे चाबुक बनाओ और बेंचो, रहनेके लिये मकान तुम्हें दे ही दिया है, तो व्यापारी चाबुक बनाने लगा । कुछ दिन उपरान्त उसमें भी घाटा हुआ पांचों रुपये व्यय हो गये, तो फिर राजाने पांच रुपये दे दिये और फिर घट गये । इसी प्रकार पांच-पांच रुपये सात वर्षतक राजाने दिये, परंतु जमा घटती ही गयी । जब आठवां वर्ष प्रारंभ हुआ तो एक रुपया बढ़ा अर्थात् पांच रुपये के छः रुपये हो गये । तब यह देखकर राजाने दश रुपये दिये । फिर अधिक उन्नति हुई और द्रव्य बढ़ने ही लगा । राजाने फिर घोड़ा लिवा दिये, उसमें फिर बहुत द्रव्य उपार्जन किया, जब पहलेके समान द्रव्य हो गया, तब व्यापारीने विचारा कि जितना कुछ राजाका द्रव्य लिया है, वह दे देना चाहिये, यह अपने मनमें निश्चय कर राजासे मिलने गया । उस दिन राजाने उसका बहुत सत्कार किया और कहा कि मेरा आधा तू ले ले, तब व्यापारी क्रोध करके बोला कि जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पांच रुपयेसे अधिक नहीं दिये, न मुझसे अच्छे प्रकार मिले और अब आधा राज्य देते हो । तब राजा बोले कि उस समय तेरा प्रारब्ध बिगड़ रहा था, यदि मैं अपना सारा राज्य भी तुझको दे देता तो भी तेरे पास कुछ न रहता, इसलिये थोड़े ही द्रव्यसे तेरा ग्रह टाल दिया, प्रारब्धके बली होनेसे और बल हीन हो जाते हैं ।

समयमें पति स्वीकार न करे ? ॥३८॥ हे समर्थ । इस कारण मैंने अपना पति आपको वरण किया है और अपनी देह अर्पण कर दी है, मुझे अपनी दासी अर्थात् भार्या बनाओ । हे कमलदललोचन ! मैं अपका भाग हूँ, उसे जैसे सिंहके भागको सियार ग्रहण नहीं कर सकता, इसी प्रकार शिशुपाल आकर मुझे स्पर्श न करे ॥३९॥ बावली, कुवां तालाब, बाग, यज्ञ, दान, नियम, तीर्थ, देवता, ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजा करनेसे भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हों, तो श्रीकृष्णचन्द्र मेरा हाथ पकड़कर ले जायँ और शिशुपालादि कोई राजा न आने पायें ॥ ४० ॥ हे अजित ! कल ही विवाहका दिन है इस लिये तुम गुप्त वेषसे विदर्भदेशमें आओ, परंतु अकेले मत आना, पीछे सेना भी साथमें लेते आना । शिशुपाल और मगधदेशके राजा जरासन्धकी सब सेनाको मथन कर उस पराक्रमके बदलेमें मुझ अपनी दासीके सङ्ग आसुर विधिसे विवाह कर लो ॥४१॥ कदाचित् कहो कि तुम तो पुरके भीतर रहती हो, तुम्हारे बन्धु-बांधवोंके कारण विना कैसे विवाह करूँ यह सन्देह मनमें कभी मत करो, क्योंकि हमारे कुलमें विवाहसे प्रथम दिन बड़ी कुलदेवी अम्बिकाकी यात्रा होती है, सो यात्रा करनेके लिये और देवीकी पूजा करनेको नववधू कन्या बाहर जाती हैं, वहांसे मेरा ले जाना अति सहज है, जैसे पार्वतीको महादेवजी ले गये ॥ ४२ ॥ जिनके चरणारविंदोंकी रजसे स्नान करनेको बड़े-बड़े साधु महात्मा अपना महान् अज्ञान् दूर करनेके लिये इच्छा करते हैं । हे कमलदललोचन ! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न न होंगे, तो व्रत कर करके प्राण त्याग कर दूँगी । यदि कहो कि प्राण त्यागनेसे क्या होगा ? तो उत्तर यह है कि बारंबार त्याग करूँगी तो सौ जन्ममें तो प्रसन्न होंगे ? ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे द्वारकानाथ ! यह जो मैं गुप्त संदेशा लेकर आया हूँ, यदि यह करने योग्य कार्य हो तो शीघ्रता करनी चाहिये, बिलम्ब करना उचित नहीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

दोहा–तिरपनमें निजप्रियाहित, हरि विदर्भ पग दीन ।
छीन लीन वैरीनसों, अपनी प्रिया प्रवीन ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! यदुवंशियोंको आनंदके देनेवाले श्रीकृष्णचंद्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीका इस प्रकार सन्देशा सुनकर ब्राह्मणका हाथ हाथमें पकड़कर कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि जैसा रुक्मिणीका चित्त मुझमें लगा है, ऐसा ही मेरा चित्त भी रुक्मिणीमें लग रहा है और चिंताके कारण रातको नींद भी नहीं आती, मैं जानता हूँ रुक्मने द्वेष करके मेरे विवाहको मना कर दिया है ॥२॥ दुष्ट राजाओं को जीतकर दोषरहित अङ्गवाली अनन्यगति रुक्मिणीको–

दोहा–जैसे घिसके काष्ठते, काढ़हिं ज्वाला जारि ।
तैसे सुन्दरि लाइहौं, दुष्ट असुरदल मारि ॥

जिस प्रकार काष्ठके मथनेसे मनुष्य अग्नि निकाल लेते हैं वैसे ही ले आऊँगा ॥३॥ शुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! मुर दैत्यके मारनेवाले भगवान् रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र जान

रथवान्से बोले कि हे रथवान्! शीघ्र ही रथ जोतकर लाओ ॥ ४ ॥ शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक घोड़ोंको रथमें जोत श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख ला सारथि हाथ जोड़कर कहने लगा-रथ उपस्थित है ॥५॥ रथको देखते ही शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथम ब्राह्मणको चढ़ाकर पीछे आप चढ़ शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा आनर्त्तदेशसे चलकर एक ही रातमें विदर्भ देश पहुँचे ॥ ६ ॥ अपने पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर और उसकी आज्ञानुसार चलने वाला कुंडिनपुरका राजा भीष्मक शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये पुरकी शोभा और पितृदेवताओंके पूजनादि कर्म कराने लगा ॥७॥ इसके उपरांत राजा भीष्मक अपने पुरको शोभायमान करनेके लिए राजमार्गमें झाड़ू-बुहारी लगवाकर छिड़काव कराया। चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका और बंदनवारोंसे अपने पुरको अत्यन्त शोभायमान किया ॥ ८ ॥ माला, चन्दन, फूलोंके गहने और स्वच्छ वस्त्रोंसे शोभायमान स्त्री, पुरुष धाराप्रवाहकी भांति इधर-उधर फिर रहे थे और सब मदिर अगरकी सुगंधसे सुगंधित थे ॥ ९ ॥

चौ०-झारैं गली चौहटे छावैं ❋ चोवा चन्दनसो छिरकावैं ॥
पान सुपारी झोरा किये ❋ बिच बिच कनक नारियल दिये ॥
हरे पात फलफूल अपारा ❋ ऐसो घर घर बन्दनवारा ॥
ध्वजा पताका तोरण तने ❋ सुभग कलश कञ्चनके बने ॥
सुरपुरमनलजात है सो छबि ❋ शोभा वरणि सकै असको कवि॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! पितृदेवताओंका पूजन करके और विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन जिमाकर राजा भीष्मकने रुक्मिणीका यथावत् स्वस्तिवाचन कराया ॥१०॥ फिर कन्याको भलीप्रकार स्नान कराया कौतुकसे उसके हाथसे विवाहका कङ्कण बांध उत्तम नवीन वस्त्र पहनाकर अनेक अलंकारोंसे सुशोभित किया॥११॥तब द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेदके मन्त्रोंको पढ़कर श्रीरुक्मिणीकी रक्षा करने लगे और अथर्ववेदके मन्त्रोंको जाननेवाले पुरोहितने सूर्यादि ग्रहोंकी शांति करनेके लिये होम किया ॥१२॥ हे राजन्! विधि जाननेवाले राजाओंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्णरूपी वस्त्र और तिल मिलाकर गुड़ व दूधवाली बहुतसी गायोंका दान किया ॥१३॥ जिस प्रकार राजा भीष्मकने अपनी कन्याका मङ्गल कराया उसी प्रकार चन्देलेके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके सब मंगल कर्म मन्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे कराये ॥१४॥ मतवाले हाथियोंके समूह, रथ, पैदल, घोड़े इत्यादि चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर राजा दमघोष कुंडिनपुर पहुँचा ॥१५॥ समाचार सुनते ही विदर्भके राजा भीष्मकने अगौनीकर एक सजे हुए स्थानमें उन्हें जनवासा दिया ॥१६॥ वहां शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल और पौंड्रक आदि सहस्रों राजा शिशुपालकी ओरके आये ॥१७॥ यह समस्त कृष्ण बलदेवके शत्रु सजकर शिशुपालको कन्या दिलाने आये थे और मनमें प्रथम ही निश्चय कर लिया था कि कदाचित् बलदेव व समस्त यदुवंशियोंको साथ ले कृष्ण आकर रुक्मिणीको हरेगा तो उसके संग युद्ध करेंगे। इस प्रकार मनमें विचार अच्छे-अच्छे बलवान् सिपाही घोड़े हाथियोंको संग लेकर सम्पूर्ण राजा आये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी भी शत्रु शिशुपालकी ओरके राजाओंका साहस सुनकर कहने लगे कि रुक्मिणीके लेनेके लिये भाई श्रीकृष्ण अकेला

गया है, इस कारण लड़ाई अवश्य होगी। यह मनमें निश्चय कर श्रीकृष्णके स्नेहसे हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे इत्यादि समस्त चतुरंगिणी सेना लेकर कुंडिनपुर पहुँचे ॥ २० ॥ २१ ॥ श्रेष्ठ जंघाओंवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणी श्रीमोहनप्यरेकी पैंड़ा देख-देख "ब्राह्मण पत्री लेकर गया है वह अभी लौटकर नहीं आया" इस प्रकारकी चिन्ता करने लगी ॥२२॥ मुझ मंदभागिनीके विवाहमें अब एक ही रात्रि शेष रही है और कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अभी तक न आये और ब्राह्मण जो मेरा सन्देश ले गया है वह अभीतक लौटकर नहीं आया, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है ? ॥ २३ ॥

चौ०-विलखि बदन चितवै चहुँओरा * जैसे चन्द्र मलिन भये भोरा ॥
अतिचिन्ता सुन्दरि जिय बाढ़ी * देखै झुकी अटापर ठाढ़ी ॥
चढ़ि चढ़ि उझकै खिरकी द्वारा * नयननते छांड़त जलधारा ॥

दोहा-विलखि वदन अतिमलिन मन, लेति उसाँस निसाँस ।
व्याकुल वर्षा नयनजल, मोचति कहति उदास ॥

फिर कहने लगे कि निर्दोष श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे पाणिग्रहणका उपाय तो निश्चय किया होगा परंतु कन्या "अभीसे पत्री लिख कर भेजती है" यह दोष विचार कर नहीं आये ॥ २४ ॥

दोहा-मेरा दोष विचारकर, नहिं आये भगवान् ।
जों न मिलें मन भावते, तो दैहों तज प्रान ॥
कहां जाऊँ कैसी करूँ, धरत नहीं चितधीर ।
दासी प्यारी दरशकी, कब ऐहैं यदुवीर ॥

चौ०-लै बरात आयो शिशुपाला * कैसे विरमें दीनदयाला ॥

मुझ अभागिनीके विधाता ईश्वर और देवी पार्वती अनुकूल नहीं हैं ॥२५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके न आनेसे दुःखी हो समयकी जाननेवाली रुक्मिणी आंसुओंसे व्याकुल हुए नेत्रोंको बन्द करके बैठ गयी ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग जोहती रुक्मिणीके बायें अंग, उरू, भुजा और नेत्र ये अंग फड़कने लगे, क्योंकि स्त्रियोंके बायें अङ्ग फड़कनेसे शुभदायक और प्यारी बातके जाननेवाले होते हैं॥२७॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हे द्विजोत्तम ! आगे जाकर खबर करो, श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे ब्राह्मणने अन्तःपुरमें व्याकुलतासे दौड़ती हुई राजकुमारी रुक्मिणीको देखा ॥२८॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नवदन और स्वस्थरीतिसे ब्राह्मणको आता हुआ देखकर अपने मनमें "यह कार्य कर आया है" ऐसा निश्चय कर और उसके लक्षणोंसे पहचानकर पूछने लगी ॥२९॥ हे राजन् ! तब रुक्मिणीजीसे "श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं ?" यह ब्राह्मणने कहा और श्रीकृष्णचन्द्रने जो कहा था कि "'राजाओंको जीतकर रुक्मिणीको ले आऊँगा" यह भी सब वृत्तांत उनको सुनाया ॥३०॥ श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ जान हर्षित मनसे राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी विचार करने लगी कि इस समय ब्राह्मणको सर्वस्व दूँ तो भी थोड़ा है, जब

ब्राह्मणके देन योग्य कोई वस्तु न देखी, तब केवल प्रणाम करके बहुतसा धन्यवाद दिया * ॥ ३१ ॥ कन्याका विवाह देखनेके लिये श्रीकृष्ण बलदेवको आया सुन नगाड़े बजाता हुआ और बहुतसी पूजाकी सामग्रियां लेकर राजा भीष्मक श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख गया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाकर आगे धर सुन्दर वस्त्र और अनेक प्रकारकी भेंट देकर विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवका पूजन करने लगा॥३३॥ अत्यन्त बुद्धिमान् राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको उत्तम स्थानमें टिकाकर सेना सेवकों सहित यथायोग्य आतिथ्य करने लगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो राजा इकट्ठे हुये थे उनमें जैसा जिसका पराक्रम, अवस्था, बल और धन था उसके अनुसार सब राजाओंका सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भनगरके पुरवासी श्रीकृष्णचन्द्रका आगमन सुनकर नेत्ररूप अंजलियोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलको पान करने लगे ॥ ३६ ॥ और सब नर-नारी विचार करने लगे कि दोषरहित रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्रके ही योग्य है, एवं श्रीकृष्णचन्द्र भी रुक्मिणीके पति होने योग्य हैं, इस प्रकार परस्पर कहने लगे ॥ ३७ ॥

दोहा–मकराकृति कुण्डल श्रवण, उर भुज नयन विशाल ।
मन्द हँसनि चितवनि सुभग, उर वैजन्तीमाल ॥
योग्य रुक्मिणीके यही, वर है अति सुकुमार ।
जहां तहां मिलि कहहिं सब, पुरके नर अरु नार ॥
हमरे पुण्य-प्रभावते, रुक्मिणि ब्याहैं श्याम ।
यही लालसामें मगन, पुजि हैं सब विधि काम ॥

कि जो कुछ हमने पुण्य किये हैं, उनके प्रभावसे प्रसन्न होकर ईश्वर हमारे ऊपर अनुग्रह करें कि जिससे श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार प्रेममें मग्न होकर जिस समय सब पुरवासी कहने लगे, उसी समय बहुतसी सखियोंके साथ श्रीरुक्मिणीजी पुरसे बाहर अम्बिकादेवीका पूजन करनेके लिये चलीं ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका भलीप्रकार ध्यान करते-करते श्रीरुक्मिणी अंबिकादेवीका दर्शन करने लिये पैरों ही गयीं ॥४०॥ हे परीक्षित् ! श्रीरुक्मिणीजीके संग मौन धारण किये पुरोहितानी और सखी सहेली जिस समय चलीं, उस समय कवच पहन-पहन कर और अस्त्र हाथोंमें ले-लेकर महाबलवान् राजाके सिपाही उनकी रक्षाके लिये संग हो लिये और उस समय मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरी, रणसिंहादिक अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे ॥४१॥ संगीतविद्यामें अतिनिपुण सहस्रों वेश्यायें संगमें नाचती हुई चली जाती थीं और माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषणोंसे शृंगार करके अनेक प्रकारकी सामग्री भेंट लेकर ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ सँग गयीं ॥ ४२ ॥ गाने और बजानेवाले सूत, बन्दीजन श्रीरुक्मिणीजीको बीचमें करके चले जा रहे थे ॥ ४३ ॥ हाथ-पांव धोकर आचमन कर पवित्र हो; देवीके मन्दिरमें जाकर

---

* शंका–ब्राह्मणोंको देनेके योग्य कोई वस्तु त्रिलोकीमें रुक्मिणीने नहीं देखी कि यह वस्तु ब्राह्मणको देनी चाहिये, इसलिये हार मानकर केवल नमस्कार ही किया, यह बड़ी शंका है, क्योंकि उसको तो जो वस्तु देती वही ले लेता, उस ब्राह्मणको तो धन आदिक लेके जो वस्तु संसारमें है सब वस्तुके लेनेकी इच्छा थी, फिर रुक्मिणीने धनादिक वस्तु क्यों नहीं दी, कोरा नमस्कार ही क्यों किया ।

उत्तर–ब्राह्मणने जो महत्त्वपूर्ण उपकार किया था, उसके बदलेमें देने योग्य वस्तु उनके पास नहीं थी, इसीसे कुछ नहीं दिया केवल नमस्कार ही किया ।

रुक्मिणी अम्बिकादेवीके निकट गयीं ॥४४॥ विधिपूर्वक वृद्धब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ रुक्मिणीजीसे-महादेवजी-सहित भवानीकी पूजा कराने लगीं ॥ ४५ ॥ जब पूजा कर चुकीं तब रुक्मिणी-जीने मनमें कहा कि हे अंबिका पार्वती ! तुम्हारे सन्तान समेत मंगलरूपिणी मैं तुम्हें वारं-वार प्रणाम करके यही वर मांगती हूँ, कि श्रीकृष्णचन्द्र मेरे पति हों, इस प्रकार मस्तक नवाकर रुक्मिणीजीने प्रार्थना की ॥ ४६ ॥

दोहा-जो विधिसों पूजो तुम्हें, जगजननी मन लाय ।
तो यह वर दीजै शिवे, वर पाऊं यदुराय ॥

चौ०-मोपर गौरि कृपा तुम करो ❋ यदुपति पति दे मम दुख हरो ॥

हे राजन् ! इसके उपरांत जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, फल, आभूषण और अनेक प्रकारकी भेंटसे अलग-अलग दीपकोंकी पंक्तियोंसे देवकी पूजा करने लगीं ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उसी प्रकार रुक्मिणी नमकीन पूए, पान, लावा, सुपारी, गन्ने आदिसे सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका पूजन करने लगीं ॥४८॥ फिर श्रीरुक्मिणीजीने अंबिकादेवी और ब्राह्म-णोंकी स्त्रियोंको नमस्कार करके उनसे प्रसाद और आशिर्वाद लिया ॥४९॥ फिर मौनव्रतको त्याग जड़ाऊ मुँदरीसे शोभायमान श्रीरुक्मिणीजी अपनी दासीका हाथ पकड़ मंदिरसे बाहर निकलीं ॥५०॥ ईश्वरकी मायाके तुल्य बड़े-बड़े शूरवीर राजाओंको मोहित करनेवाली, सुंदर कटिवाली, कुण्डलोंसे शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्नजड़ित जड़ाऊ करधनी नितम्बोंमें पहने, स्तनोंकी प्रकटता और केशोंकी शोभासे चलायमान नेत्रवाली ॥ ५१ ॥ सुन्दर मुस-कान, कुन्दरुके फलके तुल्य होठोंकी कांतिसे कुंदकी कलीके समान दंत पांतिपर अरुणाई छायी हुई, राजहंसके समान गतिसे और झनकार शब्द करते नूपुरोंकी प्रभासे शोभित चर-णोंसे गमन करती हुई रुक्मिणीको देख संगमें जो बड़े-बड़े तेजस्वी शूरवीर योद्धा आये थे, वे सबके सब कामदेवसे पीड़ित हो मोहित हो गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! उन रुक्मिणीजीकी उदार हँसन और लज्जापूर्वक चितवनसे समस्त राजा-ओंके मन हर गये और वे अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़कर रथ घोड़े इत्यादिसे मूढ़ होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार चलायमान कमलकोशके समान कोमल चरणोंसे धीरे-धीरे चली, उस समय श्रीकृष्णचन्द्रके आनेका मार्ग देखती हुई रुक्मिणीजीने बायें हाथके नखोंसे अलकोंको उठाकर सब आये हुये राजाओंको देख, सम्मुख खड़े हुए वृन्दावन विहारी भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दको देखा ॥ ५५ ॥

दोहा-पूजि गौरि जबहीं चली, एक कहति अकुलाय ।
सुनु रुक्मिणि आये हरी, देख ध्वजा फहराय ॥

चौ०-कम्पित गात सकुच मन भारी ❋ छाँड़ि सबै हरिसंग सिधारी ॥
ज्यों वैरागी छाँड़ै गेहू ❋ कृष्णचरणसों करै सनेहू ॥

हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी ज्यों ही रथपर चढ़ने लगी त्यों ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे हरण कर अपने गरुड़-चिन्हवाले रथमें चढ़ाकर क्षत्रियोंकी सेनाका तिरस्कार कर उसे इस प्रकार निकालकर ले गये-

दोहा—ज्यों बहु झुण्डन स्यारके, परै सिंह बिच आय ।
अपनो भक्षण लेइकै, चलै निडर घहराय ॥

जैसे सियारोंके बीचमें अपने भागको लेकर सिंह बेधड़क होकर चला जाता है, फिर बलरामादि सब यदुवंशियों सहित रुक्मिणीको लेकर धीरे-धीरे चलने लगे ॥५६॥ हे नृपोत्तम ! महाअभिमानी जरासन्धादि राजा, यशका नाश करनेवाला यह अपना अपमान न सह सके और बोले कि अहो ! हमको धिक्कार है, जिस प्रकार केशरीके भागको कुत्ता चुराकर ले जाता है, वैसे ही हम धनुषधारियोंके यशका नाश कर यह गँवार ग्वालिया राजकुमारी रुक्मिणीको चुराकर लिये जाता है, इससे हे सुभटो !

कवित्त—धावहु रे धावहु रे धरहु धरहु अब, होहु न अधीर धीर वीर ऐसे काजमें । मारहु रे मारहु रे बेगि बांध लावहु रे, सुयश पसारहु रे सुभट समाज में ॥ भाषै रघुराज क्षत्रि धर्म्मको न छोड़हु रे, आगे बढ़ि आढौ युद्ध मांड़ौ सुखसाजमें । कहैं सब राज चोर राजका कियो अकाज, जियें कैसे आज शूर लोग ऐसी लाजमें ॥

दोहा—सुनत नृपनके वचन अस, सुभट हिये हरषाय ।
तमकि तमकि तकि तकि चले, तुरतहि जहँ यदुराय ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

दोहा—चौवनमें रिपुपक्षके, सब राजनको जीति ।
रुक्मिणिको लै द्वारका, करी ब्याहकी रीति ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सब राजा अत्यन्त क्रोधित होकर कवच पहनकर अपने-अपने बाहनोंपर चढ़कर श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ हे परीक्षित् ! जब यादवोंके सेनाध्यक्षने इनकी सेनाको आती हुई देखा तो वे लोग भी अपने धनुषकी टंकार करके उनके सम्मुख उपस्थित हुए ॥२॥ युद्धविद्यामें अत्यन्त प्रवीण वे राजा लोग घोड़े, हाथी और रथोंपर बैठकर जिस प्रकार मेघ पर्वतोंपर जल वर्षाते हैं उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे॥३॥सुन्दर कटि भागवाली रुक्मिणी अपने स्वामी कृष्णचन्द्रकी सब सेनाको बाणोंसे ढकी हुई देख अति भयभीत और विह्वलनेत्र हो लाजसहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुख देखने लगी ॥४॥ तब भगवान् वासुदेव रुक्मिणीको डरी हुई जान कहने लगे कि, हे वामलोचने ! हे सुनयनी ! तुम कुछ भय मत करो, क्योंकि हमारी ओरके यादव इनकी समस्त सेनाको क्षणभरमें विध्वंस कर देंगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! गद, संकर्षणादि शूर वीर उन राजाओंका पराक्रम न सह सके और उनके घोड़े, हाथी और रथोंको महातीक्ष्ण बाणोंसे नाश करने लगे ॥ ६ ॥ रथी, घुड़चढ़े और हाथियोंपर विराजमान योद्धाओंके पगड़ियोंसहित सहस्रों शिर कटकर गिरने लगे ॥७॥ तलवार, गदा और धनुषसे हाथ कट-कटकर गिरने और करभके समान जङ्घायें

कट-कटकर गिरने लगीं, अनेक घोड़े, खच्चर, हाथी, गधे, मनुष्य इनके शिर कटकर पृथ्वीपर गिर गये ॥८॥ हे भारत! जीतनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंने जब इस प्रकार शत्रुसेनाका संहार किया तब अत्यन्त डरकर जरासंधादि राजा रण छोड़कर भाग गये ॥ ९ ॥ जब स्त्री हर जानेसे व्याकुल तेजहीन, उत्साहरहित शिशुपालका मलिन मुख हो गया, तब सब राजा उसके पास आकर समझाने लगे ॥ १० ॥ कि हे पुरुषसिंह! तुम अपने मनकी उदासीको छोड़ दो, क्योंकि देह धारण करनेवालोंको सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहते हैं ॥११॥ जिस प्रकार काठकी पुतली नाचनेवालेकी इच्छा से नाचती है, ऐसे ही ईश्वरके अधीन जीवको सुख-दुःख होता है ॥ १२ ॥ जरासन्ध बोला कि हे शिशुपाल! देखो! इसी कृष्णसे मैंने सत्रहबार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध किया, परंतु मेरी हार ही हुई और कुछ शोक न हुआ, केवल एक बार जीता, उसका कुछ हर्ष भी न हुआ, दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान किया है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥१३॥ १४ ॥ हे राजन्! यद्यपि बड़े-बड़े शूरवीर यूथनाथोंके पतियोंके भी हम पालन करनेवाले थे, तो भी थोड़ी सेनावाले कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हार गये ॥१५॥ जान पड़ता है कि इस समय उनके दिन अच्छे हैं, इसी कारण उन्होंने हम ऐसे बलवान् शत्रुओंको जीत लिया, जब हमारे दिन भले आयेंगे तो हम भी जीतेंगे ॥ १६ ॥ हे महाराज! जब इसी प्रकार अनेक राजाओंने शिशुपालको समझाया तब अपने बचे-बचाये नौकर-चाकर और सेनाको लेकर शिशुपाल अपने देशको चला गया और मरनेसे बचे-बचाये राजा भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ १७ ॥ इधर एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्णका शत्रु रुक्मी अपनी बहनके हरनेका अपराध न सहकर श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा ॥ १८ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हो कवच पहन धनुष ग्रहणकर सब राजाओंके सामने महाबलवान् रुक्मी ने यह प्रतिज्ञा की ॥१९॥ कि युद्धमें श्रीकृष्णको मारे विना और रुक्मिणीको लाये विना मैं कुंडिनपुरमें नहीं आऊँगा ॥ २० ॥ इस प्रकार रुक्मी प्रतिज्ञा कर रथमें चढ़ सारथीसे बोला कि जहां कृष्ण हैं, वहां शीघ्र ही घोड़ेको हांककर ले चलो, क्योंकि मुझे उससे युद्ध करना है ॥ २१ ॥ मैं आज उस मंदबुद्धि ग्वालके पराक्रमका मद अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चूर्ण करूँगा, जो मेरी बहन रुक्मिणीको बलात्कार हरकर ले गया है ॥ २२ ॥ खोटी बुद्धिवाला रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके बलको न जान कटुवाक्य कहता हुआ अकेला रथ दौड़ाकर चला और अतिशीघ्र उन श्रीकृष्णके निकट पहुँचकर बोलाः-

दोहा—अरे चोरटा ठाढ़ रहु, लीन्हेसि भगिनि चुराय।
ताको फल आजुहि अबहिं, देहौं तोहिं दिखाय ॥

सोरठा—देहौं तोहिं पठाय, आजु अवशि यमलोकमें।
लैहौं भगिनि छुड़ाय, यदुवंशिनको मोरि मद ॥

"खड़ा रहु खड़ा रहु" इस प्रकार भगवान् वासुदेवको पुकारने लगा ॥२३॥ इसके उपरांत अपने दृढ़ धनुषको खींचकर रुक्मीने श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा कि हे यादव कुलकलंक! एक क्षणमात्र खड़ा होकर मुझसे युद्धकर ॥ २४ ॥ अरे दुष्टबुद्धि! जिस प्रकार होमकी सामग्रीको कौवा ले जाता है, इसी प्रकार तू मेरी बहनको कहां चुराकर ले जाता है? अरे कपटयुद्ध करनेवाले छली! तेरे घमण्डको मैं अभी चूर्ण करता हूँ ॥२५॥ और तेरे भले

दिन हैं तो मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर युद्धक्षेत्रमें मत सो और रुक्मिणीको छोड़कर अतिशीघ्र हमारे सामनेसे भाग जा। तब श्रीकृष्णचन्द्रने मनमें मुसकाकर उसके धनुषको काट छः बाणोंसे रुक्मीका छेदन किया ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे रथके घोड़ोंको, दो बाणोंसे रथवान्‌को बींध डाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली। फिर रुक्मीने और धनुष लेकर पांच बाण श्रीकृष्णके शरीरमें मारे ॥ २७ ॥ तब भगवान् वासुदेवने उसका वह धनुष भी काट डाला, फिर रुक्मी और धनुष ले आया, उसको भी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने उसी समय काट दिया ॥ २८ ॥ रुक्मीने जो-जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाले हाथमें लिये वह सब भगवान् देवकीनन्दनने काट गिराये ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत रथसे कूदकर और हाथमें तलवार लेकर मारनेकी इच्छासे, जिस प्रकार पतंग अग्निके संमुख झपटता है, उसी प्रकार रुक्मी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर झपटा ॥ ३० ॥ झपटते हुए उस रुक्मी की ढाल तलवारको तिल-तिलभर बाणोंसे काटकर पैनी धारकी तलवार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मीका प्राण संहार करनेको उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ भाईके मारनेकी इच्छा देख भयसे व्याकुल होकर पतिव्रता रुक्मिणी नेत्रोंमें आंसू भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंपर गिर कर करुणाभरे वचन कहने लगी ॥ ३२ ॥

चौ०—देव देव तुम जगपति यदुपति ❋ दीनबन्धु हो कृपासिंधु अति ॥
तुम तो करुणासिंधु खरारी ❋ मोहिं कलंक लागि है भारी ॥
मारो मत भैया है मेरो ❋ छांड़ो नाथ तुम्हारो चेरो ॥
बंधुभीख प्रभु मोको देहू ❋ इतनो यश तुम जगमें लेहू ॥

दोहा—यदपि कियो अपराध बहु, मेरो बन्धु तुम्हार।
तदपि छांड़िये नाथ अब, मेरी ओर निहार ॥

हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देवदेव ! हे जगत्पालक श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भाईको तुम मत मारो; क्योंकि यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है ॥३३॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे पाण्डुनंदन परीक्षित् ! त्राससे कम्पायमान सब अङ्ग, शुष्क मुख, गद्गद कंठ, कि जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जाती थी इस प्रकार रुक्मिणीको अपने चरणोंपर गिरी हुई देख करुणावश हो श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥

दोहा—कह्यो रुक्मिणीसों बहुरि, विहँसि रुक्मिणीनाथ।
प्यारी तेरी प्रीतिवश, अब न करहुँ यहि माथ ॥

वरन् उस दुष्ट कर्म करनेवाले रुक्मीको वस्त्रसे बांध और मूँछोंसहित शिर मूँड़ अभद्रकर अपने रथके पीछे बांध लिया कि इस बीचमें ही सब यदुवंशियोंसहित बलराम सुखधामने रुक्मीकी सेनाको जिस प्रकार हाथी कमलनियोंको मर्दन करता है, उसी प्रकार मर्दन किया। ॥ ३५ ॥ इसके उपरांत रुक्मीकी समस्त सेनाको संहार कर बलदेवजीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर रुक्मीको देखा कि उसका शिर मुँड़ गया है और मृतकके समान रथके पीछे बँधा हुआ देखकर सामर्थ्यवान् बलभद्रजीने उसे छोड़ दिया ॥ ३६ ॥ और अत्यन्त झुँझुलाकर कहा कि हे कृष्ण ! आपने यह बड़ा निन्दित कर्म किया, जो सालेको पकड़ बांधा, हमारी इसमें

बहुत निंदा होगी, क्योंकि शिर, मूँछ, दाढ़ी मुँड़वाकर विरूप कर देना यही अपने नातेदारका मारना है ॥ ३७ ॥

चौ०–भे सयान नहिं गइ लरकाई ❋ करहु रणहुमें तुम चपलाई ॥
हँसी होयगी सब जगमाहीं ❋ करिहै कोउ सगाई नाहीं ॥
बांधो याहि करी बुधि थोरी ❋ यह तुम कृष्ण सगाई तोरी ॥
अरु यदुकुलको सीक लगाई ❋ अब हमसों को करै सगाई ॥

फिर रुक्मिणीसे बोले कि हे सुशीले ! तुम्हारे भाईके कुरूप होनेमें हमारा कुछ दोष नहीं है क्योंकि यह पुरुष अपने कर्मोंका फल भोगता है; सुख-दुःखका देनेवाला और कोई नहीं है ॥२८॥ इसके उपरांत बलदेवजी श्रीकृष्णको समझाने लगे कि भाई ! अपने नातेदारका मारना अपराध करनेपर भी उचित नहीं; उसको अपराधी जानकर छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वह तो अपने पहले ही दोषोंसे मर रहा है, फिर उसको मारनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥३९॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले कि हे सुमुखि ! क्षत्रियोंका यही धर्म विधाताने बनाया है कि जिस धर्मके कारण भाई-भाईका प्राण संहार कर देता है, फिर साले श्वशुरोंकी तो बात ही क्या है ? इसलिये हमारा क्या दोष है ? ॥ ४० ॥ फिर श्रीकृष्णसे बोले कि हे कृष्ण ! राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज और-और वस्तुके हेतु श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लड़ते हैं; परन्तु हमको यह बात उचित नहीं ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि सब प्राणियोंमें दुष्टहृदय, अर्थात् सब बातका बुरा विचारनेवाला जो शिशुपाल उसका बुरा और अपने भाईका भला चाहती हो यह बात तुमको उचित नहीं । हे रुक्मिणी ! तुम्हारी विषम बुद्धि है, जैसी कि अज्ञानी पुरुषोंकी होती है, इसलिये तुम्हारा भाई जो सब जीवोंका शत्रुरूप है, उसका तुम अज्ञानी पुरुषोंके समान भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे और सम्बंधियोंका बुरा होगा ॥ ४२ ॥ यह हमारा मित्र, यह शत्रु और यह समान है, इस प्रकार देहाभिमानी पुरुषोंको मोह उत्पन्न हो जाता है ॥ ४३ ॥ जैसे जल भरे घड़ेमें एक ही सूर्यके अनेक प्रतिबिंब दीखते हैं, आकाश एक ही है, परन्तु तो भी घट आदिमें बहुतसे दीखते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंमें एक ही है, शुद्ध आत्मा है, उसीको अज्ञानी पुरुष अनेक रूपसे मानते हैं ॥ ४४ ॥ यह जो द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण, इन्द्रिय और आध्यात्मिक गुण अधिदेव इतने स्वरूप आत्माके अविद्याने रचे हैं, वे देहधारियोंको संसारमें भटकाते हैं ॥४५॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है और इस देहसे वियोग भी नहीं है। यदि कोई कहे कि देह मिथ्या कैसे ? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है, उसी प्रकार देहका प्रकाश आत्मासे होता है ॥ ४६ ॥ जन्म-मरणादि छः विकार देहके हैं, आत्माके कदाचित् नहीं है, जैसे चन्द्रमाकी कला घटती-बढ़ती है, चन्द्रमा कभी नहीं घटता-बढ़ता क्योंकि वह तो पूर्णरूप है और जैसे अमावस्याके दिन चन्द्रमाकी कला घटनेसे चन्द्रमाका नाश मानते हैं, उसी प्रकार देहके नाश (तिरोभाव) से आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ४७ ॥ जैसे स्वप्नावस्थामें पुरुष अपने आपको विषयके भोगनेके सुखका मिथ्या भोग करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ हे सुहागिनी ! इसलिये तुम अज्ञानसे उत्पन्न

हुए आत्माको क्लेश और मोह देनेवाले शोकका तत्त्वज्ञानसे त्याग करो और स्वस्थ होओ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् बलदेवजीने जब समझाया तब सुकुमारी श्रीरुक्मिणीजीने मनकी उदासी त्याग बुद्धिसे मनको सावधान किया ॥ ५० ॥

दोहा—सुनि सुन्दरि मन समझके, किये जेठकी लाज ।
सैनमाहिं पियसो कहति, हांकहु रथ ब्रजराज ॥

चौ०—घूँघट ओट वदनको करै ❀ मधुर वचन हरिसों उच्चरै ॥
सम्मुख ठाढ़े हैं बलदाऊ ❀ अहो कन्त रथ बेगि चलाऊ ॥

राजन् ! शत्रुसे छूटा, हतसैन्य, केवल प्राण ही जिसके शेष रहे हैं, प्रभाव और मनोरथ-हीन, मुण्डित शिर, दुष्टबुद्धि रुक्मी विचार करने लगा कि मैं प्रतिज्ञा करके आया था कि कृष्णको विना मारे और विना रुक्मिणीको लाये कुण्डिनपुर नहीं आऊँगा; अब क्या करूँ ? यह विचार कर वहां ही भोजकट पुर बसाकर रहने लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार समस्त राजाओंको जीतकर राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीको द्वारकापुरीमें लाकर विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥

चौ०—पंडित तहां वेद उच्चरैं ❀ रुक्मिणि सँग हरि भाँवरि फिरैं ॥

हे महाराज परीक्षित् ! इस प्रकार द्वारकापुरीमें घर-घर बड़ा उत्सव होने लगा, क्योंकि यदुवंशियोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अनन्य भक्ति थी ॥५४॥ आनंदमें मग्न उज्ज्वल-उज्ज्वल मणियोंके जड़ाऊ गहने पहने हुए स्त्री पुरुष चित्र-विचित्र वस्त्र धारण किये कृष्ण-रुक्मिणीके देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र लाने लगे ॥ ५५ ॥ ऊँची-ऊँची ध्वजा और चित्र-विचित्र माला, वस्त्र, रत्नोंकी बन्दनमालाओंसे और द्वार-द्वार पर धानकी खीलें, अंकुर, फूल और जलके भरे कलश और अगर व धूप, दीप इत्यादिकोंसे द्वारकापुरी अत्यन्त शोभायमान होने लगी ॥५६॥ स्थान-स्थानपर छिड़काव हो रहा है, दरवाजोंपर केले और सुपारियोंके घने वृक्ष लग रहे हैं और जो सुहृद् राजा बुलाये गये हैं, उनके मद झरते हाथियोंसे ऊँचे उठाये सुपारी और केलोंके वृक्षोंसे बड़ी शोभा हो रही है ॥ ५७ ॥ अत्यंत प्रसन्नताके कारण द्वारकावासी दौड़े-दौड़े फिरते हैं और बीचमें कुरुदेश, संजयदेश, केकय-देश और विदर्भदेशके राजा भी विवाहमें मिलकर आनन्द प्राप्त करने लगे ॥५८॥ हे राजन् ! इसी प्रकार जहां-तहां रुक्मिणी हरके ले जानेके चरित्रको श्रवण कर राजा और राजाओंकी कन्या बड़ा आश्चर्य मानने लगीं ॥ ५९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! द्वारकापुरीमें पुरवासियोंको लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रका लक्ष्मीसहित दर्शन कर बड़ा आनंद प्राप्त हुआ ॥६० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दोहा-पचपनमें प्रद्युम्नको, भयो जन्म उत्साह।
शंबासुर हर ले गयो, ताहि मारि किय ब्याह॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! वासुदेवका अंश जो कामदेव था वह प्रथम महादेवजीके क्रोधसे भस्म हो गया था, वही अब फिर देह पानेके लिये वासुदेवके यहां आया है ॥१॥और वही कामदेव श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले प्रद्युम्ननामसे विख्यात हुआ, जोकि अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रसे किसी प्रकार न्यून नहीं था ॥२॥हे राजन्! एक शम्बरनाम दैत्य, उसे अपना वैरी जान दश दिनके भीतर कुमार प्रद्युम्नको हरण कर समुद्रमें डाल अपने घरको चला गया ❋ ॥ ३ ॥ एक बड़ा बलवान् मत्स्य इस बालकको निगल गया, उस मत्स्यको धीवरोंने बड़ा जाल डालकर और मछलियों सहित पकड़ा ॥४॥ उस बड़े मत्स्यको लाकर धीवरोंने शंबरासुरको भेंट की और शम्बरासुरने रसोई बनानेवालेको दिया। उन्होंने रसोईसे लाकर छूरीसे इस अद्भुत मत्स्यका हृदय विदीर्ण किया ॥ ५ ॥ तो उस मत्स्यके पेटमें बालकको निहार उन्होंने मायावतीको दे दिया। तब मायावतीको अत्यंत शङ्का हुई, तब देवर्षि नारदजीने आकर उससे सब वृत्तांत कहा कि यह बालक तेरा स्वामी कामदेव है और श्रीकृष्णचन्द्रके वीर्यसे रुक्मिणीमें उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर जैसे समुद्रमें डाल आया था, वहां जिस प्रकार इसे मत्स्य निगल गया, वह सब कह सुनाया ॥ ६ ॥ "शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था, तब रतिके विलाप करनेपर उसे समझाकर कहा था कि तू शंबरासुरके यहां जाकर वास कर। वहां तेरा पति तुझे रसोई घरमें मिलेगा तू उसे पाल लीजियेगा, मछलीके उदरसे प्राप्त होगा, तबसे रति रूप छिपाये वहां रहती थी" वह जो कामदेवकी स्त्री थी, वह बड़ी पतिव्रता और उसका नाम रति था, उसने अपने पति कामदेवका जो देह भस्म हो गया था, उसके उत्पन्न होनेके लिये प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ उस मायावती कामदेवकी स्त्रीको शम्बरासुरने मूँग-भात करनेके लिये अपने पास रखा था। और उस बालकको कामदेव जान उससे अत्यंत स्नेह करने लगी ॥ ८ ॥ हे राजा परीक्षित्! थोड़े ही दिनोंमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका पुत्र प्रद्युम्न देखनेवाली स्त्रियोंको मोह उत्पन्न करने लगा ॥ ९ ॥ कमलदलसे बड़े नेत्र, लंबी भुजाएं, मृत्युलोकमें सुन्दर ऐसे अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकान और उठी भ्रुकुटीसे देख प्रीति करके सुरतसम्बन्धी जो भाव है उनसे वह रति सेवन करने लगी ॥ १० ॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीने कहा कि हे माता! जान पड़ता है कि तुम्हारी मति और प्रकारकी हो गयी है, इसलिये मातृभावको त्यागकर स्त्रीके समान आचरण करती हो ॥ ११ ॥ यह

❋ शंका—श्रीकृष्णचन्द्रकी बसायी हुई द्वारिकापुरीमें कपट से कोई प्राणी वहाँ नहीं जा सकता था और कपट वेषधारी जो कोई द्वारकाके भीतर चला भी जाय तो वह उसी समय भस्म हो जाय, क्योंकि क्षण-क्षणमें द्वारकापुरीके चारों ओर सुदर्शनचक्र घूमता रहता था। वही द्वारकापुरीकी रात-दिन रक्षा करता था। ऐसी कठिन द्वारकापुरीमें शम्बर नामक दैत्य कैसे चला गया! और भगवान्के पुत्रको कैसे हरले गया यह महाआश्चर्यकी बात है?

उत्तर—जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको बसाया था उस समय यह आज्ञा दी थी, हे सुदर्शन चक्र! तुम रात-दिन द्वारकापुरीके चारों ओर घूमते रहना, और रक्षा करना परन्तु ब्राह्मणवंश चाहे तो उसको पुरीमें जानेके लिये मत रोकना और ब्राह्मण कपटरूप धारण करके आये तो उसको भी मत रोकना। इस प्रकारकी श्रीकृष्णकी आज्ञाको शंबरासुर जानकर ब्राह्मणका रूप बनाकर द्वारकापुरीमें चला गया और श्रीकृष्णके पुत्रको चुराकर ले आया।

सुनकर रतिने कहा तुम भगवान् वासुदेवके पुत्र हो, शंबरासुर तुम्हें चुराकर ले आया है, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, रति मेरा नाम है, आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ तुम जब दश दिनके भी नहीं थे, तब शंबरासुर समुद्रमें डाल आया था और वहां तुम्हें एक मत्स्य निगल गया, हे प्रभो ! यहां आप मत्स्यके पेटमेंसे आये हैं ॥१३॥ तुम्हारा शत्रु शंबरासुर बड़ा मायावी है, सैकड़ों माया जानता है इस लिये असह्य और दुर्जय है, उसको मोहनादि मायासे आप मारिये ॥ १४ ॥ क्योंकि तुम्हारे ढूँढ़नेके लिये स्नेहसे अति व्याकुल परमदीन तुम्हारी माता टिटहरीके समान सोचकर रही हैं और विना बछड़ेके गौके सामन आतुर है ॥ १५ ॥ इस-प्रकार मायावती स्त्रीने कह सब मायाओंको नाश करनेवाली महामाया महात्मा प्रद्युम्नजीको दी ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नजी शंबरासुरके पास आकर और उसको असह्य वचनोंसे तिरस्कार कर कलह उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये बुलाया ॥ १७ ॥ हे राजन् ! खोटे वचनोंसे तिरस्कार पाकर शंबरासुर जिस प्रकार ठोकर लगनेसे सर्प फुंकार मारता है उसी प्रकार अत्यंत क्रोधित हो लाल-लाल नेत्र किये और गदा हाथमें लेकर निकला ॥ १८ ॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गदाको फिराकर महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर डालकर वज्रपातके समान कठोर शब्द किया ॥ १९ ॥ हे परीक्षित् ! भगवान् प्रद्युम्नजीने अपने ऊपर आती हुई उस गदाको चूर्ण कर और महाक्रोधित हो एक गदा शंबरासुरको मारी ॥२०॥ तब शंबरासुर मयदैत्यकी बतायी हुई मायाका आश्रय लेकर आकाशमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ उन पत्थरोंकी वर्षासे पीड़ित होकर कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने सब मायाओंको नष्ट करनेवाली अपनी सत्वगुणी मायाको बुलाया ॥ २२ ॥ इसके उपरांत शंबरासुरने गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी सहस्रों माया छोड़ी, परन्तु कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने उसी समय सब मायाओंका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! महात्मा प्रद्युम्नजीने महातीक्ष्ण पैनी धारकी तलवार लेकर कुण्डल, किरीट और दाढ़ी मोछों सहित शंबरासुरका मस्तक काट लिया ॥ २४ ॥ तब आकाशसे देवता-लोगोंने फूल वर्षाये और स्तुति की और फिर आकाशमें विचरनेवाली स्त्रियोंने आकाश मार्गमें होकर महात्मा प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुँचा दिया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित अन्तःपुरमें आकाशसे उतरकर बिजली सहित जैसे मेघ आता है, उसी प्रकार आये ॥ २६ ॥ वर्षाकी घटाओंके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीतवस्त्र धारण किये, लम्बी भुजा, अरुणनेत्र, सुन्दर मुसकान, मनोहर मुख, नील टेढ़ी अलकावलीसे शोभाय-मान मुखारविंदवाले प्रद्युम्नजीको देखकर "श्रीकृष्ण आये" यह जान स्त्रियाँ लज्जित होकर जहां-तहां छिप गयीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ और कुछ एक स्त्री कोई न्यूनाधिक बात देखकर "यह कृष्ण नहीं हैं" यह निश्चय कर प्रसन्न हो आश्चर्य मान स्त्रियोंमें श्रेष्ठ रतिसहित कृष्णकुमार प्रद्युम्नजीके पास आयीं ॥ २९ ॥ इसके उपरांत स्नेहसे जिनके स्तनोंसे दूध चू रहे हैं नील कटाक्ष और मनोहर वचनवाली राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी अपने नष्ट हुए पुत्रका स्मरण करके कहने लगी ॥ ३० ॥ कि मनुष्योंमें श्रेष्ठ कमलके समान नेत्रवाला यह बालक किसका है ? और किस स्त्रीने इसे गर्भमें धारण किया है ? और इसे यह स्त्री किसकी मिली है ? ॥३१॥ मेरा भी पुत्र नष्ट हो गया है और सूतिकागृहसे ही उसे कोई ले गया है, जो कदाचित जीवित होगा तो इसीके समान बड़ा और ऐसा ही उसका स्वरूप

होगा ॥३२॥ परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि (शार्ङ्ग) धनुषधारी श्रीकृष्णचन्द्रके समान रूप इसने कैसे पाया ? इसका स्वरूप और हाथ-पांव चलना, बोलना, हँसना, चितवन इत्यादि भी सब श्रीकृष्णचन्द्रके ही समान हैं ॥३३॥ जान पड़ता है कि जो बालक मैंने गर्भमें धारण किया था; वह निश्चय यही है, क्योंकि प्रतिक्षण इसमें मेरी प्रीति बढ़ती ही जाती है और मेरी बाई भुजा भी फड़क रही है ॥३४॥ हे राजा परीक्षित् ! विदर्भदेशके राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी बैठी हुई इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि इतनेमें ही उत्तम यशवाले भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वसुदेव देवकीको संग लेकर वहां आये ॥ ३५ ॥ यद्यपि श्रीकृष्ण-चन्द्र यह स्वयं जानते थे कि पत्नी सहित पुत्र आया है, परंतु तो भी चुप रहे, इतनेमें ही देवर्षि नारदजी आकर जिस प्रकार इनको शम्बरासुर चुरा ले गया और समुद्रमें डाल गया, वहां मछली निगल गयी वह सब वृत्तांत सुनाया । कृष्णके अन्तःपुरमें वास करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कालके पीछे जैसे मृत शरीरमें प्राण आते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नजीको आया हुआ श्रवणकर बड़ा आश्चर्य मान उनकी बड़ाई करने लगीं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे परीक्षित् ! वसुदेव-देवकी और कृष्ण बलदेव तथा रुक्मिणीजी एवं और स्त्री पुरुष प्रद्युम्नजीसे मिलकर आनन्दमें मग्न हो गयीं ॥ ३८ ॥ उस समय सब द्वारकावासी प्रद्युम्नजीको आया हुआ सुन "अहो बड़ा आश्चर्य है" मृतकके तुल्य यह बालक आया है, इस प्रकार कहने लगे ॥३९॥ अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्रके समान स्वरूपवान्, प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं यह विचार एकान्तमें अत्यन्त प्रेमसे प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानी भ्रांत हो प्रद्युम्नजीकी सेवा करने लगीं, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णचन्द्रजीके पुत्र कामदेवका स्मरण करते ही मन चलायमान हो जाता है, फिर साक्षात् मूर्तिका दर्शन करते यदि स्त्रियाँ सेवा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

सवैया-रूप अनूपम जासु विलोकत मोहि गईं सिगरी महतारी ।
कृष्णको नन्दन दुष्टनिकन्दन है जगवंदन आनँदकारी ॥
जो विन अंग प्रभाव पसारि विमोहत है तिहुँलोककी नारी ।
कौन अचर्य अहै रघुराज जो मोहि गईं तेहि सांग निहारी ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्वारवत्यां प्रद्युम्नागमनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दोहा-छप्पनमें हरिको वृथा, मणिको लगे कलंक ।
सत्राजितको मणि दई, लई सुता सुमयंक ॥

इसके उपरांत श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! अब सत्राजित्की कथा वर्णन करते हैं, आप सावधान होकर श्रवण कीजिये । प्रथम अपराध करके सत्राजित्ने अपने पापकी निवृत्तिके लिये पीछे अपनी कन्याको स्यमन्तकमणिके साथ श्रीकृष्णचन्द्रको देनेका उपाय किया था ॥१॥ तब राजा परीक्षित् कहने लगे कि हे योगीश्वर शुकदेवजी ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णचन्द्रका क्या अपराध किया और स्यमन्तकमणि उसने कहांसे पायी ? और पीछे किसलिये अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको दी ? यह सब हमारे आगे विस्तार सहित

वर्णन करो ॥२॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजापरीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्य-नारायणका परमभक्त और मित्र था, इसलिए प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने सत्राजितको स्यमन्तकमणि दी ॥३॥ हे महाराज ! सत्राजित् उस मणिको कण्ठमें पहनकर सूर्यके समान् प्रकाशमान हो द्वारकापुरीमें आया। उस समय उसके तेजसे यह ज्ञात नहीं होता था कि यह सत्राजित् आ रहा है ॥ ४ ॥ तेजकी चकाचौंधके कारण दृष्टि चौंध जानेसे मनुष्य सत्राजित्को दूरसे आता हुआ देखकर उग्रसेनकी सभामें चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे "यह सूर्यभगवान् आ रहे हैं" इस प्रकार कहने लगे ॥ ५ ॥ हे नारायण ! हे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविंद ! हे यादवोंके आनन्ददायक ! श्रीकृष्णचन्द्रजी ! आपको नमस्कार ॥ ६ ॥ हे जगत्पति ! तुम्हारे दर्शन करनेके लिए सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंको चुराते हुए चले आते हैं ॥७॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीके देवताओंमें श्रेष्ठ देवता भी आपका मार्ग ढूँढ़ते हैं और इसलिए यादवोंसे छिपा जान आपके ढूँढ़नेको सूर्य भगवान् आ रहे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कमलदलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अज्ञानी पुरुषोंकी यह बात सुन हँसकर कहने लगे कि यह सूर्य देव नहीं हैं, मणि करके प्रकाशमान सत्राजित् आ रहा है ॥९॥ इसके उपरांत सत्राजित्ने अपने घरमें मांगलिक कर्म करके और देवमंदिरमें ब्राह्मणोंसे पूजा कराया वहां उस मणिको स्थापित किया ॥ १० ॥ हे भारत ! वह मणि नित्यप्रति (चार मनका भार) आठ भार सुवर्ण उगलती थी। मणिमें एक यह भी प्रभाव था कि जहां वह मणि रहे उस देशमें कभी दुर्भिक्ष न पड़े, अकालमृत्यु तथा अरिष्ट न हो, सर्प नहीं काटे, मनुष्यके देहमें दुःख न हो, अशुभ दृष्टि न आये और मायावी पुरुष अर्थात् माया जाननेवाले भी उस देशमें वास नहीं कर सकते थे ॥११॥ एक समय श्रीकृष्णचन्द्रने वह मणि राजा उग्रसेनके लिए सत्राजित्से मांगी परंतु सत्राजित्ने लोभके वश होकर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रको नहीं दी और अपने मनमें "श्रीकृष्णको कैसे मना करूँ" यह विचार न किया ॥१२॥ इसके उपरांत कुछ समय व्यतीत होनेपर सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महाप्रकाशवाली मणिको कण्ठमें पहन घोड़ेपर चढ़कर वनमें शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ कि वहां पर एक सिंह घोड़ेसहित प्रसेनको मार मणि लेकर पर्वतकी कन्दरामें जाने लगा, उसी समय मणि लेनेकी इच्छासे जाम्बवान् ऋच्छने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ और अपने बिलमें जाकर उस मणिको पुत्रीका खिलौना बनाया। इधर सत्राजित् अपने भाई प्रसेनको शिकार खेलकर वनसे न आया हुआ जान चिन्ता करने लगा ॥ १५ ॥ कि मणि कण्ठमें धारण करके मेरा भाई वनमें शिकार खेलने गया है और उस मणिपर कृष्णका दांत है, इसलिए जान पड़ता है कि भाईको कृष्णने मार डाला। इस बातको सत्राजित्ने अपनी स्त्रीसे कहा तो उसके मुखसे सुनकर मनुष्य गुप्त रीतिसे बातें करने लगे ❀ ॥१६॥ तब भगवान्

❀ यद्यपि सत्राजित्ने स्त्रीसे कहा कि घरकी बात किसी स्त्रीसे नहीं कहना तो भी उसने अपने स्वाभाविक गुणके कारण दूसरेसे कह दी ! इस पर एक दृष्टांत है :-- एक बनिया था, वह दिशाको गया, वहाँ उसने दोनों घोटोंके बीचमें नीचे कौवेका पङ्ख पड़ा देखा तो उसे यह बहम हुआ कि हमारे पेटसे निकला है। घर आकर अपनी स्त्रीसे बोला कि आज हमारे पेटसे कौवेका पंख निकला है न जाने क्या रोग हो गया। उसने टहलनियोंसे कही, टहलनियाँ औरके घर जाकर बोलीं कि फलाने शाहजीके पेटमेंसे पाँच कौवे निकले हमने यह अपनी आँखोंसे देखा है ! उस स्त्रीने औरसे कहा कि शाहजीके पेटमेंसे पचास कौवे रोज निकलते हैं, उसने और पांचसे कहे, कहाँतक कहे जब वह लाला बाहर निकले. तो लोग, कहने लगे कि जब यह लाला दिशाको जाते है, तो इनके पेटमेंसे दो-दो हजार कौवे निकलते हैं। सारांश–स्त्रीसे बात कहनेमें यह दोष है कि "निकली होठों, चढ़ गयी कोठों।"

श्रीकृष्णचन्द्र यह यशका नाश करनेवाला कलंक लगा सुन और बहुतसे द्वारिकावासियोंको सङ्ग ले प्रसेनके ढूँढ़नेको चले ॥१७॥ हे राजन् ! वनमें सिंहसे मारे गये प्रसेन व घोड़ेको देख और आगे पर्वतके ऊपर ऋच्छसे मारे हुये सिंहको सब द्वारकावासी देखने लगे ॥ १८ ॥ बड़े अँधेरे भयानक ऋच्छराज जाम्बवान्‌के बिलपर सब प्रजाको बाहर खड़ा करके आप अकेले ही उसके भीतर गये ॥ १९ ॥ वहां उस मणिसे बालकको खेलता हुआ देख मणि लेनेकी इच्छासे आपभी बालकके समीप ही खड़े हो गये ॥ २० ॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्यरूप श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर डरपोककी नाई धाई पुकारने लगी । तब महाबलवान् जाम्बवान् धायीका पुकारना सुन क्रोधित हो सामने दौड़कर आया ॥२१॥ क्रोधी जाम्बवान् श्रीकृष्णके प्रभावको न जान और उनको साधारण पुरुष जान और अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ परस्पर जीतनेकी इच्छा श्रीकृष्ण और जाम्बवान्‌का शस्त्र, पत्थर, वृक्ष और भुजाओंसे महाघोर संग्राम होने लगा, जिस प्रकार मांसके लिए दो शिकारी पक्षी लड़ते हैं ॥ २३ ॥ वज्रपातके समान कठोर दृष्टिसे खेदरहित अट्ठाइस दिनरात परस्पर युद्ध हुआ ॥२४॥ जब श्रीकृष्णके मुष्टिकके प्रहारसे उसके सब अङ्ग शिथिल हो गये, बल घट गया और पसीना आ गया, तब जाम्बवान् महा आश्चर्य मानकर कहने लगा ॥२५॥ कि समस्त प्राणियोंके प्राणमें जो बल है और सहोबल अर्थात् इंद्रिय, हृदय, देह इत्यादिकोंके बल आप ही हो और विष्णु भगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर आप ही हो ॥२६॥ विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्त कारण हो और उत्पत्तिके पदार्थके उपादान कारण हो और समस्त प्रेरणावालोंके ईश्वर तुम कालरूप हो तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥२७॥ विष्णु पुराण हो, इसीलिए मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कुछेक क्रोधसे लेकर कटाक्षपातसे मगर और बड़े-बड़े ग्राह दुःखित हो गये, तब समुद्रने मार्ग दिया और जिन रामचन्द्रजीने अपना यश प्रकट करनेके लिए पुल बांधा लङ्का जलायी, महातीक्ष्ण बाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काटकर पृथ्वीमें डाले, वह मुझे निश्चय विदित होता है कि आप मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ही हैं ॥२८॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार जाम्बवान्‌को ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उससे कहने लगे ॥ २९ ॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र सुखके देनेवाले अपना हाथ परम कृपा कर अपने भक्त जाम्बवान्‌के ऊपर धर प्रेमगर्भित वाणीसे कहने लगे ॥३०॥ हे ऋच्छराज जाम्बवान् ! हम मणि लेनेके लिये यहां तेरे बिलमें आये हैं, क्योंकि हमें एक मिथ्या कलंक लगा है, उसे मणि ले जाकर दूर करेंगे॥३१॥यह वचन सुनते ही जाम्बवान्‌ने बड़े आनन्दपूर्वक मणिसहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दी ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिन द्वारकावासियोंको श्रीकृष्णचन्द्र बिलके बाहर खड़ा कर गये थे, उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रका मार्ग देखते जब बारह दिन हो गये,तब उन्होंने जाना कि श्रीकृष्णचंद्र नहीं निकलेंगे, इसलिए सब दुःखित होकर द्वारकापुरीको चले गये ॥३३॥ बिलमें श्रीकृष्णचंद्र नहीं निकले, यह बात द्वारकावासियोंके मुखसे श्रवण कर देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृद् जन तथा जातिके मनुष्य सबही अत्यन्त चिंता करने लगे॥३४॥और सब द्वारकावासी दुःखित होकर सत्राजित्‌को दुर्वाक्य कहते श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनेके लिए महामाया दुर्गादेवीकी पूजा करने लगे॥३५॥ जब देवीकी पूजा करनेसे "श्रीकृष्णको देखोगे" इस प्रकार द्वारकावासि-

योंको देवीने आशीर्वाद दिया तब उसी समय सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकावासियोंको आनन्द देते स्त्री सहित आये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कोई मृतक पुरुष फिर लौट आये; उसी प्रकार मणि पहने हुए स्त्रीको लिये श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख समस्त द्वारकावासी परम आनन्दित हुए ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत सभामें राजा उग्रसेनके पास सत्राजित्को बुलाकर "जाम्बवान् ऋच्छसे मणि लाये हैं" यह कहकर मणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्को दे दी॥३८॥सत्राजित् मणि ले अत्यंत लज्जित हो और मुख नीचा कर पछताता हुआ घरको चला गया॥३९॥महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे विरोध हुआ जान व्याकुल हो सत्राजित् अपने पूर्व अपराधको वारंवार स्मरण करके यह पाप कैसे दूर हो और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कैसे प्रसन्न हों ? इस प्रकार चिंता करने लगा ॥ ४० ॥ अब मैं क्या कर्म करूँ कि जिससे मेरा कल्याण हो ? क्योंकि मैंने विना विचारे श्रीकृष्णचन्द्रको दोष लगाया, मैं अत्यंत कृपण मंदबुद्धि और द्रव्यका लोभी हूँ, इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे मनुष्य मुझे बुरा न कहें ॥४१॥ हे भरतवंशावतंस ! इस प्रकार सत्राजित्ने विचार करके यह निश्चय किया कि श्रीकृष्णचन्द्रको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा और पीछेसे दहेजमें मणि भी दे दूँगा, यही उपाय अच्छा है, इसके अतिरिक्त और उपायसे मेरा अपराध दूर न होगा। इस प्रकार बुद्धिसे स्थिर करके सत्राजित्ने मंगलरूप अपनी कन्या और मणि स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको अर्पण की ॥४२॥४३॥ श्रीकृष्णचंद्रने भी सुन्दर स्वभाव रूप उदारतादि गुण युक्त सत्यभामाका पाणिग्रहण किया, जिसको पहले कृतवर्मादि कई यादव मांग चुके थे ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् । तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने सत्राजित्से कहा कि यह मणि हमको नहीं चाहिये, क्योंकि तुम सूर्यके भक्त हो, इसलिये यह मणि तुम्हारे ही पास रहेगी और इससे जो सुवर्ण होगा वह हमारे यहां भिजवा देना, कारण यह कि तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है, इस कारण तुम्हारा जो धर्म है वह हमारा ही है, यह श्रीकृष्णचन्द्रका गूढ़ अभिप्राय था ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

दोहा—शतधन्वाके हतनको, जो कुछ लगो कलंक ।
मणि मँगाय अक्रूरसे, मेट सतावन अंक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! यद्यपि पांडवगण बिलमें होकर लाक्षाभवनसे बाहर निकल गये और यह बात आप भली प्रकार जानते थे, परंतु तो भी पांडव और कुन्तीको जला हुआ सुन कुलोचित व्यवहार करनेके लिये बलरामजीको संग लेकर श्रीकृष्णचन्द्र कुरुदेशको गये ॥ १ ॥ भीष्मपितामह, विदुरसहित, कृपाचार्य, गांधारी, द्रोणाचार्य इनसे श्रीकृष्णचंद्र कहने लगे कि हाय ! पांडव जल गये और बड़ा ही कष्ट उपस्थित हुआ ॥ २ ॥ हे राजन् ! कुछ दिनोंके पीछे अक्रूर और कृतवर्मा ये दोनों अवसर पाकर शतधन्वासे कहने लगे कि इस समय सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेता ? क्योंकि जिस सत्राजित्ने अपनी कन्यारत्न हमको देनी स्वीकार कर फिर कृष्णको ब्याह दी, वह सत्राजित् अपने भाई प्रसेनके पीछे क्यों न जाय, अर्थात् मरे क्यों नहीं ? ॥३॥४॥ इस प्रकार अक्रूर और कृतवर्माके बहँकानेसे

बुद्धिहीन और क्षीणजीवन हो पापी असाधु शतधन्वाने शयन करते सत्राजितका शिर काट लिया ॥५॥ कसाई जिस प्रकार पशुका वध करता है, ऐसे ही सत्राजित्को जब शतधन्वा मारकर चला गया तब सत्राजित्की स्त्री अनाथके समान पुकार-पुकार कर रोदन करने लगी॥६॥इसके पीछे अपने पिता सत्राजित्को मरा हुआ देख सत्यभामा "हाय पिता ! हाय-पिता !" कहकर अत्यंत विलाप करने लगी॥७॥फिर मृतक पिताकी देहको तेलकी कोठरीमें रखकर सत्यभामा हस्तिनापुरको चली गयी ! यद्यपि शतधन्वाने सत्राजित्को मारा है यह बात अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रथम ही जान ली थी, परंतु तो भी सत्यभामा "मेरे पिताको शतधन्वाने मार डाला" यह बात दुःखित होकर कहने लगी ॥ ८ ॥

चौ०—देखतही उठि बोले हरी ❀ घर है कुशल क्षेम सुन्दरी ॥
सतभामा कह जोरे हाथ ❀ तुम बिन कुशल कहां यदुनाथ ॥
शतधन्वा मेरो पितुमारो ❀ बुरो भलो तुम नाथ विचारो ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी सत्राजितका मरण सुन और अपने मनुष्य अवतारका कारण जान "हमको महाकष्ट उपस्थित हुआ है" इस प्रकार कह और आंखोंमें आंसू भरकर विलाप करने लगे ॥९॥ इसके उपरांत सत्यभामा और अपने भाई बलदेवजीको साथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वा के मारने और उससे मणि लेनेका उपाय करने लगे ॥१०॥ यहां शतधन्वाने सुना कि श्री-कृष्णचन्द्रने मेरे मारनेका उपाय किया तब वह अत्यंत भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये कृतवर्मासे सहायताके निमित्त कहा, तब कृतवर्माने उत्तर दिया ॥११॥ कि भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजीका अपराध मैं कभी न करूँगा, क्योंकि उनका अपराध करके किसका कल्याण होगा ? ॥१२॥ देखो, इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे द्वेष करके कंस लक्ष्मीसे भ्रष्ट होकर अपने भाइयोंसहित मारा गया और मगधदेशके राजा जरासंधने तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार युद्ध किया, परंतु युद्धमें हार अंतको विरथ होकर चला गया ॥१३॥ जब कृतवर्मासे कोरा जवाब पाया तब यह निपट उदास हो अक्रूरजीके पास जाकर कहने लगा, तब अक्रूरजीने कहा कि भाई ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका पराक्रम जान लेनेपर कौन पुरुष उनसे विरोध करेगा ? ॥१४॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और नाश करता है, उसकी मायासे मोहित होकर उसकी चेष्टाको ब्रह्मादिक भी नहीं जानते॥१५॥ देखो सात वर्षकी ही अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्द्धन पर्वत उखाड़कर जिस प्रकार बालक छत्राकको उठाता है उसी प्रकार उठा लिया॥१६॥उन्हीं अद्भुतकर्मकारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके लिये नमस्कार है और जो सबके आदिकारण, निर्विकार सबके आत्मा हैं, हम केवल उन्हें नमस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ हे परीक्षित ! इस प्रकार जब अक्रूरजीने भी सूखा उत्तर दिया, तब शतधन्वा अत्यंत घबड़ाकर मणि अक्रूरके पास रख, चारसौ कोस चलने-वाले घोड़ेपर चढ़कर भाग गया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार शतधन्वा भागा तब राम-कृष्ण गरुड़ध्वजवाले रथमें बैठ शीघ्रगामी घोड़ोंसे श्वशुरके मारनेवाले शतधन्वाके पीछे दौड़े ॥ १९ ॥ जब शतयोजनसे अधिक घोड़ेसे न चला गया और मिथिलापुरीके बागमें

गिर पड़ा, तब शतधन्वा उस घोड़ेको छोड़ भयभीत हो पांव-प्यादे भागने लगा और श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रोधित होकर उसके पीछे दौड़ने लगे ॥ २० ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रने शतधन्वाको पकड़ और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका शिर काट वस्त्रोंमें मणि ढूँढ़ने लगे ॥ २१ ॥ जब शतधन्वाके वस्त्रोंमें मणि न निकली, तब श्रीकृष्णचंद्रने बलदेवजीसे आकर कहा कि देखो भाई ! शतधन्वाको वृथा ही मारा और उसपर मणि न निकली ॥ २२ ॥ इसके पीछे बलदेवजी कहने लगे कि शतधन्वा और किसीके पास मणि धर आया है, इस कारण उस पुरुषको ढूँढ़नेके लिये तुम द्वारका जाओ ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीकृष्णचन्द्र सब बातको जानते हैं, परन्तु तो भी ''मणिका मुझसे छिपाव किया है'' यह मनमें निश्चयकर बलदेवजी क्रोध करके कहने लगे, (तात्पर्य यह है कि द्रव्य ऐसा निषिद्ध पदार्थ है जिसके लिये कृष्ण बलदेवका भी मन बिगड़ गया, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ?) कि मेरा परमप्यारा विदेह देशका राजा बहुलाश्व है, उसके देखनेको मेरा चित्त बहुत भटक रहा है, इसलिये मैं वहां जाऊँगा, इस प्रकार श्रीकृष्ण-चन्द्रसे कह यादवोंके आनन्ददायक महात्मा बलदेवजीने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥२४॥ प्रसन्न मन मिथिलापुरीका राजा बलदेवजीको आया हुआ देख शीघ्र उठ पूजन करनेके योग्य बलदेवजीकी पूजा करनेकी सामग्रियोंसे पूजा करने लगा । तब सामर्थ्यवान् बलदेवजी कितने एक वर्ष तक वहां रहे ॥२५॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकजीसे सत्कार पाकर धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन वहां आकर महात्मा बलदेवजीसे गदा चलानेकी विद्या सीखने लगा॥२६॥ इसके उपरांत प्रिय कार्य करनेवाले सामर्थ्यवान् भगवान् केशवमूर्तिने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाका नाश और मणिका न मिलना अपनी प्यारी भार्या सत्यभामासे कहा ॥२७॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदोंको संग लेकर मृतक सत्राजित्के परलोक साधनकी क्रिया कराने लगे ॥ २८ ॥ सत्राजित्से मणि छीन लेनेकी शिक्षा देनेवाले अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाका मरण सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त भयभीत होकर भाग गये ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित ! जब द्वारकापुरीसे अक्रूरजी चले गये तब द्वारकावासी मनुष्योंके मनमें ताप और अनिष्ट बारम्बार होने लगे ॥३०॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! कितने एक ऋषि जिन्होंने प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा वर्णन की है; वे श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूलकर ऐसा कहते हैं, क्योंकि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णके विद्यमान रहते अनिष्ट किस प्रकार हो सकते हैं ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार दूषित करके फिर और ऋषियोंका मत वर्णन करते हैं; कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि एक समय जब इन्द्रने जल नहीं वर्षाया तब काशीके राजाने अपनी कन्या गांदिनीको ले पुरीमें आये हुए श्वफल्कको दी, तब काशीके सम्पूर्ण देशमें खूब वर्षा हुई ॥३२॥ पिता श्वफल्कके समान प्रभावशाली अक्रूरजी यहां वास करते हैं उस देशमें खूब वर्षा होती है और महामारी इत्यादि किसी प्रकारका खेद प्राणियोंको नहीं होता * ॥३३॥

* शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है, कि जिस-जिस गांवमें अक्रूर वास करता है, उसी गाँवमें इन्द्र जलकी वर्षा करता है, फिर उस गाँवमें महामारीकी बीमारी नहीं होती थी जो अक्रूर मथुरा छोड़कर द्वारकामें वास किया, दूसरे गांवमें वास नहीं किया फिर, सातों द्वीपोंमें तो अक्रूर नहीं हैं, तब सातों द्वीपोंमें इन्द्र जलकी वर्षा क्यों करता है ?

उत्तर—अक्रूरकी माता गांदिनीने ब्रह्माका तप करके ब्रह्मासे यह वरदान लिया कि जिस स्थानपर तू (गांदिनी) [illegible] तेरे पति अथवा तेरा पुत्र निवास करेगा और अपने मनमें जब वर्षनेकी इच्छा करेगा, उसी समय जिस स्थानपर चाहेगा वर्षा बहुत होगी और जब अपने मनमें अभिमान करके प्रजाकी बुराई विचारेगा, और वर्षा होनेकी इच्छा नहीं करेगा उसी समय तुम्हारा प्राण छूट जायगा, इसलिये बुद्धिमान् अक्रूर रात-दिन प्रजाको सुख होनेके लिये अपने मनमें रात-दिन वर्षा होनेकी इच्छा करते रहते थे ।

इस प्रकार वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर "केवल अक्रूर ही यहांसे गया है और मणिको भी वही ले गया है" यह बात निश्चय करके अक्रूरको काशीसे बुलानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥३४॥ उसके पीछे आप ही अक्रूरकी पूजा कर हे काका अक्रूर ! इस प्रकार सम्बोधन देकर प्यारी-प्यारी बात कह सब विश्वके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरके मनकी बात जान मुसकाकर कहने लगे ॥ ३५ ॥ कि हे पूज्यतम ! अक्रूरजी ! हम निश्चय जानते हैं कि स्यमंतकमणि शतधन्वा तुम्हारे पास रख गया है और वह तुम्हारे पास है ॥ ३६ ॥ सत्राजित्‌के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उसे पिंड, जलदान और ऋण चुकाकर जो शेष धन रहेगा, उसे शास्त्रानुसार उसकी कन्याके पुत्र लेंगे ॥३७॥ हे अक्रूर ! यद्यपि तुम हमसे कहो मत, परन्तु तो भी हम जानते हैं कि मणि तुम्हारे अतिरिक्त और किसीके पास नहीं रह सकती, क्योंकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं। तब अक्रूरजीने कहा कि अच्छा मेरे पास सही, तुम्हें क्या प्रयोजन है ? यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले, बड़े भाई बलदेवजी इस मणिके पीछे मेरा विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥ हे बड़भागी अक्रूर ! तुम मणि दिखाकर शीघ्र ही मेरे भाईको शान्त करो और मेरे पास मणि नहीं है यह मत कहो, यदि कदाचित् मणि तुम्हारे पास न होती तो सुवर्णकी वेदी बनाकर काशीमें जाकर अखण्ड यज्ञ कैसे करते ? ॥ ३९ ॥ जब इस प्रकार साम भेद कर समझाया, तब अक्रूरजीने सूर्यके समान तेजवाली, वस्त्रसे ढकी हुई वह मणि निकालकर श्रीकृष्णचन्द्रको दे दी ॥४०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्यमन्तकमणि अक्रूरजीसे लेकर जातिके बन्धुबांधवोंको दिखाकर अपना मिथ्या कलंक दूर कर फिर वह मणि श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीको समर्पण कर दी ॥ ४१ ॥ परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका कहा हुआ मनुष्योंके दुःखोंको हरनेवाला, सुंदर मङ्गलरूप इस स्यमन्तकमणिके प्रसंगको जो कोई पुरुष पढ़ेगा वा श्रवण करेगा अथवा स्मरण करेगा वह कुत्सित पापोंके कलंकको दूर कर कल्याणको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

दोहा—जो भादोंकी चौथका, चाँद निहारे कोय ।
मणि प्रसंग श्रवणन सुनै, ताहि कलंक न होय ॥
ताके दुख नशि जात सब, अपकीरति नहिं होय ।
सब प्रकार मङ्गल लहै, करहु न संशय कोइ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

दोहा—सत्या भद्रा लक्ष्मणा, मित्रवृन्द कालिन्द ।
अट्ठावन अध्यायमें, वरी सकल गोविंद ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! लाक्षागृहमें पाण्डव जल गये यह बात होनेपर फिर द्रुपदराजाके यहां पीछे दिखायी दिये, इस प्रकार पाण्डवोंकी खबर पाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग ले एक समय इन्द्रप्रस्थ गये ॥१॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रको देखते ही जिस प्रकार मृतक शरीरमें प्राण आनेसे इंद्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं, उसी प्रकार बलवान् पाण्डव उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलकर पापरहित होनेके कारण

वीर पांडव स्नेहभरी मुसकान सहित श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविंद देखकर परमानंदको प्राप्त हुए ॥३॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्र बड़े युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें नमस्कार करके फिर अपने समान अर्जुनसे मिले। इसके उपरांत छोटे नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार किया ॥ ४ ॥ फिर श्रेष्ठ आसनपर विराजमान श्रीकृष्णचन्द्रको नवविवाहिता, निन्दारहित, लज्जावती द्रौपदीने आकर धीरे-से प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसी प्रकार सात्य-कीको भी पांडवोंने आकर पूजन कर आसनपर बैठाकर, फिर और मनुष्योंका भी आदर-सम्मान किया ॥ ६ ॥ फिर श्रीकृष्णचन्द्रने कुंतीके पास आकर प्रणाम किया तो कुन्तीने भी स्नेहभरी चितवनसे आलिंगन किया, फिर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता व बहनकी कुशल कुंतीसे पूछी और इसके उपरांत कुंती श्रीकृष्णचन्द्रसे भाइयोंकी कुशल पूछने लगी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंमें आंसू भर, कौरवोंके दिये कष्टकी सुध करते कुंती भक्तोंके क्लेशोंको नष्ट करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगी ॥८॥ कि हे कृष्ण! जातिके बंधु हमको स्मरण करके जिस समय तुमने मेरे भाई अक्रूरको खबर लेने भेजा, उस समय हमारी सब कुशल हो गयी और तुमने हमको सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ यद्यपि उस विश्वके हितकारी आत्मा तुम "यह अपना है, यह पराया है" इस भ्रमसे रहित हो, परंतु तो भी जो कोई तुम्हारा सर्वदा नमस्कार करता है, तुम उसके हृदयमें स्थिर होकर समस्त क्लेशोंका नाश कर देते हो ॥ १० ॥ राजा युधिष्ठिर कहने लगे कि, हे ब्रह्मादिकोंके ईश्वर! नहीं ज्ञात होता कि मैंने क्या कल्याणकारी कार्य किया है, क्योंकि योगेश्वरोंको जिनका दर्शन होना महा-कठिन है, उनका हम सरीखे कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचंद्र इंद्रप्रस्थ–निवासियोंके नेत्रोंको आनंद देते हुए वर्षाकालतक वहीं विराजमान रहे ॥ १२ ॥ एक समय महाबलवान् शत्रुओंका मारनेवाला अर्जुन कपिध्वजवाले रथमें चढ़कर गांडीव धनुष और बाणोंसे भरा तरकस ले, कवच पहन बहुत सर्प और मृगवाले बड़े वनमें श्रीकृष्णचंद्रके सङ्ग शिकार खेलनेको गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ और उस वनमें पहुँचकर व्याघ्र, सूकर, भैंसा, रुरु अर्थात् हरि, शरभ, रोज, गौड़ा मृग और खरहा इनको अपने तीक्ष्णबाणोंसे छेदन करने लगा ॥१५॥ हे राजन्! अमावास्या-पौर्णमासी यह पर्व जब आकर प्राप्त हुए तब सेवकलोक पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लाये और जब अर्जुनको प्यास लगी तो थका हुआ यमुनाजीपर आया ॥१६॥ महारथी अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाके निर्मल जलका आचमन कर और जल पीकर जब खड़े हुए तब उन्होंने एक सुन्दर कन्या बैठी देखी ॥ १७ ॥ सुन्दर जंघा, श्रेष्ठ दांत, मनोहर मुख, ऐसी प्रेमदा कन्याके पास श्रीकृष्णका भेजा हुआ अर्जुन जाकर पूछने लगा ॥ १८ ॥ कि हे सुश्रोणि! तुम कौन हो? और किसकी पुत्री हो, कहांसे आयी हो और तुम्हारे मनमें क्या करनेकी इच्छा है? वह सब वृत्तांत कहो। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि तुम्हारे पति करनेकी इच्छा है ॥१९॥ इतना पूछने पर कालिंदीने कहा कि मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ कालिंदी मेरा नाम है और वरको देनेवाले विष्णुभगवान्को पति करनेकी इच्छासे तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर! अत्यन्त स्वरूपवान् श्रीकृष्णचंद्रके अतिरिक्त और किसीको मैं नहीं वरूंगी। वह अनाथ आश्रय मुकुंद भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ मैं कालिंदी नामसे विख्यात हूँ और मेरे पिता सूर्यदेवने यमुनाजलमें स्थान बना दिया है, इसलिये जब

तक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन न होगा तबतक यहां वास करूँगी ॥ २२ ॥ यह सुन अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रके पास जाकर कालिंदीके सब वचन कहे। तब कालिंदी मेरे लिये तप करती है यह बात जान श्रीकृष्णचन्द्र कालिंदीको रथमें बैठाकर धर्मराज राजा युधिष्ठिरके पास आये ॥ २३ ॥ उस समय पांडवोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके कारीगर विश्वकर्मासे कहकर पाण्डवोंके लिये चित्र-विचित्र अद्भुत नगर बनवाये ॥ २४ ॥ पाण्डवोंका भला चाहनेके लिये इंद्रप्रस्थमें वास करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् अग्निको खांडववन चरानेके लिये अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! तब उस अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, तीरोंसे भरा तरकस और जो अस्त्रवालोंसे भी न कटे ऐसा एक कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहां इन्होंने अग्निसे मयनामक दैत्यको बचाया, इसलिये उसने प्रसन्न होकर पांडवोंको एक सभा दी, जिस सभामें जलमें स्थल और स्थलमें जल इस प्रकार देखकर दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाकर सुहृदोंमें बड़ाई पाकर श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदि यादवोंको संग लेकर फिर द्वारकापुरीमें आये ॥२८॥ इसके उपरांत सुन्दर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिन्दीका पाणिग्रहण किया और फिर अनेक प्रकारसे परमरूप श्रीकृष्णचन्द्र अपने यादवोंको सुख देने लगे ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनेवाले राजा विंद और अनुविंदकी बहनोंने श्रीकृष्णचंद्रको स्वयंवरमें वरनेकी इच्छा की, परंतु उन दोनों भाइयोंने मने किया; क्योंकि वे दुर्योधनके अधीन थे॥३०॥हे राजन्! वसुदेवकी बहन राजा आधिदेवीकी पुत्री मित्रविंदाको श्रीकृष्णचन्द्र सब राजाओंके देखते-देखते बलपूर्वक हरण करके ले गये ❋ ॥३१॥ हे राजा परीक्षित् ! अयोध्यापुरीका पालन करनेवाला बड़ा धर्मात्मा राजा नग्नजित् नामसे विख्यात था। उस राजाके प्रकाशमान् सत्यानामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका उपनाम 'नाग्नजिती' भी प्रसिद्ध था ॥३२॥ राजाने यह प्रतिज्ञा की कि जो वीर पुरुषोंका गंध भी न सह सके ऐसे दुष्ट, तीखे सींगवाले, अतिदुर्धर्ष सात बैलोंको जो जीते वह मेरी पुत्रीसे विवाह करेगा। अनेक राजा मार खाकर फिर गये, परन्तु कोई भी जीतनेको समर्थ न हुआ ॥३३॥ यहां यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुना कि जो बैलोंको जीते उससे कन्या विवाह करे, यह सुनकर बड़ी भारी सेनाको सङ्ग लेकर अयोध्यापुरीमें आये ॥ ३४ ॥ हे नृप श्रेष्ठ ! राजा नग्नजित्‌ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं, इसलिये अत्यंत प्रसन्न हो उठकर "भले आये महाराज !" इस प्रकार प्रशंसा करके सुन्दर आसन बिछाकर चरण धोकर पूजाकी सामग्रियोंसे उनका पूजन करने लगा ॥३५॥ राजा नग्नजित्‌की कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको आया हुआ देख और अपने योग्य वर जान इनकी इच्छा करके कहने लगी कि जो मैंने श्रद्धासहित व्रत किये हैं तो कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मेरे पति हों और मेरा मनोरथ सत्य हो ॥ ३६ ॥ जिन

❋ शंका—धर्मशास्त्रमें लिखा है कि फूफीकी लड़की बहिन होती है, फिर श्रीकृष्णने फूफीके लड़कीके साथ विवाह क्यों किया ?

उत्तर—पूर्व जन्ममें वसुदेवजी तप करते थे, तब वसुदेवजीकी जो दासी थी वह वसुदेवजीकी सेवामें लग रही थी, जब भगवान्‌ने वसुदेवको वरदान दिया कि हम तुम्हारे पुत्र होंगे। तब लक्ष्मीजीने भी वसुदेवजीकी दासियोंको वरदान दिया कि हे दासियो ! तुम्हारी सबकी हम बहुतसी कन्या होंगी इस प्रकार भगवान् और लक्ष्मीके वचनसे प्रथमकी जो वसुदेवजीकी दासी थीं, सब इस जन्ममें बहिनें हुई उन वसुदेवकी बहिनकी पुत्री–लक्ष्मी हुई; अपने वचनके प्रभावसे, लक्ष्मीरूप जो वसुदेवकी बहिनकी लड़की है उनका भगवान्‌के बिना दूसरा पुरुष कैसे विवाह करेगा। इसलिये भगवान्‌ने विचार किया कि साक्षात् यही है, अतः इसके साथ विवाह कर लेनेसे कुछ पाप न होगा।

भगवान्‌के चरणकमलकी रजको लक्ष्मी और कमलयोनि ब्रह्मा व महादेव और लोकपाल सम्पूर्ण शिरपर धारण करते हैं और जो अपनी बँधी हुई मर्यादा पालनेकी इच्छासे समयानुसार लीलापूर्वक नृसिंहादि अवतार धारण करते हैं, वे भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ इसके उपरांत भलीभांति विधिपूर्वक पूजा करके राजा नग्नजित् कहने लगा कि हे नारायण ! हे जगत्पते ! हे आनन्दसे पूर्ण ! आपकी मैं तुच्छ क्या पूजा करूँ ? ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुसकाते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे राजा नग्नजित्‌के प्रति कहा ॥ ३९ ॥ हे राजन् नग्नजित् ! विद्वान् पुरुष कहते हैं कि मांगना अत्यन्त बुरा है तो भी स्नेहके वश होकर मैं आपकी कन्या मांगता हूँ, कुछ मूल्यके देनेवाले हम नहीं हैं ॥ ४० ॥ राजा नग्नजित्‌ने कहा कि हे नाथ ! सब गुण जिनमें विद्यमान और लक्ष्मी सदा जिनके अङ्गमें वास करे ऐसे सर्वगुणालंकृत तुमसे अधिक संसारमें कौन वर है, जिसको मैं अपनी कन्या दूँगा ? ॥ ४१ ॥ हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! पुरुषोंमें पराक्रमकी परीक्षा लेनेके कारण और कन्याके वरकी परीक्षाके लिए हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा की है ॥ ४२ ॥ हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षारहित और पकड़नेमें न आयें, ऐसे बैलोंको जो जीते, वह कन्याको वरे, यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहां आये, परंतु इनसे अपना शरीर जर्जरित ही कराकर चले गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीपति ! जो तुम इन बैलोंको जीत लो तो निश्चय मेरी कन्याका विवाह करो ॥ ४४ ॥ सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजा नग्नजित्‌का वचन सुनकर फेंट बांध अपने सात रूप धारण कर लीलापूर्वक ही बैलोंको पकड़ने लगे ॥ ४५ ॥

दोहा–फेंट बांधि तहँ हरि गये, सात रूप निज धार ।
श्रीयदुपति ब्रजराजने, नाथे एकहि बार ॥

गर्व और शक्ति नाश करके उन बैलोंको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने रस्सियोंसे बांधकर जैसे बालक काष्ठके बैलको खींचता है, ऐसे ही खींचने लगे ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त आश्चर्य मान राजा नग्नजित् प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपनी कन्या देनेका उद्योग करने लगा और सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने समान कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥४७॥ राजा नग्नजित्‌की प्रसन्न रानी अपनी कन्याके प्रिय पति श्रीकृष्णको वर पाकर परम आनंदित हुई और बड़ा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शङ्ख, भेरी, नगाड़े बजने लगे, गीतोंका शब्द सुनायी दिया । ब्राह्मणोंने अनेक आशीर्वाद दिए, सुन्दर वस्त्र मालोंसे शोभायमान सब नारी नर प्रसन्न हो गये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यवान् राजा नग्नजित्‌ने यौतुकमें दश हजार गौवें दीं और धुकधुकी कण्ठमें पहने हुई सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान तीन हजार दासियां दीं ॥ ५० ॥ नौ हजार हाथी और हाथियोंसे सौगुने अर्थात् नौ लाख रथ, रथोंसे सौगुने अर्थात् नौ करोड़ घोड़े दिये, घोड़ेसे सौगुने अर्थात् एक अर्ब मनुष्य दिये ॥ ५१ ॥ स्नेहसे व्याप्त हृदय कोशल देशका राजा नग्नजित् अपनी कन्या–सहित श्रीकृष्णको रथमें बैठाकर और बहुतसी सेनायें सङ्ग लेकर पहुँचाने चला ॥ ५२ ॥ जिसका पुरुषार्थ प्रथम यादव और बैलोंसे भंग हो गया था वे राजा यह बात सुनकर न सह सके और कन्याको ले जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मार्गमें रोक लिया ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके प्यार करनेवाले

गांडीव-धनुषधारी अर्जुनने बाण चलाकर समस्त राजाओंको क्षणभरमें सिंह जैसे वनके छोटे-छोटे जीव व मृगोंको भगा देता है उसी प्रकार भगा दिया ॥५४॥ इस प्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दहेज लेकर द्वारकापुरीमें आकर सत्या रानीसे रमण करने लगे ॥५५॥ वसुदेवकी बहन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राको संतर्दनादि भाईयोंके देनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने व्याहा ॥ ५६ ॥ सुंदर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाको गरुड़ जैसे अमृत लाता है; उसी प्रकार अकेले श्रीकृष्णचन्द्र हरकर ले आये ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! भौमासुरके बंदीखानेसे छुड़ाई हुई सुंदर स्वरूपवती हजारों स्त्रियां और भी थीं ॥ ५८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धेऽष्टमहिष्युद्वाहवर्णनं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

दोहा–उनसठवें अध्यायमें, भौमासुरको मार ।
इंद्र पराभव करि हरी, कन्या वरीं हजार ॥

राजा परीक्षित्ने कहा कि, हे व्यासपुत्र शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचंद्रने जिस प्रकार भौमासुरको मारा और जैसे भौमासुरने वे स्त्रियाँ रोकीं यह संपूर्ण कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रका पराक्रम हमारे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! जब देवराज इंद्रने श्रीकृष्णचंद्रसे आकर कहा कि हे भगवन् ! मेरा छत्र, अदितिके कुण्डल भौमासुर हरले गया है और अमरादि सुमेरुके मणिपर्वत स्थानमें उसने अपना अधिकार कर लिया है और हमें अत्यन्तही दुःखित कर दिया है। देवराजकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णचंद्र पक्षिराज गरुड़पर सवार हो सत्यभामा रानीको संग ले प्राज्योतिष नामक भौमासुर नगरमें गये॥२॥जहां पर्वत, शस्त्र, जल, अग्नि और पवनके किले हैं, जिनमें कोई प्रवेश न कर सके ऐसा भयानक गढ़ और मुरदैत्यकी हजारों दृढ़ फांसियों द्वारा चारों ओरसे व्याप्त है॥३॥ श्रीकृष्णचन्द्रने गदासे गिरिदुर्ग तोड़ा, शस्त्रदुर्ग बाणोंसे, चक्रसे अग्निदुर्ग तोड़ा,इसके उपरांत जलदुर्ग और पवनदुर्गको तोड़ा, इसी प्रकार मुरदैत्यकी फांसियोंको काट डाला ॥ ४ ॥ शंख बजनेके शब्दसे अनेक युद्धके यन्त्र उलटे चलने और शूरवीरोंके हृदय वा मन थर-थर-कांपने लगे, तब गदाधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बड़ी गदासे भौमासुरकी नगरीके कोटको तोड़ डाला ॥५॥ प्रलयकालिक वज्रके शब्दके समान भयंकर शब्दवाले पांचजन्य शंखका शब्द सुनकर पांच मुखवाला मुरदैत्य जो जलके भीतर सो रहा था; वह उठा ॥ ६ ॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान तेज, भयंकर रूपवाला मुरदैत्य त्रिशूल हाथमें ले पांचों मुख फाड़कर मानो त्रिलोकीको निगल जायगा इस प्रकार दौड़ता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया, जैसे सर्प गरुड़के सम्मुख जाता है॥७॥ और बड़े जोरसे त्रिशूलको फिराकर गरुड़पर चलाया, पांचों मुख फाड़कर महाघोर शब्द किया, उस शब्दका नाद अन्तरिक्ष,पृथ्वी,संपूर्ण दिशाओंमें फैलकर ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो गया॥८॥उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने गरुड़के ऊपर त्रिशूल आता देखकर अपने बाणोंसे तीन टुकड़े कर दिये और मुरदैत्यके पाचों मुखोंमें पांच बाण मारे, तब मुरदैत्य अत्यन्त क्रोधित होकर श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलाने लगा ॥ ९ ॥ तब भगवान्ने संग्राममें आती हुई उस गदाके हजारों टुकड़े कर डाले।

उस समय भुजाओंको उठाये दौड़कर सम्मुख आये हुए मुरदैत्यका शिर श्रीकृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक अपने चक्रसे काट लिया ॥१०॥ जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कटकर गिर पड़ता है,उसी प्रकार मस्तक कटनेपर प्राणमुक्त हो वह जलमें गिर गया;उसके जो अतिबलवान् सात पुत्र थे, वे पिताके दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो, महाक्रोध कर बदला लेनेके लिये आये ॥ ११ ॥ ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और सातवां अरुण, यह सब पीठनाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र ले-लेकर रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ अत्यन्त क्रोध करके भयानक मुरदैत्यके पुत्र आकर श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर बाण, तलवार, गदा, बर्छी, गुर्ज और त्रिशूल, इत्यादि शस्त्र चलाने लगे, तब महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने अपने बाणोंसे उनके चलाये हुए शस्त्रोंको क्षणभरमें तिलके समान काट डाला ॥१३॥ पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रोंके शिर, ऊरू, भुजा, पांव, कवच इत्यादि काट और उनको मारकर श्रीकृष्णचन्द्रने यमलोकको भेज दिया। तब पृथ्वीका पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचंद्रके चक्र और बाणोंसे अपने सेनापतियोंका नाश देखकर महाक्रोधित हो समुद्रसे प्रकट हुए मद झरते हाथियोंकी सेना लेकर बाहर निकला॥१४॥सूर्यके ऊपर जिस प्रकार बिजली सहित मेघ आता है, उसी प्रकार गरुड़के ऊपर सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचंद्रको विराजमान देख भौमासुर बरछी चलाने लगा और सम्पूर्ण योद्धा भी प्रहार करने लगे ॥१५॥ गदके बड़े भाई श्रीकृष्णचन्द्रने चित्र-विचित्र पंखवाले बाणोंसे भौमासुरकी सेनाको काट फिर क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरू, गर्दन और दूसरे अंग काट हाथी घोड़ोंको मार छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१६॥ हे कौरवोंके आनन्द देनेवाले परीक्षित् ! जो-जो शस्त्र योद्धाओंने चलाये, उन सबको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने तीक्ष्ण तीन-तीन बाणोंसे एकएक टूक कर काट डाला ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढ़ाये हुए गरुड़जीने भी अपनी चोंच और पंखोंसे हाथियोंको मार-मारकर व्याकुल कर दिया ॥१८॥ और वे अत्यंत पीड़ित होकर पुरमें प्रवेश कर गये, तब नरकासुरने युद्ध करते हुए गरुड़से पीड़ित अपनी सेनाको भागी हुई देखकर ॥ १९ ॥ भौमासुरने महापैनी धारवाली गरुड़जीको बरछी मारी, जिससे वज्र रुक गया था, परंतु जैसे मालाके प्रहारको हाथी कुछ नहीं गिनता, उसी प्रकार गरुड़जी उसके प्रहारसे कुछ भी व्यथित नहीं हुए ॥२०॥तब भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया; परंतु हे परीक्षित् ! उस शूलके छोड़नेसे प्रथम ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका शिर काट डाला ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जिस समय कुण्डलों सहित मनोहर किरीटसे शोभायमान एवं प्रकाशमान भौमासुरका शिर कटकर पृथ्वीमें सुशोभित हुआ, उस समय दैत्य हा-हा कर और ऋषि देवता धन्य-धन्य कहते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरनेके उपरांत पृथ्वीने श्रीकृष्णचन्द्रके पास आकर तपायमान सुवर्णमें जड़े रत्नोंसे प्रकाशमान कुण्डल, वैजयन्ती-माला और प्रचेताका छत्र तथा महामणि दी ॥२३॥ हे नृपोत्तम ! उस समय पृथ्वी विश्वके ईश्वर, देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादिकोंसे पूजित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख दोनों हाथ जोड़ नम्र हो भक्ति और श्रद्धासहित स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥ "पृथ्वीने पुत्रके लिये तपस्या की थी, तब देवताओंने प्रसन्न होकर पुत्र होनेका वर दिया, उसी वरके प्रभावसे भौमासुर उत्पन्न हुआ" पृथ्वीने कहा कि, हे देवदेव ! हे शंख चक्र गदापद्मधारी ! हे परमात्मन् ! भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये साकार

रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ जिनकी नाभिमें कमल, कमलकी माला धारण करनेवाले, कमलनेत्र और कमलके समान चरण रखनेवाले आपको नमस्कार है ॥२६॥ भगवान् वासुदेव सम्पूर्ण प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, समस्त कार्योंके आदि कारण, पूर्णज्ञानस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥ आप जन्मरहित हो। इस विश्वके उत्पत्तिकर्ता हो, ब्रह्म हो, इसलिये अजन्मा हो, अनंतशक्तिधारी हो, इसीसे विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हो। यदि कोई कहे कि पित्रादि तो पुत्रादिकोंके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूत हैं और पञ्चभूतोंका अपने कर्मद्वारा जीव है, मैं क्या करूँ? उसके उत्तरमें पृथ्वी कहती है कि हे कार्यकारणरूप! हे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा! हे परमात्मन्! तुम सर्वरूप हो, इसलिये आपके अर्थ नमस्कार है ॥२८॥ यहाँ यह शंका है कि तीनों गुणोंसे इस विश्वको उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं और तीनों गुण मायाके अधीन हैं और मायाका क्षोभ करनेवाला पुरुष है, काल निमित्त है और यह बात प्रसिद्ध है, फिर मैं क्या करता हूँ? इसके उत्तरमें पृथ्वी कहती है कि तुम आवरणरहित हो। हे समर्थ! जिस समय आप विश्वके रचनेकी इच्छा करते हो, तब रजोगुणको धारण करते हो और हे जगत्पति! जगत्के पालन करनेको सत्त्वगुण धारण करते हो तथा नाश करनेके लिये तमोगुणको धारण करते हो, कालरूप हो, पुरुषरूप और सबसे परे हो, इसलिये सबके उत्पन्नकर्त्ता तुम ही हो ॥२९॥ हे ईश! मैं (पृथ्वी), जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, देवता, मन, इंद्रियां, अहंकार, तत्त्व और समस्त स्थावर, जङ्गम, आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासते हैं ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुख-हर्त्ता! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर तुम्हारे चरणोंमें आकर पड़ा है, तुम इसका पालन करो और सब क्लेशोंका शमन करनेवाला अपना हस्तकमल इसके मस्तकपर रखो ॥३१॥ भक्तिपूर्वक नम्र हो मधुरवाणीसे पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति (प्रार्थना) की तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे अभयदान दे सर्व सम्पत्तियुक्त भौमासुरके स्थान पर गये ॥३२॥ वहां जाकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोलह हजार एक सौ कन्या भौमासुरके मंदिरमें देखीं, जिन्हें भौमासुर अपने पराक्रमसे बलात्कार हर लाया था ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आया हुआ देख सम्पूर्ण स्त्रियाँ मोहित होकर दैवसे प्राप्त हुए मनोवांछित पति श्रीकृष्णचन्द्रको मनसे पतिवरण करने लगीं ॥ ३४ ॥ हे विधाता! इन्हें ऐसी अनुमति दो कि यह हमारे पति हों। इस प्रकार सब कन्याओंने भक्ति भाव-सहित अपना-अपना मन श्रीकृष्णचन्द्रमें लगाया ॥३५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें उज्ज्वल व स्वच्छ वस्त्र पहन कर पालकियोंमें बैठाकर द्वारकापुरीको भेज दिये और साथ ही बड़े-बड़े खजाने, रथ और

---

* शंका—भौमासुर तो बड़ा बुद्धिमान् था, फिर कुमारी कन्याओंको क्यों हरणकर इकट्ठा किया? वे तो सब लड़कियाँ थीं, उनका विवाह नहीं हुआ था, उनको हरकर क्यों ले गया।

उत्तर—राजाओंका अभिमान भञ्जन करनेके लिये सब राजाओंकी कन्याओंको हरकर वह अपना विवाह करनेके लिये लाया था और राजा लोग उसका कुछ भी नहीं कर सके। तब नारदमुनिने विचार किया कि यह सब कन्या तो भगवान्की स्त्री होंगी, ऐसा विचारकर भौमासुरको मनाकर दिया कि हे भौमासुर! बिना हमारी आज्ञा लिये इन कन्याओंके संग अपना विवाह मत करना ऐसे विचारकर भौमासुरको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी, उन लड़कियोंके संग विवाह करनेको चाहतेही चाहते भौमासुरको श्रीकृष्णने मार डाला और कन्याओंको अपने आप वर लिया, इसलिये भौमासुर राजकन्याओंका हरण किया था।

घोड़ोंको भी भेजे ॥ ३६ ॥ इसके उपरांत चार-चार दांतके श्वेतरंग, शीघ्रगामी, चौंसठ ऐरावतकुलके हाथी श्रीकृष्णचंद्रने द्वारकापुरीमें भेजे ॥ ३७ ॥ इसके पीछे जब भगवान् वासुदेवने इंद्रलोकमें जाकर अदितिको कुण्डल दिये, तब इंद्राणी सहित देवराज इंद्रने सत्यभामा सहित श्रीकृष्णचंद्रकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३८ ॥ सत्यभामाके कहनेसे श्रीकृष्णचंद्रने कल्पवृक्षोंको उखाड़ गरुणके ऊपर रख और इंद्रसहित समस्त देवताओंको जीतकर द्वारकापुरीमें ले आये ॥३९॥ और सत्यभामाके बगीचेको शोभायमान करनेके लिये कल्पवृक्ष उसके बगीचेमें लगाया, उसकी सुगंधके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे-पीछे चले आये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! प्रथम तो देवराज इंद्रने कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने किरीटोंके अग्रभाग भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें लगा नमस्कार करके उनकी प्रार्थना की और कार्यसिद्ध होनेपर उसने विरोध किया, अहो ! देवताओंको बड़ा क्रोध आता है, धनिकताको ही धिक्कार है ॥४१॥ इसके उपरांत एक मुहूर्तमात्रमें सोलह हजार एकसौ आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जितनी स्त्रियाँ थीं उतने ही स्वरूप धारणकर सबका यथायोग्य पाणिग्रहण किया ॥४२॥ जिनके घरके समान और कोई घर नहीं है, इस प्रकार उन रानियोंके घरोंमें सदा पूर्ण आनंदस्वरूप रहते भी औरोंके समान गृहस्थधर्म करते, अचिंत्य कार्य-कर्ता अविनाशी भगवान् लक्ष्मीके अंशरूप स्त्रियोंके साथ विहार करते थे ॥४३॥ हे परीक्षित् ! ब्रह्मादिक देवता जिनके मार्गको नहीं जानते, उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाकर वे स्त्रियां उनको निरन्तर बढ़ी हुई प्रीति और स्नेह भरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनन्दपूर्वक नवीन-नवीन भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं ॥ ४४ ॥ यद्यपि एक-एक रानीके पास सौ-सौ दासी हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं परन्तु तो भी सामने जाकर लिवा लाना, आसन बिछाना, सुन्दर पूजा करनी, चरण धोना, बीड़ा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, फूल चढ़ाना, केशोंका सँभालना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना, यह सब सेवा भलीप्रकार आपही करती थीं॥४५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे पारिजातहरणनरकवधवर्णनं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

दोहा—साठ हँसीसे कुछ कही, हरि रुक्मिणिसों बात ।
रूठ गई तब रुक्मिणी, कृष्ण मनावन जात ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! किसी समय सुखपूर्वक शय्यापर बैठे हुए जगद्गुरु अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सखियोंसहित चमर डुलाती हुई सेवा करने लगीं ॥ १ ॥ जो जन्मरहित भगवान् लीलापूर्वक इस विश्वका उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं वे ही भगवान् अपनी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें आकर प्रगट हुए हैं ॥२॥ वहां गृहोंके भीतर अत्यन्त देदीप्यमान मालायें लटक रही थीं, अत्यन्त शोभायमान छत बँधी थीं और मणिमय दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालाओंपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड गूँज रहे थे और झरोखोंकी जालियोंमें होकर चन्द्रमाकी निर्मल किरणें झिलमिला रही थी ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंध लिये उद्यानसे सुगंधसनी वायु चल रही थी । हे राजन् ! झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगर तगरके धूपका धुवां निकल रहा था ॥५॥ उस

मन्दिरके भीतर शय्या बिछी थी। उसपर दूधके फेनके समान कोमल श्वेत बिछौना बिछ रहा था, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठे हुए जगत्के ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी रुक्मिणी सेवा करती थीं ॥६॥ हीरेकी दंडीवाला चमर सखीके हाथमेंसे लेकर उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी ओर देख रही थीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके निकट मणियोंकी जड़ाऊ नूपुरोंका शब्द करती अत्यन्त शोभायमान लगती थीं, कैसी रुक्मिणी है, उँगलियोंमें मुँदरी पहने, कलाइयोंमें चूड़ी व कंकण पहने, और हाथमें बीजना ले रही हैं; सारीके छोरसे ढके जो स्तनकी केशरसे रंगा हुआ अरुण जो मोतियों का हार और कटिमें पहने हुए जो अमूल्य मेखला उससे शोभायमान हो रही थीं ॥८॥ लीलापूर्वक देह धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके योग्य जिसका रूप है और श्रीकृष्णके बिना जिसका कोई आश्रय नहीं है, ऐसी रूपवती साक्षात् लक्ष्मीके समान रुक्मिणीजीको देखकर, कि जिसकी अलकें कुण्डल धुकधुकी युक्त कण्ठसे शोभायमान मुखारविंदमें मन्द मुसकानरूप अमृत झलक रहा था, उसे देख प्रसन्न हो हँसकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले॥९॥श्रीभगवान् बोले कि, हे राजपुत्री। लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव लक्ष्मीवान् रूप उदारता और बलसे बढ़े हुए राजा तुम्हारी चाहना करते थे ॥ १० ॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल शिशुपालादि राजा तुम्हारे लेनेके लिये आये, जिन्हें तुम्हारे पिता दे भी चुके थे, फिर तुमने किस कारण उन्हें छोड़कर हमें जो तुम्हारी बराबरके भी नहीं हैं वरण किया ? ॥११॥ हे सुन्दर भ्रुकुटियोंवाली ! बहुधा राजाओंसे डरकर तो हमने समुद्रकी शरण ली है और बलवानोंके साथ विरोध होनेसे ही हमने राजगद्दी त्यागकर रखी है ॥१२॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रियोंके कहेंमें न चले, जिनका मार्ग जगत्से निराला है, ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियाँ अनुसरण करती हैं, वे बहुधा क्लेश और कष्ट पाती हैं ॥ १३ ॥ और हम निष्किंचन हैं, जो निष्किंचन है, वह जन हमें अत्यन्त प्रिय है, इसलिये हे सुमध्यमे! धनवान् पुरुष कहते हैं कि हम दरिद्री हो जायँगे इस भयसे बहुधा मेरा भजन नहीं करते ॥१४॥ जिनके बराबर धन, बराबर जन्म, बराबर ऐश्वर्य और बराबरकी रूप, जाति हैं और सदा जिनका एकसा निर्वाह होता है, उन्हींसे विवाह और मित्रता होती है, छोटे बड़ोंकी कदापि नहीं हो सकती ॥१५॥ हे राजा भीष्मककी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कुछ विचार न किया और बराबरका सम्बन्ध होता है, यह बात जाने विना गुणहीन हमको भिक्षुकके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥१६॥ हे सुन्दरी ! अब भी तुम अपनी बराबरका क्षत्रिय देखकर उसका हाथ पकड़ लो तो उस क्षत्रियसे इस लोक और परलोकके मनोरथोंको प्राप्त होगी ॥१७॥ तब रुक्मिणीने कहा कि, आप मुझे क्यों ले आये ? श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्रादि समस्त राजा हमसे शत्रुता रखते हैं और तेरा भाई रुक्मी भी वैर करता है ॥१८॥ हे मंगलरूपिणी ! पराक्रमके मदसे अंधे गर्ववाले राजाओंका गर्व दूर करनेके लिये और दुष्टोंका तेज हरण करनेके लिये मैं तुम्हें हर लाया था ॥१९॥ हम घर और देहमें उदासीन हैं, हमको स्त्री पुत्रोंकी चाहना नहीं है, क्योंकि आत्माके आनन्दसे सदा परिपूर्ण हैं और ज्योतिके समान साक्षीमात्र क्रिया रहित वर्त्तते हैं ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कुरुकुलभूषण परीक्षित ! रुक्मिणीका मन हरनेवाले और जो आपसे कभी अलग न हो इसलिये आपको अपना प्राणवल्लभ जाननेवाली रुक्मिणीका गर्व दूर करनेके लिये इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चुप हो

गये ॥२१॥ इस प्रकार त्रिलोकीके ईश्वरोंका पालन करनेवाले अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रको जो पहले कभी न सुना था, ऐसा कटु वाक्य सुनकर हृदयमें रुक्मिणीजी कांपने लगीं और भयभीत हो रुदन करके बड़ी चिन्ता करने लगीं॥२२॥नखकी अरुण कांतिवाले सुकुमार चरणोंसे पृथ्वी लिखने लगीं, आंखोंमें अञ्जन लगनेके कारण श्याम आंसू बहने लगे। उनसे केशरयुक्त स्तनोंको भिजाती, नीचेको मुख किये, अत्यंत दुःखित हो, वाणी रुकनेसे रुक्मिणी व्याकुल होकर चुप हो गयीं ॥ २३ ॥ अप्रिय वचन सुननेके कारण अत्यंत दुख और त्याग करनेकी आशंकाके शोकसे बुद्धिरहित होकर रुक्मिणी व्याकुल हो गयीं,तब उनके हाथसे पंखा गिर गया, कङ्कण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित हो पवनसे गिरायी हुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी और उस समय उनके केश भी खुल गये॥२४॥

सवैया–भरि आये लालके दृगै अँसुवा, गयो भूल हँसी करिबो छनमें।
परयंकते कूदिके आशु तहां भये, आप दुखी अति ही मनमें॥
धर चार भुजा द्वै भुजानिते नाथ, उठाय लगाय लियो तनमें।
इक पाणिसों केश सँवारे लगे, इक पाणिको फेरत आननमें॥
प्राणपियारीकी देखि दशा, परयंकते बेगि उठे गिरधारी।
धाय उठाय लई उर लाय, दयानिधि दृष्टि दयाकी पसारी॥
आँसुन पोंछि दिये इक हाथसों, त्यों इक हाथसों केश सँवारी।
बारहि बार गोविंद कहैं, अब फांसी भई यह हांसी हमारी॥

हास्यकी गम्भीरता जाननेवाली अपनी प्यारी रुक्मिणीका प्रेमबन्धन देख करुणा कर श्रीकृष्णचन्द्र द्रवीभूत हो गये ॥ २५ ॥ और चारभुजा धारण कर शीघ्र पलँगसे नीचे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठाकर एक हाथसे उसके केशोंको सँभालकर, कमलके समान मुखको कोमल कमलसी भुजासे पोंछने लगे ॥२६॥ हे परीक्षित् ! आंसू भरे नेत्र और शोकसे ताडित स्तनोंको पोंछ अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीको भुजाओंसे आलिंगन कर ॥ २७ ॥ हँसीसे चलायमान चित्त और कठोर हँसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीको साधु पुरुषोंकी गति, सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समझाने लगे ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे रुक्मिणी ! तुम मुझसे ईर्षा मत करो और यह बात मैं निश्चय जानता हूँ कि मेरे अतिरिक्त तुम और किसीको नहीं जानती हो। हे सुन्दरी ! तुम क्या कहोगी, यह जाननेके लिए मैंने हँसी की थी ॥२९॥ स्नेहके कोपसे फड़के हैं अधर जिसके और चलायमान अरुण कटाक्षसे टेढ़ी भ्रुकुटीवाले मुखकी शोभा देखनेके लिए हँसी की थी ॥ ३० ॥ हे भीरु प्रिये ! अपनी प्राणप्यारीके सङ्ग हँसी करके समय व्यतीत करना गृहस्थोंके घरमें यही लाभ है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जब शांत की, तब रुक्मिणीने "प्यारेने मुझसे हँसी की है" यह बात जानकर त्यागनेके भयको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! लाजभरी मधुर मुसकान और शोभायमान स्निग्ध कटाक्षोंसे सुन्दर मुख देखती हुई रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगी ॥ ३३ ॥ प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि तुम हमारे समान नहीं हो फिर हमारा हाथ क्यों पकड़ा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणी बोली कि, हे कमलदल-

लोचन ! तुम्हारे समान मैं नहीं हूँ, छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है, अपनी महिमांसे आवृत तीनों ब्रह्मादिकोंके ईश्वर आप कहां?और सकाम पुरुषोंने जिसके चरण पकड़े, ऐसी सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, रूपवाली मैं माया कहां, मुझमें और आपमें बड़ा अंतर है ॥३४॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि राजाओंके डरके कारण समुद्रमें आकर रहते हैं, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि हे उरुक्रम ! यह सत्य है, सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण ही राजा हैं, उनके भयसे ही मानो सागरके समान अगाध विषयोंसे अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलतासे प्रकाश करते हो और बलवानोंसे हमने वैर किया यह बात जो आपने कही, वह भी सत्य है क्योंकि विषयमें जिनकी इंद्रियां लग रहीं हैं ऐसे पुरुषोंने तुमसे विरोध किया है, तुम्हारी अप्रीति है और जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि हमको राज्याधिकार नहीं है; उसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती है कि महाअविवेकका स्थान राज्य है; इसलिए तुम्हारे सेवकलोग भीं उसको छोड़ देते हैं फिर आपने छोड़ दिया तो इसमें आश्चर्य क्या है ? ॥३५॥ श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता और स्त्रीके वशमें नहीं हूँ इसके उत्तरमें रुक्मिणीने यह कहा कि तुम्हारे चरणारविन्द मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिलोगोंका आचरण भी पशुतुल्य मनुष्योंकी समझमें नहीं आता यदि तुम्हारा मार्ग जाननेमें न आये तो इसमें क्या आश्चर्य । क्योंकि तुम्हारे अनुवर्ती भक्तोंकी और तुम्हारी चेष्टा अलग है, फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३६ ॥ और निष्किचन पुरुषोंके हम प्रिय हैं और धनवान् पुरुष यह समझकर कि हम दरिद्री हो जायँगे, इस डरके कारण हमारा भजन नहीं करते, यह वार्त्ता जो श्रीकृष्णचन्द्रने कही थी उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि आपसे भिन्न कुछ नहीं; इसलिए तुम निष्किचन हो, दरिद्रतारूपी निष्किचनता तुमसे नहीं बनती है, प्रजा लोगोंसे भेंट लेनेवाले ब्रह्मादिक देवता आपको भेंट देते हैं और जो आपने कहाकि हम निष्किचनोंके प्यारे हैं, और वे मुझको प्रिय हैं, वह भी सत्य है, क्योंकि जिसको किंचित् भी देहाभिमान नहीं है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकोंको आप प्यारे हैं, वे आपके प्रिय हैं और आपने कहा कि धनवान् होकर हमारा भजन नहीं करते यह बात भी सत्य है, क्योंकि धनपात्रताके अभिमानसे अन्धे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जानते, इसलिए वे इंद्रियोंको तृप्त करते हैं आपका भजन कैसे करें ? ॥३७॥ जिनका बराबरका जन्म है,उनसे विवाह और मित्रता होती है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहने लगी कि हे पूर्णस्वरूप ! तुम संपूर्ण पुरुषार्थ और परमानंदरूप हो, सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य तुम्हारी प्राप्तिके लिए सब वस्तु त्याग देते हैं । हे प्रभो ! उन पुरुषोंका और तुम्हारा सेव्य-सेवकभाव है, सुख-दुःखसे व्याकुल परस्पर प्रीतिकी ग्रन्थि बाँधे हुये पामर स्त्री पुरुषोंके योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ और भिक्षुकोंने झूठी बड़ाई की है, यह जो श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था,उसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि सबको अभयदान देकर संन्यासी और मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कहा कि तुमने विना जाने हमें वरा सो ऐसे नहीं है, क्योंकि आपको जिसके लिये सब वस्तु प्रिय लगती है, उस जगत्के आत्मारूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो, इसलिये आपको वरा और भूलकर वरा यह आपका कथन ठीक नहीं, क्योंकि

औरोंकी तो बात ही क्या है ? ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंको भी, कि जिनका, आपकी भ्रुकुटीसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होता है यह विचार उन्हें छोड़ मैंने आपको वरण किया, इस कारण जो आपने मुझपर अविचारताका दोष लगाया, सो ठीक नहीं है ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित् ! अपने अज्ञानको दूर करके और पुरुषोंकी बड़ाईसे क्रोधित हो, श्रीकृष्णचन्द्रसे रुक्मिणी कहने लगी कि गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्ग-धनुषके शब्दसे जरासन्धादिक राजाओंको भगाकर जिस प्रकार सिंह पशुओंको भगाकर अपना बलि लाते हैं, उसी प्रकार आप अपना भागरूप मुझे ले आये, इसलिये उन राजाओंसे डर-कर हम समुद्रमें आकर रहते हैं, यह आपका कहना नहीं बनता ॥४०॥ आपने कहा कि जो हमारे चरणोंमें पड़ते हैं, वे दुःख पाते हैं, वह भी नहीं बनता, हे कमलदललोचन ! तुम्हारे भजनकी इच्छासे राजाओंके मुकुटमणि राजा अंग, पृथु, भरत, ययाति, और गय आदि चक्रवर्ती राजा राज्यको त्यागकर वनको चले गये, तुम्हारा भजन करनेवाले राजाओंको कहां दुःख हुआ है ? किन्तु सुख ही हुआ और वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति हुई है ॥४१॥ और श्रीकृष्णचन्द्रने यह जो कहा था कि समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो, इसके उत्तरमें रुक्मिणी कहती हैं कि साधुओंसे वर्णित जनोंको मोक्षका देनेवाला और लक्ष्मी जिनका सेवन करें ऐसे गुणोंकी खानि तुम्हारे चरणारविन्दको सूँघकर फिर त्याग सके, ऐसी मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है जो सदा मृत्युसे डरनेवाले पुरुषकी सेवा करेगी ? इसलिये मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है॥४२॥हे जगदीश्वर ! आत्मारूप भजन करनेवालोंको इस लोक और परलोकमें कामनाओंके पूर्ण करनेवाले अपने योग्य तुम्हारा ही मैंने सेवन किया है, चाहे अनेक प्रकारकी योनियोंमें मेरा जन्म हो, परंतु उन जन्मोंमें भी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेवाले और भक्तोंको अपनानेवाले तुम्हारे चरणोंकी शरण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अखण्डरूप ! आपने कहा कि बड़े-बड़े वैभववाले राजा आपकी इच्छा करते थे, उन्हें किस लिये छोड़ दिया ? यह आपका कहना असंगत है, क्योंकि आपने जो राजा बताये हैं वे कैसे हैं, कि जो स्त्रियोंके गृहोंके गधेके समान केवल भार उठानेवाले, बैलके तुल्य सर्वदा क्लेश उठानेवाले, श्वानकी नाईं अपमान पानेवाले, बिडालके समान कृपण और क्रूर सेवककी भांति पराधीन हैं । वे तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये, कि जिसके कानमें शंकर और ब्रह्माजीकी सभाओंमें गायी जाती आपकी कथा न आयी हो अर्थात् जिसने तुम्हारे गुण न सुने हों, तो कदाचित् भूल जायँ, परंतु मैंने तो प्रथम ही आपके गुणानुवाद सुन लिये थे ॥४४॥ और जिस स्त्रीने तुम्हारे चरणारविन्दकी सुगंधि नहीं सूँघी हो वह स्त्री जीवित ही मृतक पुरुषको पति मानकर भजे, जो कि बाहर तो चर्म, नख और केश इनसे ढका है और भीतर मांस, हाड़, रुधिर, कीड़े, विष्ठा, कफ और वात पित्तसे भरा है, उसे अपना पति मानकर कौन सेवन करे ? ॥४५॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हम घर और देहमें उदासीन हैं, रुक्मिणीने कहा कि हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करते हो, और मुझमें आसक्त नहीं दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहीं है, तो भी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मेरा स्नेह हो । तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, स्नेह होनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसके उत्तरमें रुक्मिणीने कहा कि, तुम्हारे चरणारविंदोंमें अनुराग होना ही बड़ा लाभ है और जिस समय इस विश्वको बढ़ानेके लिये गुरुको ग्रहण कर मुझे

मायाकी ओर देखोगे, वही बड़ा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने जो-जो बातें कहीं, उन सबका यथायोग्य उत्तर देकर रुक्मिणी बोली कि हे मधुसूदन ! आपने कहा कि अपने समान क्षत्रियका अब भी हाथ पकड़ लो, यह मैं झूठ नहीं मानती, जैसे काशीके राजाकी पुत्री अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका इन तीनों कन्याओंमेंसे अम्बा कन्याकी शाल्व राजासे जैसी प्रीति हुई, उसी प्रकार मेरी प्रीति आपमें हुई है ॥ ४७ ॥ और हे अच्युत ! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीके मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं, ऐसी बहुत कथाएँ हैं, विवेकी पुरुष इस प्रकारकी खोटी स्त्रियोंको अपने घरमें नहीं रखते हैं, यदि रक्खें भी तो इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट जायँ ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे रुक्मिणी ! तुम्हारी बात सुननेके लिये मैंने ऐसी-ऐसी बातें कही थीं और मेरे वचनका जो-जो उत्तर तुमने दिया वह सब सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! हे मंगलरूपिणी ! जिस-जिस वस्तुकी तुम चाहना करती हो वह सब मुझमें एकांत भक्ति होनेसे तुमको प्राप्त ही हैं । हे कल्याणि ! मुक्तिपर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त होंगे ॥ ५० ॥ हे निष्कलंक रुक्मिणी ! तुम्हारा पतिपर प्रेम और पतिव्रतापन हमने भली प्रकार जान लिया, क्योंकि हमने यद्यपि वचन कहकर तुमको चलायमान भी किया, परंतु तो भी तुम्हारी बुद्धि मुझसे चलायमान नहीं हुई ॥५१॥ विषयोंमें आत्मा और मन लगाये जो पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करके स्त्री-पुरुष भोगार्थ सुखके लिये मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित होकर भूल रहे हैं ॥५२॥ हे भामिनी मोक्षसहित सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका दाता मुझे पाकर भी जो विषयोंकी चाहना करते हैं और मेरी चाहना नहीं करते, वे पुरुष अभागे हैं, क्योंकि विषयोंका सुख तो कुत्ते और शूकरोंकी योनिमें भी मिल जाता है, विषयोंमें मन रहनेसे नरक होता है ॥ ५३ ॥ हे घरकी महारानी ! संसारकी छुड़ानेवाली चाहनारहित मनकी वृत्ति जो तूने मुझमें लगायी, यह भली बात है, खोटे अभिप्राय और अपने प्राणोंका भरण-पोषण कर औरको ठगनेवाली स्त्रीके मनकी वृत्ति मुझमें नहीं लगती है॥५४॥ हे प्राणेश्वरी ! सोलह हजार एकसौ आठ महलोंमें तुम्हारे समान प्यार करनेवाली मैं और स्त्री नहीं देखता, क्योंकि विवाहके समय आये हुए राजाओंको त्यागकर मेरी ओर देख पाती लिखकर मेरे पास ब्राह्मणको भेजा ॥ ५५ ॥ युद्धमें तुम्हारे भाईको जीत उसका शिर मूँड़कर विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहमें चौपड़ खेलते-खेलते उसे मार डाला, यह भाईका दुःख हमारे त्यागनेके भयसे तुमने सहन कर लिया और मुझसे कुछ न कहा, ऐसी तुम्हारी बातोंने हमको वश कर लिया है ॥ ५६ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मेरे बुलानेके लिये सबसे छिपाकर दूतको मेरे पास भेजा और जब मुझे आनेमें विलम्ब हुआ तब इस विश्वको शून्य मानकर "और राजा मेरे योग्य नहीं है" यह निश्चय कर शरीर त्यागनेकी इच्छा करने लगी, यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और किसीसे हो सकती है ? हम तुम्हारी क्या प्रशंसा करें ? ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरणकर हास्यकी बातें करके रुक्मिणी आदि रानियोंके साथ रमण करते थे ॥५८॥ सामर्थ्यवान् संपूर्ण लोकोंके गुरु सबका दुःख हरनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकार और रानियोंके महलोंमें भी रहकर गृहस्थाश्रमके धर्म सिखाते थे ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे कृष्णरुक्मिणी संवादवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दोहा-इकसठमें परिवार हरि, वरणों सब सन्तान।
विवाहमें अनिरुद्धके, हनो रुक्मि बलवान्॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी एक-एक रानीने श्रीकृष्णचंद्रके ही समान रूप, गुणवाले दश-दश पुत्र उत्पन्न किये ॥१॥ घरसे कहीं बाहर न जायँ अपने पास ही रहें, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर राजाओंकी पुत्री "श्रीकृष्ण आत्माराम हैं" इस बातको न जान अपना प्यारा मानने लगीं ॥२॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के कमलकोशके समान सुकुमार मुख, बड़ी भुजा, बड़े नेत्र और प्रेमसहित मंद मुसकान, रस-भरी चितवन, मनोहरवाणी इत्यादिकसे मोहित होकर जो स्त्री अपने-अपने अनेक विलासोंसे पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचंद्रका मन मोहित करनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ३ ॥ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षसे जताये अभिप्रायसे मनके हरनेवाले भ्रुकुटीरूप मण्डल प्रेरित जो सुरत संबंधी विचार उनमें प्रगल्भ जो मन्मथ (कामदेव) के बाण और दूसरे भी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय, उनसे यह सोलह हजार एकसौ साठ, स्त्रियाँ भगवान् वासुदेवका मन वश करनेको समर्थ न हुईं॥४॥ ब्रह्मादिक देवता भी जिनके मार्गको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचंद्रको इस प्रकार पति पाकर ये स्त्रियाँ निरंतर बड़े आंनदसे स्नेहभरी हँसनि, चितवन और हास्य चितवनपूर्वक नवीन संगम उस नवीन संगममें बोलना इत्यादि विलाससमूहोंका सेवन करती थीं ॥५॥ यद्यपि एक-एक रानीके संमुख सौ-सौ दासी हाथ जोड़े रहती थीं, परन्तु तो भी सम्मुख जाकर लिवालाना, आसन बिछाना, पूजन करना, चरण धोना, बीरा लगाना, चरण दाबना, पंखा करना, अतर लगाना, पुष्प चढ़ाना, केश सुधारना, शय्या बिछाना, स्नान कराना और भेंट देना इत्यादि यह श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आप ही करती थीं ॥६॥ हे राजन् ! दश-दश पुत्रोंवाली श्रीकृष्ण-चंद्रकी रानियाँ थीं। उनमें आठ पटरानी प्रथम वर्णन कर आये हैं, उनके प्रद्युम्नादि पुत्रोंके नाम तुमसे वर्णन करता हूँ ॥७॥ यथा-प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, बलवान् चारुदेह, सदारु, चारुत भद्रचारु ॥८॥ चारुचंद्र, विचारु और चारु यह दश पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके रुक्मिणीसे उत्पन्न हुए ॥९॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चंद्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु ॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश पुत्र सत्यभामाने उत्पन्न किये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित् ॥११ विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड और क्रतु यह साम्ब आदिसे लेकर श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुणवाले दशपुत्र जाम्बवतीके उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ और वीर, चंद्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, अंकु, शोभायमान, वस और कुंति यह नाग्नजितीके पुत्र उत्पन्न हुए ॥१३॥ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शांति, दर्श, पूर्णमास और इन सबसे छोटा सोमक यह दश पुत्र कालिंदीके हुए ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित इन दश पुत्रोंने लक्ष्मणासे जन्म ग्रहण किया ॥१५॥ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, उन्नाद, महाश, पवन, वह्नि और क्षुधि यह दश पुत्र मित्र-विन्दासे जन्मे ॥ १६ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश पुत्र भद्रा नाम रानीसे उत्पन्न हुए, हे नृपोत्तम परीक्षित् ! यह भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी आठ रानियोंके पुत्रोंका वर्णन किया, अब बलदेवजीकी रानी रेवतीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तादि पुत्र उत्पन्न हुए जैसे रुक्मिणी आदिके पुत्र कहे, इसी प्रकार

और सोलह हजार रानियोंके भी दश-दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ हे राजा परीक्षित् ! भोजकट पुरवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीसे महाबलवान् अनिरुद्ध नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ हे परीक्षित् ! यह जो श्रीकृष्ण चंद्रके पुत्र और उनके पुत्र और नाती करोड़ों हुए और श्रीकृष्णचंद्रसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी सोलह हजार माताएँ हुईं ॥१९॥ राजा परीक्षित्ने कहा कि हे भगवन् ! रुक्मीने अपने वैरीके पुत्रको अपनी कन्या कैसे व्याही वह तो युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे पराजित होकर उनके मारनेका उपाय देख रहा था, हे विद्वन् ! इन दोनों शत्रुओंके बीचमें विवाहका सम्बंध कैसे हुआ, यह विस्तारसहित हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥२०॥ कदाचित् आप कहें कि हम इस बातको क्या जानें तो इसका उत्तर यह है कि योगीश्वर तो भूत, भविष्य, वर्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो उसे भी योगीजन भली प्रकार जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्तिमान् कामदेवके अवतार प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वर लिया, तो वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एक ही रथसे जीत उसे हरण करके ले गये ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचंद्रके तिरस्कारका वैर स्मरण रखता था परंतु तो भी बहनको प्रसन्न करनेके लिये भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि, विशालनेत्रवाली रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीका बलवान् कृतवर्माके पुत्रने पाणिग्रहण किया ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्मी वैर बांध रहा था, परन्तु तो भी अपनी बहनको राजी करनेके लिये श्रीकृष्णके नाती अपने दौहित्र अनिरुद्धको अपनी पोती रोचना नामक कन्या दी । शत्रुके साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है, इस बातको स्वयं रुक्मी जानता था, परन्तु स्नेहके पाशसे बंधकर विवाह कर दिया ॥ २५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, श्रीकृष्ण, बलदेव और साम्ब, प्रद्युम्न आदिको लेकर सब यादव भोजकटपुरको बारातमें गये ॥ २६ ॥ जब विवाह हो चुका, तब कलिंगदेशके राजा आदिको ले घमंडी राजा रुक्मीसे कहने लगे कि हे रुक्मी ! बलदेवजीको जुएमें जीत लो ॥ २७ ॥ हे राजा रुक्मी यह बलदेव पांसेका खेल नहीं जानता, परन्तु इनको खेलनेका व्यसन बड़ा है । यह सुनते ही रुक्मी बलदेवको बुलाकर उनके संग जुवा खेलने लगा ॥ २८ ॥ बलरामजीने वहां प्रथम सौ, फिर हजार इसके पीछे दश हजार रुपयेका दांव लगाया, परन्तु वह दांव रुक्मी ही धांधलबाजी करके जीत गया । उस समय कलिंगदेशका राजा दांत दिखाकर बलदेवजीकी हँसी करके कहने लगा कि—

चौ०—जुवाखेल पांसेकी सार ❀ यह तुम जानो कहा गँवार ॥
जुवा युद्ध गति भूपति जाने ❀ ग्वाल गोप गैयन पहिचाने ॥

तब बलदेवजी उस हँसीको सहन न कर सके ॥२९॥ इसके उपरांत रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दांव लगाया, उसे बलदेवजी जीते, परन्तु उस समय कपट करके "मैंने जीता" इस प्रकार रुक्मी कहने लगा ॥३०॥ जिस प्रकार अमावस व पूर्णमासीको समुद्र क्षोभयुक्त होता है उसी प्रकार श्रीमान् बलदेवजी अत्यंत क्रोधसे क्षुभित हो गये और स्वभावसे ही जिनके अरुण नेत्र हैं ऐसे बलदेवजीने अति क्रोध कर दश करोड़का दांव लगा दिया ॥३१॥ और वास्तवमें बलदेवजी वह दांव जीत गये, तब फिर रुक्मीने कपट करके कहा कि मैं

जीता हूँ, इस विषयमें यह जो सभासद उपस्थित हैं इनसे पूछ लो। इस प्रकार बलदेवजी और रुक्मीका विवाद हो रहा था कि, इतनेमें ही आकाशवाणी हुई कि बलदेवजी जीते हैं और रुक्मीका वचन मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशवाणीका निरादर करके दुष्ट राजाओंका सिखाया रुक्मी महात्मा बलदेवजीकी हँसी करता कालसे प्रेरित होकर यह वचन कहने लगा कि ॥ ३४ ॥ तुम गौओंके चरानेवाले तुम पांसे खेलना नहीं जानते, पांसोंसे और बाणोंसे तो राजा लोग खेलते हैं, आप सरीखे पांसे खेलना क्या जानें? ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित्! जब इस प्रकार रुक्मीने अनादर और राजाओंने हँसी की, तब महाबलवान् बलरामजीने अत्यन्त क्रोधित हो, परिघ उठाकर मङ्गलसभामें रुक्मीका संहार कर दिया और कहा ॥ ३६ ॥

चौ०–करी सगाई बैर न छाँड़ो ❀ हमसे फेर कलहु तुम माँड़ो ॥
मारौं तोहिं अरे अन्यायी ❀ भलो बुरो मानै भौजाई ॥

हे राजन्! जब बलरामजीने सब राजाओंके देखते-देखते रुक्मीको मार डाला, उस समय कलिंग देशका राजा अत्यन्त भयभीत होकर भागा, तब झुंझलाकर बलरामजीने उसे दश ही पगपर पकड़ लिया और जिस दांत को फाड़कर वह हँसा था वह दांत तोड़ दिये ॥३७॥ और राजा भी बलदेवजीके परिघसे पीड़ित हो डरकर भाग गये, जिनके हाथ, जङ्घा और शिर टूट गये थे और रुधिरसे उनका शरीर भीग रहा था ॥३८॥ हे परीक्षित्! जब श्रीकृष्णका साला रुक्मी मारा गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने न तो अच्छा कहा, न बुरा कहा, क्योंकि जो अच्छा कहते तो रुक्मिणी अप्रसन्न होती और बुरा कहते तो बलदेवजी अत्यन्त बुरा मानते, इसलिये कुछ न कहा, चुपचाप रहे ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत दुलहिनके साथ अनिरुद्धजीको रथमें बिठाकर बलरामादि सब यादव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका आश्रय पाकर सब मनोरथ सिद्ध कर भोजकटपुरसे चल द्वारकापुरीमें आये ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धेऽनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

दोहा–बासठवें अध्यायमें, बाणासुर बलवान।
बांध लियो अनिरुद्धको, सो सब कहौं बखान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! भगवान् विष्णुने जब वामनरूप धारण करके राजा बलिसे पृथ्वी मांगी तब सब पृथ्वी जिसने दान कर दी ॥ १ ॥ ऐसे महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें ज्येष्ठ पुत्र भगवान् महादेवजीका अत्यन्त भक्त, सबका मान्य, ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, सत्यसंकल्प, दृढ़व्रत, बाणासुर नामसे प्रसिद्ध था और शोणितनाम रमणीकपुरमें राज्य करता था ॥ २ ॥ ३ ॥ उस बाणासुरके सम्मुख भगवान् महादेवजीकी कृपासे सम्पूर्ण देवता सेवकोंकी भांति खड़े रहते थे। एक समय ताण्डवनृत्यमें हजार भुंजाओंसे बाजे बजाय भोलानाथको बाणासुरने प्रसन्न किया। तब सब प्राणियोंके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी बाणासुरको वर देनेकी इच्छा करने लगे, तब शिवजीसे "मेरे पुरकी

तुम रक्षा करो" यह बाणासुरने वर मांग ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमसे दुर्मद बाणासुर अपने पास रहनेवाले शिवजीके चरणारविंदोंको सूर्यके तेजके समान किरीटसे स्पर्श करके एक समय कहने लगा ॥ ६ ॥ कि हे सब लोकोंके गुरु महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं, तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हो, इसलिये आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ और हे देव ! आपने जो कृपा करके हजार भुजा मुझे दीं, इनका अबतक केवल बोझ ही हुआ है, इसलिये त्रिलोकीमें तुम्हारे विना और कोई मुझे बराबरका युद्ध करनेवाला नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! जब मेरी भुजाओंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं युद्ध करनेके लिये पर्वतोंको तोड़ता-फोड़ता दिग्गजोंके पास गया, परन्तु वह भी मेरे भयसे भीत हो दिशाओंको छोड़कर भाग गये । इस कारण कृपा करके आप मुझसे युद्ध कर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥९॥ हे राजन् ! इस प्रकार बाणासुरका वचन सुन भगवान् महादेवजी अत्यंत क्रोधित होकर कहने लगे कि, हे मूढ़ ! जिस समय मेरी दी हुई ध्वजा तेरे महलपरसे टूट-कर गिर पड़ेगी, उस समय तेरी बराबरीके बलवान्से तेरा युद्ध होगा और तेरा गर्व भी उसी समय चूर्ण हो जायगा ॥ १० ॥ हे परीक्षित् ! जब भगवान् भूतनाथ महादेवजीने इस प्रकार कहा तब कुबुद्धि बाणासुर शिर नवाकर अपने घरको चला गया और अपने बल, बुद्धि, पराक्रमके नाश करनेवाली महादेवजीकी आज्ञाका पैंडा देखने लगा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस बाणासुरकी एक ऊषा नामक कन्या थी, उसके पहले कभी जिसको न देखा और न कभी सुना ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें समागम हुआ ॥ १२ ॥ इसके उपरांत जागनेपर वहां अनिरुद्धको न देख अत्यन्त लज्जित हो, हे कन्त ! तुम कहां गये ? इस प्रकार पुकारती-पुकारती विह्वल होकर सखियोंके बीचमें गिर पड़ी ॥१३॥ तब बाणा-सुरके मन्त्री कुम्भांडकी पुत्री चित्ररेखा आश्चर्य मानकर अपनी प्रिय सखी ऊषासे पूछने लगी ॥१४॥ कि हे सुभ्रु ! हे प्यारी ! हे ऊषे ! तू किसे ढूँढ़ती है और तेरा क्या मनोरथ है ? हे राजकुमारी ! अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर किस प्रकार पति-पति पुकारती फिरती है ? ॥ १५ ॥ इस प्रकार चित्ररेखाका वचन सुनकर ऊषा बोली कि श्यामस्वरूप, कमलके समान नेत्र, पीताम्बर धारण किये, बड़ी भुजा और स्त्रियोंके मनको मोहित करने-वाला ऐसा पुरुष मैंने स्वप्नमें देखा है ॥१६॥ मैं उसी प्रीतमको ढूँढ़ रही हूँ । वह मुझे अध-रामृत पिलाकर मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटककर कहीं चला गया ॥ १७ ॥ यह वचन सुनकर चित्ररेखा बोली कि, हे ऊषा ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, जिस पुरुषने तेरा चित्त चुराया है, यदि वह त्रिलोकीमें कहीं होगा, तो ढूँढ़कर ले आऊँगी, परन्तु उसे बता दे ॥ १८ ॥ इसके उपरांत चित्ररेखा देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण और पन्नग इनके चित्र लिखकर फिर दैत्य, विद्याधर, यक्ष, मनुष्य इन सबके चित्र लिखने लगी ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें भी वृष्णि और वृष्णिमें भी शूरसेन, वसुदेव, राम, कृष्ण और प्रद्युम्नका चित्र लिखा । उसको देखते ही "यह श्वसुर हैं" ऐसा समझकर लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पृथ्वीपति ! ऊषा अनिरुद्धका चित्र देखकर अत्यन्त लाजसे नीचेको मुख किये "मेरा चित्तचोर यही है" ऐसे मुसकाकर सखीसे कहने लगी ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित ! योगकी ज्ञाता चित्ररेखा उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पौत्र जान आकाशमार्गसे होकर कृष्णपालित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहां उस समय अनिरुद्धकुमार पलँगपर

शयन कर रहे थे, उन्हें योगके बलसे उठाकर शोणितपुरमें आई और सखी ऊषाको दर्शन कराया ❋ ॥ २३ ॥ अत्यंत स्वरूपवान् सुन्दर वर अनिरुद्धजीको देख प्रसन्न मुख ऊषा पुरुषोंको देखनेमें न आये इस प्रकार अपने घरमें अनिरुद्धके सङ्ग रमण करने लगी ॥२४॥ और बड़े मोलके वस्त्र, माला, सुगंधि, धूप, दीप, आसन इत्यादि और पीनेकी सामग्री तथा भोजन, भक्ष्य और वचनोंसे उनकी पूजा करने लगी ॥२५॥ अत्यन्त बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊषाने हरी हैं इंद्रियां जिनकी ऐसे अनिरुद्धजीसे मोहित होकर वास करते कितने ही दिन रात बीत गये, परंतु उन्हें कुछ सुधि न हुई ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! यादवोंमें वीर अनिरुद्धजीके भोग करनेसे जिसका कन्यापनका व्रत दूर हो गया तब उस अत्यन्त प्रसन्नमन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहचान लिया और उसी समय बाणासुरसे आकर कहा कि ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार कुलको कलंक लगे ऐसी तुम्हारी कन्याकी कुचेष्टा हमको दीख पड़ती है ॥२८॥ हे समर्थ बाणासुर ! हम लोग तो घरका अखण्ड पहरा देते हैं और राजकुमारी ऊषाकी रक्षा करते हैं, इसे कोई मनुष्य देख भी नहीं सकता, इतनेपर भी कन्याको यह दूषण कहांसे लग गया । उसे हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ इस प्रकार कन्याका दोष सुन अत्यंत दुःखी हो बाणासुरने शीघ्र ही कन्याके घरमें जाकर यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ हे परीक्षित् ! कामदेवका पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर, श्यामस्वरूप पीताम्बर धारण किये, कमलके समान नेत्र, बड़ी भुजा, कानोंमें दीप्तिमान् कुण्डल और केशोंकी कांति व मुसकानपूर्वक चितवनसे शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ और सब मङ्गलरूप प्यारीके साथ पासोंसे खेलता उस प्यारीके अङ्गसंगसे जिसके स्तनोंमें केशर लग रही थी, ऐसी मनोहर जो वसंतऋतुकी मालती है, उसके पुष्पोंकी माला कण्ठमें धारण किये, कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजीको ऊषाके निकट बैठा देखकर बाणासुर अत्यन्त आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शत्रुओंको संग लिये अनेक पैदलोंसहित बाणासुरको मंदिरमें आता देखकर मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेका परिघ उठाकर मारनेके लिए दंड धारण करके कालके समान खड़े हो गये ॥ ३३ ॥ पकड़नेके लिये चारों ओरसे चले आते, सूकरोंके यूथका पालन करनेवाले मुख्य सूकर कुत्तोंको मारता है, उसी प्रकार मारने लगे और मार पड़नेके कारण शिर, हाथ, पांव टूटनेसे वह सिपाही घरमेंसे निकलकर भाग गये ॥ ३४ ॥ राजा बलिका पुत्र बली बाणासुरने क्रोध करके अपनी सेनाको मारते हुये अनिरुद्धकुमारको नागफांससे बांध

❋ शंका—श्रीकृष्णके तेजसे रची हुई द्वारकापुरी जिसके चारों ओर समुद्र, रात-दिन सुदर्शनचक्र घूमता रहे ऐसी अद्भुत द्वारकापुरीमें जो कोई पुरुष कपटवेष धारण करके उस पुरीमें जानेकी इच्छा करना चाहे तो कभी नहीं जा सकता। जो ब्रह्मदेवके बनाये जीव हैं उनको तो सामर्थ्य ही नहीं जो कपट करके भीतर जा सकें, फिर क्या कारण जो चित्ररेखाने रक्षा करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञा नहीं ली । बिना पूछे कपट करके द्वारकामें जाकर सोते हुए अनिरुद्ध कुमारको पलङ्गसहित उठाकर बड़े सुखसे लेकर चली गयी । कोई दूसरा यादव नहीं वह स्वयं श्रीकृष्णके पोतेको ही हरले गयी ?

उत्तर—बाणासुरकी मृत्युका उपाय भगवान्ने विचारकर और बाणकी कन्याके संग अपने पोतेका विवाह विचारकर, सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि द्वारकापुरीमें चित्ररेखा राक्षसी आयेगी । उसको तुम द्वारकाके भीतर जानेसे मत रोकना । एक बार द्वारकासे बाहरको जाय तो चली जाने देना और भीतर से कोई वस्तु बाहरको ले जाय तो ले जाने देना वर्जना मत । ऐसी भगवान्की आज्ञाको मानकर सुदर्शनचक्रने चित्ररेखाको नहीं रोका, इसलिये चित्ररेखा अनिरुद्धको हरकर ले गयी ।

लिया, उस समय अनिरुद्धजीको बाँधा देखकर शोक और खेदसे व्याकुल हो नेत्रोंमें जल भरकर ऊषा रोने लगी ॥ ३५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धेऽनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दोहा–तिरसठमें यादवन अरु, बाणासुरको युद्ध ।
सहसभुजा तेहि काटि हरि, वरो बहुरि अनिरुद्ध ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! अनिरुद्धजीको देखे विना बन्धुबांधवोंको शोच करते वर्षाऋतुके चार महीने व्यतीत हो गये ॥१॥ हे राजन् ! जिस समय सब यदुवंशी शोकसागरमें निमग्न पड़े थे, उसी समय देवर्षि नारदजीने आकर अनिरुद्धके बँधनेका सब समाचार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसे कहा, सुनते ही श्रीकृष्णचंद्र बहुतसे यादवोंको साथ ले बाणासुरके शोणितपुरको गये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनंद और भद्रादि रामकृष्णके आज्ञाकारी मुख्य-मुख्य यादवोंको श्रीकृष्णचन्द्रने सङ्ग ले बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके नगरको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे परीक्षित् ! यादवोंसे अपने पुरके बाग, परकोटे, अटारी, द्वार आदि टूटे देख अत्यंत क्रोधित हो बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाणासुर पुरसे बाहर निकला ॥ ५ ॥ इसके उपरांत अपने भक्त बाणासुरपर विपत् पड़ी जानकर अपने पुत्र स्कंध और बहुतसे भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी इत्यादि साथ ले नंदीश्वरपर चढ़कर कृष्ण बलदेवसे युद्ध करनेके लिये भगवान् महादेवजी रणभूमिमें आकर सुशोभित हुए ॥ ६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! अब वहां परस्पर बड़ा अद्भुत व भयानक जिसको देखते ही रोमांच खड़े हो जायँ, इस प्रकार युद्ध होने लगा–श्रीकृष्णचन्द्र महादेवजीके सम्मुख, प्रद्युम्न स्वामी कार्तिकजीके सम्मुख ॥७॥ कुम्भांड और कूपकर्णका युद्ध बलदेवजीसे होने लगा, सांबका बाणासुरके पुत्रके सङ्ग और बाणासुरका युद्ध सात्यकीके साथ होने लगा ॥८॥ देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, ये सब विमानोंपर चढ़कर युद्ध देखनेकी इच्छासे आये ॥ ९ ॥ उस समय भगवान् भूतेश्वरके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वैताल, विनायक ॥ १० ॥ प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्मांड और ब्रह्मराक्षस, इन सबको शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र पैनी धारके भालोंसे मार-मारकर भगाने लगे ॥११॥ पिनाक धनुषधारी महादेवजीने श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर अलग ही अस्त्र, शस्त्र, चलाने लगे । परंतु आश्चर्यरहित श्रीकृष्णचन्द्रजी उन सब अस्त्र, शस्त्रोंको शांत कर दिया ॥१२॥ श्रीभोलानाथने ब्रह्मास्त्र चलाया, उसे श्रीकृष्णजीने ब्रह्मास्त्रसे शांत कर दिया । इसके उपरांत जब महादेवजीने वायु देवताका अस्त्र चलाया, तब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वत देवताका अस्त्र छोड़ा उस समय पर्वतसे रुककर पवनास्त्र थम गया । इसके पीछे महाक्रोधित हो शिवजीने अग्निदेवताका अस्त्र चलाकर आग लगा दी, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय मेघास्त्र छोड़कर क्षणमात्रमें सब अग्निको शांत कर दिया । फिर भगवान् भूतनाथने अपना पाशुपत अस्त्र चलाया, उसको श्रीकृष्णचन्द्रने अपने नारायणास्त्रसे काट-डाला ॥१३॥ फिर भगवान् वासुदेवने जृम्भणास्त्र चलाया, उससे शिवजी जँभाई लेने लगे ।

इस प्रकार उन्हें मोहित करके बाणासुरकी सेनाको तलवार, गदा और बाणोंसे मारने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! प्रद्युम्नजीके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर स्वामिकार्तिकजीके अंगोंमेंसे रुधिर बहने लगा तब वह समर छोड़ मोरपर चढ़ भाग गये ॥१५॥ कुंभांड और कूपकर्ण मूसलके लगनेसे पृथ्वीपर गिर गये, स्वामीके गिर जानेसे उसकी सम्पूर्ण सेना चारों ओरको भाग गयी ॥१६॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपनी सेनाको जहां-तहां भागते देख बड़ी असहनतासे बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥१७॥ और रणमें बड़े गर्वसे बाणासुरने एक संग पांचसौ धनुष खींच एक-एक धनुषमें दो-दो बाण लगाये ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसी समय बाणासुरके वह पांचसौ धनुष काट डाले, फिर सारथी और घोड़ोंको मार रथको चूर्णकर शङ्खध्वनि की ॥ १९ ॥ उस समय कोटरानाम बाणासुरकी माता अपने बालोंको खोल, नग्न हो, पुत्रके प्राण बचानेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी ❀ ॥ २० ॥

देखत ही प्रभु मूँदे नैना ❀ पीठ दई ताके सुनि बैना ॥

हे राजन् ! नंगी स्त्रीको देखना शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेरकर खड़े हो गये, इस बीचमें जिसका रथ टूट गया, धनुष कट गया, ऐसा बाणासुर रणभूमि छोड़ पुरमें भाग गया ॥२१॥ भूतोंके गण जिस समय भाग गये, तब तीन शिर और तीन पांवका ज्वर दशों दिशाओंको जलाता हुआ शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥२२॥ नारायण देव श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीके ज्वरको आया देखकर अपना शीतज्वर छोड़ा उसके उपरांत शिवजीका ज्वर और भगवान्का ज्वर दोनों परस्पर मिलकर युद्ध करने लगे ॥२३॥ जब विष्णुके ज्वरने शिवजीके ज्वरको बलपूर्वक दबा लिया, तब अत्यन्त पीड़ित होकर पुकारने लगा और अपनी रक्षाके लिये कोई निर्भय स्थान न पाया, तब हाथ जोड़ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगा॥२४॥ ज्वर बोला कि, अनंतशक्ति ब्रह्मादिकोंके ईश्वर, सबके आत्मा, शुद्ध, चैतन्यघन, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण, वेदसे गम्य, शांत मूर्ति, ब्रह्म जो आप हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ काल, दैव, कर्म, जीव स्वभाव, द्रव्य, शरीर, प्राण, अहंकार, विकार, और मन अर्थात् ग्यारह इंद्रियाँ और पञ्चमहाभूत अर्थात् पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वोंका बना यह देह जैसे बीजसे अंकुर और अंकुरसे फिर बीज होता है, इसी प्रकार कर्मोंसे देह, फिर देहसे कर्म फिर कर्मसे देह ऐसे जलकासा प्रवाह चला आता है, बस यही तुम्हारी माया है, तुम उनके निषेधकी अवधि हो, इसलिये मैं आपकी शरण आया हूँ ॥ २६ ॥ यदि कहो कि मैं देवकीका पुत्र हूँ यह मुझसे कैसे बन सकता है ? इसका उत्तर यह है कि आप लीलापूर्वक मत्स्यादि अवतार धारण करके देवताओंका पालन और वर्णाश्रमके धर्मकी रक्षा करते हो और धर्म करनेवाले साधु लोगोंका पालन व हिंसासहित पापमार्गका नाश करते हो, इस कारण

❀ शंका- अपने पुत्र की रक्षा करने के लिये बाणासुर की माता नंगी हो कर श्रीकृष्ण के सामने क्यों खड़ी हो गयी ?

उत्तर- ब्रह्मा ने वरदान दिया था कि, हे कोटरे ! तीन लोक में जो पुरुष हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और चौरासी लक्ष योनि के पुरुषमात्र तुमको नंगी देखेंगे तो उसी समय भस्म हो जायेंगे, केवल एक तेरा पति ही भस्म न होगा और सब जल्दी भस्म होंगे। कोटरा ने ऐसा जान कर श्रीकृष्ण का भस्म करने के लिये सम्मुख खड़ी हुई।

पृथ्वीका बोझ उठानेके लिये तुम्हारा जन्म है ॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न किये दुःसह भयंकर उग्र शीतज्वरसे मैं तपायमान हुआ हूँ, क्योंकि देहधारियोंको तबतक ही ताप है, जबतक आशा बांधकर आपके चरणकमलोंका सेवन न करें ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जब इस प्रकार शिवज्वरने भगवान् वासुदेवकी स्तुति की, तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे तीन शिरके ज्वर ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ और मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह डर निवृत्त हो, परंतु जो पुरुषगण इस संवादका स्मरण करें उनको तू मत व्यापना ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब कहा, तो शिवज्वर श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके चला गया ! इसके उपरांत बाणासुर रथमें चढ़ श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये आया ॥ ३० ॥ हे महाराज ! हजार भुजाओंमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण कर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ निरंतर शस्त्रोंको चलाते बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने छूरीके समान पैनी धारके चक्रसे जैसे माली वृक्षोंको काटता है, उसी प्रकार काट डालीं ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् ! जब बाणासुरकी भुजायें कट गयीं, तो उस समय बाणासुर पर कृपा करने वाले भगवान् भूतनाथ आकर चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥ महादेवजीने कहा कि हे परब्रह्म ! आपके विना जाने इस बाणासुरने युद्ध किया है, इसमें आश्चर्य नहीं, इस कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपे हुए परब्रह्म हो और ज्योति सूर्यादिकोंके तुम प्रकाशक हो, इसलिये किसीके जाननेमें नहीं आते, यदि कहो कि प्रतीति कैसे हो ? इसके उत्तरमें शिवजी कहते हैं कि निर्मल मन, बुद्धि वाले पुरुष आकाशके समान निर्लेप निर्गुण तुम्हें देखते हैं ॥३४॥ निर्गुण अज्ञानकी बात तो एक ओर है, परंतु तुम्हारी लीलाका आश्रय ब्रह्मांड भी जाननेमें नहीं आता। जैसे गूलर फलके भीतरके जीव गूलरके फलको नहीं जानते उसी प्रकार इस अभिप्रायसे ब्रह्मांड-रूप से शिवजी स्तुति करते हैं कि आकाश आपकी नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इन्द्र भुजा, ओषधी रोम, मेघ केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग और धर्म हृदय है । लोकोंकी कल्पनासे विराट् पुरुष तुम हो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे अखण्डरूप ! यह तुम्हारा अवतार धर्मकी रक्षा और जगत्का कल्याण करनेके लिये हुआ है और हम सब लोकपाल आपसे ही रक्षित होकर सब लोकोंका पालन करते हैं ॥३७॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थामें पुरुषके आप कारण हो और शुद्ध हो इसलिये अद्वितीय पुरुष हो और सब विश्वके कारण हो स्वयं कारणरहित हो परंतु तो भी संपूर्ण विषय प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे जो देह धारण किया है, उससे ऐसे ही प्रतीत होते हो ॥३८॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढका हुआ होनेपर भी बादलोंको प्रकाशित करता है और बादलोंके बाहर भी रूपको प्रकाशमान करता है, उसी प्रकार हे भूमन् ! स्वयं प्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढके हुए प्रतीत होनेपर भी सत्त्व, रज, तम–गुण रूप उपाधि और उनके जीवोंको भी प्रकाशित करते हो ॥३९॥ तुम्हारी मायासे मोहित होकर स्त्री, पुत्र और घर आदिमें लगे हुए लोग दुःख-मय संसार सागरमें ऊँच-नीच योनियोंको पाते हैं ॥४०॥ भगवान्की दी हुई मनुष्य देहको पाकर जिसने अपनी इन्द्रियोंको नहीं जीता और जिस पुरुषने तुम्हारे चरणोंका भलीभांति पूजन नहीं किया उस पुरुषको शोच करने योग्य और आत्माका ठगनेवाला समझना चाहिये ॥४१॥

प्यारे पुत्रादिकोंके लिए जो पुरुष प्रियआत्मा आपका त्याग करता है, वह पुरुष मानो अमृत छोड़कर विष पीता है ॥ ४२ ॥ मैं (शिव), ब्रह्मा और देवता निर्मल अन्तःकरणवाले मुनि भी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपका ही भजन करते हैं ॥४३॥ जगत्के उत्पत्ति पालन और नाशके कारण सबमें समान, शांतस्वरूप, हितकारी, आत्मा, ईश्वर, अनन्य और दूसरा जिनके समान बड़ा नहीं, जगत्के आत्मा आश्रयदेव तुम हो, उन्हें संसार त्यागनेके लिए हम भजते हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मेरा अत्यन्त प्रिय और इष्ट भक्त है, इस कारण मैंने इसे अभयदान दिया है, जैसे आपने प्रह्लादपर दयाकी उसी प्रकार इसपर भी दया करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ यह प्रार्थना सुनकर भगवान् वासुदेवने कहा कि, हे भगवन् ! आपने जिस प्रकार कहा मैं वैसे ही आपको प्रसन्न करूँगा, आपने जिस बातका विचार किया है, मैं उसमें भलीभांति सम्मति देता हूँ ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलीका बेटा यह बाणासुर है; इसलिए मारने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दिया है कि जो तेरे वंशमें उत्पन्न होगा, मैं उसको नहीं मारूँगा ॥ ४७ ॥ अभिमान दूर करनेके लिए मैंने इसकी सहस्र भुजायें काटी हैं और जो पृथ्वीपर भारी बोझ हो रहा था उसको भी मैंने उतार दिया ॥ ४८ ॥ कटनेसे इनकी जो चार भुजा शेष रह गयी हैं, वह अजर-अमर होंगी और यह दैत्य बाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदोंमें मुख्य पार्षद होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार अभय पाकर बाणासुरने श्रीकृष्णचंद्रको बारंबार प्रणाम करके ऊषासहित अनिरुद्धको रथमें बैठा कर बिदा कर दिया ॥ ५० ॥ और बाणासुर की दी हुई एक अक्षौहिणी सेना संग लिए सुन्दर वस्त्रालङ्कारोंसे शोभायमान स्त्रीसहित प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्धको आगे कर शिवजीसे अनुमोदन पाकर श्रीकृष्णचन्द्रने वहांसे पयान किया ॥ ५१ ॥ नगरके मनुष्य, सम्बन्धी और ब्राह्मण प्रसन्न हो गये और श्रीकृष्णचन्द्रने शंख, आनक, नगाड़े बजाते तोरण व ध्वजाओंसे शोभायमान मार्गमें जहां छिड़काव हो गया है, ऐसी अपनी नगरी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥५२॥ हे राजन् ! यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णका शिवजीसे युद्ध जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्मरण करेंगे, उनकी कभी हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे लाला शालग्रामवैश्यकृते
दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

दोहा—चौसठमें श्रीकृष्णने, नृगको शाप छुटाय ।
ब्रह्म अंशकी लगनको, सब फल दियो दिखाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि यादवोंके पुत्र विहार करनेके लिए वनको गये ॥ १ ॥ उस वनमें बहुत देरतक क्रीड़ा करते रहे, जब प्याससे पीड़ित हो यादवोंके पुत्रोंने जलको ढूँढ़ा तब विना जलके कुएँमें एक अद्भुत जीव पड़ा देखा ॥२॥ पर्वतके समान करकेटा देख-देख आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त हो यादवोंके बालक उसके निकालनेका यत्न करने लगे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! वे बालक उस करकेटेको चाम और सूतके रस्सोंसे बांधनेपर भी निकालनेको नहीं समर्थ हुए, तब उत्कण्ठायुक्त बालक श्रीकृष्णचन्द्रसे आकर कहने लगे ॥ ४ ॥ तब विश्वके उत्पन्न करनेवाले भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रने वहां आकर लीलापूर्वक ही बायें हाथसे उस करकेटेको निकाल लिया ॥ ५ ॥ उत्तमश्लोक श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ लगते ही वह करकेटाका रूप त्याग तप्त सुवर्णके समान सुन्दर वर्ण, अद्भुत आभूषण और वस्त्र मालाओंको धारण किये, देवस्वरूपको प्राप्त हो गया ॥६॥ मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि उसके करकेटा होनेका कारण जानते भी थे, परन्तु तो भी सबको दिखानेके लिये पूछने लगे कि हे बड़भागी ! सुन्दरस्वरूपवान् आप कौन हो ? मुझे तुम देवताओंमें उत्तम देवता जान पड़ते हो ॥७॥ हे मंगल रूप ! इस योग्य तुम नहीं हो, किस अपराधसे तुम्हें यह करकेटेकी योनि प्राप्त हुई, जो हमसे कहने योग्य हो तो हमारे सम्मुख अपना सब वृत्तांत वर्णन करो ॥८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जब अनन्तमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पूछा तब राजा नृग सूर्यके समान तेजवाले किरीटोंसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहने लगा ॥९॥ राजा नृगने कहा कि, हे समर्थ ! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूँ । जब कभी दानी राजाओंकी बात चली होगी, तो मेरा नाम भी आपके सुननेमें आया होगा ॥ १० ॥ हे नाथ सब प्राणियोंकी बुद्धिके साक्षी और सर्वान्तर्यामी आप हैं, आप क्या नहीं जानते ? और कालसे तुम्हारे ज्ञानका नाश नहीं होता, तो भी आपने जो पूछा है, आपकी आज्ञानुसार मैं वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जितनी पृथ्वीकी रेणुका और जितने आकाशमें तारे अथवा जितनी वर्षाकी बूंदें हैं, उतनी ही गायोंका मैंने दान किया ❋॥१२॥ दूध देनेवाली तरुण अवस्थाशील स्वभाव रूप गुणसे भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय की सुवर्णसे सींग, रूपेसे खुर मढ़े बछड़े साथ और वस्त्र, माला, गहने पहनाकर ऐसी गायें मैंने दान की थीं ॥ १३ ॥ भली प्रकार शोभायमान गुण, शीलयुक्त, दूध विना दुःखित कुटुम्बी पाखण्डरहित आचारवाले, तपस्या करके प्रसिद्ध वेदपाठी, तरुण अवस्थावाले द्विजोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करके दी थीं ॥ १४ ॥ गो, पृथ्वी, सुवर्ण, महल, हाथी-घोड़े इत्यादि दानकर और दासियोंसहित कन्या दान की। तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र और रथोंका दान किया। यज्ञ किये। कुआँ, तालाव, सरोवर बनाये ॥ १५ ॥ ऐसा मैं दानी था, परंतु मुझे एक संकट आकर प्राप्त हुआ वह सुनो, किसी एक अयाचक ब्राह्मणकी गौ भागकर मेरी गायोंमें मिल

❋ शंका- जो वचन श्रीकृष्ण से राजा नृग ने गोदान देने वाले कहे थे, उन वचनों को सुन कर हमारा मन काँपता है, ऐसे मूर्खों के समान राजा नृग ने वचन क्यों कहे ? भला, रेत के कण का क्या प्रमाण ? एक मुट्ठी भर रेत हाथ में ले तो दश-बीस कोटि कण मूठी भर रेत में होंगे, फिर गंगा आदि नदियों में अथवा रेत वाले देश में रेत के सिवाय और दूसरी मृत्तिका ही नहीं, वहाँ कण की क्या गणना है ? फिर तारा भी गणना से हीन हैं, वर्षा की धारा पृथ्वी पर पड़ती है, उसकी भी गिनती नहीं है, ऐसा वचन बड़ा अयोग्य है ?

उत्तर- मेदिनीकोश में सत्रह वें श्लोक से ले कर बयालीस वें श्लोक तक भूमि का और द्वीप आदि का, पर्वतों का नाम लिखा है, 'सिकंता' सप्त द्वीप का नाम लिखा है और 'तारका' बड़ी-बड़ी नदियों का नाम लिखा। 'अदिव' मर्त्यलोक का नाम लिखा है। मर्त्यलोक में भरतखण्ड का नाम भी अदिव है, वर्षधार, पर्वत का नाम लिखा है और राजा नृग भरतखण्ड में वसता था, इसलिये भरतखण्ड की नदियों के, पर्वतों के सात द्वीपों के बहाने से गोदान करने की गिनती श्रीकृष्ण से गुप्त रीति से बतायीं थी, कि सब को प्रकट होने से पुण्य का नाश हो जाता है, पंचमस्कन्ध के उन्नीस वें अध्याय में लिखा है कि मर्त्यलोक में पर्वतों में श्रेष्ठ २७ पर्वत हैं और नदियों में श्रेष्ठ नदियां ४५ हैं और पंचमस्कन्ध के प्रथम अध्याय में लिखा है कि पृथ्वी में सात द्वीप हैं, इसलिये गुप्त कर के श्रीकृष्ण से राजा नृग ने कहा था, महाराज ! जितने भूमि के सिकता कहिये द्वीप हैं, उतनी गायें मैंने दी हैं और भरतखण्ड में जितनी तारका अर्थात् बड़ी-बड़ी नदिंयां है, उतनी गायें मैंने दी हैं और जितने वर्षधार कहिये पर्वत मर्त्यलोक के भरतखण्ड में उतनी गायें ब्राह्मणों को दी हैं। सब गायों की संख्या कितनी हुई, विद्वान् लोग विचार लें, अंक की उलटी रीति से प्रथम सात-७, दूसरे ४५, तीसरे सत्ताईस- सब जोड़ कर २७४५७ सत्ताईस सहस्र चारसौ सत्तावन गायें देने को श्रीकृष्ण से राजा नृग ने कहा था, कुछ रेत के कण, आकाश के तारे, जलवृष्टि कणिका के लिये नहीं कहा था।

गयी, वह गाय विना जाने मैंने ब्राह्मणको दान कर दी ॥ १६ ॥ उस गौका स्वामी गौको ले जाता देखकर "यह गौ मेरी है" इस प्रकार कहने लगा दूसरा ब्राह्मण बोला कि भाई ! यह गौ मुझे राजा नृगने दानमें दी है ॥ १७ ॥ दीनबन्धो ! इस प्रकार आपसमें विवाद कर अपने-अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले दोनों ब्राह्मण मेरे निकट आये । तब जिस ब्राह्मणको गौ दान करके दी थी वह बोला कि, हे राजन् ! इस गायके आप ही दाता हैं और जिसकी गाय थी, वह बोले कि यह क्या दाता है, जो परायी गौका दान करता है। हे भगवन् ! यह बात सुनकर मुझे अत्यन्त भ्रम हुआ॥१८॥इसके उपरांत धर्मसे कष्टित मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे बहुत विनती करके कहा कि, हे महाराज ! इस गौके बदलेमें सुन्दर-सुन्दर एक लाख गौ दूंगा, यह गौ दे दीजिये ॥ १९ ॥ मैं तुम्हारा दास हूँ, मैंने यह नहीं जाना कि यह गौ तुम्हारी है, मेरे ऊपर अनुग्रह करके घोर नरकमें गिरते हुए मेरी रक्षा करो ॥ २० ॥ तब ब्राह्मण बोला कि, हे राजा नृग ! तेरी लाख गौकी मुझे आवश्यकता नहीं है, जो दान करके दी है, वही लूँगा । यह कहकर जिस ब्राह्मणको दी थी, वह उस गौको त्यागकर घरको चला गया ॥ २१ ॥ हे देवदेव ! इसके उपरांत जब मेरा देहान्त हुआ, तब यमदूत आकर यमराजके पास मुझे ले गये । वहां धर्मराजने मुझसे पूंछा कि ॥ २२ ॥ हे राजा नृग ! मैं तुम्हारे दान और धर्मका लोकके प्रकाशकोंमें अन्त नहीं देखता, परंतु यत्किंचित् तुम्हारा पाप भी है और सम्पूर्ण शुभ है, प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा पुण्य ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब धर्मराजने कहा तब 'प्रथम पाप भोगूंगा ऐसा मैंने कहा' उसी समय धर्मराजने आज्ञा दी कि इसको करकेटेकी योनिमें गिरा दो । हे प्रभो ! तब मैंने गिरते ही अपनेको करकेटेके रूपमें देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंके भक्त और दाता तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा अबतक मुझे लग रही थी, क्योंकि आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ था ॥२५॥ हे योगेश्वर ! देवरूप नेत्र द्वारा निर्मल हृदयमें जिनको भावना करें और इंद्रियोंकी जिनमें पहुंच नहीं ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखोंसे अन्धी बुद्धिवाले मुझे कैसे दिखायी दिये, क्योंकि इस संसारमें जिस मनुष्यका संसार छूटनेवाला होता है, उसको ही आपके दर्शन मिलते हैं ॥२६॥ हे देवदेव ! हे जगत्के नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे इंद्रियोंके प्रेरक ! हे पवित्र यशस्वी ! हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अखण्डरूप ! अविनाशी ! ॥२७॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्ग जाऊँ, मुझे आज्ञा दो और जहां कहीं मैं रहूँ वहां मेरा चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा रहे ॥२८॥ आप सब कार्योंके उत्पन्न करनेवाले, विश्वके कर्त्ता और विकाररहित हो, अनन्त महाशक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणियोंके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा आनन्दरूप, वेदोंके कहे जो यज्ञादिक कर्म और स्मृतियोंके कहे जो कुँआ, बावली, तालाब इत्यादि कर्मोंके फलदाता आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजा नृग इस प्रकार कह श्रीकृष्णचन्द्रजीकी परिक्रमा दे अपने मुकुटसे उनके चरणोंको स्पर्श कर, आज्ञा ले सब प्राणियोंके देखते-देखते विमानपर बैठकर स्वर्गको चला गया ॥३०॥ ब्राह्मणोंके भक्त, धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र क्षत्रियोंकी शिक्षाके लिये अपने कुटुम्बी यादवोंसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ कि देखो अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंको भी ब्रह्म अंश नहीं पचता और अपनेको ईश्वर माननेवाले राजाओंकी तो बात ही क्या है ? ॥३२॥ मैं विषको हलाहल नहीं मानता, क्योंकि उसके दूर करनेकी औषधी है, परन्तु ब्रह्म अंश विषसे भी अधिक विष है और इस पृथ्वीमें ब्रह्म अंशके दूर करनेका कोई उपाय

नहीं है ॥ ३३ ॥ विष तो केवल खानेवालेको ही मारता है और अग्नि भी जलसे शांत हो जाती है, वं अग्निके जलानेमें जड़ बाकी रह जाती है, परंतु ब्रह्मअंशरूप लकड़ीमेंसे उत्पन्न हुई अग्नि मूलसहित कुलको भस्म कर डालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूरी आज्ञा लिये विना उसका धन खाया जाय तो तीन पीढ़ीको नरकमें गिराता है और हठसे वा राजा आदिकी सहायतासे भक्षण किया जाय तो दश प्रथम और दश पीछेकी पीढ़ियोंको और एक अपनी, इस प्रकार इक्कीस पीढ़ीको नरकमें डालता है ॥३५॥ इसलिये ब्राह्मणका पूजन ही करे, जो कि लक्ष्मीसे अन्धे हुए राजा हैं, वे अपना नरकमें गिरना नहीं देखते और जो पुरुष ब्रह्म अंशपर मन-ललचाते हैं, वे नरकमें जानेकी इच्छा करते हैं ॥३६॥ कुटुम्बी उदारजीविका हर जानेसे वे ब्राह्मण रुदन करते हैं, उनके नेत्रोंसे आंसुओंकी बूंद गिरकर जितनी पृथ्वीकी रेणुका भीजती हैं, उतने वर्षतक ब्राह्मण धन हरण करनेवाले निरंकुश राजा और उनके मन्त्री तथा प्रधान टहलुए कुम्भीपाक नरकमें गिरते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जो पुरुष अपनी दान की हुई अथवा और की दी हुई ब्राह्मणोंकी जीविका हरते हैं, वे पुरुष साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाका कीड़ा होते हैं ॥ ३९ ॥ जिस राजाके घरमें ब्राह्मणका धन आता है, उस धनके लोभसे राजा अल्प आयुष्यवाले पराजयको प्राप्त और राज्यसे भ्रष्ट होकर मनुष्यको भय देनेवाले सर्प हो जाते हैं ॥ ४० ॥ हे मित्र ! जो ब्राह्मण अपराध करे, मारता ही जाये और गालियाँ भी बहुत दे ऐसे ब्राह्मणसे भी द्रोह करना उचित नहीं, बरन् उसको नित्य प्रति नमस्कार करना चाहिये ❃ ॥४१॥ जैसे सावधान होकर समय-समयपर ब्राह्मणोंको मैं नमस्कार करता हूँ, उसी प्रकार तुम भी नमस्कार करो और जो कोई मेरी इस आज्ञाका उल्लंघन करेगा, वह पुरुष मुझसे दण्ड पायेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिराया जाता है, इस बातको कोई मिथ्या मत समझना, क्योंकि जैसे विना जाने नृग राजाने ब्राह्मणकी गाय यद्यपि ब्राह्मणको ही दान कर दी थी, परंतु तो भी नरकमें गिरा, इसी प्रकार और भी जो ब्रह्म अंश लेते हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ४३ ॥

चौ०-विप्रन मानैं सो मोहिं मानै ❃ विप्रन अरु मोहिं भिन्न न जानै ॥
विप्रन दिया फेरि जो लेहीं ❃ ताको दण्ड दूत यम देहीं ॥

---

* दृष्टांत—एक राजा परदेसी ब्राह्मण जो द्वारपर आता उसे लाख रुपया दिया करते थे। तो एक दरिद्री ब्राह्मणकी स्त्रीने यह सुनकर अपने पतिको इस राजाके नगरमें भेजा। वह चले, राजा शिकार खेलकर आ रहे थे, मार्ग में ब्राह्मणसे भेंट हुई। राजाने कहा कि महाराज! आप कहाँ से आये और कहाँ जाओगे? ब्राह्मणने कुछ उत्तर न दिया। तब राजाने प्रार्थना कर चरण पकड़कर पूछा कि क्या काम है? कहो तो, तब यह बोले कि हम पंडित हैं और काशीजीसे आये हैं, इस राजाके शिरपर पनही मार लाख रुपये ले जायेंगे। राजाने कहा कि ब्राह्मण बुरे, जो लाख रुपये ले जायें और पनही मारें। सो महलोंमें जाकर ड्योढ़ीवालोंसे कहा कि किसी ब्राह्मणको भीतर मत आने दो। अब उस पंडितजीकी यहाँतक दशा हुई कि थाली कटोरा बेचकर खा गये, परंतु भीतर न घुस सके, तब फिर लौटकर अपने घर जाकर सब समाचार सुनाये। यह राजा वैष्णव था और कृष्ण, बलदेवका पूजन करता था, एक दिन अकस्मात् बलदेवजी सिंहासनपरसे गिर पड़े, यह देख राजा अत्यन्त भयभीत हुआ। उसी समय ब्राह्मणोंको बुलाकर पूछा कि क्या उत्पात होगा कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे, परंतु यथार्थ उत्तर कोई न दे सका। तब राजाने ढंढोरा पिटवाया कि जो समाधान करेगा, उसे बड़ा द्रव्य मिलेगा, इसके उपरांत फिर उस ब्राह्मणकी स्त्रीने प्रार्थना की, तब वह ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देनेको आये और बोले कि राजा? तू कुछ मत डर, कुछ उत्पात नहीं होगा, जगन्नाथजी गिरते तो उत्पात होनेकी संभावना थी और बलदेवजी तो नित्य वारुणी पिये उन्मत्त रहते हैं, इनके गिरनेका क्या आश्चर्य है। तब राजाने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको लाख रुपये दे दिये और कहा कि ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकना, वह पनही मारकर ही द्रव्य लेते हैं, यदि यह ब्राह्मण न होता तो मेरे प्रश्नका उत्तर कौन देता?

सब अपराध विप्रको सहहू ❀ मत कोई अंश विप्रको लहहू ॥
मन सकल्प कियो जिन राखो ❀ सत्य वचन विप्रनसों भाखो ॥
जो विप्रनसन ईर्षा करहीं ❀ रौरव नरक कल्प शत परहीं ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनंदन ! सब लोगोंको पवित्र करनेवाले मुकुन्द भगवान् इस प्रकार द्वारकावासी यदुवंशियोंको समझाकर अपने मंदिरमें चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

दोहा-पैंसठमें बलरामने, वृन्दावनमें आय।
रास रचो यमुना निकट, सबको ताप मिटाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! एक समय भगवान् बलदेवजी अपने सुहृदोंके देखनेके लिये रथमें चढ़कर गोकुलको गये ॥१॥ और बहुत दिनोंसे आशा लगाये हुए गोप-गोपियोंसे मिले। इसके उपरांत बलदेवजीने पिता-माताको प्रणाम किया; तब उन्होंने इनको आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न जगदीश्वर ! छोटे भाई कृष्णसहित तुम हमारी बहुत कालतक रक्षा करो, इस प्रकार गोदमें बिठाकर छातीसे लगा,नेत्रोंके आंसुओंसे बलदेव-जीको भिजाने लगे ॥३॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपोंको प्रणाम करके छोटे गोपोंने इनको प्रणाम किया, इस प्रकार बलदेवजी जैसी जिसकी अवस्था और जैसी जिससे मित्रता; जैसा जिससे सम्बन्ध था ॥४॥ उसी प्रकार उनको प्राप्त होकर हास्य और हाथसे पकड़ गले से मिलकर जब बलरामजी विश्राम ले चुके, तब सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूछी ॥ ५ ॥ उस समय सब गोप, कि जिन्होंने कमललोचन श्रीकृष्णके लिये सब विषय त्याग दिये हैं, वे सब बलदेवजीके निकट आकर चारों ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गदवचनसे अपने बंधु यादवोंकी कुशल पूछने लगे ॥ ६ ॥ कि हे राम ! हमारे सब बंधु तो कुशल हैं ? स्त्री और पुत्र सहित तुम हमारी भी कभी सुध करते हो ? ॥ ७ ॥ यह बड़ी प्रसन्नताकी बात हुई जो महादुराचारी पापी कंस मारा गया और यह भी बहुत अच्छा हुआ जो सुहृद लोग बंदीखानेसे छूट गये, फिर वैरियोंका नाश कर समुद्रमें द्वारकापुरी बसायी, यह भी अत्यंत मंगलकी बात है ॥ ८ ॥ बलरामजीके दर्शनसे गोपियाँ प्रसन्न हो हँसकर पूछने लगीं कि जिनको नगरकी स्त्रियाँ अत्यंत प्यारी हैं, वे श्रीकृष्ण तो अच्छे हैं ? ॥९॥ वे श्रीकृष्ण कभी अपने बंधु-बांधवोंकी भी सुधि करते हैं ? क्या अपनी माताका दर्शन करनेको एक बार वे यहां आयेंगे ? और बड़ी भुजावाले श्रीकृष्ण चन्द्र कभी हमारी भी सुधि करते हैं ?॥१०॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! जिनके कारण हमने दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहन और सुहृद यह सब त्याग दिये ॥११॥ वे हम सबको त्याग शीघ्र ही चले गये और स्नेह तोड़ दिया, परन्तु उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री भरोसा न करे ॥ १२ ॥ हमें अचम्भा होता है कि कृतघ्न और जिसका मन स्थिर नहीं, ऐसे श्रीकृष्णके कहनेको बुद्धिमान् द्वारकाकी स्त्रियाँ किस प्रकार स्वीकार करती होंगी ? परन्तु हम कल्पना करती हैं कि चित्र-विचित्र कथावाले श्रीकृ-ष्णचंद्रके शोभायमान हास्यपूर्वक भौंहें चलानेसे बढ़ा जो कामदेव उससे आतुर हो स्वीकार

करती होंगी ❋ ॥ १३ ॥ और गोपियाँ बोलीं कि उनकी बातसे हमें क्या काम ? और बात क्यों नहीं कहती, क्योंकि हमारे विना जैसे उनका समय व्यतीत होता है, उसी प्रकार उनके विना हमारा काल भी व्यतीत होता है, उनका सुखसे बीतता है हमारा दुःखसे, अंतर इतना ही है ॥१४॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी हँसनि-बोलनि, सुन्दर चितवन, शोभायमान चलना और प्रेमपूर्वक आलिंगन इन बातोंका स्मरण कर सब गोपियाँ रोने लगीं ॥ १५ ॥

दोहा–करि करि सुधि श्रीकृष्णकी, व्याकुल भई ब्रजबाल ।
कब आवेंगे कृष्णजी, सुखदायक नँदलाल ॥
कहँ श्याम अति निठुरता, करी हमारे संग ।
कहँ यह दुःख दिखावनो, कहां रास-रसरंग ॥

अनेक प्रकारसे समझानेमें निपुण, भगवान् संकर्षण श्रीकृष्णचन्द्रके सन्देशको कहकर समझाने लगे ॥१६॥ इसके उपरांत भगवान् बलदेवजीने उस ब्रजमें गोपियोंको अनेक प्रकार आनंद देते चैत्र और वैशाख दो महीने तक वास किया ॥ १७ ॥ पूर्ण चन्द्रमाकी कलासे शोभायमान कुमुदिनियोंकी सुगंधयुक्त पवन जहां आ रही थी, इस प्रकार शोभायमान यमुनाजीके बागमें स्त्रियोंको संग लेकर बलदेवजी रमण करने लगे ॥१८॥ उस समय वरुण जीकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षोंकी खोतरियोंमेंसे गिरकर सब वनको अपनी गन्धसे सुगंधित करने लगी ॥१९॥ पवनसे प्राप्त मधुधाराकी सुगंध सूंघकर बलदेवजी वहां आकर स्त्रियोंके साथ मदिरापान करने लगे ॥२०॥ स्त्री जिनके चरित्र गान कर रहीं है और हलायुध धारण करनेवाले मतवाले अमलसे विह्वल नेत्र हो बलदेवजी अपने मनमें विचार करने लगे ॥ २१ ॥ वनमाला और कानोंमें कुण्डल पहने मतवाले वैजयन्तीमाला धारण किये इससे अधिक शोभायमान और पसीनेकी बिंदुसे सुंदर मंद-मंद हास्ययुक्त, कमलरूप मुख धारण किये ॥ २२ ॥ जलक्रीड़ा करनेके लिये सामर्थ्यवान् बलदेवजी यमुनाको बुलाने लगे " ये मतवाले हैं" इसलिये बलदेवजीके वचनका अनादर करके यमुना नहीं आयी, तब भगवान् बलदेवजीने अत्यंत क्रोधित हो, हलके अग्रभागसे खींच लिया॥२३॥ और बोले कि रे पापिनि, मैंने तुझे बुलाया और तू न आयी, इसलिये स्वच्छन्द फिरनेवाली तुझको मैं हलके अग्रभागसे खण्डित कर दूँगा ❋ ॥ २४ ॥ हे परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलदेवजीने कहा तब यमुना

❋ दृष्टान्त- एक लाला ने बिल्ली पाली थी और उसको नित्यप्रति दूध-मलाई खिलाते थे। एक दिन लाला कार्यवश बिल्ली को दोरी से खम्भे में बांध गांव को गये और उसका स्मरण न रहा और कई दिन लग गये। बिल्ली का भूख के कारण प्राणान्त होने लगा, इसके पीछे घर में कहीं दाल्लान के कोने में एक रुई का गाला धरा था, सो बिल्ली ने जाना कि; यह घी का लोदा है, उछल कर बिल्ली उस रुई के गाले पर जाय, परन्तु वह हाथ न आये, 'अब लिया, अब लिया' इसी आशा में अठारह दिन व्यतीत हो गये। इधर लाला अठारह दिनों के उपरान्त आप आ कर कहने लगे कि, हरे राम! बिल्ली की तो इतिश्री हो गयी होगी। ताला खोल कर देखे, तो अभी जीवित है, यह विचार ज्योंही उसकी डोरी खोली, वह झपट कर रुई के गाले पर गिरी, परन्तु वह तो रुई थी, इसलिये निराश हो झट बिल्ली के प्राण निकल गये। इसलिये ''जिये आशा मरै निराशा'' यह बात सत्य है।

❋ शंका- शेषावतार बलदेवजी का मुनियों ने वर्णन किया है, बलदेवजी ने बड़े कामी की नाई यमुना को क्यों खींचा? मर्यादा को भी नष्ट किया, यह बड़ी शंका है।

उत्तर- श्रीकृष्ण ने जब यमुना से कालियानाग को बाहर निकाल दिया तब यमुना बहुत अभिमान करने लगी। बिना ही वर्षा के मर्यादा को छोड़ कर चढ़ने लगी, मुनिजन मथुरा को और वृन्दावन को आते-जाते, तो रात-दिन भरी पाते, नौका को चलने नहीं दे; इस प्रकार यमुना को उन्मत्त जान कर जलक्रीड़ा के मिष कर के बलदेवजी ने यमुना को दण्ड दिया।

अत्यन्त भयभीत और चकित हो उनके चरणोंमें गिरकर कहने लगी ॥२५॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं तुम्हारा पुरुषार्थ नहीं जानती, जिन आपके अंश शेषजीने संपूर्ण पृथ्वीको सहस्र फणोंमेंसे एक फणपर धारणकर रखा है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मैं आपके श्रेष्ठ प्रभावको नहीं जानती, परंतु आपकी शरण आयी हूँ, आप क्या मुझे छोड़नेके योग्य हो ? ॥ २७ ॥ हे कुरुवंशावतंस परीक्षित् ! जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब प्रसन्न होकर भगवान् बलदेवजीने यमुनाजीको छोड़ दिया और जिस प्रकार हाथी-हथिनियोंके संग विहार करता है उसी प्रकार यमुनामें गोपियोंके साथ विहार करने लगे॥२८॥ इच्छापूर्वक विहार करके जब बलदेवजी जलमेंसे बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने इनको दो नीलाम्बरी वस्त्र, अमूल्य आभूषण और शोभायमान माला दी ॥२९॥ बलरामजी भी नीलवस्त्र पहन और सुवर्णकी माला धारण कर, अच्छी प्रकार चंदन लगाकर इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! महावीर्यवान् भगवान् बलरामजीने यमुनाजीको खींचा, इस कारण वह स्थान अब तक अनंतपराक्रम बलरामजीके पराक्रमको जताता है, क्योंकि अब भी वैसे ही देखनेमें आता है ॥ ३१ ॥ व्रजकी स्त्रियोंके संग विलास करके चलायमान चित्त बलदेवजीको व्रजमें रमण करते एक रात्रिके समान संपूर्ण रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

दोहा-छासठ कासी जाय हरि, पौंड्रकनृपको मार ।
मित्र सुदक्षिण सहित सब, हनो तासु परिवार ॥

इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! जब बलरामजी नन्दरायके व्रजमें आये तब अज्ञानी करूषदेशके राजा पौंड्रकने "मैं वासुदेव हूँ" इस प्रकार मनमें विचार कर श्रीकृष्णचन्द्रके पास दूत भेजा ॥१॥ आप जगतपति भगवान् वासुदेव प्रकट हुए हो ऐसे मूर्ख मनुष्योंकी प्रशंसासे उत्साह दिलानेपर उसने अपने आपको वासुदेव समझ लिया॥२॥ अचिन्त्य मार्गवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास द्वारकापुरीमें अज्ञानी पौंड्रकने दूत भेजा, जैसे खेलके बालक एक बालकको राजा बना देता है और वह अपनेको राजा मानता है, उसी प्रकार अपने आपको पौंड्रक वासुदेव मानने लगा ॥३॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णचन्द्रको दूत सभामें बैठा देखकर राजा पौंड्रकका सन्देशा कहने लगा ॥४॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये मैं एक ही वासुदेव उत्पन्न हुआ हूँ, दूसरा नहीं है, इस कारण तूने जो अपना मिथ्या नाम वासुदेव धर रखा है, उसे त्याग दे॥५॥हे यादवमूढ़ ! तूने मेरे चिह्न गदा पद्मादि जो धारण कर रखे हैं, उन्हें शीघ्रही त्यागकर मेरी शरणमें आ और जो उन्हें त्याग न दे और मेरी शरण न आवे तो मुझसे युद्ध करनेके लिये तैयारी कर ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार मन्दबुद्धि पौंड्रकका सन्देशा सुन उग्रसेनादि सब सभासद इस बातको असत्य जानकर हँसने लगे ॥ ७ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर दूतसे कहने लगे कि हे मूर्ख ! कृत्रिम सुदर्शनादि चिह्नोंसे तू अपनी ऐसी बड़ाई करता है, उन चिह्नोंको मैं तुझपरसे छुड़ा दूँगा ॥ ८ ॥ हे अज्ञानी ! जिस समय तू अपने मुखको ढककर और काक,

गृध्र, बगलोंसे घिरकर मरकर सोयेगा, उस समय तू कुत्तोंकी शरण लेगा अर्थात् वे तुझको भक्षण करेंगे ॥ ९ ॥ उस समय जो श्रीकृष्णचन्द्रने अनादर करके कहा, उसी प्रकार दूतने अपने स्वामी मिथ्या वासुदेवसे आकर सब कहा और श्रीकृष्णचन्द्र भी रथमें चढ़कर काशीपुरीको गये, क्योंकि उस समय पौंड्रक भी अपने मित्र काशीनरेशके यहां आया था, इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र भी वहां पहुँचे ॥१०॥ हे राजा परीक्षित् ! उस समय महारथी पौंड्रक भी श्रीकृष्णचन्द्रके युद्धका उद्यम जान, दो अक्षौहिणी सेना संग लेकर शीघ्र ही काशीपुरीसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ उस पौंड्रकका मित्र काशीनरेश मित्रकी सहायता करनेके लिये पीछेसे आया, तब तीन अक्षौहिणी सेना संग लिये पौंड्रकको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देखा ॥ १२ ॥ जो शंख, चक्र, तलवार, गदा, धनुष, भृगुलता आदि चिह्नयुक्त और कौस्तुभमणि धारण किये वनमालासे देदीप्यमान ॥ १३ ॥ रेशमी पीली धोती, उपरना पहने, गरुड़ध्वज बड़े मोलका मुकुट और आभूषण पहने, मकराकृत कुण्डलोंसे प्रकाशमान है ❀ ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जैसे रंगभूमिमें वेष बनाकर नट आता है, उसी प्रकार अपने समान वेष बनाये मिथ्या वासुदेवको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगे, क्योंकि नकलीने ज्योंकी त्यों नकल उतारी थी ॥ १५ ॥ इसके उपरांत शत्रुलोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर त्रिशूल, गदा, बेड़े, बर्छी, गुर्ज, नेजा, तलवार, पटा, बाण, आदि अस्त्र चलाने लगे ॥ १६ ॥ जैसे प्रलयाग्नि जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज इन चार प्रकारके प्राणियोंको पीड़ा देती है, उसी प्रकार भगवान् वासुदेव मिथ्यावासुदेव और काशीनरेश व उनके हाथी, घोड़े प्यादे इत्यादि सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेनाको गदा, तलवार, चक्र और बाण आदिसे पीड़ा देने लगे ॥ १७ ॥ हे महाराज ! चक्रसे कटे हुए रथ, घोड़े, हाथी और प्यादे जिसमें पड़े, वह भूमि उस समय भगवान् भूतनाथकी क्रीड़ाभूमिके समान भयंकर लगने लगी, जिसको देखकर वीर पुरुषोंके हृदयमें अति आनन्द प्राप्त हुआ ॥१८॥ सेना मारने के उपरांत शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र क्रोधित होकर पौंड्रकसे कहने लगे कि हे पापिष्ठ ! जो तूने दूतसे कहलाया था, वह शस्त्र अब तुझपर ही छोड़ता हूँ ॥ १९ ॥ अरे अज्ञानी ! जो तूने हमारा मिथ्या नाम वासुदेव रख लिया है यह तेरा नाम शीघ्र ही छूट जायगा और यदि तेरे सम्मुख युद्ध न करूँ तो तेरी शरण लूंगा ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तिरस्कार कर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले बाणोंसे पौंड्रकका रथ तोड़ जिस प्रकार देवराज इन्द्र अपने वज्रसे पर्वतका शिखर काटते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथ्यावासुदेव पौंड्रकका शिर काट डाला ॥२१॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! काशीनरेशका बाणोंसे शिर उखाड़ काशीपुरीमें ऐसे पटक दिया कि जिस प्रकार कमलकोशको पवन पटक देता है ॥२२॥ इस प्रकार मित्रसहित मिथ्यावासुदेवको मार सिद्धोंसे गायी हुई अपनी कीर्तिको श्रवण करते हुए भगवान् वासुदेव द्वारकापुरीमें आये ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! सदा भगवान्का ध्यान करनेके कारण कट गये हैं सब बन्धन जिसके, ऐसा वह मिथ्यावासुदेव पौंड्रक श्रीकृष्ण

* शंका—योगियोंको बड़े दुःखसे प्राप्त होने योग्य जो भगवान् वासुदेवका रूप उस रूपको पौंड्रक नाम राजा क्यों प्राप्त हुआ ?

उत्तर—पूर्वजन्ममें पौंड्रक नाम राजाने भगवान्का बड़ा भारी तप किया था, तब भगवान् प्रसन्न होकर वर देनेको आये। तब उसने यह वरदान माँगा कि आपका स्वरूप बनानेकी बुद्धि मुझको दीजिये और आपके ही हाथसे मेरी मृत्यु हो तब भगवान्ने यह वरदान दिया, इसलिये पौंड्रकने भगवान्का रूप बनाया था।

चन्द्रका रूप धारण किये तद्रूप हो गया ॥२४॥ हे महाराज ! काशीके राजद्वारपर कुण्डलों सहित पड़े शिरको देखकर यह क्या है ? किसका शिर है ? इस प्रकार मनुष्य सन्देह करने लगे ॥२५॥ हे कुरुकुलके शोभारूप परीक्षित् ! पीछे काशीपुरीके राजाका शिर जानकर रानी, पुत्र, भाई और पुरवासी 'हे नाथ ! हे नाथ ! हम मरे' इस प्रकार कहकर रुदन करने लगे । इस पर एक दृष्टांत है ❀ ॥२६॥ काशीनरेशका सुदक्षिण नाम पुत्र अपने पिताके मरनेसे अत्यंत शोकाकुल हो "पिताके मारनेवाले कृष्णको मारकर पिताका ऋण चुकाऊँगा" ॥ २७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उपाध्यायों सहित सुदक्षिण परमसमाधि लगाकर भगवान् महादेवजीका पूजन करने लगा ॥२८॥ विशेषकरके मुक्त भगवान् भूतेश्वर प्रसन्न होकर "सुदक्षिण ! वर मांग" इस प्रकार कहने लगे, तब सुदक्षिणने "पिताके मारनेवालेके मारनेका उपाय बताओ" यह वर मांगा ॥२९॥ तब भगवान् भोलानाथ बोले कि, तू ब्राह्मणोंके संग ऋत्विक्के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्निका मारणकी विधिसे पूजन कर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे सब मनोरथको पूर्ण करेगा ॥३०॥ परंतु यह प्रयोग ब्राह्मणकी भक्तिसे रहित पुरुषपर चलायेगा, तो तेरा संकल्प सिद्ध होगा, अर्थात् श्रीकृष्णपर चलायेगा तो उलटा पड़ेगा, क्योंकि वह तो ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले और उनके अत्यंत प्रिय हैं, इस प्रकार आज्ञा पाकर नियम ग्रहण कर सुदक्षिण श्रीकृष्णकी घात और उनके मारनेके लिए जैसे शिवजीने आज्ञा दी थी उसी प्रकार करने लगा ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! तब कुण्डमेंसे अत्यन्त भयानक मूर्तिमान् अग्नि निकला, जिसकी तप्त ताम्रके समान शिखा और दाढी मूछें थीं, नेत्र और मुखसे अंगारे उगलता था ॥३२॥ जिसका मुख, दाढ़ और बड़ी तीक्ष्ण भ्रुकुटी दण्डसे विकराल हैं, इस प्रकार अपनी जीभसे होठोंको चाटता, नग्न और देदीप्यमान त्रिशूलको घुमाता ॥३३॥ बड़े तालके समान लम्बे पांवोंसे पृथ्वीको कम्पायमान और दशों दिशाओंको चलाता, भूत-प्रेतोंको संग लिए वह अग्नि द्वारकापुरीमें पहुँची ॥३४॥ वनके जलनेसे मृग जैसा त्रास पाते हैं ऐसी कृत्याग्निको देखकर उसी प्रकार सब द्वारकावासी लोग त्रास पाने लगे ॥ ३५ ॥ और वे सब भयभीत हो सभामें पासोंसे खेलते श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर कहने लगे, कि हे त्रिलोकीनाथ ! अग्निसे सब पुरी भस्म हुई जाती है, इसकी रक्षा करो ॥३६॥ मनुष्योंकी अधिक व्याकुलता सुन और अपने पुरवासियोंकी घबड़ाहट देखकर, शरणागतोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्र हँसकर "भय मत करो, मैं रक्षा करूँगा" इस प्रकार कहने लगे ॥ ३७ ॥ सबके भीतर-बाहरके देखने वाले सामर्थ्यवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे श्रीमहादेवजीकी कृत्याग्नि जान उसका नाश कर-

---

❀ दृष्टांत––एक बनियेंने देखादेखी अपनी दण्डी तोलनी छोड़ दी और चोरोंके साथ रह कमर बांध चोरी करने लगा। अपने मनमें विचार किया कि भला रोजगार है, घडीभरमें ही हजारोंका माल मिल जाता है। कहीं किसी चोरोंके सङ्कूमल (सेंध) दे भीतर घुसे तो जाग हो गयी। राजाके सिपाही दौड़ पड़े। वह चोर तो सङ्कके [illegible] रफूचक्कर हो गये। परंतु इस बनियेंसे न भागा गया, तब निकट ही एक तालाबमें तलवार डाल वह बनियाँ जलमें घुसा, अब सिपाहियोंको चोर तो मिले नहीं और प्यास लगी ती वह तालाबके निकट आये वहाँ लालाको देखकर पकड़ा कि तुम यहाँ कैसे आये ! बनियाँ बोला कि महाराज ! मैं शौचके लिये यहाँ आया था, चोरोंको देख डरकर तालाबमें घुस गया, फिर आपसे डरा कि कहीं चोर जानकर मुझे भी न पकड़ [illegible] और चोरोंको मैंने पहचान लिया है, जिनके नाम भी आपको बतलाता हूँ परसा, सेहू, रामसहा, फकीरा, ऊधा, लल्ला, बांकेशंकर, सिपाहीलाल, ज्ञानी, बाबूसिंह, मुन्नालाल, चोखे गौरी और मक्खन इत्यादि पचास आदमियोंके नाम लिखाकर सब को पकड़वा दिया और अब बनियेंपर भी गंगाराम घूमें, इसलिये अपना छोड़कर पराया काम नहीं करना चाहिये, देखो पराया काम करनेसे पौंड्रक मारा गया।

नेके लिये समीप ही खड़े हुए चक्रसे आज्ञा करने लगे ॥३८॥ करोड़ सूर्यके समान तेजस्वी प्रलयकालकी अग्निके तुल्य कांतिमान् अपने तेजसे आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वीको प्रकाशमान करता भगवान्‌का अस्त्र सुदर्शनचक्र उस अग्निको पीड़ा देने लगा ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रके अस्त्रके तेजसे प्रतिहत और भग्नमुख होकर वह अग्नि पीछेको लौट गयी और काशीमें आकर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजों सहित सुदक्षिणको जलाने लगी क्योंकि अपना किया व्यभिचार है, इसका यही स्वभाव है कि जो शत्रुपर चल जाय तो चल जाय, नहीं तो जो चलाये उसको ही भस्म करे, वह सुद-क्षिणको क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥४०॥ उस अग्निके पीछे-पीछे आकर श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रने मश्चान सहित सभा, हवेली, दूकान पुरके दरवाजे और खजाने सहित अटारी (कोठे), घोड़े, अन्न इनकी शाला और काशीपुरीको क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥ ४१ ॥ सरलकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका सुदर्शनचक्र सम्पूर्ण काशीको भस्मकर फिर निकट आकर खड़ा हो गया ॥४२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत परीक्षित् ! उत्तम श्लोक भग-वान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधान होकर श्रवण करते हैं अथवा औरको श्रवण कराते हैं वे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे पौंड्रकादिवधवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

दोहा–सरसठमें बलरामजी, रैवत गिरिपर जाय ।
नारिन सँग क्रीड़ा करत, हनो द्विविद कपिराय ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! अद्भुतकर्मा अनन्त अप्रमेय बलदेवजीने जो-जो चरित्र किये उनके सुननेकी फिर मेरी अभिलाषा है, कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! नरकासुरका मित्र, सुग्रीवका मंत्री और मयंदका भ्राता बड़ा पराक्रमी कोई वानर द्विविद नामसे प्रसिद्ध था ❋ ॥ २ ॥ अपने मित्र नरका-सुरका ऋण चुकानेके लिये इस बंदरने पुर, ग्राम, खानि, खिरक, छपरोंका और देशोंका नाश कर दिया ॥३॥ कभी वह बन्दर पर्वतोंको उठाकर उनसे देशोंको चकनाचूर कर देता था और विशेष करके आनर्त्तदेशोंको महाकष्ट देने लगा, क्योंकि नरकासुरके मारनेवाले श्रीकृष्ण वहीं विराजते थे ॥ ४ ॥ दश हजार हाथीके बलवाला द्विविद बंदर समुद्रके बीचमें खड़ा होकर भुजाओंसे जलको उछालता समुद्रके तटपर जो देश थे, उनको डुबाने लगा ॥५॥ वह दुष्ट वानर बड़े-बड़े ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वृक्षोंको तोड़, मल, मूत्र करके

❋ शंका- द्विविद नाम वानर श्रीकृष्ण का बड़ा प्यारा था, तव [illegible] वानर तो त्रेता में स्वर्ग को चले गए और द्विविद को श्रीराघवजी स्वर्ग क्यों नहीं ले गये ?

उत्तर- रामचन्द्र और रावण का युद्ध होता था, उस समय अर्द्धरात्रि थी, द्विविद नामक वानर रामचन्द्र से बिना पूछे अपनी सेना ले कर रावण के मंदिर में घुस गया और बहुत सी रावण की रानियों को पकड़ कर नंगी कर दिया और मारा भी। कुछ देर पीछे श्रीमर्यादापुरुषोत्तम जो श्रीरघुनाथजी थे, उनको यह खोटा कर्म द्विविद ने किया, ऐसा जान पड़ा, तब उसी समय श्रीरघुनाथजी ने अपनी सेना से उसको निकाल दिया। द्विविद ने पीछे से अपने मोक्ष होने के लिये श्रीरघुनाथजी से विनय किया कि तब रामचन्द्रजी ने कहा- द्वापर में तेरी मुक्ति होगी, शेषजी तुझको द्वापर में मारेंगे, तब तेरी मुक्ति होगी, इसलिये द्विविद को बलदेवजी ने मारा और त्रेता में स्वर्ग को नहीं गया।

यज्ञकी अग्निको दूषित करने लगा ॥ ६ ॥ महाघमण्डी वह बन्दर स्त्री और पुरुषोंको पकड़-पकड़कर पर्वतोंकी गुफा व कंदराओंमें रखकर जैसे भ्रमरी कीड़ोंको मूँद देती है, उसी प्रकार मूँद देता था॥७॥इस प्रकार वह बन्दर देशोंमें उपद्रव करता और कुलकी स्त्रियोंको दोष लगाता हुआ मनोहर गीत सुनकर रैवत नाम पर्वतपर चला गया ॥ ८ ॥ वहां जाकर यादवोंके पालन करनेवाले, कमलकी माला धारण किये, सुन्दर अंगवाले स्त्रियोंके बीचमें बैठे बलरामजीको देखा ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर गान करते, मदसे विह्वल नेत्र, मतवाले हाथियोंके समान शरीरसे प्रकाशमान हैं॥१०॥दुष्ट शाखामृग बन्दर वृक्षकी शाखाओंपर चढ़कर उनको हिलाता हुआ आपको दिखाकर किचिर शब्द करने लगा ॥११॥ उस बन्दरकी धृष्टता देख, स्वभावसे चञ्चल,हास्यप्रिय,बलदेवजीके संगकी स्त्रियाँ भी हँसने लगीं॥१२॥वह बन्दर भ्रुकुटी चढ़ाकर सामने ही घुड़ककर स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाकर बलदेवजीके देखते ही स्त्रियोंकी अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोधित होकर उस बंदरको पत्थर मारा, परंतु वह धूर्त बंदर पत्थरको बचाकर मदिराके कलशको ॥ १४ ॥ लेकर हँसकर बलदेवजीको क्रोध उत्पन्न कराकर अवज्ञा करने लगा, इसके पीछे वह धृष्ट बन्दर मदिराके कलशको फोड़ स्त्रियोंके वस्त्रोंको खींचकर फाड़ने लगा। बड़ा बलवान् मदसे उद्धत बंदर बलदेवजीकी कदर्थना करके दुःख देने लगा ॥ १५ ॥ उस बंदरकी अनम्रता देख और उसका किया देशोंमें उपद्रव देख अत्यन्त क्रोधित हो बलदेवजीने उस बैरीको मारनेके लिये अपने हाथमें हल, मूसल ग्रहण किया ॥१६॥ हे राजन् ! उस बड़े पराक्रमी बंदरने भी हाथसे शालवृक्षको उखाड़ और शीघ्रतासे निकट आकर उस वृक्षकी चोट भगवान् बलरामजीके माथेमें मारी ॥१७॥ पर्वतके समान माथेपर पड़ते हुए शालवृक्षको भगवान् बलरामजीने बलपूर्वक पकड़ लिया और अपने मूसलको घुमाकर उस बंदरको मारा ॥१८॥ मूसलसे उस बंदरका शिर फूट गया, तब जलप्रवाहके समान रुधिरकी धार बहने लगी, जिससे वह गेरू निकलते पर्वतके समान शोभायमान होने लगा और उस प्रहारको कुछ न विचारकर उस बंदरने ॥ १९ ॥ अत्यन्त क्रोधसे फिर बलपूर्वक और वृक्षको उखाड़ उसके सब पत्तोंको छुड़ाकर बलदेवजीको मारा, बलदेवजीने उसी समय उस वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, इसके उपरांत इस बन्दरने और वृक्षको उखाड़ महावीर्यवान् बलदेवजीके ऊपर प्रहार किया, परंतु बलदेवजीने उसके भी सौ खण्ड कर दिये इस प्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करके बारम्बार जब वृक्ष कट गये तब यह चारों ओरसे वृक्षोंको उखाड़कर निर्वृक्ष वन करने लगा ॥ २० ॥ २१ ॥ इसके उपरांत असहनतासे वह बन्दर महात्मा बलदेवजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, तब मूसलधारी बलदेवजीने लीलापूर्वक ही बन्दरके वर्षाये पत्थरोंको चूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥ बन्दरोंके स्वामी इस बन्दरने तालवृक्षके समान बड़ी भुजाओंकी मुट्ठी बांध, रोहिणीके पुत्र बलरामजीके पास जाकर उनकी छातीमें एक घूसा मारा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यादवोंके इंद्र बलरामजी भी हल मूसलको छोड़ और अत्यन्त क्रोधित होकर भुजाओंसे उसके कण्ठको मर्दन करने लगे, उस समय वह बन्दर रुधिरको वमन करता हुआ पृथ्वीमें गिरकर मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ हे कुरुशार्दूल ! जिस समय वह बन्दर गिरा तब जैसे जलमें नाव कांपती है, उसी प्रकार टंक और वृक्षोंसहित वह पर्वत कांपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता, सिद्ध, मुनीश्वर, फूलोंकी

वर्षा कर 'जय शब्द और नमः शब्द और भले भले' शब्द करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जगत्के नाश करनेवाले बन्दरको मार और जनोंसे स्तुतिको प्राप्त होकर भगवान् बलदेवजी अपनी पुरी द्वारकामें आये ॥ २७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

दोहा–अड़सठमाहिं साम्बको, कौरव कीन्हों बन्द ।
हलधर गजपुर उलटकर, आये सुत निरद्वन्द ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! युद्धमें जीतनेवाला जाम्बवतीका पुत्र साम्ब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जब स्वयंवरमेंसे हर लाया उस समय सम्पूर्ण कौरव क्रोधित होकर कहने लगे कि यह बालक बड़ा अनम्र है क्योंकि हमारा अनादर करके इच्छा न करती हुई हमारी कन्याको बलात्कार हरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ इसलिये इस अनम्र बालकको पकड़कर बांध लो, यादव हमारा क्या करेंगे, क्योंकि वह गो हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं और हमारी ही दी हुई पृथ्वीका भोग करते हैं ॥ ३ ॥ यदि इस बालकको बँधा सुनकर जो यहां यादव आयेंगे, तो जैसे प्राणायाम करनेपर इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं, उसी प्रकार गर्व भञ्जन होनेपर शांतिको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार भीष्मजीकी सम्मतिसे कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन ये बांधनेका उपाय करने लगे ॥ ५ ॥ महारथी साम्ब पीछे आते हुये धृतराष्ट्रके छः अनुयायियोंको देखकर सुन्दर धनुष हाथमें ले सिंहके समान अकेला ही खड़ा हुआ ॥ ६ ॥ इसके उपरांत कर्णादि धनुषधारी वीर क्रोधमें भर साम्बको पकड़नेके लिये "खड़ा रह, खड़ा रह" इस प्रकार कहते हुए निकट आकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र साम्बके जब कौरवोंने बाण मारे तब वह क्षुद्र पशुओंके पराक्रमको सिंह जैसे सहन नहीं करता है उसी प्रकार साम्ब उनका बल नहीं सह सके ॥ ८ ॥ इसके पीछे वीर सांबने मनोहर धनुष चढ़ाकर कर्णादिक छः वीरोंको छः बाणोंसे एक सङ्ग बींध डाला ॥ ९ ॥ चार बाणोंसे रथके चारों घोड़ोंको और एक बाणसे रथवान् बींध डाला, तब बड़े-बड़े धनुषधारी छः रथी सांबके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ उन कौरवोंमेंसे चार तो सांबके चारों घोड़ोंको और एक ने रथवान्को मारा, एकने धनुषको तोड़ दिया। इस प्रकार मिलकर सांबको विरथ करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! कौरववीर युद्धमें बालक सांबको विरथ कर उन्हें बांध जीतकर अपनी कन्या ले अपने पुरमें चले गये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! देवर्षि नारदजीके मुखसे सांबको बँधा सुन यादव अत्यन्त क्रोधित हो, राजा उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे लड़नेका उद्यम करने लगे ॥ १३ ॥ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले बलदेवजी, कौरव और यादवोंका विरोध न हो, यह विचार कवच पहन, हथियार बांध, यादवोंको समझाकर ॥ १४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान रथमें बैठ, ब्राह्मण और कुलवृद्ध पुरुषोंको सङ्ग लेकर जैसे ग्रहोंसहित चन्द्रमा जाता है, उसी प्रकार हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५ ॥ हे महाराज ! महाबलवान् बलरामजीने हस्तिनापुरमें पहुँच और पुरके बाहर बगीचेमें ठहरकर कौरवोंके अभिप्राय जाननेके लिये धृतराष्ट्रके पास

उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ उद्धवजीने अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रको प्रणाम कर भीष्मजी और बाह्लीक सहित द्रोणाचार्य व दुर्योधनको विधिपूर्वक प्रणाम करके "बलदेवजी आये हैं" यह कहा ॥ १७ ॥ अत्यन्त हितकारी बलरामजीको आया हुआ सुन सब कौरव अति प्रसन्न हो उद्धवजीका पूजन कर और भेंट हाथमें ले-ले भगवान् बलरामजीके सम्मुख गये ॥ १८ ॥ और संपूर्ण कौरवोंने यथायोग्य बलदेवजीसे मिलकर गौ और धन दिया और कौरवोंमें बलरामजीके प्रभावको जाननेवाले इन्हें शिर नवाकर प्रणाम करने लगे ॥ १९ ॥ समस्त बन्धु-बांधवोंकी कुशल श्रवण कर, परस्पर कुशल-क्षेम पूछ, इसके पीछे जिनके सुननेसे व्याकुलता उत्पन्न हो ऐसा वचन बलरामजी कहने लगे ॥ २० ॥ बलरामजीने कहा कि सामर्थ्यवान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो तुम्हें आज्ञा की है, उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण कर शीघ्र उसका पालन करो ॥२१॥ राजा उग्रसेनने यह कहा है कि तुम बहुत जनोंने जो अधर्म कर उस धर्मात्मा बालकको बांध लिया है, यह तुम्हारा अपराध भाइयोंकी परस्पर एकता रहे विरोध न हो, इसलिये हमने सहन कर लिया, अब तुम शीघ्र सांबको लाकर हमें अर्पण करो ॥२२॥ इस प्रकार पराक्रम, शूरता, बलयुक्त और अपने सामर्थ्यके समान बलरामजीके वचन सुन अत्यन्त कुपित होकर कौरव कहने लगे ॥२३॥ कि अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है देखो ! कालकी गति बड़ी दुरत्यय है; जो मुकुटके सेवा करने योग्य मस्तकपर जूती अपना अधिकार करना चाहती है ॥२४॥ इनके यहांसे जबसे पृथाको ब्याहकर लाये तबसे ही यादवोंसे संबन्ध हुआ और हमने ही पलंगपर सुला, संग बिठा, भोजन करा, राज्यसिंहासन दे यादवोंको अपने समान कर लिया है ॥२५॥ चँमर, पंखा, श्वेत छत्र, किरीट, आसन और शय्या इत्यादि हमारी दी हुई वस्तु यादवलोग भोग करते हैं ॥२६॥ जैसे कोई सर्पोंको दूध पिलाता है और वह पिलानेवालेको ही काटते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हमारे साथ वर्त्ताव किया, ऐसे यादव राज्यकी वस्तु छत्र, चामरादिसे परिपूर्ण हो और हमारी ही प्रसन्नतासे वृद्धिको प्राप्त हुए अब हमको ही आज्ञा करते हैं, बड़े कष्टकी बात है कि इन्हें लज्जा भी नहीं आती, इसलिये यादव बड़े निर्लज्ज हैं ॥२७॥ भीष्म, द्रोण और अर्जुन आदि कौरवोंकी न दी हुई वस्तु क्या इंद्र भी ले सकता है ? कभी नहीं, जिस प्रकार सिंहकी वस्तु उसके दिये विना भेड़ नहीं ग्रहण कर सकती ॥२८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार जन्मबन्धु और लक्ष्मी मदोन्मत्त वह असभ्य कौरव बलरामजीसे दुर्वचन कहकर हस्तिनापुरको चले गये ॥२९॥ कौरवोंकी दुष्टता देख और न कहने योग्य वचन सुन अत्यन्त क्रोधित हो देखनेमें न आये इस प्रकार बलरामजी वारंवार हँसकर कहने लगे ॥ ३० ॥ कि अनेक प्रकारके मदसे मर्यादारहित असाधु और निश्चय ही शांति नहीं चाहते,-पशु जैसे लाठीसे ही शांत होते हैं उसी प्रकार दुष्टोंके शांत करनेका उपाय दण्ड ही है ॥ ३१ ॥ अत्यन्त क्रोधी यादवोंको धीरे-धीरे समझाकर और क्रोधभरे श्रीकृष्णको समझाकर इन कौरवोंका मिलाप करानेके लिये मैं यहां आया हूँ ॥३२॥ और यह मन्दबुद्धि कलहप्रिय, दुष्ट, अभिमानी कौरवोंने मेरा अपमान करके मुझे निन्दित वचन कहे ॥३३॥ भोज, वृष्णि और अंधक कुलके ईश्वर, उग्रसेनकी आज्ञा को इन्द्रादि बड़े-बड़े लोकपाल भी मानते हैं, सो क्या वे कौरवोंको आज्ञा करनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रने देवराज इन्द्रकी सभाको पांवोंसे खूंद और देवताओंका कल्पवृक्ष लाकर अपने महलके बगीचेमें लगाया, वे क्या समर्थ नहीं

हैं ? ॥ ३५ ॥ सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी लक्ष्मी साक्षात् जिनके चरणारविंदोंका सेवन करें, वे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र क्या राजाओंकी वस्तुके योग्य नहीं हैं ? ॥ ३६ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदोंकी रज सब लोगोंका पालन करनेवाले ब्रह्मादिक अपने मुकुटयुक्त माथेपर धारण करते हैं और जो गंगा तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाली हैं, जिनके अंशके अंश ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी और हम संपूर्ण बहुत दिनों तक चरणारविंदोंकी रज माथेपर धारण करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख राजसिंहासन क्या पदार्थ है ? ॥३७॥ कौरवोंने पृथ्वीके खण्ड कर दिये हैं, उसका यादव भोग करते हैं और हम पांवकी जूती और कौरव शिर ठहरा ॥३८॥ अहो ऐश्वर्यसे मतवालोंको समान अभिमानी कौरवोंके कर्कश टेढे वचनोंको सुनकर दण्डका देनेवाला कौन पुरुष सह सकेगा ? ॥३९॥ इसलिये अब कौरवोंसे रहित पृथ्वी करूंगा। इस प्रकार भगवान् बलदेवजी मनमें निश्चय कर हल हाथमें ले मानो त्रिलोंकीको भस्म कर देंगे ऐसे अत्यन्त क्रोधित हो खड़े हो गये ॥४०॥ असहनतासे बलदेवजीने हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको उखाड़कर नाश करनेके लिये गंगाजीकी ओरको खींचा ॥ ४१ ॥ नौकाके समान भ्रमण करके गङ्गाजीमें गिरते नगरको देख अत्यन्त भ्रमित हो कौरव लक्ष्मणासहित साम्बको आगे कर हाथ जोड़ कुटुम्बसहित जीवनकी इच्छा करके सामर्थ्यवान् भगवान् बलरामजीकी शरणमें आये ॥४२॥४३॥ और आकर कहने लगे कि हे राम ! हे सबके आश्रय ! हम तुम्हारा प्रभाव नहीं जानते थे इसलिये हमारे ऊपर तुम क्षमा करने योग्य हो ॥ ४४ ॥ स्थिति, उत्त्पत्ति और नाश इनके तुम निराश्रय कारण हो। हे ईश ! लोक तुम्हारी लीला करनेका खिलौना है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! हे सहस्रमूर्द्धन् ! तुम इस भूमण्डलको लीलापूर्वक ही मस्तकपर धारण करते हो और अन्तसमय सब विश्वको उदरमें धरकर शेषशय्यापर शयन करते हो, इसलिये आप अद्वितीय ब्रह्म हो ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! सत्त्वगुणी तुम्हारा क्रोध सबको शिक्षा देनेके लिये है, कुछ द्वेष और मत्सरतार्थ नहीं। हे राम ! विश्वकी स्थिति और पालन करना कोपका तात्पर्य है ॥ ४७ ॥ हे संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा ! हे सम्पूर्ण शक्तिके धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। हे विश्वके धारण करनेवाले ! हम आपकी शरण आये हैं ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उद्वेगयुक्त शरण आये कौरवोंने कि जिनका नगर कम्पित हो रहा था, जब इस प्रकारसे भगवान् बलरामजीको प्रसन्न किया, तब बलरामजीने प्रसन्न होकर उनको "भय मत करो" यह अभय दान दिया ॥ ४९ ॥ इसके उपरांत राजा दुर्योधनने अपनी कन्याके दहेजमें साठ-साठ वर्षकी अवस्थाके बारह सहस्र हाथी और बारह हजार घोड़े दिये॥५०॥ हे राजन्! सुवर्णके साजसे शोभायमान, सूर्यके समान चमचमाहट ऐसे छः हजार रथ दिये और पुत्रीपर प्यार अधिक होनेके कारण दुर्योधनने धुकधुकी कण्ठमें पहने हजार दासी दीं ॥ ५१ ॥ यादवश्रेष्ठ बलदेवजीने संपूर्ण दहेज ग्रहण कर और बेटा-बहूको सँग ले कौरवोंका अभिवादन ग्रहण कर वहांसे प्रस्थान किया ॥ ५२ ॥ हे नृप ! सम्पूर्ण कौरवोंसे बिदा हो हलधारी बलदेवजी अपने पुरमें आकर स्नेह भरे चित्तसे सब बन्धु-बान्धवोंसे मिल, उत्तम यादवोंकी सभामें बैठ कौरवोंने जो-जो बातें की थीं वह सब कहने लगे ॥ ५३ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस कारण अबतक

हस्तिनापुर बलरामजीके पराक्रमकी सूचना कराता हुआ दक्षिण दिशाकी ओरसे गंगाजीमें झुका हुआ दिखाई देता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे हस्तिनापुरकर्षण–संकर्षणविजयवर्णनं नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दोहा–उनहत्तरवें देखकर, घर घर कृष्णविहार।
अति विस्मित भये देवऋषि, पुनि सबमिटो विकार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे पाण्डुनंदन परीक्षित् ! नरकासुरका वधकर अकेले भगवान्ने बहुत स्त्रियोंके साथ विवाह किया यह बात सुन देखनेकी इच्छासे देवर्षि नारद द्वारिकापुरीमें आये ॥१॥ नारदजी विचार करने लगे कि बड़े आश्चर्यकी बात है, कि एक देहसे एक संग अलग-अलग घरोंमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका श्रीकृष्णचन्द्रने एक ही साथ पाणिग्रहण किया॥२॥ इस प्रकार उत्कण्ठासे नारदजी द्वारकापुरीमें आये, जिस द्वारकापुरीमें फूली फुलवारी और बागमें पक्षी तथा भौंरोंके झुण्ड गुंजार रहे थे ॥३॥ फूले हुए इन्दीवर, अम्भोज, कल्हार, कुमुद और उत्पलोंसे सरोवर व्याप्त थे, उनमें उच्च स्वरसे हंस, सारस बोल रहे थे, उनका शोर हो रहा था ॥ ४ ॥ स्फटिकमणि और महामणियोंसे प्रकाशमान सुवर्णके रत्नोंकी सामग्रीसे युक्त नौ लाख महल बन रहे थे ॥५॥ अलग-अलग राजमार्ग और गली, कूचे, बाजार, शाला सभा और देवता लोगोंके मंदिर बन रहे थे, उनसे वह पुरी अत्यन्त शोभायमान लगती थी, मार्ग, आंगन, गली और दहेलियोंमें छिड़काव हो रहा था। छोटी-छोटी पताका और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंके फहरानेसे वहां धूप नहीं आती थी ॥६॥ इस द्वारका पुरीमें सम्पूर्ण लोकपालोंसे पूजित श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तःपुरकी रचना में विश्वकर्मांने अपनी सम्पूर्ण चतुराई दिखाई थी ॥७॥ इस प्रकार सोलह हजार महलोंसे शोभायमान अंतःपुरसे श्रीकृष्णचन्द्रकी रानीके एक भवनमें देवर्षि नारदजी गये ॥ ८ ॥ वह भवन कैसा है जहां मूँगोंके खम्भ लग रहे थे और वैदूर्य मणियोंके फलकोत्तम अर्थात् खम्भ धरनेकी चौकियां बन रही थीं, इंद्रनीलमणियोंकी भीतें और अत्यन्त शोभायमान नीलमणिकी भूमि बन रही थी ॥ ९ ॥ मोतियोंकी झालर जिनमें लग्रीं, ऐसे विश्वकर्मांके बनाये चँदोवेसे वह भवन अधिक शोभायमान था, मणियोंसे शोभायमान हाथीदांतकी चौकी और पलंग बिछ रहे थे, उनकी अलग ही शोभा हो रही थी ॥१०॥ धुकधुकी कण्ठमें पहने, सुन्दर वस्त्र धारे दासियोंसे शोभायमान, जामा, पगड़ी, पटका और मणियोंके कुण्डलोंको पहने पुरुषोंसे शोभायमान था ॥११॥ हे राजा परीक्षित् ! रत्नोंके दीपकोंकी पंक्ति लग रही थीं, उनके प्रकाशसे उस भवनमें अन्धकार नहीं था और घरोंके भीतर अगरकी धूपका धुआं जाली झरोखोंमें होकर निकल रहा था, उसे देख बादल आये जान मोर शब्द करके भवनके चित्र-विचित्र छज्जोंके ऊपर नृत्य कर रहे थे ॥१२॥ उस महलमें रूप, गुण, अवस्थामें अपने समान गहना पहने सहस्र दासियोंके संग सदा सुवर्णकी दण्डीका चँवर, पंखा लिये रुक्मिणी यादवपति श्रीकृष्णके ऊपर चँवर कर रही थीं, इस प्रकार नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ १३ ॥ सब धर्मके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने नारदजीको देख, पलँगपरसे शीघ्र उठ किरीटयुक्त शोभायमान शिरसे चरणोंमें नमस्कार कर हाथ जोड़ उन्हें अपने आसनपर बैठाया ॥ १४ ॥ जग-

त्के अतिशय गुरु साधुओंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि नारदजीके चरण धो, चरणामृत अपने मस्तकपर चढ़ाया, जिन श्रीकृष्णका चरणोदक गंगा सबको पवित्र करती हैं, उनमें ब्रह्मण्यदेव यह गुणयुक्त नाम ज्योंका त्यों बनता है ॥१५॥ नरके सखा, ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारायण नारदजीका शास्त्रोक्त विधिपूर्वक पूजन कर अमृतके तुल्य प्रमाणीभूत मधुर वाणीसे कहने लगे कि हे नारदजी ! आपके आनेसे बड़ा ही मंगल हुआ। हे समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारा क्या पूजन करें ? यह कहने लगे ॥ १६ ॥ नारदजी बोले कि हे समर्थ भगवन् ! हे उरुगाय ! आप सब जीवोंसे मित्रता रखते हो और दुष्टोंको दण्ड देते हो, यह आपमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि जगत्की स्थिति और रक्षा सहित कल्याण करनेके लिए अपनी इच्छानुसार अवतार लेते हो, यह मैं भली-भांति जानता हूँ, कि दुष्टोंको दंड और साधुओंका सत्कार करना, यही आपका मुख्य कार्य है ॥ १७ ॥ मनुष्योंको मोक्ष देनेवाले और बड़े ज्ञानी, ब्रह्मादिक देवता जिनका हृदयमें ध्यान धरते हैं जो संसाररूपी कूपमें पड़े जीवोंको निकालनेके आश्रयभूत आपके चरणारविन्दोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, अब ऐसी कृपा करो कि, 'मुझे सदा आपका स्मरण बना रहे और आपके चरणारविंदोंका ध्यान करता हुआ सुखसे विचरूँ' ॥१८॥ हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार कह नारदजी योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमाया जाननेके लिए श्रीकृष्णचन्द्रकी और रानियोंके महलमें गये ॥ १९ ॥ उस महलमें भी प्यारी सत्यभामाके संग और उद्धवजीके सङ्ग चौपड़ खेलते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा। इनको देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र परम भक्तिपूर्वक उठकर आसन बिछा और अर्घ्य देकर पूजन करने लगे ॥ २० ॥ "आप कब आये" इस प्रकार अज्ञानीके समान श्रीभगवान् नारदजीसे पूछने लगे। पूर्ण स्वरूप आपका हम अपूर्ण क्या पूजन करें ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! हम पूर्ण नहीं हैं, परंतु तो भी हमसे कुछ आज्ञा कर हमारा जन्म सार्थक करो। यह सुन नारदजी आश्चर्य मानकर वहांसे और मंदिरमें गये ॥ २२ ॥ उस महलमें भी छोटे-छोटे बालकोंको खिलाते श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखा। इसके उपरांत और महलोंमें आकर देखें तो स्नानका उपाय कर रहे हैं॥ २३ ॥ किसी महलमें श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्निहोत्र कर रहे हैं, किसीमें पञ्चयज्ञ कर रहे हैं और किसी महलमें ब्राह्मणोंको भोजन जिमाकर उनका बचा हुआ प्रसाद आप भोजन कर रहे हैं, इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥ २४ ॥ किसी महलमें सन्ध्या कर रहे हैं, किसीमें मौन होकर गायत्री जप कर रहे हैं, एक महलमें ढाल-तलवार लेकर फिर रहे हैं इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ ॥ २५ ॥ किसी महलमें घोड़े, हाथी, रथपर चढ़कर फिर रहे हैं, और किसी महलमें शयन कर रहे हैं, बन्दीजन स्तुति कर रहे हैं, इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका नारदजीने दर्शन किया ॥२६॥ किसी महलमें उद्धवादिक मंत्रियोंके सङ्ग विहार करते देखा और किसी महलमें मुख्य-मुख्य वारांगना स्त्रियोंके सङ्ग जलमें विहार करते श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥२७॥ किसी महलमें शृंगार करके ब्राह्मणोंको गो-दान कर रहे हैं और किसी महलमें इतिहास, पुराण, मङ्गलरूपी वाक्य श्रवण करते श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन किये ॥२८॥ किसी महलमें हँसीकी बात कहकर श्रीकृष्णचंद्र प्यारीके संग हँस रहे हैं, किसी महलमें अपने धर्मकी सेवा करते हैं और किसी महलमें अर्थ और कामका सम्पादन कर रहे हैं ॥२९॥ किसी महलमें मायासे अतीत परब्रह्मका एकासन-पर बैठे ध्यान कर रहे हैं और किसी महलमें काम, भोग, पूजन इत्यादिसे गुरुकी शुश्रूषा

कर रहे हैं ॥ ३० ॥ किसी महलमें वियोग और किसीमें मिलापकी बातें कर रहे हैं और किसी महलमें बलदेवजीके संग साधुओंके सुखार्थ यत्न कर रहे हैं, ऐसे श्रीकृष्णचंद्रका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ किसी महलमें पुत्रका समयपर सदृश स्त्रियोंको देखकर विवाह करते हैं और किसी महलमें अपनी कन्याके समान वर देख द्रव्यों द्वारा विवाह करते हैं ॥ ३२ ॥ किसी महलमें कन्या और जमाईको बिदा कर रहे हैं और किसी महलमें पुत्रोंको सुसराल भेजकर उनकी स्त्रियोंको बुलाते हैं, इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंका बड़ा उत्सव देख लोग आश्चर्यको प्राप्त हो गये ॥३३॥ किसी महलमें बड़े यज्ञोंसे अपनी कलासे देवताओंका पूजन कर रहे हैं और किसी महलमें अमुक रास्तेमें कुआं बनाओ, बाग लगाओ और नवीन मंदिर बनवाओ, इस प्रकार धर्म करते श्रीकृष्णचन्द्रको देवर्षि नारदजीने देखा ॥ ३४ ॥ किसी महलसे सिंधदेशके घोड़ेपर चढ़ यादवोंको संग ले शिकार खेलने को जा रहे हैं, वहां चित्र-विचित्र पशुओंको मारते श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥३५॥ किसी महलमें अपना रूप छिपाकर अन्तःपुरके भीतर गृहादिमें प्रजाका अभिप्राय जाननेके लिये विचरते योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥३६॥ इस प्रकार मनुष्यदेहको प्राप्त हुआ श्रीकृष्णचन्द्रकी योग मायाका वैभव देख सम्पूर्ण लीला देखनेके उपरांत नारदजी हँसकर कहने लगे ॥ ३७ ॥ हे योगेश्वर ! आपके चरणारविंदोंकी सेवा करके मेरे मनमें प्रकाशमान आपकी योगमाया ही केवल हम जानते हैं और आपका सत्यरूप नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव ! आपके यशसे व्याप्त लोकमें सब लोकोंमें पवित्र करनेवाली आपकी लीला मैं गाता फिरूँ, यह आज्ञा आप मुझे दें इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ३९ ॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं धर्मका कहनेवाला हूँ और दूसरेको धर्म करता देखकर प्रशंसा करता हूँ; इस कारण सब लोकोंको सिखानेके लिये मैं कर्म करता हूँ, इसलिये हे अङ्ग ! तुम अपने मनमें खेद मत करो ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषोंके पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मके कर्त्ता अकेले श्रीकृष्णचन्द्रको सब घरोंमें नारदजीने देखा ॥४१॥ अनन्त पराक्रम श्रीकृष्णचन्द्रकी योगमायाका बड़ा उदय वारंवार देखकर लीलापूर्वक ही नारदजीको बड़ा आश्चर्य प्राप्त हुआ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें श्रद्धासहित मन लगाये श्रीकृष्णचन्द्रसे भली प्रकार पूजित होकर नारदजी प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रको मनमें स्मरण करते चले गये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मनुष्योंका मार्ग चलनेवाले, सब जीवोंका कल्याण करनेके लिये अनेक मूर्ति धारण करनेवाले श्रीकृष्णचंद्र सोलह हजार श्रेष्ठ स्त्रियोंके बीचमें लाजभरी स्नेहकी चितवन-हँसन इनसे सेवित होकर रमण करते थे ॥ ४४ ॥ हे परीक्षित् ! विश्वकी प्रलय और उत्पत्तिके कारण हरि भगवान्के दूसरोंको अगम्य साधारण कर्म इस संसारमें जो पुरुष गायें अथवा सुनें या बड़ाई करें उन पुरुषोंको मोक्षके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

दोहा-सत्तरमें गोविंदको, भारी परो विचार ।
इतते आयो दूत इक, उत नारद अविकार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! स्वामियोंके गलेमें भुजा डाले हृदयसे चिपटाये श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियाँ प्रातःकालके समय अरुण शिखाओंका (मुर्गोंका) शब्द सुन "श्रीकृष्णचन्द्र जाग उठेंगे" इस प्रकार जानकर विहारसे आतुर हो उन मुर्गोंसे क्रोध कर कहने लगीं कि, अरे अभागे! तुम अभीसे बोलने लगे, श्रीकृष्णचंद्र प्रातःकाल जानकर कहीं उठ न बैठें ? ॥१॥ इसके उपरांत प्रातःसमय सब पक्षी नींदको त्याग बोलने लगे और कल्पवृक्षकी पवन सूंघकर भौंरे गुञ्जार करने लगे, उनके मनोहर शब्दकी ऐसी शोभा होती थी कि मानो बन्दीजन श्रीकृष्णको जगा रहे हैं ॥ २ ॥ अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके बीचमें प्राप्त हुई रुक्मिणीने आलिंगनका वियोग देख अति सुन्दर प्रातःकालके समयको सहन न किया ॥ ३ ॥ प्रसन्न इंद्रिय मधुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्म मुहूर्त्त अर्थात् सूर्योदयसे दो तीन घड़ी पहले उठ जलका आचमन कर मायासे परे अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे ॥ ४ ॥ कैसे स्वरूपका ध्यान किया उसे कहते हैंः—एक अखण्ड स्वयं ज्योतिस्वरूपका उपाधिरहित अविनाशी सर्वकाल अविद्यारहित ब्रह्म विश्वकी उत्पत्ति और नाशके कारण अपनी शक्तिसे देखनेमें आये सत्तामात्र आनन्दरूप ॥ ५ ॥ हे राजन्! इसके उपरांत निर्मल जलमें स्नान कर धोती पहन श्रीकृष्णचन्द्र सन्ध्योपासनादि कर्म और अग्निहोत्र कर मौन गायत्रीका जप करने लगे, फिर सूर्यनारायणको अर्घ्य दे अपने अंशके जो देवता, ऋषि, पितृ थे उनका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणोंका पूजन करने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णसे सींग मढ़े अत्यन्त सूधी मोतियोंकी माला पड़ी दूध देनेवाली और एक ही वारकी व्याई शोभायमान बछड़ोंसहित सुन्दर वस्त्र ओढ़ाकर ॥८॥ रूपसे खुरोंके अग्रभाग मढ़े ऐसी तेरह हजार चौरासी १३०८४ गौ एक-एक महलमेंसे प्रतिदिन शोभायमान सत्पात्र ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र, मृगछाला और तिलसहित दान करते थे ॥ ९ ॥ अपनी विभूति गौ, देवता और वृक्षोंको नमस्कार करके मंगल वस्तु कपिलादि गौका स्पर्श करते थे ॥१०॥ और नरलोकके भूषणरूप अपने शरीरको वस्त्र और चन्दन इत्यादिसे शोभायमान करते थे ॥ ११ ॥ घीमें मुख व कांचन, गौ, वृषभ अथवा देवलोगोंका दर्शन कर पीछे नगरनिवासी व सब प्रजागणकी अभिलाषा सिद्ध कर फिर मन्त्री और प्रधानोंका मनोरथ पूर्ण व प्रसन्न कर उनका यथायोग्य आदर-सत्कार करते थे, फिर कुछ और कार्यको देखते ॥ १२ ॥ पहले विप्र, फिर मित्र और कार्याधीश व स्त्रियाँ इनको पान, पुष्प और अरगजा दे; सबसे पीछे उन वस्तुओंको आप अंगीकार करते थे ॥ १३ ॥ हे राजन्! इतनेमें ही सारथीने सुग्रीवादि घोड़े जोत परम अद्भुत रथ ला प्रणाम करके सम्मुख खड़ा कर दिया ॥१४॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे रथवान्का हाथ पकड़ सात्यकी और उद्धवको संग ले जैसे सूर्यनारायण सुमेरु पर्वतके ऊपर चढ़ते हैं उसी प्रकार रथमें चढ़ गये ॥१५॥ लाजभरी प्रेमकी चितवनसे अन्तःपुरकी स्त्रियोंके देखने से मुसकाते श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त कष्टसे उनको छोड़ उनके मन हरकर बाहर निकले ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंसे अलग-अलग निकल, पीछे सब एक रूप हो सब यादवोंको साथ ले भगवान् वासुदेव सुधर्मा सभामें गये । उस सुधर्मा सभामें बैठे हुए पुरुषोंको

क्षुधा, पिपासा, शीत, गर्मी, शोक, और मोह इत्त्यादि बाधा नहीं व्यापती हैं ॥ १७ ॥ उस सभामें यादवोंसे वेष्टित व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासनपर बैठ अपनी कांतिसे सब दिशाओंको प्रकाशमान करने लगे, जैसे तारागणोंके बीचमें निशानाथ चन्द्रमाकी शोभा होती है, उसी प्रकार यादवोंके बीचमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा होने लगी ॥१८॥ हे राजा परीक्षित् ! उस सभामें भाट अनेक प्रकारसे हँसीकी बातें कर श्रीकृष्णचन्द्रका सेवन करते थे और नटोंमें मुख्य और नृत्य करनेवाली स्त्रियाँ अलग ही अपने-अपने गवैयोंको संग ले सम्मुख खड़ी हुई थीं ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त मृदंग, वीणा, मुरज, बांसुरी, झांझ, शंक इत्यादि बजाकर नृत्य करने लगे और सूत, मगध, बन्दीजन श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ उस समय कोई चतुर ब्राह्मण वेदकी ऋचा पढ़कर व्याख्यान देने लगे और कोई-कोई ब्राह्मण पवित्र वंशवाले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस समय एक अजान मनुष्य उस स्थानपर कहींसे आया, तब डचोढ़ीवानोंने श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर खबर की, श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि जाओ उसे लिवा लाओ, तब उस मनुष्यको सभाके भीतर पहुँचाया ॥ २२ ॥ ब्रह्मादिकोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख उस पुरुषने हाथ जोड़ नमस्कार करके जरासन्धके कैद किये हुए बीस हजार आठ सौ राजाओंका दुःख कहा ॥२३॥ जब जरासन्धने दिग्विजय किया था उस समय जिन राजाओंने आकर भेंट नहीं दी थीं इसलिये उन बीस हजार आठ सौ राजाओंको पकड़ गिरिव्रज नाम किलेमें कैद कर दिया है ॥ २४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागतका भय काटनेवाले ! इस संसारमें भयभीत तुमसे प्रेम करनेवाले हम आपकी शरण आये हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि ये लोग अतिशय पापकर्ममें लग रहे हैं, आपके बताये हुए कल्याणरूप पूजन सेवनरूप कर्ममें भूल रहे हैं, इस संसारमें जीनेकी आशा काटनेवाले सामर्थ्यवान् कालरूप आपको नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! जगत्के ईश्वर आपने इस संसारमें साधु पुरुषोंकी रक्षा और दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देनेके लिये अपने अंशसे अवतार धारण किया है और आपके विद्यमान रहते भी जरासन्ध सरीखा बलवान् तुम्हारी आज्ञाको नहीं मानता; आपकी रक्षामें रहे जीव अपने कर्मजनित दुखोंको प्राप्त होते हैं यह किसलिये होते हैं वह हम नहीं जान सकते हैं ॥२७॥ हे ईश ! यह राज्यके सम्बन्धका सुख विषयसाध्य है, इसीसे परतन्त्र है, इसी लिये यह सुख स्वप्नके समान है और यह शरीर भी सदैव भयसे युक्त मृतकके समान है, परन्तु तो भी हम इस शरीरसे केवल भार्या सन्तानादिकी चिंता करते रहते हैं, निष्काम भक्त जिस स्वतः सुखको आपसे प्राप्त होते हैं, उसे त्याग अत्यन्त कृपण बनें आपकी मायासे दुःख पाते हैं, क्योंकि पहले निष्काम हो आपके चरणोंकी शरण नहीं ली ॥ २८ ॥ इसलिये दुःखी पुरुषोंका शोक हरनेवाले जिनके चरणकमल हैं, ऐसे आप हम बँधे हुओंको जरासन्धरूपी कर्मबन्धनसे छुड़ाओ ! दश हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले इस जरासन्धने सिंह जिस प्रकार भेड़ोंको घेर लेता है, उसी प्रकार अपने दुर्गमें हम राजाओंको रोक रखा है ॥ २९ ॥ हे चक्रधर ! हे कृष्ण ! आपसे अठारह बार जरासन्धने संग्राम किया और सत्रह बार आपने हरा दिया, परन्तु अठारहवीं बार संग्राममें आप मनुष्यलीला कर रण छोड़ गये, आपको यह एकबार जीत महागर्वको प्राप्त हुआ है, इसलिये आपकी प्रजा हमको बहुत दुःख दे रही है। अब जो आप उचित समझो वह करो ॥ ३० ॥ दूत बोला

कि इसप्रकार जरासन्धके रोके आपके दर्शनकी अभिलाषा किये राजा लोग आपके चरण-कमलकी शरण लिये हुए इन दीनोंका बहुत शीघ्र उद्धार करना चाहिये ॥३१॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार राजाओंका दूत कह ही रहा था कि इतनेमें ही श्रेष्ठ कांतिवाले, पीली जटायें धारण किये श्रीमन्नारदजी सूर्यके समान वहां आकर प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ सब लोकोंके महान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र नारदजीको आया देख अपने सभासदोंसहित शिर नवाकर प्रणाम करने लगे ॥ ३३ ॥ आसनपर विराजमान नारदजीका विधिपूर्वक सत्कार करके श्रद्धासहित मधुर-मधुर वचनोंसे भगवान् तृप्त करने लगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि नारदजी ! त्रिलोकीमें कहीं भय तो नहीं है ? लोकोंमें तुम्हारे भ्रमण करनेसे हमें बड़ा लाभ है, क्योंकि घर बैठेही सब समाचार मिल जाते हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसको तुम न जानो, इसलिये हम तुमसे पूछते हैं कि पाण्डवोंकी क्या करनेकी इच्छा है ? ॥३६॥ यह सुनकर नारदजीने कहा कि, हे समर्थ ! आप अपनी मायासे ब्रह्माको भी मोहित करते हो और अपनी अचिन्तनीय शक्तिसे प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे रहनेपर भी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो, आपकी माया मैंने कई बार अवलोकन की है, इसलिये यह आपका चरित्र कुछ अद्भुत विदित नहीं होता ॥३७॥ यह संसार जो कि मिथ्या होनेपर भी आपकी मायासे विद्यमान प्रतीत होता है, इसके उत्पन्न पालन और संहार करनेवाले आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भलीभांतिसे जान सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं जान सकता, ऐसे अचिन्त्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जिन आपने बहुत प्रकार जन्म-मरण पाते और विविध अनर्थकारक शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न जाननेवाले जीवोंका अज्ञानरूपी अंधकारको मिटानेवाला अपना यशरूपी दीपक लीलासे अवतार प्रकट किया है, ऐसे आपकी शरण मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मनुष्यके अनुकरण करनेवाले आपसे आपकी फूफी पुत्र भक्त राजा युधिष्ठिर जो कुछ करना चाहते हैं वह मैं कहकर सुनाता हूँ ॥४०॥ पाण्डुका पुत्र चक्रवर्ती राज्य करनेकी इच्छा करनेवाले राजा युधिष्ठिर यज्ञराट् राजसूययज्ञ करके तुम्हारा पूजन करना चाहते हैं, यह आप अनुमोदन करो ॥ ४१ ॥ हे देव ! उस यज्ञमें तुम्हारा दर्शन करनेके लिये इन्द्रादिक देवता आयेंगे और बड़े-बड़े यशस्वी राजालोग तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे आयेंगे ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाओंके श्रवण करनेसे और तुम्हारा ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं ? और जो तुम्हारे दर्शन करनेसे ही पवित्र हो जायँ तो इसमें कहनेकी बात ही क्या है ? ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके मंगलरूप ! आपका निर्मल यश स्वर्ग, रसातल और सम्पूर्ण पृथ्वीमें फैल रहा है और दिशाओंको चँदोवेके समान शोभायमान कर रहा है। स्वर्गमें मंदाकिनीरूप, पातालमें भोगवतीरूप और इस संसारमें आपका चरणोदक गंगारूप होकर सब विश्वको पवित्र कर रहा है, इसलिये आपके चलते ही यज्ञमें बड़ा मंगल होगा ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार देवर्षि नारदने जब कहा तब उस सभामें अपनी ओरके यादवोंने जरासन्धके जीतनेकी इच्छासे जब यज्ञमें जानेकी अनुमति न दी, तब मनोहर वचनोंसे कुछेक मुसकाते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हे उद्धव ! तुम हमारे परममित्र और परमहितकारी हो और गुह्य बातोंके अभिप्रायको भलीभांति जानते

हो, इस कारण इस विषयमें हमको क्या करना चाहिये ? वह कहो, उसको हम श्रद्धापूर्वक करेंगे ॥ ४६ ॥

चौ०–उद्धव तुम हो सखा हमारे ❀ मन आंखनसे कबहुँ न न्यारे ॥
दोउ ओरकी भारी भीर ❀ पहले कहां चलूँ कह बीर ॥
इत राजा संकटमें भारी ❀ दुख पावत किये आश हमारी ॥
उत पांडव मिल यज्ञ विचारो ❀ पहिले कहो कहां पग धारो ॥

सब बातके जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मानो कुछ नहीं जानते, इस कारण अनजानके समान जब पूछा तब उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञा शिरपर धारणकर बोले ॥४७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

दोहा–इकहत्तर उद्धव चतुर, हरिकी सम्मति मान ।
इन्द्रप्रस्थ गवने तुरत, पांडव बुद्धिनिधान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार बड़ी बुद्धिवाले उद्धवजी श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन और नारदजीकी सम्मति यज्ञमें जानेकी जान और सभामें बैठने वाले यादवोंकी सम्मति राजाओंकी रक्षा करनेकी देख और श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छा दोनों कार्य करनेकी देखकर कहने लगे ॥ १ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रकाशमान श्रीकृष्ण ! देवर्षि नारदजीने जो कहा कि राजा युधिष्ठिर आपका पूजन करना चाहते हैं, वह उनकी भी सहायता करनी योग्य है और शरणागत राजाओंकी भी रक्षा करनी योग्य है ॥ २ ॥ हे समर्थ ! संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको जीतनेवाला राजसूय यज्ञ करके पूजन होगा । इस कारण जरासन्धको भी अवश्य जीतना पड़ेगा, इसमें दोनों कार्य सिद्ध हो जायँगे, यज्ञ भी हो जायगा और शरणागत राजाओंकी रक्षा भी हो जायेगी ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! यज्ञमें आप चलेंगे तो हमारे मनोरथ इसीसे सिद्ध हो जायँगे और हे गोविन्द ! बँधे हुए राजाओंको यदि छुड़ाओगे तो इसमें आपको बड़ा ही यश होगा ॥४॥ बड़ी चाहनासे जरासन्धके मारनेकी इच्छा करनेवाले यादवोंको देखकर कहते हैं कि जरासन्धके समान बलवान् भीमसेनके विना दशहजार हाथियोंका बल रखनेवाला जरासन्ध और राजाओंसे नहीं जीता जायगा, क्योंकि भीमसेनके हाथसे ही विधाताने उसकी मृत्यु रची है ॥५ ॥ द्वन्द्वयुद्धसे जरासन्ध जीता जायगा और सेनाको सङ्ग लेकर जो पुरुष उसके जीतनेकी आशा करें तो यह आशा कदापि फलवती न होगी । वह जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त है, इस कारण भीमसेन ब्राह्मणका रूप धरकर जो उससे द्वन्द्वयुद्ध मांगे तो आशा है कि वह निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ वृक नामा अग्नि जिसके उदरमें रहे सो भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारण कर जरासन्धसे युद्धकी भिक्षा मांगे कि तुम्हारे साथ मैं द्वन्द्वयुद्ध करूँगा, तुम निकट रहो तो भीमसेन जरासन्धको अवश्य मारेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७ ॥ प्राकृत रूपरहित तुम ही तो उत्पन्न, पालन और संहार करते हो, ब्रह्मा और महादेव तो नाममात्रके हैं, इसलिये तुम ही पास रहकर जरासन्धका

संहार करोगे, भीमसेनका तो केवल नाम ही होगा ॥ ८ ॥ बन्दी हुए राजाओंकी रानियाँ तुम्हारे निर्मल यशको गाती हैं और जब उनके बालक रोते हैं, तब वे कहती हैं कि हे पुत्र ! तुम किसलिये रोते हो ? जो कोई अनाथ हो वह रोवे। तुम्हारे शिरपर तो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र विद्यमान हैं, तुम मत रोओ, जैसे गोपी शङ्खचूड़का मारना और अपना छूटना गाती हैं, गजराजका छूटना व ग्राहकी मृत्यु गाती हैं, जनकनंदिनी जानकीका छूटना व रावणका मारना जैसे गाती हैं और माता पिताका छूटना, कंसका मारना शरणागत मुनि और हम भक्त गान करते हैं उसी प्रकार जरासन्धका मरना और अपने पतियोंका छूटना राजाओंकी स्त्रियाँ वारंवार गाती हैं ॥९॥ हे कृष्ण ! जरासन्धके मरनेसे बड़ा कार्य सिद्ध होगा और फिर यज्ञ हो यह आपकी इच्छा है ही, राजा युधिष्ठिरके पास जानेसे सब काम बन जायगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब ओरसे मंगलरूप बड़ी युक्तिसहित उद्धवजीका वचन सुन नारदजी बड़ाई करने लगे। इसके उपरांत मुख्य यादव और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी प्रशंसा करने लगे ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवकीनन्दन सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र चलनेके लिये सेवक दारुक रथवान् और हाथियोंके महावत व वसुदेव इत्यादि यादवोंसे आज्ञा करने लगे ॥१२॥ हे नृपश्रेष्ठ ! पुत्र, दासी, दास और सामग्रियों सहित प्रथम अपनी रानियोंको भेज बलराम और राजा उग्रसेनसे आज्ञा ले श्रीकृष्णचन्द्र सारथीके लाये हुए गरुड़ध्वज रथमें चढ़े ॥ १३ ॥ इसके उपरांत रथ, हाथी, प्यादे और महातीव्र सवारोंकी सेना ले मृदंग, भेरी, नगाड़े, शंख और रणसिंहोंके शब्दोंसे शब्दायमान दिशामेंसे भगवान् निकले ॥१४॥ सुन्दर वस्त्र, गहने और चन्दन, माला धारे, ढाल तलवार हाथमें लिये, दोनों ओर सिपाहियोंसे रक्षित, रथ और पालकियोंमें बैठ, पतिव्रता कृष्णकी रानियाँ अपने पुत्रोंको साथ ले अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे चलीं ॥१५॥ नौकरोंकी स्त्रियाँ और वेश्या शृङ्गार कर चटाइयोंके बने घर तथा कम्बल और बनातोंके डेरे तम्बू इत्यादि सब वस्तुको मनुष्य, ऊँट, भैंसे, गधे, खच्चर, गैंडे व हाथियोंपर लादकर चले ॥१६॥ बड़े शब्दवाली सेना, बड़ी-बड़ी ध्वजाओंके वस्त्र, छत्र, चामर और सुन्दर हथियार पहने, किरीट इत्यादिकोंके चमकसे और सूर्यकी किरणोंसे समुद्र क्षुभित हुए मत्स्यों और कलोलोंसे शोभायमान होता है, उसी प्रकार शोभा देती थीं ॥ १७ ॥ इसके उपरांत यादवपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे सत्कार पाकर पूजा ले, श्रीकृष्णके दर्शनसे सुखी हो, नारदमुनि श्रीकृष्णको प्रणाम कर उनके निश्चयको सुन और श्यामस्वरूपको हृदयमें धारण कर आकाशमार्गमें होकर चले गये ॥१८॥ इसके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूतको प्रसन्न करनेके लिये बोले कि हे दूत ! तुम सब राजाओंसे जाकर कह दो कि किसी प्रकारका भय मत करो, क्योंकि मैं शीघ्र ही जरासन्धको मार तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥१९॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा, तब दूत वहांसे चल राजाओंके पास आकर कहने लगा कि किसी प्रकारका भय मत करो, श्रीकृष्णचन्द्र आते हैं। तब वे छूटनेकी इच्छासे भगवान्के आनेका पैंड़ा देखने लगे ॥२०॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनर्त, सौवीर, मरुदेशको पीछे दे कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियाँ, पुर, गांव, ब्रज और खानोंके देशोंको लांघकर दृषद्वती व सरस्वतीके पार उतर पांचाल तथा मत्स्य-देशको छोड़कर इन्द्रप्रस्थ पहुँचे ॥२१॥२२॥ मनुष्योंको जिनका दर्शन दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्ण,

चन्द्रका आगमन सुन प्रसन्न हो अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उपाध्यायोंको संग ले पुरके बाहर निकले ॥२३॥ गाते-बजाते और भारी वेदध्वनिके साथ राजा युधिष्ठिर जैसे आदरयुक्त इंद्रिय प्राण लेनेको आयें, उसी प्रकार श्रीकृष्णके सम्मुख लिवानेको आये ❋ ॥२४॥ श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन कर आर्द्रहृदय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने बहुत दिनोंमें देख अत्यंत प्यारे श्रीकृष्णचंद्रको बारम्बार आलिंगन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके रहनेका निर्मल स्थान श्रीकृष्णचन्द्रके अंगको भुजाओंसे आलिंगन कर पाप रहित, प्रसन्नवदन, नेत्रोंमें अश्रुयुक्त सब लौकिक व्यवहार बिसार राजा युधिष्ठिर अत्यन्त सुख पाने लगे ॥ २६ ॥ मामाके पुत्र श्रीकृष्णको आलिंगन कर प्रसन्न भीमसेन प्रेमके वेगसे आकुल इंद्रिय हो गया; इसके उपरांत बड़े-बड़े नेत्रोंमें आंसू भरे नकुल, सहदेव और किरीटधारी अर्जुन ये सब अत्यन्त हितकारी श्रीकृष्णचन्द्रको आनंदपूर्वक आलिंगन करने लगे ॥२७॥ हे राजन्! अर्जुन बराबरका होनेके कारण श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर मिले और नकुल, सहदेवने नमस्कार किया, पीछे यथायोग्य ब्राह्मण और वृद्धोंको नमस्कार करके ॥ २८ ॥ मानने योग्य कुरुदेश और सृंजयदेशके राजा और सूत, मागध, गंधर्व, भाट, बंदीजनोंका सत्कार करने लगे ॥२९॥ मृदंग, शंख, ढोल, वीणा नगाड़े बांसुरी इनको बजाकर ब्राह्मण स्तुति करने और नाचने गाने लगे ॥ ३० ॥ इस प्रकार सुहृदोंको संग ले पुण्ययश युधिष्ठिरादिकोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सबसे स्तुति और सत्कार पाकर शोभायमान राजा युधिष्ठिरके पुरमें प्रवेश किया॥३१॥हाथियोंके मद और सुगन्धयुक्त जलसे जिनमें छिड़काव हो रहा ऐसे मार्ग और चित्रविचित्र ध्वजाओंसे सुवर्णके तोरण और जलसे पूर्ण कलश तथा नवीन वस्त्र, गहने, माला केशर, अतर, अरगजा लगाये स्त्री-पुरुषोंसे शोभायमान कौरवोंके राजा युधिष्ठिरको देखा ॥ ३२ ॥ कैसा महल है कि जहां प्रकाशमान दीपकोंकी पंक्ति और महलके झरोखोंमेंसे निकली धूपकी सुगन्धसे शोभायमान हो रहा है और प्रकाशमान पताका तथा रूपेके शिखरोंके ऊपर सुवर्णके कलश संयुक्त कौरवराज युधिष्ठिरके महल देखे ॥३३॥ मनुष्योंके नेत्रोंका सौंदर्यरूपी अमृत पीनेके पात्र श्रीकृष्णचन्द्रको आया श्रवण कर उत्कण्ठासे जिनके केश और वस्त्रोंके बंधन ढीले हो गये वे स्त्रियाँ घरोंके कार्योंको शीघ्र त्याग और शय्याओंके ऊपर पतिओंको त्याग देखनेके लिये राजमार्ग बाजारमें आयीं ॥३४॥ "उत्सव छोड़-छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शनको दौड़े कहीं विवाहसे अधिक उत्सव तो है ही नहीं, एक कन्याका विवाह था, द्वारेपर नौबत बज रही थी व भाई बिरादरीके लोग बैठे थे,और मण्डपके नीचे वर कन्या बैठे थे; ब्राह्मण हवन कर रहे थे और नौबतवालोंने सुना कि श्रीकृष्ण बलदेव आये हैं,सुनते ही नगारेको छोड़कर भागे और जो भीतर नाई, बारी,झगड़ा कर रहे थे,वे भी सुनते ही भागे। पाधा पुरोहित पोथी पटक कृष्णके दर्शनको दौड़े, अधिक क्या कहें ? बराती भी चले गये । अब दुलहनने सोचा कि इस चामके

❋ शंका—हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णका और पांडवोंका मिलाप हुआ, तब उस समय शूद्र, अन्त्यज, चमंकार आदि और सब नीच जाति तथा म्लेच्छ तमासा देखनेके लिये तथा अनेक प्रकारके सांसारिक काम करनेके लिये उस सेनामें रहते थे, उन सबको सुनकर ब्राह्मणोंने ब्रह्म अर्थात् वेदोच्चारण क्यों किया?

उत्तर—वेदका श्रवण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके सिवाय दूसरेको नहीं करना चाहिये। परन्तु वेदका पाठ कोई भी नहीं उस समय सुनता था, क्योंकि जब श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डवोंका मिलाप हुआ तब मनुष्योंका परस्पर ऐसा शब्द होने लगा कि उस कुलाहलमें तोपका शब्द तो किसीको सुनायी ही नहीं पड़ता था तब वेदपाठ कैसे लोगोंको सुनायी दे ? किसीको भी कुछ सुनायी नहीं पड़ा, इसलिये ब्राह्मणोंने वेदपाठ किया।

दूलहका क्या करना है, जाकर उस दूलहके दर्शन करूँ, आंचल छुड़ाकर दुलहन भी पहुँच गयी, पीछे दूलह भी चला गया" हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी भीड़से युक्त राजमार्गमें रानीसहित श्रीकृष्णचन्द्रको देख कोठोंके ऊपर चढ़ी स्त्रियाँ फूल वर्षाकर मनसे आलिंगन कर मुसकानपूर्वक चितवनसे देखकर "भले आये" इस प्रकार कहने लगीं ॥३५॥ जैसे चन्द्रमासहित तारागण, उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंको मार्गमें देख "इन रानियोंने क्या पुण्य किया है, जिनके नेत्रोंको पुरुषोंमें मुकुट समान श्रीकृष्णचन्द्र उदार-हास्य लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे आनंद देते हैं" इस प्रकार सब स्त्रियाँ कहने लगीं ॥ ३६ ॥ पापरहित पुरवासी पान, सुपारी, बतासे और नारियल इन सब मंगल वस्तुओंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करने लगे ॥ ३७ ॥ प्रफुल्लित नेत्र खुसीके कारण घबड़ाहटसे अन्तःपुरके वासियोंने प्रीतिपूर्वक सम्मुख आकर जब सत्कार किया तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजाके मंदिरमें चले गये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्ण-चंन्द्रको देख प्रसन्नमन कुन्ती अपनी बहू द्रौपदी सहित पलँगपरसे उठकर श्रीकृष्णचन्द्रसे मिली ॥ ३९ ॥ देवोंके देव और ब्रह्मादिकोंके ईश्वर गोविंद श्रीकृष्णचन्द्रजीको घरमें ला आनंदसे सुधि बिसार राजा युधिष्ठिर पूजा करनेकी विधि भी भूल गये ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! द्रौपदी और बहन सुभद्राके प्रणाम करनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने पिता वसुदेवकी बहन कुन्ती, और बड़े पुरुषोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया ॥४१॥ सास कुन्तीकी आज्ञा पाकर द्रौपदी संपूर्ण श्रीकृष्णकी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती ॥ ४२ ॥ कालिन्दी, मित्रविंदा, लक्ष्मणा और पतिव्रता नग्नजिती इनकी और अन्य जो संग आयीं थीं उनकी वस्त्र, माला, अतर, अरगजा, चन्दन इत्यादिकोंसे पूजा करने लगीं ॥ ४३ ॥ धर्मराज राजा युधिष्ठिर भी सेना सहित मंत्री तथा सेवक और रानियों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको नित्यप्रति नये सुखमें रखने लगे ॥ ४४ ॥ जब अर्जुन सहित श्रीकृष्णचन्द्र खाण्डववनसे अग्निको तृप्त करके मयनामक दैत्यको बचाया था, तब उसने राजा युधिष्ठिर-को दिव्य सभा बनाकर अर्पण की थी ॥ ४५ ॥ रथमें बैठे अर्जुन तथा और योद्धाओंको संग ले विहार करते श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये कितने ही दिनतक इंद्रप्रस्थमें रहे ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

दोहा—जरासन्धकी विजय लखि, कृष्ण बहत्तर अंक ।
भीमसेनको सैन दे, करवाये द्वै फंक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत परीक्षित्! एक समय मुनीश्वर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भाई, आचार्य और कुलमें वृद्ध तथा जातिके संबंधी बांधव इन सहित सभामें बैठे हुए राजा युधिष्ठिर इन सबके सुनते हुए हे कृष्ण ! हे भक्तवत्सल ! इस प्रकार संबोधन देकर बोले ॥ १॥ ॥२॥ कि हे समर्थ ! यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ करके मैं पवित्र कर्मवाले आपका पूजन करूँगा, इस कारण आप इस कार्यको सिद्ध करो ॥३॥ अभद्रके नाश करनेवाली आपकी चर-

णपादुकाका जो पुरुष सेवन, ध्यान और पवित्र होकर वाणीसे नाम लेते हैं, हे कमलनाभ! वही पुरुष संसारसे छूट जाते हैं और जो चाहना करते हैं, वह मनोरथ भी उनके सिद्ध हो जाते हैं और कैसा ही चक्रवर्ती क्यों न हो विना भक्तिके कुछ नहीं होता ॥ ४ ॥ इस कारण हे देव-देव ! ये लोग इस संसारमें आपके चरणारविन्दकी सेवाके प्रभावको देखें, हे समर्थ ! कितने ही कुरु व सृञ्जयवंशी लोक, जो कि कर्मादिकको प्रधान मानकर आपकी भक्तिको उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं और जो नहीं करते उन दोनोंकी स्थिति दिखाओ ॥५॥ सबके आत्मा, समदर्शी, आत्मसुख, अनुभवरूप ब्रह्म आप हो, आपको अपना बिराना यह भेदबुद्धि कुछ नहीं है, जैसे कल्पवृक्षका जो सेवन करे उसीको फल प्राप्त हो उसी प्रकार जो आपको सेवन करे तो उसीपर आप प्रसन्न हो जाते हो, जो जैसी सेवा करे, उसे वैसा ही फल देते हो, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥६॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजा युधिष्ठिर ! हे शत्रुनाशक ! तुमने यह भला निश्चय किया है, क्योंकि इस यज्ञके करनेसे सब लोगोंमें तुम्हारी मंगलरूप कीर्ति फैलेगी ॥७॥ हे समर्थ राजा युधिष्ठिर! यह सम्पूर्ण यज्ञोंका राजा राजसूय यज्ञ तुमने करना विचारा है, यह ऋषीश्वर, पितृ, देवता और सुहृद तथा हमें और समस्त प्राणियोंको प्यारा है ॥८॥ संपूर्ण राजाओंको जीत और संपूर्ण पृथ्वीको वशमें कर और सब सामग्रियाँ इकट्ठी करके तुम इस यज्ञको करो ॥९॥ हे राजा युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे भाई लोकोंका पालन करनेवाले देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुये हैं और जिनको अजितेन्द्रिय पुरुष कभी वशमें नहीं कर सकते, तुम्हारे जितेन्द्रियपनसे तुम्हारे वशमें हूँ इसलिये शीघ्र ही यज्ञ पूर्ण होगा ॥१०॥ मेरे आश्रयवाले पुरुषोंको लोकमें तेज, वैभव, सेनासे कोई देवता भी पराभव नहीं कर सकते हैं, तो राजा क्या कर सकते हैं ? ॥११॥ श्रीशुकदेवजी मुनिसे बोले कि हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन प्रसन्नतासे प्रफुल्लितवदन राजा युधिष्ठिरने भगवान्‌के तेजसे बढ़े हुए अपने भ्राताओंको दिशाओंके जीतनेको भेजा ॥ १२ ॥ सृञ्जय देशके राजाओंका संग करके दक्षिण देशके राजाओंको जीतनेके लिये सहदेवको आज्ञा दी । हे परीक्षित् ! सहदेव, अर्जुन, नकुल और भीमसेनने संपूर्ण दिशाओंके राजाओंको बलपूर्वक जीत यज्ञ करनेकी इच्छावाले अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको बहुत द्रव्य लाकर दिया॥१३॥ ॥१४॥ सब दिशाओंके राजा तो जीते गये परन्तु पूर्वदिशाका राजा जरासन्ध जीतनेमें नहीं आया, इस बातको श्रवण कर अत्यन्त चिन्ताको प्राप्त हुए राजा युधिष्ठिरसे जो उपाय उद्धवजीने श्रीकृष्णको बताया था, वही उपाय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ हे राजन् तब तो भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र तीनों ब्राह्मणका वेष धारण कर जहां बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध गिरिव्रजनाम किलेमें रहता था, वहां गये ॥१६॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये इन क्षत्रियोंने भिक्षुकोंके आनेके समय ब्रह्म भक्त गृहस्थ घरमें स्थित राजा जरासन्धसे भिक्षाकी प्रार्थना की ॥१७॥ कि हे राजा जरासन्ध ! हम बहुत दूरसे अतिथि आये हैं सो तुम जानो और जिस वस्तुकी हम चाहना करते हैं वह वस्तु हमको दो, जिसमें तुम्हारा कल्याण * होगा "यह वस्तु हम मांगते हैं" इस प्रकार नाम लेकर क्यों नहीं कहते ? इसका

* शंका—श्रीकृष्णने ब्राह्मणका रूप धारणकर जरासन्धसे कहा कि, हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण होगा फिर उसी समयमें युद्धकर कुछ दिन पीछे अमंगलरूप मरणको क्यों प्राप्त हुआ ! जब भगवान्‌ने अपने मुखसे मंगल होना कहा फिर वह एक महीने भी जीता न रहा यह कैसा मंगल ?

उत्तर—शूरवीर योद्धा युद्धमें मरनेको अशुभ और अमंगल नहीं समझते, युद्धमें मरणको ही अपना बड़ा कल्याण मानते हैं । इसलिये श्रीकृष्णके वाक्यके प्रमाणसे युद्धमें मरणरूप कल्याण जरासन्धको प्राप्त हो गया ।

यह है कि, यदि नाम लेकर हमने पुत्र मांगा, तो पुत्र कब दिया जायगा और मुकुट आदि आभूषण मांगे, तो भिखारियोंको कैसे दोगे ? तथा रत्नजटित गहने पुत्रादिकोंके योग्य हैं, तो दूसरेको कैसे दिये जायँ; यदि ऐसे जरासन्ध कहे तो उसका उत्तर यह है ॥ १८ ॥ सहनशील पुरुष क्या नहीं सह सकते हैं ❀ और देवताओंको कौन वस्तु देने योग्य नहीं है और समदर्शियोंका कौन दूसरा शत्रु है ? इसलिये नाम लेनेसे क्या प्रयोजन ? जो मांगे वह दो ॥ १९ ॥ साधुओंसे गाने योग्य नित्य यशको जो पुरुष अनित्य देहसे आप समर्थ होकर नहीं करे, वह पुरुष निन्दा और शोच करने योग्य है ॥२०॥ राजा हरिश्चन्द्र तथा रंतिदेव और मुद्गल ऋषि, राजा शिबि तथा बलि आदि अनेक महात्मा अनित्य देहसे ध्रुव यशको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जरासन्धका कर्कश बोलना और स्वरूप तथा धनुषके प्रत्यंचाके गड्ढेके चिह्नवाले पहुँचोंको देखकर "यह क्षत्रियोंमें नीच हैं" यह जानकर द्रौपदीके स्वयंवरमें मैंने पहले देखे हैं, यह विचार करने लगा ॥ २२ ॥ यद्यपि ये क्षत्रियोंमें नीच हैं, परन्तु तो भी ब्राह्मणोंका वेष धारण किया है, इसलिये अदेय अपनी आत्मा भी यदि यह मांगें तो इनको भिक्षा दूंगा ॥ २३ ॥ विष्णु भगवान्ने ब्राह्मणका स्वरूप वामन अवतारमें धर दैत्यराज बलिका ऐश्वर्य भ्रष्ट किया, परन्तु उसकी निर्मल कीर्ति पृथ्वीपर अबतक श्रवणगोचर होती है ॥२४॥ देवराज इन्द्रकी शोभा हरनेके लिये ब्राह्मणका रूप धरकर आये हुए विष्णु भगवान्को यद्यपि जानता भी था, कि मेरे छलनेके लिये आये हैं और शुक्राचार्यने मना भी किया, परन्तु तो भी दैत्योंके राजा बलिने वामनजीको पृथ्वीका दान दिया ॥२५॥ एक दिन तो अवश्य ही यह देह पतित होगा, फिर जीवित ही क्षत्रियके देहसे ब्राह्मणके लिये निर्मल यशको न करें तो इस देहसे प्रयोजन ही क्या है ? ॥ २६ ॥ इस प्रकार निश्चय करके उदारबुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहने लगा कि हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मांगो, तब श्रीकृष्णचन्द्र फिर पक्की करते हैं, कि हे राजन् ! हम जो मांगेंगे वह दोगे ? तब जरासन्ध बोला कि वारंवार क्यों कहते हो ? यदि आपको मेरे शिरकी भी आवश्यकता होगी, तो वह भी काटकर समर्पण करूँगा ॥ २७ ॥ तब तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे राजाओंके इन्द्र राजन् जरासन्ध ! यदि तुम्हारे मनमें आये तो द्वन्द्वयुद्ध हमको दो और युद्धके लिये ही हम क्षत्रिय तुम्हारे पास आये हैं, अन्नके लेनेवाले हम ब्राह्मण नहीं हैं ॥२८॥ तब जरासन्धने पूछा तुम कौन हो ? यह सुन श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि वृकनामा अग्नि जिसके उदरमें रहती है ऐसा यह भीमसेन है, इसका भाई यह अर्जुन है और इनके मामाका पुत्र तेरा

❀ दृष्टान्त- एक साधु कहीं जंगल में बैठे थे, उनके पास चार धूर्त आये। उनमें से एक बाबाजी को देख कर बोला कि- यह तो कल जुआ खेल रहे थे। आज बाबाजी बन आये। बाबाजी बोले- बच्चा! तू सत्य कहता है। दूसरा बोला- हमने इसे मद्य पीते देखा था, तीसरा बोला कि- हमने इसे चोरी करते देखा था, चौथा बोला- हमने इसे वेश्या के यहाँ देखा था। बाबाजी ने सब को यही उत्तर दिया कि तू भी सत्य कहता है। एक भला आदमी यह सब कौतुक देख रहा था, जब वह चारों धूर्त चले गये, तो बाबाजी के पास आ कर वह मनुष्य पूछने लगा कि- महाराज! सबको तुमने एक सा ही उत्तर दिया, इसका क्या कारण है? बाबाजी बोले- तू भी सत्य कहता है। वह बोला- मैं ऐसे नहीं मानूंगा, तब बाबाजी उसकी हठ देख कर बोले कि- जो जैसा होता है, उसे वैसा ही सूझता है, जो मद्यपान करता था उसने मद्यप, चोर ने चोर, जुआरी ने जुआरी और वेश्यागामी ने वेश्यागामी कहा। यह सुन वह भला पुरुष प्रसन्न हो कर चला गया। कहा भी है :-

दोहा- "खूंदन तो धरती सहै; बाट सहै वनराय। कुवचन तो साधू सहै, औरन सह्यो न जाय ।।"

पहला वैरी मैं कृष्ण हूँ। मुझे तो तुम भलीभांति जानते होगे॥ २९ ॥ इस प्रकार सुनकर मगधदेशका राजा जरासन्ध बहुत हँसा। इसके उपरांत क्रोधमें भरकर, हे मूर्खो ! मैं तुमको युद्ध दूँगा, इस प्रकार कहने लगा॥३०॥अरे डरपोक कृष्ण ! व्याकुलचित्त तेरे संग मैं युद्ध नहीं करूँगा; क्योंकि मेरे डरसे तो तू प्रथम ही मथुरापुरीको त्याग समुद्रमें जाकर बसा है ॥ ३१ ॥ अर्जुन मुझसे युद्धमें न्यून है और न मेरे समान बलवान् है, इसलिये अर्जुन योद्धा नहीं है। हां, भीमसेन कुछेक मेरे समान बलवान् है, इसके संग युद्ध करूंगा ॥३२॥ इतनी बात कह जरासन्ध भीमसेनको बड़ी गदा दे और आपने दूसरी गदा लेकर पुरके बाहर निकला ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत हे परीक्षित् ! मदवाला भीमसेन और जरासन्ध परस्पर मिलकर रणभूमिमें वज्रके समान गदाका प्रहार करने लगे ॥३४॥ रंगभूमिमें प्राप्त हुए नटोंके समान बायें-दायें विचित्र मण्डलमें फिरते इन दोनोंका युद्ध अत्यन्त शोभायमान लगने लगा ॥ ३५ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! दांतवाले हाथियोंका जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार इन दोनों वीरोंके गदा चलानेका वज्र जैसे पिसे ऐसे ही शब्द होने लगा ॥३६॥ युद्ध करनेसे बढ़ा है क्रोध जिनका ऐसे हाथियोंकी लड़ाईमें आकड़ी जैसे चूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार भुजाओंके वेगसे आपसमें बड़ा क्रोध कर लड़नेवाले हाथियोंके शरीरपर पछाड़कर जैसे आककी गुद्दियां टूट जाती हैं उसी प्रकार बाहोंके वेगसे चलायमान, गदा, कन्धा, कमर, पांव, हाथ, जंघा इनसे लगकर चूर्ण हो गयीं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनों वीरोंकी गदा टूट गयी, तब क्रोधी मनुष्योंमें वीर भीमसेन और जरासन्ध लोहेके समान स्पर्शवाले घूसोंकी मार शरीरमें मारने लगे, हाथियोंके समान आपसमें मारते जरासन्ध व भीमसेनके प्रहारसे उठा शब्द जैसे विना बादल वज्रपातका शब्द होता है, उसी प्रकार कठोर शब्द होने लगा॥३८॥हे राजा परीक्षित् ! नहीं घटा है बल जिनका और बराबर है दांव, पेच, बल, प्रभाव जिनका इसी प्रकार घूंसोंकी मारसे भीमसेन और जरासन्धका बराबर युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार दिनमें तो युद्ध करें और रातको मित्रके समान एक स्थानपर रहें ऐसे जरासन्ध और भीमसेन दोनों वीरोंको युद्ध करते सत्ताइस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजा परीक्षित् ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसे भीमसेनने कहा कि हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको मैं नहीं जीत सकता ॥४१॥ यह बात भीमसेनकी सुनकर "जरासन्धका दो भाग होकर जन्म हुआ है और उन दो खण्डोंको जरा नाम राक्षसीने जोड़ दिया है, इस कारण यह खण्ड होनेसे ही मरेगा" इस बातके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने भीमसेनको अपने तेजसे बढ़ाया और जरासंधके चीरनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ सफलज्ञान श्रीकृष्णचन्द्र वैरी जरासन्धके मारनेका चिंतन कर तिनका चीरकर भीमसेनको सैनसे जताया, कि जैसे मैंने तिनका चीरा, उसी प्रकार तू इसको चीर डालो ॥४३॥ मारनेवालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान् भीमसेनने श्रीकृष्णचन्द्रके संकेतको जान वैरी जरासन्धका पांव पकड़कर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज ! जैसे बड़ा हाथी वृक्षकी शाखाको पकड़कर चीर डालता है, उसी प्रकार अपने पांवसे उसके एक पांवको दाब और दूसरे पांवको भुजाओंसे पकड़ गुदाके बीचसे चीर डाला ॥४५॥ एक-एक पांव, जंघा, अण्डकोष, कमर, पीठ, स्तन, एक-एक भ्रुकुटी और कान ऐसे दो खण्ड कर डाले ॥ ४६ ॥ मगध देशका राजा जरासन्ध जिस समय मारा गया, उस समय महा हाहाकर शब्द होने लगा, इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र भीमसेनका आलिंगन करके पूजा करने

लगे ॥४७॥ अप्रमेयस्वरूप समर्थ, सब प्राणियोंके पालन करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने जरासंधके पुत्र सहदेवको मगधदेशका राज्यतिलक दिया। इसके उपरांत जरासंधने जो बीस हजार आठसौ राजाओंको बन्दी कर लिया था उन्हें भी बन्दीखानेसे छुड़ा दिया ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

दोहा—तेहत्तर हरि बन्दिसे, सब नृप दिये छुड़ाय।
भोग्य योग्य बहु वस्तु दै, दिये घरन पहुँचाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! मलिनरूप जो क्षुधासे कृश, सूखे मुख ऐसे बीस हजार आठसौ राजा जो गिरिद्रोणी नाम दुर्गमें कैद थे लीलापूर्वक ही छुड़ा दिया। तब उन सब राजाओंने बन्दीखानेसे बाहर निकलकर मेघके समान श्यामरूप, पीले वस्त्र धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको देखा ॥ १ ॥ २ ॥ अब जैसे स्वरूपसे श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया, उसे वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करोः—हृदयमें शोभायमान भृगुलताका चिह्न, चार भुजा और कमलके गर्भके समान अरुणनेत्र, सुन्दर प्रसन्न मुख और प्रकाशमान मकराकृति कुण्डल धारण किये, कमल हाथमें लिये विराजमान्; शंख, चक्र, गदा धारण किये और किरीट, हार, कड़ा, करधनी व बाजूबन्द पहने ॥ ३ ॥ ४ ॥ प्रकाशमान सुन्दर मणि ग्रीवामें धारण किये तथा गलेसे पांवतक वनमालासे शोभायमान इस प्रकार रूपको देखकर राजाओंमें लूटसी पड़ गयी और नेत्रोंको ऐसे चलाने लगे, मानो रूपको पी जायँगे ॥५॥ जीभ ऐसी चलाते हैं, मानो चाट जायँगे, नाक फुलाते हैं मानो सूँघ जायँगे, भुजा ऐसे चलाते हैं मानो स्वरूपको आलिंगन कर लेंगे इस प्रकार पाप दूर होनेपर वे राजा मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंमें प्रणाम करने लगे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इन राजा लोगोंके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होनेके कारण बन्दीखानेके सब क्लेश मिट गये। तब वे सब राजा हाथ जोड़ हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर वाणीसे स्तुति करने लगे॥७॥राजा लोग कहने लगे कि, हे देवदेव ! हे शरणागतका कष्ट हरनेवाले। हे अविनाशी ! हे श्रीकृष्ण ! घोर संसारसे दुःखी हुए और आपकी शरणमें आये हुए हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम लोग जरासन्धको दोष नहीं लगाते, क्योंकि हे प्रभो ! राजाओंका जो राज्य भ्रष्ट हो जाय तो वह आपका अनुग्रह समझना चाहिये, क्योंकि राज्य सम्बंधी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य पदार्थोंको स्थिर मानते हैं और इसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं मानते ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष सूर्यकी किरणोंसे चमकते हुए बालूके जलको सरोवर मानते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष नानासृष्टि असद्रूपी जो माया है, उसको सत्य मानते हैं ॥ ११ ॥ हे समर्थ ! हम लक्ष्मीके मदसे अन्धे होकर इस पृथ्वीके जीतनेकी इच्छासे परस्पर द्वेष करते हुए मृत्युके समान शिरपर खड़े कालरूप आपको नहीं गिनते थे और मदसे उन्मत्त हो निर्दयीपनसे अपनी प्रजाको महाकष्ट देते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! गंभीर वेग और बड़े पराक्रमवाली आपकी कालमूर्तिने हमको लक्ष्मीसे भ्रष्ट कर दिया, परंतु अब तुम्हारी कृपासे गर्वरहित होकर आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ इसके उपरांत नित्य आयु जिसकी क्षीण हो और एक न एक रोग जिसमें उत्पन्न हो,

ऐसे देहसे मृगतृष्णारूप मिथ्या राजकी हम इच्छा नहीं करते, केवल राज्यकी इच्छा नहीं करते इतना ही नहीं, वरन् परलोकमें क्रियाके फलस्वरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोग भी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ और हे भगवन् ! इस संसारमें भूले हुए हम राजा लोग किसी योनिमें भी तुम्हारे चरणारविंदोंको न भूलें ऐसा उपाय बताओ ॥१५॥ भक्तोंके क्लेशको दूर करनेवाले, शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाशक हरि परमात्मा और अपने भक्तोंके क्लेश काटनेवाले, गोविंद आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जरासंधके बन्दीखानेसे छूटे हुए राजाओंने जब इस प्रकार स्तुति की तब शरणके देनेवाले करुणावान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मनोहर वाणीसे राजाओंसे कहा ॥१७॥ कि हे राजाओ ! जैसे तुमने चाहना की उसी प्रकार सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूँ, मुझमें तुम्हारी आजसे दृढ़ भक्ति हुई ॥ १८ ॥ हे राजा लोगो ! सत्यवादी तुमने मेरा भजन करना, यह भला सत्य संकल्प निश्चय किया है, क्योंकि मनुष्य धन और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो इच्छानुसार विचरते देखे जाते हैं ॥ १९ ॥ कृतवीर्यका पुत्र चक्रवर्ती राजा सहस्रबाहु एक समय जमदग्नि ऋषिकी गौ हरके ले आया तब उसका परशुरामजीने पुत्रों सहित संहार किया और राजा नहुष मदोन्मत्त होकर इंद्राणीके पास जानेके लिए ब्राह्मणोंको पालकीमें जोतकर चला, तब ब्राह्मणोंने उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट करके सर्प कर दिया और राजावेनने मदोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंका तिरस्कार किया, तब ब्राह्मणोंने अत्यंत क्रोधित होकर हुँकार शब्दसे उसका प्राण संहार किया और राक्षसराज रावणने सीताकी आकांक्षाकी, तब महात्मा श्रीरामचंद्रजीने उसका वध किया और दैत्यराज नरकासुरने जब अदितिके कुण्डल हर लिए तब उसे मैंने ही मारा और कितने ही देवता और राजा धनके मदसे स्थानभ्रष्ट हो गये ॥२०॥ और तुम समस्त उत्पन्न देहादिकसे नाश होओगे यह जान सावधान हो यज्ञ करके मेरा पूजन और प्रजाकी रक्षा करो ॥२१॥ पुत्रादिकोंको उत्पन्न करो और जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख जो प्राप्त हो उसका सेवन करो और मुझमें चित्त लगाकर विचरो ॥ २२ ॥ आत्मामें रमण करते व्रत धारण किये देह और घरोंमें उदासीन होकर भली प्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अन्तमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होगे ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत ! त्रिलोकीके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार राजाओंको आज्ञा कर और उनको उबटन, स्नान और क्षौर इत्यादि कर्म करानेके लिये स्त्री-पुरुषोंको भेजा ॥२४॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! राजाओंके स्नान कर चुकनेपर जरासंधके पुत्र सहदेवसे राजाओंके योग्य वस्त्र, आभूषण, माला और चन्दनादिकसे उनकी पूजा कराने लगे ॥ २५ ॥ सुन्दर स्नान कर वस्त्र आभूषणोंसे शोभित और अनेक प्रकारके भोगोंसे युक्त राजाओंको श्रेष्ठ अन्न भोजन कराकर राजाओंके योग्य तांबूलादिक देने लगे ॥ २६ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रसे पूजित और प्रकाशमान कुण्डलोंको पहने बन्दीखानेके क्लेशसे छूटे हुए राजा वर्षाऋतुके पीछे आकाशमें तारागणोंके समान शोभायमान होने लगे ॥ २७ ॥ मणि और सुवर्णके गहनोंसे शोभायमान राजाओंको सुन्दर घोड़े जुते रथोंमें चढ़ाकर और मनोहर वचनोंसे प्रसन्न कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें अपने देशोंको भेज दिया ॥२८॥ हे महाराज ! इस प्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके छुड़ाये हुए कष्टमय राजालोग भगवान्का और उनके चरित्रोंका ध्यान करते हुए अपने-अपने नगरको चले गये ॥ २९ ॥ वे समस्त राजा जैसे महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने छुड़ाये थे

और जैसे पूजा करायी थी उसी प्रकार वह सब वृत्तात अपनी प्रजाके सम्मुख वर्णन किया और जिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने शिक्षा दी थी, उसी प्रकार आलस्य छोड़कर वर्तने लगे ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार भीमसेनके हाथसे जरासन्धको मरवाकर और सहदेवसे अपना पूजन कराकर भीम और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ आये ॥ ३१ ॥ दुष्टहृदय शत्रुओंको दुःख देनेवाले और अपने सुहृदोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्ण, भीम, अर्जुन जरासन्धको मार इन्द्रप्रस्थमें आकर शंखध्वनि करने लगे ॥ ३२ ॥ हे परीक्षित् शंखका शब्द सुन प्रसन्नमन इन्द्रप्रस्थनिवासी "जरासन्धकी मृत्यु हुई" यह जान गये और धर्मराज राजा युधिष्ठिरके मनोरथ पूर्ण हो गये ॥ ३३ ॥ इसके उपरांत भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णचंद्रने आकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम कर, आपने जो कुछ कहा वह सब किया ॥३४॥ धर्मराजके पुत्र राजा युधिष्ठिर ब्रह्मा महादेवके वश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो-जो कार्य किया उसे सुन नेत्रोंसे आनंदके आंसुओंकी धार बहाते प्रेमसे विह्वल हो कुछ न बोले ॥३५॥

इति श्री भाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दोहा—चौहत्तरमें राजसूय, कियो युधिष्ठिर यज्ञ ।
तबहिं हनो शिशुपाल नृप, कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जरासंधका वध और श्रीकृष्णका प्रभाव सुन अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीकृष्णचंद्रसे बोले कि ॥ १ ॥ जो पुरुष त्रिलोकीके गुरु हैं सब लोकोंमें बड़े ईश्वर हैं, वे भी दुर्लभ मानकर आपकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक कमलनयन ! आप हम दुःखी और सामर्थ्यपनका अभिमान रखनेवालोंकी आज्ञाको शिरपर धारण करते हो, यह बिडम्बनामात्र है, वास्तवमें आपको यह बात संभव नहीं हो सकती ॥ ३ ॥ एक अद्वितीय अर्थात् कोई जिनके बराबर नहीं और कोई जिनसे बड़ा नहीं ऐसे परमात्मा आप हो, आपका तेज परोपकारके लिए कर्मोंसे भी न्यून नहीं होता, जैसे सूर्यका उदय और अस्तमें तेज बढ़ता ही है घटता नहीं ॥४॥ यदि कहो कि मैं परमेश्वर हूँ तो सबको आज्ञा माननी, यह मन्द कर्म करना योग्य नहीं है, वह कहते हैं कि हे यदुवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अजित ! जैसे अज्ञानी पुरुषोंके देहमें अहंकार और देहके संगमें समता रहती है, उसी प्रकार आपके भक्तोंके "तू और तेरा, मैं और मेरा" यह बुद्धि नहीं होती ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कह और उनकी सम्मति ले यज्ञ करनेके योग्य वसंतादि कालमें वेदके पढ़नेवाले योग्य ब्राह्मणोंको होता, उद्गाता, अध्वर्यु इत्यादिकोंमें वरण किया ॥ ६ ॥ द्वैपायन, भरद्वाज, सुमंत, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित ॥७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, ऋतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन ॥८॥ अथर्व, काश्यप, धौम्य, परशुराम, भार्गव, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ इसी प्रकार बुलाये हुये ऋषि तथा द्रोणाचार्य, भीष्मजी, कृपाचार्यादि आए। तब पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र और बड़े बुद्धिमान् विदुरजी भी आकर सुशोभित हुए ॥ १० ॥ हे राजन् ! और भी यज्ञ देखनेके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,

व सब राजा और उनके प्रधान दीवान आये ॥११॥ इसके उपरांत ब्राह्मण लोग यज्ञ करनेकी भूमिमें सुवर्णका हल चलाकर भूमि शोधन कर राजा युधिष्ठिरको यज्ञदीक्षा देने लगे ॥१२॥ जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सुवर्णकी सामग्री और सुवर्णके पात्र थे उसी प्रकार इस यज्ञमें भी थे और ब्रह्मा, महादेव तथा इन्द्रादिक देवताओंको संग लेकर लोकपाल भी आये ॥१३॥ गणोंसहित सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, बड़े-बड़े सर्प, मुनीश्वर, यक्ष, राक्षस, खग, किन्नर, और चारण, इनके समूहके समूह आये ॥ १४ ॥ और आये हुए राजाओंकी सब स्त्रियाँ भी पांडु-पुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आयीं ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इस बातको कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि हरिभक्तकी सब वार्ता सिद्ध हो सकती है, इसी लिये इन्होंने युधिष्ठिरके यज्ञमें विस्मय नहीं किया, जैसे देवताओंने वरुणका यज्ञ कराया था उसी प्रकार देवताओंके समान कांतिवाले ऋत्विज राजसूय यज्ञ करके विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरसे यजन कराने लगे ॥ १६ ॥ अतिशय करके सावधान पृथ्वीका पालन करनेवाले राजा युधिष्ठिरने जिस दिन सोमवल्ली कूटी गयीं, उस दिन यज्ञ करानेवालोंका तथा बड़भागी जो सभामें मुख्य थे उनका पूजन किया ॥ १७ ॥ सभाके बैठनेवालोंमें प्रथम किसकी पूजा करनी चाहिये ?

चौ०—पहले पूजा काको कीजै ❋ अक्षत तिलक कौनसी दीजै ॥
कौन बड़ो देवनको ईश ❋ जाहि पूजि हम नावैं शीश ॥

यह विचार करते-करते एककी अपेक्षा एक बड़ा है, इस कारण जब किसीका निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिरके भाई सहदेवने कहा ❋ ॥ १८ ॥ भक्तोंका पालन करनेवाले अखण्डरूप समस्त देवता व देश काल धनादिकरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही इस यज्ञमें पूजा करनेके योग्य हैं ॥ १९ ॥ यह सब विश्व कृष्णका ही रूप है और यज्ञादिक भी कृष्णरूप ही हैं और अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, उपासनादि भी सब कृष्णपरायण हैं ॥ २० ॥ हे सभाके बैठनेवालो ! अजन्मा एक अद्वितीय कृष्ण हैं; वे अपने स्वरूप विश्वको अपने आत्मासे ही दूसरेकी सहायता विना उत्पन्न, पालन और नाश करते हैं ॥ २१ ॥ सब जनोंके अनुग्रह-से इस संसारमें अनेक प्रकारके तप-योगादिक कर्म करके धर्मादिक रूप कल्याणको करते हैं और अनेक प्रकारके सब कर्मोंके फल भी सब कृष्णके अधीन ही हैं ॥२२॥ इसलिये सबसे बड़े भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी ही पहले पूजा करनी योग्य है और इनकी पूजा करनेसे सब प्राणियोंकी पूजा हो जायगी ॥ २३ ॥ और जो कोई पूजाके योग्य होगा, उसकी भी पूजा हो जायगी, इस कारण जो पुरुष पूजाके अनन्तफलकी चाहना करे वह पुरुष सब प्राणियोंके आत्मा भेदभावरहित और शांतिपरिपूर्ण भगवान् वासुदेवकी पूजा करे ॥ २४ ॥ हे महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको जाननेवाला सहदेव चुप हो गया और उस समय सब श्रेष्ठ पुरुष सहदेवका वचन सुनकर " सत्य कहा ! सत्य कहा ! ! " इस प्रकार कहकर बड़ाई करने लगे ॥२५॥ स्नेहसे विह्वल और प्रसन्न हो राजा

❋ शंका- पृथ्वी पर युधिष्ठिर ने कुछ पहले यज्ञ नहीं किया, यज्ञ तो सत्ययुग से अनेक राजा करते चले आये है, फिर युधिष्ठिर के यज्ञ में पहले पूजन करने के लिये देवता का विचार क्यों किया ? कुछ ब्राह्मण भी प्रथम ही यज्ञ करने के लिये नहीं आये थे, पहले सत्ययुग में ब्राह्मण सहस्रों यज्ञ करा चुके थे, फिर धर्मराज के यज्ञ में इतना विचार क्यों किया ?

उत्तर- सब ब्राह्मण भगवान् को भूल नहीं गये थे, सब जानते थे कि यज्ञ में भगवान् का पूजन पहले करना चाहिये। ऐसा सब जानते थे, परन्तु दैवयोग से शिशुपाल ने कालवश मुनियों को और यज्ञ की सभा में बैठने वाले प्राणियों को मोहित कर लिया, काल कर के सब मुनिजन मोहित हो गये, क्योंकि जो यज्ञ में पहले पूजन करने योग्य कौन है ? ऐसा विचार न होता तो शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दा क्यों करता ? और बिना निन्दा किये भगवान् उसको क्यों मारते ? शिशुपाल के काल द्वारा मोहित मुनि और सब सभा के बैठने वाले प्रथम पूजन करने योग्य का विचार करने लगे।

युधिष्ठिरने उन ब्राह्मणोंके कहे हुए वचन सुन और सभामें बैठे हुए पुरुषोंके हृदयका अभिप्राय जान इंद्रियोंकी प्रेरणा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया ॥ २६ ॥ स्त्री, भाई, मंत्री और सब कुटुम्बके पुरुषोंसहित राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंको धोये, सब लोकोंके पवित्र करनेवाले चरणारबिन्दका धोवन जल अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥२७॥ पीले रेशमी वस्त्र और बहुत मोलके आभूषणोंसे भी पूजा कर आंसू भरे नेत्रोंसे राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको समर्थ न हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार जब राजा युधिष्ठिरने पूजा की, तब श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर सब लोग हाथ जोड़ "नमोनमः" और "जय जय" शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके फूलोंकी वर्षा करने लगे॥२९॥हे महाराज परीक्षित ! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा हुई, तब उस समय दमघोषका पुत्र शिशुपाल श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका वर्णन सुन अत्यन्त क्रोधित हो भुजा उठाकर ईर्ष्यापूर्वक निर्भय हो श्रीकृष्णको कठोर वचन सुनाकर यह कहने लगा ॥ ३० ॥ नाशरहित श्लाघ्य सामर्थ्यवान् काल बड़ा प्रबल है, वास्तवमें यह वेदकी श्रुति सत्य है, क्योंकि कालसे ही वृद्ध-वृद्ध सभामें बैठनेवालोंकी बुद्धि इस बालक सहदेवके कहनेसे चलायमान हो गयी ॥ ३१ ॥ हे पात्रके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ सभापतियो! भला, यह कृष्ण पूजाके योग्य है, कदापि नहीं। इस कारण इस बालकका वचन मानना उचित नहीं ॥३२॥ क्योंकि तप करनेवाले विद्वान्, व्रती, ज्ञानी, पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ और लोकपालोंसे पूजित ब्रह्मर्षि ॥३३॥ इस सभामें विराजमान् हैं, इन सबको त्याग गायोंको चरानेवाला और कुलको दोष लगानेवाला पूजाके योग्य कैसे हो सकता है ? क्योंकि यज्ञमें देवताओंके योग्य बलिको कौआ कैसे ग्रहण करने योग्य है ? ॥ ३४ ॥ न जिसका कोई वर्ण, न आश्रय और न कोई कुल है; संपूर्ण धर्मसे बहिष्कृत, जैसे मनमें आये वैसे ही करे, गुणहीन ऐसा कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सकता है ? ॥ ३५ ॥ राजा ययातिने इसके कुलको शाप दिया और सत्पुरुषोंने जातिबहिष्कृत किया और सर्वदा वृथा मदिरापान करनेवाला इसका कुल है, फिर इस कुलमें आज कृष्ण कैसे पूजाके योग्य हो सकता है ? ॥ ३६ ॥ ब्रह्मर्षिसेवित देशोंको त्याग ब्रह्मतेजरहित समुद्रके किलेका आश्रय लेकर यादवोंमें चोरके समान बाधा देता है ॥ ३७ ॥ हे भूपाल ! नष्टमंगल शिशुपाल और भी अनेक प्रकारके अमंगल वचन कहता रहा, परन्तु जैसे सिंह सियारोंके बोलनेपर ध्यान नहीं देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुछ न बोले ॥ ३८ ॥ सभासद दुस्सह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार निंदा सुन कर्ण मूंदकर अत्यन्त क्रोधित हो शिशुपालको गाली देने लगे ॥ ३९ ॥ क्योंकि भगवान्की निंदा अथवा भगवत्परायण पुरुषोंकी निंदा सुनकर जो पुरुष उस स्थानसे न उठ जायँ वे पुरुष अपने पुण्यसे भ्रष्ट होकर नरकमें गिरते हैं॥४०॥इसके उपरांत, हे परीक्षित्! क्रोधसे पांडुके पुत्र और मत्स्यदेश व सृञ्जय देशके राजा अपने-अपने शस्त्रोंको उठाकर शिशुपालके मारनेको उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न परीक्षित् ! इसके पीछे घबड़ाहटरहित शिशुपालने श्रीकृष्णचन्द्रके पक्षवाले राजाओंको मारनेके लिये ढाल और अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार ग्रहण की ॥ ४२ ॥ 'यह मेरा पार्षद है और मेरे समान बलवान् है, यह सबको मारेगा, इससे मैं ही इसको मारूँ' यह विचार उसी समय उठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी ओरके राजाओंको निवारण

करके सम्मुख आते अपने वैरी शिशुपालका शिर छूरेके समान पैनी धारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ उस समय बड़ा कोलाहल शब्द हुआ और शिशुपालके पिछलगू राजा-जीनेकी इच्छा करके भाग गये ॥ ४४ ॥ उस समय शिशुपालके देहमेंसे निकली हुई ज्योति सब प्राणियोंके देखते-देखते श्रीकृष्णचन्द्रमें इस प्रकार मिल गयी, जिस प्रकार आकाशसे गिरे तारे पृथ्वीमें मिल जाते हैं ॥ ४५ ॥ पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हुए, दूसरे जन्ममें रावण कुम्भकर्ण हुए, तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दंतवक्र हुए, इस प्रकार तीन जन्मके चले आये वैरसे तन्मय बुद्धिसे रूपका ध्यान करते-करते उसी रूपको प्राप्त हुए, अर्थात् पार्षद हो गये, क्योंकि जैसी जो भावना करता है, वैसा ही उसका जन्म होता है ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणोंको और बड़ी सभामें बैठनेवालोंको बड़ी दक्षिणा दी और विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञांतस्नान किया ॥४७॥ योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरका यज्ञ सिद्ध करके और सुहृदोंकी विनयसे कितने ही मास पर्यन्त वहां वास किया ॥४८॥ इसके उपरांत जाने देनेकी इच्छा न करनेवाले राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग सामर्थ्यवान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र अपने स्त्री पुत्रोंको संग लेकर द्वारका-पुरी चले आये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वैकुण्ठके वास करनेवाले जय-विजय पार्षदोंको सनकादिकका शाप लगा, इस कारण बारम्बार जन्म हुआ । प्रथम यह कथा तुम्हारे आगे विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं ॥ ५० ॥ राजसूय यज्ञ कर चुकनेके पीछे स्नान करके राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंके मध्यमें बैठे हुए इंद्रके समान सभामें शोभायमान होने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरसे सत्कार पाकर सब देवता और आकाशके विचरनेवाले मनुष्य, प्रमथगण, श्रीकृष्णचन्द्र और सभा तथा यज्ञ इनकी प्रशंसा करते आनन्दपूर्वक अपने-अपने लोकोंको चले गये ॥ ५२ ॥ परंतु कौरवोंके कुलमें कलियुगरूप कुलका नाशक धर्मद्वेषी दुर्योधन पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिरकी बड़ी शोभाको देख अपने मनमें बहुत कुढ़ा ॥ ५३ ॥ शिशुपालके वध आदिक जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कर्म बीस हजार आठ सौ राजा कैदसे छुड़ाये और राजा युधिष्ठिरका यज्ञ कराया, इस प्रसंगको जो पुरुष कहें अथवा सुनेंगे वे सब पापोंसे छूट जायँगे ॥ ५४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे
उत्तरार्द्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

दोहा—पिचहत्तर अममें पड़ो, अवभृथको अस्नान ।
दुर्योधनको क्षमा बिनु, भयो मान अपमान ॥

राजा परीक्षित् बोले, हे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञकी बड़ी शोभा देखकर जो राजा आये थे, वे सब प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण देवताओंने भी आनन्द पाया, केवल दुर्योधन ही वञ्चित रहा, यह हमने आपके ही मुखसे सुना । दुर्योधनको आनन्द क्यों न हुआ, इसका कारण कृपा करके मेरे सम्मुख वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! महात्मा तुम्हारे दादे राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सब बन्धुबांधव प्रेमवश होकर सबकी ही टहल करते थे ॥३॥ किसने

क्या काम किया, वह कहते हैं,–भीमसेनको रसोईका अधिष्ठाता, दुर्योधनको खर्च करनेका स्वामी अर्थात् कोशाध्यक्ष किया, क्योंकि यह हमको शत्रु जानकर बहुत द्रव्य उठायेगा तो इसमें हमारा यश होगा, सहदेवको आये-गयेकी पूजा करनेका काम सौंपा और नकुलको अनेक प्रकारकी सामग्रियोंका सम्पादक बनाया ॥४॥ साधुओंकी सेवा अर्जुन करता था और श्रीकृष्णचन्द्र यज्ञमें आनेवालोंके पांव धोकर पोंछ देते थे, परोसा परोसीमें द्रौपदी लग रही थी, उदार मनवाले कर्ण दान देनेकी टहलमें लग रहा था ॥५॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! सात्यकी विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरिश्रवादि बाह्लीक राजाके पुत्र और सन्तर्दन आदि उस बड़े यज्ञमें अनेक प्रकारके कर्मोंमें लगा दिये गये। उस समय वे सब महाराज युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये प्रवृत्त हो गये ॥ ६ ॥ ऋत्वक् और सभासद् तथा विवेकी सुहृदजनोंने सुन्दर मनोहर वचन, गहने और दक्षिणासे पूजित होकर शिशुपालको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्राप्ति होनेके उपरांत स्वर्गनदी गंगामें यज्ञकी समाप्तिका स्नान किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ यज्ञकी समाप्तिके उत्सवमें, मृदंग, शंख, ढोलक, खञ्जरी, नगारे, गोमुख, नरसिंहादिक चित्र-विचित्र बाजे बजने लगे॥९॥ नाचनेवाली नाचने लगीं और आनन्दपूर्वक गवैयोंके झुण्डके झुण्ड गाने लगे, उनके वीणा वेणु और हथेलीका शब्द स्वर्गतक व्याप्त हो रहा था ॥१०॥ चित्र-विचित्र छत्र, ध्वजा, पताका जिनके ऊपर ढकी, ऐसे बड़े-बड़े रथ, हाथी और घोड़ोंपर चढ़ सुवर्णकी माला पहने हुए सेनाको संग लेकर राजा निकले ॥११॥ राजा युधिष्ठिरको आगे किये यदु, सृञ्जय, कांबोज, कुरु, कैकय और कौशल देशके राजा पृथ्वीको कम्पायमान करते सेनासहित चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज तथा ब्राह्मण वेदकी ध्वनि करते चले और ऋषि, पितृ, गंधर्व पुष्पोंकी वर्षा करके स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ चन्दन, माला, गहने और वस्त्रोंसे शृङ्गार कर स्त्री पुरुष अनेक प्रकारके दूध दही आदि रसोंका लेपन करते और छिड़कते थे ॥ १४ ॥ तेल और माखन सुगंधित जल हरदी व केशर इत्यादिकोंका लेपन करते और छिड़कते परस्पर विहार करते थे ॥ १५ ॥ इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम विमानोंपर बैठकर देवांगनायें आयी हों उसी प्रकार वीर और रावतोंसे रक्षित हो राजा युधिष्ठिरकी रानियाँ रथ और पालकियोंमें बैठकर निकलीं। ये रानियाँ मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयी हुई लाज भरी मुसकान व प्रफुल्लित मुखसे शोभायमान हो रही थीं ॥ १६ ॥ भीगनेसे और शरीरमें चिपटनेसे उन स्त्रियोंके अङ्ग, कुच, जङ्घा और मध्यभाग स्पष्ट दिखायी देते थे, उत्सुकतासे चोटी शिथिल होनेके कारण उससे फूल बिखर रहे थे, देवर और सखिजन उन्हें डोलचियोंसे भिगो रहे थे, उनकी लीला देखकर मलिनमन कामीजनोंके चित्त अत्यन्त क्षुभित होते थे ॥ १७ ॥ सुवर्णकी माला पहने और सुन्दर घोड़े जुते रथमें बैठे राजा युधिष्ठिर जैसे क्रियाओं सहित यज्ञ सुन्दर लगता है उसी प्रकार स्त्रियोंसहित शोभायान लगने लगे ❋ ॥ १८ ॥ ऋत्विजोंने वे पत्नीसंयाज और आवभृथ्य नाम दो यज्ञांग करके गंगामें

❋ शंका- शास्त्र में और लोक में भी ऐसा सुना गया है कि राजा युधिष्ठिर ने एक स्त्री के सिवाय दूसरी स्त्री के संग अपना विवाह नहीं किया, फिर यज्ञ में बहुत स्त्रियों कर के शोभायमान युधिष्ठिर क्यों हुआ ?

उत्तर- द्रौपदी ने युधिष्ठिर की सेवा ऐसी की, जो सेवा करोड़ों स्त्रियों के करने से नहीं हो सकती। ऐसी द्रौपदी के पतिव्रत को युधिष्ठिर ने देख कर मन में जाना कि हमारे करोड़ों स्त्रियां हैं और व्यासजी ने जो युधिष्ठिर के मन की बात जान कर कहा कि युधिष्ठिर बहुत सी स्त्रियों द्वारा अपने यज्ञ में शोभित हुए।

द्रौपदीसहित आचमन कराकर राजा युधिष्ठिरको स्नान करवाया ॥ १९ ॥ देवता तथा मनुष्योंके नगाड़े बजने लगे और देवता, ऋषि, पितृ, मनुष्यादि फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ वर्णयुक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, इन चार आश्रमोंने भी गङ्गामें स्नान किया, क्योंकि इस गंगामें स्नान करनेंसे महापापी पुरुष भी शीघ्र पापसे छूट जाते हैं ॥ २१ ॥ स्नान करनेके उपरांत राजा युधिष्ठिर नवीन रेशमी धोती पहन भली प्रकार शोभायमान होकर ऋत्विज, सभासद् और ब्राह्मणादिकोंकी वस्त्रसहित पूजा करने लगे ॥ २२ ॥ नारायणके आश्रयी राजा युधिष्ठिरने भाई-बन्धु, जातिके राजा, मित्र, सुहृद् और भी सब मनुष्योंका वारंवार पूजन किया ॥ २३ ॥ देवताओंके समान कांतिवाले, मणियोंके जड़ाऊ, कुण्डल, माला, पगड़ी, जामा, पटुका और बड़े मोलके हार पहने हुए पुरुष और दोनों कुंडल अलकोंके समूहसे शोभायमान-मुखवाली स्त्रियाँ सुवर्णकी कौंधनी पहने सब शोभायमान लगती थीं ॥२४॥ हे राजन् ! स्नान किये पीछे राजा युधिष्ठिरसे पूजित हो शीलस्वभाववाले ऋत्विज, सभासद्, वेदपाठी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और राजा ॥ २५ ॥ देवता, ऋषि, पितृ, सब प्राणी अनुचरों सहित लोकपाल राजा युधिष्ठिरसे पूजन कराकर आज्ञा मांग अपने-अपने स्थानको चले गये ॥२६॥ हरि भगवान् भक्तोंमें राजर्षि राजायुधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी बड़ी शोभाकी प्रशंसा करते-करते तृप्त नही हुए, जिस प्रकार मनुष्यका चित्त अमृत पीते-पीते तृप्त नहीं होता ॥ २७ ॥ सुहृद, सम्बन्धी, बन्धु और श्रीकृष्णचन्द्रके बिछुड़नेसे कायर मनसे राजा युधिष्ठिरने प्रेमसे रखा ॥२८॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! उन राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिए सांब आदि पुत्र और यादवोंमें शूरवीरोंको द्वारकामें भेज आप श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रहने लगे ॥ २९ ॥ धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने दुस्तर मनोरथरूपी बड़ा समुद्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सहायतासे तरकर सब खेद दूर किया ॥३०॥ हे राजन् ! एक समय भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिरके निवासकी लक्ष्मी व राजसूय यज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन सन्ताप करने लगा ॥३१॥ राजा युधिष्ठिरका अन्तःपुर, कि जहां मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति और देवपतियोंकी नाना प्रकारकी विभूतियां प्रकाशमान हो रही थीं और जहां उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने स्वामियोंकी सेवा करती थी उसे देख दुर्योधनका मन अत्यन्त तापको प्राप्त हुआ॥३२॥राजा युधिष्ठिरके अन्तःपुरमें उस समय मधुपति श्रीकृष्णचंद्रकी रानियोंके समूह नितम्बोंके भारसे धीरे-धीरे चलनेमें बजते हुए नूपुरोंसे शोभित चरण, कुचोंकी केशरसे अरुण हार धारण किये चञ्चल कुण्डल और केशपाससे युक्त सुंदर मुख रमणीय कटिसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रकी सहस्रों रानियाँ वहां फिरती थीं ॥३३॥ मयदैत्यकी बनाई हुई सभा, उनमें किसी समय अपने आज्ञाकारी भाई-बंधु सहित और हित अहितके जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसहित धर्मपुत्र चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर ॥३४॥ साक्षात् सिंहासनपर जैसे इंद्र विराजमान होता है, उसी प्रकार सुवर्णके सिंहासनपर विराजमान होकर राज्यकी शोभासे सेवित और बन्दीजनोंसे स्तुति पाय शोभायमान होने लगे ॥३५॥ हे राजा परीक्षित् ! उसी समय भाइयोंको सङ्ग ले किरीट धारण किये, माला पहने और हाथमें तलवार लिये क्रोधकर द्वारपालोंको डाटता हुआ अभिमानी दुर्योधन सभामें आया ॥३६॥ वहां मयदैत्यकी बनाई सभामें सूखेमें जल दीखे और जलमें सूखा दीखे, ऐसी मयरचित सभामें मयदैत्यकी मायासे मोहित होकर दुर्योधनने

भ्रमसे सूखेमें जल जान अपना जामा उठाया और सूखा जानकर जलमें छोड़ दिया और जलमें गिर गया ॥३७॥ हे राजा परीक्षित् ! दुर्योधनको गिरा देखकर भीमसेन व सब स्त्रियां हँसने लगीं। यह देख राजा युधिष्ठिरने यद्यपि मने भी किया, परंतु तो भी श्रीकृष्णचन्द्रकी सैन पानेसे पहले भीमसेन हँसे; फिर पीछे सब राजा हँसने लगे ॥ ३८ ॥ इन राजाओंको हँसता देख दुर्योधन अत्यंत लज्जित हो नीची गर्दन कर क्रोधाग्निसे भभकता हुआ सभासे निकल चुपचाप हस्तिनापुरको चला गया। उस समय साधुओंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर उदास हो गये, जिनकी दृष्टिसे सब जगत् भ्रमण करता है, वह भगवान् तों चुप होकर बैठ गये, क्योंकि उनकी इच्छा पृथ्वीका भार उतारनेकी थी कि किसी न किसी प्रकार इस पृथ्वीका भार उतरे। यह समागम सहजमें बन गया। प्रथम यही भारतका बीज जमा ॥ ३९ ॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जो आपने प्रश्न किया था कि राजसूय यज्ञमें दुर्योधन कैसे कुढ़ा, उसका उत्तर मैंने सब आपके सम्मुख वर्णन कर दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे दुर्योधनमानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

दोहा—युद्ध छिहत्तरमें भयो, यादव शाल्व अपार।
घूमत गदा प्रहारसे, गये प्रद्युमन हार ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! इसके उपरांत क्रीड़ासे ही मनुष्यशरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णचंद्रके और भी अद्भुत कर्म हैं, जिस प्रकार सौभविमानके पति शाल्वको मारा, वह श्रवण करो ॥१॥ शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आया था, तब उसको संग्राममें यादवोंने जीत लिया और उसी प्रकार जरासन्धादि राजा भी जीते ॥२॥ सब राजाओंको सुनाकर राजा शाल्वने यह प्रतिज्ञा की कि संपूर्ण पृथ्वी यादवकुल रहित करूँगा; अब तुम सब मेरे पराक्रमको देखो ॥३॥ हे परीक्षित् ! इस प्रकार मूर्ख शाल्व प्रतिज्ञा कर केवल धूलकी एक मुष्टि फांकता हुआ पशुपति शिवजीकी आराधना करने लगा ॥४॥ शीघ्र संतुष्ट होनेवाले शिवजी श्रीकृष्णके द्वेषी शाल्वको वर देना निष्फल जान शीघ्र प्रगट न हुए, परंतु शरण आये शाल्वसे एक वर्ष पीछे यह कहने लगे कि वर मांग ॥५॥ उस समय देवता, असुर, मनुष्य, गंधर्व, सर्प, राक्षस इनसे न टूटे और जहांकी इच्छा हो वहां पहुँचाये, यादवोंको भयका देनेवाला ऐसा विमान दो, यह वर मांगा ॥६॥ तब ऐसा ही होगा यह कह भगवान् महादेवजीने मय दानवको आज्ञा दी, उसने झट वैरियोंके पुत्रको जीतनेवाला सौभनाम लोहेका बना विमान शाल्वको दिया ॥७॥ अन्धकारका घर, दुष्प्राप्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान पाकर वह शाल्व कृष्णके वैरका स्मरण करके द्वारकापुरीकी ओरको चला ॥ ८ ॥ हे राजन् ! शाल्व बड़ी सेनासे द्वारकापुरीको घेरकर सम्पूर्ण फूलोंके बाग और उद्यानोंको तोड़ने लगा ॥९॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अटा, उनकी भीतें व विहारस्थान तोड़ने लगा और उस उत्तम विमानपरसे शस्त्रोंकी वर्षा करने लगी ॥१०॥ और शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प, ओले बरसने लगे और प्रचण्ड पवन चलनेके कारण सम्पूर्ण दिशायें आच्छादित हो गयीं ॥ ११ ॥ हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार सौभके विमानसे पीड़ित

श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकापुरी जैसे त्रिपुर दैत्यसे पृथ्वी दुःखी थी उसी प्रकार दुःखी हो गयी, सुखका कहीं लेश भी न रहा ॥ १२ ॥ बड़े यशस्वी महारथी भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको दुःखी देखकर "भय मत करो" इस प्रकार कह कर सम्मुख आये ॥ १३ ॥ और सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब, और छोटे भाई अक्रूर तथा हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुकसारण ॥१४॥ बड़े धनुषधारी महारथी योद्धा कवच पहनकर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल इत्यादिकोंको सङ्ग लेकर निकले ॥ १५ ॥ इसके उपरांत, हे राजन् ! असुरोंका जैसे देवताओंके सङ्ग युद्ध हुआ था, उसी प्रकार रोमांचकारक महाभयानक युद्ध शाल्वकी सेनाका यादवोंके सङ्ग होने लगा ॥ १६ ॥ जैसे रात्रिके अन्धकारको भगवान् सूर्य दूर कर देते हैं वैसे ही रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने सौभ-विमानके पति शाल्वकी मायाको क्षण भरमें नाश कर दिया ॥ १७ ॥ सोनेके पुंख, लोहेकी भाली और छोटी छोटी गाँठवाले पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको शीघ्र बींध डाला ॥१८॥ इसके उपरांत भगवान् प्रद्युम्नजीने सौ बाण शाल्वके और एक-एक बाण प्यादोंके तथा दश-दश बाण सारथी और तीन-तीन बाणोंसे घोड़े-हाथियोंको बींध डाला ॥१९॥ महात्मा प्रद्युम्नजीका यह अद्भुत पराक्रम देखकर अपनी-परायी सेनाके योद्धा प्रद्युम्नजीकी बड़ाई करने लगे ❋ ॥ २० ॥ मय दैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो नानारूपसे और कभी एकरूपसे दिखायी देता, कभी बिलकुल दीखता ही नहीं, इस लिये शत्रु जो यादव उनको तर्क करना महा कठिन हो गया ॥ २१ ॥ वह विमान कभी भूमिपर, कभी आकाशमार्गमें, कभी पर्वतके शिखरपर और कभी जलमें अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था, इस कारण इसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना अत्यन्त कठिन हो गया ॥ २२ ॥ विमान और सेनासहित जहां-जहां शाल्व दिखायी देता था, वहां-वहां यादवोंमें मुख्य वीरगण बाणोंको छोड़ते थे ॥ २३ ॥ अग्नि सूर्यके समान गरम स्पर्शवाले विषके तुल्य असह्य वैरियोंके चलाये बाणोंसे शाल्वकी सेना अत्यन्त पीड़ित हो गयी और शाल्व भी व्याकुल हो गया ॥२४॥ शाल्वकी सेनाके शस्त्रोंके समूहसे अत्यन्त पीड़ित होकर भी लोक-परलोकके जीतनेकी इच्छावाले यादव शूरवीरोंने अपनी-अपनी युद्धभूमिको नहीं छोड़ा ॥२५॥ प्रद्युम्नके पहले गदा प्रहारसे पीड़ित हुआ शाल्वका बली द्युमाननाम मन्त्री लोहेकी गदा छातीमें मारकर पुकारने लगा ॥ २६ ॥ वैरीको शान्त करनेवाले प्रद्युम्नजीका वक्षस्थल गदाके लगनेसे विदारित हो गया, धर्मका जाननेवाला दारुकका पुत्र सारथी प्रद्युम्नजीको लेकर रणभूमिसे बाहर निकल आया ॥२७॥ दो घड़ीमें चैतन्य हो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र प्रद्युम्नजी सारथीसे बोले कि, अहो रथवान् ! तू रणमेंसे जो मुझे भगाकर ले आया, यह बुरा काम किया ॥ २८ ॥ व्याकुल चित्तवाले तुझ रथवान्ने मुझे कलंक लगाया, क्योंकि मुझ विना यादवोंके कुलमें जन्म ले रणमेंसे भागना और किसी का नहीं सुना, परन्तु मेरा इसमें क्या दोष है; यह कलंक तो सारथीने लगाया ॥२९॥ पिता

❋ शंका—प्रद्युम्नने बाणोंसे शाल्व और शाल्वकी सेनाको मूर्छित कर दिया, तब प्रद्युम्नके ऐसे पराक्रमको देखकर शाल्वकी सेना और प्रद्युम्नकी सेनाने आश्चर्य माना? प्रद्युम्नका क्या नवीन कर्तव्य था? ऐसा कर्तव्य तो प्रद्युम्नने अनेक वार किया था।

उत्तर—शाल्वको ब्रह्माने किसी समय वर दिया था कि तुझको और तेरी सेनाको संग्राममें श्रीकृष्ण मूर्छित करेंगे और त्रिलोकीमें कोई प्राणी तुझको और तेरी सेनाको दुःखित नहीं कर सकेगा। जब प्रद्युम्नने शाल्वको और उसकी सेनाको मूर्छित कर दिया तब ब्रह्मादिक सब देवता आश्चर्य मानने लगे और प्राणियोंने आश्चर्य माना तो क्या बड़ी बात है?

राम कृष्णसे मिलूँगा तो क्या कहूँगा ? वे पूछेंगे तब युद्धमेंसे भागकर निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किस प्रकार निवेदन करूँगा ? ॥ ३० ॥ भाइयोंकी स्त्रियाँ भाभी कहेंगी कि हे वीर ! युद्धमें शत्रुओंके सम्मुखसे नपुंसक हो कैसे आज भाग आये ? हमसे तो कहो, इस प्रकार हँसकर मुझसे कहेंगी ॥३१॥ यह सुनकर रथवान् बोला, हे चिरंजीवी ! हे समर्थ ! धर्मका ज्ञाता मैं तुम्हें रणमेंसे निकाल लाया, क्योंकि धर्ममें ऐसा ही कहा है, रथमें बैठनेवालेको कष्ट आकर उपस्थित हो तो रथवान् रक्षा करे और सारथीके ऊपर कष्ट आये तो बैठनेवाला उसकी रक्षा करे ॥ ३२ ॥ हे वीर ! शत्रुने आपके गदा जो मारी तो आप अति पीड़ित होकर मूर्छित हो गये इसलिये धर्म जानकर मैं तुम्हें रणसे निकाल लाया ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

दोहा–सतहत्तर अध्यायमें, शाल्ववीरको मार ।
तोरो सौभ विमान पुनि, यदुपति परम उदार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरांत प्रद्युम्नजीने हाथ-पांव धो कवच पहन और धनुष हाथमें लेकर कहा कि हे रथवान् ! वीर द्युमानके पास मुझे ले चल ॥१॥ रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजीने मुसकाकर उसीकी सेनाके योद्धाओंको मारते हुए द्युमानको अत्यन्त तीक्ष्ण आठ बाण मारे ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको, एक बाणसे रथवान्को मारा दो बाणोंसे धनुष और ध्वजाको काट डाला और एक बाणसे महारथी प्रद्युम्नजीने द्युमानका शिर काट लिया ॥ ३ ॥ गद, सात्यकी और साम्ब आदि यादव विमानका पालन करनेवाले शाल्वकी सेनाको मारने लगे और शिर काटनेसे संपूर्ण विमानके बैठनेवाले समुद्रमें गिर गये ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम ! इस प्रकार २७ दिन तक यादव और शाल्वकी सेनाका भयानक युद्ध हुआ ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित ! धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरके बुलाये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें गये थे, वहां जब राजसूययज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर चुका ॥६॥ इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंमें वृद्धोंसे और मुनियोंसे और पुत्रोंसहित कुंतीसे आज्ञा मांग मार्गमें कुत्सित शकुन देख द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥७॥ और मार्गमें खोटे शकुन देखकर विचार करने लगे कि बड़े भाई बलदेवजी सहित मैं यहां यज्ञमें आया हूँ, इससे शिशुपालकी ओरके राजा निश्चय मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥८॥ अपने यादवोंका कष्ट देख बलदेवजीको द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिये कहकर सौभ विमानमें बैठे हुए शाल्वको देख केशव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्से कहने लगे कि ॥ ९ ॥ हे रथवान् ! शीघ्र मेरे रथको शाल्वके समीप पहुँचा दे और इस विमानका राजा शाल्व बड़ा मायावी है इससे तू घबड़ाना मत ॥१०॥ इस प्रकार वचन सुनकर रथवान् रथपर बैठकर रथको हांकने लगा और अपनी परायी सेनाके लोगोंने रथकी ध्वजामें गरुड़को आता देखा ॥११॥ शाल्वकी बहुतसी सेना नाश हो गयी थी। उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको युद्धमें आया देखकर शाल्वने उनके सारथीपर अत्यन्त भयंकर वेगवाली शक्ति फेंकी ॥१२॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दिशाओंको प्रकाश करती बड़े तारेके समान आकाशमें चली आती बरछीको

अपने बाणोंसे सौ खण्ड कर दिये ॥ १३ ॥ और अत्यन्त कुपित हो सोलह बाणोंसे शाल्वको बींध डाला, फिर आकाशमार्गमें भ्रमण करनेवाले विमानको सूर्यकी किरणोंसे बिंधे हुए आकाशके समान बाणोंके समूहोंसे बेध दिया ॥ १४ ॥ शार्ङ्गधनुषधारी शौरी श्रीकृष्णचन्द्रको धनुष सहित वाम भुजाको शाल्वने बींध दिया, तब श्रीकृष्णचन्द्रके हाथसे धनुष गिर गया, यह बड़ी ही आश्चर्यकी बात हुई ॥१५॥ हाथसे धनुष गिरा देख प्राणियोंमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और उसी अवसरमें विमानका राजा शाल्व अत्यन्त ऊँचे स्वरसे गर्जनाकर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि ॥१६॥ हे मूर्ख! जो तू हमारे भाई अथवा सखा शिशुपालकी स्त्रीको हमारे देखते ही हरकर ले गया और सभाके बीच असावधान विराजमान तूने हमारे सखाको मारा ॥ १७ ॥ अपनेको अजित माननेवाला तू जो आज मेरे सम्मुख खड़ा रहेगा, तो निश्चय यमलोक पहुँचा दूँगा ॥ १८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे अधम! तू वृथा बकवाद करता है और निकट ही जो तेरी मृत्यु उपस्थित है, उसे नहीं देखता। शूरवीर बहुत बकते नहीं, अपना पुरुषार्थ दिखाते हैं और जो बहुत बकते हैं वे कुछ पराक्रम नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्रोध करके बड़े वेगसे गदा उसके कण्ठके नीचे हाडमें मारी कि जिसके लगनेसे शाल्व रुधिर वमन करता हुआ कांपने लगा ॥२०॥ और तत्काल ही शाल्व अन्तर्धान हो गया, फिर दो धड़ी पीछे एक पुरुष आकर शिर झुका श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार कर रोता हुआ "मुझे देवकीने भेजा है" यह कहने लगा ॥२१॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे पिताका हित करनेवाले! जैसे कसाई पशुको बांधकर ले जाता है, उसी प्रकार शाल्व तुम्हारे पिताको बांधकर ले गया ॥ २२ ॥ ऐसा अप्रिय वचन सुन मनुष्य-स्वभावमें प्राप्त दयावान् श्रीकृष्णचन्द्र विमन होकर प्राकृत मनुष्यके समान कहने लगे ॥ २३ ॥ कि संभ्रमरहित, देवता असुरोंके अजेय बलदेवजीको जीतकर तुच्छ शाल्व मेरे पिताको कैसे बांधकर ले गया? विधाता बलवान् है, कदाचित् ले गया होगा ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र इतना कहते ही थे कि इतनेमें मायाके वसुदेवको लेकर शाल्व आया और श्रीकृष्णचंद्रसे बोला कि हे नीच! यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है, जिसके लिये तू जीवित है, अभी तेरे देखते इसे मारूंगा, यदि तुझमें कुछ सामर्थ्य हो तो इसकी रक्षा कर ❋ ॥ २५ ॥ २६ ॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको कटुवाक्य कह तलवारसे वसुदेवजीका मस्तक काट डाला, और उस मस्तकको ले आकाशमें स्थित सौभ विमानमें पहुँचा ॥२७॥ स्वतः सिद्ध ज्ञानवाले श्रीकृष्ण-

❋ शंका- शाल्व ने माया द्वारा वसुदेवजी की मूर्ति साक्षात् बना ली, यह बड़ी शंका है, क्या माया रात-दिन सब की बुद्धि भ्रमाती है? क्योंकि राक्षस माया के द्वारा अनेक प्रकार की वस्तु बना लेते हैं, परन्तु शास्त्रों में लिखा है कि वसुदेव सरीखे तपधारी और श्रीकृष्ण भगवान् हितकारी वैकुण्ठनाथ से जिन के पुत्र ऐसे धर्मात्मा की मूर्ति को माया से क्षुद्र राक्षस ने बना लिया, यह महाआश्चर्य की बात है?

उत्तर- ब्रह्मा ने किसी समय शाल्व को वर दिया था कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव की मूर्ति तो तुझ से बनेगी नहीं और त्रिलोकी में जिस की मूर्ति बनाना चाहेगा उसकी बना लेगा और ब्रह्मा ने वरदानों के देते समय शाल्व से यह भी कहा था कि जब तू वसुदेव की मूर्ति बनायेगा उसी समय तू मारा जायगा, उस ब्रह्मा के वचन को कालवश हो कर भूल गया और वसुदेव की मूर्ति बनायी। उसी समय वृन्दावन-विहारी श्रीगोवर्धनधारी ने शाल्व को मार डाला। देखो, जब मृत्यु के दिन आते हैं, तब परमेश्वर वैसा ही बना देता है, इसलिये शाल्व ने वसुदेव की मूर्ति क्या बनायी थी, अपना काल बुलाया था।

चन्द्र अपने जनोंके सङ्ग दो घड़ीतक मनुष्योंके स्वभावसे शोकमें डूबे रहे, फिर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मयदैत्यकी प्रकट की हुई शाल्वकी चलायी आसुरी मायाको जान लिया ॥ २८ ॥ जब इस प्रकार चेते तो जैसे जागता हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थको न देखे उसी प्रकार रणभूमिमें श्रीकृष्णचन्द्रने न तो दूतको और न पिताके देहको देखा वरन् सौभ विमानमें विराजमान आकाशमें भ्रमण करते हुए शत्रुको देखकर उसके मारनेका उपाय करने लगे॥२९॥श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे महाभागवत परीक्षित् ! पूर्वापरका अनुसन्धान न रखनेवाले कितने एक ऋषि लोग यह कहते हैं पर वह अपनी वाणीमें जो विरोध आता है उसका ध्यान नहीं करते, उन्होंने पहले कहा कि "बलदेवजी आज्ञा ले और उन्हें हस्तिनापुरमें छोड़ आप इन्द्रप्रस्थ गये" इसके उपरांत कहते हैं कि "इंद्रप्रस्थसे आ शाल्वको युद्ध करता देख बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षा करनेके लिये भेजा" यह उनके वचनमें ही भेद होता है, शुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! यह हमारा मत नहीं है अन्य ऋषियोंका है॥३०॥शोक, मोह, स्नेह, भय यह कहां ? और अखण्ड विज्ञान ऐश्वर्य देवता जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहां ? ॥३१॥ जिनके चरणारविंदकी सेवासे पुष्ट हुई आत्मविद्याके प्रभावसे सज्जन पुरुष अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग अनन्त ईश्वरसम्बन्धी पद आत्माको पाते हैं, उन सर्वोत्तम शरणागतपालक श्रीकृष्णचन्द्रमें कदाचित् मोह नहीं हो सकता ॥३२॥ यही यथार्थ है कि बड़े पराक्रमी शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रने बलपूर्वक शस्त्रोंके प्रहारसे शाल्वको वेध उसका कवच, धनुष और उसके शिरकी मणि काटकर उसके विमानको गदासे चूर्णकर दिया ॥३३॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके हाथसे चलायी हुई गदासे हजारों खण्ड होकर वह विमान चूर्णीभूत हो पृथ्वीमें गिर गया। उस समय शाल्व विमान छोड़, गदा हाथमें ले श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर दौड़ा ॥ ३४ ॥ दौड़ते हुए शाल्वके गदा भाले सहित हाथ काटकर उसके मारनेके लिये प्रलयकालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्रको ग्रहणकर उदयाचल पर्वतपर सूर्यके समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शोभायमान लगने लगे॥३५॥जैसे देवराज इंद्रने वज्रसे वृत्रासुरका माथा काटा था, उसी प्रकार अत्यंत मायावी शाल्वका कुण्डलोंसहित शिर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने काट लिया। उस समय मनुष्योंमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ॥३६॥इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! जिस समय गदासे विमान टूटा और अत्यन्त पापी दुराचारी शाल्व पृथ्वीमें गिर पड़ा, तब स्वर्गमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे, इसके उपरांत मित्र शिशुपाल और शाल्व तथा पौंड्रक इनका ऋण चुकानेके लिये क्रोधित हो दंतवक्र आया ॥ ७७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे शाल्ववधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा—दन्तवक्र हरि मारि पुनि, हनो विदूरथ वीर।
रोमहर्ष हलधर वधो, अठहत्तर रणधीर ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! परलोकमें प्राप्त हुए शिशुपाल और शाल्व तथा पौंड्रकके परोक्षमें मित्रताका जाननेवाला दुष्टबुद्धि दंतवक्र क्रोध कर अकेला ही पांव प्यादा महाबलवान् गदा हाथमें लिये पृथ्वीको कम्पायमान करता अत्यन्त शीघ्रतासे आता हुआ दिखायी दिया ॥ १ ॥ २ ॥ इस प्रकार दंतवक्रको आता हुआ देख भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रने गदा हाथमें ले रथसे उतर समुद्रको जैसे किनारे रोकते हैं, उसी प्रकार दन्तवक्रको रोक दिया ॥ ३ ॥ दुर्मद करूषदेशका राजा दन्तवक्र मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि, तू जो मेरे नेत्रोंके सम्मुख आया यह बड़ा ही मङ्गल हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और हमारे मित्रका मारनेवाला है और मुझे भी मारना चाहता है, इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान इस गदासे तेरा प्राण संहार करूँगा ॥ ५ ॥ हे अज्ञानी ! देहमें रहे रोगको जिस प्रकार नाश करते हैं, उसी प्रकार बन्धुरूप वैरी जो तू है, उसे मारूँगा, तब मित्रवत्सल मैं मित्रोंके ऋणसे उऋण हूँगा ॥६॥ इस प्रकार कठोर वाक्य कह श्रीकृष्णचन्द्रके माथेमें गदा मारकर सिंहके समान दन्तवक्र गर्जने लगा, जैसे हाथीके अंकुश लगे ऐसी ही वह गदा लगी ॥७॥ संग्राममें गदा लगनेसे भी श्रीकृष्णचन्द्र न गिरे, इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने बड़ी कौमोदकी गदाको ले दन्तवक्रकी छातीमें मारा ॥ ८ ॥ अत्यन्त वेगवान् गदा पड़नेके कारण हृदय विदीर्ण होनेसे दन्तवक्र मुखसे रुधिरका वमन करता हुआ प्राणोंको छोड़ केश, हाथ, पांव, फैलाकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥ ९ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरांत दन्तवक्रके शरीरसे अद्भुत सूक्ष्मज्योति निकलकर सब प्राणियोंके देखते शिशुपालके वधके समान श्रीकृष्णचंद्रमें प्रविष्ट हो गयी ॥१०॥ इसके उपरांत भाई दंतवक्रके शोकसे व्याकुल विदूरथ ढाल, तलवार ले श्रीकृष्णचंद्रको मारनेके लिये बड़े-बड़े श्वास लेता हुआ आया ॥ ११ ॥ हे परीक्षित् ! विदूरथको इस प्रकार आता हुआ देख मुकुट और कुण्डलोंसहित उसका शिर छुरेके समान धारवाले चक्रसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने काट लिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार सौभ विमान और शाल्व तथा भ्राताओंसहित दंतवक्रको जब भगवान् वासुदेव मार चुके, तब देवता और मनुष्य स्तुति करने लगे ॥१३॥ मुनीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, सर्प और अप्सरायें, पितरोंके गण, यक्ष किन्नर, चारण ॥१४॥ ये सब कोई श्रीकृष्णचंद्रकी विजय गाते हुए फूल बरसाकर चले गये। इसके उपरांत श्रीकृष्णचंद्र सब यादवोंको संग ले शोभायमान द्वारका पुरीको गये ॥ १५ ॥ इस प्रकार योग और जगतके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सदा जयको ही प्राप्त करते हैं। पशुओंके समान दृष्टिवाले अज्ञानी पुत्रषोंको जरासन्धसे हारे जीते प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ पीड़ित कौरवोंको एक तुल्य माननेवाले बलदेवजी उनके युद्धका उद्यम सुनकर तीर्थयात्राका बहानाकर द्वारकासे चले गये, क्योंकि यहां रहनेसे जिसकी ओर न रहूँगा, वही बुरा मानेगा ॥ १७ ॥ प्रभास तीर्थमें स्नान कर देवता, ऋषि, पितृ, मनुष्योंका तर्पण कर और ब्राह्मणोंको संग ले सरस्वतीके प्रवाहके सम्मुख महात्मा बलदेवजी चले गये ॥ १८ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! पृथूदक, विंदुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशाल ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती व यमुनाके तीर्थ, गंगाके तीर्थ और जहां ऋषि यज्ञ करते थे उस नैमिषारण्यमें बलदेवजी गये ॥ १९ ॥ २० ॥ बड़े यज्ञवाले मुनि बलदेवजीको आया हुआ देख प्रशंसा करते हुए शीघ्र उठ प्रणाम कर यथायोग्य उनका पूजन करने लगे ॥२१॥ ब्राह्मणोंसहित पूजित हो आसन पर बैठ महात्मा बलदेवजीने वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षणको बैठा देखा ॥ २२ ॥ यह सूतजाति होकर उन सब ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर विराजमान था, न तो उसने प्रत्युत्थान किया और न विनय की और न हाथ जोड़कर स्तुति की,

तब उसको देखकर भगवान् बलरामजीको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ और अपने मनमें विचार करने लगे कि यह प्रतिलोम जाति होकर इन ब्राह्मणों और धर्मपालक हमसे भी ऊँचे आसनपर विराजमान है, इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि मार डालनेके योग्य है ॥२४॥ क्योंकि भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य होकर इतिहास और पुराणोंसहित धर्मशास्त्र पढ़कर यह सूत ऐसे आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटके समान वेष धारण करनेवाले अजितेन्द्रिय, अजितमन, विनयरहित, वृथा पंडिताभिमानी पुरुष हैं उनको शास्त्राभ्यास भी गुणकारक नहीं होता ॥ २६ ॥ इस लोकमें मैंने इसलिये अवतार लिया है कि ऐसे धर्मध्वजी पुरुषोंका विनाश करना है, क्योंकि वे सबसे अधिक पापी होते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि महात्मा बलरामजीने दुष्टोंको मारना छोड़ दिया था परन्तु तो भी होनी ऐसी ही थी, इस कारण इतना कहकर उन्होंने हाथमें स्थित डाभके अग्रसे उसको मार डाला ❋ ॥ २८ ॥ तब उसके मरते ही सब मुनिलोग महा हाहाकार करने लगे और खेदको प्राप्त होकर बलरामजीसे बोले कि हे भगवन् ! यह आपने बड़ा अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जबतक यज्ञ सम्पूर्ण हो, तबतक हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हम लोगोंने सूतको ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो ऐसी आयु दी थी, पन्तु आपने विना जाने यह ब्रह्महत्याकासा कार्य किया ॥ ३० ॥ हे लोकपावन बलरामजी ! तुम योगेश्वर हो इस कारण आपको वेदमें कही ब्रह्महत्याका भी दोष नहीं लग सकता, परन्तु तो भी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित करोगे तभी संसारकी मर्यादा रहेगी ॥३१॥ यह सुनकर बलरामजीने कहा जगत्की मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं प्रायश्चित करूँगा, इस कारण मुख्य जो नियम हो वह मुझे बताओ ॥३२॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयु, बल, इंद्रिय और सामर्थ्य होंनेमें जो तुम्हारी अभिलाषा हो वह वर्णन करो, क्योंकि जैसी आप आज्ञा करेंगे वैसा ही मैं योगमायाके प्रभावसे करूँगा ॥३३॥ तब मुनि बोले कि हे राम ! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता हो और तुमने जो वचन हमसे कहा है वह भी सत्य हो जाय उसी प्रकार करो ॥ ३४ ॥ बलरामजी बोले कि पिता ही पुत्ररूप उत्पन्न होता है इस प्रकार वेदकी आज्ञा है, इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण श्रवण करायेगा और आयुष्य, इंद्रियशक्ति व शरीरके बलसे परिपूर्ण होगा ॥३५॥ हे मुनिजनो ! आपको दूसरी किसी बातकी अभिलाषा है ? वह हमसे कहो, आप जो कहेंगे वह मैं करूँगा, हे बुधलोगो ! मैं प्रायशिचत नहीं जानता, इस कारण उसका भी विचार करो ॥ ३६ ॥ तब ऋषीश्वर बोले कि, हे राम ! घोर रूप इल्वलका पुत्र बल्वल नाम दानव अमावस पूनोको आकर हमारे यज्ञको भ्रष्ट करता है ॥ ३७ ॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलदेवजी ! पीब, रुधिर, मूत्र, विष्ठा, मदिरा और मांस

❋ शंका- भावी प्राकृत जीवों के लिये है, उन्हीं से भला-बुरा कर्म करा सकती है, कुछ भगवान् के ऊपर भावी नहीं चल सकती फिर भगवान् शेषजी ही तो बलदेवजी थे, वे भावी के वश कैसे हो गये, जो सूतजी को मार डाला ? यह बड़ी शंका है।

उत्तर- ब्रह्मा, विष्णु, महेश के ऊपर भावी कुछ भी नहीं कर सकती, तो भी भावी मर्यादा पालन करने वाले तीनों देव संसार में भावी के वश हो कर अनेक प्रकार का काम करते हैं, इसलिये अनन्तरूप बलदेवजी ने माया के वशीभूत हो सूतजी को मार डाला।

इनकी वर्षा करनेवाले पापी बल्वलको मारो, यही हमारी सेवा है ॥ ३८ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त सावधान होकर काम क्रोधादिकोंको त्याग भरतखण्डकी परिक्रमा कर, जब एक वर्षतक तीर्थोंमें स्नान करोगे तब शुद्ध होगे ॥ ३९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

दोहा—उन्नासी अध्यायमें, बल्वलको वधि राम।
बहुरि तीर्थयात्रा करी, जहां जहां शुभ धाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! बलरामजीने उन ऋषियोंसे कहा कि हे कृपासिंधो ! मेरी इच्छा यह है कि प्रथम मुझे सुना दीजिये कि तीर्थोंमें स्नान और दान करनेसे क्या पुण्य होता है ? वह हमारे आगे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥१॥ तब ऋषि बोले कि हम तुमसे तीर्थोंके फलको कहते हैं, सावधान मनसे सुनो, यह ऋषियोंके सुनने योग्य है ॥२॥ जिसके हांथ, पांव, मन विद्या और कीर्ति व्रजमें होती है, वही तीर्थोंके फलको भोगता है, जो सब घरोंसे लौटकर एक किसी स्थानपर सन्तुष्ट होकर रहता है, जिसको अहंकार नहीं होता, वही तीर्थोंके फलको भोगता है, जो छल और कार्योंके आरंभसे दीन थोड़ा खानेवाले इंद्रियजित और सब पापोंसे रहित होता है, वही तीर्थोंके फलको भोगता है ॥ ३ ॥ हे बलराम ! जो क्रोधसे रहित, सत्य और शीलसे भरा हुआ दानव्रतधारी और अपने समान सब प्राणियोंको देखनेवाला हो, वही तीर्थोंके फलको भोगता है ॥४॥ जो यज्ञ ऋषियोंने देवताओंके लिए कहा है, जिनका फल इस लोक और परलोकमें होता है, उन यज्ञोंको दरिद्री पुरुष नहीं कर सकते, क्योंकि यज्ञमें अनेक सामग्री और बहुत वस्तुओंका विस्तार चाहिये ॥५॥ उन यज्ञोंको राजा ही कर सकते हैं और कहीं-कहीं धनवान् पुरुष भी करनेमें समर्थ होते हैं परंतु थोड़े धनवाले सहाय-रहित अकेले साधनहीन पुरुष नहीं कर सकते ॥६॥ हे राम ! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! जो विधि दरिद्रोंके लिए यज्ञफलके समान कही है उनको श्रवण कीजिये ॥७॥ हे प्रभो ! यह ऋषियोंका परमगुप्त मत है कि पवित्र तीर्थोंमें जाना यज्ञोंसे भी अधिक फलदायक है, तीर्थोंमें सोना और गऊ दान न करके भी तीन रात तीर्थोंमें रहनेसे दरिद्री भी पवित्र होता है। भारी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञ करनेसे जो फल होते हैं, वे ही इन तीर्थोंमें जानेसे भी होते हैं ॥८॥ देवताओंका तीर्थ पुष्कर नामक मृत्युलोकमें विद्यमान है, वह तीनों लोकमें विख्यात है, महाभागी पुरुषको वहां जाना उचित है। हे महामते ! पुष्कर तीर्थमें तीनों सन्ध्याओंके समय दश करोड़ तीर्थ इकट्ठे होते हैं। वहां सूर्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत, गन्धर्व और अप्सरा सब ही निवास करते हैं ॥९॥ हे संकर्षण ! जहां देवता, दैत्य और ब्रह्मर्षि लोग महापुण्यके सहित तप करके दिव्य भोगको प्राप्त होते हैं, उस पुष्करका जो मनस्वी पुरुष मनसे भी ध्यान करता है, वह सब पापोंसे पवित्र हो स्वर्गमें जाकर पूजित होता है ॥१०॥ हे बलभद्र ! उस तीर्थमें सब लोकोंके पितामह परम प्रीतिके सहित सदा ही निवास करते हैं ॥ ११ ॥ हे रेवतीरमण ! पुष्करमें पहले देवता और ऋषिलोग पवित्र पुण्यके सहित तप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १२ ॥ पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला पुरुष

यदि उसमें स्नान करे तो अश्वमेध यज्ञसे बारह गुणे फलको पाता है ॥१३॥ यदि पुष्करमें रहनेवाले एक ब्राह्मणको भी भोजन कराये तो उस कर्मके प्रभावसे इस लोक और परलोकमें आनंद करता है। साग, लवन, फल, या जो कुछ आप खाय, वही ब्राह्मणको श्रद्धा सहित खिलावे, तो उसी कर्मके फलसे बुद्धिमान् पुरुष अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ हे राम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र जो कोई हो, उस तीर्थमें स्नान करके फिर गर्भमें नहीं आता। विशेष करके जो कार्तिककी पूर्णमासीको पुष्करमें स्नान करता है उसको अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जो सन्ध्या अथवा प्रातःकाल हाथ जोड़कर पुष्करका स्मरण करता है उसे सब तीर्थ-स्पर्श करनेका फल होता है ॥ १६ ॥ चाहे पुरुष वा स्त्री हो, उसने जन्मभरमें जो पाप किया है, वह सब पुष्करमें स्नान करते ही नष्ट हो जाता है ॥१७॥ जैसे सब देवताओंमें पहले विष्णु हैं वैसे ही सब तीर्थोंमें आदि पुष्कर है ॥१८॥ हे बलदेवजी जो पवित्र और इंद्रियजित होकर बारह वर्ष पुष्करमें रहे, वह सायुज्य मोक्ष पाता है और ब्रह्मलोकमें वास करता है॥१९॥जो सौ वर्षतक अग्निहोत्र करे और जो एक कार्तिककी पूर्णमासीको पुष्करमें स्नान करे, उन दोनोंको समान ही फल मिलता है ॥२०॥ वहां तीन शिखर और तीन पुष्करादि झरने सिद्ध हैं किंतु इसका कारण हम नहीं जानते ॥ २१ ॥ पुष्करमें जाना; तप करना, दान करना अत्यन्त कठिन है, जो थोड़ा भोजन करनेवाला इंद्रियोंको वशमें करके प्रदक्षिणाके पश्चात् बारह दिनतक पुष्करमें रहता है, वह जम्बूमार्गमें आता है। देवता ऋषि और पितरोंसे सेवित जम्बूमार्गमें जाकर सब काम पाकर अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है ॥२२॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! जो पितर और देवताकी पूजा करनेवाला अगस्त्यसरमें जाकर तीन-रात रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥२३ ॥२४॥ जो शाक और फलोंको खाता है उसे कुमारभाव प्राप्त होता है ॥२५॥ हे राम ! वहांसे लक्ष्मीसे भरे हुए लोकपूजित कण्वमुनिके आश्रममें जाय ॥ २६ ॥ उसका नाम धर्मारण्य है; वह पवित्र स्थान और आदि स्थान है जहां जाते ही पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है, वहां इन्द्रियजित और अल्पाहारी होकर यदि पितर और देवताओंकी पूजा करे तो सब काम पूर्ण होते हैं और यज्ञका फल मिलता है ॥२७॥ उसकी प्रदक्षिणा करके ययातिवन नामक तीर्थमें जाय, वहां जाते ही अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥ २८ ॥ वहांसे अल्पहारी और जितेंद्रिय होकर महाकालतीर्थमें जाय, वहां करोड़ तीर्थोंका स्पर्श होनेसे अश्वमेधका फल मिलता है ॥२९॥ आगे धर्म जाननेवाला पुरुष भद्रवटनामक तीर्थमें जाय, यह स्थान पार्वतीनाम भगवान् महादेवजीका है और तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥३०॥ वहां भगवान् शिवजीका दर्शन करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है और शिवजीके प्रसादसे गणेशव्रतका फल मिलता है ॥ ३१ ॥ लक्ष्मीसहित शत्रुओंसे रहित बुद्धिसे भरा हुआ पुरुषोंमें श्रेष्ठ यात्री वहांसे चलकर तीनों लोकोंमें विख्यात नर्मदा नदीपर जाय ॥३२॥ वहां देवता और पितरोंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥३३॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेंद्रिय होकर दक्षिण समुद्रके तटपर जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और चढ़नेको विमान प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ आगे जितेंद्रिय और जितहार होकर चर्म्मण्वती (चम्बल) नदीके तटपर जाय, वहां जानेसे रंतिदेवके किये हुए अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥३५॥ हे बलराम ! वहांसे हिमाचलके पुत्र अर्बुदमें जाय, जहां पहले पृथ्वीमें छेद था, वहां तीनों लोकोंमें

विख्यात वसिष्ठमुनिका आश्रम है वहां एक रात निवास करनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥ ३६ ॥ हे राम ! यदि जितेन्द्रिय होकर पिंगतीर्थका स्पर्श करे तो सौ १०० गोदानका फल प्राप्त होता है ॥३७॥ हे प्रभो ! वहांसे उत्तर प्रभासतीर्थमें जाय, जहां भगवान् अग्नि आप ही निवास करते हैं ॥३८॥ हे वीर ! अग्निका सारथी ज्वलन जो देवताओंका मुख है, वहां वास करता है, जो मनुष्य पवित्र हो मनको स्थिर कर वहां स्नान करे और तीन रात वास करे तो वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है ॥ ३९ ॥ वहां सरस्वती और समुद्रके संगमको जाय तो उसे सहस्र गोदानका फल होता है और स्वर्ग मिलता है ॥४०॥ हे हलधर ! वह तीर्थ अग्निके समान तेजसे भरा हुआ है, वहां मनको स्थिर करके समुद्रमें स्नान करे । फिर तीन दिन वहीं निवास करके पितर और देवताओंका तर्पण करे तो अश्वमेधका फल पाता है और चन्द्रमाके समान तेजस्वी होता है ॥४१॥ हे महाराज ! वहांसे वरदान तीर्थको जाय, हे बलराम ! विष्णु भगवान्ने उसी स्थानमें दुर्वासाको वर दिया था ॥ ४२ ॥ आगे पुरुष जिताहार होकर द्वारकापुरीको जाय वहां पिंडाकार तीर्थमें स्नान करे तो बहुत सुवर्ण प्राप्त होता है । हे शत्रुनाशक ! उस तीर्थमें अब भी पद्मके समान एक मुद्रा दिखायी देती है ॥४३॥ यह परम आश्चर्य है कि वहां त्रिशूल और पद्मके चिह्न दीखते हैं और वहां महादेवजी निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ वहां सिंधु और समुद्रके सङ्गममें जाय, वहां मनको स्थिर करके समुद्रमें स्नान करे और पितर देवता तथा ऋषियोंको तर्पण करे ॥ ४५ ॥ वहां स्नान करनेसे अपने तेजसे प्रकाशित वरुणलोक मिलता है ॥४६॥ वहां शंकुकर्णेश्वर महादेवकी पूजा करनेसे महात्मा लोग कहते हैं कि अश्वमेधसे दशगुणा फल होता है ॥ ४७ ॥ आगे प्रदक्षिणा करके तीन लोकोंमें विख्यात दमीनामक तीर्थमें जाय, वह सब पापोंका नाश करनेवाला है और वहीं ब्रह्मादिक देवता भगवान् शिवजीकी पूजा करते हैं ॥ ४८ ॥ वहां स्नान कर जल पी देवताओंसे वेष्टित शिवजीकी पूजा कर पुरुष जन्मभरके पापोंसे छूट जाता है ॥४९॥ हे पुरुषसिंह ! इसी स्थानपर सब देवताओंने दमीकी स्तुति की थी, वहां स्नान करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ पहले लोककर्त्ता विष्णु दैत्य और दानवोंको मारकर इसी स्थानपर पवित्रता पायी जाती थी ॥५१॥ वहांसे वसुधारा नामक तीर्थको जाय उसकी सब देवता लोग स्तुति करते हैं, वहां जानेसे ही अश्वमेधका फल मिलता है ॥५२॥ सावधान और जितेन्द्रिय होकर स्नान करना चाहिये, वहां देवता और पितरोंकी तपस्या करनेसे विष्णुलोक मिलता है ॥ ५३ ॥ इसी तीर्थमें वसुओंका तड़ाग है, वहां स्नान करनेसे पुरुष वसुओंका प्यारा हो जाता है ॥५४॥ आगे सिन्धूत्तम नामक तीर्थमें जाय वहां स्नान करनेसे सब पापोंका नाश और बहुत सुवर्ण मिलता है ॥ ५५ ॥ आगे पवित्र और शीलवान् पुरुष भद्रतुंग नामक तीर्थमें जाय, वहां जानेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है और मोक्ष होता है ॥ ५६ ॥ आगे कुमारिका तीर्थ जो इन्द्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है और जिसकी सिद्धलोग सेवा करते हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुषको स्वर्ग मिलता है ॥ ५७ ॥ वहां सिद्धसेवित रेणुका तीर्थ है उसमें स्नान करनेसे ब्राह्मण चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है ॥ ५८ ॥ आगे जितेन्द्रिय और जिताहार पञ्चनद तीर्थपर जाय, वहां जानेसे पांच यज्ञका फल प्राप्त होता है इनके नाम पहले कह चुके हैं ॥ ५९ ॥ वहांसे उत्तम भीमा स्थानपर जाय, वहां

स्नान करनेसे पुरुष देवी पुत्र होता है और उसका रंग तपे हुए सोनेके समान हो जाता है। वहां जानेसे लाख गोदानका फल होता है॥ ६० ॥ वहांसे तीन लोकमें विख्यात श्रीकुण्डतीर्थपर जाय, वहां ब्रह्माको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है ॥ ६१ ॥ वहांसे अत्युत्तम बिमला तीर्थको जाय, वहां अबतक भी सोने और चांदीके रंगवाली मछली दीखती हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुषको इन्द्रलोक मिलता है और पुरुष सब पापोंसे छूटकर मोक्षको पाता है॥६२॥फिर वितस्ता नदीमें जाकर स्नान करे और वहां पितर और देवताओंका तर्पण करे, इस तीर्थमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है॥६३-६४॥ हे बलरामजी! वहांसे काश्मीर देशको जाय। वहां तक्षक नागका वन जो सब पापोंका नाश करनेवाला है उसमें जाकर वितस्ता नदीमें स्नान करे, ऐसा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और सब पापोंसे छूटकर मुक्ति हो जाती है॥६५॥ वहांसे तीन लोकोंमें प्रसिद्ध वडवा तीर्थमें जाय, यहां विधिपूर्वक सायंकालकी संध्यामें स्नान करे, वहांपर शक्तिके अनुसार भगवान् सूर्यको नैवेद्य दे ॥ ६६ ॥ पंडित लोग कहते हैं कि पितरोंके लिये वहां जो दान किया जाता है वह अक्षय होता है ॥ ६७ ॥ हे राम ! गंधर्व, ऋषि, पितृ, देवता, अप्सरा, गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, किंपुरुष, राक्षस, दैत्य, रुद्र, और ब्रह्मा उसी स्थानमें विष्णुका भोग लगाकर विष्णुको प्रसन्न करते हैं ॥ ६८ ॥ उसी स्थानपर ये सब लोग ऋग्वेदकी सात ऋचा पढ़कर विष्णुकी स्तुति करते थे और विष्णुने भी उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनको वहीं आठ सिद्धियां दी थीं ॥६९॥ और भी उनकी इच्छानुसार अनेक सिद्धियां देकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये थे, जैसे मेघोंमें बिजली ॥ ७० ॥ इसीलिये उस तीर्थका नाम सप्तचर है, वहां पर सूर्यको नैवेद्य देनेसे लाख गोदान, हजार राजसूय यज्ञका और हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल होता है ॥ ७१ ॥ वहांसे चलकर रुद्रतीर्थको जाय, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है ॥७२॥ आगे ब्रह्मचारी हो और सावधान होकर मणिवन तीर्थको जाय, वहां एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है॥ ७३ ॥ वहांसे लोक विख्यात देविकातीर्थमें जाय, वहींपर सब ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे ॥७४॥ आगे तीन लोकोंमें विख्यात शूलपाणिरुद्रके स्थान पर जाय, वहां देवतालोग वास करते हैं ॥ ७५ ॥ वहां स्नान करके पुरुषको शीघ्र ही सिद्धि मिलती है, वहां यज्ञ करे और कराये और वहांके फल-फूल एवं जलको छूनेसे पुरुष मरनेके पश्चात् शोचसे रहित होता है अर्थात् मोक्ष पाता है ॥ ७६ ॥ देव और ऋषियोंसे सेवित पवित्र देवीका वह स्थान दो कोश चौड़ा और दश कोश लम्बा है ॥ ७७ ॥ वहांसे क्रमके अनुसार दीर्घसत्र तीर्थपर जाय, वहां ब्रह्मादिक देवता सिद्ध और महाऋषिलोग दीक्षित होकर बड़े-बड़े यज्ञोंको करते हैं ॥ ७८ ॥ दीर्घसत्र तीर्थमें जानेसे ही राजसूय और अश्वमेधका फल मिलता है, आगे जिताहारे नियमधारी पुरुष विनशन तीर्थमें जाय, जहां मेरुके शिखरपर सरस्वती अन्तर्धान हुई हैं ॥७९॥ आगे चमशशिवोद्भेद और नागोद्भेद तीर्थ दीखते हैं, वहां चमशोद्भेद तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है॥ ८० ॥ शिवोद्भेदमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है और नागोद्भेदमें स्नान करनेसे पुरुषको नागलोक मिलता है ॥८१॥ आगे शश्यान तीर्थमें जाय, जहां कार्तिकीमें ईश्वररूप पुष्करधारी दीखते हैं ॥ ८२ ॥ वे लोग प्रतिवर्ष सरस्वतीमें आते हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुष

सदा चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है ॥८३॥ वहांसे देवता और पितरोंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष कुमारकोटि तीर्थमें जाकर स्नान करे। वहां स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और उसके कुलका भी उद्धार हो जाता है ॥ ८४ ॥ वहांसे सावधान होकर रुद्र-कोटि तीर्थमें जाना चाहिये,जहां पहले मुनियोंका समूह शिवके दर्शनकी इच्छासे आया था और उन्होंने वहां अत्यंत प्रसन्न होकर हम पहले शिवजीका दर्शन करेंगे, हम पहले शिवजीका दर्शन करेंगे, ऐसा विवाद किया था और वे लोग ऐसा ही विवाद करते हुए आगे चले, तब योगेश्वर शिवजीने भी महात्मा ऋषियोंके क्रोधको शान्त करनेके लिये सब ऋषिके आगे अपने अनेक-अनेक स्वरूप बनाये और उनको सब ऋषि अलग-अलग देखकर कहने लगे कि शिवजीको हमने पहले देखा ॥८५॥ अनन्तर उन महात्मा मुनियोंकी परम भक्तिसे शिव प्रसन्न हुए और ऐसा वरदान दिया कि आजसे तुम लोगोंका धर्म बढ़ेगा॥८६॥उस रुद्रकोटि तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष पवित्र हो जाता है और अश्वमेधका फल मिलता है और कुलका भी उद्धार हो जाता है॥८७॥वहांसे लोक विख्यात सरस्वतीके संगमको जाय,जहां चैत्र शुक्ल चतुर्दशीके दिन विष्णुकी उपासना करनेके लिये ब्रह्मादिक देवता और तपस्वी ऋषिलोग आते हैं ॥८८॥ वहां स्नान करके पुरुष सुवर्ण पाता है और ब्रह्मलोकको पाता है और सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है ॥८९॥जहां ऋषियोंके यज्ञ समाप्त हुए थे, वहां रहनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥९०॥ इसके उपरांत ऋषि बोले कि, हे बलराम ! वहांसे प्रशंसित कुरुक्षेत्रको जाय, जहांके दर्शनसे ही सब प्राणी पापोंसे छूट जाते हैं। जो कोई सदा यही कहता है कि मैं कुरुक्षेत्रको जाऊँगा, वहां रहूँगा, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है, वायुसे उड़ती हुई वहांकी धूलि भी यदि पापीके शरीरमें लग जाय तो सब पापोंसे छुड़ाकर परम गतिको पहुँचा देती है ॥ ९१ ॥ सरस्वतीके दक्षिण, दृषद्वतीसे उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष वसते हैं, वे सब स्वर्गवासी हैं॥९२॥ वहां धीर पुरुष एक महीने रहे, जहां ब्रह्मादिक देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और सर्प लोग निवास करते हैं ॥९३॥ वहांसे वे लोग महापवित्र ब्रह्मक्षेत्रको जाते हैं, जो मनसे भी कुरुक्षेत्रकी इच्छा करते हैं, वे भी सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको चले जाते हैं ॥९४॥ हे राम ! श्रद्धायुक्त कुरुक्षेत्रमें जानेसे पुरुषोंको अश्वमेध और राजसूय यज्ञका फल होता है, वहां मचकुक नामक यक्ष द्वारपालको नमस्कार करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ ९५ ॥ हे वीर ! वहांसे अतिउत्तम सतत नामक विष्णुके स्थानको जाय, वहां सदा ही नारायण वास करते हैं, वहां तीन लोकके कर्ता विष्णुको प्रणाम करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और विष्णुलोक भी प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ वहाँसे चलकर तीनों लोकमें विख्यात परिप्लव नामक तीर्थमें जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोम और अतिरात यज्ञका फल होता है ॥९७॥ हे बलराम ! वहांसे पृथ्वीतीर्थमें जाकर हजार गोदानका फल प्राप्त करे ॥९८॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष शालकिनी तीर्थमें जाय, वहां दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥९९॥ आगे सर्पोंके उत्तम तीर्थ नागदेवीमें जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोमका फल और नागलोक मिलता है ॥ १०० ॥ वहांसे तुरंत द्वारपाल नामक तीर्थको जाय, वहां एक रात रहनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥ १०१ ॥ वहांसे पञ्चनद (पञ्जाब) देशमें जाकर कोटि तीर्थमें स्नान करे, वहां अश्वमेधका फल होता है ॥ १०२ ॥ अश्विनीकुमार तीर्थमें जानेसे पुरुष रूपवान् हो जाता है, वहांसे उत्तम वाराह

तीर्थमें जाय, जहां वाराहरूपधारी विष्णुने वास किया था। हे राम ! यहां स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है॥ १०३ ॥ वहांसे जयन्ततीर्थमें जाकर सोमतीर्थमें स्नान करे, वहां पुरुषको राजसूय यज्ञका फल मिलता है और हंसतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल होता है ॥१०४॥ हे बलभद्र ! आगे तीर्थसेवी पुरुष कृतशौच तीर्थमें जाय, वहां जानेसे कमलाको प्राप्त होता है और पवित्र हो जाता है ॥१०५॥ वहांसे महात्मा शिव मुञ्जवट नामक स्थानको जाय, वहां एक रात रहनेसे गणेशजीका पद मिलता है और वहीं विख्यात यक्षिणी तीर्थ है उसमें स्नान करनेसे पुरुष सब कामोंको प्राप्त होता है ॥१०६॥ हे कालिंदीदमन ! वही कुरुक्षेत्रका द्वार है, उसे प्रदक्षिणा करके वहां स्नान करे, फिर पुष्कर-संमिति तीर्थमें स्नान करे। वहां पितर और देवताओंका तर्पण करे, वहीं जमदग्निके पुत्र महात्मा परशुरामजीने भारी काम किया था। हे सीरपाणि ! वहां जानेसे पुरुष कृत-कृत्य हो जाता है और अश्वमेधका फल पाता है ॥ १०७ ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष साव-धान होकर रामसरमें स्नान करे, तेजस्वी परशुरामने वहीं शीघ्रतासहित क्षत्रियोंको मारकर पांच तड़ाग बनाये हैं। यह बात विदित है कि उन्हीं तड़ागोंको परशुरामने रुधिरसे भर कर अपने पितर और पूर्व पितरोंका तर्पण किया था, तब उनके पितर उनसे प्रसन्न होकर बोले कि हे राम ! हे महाभाग ! हे भार्गव ! हे विभो ! हे महातेजस्वी ! हम तुम्हारे इस पितृ-भक्ति और पराक्रमसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १०८ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारा कल्याण हो और जो तुम्हारी इच्छा हो वह वरदान मांगो ॥ १०९ ॥ हे कामपाल ! शस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ परशुरामने आकाशमें खड़े हुए पितरोंके ऐसे वचन सुन हाथ जोड़कर कहा कि यदि आप लोग मुझसे प्रसन्न हुए हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं, तो मैं आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ और पुनः आपलोगोंके तर्पण करनेकी इच्छा रखता हूँ और यह भी वरदान मांगता हूँ कि मैंने जो क्रोधमें भरकर क्षत्रियोंका नाश किया है, आपलोगोंकी कृपासे उस पापसे छूट जाऊँ और मेरे यह तालाब जगद्विख्यात तीर्थ हो जायँ। परशुरामके ऐसे वचन सुन-कर पितर लोग प्रसन्न होकर आनन्दसहित बोले कि हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा तप बढ़े और तुमने क्रोधमें भरकर जो क्षत्रियोंका नाश किया है, तुम उस पापसे छूट गये; क्योंकि वे लोग अपने कर्मसे मरे हैं ॥ ११० ॥ और तुम्हारे यह तालाब निस्सन्देह तीर्थ हो जायँगे, जो कोई तुम्हारे इन तीर्थोंमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करेगा, उसको पितर लोग प्रसन्न होकर जगत्में दुर्लभ कामनाओंको देंगे और सनातन स्वर्गमें पहुँचायेंगे। हे राम ! पितर लोग इस प्रकार परशुरामको वरदान देकर वहीं अंतर्धान हो गये ॥ १११ ॥ महात्मा भृगुवंशी परशुरामके तीर्थमें इस प्रकार स्नान करके ब्रह्मचारी और व्रतधारी हो परशुरामकी पूजा कर पुरुष बहुत सुवर्ण प्राप्त करता है ॥ ११२ ॥ ऋषि बोले कि, हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! वहांसे वंशमूलक तीर्थमें जाय, वहां स्नान करनेसे वंशका उद्धार होता है। वहांसे यशोधनतीर्थमें जाय, उसमें स्नान करनेसे निस्सन्देह ही शरीर शुद्ध हो जाता है और शरीर शुद्ध होनेसे उत्तम और शुभ लोककी प्राप्ति होती है ॥ ११३ ॥ हे धर्मज्ञ ! वहांसे तीन लोकविख्यात लोकोद्धार तीर्थमें जाय; जहां पहले जगत्कर्त्ता विष्णुने लोकोंको धारण किया था ॥ ११४ ॥ हे राम ! उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष अपने लोकोंका उद्धार करता है, वहांसे मन स्थिर करके श्रीतीर्थमें स्नान करे, वहां देवता

और पितरोंकी पूजा करनेसे उत्तम लक्ष्मी मिलती है, आगे ब्रह्मचारी हो मनको स्थिर कर कपिलातीर्थमें जाय। वहां स्नान करके पितर और देवताओंकी पूजा करे तो सहस्र कपिला गौके दानोंका फल मिलता है, फिर मन स्थिर करके सूर्य तीर्थमें जाय, जहां व्रत करके पितर और देवताओंकी पूजा करे, इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल और सूर्यलोक मिलता है ॥११५॥ आगे गोपवन तीर्थमें जाकर तीर्थसेवी पुरुष स्नान करे तो हजार गोदानका फल पाता है॥११६॥ वहांसे तीर्थसेवी पुरुष शाकम्भरी तीर्थको जाय, वहां देवीके स्थानमें स्नान करनेसे उत्तम रूप मिलता है॥११७॥वहांसे द्वारपाल मरन्तक स्थानको जाय,यह तीर्थ सरस्वतीमें महात्मा यक्षराजका स्थान है ॥११८॥ हे संकर्षण! उसमें स्नान करनेसे पुरुषको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। वहांसे उत्तम पुरुष ब्रह्मावर्त्त बिठूर तीर्थको जाय, वहां स्नान करनेसे पुरुषको ब्रह्मलोक मिलता है।वहांसे उत्तम पुरुष सुतीर्थको जाय,वहां पर सदा ही पितर और देवता निवास करते हैं ॥११९॥ पितर और देवताओंका पूजक पुरुष वहां स्नान करे तो अश्वमेधका फल और पितृलोक पाता है ॥१२०॥ अम्बुवतीके बीचमें स्नान करके काशीश्वर तीर्थमें स्नान करे तो सब दुःखोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको जाता है। हे बलदेव! वहीं मातृतीर्थमें स्नान करना चाहिये ॥१२१॥ उसमें स्नान करनेसे सन्तान और बहुत धन बढ़ता है, आगे नियमधारी जिताहरी पुरुष चितवनमें जाय, उसमें महातीर्थ हैं जो और पुरुषको दुर्लभ हैं, वहां जाते ही देखनेमात्रसे पुरुषको पवित्र कर देता है और उसमें बाल धोनेसे पुरुष पवित्र हो जाता है ॥१२२॥ हे बलरामजी! वहां जो तीर्थ है उसका नाम स्वाबिल्लोमाप है उसमें विद्वान तीर्थ-परायण मुनि लोग स्नान करके परम प्रसन्न होते हैं ॥ १२३ ॥ पवित्र आत्मावाले मुनीश्वर उस तीर्थमें प्राणायामोंके द्वारा अपने रुओंको धो करके पवित्र हो मोक्ष पाते हैं। हे पुरुषसिंह! उसी स्थानमें दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष मोक्ष पाते हैं ॥ १२४ ॥ वहांसे चलकर विख्यात मानसतीर्थमें जाय, जहां व्याधका शर लगनेसे तैरते हुये हरिण मनुष्य हो गये थे और उस तीर्थमें ब्रह्मचारी पुरुष सावधान चित्त होकर स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटकर स्वर्गमें जाता है ॥ १२५ ॥ मानस तीर्थसे एक कोश पूर्वकी ओर सिद्धसेवित आपगा नाम नदी है, वहां जाकर जो पुरुष देवता और पितरोंका श्राद्ध करके सेवई खाता है उसे बहुत फल होता है। वहां एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे करोड़ ब्राह्मणोंका फल होता है। वहां स्नान, देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे और एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥ १२६ ॥ वहांसे चलकर ब्रह्मोदुम्बर नामक कमलयोनि ब्रह्माके उत्तम स्थानपर जाय, वहां सप्त ऋषियोंके और महात्मा कपिलके कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो, मनको स्थिर कर ब्रह्माके दर्शन करने चाहिये, उनके दर्शन करनेसे सब पापोंसे छूट ब्रह्मलोक मिलता है ॥ १२७ ॥ वहांसे जाकर दुर्लभ कपिस्थल कुंडमें स्नान करे तो सब पाप जलकर नष्ट हो जाते हैं ॥ १२८ ॥ वहांसे चलकर लोकविख्यात शरक तीर्थपर जाय, वहां कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें शिवका दर्शन करनेसे सब मनोरथोंको प्राप्त कर स्वर्गमें जाता है ॥ १२९ ॥ हे बलरामजी! स्वर्गतीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ इकट्ठे हैं, वहां रुद्रकोटि कुएँ और तालावमें स्नान करना चाहिये ॥ १३० ॥ वहीं इलास्पद नामक तीर्थ है, वहां स्नान कर देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती, किन्तु वाजपेय यज्ञका

फल मिलता है ॥१३१॥ किम्हान किञ्जल्क नामक तीर्थमें स्नान करनेसे अत्यन्त जप और दानका फल मिलता है ॥ १३२ ॥ जितेन्द्रिय श्रद्धावान् पुरुषको स्पर्श करके कलशी तीर्थमें स्नान करे तो अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है ॥१३३॥ शरक तीर्थसे पूर्वकी ओर महात्मा नारदका तीर्थ है, जिसका प्रसिद्ध नाम अम्बाजन्म है, उस तीर्थमें स्नान करके प्राण छोड़ने पर नारदजीकी आज्ञासे पुरुष उत्तम लोकोंको जाता है, शुक्लपक्षकी दशमीको पुंडरीक तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे पुंडरीक यज्ञका फल होता है ॥१३४॥ हे राम ! वहांसे त्रिविष्टप नामक लोकविख्यात तीर्थको जाय, वहां पापनाशिनी तारिणी नामक प्रसिद्ध नदी बहती है उसमें स्नान करनेसे, शूलधारी भगवान् भूतनाथ (शिव)जीकी पूजा करनेसे सब पापोंसे छूटकर पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है ॥१३५॥ वहांसे उत्तम फलके वनको जाय, वहां सदा ही देवता लोग रहते हैं, वे लोग सहस्रों वर्षतक महातप करते हैं, वहां दृषद्वती नदीमें स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे अग्निष्टोम और अति रात्र यज्ञका फल मिलता है। हे बलदेवजी ! ये सब देवताओंके तीर्थ हैं ॥ १३६ ॥ आगे पाणीखात तीर्थमें स्नान करके पितर देवताओंकी पूजा करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है ॥१३७॥ वहां स्नान करनेसे अग्निष्टोम अतिरात्र, राजसूय यज्ञका फल और ऋषिलोक मिलता है ॥ १३८ ॥ वहांसे उत्तम मिश्रक तीर्थमें जाय। हे राम ! हमने सुना है कि महात्मा व्यासने ब्राह्मणोंके लिये उस तीर्थमें तीर्थोंको मिला दिया है, जिस पुरुषने मिश्रकमें स्नान किया, मानो उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया। वहांसे चलकर नियमधारी जिताहारी पुरुष व्यासके वनमें जाय, वहां मनोजव तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥१३९॥ आगे पवित्र मधुवटी तीर्थ जाकर देवी तीर्थमें स्नान करे, वहां देवताओं और पितरोंकी पूजा करनेसे हजार गोदानके फलको पाता है ॥१४०॥ जो दृषद्वती और कौशिकीके संगममें आहारको जीतकर स्नान करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥१४१॥ आगे व्यासस्थली नामक तीर्थमें जाय, जहां बुद्धिमान् व्यासने पुत्रशोकसे व्याकुल होकर शरीर छोड़नेकी इच्छा की थी और देवताओंने पुनः उठाया था। हे बलराम ! उस स्थानमें जानेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ १४२ ॥ आगे त्रिलोचन नामक कुएँपर जाकर तिलदान करनेसे सब ऋणोंसे छूट कर मोक्षको प्राप्त होता है और वेदी तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है ॥१४३॥ हे पुरुष सिंह ! आगे हय और मुद्रित नामक दो तीर्थ लोकविख्यात हैं, उनमें स्नान करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। आगे मृगधूमनामक लोकविख्यात तीर्थमें जाय ॥ १४४ ॥ वहां गङ्गामें स्नान और भगवान् महादेवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥१४५॥ देवीके तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है, वहांसे तीनों लोकमें विख्यात वामनक तीर्थमें जाय, वहां विष्णुपदीमें स्नान करके जो पुरुष वामनकी पूजा करता है वह सब पापोंसे शुद्ध होकर विष्णुलोकको जाता है और कुलम्बन तीर्थमें स्नान करनेसे कुल पवित्र होता है ॥१४६॥ आगे मस्तकोंके पवनतड़ागमें स्नान करनेसे विष्णुलोक मिलता है। देवताओंके तीर्थमें स्नान करके इन्द्रकी पूजा करनेसे सब देवताओंके प्रतापसे स्वर्गलोक मिलता है ॥१४७॥ शालिहोत्र और शालिसूर्य नामक तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥१४८॥ हे बलरामजी ! सरस्वतीके श्रीकुंज नामक तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अग्निहोत्र यज्ञका फल होता है ॥ १४९ ॥ वहांसे नैमिषारण्यको जाय

वहां नैमिषारण्यवासी तपस्वी लोग तीर्थयात्राके अभिप्रायसे पहले कुरुक्षेत्रको जाते थे, जिस कुञ्जमें ऋषियोंको बड़ा सन्तोष प्राप्त होता है, उस कुंजमें स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, वहांसे कन्यातीर्थमें जाना चाहिये। कन्यातीर्थमें स्नान करनेसे दो हजार गोदानका फल मिलता है ॥१५०॥ वहांसे ब्रह्माके तीर्थपर जाय, वरनावरमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्राह्मण हो जाता है, शुद्धात्मा ब्राह्मण परमगतिको पाता है,वहांसे सोमतीर्थको जाय, सोमतीर्थमें स्नान करनेसे चन्द्रलोकमें जाता है ॥१५१॥ वहांसे सप्त सारस्वत तीर्थमें जाय, जहां जगत्प्रसिद्ध महर्षि मङ्कणक नामक ऋषि रहते हैं ॥१५२॥ पहले समयमें मङ्कणक ऋषिके हाथमें कुशका कांटा लगनेसे शाकका रस निकला था; वह ऋषि शाकरसको देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और नाचने लगा। उसे नाचता देखकर चर-अचर जो कोई वहां पर थे सब नाचने लगे, तब ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् महादेवजीसे विनती की, हे महाराज! आप ऐसा उपाय कीजिये कि, जिससे वह ऋषि न नाचे, तब महादेवजी उन नाचते हुए ऋषिके पास आये और देवताओंकी हितकामनाके कारण ऋषिसे बोले कि हे धर्मज्ञ! महर्षि तुम किसलिये नाचते हो? ऐसा कौनसा तुमको आनन्द मिला है? धर्ममार्गमें स्थित ऋषि बोले, हे महाराज! तुम क्या नहीं देखते हो कि मेरे हाथसे शाकका रस निकला, जिसको देखकर मैं बड़े आनन्दके साथ नाच रहा हूँ, तब हँसकर महादेवजी उस ऋषिसे बोले कि हे ब्राह्मण! मैं तो इसे देखकर कुछ आश्चर्य नहीं मानता, हे राम! ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवजीने अपनी ऊँगलीसे अपने अँगूठेको काटा, काटते ही अँगूठेमेंसे बर्फके समान सफेद भस्म निकला, उसको देखकर वह ब्राह्मण अत्यन्त लज्जित हुआ और शिवजीके चरणोंमें गिरकर कहने लगा कि मैं रुद्रसे उत्तम किसीको नहीं जानता, देव और दानवोंकी तुम ही गति हो, हे शूलधारी! तुमने ही इस चराचर जगत्को बनाया है, और तुम्हीं इस जगत्को प्रलयके समय नष्ट करते हो, तुमको देवतालोग भी नहीं जान सकते; फिर भला मेरा तो सामर्थ्य ही क्या है ॥१५३॥ हे पापरहित! सब ब्रह्मादिक देवता तुमहीको देखते हैं, हे लोकेश! तुम ही सब लोकोंके कर्त्ता और सर्वरूप हो, तुम्हारे ही आश्रयसे सब देवतालोग भयरहित होकर आनंद करते हैं, इस प्रकार स्तुति कर ऋषि महादेवजीसे बोले कि हे महादेव! तुम्हारी कृपासे मेरा तप नष्ट न हो ॥ १५४ ॥ ब्रह्मर्षिके वचन सुन भोलानाथ (शंकर) प्रसन्न होकर बोले कि हे ब्राह्मण! हमारे प्रसादसे तुम्हारा तप सहस्रगुणा बढ़े। हे महामुने! हम आजसे तुम्हारे सहित इस आश्रममें वास करेंगे, जो पुरुष स्वप्न सारस्वत तीर्थमें स्नान करके मेरी पूजा करेंगे, उनको इस लोक और परलोकमें कोई वस्तु दुर्लभ न होगी और वे लोग निस्सन्देह सरस्वतीके लोकमें जायँगे ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥१५५॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परीक्षित! इस प्रकार वर्णन कर ऋषि फिर बोले कि हे बलराम! वहांसे तीन लोक विख्यात औशनस तीर्थमें जाय वहांसे शुक्रके हितकी इच्छासे ब्रह्मादिक देवता, तपस्वी, ऋषि और भगवान् कार्तिकेय नित्य प्रति सन्ध्यामें निवास करते हैं ॥१५६॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! वहांसे सब पापनाशन कपालमोचन तीर्थमें जाय, वहां स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं। वहांसे अग्नितीर्थमें जाय, वहां स्नान करनेसे अग्निलोक मिलता है और कुलका उद्धार होता है ॥ १५७ ॥ वहीं विश्वामित्रका तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष ब्राह्मण हो जाता है, ब्राह्मणोंके यहां जन्म लेकर पवित्र हो,

मनको स्थिर कर उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें जाता है और निःसन्देह सात पीढ़ियोंको पवित्र करता है ॥ १५८ ॥ वहांसे तीन लोक विख्यात कार्तिकेयके पृथूदक तीर्थमें जाय, वहां स्नान कर पितर और देवताओंकी पूजा करे। पुरुष या स्त्री जाने या विना जाने मनुष्यबुद्धिसे जो कुछ पाप किया हो वह सब वहां स्नान करनेसे ही नष्ट हो जाता है; उसमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ १५९ ॥ ऋषियोंने कुरुक्षेत्रको पवित्र कहा है, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती, सरस्वतीसे तीर्थ और तीर्थोंसे भी पृथूदक तीर्थ पवित्र है ॥१६०॥ जो जप करता हुआ उत्तम पृथूदक तीर्थमें प्राण छोड़ता है, वह मरनेके दुःखको फिर नहीं भोगता ॥१६१॥ सनत्कुमार, शिव और महात्मा व्यासने ऐसा ही कहा है, इसलिये नियमधारी पुरुष पृथूदक तीर्थमें जाय, हे राम ! पृथूदकसे श्रेष्ठ तीर्थ कोई नहीं है, वह बुद्धिको बढ़ाता है और पवित्र करता है ॥१६२॥ महात्मालोगोंने कहा है कि पृथूदक तीर्थमें स्नान करनेसे पापी पुरुष भी स्वर्गमें चला जाता है, वहीं मधुस्रव नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल मिलता है ॥ १६३ ॥ वहांसे क्रमानुसार पवित्र लोकविख्यात सरस्वती और असणके संगममें जाय, वहां तीन दिन व्रत करके रहनेसे पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाता है, तथा अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है, वहां स्नान करनेसे पुरुषके सात कुल पवित्र होते हैं ॥ १६४ ॥ हे रेवतीरमण ! वहीं अर्द्धकील नामक तीर्थ है, उस तीर्थको ब्राह्मणोंके हितकी इच्छासे दर्भीने बनाया था। वहां व्रत और उपनयन अथवा उपवास करनेसे क्रिया और मन्त्रोंसे युक्त होनेसे पुरुष ब्राह्मण हो जाता है और जो मन्त्र और क्रियासे हीन पुरुष हो वह भी वहां स्नान करनेसे चीर्णव्रती और विद्वान हो जाता है, यह वृद्ध पुरुषोंका देखा हुआ है, इस तीर्थमें दर्भीने चारों समुद्र लाकर मिला दिये हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और उस पुरुषको चार हजार गोदानका फल होता है ॥१६५॥ हे वीर ! वहांसे शतसहस्र नामक तीर्थको जाय, वहीं लोकविख्यात शत और सहस्र नामक दो तीर्थ हैं, उन दोनोंमें स्नान करनेसे ही हजार गोदानका फल होता है वहां जो कुछ दान व्रत करते हैं, वह हजार गुणा हो जाता है ॥ १६६ ॥ वहांसे उत्तम रेसाके तीर्थमें जाय, वहां पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला पुरुष स्नान करे तो समस्त पापोंसे शुद्ध होकर अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है ॥ १६७ ॥ आगे क्रोध और इंद्रियोंको जीतकर विमोचन तीर्थका स्पर्श करे, वहां स्नान करनेसे दान लेनेके सब पाप छूट जाते हैं ॥ १६८ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेंद्रिय होकर पञ्चवटी-तीर्थमें जाय, वहां जानेसे बहुत पुण्य होता है और स्वर्गलोक मिलता है जहां साक्षात् योगेश्वर वृषवाहन भगवान् महादेवजी निवास करते हैं, उनकी पूजा करनेसे और वहां जानेसे ही पुरुष सिद्ध हो जाता है ॥१६९॥ आगे अपने तेजसे प्रकाशित तैजस और वारुण तीर्थमें जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनियोंने मिलकर देवताओंके सेनापति स्वामिकार्तिकका अभिषेक किया था। तैजस तीर्थसे पूर्वकी ओर कुरुतीर्थ है उसमें ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्ध हो पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है ॥ १७० ॥ आगे नियमधारी और जिताहारी होकर स्वर्गद्वार तीर्थमें जाय, वहां जानेसे स्वर्गलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है। हे बलराम ! वहांसे तीर्थसेवी पुरुष अनरक तीर्थको जाय, वहां स्नान करनेसे

पुरुष दुर्गतिमें नहीं पड़ता, वहां साक्षात् ब्रह्मा नारायणादि सब देवताओंके सहित निवास करते हैं ॥१७१॥ वहीं पार्वतीका स्थान है, उनके दर्शन करनेसे पुरुष दुर्गतिमें नहीं पड़ता और वहीं साक्षात् पार्वतीनाथ शिवके दर्शन करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। वहाँसे जाकर पद्म-नाभ नारायणके दर्शन करे, उनके दर्शन करनेसे पुरुष प्रकाशमान होकर विष्णुलोकको जाता है ॥१७२॥ आगे सब देवताओंके तीर्थमें स्नान करे, ऐसा करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट चंद्रमाके समान प्रकाशित होता है, वहां तीर्थसेवी पुरुष स्वस्तिपुरको जाय वहां प्रदक्षिणा करनेसे हजार गोदानका फल होता है॥१७३॥आगे पावन तीर्थमें जाय, वहां जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। हे वीर!वहीं गङ्गाह्रद नामक कुण्ड है, उसमें तीन करोड़ तीर्थ पड़े हैं ॥ १७४ ॥ ऋषीश्वर बोले कि हे रेवतीरमण ! उसमें स्नान करनेसे पुरुषको स्वर्गलोक प्राप्त होता है॥१७५॥ आगे नदियोंमें स्नान करे और भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे गणेशका पद मिलता है और कुलका उद्धार होता है, आगे तीन लोकमें विख्यात स्थाणुकटको जाय वहां स्नान करनेसे और एक रात्रि रहनेसे शिवलोक मिलता है ॥१७६॥ आगे बदरीपाचन तीर्थमें जाय, वहां वसिष्ठमुनिका आश्रम है, वहां तीन दिन व्रत करके बेर खाना चाहिए। जो पुरुष बारह वर्ष निरन्तर बेर ही खाता रहे, उसको उतना ही फल होता है, जितना उस तीर्थमें तीन दिन व्रत करनेसे होता है, वहां रहकर जो सत्य बोले और नियम-धारी हो तो ब्रह्मलोक पाता है ॥१७७॥ वहांसे तीन लोकमें विख्यात तेजराशि महात्मा सूर्यके स्थान पराजयको जाय,वहां स्नान कर सूर्यकी पूजा करनेसे पुरुष सूर्यलोकको जाता है और अपने कुलको उद्धार करता है; तीर्थसेवी पुरुष आगे जाकर सोमतीर्थमें स्नान करे, उसमें स्नान करनेसे पुरुषको निसन्देह चन्द्रलोक मिलता है ॥१७८॥ वहांसे दधीचिमुनिके आश्रम पर जाय, यह तीर्थ तीन लोकमें विख्यात है और परमपवित्र है, इसी तीर्थमें स्नान करनेसे तपस्याके समुद्र अंगिरा मुनि विद्वान् हो गये थे, उसी तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेधयज्ञका फल होता है और निःसन्देह सारस्वतगति प्राप्त होती है॥१७९॥वहांसे नियमधारी ब्रह्मचारी जिताहारी पुरुष कन्यातीर्थमें जाकर तीन दिन व्रत करे, ऐसा करनेसे दिव्य सौ कन्या और स्वर्गलोक मिलता है ॥१८०॥ वहांसे सन्निहिती तीर्थको जाय, जहां बहुत पुण्यवान् ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनि महीने महीने आते है। चन्द्रग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल होता है और सब इच्छायें पूर्ण होती है ॥१८१॥ हे महात्मा बलरामजी ! जितने पृथ्वी और आकाशमें तीर्थ हैं, वे सब और नदी, कुण्ड, तड़ाग, झरने, तलैया और बावड़ी तथा और भी तीर्थ निःसन्देह अमावास्याके दिन प्रतिमास कुरुक्षेत्रमें आते है, इसलिए कुरुक्षेत्रका दूसरा नाम सन्निहिती है,पुरुष उसमें स्नानकर और जल पी ब्रह्मलोकमें जाता है॥१८२॥सूर्यग्रहणकी अमावसमें जो कोई वहां श्राद्ध करता है, उसका फल सुनोः–उत्तम रीतिसे किये हुये हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल उस पुरुषको केवल स्नान करनेसे मिलता है और पुरुष वा स्त्रीने जो कुछ पाप किया हो, वह निःसन्देह स्नान करनेसे नष्ट हो जाता है और पद्मके रंगवाले विमान पर बैठकर ब्रह्मलोकको जाता है। आगे द्वारपाल मुचुकुन्द नामक यक्षको प्रणाम करके कोटितीर्थमें स्नान करनेसे बहुत सुवर्ण मिलता है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ हे राम ! वहीं गंगाह्रद नामक तीर्थ है; उसमें धर्म जाननेवाला ब्रह्मचारी पुरुष सावधान होकर स्नान करे उसमें स्नान करनेसे पुरुषको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥ १८५ ॥

पृथ्वीमें नैमिषारण्य, आकाशमें पुष्कर और कुरुक्षेत्र तीनों लोकमें श्रेष्ठ है। कुरुक्षेत्रकी धूल जो पवनसे उड़ती है, उससे भी महापापी पुरुष मोक्ष पाता है ॥ १८६ ॥ सरस्वतीके दक्षिण और दृषद्वतीके उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष निवास करते हैं, वे स्वर्गवासी हैं। जो पुरुष एकवार भी कहे कि मैं कुरुक्षेत्र जाउँगा और वहां निवास करूँगा, वह सब पापोंसे छूट जाता है॥१८७॥ कुरुक्षेत्र पवित्र ऋषियोंसे सेवित और ब्रह्मवेदी है, उसमें जो पुरुष वास करते हैं वे शोचने योग्य नहीं हैं ॥१८८॥ तरन्तुक परशुरामके तड़ाग और मचकुक तीर्थका जो बीच है, उसी पवित्र भूमिका नाम कुरुक्षेत्र है और इसीको स्यमन्तपञ्चक भी कहते हैं, यह कमलयोनि महात्मा ब्रह्माजीकी उत्तर वेदी है ॥१८९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित्! इस प्रकार कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंकी व्याख्या कर ऋषि फिर बोले कि हे बलराम! वहांसे उत्तम तीर्थपर जाय, जहां महाभाग धर्म्मने उग्र तप किया था और उन्होंने ही इस पवित्र तीर्थको अपने नामसे विख्यात किया है, वहां स्नान करनेसे धर्मवान् और सावधान पुरुष अपने साथ कुलको पवित्र करता है ॥१९०॥ वहांसे ज्ञानपवन तीर्थमें जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल और मुनिलोक मिलता है, वहांसे सौगंधिक वनको जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता, तपोधन ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और सर्वलोक निवास करते हैं, पुरुष वहां प्रवेश करते ही सब पापोंसे छूट जाता है। वहांसे नदियोंमें श्रेष्ठ पलक्षादेवी नाम पवित्र सरस्वतीमें स्नान करे, जहां जल एक बिलसे निकलता है, वहां पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है,वहीं अत्यन्त दुर्लभ ईशानाध्युषित नामक तीर्थ है॥१९१॥ यह तीर्थ वाल्मीकिसे छः सम्या (यज्ञमें नापनेके लिए एक दण्ड बनाया जाता है,उसको सम्या कहते हैं) की दूरी पर है, वहां जानेसे पुरुषको हजार कपिला दान और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥१९२॥ हे संकर्षण! हमने यह भविष्यपुराणादिक पुस्तकोंमें सुना है कि इस तीर्थमें जाकर सुगन्धा, शतकुम्भा और पञ्चपक्षा आदि तीर्थोंमें जानेसे स्वर्गलोक मिलता है। वहीं त्रिशूलखात नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे मरनेके पीछे निःसंदेह गणेशका पद मिलता है ॥ १९३ ॥ वहांसे तीन लोकमें विख्यात उत्तम शाकम्भरी देवीके स्थानपर जाय, जहां दिव्य हजार वर्षतक व्रतधारिणी भगवतीने एक-एक महीनेमें शाक खाकर तप किया था ॥१९४॥ देवीकी भक्तिसे पूरित तपोधन मुनीश्वर वहां आये, भगवतीने उसी शाकसे उनका भी सत्कार किया, उसी दिनसे उस देवीका नाम शाकम्भरी हुआ ॥१९५॥ शाकम्भरी देवीके निकट जाकर पुरुष पवित्र, सावधान और ब्रह्मचारी होकर तीन दिन शाक खाय, जो पुरुष बारह वर्षतक शाक खाकर रहे, उसको जो फल होता है वही फल वहां तीन रोज शाक खानेसे होता है ॥१९६॥ आगे तीन लोकमें विख्यात स्वर्गतीर्थको जाय, वहां पहले विष्णुने भगवान् महादेवजीको प्रसन्न करनेके लिए तप किया था, तब देवदुर्लभ वरदानोंको पाया था ॥१९७॥ शिवने प्रसन्न होकर विष्णुसे कहा था कि तुम सब लोकके प्यारे होकर कृष्णावतार धारण करोगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि सब जगत् तुम्हींको प्रधान मानेगा ॥ १९८ ॥ वहां जाकर शिवकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल और गणेशका पद मिलता है। आगे धूमावतीमें जाकर तीन दिन व्रत करे, ऐसा करनेसे निस्सन्देह मनोवांछा सिद्ध होती है ॥ १९९ ॥ देवीके दाहिनी ओर रथावर्त्त (चक्र) तीर्थ है, वहां जितेन्द्रिय और श्रद्धावान् होकर उस चक्रके ऊपर चढ़े तो परमगतिको प्राप्त होता है, उसकी

प्रदक्षिणा करके सब पाप नाश करनेवाले धारातीर्थमें जाये। वहां जो बुद्धिमान् पुरुष स्नान करे, वह पुरुष शोचरहित हो जाता है ॥२००॥ वहांसे महा पर्वतको प्रणाम करके जो स्वर्गद्वारके समान गंगाद्वार नामक तीर्थ है वहां जाये। वहां सावधान होकर कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है और कुलका उद्धार होता है, वहां एक रात रहनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥२०१॥ आगे सप्तगंगा, त्रिगंगा और शक्रावर्त तीर्थमें जाय, उन पवित्र तीर्थोंमें विधिपूर्वक पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे उत्तम लोक मिलते हैं ॥२०२॥ वहांसे चलकर कनखलमें स्नान करे, वहां तीन दिन रहनेसे पुरुषको अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥२०३॥ वहांसे तीर्थसेवी पुरुष कपिलावटको जाय, वहां एक रात रहनेसे हजार गोदानका फल होता है ॥ २०४ ॥ आगे महात्मा नागराज कपिलके तीर्थमें जाय, यह तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है, उस नागतीर्थमें स्नान करनेसे हजार कपिला गोदानका फल होता है ॥ २०५ ॥ आगे शान्तनुके उत्तम तीर्थ ललिततीर्थमें जाय, हे वीर ! वहां स्नान करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥ २०६ ॥ जो पुरुष गंगा और यमुनाके संगममें स्नान करता है उसे दश अश्वमेधका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है ॥२०७॥ वहांसे लोकविख्यात सुगन्धतीर्थमें जाय, वहां जानेसे पुरुष सब पापोंसे छूट ब्रह्मलोकको जाता है ॥२०८॥ वहांसे तीर्थसेवी पुरुष रुद्रावर्त्त तीर्थको जाय, वहां स्नान करनेसे स्वर्गलोक मिलता है, आगे सरस्वती और गंगाके संगममें जाय, वहां स्नान करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २०९ ॥ वहांसे चलकर विधिपूर्वक भद्रकर्णेश्वर महादेवजीकी पूजा करे, ऐसा करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१० ॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष कुब्जाप्रदेशमें जाय, वहां जानेसे हजार गोदानका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥२११॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष अरुन्धतीवट तीर्थमें जाय, वहां ब्रह्मचारी होकर समुद्रके जलका स्पर्श करे, वहां तीन रात रहनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और सहस्र गोदानका फल मिलता है और कुलका उद्धार भी हो जाता है ॥२१२॥ आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर ब्रह्मावर्त्त तीर्थको जाय, वहां जानेसे अश्वमेधका फल और चन्द्रलोक मिलता है। फिर वहांसे उस स्थान पर जाय, कि जहांसे यमुना निकली है और यमुनाके जलके स्पर्श करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१३ ॥ आगे तीनलोकपूजित देवीसंक्रमण तीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है, वहांसे उस स्थानमें जाय कि जहांसे सिन्धु नदी निकली है, वहांपर सिद्ध और गन्धर्व रहते हैं, वहां पांच रात रहनेसे बहुत सुवर्ण मिलता है ॥२१४॥ आगे परमदुर्लभ वेदीतीर्थमें जाय, वहां जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २१५ ॥ वहांसे ऋषिकुण्डमें जाय; वहां वसिष्ठमुनिका दर्शन करे। उस वसिष्ठके आश्रमसे चलकर ब्राह्मणोंके ऋषिकुण्डमें जाय, वहां स्नान करनेसे पुरुषके सब पाप छूट जाते हैं ॥२१६॥ वहां पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे ऋषिलोक मिलता है, यदि शाक खाकर वहां एक महीनातक रहे तो अवश्य ऋषिलोक मिले। वहांसे भृगुतुंगतीर्थमें जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है ॥ २१७ ॥ और आगे वीरप्रमोक्ष तीर्थमें जानेसे सब पाप छूट जाते हैं। यदि उस तीर्थमें मघा और कृत्तिका नक्षत्रमें जाये तो अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है। वहीं विद्यातीर्थमें सन्ध्या करनेसे और वहां स्नान करनेसे सब पाप नाशको प्राप्त होते हैं उस महाश्रममें रात्रिभर वास करे। यदि निराहार

होकर एक रात वहां रहे तो उत्तम लोक मिलता है ॥२१८॥ दिनके छठे भागमें भोजन करके एक महीना उस स्थानमें रहनेसे सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और बहुत सुवर्ण मिलता है और दश पहलेके और दश अगाड़ीके वंशोंका उद्धार हो जाता है॥२१९॥आगे ब्रह्माके स्थान वेतसिकामें जाय तो अश्वमेधका फल होता है और शुक्राचार्यकी जाति मिलती है ॥ २२० ॥ आगे सिद्धोंसे सेवित सुन्दरिका तीर्थमें जाय, वहां जानेसे पुरुषका रूप सुन्दर हो जाता है यह पुरुषोंने निश्चय किया है ॥२२१॥आगे ब्रह्मचारी और जितेंद्रिय होकर ब्राह्मणतीर्थमें जाय, वहां जानेसे पद्मवर्ण विमानपर बैठकर पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है; वहांसे पवित्र ऋषि सेवित नैमिषक्षेत्रमें जाय, वहां देवताओंके साथ ब्रह्माजी सदा वास करते हैं ॥२२२॥ नैमिषारण्यको ढूँढ़नेसे आधा पाप और जानेसे सब पाप नष्ट हो जाता है। वहां परमार्थसेवी धीर पुरुष एक महीना रहे, क्योंकि पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं, वे सब नैमिषारण्यमें रहते हैं ॥२२३॥ यदि जिताहार और नियमधारी होकर वहां स्नान करे तो गोमेध यज्ञका फल होता है। जो पुरुष निराहार होकर नैमिषारण्यमें मरता है, उसके सात कुलका उद्धार हो जाता है और महात्मा लोग ऐसा भी कहते हैं कि वह सब लोकोंमें जाकर आनन्द करता है ॥ २२४ ॥ हे वीर ! नैमिषक्षेत्र नित्य और पवित्र है, आगे वहांसे गंगामेद तीर्थमें जाय, वहां जानेसे पुरुषोंको अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है और ब्राह्मण हो जाता है ॥२२५॥ आगे सरस्वती नदीमें जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे निस्सन्देह सरस्वतीलोक मिलता है, वहांसे चलकर ब्रह्मचारी और सावधान होकर बाहुदानदीमें स्नान करे, एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मिलता है ॥ २२६ ॥ वहां रहनेसे देवसत्र नामक यज्ञका फल होता है। वहांसे पुण्यात्मा मुनियोंसे भरी हुई पवित्र सीखता नदीको जाय, वहां पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल होता है, वहांसे ब्रह्मचारी और सावधान होकर विमलावटको जाय, वहां एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मिलता है, वहांसे सरयूके उत्तर तीर्थ गोप्रतार (गुप्तारघाट) को जाय। हे महाराज ! जहांसे राम अपने शरीरको छोड़कर अपने अनुचर सेना और वाहनोंके सहित स्वर्गको गये थे। उस तीर्थके तेज और भगवान् रामचन्द्रकी कृपासे तथा निश्चयसे उस गुप्तारघाटमें स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोक मिलता है ॥ २२७ ॥ आगे गोमतीके रामतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है॥२२८॥ वहीं शतसाहस्रकतीर्थ है, यदि जिताहारी और नियमधारी होकर उसका स्पर्श करे तो पुरुषको सहस्र गोदानका फल होता है, वहांसे चलकर उत्तम भर्तृस्थानको जाय तो पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥ २२९ ॥ यदि कोटितीर्थमें स्नान करके स्वामिकार्तिकजीकी पूजा करे तो सहस्र गोदानका फल होता है। वह पुरुष तेजस्वी भी होता है। वहांसे काशीपुरीको जाय, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करे और कपिलकुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल होता है ॥ २३० ॥ वहांसे अविमुक्तेश्वर तीर्थमें जाय। हे बलरामजी ! उन देवका दर्शन करते ही पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाता है और वहीं प्राण त्याग करनेसे मुक्ति होती है ॥ २३१ ॥ आगे परमदुर्लभ मार्कण्डेयके तीर्थको जाय, आगे लोकविख्यात गङ्गा और गोमतीके संगममें जाये। वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है। वहांसे ब्रह्मचारी और सावधान होकर गयाको जाय, वहां जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है, वहीं तीन लोक विख्यात

अक्षयवट तीर्थ है। वहां पितरोंके लिये जो कुछ दान किया जाता है वह अक्षय होता है। वहां महानदीमें स्पर्श करके पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अक्षयलोक मिलता है और कुलका उद्धार भी हो जाता है ॥ २३२ ॥ आगे धर्मवनमें जाकर ब्रह्मसरमें स्नान करे वहां एक रात रहनेसे ब्रह्मलोक मिलता है, उस तालाबमें ब्रह्माने उत्तम यज्ञकुण्ड बनाया, उसकी प्रदक्षिणा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥२३३॥ वहांसे लोकविख्यात धेनुकतीर्थमें जाय, वहां एक रात रह तिलकी गाय बनाकर दान करना चाहिये, ऐसा करनेपर पुरुष संपूर्ण पापोंसे छूट चन्द्रलोकको जाता है ॥ २३४ ॥ उस स्थानमें अबतक भी विचित्र गऊका चिह्न बछड़ेसहित बना है और वह चिह्न पर्वतपर चरती हुई गायका है ॥ २३५ ॥ वहीं बछड़े सहित गायकी पादुका अभी तक दीखती हैं, वहां उनका स्पर्श करनेसे जो कुछ पाप किया है वह सब नष्ट हो जाता है॥२३६॥वहांसे गृद्धवटको जाय, वहां बुद्धिमान् देवका स्थान है, वहां भस्मसे स्नान करके भगवान् महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, वहां ब्राह्मण बारह वर्ष तक वल्कल वस्त्र पहनकर व्रत करे तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा और सब वर्णोंका भी पाप नष्ट हो जाता है ॥२३७॥ वहांसे गीतशब्दयुक्त उद्यतनामक पर्वतको जाय, वहां सावित्रीकी पादुका दीखती हैं, वहां व्रतधारी ब्राह्मण सन्ध्योपासन करे, वहां एक दिन सन्ध्या करनेसे बारह वर्षकी सन्ध्याका फल होता है, वहींपर योनिद्वार तीर्थ है वहां जानेसे पुरुष जन्मके दुःखसे छूट जाता है, जो पुरुष एक मासतक गयामें रहता है, निस्सन्देह उसके कुलका उद्धार हो जाता है, यदि एक पुत्र भी गयाको चला जाय और अश्वमेध करे अथवा काले बैलको छोड़ दे तो बहुत पुत्रकी इच्छा क्यों करे ? ॥२३८॥ वहांसे तीर्थसेवी पुरुष फल्गुतीर्थको जाय वहां जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल और महासिद्धि मिलती है। हे वीर बलरामजी! वहांसे सावधान पुरुष धर्म्मप्रस्थको जाय, वहां सदा ही धर्म वास करते हैं, वहां कुएँके पानीसे स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होता है, पितर और देवताओंका तर्पण करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट स्वर्गको जाता है, वहींपर आत्मदर्शी महामुनि मतंगका आश्रम है, उस सुन्दर और शोकके नाश करनेवाले आश्रममें जानेसे पुरुषको गोमेध यज्ञका फल मिलता है, और वहां धर्मका स्पर्श करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥ २३९ ॥ हे पुरुषसिंह! वहांसे ब्रह्माके उत्तम स्थानको जाय, वहां ब्रह्माकी पूजा करनेसे अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंका फल होता है ॥२४०॥ आगे तीर्थसेवी पुरुष राजगृह तीर्थको जाय, वहां तीर्थोंका स्पर्श करनेसे पुरुष कक्षीवान्के समान आनन्द पाता है। वहां पवित्र पुरुष यक्षिणीको नैवेद्य लगाकर भोजन करे तो यक्षिणीके प्रसादसे पुरुषकी ब्रह्महत्या छूट जाती है। मणिनाग तीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल होता है ॥२४१॥ मणिनाग तीर्थकी उत्पन्न हुई वस्तुओंको जो पुरुष खाता है, उसको सर्प काटनेपर विष नहीं चढ़ता और वहां एक रात रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, वहांसे ब्रह्मर्षि गौतमके प्यारे वनमें जाय, वहां अहिल्याकुण्डमें स्नान करनेसे मोक्ष मिलता है और गौतमके आश्रममें जानेसे पुरुष अपनी शोभाको प्राप्त करता है ॥ २४२ ॥ वहां तीन लोकोंमें विख्यात एक तड़ाग है, उसमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल होता है, वहांसे आगे राजर्षि जनकका कुआँ है, उसकी देवतालोग भी पूजा करते हैं, उसमें स्नान करनेसे विष्णुलोक मिलता है, वहांसे सब पाप नाश करनेवाले विनाशन तीर्थको जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और चन्द्रलोक मिलता है। हे नीलाम्बर! वहांसे चलकर सब तीर्थोंके जलसे

उत्पन्न गण्डकी नदीको जाय, वहां जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और सूर्यलोक मिलता है, वहांसे तीनलोक विख्यात विशल्या नदीको जाय तो अग्निष्टोम यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥२४३॥ वहांसे अधिवंग वनको जाये, वहां जानेसे निःसन्देह गुह्यकोंके सहित आनन्द करता है। वहांसे सिद्धसेवित कम्पना नदीको जानेसे पुण्डरीक यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है ॥२४४॥ हे बलरामजी! वहांसे माहेश्वरीवासमें जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और कुलका उद्धार हो जाता है ॥२४५॥ आगे देवपोखरमें जानेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और अश्वमेधका फल होता है ॥ २४६ ॥ अनन्तर ब्रह्मचारी और सावधान पुरुष सोमपद तीर्थको जाय, वहां महेश्वरपदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। हे राम! हमने सुना है कि, वहां करोड़ तीर्थ इकट्ठे हैं, पहले उन तीर्थोंको दुरात्मा राक्षस ले गया था; तब जगत्कर्ता भगवान् विष्णुने कच्छपरूप धारण करके उससे छीनकर वहीं स्थापित कर दिये हैं ॥ २४७ ॥ हे वीर! तीर्थकोटिमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलता है ॥ २४८ ॥ वहांसे नारायणके स्थानको जाय, वहां सदा विष्णुभगवान् वास करते हैं जहां ब्रह्मादिक देवता, तपोधन ऋषि, आदित्य, वसु और रुद्र, विष्णुकी उपासना करते हैं। वहांपर अद्भुत कर्मवाले शालग्राम नामक विष्णु निवास करते हैं। उन अव्यय वरदान देनेवाले लोकनाथ विष्णुके दर्शन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलता है एवं वहां पान करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं और उस कुएँमें चारों समुद्र वास करते हैं, वहां जलका स्पर्श करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती, वहीं वरदान देनेवाले अव्यय भगवान् महादेवजीका स्थान है, उनका दर्शन करनेसे पुरुष ऐसा शोभित होता है जैसे मेघसे छूटकर चन्द्रमा। आगे जातिस्मर तीर्थके स्पर्श करनेसे और स्थिरचित्त तथा पवित्र होकर स्नान करनेसे पुरुष कामदेवके समान शोभायमान हो जाता है ॥ २४९ ॥ वहांसे माहेश्वरपुर जाकर शिवजीकी पूजा करनी चाहिये, वहां व्रत करनेसे मनकी इच्छा पूर्ण होती है। वहांसे सब पापोंका नाश करनेवाले वामनतीर्थको जाना चाहिये, वहां विष्णुका दर्शन करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥ २५० ॥ वहांसे कुशिकके आश्रमको जाय, यह स्थान सब पापोंका नाश करनेवाला है, वहां सब पापोंके नाश करनेवाली कौशिकी नदीमें स्नान करनेसे पुरुषको राजसूय यज्ञका फल मिलता है ॥ २५१ ॥ वहांसे चम्पकारण्यको जाय, वहां एक रात्रि रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, वहांसे अत्यन्त दुर्लभ जोष्ठिल तीर्थमें जाकर एक रात रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, वहां पार्वतीसहित महातेजस्वी शिवके दर्शन करनेसे पुरुषको मित्रावरुणका लोक मिलता है। वहां तीन दिन रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। वहांसे कन्यासंवैद्यतीर्थमें जाय, वहां ब्रह्मचारी और स्थिर मन होकर रहनेसे मनु प्रजापतिका लोक मिलता है। हे वीर! उत्तम व्रतधारी ऋषियोंने कहा है कि कन्यासंवैद्यमें जो थोड़ा भी दान देता है, वह अक्षय होता है। वहांसे तीन लोक विख्यात निर्वीरातीर्थमें जाये, वहां जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और विष्णुलोक मिलता है ॥ २५२ ॥ हे नरशार्दूल! जो पुरुष निर्वीरासंगममें दान देता है, वह दुःखरहित इन्द्रलोकमें जाता है, वहीं तीन लोक विख्यात वसिष्ठ मुनिका आश्रम है, उसमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है। वहांसे देव और ऋषिसेवित देवकूट तीर्थमें जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और कुलका उद्धार हो जाता है ॥ २५३ ॥ वहांसे कौशिकमुनिके तड़ागको जाय

जहां कुशिकपुत्र विश्वामित्र मुनिको महासिद्धि प्राप्त हुई थी॥२५४॥हे राम ! वहां कौशिकीके कुंडपर एक महीना रहनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, सब तीर्थोंसे उत्तम उस महातडागपर रहनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती ॥२५५॥ वहांसे तीन लोक विख्यात अग्निधारा तीर्थपर जाये, उसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। वहांसे पर्वतके समीप ब्रह्मसरमें जाकर अनादिदेव वर देनेवाले विष्णुके दर्शन करने चाहिये। ब्रह्मसरमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमका फल होता है। उसी ब्रह्मसरसे निकलकर जगत्को पवित्र करनेवाली एक धारा है, उसका नाम कुमारधारा है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष समझ लेता है कि मैं कृतार्थ हो गया, वहां छठे कालका व्रत करनेसे पुरुष ब्रह्महत्यासे छूट जाता है॥ २५६॥ हे धर्मज्ञ ! वहां तीर्थसेवी पुरुष तीनलोकविख्यात महादेवी गौरीके शिखरपर जाय, वहां शिखरपर चढ़कर स्तनकुंडमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है, वहां पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाले पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल और इन्द्रलोक मिलता है ॥२५७॥ आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर ताम्रारुणातीर्थमें जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और ब्रह्मलोक मिलता है ॥ २५८॥ हे राम ! नंदिनीके देवकुएँमें स्नान करनेसे नरमेध यज्ञका फल मिलता है। आगे कालिका, कौशिकी और अरुणाके सङ्गममे स्नान करके तीन दिन व्रत करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है, और वहांसे उर्वशीतीर्थ, शोभाश्रम और कुंभणाश्रमको जानेसे पुरुष जगत्में पूजाके योग्य हो जाता है। आगे ब्रह्मचारी और व्रतधारी होकर कोकामुखतीर्थमें जाये, वहां जानेसे पुरुष कामदेवके समान हो जाता है, यह पुराने पुरुषोंने देखा है। ब्राह्मण प्राचीन नदीमें स्नान करनेसे पवित्रात्मा हो जाता है, और सब पापोंसे छूटकर इन्द्रलोकमें जाता है, वहांसे पवित्र ऋषभद्वीपमें जाकर क्रौञ्चासुरके मारनेवाले स्वामिकार्तिकका दर्शन और सरस्वतीका दर्शन करता है। सरस्वतीका दर्शन करनेसे पुरुष विमानमें चढ़कर शोभायमान होता है॥२५९॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! वहांसे मुनिसेवित औद्दालक तीर्थमें जाय, फिर वहांसे ब्रह्मर्षिसेवित धर्मतीर्थमें जानेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और विमानमें बैठकर पुरुषको पूजा मिलती है, वहांसे चम्पामें जाकर गङ्गामें स्नान करे और उण्डार्त्त तीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ २६० ॥ ऋषि बोले कि हे बलरामजी ! वहां उत्तम संवेद्यातीर्थमें सन्ध्योपासन करे और वहांका जल स्पर्श करते ही पुरुषको निःसन्देह विद्या प्राप्त होती है ॥२६१॥ जिस तीर्थको पहले रामने अपने प्रभावसे लाल कर दिया था, उसमें जानेसे पुरुषको बहुत सुवर्ण मिलता है। आगे करतोया नदीमें जाकर तीन व्रत करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है, यह नियम प्रजापतिका किया हुआ है ॥२६२॥ हे राम पंडित लोग कहते हैं कि गङ्गा और समुद्रके संगममें स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञका फल होता है, जो पुरुष गंगामें दूसरे पारमें जाकर स्नान करता है और वहां तीन रोज व्रत करता है तो वह पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। वहां सब पापोंके नाश करनेवाली वैतरणी नदीपर जाय, वहां गिरिजा तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है, सहस्र गोदानका फल मिलता है और कुलका उद्धार हो जाता है। वहांसे शोण और ज्योतिरथी नदीके संगममें जाये, वहां पवित्र होकर पितर और देवताओंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है ॥२६३॥ आगे उस स्थानपर जाय, जहां शोण और नर्मदा अलग हुई हैं, वहां बांसोंके झुण्डका स्पर्श

करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है॥ २६४ ॥ आगे कोशल देशमें जाकर ऋषभ तीर्थमें स्नान करे, वहां तीन दिन व्रत करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है। वहां जानेसे सहस्र गोदानका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है। वहांसे कौशलतीर्थमें जाकर काल तीर्थका स्पर्श करे तो निःसन्देह ग्यारह सांड़ छोड़नेका फल होता है ॥२६५॥ पुष्पावतीका स्पर्श करके तीन दिन व्रत करनेसे सहस्र गोदानका फल और कुलका उद्धार होता है। वहांसे बदरिका तीर्थमें स्नान करे। बदरिका तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी दीर्घायु होती है। वहांसे चलकर चम्पामें जाय, वहां गंगामें स्नान करके दण्डतीर्थका दर्शन करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। वहांसे पवित्र पुण्योंसे भरी हुई चमेटिकामें जाय, वहां जानेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है और सब देवता लोग उसकी पूजा करते हैं। वहांसे परशुरामके आश्रम महेश्वरपर्वत पर जाय, वहां रामतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है ॥२६६॥ वहींपर मतंगकेदार नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसें पुरुषको सहस्र गोदानका फल होता है। वहांसे श्रीपर्वतमें जाकर नदीमें स्नान करे, वहां भगवान् महादेवजीकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। महातेजस्वी शिव पार्वतीके सहित वहीं निवास करते थे और देवताओंसहित कमलयोनि ब्रह्मा वहीं निवास करते थे, वहां पुरुष पवित्र और स्थिरमन होकर देवह्रद तीर्थमें स्नान करे तो अश्वमेधयज्ञका फल और परमसिद्धि मिलती है। वहांसे पांडवदेशमें जाकर देवपूजित ऋषभ पर्वतपर जाय तो वाजपेय यज्ञका फल और स्वर्गमें आनंद मिलता है॥ २६७ ॥ वहांसे अप्सरागणोंसे सेवित कावेरी नदीको जाय, उसमें स्नान करनेसे पुरुषको सहस्र गोदानका फल होता है। वहांसे चल समुद्रके तीरपर जाकर कन्यातीर्थका स्पर्श करे। हे राम ! उस जलके स्पर्श करनेसे ही सब पाप छूट जाते हैं ॥२६८॥ आगे तीन लोक विख्यात समुद्रके बीचमें स्थित सब लोक पूजित कर्णतीर्थको जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता, तपोधन, ऋषि, भूत, यक्ष, पिशाच, किन्नर, बड़े-बड़े सिद्ध चारण, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प, नदी, समुद्र और पर्वत आकर भगवान् भूतेश्वर (शिव) की उपासना करते हैं, वहां शिवकी पूजा करके तीन दिन व्रत करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और गणेशका पद मिलता है, यदि वहां दश दिन रहे तो पुरुष परमपवित्र हो जाता है। वहांसे तीनलोकपूजित गायत्रीके स्थानमें जाय, वहां तीन दिन रहनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, हे राम ! यहां गायत्रीका प्रत्यक्ष उदाहरण दीखता है ॥२६९॥ कि यदि कोई संकरजाति (जिसकी माता दूसरी जाति हो और पिता दूसरी जाति हो) का उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छी रीतिसे भी गायत्री पढ़े तो भी वह गायत्री स्वरसे हीन छन्दरहित गांवके गीतके समान उच्चारण होती है ॥२७०॥ और भी उदाहरण हैं कि यदि ब्राह्मणके सिवाय दूसरा कोई वर्ण वहां जाकर गायत्री पढ़े तो उसको स्मरण नहीं होती। वहांसे चलकर दुलर्भ संवर्त्त मुनिकी बावलीमें स्नान करे। वहां स्नान करनेसे पुरुष सुन्दर और ललित हो जाता है। वहांसे वेणतीर्थमें जाकर यदि तीन रात व्रत करे तो पुरुषको मोर और हंससहित विमान मिलता है। वहांसे सदा ही सिद्धोंसे सेवित गोदावरी नदीको जाय, वहां स्नान करनेसे गोमेध यज्ञका फल और वासुकीका उत्तम लोक प्राप्त होता है। वहां वेणनदीके संगममें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर कुरुप्लव नामक तीर्थमें जाय, वहां तीन दिन रहकर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। आगे वरदा संगममें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। आगे ब्रह्मस्था-

नमें जाकर व्रत करनेसे सहस्र गोदानका फल और स्वर्गलोक मिलता है, वहांसे वनमें जाकर कृष्ण वेणाके जलसे उत्पन्न हुए देवह्रद तीर्थमें स्नान करे, वहां जातिस्मरतीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है, वहींपर देवराज इन्द्र सौ यज्ञ करके स्वर्गको गये हैं ॥ २७१ ॥ वहां जाते ही अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, तब सर्वह्रद तीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है वहांसे चलकर पवित्र बावली और नदियोंमें श्रेष्ठ पयोष्णीमें जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है ॥२७२॥ हे राम ! वहांसे चलकर दण्डकारण्यमें जाय, उस पवित्र तीर्थका स्पर्श और स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है । वहांसे शरभंग और महात्मा शुकके आश्रमपर जानेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और परम पवित्र हो जाता है । वहांसे परशुराम सेवित शूर्पारक तीर्थमें जाय, वहां रामतीर्थमें स्नान करनेसे बहुत सुवर्ण मिलता है । आगे जिताहारी और ब्रह्मचारी होकर सप्त गोदावरी तीर्थमें स्नान करे, वहां स्नान करनेसे पुरुषको महापुण्य और स्वर्गलोक मिलता है ॥ २७३ ॥ आगे ब्रह्मचारी और नियमसे भोजन करनेवाला होकर देवताओंके मार्गमें जानेसे पुरुषको देव सत्र यज्ञ का फल होता है ॥ २७४ ॥ आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर तुण्डकारण्यको जाय, वहीं पर पहले सारस्वत मुनि वेद पढ़ाते थे, जब पहले वेद नष्ट हो गये तब अंगिरा मुनिके पुत्र सुखपूर्वक ऋषियोंके मध्य बैठ गये, विधिपूर्वक यथोचित उन्होंने ॐकारका उच्चारण किया, ऐसा करनेसे सब मुनियोंको यह पाठ याद हो गया । वहीं देवता, वरुण, ऋषि, अग्नि, प्रजापति, विष्णु, शिव और सब देवताओंके सहित महातेजस्वी भगवान् ब्रह्माजीने महातेजस्वी भृगुऋषिको यज्ञ करनेके लिये बिठलाया था; तब भगवान् भृगुमुनिने विधिपूर्वक ऋषियोंके कार्योंको यथोचित ठहरा दिया, तब भृगुनें विधिपूर्वक शिवसे अग्निको सन्तुष्ट किया, इसके उपरांत सब देवता और ऋषि अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ २७५ ॥ हे बलरामजी ! उस तुंगक नाम वनमें जाते ही पुरुष-स्त्रियोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं । उसी स्थानमें नियमधारी वीरपुरुष थोड़ा भोजन करके यदि एक महीना रहे तो निश्चय ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २७६ ॥ वहांसे मेधाविका तीर्थको जाय, वहां पितर और देवताओंका तर्पण करे तो अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और स्मरणशक्ति तथा धारणाशक्ति बढ़ती है यहीं पर कालिञ्जर नामक पर्वत है । वहां देवह्रद तीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ २७७ ॥ जो कोई कालिञ्जर पर्वतमें जाकर आप स्नान करे अथवा दूसरेको स्नान कराये तो निस्सन्देह स्वर्गलोकको जाता है ॥ २७८ ॥ वहांसे पर्वतोंमें श्रेष्ठ चित्रकूटको जाय वहां सब पापोंके नाश करनेवाली मन्दाकिनीमें स्नान करके पितर और देवताओंकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और मोक्ष मिलता है ॥ २७९ ॥ वहांसे अत्यन्त उत्तम भर्तृके स्थानको जाय, वहां देवताओंकेपति स्वामी कार्तिकजी सदा ही निवास करते हैं ॥ २८० ॥ वहां जानेसे ही सिद्धि प्राप्त होती है । आगे कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको सहस्र गोदानका फल होता है । आगे उसकी प्रदक्षिणा करके जटातीर्थको जाय, वहां भगवान् महादेवकी पूजा करनेसे पुरुष चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो जाता है । हे बलदेवजी ! हमने सुना है कि उस कुएँमें चारों समुद्र वसते हैं ॥२८१॥ पितर और देवताओंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष वहां स्नान करनेसे पवित्र होकर मोक्षको प्राप्त करता है वहांसे शृंगबेर-

पुरको जाय, वहीं दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी गंगापार हुए थे ॥२८२॥ उस स्थानमें ब्रह्मचारी और सावधान होकर गङ्गास्नान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है और मोक्षको प्राप्त होता है ॥२८३॥ वहांसे मुंजवटको जाय, वहां बुद्धिमान् भगवान् शिवका स्थान है। वहां शिवकी पूजा और प्रदक्षिणा करनेसे गणेशका स्थान मिलता है और वहां गङ्गास्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं ॥ २८४ ॥ वहांसे ऋषिपूजित तीर्थराज प्रयागको जाय, वहां ब्रह्मादिक देवता, दिशा, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, लोकपूजित पितर, सनत्कुमार आदिक महाऋषि, अंगिरादिक निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, चक्रधर, सूर्यादिक (आकाशचारी), नदी, समुद्र, गन्धर्व, अप्सरा और प्रजापतिके सहित भगवान् विष्णु निवास करते हैं। प्रयागमें तीन कुण्ड हैं उनके बीचमें सब तीर्थोंके सहित अत्यन्त वेगवती गङ्गा और तीन लोक विख्यात भगवती यमुना बहती हैं, वहीं जगत्को पवित्र करनेवाली यमुना गंगासे आकर मिली हैं। जहां गंगा और यमुना मिली हैं वह स्थान पृथ्वीका जंघा है, प्रयागको ऋषियोंने पृथ्वीकी योनि कहा है। प्रयाग प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) कम्बलाश्वतर तीर्थ और भोगवती यह ब्रह्माकी वेदी है, उसमें यज्ञ और वेद मूर्ति धारण करके रहते हैं, वहां तपोधन ऋषि ब्रह्माकी उपासना करते हैं चक्रवर्ती और देवता लोग यज्ञ करते हैं ॥२८५॥ इसी लिये प्रयाग परम पवित्र है और मुनि तीनों लोकके तीर्थोंसे प्रयागको अधिक कहते हैं, उस तीर्थमें जानेसे और उसका नाम स्मरण करनेसे पुरुष मृत्युके भयसे और पापोंसे छूट जाता है। उस लोकविख्यात गंगा और यमुनाके संगममें जो पुरुष स्नान करता है उसको राजसूय और अश्वमेधका फल होता है, यह संस्कार की हुई देवताओंके यज्ञ करनेकी भूमि है, वहां थोड़ा दान देनेसे भी बहुत हो जाता है॥२८६॥ हे राम! न वेदके वचनसे न लोकके वचनसे प्रयागमें मरनेकी बुद्धिको त्यागना चाहिये, जो एक करोड़ दश सहस्र सात तीर्थ कहे हैं, वे सब तीर्थराज प्रयागमें ही निवास करते हैं, तीनों वेद, आत्मविद्या और सत्य बोलनेका जो कुछ पुण्य होता है, वह पुण्य गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे पुरुषको मिलता है। वहां राजा वासुकीका स्थान है, उसका नाम भोगवती है, उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, वहां तीनलोक विख्यात हंसपर्वत नामक तीर्थ है ॥२८७॥ प्रयागमें ही गंगाके तटपर दशाश्वमेध नामक तीर्थ है कुरुक्षेत्रके समान गंगाका जहां स्नान करे, वहां ही फल होता है, परन्तु कनखलमें विशेष फल है और प्रयागमें बहुत अधिक फल है, यदि सहस्रों पाप करने पर भी पुरुष गंगाजलमें स्नान करता है तो वह गंगाजल उसके पापोंको ऐसा नष्ट करता है, जैसे अग्नि काष्ठको। सतयुगके बीच सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुण्य होता था, त्रेतामें पुष्कर तीर्थ था, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तीर्थ है और कलियुगमें तो गंगा ही प्रसिद्ध हैं ॥२८८॥ पुष्करमें तप करे, महालयमें दान दे और मलयमें अग्निमें प्रवेश करे और भृगुतीर्थमें भोजन करे। पुष्कर, कुरुक्षेत्र गंगा और मगधदेशीय तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुरुषके सात पुरुष पवित्र हो जाते हैं, गंगा देखनेसे ही पापोंको नाश करती है, कीर्ति और कल्याणको बढ़ाती है, स्नान करने और जल पीनेसे सात कुलको पवित्र करती है ॥२८९॥ पुरुषकी हड्डी जबतक गंगाजलमें रहती है, तबतक वह पुरुष स्वर्गमें रहता है, जो पवित्र तीर्थ पवित्र देवताओंके स्थानमें जानेसे पुण्य होता है और उससे स्वर्ग मिलता है, वह सब उतना चिरस्थायी नहीं होता, जितना गंगास्नान करनेसे फल होता है। गंगाके समान कोई तीर्थ, विष्णुके समान कोई देवता और ब्राह्मणके समान कोई पूज्य नहीं है, इस प्रकार ब्रह्माने कहा है। हे महाराज! जहां गंगा हैं, वह देश तपोवन है, जो देश

गंगाके तटपर है, वह सिद्धक्षेत्र है। यह सत्य बात ब्राह्मण, साधु,पुत्र,मित्र, शिष्य और नौकरोंके कानमें कह देनी चाहिये। यह गंगातट धन्य,पवित्र,स्वर्गदायक, उत्तमपुण्यदायक, रम्य, पवित्र करनेवाला, धर्म बढ़ानेवाला,महर्षियोंके पाप नाश करनेवाला गुप्त स्थान है। ब्राह्मणोंके बीचमें इस मन्त्रको पढ़नेसे पुरुष निर्मल हो जाता है और स्वर्ग मिलता है, यह तीर्थोंकी वंशावली लक्ष्मी, स्वर्ग, पुण्य और बुद्धि देनेवाली है, इसका कीर्तन करनेसे शत्रुओंका नाश होता है, अपुत्रको पुत्र और निर्धनको धन मिलता है,इसके पढ़नेसे क्षत्रिय विजय करता है,वैश्यको धन मिलता है, शूद्रकी इच्छा पूरी होती है और ब्राह्मण पण्डित हो जाता है जो पुरुष पवित्र होकर इस तीर्थ माहात्म्यको सुनता है, वह अपने अनेक जन्मोंको स्मरण करके स्वर्गमें आनन्द करता है जो तीर्थ जाने योग्य हैं उनमें जाय और जो नहीं जाने योग्य हैं, उनमें सब तीर्थोंके दर्शनकी इच्छा करनेवाले पुरुष मनसे ही चले जायँ ॥ २९० ॥ इन तीर्थोंमें वसु, साध्य, सूर्य, मरुत, अश्विनीकुमार, देवताओंके समान ऋषि और पुण्यात्मा लोग स्नान करते हैं ॥२९१॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न बलरामजी ! इस प्रकार आप भी इन तीर्थोंमें जाइये; आप नियमोंको धारण करके पुण्योंसे पुण्यको बढ़ाते हुये तीर्थोंको जाइये, आप निश्चिन्त कारणोंको देखकर आस्तिकता देखकर और वेदोंके प्रमाणको मानकर तीर्थयात्रा कीजिये ॥ २९२ ॥ हे वीर ! जिन तीर्थोंमें शास्त्रदर्शी महात्मालोग जा सकते हैं वहां ही आप जाइये, क्योंकि उन तीर्थोंको अव्रती, दुष्ट, अपवित्र और चोर नहीं जा सकते ॥ २९३ ॥ हे उत्तम यशवाले बलरामजी ! उन तीर्थोंमें दुष्ट बुद्धिवाले पुरुष स्नान नहीं करते, आप ही सदा धर्म और अर्थके जाननेवाले उन तीर्थोंमें जा सकते हैं ॥ २९४ ॥ हे रेवतीरमण ! आपने धर्मसे पितामह, प्रपितामह और उनसे भी पहले पुरुषों तथा ऋषि लोगोंको सन्तुष्ट किया है। हे वीर ! आपको वसुओंके लोक मिलेंगे और आपकी महाकीर्ति इस जगत्में बहुत दिनतक रहेगी ॥२९५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार बलरामजीसे कहकर प्रसन्नतापूर्वक उन ऋषीश्वरने मौनव्रत धारण किया, इसके उपरांत बलरामजी भी शास्त्रोंको देख और ऋषीश्वरके वचनसे पृथ्वीमें घूमनेकी इच्छा करने लगे ॥ २९६ ॥ इस प्रकारसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली पुण्योंसे भरी हुई महाभाग्यवती तीर्थयात्रा प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) में समाप्त हुई। जो पुरुष इस प्रकारसे पृथ्वीके तीर्थमें घूमता है, उसको मृत्युके पीछे सैकड़ों अश्वमेधोंका फल होता है ॥२९७॥ हे महाराज ! आपको भी उससे आठगुणा फल होगा, जैसे कुरुवंशसिंह भीष्मको हुआ था, क्योंकि तुम ऋषियोंके अगुवा हो, इसीसे तुमको आठगुणा फल होगा और आजकलके तीर्थ राक्षसोंसे भर गये हैं, आपके अतिरिक्त उन तीर्थोंमें और कोई नहीं जा सकता है ॥ २९८ ॥ जो पुरुष इस देवर्षिकथित तीर्थमाहात्म्यको कथारूपसे पढ़ेंगे, उनके सब पाप छूट जायेंगे ॥ २९९ ॥ हे महाराज ! उन तीर्थोंमें ऋषियोंमें प्रधान वाल्मीकि, कश्यप, आत्रेय, कुण्ड, जठर, विश्वामित्र, गौतम, असित, देवल, मार्कंडेय, गालव, भरद्वाज, वसिष्ठ, उद्दालक मुनि, शौनक, व्यास, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा और महातपस्वी जाबालि इत्यादि अनेक तपोधन महर्षि लोग आपका मार्ग देख रहे हैं। हे राजन् ! तीर्थोंमें जानेसे इन मुनियोंके दर्शन होंगे ॥३००॥ हे नृपश्रेष्ठ ! यह देखो यह महातेजस्वी लोमश ऋषि आपके पास चले आते हैं, आप इनके सङ्ग ही तीर्थोंको चले जाइये ॥ ३०१ ॥ क्रमके अनुसार इन तीर्थोंमें आप मुझसे भी मिलेंगे, जैसी राजा महाभिषकी कीर्ति हुई थी, उसी प्रकार

आपकी भी होगी ॥२०२॥ हे वीर ! जैसे राजा ययाति और राजा पुरूरवा धर्मात्मा थे, उसी प्रकार आप भी अपने धर्मसे शोभायमान हैं ॥२०३॥ जैसे राजा भगीरथ और राजा रामचन्द्र विख्यात थे वैसे ही सूर्यके समान तेजस्वी आप भी विराजमान हैं ॥२०४॥ जैसे मनु इक्ष्वाकु महायशस्वी पुरुष और पृथु थे वैसे ही आप भी विख्यात हैं॥२०५॥ हे महाराज ! जैसे वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इंद्रने सब शत्रुओंको मारकर जगत्का राज्य किया था,उसी प्रकार आपभी अपने धर्मसे पृथ्वीको जीत और शत्रुओंको मारकर प्रजाको पालियेगा।जैसे कृतवीर्यके पुत्र अर्जुन प्रसिद्ध हुए थे उसी प्रकार आप भी धर्मसे प्रसिद्ध होंगे ॥३०६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! इस प्रकार ऋषि बलदेवजीसे कहकर चुप हो गये और महात्मा बलदेवजी भी उसको सुनकर तीर्थयात्रा जानेका विचार करने लगे ॥ ३०७ ॥ इसके उपरांत जब अमावस्याकी पूर्णमासी का पर्व आया तो धूरिवर्षा सहित अत्यन्त भयानक प्रचण्ड पवन चलने लगा और चारों ओरसे राधकी सी दुर्गन्ध आयी॥१॥इसके पीछे बल्वल दैत्यकी की हुई विष्ठा और मूत्रकी वर्षा यज्ञशालामें होने लगी, फिर त्रिशूल हाथमें लिये वह बल्वल भी दीख पड़ा ॥२॥ टूटे हुए अंजनके ढेरके समान बड़े शरीरवाला तपे तावेसे लाल शिखा, डाढ़ी, मूँछवाला और भ्रुकुटीसे डरावने मुखवाले उस दैत्यको देखकर बलदेवजीने॥३॥ शत्रुकी सेनाके विदीर्ण करनेवाले मूसलको स्मरणकर दैत्योंको मारनेवाले हलका स्मरण किया । इसके उपरान्त पार्षदरूप हल मूसल आप ही आकर उपस्थित हो गये॥४॥आकाशमें विचरनेवाले बल्वलको हलके अग्रभागसे खींच और अत्यन्त क्रोधमें भरकर महात्मा बलदेवजीने ब्रह्मद्रोही बल्वलके माथेमें मूसल मारा ॥५॥ उसके लगते ही माथा फूटनेसे बल्वल रुधिर वमन करता हुआ वज्रके मारे गेरूके पर्वत समान पृथ्वीमें गिर पड़ा ॥६॥ तब मुनीश्वरोंने बलदेवजीकी स्तुति कर सफल आशीर्वाद दे, जैसे बड़भागी देवतालोगोंने वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रका अभिषेक किया था, उसी प्रकार बलदेवजीका अभिषेक किया ॥७॥ लक्ष्मीके निवास कोमल कमलोंकी वैजयन्तीमाला और दिव्य नीलाम्बर (धोती,उपरना) और अनेक प्रकारके आभूषण उन मुनियोंने महात्मा बलदेवजीको दिये ॥८॥ इसके उपरान्त मुनियोंसे आज्ञा पाकर बलदेवजी ब्राह्मणोंको संग ले कौशिकी नदीमें आकर स्नान कर जिस सरोवरसे सरयू निकली है, वहां गये ॥९॥ और सरयू प्रवाहके किनारे-किनारे हो प्रयागमें आकर स्नान व देवादिकोंका तर्पणकर पुलहऋषिके आश्रम हरिक्षेत्रको गये ॥१०॥ वहांसे गोमती और गंडकी तथा विपाशा व शोण नदीमें स्नान कर बलदेवजी गया तीर्थमें गये और वहांसे पितरोंका पूजन कर गंगा और समुद्रके संगममें पहुँचे ॥११॥ इसके उपरान्त महेंद्राचल पर्वतमें भृगुवंशावतंस परशुरामजीका दर्शन व प्रणाम कर सप्तगोदावरी, वेणा तथा पंपामें जाकर भीमरथीमें गये॥१२॥इसके उपरान्त स्वामिकार्तिकका दर्शन कर जहांपर भगवान् महादेवजी विराजते हैं, ऐसे श्रीशैल पर्वतको गये और द्रविड़ देशोंमें परमपवित्र वेंकट पर्वतका दर्शन कर कामकोष्णी पुरीमें गये। फिर कावेरीमें स्नान कर बड़े पवित्र और जहां नित्य हरि विराजते हैं,ऐसे श्रीरंग नाम विख्यात स्थानको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहांसे ऋषभादि पर्वत हरिक्षेत्रमें आकर, दक्षिण मथुरामें जाकर फिर बड़े पापोंके नाश करने वाले सेतुबन्ध रामेश्वरको गये ॥१५॥ वहां जाकर हलायुध धारण करनेवाले बलदेवजीने दशहजार गायें ब्राह्मणोंको दान किया, पीछे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें होकर मलयाचल, पर्वतोंपर गये ॥ १६ ॥ वहां जाकर विराज-

मान अगस्त्यमुनिकी नमस्कारपूर्वक स्तुति की; फिर अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और आज्ञा पाकर बलदेवजीने दक्षिणदेशमें समुद्रके तटपर जाकर कन्या नाम दुर्गादेवीका दर्शन किया ॥ १७ ॥ इसके पीछे फाल्गुन—अनन्तपुरमें जाकर, जहां विष्णु भगवान् सदा विराजते हैं ऐसे श्रेष्ठ पञ्चाप्सरस नाम सरमें स्नान कर दशहजार गायोंका संकल्प किया ॥ १८ ॥ वहांसे चलकर भगवान् बलदेवजी केरल और त्रिगर्त देशमें हो धूर्जटी शिरसे नित्य सन्निहित गोकर्ण नाम शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ वहांसे आर्यद्वीपवासिनी देवीका दर्शन कर शूर्पारक क्षेत्रमें आये, वहांसे ताप्ती और पयोष्णी नदीमें हो दण्डकारण्यमें आये ॥ २० ॥ जहां माहिष्मती पुरी है, वहां पहुँच रेवा नदीपर गये। फिर मनुतीर्थमें आचमन कर प्रभासक्षेत्रमें आये ॥ २१ ॥ तब कौरव और पांडवोंके संग्राममें सब क्षत्रियोंका नाश हो गया यह ब्राह्मणोंके वचन सुन बलदेवजीने अपने मनमें जान लिया कि पृथ्वीका भार उतर गया ॥२२॥ यादवोंको आनन्द देनेवाले बलदेवजी अपने संग्राममें गदाओंसे युद्ध करते भीमसेन और दुर्योधनको समझानेके लिये कुरुक्षेत्रमें गये ॥ २३ ॥ राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन बलदेवजीको आया हुआ देख प्रणाम कर पूछने लगे कि हे बलदेवजी ! आप कहां-कहां हो आये ? यह कहकर चुप हो गये ॥ २४ ॥ इसके उपरान्त क्रोधमें भरे एकको एक जितना चाहे, चित्रविचित्र मण्डलोंमें फिरते भीमसेन और दुर्योधनको देख बलदेवजी कहने लगे ॥ २५ ॥ हे राजा दुर्योधन ! और भीमसेन ! तुम दोनों शूरवीर हो और तुम्हारा बल समान है। भीमसेनमें कुछ बल अधिक है, दुर्योधनमें दांव-पेंच अधिक है, यह मैं जानता हूँ ॥ २६ ॥ इसलिये बराबर पराक्रमवाले तुम दोनोंके बीचमें एककी कभी जीत हार न होगी, इस कारण इस निष्फल युद्धको शान्त करो ॥ २७ ॥ हे राजन् ! परस्पर कुत्सित वचनोंको स्मरण कर वैरमें भरे भीमसेन और दुर्योधनने बलरामजीके प्रयोजन भरे वाक्यको नहीं माना ॥ २८ ॥ भीमसेन और दुर्योधनका पिछला कर्म ऐसा ही है, यह जानकर बलदेवजी द्वारकापुरीमें आये और वहां प्रसन्नमन हो उग्रसेन आदि यादवोंसे मिले ॥ २९ ॥ समस्त विरुद्धरहित यज्ञमूर्ति भगवान् बलदेवजी फिर नैमिषारण्यमें आये, तब उन्हें आनन्दपूर्वक सब ऋषीश्वरोंने यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब सामर्थ्यवान् भगवान् बलदेवजीने उन ब्राह्मणोंको विशुद्ध ज्ञान दिया, जिस ज्ञानसे आत्मामें विश्व और विश्वमें पुरुष आत्माको जानता है ॥ ३१ ॥ यज्ञ करनेके पीछे स्नान कर सुन्दर वस्त्र आभूषणोंसे अलंकृत ज्ञाति बन्धु सुहृदोंको संग ले अपनी चांदनीसे शोभित चन्द्रमाके समान बलदेवजी अपनी स्त्रियोंसहित अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए ॥३२॥ बलवान् अनन्त अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करनेमें न आये, मायासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले बलदेवजीके अनेक लीला और चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ हे भारत ! अद्भुत कर्मकारी अनन्त बलदेवजीके कर्मोंको जो पुरुष सायंकाल अथवा प्रातःकालके समय स्मरण करेगा वह श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त प्यारा होगा ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

दोहा–अस्सीमें धन लोभसे, विप्र सुदामा रंक।
गयो द्वारका कृष्णपै, धोवन हेत कलंक॥

राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसे बोले कि, हे भगवन्! समर्थ, अनन्त पराक्रम मुक्तिके देनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पराक्रमको और भी सुननेकी मेरी अभिलाषा है॥१॥हे श्रीशुकदेवजी उत्तमयश भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विषयमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली जो मनोहर कथा है, उसको निरन्तर सुनकर कामके बाणोंसे खेदित हो त्रास पावें ऐसे सारके जाननेवाले कौन पुरुष हैं जो श्रवण न करें॥ २॥ जिस वाणीमें भगवान्‌के नाम और गुण निकलें, वही वाणी सफल है और जिन हाथोंसे भगवान् वासुदेवकी सेवा-पूजाका कर्म बने वे ही हाथ सफल हैं और स्थावर-जंगम जीवोंमें अन्तर्यामीरूप होकर बसे भगवान्‌का जो स्मरण करे वही मन सफल है और जिन कानोंसे भगवान् हरिकी पवित्र कथा सुने, वे ही कान सफल हैं॥ ३॥ स्थावर-जंगम सब भगवान्‌के रूप हैं यह जानकर जो पुरुष शिरसे प्रणाम करे, वही शिर धन्य हैं, जिन नेत्रोंसे देखे वे ही नेत्र धन्य हैं और भगवान् अथवा भक्तजनोंके चरणोंका धोवन जल नित्य जिन अंगोंमें लगे वही अंग धन्य हैं॥४॥ श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहने लगे कि विष्णुरात राजापरीक्षित्‌के यह प्रश्न करनेपर वासुदेवजी भगवान्‌में निमग्न हृदय हो वेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवजी बोले॥ ५॥ कि हे परम भागवत् राजा परीक्षित्! कोई एक ब्राह्मण ब्रह्मके जाननेवालोंमें उत्तम, विषयोंमें वैराग्यवान्, शान्तमन, जितेंद्रिय श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र था॥६॥ वह गृहस्थाश्रममें रहता था और जो कुछ अनायास प्राप्त हो उसीसे अपना निर्वाह करता था, जीर्ण वस्त्रको धारण किये उसी प्रकार उसकी स्त्री भी थी। क्षुधासे पीड़ित होनेसे समस्त अङ्गोंसे कृशित और जो अन्न प्राप्त हो उसे पतिको परोस दे आप भूखी रह जाय॥ ७॥ बहुत दुःखित और भयके कारण थरथर कांपती वह पतिव्रता स्त्री दरिद्री पतिके समीप बोली॥ ८॥

चौ०–कौन उपाय करैं प्रिय आजू ❋ तीन दिवस से मिल्यो न नाजू॥
भीखहू मांगे परत न पूरी ❋ ब्राह्मण-धर्म न होत मँजूरी॥
अब प्रिय कोइ उपाय विचारो ❋ जाते जाय दरिद्र हमारो॥
मानो एक वचन मम सांई ❋ जाते कोटि दरिद्र नसाई॥

दोहा–कृष्णचन्द्र आनँदभवन, श्रीनँदनन्द मुकुंद।
व्रजभूषण दूषण–हरण, श्रीवृन्दावन चन्द॥

सोरठा–कोटि दरिद्र नशाय, स्वामी तिनके नामसे।
जे जन शरणहिं जायँ, तिनके अघ किमि रहि सकैं॥

चौ०–सो व्रजचन्द द्वन्द्व–दुखहारी ❋ जगत ईश भक्तन–हितकारी॥
पालैं प्रलय करैं क्षणमाहीं ❋ तेहि समान दूसर कोउ नाहीं॥
भक्त काज निज सारन हारे ❋ सो प्रभु सुनियत मित्र तुम्हारे॥
जाको ऐसा मित्र जु होई ❋ क्यों घर घर फिर मांगत सोई॥

तिनके पास जाहु तुम स्वामी * लैहैं खबर सु अन्तर्यामी ॥
जाहु कन्त तुम हरिके पासा * पूरण करैं तुम्हारी आसा ॥

हे ब्राह्मण ! मैंने सुना है कि साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्रह्मभक्त शरणागतके पालक यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारे सखा हैं ॥ ९ ॥ अहो बड़भागी साधुओंके परमआश्रय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पास तुम जाओ, दुःखित कुटुम्बी तुमको वे बहुतसा धन देंगे ॥१०॥ भोज, वृष्णि, अन्धक यह यादवोंके गोत्र हैं, उनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अब द्वारकापुरीमें विराजते हैं, वे अपने चरणकमलोंके स्पर्श करनेवालोंको आत्मा तक दे देते हैं ॥ ११ ॥

सोरठा–जाओ हरिके पास, और न मन समझो कछू ।
ज्ञान मुक्तिकी रास, दास आश पूजत सदा ॥
चौ०–ऐसो मत समझो मनमाहीं * धन कारण भेजत हरि–पाहीं ॥
हरि दर्शन है सरस सुहायो * यह रस भाग्य विना किन पायो ॥
वे भगवान प्राणके दाता * विप्रनको चाहत दिन राता ॥
क्षणमें दुःख तुम्हारे हरिहैं * सफल मनोरथ पूरण करिहैं ॥
जो कोउ जात शरण मोहनकी * पूरी करत आश जनमनकी ॥
गजप्रह्लाद धना नरसीकी * राखी लाज द्रौपदीजीकी ॥
मांगनते लजात मनमाहीं * दर्शनको तो पिय डर नाहीं ॥
करत इसी कारण मित्राई * दुख सुखमें सब होत सहाई ॥
नारी इष्ट मित्र मन इच्छा * बिपति परै तब करै परीच्छा ॥
जो न अबहिं हरि होयँ सहाई * कवन काज आवै मित्राई ॥
अबहुँ कन्त समझो मनमाहीं * जाओ बेगि श्याम-घन-पाहीं ॥

जगत्के गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको भजन करनेवाले अपने भक्तोंको परिणाममें दुःखरूप धन और विषयका देना कुछ बहुत नहीं है । इस प्रकार कोमलवचनोंसे स्त्रीने बहुत प्रार्थना की ॥१२॥ तब तो सुदामा ब्राह्मण उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन होगा, यह बड़ा लाभ है, इस प्रकार मनमें विचार कर जानेकी इच्छा करने लगे और स्त्रीसे बोले कि हे मंगलरूपिणी ! तेरे घरमें कुछ भेंट देनेको हो तो ला ॥ १३ ॥

चौ०–हमको उचित प्रिया यह नाहीं * खाली हाथ जायँ हरिपाहीं ॥
होय भेंटमें पांच सुपारी * घरमें एको अक्षत ना री ॥

यह सुन सुदामाकी स्त्री किसी पड़ोसी ब्राह्मणके घरसे चार मूठी चावल मांग लायी और सुदामाके कपड़ेमें बांधने लगी ।

चौ०–जीरण बस्त्र बांधने नाहीं * ज्यों त्यों कर बांधे तेहि माहीं ॥

हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रको भेंट देकर सुदामाको बिदा किया ॥ १४ ॥

चौ०–चले गणेश मनाय सुदामा ❋ भये शकुन सुन्दर अभिरामा ॥
मृगके झुण्ड दाहिने आये ❋ नीलकंठ शुभ दरश दिखाये ॥

दोहा–मनमें शोचत जात द्विज, मैं तो दीन अनाथ ।
कैसे कर पहिचानि हैं, मोहिं द्वारकानाथ ॥

सोरठा–बहुत दिवस गये बीति, मोहिं न देख्यो श्यामने ॥
बालापनकी प्रीति, समझैंगे कै नाहिं हरि ॥

चौ०–विना वस्त्र हौं दीन भिखारी ❋ कसजैहौं हरि सभा मँझारी ॥
किमि प्रतिहार जान मोहिं देहैं ❋ कैसे जाय श्यामसों कैहैं ॥
जिनको सकल नरेश जुहारैं ❋ वे कैसे मम ओर निहारैं ॥
जब मैं हरिके सन्मुख जैहौं ❋ कहां ठौर बैठनको पैहौं ॥
जब प्रतिहार कहै हट जाऊ ❋ तब मैं करिहौं कौन उपाऊ ॥
तब तो हँसी होय अति भारी ❋ फिरि किमि ऐहौं गेहमँझारी ॥
जो कदापि मैं घर फिर जाऊँ ❋ नारि न चैन देइ तेहि ठाऊँ ॥
दोउ भाँति भयो मरण हमारो ❋ विधि मोहिं भले पापमें डारो ॥
जो नहिं मानो तियके बैना ❋ घरमें कलह रहै दिन रैना ॥
जो मैं जाऊँ जहां बिहारी ❋ तहँ न बूझ कोउ बात हमारी ॥

दोहा–कबहुँ विप्र यह शोचकर, फिरत भवनकी ओर ।
चलत कबहुँ भय नारिके, जित श्रीनंदकिशोर ॥

सोरठा–जब फिर आवत लाज, लौटत घरकी ओरको ।
इतै उतै द्विजराज, चकई सम घूमत फिरै ॥

चौ०–यहि विधि शोचत द्विजवरवीरा ❋ पहुँचो जाय गोमती तीरा ॥
निर्मल नीर गँभीर विराजै ❋ कोटि कष्ट दर्शनते भाजै ॥
भवभय-रुजहरणी सुखकरणी ❋ पाप हरणको श्रीवैतरणी ॥
कलिमलदलगञ्जनिभयभञ्जनि ❋ दोषविभञ्जनि मुनिमनरञ्जनि ॥
सुखदानी वैकुण्ठ निशानी ❋ महिमा शेष न सकहिं बखानी ॥
सुन्दर घाट बाट मनमोहन ❋ जलमें बनी सुभग आरोहन ॥
तहँ मठ मन्दिर ठाकुर द्वारे ❋ इकते एक अनूप निहारे ॥
तिनमें साधु सन्त मुनि ज्ञानी ❋ करैं ज्ञानचर्चा सुखखानी ॥
भामिनि यूथ-यूथ मिलि आवै ❋ करि अस्नान परमसुख पावै ॥
इक दिशि पुरुष करैं अस्नाना ❋ कहि हरि हरि श्रीकृपानिधाना ॥

दोहा-तहँ करके स्नान द्विज, कियो कृष्णको ध्यान।
धनि धनि गंगा गोमती, धनि धनि श्रीभगवान ॥

सोरठा-यह छबि सुभग निहार, चढ़ो वेगि द्विज नावपर ॥
भयो गोमती पार, तहाँ जाय देखो कहा ॥

चौ०-चारों ओर समुद्र विराजे ❋ ताके बीच द्वारका राजै ॥
बड़े बड़े पर्वत चहुँ घाई ❋ बसै रीछ मर्कट तेहि ठाईं ॥
वन उपवन लखि सुन्दर बागा ❋ द्विजके मन उपजो अनुरागा ॥
तिनमें सुन्दर वृक्ष सुहाये ❋ लगे फूल फल अति मनभाये ॥
निबू बिंबा जम्बु कदम्बा ❋ शाल तमाल माल धन अंबा ॥
नरियल दाम बदाम छुहारे ❋ कहीं अनार सरीखे न्यारे ॥
इमली बेल दाडिमी सोहै ❋ सफरी अमृत फल मन मोहै ॥
कहुँ कहुँ पुष्पवाटिका न्यारी ❋ तिनमें फूलि रही फुलवारी ॥
मौलसिरी केवड़ा नबेली ❋ गंधराज मोतिया चमेली ॥
सूरजमुखी सुदर्शन बेला ❋ दाऊदी गुडहर अलबेला ॥

दोहा-मदनबाण चम्पा कहीं, कहीं खिला महताब।
कहीं चांदनी खिल रही, चटके कहीं गुलाब ॥

सोरठा-गेंदा हरिसिंगार, कुंदकेतकी खिल रही।
जूही देत बहार, रूप मंजरीके विषे ॥

चौ०-तिनपर पक्षी परम सुहावन ❋ बोल रहे बोली मनभावन ॥
महर कोकिला तीतर मोरा ❋ करैं मनोहर सुन्दर शोरा ॥
शुक सारिक जब वाणी बोलैं ❋ बात बातमें अमृत घोलैं ॥
बने सुभग तहँ वापी कूपा ❋ सुन्दर बाग तड़ाग अनूपा ॥
निर्मल नीर गँभीर झकोलैं ❋ बक मराल तहँ करत किलोलैं ॥
तिनमें जलज खिले अलबेले ❋ बरण अनेक अरुण अरु पेले ॥
तहँ अलिकुलगुञ्जत बहु भांती ❋ त्रिविध बयार बहत दिन राती ॥
उड़त पराग परत रज धरनी ❋ तीन भुवनकी पावन करनी ॥
ठाढ़े इँदारन पर माली ❋ गावत सुन्दर तान निराली ॥
सो छबिको कबि सकै बखानी ❋ सींच रहे वृक्षनपे पानी ॥

दोहा-मीठे-मीठे स्वरनसे, जब वे गावत गान।
मनुज दनुजकी को कहै, छुटत मुनिनके ध्यान ॥

सो०-कोसोलों फुलवार, फूल रही सुन्दर सुखद।
यह छवि सुभग निहार, गयो सुदामा नगरमें ॥

हे राजन्! इस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ सुदामा चावलोंको ले "श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन मुझे कैसे होगा" ऐसा विचार करता हुआ द्वारकापुरीमें पहुँचा ॥ १५ ॥

चौ०-जहां कृष्ण द्वारका बसाई ❋ इन्द्रपुरीते अधिक सुहाई ॥
बर्णि न जाय नगरकी शोभा ❋ सो छबिलखिशिवअजमनलोभा ॥
सोहै चारु बजार मनोहर ❋ अपने हाथ रचायो सो हर ॥
सकल वस्तुतहँ बिकत विशेषा❋ वणिक धनिक सब मनो धनेशा ॥
मंदिर महा अनूप बिराजे ❋ ठौर ठौर मणि माणिक राजे ॥
तिनपर चित्र विचित्रअटारी ❋ जहँतहँमणिमयजटित निहारी ॥
स्वर्णकलश विजलीसे चमकें ❋ रवि प्रकाशते दूने दमकें ॥
ध्वज पताक अरु बंदनवारे ❋ बजें दुंदुभी निज निज द्वारे ॥
बसैं तहां नर नारि अनूपा ❋ एक एकते आगर रूपा ॥
पुनि आगेको चलो सुदामा ❋ जहां श्यामसुन्दरको धामा ॥

सुदामा ब्राह्मण तीन चौकी और तीन ड्योढ़ीको उल्लंघन कर कृष्णके धर्मचारी और अगम्य अंधक और वृष्णियोंके घरोंके बीचमें हो ॥ १६ ॥ उन घरोंके बीचमें सोलह हजार श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंके घरमें एक अत्यन्त सुन्दर घरमें सुदामाने प्रवेश किया, उस समय ब्रह्मकी प्राप्तिके समान आनन्द पाया ॥ १७ ॥

दोहा-भयो चकित देखत भवन, शोभा वरणि न जाय ।
तीन भुवन शोभा मनो, रही भवनमें छाय ॥

सोरठा-ललित मनोहर द्वार, हाटकमय फाटक लगे ।
गजरथ तुरग अपार, झूमि रहे ठाढ़े तहां ॥

चौ०-लग्यो सरस सुन्दर दरबारा ❋ खड़े चक्कवे भूप अपारा ॥
शूर सचिव सेनप तहँ ठाढ़े ❋ जे रणमें उदार अति गाढ़े ॥
लिये शस्त्र यदुवंशी डोलैं ❋ राधामाधवकी जय बोलैं ॥
द्वारपाल तहँ खड़े ललामा ❋ विप्र जान किय दण्डप्रणामा ॥
कौन देशते कियो पयाना ❋ कहिय कृपा करि कृपानिधाना ॥
कौन काज इनको पग धारो ❋ महाराज कह नाम तुम्हारो ॥
द्राविड देश हमारो धामा ❋ कृष्णमित्र मम नाम सुदामा ॥
हम अरु कृष्ण पढ़े इक-संगा ❋ हरिसे कहो सुसकल परसंगा ॥
जान जायँगे आप मुरारी ❋ बाला पनकी प्रीति हमारी ॥
द्वार पाल हरिके ढिग आयो ❋ द्विजको सब सन्देश सुनायो ॥

छन्द-शिरपर पगा नहिं तनु झगा प्रभु परम दुर्बल अंग है ॥
दुपटी फटी धोती लटी लकुटीन कर अति तंग है ॥

नहिं पगन पनहीं मगन मनहीं रूप मनहु अनंग है ॥
कहै बार बार पुकार कान्हा पढ़ो हमारे संग है ॥

हे राजा परीक्षित्! प्यारी रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने द्वारपालके मुखसे यह सन्देशा सुन निकट खड़े अपने प्राचीन मित्र सुदामाको देख शीघ्र उठ भुजा पसारके मिले ॥ १८ ॥

चौ०-गये लिपट गहि कोमल चरणा ❀ हियं हुलाससो जात न वरणा ॥
पुलक शरीर भरे जल नैना ❀ गद्गद कण्ठ न निकसत बैना ॥
द्विजके पग छांड़त हरि नाहीं ❀महि पति अति लजात मनमाहीं॥
हरिगति लखि अति डरो सुरेशा ❀ झँपो कल्पद्रुम कँपो धनेशा ॥
द्विजकी चरणरेणु सुखदाई ❀ कमलनयन लै शीश चढ़ाई ॥
जैसे योग ध्यान धरि कोई ❀ देखि आतमा हर्षित होई ॥
ताही विधि हर्षित घनश्यामा ❀ मिले पुरातन मित्र सुदामा ॥
बार बार पूछत कुशलाता ❀ इतने दिनन रहे कहँ भ्राता ॥
धन्य भाग्य हैं आज हमारे ❀ परशे कोमल चरण तुम्हारे ॥
आज पवित्र भवन मम भयऊ ❀ परमानन्द मोहि तुम दयऊ ॥

छन्द०-अस कहत बारहिंबार करि करि प्यार हरि द्विजराजसे ।
सकुचत सुदामा मनहिंमन कछु कहि सकतनहिं लाजसे ॥
सब देव हरषैं सुमन वरषैं देखि गति ब्रजराजकी ।
धनि धनि मिलाप सनेह पूरण धनि घड़ी है आजकी ॥

दोहा-लैगें द्विजको पकरि कर, मन्दिर-माहिं मुरारि ।
राजरवनि सोलह सहस, चकित निहारि निहारि ॥

सोरठा-को यह दुर्बल दीन, ले आये हरि भवनमें ।
हरि तो परम प्रवीन, आज जनैं कहँ है गयो ॥

चौ०-को यह दुर्बल दीन भिखारी ❀ लाये मोहन भवनमँझारी ॥
शेष महेश दिनेश सुरेशा ❀ तपैं सदा सहि कठिन कलेशा ॥
अस आदर सो कबहुँ न पावैं ❀ जैसे हरि द्विजके गुण गावैं ॥
शोचकरैं आठो पटरानी ❀ विधिकीगतिकछुजात न जानी ॥
मणि मण्डित चौकी अभिरामा ❀ तहँ बैठारे मित्र सुदामा ॥
पुनि पुनि पूछैं कृष्णमुरारी ❀ मित्र कवनि गति भई तुम्हारी ॥
कह्यो रुक्मिणिहिं हरि सुखदानी❀ लावहु बेगि थालमें पानी ॥
सुनत वचन आठो पटरानी ❀ लै लै चलीं परातन पानी ॥

यह कोइ हरिको परम पियारो ❋ सब मिलि याके चरण पखारो ॥
सबसों नाहिं कहत गिरिधारी ❋ धोवत चरण आपु बनवारी ॥
छन्द०—लागे पगन कंटक बिकट फट रहिं बिवाई देख हरि।
कपड़े फटे तनु क्षीन वदन मलिन केश रहे बिखरि ॥
यह दशा दीन निहारि करुणाकरण हरि रोवन लगे।
यदुनाथ हाथ न छुयो जल चख जलहि पग धोवन लगे ॥

हे नृपश्रेष्ठ! अपने अत्यन्त प्यारे मित्र सुदामा ब्राह्मणके मिलनेसे अति आनन्दित और प्रसन्न हुए, कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे आसुओंकी बूँदें टपकने लगीं ॥ १९ ॥

स०—ऐसे विहाल बिवाइनते, पग कंटक जाल गड़े पुनि जोये।
हाय महादुख पायो सखा, तुम आये इतेन किते दिन खोये ॥
देखि सुदामाकी दीन दशा, करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परातको हात छुओ नहिं, नैननके जलसों पग धोये ॥

हे राजन्! लोकोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामासे मिल और उनको पलँगपर बैठाकर भेंट दे, उस चरणका धोवनजल अपने मस्तकपर चढ़ाया और दिव्य गन्ध, अतर, चन्दन, केशर, इत्यादि सुदामाजीके लगाया ॥ २० ॥ २१ ॥

दोहा—धोय चरण चरणोदक, कृष्ण चढ़ायो माथ।
बूँदि बूँदि पुनि सबनको, देत भये यदुनाथ ॥

सोरठा—मेटो द्विजको खेद, चन्दन चरचत अंगमें।
धूप दीप नैवेद, मांगि आरती करत हरि ॥

श्रेष्ठ गंधयुक्त धूप दी और बराबर दीपक जलाकर धर दिये और बड़े आनन्दसे मित्र सुदामाकी पूजा कर ताम्बूल दे सम्मुख खड़े हो "मित्र भले आये" इस प्रकार कृष्ण कहने लगे ॥२२॥

चौ०—लगे करन हरि जब द्विज सेवा ❋ आये नरतनु धरि सब देवा ॥
अस्तुति करहिं पुकारि पुकारी ❋ जय जय जय भक्तनहितकारी ॥
नमो नमो नारायण स्वामी ❋ करहु कृपा भक्तन-अनुगामी ॥
जयतिजयति जयजय यदुनायक ❋ कलिमल-भंजन संतसहायक ॥
शिव विरंचि तव अन्त न पावत ❋ भक्तसनेह देह धरि आवत ॥
करि अस्तुति सब देव सिधाये ❋ भोजन हरि तबद्विजहि जिमाये ॥
अस्तुति करैं खड़े सुखदानी ❋ पवन डुलावत रुक्मिणी रानी ॥
मनमें सब कोउ करैं विचारा ❋ यह कोउ हरिका परमपियारा ॥
याहि कृष्ण पूछत हैं ऐसे ❋ निज पुरुषनको मानत जैसे ॥

दोहा—यह विरंचि सनकादि हैं, कै नारद ऋषिराय।
कै शिव गौरीनाथ हैं, हरि पूजत जेहि पाय ॥

सोरठा—विश्वामित्र वसिष्ठ, अत्रि व्यास शंकरसुवन।
कै यह करिके इष्ट, सृष्टि रचीजिनकोसुमिरि ॥

फटे मलिन वस्त्र पहने और दुर्बलताके कारण जिनके अङ्गोंकी नसें निकल रही हैं, ऐसे सुदामा ब्राह्मणकी साक्षात् देवी रुक्मिणी चमर ढोर पंखा इत्यादिसे सेवा करने लगीं॥२३॥ हे राजन् ! इस कारण निर्मल कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब सत्कार किया तब अवधूत सुदामाको देख सब द्वारकावासी जन आश्चर्य मानने लगे ॥२४॥ और कहने लगे कि भिक्षा मांगनेवाले दरिद्री निंदित अधम फटे वस्त्रवाले इस सुदामाने ऐसा क्या पुण्य किया है ? ॥ २५ ॥ क्योंकि जैसे बड़े भाई बलदेवजीसे मिलें, उसी प्रकार त्रिलोकीके गुरु लक्ष्मी-निवास श्रीकृष्णचन्द्र शय्याके ऊपर बैठी अपनी प्रियतमा रुक्मिणीको त्यागकर इससे मिले ॥ २६ ॥ हे परीक्षित् ! इसके उपरान्त सुदामा और श्रीकृष्णचंद्र परस्पर हाथ पकड़-कर जब गुरु कुलमें वास किये थे तबकी बात कहने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे धर्मके जानेवाले ब्राह्मण ! दक्षिणा दे गुरुके पाससे जब हम तुम विद्या पढ़कर आये तबसे तुमने घर आकर अपने योग्य स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥२८॥ हे विवेकी मित्र सुदामा! मैं निश्चय जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त विषयोंमें बहुत चलायमान नहीं है और घरमें वस्त्रादिकोंसे भी तुम प्रसन्न नहीं हो, विवेकी हो, तुमको ऐसा ही योग्य है ॥२९॥ यदि कहो कि चाहना नहीं तो घरमें रहनेसे क्या प्रयोजन है ? उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि जैसे मैं ईश्वर हूं उसी प्रकार ईश्वरकी मायासे रची विषय-वासना त्यागकर कितने एक पुरुष मेरे समान लोकमर्यादाके लिए विषयोंमें आसक्त न होनेपर भी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हम तुम जब गुरुके घरमें जाकर रहे थे, तबकी भी कुछ याद है कि जिन गुरुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जानने योग्य आत्माका स्वरूप जानकर संसारसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ इस संसारमें तीन गुरु हैं—जन्मदाता पिता; दूसरा यज्ञोपवीतकर संन्ध्या गायत्री वेद पढ़ावै, सुंदर कर्म सिखानेवाला और तीसरा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों आश्रमोंको ज्ञान देनेवाला गुरु है, इसमेंसे प्रथम गुरु पूज्य है, दूसरा तेरे बराबर पूज्य और तीसरा गुरु साक्षात् मेरा ही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मण ! जो पुरुष मनुष्यरूप धारण करके गुरुरूपसे मेरे उपदेशसे संसाररूपी समुद्रके पार लगते हैं। वे पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंमें और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन चारों आश्रमोंमें चतुर हैं ॥३३॥ ज्ञानके देने वाले गुरुसे अधिक और सेवा योग्य कोई नहीं है, इसलिये उन गुरुके सेवनसे और कोई अधिक धर्म नहीं है, सब प्राणियोंका आत्मा मैं जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होता हूँ वैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यास धर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता ॥३४॥

चौ०—तब द्विजके समीप हरि वैसे ❋ बोलत वचन मनोहर ऐसे ॥
जब हम तुम संदीपन घाईं ❋ विद्या पढ़त रहे इक ठाईं ॥
वे गुरुदेव परम सुखदाई ❋ जिनकी महिमा कही न जाई ॥
उनकी कृपा कहूँ कहँ ताईं ❋ कुशल क्षेमसे हैं तेहि ठाईं ॥
इक अक्षर पढ़िये जेहि पाहीं ❋ तेहिते उऋण हूजिये नाहीं ॥
हम तो विद्या सब पढ़ लीन्हीं ❋ गुरुकी टहल कछु नहिं कीन्हीं ॥

दोहा—गुरुसेवा दुर्लभ महा, चित दै करै जो कोइ ।
जो मनमें इच्छा करे, सो सब पूरण होइ ॥

सो०—बिन गुरु मिलहि न ज्ञान, ज्ञान विना नहिं मोक्ष है ।
याते गुरु समान, और वस्तु नहिं जगतमें ॥

चौ०-जो गुरु सेवामें मन लावे * सो मोको चितमें नित भावे।
जो नर धर्म कर्म पहिचाने * गुरु गोविन्द एक कर माने॥
तब हम गुरु सेवामें रहते * जो गुरु कबहुं कामको कहते॥
हम ऊपर दाया तुम धरते * सो कारज तुमहीं सब करते॥
संथा हमहिं भूल जब जाती * तुम शिक्षा देते दिन राती॥
तेहि कारण तुम गुरू हमारे * नहिं भूलत उपकार तुम्हारे॥
वा दिनकी सुधि है द्विजराजा * हम तुम गये लकरियन काजा॥
हमसों लकड़ी तोरि न जाहीं * तुमहीं बांध धरी हम पाहीं॥
सिगरो दिन बीतो तेहि ठाईं * सघन घटा उमड़ी तेहि घाईं॥
धरके बोझ चले ततकाला * वर्षन लग्यो मेघ तेहि काला॥

हे ब्राह्मण! हम और तुम जब गुरुके घर रहा करते थे, उस समय हमें तुम्हें गुरुकी स्त्रीने लकड़ी काटनेको वनमें भेजा, वहां दैव इच्छासे जो कुछ हुआ वह तुम्हें स्मरण है? ॥३५॥ हे मित्र! लकड़ी लेनेको हम तुम एक महावनमें गये, यद्यपि वहां वर्षाऋतु नहीं थी, परन्तु तो भी महातीव्र पवनके साथ वर्षा होने लगी और अत्यन्त घोर कठोर गर्जना हुई ॥ ३६ ॥

दोहा-पवन झकोरैं तेजसों, शीत भयो दुखदाय।
घन गर्जैं लर्जैं हिया, तनु ठिठराबो जाय॥

इतनेमें ही भगवान् सूर्य अस्त हो गये और सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धेरा छा गया, सब स्थलमें जल ही जल दृष्टि आने लगा। इस कारण ऊँचा-नीचा कुछ दिखायी न दिया ॥ ३७ ॥ उस समय उस वनमें अति प्रचण्ड वायु तथा वर्षासे हम तुम दोनों पीड़ाको प्राप्त हुए, दिशाओंकी कुछ सुधि न रही, तब आतुर हो आपसमें हाथ पकड़ मस्तकपर लकड़ोंके बोझोंको धरकर फिरने लगे ॥ ३८ ॥

सोरठा-तब तुम करी सहाय, काठ भार शिरपर धरो।
हमको लियो छिपाय, गुण कैसे भूलि हों॥

चौ०-अपने जीव कष्ट तुम कीन्हों * हमरो गात न भीजन दीन्हों॥
अब ऐसे सुख संपति माहीं * वे दिन हमको भूलत नाहीं॥
वर्षा नेक रही कछु नाहीं * सिगरी रात बसे बन माहीं॥
तब तुम रक्षा करी हमारी * आप शीतवश रहे दुखारी॥
गुरु अस्मरण भयो जब मोरा * ढूंढ़त फिरे विपिन चहुं ओरा॥
कहां गये दोउ शिष्य हमारे * कृष्ण सुदामा हैं दोउ बारे॥
मनमें बढ़ो शोक सन्तापू * रो रो करत विलाप-कलापू॥
हे बलबीर पीर निर्वारन * कित गये इतते भवभय टारन॥
हाय सुदामा तू कित गयऊ * तुम बिन मम चित व्याकुल भयऊ॥

दोहा–तन मन व्याकुल नैन जल, परै न चितको चैन ।
इत उत गुरु ढूँढ़त फिरैं, कहँ गये हे सुखदैन ॥

सोरठा–सूखन लग्यो शरीर, भूषण ब्रजभूषण विना ।
दूषण लग्यो गंभीर, रूखन सों पूछत फिरे ॥

चौ०–हे पीपर पतङ्ग हरि चन्दन ❋ कहां गये दामा नँदनन्दन ॥
अहो मालधन ताल तमाला ❋ मोहिं बतावहु मदन गुपाला ॥
अम्ब कदंब सांच तुम भाखो ❋ कहां छिपाय श्यामको राखो ॥
वटके निकट गये गुरुदेवा ❋ रोय रोय पूछत सब भेवा ॥
जो नहिं मिलिहैं श्याम सुदामा ❋ कहँ मुंह लेकर जैहौं धामा ॥
बिन घनश्याम सुदामा प्यारे ❋ कैसे रहि हैं प्राण हामारे ॥
करत विलाप फिरत सब वनमें ❋ विरह व्यथा छाई सब तनमें ॥

हे ब्राह्मण ! जब गुरुजीको इस बातकी खबर हुई तब सूर्योदय होते ही सांदीपन गुरु हमें तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आये और आतुर अपने शिष्योंको बैठा देखा ॥ ३९ ॥

चौ०–जब हम तुमको बैठा पायो ❋ तब गुरुके मन धीरज आयो ॥
जेते मित्र बन्धु जगमाहीं ❋ निज प्राणनते प्रीतम नाहीं ॥
हमसों हेत बहुत तुम मानो ❋ प्राणन हूं ते प्रीतम जानो ॥

और उस समय कृपा करके तीन श्लोक कहे, जिनसे हम कृतार्थ हो गये ! पुत्रो ! तुम हमारे लिये बहुत दुःखित हुए क्योंकि प्राणियोंको देह बहुत प्यारी है, उसका निरादर करके तुमने हमारी सेवा की थी ॥ ४० ॥ सत्पात्र शिष्योंको इसी प्रकार गुरुकी सेवा करनी योग्य है । शुद्ध भावना से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ जिससे प्राप्त हों ऐसे देहको गुरुके लिये अर्पण कर दे ॥ ४१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारे मनोरथ सब सत्य हों, तुमने मुझसे जो वेद पढ़े हैं वह इस लोक और परलोकमें सारभरे नवीन पढ़ेके समान याद बने रहें ॥ ४२ ॥

चौ०–गुरुकी सेवा की तुम जैसी ❋ जगमें कौन करत है तैसी ॥
हमनितप्रति यह देहिं अशीशा ❋ तुमपर कृपा करैं जगदीशा ॥
सुभग भाग जगमें नर सोई ❋ जापर कृपावन्त गुरु होई ॥
गुरु प्रसाद है अति सुखदाई ❋ जाते सकल भक्ति हम पाई ॥

"श्रीभगवान्‌ने कहा कि हे मित्र ! कलियुगमें चेले गुरु दोनों लोभी लालची होते हैं" यहां एक दृष्टान्त है ❋ गुरुके घर जब हम रहते थे, तबसे ऐसे अनेक चरित्र हैं, वह आपको याद

---

* दृष्टान्त—एक चेला गुरुजीके पास आया और सेवा करने लगा। सेवा तो करनी पड़ी पर माल भी बहुत मिलते थे । नया जानकर पुराने चेलाने सब कामधन्धा उसी पर डाल दिया। एक दिन उसने गुरुजीसे कहा कि, महाराज ! एक बात कहता हूं। गुरुजी बोले कह, चेलेने कहा कि हे महाराज ! ऐसा भी कोई उपाय है कि जो मै गुरु हो जाऊं और तुम्हारे समान गद्दीपर बैठ हलुआ पूरी उड़ाऊँ । चेलोंसे काम कराऊँ। गुरुजीने सुनते ही क्रोध कर उसे निकाल दिया और फिर अपने यहां न आने दिया । चेलेको तो चोट लग रही थी; एकदिन एक पल्लेदारको बुला दो पैसे २ उससे कहाकि पल्लेमें रेता भरकर ले चलो उसने पल्लाभर लिया । यह गुरुजीके दरवाजेपर–

है ? गुरुओंकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णमनोरथ होकर शांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तब सुदामा बोले कि हे देवदेव ! हे जगत्के गुरु ! सत्यसंकल्प तुम्हारे संग हमारा गुरुके पास वास हुआ था, फिर हमको कौन वस्तुकी प्राप्ति न हुई अर्थात् सब वस्तु पा चुके ॥ ४४ ॥ हे समर्थ ! सम्पूर्ण कल्याणदायक छन्दोमय वेद आपकी मूर्ति है, ऐसे आपने गुरुके यहां वास किया यह तो लीलामात्र है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
दशमस्कन्धेउत्तरार्द्धे श्रीसुदामाचरितेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दोहा–इक्यासी हरि विप्रके, तन्दुल भोग लगाय ।
किये समर्पण लोक द्वै, तौहू रहे लजाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! सब प्राणियोंके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र द्विजोंमें मुख्य सुदामाके सङ्ग बातें करते मुसकाकर बोले ॥ १ ॥ ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले साधु पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रेमभरी चितवनसे देखते और हँसते हुए ब्राह्मण सुदामासे बोले कि ॥ २ ॥

चौ०–बहुत प्रीतिकर देखन आये ❀ हमको कहो भेंट कह लाये ॥
कहा भेंट मांगत मुहिं पाहीं ❀ घरसे मैं लायो कछु नाहीं ॥
कछु नहिं मोहिं ब्राह्मणी दीन्हों ❀ खाली हाथ गमन मैं कीन्हों ॥
बोले मोहन बिँहसि बहोरी ❀ काहे राखत हमसों चोरी ॥
भाभी जो कछु दिय मम काजा ❀ सो अब देहु करहु मत लाजा ॥

दोहा–शाकपत्र इक प्रीतिसों, हमको देय जु कोय ।
तेहि समान सब सृष्टिमें, कछु सवाद नहिं होय ॥

सो०–भोजन भूखे नाहिं, हम तो भूखे भावके ।
क्यों लजात मनमाहिं, लाये हो सो देहु मोहिं ॥

हे ब्राह्मण ! तुम मेरे लिये क्या भेंट लाये हो ? क्योंकि भक्ति तथा प्रेमपूर्वक जो मुझे थोड़ीसी भेंट देता है, वह बहुत हो जाती है और जो भक्ति विना मुझे बहुत भी दे, तो उससे मुझे सन्तोष नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्ति करके पत्र, पुष्प, फल मुझे देते हैं, वह भक्तिसे भेंट करनेके कारण मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता हूं ॥ ४ ॥

चौ०–विविध भांति मिष्टान्न जु लावे ❀ विना भक्ति कछु मोहिं न भावे ॥
दुर्योधन बहु पाक बनाये ❀ प्रीति विना ते मोहिं न भाये ॥
विदुर भक्तिकी प्रीति जु जानी ❀ बासी शाक बहुत रुचि मानी ॥
जूठे बेर शबरि मोहिं दीने ❀ ते रुचिसों भोजन हम कीने ॥

पहुँच खबर दी कि चेला आया है। गुरुजी बोले कि हम दर्शन नहीं देंगे । तब चेलेने कहा कि महाराज ! एक पल्लेमें कुछ लाया भी है जाने बूरा या खांड है, इससे बुला लो, फिर भगा देना। गुरुजी बोले तो बुला लो । चेला सुनते ही बुलाने गया; उसने आते ही आंगनमें पल्ला गिरवाया और गुरुजीकी ओर चरण कर पल्लेको दण्डवत् की ? गुरुजी बोले कि मूर्ख ! यह क्या करता है ? चेलेने कहा कि महाराज ! मुझे तो यह पल्ला ही लाया है, यह कहकर भाग गया। गुरुजी उसके अन्दर रेता देख अत्यन्त लज्जित हुए। भाइयो ! कलियुगमें गुरु चेले ऐसे ही होते हैं।

मीराकी खिचरी हम खाई * ऐसी आज तलक नहिं पाई ॥
जो कछु तुम लाये हम पाहीं * थोरा मति समझो मनमाहीं ॥

हे राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान्ने जब कहा तो भी लज्जाके कारण नीचेको मस्तक कर विराजमान सुदामाने लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रको तन्दुल नहीं दिए ॥ ५ ॥ तब श्रीकृष्णने फिर कहा:-

चौ०-वे तन्दुल हमको नित भावें * बहुमिष्टान्न दृष्टि नहिं आवें ॥
जबते गांठ बांध तुम लीने * तबते हम उनमें दृग दीने ॥
तुम मत समझो चावल रूखे * हमतो भक्ति-भावके भूखे ॥
ज्यों ज्यों ऐसे कह यदुराई * त्यों त्यों ब्राह्मण अधिक लजाई ॥

दोहा-निज मनमें जानो तबहि, श्रीकृष्ण महाराज ।
याहि पठायो ब्राह्मणी, ठेल पेल धनकाज ॥

हे राजन् ! साक्षात् सब प्राणियोंके साक्षी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाके आनेका विचार करने लगे कि धनकी चाहना करके इस सुदामाने मेरा भजन नहीं किया ॥ ६ ॥ पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिए मेरे पास आया है, इस लिए जो सम्पत्ति देवताओंको दुर्लभ है, वह इसे दूँगा ॥ ७ ॥

चौ०-याके तो इच्छा कछु नाहीं * अति निरमोह रहै जगमाहीं ॥
अष्टसिद्धिनवनिधि तेहि दीन्ही * विशुकर्माको आज्ञा कीन्ही ॥
रचो नगर द्वारका समाना * भेद न जाने कोइ अयाना ॥
बहुरि सुदामासों हरि बोले * तुम तो मित्र सदाके भोले ॥
अब क्यों राखत हमसो चोरी * तन्दुल काहे देत न छोरी ॥
छोरत गांठ न सकुचत मनमें * भली हँसी भई चौथेपनमें ॥
हरिने गांठ पकर तब ऐंची * अपनी ओर सुदामा खैंची ॥
जीरण वस्त्र फाटि तब गयऊ * तन्दुल फैलत कौतुक भयऊ ॥

इस प्रकार विचार कर चीरमें बँधे हुए चावलोंको "यह क्या है" ऐसे कह वह चावल सुदामाके वस्त्रोंमेंसे आपही ले लिए ॥ ८ ॥ और एक मुट्ठी चावल खाकर केशवमूर्ति बोले कि हे मित्र सुदामा ! यह जो तुम चावल लाये हो वह मुझे अत्यन्त प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा मत जानो, यह चावल मेरे सब विश्वका पेट भर देंगे ॥ ९ ॥

चौ०-अबलों बहुत अन्न हम खायो * ऐसे स्वाद कबहुँ नहिं पायो ॥
यशुदा बहुबिधि भोजन दीन्हे * बहुरो मातु देवकी दीन्हे ॥
तिनहूँमें यह स्वाद न पायो * जैसो स्वाद आज बनि आयो ॥
भोजन नित्य बनत घरमाहीं * ऐसो स्वाद होत सो नाहीं ॥
दधि माखन खायो बहु तेरो * कबहुँ न भयो मगन मन मेरो ॥
भोजन किये अनेकन ठाईं * ऐसो नाहिं खाये अब ताईं ॥

दूसरी बार खात यदुनाथा ❋ तंदुल और लिये निज हाथा ॥
चाहत मुखमें डारन जबहीं ❋ रुक्मिणि हरि कर पकरो तबहीं ॥

ऐसे कह एक मुट्ठी चावलोंका भोजन कर और दूसरी मुट्ठी खाकर जब तीसरी मुट्ठी खाने लगे, तब कृष्ण परायण रुक्मिणी परमेष्ठी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ पकड़कर कहने लगी कि मित्रके घरकी सब वस्तु आप ही भोजन कर जाओगे या कुछ हमको भी रहने दोगे ? एक तो इसलिए आकर हाथ पकड़ा, दूसरा कारण आगे कहते हैं ॥ १० ॥

सवैया–हाथ गहे प्रभुको कमला, कहै नाथ कहा तुमने चितधारी ॥
तन्दुल खाय मुठी दुइ दीन, कियो तुमने दुहँलोक बिहारी ॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ, कहां निज वासकी आश बिचारी ॥
विप्रहि आप समान कियो, तुम चाहत आपुहि होन भिखारी ॥

श्रीकृष्ण वचन

क्यों रसमें विष बाम कियो, अब और न खान दियो यक फंका ॥
विप्रहि लोक तृतीयक देत, करी तुम क्यों अपने मन शंका ॥
भामिनि मोहिं जिमाय भली विधि, कौन रह्यो जगमें नर रंका ॥
लोग कहैं हरिमित्र दुखी, हमसे न सह्यो यह जात कलंका ॥

रुक्मिणी बोली कि हे विश्वके आत्मा ! एक मुट्ठी चावल भोजन करके तो सब विश्वकी सम्पत्ति इनको दे चुके अब तीसरी मुट्ठी भोजन करके क्या मुझे भी दे दोगे ? क्योंकि इस लोक और परलोकमें तुम्हारे सन्तुष्ट होनेसे ही संपत्ति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥

चौ०–यक यक मुठी देत यक लोका ❋ याते नाथ हाथ तव रोका ॥
जो त्रिभुवनपतिहोय सुदामा ❋ कहाँ रहो तुम कहँ हम वामा ॥
जान बूझ तुम भये अयाने ❋ शिवकी नाईं तुमहुँ भुलाने ॥
यह सुनिकै बिहँसे यदुराई ❋ भली बात तुम प्रिया जनाई ॥

दोहा–शोर परचो सब नगरमें, आयो इक द्विज आज ।
दिये तासुको भुवन द्वै, है प्रसन्न ब्रजराज ॥

सोरठा–रैन भई तेहि काल, दिवस गयो आनन्द ते ।
द्विजको तब गोपाल, शयनभवनमें ले गये ॥

चौ०–रत्नजड़ित पलँग तहँ राजैं ❋ श्वैतबिछौननकी छबि छाजैं ॥
उज्ज्वल सेज सँवारि बिछाई ❋ पौढ़े तहाँ विप्र सुखदाई ॥
पूंछी पिछली सकल कहानी ❋ बातनहीमें रैन बिहानी ॥
प्रातहोत बोले घनश्यामा ❋ अब अपने घर जाहु सुदामा ॥

हे नृपोत्तम परीक्षित् ! ब्राह्मण सुदामाने उस रात्रिको श्रीकृष्ण मन्दिरमें रह भोजन कर, जल पी स्वर्गकी प्राप्तिके समान सुख पाया ॥ १२ ॥ जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वके

पालन करनेवाले आत्माके आनन्दमें मग्न श्रीकृष्णचन्द्र सुदामाको प्रणाम कर मार्गमें पहुँचानेको पीछे-पीछे सङ्ग आये और बोले कि मित्र सुदामा ! तुमने भला दर्शन दिया और इस प्रकार स्वाधीन वचनोंसे आनंदित हो सुदामा अपने घरको चला ॥ १३ ॥ हे नृप ! न तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उसे धन दिया और न उसने लाज के कारण मांगा । श्रीकृष्णके दर्शनसे ही सुख पाकर अपने घरकी ओरको चला ॥ १४ ॥ चलते समय चित्तमें सोचने लगा कि अहो ! ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवालोंके देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति मैंने देखी, क्योंकि लक्ष्मीको छातीमें धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र अतिदरिद्री मुझ सुदामाको छातीसे लगाकर मिले ॥ १५ ॥ कैसा आश्चर्य है कि दरिद्री पापी ब्राह्मण मैं कहां ? और लक्ष्मी जिनके अंगमें बास करे ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र कहां ? मुझमें उनमें बड़ा अन्तर है, वे भुजा पसार कर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ अपने प्रिय भार्याकी सेवा करने योग्य शय्यापर जैसे अपने भ्राता बलदेवजीको बैठाते थे, उसी प्रकार मुझे बैठाया और मार्गकी थकावट दूर होनेको श्रीकृष्णचन्द्रकी भार्या रुक्मिणीने चमर हाथमें लेकर मेरे पवन की है ॥ १७ ॥ बड़ी सेवा अर्थात् पावोंका दाबना, धोना, पोंछना इत्यादि सत्कार करके देवोंके देव ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने देवताओंके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी शोभा मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष और पाताल, पृथ्वीकी सम्पत्ति तथा सर्व सिद्धियोंका कारण है, परन्तु तो भी ॥ १९ ॥ दरिद्री सुदामा धनको पाकर बहुत मतवाला होकर मुझे भूल जायगा, इस कारण करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुझे यत्किंचित् भी धन नहीं दिया ॥ २० ॥

चौ०—बहुरो द्विज समझो मन माहीं ❀ विघ्न अनेक होत धनमाहीं ॥
मित्र जानि हरि किरपाकीन्हीं ❀ याते सम्पति मोहिं न दीन्हीं ॥
याविधि मनमें करत विचारा ❀ पहुँचो द्विज निज नगर मँझारा ॥

हे महाराज ! इस प्रकार सुदामा मन ही मनमें विचार करता हुआ अपने नगरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि—सूर्य, अग्नि, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान चारों ओर वितान शोभित हो रहे हैं ॥ २१ ॥

चौ०—दृष्टि परी हय गज रथ भीरा ❀ चकित भयो लखि द्विजवर वीरा ॥
बहुविधि रचना रची बनाई ❀ उपवन शोभा कही न जाई ॥
सोहत सुन्दर ताल रसाला ❀ तिनमें फूले कमल विशाला ॥
सुन्दर साज समाज न थोरा ❀ कंचन धाम बने चहुँ ओरा ॥
हाट बाट सुन्दर चौबारे ❀ तिनमें मणिगण सुभग निहारे ॥
अपनी टूटी छानि न पावैं ❀ मन्दिर देखि बहुत घबरावैं ॥
सकल नगर चहुँ ओर मँझायो ❀ कहूँ कुटीको खोज न पायो ॥

दोहा—भलो गयो हरिसों मिलन, जानि पाछिली प्रीति ।
इत तो खोई ब्राह्मणी, उत खोई परतीति ॥

सोरठा—धन्य कृष्ण महराज, भली प्रीति पाली तुमहिं ॥
मैंने जाने आज, गुण अवगुण सब आपके ॥

जहां चित्र-विचित्र बगीचे शोभायमान हैं उनमें पक्षियोंके झुंडके झुण्ड बोल रहे हैं और कुमुद, अम्भोज, कह्लार, उत्पलसे शोभायमान सरोवर भर रहे हैं ॥२२॥ शृङ्गार किये पुरुष और हरिणके तुल्य नेत्रवाली स्त्रियाँ जहां-तहां फिर रही हैं, ऐसी शोभा और विमानोंका प्रकाश देख आश्चर्य मान "यह क्या है? किसका स्थान है?" फिर अपने मनमें विचार किया कि यह तो हमारे ही रहनेका स्थान है, ऐसा कैसे हो गया ! ॥ २३ ॥ इस प्रकार बड़भागी सुदामाको देवताओंके समान शोभावाले स्त्री पुरुष गाते-बजाते सम्मुख लिवानेको आये ॥ २४ ॥ पतिका आगमन सुन आनंद और घबड़ाहटसे सुदामाकी स्त्री साक्षात् कमलवनमेंसे रूप धरे लक्ष्मीके समान शीघ्र ही घरसे बाहर निकली । श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गको सुदामाके महलमें लाये थे, इसलिये सुदामा और सुदामाकी स्त्री दोनों देवस्वरूप हो गये ॥ २५ ॥

सो०—उतरि अटाते नारि, सखीसहेली संग ले ।
करि सोलह शृंगार, चली साजिके आरती ॥

चौ०—यह सुनिके दासी सब धाईं ❀ बाहर लेन सुदामहिं आईं ॥
यद्यपि बहुत करी मनुहारी ❀ पग धारो नहि गेह मँझारी ॥
दासी सकल पकरिकै बाहीं ❀ लै आईं निज आंगनमाहीं ॥
प्रथम आय आरती उतारी ❀ चरणनमाहिं परी पुनि नारी ॥
नमस्कार करि विनती कीन्ही ❀ तीन वार परिकरमा दीन्ही ॥
मनमें अति आनंद बढ़ायो ❀ नयनन नीर प्रवाह बहायो ॥
हरिकी कृपा भई बहु दिनमें ❀ कञ्चन धाम रचायो छिनमें ॥
कन्त न कछु कीजै सन्देहा ❀ हरिते प्रगट कियो जग नेहा ॥

प्रेम और उत्कण्ठासे नेत्रोंमें आंसू भरे पतिव्रता सुदामाकी स्त्रीने पतिको आया देख नेत्र मूँद, बुद्धिसे विचार मनसे आलिंगन कर नमस्कार किया ॥ २६ ॥ जैसे विमानमें बैठी देवी प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार धुकधुकी कंठमें धारण किये दासियोंके मध्यमें प्रकाशमान अपनी स्त्रीको देख सुदामाजीने बहुत आश्चर्य माना ॥२७॥ और प्रसन्न हो अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गये, जहां सहस्रों मणियोंके खम्भ लग रहे थे, मानो इन्द्रभवन है ॥ २८ ॥

सोरठा—चकित भयो मनमाहिं, मणिमय मंदिर देखिकै ।
और ठौर कहुँ नाहिं, इहि समान कोउ लोकमें ॥

चौ०—हेम चीरके चँदवा सोहैं ❀ झालरमें मुक्तामन मोहैं ॥
चौकी स्वर्णधरी मन भावन ❀ लागे मणिगण अधिक सुहावन ॥
रत्न जड़ित पलँगा तहँ राजे ❀ दूधफेन सम सेज विराजे ॥
वस्तु अनेक धरीं तेहि ठाईं ❀ नाम अपार कहूँ कहँताईं ॥
महामनोहर सभा जु देखी ❀ इंद्र सभासम आदि बिसेखी ॥
तब द्विज अपने मनमें जानी ❀ मोपर कृपा करी सुखदानी ॥
जिनको मन उदार जगमाहीं ❀ जो कुछ देत कहत वे नाहीं ॥

दीनदयालु नाम हरिकेरो ❀ कैसे करत भलो नहिं मेरो ॥
जन सुखदाई नाम तुम्हारो ❀ नित भक्तनके कारज सारो ॥

दोहा—जबलौं नहिं सुमरे हरिहि, जे सन्तनके मीत ।
ते दिन गिनतीमें नहीं, गये वृथा सब बीत ॥

दूधके श्वेत झागोंके समान कोमल श्वेत बिछौने बिछ रहे, हाथी दांत व सुवर्णके पलँग जिस मंदिरमें बिछ रहे और सुवर्णकी ही डण्डीके चमर पंखे धरे हैं ॥ २९ ॥ कोमल-कोमल पथरनोवाले सुवर्णके सिंहासन और मोतियोंके झालरदार प्रकाशमान चँदोवे तन रहे थे ॥ ३० ॥ और निर्मल स्फटिकमणियोंकी भीतोंमें महामरकत मणियोंकी तथा स्त्री सहित मंदिरमें रत्नोंके दीपक प्रकाशमान हो रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस मंदिरमें सम्पत्तियोंकी वृद्धि देख स्थिर हो "अकस्मात् इतनी सम्पत्ति कहांसे आयी" ऐसे सुदामाजी विचार करने लगे॥३२॥सदाके दरिद्री भाग्यहीन मुझे बड़े ऐश्वर्यवान् यादवोंमें उत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी चितवन विना निश्चय और कोई इस सम्पत्तिका कारण नहीं दीखता॥३३॥ जिस प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिकतर वृष्टिको भी सूक्ष्म जानकर मानो लज्जित होता हो, ऐसे समक्षमें नहीं बरसता, रात्रिको नगरके लोगोंके सो जानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण करता है, उसी प्रकार मेरे सखा पूर्णकाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी भक्तको देनेके लिये इन्द्रादिक पदको भी तुच्छ और उसके लिये भजनको अधिक मानकर समक्षमें न कहते हुए सब सम्पदायें प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ आप बहुत दें उसे थोड़ा मानें और सुहृदोंके थोड़े दियेको भी बहुत मानते हैं, क्योंकि मैं एक मुट्ठी चावलोंको ले गया था, उसे महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर लिया ॥३५॥ मुझे जन्म-जन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम, हितेच्छता, मैत्री व दासपन प्राप्त हो और महानुभाव व गुणोंके धाम भगवान् वासुदेवमें आसक्ति हो, एवं उनके भक्तोंका सत्संग प्राप्त हुआ करे यही उनसे विनय है ॥ ३६ ॥

चौ०—अब हरिसों मागों यह बाता ❀ तुमको नहिं भूलूँ दिन राता ॥
पांडसुतन हरिसों हित कीनो ❀ यद्यपि दुर्योधन दुख दीनो ॥
एक हाथ पृथ्वी नाहिं दीन्हीं ❀ तिनपर कृपा कृपा निधि कीन्हीं ॥
हा ! यदुनाथ दीन हो भाखे ❀ लाक्षा मंदिरमें तब राखे ॥
तिन को दुख दरिद्र सब गयऊ❀ सकल विश्वके राजा भयऊ ॥
जब हरि हरि प्रह्लाद पुकारो ❀ नरहरि तनु धर असुर सँहारो ॥
गजके हेतु गरुड़ चढ़ि धाये ❀ द्रुपदीके पट अधिक बढ़ाये ॥
जे जन ज्ञानवन्त जग माहीं ❀ हरिसे हरि बिन मांगत नाहीं ॥
भक्तन हितकारी घनश्यामा ❀ तारे धुरू धना अरु नामा ॥
यद्यपि धनको गये सुदामा ❀ धन अरु मुक्ति दई घनश्यामा ॥

छं०—तन्दुल मिलत नाहिं एक तिनके, भवन कञ्चनके करे ॥
जिन पगनमें पनहीं नहीं, सोइ सुभग रथ गज हय चरे ॥

नहिं छानिपर हो फूस ताके, धाम कञ्चनके करे ॥
प्रभु जयति जयति कृपालु, आनँदकन्द श्रीकमलावरे ॥

धनी पुरुषोंके धनके अभिमानसे नीच जन्म होते देखकर विवेकसे श्रीकृष्णचन्द्र अपने अज्ञानी भोरे भक्तोंको विचित्र सम्पदा और राज्यके ऐश्वर्य नहीं देते, किन्तु दृढ़ भक्ति देते हैं। मुझे भक्ति नहीं दी, इससे सम्पदाका सुख मिला। परंतु अब भक्तिकी ही प्रार्थना करता हूँ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर श्रीकृष्णचन्द्रका अत्यन्त भक्त सुदामा विषयोंका धीरे-धीरे त्याग करता अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ देवदेव तथा यज्ञपति इन प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके ब्राह्मण ही प्रभु और इष्टदेवता हैं, इन ब्राह्मणोंसे अधिक और कोई देवता नहीं है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मित्र वह ब्राह्मण सुदामा उस समय अजित् भगवान्को भी भक्तोंके सम्मुख पराजित होते देखकर उनके ध्यानके वेगसे अहंकार दूर कर शीघ्र ही सत्पुरुषोंके शरणरूप श्रीकृष्णचन्द्रके धामको चला गया ॥ ४० ॥ जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रकी व ब्राह्मणकी गुरुता प्रतिपादन करनेवाली यह लीला मन लगाकर सुनते हैं, वे भगवान् वासुदेवकी भक्तिको प्राप्त होकर कर्मबन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥

चौ०—धनिधनि कृष्णचन्द्रसुखधामा ❋ धनिधनिधनि द्विजराज सुदामा ॥
देखो हरिकी सुन्दर रीती ❋ पालत सदा भक्त सो प्रीती ॥
जबसे द्विजके तन्दुल खाये ❋ सो हरि अबलौं नहिं बिसराये ॥
जगन्नाथ बनि कृपानिकेता ❋ खात भात निज जनन समेता ॥
जो कोइ जाय भात सो खैहैं ❋ विन सन्देह सो सुरपुर जैहैं ॥
चावल जो हरिको अति प्यारे ❋ तेहिते सबन शीशपर धारे ॥
धनिधनि धनि श्रीकृपानिधाना ❋ जनप्रण प्रतिपालक भगवाना ॥
किये रंकते राव सुदामा ❋ तव गति अतिअपार घनश्यामा ॥

छन्द—तव गतिअपार मुरारि वारंवार शिवः अज ध्यावहीं।
सनकादि नारद शेष शारद नित्य ध्यान लगावहीं ॥
महिमा तुम्हारि अनन्त खोजत फिरत अन्त न पावहीं।
किमि दास शालिग्राम हे घनश्याम तव गुण गावहीं ॥

दोहा—यह चरित्र अद्भुत महा, कहै सुनै जो कोय।
रहै सदा आनन्दमय, कबहुँ दरिद्र न होय ॥

सोरठा—जे जन चित्त लगाय, सुनैं सुदामाकी कथा।
निशिदिन रहैं सहाय, तिनपर श्रीघनश्यामजी ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

दोहा-अंक बयासीमें भयो, कुरुक्षेत्र रविपर्व।
मिले प्रेम अरु प्रीतिसों, यादव औ नृप सर्व॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित्! इसके उपरांत द्वारकापुरीमें वास करते राम-कृष्णके, एक समय प्रलयकालके समान बड़ाभारी सूर्यग्रहण आया॥१॥ हे महाराज! ज्योतिषियोंसे उस ग्रहणको पहले ही जानकर मनुष्य सब ओरसे दान, पुण्य, स्नान करनेके लिए कुरुक्षेत्रको जाने लगे॥ २॥ जहां शास्त्रके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा परशुरामजीने पृथ्वीको इक्कीस वार निःक्षत्रिय करके राजाओंके रुधिर समूहसे कुण्ड भर दिए थे॥ ३॥ यद्यपि पापरहित हैं, परंतु तो भी समर्थ भगवान् परशुरामजी अपने पाप दूर करनेके लिए अज्ञानी पुरुषके समान सब लोगोंको शिक्षा देनेके लिए जाकर कुरुक्षेत्रमें यज्ञ किया॥४॥ बड़ी तीर्थयात्रामें सम्पूर्ण भरतखण्डकी प्रजा आयी; उसी प्रकार वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, राजा उग्रसेनादि यादव॥ ५॥ अपना-अपना पाप दूर करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आये! गद, प्रद्युम्न, सांबादि श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र आये, परंतु सुचन्द्र शुकसारण सहित अनिरुद्ध और कृतवर्मा ये दोनों द्वारकापुरीकी रक्षा करनेके लिए रह गये॥ ६॥ बड़े तेजस्वी सुवर्णकी माला और दिव्य फूलोंकी माला वस्त्र कवच धारण किये यादव देवताओंके विमानोंके समान प्रकाशमान और जलतरंगके समान चञ्चल घोड़े और बादलोंकीसी कांति ऐसे हाथियोंके ऊपर विद्याधरोंकीसी कांतिवाले सिपाहियोंसहित यादव मार्गमें जाते हुए देवांगनासहित देवताओंके समान शोभायमान होने लगे॥ ७॥ ८॥ बड़े भाग्यवान् बहुत सावधान यादवोंने कुरुक्षेत्रमें व्रत स्नान कर वस्त्र और फूल सुवर्ण माला पहनाकर गो ब्राह्मणोंको दान करके दीं॥ ९॥ इसके उपरांत यादवोंने परशुरामजीके सरोवरमें मुक्तस्नान कर "श्रीकृष्णचन्द्रमें हमारी भक्ति हो" यह संकल्प करके ब्राह्मणोंको बहुतसा सुवर्ण दान किया॥ १०॥ इसके उपरांत उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा पाकर यादव आप यथेच्छ भोजन कर शीतल छायायुक्त वृक्षोंके नीचे बैठ गये॥ ११॥ हे परीक्षित्! वहां मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त्त, केरलदेशके वासी अपने मित्र, बांधव व राजा और दूसरे भी अपने पक्षके और परपक्षके सैकड़ों मनुष्य और नन्द आदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल व बहुत दिनोंकी उत्कण्ठावाली गोपियाँ प्रभृति जो आये उन सबको देखा॥१२॥१३॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्न हुए आनंदके वेगसे प्रफुल्लित हृदय और कमलसा मुख शोभायमान, पुलकित शरीर, प्रेमसे रुद्ध कंठ, नेत्रोंसे जल बहाते परस्पर आलिंगन करते यादव और दूसरे लोग बड़े आनंद मग्न हो गये॥१४॥ अत्यंत स्नेहभरी मुसकान, निर्मल कटाक्षयुक्त दृष्टि और स्नेहके आंसू नेत्रोंमें भरे स्त्री स्त्रियोंको देख केशर लगे स्तनोंको स्तनोंसे लगाकर भुजा पसार परस्पर मिलने लगीं॥१५॥ छोटी अवस्थावाले बड़ोंको प्रणाम करके यादव गण वृद्धोंको प्रणाम कर "भले आये, प्रसन्न हो।" इस प्रकार कुशल पूछकर आपसमें कृष्णकथाओंको पूछने लगे॥ १६॥ कुन्ती भाई, बहन, भतीजे, माता, पिता और भाइयोंकी बहुओंको देख तथा मुकुंद श्रीकृष्णचन्द्रको देख आपसमें प्रेमकी बातचीत कर नेत्रोंमें आंसू बहाने लगी॥१७॥ कुन्ती बोली कि हे आर्य! मैं अपनेको अपूर्णमनोरथ मानती हूँ, क्योंकि जब मुझपर विपत्ति पड़ती है तो श्रेष्ठ लोग मेरी बातको स्मरण भी नहीं करते॥ १८॥ जिससे दैव रुष्ट हो जाता है, उसको कोई भी सम्बन्धी अर्थात् जातिवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता ये स्मरण नहीं करते॥ १९॥ वसुदे-

वजी बोले कि, हे बहन ! दैवके खिलौने ऐसे हम मनुष्योंको दोष मत लगाओ, क्योंकि लोक ईश्वरके अधीन होकर कर्म करता है और ईश्वर ही कर्म कराता है ॥ २० ॥ प्रथम हम कंससे अत्यन्त दुःखित हो सब दिशाओंमें चले गये थे, दैवकी इच्छासे अभी अपने स्थानपर आये हैं ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! वसुदेव उग्रसेनादिक यादवोंसे पूजित हो वे राजा लोग भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शनकर सुखपूर्वक परमानंदमें मग्न हो गये ॥२२॥ हे राजाओंके इन्द्र राजा परीक्षित् ! भीष्मपितामह द्रोणाचार्य, अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र, पुत्रोंसहित गान्धारी, स्त्रियोंसहित पाण्डव, कुन्ती, सञ्जय, बुद्धिमान् विदुर, कृपाचार्य ॥२३॥ कुंतिभोज, राजा विराट्, भीष्मक और नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, काशीनरेशसहित धृष्टकेतु, बड़े नेत्रवाला राजा दमघोष, मिथिला देशका राजा, मद्रदेशका राजा और कैकय देशका राजा युधामन्यु, सुशर्मा और पुत्रोंसहित बाह्लीकादिक महाराज युधिष्ठिरके आज्ञाकारी सम्पूर्ण राजा रानियोंसहित अत्यन्त शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका रूप देखकर परम आश्चर्य मानने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ दर्शन करनेके उपरांत रामकृष्णसे भलीप्रकार सत्कार पाकर राजा लोग श्रीकृष्णचन्द्रादिक यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२७॥ "अहो ! महाराज उग्रसेन ! यहां मनुष्योंमें जन्म तो आपका ही सफल है, क्योंकि जिनके दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ हैं उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आप नित्यप्रति दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ वेद जिनकी स्तुति-कीर्ति वर्णन करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदका धोवन गङ्गाजल और मुखारविंदका वचनरूप वेद इस विश्वको अत्यन्त पवित्र करते हैं और कालसे दग्ध माहात्म्य जाननेवाली पृथ्वी भी श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलके स्पर्शसे शक्तिमती हो हमारी चारों ओरसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण करती है ॥ २९ ॥ उन श्रीकृष्णचन्द्रके संग, दर्शन, स्पर्श, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, पलंग, भोजन, विवाह और सपिंडताके सम्बन्धसे बँधे हुए हो और आप यद्यपि नरकके मार्गरूप गृहमें वास करते हो परन्तु तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णुभगवान् आप ही प्रकट हुए हैं इसलिये तुम्हारा जन्म सफल है" ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित् ! नन्दरायजी कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रादि यादवोंका आगमन जान गोपों सहित और गाड़ियोंमें लदी वस्तुसहित देखनेके लिए यादवोंके पास आये ॥ ३१ ॥ बहुत दिनोंसे जिनका दर्शन नहीं हुआ ऐसे कायरचित्त यादव नन्दरायजीको देख अत्यन्त प्रसन्न हो जैसे प्राण देहमें आनेसे इंद्रियां उठकर सम्मुख होती हैं, उसी प्रकार सम्मुख जाकर चिरकालसे दर्शन न पानेसे उत्कंठित हो गाढ़ा आलिंगन कर परस्पर मिले ॥ ३२ ॥ वसुदेवजी नंदरायजीसे मिल प्रसन्न हो प्रेममें विह्वल हो गये और कंसके दिये कष्टको गोकुलमें जैसे कृष्णको पहुँचा आये थे, उसका स्मरण किया ॥३३॥ हे राजन् ! कृष्णबलदेव, माता-पिता, नंद व यशोदासे मिलकर प्रणामकर ऐसे प्रेममें विह्वल हो गये कि आंसुओंसे कंठ रुक गये, इसलिये कुछ भी न बोला गया ॥ ३४ ॥ महाभाग यशोदा और नंदजी कृष्ण बलदेवको अपने आसनपर बैठाकर भुजाओंसे आलिंगन कर नेत्रोंसे आंसू बहाने लगे । ॥ ३५ ॥

दोहा—नन्दराय अतिप्रेमसों, मिले श्याम सों आय।
मातु यशोदा दौरिके, लीन्हों कंठ लगाय ॥

अतिहित गद्गदकंठ ह्वै, बैठे श्रीयदुवीर।
नन्द यशोदा दृगनते, चलो उमड़िकै नीर॥

पीछे रोहिणी और देवकी ब्रजकी रानी यशोदासे मिल व यशोदाकी मित्रताका स्मरण कर आंसू भर यह कहने लगीं ॥३६॥ कि हे ब्रजकी महारानी! जिसका बदला न हो सके, ऐसी तुम्हारी मित्रताको कौन भूल सकता है? और देवराज इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी संसारमें तुम्हारी मित्रताका बदला नहीं हो सकता! हे यशोदे! जिन्होंने अपने माता-पिताको नेत्रोंसे नहीं देखा, ऐसे कृष्ण-बलदेवको तुमने माता पितारूपसे पास रखा, तब तुमसे लालन, पालन, पोषण, वृद्धि पाकर निर्भय तुम्हारे पास वास करने लगे। जैसे पलक नेत्रोंकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुमने उनकी रक्षा की यह तुमको योग्य ही है, क्योंकि साधुओंको अपना-बिराना इस प्रकार बुद्धि नहीं होती ॥३७॥३८॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम परीक्षित्! जिसके दर्शनमें पलकोंकी ओट पड़नेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियां देती हैं, क्योंकि वह अतिप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र बहुत दिनोंमें दृष्टिगोचर हुए, इसलिये नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापित कर समाधिनिष्ठ योगियोंको भी जिसकी प्राप्ति बहुत कठिन है, उन श्रीकृष्णचन्द्रके भाव (अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रके रूप) को उन गोपियोंने प्राप्त किया ॥३९॥ इसी प्रकार प्रेम भरी गोपियोंके पास एकान्तमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जाकर आलिंगन कर कुशल पूछ मुसकाकर यह वचन बोले कि ॥ ४० ॥ हे सखियो! हम अपने बांधवोंके कार्य करनेकी कामनासे गये थे और वहां वैरियोंके पक्षका नाश करनेमें लग गये, जिससे बहुत दिनोंतक रुक गये, तुमने हमारा भी कभी स्मरण किया? ॥४१॥ "यह कृतघ्नी है" क्या ऐसे तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं उत्पन्न होता? हां हमको त्यागकर आप चले गये। इससे यह बात सत्य है, इस प्रकार गोपियोंकी ओरसे संभावना करके कहते हैं कि दैव ही प्राणियोंको मिलाता है और वही वियोग करा देता है ॥ ४२ ॥ जैसे वायु बादलोंके समूहको, तृणोंको, रुईको और धूलिको उड़ाकर संयोग करता है, फिर वियोग करता है, उसी प्रकार सब प्राणियोंका उत्पत्तिकर्त्ता ईश्वर सबको मिलाता है और फिर अलग-अलग कर देता है इसमें मेरा क्या दोष है? ॥४३॥ प्राणियोंकी मुझमें भक्ति ही जन्म और मृत्युसे छुड़ाती है, तुम्हारा मुझमें स्नेह हुआ है इसलिये मुझे प्राप्त होगी, यही बड़ा मङ्गल है ॥ ४४ ॥ कैसे तुम हो, जिन्हें स्नेह करके हम पायेंगी, ऐसी इच्छा सब गोपियोंकी हुई तो अपना रूप कहते हैं कि हे गोपियो! जैसे पञ्चभूतोंके बने घटादिकके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये, आदिमें भी और अंतमें भी हैं, इसी प्रकार जरायुज, मनुष्य तथा पशु आदि और अण्डोंसे जन्म पानेवाले पक्षी इत्यादिक और पसीनेसे जन्मवाले खटमल, जुँये इत्यादि और उद्भिज अर्थात् वृक्षादि चार प्रकारके आदिमें भी मैं हूँ और अन्तमें भी मैं हूँ। भीतर-बाहर होनेके कारण व्यापक हूँ, ऐसे मुझे तुम प्राप्त हुई हो ॥ ४५ ॥ यहां एक शङ्का है कि चार प्रकारके प्राणियोंका भोक्ता आत्मा आदि, अन्तमें है और आत्मामें सब प्राणी वास करते हैं फिर तुम्हारी प्राप्ति हमें कैसे हुई! इसके उत्तरमें कहते हैं कि मृत्तिका घटादिके आदिमें भी है और अन्तमें भी ऐसे चार प्रकारके प्राणी अपने कारणसे भूतोंमें वर्तमान रहते हैं, भोक्ता आत्मामें नहीं रहता है, आत्मा देहमें भोक्तारूपसे व्यापक है। पंचभूतरूप देहरूप भोग करने योग्य पदार्थ और भोग करनेवाले आत्मा परिपूर्णरूप मुझमें प्रकाशित देखो ॥ ४६ ॥ इतनी कथा

कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने स्वरूपको उपदेश कर गोपियोंको समझाया तब श्रीकृष्णचन्द्रके स्मरणसे उनके लिंगदेह छूट गये। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्ति की॥४७॥गोपी बोलीं कि, हे कमलनाभ श्रीकृष्ण ! बड़े ज्ञानी योगीश्वरोंके ध्यान करने योग्य और संसाररूपी कुएँमें गिरे प्राणियोंके निकाल-नेके आश्रय तुम्हारे चरणकमलका घरमें रहनेपर भी सदा हमारे मनमें स्मरण बना रहे, यही वर मांगती हैं ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

दोहा–कही नारियोंकी कथा, सकल तिरासी अंक।
पाणिग्रहण जैसे कियो, श्रीब्रजचन्द निशंक ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशीय राजा परीक्षित् ! गोपियोंके गुरु और शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गोपियोंपर अनुग्रह करके पीछे राजा युधिष्ठिरसे और सब सुहृदोंसे कुशल पूछी ❋ ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कुशल पूछने और सत्कार करनेसे भगवान्‌के चरणकमलके दर्शनसे पापरहित हो वे सब लोग प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रभो! तुम्हारे चरणारविंदका रस, जो कि अभी महात्मा लोगोंके मन द्वारा प्रकट हुआ है और जो देह धारण करनेवालोंके देहमें अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याको काटता है, उसे जो कर्णरूप दोनाओंसे पान करते हैं उन पुरुषोंके अमंगल कहां ? ॥ ३ ॥ स्वरूपके प्रकाशसे बुद्धिकृत जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था दूर होनेके कारणसे संपूर्ण आनन्दके समूहरूप, आवरणरहित, अकुंठ चैतन्य, शक्तिमान कालसे नष्ट हुए वेदकी रक्षा करनेके लिये योगमायाको अंगीकार कर मनुष्यदेह धारण करनेवाले और परमहंसकी प्राप्तिके योग्य तुमको हम बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार निर्मलकीर्ति पुरुषोंके मुकुटमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लोग प्रशंसा कर रहे थे कि इतनेमें अन्धक और कौरवोंकी स्त्रियाँ एकत्र हो परस्पर भगवत्सम्बन्धी जो बातें करती थीं, जो त्रिलोकीमें गायी हैं, वही कथा तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदी ! बोली कि, हे रुक्मिणी, हे भद्रे ! हे जाम्बवती ! हे सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिंदी ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! और हे सोलह सहस्र श्रीकृष्णकी रानियों ! स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मायासे मनुष्य लीला कर जैसे तुम्हारे साथ विवाह किया वह सब बातें हमारे सम्मुख कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणी

❋ शंका—वेद, शास्त्र, पुराणोंका यह प्रमाण है कि तीन लोकमें जो चराचर जीव है, उन सब जीवोंके भगवान् गुरु हैं और गति भी हैं फिर व्यासजीने सब जीवोंको त्यागकर भगवान्‌को गोपियोंका ही गुरु तथा गति क्यों कहा !

उत्तर—"गोपीनां गुरुर्गतिः" इस श्लोकमें व्यासजी व्रजकी गोपी जो श्रीकृष्णकी प्यारी थीं, उनको गोपी नहीं कहे थे. इस श्लोकका अर्थ तो व्यासजीने ऐसा किया है कि गो शब्दको संसार भी कहते हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा है गो कहिये चराचर ससार उसका जो पालन करे उसका नाम गोप है। गोप भगवान् है तथा गोपी भगवान्‌की माया है, वही मायामय लक्ष्मी है, ऐसा अर्थ गोपीका व्यास भगवान्‌ने किया है। मायाके और जगत्‌के पति जो भगवान् हैं वही श्रीकृष्ण होकर पृथ्वीमें विराजमान थे, इसलिये मायाके पति और गुरु भी भगवान् है, क्योंकि मायारूप संसार है, इसलिये श्रीकृष्णको गोपीपति और गुरु व्यासजीने कहा था, अकेले व्रजवासियोंके पति व गुरु नहीं कहा था।

बोली कि जरासन्धादिक राजाओंके संग जब धनुष उठाकर मुझे शिशुपाल ब्याहनेके लिये आया तो अजित योद्धाओंके मस्तकपर चरण धरे, जैसे भेंड़ बकरियोंके समूहसे सिंह अपने बलिको बेखटके ले जाता है, उसी प्रकार मुझे ले आये। उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मी निवासके चरणोंकी मैं पूजा करती हूँ ॥ ८ ॥ इसके उपरांत सत्यभामा अपने विवाहकी बात कहने लगी कि भ्रातृवधके परितापसे दुःखित हृदय मेरे पिता सत्राजित्ने मिथ्या कलंक लगाया, उसको मिटानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ऋच्छराज जाम्बवान्को जीत मणि लाकर मेरे पिताको दी तो मिथ्या कलङ्क लगानेसे मेरे पिताने भयभीत हो अक्रूरादिको देना स्वीकार करके भी मुझे श्रीकृष्णचंद्रको ही दिया ॥ ९ ॥ जाम्बवतीने कहा—मेरे पिताने इन वासुदेवको "यह अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ऐसे न जानकर इनसे सत्ताइस दिनतक संग्राम किया" इसके उपरांत "यह अपने स्वामी साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी हैं" इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय होनेपर मेरे पिताने चरणोंमें गिरकर भेंटकी नाईं मणिसहित मुझे भी अर्पण कर दिया। यह सुनकर द्रौपदीने कहा तुम बड़ी श्रेष्ठ हो, इसके उत्तरमें जाम्बवती बोली कि मैं तो इनकी दासी हूँ ॥ १० ॥ कालिन्दी बोली कि मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणस्पर्शकी आशासे तप कर रही थी, भगवान्ने अर्जुन सहित आकर मेरा हाथ पकड़ लिया, उन श्रीकृष्णचन्द्रकी बुहारी देनेवाली हूँ ॥ ११ ॥ मित्रविंदा बोली—लक्ष्मीके वक्षनिवास भगवान् श्रीकृष्णचंद्र स्वयम्वरमें जा राजाओंको जीत और उनका तिरस्कार कर मेरे भाइयोंको भी जीत हाथियोंका शत्रु सिंह जैसे कुत्तोंकेबीचमेंसे अपने भक्ष्यको ले आता हैउसी प्रकार मुझे अपने पुरमें ले आये। उन श्रीकृष्णचन्द्रके चरण धोनेकी सेवा मुझे जन्म-जन्ममें प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है॥१२॥ सत्या बोली कि,बड़े बलवान् पराक्रमी, बड़े पैने सींगवाले और शूरवीरोंके घमण्डको चूर्ण करनेवाले राजाओंकी परीक्षा लेनेके कारण मेरे पिताके पाले हुए सात बैलोंको पकड़ जैसे बालक काष्ठकी बकरियोंके बच्चोंको बांधता है; उसी प्रकार भगवान्ने बांध लिये ॥१३॥ पराक्रम ही है मोल जिसका ऐसी मुझे हाथी, घोड़े, प्यादों सहित व दासियों सहित मार्गमें क्षत्रियोंको जीत श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार लाये,उनकी मैं सदा दासी रहूँ यही प्रार्थना है ॥१४॥भद्रा बोली कि,हे द्रौपदी ! मेरा मन श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्त जान कर मेरे पिताने मेरे मामाके पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर मुझे अक्षौहिणी सेना सहित दे दिया ॥१५॥ अनेक कर्मोंसे भटकनेवाली मुझे जन्म-जन्ममें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो, जिन चरणारविंदोंके स्पर्शसे मोक्षनाम कल्याण मुझे प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है ॥१६॥ लक्ष्मणा बोली कि हे द्रौपदी ! वारंवार देवर्षि नारदजीके गाये हुए भगवान् वासुदेवके जन्म, कर्म, श्रवण कर आश्चर्य है कि लक्ष्मीजीने भी लोकपालोंको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रको ही वरण किया, इस प्रकार विचार कर मेरा मन भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें लग गया॥१७॥ हे सुशीले द्रौपदी ! पुत्रीपर हित करनेवाले बृहत्सेन नाम से विख्यात मेरे पिताने मेरे मनकी बात जान श्रीकृष्णचन्द्रके आनेके लिये उपाय किया ॥ १८ ॥ हे रानी द्रौपदी ! जैसे तुम्हारे स्वयम्वरमें अर्जुनके आनेके लिये मत्स्य रचा गया था, उसी प्रकार मेरे पिताजीने भी मत्स्य रचा; यह सुन द्रौपदी बोली कि फिर अर्जुनने मत्स्यको क्यों नहीं वेधा ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणाने कहा कि तुम्हारे स्वयम्वरकी मछली ढकी थी, भीतरसे नहीं ढकी थी, इस लिये खम्भमें लगाकर ऊपरको दृष्टि करके देखनेसे दिखायी देती थी और मेरे स्वयम्वरकी

मछली ऐसी नहीं थी, किन्तु खम्भकी जड़में धरे हुए कलशके जलमें केवल परछाईं दिखायी देती थी, देखना तो नीचे जलमें और वेधना ऊपर, ऐसी मछलीको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके विना और कौन वेध सकता था ? ॥१९॥ स्वयंवर रचा है,यह बात सुनकर संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले उपाध्याय अर्थात् सिखानेवालोंको सङ्ग ले सहस्रों राजा मेरे पिताके पुरमें आकर उपस्थित हुए, उस समय जैसा जिसका पराक्रम और जिसकी अवस्था थी, उसी प्रकार उसका पूजन मेरे पिताने किया, इसके पीछे कोई भी राजा मुझमें मन लगनेके कारण हाथमें धनुष उठाकर मत्स्यके वेधनेको सभामें समर्थ न हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥ बहुत राजाओंने तो धनुष हाथमें ले पटक दिया, बहुतसे प्रत्यंचा को खींच धनुषके चपेटसे ही गिर पड़े ॥ २२ ॥ और शूरवीर जरासन्ध, अम्बष्ठ, चन्देलीका राजा, भीम, दुर्योधन, कर्ण ये लोग भी अपने-अपने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाकर मछली कैसे लगी है ? यह भी जाननेको समर्थ न हुए ॥२३॥ इसके उपरांत जलमें मछलीकी परछांई देख, ऐसे मछली लगी है, यह जान उपाय करनेवाले अर्जुनने बाण चलाया वह बाण मछलीसे स्पर्श तो हो गया परन्तु मछली कटी नहीं ॥ २४ ॥ जब समस्त क्षत्रिय हारकर बैठ गये तब अभिमानियोंका अभिमान दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने धनुष हाथमें ले, लीलापूर्वक प्रत्यंचा चढ़ा कर, धनुषमें बाण लगा और एक ही बार मछलीको जलमें देख मध्याह्न समय अभिजित नक्षत्रमें अर्थात् सब कार्य सिद्ध करनेवाले मुहूर्त्तमें मछलीको बाणसे काटकर पटक दिया ॥ ॥२५॥२६॥ उस समय स्वर्गमें देवताओंके नगाड़े बजने लगे, पृथ्वीमें "जय हो, जय हो" इस प्रकार शब्द होने लगा और देवता लोग आनन्दमें मग्न हो आकाशसे वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ हे द्रौपदी ! इसके उपरांत लाजभरी हँसनयुक्त मुख और चोटीमें पुष्प माला गुथे नवीन रेशमी सुंदर धोती, चद्दर पहनकर सुवर्णकी जड़ी रत्नोंकी माला हाथमें ले और मनोहर नूपुरवाले चरणोंसे मैं रंगभूमिमें आयी ॥ २८ ॥ और श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तहृदय मैं बड़े केश और कुण्डलोंसे शोभायमान कपोलवाले मुखको उठा सन्तापको दूर करनेवाले हास्य-कटाक्ष-पूर्वक चितवनसे चारों ओरके राजाओंको देख धीरे-धीरे जाकर मुरारि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें माला डाल दी ॥ २९ ॥ उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्यकारी नाचने लगे और गाने लगे ॥ ३० ॥ हे यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी ! इस प्रकार मैंने जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपने वशमें किया तब ईर्षा और कामसे आतुर राजाओंके यूथने यह बात नहीं सहन की ॥ ३१ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त शोभायमान चार घोड़े जुते रथमें उस समय मुझे बैठाकर शार्ङ्गध-नुषको ले कवच पहने चारभुजायुक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र खड़े हो गये ॥३२॥ हे रानी ! द्रौपदी ! तब रथवान्ने सुनहरी साजका रथ हांक दिया और जैसे मृगोंके देखते सिंह चला जाता है, उसी प्रकार राजाओंके बीचमेंसे उनके देखते ही चले आये ॥ ३३ ॥ इनको जाता देखकर बड़े-बड़े क्षत्रिय राजा पकड़नेके लिये पीछे-पीछे दौड़े और कोई राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके रोकनेको आगे जाकर धनुषको ऊँचा उठा, जैसे सिंहके रोकनेको कुत्ता खड़ा होता है, उसी प्रकार मार्गमें सावधान होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥ शार्ङ्ग धनुषके छूटे हुए बाणोंके समूहसे भुजा, पांव, नार कटनेसे अनेक क्षत्रिय युद्धमें गिर गये और बहुतसे संग्रामको छोड़कर भाग गये ॥ ३५ ॥ इसके उपरांत यादवोंके पति भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रने अत्यन्त शोभायमान सूर्यका आवरण करनेवाली ध्वजाके वस्त्रोंसे सुशोभित, और चित्रविचित्र बन्दनवार माला बँधी, स्वर्ग, और पृथ्वीमें जिसकी स्तुति हो ऐसी द्वारकापुरीमें अस्ताचलमें सूर्यके समान प्रवेश किया ॥३६॥ इसके उपरांत मेरे पिताने सुहृदयतासे गोत्री और बन्धुओंका बड़े मोलके वस्त्र, गहने, शय्या, आसन और साजसे पूजन किया ॥३७॥ सम्पूर्ण सम्पत्तिमान दासी और प्यादे, रथ, हाथी, घोड़े, और बहुत मोलके वस्त्रों सहित मुझे मेरे पिताने परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दिया ॥ ३८ ॥ हम आठों आत्मामें रमण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सब सग त्याग अपने धर्मसे साक्षात् घरकी दासी हुई हैं ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत सोलह हजार एकसौ रानियां कहने लगीं कि भौमासुर दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीतकर रोक रखा था, उन्हें संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरणारविंदका स्मरण करते जान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं पूर्णकाम होते हुए भी संग्राममें भौमासुर और उसके कुटुम्बको मार हमारे साथ विवाह किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम चक्रवर्ती राज्य और इन्द्रपदके भोगको भोगना नहीं चाहतीं, और मणिमाणिक सिद्ध, ब्रह्मलोग, मोक्ष तथा वैकुंठधामकी भी चाहना नहीं करतीं, किंतु गदाके धारण करनेवाले, श्रीकृष्णचन्द्रके लक्ष्मीके कुचोंकी केशर लगे सुन्दर चरणारविंदोंकी रज अपने माथेके ऊपर चढ़ानेकी चाहना करती हैं ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ महात्मा होते हुए भी गाय चराते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणरजको जैसे गोप, गोपियां, भीलनियें, तृण और लताओंकी चाहना करती हैं उसी प्रकार हम भी उनकी चाहना करती हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

दोहा–भयो समागम मुनिनसों, चौरासी अध्याय ।
संस्कार वसुदेवको, कियो सबनि सुख पाय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित ! कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियाँ और भक्त गोपियोंने सबके महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रमें रानियोंका इस प्रकार प्रेम सुन नेत्रोंमें आंसू भर बड़ा आश्चर्य माना ॥ १ ॥ उस कुरुक्षेत्रमें इस प्रकार स्त्रियोंके सङ्ग स्त्री, पुरुषोंके संग पुरुष बातचीत करते ही थे कि इतनेमें श्रीकृष्ण–बलदेवका दर्शन करनेको मुनिलोग आये ॥ २ ॥ उनके नाम यह हैं, यथा–वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज और गौतम ॥३॥ शिष्यों सहित भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कंडेय, बृहस्पति ॥ ४ ॥ द्वित, त्रित, एकत तथा ब्रह्माके पुत्र अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वामदेवादि अन्य मुनि भी आये ॥ ५ ॥ विश्वपूजित ऐसे मुनियोंको आया देख राजा आदि जो प्रथम बैठे थे और पांडव अर्थात् राजा युधिष्ठिरादि तथा कृष्णबलदेवजीने शीघ्र उठकर प्रणाम किया ॥ ६ ॥ इसके उपरांत इन मुनियोंका यथायोग्य सब जनोंने पूजन किया और बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र 'भले आये' इस प्रकार मुनियोंसे कह आसन दे अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप और चन्दन इत्यादिसे पूजा करने लगे ॥ ७ ॥ चुपचाप हो सम्पूर्ण जिसमें बैठे ऐसी सभामें धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक बैठे ब्राह्मणोंसे कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले कि अहो ! बड़ा आश्चर्य है, आज हम सफल जन्म हुए और सब जन्मका साफल्य हमको प्राप्त हुआ क्योंकि जिनका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है, उन योगीश्वरोंका दर्शन हुआ ॥९॥ हम लोग केवल तीर्थस्नानादिको तप जानते हैं, प्रतिमाको ही देवतास्वरूप मानते हैं, परंतु आप सरीखे मनुष्योंका दर्शन, स्पर्शन व वार्त्तालाप, प्रश्न, नमस्कार, चरणपूजा आदिकी प्राप्ति कहां हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ॥१०॥ जलमय तीर्थ नहीं है, सो नहीं हैं, मृतिका शिलाओंके देवता नहीं हैं वह भी नहीं क्योंकि जब बहुत दिनों-तक देवताओंकी पूजा करे तो वे पवित्र करते हैं और साधु महात्मा लोग तो केवल दर्शनसे ही पवित्र कर देते हैं ॥११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी, आकाश, पवन, वाणी, मन यदि इनकी भली भांतिसे उपासना की जाय तो भेदबुद्धिके कर्ता होनेसे पुरुषके अज्ञा-नको दूर कर सकते हैं और विवेकी पुरुष तो केवल दो घड़ीकी सेवा करते ही अज्ञानको दूर कर देते हैं ॥ १२ ॥ जो पुरुष वात-पित्त-कफमय देहको ही आत्म रूप समझते हैं और स्त्री पुत्रादिको ही अपना मानते हैं व मूर्तिको ही पूज्य समझते हैं और जलको ही तीर्थ जानते हैं और विवेकी पुरुषोंको आत्मरूप व पूज्य तीर्थ इत्यादि नहीं समझते, वे गायोंका चारा ढोनेवाले बैल और गधेके समान हैं ॥ १३ ॥ "यहां साधुओंकी महिमा दिखानेका तात्पर्य है, मूर्ति तथा तीर्थका निषेध नहीं और विशेष करके यह दिखाया है कि तीर्थके जानेमें बहुतेरा द्रव्य उठायें, पूजामें घण्टों बैठें, परंतु महात्मा और हरिभक्तोंको देखते ही दुर्वाक्य कहें उन्हें अन्न तो क्या जल भी न दें, ऐसे भेदबुद्धिवालोंके लिए यह वाक्य है। ज्ञानी पुरुष तो सबमें ही उसका प्रकाश देखते हैं" श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भरतवंशावतंस परी-क्षित् ! इस प्रकार अत्यंत तीक्ष्णबुद्धिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर चकित बुद्धि हो, वे सब ब्राह्मण चुप हो गये ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कर्मोंमें अधिकार बहुत देरतक विचार करके समझा कि लोकोंको शिक्षा देनेके कारण हमारी स्तुति करते हैं। इस प्रकार मुनीश्वर लोग बुद्धिसे निश्चय कर कुछेक मुसकाकर जगत्गुरु श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले ॥ १५ ॥ कि, हे तत्त्वके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हम और विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक जिनकी मायासे मोहित हुए हैं, क्योंकि जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको गूढ़ रहकर मुनी-श्वरोंके समान चेष्टा करते हो, इसलिए आपकी लीला बड़ी विचित्र है ॥ १६ ॥ चेष्टारहित और एक होकर भी तुम अपने आत्मासे इस विश्वको बहुत प्रकार पालन, उत्पत्ति और क्षय करते हो, जैसे पृथ्वी घटादि विकारोंसे बहुत नामकी होती है ! यदि तुम कहो कि मैं कैसे उत्पत्ति, पालन व संहार करता हूँ ! मैं तो वासुदेवका पुत्र हूँ, इसके उत्तरमें कहते हैं कि परि-पूर्णरूप तुमने वसुदेवके घर जन्म लिया है, यह विचित्र लीलामात्र है, सत्य नहीं है ॥१७॥ समयपर अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके लिए और दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए आप शुद्ध तत्त्व-गुण रूपको धारण करते हो और अपनी लीलासे सनातन वेदमार्गको प्रवृत्त करते हो, यद्यपि तुम किसीके पुत्र नहीं हो, परंतु तो भी चारवर्ण और चार आश्रमके आत्मा परमपुरुष तुम हो, इसलिये ब्राह्मणोंका बहुत सत्कार करते हो ॥ १८ ॥ शुद्ध वेद तुम्हारा भीतरका रूप है क्योंकि तप करना, वेद पढ़ना, इंद्रियोंका रोकना इन कार्य और कारण दोनोंसे परे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! वेदके कारण आत्मा तुम हो और अपने बतानेवाले ब्रह्म-कुलका पूजन करते हो और इसीलिये ब्राह्मणोंकी भक्ति करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ इस कारण ईश्वर होकर जो तुम हमारा सत्कार करते हो, वह पुरुषोंकी शिक्षा करनेके लिये

है और हम तुम्हारे संगसे कृतार्थ हुए। साधुओंकी गति आपका संग हुआ इस लिये हमारे जन्म, विद्या, तप, दृष्टि, यह सम्पूर्ण सफल हुए, क्योंकि तुम सब कल्याणकी अवधि हो ॥ २१ ॥ अकुण्ठित बुद्धि और अपनी योगमायासे गूढ़ महिमावाले परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥ मायारूपी चित्रसे ढके, सृष्टि इत्यादिकोंके कारण ईश्वर आत्मा आपको आपके साथ एक ही स्थानमें रहनेवाले यह यादव और राजा लोग नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें मिथ्या पदार्थको सत्य मानता है, मनसे सिंह, व्याघ्रादिरूप आप बन जाता है और जाग्रत अवस्थाके स्वरूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ उसी प्रकार स्वप्नके तुल्य विषय पदार्थमें इंद्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चलायमानचित्त पुरुष विवेकके नाशसे आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ विना गुण जाने वस्तुकी महिमा प्रकट नहीं होती। यहां एक दृष्टान्त है। ❋ पापोंके समूहोंको दूर करनेवाले गङ्गारूपी तीर्थ जिसमेंसे प्रकट हुआ और दृढ़ योगवाले योगीजन भी जिनका केवल हृदयमें ध्यान करते हैं परन्तु उनको भी तुम दिखायी नहीं देते और तुम्हारे चरणारविन्दोंका हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया, इसलिये हमें भक्ति करनेका अनुग्रह करो। यदि कहो कि भक्ति करके क्या करोगे ? पहलेके समान तप करते जाओ, इसका उत्तर देते हैं कि, वृद्धिको प्राप्त हुई भक्तिसे जिनके लिंग शरीरका नाश हो गया है, वही पुरुष तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, और नहीं ॥२६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग अपने-अपने आश्रमोंमें जानेकी इच्छा करने लगे॥२७॥ तब महायशस्वी वसुदेवजी उन मुनियोंको जाते देखकर उनके समीप आकर सावधानीके साथ कहने लगे ॥ २८ ॥ वसुदेवजी बोले कि सम्पूर्ण देवतारूप तुम हो, आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ, हे ऋषीश्वरो ! मेरी एक आपसे प्रार्थना है, उसे कृपा करके सुनिये, जिन कर्मों के करनेसे कर्मोंका नाश होता है, वह हमें बताओ ? ॥२९॥ श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर हमसे कल्याण पूछने आये हैं, इस प्रकार आश्चर्य मान नारदजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पुत्र जाननेके कारण अपना कल्याण हमसे पूछते हैं यह आश्चर्य नहीं है ॥३०॥ क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्रको बालक मानना अविद्यासे है। इस संसारमें मनुष्यों के पास रहनेसे अनादर होता है; जैसे गंगातटका रहनेवाला पुरुष गंगाको छोड़ शुद्ध होनेके लिये और जलमें स्नान करनेको जाता है ॥ ३१ ॥ जिन श्रीकृष्णचन्द्रका ज्ञान किसी कारणसे भी नष्ट नहीं होता वही कहते हैं, जैसे कालसे कांकरी फट जाती है और इस विश्वको उत्पन्न कर पालन और नाश करनेसे भी तुम्हारा ज्ञान नहीं जाता है और जैसे बिजली चमककर छिप जाती है और जिस प्रकार गुणोंसे पूर्वरूपका नाश और रूपान्तरकी

❋ दृष्टांत–एक महात्माने कृष्ण नामकी बहुत प्रशंसा की, कि एक बार नाम लेनेसे अनेक पाप दूर हो जाते हैं। चेले बोले, महाराज ! फिर यह मनुष्य तो दिनरात नामका स्मरण करते हैं। यह क्यों दुःख पाते हैं ? गुरुजी बोले–महिमा नहीं जाननेसे यह दशा है ! चेला मनमें संदेह करने लगा तो बाबाजीने अपने पाससे एक अमूल्य रत्न देकर चेलेसे कहा, कुंजड़ीसे पूछ, इसका कितना शाक देगी ! चेलेने जाकर पूछा, उसने सेरभर शाक देनेको कहा; फिर गुरुजीने सराफ पर भेजा, उसने बीस रुपये कहे, फिर गुरुजीने जौहरीके पास भेजा उसने करोड़ रुपये कहे, फिर गुरुजीने सबसे बड़े जौहरीके पास रत्न लेकर भेजा, तब उसने कहा–मेरे यहां असंख्य द्रव्य है, परंतु यह तो इस द्रव्यके ब्याजमें है, मेरे यहां इसका मूल्य देनेको द्रव्य नहीं, यह अमूल्य है। चेलेने गुरुजीसे यह सब वृत्तान्त कहा। तब गुरुजी बोले–इसी प्रकार कृष्ण नामकी महिमा है। जो जानते हैं, वे संसार सागरसे पार हो जाते हैं और जो नहीं जानते वे कर्म भोगते रहते हैं।

प्राप्ति होती है उस प्रकार नहीं है ॥ ३२ ॥ ऐसे जो कृष्ण अद्वितीय ईश्वर और अखंडित ज्ञानरूप हैं उन्हें और मनुष्य जैसे रविमण्डलको बालक राहु वा हिमसे आच्छादित माने उसी प्रकार क्लेश कर्म सुख-दुःख गुणोंका प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकसे आच्छादित माने तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! इसके उपरांत वह मुनि सब राजा और श्रीकृष्ण बलदेवके सुनते वसुदेवजीको सम्बोधन देकर बोले ॥ ३४ ॥ मुनि बोले कि, सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवान्‌का यज्ञों द्वारा श्रद्धासहित यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥ ३५ ॥ पंडित लोगोंने शास्त्ररूप नेत्रोंसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व शनैः-शनैः अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्म यही दिखाया है ॥ ३६ ॥ गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको यही कल्याणका मार्ग है कि निष्काम होकर प्राप्त हुए शुद्ध द्रव्यसे ईश्वरका भजन करे, क्योंकि महात्मा पुरुषोंका ही द्रव्य यज्ञादिकोंमें लगता है और लोभियोंका धन व्यर्थ जाता है ॥३७॥ यहां इस विषयपर एक दृष्टान्त है । ❋ हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान्‌को उचित है कि धनके फलरूप यज्ञ और दान करके धनकी इच्छाका त्याग करे । घरके भोग-भोगकर स्त्री-पुत्रकी तृष्णा त्याग और संसारको नाशवान् जानकर अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी कामना त्यागे ॥३८॥ग्राममें रहना त्याग कर समस्त वीरपुरुष तप करनेके लिये वनको चले गये । हे वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, देव, ऋषि, पितृ इन तीनों ऋणोंसे इस जन्ममें उद्धार हो, यज्ञ करके देवताओंका ऋण और विद्या पढ़कर ऋषियोंका ऋण तथा पुत्र उत्पन्न करके पितरोंका ऋण चुकावे । इन ऋणोंके चुकाये विना जो कर्मोंका त्याग करे तो वह पुरुष नरकमें गिरता है ॥ ३९ ॥ हे मतिमान् वसुदेव ! अब तुम दो ऋणसे तो छूट गये, विद्या पढ़े इसलिये ऋषियोंके ऋणसे उद्धार हो गया और पुत्र होनेके कारण पितरोंके ऋणसे उद्धार हो गया, अब यज्ञ करके देवताओंके ऋणसे उद्धार हो, गृहको त्याग संन्यास ग्रहण करो॥४०॥और हे वसुदेवजी ! तुमने बड़ी भक्तिसे जगत्‌के ईश्वर हरि भगवान्‌का भजन किया था, इसीलिये स्वयं भगवान् हरिने आकर तुम्हारे यहां अवतार लिया ॥४१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! उदारमन वसुदेवजी इस प्रकार ब्राह्मणोंका वचन सुन मस्तक नवाकर नमस्कार कर उन ऋषियोंसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजजनोंका वरण करने लगे ॥४२॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! धर्मसे वरणोंको प्राप्त हो ऋषि महा-

---

❋ दृष्टांत—एक पीपलसाहके छप्पन कोटि द्रव्य था । परंतु रहे बड़े सूम ! बेटे कहें कि पिताजी । गंगापुष्कर स्नान करनेको चलो, पुण्य करो, तो वे कहें कि पुण्य करनेसे कुछ नहीं होता है और जो हम चलें तो पीछे घर चोर लूटकर ले जायंगे, रास्तेमें लूटे जाओगे । बेटोंने कहा—हम तो जायंगे, सन्तोंके दर्शन करेंगे । तब वे बोले, तुम मेरा धन लुटानेको फिरते हो । तब बेटे बोले—हम भीख मांगते चले जायेंगे । वे बोले—तो मेरा नाम डुबाओगे अर्थात् मेरी हंसी कराओगे क्या ? अच्छा यदि तुम्हारे जानेका ही विचार है, तो एक काम करो कि गहना कपड़ा सब उतार कर धर दो, मैले कपड़े पहन लो तो जाओ । उन्होंने वैसा ही किया तो इन्होंने भोजनमात्र खर्च दिया और यह कह दिया कि पुण्य मत करना और जल्दी आइयेगा । वे सब स्त्री बालक गये, पीछे इन्होंने गढ़ा खोद सब गहना द्रव्य गाड़ दिया । जब वे स्नान कर आये, तब यह बोले—तुम नहाने गये, पीछे चोरी हो गयी, अब बनियेंसे उधार लेकर खाते हैं, हमारे पास कुछ नहीं रहा ऐसा कह बागमें जा बैठे । अब यह बिलाप करने लगे कि परमेश्वर भले स्नान करनेको गये कि भोजनसे भी हाथ धो बैठे । सन्ध्या समयतक रोते रहे, उस समय महादेवजी सैरको आये और इनको देखकर बोले कि द्रव्य तो कोठेमें दब रहा है, यह कह गये, उन्होंने झट गड़ा खोद सब धन निकाल लिया और बांटने लगे । पीछेसे पीपलसाह बोले—अरे दुष्टो ! जल्दी किवाड़ खोलो नहीं तो इसी जगह अपना मस्तक फोड़कर मर जाऊंगा । उन्होंने किवाड़ खोलनेमें देर किया, उन्होंने जाना कि सब धन लुट गया, वह शिर फोड़कर मर गये ।

दोहा—पीपलसाह अपारधन, जोड़े छप्पन क्रोड़ । एक प्रभु के नाम पर, मरे भीत शिर फोड़ ॥

त्माओंने वसुदेवजीका कुरुक्षेत्रमें उत्तम सामग्रियोंसे यजन कराया ॥४३॥ हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजीको यज्ञदीक्षा दी गयी, उस समय कमलोंकी माला पहने हुए यादव स्नान कर शोभायमान वस्त्र धारण कर शृङ्गार किये हुए बहुतसे राजा आये ॥४४॥ और कण्ठमें धुकधुकी व सुन्दर वस्त्र पहने,केशर चन्दन लगाये राजाओंकी स्त्रियाँ पूजा सामग्री हाथमें लिये यज्ञशालामें आयीं ॥ ४५ ॥ मृदंग, ढोल, शङ्ख, भेरी, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे, नट और नृत्य करनेवाली नाचने लगीं सूत तथा बंदी स्तुति करने लगे और स्वरीले कण्ठवाली गन्धर्वपत्नियाँ अपने पति सहित सुन्दर गीत गाने लगीं ॥४६॥ नेत्रोंमें अञ्जन लगाये हुए शरीरमें मक्खन मले वसुदेवजीका विधिपूर्वक अठारह स्त्रियों सहित ऋत्विजोंने अभिषेक किया, जैसे तारागणोंसहित चन्द्रमा अभिषेक करते हैं ॥४७॥ हे राजन् ! उस समय वस्त्र, कङ्कण, हार, नूपुर, कुण्डल पहने स्त्री सहित दीक्षा लिये मृगछाला ओढ़े वसुदेवजी अत्यंत शोभायमान लगने लगे ॥४८॥ हे महाराज ! रत्नोंके गहने और वस्त्र धारण किये वसुदेवजी यज्ञ करनेवाले तथा सभामें बैठे पुर्षोसहित वृत्रासुरके मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान शोभाको प्राप्त हुए ॥४९॥ भगवान् कृष्ण बलदेवजी भी संपूर्ण जीवोंके ईश्वर, अपने-अपने बांधवोंको संग लिये और अपने-अपने पुत्र स्त्रियों सहित अपने-अपने ऐश्वर्यसे सुन्दर लगने लगे ॥५०॥ यज्ञमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रादि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञ अर्थात् समस्त अंगसे ज्योतिष्टोम, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ और थोड़े अंगवाले शौर्यसत्रादिक अर्थात् सांकल्यमन्त्र कर्मसे ईश्वर भगवान्का पूजन करने लगे ॥५१॥ इसके उपरांत वसुदेवजीने समयपर आभूषणोंसे शोभायमान यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको आभूषणोंसे शोभायमान कर गौ, पृथ्वी, कन्या और बड़े धनकी बड़ी दक्षिणा वेदविधिसे दी ॥ ५२ ॥ इसके उपरांत पत्नी संयाजावभृथ्य यज्ञांग कराकर बड़े ऋषि ब्राह्मणोंने यजमान वसुदेवजीको आगे कर रामह्रदमें स्नान कराया ॥५३॥ स्नान कर वसुदेव और उसी प्रकार उनकी स्त्रीने बन्दीजनोंको अपने अंगके आभूषण इत्यादि दिये । इसके उपरांत वसुदेवजीने और आभूषण पहन चारों वर्णोंको दान देकर पूजन किया और जीवोंमें श्वानको भी अन्न दिया ॥५४॥ इसके उपरांत स्त्री-पुत्रोंसहित अपने बंधुओंकी बहुत द्रव्यसे पूजा की । फिर विदर्भ, कोशल, कुरु, केकय इन देशोंके राजा और सभासद, तथा यज्ञ करनेवाले देवतागण, मनुष्य, भूत, पितर, चारणगणका पूजन किया और फिर सब राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको सम्बोधन दे, यज्ञकी प्रशंसा कर अपने-अपने देशोंके जानेकी इच्छा करने लगे ॥५५॥५६॥ इसके उपरांत धृतराष्ट्र, विदुर, पृथाके पुत्र–युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल,सहदेव, नारद, भगवान् व्यासजी और सुहृद उनके तथा नाते गोतेवाले बन्धु यादव सबसे मिल स्नेह कर,विरहसे कष्टसे खेदित अपने-अपने देशोंको चले गये और जो मनुष्य वहां पर थे वे भी अपने-अपने देशोंको चले गये ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ राम कृष्ण उग्रसेनादिक यादवोंसे बड़ी पूजा और सत्कार पाकर गोप-ग्वालों सहित नन्दरायजीने बन्धुबांधवोंके निकट स्नेहके कारण कुछ दिनतक वहीं वास किया ॥५९॥ अनायास ही मनोरथरूप महासागरको पार उतर प्रसन्नचित्त और सम्बन्धी लोगोंसे आवृत वसुदेवजी हाथ पकड़ नंदजीसे बोले ॥ ६० ॥ कि, हे भाई नन्दजी ! मनुष्योंको स्नेहरूपी फांसी ईश्वरने रची है, इस कारण इसे शूरवीर बलसे और ज्ञानी ज्ञानसे भी नहीं काट सकते ॥ ६१ ॥ तुमसे महात्माने जो अकृतज्ञ हमारे साथ मित्रता की है, उसका पलटा हम किसी

प्रकार नहीं दे सकते तो भी वह सदा एकरूप बनी रहती है, कभी निवृत्ति नहीं होती ॥६२॥ हे नन्दरायजी ! पहले हम असमर्थ थे, इसलिये तुम्हारा कुछ उपकार न कर सके और अब धनसे अन्धे हो सम्मुख बैठे हुए तुमसे महात्माओंकी ओरको देखते भी नहीं ॥६३॥ हे मान देनेवाले भाई नन्दजी ! कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्योंको राजलक्ष्मी न मिले तभी अच्छा है, क्योंकि इससे अन्धा होकर पुरुष अपने आश्रित तथा बन्धु-बांधवोंको भी नहीं देखता ॥६४॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त आंसू नेत्रोंमें भरे वसुदेवजी नन्दजीकी मित्रताको स्मरण कर रोने लगे ॥६५॥ नन्दरायजी यादवोंसे मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते भगवान् कृष्ण बलदेवके प्रेमसे "आज कल आज कल" करते तीन महीनेतक वहीं रहे ॥ ६६ ॥ इसके उपरांत बड़े मोलके आभूषण, रेशमी वस्त्र तथा अनेक प्रकारके बड़े मोलकी वस्तुसे व्रजवासियों सहित नन्दरायजीको पूर्ण कर दिया ॥ ६७ ॥ और वसुदेव उग्रसेन तथा कृष्ण बलदेवादि यादवोंकी दी हुई सामग्रीको प्रीति सहित ग्रहण कर जिस समय नन्दरायजी बिदा हुए; उस समय यादवोंने इनके संग एक-एक बड़ी भारी सेना कर दी ॥६८॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविंदमें लगे मनको हटानेमें असमर्थ नन्दरायजी व गोप-गोपियाँ मथुराको चले ॥ ६९ ॥ बन्धुलोगोंके जानेपर श्रीकृष्णचन्द्रको इष्टदेव माननेवाले यादव वर्षा ऋतु निकट आयी देख पीछे द्वारकापुरीको चले गये ॥ ७० ॥ और जाकर सब यादव वसुदेवजीका यज्ञ और कुरुक्षेत्रकी यात्रामें सुहृदोंका मिलाप यह सब प्रजासे कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

दोहा–विनय पचासीमें करी, कृष्ण और बलराम ।
मरे पुत्र मातहि दिये, पितुहि ज्ञान सुखधाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनेके उपरांत एक समय वसुदेवजी आकर चरणोंमें प्रणाम और रामकृष्णकी प्रशंसा कर प्रीतिपूर्वक कहने लगे॥१॥पुत्रोंके प्रभावको जाननेवाले जो मुनियोंका कहा वचन कि तुम्हारे पुत्र परमेश्वर हैं, उन श्रीकृष्ण, बलरामका पराक्रम देख विश्वासयुक्त वसुदेवजी संबोधन देकर बोले ॥२॥ कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे राम ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! इस विश्वके कारण प्रकृति पुरुषके भी कारण साक्षात् ईश्वर तुम हो, यह मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥ जिसमें जिस साधनसे, जिससे जिस कारणसे जिसका जिसके लिये, जिसको जो जैसे और जब यह संसार स्थित है और स्थित किया जाता है, उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात् आप ही हो ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप जो अजन्मा हो, वह अपने रचे हुए इस अनेक प्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश कर क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूप उसका पोषण और भरण करते हो ॥ ५ ॥ पृथक्-पृथक् शक्तिवाले प्राणादिक इस विश्वके कारण जाननेमें न आयें परमेश्वरको कारणरूपसे सर्वरूप कैसे कहते हो ? यह शङ्का जब हुई तो उसका समाधान यह है कि प्राणादिकोंमें जो शक्ति है और ईश्वरके करनेवाले प्राण आदि तत्त्वमें जो शक्ति है, वह परमकारण ईश्वरकी ही है, क्योंकि प्राणआदिक ईश्वरके अधीन है और जैसे तीरमें वेधनेकी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है

किंतु पुरुषकी शक्तिसे वेधता है, उसी प्रकार प्राणादिकोमें ईश्वरकी शक्ति है। प्राणादिक जड़ हैं और ईश्वर चैतन्य है और जड़ पदार्थको चैतन्यकी अधीनता योग्य ही है। यहां ऐसा कहते हैं कि प्राणादिकोंमें शक्ति नहीं है तो क्रिया कैसे करते हैं ? उसका उत्तर यह है कि चेष्टा करनेवाले प्राणादिकी चेष्टा यहां कुछ शक्ति नहीं है जैसे पवनकी शक्तिसे तृण हिलते हैं उसी प्रकार क्रिया करते हैं ॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्य प्रभा, नक्षत्र व बिजलियोंकी स्फुरणसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गन्ध ये सम्पूर्ण तुम्हारी ही शक्तियां हैं ॥७॥ हे देव ! जल उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति, जीवित करनेकी शक्ति व उसका रस यह सब तुम ही हो। हे ईश्वर ! वायुके जो ओज, सह, बल, चेष्टा और गति है वह सब तुम्हारा ही रूप है ॥ ८ ॥ दिशाओंमें जो खालीपन और दिशायें समस्त तुम्हारे ही रूप हैं और आकाश तथा आकाशमें शब्द रूप गुण सब तुम्हारे ही रूप हैं। वाणी, आकार और नाम-रूप जो कहनेमें न आयें वह सब तुम ही हो ॥९॥ नेत्रोंमें दर्शन शक्ति और कानोंमें श्रवण शक्ति तथा जिह्वामें रसकी ग्रहणशक्ति इत्यादि इंद्रियोंमें विषयके ग्रहण करनेकी शक्ति तुम ही हो और इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता तुम ही हो। देवता इंद्रियोंको प्रेरणा करते हैं, यह तुम्हारी शक्ति है, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति तुम ही हो। और जीवोंकी श्रेष्ठवार्ता जो स्मरण रहती है, यह तुम्हारी ही शक्ति है ॥ १० ॥ पंचभूतका कारण, तामसाहंकार इंद्रियोंके देवताओंका कारण सात्त्विकाहंकार; इन्द्रियोंका कारण; राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान यह सब तुम ही हो। ॥११॥ नाशवान् पदार्थमें जो शेष रहे अर्थात् जिसका नाश न हो वह तुम ही हो। जैसे मृत्तिका, सुवर्णके बने घड़े, मुँदरी, कड़े इत्यादि सब नाशवान् हैं किन्तु सुवर्णका नाश नहीं होता ॥१२॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्ति साक्षात् परब्रह्ममें योगमायासे कल्पित हैं ॥ १३ ॥ इसी कारण ये पदार्थ आपसे अलग नहीं हैं। जब ये पदार्थ कल्पना किये जाते हैं, तभी तो प्रतीतिमात्रसे आपमें हैं और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो और जब कल्पना नहीं किये जाते, तब निर्विकल्प आप ही अवशेष रहते हो॥१४॥यह जो गुणोंका प्रवाह रूप संसार है, उसमें सबके आत्मा तुम्हारी संसारसे अलग गतिको नहीं जाननेवाले अज्ञानी पुरुष देहमें अभिमानसे किये हुए कर्मसे इस संसारमें जन्मे हैं ॥१५॥ हे ईश्वर ! शोभायमान हाथ, पांव, नाक, कान, सब इन्द्रिययुक्त बहुत दुर्लभ देहको इस संसारमें कोई एक पुण्यके फलसे पाकर स्वार्थमें भूलकर मैंने अपनी अवस्था तुम्हारी मायासे वृथा ही गँवायी ॥१६॥ मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, इस प्रकार देहमें अभिमान और इस देहके सम्बंधी स्त्री पुत्रादि मेरे हैं, इस अभिमानसे स्नेहकी रस्सीसे यह जगत् तुमने बांध रखा है ॥१७॥ हम तुम्हारे पुत्र हैं, तुम क्यों हमारी स्तुति करते हो ? उसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि तुम हमारे पुत्र नहीं हो, किंतु प्रधान पुरुष ईश्वर और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंके नाश करनेको आपने अवतार धारण किया है, क्योंकि आप ऐसे ही हैं ॥१८॥ हे दीनबंधु ! हे शरण प्राप्त हुए पुरुषके संसारी भयको दूर करने वाले ! तुम्हारे चरणारविंदकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ। "तुम तो बड़े सुखी हो, वृथा क्यों खेद करते हो" ऐसे जो कदाचित् श्रीकृष्ण कहें तो इसके उत्तरमें वसुदेवजी कहते हैं कि विषयकी लालसा इतनी ही है कि मरणधर्मा शरीरको आत्मा माना और तुम परमेश्वरको पुत्र माना ॥१९॥ तुमने सूतिकागृहमें ही हमसे कहा था कि "पहले तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यप, अदितिरूप दंपती थे

और अभी वसुदेव देवकी रूप दंपती हो। मैं अजन्मा प्रथम निज धर्मकी रक्षाके लिये आपसे प्रकट हुआ और अब भी प्रकट हुआ हूँ" आप असंग रहकर भी अनेक अवतार धारण करते हो और छोड़ते हो, सर्वव्यापक आपकी विभूतिरूप मायाको कौन जान सकता है ? ॥२०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार पिताके वचन सुन अधीनतापूर्वक नम्र हो मनोहर वाणीसे कहा ॥२१॥ श्रीभगवान् बोले कि हे पिता ! हम पुत्रोंके विषयमें आपने तत्त्वसमूहका भलीभांति निरूपण किया। तुम्हारे इस वचनको हम यथार्थ मानते हैं ॥२२॥ हे यदुश्रेष्ठ पिता ! तुम और बड़े भ्राता बलदेवजी तथा सब द्वारकावासी यादव और स्थावर-जंगम जगतको ब्रह्मरूप जानो ॥ २३ ॥ यहां एक शंका है कि नाना विकारवान् ब्रह्मरूप कैसे बन सकता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि आत्मा एक स्वयंप्रकाश नित्य सबसे पृथक् निर्गुण है, अपने रचे सत्त्वगुण और तमोगुणसे उत्पन्न देहमें बहुत प्रकार प्रतीत होता है फिर जैसी देह है उसमें वैसा ही प्रतीत होता है। जैसे आकाश, पवन, ज्योति, जल, पृथ्वी ये पंचभूत घट-पटादि पदार्थोंमें कहीं प्रगट, कहीं अन्तर्धान, कहीं थोड़े, कहीं बहुत प्रतीत होते हैं, ऐसे एक आत्मा ब्रह्मरूप अनेक रूपसे प्रतीत होता है ॥२४॥२५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुन भेद-भाव त्याग प्रसन्नमन हो वसुदेवजी चुप हो गये ॥ २६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! फिर अपने पुत्र गुरुपुत्रको पीछे ले आये, यह वृत्तांत सुन अत्यन्त आश्चर्य मान कंसके मारे पुत्रोंकी सुधि करके सब जगत्की देवतारूप देवकी व्याकुल हो नेत्रोंमें आंसू भर श्रीकृष्ण-बलदेवजीको बुलाकर इस प्रकार दीन वचन कहने लगी ॥ २७ ॥ २८ ॥ देवकी बोली कि हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! आप विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिकोंके ईश्वर और आदि पुरुष हो, तुमको मैं जानती हूँ ॥ २९ ॥ कालसे सत्त्वगुणका नाश होनेपर शस्त्रकी मर्यादा त्यागने वाले पृथ्वीपर भाररूप राजाओंका नाश करनेके लिये तुम मेरे यहां आकर प्रकट हुये हो ॥ ३० ॥ हे सबके कारण ! हे विश्वके आत्मा ! तुम्हारा अंश पुरुष है, उसका अंश माया, उस मायाके अंश सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके परमाणुमात्र लेशसे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय होती है, ऐसे तुम हो मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वर ! चिरकालसे मरे हुये पुत्रको लानेके लिए गुरुने आज्ञा की तब तुमने यमराजके लोकमेंसे उस पुत्रको लाकर गुरुको गुरुदक्षिणारूप अर्पण किया, उसी प्रकार मेरी कामना भी पूर्ण करो अर्थात् कंसके मारे हुये पुत्रोंको मैं यहां देखना चाहती हूँ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! जब माता देवकीने इस प्रकार कहा, तब रामकृष्ण योगमायाका आश्रय ले सुतल लोकमें गये ॥३४॥ वहां दैत्यराज बलिने विश्वके आत्मा देवता अपने इष्टदेव और कृष्ण बलदेवको सुतललोकमें आया देख और उनके दर्शनसे आनंदित हो परिपूर्ण अन्तःकरणसे परिवार सहित शीघ्र उठकर नमस्कार किया ॥ ३५ ॥ और प्रीतिसहित आसन लाकर उन महात्माओंको आसनपर बैठाया, फिर चरण पखार ब्रह्मपर्यन्त जगत्को पावन करनेवाला जल दैत्यराज बलिने और उसके परिवारने अपने मस्तकपर चढ़ाया ॥ ३६ ॥ उत्तम वस्त्र-आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप, अमृतसे भोजन आदि अनेक वैभवसे उनकी पूजा की और अपना तन, मन, धन, कुटुम्ब सब अर्पण किया ॥ ३७ ॥ हे नृप ! राजा बलि भगवान्‌के चर-

णारविन्दको बारम्बार मस्तकपर धर प्रेमसे द्रवीभूत हुई बुद्धिसे आनन्दके आंसू नेत्रोंमें भरे पुलकितशरीर हो इस प्रकार कहने लगे ॥ ३८ ॥ राजा बलि बोले कि, समस्त विश्व फणके ऊपर धारण करनेवाले शेषरूप तुमको प्रणाम है और सब जगत्के रचनेवाले तुमको नमस्कार है, सांख्यशास्त्र योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले ब्रह्म परमात्मा तुमको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ योगीश्वरोंको भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, वह हमको हुआ, यह आश्चर्य नहीं है, यद्यपि प्राणियोंको तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है, परंतु तो भी तुम्हारी कृपासे किसी-किसी को सुलभ हो जाता है, इसलिये रजोगुणी-तमोगुणी स्वभाववाले हम असुरोंको अकस्मात् आपने दर्शन दिया ॥ ४० ॥ बड़ा आश्चर्य है, हम शत्रु सत्त्वगुणी भक्तोंसे भी बड़भागी हैं, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथोंमें मुख्य हैं ॥४१॥ हम और हमसे दूसरे लोगोंने शास्त्रकी रक्षा करनेवाले सत्त्वगुणी स्वभाव तुमसे नित्य शत्रुता कर रखी है, उन्हें भी आपका दर्शन प्राप्त हो जाता है॥४२॥कोई एक (शिशुपालादि) वैर भक्तिसे तुमको जैसे पा गये और गोपी आदिकोंने कामभक्तिसे जैसे तुम्हें पाया, ऐसे ही सत्त्वगुणसे देवता तुमको प्राप्त हुए ॥४३॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! इस प्रकार तुम्हारी योगमायाको जब योगेश्वर भी नहीं जानते तो हम असुर क्या जान सकते हैं ॥४४॥ इसलिये हमपर आप ऐसी दया करो कि, जिससे निष्काम पुरुषोंके ढूँढ़ने योग्य तुम्हारे चरणारविन्दका आश्रय ले चरणारविन्दसे अलग घररूप कुएँसे निकलकर विश्वकी रक्षा करनेवाले वृक्षकी जड़ोंमें आपसे ही गिरे फल फूलोंको भोजनकर मैं शान्तचित्त होकर अकेला विचरूं अथवा सबकी सहायता करनेवाले महात्मा पुरुषोंके संग विचरूं ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! सब जीवोंके स्वामी ! हमें शिक्षा देकर पापरहित करो, जिस शिक्षाको श्रद्धापूर्वक पालनेसे पुरुषोंके विधिनिषेधरूप बन्धन छूट जाते हैं ॥४६॥ श्रीभगवान् बोले कि इस स्वयंभुव मन्वन्तरमें मरीचि प्रजापति की ऊर्णा स्त्रीमें छः पुत्र हुए । एक समय देवतारूप छहों पुत्र अपनी कन्याके पीछे भागे, ब्रह्माजीको देखकर हँसे ॥४७॥ इस पापकर्मसे असुरयोनिको प्राप्त हुए, फिर उन्होंने हिरण्यकशिपुसे जन्म लिया, वे ही छहोंने हिरण्यकशिपुके यहांसे योगमायाकी प्रेरणासे ॥ ४८ ॥ देवकीके उदरमें जन्म लिया, जो कंसके हाथसे मारे गये, वे अब तुम्हारे पास हैं; इन्हें देवकी अपना पुत्र मानकर सोच करती है ॥४९॥ माता देवकीके शोक दूर करनेके लिये यहां से इन छहों पुत्रोंको ले जायँगे, इसके उपरान्त शापसे छूट खेदरहित होकर ये देवलोकमें जायँगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभुक्, और घृणी ये जो छः पुत्र हैं, वे मेरे प्रसादसे मुक्त हो जायँगे ॥५१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार जब कहा तब राजा बलिसे पूजित हो श्रीकृष्ण बलदेव उन पुत्रों को संग ले द्वारकापुरीमें आकर माता देवकीको दे दिये ॥५२॥ पुत्रोंके स्नेहसे जिसके स्तनोंमें दूध चू रहा था ऐसी देवकी उन बालकों को देख गोदमें बैठाकर छातीसे लगाया और बारम्बार माथा सूँघने लगी ॥ ५३ ॥ सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली विष्णु भगवान्की मायासे मोहित और पुत्रोंको छातीसे लगानेके कारण मग्न देवकी प्रसन्न होकर पुत्रोंको स्तन पिलाने लगी ॥५४॥ गदाके धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पीनेसे बचा अर्थात् भगवान्का प्रसाद वह अमृतरूप देवकीका दुग्धपान कर और श्रीकृष्णके अंग स्पर्श करनेसे "हम देवता हैं" यह ज्ञान होनेसे वह देवता गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र और देवकी तथा वसुदेवजीको नमस्कार कर सब प्राणियोंके देखते देवताओंके धाम देवलोकमें चले

गये ❋ ॥५५॥५६॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित् ! मरे हुये पुत्रोंका आगमन और फिर गमन देखकर विस्मित देवकीने जान लिया कि यह सब श्रीकृष्णकी रची हुई माया है ॥ ५७ ॥ अनंतशक्ति परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे-ऐसे आश्चर्ययुक्त अनन्त चरित्र हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनकादिक ऋषीश्वरो ! व्यासनन्दन महात्मा शुकदेवजीके कहे हुए और सब जगत्के पापोंके दूर करनेवाले भक्तोंको आनन्ददायक अमृतरूपी कीर्ति मुरारि भगवान्के चरित्रोंको भगवान्में चित्त लगाकर जो पुरुष श्रवण करे अथवा श्रवण कराये वह पुरुष काल और मायासे रहित होकर भगवान्के परमधामको प्राप्त होता है॥५९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे मृताग्रजानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

दोहा—हरण सुभद्राको कियो, छयासी अर्जुन धीर ।
किया सुखीश्रुतदेवको, अरु द्विजको यदुवीर ॥

राजा परीक्षित् पूछने लगे कि, हे योगीश्वर श्रीशुकदेवजी ! बलराम और श्रीकृष्णचन्द्रकी भगिनी सुभद्रा जो मेरी दादी थी,उसके संग अर्जुनने जिस प्रकार विवाह किया,वह मेरी सुनने की इच्छा है ॥१॥ यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! एक समय सामर्थ्यवान् अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करता-करता प्रभास तीर्थमें पहुँचा ॥ २ ॥ वहां जाकर अपने मामाकी पुत्री सुभद्राको बलदेवजी दुर्योधनको व्याह देंगे और वसुदेवादिकोंकी इसमें सम्मति नहीं है, यह बात सुन उस सुभद्राको लेनेकी इच्छासे अर्जुन संन्यासी बन तीन दण्ड धारण कर द्वारकापुरीमें आया ॥ ३ ॥ अपने कार्यको सिद्ध करनेकी इच्छासे अर्जुनने वर्षाऋतुके चार महीने द्वारकापुरीमें बिताये, पर वहांके मनुष्योंको और बलरामजीको भी इस छलकी खबर न हुई। इस कारण वे उसका नित्यप्रति सम्मान करते थे ॥ ४ ॥ एक दिन संन्यासीभावसे अर्जुनको निमन्त्रण देकर घरमें बुला श्रद्धापूर्वक बलदेवजीने जो भोजन परोसा, उसे अर्जुनने भोजन किया ॥ ५ ॥ वहां शूरवीरोंके मानको हरनेवाली एक अत्यन्त सुन्दर कन्या अर्जुनने देखी, जिसपर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गये और रतिके अभिप्रायसे चलायमान मन सुभद्रामें लग गया ॥ ६ ॥ स्त्रियोंका मन हरनेवाले अर्जुनको देख सुभद्राने भी अपना मन अर्जुनमें लगाया और लाजभरे नेत्रोंसे कटाक्षसहित उसकी ओर देखने लगी ॥ ७ ॥ बड़े बलवान् कामदेवसे चलायमान चित्त अर्जुनने केवल सुभद्राका ध्यान और हरण करनेका अवसर देखते बलदेवजीके किये सम्मानसे कुछ सुख नहीं पाया ॥ ८ ॥ इसके उपरांत बड़ी देवीकी यात्रामें रथमें बैठकर निकली सुभद्राको

❋ शंका—देवकीके सब बालकोंको श्रीकृष्णने ला दिया। तबसे सब बालक देवकीके स्तनका दूध पीने लगे। परंतु पहले तो भगवान्ने देवकीके स्तनोंका दूध पिया था और जो दूध शेष रहा उसको देवकीके और बालकोंने पिया, अब यहां मुझको यह संदेह है कि श्रीकृष्ण तो जन्म लेते ही गोकुल चले गये, देवकीका दूध नहीं पिया, फिर व्यासजी क्यों कहते है, देवकीके स्तनों का दूध भगवान्ने पिया और जो बाकी रहा उसको और पुत्रोंने पिया।

उत्तर—शास्त्रमें लोकमें तीन प्रकारका कर्म वर्णन होता है—एक वचनसे कर्म होता है, दूसरा मनसे कर्म होता है और तीसरा शरीरसे कर्म होता है। इन तीनों कर्मोंमें कोई कर्म छोटा नहीं है और कोई बड़ा भी नहीं है अर्थात् ये तीनों कर्म समान हैं। देवकीके दूध को भगवान् सदा मनसे पीते रहे, जो मनसे दूध पिया तो वचन तथा शरीरसे दूधका पीना सत्य हो गया, इसलिये व्यासजीने देवकीके दूधको कहा।

माता, पिता, देवकी; वसुदेव और श्रीकृष्णकी सम्मतिसे महारथी अर्जुनने हरण किया ॥९॥ रथमें बैठ धनुष हाथमें ले अर्जुन चारों ओरसे रोके प्यादोंको भगाकर उनके पुकारते ही जैसे सिंह अपने भागको ले जाता है उसी प्रकार लेगया ॥१०॥ अर्जुन सुभद्राको ले गया, यह बात श्रवण कर जैसे पूर्णमासीको समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार क्रोधित हुए बलदेवजीको सुहृदों सहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शान्त किया ॥११॥ फिर बलदेवजीने अति आनन्दपूर्वक दहेजमें उन दूलह दुलहिनके लिये अमूल्य सामान, हाथी, घोड़े, रथ, दास और दासियाँ आदि भेजे ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि, हे महाराज परीक्षित् ! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक भक्तिसे सम्पूर्ण मनोरथ, शान्तस्वभाव, विवेकी, विषयोंमें अनासक्त एक श्रुतदेव नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था ॥ १३ ॥ विना उपाय किये ही मिले हुए भोजनसे निर्वाह करके अपने कर्मोंको करे, ऐसा गृहस्थी ब्राह्मण विदेहदेशकी मिथिलापुरीमें वास करता था ॥ १४ ॥ जितनेमें शरीरका निर्वाह हो उतना भोजन प्रतिदिन अकस्मात् उसके लिये आ जाता था और अधिक नहीं, परन्तु उतनेमें ही सन्तोष करके यथायोग्य सन्ध्यो-पासनादि कर्म करता था ॥ १५ ॥ हे परीक्षित् ! जैसा श्रुतदेव ब्राह्मण भक्त था उसी प्रकार मिथिलादेशका पालन करनेवाले जनकके वंशमें हुआ निरभिमान बहुलाश्व नामसे विख्यात राजा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भक्त था, ब्राह्मण और राजा ये दोनों श्रीकृष्णचन्द्रके प्यारे थे ॥ १६ ॥ उन दोनों भक्तोंके ऊपर प्रसन्न हुए सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रथवान्के लाये रथमें बैठ मुनियोंको संग ले विदेहदेशको चले गये ॥१७॥ तब नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणी, मैं (शुकदेवजी), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदि ऋषि भी संग गये थे ॥१८॥ हे राजन् ! मार्गमें मुनियोंको संग लिये श्रीकृष्णचन्द्र जहां जहां गये, वहां-वहां पुरवासी उनके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर उनकी स्तुति करते थे जैसे ग्रह उदय होकर सूर्यको अर्घ्य देते हैं॥१९॥आनर्त्तदेश, धन्व, कुरु, जांगल, कङ्क, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कोशल, अर्ण इन देशोंके वासी स्त्री पुरुष उदार हँसनियुक्त स्नेहभरी चित-वनवाले श्रीकृष्णचन्द्रका मुखारविन्द दृष्टि भरकर देखने लगे॥२०॥ अपनी कृपादृष्टिसे अज्ञान दूर कर पुरुषोंकी दृष्टिको कल्याण और तत्त्वज्ञान देते, दिशाओंके अन्ततक व्याप्त पापनाशक देवता और मनुष्योंसे गाये अपने यशको श्रवण करते त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णचन्द्र धीरे-धीरे विदेहके देशमें पहुँचे ॥२१॥ हे राजा परीक्षित् ! वह संपूर्ण पुरवासी देशवासी जन श्रीकृ-ष्णचन्द्रको आया सुन हर्षित हो पूजाके योग्य सामग्रियोंको हाथमें ले सम्मुख आये ॥२२॥ उत्तमयशस्वी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन कर प्रफुल्लित मुख और अन्तःकरणवाले पुरुष हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर नमस्कार करने लगे और उक्त मुनियोंको भी प्रणाम किया ॥२३॥ जगतके गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये आये हैं इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर मिथिलापुरीका राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मण दोनों श्रीकृष्णचन्द्र के चरणोंमें आकर गिर पड़े ॥ २४ ॥ मिथिलापुरीका बहुलाश्व और श्रुतदेवजी इन दोनोंने एक सङ्ग हाथ जोड़ ब्राह्मणोंसहित श्रीकृष्णचन्द्रका आतिथ्यभाव कर निमन्त्रण किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दोनोंका निमंत्रण मान उनका प्रिय करनेके लिये ब्राह्मणों सहित दो रूप धर दोनोंके घर गये। उस समय राजा और ब्राह्मणोंने यह नहीं जाना कि इन्होंने दो रूप कर लिये हैं ॥ २६ ॥ उदारमन बड़ी भक्तिसे हृदयमें हर्ष, नेत्रोंमें आंसू भरे

जनकवंशी राजा बहुलाश्वने असत् पुरुषोंके सुननेमें भी न आये, ऐसे भगवान्‌को अपने घर लाकर सुखासन पर सुखसे बैठाया और वे सुखसे योग्य आसनपर बैठे ॥२७॥ इसी प्रकार मुनियोंको नमस्कार कर उनके चरणोंको धोकर लोकोंको पवित्र करनेवाले चरणोंका जल ॥२८॥ कुटुम्बसहित राजा बहुलाश्वने अपने माथे पर चढ़ाकर ईश्वर और ईश्वरके समान ब्राह्मणोंका गंध, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल, इन सामग्रियोंसे पूजन किया ॥ २९ ॥ भोजनकर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रसन्न करता गोदमें धरे श्रीकृष्णके चरण धीरे-धीरे दाबता हुआ वह यह कहने लगा ॥३०॥ राजा बहुलाश्वने कहा कि हे समर्थ ! सब प्राणियोंके आत्मा साक्षी स्वयंप्रकाश तुम्हीं हो, इसलिये तुम्हारे चरणारविन्दका स्मरण करनेवाले मुझे तुमने दर्शन दिया ॥ ३१ ॥ "मेरे एकान्त भक्तसे बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी प्यारे नहीं हैं" यह जो तुमने कहा, वह अपना वचन सत्य करनेके लिये आपने हमको दर्शन दिया ॥ ३२ ॥ भक्त तुम्हें प्रिय हैं, इस प्रकार जान कर कौन पुरुष तुम्हारे चरणारविन्दका त्याग करेगा ? निष्किंचन अर्थात् जिनके पास कुछ नहीं है, शान्तशील–स्वभाव मुनियोंको तुम अपना पद दे चुके हो ॥ ३३ ॥ ऐसे तुम यदुवंशमें अवतार लेकर संसारी जीवोंके संसार छुड़ानेके लिये त्रिलोकीका दुःख दूर करनेवाले यशका विस्तार करते हो ॥ ३४ ॥ ऐसे अकुण्ठबुद्धि शान्त तप करनेवाले नारायण ऋषि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे व्यापक ! सब ब्राह्मणों सहित कुछ काल हमारे घरमें वास कर अपने चरणकमलकी रजसे इस निमि राजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ राजा बहुलाश्वने जब इस प्रकार बहुत प्रार्थना की तब लोगोंके पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मिथिलापुरीके पुरुष स्त्रियोंका कल्याण करनेके लिये कुछेक दिनतक वास किया ॥ ३७ ॥ जैसे जनकवंशोत्पन्न बहुलाश्व राजाको प्राप्त हुए, उसी प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मण भी आया देख श्रीकृष्णचन्द्र तथा मुनियोंको नमस्कार कर अत्यन्त हर्षित हो नाचने लगा ॥ ३८ ॥ तृण पत्र लाकर बिछा और कुशाके आसनपर ब्राह्मणों सहित श्रीकृष्णचन्द्रको बैठाया "भले आये" इस प्रकार बड़ाई कर स्त्रीसहित श्रुतदेव ब्राह्मण उनके चरण धोने लगा ॥ ३९ ॥ और अति प्रसन्नतासे पूर्ण मनोरथ हो बड़भागी श्रुतदेव ब्राह्मणने चरणारविन्दके धोवन जलसे आत्मासहित संपूर्ण कुलको पवित्र किया ॥ ४० ॥ आमले आदि फलोंसे और मङ्गलरूप अमृतके समान मधुर जलसे तथा सुगंध युक्त मृत्तिका; तुलसी, कुश और अनायासलब्ध पूजाकी सामग्रीसे सत्त्वगुणको बढ़ानेवाले शुद्ध अन्नसे श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करके आराधना करने लगा ॥ ४१ ॥ जिनकी चरणरेणु सर्वतीर्थरूप ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र उनके रहनेके स्थान ब्राह्मणोंका संग घररूप अँधेरे कुँएमें पड़े मुझे किस कारणसे प्राप्त हुआ ? इस प्रकार ब्राह्मण तर्क करने लगा ॥ ४२ ॥ आतिथ्य कर भलीभांति विराजमान् ब्राह्मणोंके निकट स्त्री कुटुम्ब और पुत्र सहित उपस्थित हो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका स्पर्श करता हुआ श्रुतदेव यह वचन कहने लगा ॥४३॥ श्रुतदेव बोला कि जिस समय शक्तिसे इस विश्वको रचकर अपनी सत्तासे इसमें प्रविष्ट हुए, उसी समय तुम परम पुरुष हमको प्राप्त हुए, परंतु इस सांवरे स्वरूपका दर्शन अभी प्राप्त हुआ ॥४४॥ जिस प्रकार सोते हुए पुरुषने अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनसे ही दूसरे शरीरको रचकर उसमें मानो प्रवेश किया हो,

उसी प्रकार तुमने भी इस संसारको निर्माणकर मानो इसमें घुसे हो, मुझको ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ जो तुम्हारी कथाओंको श्रवण करे, तुम्हारे नामका कीर्त्तन करे, सदा तुम्हारी पूजा करे तुमको प्रणाम करे; उन शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंको भी आप हृदयमें ही दर्शन देते हो, परंतु मुझे तो आपने प्रत्यक्ष ही दर्शन दिया इस कारण मुझे जान पड़ता है कि मैं सबसे बढ़कर आज दिन भाग्यशाली पुरुष हूँ ॥४६॥ कर्मोंसे चलायमानचित पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित हो, परन्तु अति दूर और तुम्हारी कथाको सुनने और तुम्हारे नाम लेनेसे जिनके अन्तःकरण निर्मल हो गये हैं, उन पुरुषोंके तुम सदा समीप रहते हो ॥४७॥ देह और गेहमें अभिमानरहित पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले और देहगेहमें अभिमानी पुरुषको आप संसार देते हो, कार्य महदादिक और कारण माया इन दोनों उपाधियोंको सेवन करते हो । अपनी मायासे आप ढके नहीं हो, ऐसे जीवोंका ज्ञान मायासे आच्छादित करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूँ । हम भक्तोंको आज्ञा दो, आपका कैसे पूजन करें ? जबतक तुम नेत्रोंके संमुख नहीं आते, तबतक ही मनुष्यको क्लेश रहता है ॥४८॥४९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप-श्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार श्रुतदेव ब्राह्मणका वचन सुनकर शरणागतोंके दुःख हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथसे ब्राह्मणका हाथ पकड़ हँसकर यह वचन बोले ॥५०॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्राह्मण ! ये मुनिलोग तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए यहां आये हैं, यह तुम निश्चय जानो, क्योंकि यह पुरुष अपने चरणारविंदकी रजसे मनुष्योंको पवित्र करते मेरे साथ भ्रमण किया करते हैं ॥ ५१ ॥ देवता क्षेत्र, तीर्थ, ये दर्शन, स्पर्शन, अर्चन करनेसे बहुत कालमें धीरे-धीरे पवित्र करते हैं, वह भी महात्माओंकी इच्छा हो तो और ब्राह्मण तो शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं ॥ ५२ ॥ इस संसारमें समस्त प्राणियोंकी अपेक्षा ब्राह्मण जन्मसे श्रेष्ठ हैं और जो तप करके श्रेष्ठ हो तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥५३॥ यह मेरा चतुर्भुजरूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे विशेष प्यारा नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और देवतारूप मैं हूँ और देवताओंकी सिद्धि वेदके अधीन होनेसे ब्राह्मण मुझे इस रूपसे भी अधिक प्रिय हैं ॥५४॥ दुष्ट बुद्धि जन ऐसा न जानकर दोषको देखते हैं, उत्तम बुद्धिवाले मेरा, गुरु, ब्राह्मण और आत्माका पूजन करते हैं ॥५५॥ स्थावर-जङ्गमरूप यह विश्व और विश्वके कारण महदादिक पदार्थ सब ईश्वररूप ही हैं, इस प्रकारसे ब्राह्मण सब ओर अपनी दृष्टिसे देखते हैं ॥५६॥ हे ब्राह्मण श्रुतदेव ! जैसी श्रद्धा मुझमें है, इसी प्रकार श्रद्धासहित ब्रह्मर्षियोंका पूजन करो, मुझमें इनमें एक सा भाव करोगे तो मेरी साक्षात् पूजा हो जायगी और जो भेदभावसे बहुतसी संपत्तियोंसे भी मेरी पूजा करोगे तो भी प्रसन्न न हूँगा ॥५७॥ इतनी कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभाग परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाकर श्रुतदेव ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रसहित सब ब्राह्मणोंका एक भावसे आराधना कर सुन्दर गतिको प्राप्त हुआ और मिथिलापुरीके राजाने भी सुन्दर गति पायी ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार भक्तोंपर प्रीति करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने भक्त बहुलाश्व और श्रुतदेवके यहां वासकर सन्मार्ग अर्थात् उपासनाकांड, ज्ञानकाण्ड, कर्मकांड इन तीनोंका उपदेश कर फिर द्वारकापुरीमें आकर सुशोभित हुए ॥ ५९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे श्रुतदेवाद्यनुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

दोहा–सत्तासी अध्यायमें, नारद हरि सुखधाम।
परब्रह्म निश्चय कियो, वेद स्तुतिपरिणाम॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! पहले अध्यायके अंतमें भगवान् वेदका अर्थ ब्रह्मपर है, इस प्रकार उपदेश करके द्वारकाको चले गये, परंतु शब्दरूप वेदोंका ब्रह्मपरत्व नहीं बनता, क्योंकि मुख्या, लक्षणा और गौणी इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंसे शब्दकी प्रवृत्ति होती है। मुख्या वृत्ति भी दो प्रकारकी हैं–रूढ़ि और योग। जो वस्तु स्वरूप, जाति अथवा क्रियासे वा गुणसे निर्देश की जाय उसमें रूढ़िकी प्रवृत्ति होती है, जिसका स्वरूप जाति, क्रिया, गुणसे निर्दिष्ट न हो उनमें यह सम्भव नहीं हो सकता। वह ब्रह्म तो जाति, गुण, क्रिया, अथवा स्वरूपसे निर्दिष्ट नहीं होता, इसमें रूढ़िकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती और कार्य-कारणसे परे तथा असंग होनेसे योगवृत्तिका भी सम्भव नहीं हो सकता और लक्षणमें सम्बन्धकी आवश्यकता है, ब्रह्म सब संबन्धसे रहित है, इस लक्षणवृत्तिका भी संभव नहीं हो सकता और जो श्रुति गुणका निरूपण करे तो ब्रह्म स्वयं निर्गुण है, इससे गौणीवृत्तिसे ब्रह्मका निरूपण नहीं हो सकता। फिर ब्रह्मको श्रुति किस प्रकारसे प्रतिपादन करती है? ॥१॥ राजा परीक्षित्का यह प्रश्न सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित्! नित्यमुक्त सर्वशक्तिमान् ईश्वरने प्रलयकालमें अपने लीन हुए प्राणियोंके विषय भोगरूप अर्थ, जन्मसे कर्म पर्यन्तरूप धर्म परलोकमें उनके सुख भोगरूप काम और कल्पनावृत्तिरूप मोक्ष, पुरुषार्थ, देनेके लिये बुद्धि, इंद्रिय, मन और प्राण इनकी रचनाकी है। यदि यह न हो तो अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्ति नहीं हो सकती और जो स्वरूपका विचार न हो तो मोक्ष भी नहीं मिल सकता है, "यः सर्वज्ञः सर्व शक्तिमान" इस लक्षणका निरूपण करनेवाली श्रुति सगुणब्रह्मका निरूपण करती है और जीवोंकी संसारनिवृत्तिके लिये "तत्त्वमसि" (वह तू है) यह वाक्य ईश्वरकी ईश्वरता प्रतिपादन करता है। इससे नित्यमुक्त ईश्वरका वाचक 'तत्' शब्द और संसारी जीवका वाचक त्वंपदका सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है। यह जहदजहत्स्वार्था लक्षणासे अथवा भागत्याग-लक्षणासे बन सकते हैं। तत्पद तो सर्वज्ञादि गुणवाले ईश्वरका और त्वंपद अल्पज्ञादि गुणवाले पदार्थका वाचक है, इन परस्पर विरुद्ध गुणवाले शब्दोंमेंसे परस्पर विरुद्धरूप अशंका त्याग करनेसे दोनोंमें प्राप्त चैतन्यरूपका समान अंश ग्रहण करके "तत्त्वं" यह दोनों पद ब्रह्मरूप एक अर्थके प्रतिपादक होकर एकताका निरूपण कर शुद्ध ब्रह्मको कथन करते हैं ओर 'स्थूलमनण्वह्रस्वम्' इत्यादि निषेधका निरूपण करनेवाली श्रुति तत्पदार्थके शोधन करनेमें चरितार्थ हो उपाधिके निषेधसे साक्षात् निर्गुण ब्रह्ममें पर्यवसान होती है। उत्पत्ति, पालन और प्रलयकी प्रतिपादक श्रुति भी आवागमनरूप सृष्टिका निरूपण कर उसीसे वैराग्यरूप ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती। ज्ञानके परम्परासम्बन्धसे ब्रह्म को ही प्रतिपादन करती है। उपासनाकी निरूपण करनेवाली श्रुति उपासना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञानसाधनाका उपदेश देती ज्ञानद्वारा ब्रह्मका ही प्रतिपादन करती है, इस कारण सर्वथा श्रुति ब्रह्मको ही प्रतिपादन करती है, यह अभिप्राय है॥ २॥ यह जो ब्रह्मपर उपनिषद है, वह प्रथम हुए सनकादिकोंने पहले धारण किये हैं, जो पुरुष निष्किंचन होकर श्रद्धापूर्वक उन्हें धारण करेंगे वे मोक्षको प्राप्त होंगे॥ ३॥ हे नृपोत्तम! यहां तुम्हें नारायणसम्बन्धी गाथा हम सुनाते हैं, जिसमें नारदजी और ऋषि नारायणजीका संवाद है॥ ४॥

एक समय भगवान्‌के प्यारे नारदजी समस्त लोकोंमें घूमते-घूमते सनातन ऋषिको देखनेके लिये नारायणके आश्रम बदरिकाश्रममें आये ॥ ५ ॥ जो नारायण भरतखण्डमें लोकोंके कारण क्षेम और मंगलके लिये धर्म ज्ञानसे युक्त कल्पपर्यंत तप करते हैं ॥ ६ ॥ वहां कलाप ग्रामके वासी ऋषियोंसहित विराजमान नारायणजीसे नम्र होकर पूछने लगे ॥७॥ उस समय जनलोक निवासी सनकादिकोंमें जो ब्रह्मविचार हुआ था, वही भगवान् नव ऋषियोंके श्रवण करते हुए नारदजीसे कहने लगे ॥८॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे नारदजी ! पहले जनलोकमें ब्रह्माके मनमें उत्पन्न हुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिक मुनियोंका ब्रह्मसूत्र अर्थात् ब्रह्मविद्याका विचार हुआ था ॥ ९ ॥ परन्तु हे नारद ! उस समय श्वेतद्वीपके ईश्वर अनिरुद्धमूर्तिके देखनेके लिये श्वेतद्वीपमें तुम गये थे, तब ब्रह्मवाद हुआ था, उस ब्रह्मवादमें श्रुति भगवान्‌का प्रतिपादन करती है, वहां यही प्रश्न हुआ जो तुमने मुझसे पूछा है ॥१०॥ यद्यपि श्रवण, तप, शील, शास्त्राभ्यास, मित्र, शत्रु, मध्यम इन सबमें सनकादिक समान ही हैं परंतु तो भी एकको वक्ता बनाकर सम्पूर्ण श्रोता बन गये ॥११॥ सनन्दनजी बोले कि अपने निर्माण किये इस संसारका नाश कर अपनी शक्ति सहित सोये हुए भगवान्‌को प्रलयके अंत समयमें ब्रह्मके प्रतिपादक वचनोंसे श्रुतियाँ जगाने लगीं ॥ १२ ॥ जैसे रात्रिके सोये हुए चक्रवर्ती राजाको प्रातःकालको राजोपजीवी बन्दीजन उठ उनके पराक्रमके सुन्दर यशको वर्णन करके जगाते हैं ॥१३॥ श्रुतियाँ बोलीं कि हे सर्वविजयी ईश्वर ! तुम्हारी जय हो, आप अपने वैभवको प्रकट करो और इस घोर निद्राको त्यागकर हमारा प्रतिपालन करो, जिस प्रकार स्त्री दूसरे पुरुषको छलनेके लिये अनेक प्रकारके रूप और गुण धारण करती है उसी प्रकार आनन्दादिकका आवरण करनेके लिये गुण ग्रहण करनेवाली स्थावर और जङ्गम शरीराश्रित जीवोंकी अविद्याका नाश करो, क्योंकि अनादिकालसे यह अविद्या संसारके जीवोंको मोहित करके अनेक प्रकारके दुःख दिखाती है । इसी कारण प्राणियोंको अनेक योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है, यह सब अविद्याका ही प्रभाव है, क्योंकि यह अविद्या महाबलवान् है, मनुष्योंका तो क्या सामर्थ्य है ? देवताओंके मनको भी मोहनेवाली है, वे भी इसके दूर करनेका सामर्थ्य नहीं रखते, आप ही इसको दूर कर सकते हो, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी और मायासे रहित हो और महागम्भीर संसार-सागरसे पार उतार मोक्षके देनेवाले आप ही हो, इसी लिये बारंबार आपसे यह निवेदन है कि आप इन जीवोंपर अनुग्रह करके इस महाप्रबल अविद्याका नाश करो, क्योंकि माया आपके वश होनेसे सब ऐश्वर्य आपको स्वरूपसे ही प्राप्त है । इसी कारण अविद्या आपमें किसी प्रकारका दोष नहीं लगा सकती और आप सनातन धर्म पालने और भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जगतमें अनेक अवतार धारण करते हो । हे सर्व प्राणियोंके बोध करनेवाले परमेश्वर ! सृष्टिके आदि समयमें माया करके क्रीड़ा करते हो और आनन्द स्वरूप आत्मा करके वर्तमान आपका वेद प्रतिपादन करता है और आप ही संपूर्ण शक्तियोंके जाननेवाले हो । आप अखण्डविभव और ज्ञान शक्तिसे जीवोंका अज्ञान दूर करते हो, इस विषयमें हम श्रुति ही प्राण हैं ॥ १४ ॥ (१) यदि कहो कि मन्त्रोंमें अग्नि आदि देवताओंका प्रतिपादन देखनेमें आता है, वे भी सब तुम्हारे ही रूप हैं, ऐसा ज्ञानी जानते हैं, क्योंकि यह जो कुछ दृश्यमान है, इसके न होनेपर आप ही अवशेष रहते हो, इस सब जगत्‌की उत्पत्ति नाश आप से ही होते हैं, जैसे

घटादिकोंका उदय, अस्त मृत्तिकामें होता है, मन्त्रदृष्टया ऋषियोंके मन और वचनका तात्पर्य तुम्हारे विषय हैं, अन्यमें नहीं, जैसे मनुष्य अपने चरण मृत्तिका, पाषाण, ईंट इनके ऊपर धरता है, परन्तु भूमिसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार जो कुछ विचार है वह सब तुम्हींसे हुआ है, सर्वकारण परमार्थरूप तुम हो; इस प्रकार हम (वेद) प्रतिपादन करते हैं ॥ १५ ॥ (२) हे त्रिगुण मायामृगीके नचानेवाले ! विवेकी पुरुष तुम्हारे अखिल लोकोंमें मल नाश करनेवाले कथारूपी अमृतके समुद्रको सेवन करके पाप और दुःखोंको त्याग देते हैं । जब तुम्हारी कथामात्रसे ही पापोंका नाश हो जाता है, तब फिर स्वरूपका स्मरण कर अन्तः-करणके गुण रागादिक और कालके गुण जरादिक जिनके निवृत्त हो गये । इसमें क्या आश्चर्य है ? और हे प्रभो ! तुम्हारे परम अखण्ड आनन्द अनुभव स्वरूपका भजन करके दुःखोंको त्यागे तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥१६॥ (३) जो पुरुष तुम्हारा भजन नहीं करते उनकी निंदा है और जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करते हैं, उनका जन्म सफल है, इस प्रकार स्तुति करते हैं, अथवा जो प्राणधारी तुम्हारा भजन करके श्वासोंको पूर्ण करते हैं वे ही सफल-जन्मा हैं और जो विना भजन किये श्वास लेते हैं, वह लुहारकी धौकनीके समान वृथाश्वास हैं, तुम्हारे भजनके विना कृतघ्नियोंको फलकी सिद्धि नहीं होती, फिर जिसके अनुग्रहसे महत्तत्त्व अहंकारादिक तत्त्व इस प्रकार देहको रचते हैं, उस देहमें अन्नमय, मनो-मय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोश जो देह, प्राण, मन, बुद्धि और ज्ञान कहलाते हैं, उनमें प्रवेश करके उन आकारोंसे चेतन करनेवाले तुम्हीं हो, इस प्रकार वेदने अन्तमें वर्णन किया है । अन्नमयादिकोंके आकारवाला पुरुष अन्नमयादिकोंमें मिल रहा है, यद्यपि यह बात सत्य है, परंतु तो भी तुम्हारा असंगत्व नहीं मिटता तो अन्नमयादिकोंके अन्तमें ही इसलिये पुच्छसे वर्णन करते हैं । स्थूल सूक्ष्मसे परे हो और इनमें अविशेषरूप हो, इस कारण सत्य हो, शाखाचन्द्रके तुल्य शुद्धरूप दिखानेके लिये अन्नमयादिकोंमें सम्बन्ध कहा है, जैसे शुद्ध चन्द्रमाके दिखानेको वृक्षकी शाखाका अवलम्बन करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मके दिखानेको कोशादिका अवलंबन है ॥१७॥ (४) हे अनन्त ! जो मनुष्य ऋषिवर्त्म अर्थात् वेदोक्त कर्म मार्गमें स्थित होकर वेदके उदररूपी कर्मकी उपासना करते हैं अर्थात् अग्निहोत्र त्याग करते हैं, भगवद्दर्शनमें रुचि नहीं करते वे कूपसदृश हैं अर्थात् उनके नेत्रोंमें धूरि पड़ी हुई है, इसलिये सूक्ष्म वस्तुका दर्शन नहीं कर सकते "यज्ञो वै विष्णुः" इस श्रुतिके अनुसार वे भी भगवदुपासक ही हैं और योगीजन नाड़ियों द्वारा हृदयमें भगवदुपासना करते हैं, इसलिये वे आरुणी अर्थात् अरुणोदयमें थोड़ा प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार इनकी उपासना है और आपकी प्राप्तिका स्थान सुषुम्ना नाड़ी जो मूलाधारसे हृदयमें हो ब्रह्मरन्ध्र तक गयी है, जिसको पाकर फिर प्राणी संसारमें नहीं आते उसीका नाम मुक्ति है ॥१८॥ (५) तुम सबके उपादान कारण हो, इसलिये प्रथम ही सबमें वर्तमान हो । यद्यपि तुम्हारे निर्मित किये ऊँच, नीच, मध्य देहोंमें तुम्हारा प्रवेश होना संभव नहीं, तो भी जैसे उनमें प्रवेश किये हो, उसी प्रकार देहादिकोंका अनुसरण करते न्यूनाधिक प्रतीत होते हो, जैसे अग्नि तारतम्यरहित है, परन्तु काष्ठमें व्याप्त होनेसे उसीके समान प्रतीत होती है, उसी प्रकार आपको सब उपाधिसे रहित समान, एकरस जानकर दोनों लोकके कर्मफलरहित उज्ज्वल बुद्धिवाले मनुष्य असत्य देहा-दिमें सत्य मानकर आपकी ही उपासना करते हैं ॥ १९ ॥ (६) अपने कर्मोंसे प्राप्त हुए

नरकादिक देहमें यह जीव भोक्तृत्वसे वर्तमान है और भीतर-बाहर आवरणरहित संपूर्ण शक्तियोंके धारण करनेवाले तुम्हारा अंश ही है। इस प्रकार पंडित जीवकी गति विचार वेदोंके उत्पत्तिस्थान और संसारसे छुड़ानेवाले तुम्हारे चरणोंकी उपासना करते हैं। इसी प्रकार विश्वासपूर्वक अर्चन-वन्दन करना यही मर्त्यलोकमें उचित है ॥ २० ॥ (७) हे ईश्वर दुर्बोध आत्मतत्त्वके जाननेके लिये अवतार धारण करनेवाले तुम्हारे चरित्ररूपी अमृतसमुद्रमें अवगाहन कर श्रमरहित हो कोई एक तुम्हारे चरणकमलमें अवगाहन कर हंसके भक्त मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते और तुम्हारे समान रमण करते हैं; ऐसे भक्तोंके संगके लिये घर भी उन्होंने त्याग दिये हैं, जब गृहादिका त्याग कर दिया, तो परलोकके सुखकी क्या कथा है? इसलिये आपकी भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है ॥ २१ ॥ (८) तुम्हारी सेवाका साधक यह शरीर यद्यपि आत्मा सुहृद् और प्रियके समान स्वाधीन है; तो भी संमुख स्थित हितकारी प्यारे आत्मारूप आपका साक्षात् भावसे भजन नहीं करते और देहादिकके लालन-पालन करनेमें पड़े रहते हैं, यह बड़े कष्टकी बात है। मिथ्यादिकोंके सेवनसे असत् उपासनामें वासनावाले नीच देहको धारण करनेवाले बड़े भयरूप संसारमें भ्रमण करते हैं, इसलिये वे आत्मघाती हैं ॥ २२ ॥ (९) प्राण, मन, इंद्रिय जीतकर दृढ योगके करनेवाले मुनिलोग हृदयमें जिसकी उपासना करते हैं, वे इस तत्त्वको योग द्वारा प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार शत्रुभी तुम्हारे स्मरणसे तुमको प्राप्त हुए हैं तथा शेषके शरीरके तुल्य तुम्हारे भुजदण्डमें आसक्त-बुद्धि स्त्रियाँ भी तुमको प्राप्त हुई हैं। इसी कारण हम कहते हैं कि आपकी कृपादृष्टि सबपर समान है और हम तुम्हें देशकाल परिच्छेद रहित देखते हैं। तुम्हारा प्रताप ऐसा है कि जो जिस भावसे आपका ध्यान करे, सबको तुम्हारे चरणकमलकी प्राप्ति होती है ॥२३॥(१०) हे भगवन्! इस संसारमें पूर्वसिद्ध तुमको आधुनिक उत्पत्ति विनाशसे युक्त पुरुष कैसे जानेंगे? अर्थात् नहीं जानेंगे। तुमसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, ब्रह्माके पीछे आध्यात्मिक, आधिदैविक देवताओंके गण उत्पन्न हुए, इसके पीछे सब चराचर उत्पन्न हुए, इसलिये इन सबका वृत्तांत आप भलीभांति जानते हो, क्योंकि आप तो सबसे पूर्व अनादि हैं, फिर आपको पीछे उत्पन्न होनेवाला और नाशवान् कौन मूर्ख कह सकता है? जिस समय तुम सबका संहार करके शयन करते हो, उस समय जीवोंका ज्ञान साधन नहीं रहता, प्रलयके समय स्थूल आकाशादि नहीं तथा स्थूल सूक्ष्मसे आरब्ध शरीर भी नहीं है और शरीरका कारणरूप कालका विषमभाव भी नहीं रहता, उस समय इंद्रिय प्राणादिक कुछ नहीं है और सबका जाननेवाला पुरुष भी नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि पूर्वकालके पुरुष अपने पीछे हुओंके वृत्तांतको जानते हैं, परंतु पीछे उत्पन्न पूर्वजोंका चरित्र नहीं जान सकते, जिस प्रकार पिता तो पुत्रके वृत्तांतको भली प्रकार जानता है, क्योंकि उसके सामने उसका जन्म और सब कार्य हुए परंतु पुत्र पिताका वृत्तांत किसी रीतिसे नहीं जान सकता, क्योंकि जब उसका जन्म कर्म ही उसके आगे नहीं हुआ, फिर उसके भेदभावको वह कैसे जान सकता है? इसी प्रकार आपके पीछे हुये सब प्राणी आपको नहीं जान सकते, इससे आपका भजन करना ही उचित है ॥ २४ ॥ (११) मिथ्याभूत जगत्की उत्पत्ति है, अर्थात् यह पहले कुछ नहीं था, इस प्रकार वैशेषिकादिक आचार्य कहते हैं और जीवोंमें ब्रह्मत्व नहीं है, परंतु योगसाधनसे हो जाता है, यह योगशास्त्रवाले कहते हैं और इक्कीस प्रकारके दुःखोंका नाश मोक्ष है, इस प्रकार

नैयायिक कहते हैं और सांख्याचार्य आत्मामें भेदभाव मानते हैं और कर्मफलके व्यवहारको मीमांसक सत्य कहते हैं, वे सम्पूर्ण आरोपित भ्रमसे ही उपदेश करते हैं, तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते। वास्तवमें वह पुरुष त्रिगुणमय हो तो इनका कहना सत्य है, सो नहीं, त्रिगुणमय पुरुष यह भेद तुम्हारे विषे अज्ञानसे किया है, तुम अज्ञानसे परे सङ्गरहित ज्ञानघन हो, इसलिए तुममें अज्ञानका होना संभव नहीं ॥ २५ ॥ (१२) जो असत् नहीं उपजे और त्रिगुणमय पुरुष नहीं है तो इससे विदित हुआ कि यह सब प्रपञ्च और पुरुष संपूर्णतः तुमसे भिन्न नहीं है, उनके स्वरूपसे सत्यकी प्रतीति कैसे संभव है? मनोमात्र विलसित, त्रिगुणात्मक प्रपञ्च मिथ्या ही है, तो सत्य कैसे प्रतीत हो सकता है? उसके उत्तरमें कहते हैं, तुम अधिष्ठान हो, इस कारण तुम्हारी सत्तासे सत्यसा प्रतीत हो सकता है, यह केवल निषेधसे प्रतीत हुआ है; अर्थात् अभिप्रायसे मनुष्यसे पुरुषकी भिन्न जो सत्त्वप्रतीत होती है वह मनोमात्रका विलास है, आत्माके जाननेवाले इस भोक्ता और योगरूप जगत्को स्थिर हुए आत्माकी सत्तासे ही सत्तावाला कहते हैं, आत्मासे भिन्न सत्तावाला नहीं मानते। आत्माका कार्य है इसलिए भिन्न नहीं है, जैसे स्वर्णके विकार कुण्डलादिक आभूषणोंको स्वर्णके लेनेवाले त्याग नहीं करते, किंतु जैसे स्वर्ण ही जानकर ग्रहण करते हैं, इसी कारण अपने किये विश्वमें प्रविष्ट पुरुषरूप जीव भी आत्मा ही है; यह निश्चय है ॥ २६ ॥ (१३) परमात्माको सर्वत्र जान लेना और भक्ति न करना यह बात नहीं किन्तु उसकी सदा भक्ति करनी, क्योंकि जो आपको संपूर्ण पदार्थोंमें स्थित जानकर तुम्हारी सेवा करते हैं, वे संसारको तिरस्कार कर मृत्युके मस्तकपर चरण धर मुक्त हो जाते हैं और जो तुमसे विमुख हैं और तुम्हारे अभक्त हैं उन्हें पशुओंके समान वाणीसे तुम बांधते हो और जिसने आपसे प्रेम किया है, वह निश्चय अपनेको और दूसरोंको पवित्र कर सकते हैं ॥२७॥ (१४) हे प्रभो! तुम इंद्रियोंके संबन्धसे रहित हो और समस्त प्राणियोंकी इंद्रियोंकी शक्तियोंको प्रवृत्त करते हो, अपने स्वरूपसे ही प्रकाशमान हो, और स्वतःसिद्ध ज्ञानशक्ति होनेसे तुमको इंद्रियोंकी अपेक्षा नहीं है, इसी कारण विश्वके रचनेवाले ब्रह्मादिक और इंद्रादिक देवता संपूर्ण मायासहित तुम्हारी पूजा करते हैं और मनुष्योंका दिया हव्य-कव्यादिक बलि भक्षण करते हैं, जैसे संपूर्ण पृथ्वी ईश्वर चक्रवर्ती राजाको खण्ड मण्डलोंके राजा भेंट देते हैं और आप अपनी प्रजासे भेंट लेते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मादिक तुमको भेंट देते हैं और जिन्हें आपने अधिकार दे रखा है, उसी अधिकारको तुम्हारे भयसे पूर्ण करते हैं ॥२८॥ (१५) हे नित्यमुक्त! जिस समय मायासे तुम्हारा विहार होता है, उसी समय आपकी दृष्टिसे प्रकट हुए कर्म अथवा कर्मयुक्त लिंगशरीरसे स्थावर-जंगम जातिके जीव उत्पन्न होते हैं। यदि उत्तम, मध्यम, अधम सृष्टि होनेमें उन जीवोंके पूर्व कर्म निमित्त न माने तो मन वाणीसे परं शून्यभावसे बराबरीके करनेवाले आकाशके सदृश सम्पूर्णमें सम भाव और परमदयाल आपमें विषमताका लेश भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें कोई अपना पराया नहीं है, इस लिए आपका भजन ही मुख्य है ॥२९॥ (१६) जो जीव अनंत और रूपसे नित्य है और सर्वव्यापी है तो यह पक्ष हमारा नहीं, क्योंकि यदि जीव वास्तवमें अनन्त नित्य और उसी रूपसे व्यापक हो तो वे व्यापकतादि गुणोंसे आपके समान हो गये, जब समान हुए तो आप उनके नियन्ता नहीं हो सकते, जो यह न मानें तो आपसे उनका नियम संभव न हो। क्योंकि जो वस्तु

उपाधिसे जिस पदार्थका विकाररूप है, वह पदार्थ उस वस्तुका निश्चय नियन्ता होगा, क्योंकि उसमें अनुस्यूत रहा, वह पदार्थ कारणतासे उस वस्तुका त्याग नहीं करता, तुम्हारे स्वरूपसे "यत्, तत्" शब्दके अतिरिक्त कुछ भी कहा जाय ऐसे नहीं हैं, क्योंकि हम ब्रह्मको जानते हैं, इस प्रकार जो कहते हैं, वे ब्रह्मस्वरूपको कुछ भी नहीं जानते क्योंकि ब्रह्म किसीका विषय नहीं और जो जाननेमें आता है, वह अनात्म पदार्थ है ॥ ३० ॥ (१७) प्रकृति और पुरुषका जन्म संभव नहीं, क्योंकि प्रकृति पुरुष अजन्मा हैं, इसलिये प्रकृति पुरुषके सम्बन्धसे जीव जन्म लेता है, जैसे जलमें बबूला केवल जलसे और केवल पवनसे ही नहीं उत्पन्न होता किन्तु दोनोंसे उत्पन्न होता है। तुम कारणरूप ईश्वर हो, तुम्हारे विषे अनेक नाम रूप गुण सहित जीव लीन होते हैं, जैसे शहदमें संपूर्ण वनस्पतियोंके रस लीन होते हैं, जैसे मधुमें सम्पूर्ण फलोंके रस विशेषतासे दृष्टि नहीं आते परन्तु सामान्य रूप से दीख सकते हैं, वैसे ही निद्रामें और प्रलयकालमें आपमें लय हुए जीव विशेषरूपसे नहीं रहते और मुक्त तो आपके निरुपाधिक रूपमें लीन हो जाते हैं, जैसे समुद्रमें सम्पूर्ण नदी लीन होती हैं, ऐसे वह मुक्तिदशामें आपसमें लीन हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ (१८) जीवोंके विषे तुम्हारा मायासे वारंवार जन्म-मरण रूप यह भ्रमण जानकर सुबुद्धि पुरुष संसारसे निवृत्ति करनेवाले तुम्हारे विषे भावना करते हैं और जो तुम्हारी शरण होकर भजन करते हैं, उनको संसारका भय नहीं होता, क्योंकि शीत, उष्ण, वर्षावाला संवत्सररूपी काल तुम्हारा भ्रूभंग-रूप है और जो तुम्हारे शरण नहीं हैं, उनके रक्षक नहीं किन्तु भयकारक हो इसलिये बुद्धि-मान् पुरुष तुममें भाव करते हैं ॥ ३२ ॥ (१९) अजित ! मनके निग्रह करनेसे ऐसा सेवन बन सकता है, परमदेव गुरुके चरणकी शरण लिये विना जो इन्द्रिय प्राणोंको जीतकर अतिचञ्चल दुर्जय मन रूपा घोड़ेके जीतनेका यत्न करते हैं, वे उपायसे खेद पाते हैं और विघ्नोंसे व्याकुल होते हैं, क्योंकि मनका जीतना गुरुकी कृपासे ही होता है, जैसे जो व्यापारी मल्लाह नहीं रखते, वह समुद्रमें पड़े दुःख पाते हैं ॥ ३३ ॥ (२०) जो प्राणी आपका आश्रय लेते हैं, उनको सर्वसुखके स्थान आत्मरूप आपके होते सुजन, पुत्र, देह, घर, पृथ्वी, प्राण, रथ इत्यादि वस्तुसे क्या प्रयोजन ? जो पुरुष आत्माका सेवन करता है, उसका इन तुच्छ पदार्थोंसे क्या प्रयोजन ? सत्य परमार्थ सुखको न जान स्त्री पुरुष मिलकर रतिके लिये विचरते हैं, उनको संसारमें तुम्हारे सिवाय कौन सुख है ? अर्थात् कोई नहीं । यह संसार मिथ्याभूत और साररहित है इसलिये तुम्हारा ही भजन करना उचित है ॥३४॥(२१) अहं-कारको त्यागकर तुम्हारे चरणारविन्दको हृदयमें धारण करना तुम्हारे भक्त ऋषि-मुनि कि जिनके चरणोंका जल स्वतः पापनाशक है; परन्तु तो भी इस पृथ्वीका भजनरूप महापुण्य करनेवाले महात्माजनोंके आश्रमोंका और अतिपावन तीर्थ क्षेत्रोंका सेवन करते हैं और पुरुषोंके ज्ञान-वैराग्यके नाश करनेवाले गृहादिकोंका सेवन नहीं करते, जिन्हें गुरुकी कृपासे तत्त्वज्ञानकी प्रतीति और संसारकी मिथ्या प्रतीति हो गयी है, वह महात्माओंकी संगति करते हैं, क्योंकि जिसे एक बार भी आत्माके सुखका अनु-भव हुआ, वह कदाचित् गृहमें आसक्त नहीं होता । तब उत्तम पुरुष किस प्रकारसे घरमें आसक्त हो सकते हैं ॥ ३५ ॥ (२२) यह जगत् सत्यसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये सत्य है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुआ कुण्डलादि सुवर्ण ही है, इस प्रकार मानोगे तो

व्यभिचार प्राप्त होगा, जैसे पितासे पुत्र होता है, वह प्रथम क्यों मर जाता है तथा पृथ्वीसे उत्पन्न हुए घटादिक क्यों फूट जाते हैं, इससे यह जगत् मिथ्या है तो कहते हैं कि उत्पन्न नाम उपादान कारण नहीं है, निमित्त कारण है, इससे कुछ दोष नहीं; इसमें दोष देकर समाधान करते हैं कि जो वस्तु जिस उपादानसे हुई हो वह उस उपादानसे भिन्न नहीं होती, यह भी नियत नहीं, क्योंकि रज्जुरूप उपादानसे हुआ सर्प रज्जुसे पृथक् होता है, रज्जु सत्य और सर्प मिथ्या होता है। यदि सर्प सत्य हो तो जिस प्रकार कुण्डलका बाध नहीं होता उसी प्रकार सर्पका भी बाध न होना चाहिये। शंका–रज्जु हुए सर्पमें केवल रज्जु ही उपादान कारण नहीं किन्तु अज्ञान भी उपादानका कारण है, इस प्रकारके उपादान कारणसे हुई वस्तुका मिथ्यापन बन सकता है, जो केवल सत्य उपादान कारणसे उत्पन्न हो उसका मिथ्यापन सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये द्वैत असत्य नहीं। उत्तर–यह द्वैत भी सत्यरूप ब्रह्म और उसके साथ अज्ञानरूप उपादान कारणसे हुआ है। शंका–जो इस प्रकार जगत् नित्य कहा है तो मिथ्या किस प्रकार है? समाधान–कर्मफलको नित्य कहना वेदका तात्पर्य नहीं,किन्तु उन वाक्योंसे कर्मकी स्तुति की है, यदि वेद कर्मफलको नित्य मानता तो जैसे यहां परिश्रमसे उत्पन्न किये पदार्थ वेदके कालान्तरमें क्षीण हो जाते हैं, उसी प्रकार परलोकमें पुण्य का सुख कालांतरमें नष्ट हो जाता है "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इस कारण कर्मश्रद्धा के भारसे जिनकी बुद्धि मन्द हो गयी है,उन्हें वेदवाणी गौणी और लक्षणा वृत्तिमें डालकर भ्रम युक्त कर देती है, इससे वह यथार्थ वेदके तात्पर्यको न जानकर कर्मफलको नित्य मानते हैं, कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, इस बातको नहीं जानते। आशय यह है कि जैसे मकरी अपनेमें से तन्तु निकाल फिर आप ही ग्रहण कर लेती है,उसी प्रकार ईश्वर जगतको उत्पन्न कर अपनेमें लय कर लेता है, वास्तवमें शुद्ध है इसलिये अद्वैत सिद्ध है मिथ्यासे द्वैत भासता है ॥ २६ ॥ (२३) हम और कारणसे सत्य कहेंगे जगत सत्य है, क्योंकि अर्थ क्रियाका करनेवाला है। यदि न हो तो सीपीमें रूपेकी प्रतीति कैसे होती है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, व्यवहारके लिये अर्थ, क्रियाके लिये भ्रम इष्ट है, जैसे खोटे रुपयेसे व्यवहार खो जाता है, तो कहते हैं कि जो एक ठौर सत्य है उसको और भ्रम होता है यह प्रसिद्ध है, अत्यन्त झूठा प्रपञ्च हो तो भ्रम न हो, इससे सत्य है। तो कहते हैं, सत्य नहीं है, किंतु अन्ध-परंपरासे भ्रम किया है, वहां वेद कर्मफलकी सत्यताका प्रतिपादन करता है कि 'चातुर्मासके पूजन करनेवालोंको अक्षय पुण्य होता है और अमृतपान करेंगे' इत्यादि वचनसे कर्मफल को यह द्वैत सृष्टिसे पहले भी नहीं था और आगे भी न होगा, मध्यमें आपके शुद्ध अद्वैत-रूपमें मिथ्या ही प्रतीत होता है, यह निश्चय है। इसी कारण मृत्तिका सुवर्ण और लोहा आदि पदार्थोंके घट,कुण्डल, परशु आदि निर्माण किये हुए आकारसे नाममात्र ही हैं, उनके कारण मृत्तिका, सुवर्ण, लोहादि सत्य हैं इस लिये पृथ्वी, अप,तेज, वायु, आकाशादि कार्य नाम-मात्र हैं, उनका कारण ब्रह्म सत्य है, इस कारण द्वैतकी सत्यतामें कुछ प्रमाण नहीं, मनके विलाससे इस मिथ्याभूत द्वैतको जो सत्य मानते हैं, वे अज्ञानी हैं ॥ २७ ॥ (२४) जब द्वैत कोई वस्तु नहीं तो इसमें चैतन्यका सम्बन्ध लेशमात्र भी न होना चाहिये, फिर जीव किस अपराधसे जन्म, मरण, सुख, दुःखको प्राप्त करते हैं, और ईश्वर नित्य मुक्त किस प्रकार है? कर्मकाण्ड किस कारण है? इसपर कहते हैं कि जीव मायामें पड़े अविद्याका

आलिंगन करते हैं, इसलिये इन्द्रियादिकोंका सेवन करते, उन्हें अपना ही स्वरूप मानते हैं, इसलिये देह और इन्द्रियोंके धर्मसे युक्त हो आनन्दादि गुणोंके आवरणसे जन्म-मरणकी प्राप्ति करते हैं। यह सब काण्ड अविद्यायुक्त जीवमें हैं और आप तो मायाकी असत्यता जानते हो; जैसे सर्प केंचुलीको सत्य नहीं समझता और उसे त्याग देता है उसी प्रकार आप मायाको त्याग देते हो, इस कारण तुम नित्य अखण्ड ऐश्वर्ययुक्त अप्रमेय अणिमादि अष्ट ऐश्वर्यवान् अपनेमें आप ही विराजते हो ॥ ३८ ॥ (२५) हे भगवन्! जो संन्यासी (यती) अपने हृदयमें स्थित कामकी वासनाओंको नहीं उन्मूलित करते उन असाधुओंके हृदयमें तुम स्थित होकर भी नहीं मिलते, जैसे स्मृति न रहनेपर कण्ठस्थित मणि नहीं मिलती। उन दुष्ट असाधुओंको आपकी प्राप्ति नहीं होती! इतना ही नहीं, किन्तु जो इन्द्रियके तृप्त करने वाले हैं उनको इस लोक तथा परलोकमें दुःख ही होता है, क्योंकि लोकोंको प्रसन्न करना, धनसंचय करना, भोग करना, गुप्त कार्य करना, इत्यादिमें यहां दुःख होता है और आपकी प्राप्तिके लिये संन्यास लेनेपर यदि आपकी प्राप्ति न हुई और धर्मका अतिक्रमण किया तो दण्डरूप नरककी प्राप्ति हुई, इससे परलोकमें भी सुख नहीं, वे दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुए ॥३९॥ (२६) हे भगवन्? जिन भक्तोंको तुम्हारा ज्ञान हो गया, वे आपसे प्रगट हुए अपने प्राचीन पुण्य पापोंके फलरूप दुःखसुखके संबन्धको कुछ नहीं समझते और देहाभिमानियोंके सम्बन्धी प्रवृत्तिनिवृत्तिके करनेवाले विधिनिषेधके वचनोंको नहीं सुनते। देहाभिमानरहित हो जानेसे कार्याकार्यका संबंध नहीं रहता। हे ऐश्वर्यवान्! आप प्रत्येक युगमें अवतार धारण करके सन्मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको जो प्रतिदिन तुम्हारे चरित्र श्रवण कर हृदयमें धारण करते हैं, उन्हें श्रेष्ठ गति देते हो, जब ऐसे पुरुषोंको भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं रहती तो तत्त्ववेत्ताओंको कर्मकी शंका भी नहीं हो सकती और जो पुरुष कपट प्रबन्ध कर इंद्रियोंका भोगसे पूजन करते हैं, वे इस लोक और परलोकमें दुःख पाते हैं ॥ ४० ॥ (२७) हे भगवन्! स्वर्गलोकादिकोंके पति ब्रह्मादिक तुम्हारे प्रतापके अन्तको नहीं पाते और आप भी अपने अन्तको नहीं पाते तो ब्रह्मादिक आपके अन्तको नहीं जाने इसमें क्या आश्चर्य? अपने अन्तको न जाननेसे आपकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता नष्ट नहीं हो तो जैसे शशकके सींग न मिलनेसे सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नहीं जाता, क्योंकि शशकके सींग हैं ही नहीं, फिर मिले कहांसे? इसी प्रकार आदि-अन्त जब है ही नहीं तो कोई जाने कहांसे? क्योंकि तुम्हारे स्वरूपमें आकाशमें रजःकणके सदृश दशदश गुण उत्तर अधिक सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डोंके समूह कालचक्रसे भ्रमण करते हैं, इस कारण श्रुति तात्पर्यसे आपका ही प्रतिपादन करती है साक्षात् नहीं कह सकती। सगुण स्वरूपके तो गुण अपार हैं और निर्गुणमें वाणीकी गति नहीं, इस कारण तुम्हारा संपूर्ण और साक्षात् निरूपण नहीं हो सकता। अनात्म पदार्थोंका निषेध कर अन्तमें हम श्रुति आपका ही वर्णन करती हैं, क्योंकि अवधिके विना निषेध नहीं हो सकता, इस कारण निषेधकी अवधिरूप आपमें ही हम वेदोंका तात्पर्य निकलते हैं ॥४१॥ (२८) श्रीभगवान् बोले कि हे नारदजी! इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र सनकादिक वेदोंकी स्तुति सुनकर आत्माकी गति जान सनंदनजीकी पूजा करने लगे ॥४२॥ इस प्रकार आकाशमें गमन करनेवाले सृष्टिमें प्रथम उत्पन्न हुए महात्मा सनकादिकोंने समस्त वेद, पुराण और उपनिषद्का सार उद्धृत किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र नारदजी! तुम श्रद्धापूर्वक आत्माके

अनुशासनको धारण करके पृथ्वीमें यथेच्छ विचरो। यह आत्मानुशासन मनुष्योंकी विषय-वासनाका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इतनी कथा सुनकर योगिवर श्रीशुकदेवजी बोले–हे महाराज परीक्षित्! इस प्रकार श्रीनारायणके उपदेशको सुनकर कृतार्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रुतियोंके धारण करनेवाले नारदमुनि कहने लगे ॥ ४५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि, जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण भूतोंके कल्याणके लिये सुन्दर अवतार धारण करते हैं उन निर्मलकीर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ उदारमन नारद आदि ऋषि नारायण और उनके शिष्योंको नमस्कार कर साक्षात् मेरे पिता व्यासदेवके आश्रममें गये ॥ ४७ ॥ व्यासदेवने सम्मान कर आसन दिया; उसको ग्रहण कर नारदजीने नारायणके मुखसे जो श्रवण किया था वह सब व्यासजीसे वर्णन किया ॥४८॥ हे नृपश्रेष्ठ! जो तुमने पूछा था वह हमने वर्णन किया, जैसे अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्ममें श्रुतियाँ प्रवृत्त होती हैं ॥४९॥ मायाके दूर करनेवाले भक्तोंके भयनाशक नारायण, जो कि अपने स्वरूपमें शयन करते जीवोंके पुरुषार्थ सिद्ध करनेके लिये सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, जो इस संसारके आदि, मध्य और अंतमें भी रहते हैं, जो प्रकृति पुरुषके भी उपादान कारण हैं और जो इस जगत्को उत्पन्न करके जीवके साथ ही प्रवेश कर रहे हैं, जिन्होंने जीवोंका भाग देनेके लिये पृथक्-पृथक् शरीर बनाये हैं, जो जीवोंको अनेक भाग देकर शरीरोंका पालन करते हैं और प्रणामादिक भक्ति करनेवाले जीव उन्हें प्राप्त होकर जैसे सुषुप्तिमें सोता हुआ शरीरके सम्बन्धसे रहित होता है उसी प्रकार देहादिरूप अविद्याका त्याग करते हैं, उन्हीं नारायणका भजन करना चाहिये ॥ ५० ॥ नारायण कैसे हैं:—

दोहा–आदि पुरुष अद्वैत अज, अविनाशी अविकार।
कष्टहरण आनँदकरन, प्रतिपालक संसार ॥ १ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे नारायणनारदसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

दोहा–विष्णुभक्तिसे मुक्ति है, अन्यदेवसे भोग।
अट्ठासी अध्यायमें, कहौं भक्तिके योग ॥

राजा परीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! देवता, असुर, मनुष्योंमें जो भोगसुखके तिरस्कार करनेवाले शिवका भजन करते हैं, वे धनवान् होते हैं और लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करनेवाले नहीं, ऐसा क्यों? यह जानने की हमारी इच्छा है। शिव और विष्णुके भजन करनेवालोंको सम्पूर्णतः विरुद्ध फल मिलते हैं, क्योंकि जो विभूति लगा श्मशानमें वास करनेवाले अमंगलरूप, पासमें कुछ नहीं, ऐसे शिवका जो पुरुष भजन करें वे लक्ष्मीवान् हों और भोग भोगें और जो लक्ष्मीपति, अच्छे भोग-भोगें, सुन्दर वस्त्र पहनें ऐसे श्रीकृष्णका जो भजन करें वे दरिद्री हों? यह स्वामियोंकी गति और है, सेवकोंकी गति और है। उचित तो यह है, जैसा स्वामी हो उसी प्रकार सेवक हो ॥ १ ॥ २ ॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत! शिवमें शक्ति रहती है, गुणोंके परस्पर जो आपसमें संघर्षणसे तमोगुण तीन प्रकारका है सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार। ऐसे तीन प्रकारके अहंकारके अधिष्ठानसे विष्णु, ब्रह्मा, शिव, ये तीन रूप धारण करते हैं ॥ ३ ॥ उस अहंकारसे

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचभूत और दश इंद्रियाँ तथा एक मन सोलह विकार हुए। इन विकारोंमें कोई एक विकारवान् उपाधिरूप विकारका भजन करनेसे संपत्ति मिलती है और उपाधिवालेका भजन करनेसे उपाधि मिलती है ॥४॥ निर्गुण साक्षात् मायासे परे सबके देखनेवाले साक्षीभूत हरि भगवान्‌का जो पुरुष भजन करें, वे निर्गुण होते हैं ॥५॥ अश्वमेध यज्ञ जब पूर्ण हो चुका तब तुम्हारे दादा राजा युधिष्ठिरने वैष्णव धर्मको श्रवणकर पीछे श्रीकृष्णचन्द्रसे यही बात पूछी थी॥६॥ तो मनुष्योंका कल्याण करनेके लिए यदुकुलमें अवतारधारी समर्थ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो राजा युधिष्ठिरसे कहने लगे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि जिस पुरुषके ऊपर मैं कृपा करता हूँ उसका धन धीरे-धीरे हर लेता हूँ, इसके उपरांत जब दरिद्री हो जाता है तब दुःखीके तुल्य और निर्धन जानकर उसे उसके भाई बंधु सब त्याग देते हैं ॥ ८ ॥ यह भक्त भाई लोगोंके आग्रहसे धन उपार्जन करनेका फिर उद्योग भी करे परंतु, मेरे अनुग्रहसे उसके सब उद्योग व्यर्थ हो जाते हैं और जब उसमें प्रबल वैराग्य उत्पन्न होता है तो वह भक्त मेरे और भक्तोंके संग मित्रता करता है। तब उस पुरुषके ऊपर मैं असाधारण अनुग्रह करता हूँ ॥९॥ मेरी कृपासे उसे परब्रह्म सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी नाशरहित आत्माका ज्ञान होता है, इसीलिये मेरा आराधन बहुत कठिन है और इसी कारण मुझे त्यागकर वह पुरुष और देवताको भजता है ॥१०॥ सेवन करनेसे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवताओंसे राज्य और धनप्राप्ति होनेसे उद्धत मतवाले उन्मत्त होकर वे प्राणी वरके देनेवाले देवताओंको भूलकर अवज्ञा करते हैं ॥११॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे श्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादिक देव शाप और अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं। शिव, ब्रह्मा दोनों शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ही शाप देते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र शीघ्र प्रसन्न नहीं होते है और जिस पर प्रसन्न होते हैं, फिर उसे शाप नहीं देते ॥ १२ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, उसे वर्णन करते हैं, जैसे शिवजीने वृकासुरको वर देकर कष्ट पाया ॥१३॥ दुष्टबुद्धि शकुनीका पुत्र वृकासुर मार्गमें देवर्षि नारदजीको देख ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र कौन प्रसन्न होता है, यह पूछने लगे ॥१४॥ तब देवर्षि नारदजीने कहा कि तू भगवान् भूतनाथ महादेवजीकी पूजा कर, उनका पूजन करनेसे शीघ्र तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, क्योंकि शिवजी थोड़े ही गुणोंसे शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही दोषसे क्रोधित होते हैं ॥१५॥ बन्दीजनोंके समान स्तुति करनेवाले राक्षसराज रावण और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर शिवजीने बड़ा ऐश्वर्य दे फिर उन असुरोंसे आप ही कष्ट पाया। रावणने तो कैलास उखाड़ लिया और बाणासुरने कहा मेरे पुरकी रक्षा करो ॥१६॥ इस प्रकार जब देवर्षि नारदजीने कहा तो उसी समय वृकासुर शिवजीका सेवन करने लगा। इसके उपरांत केदार तीर्थमें शिवजीके लिए अपने शरीरका मांस काटकर अग्निमें हवन करने लगा ॥ १७ ॥ जब महादेवकी प्राप्ति न हुई तो सातवें दिन तीर्थमें स्नान करनेसे भीजे केशवाले शिरको छुरी लेकर काटने लगा ॥१८॥ उस समय अत्यंत करुणानिधान शिवजी हेमसरीखे मूर्तिमान् अग्निकेसमान प्रकाशयुक्त अग्निके कुंडमेंसे निकल हाथोंसे असुरकी भुजा पकड़, जैसे कोई दुःखके कारण मरनेको आये उसे मना करे उसी प्रकार मना करने लगे और शिवजीका हाथ लगते ही उसका देह ज्योंका त्यों हो गया॥१९॥ वृकासुरसे शिवजी बोले कि, हे वृकासुर ! तू तप करके पूर्ण हो गया, अब वर मांग, जो तेरी इच्छा हो, वही वर दूँगा क्योंकि जो मनुष्य मेरी शरण आते हैं, उनके ऊपर जलमात्रके चढ़ाते ही मैं

प्रसन्न हो जाता हूँ। बड़ा आश्चर्य है, तूने वृथा ही अपने शरीरको कष्ट दिया ॥२०॥ तब वृकासुरने जिस-जिस पुरुषके शिर पर मैं हाथ धरूँ, वह पुरुष उसी समय मर जाये इस प्रकार संपूर्ण प्राणियोंको भयका देनेवाला वर मांगा ॥२१॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित्! इस प्रकार वृकासुरका वचन सुन उदासीनसे हो "अच्छी बात है" इस प्रकार शिवजीने मुसकाकर सर्पको दूध पिलानेके समान वृकासुरको वर दे दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार सुनते ही जगज्जननी पार्वतीके लेनेकी कामनासे वह असुर वर मिथ्या है वा सत्य है, यह परीक्षा लेनेके लिए महादेवजीके माथेपर हाथ धरनेका उपाय करने लगा, उस समय अपने कर्त्तव्यसे भयभीत होकर भगवान् शिवजी भागने लगे ॥२३॥ असुर जिनके पीछे लगा, ऐसे शिवजी डरकर स्वर्गतक भागे और पृथ्वीका जहांतक अन्त है, वहांतक भागे, फिर उत्तर दिशामें भागकर गये ॥ २४ ॥ उस समय उपायको न जानकर संपूर्ण देवता चुप हो गये, इसके उपरांत प्रकाशमान् मायासे परे वैकुण्ठधाममें शिवजी गये ॥२५॥ जिस वैकुण्ठधाममें शांतस्वभाव और कालके दण्डरहित संन्यासियोंकी परमगति अर्थात् प्राप्त होने योग्य नारायण विराजमान हैं ॥ २६ ॥ दुःखोंके दूर करनेवाले भगवान् नारायण शिवजीके पीछे दौड़े चले आते वृकासुरको दूरसे देख अपनी योगमायासे ॥२७॥ ब्रह्मचारीका वेष धर मूँजकी करधनी मृगछाला दंड मालाओंको पहन तेजसे अग्निके समान प्रकाशमान् कुश हाथमें लिए भगवान् नम्र हो अभिवादन कर उससे बोले ❀ ॥२८॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे शकुनीके पुत्र! तुझे निश्चय खेद है तू इतनी दूर क्यों आया? थोड़ी देर विश्राम ले, क्योंकि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है, इसे पीड़ा मत दे ॥२९॥ हे समर्थ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्योंकि बहुधा दूसरोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! इस प्रकार अमृतरूप वचनसे जब भगवान्ने पूछा, तब खेदरहित वृकासुरने अपना सब वृत्तांत सुना दिया ॥३१॥ तब श्रीभगवान् बोले कि शिवने तुमको वर दिया है तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मान सकते क्योंकि यह शिव दक्षके शापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है और पिशाचोंका राजा है ॥३२॥ हे दानवेन्द्र वृकासुर! यदि शिवके वचनमें तुझे विश्वास है तो तू शीघ्र अपने मस्तकपर हाथ धर परीक्षा ले ले॥ ३३ ॥ हे दानवश्रेष्ठ! इस महादेवका वचन कैसे सत्य होगा, यह तो मिथ्यावादी है, पीछे जो किसी प्रकार भी महादेवका वचन असत्य विदित हो तो महादेवको मार जो फिर कभी मिथ्या न बोले॥ ३४ ॥ इस प्रकार भगवान्के मनोहर विचित्र वचनोंसे भ्रष्टबुद्धि हो कुबुद्धि वृकासुरने भूलकर अपने हीं शिरपर अपना हाथ रख दिया॥ ३५ ॥ हे महाराज! शिरपर हाथ धरते ही वज्रके मारेके समान क्षणभरमें शिर फूटनेसे वह वृकासुर गिर गया। उस समय स्वर्गमें जयजय और नमः नमः तथा साधु शब्द होने लगा॥३६॥जिस

❀ शंका–वृकासुरको छलनेके लिये परमेश्वरने ब्रह्मचारीका स्वरूप क्यों धारण किया? क्योंकि वेदमें ब्रह्मचारीके लिये झूंठ बोलना बुरा लिखा है, इसलिये और अनेक रूप भगवान्के बनाये संसारमें बहुत हैं। दूसरा रूप धारण करके छल करना था, ब्रह्मचारी बनकर क्यों छला?

उत्तर–वृकासुरको त्रिलोकीमें किसीका विश्वास नहीं था, क्योंकि वह बड़ा धूर्त था और उसको अपने बलका बड़ा घमंड था, परंतु त्रिलोकीमें उसको दो जनोंका विश्वास था एक नारद मुनि और दूसरे ब्रह्मचारी वेषका। भगवान्ने विचारा कि इस दैत्यने नारद मुनिकी आज्ञा मानकर यह कर्म किया है, इसलिये ब्रह्मचारीका रूप धर भगवान्ने सब काम किये।

समय पापात्मा वृकासुर मर गया, उस समय देवता, पितृ, ऋषि, और गन्धर्व फूलोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् महादेवजीको भी कष्टसे छुड़ा दिया ॥ ३७ ॥ जब शिवजी कष्टसे छूट गये तो श्रीपुरुषोत्तम भगवान् बोले कि अहो देव ! महादेव ! यह वृकासुर पापी अपने ही पापसे मरा है ॥३८॥ ईश्वर और बड़ोंका अपराध करनेसे कौन पुरुष कल्याणको प्राप्त हो सकता है ? देखो विश्वके ईश्वर, और जगत्के गुरु तुम्हारा अपराध करनेसे कदापि भला नहीं हो ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वाणीसे अगोचर अनन्त शक्ति, साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने शिवजीको कष्टसे छुड़ाया, यह चरित्र जो पुरुष कहते और सुनते और उनपर भरोसा करते हैं, वे संसार तथा शत्रुओंसे छूट जाते हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दोहा—तीन देवमें को बड़ो, सबको यही विचार ।
भृगुमुनिने सबको कह्यो, विष्णु जगत आधार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! एक समय सरस्वती नदीके तटपर ऋषि यज्ञकर रहे थे, वहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीनों देवताओंमें कौन बड़ा है ? इस प्रकार परस्पर झगड़ा होने लगा ॥१॥ हे राजन् ! इनमें कौन बड़ा है, इसकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र भृगुको भेजा । भृगु परीक्षाके लिये ब्रह्माकी सभामें गये * ॥२॥ भृगुजीने ब्रह्माके स्वभावकी परीक्षा लेनेके लिये स्तुति प्रणाम कुछ भी नहीं किया, तब ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे प्रज्वलित हो भृगुके ऊपर अत्यन्त क्रोध किया ॥३॥ परन्तु ब्रह्मा अपने पुत्रके लिये चित्तमें उठे क्रोधको आप ही शांत करने लगे जैसे अपने कारण जलसे अग्नि शान्त होती है और अग्निके शान्त करनेमें जैसे अग्निसे उत्पन्न जल काम आता है, उसी प्रकार ब्रह्माका क्रोध शांत करनेमें उन्हींसे उत्पन्न हुए भृगुजी काम आये ॥ ४ ॥ वहांसे भृगुजी कैलास पर्वतपर शिवजीके पास गये, उस समय शिवजी भाई भृगुसे प्रीतिपूर्वक उठकर मिलनेको उद्यत हुए ॥५॥ तब भृगुजीने महादेवजीसे मिलनेकी इच्छा न की और कहा—तुम कुमार्गमें चलते हो; तुमसे नहीं मिलेंगे । यह सुनते ही महादेवजी क्रोधसे लाल नेत्र कर हाथमें त्रिशूल ले मारनेको प्रस्तुत हुए ॥६॥ उस समय पार्वती महादेवजीके चरणोंमें गिरकर बोलीं कि महाराज ! तुम्हारा भ्राता है, इसे कैसे मारते हो ? इस प्रकार वाणीसे शान्त करने लगीं, इसके उपरांत भृगु वैकुण्ठमें गये, जहां जनार्दन भगवान् वास करते हैं ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी गोदीमें शयन करते हुए

---

* शंका—तीनों देवताओंमें बड़ा देवता कौन है ? ब्रह्मा बड़े हैं, कि विष्णु बड़े हैं, कि शिव बड़े हैं । ऐसा विचार मुनि लोगोंने क्यों किया ? क्योंकि ऐसे विचार तो अत्यन्त अज्ञानी तथा बालक और बड़े-बड़े मूर्ख किया करते हैं । मुनि लोग ऐसा विचार कभी नहीं करते, फिर उन लोगोंने क्यों किया ?

उत्तर—सारस्वत मुनिके वंशमें जो जन्म लिये ब्राह्मण हैं, वे सब ब्रह्मकर्ममें बड़े निपुण होते थे, ऐसा ब्रह्मकर्मका अभिमान करके सब देवताओंका और मुनियोंका अनादर करने लगे । ऐसा सारस्वत ब्राह्मणोंका अभिमान जानकर विचार किया कि ऐसा अभिमान करके सब सारस्वत ब्राह्मण नरकमें पड़ेंगे, क्योंकि हम आदि से लेकर जितने देवता हैं तथा ब्राह्मण हैं उन सबको यह ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते, ऐसा विचार करके उन्हीं ब्राह्मणोंके यज्ञमें कृपा करके उन्हीं ब्राह्मणोंकी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया, तब उन ब्राह्मणोंने ज्ञान त्याग दिया और मूर्ख हो गये और उस मूर्खतासे भस्म होने लगे, तब कालोपरांत भगवान्का चरित्र भृगुजी ने वर्णन किया तब सारस्वत ब्राह्मण अभिमान रहित हो गये, इसलिये सारस्वत ब्राह्मणोंको ऐसा संदेह हुआ था ।

विष्णु भगवान्के हृदयमें भृगुने जाकर लात मारी, तदनन्तर साधुओंकी गति विष्णु भगवान्ने लक्ष्मीसहित पलँगपरसे उठ पृथ्वीमें मस्तक धर भृगुजीको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और कहने लगे कि हे ब्रह्मन् ! तुम भले आये आसन ग्रहण करो । हे समर्थ ! आपके आनेको हमने नहीं जाना वह अपराध क्षमा करो ॥९॥ हे तात ! हे महामुनि ! तुम्हारे चरण कोमल हैं और मेरी छाती अत्यन्त कठोर है, तुम्हारे चरणोंमें चोट लगी होगी इस प्रकार कहकर अपने हाथोंसे ब्राह्मणके चरण सहलाने लगे ॥ १० ॥ गंगादिक तीर्थोंको पवित्र करनेवाले अपने चरणोंके जलसे मुझे और मुझमें अधिष्ठित लोक और लोकपालोंको पवित्र करो ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मण ! अब मैं लक्ष्मीके वास करनेका अत्यन्त पात्र हुआ और तुम्हारे चरणस्पर्शसे पाप दूर हुए, इसलिये मेरी छातीमें सदा लक्ष्मी वास करेगी ॥१२॥ श्रीशुकदेव बोले कि, हे राजा परीक्षित् । इस प्रकार श्रीनारायणकी कही हुई मनोहर वाणीसे तृप्त होकर भक्तिसे आनन्दमें मग्न हो भृगुजी नेत्रोंमें आंसू भरकर चुप हो गये ॥ १३ ॥ हे राजन् ! भृगुजीने फिर अपने यज्ञमें आकर वेदपाठी मुनियोंसे तीनोंकी जो बात देखकर आये थे, उसे कहा ॥१४॥ भृगुजीकी बात सुन आश्चर्यको प्राप्त हो सन्देहको त्याग मुनियोंने कहा कि इतना उनका अपराध किया परन्तु क्रोध न आया तो विष्णु भगवान्में ही शांति है और किसी देवतामें नहीं, इसलिये सबसे बड़े विष्णु भगवान् ही हैं, निश्चय है ॥ १५ ॥ साक्षात् धर्म और धर्मके लिये ज्ञान तथा वैराग्य और आठ प्रकारके ऐश्वर्य और आत्माके मलोंको दूर करनेवाला यश यह सब भगवान्में ही विद्यमान है॥१६॥ कालदंडके भयसे रहित, शांतस्वभाव और समान चित्त निष्किंचन अर्थात् किसी वस्तुकी जिनमें चाहना नहीं, साधुमुनियोंको जिन भगवान्की परमगति कहते हैं ॥१७॥ सत्त्वगुण भगवान्का प्यारा रूप है और ब्राह्मण भगवान्के इष्ट देव हैं, शांत और निष्काम बड़ी बुद्धिवाले जिनका भजन करते हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी, तीन प्रकारके देवता, असुर, राक्षस बनाये हैं, सब ही उनका रूप हैं, परन्तु उनमें सत्त्वगुणी रूप कल्याण देनेवाला है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेव बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार सरस्वतीके तीरवासी ब्राह्मण मनुष्योंका संदेह दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी सेवा करके श्रीकृष्णचन्द्रकी गतिको ही प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजी बोले कि, हे ऋषीश्वरो ! व्यासदेवजीके पुत्र शुकदेवजीके मुखकमलकी सुगंधिसे युक्त, अमृतके समान, संसारके भयका काटनेवाला श्रीकृष्णचन्द्रका यश कानरूपी दोनोंमें भरकर जो श्रेष्ठ पुरुष पान करेगा, वह संसारके आवागमनके परिश्रमसे छूट जायगा॥२१॥श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस चरित्रमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्कर्ष कहा, फिर उत्कर्षकारक श्रीकृष्णचन्द्रका ही और चरित्र वर्णन करते हैं। हे राजन् ! एक समय द्वारकामें एक स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होकर पृथ्वीका स्पर्श करते ही मर गया ॥२२॥ वह ब्राह्मण मरे पुत्रको लेकर राजा उग्रसेनकी ड्योढ़ीपर धर विलाप कर आतुर दीनमन हो कहने लगा ॥२३॥ ब्राह्मणोंका द्वेषी शठबुद्धि लोभी विषयोंमें आसक्त मन क्षत्रियोंमें अधम इस राजाके दोषसे ही मेरा पुत्र मरा है, मेरा कुछ दोष नहीं ॥ २४ ॥ हिंसा करनेवाले दुःस्वभाव अजितेंद्रिय राजाके सेवन करनेसे प्रजा दुःखी और दरिद्री होती है ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वह ब्राह्मण दूसरे पुत्रको, फिर तीसरे पुत्रको लेकर राजाके द्वारपर धरकर यही कहने लगा, कि मेरा कुछ दोष नहीं है, इस राजाके दोषसे यह सब मेरे पुत्र मरे हैं ॥ २६ ॥ किसी

समय अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ब्राह्मणकी बात श्रवण कर नवम बालक जब मर चुका तब ब्राह्मणसे कहने लगा ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मण ! तू किसलिये रुदन करता है, क्या तेरे रहनेके स्थान–द्वारकामें धनुषका धारण करनेवाला कोई क्षत्रिय नहीं है ? धन, स्त्री और पुत्रोंमें आसक्त यह यादव तो यज्ञमें भोजनको आये हुए ब्राह्मणके समान बैठे हैं ॥२८॥ क्षत्रियोंके जीवित रहते भी धन, स्त्री, पुत्र संयुक्त ब्राह्मण जहां शोच करते हैं वे उदरपोषक क्षत्रिय और उनके वेषसे नट ही जीते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम दीन हो, इसलिये तुम्हारे पुत्रकी मैं रक्षा करूँगा और जो मुझसे रक्षा न होगी अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न होगी तो ब्राह्मणकी प्रीतिसे पापरहित हो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा ॥ ३० ॥ ब्राह्मण बोला कि, हे महाराज ! संकर्षण, वासुदेव और धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न तथा जिनके समान कोई योद्धा नहीं ऐसे अनिरुद्ध ये सभी मेरे बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ न हुए ॥ ३१ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी न जिस कर्मको कर सके, हे अर्जुन ! उस कर्मको तू कैसे कर सकेगा ? तू अज्ञानसे करना चाहता है, इस कारण तेरी बातका मुझे विश्वास नहीं होता ॥ ३२ ॥ अर्जुन बोले कि, हे ब्राह्मण ! मैं संकर्षण, कृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ, गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन नामक क्षत्रिय हूँ ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! तू मेरा अपमान मत कर, महादेवका प्रसन्न करनेवाला मेरा पराक्रम है, हे समर्थ ब्राह्मण ! संग्रामके बीच मृत्युको जीतकर तेरे पुत्र ला दूँगा ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम परीक्षित् ! इस प्रकार धृष्टताके वचनोंसे विश्वासको प्राप्त हो वह ब्राह्मण अर्जुनके पराक्रमको श्रवण कर प्रसन्न हो अपने घर चला आया ॥३५॥ जब स्त्रीके प्रसूतिकालका समय आया, तब ब्राह्मण पुत्रकी "मृत्युसे रक्षा कर" इस प्रकार बारंबार आतुर हो अर्जुनसे कहने लगा ॥ ३६ ॥ उस समय अर्जुनने पवित्र जलका स्पर्श कर हाथ-पांव धो, आचमन कर; शिवजीको नमस्कार करके दिव्य शस्त्रोंका स्मरण कर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर गाण्डीव धनुषको हाथमें लिया॥३७॥ अनेक शस्त्रोंमें मिलाये बाणोंसे सावरके घरका पिंजरा बना दिया, तिरछे बाण चलाकर ऊपरको चलाये और नीचेको चलाकर घरके ऊपर बाणोंका पिंजरा कर दिया ॥३८॥ इसके उपरांत ब्राह्मणकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ बालक बारंबार रुदन कर शीघ्र ही शरीरसहित आकाशमार्गमें होकर चला गया । और बार तो देह पड़ा रहता था; अबकी बार देह भी न रहा ॥३९॥ उस समय ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्रके निकट ही अर्जुनकी निंदा करके यह कहने लगा कि मेरी मूढ़ता देखो, मैंने इस नपुंसक अर्जुनका कहना सत्य माना ॥४०॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्र ये सब मिलकर भी जिसकी रक्षा न कर सके उसकी रक्षा करनेको और कौन समर्थ है ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस अपनी श्लाघा करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है, यह दुर्बुद्धि दैवके विनाश किये पदार्थको मूर्खतासे बचाना चाहता है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जब ब्राह्मणने खोटा वचन कहा तब अर्जुनने योगविद्याको धारण कर यमराज भगवान्‌की संयमनी पुरीमें शीघ्र प्रवेश किया ॥४३॥ वहां यमराजकी पुरीमें पुत्रोंको न देखा, तब वहांसे अर्जुन इन्द्रकी पुरीमें गया, फिर अग्निकी पुरीमें गया, वहांसे कुबेरकी पुरीमें गया, वायु तथा वरुणकी पुरीमें गया, इसके उपरांत रसातल और स्वर्गमें गया, फिर धनुषको लेकर और स्थानोंको गया ॥४४॥ सब स्थान ढूँढ़े, परन्तु कहीं ब्राह्मणके पुत्रका पता न मिला; तब

प्रतिज्ञासे अर्जुन अग्निमें प्रवेश करनेकी इच्छा करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उसे मना करके बोले ॥४५॥ कि ब्राह्मणके पुत्रको मैं ला दूँगा, तू अग्निमें मत जल, जो निन्दा करते हैं वे ही तुम्हारी निर्मल कीर्तिको हमारे साथ पृथ्वीपर निरन्तर गान करेंगे, कि अन्तमें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनने ब्राह्मणके पुत्रोंको ला ही दिया॥४६॥सामर्थ्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार कह और अर्जुनको सङ्ग ले अलौकिक अपने रथमें चढ़ पश्चिम दिशाको गये ॥४७॥ और सात-सात पर्वतके सात द्वीप उल्लंघन कर तथा सातसमुद्रोंको और लोकालोक पर्वतका उल्लंघन कर बड़े अन्धकारमें घुसे ॥४८॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! उस अन्धकारमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक इन रथोंके घोड़ोंकी गति शिथिल हो गयी ॥ ४९ ॥ महायोगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने घोड़ोंकी शिथिल गतिको देख हजार सूर्यके तेजवाले अपने सुदर्शन चक्रको रथके आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ अति घोर सघन प्रकृतिके परिमाणरूप अन्धकारको अपनी उत्कृष्टकांतिसे विदीर्णकर मनके तुल्य वेगवान् सुदर्शन चक्रने प्रत्यंचासे सेनापर श्रीरामचन्द्रके बाणके समान प्रवेश किया ॥ ५१ ॥ चक्रके पीछे गमन करके उस अंधकारसे परे वर्तमान श्रेष्ठ व्यास भगवान्‌का प्रकाशरूप देख चकाचौंधसे अर्जुनने अपने दोनों नेत्र मूँद लिये ॥५२॥ इसके उपरांत बड़े पवन चलनेसे उठी लहरोंसे शोभायमान जलमें वह रथ गया, उस जलमें प्रकाशमान् वस्तुमें श्रेष्ठ और दीप्तिमान् सहस्रों मणियोंके खंभ लग रहे हैं, उनसे शोभायमान अद्भुत भवन देखा ॥ ५३ ॥ उस भवनमें बड़ी देहवाले अद्भुत सहस्र मस्तकोंमें मणियोंकी कांतिसे प्रकाशमान दो सहस्र नेत्रोंसे शोभायमान स्फटिकमणिके श्वेतपर्वतके तुल्य कांति और श्यामकण्ठ तथा जिह्वा संयुक्त शेषनागको अर्जुनने देखा॥५४॥ उन शेषनागके देहका सुखदायक आसन बनाये बड़े प्रभाववाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ उत्तम भूमा पुरुषको शयन करते अर्जुनने देखा जिनकी वर्षाऊ मेघके समान कांति, सुन्दर पीतवस्त्रोंको धारण किये, मुख प्रसन्न मनोहर और बड़े-बड़े नेत्र हैं ॥ ५५ ॥ जिनके केश बड़े मणियोंसे जटित किरीट और कुण्डलोंकी कांतिसे शोभायमान, लम्बी सुंदर आठ भुजा, कौस्तुभमणिको धारण किये और भृगुलताके चिह्न संयुक्त वनमाला पहन रहे थे ॥५६॥ सुंदर, नन्द मुख्य अपने पार्षद और मूर्तिमान् चक्रादिक अपने शस्त्र और पुष्टि, श्री, कीर्ति, माया तथा समस्त अणिमादिक विभूतियोंसे सेवित ब्रह्मादिकोंके पालन करनेवाले ॥५७॥ इस प्रकार अनंत भूमा भगवान्‌के दर्शन कर सब लोगोंके पति श्रीकृष्णचन्द्रने अपने स्वरूपको प्रणाम किया और भयभीत अर्जुनने भी प्रणाम किया। इसके उपरांत श्रीकृष्ण और अर्जुनको हाथ जोड़े खड़ा देख वह पुरुष गंभीर वाणीसे मुसकाते हुए बोले ॥५८॥ कि तुम्हारे देखनेके लिये ब्राह्मणके सुपुत्रोंको मैं ले आया हूँ, पृथ्वीमें मेरी कलासे अवतीर्ण हुए तुम पृथ्वीके ऊपर बोझरूप असुरोंको मार शीघ्र मेरे पास आ जाओ ॥५९॥ तुम दोनों पूर्णमनोरथ महाश्रेष्ठ नर-नारायण हो तो भी लोकोंको शिक्षा करनेके लिये धर्म करते हो ॥६०॥ श्रेष्ठ आसनपर विरामान भगवान् भूमापुरुषने जब इस प्रकार आज्ञा दी तो श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनने धर्म भूमापुरुषको प्रणामकर ब्राह्मणके बालकोंको संग ले अपने धाम (द्वारकापुरी) में आकर ब्राह्मणको उसी अवस्था और रूपवाले पुत्र दे दिये ॥६१॥६२॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्रभाव देख अर्जुनने महा आश्चर्य मानकर पुरुषमें जो कुछ पराक्रम है, वह श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे ही है यह निश्चय किया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार अनेक पराक्रम इस संसारमें दिखाकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जगत्के विष-

योंका भोग किया और बड़े यज्ञोंसे यजन किया ॥ ६४ ॥ समयके अनुसार धर्ममार्गमें स्थित हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मण आदिसे लेकर सब प्रजाके मनोरथको जैसे इन्द्र वर्षासे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार पूर्ण किया ॥ ६५ ॥ अधर्मी राजाओंको मारकर और कितनोंको अर्जुन भीमसेनादिकोंके द्वारा घात कराया। धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायास संसारमें धर्म प्रवृत्त किया ॥ ६६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्विजकुमारानयनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

दोहा—नब्बेके अध्यायमें, यदुकुलको विस्तार।
हरिलीला संक्षेपसे, वरणों बारम्बार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित् ! सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भरी और श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित द्वारकापुरीमें ॥१॥ जहां नवयौवनकी शोभासे शोभायमान और बिजलीके समान कांतिवाली स्त्रियाँ महलोंमें गेंदकी क्रीड़ा कर रही हैं और श्रृङ्गारसे मनोहर वेष धारण कर रही हैं ॥२॥ जहांके मार्गोंमें मद चुआते हाथी और उत्तम वेष किये योद्धा, घोड़े और सुवर्णसे दीप्तिमान रथोंकी सदा भीड़ बनी रहती है ॥३॥ जहां फूलोंसे संयुक्त अत्यन्त शोभायमान बगीचे लग रहे हैं और फूले वृक्षोंकी पंक्तियोंमें चारों ओरसे भौंरे और पक्षी निरन्तर गुञ्जार कर रहे हैं ॥ ४ ॥ ऐसी द्वारकापुरीमें सोलह सहस्र पत्नियोंके प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रने स्त्रियोंके जितने सम्पन्न महल हैं, उनमें उतने ही विचित्ररूप धारण कर उनके संग रमण किया ॥ ५ ॥ उन घरोंमें फूले हुए उत्पल, कल्हार, कुमुद, अम्भोजके परागकी सुंगधियुक्त निर्मल जलवाले सरोवरोंमें पक्षियोंके समूह शब्द कर रहे हैं॥६॥ स्त्रियोंके आलिंगनसे कुचोंकी केशर जिनके लग रही, ऐसे महाप्रतापी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सरोवरोंके भीतर विहार करते हैं ॥७॥ मृदंग ढोलक आदि बाजे और वीणाओंको गंधर्वगण बजा रहे हैं और सूत, मागध, बन्दीजन, स्तुति कर रहे हैं ॥ ८ ॥ हँसती हुई स्त्रियाँ अपनी-अपनी पिचकारियोंसे भिजोती और श्रीकृष्णचन्द्र भी स्त्रियोंको छिड़कते यक्षराज कुबेरके समान क्रीड़ा करने लगे ॥ ९ ॥ भीगे वस्त्रोंसे उर कुच प्रकट होने और ढीली चोटियोंसे फूल गिरनेसे स्त्रियाँ पिचकारीसे बचनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आलिंगन करते ही कामदेवके उत्सवसे प्रकाशमान मुखवाली हो गयीं और भगवान्को भिगोती हुई शोभा पाने लगीं ॥ १० ॥ स्त्रियोंके स्तनोंकी केशरसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी माला भर गयी और हथिनियोंके संग विहार करने वाले हाथीके समान शोभायमान होने लगे ॥ ११ ॥ नट और नाचनेवालियोंको, गीत गाने तथा बाजे बजाकर जीविका करनेवालोंको श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी स्त्रियोंने क्रीड़ा करनेके अलंकार और वस्त्र दिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार विहार करते भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी चलन, बोलन, मुसकान और हास्यकी वार्त्ता क्रीड़ा आलिंगनसे स्त्रियोंकी बुद्धि हर गयी थी ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मुकुन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें बुद्धिवाली स्त्रियोंने पहले चुप हो, फिर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर उन्मत्त हो जड़की नाईं जो वचन कहे थे, उन वचनोंको मैं वर्णन करता हूँ, तुम सुनो ॥१४॥ स्त्रियाँ बोलीं कि हे टिटहरी ! संसारमें गुप्तबोध भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो शयन कर रहे हैं और तू निद्रा रहित हो विलाप करके उनकी

नींदमें बाधा देती है, शयन नहीं करती, यह ठीक नहीं। हे सखी ! क्या हमारी ही नाईं कमल-नयन श्रीकृष्णचन्द्रके हास्य लीलापूर्वक चितवनसे तेरा चित बँध गया है, जिससे पुकारती है ? ॥ १५ ॥ हे चकवी ! तूने क्यों नेत्र मूँद लिये हैं ? रात्रिमें पतिको न देखनेसे करुणाके कारण रुदन करती है अथवा दास्यभावको प्राप्त हुई हमारे समान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकी प्रसादी माला अपनी चोटीपर चढ़ानेकी इच्छा करती है, जिसलिये रोती है ? ॥१६॥ हे समुद्र ! निद्राके न आनेसे क्या तुझे भी प्रजागर हो गया, जो सदा चिल्लाता रहता है, अथवा हमारीसी दशा तेरी भी है ? जैसे भोगसे मुकुन्दने हमारे कुचोंकी केशर ले ली है, क्या इसी प्रकार तुझे भी मथकर तुझमेंसे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाल ली है ? ॥१७॥ हे चन्द्रमा ! जान पड़ता है कि तुझे बलिष्ठ क्षयीके रोगने ग्रहण कर लिया है, इसी कारण तू क्षीणताको प्राप्त हुआ है, अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर नहीं करता, हमारे ही समान मुकुन्दकी रहस्य वार्त्ताओंको भूल उसी चिन्ताके कारण क्षीण हो गया है और हमें निश्चय है कि तेरी वाणी भी हमारे सनान बन्द हो गई है ॥ १८ ॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने ऐसा तेरा क्या अप्रिय कार्य किया है, जिससे तू गोविंदके अंगमें लगकर हमारे हृदयमें कामाग्निको प्रकट करता है ! ॥ १९ ॥ हे मेघ ! हे श्रीमन् ! हम जानती हैं, तू यादवोंके इन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका प्यारा मित्र है, इसीलिए जो ताप दूर करनेका भगवान्का गुण है, वह तुझमें भी है, हमारे समान भगवान्के प्रेममें बँधकर तू भी नारायणका चिन्तन करता है, क्योंकि तेरे हृदयमें जो अति उत्कण्ठा है इससे भृगुलताके चिह्नवाले श्रीकृष्ण स्मरण कर अश्रुकी धारा बहाता है, तेरा हृदय भी श्याम हो रहा है, तूने उनके संग मित्रता क्योंकी ? उनका सङ्ग तो दुःखदायी है ॥ २० ॥ हे शोभायमान कंठवाले कोकिल ! मृतकको जिलानेवाली कोमलवाणीसे प्यारी बातें करने वाले भगवान् श्रीकृष्णके वचन कहती है, तेरा मैं क्या प्रिय करूँ ? वह मुझसे कह ॥२१॥ हे उदार बुद्धे ! हे पर्वत ! तू चलता और बोलता भी नहीं है और बड़ी चिन्ता करता है, ऐसे वसुदेवनन्दनके चरण हम अपने हृदयमें धरनेकी चाहना करती हैं, उसी प्रकार तू भी अपने शिखरपर धरनेकी इच्छा करता है ? यदि धरेगा तो हमारी-सी दशा तेरी भी होगी ॥ २२ ॥ हे समुद्रपत्नियो नदियो ! इस समय ग्रीष्मके आनेसे मेघद्वारा समुद्रका जल न पानेसे दुर्बल, सूखे ह्रद और कमलोंकी शोभासे हीन हो गई हो, धारा वर्षाकर तुम्हें आनन्द नहीं देता, यह बड़ा कष्ट है, इसीसे तुम्हारे हृदय सूखकर लट गये हैं, जैसे वांछित पति यदुपति, श्रीकृष्णचन्द्रकी स्नेहभरी चितवनसे पड़े विना हृदय चुराये जानेसें हम दुर्बल हो गयी हैं ॥२३॥ अकस्मात् आये हुये हंसको दूत कल्पना करके कहती हैं कि, हे हंस ! तुम अच्छे आये आओ विराजो पयपान करो, श्रीकृष्णचन्द्रकी वार्त्ता कहो, तुम दूत बनकर आये हो वह हमको विदित है। श्रीकृष्णचन्द्र भली प्रकार तो हैं अधिक शांति रखनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आप ही हमसे जो कुछ कह गये थें उसका किसी समय स्मरण करते हैं ? हे दूत ! हमारे भगवान् वासुदेवसे क्या अर्थ ? जो हमें कामके सुखके लिये बुलाते हो तो उन्हींको हमारे निकट बुलाकर ले आ। परंतु बात यह है कि लक्ष्मी हमसे छलकर श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती है, इस कारण लक्ष्मीरहित श्रीकृष्णचन्द्रको ही बुलाकर ला। 'कमला एकनिष्ठावाली है, तो उसको किस प्रकार छोड़ा जाय ?' यदि तेरे मनमें यह बात हो तो क्या स्त्रियोंमें

केवल लक्ष्मी ही निष्ठावाली है, हम वैसी नहीं हैं ? ॥२४॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें इस प्रकार भाव कर श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्रियाँ वैष्णव गतिको प्राप्त हुईं ॥२५॥ जो श्रीकृष्णचन्द्र कीर्त्तन करने और श्रवण करनेसे ही स्त्रियोंके मनको हर लेते हैं, वे यदि दर्शन करनेवालियोंके मनको हर लें तो क्या आश्चर्य है ? ॥ २६ ॥ हे राजन् ! जो स्त्री जगत्के गुरु श्रीकृष्णचन्द्रको अपना पति मान प्रेमपूर्वक उनकी चरणसेवा आदि करती थीं उनका तप और भाग्य कहांतक वर्णन करें ? ॥ २७ ॥ इस प्रकार साधुओंकी गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने वेदविहित धर्मका अनुष्ठान कर घरमें रह धर्म, अर्थ विषय सेवन करनेवाले संसारी पुरुषोंको वारंवार दिखाया ॥२८॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गृहस्थियोंके उत्तम धर्मका पालन करते थे, उस समय भगवान्के सोलह हजार एकसौ आठ (१६१०८) रानियाँ थीं ॥ २९ ॥ हे राजन्! स्त्रियोंमें रत्नके समान सोलह हजार एकसौ आठ रानियोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी थीं, जिनके पुत्रोंके नाम भी पहले वर्णन कर चुके हैं ॥३०॥ अप्रमेय गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जितनी भार्या थीं, उन एक-एक भार्यामें दश-दश पुत्र उत्पन्न हुए, वे सब मिलकर-एक लाख इकसठ हजार और अस्सी १६१०८० हुए ॥३१॥ हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! उनमें बड़े पराक्रमी उदार यशस्वी अठारह १८ महारथी हुए, उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥ यथा— प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण ॥ ३३ ॥ पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥३४॥ हे राजन् ! मधु दैत्यके मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सब पुत्रोंमें रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी श्रीकृष्ण चन्द्रके समान गुणी हुए ॥ ३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नजीने रुक्मीकी पुत्रीसे विवाह किया, उन प्रद्युम्नजीसे रुक्मीकी पुत्रीमें दशहजार हाथियोंके बलवाले अनिरुद्ध पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ अनिरुद्धने रुक्मीकी पोती रोचनाको ब्याहा। उस रोचनामें अनिरुद्धके वज्र नाम पुत्र हुआ जो वज्र प्रभासक्षेत्रकी मुसललीलामें शेष रहा ॥३७॥ उस वज्रके प्रतिबाहु पुत्र हुआ, प्रतिबाहुके सुबाहु हुआ, सुबाहुके शांतसेन हुआ, और शांतसेनके शतसेन हुआ ॥ ३८ ॥ इस यदुकुलमें धनहीन, प्रजाहीन किसीने जन्म नहीं लिया और थोड़ी आयु, पराक्रमरहित, ब्राह्मण भक्तिहीन ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ॥३९॥ हे राजा परीक्षित्! यदुवंशमें उत्पन्न हुआ विख्यातकर्मा पुरुषोंकी संख्या दशहजार वर्षोंमें भी कहनेको समर्थ नहीं हो सकते ॥ ४० ॥ क्योंकि तीन करोड़ आठ सहस्र आठ सौ ३०००८८०० यदुकुलके बालकोंको पढ़ानेवाले आचार्य नियत थे यह मैंने सुना है ॥४१॥ महात्मा यादवोंकी संख्या कौन कर सकता है ? क्योंकि जिस कुलमें हजारोंके दश हजार उनके लाख इतने यादवोंको लेकर द्वारकापुरीमें उग्रसेनने वास किया ॥४२॥ देवता और असुर युद्धमें मरे हुए दारुण दैत्य ही मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्ववन्त हो कर प्रजाको बाधा देने लगे थे ॥ ४३ ॥ हे महाभागवत परीक्षित् ! उन असुरोंको दंड देनेके लिये हरि भगवान्की आज्ञा पाकर देवताओंने यदुकुलमें अवतार लिया था ॥४४॥ उन यादवोंकी प्रभुतामें भगवान् ही प्रमाण हुए, उन श्रीकृष्णचन्द्रके आज्ञानुवर्ती सब यादव वृद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ सोते, बैठते, बोलते, क्रीड़ा, स्नान, भोजनादि कर्म करते, श्रीकृष्णचंद्रमें चित्त लगाये यादवोंने अपने आत्माको नहीं जाना ॥ ४६ ॥ उससे प्रथम गङ्गाजी ही अधिक तीर्थ रहीं। जब यादवोंमें श्रीकृष्णचन्द्रका यशरूपी तीर्थ प्रगट हुआ तबसे अपने चरणोदकरूप गंगातीर्थको भी न्यून करने लगे और आप ही संपूर्ण तीर्थोंके ऊपर विराजने

लगे । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे जिन पुरुषोंने वैर किया और जिसने स्नेह किया सभी तद्रूपताको प्राप्त हुए । देखो, जिस लक्ष्मीके लिये ब्रह्मादिक उपाय करते हैं और किसीको प्राप्त न हुई वही लक्ष्मी श्रीकृष्णचन्द्रको त्यागकर कहीं नहीं जाती, जिन श्रीकृष्णचन्द्रका नाम श्रवण करनेसे अथवा कथन करनेसे सब पापोंका नाश कर देता है, फिर उनके स्वरूपका तो कहना ही क्या है और जिन्होंने ऋषियोंके वंशमें धर्म चलाया उन कालचक्र आयुधधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको दुष्टोंका मारना और पृथ्वीका बोझ उतारना, यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥४७॥ सब जीवोंमें अन्तर्यामीरूप होकर वास करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा उत्कर्षतापूर्वक विराजमान हैं । देवकीमें जन्म हुआ, यह तो कथन मात्र है । श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवित इच्छामात्रसे अधर्मके नाश करनेमें समर्थ हैं, परन्तु तो भी क्रीड़ाके लिये अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूर कर स्थावर-जङ्गम सब जीवोंका दुःख दूरकर सुन्दर मुसकानयुक्त अपने श्रीमुखसे व्रजकी स्त्री (गोपिका) और मथुरा, द्वारकापुरीकी स्त्रियोंको कामदेव बढ़ानेवाले सर्वदा विराजमान रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय हो ॥ ४८ ॥ अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मत्स्य-कूर्मादिक अवतार धारण करनेवाले यादवोंमें उत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने जो-जो रूप धरकर योग्यकर्म किये थे, उनको सुनकर पुरुष पापकर्मसे छूट जाता है ॥ ४९ ॥ तीनों कालमें बड़ी मुक्तिके देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभायमान कथाका श्रवण कीर्त्तन और विचार करके पुरुष कालकी गतिरहित भगवान्के धामको प्राप्त होता है यह श्रवण, करके चक्रवर्ती राजा भी अपना राज्य त्याग श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राप्तिके लिये ग्रामके बाहर वनको चले गये ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे श्रीरामगङ्गातटस्थमुरादाबादनगर-निवासिसुप्रसिद्धकविवरमाथुर-वंशीयश्रीयुतलालाशालग्रामवैश्यकृतदशम-स्कन्धोत्तरार्द्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामानन्दकन्दश्रीकृष्णचन्द्र-चरित्रवर्णनं नाम नवतितमोध्यायः ॥ ९० ॥

दोहा—श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज गुणग्राम ।
विद्वत्तम उपकारचित, सकल-सुलक्षणधाम ॥ १ ॥
कहां होत हैं जगतमें, ऐसे पुरुष उदार ।
देशदेशमें छा रह्यो, जिनको सुयश प्रचार ॥ २ ॥
कुटुँबसहित रक्षा करैं, जिनकी श्रीजगदीश ।
बार बार यह देत हैं, शालग्राम अशीश ॥ ३ ॥
भई दशम स्कन्धकी, भाषा पूरण आज ।
विरची शालग्राम कवि, सुमिरन करि व्रजराज ॥ ४ ॥

इति दशमस्कन्ध समाप्त ॥ १० ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

एकादश स्कन्ध ११.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

एकादशस्कंधः



श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

एकादश स्कन्ध ११

दोहा–जय गणेश वारण-वदन, विघ्नहरण सुखमूल।
अनुपम भाल विशाल मुख, सोहत हाथ त्रिशूल॥
जय जगजननी शारदा, सुखदानी गुणखान।
शीघ्र पूर्ण हो भागवत, दीजै यह वरदान॥
जय शिव काशीनाथपद, करन अनाथ सनाथ।
बारबार वर मांग हूँ, तिनपर धरकर माथ॥

सोरठा–जयहरि कृपानिधान, अधम उधारन सुखसदन।
भाषत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो॥
प्रभुपद पोतहिं पाय, अगम अथाह भवाम्बुनिधि।
मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपदसरिस॥

दोहा–गुरुपदरज शिर धरि कहौं, एकादश असकन्ध।
हरि उद्धव संवादवर, ज्ञान विराग प्रबन्ध॥
कहौं प्रथम अध्यायमें, बहु अद्भुत इतिहास।
जैसे ऋषिके शापसे, यदुकुल भयो विनास॥

पहले दशमस्कंधमें भक्तोंका उद्धार और भूमिका भार उतारनेको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हुये, उनकी लीला कही। अब एकादश स्कन्धमें भक्तोंको आत्मतत्त्वका उपदेश और पूजामार्ग, भक्तिमार्ग, इनके फल निर्णय करके कहेंगे और सब भक्त पुरुषोंको अपने स्थानपर प्राप्त करेंगे, इस प्रकार इस एकादश स्कन्धमें मुक्ति लीला कहते हैं। यहां प्रथम कुरुक्षेत्रमें जैसे वसुदेवजीने नारदजीसे कर्मयोग पूछा तो नारदजीने सब कहा, उससे सब चित्त शुद्ध हुआ तब वसुदेवजीको ज्ञान हुआ, अर्थात् राम कृष्ण ये दोनों साक्षात् ईश्वर हैं ऐसा जाना और जब यह ब्रह्मज्ञान नहीं रहेगा तो फिर नारदजीसे पूछेंगे तो नारदजी पांच अध्यायोंमें वर्णन करेंगे। पहिले अध्यायमें वैराग्य उत्पन्न करानेके लिये यदुकुलको ब्रह्मशापके बहानेसे विषय-सुखको अनित्य कहते हैं। इसके उपरांत चार अध्यायोंमें राजा जनक और नवयोगी-

श्वरोंका संवाद कहेंगे, उसमें परमतत्त्व निरूपण करेंगे फिर छठे अध्यायमें श्रीकृष्ण और उद्धवका संगम कहेंगे। इसके बाद तेईस अध्यायोंमें उद्धवसे श्रीकृष्ण परमतत्त्वका निरूपण करेंगे, फिर दो अध्यायोंमें यादवोंका संहार कहेंगे, इसी प्रकार इकतीस अध्यायोंमें "एकादश स्कन्ध" वर्णन करेंगे इसलिए पहले पूर्वस्कन्धकी कथा स्मरण करके श्रीशुकदेवजी प्रारंभ करते हैं :–

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा परीक्षित् ! जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने और बलदेवजीने मिलकर यादवों सहित शीघ्र कलह उत्पन्न कराकर सम्पूर्ण पृथ्वीका भार उतारा वह हम तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं ❋ ॥१॥ जो पांडुके पुत्र शत्रुओंसे बहुत कुपित किये गये, जुआ खेलनेसे जिनका राज्य जाता रहा, अवज्ञासे द्रौपदीके केश खींचे गये, लाक्षाभवनमें बन्द करके आग लगा दी गयी, अर्थात् जहांतक हो सका वहांतक कष्टपर कष्ट दिये, उन्हींके लिए दोनों पक्षोंमें मिले राजाओंको मार पृथ्वीका भार उतारा, परंतु तो भी विचारने लगे ॥२॥ कि यद्यपि पृथ्वीका भाररूप जो राजाओंकी सेना थी वह अपनी भुजाओंसे पालित यादवोंसे नाश भी करवायी, परन्तु तो भी भार न गया, क्योंकि यदुकुल अभी अनन्त शेष है, जिसका पृथ्वीपर बड़ाभारी भार है ॥ ३ ॥ जिसका मैं आश्रय हूँ, उसका पराजय तो और दूसरेसे हो ही नहीं सकता यह सम्पूर्ण यादव वैभवसे उद्धत हो गये हैं। इसलिये विना इनका संहार किये किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर नहीं सकता, इस कारण इनमें परस्पर कलह उत्पन्न कराकर जैसे बांसोंमें अग्नि उत्पन्न होता है और उसीसे सम्पूर्ण वन भस्म हो जाता है, उसी रीतिसे शांतिको प्राप्त हो पीछे अपने परमधामको जाऊँ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय कर सत्यसंकल्प भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मशापके मिषसे अपने कुलका संहार किया ॥ ५ ॥ जिनके समान लोकोंमें कहीं लावण्यता नहीं और जिससे चित्त औरको स्मरण न करे और जो चरणारविंद देखते हैं, उनकी योग और क्रिया चरणोंके देखनेसे हर ली, फिर भक्तोंकी सब इन्द्रियाँ वृत्तिमें और अपने संसारी जीवोंका अज्ञानरूपी अँधेरा दूर कर, उनके लिये पृथ्वीमें अति विमलकीर्ति विस्तार कर श्रीकृष्ण-

---

❋ शंका–श्रीकृष्णचन्द्र त्रिलोकीके स्वामी होकर अनेक प्रकारके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र उत्पन्न करके फिर उनका विनाश क्यों किया। यदि कोई कहे कि कृष्णचन्द्रने विचार किया कि इन यदुवंशियोंको छोड़कर परमधामको जायेंगे तो यह सब पृथ्वीके मनुष्योंको दुःख देंगे, वे मूर्ख हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज जो घट घटके जाननेवाले थे। कुछ मनुष्य नहीं थे, कि हम वैकुण्ठधामको जायेंगे, सर्वान्तर्यामी ईश्वर थे, विचार किया कि यह हमारे अंशसे जो जन्मे यादव हैं वे पृथ्वीको अत्यन्त दुःख देंगे ऐसा जानते थे तो उन सबको उत्पन्न क्यों किया ? क्योंकि आप ही उत्पन्न करके आप ही नाश करना यह बड़ा अयोग्य कर्म है। शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि, विषके खानेसे प्राणी मर जाते हैं, विष ऐसी बुरी वस्तु है, परंतु जो अपने हाथसे ऐसे विषका वृक्ष भी लगाते हैं, उसको हाथसे नहीं काटते और चेतनस्वरूपको उत्पन्न करके आपसे आप विनाश करना यह बड़ा अनिष्ट कर्म है फिर श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा क्यों किया ?

उत्तर–श्रीकृष्णने ऐसा विचार किया कि जिस दिन हम लोकसे परलोकको जायेंगे उसी दिन महाघोर कलियुग इस मर्त्यलोकका राजा होगा और ये सब यादव हमारे अंशसे जो उत्पन्न हुए हैं, कलियुगमें सब ऐसे ही रहेंगे तो अनेक दुःख पायेंगे इस लिये इन सबका प्रबन्ध ऐसा करें कि प्रथम ही अपने लोकमें भेजकर पीछे हम जायँ, क्योंकि यादवोंके नाश होनेसे दुःख तो होगा ही परंतु पीछे सुख होगा। कैसे ? कि जैसे औषधि खानेके समय मुख कडुआ हो जाता है परंतु पीछेसे सुख होता है। फोड़ोंको चीरनेके समय जीव दुःख मानता है परंतु पीछे सुख पाता है। इस बात को विचारकर पृथ्वीके भारके कारण अंशमें आपने जो यादव उत्पन्न किये उन सबको नष्ट करके अपने सङ्ग लेकर चले गये, कुछ निर्दयपनसे यादवोंका विनाश नहीं किया।

चन्द्र व बलरामजी अपने धामको चले गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षित् पूछने लगे कि हे ब्रह्मन् ! यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त, अतिदानी और नित्यप्रति वृद्धोंकी सेवा करते थे, इतनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके मन लग रहे थे, उन्हें किस लिये ब्राह्मण लोगोंने शाप दिया ॥८॥ हे भगवन् ! इस शापका क्या कारण है, क्यों हुआ ? और यह सब लोग एक-चित्त थे; मनमें भेद क्यों उत्पन्न हुआ ? हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह सब मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! प्रथम भक्तोंको सुख देनेके लिये पूर्ण शोभायमान स्वरूप धारण कर भूमिपर अत्यन्त मंगल कर्म किये और यद्यपि आप पूर्ण काम हैं, तो भी फिर द्वारकापुरीमें घर बनाकर अनेक क्रीड़ा कर सब भक्तोंको सुख दिया । इसका तात्पर्य यह है कि पहले जीवोंका उद्धार करनेके लिये उदार कीर्तिका विस्तार किया, फिर अपने कुलके संहार करनेकी इच्छा करने लगे, यही काम शेष रहा था ॥ १० ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकार इच्छा की तभी ब्रह्मशाप निमित्त हुआ, क्योंकि जो कर्म अत्यन्त पुण्यरूप मंगलरूप गानेवालोंके सम्पूर्ण पाप दूर करे, ऐसे कर्म करनेको जो मुनि बुलाये थे, वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञासे पिंडारक तीर्थको चले गये । श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं काल-रूप होनेसे वसुदेवजीके घरमें वास कर निजकुलका नाश करना चाहते थे, इसीलिये मुनि-लोगोंको पिंडारक स्थानको भेजा ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषि श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञानुसार पिंडारक स्थानमें वास करते थे ॥ १२ ॥ एक समय इन ऋषीश्वरोंके पास खेलते-खेलते सब यदुकुमारोंने आकर नमस्कार कर चरण पकड़ पूछा, परन्तु इन लोगोंके मनमें कपट भरा हुआ था ॥ १३ ॥ वह सब बालक क्या किये कि:—

दोहा—सांबहि सुन्दर जानकर, नारीवेष बनाय ।
उदर ऊँचकर बसन भर, सुंदर वस्त्र उढ़ाय ॥

ऐसी सुंदर स्त्री बनाकर मुनियोंके सम्मुख ले जाकर हाथ जोड़कर पूछने लगे कि, अहो मुनीश्वरो ! तुम सर्वज्ञ हो, यह स्त्री गर्भवती है, इसको पुत्रकी इच्छा है और प्रसव होने-वाला है, तुम्हारे सम्मुख आते इसे लज्जा होती है । हमें आप कृपा करके बताइये, इसके लड़का होगा या लड़की ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जब छलसे पूछा, तब यादवोंके बालकोंपर अत्यन्त क्रोधित होकर मुनि बोले कि हे मूर्खो ! यह तुम्हारे कुलनाशक मूसलको उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥ यह सुन वह बालक अत्यन्त भयभीत हो उतावलीसे सांबके उदरको खोल लोहेका मूसलदेख भयभीत हो गये ॥ १७ ॥ और परस्पर कहने लगे कि हमने यह क्या किया, हमको मनुष्य क्या कहेंगे, इस प्रकार विह्वल हो मूसलको ले आये ॥ १८ ॥ जिनके मुखकी शोभा मलिन हो गयी ऐसे सब बालक उस मूसलको सभाके बीचमें लाकर सब यादवोंके निकट राजा उग्रसेनसे कहने लगे, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रसे न कहा ॥१९॥ हे महाराज परीक्षित् ! मुनियोंका अमोघ शाप श्रवण कर और मूसल देख सब द्वारकावासि-योंने बड़ा आश्चर्य माना और भयभीत हो गये ॥ २० ॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णचन्द्रके विना पूछे ही उस मूसलको राजा उग्रसेनने चूर्ण करवाकर समुद्रके जलमें बहा दिया और रेतनेसे शेष जो बचा उसे भी समुद्रके जलमें डाल दिया ॥ २१ ॥ वहां कोई मत्स्य उस लोहेको निगल गया और उसका चूरा जलकी तरंगोंसे बहता-बहता समुद्रके तीरपर आ गया । उससे

ही सब पटेले उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ उस मत्स्यको भी अन्य मत्स्योंके संग धीमरोंने जालमें पकड़ा, उस मत्स्यके पेटमेंसे लोहा जो निकला उससे उसने अपने तीरकी भाल बनवायी ॥ २३ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र संपूर्ण बातोंको जानते थे और सब कुछ करनेमें समर्थ थे तो भी निवारणकी इच्छा न की, विप्रशापको ही मुख्य रखा, इस कारण इस समय आप ही कालरूप हैं ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे यदुकुलस्य विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–दुसरेमें वसुदेव अरु, नारद प्रश्न सुस्वाद ।
योगेश्वर अरु जनकसों, भयो धर्म संवाद ॥

दूसरे अध्यायमें भक्तिसे पूछे वसुदेवजीको नारद जनक और नव योगियोंके संवादसे शुद्ध धर्म कहेंगे । श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! गोविन्दकी भुजासे पालित द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें प्रेम करनेवाले नारदजी निरन्तर वास करते थे ॥ १ ॥ क्योंकि ऐसा कहा भी है कि, जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासनामें मुक्त पुरुषोंको भी उत्कण्ठा होती है, उनको कौन नहीं भजता, सर्वत्र मृत्युसे त्रासित इंद्रियवाला कौन पुरुष भगवान्‌के चरणारविन्दका भजन नहीं करेगा, जिन चरणकमलोंकी देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिक सेवा करते हैं ॥ २ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम आसनपर बैठाकर पूजा और नमस्कार करके पूछा ॥३॥ कि हे भगवन् ! जैसे हरिकी प्राप्तिका मार्गरूप महत् पुरुष हैं उनका आगमन दीनोंका कल्याण करनेके लिये है और जैसे पिताका आना पुत्रादिकोंके सुखके लिये है, उसी प्रकार आपका आगमन सब देहधारियोंके कल्याणार्थ है ॥ ४ ॥ महात्मा लोगोंको देवताओंकी उपमा भी अनुचित है, क्योंकि देवताओंका चरित्र बहुत वृष्टि आदिसे दुःख और सुख दोनों करता है, परन्तु साधुओंका चरित्र तो सदा सुख ही करता है,इस कारण तुम सरीखे अच्युतरूप पुरुषोंका आगमन सुखके ही लिये है ॥ ५ ॥ यद्यपि देवतालोग सुख देते हैं, परन्तु तो भी जिसने जितना भजन किया हो, उसे उस भजनके अनुसार ही सुख देते हैं, क्योंकि जैसे मनुष्य जितना कार्य करे, उतना ही उसकी परछाई कार्य करे, ऐसे ही मनुष्य जैसा और जितना काम करे, उसे देवता लोग कर्मानुसार ही फल देते हैं, परंतु आप सरीखे साधु पुरुष तो दीनोंको देखते ही कृपालु हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे नारद ! यद्यपि हम तुम्हारे आनेसे ही कृतार्थ हो गये, परन्तु तो भी जिन धर्मोंसे भगवान् प्रसन्न हों, उन वैष्णव धर्मोंको आपसे पूछते हैं। जिन धर्मोंको श्रद्धासहित श्रवण करनेसे मनुष्य संसारसे छूट जाता है ॥७॥ यदि तुम कहो कि भगवान्‌की प्रसन्नताके पात्र तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं, तो इसका उत्तर यह है कि मुक्तिदाता अनन्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रथम मैंने पुत्र कामनासे आराधन किया था, देवमायासे मोहित हो मोक्षप्राप्तिके लिये आराधन नहीं किया, यह बात सूतिकागृह (सोवर) में ही श्रीकृष्णचन्द्रने मुझसे कही थी वह याद है ॥ ८ ॥ हे नारद ! इसलिये अनेक दुःखसंयुक्त सब ओरसे भय देनेवाले संसारमें जिसमें हम विना ही श्रमके छूट जायँ, वैसी ही तुम शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार जब अत्यन्त बुद्धिमान् वसुदेवजीने पूछा तब

भगवान्‌के गुणोंके स्मरण करानेसे प्रसन्न होकर देवर्षि नारदजी वसुदेवजीसे कहने लगे ॥१०॥ कि हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी ! तुमने यह बहुत उत्तम प्रश्न किया, क्योंकि सबके चित्तको शुद्ध करनेवाला वैष्णव धर्म पूछा ॥ ११ ॥ यह धर्म सुननेसे, स्मरण करनेसे, श्रद्धापूर्वक आदरसे, ध्यान करनेसे, सम्मति देनेसे समस्त विश्वके पातकी जनोंको शीघ्र पवित्र कर देता है, क्योंकि यह भगवत्सबंन्धी धर्म है ❋ ॥१२॥ हे वसुदेव ! परमकल्याणरूप, जिनके श्रवण और कीर्तन अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसे भगवान् नारायणका स्मरण करा कर मेरा आपने बड़ा ही उपकार किया ॥१३॥ अब मैं तुमसे एक प्राचीन कथा कहता हूँ जिसमें उदारचित्त राजा जनक और ऋषभदेवके पुत्र नव योगीश्वरोंका संवाद है॥१४॥स्वायंभुवमनुके प्रियव्रत-नाम एक पुत्र हुआ, उसके अग्नीध्र, उसके नाभि और नाभिके ऋषभदेवजी हुए ॥ १५ ॥ यह वासुदेवके अंशरूप ऋषभदेवजी मोक्षसम्बन्धी धर्म कहनेकी कामनासे प्रकट हुए थे, इनके सौ १०० पुत्र हुए, वे सब वेदके जाननेवाले थे ॥ १६ ॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ भरतजी पर-मेश्वरके बड़े भक्त हुए, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं, यह अजनाभखण्ड ही जिनके नामसे (भरत खण्ड) प्रसिद्ध हो गया ॥१७॥ वह राजा भरत पृथ्वीका भली प्रकार भोग कर अंतमें पृथ्वीको छोड़ तपस्या करनेको चले गये और भगवान् हरिकी उपासना करते-करते तीन जन्ममें हरिकी पदवीको प्राप्त हुए ॥१८॥ शेष निन्नानवे पुत्रोंमें नौ पुत्र इस भरतखण्डके मध्य नवों द्वीपोंके पति हुए और इक्यासी पुत्र कर्ममार्गके प्रवर्तक ब्राह्मण हुए ॥ १९ ॥ और जो नौ पुत्र महाभाग मुनि थे, वे परमार्थके उपदेश करनेवाले आत्मज्ञानके अभ्यासमें तत्पर दिगंबर वेषधारी आत्मविद्यामें निपुण हुए ॥ २० ॥ उनके नाम यथा-कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ॥ २१ ॥ यह सब इस विश्वको भगवद्रूपसे देखने लगे, स्थूल सूक्ष्मको आत्मासे भिन्न देखने लगे, अधिक क्या कहें । वे सब आत्मरूपको ही देखते हुए संपूर्ण पृथ्वीमें फिरने लगे ॥२२॥ अप्रतिहत गतिसे आसक्तिरहित ये योगीश्वर देवता, सिद्ध, साध्य, गंधर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके लोकोंमें अपनी इच्छासे विचर रहे थे ॥ २३ ॥ विचरते-विचरते ये सब अपनी इच्छासे एक दिन ऋषियोंसे विस्तृत उदारचित्त अजनाभ राजा जनकके यज्ञमें आये ॥२४॥ सूर्यके समान तेजस्वी परमभागवत इन ऋषियोंको देख यजमान, अग्नि, ब्राह्मण सब उठकर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ इसके उपरांत राजा जनक उनको नारायणपरायण जान अति प्रसन्न हो आसन दे यथायोग्य पूजा करने लगे ॥२६॥ अपनी कांतिसे शोभासंयुक्त सनकादिकोंके समान उन नव योगीश्वरोंको देख प्रसन्न हो विनय कर पूछने लगे ॥ २७ ॥ प्रथम उनकी स्तुति की कि तुम साक्षात् मधुदैत्यके

---

* शंका–ऐसा उत्तम कौनसा धर्म है, जो शीघ्र ही दुष्टोंको पवित्र करता है ? जो दुष्ट तीन लोककी और देवताओंकी बुराई करते हैं उनको पवित्र करना महाकठिन है, क्योंकि शास्त्रमें ऐसा लिखा है, जो प्राणी किसी दूसरेकी बुराई करेगा तो कभी पवित्र नहीं होगा, चाण्डालके सदृश बना रहेगा, और जो तीन लोकके देवताओंकी निन्दा करेगा वह कैसे पवित्र हो सकता है ?

उत्तर–जो धर्म तीन लोक अथवा [illegible] देवताओंकी निन्दा करनेवाले प्राणीको पवित्र करता है, वह धर्म यह है कि मनमें दया करके भगवान्‌का भजन करना। वह ऐसा सुन्दर धर्म है कि सब पापोंका नाश करता है, जैसे रुईके ढेरको एक सरसों प्रमाण अग्नि भस्म कर देती है, ऐसा ही, भगवान्‌के नामका जप है' थोड़ा भी करेगा तो अनेक जन्मके पापोंका नाश कर देगा ऐसा लिखा है ।

द्वेषी भगवान्के पार्षद हो; जिससे विष्णुभक्त लोकोंके पवित्र करनेको सब ठौर विचरते हो ॥ २८ ॥ मैंने दुर्लभ वस्तु पायी है, इसलिये मेरा बड़ा भाग्य है, क्योंकि देहधारियोंको मनुष्यदेह दुर्लभ है, वह भी क्षणभंगुर है, उसमें भी भगवान्के प्रिय भक्तोंका दर्शन तो अत्यंत ही दुर्लभ है ॥२९॥ हे निष्पाप! इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि संसारमें सबसे उत्तम कल्याणका साधन क्या है, क्योंकि इस संसारमें अर्द्धक्षणका सत्संग भी मनुष्योंको बड़ी निधि है ॥३०॥ इस कारण यदि आप सुननेका अधिकारी समझो तो हमसे वैष्णवधर्म कहो जिन धर्मोंसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तोंको अपना आत्मातक दे देते हैं ॥ ३१ ॥ नारदजी बोले कि, हे वसुदेव! जब इस प्रकार राजा जनकने पूछा तब उन महंत ऋत्विजोंने सभासदोंसहित राजा जनककी स्तुति करके प्रीतिपूर्वक कहा ॥३२॥ जनकजीने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णवधर्म, दूसरा परमेश्वरकी भक्ति, तीसरे माया, चौथे मायासे तरनेका उपाय, पांचवां ब्रह्म, छठा कर्म, सातवां अवतारचरित्र, आठवां भक्तिप्राप्ति, नववां युग। इन एक-एक प्रश्नका उत्तर नवों मुनीश्वरोंने दिया। प्रथम अति कल्याणरूप धर्म कवि योगेश्वर बोले कि, हरिके चरणारविन्दकी उपासना ही सब प्रकारके भय दूर करती है, जिसके करनेसे देहादि भिन्न पदार्थोंके गर्वसे सदा उद्वेगको प्राप्त होकर यह पुरुष संसारके भयसे छूट जाता है ॥ ३३ ॥ अब वैष्णवधर्मके लक्षण कहते हैं–प्रथम मनुआदि ऋषियोंके मुखसे सब वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। फिर अति रहस्यसे अपने मुखसे भगवान्ने अज्ञानियोंका सुखपूर्वक आत्मज्ञान पानेके जो उपाय कहे हैं, वह सब वैष्णवधर्म हैं ॥ ३४ ॥ उन धर्मोंके आश्रित होकर मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता। हे राजन्! नेत्र बन्द करके दौड़े तो भी नहीं गिरता और यदि वर्णाश्रम धर्म न बन पड़े तो भी प्रतिवादी नहीं होता और न फलसे भ्रष्ट होता है॥३५॥ शास्त्रोक्त विधिसे बताये हुए कर्मको ही नारायणके अर्पण करे, यह नियम नहीं है, किंतु शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, अहंकार और अध्याससे माने हुए ब्राह्मणत्वादिसे भी जो कुछ कर्म करनेमें आये, वह सब परमेश्वरको अर्पण करनेसे शारीरिक क्रिया सब नारायणसम्बंधी धर्मरूप हो जाती हैं ॥ ३६ ॥ परमेश्वरसे विमुख पुरुषको ईश्वरकी मायासे भगवत्स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, बरन् उससे 'अहं देहः' मैं देह हूँ ऐसा अभिमान होता है, तब दूसरेके अभिनिवेशसे भय होता है, जिस कारण कि उनकी मायासे भय होता है, इससे गुरु, देवता और इष्ट माननेवाले बुद्धिमान् निश्चय करके भक्तिसहित ईश्वरको ही भजें। यहां पूर्वपक्षमें कहते हैं कि चित्त तो विषयोंसे चंचल है; फिर निश्चय भक्ति कैसे हो और भक्ति न हो तो भय कैसे जाय? इसके उत्तरमें कहते हैं कि विषय कुछ वस्तु नहीं है, केवल मनका विलासमात्र है, इसलिये मनका निग्रह करके जो भजन करे तो अभय हो, यद्यपि प्रपंच सब ब्रह्मरूप ही है दूसरा कोई नहीं ॥ ३७ ॥ परंतु तो भी अविद्यासे द्वैत भासता है, जैसे ध्यान करनेवाले पुरुषको मनसे स्वप्न और मनोरथ दीखते हैं, इस कारण संकल्प-विकल्पके कर्ता मनको बुद्धिमान् पुरुष रोके, तब निश्चय भक्तिसे भजन करे तो अभय हो ॥३८॥ जो जगदीशके शुभजन्म कर्म हैं और जो जन्म कर्मसे हुए नाम लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा छोड़ निस्पृह होकर गाता फिरे ॥३९॥ इस प्रकार भजन करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तियोगको प्राप्त होनेसे उनकी संसारमें न्यारी ही गति हो जाती है, ऐसा जिसका आचरण है और भगवान् वासुदेवके नामकीर्तनसे अनुराग बढ़ने और चित्त अतिकोमल होनेसे वे भक्त भगवान्को जीत लेते हैं, तब उनकी यह

दशा हो जाती है कि कभी भगवान्‌को अपने वशमें जानकर हँसते हैं और कभी इतना समय व्यर्थ गया, यह जानकर रोते हैं, कभी अति उत्कण्ठासे पुकारते हैं, कभी आनंदमें मग्न हो उच्चस्वरसे गाते हैं और कभी नाचते हैं। इस प्रकार अलौकिक उन्मत्तकीसी चेष्टा करते हैं ॥४०॥ आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योति, सब प्राणिमात्र, दिशा, वृक्ष, नदी सबको हरिका ही शरीर जाने। अनन्यचित्त होकर प्रणाम करे, यह वैष्णवोंके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ यदि कोई कहे कि यह धर्म तो योगेश्वरोंको भी दुर्लभ है, अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त नहीं हो सकता; तो एक नाममात्रका कीर्तन करनेसे एक ही जन्ममें कैसे हो सकता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि प्रेमलक्षणा भक्ति और प्रेमाश्रयभगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति और गृहादिकोंमें वैराग्य; ये तीनों हरिके भजनकर्ता पुरुषको एक ही समय होते हैं, जिस प्रकार भोजन करनेसे सुख, पुष्टि, भूँखकी निवृत्ति यह तीनों एक ही कालमें ग्रासविषे होते हैं ॥४२॥ फिर भगवान्‌के प्रसादसे कृतार्थ होता है वह कहते हैं-इस प्रकार जब पुरुष हरिचरणारविंदका नित्य भजन करे तो उसे प्रेमलक्षणा भक्ति तथा वैराग्य और साक्षात् भगवत्स्वरूपका ज्ञान तीनों होते हैं, तब पुरुष परमशांतिको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनकर राजा जनकने पूछा कि हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव मनुष्योंके बीचमें कैसे होते हैं, किस धर्मके विषे स्थित, कैसा स्वभाव, कैसा आचरण, कैसा बोलना और कैसे चिह्न हैं, जिससे भगवान्‌को प्रिय होते हैं ? कृपापूर्वक संपूर्ण मेरे आगे वर्णन करो ॥ ४४ ॥ इसका उत्तर हरिनामा योगीश्वर तीन श्लोकोंसे देते हैं कि, जो अपनेको सब प्राणिमात्रमें ब्रह्मस्वरूप स्थित देखे और ब्रह्मरूप अपनेमें सर्व प्राणिमात्रको देखे वह उत्तम भागवत है ॥४५॥ ईश्वरमें प्रेम करे, भगवान्‌के भक्तोंसे मित्रता करे, मूर्खोंपर कृपा करे और शत्रुओंकी उपेक्षा करे वह मध्यम वैष्णव है॥४६॥मंदबुद्धिसे केवल प्रतिमामें ही श्रद्धा रखता है, और जीवोंमें तथा भक्तोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं है वह प्राकृत भक्त है॥४७॥अब आठ श्लोकोंमें उत्तम वैष्णवोंके लक्षण कहते हैं:-जो इंद्रियोंसे विषयोंका भोग करते हैं, परंतु न किसीसे द्वेष है, न प्रीति है, सब वस्तुमात्रको ईश्वरकी माया जानते हैं, वे भक्तोंमें उत्तम हैं॥४८॥देहके संसारी धर्म जन्म, मरण, इंद्रियोंको कष्ट, प्राणोंकी भूख, मनको भय, बुद्धिको तृष्णा, इस संसारके धर्मोंसे जो मोह न पावें और निरंतर भगवान् हरिका स्मरण करें, वे वैष्णव भक्तोंमें मुख्य हैं॥४९॥जिनके मनमें काम, कर्म और वासना न उत्पन्न हो, चित्त केवल भगवान् वासुदेवके स्वरूपमें वसता रहे वे वैष्णवोंमें उत्तम हैं। इन तीन श्लोकोंमें भक्तोंके आचरणको उत्तम कहा ॥५०॥ जिस देहमें कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जातिका अभिमान नहीं है, वह भगवान्‌का अति प्यारा भक्त है ॥५१॥ जिसके चित्त और आत्मामें अपनी-पराई बुद्धि नहीं और सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि होकर शांत हो वह वैष्णवोंमें उत्तम है ॥५२॥ त्रिलोकीके राज्यके लिये भगवान् वासुदेवमें ही जिनका चित्त और जो देवताओंको दुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलके भजन विना लवमात्र भी नहीं व्यतीत करते, वे वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इनको ऐसा दृढ़ ज्ञान होता है कि भगवान् वासुदेवके चरणोंसे अधिक और कुछ सार नहीं है ॥५३॥ यदि विषयके संगसे और कामसे सन्तापित हुये भक्तोंके मन चञ्चल हों तो क्या ? इसपर कहते हैं कि हरिसेवामें सुख मानने-वालेका तो मन नहीं चलायमान होता परंतु अनंत पराक्रम भगवान् वासुदेवके चरणकी शाखारूप अँगुलियोंके नखरूप मणिकी चंद्रिकासे सब कामादि ताप दूर होनेसे भक्तके हृदयमें ताप उत्पन्न नहीं होता। जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे सूर्यका ताप दूर हो जाता है।

और भी मुख्य लक्षण कहते हैं ॥ ५४ ॥ केवल नाम मात्रके लेते ही संपूर्ण पापोंके समूहके नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् वासुदेवको हृदयसे न त्यागे वही वैष्णवोंमें उत्तम है, क्योंकि इसने प्रेमडोरसे हरिके चरणकमल हृदयमें बांध रखे हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेह प्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा–माया मायासे तरन, ब्रह्म कर्म यह चार ।
इनको उत्तर देत अब, योगेश्वर सुविचार ॥

माया और मायासे तरनेका उपाय, ब्रह्म, तथा कर्म इन चार प्रश्नोंका उत्तर ऋषभदेवके पुत्र मुनि तीसरे अध्यायमें कहेंगे ! राजा जनकजी बोले कि, हे भगवन् ! परमात्मा ईश्वर विष्णुकी मायाको मैं जानना चाहता हूं, वह कृपापूर्वक तुम मुझसे कहो, जो माया बड़े जाननेवालोंको भी मोहित कर लेती है ॥ १ ॥ यदि तुम कहो कि उक्त (जिसको प्रथम कह आये हैं) लक्षणवाला भक्त होकर कृतार्थ हो तो बहुत परिश्रम करनेसे क्या ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि मरण धर्म संसारके तापसे अत्यन्त ताप होता है, इसकी औषध हरिकथारूप अमृतको तुम्हारे वचनों द्वारा पीनेसे मेरी तृप्ति नहीं हुई ॥ २ ॥ यह सुनकर अन्तरिक्षनामा योगेश्वर बोले कि, हे राजन् ! आदि पुरुष भगवान् सर्व प्राणिमात्रके कारण अपने अंशभूत जीवोंको मोक्षके अर्थ पञ्चमहाभूतोंकी शक्तिसे बुद्धि, इंद्रिय, मन, प्राण और शरीर उत्पन्न करते हैं, वह शक्ति मायाका रूप है ॥ ३ ॥ इस प्रकार पञ्चमहाभूतोंसे सृष्टि रचे संपूर्ण प्राणियोंके मध्यमें भगवान् अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होकर इस प्रकार मन और दश इंद्रियरूपसे जीवोंको भिन्न-भिन्न विषय भोग कराते हैं ॥ ४ ॥ तब जीवात्मा अन्तर्यामीसे प्रकाशित इंद्रियोंसे विषय भोग करते माया रचित शरीरको आत्मा मान उसी शरीरमें आसक्त होते हैं ॥ ५ ॥ यह जीव कर्मेंद्रियोंसे वासनासहित कर्म करते हैं और इन्हीं कर्मोंसे सुखदुःखरूप फलको भोग करते संसारमें भ्रमण करते हैं, परन्तु मुक्त नहीं होते, यह परमेश्वरकी माया है ॥ ६ ॥ इस भांति अनेक क्लेशयुक्त कर्ममार्गमें चलते जीवात्मा परवश होकर महाप्रलयतक जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ॥७॥ अब प्रलय कहते हैः-पञ्चमहाभूतोंके नाशका काल जब निकट आता है, तब आदि-अन्त-रहित कालमें लीन करनेको इस स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चको खींच लेते हैं ॥ ८ ॥ अब नाशका कारण करते हैः–पृथ्वीमें सौ १०० वर्षतक अतिदारुण अनावृष्टि होगी, पीछे उस कालमें बड़ी उष्णतासे सूर्य तीनों लोकोंमें तपेगा ॥ ९ ॥ और पातालतलसे आरंभ होकर जलता हुआ अग्नि, ऊँची शिखा किये वायुसे प्रेरा हुआ चारों दिशाओंमें बढ़ेगा ॥ १० ॥ इसके उपरांत सांवर्त्तक नाम प्रलयकालके मेघगण सौ १०० वर्षतक हाथीकी सूंड़के समान धारा वर्षेंगे; तब उस जलमें यह ब्रह्माण्डलीन हो जायगा ॥११॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि काष्ठ न हो तो शुद्ध अग्निमें मिल जाती है उसी प्रकार ब्रह्माण्डरूप शरीरवाला विराट् पुरुष ब्रह्माण्डरूप अपने-शरीरको छोड़कर सूक्ष्म परब्रह्ममें प्रवेश कर जाता है ॥१२॥ पृथ्वीका गुण गन्ध है, पीछे उसको प्रलयकालका पवन हर लेता है, तब पृथ्वी गुणरहित होकर जलमें लीन हो जाती है, पीछे जलके गुण रसको वही पवन सोख लेता है, तब जल तेजमें लीन हो जाता है ॥१३॥ प्रलयकालके अन्धकारसे

रूपरहित हो तेज वायुमें लीन हो जाता है, पीछे आकाशसे स्पर्शगुण हर जाने से वायु आकाशमें लीन हो जाता है, इसके उपरांत आकाशके गुण शब्दको कालरूप ईश्वर हर लेते हैं, तब आकाश तामसाहंकारमें लीन हो जाता है ॥ १४ ॥ फिर इंद्रियाँ और बुद्धि राजसाहंकारमें लीन होती हैं, मन इंद्रियोंके देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन हो जाता है। हे राजन् ! इसी प्रकार तामस, राजस और सात्त्विक यह तीनों गुणोंका कार्य इंद्रियादिकसहित अहङ्कार महतत्त्वमें लीन होता है और वह महतत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है ॥१५॥ सात्त्विक,राजस,तामस तीनों गुण युक्त उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाली यह भगवान्की माया है, मैंने तुमसे इसका रूप वर्णन किया; अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार अति दयायुक्त मुनिको देख इस संसारकी मायासे तरनेका उपाय राजा जनक पूछने लगे, कि हे महाऋषि ! यह ईश्वरकी माया अजितेन्द्रियोंको अति दुस्तर है,इसलिये देहाभिमानी भी जिस प्रकार इसे सुखपूर्वक तर सकें, वही उपाय तुम मुझे बताओ ॥१७॥ तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगेश्वर बोले कि, हे राजन् ! भगवान् वासुदेवकी भक्ति विना मायाके तरनेका और उपाय नहीं है, यह ज्ञान साधनसहित भक्तिको वर्णन करते हैंः—पहले वैराग्यसे गुरुओंके निकट जाये इसे चार श्लोकोंमें कहते हैं । हे राजन् ! स्त्री-पुरुष मिलकर अपने सुख और दुःख दूर करनेके कर्मोंका आरम्भ करते हैं और फिर उन कर्मोंके फलमें दुःख ही देखते हैं ॥ १८ ॥ कर्मके साधनसे धनादिक मिलकर भी सुख नहीं देते, इसपर कहते हैं कि नित्य दुःखदायी, उसपर भी दुर्लभ अपनी मृत्युकारक धन, गृह, पुत्र, बन्धु और पशुओंके पानेसे क्या सिद्ध है ? यह तो सब मिथ्या है ॥ १९ ॥ इसी प्रकार कर्मोंसे उत्पन्न हुए परलोकको भी मिथ्या जाने, जिसमें अपने समानसे ईर्षा, अधिककी निन्दा, स्वर्गसे गिरनेका भय, इतने दुःख स्वर्गके विषे भी हैं, जैसे थोड़ी भूमिके राजाओंको समान देखकर इर्षा, अधिक की निन्दा और चक्रवर्ती राजासे भय इत्यादि दुःख होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये अपना उत्तम कल्याण चाहे तो भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा करे । गुरुके लक्षण कहते हैंः—मुख्य तो वेदका अर्थ अतिश्रेष्ठ जानता हो, जिससे कि सब सन्देह दूर करके और परब्रह्म भगवान्के स्वरूपको जाने । जो आप ब्रह्मको न जाने तो औरको कैसे ज्ञान देगा ? अति शान्तस्वरूप हो, क्योंकि ब्रह्मज्ञान उसे ही होगा जो पुरुष शांत होगा ॥ २१ ॥ भक्तोंको आत्माके देनेवाले परमात्मा भगवान् हरि जिन वैष्णवधर्मोंसे सन्तुष्ट होते हैं, गुरुको उन धर्मोंकी आत्मा और इष्ट जानकर भक्तजन उनकी निष्कपट सेवा करें ॥ २२ ॥ पहले तो सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनको चलायमान न करे, इसके उपरांत सत्संग करे फिर सब प्राणियोंमें और दीनोंपर मन वचनसे दयायुक्त, चित्तमें सबसे मित्रता करे और उत्तमोंसे नम्रता सीखे ॥ २३ ॥ बाह्य शौच सीखे (मृत्तिकासे हाथ पांव आदि धोवे), अन्तर शौच सीखे (मनमें दम्भ अहंकार न रखे), धर्मका आचरण, क्षमा, यथायोग अध्ययन, ब्रह्मचर्य सीखे, वृथा वार्त्ता न करे, कुटिल न रहे, द्रोह न करे, सुख-दुःखमें समान बुद्धि रखे ॥ २४ ॥ सब प्राणिमात्रमें समान चैतन्य आनन्दरूपसे ब्रह्मको विचारे, नियन्ता समझकर ईश्वरको विचारे, एकान्तमें वास करे, गृहादिकोंमें अभिमान न करे, निर्जन मार्गमें पड़े हुए वस्त्र अथवा वल्कलको पहने, अधिक क्या कहें जो वस्तु प्राप्त हो उसीमें सन्तोष रखे, और की इच्छा न करे ॥ २५ ॥ जो शास्त्र केवल भगवान् ही

बताते हैं, वह भागवत शास्त्र है, उसे सुननेकी श्रद्धा रखे, औरकी निन्दा न करे और मन वचन, कर्म, इन तीनोंको दण्ड दे, मनको तो प्राणायाम करके रोके, वाणीका दण्ड यह है कि मिथ्या वचन न कहे, कर्मसे दण्ड चेष्टा न करे, सत्य वचन सीखे, अन्तःकरण और सब इंद्रियोंका निग्रह करे ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् हरिके जन्म-कर्म गुणका श्रवण कीर्तन तथा ध्यान करे, और भी जो कर्म करे वह सब भगवान् वासुदेवको अर्पण करे ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, सदाचार और आपको जो प्रिय वस्तु हो वह सब गन्ध पुष्पादिक और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण यह सब परमपुरुष भगवान् वासुदेवको निवेदन करे और यह सब धर्म गुरुके पास सीखे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको आत्मा माननेवाले मनुष्योंसे मित्रता और स्थावर, जंगम प्रणियोंमें विशेष करके मनुष्योंकी सेवा और उनमें भी महात्मा तथा साधुओंकी सेवा करे ॥ २९ ॥ उन साधुओंका सत्संग करके भगवान् वासुदेवके पवित्र यशको परस्पर कहना सीखे, फिर ईर्षा छोड़ आपसमें प्रीति, सबसे सन्तोष, परस्पर सुख, समस्त दुःखोंकी निवृत्ति सीखे ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण पाप समूहके नाश करनेवाले भगवान् हरिको आप निरन्तर स्मरण करे तथा औरोंको स्मरण कराये, तब स्मरण, कीर्तनरूप भक्तिके करनेसे प्रेमलक्षणा भक्तिसे शरीर रोमांचयुक्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवका चिन्तन करनेवाले कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी आनन्दको प्राप्त होते हैं, कभी बालकोंके समान वचन कहते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी भगवान्के स्वरूपकी लीला करते हैं, कभी परमसुखमें मग्न होते हैं और कभी चुपचाप रहते हैं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यह वैष्णव धर्म सीखकर प्राप्त हुई भक्तिसे नारायण-परायण होकर सुखपूर्वक दुस्तर मायासे तरे ॥ ३३ ॥ यह सुनकर राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! तुमने कहा कि नारायणपरायण होकर मायाको तरे, उस नारायणके तीन नाम सुने हैं, एक तो नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा, इन तीन नामोंसे निर्विशेष वस्तु कहिये अथवा इनमें कुछ भेद है ? उसे विशेष करके मुझसे कहो, क्योंकि तुम ब्रह्मको भली प्रकार जानते हो ॥३४॥ तब पांचवें पिप्पलायन ऋषि उत्तर देते हैं कि, हे राजा जनक ! जो इस विश्वके उत्पत्ति पालन तथा प्रलयके कारण हैं और आप कारणरहित हैं, वह नारायण हैं, वही परमतत्त्व है; जो स्वरूप स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्तिमें एकरस है, वही परम तत्त्व है; समाधिमें जिसको मुनीश्वर देखते हैं उसीको ब्रह्म कहते हैं, वही परमतत्त्व है, और जिससे देह; इंद्रिय, मन, प्राण यह सब चैतन्य हो कार्यमें समर्थ होते हैं, वह परमात्मा है, वही भगवान्का स्वरूप है, इस प्रकार तीनों नामोंके भेदसे एक ही तत्त्व जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यदि तुम कहो कि, इससे ब्रह्मको विषमता प्राप्त हुई है तो इसका निषेध करते हैं, कि इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र,बुद्धि, प्राण और सब इंद्रियाँ स्पर्श नहीं कर सकतीं, जैसे छोटी चिनगारी महाभूत अग्निको नहीं प्रकाश कर सकती और न जला सकती है ऐसे ही मन आदि जड़ इंद्रियां सृष्टिके प्रकाश ब्रह्मको जड़ इंद्रियां क्या कर सकेंगी ? यहां पूर्वपक्ष कहते हैं कि अहो ! वेद तो ब्रह्मको बताते हैं तो कहते हैं, वेद भी प्रगट नहीं, कारण यह है कि वेद स्वयं ही कहता है कि वाणी मन आदिसे जो पदार्थ जाने जाते हैं; जो इनके बोध न करनेवाले हैं, वह ब्रह्मको नहीं प्राप्त हो सकते, इससे यह न समझ लेना कि वेद ब्रह्मको नहीं कहते, किन्तु वेद कहते हैं, स्थूल भी ब्रह्म नहीं है; अणु

भी ब्रह्म नहीं और जो वाणीसे कहा जाय वह भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेधकी जो अवधि है, वही ब्रह्म है, विना अवधिके निषेध नहीं हो सकता॥३६॥फिर कहते हैं कि जो सबका प्रमाण जहां वेदकी भी गम्य नहीं तो ब्रह्म ही न होगा, इसका उत्तर देते हैं कि 'ब्रह्म नहीं' यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो कुछ स्थूल सूक्ष्म देखा जाता है वह सब ब्रह्म ही भासता है, इसलिए सब विश्वके कारण भगवान् वासुदेव ही हैं। यहां पूछते हैं कि एक ब्रह्म बहुविध विश्वका कारण क्यों है? इसपर कहते हैं कि ब्रह्मकी शक्ति अनन्त सामर्थ्यसे अनंतरूप है। पहले एकरूप होकर पीछे सत्त्व, रज, तम मायाके रूप हुये, पीछे क्रियाशक्तिसे प्राणरूप हुए, फिर ज्ञान शक्तिसे महात्तत्त्व हुये, फिर अहंकाररूप हुये, जिसमें जीव बँधा है। इसके उपरांत इंद्रियरूप हुये, फिर इन्द्रियोंके देवतारूप हुए, फिर कर्मोंके फल सुखदुःखरूप हुए, इस भांति सब रूप ब्रह्म ही है और सर्वरूप आपसे प्रकाशमान् ब्रह्मकी स्थापनाविषे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं ॥३७॥यहां पूर्वपक्ष कहते हैं कि संपूर्ण रूप आप ही हैं तो यह सब विश्व तो मरता है,फिर उत्पन्न होता है। इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मका भी जन्म-मरण होता होगा, इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न बढ़ता है न क्षीण होता है, इस कारण आगमापायी बालयुवादिक देहोंकी अवस्थाका साक्षी है, और साक्षीको ये अवस्थायें नहीं लगतीं, केवल ज्ञानरूप हैं। यदि कोई कहे कि ज्ञान तो एक क्षणमें उत्पन्न होता है, एक ही क्षण रहता है और एक ही क्षणमें नाशको प्राप्त हो जाता है, तो कहते हैं कि यह ज्ञान सदा रहता है। जो कोई कहे कि नीलज्ञान उत्पन्न हुआ पीतज्ञान गया, ऐसे ज्ञानका भी उत्पत्ति और नाश सुना है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि नील पीत इंद्रियोंकी वृत्ति उत्पन्न होती है, और वृत्तियोंका ही नाश होता है, ज्ञान तो एकरूप है, यह प्राणके दृष्टांत कहे गये ॥३८॥ इन्द्रियादि केवल हरिको ही दिखाती हैं, जैसे-पशु, पक्षी, स्वेदज, वृक्षादिकोंमें सर्वत्र जहां-जहां जीव जाता है, उसी-उसी स्थानमें प्राण भी संग जाते हैं, परंतु प्राण निर्विकार है, जैसे आत्मा निर्विकार रहता है। यहां शंका है कि मनुष्यादिक देहोंमें आत्मा सब विकारसा क्यों दीखता है? तो कहते हैं कि जाग्रतमें इन्द्रियगणके दोषसे, स्वप्नमें अहंकारसे और सुषुप्तिमें तो इन्द्रियगण और अहंकारके लयसे विकारसा आत्मा निर्विकार है, इससे विकारके हेतु लिंगशरीरकी उपाधिका अभाव है। यहां शंका है कि सब नष्ट होनेसे आत्मा रहता है यह कैसे जानें? तो इसका उत्तर यह है कि जब जागता है तो जो सुषुप्तिमें आत्माको सुख अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है—'आज मैं सुखसे सोया' यह ज्ञान अनुभवके स्मरण विना नहीं होता इसलिये सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव निर्विकार होता है पर विषयका सम्बंध नहीं, इस लिये वह अनुभव प्रकट नहीं होता है ॥ ३९ ॥ फिर पूछते हैं कि इसका सुषुप्तिमें निर्विकार अनुभव हो तो संसार फिर क्यों होता है ! यदि कहो इसकी अविद्या नहीं गयी उसकी वासनासे संसार होता है तो अविद्या कैसे जाय ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि जब गृह, पुत्र, धनादिकी वासना छोड़कर केवल भगवान् वासुदेवकी इच्छा करे तो भक्ति बढ़ती है, उस भक्तिसे चित्तके गुण कर्मसे उत्पन्न हुए सब पाप दूर हो जाते हैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रगट आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है, जैसे निर्मल दृष्टि होनेसे सूर्यमण्डलका प्रकाश दीखता है ॥४०॥ राजा जनक बोले कि, भक्ति तो कर्मयोगके अधीन है इसलिये प्रथम मुझसे कर्मयोग कहो, जिस कर्मके करनेसे शुद्ध होकर फिर कर्मका वेग दूर

करके पुरुष निष्कर्म श्रेष्ठ ज्ञान पाता है, अर्थात् जिससे सब कर्म निवृत्त हों, वह कर्मयोग कहो ॥४१॥ हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने पिताके आगे जब सनकादिक आये थे तब किया था, उन्होंने भी कुछ उत्तर नहीं दिया, इसका क्या कारण ! वह मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ आविर्होत्र बोले कि हे राजन् ! वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वह कर्म है, जिसका निषेध है वह अकर्म है और जिसके करनेकी आज्ञा है वह न करे विकर्म कहा जाता है, यह तीनों भेद वेद को ही गम्य हैं इसका निर्णय मनुष्योंको अशक्य है, इससे वेद साक्षात् ईश्वररूप हैं; पुरुषके वचनमें वक्ताका अर्थ जानना अति कठिन है, यहां पंडित भी मोहको प्राप्त होते हैं, तुम तो बालक थे इसलिये तुमसे नहीं कहा ॥ ४३ ॥ वेदका तात्पर्य क्यों नहीं जाना जाता उसे कहते हैं—यह वेद सब परोक्षवाद हैं, अर्थात् जो अर्थ और भांति होता हो उसके छिपानेको और भांति कहे, इसे परोक्षवाद कहते हैं, उसी प्रकार वेदमें कर्म छुड़ानेका कर्म कहा है, मूर्ख उसीको कर्म जानता है । यहां पूछते हैं कि कर्मका तो स्वर्गादिक फल सुना जाता है; फिर कर्मको त्यागकर फल कैसे जाने ! इसका उत्तर कहते हैं कि यह जो कर्म कारण कहे हैं, वह मूर्खोंकी शिक्षाके लिये हैं; नहीं तो धर्ममें किसीकी भी प्रवृत्ति न हो; जैसे बालकोंको औषध खिलाना चाहे तो लड्डू दिखाइये और दीजिये, उस लड्डूके लोभसे वह बालक औषध पी लेगा। औषधका यह फल नहीं, कि लड्डू खा जाय, उसका तो यही फल है कि आरोग्य कर देगा, उसी प्रकार जीव सब विषयी हैं और लोभी हैं, उनको स्वर्गादिकका लोभ दिखाकर कर्ममें प्रवृत्त करते हैं। पीछे इससे भी निवृत्तिका फल उत्तम है इस ज्ञानसे उनके कर्मोंको छुड़ाते हैं, यह वेदका तात्पर्य है ॥४४॥ जो कर्म त्यागना ही मुख्य है तो पहले ही कर्म त्याग कीजिए, तो कहते हैं कि स्वयं अज्ञ हो, अजितेंद्रिय हो और वेदोक्त कर्म न करे तो कर्मके विना अधर्मसे मरकर फिर मृत्युको ही प्राप्त होता है और सदा कालके ही मुखमें रहता है॥४५॥इसलिये वेदोक्त कर्मही करे, निषिद्ध कर्म न करे और कर्मके फलकी इच्छा न रखे जो कुछ कर्म करे, वह सब ईश्वर भगवान् वासुदेवमें ही समर्पण करे तो पुरुष मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त हो । यहां पूर्णपक्ष कहते हैं कि अहो वेदविषयक जो फल सुने जाते हैं, जैसे औषधि पिलानेके लिए बालकोंको लड्डू देता है उसी प्रकार कर्म करनेसे फल अवश्य होगा ! इसपर कहते हैं कि यह मत कहो, कर्मोंमें प्रीति उपजानेका फल सुनाना है, जैसे औषध देनेके समय बालकोंको मीठी चीज दिखाते हैं । अब वैदिककर्म कहकर आगमकी विधि कहते हैं ॥४६॥ जो कोई निर्विकार जीवके अहंकारकी गांठ छुड़ाना चाहे तो वह आगम और वेदोक्तके प्रकारसे सबकी पूजा करे ॥४७॥ अब पूजाकी विधि कहते हैं—जब इस पुरुषपर ईश्वर अनुग्रह करते हैं तो सद्गुरु मिलते हैं, फिर उन गुरुओंसे पूजाकी विधि जाने, तब आपको जैसी मूर्ति रुचे उसी प्रकार बनाकर भगवान् वासुदेवकी पूजा करो ॥४८॥ विधि कहते हैं कि पहले तो स्नानादिक करके पवित्र हो और फिर उस मूर्तिके सम्मुख बैठ प्राणायाम और भूत शुद्धि कर देहको शुद्ध करे, इसके उपरांत उत्तम न्यासोंको कर अपनी रक्षा करके भगवान् हरिकी पूजा करे ॥४९॥ पुष्पादिक द्रव्यके जन्तु आदि शोधन कर भूमिका समार्जन और मनको सावधान कर मूर्तिको स्नानादिक कराकर आसनका प्रोक्षण कर प्रतिमादिक विषे अथवा हृदयमें यथाप्राप्त उपचारोंसे पूजा करे ॥ ५० ॥ पाद्य, अर्घ्य, इत्यादि सब विधिपूर्वक देनेके उपरांत पहले अपने हृदयमें पूजित भगवान् वासुदेवको संनिधापन मुद्रासे दृढ़ धर सावधान

होकर ध्यान करे, इसके पीछे हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र, मन्त्र और मूलमन्त्रसे पूजा करे ॥५१॥ इसके उपरांत हृदयादिक अंग, उपांग, न्याय, सुदर्शन आदि पार्षदपरिवार देवता सहित उस मूर्तिको पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण उपचार कर ॥५२॥ गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करे, फिर स्तोत्रोंसे स्तुति कर नमस्कार करे और अक्षतरहित उस मूर्तिको तिलक करके पूजे, क्योंकि अक्षतसे भगवान् हरिकी और केतकीसे महादेवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ और फिर मूर्तिरूप भगवान् वसुदेवका ध्यान करके पूजा करे, इसके उपरांत उस निर्माल्यको मस्तकपर चढ़ा देवताका स्वरूप हृदयमें धारण कर पूजी हुई मूर्तिका विसर्जन करके अपने स्थानमें रखे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार अग्नि, सूर्य, जल आदिमें और अतिथिमें, हृदयमें आत्मारूप ईश्वर भगवान् वासुदेवकी जो पुरुष पूजा करे वह थोड़े ही कालमें संसारी बन्धनोंसे छूटकर मुक्त हो जाता है, ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–इस चौथे अध्यायमें द्रुमिल नाम योगीश ।
लीला हरिअवतारकी, कहत चरन धर शीश ॥

राजा जनक बोले कि, हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा कि भगवान् हरिकी मूर्तिको जैसे मन माने वैसा बनाकर पूजा और स्तुति करे । हमको न मूर्तिका ज्ञान है न गुण कर्मका ज्ञान है कि स्तुति करें, इसलिये तुम उनके अवतार और कर्म कहो । भगवान् वासुदेव जो-जो जन्म लिये हैं और जो-जो कर्म किये हैं और अब करते हैं और जो आगेको करेंगे, वह सब वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ राजा जनकने जब इस प्रकार पूछा तो द्रुमिल योगीश्वर बोले कि जो पुरुष अनन्तरूप भगवान् वासुदेवके चरित्रको गिनना चाहे वह अज्ञानी है, क्योंकि पृथ्वीके परमाणुओंको तो बहुत कालतक परिश्रम करके कोई बुद्धिमान् गिन भी सकता है, परन्तु अनंत शक्तिके आश्रय भगवान् वासुदेवके गुणोंको कोई नहीं गिन सकता ॥ २ ॥ परन्तु तो भी संक्षेपसे उनके कुछेक गुणका वर्णन करता हूँ । जब स्वयं भगवान् वासुदेव पंचमहाभूत उत्पन्न कर ब्रह्माण्डरूप नगर बनाकर उसमें लीलापूर्वक प्रविष्ट हुये तो इनका आदिदेव नारायण पुरुष नाम हुआ॥३॥यह तीन लोककी स्थापना जिस पुरुषको देता है और जिसकी इंद्रियोंसे सब देहधारियोंकी इंद्रियाँ होती हैं जिसके स्वरूपसे भूत सत्त्वगुणसे ज्ञात होता है प्राणसे देहशक्ति और इंद्रियशक्ति तथा चेष्टा इत्यादि ये सब होती हैं, इससे ज्ञात होता है, कि विश्वका कर्ता कोई है ॥ ४ ॥ प्रथम इस विश्वके उत्पन्न करनेको रजोगुणसे ब्रह्मा, सत्त्वगुणसे यज्ञके फलदाता ब्राह्मण धर्मकी रक्षा करनेवाले विष्णु और तमोगुणसे संहार करनेको रुद्र हुए । इस प्रकार प्रजाओंके बीच जिससे निरंतर जन्म, पालन और नाश होता है, वही आदि पुरुष हैं ॥५॥ वही आदिदेव दक्षकी बेटी मूर्ति नाम धर्मकी स्त्रीके विषे ऋषियोंमें श्रेष्ठ अतिशांतस्वरूप नर-नारायण अवतार हुआ और जिससे कर्म नष्ट न हो, ऐसा निष्कर्म ज्ञान बताया और आपने भी उसके अनुसार कर्म किया, ऐसे श्रेष्ठ ऋषियोंसे सेवित जिनके चरण, वे भगवान् नर-नारायणरूप बद्रिकाश्रममें आजतक विराजमान हैं ॥ ६ ॥ हे महाराज ! इस समय एक भगवान् वासुदेवके अवतारोंका बतानेवाला, परमशक्ति दिखानेवाला इतिहास कहते हैं, वह आप

मन लगा कर श्रवण करें—एक समय नारायणको परमशांत तप करते देख देवराज इन्द्रने विचार किया कि यह तप करके मेरा स्थान लेना चाहते हैं, यह विचार तपस्यामें विघ्न करनेके लिये परिवारसहित कामको भेजा और भगवान् वासुदेवकी महिमाको नहीं जाननेके कारण कामदेव उनके स्थानमें अप्सराओंके गण वसंत और मन्दवायु सहित जाकर स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको मारने लगा ॥७॥ तब गर्वरहित नरनारायण इन्द्रका किया हुआ अपराध जान शापके भयसे कांपते हुए कामादिक देवताओंसे हँसकर बोले कि हे कामदेव ! हे देवांगनाओ! भय मत करो, हमारा आतिथ्य ग्रहण करके हमारे आश्रमको सुशोभित करो, क्योंकि जिस स्थानपर अतिथिका आदर-सम्मान नहीं होता वह स्थान शून्य कहलाता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभयके देनेवाले श्रीभगवान् हरिके इस प्रकार कहनेपर लज्जासहित और नम्रशिर हो, कामादिक देवता दयासंयुक्त श्रीनारायणसे बोले कि, हे प्रभो ! तुम्हारा इस प्रकार कहना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि तुम मायासे परे हो, निर्विकार हो, आत्माराम और धीर मुनियोंके समूह तुम्हारे चरणकमलको नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ हमारे अपराधका आचरण भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हमारा स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष देवताओंके स्थानको उल्लंघन कर आपके जो परमधाम वैकुण्ठमें जाते हैं, उनको इन्द्रादिक देवता बहुत विघ्न करते हैं, तुम्हारी सेवा करनेवाले दूसरे पुरुष जो यज्ञमें देवताओंको उनके भागरूप कर देते हैं, उनको विघ्न नहीं करते परन्तु जिसके तुम रक्षक हो वह तुम्हारा भक्त निश्चय विघ्नोंके माथेपर चरण धरकर तुम्हें प्राप्त हो जाता है॥१०॥ अभक्तोंको काम, क्रोधादिक सब वशमें कर लेते हैं, उनमें जो हमारे वश होते हैं वह भोग भी करते हैं और जो क्रोधके वश हैं, वे तो अतिमूर्ख हैं। क्षुधा, तृष्णा, शर्दी, गर्मी, वर्षा, पवन, जीभका स्वाद और विषय भोगादि जो सुख हैं। इनको लांघकर जो पुरुष निष्फल क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं, वे अपार समुद्रके पार उतरकर गायोंके खुरोंके गढ़ोंमें डूब जाते हैं, ये लोग शाप आदि देकर अतिकठिन तपस्याको वृथा छोड़ देते हैं, न तो मोक्षके अर्थ न भोगके अर्थ ॥११॥ इस प्रकार भगवान् वासुदेवने कामादिककी स्तुति सुन अपने योगबलसे उत्पन्न अद्भुत रूपवाली सेवा करती आभूषणोंसहित सहस्रों स्त्रियां कामादिकको दिखायी ॥ १२ ॥ वह देवताओंके सेवक मूर्तिमान् लक्ष्मीके समान उन स्त्रियोंको देख उनकी गन्धसे मोहित हो उनके रूप गुण उदारतासे इनका शोभा-दर्प सब जाता रहा ॥१३॥ तब देवोंके देव प्रभु भगवान् वासुदेव हँसकर नम्र हुये कामादिक देवताओंसे बोले कि, इन स्त्रियोंमें से किसीको तुम वरो, यह सुनकर देवताओंने कहा कि हम तुच्छ हैं कहां ऐसी स्त्रियाँ, कहां हम ? तब नारायण बोले कि तुम्हारे समान जो हो उसे ग्रहण करो। तब कामादिक देवताओंने फिर कहा कि, हे महाराज ! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है। भगवान्ने कहा कि, एक तो तुम लो, तुम्हारे स्वर्गका भूषण होगी ॥१४॥ तब कमादिक देवता भगवान् नरनारायणकी आज्ञा मान अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको ले प्रभुको नमस्कार कर स्वर्गको चले गये ॥ १५ ॥ स्वर्गमें जाकर देवराज इन्द्रको प्रणाम कर सभामें सब देवताओंके सुनते नारायणका बल कहा; तब इन्द्र अति आश्चर्य मान अत्यन्त भयको प्राप्त हुआ ॥१६॥ इन्हीं प्रभुने हंसावतार लेकर संपूर्ण आत्मयोग कहा, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनकादिक, एक भगवान् ऋषभदेव, हमारे पितामह सब विष्णुरूप ही अपने अंशसे जगत्का कल्याण करनेको प्रकट हुए थे और

इन्हीं विष्णुने एक समय हयग्रीव अवतारले मधुदैत्यको मार वेदोंका उद्धार किया था ॥१७॥ एक समय प्रलयके समुद्रमें मत्स्यरूप धारण कर मनु, पृथ्वी और ओषधियोंकी रक्षा की थी, वाराह अवतार ले हिरण्याक्षको मार जलसे पृथ्वीका उद्धार किया। कूर्मावतार ले अमृत मथनेको अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत धारण किया, इसके उपरांत दुःखित होकर शरण आये हुए गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया ॥ १८ ॥ एक समय वालखिल्य ऋषि कश्यपजीके लिये काष्ठ लेने गये, वहां गायके खुरके गढ़ेमें पानी भरा था, उसमें डूबने लगे तब इन्होंने बहुत स्तुति की, वहांसे आत्मविद्यामें तत्पर ऋषियोंको छुड़ाया और वृत्रासुरके मारनेसे जो ब्रह्महत्या हुई थी उससे देवराज इन्द्रको छुड़ाया। अनाथ देवताओंकी स्त्रियाँ असुरोंके घरमें रुक रही थीं, उन सबोंको अनेक अवतार लेकर छुड़ाया। फिर नृसिंहरूप धारण कर भक्तोंको अभयदान देनेके लिये हिरण्यकशिपुका वध किया ॥ १९ ॥ मन्वन्तरोंमें देवता और दैत्योंके संग्राममें देवताओंके लिये अपनी कलासे दैत्यपतियोंका संहार किया, सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा की और वामनरूप धारण कर राजा बलिसे भीखके मिस इस पृथ्वीको लेकर देवताओंको दे दी ॥ २० ॥ परशुरामका अवतार ले इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियरहित किया, हैहयकुलके नाशक भृगुवंशमें अग्निरूप प्रकट हुए। उन्होंने ही फिर रामावतार लेकर समुद्र बांधा और लङ्कापुरीमें स्थित परिवार समेत राक्षसराज रावणका वध किया। जिनकी कीर्ति संसारके पापको नाश करती है, वे ही रघुनाथजी अब विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ भूमिका भार उतारनेके लिये अजन्मा आप यादवकुलमें जन्म ले जो देवताओंसे भी न किये जायँ ऐसे काम करेंगे, पीछे जो यज्ञादिक करनेके योग्य दैत्योंको बौद्धरूप धर मोहित करेंगे, इसके उपरान्त कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार लेकर शूद्रजातिके राजाओंको मारेंगे ॥२२॥ हे महाराज ! इस प्रकार महाभुज जगत्पति भगवान् वासुदेवके जन्म और कर्म अनन्त हैं, मैंने तो संक्षेपसे वर्णन किये ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयोपाख्याने विदेहप्रश्ने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा–पञ्चम हरिकी भक्ति विन, नरकी गति है कौन ।
सो सब वर्णन करत हौं, पूजन सेवन जौन ॥

राजा जनक बोले कि हे ब्रह्मन् ! जिनकी कामना नहीं छूटी वह पुरुष बहुधा भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते, उनकी क्या गति होगी ? कृपापूर्वक आप हमसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ तब आठवें चमस ऋषिने उत्तर दिया कि हे राजन् ! पहले परमपुरुषके मुखद्वारा सत्वगुणसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओंसे सत्त्व-रजसे क्षत्री हुए, उरूद्वारा रजोगुण, तमोगुणसे वैश्य हुए, चरणद्वारा केवल तमोगुणसे शूद्र हुए और आश्रम सहित भिन्न-भिन्न वर्ण उत्पन्न हुए ॥२॥ अपना जन्मदाता पुरुष ईश्वरका इन वर्णोंके मध्य जो भजन नहीं करता और जानबूझकर निरादर करता है, वह पुरुष वर्ण-आश्रमसे भ्रष्ट होकर अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई एक पुरुष इस प्रकारके हैं कि जिनको हरि कथा सुनना बहुत कठिन है, किसी-किसीको हरिका कीर्तन बहुत कठिन है। इसी प्रकार कितने एक द्विजलोग और स्त्रियाँ तथा

शूद्रादिक जो भगवान् वासुदेवको न जाननेसे नहीं भजते, उनके ऊपर आप सरीखे ही कृपा करते हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोपवीतरूप दूसरे जन्मसे और वेदाध्ययनसे हरिभजनके उत्तम अधिकारी हैं, परंतु तो भी वेदकी फल स्तुतिके वचनोंमें मोहित होकर जाननेपर भी भगवान् वासुदेवका भजन नहीं करते और कर्मोंमें आसक्त हो रहे हैं उन अर्द्धदग्ध लोगोंको सुधारनेका कोई उपाय न होनेसे आप सरीखे पुरुषोंको उनकी अपेक्षा करनी चाहिये ॥५॥ कर्म करनेमें अकुशल मूर्ख अपनेको पंडित माननेवाले अनम्र ऐसी मनोहर बातें कहते हैं कि जिनमें मोह उत्पन्न हो। वह यह है कि यज्ञादिकोंका फल अक्षय होगा, न स्वर्गमें शीत है, न उष्ण है, न मलिनता है, न पराजय है और वचनसे उत्कंठित होकर कहते हैं कि हम अप्सराओंसे विहार करेंगे, यह कहते हुए कर्ममें बँधे रहते हैं ॥ ६ ॥ उनको उस फलके भ्रमसे कर्ममें ही आदर होता है, उससे काम, क्रोध, मदादिक वृद्धिको प्राप्त होते हैं और यह भी कहा है कि रजोगुणसे राग द्वेष उत्पन्न होते हैं, उनसे अभिचारके कर्मोंपर मन होता है, तब वे घोर संकल्पी महातृष्णावाले सर्पके समान क्रोधी महाभिमानी दुष्ट स्वभाव अधजले लोग नारायणके भक्तोंको हँसते हैं ॥ ७ ॥ जो सदा स्त्रियोंकीही सेवा करते हैं, वृद्धोंकी सेवा नहीं करते और केवल मैथुनमें ही सुख माननेवाले अतिथिकी पूजा रहित घरोंमें रहकर मनके मनोरथवाले लोग कहा करते हैं, आज मैंने यह पाया, यह मनोरथ फिर प्राप्त करूँगा और जो कदाचित् किसी देवताकी पूजा करें तो अपने स्वार्थके लिये पशुकी हिंसा करते हैं, न कुछ विधि, न दक्षिणा, न अन्नदान करें ऐसे मूर्ख हैं जो हिंसादोषको नहीं जानते ॥८॥ धन, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मोंसे उनको गर्व उत्पन्न होता है, इससे मन्दबुद्धि दुष्ट ईश्वर सहित साधु परमेश्वरके भक्तोंका निरादर करते हैं ॥ ९ ॥ वे दुष्ट पुरुषवेदके अर्थको नहीं जानते। वेद कहते हैं कि यद्यपि सब देहधारियोंमें यह आत्मा सदा आकाशकी भांतिव्याप्त हो रहा है और अपने प्रिय ईश्वरको वेद प्रकट बताते हैं परंतु तो भी यह मूर्ख नहीं जानते, अपने मनोरथोंकी ही बातोंमें वाद-विवाद करते हैं ॥१०॥ यहां पूर्वपक्ष कहते हैं कि स्त्रीसंभोग तो कहा है कि रजस्वला होनेपर मैथुन करे, देवताके बचे हुए मांसादिक भोजन करे फिर तुम क्यों निंदा करते हो! इसके उत्तरमें कहते हैं कि लोकमें स्त्रीप्रसङ्ग, मांस भक्षण और मदिराका सेवन नित्य है और विषयासक्तोंको अनुराग स्वभावसे ही प्राप्त है, फिर कुछ विधि नहीं, बस एक यही चाहिए और जहां विधि कही है वहां ऋतुकालके दिन स्त्रीसङ्ग करें, यज्ञमें ही मांस मद्य ग्रहण करे, और दिन न करे, इस नियमसे करे, परंतु दिनका निषेध किया है, ऐसे विषयी मूर्ख लोग नहीं समझते। जो कामी अरुचिसे अथवा द्वेषसे स्त्रीप्रसङ्गादिक करते हैं उनका यह नियम है और जिनके यह कामना नहीं उनका नियम नहीं। वेदका अभिप्राय तो सब दिन छुड़ानेका ही है, उसे मूर्ख नहीं समझते ❀ ॥ ११ ॥ धर्म करना ही

❀ दृष्टान्त—वास्तवमें उसका तात्पर्य यह है, जैसे किसीका लड़का खेलमें अत्यन्त मतवाला हो और वेश्याके घर दिनरात पड़ा रहता हो और पढ़नेमें उसकी रुचि न हो तो उसके पिताको कहना चाहिये कि तू प्राप्तःकाल उठकर तो वेश्याके घर जाया कर, फिर एक घंटाभर खेला कर और जो तू प्रातःकाल वेश्याके घर नहीं गया और एक घंटाभर न खेला तो मैं तुझको बहुत मारूंगा, क्यों कि इन दोनों कामोंसे दो घंटेमें निश्चित होकर फिर अपना चित कहीं इधर-उधर मत भटकाना और, जो फिर भटकावेगा तो पिटेगा, यह वाक्य निवृत्तिका निरूपण करता है, इसी प्रकार वेद भी निवृत्तिका निरूपण करता है प्रवृत्तिका निरूपण नहीं करता। जो मनुष्य समीप आनेपर भी ऋतुस्नात भार्यासे प्रसङ्ग न करे, तो गर्भहत्याका जो महापाप होता है उस मनुष्यको लगता है। अनेक श्रुतियोंके वचन तो यह हैं कि, मनमें कामना होनेपर भी स्त्रीके मिष अरुचि अथवा द्वेषादिक होनेसे उसके साथ प्रसङ्ग न करे, ऐसे जानना।

धनका फल है क्योंकि धर्मानुष्ठान करनेसे परोक्ष (नहीं देखनेवाला) ज्ञान और तत्काल शांतिदायक अपरोक्षज्ञान दोनों प्राप्त हो जाते हैं, ऐसे सुखदायक धनको यह पुरुष देहादिकके लिये घरोंमें वृथा खो देते हैं, न तो इसका विचार करते हैं और न शिरपर घूमती हुई मृत्युको देखते हैं ॥१२॥ और वेदका तात्पर्य नहीं जानते कि ऋतुके दिन भी स्त्री प्रसंग गर्भाधानको ही कहा है, कुछ यथेष्ट कामभोगको नहीं कहा और सुरापान भी नहीं कहा है, आघ्राण कहा है, पशुकी हिंसा देवताके लिये करे, अपने भोजनके लिये नहीं कहा है, ऐसे शुद्ध धर्मको विषयकी आसक्तिसे न करे, इस बातको यह मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥ जो इस धर्मको नहीं जानते वे असाधु एवं अनम्र हैं, परन्तु अपनेको साधु करके मान लेते हैं। जो विश्वाससे पशुओंका वध करते हैं और कहते हैं कि इससे मनोरथ सिद्ध होगा, उनके लिये ऐसा कहा है कि इस जन्ममें उसका मांस ये खाते हैं, अगले जन्ममें वह इनका मांस भक्षण करेगा, अतः इसका नाम मांस है, यथा :–

मनुः–मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १४ ॥

मृतक समान अपने और पुत्रादिकोंमें स्नेहसे बद्ध हो पराये देहोंमें भी विद्यमान अपने आत्मा ईश्वर हरिसे जो पुरुष द्वेष करते हैं, वे मरनेके पीछे नरकमें पड़ते हैं ॥१५॥ जो अज्ञ हैं, वे ज्ञानी पुरुषोंकी कृपासे संसारसागरको तर जाते हैं और जो मध्यवर्ती हैं, वे नरकमें गिरते हैं। अधिक क्या कहें, जो-जो तत्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए, मूढ़ताको ही प्राप्त हुए और अपने स्वार्थके ही लिये धर्म, अर्थ, कामादिक करते हैं, वे पुरुष वारंवार जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ जो पुरुष आत्मघाती व अशांत हैं, अज्ञानको ही ज्ञान मानते हैं और कृतकृत्य नहीं हुए, वे कालसे नष्ट मनोरथ हो दुःख ही पाते हैं ॥१७॥ और जो पुरुष भगवान् वासुदेवसे विमुख हैं, वे अतिश्रमसे गृह, पुत्र, मित्र, धन सम्पूर्ण वस्तुको प्राप्त होकर इच्छा न रहनेपर भी नीच योनि अंधतममें पड़ते हैं ॥१८॥ राजा जनक बोले कि, हे ब्रह्मन् ! आपने जो सब त्यागकर केवल भगवान् नारायणकी भक्ति करनेको कहा, वह भगवान् किस समयमें, कैसे वर्णके, कैसी आकृतिके, कौनसे नामसे और किस विधिसे लोकमें पूजे जाते हैं ? वह मुझे भलीभांति समझाकर आप कहिये॥१९॥ तब करभाजन ऋषीश्वर नौवे प्रश्नका उत्तर देते हैं कि, हे राजन् ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चार युगोंमें नाना वर्ण, नाम, आकारयुक्त भगवान् केशव अनेक विधिसे पूजे जाते हैं ॥ २० ॥ सत्ययुगमें शुक्लवर्ण, चतुर्भुज जटा धारण किये, वल्कल वस्त्र पहने, काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष, दण्ड, कमण्डलु लिये ब्रह्मचारीके रूपसे दर्शन देते हैं ॥२१॥ उस युगमें मनुष्य सब शांत, निर्वैर, सुहृदय, समदृष्टि, शम, दम, और ध्यानसे देवताको पूजते हैं ॥२२॥ उस कालमें इन नामोंसे भगवान् हरि गाये जाते हैं–हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ धर्म, योगेश्वर, अमल ईश्वर पुरुष अव्यक्त और परमात्मा ॥ २३ ॥ नेत्रोंमें आरक्त, चार भुजा, तीन मेखला धारण किये, सुवर्णके समान केशवाले, वेदत्रयीमयमूर्ति और स्रुक्-स्रुवा आदि चिन्होंको धारण करते हैं ॥२४॥ जो अतिधर्मात्मा वेदके ज्ञाता मनुष्य हैं, वे सर्व वेदरूप भगवान् वासुदेवका तीनों वेदोंके कर्मसे त्रेतामें पूजन करते हैं ॥२५॥ और विष्णु यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त, उरुगाय यह नाम गाये जाते हैं ॥२६॥

द्वापरमें भगवान् वासुदेव श्याममूर्ति, पीतांबर धारे; श्रीवत्सादि चिन्ह और कौस्तुभादिक लक्षण धारण करते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य ईश्वरके जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे मनुष्य उस समय महाराजोंके लक्षणसंयुक्त उन महापुरुषोंकी वेदमन्त्र और आगमके मन्त्रोंसे पूजा करते हैं ॥२८॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप भगवान्को नमस्कार करते हैं ॥२९॥ नारायणऋषि पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्व भूतोंके आत्माको नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार द्वापरमें भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हैं, अब नाना आगम मार्गोंसे कलियुगमें भी जैसे पूजे जाते हैं, वह सुनो ॥३१॥ कलियुगमें कृष्णवर्ण, कांतिसे अतिनिर्मल और जैसे नीलमणि होती है उसी प्रकार अंग, हृदयादि उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शनादि अस्त्र, पार्षद सुनन्दनादिक नामका कथन और स्तुति आदिक प्रधान पूजासे अतिबुद्धिमान् मनुष्य भगवान् हरिकी पूजा करते हैं ॥३२॥ उसके उपरांत स्तुति करते हैं कि हे प्राणियोंके रक्षक ! हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविंदको नमस्कार है, जो चरणारविंद सदा ध्यान करने योग्य हैं, इन्द्रिय कुटुम्बके संगसे अनिष्टको दूर करते हैं, मनके अभिलाष पूर्ण करते हैं, गंगादिक तीर्थके स्नानभूत हैं, शिव ब्रह्मादिकसे स्तुति किये हुए हैं और जो दीन होकर शरण जाता है उसके रक्षक हैं। सेवककी पीड़ाको दूर करते हैं और संसारसागरसे तरनेको नौकारूप हैं ॥ ३३ ॥ हे धर्मात्मन् ! हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप जो देवताओंसे भी न त्यागी जाय, देवता जिसकी अभिलाषामें ही रहते हैं, ऐसी राज्यलक्ष्मी पिताकी आज्ञासे छोड़कर धर्मकी रक्षा करनेके लिये वनको चले गये और प्रियसीताके प्रेम तथा वचनसे मायामृगके पीछे दौड़े, उन भक्तिप्रिय आपके चरणारविंदोंको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजा जनक ! इस प्रकार चारों ही युगमें नाम रूप भेदसे उस-उस युगके मनुष्योंसे कल्याणके देनेवाले हरि भगवान् पूजे जाते हैं ॥ ३५ ॥ और चारों युगोमें कलियुग श्रेष्ठ है, क्योंकि जो श्रेष्ठ, गुणज्ञ, सारग्राही हैं वे कलियुगकी स्तुति करते हैं और युगोंमें ध्यान, यज्ञ, पूजा आदिसे जो फल होता है, वह सब इस कलियुगमें भगवान्के भजन कीर्तन मात्रसे ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ यह प्राणी देहके अभिमानसे संसारमें भ्रमण करते हैं, उनको संसारमें शांति और लाभ नहीं ॥ ३७ ॥

दोहा—सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग।
जो गति होय सो नाम जपि, कलिमें पावहिं लोग ॥

हे राजन् ! सत्ययुगादिकी प्रजा कलियुगमें जन्म पाये, ऐसी इच्छा करते हैं, इस कारण निश्चय ज्ञात होता है कि कलियुगमें सब जीव नारायणपरायण होंगे ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! कहीं-कहीं महाराष्ट्र देशमें भी भक्त होंगे और द्रविड़ देशमें भी बहुत होंगे; जहां ताम्रपर्णी नदी कृतमाला और पयस्विनी है ॥३९॥ हे मनुजेश्वर ! कावेरी आदि परमपवित्र नदियाँ हैं, जो इनका जल पान करते हैं, वे मनुष्य निर्मल चित्त होकर श्रीभगवान् वासुदेवके बहुधा भक्त होते हैं ॥४०॥ जो मनुष्य सर्वथा भेद छोड़कर केवल शरणदाता मुकुन्द भगवान्के शरण जाते हैं उनपर देवता, ऋषि, भूत, कुटुम्बी मनुष्य और पितरोंका ऋण नहीं रहता। हे राजन् ! जो सर्वत्र एक हरिको ही देखते हैं उनके लिये पञ्चयज्ञादिकोंके करनेको भी प्रबल विधि नहीं है ॥४१॥ यहां यह सन्देह राजा जनकने किया कि, हे महाराज ! जो कि सब कर्म छोड़कर

केवल भजन करे तो कर्म छोड़नेका पाप लगेगा ? इसका समाधान यह है कि जो सब देवादिकोंको छोड़कर एक हरिके ही चरणारविंदोंका भजन करते हैं, उनको विकर्म सर्वथा नहीं होते, कदाचित् प्रमादसे हो तो उसके हृदयमें भगवान् हरि बैठ जाते हैं, यह यमादिकोंके भी नियन्ता हैं और उनके भी सब कर्म नाश करते हैं, इससे भगवान्‌को भक्त ही प्यारे हैं ॥ ४२ ॥ इन नौ योगीश्वरोंका संवाद कहकर श्रीनारदजी बोले कि, हे वसुदेव ! इस प्रकार भगवद्धर्म सुन संतुष्ट होकर राजा जनकने अपने गुरुओं सहित जयन्तीपुत्र योगीश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ इसके उपरांत वह योगीश्वर संपूर्ण मुनि सिद्ध लोगोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये और राजा जनक भी उन्हीं धर्मोंके करनेसे परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ नारदजी बोले कि हे महाभाग वसुदेव ! तुम भी यह वैष्णवधर्म करो, इन धर्मोंमें श्रद्धा करनेसे निःसङ्गपरम मंगलको प्राप्त होगे ॥४५॥ यह तो मैंने शास्त्रादिकोंकी रीतिसे सब तुमसे कहा है, परंतु हे वसुदेवजी ! तुम तो विना ही शास्त्रके क्रम कृतार्थ हो, तुम दोनों स्त्रीपुरुष परमभागवत हो, तुम्हारे यशसे जब जगत् पूर्ण हो रहा है, क्योंकि तुम्हारे यहां स्वयं भगवान् ईश्वरने आकर अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ तुमको और लोगोंके समान भ्रांति, सर्व कर्म समर्पण आदि वैष्णव धर्मोंसे चित्त शुद्ध करना नहीं पड़ेगा, क्योंकि दर्शन, आलिंगन, आलाप, शयन, आसन, भोजनसे, श्रीकृष्णमें पुत्रस्नेह करनेसे तुम्हारा भगवान् ईश्वर, आत्मा पवित्र हो गया है ॥४७॥ शिशुपाल, पौंड्रक तथा शाल्व आदि राजा शय्या, आसन आदिमें जिसका वैरसे भी ध्यानकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति चितवनि आदिसे तदाकार हुई बुद्धिसे सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हो गये तो जो पुरुष स्नेहसे इनमें चित्त रखते हैं वे सारूप्य गतिको प्राप्त हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥४८॥ अहो ! जो पुत्रस्नेह मुक्तिका कारण है तो सबही मुक्त होने चाहिये तो कहते हैं कि हे वसुदेवजी ! तुम इनपर पुत्र बुद्धि मत रखो, यह तो सर्वात्मा ईश्वर हैं, मायासे मनुष्याकार दिखाई देते हैं, अलौकिक ऐश्वर्य इनका गुप्त है, यह श्रीकृष्णचन्द्र अविनाशी परम पुरुष हैं ॥ ४९ ॥ यह पृथ्वीका भाररूप राजाओंके मारनेको और साधुपुरुषोंकी रक्षा करनेको तथा मोक्ष देनेको अवतार लेकर लोकोंमें यश विस्तार करते हैं ॥५०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस राजा परीक्षित् ! यह सुन महाभाग वसुदेव देवकीने अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हो अपने आपका मोह स्नेह छोड़ दिया ॥५१॥ यह इतिहास अति पुण्यजनक है, जो पुरुष नियमसे इसे मनमें धारण करते हैं, इसी देहमें मोह दूर कर ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे वसुदेवनारदसंवादे जायन्तेयगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा—छठयेमें ब्रह्मादिकन, विनय करी कर जोरि ।
मोहिं सँग लीजै हे प्रभू, उद्धव कही निहोरि ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! इस प्रकार वसुदेवजीसे नारदजी कहकर चले गये । इसके उपरांत द्वारकामें ब्रह्मा, सनकादिक और सम्पूर्ण देवता मिलकर आये ॥ १ ॥ सृष्टिभूतोंके ईश्वर महादेवको भूतगणोंसे मिलकर देवराज इन्द्र आये । आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार,

ऋभु, अंगिरा, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्य ॥२॥ गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर, किन्नर ये सब श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन करनेको द्वारकामें आये ॥३॥ जिस देहसे भगवान्ने मनुष्य लोकमें परमसुन्दर मूर्तिसे सब लोगोंके पाप दूर करनेवाले यज्ञका विस्तार किया, उसी मूर्तिके देखनेको आए ॥ ४ ॥ अत्यन्त स्वरूपवान्, धनी पुरुषोंसे अति समृद्ध द्वारकापुरीमें आकर अतृप्तरूप देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन किया ॥५॥ इसके उपरांत नन्दनवनके फूलोंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा और विचित्र पद तथा अर्थयुक्त वाणियोंसे जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवता बोले कि हे नाथ ! जो जीव कर्मरूप बड़े पापसे छूटनेको बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, मन, वचनसे भावयुक्त हो जिनका हृदयमें सदा चिंतन करते हैं, परन्तु तो भी दर्शन नहीं पाते और हम तुम्हारा प्रकट दर्शन कर रहे हैं, अतः हमारा अहोभाग्य है ! इसलिए हम तुम्हारे चरणारविंदको बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ यहां हरि एक तर्क करते हैं कि मोक्षके लिए मेरे चरणारविंदका चिन्तन क्यों करते हो ? क्योंकि मैं तो अनेक दुष्ट कर्म करता हूँ, मेरा तो कर्म छूटता ही नहीं तो तुम्हारे कर्म क्या छुड़ाऊँगा ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि हे अजित ! तुम ऐसी बात मत कहो, क्योंकि जो औरों पर मनसे भी न जाने जायँ ऐसे महत्त्वादि प्रपञ्चको त्रिगुण अपनी मायासे आपमें ही उत्पन्न करते हो, पालते हो, संहार करते हो, परंतु तो भी इन कर्मोंमें लिप्त नहीं होते । तुम मायाके गुणोंमें नियन्तास्वरूपसे स्थित हो; परंतु रागादिरहित हो और नित्य अपने आनन्दस्वरूपमें मग्न रहते हो ॥ ८ ॥ तो मुझको कर्म करनेका क्या प्रयोजन है ? मैं तो आत्माराम हूँ, तो कहते हैं कि हे स्तुति योग्य ! हे परमश्रेष्ठ देव ! विषयी पुरुषोंके चित्त, विद्या, श्रवण अध्ययन, दान, तप और कर्म करनेसे वैसे शुद्ध नहीं होते जैसे साधु पुरुषोंके चित्त तुम्हारा यश श्रवण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ९ ॥ अब प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारे चरणकमल हमारी अशुभ वासना जलानेके लिये अग्निरूप हो, जिन चरणोंका सम्पूर्ण मुनि अत्यन्त प्रेमपूर्वक कोमल हृदय हो मोक्षके कारण ध्यान करते हैं और भक्तजन सारूप्यमुक्तिकी इच्छासे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहसे तीनकालमें पूजा करते हैं, और उनके बीचमें भी जो ज्ञानी हैं वे इन्हींसे स्वर्गको उल्लंघन करके वैकुण्ठ जानेके लिए पूजते हैं ॥१०॥ हे ईश ! सदा तुमको यज्ञ करनेवाले कर्ममार्गमें हाथ जोड़कर यज्ञकी अग्निमें तीनों वेदकी विधिसे हविको लेकर चिंतन करते हैं और योगिराज अध्यात्मयोगसे तुम्हारी माया अणिमादिक ऐश्वर्य जाननेका चिंतन करते हैं और परमभक्त सर्वत्र पूजते हैं ॥११॥ हे विभो ! तुम्हारे सब अङ्गोंमें व्याप्त जो वनमाला उससे भगवती लक्ष्मीजी सौतके समान ईर्षा रखती हैं और यह वनमाला भक्तोंने अर्पणकी है, इसी कारणसे तुम इसको धारण करते हो, उसी मालामें पूजाको ग्रहण करते हो, तुम्हारे चरण हमारी विषयवासनाके जलानेको अग्नि हैं ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जब आप त्रिविक्रमरूप हुए थे तब आपनें बलिराजको बांधा, तब तुम्हारा एक चरण सत्य लोकमें रहा, और वह चरण जैसे विजयपताका हो इसी प्रकार दिखाई देता था और उसी चरणसे गङ्गाजीके तीन प्रवाह छूटे, वह पताका हुई, चरणध्वज दण्ड हुआ । सुर, असुर सबकी सेनाको भय-अभयका देनेवाला हुआ, देवता और साधुओंको अभयका दाता अर्थात् स्वर्ग दिया, असुर दुष्टोंको भयदायक अर्थात् अधोगति दी । वह आपका चरण हम, जो कि

भजन कर रहे हैं, उनके पापको दूर करो और हमारी रक्षा करो ॥१३॥ यदि कहो कि युद्धमें देवता दैत्य परस्पर जीतते हैं, हारते हैं, मेरा वहां क्या निमित्त है ? तो कहते हैं, कि ब्रह्मा आदिसे लेकर देहधारी सब जगत् परस्पर युद्धसे जब पीड़ित होते हैं, तब तुम्हारे वशमें आते हैं, इसलिये कालरूप तुम हो और कालके अधीन सब हैं, इससे जय, पराजय सब आपके ही अधीन हैं। जैसे नाथके अधीन बैल हैं, इसी प्रकार सब तुम्हारे अधीन हैं। तुम प्रकृति पुरुषसे भी परे हो, पुरुषोत्तम हो, अतः तुम्हारे चरणकमल हमको सुखकारी हों ॥ १४ ॥ हे प्रभो ! आप इस जगत्के उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हो और प्रकृति पुरुष महत्तत्त्वके भी नियन्ता हो, यह जो काल संवत्सर है वह चक्ररूप है, इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद् तीन नाम हैं और सबके नाश करनेको प्रवृत्त है, इसका वेग अत्यन्त गम्भीर है, वह काल तुम्हारा ही रूप है, इसलिये तुम उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥ अब सृष्टिका प्रकार कहते हैं:—प्रथम तुमसे सफलवीर्य एक पुरुष उत्पन्न होता है, वह तुमसे शक्तिको प्राप्त हो मायासे मिलकर विश्वका गर्भरूप महत्तत्त्व उत्पन्न करता है और वही महत्तत्त्व मायासे मिल आत्मासे यह स्वर्णमय अण्डकोश बाहरके सात आवरण संयुक्त बनाता है ॥१६॥ इसलिये सब तुमसे ही प्रकट हुआ है, और इसी कारण इस स्थावर जङ्गमरूप विश्वके अधीश तुम हो। हे सम्पूर्ण स्त्रियोंके पति ! मायासे उत्पन्न हुई इन्द्रिय-वृत्ति करके विषयभोग करके भी तुम निर्लेप हो, यद्यपि योगीश्वर योगसे विषयको छोड़ देते हैं, परंतु तो भी डरते हैं कि कदाचित् हमको विषयवासना उत्पन्न न हो जाय, क्योंकि तुम प्रपञ्चसे मिल रहे हो और विषय सम्बन्ध नहीं यह तुम्हारा विशेष धर्म है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो सोलह हजार (१६०००) स्त्रियाँ अपने मन्द हास्य सहित चितवनके कटाक्षसे दिखाये अभि-प्रायसे मनको हरनेवाली भ्रूमण्डलसे प्रेरे सम्भोगमन्त्रोंके विषे निपुण, कामके बाण और कामकी कलासे भी वशमें न कर सकी तो तुम विषयोंसे निर्लिप्त ही हो ॥ १८ ॥ इसलिये तुम्हारी अमृतरूपी कथा, कीर्तिरूप जलभरी नदी और तुम्हारे चरणोदकरूपी गंगा ये दोनों त्रिलोकीके पाप दूर करनेको समर्थ हैं। श्रवणेन्द्रियसे वेदमें गाये हुए तुम्हारे यशके सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, गंगामें स्नान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं, इस प्रकार जो पुरुष धर्म जानते हैं, वह इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा महादेव सहित देवताओंसे मिल स्तुति और नमस्कार कर आकाशमें ही खड़े होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीसे बोले ॥२०॥ ब्रह्माजीने कहा कि हे प्रभो ! हे सर्वान्तर्यामी ! हमने भूमिका भार उतारनेके लिये प्रथम आपसे विनती की थी, वह भार तुमने उसी प्रकार दूर किया ॥२१॥ सन्तोंमें धर्म स्थापन किया, साधुओंमें सत्य रखा और सबका पाप दूर कर दशों दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार किया ॥ २२ ॥ यदुवंशमें अवतार ले उत्तम रूप धर जगत्का हित करनेके लिए अति उदार चरित्र और कर्म किए ॥२३॥ हे ईश ! जिन कर्मोंको कलियुगमें साधुजन श्रवण करके सुखपूर्वक संसारसागरसे तरेंगे ॥२४॥ हे विभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार लिये तुमको एकसौ पचीस (१२५) वर्ष बीत गये ॥२५॥ हे सर्वाश्रय ? अब तुमको कोई देवकार्य भी करना शेष नहीं है और यह तुम्हारा कुल भी ब्रह्मशापसे नष्ट हो रहा है॥२६॥ इसलिये यदि अब आपकी इच्छा हो तो अपने वैकुण्ठधामको चलो। हे वैकुण्ठनाथ ! हम तुम्हारे किंकर हैं, लोक-सहित लोकपालोंकी रक्षा करो ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णभगवान् बोले कि, हे देवताओंके ईश्वर !

तुमने जो कहा वह मैंने मनमें धारण किया, तुम्हारा सब काम पूर्ण कर दिया और भूमिका भार उतार दिया ॥२८॥ परन्तु अभी यह यादवकुल बल, शूरता और श्रीसे अति उद्धत है, लोकको ग्रसना चाहता है, उसे भी जैसे महासमुद्रको वेला (तट) रोक रखे, उसी प्रकार मैंने रोक रखा है ॥२९॥ जो मैं ऐसे गर्वसे उद्धत यादव के विशाल कुलका संहार किये विना अपने लोकको चला जाऊँगा तो यह लोक मर्यादारहित या यदुकुलसे नष्ट हो जायेगा ॥३०॥ अतः विप्रशापसे इस कुलके नाशको अब आरम्भ किया है। हे ब्रह्मा! इनको संहार करके मैं वैकुण्ठ जाऊँगा। हे निष्पाप! तुम्हारे घर आऊँगा ॥ ३१ ॥ लोकोंके नाथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी इस प्रकार वाणी सुनकर स्वयंभू देव ब्रह्मा श्रीकृष्णको नमस्कार कर देवताओंसे मिल अपने धामको चले गये ॥३२॥ इसके उपरांत द्वारकापुरीमें बड़े-बड़े उत्पात होने लगे, उन्हें देखकर बड़े वृद्ध यादव इकट्ठे हुए, उन यादवोंको एकत्र देखकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥३३॥ कि सब ओरसे यहां बड़े-बड़े उत्पात उठते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका शाप भी हुआ है ॥३४॥ इसलिये हे यादवो! जो जीतनेकी इच्छा है तो हमको यहां रहना ही न चाहिये, अति पुण्य प्रभासतीर्थको आज ही चलो, विलम्ब मत करो ॥३५॥ जिस तीर्थमें स्नान करके दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रसा चन्द्रमा पापसे छूटा और तत्काल फिर कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥३६॥ हम भी वहां स्नान और पितरोंका तर्पण कर अनेक गुण-संयुक्त अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करवायें॥३७॥ श्रद्धासहित महान् सत्पात्रों विषे बीज बोकर उन दोनोंसे पापोंको तरेंगे,जैसे नावमें बैठकर समुद्रको तरते हैं ॥३८॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी तब सब यादव भगवान्‌की आज्ञा मान चलनेका उद्यम करने लगे, तीर्थ जानेकी इच्छासे रथ जुतवाने लगे, ॥३९॥ हे राजन्! उस समय यादवोंके प्रभासतीर्थ जानेका उद्यम देख और श्रीकृष्णके वचन सुन और घोर उत्पातोंको देख नित्य श्रीकृष्णके निकट रहनेवाले उद्धवजी ॥ ४० ॥ एकान्तमें निकट जाकर जगत्के ईश्वरोंके ईश्वरको नमस्कार कर हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ४१ ॥ हे देवदेवेश! हे योगेश! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन! तुम्हारी ऐसी इच्छा जानी जाती है कि इस कुलका संहार कर निश्चयसे भूलोकको छोड़ना चाहते हो, यद्यपि तुम ईश्वर सम्पूर्ण कार्य करनेको समर्थ हो, परंतु तो भी विप्रशापको निवारण नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे केशव! हे नाथ! मैं तुम्हारे चरणकमल छोड़नेको असमर्थ हूँ, अर्थात् आधे क्षणको भी नहीं छोड़ सकता, इसलिय मुझे भी अपने धामको ले चलो ॥४३॥ हे कृष्ण! तुम्हारी लीला मनुष्योंको परममंगलदायक है, श्रवणेन्द्रियको अमृतरूप है, उसका स्वाद ले मनुष्य औरकी इच्छाको छोड़ देते हैं, हम तुम्हारे दिनरात्रिके सेवक हैं ॥ ४४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्नान, क्रीडा, भोजन आदि और भी क्रियाओंमें सदा संग रहे हैं, हम भक्तप्रिय आत्मारूप आपको कैसे छोड़ सकते हैं? ॥ ४५ ॥ तुम्हारे समीप तुम्हारे प्रसादकी माला सुगंध चन्दन और प्रसाद वस्त्रसे चर्चित होकर बाह्य शुद्ध होते हैं, पीछे तुम्हारे उच्छिष्ट महाप्रसादके भोजन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध करके तुम्हारी मायाको जीतते हैं ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन्। जो केवल वायु भक्षण करके रहते हैं वे दिगम्बर हैं, शमयुक्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, संन्यासी हैं, निर्मलचित्त हैं, आत्मविद्यामें जिन्होंने श्रम किये हैं, वे ऋषि अनेक क्लेशसे तुम्हारे वैकुण्ठधामको प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ हे महायोगीश्वर! हम तो तुम्हारे भक्तोंके

सङ्ग तुम्हारी ही वार्त्ता करते; सकल कर्मोंमें भ्रमते हुए भी तुम्हारी दुस्तर मायाको तरेंगे ॥ ४८ ॥ मनुष्यलोकको आश्चर्यदायक तुम्हारे कर्म वचनसे गाते हास्य, चितवन, हास्यकी वार्त्ता और जो कुछ मनुष्यलोकमें लीला की है, उसका स्मरण कीर्तन करेंगे। इससे ही तर जायँगे। मैं यह आपके भयसे प्रार्थना नहीं करता हूँ, परंतु आपका सङ्ग नहीं छोड़ा जाता ॥४९॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्! इस प्रकार उद्धवजीकी विनती सुन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सदा निकटवर्ती परमप्रिय भक्त उद्धवजीसे बोले ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे ब्रह्मादिप्रार्थनानिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा–हरि विवेककी सिद्धिको, वरणो जस इतिहास।
सो सप्तम अध्यायमें, वर्णत सहित हुलास ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे बोले कि, हे महाभाग उद्धव! तुमने जो मुझसे कहा, वह सब मुझे करना है, क्योंकि ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल ये सब स्वर्ग जानेके लिए मेरी प्रार्थना कर गये हैं ॥१॥ मैंने यहां सब देवकार्य सिद्ध किया, जिसके लिए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे बलदेवसहित अवतार लिया था ॥ २ ॥ हमारा कुल शेष रहा है, वह भी विप्रशापसे जल रहा है, इससे निश्चय ही परस्परकी लड़ाईसे नष्ट हो जायगा और आजसे सातवें दिन इस द्वारकापुरीको समुद्र डुबायेगा ॥ ३ ॥ जिस दिन मैं इस लोकको छोडूंगा उस दिन यह मङ्गल नष्ट हो जायगा। हे उद्धव! इसके उपरांत फिर कलियुग भी प्रवृत्त होकर सब धर्मको दूर करेगा और थोड़े कालमें इस लोकका निरादर करेगा ॥ ४ ॥ हे उद्धव! मेरे त्याग किये महीतलमें तुम मत वास करना, क्योंकि कलियुगमें मनुष्योंकी प्रीति अधर्ममें होगी ॥ ५ ॥ हे उद्धव! तुम स्वजन, बन्धु और कुटुम्बका स्नेह छोड़ मेरे स्वरूपमें चित्त रख समदृष्टि हो पृथ्वीमें विचरण करो ॥६॥ इस संसारमें दृष्टि मत रखना, क्योंकि वचन, नेत्र, श्रवणादिक करके जो ग्रहण किया है, वह सब झूँठी मायाका रचा ग्रह मन भी मिथ्या है, ऐसा जानो ॥७॥ विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको वेदार्थ अनेक प्रकारसे दीखते हैं, भ्रमसे प्रतीत होते हैं, गुणदोषसंयुक्त हो कर्म, अकर्म, विकर्म भेद गुणदोषबुद्धिवालेको हैं, समदृष्टि आत्मज्ञानीको यह भेद नहीं है ॥८॥ इसलिए इंद्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके इस विशाल जगत्को अपने आपमें देखो, अपनेको परमेश्वरमें ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ यदि कहो कि विघ्न बहुत हैं कैसे देखें? इसका उत्तर यह है कि, वेदके अभिप्रायोंका निश्चय और उसके अर्थका अनुभव मिलाकर आत्माके ज्ञानसे ही सन्तुष्ट और दीनता आदि भी आत्मरूप जानोगे तो कोई विघ्न न होगा और जब तक आत्मज्ञानकी प्राप्ति न हो तबतक वर्णके अनुसार कर्म करे, फिर अनुभव प्राप्त होनेपर विघ्नोंसे कुछ नहीं होता ॥१०॥ इससे यह न समझ लेना कि "ज्ञानी मनुष्य

---

* शंका–श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि हम पृथ्वीको त्याग परमधामको जायँगे, तब तुम पृथ्वीपर वास मत करना, तब श्रीकृष्णके वैकुण्ठ जानेके पीछे बदरिकाश्रममें उद्धवने वास क्यों किया?

उत्तर–वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, नैमिषारण्य, द्वारका, काशी, बदरिकाश्रम इन सब क्षेत्रोंको सात द्वीपोंकी पृथ्वीपर गिनती नहीं है, ऐसा शास्त्रमें लिखा है, ये सब मोक्षभूमि हैं, सात द्वीपके सदृश भूमि नहीं, इसलिये बदरिकाश्रममें उद्धवजीने वास किया।

यथेष्ट आचरण करे" क्योंकि जैसे बालक संकल्प-विकल्पसे रहित होनेपर भी कोई कर्म करता है, कोई नहीं करता, इसी प्रकार गुणबुद्धिसे रहित हुआ यह पहले कर्मोंके संस्कारसे प्रवृत्त होता है, किंतु न दोष बुद्धिसे बहुधा विहित कर्म करता है न गुणबुद्धिसे ॥ ११ ॥ सब प्राणियोंका मित्र हो ज्ञान, विज्ञानका निश्चयवाला हो, सब विश्वको मेरा ही रूप समझ कर देखेगा तो वह पुरुष फिर कभी इस संसारमें नहीं आयेगा ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाभागवत राजा परीक्षित् ! इस प्रकार जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समझाया तो परम भागवत उद्धवजी प्रणाम कर तत्त्वज्ञानकी इच्छा किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे ॥१३॥ उद्धवजी बोले कि हे योगके फलदाता ! हे योगके आधार ! हे योगरूप । हे योगके कारण ! मोक्षके अर्थ यह संन्यासरूप त्याग मुझसे कहा वह अपनी सहज दयासे कहा, क्योंकि मैं तो ऐसा अधिकारी नहीं था ॥१४॥ हे सर्वव्यापक ! हे सर्वात्मा ! मेरी बुद्धि तो ऐसी है कि जिन पुरुषोंका मन विषयोंमें लगा हुआ है, उनसे ऐसा त्याग बनना अशक्य है और जो उसमें भी तुम्हारे भक्त नहीं उनको तो बहुत ही कठिन है ॥१५॥ और जो मुझसे तुम त्याग कहते हो सो महाराज ! मैं अहंता, ममतासे मूढ़मति हूँ, तुम्हारी मायासे उत्पन्न हुए पुत्र,कलत्र देह आदिमें मग्न हूँ, इसलिए हे भगवन् ! जैसे इन्हें तुम्हारी आज्ञासे विना परिश्रम त्याग सकूँ, उसी प्रकार तुम मुझे शिक्षा दो ॥१६॥ हे ईश ! तुम समानरूप हो, स्वयं प्रकाशित हो, आत्मा हो इसलिए मुझे ऐसा वक्ता देवताओंमें भी कोई नहीं दीख पड़ता, क्योंकि ये ब्रह्मादिक देहधारी तो तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि हैं और बाहरके विषयमें इनकी अर्थबुद्धि है ॥ १७ ॥ कोई दुष्टबुद्धि हैं और कोई ऐसे हैं जो सेवा करनेपर भी फल देनेके समय नष्ट हो जाते हैं, कोई अज्ञानी हैं, कोई रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, कोई स्थान भ्रष्ट हैं, इसलिए संसारके दुःखसे अतीत नहीं । मैं अति विरक्तचित्त हूँ, इस कारण तुम्हारी शरण आया हूँ, क्योंकि तुम तो निन्द्रारहित हो, तुम्हारा कालसे अन्त और देशसे पार नहीं, सर्वज्ञ हो, ईश्वर हो; तुम्हारा नाशरहित वैकुण्ठ स्थान है, तुम सब जीवोंके आश्रय हो, जीवके सखा हो ॥१८॥ श्रीभगवान् बोले कि लोकतत्त्वको अतिश्रेष्ठ जानते हैं, वे मनुष्य बहुधा गुरु विना ही अपने आत्माको संसारसे उद्धृत करते हैं, गुरुके उपदेशकी अपेक्षा नहीं करते ॥१९॥ अपने गुरु आप ही हैं, क्योंकि विशेषकर पुरुष जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे विचारे तो आपसे ही सुख पाये और सहजमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो । पशुओंको अपने हित ज्ञानका कौन गुरु है, आपसे ही अपने हितमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिए अपने आपही गुरु हैं ! अब यहां प्रत्यक्ष ज्ञान दिखलाते हैं कि जब जीव पुरुष जन्म प्राप्त करता है, तब यह ज्ञानमार्गमें निपुण हो जाता है ॥ २० ॥ मनुष्यके शरीरमें आत्मा अधिक प्रत्यक्ष है, यह सांख्ययोगमें चतुरबुद्धिवाले धीर पुरुषोंका निश्चय है ॥ २१ ॥ वे शक्तियुक्त मुझे प्रत्यक्ष देखते हैं, मेरे उत्पन्न किये बहुत रूप और बहुत शरीर हैं, कोई एकचरण हैं, कोई अर्द्धचरण हैं, कोई नीचे चरण हैं, कोई चार चरण हैं; कोई बहुतचरण हैं, कोई चरण रहित हैं, परंतु इन सबोंमें जो पुरुषरूप देह है वह मुझे अतिप्रिय है ॥२२॥ इस पुरुष देहमें जो सावधान हैं वे अहंकारादिकोंसे रहित मुझे प्रगट ढूँढ़ लेते हैं । बुद्धि आदि यत्नोंको एक स्वप्रकाश आत्मा विना प्रकाश नहीं हो सकता, ऐसा अनुमान करके मुझे ढूँढ़ लेते हैं ॥२३॥ इस विषयमें एक बड़े तेजस्वी राजा यदु और अवधूतका संवादरूप प्राचीन इतिहास कहते हैं ॥ २४ ॥ अवधूत वेष किये महापंडित और सदा

तरुण अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी, जो निर्भय रीतिसे संसारमें घूम रहे थे। उन्हें देखकर धर्मके ज्ञाता राजा यदुने इस प्रकार पूछा ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! अकर्त्ता तुमको ऐसी निपुण मति कहांसे प्राप्त हुई है, जिसको पाकर अवधूत पंडित तुम बालकके समान इस लोकमें विचरते हो ? ॥ २६ ॥ बहुधा मनुष्य अर्थ, धर्म, काम और आत्माके विचार में आयु, कीर्ति और श्रीकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु तुम तो कुछ नहीं चाहते हो, न कोई कर्म करते हो और जड़ उन्मत्त पिशाचके समान ही और सब कार्य करनेको समर्थ और पूर्ण ज्ञानवान् हो अतिप्रवीण हो, सुन्दर हो आपकी उत्तम मधुरवाणी है ॥२८॥ मनुष्य काम-लोभरूप दावानलसे जलता है, उसमें तुम उस तापसे संतप्त नहीं हो, जैसे अग्निसे छूटकर गंगामें खड़ा हाथी उस तापसे तप्त नहीं होता है ॥२९॥ हे ब्रह्मन् ! तुम विषय भोग-रहित हो, कलत्र आदिसे शून्य हो, आनन्दरूप हो, इसलिये हम आपसे पूछते हैं कि तुम्हारे आनन्दका कारण क्या है ? वह हमसे कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार जब अतिब्रह्मण्य सुबुद्धि राजा यदुने विनयपूर्वक पूजा कर पूछा तब महाभाग अवधूतजी राजा यदुसे बोले ॥३१॥ हे राजन् ! अपनी बुद्धि द्वारा मेरे बहुत गुरु हैं जिनसे मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूँ और इस लोकमें फिरता हूं उसको सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सिन्धु, पतंग, मधुकृत, गज ॥ ३३ ॥ मधुहा, मृग, मीन, पिंगला, कुररपक्षी, बालक, कुमारी, कडेडी (बाणका बनाने-वाला), सर्प, बकरी और मृगी ॥३४॥ हे राजा यदु ! मैंने यह चौबीस गुरु सेवन किये हैं, इनके आचरणोंसे मैंने शिक्षा ग्रहण कर ली है ॥ ३५ ॥ हे ययाति पुत्र ! हे पुरुषसिंह ! मैंने जाते हुए जहां जो शिक्षा जैसे ग्रहण की है उसे उसी प्रकार कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥३६॥ प्रथम भूमिसे क्षमा सीखी है, वह कहते हैं कि पृथ्वीको सब प्राणी खूदते हैं, परन्तु तो भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती इसी प्रकार दैवके वशीभूत प्राणी धीर पुरुषको कष्ट दें तो भी उनके दैवाधीनपनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान होना उचित नहीं, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ पृथ्वी दो प्रकारकी है-एक तो पर्वतरूपा, एक वृक्ष रूपा। यहांसे जो सीखा है वह कहते हैं कि, पर्वतकी जो वस्तु है वृक्ष, तृण, झरना, फूल, ये सदा पराये अर्थ हैं और पर्वतका जन्म भी केवल पराये ही अर्थ है, अपना स्वार्थ कुछ नहीं, इसी प्रकार अपनी वस्तु और देह सब परोपकारार्थ लगा दीजिये, यह पर्वतरूप भूमिसे सीखा है और वृक्ष भी पराये अधीन हैं, यदि इनको कोई काटे, उखाड़े तो वह सह लेते हैं और क्षमाको नहीं तजते, इसी प्रकार साधु पुरुष भी जो अपने संग भलाई-बुराई करे, उसे सहन कर ले (१) ॥ ३८ ॥ वायु भी दो प्रकारका है, एक तो प्राणरूप है, दूसरा बाहर फिरता है। प्राण जैसे आहारमात्रसे सन्तुष्ट रहते हैं और इन्द्रियोंके भोग नहीं चाहते, इसी प्रकार मुनीश्वर भी रहें अर्थात् आहार जो न मिले तो मन वचनसे विक्षिप्त होकर ज्ञान सिद्ध न हो इसलिये एक आहारमात्रसे ही सन्तोष मान ले, इससे अधिकको चाहना न करे, यह विद्या प्राणवायुसे सीखी है ॥ ३९ ॥ जैसे पवन सब जगह चलता है, पर कहीं आसक्त नहीं होता, इसी प्रकार योगिराज भी शीत, उष्ण आदि नाना धर्मवाले विषय भोग करते भी आसक्त नहीं होते,सबमें गुणदोषरहित मन हो,यह विद्या बाहरकी वायुसे सीखी है ॥ ४० ॥ और भी एक बात पवनसे सीखी है वह कहते हैं कि यद्यपि वायु सुगन्धसे

मिली-सी चलती है और ऐसा ही जाना जाता है, परन्तु तो भी वायु गन्धसे मिला नहीं है, गन्ध कुछ वायुका नहीं है किन्तु पृथ्वीका गुण है, उसी प्रकार आत्मा पृथ्वीका विकारदेहमें प्रविष्ट है, देहके धर्मका आश्रय है, पर मिला नहीं है, देहोंसे अलग है, इस प्रकार समझे और स्थानमें आत्माको ही देखे यह विद्या पवनसे ही सीखी, इसलिये वायु गुरु हुआ (२) ॥ ४१ ॥ अब आकाशसे जो विद्या सीखी है वह कहते हैं-जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और बड़ा है परन्तु घटमें छोटा दिखायी देता है, उस घटसे आकाशका कुछ सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वह निर्विकार है, ऐसे ही आत्मा इस देहमें है और यह देहसे मिला, इस कारण इतना ही है और ठौर नहीं ऐसे न समझे, क्योंकि जो आत्मा देहमें है वही सर्वत्र है, जैसे आकाश सब ठौर है, वैसेही स्थावर, जंगम विषे ब्रह्म व्यापक है, यह एक विद्या आकाशसे सीखी है ॥ ४२ ॥ द्वितीय वायु कहते हैं-जैसे पवनके प्रेरे तेज जल पृथ्वीमय मेघादिक आकाशमें व्याप्त होते हैं पर मेघादिकोंसे आकाशका स्पर्श नहीं होता वह निर्लेप है, वैसेही यह पुरुष कालसे बनाये हुए पञ्चभूतरूप इस देहसे संयुक्त है, उनका जिनके साथ स्पर्श नहीं है, यह धर्म भी आकाशसे ही सीखा (३) ॥ ४३ ॥ जैसे स्वभावसे ही जल अतिनिर्मल है, ऐसे ही मुनि भी निर्मल हो सबके ऊपर स्नेह करें, मीठा बोलें, जल भी मधुर है, जैसे जल तीर्थस्थान है और मनुष्योंको पापसे छुड़ाता है उसी प्रकार मुनीश्वर भी दर्शन, स्पर्श और कीर्तनसे सबको पवित्र करें, यह गुण जलसे सीखे हैं (४) ॥ ४४ ॥ अब जो अग्निसे सीखा वह कहते हैं-जैसे अग्नि अति तेजस्वी है, तेजसे दीप्त है, अति दुःसह है और उसका उदर ही पात्र है, क्योंकि जो होम करते हैं, वह अग्निके उदरमें ही डालते हैं इससे वही पात्र है, जो सम्पूर्ण वस्तुको भक्षण करता है पर तो भी पवित्र करनेवाला है, ऐसे ही मुनीश्वर भी हों ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं गुप्त है, कहीं प्रकट है, जो अपने कल्याणकी चाहना करते हैं, उनको सेव्य है, दाताकी इच्छासे सर्वत्र हविष्य लेता है, उनके भूत, भविष्य, वर्तमान पाप सब दूर करता है इसी प्रकार मुनि रहे ॥४६॥ और भी अग्निसे सीखा है, जैसे अग्नि एकरूप है, बहुत ईंधनसे बहुतभांति बड़ा दिखायी देता है और जब ईंधन थोड़ा रहता है तो छोटा दीख पड़ता है, ऐसेही जीवात्मा एक रूप है, न छोटा है न बड़ा है, अपनी अविद्यासे उपजाये ऊँचनीच भेद संयुक्त देहमें प्रविष्ट हुआ ऊँचनीच रूपसे दिखाई देता है (५) ॥ ४७ ॥ चन्द्रमासे जो सीखा है, उसे कहते हैं:-जन्मसे मरणपर्यन्त धर्म देहके ही हैं, आत्माके नहीं। इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि, जैसे चन्द्रमाका मंडल सदा पूर्ण एकरूप है, नित्य वृद्धि और क्षय देखा जाता है, वह कलाओंका है, जितना सूर्यमण्डलसे बिम्ब अलग पड़ता है इतना ही दीखता है और ज्यों-ज्यों मंडलके नीचे दबता है त्यों-त्यों घटता है इसी प्रकार आत्मा एकरूप है, अप्रकट गति कालसे जन्म-मरणादिकभाव देहको होते हैं, आत्माको नहीं, यह ज्ञान चन्द्रमासे पाया है इससे चन्द्रमा गुरु है (६) ॥४८॥ अग्निगुरुकी फिर प्रशंसा करते हैं, जैसा अग्निका स्वरूप है कि नाश नहीं होता, अग्निकी ज्वालाओंका नाश होता है परन्तु दीखता नहीं, वैसे ही काल नदीके वेगसे जन्म-मरण इस देहको ही है आत्माको नहीं, क्योंकि आत्मा तो नित्य अर्थात् अमर है ॥ ४९ ॥ अब सूर्यसे जो सीखा है, वह कहते हैं:-जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल सोखता है और फिर वर्षाके समय वही जल छोड़ देता है, परन्तु उसमें आसक्त नहीं है, इसी प्रकार योगीजन इंद्रिय अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करे और कोई याचना करे तो तत्काल दे दे, ममता न रखे ॥५०॥

जिस प्रकार सूर्य आकाशमें अपने स्वरूपमें रहता है और एक ही है परन्तु जलादिकमें प्रतिबिंब पड़नेसे अनेकरूप दीखता है, उसी प्रकार आत्मा स्वरूपसे भिन्न नहीं है, देहादिकोंमें व्याप्त होनेसे स्थूल बुद्धिवालोंको अनेक रूपसे प्रतीत होता है (७) ॥ ५१ ॥ अब कपोतसे जो सीखा है, उसे कहते हैं-कहीं किसीसे अधिक स्नेह न करें, किसीमें आसक्त न हो, क्योंकि जो सङ्ग करे तो सन्ताप को प्राप्त होता है और दीन मति होती है, जैसे कपोतको हुआ ॥५२॥ कपोतकी कथा कहते हैं-एक कपोत वनमें किसी वृक्षपर अपना घर बनाकर अपनी स्त्रीसे मिलकर कितने वर्षतक दोनोंने वास किया ॥५३॥ वे दोनों स्त्री-पुरुष (कपोत-कपोतिनी) परमस्नेहसे बँधे हुए दृष्टिसे दृष्टि बँधी, हृदय हृदयसे बँधा, अंग अंगसे बँधा, बुद्धि-बुद्धिसे बँधी ॥ ५४ ॥ शयन, आसन, गमन, स्थान, वार्त्ता, क्रीड़ा, भोजन सब काम एक ही स्थानपर बैठकर करें । अलग-अलग होकर कभी न करें; इस प्रकार एक सङ्ग निःशंक हुए फिरा करें ॥५५॥ इसके उपरांत वह कपोतिनी अपने हाव-भाव, लावण्य, मधुर भाषणसे प्रसन्न कर कपोतसे दीन होकर जो-जो वस्तु मांगे वह कपोत अतिकष्टसे भी ले आये, इस भांति अजितेंद्रिय उसके अधीन रहा करता था ॥ ५६ ॥ एक समय कपोतिनी प्रथम गर्भवती हुई तो पतिव्रता कपोतिनीने अपने समीप आये पतिके समीप ही अपने घरमें अंडे दिये ॥ ५७ ॥ कुछ समय बीतनेपर उन अंडोंमेंसे अचिन्तनीय हरिकी शक्तियोंसे हाथ-पांव आदि युक्त बच्चे उत्पन्न हुए और उनके कोमल अंगोंमें रुएँ हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरांत ये दोनों कपोत कपोतिनी प्रसन्न हुए और अपने बच्चोंका यत्नसहित पालन करने लगे, पुत्रोंमें स्नेह बहुत हुआ और दिन-दिन अपने बच्चोंका मधुर वचन सुननेसे उनको बड़ा सन्तोष प्राप्त हुआ ॥५९॥ उनके पंखोंसे जब अपना स्पर्श हो तब बहुत सुख पायें, प्रसन्न हो जायँ, अपने पुत्रोंके मुखकी सुन्दर चेष्टा, उनके वचन और अपने निकट आनेसे परमसुख प्राप्त करने लगे ॥ ६० ॥ उस स्नेहसे बद्धहृदय हो हरिकी मायासे परस्पर मोहित हुए अति दीनबुद्धि ये स्त्री-पुरुष बच्चोंको पालने लगे ॥ ६१ ॥ एक दिन ये दोनों कुटुम्बी कपोत वनके चारों ओर बालकोंके अन्नके लिये बड़ी देरतक अभिलाषासे फिरे ॥६२॥ अपनी इच्छासे वनमें फिरते किसी एक क्रूर वधिकने अपने घोंसलेके निकट चुगते बालकोंको देख जाल रोपकर पकड़ लिये ॥ ६३ ॥ इसके उपरांत ये कपोत-कपोतिनी हर्षसंयुक्त जो प्रजाका चुग्गाचारा लेने गये थे, लेके अपने घरमें आये ॥ ६४ ॥ तो वह कपोतनी अपने बालकोंको जालमें अति दुःखित पुकारता देखकर आप भी पुकारती हुई दौड़ी ॥ ६५ ॥ वह कपोतिनी बहुत स्नेहसे बँधी दुःखितचित्त जालमें बँधे बालकोंको देख हरिकी मायासे ज्ञान रहित हो आप भी जालमें बँध गयी ॥ ६६ ॥ इसके उपरांत वह कपोत भी अपनेसे अधिक प्यारे बालकोंको और अपने समान स्त्रीको भी बँधी देख अति दुःखित हो विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अहो ! देखो मैं अल्पपुण्य हूँ, मूर्ख हूँ, इन भोगोंसे अब भी तृप्त न हुआ देखो मैंने कुछ पुण्य नहीं किया, इसी लिये धर्म, अर्थ, काम, साधक मेरा घर नष्ट हो गया ॥६८॥ यह स्त्री मेरे अनुकूल और पतिव्रता थी, आज मुझे सूने घरमें छोड़कर साधु पुत्रोंसहित स्वर्गको जाती है ॥ ६९ ॥ मेरे स्त्री पुत्र सब मरे, मैं दीन, विधुर अर्थात् रंडुवा और अति दुःखित हुआ अब किसलिये जीनेकी इच्छा करूँ, मेरा जीवन दुःखरूप है ॥७०॥ इस प्रकार वह कपोत विलाप करता हुआ उन बालकोंको और अपनी प्रियाकी मृत्युसे ग्रसे

जालमें चेष्टा करते देख दीन हो आप भी उस पुरुषके देखते जालमें जा पड़ा ॥७१॥ इसके उपरांत उस गृहस्थ कपोत और कपोतिनी तथा उसके बालकोंको ले कार्य सिद्ध होनेपर वह दुष्टवधिक अपने घरको चला गया ॥७२॥ अवधूत बोले कि, हे यदु ! जिस प्रकार कुटुम्बी कपोत अशान्तचित्त हुआ उसी प्रकार यह पुरुष सुखदुःखमें ही रति मान दीन होकर कुटुम्बका भरण-पोषण करते कुटुम्बसहित दुःख ही प्राप्त करते हैं, सुख कभी नहीं पाते; किंतु कपोतकी भांति बँध जाते हैं ॥ ७३ ॥ जो पुरुष मुक्तिके खुले द्वाररूप इस मनुष्य लोकको पाकर कपोतके समान गृहोंमें आसक्त होता है, वह उत्तम गति पाकर भी अधोगतिमें पड़ता है, घरकी आसक्ति पशु-पक्षियोंको भी अनर्थ देती है, तो मनुष्योंको दे तो इसमें कहना ही क्या है ? यह विद्या मैंने कपोतसे सीखी, इसलिये कपोत गुरु हुआ (८) ॥ ७४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धेऽवधूतगीतेऽष्टगुरुनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा-इस अष्टम अध्यायमें, दत्तात्रेय सुजान ।
नवमें अजगरकी कथा, सो सब कहों बखान ॥

हे राजन् ! प्रारब्धके कर्मोंका भोग अवश्य करनेसे ही छूटता है इसलिये कर्मोंके उद्यमसे वृथा आयु न खोये, इसपर अजगरकी सीख अवधूतजी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन पुरुषोंको देहाभिमान है उन्हें इंद्रियोंका सुख नरकमें भी होता है जैसे दुःख विना इच्छाके होता है, वैसे ही सुख भी होता है, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित है, कि सुखकी चाहना न करे ॥ १ ॥ उद्यम विना अनायाससे जो कुछ प्राप्त हो सरस अथवा निरस हो, थोड़ा या बहुत हो, उसे प्रसन्नतापूर्वक ले, सबसे उदासीन रहे, शरीरके निर्वाहमात्र ही ग्रहण करे, जिस प्रकार अजगर रहता है ॥२॥ जिस दिन कुछ न प्राप्त हो उस दिन विना भोजन किये ही सो जाये तो अवश्य अजगरके समान ईश्वर देगा, उद्यम न करे इस प्रकार धैर्यसे रहे ॥ ३ ॥ यद्यपि इन्द्रिय समर्थ हो, मन तुष्ट हो, शरीर पुष्ट हो, परन्तु तो भी कुछ कर्म न करे, जागता ही रहे, किसी वस्तुकी अपेक्षा हो तो भी यत्न न करे, इस भांति निरपेक्ष होकर रहे (९) ॥४॥ अब जो समुद्रसे सीखा है, उसे कहते हैंः—जैसे समुद्रजल निश्चल है वैसे ही अन्तःकर्णमें प्रसन्न रहे, समुद्र महागंभीर है उसका पार और अन्त नहीं जिसको कोई लांघ न सके, कोई पकड़ न सके, क्षुभित न कर सके, ये सब गुण समुद्रसे सीखे हैं, यही महात्माओंको उचित है ॥५॥ जैसे समुद्र चौमासेमें नदियोंके जलसे बढ़ता नहीं, ग्रीष्ममें सूखता और घटता नहीं, उसी प्रकार योगिराजोंको चाहिये कि जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष करें । यदि न मिले तो खेद न करे, केवल एक नारायणमें ही तत्पर होकर विषयोंसे दूर रहे (१०) ॥ ६ ॥ इन्द्रियोंके पांच विषय हैं, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, इनमें आसक्त होनेसे यह जीव नष्ट हो जाता है, जैसे पतंग, भ्रमर, गज, हरिण, इत्यादिक नाशको प्राप्त होते हैं । इस लिये इन पांच विषयोंमें आसक्त न हो, यह बात इन पांचोंके पाससे सीखी हैं । इनमें पहले पतंगसे जो सीखी हैं उसे कहते हैंः—जैसे पतंग अग्निका रूप देख भ्रमके वश होकर उसमें जा पड़ता है, उसी प्रकार यह स्त्री देवमाया है, सुवर्ण, आभरण और वस्त्रादि मायारूपविलास देख

उसके हाव-भावसे मोहित होकर अजितेंद्रिय लोभी पुरुष भोगकी इच्छासे अन्धकूपमें जो पड़ते हैं। उनकी दृष्टि नष्ट हो जाती है, इसलिए अन्धकूपको नहीं जानते, रूप देखते ही उत्तमतासे नष्ट हो जाते हैं, यह विद्या पतंगसे सीखी (११) ॥ ८ ॥ अब भ्रमरसे जो सीखा है, उसे कहते हैंः-भ्रमर दो प्रकारका होता है। एक शहदकी मक्खी, दूसरा भौंरा। जो मुनि हो तो थोड़ा ग्रासमात्र मांग ले जितनेसे देह रहे, परंतु एक ही घरसे न मांगे, जिससे गृहस्थानको पीड़ा हो, जैसे भ्रमर सुगन्धके लोभसे एक कमलमें ही बसे तो उसमें बँध जाय, वैसे ही यह एक ठौर मांगनेसे बँध जाते हैं ॥ ९ ॥ चतुर मनुष्यको चाहिए कि सब शास्त्रोंसे सारवस्तु ग्रहण कर ले शास्त्र छोटे हों अथवा बड़े हों, सार सबका ले, जैसे भ्रमर पुष्पोंमेंसे मकरन्दका सार लेता है, यह बात भ्रमरसे सीखी है ॥१०॥ भ्रमरका दूसरा नाम मधुकर है। मधुकर मधुमक्खियोंमें ही रहता है उन मधुमक्यिखोंसे जो सीखा है उसे कहते हैंः-मुनि भिक्षाको ले आये परन्तु सांझको अथवा दूसरे दिनको संग्रह कर न रखे, पाणिपात्रमें लेकर उदरमात्र पूर्ण करे। मधुमक्खीकी नाईं संग्रह न करे देखो मधुकी मक्खी सब वृक्षोंके पुष्पोंका रस संग्रह करके एक मुहाल बनाती है, वह शहद अनेक रोगोंको दूर करता है, वैसे ही मुनि लोगोंको चाहिए कि शास्त्रोंमेंसे ऐसे उत्तम सार निकाले जो मनुष्योंके मायारूप रोगोंको हरे ॥११॥ और जो मोहमें फँसकर संग्रह करे तो नष्ट हो, जैसे मधुमक्खी मधुसहित नष्ट हो जाती है (१२) ॥१२॥ अब हाथीकी सीख कहते हैंः-भिक्षुक काष्ठकी स्त्री पूतरीको पांवसे भी न छुये और यदि छुये तो बँध जाय, जैसे हाथी हथिनीके अंगसङ्गसे बँध जाते हैं, यह विद्या मैंने हाथीसे सीखी ॥१३॥ जो बुद्धिमान् हो तो कभी स्त्रीके निकट न जाय, जाय तो अवलम्बन करके पिटे, क्योंकि स्त्री आत्माकी मृत्यु हैं जैसे बलवान् हाथियोंसे हाथी मारा जाता है (१३) ॥१४॥ जो कोई मधुमक्खियोंके पास जाकर और उन्हें छुड़ाकर मधुहरकर ले आता है वह मधुहा कहलाता है, जो मनुष्य लोभी हैं और अनेक दुःखोंसे धनसंचय करते हैं, न दान करते हैं न आप भोग करते हैं तो उस धनका और ही कोई करेगा, जैसे मक्खी ठौर ठौरसे मधु लाकर संग्रह करती है परंतु भोग और ही कोई करता है, यह धनके संग्रहका परिणाम है ॥ १५ ॥ अतिदुःखसे संचय किये हुए धनको ग्रहण करे, मनोरथोंकी चाहना करनेवाले गृहस्थोंके पहले संन्यासी भोजन करता है,जैसे मधुहा मक्खियोंसे प्रथम भोजन करता है,संन्यासी और ब्रह्मचारी रांध अन्नके स्वामी हैं; इनको पहले दिये विना जो पुरुष भोजन कर लेता है वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है(१४) ॥१६॥ संन्यासी वनमें फिरते हैं, गांवके प्राकृत गीत कभी नहीं सुनते। यदि सुनें तो बंधनमें पड़ जायँ, जैसे मृगगण वधिकके गीत सुनकर मर जाते हैं यह विद्या हरिणसे सीखी॥१७॥ गांवके गीत, नृत्य, वादित्र, सुन और उनके वशमें हो, बंधनमें पड़ते हैं जैसे मृगीके पुत्र ऋष्य शृङ्गऋषि वेश्याओंके विषयसंबंधी नाच, वाद्य और गाना सुननेसे ही उन वेश्याओंके खिलौनेके समान वशमें हो गया (१५) ॥१८॥ मीनसे जो विद्या सीखी उसे कहते हैंः-यह मूर्ख मनुष्य अति बलवंत जिह्वाके वश हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, जैसे वंसीके लोहमें मांस लगाते हैं, उनके स्वादसे मछली वसावको पकड़ती है तो मनुष्यको प्राप्त होती है ॥१९॥ पंडितजन आहारको त्यागकर शीघ्र इंद्रियोंको जीत लेते हैं, परन्तु एकरसेन्द्रियको नहीं जीत सकते, क्योंकि आहार त्यागनेसे जिह्वाका लोभ बढ़ता है ॥ २० ॥ जिस पुरुषने और इंद्रियां जीत ली हैं, वह भी तबतक जितेंद्रिय नहीं होता, जब तक जिह्वाको न

जीते, क्योंकि जो जीभको जीते तो जानो कि सब जीते। यहां अभिप्राय यह है कि जो केवल आहार छोड़िये तो और इंद्रियोंकी जय हो, रसनेन्द्रिय बढ़े और भोजन करे तो रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियोंको लोभ होता है; इसलिए रसकी आसक्ति छोड़कर औषधिके समान अन्न ले (१६) ॥ २१ ॥ अब पिंगलाका उपाख्यान कहते हैंः-अवधूतजी बोले कि हे महाराज! पिंगला नामक एक वेश्या पहले विदेह नगरमें थी, उससे भी मैंने कुछ सीखा है ॥ २२ ॥ हे राजन्! एक दिन उस कामचारिणी वेश्याने द्वारपर नगाड़े धरकर यह संकेत किया कि जो पुरुष इस नगाड़े पर जितने डंके मारे वह रात्रिमें मेरे पास आकर उतने हजार रुपये देगा, इस प्रकार समस्या बनायी, इतनेमें ही मैंने फिर नगाड़ेपर दश बीस दंड लगा दिये और सामने जो एक दुकान खुली पड़ी थी उसमें जा बैठा, उस वेश्याने समझा कि आज कोई बड़ा धनी पुरुष आया, इस आशापर कंतको रतिस्थानमें ले जानेकी इच्छासे अत्युत्तम रूप धारण किये सायंकालके समय द्वारपर आकर स्थित हुई ॥ २३ ॥ उस वेश्याने मार्गमें आते हुये धनवान् मोलके दाता पुरुषोंको देख अपने मनमें जाना कि यह भोगके योग्य हैं, क्योंकि उसके तो अधिक अर्थकी ही कामना थी ॥२४॥ उनको आये और गए देखकर और कोई धनवान् मुझे बड़ा दाता प्राप्त होगा, इस आशासे वह संकेतकी जीवनहारी वेश्या द्वारपर बैठी रही ॥२५॥ इस प्रकार दुराशासे जागते हुए कभी द्वारपर आये कभी भीतर जाये इस भांति अर्धरात्रि हो गई॥२६॥उसका धनकी आशासे चित्त दीन हो गया, मुख सूखने लगा और चिन्तासे परमवैराग्य उत्पन्न हो गया उस वैराग्यसे जो कहा वह सुनो ॥ २७ ॥ इस प्रकार धनकी आशासे चित्त दीन हुआ मुख सूखने लगा, निर्वेदचित्त से उस समय कामकंदलाने जो गाया, उसे मैं कहता हूँ तुम सुनो-हे राजन्! वह मनमें विचार करती है, कि वैराग्य पुरुषके दुराशा पास काटनेको खड्ग है। जिसको वैराग्य नहीं उस पुरुषके देहके बन्धन नहीं छूटते ॥२८॥ पिंगला बोली-अहो देखो! मेरे लोभका विस्तार कि मैंने अपना मन न जीता, मैं विवेकरहित हूँ, जो ऐसे दुष्टोंको प्रिय मानकर अपना अभिलाष पूर्ण किया चाहती हूँ ॥२९॥अपना अतिप्रिय निकट ही सदा रहता है, अति सुखकारी, रतिका दाता, धन-दाता परंतु नित्य प्रियको छोड़ दुःखित हुई चिंता, शोक, मोहके देनेवाले तुच्छ मनुष्योंका मैंने सेवन किया, न तो उनसे मेरा काम पूर्ण होता है, न सुख ही होता है, अतः मैं मूढ़ हूँ ॥३०॥ अहो! मैंने यह आत्मा वृथा सताया, जिससे अतिनिंदासंयुक्त शोकसे ग्रसे धन और रतिकी इच्छासे मेरी देह बिकी ॥ ३१ ॥ हाथ पात्रोंके हाड़ थूनी, पसलियोंके हाड़ बांस और पीठके हाड़ जहां बरेंडा है, ऐसा शरीर रूप घर त्वचा-रोम-नखसे ढका है, जिसके नौ द्वार स्रवते हैं, विष्ठा मूत्रसे पूर्ण नरकरूप कांतको मेरे विना कौन स्त्री सेवेगी? ॥ ३२ ॥ इस विदेह राजाके नगरमें एक मैं ही अति मूढ़ हूँ क्योंकि जो मैं असाध्वी साक्षात अच्युत परमात्माको छोड़ तुच्छ कामभोगकी इच्छा करती हूँ ॥३३॥ यह ईश्वर ही सब देहधारियोंका आत्मा और सुहृद है, परमप्रिय नाथ है, क्योंकि अपने देहको देखकर दूसरेको मोल ले लेता है, इसलिए अब उसीसे लक्ष्मीके समान रमण करूँगा ॥३४॥ विषय और कामके दाता मनुष्य और देवता ये सब उत्पत्तिमरणसंयुक्त हैं; कालसे ग्रसे हैं वे स्त्रीकी कामना क्या करेंगे ॥३५॥ अब अपने भाग्यकी सराहना करती है कि मुझे जान पड़ता है कि निश्चय मुझपर भगवान् विष्णु किसी कर्मसे प्रसन्न हुए हैं, जिससे दुष्ट आशा संयुक्त मुझे सुखदायक ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥३६॥

कदाचित् कहो कि धनकी प्राप्ति न हुई उसका खेद हुआ, विष्णु क्या प्रसन्न हुए ? तो कहते हैं कि मंदभागिनीको ऐसे क्लेश वैराग्यके कारण नहीं होते, क्योंकि इसी प्रकार और भी दिन पहले हो गये थे जब धनकी प्राप्ति न हुई थी, अर्थात् कोई पुरुष नहीं आया था, आज मुझे क्लेशसे वह वैराग्य हुआ है, जिससे यह पुरुष गृहादिक बन्धन छोड़कर शांतिको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ ईश्वरने मेरा यह बड़ा उपकार किया है, इस उपकारको मैंने माथेपर चढ़ा लिया और नीच लोगोंके योग्य दुष्ट आशाओंको त्याग मैं उन्हीं जगदीशकी शरण लेती हूँ ॥ ३८ ॥ अब मैं सन्तुष्ट हो परमेश्वरमें श्रद्धा करती; यथालाभसे जीविका करती निश्चयसे आत्मामें ही स्मरण कर आनन्दसे विहार करूँगी ॥३९॥ जो पुरुष संसाररूप कुएँमें पड़ा है, विषयोंसे अन्धदृष्टि हैं, कालस्वरूपसे ग्रस रहा है, ऐसे आत्माकी रक्षा करनेको इन आत्मस्वरूप भगवान् विना और कौन समर्थ है ? ॥४०॥ जब सबसे यह आत्मा विरक्त हुआ तब आप ही अपनी रक्षा करनेको सावधान हुआ, इस जगत्को, जो कालस्वरूपसे ग्रसित है, अप्रमत्त होकर देखे ॥ ४१ ॥ अवधूत बोले कि, हे महाराज ! इस भांति निश्चित मतिसे धन और विषयभोगकी आशा छोड़ शान्तिको प्राप्त हो वह वेश्या शय्या पर सो गयी ॥४२॥ इसमें मैंने फलितार्थ इतना लिया है, कि आशा परम दुखरूपहै,आशाको छोड़ बैठना ही परमसुख है,जैसे पिंगला कांतकी आशा छोड़ सुखसे सोई है । अतःसाधुओंको संग्रह करना उचित नहीं है क्योंकि इससे दुःख होता है यहां एक दृष्टान्त है ❋ (१७) ॥४३॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धेऽजगरादिनवगुरुनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा—इस नवमें अध्यायमें, कुररीसों उपदेश ।
जो पायो सो कहतु हौं, सुनहु कृपालु नरेश ॥

अवधूतजी बोले कि हे यदु ! अब कुररी पक्षीसे जो मैंने सीखा है वह कहते हैंः-मनुष्योंको जो-जो वस्तु प्रिय हैं, वे-वे मुझ दुःखदायी हैं, यह जानकर जो पुरुष संग्रहको छोड़ वह अनंत सुखको प्राप्त होगा ॥१॥ यहां एक दृष्टान्त कहते हैंः-एक कुररी पक्षीने मांस पाया तो उससे बलवान् और पक्षी आकर मांस हित उसको मारने लगे, तब इसने वह मांस डाल दिया तो वह उसे छोड़ मांसमें लिपट गये, तब वह छूटकर अत्यन्त सुखी हुआ । इसी प्रकार मुनिजनोंको चाहिये कि संसारके व्यवहारोंको मांसकी नाईं परित्याग करें (१८) ॥ २ ॥ अब बालककी सीख कहते हैंः-कि हे राजन् ! न तो मुझे मान-अपमानका सुख-दुख है, न घरकी

❋ दृष्टान्त—एक बाबाजीने महाकष्टसे पचीस अशरफी संग्रह की । जब तब निकाल चुटियोंमें धरा करते थे । एक दिन किसीने देख लिया तो बाबाजीसे आकर बोला महाराज ! आपका आज मेरे यहां निमंत्रण है । बाबाजी बोले—अच्छा, वह घर लिवा ले गया और इतना हलवा पूरी खिलाया कि बाबाजीसे उठा तक न गया । उसने खाट बिछा दी और अपनी स्त्रीसे कहा कि इनके चरण खूब दाबना और मैं जाता हूं, यह तो सेवा करने लगी और वह पुरुष थोड़ी देरमें व्याकुलतासे घरमें आकर आले ढूंढने लगा । स्त्रीने कहा—क्या ढूंढते हो ? तो उसने कहा कि यहां पचीस अशरफी रखीं थीं वह कहां गयीं । अब बाबाजी सकुचाये वह स्त्रीको मारने लगा कि तूने बाबाजीको दे दी होगी । बाबाजी बोले हमारे कपड़े देख लो, दो-चार आदमी इकट्ठे हो गये, इसने बाबाजीकी चुटिया देखी तो उसमेंसे अशरफी निकली, बाबाजी बड़े लज्जित हुए । धनका धन गँवाया चोरके चोर हुए । जब बाबाजी चले तो इसने कहा कि महाराज ! फिर कभी दर्शन देना तो बाबाजी बोले कि पचीस अशरफी जमा कर लूंगा तब आऊँगा ।

चिन्ता है, न पुत्रोंकी चिन्ता है, एक आत्माके ही संग क्रीड़ा करता फिरता हूँ, जैसे बालक चिन्तासे छूटकर आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! दो ही मनुष्य चिंतारहित हो परमानन्दमें मग्न रहते हैं, एक तो उद्यमसे रहित अज्ञ बालक, दूसरा गुणरहित ईश्वरको प्राप्त होनेवाला ❋ (१९) ॥४॥ कुमारीसे जो विद्या सीखी है, उसे कहते हैंः-कहीं एक कन्या थी, उसके भाई बन्धु पिता कहीं गये थे, इसके पीछे कन्या बिदा करानेके लिए घर पाहुने आये तो उनका आतिथ्यभाव उसने आपही किया ॥ ५ ॥ हे राजन् ! कन्या उनके भोजन कराने के लिये एकान्तमें बैठकर धान कूटने लगी तो उसकी चूड़ियोंका बड़ा शब्द होने लगा ॥६॥ वह कन्या आप धान कूटना निंदित दरिद्रका कर्म जान क्रमसे एक-एक चूड़ी उतारने लगी, केवल हाथमें दो दो चूड़ी रखीं ॥७॥ परन्तु धान कूटनेमें दो-दो चूड़ियोंका शब्द होता रहा जब उसने उनमेंसे भी एक-एक उतार दी तो शब्दका होना बन्द हो गया ॥ ८ ॥ हे शत्रुनाशक ! लोकोंका तत्त्व जाननेकी इच्छासे सर्वत्र घूमते हुए मैंने कुमारीको इस प्रकार धान कूटती देख यह उपदेश उससे सीखा ॥९॥ कि बहुतोंका जहां बास हो, वहां अवश्य कलह होता है जो दो हों तो भी आपसमें बातें करें, इसलिये अकेला ही विचरण करे, जैसे कुमारीका कंकण (२०)॥१०॥ अब बाण बनानेवालेसे जो सीखा है उसे कहते हैंः-मनको ईश्वरमें स्थिर कर प्राणों को वश कर आसन जीते, वैराग्यके अभ्याससे मन स्थिरकर सावधान रहे॥११॥गुण और उनके कार्य रहित यह मन परमानन्दरूप भगवान् में जब स्थान पाये तो शनैः-शनैः कर्मवासना छोड़े, जब इसको सत्त्वगुण बढ़े तो रजोगुण, तमोगुणको दूर करके ब्रह्ममें लीन हो, तब ब्रह्म विना और कुछ दृष्टिमें नहीं आता ॥१२॥ इस प्रकार जब आत्मासे चित्त मिल जाय तो बाहर-भीतरका भेद नहीं रहता, सब एकरूपसे दीखते हैं, जैसे बाण बनानेवालेका चित्त बाण बनानेमें ऐसा लगा था कि निकट होकर सेनासमेत राजा चला गया परंतु उसने न जाना, वैसे ही साधुओंको चाहिये कि ईश्वरमें ऐसा मन लगाये कि और कुछ सुध न रहे (२१) ॥ १३ ॥ अब जो सर्पसे सीखा है उसे कहते हैंः-जैसा सर्प लोकोंसे डरता हुआ अकेला ही रहता है, एक ही ठौर घर बनाकर नहीं रहता; सदा सावधान रहता है, एकान्तमें ही रहता है, दूसरेकी सहायता नहीं चाहता, अपनी गति दूसरेमें छिपाये रखता है, और विष निर्विष जाननेमें नहीं आता ऐसा रहता है, थोड़ा बोलता है इसी प्रकार मुनियोंको रहना चाहिये ॥ १४ ॥ यह अनित्य है, इसके लिये घर न बनाये, क्योंकि घर दुःखका रूप है और फल कुछ नहीं जैसे सर्प पराये घरमें प्रविष्ट होकर सुखसे वसता है, परंतु आप घर नहीं बनाता ॥१५॥ एक नारायणदेव ईश्वर आप इस विश्वको अपनी मायासे बनाते हैं, फिर प्रलयमें कालशक्तिसे संहार करके आप ही रखते हैं ॥ १६ ॥ तब एक अद्वितीय आत्माधार सबका आश्रय एक आप ही रहते हैं, वे अपने इस समतारूप कालसे सत्त्वगुण आदिशक्तिमायामें लीन करते हैं, वही आदिपुरुष माया और पुरुषके ईश्वर हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्मादिक और मुक्त

• शंका–उद्धवजीसे कहा था कि बालकोंके मनमें चिंता नहीं रहती। परंतु यदि बालकोंको चिन्ता नहीं होती तो जन्मसे ही क्यों रोते ! जिस समय माताके उदरसे पृथ्वीपर गिरते हैं, उसी कालसे रातदिन रोते हैं, जो चिन्तासे रहित हैं उनको रोनेसे क्या प्रयोजन ? और बालकोंका तो जबतक पालन रहता है, तब तक रोते हैं ?

उत्तर–ज्ञानकी वार्तामें सज्जन लोग बालको बालक नहीं कहते। पंडित लोग बालक उसको कहते हैं कि जो प्राणी संसार तथा अपने कुलकी लाजको तथा भयको त्याग दे। इस प्रकार पंडितोंके वचनके प्रमाणसे कृष्णचन्द्र भी उसी बालकको कहते हैं कि चिन्ता नहीं रहती, जन्म लिये हुए बालकको नहीं कहते।

पुरुषोंके पाने योग्य हैं, मोक्षके रूप केवल अनुभवानन्दके पात्र निरुपाधि और अनन्त हैं ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! जब सृष्टि उत्पन्न करते हैं, तो केवल अपने प्रभावसे अपनी त्रिगुण मायाको क्षोभ उपजाकर उससे पहले सूत्ररूप महत्तत्त्व उपजाते हैं ॥ १९ ॥ उससे त्रिगुण रूप विश्व अहंकारद्वारा होता है, जिस महत्तत्त्वमें यह विश्व बँधा है, जिस प्राणसूत्रसे पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं (२२) ॥ २० ॥ अब मकरीकी शिक्षाका दृष्टांत कहते हैंः–जैसे मकरी अपने हृदयसे उगलकर तागा मुखसे निकाल फैलाकर उससे क्रीड़ा कर फिर निगल जाती है उसी प्रकार ईश्वर स्वयं इस जगत्को बनाकर फिर संहार करते हैं ॥२१॥ यह जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे युक्त बुद्धि कर जहां-जहां एकाग्र मन धारण करता है, उसी उसी रूपको प्राप्त होता है इसलिये जो ईश्वरका ध्यान करे तो ईश्वररूप हो जाये, इसमें क्या आश्चर्य है ? (२३) ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जैसे भृङ्गीसे भीतमें रखा कीट भृंगीका ध्यान करते-करते उसी देहसे उस रूपको प्राप्त करता है (२४) ॥ २३ ॥ इस प्रकार इतने गुरुओंसे मैंने यह मति सीखी, परन्तु हे राजन् ! एक बुद्धि अपनी देहसे सीखी है, वह कहता हूँ, सुनो॥२४॥देह मेरा गुरु है, क्योंकि इस देहसे मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह देह पीड़ासहित सदा जन्म-मरणको धारण करता है, इस देहसे यथार्थ तत्त्वोंका विचार करनेसे मुझे वैराग्य हुआ तो भी मैं इसपर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्ते और स्यारका भक्ष्य है, यह निश्चय कर सर्व संग रहित हो विचरता हूँ ॥२५॥ जिस देहको प्रसन्न करनेकी इच्छासे स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, गृह, बन्धुके समूहोंका पोषण करते हैं और बहुत कष्टसे धनसञ्चय करते हैं, इतने पर भी अन्तमें यह देह आप ही नष्ट हो जाता है फिर देहके जाने पर भी दुःख नहीं जाता, दूसरे देहका कर्मबीज उपजाये जाता है, उस कर्मसे फिर दुःख रूप देह इस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, जैसे वृक्ष अपना बीज छोड़ता है, उसीसे फिर वृक्ष उत्पन्न हो जाता है ॥ २६ ॥ और इस देहको इस एक ओरसे जिह्वा रसके लिये खींचती है, शिश्न स्त्री सङ्गके लिये खींचता है,त्वगिंद्रिय एक ओरसे स्पर्शके लिये खींचता है; श्रवण शब्दके लिये खींचते हैं और घ्राण गन्धके लिये खींचते हैं, चंचल दृष्टिरूपके लिये खींचती है, कहीं कर्मशक्ति अपने विषयके लिये खींचती है, जैसे बहुत सौत गृहस्थको लूटती है, उसी प्रकार ये सब इंद्रियाँ देहको लूटती हैं ॥ २७ ॥ हे देव ! अपनी शक्ति मायासे वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, डांस, मछली आदि अनेक प्रकारके शरीरोंको उपजाकर ब्रह्मा सन्तुष्ट हृदय न हुए, परन्तु ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंकी देह रचकर आनन्दको प्राप्त हुए॥२८॥उससे यह अति दुर्लभ मनुष्यदेह अनेक जन्म पीछे पाया है पुरुषार्थका दाता है पर अनित्य है, यह जान कर शीघ्र मोक्षके लिये जबतक मृत्यु न हो शीघ्र यत्न करे, क्योंकि विषय तो इसको सब योनिमें प्राप्त होंगे ॥२९॥ इस प्रकार जब मुझे वैराग्य हुआ और ज्ञानका प्रकाश हुआ तो आत्मनिष्ठ हुआ, इसलिये संघ और अहंकार छोड़कर पृथ्वीपर फिरता हूं ॥३०॥ यदि कहो कि तुमने बहुत गुरु क्यों किये ? गुरु तो एक करना चाहिये, तो कहते हैं कि एक गुरुसे अति निश्चल ज्ञान विस्तारको प्राप्त नहीं होता, इसलिये अद्वितीय ब्रह्मको ऋषि निश्चल बहुत भांतिसे कहते हैं । कोई कहते हैं कि वह प्रपञ्चरहित है, कोई कहते हैं सप्रपंच है, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है वह भ्रम उन गुरुओंसे निवृत्त हो जाता है, परमगुरु मुख्य ज्ञानका देनेवाला एक ही है, परन्तु ज्ञानके लिये पीछे अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दृष्टांत लेनेसे वह ज्ञान

दृढ़ हो जाता है ॥२१॥ श्री भगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इतना वृत्तांत कह यदुकी आज्ञा ले और गम्भीर बुद्धिवाले राजासे प्रणामको प्राप्त हो उसको स्वीकार कर प्रसन्न हो अवधूत अपनी इच्छासे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये ॥ ३२ ॥ यह अवधूत दत्तात्रेय हैं, इनके ही वचन सुन हमारे बड़ोंके भी बड़े राजा यदु सब सङ्ग छोड़ समचित्त हो गये। यह सब श्रीभगवान्ने उद्धव जीसे कहा और कपोत, मत्स्य, मृग, कुमारी, हाथी, सर्प, पतंग, कुरर ये आठ तो त्यागके लिये गुरु किये; भ्रमर, मधुहा, पिंगला यह तीनों त्याज्य और ग्राह्य अर्थके लिये गुरु किये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवगुरुशिक्षानिरूपणं नाम नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा–दशवें तनुसम्बन्धसे, है सिगरो संसार।
तत्त्वज्ञानसे होत है, साधन और विचार ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! मेरे कहे हुऐ धर्मोंमें सावधान होकर मेरा आश्रय करे और वर्ण आश्रम कुलका आचरण निष्काम होकर करे ॥ १ ॥ जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाय तो पुरुषको उचित है कि विषयोंमें लगे हुए प्राणी जो विषयोंको निश्चल मानकर उद्योग करते हैं उनके कार्योंके फल विपरीत होते हैं, उनको विचारता रहे, इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ जो विषय इंद्रियोंसे जाने जाते हैं, वे सदा नहीं रहते, इसीसे वे अनेक प्रकारके प्रतीत होते हैं, परन्तु जो अनेक प्रकारके हैं, वे अध्रुव हैं, जिस प्रकार मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक होनेसे चल हैं, ऐसा अनुमान करनेसे निष्कामता प्राप्त होती है ॥३॥ निष्काम कर्म करे, सकामका त्याग करे, मुझमें तत्पर हो आत्माके विचारमें रहे, कर्मकी विधिमें आदर करे ॥ ४ ॥ मेरे विषे तत्पर होकर आदरपूर्वक संयमोंको सेवे और सामर्थ्य हो तो शौचादिक नियमका भी सेवन करे। इससे भी विशेष धर्म यह है कि जो सहनशील हो; मेरे स्वरूपको जानता हो, शान्त हो, वह मेरा ही रूप है, ऐसे गुरुकी सेवा करे॥५॥अभिमान न रखे, आलस्य न करे, असहनशीलता न करे, स्त्री पुत्रादिकमें ममता न करे, गुरुओंमें सुहृदता रखे, कर्ममें चित्त व्यग्र न करे, परमार्थ जाननेकी इच्छा करे, किसीकी निंदा न करे, व्यर्थ बातें न करे ॥६॥ स्त्री, सम्पत्ति, घर, खेत, स्वजन, धन इत्यादि सबसे उदासीन रहे क्योंकि सबमें एक ही आत्मा है, इससे अपनी ही भांति सबमें सुखादिक समान देखे ॥ ७ ॥ यह आत्मा स्थूल-सूक्ष्म देहसे भिन्न है, सबका द्रष्टा है, व्यापक है, स्वयं ज्ञानवान् है, आकाशवत् है, जैसे अग्नि दाह्य काष्ठके मध्य ही रहता है, परंतु काष्ठसे भिन्न है, प्रकाशक है और काष्ठका दाह करता है ॥८॥ जैसे काष्ठमें प्रविष्ट अग्निही काष्ठके संग उत्पत्ति, नाश, अल्पता, महत्त्व, नानात्व, गुणको धारण करता है, वैसे यह आत्मा भी इस देहके संगसे देहके गुणोंको धारण करता है, पर देहसे भिन्न और अमर है॥९॥यदि कोई कहे कि देहसे आत्मा भिन्न है, तो देहके गुण क्यों धारण करता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि ईश्वरके अधीन मायाके गुणसे पुरुषका यह सूक्ष्म-स्थूल शरीर उपजाया हुआ है, जिस देहमें 'अहं' यह अभिमान करनेसे संसारमें गिरता है, जिस देहको 'मेरा' यह संसार काटनेको आत्मविद्या उपाय है ॥ १० ॥ इसलिये अपनेमें ही स्थित देहसे भिन्न

आत्मज्ञानकी इच्छासे आत्मामें चित्त मिलाकर क्रमसे स्थूल-सूक्ष्म देहादिकोंमें आत्मबुद्धिको छोड़े ॥११॥ यह ज्ञान किस प्रकार प्राप्त होता है वह कहते हैंः—आचार्यरूप नीचेकी अरणी, शिष्यरूप ऊपरकी अरणी तथा उपदेशरूप मथनका काष्ठ इनसे ब्रह्मविद्यारूप परमसुखदायक अग्नि उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ जिस समय बुद्धिमान् गुरुसे चतुर बुद्धिवाला शिष्य यह विद्या पाता है, तो यह विद्या गुणोंके कार्यरूप संसारकी ओर, जिनसे निर्मित होकर यह जगत्के जीवके संसारका निमित्तरूप होता है उन गुणोंको भस्म कर काष्ठरहित अग्निके समान आप भी शांत हो जाता है, उसी प्रकार कार्य, कारण और विद्याकी एकता होनेसे जीव परमानंद रूप हो जाता है ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप, नित्य और एक है, इसमें कर्त्ता-भोक्ता धर्म देहकी उपाधिसे प्राप्त होते हैं। आत्माके अतिरिक्त और पदार्थ मायारचित हैं, इनसे विरक्त हो पुरुष मुक्तिको प्राप्त होता है, परन्तु मीमांसक कहते हैं कि 'मैं हूँ' ऐसी प्रतीति करनेवाला आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है, वही कर्मकर्ता और सुख-दुःखका भोक्ता है, इसका स्वरूपभुत कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है, भोगके स्थानरूप लोक, भोगका काल भोगरूप कर्मोंको बतानेवाला वेद भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा यह अनित्य हो तो वैराग्य होना सम्भव है, परन्तु वह सब नित्य है, इससे वैराग्य होना सम्भव नहीं। भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट हो जाते हैं अथवा मायामय हों तो भी वैराग्य होना सम्भव है ॥ १४ ॥ माला, चन्दन आदि भोगोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और यथार्थ है, इससे वैराग्य होना असंभव है, क्योंकि जिस दिशामें यह संसार देखा जाता है, उस दिशामें पहले भी था, इस कारण जगत्का कर्ता कोई ईश्वर नहीं, आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं, उसमें अनेक ज्ञानका विपर्यास होता है, एक क्षणमें घटका ज्ञान नष्ट होकर पटका ज्ञान होता है ? इस प्रकार अनेक ज्ञान उत्पन्न होते रहते हैं, पूर्वज्ञानसे पृथक् होजाता है, इससे आत्मा नित्य ज्ञानमय नहीं। कहते हैं कि ज्ञानका विपर्यास होनेसे क्या आत्मा अनित्य हो जाता है ? नहीं। आशय यह है कि ज्ञान-रूप विकार आत्मामें कुछ बाधा नहीं कर सकता, मुक्तिमें आत्मा इंद्रिय रहित है, इससे उसमें ज्ञानका परिणाम न होनेके कारण जड़ता हो जायगी। इसमें मुक्तिकी प्राप्ति होना पुरुषार्थ रूप नहीं, प्रवृत्तिमार्ग ही इससे श्रेयस्कर है निवृत्ति नहीं ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! सत्य प्रवृत्ति मार्ग ऐसा ही है, परंतु आगे अनर्थका हेतु है, इन देहियोंको देहके संयोगसे संवत्स-ररूप कालसे जन्ममरणादि भाव वारंवार होते हैं ॥१६॥ तुम्हारे ही मतमें कर्मोंके कर्त्ताओंकी और सुख-दुःखके भोक्ताओंकी पराधीनता देखी जाती है, इसलिये ऐसे परवशका जो भजन करता है, वह क्या सिद्ध है ! और जीव स्वतन्त्र हो तो उसे दुष्टकर्म वा दुःखकी प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती ॥१७॥ इस प्रकार इस लोकमें सुख नहीं तथा और लोकोंमें भी सुख नहीं वह कहते हैं। ईर्षा, निंदा, नाश होनेसे स्वर्गादिकमें भी कर्मोंकी विधिके जानने-वाले विद्वान् अभिमानीको किंचित सुख भी प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार मूर्खोंको दुःख देखनेमें नहीं आता; जो कहते हैं कि हम कर्ममें निपुण हैं इससे सुखी हैं, यह उनका वृथा अहंकार है, इससे श्रेष्ठ कर्म करनेसे सुख मिलता है, यह नियम भी न रहा ॥ १८ ॥ और जो कदाचित् सुखदुःखकी प्राप्ति और विघात अर्थात् नाशको जानते हैं, वे भी इस उपा-यको नहीं जानते, जिससे साक्षात् मृत्यु न हो ॥ १९ ॥ क्योंकि जब मृत्यु अपने निकट

है तो अर्थ अथवा कामके प्राप्त होनेसे कौन सुखी हो सकता है ? जैसे अपराधीको मारनेको ले जाते हैं, उस समय उस पुरुषको अर्थ कामादि सुख नहीं देते ॥२०॥ उसी प्रकार जैसे यहां सुख नहीं ऐसे ही परलोकमें भी नहीं, स्वर्गादिकमें भी पराये सुखकी असहनता और ईर्षादि रहती ही है, इससे यहांके समान वहां भी दोष है। जैसे कृषीके सफल होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ऐसे ही यजनसे मिलनेवाले स्वर्गमें भी भूलचूकके अनेक विघ्न होते हैं ॥ २१ ॥ इतने पर भी विघ्नको निवारण कर जो धर्मको अच्छी प्रकार करे; उन धर्मोंमें प्राप्त होनेवाले स्थानोंमें जैसे यह प्राणी जाते हैं वह सुनो ॥२२॥ इस लोकमें भी देवताओंको यज्ञसे संतुष्ट कर यज्ञके कर्त्ता स्वर्गमें जाते हैं और देवताओंके समान अपने उपार्जन किये हुए दिव्य भोग भोगते हैं ॥२३॥ और वहां अपने पुण्यसे प्राप्त हुए उत्तम विमानमें बैठ सुन्दर वेष धरे अप्सराओंके साथ विहार करते फिरते हैं। गन्धर्व उनकी बड़ाई करते हैं ॥२४॥ किंकणी अर्थात घुँघुरुओंके समूहसे शोभित और मनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले विमानमें बैठ सुखको प्राप्त हैं, देवताओंके बागोंमें देव स्त्रियोंके संग विहार करते फिरते हैं, परंतु आत्मपातको नहीं जानते ॥२५॥ स्वर्गमें वहांतक सुख करते हैं, जहांतक पुण्य पूर्ण न हो, जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तब कालसे विना इच्छाके ही नीचे डाल दिए जाते हैं ॥ २६ ॥ यह फल जो सकाम कर्म करता है उसको है, वहां भी जो निषिद्ध प्रकार न करे तब हो और जो असत् संग करे तो अधर्मी हो, जितेंद्रिय न हो, स्त्रीलंपट हो, काममें भी चित्त हो, प्राणियोंको दुःख देता हो, लोभी हो, कृपण हो ॥ २७ ॥ और जो अविधिसे पशुओंको मारकर भूत प्रेतगणको पूजते हैं, ऐसे जीव परवश हो नरकमें पड़े स्थावरके भावको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥ उन कर्मोंमें दुःख फल है। ऐसे कर्मोंको जो देहसे करते हैं, वे मेरे पीछे फिर उन कर्मोंसे दुःख भोगकर वैसा ही देह धरते हैं, इसलिए जो मरेगा उसको क्या सुख है ? ॥ २९ ॥ यद्यपि लोकपाल कल्पपर्यन्त जीते हैं परन्तु तो भी उनको मुझ कालरूपसे भय रहता है और कल्पपर्यन्त जीनेवाले लोकपालोंको भी वही भय रहता है, मेरे भयसे ये सब देवता अपना-अपना काम करते हैं, ब्रह्माकी आयु दो परार्द्ध है, परन्तु उसे भी मौतका डर है ॥ ३० ॥ कर्म कुछ ईश्वर नहीं, ईश्वर नियन्ता फलका दाता मैं हूँ, परन्तु मुझसे और उन कर्मोंसे सम्बन्ध नहीं, कर्मका सम्बंध इस देहसे है, प्रकार बताते हैंः—प्रथम इंद्रियाँ कर्मोंसे बनाई हैं, गुण (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) इंद्रियोंको सृजते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता, पर यह जीव तो इंद्रियोंके संगसे 'अहं कर्त्ता' अभिमान धारण करता है, इसलिये कर्मोंके फलको भोगता है ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि आत्मा अनेक क्यों दिखाई देते हैं, आत्मा तो एक ही सुना है, तो कहते हैं कि इन गुणोंके धर्मसे जबतक अहंभाव है तबतक अनेक प्रतीत होते हैं और जब मायाके गुण छूट जायँगे तो आत्मा एक ही दिखाई देगा और जहांतक उसे आत्मा अनेक लगते हैं, तभीतक पराधीन भी है ॥३२॥ जबतक इसे पराधीनता है, तबतक ईश्वरका भय है, इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें दोष है, इसका जो सेवन करते हैं, वे भी मोहमें पड़े हुए शोकयुक्त हैं ॥३३॥ काल, आत्मा, शास्त्र, लोक, स्वभाव, धर्म यह नाम तो गुण सम्बन्धसे कहे, परंतु गुणसम्बन्ध छूटनेपर ये मेरे ही स्वरूप हैं, सबमें मैं ही हूँ, मायाके सम्बन्धसे अनेकरूप दीखते हैं, इससे निवृत्तिमार्ग ही उत्तम मुक्तिका कारण है ॥ ३४ ॥ उद्धवजी बोले

कि हे भगवन् ! यद्यपि यह आत्मा गुणोंसे मिला हुआ है, परंतु तो भी गुणका कार्य सुख-दुःख कर्मसे बद्ध नहीं है, इसलिये आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक है और निर्लेप है, आवरणरहित तुम्हारे मतसे आत्मा एक ही है, तो वह कैसे बन्धनमें आ सकता है ? और जिससे उसे मुक्तिकी अपेक्षा होती है, वह कहिये ॥ ३५ ॥ और बँधनेके पीछे किस प्रकार रहता है तथा जब मुक्त हो जाता है, तब किस प्रकार रहता है ? वह कहो और किस भांति रहे, कैसे आहार-विहार करे, किस लक्षणसे जाना जाय, क्या भोजन करे, क्या छोड़े, कहां सोवे, कैसे बैठे, कहां जाय, ये दोनों किन लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आये ? वह कहो ॥ ३६ ॥ हे अच्युत ! हे विदांवर ! इसके उपरांत मेरे मनमें एक और सन्देह है कि एक ही आत्मा शरीरादिकोंके अनादि सम्बन्धके कारण अनादिकालसे बद्ध है, इस प्रकार निश्चय करना पड़ता है और इस भांति निश्चय कर फिर उसको मोक्ष हो जाता है, इस प्रकार निश्चय करे तो मुक्ति उत्पन्न हुई होनेके कारण मुक्तिमें अनित्यता आ जाती है, इसलिये वह आत्मा निरंतर मुक्त ही है ऐसा भी मानना पड़ता है। तो एक समयमें ही बद्धत्व और मुक्तत्व यह दोनों कैसे सम्भव हो सकते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर कृपापूर्वक दीजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे संसारप्रकारवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा—इस ग्यारह अध्यायमें, बद्ध मुक्तको ज्ञान।
साधु सन्त अरु भक्तिके, लक्षण कहौं बखान ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धवजी ! आत्मा बद्धमुक्त है, यह कथन मेरे गुणसम्बन्धसे है सत्य नहीं, गुणका मूल माया है मैं तो मायाका नियंता हूँ इसलिये मुझे न बन्ध है न मोक्ष ॥ १ ॥ हे उद्धव ! मुझे मोह सुख-दुःख देहको प्राप्त यह सब संसारके धर्म मायासे होते हैं, जैसे स्वप्नसे बुद्धिका विवर्त्त है, इसी प्रकार संसार है, सत्य नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धव ! एक विद्या, दूसरी अविद्या, ये दोनों मेरी मायासे रची हैं, मेरी देहरूप शक्ति है, अनादि देहधारियोंको मोक्ष और बन्धन करती हैं ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धिमान् उद्धव ! यह सब मेरा ही एक अंश जीव है, उसे अविद्यासे अनादि बन्ध है; विद्यासे मोक्ष है, मुझे तो न बन्धन है न मोक्ष है ॥४॥ अब इसका भेद बताते हैं—परस्पर आत्मा और परमात्मा विरुद्धधर्म होकर एक ही देहमें स्थित है, इनमें एक तो जीव ईश्वरका भेद, दूसरे जीवसे जीवका भेद, ये दो भेद हैं, एक शरीरमें स्थित जीव ईश्वरमें ईश्वरका धर्म आनन्द और जीवका धर्म दुःख है। एक नियंता ईश्वर एक जीव है, देहाभिमान धरे वृद्ध है, इन दोनोंका भेद दृष्टांतसे कहते हैं ॥५॥ दोनों पक्षी हैं, चैतन्यरूपके समान हैं, दोनों मित्र हैं अपनी इच्छासे एक देहरूप वृक्षके ऊपर आ बैठे हैं, इनमें एक तो इस देहके फलको भोग करता है, दूसरा साक्षी हुआ देखता है, वह यद्यपि भोग नहीं करता, तो भी ज्ञानशक्तिसे अतिबलिष्ठ है, इस भांति एक ही रूपके दोनों विरुद्ध कर्म करते हैं ॥६॥ जो परमात्मा ईश्वर साक्षी ज्ञाता है, वह अपने स्वरूपको और जीवोंके स्वरूपको भी जानता है और जीवात्मा न आपको जानता है न ईश्वरको, वह अज्ञ है, इसलिये जो अविद्यासे मिला है वह नित्यबद्ध है, जो विद्यासे संयुक्त है वह नित्यमुक्त है ॥७॥ ज्ञानकी विलक्षणता कहकर

स्थितिकी विलक्षणता कहते हैं--वही पंडित है जो अपने स्वरूप और परमात्माको जानता है वह यद्यपि देहमें ही है परंतु देहसे न्यारा है, देहके धर्म उसे व्यापते नहीं-जैसे स्वप्नसे उठेको देहको स्वप्नके धर्म नहीं लगते। जो अज्ञानी हैं, वे यद्यपि वस्तुसे और देहसे अलग ही हैं, परंतु देहके अभिमानसे देहमें स्थित हैं, सुख दुःखको भोग करते हैं, जैसे स्वप्नके देहमें स्थित स्वप्नके सुखदुःख भोगते हैं ॥ ८ ॥ और भी विलक्षणता कहते हैं--यद्यपि इन्द्रियाँ अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, परंतु तो भी राग-द्वेषादि रहित मुक्त पुरुषमें इन विषयोंको भोगता हूँ ऐसे नहीं मानते, इसका कारण यही है कि विषयोंको जो इन्द्रिय स्वीकार करती है, वह गुणोंके कार्यको गुण ही ग्रहण करते हैं, ज्ञानी उससे अपनेको निर्लिप्त मानते हैं ॥ ९ ॥ यह देह पूर्व कर्मके अधीन है, इसमें स्थित इन्द्रियाँ अपने विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं, यहां मैं कर्त्ता हूँ, इस अभिमानसे यह आत्मा बँध जाता है, यह अज्ञ है। शयन, आसन, गमन, स्नान, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राण, भोजन, श्रवण ये सब इंद्रियोंके धर्म हैं मेरे धर्म नहीं। वृथा अभिमान करनेसे बँध जाते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार वैराग्य और विवेक जिसे हो वह बद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो इंद्रियोंको विषय भोग कराता है, कुछ आप नहीं करता इसी-लिये बन्धनमें नहीं पड़ता ॥११॥ यहां दृष्टांत है कि, जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है पर सबसे निर्लेप है। जैसे सूर्य जलादिकोंमें प्रतिबिंबित है परंतु तो भी कंपरूप जलके धर्मसे भिन्न है, जैसे वायु सर्वत्र फिरती है तो भी निर्लेप है; इसी प्रकार आत्मा इस देहमें स्थित है और इंद्रियोंके स्वभावसे उन-उन विषयोंको ग्रहण करता है, परंतु तो भी उनसे भिन्न है ॥ १२ ॥ वैराग्यद्वारा तीक्ष्ण निर्मल ज्ञानसे सब संशय काट अनेक विधिके इस प्रपंचसे निवृत्त हो जैसे स्वप्नसे जाग स्वप्नके कर्मोंसे निवृत्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जिसके प्राण, इंद्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्ति संकल्प-विकल्प रहित होकर देहमें स्थित है, तो भी देहके धर्मोंसे मुक्त है ॥१४॥ जिसका देह स्वेच्छासे दुर्जनसे पीड़ित वा किसीसे पूजित हो तो भी उसको सुख या दुःख न हो और कुछ विकार उत्पन्न न हो वही ज्ञानवान् है ॥१५॥ कोई भला करे अथवा बुरा; अच्छा कहे, वा खोटा परंतु आप किसीकी निन्दा-स्तुति न करे, लौकिक व्यवहारमें अलग रहे, समान दृष्टि होकर रहे, वही मुनि और मुक्त है ॥ १६ ॥ कर्मादिकमें उदासीन रहे, न कुछ करे, न कुछ विचारे, भला बुरा मनमें न धरे, एक आत्मामें ही रमता रहे, इसी वृत्तिसे जड़की नाईं मुनि लोग फिरा करते हैं ॥ १७ ॥ मुक्त पुरुषके जो लक्षण हैं, वे ही मुमुक्षुके साधन हैं, जो पुरुष वेदार्थमें निपुण हो वह प्रथम कहे हुए साधनोंसे वेदमें निष्ठा रखकर ईश्वरका ध्यानादिक करे तो उसका पढ़ा हुआ शास्त्र जैसे बहुत दिनोंकी प्रसूता गौसे फिर दूध मिलना सम्भव न हो उसके दूधकी आशावाले पुरुषके श्रमका फल केवल श्रम ही होता है, उसी प्रकार क्रिया न करनेसे शास्त्राभ्यास व्यर्थ है ❋ ॥ १८ ॥ हे उद्धव !

❋ शंका–शास्त्रमें और वेदोंमें ऐसा लिखा है कि गाय ब्याहती हो चाहे न ब्याहती हो, ब्यानेपर भी दूध न देती हो, लात मारती हो परंतु गायको तो चारा' मोदक, जल, अन्न, और अनेक प्रकारकी वस्तु खिलाकर उसकी सेवा करना और दंश, मछर,मक्खी आदिसे उसकी रक्षा करना ही युक्त है, क्योंकि गाय सदा धर्मकी मूल है, फिर उद्धवसे श्रीकृष्णने क्यों कहा कि जो गाय दूध देना बन्द करदे अथवा बांझ हो, जो मनुष्य एसी गायका पालन-पोषण करेगा उसका परिश्रम सब व्यर्थ है ?

उत्तर–"गां दुग्धदोहा यो ज्ञात्वा तामरक्षति दुर्मतिः। मनरो दुःखं वै भुनक्तीति विनिश्चितम्' इस श्लोकमें भगवान्‌की नीति वर्णन की है वह सुनिये हम कहते हैं–श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा था कि जो प्राणी गायको ऐसा जानकर, कि यह अब दूध नहीं देती,–अथवा बांझ है, ब्यायेगी नहीं ऐसा समझकर उसको खाने–

दूध दुही गौ, दुष्टा स्त्री, पराधीन देह, दुष्ट सङ्ग, अपात्रोंका दिया धन और मेरा नाम रहित वचन इतनी बातोंवाले मनुष्य सदा दुःखी ही रहते हैं और आगे भी दुःख पायेंगे ॥ १९ ॥ मेरा जिस वाणीमें नाम न हो वह बात न कहे । इस विश्वकी मर्यादा जन्म, पालन, नाशरूप मेरे पवित्र कर्म और लीला अवतारोंके विषे जगत्का प्रिय श्रीराम कृष्णादिक जन्म जिस वाणीमें न हो, उसको बुद्धिमान् पुरुष धारण न करे ॥ २० ॥ इस प्रकार निश्चय कर आत्मा-विषयक नाना प्रकारका भ्रम दूर कर विचारसे निर्मलमन मुझे अंतरर्यामी विषे स्थिर होकर निवृत्त हो ॥२१॥ जो मुझमें मन निश्चलकर धरनेको समर्थ हो तो सब कर्म मुझमें अर्पण कर निरपेक्ष हो कर्म करे ॥२२॥ 'ज्ञानमार्ग कठिन है, भक्तिमार्गसे ही कृतार्थ होगा' यहां कहते हैं कि प्रथम तो श्रद्धासंयुक्त हो, पीछे अतिसुन्दर लोकोंके पवित्र करनेको समर्थ मेरी कथा श्रवण करे, मेरे जन्म-कर्म गाये, स्मरण करे, वारंवार वैसी ही लीला करे ॥२३॥ हे उद्धव ! धर्म, कर्म, काम मेरे लिए करे, विषय भोगार्थ न करे, मेरा ही आश्रय करे तो सनातन स्वरूप मेरे विषे निश्चल भक्तिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥ इस प्रकार सत्सङ्ग कर प्राप्त हुई भक्तिसे मेरा सेवन करे तो मेरे स्थानको निश्चय प्राप्त हो, यह मेरे पानेका मार्ग साधन कर दिखाया है ॥ २५ ॥ तब उद्धवजी साधु और भक्तिके लक्षण पूछने लगे कि, हे उत्तमश्लोक ! हे प्रभो ! साधु पुरुष कैसे होते हैं, उनके चिन्ह क्या हैं और उनकी की हुई भक्ति कैसी होती है, जिस भक्तिको आप मानते हैं ? और साधु आदर करते हैं ? ॥२६॥ हे पुरुषके नियन्ता ! हे जगत्पते ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, अनुरक्त हूँ, आपकी शरण आया हूँ, इसलिए यह सब मुझसे कहिये ॥२७॥ हे भगवन् ! तुम साक्षाव् परब्रह्म प्रकट हुए हो, प्रकृतिसे परे हो, पुरुष हो, आकाशकी भांति निर्लेप हो, भक्तोंकी इच्छासे रूप धारण करते हो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जो पराया दुःख न देख सके और किसीसे द्रोह न करे, क्षमावान् हो, सत्य ही बोले, निंदा आदि दोषरहित हो, समदृष्टि हो, सुख-दुःखमें समान हो, यथाशक्ति सबका उपकार करे, सब प्राणियोंका अपराध सहे ॥२९॥ काम करके बुद्धि चञ्चल न हो, बाहरकी इंद्रियाँ जीते हो, कोमल शुद्धचित्त हो, परिग्रही न हो, व्यर्थ कार्य न करे, भोजन थोड़ा करे, शांत हो स्वधर्ममें स्थिर हो, मेरा ही एक आश्रय करे, मेरा ही स्मरण करे ॥३०॥ सावधान रहे, निर्विकार रहे, धैर्यवान् हो; क्षुधा, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु ये सब जीते हो, अभिमानी न हो, दूसरेको

—पीनेकी रक्षा करना छोड़ देगा अथवा उसको खाने-पीनेको नहीं देगा तो इस लोकमें तो गायका मूल्य डूब जायगा; क्योंकि पालन करता तो फिर ब्याती अथव बांझ होती तो भी गोबर करती । और अन्त समय रौरव नरकका वास होगा । इसी प्रकार जो स्त्री दुष्टा हो जाय तो उसका पालन करना अवश्य चाहिये, क्योंकि जो उसने दुष्ट कर्म किया तो संसारमें उस प्राणीकी निन्दा होगी और परलोकमें नरक भोगना पड़ेगा और जो उसका पालन करेगा तो धीरे-धीरे चाहे ज्ञान उपदेश होनेसे सुधर भी जाय और सन्तान भी उत्पन्न हो जाय, फिर न जाने सन्तानमें कैसा महापुरुष निकले ऐसी ही पराधीन समझकर हानि मानकर देहका पालन करना नहीं छोड़े, क्योंकि पालन न करनेसे उसका नाश हो जायगा और जो शरीरका पालन करेगा तो कभी न कभी सुख अवश्य होगा; ऐसे भी धनको मान ले कि इस धनमेंसे मैं पुण्य नहीं करता किस काममें आयेगा, ऐसा जानकर धनकी रक्षा करनी छोड़ देगा तो चोर चोरी करके ले जायेगे और जो धनकी रक्षा करता रहेगा तो कभी न कभी तो पुण्य होगा ही । ऐसे ही वचनसे भगवानका नाम नहीं लिया, ऐसा जानकर सत्सङ्ग छोड़ दिया तो भ्रष्ट हो जायगा और जो बिगड़े वचनसे भी सत्संग करेगा और अच्छा प्रबंध करेगा तो कभी भगवान्का नाम वचनसे निकलेगा ही, ऐसा नीतियुक्त अर्थ भक्त उद्धवके सामने भगवान्ने किया है, यह नहीं कि गाय दूध देना बन्द कर दे तो उसका पालन नहीं करना ।

मान देनेवाला हो, औरके प्रबोधनमें समर्थ हो, सबका मित्र हो, सबका भला चाहे, दयावान् हो, पूर्ण ज्ञानवान् हो ॥ ३१ ॥ ऐसे ही पुरुष साधु कहलाते हैं और स्वरूपभूत वेदके धर्म करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है नहीं करनेमें दोष है, ऐसा जाननेपर भी धर्म स्वामीके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और जो धर्म (मैं न करूँ भक्तिसे ही सिद्ध हो जायँगे) इस प्रकार भक्तिकी दृढ़ताके लिए दृढ़ निश्चय कर अपने धर्म का अधिकार रुद्ध हो जानेसे उन धर्मोंको छोड़कर जो प्राणी मेरा भजन करे, वह भी महात्मा है ॥ ३२ ॥ जैसे मेरे चरित्र हैं, उसी प्रकार मुझे जाने अथवा विना जाने भी जैसे हो वैसे जो कोई अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं, वे मेरे परमभक्त हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके लक्षण कहकर अब भक्तोंके लक्षण कहते हैं-कि मेरे चिह्न प्रतिमा आदि अनेक भांतिके हैं और मेरे भक्तजनोंके दर्शन, स्पर्श, पूजा, सेवा, स्तुति, प्रणाम गुण-कर्म-कीर्तन ॥३४॥ हे उद्धव ! मेरी कथा श्रवण करनेमें श्रद्धासहित मेरा ध्यान करे, जो कुछ मिले,वह सब मुझे समर्पण करे, दास्यभावसे आत्मनिवेदन करे॥३५॥मेरे जन्म कर्म गावे, जन्माष्टमी आदि पर्वमें फूल नैवेद्य आदिसे मेरी पूजा करे, गीत नृत्य वादित्र गोष्ठसे मेरे, मंदिरमें उत्सव करे ॥३६॥ मेरे लिये यात्रा करे, पुष्पादिकोंसे पूजा करे, भेंट समर्पण करे, वर्ष प्रतिवर्ष उत्सव करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षा ले मेरे व्रत करे ॥३७॥ और प्रतिमामें श्रद्धा रखे, आपसे अथवा औरसे मिलकर मेरे लिए फूलोंका बाग, मंदिर, क्रीड़ास्थल, नगर गांवके करनेमें उद्यम करे ॥३८॥ मेरे मंदिरमें बुहारी देना, लीपना, छिड़काव करना, चौक पूरना और रंगवल्ली आदि चित्रांकन करना, इस प्रकार मेरे गृहकी शोभा करे, दासकी भांति निष्कपट मेरी उपासना करे ॥३९॥ आप अभिमान तथा दम्भ न करे, जो करे, वह कहे नहीं, मेरे निवेदित दीपादि वस्तुसे अपने घरका काम करे ॥४०॥ और ग्रंथोंमें है-"कि छः मासके उपवासोंसे जो फल होता है वह कलियुगमें विष्णुके नैवेद्यके शेषसे पुण्य होता है" जिसके हृदयमें हरिका रूप हो; मुखमें हरिका नाम हो, उदरमें हरिके प्रसादका नैवेद्य हो, माथेपर प्रसादी पुष्पादिक हो, वह पुरुष भगवान् हरिका रूप है और अन्य देवताको समर्पण की हुई वस्तु मुझे अर्पण न करे, यह अर्थ और ग्रंथोंमें है-"विष्णुके नैवेद्य अन्नसे और देवताओंको पूजे फिर वह प्रसादी नैवेद्य पितरोंको दे तो अनन्त पुण्य है; यदि कोई पुरुष पितरोंकी शेष वस्तु हरिको दे तो उसके पितर वीर्य खानेवाले हों और फिर क्लेशको प्राप्त हों, दीपक तक यदि मेरे मंदिरमें निवेदन किया हो तो उसके प्रकाशसे अपना काम न करे" जो वस्तु इस लोकमें आपको अतिप्रिय हो निषिद्ध न हो वह मुझे अर्पण करे तो वह वस्तु अनन्त फल देगी ॥४१॥ अब यह ग्यारह ठौर पूजा कहते हैं, कि हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, भूमि, आत्मा इत्यादि सब प्राणिमात्र मेरी पूजाके स्थल हैं ॥४२॥ अब जिसकी पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये, उसे कहते हैं-वेदोक्त विद्यासे सूर्यकी पूजा करे; अग्निमें घृत होमकर मेरी पूजा करे, ब्राह्मणमें आतिथ्य अभ्यागतसे पूजे, गायमें सुन्दर तृणादिकसे सेवा करे ॥४३॥ वैष्णवोंमें अपने बन्धुके समान आदरसे मेरी पूजा करे, हृदय आकाशमें ध्यान करके पूजा करे, वायुमें प्राणबुद्धिसे पूजा करे, जलमें तर्पण आदि द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४४ ॥ भूमिमें गोप्य मन्त्र न्यास कर, मेरी पूजा करे अपने आपमें आत्माकी पूजा भोग करके जो भोग करे सो सब आत्माको समर्पण करदे, सब प्राणिमात्रमें समान दृष्टि रखकर मेरी पूजा करे, मैं अन्तर्यामी हूँ ॥ ४५ ॥ एकाग्रमन हो इन स्थलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धरे चतुर्भुज

शान्त रूपका ध्यान कर मेरी पूजा करे ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य ऐसा करते हैं, वे निश्चयमन होकर यज्ञ, वापी, कूप, तड़ाग, बागसे मेरी पूजा कर साधुओंकी सेवासे मेरा स्मरण करके मुझमें परम भक्ति प्राप्त करते हैं ॥४७॥ इस प्रकार ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहकर विशेषसे भक्तिमार्गको श्रेष्ठ कहते हैं कि, हे उद्धव ! पहले सत्संग करे कि जिससे भक्ति उत्पन्न हो ! संसारसागरसे तरनेका इससे उत्तम उपाय और कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि साधुओंका एक मैं ही आश्रय हूँ, इस लिये उत्तम वैष्णवोंका सत्संग अति श्रेष्ठ है ॥४८॥ हे उद्धव ! तुम सर्व प्रकारसे मेरे उत्तम सुहृद् सखा हो इसलिये यह गुप्त बात तुमसे कही है ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

दोहा-बारहमें सतसंगकी, महिमा कहौं बखान ।
कर्म करन अरु त्यागको, वरणों आतमज्ञान ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव ! योग और तत्त्वोंका विवेक और अहिंसा आदिधर्म विद्याका अध्ययन, तप, त्याग अग्निहोत्रादिक, वापी, कूप, तड़ाग, दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम-संयम ये सब मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते; जैसे श्रेष्ठ विष्णुभक्तका सत्संग वश करता है, क्योंकि सत्संग सब कुसङ्गोंका छुड़ानेवाला है ॥२॥ दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक ॥ ३ ॥ विद्याधर और मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री ये सब जाति राजस, तामसस्वभावयुक्त भी उन-उन युगोंमें ॥ ४ ॥ मेरे पदको प्राप्त हुए और भी बहुत हैं, जैसे-वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय, विभीषण ॥ ५ ॥ सुग्रीव, हनुमान्, जांबवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, व्याधा, कुब्जा,गोपी, व्रजमें यज्ञपत्नी ऐसे और भी अनेक मुझे प्राप्त हुए हैं ॥६॥ ये वेदार्थ नहीं पढ़े थे, महत्पुरुषोंकी उपासना नहीं की थी, व्रत दान तप कुछ नहीं करते थे, एक मेरे संगसे ही मुझे प्राप्त हुए ॥७॥ गोपी, गाय, यमलार्जुन, मृग और मूढबुद्धि काली आदि नाग सिद्ध अनायास मुझे प्राप्त हो गये ॥८॥ सांख्य, योग, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, अध्ययन, इतने यत्नसे भी जिन्होंने मुझे न पाया वे एक भावमात्रसे ही प्राप्त हुए ॥९॥ अब मुख्य उत्तम भाव गोपियोंका कहते हैं, इस कारण पहले गोपियोंके भावकी स्तुति करते हैं:-हे उद्धव ! जब अक्रूर आकर बलदेवसहित हमको मथुरा ले गये तो दृढ़ प्रीतिसे मुझमें आसक्त चित्तवाली वियोगसे दुःसहचित्त गोपियोंने सुखके लिये मेरे अतिरिक्त और किसीकी ओर न देखा ॥१०॥ हे उद्धव ! वृन्दावनमें फिरते उनको अतिप्रिय मेरे संग जो रात्रियाँ एक क्षणके समान बीतती थीं, वही मुझ विना उन गोपियोंको कल्प समान बीतीं ॥११॥ मुझमें गोपियोंकी बुद्धि अधिक आसक्त हो गयी थी, इसलिये उन्हें पति, पुत्रादि तथा देह और परलोकका कुछ भी ध्यान न रहा, जैसे समाधिमें मुनियोंको नाम स्वरूपका ध्यान नहीं रहता, अथवा जैसे नदी समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार गोपियाँ मेरे स्वरूपमें लीन हो गयीं ॥१२॥ इस प्रकार केवल मेरी इच्छावाली सहस्रों स्त्रियाँ यद्यपि मेरे स्वरूपको नहीं जानती थीं परन्तु तो भी जारबुद्धिसे जाने हुए मुझे परब्रह्मके सत्संगकी महिमासे मुक्त हो गयीं ॥१३॥ हे उद्धव ! मेरे भजनका ऐसा प्रभाव

है कि गोपियाँ जारबुद्धिसे भजन करनेपर भी मुझे प्राप्त हुई, इसलिये तुम श्रुति-स्मृतिके विधि-निषेध छोड़ प्रवृत्ति धर्म छोड़, सुना सुनाया छोड़ ॥१४॥ सबोंमें सब देहधारियोंके आत्मा मेरा भाव रख, केवल मेरी शरणको प्राप्त होकर तुम निर्भय होगे ॥ १५ ॥ यह सुनकर उद्धवजी बोले कि, हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! तुम्हारी बात सुनकर आत्माविषयक मेरा संदेह निवृत्त नहीं होता, क्योंकि प्रथम आपने कहा कि मेरा भजन करो, अब कहते हो कि सब धर्म छोड़कर हमारी शरण आओ, इन दोनोंमेंसे क्या करना उचित है, त्याग करना चाहिये अथवा भजन करना चाहिये ? यह मुझे बड़ा भ्रम है, उसे निवारण करो ॥१६॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! पहले तो यह जीव ईश्वर है, अर्थात् ब्रह्म है, परंतु अविद्याके संगसे अपना धर्म भूल गया है, अविद्याके धर्मकोही अपना धर्म समझ 'अहंकर्त्ता' अभिमानसे बँधता है, जब अविद्याके धर्म दूर हो जायँ तब शुद्धचित्त हो उसके लिये निष्काम कर्म करना कहा है, जब चित्त शुद्ध हुआ तब कर्मका त्याग कहा, जब विवेक उसको उत्पन्न हो, तब विवेकसे सर्वत्र वह मेरा रूप जानता है, तब कर्म और ज्ञानका अधिकार होता है, इस कारण सब कर्म त्यागकर मेरी शरण आये, यह उपदेश दिया, अब ईश्वरसे वाणी इन्द्रिय द्वारा जीवके संसारके कारण भूत प्रपंचकी उत्पत्ति कहते हैंः—वह ईश्वर आधारादि चक्रोंमें प्रकट होते हैं, उस प्रकटताको भी कहते हैं; वह ईश्वर नादवन्तपर नाम प्राणसहित आधारचक्रोंमें प्रविष्ट होकर मनोमय सूक्ष्मरूप देखे और मध्यमा नाम मणिपूरक और विशुद्ध चक्रविषे आकर मुखमें हूँ स्वरादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, अकारादिक अक्षररूप वैखरी नाम अति स्थूल नानाविधिरूप होते हैं ॥ १७ ॥ जैसे आंकाशमें गर्मीरूप अग्नि अप्रकट है, बलपूर्वक काष्ठके मथनेसे वायुकी सहायतासे पहले सूक्ष्मरूपसे निकलती है, पीछे हविष्यसे वृद्धिको प्राप्त होती है, इसी प्रकार यह प्राणी मेरे प्रकट होनेके स्थान हैं ॥ १८ ॥ हाथोंका धर्म क्रिया, चरणका धर्म तीर्थ गमन करना और गुह्येन्द्रियका धर्म मलादि विसर्जन करना, आघ्राण, रस, दर्शन, श्रवण यह सब ज्ञानेन्द्रियोंके धर्म, संकल्प मनका धर्म, विज्ञान और बुद्धि चित्तका धर्म, अभिमान अहंकारका धर्म, सूत्रमायाका धर्म, सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणोंका विकार अधिदैव, अध्यात्म, अधिभूत ये सब मेरे प्रकट होनेका स्थान हैं ॥१९॥ यह आत्मा ब्रह्म है, एक ही है, अप्रकट है; कालसे अलगकर वाणी रूप इंद्रियोंकी शक्तियोंको अनेक भाँतिसे प्रकाशै है, जिससे आदि है, तीन गुणोंका आश्रय है, सृष्टिकमलका कारणभूत है, जैसे बीज खेतको पाकर अनेक भाँति प्रकाशमान् होता है, उसी प्रकार यह आदिकारण ईश्वर भी कालकी गतिसे मायाको अंगीकार कर प्रपंचरूप हो जाते हैं ॥२०॥ इसमें दृष्टांत कहते हैंः—जैसे तंतुके विस्तारमें स्थितमान् पट तंतुओंसे ओतप्रोत है और तंतुओंसे पृथक् नहीं है, उसी प्रकार यह सब जगत् ब्रह्ममें विद्यमान है, उससे भिन्न नहीं है। ऐसे ही समष्टि-व्यष्टि रूप अविद्यासे आत्मामें अध्यास किया हुआ प्रपंचरूप वृक्ष ही जीवके कर्त्ता भोक्ता आदि संसारका कारण है, इससे जब यथार्थरीतिसे आत्माकी सत्यता और प्रपंचकी अनित्यता जाननेमें आये उस समय कामादि सबका त्याग करना कहा है, यह अनादि-कालसे प्रवृत्तिवाला प्रपंचरूप वृक्ष अपने भोगादिरूप पुष्प फलोंको उत्पन्न करता है ॥२१॥ इसके पाप-पुण्य दो बीज हैं, अनेक भाँतिकी वासना इसकी जड़ें है, तीनों गुण (रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण) इसकी पेड़ी (तना) हैं; रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द यह पांच रस हैं,

पांच महाभूत इसके स्कन्ध हैं, एकादश इंद्रिय शाखा हैं, दो पक्षी जीव और परमात्माका घर वात, पित्त, कफ यह तीनों वल्कल हैं, दुःख-सुख दो फल हैं, सूर्यमण्डल तकयह वृक्ष है, इससे आगे संसार नहीं ॥ २२ ॥ अब इसके फलके भोक्ताको कहते हैं—इसके एक फल दुःखरूपका गृहस्थ ग्रामचारी कामी गीदड़के समान भोग करते हैं, दूसरे फलका सुख अरण्यवासी परम-हंस संन्यासी भोग करते हैं, इससे यह एक ही परमात्मा मायामय अनंतरूप है, इतना तत्त्वार्थ गुरुद्वारा जिस पुरुषने जान लिया है, उसने सब देह जान लिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार धीर सावधान होकर तुम भी गुरुकी सेवा करना और एकांत भक्ति तीक्ष्ण ज्ञानरूप कुठारीसे त्रिगुणमय इस लिंगशरीरको काट परमात्मासे मिल पीछे सब साधन छोड़ देना ॥ २४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सत्संगमाहात्म्यादिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, हंसरूप इतिहास।
बढ़े अधिक जब सतोगुण, प्रगटै बुद्धि विलास ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं, इस कारण सत्त्वगुणकी वृद्धिसे रजोगुण, तमोगुणकी वृत्तिका नाश कर सत्त्व दयादिरूप सत्त्वगुणका उपशमरूप सत्त्वगुणसे नाश करना ॥१॥ रजोगुण-तमोगुणके सम्मुख सत्त्वगुण कैसे बढ़े ? सात्त्विक पदार्थोंकी उपासनासे सत्त्वकी वृद्धि होती है और जो सत्त्वगुण बढ़े तो मेरा भक्ति-लक्षण-धर्म हो ॥ २ ॥ उसीसे रज-तम भी दूर हो सत्त्वकी वृत्ति भी हो जाती है, इस कारण भक्ति अति श्रेष्ठ है। रज तमके दूर होने पर रज-मूलवाला अधर्म निश्चयसे शीघ्र दूर हो जाता है ॥३॥ शास्त्र, जल, प्रजा, देश, काल, कर्म, जन्मा, ध्यान, मंत्र-संस्कार यह सब प्राणके हेतु हैं ॥४॥ यह भी दश सात्त्विक, राजस, तामस हैं। इनके मध्य जिसकी बड़ाई करते हैं, वह सात्त्विक है, जिसकी निन्दा करते हैं, वह तामस है और जिसकी न स्तुति करते हैं न निन्दा करते हैं वह राजस है ॥ ५ ॥ सत्त्वगुण बढ़ानेके लिये पुरुषको सात्त्विकवृत्ति शास्त्रका सेवन करना चाहिये, प्रवृत्तिमार्गके पाखंडियोंके शास्त्र न देखे, जल, तीर्थका ही सेवन करे, सुगंधित जलका सेवन न करे, सङ्ग निवृत्तिमार्गवालोंका ही करे, दुराचारियोंका न करे, देश एकान्त ही सेवे, चोर, ठग और जुआ खेलनेवालोंका सङ्ग न करे, ध्यानका सेवनकाल ब्राह्ममुहूर्त आदिमें करे, आधीरातके समय प्रदोष कालमें सेवन न करे, कर्म नित्य ही करे काम्य और अविचारादिक कर्म न करे, वैदिक तांत्रिक दीक्षारूप जन्म ले, क्षुद्र देवताओंकी दीक्षा न ले, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही गुरु करे, अस्त्रोंका और शत्रुओंका ध्यान न करे,जब प्रणव आदि उत्तम मन्त्रको जपे, उस समय काम्य मन्त्र और क्षुद्र मन्त्रको न जपे, जो संसारसे आत्माका शोधक हो वही करे, देव, गृहको न करे। इस प्रकार सब सात्त्विक सेवे तो सत्त्वगुणकी वृद्धि हो और राजस, तामस छूटे, तब भक्तिरूपी तप धर्म होता है, उससे मेरे स्वरूपका ज्ञान होता है ॥६॥ जैसे बांसोंके वनकी अग्नि आपसमें घिस और प्रज्वलित हो सब अरण्यको जला ईंधन घट जानेपर आप ही शान्त हो जाती है, उसी प्रकार गुणके क्षोभसे उत्पन्न हुआ देह आप ही शान्त हो जाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले हे कृष्ण ! बहुधा सब मनुष्य कहते हैं कि विषय दुःखरूप है, उससे दुःख पाते हैं, तो

फिर क्यों यह पुरुष कूकर, गदर्भ, बकरेके समान निर्लज्ज हो उसीमें प्रवृत्त होते हैं ! ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! जब यह विवेकसे रहित होते हैं तब इनके हृदयमें अहंभाव बुद्धि सत्यसी होती है, तो सात्त्विक मत भी दुःखरूप राजस धर्मसे व्याप्त होते हैं ॥ ९ ॥ यह पुरुष जब रजोगुणसे व्याप्त होता है, तब मनमें संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं और संकल्पसे विषयका जो ध्यान करता है उससे इस दुष्ट बुद्धि पुरुषको काम उत्पन्न होता है ॥१०॥ इसके उपरांत उनके वश हो रजोगुणके वेगसे मोहित हुआ अजितेन्द्रिय दुःख फलवाले कर्मोंको ही करता है ॥११॥ इसमें भी जो विवेकी हो वह यद्यपि रजोगुणसे तमोगुण विक्षिप्त-मन है, असावधान है, परंतु तो भी मनको खींचकर रखे तो वह दोष जानकर विषयमें आसक्त न होगा ॥१२॥ जो विवेकी स्नेहसे मुझमें मन लगाता है और आलस्य छोड़ श्वास रोक आसन दृढ़कर मुझमें मन स्थिर करता है ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादिकोंने इतना ही योग बताया है कि यह जीव सब ओरसे मन खींच प्रत्यक्ष मुझमें रखे ॥१४॥ उद्धवजी बोले कि हे केशव ! सनकादिकोंके रूपसे जिस समय तुमने यह योग कहा था वह तुम्हारा रूप और वह समय जाननेकी इच्छा है वह कहिये ॥ १५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! एक समय ब्रह्माके मानसी पुत्र सनकादिक योगकी सूक्ष्म गति ब्रह्मदेवसे पूछने लगे ॥ १६ ॥ सनकादिक बोले कि, हे प्रभो ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसे ही रागादिकोंके हेतु विषयधर्ममें प्रविष्ट होता है और अनुभूत विषय वासना रूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं, अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष परस्पर इन दोनोंको किस प्रकार भिन्न-भिन्न करें ? ॥१७॥ इस प्रकार पुत्रोंके पूछने पर ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था वही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उद्धवजीसे कहते हैं कि इस भांति जब सनकादिकोंने कहा तो स्वयंभू ब्रह्मा बड़े देव विश्वके पालक विचारने लगे, परन्तु प्रश्नका पार न पाया इससे कर्मसे विक्षिप्त बुद्धि हुई ❀ ॥१८॥ तब प्रश्नका उत्तर देनेके लिये ब्रह्माने मेरा चिन्तन किया, तब मैं हंसरूप हो ब्रह्माके निकट गया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखते ही सब प्रणाम कर ब्रह्माके आगेसे मेरे निकट आकर तुम कौन हो ? इस प्रकार पूछने लगे ॥२०॥ हे उद्धव ! तत्त्वके जाननेकी इच्छासे मुनिने जब इस प्रकार मुझसे पूछा, तो मैंने जो उनसे कहा वह तुम सुनो ॥२१॥ हंसरूप भगवान् सनकादिकोंसे बोले कि तुम आत्माको आगे कर प्रश्न करते हो वा आत्माके उपाधिस्वरूप भूत-समूहको लेकर प्रश्न करते हो ? जो आत्माका अधिकार कर प्रश्न करते हो तो परमार्थसे आत्मामें अभेद होनेके कारण तुम कौन हो ? यह प्रश्न करना, कि जो अनेकोंमें एकका निश्चय करनेके लिये है, सम्भव नहीं हो सकता, अतः मैं तुम्हें क्या विषय लेकर उत्तर दूँ ? आत्मा कोई जाति वा गुणादिरूप हो तो उत्तर दिया जाय कि मेरी यह जाति और मुझमें यह गुण है, परन्तु आत्मामें कोई बात नहीं, इससे तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं बन सकता ॥२२॥ और जो पंचभूत-सन्धानका प्रश्न है वह अनर्थरूप है, देव मनुष्यादि देह सब पञ्चभूतात्मक हैं इससे सब समान हैं, अपने कारणसे न्यारे नहीं, वे सब कारणरूप एक ही हैं अर्थात् ब्रह्मरूप ही है, यह नाम

❀ शंका—सनकादिकोंने ब्रह्मासे ज्ञान पूछा तो ब्रह्माने उत्तर क्यों नहीं दिया, ब्रह्माके मौन होनेका क्या कारण है ?

उत्तर—ब्रह्माने सनकादिकोंके प्रश्नसे पहले अपनी कन्याके रमण करनेकी इच्छा की थी उसी लज्जाके कारण ब्रह्माकी देहका तेज नष्ट हो गया था' हानि मानकर नहीं बोले और अपने मनमें कहने लगे कि इनके सम्मुख ज्ञानमार्गमें किस मुखसे उत्तर दूं ? इस लज्जाके कारण नहीं बोले ।

रूप अलग-अलग धर लिये हैं, वह अज्ञान है, इस कारण इसका मैं क्या उत्तर दूं ॥२३॥ मन, वचन, दृष्टि और इन्द्रियोंसे जो ग्रहण किये जाते हैं वही मैं हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, यह तत्त्वका विचार करके जान लो ॥२४॥ इस प्रकार उनके प्रश्नका खण्डन करनेके बहाने आत्माका स्वरूप कहा। अब ब्रह्मको भी जो अशक्य उत्तर है वह देते हैं कि यह विषय और चित्त दोनों गुँथे हैं, ब्रह्मरूप जीवका देह है, वह उपाधि है, कुछ सत्य नहीं है, जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मरूपसे विषयोंको मिथ्या करके जानते हैं और वैराग्यसे भगवान्‌का भजन करते हैं वे उपाधि छोड़कर मुक्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि विषयोंकी ही सेवा करनेसे और उनकी वासनासे विषयोंमें चित्त प्रविष्ट होता है, इसलिए विषय और चित्त यह दोनों जब मेरा रूप जाने तो छूटे ॥२६॥ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंसे रहित जीव शुद्ध आत्म-रूप कैसे हो ? वह कहते हैं कि यह अवस्था तीन गुणोंसे होती है, बुद्धिकी ही वृत्ति अवस्था है, जीव इन अवस्थाओं से भिन्न है-ऐसा निश्चय किया गया है, इसलिए जीव इन सबका साक्षी है ॥२७॥ जो यह साक्षी हुआ तो भिन्न क्यों है ? और "मैं सोया-जागा" ऐसा क्यों कहते हैं ? क्योंकि जब अहंकारके धर्मसे संसारका बंधन है तो मैं जागता हूँ, सोता हूँ, यह बुद्धि है। जब अहंकार देहसे छूट जाय और आत्माके मध्यमें दृष्टि हो तब यह अवस्था भी सब जाती रहे और विषय तथा चित्तका परस्पर त्याग हो ॥ २८ ॥ यह बंधन देहके अभिमानसे है इसीसे आत्माको भी अनर्थ लगता है, इस प्रकार निश्चयकर वैराग्यसे आत्मामें चित्त लगा-कर संसारकी सब चिन्ताका त्याग करे ॥२९॥ जबतक भेदबुद्धि युक्तियोंसे निवृत्त नहीं है, तब तक अज्ञानी पुरुष कर्मादिकोंसे जागता अर्थात् जानकर भी अपनेको जागृत मानते हुए मनुष्यके समान स्वप्नको ही देखता है, क्योंकि उसे यथार्थ ज्ञान नहीं है ॥ ३० ॥ यह सब देह और देहका किया सब भेद वर्ण, आश्रम, स्वर्ग आदि फल कर्म आत्माके धर्म नहीं हैं, यह देहके धर्म हैं, अविद्यासे उत्पन्न होते हैं इस कारण मिथ्या है, उत्तम नहीं; जैसे स्वप्न देखनेवाले के सब मनोरथ मिथ्या हैं ॥३१॥ यह जीव जागतेमें जो विषय भोग करता है, वह भोग एक क्षण भरका है, कुछ नित्य नहीं, जैसे बाल्यावस्था और तरुणपन आये और गये जाग्रतके समान भोग करते हैं और सुषुप्तिमें यह सब धर्म लीन होजाते हैं, केवल आत्मा ही रहता है, मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सुखसे सोया, कुछ ज्ञान न रहा, इस अनुभवके स्मरणसे तीनों अवस्था बुद्धिकी हैं, इनका साक्षी एक आत्मा ही रहता है और सब लीन हो जाते हैं, इस कारण आत्मा सब इन्द्रियोंका ईश्वर है ॥३२॥ इस प्रकार यह तीनों अवस्था मनके वशमें है आत्माके वशमें नहीं, वह मेरी शक्ति अविद्यासे अपनेको मान लेती है, ऐसा निश्चय कर सब सन्देहका स्थान अहंकार है उसको विवेकसे, अनुमानसे और प्रमाण वचनसे उपजा जो ज्ञानरूपी खड्ग, उससे काटकर हृदयमें स्थित मेरा भजन करे ॥३३॥ अनुमान किस प्रकारका है, वह कहते हैं कि यह जो जगत दीखता है वह सब मनका विलास है, भ्रम और मिथ्या विलास है, यह द्वैत भी भ्रांतिरूप है, क्योंकि यह अति चञ्चल है और जो चञ्चल हो वह अला-तचक्र समान भ्रांतिरूप है, ब्रह्ममें द्वैतकी अनेक भांति होती है, इसलिये भ्रांतिका अधिष्ठान-रूप एक ब्रह्म ही अनेक प्रकार दीखता है और जो यथार्थ विचारसे देखते हैं तो यह त्रिगु-णात्मक मायाका भ्रम स्वप्नके समान है ॥३४॥ इससे हे उद्धव ! ऐसे प्रपंचसे दृष्टि फेर तृष्णा छोड़ आत्मसुखके विचारमें तत्पर हो इन्द्रियोंके सब धर्म छोड़ दो। यदि कहो कि देहवान्‌से

देहकी चेष्टा कैसे छूट सकती है ! और न छूटनेसे द्वैत हो जायगा, तो कहते हैं कि कहीं ऐसे भी देहकी चेष्टा देखी जाती है, परन्तु वह चेष्टा अलंकार रहित है सत्य नहीं, जिससे प्रपंचमें उनकी मिथ्या बुद्धि है, जो मिथ्या जानकर छोड़ दिया जाता है तो फिर वह मोह उत्पन्न नहीं करता, यह निश्चय है, देहतक कर्मोंका संस्कार है ॥३५॥ जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशी देहको दैवगतिसे आसनसे उठा, आसनपर स्थित, उठकर खड़ा हुआ बाहरको गया अथवा दैवगतिसे फिर आया हुआ नहीं देखते, जैसे मदिरा पानसे मत्त हुआ पुरुष पहने हुए वस्त्रको नहीं जानता; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषको ब्रह्म प्राप्त हो चुके हैं ॥३६॥ यहां तर्क करते हैं कि देहको न जाने तो देह क्यों नहीं गिरे ! तो कहते हैं कि देह भी दैवके अधीन है और जबतक इसका प्रारब्धकर्म है तब तक प्राण इंद्रियों सहित देह रहता है इसलिए जो समाधियोगमें आरूढ़ हैं, जो परमार्थवस्तु और आत्मस्वरूपको जानते हैं, वे पुरुष प्रपञ्च सहित स्वप्नके समान इस देहको नहीं भजते ॥३७॥ हे ब्राह्मणो ! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य था, वह मैंने आपसे वर्णन किया, तुम्हें धर्म और ज्ञानका उपदेश देनेके लिए मैं यज्ञरूप विष्णु आया हूँ, ऐसा जानो ॥३८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! योग, सांख्य, सत्य, ऋत अर्थात् शास्त्रोक्त धर्म, तेज, प्रभाव, श्री, कीर्ति और इंद्रियपन इन सब धर्मोंका मैं ही परमार्थस्थान हूँ, यह सब मुझमें ही रहते हैं ॥३९॥ सबगुण मेरे ही आश्रित हैं, मैं निरपेक्ष हूँ, सुहृद परमप्रिय हूँ सबका आत्मा और सब मुझे समान हैं, संग किसीका नहीं, ऐसे गुण मुझमें हैं ॥४०॥ इस प्रकार मेरे वचन सुन संदेह निवृत्त कर सनकादिक मुनियोंने अतिभक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की ॥४१॥ जब उन ऋषियोंने भलीभांति स्तुति और पूजा की तब ब्रह्माके देखते-देखते मैं भी अपने धामको चला गया ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे हंसेतिहासवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दोहा–इस चौदह अध्यायमें, सबका यही विचार ।
सब साधनमें मुख्य हैं, भक्ति मुक्तिदातार ॥

उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! जो पुरुष ब्रह्मका विचार करते हैं, वे तो ब्रह्मका साधन बहुत बताते हैं उन सबोंमें जो एक मुख्य साधन है वह कहो ॥१॥ हे ईश्वर ! तुम निरपेक्षभक्ति ही एक मुख्य साधन कहते हो कि सब संग छोड़ भक्तियोगसे मुझमें चित्त रखे ॥२॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे उद्धव ! भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ साधन है और जो अनेक साधन हैं, वह अपनी इच्छानुसार संसारके लोगोंने मूर्खपनसे मुख्य मान रखे हैं, वह सब तुच्छ फलके देनेवाले हैं और मुख्य तो यह मेरी वेदरूप वाणी है, जो प्रलयकालमें नष्ट हो गयी थी, यह वह वाणी है, जिससे प्राणीका मन मुझमें लग जाय, यह पहले मैंने ब्रह्माजीसे कहा था ॥३॥ ब्रह्माने अपने बड़े पुत्र मनुसे वह वाणी कही, मनुने महर्षि भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह क्रतु इन सात ब्रह्माके पुत्रोंसे कही ॥४॥ उनसे उनके पुत्र दैत्य, देवता, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर ॥५॥ चारण, किंदेव (मनुष्यजातिमें देवतुल्य), किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुषादिक सबोंने वह वाणी ग्रहण की, जिनकी वासना रजोगुण, तमोगुण आदिसे अनेक प्रका-

रकी हैं ॥६॥ जिन वासनाओंसे देवतुल्य मनुष्यादिक प्राणियोंके शरीर भिन्न-भिन्न होते हैं और उनकी बुद्धियोंमें भी भेद है उन सबोंने अपनी वासनाके अनुसार भिन्न-भिन्न वेदका व्याख्यान किया है ॥७॥ इस प्रकार प्रकृतिकी विचित्रतासे मनुष्योंकी बुद्धि विचित्र हो गयी और शास्त्रोंमें भी भेद पड़ गये किसी प्राणीके उपदेशकी परंपरासे वेद विरुद्ध पाखण्ड बुद्धि हुई॥८॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहितबुद्धि पुरुष अनेक प्रकारसे इच्छानुसार कल्याणके साधन कहते हैं॥९॥कोई धर्मको ही मुख्य कहता है,कोई यशको, कोई कामको,कोई सत्यको कोई,शमदमको, कोई ऐश्वर्यको और कोई स्वार्थको ही मुख्य कहते हैं, कोई दान करो, भोग करो, यही कहते हैं।कोई यज्ञ, तप,दान, व्रत,नियम, संयम यह सब साधन कहते हैं॥१०॥इन प्राणियोंको अपने कर्मानुसार लोक, कर्मफल मिलते हैं, वह सब परिणाममें दुःखसे पूर्ण किंचित आनन्दयुक्त शोकसे व्याप्त आदि अंतवाले हैं ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! मुझमें जिन्होंने आत्मसमर्पण किया है और जो सबसे निरपेक्ष हैं, उनको मेरे परमानन्द स्वरूपकी प्राप्तिसे सुख मिल रहा है, वह सुख विषयोंमें लगे पुरुषोंको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो भक्तोंका सुख है, वह विषयी पुरुषोंको कहां ! ॥ १२ ॥ जो अकिंचन, दांत, समचित्त और सन्तुष्टमन हैं उनको सब दिशायें सुखरूप हैं ॥ १३ ॥ जिन्होंने मुझमें आत्मसमर्पण कर दिया है, उनको मेरे अतिरिक्त और किसी वस्तुकी चाहना नहीं है; मैं एक ही उन्हें प्रिय हूँ; अधिक क्या कहें, ब्रह्मलोक, इन्द्रका सम्पूर्ण राज्य, भूमिका राज्य, पातालका राज्य, अणिमा-महिमादिक योगसिद्ध व मोक्ष तककी उनको चाहना नहीं है ॥ १४ ॥ इसलिये भक्तोंके समान मुझे कोई प्यारा नहीं ? हे उद्धवजी ! अब मैं तेरे आगे अधिक क्या कहूँ, मेरा आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं है, हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्यारे हो वैसे मेरा पुत्र ब्रह्मा, महादेव, संकर्षण और लक्ष्मीजी भी मुझे प्यारे नहीं हैं, यह अति सन्तोषसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथा ही क्या है जो सामान्य भी मेरे भक्त हैं, वे भी कृतार्थ हैं और जो मेरे भक्त विषयोंसे पीड़ित अजितेंद्रिय उनको भी दृढ़-भक्ति होनेके कारण विषय पराभव नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि काष्ठको भस्म कर देती है, उसी प्रकार मेरी दृढ़-भक्ति सब पापोंका नाश कर देती है ॥ १९ ॥ इससे भक्ति विना और कोई उपाय नहीं है । हे उद्धव ! योग, सांख्य, धर्म, पाठ, तप, त्याग यह कोई मुझे ऐसे वश नहीं कर सकते जैसे एक दृढ़-भक्ति मुझे वश कर लेती है ॥ २० ॥ भक्तोंका प्रिय आत्मारूप मैं श्रद्धासे उत्पन्न हुई भक्तिसे ही आत्माओंके वश हो जाता हूँ। यदि मेरी भक्ति चाण्डाल करे तो उसके भी जातिदोष पवित्र हो जाते हैं ॥ २१ ॥ इसपर एक दृष्टांत है ✻ सत्य और दयासंयुक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्या भी उस पुरुषको पवित्र नहीं कर सकती जिसके चित्तमें मेरी भक्ति नहीं है ॥ २२ ॥ जिसके रोमाञ्च न हो, द्रवीभूत न हो, आनन्दके

✻ दृष्टान्त—एक तिलोक सुनार बड़े साधुसेवी थे, जो कुछ वस्तु प्राप्त होती थी, सब साधुओंमें व्यय कर देते थे । एक समय राजाके यहांसे कुछ आभूषण बनानेको आये, तो इनके यहां बहुतसे साधु आ गये । इन्होंने उस राजाके द्रव्यकी भोजनसामग्री मंगाकर साधुओंको खिला दी और आप टालबाल करते रहे जब राजाके यहां ब्याहका दिन आया तो यह जङ्गलको भाग गये, तब भगवान्‌ने भक्तकी रक्षा की, तिलोकका रूप बना गहना लेकर राजाके घर गये । वहांसे अच्छे आभूषण बनानेके कारण पुरस्कार पाया और गहना दिया । भगवान् वह पुरस्कारका द्रव्य तिलोकके घर दे जंगलमें आकर उससे कहने लगे कि घरको जा राजाने बहुत द्रव्य दिया है । तिलोक सुनते ही घर आकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । आशय यह है कि ईश्वरके भक्त कभी कष्ट नहीं पाते ।

आंसू न चले, उसकी भक्ति कैसे जानी जाय और भक्ति विना हृदय कैसे शुद्ध हो ? ॥ २३ ॥ अब भक्तिका लक्षण कहते हैं:-जिसकी वाणी गद्गद हो, चित्त द्रवीभूत कोमल हो, नेत्रोंसे बारंबार आंसू बहे, कभी हँसे, कभी लज्जा छोड़ उच्चस्वरसे गावे-नाचे इस प्रकार जो मेरी भक्तिसे युक्त हो वही लोकोंको पवित्र करता है॥२४॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसे श्यामता छोड़ निर्मल हो अपने रूपको प्राप्त होता है, वैसे ही यह आत्मा मेरे भक्तियोगसे कर्मवासना त्यागकर मेरे ही स्वरूपको प्राप्त होता है॥२५॥ज्ञान विना अविद्या नहीं जाती, अविद्याके गये विना आप नहीं मिलते, इस प्रकार कहते हैं कि यह पुरुष जैसे-जैसे मेरी पुण्य कथा श्रवण कीर्तन करते हैं, वैसे ही वैसे शुद्ध चित्त होते हैं, नेत्र जैसे अञ्जनसे सूक्ष्म-होते हैं वैसे ही सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आते हैं ॥ २६ ॥ यद्यपि विषयके ध्यानसे मन विषयमें रहता है, परंतु तो भी मेरा ध्यान करनेसे शुद्धचित्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मेरी भक्ति विना ज्ञान नहीं होता और मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होनी यही ज्ञान है ॥२७॥ हे उद्धवजी ! इस लिये स्वप्न मनोरथके समान मिथ्या वस्तुका ध्यान छोड़ मेरी भावनासे चित्त शुद्ध कर मेरे स्वरूपमें रखे ॥ २८ ॥ स्त्रियोंका संग और स्त्रियोंके संगियोंका संग दूरसे छोड़ आत्माको जान धीर हो एकान्तमें बैठ परमकल्याणरूप मेरा चिंतन करे ॥२९॥ क्योंकि जैसा स्त्रियोंके संगसे और स्त्रियोंके संगियोंके संगसे इसे क्लेश बन्ध होता है, वैसे औरके संग नहीं होता ॥३०॥ उद्धवजी बोले कि, हे कमलनयन ! जो मोक्ष चाहे वह तुम्हारा ध्यान किस प्रकार करे, किस स्वरूपका करे ! यह मुझसे कहो, क्योकि मैं तो आपके दासभावसे पुरुषार्थको प्राप्त हो चुका हूँ ❋ ॥३१॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! समान आसनपर बैठ अपनी देह सम रख जैसे सुख हो वैसे ही बैठ अपने दोनों हाथ गोदपर रख नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बैठ प्राणके मार्ग पूरक, कुम्भक, रेचक करके शुद्ध हो जितेन्द्रिय हो शनैःशनै प्राणायामका अभ्यास कर रेचक, पूरक, कुम्भक, क्रमसे अभ्यास करे ॥३३॥ प्राणायाम दो प्रकारका है एक तो प्रणवसहित प्राणसे प्रगट करके ॐ कारमें घण्टेके शब्दके समान उदात्त नाद स्थिर करे ॥३४॥ इस प्रकार प्रणवसंयुक्त प्राणके अभ्याससे प्रकट करे और प्रणवमें घटाना, बढ़ाना संधानका स्थित अभ्यास करे, दश प्राणायाम तीनों काल करे, इस प्रकार अभ्यास करनेसे एक महीनेमें प्राणवायु वशमें हो जाता है ॥३५॥ इस देहके भीतर हृदयकमल अधोमुख है; उसकी दंडी ऊपर रहती है, जैसे केलेका फल होता है और ऐसे ही कमलकी कली होती है। उसका ध्यान ऐसा करे कि वह नीचे नालवाला और ऊपर मुखवाला खिला हुआ आठ पंखुरीसे युक्त है, कर्णिकासहित मनसे चिंतन करे ॥ ३६ ॥ उस कमलकी कर्णिकामें सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं, उस अग्निमें मेरे इस

❋ शंका—श्रीकृष्णसे उद्धवने पूछा कि मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगिराज भगवान्‌का ध्यान कैसे करते हैं ? तब श्रीकृष्णने उद्धवकी बातको त्याग कर सगुणरूपका वर्णन किया, इसका क्या कारण ?

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया कि ब्रह्मका ध्यान मुक्तिकी इच्छा करनेवाले योगीराज करते हैं, सो ध्यान सुननेसे और कहनेसे प्राप्त नहीं होता, वह बहुत दिनोंतक सत्संग करनेसे प्राप्त होता है और उद्धवका हृदय ज्ञानमें कच्चा है और हमारी इच्छा परमधामके जानेकी है, यदि कुछ अधिक दिन हमको मर्त्यलोकमें रहना होता तो भी उद्धव ब्रह्मज्ञान जाननेमें पक्का हो जाता। ऐसा विचार करके सगुणका ध्यान वर्णन किया कि धीरे-धीरे सगुणका ध्यान करते-करते ब्रह्मके ध्यानको उद्धव प्राप्त हो जायँगे इसलिये ब्रह्मके ध्यानको त्यागकर सगुणका ध्यान श्रीकृष्णचन्द्रने वर्णन किया।

रूपका क्रमसे ध्यान करे, उसमें प्रथम अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके मङ्गलरूप विषय मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सम, अतिशांत, सुन्दरमुख, दीर्घ सुन्दर चार भुजा धारण किये अतिसुन्दर ग्रीवा, उत्तम गोल-कपोल, अति उज्ज्वल मन्दमुसकायनयुक्त ॥ ३८ ॥ समान कानोंमें प्रकाशमान मकराकृति कुण्डल धारण किये, पीतांबर पहने, मेघकी भाँति श्याम, सुन्दर श्रीवत्ससंयुक्त, लक्ष्मीको वक्षस्थलमें धारे ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमालासे भूषित, नूपुरोंसे शोभित चरण कमल, कौस्तुभमणिकी कांतिसे संयुक्त ॥ ४० ॥ प्रभावसे दीप्तिमान् कंकण, कटिमेखला, बाजूबन्द धारण किये, सर्वांग सुन्दर और मनोहर प्रसन्नताके कारण अति सुन्दर शोभित मुख और नेत्र, अति सुकुमार रूपका ध्यान करे, सब अंगोंमें मन दे ॥४१॥ प्रथम इंद्रियोंको विषयोंसे खींच मनमें मिलाये, मनको बुद्धि सारथीसे विषयोंसे निकाल मेरे स्वरूपमें मिलाये ॥४२॥ चित्त सर्वत्र व्याप्त है, अंग-अंगमें फिरता है, उसको उन अंगोंसे निकाल मेरे मुखकी भावनामें रखे, मन्दहास्यसंयुक्त मेरे मुखका बहुत कालतक चिंतन करे और कुछ मनमें न धरे ॥४३॥ जब मुखमें मन स्थिर हो जाय तो मुखसे भी खींचकर सबके मूलभूत साक्षात् मेरे स्वरूपमें रखे। उसे वहांसे छुड़ाकर साक्षात् शुद्ध ब्रह्मरूप मेरे सम्पूर्ण स्वरूपमें संलग्न हो जाय तब और कोई चिंतन न करे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार समाधिमें दृढ़मति हो अपने आत्मामें आत्मरूप मुझे ही देखे, जैसे ज्योतिमें ज्योति मिल जाती है उसी प्रकार सर्वात्मरूपमें अपने आत्माको मिला देखे ॥४५॥ इस प्रकार सुदृढ तीक्ष्ण ध्यानसे योगीजन मुझमें मन संयुक्त करें तब वह द्रव्य ज्ञान क्रियारूप भ्रम शीघ्र ही निवृत्त होनेसे शांतिको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भक्तियोगनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दोहा—प्रथम धारणा अनुसरण, करत विष्णुपद प्रेम।
विघ्नरूप सिद्धी सकल, समझ यही दृढ नेम ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव! जो जितेंद्रिय हो और श्वास जीते, चित्त मुझमें रखता हो, योगी हो, स्थिरचित्त हो उसे ये सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ तब उद्धवजी बोले कि हे श्रीकृष्ण! कैसी धारणासे यह सिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धि कितनी हैं? इनका रूप क्या है? वह सब मुझसे कहो, क्योंकि तुम योगियोंको भी सिद्धियोंके देनेवाले हो ॥२॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! धारणा और योगके पारंगतोंने अठारह (१८) सिद्धि कही हैं। उनमें आठ मेरे आश्रय रहती हैं, वह मुझे ही प्राप्त होती है, अथवा जो मेरे सारूप्यको प्राप्त हैं उन्हें होती हैं; परंतु कुछेक न्यून हो और दश सिद्धि गुणोंका कार्य हैं, सत्त्वगुणका उत्कर्ष बढ़ाती हैं ॥३॥ उनको कहते हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा, ये तीनों देहकी सिद्धि हैं; प्राप्ति सिद्धि इंद्रियकी है, इंद्रियोंसे मिल इंद्रियोंके देवताओंका सङ्ग होना, परलोक और इस लोकके विषयोंके भोग देखनेकी सामर्थ्य तथा भूमिके गुप्त पदार्थका ज्ञान होना प्राकाम्य सिद्धि है; ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेके सामर्थ्यको ईशिता सिद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ गुणमें असङ्ग हो विषय भोग करे और सङ्ग दोष न लगे, उसे वशिता सिद्धि कहते हैं और जिसकी कामना करे वही प्राप्त हो, उसे प्राकाम्य सिद्धि

कहते हैं। हे उद्धव ! ये आठ सिद्धियां मेरे आश्रय रहती हैं ॥५॥ क्षुधा पिपासादिक शरीरमें न व्यापे, उनको अनूर्मिमत्व सिद्धि कहते हैं (१), दूरकी सब बातें सुननेमें भली प्रकार आवें इसका नाम दूरश्रवण सिद्धि है (२), दूरके सब पदार्थ और सर्व स्थान घर बैठे दीखें उसका नाम दूरदर्शनसिद्धि है (३), जहां मन जाय वहां देह सहित पहुँचना इसका नाम मनोजवसिद्धि है (४), जैसा रूप बनाना चाहे उसी प्रकारका रूप हो जाय इसका नाम कामरूप सिद्धि है(५), दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना इसका नाम परकायप्रवेशन सिद्धि है (६) ॥६॥ अपनी इच्छानुसार मरना, इसका नाम स्वच्छन्दमृत्यु सिद्धि है (७), देवता अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं उनको देखनेका सामर्थ्य इसका नाम देवांगना सह क्रीड़ानुदर्शन सिद्धि है (८), जो मनमें इच्छा हो वही वस्तु तत्काल प्राप्त हो, इसका नाम यथासंकल्पसिद्धि है (९), किसी स्थलमें आकाशका भंग न हो इसका नाम अप्रतिहताज्ञा सिद्धि है (१०), ये दश सिद्धियां सत्त्व गुणकी वृत्तिसे मिलती हैं ॥ ७ ॥ पांच सिद्धि तुच्छ हैं उसे कहते हैंः—तीन कालका ज्ञान होना, इसका नाम त्रिकालज्ञ सिद्धि है (१), शीत-उष्ण कुछ न लगना, इसका नाम अद्वन्द्व सिद्धि है (२), पराये मनकी बात जान लेना इसका नाम प्रचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धि है (३), अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिसे देहको किसी प्रकारकी हानि न हो, इसका नाम प्रतिष्टम्भ सिद्धि है (४) और कहीं पराजय न हो, इसका नाम अपराजय सिद्धि है (५) यह पांच क्षुद्रसिद्धि हैं ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! यह सब योगधारणाकी सिद्धि मात्र कही, अब ज्ञान धारणासे जो सिद्धि प्राप्त होती है, यह मैं आपके सामने वर्णन करता हूँ वह सुनो ॥ ९ ॥ सूक्ष्म मेरे रूपमें भूतसूक्ष्म अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सूक्ष्म तन्मात्राके आकारसे इस भूतसूक्ष्म उपाधिमान् मेरे स्वरूपमें धारण करनेसे सूक्ष्मरूपका उपासक पुरुष अणिमा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ ज्ञान शक्ति महत्तत्त्वरूपमें महत्त्वरूप मनमें धारण करे तो महिमा सिद्धिको प्राप्त हो। और भिन्न-भिन्न आकाशादिक भूतोंके ही रूपमें मन लगाये तो भूतोंकी गरिमा सिद्धिको प्राप्त हो ॥ ११ ॥ पञ्चभूतोंके परमाणु अतिसूक्ष्म हैं, वह मेरा रूप है, उनमें चित्त अनुरक्त करे, तब योगी परमाणु कालके रूपको प्राप्त होता है, इसीका नाम लघिमा सिद्धि है ॥१२॥ सात्त्विक अहंकार तत्त्वरूप मुझमें एकाग्रमन धरे तो सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता हो जाता है, मुझमें ही मन लगानेके प्रभावसे यह प्राप्ति सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ प्रकृतिसे क्रियाशक्ति रूप महत्त्व होती है, वह रूप है, उसमें मन लगाये तो सबसे उत्तम प्राकाम्य सिद्धिको प्राप्त हो॥१४॥ त्रिगुण मायाके नियन्ता अन्तर्यामी कालरूपी व्यापक मेरे रूपमें मन लगाये तो सब जीव और चर-अचर शरीरका नियन्ता हो और ईशिता सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ विराट् हिरण्यगर्भ और कारणसे चौथे तुरीय ब्रह्म भगवान् नारायणमें जो मन लगाये तो वह योगी मेरे धर्मको प्राप्त होता है, तब वशिता सिद्धिको पाता है ॥१६॥ निर्गुण ब्रह्ममें निर्मल मन रखे तो परमानन्दको प्राप्त हो, जहां सब कामना समाप्त होती हैं ॥ १७ ॥ अब गुणहेतुसिद्धि कहते हैं—कि श्वेतद्वीपके पति शुद्ध धर्ममय मेरे रूपमें मन लगाये तो मनुष्य शुद्धताको प्राप्त हो और उसे क्षुधापिपासा आदि यह छः ऊर्मी लहरी नहीं व्यापती॥१८॥आकाशरूप प्राण है, वह मेरा स्वरूप है उनमें मन लगाकर शब्दका चिंतन करे, तब वह आकाशमें भूतोंकी वाणी प्रगट दूरसे ही सुनता है ॥ १९ ॥ यह नेत्र सूर्यमें मिलाये, मनसे मेरा ध्यान करे तब सूक्ष्म दृष्टि हो विश्वको दूरसे ही देखे ॥ २० ॥ मन वायुके सङ्ग देहको मुझमें

संयुक्त करके जो मेरी धारणा करे तो इस धारणाके प्रतापसे जहां मन करे वहां ही देह चली जाय ॥२१॥ जब मेरे मनकी धारणासे धरे तब मेरे प्रभावसे जैसा रूप करना चाहे, वैसाही रूप करे, क्योंकि उन्हें मेरे योग बलका आश्रय है ॥२२॥ जो सिद्धि परायी कायामें प्रवेश करना चाहे वह आत्माका चिंतन करे, तब अपनी देह छोड़ प्राणरूप हो बाहरकी वायुमें प्रविष्ट हो वायुके संग परकायामें प्रविष्ट होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पसे दूसरे पुष्पमें अनायास चले जाते हैं ॥ २३ ॥ अब स्वच्छन्द मृत्युकी क्रिया कहते हैंः-योगधारणा करते समय प्रथम एँड़ीसे गुदाका द्वार दाबकर रोके, पीछे प्राणको हृदयमें ले आये, फिर हृदयमें ऊरुवक्षस्थलमें मिलावे, इसके पीछे कण्ठमें ले आये, फिर माथेमें लावे तब ब्रह्मरन्ध्रद्वारा इस देहको छोड़े और जिस स्थानमें जाना चाहे वहां जाय ॥ २४ ॥ और जो देवताओंके क्रीड़ास्थलमें विहार करना चाहे तो मेरी सत्वगुणरूपी मूर्तिका ध्यान करे, तब सत्वगुणके अंशसे वहां ही विमान समेत देवांगना आकर उपस्थित हो जाती हैं ॥२५॥ पुरुष मुझमें विश्वासकर बुद्धिसे मनोरथ करे, तब सत्यसंकल्परूप मेरे रूपमें मन संयुक्त करे, तब वैसे ही मनोरथको प्राप्त हो यथा संकल्प नाम सिद्धिको पाता है ॥२६॥ मैं सबोंका ईश्वर और नियन्ता हूँ, स्वतंत्र हूँ, मेरे भावको प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता, जैसे मेरी आज्ञा सब मानते हैं, वैसे ही उसकी आज्ञा भी सब मानते हैं, कोई उलङ्घन नहीं कर सकता, यह पुरुष सब गुण हेतु अप्रतिहताज्ञा नाम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥२७॥ अब तुच्छसिद्धि कहते हैं-मेरी भक्तिसे शुद्धसत्त्वरूपमय होकर योगी त्रिकालके ज्ञाता हैं, इस प्रकार मेरी धारणा करे, तब जन्म-मृत्यु सहित तीनों कालका-सा ज्ञान होता है और इसीसे दूसरेके चित्तकी सब बात जानी जाती है ॥२८॥ मेरे योगसे जिसका चित्त युक्त हो उसकी देह भोगमय होकर अग्नि और अनेक उपाधिसे उपहत नहीं होती है, जैसे जलजन्तुको जल बाधा नहीं करता, ऐसे ही उसको कोई बाधा नहीं कर सकता ॥२९॥ श्रीवत्स, अस्त्र, ध्वज, छत्र, चमरयुक्त मेरी विभूति अवतारका ध्यान करे तो कभी उसकी पराजय न हो ॥३०॥ इस प्रकार मेरी उपासना करे तो मेरी योग धारणा करनेसे पहले ही सब सिद्धि उसके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं ॥ ३१ ॥ अनेक भांतिकी धारणामें कष्ट बहुत हैं इस कारण एक ही धारणा ऐसी करे कि जिससे सब सिद्धि प्राप्त हों, उसे कहते हैं-जितेंद्रिय हो, दांत हो, श्वासजित् हो, मनोजित् हो, तुरीय ब्रह्म नारायणस्वरूप जो मैं हूँ, मेरी धारणा करनेवाले पुरुषको कौन सिद्धि दुर्लभ है ? ॥३२॥ जो मेरे साक्षात् स्वरूपकी धारणा करते हैं, उनको मेरी प्रीति होनेके कारण यह सिद्धि विघ्न करती हैं, इस लिए इन सिद्धियोंसे व्यर्थ काल न खोवे, अर्थात् इन सिद्धियोंकी चाहना न करे ॥३३॥ एक सिद्धि जन्मसे ही होती हैं, जैसे देवताओंका सिद्धिसहित ही जन्म होता है, और मन्त्रसे, औषधसे, तपसे जितनी सिद्धियां होती हैं, ये सब योगसे मिलती हैं, परन्तु इनसे सालोक्यादि मुक्ति नहीं प्राप्त होती ॥३४॥ इसलिए हे उद्धव ! सब सिद्धियोंका एक मैं ही प्रभु हूँ, क्योंकि उनकी उत्पत्ति और पालन मैं ही करता हूँ, सिद्धियोंका ही प्रभु नहीं किन्तु मोक्ष, सांख्य, ज्ञान, धर्म और ब्रह्मके जाननेवालोंका पालक भी हूँ, इसलिए सिद्धियोंकी अपेक्षा न रखकर मुझको प्राप्त होना यही योगका प्रधान फल कहा है ॥३५॥ मैं सब जीवोंका आत्मा हूँ, क्योंकि सबका अन्तर्यामी हूँ, सर्वत्र व्यापक हूँ, जैसे भूतोंमें महाभूत सर्वत्र व्याप्त है और आवरणरहित है ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सिद्धिकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दोहा-इस सोलह अध्यायमें, ज्ञानप्रभाव विचार ।
वह विभूति वर्णन करूँ, देत सदा फल चार ॥

उद्धवजी बोले कि हे श्रीकृष्ण ! तुम साक्षात् परब्रह्म अनावृत्त तथा स्वतंत्र हो, जिसमें सब भूतमात्रकी उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और जीवन होता है ऐसे तुम सबके कारण हो, आदि अंतसे रहित हो ॥१॥ हे भगवन् ! ब्राह्मण (जो वेदके तत्त्वको जानते हैं) सर्वत्र ऊँच-नीच पदार्थोंमें कारणरूप तुम्हारी उपासना करते हैं ❋ ॥२॥ जो आत्मतत्त्वको नहीं जानते, उनके जाननेमें तुम नहीं आते और जिन-जिन भावनाओंमें ऋषीश्वर भक्तिसे तुम्हारी उपासना करके सिद्धिको प्राप्त होते हैं, मुझसे उन पदार्थोंके नाम कहो ॥३॥ हे भूतभावन ! सब प्राणियोंके मध्य तुम गुप्त रीतिसे विचरते हो, तुम उनको देखते रहते हो, परन्तु सब भूत तुम्हारी मायासे मोहित होकर तुम्हें नहीं देखते ॥ ४ ॥ जिनमें गुप्त रहते हो, उन विभूतियोंको पूछते हैं । हे महाविभूतियोंके पति ! जो तुम्हारी विभूति भूमिसे स्वर्ग, पातालादि दिशाओंमें निश्चितकी हैं और जो विभूति तुम्हारे प्रतापसे संयुक्त हैं वह मुझसे कहो । तुम्हारे तीर्थरूप चरणारविंदोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपश्रेष्ठ परीक्षित् ! इस प्रकार उद्धवका प्रश्न सुन अति सन्तुष्ट हो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे प्रश्नके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! इसी भांति शत्रुओंसे युद्ध करनेकी इच्छा वाले अर्जुनने युद्धके समयमें प्रश्न किया था ॥६॥ यदि कोई कहे कि युद्धके समय इस प्रश्नका क्या प्रसंग था तो इसका उत्तर यह है कि राज्यके लिये अपने जातिवालोंका वध करना अनुचित, अतिनिन्दित और अधर्मरूप-जानकर कि मैं इन्हें मारूँगा, यह मरेंगे ऐसी करुणाव्याप्त बुद्धि होनेसे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त हो स्थित हुआ ॥७॥ तब मैंने युक्तिसे पुरुष श्रेष्ठ अर्जुनको समझाया कि कौन मारता है और कौन मृत्युको प्राप्त होता है ? उस उपदेशके प्रसंगमें अर्जुनने यह भी मुझसे पूछा था जैसे अभी तुमने पूछा ? अब उनसे जो मैंने वर्णन किया है वही तुमसे कहता हूँ ॥८॥ हे उद्धव ! इन सब प्राणिमात्रका आत्मा मैं हूँ, सुहृद ईश्वर नियन्ता मैं हूँ, और सब प्राणियोंमें मैं हूँ, एवं सबकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयकर्त्ता भी मैं ही हूँ ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति चलती-फिरती हैं, उनका भी योग, मन और कर्म मैं ही हूँ जो सबको वशमें करते हैं उनमें मेरा रूप है, अनन्त गुण हैं, उनमें समता गुण मेरा रूप है, गुणसंयुक्त पुरुषका स्वाभाविक गुण मैं हूँ ॥१०॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महतत्त्व है वह मैं ही हूँ, सूक्ष्मोंमें प्रथम जीव हूँ, दुर्जयोंमें मन हूँ ॥ ११ ॥ वेदोंका ब्रह्म मैं हूँ, मन्त्रोंमें प्रणव हूँ, अक्षरोंमें अकार हूँ, छन्दोंमें गायत्री हूँ ॥१२॥ सब देवताओंमें इन्द्र हूँ, आदित्योंमें विष्णु हूँ, रुद्रोंमें नीललोहित हूँ ॥१३॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु हूँ, देवर्षियोंमें नारद हूँ, राजर्षियों मनु हूँ, गायोंमें कामधेनु हूँ ॥१४॥

❋ शंका—भक्तोंके प्यारे भगवान्‌का पूजन करे, भजन करे, ध्यान करे और जो भगवान् की सेवा है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबको लिखी है ऐसा नहीं लिखा है कि ब्राह्मणही अकेला भगवान्‌का पूजन करे । हे ब्राह्मणोंमें उत्तमकुलभूषण ! तो फिर श्रीकृष्णसे क्यों उद्धवजीने कहा कि, हे भगवान् जिस विधिसे ब्राह्मण आपका पूजन करते हैं वह कहो हमको यह बड़ी भारी शंका है, क्योंकि ब्राह्मणके पूजनमें और विधि और शूद्रकी अलग है ? और भक्तिमार्गमें तो सबही एक विधि है और उद्धव परमभक्त थे, भक्तिमार्गकी पूजाका वृत्तान्त पूछा था ।

उत्तर—उद्धवने ब्राह्मणके शापसे यदुवंशियोंका क्षय देखकर ब्राह्मणोंको बहुत माना, क्योंकि श्रीकृष्णके देखते ब्राह्मणोंके शापसे यादवोंका नाश हो गया, श्रीकृष्णने कुछ सहायता नहीं की । इस वास्ते उद्धवजीने जाना कि ब्राह्मणोंके ऊपर भगवान्‌का भी कुछ वश नहीं चलता ।

सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव हूँ, पक्षियोंमें गरुड़ हूँ, प्रजापतियोंमें दक्षप्रजापति हूँ, पितरोंमें अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! दैत्योंमें दैत्योंका राजा प्रह्लाद मैं हूँ, नक्षत्र औषधियोंका पति प्रभु चन्द्रमा मैं हूँ, यक्ष राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैं हूँ ॥१६॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत हूँ, जलजन्तुओंमें प्रभु वरुण हूँ, प्रतापवानोंमें और दीप्तवन्तोंमें सूर्य हूँ, मनुष्योंमें नराधिप हूँ ॥१७॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा हूँ, धातुओंमें सुवर्ण हूँ, दण्डकर्त्ताओंमें यम हूँ, सर्पोंमें वासुकी हूँ ॥ १८ ॥ नागेन्द्रोंमें अनन्त शेषनाग हूँ, सींग तथा डाढवालोंमें सिंह हूँ, आश्रमोंमें संन्यास हूँ, हे निष्पाप ! वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूँ ॥ १९ ॥ तीर्थ और प्रवाहोंमें गंगा रूप मैं हूँ, स्थिर जलोंमें समुद्र मैं हूँ, आयुधोंमें धनुषधारियोंमें त्रिपुरका घाती महारुद्र मैं हूँ, निवासस्थानमें सुमेरु मैं हूँ, दुर्गम स्थलोंमें हिमालय मैं हूँ, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ मैं हूँ, ओषधियोंमें यव मेरा रूप है ॥ २० ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ हूँ; वेदार्थज्ञाताओंमें बृहस्पति हूँ, सेनापतियोंमें स्वामिकार्त्तिक हूँ, उत्तम मार्ग प्रवृत्तियोंमें ब्रह्मा हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ हूँ, व्रतमें हिंसारहित व्रत मैं हूँ, शोधकोंमें वायु, अग्नि, सूर्य जल, प्राणीरूप शोधक मैं हूँ, यह सदा पवित्रकारी हैं ॥ २३ ॥ योगीजनोंमें समाधि मैं हूँ, विजयकी इच्छावालोंका जो विचार है वह मैं हूँ; विवेकियोंमें आत्मा अनात्माकी विवेककारिणी विद्या मेरा रूप है, पांच प्रकारके जो ख्याख्यादिवादी हैं वह यह हैं–आख्याति, अन्यथाख्याति, शून्यख्याति, असत्ख्याति, और अनिर्वचनीयख्याति। इनमें अनेक प्रकार वाद-विवाद करनेवालोंका "यह इस प्रकारके हैं, वह उस प्रकारके" इस रीतिके जो अनेक विकल्प हैं वह मैं हूँ ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मैं हूँ, पुरुषों में स्वायंभुवमनु मैं हूँ, मुनियोंमें नारायण मुनि मैं हूँ, ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ ॥ २५ ॥ धर्मोंमें अभयदान मेरा ही रूप है, निर्भय स्थानोंमें आत्मनिष्ठा मैं हूँ, अति रहस्योंमें प्रियवचन और मौन मैं हूँ, मिथुन अर्थात् स्त्री-पुरुषोंमें ब्रह्मा मैं हूँ, जिनके दो अर्द्धभागोंसे स्त्री और पुरुष प्रगट हुए हैं ॥२६॥ जो पुरुष धर्ममें सावधान हैं उनका संवत्सररूपी काल मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ, महीनोंमें मार्गशीर्ष मैं हूँ और सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें अभिजित् मैं हूँ ॥२७॥ युगोंमें सत्ययुग मैं हूँ, धीरोंमें असित देवल मैं हूँ, वेदके विभागकर्त्ताओंमें द्वैपायन व्यास मैं हूँ, कवियोंमें शुक्राचार्य मैं हूँ॥ २८ ॥ प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयगति विद्या अविद्याका जाननेवाला वासुदेव मैं हूँ। हे उद्धव ! वैष्णवोंमें तुम मेरे रूप हो, किंपुरुषोंमें हनुमान् मैं हूँ, विद्याधरोंमें सुदर्शन मैं हूँ ॥२९॥ रत्नोंमें पद्मराग मैं हूँ, अतिसुन्दर वस्तुओंमें पद्मकोष मैं हूँ, दर्भजातियोंमें कुश मैं हूँ, घृतोंमें गौका घृत मैं हूँ ॥ ३० ॥ उद्यमी पुरुषोंमें लक्ष्मी मेरा रूप है, द्यूतोंमें छल करके जो ग्रहण करना है वह मेरा रूप है, क्षमावान् पुरुषोंमें क्षमा मैं हूँ, सत्यवादियोंमें सत्य मैं हूँ ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें इंद्रियबल और उत्साहबल मैं हूँ, भक्तोंमें भक्तिमें रूप कर्म मैं हूँ, जो नौमूर्ति भक्तोंकी पूजामें प्रगट हैं उन वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मामें आदिमूर्ति वासुदेव मैं हूँ ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोंमें विश्वावसु मैं हूँ, अप्सराओंमें पूर्वचित्ति मैं हूँ, पर्वतोंमें स्थैर्य हिमालय मैं हूँ ॥ ३३ ॥ जलोंमें उत्तम माधुर्यरस मेरा ही रूप है, तेजस्वियोंमें अग्नि मैं हूँ, सूर्य, चन्द्र और ताराओंमें कांति मैं हूँ, आकाशमें परानाम शब्द मैं हूँ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणके भक्तोंमें बलिराजा मैं हूँ, वीरोंमें अर्जुन मैं हूँ। हे उद्धव ! निश्चय करके सम्पूर्ण भूतमात्रकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं हूँ ॥ ३५ ॥ चरण,

वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इन पांच कर्मेंद्रियोंका गमन, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनन्द लेना यह कर्म मैं हूँ, त्वचा नेत्र जिह्वा श्रवण नासिका, ज्ञानेंद्रियोंके स्पर्श, चितवन, आस्वाद, सुनना, आघ्राण कर्म मैं हूँ, उनके अर्थ ग्रहण करनेकी शक्ति भी मैं हूँ ॥ ३६ ॥ विशेष कहकर अब सामान्यसे सब विभूति कहते हैं:—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पांच सूक्ष्ममात्र हैं, अहंकार महत्तत्त्व आदि ये सात प्रकृतिके विकार हैं, पञ्चमहाभूत और एकादश इंद्रिय यह सोलह तत्त्व हुए, एक पुरुष और प्रकृति दो यह हुए, इस प्रकार सब पच्चीस (२५) तत्त्व हुए। रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण, यह तीन गुण इनसे आगे जो परब्रह्म सब मैं हूँ, इनकी संख्या, इनका लक्षण सहित ज्ञान और उसका फल तत्त्वका निश्चय सब मैं ही हूँ ॥३७॥ मैं ही सबका ईश्वर हूँ, सब जीवरूप हूँ, मैं ही गुणीरूप हूँ, मैं ही क्षेत्ररूप और क्षेत्रज्ञरूप हूँ, इसलिये मुझ विना जीव, ईश्वर, गुणी, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, इत्यादिक भाव कहीं नहीं ॥ ३८ ॥ अहो ! तुम ऐसे संक्षेपसे क्या कहते हो, अच्छी भांति विस्तारसहित समझाकर कहो, तो इसका उत्तर यह देते हैं:—कि पृथ्वीके परमाणुकी संख्या कितने ही कालमें मैं करता हूँ और करके कहनेको भी समर्थ हूँ, परंतु मेरी जो विभूतियाँ हैं, उनकी संख्या नहीं की जाती, मैं अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंको सृजता हूँ, जब ब्रह्माण्डोंकी ही संख्या नहीं तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी संख्या कौन कर सकता है ? ॥३९॥ परन्तु तो भी संक्षेपसे विशेष कर विभूति कहता हूँ, कि जहां-जहां तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, मान और नेत्रोंका आनन्द, भाग्य, वीर्य, क्षमा, विज्ञान इत्यादि ये जो धर्म हैं, ये सब मेरा ही अंश हैं ॥४०॥ ये विभूतियां संक्षेपसे मैंने इसलिये कही कि ये मनका विकार हैं, परमार्थरूप नहीं, जैसे आकाशके फूल आदि वाणीमात्रसे कहे हैं, उनके तुल्य हैं ॥४१॥ पुरुष को उचित है कि सत्त्व गुण युक्त बुद्धिसे वाणीको रोके, मनका नेम करे, प्राणोंको रोके, इंद्रियोंका निरोध करके बुद्धिको रोके तब फिर संसारके मार्गमें न पड़े ॥ ४२ ॥ यदि पुरुष इंद्रियोंका और बुद्धिका संयमन नहीं करे तो दोष उपजता है, सो कहते हैं जो बुद्धिसे भली-भांति वाणी और मनका संयम नहीं करे तो उसके व्रत और ज्ञान सब क्षीण हो जाते हैं, जैसे कच्चे घड़ेका जल क्षण-क्षणमें क्षीण होता है ॥४३॥ इसलिये वचन, मन, प्राणको जीतकर मुझमें तत्पर हो, बुद्धि मेरे विषे युक्त करे क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष कृतकृत्य हो जाता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे विभूतिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

दोहा-इस सत्रह अध्यायमें साधन भक्ति उपाय।
हंसरूप धरि जो कही, सो वरणी यदुराय ॥

उद्धवजी बोले कि,हे कमलदल लोचन ! तुमने पहले कह दिया है कि धर्मरूप कर्मभक्तिका और मोक्षका साधन है, परन्तु इस प्रकार कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति मिल जाती है, ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, इस कारण वर्ण-आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित सम्पूर्ण पुरुषोंका स्वधर्म वर्णन करो कि वह धर्म जिस भांति करनेसे पुरुषोंमें तुम्हारी भक्ति उत्पन्न हो जाय सो श्रवण करनेकी इच्छा है, तुम्हें अवश्य वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ हे प्रभो ! हे महाभुज ! हे श्रीमाधव ! पहले आपने हंसरूप धारण

कर जो कर्म ब्रह्माजीसे कहा था वह परमसुखरूप धर्म निश्चय करके कहो ॥३॥ हे शत्रुनाशक ! बहुधा पहले बहुत कालसे सिखाया हुआ भी धर्म अब मनुष्यलोकमें न होगा ॥४॥ इस धर्मका वक्ता, कर्त्ता, रक्षक, तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा भूमिपर नहीं है । हे अच्युत ! हे प्रभो ! ब्रह्माजीकी सभामें भी तुम्हारे विना और नहीं, जहां मूर्तिमन्त वेदादिक हैं ॥५॥ हे मधुसूदन ! सब धर्मके कार्यकर्त्ता, सब धर्मके वक्ता रक्षक जब तुम इस पृथ्वीको छोड़ोगे तो नष्ट हुए धर्मोंको कौन कहेगा ? ॥६॥ क्योंकि सब धर्मके ज्ञाता तुम हो, इससे हे प्रभो ! तुम्हारी भक्ति जिस प्रकार करे, वह सब धर्म जैसे जिसका कर्त्तव्य है, वैसे ही मुझसे कहो ॥७॥ श्रीशुकदेवजी मुनि बोले कि, हे कुरुकुलभूषण परीक्षित् ! इस प्रकार भक्त उद्धवजीके पूछनेसे भगवान् हरि अतिसन्तुष्ट हो मनुष्योंका मरण धर्म दूर करनेवाला सनातन धर्म कहने लगे। श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्मरूप है और वर्णाश्रमोंके आचारवाले पुरुषोंको भक्ति आनन्दकारी है, उसको मैं कहता हूँ, तुम एकाग्रचित् होकर सुनो ॥८॥ पहले सत्ययुगमें मनुष्योंका वर्ण हंसरूप था, तब सब प्रजा जन्मसे ही कृतकृत्य थी, इसीसे कृतयुग नाम हुआ, और कर्म भी कुछ कर्तव्य था, वह कहते हैं ॥९॥ उस समय प्रणव ओंकार ही वेद था, चारों पावोंसे धर्म वृषभरूप धारण किये मैं था, ये यज्ञादिक कर्म नहीं थे एक तपस्यासे ही इंद्रियोंको स्थिर कर एकाग्रचित्त हो हंसरूप शुद्ध मेरा ध्यान करते थे ॥ १० ॥ हे महाभाग ! जब त्रेतायुग हुआ तब विराट् मेरे प्राणसे और हृदयसे वेदत्रयी विद्या प्रगट हुई उसके होता, अध्वर्यु, उद्गाता सहित त्रिरूप यज्ञ प्रगट हुआ, सो यज्ञ मेरा रूप है ॥११॥ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चारों वर्ण विराट् स्वरूपके मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे प्रगट हुए और भी जो जिसका स्वधर्म था, वह प्रगट हुआ ॥१२॥ गृहस्थका तो आश्रम जंघासे प्रगट हुआ, ब्रह्मचर्य्यका धर्म हृदयसे हुआ, वानप्रस्थ वक्षस्थलसे हुआ, संन्यास मस्तकसे प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ और सब वर्ण आश्रमके स्वभाव भिन्न-भिन्न हुए, जिसने नीचयोनिमें जन्म धारण किया उसका स्वभाव नीच हुआ, जिसने उत्तम योनिमें जन्म लिया उसका स्वभाव उत्तम हुआ ॥ १४ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, शुद्ध भाव , भक्ति, दया, सत्य सब ब्राह्मणका स्वभाव है ॥ १५ ॥ तेज, बल, धैर्य, शौर्य्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥१६॥ आस्तिकता, दान, निर्दम्भ, ब्राह्मणकी सेवा, द्रव्यसंग्रहमें अतृप्ति यह वैश्यका स्वभाव है ॥ १७ ॥ गायोंकी, ब्राह्मणोंकी और देवताओंकी निष्कपट सेवा करे, जिससे जो पावे उसीमें सन्तोष रखे यह शूद्रका स्वभाव है ॥१८॥ अशौच, मिथ्या वाणी, चोरी, नास्तिकता, वृथा कलह, काम, क्रोध, तृष्णा यह सब नीच जातिके स्वभाव हैं ॥१९॥ हिंसा न करे, सत्य बोले, चोरी न करे, काम, क्रोध, लोभ न हो क्योंकि सबसे बड़ा जातिका धर्म है ॥ २० ॥ अब चार आश्रमोंमें पहले ब्रह्मचारीके धर्म कहते हैंः— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके गर्भसे लेकर सब संस्कार हुए हों अर्थात् जन्म धारण करनेके उपरांत दूसरा जन्म गायत्री उपदेश होनेके पीछे गुरुके घर रहे, इन्द्रियोंका दमन करे, जब गुरु बुलावे, तब वेद पढ़े ॥ २१ ॥ मेखला, मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्षमाला, यज्ञोपवीत, कमण्डल, जटा इत्यादि सब धारण किये रहे तेलसे स्नान करे, दन्तधावन न करे, वस्त्र क्षारसे न धोवे, आसनको न रँगे, दर्भ धारण करे ॥२२॥ स्नान, भोजन, होम, जप, मूत्र, पुरीष जब करे तो मौन रहे; नख, रोम और क्षौर कर्म न करावे और कांखके उपस्थके केश दूर न करावे ॥२३॥

वीर्यस्खलन न करे आप ब्रह्मचर्यको धारण किये रहे और जो प्रमादसे स्वप्नमें वीर्य स्खलित हो जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करके गायत्रीका जप करे ॥ २४ ॥ अग्नि, सूर्य, आचार्य, गो, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, देवताओंकी पवित्र और एकाग्रचित्तसे उपासना करे और यतवाक् होकर जप करे ॥ २५ ॥ गुरुओंका मनुष्यबुद्धिसे सेवन न करे किन्तु मेरा स्वरूप जानकर सेवन करे, कभी अवज्ञा न करे क्योंकि संपूर्ण देवता गुरुओंमें वास करते हैं ॥२६॥ सांझ-सबेरे भिक्षा ले आवे, उसे गुरुके आगे धर और भी जो कुछ प्राप्त हो, उसे गुरुको समर्पण करे और जब गुरुजीकी आज्ञा हो संयमसे भोजन करे ॥ २७ ॥ जो गुरु कहीं जायँ तो उनके संग जाय, जब गुरु सोवें तो उनके चरण दाबे, जब बैठे तब सावधान हो हाथ जोड़ बहुत दूर न बैठे, आचार्यका आदर-सम्मान करे, अच्छी भांति सदा उपासना करे ॥ २८ ॥ इस प्रकार विषय भोगरहित होकर गुरुकुलमें वास करे और जबतक विद्या न पूर्ण हो तब तक अखंडित व्रत धारण किये रहे ॥२९॥ यह तो ब्रह्मचर्य आश्रमका सामान्य धर्म कहा, अब जो यह ब्रह्मलोकके जाननेकी इच्छा करे सो मेरी निष्ठासे ब्रह्मचर्य व्रत करे, उसे कहते हैं कि जो यह ब्रह्मचारी जहां मूर्ति धारण कर वेद रहते हैं ऐसे ब्रह्मलोकमें जाना चाहे तो गुरुके ही पास रहे, वेदाध्ययन करे, निष्काम ब्रह्मचर्य व्रत करे, अधिक क्या कहें ? अपना देहतक गुरुके समर्पण कर दे ॥ ३० ॥ अब पूजाके स्थल कहते हैं—अग्नि, गुरु, आत्मा, सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रखे, मुझसे भिन्न न जाने, इस प्रकार ब्रह्मतेजयुक्त निष्पाप मेरी उपासना करे ॥ ३१ ॥ स्त्रियोंका दर्शन, उनसे भाषण परिहास न करे और जो कहीं कोई स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर बैठे हों तो उनको न देखे, आप गृहमें न रहे ॥ ३२ ॥ यह धर्म सब आश्रमोंका है । शौच—मिट्टीसे हाथ पांव—धोवे, आचमन करे, स्नान, सन्ध्या, शुद्धभावसे तीर्थसेवन, तप, भिक्षा करे, परन्तु स्पर्श किसीका न करे, जो असम्भाष्य हैं उन नीचोंका त्याग करे ॥ ३३ ॥ हे कुरुनन्दन ! सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव रखे, मन वचन इन्द्रियोंको संयत करे यह नियम सब आश्रमोंका है ॥३४॥ इस प्रकार यदि व्रत रखे तो अग्निके समान तेजस्वी हो सब कर्म जला निर्मल हो मेरी भक्तिको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ यह निष्काम ब्रह्मचारीके लिये मोक्षका प्रहार कहा और जो सकाम हो वह वेदार्थविचार ब्रह्मचर्य छोड़ गृहस्थ आश्रम में आना चाहे तो गुरुको दक्षिणा दे आज्ञा ले और अभ्यङ्गादिक करके मेखला, दण्ड, मौजी, छोड़े (इस कर्मका नाम समावर्तन है) ॥ ३६ ॥ यहां दोनों पक्ष कहते हैं कि जो विवाहकी इच्छा हो तो गृहस्थ हो जाय, निष्काम हो तो वानप्रस्थ आश्रम ले अथवा संन्यास ले अर्थात् आश्रमसे आश्रममें जाय, आश्रम विना न रहे, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उस आश्रममें मेरी भक्ति करता हुआ विचरे और पिछले आश्रमसे पूर्वमें न आवे, अर्थात् संन्यासी गृहस्थ न हो ॥३७॥ जो गृहस्थ होना चाहे वह समावर्तन कर्मसे विवाह करे । गृहस्थ होकर लक्षणवाली अपने कुलसमान कुलकी कन्या बिवाहे; प्रथम तो अपने वर्णकी ब्याहे, पीछे और भी करना चाहे तो अनुक्रमसे और ब्याहे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन धर्म समान हैं अतः यज्ञ, अध्ययन, दान यह तीनों वर्णोंको समान हैं, परन्तु प्रतिग्रह अध्यापन, यज्ञ करना यह तीनों कर्म ब्राह्मणको ही करने उचित हैं ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहमें जप, यज्ञमें कृपणता आदि दोष जब देखे तो स्वामीसे छोड़े खेतमें पड़े कणसे आजीविका करे अथवा और किसी वस्तुसे आजीविका करे यज्ञ करे, करावे अथवा पढ़ावे । यह दो वृत्ति करे जो

इनमें भी हीनता दोष देखे तो उञ्छवृत्ति ही करे ॥ ४० ॥ ब्राह्मणका यह देह निश्चय ही तपस्याके कष्ट सहनेको उत्पन्न किया है, क्षुद्र कामको न करे तो परलोकमें अनन्त सुखब्राह्मणको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जो हाटमें अथवा क्षेत्रोंमें अन्न पड़ा रहे उसे बीनकर उसीसे निर्वाह करे और उसीसे सन्तोष रखे, उत्तम निष्काम धर्म करे, मुझमें चित्त रखे। घरमें तो रहे परन्तु बहुत आसक्त न हो, इस प्रकार शांतिको प्राप्त होकर रहना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे उद्धव ! दरिद्रीके लिये इस प्रकार निर्वाह करनेको कहा है किं जो ब्राह्मण दरिद्री हो और मेरी भक्ति करनेमें तत्पर हो उसका जो आपदासे उद्धार करते हैं, उन मनुष्योंका मैं थोड़े ही कालमें उद्धार करूँगा, जैसे समुद्रमें डूबते हुओंको नाव पार लगाती है, वैसे ही जो मनुष्य ब्राह्मणका निर्वाह करते हैं, मैं संसाररूप समुद्रसे उन मनुष्योंको निश्चय पार करूँगा * ॥४३॥ राजा हो तो उसका आवश्यक धर्म यही है कि जैसे पिताको कष्टसे छुड़ाता है तथा जैसे कीचड़में पड़े हाथीको निकालता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजाको दुःखसे उद्धृत करे, इसी प्रकार धैर्यवान् राजाको विपत्तियोंसे अपनी रक्षा आप करना उचित है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार राजा लोग इस लोकमें सब पाप दूर कर सूर्यके समान प्रकाशित विमानमें बैठ इन्द्रके सङ्ग आनन्द करते हैं ॥४५॥ यदि ब्राह्मण दरिद्रतासे दुःख पाता हो तो उसको उचित है कि वाणिज्यवृत्ति कर आपदासे छूटे, परंतु मदिरा (शराब) और रसादिक न बेंचे। यदि इसमें भी निर्वाह न हो तो क्षत्रियवृत्ति करे; परंतु नीच सेवाकी वृत्ति कभी न करे, यह ब्राह्मणका धर्म कहा ॥ ४६ ॥ अब क्षत्रियका धर्म कहते हैंः-जो आपदा आ पड़े तो वैश्यवृत्तिसे जीविका करे या मृगया करके जीवन धारण करे वा ब्राह्मणका रूप धर अध्यापनसे जीविका करे परंतु नीचकी सेवा न करे ॥४७॥ वैश्यको यदि आपदा पड़ जाय तो शूद्रकी वृत्ति करे, उसमें भी आपदा हो तो चतुरताकी क्रियासे जीविका करे, जब आपदा निवृत्ति हो जाय तो नीचवृत्ति छोड़ दे ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सबकी वृत्ति कही, अब गृहस्थका आवश्यक पञ्चयज्ञ कर्तव्य कर्म कहते हैं कि ब्रह्मयज्ञ करके तो ऋषियोंको सन्तुष्ट करे, श्राद्धमें स्वधासे पितृयज्ञ करे, होममें स्वाहा करके देवताओंका यज्ञ करे, बलिदानसे भूतयज्ञ करे, अन्न जलसे मनुष्योंको यथाशक्ति तृप्त करे, सबमें मेरी बुद्धि रखे यह कर्म सब अवश्य कर्तव्य हैं ॥ ४९ ॥ अब शक्तिके अनुसार कर्तव्य कर्म कहते हैं कि विना उद्यम अथवा उद्यमसे पाया हो और शुद्ध हो तो धनसे जिसमें कुटुम्बको पीड़ा न हो वैश्य ही न्यायसे यज्ञोंको

---

* शंका–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि हमारा भजन करनेवाले ब्राह्मणको दुःख-दारिद्रय आदि अनेक संकटसे जो कोई छुड़ाता है, उस छोड़ानेवाले मनुष्यको हम बहुत शीघ्र दुःख-दारिद्रयसे छुड़ा देते हैं, इस बातमें यह शंका होती है कि अपने भजन करनेवाले ब्राह्मणको आप दुःख-दारिद्रयसे क्यों नहीं छुड़ाते, दूसरेकी सहायता क्यों कराते हैं ?

उत्तर–जब बड़े-बड़े पाप ब्राह्मणलोग करते हैं तो उन पापोंसे ब्राह्मणोंको दुःख दारिद्रय होता है और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रको थोड़े ही पापोंसे दुःख होता है, इस बातका भगवान्ने विचार किया कि हम शीघ्र ब्राह्मणोंको अपना भजन करनेवाला जानकर दुःख–दारिद्रयसे छुड़ा देंगे तो ब्राह्मण और अभिमान करके पाप करेंगे और जान लेंगे कि, भजनके प्रतापसे दुःखनाश जल्दी हो जाता है फिर संसारका सुख क्यों नहीं भोगे, हमारा पाप क्या करेगा ? ऐसा विचार कर ब्राह्मणोंका मान नष्ट करनेके लिये जबतक ब्राह्मण पापसे छूटता तबतक उस ब्राह्मणके दुःख-दारिद्रयको दूसरे मनुष्यसे दूर कराते है, जिससे ब्राह्मणोंको विदित हो जाय कि हम भगवान्का भजन करते है तो हमको पापी जानकर हमारे दुःख दारिद्रयका नाश नहीं होता तो हमारा पाप हमारे पास न होता तो शीघ्र ही भजन प्रभावसे ईश्वर हमारे पास दुःखका नाश कर देते अतः अब पाप कभी नहीं करेंगे ऐसा विचार करके कि, ब्राह्मण पापबुद्धिको त्याग दे, इसलिये दूसरेसे ब्राह्मणका दुःख दारिद्रय नाश करनेके लिये श्रीकृष्णने कहा ।

करे ॥ ५० ॥ कुटुम्बमें आसक्त न हो, किन्तु मेरे भजनमें सावधान रहे; इस संसारप्रपञ्चको मिथ्या जाने, स्वर्गको मिथ्या माने, आत्माको ही केवल सत्य जाने ॥ ५१ ॥ पुत्र, स्त्री, कुटुम्बी, बन्धु इत्यादिकोंका सङ्ग यात्रा करनेवालोंके सङ्गके समान है, जैसे निद्रामें स्वप्न देखते हैं और जागते ही नष्ट हो जाते हैं, वैसेही देहके नष्ट होनेपर यह सब चले जाते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार घरमें विचार करता अतिथिकी भांति रहे, 'यह मेरा घर है' ऐसा अहंकार न रखे; क्योंकि अहंता और ममता छोड़नेसे ही पुरुष बन्धनसे छूटता है ॥ ५३ ॥ गृहस्थके जो सब धर्म कहे हैं उनसे मेरी पूजा करे, मुझमें भक्ति करे और गृहस्थाश्रममें रहनेके उपरांत वानप्रस्थ होकर जो सन्तान हो तो संन्यास ले ॥ ५४ ॥ जो पुरुष केवल घरमें ही आसक्त हैं, पुत्र-वित्तमें प्रीति कर स्त्रीके वश रहते हैं वे महादीन हैं, मूर्ख हैं और अहंता ममतासे बँधे हैं ॥ ५५ ॥ मेरी माता और मेरा पिता वृद्ध हैं, स्त्री छोटी है, बालक छोटे हैं, यह मेरे विना कैसे जीवन धारण करेंगे ? हम विना यह अनाथ दुःखी हो जायँगे इस प्रकार जो सोचते हैं ॥ ५६ ॥ और ऐसे गृहकी आशा करके विक्षिप्तमन हो बुद्धि मूढ़ होनेसे स्त्री पुत्रादिकोंका ध्यान करते रहते हैं, वे पुरुष कभी तृप्त न हो मरनेके उपरांत अत्यन्त तामसी योनिमें पड़ते हैं ॥ ५७ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे गृहस्थाश्रमब्रह्मचर्य विभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दोहा–अष्टादश अध्यायमें, वानप्रस्थ संन्यास ।
कहूँ दोउनके धर्म मैं, करहु यही अभ्यास ॥

श्रीभगवान् बोले कि, जब आयुका तीसरा भाग आये, अर्थात् सौ वर्षके आयुके हिसाबसे पिछत्तर (७५) वर्ष पूरे हो तो पुत्रोंको घर सौंपकर वनमें वसे। यदि स्त्री संग आये तो उसे भी वनमें रखे, नहीं तो वह पुत्रके पास रहे, आप वनमें शांत होकर रहे ॥ १ ॥ कन्द, मूल, फलोंसे आत्माको तृप्त करे, वल्कल वस्त्र पहने, तृण, पत्ते और मृगचर्म धारण करे, यह सब वनकी वस्तु अति पवित्र हैं ॥ २ ॥ केश, रोम, नख, दाढ़ी, मूछ दूर न कराये और इनको धोवे भी नहीं, जलमें तीन काल स्नान करे, भूमिमें शयन करे॥३॥ ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि तापे, वर्षामें जलवृष्टि सहे, जाड़ेमें कण्ठतक जलमें मग्न रहे, इस प्रकार तप करे ॥ ४ ॥ अग्निसे पका हुआ पदार्थ खाय या समयके पक्व फलादि खाय; ओखली व पत्थरसे जो कुटी हो वह वस्तु खाय, दांतसे कुटी वस्तुको न खाय ॥ ५ ॥ अपनी सब आजीविकाकी वस्तु आप ही ले आये और देशकालका बल देखे, पहला संग्रह न रखे, जब नवीन अन्न प्राप्त हो जाय तो पुरानेका त्याग करे ॥ ६ ॥ वनकी वस्तुके चरु पुरोडाससे देवताओंका यज्ञ करे, वनमें आश्रम बनाकर रहे परन्तु वेदोक्त पशुसे मेरा यजन करे ॥ ७ ॥ पूर्ववत् नाम, गृहस्थाश्रम सरीखे अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य यज्ञ इतना ही वेद गृहस्थाश्रमोंको अनुष्ठान कहा है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जीवनतक तपस्या करनेसे जिसका मांस सूख जानेसे सम्पूर्ण देहमें नसें दिखायी देने लगें वह वानप्रस्थ तपोमय मेरा आराधन करनेसे प्रथम ऋषिलोकसे महर्लोकमें जाय, इसके उपरांत क्रमसे मुझे भी प्राप्त हो ॥ ९ ॥ इतने कष्टसे प्राप्त हुई मोक्ष फलदायक तपस्या तुच्छ काममें न लगाये, जो लगाये तो उससे मूर्ख

कौन है ? ॥१०॥ इस प्रकार सम्पूर्ण धर्म निष्काम करे तो निश्चय मोक्ष हो जाय और जो आयुके तीसरे भागमें वैराग्य थोड़ासा उत्पन्न हो तो संन्यास ले, यदि शरीरका सामर्थ्य पहले ही घट जाय तो विरक्त होकर रहे, संन्यास ले, और जो विरक्त भी न हो, उसे क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि, जब यह धर्मके नियम करनेमें असमर्थ हो, वृद्धावस्था हो तो अग्निहोत्रकी अग्नि आपमें रखकर चित्त मुझमें स्थिर कर अग्निमें प्रविष्ट हो शरीरको छोड़ दे ॥ ११ ॥ और जो विरक्त हो वह कर्मोंका फल तथा देवताओंके लोकको नरकके समान जाने, ऐसा करनेसे यह सब अग्निहोत्रादिक कर्म छोड़ अच्छी भांति संन्यास ले ॥ १२ ॥ संन्यासके आरंभके उपदेशके अनुसार मेरा पूजन करे, ऋत्विजोंको सर्वस्व दे, अग्निहोत्रको अपने प्राणोंमें प्रविष्ट कर आप निरपेक्ष हो संन्यास ले ॥ १३ ॥ जब ब्राह्मण संन्यास लेता है तो देवता स्त्री पुत्ररूप होकर उसको इस कारण विघ्न करते हैं कि यह हमारी अवज्ञा करके आगे चलना चाहता है, परन्तु तो भी पुरुष उन विघ्नोंको लांघ संन्यास ग्रहण करे, उनके विघ्न न माने ❁ ॥ १४ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र पहनना चाहे तो जितनेसे कोपीन ढके उतना वस्त्र पहने और कुछ धारण न करे, एक दण्ड धारण करे, एक जलपात्र अर्थात् कमण्डलु अपने पास रखे और कुछ नहीं ॥१५॥ पृथ्वीमें देखकर पांव धरे, वस्त्रसे छना जल पान करे, सत्य वचन बोले और आचरण मनमें विचार जब शुद्ध मन हो तब करे ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! वचनका दण्ड मौन रहना, देहका दण्ड सकाम कर्म नहीं करना, चित्तका दण्ड प्राणायाममें स्थिरता, जिसके यह दण्ड नहीं वह बांसके दण्डका संन्यासी कहलाता है ॥१७॥ ब्राह्मणोंमें ही प्रतिग्रह, यज्ञ, अध्ययन, शिलोञ्छवृत्ति यह चार वर्ण होते हैं, उनके घर भिक्षा करे और जो निंदित हो उसके घर भिक्षा न करे, यहांसे मुझे यह अलभ्य लाभ होगा, इस उद्वेगसे रहित सात घर भिक्षा करे, जो कुछ प्राप्ति हो उसीमें संतोष करे ॥१८॥ भिक्षा लेकर जहां जलाशय हो, वहां जाय और पांव धो, आचमनकर, मौन होकर मार्जन करे, मार्गके दोषकी शुद्धि करे, पीछे विभाग कर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य-भक्तोंको समर्पण करे, थोड़ा-थोड़ा अलग करके रखे, बाकी सब भोजन करे ॥ १९ ॥ अब एक दूसरी क्रिया और भी है कि संपूर्ण पृथ्वीमें फिरे, परन्तु सङ्ग किसीका न करे, जितेंद्रिय रहे, आत्मामें ही सन्तुष्ट धीर और समदृष्टि हो ॥ २० ॥ एकांत निर्भय स्थलमें रहे, मेरी भावनासे चित्त निर्मल रखे, आत्मामें और मुझमें भेद नहीं देखे, अभेदसे एक आत्मा विचारे, ऐसा विचारशील ॥२१॥ ज्ञाननिष्ठासे अपने बन्ध-मोक्षका विचार करे (इन्द्रियोंके विक्षेपको बन्ध कहते हैं और इन्द्रियोंके संयमको मोक्ष कहते हैं) ॥ २२ ॥ इन्द्रियोंको निग्रह करके मुझमें चित्त रखे, तुच्छ कामनाओंसे विरक्त रहे तो मुनि अति उत्तम आत्म सुखको प्राप्त हो सर्वत्र स्वेच्छापूर्वक विचरे॥२३॥नगर, ग्राम, व्रजमें भिक्षाको जाय, जहां कहीं बहुतसे मनुष्योंका संग आया

❁ शंका–जो ब्राह्मण वैराग्यमें मन लगाकर संन्यास लेनेकी इच्छा करते हैं उनके विघ्न स्त्री आदि परिवार कैसे करेंगे ? क्योंकि मन कच्चा हो [illegible] तो जो चाहे सो विघ्न कर दे और जो मन पक्का होकर वैराग्यमें लग गया तो किसीका किया विघ्न नहीं हो सकता ?

उत्तर–भाई, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बसे उत्पन्न हुई जो फांसी है उसको सब चर–अचर जीव जन्तु काटा चाहें तो किसीकी काटी नहीं कट सकती, यदि कोई महात्मा काटनेकी इच्छा करे तो बड़ी कठिनतासे वह फांसी कट सकती है, क्योंकि स्त्री पुत्रके मोहमें पशु, पक्षी भी बंध गये [illegible] तो मनुष्य बंध गया तो क्या आश्चर्यकी बात है इसलिये श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा कि ब्राह्मणका मन वैराग्यमें लगा हो तो भी स्त्री पुत्र आदि परिवार संन्यासमें विघ्न करते हैं ।

हो या यात्रियोंका संग हो वहां भिक्षाको जाय, पृथ्वीमें जो पुण्य देश, नदी, पर्वत, वन, आश्रम हैं वहां फिरे ॥ २४ ॥ वानप्रस्थके आश्रममें जाकर नित्य भिक्षा करे, उसका अन्न शुद्ध होता है; उससे सत्त्व शुद्ध होता है तो शीघ्र ही सिद्धि मिलती है और मोह सम्पूर्ण घट जाता है ॥ २५ ॥ गृहस्थके घर उत्तम सामग्री मिष्टान्न पाये, वह भिक्षा छोड़ उञ्छवृत्तिके अन्नकी भिक्षाको मन कैसे चले ? तो कहते हैं कि इन मिष्टान्नादिकोंको वस्तु करके न देखे, इससे नाशको प्राप्त होता है, इस लोक तथा परलोकमें मन आसक्त न करे, मिष्टान्नादिकके लिये उपाय न करे ॥२६॥ जो यह जगत् और शरीर मन, वचन प्राणसे युक्त हैं, अहंता ममताके धर्म यह आत्मामें सब मायामात्र है, यथार्थ नहीं, ऐसी युक्तियोंसे आत्मनिष्ठ हो फिर देहादिकका स्मरण न करे, क्योंकि स्मरणसे वैराग्यमें प्रतिबन्ध होता है ॥२७॥ अब परमहंस धर्म कहते हैं:—एक वैराग्यसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पूर्ण ज्ञानी अथवा मुक्ति भी न चाहने वाले मेरी दृढ़ भक्ति करनेवाले भक्त दण्डादिककी आवश्यकता वाले आश्रम धर्मोंकी आसक्ति त्यागकर जितना अपनेसे हो सके उतना आश्रम सम्बन्धी धर्म करें; परन्तु अत्यन्त उसमें लिप्त न हों ॥ २८ ॥ विवेकी होनेपर भी बालकके समान फिरते हैं, मान-अपमानसे शून्य रहते हैं, अति चतुर हैं, परंतु तो भी जड़की भांति रहते हैं, फलका अनुसन्धान नहीं रखते वे ही बुद्धिमान् हैं, उन्मत्तके समान वेदके धर्मोंमें निष्ठ हैं परन्तु कुछ आचारका नियम नहीं है ॥२९॥ कर्म करना ही मुख्य है, वेदके वादमें आसक्त न हो, पाखण्डी न हो, केवल तर्क ही सब जगह न करे और जहां प्रयोजन विना वाद होता हो वहां किसीका पक्ष न करे ॥ ३० ॥ किसी मनुष्यको उद्विग्न न करे, न मनुष्योंसे आप उद्विग्न हो, अपमान किसीका न करे परंतु आप अपमान सह ले, इस देहके लिए पशुके समान किसीसे वैर न करे ॥३१॥ क्योंकि सबमें आत्मा एक ही है वैर किससे करे ? ऐसे समझकर निवृत्त हो, जैसे जलके पात्र अनेक होते हैं और उनमें अनेक चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब दीखते हैं, परन्तु चन्द्रमा एक ही है, इसी प्रकार आत्मा भी एक ही है और अनंतसा भासता है ॥ ३२ ॥ और जो समय-समयपर भोजन न मिले तो खेद न करे, पावे तो हर्ष न करे, धैर्य रखें, क्योंकि प्राप्ति-अप्राप्ति दोनों दैवाधीन है ॥ ३३ ॥ आहार तो अवश्य चाहिये, जिससे जीवन हो। प्राणधारणका प्रयोजन यह है कि तत्त्वको विचारे, जिससे मुक्त हो ॥ ३४ ॥ ईश्वरेच्छासे जो कुछ मिले वही भक्षण करे, भला हो वा बुरा। इसी प्रकार मुनि भी वस्त्र, शय्या जैसी पावे उसे ही ग्रहण करे ॥३५॥ जैसे मुझे कुछ चाहना नहीं परन्तु लीलापूर्वक धर्म करता हूँ, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी आसक्ति छोड़ शौच, आचमन, स्नान और नियम भी करे, विधिके वश होकर न करे, ज्ञानदृष्टि रखकर करे ॥३६॥ ज्ञानीको भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो होती है वह पहले ही मेरे ज्ञानसे नष्ट हो जाती है, यद्यपि देह गिरने तक कभी-कभी आहारदिकमें भेदप्रतीति देखी जाती है, परन्तु तो भी वह अयथार्थरूप जानी हुई है; देहके गिरनेपर मुक्ति हो जाती है ॥३७॥ अब केवल वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा रखनेवालेका कर्तव्य कहते हैं कि जो यह गृह पुत्र आदि सबको दुःखरूप जान वैराग्ययुक्त हो ज्ञानकी इच्छा करता हो, मेरा धर्म भी कुछ जानता हो वह उत्तम गुरुका सेवन करे ॥३८॥ जबतक ब्रह्मज्ञान न मिले तबतक श्रद्धा और भक्ति रखकर ईर्षा छोड़ गुरुको मेरा ही स्वरूप जान अत्यंत आदर-सत्कारसे उसकी सेवा करे ॥ ३९ ॥

अब अधिकार विना जो संन्यास लेता है, उसकी निंदा करते हैं। इन्द्रियोंका निग्रह न किया हो, बुद्धि अति आसक्त हो, ज्ञान वैराग्यसे रहित हो ऐसा जो संन्यास लेता है, वह संन्यास जीविकाके अर्थ है, इसी कारण निंदित है ॥४०॥ वे अधर्मी संन्यासी हैं, जिन्होंने देवताओंकी वंचना की है, जो गृहस्थ धर्ममें देवता-अतिथिका पूजन करना छोड़ दिया, संन्यास धर्म भी नहीं करते इससे सबकी अवज्ञा ही करते हैं, इनकी वासना दग्ध नहीं और आत्मरूप हृदयमें स्थित मेरी भी वंचना करते हैं, इसी लिये इस लोक और परलोकसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ संन्यासीका मुख्यधर्म शम और अहिंसा है, वानप्रस्थका मुख्य धर्म तपस्या और विचार है, गृहस्थका मुख्य धर्म प्राणिमात्रमें दया, रक्षा और देवताओंका यज्ञ है और ब्रह्मचारीका धर्म यही है कि गुरुओंकी सेवा करे ॥४२॥ यहां गृहस्थका और भी धर्म कहते हैंः-ब्रह्मचर्य, तप, शौच, संतोष, प्राणिमात्रसे सुहृदता और ऋतुके दिन स्त्रीसंग करे, यह गृहस्थके धर्म हैं, मेरी सेवा करनी तो सबका ही धर्म है ॥४३॥ हे उद्धव ! इस प्रकारके स्वधर्मसे मेरा नित्य भजन करे और स्त्री पुत्रादिकोंमें प्रीति न रखे, प्राणिमात्रमें मेरी भावना रखे तो उस पुरुषको शीघ्र ही मेरी भक्ति मिल जाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! ऐसी अव्य-भिचारिणी भक्तिसे सब लोकके महेश्वरको जो सबकी उत्पत्ति, पालन और प्रलयका कारण ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त हो जाता है ॥४५॥ इस प्रकार स्वधर्मसे शुद्धचित्त होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है, विज्ञान और वैराग्ययुक्त होकर शीघ्र मुझे प्राप्त होगा ॥४६॥ अब सबको निर्धार तात्पर्य कहते हैं कि वर्णाश्रमवालोंका यह आचाररूप धर्मका फल पितृलोककी प्राप्ति करानेवाला है, यही धर्म भक्तिसे मुझे समर्पण करे तो परम फल मोक्षानंदको प्राप्त हो ॥ ४७ ॥ हे साधो ! यह सब धर्म मैंने तुमसे कहा, जो मुझसे पूछा था, जो भक्त स्वधर्म संयुक्त होकर इसे करे, वह मेरे परब्रह्मरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे वनस्थसंन्यासधर्मनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

दोहा-उन्निसवें अध्यायमें, पूर्वधर्म निर्वाह ।
सो सब वर्णन करत हूँ, सुनो सहित उत्साह ॥

श्रीभगवान् बोले कि, जिसको विद्या और श्रवण द्वारा आत्मतत्त्वका अनुभवतक ज्ञान प्राप्त हो गया है, वह प्रपंचकी निवृत्तिका साधन मुझमें मायामात्र जाने और ज्ञानके साधन सब छोड़े उसको विद्वान संन्यास कहते हैं॥१॥ज्ञानी पुरुषका आत्मरूप मैं ही प्रिय हूँ, उसको और स्वार्थका हेतु कुछ नहीं है, पर स्वार्थका हेतु मुझे ही चाहते हैं इससे स्वर्ग और मोक्ष तथा और भी अर्थ मुझ विना उन्हें प्रिय नहीं, इस कारण उसका न कुछ कर्तव्य है, प्राप्त करना है ॥२॥ यहां ज्ञानका अनुभव प्रमाण बताते हैं, ज्ञान-विज्ञानसे जो सिद्धिको प्राप्त करना है, श्रेष्ठ स्थानोंको जानते हैं इस कारण मुझे ज्ञानी अतिप्रिय हैं, वे ज्ञानसे ही मुझे हृदयमें धारण किये रहते हैं ॥३॥ तप, तीर्थ, जप, दान और पवित्र साधन उस सिद्धिको नहीं करते जो सिद्धि ज्ञानके लेशसे होती है * ॥४॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम ज्ञानके रूपको जान ज्ञान-विज्ञानयुक्त

* शंका-तप, तीर्थ, जप, दान, आदिक जो अनेक-अनेक सुख देनेवाली क्रिया है, उन सबको त्यागकर केवल ज्ञानको ही श्रीकृष्णने बड़ा क्यों कहा । उत्तर-जितने संसारमें तप, तीर्थ आदि उत्तम क्रिया कर्म हैं, वे सब बहुत जन्ममें फल देते हैं, क्योंकि जप शीघ्र फल नहीं देता तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे स्वर्ग नहीं प्राप्त होता और जिस समय शरीरमें ज्ञान उत्पन्न होगा उसी समय अनेक जन्मोंका दुख-चूर होकर शीघ्र सुख प्राप्त होगा और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णने

होकर भक्तिसे मेरा भजन करो ॥ ५ ॥ सब यज्ञोंके स्वामी और आत्मा मुझको अपने आपमें ही ज्ञान व विज्ञानरूप यज्ञसे भजन करके मुनिगण मेरे रूपकी सिद्धि पा चुके हैं ॥६॥ इसलिये तुम भी इसी ज्ञानसे धर्ममें प्रवृत्त हो। हे उद्धव! यह देह और इन्द्रियोंके विकार सब मायिक हैं, परमार्थ वस्तु नहीं हैं, यह विकार देहके पहले भी आत्माके नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, मध्यमें हैं सो भ्रम जानिये। आत्मा शुद्ध है, जन्मादिक भी जो देखे जाते हैं, वे देहके ही हैं, कुछ आत्माके नहीं हैं, देहको जन्म-मरण है, देह भी मायारूपी है, देहके आदि-अन्त जो ब्रह्म हैं वे मध्यमें रहते हैं, जब देह ही नहीं तो सब ब्रह्म होते हैं तो फिर देहके जन्ममरण कहांसे हो सकते हैं? जब यथार्थसे देहके भी जन्म-मरणादिक नहीं, सब ब्रह्मरूप हैं तो ब्रह्म न जन्मता है न मरता है, निर्विकार ब्रह्म ही है, इसमें क्या करना? ॥ ७ ॥ उद्धवजी बोले कि हे विश्वेश्वर! हे विश्वमूर्ते! जिस प्रकार निश्चय हो वैसे ही वैराग्य युक्त और विज्ञानयुक्त पुरातन विशुद्ध ज्ञान तुम कहो और जिसको ब्रह्मादिक खोजते हैं, ऐसे भक्ति योगको कहो ॥८॥ हे ईश्वर! इस घोर संसार मार्गमें तीन तापसे तपा हुआ मुझे तुम्हारे चरण द्वन्द्वरूप छत्रके अतिरिक्त और शरण नहीं दीखती, यह छत्र केवल छाया ही नहीं करता बरन् सब ओरसे अमृत बरसाता है ॥ ९ ॥ हे महानुभाव! यह पुरुष इस संसाररूप बिलमें गिरा हुआ है और कालरूपी सर्पने इसे काट लिया है, तुच्छ सुखोंमें बहुत तृष्णा है, ऐसे इस जनका कृपापूर्वक उद्धार करो और मोक्षरूप अपने वचनामृतसे सींचो ॥१०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे भरतवंशावतंस परीक्षित्! जब इस प्रकार प्रार्थना की तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! इसी भांति पहले राजा युधिष्ठिरने हमारे सबके सामने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहसे पूछा था ॥११॥ भारतयुद्ध निवृत्त होनेके उपरान्त बन्धुवधसे व्याकुल हो राजा युधिष्ठिरने पूछा ॥१२॥ वहां भीष्मने जो धर्म युधिष्ठिरसे वर्णन किया वह हमने भी सुना, वही हम तुमसे कहते हैं जो ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य, श्रद्धा भक्तिसे संयुक्त है ॥ १३ ॥ यहां प्रथम ज्ञान कहते हैं, प्रकृति पुरुष और महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये नौ तत्त्व हुए और एकादश इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, तीन गुण ये सब मिलकर अट्ठाईस (२८) तत्त्व हुए, ये सब प्राणियोंमें व्याप्त हैं, ज्ञानसे देखे और इन तत्त्वोंमें भी एक परमात्माको जिस ज्ञानसे व्याप्त देखे, वह निश्चय मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ देखनेमें आते हैं, वैसे यह पदार्थ देखनेमें नहीं आते, केवल एक परब्रह्म देखनेमें आता है, वही ज्ञान-विज्ञान कहा जाता है और उत्पत्ति, प्रलय, स्थित होनेसे पदार्थ त्रिगुणात्मक नाशवान् है ऐसा देखे ॥१५॥ यदि कोई कहे कि, सब ब्रह्मरूप ही है तो जन्मादि क्यों होता है? उत्पत्ति तथा दूसरे रूपकी प्राप्तिके मध्य सबका आश्रय कारण होनेसे जो कार्य और कार्यांतरमें रहता है, उत्पत्तिमें व्याप्त होता है और इनके प्रलयमें जो अवशेष रहता है वही ब्रह्म है, उसे ही देखे ॥ १६ ॥ अब विज्ञान कहकर वैराग्य कहते हैं—वेद, प्रत्यक्ष परंपराकी प्रसिद्धि और अनुमानसे यह प्रपञ्च मिथ्या है, अद्वैत ही सत्य है, जैसे यह दृश्य ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि ब्रह्मसे उत्पन्न है, जो जिससे उत्पन्न है, वह उससे भिन्न नहीं जैसे मिट्टीके

अपना और उद्धवका समागम थोड़े दिनोंका समझा, इसलिये अपने परममित्र उद्धवको सुख होनेके निमित्त ज्ञानकी उपासना बतायी, क्योंकि श्रीकृष्णके वियोगका दुःख जप, तप, तीर्थ करनेसे दूर नहीं हो सकता और उस दुःखको ज्ञान बहुत शीघ्र दूर कर सकता है, इसलिये जप-तपको त्यागकर श्रीकृष्णने ज्ञानको श्रेष्ठ कहा।

बने घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं, इस प्रकार भ्रमरूप द्वैत जानकर विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ कदाचित् स्वर्गादिकमें सुखभोग हैं, वहांकी इच्छा हो तो विरक्त होना किस प्रकार सम्भव है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि स्वर्गादिक ब्रह्मलोकतकका सुख भी इसी लोकके समान पंडित जन दुःखरूप मिथ्या ही देखते हैं, क्योंकि यह विनाशी कर्मोंके फल हैं ॥ १८ ॥ अब वैराग्य कहकर भक्ति कहते हैंः-हे निष्पाप उद्धव! मैंने भक्ति योग पहले भी तुमसे कहा था, और अब फिर अपनी भक्तिके परम कारणसे प्रीतियुक्त तुमसे कहता हूँ ॥१९॥ हे उद्धव! प्रथम अमृतरूप मेरी कथामें श्रद्धा हो, कथा सुनने में आदर हो, सुननेके उपरांत निरंतर मेरा कीर्तन करे ॥ २० ॥ मेरी पूजामें तत्पर हो, सर्वांगसे नमस्कार करे, आदरपूर्वक मेरे भक्तकी अधिक पूजा करे, सब प्राणिमात्रमें मेरी बुद्धि रखे ॥ २१ ॥ लौकिक कार्योंको मेरे लिये करे, वचनसे मेरे गुणानुवाद कहे, मन मेरे रूपमें ही अर्पित करे, सब कामनाओंका त्याग करे ॥२२॥ मेरे लिये अर्थका त्याग करे, भोग और सुखका त्याग करे, विषय भोग न करे, यज्ञ, दान, होम, जप, तप, सब मेरे लिये ही करे ॥ २३ ॥ हे उद्धव! इस प्रकार धर्मसहित जो मनुष्य मुझमें आत्मनिवेदन करते हैं, उन मनुष्योंको प्रेमलक्षणा भक्ति उत्पन्न होती है, फिर उनको कुछ करना शेष नहीं रहता ॥ २४ ॥ क्योंकि जब शांत सत्त्वगुणसे बढ़ा चित्त मुझमें लगा दिया तब और सब ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आप ही प्रगट हो जाते हैं ॥ २५ ॥ और यही चित्त जब गृह कुटुम्बादिमें आसक्त होता है तब इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें भ्रमण करता है, जिससे अधर्म, अज्ञान, अनुरक्तता और कुभाग्यता प्राप्त होती है ॥ २६ ॥ धर्म वही है जो मेरी भक्तिके सहित हो, ज्ञान वही है, जिससे आत्मरूप दीखे, इन्द्रियोंके धर्मोंमें आसक्त न होना वैराग्य और अणिमादिकका होना ऐश्वर्य है ॥२७॥ उद्धवजी बोले कि, हे शत्रुनाशक! हे कृष्ण! हे प्रभो! संयम-नियम कितने प्रकारके है? शम दम किनको कहते हैं? क्षमा, धैर्य क्या है? ॥ २८ ॥ दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा इत्यादि क्या हैं? ॥ २९ ॥ हे श्रीमन्! पुरुषका बहुत भाग्य क्या है? परम विद्या क्या है? लज्जा, श्री, दुःख, सुख क्या हैं ॥ ३० ॥ पंडित कौन है? मूर्ख कौन है? मार्ग उन्मार्ग कौन है, स्वर्ग नरक कौन हैं, बन्धु गृह कौन हैं? ॥ ३१ ॥ धनी दरिद्री कौन हैं? कृपण ईश्वर कौन हैं? हे साधुओंके पति! यह प्रश्न मुझसे समझा कर कहो ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि; हे उद्धव! जीवमात्रकी हिंसा न करे, सत्य बोले, मनसे भी परायी वस्तु न चुराये, आसक्ति कहीं न रखे, लज्जा, असञ्चय, धर्ममें विश्वास, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा, ये बारह संयम हैं ॥ ३३ ॥ शौच दो भांतिके हैं-अन्तःकरणकी शुद्धि, और बाह्यशुद्धि। शौच, तप, जप, होम, श्रद्धा, अतिथि और मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, सन्तोष, आचार्यसेवा, ये बारह नियम हैं ॥३४॥ जो यह संयम-नियम नित्य करे तो जो कुछ ही चाहे पूर्ण हो ॥ ३५ ॥ अब शम, दम, कहते हैं कि, मुझमें बुद्धि स्थिर हो वह शम है, केवल शांति ही शम नहीं कहलाती, इन्द्रियोंका संयम दम है, चोर दुष्टका मारना दम नहीं। दुःखका सहना क्षमा है, बहुत भार सहना क्षमा नहीं, जिह्वा और उपस्थका वेग सहे सो धैर्य उद्वेग मनमें न उत्पन्न हो इतना ही धैर्य नहीं ॥ ३६ ॥ प्राणिमात्रसे द्रोह त्यागनेको दान कहते हैं, धनका त्याग दान नहीं, कामका त्याग तप कहलाता है, कृच्छ्र-चान्द्रायण तप नहीं; स्वभावको जिसने जीत लिया वही शूर, पराक्रम शौर्य नहीं। ब्रह्मका

दर्शन सत्य है ॥ ३७ ॥ पंडितोंने सत्य और प्रियवाणीको ऋत कहा है, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको संन्यास कहा है ॥३८॥ मनुष्योंका श्रेष्ठ धन धर्म है, पशु पुत्रादिक धन नहीं, परमेश्वर ही यज्ञ है, अर्थात् मेरी बुद्धिसे यज्ञ करे, कर्मबुद्धिसे न करे, मेरे ज्ञानका उपदेश ही उस यज्ञकी दक्षिणा है, सुवर्णादि धन दक्षिणा नहीं। प्राणायामसे मनको वश में करे वही परम बल है ॥ ३९ ॥ मेरा ऐश्वर्य सौभाग्य है, कुछ लौकिक संपत्ति सौभाग्य नहीं, मेरी भक्ति पावे वही परमलाभ है, कुछ धनका लाभ नहीं। आत्मामें भेदबुद्धि दूर हो वही विद्या है, केवल ज्ञान मात्र विद्या नहीं, कुत्सित कर्मका करना लज्जा है, केवल लज्जा नहीं ॥ ४० ॥ गुण अच्छे हों वही शोभा है कुछ आभूषण शोभा नहीं, दुःख सुखका स्मरण करे वही सुख है, भोग सुख नहीं। बंध मोक्षको जाने, वह पंडित है, केवल शास्त्र पढ़े पंडित नहीं, सुखभोगकी इच्छा दुःख है, अग्निदाहादिक दुःख नहीं ॥४१॥ जिसके देहादिक अहंकार है वही मूर्ख है, जिस मार्गमें मुझे पावे वही उत्तम मार्ग है, कांटोंसे रहित सन्मार्ग नहीं, जहां मन चञ्चल हो संसारमें फिर प्रवृत्ति हो ऐसे मार्गको कुत्सित मार्ग कहते हैं, चोरादिकों से व्याप्त उत्पथ मार्ग नहीं सत्त्वगुण अधिक हो, राजस तामस गुण न हों वही स्वर्ग है, कुछ इन्द्रलोक स्वर्ग नहीं ॥४२॥ तमोगुण अधिक हो वही नरक है और नरक नहीं, और बन्धु सब बन्धु नहीं, परमबन्धु गुरु है, वह गुरु मैं हूँ। मनुष्यका शरीर गृह है, और गृह नहीं जो गुणसे सम्पन्न है वही धनी है और धनी नहीं ॥४३॥ जो सदा असन्तोष रखे वही दरिद्री है, धन-हीन दरिद्री नहीं, जो इंद्रियोंको न जीत सके वही कृपण है, दीन कृपण नहीं; विषयोंमें आसक्त न होकर जो स्वाधीन है यह ईश्वर है राजा स्वाधीन नहीं, जो गुणमें आसक्त है, वही परवश है ॥४४॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! यह तुम्हारे सब प्रश्न तुमको अच्छी प्रकार समझाये, अब बहुत क्या वर्णन करें गुण दोषका लक्षण इतना ही है, जो सबके गुण दोष विचारता रहे वही दोष हैं और गुण तथा दोष न देखे वही गुण है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे यमादिनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दोहा—कहूँ बीस अध्यायमें, गुण दोषनके अर्थ।
भक्ति ज्ञान औ कर्म यह, तीनों योग समर्थ ॥

उद्धव बोले कि, हे श्रीकृष्ण! विधि-निषेध वेद कहते हैं सो वेद तुम्हारी आज्ञा है, तुम सबके ईश्वर हो आपकी आज्ञासे वेद कर्मोंके पुण्य पापोंको देखते हैं ॥१॥ उन धर्मोंके अधिकारी उत्तम, मध्यम, हीन तीन प्रकारके हैं। और तब वर्णाश्रम अलग हैं; जिनका गुण-दोष सब वेद देखते हैं ॥२॥ अब आप कहते हो कि गुण दोष छोड़कर धर्ममें प्रवृत्ति हो सो गुण दोष भेद दृष्टि बिना विधि-निषेध तुम्हारा वचन मनुष्योंको कैसे फलदायक हो सकता है? ॥३॥ हे ईश्वर! पितृ देवता तथा मनुष्योंको तुम्हारा वेद ही मोक्ष और स्वर्गादिकोंमें श्रेष्ठ प्रमाण है और साध्य-साधन विषे प्रमाण है ॥ ४ ॥ और गुण-दोषके भेदका ज्ञान तुम्हारे वेद ही हैं आपसे नहीं माना है, गुण दोषोंपर दृष्टि न रखे यह अब तुम्हीं कहते हो, इसलिये भ्रम होता है तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले ॥५॥ कि हे उद्धव! मनुष्योंके कल्याणार्थ वेदमें भेदसे तीन योग हमने कहे हैं:—ज्ञान, कर्म, भक्ति। इससे परे और उपाय कहीं नहीं ॥६॥ इनके अधिकारी

अलग-अलग हैं, एक ही नहीं, वह कहते हैं–इनमें जो कर्मोंमें विरक्तता हो, फलकी कुछ चाहना न हो, उसे ज्ञानयोग कहा है ॥७॥ यदृच्छासे मेरी कथामें जिसकी श्रद्धा हो अति-विरक्त न हो अति आसक्त भी न हो उसे भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥८॥ प्रथम कर्म-योगको कहते हैं कि कर्म वहांतक करे जहांतक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा श्रवणादि-कमें श्रद्धा न उपजे ॥९॥ हे उद्धव ! स्वधर्ममें स्थित हो फलकी इच्छा छोड़ निष्काम यज्ञ करे तो उसे न नरक हो न स्वर्ग हो, जो और आचरण न करे ॥१०॥ इस लोकमें स्वधर्ममें स्थित हो निषेधका त्याग करे, ऐसा करनेसे जब मन शुद्ध हो तब विशुद्धज्ञानको प्राप्त करता है और यदृच्छासे मेरी भक्ति पाता है ॥११॥ ज्ञानभक्तिका यह मनुष्य देह कर्त्ता है इससे मनुष्य देह उत्तम है, उसे कहते हैं-जो स्वर्गमें हैं और नरकमें हैं वह मनुष्य-देहकी बाधा करते हैं, जिस देहका ज्ञान-भक्ति करनेसे मोक्ष होता है, स्वर्ग और नरकमें भी शरीर में वह मोक्षसाधक नहीं ॥ १२ ॥ जो चतुर मनुष्य हो वह स्वर्गकी गति न चाहे, जैसे मनुष्य नरककी गति नहीं चाहते और यह लोक भी नहीं चाहते, क्योंकि देहके आवेशसे प्रमाद होता है ॥१३॥ अर्थ-सिद्धिका दाता भी मनुष्यदेहको जानकर मृत्युसे पहले सावधान मनुष्य मोक्षका यत्न करे ॥ १४ ॥ जैसे पक्षी किसी वृक्षपर घर करे, उस वृक्षको कोई निर्दयी पुरुष आकर काटे, उसे काटता जान अनासक्त होकर घर छोड़ दे तो जीता है ॥१५॥ अहोरात्रसे काल आयुर्बलको काटता है, यह जान भयसे कांपते इस देहकी आसक्ति छोड़ शांतचित्त होकर रहे ॥ १६ ॥ देहको ऐसा जानकर भी जो सावधान नहीं होता उसकी निंदा करते हैं, यह मनुष्य देह अत्यंत दुर्लभ है, अनेक जन्मके पुण्यसे पाया है, साधन करनेको समर्थ है, संसार समुद्रसे तरनेकी नाव है, गुरु नावका चलानेवाला है, मैंने अनुकूल पवनसे प्रेरितकी है, ऐसे साधनको पाकर जो यह प्राणी संसार समुद्रसे न तरे तो आत्मघाती है ॥१७॥ यह कर्मयोग तो जो विरक्त न हों उनका कहा-अब जो विरक्त हों उनका पहले जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे वर्णन करते हैं-जब कर्मोंमें उद्वेग हो, वैराग्य उपजे तब इंद्रियोंका निग्रह करे, स्थिरतासे आत्माके अभ्याससे मनका निग्रह करे, तब वह योगी हो ॥१८॥ मनका निग्रह करनेपर भी चंचल हो तो साव-धान हो कुछ मनकी आकांक्षा पूर्ण करके फिर मनको वश करे ॥ १९ ॥ मनकी धारणा नहीं छोड़े, प्राणवायु जीते, इंद्रियां जीते और सत्वगुणी बुद्धिसे अपने मनको वश करे ॥२०॥ यह मनका निग्रह निश्चय उत्तम योग है, जैसे सवार दमन करने योग्य घोड़ेकी गतिको अपनी इच्छानुसार चाहता हुआ पहले उसे इच्छानुसार जाने देता है, फिर लगामको थामकर चलाता है, वैसे ही शनैः-शनैः मनको वश करे ॥ २१ ॥ सब तत्वोंके विवेकसे और प्रकृतिसे उत्पत्तिका क्रम विचार, यह पृथ्वी आदिसे क्रमसे अनुलोम-प्रतिलोमसे लीन होते हैं ऐसा ध्यान करता रहे, ऐसा ध्यान उस समयतक करे जबतक चित्त प्रसन्न न हो ॥२२॥ जब चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो तब गुरुके बताये धर्मका विचार करे, भ्रमसे यह चित्त देहका अभिमान छोड़ देता है ॥२३॥ संयम-नियम आदि योगधारण, आत्मविचार और मेरी प्रतिमाकी सेवा-इन उपायोंसे योग्य परमात्माका मनसे स्मरण करे, क्योंकि मेरे स्मरणका इससे अधिक और उपाय नहीं है ॥ २४ ॥ जो प्रमादसे योगी कुछ निंदित कर्म करे, उस योगीको योगा-भ्याससे ही अपना पाप दूर करना चाहिये, क्योंकि इसका और प्रायश्चित नहीं है ॥ २५ ॥

अपने अधिकारमें रहना ही गुण है, प्रवृत्तिमार्ग स्वभावसे ही अशुद्ध है, तथापि जो सहसा (एकाएकी) न छोड़ा जाय तो संगवृत्तिके छुड़ानेकी इच्छासे गुण दोष कर इन कर्मोंके संकोचद्वारा निवृत्ति चाहिये, क्योंकि योगीको स्वाभाविक वृत्ति न होनेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ मेरी कथामें श्रद्धा, कर्मोंमें वैराग्य होनेपर और काम्य कर्मोंको दुःखरूप जाननेपर भी उनका परित्याग न हो सके ॥२७॥ तो प्रीतिपूर्वक श्रद्धायुक्त हो दृढ़ निश्चयसे मेरा भजन करे, विषय भोग करता हुआ भी आसक्त न हो, उनकी निंदा करता रहे। अब भजनका प्रकार कहते हैं ॥ २८ ॥ पहले मैंने भक्तियोग तुमसे कहा है। उसी रीतिसे जब निरन्तर मुनि मेरा भजन करे, तो उसके हृदयमें मेरा वास होनेसे सब कामना नष्ट हो जायँगी ॥२९॥ सबके आत्मारूप जो मुझे देखे तो उसके हृदयकी गांठ छूट जाती है और सब संदेह मिटकर संपूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥३०॥ इस लिये मेरी भक्तिसंयुक्त मुझमें चित्त युक्त करनेवाले योगीको ज्ञान और वैराग्य कल्याणके साधन नहीं हैं, किन्तु भक्तियोग ही कल्याणका साधन है ॥३१॥जो फल कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और तीर्थयात्रादिकके साधनसे होता है ॥३२॥ वही फल केवल मेरी भक्ति करनेसे प्राप्त हो जाता है, मेरे सुखसे मेरा वैकुण्ठधाम पाते हैं, परन्तु कुछ चाहना नहीं करते ❀ ॥३३॥ हे उद्धव ! जो पुरुष बुद्धिमान् हैं, उनकी मुझमें अत्यन्त प्रीति है, वह परम साधु है, यद्यपि मैं उनको अनेक विभव देता हूँ, परन्तु तो भी वे कुछ चाहना नहीं करते ॥ ३४ ॥ मेरी निरपेक्ष भक्ति ही परम कल्याणरूप है, उनमें भी मेरी निष्काम भक्ति निष्काम भक्तको ही प्राप्त होती है ! ॥३५॥ जो मेरे विषे एकान्त भक्त रागद्वेषादिकरहित समचित्त हैं; और बुद्धिसे परे ईश्वरको प्राप्त हैं उनको विधिनिषेधके गुणदोषसे उत्पन्न हुए पुण्य-पाप नहीं लगते ॥३६॥ इस प्रकार मेरे कहे हुए मार्गोंमें जो पुरुष चलते हैं, वे परमकल्याणरूप मेरे धामको (जिसको परब्रह्म कहते हैं) प्राप्त होते हैं ॥३७॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दोहा—इक्किसवें अध्यायमें, कर्म भक्ति अरु ज्ञान।
सबके गुण अरु दोष मैं, वरणौं सहित विधान ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि, हे उद्धव ! जो पुरुष मेरे बताये मार्ग, भक्ति, ज्ञान, निष्कामकर्मको छोड़कर इन चंचल प्राणोंसे तुच्छ कामनाओंका सेवन करते हैं, वे फिर संसारको प्राप्त होते ॥ १ ॥ जिस प्रकार अग्निसे किसीको ताप होना और किसीको न होना सम्भव नहीं इसी प्रकार उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुण और किसीके दोष होना सम्भव नहीं,

---

❀ शंका—पहले तो श्रीकृष्णने ज्ञानकी प्रशंसा की फिर कुछ कालोपरान्त ज्ञान, वैराग्य, तप, जप, तीर्थ आदि और जो सुन्दर कर्म हैं उनको भी त्यागकर भक्तिकी प्रशंसा की कि सबसे भक्ति ही बड़ी है, यह बड़े संदेहकी बात है, किसको श्रेष्ठ मानें और किसको मध्यम मानें ! भगवान् श्रीकृष्ण तो कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ कहते हैं, ऐसे वचन सुनकर हमको बड़ा भ्रम होता है।

उत्तर—श्रीकृष्णचन्द्रने विचारा कि थोड़े ही दिनोंमें कलियुग आयेगा तो जप, तप, तीर्थादिक सब सुन्दर कर्मोंका नाश कर देगा परंतु भक्तिका नाश नहीं हो सकता; इसलिये भगवान्ने भक्तिकी प्रशंसा की कि कलियुगमें भक्तिके सिवाय मनुष्योंसे और कोई काम नहीं होगा।

यह सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिस अधिकारमें निष्ठा रखनेको गुण और न रखनेको दोष कहते हैं, गुण-दोषके विचारका यही निश्चय है ॥ २ ॥ 'यह शुद्ध है लीजिये' 'यह अशुद्ध है न लीजिये' ऐसे संदेहसे स्वाभाविक प्रवृत्तिके करनेके लिए समान वस्तुओंमें भी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है; इसीलिये उनमें गुण-दोष माने हैं, इसीसे पुण्य और पाप मानते हैं ॥ ३ ॥ हे निष्पाप ! धर्मका भार धारण करनेवाले पुरुषोंको मैंने ही मनु आदि रूपसे यह दिखाया है, आचार यह शुद्ध और यह अशुद्ध धर्म व्यवहार तथा निर्वाहके लिये गुण और दोषरूपसे प्रतिपादन की है, धर्मके लिये शुद्धिसे धर्म, अशुद्धिसे अधर्म कहा है। व्यवहारमें अशौचादिसे अशुद्ध भी राजव्यवहारमें न्याय करनेको शुद्ध और दूसरे कार्योंमें अशुद्ध हैं। आपदामें निर्वाहमात्र पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यद्यपि यह सब वस्तु समान है, क्योंकि पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, ब्रह्म आदि जड़ तक सब देहके कारण पञ्च महाभूत हैं और आत्मा भी सब एक ही है ॥ ५ ॥ परन्तु तो भी, हे उद्धव ! देहविषे समान भी वेदने नाम, रूप, वर्ण, आश्रम सम्पूर्ण इन जीवोंकी स्वार्थसिद्धिके लिये पृथक्-पृथक् किये हैं ॥ ६ ॥ केवल देहमें ही विभाग नहीं, किन्तु देशकाल आदि सम्पूर्ण वस्तुओंमें कर्मके संकोचके किये गुण-दोषका विधान किया है, अब शुद्धि-अशुद्धिका विषय कहते हैं ॥७॥ जिस देशमें काला मृग न हो वह देश अशुद्ध है और सत्पात्ररहित देश, मार्जनरहित देश, ऊषर देश, यह अशुद्ध है और जहां ब्राह्मणोंमें भक्ति न हो, वह तो अत्यन्त ही अशुद्ध है। अंग, वंग, कलिंगादिक देश भी अशुद्ध हैं, जहां काले मृग और सत्पात्र हों वह अशुद्ध भी देश शुभ है। देशकी शुद्धि-अशुद्धि कहकर काल (समय) की शुद्धि कहते हैं ❋ ॥ ८ ॥ जो काल द्रव्यकी सम्पत्तिसे कर्मके योग्य हैं, अथवा स्वतः ही प्राप्त पूर्वाह्ण-मध्याह्न आदि कर्मके योग्य है वह काल उस कर्मको शुद्ध है। जो सूतकादि काल कर्मके योग्य नहीं है, यद्यपि काल सब एक है परन्तु तो भी भेद किया गया है कि कर्मके अयोग्य काल अशुद्ध है ॥९॥ अब द्रव्यकी शुद्धि कहते हैंः-द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्य, वचन, संस्कार, बड़ेपन और छोटेपनसे मानी जाती हैं; द्रव्यको शुद्ध जल करता है, मूत्रादिक अशुद्ध करते हैं। ब्राह्मणका वचन प्रमाण है, यदि वे कहें की यह वस्तु शुद्ध है, तो वह शुद्ध है, अशुद्ध कहें तो अशुद्ध ही है; पुरुष पुष्पादि सूंघ ले तो अशुद्ध हो जाता है, प्रोक्षणादिक संस्कारसे शुद्ध हो काल (दशाहादि) से नये जलादिकी शुद्धि चातुर्मास्यमें तीन दिनसे शुद्धता, बड़ेपनसे तालाब, नदी आदिका जल चांडालादिकके स्पर्शसे भी शुद्ध ही है, छोटेपनसे घटादिका जल चाण्डालादिके स्पर्शसे अशुद्ध हो जाता है ॥१०॥ अब शक्ति-अशक्तिसे शुद्धाशुद्धि कहते हैंः-सूर्यग्रहणमें शक्ति-

---

❋ शंका-श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था कि जिस देशमें कालामृग नहीं होता वह देश भ्रष्ट है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस देशमें गंगा, यमुना, प्रयाग पुष्कर आदि तीर्थ, बद्रीनारायण आदि आश्रम हैं वह देश भी कालेमृग बिना भ्रष्ट है तो इस बातसे यह सिद्ध हुआ कि काला हिरण ही सबोंमें मुख्य ठहरा, यह गंगा और प्रयागादिक तीर्थ किसीको शुद्ध नहीं कर सकते।

उत्तर-कृष्णने उद्धवसे कहा वह सब सत्य है, परंतु विना व्याकरण पढ़ेसे अर्थ करनेकी शक्ति नहीं हो सकती यह पुरुष अर्थका अनर्थ कर देते हैं, क्योंकि भागवतमें कृष्णसारका अर्थ ऐसा व्यासजीने कहा है कि जिस देशमें कालामृग न हो वह देश भ्रष्ट है, जो मनुष्य संसारको कुछ नहीं मानते इससे कुछ भी सार नहीं है ऐसा जानकर बड़े निश्चयसे कृष्णको ही सार जानते हैं कि सब झूठा है, श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका आश्रय सत्य है। ऐसे जाननेवाले पुरुष जिस देशमें नहीं हैं वह देश भ्रष्ट है, श्रीकृष्णने ऐसा कहा था, कुछ ऐसा नहीं कहा था कि जिस देशमें कालामृग नहीं है वह देश भ्रष्ट है।

मानके सूतक लगता है, स्नान दानसे शुद्धि होती है और जो अशक्त हैं, उन्हें नहीं। बुद्धिसे पुत्रजन्मादि अशौचके दशदिनके भीतर जानेसे अशुद्धि उपरांत शुद्धि, समृद्ध होनेके कारण जीर्ण व मलिन वस्त्र श्रीमानोंको अशुद्ध हैं, दरिद्रीको शुद्ध है। सूतकका अन्न समर्थको तो अशुद्ध है, असमर्थको शुद्ध। यह द्रव्य वचन आदि द्रव्यकी अशुद्धिसे आत्माको पातक लगाते हैं, वह देशकाल अवस्थाके अनुसार ही हैं तथा निर्भय देशमें पापी चौरादिके उपद्रवयुक्त देशमें नहीं लगते, युवावस्थामें यही पापदायक और वृद्धावस्था तथा बालकपनमें शुद्ध हैं॥११॥ इस प्रकार द्रव्यकी शुद्धि द्रव्योंसे कही। वचनशुद्धि एक ही भांति है, द्रव्यकी शुद्धि बहुत प्रकार है, उसे कहते हैं—अन्न, काष्ठ, हाथीदात, सूत्र, रस, तैल, घृत, आदि सुवर्ण और मार्गकी कीच, कलश, ईंट यह सब काल, वायु, अग्नि, जलसे यथायोग्य शुद्ध है, अर्थात् धान्यकी शुद्धि वायुसे, यज्ञपात्र तथा काष्ठकी जलसे; हाथीदांत आदिकी कालसे, तैल, घृत, सुवर्णादिकी अग्निसे; तन्तुओंकी जलसे, चामकी काल और रंगसे, पार्थिवविकार ईंट आदिकी कालसे शुद्धि होती है, कभी तो यह सब मिलाकर शुद्धि करते हैं और कभी अकेले करते हैं, तो भी जो काक और चाण्डालादिक नीच जातिका स्पर्श हुआ हो तो उसके देश अवस्था देखकर विचार करे, तब शुद्ध हो ॥१२॥ और भी शुद्धि कहते हैं:– पीढ़ा, पात्र, वस्त्र, आदिमें जो अपवित्र वस्तु लग जाय तो काष्ठ छिलानेसे शुद्ध हो, द्रव्यकी शुद्धिराख और खटाईसे धोवे तब शुद्ध हो; वस्त्र खारसे गन्ध और लेप छूटनेतक धोये तब शुद्ध हो, अर्थात् जब दुर्गन्ध न रहे स्वच्छ हो जाय तब शुद्ध है ॥ १३ ॥ तब कर्ताकी शुद्ध कहते हैं:-स्नान, ध्यान, तप, अवस्था (बाल्य, कौमारादि) वीर्य, संस्कार, गायत्री–उपदेश, सन्ध्याकर्म, दीक्षादिक कर्मसे ब्राह्मण जब शुद्ध हो तब कर्म करे, और आत्माकी शुद्धि मेरे स्मरणसे होती है और प्रकारसे नहीं। ब्राह्मणादिकका देहशुद्धि संस्कारोंसे होती है और प्रकारसे नहीं, देहकी शुद्धि संस्कारोंसे होती है, वह भी व्यवहारके लिये ही है, उसके निमित्त विहित कर्म करे ॥१४॥ अब मन्त्रकी शुद्धि कहते हैं-श्रेष्ठ गुरुके मुखसे सुने, इसके उपरांत उस मन्त्रका अच्छी प्रकार ज्ञान हो तो मन्त्रकी शुद्धि हो; जो कुछ कर्म भले अथवा बुरे करे वह सब मुझे समर्पण करे, यह कर्म शुद्धि है है, देश; काल, द्रव्य, कर्त्ता, मन्त्र और कर्म इन छः पदार्थोंके शुद्ध होनेसे धर्मकी शुद्धि होती है, यदि ये अशुद्ध हों तो अधर्म होता है ॥१५॥ यह गुण-दोषका विभाग यथार्थ नहीं है कहीं आपदामें प्रतिग्रह लेनेसे दोष-गुण हो जाता है, धन होनेसे निषेध होनेके कारण कहीं दोष है और कहीं दोष विधिसे भी गुण हो जाता है; जैसे कुटुम्बका त्यागना दोष है, परन्तु विरक्तको कुटुम्ब त्यागना दोष नहीं गुण-दोषके कहनेवाले शास्त्र गुण-दोषके बाधक हैं ॥१६॥ दोष भी कहीं दोष नहीं होता, यहां एक दृष्टान्त कहते हैं—जो सुरापानसे पतित हैं उन पतितोंको सुरापानसे दोष नहीं होता, क्योंकि वह जातिधर्मसे पहले ही पतित हैं, उनको सुरापान अधिक पातक क्या करेगा ! और जो धर्मशील हैं उन्हें उसका संग भी पातक है। संन्यासीको संग भी बन्धनमें डाल देता है, वही गृहस्थका गुण है, क्योंकि गृहस्थको संग करना होता है, जैसा कि वेदमें कहा है–"ऋतुके दिन स्त्रीसंग कर" आशय यह कि जो पहले ही पृथ्वीपर सोया है वह नीचे नहीं गिरता ॥ १७ ॥ इस प्रकार गुण-दोषका विचार प्रवृत्तिमार्गमें है, निवृत्ति होनेके उपरांत कुछ नहीं, उसे कहते हैं:—वेदका यही तात्पर्य नहीं है कि सदा प्रवृत्तिमें ही रहे, वेद प्रवृत्ति छुटाकर निवृत्ति बताते हैं, इस कारण जिस-जिस

विषयसे निवृत्त हुआ उससे मुक्त हो जाता है, यह धर्म मनुष्योंको अत्यन्त शुभकारी और शोक, मोह तथा भयको दूर करनेवाला है ॥ १८ ॥ प्रवृत्तिमार्गमें अनर्थरूप है, वह कहते हैं कि जब मनुष्योंको विषयमें इन्द्रियोंका अभ्यास हो जाता है, तब आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्तिसे काम और कामसे कलह उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ कलहसे अति असह्य क्रोध होता है, क्रोधसे तम अर्थात् अज्ञान होता है, अज्ञानसे पुरुषकी चेतना जो सब देहमें व्याप्त हो रही है, शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधो ! जब वह चेतनासे रहित हुआ, तब यह जीव असाधुके तुल्य हो मूर्च्छित होता है, मूर्च्छा होते ही मृतक समान होनेसे इसके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ जो मृतकसमान है उसका स्वरूप कहते हैं-जो विषयोंमें आसक्त होनेके कारण आत्माको तथा और को भी नहीं जानते, वे वृक्षोंकी जीविकाकी नाई वृथा जीते हैं, धौंकनीके समान श्वास लेते हुए भी मृतके समान हैं ॥ २२ ॥ यह जो प्रवृत्ति मार्गकी आज्ञा है, उसे वेदने यहां कर्मोंके फल रुचि दिखानेके लिए वर्णन किये हैं, जैसे रोगीको रुचि उपजा कर औषधी पिलाते हैं, तात्पर्य आरोग्यतासे है, सदा औषधी सेवन करनेसे नहीं, इसी प्रकार जबतक ज्ञान न हो तबतक कर्म करनेकी वेद आज्ञा करता है, सब काल कर्म करनेसे तात्पर्य नहीं ॥ २३ ॥ मनुष्य स्वभावसे ही पशु आदिमें और इंद्रिय, बल, वीर्यमें, पुत्रादिकोंमें आसक्तचित्त हो जाता है, यह सब अपने आपको अनर्थका हेतु है ॥ २४ ॥ इससे स्वार्थ अर्थात् परमसुखको जो पुरुष नहीं जानते वे अनेक पापरूप मार्गोंकी उन-उन योनियोंमें भ्रमण करते हैं। इसके पीछे जड़रूप वृक्ष आदि योनियोंमें प्रविष्ट होते हैं, उनको फिर वेद भी धर्मोंमें नहीं प्रवृत्त कराते, जिससे अनिष्ट हो उसीमें वेद प्रवृत्त करे तो हितकारी होता है ॥ २५ ॥ कर्ममार्गी कैसे फल बताते हैं, वह कहते हैं—इस प्रकार वेदका अभिप्राय जाने विना कुबुद्धि ही यह फल बताते हैं और जो वेदके तात्पर्यको जानते हैं; वे व्यास आदि ऋषि ऐसा नहीं कहते ॥ २६ ॥ कामी कृपण लोभी, पुण्यरूपी स्वर्गादि सुखरूप अवान्तर फलको मुख्य माननेवाले अग्निहोत्रादिसे मुग्ध धूम्रयुक्त चित्तवाले अपने सुखदायक लोकको नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे उद्धव ! जिससे यह जगत् प्रकट है और जो जगत् रूप है, ऐसे मुझ परमात्माको वे हृदयमें स्थित नहीं जानते, कर्मरूप शास्त्रोंसे पशुहिंसा कर बकवत् प्राणपुष्ट करते हैं, जैसे कुहरेसे कुछ नहीं दीखता, वैसे ही अज्ञानसे उसके नेत्र व्याप्त हैं; क्योंकि जो समीपमें स्थित मुझे नहीं जानते ॥ २८ ॥ इसी कारणसे मेरे वाक्यरूप वेदके गूढ़ तात्पर्यको विषयी नहीं जानते। मेरा मत यह है कि यदि मांस भक्षणके लिये हिंसाकी विधिमें वेदकी प्रीति होती तो वेद यज्ञमें ही मांस-भक्षणकी विधि नहीं करता, किन्तु सदाके लिए आज्ञा देता। मनुष्योंकी मांसमें अधिक प्रवृत्ति देख उनको इससे छुड़ानेके लिये कि एक संग तो छूट नहीं सकता, इस कारण छुड़ानेका उपाय प्रतिपादन करता है कि, पशुको यज्ञमें ही मारना अन्य स्थलमें नहीं, उसमें भी अमुक पशु मारना इससे वेदका अभिप्राय पशुहिंसासे निवृत्तिही करनेका है ॥२९॥ हिंसामें जिनके व्यवहार हैं, अपने विषय भोगोंके लिये पशुओंकी हिंसा करके देवता, पितृ, भूपतियोंका जो पुरुष पूजन करते हैं, वे अतिदुष्ट हैं ॥३०॥ स्वप्नके समान कानोंको सुखदायक परलोक और इस लोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके अपने धनको सकाम कर्मोंमें व्यय करते हैं और दोनों लोकसे भ्रम हो जाते हैं, जैसे वनिया दुस्तर समुद्रके उल्लंघन करनेमें बहुत धन प्राप्तिकी इच्छा

कर अपने संचित किये धनको छोड़ दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३१॥ और जो रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुणसे युक्त होकर जैसे इन्द्रादिक देवताओंकी सेवा करते हैं, वैसे ही मेरी सेवा नहीं करते ॥३२॥ मनमें अनेक मनोरथ करते हैं कि "यहां यज्ञसे देवताओंको संतुष्ट कर स्वर्गमें जाकर विहार करेंगे और यह भोग-भोगकर अन्तमें यहां आकर बड़े गृह तथा बड़े कुलमें स्थित होंगे" ॥३३॥ इस प्रकार फूली बातोंसे चञ्चलचित्त मनुष्य मान, अहंकार भरे गृहमें अनम्र रहते हैं, उनको मेरी वार्ता अच्छी नहीं मालूम होती ॥३४॥ इस कारण वेदका तात्पर्य ब्रह्मविषे है, निवृत्ति ही बताते हैं, यद्यपि कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, उपासनामार्ग, भिन्न-भिन्न कहे हैं, परन्तु तो भी तात्पर्य ब्रह्ममें ही है। मन्त्र और मन्त्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्ष रीतिसे ही पदार्थका प्रतिपादन करते हैं इससे ब्रह्म आत्मामें गूढ़ होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता। परोक्षरीतिसे कहनेका कारण यह है कि मुझे परोक्ष प्रिय है। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं वे ही उसको जान सकते हैं, दूसरे नहीं। दूसरोंके जाननेमें हित तो दूर रहे, किन्तु कर्मभ्रष्ट होनेकी आपत्ति आ पड़ती है ॥ ३५ ॥ कहते हैं, कि जैमिनी आदि ऋषि वेदके ज्ञाता थे, इन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा ? इसका उत्तर यह है कि वेदका तत्त्व मुझ विना कोई नहीं जानता क्योंकि शब्द ब्रह्म अति दुर्ज्ञेय है, वही सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है। सूक्ष्मका तो स्वरूप जानना भी अति कठिन है, क्योंकि प्रथम तो वह परा नामक प्राणमय है, दूसरा पश्यन्तीनाम मनोमय है, तीसरा मध्यम नाम इंद्रियमय है, देहमें ये तीनों स्वरूप सूक्ष्मरूपसे रहते हैं, इसलिए इनका जानना कठिन है, चौथा वैखरीस्वरूप है जिससे मनुष्य बोलते हैं। समष्टि प्राणमय वेद ब्रह्मका देशकालसे परिच्छेद न होनेके कारण उसके पारका अंत नहीं है, जिस प्रकार शब्दसे वेद ब्रह्म जानना कठिन है, उसी प्रकार अर्थसे भी यह महागम्भीर समुद्रके समान अवगाहन करनेको दुस्साध्य है ॥३६॥ अनन्तशक्ति व्यापकरूप अन्तर्यामी ब्रह्मसे यह नादवन्त वाणीरूप कमलनालमें तंतुके समान सब प्राणिमात्रमें प्रतीत होता है, इसी स्वरूपका विद्वान पुरुष विचार करते हैं ॥३७॥ जैसे मकरी हृदयसे निकाल मुखद्वारसे जालको प्रकट करती है, उसी प्रकार प्राणोपाधि हिरण्यगर्भ प्रभु भगवान् वेदमूर्ति अमृतमय नादवंत स्पर्शादिकोंके कर्त्ता मन करके हृदयाकाशसे वैखरी नाम वाणीको उपजाते हैं, जो बृहती वा वैखरी नामक वाणी उपजाते हैं फिर आप ही संहार करते हैं। वह कैसी वाणी है कि, जिसके अनेक मार्ग हैं, ॥ ३८ ॥ हृदयमें प्राप्त अतिसूक्ष्म प्रणवसे प्रकट हुये जो स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अन्तस्थसे शोभित ॥ ३९ ॥ अनेक लौकिक भाषाओंसे फैल उत्तरोत्तर चार-चार अक्षर जिनमें बढ़े ऐसे गायत्री आदि छंदोंसे युक्त वारपार रहित हैं, वह प्राण उसे आप ही प्रकट करके उपसंहार करते हैं ॥ ४० ॥ उनमें कितने ही छन्दोंको दिखाते हैं—गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगति, अत्यष्टि, अतिजगत् और अतिविराट इत्यादि छन्द हैं, चार-चार अक्षर बढ़ानेसे बनते हैं, जैसे चौबीस २४ अक्षरोंका गायत्री छंद होता है, अट्ठाईस २८ अक्षरोंका उष्णिक छन्द होता है, बत्तीस ३२ अक्षरोंका अनुष्टुप्छन्द होता है। इस प्रकार चार-चार अक्षरोंका अधिक करके छन्दोंका लक्षण जान लेना ॥४१॥ यह वेदवाणी कर्मकाण्डमें विधिवाक्योंसे क्या प्रतिपादन करती है, और मन्त्रवाक्योंसे देवताकांडमें किसका प्रकाश करती है, ज्ञानकाण्डमें यही वेदवाणी किसका अनुवाद करके विकल्प बताती है ? इस प्रकार वेदवाणीके तात्पर्यको मेरे अतिरिक्त जाननेका किसीमें सामर्थ्य नहीं ॥ ४२ ॥ वेदवाणी

देवतारूप मेरा ही प्रतिपादन करती है और उससे आकाश उत्पन्न हुआ इत्यादि वाक्योंसे विकल्प कथन कर पीछे निराकरण करते हैं, सो भी मेरा ही स्वरूप है। सब वेदका तात्पर्य यही है कि परमेश्वर परमार्थरूप है भेद मायामात्र है, इसी प्रकार जो ॐ कारमें अर्थ है वही सब कांडोंमें है, जैसे अंकुरका रस शाखा-प्रशाखा फल पुष्पादि सबमें आ जाता है ॥४३॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव–संवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दोहा–बाइसवें अध्यायमें, प्रकृतीपुरुष विचार।
तत्वोंकी संख्या सकल, अरु अविरोध प्रकार ॥

उद्धवजी बोले कि, हे भगवन्! हे विश्वेश्वर! हे प्रभो! कितने एक महात्मा तत्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं, उन्होंने अपने शास्त्रोंमें तत्वोंकी संख्या पृथक्-पृथक् की है, आप सब मिलाकर तत्वोंकी संख्या अट्ठाईस २८ कहते हैं, यह आपके ही श्रीमुखसे सुना है ॥१॥ कोई छब्बीस २६ कहता है, कोई सात ७ कहता है, कोई ९ कहता है, कोई छः ६ कहता है, कोई चार ४ कहता है, कोई ग्यारह ११ कहता है, कोई सत्रह १७ कहता है, कोई १६ सोलह कहता है कोई तेरह १३ कहता है ॥२॥ ऋषीश्वर जिस प्रयोजनके अर्थ इतनी संख्या भिन्न-भिन्न कहते हैं, हे चिरंजीव! वह मुझे समझाकर कहो ॥३॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परीक्षित्! जब इस प्रकार पूछा, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! ब्राह्मण जो कहते हैं, वह युक्त है यह तत्त्व सर्वत्र है, मेरी मायाको अंगीकार करके कहते हैं; जिस मायामें किसी प्रकारका कहना अशक्य नहीं है ॥४॥ तुम जैसे कहते हो वह ऐसे नहीं, जो मैं कहता हूँ वह सत्य है। इस प्रकार उन तत्त्वोंके मूलकारणोंमें जो ब्राह्मणोंका विवाद है वह यथार्थरूपसे देखा जाय तो अपने-अपने स्वभावके अनुसार परिणाम होनेवाले मायाके सत्त्वादिकगुण ही विवादके कारण हैं ॥ ५ ॥ जिन शक्तियोंके क्षोभसे विवादकर्त्ताओंका भेद आश्रय हुआ है; जब शम प्राप्त होनेसे भेद दूर हो तो भेद जानकर पीछे विवाद शान्त हो जाय ॥ ६ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! तत्त्वोंके परस्पर अनुप्रवेशसे कार्य कारणरूप तत्त्वोंकी संख्या वक्ताकी इच्छानुसार हो सकती है ॥ ७ ॥ अब अनुप्रवेशको कहते हैं–एक ही तत्त्वमें सब तत्त्व कारणमें अथवा कार्यमें प्रवृष्ट दीखते हैं, जैसे मृत्तिकामें घट और घटमें मृत्तिका अन्योन्य प्रवृष्ट है ॥ ८ ॥ इन तत्त्वोंका कार्य कारणभाव और न्यून आदिक संख्यावादियोंके मध्य कहनेकी इच्छासे जिह्वा जिस प्रकार प्रवृत्त होती है, वैसी ही सिद्धि कर सकती है, हम इन सबको सम्भव जानते हैं ॥ ९ ॥ जीव ईश्वर जो चैतन्य रूप है, उसके भेद-अभेद माननेके कारणको कहता हूँ कि जो जीव अनादिकालसे अविद्यासे संयुक्त है, इसलिये उसे अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं नहीं हो सकता, उसे ज्ञानदाता सर्वत्र ईश्वर पृथक् है ऐसा जानकर जीव-ईश्वरमें भेद माननेवालोंके मतमें चौबीस तत्त्व और पचीसवां जीव तथा छब्बीसवां ईश्वर दोनों तत्त्व हैं ॥१०॥ स्वयं संख्याविषे भेद कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि जीव ईश्वर दोनों चैतन्य होनेसे उनमें कुछ भेद नहीं और ऐसा माननेवाले पचीस तत्त्व कहते हैं, ज्ञान प्रकृतिका गुण है, इसीसे प्रकृतिमें गिना है, यह एक पक्ष है॥११॥ अहो! ज्ञान तो जीवका धर्म है, प्रकृति प्रकृतिका गुण कैसे है? इसके उत्तरमें

कहते हैं कि तीनोंके गुणोंके समान अवस्था प्रकृति है, गुणप्रकृतिके ही हैं, आत्माके नहीं, सत्त्व, रज, तम, गुण, उत्पत्ति, पालन और प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥ सत्त्वमयज्ञान प्रकृतिका गुण है, कर्म रजोगुणका गुण है, अज्ञान तमोगुणका गुण है, और स्वभाव महतत्त्वका स्वरूप है, काल ईश्वरका स्वरूप है, इसलिये काल स्वभाव भिन्न तत्त्व नहीं है। मैंने जो अट्ठाइस तत्त्व कहे हैं, उनमें पूर्वोक्त पच्चीस और तीन गुण यह सब मिलाकर अट्ठाईस होते हैं ॥१३॥पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये मैंने नौ तत्त्व कहे हैं ॥ १४ ॥ कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका ये पांच ज्ञानेंद्रिय हैं। वाणी, हाथ, पांव, उपस्थ, गुदा, यह पांच कर्मेंद्रिय हैं। हे उद्धव ! ज्ञान और कर्मरूप मन ये ग्यारह हैं ॥ १५ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच ज्ञानेंद्रियके विषय हैं। गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनन्द ये पांच कर्मेंद्रियोंके फल हैं, भिन्न नहीं, इससे अट्ठाईसके भीतर हैं, तत्त्व नहीं हैं ॥ १६ ॥ इस विश्वके आदिमें कार्यकारणरूपिणी प्रकृति सत्त्वादि गुणसे इस विश्वकी उत्पत्ति आदि अवस्था धारण करती है, निर्विकार पुरुष केवल साक्षी हुआ देखता है, इस कारण विकारयुक्त प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्वादि धातु विकारको पाकर पुरुषकी चितवनसे बल पाकर महत्तत्त्वादि परस्पर मिल प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्माण्डरूप कार्यको उत्पन्न करते हैं, इसके संघातको प्राप्त होकर उनके उत्पन्न किये देहादिक पदार्थ उन्हींके अन्तर्भूत हो जाते हैं, इससे देहादिक पृथक् तत्त्व नहीं है ॥ १८ ॥ किसीके मतमें आकाश, वायु, तेज,जल, पृथ्वी यह पांच पदार्थ और द्रष्टा जीव आकाशादि पदार्थोंका और जीवका आधार आत्मा, ये सात तत्त्व हैं, इस मतमें प्रकृति महत्तत्त्व, और अहंकार इन कारणतत्त्वोंका आकाशादिमें अन्तर्भाव माना है, इन्हीं सातों तत्त्वोंसे देह इंद्रियादिकी उत्पत्ति मानी है ॥ १९ ॥ जिनके मतमें छः तत्त्व हैं, वह पांच तो पञ्चमहाभूत और छठे परमात्माको मानते हैं, इस मतमें परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए भूतोंसे जगत्को रचकर उसमें प्रवृष्ट है, इससे सब पदार्थोंका परमात्मामें अन्तर्भाव है ॥ २० ॥ जिनके मतमें चार तत्त्व हैं उनमें आत्मा और आत्मासे प्रादुर्भूत वायु, तेज,जल, पृथ्वी यही चार तत्त्व हैं,इन्हींसे सब जगत् उत्पन्न है, सब कार्यका इन्हींमें अन्तर्भाव है ॥२१॥ सत्रह तत्त्वके मतमें पञ्चमहाभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन सत्रहवां आत्मा॥२२॥सोलह तत्त्वके मतमें आत्माको ही मन कहा है और तेरहके मतमें पञ्चमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एकमन जीवात्मा और परमात्मा ये तेरह हैं ॥ २३ ॥ ग्यारहके मतमें पंचमहाभूत और पांच ज्ञानेंद्रिय, एक आत्मा। नौके पक्षमें, पांच महाभूत, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पुरुषसे कहते हैं ॥२४॥ इसप्रकार ऋषियोंने तत्त्वोंकी पृथक्-पृथक् संख्या कही है। यह सब प्रकृतिसे पुरुषको भिन्न जाननेको हैं, ये सब यथार्थ हैं, क्योंकि विद्वानोंका कहा और न्यायसिद्ध है, विद्वान् क्या नहीं कह सकते ?॥२५॥उद्धवजी बोले कि, हे कृष्ण ! प्रकृति और पुरुष जिनमें एक जड़ और एक चैतन्य है, यद्यपि यह स्वभावसे ही भिन्न हैं परन्तु तो भी परस्परका त्याग करते उनकी प्रीति नहीं होती, इससें भेद नहीं देखा जाता ॥२६॥ हे पङ्कजलोचन ! आत्मा देहमें भासता है, देहको ग्रहण किये प्रतीत होता है "मैंहूँ" इस प्रकार दोनोंके अभेद प्रकाशसे देहका आत्मासे भेद नहीं देखा जाता, हे सर्वज्ञ ! मेरे सन्देहको युक्तिके वचनोंसे दूर करो॥२७॥ तुम्हारी कृपासे ही संसारके जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है, तुम्हारी मायासे ही अज्ञान होता

है, आपके अतिरिक्त आपकी मायाकी गति कोई नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि देह और आत्मामें बहुत विलक्षणता है, गुणोंके क्षोभसे होनेवाला यह देह तो विकारी है, आत्मा विकार रहित है ॥ २९ ॥ हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने अनेक भांति भेद और भेदके ज्ञान रचे हैं यद्यपि इस देहमें अनेक भेद हैं, परन्तु तो भी तीन प्रकारके कहे हैं–एक अध्यात्मरूप, एक अधिदैवरूप, एक अधिभूतरूप ॥ ३० ॥ दृष्टि अध्यात्म है और अधिभूत नेत्रगोलक,उसमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदेव है,नेत्रोंसे रूप जानना;वह नेत्रोंकी प्रवृत्ति प्रेरणावाले देवता विना होती नहीं; इससे अधिष्ठात्री देवतासे नेत्रोंकी प्रवृत्ति, इससे रूपज्ञान होता है, इस प्रकार तीनों परस्पर सिद्ध होते हैं, जो सूर्य आकाशविषे आपसे ही सिद्ध है इसलिये आत्मा आध्यात्मादिकोंका कारण है, इससे भिन्न है। अपने आप सिद्ध, प्रकाश करके परस्पर प्रकाश करनेवालोंका भी प्रकाशक है, जैसे नेत्रमें तीन प्रकार हैं ऐसे ही त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदेव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदेव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदेव, नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत अश्विनीकुमार अधिदेव, चित्त अध्यात्म, जिसके चित्तसे जानिये ऐसा अधिभूत, वासुदेव अधिदेव, मन अध्यात्म जिसको मन कीजिये वह अधिभूत, चन्द्रमा अधिदेव; बुद्धि अध्यात्म-जो जानिये, ऐसे ही अधिभूत ब्रह्मा, अधिदेव अहंकार, अध्यात्म अहंकार से जो कीजिये सो अधिभूत, रुद्र अधिदेव ॥ ३१ ॥ अहंकार तीन प्रकारका है–सात्त्विक, राजस, तामस। गुणके क्षोभकर्ता काल और प्रकृतिके मूल महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुए विकार हैं, यही अधिदेव अध्यात्म–अधिभूतरूपी मोहसे देहादिक विकल्पका कारण है। जब देहादि अहंकार मिट जाय तब आत्माकी प्रतीति हो सकती है ॥ ३२ ॥ आत्माका न जानना इसका स्वरूपभूत नहीं ऐसा विवाद मेटके अधर्ममें निष्ठा और यह विवाद व्यर्थ ही है, परन्तु तो भी स्वरूपभूत मुझसे विमुख जिनकी बुद्धि है, उनकी निवृत्ति नहीं होती, परन्तु विवादसे किये कर्मोंसे ऊँच-नीच देहमें जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ॥३३॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! तुमसे जिनकी बुद्धि विमुख है वे अपने किये कर्मोंसे आपही नीच देहोंको ग्रहण करते हैं। व्यापक आत्माको देहसे और देहमें जाना अकर्ताका कर्म और नित्यका जन्ममरण कैसे संभव हो सकता है ? ॥३४॥ हे गोविंद ! अजितेंद्रियोंसे जो जानने योग्य है वह मुझसे कहो, क्योंकि लोकमें बहुधा इसके जाननेवाले नहीं हैं और हैं भी सो मायासे मोहित हैं ॥३५॥ ❋ श्रीभगवान् बोले-हे उद्धव ! कर्ममय मनुष्योंका मन पांच इंद्रियोंके सहित इस लोकसे और लोकमें जाता है और मनसे भिन्न आत्मा अहंता ममतासे मनके पीछे जाता है, लिंगदेहसे यह सब बन सकता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके अधीनमन इस लोक और परलोकके विषे ध्यान करता हुआ उन विषयोंमें प्रकट होता है और पहले विषयोंमें लीन हो जाता है, इसके उपरांत उसको पहले पिछलेका स्मरण जाता रहता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके द्वारा दूसरे

❋ शंका–श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि पृथ्वीमें विद्वान् नहीं हैं जो व्याकरण आदि शास्त्रको पढ़ते हैं ऐसे विद्वान् तो पृथ्वी पर बहुत हैं, परंतु उद्धव जिसको विद्वान् कहें वे विद्वान् कौन हैं ?

उत्तर–शास्त्र पढ़नेवालेको विद्वान् योगीश्वर लोग नहीं कहते, विद्वान् उसका नाम है, जो पुरुष मोक्ष विद्याको जानता हो। मोक्ष विद्या कैसी है कि जिसे मोक्षविद्याकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े चतुर योगी जन अनेक उपाय कर करके हार गये, परंतु मोक्ष विद्या प्राप्त नहीं हुई और जो किसी योगी पुरुषको हो गयी तो बड़ी कठिनतासे ऐसी विद्या जाननेवाले विद्वान् पृथ्वीपर नहीं हैं इसलिये उद्धवजीने कहा शास्त्र पढ़नेवाले विद्वानों के लिये नहीं कहा।

देहमें अत्यन्त अभिनिवेश होनेपर वह देवतादिक हो तो हर्षसे, अधम हो तो शोकके भयसे जीवको प्रथम देहका विस्मरण होना और उस देहका अहंकार नष्ट होना यही आत्माका मरण है, कुछ देहके समान उसका मरण नहीं होता ॥३८॥ हे दानी। मनका दूसरे देहके साथ सम्बन्ध होनेपर उसमें अत्यन्त अहंकार प्रादुर्भूत होता है, मनके अभ्याससे आत्मामें देहका ममत्व होता है, यही आत्माका जन्म है ॥ ३९ ॥ जैसे एक स्वप्न देखनेके उपरांत दूसरा स्वप्न होता है तथा एक मनोरथके उपरांत दूसरा होता है तो पहला मनोरथ और स्वप्न विस्मृत हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा मनके अभ्याससे अपने आपको नवीन उत्पन्न मानता है, इस भांतिकी दशा होनेसे मनके अभ्यासके कारण एक देहका अभिमान नष्ट होने पर दूसरे देहका तीव्र अभिमान होनेसे यह अपने पूर्वजन्मको नहीं जानता ॥४०॥ इंद्रियोंका आश्रय जो मन और देहके अभिनिवेशसे उत्पत्तिद्वारा, आत्मामें उत्तम, मध्यम, नीचता, मिथ्या होनेपर भी प्रकाशित होते हैं। उन्हींके द्वारा आत्मा बाह्यविषयोंको और अन्तरमें सुखादिकोंको देखता है, जैसे जीव स्वप्नमें झूंठे बहुत देहोंका कर्ता देखता बहुत रूप भासता है अथवा जैसे दुष्ट पुत्रका पिता पुत्रके प्रेमसे पुत्रके शत्रुके मित्रोंको अपना शत्रु मित्र मान लेता है; इसी प्रकार आत्मा मनके अभिनिवेशसे देहको अपना जानता है ॥४१॥ जिसकी तीव्र गति जाननेमें नहीं आती, ऐसे कालके लिए यह शरीर क्षण-क्षणमें उत्पन्न होते और मरते हैं, परंतु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी इस जन्म-मरणको नहीं जानते ॥४२॥ नित्य जन्म-मरण होता है। यद्यपि इसका प्रमाण कहीं देखनेमें नहीं आता है, परंतु तो भी अनुमानसे जन्म बताते हैं, जैसे ज्योति पहले कोमल होती है, फिर कुछेक अधिक होती है, इसके उपरांत अतिक्षीण हो जाती है, जैसे वृक्षका फल पहले कच्चा हुआ, फिर कुछेक पीला पड़ा, इसके उपरांत पक गया, जिस प्रकार क्रमसे भिन्न अवस्था कालसे होती है, पर जानी नहीं जाती, ऐसे ही इसी अनुमानसे शरीरको भी कालसे नित्य वय अवस्थादिक होती हैं, परन्तु जानी नहीं जाती हैं। प्रथम अवस्था भेदवाला त्याग, दूसरेका ग्रहण यही जन्म-मरण नित्य होता है, यही जगत् अवस्थाका भेदवाला है, इसीसे क्षण-क्षणमें उत्पत्ति और नाशको प्राप्त होता है, अवस्थाके भेदवालोंकी यही दशा है ॥४३॥ यहां तर्क करते हैं कि नित्य अवस्थाभेदसे जन्म-मरण होनेवालेको ऐसा ज्ञान क्यों होता है? कि यही देह है; सो यहां दृष्टांत दिखाकर कहते हैं कि जातियोंके सादृश्यसे यह वही दोष है। ऐसा ज्ञान होता है कि जिस प्रकार जल क्षणक्षणमें बदलता है, परंतु नया जल आनेपर भी उसे वही जल है यह भ्रांति होती है इसी, प्रकार शरीर क्षणक्षणमें परिवर्तित होता है परंतु यह वही शरीर है ऐसी वाणी अज्ञानी पुरुष भ्रांतिसे कहा करते हैं ॥ ४४ ॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, जिसको देहाभिमान है, उसको कर्म जन्म-मरण सब है, औरोंको नहीं, यह कैसे सम्भव हो सकता है? तो उत्तरमें कहते हैं कि वस्तुसे देहाध्यासवत्का भी जन्म-मरण नहीं, अध्यासवत् पुरुष अपने कर्मबीजसे न उत्पन्न होता न जन्म लेता है, भ्रांतिसे अजन्मा होनेपर भी जन्मतासा और मरतासा भी प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ अब देहके अवस्थानको कहते हैं:—देहका प्रथम तो उदरमें प्रवेश और फिर गर्भवास होता है, पीछे जन्म, फिर बाल्य, कौमार, यौवन पैंतालीस वर्षसे पीछे साठ वर्षतक मध्यम वय, उपरांत जरा, पीछे मृत्यु यह तो देहकी अवस्था है ॥ ४६ ॥ यह मनोरथमयी अवस्था ऊँच नीच देहको है। सत्त्व, रज, तम, गुणके संगसे आपको मान लेते हैं। इनमें कोई एक

ईश्वरके अनुग्रहसे भक्त इन अवस्थाओंको बहुत विवेक ज्ञानसे छोड़ देते हैं ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि देहके जन्म-मरणमें तो वह मूर्च्छित रहता है, इसे इतना ज्ञान कैसे हो सके ? तो सुनो, पिता मरता है, उसकी क्रिया करते हैं, तब देहका नाश देखते हैं, पुत्रजन्म होता है, तब जातकर्म करते हैं, वहां देहका जन्म देखते हैं, उस अनुमानसे अपने देहका जन्म-मरण जानते हैं, परन्तु जन्म-मरण खाली देहको है, द्रष्टाका जन्म-मरण नहीं है ॥४८॥ जैसे धानादिके बीजसे जन्मका और पक जानेसे मरणका जाननेवाला जो द्रष्टा है वह वृक्ष और फलसे भिन्न है, इसी प्रकार देहके जन्म-मरण जाननेवाला द्रष्टा देहसे पृथक् है ॥४९॥ इस भांति शरीरादिसे आत्माका यथार्थ विचार करना चाहिये। यदि यह विचार न किया जाय तो विषयमोहमें गिरनेके कारण यह मूढ़ प्राणी संसारमें गिरता है ॥५०॥ गुणके भेदसे विविध संसार कहते हैं; उसमें एक एकके दो-दो भेद हैं, उसे कहते हैं कि सत्त्वगुणके संगसे ऋषि देवता होते हैं, रजोगुणसे असुर और मनुष्य होते हैं, तमोगुणसे भूत, पशु, पक्षी इत्यादि सब उत्पन्न होते हैं, वह अपने कर्मोंमें भ्रमण करते हैं वे ही उन योनियोंमें पड़े हैं ॥५१॥ अहो ! आत्मा तो कर्त्ता नहीं तो कर्मोंसे क्यों भ्रमण करता है ? इसपर कहते हैं जैसे नाचते और गाते पुरुषको देखकर यह पुरुष उनमें स्थित गाने और तालको अपने मनमें अनुवर्तन करता है इसी प्रकार बुद्धि और गुणोंके अवलोकनसे गुणोंके सामर्थ्यसे अकर्ता पुरुष उन्हें अपने आपमें मान लेता है ॥५२॥ जैसे जलमें तीरके वृक्ष दौड़ते से दीखते हैं, जैसे दृष्टिके भ्रमसे पृथ्वी भी भ्रमतीसी दिखाई देती है, तो यह धर्म वृक्षमें भूमिमें नहीं, यह अपने दोषसे दीखते हैं। इसी प्रकार दृश्यका धर्म द्रष्टामें स्फुरण होता है और आनन्दादि आत्माके लक्षण होनेपर भी विषयोंके गुणसे प्रतीत होते हैं ॥ ५३ ॥ यदि कोई कहे कि आत्मा भोग करता है वह भी मिथ्या है जैसे मनोरथकी बुद्धि मिथ्या है और स्वप्नमें देखी बुद्धि मिथ्या है, इसी प्रकार आत्मामें प्रतीत होता हुआ विषयोंका अनुभवरूप संसार भी असत्य है ॥५४॥ तो निवृत्तिके उपायका प्रयोजन क्या है ? इसपर कहते हैं कि यद्यपि स्वप्न असत्य है, परन्तु तो भी उन विषयोंके ध्यान करनेवाले पुरुषकी उस अवस्थामें स्वप्नके दुःख नहीं जाते, इसी प्रकार संसारके मिथ्या होनेपर भी विषयोंका ध्यान करनेवाले पुरुषके जन्म-मरण नहीं जाते ॥ ५५ ॥ हे उद्धव ! इसीलिये तुम इन दुष्ट इंद्रियोंसे विषय भोग मत करो, आत्माके ज्ञान विना यह संसारका भ्रम हुआ है, ऐसा जानो ॥ ५६ ॥ कोई निन्दा करे, कोई अपमान करे, कोई उपहास करे, कोई वंचना करे, कोई ताड़ना करे, कोई रोक रखे, कोई वृत्ति छीन ले ॥ ५७ ॥ कोई मूत्र डाले, जूठन डाले, ब्रह्मनिष्ठा बिगाड़े; परन्तु अपना कल्याण चाहनेवाला पुरुष इतने कष्ट सहे आत्मासे आत्माका उद्धार करे, क्रोधित होकर अपने धर्मको न खोवे ॥ ५८ ॥ उद्धवजी बोले कि, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम्हारा वचन हम अच्छी रीतिसे समझ सकें उसी प्रकार समझाकर कहो कि नीच अधम पुरुष इस प्रकार पांडित्य करे तो उसका सहन करना महा कठिन है ॥ ५९ ॥ हे विश्वके आतमरूप ! तुम्हारे चरणके जो आश्रय हैं तुम्हारे धर्ममें तत्पर और शांत हैं, उनको छोड़कर अति पंडितको भी ऐसे अपराधोंका सहन होना अति कठिन है ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि स्वभाव बड़ा होता है ॥ ६० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सांख्यतत्त्वनिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दोहा—तेइसवें अध्यायमें, सहन भीख अपमान।
बुद्धिहिसे मनको करैं, निग्रह मुनि विद्वान ॥

व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नृपोत्तम राजा परीक्षित् ! इस प्रकार भक्तोंमें मुख्य यादवोंमें श्रेष्ठ उद्धवजीके पूछनेपर मुकुन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उत्तर देने लगे, जिन भगवान्‌के चरित्र श्रवण करनेमें अत्यन्त सुखकारी हैं ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे बृहस्पतिके शिष्य उद्धव ! इस लोकमें वह साधु नहीं है जो दुष्टवचनसे खेदयुक्त मनको समाधान न कर सके ॥२॥ मर्मस्थानमें लगे बाणोंसे विद्ध पुरुष ऐसा ताप नहीं पाते, जैसे मर्ममें लगे दुष्टवचनसे व्यथा पाते हैं ॥ ३ ॥ तथापि मेरे कहे हुए उपाय करे, उपाय कहता हूँ—हे उद्धव ! इस विषयमें एक अतिपवित्र इतिहास है, वह मैं तुमसे वर्णन करता हूँ, भली प्रकार सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ कोई एक भिक्षुक दुर्जनसे पीड़ित हो धैर्य धारणकर अपने प्रारब्धकर्मोंका भोग मानकर यह कहने लगा ॥५॥ परन्तु वह भिक्षुक पहले बड़ा धनवान् और सज्ञान था, अत्यन्त दुःखसे जो धन प्राप्त किया था, उसके विनाश हो जानेसे वह अत्यन्त पीड़ित और संतप्त हो गया, फिर चित्तमें धैर्य बढ़ाने और वैराग्य आनेसे संन्यास धारण कर भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करने लगा, परन्तु नगरनिवासी उसको पिछले वैरभावसे अनेक प्रकारके दुःख देने लगे,तब उस भिक्षुकने एक कथा कही,उसके चरित्र हम आपके आगे कहते हैंः—अवन्तिका (उज्जैन) नगरमें एक ब्राह्मण लक्ष्मीसे अति संपन्न कामी, लोभी, महाक्रोधी और कदर्य था। कदर्यका लक्षण स्मृतिमें कहा है "आत्मा, धर्मकार्य, पुत्र, स्त्री, देवता, अतिथि और सेवकोंको जो दुःख दे वह कदर्य है" ॥ ६ ॥ बांधव और अतिथिको वचनसे भी न पूजे; धर्म, काम करके शून्य देहरूप घरमें भोगोंसे कभी आत्माकी पूजा नहीं की ॥ ७ ॥ ऐसे दुःशील कदर्यके पुत्र, बांधव, स्त्री, बेटी, सेवक सब द्रोह करें, कोई उसका प्रिय न करे ॥ ८ ॥ फिर वह इस प्रकार दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हुआ। धर्म, अर्थ, कामसे हीन केवल भूतके द्रव्यकी रक्षा करता रहे, ऐसे पुरुषपर नित्यकर्तव्य पंच महायज्ञोंके अंशमें भागी देवता अत्यन्त क्रोधित हुए। देवताओंके तिरस्कार करनेसे पुण्यका विस्तार सब क्षीण हो गया, तब अनेक परिश्रमसे युक्त खेती आदिसे कमाया द्रव्य भी नष्ट हो गया ॥ ९ ॥ १० ॥ श्रीकृष्ण बोले कि, हे उद्धव ! कुछेक द्रव्य उसके बांधव ले गये, कितना ही द्रव्य चोर ले गये, कितना एक द्रव्य गृहदाहसे जाता रहा, कितना ही जहां गाड़ दिया था, वहांसे गया। कुछ द्रव्य अधर्मी ब्राह्मण और मनुष्य ले गये, कितना ही द्रव्य राजद्वारमें गया ॥११॥ इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे धर्म, अर्थ, कामसे रहित हुआ, स्वजन कुटुम्बी इसका अनादर करने लगे, तब यह अपार चिंताको प्राप्त हुआ ॥१२॥ द्रव्य जानेसे वह ब्राह्मण अति चिन्ता करके उस धनका बहुत ध्यान करता सन्तप्त हुआ और गद्गद कण्ठ होकर उसको बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥१३॥ ❀

▪ शंका—महादुष्ट, नीचबुद्धि, अत्यन्त कृपण, भगवान्‌में प्रीति नहीं ऐसा दुष्ट ब्राह्मण मुनियों द्वारा बड़े दुःखसे प्राप्त होने योग्य ज्ञानको क्यों प्राप्त हुआ ?

उत्तर—धनका नाश हो गया तो ब्राह्मण मनमें दुःखी होकर भ्रमता—भ्रमता सन्ध्या हो गयी तो क्या देखता है कि एक गाय कीचमें सनी हुई पड़ी है और दलदलसे किसी प्रकार निकल नहीं सकती, उस गायको देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी, और यह विचार किया कि, किसी प्रकार यह इस दलदलसे बाहर निकले, उसने हाय-हाय शब्द करके बड़े परिश्रमसे उस गायको दलदलसे बाहर खींच खांचकर निकाल दिया। गाय प्रसन्न हो ब्राह्मणको आशीर्वाद देती हुई धीरे-धीरे चली गयी; गायकी कृपासे बहुत शीघ्र ब्राह्मणको ज्ञान प्राप्त हो गया, वह ज्ञान मुनिलोगोंको भी महाकठिनतासे प्राप्त होता, गृहस्थीसे जो कुछ कर्म ब्राह्मणने किये थे उन कर्मोंसे धनका नाश हुआ, अनेक विघ्न हुए परंतु ज्ञानको पाकर आनंद हो गया इस उपायमे दुष्ट ब्राह्मणको ज्ञान हुआ था।

तब कहने लगा कि, अहो ! देखो, बड़ा ही कष्ट है इतना बड़ा मेरा द्रव्यका परिश्रम वृथा ही गया जो यह आत्मा संतप्त किया । न तो धर्मार्थ ही हुआ, न कामार्थ ही अर्थात् सब वृथा ही गया ॥१४॥ बहुधा जो कदर्य हैं उनको द्रव्यका सुख कभी नहीं होता, जीवित इस लोकमें आपको सन्ताप होता है और मरनेपर नरक मिलता है ॥ १५ ॥ जो यशस्वी हैं, उनका यश अतिनिर्मल है और गुणियोंका गुण बड़ाईके योग्य है, परन्तु जो थोड़ा भी लोभ हो तो सब गुण यशको दूर करे, जैसे उत्तम रूपको थोड़ा भी कोढ़ दूर कर देता है ॥ १६ ॥ इसलिये द्रव्य सब दुःखरूप है, प्रथम तो साधनमें कष्ट है, इसके उपरांत सिद्ध होनेपर वह द्रव्य बढ़ाना चाहे तो उसमें भी कष्ट है फिर उसकी रक्षा करनी चाहिये । भोगमें व्यय होता है, नाश होता है, इस प्रकार आदिसे अंत तक श्रम, भय, चिंता, भ्रम, मनुष्योंको रहते हैं, इस कारण कभी अर्थ सुखकारी नहीं है ॥१७॥ और भी दोष कहते हैंः-चोरी, हिंसा, दम्भ, झूठ, काम, क्रोध, धनके साधनमें हैं, गर्व, अहंकार भेद, बैर, अविश्वास, अश्रद्धा ये छः अनर्थ पानेके पीछे होते हैं और तीन व्यसन-स्त्री, मद्य, जुआ इसी धनसे होते हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार पन्द्रह अनर्थ अर्थ (द्रव्य) से होते हैं । सुनो उद्धवजी ! इसका नाम तो अर्थ है पर अनर्थ रूप है, इसलिए जो पुरुष अपना भला चाहे तो वह दूरसे ही अर्थका त्याग करे ॥ १९ ॥ दोष यह है कि माता-पिता, भ्राता, स्त्री, संबन्धी जो स्नेहके कारण एकचित्त होकर मिले रहते हैं वे भी धनके लिये पृथक् हो जाते हैं और बीस कौड़ीके ऊपर तत्काल वैरी हो जाते हैं ॥ २० ॥ यह प्राणी थोड़े ही द्रव्यके लिये क्षोभको प्राप्त हो महाक्रोध कर श्रद्धासे एकसाथ सुहृदता और स्नेह छोड़कर परस्पर मारने लगते हैं ॥२१॥ इस लोकमें जो अनर्थ उठे हैं और जो परलोकमें भी अनर्थ होंगे उन्हें कहते हैं-देवताओंसे प्रार्थनीय मनुष्य जन्मको पाकर उसमें भी उत्तम ब्राह्मण जन्मको पाकर उस जन्मका अनादर कर अपना स्वार्थ खो देते हैं, वे अधम-गतिको प्राप्त होंगे ॥२२॥ इसलिए स्वर्ग और मोक्षका द्वार यह देह पाकर इस अनर्थके घर द्रव्यमें कौन मरणधर्मा पुरुष आसक्त हो ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति, बन्धु और जो अंशके भागी हैं उनको और अपने आत्माको जो न दे वे अधम गतिमें जाते हैं,इससे वे भूतकी नाई द्रव्यके रक्षक हैं ॥ २४ ॥ अब अपनी अवस्था कहता हूँ, मैं व्यर्थकी क्रियासे सदा असावधान रहा, मेरा द्रव्य व्यर्थ ही गया और वय, क्रम, अवस्था भी व्यर्थ गयी । जो विवेकी हैं, वे अर्थसे मोक्षके अधिकारी होते हैं और मेरा बल भी व्यर्थ गया । अब मैं वृद्ध हो गया हूँ । हाय ! मैं कुछ भी न कर सका ॥ २५ ॥ यह अर्थकी चेष्टा होनेपर भी जानबूझकर इसकी तृष्णासे ज्ञानी पुरुष भी क्यों क्लेश पाते हैं, इससे विदित होता है कि किसीकी मायासे यह प्राणी अत्यन्त मोहित रहे ॥ २६ ॥ यद्यपि धनसे संसारी भोगोंको भोगते हैं, परन्तु जब इस प्राणीके निकट प्रतिदिन मृत्यु चली आती है, तब इस धनसे धनके देनेवालेसे, सुखके देनेवालोंसे तथा बारंबार जन्मदाताकर्मोंसे क्या सिद्ध है ? ॥ २७ ॥ मेरे ऊपर निश्चय ही सर्व देवरूप भगवान् संतुष्ट हुए जिससे मैं इस दशाको प्राप्त हुआ, मुझे वैराग्य उपजा, वैराग्य संसारसमुद्रसे तरनेकी नौका है ॥२८॥ अब मेरा जितना समय शेष रहा है उस कालसे तपस्या करके मैं अपने अंगोंको क्षीण करूँगा, आत्मासे ही सन्तोष मान समस्त धर्मोंसे सावधान रहूँगा ॥२९॥ मुझपर त्रिलोकीके ईश्वर तथा देवता अनुग्रह कर रहे हैं । कदाचित् कहो कि देवताओंके अनुग्रह करनेसे वृद्ध हो गया, समय थोड़ा रह गया,

अब क्या कर सकूँगा ? तो कहते हैं कि खट्वांग राजाने एक मुहूर्तमें ब्रह्मलोकको साध लिया था ॥३०॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जब अवन्ती नगरीके ब्राह्मणने इस प्रकार मनमें निश्चय किया तब हृदयकी गांठ अहन्ता ममताकी खोल शांत मन हो संन्यासी हो गया ॥ ३१ ॥ इंद्रिय, वायु, मनको निश्चल करके पृथ्वीपर फिरने लगा, इसके उपरांत भिक्षाके लिए एक नगरमें आया ॥३२॥ वहां भी कहीं आसक्त नहीं और न किसीको अपनी श्रेष्ठता दिखाता था, किन्तु विचरता रहता था । कल्याणरूप वह ब्राह्मण अतिवृद्ध भिक्षुक अवधूत वेषसे रहता था, उसको देखकर दुष्टजन अनेक प्रकारके तिरस्कारसे दुःख देने लगे ॥३३॥ अब सात श्लोकमें इसका उत्तर कहते हैंः–किसीने तो उसका त्रिदण्ड ले लिया और कोई आसन-पीढ़ा लेकर चले गये ॥३४॥ हे महापुरुष ! पहले इस प्रकार दिखाकर मुनिको देखकर फिर ले लिया और जब भिक्षा मांग अन्न ले नदीके तीर भोजन करे ॥ ३५ ॥ तब पापी इसके माथेपर मूत्र कर दें, फिर वह जो मौन रहे तो बुलावें, यदि न बोले तो मारें, कोई इस प्रकार डरावे कि यह चोर है, ऐसे वचन कहे ॥३६॥ कितने एक यह कहने लगे कि इसे बांधो, ऐसे कहकर उसको रस्सियोंसे बांधते थे, कितने एक कहने लगे कि, "मारो-मारो" क्योंकि यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगनेवाला है, इस प्रकार तिरस्कार करके उसकी निंदा करने लगे ॥ ३७ ॥ यह पाखण्डी है, धूर्त है, अब द्रव्य तो सब गया, स्वजन सम्बंधियोंने सबने छोड़ दिया, अब यह वृत्ति ग्रहणकी है ॥३८॥ अहो ! देखो यह बड़ा ढीठ और अतिबली है, क्योंकि पर्वतके समान धैर्यवान् मौनसे बकध्यानी होकर अपना स्वार्थ साध रहा है, इसका दृढ़ निश्चय है ॥३९॥ इस प्रकार एक तो हँसे, कोई ऊपर अधोवायु छोड़े, कोई बांधे, कोई रोक रखे ॥ ४० ॥ इस भांति बहुत दुःख दुर्जनोंने दिया, देहका दुःख ज्वरादिकोंका किया, दैवके दुःख शीत, उष्ण, "यह सब अपना प्रारब्ध भोग है" दुःख पाकर उस ब्राह्मणने ऐसे समझ लिया ॥४१॥ यद्यपि यह ब्राह्मण नराधम दुर्जनोंसे तिरस्कृत हुआ, परन्तु तो भी सात्त्विक धैर्यसे अपने मनमें रहकर इस कथाको गाने लगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण बोला कि यह जन, देवता, आत्मा, ग्रह और काल कोई भी मेरे सुख-दुःखका कारण नहीं है, मन ही केवल कारण है जो यह संसारचक्रको फिराता है ॥ ४३ ॥ वही कारण कहते हैं कि, बलवान् मन ही गुणकी वृत्ति सृजता है, फिर उन गुणोंसे ही सात्त्विक, राजस, तामस भिन्न-भिन्न कर्म होते हैं, और उन्हीं कर्मोंसे सात्त्विक,राजस, तामस देवता मनुष्य पक्षियोंकी जाति होती है ॥४४॥ अब कहते हैं कि मनका ही संसार होता है,आत्माका संसार कैसे हो सकता है ? तो कहते हैं कि अविद्या और मनके अभ्याससे आत्माका संसार है, आपसे संसार नहीं इससे वासना सहित मन है, यद्यपि उसके संग नियंता होकर रहते हैं तथापि आत्माके संग नहीं, कर्म भी नहीं, क्योंकि वह ज्ञानरूप है,जीवनका सखा है और यह जो जीव है, मनके धर्मोंको ग्रहण कर अहंकार और गुणके संगसे विषयोंका सेवन करनेसे बँधा है ॥४५॥ मनका निग्रह किये विना सब व्यर्थ है; उसे कहते हैंः–दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन कर्म, उत्तम व्रत आदि यह सब एक मनके निग्रह करनेके उपाय हैं, इससे निश्चय करके परम योग मनका निग्रह ही है ॥४६॥ जिसका मन स्थिर और शान्त है, उसे दान आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? मन तो समाधिमें स्थिर हुआ है जिसका मन विक्षिप्त है, तथा आलस्ययुक्त है, उसे दानादिकोंसे और जपसे क्या होगा ? ॥ ४७ ॥ यदि कहो कि दान आदि धर्मसे अन्य

इन्द्रियोंका तो जय होगा, वहां उनको जय तो नहीं होता ऐसा कहते हैं और जो देवता, इंद्रिय यह सब मनके वश हैं, कुछ मन उनके वशमें नहीं है, यह मन आप ही देव है, महाबलिष्ठ है, योगीजनोंको भी महाभयंकर है इसको जो पुरुष अपने वशमें कर लेते हैं, वह देवको भी देख लेते हैं ॥ ४८ ॥ यह मनरूप शत्रु दुर्जय है, इसका वेग नहीं सहा जाता है, सबको पीड़ा करता है, सबको जीते बिना और मनुष्योंसे युद्ध करता है, इसमें और भी जो अनुकूल प्रतिकूल मित्र उदासीन शत्रु कर लेते हैं, वे मूर्ख हैं ॥ ४९ ॥ और इसीसे संसारमें भ्रमण करते हैं, यह देही एक मनकी वासनासे इस देहको ग्रहण करके "यह मेरा देह है" इस ममतासे अहंकारसे अन्धबुद्धि मनुष्य "यह मैं, यह तू" इस भ्रमसे अन्त पारसे रहित संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ इससे सुख-दुखका कारण मन है और कोई नहीं है। इसपर शंका करते हैं कि सुख-दुःखका कारण मन है तो आत्माका कारण क्या है? दोनों देह मिट्टीके विकार हैं, उनको सुख-दुःख ही कारणता है, आत्माका कुछ नहीं लगता है, जीव तो देहके अभिमानसे मान लेता है, आत्माके मूर्ति नहीं, क्रिया नहीं, किसको मारें किसको सुख दें, परमात्मा दोनों जगह एक है, उसको कुछ नहीं लगता ? तो कहते हैं, जैसे अपनी जीभ आप काटे तो क्रोध किसपर करे, इसी प्रकार देहसे देहका सुख-दुःख मान ले तो आत्मा क्या करे ? ॥५१॥ जो सुख-दुःखके हेतु देवता हैं तो इस आत्माको क्या? दुःखका कारण तो देवताओंको है और देवता विकारी हैं; जैसे अंगसे अंगको मारिये तो पुरुष अपनी देहमें किस-पर क्रोध करे, जैसे एकके मुखमें हाथ डाले, वह काट खाया तो मुखका देवता अग्नि है, हाथका देवता इन्द्र है, उनका किया दुःख है, अविकारी अहंकाररहित आत्माको कुछ नहीं लगता ॥ ५२ ॥ जो आत्माको ही सुख-दुःखका कारण मानो तो औरोंसे क्या है ? जिसके ऊपर कोप करे, इस पक्षमें भी औरसे दुःख हुआ, यह कहना सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि वह अपना ही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एक ही है। आत्मासे और दूसरा नहीं। कदाचित् कहो कि जो कुछ यह दीखता है वह मिथ्या है। जब अपना आत्मा दूसरेका आत्मा एक ही है तो कोप किसपर करे इससे निमित्त है नहीं, दुःख भी नहीं ॥ ५३ ॥ यदि कहो कि ग्रह सुख दुःखका निमित्त है तो भी आत्माको क्या ? ग्रह तो लगे हैं जिसका जन्म है। जन्म तो देहका है आत्माका नहीं, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है, जिस लग्नमें देह जन्म लेता है उस लग्नमें जैसे ग्रह हो उसीके अनुसार सुख-दुःखका निमित्त है, जिसको देहाभिमान है उसको ग्रह हैं इससे ग्रह तो अन्तरिक्षमें है, ग्रह परस्पर दृष्टि पड़नेसे ग्रहको पीड़ा देते हैं, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्माका क्या ? आत्मा ग्रह और देहसे भिन्न है, इसलिये पुरुष क्रोध किस-पर करे ॥५४॥ यदि कर्म ही सुख-दुःखका हेतु है, तो भी आत्माको क्या आत्मा तो कर्मसे भिन्न है, कर्म हो तो दुःख हो और कर्म नहीं तो दुःखका हेतु कहांसे हो, सो कहते हैं कि, कर्म तब हो जब एक देहको ही जड़रूपता और अजड़रूपता हो जड़रूपसे तो विकारी हो, अज-ड़रूपसे हितकारीपन ये दोनों धर्म आने चाहिये उनमें। विकारता जड़तावालोंको हो और हितका अनुसंधान जड़तारहितोंको हो और यदि कहो कि देह कर्म करता है तो देह जड़ होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान नहीं और आत्माका भी कर्म करना नहीं बन सकता, क्योंकि वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, जब सुख-दुःखका कारण रूप कर्म सिद्ध नहीं तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करे ॥ ५५ ॥ जो काल सुख-दुःखका हेतु है; तो भी आत्माको क्या, क्योंकि आत्मा

भी कालरूप ही है, काल भी ब्रह्मका अंश है, आत्मा ब्रह्म ही है, अपने अंशको आपसे भय उत्पन्न नहीं होता, जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाका ताप अग्निको नहीं व्यापता और हिमकणतुषारकाशीत हिमको नहीं व्यापता, ऐसे ही कालके किये सुख-दुःखसे आत्माको सुख-दुःख नहीं होता, आत्मा असंग है इस कारण उसमें सुख-दुःखका द्वन्द नहीं व्यापता, दुःख-सुख का कारण अज्ञान है, आत्मा नहीं ॥५६॥ इन छः दुःख-सुखके कारण विना जो कोई और हेतु कहे वह ईश्वरकी महिमा जानकर सम्भव नहीं, यहां कहते हैं जो प्रकृतिसे परे भी हैं, उसे किसी भांति भी सुखदुःखका संबन्ध नहीं, जैसे अहंकार संसाररूपी है, उसीसे सुख-दुःख होता है, जो इस प्रकार समझता है, वह किसीसे नहीं डरता; उसको डर ही नहीं, इस भांति मैं परमात्मामें चित्त रख समुद्र तरूँगा ॥ ५७ ॥ पूर्व महर्षियोंकी यह जो परमात्माकी निष्ठा है, इस निष्ठाको धारणकर साक्षात् मोक्षके देनेवाले भगवान् वासुदेवके चरणारविंदोंकी सेवा करके पारसे रहित संसारसमुद्रके पार जाऊँगा ॥५८॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेसे द्रव्यका क्लेश दूर कर संन्यास लेकर वह ब्राह्मण पृथ्वीपर फिरता रहा ! यद्यपि दुष्टोंने उसका बहुत अपमान किया, परन्तु तो भी उसका चित्त अपने स्वधर्मसे चलायमान न हुआ, तब यह गाथा गायी कि ॥ ५९ ॥ पुरुषको सुख-दुःखका दातामनके भ्रम विना और दूसरा कोई नहीं है, शत्रु-मित्र उदासीन यह जो संसार है, यह अज्ञानसे होता है, तत्त्व विचारसे कुछ नहीं ॥ ६० ॥ हे उद्धव ! इसलिये तुम सब भावसे मुझमें बुद्धि रखकर मनका निग्रह करो, इतना ही योगका तात्पर्य है ॥ ६१ ॥ जो कोई यह भिक्षुककी गायी हुई ब्रह्मनिष्ठाको सावधान होकर धारण करेंगे, सुनेंगे अथवा सुनायेंगे, वह सुख-दुख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे पराभव नहीं पायेंगे ॥ ६२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीतानिरूपणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दोहा—चौबिसवें अध्यायकी, कथा कर्म आधीन ।
आत्मासे सब होत है, आत्मामें ही लीन ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! अब मैं तुमसे कपिलदेव आदि आचार्योंका निश्चय किया हुआ सांख्य वर्णन करूंगा, जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष शीघ्र भेदबुद्धिसे उत्पन्न हुई सुखदुःखादिकी भ्रांतिको त्याग देता है ॥१॥ महाप्रलयमें द्रष्टा और दृश्य भेद रहित एक ब्रह्ममें लीन हो गया; इसके उपरांत प्रथम सतयुगमें जब सब प्राणी विवेकमें निपुण थे, तब भी कुछ भेद न होनेसे सब ईश्वर रूप ही जाना जाता था, भेद नहीं था ॥२॥ पीछे जब बहुत सृष्टिकी इच्छा हुई तो वह अक्षरब्रह्म भेदरहित केवल आनंदमय एकरूप अपने रूपके द्रष्टा और दृश्य भेदरहित दो रूप कर दिये, एक मायाके फलरूप वाणी मनको गम्य प्रपञ्चरूप कर दिया एक सत्यरूप ॥३॥ ब्रह्मसे हुए उनके मध्य एक कार्यकारणरूपिणी प्रकृति हुई, दूसरे भावसे ज्ञानरूप पुरुष हुआ, जो प्रकृत पुरुष कहलाता है ॥४॥ पुरुषरूप मेरे देखनेसे क्षुभित हुई, प्रकृतिद्वारा सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रगट हुए ॥५॥ प्रथम इन तीनों गुणोंसे सूत्र क्रिया शक्तिरूप हुआ, पीछे वह सूत्र ज्ञानशक्तिरूप तत्त्व प्रगट हुआ । एकही तत्त्वज्ञान क्रिया भेदसे

दोनों रूप हुए; उस महत्तत्त्वसे अहंकार हुआ, जों सबको मोह उत्पन्न करता है और जीवको भ्रमण करा रहा है ॥६॥ वह अहंकार तीन प्रकारका है; सात्त्विक, राजस, तामस, यही अहंकार; शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, इन्द्रिय, मन तथा देवताओंका कारण है, जीव और देहकी ग्रंथिरूप यही है ॥ ७ ॥ अब इस त्रिविध अहंकारसे त्रिविध प्रपंचकी उत्पत्ति दिखाते हैंः– इनमें तामस अहंकारसे पहले सूक्ष्मभूत प्रकट हुए ॥ ८ ॥ इसके उपरांत पञ्चमहाभूत हुए; प्राणियोंके आवरणरूप दश अहंकार हुए; प्रवृत्ति–स्वभाव–रूप सात्त्विक अहंकारसे देवता दश इंद्रियोंके अधिष्ठाता दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति, ये सब दश मनका देवता चन्द्रमा मिलकर ग्यारह देवता हुए, क्योंकि मन विना इंद्रियोंका प्रकाश नहीं होता, वह प्रकाशक है, इस प्रकार सब तत्त्व भिन्न-भिन्न हुए ॥ ९ ॥ पीछे एक अण्ड उत्पन्न किया, वह ब्रह्माण्ड विराट पुरुष अन्तर्यामीका (मेरा) उत्तम घर है। जलमें अण्ड हुआ उस अण्डमें श्रीनारायणरूप लीलाशरीरसे मैं स्थित हुआ,वहां मेरी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ, वह कमल जगत्‌रूप तत्त्वात्मक लोकोंका कारणभूत है। उस कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए ❋ ॥१०॥ उन ब्रह्माजीने विश्वरूप तपस्या करके गुणसे युक्त मेरे अनुग्रहसे लोकपाल समेत तीन लोक भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्गको सृजा। उन लोकोंमें ही चौदह लोक समझ लेना, वह भूमि कहनेसे पाताल लोक नीचेके आये, भुवः कहनेसे अन्तरिक्ष कहा और स्वर्ग कहनेसे महर्लोकसे लेकर सत्यलोकतक सब कहा ॥ ११ ॥ लोकसृष्टिका प्रयोजन कहते हैंः–देवताओंका लोक (स्थान) स्वर्ग हुआ, भू प्राणियोंका स्थान अन्तरिक्ष हुआ, मनुष्योंका लोक भूमि हुई, जो सिद्धि हैं और योगसाधना हैं उनका स्थान महर्लोक आदि जान लेना ॥ १२ ॥ महात्मा ब्रह्माजीने नाग तथा असुरोंका निवासस्थान पृथ्वीके नीचे अर्थात् पाताल बनाया है, त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियाँ होती हैं, वे सब त्रिलोकीके ही मध्य हैं, इस प्रकार लोक भिन्न-भिन्न रचे हैं ॥१३॥ महर्लोक, जनलोक, तपलोक, और सत्यलोकमें योग संन्यास ज्ञानसे निर्मल गति होती है। वैकुण्ठकी गति मेरी भक्ति विना नहीं होती, भक्ति योग करनेसे होती है ॥१४॥ और वैकुण्ठकी गतिके विना अन्य सब स्थान चञ्चल हैं, स्थिर नहीं। स्थिर तो एक मेरी गति है इससे और ठौर वैराग्य रखना उचित है, मैं कालरूप परमेश्वर हूँ, यह सब जगत् मैंने ही कर्मयुक्त किया है, वह मायाके गुणप्रवाहमें सब विश्व डूबता-उछलता है। इस लोकसे और लोकमें जाकर फिर गिरता है, इसलिये इसमें चित्त न लगाये ॥ १५ ॥ इसको ब्रह्मरूप कहते हैं कि जो पदार्थ सूक्ष्म है और जो बड़ा है जो स्थूल है, दुर्बल है, वह प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे युक्त है ॥१६॥ जिस कार्यका जो आदि कारण है और जो पीछे भी रहनेका स्थान है, वही इसके मध्य है, वह इसका रूप है, परंतु व्यवहारमें और प्रकार भासता है, जैसे सुवर्ण भूषण और मिट्टीके घड़े सरैये आदि नाम अलग

❋ शंका–श्रीकृष्णने बारंबार 'मम' ऐसा वचन क्यों कहा ? क्योंकि परमेश्वर होकर अभिमानयुक्त वचन कहना यह बड़े आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–पहले ही उद्धवने श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रार्थना की थी कि, हे महाराज ! मेरे सामने आप किसी दूसरे देवताकी और अपने दूसरे अवतारकी कथा मत कहना और कहना भी तो अपनी ही कथा कहना, क्योंकि आपके नामके रसके सुखमें मग्न हो गया हूँ, दूसरेका चरित्र मुझको अच्छा नहीं जान पड़ता, ऐसी उद्धवकी प्रार्थनाको मानकर श्रीकृष्णचन्द्रने 'मम' शब्द कहा या कुछ अभिमानसे नहीं।

अलग हैं वस्तुतः सुवर्ण और मिट्टी ही है, इस प्रकार सब समझकर नाम भेदसे जो व्यवहार है, वही विकार है, मिथ्या है ऐसा समझना चाहिये ॥ १७ ॥ यहां तर्क करते हैं कि जो तुम इस प्रकार कार्यको एकरूप कहकर सत्य कहते हो तो अपने-अपने कार्यमें महत्तत्त्व आदि सब तत्त्व आदि अन्त मध्यमें संयुक्त है तो महत्तत्त्वादिकोंकी सत्यता हो सकती है ? तो कहते हैं कि वे कारणरूप ब्रह्म भावको अंगीकार करके कार्यको बनाते हैं, जैसे मृत्तिकाके पिण्ड निमित्तकारण घटको बनाते हैं, परन्तु उसके आदि अन्तमें मृत्तिका ही है जो जिसका आदि अन्त है, वह सत्य है, इससे सबके आदिसे मृत्तिकाको ही लेकर बनाते हैं, अन्त ब्रह्म ही है ॥ १८ ॥ प्रकृति इस जगत्‌का उपादान कारण है, उत्पत्ति स्थान है, पुरुष आधार अधिष्ठाता है और काल गुणोंके क्षोभसे उसको प्रगट करनेवाला है, वह यह तीनों ब्रह्मरूप मैं ही हूँ, मुझसे यह भिन्न नहीं है, प्रकृति मेरी शक्ति है, पुरुष और काल मेरी अवस्था है, मेरा रूप होनेसे मैं ही अद्वितीय स्वरूप हूँ ॥ १९ ॥ अब इस सृष्टिकी अवधि कहते हैं—जीवोंके भोग देनेके लिये प्रगट हुई, यह मेरी सृष्टि जबतक इसका अन्त नहीं आता, तबतक पितारूपसे निरन्तर चलती है और जबतक परमात्मा ईक्षण हो तबतक रहती है, इसके उपरांत प्रलय हो जाती है उसे कहते हैं ॥ २० ॥ यह ब्रह्माण्ड विराट्‌रूप जिसमें लोकोंकी कल्पना है, जब इसके निकट मेरा स्वरूप भूतकाल पहुँचने लगता है तब मुझसे पीड्यमान हो सब लोक नाशको प्राप्त होते हैं, जैसे उत्पन्न हुए हैं, उसी कर्मसे तत्त्व भिन्न-भिन्न होकर अपने कारणसे मिलकर नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥ यह शरीर अन्नसे हुआ है, इस कारण शतवर्ष अनावृष्टिके होनेसे क्षीण हो उस अन्नमें लीन होता है अन्न बीजमें लीन होता है, बीज भूमिमें लीन होता है, अर्थात् बोनेसे नहीं उपजता, भूमि गन्धमें महाप्रलयकी अग्निसे दग्ध हो गन्धमात्र रहता है ॥२२॥ गन्ध जलमें लीन होता है जल अपने गुणमें लीन होता है, रस ज्योतिमें लीन होता है, ज्योति रूपमें लीन होती ॥ २३ ॥ रूप वायुमें लीन होता है, वायु स्पर्शमें लीन होता है, स्पर्श आकाशमें लीन होता है और आकाश शब्दमें लीन हो जाता है॥२४॥शब्द अहंकारमें लीन होता है, इस प्रकार पंचभूतोंकी व्याख्या कहकर अब इंद्रियोंकी प्रलय कहते हैं:—इंद्रियाँ अपने प्रवर्तकमें लीन होती हैं, जिस इंद्रियका जो देवता है उसी देवतामें लीन हो जाती है ॥ २५ ॥ वह देव सब मनके वश हैं, इसी कारण मनमें लीन होते हैं, मन सब इंद्रियोंका ईश्वर है, उसमें प्रविष्ट होती हैं, मन अपने सब देवता सहित सात्त्विक अहंकारमें लीन होता है, शब्द तामस अहंकारमें लीन होता है, इसीसे कालके अधीन है ॥२६॥ काल ज्ञानरूप महापुरुषमें लीन होता है, पुरुष आत्मरूप जन्मरहित मुझमें लीन होता है, तब आत्मा एक शुद्ध विकल्पसङ्कल्परहित अपने ही आनन्दमें स्थित होकर रहता है, इस भांति सब सृष्टिका प्रकार कहा, अब इसका प्रयोजन कहते हैं ॥ २७ ॥ जब इस प्रकार ज्ञानसे देखे, तब उसके मनका कल्पना किया हुआ भ्रम क्यों हो और हुआ भी भ्रम हृदयमें क्यों रहे ? जैसे आकाशमें सूर्योदयके भयसे अन्धकार नहीं रहता है ॥२८॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि, हे उद्धव ! यह सांख्यज्ञानकी विधि मैंने तुमसे वर्णन की इसके जानते ही हृदयकी गांठ छूट जाती है और इसलिये उत्पत्ति तथा प्रलयके प्रकार तुमको समझाकर कहे, क्योंकि मुझे सब का पूर्ण ज्ञान है ॥ २९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सांख्यतत्त्वनिरूपणं नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा–पच्चिसमें कुछ निर्गुण, अरु कुछ सत्य विवेक।
मनमें प्रगटत है सदा, सत रज वृत्ति अनेक॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! जबतक प्रकृति पुरुषका ज्ञान न हो, जबतक तीनों गुणोंके स्वभाव न जीते हों, तबतक सुख-दुःख आदि द्वंद्व धर्म नहीं जाने जाते। इससे जैसे गुणके स्वभाव जाने जाते हैं उस उपाय करनेको प्रथम गुणके स्वभाव कहते हैं:–हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ उद्धव! तीनों गुण भिन्न-भिन्न होते हैं, जब जिस गुणसे जैसां पुरुष होता है, वह आप मन लगाकर सुनिये, मैं कहता हूँ, ॥ १ ॥ जिसका सत्त्वगुणी स्वभाव हो उसके यह धर्म होते हैं-शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया, पहला और पिछला स्मरण, त्याग वैराग्य, आस्तिक्यबुद्धि, अनुचितकर्ममें लज्जा, दान, आत्मासे रति यह सत्त्वगुणकी वृत्ति कही ॥२॥ अब रजोगुणकी वृत्ति कहते हैं:–कामना, चेष्टा, दर्प, तृष्णा, गर्व देवताओंसे सुखकी आकांक्षा, विषयभोग, बुद्धियादिकोंका उत्साह, जगमें प्रीति, हास्थ, वीर्य, बलका उद्यम इत्यादि यह सब रजोगुणकी वृत्ति है ॥३॥ अब तमोगुणकी वृत्ति कहते हैं:–क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याच्ञा, दम्भ, अनुद्यम, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दुःख, हीनता, निद्रा, आशा, भय, यह तमोगुणकी वृत्ति भिन्न-भिन्न कही। अब जो एक मिली है, वह वृत्ति सुनो ॥ ४ ॥५॥ हे उद्धव! "अहं राम" यह जो बुद्धि है, इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इंद्रिय और प्राण यह सात्विक, राजस, तामस हैं, इनसे जो कार्य है, उसे सन्निपातजनित कार्य कहना चाहिये क्योंकि तीनों गुणके मिले कार्य हैं, मैं शांत हूँ, मैं कामी हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मुझे शांति है, काम है, क्रोध है, इस प्रकार व्यवहार तीनों गुणोंका सन्निपात है ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष धर्म अर्थ काममें स्थित हो तब जान लीजिये कि तीनों गुणोंकी एकता है, धर्म सात्विक, अर्थ राजस, धर्ममें काम तामस, धर्ममें श्रद्धा हो, अर्थमें प्रीति हो, काममें धन हो ॥७॥ प्रवृत्ति–सकाम धर्ममें निष्ठा रखे, गृहस्थाश्रम धर्ममें निष्ठा रखे यह भी गुणोंके सन्निपातसे होता है, क्योंकि सकाम धर्म रजोगुणमय है, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है, जो नित्य नैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है, वह सत्त्वगुणमय है ॥८॥ इस प्रकार भिन्न-भिन्न और मिले गुणोंकी अवस्था कहकर जिस गुणसे जैसा पुरुष होता है, वह कहते हैं कि पुरुषके जो शम, दम, क्षमा, दया, यह धर्म होते हैं, उसे सात्विक जानना, काम अनुरागसे राजस समझ लेना, क्रोधादिसे तामस जानना ॥ ९ ॥ और जो भक्तिपूर्वक निरपेक्ष होकर स्वकर्मसे मेरा भजन करे, वह पुरुष हो अथवा स्त्री हो, उसका सत्त्वगुणरूपी स्वभाव जानना। जो स्वकर्मसे मेरा भजन करते हैं और मुझमें कुछ चाहना करते हैं, उन्हें रजोगुण स्वभावयुक्त कहना चाहिए ॥ १० ॥ और जो किसीके मारनेको मेरा भजन करे, उसे तमोगुणी स्वभाववाला जानना ॥११॥ अब कहते हैं कि इन गुणोंके वश तो तुम भी देख पड़ते हो और जो नहीं हो तो तुम सेव्य क्यों हुए? और जीव सेवक क्यों हुआ! इसका उत्तर देते हैं कि ये तीनों गुण जीवके हैं कुछ मुझे नहीं है, यह सब चित्तके विकारसे होते हैं, जिसमें प्राणी आसक्त होकर बँध जाता है, मैं तो आसक्त नहीं हूँ, नियन्ता हूँ और द्रष्टा ही रहा हूँ, इससे बंधनमें नहीं, इसीलिए अपना भजन करनेके लिए वारंवार कहता हूँ ॥ १२ ॥ जब एक गुणकी अधिकता होती है, उसका कार्य दिखाते हैं कि जब प्रकाशरूप निर्मल शांत सत्त्वगुण बढ़कर

रजोगुणको जीते, तब पुरुष धर्म ज्ञानसे परमसुखी होता है ॥ १३ ॥ जब रजोगुण; सत्त्वगुण और तमोगुणको जीते तब रजोगुणसे सङ्ग होता है, उस संगसे सर्वत्र भेदबुद्धि होती है, उससे प्रवृत्तिमार्गका स्वभाव होता है, अतः कर्म यश, श्री और दुःखसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ जब तमोगुण सत्त्वगुण और रजोगुणको जीते तब अज्ञानसे मोहको प्राप्त हो शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, आशासे युक्त हो, विवेक तज अनुद्यमरूप जड़सा होकर रहता है और लय हो जाता है ॥१५॥ जब चित्त निर्मल होकर इंद्रियोंके विषयोंसे निवृत्त हो, देहमें अभय हो मनकी आसक्ति कहीं न हो, वह सत्त्वगुण मेरी प्राप्तिका स्थान जानना चाहिये ॥१६॥ जब क्रियासे विकारको प्राप्त हो बुद्धिका विक्षेप हो; ज्ञानेंद्रियोंको शांति न हो, कर्मेंद्रियोंकी निश्चलता न हो, मन भ्रमता रहे, तब जान लो कि रजोगुण बहुत बढ़ गया है ॥ १७ ॥ जब चित्त अन्तर्धान होकर लीन हो जाय, ज्ञानसे पदार्थके ग्रहणको असमर्थ हो, मनमें भी संकल्प-विकल्प उपजते रहे नष्ट होकर शून्यसा रहे, अज्ञान, ग्लानि, दुःख हो, तब जानिये कि तमोगुणकी वृद्धि है ॥१८॥ हे उद्धव! यदि सत्त्वगुण बढ़ता है तो देवताओंका बल बढ़ जाता है, रजोगुण बढ़ता है तो असुरोंका बल बढ़ता है और तमोगुण बढ़ता है तो सब राक्षसोंका बल बढ़ता जाता है ॥१९॥ सत्त्वगुणसे जाग्रत, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्तिकी अवस्था होती है इन तीनों अवस्थाओंमें व्याप्त एक चतुर्थ अवस्थारूप आत्मतत्त्व है, वह तुरीय निर्गुण अवस्था है ॥ २० ॥ अब गुणके उत्कर्षसे कर्मफलको दिखाते हैं-सत्त्वगुणके उत्कर्षसे ब्राह्मण वेदोक्तकर्मको करके ऊपर ब्रह्मलोक तक जाते हैं, तमोगुणसे नीचेके लोकमें जाते हैं और रजोगुणसे मनुष्यदेहको त्यागते हैं ॥ २१ ॥ अब जिस गुणकी अधिकतामें मरनेसे जो गति होती है, उसे कहते हैं—सत्त्वगुणसे मरे तो स्वर्गलोकमें जाय, रजोगुणमें मरे तो मनुष्यलोकमें जाय, तमोगुणमें मरे तो नरकमें जाता है और निर्गुण हो तो मुझे ही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ यदि स्वकर्म करे, और उसका फल न चाहे अथवा मुझे अर्पण करे तो वह सात्त्विक कर्म है, जिस कर्ममें फलकी याचना है वह राजस है, जिसमें हिंसा अधिक है वह तामस कर्म है ॥ २३ ॥ अब सब गुण निर्गुण भेदसे ज्ञान और भक्ति भी चार प्रकारकी है, कहते हैं–केवल आत्मनिष्ठ ज्ञान सात्त्विक है, जो ज्ञान देह इन्द्रियोंके संबन्धसे लीन होता है वह राजस और जो बालक गूंगेका ज्ञान है, वह तामस है केवल शुद्ध पुरुषोत्तम निष्ठ ज्ञान हो वह निर्गुण कहलाता है ॥ २४ ॥ बनका वास सात्त्विक है, ग्रामका वास राजस है, जुएके घरमें वास तामस है और भगवत् मन्दिरमें निर्गुण वास है ॥ २५ ॥ आसक्ति विना कर्मका कर्त्ता सात्त्विक कहलाता है, आसक्तिसे अन्धा होकर कर्म करना राजस है; स्मरणसे रहित कर्म करना तामस है और केवल एक मेरी शरणको प्राप्त हो अहंकार छोड़कर कर्म करे, वह निर्गुण है ॥ २६ ॥ आत्मकी श्रद्धा सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी, धर्म श्रद्धा तामसी और मेरी सेवामें श्रद्धा निर्गुण है ॥२७॥ जो आहार भक्ष्य भोज्य वस्तु हो, पवित्र हो, विना श्रम प्राप्त हुआ हो वह सात्त्विक कहलाता है, और इन्द्रियोंका परमप्रिय मधुर, कटु, अम्ल, लवण ये सब राजस हैं, जिससे पीड़ा हो, अशुद्ध हो उसे तामस कहते हैं और जो वस्तु मुझे निवेदनकी हो वह निर्गुण कहलाती है ॥ २८ ॥ आत्माके अनुभवसे हुआ सुख सत्त्वगुणरूपी है, विषय अनुभवसे हुआ सुख

राजस है, मोह दीनतासे सुख हो वह तमोगुणी है और केवल मेरे आश्रयका सुख निर्गुण है ॥२९॥ यह जितने पदार्थ कह आये हैं, द्रव्य, पवित्र, वस्तु, देश, वन, ग्राम, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्राद्ध, अवस्था, आकृति, मरण, ये सब त्रिगुणमय है ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह सब प्रपञ्चरूप भाव गुणमय जानना; पुरुष और प्रकृतिसे अधिष्ठित है जितना देखा है; सुना है, बुद्धिसे ध्यानमें रहता है वह सब गुणमय है ॥ ३१ ॥ यह गुण कर्मसे बंध पुरुषको संसारकी गति है । सौम्य जो जीव चित्तसे उत्पन्न हुए गुणको जीते वे भक्तियोग करके निष्ठासे मेरे भावको प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये विवेकी पुरुष जीतनेका ही उपाय करते हैं, उसे कहते हैंः–ज्ञान-विज्ञानको देनेवाला मनुष्य देह या गुणसंगको दूरकर निपुण मेरा भजन करे ॥३३॥ ज्ञानवान् सावधान जितेन्द्रिय पुरुष सब संगको छोड़कर निस्संग हो मेरा भजन करे ॥ ३४ ॥ सत्त्वगुणकी सेवासे रजोगुण तमोगुणको जीते, इसके उपरांत निर-पेक्ष और शांतबुद्धि हो मुझमें चित्त रखकर सत्त्वगुणको भी जीते ❋ ॥ ३५ ॥ जब यह जीव गुणोंसे छूट जाय तब अपने वासना देहको छोड़ मुझे प्राप्त हो और जब मुझे प्राप्त हुआ, फिर उसे संसारका आवागमन नहीं रहता लिंग शरीरसे चित्तसे उत्पन्न हुए गुणसे मुक्त हुए अथवा मैं परब्रह्म हूँ, उसीसे पूर्ण हुआ जीव विषय भोग नहीं करता और विषयभोगोंका स्मरण भी नहीं करता ॥ ३६ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादश-स्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

दोहा–छब्बिस माहिं कुसंगते, होत योगमें भङ्ग ।
योग भोग पूरण करै, सन्तनको सतसङ्ग ॥

श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव ! जिससे मेरा स्वरूप जाना जाय, ऐसे मनुष्य देहको पाकर जो मेरे धर्ममें स्थित हो, अपने आत्मामें स्थिर आनन्दरूप परमात्माको प्राप्त होता है ॥१॥ ज्ञाननिष्ठाके प्रभावके कारण गुणमय लिंग शरीरसे मुक्त हुआ पुरुष गुणकी जो मायामात्र और वास्तविक रीतिसे प्रतीत हो रहा है, उनमें निवास करनेपर भी मिथ्या गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥२॥ यद्यपि उसे सर्वत्र वस्तुकी इच्छा नहीं है परन्तु तो भी दुष्टसंग न करे जो केवल उपस्थ, इन्द्रिय और उदरको तृप्त करनेवाले हैं, ऐसे दुष्टोंका कभी सङ्ग न करे, क्योंकि जो एक भी दुष्टजनका संग हो तो भी महाघोर अन्धतम नरकमें पड़ता है, जिस प्रकार एक अन्धेके पीछे दूसरा अन्धा गिरता है और बहुतोंका संग बाधा करता है इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र बड़ा यशस्वी राजा पुरूरवा जब प्रथम उर्वशीके विरहसे मोहित हुआ था, तब अत्यन्त दुःखसे कातर हो कुरुक्षेत्रमें पहुँचा और वहां उर्वशीको देख प्रार्थना की, तब उसने उपासना बतायी, उसीके द्वारा राजा गन्धर्वलोकमें प्राप्त हुआ जब वहां उसका शोक निवृत्त हुआ तब उसने यह गाथा गायी ॥ ४ ॥ पुरूरवा राजाको छोड़कर

❋ शंका–जीव क्या वस्तु है, जो जीव छूट जाता है ?

उत्तर–जीव ब्रह्माका रूप है, अजीव देह है । जबतक देहके सुखकी इच्छा करता है, तबतक दुःख भोगता है और देहसे बंधा भी रहता है और देहके सुखकी इच्छाको जब त्याग देता है, तब देहको भी त्यागकर ब्रह्म सुखको प्राप्त हो जाता है । यह अर्थ "जीवोऽजीवो विहाय माम्" इस श्लोकका है ।

जब उर्व्वशी चली गयी, तब उन्मत्तकी नाईं नग्न उसके पीछे विलाप करता हुआ, 'हे घोरे तिष्ठ तिष्ठ' इस प्रकार विह्वल होकर कहता हुआ उठकर उसके पीछे चला ॥ ५ ॥ पुरूरवा राजा अपनी पहली अवस्था कहता है कि तुच्छ कामनाओंका सेवन करनेसे मैं अभी तृप्त नहीं हुआ, क्योंकि अनेक वर्षोंकी रात्रि आकर बीत गयीं, परन्तु मैंने नहीं जाना, चित्त उर्व्वशीसे हर रहा था, जब ज्ञान हुआ, तब जैसे वचन कहे थे, वह कहते हैं ॥६॥ पहले आठ श्लोकोंमें राजाका पश्चाताप कहते हैंः—अहो ! देखो मेरे मोहका विस्तार, कि मैं इतना विषय किया परन्तु तो भी कामसे मलिन चित्तमें उर्व्वशीने मेरे कण्ठका आलिंगन किया, इसीमें मेरी इतनी आयु व्यर्थ गयी, मैंने कुछ नहीं जाना ॥ ७ ॥ अब अत्यन्त खेदित होकर कहता है कि देखो ! इस उर्व्वशीसे मैं वंचित हुआ, सूर्य उदय हुआ वा अस्त हुआ यह भी मैंने न जाना, बहुत वर्षोंके इतने दिन बीत गये परन्तु मैंने कुछ न जाना ॥८॥ हे उद्धव ! यह फिर कहने लगा-अहो ! मेरे मनको देखो कि मेरा आत्मा इन स्त्रियोंने खेलनेको हरिण किया, मैं राजाओंका राजा हूँ, मैं इस प्रकार पराधीन हुआ ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित, चक्रवर्ती मुझे देखो; जो तृणके समान मुझे छोड़ उठकर चली गयी, उस स्त्रीके पीछे नग्न उन्मत्तकी भांति मैं भी उठ चला ॥ १० ॥ ऐसे मुझे प्रताप, तेज, ऐश्वर्य कहांसे हो ? कि जो मैं चली जाती हुई स्त्रीके पीछे लगा ही चला आया, गधैयाके समान वह तो लातोंसे मारती जाती है और गधा उसके पीछे जैसे चला जाता है, ऐसे ही मैं चला गया ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंसे हरा गया है, उसको विद्या, तप, दान, अध्ययन, एकान्त, मौन इन साधनोंसे क्या होता है ॥१२॥ इससे मैंने अपना स्वार्थ न जाना और आपको पंडित मान लिया, इसलिये मैं अतिमूर्ख हूँ, मुझे धिक्कार है, कि जो ऐश्वर्यको प्राप्त होकर भी स्त्रीसे बैल गधेकी भांति अधीन हुआ ॥ १३ ॥ यद्यपि अनेक वर्षोंके समूहसे मैंने उर्व्वशीका अधर-मधु पिया परन्तु तो भी इस कामसे तृप्ति नहीं होती है, जैसे आहुतियोंसे अग्नि तृप्त नहीं होता ॥ १४ ॥ इस प्रकार आठ श्लोकोंमें वैराग्य कहा, अब दश श्लोकोंमें विवेक कहते हैं—कि जिनके चित्त वेश्याओंने हर लिये हैं, उन्हें छुड़ानेको आत्माराम ईश्वर अधोक्षज भगवान्के विना और कौन समर्थ है ! इसलिये एक परमेश्वरका ही भजन करना उचित्त है क्योंकि बहुतेरोंने यज्ञोंसे देवता प्रसन्न किये, परन्तु अन्त समयमें दुःख ही पाया ॥१५॥ ईश्वरके प्रसाद विना मोह निवृत्त नहीं होता, इसलिये उन्हींका भजन करना चाहिये। देखो उर्व्वशीने मुझे उत्तम वाक्योंसे समझाया था, परन्तु तो भी मेरे मनका मोह न गया, मैं अजितेंद्रिय महामूढ हूँ ॥१६॥ उर्व्वशीका अपराध नहीं, यह मेरा ही अपराध है क्योंकि मैं अपने अजितेंद्रियपनसे ही दुःखी हुआ हूँ, उसने मेरा क्या अपराध किया है ? रस्सीको न जान जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम करे तो विद्यमान रस्सीका क्या अपराध है ॥ १७ ॥ यदि कहो कि, इसने रूप गुणसे मोह उत्पन्न किया, यह दोष इसीका है, यह दोनों दोष मनमें रचे हैं, अज्ञानसे हैं, उसे कहते हैं—यह अति मलिन दुर्गंधादिसे भरी देह कहां और पुष्पकी सुगंधके तुल्य आत्माके गुण कहां, सब ठौर ममत्त्व अविद्याका किया है, वस्तुतः विचारसे सब मिथ्या है ॥१८॥ यह देह माताकी है अथवा स्त्रीकी है, स्वामीकी है, या अग्निकी है या कूकर गिद्धोंकी है, वा आत्मा की है, वा मित्रकी है, किसकी कहनी चाहिये ? इतना तो इसका निश्चय होता ही नहीं और न होगा ॥१९॥ जैसे अपवित्र तुच्छ देहमें आसक्त होते हैं उसे कहते हैं कि देखो तो कैसा

सुन्दर मुख है, कैसी सुन्दर नासिका है, कैसा सुन्दर हँसना है, क्यों भूले हैं और यह तो सब कृमि विष्ठा भस्मरूप हैं ॥२०॥ त्वचा, मांस, रुधिर, आंत, मेद, मज्जा, हड्डी, संघातरूप देहमें जो आसक्त हैं, उनमें विष्ठा, मूत्र, पीवमें जो रमते हैं उनमें क्या अन्तर है अर्थात् कुछ नहीं। हमारे विचारसे तो जैसे कृमि वैसे वे मनुष्य हैं ॥ २१ ॥ यद्यपि इस प्रकार स्त्री कदर्यमयी जाने हैं परंतु तो भी उनके गुरु स्त्रीलम्पटोंके निकट जो विवेकी हो तो न जाय, क्योंकि विषय असत् इन्द्रियोंके सङ्गसे मन सर्वथा विकारको प्राप्त हो जाता है और जो सङ्ग न हो तो नहीं हो सकता, अतः उससे दूर ही रहे ॥२२॥ जो वस्तु देखी-सुनी नहीं है, उससे मनकी इच्छा नहीं होती, इस कारण जो पुरुष इंद्रियोंको रोकता है, उस पुरुषका मन निश्चल होकर शांत हो जाता है ॥ २३ ॥ इसमें इंद्रियोंका, स्त्रियोंका और स्त्रीलम्पटोंका सङ्ग न करे, जो ज्ञानवान् हैं, उनको भी इन इन्द्रियोंका विश्वास करना योग्य नहीं है, मुझ सरीखोंकी तो बात ही क्या है ? ॥२४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव ! इस प्रकार गाता हुआ वह राजाधिराज पुरूरवा उर्वशीलोकको छोड़ अपने आपमें आत्मरूपको जान ज्ञानसे मोहनिवृत्ति कर निवृत्त हो गया ॥ २५ ॥ इसलिए दुःखदायी सङ्गको छोड़ बुद्धिमान् होकर जो साधुओंका संग करते हैं, वे अपने कर्मसे मनकी गांठ काट देते हैं ॥२६॥ साधु पुरुष कुछ चाहना नहीं करते हैं, क्योंकि वे तो निरपेक्ष हैं और उनके चित्त मुझमें लग रहे हैं, वे समदृष्टि और ममतारहित अहंकाररहित शांत हैं एवं सुखदुःख-परिग्रहहीन हैं, इस कारण उनका संग ही इन मनुष्योंको तार देता है ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! वे बड़े भाग्यवान् हैं, निरन्तर जो मेरी कथाओंको श्रवण करते हैं, क्योंकि वह कथा मनुष्यके मनके संपूर्ण पाप दूर करती है ॥२८॥ जो कोई मेरी कथा सुनेंगे, गावेंगे स्तुति करेंगे अथवा आदर करेंगे वे मुझमें तत्पर हो श्रद्धा सहित मेरी भक्तिको प्राप्त होंगे॥२९॥अनंतगुण पूर्ण आनंद और अनुभवरूप मुझमें जिस साधुने भक्ति प्राप्ति की, फिर उसे और क्या बाकी रहा ॥३०॥ जैसे भगवान् अग्निकी सेवासे अन्धकार और शीत जाता रहता है, इसी प्रकार साधु पुरुषोंकी सेवा करनेसे संसारका भय जाता रहता है ॥३१॥ प्राणी घोर संसाररूपी समुद्रमें डूबते-उछलते हैं, उनको ब्रह्मके ज्ञाता शांत साधु ही परमगति है, जैसे जलमें डूबते हुए पुरुषको दृढ़ नाव परमगति होती है ॥ ३२ ॥ प्राणियोंको जैसे अन्न प्राण है, ऐसे ही आर्त पुरुषको शरण मैं हूँ। मनुष्यको परलोकका धर्म ही धन है, ऐसे ही संसारसे डरे हुए पुरुषको शरण देनेवाले साधु हैं ॥३३॥ सूर्य तो भली भांति उदय होनेपर भी बाहरी एक चक्षु इन्द्रियको देता है और साधुपुरुष तो सगुण तथा निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक चक्षुओंको देते हैं,इस कारण देवता बंधरूप साधुपुरुष ही हैं और आत्मा तथा तद्रूप भी साधुओंमें ही है ॥३४॥ प्रथम इसका शुद्ध मनसे स्त्रीरूप होकर पार्वतीके वनमें गया था, इस लिए उसके पुत्र पुरूरवाका नाम वैतसेन कहा, वह उस उर्वशीलोकसे इस प्रकार निःस्पृह होकर संग छोड़ आत्माराम हो इस पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥३५॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* शंका—सब वेद और शास्त्रोंमें लिखा है कि भगवान तीन लोक और १४ भुवनके प्राणियोंके स्वामी हैं, तो फिर श्रीकृष्णने अपने मुखसे क्यों कहा कि, दुःखी प्राणीकी शरण हम हैं यह बड़ी शंका है ?

उत्तर—तुम्हारी सबकी बात सत्य है, परंतु अभिमानी कामी दुष्ट यह सब परमेश्वरको नहीं जानते और दीन रात-दिन परमेश्वरको जानते हैं, इसलिये दीन लोक परमेश्वरको प्यारे हैं, अभिमानी द्रोही हैं इसलिये श्रीकृष्णने कहा [illegible] मैं दीन लोगोंका स्वामी हूं।

दोहा–सत्ताइस अध्यायमें, स्वस्थचित्तकी मूल।
सब फलदायक कहत हो, पूजा हरि अनुकूल॥

उद्धवजी बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ! अपना और धनरूप क्रियायोग मुझसे कहो और तुम्हारे भक्त जैसे तुम्हारी पूजा करते हैं, वह सब कहो॥१॥तुम्हारा पूजन मनुष्योंको परम श्रेय दायक है, यह नारद भगवान् व्यास और अंगिराके पुत्र बृहस्पति आदि मुनीश्वर वारंवार कहते हैं॥२॥ जो वाणी तुम्हारे मुख कमलसे निकली वही भगवान् अजन्मा ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगु आदि सबसे कही, जो महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था वही तुमने हमसे कहा है॥३॥ हे मानके दाता! यह सब वर्णके आश्रमोंको सम्मत है और स्त्री शूद्रोंको भी परमकल्याण-कारी है ❋ ॥ ४ ॥ हे कमलदललोचन! हे विश्वेश्वरोंके ईश्वर! इस कर्मबन्धनका छुड़ाने-वाला पूजाविधान मुझसे कहो, क्योंकि मैं तुम्हारा भक्त हूँ और तुमहींमें अनुरक्त हूँ ॥५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृपोत्तम परीक्षित्! जब इस प्रकार उद्धवजीने प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे उद्धव! यह कर्मकाण्ड अनंत है इसका पार नहीं, इसलिये जैसे है, वैसे ही क्रम करके संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक और मिश्रित यह तीन प्रकारका पूजन है। इन तीनोंमें जिसकी जो इच्छा हो, उस विधिसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करे ॥ ७ ॥ जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण अपनी विधिसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करना चाहें तो उसका प्रकार सुनोः–प्रथम गर्भसे लेकर अष्टम, एकादश और द्वादश वर्षमें अपने-अपने नियमके अनुसार गायत्री उपदेश पाकर पुरुषको जिस प्रकार भक्तिपूर्वक मेरा भजन करना चाहिये, वह तुम मुझसे श्रवण करो॥८॥ प्रतिमामें पूजायोग्य भूमिमें, अग्निमें, हृदयमें, सूर्यमें, जलमें, ब्राह्मणमें द्रव्य करके भक्तिसे निष्कपट होकर अपने गुरुजीकी पूजा करे ॥ ९ ॥ आप प्रथम तो दंतधावन करे, फिर मिट्टी लेकर अंगशुद्धिके लिए स्नान करे, इसके उपरांत वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंको पढ़ता हुआ स्नान करे॥१०॥ इसके उपरांत वेदविहित सन्ध्योपासनादि कर्म सब करे, फिर उन कर्मोंको करके कर्मको दूर करनेवाली मेरी पूजा करे; मनका संकल्प मुझमें रखे ॥ ११ ॥ अब प्रतिमाके भेद कहते हैंः-शिलाकी, काष्ठकी, धातुकी, मिट्टीकी, चन्दनकी, चित्रकी, रेतकी, मानसी, मणिजटित हो ये आठ प्रकार की प्रतिमाएँ कहीं हैं॥१२॥ हे प्यारे उद्धव! भगवान्‌की मानसी पूजा करना हो तो हृदयमें मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी! प्रतिमा दो प्रकारकी हैं, एक तो चर दूसरी अचर! इनमें स्थिर मूर्तिकी पूजामें आवाहन-विसर्जन नहीं है॥१३॥ शालग्राममें आवाहन-विसर्जन न करे और स्थिर प्रतिमामें ही आवाहन विसर्जन करना चाहिये, मिट्टी और चन्दनकी

❋ शंका–छहों शास्त्रोंका, चारों वर्णोंका और चारों आश्रमोंका मत यह है कि स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नीरांजन और अनेक सामग्री करके ईश्वरका पूजन करना योग्य है, परंतु तीन आश्रम जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ये तीनों भगवान्‌का पूजन करना मानते हैं परंतु इन तीनोंसे बड़े जो संन्यासी लोग हैं, वे भगवान्‌का पूजन करना क्यों मानेंगे? उन्होंने तो सब कर्म त्याग दिये हैं तो फिर उद्धवजीने क्यों कहा कि भगवान्‌का पूजन करना चारों आश्रमोंका मत है।

उत्तर–मुनिजन पहले तो बड़ी–बड़ी विधियोंसे वे कृष्णनाथका पूजन करते हैं, पीछे संन्यास लेते हैं, संन्यास ले लेनेपर फिर उनका मत यह नहीं है कि, अब भी पहलेकी नाईं सामग्री संग्रह करके भगवान्‌का पूजन करना, परंतु जो कोई सज्जन भगवान्‌की पूजा करनेकी विधि उनसे पूछते हैं तो वे उनको बता देते हैं। इसलिये उद्धवने कहा कि संन्यासी देहसे पूजन नहीं करते परंतु मनमें तो जानते हैं कि पूजनको भूलें नहीं, जो भूल जाते तो दूसरेको कैसे बताते? इसलिये चारों आश्रमोंका मत पूजन करनेको उद्धवने कहा।

प्रतिमा तथा चित्रमें मार्जनमात्र करे, स्नान नहीं कराये ॥ १४ ॥ अब सकाम-निष्काम भेदसे विशेष कहते हैंः–सकामका प्रसिद्ध द्रव्य पूजामें कहते हैं, उनसे मेरी प्रतिमामें पूजा करे, जो भक्त निष्काम हो, वह जो सामग्री यथा यथालाभ पाये वह सब मुझे समर्पण करे, न पावे तो वह हृदयमें भावना करके पूजा करे तो वह पूजा मैं उसके भावसे ही स्वीकार कर लेता हूँ ॥ १५ ॥ स्नान अलंकार यह सब प्रतिमामें ही मुझे प्रिय हैं। हे उद्धव ! स्थंडिलमें मन्त्रोंसे ही अपने स्थानमें उन-उन देवताओंका स्थापन है, अग्निमें घृत संयुक्त हविसे होम करे ॥ १६ ॥ सूर्यके लिये अर्घ्य उपस्थान करे, जलमें तर्पणादि करे, भक्तोंका दिया श्रद्धासे जल मात्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥ सुगन्ध, फूल, धूप, दीप, अन्नादिक समर्पण करे तो उसकी तो बात ही क्या है ? मेरा भक्त न हो और बहुत समर्पण करे तो मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता ॥ १८ ॥ अब पूजाका प्रकार कहते हैं कि, प्रथम तो आप स्नानादिक शौचसे शुद्ध हो, फिर पूजाकी सामग्री शुद्ध करके रखे, फिर पूर्व वा उत्तरको मुख करके बैठे, पूर्व मुखको अग्र करके दर्भोंसे आसन बनाकर प्रतिमाके सम्मुख स्थिर होकर पूजा करे ॥ १९ ॥ प्रथम तो न्यास करे फिर मूलमन्त्रोंसे न्यासकृत मेरी प्रतिमाको हाथसे स्पर्श करे, रातके निर्माल्य फूल पत्र जो कुछ हो उसे दूर करे, अपने आगे जलभरा कलश रखे और प्रोक्षणीपात्र रखे उसे चन्दन, तुलसीपत्र तथा पुष्पसे शोधन करे ॥ २० ॥ इसके उपरान्त प्रोक्षणीके जलसे पूजाका स्थान शुद्ध करे, उसीसे द्रव्यका और अपने आपका प्रोक्षण करे फिर पाद्यके लिये उस कलशके जलसे तीन पात्र भरकर रखे उनको भी इन वस्तुओंसे शोधन करे। पाद्यके पात्रमें श्याम दूब, कमल और विष्णुक्रांता आदि पदार्थ डालना, गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों यह अर्घ्यके आठ द्रव्य चाहिये। जावित्री, लौंग, कंकोल यह अर्पण करना चाहिये ॥२१॥ पाद्य, अर्घ्य और आचमनके तीन पात्रोंका हृदय, मस्तक, शिखा मन्त्रोंसे तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रण करे ॥२२॥ इसके उपरांत देहको कोष्ठगत वायुसे शोधन करे, मूलाधारमें स्थित अग्निमें जलाये फिर ललाटमें स्थित चन्द्रमंडल है वहां अमृतप्रवाह करके अमृतमय करे, वहां हृदयकमलमें स्थित जीवकला श्रीनारायणजीकी मूर्ति है, उसका ध्यान करके जिसका सिद्ध ध्यान करते हैं, उस प्रणवअक्षरके अकार मकारका ध्यान करे ॥२३॥ दीपकके प्रकाशसे घरके समान अपने स्वरूपकी भावनासे जब देह व्याप्त हो तो प्रथम उस देहमें ही पूजा करके आप तन्मय हो, इसके उपरांत आवाहन करके प्रतिमामें स्थापित करे, फिर न्यास करनेके पीछे मेरी पूजा करे॥२४॥फिर आवाहनसे प्रतिमामें पाद्य, आचमन, अर्घ्यादि सब उपचार करे, धर्मादिक नवशक्ति हैं, उनसे मुझे आसन दे॥२५॥ अष्टदल कमल बनाये, केशरसे उज्ज्वल सुंदर कर्णिकामें वेद आगममें कथित मुक्ति पाने और फलकी सिद्धिके लिये वैदिक, तांत्रिक मार्गोंसे मेरी पूजा करे, वह आसन सुखशय्या है, उसके चार कोने हैं, चार पांव हैं, वहां धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान इन चारों कोनोंमें रखे॥२६॥ इसके उपरांत सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूशल, कौस्तुभमाला, श्रीवत्सादि आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। यही सुदर्शन आदि आठ आयुधोंका आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ आदि तीनकी वक्षस्थलमें पूजा करे ॥२७॥ नन्द, सुनन्द, गरुड़, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, कुमुद, कुमुदेक्षण यह आठ पार्षद हैं, इनकी आठों दिशाओंमें पूजा करे ॥ २८ ॥ दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेनको

कोनोंमें रखे, गुरुको वामभागमें रखे, देवता इंद्र आदि लोकपालोंको पूर्वसे लेकर अपनी-अपनी दिशाओंमें ईश्वरके सम्मुख रखे और अर्घ्य पाद्य देकर पूजा करे ॥ २९ ॥ चन्दन, उशीर, कपूर, कुंकुम, अगर, इन सुगन्धियों करके रखे, मन्त्रोंके जलसे स्नान कराये। जो वैभव हो तो ये सामग्रियाँ करे, न हो तो जो हो उससे करे ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाक और महापुरुष विद्या तथा सहस्रशीर्षा और राजाओंकीसी सामग्रियोंसे मेरी पूजा करे ॥ ३१ ॥ स्नान करानेके उपरांत वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, मकराकृति कुण्डल, माला, सुगन्धलेपन आदि करके शृङ्गार करे, इस प्रकार प्रेमपूर्वक मेरे भक्तको मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य यह सब श्रद्धासहित मेरे भक्तको मुझे देने चाहिये ॥ ३३ ॥ यदि वैभव हो तो नैवेद्यको अनेक प्रकारकी सामग्री बनाये, गुड़, मिश्री, खीर, घृत, पूरी, पुआ, लड्डू, गेहूँ की खीर, दही आदि व्यंजन बनाये ॥३४॥ पर्वमें, उत्सवमें अथवा नित्य फुलेलसे अभ्यंग-उबटन, दर्पण, दन्तधावन, स्नान, अन्नादि पाकसामग्री, गीत, नृत्य ये सब करने चाहिये। यदि सदा न हो सके तो पर्वमें वा उत्सवमें तो अवश्य ही करे॥३५॥इस प्रकार प्रतिमामें पूजा कही है। अब अग्निमें पूजा कहते हैं:—विधिपूर्वक कुण्ड बनाये। मेखला, गर्त्त और वेदी कर उसमें अग्नि रखे, प्रथम हाथसे जब एकत्र कर ले तब कुंडमें रखे॥३६॥इसके उपरांत कुशा बिछाकर चारों दिशाओंमें छिड़के अन्वाधान नाम कर्म समिधसे होम करे, फिर जल छिड़ककर मेरा ध्यान करना चाहिये ॥३७॥ जिस प्रकार मेरे रूपका ध्यान करना चाहिये उसे कहते हैं कि, जैसा तप्त सुवर्ण लाल होता है, उसी प्रकारका रूप, पीतांबर पहने, शांत रूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मसे चारों भुजा शोभायमान॥३८॥ प्रकाशित मुकुट, कंकण, मेखला, बाजूबंद, श्रीवत्सका वक्षस्थलमें चिह्न, शोभायुक्त वनमाला धारण किये हुए ॥३९॥ इस प्रकारके रूपका ध्यान करनेके उपरांत घृत, मिठाई, समिध इत्यादिसे होम करे फिर आज्यभाग और अघोर नामक होम करे और घृतमें डूबी हविष्य ले ॥४०॥ मूलमंत्रके द्वारा सहस्रशीर्षाकी ऋचाओंसे धर्मादिक देवताओंके लिये यथायोग्य हवन करे ॥ ४१ ॥ पार्षदोंको बलि दे, नारायणरूप ब्रह्मका स्मरण कर देवताओंके समीप बैठ मूलमंत्र जपे, फिर नैवेद्य दे करके भोजनकी सामग्रियोंका ध्यान करे ॥ ४२ ॥ इसके उपरांत आचमन दे और वह बचा हुआ उच्छिष्ट भाग विष्वक्सेनके आगे रख उनकी आज्ञासे आप ग्रहण करे, इसके पीछे मुखवासार्थ सुगन्ध ताम्बूल समर्पण करे ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त मेरे चरित्रोंका गान करे, मेरे कर्मोंका अभिनय दिखाये, मेरी कथा मुझे सुनावे और आप भी सुने, एक मुहूर्तभर निश्चलचित्त होकर रहे ॥ ४४ ॥ वेद, पुराण तथा प्राकृत भाषाके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करे "हे भगवन्! प्रसन्न हूजिये" इस प्रकार कहके दण्डवत् प्रणाम करे ॥४५॥ प्रणाम इस प्रकार करे कि मेरे चरणों पर शिर रख दोनों हाथ बांधकर पीठपर रखे "अपराधीके समान तुम्हारी शरण हूँ; हे प्रभो मुझे शरणमें रख लो, क्योंकि मृत्युरूप जहां ग्राह है ऐसे संसारसमुद्रसे भयभीत हूँ" ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पूजा करके शेष प्रसाद पुष्प तुलसीदल मुझे दे, ऐसा ध्यान करे, उसको माथेपर धर आदरपूर्वक विसर्जन कर ज्योति-ज्योतिसे मिलाये ॥ ४७ ॥ इतने स्थल तथा प्रतिमादिकोंमें कौन मुख्य है इसपर कहते हैं कि जिसकी जहां श्रद्धा हो वहां पूजा करे, क्योंकि सर्व भूतोंमें सर्वरूप मैं ही स्थित हूँ और सब भूत मुझमें निवास करते हैं ॥४८॥ इस प्रकार क्रिया-

योगके मार्ग तथा वैदिक तांत्रिक प्रकारसे पूजा करनेवाले पुरुष मुझसे इस लोक और परलोकको वांछित सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके दृढ़ मंदिर बनाये पीछे फूलोंका उत्तम बाग बनाये, जहां मेरी यात्राका उत्सव होता है ॥५०॥ नित्य अथवा बड़े पर्वोंमें पूजा सदा चली जाय, उसके लिये क्षेत्र वा पुर ग्राम लगा दे तो मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥५१॥ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करे तो सब पृथ्वीका राजा हो, मंदिर बनानेवाला त्रिलोकीका राज्य पाता है, पूजा आदि यह सब कृत्य करे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त हो और तीनों प्रकार करनेसे मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इस प्रकार पूजाका फल मुक्तितक कहा, अब जो निष्काम हैं उनकी भक्तिका फल कहते हैंः—निरपेक्ष भक्तियोग करके मुझे ही पाये वह भक्ति कैसे हो ? तो कहते हैं कि भक्ति तब हो, जब इस भांति मेरी पूजा करे ॥५३॥ दाताका फल कहा, अब जो देकर फिर छीन लेता है उसका निंदित कर्म कहते हैं कि जो अपनी दी तथा परायी दी हुई ब्राह्मण देवताकी वृत्तिका हरण कर लेता है, वह अयुत वर्षतक विष्ठा भोजन करता है ॥ ५४ ॥ जो फल कर्ताको होता है, वही सहायता करनेवालेको भी होता है । प्रेरक, अनुमोदनकर्ता इन सबोंको परलोकमें फल होता है, कारण यह है कि सब कर्मके विभागी हैं, जिसने जितना अधिक किया उसे उतना ही अधिक फल मिलता है, यदि सहायता आदि बहुत कर्म किया हो तो बहुत फल मिलता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे लालाशालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादेपूजाविधिनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दोहा—अट्ठाइस अध्यायमें, ज्ञानयोग विस्तार ।
अब वरणौं संक्षेपसो, सज्जन लेहु विचार ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि,हे उद्धव ! जो मेरी भक्तिमें अथवा पूजामें रहे वह इस ज्ञान में निष्ठा करे, पराये स्वभाव एवं कर्मोंकी स्तुति और निंदा न करे, संपूर्ण विश्वको प्रकृति पुरुष करके जाने, मुझसे भिन्न न जाने ॥१॥ जो पराये स्वभाव और कर्मकी निन्दा करता है अथवा सराहना करता है वह मिथ्याभूत प्रपंचदृष्टि होकर शीघ्र ही ज्ञानसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ जब इंद्रियां निद्रासे व्याप्त होती हैं तब मनसे यह जीव स्वप्न देखता है, मायारूप स्वप्न है, पीछे मन भी लीन हो जाता है तब चेतना नष्ट हो जाती है, तब मनुष्य मृतकसमान सुषुप्ति दशाको प्राप्त होता है व स्वप्नमें जो होता है वही भ्रमरूप यह है ॥३॥ और जो वस्तु ही नहीं केवल भ्रम है,उसमें यह भला हुआ,यह बुरा हुआ,इतना भला,इतना बुरा,इसका क्या कहना? इसका धरा हुआ नाम सब मिथ्या है, मनमें ध्यान करते हैं और नेत्रोंसे जो देखते हैं, वह सब मिथ्या है, यहाँ भला-बुरा कहे तो सब अपना ही अज्ञान भ्रम है ॥४॥ जैसे प्रतिबिम्बकी झांई,

---

* शंका—श्रीकृष्णने कहा कि, कोई सुन्दर कर्म करे तो उसकी बड़ाई नहीं करना और जो कोई बुरा कर्म करे तो उसकी निन्दा भी नहीं करना, क्योंकि जैसे स्वभाव जिस जीवका होता है वह वैसाही कर्म करता है तो सुन्दर वचन श्रीकृष्णचन्द्रने किसके लिये कहा, गृहस्थ किसीकी निन्दा स्तुति न करे कि विरक्त किसीकी निन्दा न करे, यह बात बताओ ?

उत्तर—यह वचन भगवान्ने विरक्तोंके लिये कहा है और विरक्तोंमें जो कोई संन्यासी हो तो उसके लिये भी कहा है, संन्यासियोंमें जो कोई परमहंस हो जाते हैं, उनके लिये तो निश्चय ही कहा है । तात्पर्य यह कि सब साधु महात्माओंको किसी की निंदा स्तुति नहीं करनी चाहिये, यह श्रीकृष्णके वचन गृहस्थ लोगोंके लिये नहीं है ।

सीपीमें रूपेकी बुद्धि मिथ्या है, कार्यको करते हुए उसी प्रकार यह देहादिक भाव मरनेतक भय देते हैं ॥५॥ वेदमें जो सृष्टि कही है,वह आपही ब्रह्मविश्वरूप होकर प्रगट होते हैं, आप ही उत्पन्न हो आप ही सृजते हैं और आप ही रक्षा करते हैं, आप ही संहार करते हैं और जिसका संहार करते हैं, वह आत्मा ही है ॥६॥ आत्मा जो सबसे पृथक् निरूपण किया है, उससे कोई पदार्थ पृथक् नहीं है, यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है, सब माया रचित होनेसे निर्मूल है। यह अध्यात्मादि तीन प्रकारका गुणयुक्त संसार आत्मामें मायाके द्वारा भासता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष यह मेरी कही हुई ज्ञान-विज्ञानकी चेष्टाको जानते हैं, वे किसीकी निन्दा स्तुति नहीं करते, सूर्यकी भांति समान होकर लोकोंमें विचरण करते हैं ॥८॥ वह कैसे हो ! उसे कहते हैं–जो वस्तु आदि अन्तयुक्त है, वह मिथ्या है, यह जानकर प्रत्यक्ष उपजे और नष्ट हुए जगतको अनुमान वेद और अपने अनुभवसे ऐसे जाने कि जो यह दीखता है वह सब मिथ्या है,यह ज्ञान जब दृढ़ हो जाय तब निःसंग होकर विचरण करे॥९॥उद्धवजी बोले कि हे भगवन्! आत्मा स्वयं प्रकाश है,ज्ञानरूप है,देह जो जड़ है तो यह संसार किसको लगता है? हे प्रभो ! यह संसार आत्माका है अथवा देहका है ? इसका आत्मा ही द्रष्टा है वही देखता है, देह तो जड़ है आत्मा जड़ नहीं परन्तु देखनेवाला है ॥१०॥ आत्मा अव्यय है, सगुण है, शुद्ध है, स्वयं ज्योति है, आवरण रहित है और देह तो जड़ है परंतु इसका संयोग काष्ठ और अग्निसे है, जैसे अग्नि और काष्ठ भिन्न नहीं है,इसी प्रकार आत्मामें एकता है,इन दोनोंमें संसार किसीको भी संभव नहीं और जो संभव है तो भी अग्नि प्रकाशक है, काष्ठ प्रकाश्य है ॥ ११ ॥ यद्यपि सत्य है परन्तु तो भी संसारका अविवेक कारण है तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि जहांतक देह, इन्द्रिय और प्राणसे आत्माका सम्बन्ध है,वहांतक मिथ्या भी संसार भासता है,यद्यपि आत्मा का और इंद्रियोंका सम्बंध नहीं परन्तु तो भी अविवेकसे मान लेते हैं ॥१२॥ उद्धवजी बोले कि देह तो असत्य है, इसको संसार क्या भासता है ? तो इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि यद्यपि विषय भोगकी वस्तु पास नहीं परन्तु तो भी संसार नहीं जाता, क्योंकि इसका ध्यान विषयोंमें रहता है, इससे संसार होता है और स्वप्नमें अनर्थको देखता है ॥१३॥ अब तर्क करते हैं कि ध्यानसे जो विषयकी स्फूर्ति है, वह तो जीवन्मुक्तिसे भी निवारण नहीं होती तो मुक्ति किसीको हो ही नहीं सकती ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि, जैसे शोचनेवालेको स्वप्न भी अनर्थ देता है, वही जो जागता रहे तो जागनेवालेको यह अनर्थ नहीं होते ऐसे ही जीवन्मुक्त पुरुषोंको विषयकी स्फूर्ति अनर्थ नहीं कर सकती ॥१४॥ शोक,हर्ष,भय,क्रोध, लोभ, मोह, काम, जन्म और मृत्यु यह सब अहङ्कारसे हैं, आत्माको यह कुछ नहीं लगते ॥१५॥ देह, इंद्रियां, प्राण और मनका अभिमान कर यह आत्मा ही उसके मध्यमें स्थिर जीव है,इसीसे गुण कर्ममय मूर्ति है और इन्हीं गुणकर्मोंसे बँध रहा है, इसी कारण ईश्वरके अधीन होकर सब संसारमें दौड़ते-फिरते हैं, सूत्र और महत्तत्वआदि नानारूपसे अनेक प्रकारका कहा है ॥१६॥ इस प्रकारके अहङ्कारसे जब यह जीव बँध रहा है, तब ज्ञानसे मुक्ति होती है उसे कहते हैं कि वचन मन प्राणीमें अहङ्कार निर्मूल हैं, अज्ञानमें बहुतरूप प्रकाशते हैं, इसलिये गुरुकी सेवाकर तीक्ष्ण ज्ञानरूपखड्ग हाथमें ले इस अहङ्कार बँधनको काट सङ्ग छोड़ पृथ्वीमें फिरे, इसका यही उपाय है ॥ १७ ॥ अब वही ज्ञान कहते हैं, जिसका साधन करनेवाला वेद है, वेदके कहे धर्मको तब विवेक उत्पन्न हो । जब स्वधर्म, अपना अनुभव, उपदेश, तर्क इतने साधनसे जो

उत्पन्न हो तो उस ज्ञानका फल कहते हैं कि योग तप है और कारण है और जगत्के आदि अन्त मध्यमें वही है ॥ १८ ॥ नाना भेदके व्यवहार भी ब्रह्ममें होते हैं उसे कहते हैं:–जैसे सुवर्णके अनेक आभूषण बनते हैं और उत्पत्ति प्रथम भी और पीछे भी सुवर्ण ही है, अनेक भांति होनेके उपरांत भी सुवर्ण ही रहता है, क्योंकि सुवर्णसे और कोई वस्तु तो नहीं; इसी प्रकार यह विश्व अनेक रूपसे दीखता है वह भी मैं ही हूँ ऐसा जानना चाहिये ॥१९॥ इस प्रकार विश्वका रूप कहकर इस देह इंद्रियोंमें जिससे प्रकाश होता है उसका तद्रूप कहते हैं:–इस मनकी तीन अवस्था कारण हैं । सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण यह गुण हैं, जो सब कार्यकारण कर्त्ता रूप है, अध्यात्म कारण, कार्य अधिकृत, कर्त्ता अधिदेव इस प्रकार त्रिगुणरूप जगत् है, इस प्रकार भी जिससे होता है और जिसके अनुभवसे प्रकाश करता है वह चतुर्थ स्थान ब्रह्म है, इंद्रियादिकके ज्ञान विना जो समाधि आदि विषे हैं, वे ही सत्य हैं ॥२०॥ इस प्रकार ज्योतियोंमें भी और भांति न हो सो सत्य है यह कहा, अब जो और प्रकार होता है वह असत्य है इसपर कहते हैं कि जो वस्तु प्रथम नहीं और पीछे भी नहीं, मध्यमें भी नहीं केवल नाममात्र ही कहनेको है, जिससे प्रकट हुई और प्रकाशी वही है, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥२१॥ प्रपंचका ब्रह्मसे अभेद कहते हैं कि यद्यपि प्रथम मैं ही हूँ यह जो गुणसे उत्पन्न हुआ विकारका समूह ब्रह्मका कार्य है, परंतु तो भी ब्रह्मके प्रकाशसे भासता है, ब्रह्म स्वयंज्योति है, इससे इंद्रिय, विषय, आत्मा, देवता, पंचभूत यह सब तत्त्व ब्रह्मरूप होकर भाषते हैं, यह विचित्रता ब्रह्मका ही कार्य है ॥२२॥ इस प्रकार ब्रह्म विवेकके हेतुसे और देहादिकमें आत्मबुद्धि त्यागकर गुरुद्वारा अपना सन्देह काटकर सब कामनाओंसे निवृत्त हो आत्माके आनन्दसे सन्तुष्ट होकर रहे ॥२३॥ जो छोड़ने चाहिए उनका स्वरूप कहते हैं:-यह देह आत्मा नहीं, पृथ्वीका विकार है, इंद्रियोंके अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार कोई आत्मा नहीं हैं, क्योंकि अन्नमात्रके आश्रयसे रहता है, इससे विकारयुक्त हैं और वायु, जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी यह पंचभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति ये भी आत्मा नहीं, क्योंकि जड़ हैं ॥२४॥ इस प्रकारके विवेकवत ज्ञानी मुक्त पुरुषका इंद्रियोंका किया हुआ गुण-दोष नहीं होता, उसे कहते हैं कि जो विवेकी ज्ञानवंत हैं, जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हैं उन्होंने गुणरूप इन इन्द्रियोंका निग्रह किया हो अथवा न किया हो, उन्हें न तो गुण है, न दोष है, जैसे मेघके आकाशमें आनेसे सूर्यको कुछ दोष नहीं लगता और मेघ जानेके उपरांत कुछ गुण भी नहीं लगता ॥ २५ ॥ जो निःसङ्ग हैं और ब्रह्मरूप हो रहे हैं, उनको किसीसे गुणदोष नहीं लगता, जैसे आकाश भूमिमें आते-जाते ऋतुके गुण, शीत, उष्णादिक और वायु, अग्नि, जलसे बन्द नहीं होते इसी प्रकार अक्षय ब्रह्म सत्त्व, रज, तम यह गुण अहंकारके हैं, संसारका हेतु कारणसे नहीं मिलता उनसे भिन्न-भिन्न है ॥२६॥ तथापि वहांतक मायाके गुणोंका संगम करे, जहांतक मेरे दृढ़भक्तियोग करके मनकी विषयाशक्ति दूर न हो जाय ॥२७॥ जैसे रोगको भले उपचारोंसे दूर न किया हो तो वारंवार वह रोग उत्पन्न होकर दुःख देता है, उसी प्रकार रागादिक और कर्म जिसके दग्ध नहीं हुए तो और सब विषयोंमें आसक्त मन भी योगी पुरुषको फिर बाधा करता है ॥२८॥ और जो योगसे भ्रष्ट हो गया हो तो उसका क्या उपाय ? तो कहते हैं कि योगीको देवताओंके प्रेरे जो बन्धुरूप भ्रष्ट करते हैं, योगके भ्रष्ट होनेसे फिर पूर्व अभ्यासबलसे योग करें, परंतु कर्ममार्गके धर्म न करें, केवल धर्मकी ही साधना करें ॥ २९ ॥ जो किसीसे

प्रेरित हो तो मरने तक कर्मोंसे सुख-दुःख पाता है; परंतु जो विवेकी हो तो देहमें स्थित आत्मसुखके अनुभव द्वारा तृष्णासे निवृत्त हुए विकारको प्राप्त नहीं होता ॥ ३० ॥ जिसकी मति आत्मामें स्थित है वह खड़े होते, चलते, सोते, मूत्र करते, भोजन करते और भी स्वभावसे दर्शन आदि कर्म करते देहको नहीं जानता ॥ ३१ ॥ जो इंद्रियवाले हैं वे विना देखे क्यों रहेंगे ? इसपर कहते हैं कि जो विवेकयुक्त हैं वे यद्यपि इन इन्द्रियोंके विषयोंको देखते हैं परंतु तो भी अनुमानसे विरुद्ध जान आत्मासे और वस्तुसे मानते हैं, वे स्वप्नकी भांति सब मिथ्या जानते हैं, जैसे जागनेपर स्वप्नके विषय सब आप ही अन्तर्धान हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्मामें मुक्तावस्थादिमें भी विकार नहीं होता, क्योंकि वृद्धावस्थामें गुण और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप देहेन्द्रियादि अध्याससे अपने स्वरूपमें मिले हुए माने गये हैं, वही देहेन्द्रियादि मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं यह आत्मा किसीसे त्याग और ग्रहण नहीं किया जाता, यदि मुक्तिको क्रियाका फल माने तो आत्मामें विकार होता है, इससे मायिक पदार्थोंकी निवृत्तिका होना ही मोक्ष है । बन्ध मोक्ष आत्माका स्पर्श नहीं करते, इस कारण आत्मा निर्विकार है ॥३३॥ जैसे प्रथमसे ही विद्यमान घटादिक पदार्थोंमें कुछ विकार नहीं करता, इसी प्रकार मेरी अध्यात्म विद्या मनुष्योंके मनके अन्धकारको दूर करती है, परंतु आत्मामें कुछ विकार नहीं होता, आत्मा तो जिस स्थितिमें स्थित है, उसीमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह स्वयंप्रकाश जन्मरहित ज्ञान-विज्ञानसे भी जाना नहीं जाता । महान् प्रतापयुक्त किसी विकारसे न बढ़ता है न घटता है, किन्तु सदा एक रूप रहता है और सबोंका प्रकाशक है, वह दूसरेसे रहित है, एवं जिसमें वचनकी गति नहीं है । श्रुति भी कहती है किंतु आगे अब गम्य नहीं, वहांसे मन समेत वाणी फिर आती है, जिसके प्रेरे वाणी और प्राण कार्य करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल भेद रहित आत्मा है, उसमें भेद देखना इतना ही श्रम मनका है, अपने आत्माके विना इस भेदका आश्रय है ही नहीं ॥३६॥ और जो भेद मानते हैं, उनका मन दुःखित है, क्योंकि रूप और नामसे जो वस्तु कही जाती है, वह पञ्चभूत रूप है । देह इन्द्रिय दूसरा पदार्थ है, यह मत पंडित लोगोंका विवाद है । तत्त्व जाननेवालोंके मतमें वस्तु विचारकर देखो तो सब मिथ्या है ॥३७॥ जो कच्चा योगी योग साधता है, उसे उसके देहसे उठे रागादिक उपद्रव करके योगभ्रष्ट कर देते हैं, उनको मैंने आगे यह लिखी विधि कही है ॥३८॥ कि योगकी धारणासे चन्द्रमा तथा सूर्यके तापको जीते, आसनसे प्राणवायु और धारणावायुसे वात रोग जीते । तप, ग्रह औषधीसे पापग्रहकृत सब अशुभ दूर करे ॥ ३९ ॥ चित्तका दोष मेरा ध्यान करके दूर करे, मेरे नाम कीर्तन आदिसे काम क्रोधादिकोंको दूर करे और कितने ही योगीश्वरोंकी सेवा करके सब दंभ अहंकारादिक अशुभोंको शनैः-शनै दूर करे ॥ ४० ॥ कितने ही योगीश्वर इस देहको समर्थ तरुणतामें अनेक उपायोंसे स्थिर करके परकाया-प्रवेशकी सिद्धिके लिये योग करते हैं, ज्ञानकी निष्ठा नहीं करते ॥ ४१ ॥ और जो कुशल ज्ञाता हैं, वे उनका आदर नहीं करते, क्योंकि देह अनित्य है, इस कारण निश्चय मनसे योग करके इसके रखनेका श्रम निरर्थक है, जैसे वट वृक्षके फल मिथ्या हैं ॥ ४२ ॥ यद्यपि योग सिद्धका नित्य सेवन करते-करते प्राणायामादिक प्रभावसे शरीरमें हो ही जाता है, परन्तु तो भी बुद्धिमान् मेरे भक्त पुरुषको समाधि त्यागकर इस शरीरकी सिद्धिपर विश्वास करना योग्य नहीं ॥ ४३ ॥ इसलिये योगीजनोंको चाहिये कि मेरे आश्रयसे यह

योग करे तो विघ्न नहीं होता। जब निस्पृह होनेपर आत्माका अनुभव प्राप्त हो और मेरे आश्रयसे सब विघ्न निवृत्त हों तो वह योगी आनन्दसे परिपूर्ण होता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे ज्ञानयोगनिरूपणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दोहा—उनतिसवें अध्यायमें, भक्तियोग. विस्तार।
प्रथम निरूपण कर चुके, अब संक्षेप विचार ॥

उद्धवजी बोले कि, हे श्रीकृष्ण! यह तुमने योगकी क्रिया कही, वह जिस पुरुषका मन वशमें नहीं उसको तो अतिकठिन लगती है, क्योंकि वे अज्ञानी हैं इसलिये जिससे शीघ्र सिद्धि हो और सुगम हो वह उपाय मुझसे कहो ॥१॥ हे कमलनेत्र! बहुधा जो योग करते हैं वे मनका निग्रह करनेमें अत्यन्त क्लेशको प्राप्त होते हैं, तो भी मनका निग्रह नहीं होता तो थकित हो विषादयुक्त होते हैं ॥२॥ योगमें अति क्लेश है, जो परमहंस हैं, वे सार-असारको जानते हैं। हे कमलदललोचन! जो तुम्हारे चरणारविन्दोंका आश्रय करते हैं तो यह चरणारविंद ही उनके आनंदको पूर्ण करते हैं। हे भगवन्! आप भक्तोंको सुखरूप हो और जो योगीश्वर तुम्हारी मायासे मोहित योग कर्म करके अभिमानको धारण करते हैं, वे सिद्ध नहीं होते ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण! हे सबके बन्धु! जो अनन्यशरण तुम्हारे दास हैं, उनके तुम वश हो इसमें आश्चर्य नहीं जैसे नन्द यशोदाके घर खेलते फिरे, रामरूप धारण कर बन्दरोंसे मित्रता की, ब्रह्मा आदि देवताओंके शोभासंयुक्त-मुकुटोंके अग्रभागने तुम्हारे चरणारविंदका सिंहासन पीडित किया है, ऐसे तुम हो ॥४॥ तुम भक्तोंकी सेवा जानते हो, सबके आत्मा हो इसी कारण अतिप्रिय हो, ईश्वर हो जो पुरुष केवल तुम्हारे ही आश्रय रहते हैं उनको सब अर्थ देते हो प्रह्लाद आदि भक्तोंमें किया उपकार जान कौन आपको छोड़ सकता है? यदि कहो कि क्या फलके लिये मेरा सेवन करे? तो कहते हैं नहीं नहीं, और देवता अथवा धर्मज्ञानादि साधन तो ऐश्वर्य अथवा मोक्षके अर्थ नहीं हैं इसलिये कौन भजे? कहते हैं कि साधन विना मोक्षादिका फल कैसे हो? तो तुम्हारे चरणारविंदकी रेणुके सेवन करनेवालेको क्या फल नहीं होता? अर्थात् जो चाहते हैं वही मिलता है ॥५॥ अब कहते हैं कि और भजनकी बात तो दूर है, तुम्हारे किये उपकारका तुम्हारे विषे आत्मनिवेदन करे तभी प्रत्युपकार हो और प्रकारसे नहीं होता उसे कहते हैं:—आनन्दबद्ध ब्रह्मके ज्ञाता तुम्हारे उपकारको स्मरण करके ब्रह्माकी आयुसे भी तुम्हारे उपकारसे उऋण नहीं हो सकते। उपकारको कहते हैं कि जो तुम बाहर गुरुरूप हो और मध्यमें अन्तर्यामीरूपसे प्राणियोंकी वासना दूर करनेको अपना आनन्दरूप प्रकट करते हो हम इसका प्रत्युपकार क्या करें? ॥६॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाराज परीक्षित्! जब अनुरक्तचित्त उद्धवने इस प्रकार पूछा तब ईश्वरके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि जो भगवान् सत्त्व, रज, तम, इन शक्तियोंसे ब्रह्मादि तीन मूर्ति धारण करते हैं और जगत जिनका खिलौना है ॥७॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे उद्धव! मैं सुमंगल अपने धर्म तुमसे कहूँगा जिनसे धर्मोंको श्रद्धासहित करनेसे यह मनुष्य दुर्जय मृत्युको भी जीत लेता है ॥८॥ मेरा स्मरण करते-करते शनैः-शनैः सब कर्म करे, पर सब कर्म मेरे लिये करे अर्थात् मुझमें ही मन तथा बुद्धि अर्पित करे तथा धर्ममें ही आत्माकी और मनकी प्रीति रखे॥९॥जहां मेरे भक्त साधु पुरुष

निवास करते हों उन्हीं पुण्यदर्शनोंमें जाकर बास करे और देव, असुर, मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हैं उनके कर्मोंका आश्रय करे॥१०॥उन भक्तोंसे मिलकर उत्सव करे, अथवा अलग आपही सब यात्रा उत्सव करे; नृत्य गीत सब कराये, महाराजके छत्र-चामरादि उपचारसे सब कराये ॥११॥ निर्मल चित्त पुरुष सब भूतमात्रमें अपनेमें तथा बाहर-भीतर मुझे ही देखे, मैं आकाशकी नाई असंग होनेके कारण सबमें स्थिर भी आवरणरहित और बाहर-भीतर सदा पूर्ण हूँ ॥ १२ ॥ जो इस प्रकार ज्ञानमें स्थित हो सब प्राणिमात्रको मेरा ही भाव जानकर पूजे, वही पंडित है ॥१३॥ ब्राह्मण, नीच जाति, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, अग्निके कणिका यह क्रूर हों वा न हों इनमें जो समदृष्टि हो वही पंडित है ॥ १४ ॥ मनुष्योंमें मेरे भावकी भावना रखे तो शीघ्र ही पुरुषके ईर्षा, निन्दा, तिरस्कार, अहंकार यह सब निश्चय नष्ट हो जायें ॥१५॥ इस लिये अन्तर्यामी ईश्वरकी दृष्टिसे सबको प्रणाम करे हँसी करते अपने मित्रोंको छोड़ और अपनी ऊँच दृष्टि लज्जा छोड़ भूमिको दण्डवत करे। कूकर, चांडाल, बैल, खर, ऐसे नीचोंको भी मेरी बुद्धिसे प्रणाम करे ॥१६॥ जबतक सब भूतमात्रमें मेरा भाव न उत्पन्न हो तबतक पुरुषको चाहिये कि वाणी, मन और देहकी प्रवृत्तिसे मेरी उपासना करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार उपासना करके उसे सब विश्व ब्रह्मरूप ही भासता है, आत्मविद्यासे सर्वत्र ब्रह्म ही देखते सब सन्देह दूर हो जाते हैं और आप सबसे विरक्त हो जाता है ॥१८॥ यह सब पक्षोंसे निश्चय किया हुआ मेरा उत्तम पक्ष है कि देह, प्राण, मनसे सब प्राणिमात्रमें मेरा भाव हो ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! यदि निष्काम मेरे धर्म करते कुछ भूल चूक हो जाय तो भी हानि नहीं क्योंकि यह उत्तम धर्म, निर्गुणपनके लिये मैंने निश्चय किया है ॥२०॥ हे साधुश्रेष्ठ ! जो व्यर्थ भी लौकिक परिश्रम करते हैं उसे भी जो मुझे समर्पण करे, फल वांछा विना मेरे लिये करे, जैसे भय शोकादिसे दौड़ना, रोना एवं अन्य क्लेश व्यर्थ हैं तो भी समर्पण कर देनेसे धर्म हो जाते हैं ॥ २१ ॥ वही बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरता है जो असत्त्वरूप इस मनुष्यदेहसे सत्यरूप मुझे उस जन्ममें प्राप्त हो ॥२२॥ हे उद्धव ! यह ब्रह्मवादका संपूर्ण संग्रह मैंने तुमसे संक्षेप और विस्तारसहित वर्णन किया, जो कि देवताओंको भी दुर्लभ था॥२३॥वारंवार मैंने तुझसे प्रगट करके युक्तियोंसे यह ज्ञान कहा है, क्योंकि यह ब्रह्मवाद रीतिका ज्ञान जानकर पुरुष सन्देहरहित और मुक्त हो जाता है ॥२४॥ जो इसका स्मरण रखे, कहे, सुने अथवा पढ़े तो भी इसका फल होता है, हे उद्धव ! मैंने यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दिया, इसे जो कोई चित्तमें धारण करे वह नित्य वेदमें भी गोप्य परब्रह्मको प्राप्त होगा ॥२५॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंसे विस्तार सहित यह ज्ञान कहता है, उसे मैं अपना आत्मातक दे देता हूँ, क्योंकि वह भक्तोंका दाता है॥२६॥ जो कोई परममित्र साधकको इस ज्ञानरूपी दीपकसे मेरा दर्शन कराये वह दिन प्रतिदिन शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इसको श्रद्धासहित नित्य सावधान होकर श्रवण करते हैं वे मुझमें परमभक्तिको प्राप्त होकर कर्मोंसे बद्ध नहीं होते ॥२८॥ हे उद्धव ! हे मित्र ! तूने यह ज्ञान अच्छी प्रकार मनमें धर लिया है इसलिये तेरे मनका मोह शोक गया॥२९॥बुद्धिमान्को चाहिये कि यह ज्ञान दंभी नास्तिक धूर्त्त इत्यादि और जिसके सुननेकी इच्छा न हो उसे कभी न सुनाये ॥ ३० ॥ हे उद्धव ! जो इन दोषोंसे रहित हो; ब्रह्मण्य हो, अतिप्रिय साधु हो, शुद्ध हो, उससे यह ज्ञान कहना चाहिये, जो भक्त हो तो स्त्री-शूद्रसे भी कहे ॥ ३१ ॥ जाननेवालेको इसके जाननेके उपरांत फिर कुछ जाननेकी आवश्यकता नहीं, जैसे सुस्वादु

अमृत पीनेके पीछे और पीनेके योग्य नहीं रहता ॥ ३२ ॥ भक्तोंको और साधना कुछ नहीं चाहिये, क्योंकि भक्तोंका तो सब मैं ही हूँ, ज्ञानसे मोह होता है, विहित कर्म करनेसे धर्म होता है, योग करे, अणिमादिसिद्धि हो सहजके कर्म करनेसे काम हो, खेती करे अर्थ हो, दण्डनीति करे ऐश्वर्य हो, और इन साधनोंसे चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं । हे उद्धव ! सब पुरुषार्थरूप तुमको मैं हूँ, इसलिये तुमको और कुछ नहीं करना चाहिये, केवल मेरी शरण रहा ॥ ३३ ॥ जब यह मनुष्य सब कर्मोंको छोड़कर मुझे आत्म-निवेदन करे तब मेरे श्रेष्ठ करनेके योग्य होता है, उसीसे फिर मोक्षको प्राप्त होता है और निश्चय मेरे समान ऐश्वर्यके योग्य हो जाता है ॥ ३४ ॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सफल योगमार्गका स्वरूप दिखाया, तब उत्तम यशवाले श्रीकृष्णचन्द्रका वचन सुनकर हाथ जोड़ प्रीतिपूर्वक गद्गदकण्ठ हो नेत्रोंसे अश्रु-पात करते गला रुक जानेके कारण उद्धवजी कुछ भी न बोल सके ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे महाभागवत राजा परीक्षित् । अतिस्नेहसे विह्वल चित्तको धैर्यसे थामकर अपनेको कृतार्थ मानने लगे । इसके उपरांत हाथ जोड़ माथेसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्पर्श कर उद्धवजी बोले ॥ ३६ ॥ कि हे ब्रह्मादियोंके उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो मोहरूपी अन्धकारका आश्रय किया था वह तुम्हारे समीप जाता रहा, जैसे सूर्यसे अन्धकार, शीत भय नष्ट हो जाते हैं ❋ ॥ ३७ ॥ तुमने अतिदया करके मुझ अपने सेवकको विज्ञानदीपक दिया, इस कारण तुम्हारे उपकारका ज्ञाता है, अब तुम्हारे चरणारविन्द मूलको छोड़कर और मैं किसकी शरण जाऊँ ? ॥३८॥ उद्धवजी बोले कि, हे प्रभो ! जो सृष्टिकी वृद्धिके लिये तुमने अपनी मायासे मेरा स्नेहरूप पाश दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतोंमें बढ़ाया था वह आत्मज्ञानरूप शस्त्रसे तुमने ही काटकर दूर कर दिया ॥३९॥ हे महायोगिन् ! तुमको प्रणाम है; मैं आपकी शरण हूँ, मुझे इतनी शिक्षा दो कि मेरी तुम्हारे चरणारविन्दोंमें गूढ़ प्रीति हो ॥४०॥ यह बात उद्धवजीकी अंगीकार करके लोकसंग्रहके लिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा दी कि हे उद्धव ! मेरी यह आज्ञा है कि तुम बद्रिकाश्रमको जाओ, क्योंकि वहां मेरे चरणतीर्थ गंगा जलमें स्नान आचमन करके शुद्ध होंगे ॥४१॥ हे उद्धव ! अलकनन्दाके दर्शनसे सफल हो पाप दूर कर वल्कल वस्त्र पहन वनके फल खाकर सुखमें निष्ठ होओ ॥४२॥ वहां इंद्रियोंके निग्रहसे शीत, उष्ण सहकर सुशील शान्त हो, ज्ञान-विज्ञानसे संयुक्त समाधिमें बुद्धि स्थिर करो ॥४३॥ और मुझसे तुमने जो जो सीखा है, तथा अच्छी भांति विचारा है उसकी भावना करते आवेशयुक्त वचन चित्तसे मेरे धर्ममें तत्पर हो, इन तीनों गुणोंकी गतिका अतिक्रमण करके आगे मुझे प्राप्त होंगे॥४४॥श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके कहनेसे उद्धवजी प्रदक्षिणा कर माथा भगवान्के चरणोंमें रख अश्रुपातके जलसे भगवान्के

❋ शंका–श्रीकृष्णसे उद्धवने कहा कि महाराज ! मेरा मोह अब मेरे शरीरको छोड़कर भग गया । मोहसे अब मैं छूट गया, तो फिर यमुनाके तटपर विदुरजीने उद्धवसे श्रीकृष्णका वृत्तान्त पूछा तो क्यों मोहग्रस्त हो गये ? श्रीकृष्णका वृत्तांत भी पूरा नहीं कह सके, हाल भी कुछ देर पीछे कहा, जो कोई कहे कि ज्ञान पानेके पीछे फिर मोहने घेर लिया होगा तो सत्य है, जो बहुत दिन हो गये होते तो आश्चर्य नहीं था, परंतु ज्ञान पाकर कृष्णके पाससे दो अथवा तीन ही दिन बीते थे जब विदुरजीका समागम हुआ था यह शंका है ।

उत्तर–निसन्देह उद्धवजीका मोह नाश हो गया था, परंतु मनुष्यके स्वभाव से क्षणक्षणमें मोहके वश होकर श्रीकृष्णका स्मरण कर फिर मोहको त्याग दिया और श्रीकृष्णका मोह भी इसलिये किया कि श्रीकृष्ण ही भक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं, इसलिये यमुनाके निकट उद्धवको मोह प्राप्त हुआ, कुछ अज्ञानपनसे मोह उत्पन्न नहीं हुआ ।

चरणोंको अभिषेक करने लगे। यद्यपि सुखदुःख रहित हुए हैं, परन्तु तो भी चलनेके कारण स्नेहसे कोमलबुद्धि हो गये ॥ ४५ ॥ अत्यन्त दुस्त्यज स्नेहके वियोगसे अति अधीर हो अपने प्रभु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके छोड़नेको समर्थ न हुए और इसके उपरांत अति कष्ट पाकर फिर अपने स्वामीकी पादुका माथेपर धर प्रणाम करके चले; इस प्रकार वारंवार प्रणाम करके चले ॥ ४६ ॥ इसके उपरांत अपने अन्तःकरणमें श्रीकृष्णको धारण कर परम भागवत उद्धव बद्रिकाश्रमको चले गये और जगद्बन्धु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे इस भांति उपदेश पाकर उसी भांति तपस्याको साध हरिकी गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकमलोंका योगीश्वर सेवन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह ज्ञानरूप अमृत आनन्द समुद्र परम भागवत उद्धवजीसे कहा। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक इसका सेवन करते हैं वे संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥४८॥ जिन वेदकर्त्ता भगवान्ने संसारका भय दूर करनेके लिये एक ज्ञानरूप वेद सार अमृतका भ्रमरकी भांति उद्धार किया? एक अमृत तो समुद्रसे निकला था वह तो देवताओंको पिलाया, अब दूसरा यह वाणीरूप अमृत अपने सेवक तथा भक्तोंको पिलाया, ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे-
उद्धवबदरीप्रवेशो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा-तीसमाहिं वैकुण्ठकी, सुरति करी करतार।
मुशलयुद्धमिस सबनको, क्षणमें कियो सँहार ॥

राजापरीक्षित् बोले कि, हे ब्रह्मन्! परमभागवत उद्धवजीके वन चले जानेपर विश्वके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्या किया? ॥ १ ॥ अपने कुलको ब्रह्मलोकव्याप्त देख सबके नेत्रोंके परमप्रिय शरीरको यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रने कैसे छोड़ दिया? ॥ २ ॥ जिस रूपमें लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियाँ खैंचनेको समर्थ न हुईं; जो स्वरूप कर्णद्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ और साधुपुरुषोंके मनमें तो लिखासा रहता है; जिस रूपकी शोभा वर्णन करनेसे पण्डितोंकी वाणीमें प्रीति उत्पन्न होती है। अर्जुनके रथपर स्थित जिस स्वरूपको देखकर भारतमें मेरे युद्ध विषे जो योद्धा थे, वे सारूप्यमुक्तिको प्राप्त हुए॥३॥ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र स्वर्गमें सूर्यके मण्डल आदि भूमिमें कम्पादि अन्तरिक्षकी दिशामें दाहादिक उठने लगे, बड़े-बड़े उत्पातोंको देख सुधर्मा सभामें बैठे यादवोंसे यह कहने लगे॥४॥ श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, हे यादवोंमें श्रेष्ठ! यह घोर मृत्युको बतानेवाले उत्पात उठ रहे हैं इसलिये अब हमको दो घड़ी भी द्वारकामें वास करना योग्य नहीं॥५॥ इस कारण सब स्त्री, बालक और वृद्ध शंखोद्धारतीर्थोंको जाओ और हम भी प्रभासक्षेत्रको जायँगे जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ वहां स्नानसे पवित्र हो उपवासकर भलीभांति सावधानतासे स्नानकर चन्दन और पूजाकी सामग्रियोंसे देवताओंका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥ बड़े भाग्यवान् ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और हाथी-घोड़े रथोंसे पूजेंगे ॥८॥ निश्चय करके यह विधि अरिष्टकी नाशक है और उत्तम मङ्गलका आश्रय है, क्योंकि प्राणियोंमें देवता, ब्राह्मण, गौकी पूजा कल्याणका हेतु है ॥ ९ ॥ यादवोंमें सब वृद्ध इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका वचन सुन

"ऐसे ही है" इस भांति स्तुति कर नावों द्वारा समुद्र उतरकर सब प्रभासक्षेत्रको चले गये ॥ १० ॥ यादवोंके देव भगवान्‌के उपदेशको सब यादव मंगलों सहित परमभक्तिसे प्रभासक्षेत्रमें करने लगे ॥ ११ ॥ इसके उपरांत प्रभासक्षेत्रमें देवसे हतबुद्धि यादवोंने सुरा-मदिराका महापान किया; जिस मदिराके रससे बुद्धि दुष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी मायासे मोहित मद्यपानसे अतिगर्वयुक्त चित्तवाले यादवोंका अति बड़ा कोलाहल हुआ ॥ १३ ॥ इसके उपरांत अत्यन्त क्रोधित हो वधको उद्यत यादव समुद्र तटपर धनुष, खड्ग, गदा, तोमर और ऋष्टियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ दुर्मद यादव चलायमान ध्वजावाले रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, बैल और भैंसोंसे परस्पर मिलकर बाणोंसे मारने लगे, जैसे वनमें हाथी दांतोंसे परस्पर हाथियोंको मारते हैं ॥ १५ ॥ असहनताको प्राप्त हो प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर तथा भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित् अतिदारुण होकर गदा श्रीकृष्णका भाई, एक श्रीकृष्णका पुत्र सुमित्र और सुरथ ये अतिक्रूर-स्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ इसी प्रकार और भी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित्, भानु आदि यादव जो भगवान्‌की इच्छासे मोहित हो गये थे, वे वारुणीके पानसे मत्त और अन्धप्राय हो परस्पर युद्ध कर करके लड़ने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधुके वंशके और अर्बुद मथुरा शूरसेन देशके विसर्जन, कुकुर, कुन्ति देशके स्नेहको तोड़ परस्पर मारने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पितासे और भाई भानजेसे, धेवतोंसे, काकाओंसे, मित्रोंसे, सुहृदोंसे युद्ध करने लगे, मूर्ख जाति जातियोंको ही मारने लगे ॥१९॥ बाणोंसे हीन होनेके उपरांत धनुषके टूटनेसे शस्त्रोंके छिन जानेसे पटेरोंको ग्रहण करने लगे ॥ २० ॥ वह पटेरे यादवोंके हाथमें लेते ही वज्र के समान दुधार खड़े हो गये, उससे यादव वैरियोंको मारने लगे ॥२१॥ और हे परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उन्हें रोका तब वे श्रीकृष्ण और बलदेवजीको वैरी मानकर मारनेकी बुद्धिसे यादव मोहित हो शस्त्र ले सम्मुख आये ॥२२॥ हे कुरुनन्दन ! इसके उपरांत दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो खड्गरूप पटेरोंको हाथमें लेकर युद्धमें विचरते हुए मारने लगे ॥२३॥ ब्रह्म शापसे व्याप्त श्रीकृष्णकी मायासे मोहित आत्मा यादवोंको स्पर्धासे उत्पन्न हुए क्रोधने क्षय कर दिया, जैसे बांसकी अग्नि वनका क्षय कर डालता है ॥२४॥ इस प्रकार अपना सब कुल नाश हो जानेके पीछे एक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही केवल अवशेष रह गये, तब श्रीकृष्णने जाना कि अब भूमिका भार उतर गया ॥ २५ ॥ महात्मा बलदेवजीने समुद्रके तटपर परमपुरुषके ध्यानरूप योगसे आपको आपमें युक्त कर मनुष्यलोक छोड़ दिया ॥ २६ ॥ इसके उपरांत श्रीदेवकीजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बलरामजीका चलना देख पीपलका आश्रय ले मौन होकर भूमितलमें बैठ गये ॥२७॥ शोभायमान चतुर्भुजरूप धारण किये अपनी कांतिसे दिशाओंका अंधकार दूर करते निर्मल अग्निसे दिखाई देने लगे ॥२८॥ अब चतुर्भुज उनका वर्णन करते हैंः—श्रीवत्सका चिह्न, मेघके समान श्याम, सुवर्णके समान कांतिवाले, पीतांबर पहने, परममंगल ॥ २९ ॥ सुन्दर हास्ययुक्त मुखकमल नील केशसे शोभित, कमलसे सुन्दर नेत्र, देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल ॥ ३० ॥ कटिसूत्र, जनेऊ, मुकुट, कंकण, विराजमान हार, नूपुर, मुद्रिका, कौस्तुभसे शोभित ॥३१॥ वनमालासे व्याप्त अंग, मूर्तिमत् अपने आयुधोंसे युक्त, लाल कमलकीसी शोभावाला वाम चरण दाहिनी जांघपर धरकर बैठे ॥३२॥ मूशलके

अवशेष लोहेके खण्डसे जिसने बाण बनाया था, उस जरानाम वधिकने मृगके आकारवाले उस चरणको मृगकी शंकासे बींध डाला। "यह व्याध कुछ बहुत समयका नहीं था, उसी समय स्वर्गसे भगवत्‌की इच्छानुसार अङ्गद व्याधके रूपमें आया और मोहित हो बाण मार पिताके ऋणसे मुक्त हुआ" ❋ ॥३३॥ फिर भगवान्‌के समीप आकर चतुर्भुज श्रीभगवान्‌को देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ। इसके उपरांत यह अपराधी वधिक माथेसे दैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ा ॥३४॥ हे मधुसूदन ! पापबुद्धि मैंने यह अपराध अज्ञानसे किया है, हे उत्तमयश निष्पाप ! मुझ पापीको क्षमा करो ॥३५॥ हे प्रभो। जिसका स्मरण मनुष्योंके अज्ञानतमका नाश करता है, उन्हीं आप विष्णुका मैं अपराधी हूँ ॥३६॥ हे वैकुण्ठ नाथ ! इसलिए मुझ मृगलोभी पापीको शीघ्र मारो, जिससे फिर कभी साधुओंका ऐसा अपराध न करूँ ॥३७॥ जब तुम्हारी स्वाधीन मायाकी रचनाको ब्रह्मा और ब्रह्माके पुत्र रुद्रादिक तथा वेदके द्रष्टा भी नहीं जानते, उन्हें ब्राह्मणोंके शापका लगना मायासे अन्धे हुए पुरुषोंसे किस प्रकार कहा जा सकता है, इससे यह बात चाहे कुछ भी हो, परंतु आप मुझे मार डालिए ॥३८॥ तब श्रीभगवान् बोले कि हे जरा ! तू भय मत कर उठकर खड़ा हो तूने तो यह मेरी इच्छानुसार ही कार्य किया है, इसलिए तू मेरी आज्ञासे पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥३९॥ इच्छा करके शरीरधारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे आज्ञा पाकर वह वधिक श्रीकृष्णकी तीन परिक्रमा दे नमस्कार कर विमानमें बैठ स्वर्गको चला गया ॥४०॥ इसके उपरांत दारुक मार्गमें भगवानको देख तुलसी चन्दनकी गन्ध मिली वायुको सूँघता हुआ श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया ॥४१॥ उस पीपलके वृक्षके नीचे तीक्ष्ण कांतियुक्त आयुधोंसे व्याप्त अपने पति श्रीकृष्णको बैठा देख-स्नेहसे मग्न आत्मा, नेत्रोंमें जल भर दारुक रथसे उतर उनके चरणोंमें गिरा ॥४२॥ हे प्रभो ! तुम्हारे चरणारविंद विना देखे मेरा सब ज्ञान नाशको प्राप्त हो गया और मोहमें प्रविष्ट हुआ, मैं दिशाओंको भी नहीं जानता हूँ तथा शांति भी मुझे नहीं है, जैसे रात्रिमें चन्द्रमाके गये पीछे दिशा नहीं जानी जाती है ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार दारुक सारथीने कहा तब सारथीके देखते ही गरुड़चिह्नयुक्त रथ, घोड़े ध्वजासहित आकाशको उड़ गया ॥४४॥ इसके उपरांत विष्णुके दिव्य आयुध चले गये, इससे विस्मित सारथीसे भगवान् जनार्दन कहने लगे ॥४५॥ कि, हे सूत ! तू द्वारकाको जा; बांधवोंसे परस्पर जातिका मरण, योगमार्गसे बलदेवजीका प्रस्थान और मेरी दशा जो कुछ तूने देखा है वह कहना ॥४६॥ तुम बान्धवोंसहित द्वारकामें मत रहना, क्योंकि मुझसे छोड़ी हुई द्वारकाको अब समुद्र डुबा

❋ शंका–वधिकको मनुष्यके और मृगके पहचाननेमें भेद क्यों न हुआ ? जिस भ्रमसे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द चरणारविन्दको मृग समझकर महाराजके चरणमें बाण मारा ? निशाना लगानेवाले मनुष्य कभी नहीं चूकते छोटी वस्तु होती है तो भी दृष्टि से देख लेते हैं और त्रिलोकीनाथ की देह तो बड़ी थी, वह वधिक कैसा मूर्ख हो गया ? मृग और मनुष्य उसको नहीं जान पड़े ?

उत्तर–अंगद वालिका पुत्र श्रीरघुनाथजीके चरणारविन्दोंकी सेवा करके स्वर्गको जाने लगा तो रघुनाथजीने अंगदसे कहा कि जो बरदान तुझको चाहिये वह मांग। तब अंगदने कहा कि, हे रघुनंदन ! हे दिनबन्धु ! मेरे पिताको आपने विना अपराध मार डाला, उसका बदला आपसे लिया चाहता हूं। तब रघुनाथजी बोले कि हम कुछ युग बीते द्वापरमें कृष्णावतार धारण करेंगे तब तुम्हारे पिताका ऋण तुम को चुकावेंगे और तुम्हारे हाथके वाणसे प्राण तजकर परमधामको जायेंगे। जिस समयको श्रीरघुनाथजी कह गये थे वही समय देखकर वीर अंगदने स्वर्गलोकसे उसी वनमें आकर बधिकका रूप धारण कर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणमें बाण मारा। इसलिये व्याधको मनुष्य और मृगकी पहचान नहीं हुई, क्योंकि बहुत दिनका व्याध नहीं था, वह तो नया वधिक था, केवल पिताका बदला लेनेको आया था।

देगा ॥४७॥ इसलिये अपनी सब सामग्री तुम हमारे माता-पिताको ले करके अर्जुनसे रक्षित हो इन्द्रप्रस्थको जाओ, इस प्रकार बांधवोंसे कहो ॥ ४८ ॥ तुम ज्ञाननिष्ठ, निस्पृह हो, मेरे धर्मसे यह तेरी मायाकी रचना जान शांतिको प्राप्त होओ ॥ ४९ ॥ जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा तब दारुक श्रीकृष्णचन्द्रकी वारंवार परिक्रमा दे माथा नवाकर कुलके नाश होनेसे मलिनचित्त हो द्वारकापुरीको चला गया ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धे मौशलोपाख्याने यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा–इकतिसमें नरलोकते, कृष्ण गये निज धाम।
गये देव निज निज भवन, तजि द्वारका ललाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि,हे राजा परीक्षित्! दारुकसारथीके जानेके उपरांत वहां ब्रह्मा पार्वती-सहित महादेव, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि, मरीचि आदि प्रजापति ॥ १ ॥ पितर, गंधर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, पक्षी ॥ २ ॥ भगवान्का प्रस्थान देखनेकी इच्छासे परम उत्कंठित श्रीकृष्णके जन्म-कर्म गाते और कहते वहां आये॥३॥ हे राजन्! फूलोंकी वर्षा करते, परमभक्तिसे युक्त विमानोंकी पंक्तिसे आकाशको संकुल करने लगे ॥४॥ इसके उपरान्त प्रभु सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्रह्मा, इंद्रादिक अपनी विभूतिको देख अपने आपको अपने आपमें संयुक्त कर अपने लोक ले जानेके लिये आये हुए बहुतसे देवताओंको देख, समाधि लगाकर अपने नेत्रकमल मूँद लिये ॥५॥ जैसे स्वच्छन्द मृत्युवाले योगी अपने शरीरको योगधारणासे जलाकर लोकमें प्रवेश करते हैं, परन्तु श्रीकृष्णने वैसे नहीं किया, किन्तु उसी शरीरसे अपने परमधामरूप वैकुण्ठको चले गये। कारण यह था कि यदि इस शरीरको योगधारणासे जला देते तो उसमेंका सम्पूर्ण जगत् भी भस्म हो जाता और उस शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछे उस देहका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति न होती ॥ ६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वधाम पधारे, उस समय देवलोकमें नगाड़े बजने लगे, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी और कृष्णचन्द्रके पीछे भूमिसे सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति, लक्ष्मी ये सब चले गये ॥७॥ परंतु ब्रह्मादिक देवताओंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको स्वधाममें प्रवेश करते न देखा, इस कारण यह अति आश्चर्यको प्राप्त हुए, क्योंकि श्रीकृष्णकी गति किसीने न जानी ॥ ८ ॥ जैसे मेघमण्डलीको छोड़ कर आकाशमें जाती बिजलीकी गति मनुष्योंसे नहीं देखी जाती, उसी प्रकार देवताओंसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी गति नहीं देखी गयी, उनकी गति उनके पार्षद ही जानते हैं ॥९॥ ब्रह्मा रुद्रादिक देवता श्रीकृष्णचन्द्रकी योगगतिको देखकर अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए और उस गतिकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकोंको चले गये ॥१०॥ हे राजा परीक्षित्! यादवोंमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म धारण करना मायासे अनुकरणमात्र जानना, जैसे नट निर्विकार है परन्तु नानारूपोंसे अनुकरण करता है,इस प्रकार आप ही इस जगत्को उत्पन्न कर और अन्तर्यामी भावसे उसमें आवेश कर अन्तकालमें संहार करते हैं परन्तु आप अपनी महिमासे निर्विकार हैं ॥११॥ तुम और मूर्ति मत जानो, इसी अवतारमें श्रीकृष्णच-

न्द्रका प्रताप बहुत बड़ा देखा है जिन्होंने परलोकसे सांदीपनका पुत्र प्राप्त किया और उसे उसी शरीरसे शरणागतरक्षक श्रीकृष्ण ले आये, ब्रह्मास्त्रसे दग्ध तुम्हारी रक्षा की, फिर कालोंके महाकाल रुद्र भगवान् महादेवजीको बाणासुरके संग्राममें जीत लिया और जरानाम बधिकको देह सहित स्वर्गको भेज दिया, तो वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क्या अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ थे ! ॥ १२ ॥ अहो ! जो श्रीकृष्णचन्द्र समर्थ थे, कुछ काल अभी यहां ही क्यों न रहे ? तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत्के सृष्टिप्रतिपालन और संहारमें आप ही कारण हैं और की आकांक्षा वे नहीं रखते हैं क्योंकि अनेक शक्तियोंको धारण करते हैं। यद्यपि ऐसे हैं परंतु तो भी यादवोंका संहार हो जानेसे अपने देहको इस लोकमें रखनेकी इच्छा न की आप ही निजधाममें अपने देहको प्राप्त किया। यहां हेतु कहते हैंः—भगवान्ने विचारा कि अब इस देहका यहां क्या काम है ? स्वधर्मी आत्मनिष्ठोंकी जो रीति थी वह दिखायी और भांति वह आत्मनिष्ठ दिव्यगतिके अनादरसे, योगबलसे देहकी सिद्धि कर कहीं यहां ही क्रीड़ा करनेको मन करे इस कारण भगवान् आप ही चले गये ॥१३॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर, सावधान मनसे, अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रकी परमगतिको कहेगा वह परम उत्तम गतिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ अब वसुदेवादिककी गति कहते हैंः—इसके उपरांत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे बिछुड़ा हुआ दारुक नाम सारथी द्वारकामें आकर वसुदेव उग्रसेनके चरणोंमें पड़,अपने अश्रुजलसे उनके चरणोंको सींचने लगा ॥ १५ ॥ हे राजा परीक्षित् ! फिर उस सारथीने सब यादवोंके नाश होनेका वृत्तांत कहा। यह सुनकर वसुदेवादिकोंके हृदयमें अत्यन्त उद्वेग हुआ और शोकसे मूर्छित हो ॥१६॥ श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल उतावले वहीं आये जहां बांधव प्राणरहित शयन कर रहे थे ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेव, श्रीकृष्ण और बलदेव अपने पुत्रोंके विना देखे शोकसे आतुर हो बेसुध हो गये ॥१८॥ और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगसे अत्यन्त आतुर हो वहां ही प्राण छोड़ दिये और, अपने अपने पतियोंसे मिलकर स्त्रियां चितामें प्रवेश कर गयीं ॥ १९ ॥ बलदेवजीकी स्त्री बलदेवजीके देहको आलिंगन कर चितामें प्रवेश कर गयी और वसुदेवकी स्त्री वसुदेवसे, श्रीकृष्णकी पुत्रवधू प्रद्युम्न आदि अपने अपने पतियोंसे मिलकर, रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी स्त्री श्रीकृष्णमय हो अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥२०॥ अर्जुनने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णचन्द्रके विरहसे आतुर होनेपर भी सच्ची मुक्ति देनेवाले भगवान्के वचनोंका स्मरण करके उसने अपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ जिनकी सम्पति नाशको प्राप्त हुई, और आप भी नाशको प्राप्त हुए, उन बांधवोंका अर्जुनने पिंडदान, तर्पण आदि कार्य विधिपूर्वक क्रमसे किया ॥ २२ ॥ हे महाराज परीक्षित् ! इसके उपरान्त श्रीयुत भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मंदिरको छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रसे त्यागी सम्पूर्ण द्वारकाको समुद्रने क्षणभरमें डुबा दिया ॥२३॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि भगवान् मधुसूदन वहां नित्य विराजते हैं और वह मंदिर कैसा है कि जिसका स्मरणमात्र करनेसे ही सम्पूर्ण अमङ्गल नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥२४॥ मरनेसे बचे हुए स्त्री, बालक, वृद्धोंको अर्जुनने लेकर इंद्रप्रस्थमें प्रवेश कराकर वहां वज्रनाभका अभिषेक किया ॥२५॥ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे परमभागवत परीक्षित् ! तुम्हारे पितामह पांडव अर्जुनके मुखसे सुहृदोंका वध सुनकर तुमको वंशधारी समझ महाप्रस्थको चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य श्रद्धासहित देवदेव भगवान् विष्णुके जन्म और कर्मोंको सुनेंगे अथवा कहेंगे वे सम्पूर्ण

पापोंसे छूट जायँगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार इस ग्रन्थमें और दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुये परममंगल भगवान् वासुदेवके सुन्दर अवतारोंके चरित्र जो मनुष्य कहेंगे वे परमहंसोंके शरणदायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें परमभक्तिको प्राप्त होंगे ॥ २८ ॥

जनप्रतिपाल दयाल दयानिधि, क्यों चितवत नहिं ओर हमारी।
कीजै कृपा जानि जन हमपर, हे व्रजेश गोपाल मुरारी ॥ टेक ॥
जबसे सत शिक्षा हम त्यागी, बुधिबल औ सुख सम्पति भागी।
पीछे विपति अविद्यालागी, निशिदिन देत रहत दुख भारी ॥ १ ॥
कुमति कलह घट घटमें छाई, शुभगुण सुमति समूल नसाई।
करत परस्पर द्वेष बुराई, हानि लाभ नहिं तनक विचारी ॥ २ ॥
हम सब तुम्हरी ओर निहारैं, त्राहि त्राहि दिन रात पुकारैं।
तुमविन जाको जाय जुहारैं, ऐसो को भगतन हितकारी ॥ ३ ॥
बेगि जननकी ओर निहारो, कलह कुमतिकी मूल उखारो।
दारिद दुर्गण दुर्ग विदारो, दुष्टदलन दीनन-दुखहारी ॥ ४ ॥
नाथ विनय मम स्वीकृत कीजै, विद्यादान दया करि दीजै।
चरण शरणमें हमको लीजै, लाग रही दृढ़ आश तुम्हारी ॥ ५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे श्रीरामगंगातटस्थमुरादाबादनगर-निवासिसुप्रसिद्धकविवरमाथुरवंशीय-श्रीयुतलालाशालग्रामवैश्यकृते एकादशस्कन्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां श्रीकृष्णोद्धवसंवादो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इति एकादशस्कन्धः समाप्तः।

इति

शुकसागर

अर्थात

श्रीमद्भागवतभाषा एकादशस्कन्ध ११.

समाप्त.

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष-बम्बई ४.

श्रीमद्वेङ्कटेशो विजयतेतराम्



शुकसागर.

अर्थात

श्रीमद्भागवत-भाषा

द्वादश स्कन्ध १२.

गोलोकवासी लाला शालग्रामजी अनुवादित



खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

द्वादशस्कंधः



करारविन्देन पदारविन्दं, मुखारविंदे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

श्रीगणेशाय नमः

शुकसागर.

अर्थात्

श्रीमद्भागवत भाषा

★

द्वादश स्कन्ध १२.

दोहा–आदि ब्रह्म अद्वैत अज, अविनाशी अविकार।
श्रीमुकुन्द गोविन्दपद, भज मन वारंवार ॥

कवित्त–काहूको सहारो है भवानी राजरानीजूको, काहूको सहारो नीको गिरिजाके प्यारेको। काहूको सहारो पुनि काली विकरालीजूको, काहूको सहारो भूतनाथ बलवारेको ॥ काहूको सहारो भलो भैरो हनुमानजीको, काहूको सहारो नीको पूर्ण नाथद्वारेको। जाने गिरधारो औ उबारो ब्रज शालिग्राम, मोहिं तो सहारो वाहि नन्दके दुलारेको ॥ काहूकी है उमा रमा शारदामें बड़ी प्रीति, काहूकी भवानी और लक्ष्मीमें मन है। काहूको गणेश औ महेशमाहिं लागो चित्त, काहूको तो इष्टदेव पानी रूप पवन है ॥ काहूको है ध्यान हनुमान और भैरवको, काहूको सुपूज्य शम्भु पुत्र गजानन है। शालिग्राम काहूको रामनाम अमरमूल, मेरे तो केवल एक राधिका ही धन है ॥

सोरठा–जय ब्रजचन्द मुकुन्द, आनँदनिधि ऋधिसिधिभवन।
जय वृन्दावनचन्द, नन्दसुवन त्रिभुवनपति ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा कि, मुने! यदुकुलके भूषणरूप श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जब अपने परमधामको चले गये, तब पृथ्वीपर आगे किसका वंश चला? यह मुझको समझाकर कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन्! बृहद्रथके कुलके अन्तमें पुरंजय नाम राजा होगा, जिसका वर्णन प्रथम नवम स्कन्धमें आपको सुना चुका हूँ। उसका मन्त्री शुनक पुरंजयको मारकर प्रद्योतनाम अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बैठा लेगा, उसके पालक नामक पुत्र होगा ॥ २ ॥ उसके विशाखयूप नामक पुत्र होगा, उसके राजक नाम एक पुत्र होगा, राजकके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा। पांच राजा प्रद्योतन नामसे प्रसिद्ध होंगे ॥ ३ ॥ और एक सौ अड़तीस (१३८) वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे। उनके पीछे शिशुनाग

नाम राजा होगा, उसके पीछे काकवर्ण राजा होगा, काकवर्णके क्षत्रधर्मा नाम पुत्र होगा, उसके क्षेत्रज्ञ नाम पुत्र होगा ॥४॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार नाम पुत्र उत्पन्न होगा, उसके अजात शत्रु नामक पुत्र होगा उसके दर्भक नाम पुत्र होगा उसके अजय नाम पुत्र होगा ॥ ५ ॥ अजयके नन्दिवर्द्धन नाम पुत्र होगा, उसके महानन्द पुत्र होगा । हे कुरुवंशभूषण ! यह शिशुनागादिवंशी दश राजा तीनसौ साठ (३६०) वर्षतक कलियुगमें राज्यभोग करेंगे ॥ ६ ॥ हे महाराज ! महानन्दनाम पुत्र शूद्रीके गर्भसे बड़ा तेजस्वी और पराक्रमी ॥ ७ ॥ महापद्म सेनाका पति, नन्दनाम क्षत्रिय वंशका विध्वंस करनेवाला होगा, इस नन्दराजासे लेकर आगेको शूद्रके तुल्य अधर्मी राजा होंगे ॥ ८ ॥ यह नन्द पृथ्वीपर एक महाछत्रधारी राजा होगा और कोई संसारमें उसकी आज्ञाको उल्लंघन न करेगा, मानो क्षत्रियोंको मान-भङ्ग करनेमें दूसरा परशुराम होगा ॥ ९ ॥ उस नन्दराजाके सुमाल्यादिक आठ पुत्र होंगे, वे सब राजा होकर सौ-सौ वर्षतक पृथ्वीकी रक्षा करेंगे ॥ १० ॥ अपने अनुगत उन नवों नन्दराजाओंको कोई एक चाणक्य नाम ब्राह्मण मारेगा, उनके मरणोपरांत कलियुगमें मौर्य नाम राजा पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ ११ ॥ फिर वही नवनन्दका मारनेवाला चाणक्य नाम ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राजसिंहासनपर बैठा लेगा, उस चन्द्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, उसके अशोकवर्द्धन नाम पुत्र होगा ॥ १२ ॥ अशोकवर्द्धनके सुयशा नाम पुत्र होगा उसके संगत नाम पुत्र होगा, संगतके सालिशूक नाम पुत्र होगा, उसके सोमशर्मा नाम पुत्र होगा ॥१३॥ सोमशर्माके शतधन्वा पुत्र होगा, उसके दूसरा बृहद्रथ पुत्र होगा । यह दश मौर्यवंशी राजा कलियुगमें एकसौ तैंतीस (१३३) वर्षतक पृथ्वीपर आनंद भोगेंगे। हे कौरवकुलमार्त्तण्ड ! इन सब मौर्यमें पहले एक से दश मौर्य होंगे, यह जानने योग्य बात है ॥ १४ ॥ फिर मौर्य वंशके राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मारकर अपने पुत्र पौष्पमित्रको वहांका राज्यसिंहासन देगा, पौष्पमित्रका पुत्र अग्निमित्र राजा होगा, उसका सुज्येष्ठ नाम होगा ॥१५॥ सुज्येष्ठका पुत्र वसुमित्र होगा, वसुमित्रके भद्रक नाम पुत्र होगा, भद्रकका पुत्र पुलिन्द होगा, पुलिन्दका पुत्र घोष होगा, घोषका पुत्र बज्रमित्र होगा, बज्रमित्रका पुत्र भागवत होगा, भागवतका पुत्र देवभूत होगा ॥ १६ ॥ यह दश शुंगराजा कहे जायँगे और दशों राजा एक सौ बारह (११२) वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे। हे कुरु-कुलभूषण ! इन सबमें शुंग नाम राजा पहले होगा। हे नरेन्द्र ! फिर यह भूमि अल्पगुणवाले कण्व नाम राजाओंके अधीन रहेगी॥ १७ ॥ देवभूमि नाम शुंगका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान् वसुदेव नाम होगा, परस्त्रीगामी देवभूतिशुङ्गको मारकर आप ही राज्य करेगा, उसके भूमित्र पुत्र होगा, भूमित्रके नारायण नाम पुत्र होगा ॥ १८ ॥ नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा । यह कण्ववंशी चार राजा कलियुगमें तीनसौ पैंतालीस (३४५) वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेंगे ॥ १९ ॥ सुशर्माका कोई चाकर महानीच शूद्र जाति असत्तम बली नाम कण्ववंशी सुशर्माको मारकर कुछ वर्षतक आप पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ २० ॥ फिर उसके पीछे उस बलीनाम राजाका भ्राता कृष्णनाम पृथ्वीका पति होगा, उसके श्रीशांतकर्ण नाम पुत्र होगा श्रीशांतकर्णके पौर्णमास नाम पुत्र होगा ॥२१॥ उसके लम्बोदर नाम पुत्र होगा लम्बोदरका पुत्र चिविलक होगा, चिविलकके मेघस्वाति नाम पुत्र होगा, उसके अटमान नाम पुत्र होगा, ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्मा नाम पुत्र होगा, उसके हालेय नाम पुत्र होगा, हालेयके

तलक नाम पुत्र होगा, तलकके पुरीषभीरु नाम पुत्र होगा; उसके सुनंदन नाम पुत्र होगा॥२३॥ सुनंदनके चकोर नाम तनय होगा, चकोरके नवमा शिवस्वाति नाम पुत्र होगा। हे रिपुदमन! उसके गोमती नाम पुत्र होगा, गोमतीके पुरीमान् नाम पुत्र होगा ॥ २४ ॥ उसके मेदशिरा पुत्र होगा, मेदशिराके शिवस्कन्द नाम पुत्र होगा, उसके यज्ञश्री नाम पुत्र होगा, यज्ञश्रीके विजय नाम पुत्र होगा, उसके चन्द्रविज्ञ नाम पुत्र होगा और उसके सलोमधि नाम पुत्र होगा ॥२५॥ हे कुरुनंदन! ये तीस राजा चारसौ छप्पन (४५६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ २६ ॥ इसके उपरांत आवभृति नाम नगरीमें सात आभीर जातिके राजा होंगे उनके फिर दश गर्दभ नाम राजा होंगे, उनके उपरांत केकजातिके सोलह राजा महालोभी होंगे ॥ २७ ॥ उनके पीछे आठ यवन राजा होंगे, उनके पीछे चौदह तुरुष्क (तुरक तुरकिस्तानके वासी राजा) होंगे, फिर दशगुरण्ड (अँगरेज; इंगिलस्ताननिवासी) राजा होंगे, उनके पीछे ग्यारह मौन राजा होंगे ॥ २८ ॥ यह सब राजा एक सहस्र निन्यानवे (१०९९) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ २९ ॥ हे राजन्! ग्यारह मौन राजा तीनसौ (३००) वर्षतक पृथ्वीका भोग करेंगे, उनके मरनेके पीछे किलकिला नगरमें भूतनंदन नाम राजा होगा, उसके पीछे वंगिरि नाम राजा होगा ॥ ३० ॥ फिर उसके पीछे उसका भाई शिशुनंदि और शिशुनंदिके पीछे यशोनंदि, यशोनंदिके पीछे प्रवीरक, यह सब राजा एकसौ छः (१०६) वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे ॥ ३१ ॥ उस शिशुनंदिके तेरह पुत्र होंगे और वह सब बाल्हीक ही कहलायेंगे और आनन्दपूर्वक पृथ्वीका राज्य करेंगे, फिर और एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा, उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होगा ॥ ३२ ॥ फिर सात तो अन्ध्र, सात कौशल और एक वैदूर्य नगरका नरेश नैषध यह सब खण्डमण्डलेश्वर राजा तक ही समयमें होंगे ॥ ३३ ॥ फिर मगधदेशमें विश्वस्फूर्जित पुरंजय नाम राजा होगा, वह बड़ा पराक्रमी दुर्मति होगा और ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको धर्मसे भ्रष्ट करके पुलिंद, यदु और मद्रक म्लेच्छके तुल्य कर देगा ॥ ३४ ॥ और जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य न हों ऐसी नीच प्रजाको स्थापित करेगा, यह वीर्यवान् पुरंजय क्षत्रियोंका विध्वंस करके पद्मावती नाम पुरीमें बसकर हरद्वारसे लेकर प्रयागतक राज्य करेगा ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्र देश, उज्जैन, आभीर, शूर, अर्बुद, मालवादेशनिवासी द्विज अर्थात् तीनों वर्ण यज्ञोपवीत क्रिया करके संस्कारहीन हो जायँगे और राजा भी शूद्रके समान काम करने लगेंगे ॥ ३६ ॥ सिन्धु नदीसे लेकर चन्द्रभागा नदीके किनारेतक और कौंतीपुरी काश्मीर आदि सब देशोंमें शूद्र क्रियाहीन म्लेच्छप्राय, वेदमर्यादारहित तेजहीन राजा होंगे ॥ ३७ ॥ हे राजन्! यह सब एक ही कालमें म्लेच्छप्राय, अधर्मी, असत्यपरायण, अल्पदाता, महाक्रोधी ॥३८॥ स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मणको मारनेवाले, परनारी, पराये द्रव्यके हरनेवाले उत्पन्न होंगे और मरेंगे अल्पपराक्रम, अल्प आयुर्बलवाले होंगे ॥ ३९ ॥ गर्भाधान आदिक संस्कारोंसे रहित, संध्या तर्पणादि क्रियाओंसे हीन, रजोगुण, तमोगुणसे आवृत्त, म्लेच्छ राजाओंका रूप धारण किये, प्रजाको अनेक-अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले होंगे ॥ ४० ॥ इन पालनेवाले राजाओंके सब देश उन राजाओंके भाव और आचरणको और अपवाद करनेवाले लोगोंको परस्परके क्लेशोंसे और राजाओंके किये हुए दुष्टकर्मोंसे दुखी होकर क्षयको प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा–दूसरे जब कलिकालको, बढ़ै दोष अत्यंत ।
तब हरि कल्की रूप धरि, मारहिं दुष्ट असन्त ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इसके उपरांत फिर महा बलवान् कालके प्रभावसे दिनपर दिन धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल, स्मरण आदि घटता चला जायगा ॥ १ ॥ कलियुगके विषे जिस पुरुषके पास धन होगा वही बलवान् गुणनिधान, आचारवान् और बुद्धिमान् कहलायेगा और जो महा बलवान् होगा वही धर्माध्यक्ष और न्यायशाली हो सबको जीतेगा ॥ २ ॥ रीति केवल एक स्त्री और पुत्रमें ही रहेगी और सुहृद, मित्र, कुल, गोत्रादिकमें कपट व्यवहार रह जायगा । स्त्री, पुरुष होनेमें कुछ श्रेष्ठ कुल आचार-विचार न होगा, केवल, रति करनेमें कुशल देख लेंगे और ब्राह्मणपनमें केवल जनेऊ मात्र ही रह जायगा ॥३॥ आश्रम चिह्नमात्र हो करके पहचाने जायँगे, परस्पर स्नेह कहीं नहीं रहेगा, धनहीन न्यायमें नित्यप्रति हारते ही रहा करेंगे, क्योंकि न्यायाध्यक्ष जबतक धनपात्रोंसे द्रव्य पाते रहेंगे तबतक धनहीनको हराते ही रहा करेंगे, और अधिक बोलनेवालेको ही लोग पंडित कहेंगे ॥४॥ निर्धनोंका नाम लोग असाधु रखेंगे, दम्भवान् और कपटीको ही लोग साधु कहेंगे, विवाह स्वीकारमात्र ही समझा जायगा और स्नान मात्र ही सब शृङ्गार होगा॥५॥ जो तालाब वा सरोवर दूर होगा, वही तीर्थ माना जायगा, माता, पिता, और गुरुको कोई तीर्थ नहीं मानेंगे, शिरपर बाल रखना यही सब सुन्दरता कहावेगी, जैसे-तैसे पेट भर लेना परम चतुरता और पराक्रम गिना जायगा, और ढीठ पुरुष ही सत्यवादी कहलावेंगे ॥ ६ ॥ कुटुम्बका उदरपूर्ण करना ही सयान और चतुराईका मूल समझा जायगा, धर्मका सेवन केवल इसलिये किया जायगा जिससे संसारमें यश हो, इस प्रकार जब सर्वत्र भूमण्डल प्रजाओंसे व्याप्त हो जायगा ॥७॥ तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इनमें जो बली होगा वही भूपाल कहा जायगा, लोभी, निर्दयी, लुटेरोंसे और राजाओंसे ॥ ८ ॥ अपनी स्त्री, धन छीन लेनेके भयसे सब प्रजा भागकर पर्वतोंमें जा छिपेगी और वहां शाक, कन्द, मूल, फल, मधु, मांस, पुष्प, बीज, इनसे अपना उदर पूर्ण करेगी ॥ ९ ॥ अकाल और राजाओंके दण्डसे कष्ट पाकर अनावृष्टि, शीत, वायु, धूप, वर्षा और हिमसे परस्पर अत्यंत पीड़ित हो क्लेश पाकर सम्पूर्ण नष्ट हो जायगा ॥ १० ॥ भूख, प्यास, रोग, सन्ताप और चिंतासे प्रजा अत्यंत पीड़ित हो जायगी और मनुष्योंकी पूर्ण अवस्था कलियुगमें २० अथवा ३० वर्षकी हुआ करेगी ॥ ११ ॥ जब कलियुगका महादोष बढ़ेगा तब प्राणी तनु क्षीण और महामलिन हो जायँगे ।

दोहा–जब वर्णाश्रम धर्म सब, ह्वै है जगत विनाश ।
तब वेदनके पंथको, नेक न रहै प्रकाश ॥ १२ ॥

धर्मके बदलेमें पाखण्ड ही पाखण्ड रह जायगा, राजा लुटेरे होंगे, वृथा हिंसा और बात-बातमें झूंठ बोलकर नाना प्रकारकी वृत्तियोंको करेंगे और सदा बुरे कामोंमें निष्ठा रहेगी ॥ १३ ॥ सब वर्णाश्रम शूद्रके सदृश हो जायँगे और गायें बकरीके समान छोटी-छोटी होंगी, चारों आश्रम गृहस्थप्राय हो जायँगे और स्त्रीके भाइयोंसे लोग प्यार करेंगे और घरको सम्बन्धमात्र मानेंगे ॥ १४ ॥ अन्न और ओषधियाँ क्षीण हो जायँगी, केवल वृक्षोंमें शमी

(उदड़) के वृक्ष ही रह जायँगे, वर्षाकालमें बिजली अधिक चमकेगी, वर्षा बहुत थोड़ी हुआ करेगी, गृहस्थियोंके घर धर्मकर्मसे शून्य हो जायँगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कलियुगमें सब मनुष्य अधर्मी हो गधेके समान हो जायँगे और जब महाभयंकर कलियुगके अन्तका समय आयेगा तब धर्मकी रक्षा करनेके लिए आदिपुरुष भगवान् शुद्ध सत्वगुण मूर्ति धारण करके निष्कलंकरूपसे प्रकट होंगे।

दोहा–सन्तनके सुख करनको, हरन भूमिको भार।
ह्वै है कलियुग अन्तमें, कल्कीको अवतार ॥

चराचरके गुरु सबके आत्मा ईश्वर विष्णुका अवतार महात्मा पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके कर्मोंके प्रचारके लिए होगा ॥ १६ ॥ १७ ॥

दोहा–गङ्गाके तटमें अहै, सम्भल नामक ग्राम।
तहां विष्णुयश विप्र इक, ह्वै है अति मतिधाम ॥

उस विष्णुयशी ब्राह्मणके घरमें चैत्र शुक्ला द्वादशीको विष्णु भगवान् कल्कि अवतार धारण करेंगे ॥१८॥ उसी समय देवता लोग अत्यन्त शीघ्रगामी देवदत्त नाम एक घोड़ा लेकर उनके सम्मुख उपस्थित होंगे, भगवान् उस घोड़े पर चढ़कर खड्ग हाथमें ले दुष्टोंके दमनकर्त्ता अणिमादिक अष्टसिद्धियोंसे संयुक्त ॥१९॥ जगदीश्वर अनुपम कांतिवाले महातेजस्वी कल्की-रूपसे राजाओंकासा वेष धारण किये उस घोड़ेपर चढ़कर करोड़ों चोरोंका विध्वंस करेंगे ॥ २० ॥ जब सब चोरोंका संहार हो जायगा तब देश देशांतरोंके मनुष्योंके अतिपुण्यरूप सुगंधयुक्त पवनके लगनेसे उन मनुष्योंके मन उज्ज्वल हो जायँगे ॥२१॥ और उन नगरनिवा-सियोंके हृदयमें शुद्ध चैतन्य सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव स्थित होंगे तो उन प्रजाओंके पुत्रादिक उत्तम और पुष्ट होंगे ॥२२॥ जब धर्मके पालनेवाले कल्किभगवान् प्रगट होंगे तब सत्ययुग वर्त्तने लगेगा और प्रजाकी संतान सात्त्विकी होगी ॥२३॥ जब चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति ये सब पुष्य नक्षत्रके योग करके एक राशिमें आयेंगे तब सत्ययुग होगा ॥२४॥ जो चन्द्रवंशी और सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं और जो इस समय विद्यमान हैं तथा आगे होंगे उन सबके नाम संक्षेपसे भिन्न-भिन्न मैंने आपको सुनाये ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर नंदके राज्यतक पन्द्रह सौ दश (१५१०) वर्ष बीत गये ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्त ऋषियोंके मध्य जो दो तारे पुलह और क्रतु पहले दीखते हैं उन दोनोंके मध्यमें रात्रिके समय दोनोंको समान देखनेवाले ॥२७॥ अरुंधतीके नक्षत्र सहित सप्तऋषि मनुष्योंके (१००) वर्षतक प्रत्येक नक्षत्रपर रहा करते हैं अर्थात् जैसे चन्द्रमा एक नक्षत्रपर एक दिवस रहता है उसी प्रकार सप्तऋषि सौ (१००) वर्षके अनुमान एक नक्षत्रपर रहते हैं, यही सप्तऋषि तुम्हारे जन्मके समय मघा नक्षत्रपर थे और इस समय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥२८॥ कलियुगके आनेका समय ठीक-ठीक इस प्रकार निश्चय किया है कि जब महातेजस्वी शुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीकृष्ण भगवान् अपने परम धाम सिधारे, उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, जिस कलियुगके आते ही मनुष्योंकी पापमें रुचि हुई ॥२९॥ हे राजन्! जब तक रमापति भगवान् अपने चरणार-विंदोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए इसपर विराजमान रहे तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना कुछ कर्तव्य न कर सका॥३०॥जबसे मघा नक्षत्रमें सप्तऋषि वर्त्तमान होते हैं, तभीसे प्रवृत्त होकर

देवताओंके बारह सौ (१२००) वर्षतक कलियुग रहता है ॥३१॥ अब सप्तऋषि मघा नक्षत्रसे निकल पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायँगे तब नंदका राज्य वर्तेगा और उसी नंदके राज्यसे कलियुगका अत्यन्त प्रताप बढ़ेगा ॥३२॥ जिस दिनसे, जिस मुहूर्त्तसे, जिस क्षणसे श्रीकृष्ण भगवान् अपने परमधामको सिधारे उसी दिन और उसी समय कलियुगने इस लोकमें अपना प्रवेश किया, ऐसे भूतकालके जाननेवाले ऋषि लोग कहते हैं ॥ ३३ ॥ जब देवताओंके एक सहस्र (१०००) वर्ष व्यतीत हो जायँगे, जो कलियुगका प्रमाण है, तो फिर पीछे सत्ययुगका प्रवेश होगा और सत्ययुग आनेका यही लक्षण दिखाई देगा कि मनुष्योंके मनमें आपसे आप आत्माका प्रकाश हो जायगा ॥३४॥ हे राजन् ! जिस प्रकार पृथ्वीपर मनुका वंश हुआ और आपसे कहा, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका वंश युग-युगमें जानना योग्य है ॥३५॥ जो आज तक नाममात्रसे ही जाने जाते हैं, उन जाननेवालोंकी केवल कथामात्र ही कहनेको रह गयी है, ऐसे महात्मा पुरुषोंकी कीर्ति ही संसारमें आजतक चली आती है, वे लोग पृथ्वीपर न रहे इसलिए प्राणियोंको चाहिए कि राज्य और पुत्रादिकी मोह ममताको त्यागकर अपने धर्म कर्ममें तत्पर रहे ॥३६॥ चन्द्रवंशी शन्तनुका भ्राता देवापि और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी राजा मरु ये दोनों राजा अत्यन्त योगबलके प्रतापसे कलाप ग्राममें वास करते हैं ॥३७॥ ये दोनों राजा कलियुगके अन्तमें भगवान्‌की शिक्षा पाकर पहलेके समान सब वर्णाश्रम धर्मोंका विस्तार करेंगे ॥३८॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, ये चारों युग इसी क्रमसे पृथ्वीपर मनुष्योंके निमित्त वर्त्तते रहते हैं ॥३९॥ हे राजन् ! जो राजा मैंने आपके आगे वर्णन किये, इनके सिवाय और भी जो हुए वे सब इस भूमिमें ममता करके और इसको यहीं छोड़कर आप रीते हाथों नाशको प्राप्त हुये ॥४०॥ जिस देहका नाम राजा था उसी देहके अंतसमय कृमि, विष्ठा, खाक ये नाम हुए, ऐसे शरीरसे जो कोई शरीरधारी दूसरेसे द्रोह करते हैं उनका कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है ? नरकमें वास करनेके सिवाय कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥ किस प्रकारसे अखण्ड भूमिको हमारे पूर्वपुरुषोंने पाली थी और अब किस प्रकार हमारे पुत्र-पौत्रों और वंशजोंके पास स्थिर रहेगी ? ॥ ४२ ॥ वे मूर्खलोग पञ्चभूतमय इस देहको अपना मानकर भूमिमें ममता कर अन्तसमय दोनोंको छोड़कर आप अकेले ही गये ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जो-जो भूपति हुए, अपने पराक्रमसे भूमिका भोग करते रहे, इस महाविकराल कालने उन सबकी भी कथामात्र ही शेष रखी ॥ ४४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दोहा—तिसरेमें वसुधावचन, राज्यदोष गुणग्राम ।
कुलकलंक कलिकालके, मेटन हरिका नाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! यह पृथ्वी अपने जीतनेको परिश्रम करते हुये राजाओंको देखकर मन ही मन ठट्ठेमार हँसती है कि अहो ! यह सब मृत्युके खिलौने राजा मुझको जीतना चाहते हैं यह नहीं जानते कि मेरे सामने अनन्त राजा मरकर खप गये ॥ १ ॥ जिस कामनाने बुद्‌बुदके समान इस देहविषे जिन राजाओंको विश्वास उपजाया, उनकी भी कामना निष्फल हुई ॥ २ ॥ मुख्य तो राजाओंका यह विचार है कि

पहले पांचों इन्द्रिय और छठे मनको जीतकर मन्त्री; प्रधान, सचिव, पुरवासी और कुटुम्बादिक अपने वशमें करके शत्रुओंकी जड़को उखाड़ महावत और कटककी ओरसे बेखटक हो राज्य करेंगे ॥३॥ और इसी रीतिसे समुद्रतटकी भूमिको जीतेंगे इस प्रकार आशावेष्टित हृदय वाले राजा अपने निकट रात-दिन डंका बजानेवाले कालका कुछ ध्यान नहीं करेंगे ॥ ४ ॥ अनेक राजा तो समुद्रके पारतक मुझको अपने पुरुषार्थसे जीतकर अत्यन्त तृष्णासे समुद्रके देशोंमें भी प्रवेश करते हैं। इंद्रिय और मनके जीतनेपर राज्य साधनेकी इच्छा करना मूर्खता है और आत्मजयका फल तो एक मुक्ति ही है ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित्। वसुधा कहती है कि देखो ! जो मुझको छोड़कर मनु और मनुकी सन्तान मेरे ऊपर जैसे आये वैसेही हाथ पसारे चले गये, मुझ अचलाको यह कुबुद्धि राजा युद्धमें जीतना चाहते हैं ॥६॥ देखो ! राज्यकी ममतामें बँधे हुए असत् राजा मेरे लिये पिता, पुत्र, भ्राता, ये सब परस्पर भी क्लेश करते हैं ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! यह वसुधा मेरी है, इसमें तेरी किंचिन्मात्र भी नहीं है यह कहते और परस्पर स्पर्द्धा करते हुए मेरे लिये अनेक राजा युद्ध ही करते-करते मर गये ॥८॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, अर्जुन, भरत, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुन्धमार, रघु ॥ ९ ॥ तृणविंदु, ययाति, शर्याति, शान्तनु, गय, भागीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, नरकासुर, शम्बर, हिरण्याक्ष, तारक ॥११॥ ऐसे-ऐसे अनेक दैत्य और राजा जो कि बड़े-बड़े बलवान् और सर्वगुणनिधान, योद्धाओंके पराजय करनेवाले, जिन्होंने कहीं भी हार नहीं मानी, सब ही अजित हो गये ॥ १२ ॥ वे सब मरणधर्मा मेरे में अत्यन्त ममता करके रहते थे, अब विना ही मनोरथ पूर्ण किये कालके गालमें चले गये ॥ १३ ॥ और सबकी सब कथा ही मात्र रह गयीः-

कवित्त—मानधाता दशरथ दिलीप दधीचि भये, रावणसो कञ्चनकी लंकपै परो रहो। बलि वेणु चक्कवै विदेह राजा भृगु राजा अवनि सुत धरा महि मण्डल भरो रहो। भरत रु पृथ्वीराज दुर्योधनसे जरासन्ध, करणसों दानी जो कह्यो सो करो रहो। जेते देहधारी तेते बखत बजाय गये, केते उठ गये ह्याँ जमा खर्च धरो रहो ॥

हे समर्थ ! इस प्रकार पृथ्वीने हँसकर कहा कि, हे विभो ! लोकोंमें यश विस्तार कर आप तो परलोकको चले गये, ऐसे बड़े राजाओंकी कथा मैंने तुमसे कही, वह केवल विषयोंकी असारता और विज्ञान और वैराग्यका निरूपण करनेके लिये, इसमें केवल वाणीका विलास है, कुछ परमार्थ नहीं ॥ १४ ॥ जिस अमंगलके दूर करनेवाले उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंको कवीश्वर लोग सदा गाते हैं, जो कोई श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी निर्मल भक्तिको चाहे वह निरन्तर उनके गुणोंको सुने ॥१५॥ राजा परीक्षित बोले कि, हे भगवन् ! हे महामुने ! कलियुगके बड़े-बड़े दोषोंको कलियुगके मनुष्य कौनसे उपायसे दूर कर सकते हैं ? वह तुम हमसे कहो ॥१६॥ पहले तो युगोंके धर्मका और प्रलय कल्पका प्रमाण कहो, फिर महात्मा कालरूप विष्णुभगवान्‌की गति कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे नरेन्द्र ! सत्ययुगमें मनुष्योंका धर्म चार चरण करके बर्तै हैं एक तो सत्य, दूसरी दया,

तीसरा तप, चौथा दान ये धर्मके चार चरण हैं ॥१८॥ सत्ययुगके मनुष्य सन्तोषी, करुणावान्, सब प्रेम प्रीति रखनेवाले, शान्तचित्त, जितेंद्रिय, सहनशील, आत्माराम, समदृष्टि और परमार्थमें निरालस्य युक्त और परिश्रमी होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुग में झूँठ, हिंसा, तृष्णा, विग्रह इन चार अधर्मके चरणोंसे सत्य, दया, तप, दान ये धर्मके चरण हैं, इनमेंसे धीरे-धीरे चौथा भाग क्षीण हो जाता है ॥ २० ॥ हे राजन्! क्रिया तपमें निपुण न तो अतिहिंसक और न अतिलम्पट, धर्म, अर्थ, काममें निष्ठा, वेदत्रयी धर्मपरायण ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्यतया युगकी प्रजा होती है ॥ २१ ॥ द्वापर युगमें अधैर्य, हिंसा, झूँठ बोलना और द्रोह इन धर्मके चार चरणोंसे, दया, तप, सत्य, दान ये धर्मपांव आधे-आधे घट गये ॥ २२ ॥ इससे द्वापर युगमें यशस्वी, बड़े शीलवान्, वेदाध्ययनमें निपुण, अति ऐश्वर्यवाले, कुटुम्बी, प्रसन्नमुख, ब्राह्मण और क्षत्रिय चारों वर्णोंमें मुख्य माने जायँगे ॥२३॥ कलियुगमें जब अधर्मकी वृद्धि होगी, तब धर्मका एक चरण रह जायगा। वह भी शनैः-शनैः करके अन्तमें नष्ट हो जायगा ॥२४॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी, झूंठी लड़ाई करनेवाले, दुर्भागी, अत्यन्त तृष्णावाले, शूद्र और दास जिनमें मुख्य माने जायेंगे ॥ २५ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीनों गुण ईश्वरके अधीन हैं, काल द्वारा प्रेरित हैं, प्राणियोंमें सदा फिरते दिखायी देते हैं ॥ २६ ॥ जब मन-बुद्धि और इंद्रिय सत्त्वगुणमें स्थित हो तब सत्ययुग समझना चाहिये क्योंकि सत्ययुगके प्रभावसे ज्ञानमें रुचि होती है ॥ २७ ॥ हे बुद्धिमान् नृप! जब प्राणियोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें हो तब रजोगुणयुक्त त्रेतायुग जानिये ॥ २८ ॥ जब लोभ, तृषा, अभिमान, दम्भ, मत्सरता और काम्यकर्ममें प्रवृत्ति हो तब रजोगुण तमोगुणका उत्पन्न करनेवाला मुख्य द्वापर युग समझना चाहिये ॥ २९ ॥ जब मनुष्योंके मनमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय, दीनता हो तब तमोगुणका प्रगट करनेवाला मुख्य कलियुग जानिये ॥ ३० ॥ प्राणी कलियुगके हेतुको पाकर मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, बहुत भोजन करनेवाले, कामी और निर्धन होंगे, और स्त्री असाध्वी और व्यभिचारिणी होगी ॥ ३१ ॥ देश देशान्तरोंमें चोरोंका बड़ा भय होगा, वेद पाखण्डसे अत्यन्त दूषित होंगे, राजा प्रजाके लूटनेवाले होंगे, ब्राह्मण स्त्रीलम्पट उदरपरायण होंगे ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण व्रत, आचारसे भ्रष्ट होंगे, गृहस्थ भिखारी होंगे, तपस्वी ग्रामवासी होंगे, संन्यासी द्रव्यके लोभी होंगे।

चौ०-भ्रष्ट कर्म करिहैं वैरागी * सपनेहुँ नाहिं धर्म अनुरागी ॥
ह्वै हैं सब जन अतिशय कामी * करिहैं नारिन-केरि गुलामी ॥
घरमें अन्न वस्त्र तक नाहीं * ऐशकरनको चहैं सदाहीं ॥
विप्र महाविषयी ह्वै जाहीं * वेश्यनको राखैं घर माहीं ॥
नारिलाजतजि करहिं अनीती * राखैं परपुरुषनसों प्रीती ॥
सास श्वशुरसों करि हैं रारी * बिन अपराध देयँ नित गारी ॥३३॥

कलियुगकी नारी अत्यन्त ठिगनी और बहुत भोजन करनेवाली, कालीकाली, बहुत सन्तान उपजानेवाली, महानिर्लज्ज, सदा कटुक वचन बोलनेवाली, चोर, ढीठ, कपटकी भरी हुई अनेक प्रकारकी माया दिखानेवाली होंगी ॥ ३४ ॥ तुच्छ किरातादि कपटी, दुराचारी,

म्लेच्छ व्यापारी होंगे, आपदा बिना ही सब लोक निन्दित जीविकाको श्रेष्ठ समझेंगे, जिस वृत्तिको सत्पुरुष स्वप्नमें भी धिक्कार करते थे ॥३५॥ धनहीन उत्तम पतिको भी स्त्री त्याग देंगी, नौकर अपने स्वामियोंकी नौकरी छोड़कर औरोंकी नौकरी करेंगे और नौकर रोगी हो जायँगे तो स्वामी लोभके मारे नौकरीसे हटा देंगे, विना दूधकी गायोंको लोग म्लेछोंके हाथ बेंच डालेंगे ॥ ३६ ॥ पिता, भ्राता, सुहृद और जातिवालोंको छोड़कर स्त्रीके सम्बन्धियोंसे प्यार करेंगे और स्त्रीकी बहिन (साली) स्त्रीका भ्राता (साला) और उसकी स्त्री (सलहेज) के साथ गुप्त मतकी बातें करेंगे। इस प्रकार दीन स्त्री और लम्पट नर कलिमें होंगे, यहां कलियुगकी प्रशंसामें एक लावनी कहते हैं:-

लावनी–धनि कलियुग महराज आपने लीला अजब दिखाई है, उलटाचलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ नीति पंथ उठ गया कचहरी पापन आन लगाई है। धर्म्म गया पाताल सभीके मन बेधरमी छाई है ॥ गुप्त हुए सच्चे वकील झूठोंकी बात सवाई है। सच्चोंकी परतीति नहीं झूठोंने सनद बनाई है। न्याय छोड़ अन्याय करैं राजोंने नीति गँवाई है ॥ हकदारोंका हक्क मेट बेहकपर कलम उठाई है ॥ जो हैं जाली फरेबवाले उनकी ही बनि आई है ॥ उलटा चलन चला दुनियामें सबकी मति बौराई है ॥ १ ॥ गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बगल दबाई है ॥ मूड़ मुड़ाकर इक धेलेमें कफनी लाल रँगाई है ॥ पन्थ चले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा बनाई है ॥ मुँह काला कर लिया किसीने शिरपर जटा रखाई है ॥ हुए नीचकुरसी नसीन ऊँचोंकी नहीं तिपाई है। जुगनू पहुँचे आसमान पर जाकर दुम चमकाई है ॥ फाँके करते सन्त मिलैं भँडुओंको दूध मलाई है। उलटा० ॥ २ ॥ सास बहूसे लड़े बहू भी आँख फेर झुझलाई है। लेकर मूसल हाथ कोसती दांत पीस उठ धाई है ॥ घरवालेको छोड़ गैर कर कुलकी लाज गवाँई है ॥ निज-पतिकी सेवा तजकर परपतिसे प्रीति लगाई है ॥ पुरुष हुए ऐसे व्यभिचारी बिषयवासना छाई है। वेश्याओंके फन्देमें पड़ घरकी तजी लुगाई है ॥ मात पिताकी करैं बुराई नारि परम सुखदाई है ॥ उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ३ ॥ व्याह बुढ़ापेमें जो करते उनपर गजब खुदाई है। साठ बरसके आप करी कन्याके सङ्ग सगाई है ॥ कुछ दिन पीछे आप मर गये करके रांड़ बिठाई है। लगी करन व्यभिचार लाज तजि घर घर लोग हँसाई है ॥ पंडित पाधा करैं दलाली मन्त्री जिनका नाई है ॥ शर्म रही नहिं बेशर्मोंको बेटी बेंचकर खाई है ॥ बहन भानजी त्यागन करके साली न्योति जिमाई है। उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥४॥ गङ्गाजल गोरसको तजकर गाढ़ी भांग छनाई है। भक्ष्य अभक्ष्य लगे खाने

मदिराकी होति छकाई है ॥ श्वशुर बहूको कुदृष्टि देखै अपनी नियति डुलाई है । ठट्ठा अरु मसखरी करे सासूसे ज्वान जमाई है ॥ कहै भतीजा चचासे अपने तू मूरख सौदाई है । हमैं चैन करनेसे मतलब किसकी चाची ताई है । बहिन बहिनसे लड़ै और लड़ता भाईसे भाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ५ ॥ जामा अङ्गा दिया त्याग अरु पगड़ी फार बहाई है । पहन कोट पतलून शीशपर टोपी गोल जमाई है ॥ तोड तख्त अरु सिंहासनको लाके बेंच बिछाई है । खीर खांडको त्यागन करके रोटी डबल पकाई है ॥ तोड़के ठाकुरद्वारा मसजिद सबकी करी सफाई है । गिरिजाघरमें जाकरके ईसाकी करी बड़ाई है ॥ बात करै सब अँगरेजीमें निज भाषा बिसराई है । उलटा चलन चला दुनियाँमें सबकी मति बौराई है ॥ ६ ॥ मित्र शत्रुसम हुए प्रीतिकी डाली तोड़ जलाई है । विद्या विन होगये विप्र गायत्री तलक भुलाई है । क्षत्रिय बैठे नारी बनकर ले तलवार छिपाई है । बन आई ना कुछ बनियोंसे माया मुफ्त लुटाई है ॥ शूद्र हुए धनवान ब्राह्मणोंने कीन्ही स्योकाई है ॥ गयावाले और मथुराके चौबोंकी बात बन आई है । चारों युगोंसे कलिने अपनी नई रीति दिखलाई है ॥ उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥७॥ अपुज पूजने लगे कहैं सब शिरपर देवी आई है । घरघरमें गुलगुले शेख सद्दोंकी चढ़ी कढ़ाई है॥ परब्रह्मको छोड़ भूत प्रेतोंकी दई दुहाई है। मूंड हिलाती कहीं मलिनियां कहैं कुसुम्भी माई है ॥ बाल भोग ठाकुरको नाहीं सय्यदके लिये मिठाई है । सन्तको कम्बल नहीं पतुरियाको कुरती सिलवाई है ॥ गुरु हरै चेलोंका धन चेला करता चतुराई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ८ ॥ विधवा लग गई पान चाबने दे सुरमा मुसुकाई है । नित करती शृंगार देख कर अहिवाती शरमाई है ॥ बैठे ज्वारी और अगामी हुआ जगत अन्यायी है । सब लक्षण विपरीति और घरघरमें होत लड़ाई है ॥ गाय जायँ लाखों मारी करता नहिं कोई सुनाई है । इसीसे पड़ता काल सृष्टिमें सम्पति सकल बिलाई है । हो दयाल हे नाथ ! आज कलयुगकी महिमा गाई है ॥ उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मति बौराई है ॥ ९ ॥ ३७ ॥

शूद्र तपस्वियोंका वेष धारण करके जीविका करेंगे और प्रतिग्रह लेंगे अधर्मी लोग ऊँचे आसनोंपर बैठकर धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जब पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी,तब प्राणी अनावृष्टिके भयसे अत्यन्त पीड़ित और सदा दुर्भिक्ष और राजाओंके करसे क्लेशवान् और अत्यन्त व्याकुल हो जायँगे॥३९॥और वसन, भूषण, खान,पान, स्नान, शयन, मैथुन आदि सुखोंसे हीन दीन पिशाचसे दिखायी देंगे । सब प्रजा कलियुगमें इस प्रकार हो

जायगी ॥४०॥ कलियुगमें बीस कौड़ियोंके लिये मित्रता छोड़कर परस्पर लड़ेंगे और उसीको धन समझकर मरने-मारनेको उपस्थित होंगे ॥ ४१ ॥ और अपने माता-पिताका पालन नहीं करेंगे, सब अर्थोंसे निपुण पुत्रकी भी रक्षा न करेंगे, केवल स्त्रीसङ्ग और उदरपूर्ण करके सब प्रजा क्षुद्र हो जायगी ॥४२॥ हे महाराज ! सब सृष्टिके परमगुरु और त्रिभुवनके पति जिनके चरणकमलको ब्रह्मादिक देवता नित्यप्रति नमस्कार करते हैं, ऐसे जगदीश्वर भगवान् अच्युतको कलियुगमें मरनेके समय पाखण्डोंसे दूषित हो बहुत पूजन न करेंगे, कभी रामनवमी, नृसिंह-चौदस, जन्माष्टमीको भगवान्‌की पूजा कर लिया करेंगे ॥ ४३ ॥ वा जब मरण समय आतुर होकर अथवा ऊँचेसे गिरकर वा मार्गमें रपटनेके समय विवश होकर कहेंगे कि 'हे भगवन् !' परन्तु नाम लेते ही वह मनुष्य कर्मबन्धनसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होंगे, तो भी उन भगवान्‌का कलियुगमें लोग पूजन नहीं करेंगे ॥४४॥ हे राजन् ! अब कलिकालके सम्पूर्ण दोषोंको दूर करनेका उपाय आपके सामने वर्णन करता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये, द्रव्य देश शरीरसे उत्पन्न हुए कलियुगके दोषोंके नाशक पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके चित्तमें स्थिर होकर सब दोषोंको हर लेते हैं ॥४५॥ जो प्राणी परमेश्वरका श्रवण, कीर्तन, पूजन, ध्यान और सत्कार करते हैं, भगवान् उन पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर दशसहस्र जन्मके पापोंको दूर कर देते हैं ॥४६॥ जैसे सुवर्ण अग्निसे तप्त होकर और सब धातुओंके मिले हुए मलिनपनको दूर कर देता है, ऐसे ही विष्णु भगवान् हृदयमें स्थित होकर सब अशुभ वासनाओंको कलियुगमें दूर करेंगे ॥ ४७ ॥ विद्या अर्थात् अन्यदेवकी उपासना, तप, प्राणायाम, मित्रता, तीर्थस्नान, व्रत, दान, जप आदिके करनेसे वैसा मन शुद्ध नहीं होता जैसा कि अनन्त भगवान् जब हृदयमें वास करें, तब शुद्ध होता है ॥४८॥ इसलिये हे राजन् ! आपका मरण समय निकट आ गया है, अब आप सब प्रकारसे सावधान हो वासुदेव भगवान्‌का हृदयमें ध्यान धरो; तब तुम परमगतिको प्राप्त होओगे ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! जिसकी मृत्यु निकट आ जाय वह सर्वाश्रय, सर्वात्मा, सर्वेश्वर भगवान्‌का ध्यान करे, क्योंकि उनका ध्यान करनेसे आदिपुरुष अविनाशी परमात्मामें लय हो जाता है ॥५०॥ हे राजन् ! यह महाघोर कलियुग अनेक दोषोंकी खानि है, परन्तु इसमें भी एक गुण बड़ा भारी है कि इस युगमें केवल परमेश्वरका कीर्त्तन करनेसे ही मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटकर तीन ही दिनमें श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके परमधामको चला जाता है ॥५१॥ सत्ययुगमें विष्णु भगवान्‌के ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, त्रेतामें यज्ञोंके करनेसे जो फल होता है, द्वापरमें परिचर्या करनेसे जो फल होते हैं, वे सब फल कलियुगमें केवल हरिके कीर्त्तनसे ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोहा–नैमित्तिक प्राकृतिक अरु, आत्यंतिक औ नित्य ।
चौथे चार प्रकारके, प्रलय कहूँ हरिचिंत्य ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा परीक्षित् ! जो कि आपने दो प्रश्न किये थे कि कलियुगका दोष किस उपायसे निवारण हो सकता है ? और कलियुगमें कौनसा धर्म मुख्य है जो पालना चाहिये ? इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने आपसे वर्णन किया, अब प्रलयकालको निरूपण

करता हूँ–परमाणुसे लेकर द्विपरार्द्धतक काल और युगोंके प्रमाण मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ, अब कल्प और प्रलय (सृष्टिका अन्त) का प्रमाण सुनो ॥१॥ हे प्रजापालक ! युगोंकी सहस्र चौकड़ीका ब्रह्माका एक दिन होता है, उसीको कल्प कहते हैं, जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं ॥ २ ॥ फिर अन्तमें चार सहस्र युगवाली ब्रह्माकी रात्रि होती है, उस रातमें इस त्रिलोकीकी प्रलय हो जाती है ॥ ३ ॥ इस प्रलयको विद्वान लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, इस प्रलयमें विश्वस्रष्टा श्रीनारायण ब्रह्मा सहित त्रिलोकीको अपने उदरमें धारण करके अनन्त भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं ॥४॥ अब प्राकृतिक प्रलयका वृत्तांत सुनिये, परमेष्ठी ब्रह्माजीके द्विपरार्द्धका जब अन्त होता है तब महत्तत्त्व अहंकार और पञ्चतन्मात्रा इन सातों प्रकृतियोंकी प्रलय होती है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इसलिये इस प्रलयको पंडित लोग प्राकृतिक प्रलय कहते हैं, जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे सातों प्रकृतियां और उनके कार्यरूप सब ब्रह्माण्ड भी लय हो जाते हैं ॥६॥ हे राजन् ! जब प्रलय होगा उस समय सौ १०० वर्ष-तक मेघ नहीं वर्षेगा, तब सब पृथ्वी अन्नरहित हो जायगी, उस समय सब प्रजा क्षुधासे पीड़ित हो एक-एक को भक्षण करने लगेगी। इस प्रकार कालाधीन हो सहजमें सब नाशको प्राप्त हो जायगी ॥ ७ ॥ फिर प्रलयकालका मार्त्तण्ड अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रके और सब शरीरोंके रसोंको खैंच लेगा, किंचिन्मान्त्र भी नहीं छोड़ेगा ॥८॥ फिर संकर्षण भगवान्‌के मुखमें स्थित प्रलयका जो अग्नि है, वह वायुके वेगसे भड़ककर इस शून्यमण्डलको सातों पाताल सहित जला देगा ॥ ९ ॥ फिर ऊपर-नीचे सब ओर सूर्यकी मित्राग्निसे जलकर ऐसा शोभित होगा जैसा जलता हुआ उपला (सूखा हुआ गोबर) शोभित होता है ॥ १० ॥ फिर इसके पीछे प्रलयकालकी महाप्रचण्ड पवन सौ वर्षतक चलेगी, उस समय आकाश धूरिसे आवृत्त होकर धूम्रवर्ण हो जायगा॥११॥हे अंग ! फिर पीछे विचित्र वर्णवाले अनेक प्रकारके मेघोंके समूह गम्भीर गर्जन शब्द करते सौ वर्षतक बरसेंगे, फिर पीछे यह ब्रह्माण्ड टूट-टूटकर सब विश्व जलमय हो जायगा ॥१२॥ उस समय भूमिका गन्ध गुण जल ग्रस्त हो जायगा, पृथ्वी गन्धहीन होकर प्रलयको प्राप्त होगी ॥ १३ ॥ जलके रसको तेज ग्रस लेगा, जल निरस होकर प्रलयको प्राप्त होगा, तेजका रूप गुण वायु ग्रस लेगा, तेज, रूप हीन हो पवनमें लीन होगा ॥१४॥ पवनका स्पर्श गुण आकाश ले लेगा, वायु आकाशमें लीन होगी ॥ १५ ॥ हे राजन् ! फिर आकाशका शब्द गुण उसको तामस अहंकारने ग्रस लिया, वह आकाश गुणहीन होकर अहंकारमें लीन होगा। राजस अहंकारने वृत्तियोंसहित इंद्रियोंको ग्रस लिया, सात्त्विक अहंकारने इंद्रियोंके देवताओंको ग्रस लिया तब देवता सात्त्विक अहंकारमें लीन हो जायँगे ॥ १६ ॥ हे राजन् ! तीनों प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्वने ग्रस लिया, तब अहं महतत्त्वमें लीन हो जायगा और महत्तत्त्वको सत्त्वादि गुणोंने ग्रस लिया, सत्त्वादिक गुणोंको कालकी प्रेरित माया ग्रस लेगी ॥ १७ ॥ इस मायाका कालके वेगसे रातदिन घट बढ़ नहीं होता और यह माया आदि अन्त करके अव्यक्त नित्य है, एक रस है, न स्पष्ट देखनेमें आती है, सर्वत्र जगत्‌की कारणरूप है ॥ १८ ॥ जहां वाणी मन सत्त्व रज तम तीनों गुण महत्तत्त्वादिक नहीं है, और प्राण, बुद्धि, इंद्रियोंके देवता विश्वकी रचना भी नहीं है ॥१९॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल, भूमि और सूर्य भी वहां नहीं हैं, सुषुप्ति शून्यके समान है, उसको कविलोग अतर्क्य मूलपद कहते हैं ॥२०॥

प्राकृतिक प्रलय यह आपसे कही, जिस प्रलयमें यह पुरुष प्राकृतिक शक्ति सब कालसे प्रेरित होकर लीन हो जाती है। यह माया ईश्वरकी शक्ति है, इससे सबके कारण रूप एक परब्रह्म परमेश्वर ही हैं ॥ २१ ॥ हे राजन्! अब आपसे आत्यंतिक प्रलय कहते हैं-बुद्धि, इंद्रिय, विषयरूप इन सबका आश्रय ज्ञान ही भाषता है, जिससे अन्वय, व्यतिरेक करके जो आदि अंतवान् हैं, वह सब वस्तु हैं। विचार करके देखो तो यही मोक्ष आत्यन्तिक प्रलय है क्योंकि यह मोक्ष आत्मज्ञानसे सब प्रपञ्चका लयरूप है, यहांपर प्रलय अर्थात् मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट वारुणी आदिका प्रतिरोध होता है, इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानसे और दूसरे सबका प्रतिरोध समझना। जो आत्माके सदृश प्रपञ्च यथार्थ हो तो उसका प्रतिरोध होना ठीक नहीं, इससे ज्ञात होता है कि, प्रपञ्च परब्रह्मसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है अर्थात् यह ब्रह्मसे भिन्न सत्ताको नहीं रखते, इसलिये यह बुद्धि आदि प्रपञ्च भी दृश्यपनके हेतु और आदि अंतवान् होनेके कारण और अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है, इसलिए वास्तविक भी नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे दीपक नेत्र, रूप यह जब ज्योतिसे भिन्न नहीं है, ऐसे ही बुद्धि, इंद्रिय, तन्मात्रा ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब यह बुद्धि परमात्मासे विलग नहीं है तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों परमात्मासे किस प्रकार विलग हो सकती हैं? क्योंकि ये तीनों अवस्था बुद्धिकी ही हैं। सब विद्वान लोग यही कहते हैं कि, तीनों अवस्थाओंके मानके लिये जगत् तैजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें माना जाता है वह केवल मायामात्र ही है ॥२४॥ जैसे किसी समय मेघ आकाशमें नहीं होते और कभी होते हैं, ऐसे ही ब्रह्ममें यह जगत् कभी दीखता है, कभी नहीं दीखता। जैसे घट चिह्नवाला है इसमें आदि अन्तवाला है और जो पदार्थ आदि अन्तवाला होता है, वह अपने से किसी प्रकार भिन्न सत्तावाला नहीं हो सकता, इस बातका विद्वान् लोगोंने भलीभांति निर्णय किया है ॥ २५ ॥ हे राजन्! सब अवयवी जगत्में कारणभूत जो एक अवयव है वही मुख्य है, क्योंकि अवयवी विना भी अवयवकी प्रतीति होती है इसी प्रकार जगत् विना ब्रह्म भी प्रतीत होता है, इसलिये जगत्का कारण रूप ब्रह्म ही है, देखो तन्तु विना वस्त्रका ज्ञान नहीं होता, परन्तु वस्त्र तुन्तओंसे भिन्न नहीं है, क्योंकि वस्त्र तन्तुरूप ही है, इस प्रकार ब्रह्म विना जगतकी प्रतीति नहीं होती, इसलिये जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥२६॥ कार्यकारण मिलके जो कुछ हो वह सब भ्रमसे है, इसलिये आश्रय आदिसे लेकर अन्ततक जो कुछ है सो सब अवस्तु है ॥२७॥ यद्यपि विकारमय यह सब जगत् प्रकाशवान् भी है, परन्तु ब्रह्म विना उसका किञ्चिन्मात्र भी प्रकाश नहीं हो सकता और जो ब्रह्म विना प्रकाश हो तो उस आत्मासे ब्रह्मरूप ही होगा किसी प्रकार भिन्न हो ही नहीं सकता ॥ २८ ॥ सत्य वस्तुमें अनेक रीति नहीं हो सकतीं और जिसमें अनेक रीति हैं, उसमें सत्यता नहीं हो सकती, यद्यपि आत्मामें और जीव ब्रह्ममें भेद दृष्टि आता है, परन्तु यह जीव और ब्रह्मका भेद घटाकाश और महाकाशके समान है; घटाकाश परिच्छिन्न है और महाकाश ब्रह्म अपरिच्छिन्न होने पर भी जैसे दोनोंके मध्यमें भेद नहीं है इसी प्रकार जीव परिच्छिन्न और ब्रह्म अपरिच्छिन्न होनेपर भी जीव ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं। जैसे जलके बीचमें सूर्य कम्पायमान विकार सहित और आकाशमें निर्विकार सूर्य होनेपर कुछ भेद नहीं इसी प्रकार ब्रह्मकी सृष्टि आदि और जीवकी सृष्टि आदि क्रियामें अलग-अलग होनेपर कुछ भेद नहीं जान पड़ता यह सब उपाधिमात्र ही भेद है, जीव ब्रह्ममें

भेद मानना मूर्खोंका काम है ॥ २९ ॥ जैसे सुवर्ण मनुष्योंके व्यवहारादिकोंमें मुकुट कुण्डलादि रूपोंसे अनेक प्रकारका दृष्टि आता है, इसी प्रकार अहंकाररूप उपाधिवाले मनुष्य ऐसे ही भगवान् अधोक्षजकी लौकिक वैदिक वाणियोंसे अनेक-अनेक प्रकारकी महिमा वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे बादल सूर्यसे ही प्रगट हुए और सूर्यसे ही प्रकाशित हुए सूर्यके अंशरूप नेत्रोंका आवरण करता है, ऐसे ही ब्रह्मसे प्रगट हुआ और ब्रह्मसे ही प्रकाशित अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको उस ब्रह्मके दर्शनका आवरण करता है ॥३१॥ सूर्यसे उत्पन्न हुआ बादल जब विदीर्ण हो जाता है, तब चक्षु सूर्यको देखते हैं ऐसे ही अहंकाररूप उपाधि जब तत्त्वविचार द्वारा विनष्ट हो, तब यह जीव अपने ब्रह्मस्वरूपको पहचानता है॥३२॥ हे राजन् ! इस प्रकार विवेकरूप खड्गसे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर जब शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करके स्थित हो, तब उसको कविलोग आत्यंतिक प्रलय (मोक्ष) कहते हैं ॥३३॥ हे शत्रुओंके ताप देने वाले ! सूक्ष्मवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि, ब्रह्मादिक सब प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलय क्षणक्षणमें होती रहती है ॥ ३४ ॥ नदी प्रवाह और दीपककी ज्वाला आदि परिणामी पदार्थोंकी क्षणक्षणमें लोट-पोट होनेसे जैसी अवस्थायें होती हैं, वैसी ही कालरूप नदीके वेगसे नित्य आयुर्बल हरी जानेसे देहादिकोंकी अवस्थायें नित्य जन्म-मरणके कारणको प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ आदि अन्तसे हीन ईश्वरकी मूर्ति कालसे प्राणियोंकी सूक्ष्म अवस्था नहीं जानी जाती, जैसे आकाशमें नक्षत्रादिकी क्षण-क्षणकी चालें दिखायी नहीं देतीं, इसी प्रकार कालसे झपटी हुई शरीरादिकोंकी क्षणक्षणकी अवस्थायें भी दिखायी नहीं देतीं ॥ ३६ ॥ नित्य नैमित्तिक-प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारकी प्रलय आपसे कही और कालकी गति भी आपसे कही ॥ ३७ ॥ हे कौरव-कुलभूषण ! जगत्के कर्त्ता और सब प्राणियोंके जीवन आधार श्रीमन्नारायणकी लीला और कथा आपसे संक्षेपमात्र कही और सम्पूर्ण चरित्र कहनेका तो ब्रह्माको भी सामर्थ्य नहीं ॥३८॥ जो प्राणी अनेक भांतिके दुःखरूपी दवाग्निसे कष्ट पाकर इस महादुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार उतरना चाहे, उनको भगवान् पुरुषोत्तमकी लीला और चरित्रोंकी कथारूपी रसपानके सिवाय इस संसार-सागरके पार होनेका दूसरा उपाय नहीं । विश्वासरूप नौकापर चढ़कर संसाररूपी समुद्रसे तर सकता है ॥३९॥ इस बातपर एक दृष्टांत है । ❀अव्ययरूप श्रीनारायण

❀ दृष्टान्त—एक गूजरी कहीं पंडितजीकी कथा सुननेको गयी, पंडितजी उस समय यह कथा कह रहे थे कि परमेश्वरके नाम लेनेसे प्राणी संसाररूपी समुद्रसे पार हो जाता है। गूजरी इस बातको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, क्योंकि उसे प्रतिदिन यमुनाजीके उतरनेमें नाववालेको पैसा देना पड़ता था । वह विचारने लगी कि जब श्रीकृष्णके नामसे समुद्रको तर जाते हैं तो क्या यमुनाजी नहीं तरी जायेंगी ? बस, वह उसी समय श्रीकृष्णका नाम ले यमुनामें घुस पड़ी और क्षणमात्रमें पार उतर गयी । इसी प्रकार प्रतिदिन यमुना उतर कर आने-जाने लगी । तब एक दिन गूजरीने अपने मनमें विचार किया कि पंडितजीने मेरे सङ्ग बड़ा उपकार किया जो बिना ही नौका यमुनापर हो जाती हूं, उनको निमंत्रण देना चाहिये । उसने पंडितजीको निमंत्रण दिया और भोजन करानेके लिये पंडितजीको अपने साथ लेकर चली । पंडितजी उसको यमुनाजीमें घुसती देख आप भी उसके पीछे-पीछे हो लिये और समझा कि घाट बहुत गहरा न होगा । जब कंठतक पानी आ गया और पांवोंके नीचेका रेता निकलने लगा परंतु उस गूजरीके घुटनेतक न भीजे, तब तो पंडितजीने घबराकर पुकारा कि अरी ! तू किधर ले आयी ? मैं तो डूबा, मुझे किसी प्रकार बचा । गूजरी बोली क्या तुमने श्रीकृष्णका नाम नहीं लिया ? श्रीकृष्णका नाम ले लो, क्या तुम उस दिनकी कथाके वृत्तान्तको भूल गये ? आपने कहा था कि एक श्रीकृष्णके नामसे प्राणी महादुस्तर समुद्रके पार हो जाता है । पंडितजी बोले—क्या यह नदी भी श्रीकृष्णका नाम लेनेसे तरी जाती है ? गूजरीने कहा कि क्या आप इतना भी नहीं जानते कि जब समुद्रसे ही पार हो गये तो क्षुद्र नदी कहां रही ? गूजरीने पंडितजीका हाथ पकड़कर कहा कि श्रीकृष्णका नाम लेकर मेरे संग चले चलो ! देखो ! विश्वासवाली गूजरी इस प्रकार पंडितजीको पार उतार अपने घर ले गयी और उस गूजरीने प्रीतिसे पंजितजीको भोजन कराया, कहनेका तात्पर्य यह है कि विश्वास करके भक्ति करनेसे ही मनुष्य संसारसागरके पार होते हैं।

ऋषिने यह पुराणसंहिता पहले नारदमुनिसे कही थी और नारदमुनिने श्रीवेदव्यासजीसे कही ॥ ४० ॥ हे महाराज ! उन आत्मज्ञानी भगवान् वेदव्यासजीने अत्यंत प्रसन्न होकर यह सब वेदोंके समान श्रीमद्भागवत संहिता मुझको पढ़ायी ॥ ४१ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! नैमिषारण्यमें बड़े यज्ञके करनेवाले शौनकादि ऋषि जब पूछेंगे तब सूतजी उन ऋषियोंको यह श्रीमद्भागवत पुराण कहेंगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दोहा-पंचममें संक्षेपसों, परब्रह्म उपदेश ।
सर्प डसन भय नृपतिको, काटो शुकदेवेश ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजन् ! इस भागवतमें निरंतर विश्व आत्मा का ही वर्णन है, जिन भगवान् के रजोगुणसे ब्रह्मा और तमोगुणसे रुद्र हुए ऐसे ब्रह्मा रुद्रादि सब सृष्टिके कर्त्ता भगवान् के गुणानुवाद जो हित चित्तसे सुनता है, उसको किसी प्रकारका भय नहीं ॥ १ ॥ हे राजन् ! हम मरेंगे इस पशुबुद्धिको छोड़ दो । इस देहसे न तो तुम पहले उत्पन्न हुए और न नष्ट होओगे यह आत्मा तो अजर-अमर अनादि है, यह तो न कभी मरता है न जीता है ॥२॥ यह शरीर बीज और अंकुरकी नाईं पुत्र-पौत्रादि रूप होकर जन्मता-मरता रहता है, कभी बीजसे अंकुर होता है, कभी अंकुर से बीज होता है, ऐसे तुम बीज अंकुरवत् देहादिकोंसे भिन्न हो, जैसे अग्नि काष्ठसे भिन्न है ॥ ३ ॥ जैसे कोई प्राणी स्वप्नमें अपना शिर काटा हुआ देखे, ऐसे ही जाग्रत् अवस्थामें देहके मरणको आप देखता है, इससें मैं मरूंगा यह केवल भ्रांति है, क्योंकि आत्मा तो अजन्मा है ॥ ४ ॥ आत्माका जन्म-मरणादिक जगत् की भ्रांति देहरूप उपाधिके साथ है; इसलिये उपाधिकी निवृत्ति होनेसे इस जीवकी मुक्ति हो जाती है । जैसे घट फूट जानेसे घटाकाश महाकाशमें जा मिलता है अर्थात् जैसा प्रथम महाकाशरूप था वैसे ही फिर हो जाता है वैसे ही जीवको जब आत्मज्ञान हो जाता है, तो फिर वह ब्रह्मका ब्रह्म हो जाता है ॥ ५ ॥ आत्माके देह, गुण और कर्मोंको मन ही उत्पन्न करता है और मन को माया उत्पन्न करती है और इसी करके जीवका जन्म-मरण होता है और विचार करके देखो तो आत्मा निर्लेप है ॥६॥ जबतक तेल, सराव, बत्ती और अग्निका संयोग बना रहता है, तबतक ही दीपक कहलाता है, ऐसे ही जब तक कर्म मन चैतन्य संसारादिक और इस देहका संयोग है तबतक ही संसार है और जब इन समुदायोंकी निवृत्ति हो जाती है, तब यह संसार भी नहीं रहता ॥ ७ ॥ यह देह ही सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे जन्मता मरता है, आत्मा न जन्मे न मरे, इसके स्थूल सूक्ष्म दोनों देहोंसे मरता है और स्वयं प्रकाश देहादिकोंका आश्रय नित्य निर्विकार, अनंत, अनादि और निरुपम है कभी नष्ट नहीं होता ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! अनुमानयुक्त बुद्धिसे भगवान् वासुदेवका चिन्तन करते हुए शरीरमें स्थित शुद्ध आत्माको मनसे विचार करो ॥ ९ ॥ इस प्रकारका विचार करोगे तो ब्राह्मणके वाक्योंसे प्रेषित किया हुआ तक्षक सर्प तुमको नहीं जला सकेगा, क्योंकि परब्रह्मको मृत्यु भी नहीं जला सकती ॥१०॥ जो मैं हूँ, वह परमधामरूप ब्रह्म है और

जो परमधामरूप ब्रह्म है वह मैं हूँ, यह विचार करके निरुपाधि ब्रह्ममें तुम अपने आपको रखोगे तो ॥ ११ ॥ विषयुक्त मुखसे अपने चरणमें काटते हुए तक्षक नागको किसी प्रकार न देखोगे, न इस देहको देखोगे और न आत्मासे भिन्न विश्वको देखोगे ॥१२॥ हे तात ! हे नृपेन्द्र ! विश्वके आत्मा भगवान् का चरित्र जो कुछ तुमने पूछा वह सब मैंने आपसे कहा, अब आप क्या सुनना चाहते हो वह कहो ? ॥ १३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कंधे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दोहा–इस छठवें अध्यायमें, भये परीक्षित् मुक्त ।
सुत ने अहि होमे सकल, इंद्रासन संयुक्त ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनक ऋषि ! सबकी बुद्धिको जाननेवाले निवृत्तिपरायण व्यासके पुत्र शुकदेवजीके गूढ वचन सुनकर विष्णुरात परीक्षित् शिर झुकाकर चरणारविंदोंकी वन्दना कर हाथ जोड़ कर बोले॥१॥हे मुने ! हे करुणानिधान ! आपने परम अनुग्रह करके मुझको कृतार्थ किया, कि आदि अन्तसे हीन साक्षात् भगवान् परब्रह्मका चरित्र सुनाया, जिसको सुनकर मैं सिद्ध हुआ ॥ २ ॥ आपसे मुक्तिरूप सज्जन इस संसाराग्निके तपोंसे तपे हुए अधम लोगोंको अच्युत भगवान्में मन लगवानेवाले और उनपर अनुग्रह करना मैं इस बातको कुछ अद्भुत नहीं समझता ॥३॥ यह पुराणसंहिता आपके मुखारविंदसे मैंने सुनी, इस 'श्रीमद्भागवत' संहितामें उत्तम यशवाले भगवान्का निरंतर वर्णन है ॥४॥ हे भगवन् ! तक्षकादिक मृत्युओंसे अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहा, क्योंकि आपने जो परमानन्द ब्रह्मरूप मुझे दिखा दिया मैं उसीमें लय हो गया ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! जो मुझको आज्ञा हो तो बाणीको रोककर निष्काम चित्तको भगवान् अधोक्षजमें रखकर प्राणोंका त्यागकर दूँ ॥ ६ ॥ ज्ञानविज्ञानकी निष्ठासे मेरा सब अज्ञान निवृत्त हो गया, जबसे आपने मंगलरूप भगवान्का परमपद मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! राजा परीक्षितने इस प्रकार प्रार्थनाकर श्रीशुकदेवजीका पूजन किया, तब भगवान् बादरायण परीक्षित्की पूजा स्वीकार कर बिदा मांग मुनियोंसहित वहांसे पधारे ॥ ८ ॥ पीछे राजऋषि परीक्षित्ने बुद्धिसे मनको रोक, परब्रह्ममें मन लगा, श्रीकृष्णचन्द्रके ध्यानमें मग्न हो इंद्रियों को निश्चल कर, सूखे वृक्षकी नाई अचल हो गया ॥ ९ ॥ गंगाके किनारेपर पूर्वअग्रकुशासनपर बैठ उत्तर दिशाकी ओरको मुख करके संशयछिन्न निस्संग महायोगी परब्रह्ममें तदाकार हो गया॥१०॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधी ब्राह्मणके पुत्रका भेजा हुआ तक्षक राजाके काटनेकी इच्छा करके चला तब मार्गमें कश्यपजीको देखा ❋ ॥११॥ कि कश्यपजी राजा परीक्षित्के पास जाते हैं और यह विषके

❋ जिस समय तक्षक ब्राह्मणका वेष धारण करके राजा परीक्षित्को काटनेके लिये चला तो मार्गमें उसको कश्यपजी मिले । तक्षकने कश्यपजीसे पूछा कि आज आप कहाँ चल दिये ? कश्यपजी बोले कि राजा परीक्षित् को आज सर्प काटेगा, हम उसको अच्छा करने जाते हैं, तब तक्षकने कहा कि तक्षकके काटेको आरोग्य करनेकी किसी की सामर्थ्य नहीं, आप तो क्या बस्तु हैं ! कश्यपजी बोले कि यदि वह होता तो हम उसको अपना कर्त्तव्य दिखाते । तक्षक बोला कि मैं ही तक्षक हूं और इस वृक्षको काटता हूं, अब तुम इसको अच्छा करो । उसने ज्योंही वृक्षको डसा त्योंही वह जलकर भस्म हो गया, बरन् उस वृक्षपर सूखी लकड़ी तोडनेके लिये एक लकड़हारा चढा था वह भी उसवृक्षके संग जलकर भस्म हो गया । तब कश्यपजीने संजीवनी मन्त्र पढ़कर दो घड़ीमें लकड़हारे सहित उस वृक्षको यथावत् कर दिया । तब तक्षक आश्चर्यमय होकर कहने लगा कि आप कुछ ज्योतिष विद्या भी जानते हैं । कश्यपजी बोले हां, तब तक्षकने कहा कि विचारो तो राजाकी अवस्था कितनी और रही है । कश्यपजी बोले कि हमारे विचारमे ऐसा आता है कि राजाका आयुर्बल दो घड़ी शेष है । तब तक्षकने कहा कि मन्त्र अकालमृत्युवालेको जीवित कर सकता है ? परंतु जिसकी मृत्यु ही निकट आ गयी हो उसको कोई नहीं वचा सकता; फिर–वृथा उपाय करनेसे मानहानि होती है और जो आपकी धनकी इच्छा है तो इसी वृक्षके नीचे बहुत गड़ा है, जितना चाहिये उतना ले जाओ । कश्यपजीको और किसी बातसे प्रयोजन नहीं था । अपनी

उतारनेमें चतुर हैं तब तक्षकने * उस विषके दूरकरनेवाले कश्यपजीको धनसे तृप्तकर जानेसे रोक लिया, तब इच्छारूपी तक्षकने ब्राह्मणका रूप धरके अपने आपको छिपाकर राजा परीक्षित्को जाकर काटा ॥१२॥ ब्रह्मस्वरूप राजऋषि परीक्षित्की देह विषाग्निसे सबके देखते-देखते उसी समय जलकर क्षार हो गया ॥१३॥ उस समय पृथ्वी, आकाश, सब दिशाओंमें बड़ा हाहाकार होने लगा, नगरमें कोलाहल मच गया। देवता असुर, मनुष्यादिक सब आश्चर्यमय हो गये ॥१४॥ आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बजने लगीं, गन्धर्व गाने लगे, अप्सरा नृत्य करने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और महात्मा पुरुष बारम्बार धन्यवाद देने लगे ॥१५॥ राजा जनमेजय अपने पिता परीक्षित्को तक्षकसे डँसा सुनकर महाक्रोधित हुआ और ब्राह्मणोंको बुला सर्पसत्रयज्ञमें सर्पोंका होम करने लगा ॥१६॥ उस यज्ञकी महाप्रचण्ड अग्निमें बड़े-बड़े सर्पोंको जलता हुआ देखकर तक्षक डरके मारे अत्यन्त व्याकुल हो इंद्रकी शरण गया ॥१७॥ परीक्षित्के पुत्र राजा जनमेजयने जब तक्षको यज्ञमें न देखा तो ब्राह्मणोंसे पूछा कि सर्पोंमें अधम तक्षक यहां आकर क्यों नहीं भस्म हुआ ? ॥१८॥ तब ब्राह्मण बोले कि नरेंद्र ! अपनी शरण गये तक्षककी इंद्र रक्षा करता है और इन्द्रने ही उसको अपने समीप बैठा रखा है इसीलिये वह अग्निमें आकर नहीं पड़ा ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर उदारबुद्धि राजा जनमेजय ब्राह्मणोंसे बोले कि हे ब्राह्मणो ! इंद्रसहित उस तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं डाल देते, क्या इतना सामर्थ्य आपमें नहीं है ? ॥ २० ॥ जनमेजयका वचन सुनकर सब ब्राह्मण इंद्रसहित उस तक्षकको आहुतिमन्त्र पढ़कर आवाहन करने लगे "हे तक्षक ! मरुद्गणाधीश इन्द्रके संग तू शीघ्र यज्ञाग्निमें आकर पड़" इस प्रकार आहुतिमन्त्रसे इन्द्र सहित तक्षकको बुलाया ॥२१॥ ब्राह्मणोंके कठोर वचनोंसे मन्त्रोंके आकर्षणसे तक्षक सहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हो विमान और तक्षक सहित अपने मनमें घबड़ा गया ॥२२॥ विमान और तक्षकसहित इन्द्रको आकाशसे गिरता हुआ देखकर अंगिराके पुत्र बृहस्पतिजीने जनमेजयसे कहा ॥२३॥ हे नरेंद्र ! यह सर्पराज आपके हाथसे वध करने योग्य नहीं है,

---

इच्छानुसार धन लेकर अपने आश्रमको लौट गये, तब तक्षक राजाके पास जाकर एक पुष्पमें कीड़ेका रूप धारण कर घुस बैठा और तक्षकके पुत्रने ब्राह्मणका रूप धारकर वह फूल राजाको दिया। राजा फूलको देखकर कहने लगे कि संध्या हो गयी और तक्षक अभीतक नहीं आया कहीं ब्राह्मणका वचन झूठा न हो जाय इस कीड़ेसेही मस्तकमें कटवा लें। ज्यों राजाने कीडेसे कटवाया त्योंही तक्षकने अपना रूप धर राजाको डसा कि राजा तुरंत भस्म हो गये और तक्षक उसी समय उड़ गया, उस लकड़हारेने जब सब वृत्तांत कहा तब जनमेजयने तक्षकका अपराध विचार सर्पसत्र यज्ञ किया।

• शंका–द्वादशके पांचवें अध्यायमे शुकदेवजीने कहा कि हे राजन् ! ब्राह्मणके शापकी आज्ञाको जिस सर्पने पाया वह सर्प तुमको नहीं डसेगा: भागवतके श्लोकोंमे 'त्वाम्' शब्द लिखा है सो शुकदेवजीने 'त्वाम्' किसीको कहा था कि 'त्वाम्' परीक्षित्की देहको कहा था कि जीवको कहा था: जो जीवको 'त्वाम्' कहा तो भी अयोग्य है, क्योंकि जीव किसीके जलानेसे जल नहीं सकता, जो कदापि ऐसा देखकर कि संसारमे शरीरकी प्रशंसा है जीवको कोई नहीं जानता, शरीरको ही 'त्वाम्'कहा था तो फिर सर्पके काटनेसे शरीर क्यों भस्म हो गया, मुनिने तो कहा था कि भस्म नहीं होगा ! यह शंका होती है ?

उत्तर–जो प्रश्न तुम लोगोंने किया वह सत्य है, संसारसे शरीरकी प्रशंसा देखकर कि देहके सिवाय जीवको कोई भी नही जानता इसलिये शुकदेवजीने देहको 'त्वाम्' कहा था अब देह भस्म होनेका कारण सुनो–शुकदेवजीका वचन सत्य था कि राजाका देह सर्पके काटनेसे भस्म नहीं होता परंतु परीक्षित्ने मरनेके समयमें शुकदेवजीसे भागवत सुनी, सर्पके काटनेसे नरक होता है, भागवतके प्रभावसे अब उसको नरक नहीं होना चाहिये, जो ऐसा करेंगे तो सर्पकी मर्यादा नाश हो जायगी–इसलिये भागवतको, सर्पको, शुकदेवजीको इन तीनोंकी मर्यादा रखनेके लिये भगवान्ने परीक्षित्का तीन कर्म करके तीनोंको मर्यादा रखी। सर्पके काटनेसे मृत्यु होती है तो उस प्राणीको नरकमें जाना पड़ता है अतः श्रीमद्भागवत सुननेके प्रतापसे राजा परीक्षितको भगवानने नरकवाससे छुड़ाया और

क्योंकि इसने अमृतपान किया है ❋ इसलिये यह अजर-अमर है ॥२४॥ हे राजन् ! तक्षकके डँसनेसे पिताका मरण सुनकर आपको इतना क्रोध तक्षकपर करना नहीं चाहिये, क्योंकि जीवोंका जीवन, मरण और परलोक अपने कर्मोंसे ही होता है; इसे सुख-दुःखका दाता और कोई दूसरा नहीं जान पड़ता ॥२५॥ हे नरेश ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, क्षुधा, तृषा रोगादिकोंसे प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है, वह अपने प्रारब्ध और कर्मोंका ही भोग भोगता है कुछ सर्पादिक स्वतन्त्र नहीं हैं, उनको भी प्रारब्ध और कर्म ही प्रेरणा करता है ॥२६॥ हे राजन् ! यह प्राणी अपने अदृष्टका ही भोग करता है, इसलिये इस हिंसक अभिचार यज्ञको समाप्त करो। देखो ! इस यज्ञमें अनेक निरपराधी सब भस्म हो गये, परन्तु उसमें आपका भी कुछ दोष नहीं, क्योंकि प्राणी सदा अपने प्रारब्ध और कर्मोंका भोग भोगते रहते हैं ॥२७॥ जब बृहस्पतिजीने इस प्रकारके वचन कहे तब राजाने उसी समय उन वचनोंको आदर-सम्मान दे अभिचार यज्ञसे निवृत्त हो देवगुरु बृहस्पतिजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ देखिये ! ब्राह्मणके क्रोधसे परीक्षितका मरण हुआ और परीक्षितके पुत्र जनमेजयने कोप करके करोड़ों सर्पोंको जला डाला, यह क्रोधरूप मोह ऐसे महात्मा पुरुषोंको भी हुआ इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि विष्णुभगवान्‌की अलक्षित माया किसी प्रकार किसीसे निवारित नहीं हो सकती। देखो ! उन्हीं विष्णुभगवान्‌की मायासे विष्णु भगवान्‌के ही अंशरूप जीव दूसरे जीवोंपर अपनी देहमें तीनों गुणोंकी वृत्ति क्रोधादिकोंसे मोहित हो संसारमें भ्रमते हैं ॥२९॥ यह माया तत्त्ववादी ब्रह्मविचार करनेवालोंके सिवाय और सब स्थानोंमें निर्भय वास करती है और ब्रह्मवादी लोग जल तत्त्वविचार करते हैं तो वे लोग भलीभांति जानते हैं कि यहमाया बड़ी कपटकारिणी है और लोकोंकी वंचना करनेवाली है, जिन महात्मापुरुषोंने ऐसे समझ रखा है उनके सम्मुख निर्भय होकर अपना प्रकाश नहीं कर सकती; क्योंकि उनसे यह भय मानती है और मोह मदादिक कार्योंको नहीं करती; अपने दिन पूरे करती है, और जहां तत्त्वविचार है, मायाके कारण अनेक बाद-विवाद नहीं हैं और संकल्प-विकल्प वृत्तियोंसे युक्त-मन भी जहां नहीं है ॥ ३० ॥ सृष्टिके करनेवाले सब कारण और कर्मसे

शुकदेवजीका राजा शिष्य था इसलिये वैकुंठमें राजाको भेजा, सर्पकी मर्यादा रखनेके लिये राजाका देह भस्म किया। इसलिये राजाकी देह भस्म हो गयी कुछ शुकदेवजीका वाक्य झूंठा नहीं था, परंतु सर्पकी मर्यादा भगवान न रखते तो कभी राजाकी देह भस्म न होती ?

❋ शंका—राजा जन्मेजयके यज्ञमें बृहस्पतिजीने राजा जन्मेजयसे कहा कि, हे राजन् ! तक्षकने अमृत पीलिया है, आपके मारनेसे वह नहीं मरेगा क्योंकि अमृतको जो प्राणी पी लेता है, वह किसीके मारनेसे नहीं मरता ! इस बातमें यह संदेह है कि अमृतका स्वामी इन्द्र जिसने रातदिन अमृत पिया, वरन् अमृत पीते-पीते अनेक युग बीत गये ऐसे इन्द्रको तप और मंत्रोंके प्रभावसे राजा जन्मेजयके यज्ञकुंडमें स्वर्गसे गिराकर भस्म करनेका सामर्थ्य तो ब्राह्मणोंमें था और जिस तक्षकने राई भर अमृत पीलिया, क्या वह ब्राह्मणोंके मन्त्र और जपके प्रभावसे भस्म नहीं हो सकता ?

उत्तर—जो प्राणी बहुत दुःखी होकर भगवान्‌का नाम एक बार भी लेता है, उसको असंख्य नामके जपनेका फल प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। तक्षकने जाना ? कि मैं बड़े-बड़े देवताओंके पास गया, किसीने भी मेरी सहायता नहीं की, ऐसा विचार कर इन्द्रलोकमें गया, महादुःखी हो गया [illegible] नेत्रोंसे आंसू चले जाते थे और अत्यन्त आतुर होकर। 'हे भगवन् ! हे नारायण !' इस प्रकार बड़े आदरसे वारंवार भगवान्‌का नाम जपा, वही भगवान्‌का नाम अमृत हो गया, उसी भगवन्नाम अमृतको तक्षकने पान किया, इस लिये गुप्त करके बृहस्पतिजीने कहा था कि तक्षकने अमृत पी लिया है तुम्हारे मारनेसे नहीं मरेगा, कुछ इन्द्रवाले अमृतको नहीं कहा था।

सिद्ध हुए फल इन तीनों सहित अहंकार युक्त जीव जिस विष्णुमें विघ्न डालनेवाला विघ्न भी जहां नहीं जा सकता, अहंकारादिक ऊर्मियोंके त्यागनेवाले मुनि लोग भी विष्णुपदमें रमण करते हैं ॥३१॥ और स्थान, सौहृद, दुष्टता और अनात्म पदार्थोंको त्याग 'नेति-नेति' कहकर अहंभावको निवृत्त कर सिवाय परमात्माके और किसीसे स्नेह न रखनेवाले विवेकी पुरुष परमतत्त्वरूपको ही विष्णुका परमपद कहते हैं, उसीका ध्यानादिक सावधानतासे विज्ञानी लोग हृदयमें धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुके परमपदको वे ही आत्मतत्त्ववेत्ता जानते हैं; जिनके देह-गेहमें अहंता, ममता, दुर्जनताका मिथ्या अभिमान नहीं ॥३३॥ मनुष्यको उचित तो यह है कि अज्ञानियोंके दुर्वाक्योंको सहन करे, किसीकी अवज्ञा न करे और इस देहके कारण किसीसे शत्रुता न करे ॥ ३४ ॥ अकुण्ठित बुद्धिवाले भगवान् व्यासदेवजीको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ, कि जिनके चरणकमलके ध्यानसे मैंने यह "श्रीमद्भागवत"-संहिता पढ़ी है ॥३५॥ शौनक ऋषि बोले-हे सौम्य ! व्यासदेवजीके शिष्य, वेदोंके आचार्य पैलादि महात्मा ऋषियोंने वेदोंका कितनी रीतिसे विभाग किया, वह वृत्तांत हम पूछते हैं और पुराणोंकी संहिताओंके विभाग किस प्रकारसे किये गये हैं, उसे जाननेकी हमारी अभिलाषा है ॥ ३६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे ब्रह्मन् ! एकाग्रमन पर मेष्ठी ब्रह्माके हृदय-आकाशसे प्रथम एक नाद शब्द उत्पन्न हुआ, जो कि कानोंपर हाथ रखनेसे सुनायी देता है ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! जिस नादकी उपासना करके मुक्ति योगी पुरुष अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, इन तीनों मनके मलोंको दूर करके मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ उस नाद शब्दसे स्वयंप्रकाश हुआ जिसकी उत्पत्ति स्पष्ट रीतिसे किसी प्रकार जाननेमें नहीं आती, ऐसा अव्यक्त तीन अक्षरयुक्त ओंकार हुआ, जो कि भगवान् परमात्मा परब्रह्मका जताने वाला है ॥३९॥ इंद्रिय मन विना भी जो भगवान् हैं, सब शून्य हो जानेपर ही आप ज्ञाता होनेसे कानोंके बन्द किये रहनेपर भी इस अव्यक्त ओंकारको सुनते हैं, जीव इंद्रियोंके अधीन है, इसलिये कान बन्द किये जानेपर कुछ भी नहीं सुनता, हृदयरूप आकाशमें आत्मासे उत्पन्न हुए ओंकारकी विस्तृत बैखरी वाणी प्रकट होती है ॥४०॥ अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक साक्षात् परमात्मा परब्रह्मका बतानेवाला सब मन्त्रोंका रहस्य, वेदोंका बीज, सनातन ओंकार है ॥४१॥ हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! उस ओंकारसे अकार, उकार, मकार ये तीन वर्ण हुये, तीन वर्णसे सत्त्व, रज और तम तीन गुण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन वेद भूर्लोक, भुवलोक, और स्वर्गलोक ये तीनों लोक, जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएँ हुई ॥४२॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं वर्णोंसे अक्षरोंके समूह रचे-सोलह १६ तो स्वर, पच्चीस २५ स्पर्श चार ४ अंतस्थ, चार ४ उष्माण, ये सब ह्रस्व दीर्घ जिह्वामूलीय करके युक्त हैं॥४३॥ भगवान् ब्रह्माजीने इन्हीं अक्षरोंसे चारों मुखोंसे और छन्दोंसे ओंकार सहित चारों वेदोंको रचा, चातुर्होत्र कर्मोंके लिये ब्रह्माने अथर्वण, यजुर्वेदी उद्गाता, सामवेदी होता, ऋग्वेदी आहुति देनेवाले रचे ॥ ४४ ॥ फिर भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंके उच्चारणादिकोंमें चतुर ब्रह्मर्षि अपने पुत्रोंको वह वेद पढ़ाये। और धर्मोंके उपदेष्टा अपने वेदको बनाया ॥४५॥ उन सब वेदोंके हृदयमें धारण करनेवाले व्रतधारी शिष्योंकी परम्परायें चारों युगोंमें चली आयी हैं। द्वापरके अंतमें महाऋषियोंने वेदोंके विभाग क्यों किये ॥४६॥ इसका कारण यह है कि भगवान्ने जाना कि कलियुगमें सब ब्रह्मर्षि कालसे क्षीण, अल्प आयु, वीर्यहीन, अशक्त और

मन्दमति होंगे, विचारकर अच्युत भगवान्‌ने हृदयमें विराजमान होकर प्रेरणा की, तब उन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥४७॥ हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् धर्मकी रक्षाके लिए ब्रह्माशिवादिक लोकपालोंकी स्तुति करनेसे॥४८॥ विभु भगवान् अपने अंशकलाओंसे पराशरमुनिके वीर्य करके सत्यवतीके गर्भमें वेदव्यासरूपसे अवतीर्ण होकर वेदोंके चार विभाग किये ॥४९॥ जैसे रत्नपारखी अनेक मणियोंकी राशियोंसे पद्मरागादि मणियोंको छांट-छांटकर अलग कर लेता है, ऐसे ही मंत्रोंके समुदायक एकवेदमेंसे ऋग् यजु, साम और अथर्वण नामके मन्त्रोंको उद्धारके उन मंत्रोंसे चार संहिता श्रीवेदव्यासजी ने रची ॥५०॥ हे शौनक! फिर पीछे महामति व्यासदेवजीने अपने चार शिष्योंको बुलाकर एक-एक संहिता दे दी ॥५१॥ पैल नाम शिष्यको बहुत ऋचा होनेसे बहूवृचनाम ऋग्वेदी संहिता दी, निगदानाम यजुर्वेदकी संहिता वैशंपायनको दी ॥५२॥ छन्दोगनाम सामवेदकी संहिता जैमिनिको पढ़ायी और अंगिरसनाम अथर्वण वेदकी संहिता अपने शिष्य सुमंतको पढ़ाई ॥५३॥ पैल मुनिने अपनी पढ़ी हुई संहिता इन्द्रप्रमित और बाष्कलनाम अपने दोनों शिष्योंको दी ॥५४॥ हे ब्रह्मन्! बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग करके बोध्य, याज्ञ-वल्क्य! पराशर और अग्निमित्र इन चारों अपने शिष्योंको पढ़ायी। महात्मा इंद्रप्रमितने अपनी संहिता कवि मण्डूक ऋषिको पढ़ाई ॥५५॥ मंडूकने देवमित्रको, देवमित्रने सौभार्यादि ऋषियोंको पढ़ाई ॥५६॥ मंडूकके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पांच विभाग करके वात्स्य, मुद्गल,सालोन,गोखल्य,शिशिर नाम अपने पांचों शिष्योंको दी॥५७॥शाकल्यके छठे जातूक-र्ण्य नाम शिष्यने अपनी संहिताके तीन भाग कर वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रंथ रचकर बलाक, पैज, वैताल और विरज नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ायी ॥५८॥ वष्कलि (बाष्कलके पुत्र) ने सब संहिताओंकी शाखाओंमेंसे वालखिल्य नाम संहिता बनाकर वह संहिता बालायनि, भज्य और कसार नाम अपने तीनों शिष्योंको दी ॥५९॥ यह सब ब्रह्म ऋषि ऋग्वेदकी वचानामसंहिताके धारण करनेवाले हुये। जो पुरुष इस वेदके विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे निवृत्त हो जायगा ॥६०॥ वैशंपायनके शिष्यने यजुर्वेद संहिता पढ़ी इसलिये उन्होंने यशमें अध्वर्युकी पदवी पायी, जब उनके गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा तब उस पापके निवारणके लिये अपने गुरुके बदले उन्होंने अपने आप प्रायश्चित किया, उस दिनसे उनका नाम "चरकाध्वर्यु" हुआ ॥६१॥ याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याका प्राय-श्चित करानेके समय वैशंपायन अपने गुरुसे कहा कि, हे स्वामिन्! अल्प दृढ़ता वाले जो आपके शिष्य हैं जो आपके पापका प्रायश्चित करें तो क्योंकर होगा! यह महाकठिन प्राय-श्चित मैं अकेला ही करूँगा ॥६२॥ याज्ञवल्क्यका यह वचन सुनकर वैशंपायन अत्यन्त कुपित होकर बोले–तू मेरे सामनेसे चला जा, तू दूसरे प्राणीकी अवज्ञा करनेवाला शिष्य है, इसलिये मुझे तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं। तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, उसको इसी समय त्याग दे ॥ ६३ ॥ गुरुके मुखसे इस प्रकार वचन सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्यने अभि-मानमें आकर यजुर्वेदके मन्त्रोंको उगल वहांसे चल दिया, उस समय मुनिगणोंने यजुर्वेदके अमूल्य मंत्रोंको पड़ा देखा ॥६४॥ जिन मंत्रोंमें उन मुनियोंकी परम इच्छा थी, उन मंत्रोंको उन मुनियोंने तीतर पक्षीका रूप धारण करके याज्ञवल्क्यके वमन किये हुये यजुर्वेदके मन्त्रोंको ग्रहण कर लिया, उसी दिनसे उस यजुर्वेदकी तैत्तिरीय नाम शाखा

हुई ॥ ६५ ॥ हे ब्रह्मन् ! याज्ञवल्क्यजीने गुरुसे भी अधिक वेद विद्या प्राप्त करनेके लिये श्रीसूर्यनारायणकी उपासना करनी आरम्भ की ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भगवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥

याज्ञवल्क्य बोले कि, हे सूर्यनारायण भगवन् ! आदित्यस्वरूप आपको वारंवार नमस्कार है, आप ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके समुदायरूपसहित इस विश्वके हृदयमें निरुपाधि अन्तर्यामी रूप हो और बाहर लवनिमेष क्षणके अनेक अवयववाले वर्षोंके समुदायवाले कालरूपसे आकाशके सदृश उपाधिसे आच्छादित नहीं होते और प्रत्येक वर्षोंमें पानीके सोखने और वर्षानेसे एकही आप इस जगत्की दिन-रात यात्रा करते रहते हो, ऐसे जो आप त्रिलोकीनाथ हो आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीम हि तपन मण्डलम् ॥ ६८ ॥

हे त्रिभुवनपते ! हे त्रयतापके नशानेवाले ! हे नित्य ! हे त्रिकाल वेदविधिसे पूजन करनेवाले ! हे भक्तजनोंके अखिल पापोंके फल दूषण और बीज अज्ञानके जाननेवाले ! हे सर्व देवताओंमें श्रेष्ठ ! हे सविता भगवन् ! आपका जो यह मण्डल त्रिलोकीमें प्रकाश करता है, ऐसे जो आप निशिवासर जगत्के तपानेवाले हैं, मैं एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान करता हूँ ॥ ६८ ॥

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥

हे भास्कर ! आपके रहनेके स्थान स्थावर जंगम अनन्त समुदायके जड़रूप मन इंद्रिय प्राणोंके समूहोंको आप ही अन्तर्यामी आत्मारूप होकर प्रेरणा करते हो, ऐसे तेजस्वरूपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ ६९ ॥

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥

हे विश्वतमनाशक ! हे कृपानिधे ! महाभयानक मुखवाले अन्धकाररूप अजगरसे ग्रसे हुए मृतकके समान संज्ञारहित अचेतन लोगोंको देखकर परमकरुणानिधान आप दयादृष्टिसे उनको उठाकर नित्य समय-समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और भूपतिके तुल्य असाधु लोगोंको भय देते हुए सब ओर घूमते रहते हो, ऐसे जो आप दयालु हो, आपको वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ७० ॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥

हे सूर्य ! जहां-तहां दिक्पाल देवता कमलकोश अञ्जलियोंसे आपको अर्घ्य दे देकर आराधना करते हैं, ऐसे सर्वान्तर्यामी आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७१ ॥

अथ हे भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुः काम उपसरामीति ॥ ७२ ॥

हे भगवन् ! आप दीनदयालु हो, त्रिलोकीके अधीश्वरोंसे पूजित आपके चरणारविन्दकी उत्तम यजुर्वेदकी कामनाके लिये मैं शरण आया हूँ ॥ ७२ ॥

दोहा—सूर्यमंत्र यह षट अहैं, रवि सम्मुख ही नित्त ।
पढ़े पढ़ावैं जो कोई, सविधि सप्रीति सचित्त ॥
ताकी भानु प्रसन्न हो, करहिं कामना पूर ।
उन पुरुषनके होत हैं, महापाप सब दूर ॥

सूतजी बोले कि, हे शौनकादि ऋषियो ! याज्ञवल्क्यने जब इस प्रकार सूर्यनारायणकी प्रार्थना की तब उस प्रार्थनाको सुन सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर अश्वका रूप धारण किया, और याज्ञवल्क्यको उसकी इच्छानुसार ही यजुर्वेदके मन्त्र दिये ॥ ७३ ॥ तब याज्ञवल्क्य मुनिने उस यजुर्वेदकी पन्द्रह (१५) शाखायें कीं । सूर्यनारायणने अपनी केशावलीसे जो मन्त्र निकाले इसलिये यह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई । उन शाखाओंको कण्व और माध्यंदिनादि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥ सामवेदके वेत्ता जैमिनने सुमन्त नाम अपने पुत्रको और सुन्वान् नाम अपने नातीको एक-एक संहिता पढ़ा दी ॥ ७५ ॥ फिर जैमिनजीका दूसरा शिष्य सुकर्मा नाम द्विज बड़ा चतुर था, उसने सामवेद वृक्षकी सहस्र संहिता बनाकर अलग-अलग रचीं ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, पौष्पंजि और वेदपाठी आवन्त्य ये शिष्य सुकर्माके हुए, उन्होंने सहस्रों संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ हिरण्यनाभ, पौष्पञ्जि और आवन्त्यके महाचतुर पांचसौ ५०० शिष्य सामवेदके गानेवाले उदीच्यानाम (उत्तर-दिशानिवासी) हुए; उनमें कोई-कोई पूर्वदिशाके वासी कहलाये ॥७८॥ पौष्पञ्जिके शिष्य लौगाक्षि, मांगालि, कुल्य, कुशीद, कुक्षी, ये पांच शिष्य और थे, उन्होंने सौ-सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभका कृत नाम दूसरा और शिष्य था, उसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिता पढ़ायीं और जो संहितायें अवशेष रह गयी थीं वह ज्ञानवान् आवन्त्यने शिष्योंको पढ़ा दीं ॥ ८० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दोहा—सप्तममाहिं अथर्वको, कहों सहित विस्तार ।
फेर पुराणोंके कहौं, लक्षण सकल विचार ॥

सूतजी बोले कि, अथर्ववेदपाठी सुमन्तने अपनी संहिता अपने कबन्धनाम शिष्यको पढ़ायी, कबन्धने अपनी संहिताके दो भाग करके पथ्या और वेददर्श नामको पढ़ायी ॥१॥ हे ब्राह्मणो ! वेददर्शने अपनी संहिताके चार भाग किये और शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष, पिप्पलायनि नाम अपने चार शिष्योंको पढ़ायी और पथ्यने अपनी संहिताके तीन भाग करके

कुमुद, शुनक जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढ़ायी ॥ २ ॥ शुनकने बभ्रु और सैन्धवायन नाम दो शिष्योंको अपनी संहिताके दो विभाग करके पढ़ाया। सैन्धवायन आदिके सावर्णि आदि शिष्य हुए ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्प, शांतिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य हुए। हे मुनिराज ! यह तो मैंने आपसे अथर्ववेदके आचार्य कहे, अब मैं आपके सामने पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूँ, उसे आप सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ त्र्यय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत ये छः पुराणोंके आचार्य्य हुए ॥५॥ वेदव्यासजीने पहले पुराणोंकी छः संहिता रचकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ायी थीं; फिर रोमहर्षणके मुखसे इन छहों जनोंने छहों संहिताओंको पढ़ा, मैं इन छहों महात्माजनोंका शिष्य हुआ, सबसे एक-एक संहिता पढ़ी ॥६॥ इनमें जो पुराणोंकी चार संहितायें मूल थीं उनको कश्यप, सावर्णि परशुरामजीका शिष्य अकृतव्रण और चौथा मैं इन चारों जनोंने व्यासजीके शिष्य मेरे पितासे चारों मूलसंहिताओंको पढ़ा ॥७॥ हे शौनक ! ब्रह्मऋषियोंने जो पुराणोंके लक्षण वर्णन किये हैं, वेद शास्त्रके अनुसार हम कहते हैं, आप सावधान हो ध्यान लगाकर सुनिये ॥८॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, राजाओंके वंश, उन वंशवाले राजाओंके चरित्र, निरोध, मुक्ति, हेतु और अपाश्रय ॥९॥ जिसमें ये दश लक्षण हों विद्वान् लोग उसको महापुराण कहते हैं और कोई-कोई आचार्य लोग पांच लक्षण (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित्र) वाले ग्रन्थको भी पुराण कहते हैं, परन्तु यह केवल छोटे बड़ेकी व्यवस्था है ॥१०॥ इस मायाके गुणक्षोभसे महतत्त्व; तीन प्रकारका अहंकार, पञ्चमहाभूत और इंद्रियगणकी उत्पत्तिको सर्ग कहते हैं ॥११॥ ईश्वरके अनुग्रहसे महतत्त्व आदिसे प्रगट होता हुआ और बीजमेंसे बीजके सदृश प्रवाहरूपसे चलते हुए स्थावर जंगमरूप प्रपञ्चको विसर्ग कहते हैं ॥ १२ ॥ जंगम प्राणियोंका स्थावर आहार है जंगमोंकी मांसमें भी साधारण प्रीति है उनमें मनुष्योंके निमित्त रागसे अथवा शास्त्रवचनोंमें जो आजीविकाका विधान है, वह वृत्ति कहलाती है ॥ १३ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवताओंमें भगवान् अवतीर्ण होकर युगयुगमें जो लीला करके विश्वकी रक्षा करते हैं, वही विश्वकी रक्षा कहलाती है और वही अनेक प्रकारके अवतार धारण करके वेदके द्रोही दुष्ट और पाखण्डियोंको मार पृथ्वीकी रक्षा करते हैं, वही भू-रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और हरिके अंशावतार यह छः मिलकर मन्वन्तर कहलाते हैं ॥ १५ ॥ ब्रह्मासे उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य, वर्तमान कालकी सन्तानको वंश कहते हैं, उन राजाओंके वंशको और उन वंशोंमें हुए चरित्रोंको वंशानुचरित्र कहते हैं ॥ १६ ॥ नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक चार प्रकारके प्रलयको कविजन संस्था (निरोध) कहते हैं ॥ १७ ॥ अविद्याके कारण कर्मकर्त्ता जीव, जिसे मुख्यवेत्ता अनुशयी और उपाधिवेत्ता अव्याकृत कहते हैं उसकी वासना इस जगत्की सृष्टि होनेमें निमित्त है, वह मुक्ति हेतु (ऊति) कहलाती है ॥ १८ ॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें जीवरूपसे बर्तनेवाले ईश्वर मायामें विश्व, तैजस और प्राज्ञमें प्रविष्ट हैं और समाधिमें उनसे पृथक् हैं, इसलिये वे अपाश्रय कहलाते हैं ॥ १९ ॥ जैसे घटादिक पदार्थमें मृत्तिकादिक प्रविष्ट हैं उनके नामरूप सत्तामात्र ही हैं, ऐसे ही जन्मसे लेकर मरणतक उन सब अवस्थाओंमें ब्रह्म युक्त भी है और अलग भी है ॥ २० ॥ जब सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर पुरुषका चित्त शांत हो अथवा

योगाभ्यास करके शान्त हो तब यह पुरुष अपने शुद्ध रूपको जानकर संसारचेष्टाओंसे छूट जाता है ॥२१॥ इन छोटे-बड़े लक्षणोंसे पुराण पहिचाने जाते हैं, अठारह महापुराण हैं और अठारह लघुपुराण हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े प्राचीन कविवर कहते हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामन-पुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्म्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, यह अठारह पुराण कहे ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन्! वेदव्यासजीने और उनके शिष्योंने और उनके शिष्योंके शिष्योंने जो वेदकी शाखाओंका विस्तार किया है, वह वृत्तांत मैंने आपको सुनाया, क्योंकि वह ब्रह्मतेज और भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ २५ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते
द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दोहा—मोह मार्कण्डेयको, तपचर्य्या अरु काम।
इस अष्टम अध्यायमें, हरिअस्तुति सुखधाम॥

शौनकादि मुनि बोले—कि हे साधो! वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीसूतजी महाराज! इस अपार संसारमें भ्रमण करनेवाले मनुष्योंको पार लगानेवाले तुम चिरजीवित रहो ॥१॥ मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेयजीको लोग चिरंजीवी कहते हैं क्योंकि जिस प्रलयमें सब जगत् ग्रस्त हुआ तो उस कल्पान्तरमें मार्कण्डेयजी किस प्रकार बचे रहे ॥ २ ॥ जो भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ इसी कल्पमें हमारे वंशज उत्पन्न हुए, उस दिनसे लेकर आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक कोई भी प्रलय नहीं हुआ, फिर उनका प्रलयमें अवशेष रहना क्योंकर सम्भव हो सकता है ॥३॥ कोई-कोई महात्मा जन ऐसा भी कहते हैं कि मार्कण्डेय ऋषि अकेले ही प्रलयके समुद्रमें घूम रहे थे और वहां उन्होंने वटके पत्रके दोनेमें एक अद्भुत बालकको सोता हुआ देखा, प्रलयकालमें वह वटका वृक्ष कैसे रह गया? ॥४॥ हे सूत! हे महायोगिन्! हमको बड़ा सन्देह है और उसका उत्तर सुननेकी अभिलाषा है, आप सब पुराणोंके ज्ञाता और परम ज्ञानी हो, हमारे इस संशयको निवारण करो ❋ ॥५॥ सूतजी बोले कि, हे महापुरुषो! आपका यह प्रश्न संपूर्ण लोकोंके पापोंका दूर करनेवाला है क्योंकि इस प्रश्नमें श्रीनारायणकी कथा कलियुगके दोषोंको मिटानेवाली है ॥६॥ कर्म-करके पितासे द्विजन्म संस्कार पाकर मार्कण्डेयने तप–स्वाध्याय–पूर्वक वेदोंको पढ़ा ॥ ७ ॥ नैष्ठिक, बालब्रह्मचारी, शांत, वल्कलवस्त्र धारण किये; जटा, दण्ड-कमण्डलु, उपवीत (जनेऊ) पहिने ॥८॥ कृष्ण मृगचर्म, कमला-

❋ शंका—श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके अष्टम अध्यायमें लिखा है कि सूतके मुखसे ब्राह्मणने विद्या पढ़ी तो इसमें यह शंका है कि उस समय ब्राह्मणोंको विद्या पढ़ानेके लिये ब्राह्मणवंश नहीं था, क्या सब ब्राह्मण नष्ट हो गये थे, जो ब्राह्मणोंने सूतके मुखसे विद्या पढ़ी यह बड़ा आश्चर्य है।

उत्तर—सूतने व्यासदेवजीकी सेवा बहुत वर्षतक की तब व्यासजीने सूतको अपना पुत्र मानकर शास्त्र और पुराण पढ़ाये और यज्ञोपवीत कर्म भी सूतका किया, क्योंकि व्यासजी साक्षात् भगवान्के अवतार हैं। संस्कार करके सूतको वरदान दिया कि हे पुत्र सूत! तुम्हारे मुखसे भगवान्की कथाको जो ब्राह्मण अभिमान त्यागकर सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे उन सुनने पढ़नेवाले ब्राह्मणोंकी कथाका सहस्रगुणा फल होगा और विद्या पढ़नेका फल भी सहस्रगुणा ही होगा, इसलिये सब ब्राह्मण और शौनकादिकोंने अभिमानको त्यागकर सूतसे कथा सुनी और विद्या पढ़ी, ब्राह्मणोंका वंश नष्ट नहीं हुआ था, पुण्यकी अभिलाषासे सब ब्राह्मणोंने पढ़ा सुना था।

क्षकी माला, नित्य नैमित्तिक सिद्धिके लिये कुशाओंको धारण किये, अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें दोनों सन्ध्या करके भगवत आराधना करने लगे॥९॥सांझ सवेरे भिक्षा लाकर गुरुके सम्मुख रख देते थे और जब गुरु आज्ञा देते थे तब मौन साध एकबार भोजन कर लेते थे और गुरु कभी आज्ञा नहीं देते थे तो उस दिन निराहारी रह जाते थे ॥ १० ॥ इस प्रकार मार्कण्डेयजीने विद्याध्ययन-परायण होकर दश करोड़ १०००००००० वर्षतक हृषीकेशका आराधन करके तप किया और अतिदुर्जय मृत्युको जीत लिया ॥११॥ तब तो ब्रह्मा, महादेव, भृगु, दक्ष और भी ब्रह्माके अनेक पुत्र, मनुष्य, देवता, पितर, भूत और सम्पूर्ण देहधारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥१२॥इस प्रकार नैष्ठिकब्रह्मचारिव्रत धारणकर मार्कण्डेयजी तप, अध्ययन, संयमों करके क्लेशरहित मनसे अधोक्षज भगवान्का ध्यान करने लगे ॥१३॥ इस प्रकार भगवान्में मन लगाये उस महायोगी मार्कण्डेयको छः मन्वन्तर बीत गये॥१४॥हे ब्रह्मन् ! सातवें मन्वन्तरमें मार्कण्डेयके तपको देखकर इन्द्र शंकायुक्त हुआ और उनके तपमें विघ्न डालना चाहा ॥ १५ ॥ तब इंद्रने उनका तप भंग करनेके लिये गन्धर्व, अप्सरा, मनोभव, बसन्तऋतु, मलय, पवन, रजोगुणके मित्र, लोभ व मदको मार्कण्डेय मुनिके पास भेजा ॥ १६ ॥ हे विभो ! वह सब मिलकर हिमालयकी उत्तर और उन मुनिके आश्रममें गये, जहां पुष्पभद्रा नदी और चित्र नाम शिला है ॥ १७ ॥ वह परमपवित्र मार्कण्डेयजीका आश्रम जहां सुन्दर-सुन्दर वृक्ष और लतायें शोभायमान हो रही थीं, अनेक प्रकारके पक्षियोंके शब्दसे व्याप्त हो रहा था, जहां परमविद्वान् ब्राह्मणोंके कुल निवास करते थे और सरोवरोंमें जहां-तहां निर्मल जल झकोल रहे थे ॥१८॥ मतवाले भ्रमर गुंजार कर रहे थे, मदोन्मत्त कोकिला 'कुहू-कुहू' शब्द पुकार रही थी, मदमाते मोर जहां-तहां नटोंकी भांति नाच रहे थे और मत्त पक्षियोंके समुदाय अपनी-अपनी वाणी बोल रहे थे ॥ १९ ॥ शीतल जलके झरनोंके किनकाओंको लेकर वन-पवन पुष्पोंको स्पर्श करते हुए परम सुगंधवाले कामदेवको बढ़ानेवाले कामदेवको देखकर सबके चित्तको प्रफुल्लित करने लगा ॥ २० ॥

दोहा–पल्लव पल्लवमें तहां, गई चन्द्रिका छाय ।
फूल उठीं सिगरी लता, सन्ध्या समय सुहाय ॥

चन्द्रमाके उदय होनेसे सन्ध्या समयके सुन्दर नवीन पल्लव और फूलोंके गुच्छोंके समूह अनेक शाखा और वृक्षलताओंसे युक्त वसन्तऋतु वहां आकर प्रकट हुई॥२१॥गीत और वादित्रवाले गंधर्व और अप्सराओंके समूहोंसे युक्त कामदेव हाथमें धनुषवाण लिये दिखायी दिया ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रसे निश्चित हो उस आश्रममें ध्यानसे नेत्र मूंदकर मूर्तिमान अग्निके समान अनन्ततेजस्वी मार्कण्डेयजीको आसनपर विराजमान देखा ॥२३॥ उस समय मार्कण्डेयजीके सामने अप्सरायें नाचने लगीं, गंधर्व गाने लगे, मृदंग, वीणा, ढोलकादि अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर बाजे बाजने लगे ॥२४॥ ऐसा सुन्दर समय पाकर कामदेवने शोषण, दीपन, संमोहन, संतापन, उन्मादन नामके पांच मुखवाले वाण अपने धनुषपर धारण किये और वसन्त लोभादिसे सब इंद्रके अनुचर मार्कण्डेयजीके मनको कम्पायमान करने लगे ॥ २५ ॥ गेंदको उछालती अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करती पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा स्तनोंके भारसे जिसकी लंक लचक रही थी, कि जिसके केशपाशसे शिथिल होनेके कारण पुष्प गिर रहे थे *॥२६॥

* शंका–इन्द्र अप्सराओंको भेजकर मुनियोंका तप भ्रष्ट [illegible] देता है, तब मुनिलोग क्रोध करके इन्द्रको शाप क्यों नहीं देते ? युग–युगमें मुनिलोगोंके तपको भंग करता रहता है ?

उत्तर–अश्वमेधका पुण्य इन्द्रके पास जबतक रहता है,तबतक मुनिलोग भी उसको शाप नहीं देते, क्योंकि वह जानते हैं–कि पुण्यके प्रभावसे भगवान्की–

दोहा—खसत कचनते सुमन बहु, लचत लंक लचकील ।
करत कटाक्षनसों कटा, चढ़ी मत्तमदफील ॥

गेंदको उछालती तिरछी चितवनसे चारों ओरको देखती-भालती जब वह चञ्चल चित्तवाली चली तब कटिमेखला टूट जानेसे उसका वस्त्र भी छूट गया, पीछे समीरने उस बीरबालाका सूक्ष्म वस्त्र हरण कर लिया ॥२७॥ उस समय वह पञ्चशर मार्कण्डेयजीको अपने वशमें जानकर अपना महातीक्ष्ण शर चलाया, परंतु उस अवसरमें कामदेवके सब शर उद्यम व्यर्थ हो तिरस्कार करनेवाले मन्मथादिक मार्कण्डेयके तेजसे भस्म होने लगे, तब तो भयभीत होकर वे ऐसे हो गये, जैसे भाग्यहीनके सब उद्यमनिष्फल हो जाते हैं ॥२८॥ हे मुने ! इस प्रकार मुनिके आगेसे भागने लगे जैसे बालक सर्पको जगाकर भागता है ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार पुरन्दरके अनुचरोंके किये हुए कर्त्तव्यको वृथा देखकर मार्कण्डेयजीके मनमें किसी प्रकारका अहंकार और विकार नहीं उपजा, इस बातका महात्मा पुरुषोंमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ ३० ॥ गणों समेत कामदेवको निस्तेज देखकर और ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर इन्द्र अपने मनमें अत्यंत विस्मित हुआ ॥३१॥ इस प्रकार तप, अध्ययन और संयमोंसे मनको वशमें रखनेवाले भगवान्में जिनका चित्त लग रहा ऐसे मार्कण्डेयजीपर अनुग्रह करनेके लिये नर-नारायण भगवान् वहां आकर प्रकट हुए ॥३२॥ शुक्ल श्याम नवीन कमलसे सुन्दर नेत्र चतुर्भुज, मृगचर्म, वल्कलके वस्त्र, हाथमें कमण्डलु, जनेऊ, सूधे बांसके दण्डको धारण किये॥३३॥कमलकी माला, जीव जन्तु न मर जायँ उनको हटानेके लिये वस्त्र, झाड़ू, वेदको धरे, गौरवर्ण तेज धारी बिजलीके समान प्रकाशवान्, साक्षात् मूर्तिमान्, तपरूप शरीर, परम श्रेष्ठ, देवताओंके पूज्य दोनों ऋषीश्वर आये ॥३४॥ भगवत्स्वरूप नर-नारायण ऋषीश्वरोंको देखकर मार्कण्डेयजीने बहुत आदरपूर्वक उठकर दण्डके समान गिरकर दोनोंको साष्टांग दंडवत् किया ॥३५॥ नर-नारायणके दर्शनके आनंदसे बुद्धि, इंद्रिय, मनसे शांत हो और अंग प्रफुल्लित होनेसे और नेत्रोंमें जल भर आनेसे मार्कण्डेयजी भगवान्की ओर देखनेको समर्थ न हुए॥३६॥फिर सँभलकर खड़े हो, हाथ जोड़, नम्रता और उत्कण्ठासे आलिंगन कर गद्गद वाणीसे केवल 'नमो नमः' शब्द नारायणकी ओर देखकर कहा ॥ ३७ ॥ फिर उन दोनोंको आसनपर बैठाकर चरण पखार, अर्घ्य दे चन्दन, धूप, मालासे पूजन किया ॥३८॥ सुखपूर्वक आसनपर बैठे प्रसन्नमुख, ऐसे दीनदयालु नारायणके चरणारविन्दोंमें मार्कण्डेयजीने फिर दण्डवत् करके यह वचन कहा ॥३९॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे प्रभो ! मैं आपकी क्या स्तुति करूँ जिस आपकी प्रेरणासे ब्रह्माके, शिवके, सब प्राणीमात्रकेऔर मेरे भी प्राण चेष्टा करते हैं, उन प्राणोंके पीछें मन, वाणी, इंद्रियाँ चेष्टा करती हैं, तो भी आप अपने भजन करनेवालोंपर अधिक दया करते हो, क्योंकि आप दयाके सागर हैं, पिता आदिक तो इस शरीर ही के बन्धु हैं, परंतु आप सदैव इस आत्माके बंधु हो॥४०॥हे भगवन् ! सदासे जैसे इस विश्वकी रक्षाके लिये आप अनेक प्रकारके स्वरूप धारण करते हो इसी प्रकार यह दो स्वरूप भी त्रिलोकीके मङ्गल करनेको

कृपादृष्टि इसके ऊपर है, जो इसको शाप देंगे तो भगवान् हमसे अप्रसन्न होंगे । ऐसा विचार के मुनिजन उसका अपराध क्षमा करते हैं और कष्ट सहते हैं, परंतु मुनियोंके दुःखसे इन्द्रका तेज दिन-दिन नष्ट होता रहता है, तब राक्षस लोग इन्द्रको ऐसा दुःख देते हैं कि अनेक युगोंतक इन्द्र दुःख भोगता है, इसलिये मुनिजन इन्द्रके अपराधको क्षमा करके शाप नहीं देते ।

निमित्त; सांसारिक तापोंके दूर करनेके अर्थ और मृत्युके जीतनेके लिये आपने धारण किये हैं जैसे आप सृष्टिकी रक्षा करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसे ही विश्वके संहार करनेमें भी आप विख्यात हैं, जैसे मकरी जालेको रचकर पीछे आप ही निगल जाती है ॥४१॥ स्थावर और जंगमकी रक्षा करनेवाले ईश्वर, आपके चरणारविन्दोंका मैं भजन करता हूँ, जिन चरणारविन्दोंके आश्रयसे मनुष्योंको काल,कर्मगुणोंके मान्य तापादिकोंका कोई स्पर्श भी नहीं करते और बड़े-बड़े वेदपाठी महात्मा लोग जिन चरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये नित्य ध्यान करते हैं, यजन करते हैं और दिनरात स्तुति करते हैं ॥ ४२ ॥ हे ईश अपवर्गमूर्ति ! जिन प्राणियोंको चोरोंसे भय है उन प्राणियोंके लिये आपके चरणकमलकी प्राप्तिसे अधिक मंगल और निर्भय स्थान हम और कोई दूसरा नहीं समझते। दो परार्द्धकी आयुर्बलवाला ब्रह्मा भी आपकी भ्रुकुटी बंकरूप कालसे अतिशय भयभीत रहता है, उसके सृजे हुए प्राणी भयभीत हों तो इसमें क्या आश्चर्य्य है ॥४३॥ आत्माके आवरण करनेवाले तुच्छ, नश्वर, निष्फल भी हैं, परन्तु सत्यसे दृष्टि आते हैं, ऐसे देहादिकोंके भजनको छोड़कर सत्य ज्ञान स्वरूप सब जीवोंके नियंता सबसे परे आपके उन चरणारविन्दोंको मैं भजता हूँ, जो आपके चरणकमलके भजनेवाले हैं, उनकी आपसे ही सब अभिलाषायें पूर्ण होती हैं ॥४४॥ हे ईश ! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों गुण आपकी मायासे ही उत्पन्न हुए हैं, और पालन, उत्पत्ति, संहारके कारण विष्णु आदि सब आपकी ही लीला–मूर्ति हैं, परन्तु उनमें जो सत्त्वगुणकी मूर्ति है वह मनुष्योंके मनको शान्त करने वाली है और रजोगुण तमोगुणवाली मूर्ति मनको शान्त नहीं करती, बरन् दुःख मोह और भय उपजानेवाली है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मादिक देवता और भक्तलोग शुद्ध सत्त्व मूर्तिका ही भजन करते हैं और सत्त्वगुणको ही ईश्वर मानते हैं, रजोगुण,तमोगुणमें प्रवृत्त नहीं होते और ज्ञानी लोग इसलिये आपका इस नरनारायण नाम सत्त्वमूर्तिका भजन करते हैं, कि जिस सत्त्वगुणके प्रभावसे पुरुष निर्भय और सुखी होकर तुम्हारे लोकको प्राप्त होता है॥४६॥ विश्वका गुरु, विश्वरूप, सर्वोत्तम, पुरुष, शुद्धस्वरूप, वाणीके नियंता वेदके प्रवर्त्तक, भगवान् नरनारायण ऋषि आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ कपटरूप इंद्रियमार्गसे विक्षिप्त बुद्धिवाले और आपकी मायासे आवृतमतिवाले प्राणी अपने हृदय-आकाशमें, प्राणोंमें, नेत्रोंमें निरन्तर विराजमान हो तो भी आपको नहीं जानते, हे भगवन् ! आदिपुरुष अखिलके गुरु ब्रह्माको भी जब आपने अपने प्रकाशसे वेद दिये तब ब्रह्माको आपके साक्षात् रूपका ज्ञान हुआ है॥४८॥रहस्य तत्त्वका प्रकाश करनेवाला आपके दर्शनका ज्ञान एक वेदके ही जाननेसे होता है, इसीसे सांख्ययोगादिकोंकी रीतिसे यत्नके करनेवाले ब्रह्माको आपके कवि सब आपके दर्शनको पाते हैं, निर्गुण सगुणादिक सबके वचनके अनुकूल स्वभाव और देहादिकके अभिनिवेशसे गूढतत्त्वज्ञानवाले महापुरुष आपको मैं वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥४९॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे मार्कण्डेयोपाख्याने नारायणस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दोहा–नववेंमें भगवान्की, माया परम अनूप ।
बूड़त प्रलयसमुद्रमें, देखेउ मुनि हरिरूप ॥

सूतजी बोले कि, बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार स्तुति करनेसे नरके मित्र भगवान् नारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर मार्कण्डेयमुनिसे कहने लगे ॥१॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे ब्रह्म-

षियोंमें श्रेष्ठ ! मनकी एकाग्रतासे, तप, अध्ययन, संयमोंसे और अनपायिनी हमारी भक्तिसे तुम सिद्ध हुए हो ॥२॥ हे मुने ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्मसे हम बहुत सन्तुष्ट हुए,वरदान देनेवालोंके ईश्वर हम तुमको वरदान देनेके लिये आये हैं तुम मनोवांछित वर मांगो, जो तुम्हारी इच्छा हो ॥३॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, हे देव ! हे भक्तभयभञ्जन ! हे अच्युत ! आप जो वारंवार वर देनेके लिये मुझसे कहते हो यह आप अपनी उत्कृष्टता (बड़ाई) प्रकट करते हो, परन्तु मुझको किसी प्रकारके वरदानकी अभिलाषा नहीं, आपने जो मुझको दर्शन दिया यही महावरदान है, इससे अधिक और क्या वरदान होगा ? ॥४॥ योगसे परिपक्व मन हो जिस आपके चरणारविन्दके दर्शन पाकर ब्रह्मादिक देवता भी कृतार्थ होते हैं वही आप साक्षात् मेरे नेत्रोंके आगे विराजमान हो, क्या इससे भी बढ़कर कोई और वरदान दोगे ॥ ५ ॥ हे कमलदललोचन ! हे पुण्यशिखामणि ! जो आपकी वर देनेकी ही इच्छा है तो यह वर दीजिये, कि आपकी मायासे लोकोंसहित लोकपाल मोहित हो जाते हैं, उसी मायाको मुझे दिखाओ ॥६॥ सूतजी बोले कि–हे ऋषियो ! इस प्रकार मार्कण्डेयसे स्तुति और वरदानका मांगना सुन भगवान् ईश्वर उन मुनिसे पूजित हो मुसकाकर वही वर दे बद्रिकाश्रमको चले गये ❁ ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी उस मायाके वरदानका चिन्तन करने लगे और अपने आश्रममें बैठकर अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, पवन, आकाश और मनमें भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ ८ ॥ भावनारूपी द्रव्यसे नित्यप्रति भगवान्का पूजन किया करें, कभी भक्तिके आवेशसे पूजाको भी भूल जाते थे ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि, हे शौनक ! हे भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! हे मुने ! हे ब्रह्मन् ! एक दिन सन्ध्यासमय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेयजी बैठे थे, बड़ा भयंकर पवन चलने लगा ॥ १० ॥ महावेगसे प्रचण्ड शब्द होने लगा, उस पवनके पीछे महाविकराल कालरूप प्रलयकीसी काली घटा चारों ओरसे उमड़ने लगी, बड़े गम्भीर शब्दसे बिजली कड़कड़ाने लगी, वज्रपात होने लगा, गजशुण्डके समान मोटी जलधारा वर्षने लगी ॥११॥ पवनके वेगसे पानीमें तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी डूबने लगी, उग्र ग्राह जहां-तहां दिखायी देने लगे, महाभयानक भ्रमर जलमें पड़ने लगे, चारों ओर समुद्रकीसी अरराहट होने लगी ॥१२॥ आकाशके अतिक्रमण करनेवाले जलसे और महातीक्ष्ण पवनसे और अत्यन्त दमकती हुई दामिनीसे चार प्रकारके जगत्को बाहर-भीतरसे व्याकुल देख और पृथ्वीको पानीमें डूबती हुई देखकर मुनि अपने मनमें घबड़ाने लगे और विस्मित होकर त्रासको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजीके देखते ही तरंगें उठनेसे भयानक, पवनसे चलायमान, वर्षते हुए मेघोंसे पूर्ण हो समुद्र सब ओरसे द्वीप, खण्ड, पर्वतोंसहित पृथ्वीको डुबाने लगा ॥ १४ ॥ भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र, दिशाओं सहित त्रिलोकी जलमग्न हो गयी । उस समय केवल मार्कण्डेयजी ही अवशेष रहे, वह अकेले ही अपनी बड़ी-बड़ी जटा-

* शंका––दुष्ट लोगोंका लक्षण यह है कि बात करते-करते मुसका देते है और जो कोई मनुष्य उन दुष्टोंके स्थानपर जांय तो उनको आता देखकर हँसते है और चलते समय भी वह दुष्ट मनुष्य उनके ठट्ठे उड़ाते हैं। वह दुष्ट उनके घर जायें तो भी हँसी करते हैं। चलते समय भी हँसी करते है, ये दुष्ट लोगोंकी पहचानके लक्षण हैं । मार्कण्डेय मुनिके आश्रमसे नारायण जब अपने आश्रमको चले तब मुसकाते हुए क्यों चले ? बड़े मुनीश्वर होकर ऐसा बुरा कर्म क्यों किया।

उत्तर––नारायण मुनिने विचार किया कि मार्कण्डेयजी मायाका प्रभाव देखना चाहते हैं, मनमें ऐसा अभिमान है कि मैंने मायाको तप करके जीत लिया है । ऐसा माया द्वारा इनको मोह उपजाऊँगा, जो वह युगानुयुग भूलेंगे नहीं, ऐसा विचारकर अपने मनमें नारायण मुनि मुसकाये कुछ दुष्टकर्मसे नहीं मुसकाये ।

कोओं फैलाये जड़ अन्धके सदृश जलमें भ्रमने लगे ॥ १५ ॥ भूख और प्याससे पीड़ित, मकर और तिमिंगिलोंसे भयभीत, महाप्रचण्ड पवनके झकोरोंसे और जलकी तीव्रतरंगोंके प्रहारसे व्याकुल, अपार अन्धकारमें भ्रमण करते हुए अनेक प्रकारके विचारमें व्याप्त और विस्मित होकर गोता खाने लगेः—

दोहा—कबहुँ मकर लीलत तिनहिं, कबहुँ तजत मलद्वार।
कबहुँ डरावत बहुरि पुनि, अति भयके मुख फार ॥
कबहुँ तिनहिं मारुत प्रबल, दूरहि देत उड़ाय।
नहिं अकाश नहिं महि दिशा, मुनिको परत दिखाय ॥ १६ ॥

कभी महागंभीर भँवरोंमें उछलते-डूबते थे, कभी तरंगोंमें आकर इधर-उधर चले जाते थे, कभी भूखे जलजन्तु उनको खानेके लिए परस्पर लड़ते थे ॥१७॥ कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख, कभी सुख, कभी मरण, कभी जीवन, कभी रोगादिकोंसे ग्रस्त होकर अनेक प्रकारके क्लेश पाते थे॥१८॥नारायणकी मायासे आवृतचित्तवाले मार्कण्डेयजीको उस जलमें भ्रमते-भ्रमते अयुतायुतके सौ हज़ार अर्थात् एक शंख १०००००००००००००००००बीत गये॥१९॥ तब महाप्रलयके समुद्रमें भ्रमते-भ्रमते एक टापू दिखायी दिया। उस टापूमें फल फूलोंसे अत्यन्त शोभायमान एक बटका वृक्ष दृष्टि आया ॥२०॥ उस वृक्षके पूर्व उत्तर (ईशान) के कोणकी शाखाके पत्रके जोड़ेमें सोता हुआ अपनी कांतिसे अन्धकारको दूर करनेवाला एक बालक देखा ॥२१॥ महामकरत मणिके सदृश श्यामवर्ण, अत्यन्त शोभायमान मुखारविंद, शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त ग्रीवा, परम विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंहें हैं॥२२॥श्वाससे कांपती हुई अलकोंकी मनोहर छबि, भीतरकी ओरको शंखके तुल्य आंटी खाये हुए शोभित, कानोंमें दाडिमके फूलोंकी कली धरी, विद्रुमसे अरुण अधरोंकी कांति, सुधासरिस मन्दमुसकान ॥२३॥ कमलकोससे अरुण नेत्रोंके कोये, सुन्दर हास्ययुक्त चितवन श्वास लेनेमें चलायमान, त्रिवलीसे शोभित गम्भीर नाभि अत्यन्त शोभा दे रही थी, पीपलके समान सुन्दर उदर ॥२४॥ अपने दोनों हाथोंकी उँगलियोंसे दाहिने चरणके अँगूठेको थामें हुए मुखसे पी रहा था। उस बालकको देखकर मार्कण्डेयजी अत्यन्त विस्मित हुए ॥ २५ ॥ उसके दर्शनके आनन्दसे सब श्रम दूर हो गया, हृदयकमल खिल गया, शरीर पुलकायमान होने लगा, इस अद्भुत प्रभावको देख मुनि अतिशंकित होकर पूछनेके लिए उस बालकके समीप गये ॥ २६ ॥ उस समय वह भृगुवंशी मार्कण्डेय मुनि उस बालकके मुखके समीप पूछनेको झुके, कि इतनेमें ही बालकने श्वास जो लिया उसके श्वासके सङ्ग ही मच्छरकी नाई बालकके मुखके मार्ग होकर उसके उदरमें पहुँच गये, वहां भी यह विश्व प्रलयसे पहलेकी नाई देखा, उसको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मोहित हो गये ॥ २७ ॥ और वैसा ही आकाश, भूमि, स्वर्ग, वृक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशा, देवता, असुर, वन, देश, नदी, पुर, खान, किसानोंके ग्राम, गायोंके खरक, वर्ण आश्रम, और इन सबकी जीविकाको देखा ॥२८॥ पञ्च महाभूतोंके रचे प्राणी, युग अनेक पदार्थ और कल्पोंकी कल्पना करनेवाला काल और भी जो व्यवहारोंके कारण थे वे सब उस बालककी सत्तासे सत्यसे प्रतीत होते मार्कण्डेयजीने देखे ॥२९॥ घूमते-घूमते हिमालयमें पहुँच गये वहां पुष्पभद्रा नाम नदी और अपना आश्रम और उसमें रहने वाले ऋषि और

मुनियोंको भी देखा, तब मार्कण्डेयजीने अपना स्थान जानकर रहनेका विचार किया परंतु मनमें यही सन्देह था कि "यह क्या माया है" मार्कण्डेयजी यह विचार कर ही रहे थे इतनेमें बालकने ऊर्ध्व श्वास जो लिया तो फिर मुखसे बाहर निकलकर उसी प्रलयरूप समुद्र जलमें आ पड़े ॥३०॥ फिर वहां वही पृथ्वीका टापू और वही वटका वृक्ष और वही बालक उस वटके पत्तेपर सोता हुआ देखा और उस बालकने भी प्रेमरूप सुधासरिता मंद मुसकानसहित बांकी चितवनसे मुनिकी ओरको देखा ॥३१॥ तब तो मनको मोहित करनेवाले बालकको दोनों नेत्रोंसे देखकर लज्जित हो अत्यन्त क्लेश मान मार्कण्डेयजी उन अधोक्षज भगवान्को आलिंगन करनेके लिये उनके सम्मुख धाये ॥३२॥ इतनेमें वह बालरूप साक्षात् योगके ईश्वर सर्वान्तर्यामी भगवान् मार्कण्डेयजीके देखते अन्तर्धान हो गये, जैसे हरिविमुखोंकी क्रिया लोप हो जाती है ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तब तो वटवृक्ष और प्रलयके जलसे लोकोंके डूबनेका चिह्न भी न रहा, क्षणमात्रमें ही सब अन्तर्हित हो गये और मार्कण्डेयजी पहलेकी नाईं अपने आश्रममें बैठ गये ॥ ३४ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे भगवन्मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दोहा—कहौं दशम अध्यायमें, शिवागमन मुनिधाम ।
अति प्रसन्न हो वर दिये, शिव अरु शिवकी वाम ॥

सूतजी बोले कि, मार्कण्डेयजी नारायणसे निर्मित योगमायाके वैभवका ऐसा अद्भुतचरित्र देखकर भगवान्की शरणमें आये ॥१॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ईश्वर ! शरणागतोंके अभयदान देनेवाले आपके चरणारविंदकी मैं शरण आया हूँ । देखो ! ज्ञानसे प्रकाशवान् आपकी मायासे बड़े-बड़े पंडित ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं क्योंकि अपने तप और पुरुषार्थके घमंडमें आपका भजन नहीं करते, वह मेरे समान मायारूप समुद्रमें उतराते-डूबते रहते हैं ॥२॥ सूतजी बोले कि, एक दिन बैलपर चढ़े भवानीको निकट संग लिये भगवान् महादेवजी आकाशमें गणोंसे वेष्टित पर्यटन करते-फिरते थे कि पुष्पभद्रानदीके निकट एकाग्रचित्तवाले मार्कण्डेय मुनिको बैठा देखा ॥३॥ शैलनंदिनी भवानी मार्कण्डेयजीको देखकर शिवजीसे बोलीं कि हे भगवन् ! जैसे पवन न चली हो उस समय समुद्रका जल और जन्तु आदि निश्चल रहते हैं ऐसे ही इसके अंग, इन्द्रियाँ और मन निश्चल हो गये हैं, ऐसे इस विप्रको देखो और इसके तपका फल इसको दो, क्योंकि तुम सब सिद्धियोंके दाता हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती ! अव्यय अविनाशी आदिपुरुष भगवान्में प्रेमलक्षणा भक्ति होनेसे यह ब्रह्मऋषि मोक्षपर्यन्त कामनाको भी नहीं चाहता ॥ ६ ॥ तो फिर हे भवानी ! इस साधुपुरुषसे कुछ सुखसंवाद करेंगे, क्योंकि मनुष्योंमें साधु पुरुषका समागम होना परम लाभदायक है ॥७॥ सूतजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! सर्व मुनि साधुओंकी गति जाननेवाले सर्व विद्याओंके और सम्पूर्ण जीवोंके ईश्वर भगवान् शिवजी पार्वतीसे यह बात कहकर मार्कण्डेयजीके सन्निकट गये ॥८॥ अन्तःकरणकी वृत्तियोंके रोकनेके कारण मार्कण्डेयजीको अपने आत्मा और विश्वकी ओर कुछ ध्यान नहीं था, इसलिये साक्षात् ईश्वर और विश्वात्मा विश्वनाथ महादेव और पार्वतीके शुभागमनको भी उन्होंने नहीं जाना ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय ऋषिको समाधि-

निष्ठ जानकर पवन जैसे छिद्रमें घुस जाता है, ऐसे ही कैलासपति भगवान् महादेवजीने योगमाया करके मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश किया ॥१०॥ तीन नेत्र, दश भुजा, ऊँचा शरीर, बिजली सदृश पीत जटाओंको धारण किये, प्रातःकालके सूर्यके समान शोभायमान तेजस्वी ॥११॥ व्याघ्रचर्मके वस्त्र पहने, त्रिशूल, धनुषबाण, खड्ग, ढाल, डमरू, रुद्राक्ष, कपालमाला और परशु हाथमें लिये, शिवजीको अकस्मात् ही हृदयमें प्रकाशमान देख अत्यन्त विस्मित होकर बोले ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्य ? यह कौन है ? कहांसे आये ? इस विचार ही विचारसे मुनिकी समाधि निवृत्त हो गयी, तब नेत्र खोलकर देखा तो पार्वती और गणोंसहित शिवजी सम्मुख खड़े हैं ॥ १३ ॥ त्रिभुवनका प्रधान गुरु शिवजीको समझकर मार्कण्डेयजीने मस्तक नवाकर नमस्कार किया "भले आये महाराज !" यह कह आसन दे, चरणामृत ले, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप, दीपादिसे गण और गिरिजा सहित शिवजीका पूजन किया ॥ १४ ॥ फिर कहा कि हे विभो ! हे ईश ! हे नाथ ! आप तो अपने प्रभावसे ही पूर्णकाम और विश्वके आनन्ददाता हो, मैं आपका क्या पूजन करूँ ? ॥१५॥ आप निर्गुण, शांत, तत्त्वके अधिष्ठाता, सबके परम सुखदाता और रजोगुण-तमोगुणके धारण करनेवाले होकर भी अघोर हो मैं आपको वारंवार नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिने स्तुति की तब संतुष्ट हृदयवाले महात्मा पुरुषोंके शरणरूप आदिदेव विश्वनाथ प्रसन्न होकर हास्यपूर्वक मुनिसे कहने लगे ॥१७॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे मुने ! तुम हमसे मनोवांछित वर मांगो, क्योंकि हम तीनों वर देनेवालोंके ईश्वर हैं, हमारा तीनों देवताओंका दर्शन अमोघ है जो जिस कार्यके लिये भजता है, उसका कार्य सफल होता है और मरणधर्माओंको मोक्षदायक है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण, साधु, सन्त, शांतचित्त रागरहित सब प्राणियोंपर दया रखनेवाले हमारे पूर्ण भक्त वैरभावरहित समदर्शी हैं ॥ १९ ॥ उनका लोकोंसहित लोकपाल और देवता वंदन करते हैं पूजते हैं और दिन-रात सेवन करते हैं; सब इतना ही न समझना किन्तु जो सबके अधिष्ठाता विष्णु, ब्रह्मा और हम भी उनका सेवन करते हैं ॥ २० ॥ आपके समान ब्राह्मण, हम, विष्णु, ब्रह्मा अपने आत्मा और लोकोंमें किंचिन्मात्र भी भेद-दृष्टि नहीं रखते, इसीलिये हम आपका निरन्तर भजन करते हैं * ॥ २१ ॥ जलमें क्या तीर्थ नहीं है ? क्या मूर्तियोंमें देवता नहीं हैं ? अर्थात् निश्चय हैं परन्तु वे तत्काल फल नहीं देते, बहुत कालमें पवित्र करते हैं और हे महाराज ! आप सरीखे महात्माके तो दर्शन पवित्र करते हैं ॥२२॥ चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम, वेदत्रयी, यम, हमारे रूपको जो ब्राह्मण धारण करते हैं, उनको हम भी नमस्कार करते हैं ॥२३॥ जब कि आपके श्रवण अथवा दर्शनसे ही महापातकी और चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं, तो आपके सम्भाषणसे शुद्ध हो तो उसमें कहना ही क्या है ? ॥२४॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार चन्द्रभाल शिवजीके गूढ़ धर्ममय अमृतरूप बचनोंको श्रवणद्वारा पान करके मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए

---

* शंका—जब मार्कण्डेय मुनिने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवसे पूछा नहीं कि तुम तीनों देवताओंमें कौन बड़ा कौन छोटा ? अथवा तुम तीनों एकसे हो, फिर बिना पूछे शिवजीने क्यों कहा कि, हे मार्कण्डेय ! ब्रह्मा, विष्णु और मुझमे कुछ भेद नहीं, हम तीनों देव एक ही हैं।

उत्तर—मार्कण्डेयजीके मनमें यह सन्देह था कि तीनों देवोंमें कौन बड़ा है, और कौन छोटा है, परन्तु लज्जाके कारण पूछ नहीं सके थे। अतः महादेवजी मार्कण्डेयको अन्तर्गति जानकर उनकी शांतिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके एक स्वरूपकी कथा कहने लगे थे।

॥ २५ ॥ नारायणकी मायासे बहुत दिनतक भ्रमण करते और क्लेश पाते मार्कण्डेयजीने शिवजीकी सुधारूप मधुर सुधावाणीसे सम्पूर्ण क्लेशोंके समुदायसे निवृत्त होकर भवानीपतिसे यह वचन कहा ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अहो यह ! विष्णु भगवान्‌के चरित्र प्राणियोंके जाननेमें आये बहुत कठिन है, क्योंकि आप त्रिलोकीके ईश्वर होकर भी अपने शरणागत प्रजागणकी स्तुति करके उनको नमस्कार करते हो ॥ २७ ॥ मुझको तो ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर भी धर्मके उपदेष्टा होकर धर्मके ग्रहण करनेके लिये प्राणियोंके आचरणोंकी स्तुति और अनुमोदन करते हैं और आप भी उन्हीं आचरणोंको करते हैं ॥ २८ ॥ आप अपनी मायामय वृत्तियोंसे और लोकोंको नमस्कारादि किया करते हैं इससे आपकी महिमामें किसी प्रकारका दोष नहीं लगता, क्योंकि जैसे नट नाटकमें दूसरा रूप धारण करके अपने पुत्र, पौत्र और दासदासियोंको दण्डवत् प्रणाम करता है और दीन वचन कहता है, उस दीनता और दण्डवत् करनेसे उसके महत्त्वमें किसी प्रकारका लांछन नहीं लग सकता, वैसे ही आपको भी किसी प्रकारका दोष नहीं लगता ॥२९॥ जो ईश्वर आप ही अपने मनसे गुणोंके द्वारा इस सृष्टिको रचकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके समान जान पड़ता है, जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष नया नगर बनाकर उसमें प्रविष्ट होकर कर्त्ताके ही सदृश प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ ऐसे त्रिगुणोंके नियन्ता शुद्धरूप अद्वितीय सबके गुरु ब्रह्म-मूर्ति आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥ हे सर्वोत्तम ! हे भगवन् ! मुझको आपका दर्शन हो गया, इससे अधिक और क्या वर है, जो मैं आपसे मांगू ? जिस मनुष्यपर आपकी कृपादृष्टि होती है, उसके सब काम सत्य और पूर्ण हो जाते हैं ॥३२॥ तो भी जो आप पूर्णकाम और भक्तोंकी कामनाओंको वर्षानेवाले हो तो मैं आपसे इतना वरदान मांगता हूँ—वह वरदान यह है कि अच्युत भगवान् और उनके भक्तोंमें, उसी प्रकार आपके चरणकमलमें मेरी निश्चय भक्ति रहे ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि, जब इस प्रकार शिवजीकी पूजा मार्कण्डेयजीने की तब भगवान् महादेव और गिरिराजकुमारी अतिप्रसन्न हो मुनिसे कहने लगे ॥ ३४ ॥ हे महर्षि ! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे, क्योंकि आप तो पहलेसे ही अधोक्षज भगवान्‌के भक्त हो; आपका यश और पुण्य कल्पकल्पांतर अखंड हो और सदा आप अजर अमर रहें ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम त्रिकालज्ञ हो और विज्ञान-सहित पूर्ण वैराग्य हो, ब्रह्मतेजसे पूर्ण और पुराणाचार्य भी होंगे ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले कि, इस प्रकार मुनिको वर देकर मुनिके पिछले चरित्र जो कुछ भगवान्‌की मायाके वैभव देखे थे वह सब वृत्तांत त्रिलोचन महादेवजी भवानीसे कहते हुए चले गये ॥३७॥ परमयोगकी महिमाको पाकर विष्णु भगवान्‌की एकांत भक्तिसे भृगु-वंशियोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेय अबतक पृथ्वी पर विचरते हैं ॥ ३८ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने भगवान् वासुदेवकी अद्भुत माया वैभव आदि जो देखा, वह मार्कण्डेयजीका पवित्र चरित्र आपके सम्मुख वर्णन किया ॥३९॥ सृष्टिके जो उत्पत्ति प्रलय आदिक होते रहते हैं वह सब आदि पुरुष भगवान्‌की ही माया है, कोई-कोई मूर्ख लोग इस बातको नहीं जानते। मार्कण्डेयजीने जो यह मायाका वैभव देखा, वह केवल भगवदिच्छासे देखनेमें आया, कुछ प्राकृतिक वा नैमित्तिक कर्मोंका यह प्रलय नहीं था और अज्ञानी लोग अबतक उसे अनादि कालके समान सातवां नैमित्तिक प्रलय ही समझ रहे हैं, इसीसे मार्कण्डेयजीकी सात कल्पकी अवस्था संसारमें विख्यात है, परन्तु यह सम्पूर्ण भ्रांति है और जो मायाके वेत्ता हैं, वे उस कालको निमेष-

मात्र कहते हैं, अर्थात् मायाका कौतुक देखा था, वह सब एक क्षणमात्रका था ॥ ४० ॥ हे भृगुवंशियोंमें उत्तम ! भगवान्‌के प्रभावयुक्त मार्कण्डेयका यह चरित्र जो कोई प्रेमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर सुनेगा अथवा सुनायेगा उन दोनोंको कर्मवासनायुक्त संसारकी माया न व्यापेगी ॥ ४१ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे मार्कण्डेयोपाख्याने शिवपार्वतीदर्शनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दोहा–इस ग्यारह अध्याय में, महापुरुषका ध्यान ।
भिन्न भिन्न प्रतिमासमें, व्यूह सूर्य भगवान् ॥

शौनकादिक बोले कि; हे भागवतोंमें श्रेष्ठ महामुनि सूतजी ! आप सर्व तंत्रशास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता हो, इसलिए हे बहुज्ञ महात्माओंमें मुकुटमणि ! हम आपसे यह प्रश्न करते हैं ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! सर्व तन्त्रोंके उपासक केवल हरि भगवान्‌की परिचर्या विषे अंग अर्थात् पादादिक, उपांग गरुड़ादिक, आकल्प-चक्रादिक अलंकार और कौस्तुभादिक आभूषणोंकी रचना जिस-जिस भांति कल्पना करते हैं ॥२॥ उस क्रियायोगके जानेकी हमारी इच्छा है, जिसकी निपुणतासे मरणधर्मा पुरुष अमरत्वको प्राप्त हो जाता है । हे सूतजी ! आप उस विद्याके जाननेवाले हैं वह कृपा करके हमको बतलाइये, आपका कल्याण होगा ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि, गुरुको नमस्कार करके विष्णु भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन करूँगा, जिन विभूतियोंका साक्षात् ब्रह्मादिक देवताओंने भी वेद और तन्त्रोंमें वर्णन किया है ❋ ॥ ४ ॥ माया रूप, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच तन्मात्रा इन नौ तत्त्वोंसे ग्यारह इंद्रिय पञ्चमहाभूत रूप यह विराट् शरीर ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ, जिस चैतन्यसे अधिष्ठित ब्रह्मांडमें पृथ्वी आदि सब लोक देखनेमें आते हैं, इन्हीं पृथ्वी आदि लोकोंसे भगवान्‌के अङ्गोंकी पूजा करनेमें आती है ॥ ५ ॥ इस ब्रह्मांडको भगवान्‌में कल्पित होनेके कारण भगवान्‌का देहरूप मानकर उसमें पृथ्वीको चरणरूप, स्वर्गको मस्तकरूप, अंतरिक्षको नाभिरूप, सूर्यको नेत्ररूप, पवनको नासिकारूप, दिशाओंको कानरूप, ॥६॥ प्रजापतिको निश्नेंद्रियरूप, मृत्युको गुदेंद्रियरूप, लोकपालोंको भुजारूप, चन्द्रमाको मनरूप, यमको भ्रुकुटीरूप ॥ ७ ॥ लज्जाको ऊपरके ओष्ठरूप, लोभको नीचेके ओष्ठरूप, चांदनीको दांतरूप, भ्रांतिको हास्यरूप, वृक्षोंको रोमरूप और मेघोंको केशरूप कल्पना करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे ब्रह्मांडरूपका धूप, दीप, चन्दनादिसे पूजन और ध्यान एक बारमें नहीं बन सकता इसलिए पाषाण, धातु आदिकी प्रतिमामें उस विराट् देहकी और अवयवोंकी कल्पना कर उसका पूजन और ध्यान ठीक-ठीक करनेमें आता है । इस ब्रह्मांडरूप पुरुषका जो प्रमाण है, जैसी स्थिति है, वह प्रमाण और वह स्थिति भगवान्‌की छोटी मूर्तिमें भी जानी जाती है, इसलिए मूर्तिमें भगवान्‌का पूजन करते

❋ शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है कि सूतजी कहते हैं कि अब अपने गुरुको दण्डवत् करके विष्णुकी विभूति ऐश्वर्यका मैं वर्णन करता हूँ यह मुझको संशय है कि पहले स्कन्धसे बारह स्कन्धके ग्यारहवें अध्याय तक विष्णुकी विभूतिका वर्णन नहीं हुआ, फिर किसकी विभूतिका ... हुआ ।

उत्तर—पहले ऐसा वर्णन हुआ है, तीन लोक चौदह भुवन चराचर यह सब ईश्वरका स्वरूप है, इसलिये विष्णुरूप जो सम्पूर्ण संसार है, उसकी विभूतिका वर्णन हुआ है और अब अकेले भगवान्‌की महिमा और चरित्रोंका वर्णन होगा इसलिये सूतने कहा था कि अब हम भगवान्‌की विभूतिका वर्णन करते हैं ।

हैं ॥९॥ मूर्तिमें जो प्रभुने कौस्तुभमणि धारण की है, यही शुद्ध चैतन्य धारण किया है, ऐसा मान रखा है और प्रतिमाके वक्षस्थलमें श्रीका चिह्न है, उनकी प्रभासे व्याप्त जीव हैं ॥१०॥ उनकी माया ही अनेक गुणमयी वनमाला है और वेद ही साक्षात् पीतांबर है और अकार, उकार, मकाररूप त्रिमात्रावाला ओंकार ही यज्ञोपवीत हैं ॥११॥ सांख्य और योग ये दोनों मकराकृति कुंडल हैं, सब लोकोंसे नमस्कार और अभयदायक ब्रह्मलोक मुकुटमणि हैं ॥१२॥ वसुधाके आधाररूप शेष भगवान् हैं, वह अनंत नामसे प्रसिद्ध है, वही नारायणके विराजनेके कमलासन हैं और कोई-कोई विद्वान् लोग ऐसा भी कहते हैं कि अनेक रंगकी जो परमेश्वरकी माया है, वही अनंत आसन हैं, कोई कहते हैं:—धर्मज्ञानादि सहित सत्त्वगुण कमलासन है ॥१३॥ इन्द्रियोंकी निपुणता, मनका उत्साह, शरीरके बल सहित प्राण ही विराट् स्वरूपकी गदा है, जलका तत्त्व ही शंख है, तेजका तत्त्व ही सुदर्शन चक्र है ॥१४॥ आकाश ही नीलवर्ण बिजलीयुक्त झमझमाता हुआ खड्ग है, आकाश रूपतत्त्व जो अन्धकार है वही ढाल है, काल ही शारंगधनुष है और कर्म ही बाणोंसे भरा हुआ तूणीर (तरकस) है ॥१५॥ इंद्रियाँ ही भालावाले बाण हैं, मन ही रथ हैं, तन्मात्रा ही रथकी चाल है, अभयवरदानकी देनेवाली क्रिया ही विराट् पुरुषकी मुद्रा है ॥ १६ ॥ सूर्य, अग्नि, चन्द्रमण्डल परपुरुष भगवान्‌की पूजा करनेका स्थान है, गुरुकी दी हुई जो मंत्र दीक्षा है, वही पूजन करनेवालोंके संस्कार हैं भगवान्‌की परिचर्या ही आत्माके पापोंको नाश करनेवाली है ॥१७॥ छः प्रकारका भगवत शब्दका अर्थ लीलाकमल है, धर्म यश दोनों चामर और व्यजन है ॥१८॥ हे द्विजो ! छत्र धारण करनेका निर्भय धाम वैकुंठ है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ही यज्ञ पुरुष भगवान्‌का वाहन् गरुड़ है ॥१९॥ साक्षात भगवती लक्ष्मी जो भगवान् के पार्श्वमें विराजमान है वह हरिकी अनपायिनी शक्ति है, पार्षदोंमें अधीश्वर जो मुख्य विष्वक्सेन है वही तन्त्रशास्त्रकी मूर्ति है, अणिमादिक अष्टसिद्धियां जो हैं वही नन्द सुनंदादिक भगवान् वैकुंठविहारीके द्वारपाल हैं ॥ २० ॥

दोहा—वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्नहु अनिरुद्ध ।
कृष्णचन्द्रकी जानिये, चारमूर्ति यह शुद्ध ॥

हे ब्रह्मन् ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध यही श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदकी चार मूर्ति परम पवित्र हैं ॥२१॥ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय चार अवस्थाओंसे और इनके कारण विषय, मन, अज्ञान और ज्ञानसे भगवान् जाने जाते हैं, यही भावना ईश्वरसम्बन्धी है ॥ २२ ॥ अङ्ग, उपांग, चरणादिक चार भुजावाली मनोहर मूर्ति गरुड़ादिक, आयुध आकल्प, अलंकार इन चारों संयुक्त चतुर्मूर्ति भगवान् हरि ईश्वर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चारों अवस्थाओंको धारण करते हैं, जो पुरुष इन चारों मूर्तियोंका ध्यान धरते हैं, उनको भगवान् वासुदेव चार फल देते हैं ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम !

कवित्त—शौनक सुनहु यदुनाथ ब्रह्म कारण हैं, अपने प्रकाशहीते परम प्रकाशमान । महिमा महान महिमाहि जाकी पर रही, विधु वपु धार विश्व रचे अहैं अपमान ॥ पालत रमेशरूप घालत महेशरूप, मूढनको गूढ़ है अगूढ़ जे हैं भक्तिमान । ज्ञाता सब लोकनको त्राता सब दासनको दाता रघुराज निजकंजपद प्रीतिदान ॥ २४ ॥

हे राजन् ! जिन मनोहर मूर्तियोंकी उपासना कही अब उसकी सूतजी स्तुति करते हैं-हे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे अर्जुनके प्रिय सखा ! हे यदुकुलभूषण ! हे वसुधाके द्रोही राजाओंके वंशके विध्वंस करनेवाले ! हे अग्निरूप एकरस पराक्रमी ! हे गोविंद ! हे श्रवणमंगल ! हे गोपवनिताओंके समुदाय और नारद भृत्यादिकोंसे पवित्र यश गाये हुए तीर्थोंके समान-पवित्रकीर्तिवाले ! हे हरि ! हे विश्वभावन ! हे वैकुंठविहारी ! हमारी इस कालरूप संसारसे रक्षा करो ॥२५॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्रचित्त हो महापुरुष भगवान्‌के इन लक्षणोंको चित्तमें रखकर ध्यान करेगा वह सर्व घटवासी वासुदेव भगवान्‌को अपने हृदयमें विराजमान देखेगा । वह भगवान् कैसे हैं:—

कवित्त—शेषशायीनाभिजात ताकोजात, ताकोजात ताकोजात
कमल १ ब्रह्मा २ मरीचि ३ कश्यप ४
ताकोजात ताकोजात ताकोजात । ताकोजात ताकोजात ताकोजात
सूर्य ५ मनु ६ इक्ष्वाकु ७ कुक्षि ८ विकुक्षि ९ वान १०
ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात ॥ ताकोजात
अनरण्य ११ पृथु १२ त्रिशंकु १३ धुंधुमार १४ युवनाश्व १५ मांधाता १६
ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात
सुसंधि १७ ध्रुवसंधि १८ भरत १९ असित २० सगर २१ असमंजस २२
ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात ताकोजात सोईरघुवंश
अंशुमान २३ दिलीप २४ भगीरथ २५ ककुत्स्थ २६ रघु २७
अवतंस रघुराज जात ॥ २६ ॥

शनकादिक बोले कि, हे सूतजी ! मूर्तियोंके विषयमें जो व्यूह आपने कहा उसको सुनकर हमको सूर्यके व्यूह सुननेकी अभिलाषा हुई और राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने (पञ्चमस्कन्धमें) वर्णन किया था कि गन्धर्व,अप्सरा,नाग,यक्ष,दैत्य,ऋषि और देवता इन सातका सूर्य-सम्बन्धी गण मास-मास प्रति कहा है ॥२७॥ इन गणोंके नाम और इनके स्वामी सूर्योंके नाम और कर्म हमको सुनाओ, क्योंकि सूर्यनारायण भी नारायणके ही स्वरूप हैं, इसलिये उनका व्यूह श्रवण करनेकी हमारी श्रद्धा है। ॥ २८ ॥ सूतजी बोले, कि सर्वत्र जीवमात्रका आत्मा विष्णु भगवान्‌की माया है। उस अनादि मायासे रचित सब लोगोंकी सीमामें प्रवृत्त करनेवाले यह सूर्यनारायण लोकोंमें भ्रमण करते करते हैं ॥२९॥ सब लोकोंके आत्मा और आदिकर्त्ता जो विष्णु भगवान् हैं, वही प्रकटरूपसे सूर्यनारायण हैं और यह भगवान् ही सब वेदोंकी क्रियाओंका कारण हैं, इसीसे ऋषि लोग उन-उन क्रियाओंसे नाना प्रकारके कहते हैं ॥३०॥ हे शौनक ! भगवान् ही सब कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये मायाके सङ्ग काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, अनुष्ठान, यजमान, साधन, यज्ञादिक, मन्त्र, हविष्य ये नौ प्रकार हरिकी मायासे है, इस प्रकार कविलोग कहते हैं ॥३१॥ कालरूप सूर्य भगवान् चैत्रादिक बारहों मास लोगोंके कर्मोंमें प्रवृत्त करनेको अपने गणोंके साथ लिये अलग-अलग द्वादशरूप धारण किये घूमते रहते हैं ॥३२॥ चैत्रके महीनेमें कृतस्थली नाम अप्सरा, हेति नाम राक्षस, वासुकी नाग, तुम्बुरु, गंधर्व, रथकृत, यक्ष, पुलस्त्य नाम ऋषि इनके साथ धाता नाम सूर्य विचरण करता है ॥३३॥

वैशाखमें पुञ्जिकस्थली नाम अप्सरा, प्रहेत नाम राक्षस, लच्छनीर नाम नाग, नारद नाम गंधर्व, अथौजा यक्ष, पुलह ऋषि इनके साथ अर्यमा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठमासमें मेनका नाम अप्सरा, पौरुषेय नाम राक्षस, तक्षक नाम नाग, हाहा नाम गंधर्व रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि उनके साथ मित्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३५ ॥ आषाढ़ मासमें रम्भा नाम अप्सरा, मित्रस्वन नाम राक्षस, शुक्र नाम नाग, हूहू नाम गंधर्व, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठ ऋषि इनके साथ वरुण नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६ ॥ श्रावण मासमें प्रम्लोचा नाम अप्सरा, वीर्य नाम राक्षस, एलापत्र नाम नाग, विश्वावसु नाम गंधर्व, श्रोता यक्ष, अंगिरा नाम ऋषि इनके साथ इन्द्र नाम सूर्य प्रकाश करता है ॥३७॥ भाद्रपद महीनेमें अनुम्लोचा नाम अप्सरा, व्याघ्र नाम राक्षस, शङ्खपाल नाम नाग, उग्रसेन नाम गंधर्व, आसारण नाम यक्ष, भृगु नाम ऋषि इनके साथ विवस्वान् नाम सूर्य विचरण करता है ॥३८॥ आश्विन मासमें घृताची नाम अप्सरा, वात नाम राक्षस, धनंजय नाम नाग, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, गौतम नाम ऋषि, इनके साथ पूषा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ३९ ॥ कार्तिक महीनेमें सेनजित् नाम अप्सरा, वर्चा नाम राक्षस, ऐरावत नाम नाग, विश्व नाम गन्धर्व, ऋतु यक्ष, भरद्वाज नाम ऋषि इनके साथ पर्जन्य नाम सूर्य भ्रमण करता है ॥ ४० ॥ अगहनके महीनेमें उर्वशी नाम अप्सरा, विद्युत्शत्रु नाम राक्षस, महाशङ्ख नाम नाग, ऋतु सेन नाम गंधर्व, तार्क्ष्य नामक यक्ष, कश्यप ऋषि इनके साथ अंशु नामक सूर्य प्रकाश करता है ॥४१॥ पौषके महीनेमें पूर्वचित्त नाम अप्सरा, स्फूर्जरा नाम राक्षस, कर्कोटक नाम नाग, अरिष्टनेमि गंधर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि इनके साथ भग नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४२ ॥ माघ मासमें तिलोत्तमा नाम अप्सरा, ब्रह्मपेत नाम राक्षस, केवल नाम नाग, धृतराष्ट्र नाम गंधर्व, शतजित यक्ष, जमदग्नि ऋषि इनके साथ त्वष्टा नाम सूर्य विचरण करता है ॥ ४३ ॥ फाल्गुनमें रम्भा नाम अप्सरा, मखापेत नाम राक्षस; अवश्तर नाम नाग, सूर्यवर्चा गंधर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि इनके साथ विष्णु नाम सूर्य विचरण करता है ॥४४॥ यह सब सूर्यरूप विष्णुभगवान्‌की विभूतियोंका जो पुरुष दोनों संध्याकालमें स्मरण करते हैं उनके संपूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ यह सूर्यनारायण इन छहों गणोंसहित बारह महीनेमें सब ओर घूमते हैं और लोगोंको इस लोकमें और परलोकमें उत्तम बुद्धि देते हैं ॥४६॥ अप्सरायें, सुन्दर शृंगार कर-करके सूर्यनारायणके संमुख नृत्य करती हैं, बलवान् राक्षस रथको पीछेसे ढकेलते हैं, यक्ष रथको जोड़ते हैं, नाग रथको बांधते हैं, गंधर्व सूर्यके आगे यशगान करते हैं और ऋषीश्वर-मुनीश्वर ऋग्, यजु, सामवेदके मन्त्रोंसे श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥४७॥४८॥ साठ सहस्र ६०००० निर्मल वालखिल्य ब्रह्मऋषि अंगुष्ठ-प्रमाणमात्र स्वरूप सब मिलके स्तोत्रोंसे विभुके सम्मुख होकर पिछले पावोंसे चलते श्रीसूर्यनारायणकी स्तुति करते हैं ॥४९॥आदि अन्तरहित अजन्मा भगवान् हरि ईश्वर इस प्रकार कल्प-कल्पमें अपना सूर्यरूप विभाग करके सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे सूर्यव्यूहविवरणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दोहा–इस द्वादश अध्यायमें, श्रीभागवत पुराण।
वरणों सब संक्षेपसों, जो शुक किय निर्माण॥

सूतजी बोले कि, श्रेष्ठ धर्मको नमस्कार करके और सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार करके अब सब ब्राह्मणोंके चरणोंमें शिर धर इस 'श्रीमद्भागवत' पुराणमें जो-जो सनातन धर्म और सब कथाओंकी अनुक्रमणिका हैं, उन्हें मैं आपसे कहता हूँ * ॥१॥ हे ब्राह्मणो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके सुनने योग्य यह विष्णुभगवान्का अद्भुत चरित्र इसमें जो-जो प्रश्न आपने किये उन-उनके उत्तर मैंने आपको दिये ॥२॥ इस पुराणमें सब पापोंके विध्वंस करनेवाले भक्तवत्सल हृषीकेश भगवान् हरि नारायणकी साक्षात् महिमा वर्णन की है ॥ ३ ॥ अब यहांसे आगे पहले कही हुई "बारहों स्कन्ध" कीं कथाको सूतजी शौनकादिकोंको फिर स्मरण कराते हैं, जिसमें जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार ऐसे परमगुह्य परब्रह्मके यशका गान और उस परब्रह्मका प्रकाशक विज्ञान और ज्ञानके साधन इस महापुराणमें कहे हैं॥४॥भक्तियोग और भक्तियोगसे प्रकट होनेवाला वैराग्य भी कहा, नारदजीका आख्यान और परीक्षित्का उपाख्यान ॥ ५ ॥ ब्राह्मणके शापसे राजऋषि परीक्षित्का अनशन व्रत धारण करना, उन राजर्षिसहित ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी महाराजका संवाद यह सब प्रथमस्कन्धमें वर्णन किया ॥ ६ ॥ योगधारणासे प्राण छोड़ना, ब्रह्मा-नारदका संवाद और अवतारोंका वर्णन, विराट् पुरुषकी उत्पत्ति, यह सब द्वितीय स्कन्धमें वर्णन किया ॥ ७ ॥ विदुर और उद्धवका संवाद, फिर विदुर और मैत्रेयका संभाषण, पुराण संहिताके विषयमें प्रश्न, विराट् पुरुषकी रचना ॥ ८ ॥ पहले मायाके गुणोंसे महत्तत्त्वादिक सात प्रकारकी सृष्टि रची गयी, उससे फिर इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, जो कि वैराज पुरुषके रहनेका स्थान है ॥ ९ ॥ स्थूल, सूक्ष्म कालकी गति, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति, समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार, हिरण्याक्षका वध ॥ १० ॥ वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य इनकी सृष्टि, रुद्रकी सृष्टि, ब्रह्माके आधे अङ्गसे पुरुष और आधे अङ्गसे नारी (स्त्री) हुई उसमें पुरुष तो स्वायंभुव मनु और स्त्री शतरूपा हुई। कर्दम प्रजापतिसे धर्मपत्नियोंकी सन्तान कही ॥ ११ ॥ १२ ॥ जिन प्रजापति कर्दमजीसे महात्मा भगवान् कपिलदेवजीका अवतार और उन बुद्धिमान् कपिलदेवजीसे देवहूतिका सम्भाषण, ये तीसरे स्कन्धकी कथा है॥ १३ ॥ मरीच्यादिक ब्राह्मणोंकी सन्तानकी उत्पत्ति, दक्षके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, पृथु और प्राचीनबर्हि राजाके चरित्रका वर्णन, यह चौथे स्कन्धकी कथा है ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! नारद-प्रियव्रतका संवाद फिर राजा प्रियव्रतका चरित्र, नाभि राजाका आख्यान, ऋषभदेवजीका चरित्र, राजा भरतका इतिहास ॥१५॥ द्वीप, समुद्र, पर्वत,

---

* शंका—सूतजीने मुनियोंसे कहा कि अब हम सनातनधर्म कहते हैं, आप सावधान होकर सुनो-इसमें हमको यह शंका है कि पहले जो धर्म वर्णन हुआ वह सनातनधर्म नहीं है, क्या ये शीघ्रके बनाये हैं।

उत्तर—भागवतमें जो धर्म वर्णन किया है, वह सब सनातनधर्म हैं, शीघ्रके बनाये हुए कोई भी नहीं है, परंतु एक कारण है वह भी कहते हैं, मुनियोंने प्रथम इस धर्मको बहुत संक्षेपके साथ वर्णन किया था वारंवार वर्णन हुआ परंतु जब हुआ तब संक्षेपसे ही हुआ और धर्म विस्तार बहुत श्लोकोंमें कविलोग वर्णन करते हैं, इस अध्यायमें वारह स्कन्धोंकी कथाको व्यासजीने थोड़ेहीमें वर्णन की है जैसे पहले मुनिजनोंने थोड़े श्लोकोंमें सम्पूर्ण धर्म वर्णन किये थे, इस लिये सूतजीने कहा था कि, अब मैं सनातनधर्म वर्णन करता हूँ, क्योंकि सनातनधर्म तो वो ही हैं जो मुनिलोग थोड़े श्लोक करके वर्णन किये थे, बहुत विस्तार तो पीछेसे कवि लोगोंने किया सूतने ऐसे विचार कर ही कहा था कि अब-तक सनातनधर्म वर्णन नहीं हुआ, सनातनधर्म अब वर्णन करता हूँ।

खण्ड और नदियोंका वर्णन, ज्योतिश्चक्रका स्थापन, पातालकी रचना, नरकोंका वर्णन यह पञ्चमस्कन्धकी कथा है॥ १६ ॥ प्रचेतानसे दक्षका जन्म, फिर उन दक्षकी पुत्रियोंका वृत्तान्त जिस सन्तानसे देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी आदिकी उत्पत्ति ॥१७॥ हे ब्राह्मणो! वृत्रासुरका जन्म और दितिके दोनों पुत्रोंकी उत्पत्ति, हिरण्यकशिपुका और महात्मा प्रह्लादका चरित्र ये षष्ठ और सप्तम स्कन्धकी कथा हैं॥ १८ ॥ मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेन्द्रको छुड़ाना मन्वन्तरमें विष्णु भगवान्के हयग्रीवादिक अवतारोंका वर्णन ॥ १९ ॥ भगवान्के अवतार—कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, वामनका उपाख्यान, देवताओंको समुद्रका मथना ॥ २० ॥ देवता, असुरोंका महाभयंकर संग्राम ये अष्टमस्कन्धकी कथा हैं। राजाओंके वंशोंका वर्णन, राजा इक्ष्वाकुका जन्म और उनके वंशका वर्णन और महात्मा सुद्युम्नका इतिहास ॥२१॥ इला और तारका आख्यान, शशादि मृगादि सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन ॥ २२ ॥ सुकन्याका चरित्र, शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् ककुत्स्थका उपाख्यान, खट्वांग, मान्धाता, सौभरि, सगरका चरित्र ॥ २३ ॥ कौशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी कथा, सब पापोंका नाशक निमिके शरीरका त्याग, जनकवंशियोंकी उत्पत्ति ॥ २४ ॥ भृगुवंशी परशुरामजीका पृथ्वीको निःक्षत्रिय करना, चन्द्र-वंशी ऐलादि ययाति राजा नहुषका वृत्तांत ॥२५॥ दुष्यन्तका पुत्र राजा भरत, शंतनु और शंतनुके पुत्रका चरित्र और राजा ययातिके ज्येष्ठ पुत्र राजा यदुके वंशका वर्णन, ये नवमस्कन्धकी कथा है ॥२६॥ जिस यदुके वंशमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जग-दीश्वरने अवतार लेकर भूमिका भार उतारा था, वह वृत्तांत इस भांति है कि—वसुदेवके घर अवतीर्ण होकर गोकुल गये और वहां वृद्धि पायी ॥२७॥ असुरोंके शत्रु श्रीकृष्णजीके अपार चरित्र हमने कहे, बाल अवस्थामें पूतनाके प्राणसहित स्तनोंका पान, लात मारकर शकटका तोड़ना, तृणावर्त्त और वत्सासुरका मारना, अघासुरका वध, ब्रह्माका वत्स और बालकोंका हरना, धेनुक और प्रलम्बासुरका वध ॥२८॥२९॥ सब ओर फैली हुई दावानलसे गोपगायोंको बचाना, कालिय सर्पका दमन और महा अजगर सर्पसे नन्दजीको छुड़ाना ॥ ३० ॥ व्रज-कन्याओंका व्रत करना और व्रतसे अच्युत भगवान्का प्रसन्न होना, द्विजपत्नियोंपर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणोंको पश्चाताप करना ॥ ३१ ॥ गोवर्धनपर्वतका करपर धरना, सुरभियोंके सहित इन्द्रका किया श्रीकृष्णका अभिषेक और रात्रिके समय व्रजबालाओं सहित श्रीकृष्णकी रास-क्रीडा ॥३२॥ दुर्बुद्धि शंखचूडका वध और केशी अरिष्टका संहार, अक्रूरका ब्रजमें आना, फिर रामकृष्णका मथुराको प्रस्थान ॥ ३३ ॥ उस समय व्रजयुवतियोंका विलाप, उसके पीछे मथुराका देखना और मुष्टिक, चाणूर, कंसादिक दैत्योंका वध ॥ ३४ ॥ सान्दीपन गुरुके मरे हुए पुत्रको फेरकर ला देना, मथुरामें बसकर उद्धव बलदेव सहित मिलकर यादवोंसे स्नेह करना ॥३५॥ हे विप्रो! जरासन्धकी लायी हुई सेनाका वारंवार वध करना और मुचकुन्द-द्वारा कालयवनका मरना और समुद्रके टापूमें द्वारकापुरीका वसाना॥३६॥इन्द्रलोकसे पारि-जात और सुधर्मा सभाका ले जाना और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर रुक्मिणीको हर लाना ॥३७॥ युद्धमें जृम्भास्त्र करके शिवको जम्भाई लेना, बाणासुरकी भुजाओंका काटना नरका-सुरका मारना, सोलह सहस्र एकसौ आठ (१६१०८) कन्याओंका उद्धार ॥३८॥ शिशुपालका वध, मिथ्या वासुदेवका मारना, शाल्वका संहार, दुर्मति दन्तवक्रका दमन, द्विविदका हनन, पीठासुरका प्राणहरण, मुरका मारण, पञ्चजनदैत्यको मारकर कृतार्थ करना ॥ ३९ ॥

काशीका जलाना, दैत्योंका प्रभाव प्रकट करना, पांडवोंको निमित्तमात्र बनाकर पृथ्वीका भार उतारना, यह दशमस्कन्धकी कथा है ॥४०॥ ब्राह्मणके शापका बहाना रखकर अपने कुलका संहार करना, वसुदेव और उद्धवका उत्तम संवाद ॥४१॥ जिस संवादमें आत्मतत्त्वका निर्णय और धर्मका निर्णय फिर अपनी मायाके प्रभावसे मनुष्यलोकका छोड़ना यह एकादशस्कंधकी कथा है ॥ ४२ ॥ युगोंके लक्षण, उन युगोंमें जीविकाका वर्णन, कलियुगमें उपद्रव और चार प्रकारकी प्रलयका वर्णन मायासे और ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी उत्पत्ति ॥४३॥ बुद्धिमान् राजर्षि विष्णुरातका देहका त्यागना, व्यासजीसे वेदकी शाखाओंका विस्तार, मार्कण्डेय ऋषिकी सुन्दर कथा ॥४४॥ हे द्विजोत्तम ! जगत्के आत्मा सूर्यनारायणका मासमासका वर्णन, तुमने जो कुछ हमसे पूछा वह सब कहा, इस भागवत पुराणमें भगवान्की लीला अवतारसंबन्धी कर्मोंका यश गाया है ॥४५॥ गिरते, पड़ते, उठते, बैठते, विपत्तिके समय छींकते विवशतासे ऊँचे स्वरसे "हरये नमः" जो पुरुष इस प्रकार कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥४६॥ जो पुरुष भगवान्का कीर्तन करता है अथवा उनके गुणोंको गाता है, तो अनंत भगवान् उसके चित्तमें प्रवेश करके सब पापोंको दूर कर देते हैं, जैसे सूर्यनारायण अंधकारको, पवन मेघोंको दूर करता है ॥४७॥ जिस वाणीसे भगवान् अधोक्षजकी सत्कथा नहीं गायी जाती उस वाणीको मिथ्या और विषयवाली समझना चाहिए, जिसमें भगवान्के नामका गुणानुवाद हो, वही वाणी सत्यमंगलरूप और पवित्र करनेवाली है॥४८॥वही वाणी रमणीक और रुचिर नित्य नये-नये मनको महाउत्सवरूप मनुष्योंके शोक-समुद्रको सुखानेवाली है, जिस वाणीसे उत्तमश्लोक भगवान्का यश गाया जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीमें चित्र-विचित्र पद भी हो, और उत्तम रचना भी हो, परंतु जगत्के पवित्र करनेवाला हरिका यश कुछ नहीं है, तो उस वाणीमें काकके तुल्य विषयी रमण करते हैं हंसके समान साधुजन उस वाणीसे संतुष्ट नहीं होते। साधुजन उसी पवित्र वाणीमें रमण करते हैं जिस वाणीमें अच्युत भगवान्का वर्णन है ॥५०॥ जिस वाणीमें श्लोकश्लोकमें उत्तम पदरचना नहीं केवल हरियश और हरि नामका ही वर्णन है, वह वाणी प्राणियोंके पापोंके समूहोंको नाश करनेवाली हैं, उस वाणीको निर्मलचित्तवाले सब सुनते हैं, गाते हैं और कहते हैं ॥५१॥ब्रह्मका प्रकाश करनेवाला निर्मूल भी जो अच्युत भगवान्के भावसे रहित है, वह किसी प्रकार शोभित नहीं होता, उत्तम कर्म भी ईश्वरके अर्थ विना अमंगलरूप है, वह किसी प्रकार शोभित नहीं हो सकता ॥५२॥ वर्णाश्रमके आचार, तप, वेदाध्ययन आदिमें बड़े परिश्रमसे केवल यश और ऐश्वर्य प्राप्त होता है, परन्तु हरिके गुणका कथन और श्रवणादि करनेसे भगवान्के चरणकमलका नित्यप्रति स्मरण होता है ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दका स्मरण सदा अमंगलका हरनेवाला मंगलका विस्तार करने वाला और अन्तःकरणको शुद्ध करता है, परमात्मामें स्नेह बढ़ाता है और ज्ञान-विज्ञान सहित वैराग्यको देता है ॥ ५४ ॥ हे द्विजोत्तम ! आप बड़े भाग्यवान् हो; जो अखिल लोकोंके आत्मा भगवान् सर्वोत्तम, सर्वान्तर्यामी सर्वहितकारी नारायणदेवको निरन्तर हृदयमें धारण करके सदा अखण्ड भावसे भजते रहते हो ॥५५॥ जबकी राजापरीक्षित् अन्न पानी त्यागकर गंगाके किनारे जा बैठे, उस समय बड़े-बड़े ऋषीश्वर-मुनीश्वर श्रीमद्भागवतके सुननेको उस सभामें विद्यमान थे, वहां श्रीशुकदेवजीके मुखसे पहले मैंने जो कुछ सुना था उस आत्मतत्त्वका ज्ञान मुझको आपने स्मरण कराया,

यह आपने बड़ी कृपादृष्टि की ॥ ५६ ॥ हे विप्रो ! जिनके सब कर्म और चरित्र वर्णन करनेके योग्य हैं, उन वासुदेव भगवान्‌का कीर्तन और माहात्म्य सब अशुभोंका विनाशकरनेवाला है, वह मैंने आपलोगोंके सम्मुख वर्णन किया ॥५७॥ जो कोई पुरुष अनन्य बुद्धि हो नित्य एक पहर, वा एक क्षण इस माहात्म्यको सुने ❋ अथवा जो कोई पुरुष श्रद्धापूर्वक इसको सुनाये, वह प्राणी अपने आपको पवित्र करता है॥५८॥जो कोई पुरुष एकादशी वा द्वादशीके दिन इस महापुराण भागवत्‌को सुने उसका आयुर्बल अधिक होता है और जो कोई निर्जलव्रत धारण करके एकाग्रचित्त हो इसका पाठ करे वह सब पापोंसे छूटकर निष्पाप हो जाता है ॥ ५९ ॥ पुष्कर, मथुरा, द्वारकामें वास करके एकाग्रचित्त हो जो इस संहिताको पढ़ेगा वह सब मायादि-कोंसे छूट जायगा ॥६०॥ जो कोई इस महापुराणसंहिताको सुनता है, कीर्त्तन करता है उसको देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य और राजालोग ये सब मनोवांछित मनोरथ देते हैं ॥६१॥ द्विजवर्णोंको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदके पढ़नेसे जो फल प्राप्त होता है और शहदकी नदी, घृतकी नदी, दूधकी नदी दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह सब फल इस महापुराण संहिताके पढ़नेसे होता है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष पवित्र होकर इस महापुराण संहिताको पढ़ते हैं, वे भगवान् वासुदेवके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६३ ॥ इस महापुराण संहिताको ब्राह्मण पढ़कर उत्तम बुद्धिको प्राप्त होते हैं, क्षत्रिय पढ़े तो उदय अस्ततक सर्वत्र भूमण्डलका राजा हो, वैश्य पढ़े तो निधिपति हो और शूद्र पढ़े तो सब पापोंसे छूट जाय ॥ ६४ ॥ कलिकालके मलके समूहोंका विध्वंस करनेवाले अखिलेश्वर वासुदेव भगवान् इस प्रकार और दूसरे शास्त्रोंमें वारंवार नहीं गाये गये और इस पुराणमें तो कथाओंके प्रसंग-प्रसंगमें पद-पदमें अशेष मूर्ति भगवान्‌के ही चरित्र गाये गये हैं, इसीसे इस पुराणका नाम महापुराण है ॥६५॥ जगत्‌की उत्पत्ति पालन संहार करनेवाली जिनकी शक्ति है और ब्रह्मा-इंद्र, शिवादिक देवताओंको जिनकी स्तुति दुर्लभ है, ऐसे अजन्मा अनन्त आत्मतत्त्व अच्युत भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ६६ ॥ वृद्धिको प्राप्त हुई प्रकृति आदि शक्तियोंसे जिसने अपने स्वरूप स्थावर, जंगम उत्पन्न किये । वे ऐसे सबमें व्याप्त, देवताओंमें श्रेष्ठ, अनादि, ज्ञानमात्र स्वरूप भगवान्‌को मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ६७ ॥ अपने आत्मसुखसे ही सम्पूर्णचित्त

❋ दृष्टांत—परन्तु ऐसी कथा नहीं सुननी चाहिये, जैसी कथा एक पंडितजीने कही और बुढ़िया स्त्रीने सुनी। एक पंडित किसी ठाकुर द्वारेमें कथा कहते थे और एक बुढ़िया भी कथा सुननेको जाया करती थी, और वहाँ बैठकर बहुत रोती, पंडितजीने समझा कि यह बुढ़िया बड़ी प्रेमिन है, कुछ अधिक दक्षिणा चढ़ायेगी, जब कथा सम्पूर्ण होनेका दिन आया तो बुढ़िया नहीं आयी । पंडितजीने कथामें कुछ बिलंब भी किया परन्तु बुढ़िया तब भी न आयी । अब कथा पूरी हो चुकी, पंडितजीने जाना कि बुढ़ियाको कुछ हो गया नहीं तो बुढ़िया अवश्य आती। दूसरे दिन पंडितजीने कहा कि बुढ़ियाके घरको चलें, कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जायगी, । यह विचार उसके द्वार पर पहुंचे और जाकर पुकारा, बुढ़िया चरखा कात रही थी, बोली पंडितजी आओ। बैठ जाओ कैसे कृपा की पंडितजी। बोले बुढ़िया कैसे हो कल कथा भी समाप्त हो गयी और तू तो बड़ी प्रेमिन थी। फिर न आनेका क्या कारण ? तू तो घण्टोंतक कथामें बैठी रोया करती थी ? तब बुढ़िया बोली क्या कथाको सुनकर थोड़े ही रोती थी। पंडितजी बोले कि फिर क्यों रोती थी ? बुढिया बोली कि जैसा तुम्हारी पोथी बांधनेका वस्त्र है ऐसा ही मेरी लल्ली मोहिनीके लाल पाजामा था उसको देखते ही मोहिनीके लाला मुझको याद आ जाते थे, इसलिये रोती थी । पंडितजी सुनते ही सुन्न हो गये और उठकर सीधे अपने घरको चले गये।

होनेसे अन्य पदार्थोंमें भाव न रखनेवाले, कि जिन्होंने अपना मन नारायणकी सुंदर लीलाओंमें आकर्षित होनेसे नारायणके तत्त्वका प्रकाशक यह पुराण संसारके उपकारके लिये अनुग्रह करके प्रगट किया है, उन सब जगत् के पाप दूर करनेवाले व्यास पुत्र श्रीशुकदेवजी महाराजको प्रणाम करता हूँ ॥ ६८ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे शालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

दोहा—इस तेरह अध्यायमें, पूरण होत पुराण।
संख्या सकल पुराणकी, बरणौं सहितप्रमाण ॥

सूतजी बोले कि ब्रह्मा, वरुण, इंद्र और मरुत देवता दिव्य स्तोत्रोंसे जिन भगवान् की स्तुति करते हैं और सांगोपांग पदक्रम उपनिषद् सहित वेदोंसे सामवेदके गानेवाले जिनका गान किया करते हैं और ध्यानमें स्थित होकर मन लगाकर योगी जिनको देखा करते हैं, देवता असुरगण जिनका आदि अंत नहीं जान सकते, ऐसे परमदेवको वारंवार मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥ पीठपर भ्रमते श्रेष्ठ मंदराचलकी शिलाओंके अग्रसे गात्र खुजानेके समान निद्राका अनुभव करते कच्छपरूप भगवान् के श्वासोंकी पवन तुम सबोंकी रक्षा करे, जिस पवन संस्कारके लेश अनुवर्तनके वशसे समुद्रके क्षोभके मिष करके निरंतर आना-जाना बन्द नहीं होता, नित्य घटता-बढ़ता रहता है, आजतक विश्राम नहीं लेता, वह तुम्हारी रक्षा करे ❋ ॥२॥ पुराणोंकी संख्याका निरूपण और श्रीभागवतका विषय, प्रयोजन, दान और दानका माहात्म्य और पाठादिकोंका माहात्म्य अब सावधान होकर हमसे सुनिये ॥३॥ ब्रह्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है, पद्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या पचपन सहस्र है ५५००० है, विष्णुपुराणके श्लोकोंकी संख्या तेईस सहस्र २३००० है, शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, नारदपुराणके श्लोकोंकी संख्या पच्चीस सहस्र २५००० है, मार्कण्डेयपुराणके श्लोकोंकी संख्या नव सहस्र ९००० है, अग्निपुराणके श्लोकोंकी संख्या पन्द्रह सहस्र चारसौ १५४०० है ॥५॥ भविष्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र पांचसौ १४५०० है, ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्लोकोंकी संख्या अठारह सहस्र १८००० है, लिंगपुराणके श्लोकोंकी संख्या ग्यारह सहस्र ११००० है ॥ ६ ॥ वाराहपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौबीस सहस्र २४००० है, स्कन्दपुराणके श्लोकोंकी संख्या इक्यासी सहस्र एकसौ ८११०० है, वामनपुराणके श्लोकोंकी संख्या दशसहस्र १०००० है ॥ ७ ॥ कूर्मपुराणके श्लोकोंकी संख्या सत्रह सहस्र १७००० है, मत्स्यपुराणके श्लोकोंकी संख्या चौदह सहस्र १४००० है, गरुड़पुराणके श्लोकोंकी संख्या उन्नीस सहस्र १९००० है, ब्रह्मांडपुराणकी संख्या बारह सहस्र १२००० है ॥ ८ ॥ इस प्रकार अठारह पुराणोंके श्लोकोंकी संख्याका प्रमाण चार लाख ४०००००

---

* शंका—श्रीमद्भागवतकी समाप्तिमें सूतजीने अपने गुरुको और सब देवताओंको ब्रह्मा विष्णु भगवान्के सब अवतारोंको इन सबको त्यागकर कच्छप भगवान्को नमस्कार क्यों किया?

उत्तर—जैसे कच्छप भगवान्की कृपासे समुद्रको मथकर देवतालोगोंने अमृत पाया उस अमृतको पाकर देवताओंका मनोरथ सिद्ध हुआ ऐसे ही, सूतजी कूर्मका स्मरण करके समुद्ररूप भागवतके पार हो गये इसलिये सूतजीने अपने नेत्रोंसे प्रेमके आंसू बहाते हुए सबको त्यागकर कूर्मभगवान्को नमस्कार किया और भगवान्के अवतारोंमें कुछ भेद नहीं है।

श्लोकका है। यह प्रमाण कवीश्वरोंने कहा है, जिसमें भागवत अठारह सहस्र १८००० है ॥९॥ अपने नाभिकमलमें विराजते हुए संसारमें भयभीत ब्रह्माजीको भागवत पुराण भगवान्ने सुनाया था ॥१०॥ इस श्रीमद्भागवत महापुराणके आदि, मध्य और अन्तमें पूर्ण वैराग्यके ही उपाख्यान कहे हैं, इस पुराणने हरिकी लीला और कथाओंके समूह अमृतसे साधुओंको और देवताओंको आनंद कर रखा है, ऐसा आनंददायक और अघघातक यह श्रीमद्भागवत पुराण ही है ॥११॥ सम्पूर्ण वेदांतका सारभूत, ईश्वर जीवकी एकताको दर्शानेवाला जो यह अद्वितीय पदार्थ (परब्रह्म) है वह इस महापुराणका विषय है और मुख्य प्रयोजन इस महापुराणका केवल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है ॥ १२ ॥ भादो सुदी पूर्णमासीके दिन सोनेके सिंहासन सहित जो मनुष्य इस महापुराण श्रीमद्भागवतका दान करे वह परमोत्तम गतिको पाता है ॥ १३ ॥ उसी समयतक और दूसरे पुराण महात्मा पुरुषोंकी मण्डलीमें शोभा पाते हैं जिस समयतक अमृतके समुद्ररूप यह ‘ श्रीमद्भागवत ’ महापुराण सुननेमें नहीं आता ॥१४॥ उपनिषद् और वेदान्तका सार श्रीमद्भागवतको माना है इसलिये इस पुराणके अमृत-रससे जो प्राणी तृप्त हो रहे हैं उनकी प्रीति किसी और ठौर नहीं ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ मानी हैं, देवताओंमें अच्युत भगवान् सर्वसुखदानी हैं, वैष्णवोंमें महादेव परमज्ञानी हैं, ऐसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवत बखाना है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! जैसे संपूर्ण क्षेत्रोंमें परमोत्तम काशी है ऐसे ही सब पुराणोंमें अत्युत्तम श्रीमद्भागवत पुराण है ॥ १७ ॥ परमहंसोंका परम प्रिय निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान रसमें गाया है और निर्दोष परब्रह्मका निरूपण करके दर्शाया है भक्ति, ज्ञान, वैराग्यको एकत्र करके भगवत्तत्त्व जिसमें झलकाया है, ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो कोई भक्तजन भक्तिसे सुने वा पढ़े और हितचित्तसे विचारे, वह इस संसारसागरसे पार उतरकर परमधामको जाता है ॥१८॥ प्रथम विष्णु भगवान्ने इस अतुल श्रीमद्भागवत रूप ज्ञानदीपकको करुणा करके ब्रह्माजीके सम्मुख प्रकाशित किया, ब्रह्माजीने ब्रह्मरूप धारण करके नारदजीके आगे प्रकाशित किया, फिर नारदरूप होकर व्यासजीके निकट प्रकाशित किया, फिर वेदव्यासरूपसे परमयोगेश्वर श्रीशुकदेवजीके समीप प्रकाशित किया, अन्तमें श्रीशुकदेवरूप धरकर करुणानिधान भगवान्ने करुणा करके विष्णुरात राजा परीक्षित् के सामने प्रकाशित किया, उन शुद्धसत्त्व, निर्मल, सदा आनन्दमय निरुपाधि, सर्वोत्तम, मोक्षरूप परब्रह्म वासुदेव भगवान् का हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ सर्वसाक्षी वासुदेव भगवान्ने जो अनुग्रह करके यह श्रीमद्भागवत पुराण संसारसे मुक्ति पानेवाले ब्रह्माजीके आगे वर्णन किया उन विष्णु भगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥२०॥ जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डँसे हुए विष्णुरात राजा परीक्षित्को छुड़ाया, उन ब्रह्मरूपयोगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥२१॥ हे योगेश ! हे प्रभो ! जिस प्रकार जन्मजन्मान्तरमें आपके कोमल अमल चरणकमलकी भक्ति हो,ऐसा कोई उपाय कहो, क्योंकि हमारे ऊपर दया करने और कष्ट हरनेवाले आप ही नाथ हो ॥ २२ ॥ जिन श्रीकृष्णभगवान्के नामका संकीर्तन सब पापोंका नाशक है और जिनको नमस्कार करनेसे सम्पूर्ण विघ्नोंकी शांति हो जाती है उन सर्वोत्तम सर्वान्तर्यामी भगवान्को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीभाषाभागवते महापुराणे उपनामशुकसागरे श्रीरामगङ्गातटस्थमुराबादनगर-निवासिसुप्रसिद्धकविवरमाथुरवंशीय-श्रीयुतशालग्रामवैश्यकृते द्वादशस्कन्धेऽष्टादश-साहस्र्यां संहितायां संक्षेपभागवतवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ श्रीभाषाभागवत अर्थात् श्रीशुकसागर समाप्त ॥

मङ्गल-कामना

दोहा-व्यासपुत्र शुकदेवको, विनवत वारंवार ।
जिनकी कृपाकटाक्षसे, मिटत अनेक विकार ॥ १ ॥
"शुकसागर" पूरण भयो, गुरुप्रसादसे आज ।
पढ़े सुनेते जासुके, सिद्ध होत सब काज ॥ २ ॥
हरिलीलामृत जानिकै, जहँ तहँ किय विस्तार ।
तामें दोष न दीजिये, सज्जन सकल उदार ॥ ३ ॥
यदपि मूलभर रचनको, निजमन कियो विचार ।
वर्णत वर्णत बढ़ गयो, कृष्णचरित्र अपार ॥ ४ ॥
होत न चितमें तृप्तता, निशि दिन यही विचार ।
बढ़ै कृष्णलीला अधिक, मुद मंगल दातार ॥ ५ ॥
शशि शशिधरमुख रस धरणि, संवतविक्रम व्याप्त ।
ज्येष्ठ शुक्र द्वितिको भयो, शुकनिधि ग्रंथसमाप्त ॥ ६ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज निधिराज ।
छाय रह्यो जिनको सुयश, देश देशमें आज ॥ ७ ॥
वैश्यवंशमें जन्म ले, रविसम कियो प्रकाश ।
वास बम्बईमें करत, पूजत जनमन आश ॥ ८ ॥
जिन जिन ग्रन्थनको कभी, नाम सुनो नहिं कान ।
मुद्रित करि करि ग्रंथसो, निशिदिन करत प्रदान ॥ ९ ॥
पुत्र पौत्र परपौत्र हों, बढ़े अधिक परिवार ।
मांगत शालिग्राम यह, हरिसों वर हर बार ॥ १० ॥
मैं अजान जानत नहीं, गद्य पद्यको सार ।
पण्डितजनजनजान मोहिं, लीजो सकल सुधार ॥ ११ ॥
सम्पूरण भो भागवत, भक्ति मुक्तिको धाम ।
लिखत शांतिके हेतु अब, विष्णुसहस्रो नाम ॥ १२ ॥

अथ विष्णुसहस्र नाम

छन्द पद्धरी

जय विश्व विष्णु जय वषट्कार । प्रभु भूत भव्य भवतहु उदार ॥
जय भूत कृतहु जय भूत भृत्त । जय भाव जय जयति भूतात्म नित ॥ १ ॥
जय जयति भूत भावन परेश । जय भूतात्मा परमात्मवेश ॥
जय मुक्तनके गति परमनाथ । जय अव्यक्त कृत दासन सनाथ ॥ २ ॥
जय पुरुष साक्षि क्षेत्रज्ञ वीर । जय अक्षर योग स्वरूप धीर ॥
जय योगविदनके हो नियंत । परधान पुरुष ईश्वर अनन्त ॥ ३ ॥
जय नारसिंह वपु श्रीनिधान । जय केशव पुरुषोत्तम सुजान ॥
जय सर्व सर्व जय शिव सुयान । भूतादिकहु अव्यय निधि सुजान ॥ ४ ॥

जय सम्भव भावन भर्त सोय। जय प्रभव प्रभो ईश्वरहि जोय ॥
जय जय स्वयंभु जय शंभु ईश। आदित्य पुष्कराक्षहु सुदीश ॥ ५ ॥
जय जयति महास्वन भुवन माहि। जय जय अनादि निधनहु सदाहि ॥
धाता विधात जय धात धेय। जय धात उत्तमहु अप्रमेय ॥ ६ ॥
जय हृषीकेश जय पद्मनाभ। जय अमर प्रभो घनश्याम आभ ॥
जय विश्व कर्म जय मन त्वष्ट। जय जय थविष्ट जय थविर इष्ट ॥ ७ ॥
जय ध्रुव अग्राह्यहु सरसिजाक्ष। जय शाश्वत कृष्णहु लोहिताक्ष ॥
जय जयति प्रतर्दन जय प्रभूत। जय त्रिककुब्धामहु यश अकूत ॥ ८ ॥
जय करन पातकिन कहँ पवित्र। जय मंगलपर ईशान मित्र ॥
जय प्राणद प्राणहु ज्येष्ठ श्रेष्ठ। जय परजापति अतिकुमतिनेष्ठ ॥ ९ ॥
जय हिरणगर्भ भूगर्भ धारि। जय माधव मधुसूदन मुरारि ॥
जय ईश्वर जय विक्रमी राम। जय धन्वी माधवी अराम ॥ १० ॥
जय विक्रम जय क्रम कौशलेश। जय जयति अनुत्तम द्वारिकेश ॥
जय दुराधर्ष जय जय कृतज्ञ। जय जय कृति आतमवन्त प्रज्ञ ॥ ११ ॥
जय जय सुरेश जय शरण शर्म। जय विश्वरेत धारक सुधर्म ॥
जय जयति प्रजाभव अहकृपाल। जय जय संवत्सर जयति व्याल ॥ १२ ॥
जय प्रत्यय सब दर्शन प्रसिद्ध। जय अज सर्वेश्वर जयति सिद्ध ॥
जय सिद्धि जयति सर्वादि श्याम। जय अच्युत जय सब अंग ललाम ॥ १३ ॥
जय जयति वृषाकपि अमेयात्म। जय सर्व योग विनिश्चित महात्म ॥
जय वसु वसुमना असतिसमात्म। जै संमित समजय अमोघात्म ॥ १४ ॥
जय जयति पुण्डरीकाक्ष दक्ष। जय जय वृषकर्मा प्रबल पक्ष ॥
जय जयति वृषाकृति रुद्ररूप। जय बहुशिर जय बभ्रू अनूप ॥ १५ ॥
जय विश्वयोनि शुचि अवससत्य। जय अमृत शाश्वत स्थाणुनित्य ॥
जय वरारोह यादव प्रधान। जय जयति महातप प्रभु महान ॥ १६ ॥
जय सर्वतज्ञ सर्वहि विज्ञात। जय विष्वक्सेनहु भानु भात ॥
जय जयति जनार्दन जयति वेद। जय जयति वेदविदप्रद अषेद ॥ १७ ॥
अव्यंग जयति वेदांग ज्ञात। जय जयति वेद विद कवि विख्यात ॥
जय जयति सकललोकन अध्यक्ष। जय जयति जयति देवन अध्यक्ष ॥ १८ ॥
जय धर्माध्यक्षहु जय सुआत्म। जय जयति कृताकृत चतुर आत्म ॥
जय चतुर्व्यूह जय चतुर्दंत। जय चारिबाहु भ्राजिष्णु सन्त ॥ १९ ॥
जय जय भोजन भोक्ता ललाम। जय जय सहिष्णु जगदादि जाम ॥
जय अनघ विजय जेता गोविंद। जय विश्वयोनि आनन्दकंद ॥ २० ॥
जय जयति पुनर्वसु जय उपेन्द्र। जय वामन जय प्रांसु व्रजेन्द्र ॥
जय जय अमोघ जय शुचिस्वरूप। जय ऊर्जित अति इन्द्रहु अनूप ॥ २१ ॥
जय संग्रह सर्ग धृतात्म सोय। जय नियम जयति यम वैद्य जोय ॥
जय वैद्य सदा योगी अकाम। वीरघ्न जयति जय कृष्ण राम ॥ २२ ॥
जय माधव जय मधु रमाकान्त। जय अतीन्द्रियहु आधार सन्त ॥
जय महाकाय जय महोत्साह। जय जयति महावल यश अथाह ॥ २३ ॥

जय महाबुद्धि जय महावीर्य । जय महाशक्ति जय महाधीर्य ॥
जय जयति महाद्युति जगतवास । जय अनिर्देश्यवपु श्रीनिवास ॥ २४ ॥
जय अमेयात्म ईश्वर महान । जय महा अद्रि धृतिथुत विज्ञान ॥
जय महेश्वास जय मही भर्त्त । जय श्रीनिवास खल दलन दर्त्त ॥ २५ ॥
जय सन्तन गति अनिरुद्ध क्रुद्ध । जय सुरानन्द गोविन्द बुद्ध ॥
जय जयति गोविदन पति सुजान । जय जय मरीचिदमनो महान ॥ २६ ॥
जय हंस सुपर्णहु हिरणनाभ । भुजगोत्तम सुत यह पद्मनाभ ॥
जय जयति प्रजापति जयअमृत्य । जय जयति सर्वद्रस सिंह सत्य ॥ २७ ॥
संधाता जय जय संधमान । जय थिर जय अज करुणानिधान ॥
दुर्मर्षण शास्त्रहु विश्रुतात्म । जय सुरारिघ्न गुरु परम आत्म ॥ २८ ॥
जय गुरुतम जय जय धामसत्य । जय सत्य पराक्रम रूप नित्य ॥
जय निमिष जयति अनिमिषसुमालि।जय वाचस्पति व्रज कुञ्जशालि ॥ २९ ॥
जय बुद्धि उदार अग्रणीज्ञान । जय जयति ग्रामणी जय श्रीमान ॥
जय न्यास समीरण जय नियन्त । जय सहसशीर्ष विश्वात्म संत ॥ ३० ॥
जय सहस अक्ष जयसहसपाद । जय आवर्त्तन जय धृत म्रजाद ॥
जय निवृत्त आत्म संवृत्त सुजान । जय संप्रमर्दनहु अमल थान ॥ ३१ ॥
जय जय अह संवर्त्तक परेश । जय वह्नि अनिल धरणी धरेश ॥
जय सुप्रसाद जय प्रसन्नात्म । जय विश्वसृजक जय शुद्ध आत्म ॥ ३२ ॥
जय विश्वमोचि विभु सत करंत । जय जय सतक्रुत जय साधुसन्त ॥
जय जह्नु नारायण निराकार । जय असंख्येय अतिशय उदार ॥ ३३ ॥
अप्रमेयात्म जय जय विशिष्ट । जय जयति सृष्टिकृत शुचि प्रतिष्ठ ॥
सिध्यर्थ सिद्धसंकल्प नाम । जय सिद्ध सिद्ध साधन अराम ॥ ३४ ॥
जय जयति वृषाही वृषभ विष्णु । वृषपर्व वृषोदर वर्ध विष्णु ॥
जय वर्द्धमान जय जय विविक्त । जय जय श्रुतिसागर सुभुज निक्त ॥ ३५ ॥
जय दुर्धर वाग्मी जय महेंद्र । जय वसुद जयति वसु जय गवेंद्र ॥
जय जय अनेकवपु बृहद्रूप । शिपिविष्ट प्रकाशन अवध भूप ॥ ३६ ॥
जय ओजतेज द्युति धृत अनंत । जय प्रकाशात्म जय रमाकन्त ॥
जय जयति प्रतापन रिद्धि सोय । जय जय असपष्टाक्षरहु जोय ॥ ३७ ॥
चन्द्रांशुमंत्र भास्कर प्रकाश । जय अमृतअंशु भव भानु भास ॥
शशिबिन्दु सुरेश्वर औषधीश । जय जगतसेतु जय सत्य ईश ॥ ३८ ॥
जय सत्य धर्म विक्रम अमान । जय भूत भव्य भवपति महान ॥
जय पवन जयति पावन मुरारि । जय अनल जयति मनसिजविहारि ॥ ३९ ॥
जयजयति काम कृत कांतकाम । जय जयति कामप्रद प्रभु ललाम ॥
जय जय युगादि कृत युगावर्त । जय जय सकाम बहु अशन कर्त ॥ ४० ॥
जय जय अदृश्य अव्यक्तरूप । जय जय सहस्रजित छबि अनूप ॥
जय जय अनंत जित मोद धाम । इष्टहु विशिष्ट शिष्टेष्ट नाम ॥ ४१ ॥
जय जय शिखंडि जयनहुषवीर । जयजय वृष जय क्रोधघ्नधीर ॥
जय जयति क्रोधकृत कर्त्तृ कृष्णु । जय विश्वबाहु महिधर सुविष्णु ॥ ४२ ॥

जय जय अच्युत जय प्रथिप्राण । जय प्राणद इन्द्रानुज प्रधान ॥
जय जयति अंबुनिधि अधिष्ठान । जय अप्रमत्त भगवान् ज्ञान ॥ ४३ ॥
असकंध प्रतिष्ठित जयति राम । असकंध धार जय धुर्ज धाम ॥
जय वरद वायु वाहन महान । जय वासुदेव जय बृहदभान ॥ ४४ ॥
जय जयति पुरन्दर आदिदेव । जय जय अशोक तारन सुभेव ॥
जय तार सूर जय सौरि शुद्ध । जय जयति जनेश्वर शुद्धबुद्ध ॥ ४५ ॥
जय जय अनुकूलहु सतावर्त । जय पदमी दासन दुष्यं दर्त ॥
जय पद्म निभेक्षण पद्मनाभ । जय अरविंदाक्ष अनूप आभ ॥ ४६ ॥
जय पद्मगर्भ जय भृत शरीर । जय जय महर्धि जय ऋद्ध धीर ॥
वृतात्म जयति जय जय महाक्ष । जय गरुड़ध्वज जय विशालाक्ष ॥ ४७ ॥
जय अतुलशरभ जय जयति भीम । सब जगह विहरहरि धर्म सीम ॥
जय जय लक्षण लक्षण्य नाथ । जय लक्ष्मीपति जयकर सुनाथ ॥ ४८ ॥
जय संमिति जय विक्षर ललाम । जय रोहित मार्गहु हेत राम ॥
दामोदर सह जय सुर सहाय । जय जयति महीधर मोद दाय ॥ ४९ ॥
जय महाभाग जय वेगमान । जय जय अमितासन मोद मान ॥
जय उद्भव क्षोभण जयति देव । श्रीगर्भहु परमेश्वर सुसेव ॥ ५० ॥
जय करन जयति कारणहु कर्त्त । जय गहन गुहा जय जय विकर्त्त ॥
जय जय व्यवसायहु व्यवस्थान । जय संस्थानहु थानद महान ॥ ५१ ॥
जयध्रुव परर्द्धि जय परस्पष्ट । जय तुष्ट पुष्ट शुभ नयन इष्ट ॥
जय जयति राम जय जय विराम । जय विरज जयति मार्गहु ललाम ॥ ५२ ॥
जय निज भक्तनके सततु नेय । जय जय जय अनयहु देव धेय ॥
जय वीर शक्ति युत श्रेष्ठ नाथ । जय धर्म धर्म धरकर सनाथ ॥ ५३ ॥
जय जय विकुण्ठ जय पुरुष प्रान । जय प्राणद प्रणवंहु पृथु प्रधान ॥
जय हिरण्यगर्भ शत्रुघ्न व्याप्त । जय वायु अधोक्षज ऋतुसुआप्त ॥ ५४ ॥
जय जयति सुदर्शन जयतिकाल । जय परमेष्टी परिग्रह कृपाल ॥
जय उग्र जयति संवत्सरेश । जय दक्ष जयति विश्राम वेश ॥ ५५ ॥
जय विश्व दक्षिणहु जग अधार । जय विस्तारहु जय नंदकुमार ॥
जय थावर थानहु जे प्रमान । जय जय बीजहु जय जय अमान ॥ ५६ ॥
जय जयति अर्थ जय जय अनर्थ । जय महाकोप जय जय समर्थ ॥
जय जयति महाधन महाभोग । जय अनिर्विण्ण जय जगत रोग ॥ ५७ ॥
जय जय थविष्ट भुव धर्म जूप । जय जयति महामख बपु अनूप ॥
जय जय नक्षत्रि नक्षत्रनेमि । जय क्षमहु जयति जय छाम छेमि ॥ ५८ ॥
जय जयति समीहन यज्ञ इज्य । जय ऋतु जय सत्रहु जय महेज्य ॥
जय सन्तनके गति सर्व दर्शि । जय निवृत्तात्म सर्वज्ञ हर्षि ॥ ५९ ॥
जय जय सुव्रत्य उत्तम सुज्ञान । जय सुमुख जयति सूक्षम महान ॥
जय जय सुघोष जय सुखद भूरि । जय सुहृद मनोहर सुछवि पूरि ॥ ६० ॥
जय जय जित क्रोधहु वीर बाहु । जय जयति विदारण दुष्ट दाहु ॥
जय स्थापन स्ववशहु जयति व्यापि । जय जय अनेक आतम प्रतापि ॥ ६१ ॥

जय जय अनेक कर्मन करन्त । जय वत्सर वत्सल नाथ सन्त ॥
जय वत्सल जय जय रत्नगर्भ । जय जयति धनेश्वर नन्दअर्भ ॥ ६२ ॥
जय धर्म रक्ष धर्महि करंत । जय धरमो पालक सदा सन्त ॥
जय सद सदक्षर क्षर ज्ञान । जय सहस्रांशु जय जय निधान ॥ ६३ ॥
जय कृत लक्षणहु गभस्ति नेम । सत्त्वस्थ सिंह जय करन छेम ॥
जय भूत महेश्वर आदि देव । देवेश देव भृत महादेव ॥ ६४ ॥
जय गुरु उत्तर गोपति ललाम । जय गो प्रज्ञान गम्यहु अराम ॥
जय जयति पुरातन प्रभु अकाम । जय देहभूत भृत भोक्त श्याम ॥ ६५ ॥
जय भूरि दक्षिणहु जय कपींद्र । जय सोमप अमृत जय महींद्र ॥
जय सोम जयति पुरजित व्रजेश । पुरुषोत्तम जय जय विनय वेश ॥ ६६ ॥
जय सत्यसन्ध दाशार्ह वीर । जय सात्वतपति जय जीव धीर ॥
जय जय विन इत साक्षी मुकुंद । जय अमित विक्रमहु वदन चंद ॥ ६७ ॥
जय जय अम्भोनिधि अनंतात्म । जय जयति महोदधिसे महात्म ॥
जय जय अन्तक अज महाअर्ह । जय जय स्वभाव्य शुचि जसह गर्ह ॥ ६८ ॥
जय जयति प्रमोदन जिता मित्र । आनन्द नन्दनहु नन्द मित्र ॥
जय जयति त्रिविक्रम सत्य धर्म । जय कपिलाचार्य महर्षि सर्म ॥ ६९ ॥
जय जयति मेदिनीपति कृतज्ञ । जय त्रिपद त्रिदश अध्यक्ष प्रज्ञ ॥
जय जय कृतांत कृत महा शृङ्ग । जय महावराह गोविन्द अंग ॥ ७० ॥
जय कनक अंगदीजे सुषेन । जय गुह्य गंभीरहु गहन चैन ॥
जय गुप्त चक्र अरु गदा धारि । जय वेद्य स्वांग अजितहु खरारि ॥ ७१ ॥
संकर्षण जय दृढ़ कृष्णनाथ । जय वरुण वारुणहु अच्युताथ ॥
जय वृक्ष जयति जय पुष्कराक्ष । जय महा मनहु भगवान् स्वाक्ष ॥ ७२ ॥
जय जय भगघ्न नंदी कपाल । जय वनमाली हलधर विशाल ॥
आदित्य ज्योति आदित्य वेष । जय जय सहिष्णु गति सत्यमेश ॥ ७३ ॥
जय खंड परस जयजय स्वधन्व । जय द्रविणप्रदहु दारुण अकन्व ॥
जय जयति दिवसप्रिय सर्व दर्श । जय वाचस्पति जय व्यास हर्ष ॥ ७४ ॥
जयजयति अयोनिज जयत्रिसाम । जय जय सामग निर्वाण साम ॥
जय भेषज भिषज संन्यास कारि । जय समजय शान्तहु निर्विकारि ॥ ७५ ॥
जय निष्ठा शान्तहु सुभग अंग । जय जयति परायण यश अभंग ॥
जय शांतिद स्रष्टा कुमुद कांत । जय कुवलयेष गोहित सुशान्त ॥ ७६ ॥
जय गोपति गोप्ता वृषभ अक्ष । जय वृष प्रिय अनवर्ती प्रत्यक्ष ॥
जय निवृत्तात्म संक्षेप्तृ क्षेम । जय जयति क्षेमकृत शिव सुनेम ॥ ७७ ॥
जय श्रीवक्षस श्रीवास श्रीद । श्रीमन्त श्रेष्ठ श्रीपति प्रसीद ॥
जय श्रीनिवास जय जयति श्रीश । जय श्रीविभावनहु श्रीनिधीश ॥ ७८ ॥
जय श्रीकर श्रीधर जयति श्रेय । जय श्रेय श्रीमान् विरचिधेय ॥
जय लोकत्रयाश्रय स्वच्छ संग । जय सतानन्द नन्दी अभंग ॥ ७९ ॥
जय ज्योतिगणेश्वर विजित आत्म । जय विधेयात्म जय जय परात्म ॥
जय जयति छिन्न संशय उदीर्ण । जय जय सतकीरति बल अजीर्ण ॥ ८० ॥

सर्वत्र चक्षु जय जय अनीश । जय शाश्वत थिर भूसे महीश ॥
जय भूषण नीति विशोक राम । जयजयति शोकनाशक अकाम ॥ ८१ ॥
जय अर्चित अर्चि समान नाथ । जय कुंभ विशुद्धातम सुगाथ ॥
जय जयति विशोधन शुद्ध बुद्ध । अनिरुद्ध जयति नित दुष्ट क्रुद्ध ॥ ८२ ॥
जय अप्रतिरथ प्रद्युम्नवीर । जय अमित विक्रमहु समरधीर ॥
जय कालनेमि दानव सँहार । जय सौरि सूर देवकि कुमार ॥ ८३ ॥
जय सूर जनेश्वर त्रिलोकात्म । जय त्रिलोकेश केशव सुआत्म ॥
जय केशि विनाशन हरि दयालु । जय काम देव जय कामपालु ॥ ८४ ॥
जय जयति कृतागम कामिकान्त । जय अनिर्देश्यवपु दांत शांत ॥
जय विष्णु वीर जय जय अनंत । जयजयति धनंजय सीयकन्त ॥ ८५ ॥
ब्रह्मण्य ब्रह्म कृत ब्रह्म ब्रह्म । जय ब्रह्म विवर्द्धन परब्रह्म ॥
जय जयति ब्रह्मविद्ब्रह्मि विष्णु । जय जय ब्राह्मण ब्रह्मज्ञ जिष्णु ॥ ८६ ॥
जय जय ब्राह्मण प्रिय धुर्ज धर्म । जय जयति महाक्रम महाकर्म ॥
जय जयति महोरग महातेज । जय जयति महाकृति सर्प सेज ॥ ८७ ॥
जय महाजज्व जय महायज्ञ । जय महाहविष जय प्रभु कृतज्ञ ॥
जय जय स्तव्य जय स्तवपियार । जय जय स्तोत्र जयस्तुति उदार ॥ ८८ ॥
जय जय स्तोता रन प्रियहु पूर्ण । जय पूरेता किय शत्रु चूर्ण ॥
जय पुण्यकीर्ति जय पुण्यरूप । जय जयति अनाय दुष्ट कूप ॥ ८९ ॥
जय जयति मनोजव तीर्थ कारि । वसुरेत वसुप्रद जय मुरारि ॥
जय वसुप्रद जय जय वासुदेव । जय वसुजय वसुमन हविषदेव ॥ ९० ॥
जय सद्गति सत्कृति सर्वयामि । जय सत्ता जय सह भूतिस्वामि ॥
जय सत परायणहु शूरसेन । जय जय यदुनायक कंजनैन ॥ ९१ ॥
जय जयति सुयासुन सन्निवास । जय वासुदेव जय भूतवास ॥
सर्वासुनिलय जय अनल रूप । दर्पघ्न जयति दर्पद अनूप ॥ ९२ ॥
जय जयअद्रिय दुर्द्धर उदण्ड । जयअपराजित जयजय अखंड ॥
जय विश्वमूर्ति जय महामूर्ति । जय दीप्तमूर्ति जय जय अमूर्ति ॥ ९३ ॥
जय मूर्ति अनेकहु जय अव्यक्त । जय सत्त्व मूर्ति सतवदन व्यक्त ॥
जय एक अनेकहु मोदधाम । जय सः जय वः जय कासुनाम ॥ ९४ ॥
जय किं जय जय जय तत्परेश । जय जयति अनुत्तमपद रमेश ॥
जय लोकबन्धु जय लोकनाथ । जय जय माधव जय जगन्नाथ ॥ ९५ ॥
जय जयति भक्तवत्सल गोपाल । जय सुवर्ण वर्ण हेमांग लाल ॥
जय चन्दनांगदी जय वरांग । जय जयति वीरहा विषमसांग ॥ ९६ ॥
जय सूनष्ट तासी अचल थान । जयजयति अमानी चल महान ॥
जय मानद मान्यहुलोक स्वामि । जयजयति लोकधृत अमृतनामि ॥ ९७ ॥
जय जय सुमेध मेधजहु धन्य । जय सत्य मेध जय जय ब्रह्मण्य ॥
जय जयति धराधर धराधार । जय तेजो वृष द्युतिधर उदार ॥ ९८ ॥
जय सर्व शस्त्रभृत मह ललाम । जय प्रग्रह निग्रह अव्य याम ॥
जय जयति गदाग्रज नैक शृङ्ग । जय चतुर मूर्ति सत कमलभृंग ॥ ९९ ॥

जय चतुर्बाहु जय चतुर्व्यूह । जय चतुर गती प्रिय सन्तजूह ॥
जय चतुर आत्म जय चतुर भाउ । जय सदा सरलकोमल स्वभाउ ॥१००॥
जय चतुरवेत विधि एक पाद । जय समावर्त्त जय ब्रह्म वाद ॥
जय निवृत्तात्म दुर्जेय दुरंत । जय दुरतिक्रम दुर्लभ अनन्त ॥१०१॥
जय दुर्गम दुर्गहु दुरावास । जय दुरारिघ्न दुःख दीर्घनास ॥
जय जय सुभंग जय जय सुतंतु । जय जयति लोक सारंग सन्तु ॥१०२॥
जय जयति तन्तुवर्द्धन सुधर्म । जय इन्द्र कर्म जय महाकर्म ॥
जय जय कृतकर्म कृतागमेश । जय उद्धव सुन्दर सुन्दरेश ॥१०३॥
जय सुन्द सुलोचन रत्नाभ । जय अर्क, वाजसन पद्मनाभ ॥
जय जय शृंगी जय जय जयंत । जय सर्वज्ञात विजयी अनंत ॥१०४॥
जय सुवरन विन्दु अक्षोभ्य श्याम । जय सर्व वाचस्पति पति ललाम ॥
जय जयति महाह्रद महागर्त्त । जय महाभूत सब जगत भर्त्त ॥१०५॥
जय जयति महानिधि कुमुद कुंद । जय कुंदर पर्जन्यहु मुकुन्द ॥
जय पावन अनिलहु अमृत आसि । जय अमृतरूप आनन्द रासि ॥१०६॥
सर्वज्ञ सर्वसुख सुलभ दास । सुव्रतहु सिद्ध न्यग्रोध वास ॥
रिपुजित रिपुतापन जय अमंद । अश्वत्थ उदुम्बर जय अनंद ॥१०७॥
चाणूर अंध्र सूदन सुजान । जय सप्त जिह्वा सहस्रार्चिमान ॥१०८॥
सप्तैध सप्त वाहन अमूर्ति । जय अनघ अचिंत्यहु काम पूर्ति ॥
जय भयकृत भयनाशन मुकुंद । जय अनुवहतहु कृशशूलनन्द ॥१०९॥
जय गुणभृति निर्गुण जय महांत । जय अधृत जय जय स्वास्य सांत ॥
जय प्रागवंश बर्द्धनहि वंश । जय भार भूत कथितहु प्रशंस ॥११०॥
जय योगि जयति जय योगिईश । जय सर्वकामप्रद पति अनीश ॥
जय आश्रमश्रमनहु जयति श्याम । जय जयसुपर्णय रघुपति ललाम ॥१११॥
जय जयति वायुवाहन अषेद । जय जयति धनुर्द्धर धनुर्वेद ॥
जय दंड दमतया अदमनाथ । जय सर्वसहु अपराजिताथ ॥११२॥
जय जय नियत नियमहु यमेश । जय सत्त्ववान सात्त्विक रमेश ॥
जय सत्यधर्म जय परायणार्य । जय अभिप्राय सत्यहु आचार्य ॥११३॥
जय जय प्रियार्ह जय अरह स्वामि । जयजयतिनाथप्रियकृतअकामि ॥
जय जयति विहाय संगति सुजान । जय प्रीति वर्द्धनहु प्रभु महान ॥११४॥
जय ज्योति सुरुचिर विसूर्यनाथ । जयहुतभुक्र विभु सुखकर सनाथ ॥
जय जयति विरोचन जय सवित्र । जय रविलोचन लीला विचित्र ॥११५॥
जय जय अनंत हुत भोजि भोग । जय सुखद नैकदहु अमल योग ॥
जय जय अग्रज जय अनिर्विन्न । जय सदा मर्षिनहिं परिच्छिन्न ॥११६॥
जय अद्भुत लोकन अधिष्ठान । जय जयति सनातन तम सुजान ॥
जयजयति सनातन कपिल योगि । अव्यैकपि स्वस्तिद स्वस्ति भोगि ॥११७॥
जयजयति स्वस्तिकृत जय अच्छौद्र । जय स्वस्तिदक्षिणहु जय अरौद्र ॥
जय चक्री जय कुण्डली नाथ । जय जय विक्रमी अभेद्दाथ ॥११८॥

जय शब्दाति गज यादवेन्द्र । जय उर्जित शासन राघवेन्द्र ॥
जयजयतिशब्द सहस्र शिरस्वामि । जय जय जयति शर्वरीकर सुनामि॥११९॥
जय जय अक्रूर पेशलहु दक्ष । जय जय छमिणावर जय प्रत्यक्ष ॥
जय दक्षिण विद्वत्तम कृपाल । जय वीतभयहु यदुवंश लाल ॥१२०॥
जय पुण्य श्रवण कीर्त्तन रसाल । जय उत्तारण रघुवंश लाल ॥
जय दुष्कृतघ्न जय पुण्यशील । दुःस्वप्न विनाशन जय सुशील ॥१२१॥
जीवन रक्षण वीरघ्न सन्त । जयजयति परजन्यस्थित अनन्त ॥
जय जय अनन्त श्रीविजितमन्तु । जय जयति भयावह प्रबल धन्तु ॥१२२॥
जय जय चतुरष गम्भीर आत्म । जयबिदिशव्यादिशहुदिनअनात्म ॥
जय जय अनादि भूर्भुव ललाम । जय जय सुवीर लक्ष्मी अकाम ॥१२३॥
जय रुचिरांग जय जतन ईश । जय जय जन्मादि सुविसे वीश ॥
जय भीम पराक्रम भीमकर्म । आधार निलै धाता सुधर्म ॥१२४॥
जय जयति प्रजागर पुष्पहास । जय ऊर्ध्वग प्रभु लक्ष्मीनिवास ॥
जय जयति सतपथाचार ज्ञान । जय प्राणद प्रणवहु पण प्रमान ॥१२५॥
जय प्राण निलय जयमान धर्त । जय जयति प्राणजीवन सुमर्त ॥
जय तत्त्व तत्त्ववित जय एकात्म । जय जन्महु मृत्यु जरातिगात्म ॥१२६॥
जय भूर्भुवस्वः जय तरुस्तार । जय सपिता प्रपितामह उदार ॥
जय यज्ञ यज्ञपति यज्जुरूप । यज्ञांग यज्ञ वाहन अनूप ॥१२७॥
जय जयति यज्ञभृत यज्ञकारि । जय जग्मी यज्ञ भुजी मुरारि ॥
जय जयति यज्ञ साधन परेश । जय यज्ञ अन्त कृत जय रमेश ॥१२८॥
जय जय गुह्य अन्नादअन्न । स्वयंजात आत्म जोनहु प्रसन्न ॥
वैषान साम गायन गोविंद । जय जय स्रष्टा देवकीनंद ॥१२९॥
जय जयति पाप नाशन क्षितीश । जय जयति शंखधारी महीश ॥
जय जय चक्री नंदकी नाथ । जय जय कोदंड शारंग हाथ ॥१३०॥
जय जयति गदाधर रमा जानि । जय जयति अक्षोभ्य रथांगपानि ॥
जय सर्वप्रहरणायुध उदार । रघुराज दीनके जय अधार ॥१३१॥

दोहा–व्यासदेव भारत विषे, लिखो सहस्र सुनाम ॥
सो शुकसागर अन्तमें, बरण्यो शालिग्राम ॥

इति श्रीविष्णुसहस्र नाम समाप्त ।

॥ शुभमस्तु ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
बम्बई ४.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास